पुस्तक सं. 7

भारतीय संविधान सभा

के

विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

खण्ड IX (ब) - 01-09-1949 से 18-09-1949

लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली द्वारा पुनर्मुद्रित

द्वितीय पुनर्मुद्रण 2015

जैनको आर्ट इण्डिया, 13/10, डब्ल्यूईए, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय संविधान सभा

अध्यक्ष :

माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

उपाध्यक्ष :

डॉ. एच.सी. मुखर्जी

संवैधानिक सलाहकार :

सर बी.एन.राव, *सी.आई.ई.*

सचिव :

श्री एच.वी.आर. आयंगर, *सी.आई.ई., आई.सी.एस.*

संयुक्त सचिव :

श्री एस.एन. मुखर्जी

उप सचिव :

श्री जुगल किशोर खन्ना

मार्शल :

सूबेदार मेजर हरबन्स राय जैदका

Con. 3. IX.23.49
320

अंक 9
संख्या 23-38

बृहस्पतिवार
1 सितम्बर,
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

सभा में विंध्य प्रदेश के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में वक्तव्य 1267-1268

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

सप्तम अनुसूची—*(जारी)*

[सूची 1 प्रविष्टि 74 से 91 पर विचार]

[सूची 2-राज्य सूची: प्रविष्टि 1 से 15 पर विचार] 1268-1338

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 1 सितम्बर, 1949

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

सभा में विंध्य प्रदेश के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में वक्तव्य

***अध्यक्षः** अवशिष्ट प्रविष्टियों पर विचार-विमर्श की कार्यवाही आरम्भ करने के पूर्व मैं एक छोटा-सा वक्तव्य देना चाहता हूं। श्री कामत ने इस आशय के एक प्रस्ताव की सूचना दी थी कि संविधान-सभा के सचिवालय को विंध्य प्रदेश के प्रतिनिधि को सभा में लाने के लिये कार्यवाही करनी चाहिये। यह एक तथ्य है और यह एक खेदजनक तथ्य है कि विंध्य प्रदेश का अभी तक इस सभा में प्रतिनिधित्व नहीं हो सका है। किन्तु हमारा सचिवालय जो भी कार्यवाही कर सकता था कर चुका है और वास्तव में मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि राज्य-मंत्रणालय भी इस मामले में दिलचस्पी ले रहा है। इस कारण इस प्रकार के प्रस्ताव को उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। समिति ने यह निर्णय किया है कि चूंकि इस सम्बन्ध में कार्यवाही की जा चुकी है, इसलिये श्री कामत से कहा जाये कि वे इस प्रस्ताव को उपस्थित न करें। इसलिये मुझे आशा है कि श्री कामत इससे सहमत होंगे कि इस मामले में अन्य कोई कदम उठाने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): मैंने एक अन्य प्रस्ताव की भी सूचना दी थी जिसमें मैंने आप से प्रार्थना की थी कि हैदराबाद के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में भी कार्यवाही की जाये।

***अध्यक्षः** वह एक भिन्न प्रस्ताव है। मैं कह नहीं सकता कि इस समय संघ में हैदराबाद राज्य की स्थिति क्या है।

***श्री आर.के. सिधवाः** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): इस सभा के लिये विंध्य प्रदेश का प्रतिनिधि किस कारण निर्वाचित नहीं किया जा रहा है?

***अध्यक्षः** मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता, किन्तु मेरे विचार से कारण यह है कि प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के लिये कोई उपयुक्त निर्वाचक-मंडल नहीं है क्योंकि वहां कोई विधान-मंडल नहीं है। राजप्रमुख से कहा गया है कि वह एक निर्वाचक-मंडल स्थापित करे। वह अभी तक स्थापित नहीं किया गया

[अध्यक्ष]

है। इसी कारण उस प्रदेश का अभी तक प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है किन्तु मुझे आशा है कि अब वहां इस ओर कदम उठाया जायगा।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): क्या मैं यह समझूं कि निर्वाचन-क्षेत्र निश्चित किये जा चुके हैं और इसकी सूचना राजप्रमुख को दे दी गई है?

***अध्यक्षः** हम निर्वाचक-मंडल को नहीं निश्चित कर सकते हैं। राजप्रमुख पर ही यह छोड़ दिया गया है कि वह निर्वाचक-मंडल को निश्चित करे। हमने उनसे कहा है कि वे अपने प्रतिनिधियों को यहां भेजें और उन्होंने वचन दिया है कि वे अब भेजेंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या आप कृपा करके मुझे एक शब्द कहने की आज्ञा देंगे? मैंने सचिवालय से नहीं कहा था। श्रीमान, चूंकि आप अध्यक्ष हैं इसलिये मैंने आप ही से प्रार्थना की थी।

***अध्यक्षः** किन्तु सचिवालय ने जो कुछ किया है वह मेरे ही आदेशों के आधीन किया है।

***श्री एच.वी. कामतः** किन्तु मैं आपसे ही प्रार्थना करता हूं।

***अध्यक्षः** किन्तु मैं स्वयं क्या कार्यवाही कर सकता हूं? उसे सचिवालय को ही अपने हाथ में लेना होता है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं यह कहना चाहता था कि मैंने प्रस्ताव की सूचना अध्यक्ष को दी थी न कि सचिवालय को।

***अध्यक्षः** सचिवालय ने तो मेरे आदेशों के अधीन ही कार्यवाही की है।

अब हम प्रविष्टि 74 को उठायेंगे। इसके सम्बन्ध में कुछ संशोधन हैं। पहले डॉ. अम्बेडकर अपने संशोधन को उपस्थित करें।

संविधान का मसौदा—(*जारी*)

सप्तम अनुसूची—(*जारी*)

सूची 1: प्रविष्टि 74

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल) : श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 की प्रविष्टि 74 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'74. The regulation and development of inter-State rivers and river-valleys to the extent to which such regulation or development under the control of the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.

[74. उस सीमा तक अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी-दूनों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद विधि द्वारा लोक-हित के लिये इष्टकर घोषित करे।]

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अपना संशोधन करने के पूर्व क्या मैं आपकी अनुमति से एक शब्द कह सकता हूं? किसी प्रकार, सम्भव है मेरी गलती के कारण इस संशोधन में एक शब्द नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि "विनियमन" शब्द रखा जाये। श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3562 में सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 74 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'74. The regulation and development of inter-State rivers and inter-State waterways, including flood control, irrigation, navigation and hydro-electric power and for other purposes, where such development under the control of the Union is declared by Parliament by law to be necessary or expedient in the public interest.'"

[74. अन्तर्राज्यिक नदियों तथा अन्तर्राज्यिक जलपथों का विनियमन और विकास, जिनमें बाढ़ पर नियंत्रण, सिंचाई, नौ-परिवहन, पन-बिजली की शक्ति और अन्य प्रयोजन भी सम्मिलित हैं, जहां संघ के नियंत्रण में ऐसे विकास को संसद ने विधि द्वारा लोकहित के लिये आवश्यक अथवा इष्टकर घोषित किया हो।]

श्रीमान, मुझे केवल एक ही बात कहनी है और वह यह है कि मेरा संशोधन डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से अधिक विस्तृत है।

*__अध्यक्षः__ श्री कालावेंकट राव ने भी एक संशोधन की सूचना दी है जिसका आशय यह है कि इस प्रविष्टि को बिल्कुल ही निकाल दिया जाये। चूंकि यह प्रस्ताव प्रविष्टि को निकालने के सम्बन्ध में है इसलिये वे इसे संशोधन के रूप में उपस्थित न करें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जो कुछ चाहते हैं वह मेरे संशोधन में सन्निहित है और इसलिये उसे स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं चाहता हूं कि मुझे अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति प्रदान की जाये।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर उसी रूप में मत लेता हूं जिस रूप में इसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित किया है।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 74 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'74. The regulation and development of inter-State rivers and river-valleys to the extent to which such regulation or development under the control of the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.'"

[74. उस सीमा तक अन्तर्राज्यिक नदियों और नदी-दूनों का विनियमन और विकास जिस तक संघ के नियंत्रण में वैसे विनियमन और विकास को संसद विधि द्वारा लोक-हित के लिये इष्टकर घोषित करे।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 74, संशोधित रूप में, संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 75

***अध्यक्ष:** अब हमारे सामने दो अतिरिक्त प्रविष्टियां, अर्थात् प्रविष्टि 74-क और प्रविष्टि 74-ख है। कल जो संशोधन उपस्थित किये गये थे और गिर गये थे उनसे, मेरे विचार से, इनका आशय पूरा हो गया था। इसलिये अब इनका प्रश्न नहीं उठता अब मैं प्रविष्टि 75 को उठाता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:–

"सूची 1 की प्रविष्टि 75 से 'beyond territorial waters' (जलप्रांगण से परे) शब्द निकाल दिये जायें।"

प्रविष्टि 75 इस प्रकार है— "जलप्रांगण से परे मछली पकड़ना और मीन-क्षेत्र।" कुछ समय पूर्व इस सभा ने एक अनुच्छेद स्वीकार किया था–मैं कह नहीं सकता कि वह कौन-सा अनुच्छेद है—जिसका आशय यह है कि केन्द्र को मछली पकड़ने का अथवा समुद्र पर अन्य कोई अधिकार है। उस समय सभा में यह प्रश्न उठाया गया था कि केन्द्र को जल-प्रांगण पर कोई अधिकार है या नहीं। उस अनुच्छेद से यह अर्थ निकलता था कि केन्द्र को सभी समुद्रों में मछली पकड़ने का तथा उन पर अन्य सभी अधिकार भी प्राप्त होंगे वह महासमुद्र हों अथवा जलप्रांगण हों।

***अध्यक्षः** वह अनुच्छेद 271-क है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** तब वर्तमान रूप में प्रविष्टि 75 से केन्द्र को अनुच्छेद 271-क द्वारा दिया जाने वाला अधिकार निराकृत हो जायेगा। मेरी यह धारणा है कि प्रविष्टि 75 को अनुच्छेद 271-क के अनुरूप बनाने की दृष्टि से नहीं दुहराया गया है। मैं सब कुछ स्पष्ट कर देना चाहता हूं। यदि यह आवश्यक समझा जाये कि सब कुछ आज तक के निर्णयों के अनुरूप किया जाये तो, मेरे विचार से, इस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं श्रीमान, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***अध्यक्षः** तब संशोधन पर मत लिया जायेगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 75 से 'beyond territorial waters' (*जलप्रांगण से परे*) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं इस प्रविष्टि पर उस रूप में मत लेता हूं जिस रूप में यह आरम्भ में उपस्थित की गई थी।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित प्रविष्टि संख्या 75 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि संख्या 75, संशोधित रूप में, संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 76

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 76 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:-

'76. Manufacture, supply and distribution of salt by Union agencies; regulation and control of manufacture, supply and distribution of salt by other agencies.'"

[76. संघ-अभिकरणों द्वारा लवण का निर्माण, सम्भरण और वितरण; अन्य अभिकरणों द्वारा लवण के निर्माण, सम्भरण और वितरण का विनियमन और नियंत्रण।]

***अध्यक्षः** इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है। इसलिये मैं इस प्रविष्टि पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 76 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'76. Manufacture, supply and distribution of salt by Union agencies; regulation and control of manufacture, supply and distribution of salt by other agencies.'"

[76. संघ-अभिकरणों द्वारा लवण का निर्माण, सम्भरण और वितरण; अन्य अभिकरणों द्वारा लवण के निर्माण, सम्भरण और वितरण का विनियमन और नियंत्रण।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 76, संशोधित रूप में संघ-सूची का अंग बना ली गई।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, जब आप प्रस्तावों पर मत लेते हैं तो डॉ. अम्बेडकर माइक्रोफोन पर "हां" कहते हैं जिसके कारण हां वालों की आवाज अनुचित रूप से बढ़ जाती है।

***अध्यक्षः** दुर्भाग्य से आज डॉ. अम्बेडकर का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। इसी कारण उन्होंने अपने सामने माइक्रोफोन रखा है। किन्तु मैं आशा करता हूं कि मतदान के लिये माइक्रोफोन का उपयोग नहीं किया जायेगा।

प्रविष्टि 77

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, प्रविष्टि 77 के आधीन संघ सरकार को भारत के किसी भी भाग में गम्भीर आपात उपस्थित होने पर उसे दूर करने के लिए कार्यवाही करने की शक्ति प्रदान की गई है। ये शक्तियां संविधान के तद्विषयक उपबन्धों से प्रतिबंधित नहीं होती हैं। मेरा निर्वचन यह है कि इस संविधान के अनुच्छेदों के अधीन केन्द्र को जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उनके अतिरिक्त देश के किसी भाग में गम्भीर आपात के सम्बन्ध में व्यवस्था करने के लिये इस प्रविष्टि के अधीन संघीय विधान-मंडल को अतिरिक्त शक्तियां प्रदान की गई हैं। यदि हम इस प्रविष्टि को निकाल देते हैं तो उसका अर्थ यह होगा कि संघ सरकार की शक्तियां संविधान के अनुच्छेदों से प्रतिबंधित हो जायेंगी। यह एक बहुत बड़ी शक्ति है और यह ठीक ही है कि यह केन्द्र को प्रदान की जाये। इसलिये मैं सूची 1 से इस प्रविष्टि को निकालने के प्रस्ताव का पूरे जोर से विरोध करता हूं।

*अध्यक्षः प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 से प्रविष्टि 77 निकाल दी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 77 सूची 1 से निकाल दी गई।

प्रविष्टि 78

प्रविष्टि 78 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 79

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, प्रविष्टि 79 के सम्बन्ध में मैंने एक बात कहनी है। इस सभा के कुछ सदस्यों की यह धारणा है कि यदि प्रविष्टि 79 सूची 1 में रही तो केन्द्र को भी इसकी स्वतन्त्रता रहेगी कि वह श्रेष्ठि-चत्वर और वादा बाजार पर लगाये हुये करों और उनके सौदों पर मुद्रांक शुल्कों के अतिरिक्त अन्य करों के आगम का विनियोग करे। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मसौदा-समिति ने श्रेष्ठि-चत्वरों और वादा बाजारों का उल्लेख सूची 1 में इस उद्देश्य से नहीं किया है कि इस प्रविष्टि के अधीन जो कर लगाये जायेंगे, उनके आगम का विनियोग केन्द्र करे। साथ ही सभी प्रकार के सन्देहों को दूर करने के लिये मसौदा समिति अनुच्छेद 250 को भी संशोधित करना चाहती है, जिसके अधीन कुछ करों के आगम प्रांतों को दिये जायेंगे। हम अनुच्छेद 250 में, जिसमें करों के वितरण के सम्बन्ध में खण्ड (क) से लेकर खण्ड (घ) तक में उपबन्ध हैं, "श्रेष्ठि-चत्वरों और वादा बाजारों पर लगाये गये करों का आगम" शब्द आनुषंगिक उपबन्ध के रूप में रखना चाहते हैं ताकि वह भी प्रांतों को दिया जा सके। इससे मुझे विश्वास है कि कुछ सदस्यों का यह सन्देह दूर हो जायेगा कि इस प्रविष्टि के सूची 1 में रहने से केन्द्र को करों के विनियोग की शक्ति प्राप्त हो जायेगी। उद्देश्य यह नहीं है। यह प्रविष्टि केवल विधि बनाने के सम्बन्ध में है। वह आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में नहीं है।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रांत : जनरल): क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि क्या वे इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 267 में भी रूप भेद करना चाहते हैं?

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः इस विषय को सुसंगत बनाने के लिए मैं इस पर विचार करूंगा कि किसी आनुषंगिक उपबन्ध की आवश्यकता है या नहीं।

*अध्यक्षः सरदार हुकम सिंह और श्री ब्रजेश्वर प्रसाद अपने संशोधन नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः श्रीमान्, मूल रूप में, अनुच्छेद 79 श्रेष्ठि चत्वरों,

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वादा बाजारों तथा मुद्रांक शुल्क को छोड़कर उनके सौदों पर करों के सम्बन्ध में है। मुद्रांक शुल्कों को प्रान्त अपने क्षेत्राधिकार में होने वाले विक्रय पर लगाते हैं। वादों तथा श्रेष्ठियों के और प्रतिभूतियों के विक्रय-मूल्य पर भी मुद्रांक शुल्क चुकाना होता है। चूंकि विक्रय पर सभी प्रकार के मुद्रांक शुल्कों को प्रांत वसूल करते हैं इसलिये श्रेष्ठि-चत्वरों में होने वाले विक्रय पर भी जो मुद्रांक शुल्क लगे उसे सीधे-सीधे राज्य ही वसूल करें। इस प्रविष्टि से इस शर्त को हटाने का परिणाम यह होगा कि केन्द्र भी इस मुद्रांक शुल्क को लगा सकेगा यद्यपि इससे जो धनराशि वसूल होगी वह एक निधि में जमा की जायगी। इससे केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति भी प्राप्त हो जायेगी। कि वह इस धनराशि को जिस किसी राज्य को देना चाहे उसे दे और उस राज्य को न दे जिससे यह वसूल की गई है। मेरा निवेदन है कि मुद्रांक शुल्क केन्द्र के क्षेत्राधिकार में नहीं रहना चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या वर्तमान रूप में इस उपबन्ध का यह आशय नहीं है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरे विचार से एक संशोधन भी उपस्थित किया गया था।

***अध्यक्षः** सरदार हुकम सिंह ने उस संशोधन को उपस्थित नहीं किया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस दशा में मुझे खेद है कि मैंने ये बातें कहीं। किन्तु श्रीमान्, इतनी तेजी से काम हो रहा है कि मैं बहस को पूरी तौर पर नहीं समझ सका। मुझे अपनी गलती के लिये खेद है।

***अध्यक्षः** अब मैं प्रविष्टि 79 पर मत लेता हूं। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने भ्रमवश कुछ बातें कहीं थीं। उन्होंने वे वापस ले ली हैं।

प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 79 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 79 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 80

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 80 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 80 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 81

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3572 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जायेः–

"सूची 1 की प्रविष्टि 81 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'81. Duties in respect of succession to property including agricultural land.'"

[81. कृषि-भूमि सहित सम्पति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क।]

मैंने प्रांतों के हाथ में आर्थिक स्वायत्तता न रखने के उद्देश्य से ही इस संशोधन को उपस्थित किया है। संविधान के आर्थिक उपबन्धों पर विचार-विमर्श होते समय मैंने यह बताया था कि मैं प्रांतों को केवल सीमित प्रांतीय स्वायत्तता प्रदान करने के पक्ष में हूं। मेरे विचार से हममें से अधिकांश लोग हमारे राजनीतिक जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा करते हैं। प्रांतीय स्वायत्तता से मनुष्य-मनुष्य के बीच तथा प्रान्त-प्रान्त के बीच असमानता उत्पन्न हो गई हैं श्रीमान्, मेरे विचार से न्यायपूर्ण आर्थिक वितरण तभी हो सकता है जब केन्द्र को इस सम्बन्ध में सभी शक्तियां प्रदान की जायें। यदि हम प्रांतों की शक्तियों को बढ़ाते गये तो यह खतरनाक ही नहीं बल्कि बहुत दुखद भी सिद्ध होगा। मेरी यह धारणा थी कि लोग अपने पिछले अनुभवों से सबक सीखेंगे। देश विभाजन का तथा करोड़ों लोगों के घर बरबाद हो जाने से जो स्थिति उत्पन्न हुई है वह हमें एक सबक सीखने के लिये विवश करती है। हमें केन्द्र को शक्तिशाली बनाना चाहिये। हम संसार के समुन्नत राष्ट्रों से शताब्दियों पीछे हैं। विभिन्न शक्तियां कई दिशाओं से हमारे लिये खतरा पैदा कर रही हैं। इन शक्तियों का सामना करने के लिए पूरा प्रयास करने की आवश्यकता है। प्रान्तीय स्वायत्तता हमारे मार्ग में एक रोड़ा है और हमें उसे दूर करना चाहिये। हमें कई शताब्दियों तक देश के विकास के लिये प्रयत्न करने हैं। कई शताब्दियों में जो प्रयास हो सकता है उसे हमें कुछ ही समय में भी करना होगा। यह कार्य भारत में एक ही सरकार के नेतृत्व में सम्पन्न हो सकता है। श्रीमान्, शक्ति उन लोगों को दी जानी चाहिये जो लोगों को सेवा करना चाहते हैं। शक्ति उन लोगों को दी जानी चाहिये जो सेवा करने में कुशल हैं। यदि प्रान्तीय सरकारें लोगों की सेवा करना चाहेंगी तो वे केन्द्रीय सरकार का सहयोग प्राप्त करेंगी। यदि वे प्रान्तों के लोगों की सहायता करना चाहेंगी तो वे केन्द्र के सहयोग का स्वागत करेंगी। यदि वे इस प्रस्ताव का विरोध करती हैं तो उससे सन्देह प्रकट होता है। उससे हमें सन्देह होगा। श्रीमान्, यह कहा जाता है कि अत्यधिक केन्द्रीकरण से केन्द्र की प्रभुता स्थापित हो जायगी। मेरी समझ में नहीं आता कि इन लोगों का प्रभुता से क्या अर्थ है। क्या अर्थ यह है कि भारत सरकार प्रान्तों में रहने वाले लोगों का शोषण करेगी? यह कहा गया है कि भारत सरकार के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह सारे देश का दिल्ली से शासन करे क्योंकि वह नगर देश के कई भागों से बहुत दूर है। मेरा यह निश्चित मत है कि विज्ञान के तथा यातायात के साधनों के विकास से देश-काल का बाध हो गया हैं अब भारत का विस्तार उतना नहीं रह गया है जितना पहले था। देश-विभाजन से देश का विस्तार कम हो गया है। विज्ञान के विकास से संसार का विस्तार भी बहुत कम हो गया है। संसार का विस्तार अब बहुत संकुचित हो गया है और मेरी यह धारणा है कि अब सारे संसार पर एक ही सरकार शासन कर सकती है। हम एक विश्व-राज्य के आदर्श के प्रति निष्ठा रखते हैं। इसलिये, मेरी समझ में नहीं आता कि केन्द्र से कोई सरकार सुयोग्य ढंग से क्यों कार्य नहीं कर सकती। मैं शक्तियां प्रदान करने का विरोध नहीं करता हूं। मैं शक्तियों के वितरण का विरोध करता हूं और वह भी इस सीमा तक कि.....

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, इन सब बातों का विचाराधीन प्रविष्टि से क्या सम्बन्ध है?

***अध्यक्ष:** हम इन तर्कों को माननीय सदस्य महोदय से पहले भी सुन चुके हैं। वे कई संशोधनों के सम्बन्ध में इन्हीं तर्कों को उपस्थित करते रहे हैं। इसलिये इन तर्कों को अब दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): हम यह मान लेंगे कि उन्होंने ये तर्क उपस्थित कर दिये हैं।

*__अध्यक्ष:__ इस सूची में एक प्रविष्टि को बदल कर हम पहले के सभी निर्णयों का निराकरण नहीं कर सकते।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ इस सभा में जिन उपबन्धों के सम्बन्ध में समझौता हो चुका है उन पर मैं फिर विचार-विमर्श नहीं कराना चाहता। मैं केवल यह कह रहा हूं कि मैंने जो सुझाव रखा है उसके अनुसार यह प्रविष्टि संशोधित कर दी जाये। यदि आपका यह निर्णय है कि मैं अपना भाषण जारी न रखूं तो श्रीमान्, मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है।

(प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना बोलने के लिये उठे।)

*__अध्यक्ष:__ मुझे आशा है कि आप केवल श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के तर्कों का खण्डन करने के लिये नहीं बोलने जा रहे हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): नहीं श्रीमान्, मैं उनका समर्थन करने जा रहा हूं। श्री ब्रजेश्वर ने अपने तर्क उपस्थित किये हैं। मेरी अपनी यह धारणा है कि एक अन्य दृष्टिकोण से उनका संशोधन सारपूर्ण प्रतीत होता है। मैं यह चाहता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में कर लगाने की जो व्यवस्था स्थापित की जाये वह अन्य व्यवस्थाओं के अनुरूप ही हो। करों को केन्द्र संग्रह करे और फिर उन्हें प्रान्तों को दे ताकि करों की व्यवस्था में एक रूपता आ सके। विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न कर न लगने चाहियें। इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का उद्देश्य यह है कि यह शक्ति केन्द्र को प्रदान की जाये। केन्द्र विधि बना सकता है और करों को संग्रह कर सकता है। इससे जो भी धन प्राप्त हो वह प्रान्तों को दिया जा सकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि प्रान्तीय प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में इस प्रश्न पर विचार किया गया था। उनका यह मत था कि यद्यपि यह सिद्धान्त एक उपयुक्त सिद्धान्त है किन्तु वे इस समय इस प्रभावशील परिवर्तन को करने के लिये तैयार नहीं हैं।

*__अध्यक्ष:__ मैं अब संशोधन संख्या 49 पर मत लेता हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं चाहता हूं कि मुझे अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति प्रदान की जाये।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 81 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर दिया गया।

प्रविष्टि 81 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 82

***अध्यक्षः** इसी के समान एक संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का भी है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं भाषण नहीं दूंगा। मैं केवल संशोधन को उपस्थित करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** इस संशोधन में तथा पहले संशोधन में केवल यह अन्तर है कि इसमें "उत्तराधिकार के बारे में शुल्क" शब्दों के स्थान पर "सम्पत्ति के बारे में संपदा-शुल्क" शब्द प्रयुक्त है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3574 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:–

'82. Estate Duty in respect of property including agricultural land.'"

(82. कृषि-भूमि सहित सम्पति के बारे में संपदा-शुल्क।)

श्रीमान्, यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं यह स्पष्ट करने के लिये कि प्रान्तीय स्वायत्तता में परिवर्तन करने की क्यों आवश्यकता है, पहले से भिन्न तर्कों को उपस्थित करूंगा। किन्तु श्रीमान्, यदि आपकी यह इच्छा हो कि मैं आगे कुछ न कहूं तो मैं अपनी जगह पर वापस चला जाऊंगा।

***अध्यक्षः** प्रान्तीय स्वायत्तता पर अधिक विचार-विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। अब मैं संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं संशोधन को वापस लेता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 82 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रविष्टि 82 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 83

***अध्यक्षः** इसके सम्बन्ध में दो संशोधन हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"कि सूची 1 की प्रविष्टि 83 में 'railway (रेल)' शब्द के पश्चात् एक अर्द्धविराम तथा 'sea (समुद्र)' शब्द रखा जाये।"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

उद्देश्य यह है कि चूंकि 'समुद्र' शब्द रह गया था इसलिये उसे जोड़ कर इस प्रविष्टि के आशय को पूरा कर दिया जाये।

(संशोधन संख्या 51 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** इसके सम्बन्ध में कुछ अन्य संशोधन भी हैं। संशोधन संख्या 228, जो डॉ. देशमुख के नाम से है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 228 को उपस्थित नहीं करना चाहता किन्तु संशोधन संख्या 230 को उपस्थित करना चाहता हूं क्योंकि वही संशोधन विषय संख्या 52 के प्रसंग में उपयुक्त संशोधन है।

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 52 के सम्बन्ध में सूची 1 की प्रविष्टि 83 में 'railway (रेल)' शब्द के स्थान पर 'land, sea (भूमि, समुद्र)' शब्द रखे जायें।"

मुझे विश्वास है कि कल मेरे इन शब्दों का अर्थ ठीक प्रकार नहीं समझा गया था कि सड़कों पर, विशेषतया विभिन्न राज्यों के बीच की सड़कों पर, आने जाने वाले यात्रियों तथा ले जाई जाने वाली वस्तुओं का विषय संघ के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत होना चाहिये। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि राज्यों को अपने प्रदेशों के सम्बन्ध में जो क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं उससे कुछ अधिकार ले लिये जायें। किन्तु एक राज्य से अधिक के बीच जो यातायात है उसका क्या होगा? जब "समुद्र और वायु" शब्द रखे गये हैं और हम राष्ट्रीय राजमार्गों के लिये भी व्यवस्था करने जा रहे हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि "भूमि" शब्द को रखने में क्या आपत्ति हो सकती है। जब तक डॉ. अम्बेडकर कोई विशेष कारण न बतायें अथवा कोई ऐसा कारण न बतायें जिसके आधार पर इस संशोधन को स्वीकार करना उचित न होगा, मेरे विचार से "भूमि, समुद्र" शब्दों को प्रविष्ट कर लेना चाहिये।

श्री एच.वी. कामत: मेरा संशोधन संख्या 229 एक शाब्दिक संशोधन ही है और मैं यह चाहता हूं कि मसौदा-समिति ही उस पर विचार करे।

श्री आर.के. सिधवा: अध्यक्ष महोदय, छपे हुये संशोधनों के दूसरे अंक के पृष्ठ 387 पर मेरा संशोधन इस प्रकार दिया हुआ है:

"सूची 1 की प्रविष्टि 83 से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:–

'Terminal Tax on goods or passengers carried by rail or air (रेल या वायु से ले जाये जाने वाली वस्तुओं का यात्रियों पर सीमा-कर।)' "

अभी आप ने माननीय पंडित पंत को अपना संशोधन उपस्थित करने के लिए बुलाया था किन्तु वे सभा में उपस्थित न थे उनका संशोधन बिल्कुल मेरे संशोधन के समान है। इससे यह समझ में आ सकता है कि वे इस प्रविष्टि को यहां से हटाये जाने तथा इसे प्रान्तीय सूची में रखने को कितना अधिक महत्व देते हैं।

मैं हमेशा से यह कहता आया हूं कि सीमा-कर का विषय एक प्रान्तीय विषय है और इसे स्थानीय निकाय लगाते हैं। हमने हाल में यह उपबन्ध पारित किया था कि सीमा-कर को केन्द्र को वसूल करना चाहिये और उससे प्राप्त धन को प्रान्तों को दे देना चाहिये। यह मुझे पसन्द है। किन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि यदि यह पारित किया जाता है तो उस अनुच्छेद में आनुषंगिक परिवर्तन किया जा सकता है। मेरी यह प्रबल धारणा है कि सीमा-कर का विषय प्रान्तीय सरकार तथा स्थानीय निकायों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है और देश के प्रत्येक भाग में वे इसे वसूल करते रहे हैं। यदि केन्द्र उनसे यह अधिकार ले लेता है तो यह एक गलत बात होगी। पंडित पंत का इस सम्बन्ध में दृढ़ मत है किन्तु दुर्भाग्य से वे आज सभा में उपस्थित नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि वे अपने संशोधन को उपस्थित करते और वह स्वीकार किया जाता। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि मसौदा-समिति कृपा करके इस प्रविष्टि पर विचार करे और इसे इस सूची से निकाल कर प्रान्तीय सूची में रखे। यह कहा जा सकता है कि हम जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसे दृष्टि में रखते हुये मेरा संशोधन स्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु मैं सभा को यह स्मरण कराता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि यदि यहां कुछ पारित किया गया तो उसकी दृष्टि से हम जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसमें आनुषंगिक परिवर्तन किया जा सकता है। इस स्थिति में मुझे आशा है कि मसौदा-समिति इस पर कोई आपत्ति नहीं करेगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं डॉ. देशमुख के संशोधन को इस कारण स्वीकार नहीं कर सकता कि "भूमि" शब्द को सम्मिलित करने से केन्द्र को "सड़कों" पर ले जाये जाने वाली वस्तुओं तथा यात्रियों पर सीमा-कर लगाने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। हमारी योजना के अधीन सड़कों पर ले जाये जाने वाली वस्तुओं तथा यात्रियों पर सीमा-कर का विषय केवल विभिन्न राज्यों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रखा गया है। इसके सम्बन्ध में यही मुख्य आपत्ति है और इसी कारण मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि एक अन्य अवसर पर भी प्रस्तावक महोदय ने इसी के समान एक संशोधन उपस्थित किया था, जिसे सभा ने अस्वीकार कर दिया था।

श्री सिधवा के संशोधन के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि पिछली बार इस विषय पर भी विचार-विमर्श हुआ था और उस अवसर पर मैंने कहा था कि यद्यपि इन करों को केन्द्र लगायेगा किन्तु इनसे प्राप्त होने वाला धन विभिन्न प्रान्तों को दिया जायेगा। उस पर केन्द्र कुछ भी बयान न लेगा। यदि इस धन को पाने के पश्चात् प्रान्त उसके किसी भाग को स्थानीय निकायों को देना चाहे, तो उन्हें इसकी स्वतन्त्रता है। संविधान में किसी ऐसे कर के सम्बन्ध में उपबन्ध नहीं रखे जा सकते जो स्थानीय प्राधिकारियों को दिये जाते हों। यह राज्यों और स्थानीय अधिकारियों का आपस का मामला है और इसलिये इस प्रविष्टि में संशोधन करके अथवा इसे सूची 2 में रख कर परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्रीमान्, मुझे कृपया अपना संशोधन वापस लेने की अनुमति प्रदान की जाये।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मैं भी अपना संशोधन वापस लेता हूं:

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"सूची 1 की प्रविष्टि 83 में 'railway (रेल)' शब्द के पश्चात् एक अर्धविराम तथा 'sea (समुद्र)' शब्द रखा जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि संख्या 83, संशोधित रूप में संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 84

*__अध्यक्षः__ विषय संख्या 53, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम से है। क्या इस संशोधन को उपस्थित करना आवश्यक है?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान्, जैसी आपकी आज्ञा हो। मैं बिना कोई भाषण दिये हुये इस संशोधन को उपस्थित करना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं यह माने लेता हूं कि आपने उसे उपस्थित कर दिया है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ अच्छी बात है श्रीमान्।

(संशोधन संख्या 3577, 3578 और 3579 उपस्थित नहीं किये गये।)

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 84 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 84 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 85

प्रविष्टि 85 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 86

(संशोधन संख्या 54 उपस्थित नहीं किया गया।)

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 की प्रविष्टि 86 में से 'non-narcotic drugs (पिनक नहीं लाने वाले स्वापक)' शब्द निकाल दिये जाये।"

प्रस्तावित सूची में "पिनक नहीं लाने वाले स्वापक" समवर्ती सूची में उल्लिखित हैं।

***अध्यक्ष:** माननीय श्री के. सन्तानम् ने हमें एक अन्य संशोधन की भी सूचना दी है किन्तु मैं यह माने लेता हूं कि वह उपस्थित नहीं किया गया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, "अमघसारिक स्वापक" शब्द निकालने के सम्बन्ध में.........

***अध्यक्ष:** पिनक नहीं लाने वाले स्वापक।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** "पिनक नहीं लाने वाले स्वापक" शब्दों से प्रविष्टि 86 का आशय ही बदल जायेगा। प्रविष्टि इस प्रकार है: "भारत में निर्मित या उत्पादित तम्बाकू तथा पिनक नहीं लाने वाले स्वापकों व कुछ अन्य चीजों को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर उत्पादन-शुल्क।"

श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर "पिनक नहीं लाने वाले स्वापक" शब्दों को निकालना चाहते हैं। दिखाई तो यह देता है कि इसका साधारण प्रभाव होगा किन्तु बात यह नहीं है। मूल प्रविष्टि में पिनक न लाने वाले स्वापक सम्मिलित नहीं किये गये थे। मूल अनुच्छेद के अधीन यह विषय एक प्रान्तीय विषय था। यदि हम इन शब्दों को निकालते हैं तो अपवाद में भी ये शब्द नहीं रह जायेंगे। यदि अपवाद में ये शब्द अर्थात् "पिनक नहीं लाने वाले स्वापक" शब्द, निकाल दिये जाते हैं तो ये शब्द प्रविष्टि में स्वत: सम्मिलित हो जाते हैं। इन शब्दों को निकालने का प्रभाव यह होगा कि यह विषय राज्यों का विषय न रह कर तुरंत ही केन्द्रीय विषय हो जायेगा। मेरा यह निवेदन है कि सभा ने बहुत विचार-विमर्श करके इन प्रविष्टियों को स्वीकार किया है। इन शब्दों को निकाल देने से प्रान्तों के हाथ से एक विषय निकल जायेगा और केन्द्र के अत्यधिक कर्तव्य होते हुये भी उसे एक भार और स्वीकार करना पड़ेगा। मैंने यह विचार किया कि इस ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। यद्यपि मैं यह जानता हूं कि इस सभा में मेरे विरोध का कोई प्रभाव नहीं होगा फिर भी मैंने यह विचार किया कि मुझे अपना विरोध प्रकट कर ही देना चाहिये। यदि प्रान्तों की राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य शक्तियों को एक-एक करके छीनना है तो अच्छा यह होगा कि इस इसी समय कह दें कि प्रान्तीय स्वायत्तता समाप्त होनी चाहिये और एक सत्तात्मक शासन स्थापित होना चाहिये। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने प्रान्तीय स्वायत्तता को तुरंत ही समाप्त कर देने का जो प्रस्ताव रखा है उसे स्वीकार करना इससे कहीं अच्छा होगा। दिन-प्रतिदिन परिवर्तन करके हम जिस व्यवस्था को स्थापित कर रहे हैं उससे प्रान्तीय स्वायत्तता समूल नष्ट हो जायेगी। यह मेरी समझ में आता है कि प्रांतीय स्वायत्तता को तुरंत ही समाप्त कर देना चाहिये। यह बात मेरी समझ में आती है। प्रातों को पंगु बनाने से और उन्हें जिला मंडलियों तथा नगरपालिकाओं के स्तर पर लाने से अच्छा यह होगा कि प्रांतों को बिल्कुल मिटा ही दिया जाये और....

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान्, प्रांतीय स्वायत्तता को मिटाने का प्रश्न एक बड़ा प्रश्न है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हम यही कर रहे हैं। मैं केवल यह कहता हूं कि इसे धीरे-धीरे करने से और परोक्ष रूप से एक-एक करके प्रान्तों की शक्तियां छीनने से अच्छा यह होगा कि यह सब कुछ प्रत्यक्ष में किया जाये और यह

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कहा जाय कि केन्द्र जिस सीमा तक प्रान्तीय स्वायत्तता को जीवित रखना चाहेगा उसी सीमा तक वह जीवित रहेगी। यह जो कार्यवाही की जा रही है उससे यह कहीं अच्छा होगा। कई खतरनाक परिवर्तन किये जा चुके हैं और "पिनक नहीं लाने वाले स्वापक" शब्दों को निकालने से भी उन्हीं के समान एक खतरनाक परिवर्तन होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, यह सच है कि इस समय यह प्रविष्टि प्रान्तीय सूची में है, किन्तु इस सम्बन्ध में दो बातों को स्वीकार करना होगा। एक बात यह है कि किसी भी प्रान्त ने अभी तक इन विषयों के सम्बन्ध में कर नहीं लगाया है। इस प्रकार अभी तक प्रान्तों ने आर्थिक लाभ के लिये इनका उपयोग नहीं किया है। दूसरी बात यह है कि इस विषय को समवर्ती सूची में रखने पर भी और इसके सम्बन्ध में केन्द्र के कोई ऐसी विधि बनाने पर भी जिसमें राजस्व का प्रश्न उठता हो, अनुच्छेद 253 के खण्ड (2) के उपबन्धों के अधीन राजस्व प्रान्तों को दिया जायेगा। इस प्रकार जहां तक वित्त का सम्बन्ध है प्रान्तों को कोई हानि नहीं होगी। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि हम एक ऐसा स्वापक अधिनियम बनायें जो सारे भारत में समान रूप से प्रभावी हो। जब तक पिनक नहीं लाने वाले स्वापकों को समवर्ती सूची में नहीं रखा जायेगा तब तक यह सम्भव नहीं है। इससे प्रान्तों को यह शक्ति प्रदान करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती कि वह इन स्वापकों के सम्बन्ध में जैसी भी स्थानीय विधि बनाना चाहें बनायें।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 86 में से 'non-narcotic drugs (पिनक नहीं लाने वाले स्वापक)' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि:

"प्रविष्टि 86, संशोधित रूप में, सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 86, संशोधित रूप में, संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 86-क

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 86-क को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में श्री कामत का एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 55 के सम्बन्ध में, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'86-A. Prescription and maintenance of standards for drugs, medicines and other pharmaceutical products.'"

(86-क. स्वापकों, औषधियों और अन्य वैद्यक-सम्बन्धी पदार्थों के मानों को निर्धारित करना तथा बनाये रखना।)

यह एक कटु तथ्य है कि इस देश में और सम्भवतः संसार के कुछ अन्य देशों में भी सभी प्रकार के सस्ते स्वापक तथा अनाड़ियों की औषधियां बाजारों में बिकती हैं और उन पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का कोई प्रभावपूर्ण नियंत्रण नहीं रहता। चूंकि हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य गिरा हुआ है और इन औषधियों से वह और भी अधिक संकट में पड़ सकता है इसलिये यह बहुत ही गम्भीर विषय है। इस देश के कई औषधि-वेत्ताओं का यह मत है कि यदि इस विषय के सम्बन्ध में सरकार किसी प्रकार का प्रभावपूर्ण नियंत्रण नहीं रखेगी तो लोगों के स्वास्थ्य के स्तर को ऊंचा उठाना कठिन हो जायेगा क्योंकि वे अनाड़ियों की बाजार में बिकने वाली सभी प्रकार की खतरनाक औषधियों के शिकार बने रहेंगे। मैं देखता हूं कि इस सम्बन्ध में सूची 1, 2 अथवा 3 में कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है। सूची 2 की प्रविष्टि केवल मादक पानों और पिनक लाने वाले स्वापकों के सम्बन्ध में है। समवर्ती सूची की प्रविष्टि 20 "विषों और खतरनाक स्वापकों" के सम्बन्ध में है। मैं नहीं समझता कि इन दो प्रविष्टियों से मेरे संशोधन का आशय पूरा हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूची 2 में एक साधारण प्रविष्टि अर्थात् प्रविष्टि संख्या 15 सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के सम्बन्ध में है। किन्तु मेरी यह धारणा है कि यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि इसे सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी साधारण प्रविष्टि के अधीन नहीं रखा जा सकता। हम राष्ट्र के स्वास्थ्य-स्तर को ऊंचा उठाने की चर्चा करते रहते हैं। यह विषय भी उन महत्वपूर्ण विषयों में से एक है जिसके सम्बन्ध में राष्ट्र को कार्यवाही करनी होगी। पिछले आय-व्ययक सत्र में स्वास्थ्य-मंत्री महोदय ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा था कि स्वापक सम्बन्धी मानों के विषय पर सरकार बहुत ध्यानपूर्वक विचार कर रही है।

***अध्यक्षः** आप कृपया सूची 3 की प्रविष्टि 20 के उस रूप को देखें जिस रूप में वह संशोधन संख्या 129 द्वारा संशोधित हुई है।

"अफीम विषयक सूची 1 की प्रविष्टि 62 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये औषधि और विष।"

***श्री एच.वी. कामतः** सम्भवतः उसमें कुछ हद तक उपबन्ध हैं किन्तु मेरा संशोधन स्पष्टतः मानों को बनाये रखने के सम्बन्ध में है। जिसका उल्लेख आपकी बताई हुई प्रविष्टि में नहीं है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि राष्ट्र के स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण प्रश्न को ध्यान में रखते हुये तथा पिछले आय-व्ययक सत्र में दिये हुये स्वास्थ्य मंत्री के इस उत्तर को भी ध्यान में रखते हुये कि स्वापकों के पूरे विषय पर तथा मान-निर्धारण सम्बन्धी उपबन्धों पर सरकार बहुत ध्यानपूर्वक विचार कर रही है, इस सम्बन्ध में केवल केन्द्र को न कि प्रान्तों को विधि बनाने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये क्योंकि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। मैं सूची 3 (छठा सप्ताह) के संशोधन 231 को उपस्थित करता हूं और सभा से सिफारिश करता हूं कि वह स्वीकार कर लिया जाये।

*__श्री महावीर त्यागी:__ आप औषधि क्यों निर्धारित करना चाहते हैं?

*__श्री एच.वी. कामत:__ मेरा संशोधन मान निर्धारित करने के सम्बन्ध में है।

*__श्री नजीरुद्दीन अहमद:__ यह बहुत अस्पष्ट है।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं कह नहीं सकता कि मेरे संशोधन में जो औषधि सम्बन्धी तथा वैज्ञानिक शब्दावली प्रयुक्त है वह ठीक-ठीक समझी गई है या नहीं। वैद्यक विज्ञान की किसी भी अच्छी पुस्तक में यह शब्दावली देखी जा सकती है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ हमें इस सम्बन्ध में शक्ति प्राप्त है। प्रविष्टि 20 से इस संशोधन का आशय पूरा हो जाता है। हम उसे समवर्ती सूची में रखने जा रहे हैं।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 55 के सम्बन्ध में, सूची 1 की प्रविष्टि 86 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'86.A. Prescription and maintenance of standards for drugs, medicines and other pharmaceutical products.'"

(86-क. स्वापकों, औषधियों और अन्य वैद्यक-सम्बन्धी पदार्थों के मानों को निर्धारित करना तथा बनाये रखना।)

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रविष्टि संख्या 87। इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि संख्या 87 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 88

*__अध्यक्ष:__ प्रविष्टि 88।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3583 के स्थान पर निम्नलिखित संशोधन रखा जाये:–

"सूची 1 की प्रविष्टि 88 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'88. Taxes on the capital value of the assets, inclusive of agricultural land, of individuals and companies; taxes on the capital of companies.'"

(88. व्यक्तियों तथा समवायों की आस्ति में से कृषि-भूमि के सहित उसके मूलधन मूल्य पर कर; समवायों के मूलधन पर कर।)

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 56 में, सूची 1 की प्रस्तावित प्रविष्टि 88 में 'inclusive (के सहित)' शब्दों के स्थान पर 'exclusive (को छोड़कर)' शब्द रखे जायें।"

मेरा संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर एक संशोधन है। वास्तव में इससे प्रस्तावित प्रविष्टि 88 का निराकरण हो जाता है। वैसे मैं मूल प्रविष्टि से सन्तुष्ट हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, कृपा करके मुझे उसे वापस लेने की आज्ञा दी जाये।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 88 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 88 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 88-क

***अध्यक्ष:** बहुत से सदस्यों ने मुझे एक प्रविष्टि 88-क को रखने के प्रस्ताव की सूचना दी है। श्री गोयनका।

***श्री रामनाथ गोयनका** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं.....

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। श्री गोयनका के नाम से जो संशोधन है उससे वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में अनुच्छेद 13 के खण्ड (क) में दी हुई प्रत्याभूति का खण्डन होता है और इसलिये उस पर विचार नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में मैं लुई सियाना के प्रख्यात मामले में अमरीका के उच्चतम न्यायालय के हाल के निर्णय की ओर संकेत करना चाहता हूं। इस मामले में बात यह थी कि उस राज्य के समाचारपत्रों पर दो प्रतिशत का अनुज्ञप्ति कर लगाया गया था। नौ प्रकाशकों ने इसका विरोध किया और इस कर को इस कारण अवैध कहा कि.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं आशा करता हूं कि मेरे मित्र अमरीका के उच्चतम न्यायालय का चार पृष्ठ का निर्णय पढ़ कर नहीं सुनायेंगे। इसकी प्रतियां सबको दे दी गई हैं।

*श्री देशबन्धु गुप्तः यह उचित नहीं है कि मेरे मित्र पहले से यह मान लें कि सारा निर्णय पढ़कर सुनाया जायेगा। यदि उसमें से कुछ उद्धरण पढ़ कर सुनाने की आवश्यकता होगी तो मैं उन्हें अवश्य पढ़कर सुनाऊंगा। मैं उस निर्णय के केवल उन भागों की ओर संकेत कर रहा हूं जो मेरे प्रश्न से सुसंगत हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि उन प्रकाशकों ने यह आपत्ति की थी कि उस कर को लगाने से संघीय संविधान का दो प्रकार खण्डन होता है—अर्थात् उस से (1) चौदहवें संशोधन की धारा 1 के यथोचित प्रक्रिया सम्बन्धी खण्ड का खण्डन होता है और इस कारण समाचारपत्रों के स्वातंत्र्य का न्यूनन होता है और उससे (2) उसी संशोधन के विरुद्ध अपील करने वालों को विधि का समान संरक्षण प्राप्त नहीं होता है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मुझे भी एक औचित्य प्रश्न करना है।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः एक ही समय दो औचित्य प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहियें।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मुझे एक आधारभूत औचित्य प्रश्न करना है। वह यह है कि मेरे मित्र ने इस संशोधन पर हस्ताक्षर किये हैं—श्री सीताराम जाजू के पश्चात् उन्होंने हस्ताक्षर किये हैं—और उन्होंने इस संशोधन की सूचना भी दी है। इस दशा में क्या वे अब यह कहते हैं कि यह अनियमित है?

*श्री देशबन्धु गुप्तः मेरे मित्र ने भी सैकड़ों बार अपने संशोधनों को स्वयं संशोधित किया है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः यदि उन्होंने अपने संशोधन पर कोई संशोधन प्रस्तावित किया होता तो वह नियमित होता।

*श्री देशबन्धु गुप्तः जिस प्रकार मेरे मित्र अपना मत प्रायः बदलते रहे हैं उसी प्रकार मुझे भी अपना मत बदलने का पूरा अधिकार है।

*अध्यक्षः उन्होंने सूचना पर भले ही हस्ताक्षर किये हों किन्तु मैं कह नहीं सकता कि उन्होंने प्रविष्टि 88-क के पक्ष में हस्ताक्षर किये हैं या नहीं।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः उनका नाम श्री देशबन्धु गुप्त है।

*अध्यक्षः चाहे जो भी हो हम उन्हें इस समय बोलने से नहीं रोक सकते।

*श्री देशबन्धु गुप्तः मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने यह निर्णय किया है कि यह औचित्य प्रश्न नियमित है। मैं यह कह रहा था कि इस आधार पर अपील की गई थी कि उससे संघीय विधान का दो प्रकार खण्डन होता है अर्थात् उससे समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का खण्डन होता हैं उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधिपति सुदरलैण्ड ने अपील करने वालों का तर्क स्वीकार कर लिया और यह निर्णय किया कि विचाराधीन विधि से अमरिका के संविधान द्वारा प्रदत्त समाचार-पत्रों से स्वातंत्र्य का अपहरण होता हैं इस कर का इतिहास बताया गया और यह भी बताया गया कि इंग्लिस्तान में इस प्रश्न को लेकर एक शताब्दी तक कितना संघर्ष होता रहा। उस निर्णय की कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं:

"उसमें इस निर्णय का उल्लेख है कि संविधानिक उपबन्ध का उद्देश्य यह है कि प्रकाशनों को पहले से निर्बन्धित नहीं किया जाये और न्यायालय इस सम्बन्ध

में सावधान रहा कि इस अधिकार का संरक्षण इस प्रकार न हो कि उसका न्यून न हो जाये। साधारण शब्दों में यह कहा गया कि संविधानिक उपबन्ध के अधीन समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का यह अर्थ है कि मुख्यत: उनको, यद्यपि केवल उनको ही नहीं, पहले के निर्बन्धनों अथवा निरीक्षण व्यवस्था से उन्मुक्ति होगी।"

न्यायाधिपति कूली ने कहा था:

"जिन दोषों को नहीं आने देता है उनमें केवल समाचार-पत्रों के लिये निरीक्षण व्यवस्था ही नहीं है बल्कि उनमें सरकार की कोई ऐसी कार्यवाही भी है जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक मामलों के सम्बन्ध में स्वतंत्रता से अथवा सामान्यत: विचार-विमर्श न हो सके और फलत: नागरिक अपने अधिकारों को बुद्धिमता से प्रयोग करने में समर्थ न हो सकें।"

इस कसौटी को दृष्टि में रखते हुये उच्चतम न्यायालय ने यह मत प्रकट किया:

"जिस उन्मुक्ति के लिये याचना की गई है उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि समाचार-पत्रों को निर्बन्धित न किया जाये और उन्हें सार्वजनिक सूचना का प्रभावशाली माध्यम बनाये रखा जाय। यह कहा जा सकता है कि देश के पत्र तथा पत्रिकाएं सार्वजनिक तथा वाणिज्यिक मामलों पर अन्य प्रकाशन साधनों से कई अधिक रोशनी डालते रहे हैं। चूंकि पर्याप्त सूचना पर आधृत लोक-मत से ही कुशासन पर अंकुश रखा जा सकता है इसलिये यदि स्वतंत्र रूप से समाचारों के प्रकाशन का दमन किया गया अथवा उसका न्यूनन किया गया तो यह एक बहुत ही चिंताजनक कदम होगा"

अन्त में उन्होंने कहा है:

"विचाराधीन कर इस कारण बुरा नहीं है कि इसके फलस्वरूप अपील करने वालों के धन की हानि होती है। यदि केवल यह ही बात होती तो एक भिन्न ही प्रश्न उठता। वह इसलिये बुरा है कि उसके इतिहास को तथा जिस स्थिति में वह इस समय लगाया जा रहा है उसे देख कर यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में कर लगा कर सूचना के वितरण को जान बूझ कर सीमित करने का प्रयास किया जा रहा है, यद्यपि संविधानिक प्रत्याभूतियों के अधीन लोगों को उसे प्राप्त करने का अधिकार है। स्वतंत्र से समाचार-पत्र सरकार तथा लोगों के मत का निर्वाचन करते हैं। उन्हें जंजीरों से बंधवाने का अर्थ यह है कि हम स्वयं अपने को जंजीरों से बंधवा रहे हैं।"

श्रीमान्,....

*__श्री एस. नागप्पा__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। क्या माननीय सदस्य महोदय औचित्य प्रश्न पूछ रहे हैं। अथवा भाषण दे रहे है? वे पन्द्रह मिनट ले चुके हैं।

*__अध्यक्ष:__ उन्होंने औचित्य प्रश्न सुना दिया है और अब वे अपनी बात के समर्थन के लिये तर्क उपस्थित कर रहे हैं।

*__श्री देशबन्धु गुप्त:__ मेरा यह कहना है कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय के इस महत्वपूर्ण निर्णय को दृष्टि में रखते हुये मेरे मित्र श्री गोयनका जिस संशोधन

[श्री देशबन्धु गुप्त]

को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं, उससे अनुच्छेद 13-क द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार का खण्डन होता है और इस कारण वह अनियमित है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस मामले पर विचार स्थगित किया जाये और इसे मसौदा-समिति के पास वापस भेजा जाये, ताकि वह अमरीका के उच्चतम न्यायालय के निर्णय को तथा मेरे औचित्य प्रश्न को भी दृष्टि में रखते हुये उस पर विचार कर सके। मैं इस सभा की कार्यवाही में बाधा नहीं डालना चाहता और केवल यह निवेदन करता हूं कि चूंकि यह विषय एक महत्वपूर्ण विषय है और इसका सम्बन्ध "चौथे" राज्य से है, इसलिये यदि मसौदा-समिति से इस पर इस दृष्टि से विचार करने के लिये कहा जायेगा तो कोई हानि नहीं होगी। मुझे आशा है कि सभा मेरे विचारों से सहमत होगी और इस विषय को स्थगित रखा जायेगा।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या अमरीका के उच्चतम न्यायालय के निर्णय को हमें अवश्य ही स्वीकार करना होगा? आखिर औचित्य प्रश्न क्या है? कृपया उसे बताया जाये।

*__अध्यक्ष:__ औचित्य प्रश्न यह है कि हम जिस अनुच्छेद 13 को पारित कर चुके हैं उसका प्रस्तावित संशोधन से खण्डन होता है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__ (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, जो औचित्य प्रश्न किया गया है और जिसके सम्बन्ध में अमरीका के उच्चतम न्यायालय के निर्णय से कुछ उद्धरण पढ़कर सुनाये गये हैं उसका समर्थन हम जिस अनुच्छेद 13 को पारित कर चुके हैं उससे भी होता है। अनुच्छेद 13 में हम यह कह चुके हैं कि:

"सब नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार होगा।"

यह अधिकार इसी अनुच्छेद के खण्ड (2) से ही परिसीमित होता है जिस में कहा गया है:

"इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि सम्बन्ध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा सम्बन्ध रखने वाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।"

यह उपबन्ध सरकार के पास एक रक्षाकवच के समान है ताकि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अबाध रूप से प्रयोग न किया जा सके। यदि कोई राज्य समाचार-पत्रों पर कर लगाना चाहता है तो वह वास्तव में वाक्-स्वातंत्र्य के अधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करता है। यह एक सर्वमान्य विधि-सिद्धान्त है कि यदि कोई कार्यवाही विधि द्वारा प्रत्यक्ष में नहीं की जा सकती तो वह परोक्ष में भी नहीं की जा सकती। जब हम अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) की परिसीमाओं के अतिरिक्त वाक्-स्वातंत्र्य को अन्य प्रकार परिसीमित नहीं कर सकते तो यह तर्कयुक्त ही है कि हम परोक्ष में वाक्-स्वातंत्र्य के अधिकार का अपहरण नहीं कर सकते।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, यदि आप अनुच्छेद 6 को देखें तो उसमें आपको ये शब्द मिलेंगे:

"इस संविधान के प्रारंभ होने के ठीक पहले भारत राज्य-क्षेत्र में सब प्रवृत्त विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी जिस तक कि वे इस भाग के उपबन्धों से असंगत हैं।"

इसके अतिरिक्त उसमें यह भी कहा गया है कि:

"राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनायेगा जो इस भाग द्वारा दिये अधिकारों को छीनती या न्यून करती हो और इस खण्ड के उल्लंघन में बनी प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।"

श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस किसी विधि से किसी व्यक्ति के वाक्-स्वातंत्र्य का अथवा समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का परिसीमन होता हो-समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य व्यक्ति के वाक्-स्वातंत्र्य का विस्तृत रूप ही है-और जिस किसी विधि से इस अधिकार का न्यूनन होता हो वह अनुच्छेद 8 से असंगत है और इस कारण अवैध है। इस संविधान के एक उपबन्ध से तो हम वाक्-स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दे रहे हैं और उसी के एक अन्य उपबन्ध में जाल रचकर उसका निराकरण कर रहे हैं। इस अवसर पर मैं इस पर अधिक नहीं बोलना चाहता कि यह कर वास्तव में सूचना पर लगाया गया है या नहीं और यह अमरीका और इंग्लिस्तान की आधारभूत विधि के विरुद्ध है या नहीं। किन्तु अपने संविधान को सामने रख कर मैं यह कहना चाहता हूं कि यह उपबन्ध अनुच्छेद 13 की शब्दावली तथा उसकी मानता के विरुद्ध है। इसलिये यह संशोधन अनियमित है।

*अध्यक्ष: मैं जानना चाहता हूं कि मुख्य प्रश्न पर सदस्यों का क्या मत है। किन्तु उनसे अपना मत प्रकट करने के लिये कहने के पूर्व मैं जानना चाहता हूं कि क्या मसौदा-समिति इस विषय पर पुनर्विचार करने के लिये तैयार है। यदि वह इसके लिये तैयार है तो हमें इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किसी भी दशा में मैं इस सम्बन्ध में इसी समय अपना निर्णय नहीं सुना सकूंगा। उस पर विचार करने के लिये मैं कुछ समय लूंगा।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: इस सभा के सदस्यों के जो विभिन्न मत हों उन्हें हम सुनना चाहते हैं और उसके उपरान्त यदि सभा का अथवा श्रीमान्, आपका यह विचार हो कि अभी कोई निर्णय नहीं किया जा सकता तो यह मामला मसौदा-समिति को सौंपा जाये ताकि वह सभी मतों को ध्यान में रखते हुये किसी ऐसे सूत्र को निश्चित कर सके जो सभा को मान्य हो। किन्तु मेरे विचार से उसी में रूप-भेद करने से कोई लाभ न होगा। हमें बहुत ही निश्चित संशोधनों की सूचना दी गई है। एक संशोधन यह मेरे मित्र का है और एक संशोधन श्री झुनझुनवाला के नाम से है—ये दोनों संशोधन बिल्कुल स्पष्ट संशोधन हैं।

*अध्यक्ष: वास्तव में दो प्रश्नों पर विचार करना है। एक प्रश्न यह है कि हम पहले जिस अनुच्छेद को पारित कर चुके हैं उसे दृष्टि में रखते हुये श्री गोयनका जिस संशोधन को उपस्थित करने जा रहे हैं वह नियमित है या नहीं। दूसरा प्रश्न यह है कि....

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रश्न का निर्णय इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि कोई बात अनियमित है या नहीं। यह सभा इसका निर्णय करने के लिए सक्षम नहीं है। यह एक न्यायिक विषय है। हम निर्णय इसका करना है कि सूची 1 में सूची 2 अथवा सूची 3 की प्रविष्टियों से हम समाचार-पत्रों को किसी सीमा तक मुक्त करना चाहते हैं या नहीं और यदि मुक्त करना चाहते हैं तो किस सीमा तक। न्यायालय क्या निर्णय करेंगे इसे हम नहीं बता सकते। हम यहां किसी पत्रकार को यह आश्वासन नहीं दे सकते कि हमने ऐसी व्यवस्था कर दी है जो सर्वथा उपयुक्त है। हम इस प्रकार का आश्वासन नहीं दे सकते। इसलिये अच्छा यह होगा कि हम इस प्रश्न का निर्णय करें कि हम समाचार-पत्रों को विभिन्न प्रविष्टियों के प्रयोग से उन्मुक्त करना चाहते हैं या नहीं। मुख्य प्रश्न यही है।

(श्री आर.के. सिधवा, पंडित ठाकुरदास भार्गव, श्री महावीर त्यागी और अन्य सदस्य एक साथ बोलने लगे।)

*__अध्यक्षः__ कृपया एक एक करके।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ यदि मैं श्री गुप्त को ठीक समझ पाया हूं तो....

*__अध्यक्षः__ क्या आप इस सम्बन्ध में कोई तर्क उपस्थित करना चाहते हैं?

*__श्री आर.के. सिधवाः__ जी हां, श्रीमान्।

*__अध्यक्षः__ कृपया कुछ रुकिये। हमारे सामने दो प्रश्न हैं। एक तो यह औचित्य प्रश्न है कि श्री गोयनका जिस संशोधन को उपस्थित करने जा रहे हैं वह जिस अनुच्छेद को हम पारित कर चुके हैं उसकी दृष्टि से नियमित है या नहीं। दूसरा प्रश्न यह है कि श्री गोयनका का संशोधन उसके वर्तमान रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये या किसी अन्य रूप में।

*__श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर__ (मद्रास : जनरल): पहले प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं अभी यह कह रहा था कि यदि इस प्रश्न के सम्बन्ध में इसके गुण दोषों के आधार पर निर्णय किया जा सकता है तो औचित्य प्रश्न को अलग रखा जा सकता है और मुझे उसका निर्णय नहीं करना पड़ेगा। किन्तु यदि मुझे उसका निर्णय करना है तो मैं अभी न कर सकूंगा और उसके लिये मुझे कुछ समय की आवश्यकता होगी। इसीलिये मैं यह पूछता हूं कि क्या इसे स्थगित नहीं किया जा सकता ताकि मसौदा-समिति इस पर विचार कर सके और हमें सूचित कर सके कि स्थिति क्या है? किन्तु यदि उसका यह विचार हो कि उसे रखना ही चाहिये तो उस दशा में मुझे अपना निर्णय सुनाना होगा।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, इस सम्बन्ध में आपको ही निर्णय करना है। यदि आप मसौदा-समिति के सामने कोई बात रखेंगे तो उसे उस पर विचार करना होगा। यदि यही आपका निर्णय है तो मसौदा-समिति उस पर केवल पुनर्विचार करेगी और अपना प्रतिवेदन आपके समक्ष रखेगी।

***अध्यक्षः** यदि यह बात है तो मेरा यह सुझाव है कि समय की बचत के लिये मसौदा-समिति इस पर पुनर्विचार करे और यदि उसका यह विचार हो कि....

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** कम से कम मसौदा-समिति के कुछ सदस्यों की दृष्टि में इस औचित्य प्रश्न में कुछ सार नहीं है। उन्हें इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि वे आपको इसका विश्वास दिला सकते हैं। यदि इसके पश्चात् भी आपको कोई सन्देह हो तो आप उसे मसौदा-समिति के सामने रख सकते हैं। हम सारी स्थिति पर फिर से विचार करेंगे। मेरे विचार से विभिन्न दृष्टिकोणों को सभा के समक्ष तथा श्रीमान्, आपके समक्ष व्यक्त करना चाहिये क्योंकि अन्त में इसका निर्णय आपको ही करना है कि इस औचित्य प्रश्न में कुछ सार है या नहीं। मसौदा-समिति तथा विभिन्न सदस्य औचित्य प्रश्न के सम्बन्ध में निर्णय करने में आपको केवल सहायता ही कर सकते हैं। इस प्रश्न पर मतदान नहीं हो सकता। इसलिये हम इसका निर्णय करने में केवल आपकी सहायता ही कर सकते हैं कि इस प्रश्न में कुछ सार है या नहीं। मैं स्वयं किसी भी सुसंगत तर्क को मानने के लिये तैयार हूं और वास्तव में यदि आपका यह विचार हो कि इस मामले के सम्बन्ध में कुछ सन्देह रह जाता है तो इसे मसौदा-समिति के सामने रखा जा सकता है और वह इस पर विचार करेगी किन्तु इस औचित्य प्रश्न के सम्बन्ध में मेरी निश्चित तथा स्पष्ट धारणा है। यदि आप किसी अवसर पर इस औचित्य प्रश्न पर मुझे कुछ शब्द कहने की आज्ञा देंगे तो मैं उसके सम्बन्ध में आपको विश्वास दिला दूंगा। किसी औचित्य प्रश्न को मसौदा-समिति के सामने केवल इस कारण तुरंत ही नहीं रखा जा सकता कि उसे किसी माननीय सदस्य ने उठाया हैं यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक औचित्य प्रश्न सारपूर्ण ही हो। यह एक आधारभूत तथा महत्वपूर्ण प्रश्न है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि इस प्रश्न पर आप विचार करें और इस सम्बन्ध में अपना निर्णय सुनायें कि यह प्रश्न विचार करने योग्य है या नहीं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, पूरा समय इस औचित्य प्रश्न पर विचार करने में ही लगाया जा रहा है। यदि मैं आपके आशय को ठीक समझ पाया हूं तो वह इस प्रकार है कि यदि यह मामला मसौदा-समिति के विचार करने के योग्य समझा जाये तो औचित्य प्रश्न उठता ही नहीं और उस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं यह देखता हूं कि इस पर इस दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। मेरा यह सुझाव है कि इस औचित्य प्रश्न को स्थगित किया जाये। और यदि आवश्यक समझा जाये तो इस मामले पर सदस्यों के विचार सुने जायें।

***अध्यक्षः** कठिनाई यही है। यदि वह अनियमित नहीं है तो इस सम्बन्ध में सभा का मत लेना आवश्यक होगा किन्तु यदि वह अनियमित है तो....

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** मसौदा-समिति ने इस प्रश्न पर विचार किया था कि इस विषय को केन्द्रीय सूची में रखा जा सकता है या नहीं। उसके सभापति मेरे मित्र माननीय डॉ. अम्बेडकर यह बतायेंगे कि हमने यह निर्णय किया कि हम इस प्रविष्टि को केन्द्रीय सूची में रखने के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। हमने इस प्रश्न पर बड़ी सावधानी से विचार किया और यह निर्णय किया कि

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

समाचार-पत्रों का विस्तृत वितरण देखते हुये और यह भी देखते हुए कि वे अन्तर्प्रान्तीय हैं, इस मामले को केन्द्रीय सूची में रखा जाय। इस प्रश्न के सम्बन्ध में हमने निर्णय किया है और स्पष्ट शब्दों में निर्णय किया है।

***अध्यक्षः** आप इस प्रश्न पर भी विचार करें कि इससे अनुच्छेद 13 का खण्डन होता है या नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस सम्बन्ध में हमारे कुछ विचार हैं। यदि आप उन्हें सुनने के लिये तैयार हैं तो मैं उन्हें निवेदन करूंगा।

***श्री जगत नारायण लालः** डॉ. अम्बेडकर से अपने विचार प्रस्तुत करने के लिये कहने के पूर्व हमें श्री देशबन्धु गुप्त के औचित्य प्रश्न का समर्थन करने की आज्ञा दी जानी चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवाः** केवल उसके समर्थन में ही लोगों के विचार सुनने की आवश्यकता नहीं है। उसके विरोध में भी लोग बोल सकते हैं।

***अध्यक्षः** प्रश्न वास्तव में यही है अर्थात् क्या इस प्रश्न पर पूरी तौर से बहस होनी चाहिये अथवा केवल एक दो भाषणों के लिये आज्ञा दी जानी चाहिये। श्री देशबन्धु गुप्त तथा श्री भार्गव हमारे सामने अपना दृष्टिकोण रख चुके हैं। मैं अन्य लोगों का दृष्टिकोण भी जानना चाहता हूं।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्री देशबन्धु गुप्त तथा श्री भार्गव ने यह औचित्य प्रश्न उठाया है। कि चूंकि इस संशोधन से अनुच्छेद 13 का यह खण्डन होता है इसलिये यह अनियमित है। उन्होंने वाक्-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में अनुच्छेद 13 के खण्ड (क) को उद्धृत किया है। संशोधन में "समाचार-पत्रों पर कर" शब्द प्रयुक्त हैं। समाचार-पत्र आयकर तो देते ही हैं। "वाक्-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य" शब्द प्रयुक्त होने का यह अर्थ नहीं है कि उन्हें इस प्रकार का कोई कर नहीं देना पड़ेगा। अपने मित्रों के मत का यथोचित आदर करते हुये मैं उनसे निवेदन करना चाहता हूं कि समाचार-पत्रों पर कर लगते ही हैं। उन्हें जो कुछ लाभ होता है उस पर उन्हें आय-कर देना ही होता है। यदि उन पर कोई और कर भी लगाने होंगे तो उनसे अनुच्छेद 13 का खण्डन नहीं होगा। यदि आप वाक्-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का इस सीमा तक निर्वचन करेंगे तो बहुत गड़बड़ होगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम किसी समाचार-पत्र में निकलने वाले लेखों तथा अग्रलेखों पर कर लगाने जा रहे हैं। यह उसका बहुत ही संकुचित अर्थ है। मैं कह नहीं सकता कि इससे क्या स्थिति हो जायेगी। यदि समाचार-पत्रों के स्वामियों पर इस समय कोई कर नहीं लगाया जाता तो यह मेरी समझ में आता है किन्तु क्या मैं यह जान सकता हूं कि समाचार-पत्रों के स्वामी इस समय कर देते हैं या नहीं? वे कर देते हैं। इसलिये मेरा यह कहना है कि यह आपत्ति एक क्षण के लिये भी नहीं टिकती।

***श्री जगत नारायण लालः** चूंकि हममें से कुछ लोग समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि हैं इसलिये सभा को हममें से कुछ लोगों के विचार सुनने चाहियें। श्रीमान्, "वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य" शब्द इंग्लिस्तान और अमरीका के

संविधानों से लिये गये हैं। किन्तु इस समय हम एक ऐसा संविधान बनाने जा रहे हैं जो इन संविधानों की अपेक्षा प्रगतिशील होगा। यदि यह संविधान उनसे अधिक प्रगतिशील न होकर उलटे प्रतिक्रियावादी हुआ तो हम इस पर किसी प्रकार भी गर्व नहीं कर सकेंगे। मैं श्री सिधवा के विचारों को सुन चुका हूं। उन्होंने इसका बहुत ही संकुचित निर्वचन किया है। डॉ. अम्बेडकर उच्चतम न्यायालय के निर्णय को सुनाये जाने की सम्भावना से ही कांप उठे। मैं पूरे निर्णय को पढ़ कर नहीं सुनाना चाहता। मैं कुछ अंशों को ही उद्धृत करूंगा। चूंकि वे प्रख्यात न्यायवेत्ता हैं इसलिये मैं यह चाहता हूं कि वे उन्हें पढ़ें। वह कोई ऐसा निर्णय नहीं है जिसे मामूली तौर पर पढ़ा जाय। उसमें इंग्लिस्तान तथा अमरीका के संविधानों के सम्बन्ध में लोक मत सन्निहित है। मैं यह कहूंगा कि इस शताब्दी में तथा वर्तमान स्थिति में हमारे लिये एक प्रगतिशील देश के निवासी होने के नाते उचित यही है कि हम वाक्-स्वातंत्र्य की तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दें। मैं कुछ ही अंशों को पढ़ कर सुनाता हूं।

"1712 ई. में साम्राज्ञी ऐन के संदेश के अधीन (हैंसार्ड लिखित इंग्लिस्तान की संसद का इतिहास अंक 6, पृष्ठ 1063) संसद ने सभी समाचार-पत्रों तथा विज्ञापनों पर कर लगाया। संगृहीत अंक-1, पृष्ठ 8 से 10 तक। इस विषय के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि इन करों का उद्देश्य उन आलोचनाओं के प्रकाशन का दमन करना था जो सम्राट के लिये आपत्तिजनक थीं। देखिये स्टिवार्ट, लेनाक्स और 'टैक्सेस आन नौलेज' 15 स्काटिश हिस्तरिकल रिव्यू, पृष्ठ 322 से 327 तक। इसके पश्चात् एक शताब्दी तक इन करों का विरोध किया जाता रहा, इनको देने में टालमटोल की गई और इनको समाप्त करने के लिए आन्दोलन किया गया। अन्त में जिस लेख की चर्चा की गई है (पृष्ठ 326) जो 1918 में लिखा गया था, उसमें यह बताया गया था कि इन करों के कारण भी अमरीका के उपनिवेश वादियों ने अपने यहां इस प्रकार के करों का विरोध किया और वास्तव में क्रांति 1765 में उस समय आरम्भ हुई जब उस सरकार ने अमरीकी उपनिवेश वादियों के पास समाचार-पत्रों पर कर लगाने के लिये मुद्रांक भेजे।" अब मैं शेष अंश को पढ़ कर सुनाता हूं। उसमें कहा गया है:

यह नहीं माना जा सकता कि इंग्लिस्तान के बहुत बड़े-बड़े लोग एक शताब्दी तक केवल करों का ही विरोध करने के लिये अपने पूरे जोर से और एक प्रकार से एक विचित्र संघर्ष करते रहे।"

इस संघर्ष का उद्देश्य समाचार-पत्रों को केवल करों से मुक्त करना नहीं था किन्तु सरकार के कृत्यों तथा कुकृत्यों के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना प्राप्त करने के अंग्रजों के अधिकार की रक्षा करना था। यदि इन सुस्पष्ट शब्दों का यह निर्वचन किया गया कि कर देने में टालमटोल की गई थी तो यह एक दुर्भाग्य की बात होगी।

मैं इसके अन्य अंशों को नहीं पढ़ना चाहता। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि यह बहुत ही अनुचित होगा कि इस देश में बिना किसी आवश्यकता के एक आन्दोलन का सूत्रपात किया जाये। इसलिये श्रीमान्, मेरे विचार से श्री देशबन्धु गुप्त ने जो औचित्य प्रश्न उठाया है वह सुसामयिक है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ अध्यक्ष महोदय, मेरा यह निवेदन है कि इस औचित्य प्रश्न से एक महत्वपूर्ण संविधानिक प्रश्न उठ खड़ा होता है। यह कहा गया है कि अनुच्छेद 13 के अधीन हमने सभी लोगों को तथा समाचार-पत्रों को भी मत-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी है। अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के अधीन इस अधिकार को सीमित करने के लिए कुछ शक्तियां प्रदान की गई हैं।

वास्तव में यह प्रश्न उठता है कि समाचार-पत्रों पर कर लगाने से किसी समाचार-पत्र के मत-स्वातंत्र्य अथवा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि करों से मत-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और केवल समाचार-पत्रों से कुछ कर ही वसूल किये जायेंगे। मैं यह देखता हूं कि अमरीका के न्यायालय के सामने यही तर्क उपस्थित किया गया और इस सम्बन्ध में उस न्यायालय ने केवल दो तीन वाक्य ही कहे थे। तर्क यह उपस्थित किया गया था कि प्रश्न केवल कर का ही है और उसका मत प्रकाशन पर प्रत्यक्षत: कोई प्रभाव नहीं पड़ता और इस कारण उससे संविधान द्वारा प्रदत्त प्रत्याभूति का खण्डन नहीं होता। किन्तु इस पर अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि इससे मत-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार अवश्य ही सीमित होगा। मैं इस निर्णय से केवल दो तीन वाक्य पढ़ कर सुनाऊंगा:

> "इस कर के रूप में सूचना के वितरण को सीमित करने का जानबूझ कर तथा छिपा कर प्रयास किया गया है यद्यपि संविधान की प्रत्याभूति के अधीन लोगों को सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।"

*__अध्यक्ष:__ क्या आप इसे इसका समर्थन करने के लिए पढ़ रहे हैं कि यह संशोधन अनियमित है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मेरा यह निवेदन है कि इस निर्णय में कर को अवैध घोषित किया गया है।

*__अध्यक्ष:__ यदि उद्देश्य वितरण को सीमित करना हो तब?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ उच्चतम न्यायालय का निर्णय यह था कि कर के रूप में मत प्रकाशन को तथा वितरण को रोकने तथा उस पर नियंत्रण रखने का प्रयास किया गया है।

*__अध्यक्ष:__ किन्तु यदि मत प्रकाशन को सीमित करने तथा उस पर नियंत्रण रखने का उद्देश्य न हो तो क्या होगा? तब वह अनियमित नहीं होगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ इस प्रश्न का हल वास्तव में उद्देश्य पर निर्भर नहीं है क्योंकि विधि की शब्दावली के अतिरिक्त अन्य प्रकार न वह समझा जा सकता है और न नापा जा सकता है। विधि की शब्दावली के अधीन तथा उसके प्रभाव के अनुसार ही वह परखा जा सकता है। अमरीका के न्यायालय का मुख्य तर्क यह था कि यद्यपि यह केवल एक कर ही है और इससे मत-स्वातंत्र्य तथा

अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का खण्डन नहीं होता किन्तु इसका प्रभाव यह होगा कि कई समाचार-पत्रों की ग्राहक संख्या कम हो जायगी। इसलिये हम इस पर विचार नहीं कर सकते कि उद्देश्य अच्छा है या बुरा क्योंकि इसका निर्णय उसकी शब्दावली से ही किया जा सकता है। हम किसी कर के सम्बन्ध में मुख्यत: उसके प्रभाव के आधार पर ही विचार कर सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि कर से कई समाचार-पत्रों का दमन हो जायेगा। यदि कर से ग्राहक-संख्या में थोड़ी भी कमी हुई तो मत-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य सीमित हो जायेगा। श्रीमान्, यह सब ही को विदित है कि स्वतंत्र समाचार-पत्र सरकार के दृष्टिकोण को लोगों के सामने रखते हैं और लोगों के दृष्टिकोण को सरकार के सामने रखते हैं। यदि हम उन्हें जंजीरों से बांधेंगे तो वास्तव में हम अपने को ही जंजीरों से बांधेंगे।

इसके अतिरिक्त नि:सन्देह गुण दोषों का प्रश्न भी है किन्तु यह एक भिन्न विषय है। चूंकि हम अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) द्वारा मत-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दे चुके हैं और खण्ड (2) में स्पष्ट आदेशों के रूप में इस अधिकार को सीमित करने की शक्ति भी निर्धारित कर चुके हैं। इसलिये अब इसे और अधिक सीमित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाना चाहिये। मेरा निवेदन है कि इस विषय पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है।

मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इसमें उद्देश्य का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि विधान-मंडल का उद्देश्य बुरा है। किन्तु कर के फलस्वरूप जानबूझ कर अथवा अनजाने मत-स्वातंत्र्य अवश्य ही सीमित हो जायेगा।

श्रीमान्, लोकतंत्रात्मक देशों में स्वतंत्रता को बनाये रखने में समाचार-पत्र भी योग देते हैं। वह राज्य की चौथी संपदा कही जाती है। अन्य तीन सम्पदाएं— विधान-मंडल, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका हैं। इसलिये यदि समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य किसी प्रकार भी सीमित हो रहा हो तो हमें उस पर बहुत सावधानी से विचार करना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मैं इस औचित्य प्रश्न पर डॉ. अम्बेडकर तथा श्री अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर के विचार सुनना चाहता हूं। मेरे विचार से इस औचित्य प्रश्न के पक्ष में अधिक भाषणों की सुनने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं आरम्भ में ही यह बताना चाहता हूं कि औचित्य प्रश्न क्या है अथवा मैं उसका क्या आशय समझ पाया हूं ताकि यदि मैं गलती में हूं तो मुझे आरम्भ में ही बताया जा सकता है। मेरे विचार से औचित्य प्रश्न का आशय यह है कि चूंकि सभा मूल अधिकारों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 13 को पारित कर चुकी है और चूंकि उसमें यह कहा गया है कि सभी नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार होगा इसलिये क्या यह सभा कोई ऐसा अनुच्छेद पारित कर सकती है जिससे अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार सीमित होता हो? मेरे विचार से हमें इसी प्रश्न पर विचार करना है।

इस मत का समर्थन करने के लिए कि यह सभा किसी ऐसे प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकती जिससे वाक्-स्वातंत्र्य सीमित होता हो, अमरीका के उच्चतम

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

न्यायालय का एक निर्णय उद्धृत किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि–यद्यपि मैंने उसे पूरा नहीं पढ़ा है और उसके कुछ अंश ही पढ़े हैं समाचार-पत्रों पर लगाया जाने वाला कोई भी कर अनियमित है क्योंकि—मैं अमरीका के न्यायालय के निर्णय की भाषा का प्रयोग कर रहा हूं—उससे समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य सीमित होता है।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** आय-कर को छोड़कर। यह निर्णय में ही कहा गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, उस मामले के तथ्यों के विवरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि जिस कर पर आपत्ति की गई थी वह किस प्रकार का था और न उससे यही स्पष्ट है कि उससे क्या कठोरता होती थी। मेरी समझ से इसका निर्णय करने के लिये कि वह कर नियमित था या नहीं, कर लगाने के प्रश्न के अतिरिक्त कर की कठोरता पर भी विचार करना होगा। जैसाकि मैं कह चुका हूं, इस निर्णय में इस महत्वपूर्ण तथ्य की कोई चर्चा नहीं की गई है। इसलिये इस निर्णय से मेरा पथप्रदर्शन नहीं होता।

मैं कुछ अन्य तर्कों को उपस्थित करने जा रहा हूं, जो मेरे विचार से सारपूर्ण हैं और उनकी आलोचना नहीं की जा सकती। पहली बात यह है कि अमरीका के संविधान में वर्णित संविधानिक प्रत्याभूतियों के होते हुए भी अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने स्वयं यह कहा है कि संविधान द्वारा प्रत्याभूत ये मूलाधिकार परम अधिकार नहीं हैं और संविधान में चाहे जिस प्रकार की भाषा हो किन्तु अमरीका की कांग्रेस को उन मूलाधिकारों को युक्ति युक्त ढंग से निर्बन्धित करने का अधिकार है। मैं सभा को स्मरण कराता हूं कि आरम्भ में इस प्रस्ताव के समर्थन में कि यह सभा संविधान के मसौदे पर विचार करे, मैंने अपने भाषण में इस प्रश्न पर बहुत कुछ कहा है। मैंने यह इस कारण कहा कि मैंने समाचार-पत्रों की तथा कुछ ऐसे अन्य लोगों की जिनका मैं आदर करता हूं, यह आलोचना पढ़ी कि, हमारे मूलाधिकारों का इस कारण कोई मूल्य नहीं रह गया है कि अनुच्छेद 13 के पश्चात् कई खण्डों में, अर्थात् खण्ड (2), (3), (4) और (5) में, उनको परिसीमित कर दिया गया है।

उन आलोचनाओं का उत्तर देने के लिये मैंने कुछ कष्ट उठा कर इस विषय पर उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की परीक्षा की थी। मैंने यह इसलिये किया था कि एक समय मेरी यह धारणा थी कि चूंकि अमरीका के संविधान में संविधानिक प्रत्याभूतियों को, अर्थात् मूलाधिकारों को बिना किसी प्रकार के निर्बन्धनों के रखा गया है इसलिये वहां के उच्चतम न्यायालय को उन उपबन्धों को किसी प्रकार परिसीमित करने की स्वतन्त्रता न होगी। किन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने वही रुख अपनाया था जो अपने संविधान को बनाने में हम अपना रहे हैं अर्थात् उसने यह निर्णय किया है कि मूलाधिकार, चाहे वे कितने ही, मूलभूत क्यों न हों, परमाधिकार नहीं हो सकते। उनमें कुछ परिसीमाएं रखनी ही होंगी।

सभा की अनुमति से मैं केवल एक उद्धरण दूंगा। मैंने यह कहा थाः

"गिटलो बनाम न्यूयार्क" मामले में, जिसमें 'अपराधपूर्ण अराजकता' सम्बन्धी न्यूयार्क की एक विधि की वैधानिकता का प्रश्न उठाया गया था। जिसका उद्देश्य

यह था कि ऐसी वक्तृताओं के लिये दंड दिया जाय जिनका लक्ष्य हिंसापूर्ण उपायों से परिवर्तन करना हो, वहां के उच्चतम न्यायालय ने यह कहा था:

"बहुत काल से यह आधारभूत सिद्धान्त स्थिर हो चुका है कि संविधान द्वारा प्रदत्त वाक्-स्वातंत्र्य और समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य से किसी व्यक्ति को मनमाने ढंग से और बिना किसी उत्तरदायित्व के बोलने तथा अपना मत प्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार नहीं मिल जाता और भाषा को स्वतन्त्र तथा उन्मुक्त ढंग से प्रयोग करने की स्वतन्त्रता भी नहीं मिल जाती और न इससे इस स्वातंत्र्य का दुरुपयोग करने वालों को दंडित करने के लिए कोई रुकावट होती है।"

मैंने कई अन्य उदाहरण भी दिये थे। मैं यह कहना चाहता हूं कि अमरीका में भी इसे स्वीकार किया गया है कि मूलाधिकारों का किसी न किसी प्रकार परिसीमन होना चाहिये। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ भी विवाद नहीं है। मैं इस समय संशोधनों के सम्बन्ध में नहीं बोलूंगा किन्तु जहां तक विज्ञापनों पर करों के बारे में इस प्रविष्टि का सम्बन्ध है उसके बारे में मेरा यह निवेदन है कि इस प्रविष्टि पर इस कारण यह आपत्ति नही की जा सकती कि यह इस सभा के निर्णयों के विरुद्ध है कि प्रान्तीय सरकारों के कार्यवाही करने पर इससे समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का कुछ अंश में परिसीमन होगा। मैं इस निर्वचन को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि "विज्ञापन" शीर्षक के अधीन लगाये जाने वाले कर इस कारण अनियमित होंगे कि उनसे अनुच्छेद 13 का खण्डन होगा।

मेरा यह निवेदन है कि जिस तर्कयुक्त सिद्धान्त को स्वीकार किया जा सकता है वह यह है कि यदि किसी समाचार-पत्र पर ऐसा कर लगाया गया जिससे उसका अस्तित्व ही मिट जाये तो वह कर अनियमित होगा क्योंकि उससे अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त वाक्-स्वातंत्र्य बिल्कुल ही समाप्त हो जायेगा। यदि विज्ञापनों पर कोई ऐसा कर लगाया गया हो जो तर्कयुक्त न हो और जिससे विभेद होता हो, अर्थात् वह केवल समाचार-पत्रों के विज्ञापनों पर ही लगाया गया हो और अन्य विज्ञापनों पर न लगाया गया हो, तो यह मेरी समझ में आता है कि उससे अनुच्छेद 15 का खण्डन होगा, जिसके अधीन हम सभी को समान रूप से रक्षण प्रदान कर रहे हैं? इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मैं किसी ऐसे तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं जिसमें यह कहा गया हो कि जिस किसी कार्यवाही से समाचार-पत्रों अथवा वाक्-स्वातंत्र्य अथवा समाचार-पत्रों के लेखों पर प्रभाव पड़ता हो वह अनियमित कार्यवाही है और मुझे आशा है कि सभा भी उसे स्वीकार नहीं करेगी।

अब मैं एक दूसरे प्रश्न को उठाता हूं। यह सच है कि कुछ प्रान्तों की कुछ विशेष परिस्थितियों को देखते हुए समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में इस प्रविष्टि को सूची 1 से निकाल कर सूची 2 अथवा सूची 3 में रखने की आवश्यकता पड़े। यह प्रश्न संविधानिक विधि का प्रश्न नहीं है। यह नीति और विश्वास का प्रश्न है। इस सम्बन्ध में विवाद हो सकता है कि केन्द्र का अधिक विश्वास किया जाये अथवा प्रान्तों का, अथवा इस सम्बन्ध में प्रान्तों की गलतियों को दूर करने के लिये केन्द्र को कुछ स्वतन्त्रता तथा शक्ति दी जाये या न दी जाये। हम इसी विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं, अर्थात् हम इस पर विचार कर रहे हैं कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कोई प्रविष्टि सूची 1 में रहे या उसका कुछ अंश सूची 1 में और शेष अंश सूची 2 अथवा सूची 3 में रहे।

सभा को इसकी पूरी स्वतन्त्रता है कि वह इस सम्बन्ध में निर्णय करे और कोई यह नहीं कह सकता कि अनुच्छेद 13 के कारण उसके हाथ बंधे हुये हैं और वह समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में किसी परिसीमा को नहीं रख सकती। मैं इस तर्क का अपनी पूरी शक्ति से विरोध करता हूं।

अब मैं श्रीमान्, विभिन्न संशोधनों को उठाता हूं। मैं उनके सम्बन्ध में इस कारण अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं कि जो लोग उनको समझ पायें वे उनकी आलोचना भी कर सकते हैं। मुझे यह दिखाई देता है कि मेरे जिन मित्रों की समाचार-पत्रों में दिलचस्पी है वे यह चाहते हैं कि प्रान्त जो भी कर लगायें उनसे समाचार-पत्र पूर्णतया उन्मुक्त रहें। मेरे मित्र श्री गोयनका तथा कई अन्य लोगों ने जिस संशोधन को प्रस्तावित किया है—वह पचास या साठ लोगों के नाम से है—उसका उद्देश्य यह है कि यह विषय संघ-सूची अर्थात् सूची 1, में रख दिया जाय। इस प्रकार उन्होंने वह कदम उठाया है जो हमने स्वयं नहीं उठाया था। समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में हमने जो प्रविष्टि रखी है उसका करों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन सदस्यों ने सूची 1 तथा सूची 2 की व्यवस्था को सावधानी से देखा है वे यह अनुभव करेंगे कि हमने उनकी प्रविष्टियों को दो भागों में विभाजित किया है। एक भाग में हमने विधान-सम्बन्धी प्रविष्टियों को रखा है और दूसरे भाग में कर-सम्बन्धी प्रविष्टियों को। आपको स्मरण होगा कि यद्यपि समाचार-पत्रों का सूची 3 में उल्लेख है किन्तु तद्विषयक प्रविष्टि विधान-सम्बन्धी प्रविष्टियों के साथ रखी गई है। मेरे मित्र भी गोयनका ने जो संशोधन उपस्थित किया है उससे उनके मतानुसार भी बहुत हानि होती है और वह इसलिये कि उन्होंने सम्बन्धित प्रविष्टि को सूची 1 के उस भाग में रखने का प्रस्ताव रखा है जो करों के सम्बन्ध में है। उसका अर्थ यह है कि केन्द्र को समाचार-पत्रों पर कर लगाने की स्वतन्त्रता होगी (वाह, वाह), मुझे समाचार-पत्रों से कोई दिलचस्पी नहीं है और इस कारण मैं न उन्हें हानि पहुंचाना चाहता हूं और न रक्षण ही प्रदान करना चाहता हूं। मैं सारे मामले को सभा के सामने रखने के लिये तैयार हूं। वह जैसा निर्णय चाहे करे।

मेरे मित्र श्री झुनझुनवाला के नाम से जो संशोधन है उसका क्या प्रभाव होता है? उनका यह विचार है कि भले ही समाचार-पत्रों का उल्लेख सूची 1 में किया जाये किन्तु विक्रय होने वाली वस्तुओं के रूप में सूची 2 में उनका उल्लेख रहेगा ही, क्योंकि इस सम्बन्ध में उस सूची की प्रविष्टि बहुत व्यापक है और वस्तुओं के आधीन समाचार-पत्र भी आ जायेंगे। इस कारण उनकी यह धारणा है कि केवल श्री गोयनका के संशोधन को स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि विक्रय होने वाली वस्तुओं से संबंधित प्रविष्टि के अधीन उन पर कर लगाया ही जा सकेगा। इस प्रकार समाचार-पत्रों को विक्रय कर अधिनियम के उपबन्धों से मुक्त करने के लिए ही उन्होंने अपना संशोधन उपस्थित किया है।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या प्राप्त इसके लिये सहमत हो जायेंगे कि करों से प्राप्त होने वाले उनके धन का एक मुख्य भाग उनके हाथ से ले

लिया जाये। इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता हैं। श्रीमान्, चूंकि यह वित्तीय विषय है इसलिये बिना वित्त मंत्रणालय से अथवा प्रान्तों के वित्त-मंत्रियों से इस सम्बन्ध में परामर्श किये हुए, मेरे विचार से, मसौदा-समिति इसका निर्णय करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी। विधान-सम्बन्धी प्रविष्टियों के सम्बन्ध में उसने बहुत बड़े उत्तरदायित्व को स्वीकार किया है। वित्तीय विषयों के सम्बन्ध में यह एक स्थायी प्रथा है कि वित्त मंत्रालय तथा विभिन्न प्रान्तों के वित्त-मंत्रियों से परामर्श किया जाये।

इन संशोधनों के कारण यह कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। यदि आप इस प्रविष्टि को संघ सूची में रखते हैं तो मैं कह नहीं सकता कि केन्द्र समाचार-पत्रों पर उत्पादित पदार्थों के रूप में कर लगा सकेगा या नहीं क्योंकि केन्द्र को भारत के किसी भाग में उत्पादित होने वाली वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार है। इसलिये मुझे तो यह दिखाई देता है कि समाचार-पत्र करों से नहीं बच सकेंगे। इस सभी बातों पर विचार करने की आवश्यकता है। इस समय मैंने केवल मोटी-मोटी बातों को बताया है—क्योंकि मैंने यह विचार किया कि इस बहस में जो भी सदस्य भाग लेना चाहेगा उसे यह जानना चाहिये कि क्या कठिनाइयां पैदा होंगी। इस समय मैं केवल यह बताना चाहता था कि अनुच्छेद 13 के होते हुये भी यह सभा जिस प्रकार की परिसीमाओं को चाहे अबाध रूप से रख सकती है। सभा से जिस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिये कहा जा रहा है वह मेरे विचार से एक बहुत ही खतरनाक प्रस्ताव है। उसके फलस्वरूप कोई भी कर नहीं लगाया जा सकेगा। अनुच्छेद 24 का भी निराकरण हो जायेगा। कई अन्य पेचीदगियां भी पैदा हो जायेंगी। यदि आप यह कहते हैं कि चूंकि मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है इसलिये कर लगाने की शक्ति को प्रयोग न करना चाहिये क्योंकि उससे मूलाधिकारों का परिसीमन अथवा निराकरण हो जायेगा तो यह एक बहुत बड़ा प्रस्ताव है और मेरे विचार से इसे कोई व्यक्ति कभी भी स्वीकार नहीं करेगा।

*__श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:__ अध्यक्ष महोदय, मैं उन तर्कों को नहीं दुहराना चाहता जिन्हें मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने बड़ी योग्यता के साथ उपस्थित किया है। उन्होंने जिन बातों की चर्चा नहीं की उन्हीं के सम्बन्ध में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। अनुच्छेद 13 के आधार पर ही बहुत कुछ कहा गया है। यदि अनुच्छेद 13 का यह निर्वचन किया गया कि उसमें वर्णित किसी भी विषय के सम्बन्ध में कर नहीं लगाया जा सकता तो सभा यह समझ सकती है कि हम किस ओर बढ़ेंगे। यह कहा जा सकता है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य में समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य भी सम्मिलित है यद्यपि अन्य संविधानों के समान हमारे संविधान में भी समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में कोई खण्ड नहीं है। अनुच्छेद 13 के खण्ड (च) के अधीन (जिसमें 'सम्पत्ति के अर्जन, धारण व्ययन का अधिकार' शब्द प्रयुक्त हैं) प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति को धारण करने का अधिकार है। यदि यह तर्क सारपूर्ण होता तो उत्तराधिकार पर किसी प्रकार का कर न लगाया जा सकता, क्योंकि उत्तराधिकारी को सम्पत्ति को धारण करने का अधिकार है और उससे किसी प्रकार का सम्पदा कर नहीं वसूल किया जा सकता। उस सम्पत्ति पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जा सकता और उसके मूल धन पर भी कोई कर नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि संविधान में सम्मत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन के अधिकार की प्रत्याभूति दी गई

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

है। यदि इस सिद्धांत को निर्धारित किया गया तो यह बहुत खतरनाक सिद्ध होगा और मेरे विचार से कोई न्यायालय "सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन" का यह निर्वचन नहीं करेगा, यदि वह करेगा तो यह उसकी मूर्खता ही होगी। इस समय जमींदारी का उन्मूलन करने के लिए प्रस्ताव रखे गये हैं और उन पर विचार हो रहा है। जमींदारों को भी सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार है। इस प्रकार जमींदारी का उन्मूलन करने के लिए भी कोई विधि नहीं बनाई जा सकती। इसके अतिरिक्त किसी वृत्ति को, जैसे वकील की वृत्ति को करने के अधिकार को लीजिये। विपक्षियों के मतानुसार चूंकि यह अधिकार प्रदान किया गया है इसलिये कोई वृत्ति-कर नहीं लगाया जा सकता। हम इस आशय का एक अनुच्छेद पारित कर चुके हैं कि वृत्ति-कर लगाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त "उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार" शब्दों को लीजिये। यह अधिकार प्रदान किया गया है इसलिये किसी व्यापार पर किसी आजीविका पर अथवा कारबार पर कर नहीं लगाया जा सकता। इस सिद्धान्त का अर्थात् कर-विषयक उपबन्धों का सम्बन्ध अनुच्छेद 13 के मूलाधिकार सम्बन्धी उपबन्धों से जोड़ने से राज्य के हाथ बंध जायेंगे और कुछ भी उन्नति नहीं हो सकेगी। इस आधार पर कोई भी राज्य नहीं चल सकता। इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार करना असम्भव है। इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं मूलाधिकार विषयक अध्याय के अन्य खण्डों को भी उद्धृत करूं क्योंकि मैं किसी न्यायालय के सम्मुख इस बात की पुष्टि के लिये तर्क उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

इसके अतिरिक्त अमरीका के उच्चतम न्यायालय की भी चर्चा की गई है कि मुझे आशा है कि मेरे यह कहने से मुझ पर आत्मप्रशंसा का दोष न लगाया जायेगा कि जो सज्जन इस देश के समाचार-पत्रों की ओर से बोल रहे थे उन्हें इस मामले की सूचना मैंने ही दी और मैं समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र भी गोयनका इसे स्वीकार करेंगे......

***श्री देशबन्धु गुप्तः** हम उसके लिये आपके आभारी हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** इस देश में समाचार-पत्रों के उद्योग की शैशवावस्था कहिये, या जो कुछ भी कहिये, उसे देखते हुये तथा इस ओर भी ध्यान देते हुये कि अन्तर्प्रान्तीय वितरण की आवश्यकता है और इसकी भी सम्भावना है कि विभिन्न प्रान्त विभिन्न करों को लगायेंगे और उनके लगाने में विभेद भी करेंगे, मैंने यह अनुभव किया कि यह दावा न्यायपूर्ण है अर्थात् अन्त में चाहे यह कर जो भी रूप धारण करे किन्तु इसे लगाने की शक्ति केन्द्र को प्राप्त होनी चाहिये। मेरी यह धारणा थी और मेरी अब भी यह ही धारणा है और मैं इसके विरुद्ध कुछ कहने नहीं जा रहा हूं। किन्तु यह धारणा रखने का अर्थ यह नहीं है कि समाचार-पत्रों को पूरी छूट दे दी जाये और यह कहा जाये कि भारत में प्रत्येक उद्योग पर, प्रत्येक कारोबार पर और प्रत्येक आय पर तो कर लगाया जाये किन्तु समाचार-पत्रों और समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर नहीं लगाया जायेगा। हमें एक सीमा तक संसद की बुद्धिमत्ता पर भी निर्भर होना चाहिये। हो सकता है कि किसी स्थिति में कोई भी कर न लगाया जाये और किसी स्थिति में बहुत कम कर लगाया जाये।

मैं विज्ञापनों के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। किसी समाचार में किसी सिनेमा की अभिनेत्री का विज्ञापन निकलता है और वह उससे बहुत धन कमाता है। किसी समाचार-पत्र में दो पक्षों के बीच विवाह-सम्बन्ध के बारे में विज्ञापन निकलता है अथवा उसमें उसका उल्लेख किया जाता है। आप जो कदम उठाना चाहते हैं उसकी गम्भीरता को समझिये। इस स्थिति में मेरा यह निवेदन है कि इस प्रस्ताव को किसी भी समाचार-पत्र पर कर न लगना चाहिये न यह सभा संविधानिक दृष्टि से स्वीकार कर सकती है और न सार्वजनिक दृष्टि से। इस समय मैं केवल संविधानिक दृष्टि से विचार कर रहा हूं। अमरीका के संविधान की भी चर्चा की गई है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि सभी उपबन्धों पर विचार न करके किसी निर्णय विशेष का आश्रय लिया जाये, इधर-उधर से उद्धरण दिये जायें और किसी पाठ्य-पुस्तक के नियमों की चर्चा की जाये और इस प्रकार सभा को, और कभी जनता को भी, गलत रास्ता दिखाया जाये।

***एक माननीय सदस्य:** वकील हमेशा यही किया करते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:** अमरीका के संविधान में यथोचित विधि-प्रणाली के सम्बन्ध में दो अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 5 और 14 हैं। सभा को स्मरण होगा कि इस सभा में एक अवसर पर मैंने हमारे संविधान में "यथोचित विधि प्रणाली" शब्दों को प्रविष्टि करने के विरुद्ध आपत्ति की थी। कल एक अन्य सभा में भी किसी व्यक्ति ने यह कहा था कि मैं सभी लोगों को बन्दी बनाने के पक्ष में हूं। मैं इस प्रकार के अनर्गल प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हो सकता। मैं कारावास को सहन नहीं कर सकता और जिन लोगों को यह दंड दिया जाता है उनके साथ मेरी सहानुभूति रहती है। प्रश्न केवल यह है कि देश के बड़े हितों को ध्यान में रखते हुये संविधान में प्रत्याभूत अधिकारों पर, जिनमें सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार भी है कौन सी परिसीमाएं रखी जायें।

मैं आपके सामने एक उदाहरण रखता हूं। अमरीका के संविधान में इस आशय का एक उपबन्ध है कि न्यायाधीशों को एक निश्चित वेतन मिलेगा और उनका वेतन उनके कार्यकाल में कम नहीं किया जायेगा। अमरीका के उच्चतम न्यायालय के आरम्भ-काल में वहां के न्यायाधीशों ने यह निर्णय किया था कि उनके वेतनों पर कर नहीं लगाया जायेगा। सौभाग्य से बाद को अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने ही इस निर्णय को उलट दिया और यह कहा कि निश्चित वेतन का अर्थ यह नहीं है कि न्यायाधीश नागरिकता के सम्बन्ध में साधारण दायित्व से भी मुक्त हैं। इसलिये आपको इन सब मामलों पर विचार करना होगा। यदि थोड़ी देर के लिये यह माना जाये कि कुछ सभाओं के सम्बन्ध में आप अनुज्ञप्ति कर निश्चित करेंगे तो उसका अर्थ यह होगा कि आप वाक्-स्वातंत्र्य के अधिकार में हस्तक्षेप करेंगे। यदि उस कर से अत्यधिक उत्पीड़न हुआ और इस अधिकार के आधार पर ही आघात हुआ तो न्यायालय यह कह सकते हैं कि तत्सम्बन्धी विधि अवैध है। माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर इसी की ओर संकेत कर रहे थे। किसी भी लिखित संविधान के सम्बन्ध में जब यह प्रश्न उठता है कि विधान-मंडल किसी उपबन्ध द्वारा प्रदत्त शक्ति के अनुरूप कार्य कर रहा है या नहीं तो न्यायालयों से ही इसका निर्णय करने के लिये कहा जाता है। यदि किसी उपबन्ध के अधीन कार्य करते हुये विधान-मंडल उसमें वर्णित शक्ति का दुरुपयोग करता है अथवा

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

अतिक्रमण करता है और किसी दूसरे विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करता है तो न्यायालय यह निर्णय कर सकते हैं कि वह उपबन्ध अवैध है। उदाहरणार्थ यदि हम मुख्य न्यायाधिपति मार्शल के इस कथन को स्वीकार करें कि कर लगाने की शक्ति का अर्थ है विनष्ट करने की शक्ति, और समाचार-पत्रों पर ऐसे कर लगायें कि उनके स्वातंत्र्य का ही अपहरण हो जाये तो मुझे आशा है कि ऐसी स्थिति आने पर न्यायालय उनकी रक्षा कर सकेंगे।

इस स्थिति में यदि सभा यह निर्णय करे कि एक विशेष वर्ग के लोगों को करों से मुक्ति दी जाती है तो वह एक बहुत खतरनाक कदम उठायेगी और उससे देश का बहुत अपकार होगा। यह एक दूसरा प्रश्न है कि वह शक्ति संविधान के शब्दों तथा उसकी भावना के अनुरूप है या नहीं। अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर जो कुछ कह चुके हैं उससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है। किन्तु श्रीमान्, मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि जो विधि प्रश्न उठाये गये हैं उनमें कुछ भी सार नहीं है भले ही उनसे सम्बंधित संशोधनों का उद्देश्य यह हो कि समाचार-पत्रों को हानि न हो अथवा स्वतन्त्र रूप से वितरण हो अथवा कर लगाने की शक्ति को इस प्रकार न प्रयोग किया जाये कि वाक्-स्वातंत्र्य का लोप हो जाये और अभिव्यंजना का अवसर ही न मिले।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** यदि इस अधिकार का पूर्ण अतिक्रमण नहीं हुआ किन्तु इसके कुछ अंश का ही अतिक्रमण हुआ हो तो क्या इसकी इस व्यवस्था से रक्षा न हो सकेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जो कुछ भी तर्क संगत होगा उसका निर्णय न्यायालय करेंगे।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यरः** मैं जो कुछ कह चुका हूं उससे अधिक मुझे और कुछ नहीं कहना है।

(इस अवसर पर श्री देशबन्धु गुप्त बोलने के लिये उठे।)

***अध्यक्षः** मेरे विचार से इस प्रकार के प्रश्न के सम्बन्ध में उत्तर देने का अधिकार नहीं होता।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मैं एक दो बातों को स्पष्ट करना चाहता हूं क्योंकि उनके कारण कुछ भ्रम हो गया है।

***अध्यक्षः** जी नहीं। प्रश्न यह है कि आपको उत्तर देने का अधिकार है या नहीं।

***एक माननीय सदस्यः** अध्यक्ष महोदय कह चुके हैं कि माननीय सदस्य को उत्तर देने का अधिकार नहीं है।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** श्रीमान्, चूंकि कुछ प्रश्न उठाये गये हैं, इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उनका उत्तर देने का अवसर दिया जाये। विशेषतया इसलिये कि श्री अल्लादी कृष्णस्वामी के इन प्रश्नों को उठाने के पश्चात् इस ओर से कोई वक्ता नहीं बोला है।

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से आपकी ओर से और आपके दृष्टिकोण के कई लोग बोल चुके हैं।

जो औचित्य प्रश्न उठाया गया है उसे मैं समझ गया हूं। मुझे उस पर विचार करना होगा और मैं अपना निर्णय बाद को सुनाऊंगा। किन्तु मैं चाहता हूं कि इस बीच डॉ. अम्बेडकर उस अन्य प्रश्न पर भी विचार करें जो उन्होंने स्वयं उठाया है। यदि मैंने यह निर्णय किया कि संशोधन नियमित है तो उस स्थिति में, मुझे आशा है, कि वे गुण दोषों का विचार करके इस सम्बन्ध में उत्तर देने के लिये तैयार रहेंगे कि हम उसे उस रूप में स्वीकार करें जिस रूप में श्री गोयनका उसे उपस्थित करना चाहते हैं अथवा उस रूप में स्वीकार करें जिस रूप में श्री झुनझुनवाला उसे संशोधित करके उसे उपस्थित करना चाहते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ इस दशा में उन्हें अपना संशोधन वापस ले लेना चाहिये।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ संशोधन उपस्थित नहीं किया गया है। मैंने संशोधन के उपस्थित किये जाने पर आपत्ति की थी।

*__अध्यक्षः__ मैं अपना निर्णय बाद को सुनाऊंगा। अब हम अन्य विषयों को उठायेंगे। कुछ नये विषयों का प्रस्ताव भी रखा गया है। कुछ विषय छपी हुई सूची में भी दिये हुये। उन्हें उठाने के पूर्व हम अन्य प्रविष्टियों पर विचार करेंगे।

प्रविष्टि 89

*__अध्यक्षः__ मैं देखता हूं कि प्रविष्टि 89 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 89 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 90

(प्रविष्टि 90 संघ-सूची का अंग बना ली गई।)

प्रविष्टि 91

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं संशोधन को उपस्थित नहीं करूंगा किन्तु प्रविष्टि पर बोलूंगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ गीत के साथ बच्चे को भी क्यों नहीं उपस्थित करते? केवल गीत ही को क्यों उपस्थित कर रहे हैं? आप संशोधन को उपस्थित कर सकते हैं और उस पर भाषण भी दे सकते हैं।

*__सरदार हुकम सिंह__ (पूर्वी पंजाब : सिख): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 91 से 'other (अन्य)' शब्द निकाल दिया जाये।"

मेरे नाम से एक अन्य संशोधन भी है और उसे मैं इसके साथ ही उपस्थित करना चाहता था, किन्तु उसे 171वीं संख्या दी गई है। उसका आशय यह था कि "सूची 1 से प्रविष्टि 1 से 90 तक निकाल दी जायें।" उस संशोधन को अन्यत्र रखा गया है। मैं इन्हें एक साथ उपस्थित करना चाहता था। मुझे इसका अवसर नहीं दिया गया। श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि ....

*__अध्यक्ष:__ आप संशोधन संख्या 234 उपस्थित कर रहे हैं?

*__सरदार हुकम सिंह:__ जी हां, श्रीमान्। मेरा केवल यह निवेदन है कि मैं इन दो संशोधनों को अर्थात् संशोधन संख्या 234 और 171 को एक श्रेणी में रखता हूं। किन्तु इन दोनों को पृथक् कर दिया गया है और इन्हें अलग-अलग स्थानों में रखा गया है। संशोधन संख्या 131 नहीं घोषित किया गया। सम्भवत: उस पर बहुत देर में विचार किया जायगा। अथवा उसे अन्त में उपस्थित करने के लिये कहा जायेगा। मैं कह नहीं सकता कि क्या स्थिति है। उनको एक साथ पढ़ने से उनका आशय पूरा होता है और यदि मुझे आज्ञा है तो मैं उन पर एक साथ विचार करना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ हम इन सब प्रविष्टियों को पारित कर चुके हैं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ जिन प्रविष्टियों को हम पारित कर चुके हैं वे निकाली कैसे जा सकती थीं?

*__सरदार हुकम सिंह:__ मैं यही निवेदन कर रहा हूं। मुझे उस समय इस संशोधन को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी गई। उसे पृथक् करके रखा गया है। अब मैं संशोधन संख्या 234 को उठाता हूं।

श्रीमान्, मुझे यह कठिनाई दिखाई देती है कि 1 से 90 तक सब प्रविष्टियों पर विचार करने और उनके पूरे विवरण पर बहस करने के पश्चात् तथा एक गृह से दूसरे गृह तक की ओर एक उप गृह से दूसरे उप गृह तक की यात्राओं पर और भूलोक से चन्द्र लोक और चन्द्र लोक से भूलोक तक की यात्राओं पर भी विचार करने के पश्चात् हमने अन्त में यह निर्णय लिया है कि इन प्रविष्टियों में सब बातें नहीं आतीं और इस सूची में अन्य प्रविष्टियों को रखने की आवश्यकता होगी। इस प्रविष्टि 91 का उद्देश्य यह है कि सूची 2 तथा सूची 3 में जो कुछ सम्मिलित नहीं किया गया है उसके बारे में यह समझा जाय कि वह इस सूची में सम्मिलित है। मेरे विचार से यदि 'अन्य' शब्द निकाल दिया जाये तो यह आशय बहुत सरल शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। तब इस सूची की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी। आशय यह है कि सूची 2 और सूची 3 में जो कुछ सम्मिलित नहीं है वह संघ-सूची में सम्मिलित समझा जायेगा। यह बहुत सरल शब्दों में कहा जा सकता है और वास्तव में हमने जो कष्ट उठाया है उसे उठाने की आवश्यकता नहीं थी।

*श्री **महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मेरा यह निवेदन है कि मेरे माननीय मित्र सरदार हुक्म सिंह ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उसका दूसरा भाग अनियमित है। इससे प्रविष्टि 91 का संशोधन नहीं होता। इससे 1 से 90 तक की प्रविष्टियों का संशोधन होता है, जिन्हें हम पारित कर चुके हैं। यदि इस संशोधन को उपस्थित करना ही था तो इसे उस समय उपस्थित करना था जब प्रविष्टि 1 अथवा प्रविष्टि 2 पर विचार हो रहा था।

***अध्यक्ष:** वे उसे नहीं उपस्थित कर रहे हैं। वे संशोधन संख्या 234 को उपस्थित कर रहे है—वह इस प्रकार है कि सूची 1 की प्रविष्टि 91 से 'अन्य' शब्द निकाल दिया जाये।

*श्री **महावीर त्यागी:** क्या वे दूसरे संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहे हैं?

***अध्यक्ष:** वे केवल उसी संशोधन को उपस्थित कर रहे हैं।

*श्री **महावीर त्यागी:** श्रीमान्, मैं आप से क्षमा चाहता हूं।

***सरदार हुकम सिंह:** मैं यह निवेदन कर रहा था कि इस प्रविष्टि से 'अन्य' शब्द के निकालने से एक सूची का उद्देश्य पूरा हो जाता। मुझे भय है कि इस प्रसंग में कहीं दासत्व की मनोवृत्ति का परिचय न दिया जाय। 1935 के अधिनियम में लगभग 320 अनुच्छेद और दस अनुसूचियां थीं और सातवीं अनुसूची में तीन सूचियां थीं। इस मसौदे में भी उसी का अनुसरण किया गया है। हमें वास्तव में इतना अधिक विवरण देने की आवश्यकता न थी। मुझे इस अवसर पर एक कहानी स्मरण हो आई है। एक सज्जन ने अपने एक विशेषज्ञ मित्र से पूछा कि सारस को पकड़ने का सबसे अच्छा उपाय क्या है। विशेषज्ञ मित्र ने उत्तर दिया, "अंधेरा होने पर आप सारस पकड़ने निकलिये और उसके पास जाकर उसके सर पर कुछ मोम रख दीजिये। सूर्य उदय होने पर मोम गलेगा और अवश्य ही उसकी आंखों में गिरेगा। सारस अंधा हो जायेगा और फिर आप उसे पकड़ सकते हैं।" उस सज्जन ने अपने मित्र से पूछा, "उसे मैं उसी समय क्यों नहीं पकड़ लूं जब मैं उसके सर पर मोम रखूं?" उसने उत्तर दिया कि यदि उसे इतनी आसानी से पकड़ लिया जायेगा तो "उस्ताद की उस्तादी" का क्या होगा? श्रीमान्, मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रक्रिया का अनुसरण क्यों किया गया। जब हम प्रविष्टि 91 को उठाते हैं तो हमें उसमें यह अवशिष्ट शक्ति रखनी पड़ती है। यदि सूची 2 और सूची 3 की ओर कुछ अधिक ध्यान दिया जाता तो यह बहुत आसानी से किया जा सकता था। क्योंकि हम सीधे-सीधे यह कह सकते थे कि सूची 2 और सूची 3 में जिन विषयों तथा जिन करों का उल्लेख नहीं किया गया है वे सब इसी सूची में सम्मिलित हैं। इससे हमारा उद्देश्य पूरा हो जाता है और हमें इतने अधिक विवरण की चिंता नहीं करनी पड़ती। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं।

*श्री **नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रविष्टि 91 का विरोध नहीं करना चाहता। अब उसके लिये समय नहीं रह गया है किन्तु मेरा यह निवेदन है कि प्रविष्टि 91 को स्वीकार करते ही हमें कई अनुच्छेदों तथा प्रविष्टियों के मसौदे में गम्भीर परिवर्तन करने होंगे। अनुच्छेद 217 का सार यह है कि सूची 1 की प्रविष्टियां संघ के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगी, सूची 2 की प्रविष्टियां राज्यों

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगी और सूची 3 की प्रविष्टियां दोनों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगी। आरंभ में हमने यही व्यवस्था की थी। हमने इस योजना को भारत शासन अधिनियम से लिया था। प्रविष्टि 91 को स्वीकार करने पर अनुच्छेद 217 और कुछ अन्य अनुच्छेदों के मसौदों को दुहराने की आवश्यकता होगी और 1 से 90 तक की प्रविष्टियां निरर्थक हो जायेंगी। यदि सूची 2 और सूची 3 में अनुल्लिखित प्रत्येक विषय को केन्द्र के क्षेत्राधिकार में रखना है तो सूची 1 में 1 से 90 तक की प्रविष्टियों को रखने का क्या अर्थ है? उनको रखने से हम ऐसे विस्तृत विवरण को स्थान देंगे जिसकी आवश्यकता नहीं है। यदि अनुच्छेद 217 का मसौदा फिर से तैयार किया जाये और उसमें यह कहा जाये कि सूची 2 में उल्लिखित सभी विषय राज्यों के क्षेत्राधिकार में हैं और सूची 3 में उल्लिखित सभी विषय केन्द्र तथा राज्यों के समवर्ती क्षेत्राधिकार में हैं और अन्य सभी विषय केन्द्र के क्षेत्राधिकार में हैं तो सभी पेचीदगियां दूर हो जायेंगी और सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा। इससे अधिक सरल तथा तर्कयुक्त और कुछ नहीं हो सकता। किन्तु यह न करके एक लम्बी विवरणपूर्ण सूची को बेकार रखा गया है। यह इस कारण हुआ कि सूची 1 को पहले तैयार कर लिया गया था और बाद में कुछ सोच कर प्रविष्टि 91 को भी रख दिया गया। प्रविष्टि 91 को स्वीकार करने पर मसौदे को भी तदनुसार संशोधित कर लेना चाहिये था। यदि अनुच्छेद 217 को उपरोक्त रूप में रखा जाता तो सब कुछ सरल हो जाता। क्या मैं अब भी यह सुझाव रख सकता हूं कि इन अनावश्यक प्रविष्टियों को निकाल दिया जाये और अनुच्छेद 217 का मसौदा फिर से तैयार करके सब कुछ सरल कर दिया जाये? मेरे नाम से इस आशय का एक संशोधन था किन्तु मैंने उसे उपस्थित नहीं किया क्योंकि मैं जानता हूं कि इस संशोधन पर विचार करने के लिए चाहे मैं जो भी कारण बताता किन्तु सभा उन्हें उपयुक्त नहीं समझती।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, आज एक महान् दिवस है क्योंकि हम बिना अधिक बहस किये हुये ही इस प्रविष्टि को पारित कर रहे हैं। इस विषय पर इस देश में दो शताब्दियों तक बहस होती रही है। आज यह बिना किसी बहस के पारित किया जा रहा है। मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का दृष्टिकोण ठीक दृष्टिकोण नहीं है। वास्तव में डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा है कि यदि कोई बात रह जायेगी तो, वह विषय 91 में सम्मिलित कर ली जायेगी। इसलिये मेरे विचार से यह एक महत्वपूर्ण प्रविष्टि है। 1 से 90 तक की प्रविष्टियों को निकालने की आवश्यकता नहीं है। मैं यह जानता हूं कि पहले की 90 प्रविष्टियों में जो कोई विषय उल्लिखित हैं वे सब इस प्रविष्टि में सम्मिलित रहेंगे और जो विषय छूट भी जायेंगे वे भी सम्मिलित रहेंगे। इससे केन्द्र सशक्त हो सकेगा और सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने में समर्थ हो सकेगा। पिछली शताब्दी में इस प्रश्न को लेकर संघर्ष होता रहा कि प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त होनी चाहिये और केन्द्र को उनके मामलों में हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं होनी चाहिये। किन्तु अब जमाना बदल गया है। अब हम सभी शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में हैं। वास्तव में कुछ मित्र चाहते हैं कि प्रान्तीय स्वायत्तता का अन्त ही कर दिया जाये और एक सत्तात्मक शासन स्थापित कर दिया जाये। इस प्रविष्टि के अधीन केन्द्र किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में विधि बना सकता है जो सभा के ध्यान में न आया हो। मैं इस प्रविष्टि का समर्थन करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र सरदार हुक्म सिंह ने जो आपत्ति की है उसके सम्बन्ध में मैं अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। मेरे विचार से वे यह नहीं समझे हैं कि प्रविष्टि 91 का उद्देश्य क्या है। इसलिये मैं स्पष्ट शब्दों में यह बताना चाहता हूं कि सूची 1 की प्रविष्टि 91 का उद्देश्य क्या है। उसमें सूची 1 की सीमा तथा उसका विस्तार बताया गया है। वास्तव में हम इस विषय को अर्थात् सूची 2 और सूची 3 की सीमा तथा उसके विस्तार को प्रविष्टि 67 के समान एक प्रविष्टि रख कर स्पष्ट कर सकते थे। उसमें ये शब्द रखे जा सकते थे:

"जो विषय सूची 2 और सूची 3 में सम्मिलित न हो वह सूची 1 में सम्मिलित समझा जायेगा।"

उसका उद्देश्य यही है। इस उद्देश्य की पूर्ति दो प्रकार हो सकी थी। अर्थात् सूची 1 को प्रविष्टि 91 के समान किसी प्रविष्टि को रख कर अथवा किसी ऐसी प्रविष्टि को रख कर जिसका सुझाव मैंने रखा है और जिसका आशय यह है कि "जो कुछ सूची 2 अथवा सूची 3 में सम्मिलित नहीं है वह सूची 1 में सम्मिलित होगा।" इसका उद्देश्य यही है। यह अविवाद है कि इस प्रकार की प्रविष्टि की आवश्यकता है। अब मैं दूसरी आपत्ति को उठाता हूं, जिसे यदि खुले तौर पर नहीं तो कम से कम कानाफूसी करके बार बार दुहराया गया है, और वह यह है कि अब हमने एक अवशिष्ट अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 223 को रखा है जिसका आशय यह है कि "संसद को, ऐसे किसी विषय में जो 'समवर्ती सूची' अथवा 'राज्य सूची' में अंकित नहीं है, विधि बनाने की अनन्य शक्ति नहीं है" तो हम सूची 1 में 1 से 91 तक की प्रविष्टियों को क्यों रख रहे हैं? सिद्धान्ततः मैं इसे स्वीकार करता हूं कि जब हमने इस सम्बन्ध में संविधान में, एक स्पष्ट अनुच्छेद रख दिया है कि जो कुछ सूची 2 अथवा सूची 3 में सम्मिलित नहीं है वह केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आ जायेगा। तो इन विषयों की सूची 1 में गणना करने की आवश्यकता नहीं है। इनकी गणना करने का कारण यह है। संविधान-सभा के कार्यारम्भ के समय कई राज्यों के लोग, यह जानने के लिये बहुत इच्छुक थे कि केन्द्र की विधायिनी शक्तियां क्या हैं। वे यह निश्चित रूप से जानना चाहते थे। उन्हें इस कथन से संतोष नहीं होता था कि केन्द्र को अवशिष्ट शक्तियां प्राप्त होंगी। प्रान्तों तथा भारतीय रियासतों के संदेहों को दूर करने के लिये हमें निश्चित रूप से ये कहना पड़ा कि "अवशिष्ट शक्तियों" पदावली में कौन से विषय सम्मिलित हैं। इसी कारण अनुच्छेद 223 के होते हुये भी हमें यह श्रम करना पड़ा।

मैं यह भी कहना चाहता हूं, कि जहां तक हमारे संविधान का सम्बन्ध है, यह व्यवस्था आपत्तिजनक नहीं और वह इस कारण कि सभी संघीय संविधानों में केन्द्र की शक्तियों की गणना की जाती है। यह उन संघों के संविधानों में भी देखा जा सकता है जहां केन्द्र को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान की गई हैं। कनाडा के संविधान को ही लीजिये। भारतीय संविधान के समान कनाडा के संविधान में भी कनाडा की संसद को अवशिष्ट शक्तियां दी गई हैं। प्रान्तों को कुछ निश्चित शक्तियां दी गई हैं और उनकी गणना की गई है। इस पर भी मेरे विचार से कनाडा के संविधान के अनुच्छेद 99 में कुछ ऐसे विषयों की गणना की गई है जिनके सम्बन्ध में कनाडा की संसद विधि बना सकती है। यह उन फ्रांसीसी प्रान्तों के सन्देहों को दूर करने के लिये किया गया जो कनाडा के संघ के अंग

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बनने जा रहे थे। भारत शासन अधिनियम में भी यही योजना निर्धारित की गई है और उसकी 104वीं धारा अनुच्छेद 223 के समान ही है। उसमें यह भी उपबंधित किया गया है कि केन्द्रीय सरकार को अवशिष्ट प्राप्त होंगी। यह उपबन्ध सूची 1 के होते हुये भी रखा गया। इसलिये इसकी अधिक आलोचना नहीं की जा सकती। जैसाकि मैं कह चुका हूं यह इस कारण किया गया कि विभिन्न प्रान्त यह स्पष्ट रूप से जानना चाहते थे कि अवशिष्ट शक्तियां क्या हैं, और इस कारण भी कि कई अन्य संघीय संविधानों में भी इसी सर्वविदित प्रथा का अनुसरण किया गया है। मुझे आशा है कि सभा न तो मेरे मित्र सरदार हुक्म सिंह के संशोधन को स्वीकार करेगी और न मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के कथनों की ओर ही अधिक ध्यान देगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** कभी नहीं।

***अध्यक्ष:** अब मैं सरदार हुक्म सिंह द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 91 से 'other (अन्य)' शब्द निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं प्रविष्टि 91 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 91 सूची 1 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 91 संघ-सूची का अंग बना ली गई।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मेरे नाम से तीन संशोधन हैं जिनके सम्बन्ध में आपने कहा था कि उन्हें अन्त में उठाया जा सकता है।

***अध्यक्ष:** जी हां, मुझे स्मरण है।

कुछ नये संशोधन भी प्रस्तावित किये गये हैं और अब मैं उन्हें उठाता हूं। मैं छपी हुई सूची का पहला संशोधन उठाता हूं। तीन नई प्रविष्टियों का सुझाव रखा गया है। एक प्रविष्टि संशोधन संख्या 3586 में प्रस्तावित है जो पंडित लक्ष्मीकांत मैत्र, श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार और श्री मिहिर लाल चट्टोपाध्याय के नाम से है। दूसरी प्रविष्टि संशोधन संख्या 3587 में प्रस्तावित है जो अरुण चन्द्र गुहा के नाम से है। मैं यह माने लेता हूं कि ये उपस्थित नहीं किये गये हैं। इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 3588 है, जो श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर, श्रीमती जी. दुर्गाबाई और श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार के नाम से है। वह भी नहीं उपस्थित किया जा रहा है।

अब हम सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 58 को उठाते हैं। यह श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन है। क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ जी हां, श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3588 के सम्बन्ध में, सूची 1 में निम्नलिखित प्रविष्टियां रखी जायें:–

1. 'Scheduled Areas' and 'Tribal Areas',

1. 'अनुसूचित क्षेत्र' और 'आदिमजाति क्षेत्र')

2. सूची 2 की 1 से 66 तक की सब प्रविष्टियां।"

श्रीमान्, क्या मैं अन्य संशोधनों को भी उपस्थित कर सकता हूं।

*__अध्यक्ष:__ जी नहीं, अच्छा यह होगा कि हम उन्हें एक-एक करके उठायें।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यदि हमें आदिम-जातियों के लोगों के हितों की चिंता है और यदि हम उन लोगों के प्रति न्याय करना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि आदिम-जाति क्षेत्र और अनुसूचित-क्षेत्र केन्द्र के क्षेत्राधिकार में रखे जायें। श्रीमान्, इन क्षेत्रों में जंगल तथा खनिज पदार्थ हैं और मेरे विचार से इनका बहुत महत्व है। यदि इन दो विषयों को केन्द्र अपने हाथ में ले ले तो मेरे विचार से आदिम-जाति क्षेत्रों को भी भारत सरकार को अपने क्षेत्राधिकार में ले लेना चाहिये; एक अन्य अनुच्छेद के प्रसंग में मैंने कहा था कि यदि आदिम-जाति क्षेत्र केन्द्र प्रशासित क्षेत्र हो जायेंगे तो आदिम-जातियों के लोगों में एकता का भाव जागृत हो जायेगा। मेरे विचार से प्रान्तीय सरकारें, आर्थिक साधनों के अभाव के कारण उनकी समस्याओं की ओर अभी तक अधिक ध्यान नहीं दे सकी हैं। अपने सीमित आर्थिक साधनों के कारण वे उनकी गरीबी तथा निरक्षरता की समस्या को हल करने में असमर्थ हैं। इसलिये यदि हम आदिम-जातियों के लोगों को भारत के अन्य निवासियों के स्तर पर लाना चाहते हैं तो हमें आदिम-जातियों के क्षेत्रों को केन्द्रीय सरकार के अधिकार में रख देना चाहिये।

पहले एक दिन यह कहा गया था कि यदि यह कदम उठाया गया तो आदिम-जातियों के लोग देश के जनसाधारण के साथ घुल-मिल न सकेंगे। श्रीमान्, मेरे विचार से घुल-मिल जाने का लक्ष्य एक दूर का लक्ष्य है। इस समय हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है। आदिम-जातियों के लोगों को अपने साथ मिलाने के पूर्व हमें स्वयं ही घुलने मिलने की आवश्यकता है। बिहारी और बंगाली शताब्दियों से साथ-साथ रह रहे हैं किन्तु वे अभी भी घुल-मिल नहीं सके हैं। तेलगू और तमिल शताब्दियों से साथ-साथ रह रहे हैं किन्तु वे अभी भी घुल-मिल नहीं सके हैं। केन्द्र में एक ही सरकार होते हुये भी उत्तर और दक्षिण के लोगों का विभेद बना हुआ हैं पहले हम इस समस्या को हल करें। यदि हम इन लक्ष्यों को प्राप्त न करके आदिम-जातियों के लोगों को मिलाने की बात कहते हैं तो हममें सम्यक ज्ञान की कमी है।

मेरा यह भी विचार है कि घुलने मिलने के प्रश्न को आदिम-जातियों के नेता तथा उनके प्रतिनिधि स्वयं हल करें। वे उस प्रश्न को स्वयं हल करें। हमारा कर्तव्य तो केवल यह है कि हम उन्हें उन्नति करने के साधन प्रदान करें तथा शैक्षिक,

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के अवसर उपलब्ध करायें। यदि हम आदिम-जातियों के लिये इस प्रकार की व्यवस्था कर देंगे तो मैं तो यह समझूंगा कि हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है। इसके पश्चात् उनके नेता स्वयं यह निर्णय करें कि उन्हें अन्य लोगों के साथ मिल जाना चाहिये अथवा उनसे अलग रहना चाहिये। मेरी अपनी यह धारणा है कि घुलने मिलने का प्रश्न दूर का प्रश्न है और उसका उन प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं है जिन्हें हमें आज हल करना है।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि चाहे हमने संविधान के कोई भी अनुच्छेद क्यों न पारित किये हों किन्तु उनके कारण मेरे लिये इसे उपस्थित करने में कोई रुकावट नहीं होती है। मैं यह सुझाव उपस्थित कर रहा हूं कि केवल दो सूचियां, अर्थात् संघ-सूची और समवर्ती-सूची, होनी चाहियें।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ क्या इस सुझाव को अब उपस्थित करना नियमित है?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ यदि यह नियमित न होता तो प्रस्ताव को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ क्या आप यह चाहते हैं कि प्रान्तों को समाप्त कर दिया जाये?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं यह नहीं चाहता कि प्रान्तों को समाप्त कर दिया जाये। उन्हें विधि बनाने की समवर्ती शक्तियां प्राप्त होनी चाहियें। मैं यह चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकारें बनी रहें। मेरी यह धारणा है कि इस युग में सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि हम कृषि सम्बधी, खनिज सम्बन्धी तथा उद्योग-सम्बन्धी साधनों को विकसित करने के लिये यथाशीघ्र यथाशक्य प्रयत्न न करें। इन साधनों के विकास के लिये वैज्ञानिक आधार पर शीघ्रातिशीघ्र योजना बनाने की आवश्यकता है। हमारे लिये कोई ऐसा गृह लाभप्रद नहीं हो सकता जिसके बहुत से कमरे बिल्कुल अलग हों। शक्तियों के पृथक्करण की पुरानी विचारधारा से वर्तमान युग की आवश्यकतायें पूरी नहीं हो सकतीं। वह किसी प्राचीन युग के लिये ही उपयुक्त थीं।

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से आप प्रान्तों को न रखने के सम्बन्ध में फिर उन्हीं तर्कों को दुहरा रहे हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ जी नहीं, श्रीमान्, प्रान्त रहने चाहियें किन्तु उन्हें समवर्ती शक्तियां ही प्राप्त होनी चाहियें। मैं प्रान्तों का विरोध नहीं कर रहा हूं। चाहे इस सम्बन्ध में मेरे विचार कुछ भी हों किन्तु इस समय मैं प्रान्तों को समाप्त करने के पक्ष में तर्क नहीं उपस्थित कर रहा हूं। मैं केवल यह कह रहा हूं कि उन्हें सीमित शक्तियां ही अर्थात् समवर्ती शक्तियां ही प्राप्त होनी चाहियें।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि आपको समय की बहुत चिंता रहती है। इस कारण मैं केवल एक बात और कहकर अपना भाषण समाप्त कर दूंगा। मेरे विचार से

यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भाग लेना चाहते हैं तो हमें प्रान्तीय सरकारों को बहुत सी शक्तियां नहीं देनी चाहियें। उन्हें अन्य शक्तियां न देनी चाहियें। उन्हें समवर्ती शक्तियां ही देनी चाहियें। देखिये हमारे विरोधी क्या चाल चल रहे हैं? एशिया में आंग्ल-अमरीकी शक्तियों की यह चाल है कि भारत में एक सुगठित सशक्त केन्द्र नहीं स्थापित होने दिया जाय। वे भारत को अनेक भागों में बंटा देखना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने बर्मा को हमारे देश से पृथक् कर दिया। इसी उद्देश्य से उन्होंने इस देश का विभाजन कर दिया। इसी उद्देश्य से उन्होंने भारतीय रियासतों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। क्या हम आंग्ल-अमरीकी शक्तियों की आशाओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप ही कार्य करें? (विघ्न) यदि हम अपने शत्रुओं के उद्देश्य को निष्फल करना चाहते हैं तो हमें एक सशक्त केन्द्र को स्थापित करना चाहिये और प्रान्तों को केवल समवर्ती शक्तियां प्रदान करनी चाहियें। मैं कुछ अधिक समय लेता किन्तु मैं यह देखता हूं कि सभा कुछ खीजी हुई सी है।

*__अध्यक्ष:__ इस विषय पर, मेरे विचार से, अधिक बहस करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु यदि डॉ. अम्बेडकर इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हैं तो मैं उन्हें सुनने के लिये तैयार हूं। अन्यथा मैं नहीं समझता कि इस पर अब अधिक बहस की आवश्यकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ इस पर अब बहस की आवश्यकता नहीं है। मुझे कुछ नहीं कहना है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ मैं समझता हूं सभा उन्हें उसे वापस लेने की अनुमति देती है।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ जी नहीं।

*__अध्यक्ष:__ आप उन्हें उसे वापस लेने की अनुमति नहीं देते। अच्छी बात है, मैं उस पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3588 के सम्बन्ध में, सूची 1 में निम्नलिखित प्रविष्टियां रखी जायें:-

1. 'Scheduled Areas' and 'Tribal Areas'

(1. 'अनुसूचित क्षेत्र' और 'आदिमजाति क्षेत्र')

2. सूची 2 की 1 से 66 तक की सब प्रविष्टियां।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ कल मैंने डॉ. देशमुख के दो संशोधनों को, अर्थात् संशोधन संख्या 223 और 224 को, स्थगित रखा था। वे उन्हें उपस्थित कर सकते हैं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या 223 उपस्थित करता हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 70-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायः–

'70.B. Protection of children.......(70-ख. बच्चों की रक्षा....)' "

(मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे 'बच्चों' शब्द के पश्चात् 'और युवकों' शब्दों के रखने की अनुमति प्रदान की जाये।) (*विघ्न*)

*__अध्यक्षः__ 'युवतियों नहीं'?

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ पुरुष शब्द से स्त्री का भी बोध हो जाता है। निदेशक सिद्धान्त सम्बन्धी एक अनुच्छेद में यह उल्लिखित है। इस प्रकार मेरे संशोधन का परिवर्तित रूप यह होगाः

"Protection of children and young men, their exploitation and abandonment.' " (बच्चों और युवकों की रक्षा, उनका शोषण और परित्यजन।)

श्रीमान्, यदि आप सूची 2 की प्रविष्टि 5 को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि राज्यों के लिये हमने यह प्रविष्टि रखी है–"कारागार, सुधारालय, बोरस्टल संस्थाएं और तद्रूप अन्य संस्थाएं और उनमें निरुद्ध व्यक्ति।" इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची की प्रविष्टि 6 इस प्रकार हैः "विवाह और विवाह-विच्छेद; शिशु और वयस्क; दत्तक-ग्रहण।"

*__श्री एच.वी. कामतः__ क्या मैं अपने मित्र को बता सकता हूं कि निदेशक-सिद्धान्त विषयक भाग 4 में "युवक" शब्द प्रयुक्त नहीं है बल्कि "किशोर अवस्था" शब्द प्रयुक्त हैं? मैं अनुच्छेद 31 की ओर संकेत करता हूं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ यदि ये शब्द हैं तो सम्भवतः मैंने मूल मसौदे के शब्दों को रखा है। मैं "किशोर अवस्था" अथवा अंतिम रूप से स्वीकृत अनुच्छेद 31 में जो भी शब्द प्रयुक्त हैं उन्हें रखना चाहता हूं। श्रीमान्, मैंने जिन दो प्रविष्टियों की चर्चा की है, उनसे स्पष्ट हो जायेगा कि राज्यों को बाल-अपराधियों के सम्बन्ध में व्यवस्था करने की शक्ति, प्रदान की गई है और वे सुधारालयों तथा बोरस्टल संस्थाओं के सम्बन्ध में विधि बना सकते हैं। इस प्रकार बाल-अपराधियों के सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है अथवा उनके सम्बन्ध में सूची 2 पर बहस होते समय विचार किया जायेगा।

जहां तक सूची 3 की प्रविष्टि 6 का सम्बन्ध है उसके अधीन हम विवाह और विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में समवर्ती शक्ति प्रदान करने जा रहे हैं। शिशुओं और अवयस्कों का भी इसी प्रसंग में उल्लेख किया गया है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह विधि के अधीन शिशुओं और अवयस्कों की स्थिति के सम्बन्ध में है और इस प्रविष्टि के फलस्वरूप राज्यों की सरकारें उनके सम्बन्ध में विधि

बना सकेंगी। किन्तु दुर्भाग्य से बच्चों तथा युवाओं के कल्याण तथा रक्षण और विशेषतः उनके शोषण तथा परित्यजन के विरुद्ध कोई प्रविष्टि नहीं है यद्यपि इस सम्बन्ध में हम एक अनुच्छेद को अर्थात् अनुच्छेद 31 को पारित कर चुके हैं। इस अनुच्छेद में हमने यह उपबंधित किया है कि बच्चों की रक्षा का दायित्व संघ-सरकार पर होगा और वह बच्चों तथा युवाओं का शोषण तथा परित्यजन न होने देगी। मेरे विचार से उपयुक्त यही होगा कि हम संघ-सूची में इस आशय की एक प्रविष्टि रख दें ताकि संघ को इस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाय।

मैं यह बता चुका हूं कि यह प्रविष्टि अनावश्यक नहीं है। यदि किसी व्यक्ति का यह मत हो कि चूंकि सूची 2 और सूची 3 में इसके समान प्रविष्टियां हैं। इसलिये इस प्रविष्टि की आवश्यकता नहीं है तो सभा से मेरा यह निवेदन है कि मेरी दृष्टि में जो मामला है वह उन प्रविष्टियों में नहीं आता। निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में बच्चों तथा युवाओं के शोषण के सम्बन्ध में एक उपबन्ध रख कर हमने बहुत उपयुक्त कदम उठाया है। इस कारण तर्कयुक्त यही है कि संघ को इस सम्बन्ध में विधि बनाने की शक्ति प्रदान की जाये। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं सभा का ध्यान इस ओर आकृष्ट करूं कि इस देश में बच्चों का परित्यजन किस प्रकार होता है और परित्यक्त बच्चे किस प्रकार रेल के स्टेशनों, सिनेमा घरों और बस के अड्डों आदि में फिरा करते हैं। हमारे देश में यह आसानी से समझ में आ जाता है कि सबसे सस्ते भाव में यहां बच्चे ही मिलते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनके प्रति हमारा जो दृष्टिकोण है उसका विश्लेषण करे तो उसकी समझ में आ जायेगा कि यहां बच्चों की तुलना में कूड़ा करकट भी अधिक मूल्यवान है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि हमने इस सम्बन्ध में निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में उपबन्ध रखे हैं। यदि हम निदेशक सिद्धान्तों को सच्चाई से प्रयोग में लाना चाहते हैं तो संघ को इस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाने तथा इस समय की निन्दनीय स्थिति को शीघ्र समाप्त करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस दृष्टि से श्रीमान्, मैं इस पर जोर देता हूं कि इस प्रविष्टि को सभा को स्वीकार कर लेना चाहिये।

अन्य दो प्रविष्टियों के सम्बन्ध में मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे उन्हें उस समय उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये जब हम समाचार-पत्रों से संबंधित प्रविष्टि पर विचार करें।

***अध्यक्षः** क्या डॉ. अम्बेडकर को इस सम्बन्ध में कुछ कहना है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी नहीं, श्रीमान्, मुझे कोई उत्तर नहीं देना है। युवक और युवतियां अपनी रक्षा स्वयं कर सकते हैं। उनके विषय में चिंतित होने की क्या आवश्यकता है?

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 70-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः-

'70-B. Protection of children and young men, their exploitation and abandonment. (70-ख. बच्चों और युवकों की रक्षा, उनका शोषण और परित्यजन।)' "

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना के नाम से तीन अतिरिक्त प्रविष्टियां थीं: कल जब मैंने उन्हें घोषित किया था तो वे अपनी जगह पर नहीं थे। मैंने यह मान लिया था कि वे उपस्थित नहीं किये गये हैं। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि वे उन्हें उपस्थित करना चाहते हैं। पर मैंने उनसे कहा था कि मैं इस पर विचार करूंगा।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 59 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59-A. Labour Legislation, and Legislation for settlement of Industrial disputes.'"

(59.क श्रम विधि तथा औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिये विधि।)

"सूची 1 की प्रविष्टि 59-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59-B. Co-ordination of machinery for settlement of industrial disputes in States and in the Union and the provision of Supreme Industrial Appellate Tribunals.'"

(59-ख. राज्यों में तथा संघ में औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिए संगठनों का एकीकरण और उच्चतम औद्योगिक अपीलीय न्यायाधिकरण।)

"सूची 1 की प्रविष्टि 59-ख के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59C. Unemployment Insurance.'" (59-ग. बेकारी का बीमा)

श्रीमान्, मुझे इन संशोधनों को उपस्थित करने का अवसर प्रदान करने के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। ये महत्वपूर्ण प्रविष्टियां हैं और मैं आपका ध्यान इनकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। मैं यह जानता हूं कि समवर्ती सूची में ये प्रविष्टियां हैं:

26. श्रमिकों का कल्याण, कार्य की शर्तें, भविष्य निधि, नियोजक-उत्तरवादिता और कर्मकार प्रतिकर, स्वास्थ्य बीमा जिसके अंतर्गत असमर्थता-निवृत्ति-वेतन भी है, वार्धक्यनिवृत्ति-वेतन।

27. बेकारी और सामाजिक बीमा।

28. व्यापार-संघ; औद्योगिक और श्रमिक विवाद।

इसका अर्थ यह है कि इनके सम्बन्ध में प्रान्त और केन्द्र दोनों विधि बना सकते हैं। प्रविष्टि 59 में कहा गया है कि संघ के नौकरों से संबंधित औद्योगिक विवादों का विषय केन्द्रीय विषय होगा। इसलिये यद्यपि औद्योगिक विवादों का उल्लेख समवर्ती सूची में है किन्तु संघ के नौकरों के सम्बन्ध में इन विवादों का निर्णय करने के लिये संघीय सरकार ही विधि बना सकेगी मैं यह चाहता हूं कि समवर्ती

सूची में तो इन प्रविष्टियों को रहने दिया जाये किन्तु मैंने जिन विषयों को प्रस्तावित किया है उन्हें संघ-सूची में सम्मिलित कर लिया जाये। इस संशोधन का मुख्य उद्देश्य यह है कि सारे देश की श्रम-विधियों में एकरूपता आ जाये। इस समय स्थिति इस प्रकार है। देश के विभिन्न भागों में भले ही एक ही उद्योग किया जाता हो किन्तु उस पर विभिन्न भागों में विभिन्न विधियां लागू होती हैं जिसका परिणाम यह है कि श्रमिक असंतुष्ट हैं। चीनी के उद्योग के सम्बन्ध में तो यह कहा ही जा सकता है। यह उद्योग संयुक्त प्रान्त, बिहार, मद्रास और बम्बई में किया जाता है किन्तु इन प्रदेशों में श्रमिक विभिन्न विधियों द्वारा शासित होते हैं। यही स्थिति पटसन के उद्योग तथा अन्य उद्योगों की भी है। इस कारण मैं यह चाहता हूं कि श्रम विधि सारे देश में एक समान हो।

मेरा दूसरा संशोधन औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिये संगठनों के एकीकरण के सम्बन्ध में है। इसमें कोई संन्देह नहीं कि सभी प्रान्तों में इसके लिये संगठन है किन्तु विभिन्न प्रान्तीय सरकारों के कार्यों के एकीकरण के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। इसके अतिरिक्त कोई ऐसा अपीलीय न्यायाधिकरण भी नहीं है जहां सब अपील कर सकते हैं। मैं इसे बहुत महत्व देता हूं और इसके सम्बन्ध में उपबन्ध होने चाहियें। मुझे ज्ञात हुआ है कि एक अपीलीय न्यायाधिकरण स्थापित करने के लिए केन्द्रीय सरकार एक विधेयक उपस्थित करने वाली है। मैं यह चाहता हूं कि यह शक्ति केन्द्र को प्रदान की जाये। प्रान्त एकीकरण नहीं कर सकते। इसलिये यह प्रविष्टि संघ-सूची में रखी जानी चाहिये।

मेरा अगला संशोधन इस प्रकार है:

"सूची 1 की प्रविष्टि 59-ख के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:-

'59-ग. बेकारी का बीमा।'"

इस समय यह विषय समवर्ती सूची में है। प्रान्त कभी भी इसे प्रयोग में नहीं ला सकेंगे। यदि आप इसे वास्तव में अस्तित्व में लाना चाहते हैं और इसे सारे भारत में समान रूप में रखना चाहते हैं तो आपको इस विषय को संघ-सूची में रखना चाहिये। सारे संसार में श्रम की दशा समान है इसलिये सारे भारत में श्रम की शर्तें एक समान होनी चाहियें। यदि उदाहरणर्थ बम्बई में एक मुष्ठ धन देने की प्रणाली अपनायी गई और अन्य स्थानों में उसे नहीं अपनाया गया तो इससे असंतोष तथा मनमुटाव उत्पन्न होगा। संयुक्तप्रान्त में चीन के कारखानों आदि में काम की शर्तों के सम्बन्ध में श्रम-विधियां हैं किन्तु अन्य प्रान्तों में इस प्रकार की विधियां नहीं हैं। इसके कारण उद्योगपतियों के बीच प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होती है जिससे श्रमिकों को हानि उठानी पड़ती है। यदि विधियों में एकरूपता आ जायेगी तो श्रमिक संतुष्ट हो जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं इनमें से किसी संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं इन संशोधनों पर मत लेने के लिये इन्हें सभा के सामने रखता हूं।

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 59 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59-A. Labour Legislation, and Legislation for settlement of Industrial disputes.'"

(59-क. श्रम-विधि तथा औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिये विधि।)

प्रस्ताव गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 59-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59-B. Co-ordination of machinery for settlement of industrial disputes in States and in the Union and the provision of Supreme Industrial Appellate Tribunals.'"

(59-ख. राज्यों में तथा संघ में औद्योगिक विवादों के निर्णय के लिये संगठनों का एकीकरण और उच्चतम औद्योगिक अपीलीय न्यायाधिकरण।)

प्रस्ताव गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 की प्रविष्ट 59-ख के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'59-C. Unemployment Insurance.'" (59-ग. बेकारी का बीमा।)

प्रस्ताव गिर गया।

***अध्यक्ष:** इसके अतिरिक्त श्री राजबहादुर कई अन्य विषयों को भी रखना चाहते हैं।

***श्री राजबहादुर** (संयुक्त राज्य, मत्स्य): श्रीमान्, संशोधन संख्या 267 में जो विषय दिये गये हैं उनमें से केवल एक को मैं उपस्थित कर रहा हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 की प्रविष्टि 90 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'90-A. Control and eradication of beggary.'" (90-क. भिक्षा-भिक्षा-वृत्ति पर नियंत्रण तथा उसका निराकरण।)

श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इसे सभी स्वीकार करेंगे कि संसार का कोई देश भिक्षा-वृत्ति के अभिशाप से उतना ग्रस्त नहीं है जितना कि भारत है। वास्तव में अधिकांश देशों में भिक्षा-वृत्ति को विधि द्वारा निषिद्ध किया गया है। किन्तु हमारे देश के सुनाम पर यह कलंक लगा ही हुआ है। उपरोक्त प्रविष्टि की स्वीकृति पर जोर देकर मैं भावी संसदों का ध्यान इस अभिशाप की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं ताकि चाहे जो भी दल पदारूढ़ रहें, सरकार इस अभिशाप को दूर करने के लिये कदम उठाये।

हमें यह ज्ञात है कि भिक्षा-वृत्ति के प्रश्न का गरीबी और बेकारी के प्रश्नों से निकट सम्बन्ध है। हम यह जानते हैं कि हमारे देश के अभी तक पराधीन होने के कारण तथा विदेशी शासकों की लोगों के कल्याण तथा उनकी उन्नति के प्रति निर्दय उपेक्षा के कारण इस देश के जनसाधारण का शोषण होता रहा और वे अत्यन्त दरिद्र हो गये।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार की मानसिक स्थिति के कारण भी हमारे देश में भिक्षा-वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता रहा है। परोपकार के सम्बन्ध में हमारी कुछ भावनाएं हैं। वे प्रशंसनीय हैं किन्तु प्रायः उनका दुरुपयोग ही होता है। अधिकांश लोगों को न तो परोपकार का यथोचित ज्ञान होता है और न वे यथोचित पात्रों के लिये परोपकार करते हैं। हम उसकी चिंता नहीं करते कि सुपात्रों को ही हमारे परोपकार का फल प्राप्त हो। हम कुपात्रों को दान देते हैं और इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति को प्रोत्साहित करते हैं। हम विकृत विचारों तथा भावनाओं से प्रेरित होकर ही दान देते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश के जलवायु के कारण भी हमारे देशवासी आलसी हो जाते हैं। इस कारण भी इस देश में भिखारियों की संख्या बहुत बढ़ गई है। कुछ लोग तो इसलिये भिखारी हो जाते हैं कि आलस्य के कारण वे काम कर ही नहीं सकते। वे ईमानदारी से काम करके आजीविका नहीं कमाते बल्कि भीख मांग कर अपना पेट भरते हैं। वे दान पर ही निर्भर रहते हैं और कोई काम नहीं करते। वे समाज के लिये भार हैं। इस प्रकार के आलस्य को बढ़ाने में निरक्षरता का भी योग रहता है।

इस प्रकार यह एक बहुमुखी प्रश्न है। इसे स्थानीय अथवा नगरपालिका के आधार पर हल नहीं करना चाहिये बल्कि राष्ट्रीय आधार पर हल करना चाहिये। इस कारण इस संशोधन द्वारा मैंने संघ-सूची में भिक्षा-वृत्ति पर नियंत्रण तथा उसके निराकरण के विषय को प्रविष्ट करने का प्रयास किया है। अब इसके लिये समय आ गया है कि हम अपने देश के सुनाम पर लगे हुये इस कलंक को मिटा दें। मेरा यह निवेदन है कि इस प्रश्न को वैज्ञानिक आधार पर तथा सुव्यवस्थित रूप से हल करने की बहुत आवश्यकता है। आज हमें अपने देश के नगरों तथा ग्रामों में, बाजारों तथा गलियों में, पगडंडियों में और बसों के अड्डों में तथा सिनेमा-घरों के सामने इन हाथ फैलाये हुये अभागों की भीड़ की भीड़ मिलती है। हमें यह समझना चाहिये कि यह प्रश्न कितना गम्भीर है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मैं अपने अन्य संशोधनों को नहीं उपस्थित करूंगा क्योंकि मसौदा-समिति के माननीय सभापति महोदय अन्य सदस्यों द्वारा नवीन प्रविष्टियों के सम्बन्ध में उपस्थित संशोधनों के बारे में उत्तर तक नहीं दे रहे हैं और इससे मैं थोड़ा बहुत निरुत्साहित हो गया हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** आपने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका वे अध्ययन कर रहे हैं।

***श्री राजबहादुर:** यदि मेरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में मुझे उत्तर मिल गया तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, चूंकि मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि उत्तर दूं इसलिये मैं एक दो शब्द कहूंगा।

भिक्षा-वृत्ति पर नियंत्रण तथा उसके निराकरण के सम्बन्ध में सूची 3 की प्रविष्टि 24 में उपबन्ध रख दिये गये हैं। वह "आहिंडन" के सम्बन्ध में है, जिसमें भिक्षा-वृत्ति सम्मिलित है। प्रश्न यह है कि क्या उसे उसी स्थल पर रहने दिया जाय अथवा सूची 1 में सम्मिलित कर लिया जाये। मेरे विचार से अच्छा यही होगा कि उसे सूची 3 ही में रहने दिया जाये ताकि प्रान्त और केन्द्र दोनों उस प्रविष्टि के सम्बन्ध में कार्यवाही कर सकें।

***श्री राजबहादुर:** आहिंडन और भिक्षा-वृत्ति भिन्न शब्द हैं। आहिंडन से बहुत कुछ दूषित चरित्र का बोध होता है किन्तु सभी भिखारी दूषित चरित्र वाले नहीं भी हो सकते हैं। आहिंडन में भिक्षा-वृत्ति सन्निहित हो सकती है किन्तु यह हो सकता है कि कुछ भिखारी आहिंडन न भी करें।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री राजबहादुर के संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री राजबहादुर:** यदि मसौदा-समिति के माननीय सभापति महोदय का यह विचार है कि आहिंडन में भिक्षा-वृत्ति सम्मिलित है तो मैं अपना संशोधन वापस लेने के लिये तैयार हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्ष:** डॉ. देशमुख ने एक और प्रविष्टि प्रस्तावित की है। संशोधन संख्या 235।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं उसे नहीं उपस्थित करना चाहता।

***अध्यक्ष:** एक प्रविष्टि और है, जिसे पंडित ठाकुरदास भार्गव ने छोड़ दिया था। संशोधन संख्या 192।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैं उसे इस अवसर पर नहीं उपस्थित करना चाहता। मैं बाद में यह प्रस्ताव उपस्थित करूंगा कि इस संशोधन के विषय को समवर्ती सूची में स्थान दिया जाये।

सूची 2 (राज्य-सूची)

***अध्यक्ष:** अब हम सूची 2 की प्रविष्टि 1 को उठाते हैं। मुझे इस आशय के एक संशोधन की सूचना मिली है कि 1 से 66 तक की प्रविष्टियां इस सूची से निकाल कर सूची 3 में रख दी जायें। यह संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम से है। मेरे विचार से इसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यह मान लिया जाये कि उसे उपस्थित कर दिया गया है।

***अध्यक्षः** जी हां, यह भी मान लिया जाये कि वह वापस ले लिया गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, यह बाद को होगा।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से उसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम से एक और संशोधन है जिसका आशय यह है कि सूची 2 की प्रविष्टि 1 को सूची 1 में प्रविष्टि 2-क के रूप में रखा जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** क्या मुझे उस प्रविष्टि को उपस्थित करने की आज्ञा है?

***अध्यक्षः** जी हां, आप उसे उपस्थित कर सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 को सूची 1 में प्रविष्टि 2-क के रूप में रखा जाये।"

श्रीमान्, यह प्रविष्टि सार्वजनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मुझे यह औचित्य प्रश्न करना है। हम पूरी सूची को पारित कर चुके हैं। यदि सूची 1 में किसी प्रविष्टि को रखना था तो उसे पहले उपस्थित करना था। अभी तक श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने नहीं कहा कि वे इस प्रविष्टि को उस सूची में रखना चाहते हैं। चूंकि हम सूची 1 को पारित कर चुके हैं और उसकी समाचार-पत्रों के विषय में केवल एक प्रविष्टि रह गई है इसलिये यह उचित नहीं है कि वे अब इस संशोधन को उपस्थित करें।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरा यह निवेदन है कि जब तक सूची 2 और सूची 3 को अंतिम रूप से पारित नहीं किया जाता तब तक हम किसी प्रविष्टि को एक सूची से निकाल कर दूसरी सूची में रख सकते हैं। श्रीमान्, यदि आपका निर्णय यह हो कि डॉ. देशमुख की आपत्ति तर्कसंगत है तो मैं अपनी जगह पर जाने के लिये तैयार हूं। किन्तु इसके पश्चात् सूची 1 में किसी भी नवीन प्रविष्टि को रखने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** किन्तु आपको उसे पहले किसी अवसर पर उपस्थित कर देना चाहिये था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं उसे उसी अवसर पर उपस्थित कर रहा हूं जो मैंने उसके लिये ठीक समझा है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उचित यही था कि माननीय सदस्य महोदय इस संशोधन को उस समय उपस्थित करते जब हम सूची 1 पर विचार कर रहे थे।

***अध्यक्षः** औचित्य प्रश्न का आशय यह है कि क्या अब सूची 1 में कोई नवीन प्रविष्टि रखी जा सकती है या नहीं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ हम सूची 1 को अंतिम रूप से पारित कर चुके हैं। अब हम प्रविष्टियों को केवल सूची 2 से निकाल कर सूची 3 में रख सकते हैं और सूची 1 में नहीं रख सकते।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि हम उन्हें इस संशोधन को उपस्थित करने दें।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, अभी तक प्रान्तों में सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिये संतोषजनक प्रशासन नहीं रहा है। सुयोग्य प्रशासन को बनाये रखने के लिये उन्हें पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं। आसाम के आय-व्ययक का 72 प्रतिशत धन वेतनों में खर्च हो जाता है। शेष 28 प्रतिशत विभिन्न विषयों के लिये रह जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब प्रशासन की पुरानी योग्यता नहीं रह गई है। कई राज्य और प्रान्त विदेशी राज्यों की सीमाओं पर भी स्थित हैं। क्या सभा की सम्मति यह है कि सार्वजनिक व्यवस्था के प्रश्न को प्रान्तीय सरकारों पर ही छोड़ने से कोई खतरा नहीं है और बुद्धिमत्ता इसी में है? आसाम और पूर्वी पंजाब के राज्यों में सार्वजनिक व्यवस्था.......

*__श्री बी.एल. सौंधी__ (पूर्वी पंजाब : जनरल) : पूर्वी पंजाब में कौन सी दुर्व्यवस्था है?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ पूर्वी पंजाब में कोई दुर्व्यवस्था नहीं है। मैं केवल यह कहना चाहता था कि ये राज्य विदेशी राज्यों की सीमाओं पर स्थित हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इन राज्यों में सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हो। इन राज्यों के साधन सीमित होने के कारण ये राज्य सार्वजनिक व्यवस्था को सुरक्षित नहीं रख सकेंगे।

*__एक माननीय सदस्य:__ उन्हें सशक्त बनाइये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब के प्रान्त विभाजित प्रान्त हैं। उनको विस्थापित लोगों को सहायता देने तथा उनके पुनर्वास का प्रश्न तथा लोगों के प्रव्रजन का प्रश्न हल करना है और उनकी सेवाओं में विधि-विरोधी लोग भी प्रविष्ट हो गये हैं। मैं यह नहीं कहता कि अन्य प्रान्तों की सेवाएं सुरक्षित हैं। अन्य प्रान्तों की सेवाओं में भी विधि-विरोधी लोग प्रविष्ट हो गये हैं किन्तु इन प्रान्तों की सेवाओं में ये लोग अधिक संख्या में प्रविष्ट हुए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि प्रान्तीय प्रशासन की योग्यता तथा सत्य-निष्ठा गिर गई है। पश्चिमी बंगाल के मेरे मित्र इसका समर्थन करेंगे। श्रीमान्, अन्य प्रान्तों में भी अपराध में वृद्धि हो गई है। विधि और व्यवस्था का संगठन बहुत अशक्त हो गया है। कई प्रान्तों में विधि-शून्यता का ही बोलबाला है। प्रान्तीय मंत्रियों की शक्ति के पीछे दौड़ने के कारण और जातीयता की भावनाओं के उदय होने के कारण सभ्य प्रशासन की कहीं छाया तक दिखाई नहीं देती। इसलिये मेरे यह धारणा है कि सार्वजनिक व्यवस्था का विषय एक केन्द्रीय विषय होना चाहिये। बाहर से तथा अन्दर से भी खतरा है और संकटकाल में हम प्रान्तीय प्रशासनों की वफादारी का भरोसा नहीं कर सकते। इतिहास के आरम्भ से ही विकेन्द्रीकरण की शक्तियां हमारे राजनैतिक जीवन के लिये अभिशाप स्वरूप रही हैं। इसलिये श्रीमान्, मेरा यह अनुरोध है कि सार्वजनिक व्यवस्था के विषय को केन्द्रीय विषय बनाया जाये।

*__अध्यक्ष:__ डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं कुछ नहीं कहना चाहता।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं अपने संशोधन को वापस लेता हूं।

*__अध्यक्ष:__ यह दिखाई देता है कि सभा इस संशोधन को वापस लेने की आज्ञा नहीं देना चाहती। मैं उस पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 को सूची 1 में प्रविष्टि 2-क के रूप में रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ एक संशोधन डॉ. अम्बेडकर के नाम से है। संशोधन संख्या 63।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:

'preventive detention for reasons connected with the maintenance of public order; persons subjected to such detention.'"

(सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिये निवारक-निरोध, ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।)

प्रस्ताव यह है कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में रखा जाये। इसी कारण मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि इन शब्दों को निकाल दिया जाये।

*__सरदार हुकम सिंह:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 में 'naval, military or air forces (नौ, स्थल अथवा विमानबलों)' शब्दों के पश्चात् 'or any other armed forces of the union (अथवा संघ के कोई अन्य सशस्त्र बलों)' शब्दों को रखा जाये।"

मेरे विचार से मसौदा-समिति इन शब्दों को रखना भूल गई है। इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। यदि मुझसे यह कह दिया जाये कि इन शब्दों को जानबूझ कर नहीं रखा गया है तो....

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

*__सरदार हुकम सिंहः__ तब मुझे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 में 'naval, military or air forces (नौ, स्थल अथवा विमान बलों)' शब्दों के पश्चात् 'or any other armed forces of the Union (अथवा संघ के कोई अन्य सशस्त्र बलों)' शब्दों को रखा जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"सूची 2 की प्रविष्टि 1 से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:

'preventive detention for reasons connected with the maintenance of public order, persons subjected to such detention.'"

(सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिये निवारक-निरोध, ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 1, संशोधित रूप में सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 1, संशोधित रूप में, राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 2

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 2 की प्रविष्टि 2 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'2. The administration of justice, constitution and organisation of all courts except the Supreme Court and the High Courts; fees taken in all courts except the Supreme Court.'"

(2. न्याय-प्रशासन, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का गठन और संगठन, उच्चतम न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों में ली जाने वाली फीसें।)

केवल यह परिवर्तन किया गया है कि उच्च-न्यायालयों का भी उल्लेख किया गया है क्योंकि जैसाकि मैं कल स्पष्ट कर चुका हूं, उच्च न्यायालयों का गठन तथा संगठन भी पूर्णतया केन्द्र के नियंत्रण में है।

***अध्यक्षः** इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 236 भी है। मेरे विचार से अब इसकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस सम्बन्ध में उच्च-न्यायालयों को सम्मिलित करके प्रथम सूची में हम एक प्रविष्टि रख चुके हैं। संशोधन का उद्देश्य यह है कि 'उच्च-न्यायालय' शब्दों को निकाल दिया जाये। इसलिये यह अनियमित है। अब संशोधन संख्या 237 आता है जो डॉ. पी.एस. देशमुख के नाम से है। वह भी इसी संशोधन के समान है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***सरदार हुकम सिंहः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 64 में सूची 2 की प्रस्तावित प्रविष्टि 2 में 'and the High Courts (और उच्च-न्यायालय)' शब्दों के पश्चात् 'and persons entitled to practise before the Supreme Court or any High Court (और उच्चतम-न्यायालय अथवा किसी उच्च-न्यायालय के सामने विधि-व्यवसाय करने का हक रखने वाले व्यक्ति)' शब्द रखे जायें।"

मेरे इस संशोधन का उद्देश्य वही है जो मेरे पहले संशोधन का था जिसे मैं उपस्थित कर चुका हूं।

***अध्यक्षः** कल सूची 1 की किसी प्रविष्टि के सम्बन्ध में इसके आशय को स्वीकार किया जा चुका है। इसलिये यह प्रस्ताव नहीं उपस्थित किया जा सकता। हम सूची 1 में इस आशय की एक प्रविष्टि रख चुके हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उनका उद्देश्य इन शब्दों का स्पष्ट रूप से अपवर्जन करना है।

***सरदार हुकम सिंहः** आपने इन व्यक्तियों का उल्लेख सूची 1 में भी किया है। जब हमने उच्चतम-न्यायालय तथा उच्च-न्यायालय को अपवर्जित किया है तो उनके साथ हमें उनके सामने विधि-व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों को भी अपवर्जित कर देना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यह एक स्पष्ट प्रविष्टि है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कल की प्रविष्टि एक स्पष्ट प्रविष्टि थी। इसलिये इस संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

***श्री राजबहादुरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 64 में सूची 2 की प्रस्तावित प्रविष्टि 2 में 'Supreme Court (उच्चतम-न्यायालय)' शब्दों के पश्चात्, जहां वे

[श्री राजबहादुर]

दूसरी बार प्रयुक्त हैं, 'and the High Courts (और उच्च-न्यायालय)' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, जैसाकि माननीय डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, उच्च-न्यायालयों के संगठन तथा उन पर देख रेख तथा नियंत्रण रखने का विषय संघीय सूची में रखा गया है। उचित यही है कि सभी उच्च-न्यायालयों की फीसें एक समान हों। इसलिये इस नवीन प्रविष्टि में केवल उच्चतम न्यायालयों की फीसों का विषय ही नहीं बल्कि उच्च-न्यायालयों की फीसों का विषय भी नहीं रखना चाहिये।

*__श्री टी.टी. कृष्णामाचारी:__ वास्तव में स्थिति यह है प्रविष्टि 52 द्वारा उच्चतम-न्यायालय द्वारा ली जाने वाली फीसें स्पष्ट शब्दों में सूची 1 में उल्लिखित हैं। यदि हम श्री राजबहादुर के संशोधन को स्वीकार करेंगे तो उच्च-न्यायालयों की फीस लेने की शक्ति का कहीं भी उल्लेख न रह जायेगा।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 64 में सूची 2 की प्रस्तावित प्रविष्टि 2 में 'Supreme Court (उच्चतम-न्यायालय)' शब्दों के पश्चात्, जहां वे दूसरी बार प्रयुक्त हैं, 'and the High Courts (और उच्च-न्यायालय)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 2 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:-

(2. न्याय-प्रशासन, उच्चतम-न्यायालय और उच्च-न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों का गठन और संगठन; उच्चतम-न्यायालय को छोड़कर सब न्यायालयों में ली जाने वाली फीसें)'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 2, संशोधित रूप में, सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 2, संशोधित रूप में, राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 3

प्रविष्टि 3 सूची 2 का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 4

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं बिना कुछ कहे हुये, अर्थात् बिना भाषण दिये हुये, अपना संशोधन उपस्थित करता हूं। श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3589 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:–

'सूची 2 से प्रविष्टि 4 को निकाल कर उसे सूची 1 में रख दिया जाये।'"

श्रीमान्, यदि आज्ञा है तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रविष्टि को सूची 1 में न रख कर इसे सूची 3 में रखना चाहिये। इससे श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की आपत्ति दूर हो जायेगी। श्रीमान् 'आरक्षियों' के विषय को मैं बहुत महत्व देता हूं। मेरे विचार से इसे समवर्ती शक्तियों के साथ रखना चाहिये और इस प्रकार इस पर केन्द्र का भी अधिकार रखना चाहिये।

*__श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह पूछना चाहती हूं कि 'आरक्षियों' में गृह रक्षक तथा प्रान्तीय रक्षा दल भी सम्मिलित हैं या नहीं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह प्रान्तीय विधि पर निर्भर है। यदि आरक्षीअधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति का नाम सूची पर लिखा गया तो वह उसके उद्देश्यों के लिये आरक्षी समझा जायेगा अथवा यदि उसका नाम सूची में किसी अन्य अधिनियम के अधीन लिया गया हो और उसे आरक्षी की शक्तियां प्रदान की गई हों, तो इस दशा में भी उसे आरक्षी समझा जायेगा।

*__श्री महावीर त्यागी:__ क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या गृह-रक्षकों तथा प्रान्तीय रक्षा दल पर भारत-सरकार की अवशिष्ट शक्तियों के अधीन नियंत्रण रखा जायेगा अथवा स्थानीय सरकार ही उन पर नियंत्रण रखेगी? उन पर किसका नियंत्रण होगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यदि वे आरक्षी नहीं हैं तो वे केन्द्रीय सरकार के अधीन रहेंगे। "आरक्षी-दल", "सेना" का विपर्यय है। "सेना" के अधीन जो कुछ नहीं आता वह "आरक्षी-दल" के अधीन आता है।

*__श्री महावीर त्यागी:__ आपके इस निर्णय का उद्धरण चिह्नों के साथ उल्लेख किया जाये।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ यदि डॉ. अम्बेडकर का निर्वचन ठीक है तो कोई भी प्रान्त सेना संगठित कर सकता है और बिना उसे सेना कहे हुये ही कर सकता है।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः जी नहीं, मेरे विचार से प्रान्त ऐसा नहीं कर सकते।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इस समय हो यही रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** सेना भारतीय अधिनियम के अधीन संगठित की जाती है और उस अधिनियम के अधीन उसे संगठित करने के बारे में कठोर शर्तें हैं। किसी प्रान्त को इस प्रविष्टि के सम्बन्ध में विधि बनाने का अधिकार नहीं है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** प्रान्त सेना संगठित करने के सम्बन्ध में तो विधि नहीं बनायेंगे किन्तु किसी बल को वे बिना सेना के नाम लिये हुए ही सैनिक प्रशिक्षा दे सकते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता हूं कि प्रान्तों में विशेष सशस्त्र आरक्षी हैं। आरक्षी अधिनियम के अधीन दी हुई शक्ति से उनकी भर्ती होती है। भले ही वह दल अर्ध-सैनिक आधार पर संगठित किया जाता हो किन्तु कहा जाता है वह आरक्षी दल ही।

***श्री महावीर त्यागीः** "गृह-रक्षक" शब्द रख कर आप इसे स्पष्ट क्यों नहीं कर देते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** सशस्त्र आरक्षी हैं और अशस्त्र आरक्षी भी हैं।

***अध्यक्षः** पंडित कुंजरू ने यह प्रश्न पूछा है कि क्या कोई प्रान्त सेना को सेना न कह कर बल्कि आरक्षी दल कह कर संगठित कर सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे विश्वास है कि यदि कोई प्रान्त संविधान से बच कर धोखेबाजी करना चाहेगा तो केन्द्र उस धोखेबाजी को रोकने के लिये अपने को काफी सशक्त पायेगा।

***अध्यक्षः** मैं अब श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर मत लूंगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मुझे उसे वापस लेने की अनुमति प्रदान की जाये।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 4 सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 4 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 5

प्रविष्टि 5 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 5-क

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 3590 उपस्थित नहीं किया गया है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ संशोधन उपस्थित न होने पर भी आप यह स्वतन्त्रता देते आये हैं। मैं कई संशोधनों पर संशोधन उपस्थित कर चुका हूं।

*__अध्यक्षः__ संशोधन की शब्दावली को ठीक नहीं पढ़ा जा सकता। "भारत सरकार के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के अधीन।"

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान्, यदि आप अनुमति दें तो उसे मैं ठीक किये देता हूं।

"प्रान्तीय सेना, भारत सरकार के अधीक्षण, निदेशन तथा नियंत्रण के अधीन।"

यही मेरा संशोधन है। विशेषतया संयुक्तप्रान्त में इस प्रकार के बहुत कार्य हो रहे हैं। इनसे संविधान के आशय का खण्डन होता है। मुझे भय है कि इस प्रकार के कार्य इतने अधिक किये जाने लगेंगे कि....

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से यह ठीक नहीं है। इस अतिरिक्त प्रविष्टि को श्री सन्तानम् उपस्थित करना चाहते थे किन्तु उन्होंने उसे नहीं उपस्थित किया। उससे एक नया ही प्रश्न उठ खड़ा होता है। यदि उसके सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित किया गया तो उससे भी नया प्रश्न उठेगा। आपके संशोधन का प्रभाव यह होगा कि एक नई प्रविष्टि को स्थान देना पड़ेगा।

प्रविष्टि 6

*__अध्यक्षः__ अब हम प्रविष्टि 6 को उठाते हैं। इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 6 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 7

प्रविष्टि 7 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 7-क

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 7 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'7-A. State pensions, that is to say, pensions payable by the State or out of the Consolidated Fund of the State.'"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(7-क राज्य-निवृत्ति-वेतन अर्थात् राज्य द्वारा अथवा राज्य की संचित निधि में से देय निवृत्ति-वेतन।)

यह प्रविष्टि उस प्रविष्टि की तत्स्थानी प्रविष्टि है जिसे हम सूची 1 में रख आये हैं।

(संशोधन संख्या 238 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 7 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'7-A. State pensions, that is to say, pensions payable by the State or out of the Consolidated Fund of the State.'"

(7-क राज्य-निवृत्ति-वेतन अर्थात् राज्य द्वारा अथवा राज्य की संचित निधि में से देय निवृत्ति-वेतन।)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 7-क राज्य सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 8

प्रविष्टि 8 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 9

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 9 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'9. Acquisition or requisitioning of property except for the purposes of the Union subject to the provisions of entry 35 of List III.'"

(9. सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये संघ के प्रयोजनों के अतिरिक्त सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।)

केवल यह परिवर्तन किया गया है कि रेखांकित शब्दों को अब समवर्ती सूची में रख दिया गया है। इसलिये यह आवश्यक है कि उन्हें इस सूची से निकाल दिया जाये। सूची 1 की इसी के समान एक प्रविष्टि के सम्बन्ध में भी हमने यही किया है।

(संशोधन संख्या 239 उपस्थित नहीं किया गया।)

***श्री राजबहादुरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 69 में प्रस्तावित सूची 2 की प्रविष्टि 9 से 'subject to the provisions of entry 35 of List III.' (सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के आधीन रहते हुये)' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

मैंने इस संशोधन को इस कारण उपस्थित किया है कि यह प्रविष्टि संघ-सूची की प्रविष्टि 43 की तत्स्थानी प्रविष्टि है। मसौदा-समिति द्वारा उपस्थित संशोधन संख्या 21 के स्वीकृत होने के पश्चात् वह अब इस प्रकार हो गई है:

"संघ के प्रयोजनों के लिये सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।" इस प्रविष्टि में "सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये" शब्दों का उल्लेख नहीं है। मेरे विचार से संघ द्वारा अधिगृहीत सम्पत्ति तथा राज्यों द्वारा अधिगृहीत सम्पत्ति के विषय में इन दो प्रविष्टियों की शब्दावलियों में भेद करने की आवश्यकता नहीं है। "सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये" शब्दों को या तो दोनों प्रविष्टियों में रखा जाये या किसी प्रविष्टि में न रखा जाये। सुसंगित तथा सिद्धान्तों की एकरूपता की दृष्टि से इन शब्दों को इस प्रविष्टि से निकाल देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त जब तक इस अनुच्छेद 24 के सम्बन्ध में निर्णय नहीं करते तब तक हमें लोक-हित के लिये संघ द्वारा अथवा राज्यों द्वारा अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर देने के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं मसौदा-समिति से तथा सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरे संशोधन पर विचार किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह संशोधन उपयुक्त नहीं है और मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।

***श्री राजबहादुरः** क्या मैं जान सकता हूं कि यह किस प्रकार उपयुक्त नहीं है?

***अध्यक्षः** क्या आप इस संशोधन को वापस ले रहे हैं?

***श्री राजबहादुरः** चूंकि मुझे यह नहीं बताया गया है कि यह किस कारण अनुपयुक्त है इसलिये मैं इसे वापस नहीं लेता।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 69 में प्रस्तावित सूची 2 की प्रविष्टि 9 से 'Subject to the provisions of entry 35 of list III. (सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये)' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 9 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'9. Acquisition or requisitioning of property except for the purposes of the Union subject to the provisions of entry 35 of List III.'"

(9. सूची 3 की प्रविष्टि 35 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये संघ के प्रयोजनों के अतिरिक्त सम्पत्ति का अर्जन या अधिग्रहण।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 9 संशोधित रूप में सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 9, संशोधित रूप में, राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 10

प्रविष्टि 10 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 10-क

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 10 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'10-A. Ancient and Historical Monuments other than those specified in entry 60 of List-I.'"

(10-क. सूची 1 की प्रविष्टि 60 में अनुल्लिखित प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारक)

हमने इस प्रविष्टि को विभाजित कर दिया है। इसके एक भाग को सूची 1 में रख दिया है और दूसरे भाग को सूची 2 में रख दिया है।

*__अध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 10-क सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 10-क राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 11

*__अध्यक्षः__ प्रविष्टि संख्या 11।

*__श्री राजबहादुरः__ मैं अपने संशोधन को नहीं उपस्थित करना चाहता।

प्रविष्टि 11 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 12

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 2 की प्रविष्टि 12 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टियां रखी जायें:-

'12. The salaries and allowances of Ministers for the State, of the Speaker and Deputy Speaker of the Legislative Assembly, and if there is a Legislative Council, of the Chairman and Deputy Chairman thereof; the salaries and allowances of the members of the Legislature of the state.'

'12-A. The privileges, immunities and powers of the Legislative Assembly and of the members and the Committees thereof, and if there is a Legislative Council, of that Council and of the members and the Committees thereof.'"

(12. राज्य के मंत्रियों के, विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के तथा, यदि विधान-परिषद् है तो, उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते, राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के वेतन और भत्ते।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

12-क. विधान-सभा और उसके सदस्यों और समितियों की तथा, यदि विधान-परिषद् हो तो, उस परिषद् और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।)

सूची 1 में केन्द्र के सम्बन्ध में जो प्रविष्टियां रखी गई हैं उन्हीं के अनुरूप ये प्रविष्टियां भी हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं अपना संशोधन नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 12 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टियां रखी जायें:–

'12. The salaries and allowances of Ministers for the State, of the Speaker and Deputy Speaker of the Legislative Assembly, and if there is a Legislative Council, of the Chairman and Deputy Chairman thereof; the salaries and allowances of the members of the Legislature of the State.

'12-A. The privileges, immunities, and powers of the Legislative Assembly and of the members and the Committees thereof, and if there is a Legislative Council, of that Council and of the members and the Committees thereof.'"

(12. राज्य के मंत्रियों के, विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के तथा, यदि विधान-परिषद् है तो, उसके सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते; राज्य के विधान-मंडल के सदस्यों के वेतन और भत्ते।

12-क. विधान-सभा और उसके सदस्यों और समितियों की तथा, यदि विधान-परिषद् हो तो उस परिषद् और उसके सदस्यों और समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टियां 12 और 12-क राज्य-सूची के अंग बना ली गईं।

प्रविष्टि 13

***अध्यक्ष:** प्रविष्टि 13।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अपना संशोधन नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

प्रविष्टि 13 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 14

*__अध्यक्षः__ प्रविष्टि 14।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं अपने संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ अध्यक्ष महोदय, कभी संशोधनों को उपस्थित करने में वास्तव में बहुत संकोच का अनुभव होता है। मैंने छपी हुई सूची के एक संशोधन के सम्बन्ध में इस संशोधन की सूचना दी थी। उस संशोधन को उपस्थित नहीं किया गया है और अब उसके प्रस्तावक महोदय कहते हैं कि मैं अपने संशोधन को उपस्थित नहीं कर सकता।

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से इसमें कुछ सार है।

*__श्री महावीर त्यागीः__ नैतिक दृष्टि से यह दिखाई देता है कि उन्होंने मुझे धोखा दिया है।

*__अध्यक्षः__ आपको उन पर निर्भर न रहना चाहिये था। आपको एक पृथक् संशोधन उपस्थित करना चाहिये था।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ जब मैंने अपने संशोधन की सूचना दी थी तब से कुछ परिवर्तन हो गये हैं। इस कारण मैं अपने संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मेरे विचार से सूचना देने के नियम के अधीन सदस्यों को यह सूचना दी जाती है कि किस विषय पर विचार किया जायेगा। इसके सम्बन्ध में यह कार्य सम्पन्न हो चुका है और इसलिये मेरा यह निवेदन है कि आप कृपया इसे एक अलग संशोधन समझें और मुझे उसे उपस्थित करने की आज्ञा दें।

*__अध्यक्षः__ आपका संशोधन प्रविष्टि 14 से बहुत भिन्न है। प्रविष्टि 14 में यह निर्धारित है:–

"स्थानीय शासन अर्थात् नगर-निगम, सुधार-प्रन्यास, जिला-मंडलों, खनिज-वसिति प्राधिकारियों तथा स्थानीय स्वशासन या ग्राम्य प्रशासन के प्रयोजन के लिये अन्य स्थानीय प्राधिकारियों का गठन और शक्तियां।"

आपका संशोधन "ग्रहों और भाटकों के विनियमन तथा नियंत्रण" के सम्बन्ध में है। इन दोनों में भेद है।

*__श्री महावीर त्यागीः__ छपी हुई सूची में यह संशोधन इस प्रकार है:–

"कटक क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन, ऐसे क्षेत्रों में गृह-वासन का विनियमन और ऐसे क्षेत्रों का परिसीमन।"

इस प्रकार जिस संशोधन को मैं संशोधित करना चाहता था उसके सम्बन्ध में मेरा संशोधन प्रासंगिक ही था।

***अध्यक्षः** हमने नियंत्रण लगाने के सम्बन्ध में यह प्रविष्टि रखी है।

***श्री महावीर त्यागीः** वह सूची 1 की प्रविष्टि थी जो कटकों के सम्बन्ध में थी। अब हमारे सामने सूची 2 है। चूंकि यह एक महत्वपूर्ण विषय है इसलिये आप कृपया इसकी आज्ञा दीजिये कि इसे एक नवीन प्रविष्टि के रूप में रखा जाये।

***श्री आर.के. सिधवाः** उनका उद्देश्य यह है कि पुरानी प्रविष्टि के स्थान पर "गृहों और भाटकों के विनियमन तथा नियंत्रण" के सम्बन्ध में एक प्रविष्टि रखी जाये। मैं यह पूछता हूं कि विनियमन कौन करेगा? मेरे संशोधन का उद्देश्य बिल्कुल भिन्न था।

***अध्यक्षः** यह दो बिल्कुल भिन्न बातें हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, छपी हुई सूची के संशोधन में प्रस्तावित प्रविष्टि के स्थान पर मैं अपने संशोधन में प्रस्तावित प्रविष्टि को रखना चाहता था। मेरे संशोधन के स्वीकृत होने पर वह प्रविष्टि इस प्रकार होगीः—

"गृहों और भाटकों का विनियमन तथा नियंत्रण।"

***अध्यक्षः** इन दोनों में भेद है।

***श्री महावीर त्यागीः** इस दशा में मेरी आप से प्रार्थना है कि मुझे एक पृथक् प्रविष्टि का प्रस्ताव उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये। कोई सदस्य यह आपत्ति नहीं कर सकता है कि उसकी सूचना नहीं दी गई थी। यदि सभा उसे स्वीकार करे तो उसे एक नवीन प्रविष्टि के रूप में अर्थात् प्रविष्टि 14 के रूप में या सूची के अन्त में रखा जा सकता है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** आप किसी ऐसी बात को संशोधित नहीं कर सकते जिसका अस्तित्व ही नहीं है।

***अध्यक्षः** मैं उसे प्रविष्टि 14 के संशोधन के रूप में उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दे सकता। प्रविष्टि 14 को निबटाने के पश्चात् हम इस पर विचार करेंगे कि इसे उठाया जाये या नहीं उठाया जाये।

प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 14 सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 14 राज्य-सूची का अंग बना ली गई।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है कि क्या "गृहों और भाटकों के विनियमन तथा नियंत्रण" के सम्बन्ध में हम एक अलग प्रविष्टि रखें या नहीं। श्री त्यागी आप उसे एक पृथक् प्रविष्टि के रूप में उपस्थित करें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ जी हां, वह एक पृथक् प्रविष्टि के रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैं आपका तथा डॉ. अम्बेडकर का भी आभारी हूं। उन्होंने मेरे प्रति प्रथम बार उदारता दिखाई है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि जिस सूची को मसौदा-समिति ने उपस्थित किया हो उसके सम्बन्ध में संशोधन उपस्थित करने में वास्तव में बहुत संकोच होता है क्योंकि मसौदा-समिति हमेशा ही साधन सम्पन्न रहती है और उससे संघर्ष करना बहुत कठिन होता है।

*__अध्यक्षः__ किन्तु आप तो एक नवीन प्रविष्टि को उपस्थित कर रहे हैं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ जी हां, श्रीमान्। किन्तु मसौदा-समिति की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। वास्तव में वही प्रस्तावों को स्वीकार करती है। जब वह उन्हें स्वीकार करती है तो सभा भी उन्हें स्वीकार कर लेती है।

सभा केन्द्र को अवशिष्ट शक्तियां प्रदान करने के सम्बन्ध में एक प्रविष्टि को स्वीकार कर चुकी है। किन्तु सूची 2 अथवा सूची 3 में इसका उल्लेख नहीं किया गया है। मेरा यह निवेदन है कि आजकल नगरों में गृहों तथा गृहों के भाटकों पर नियंत्रण रखने का बहुत महत्व है। 1935 के भारत शासन अधिनियम की मूल-सूची में इस विषय का उल्लेख नहीं था क्योंकि उस समय गृहों तथा गृहों के भाटकों पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता नहीं थी और न भारत में इस प्रथा का चलन ही था क्योंकि....

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं माननीय सदस्य महोदय के तर्क को समझ गया हूं और मैं कुछ ही क्षणों में उन्हें उत्तर दे दूंगा।

*__श्री महावीर त्यागीः__ जी हां, इसलिये मेरा केवल यह निवेदन है कि गृहों तथा भाटकों पर नियंत्रण रखने के विषय को भी रखना चाहिये। मैं यहां तक कहने के लिये तैयार हूं कि खाद्यान्न पर नियंत्रण रखने के विषय को भी प्रविष्ट करना चाहिये। यदि सभा इसके लिये सहमत हो तो इसे किसी स्थल पर एक पृथक् विषय के रूप में रखा जा सकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रसंग में तीन पृथक् प्रश्न उठते हैं यद्यपि श्री त्यागी ने उनकी चर्चा नहीं की है।

पहला प्रश्न यह है कि गृहों और गृह भाटकों का विनियमन तथा नियंत्रण करने की शक्ति प्रान्तीय विधान-मंडलों को प्राप्त होनी चाहिये या नहीं। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता कि प्रान्तीय सरकारों को यह शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इसलिये प्रश्न यह उठता है कि संविधान के मसौदे में और उसकी सूची में गृहों तथा गृह-भाटकों के विनियमन तथा नियंत्रण के सम्बन्ध में प्रान्तीय विधान-मंडलों को शक्ति प्रदान करने के बारे में उपबन्ध होने चाहिये या नहीं। मेरा यह निवेदन है कि श्री त्यागी ने जिस पृथक् प्रविष्टि का प्रस्ताव

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

रखा है उसकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि इस सम्बन्ध में दो प्रविष्टियां हैं। सूची 2 की प्रविष्टि 24 "भूमि, भूमि में या पर अधिकार, भूधृति जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और किसानों का सम्बन्ध भी है तथा भाटक का संग्रहण आदि" के सम्बन्ध में है। एक प्रविष्टि यह है। इसके अतिरिक्त "कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्तियों को हस्तान्तरण; विलेखों और दस्तावेजों के पंजीयन" के सम्बन्ध में सूची 3 की प्रविष्टि 8 है। यह देखा गया है कि इन प्रविष्टियों के अधीन प्रान्तीय सरकारों को गृहों और भाटकों का विनियमन तथा नियंत्रण करने के लिये विधि बनाने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो जाती है। मेरे मित्र श्री त्यागी को भी यह विदित है कि यद्यपि भारत शासन अधिनियम की सूची 2 में इस प्रकार की प्रविष्टि नहीं है किन्तु आज भी इस सम्बन्ध में प्रान्तों ने विधियां बनाई हैं। इस प्रकार भूमि विषयक प्रविष्टि 24 तथा सम्पत्ति हस्तान्तरण-विषयक अन्य प्रविष्टि 8 के उपबन्ध उन्हें वह शक्ति प्रदान करने के लिये पर्याप्त हैं जिसे श्री त्यागी उन्हें देना चाहते हैं।

श्री त्यागी के संशोधन को स्वीकार करने में एक कठिनाई और है और वह यह है। यदि इस समय हम इस प्रविष्टि को रख देते हैं तो इससे प्रान्त गृहों के विनियमन तथा भाटकों के नियंत्रण के सम्बन्ध में जो विधियां बना चुके हैं वे बहुत कुछ संदिग्ध हो जायेंगी। इससे लोग यह समझेंगे कि विधान-मंडल ने यह स्वयं अनुभव किया कि पहले जिस रूप में यह प्रविष्टि थी उससे विधान मंडल को इस उद्देश्य से विधि बनाने की पूर्ण शक्ति नहीं प्राप्त होती थी और इसी कारण एक पृथक् प्रविष्टि द्वारा इस शक्ति को प्रदान करना आवश्यक समझा गया। जो विधियां बन चुकी हैं उनके सम्बन्ध में हम बिना किसी आवश्यकता के संदेह उत्पन्न करेंगे। यह संशोधन इस कारण भी नहीं स्वीकार किया जा सकता। जैसाकि मैं कह चुका हूं इसकी इस कारण आवश्यकता नहीं है कि प्रान्तों को इस प्रकार की विधियां बनाने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त जो विधियां बनाई जा चुकी हैं उनके वैध होने का प्रश्न भी है।

अब मैं तीसरे भाग को उठाता हूं। जब मैं कटकों के प्रश्न पर विचार कर रहा था तो मेरे मित्र श्री त्यागी ने इसके लिये थोड़ा बहुत प्रयास किया था कि कटकों से अपने क्षेत्रों में गृहों और भाटकों का विनियमन करने की शक्ति ले ली जाय। यदि मेरे मित्र का उद्देश्य यह है कि इस प्रविष्टि को स्वीकार कराने से प्रान्त उस शक्ति का निराकरण कर सकेंगे जो उन्हें सूची 1 की प्रविष्टि द्वारा प्रदान की गई है, क्योंकि वह प्रविष्टि पारित हो चुकी है। तो मेरे विचार से वे भ्रम में है। यह प्रविष्टि संविधान का अंग भले ही हो जाये किन्तु जिस प्रविष्टि को हम पारित कर चुके हैं वह वैध होगी। चाहे प्रान्तों को जो भी शक्तियां प्रदान की जायें कटकों को अपने क्षेत्र के गृहों का तथा उनके भाटकों का विनियमन करने की शक्ति प्राप्त होगी। इसलिये अपने मित्र श्री त्यागी से मेरा यह निवेदन है कि उनके उद्देश्य की पूर्ति हो गई है और इस प्रविष्टि को रखने की आवश्यकता नहीं रह गई है विशेषतया इसलिये कि जो विधियां बन चुकी हैं उनके सम्बन्ध में इन प्रविष्टियों के अधीन थोड़ा बहुत संदेह उत्पन्न हो जायेगा।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्,....

***अध्यक्ष:** उत्तर देने के अधिकार की व्यवस्था नहीं है।

*श्री महावीर त्यागी: यदि आप कृपा करके मुझे आज्ञा दें तो मैं केवल एक प्रश्न पूछना चाहता हूं।

*अध्यक्ष: अपना प्रश्न पूछिये।

*श्री महावीर त्यागी: क्या डॉ. अम्बेडकर हमें बतायेंगे कि यदि कोई सरकार कुछ कठिनाइयों का अनुभव करे तो क्या हमें उन्हें ध्यान में रख कर आगे बढ़ना चाहिये अथवा प्रान्तीय सरकारों के वचनों को ध्यान में न रखकर हमें स्वतंत्र रूप से विधि बनानी चाहिये और भाटकों का नियंत्रण करने के लिये प्रान्तीय सरकारों को शक्ति प्रदान कर देनी चाहिये? हम इस आधार पर आगे नहीं बढ़ सकते कि चूंकि अनियमित बातों पर अभी तक किसी ने आपत्ति नहीं की है इसलिये सब कुछ ठीक ही है। यदि कोई मकान मालिक यह आपत्ति करे कि प्रान्तीय सरकारों को भाटकों को नियंत्रित करने का कोई अधिकार नहीं है तो क्या होगा?

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: जी नहीं, वह यह आपत्ति नहीं कर सकता क्योंकि सामान्य खण्ड अधिनियम के अधीन भूमि के अन्तर्गत मकान भी आ जाते हैं।

*श्री महावीर त्यागी: यह विधि का एक नवीन निर्वचन है कि विधि के अधीन मकान आ जाता है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: इसमें नवीनता इस कारण दिखाई दे रही है कि श्री त्यागी ने कभी विधि-वृत्ति नहीं अपनायी।

*अध्यक्ष: अब मैं नवीन प्रविष्टि पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

'प्रविष्टि 14 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:-

'14-A. The regulation and control of houses and rents.'"

(14-क. गृहों और भाटकों का विनियमन तथा नियंत्रण)

प्रस्ताव गिर गया।

"श्री महावीर त्यागी: श्रीमान्, चूंकि मैं अपनी जगह को वापस जा रहा था इसलिये मुझे 'हां' कहने का अवसर नहीं मिला।

*अध्यक्ष: जी नहीं, मैंने आपको अवसर दिया किन्तु आपने 'हां' नहीं कहा। अब हम प्रविष्टि 15 को उठाते हैं।

*श्री आर.के. सिधवा: श्रीमान्, वर्तमान सत्र के कार्यक्रम के सम्बन्ध में मुझे यह कहना है कि....

*अध्यक्ष: मैं पहले इस प्रविष्टि को निबटा दूं। उसके पश्चात् आप जो कुछ कहना चाहें कहें। डॉ. अम्बेडकर।

प्रविष्टि 15

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 2 की प्रविष्टि 15 से 'registration of births and deaths (जन्म और मृत्यु का पंजीयन)' शब्द निकाल दिये जायें।"

यह विषय समवर्ती सूची में रख दिया गया है।

***अध्यक्षः** क्या इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, एक संशोधन मेरे नाम से है। किन्तु चूंकि डॉ. अम्बेडकर इस प्रविष्टि को सूची 3 में रखने के लिए सहमत हैं, इसलिये मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं मुझे और कुछ नहीं कहना है।

***अध्यक्षः** इसके अतिरिक्त संशोधन संख्या 280 (पांचवीं सूची, छठ ा सप्ताह), भी है, जो श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक बज चुका है। क्या मैं उसे उपस्थित करूं?

***अध्यक्षः** मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि हम यही समाप्त कर दें।

***श्री आर.के. सिधवाः** श्रीमान्, इसके पूर्व कि आप सभा स्थगित करें हम इस सत्र के कार्यक्रम के सम्बन्ध में सूचना चाहते हैं। अभी कई महत्वपूर्ण अनुच्छेदों पर विचार करना है और हमें यह ज्ञात नहीं है कि वे कब उठाये जायेंगे। यदि आप हमें कृपया यह बता सकें कि वे कब उठाये जायेंगे तो हम....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** चूंकि ये अनुच्छेद महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं, इसलिये हमें उन पर विचार करने के लिये तथा अपने संशोधनों को भेजने के लिये कुछ समय मिलना चाहिये।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि मैं कल आपको बता सकूंगा कि कौन से अनुच्छेद किन तिथियों को उठाये जा सकेंगे। इन अनुच्छेदों को यथा समय सदस्यों के पास भेज दिया जायेगा ताकि जिन संशोधनों को भेजने का उन्हें अधिकार है उन्हें वे भेज सकें।

अब सभा कल प्रातः नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 2 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.24.49
320

अंक 9
संख्या 24

शुक्रवार,
2 सितम्बर,
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव की मृत्यु पर शोक प्रकट 1339

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

सप्तम अनुसूची—*(जारी)*

[सूची 2: प्रविष्टि 15 से 67 पर विचार]

[सूची 3: प्रविष्टि 1, 2 तथा 2-क पर विचार] 1339-1415

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 2 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव की मृत्यु पर शोक प्रकट

***सेठ गोविन्ददास** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान्, आज सत्रारम्भ से पूर्व मैं आप का ध्यान सभा स्थगन के बारे की कुछ चर्चाओं की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। हम अपने कार्यक्रम नियत करना चाहते हैं और इस कारण हम यह जानना चाहते हैं कि सत्र कब समाप्त होगा। और मैं यह भी जानना चाहूंगा कि मान लीजिये किसी अनुच्छेद के लिये कोई दिन नियत किया जाता है और उस दिन उस अनुच्छेद पर विचार समाप्त नहीं हो पाता है तो क्या आप उस अनुच्छेद पर वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लेंगे जो कि नियत समय में विचार समाप्त करने का एक प्रकार का आदेश होगा जिससे कि उस अनुच्छेद को दूसरे दिन एक बजे तक समाप्त किया जा सके।

***अध्यक्षः** मैंने कल यह कहा था कि आज मैं इस सत्र के कार्यक्रम के बारे में कुछ विचार प्रकट कर सकूंगा। आज के कार्यक्रम के अन्त में मैं उन विचारों को प्रकट करूंगा।

सभा के सदस्यों को श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव की अचानक मृत्यु का संवाद देते हुये मुझे बहुत खेद है। आरम्भ में वे इस सभा के सदस्य थे पर बाद में संयुक्त-प्रान्त के लोक सेवा आयोग का सदस्य नियुक्त होने पर उन्हें इस सभा को छोड़ना पड़ा। अपने प्रान्त के वे एक महान लोक हितैषी थे और कई वर्षों तक उन्होंने अपना समस्त जीवन लोक-हित के लिये अर्पण कर दिया था। उनकी मृत्यु से वह प्रान्त विशेषकर और भी अधिक निरीहावस्था को प्राप्त हुआ है और देश के लोक जीवन में हमें उनका अभाव सदैव खटकता रहेगा। मैं चाहता हूं कि अपने-अपने स्थानों में खड़े होकर सदस्यगण उनके स्मरणार्थ उनके प्रति सम्मान प्रकट करेंगे।

(एक मिनट तक सदस्य अपने-अपने स्थानों पर खड़े हुये।)

संविधान का मसौदा-*(जारी)*

सप्तम अनुसूची-*(जारी)*

सूची 2 प्रविष्टि 15-*(जारी)*

***अध्यक्षः** कल जब सभा समाप्त हुई थी हम प्रविष्टि 15 पर विचार कर रहे थे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन को मैं नहीं समझ पाया।

***अध्यक्ष:** वह इस प्रकार है "कि सूची की प्रविष्टि 15 में से 'जन्म और मृत्यु का पंजीयन' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था कि उसे सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये। उन्होंने उस संशोधन को पेश नहीं किया जो पत्र में दिया हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): पर जब हम सूची 3 पर विचार करेंगे उस समय वह संशोधन होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** तब तो मेरी गलती हुई। अब तो मैं अपना संशोधन पेश करना चाहूंगा। मैंने समझा कि उन्होंने यह पेश किया था कि इस समूची प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये। अब मुझे यह विदित हुआ है कि उनका संशोधन तो बहुत ही संकुचित रूप का है। अत: श्रीमान्, अपना संशोधन पेश करने के लिए मैं आपकी अनुज्ञा चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** बहुत अच्छा, श्री कामत के बाद आप पेश कर सकते हैं। प्रविष्टियों को लेने के पूर्व मैं सभा को यह याद दिलाऊंगा कि सेठ गोविन्द दास ने क्या कहा था। इन प्रविष्टियों के वाद-विवाद में हमें शीघ्रता करनी चाहिये और मैं उन्हें आज समाप्त करना चाहता हूं। यदि हम आज समाप्त न कर सकेंगे तो हमें दोपहर बाद या कल फिर बैठना होगा, क्योंकि सोमवार तक इन सूचियों को हम नहीं ले जाना चाहते हैं क्योंकि आगामी सप्ताह के दिनों का कार्यक्रम मैंने नियत कर दिया है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं समझता हूं कि इस बात से हम सहमत थे कि आप प्रत्येक वक्ता को पांच मिनट देंगे।

***अध्यक्ष:** मैंने तीन मिनट कहा था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** कल के सत्र की अपेक्षा तो मैं आज सायंकाल के सत्र को अधिक पसन्द करूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं आशा करता हूं कि उसकी आवश्यकता ही न होगी। हम सब प्रविष्टियों को आज समाप्त कर लेंगे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 78 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रविष्टि 15 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

अब यह प्रस्थापित प्रविष्टि जन्म और मृत्यु के पंजीयन संबंधी खंड विहीन होगी। प्रविष्टि इस रूप की होगी।

"Public health and sanitation; hospitals and dispensaries."

(लोक स्वास्थ्य तथा स्वच्छता; चिकित्सालय तथा औषधालय।)

मैं यह सुझाव रखता हूं कि इस प्रविष्टि को सूची 3 अर्थात् समवर्ती सूची में स्थानान्तरित किया जाये।

मैं देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने छोड़े हुये मद को प्रविष्ट करने के लिये एक पृथक् संशोधन रखा है अर्थात् मुख्य संख्यिकी के अधीन सूची 3 में मृत्यु और जन्म का पंजीयन। मेरे संशोधन का प्रयोजन यह है कि प्रविष्टि 15 को मृत्यु और जन्म के पंजीयन के सहित या इसके बिना सूची 3, समवर्ती सूची में स्थानान्तरित किया जाये।

लोक स्वास्थ्य, स्वच्छता, चिकित्सालय और औषधालय को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित करने वाले अपने संशोधन को प्रस्तुत करते हुये मैं यह कहना चाहूंगा कि लोक स्वास्थ्य हमारे देश के मंत्रिमंडलों में उपेक्षणीय विषय रहा हैं अंग्रेजी राज्यकाल में वह विशेष रूप से इसी प्रकार का विषय था, उसकी उपेक्षा की जाती थी और उसकी कुछ व्यवस्था नहीं की जाती थी जिसका यह परिणाम होता था कि स्वास्थ्य बहुत ही निकृष्ट कोटि का हो गया। आज हमारी सरकार का यह लक्ष्य है कि राष्ट्र के स्वास्थ्य में उन्नति कर उसे निकृष्ट कोटि से उत्तम कोटि का बनाये। यदि हमारी सरकार का यही लक्ष्य है तो लोक स्वास्थ्य को समवर्ती विषय बनाने के अतिरिक्त हम और कुछ नहीं कर सकते हैं। यदि राष्ट्र अपनी पूर्ण उन्नति चाहता है तो इस विषय को उच्च प्राथम्य देना चाहिये। हमारे यहां एक पुरानी कहावत है "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"। इसका यह अर्थ है कि उच्चतर जीवन के लिये स्वास्थ्य सर्वप्रथम आवश्यक है और यदि स्वास्थ्य रूपी दृढ़ आधार नहीं है तो बालू पर कोई दृढ़ और स्थायी भवन नहीं बनाया जा सकता है। यदि स्वास्थ्य रूपी आधार दृढ़ है तो उसके ऊपर बना हुआ भवन काल की कसौटी पर खरा उतर सकता है और आंधी और तूफान की टक्करें झेल सकता है।

कुछ प्रान्तों के अपने निजी अनुभव से मैं जानता हूं कि जो स्वास्थ्य की योजनायें प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रसारित की जाती हैं यद्यपि उनका उद्देश्य अच्छा होने के कारण वे सराहनीय हैं परन्तु केन्द्र के निदेश और सामंजस्य के अभाव के कारण मनोवांछित रूप में वे नहीं चल पाती हैं। गत बजट सत्र में स्वास्थ्य मंत्री ने प्रान्तों में स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं में सामंजस्य करने और उनका उपक्रम करने हेतु केन्द्र के लिये अधिक शक्तियों की मांग की थी जिससे कि राष्ट्र के स्वास्थ्य स्तर को ऊंचा करने के हमारे उद्देश्य की प्राप्ति हो और उसमें यथाशक्य कम से कम विलम्ब हो। आधुनिक काल में......।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य ने तीन मिनट से अधिक समय ले लिया।

***श्री एच.वी. कामतः** मैंने समझा कि पांच मिनट का समय था। खैर, श्रीमान, यह एक ऐसा विषय है जिस पर बहुत घोर मतभेद हैं मुझे विदित हुआ है कि प्रान्तीय सरकारों या मंत्रियों ने इस प्रविष्टि के सूची 3 में स्थानान्तरण का विरोध किया है और इस प्रविष्टि में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिये वे इच्छुक नहीं हैं। मैं यह नहीं कह सकता हूं कि यह बात कहां तक ठीक है पर मैंने इस प्रकार की चर्चा सुनी है कि प्रान्तीय मंत्री इस प्रविष्टि की सूची 3 में स्थानान्तरण

[श्री एच.वी. कामत]

करने के विरोध में हैं। इसी कारण मैं चाहता हूं कि मसौदा-समिति और यह सभा इस विषय पर कुछ और अधिक विचार करे।

सभा को यह भली-भांति विदित है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने अभी कुछ समय के अंतर्गत प्रान्तों को केवल भिन्न-2 योजनाओं और रोग निवारक-रीतियों का परामर्श ही नहीं दिया है वरन् बी.सी.जी. जैसे टीके लगाने को एक बहुत बड़ी योजना प्रयुक्त की है और मुझे विश्वास है कि उसने अखिल भारतीय रूप में पैनीसिलिन के लिये भी उपक्रम किया है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार ने चोपड़ा नाम की एक समिति नियुक्त करने का उपक्रम किया है जिसने लोक स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं पर अपना प्रतिवेदन दे दिया है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये और इस प्रमुख तथा महत्वपूर्ण विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हुये कि लोक स्वास्थ्य को केवल राज्यों की विधायिनी शक्तियों पर न छोड़ा जाये वरन् इसे कम से कम समवर्ती विषय तो बना ही दिया जाये। मुझे विश्वास है कि मेरे मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद इसे सूची 1 में शामिल करने का प्रयत्न करेंगे। पर यदि यह विषय सूची 3 में स्थानान्तरित कर दिया जाये तो मुझे हर्ष होगा, श्रीमान्, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं और सभा की स्वीकृति के लिये इसे प्रस्तुत करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3600 में 'List III' (सूची 3) शब्द और अंक के स्थान में 'List I' (सूची 1) शब्द और अंक रखे जायें।"

श्रीमान्, इस संबंध में प्रान्तीय मंत्रियों के विरोध को मैं नहीं समझ पाता हूं। यदि वे यह समझते हैं कि उनकी स्थिति ऐसी है कि वे लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता संबंधी समस्त समस्याओं को निपटा सकें, यदि उनका यह मत है कि भारत सरकार की सहायता और सहयोग के बिना चिकित्सालयों और औषधालयों को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है तो उनके विचार का स्वागत है। मैं भी एक प्रान्त का हूं। मैं किसी ऐसे स्थान से नहीं आया हूं जो किसी प्रान्त में न हो। मैं यह जानता हूं कि हमें शक्ति मिलने के बाद इन विभागों के प्रशासन में कमी आ गई है। यदि आप साधारण चिकित्सालय में जायेंगे तो आप देखेंगे कि वहां मक्खियां और खटमल बढ़ते चले जा रहे हैं। सेविकाओं के वस्त्र मैले हैं। वहां फिनाइल और दवा नहीं है और रोगियों का अच्छा इलाज नहीं होता है। दक्षता की अपेक्षा की जाती है और वह गिरती जा रही है। अत: मैं समझता हूं कि लोक स्वास्थ्य, स्वच्छता चिकित्सालयों और औषधालयों को सूची 1 में रखा जाये। जिन शक्तियों के सम्बन्ध में मैं यह चाहता हूं कि वे केन्द्र के पास रहें तो यह इस उद्देश्य से है कि केन्द्र का अभ्युदय होगा। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि केन्द्र के सहयोग का क्योंकर स्वागत नहीं किया जाता है। प्रान्तों के पास पर्याप्त शक्तियां हैं पर उनके पास साधन बहुत सीमित हैं। यदि राष्ट्र को रोग और संक्रामक बीमारियों के अभिशाप से बचाना है तो जहां तक इस प्रविष्टि का सम्बन्ध है इसे केन्द्र को सौंप देना चाहिये। हां, मैं इस बात को भली भांति समझता हूं कि इन महत्वपूर्ण शक्तियों को छीन लेने से प्रान्तीय स्वायत्तता में बहुत अधिक रूप भेद हो जायेगा;

पर प्रान्तीय स्वायत्तता ही तो हमारा अन्तिम लक्ष्य नहीं है। वह तो केवल लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन है—लक्ष्य यह है कि इस देश के लोगों की आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रगति। कोई आन्दोलन या विचारधारा जो भारत के लोगों की आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक उन्नति में बाधक होती है उसका नाश कर देना चाहिये और उसे मिटा देना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ मैं नहीं समझता हूं कि प्रान्तीय स्वायत्तता के विरुद्ध मैं माननीय सदस्य को उनके तर्कों को दुहराने दूं। यह संशोधन उनके अन्य संशोधनों के समान है। जो केन्द्र को समस्त शक्तियां हस्तान्तरित करने का प्रयास करते हैं। फिर भी मैंने उन्हें संशोधन पेश करने दिया है, पर उनके तर्क वही हैं जिनको वे पहले कई बार प्रस्तुत कर चुके हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं संशोधन संख्या 297 को पेश नहीं करना चाहता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ पेश किये गये संशोधनों में से मैं किसी संशोधन को भी स्वीकार नहीं करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ श्री कामत द्वारा पेश किये गये संशोधन (280) पर अब मैं मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 78 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रविष्टि 15 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ इसके बाद श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 77 को सभा के समक्ष मतार्थ रखता हूं। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों को सूची के संशोधन संख्या 3600 में 'List III' (सूची 3) शब्द और अंक के स्थान में 'List I' (सूची 1) शब्द और अंक रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 15 में से 'जन्म और मृत्यु का पंजीयन' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 15 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 15 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 16

***अध्यक्षः** प्रविष्टि 16 पर अब विचार किया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 16 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'16. Pilgrimages to places within the State. '"

(16. राज्य के अंतर्गत स्थानों की तीर्थ यात्रायें।)

श्रीमान्, सूची 2 की इस प्रविष्टि में केवल यह कहा गया है 'भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थ यात्रायों को छोड़ कर अन्य तीर्थ यात्रायें।' अतः मैं यह सोचता हूं कि सूची 2 की प्रविष्टि 16 के स्थान में हम 'राज्य के अंतर्गत स्थानों की तीर्थ यात्रायें' शब्द रखें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधन का यह प्रयोजन है कि प्रान्त के अन्तर्गत स्थानों की तीर्थ यात्रायें राज्य के अधिकार में हों। प्रविष्टि 16 में ठीक यही विचार अन्तर्विष्ट है। कोई राज्य वास्तव में किसी अन्य राज्य की तीर्थ यात्राओं में जो कुछ हो रहा है उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। जिस रूप में प्रविष्टि 16 है उसमें यह विचार स्पष्ट रूप में आ जाता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** क्या यह विचार उस प्रविष्टि में आ जाता है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** जी हां, वह पूर्णतया उसमें आ जाता है। शब्द वही है जो भारत शासन अधिनियम में है। केवल हज ही एक ऐसी तीर्थ यात्रा है जिससे केन्द्र का संबंध है। यही एक ऐसा विषय है जो पूर्णतया केन्द्र के अधिकार में है। यदि हज की तीर्थ यात्रा या हज के लिये यात्रियों के यातायात का विनियमन करना हो और यात्रियों को निरोधावासन इत्यादि के संबंध में प्रान्तीय सरकारों को निदेश देने हों तो केन्द्र यह सब करेगा। प्रो. शिब्बन लाल के संशोधन को स्वीकार करने से इस प्रयोजन की सिद्धि नहीं होगी। अतः मैं यह सुझाव देता हूं कि सभा इस संशोधन को अस्वीकार करे और जिस रूप में प्रविष्टि है उसे उसी रूप में पारित करे।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 16 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'16. Pilgrimages to places within the State. '"

(16. राज्य के अंतर्गत स्थानों की तीर्थ यात्रायें।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 में प्रविष्टि 16 प्रविष्ट की जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 16 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 17

*__अध्यक्ष:__ प्रविष्टि 17 पर कोई संशोधन नहीं है। अत: मैं उस पर सभा का मत लूंगा।

प्रविष्टि 17 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 18

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 18 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'18. Education including universities, subject to the provisions of the entries 40, 40-A, 57, and 57-A of List I and entry 17-A of List III.'"

(18. सूची 1 की प्रविष्टियों 40, 40-क, 57 और 57-क तथा सूची 3 की प्रविष्टि 17-क के उपबन्धों के अधीन रहते हुये शिक्षा, जिसके अंतर्गत विश्वविद्यालय भी हैं।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, आपकी अनुज्ञा से मैं अपने नाम के तीन संशोधनों में से केवल दूसरे को ही पेश करूंगा। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3607 में की सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 18 के अन्त में, 'subject to the supervision, direction and control of the Government of India' (भारतीय सरकार के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन) शब्द जोड़ दिये जायें।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, समय की बचत के कारण मैं अपने संशोधन संख्या 242 को पेश नहीं कर रहा हूं।

मौलाना हसरत मोहानी (यूपी : मुस्लिम): जनाब वाला, यह बात शायद आप सब लोगों को अजीब मालूम होगी कि मैं जो सबसे बड़ा प्राविन्शयल अटोनोमी का मोवाफिक और सेंटर को पावर देने का मोखालिफ हूं क्या वजह है कि मैं इस खास मसले में सेन्टर को दखल दिलाने की कोशिश कर रहा हूं। एजूकेशन का मसला बजाय इसके कि प्राविन्शयल सबजेक्टस में हो इसको कांकरेन्ट लिस्ट में जाना चाहिये। फिर भी मैंने इसका लिहाज रखा और यह नहीं कहा कि इसको पहली लिस्ट में जाना चाहिये। चूंकि मैं सेन्टर को पूरी ताकत नहीं देना चाहता इसलिये मैं इसको कांकरेन्ट लिस्ट में रखने की कोशिश कर रहा हूं। मैं यह भी नहीं कहता लेकिन मजबूरी है। मैं यह देखता हूं कि मेरे दोस्त डॉ. अम्बेडकर साहब यह कोशिश कर रहे हैं और इस मामले में मैं अपने दोस्त नज़ीरुद्दीन अहमद का हमख्याल हूं कि वह हर मामले में सेन्टर की ताकत बढ़ाते जाते हैं और सूबों की ताकत को बिल्कुल मिटाते जाते हैं। मैं तो इससे एक कदम आगे बढ़कर कहता हूं कि जो कुछ आज यहां हो रहा है उसका नतीजा मैं तो यह

[मौलाना हसरत मोहानी]

देखता हूं कि डॉक्टर अम्बेडकर साहब हमारे कांस्टीट्यूशन का नेचर (Nature) ही बदलना चाहते हैं। पहले तो मेरा ख्याल यह था कि जो कांस्टीट्यूशन बन रहा है वह आब्जेक्टिव रिजोल्यूशन्स (Objective Resolutions) के मोवाफिक यह फेडरल रिपब्लिक और सोशिएलिस्ट रिपब्लिक के तरीके पर बनेगा। लेकिन रफ्ता रफ्ता उन्होंने सोशलिस्ट को तो पहले ही मिटा दिया अब उनकी यह कोशिश मालूम होती है कि जितनी रियासतें हैं सबको मर्ज (merge) करके वह हिन्दुस्तान में एक यूनिटरी एम्पायर (Unitary Empire) कायम कर दें जैसी कि ब्रिटिश यूनिटरी एम्पायर (British Unitary Empire) थी। इसके अलावा मुझे कुछ नहीं मालूम होता। आपको आगे चल कर मालूम हो जायेगा कि यह सिर्फ मेरे कयास की बात नहीं है। अब वह न रिपब्लिक है न सोशलिस्ट है और न फेडरेशन होगा। प्योरली इनडियन एम्पायर हो जायेगा। और उसमें किसी सूबे को भी कोई पावर नहीं होगा। यह मेरा ख्याल है और मैं इसीलिये पूरे तौर पर इसकी मुखालफत करता हूं।

अब मैं यह जाहिर करूंगा कि मैं क्यों सेन्टर को इस मामले में अखत्यार देना चाहता हूं। वह इसलिये कि इसमें सूबे की एजूकेशन का दखल है। मैं यह चाहता हूं कि सिर्फ सूबों के गवर्नमेंटों को सूबों में एजूकेशन के बारे में पूरा दखल नहीं होना चाहिये। और जो कुछ इन रीजनेबिल और एटोक्रेटिक तरीके उन्होंने अख्तयार किये हैं उन्ही की बिना पर मैंने यह तजबीज पेश की है। एजूकेशन के सवाल में मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन का सवाल भी शामिल है और उसमें तो सूबों को यह अखत्यार दिया गया है कि वह खुद ही इस बात का फैसला करें चाहे सेन्टर और अवाम कुछ भी कहें वे इस बात की कोई परवाह नहीं करेंगे क्योंकि यह यह प्राविन्शयल सबजेक्ट है। और वह इस बारे में जिस तरह से भी चाहें फैसला कर सकते हैं और उनकी मर्जी होगी और जो वह चाहें मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन कर सकते हैं। शायद मेरे दोस्त यह कहेंगे कि सूबों में रिजनल लेंगुएज में इबतेदा में तालीम दी जायेगी यानी मदरास वाले अपनी रिजनल लेंगुएज में प्राइमरी और सकेन्डरी स्टेज में तालीम देंगे। बम्बई वाले अपनी रिजनल लेंगुएज में देंगे, बंगाली अपनी बंगला जबान में देंगे। और पंजाब वाले पंजाबी या गुरमुखी में देंगे। लेकिन इसी बिना पर मैं आपको अपनी दुशवारियां बताता हूं कि वह क्या हैं। जो कुछ यू.पी. वालों की दुश्वारियां हैं वह यह हैं कि यू.पी. गवर्नमेंट ने एक अजीब व गरीब तरीका अख्तयार किया है। वह कहते है कि यूपी की स्टेट लेंगुएज हिन्दी है और रिजनल लेंगुएज भी संस्कृताइज्ड हिन्दी है और वहां पर उर्दू का कोई दखल ही नहीं है। मैं आप से यह बात बिल्कुल ऊटपटांग नहीं कहता हूं। यूपी में जो कार्रवाई हो रही है अगर मैं वह आपको बताऊं तो आप हैरान रह जायेंगे वहां पर प्राविन्शयल एसम्बली के स्पीकर यानी टण्डन साहब का फैसला यह है कि अगर कोई बिल वहां की एसम्बली में पेश हो तो वह सिर्फ हिन्दी में ही होना चाहिये। हम लोगों को इसकी नकल अंग्रेजी में नहीं मिलती है। वहां पर एजन्डा भी संस्कृताइज्ड हिन्दी में बनता है। और जो सवालात की लिस्ट बनती है वह भी संस्कृताइज्ड हिन्दी में ही होती है। और अगर कोई शख्स अपने सवालात उर्दू में भेज दे तो उसको वह फेंक देते हैं। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने अजला में भी हेदायात जारी किये हैं कि अगर कोई शख्स रजिस्ट्री कराना

चाहे तो वह हिन्दी में दस्तावेज लिख कर लावे। अगर कोई उर्दू में लिख कर लायेगा तो उसकी रजिस्ट्री नहीं होती है। इन हालात में आप ही बताइये कि हम क्या कर सकते हैं। उर्दू सिर्फ मुसलमानों की ही जबान नहीं है बल्कि हिन्दुओं की भी है। अब जो यह कहा जाता है कि रीजनल लेंगुएज में प्राइमरी और सेकेन्डरी स्टेज तक तालीम दी जायेगी तो वह ऐसा भी नहीं करते हैं। उनको चाहिये कि वह उन स्टेजों में रीजनल लेंगुएज में तालीम दें और हायर एजूकेशन में जो वह चाहें वैसा कर सकते हैं। मैं इस सवाल को इस वक्त नहीं लेना चाहता हूं सिर्फ मैं यह कहना चाहता हूं कि जो तरीका उन्होंने वहां पर प्राइमरी और सेकेन्डरी स्टेज में तालीम देने का अखतियार किया है वह इन्साफ से बईद है। उसको चाहिये कि वह उन दो स्टेजों में तालीम मादरी जबान में दें। 6 बरस और 11 बरस के उमर के लड़कों को उनकी मादीर जबान में तालीम देनी चाहिये ताकि उन पर दूसरी जबानों के सीखने का भार न पड़े। हम पहले ब्रिटिश गवर्नमेंट की इसी बिना पर मुखालफत किया करते थे और उनकी इसी बात पर लानत भेजते थे कि उन्होंने सिर्फ अंग्रेजी जबान को हाई स्कूलों में मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन बना दिया था। लेकिन जो कुछ आप करते हैं वह उन्होंने नहीं किया। उन्होंने सिर्फ ऐसा हाई स्कूलों में ही किया और इसके अलावा वरनाकूलर मिडिल स्कूल बनाये और उनमें यह आजादी रखी कि जो चाहे वह हिन्दी में मिडिल पास करे और जो चाहे वह उर्दू में मिडिल पास करे। और जो अंग्रेजी जबान में और तालीम पाना चाहते थे वह हाई स्कूलों में जाकर पढ़ते थे। इसलिये मैं यह कहना चाहता हूं कि जो चीज ब्रिटिश गवर्नमेंट ने नहीं की वह अब प्राविन्शयल गवरमिन्टों ने कर दी है।

इसके अलावा मैं यह कहना चाहता हूं कि जितने भी प्राइमरी स्कूल देहातों में हैं उनमें कम्पलसरी एजूकेशन जारी कर दी गई और हर एक के लिये यह लाजमी है कि वह अपने लड़के को प्राइमरी या बेसिक स्कूल में दाखिल करा कर तालीम दे। इसलिये लोग मजबूर हैं कि वह अपने लड़कों को स्कूलों में दाखिल कराकर तालीम दें। अब आप देखिये कि वहां पर क्या होता है। जब वह लड़के पहले दरजे में दाखिल होते हैं तो उनसे कहा जाता है कि तुमको अलिफ बे नहीं पढ़ाई जायेगी क्योंकि इसको पढ़ाने का कोई इन्तजाम नहीं है। अब आप खुद देख लें कि वह लड़के जिनकी मादरी जबान उर्दू है वह क्या करेंगे। उनको कहा जाता है कि तुम इन स्कूल में अलिफ बे नहीं पढ़ सकते हो क्योंकि इसका कोई इन्तजाम नहीं है इसलिये तुम क ख ग पढ़ो। यह कैसी जुल्म की बात है और किस कदर बेइन्साफी है। क्या दुनिया की किसी गवरमिन्ट ने ऐसी बेइन्साफी की है जैसी कि यूपी गवर्नमेंट ने की है? और फिर उनका कहना यह है कि चूंकि यह एक प्राविन्शयल सबजेक्ट है इसलिये हम जो चाहें कर सकते हैं। इसलिये मैंने यहां पर साफ तौर से बताया है कि इस बारे में सेन्टर से इन्सट्रक्शन्स होनी चाहिये कि जहां पर लोगों ने जिस मादरी जबान के लिये अपनी राय जाहिर की है वहां पर वही रायज करनी चाहिये।

यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट जो मि. राधाकृष्णन ने पेश की है उसमें साफ लिखा हुआ है:

"Mother language according to the Commission, should be the medium of instruction in all stages of school education."

[मौलाना हसरत मोहानी]

यह राय आप के यूनिवर्सिटी कमीशन की है। इसके अलावा 10 अगस्त को बम्बई में श्री राजगोपालाचार्य ने न्यूज पेपर कॉन्फ्रेंस में मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन के बारे में यह कहा है। 'The State language should be learnt by itself. I personally feel that teaching should be done in a mixture of regional language and State language.' और भी बहुत से आदमी यह कहते हैं कि ज्यादा नहीं तो कम से कम मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन को आप मादरी जबान में रखें। इस बारे में मैं यह कहता हूं कि तीन प्राविन्सेज यानी देहली, यूपी, बिहार और कोस्टल सीपी को हाई लेंगुएज प्राविन्सेज कर देना चाहिये और जिनकी मादरी जबान उर्दू है उनको उसी में तालीम देनी चाहिये। यूपी गवर्नमेंट का यह कहना कि वहां की स्टेट लेंगुएज हिन्दी है और वहां की रिजनल लेंगुएज भी हिन्दी है और उर्दू का वहां पर कोई दखल ही नहीं है और उसको सफह दुनिया से मिटा देना चाहिये बहुत ही हाई हैन्डेडनेस है। आपको अच्छी तरह से रौशन है कि यूपी उर्दू की जन्म भूमि है।

आनरेबिल प्रेजीडेन्ट: मौलाना साहब यह सवाल इस वक्त हमारे सामने पेश नहीं है। हमारे सामने इस वक्त यह सवाल पेश है कि एजूकेशन के मामले को प्राविन्सेज में ही लिया जाये।

मौलाना हसरत मोहानी: मैं भी वही अरज कर रहा हूं। मैं यह नहीं कहता हूं कि सेन्टर को सारे अखतियारात दे दिये जायें। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूं और मैंने यह कहने की जुर्रत इसलिये की है कि कमअज़ कम मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन को मुकर्रर करने में उनका भी हाथ हो। क्योंकि जो कुछ यूपी गवरमिन्ट कर रही है उससे तो यह मालूम होता है कि वह उर्दू को सफह हस्ती से मिटाना चाहते हैं।

जनाब वाला मैं सिरफ दो चार और मिसालें देकर अपनी तकरीर को खत्म कर दूंगा। जनाब यहां पर जो एजूकेशन मिनिस्ट्रो की कॉन्फ्रेंस हुई थी उसमें उन्होंने यूनियन्स तर्ज पर यह पास किया।

"The medium of instruction and examination in the junior basic stage must be the mother-tongue of the child and where the mother-tongue is different from the regional or State languages, arrangement must be made for instruction in mother-tongue by appointing at least one teacher, provided there are not less than 40 pupils speaking the language in the whole school or ten such pupils in a class." यह तो उनकी राय है। इसके बाद एजूकेशन मिनिस्ट्रस कॉन्फ्रेंस में जो मैमोरेन्डम हमारे वेस्ट बंगाल के लोगों ने पेश किया है वह इस कदर साफ है और उन्होंने इन्साफ की हद कर दी है। उन्होंने कहा है कि: 'The policy pursued in West Bengal regarding the medium of instructions in schools and the principle should be adopted in this regard in

all provinces were explained at the all India Education Ministers Conference.' इसके बाद वह कहते हैं किः

'The Education Ministry of West Bengal is of opinion that if the principle be adopted in other provinces and the provincial and regional language where it is different from the mother-tongue of a child be introduced as a compulsory second language in the secondary stage, then the difficulties of the school students belonging to the linguistic minorities in different provinces may early be removed.'

*__आनरेबिल प्रेजिडेन्टः__ मौलाना साहब जिन बातों के लिये आप कह रहे हैं उनके मुतालिक शायद दो रायें नहीं हो सकतीं।

मौलाना हसरत मोहानीः जी हां, लेकिन यूपी गवर्नमेंट ऐसा नहीं कहती है वह यही प्ली (Plea) लिये हुये है कि एजूकेशन प्राविन्शयल सबजेक्ट है और इसलिये सेन्टर की राय को वह ठुकरा देते हैं। हमारे लिये यह दुश्वारी है कि कानपुर में मेरी लड़कियां जो पढ़ने जाती हैं उनसे कहा जाता है कि उर्दू नहीं बल्कि क ख ग घ पढ़ो हमको कोई उर्दू पढ़ाने की हिदायत नहीं है। यह क्या तरीका है इस तरह कहीं दुनिया का काम भला चल सकता है। लिहाजा कम से कम मेरी यह राय है कि जो मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन के बारे में सेन्टर की राय हो उस पर सेन्टरल का कन्ट्रोल रहे और इस कन्ट्रोल की वजह से एजूकेशन के सबजेक्ट को बजाए लिस्ट नं. 2 के लिस्ट नं. 3 में रख दिया जाय। मैं सेन्टर को राइट देना नहीं चाहता हूं लेकिन साथ ही इसके अगर सूबे कोई नाजायज बात करें तो उस वक्त कम से कम सेन्टर को जरूर पावर होना चाहिये कि उनको ठीक करे लेकिन अगर यह नहीं करते तो साफ कह दें कि हम लिंग्युस्टिक माइनोरिटीज (Linguistic minorities) के लिये कोई हक नहीं रखना चाहते और उर्दू को हम सफह हस्ती से मिटा देना चाहते हैं। लिहाजा डॉ. अम्बेडकर साहब मेरी इस तज़बीज को मन्जूर करें या मुझको एशोरेन्स दें कि मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन के बारे में सूबे ऐसा जुल्म नहीं कर सकते। मैं इसको साफ कराना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि संशोधन संख्या 299 वही है जो मौलाना हसरत मोहानी ने पेश किया है।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ जी नहीं, वह बिल्कुल भिन्न है।

*__अध्यक्षः__ वह वैसा ही है– "कि सूची 2 की प्रविष्टि 18 को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।" आप संशोधन संख्या 300 पेश कर सकते हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 209 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 18 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'18. Education up to the Secondary standard.'"

(18. माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा।)

मैं यह मान लेता हूं कि मेरा संशोधन संख्या 299 पेश हो चुका है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक संयुक्त राष्ट्र बनाने के लिये यह आवश्यक है कि कम से कम उच्च शिक्षा को केन्द्रीय विषय होना चाहिये। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने कई संशोधनों में यह उपबन्ध किया है कि कुछ संस्थायें जो उच्च शिक्षा प्रदान करती हैं उनको केन्द्रीय विषय के रूप में माना जायेगा। पर मैं चाहता हूं कि विश्वविद्यालय की शिक्षा का उत्तरदायित्व केवल संघ सरकार पर ही रहे। श्रीमान्, इस सम्बन्ध में शिक्षा मंत्री माननीय मौलाना अब्बुल कलाम आजाद का मसौदा-समिति के नाम ता. 28 अप्रैल सन् 1948 ई. को लिखे हुये पत्र में से कुछ अंश पढ़ना चाहता हूं जिसमें उन्होंने यह कहा है:–

"दूसरी बात जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा वह यह है कि भारत में शिक्षा प्रसार की वर्तमान स्थिति में यह नितान्त आवश्यक है कि प्रान्तीय उन्नति पर यदि केन्द्रीय नियन्त्रण न हो तो कम से कम केन्द्रीय पथ प्रदर्शन तो हो। आपने स्वयं अभी कुछ महीनों में घातक प्रवृत्तियों के संकटजनक लक्षण देखे होंगे। यह यदि हो सके कि समस्त भारत में शिक्षा का सामान्य रूप एक सा रहे तो हमें इस बात का विश्वास हो सकता है कि देश के बुद्धिमान व्यक्तियों में विचार साम्य होगा। सरकार के केन्द्रीयकरण अथवा केन्द्रीय प्राधिकारियों के हाथों में शक्तियां देने से पृथक्-पृथक् योजनाओं से बचने के लिये यह एक अच्छा अवरोध होगा।"

अत: इस मुख्य प्रयोजन को ध्यान में रखते हुये मैं यह सोचता हूं कि समस्त राष्ट्र को एक प्रकार की शिक्षा दी जाये जिससे कि वह एक विशेष प्रकार की विचारधारा में ही प्रवेश कर सके और मैं समझता हूं कि यह एक बड़ा ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है जिसे प्राप्त करने का हमें प्रयास करना चाहिये। इसके साथ-साथ और भी कठिनाइयां हैं जिनका मुकाबला करना होगा। हमें स्मरण है कि महात्मा गांधी ने अपना अधिकांश जीवन राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा की योजना को विकसित करने में व्यतीत किया था और वे चाहिये थे कि वह समस्त भारत में समान रूप से हो। उस योजना का बहुत अन्वेषणों के बाद विकास हुआ था। और समस्त भारत के आचार्यों ने उस पर विचार किया था। यह स्पष्ट है कि ऐसी योजनायें ही विकसित हो सकती हैं और अखिल भारत में चलाई जा सकती हैं।

और फिर संघ के नियंत्रण के अधीन विश्वविद्यालय की शिक्षा से और भी लाभ हैं। पहली बात यह है कि हमारे देश में अन्य उन्नत देशों के समान इतने महान साधन उपलब्ध नहीं हैं। अत: हमारी विश्वविद्यालयों को भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न विषयों के विशेष ज्ञान का प्रबन्ध करना चाहिये। जिससे कि शिक्षा

देने में दोहरा प्रबन्ध अधिक न हो और श्रम व्यर्थ न हो। अतः मैं समझता हूं कि केन्द्रीय सरकार सब विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण करे जिससे कि वह प्रत्येक विश्वविद्यालय को यह मंत्रणा दे सके कि उसे किस विषय के विशेष ज्ञान के लिये प्रबन्ध करना है। दूसरी बात यह है कि मैं समझता हूं कि विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये राज्य पर्याप्त निधि नहीं दे सकते हैं। मेरा विचार यह है कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर राज्य बड़ी-बड़ी राशियां खर्च कर रहे हैं और इस कारण विश्वविद्यालय की शिक्षा में कमी आ रही है। केन्द्रीय सरकार के अधीन विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये एक उपबन्ध होना चाहिये। उस से विश्वविद्यालय राष्ट्रीय हित के लिये ठीक-ठीक उन्नति करने में समर्थ होगी। अतः श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह सूची 2 में केवल माध्यमिक स्तर तक ही शिक्षा अन्तर्विष्ट की जाये न कि विश्वविद्यालय तक के स्तर तक की शिक्षा। साथ ही साथ, श्रीमान्, अन्तर्विश्वविद्यालयिक मंडल, जिसमें सब विश्वविद्यालयों का प्रतिनिधित्व है, उसका यह मत है कि विश्वविद्यालय की शिक्षा केन्द्रीय विषय हो। इन सब कारणों के आधार पर मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति इस विषय पर विचार करेगी और इस प्रविष्टि में ठीक-ठीक संशोधन किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** पंडित लक्ष्मी कान्त द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला संशोधन संख्या 311: वह वैसा ही है जैसा मौलाना हसरत मोहानी का संशोधन था। उसे पेश करना आवश्यक नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस सभा के कई सदस्यों की सामान्य प्रकृति है कि कई मदों को सूची 2 में से सूची 3 में स्थानान्तरित कर दिया जाये। क्या मैं तुरन्त यह कह सकता हूं कि मसौदा-समिति के सदस्यों को दो परस्पर विरोधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सभा के कुछ सदस्य यह चाहते हैं कि केन्द्र को कुछ और अधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिये दूसरी ओर इस सभा में ऐसे भी कई सदस्य हैं जो यह समझते हैं कि केन्द्र को अपने ऊपर जितना उत्तरदायित्व लेना चाहिये उससे वह अधिक उत्तरदायित्व ले रहा है और इस तरह वह प्रान्तीय स्वायत्तता को नाम मात्र का रूप देता चला जा रहा है। ऐसी शिकायतें वास्तव में पत्रों में भी प्रकाशित हुई हैं और अभी-अभी मैंने एक व्याख्यान श्री सी.आर. रेड्डी, आंध्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति का देखा जिसमें उन्होंने केन्द्र में शक्तियां निहित करने की प्रवृत्ति की घोर निन्दा की है। जहां तक मसौदा-समिति का सम्बन्ध है मैं तुरन्त ही इस बात का विरोध करना चाहूंगा कि उसका केन्द्र को अधिक शक्तियां देने या प्रान्तों का कोई विरोध करने का विचार है। जितना हम कर सके हैं, हमने यह किया है कि इस बात का ध्यान रखा है कि केन्द्र को केवल उतनी ही शक्तियां दी जायें जितनी कि प्रान्तों की क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने के लिये आवश्यक हैं। मेरे जिन माननीय मित्रों ने "शिक्षा" की प्रविष्टि को सहगामी सूची में रखने पर प्रविष्टि 18 के क्षेत्र को माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक सीमित करने के जो ये संशोधन पेश किये हैं यदि वे सूची 1 में के शिक्षा सम्बन्धी मदों को पढ़ेंगे तो उनको यह विदित होगा कि हमने वह व्यवस्था की है और उन उपबन्धों को उस सभा ने स्वीकार

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

कर लिया है जो उच्च शिक्षा, प्रौद्योगिक शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्रों में और यहां तक कि वैज्ञानिक गवेषणा के क्षेत्र में भी राज्यों की शैक्षणिक क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने की केन्द्र को पर्याप्त शक्ति देते हैं। केन्द्रीय सरकार के लिये यहीं तक जाना सुरक्षित है: इस सीमा को उलांघना किसी भी केन्द्रीय सरकार के लिये बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं होगा।

मेरे माननीय मित्र श्री मौलाना हसरत मोहानी द्वारा उठाये गये विशेष प्रश्न के सम्बन्ध में मुझे यह कहना चाहिये कि उनकी आशंकाओं से मुझे सहानुभूति है यदि मैं उनके भाषण का ठीक-ठीक सार समझ सका हूं तो। पर ऐसे विषय में उसका उपचार इस बात में नहीं है कि केन्द्र उस शक्ति को अपने ऊपर ले ले यद्यपि इस बात में कोई शक नहीं है कि शायद अल्पसंख्यक वर्ग प्रान्तों की अपेक्षा केन्द्र के साथ अधिक सुरक्षित रहें। मैं यह बताना चाहूंगा कि यदि प्रान्त अपनी शक्तियों का यहां तक दुरुपयोग करें कि किसी अल्पसंख्यक वर्ग को शैक्षणिक सुविधायें दें तो ऐसी बात नहीं है कि इसका कोई इलाज न हो। अनुच्छेद 23 और 23-क के मूलाधिकार उसको अपने अधिकार की मांग करने के लिये पर्याप्त शक्ति देते हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** वे पर्याप्त नहीं हैं, कृपया ध्यान से उन्हें पढ़ें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** खेद है कि मुझे अपने माननीय मित्र से मतभेद प्रकट करना पड़ेगा। मैं समझता हूं कि यही बात लगभग सर्वोत्तम है जो हम कर सकते हैं और यह राज्य के लिये अधिकांश रूप में स्वायत्तता रखने और केन्द्र को प्रतिरक्षा, प्रतिभूति और देश के सामान्य कल्याण का विषय देने और अन्य बातों को राज्य पर छोड़ने के विचार से संगत है। मैं समझता हूं कि शायद यह विषय क्षणिक है और केवल उतने समय के लिये है जबकि उत्साह स्वविवेक से आगे बढ़ जाता हैं और कुछ प्रान्त बहुत शीघ्रता से नये सुधारों का पुर:स्थापन करना चाहते हैं। मैं अपने माननीय मित्र से यह कहूंगा कि शीघ्र ही वे देखेंगे कि वस्तु स्थिति सामान्य रूप ग्रहण करेगी और प्रत्येक प्रान्त 23 और 23-क के मूलाधिकारों का सम्मान करेगा और अल्पसंख्यक वर्गों के भय के लिये कोई कारण न रहेगा। यह सच है कि बाद में उनके सामने इस सभा में ऐसे और भी अनुच्छेदों पर वाद-विवाद होगा जो उनको लोगों के किसी विशिष्ट समूह की भाषा के परित्राण के लिये और अतिरिक्त रक्षा कवच प्रदान करेंगे। केन्द्र के किसी ऐसे उत्तरदायित्व को अपने ऊपर ले लेने से, जिसका वह निर्वहन पर्याप्त रूप से नहीं कर सकता है, यह समस्या हल नहीं हो सकती है।

मेरे माननीय मित्र प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन के संबंध में मैं उनको यह बताना चाहूंगा कि 40, 40-क, 57 और 57-क प्रविष्टियों के आधार पर उच्च शिक्षा में सामंजस्य स्थापित करने के लिये केन्द्र के पास पर्याप्त शक्तियां हैं। यह पुकार कि विश्वविद्यालय की शिक्षा पर व्यय करने के लिये प्रान्तों के पास यथेष्ट धन नहीं है इस कारण सत्य नहीं है कि इस प्रकार की शिक्षा पर प्रान्तों को वास्तव में जो कुछ खर्च करना पड़ता है वह विश्वविद्यालयों की शिक्षा पर समस्त शैक्षणिक बजट का एक बहुत ही अल्पांश है। मैं समझता हूं कि जैसी

वस्तुस्थिति है उसके अनुसार प्रान्तों द्वारा उदारतापूर्वक खर्च किया जाता है। यदि विषय वास्तव में ऐसा होता कि वित्त-व्यवस्था के कारण उच्च शिक्षा में कमी होती तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुच्छेद 253 (3) के अधीन केन्द्र में निहित की गई शक्तियों का बुद्धिमानी तथा उदारतापूर्वक प्रयोग किया जाता जिससे प्रान्तों को उच्च शिक्षा में उन्नति करने के लिये पर्याप्त अनुदान मिलता।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि प्रविष्टि 18 का क्षेत्र जितना संकीर्ण कर दिया गया है उससे अधिक संकीर्ण करने के लिये या उसको सूची 3 में स्थानान्तरित करने के लिये मेरे माननीय मित्रों ने जो बातें उठाई हैं सारहीन हैं और मैं सभा को यह सुझाव देता हूं कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को वह स्वीकार करे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3607 में की सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 18 के अन्त में 'subject to the supervision, direction and control of the Government of India' (भारतीय सरकार के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) संशोधन संख्या 209 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 18 को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 209 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 18 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'18. Education upto the Secondary standard.'"

(18. माध्यमिक स्तर तक को शिक्षा।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में प्रविष्टि 18 पर मैं मत लेता हूं। प्रश्न यह है:–

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 18 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'18. Education including universities, subject to the provisions of the entries 40, 40-A, 57 and 57-A of list I and entry 17-A of list III.'"

[अध्यक्ष]

(18. सूची 1 की प्रविष्टियों 40, 40-क, 57 और 57-क तथा सूची 3 की प्रविष्टि 17-क के उपबन्धों के अधीन रहते हुये शिक्षा, जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय भी हैं।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 18 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 19

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 19 में सेः–

(क) 'minor railways subject to the provisions of List I' शब्द तथा अंक, और

(ख) 'ports subject to the provisions in List I with regard to major ports.' शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, इस संशोधन के मद (क) के संबंध में सूची 1 में रेल संबंधी प्रविष्टि हम पारित कर ही चुके हैं जो कि एक व्यापक प्रविष्टि है और चाहे छोटी हो या बड़ी सब रेलों के संबंध की विधानीय शक्ति केन्द्र में निहित कर दी गई है। मद (ख) के सम्बन्ध में वास्तविक विचार यह है कि यह प्रविष्टि सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये और इस प्रकार का एक संशोधन प्रस्तुत किया जा चुका है। छोटे और बड़े पत्तनों का वर्गीकरण करने या केन्द्र को कुछ पत्तनों को बड़े और कुछ को छोटे घोषित करने की शक्ति के स्थान में यह विचार है कि केन्द्र को यह शक्तियां दी जायें कि वह तत्कथित छोटे पत्तनों के प्रशासन के लिये प्रान्त द्वारा अनुसरण किये जाने वाले कुछ निर्देश दे या विनियम बनाये। केन्द्र को यह शक्ति देने के लिये प्रविष्टि 19 के इस विशिष्ट भाग को सहगामी सूची में स्थानान्तरित करने का यह संशोधन किया गया है। मैं आशा करता हूं कि भाग (क) को तो इस आधार पर कि सभा इसके लिये वचनबद्ध है और (ख) मद को इस आधार पर कि स्थानान्तरण से सामान्यतया छोटे पत्तनों को उन्नति करने की प्रेरणा मिलेगी सभा इनको स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 84 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मेरा संशोधन मसौदा संबंधी है। मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 19 में 'Communications, that is to say, roads, bridges, ferries and other means of communications not specified in List I' (संचार, अर्थात् सड़कें, पुल, नौकाघाट और सूची 1 में अनुल्लिखित संचार के

अन्य साधन) शब्दों के स्थान में 'Roads, bridges, ferries and other communications with their help' (सड़कें, पुल, नौकाघाट और इनकी सहायता से अन्य संचार) शब्द रखे जायें।

मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति इस संशोधन को स्वीकार करेगी। इस संशोधन के द्वितीय भाग को मैं पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं नहीं समझता हूं कि इस प्रस्थापित संशोधन में कोई खास गुण है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 19 में 'Communications, that is to say, roads, bridges, ferries and other means of communications not specified in List-I' (संचार, अर्थात् सड़कें, पुल, नौकाघाट और सूची 1 में अनुल्लिखित संचार के अन्य साधन) शब्दों के स्थान में 'Roads, bridges, ferries and other communications with their help' (सड़कें, पुल, नौकाघाट और इनकी सहायता से अन्य संचार) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 19 में से:–

(क) 'minor railways subject to the provisions of List I' शब्द तथा अंक, और

(ख) 'ports subject to the provisions in List I with regard to major ports' शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 19 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया जाये।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 19 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 20

(संशोधन संख्या 86 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 20, सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं यह कहूंगा कि इस कार्यावली में 20, 21, 22, 24, 27, 29, 34 और 46 प्रविष्टियों पर कई संशोधन हैं। संशोधन वास्तव में एक ही प्रकार के हैं। मैं यह चाहता हूं कि समस्त भारत में कृषि और भूराजस्व प्रणाली इस प्रकार की हो कि वह अखिल भारत में लागू हो सके। हम इनको राज्य विषय बना रहे हैं जिनमें केन्द्र को व्यवहारत: कोई शक्ति नहीं होगी। उस दिन मैंने श्री जयरामदास दौलतराम के पत्र में से एक अंश पढ़ा जिसमें उन्होंने यह कहा था कि अब वह समय आ गया है जब कि केन्द्र को खाद्य संबंधी समस्त उत्तरदायित्व वहन कर लेने चाहियें। मैं समझता हूं कि यह मान लेना चाहिये कि कृषि, पशु, भूमि, वन इत्यादि में किसी अखिल भारतीय उपक्रमण के अनुसार केन्द्रीय निर्देशन के अधीन उन्नति करनी चाहिये। यह सत्य है कि उपक्रमण के लिये सूची 3 में संख्या 34 पर एक प्रविष्टि है। यदि हम उपक्रमण पर कोई भी पुस्तक उठा लें तो हम यह देखेंगे कि कोई भी उपक्रमण तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने क्षेत्र में भूमि और कृषि की सर्वोन्मुखी दीर्घकालीन उन्नति का समावेश न करें। आज हम यह सोच रहे हैं कि यदि इन मदों को हम सूची 3 में रख देंगे तो हम प्रान्तों को उनकी स्वायत्तता से वंचित कर देंगे। यह पूर्णत: असत्य है। सूची 3 में इनको रखने से हमारा अभिप्राय केवल यह है कि इन क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने, आवश्यकता पड़ने पर वित्तीय सहायता देने और कुशल मंत्रणा देने की केन्द्र को शक्ति होगी। मैं यह नहीं चाहता कि ये मद सूची 1 में रखे जायें वरन इनको सूची 3 में रखा जाये जिससे कि केन्द्र राज्यों में हस्तक्षेप तो न करे पर केवल उनको मन्त्रणा दे और उनकी क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करे। इस बात की ओर संकेत किया जा सकता है कि अधिनियम 1935 में भी जिस प्रकार का विभाजन प्रस्थापित किया जा रहा है वैसा ही पूर्ण विभाजन किया गया था। उस अधिनियम में गवर्नर जनरल का केन्द्रीय उत्तरदायित्व था जो सब शक्तियों से सर्वोपरि था और उसके कारण समस्त प्रशासन केन्द्र के अधीन रखा जा सकता था, पर आज हम संघ सरकार और राज्य सरकारों के कृत्यों में विभाजन कर रहे हैं और उनको पूर्णरूप से पृथक् कर रहे हैं। आज हमें यह सौभाग्य प्राप्त है कि समस्त देश पर एक ही पक्ष शासन कर रहा है, पर कल शायद यह न रहे और फिर सब राज्यों में उसी एक योजना का निर्वाह करना कठिन होगा। यदि खाद्य में भारत को स्वावलम्बी बनाना है तो समस्त देश के लिये एक बड़े परिमाण में सिंचाई की सुविधायें करनी होंगी, पर क्या हम यह जान सकते हैं कि प्रान्तों तथा राज्यों की ऐसी स्थिति नहीं होगी कि वे इन बड़ी-बड़ी सिंचाई की योजनाओं को, जिनमें करोड़ों रुपये खर्च होंगे, निर्वाह कर सकें? आज कल जितने क्षेत्र में सिंचाई होती है वह लगभग पचास करोड़ एकड़ है जिसमें से सरकारी नहरों द्वारा लगभग 28 करोड़ एकड़ की सिंचाई का हिसाब है। इन योजनाओं के लिये कुल खर्च लगभग 153 करोड़ का है। देशवासियों की योजना के अनुसार आगामी दस वर्ष में सिंचाई के साधनों में लगभग 400 प्रतिशत का विस्तार होना चाहिये। इस पर कुल खर्च 600 करोड़ का होगा। और इसके निर्वहन का खर्च लगभग 15 करोड़ होगा। इतना खर्च किसी भी प्रान्त की सामर्थ्य के अन्तर्गत नहीं होगा। मै सुझाव दूंगा कि इस विषय को अन्य विषयों के साथ केन्द्रीय निदेशन के अधीन रखना चाहिये जिससे कि सूची 3 में की प्रविष्टि 34 के अनुसार जो योजनायें हैं उनका केन्द्र और राज्य के सहयोग के परिपालन किया जा सके।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं:

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 20 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 20 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 20 सूची 2 में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 21

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3586 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रविष्टि 21 को नई प्रविष्टि 92 के रूप में सूची 1 में स्थानान्तरित किया जाये।"

श्रीमान्, कृषि एक महत्वपूर्ण विषय है। हम अपने विधायी निकाय में बहुत रुचि लेते रहे हैं और हमने उस मंत्रालय की कठोर आलोचना की है। मैं यह कहना चाहूंगा कि जब तक केन्द्र के पास पर्याप्त शक्तियां नही होंगी जब तक कृषि केन्द्र विषय नहीं बनाया जायगा। तब तक खाद्य प्रदाय और वितरण की समस्या को भली प्रकार से नहीं सुलझाया जा सकेगा और सब कार्यक्रम तथा योजनायें निष्फल हो जायेंगी। वास्तविक समस्या यह है कि भूमि के उप-विभाजन को और टुकड़ों-टुकड़ों में होने को किस प्रकार रोका जाये। यदि अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की नींव दृढ़ वैज्ञानिक आधार पर रखनी है तो हमें उत्तराधिकार की विधियों में परिवर्तन करना पड़ेगा। अत: मैं इस बात पर आग्रह करता हूं कि कृषि का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये, पर यहां तो केवल मैं यह कह रहा हूं कि इस विषय पर विधि निर्माण करने की शक्ति केवल केन्द्र के हाथों में ही रहे। यदि कृषि प्रणाली में सुधार नहीं किया जाता है तो हमारे प्रतिरक्षा और विदेश संबंधी समस्त विषय किसी लाभ के नहीं होंगे। भारत कृषि प्रधान देश है। यदि राजद्रोही आन्दोलनों का सफलतापूर्वक मुकाबला और सामना करना है तो केन्द्र को कृषि विषय अपने हाथों में ले लेना चाहिये। और भी कारण हैं जिनके आधार पर मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि कृषि को प्रान्तीय सरकारों को सौंपा जाये, पर जो पर्यवेक्षण किये गये थे उन पर ध्यान देते हुये मैं इन बातों का विस्तार नहीं करना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ श्री सक्सेना, क्या आप अपने तर्कों को फिर कहना चाहते हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 21 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

हम कृषि पर विचार कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में मैं केवल दो या तीन महत्वपूर्ण बातें कहूंगा। कृषि में दो प्रकार से विकास किया जा सकता है। सर्वप्रथम हम व्यापक रूप में खेती का कार्य कर सकते हैं अथवा खेती के क्षेत्र को हम बढ़ा सकते हैं। अंग्रेजी भारत में कुल 21 करोड़ एकड़ भूमि बोई जाती थी। लोक योजना के अनुसार दस वर्ष की अवधि में इस क्षेत्र में लगभग 10 करोड़ एकड़ नई भूमि और बढ़ा दी जायेगी। इस योजना से जो भूमि आज कल बोई जाती है उसमें लगभग 50 प्रतिशत और नई भूमि कृषि के योग्य बना कर बढ़ा दी जायेगी। इस प्रयोजन के लिये जितने खर्चे की आवश्यकता होगी उसका औसतन 60 रुपये प्रति एकड़ के हिसाब से अनुमान लगाया गया है। इस तरह इस कार्य के लिये 600 करोड़ रुपये की आवश्यकता होगी। मैं नहीं समझता हूं कि प्रान्त इतने खर्च को अपने ऊपर ले सकते हैं और न वे विभिन्न प्रान्तों के प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। अधिक पैदावार के लिये यह अपेक्षित है कि खाद पर्याप्त मात्रा में हो, बीज अच्छा हो इत्यादि, इत्यादि। योजना के अन्तर्गत इस कार्य के लिये आगामी दस वर्ष के लिये 720 करोड़ रुपये की आवश्यकता है। यह स्पष्ट है कि कोई अकेला राज्य इतने बड़े खर्चे का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकता है। अतः मैं समझता हूं कि इस प्रविष्टि को भी सूची 3 में होना चाहिये जिससे कि इस महान समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रान्तों और केन्द्र के प्रयत्नों में भी सामंजस्य हो सके।

***चौधरी रणवीर सिंह** (ईस्ट पंजाब : जनरल): सभापति जी, इस सिलसिले में मेरी यह अर्ज है कि बहुत सारे ऐसे हैं जो इन्टर-प्राविन्शियल हैं। मिसाल के तौर पर लोकस्ट वह इन्टरनेशनल है और कई पेस्ट हैं कि जो कि इन्टर-प्राविन्शियल हैं और सूबों को शायद उसके खतरे का पता भी न हो जबकि थोड़े दिनों बाद उस पेस्ट का दूसरे प्रान्त में हमला हो जाता है। वह इस चीज के लिये तैयार भी नहीं रहता और न उसका मुकाबला ही कर सकता है।

इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि (पेस्ट) को खासतौर से कांकरेट लिस्ट के अन्दर आना चाहिये। दूसरी बात यह है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है और इस समय हमारे देश में अनाज की कमी है इसलिये यह मामला एग्रीकलचर से ताल्लुक रखता है और सारे देश से इसका सम्बन्ध है इसलिये इसको कांकरेट लिस्ट में जाना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, कृषि विषय सभा के समक्ष अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है और कई सदस्यों ने इस विषय को केन्द्र के अधीन होने की आवश्यकता पर जोर दिया हैं यह हो सकता है कि इस बात के समर्थन में जो तर्क उन्होंने प्रस्तुत किये हैं उन में से अनेक तर्कों में बहुत कुछ बल हो। साथ ही साथ कृषि इस देश का मुख्य उद्योग है और राज्य का लगभग एक मुख्य सा कृत्य है और सामंजस्य स्थापित करने के प्रयोजन से कुछ शक्तियों को लेने से अधिक सामर्थ्य, मैं समझता हूं कि इस महान समस्या को सुलझाने के हेतु, केन्द्र में नहीं हैं। मैं विश्वासपूर्वक सभा में सदस्यों को यह बताऊंगा कि कुछ प्रस्थापनायें, लगभग इसी आधार पर जो कि इस समय की गई हैं, प्रान्तीय मंत्रियों के समक्ष जबकि दो माह पूर्व यहां समवेत हुये थे, रखी गई थीं और

उनके साथ उन सिद्धान्तों पर वाद-विवाद करने के लिये मसौदा-समिति को भी आमंत्रित किया गया था। पर प्रान्तीय स्वायत्तता के क्षेत्र में और अधिक आक्रमण करने पर यथेष्ट रूप में सामान्य विरोध हुआ था और इन प्रस्थापनाओं को छोड़ना पड़ा। मेरा यह विश्वास नहीं है कि इस विषय में केन्द्र साधनहीन है। प्रान्तों को कृषि में सुधार करने के निदेश देने और अनुदान द्वारा कृषकों को अन्य सुविधायें प्रदान करने के रूप में जैसाकि केन्द्र करता चला आया है और करता रहेगा एक मुश्त अनुदान के रूप में या विशिष्ट अनुदान के रूप में तथा अन्य रूपों में केन्द्र के कई प्रकार हैं। गत छह या सात वर्षों से कृषि सुधार में सहायता करने का जो केन्द्र को अनुभव है उसके आधार पर मैं समझता हूं कि अनुदान द्वारा कृषि की ठीक उन्नति करने में केन्द्र अच्छी सहायता कर सकेगा। यह कहने के अलावा सूची 1 में की प्रविष्टियों की ओर संकेत करने के अलावा तथा उन शक्तियों की ओर भी संकेत करने के अलावा जो विशिष्ट प्रयोजनों के लिये एक मुख्य अनुदान करने के लिए केन्द्र को है, मसौदा-समिति राज्य सरकारों के प्रशासन के एक प्रमुख मद को चाहे सूची 1 में अथवा सूची 3 में स्थानान्तरित करने के सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ है। श्रीमान्, मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3586 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रविष्टि 21 को नई प्रविष्टि 92 के रूप में सूची 1 में स्थानान्तरित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ इसके बाद मैं प्रो. सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 20 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ इसके बाद मैं प्रविष्टि 21 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 21 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 21 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 22

*__अध्यक्ष:__ इसके बाद हम प्रविष्टि 22 पर आते हैं और मैं देखता हूं कि प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना का एक संशोधन है कि सूची 2 की प्रविष्टि 21 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ और भी संशोधन हैं। मसौदा-समिति का संख्या 282 पर एक संशोधन है और संख्या 283 पर पंडित ठाकुर दास भार्गव का एक संशोधन है।

*__अध्यक्ष:__ हां, संख्या 282।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 22 में 'Improvement of stock' शब्दों के स्थान में 'Preservation, protection and improvement of stock' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, सभा को मैं यह बताना चाहूंगा कि इस संशोधन के लिये उत्तेजना का कारण वह संशोधन था जिसकी सूचना पंडित ठाकुर दास भार्गव ने दी है जो शब्दावली के सुधार के और प्रविष्टि 30 की शब्दावली में कुछ और शब्द बढ़ाने के संबंध में है जो अन्य पक्षियों और अन्य पशुओं की रक्षा के लिये निर्मित की जाने वाली प्रविष्टि है। उन्होंने "पशुओं की जाति का परीक्षण और उन्नति और पशु वध इत्यादि का निषेध करते हुये ढोरों की लाभदायक नस्ल" के विचार को प्रस्तुत किया था विशेषकर दूध देने वाले ढोरों के वध का निषेध करते हुये। इस विषय पर उनके साथ मसौदा-समिति ने वाद-विवाद किया था और हमने समझा कि उनके तर्कों में कुछ बल था और उनके संशोधन को रखने के लिये ठीक स्थान प्रविष्टि 22 में "पशुओं की जाति की उन्नति" के अंतर्गत था। साथ ही साथ उनके संशोधन के सब शब्दों को, विशेषकर जहां उन्होंने पशु वध के निषेध का उल्लेख किया था, हम न ले सके क्योंकि इन सूचियों में की प्रविष्टियां राज्य या केन्द्रीय सरकारों की विधायी शक्तियों का उल्लेख मात्र करती हैं और उस शक्ति का पृष्ठ पोषण करने वाली नीति का उल्लेख नहीं करती है। वास्तव में इन प्रविष्टियों की शब्दावली द्वारा नीति निश्चय करना अनुचित होगा। वास्तविक विचार यह है कि पशुओं की जाति की परीरक्षा और उन्नति द्वारा सरकार को पशु वध रोकने और पशुओं की जाति की रक्षा करने, दूध देने वाले मवेशियों की रक्षा करने इत्यादि के लिये पर्याप्त शक्ति होनी चाहिये। हमने सोचा कि उस विचार को विशेष कर रखने की आवश्यकता नहीं है जो निदेशक सिद्धान्तों में रख दिये गये हैं जिनमें वास्तव में नीति निदेश किया गया है। अत: हम समझते हैं कि जो प्रयोजन पं. ठाकुर दास भार्गव के मन में है उसकी पूर्ति जो संशोधन मैंने प्रस्थापित किया है उससे पर्याप्त रूप में हो जायेगी। वह संशोधन यह है कि पशुओं की जाति का परिरक्षण, उनकी रक्षा और उन्नति और इस प्रविष्टि के द्वारा जो शक्तियां सरकार में निहित की जा रही हैं उनसे वह पंडित ठाकुर दास भार्गव के विचारों का और अधिक पालन करने के लिये जो कुछ उपक्रम करना चाहती है वह कर सकती है। इसमें संदेह नहीं कि वे यह समझेंगे कि प्रविष्टि 22 की यह परिवृद्धि ठीक दिशा की ओर है और सभा ने दूध देने वाले पशुओं की रक्षा इत्यादि के संबंध का जो अनुच्छेद पारित किया था उसमें व्यक्त किये गये विचारों

का भी यह प्रविष्टि समर्थन करती है। मुझे पूर्ण आशा है कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी और मैं यह भी आशा करता हूं कि मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव का समाधान हो गया होगा कि इस प्रविष्टि से उस लक्ष्य की भी प्राप्ति हो जायेगी जो उनके विचार में था, यद्यपि जिन कारणों को मैं पहले बता चुका हूं उनके आधार पर हमने उनके वे ही शब्द नहीं रखे हैं जिनको जिस रूप में उनका मूल संशोधन है उसके अनुसार प्रविष्टि 13 में रखने का उन्होंने प्रयास किया था। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

*पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): अपने नाम के संशोधन को मैं पेश करना नहीं चाहता हूं पर आपकी अनुज्ञा से श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये गये संशोधन पर मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा। श्री कृष्णमाचारी से यह जान कर मुझे बहुत संतोष हुआ कि उन्होंने मैंने संशोधन में निहित विचार को स्वीकार कर लिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके विचार में यह बात थी कि पशुवध पर रोक सरकार की एक स्वीकृत नीति हैं इस सभा में हमने एक अनुच्छेद भी पारित किया हैं वह अनुच्छेद 38क है। इस अनुच्छेद का निर्देश इस बात को सिद्ध करेगा कि उसमें केवल ढोरों की नस्ल की ही उन्नति का विचार प्रस्तुत नहीं किया गया है वरन उसमें इससे भी अधिक दिया हुआ है और उसमें नीति का निर्धारण किया गया है जो इस प्रकार है:

"राज्य कृषि और पशु पालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा तथा विशेषत: गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरों की नस्ल के परिरक्षण और सुधारने के लिये उनके वध का प्रतिषेध करने के लिये अग्रसर होगा।"

श्रीमान्, लोक मांग के कारण आपने स्वयं एक समिति नियुक्त की थी। हम इस समिति की सिफारिश से परिचित हैं। परिरक्षण तथा विकास समिति की सिफारिशें प्रतिवेदन के पृष्ठ 14 पर हैं। उनकी अंतिम सिफारिशें इस प्रकार हैं:

"इस समिति का यह मत है कि किसी भी परिस्थिति में भारत में पशुवध वांछनीय नहीं है और उसका प्रतिषेध विधि द्वारा प्रवृत करना पड़ेगा। भारत की समृद्धि अधिकतर ढोरों पर निर्भर है और इस देश की आत्मा तभी संतुष्ट होगी जबकि पशुवध का पूर्णतया प्रतिषेध कर दिया जायेगा और इसके साथ-साथ ढोरों के सुधारने का काम उठाया जायेगा जिनकी दशा वर्तमान समय में दयनीय है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये समिति यह सिफारिश करती है कि इन बातों पर अमल किया जाये:

(1) सर्वप्रथम इस स्थिति पर तुरन्त ही अमल होना चाहिये कि जो यहां दिये गये हैं उन पशुओं को छोड़कर अन्य लाभदायक ढोरों के वध का पूर्ण प्रतिषेध हो:

(क) जिन पशुओं की आयु 14 वर्ष से अधिक हो और जो काम करने तथा नस्ल पैदा करने के अयोग्य हों।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(ख) किसी भी आयु के पशु जो अवस्था, चोट या अंग-भंग होने के कारण काम करने या नस्ल पैदा करने में असमर्थ हों।"

इन सिफारिशों में से मैं और अधिक नहीं पढ़ना चाहता हूं क्योंकि भारत सरकार ने खाद्य तथा कृषि मंत्री के द्वारा समिति की इन सिफारिशों को 24 मार्च को स्वीकार कर लिया था। अत: लाभदायक ढोरों के वध को रोकने के लिये सरकार वचनबद्ध है और लाभदायक ढोरों के वध को रोकने के लिये विधान-सभा में उसने एक विधेयक भी रखा है। ऐसा होने के कारण मेरा विनम्र निवेदन यह है कि इस प्रविष्टि का इस प्रकार संशोधन होना चाहिये था कि उसमें इस बात की भी संभावना रहती कि बाद में यह भी कहा जा सके कि ढोरों को मार कर ढोरों की रक्षा प्रवृत की जा सकती है। धीरेन्द्रोडाइट जी. पुरानेश द्वारा लिखित 'पशुवध विरोधी संघर्ष और उसका चर्म उद्योग पर प्रभाव' पुस्तिका मुझे दो दिन पूर्व प्राप्त हुई जिसमें इस बात का समर्थन किया गया है कि लाभदायक ढोरों की रक्षा लाभहीन पशुओं के वध द्वारा की जा सकती है। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि जब भारतीय सरकार ने एक समिति नियुक्त की और पशुवध पर रोक लगा कर इन ढोरों के परिरक्षण और रक्षण की नीति को स्वीकार किया तो फिर इस प्रतिषेध की नीति के रूप में स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये और ऐसी घोषणा करने में हमें संकोच नहीं करना चाहिये क्योंकि अनुच्छेद 38-क को हमने किसी सम्प्रदाय के किसी वर्ग की सहायता से पारित नहीं किया है वरन इस सभा के लगभग सब सम्प्रदायों की सहायता से पारित किया है। पशुवध प्रतिषेध समस्त संसार का एक मान्य सिद्धान्त है और यहां तक कि पाकिस्तान ने भी पशुवध पर रोक लगा दी है। अत: मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि जिसके कारण हम यह स्पष्ट न कह सकें कि भारत सरकार ने इस नीति को स्वीकार कर लिया है। यह कहा जा सकता है कि यह शब्द संविधान में न आयें पर मैं आगे यह और सुझाव दूंगा कि यदि वे केवल संक्षेप में रखना चाहते थे तो समस्त प्रविष्टि के स्थान में वे केवल 'पशु' शब्द रख सकते थे क्योंकि 'पशु' शब्द में पशुओं के रोग इत्यादि सब बातें आ जाती हैं। जब वे इस महत्वपूर्ण विषय के संबंध की कोई प्रविष्टि रखना चाहते थे तो उनको ऐसी प्रविष्टि रखनी चाहिये जो इस विषय में जनता के विचारों के अनुकूल हो। कल ही हमने डॉ. अम्बेडकर को यह विशद व्याख्या करते हुये सुना था जबकि वे धारा 223 और धारा 91 की चर्चा कर रहे थे कि यद्यपि प्रविष्टि 91 व्यर्थ है क्योंकि दोनों प्रविष्टियों में एक ही बात कही गई है पर फिर भी जनता के विचारों को स्थान देने के कारण और प्रान्तीय सरकारों का समाधान करने के कारण वे इस निरर्थक प्रविष्टि को रखेंगे। अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस मद में "पशुवध पर रोक" शब्दों के प्रयोग में सरकार क्यों संकोच करती है। यदि उसकी यही नीति है तो मैं नहीं समझता हूं कि यदि हम ठीक शब्दों का प्रयोग करें तो इस असांप्रदायिक सरकार का नाश हो जायेगा। कम से कम जनता की भावनाओं का समाधान करने के लिये ही यदि मसौदा-समिति इस मद का प्रयोग करती तो मुझे खुशी होती। फिर भी मैं मसौदा-समिति की बुद्धिमत्ता को सादर स्वीकार करता हूं और मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं। आखिरकार लोक भावना महत्व रखती है और यदि आप ठीक काम कर रहे हैं तो यह बिल्कुल ठीक है कि आप केवल

लोक भावना के अनुकूल ही न बनें, वरन् यह कह कर उसका समाधान करें कि आपने उसे स्वीकार कर लिया है। आपने सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है। पर ठीक शब्दों के प्रयोग करने में आप हिचक रहे हैं। मसौदा-समिति की इस शब्दावली से मुझे संतोष नहीं है पर उन्होंने मेरे शब्दों को निकालना ठीक समझा है इस कारण मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 22 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

इस प्रविष्टि में डॉ. अम्बेडकर ने संशोधन किया है और उन्होंने "पशु की जातियों का परिरक्षण, रक्षण और उन्नति" शब्दों का प्रयोग किया है। श्रीमान्, चोर दरवाजे से गौ वध पर रोक लगाने के लिये उपबन्ध करने की इस रीति का मैं विरोध करता हूं। उसके लिये स्पष्ट शब्दों में साहसपूर्वक उपबन्ध करने में मसौदा-समिति क्यों संकोच करती है। इतने महत्वपूर्ण विषय के रूपान्तर करने के प्रयत्न करने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। जहां तक गौ वध के रोक का प्रश्न है जिस रूप में यह प्रविष्टि है उसमें ऐसा कोई अर्थ नहीं है। केवल गौ-रक्षा के कारण ही नहीं परन्तु चूंकि इसमें अन्य समस्यायें भी अन्तर्ग्रस्त हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह प्रविष्टि सूची 3 में रखी जाये। यह प्रविष्टि पशु जाति की उन्नति के संबंध में है जो कि एक राष्ट्रीय समस्या है जिसको अकेले प्रान्त हल नहीं कर सकते हैं। अपने प्रान्त के जिस भाग में मैं हूं वहां ढोर इतने निम्न कोटि के हैं कि जब तक हम हिसार इत्यादि से गाय और सांड न मंगायें तब तक उनमें उन्नति नहीं कर सकते हैं। देश के अन्य भागों की दशा भी ऐसी ही है। यदि आप पशु जाति की उन्नति करना चाहते हैं तो आपको अखिल भारतीय योजना रखनी होगी जिसमें केन्द्र द्वारा सामंजस्य स्थापित करना होगा। यदि आप इस प्रविष्टि को सूची 3 अर्थात् सहगामी सूची में रखेंगे तो प्रान्तों को समस्त शक्तियां प्राप्त होंगी और केन्द्र इस प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित कर सकेगा। अतः इस प्रविष्टि को सूची 3 में होना चाहिये जिससे कि पशु जाति की उन्नति करने के लिये, जो देश की कृषि दशा सुधारने के लिये आवश्यक है, राज्य की योजना में अपनी निधि तथा ज्ञान से केन्द्र सामंजस्य स्थापित कर सके।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल) सभापति जी, इस बारे में मैं ज्यादा समय नहीं लेना चाहता हूं लेकिन एक बात मुझे कहनी है इसलिये मैं यहां पर आया हूं। यहां पर जो हम लोग पास करते हैं जिसमें हम कहते हैं, 'preservation, protection of, improvement of stock' मेरी समझ में इससे बहिष्कार नहीं होता। इसलिये मैं चाहता हूं कि इसके बदले में अगर हम रखें 'improvement of indigenous prest, of live stock' तो इससे बहुत ज्यादा अच्छा हो जायेगा कि हम क्या करना चाहते हैं। यह जैसा कि 'improvement of stock' क्या स्टॉक! यह मालूम नहीं होता, जब हम यह पढ़ते हैं। इसके बाद जब पढ़ते हैं 'prevention of animal diseases' उनको पढ़ते हैं लाइफ स्टॉक ऐसा करने से एक दम साफ हो जायेगा।

दूसरी बात यह है कि कंकरेन्ट लिस्ट में नहीं आना चाहिये। क्योंकि प्राविन्शयल लिस्ट में जब यह रखा गया है तो यह हर एक प्रान्त को मालूम हो जायेगा कि उनको किस तरह तैयारी करनी है। क्योंकि हम लोग जब देखते हैं कि हिसार

[श्री लक्ष्मी नारायण साहू]

और सिंध से जो जानवर भेजे गये हैं वे हमारे प्रान्त में अच्छी तरह से नहीं रह सके। उनके बच्चों का जीवन बहुत ही कम होता है। इसलिये मैं चाहता हूं कि इसको कंकरेन्ट लिस्ट में न देकर प्राविन्शयल लिस्ट में देने से बहुत अच्छा होगा। जो हालत हमारे प्राविन्स की है जो हमारे लाइफ स्टॉक है, उसकी उन्नति करने के लिये हम लोगों के जो प्रान्त के आदमी हैं इसके बारे में ज्यादा मालूम होगा और सेन्टर ऐसा नहीं कर सकेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, श्री सक्सेना का संशोधन मुझे अपने प्रान्त की एक कहावत के समान प्रतीत होता है जिसमें यह कहा गया है कि यदि आप आम के वृक्ष की ओर जितने पत्थर फेंक सकते हो उतने फैंकोगे तो उनमें कम से कम एक पत्थर तो आम में लगेगा और उसे नीचे गिरायेगा। इसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे मित्र के पास एक ऐसी योजना है जिसमें विषयों को सूची 2 से सूची 3 में स्थानान्तरित करने के लिये कई संशोधन हो और यह आशा है कि कम से कम एक संशोधन तो सभा द्वारा स्वीकार किया ही जायेगा। यदि यही बात है तब तो इसके बारे में सिवा इसके मुझे और कुछ नहीं कहना है कि इन विषयों के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्यों पर होना चाहिये।

अपने संशोधन को पेश करते हुये जब मैंने भाषण दिया था उस समय मैंने अपने माननीय मित्र श्री ठाकुर दास भार्गव के तर्कों का अनुमान किया था। हम उनसे पूर्ण सहानुभूति रखते हैं। हम यह मानते हैं कि जो प्रयोजन उनके विचार में हैं उसे निदेशक तत्वों में रख कर सभा ने उसे स्वीकार कर लिया है। पर जहां तक इन सूचियों में जो केन्द्र तथा प्रान्तों को विधायी शक्तियां देती हैं, किसी ऐसी बात के रखने का संबंध है जो नीति का कथन है, हमको यह कहना पड़ेगा कि हम उनसे सहमत नहीं हैं। अत: मैं समझता हूं कि उनको संतोष हो जाना चाहिये कि इस प्रविष्टि में उन शब्दों को रखे बिना ही वह प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। मैं आशा करता हूं कि जो संशोधन मैंने पेश किया है उसे सभा स्वीकार करेगी।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 22 में 'improvement of stock' शब्दों के स्थान में 'Preservation, protection and improvement of stock' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 22 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 22 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 22 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 23

प्रविष्टि 23 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 24

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 में 'loans' शब्द के पश्चात् 'Consolidation of agricultural holdings; State, co-operative and collective agricultural farms; acquisition by the State of rights in agricultural land' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान्, मैंने एक संशोधन और भेजा था कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये पर गलती से उसे छोड़ सा दिया गया है।

मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कुछ मदों को सूची 3 में स्थानान्तरण करने वाले संशोधनों पर आपत्ति की है। भारतीय संविधानिक सुधारों की संयुक्त समिति के प्रतिवेदन की कंडिका 238 की ओर मैं उनका ध्यान आकर्षित करूंगा जिसमें उसने यह कहा है:

"समवर्ती सूची द्वारा प्रस्तुत की गई समस्याओं को अब हम लेते हैं समवर्ती सूची के सिद्धान्त को स्वीकार करने के पक्ष में अपने तर्कों की व्याख्या तो हम कर ही चुके हैं, पर इस सूची में अन्तर्विष्ट विषयों के संबंध में केन्द्र को दी जाने वाली शक्तियों की ठीक-ठीक परिभाषा करना एक कठिन समस्या है। सर्वप्रथम हमें यह प्रतीत होता है कि यद्यपि केन्द्र के लिये यह आवश्यक है कि सूची में अन्तर्विष्ट विषयों में सामंजस्य स्थापित करने या उनके लिये विनियमों में समानता लाने की शक्ति संसद को हो, पर यह विषय स्वयं प्रमुख रूप से प्रान्तीय है और इन पर मुख्यत: प्रान्तीय नीति के अनुसार प्रान्त द्वारा प्रशासन किया जायेगा। अर्थात् इनका पूर्णतया फेडरल विषय होने की अपेक्षा उन विषयों से घनिष्ठ संबंध है जो सूची 2 में है। साथ ही साथ यह ध्रुव सत्य है कि इन परिस्थितियों में यदि केन्द्र की समवर्त्ती विधायी शक्ति को प्रभावान्वित करना है तो समान्य नियम यह होना चाहिये कि समवर्ती क्षेत्र में केन्द्र और प्रान्तीय अधिनियम में विरोध होने पर केन्द्रीय अधिनियम माना जाये।"

यह स्पष्ट है कि समवर्ती सूची में एक ऐसी सूची का उद्देश्य है जिसके विषय ऐसे हों जिनके प्रति राज्य की क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने और राज्यों को मंत्रणा देने की शक्ति केन्द्र को हो इस कारण जब मैंने यह सुझाव दिया था कि इन प्रविष्टियों को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये तो मैंने प्रान्तों को उनकी शक्तियों से वंचित करना नहीं चाहा था। मैं केवल यह चाहता हूं कि एककों को मंत्रणा देने और उनकी क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने की शक्ति केन्द्र को हो और इन क्रियाओं में प्रगति देने के लिये केन्द्र के वित्त सहायक सिद्ध होंगे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं समझता हूं कि समस्त सूची में यह विशिष्ट मद बहुत ही महत्वपूर्ण है और केन्द्रीय नियन्त्रण के अधीन लाये बिना आप निर्माण योजना को नहीं चला सकते हैं। मैं कुछ अंक उद्धृत करूंगा।

इस समय हम जमींदारी के मिटाने में लगे हुये हैं और मेरे प्रान्त में प्रतिकर पर ही लगभग 150 करोड़ खर्च होगा।

इसी प्रकार बिहार में जमींदारी सम्पत्ति को प्राप्त करने में बहुत राशि खर्च करनी पड़ेगी। समाज निर्माण की इन बड़ी-बड़ी योजनाओं में प्रान्तों ने बड़ी कठिनाई का अनुभव किया है। अतः यदि केन्द्र द्वारा इन योजनाओं को लिया जाता है तो, समस्त देश में इस प्रणाली के मिटाने की समान नीति भारत सरकार रख सकती है। मेरा यह मत है कि जब तक लगानदारी की इस वर्तमान प्राचीन प्रणाली को मेटा नहीं जाता है तब तक भारत समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता और उसकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की उन्नति नहीं हो सकती। यह कठिनाई प्रत्येक प्रान्त में है। सौभाग्य से मेरे प्रान्त में यह कठिनाई शीघ्र ही दूर हो जायेगी। यदि हम यह चाहते हैं कि इस जमींदारी प्रथा को समस्त देश में से शीघ्र ही मिटा दिया जाये तो यह विषय केन्द्र के हाथ में होना चाहिये। हमें अखिल भारत के लिये लगानदारी की समान प्रणाली रखनी चाहिये। अतः यदि यह विषय समवर्ती सूची में हो तो केन्द्र प्रान्त द्वारा पालन की जाने वाली नीति का विनियमन कर सकेगा और यथाशक्य कम समय में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने में सफलता प्राप्त कर सकेगा।

यदि हम भूमि की उन्नति करना चाहते हैं तो मैं सुझाव देता हूं कि भूसम्पत्ति के संचय को एक व्यापक दस वर्षीय योजना में रखना पड़ेगा। लगभग 20,000 संयुक्त फार्म स्थापित करने होंगे जिसमें 3 करोड़ रुपया लगेगा। किसी एक अकेले एकक में इतनी धन राशि नहीं मिल सकती। अतः मैं सुझाव देता हूं कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3611 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

आपकी अनुज्ञा से मैं इससे अगले संशोधन को भी पेश करता हूं।

"कि संशोधनों की सूची 2 के संशोधन संख्या 3611 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये।

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 के स्थान में निम्न प्रविष्टि रखी जाये:

'24. Land, that is to say, rights in or over land, land tenures including the relation of landlord and tenant, and the collection of rents; transfer

and alienation of agricultural land; land improvement and agricultural loans; colonization subject to the supervision, direction and control of the Union Government.'"

(24. भूमि अर्थात् भूमि के अन्दर या उसके ऊपर के अधिकार, भू स्वामी और आसामी के संबंध के सहित लगानदारी और लगान उगाना, कृष्य भूमि का हस्तान्तरण और अन्य संक्रामण; भूमि सुधार और कृषि के लिये कर्ज; संघ सरकार के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन उपनिवेशन।)

मेरे माननीय मित्र श्री शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों की मैं हृदय से पुष्टि करता हूं। उन्होंने दृढ़ आधार ग्रहण किया था पर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला वह उसके अनुरूप नहीं था। उन्होंने इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित करने के तर्क को पुष्ट किया है। मैं इस बात से सहमत हूं कि इस विषय में अखिल भारतीय योजनाकरण और समानता हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम इन संशोधनों को स्वीकार नहीं करते हैं।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन संख्या 88 पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची 2 के संशोधन संख्या 3611 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 के स्थान में निम्न प्रविष्टि रखी जाये:

'24. Land, that is to say, rights in or over land, land tenures including the relation of landlord and tenant, and the collection of rents; transfer and alienation of agricultural land; land improvement and agricultural loans; colonization subject to the supervision, direction and control of the Union Government.'"

(24. भूमि अर्थात् भूमि के अन्दर या उसके ऊपर के अधिकार, भू-स्वामी और आसामी के संबंध के सहित लगानदारी और लगान उगाना, कृष्य भूमि का हस्तान्तरण और अन्य संक्रामण; भूमि सुधार और कृषि के लिये कर्ज; संघ सरकार के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन उपनिवेशन।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन संख्या 305 पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 में 'loans' शब्द के पश्चात् 'Consolidation of agricultural holdings; State, co-operative and collective agricultural farms; acquisition by the State of rights in agricultural land' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची 2 के संशोधन संख्या 3611 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

'कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद हमारे पास प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना का अगला संशोधन है,

प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 24 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 24 भाग 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 24 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टियां 25 और 26

प्रविष्टियां 25 और 26 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गईं।

प्रविष्टि 27

***अध्यक्षः** यदि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद संशोधन संख्या 89 पेश कर रहे हैं तो वे अपने पुराने तर्कों को दुबारा न कहें।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ जी नहीं, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 27 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

*__अध्यक्ष:__ आगे के संशोधन पर भी श्री सक्सेना अपने तर्कों को न दुहरायें।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं केवल दो ही मिनट लूंगा, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 27 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

इस संबंध में मैं अपने यहां के वनों की हालत की ओर निर्देश करना चाहता हूं। 1,200,000 वर्ग मील वन में से लगभग 54,000 वर्ग मील वन दुर्गम है। वे अभी तक अविदोहित हैं। अत: खोज तथा विदोहन करने और अखिल भारतीय आधार पर गवेषणा करने के विचार से तथा विभिन्न राज्यों की क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करने के लिये मैंने यह संशोधन पेश किया है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना द्वारा प्रकट की गई समस्त भावनाओं की मैं पुष्टि करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 27 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 27 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 27 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 27 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 28

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 में से 'and oilfields' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

सूची 1 में एक इसी प्रकार की प्रविष्टि को पेश करते हुये इस बात की व्याख्या की जा चुकी है। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

*__अध्यक्षः__ इसके बाद का संशोधन।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मैं अन्य कोई संशोधन पेश नहीं कर रहा हूं।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 में से 'and oilfields' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 28 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 28 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 28 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 29

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 29 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 29 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 29 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 29 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 30

(संशोधन संख्या 94 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 30 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'30. Protection of wild animals and birds.'"

(30. वन्य पशुओं और पक्षियों की रक्षा।)

यह सुझाव दिया गया था कि संविधान के मसौदे में यह प्रविष्टि जिस प्रकार से है उसकी शब्दावली में संशोधन किया जाये, अतः जिन आधारों पर मैंने सुझाव दिया था उनके अनुसार इसमें संशोधन कर दिया गया है। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इस पर बोलना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये गये रूप में मैं इस प्रविष्टि का समर्थन करता हूं। पर ऐसा प्रतीत होता है कि वन्य पशु और पक्षियों के प्रति उन्होंने कुछ पक्षपात सा किया है। मैं समझता हूं कि उनको सर्व साधारण पशुओं और पक्षियों को ही ले लेना चाहिये था। केवल वन्य पशुओं और पक्षियों को ही क्यों रखा गया है? इस देश में अहिंसा की परम्परा है और जिस सीमा तक प्रान्तीय सरकारें सामान्यता पशुओं और पक्षियों के प्रति दया और सहानुभूति प्रकट कर सकती हैं उतनी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये।

(संशोधन संख्या 243 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 30 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'30. Protection of wild animals and birds.'"

(30. वन्य पशुओं और पक्षियों की रक्षा।)

संशोधन स्वीकार किया गया

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 30 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 30 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 31

*__प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 31 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 31 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 31 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 31 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 32

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 32 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'32. Trade and commerce within the State, subject to the provisions of entry 35-A of List III; markets and fairs.'"

(32. सूची 3 की प्रविष्टि 35-क के उपबन्धों के अधीन राज्य के अंतर्गत व्यापार और वाणिज्य; मंडियां और मेले।)

श्रीमान्, चूंकि समवर्ती सूची में हमने एक ऐसी प्रविष्टि रख दी है जो केन्द्र द्वारा नियंत्रित व्यापार, वाणिज्य और औद्योगोत्पादित वस्तुओं के संबंध में केन्द्र को निर्देश देने की शक्ति प्रदान करती है इस कारण यह संशोधन आवश्यक समझा गया है। और इसी कारणवश यह परिवर्तन किया गया है अन्य किसी कारणवश नहीं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3616 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 32 में 'provisions of List I' शब्दों और अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** अन्य कोई संशोधन नहीं है। प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3616 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 32 में, 'provisions of List I' शब्दों और अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 32 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'32. Trade and commerce within the State, subject to the provisions of entry 35-A of List III; markets and fairs.'"

(32. सूची 3 की प्रविष्टि 35-क के उपबन्धों के अधीन राज्य के अंतर्गत व्यापार और वाणिज्य मंडियां और मेले।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 32 सूची 2 का अंग बनाया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 32 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 33

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 33 को अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान्, चूंकि इस संबंध का उपबन्ध इसी प्रयोजन के लिये अन्यत्र कर दिया गया है इस कारण यह प्रविष्टि आवश्यक नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3617 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

'33. Regulation of trade, commerce and intercourse with other States for the purposes of the provisions of article 244 of this Constitution subject

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

to the supervision, direction and control of the Government of India.'"

(33. भारत सरकार के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण के अधीन इस संविधान के अनुच्छेद 244 के प्रयोजनार्थ अन्य राज्यों से व्यापार, वाणिज्य और समागम का विनियमन।)

*__अध्यक्ष:__ क्या आप अगला संशोधन 99 पेश करना चाहते हैं?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3617 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'included in List I' अंक व शब्द रखे जायें।"

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3617 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

'33. Regulation of trade, commerce and intercourse with other States for the purposes of the provisions of article 244 of this Constitution subject to the supervision, direction and control of the Government of India.'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन सं. 3617 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'included in List I' अंक व शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 33 को अपमार्जित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

राज्य-सूची में से प्रविष्टि 33 अपमार्जित की गई।

प्रविष्टि 34

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 34 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

यह एक महत्वपूर्ण संशोधन है। मैं यह चाहूंगा कि सभा इस समस्या के गुरुत्व को समझे। हम सब यह चाहते हैं कि देहात ऋणमुक्त हो जायें। श्रीमान्, इस संबंध में भारत की आर्थिक उन्नति के लिये लोक योजना में से एक उद्धरण पढ़ कर सुनाऊंगा जो इस प्रकार है:

"इस असामाजिक लगानदारी की समस्या के साथ-साथ अन्य समस्या जिसको हल किया जायेगा वह देहता के ऋण की समस्या होगी। सन् 1929 में महाजनी

पूछताछ संबंधी केन्द्रीय समिति द्वारा अनुमान किया हुआ देहात का ऋण 200 करोड़ रुपया था। इसके बाद के आंकों में यह संख्या बहुत बढ़ गई है। भारत की रक्षा बैक के कृषि-ऋण विभाग के प्रतिवेदन के अनुसार सन् 1937 में यह आंक लगभग 1800 करोड़ रुपया है। यह संभव नहीं हो सकता कि सन् 1937 के बाद इस राशि में कोई अधिक कमी हुई हो और न तत्कथित वर्तमान गल्ले की तेजी ने ही इसमें कोई सारवत् कमी की है। कृषकों की इस आबादी के क्षेत्र में साहूकारों का अधिक आतंक है जो अन्य आबादियों के क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक बुरी हालत में है।

"तेजी के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उस क्षेत्र को कोई लाभ हुआ है। इसके विपरीत यह ऋण वर्षों के संचित ऋण का प्रतीक है। यह मानी हुई बात है कि विभिन्न प्रान्तों में के ऋण संबंधी विधान इस समस्या को स्पर्श तक नहीं कर पाये हैं। अत: हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस ऋण की मात्रा को पहले कम किया जाये फिर उसे राज्य को दिया जाये। उदाहरणार्थ मद्रास प्रान्त में किये गये इस प्रकार के प्रयोग एक लाभदायक पथ-दर्शक के रूप में कार्य करते हैं। सन् 1938 के मद्रास कृषक साहाय्य अधिनियम के क्रियान्वित होने के कारण यह ऋण लगभग 47 प्रतिशत कम कर दिया गया और किसी तर्क के आधार पर इस अधिनियम के उपबन्धों को उग्र नहीं कहा जा सकता है। पंजाब में ऋण समझौता मंडलियों (डैट कन्सीलियेशन बोर्ड्स) के प्रवर्तन के अधीन 40 लाख के ऋण का समझौता लगभग 14 लाख में किया गया। अत: राज्य द्वारा ऋण के लिये जाने के पूर्व वर्तमान ऋण को केवल लगभग 25 प्रतिशत ऋण मान लेना संभव होना चाहिये और इसे आवश्यक समझना चाहिये। वर्तमान ऋण की राशि 1,000 करोड़ रुपया मान कर जो ऋण राज्य द्वारा लिया जायेगा वह 250 करोड़ रुपया रह जायेगा।

> "लगान लेने वालों तथा प्रयोग करने वालों को भी इस प्रकार 1985 करोड़ रुपया मिल जायेगा। यह राशि राज्य द्वारा हुंडियों के रूप में दी जायेगी। ये हुंडियां 40 वर्ष के लिये तीन प्रतिशत ब्याज की दर से होनी चाहिये और राज्य को अनिवार्यत: ये हुंडियां अपने अधिकार में रखनी चाहियें। इन हुंडियों पर राज्य द्वारा दी जाने वाली राशि लगभग 60 करोड़ होगी।''
>
> "इन आरम्भिक उपक्रमों को करने पर कृषकों के हित में कृषि उपज की वृद्धि करने की योजित अर्थव्यवस्था निर्भर करेगी। जब तक वर्तमान स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक अपने किसानों के इस बड़े समुदाय के जीवनस्तर में कोई सुधार होने की आशा नहीं हो सकती है। और फलत: पुष्ट, स्थायी और सुरक्षित आधार पर देश में औद्योगिक ढांचे के निर्माण की आशा नहीं हो सकती है। इन उपरोक्त उपक्रमों के पालन करने में जो कठिनाइयां हैं उनसे हम परिचित हैं, पर हमें अन्य कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता।"

अत: यह स्पष्ट है कि यदि हम वास्तव में कृषि संबंधी ऋण को हटाना चाहते हैं तो राज्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप में कार्यवाही करने पर यह समस्या हल नहीं हो सकती हैं केवल किसी व्यापक उपक्रम द्वारा ही इन समस्याओं को हल किया जा सकता है जिसका, राज्य की सरकारों के साथ संघ सरकार के पूर्ण सहयोग को प्राप्त कर साहसपूर्वक प्रवर्तन हो। इसी कारण मैंने यह सुझाव दिया है कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

श्रीमान्, इस उद्देश्य से ही मैंने अपना संशोधन प्रस्तुत किया है। मैं समझता हूं और मुझे पूरा विश्वास है कि जब तक हम किसी व्यापक उपक्रम को अंगीकार नहीं करेंगे और प्रान्तों और केन्द्रों की कार्यवाहियों में सामंजस्य स्थापित करने की शक्ति नहीं रखेंगे तब तक हम अपने देश की हालत को नहीं बदल सकते हैं। और भारत को आदर्श नहीं बना सकते हैं अतः सभा द्वारा ध्यानपूर्वक सच्चाई से विचार करने के हेतु मैं अपना संशोधन उपस्थित करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 34 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 34 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 34 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 35

***अध्यक्षः** इस प्रविष्टि पर मुझे कोई संशोधन नहीं दिखाई देता है।

***श्री एच.वी. कामतः** एक प्रश्न के स्पष्टीकरण के हेतु क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि 'inns' (सराय) शब्द में क्या विश्राम गृह और उपहार गृह आ जाते हैं? सूची में विश्राम गृह और उपहार गृह के लिये कोई उपबन्ध नहीं है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यही विचार प्रतीत होता है यहां हमने एक अप्रचलित शब्द ले लिया है और मैं इस बात से सहमत हूं कि मेरे माननीय मित्र द्वारा उठाये गये प्रश्न में कुछ बल है पर मैं समझता हूं कि जो प्रयोजन उनका है वह उस शब्द के अन्तर्गत आ जाता है।

***श्री आर.के. सिधवाः** 'inns' का अर्थ शब्दकोष में धर्मशाला है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** नहीं, यह नहीं है।

***अध्यक्षः** इस प्रविष्टि पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 35 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 35 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 36

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 36 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'36. Production, supply and distribution of goods subject to the provisions of entry 35-A of List III.'"

(36. सूची 3 की प्रविष्टि 35-क के उपबन्धों के अधीन रहते हुये वस्तुओं का उत्पादन, सम्भरण और वितरण।)

जो शब्द बढ़ाये गये हैं वे 'सूची 3 की प्रविष्टि 35-क के उपबंधों के अधीन रहते हुये' हैं। मैं पहले भी यह कह चुका हूं कि उन उद्योगों की वस्तुओं के उत्पादन, सम्भरण और वितरण के विषय जो केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन हैं, सूची 3 में एक विशिष्ट प्रविष्टि है और इस कारण इन शब्दों का बढ़ाना आवश्यक है। श्रीमान्, मैं इस प्रस्ताव को पेश करता हूं।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसादः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3619 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 36 में 'provisions of List I' शब्दों व अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: मैं केवल संशोधन संख्या 310 पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 36 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

*अध्यक्षः प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3619 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 36 में 'provisions of List I' शब्दों व अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*अध्यक्षः प्रश्न यह है:

*कि सूची 2 की प्रविष्टि 36 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 36 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जायेः

'36. Production, supply and distribution of goods subject to the provisions of entry 35-A of List III.'"

(36. सूची 3 की प्रविष्टि 35-क के अधीन रहते हुये वस्तुओं का उत्पादन, सम्भरण और वितरण।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 36 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 36 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 37

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 37 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जायेः

'37. Industries, subject to the provisions of entry 64 of List I.'"

(37. सूची 1 की प्रविष्टि 64 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये उद्योग।)

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूंः

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3620 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 37 में 'provisions of List I' शब्दों और अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि संशोधनों की सूची की संशोधन संख्या 3620 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 37 में 'provisions of List I' शब्दों और अंक के स्थान में 'superintendence, direction and control of the Union Government' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष__: प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 37 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'37. Industries, subject to the provisions of entry 64 of List I.'"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष__: प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 37 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 37 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 38

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3621 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List III' शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।"

*__श्री एच.वी. कामत__: अध्यक्ष महोदय, एक औचित्य प्रश्न हैं संशोधन संख्या 3621 पेश नहीं किया गया है अत: मैं नहीं समझ पाता हूं कि जब तक कि वह पेश नहीं किया जाता है तब तक यह संशोधन कैसे पेश किया जा सकता है।

*__अध्यक्ष__: इनके संशोधन में केवल 'अपमार्जित' शब्द के स्थान में 'सूची 3 में स्थानान्तरित' शब्दों को रखने का प्रयास किया गया है। अपमार्जन स्थानान्तरण नहीं है। हम यह नहीं चाहते हैं कि इस प्रविष्टि के अपमार्जन करने की प्रस्थापना पेश की जाये। हम उन्हें पेश किया हुआ समझते हैं। क्योंकि उनका रूप निषेधात्मक है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: श्रीमान्, इस देश में खाने की तथा अन्य वस्तुओं में अपमिश्रण के अनुपात ने बड़ा हानिकारक रूप ग्रहण कर लिया है। यह समस्या केवल एक ही प्रान्त में नहीं है। अत: इसे अखिल भारतीय रूप में सुलझाना चाहिये। ऐसी कोई भी खाद्य वस्तु नहीं है जो हमें शुद्ध मिल सके। जब हम दूध खरीदते हैं तो दूध की अपेक्षा पानी की मात्रा हमें अधिक मिलती है। सच तो यह है कि ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें अपमिश्रण न किया गया है। श्रीमान्, यह दोष भारत में सर्वत्र फैल गया है। अत: यह उचित है कि यह भारत सरकार जो लोक सेवक होने का ढिंढोरा पीटती है इस मुख्य विषय में लोक सेवा करे।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 38 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

प्रविष्टि 38 खाने की तथा अन्य वस्तुओं के अपमिश्रण के सम्बन्ध का है। उसे राज्य सूची में रखा गया है। मेरा सुझाव यह है कि उसे समवर्ती सूची में स्थानान्तरित किया जाये, जिससे कि केवल प्रान्तीय सरकारों या राज्य की सरकारों को ही नहीं, वरन केन्द्रीय सरकार को भी इस सम्बन्ध में विधान बनाने की शक्ति हो।

श्रीमान्, आरम्भ में ही मैं आपको यह आश्वासन दे दूं कि मेरी यह इच्छा कदापि नहीं है कि मैं ऐसे समय में सभा का समय लेता, जबकि उसे समय की बहुत ही आवश्यकता है, पर इस विषय के महत्व के प्रति मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है। अत: मैं आपसे यह निवेदन करूंगा कि यदि मैं उन बातों के संबंध में, जिनके आधार पर मैं चाहता हूं कि इस संशोधन पर विचार किया जाये, जल्दी में कुछ टीका टिप्पणी करूं, तो कुछ मिनटों के लिये आप मुझे धैर्यपूर्वक सुनेंगे।

सन् 1937 में भारत सरकार ने केन्द्रीय परामर्शदात्री स्वास्थ्य मंडली नामक एक निकाय की स्थापना की, जो शक्ति के अन्तिम स्थानान्तरण के पूर्व तक जब तक, कि अन्तिम अन्तर्कालीन मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ, तब तक प्रकार्य करती रही थी। दैवयोग से इस केन्द्रीय परामर्शदायी स्वास्थ्य मंडली के जन्म से ही मैं उसका एक निर्वाचित सदस्य हूं। इस केन्द्रीय परामर्शदात्री स्वास्थ्य मंडली में केवल प्रान्तीय मंत्री और राज्य के स्वास्थ्य मंत्री ही नहीं थे, वरन उसमें ऐसे प्रमुख व्यक्ति भी थे, जो चिकित्सा वृत्ति तथा लोक स्वास्थ्य से संबंध रखते थे। कई वर्षों तक इस मंडली को खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण के प्रश्न की समस्या का सामना करना पड़ा। किसी भी सरकार के लिये इस समस्या का सुलझाना एक बड़ी कष्टकर बात थी। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का अपना-अपना स्तर था। इस का फल यह हुआ कि सिवाय गड़बड़ी के और कुछ न हुआ। किसी विशिष्ट प्रान्त के लिये जो आवश्यक था, वह दूसरे प्रान्त के लिये उपयुक्त न हुआ। अत: इस अनिश्चित दशा में भारत सरकार ने एक औद्योगिक समिति नियुक्त की, एक विशेषज्ञों की समिति, जो भारत में खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण की सब बातों को ले। वह शुद्ध रूप में एक औद्योगिक समिति थी। पर दुर्भाग्यवश अथवा सौभाग्यवश मैं भी उस प्रौद्योगिक समिति का सदस्य हुआ और उस विषय के अध्ययन पर मुझे पर्याप्त समय लगाना पड़ा। हमने सर्व-सम्मति से एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। प्रतिवेदन में यह संकेत किया गया था कि कुछ खाद्य-पदार्थ, जिनका एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त और एक राज्य से दूसरे राज्य में यातायात होता है, उनके अपमिश्रण पर किसी एक राज्य के विधान द्वारा कोई प्रभाव नहीं डाला जा सकता है। उदाहरणार्थ, घी को लीजिये या दूध से बनी हुई वस्तु लीजिये। मैं विशेषकर घी की ओर निदेश कर रहा हूं। युद्ध के पूर्व तक इस देश के भोजन में घी एक महत्वपूर्ण वस्तु होती थी, आज कल हमें घी मिलता ही नहीं, घी तो इस देश से लगभग विदा सा हो गया है खाने के तेल में हाइड्रोजन मिले हुए डालडा वनस्पति को धन्यवाद! उस समय यह अनुभव किया गया था कि घी, सरसों का तेल, नारियल का तेल जैसी वस्तुयें—नारियल और तिल का तेल तो कई जगह खाने के काम में आते हैं। दूध और दूध से बनी हुई वस्तुयें इस देश में स्वतन्त्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी व मंगाई जाती हैं, इस कारण जहां ये बेची जाती हैं, केवल वे भी स्थान ऐसे स्थान नहीं हैं, जहां इस दृष्टता का सामना किया जाये। विशेषज्ञों

की समिति ने यह मालूम किया कि कुछ अनिवार्य परीक्षण हैं। घी के लिये ब्यूटिरो रिफ्रेक्ट्रो मीटर परीक्षण, रिचरेस्ट बोल्ने वेल्यू परीक्षण, सेपोनिफिकेशन वेल्यू परीक्षण, आइडीन वेल्यू परीक्षण, फिटेस्टीरोल एसेटेट परीक्षण, घनत्व परीक्षण तथा अन्य परीक्षण हैं। ये विषय प्रौद्योगिक हैं और इन समस्त विवरणों को देकर मैं सभा की शिथिल रुचि नहीं करना चाहता हूं। अंतिम तथ्य यह है कि विशेषज्ञों की समिति ने, जिसमें बाहर से बुलाये गये विशेषज्ञ भी थे, यह मालूम किया कि इन परीक्षणों के सम्बन्ध में भी कोई एक बात ऐसी सर्वोपरि होनी चाहिये, जो घी की सब किस्मों पर लागू हो। उदाहरणार्थ, घी काठियावाड़ में होता है। उनके यहां परीक्षण की एक शैली है। दूसरा स्थान गुन्टर है, वह अपने परीक्षण की एक और ही शैली से काम लेता है। संयुक्त प्रान्त के खुरजा में परीक्षण की एक अन्य शैली है। हमारे प्रान्त के समान उपभोक्ता प्रान्त जैसे कि बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आसाम की, जो इस वस्तु का उपभोग प्रान्त से बाहर के स्थानों से मंगा कर करते हैं, दशा निराशाजनक है। वे इस समस्या को अपने ही प्रान्त के साधनों द्वारा नहीं सुलझा सकते हैं। वे केवल यही कर सकते हैं कि यदि किसी विशेष प्रान्त के किसी विशेष नगर में दूध का विक्रय होता है, तो प्रान्त के खाद्य पदार्थ अपमिश्रण अधिनियम के अधीन वे दुग्ध परीक्षक यंत्र से उसकी जांच कर सकते हैं, जिससे केवल पानी का प्रतिशत अंश मालूम किया जा सकता है। आज यह मालूम कर लिया गया है और इसका पर्याप्त प्रचार हो गया है कि यह परीक्षण पूरा धोखा है और अकृत्रिम उपायों से कुछ शक्कर के पदार्थ मिला कर अपमिश्रत वस्तु में हम विनिहित स्तर ला सकते हैं।

अत: भारत सरकार ने एक अखिल भारतीय खाद्य पदार्थ अपमिश्रण अधिनियम पारित करना आवश्यक समझा। सब प्रान्तों से परामर्श कर हम लोगों ने एक अनुकरणीय अधिनियम का मसौदा बनाया। उस अधिनियम को विधान-मंडल में प्रस्तुत करने के पूर्व ही शक्ति हस्तान्तरण हुआ। विशेषज्ञों की समिति ने जो कुछ मालूम किया, वह वर्तमान है और भारत सरकार को यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि केन्द्र द्वारा बिना किसी इस प्रकार का विधान बताये खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण करने की इस समस्या को सुलझाना एक निराशाजनक कार्य होगा। मेरे माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह ठीक कहा कि यह बात इतनी बढ़ गई है कि दुखदायी हो गई है।

श्रीमान्, इन हाइड्रोजन युक्त खाने के तेलों के सम्बन्ध में जो शैली आपने ग्रहण की है, उस की बड़ी कृतज्ञतापूर्वक देश प्रशंसा करता है। यदि अन्य प्रमुख व्यक्ति भी इसके विरुद्ध दृढ़ हो जायें, तो खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण को रोका जा सकता है। यदि इसे केवल प्रान्तीय विधान-मंडल पर छोड़ा जाये, तो यह नहीं हो सकता है। उदाहरण के रूप में सरसों के तेल में जो दुखद अपमिश्रण हो रहा है उसे हम आज बंगाल में पाते ही हैं। कलकत्ता निगम के लोक स्वास्थ्य विभाग ने यह घोषणा कर दी है, कि निगम नगर और देहाती क्षेत्रों में भी जलंधर का संक्रामक रोग हो रहा है चाहे आप उसे बैरी बैरी कहें या कुछ और कहें, इस रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। उनका कहना है कि सरसों के तेल में के विष के उपभोग के कारण आप किसी समय भी बिना किसी प्रकार की सूचना दिये हुए स्वर्गधाम जा सकते हैं। उनका कहना है कि बंगाल, बिहार और उड़ीसा में, जहां

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

अधिकतर सरसों का तेल खाने के काम में आता है, इस तेल में धतूरे के बीज मिला दिये जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए संकटजनक हैं। पटना, भागलपुर और कलकत्ते में जो गरीब व्यक्ति तेल बेचता है, वह विचारा उसे किसी अन्य प्रान्त जैसे कि संयुक्त प्रान्त से मंगाता है। अधिक से अधिक हम यह कर सकते हैं कि उस व्यक्ति को पकड़ लें, इस अनुच्छेद की कुछ जांच करें और फिर आप उसे दंड दें। वह व्यक्ति यह कहेगा और उसके इस कहने में बहुत कुछ सार है कि "मैंने क्या किया है? मैंने ये पचास या साठ या दो सौ टीन संयुक्त प्रान्त में के अमुक-अमुक स्थान से खरीदे हैं। हमारे यहां का माल भेजने का वह एक मुख्य केन्द्र है।" जिस स्थान पर उस वस्तु की फुटकर बिक्री होती है, वहां की प्रान्तीय सरकार को यह शक्ति नहीं है कि वह दूसरे प्रान्त से भेजे गये माल के बारे में कुछ कर सके। वह केवल यही कर सकती है कि इन छोटे दुकानदारों को, फुटकर बेचने वालों को पकड़े और उन पर मुकदमा चलाये।

यह बड़े महत्व का विषय है। आपको इस विषय की तह तक जाना चाहिये और वहीं से इस बुराई को रोकना चाहिये। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस सभा में यह विषय ऐसे समय पर आया है, जबकि उपस्थिति बहुत कम है और सदस्य दत्तचित्त नहीं हैं। परन्तु सभा को मैं यह बता दूं कि उस समिति के सदस्य के रूप में या कदाचित केन्द्रीय परामर्शदात्री स्वास्थ्य मंडली का इस सभा में केवल अकेला ही जीवित सदस्य शेष रहने के रूप में मैं कुछ जोर दे कर कह सकता हूं और इस प्रकार जोर देकर कहना विशेषकर मेरे ही अधिकार की बात है, और इस बात पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि देश खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण को मिटाने के लिये दृढ़ निश्चय किये हुए हैं, तो वह इस प्रकार उखड़े मन से प्रान्तीय क्षेत्र में इस विषय को रख कर नहीं कर सकता है। मैं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र मसौदा-समिति वाले श्री टी.टी. कृष्णमाचारी उठ कर यही कहेंगे कि इसके लिये संघ सूची की 66-क प्रविष्टि में हमने "वस्तुओं का मान स्थापन" उपबन्ध रख दिया है। मैं उनको यह स्पष्ट कह दूं कि यह परिस्थिति का मुकाबला नहीं कर सकेगा। संघ सूची में आप "वस्तुओं का मान स्थापन" रख सकते हैं, पर राज्य सूची की प्रविष्टि 38 में आप निश्चित रूप से यह कहते हैं "खाद्य पदार्थों का अपमिश्रण" प्रान्तीय क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। जब कभी केन्द्र खाद्य पदार्थों पर विधान बनायेगा और मान स्थापन विनिहित करेगा, तो उस पर प्रान्तीय सरकारें तुरन्त ही चीख पुकार करने लग जायेंगी-"आप हमारे क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं, क्योंकि खाद्य पदार्थों का अपमिश्रण राज्य सूची में की प्रविष्टि 38 में विशिष्ट रूप से उपबंधित है।"

मैंने केवल एक या दो विषयों का ही उल्लेख किया है। मैं घंटों तक इस विषय पर भाषण दे सकता हूं। इस विषय में हमें पूरे दो वर्ष लग गये हैं और अब मैं देखता हूं कि विभिन्न प्रान्तों के स्वास्थ्य मंत्रियों के प्रतिनिधियों और बाहर के विशेषज्ञों के इतना परिश्रम करने पर तथा अत्यधिक धन खर्च करने पर भी उनकी जांच पर अमल न किया जा सका। क्योंकि राजनीति में यकायक परिवर्तन हो गया। अब चूंकि हम एक संविधान बनाने जा रहे हैं। मसौदा समिति के सदस्यों से इस पहलू पर विचार करने के लिये मैं निवेदन करूंगा कि वे इस विषय की तह तक पहुंचे, जिससे कि अब भी हमें केन्द्रीय परामर्शदात्री स्वास्थ्य मंडली

की जांच पर अमल कर सकें। यद्यपि वह समिति अब नहीं है। मेरी अभिलाषा है कि माननीय स्वास्थ्य मंत्री यहां होते। मुझे विश्वास है कि यदि भैषजिक सेवाओं के मुख्य निदेशक यहां होते, तो वे मेरा समर्थन करते। यह मेरा दुर्भाग्य है कि सभा में केन्द्रीय परामर्शदात्री मंडली का केवल मैं ही अकेला सदस्य हूं और कोई अन्य व्यक्ति मेरा समर्थन करने वाला नहीं है। लोक स्वास्थ्य विभाग के सरकारी प्रतिनिधि भी यहां नहीं हैं।

अत: गम्भीरतापूर्वक मैं यह सुझाव देता हूं कि यदि इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित कर दिया जाये, तो कोई हानि नहीं होगी। मैं वैसा सदस्य नहीं हूं, जो बिना किसी बात के संशोधन पेश करते हैं। जब तक मेरे अन्त:करण में नैतिक रूप से विश्वास नहीं हो जाता है, तब तक मैं संशोधन पेश नहीं करता हूं अथवा भाषण नहीं देता हूं। आज खाद्य पदार्थ के अपमिश्रण ने वह रूप ग्रहण कर लिया है कि यदि आप इस समय उसे नहीं रोकेंगे, तो वह समस्त राष्ट्र का नाश कर देगा। अभी अभी मुझे उस आन्दोलन में रुचि हुई है, जिसको, श्रीमान्, जी, आपने डालडा के संबंध में आरम्भ किया है। महात्मा गांधी ने अपने विशिष्ट अन्तर्चक्षु से देखकर इस का ठीक सूत्रपात किया था। हाइड्रोजन युक्त तेल पर छह विभिन्न संस्थाओं में अनुसंधान किये जा रहे हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने जो फल प्राप्त किये हैं, उन पर मेरी उनसे बहुत देर तक चर्चा हुई। फल परस्पर विरोधी है। कदाचित हाइड्रोजन मिलाने की रीति में कोई दोष नहीं है। पर चिन्ताजनक बात तो उस मूलभूत तेल में है, जो रोग युक्त तिलहन और अन्य हानिकारक पदार्थों से मिलाकर निकाला जाता है और जिसका फल यह होता है कि हाइड्रोजन मिलाने के पश्चात् जो वस्तु तैयार होती है, उसमें वे अवगुण आ जाते हैं जो रोग पैदा करते हैं, अन्य पांच संस्थाओं के गवेषणाओं के फल की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। श्रीमान्, अध्यक्ष महोदय, आपने ठीक चेतावनी दी है। जब तक इन विषयों को केन्द्र तथा प्रान्त दोनों के द्वारा नहीं सुलझाया जायेगा, तब तक इस महान् सामाजिक दुर्गुण को मिटाया या रोका नहीं जा सकता। चूंकि मैं समझता हूं कि देश के स्वास्थ्य के हित में यह परमावश्यक है, इस कारण इस सभा के विचारार्थ मैं इस संशोधन को प्रस्तुत करता हूं।

(संशोधन संख्या 105 पेश नहीं किया गया।)

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने जो संशोधन पेश किया है, उसका मैं जोरदार समर्थन करता हूं। जहां तक मसौदा-समिति के सदस्यों और विद्वान डॉ. अम्बेडकर का संबंध है, कुछ समय पूर्व जब कि मैंने एक ऐसा ही संशोधन पेश किया था, तो उन्होंने अनसुनी कर दी। पर उस बात को मुझे बिना किसी शिकायत के सह लेना चाहिये, क्योंकि खाने के पदार्थों के अपमिश्रण को रोकने, चाहे वह आयात में आया हुआ हो, या चाहे निर्यात के लिये हो या किसी अन्य प्रयोजन के लिये हो, विश्लेषण के प्रबन्धन, उन वस्तुओं का नियंत्रण और विनियमन के संबंध के मेरे संशोधन को सूची 1 में एक प्रविष्टि के रूप में स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। यह बहुत आवश्यक है कि मैं यहा भाषण दूं, क्योंकि सूची 3 पर एक ऐसे ही संशोधन की मैंने सूचना दी है; पर यदि इस संशोधन पर मत लिया जाता है और यह अस्वीकार किया जाता है, तो उस समय मुझे वह संशोधन पेश करने अथवा भाषण तक देने से वंचित रखा जायेगा, क्योंकि आप ऐसा आदेश दे देंगे कि इस विषय पर वाद-विवाद हो चुका है और यह विनिश्चित किया जा चुका है।

[डां. पी.एस. देशमुख]

अत: श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करने के लिये मैं आपकी अनुज्ञा मांगता हूं और इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि जहां तक संघ सूची का संबंध है, जिस संशोधन की मैंने सूचना दी थी और जिसकी मैंने नये रूप से सूचना दी है, जो कि संशोधन संख्या 295 है, जिसके द्वारा खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण के विषय की प्रविष्टि को मैं इस प्रकार के परिवर्तित रूप में रखना चाहता हूं:

"आयात किये जाने वाले, निर्यात किये जाने वाले अथवा अन्य घरेलू प्रयोग के लिये खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण पर रोक, विश्लेषण का प्रबन्धन, ऐसी सब वस्तुओं का नियंत्रण और विनियमन।"

इस प्रश्न के महत्व को अभी मेरे मिश्र पं. मैत्र ने माननीय सभा-सदस्यों को भली प्रकार समझा दिया है और यद्यपि उस आयोग के केवल वे ही एक ऐसे सदस्य हैं, जो अभी तक जीवित हैं जिसका उन्होंने उल्लेख किया था, पर मैं आशा करता हूं कि समस्त सभा खाद्य पदार्थों के अपमिश्रण को रोकने की आवश्यकता के प्रति सचेष्ठ है। यह बड़े शर्म की बात है और इसे शीघ्रातिशीघ्र मिटा देना चाहिये। यह वास्तव में एक आश्चर्यजनक बात है कि दो वर्षों तक खाद्य पदार्थों में सब प्रकार का अपमिश्रण होता रहा और यह दुर्गुण अब भी घटने के कोई लक्षण प्रकट नहीं कर रहा है और इस बात के होते हुए भी कि हम सैकड़ों विधियां और अध्यादेश पारित करते चले जा रहे है और दर्जनों विधेयकों को शीघ्रता के साथ पारित करते चले जा रहे हैं, यहां तक कि एक एक विधेयक को दो-दो मिनट में पारित कर देते हैं। पर अभी तक सरकार कोई ऐसा विधेयक प्रस्तुत नहीं कर पाई, जो इस महत्वपूर्ण विषय का निपटारा कर सके। और इस दुर्गुण को रोक सके, जो समस्त राष्ट्र के स्वास्थ्य और समृद्धि का नाश कर रहा है। यह संभव है कि अन्य कोई अकेला दुर्गुण देश का इतना नाश नहीं कर सकता, जितना कि यह। हम जानते हैं कि यह अपमिश्रण इस परिमाण में हो रहा है कि लोगों ने इसके लिये कोई भी बात उठा नहीं रखी है। यहां मैं एक बड़े ही रोचक मामले का जिक्र करूंगा, जो मेरे प्रान्त में हुआ। एक सौदागर समस्त युद्ध काल में अर्थात् छह वर्षों तक बड़े-बड़े कढाओं में गुड़ पिघलाता रहा। पिघला कर वह उसमें लगभग 20 प्रतिशत मिट्टी मिलाता रहा। यह मिट्टी उन पुराने गढ़हों में से ली जाती थी, जिनकी मध्य प्रान्त में अधिकता है और जिनसे हमें बहुत अच्छी मिट्टी प्राप्त होती है। यह मिट्टी लगातार 20 प्रतिशत तक गुड़ के साथ मिलाई जाती रही और उन वर्षों यह अपमिश्रित गुड़ सब तरह के लोगों को बचा गया। मामला कचहरी में केवल इस कारण प्रस्तुत किया गया कि लालची सौदागर ने उस कुम्हार को, जो गदहों की पीठ पर लाद कर मिट्टी डालता था, उसके पैसे नहीं दिये और उसे न्यायालय में मामला चलाना पड़ा। इस बार अपराध का ज्ञान सरकार को इस प्रकार हुआ। इससे भी अधिक बुरे-बुरे मामले हैं।

अत: मैं यह मांग करता हूं कि यदि इसे संघ की अनन्य शक्तियों के अधीन रखना संभव नहीं है, तो कम से कम समवर्ती सूची में इस विषय को रखने की तो परम आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि एक ऐसा विधान होना चाहिये, जो इस प्रकार के मामलों की रोकथाम कर सके। जिस बात को मैं प्रस्थापित कर रहा हूं वह प्रत्येक कृषि प्रधान देश में की जाती है। कनाडा में सन् 1920 से सब प्रकार की कृष्योत्पादित वस्तुओं के उचित मान स्थापन के उपबन्ध हैं और

अपमिश्रण के अपराधों के दंड के उपबन्ध हैं। यहां तक कि अनुत्तरदायी अंग्रेजी सरकार भी इस विषय के प्रति सचेष्ट थी और इसी कारण इस प्रश्न पर विचार करने के लिये उसने एक आयोग नियुक्त किया था। पर हमारी स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार ने इस विषय के महत्व को नहीं समझा है और यह संशोधन अन्य बातों के साथ-साथ केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का इस महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। इस संशोधन में अधिकतर केन्द्र का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है, क्योंकि संभव है कि प्रान्तीय सरकारें असफल सिद्ध हों।

और किसी राज्य के लिये यह नितांत असंभव है कि वह इस दुर्गुण को रोक सके, क्योंकि अन्य राज्यों से भी समान प्रमुख रूप से इसका संबंध है। ऐसे पत्तन भी हैं, जहां से समस्त देश में अपमिश्रित वस्तुयें भेजी जाती हैं। अतः अखिल भारतीय विधान रखना आवश्यक है। केवल अपमिश्रित पर ही रोक नहीं होनी चाहिये। परन्तु सरकारी विश्लेषण करने वालों का भी प्रबन्ध होना चाहिये, जो यह परीक्षा कर सकें कि क्या क्या और कितना अपमिश्रण किया गया है और इस प्रकार जिन लोगों ने अपराध किया है, उनको उनका अपराध बताया जा सके। अतः मैं समझता हूं कि मेरे मित्र द्वारा पेश किया गया संशोधन बिल्कुल ठीक है और इस विषय को केवल राज्यों पर नहीं छोड़ना चाहिये। समवर्ती सूची में रखकर हम इस विषय पर राज्यों को उनकी विधान बनाने की शक्ति से वंचित नहीं कर रहे हैं, पर जहां तक आवश्यक समझा जाये, वहां तक हस्तक्षेप करने की शक्ति केन्द्र को होगी। मैं जानता हूं कि कई बार मसौदा-समिति की आलोचना हुई है। मैं इस आलोचना में दुबारा नहीं पड़ना चाहता हूं। पर मैं यह समझता हूं कि समिति के बारे में जो कुछ बातें कही गई हैं, उनमें से कुछ ठीक हैं कि उसे उन युक्तियुक्त बातों पर विचार न करने का हठ नहीं पकड़ना चाहिये। जो पहले उनके मन में पैदा न होने पाई थीं या जिन का उन पर पहले कोई प्रभाव न पड़ पाया था। मैं समझता हूं कि यह भी एक ऐसी ही बात है और इतनी अबेर होने पर भी मैं यह पूर्ण आशा करता हूं कि वे प्रस्थापित अनुच्छेद पर सहमत होंगे और इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित कर देंगे।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि कई भाषणों का होना आवश्यक है। हमारे सामने यह विषय स्पष्ट रूप से रखा जा चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** अध्यक्ष महोदय, इस प्रविष्टि को सूची 2 से सूची 3 में स्थानान्तरित करने में मेरे माननीय मित्र पंडित मैत्र जिस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उसके प्रति मैं उनसे बहुत सहानुभूति रखता हूं और एक क्षण के लिये भी मैं यह नहीं सोच सकता हूं कि पूर्व वक्ताओं ने खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण रोकने की आवश्यकताओं के संबंध में जो भिन्न-भिन्न तर्क प्रस्तुत किये हैं, उनका खंडन करूं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि ये तर्क दृढ़ आधार ग्रहण किये हुये हैं। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि अपमिश्रण होता है और इसे रोकना चाहिये। दु:ख तो यह है कि उसे रोके कौन? केन्द्र या राज्य? श्रीमान्, हमारे प्रौद्योगिक परामर्शदाता जो कि इस विशेष विषय के लिये स्वास्थ्य मंत्रालय है, उसने हमें यह तक सुझाव नहीं दिया है कि इस प्रविष्टि को सूची 2 से सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** आपने इस विषय का उल्लेख उनसे कभी किया भी था? जब ऐसा सुझाव उनके सामने रखा ही नहीं गया, तो यह कहने से क्या लाभ?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मेरे माननीय मित्र जरा एक मिनट तक धैर्य धारण करें। जिस जिस मंत्रालय का जिस जिस विषय में हित है, वह उनके पास भेजा जाता है और मैं यह कहूंगा कि लोक स्वास्थ्य संबंधी विधान के बारे में स्वास्थ्य मंत्रालय ने चाहा था कि उसे समवर्ती विषय बना दिया जाये। जैसाकि एक बार पहले भी कहा जा चुका है....

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, यहां स्वास्थ्य मंत्रालय के शब्द ही अन्तिम शब्द नहीं हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने पहले बताया था कि प्रान्तों की ओर से बहुत विरोध हुआ था और स्वास्थ्य मंत्रालय ने यह सुझाव नहीं दिया कि इस मद को समवर्ती सूची में स्थानान्तरित किया जाये। मैं अपने माननीय मित्र डॉ. देशमुख से सहमत हूं कि इस विषय पर स्वास्थ्य मंत्रालय के शब्द अन्तिम शब्द नहीं हैं और न हम लोगों के अर्थात् मसौदा-समिति के शब्द ही अन्तिम शब्द हैं। अन्ततोगत्वा इस विषय पर अन्तिम शब्द तो इस सभा की इच्छा है। खैर, यह एक कठिन प्रश्न है—प्रान्तों और केन्द्र में विधायी शक्तियों का बंटवारा। इस पर सावधानीपूर्वक विचार करना आवश्यक है। सबसे बड़ी कल्याणकारी बात तो यह है कि स्थिति ज्यों की त्यों रखी जाये। और यदि परिवर्तन करना ही है, तो सावधानीपूर्वक पूरी-पूरी जांच करने, पूर्ण अनुसंधान और उन प्राधिकारियों की पूर्ण सहमति प्राप्त करने के बाद परिवर्तन किये जायें, जिनके हाथ में प्रशासन कार्य है। इस बात का निश्चय करने के लिये कि विधायी शक्ति कहां निहित की जायें, और जहां तक इस अनुसूची का संबंध है, केन्द्र और राज्य के उत्तरदायित्वों का निश्चय न किया जाये। यही कल्याणकारी मार्ग है और मैं निवेदन करूंगा कि मसौदा-समिति ने इसी प्रणाली का अनुसरण किया है। उसने केवल केन्द्र के मंत्रालयों को ही इन भिन्न प्रविष्टियों को नहीं भेजा है, वरन प्रान्त के मंत्रालयों से परामर्श करने के प्रत्येक अवसर का उपयोग किया, बहुधा सम्मेलन किये गये, उनमें विरोधी मत प्रकट किये गये और जो सूचियां और संशोधन हम प्रस्तुत कर रहे हैं, वे इन सम्मेलनों के फलस्वरूप हैं और....

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** श्रीमान्, क्या माननीय सदस्य यह कह सकते हैं कि अंतिम समय में अभी अभी किये गये परिवर्तनों में उन्होंने प्रान्तों के मंत्रियों से परामर्श कर लिया है? यदि ऐसा है, तब तो माननीय सदस्य को दूसरों के विचार जानने और अपना संदेश देने की योगशक्ति प्राप्त है।

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारीः** मैं माननीय सदस्य की इस बात को सहर्ष स्वीकार करूंगा कि ऐन वक्त पर अर्थात् अन्तिम क्षण में भी जो परिवर्तन हम करते हैं, वह कुछ परामर्श तथा कुछ अनुसंधान पर आश्रित होता है। मसौदा-समिति द्वारा किया हुआ वह कोई तदर्थ परिवर्तन नहीं है, क्योंकि मसौदा-समिति इनमें से किसी विषय पर सूत्रपात नहीं करती है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** जो कुछ सभा में कहा जा चुका है, उसके बाद भी क्या माननीय सदस्य का यही मत है?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या माननीय सदस्य कृपा कर मुझे अपना भाषण समाप्त करने देंगे?

जैसा कि मैं कह रहा था, इस मद पर प्रान्तों के कई मुख्य मंत्रियों ने वाद-विवाद किया था और यह सुझाव किया गया था कि इसमें थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाये और तदनुसार मसौदा-समिति ने उस परिवर्तन के पक्ष का संशोधन प्रस्तुत किया। पर बाद में हमें मालूम हुआ कि यदि यह परिवर्तन कर दिया गया, तो सूची 3 में की कुछ प्रविष्टियां इस प्रविष्टि का विरोध करेंगी। इस सूची के प्रत्येक मद को प्रान्तीय मुख्य मंत्रियों ने देख लिया है।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** और प्रान्तीय मुख्य मंत्री यह कहते हैं कि उनके साथ इन पर विचार तथा वाद-विवाद नहीं हुआ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं माननीय सदस्य के स्वविवेक पर छोड़ता हूं, वे जिसे चाहें उसमें विश्वास करें। पर जहां तक मेरा संबंध है, यह कहते हुए मैं अपने आप को पूर्णतया सुरक्षित समझता हूं कि इस सूची के प्रत्येक मद पर विचार कर लिया गया है और परिवर्तन करने या न करने का विनिश्चय उन विचार-विमर्श के फलस्वरूप हैं।

अब मुख्य विषय पर आइये। पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र के तर्क के बल को मैं भली प्रकार से समझता हूं। पर जैसा कि उन्होंने खुद कहा था, मैं नहीं समझता हूं कि अपमिश्रित खाद्य पदार्थ के एक राज्य से दूसरे राज्य में आने जाने के संबंध में केन्द्र के पास कोई शक्ति नहीं है। उन्होंने स्वयं सूची 1 में की प्रविष्टि 61-क की ओर निर्देश किया था, जिसे सभा ने स्वीकार कर लिया है। वह इस प्रकार है:

> "भारत से बाहर निर्यात की जाने वाली अथवा एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजी जाने वाली वस्तुओं के गुणों का मान-स्थापन।"

इसके अधीन, मेरा सुझाव है कि एक राज्य से दूसरे राज्य को भेजे जाने वाले अपमिश्रित खाद्य पदार्थों को रोकने के लिये केन्द्र के पास पर्याप्त शक्ति है और जो सौदागर एक राज्य से किसी अन्य राज्य को अपमिश्रित खाद्य-पदार्थ भेजेंगे, उन पर शास्ति आरोपण करने के लिये इस प्रविष्टि के अधीन केन्द्र के पास पर्याप्त शक्ति है और मेरे माननीय मित्र के मन में जो उद्देश्य है, उसकी पूर्ति हो सकती है। तो फिर समवर्ती सूची या सूची 1 में स्थानान्तरित करने का क्या उद्देश्य है, यह मैं नहीं समझ पाता?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** क्या मैं समझा सकता हूं? उद्देश्य यह है कि सरकार को इस अभिशाप से बचाना कि केन्द्र उत्तरदायित्व ग्रहण करना नहीं चाहता है और इस कारण प्रान्तीय सरकारों पर उस उत्तरदायित्व को पटकना चाहता है। हम केन्द्रीय सरकार की सहायता करना चाहते हैं और उसके प्रति फिर से लोक-विश्वास उत्पन्न करना चाहते हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** माननीय सदस्य मेरे पुराने मित्र तथा साथी हैं और मैं जानता हूं कि जिस किसी विषय में वे अपना मन लगाते हैं, उसके प्रति वे

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

बड़ी दृढ़ धारणा कर लेते हैं। पर मैं समझता हूं कि वे इस बात को समझेंगे कि इस सामान्य महत्वपूर्ण विषय पर हम यहां तदर्थ विनिश्चय केवल इसी आधार पर नहीं कर सकते हैं कि कुछ लोगों की इस विषय के प्रति दृढ़ धारणा है। इस विषय से रुचि रखने वाले पक्ष यहां पर स्वास्थ्य मंत्रालय है और प्रान्तीय मंत्री हैं और पूर्ण विचार-विमर्श के बाद हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि अमुक-अमुक उपबन्ध वहां होने चाहियें और प्रान्तों द्वारा दंड सम्बन्धी साधन काम में लाये जा सकते हैं। यह हमने प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया है कि वह यह देखें कि इन उपबन्धों का पालन किया जाता है। और मैं समझता हूं कि यदि परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम......*(पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र तथा डॉ. पी.एस. देशमुख द्वारा बाधायें)* मुझे बाधा देने से कोई लाभ नहीं। मुझे अपने तर्क समाप्त करने चाहिये। यदि केन्द्रीय सरकार यह समझती है और यदि प्रान्तीय सरकारें भी यही समझती हैं कि सूची 2 की प्रविष्टि 38 और सूची 1 की प्रविष्टि 61-क के अधीन प्रान्तीय सरकारों में निहित की गई शक्तियां इस प्रयोजन के लिये पर्याप्त नहीं हैं, तो भी हम पूर्णतया बिना किसी शक्ति के नहीं हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** इस नतीजे तक तो एक आयोग भी पहुंच चुका है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मैं कहता हूं कि फिर भी हम पूर्णतया साधनहीन नहीं हैं। अनुच्छेद 226 या 229 के अधीन कार्यवाही की जा सकती है। यदि आवश्यक समझा गया, तो अनुच्छेद 229 के अधीन एक केन्द्रीय अधिनियम पारित किया जा सकता है। औषधि संबंधी व्यापार पर नियंत्रण करने के लिये, जो कि एक प्रान्तीय विषय था, पहले एक ऐसा अधिनियम पारित किया गया था और उस अधिनियम के कारण ही हमने उसे केन्द्रीय सूची में रखा है, क्योंकि सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है। अत: हम पूर्णतया साधनहीन नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं कि स्थिति गंभीर है, पर इस आधार पर उसको अनुचित रूप से बढ़ा-चढ़ा नहीं देना चाहिये कि शक्तियां राज्य-सूची में रखी गई हैं, न कि समवर्ती सूची में। कुछ माननीय सदस्य यह सोचते प्रतीत होते हैं कि भविष्य में बनने वाली महान् केन्द्रीय सरकार के इतने हाथ होंगे कि वह किसी भी स्थान पर किसी भी अपराधी को जकड़ लेगी। इसके विपरीत हमें इस उत्तरदायित्व को प्रान्तीय सरकारों पर स्पष्टतया डाल देना चाहिये। मैं समझता हूं कि केवल यही एक रीति है, जिससे मेरे माननीय मित्र का प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। यह देखने के लिये कि सामंजस्य स्थापित करने वाले साधनों का उल्लंघन तो नहीं किया जाता है, यदि प्रान्तीय सरकारें आवश्यक दंड संबंधी साधनों का पालन करने के लिये कोई कार्यवाही नहीं करती हैं, तो कार्यवाही करने के लिये केन्द्र को 61-क पर्याप्त शक्ति देता है। मैं यह भी समझता हूं कि यद्यपि इस विषय पर बहुत कुछ भावनायें प्रदर्शित की गई हैं और इसमें बहुत कुछ सत्य है कि खाद्य पदार्थों में बहुत अपमिश्रण है, पर इस का उपचार इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची या सूची 1 में रखकर नहीं किया जा सकता है। प्रान्तीय सरकारों को यह उत्तरदायित्व स्वीकार कर लेना चाहिये और साहसपूर्वक इसका मुकाबला करना चाहिये और यदि कोई आवश्यकता होगी, तो 61-क के अधीन हमारे पास पर्याप्त शक्ति है। पर मैं समझता हूं कि चाहे मैं अपने मित्र के साथ कितनी ही सहानुभूति रखूं, पर मैं इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

*डॉ. पी.एस. देशमुख: डॉ. अम्बेडकर के आने की प्रतीक्षा क्यों न की जाये और फिर उनसे परामर्श किया जाये?

*पं. लक्ष्मीकांत मैत्र: मैं समझता हूं कि कम से कम स्वास्थ्य मंत्रालय से वे पूछ सकते हैं। कई बार इस आधार पर कथन किये जा चुके हैं कि प्रान्तीय मंत्री सहमत हो चुके हैं। पर प्रान्तीय मंत्रियों ने बहुधा मुझसे यही कहा है कि उनसे परामर्श नहीं किया गया। हमारा यह अनुभव है। एक महत्वपूर्ण विषय होने के कारण विनिश्चय करने के पूर्व स्वास्थ्य मंत्री से परामर्श किया जा सकता है। भेषजीय सेवाओं के मुख्य निदेशक से परामर्श किया जा सकता है और दिल्ली के स्वास्थ्य निदेशक से भी परामर्श किया जा सकता है। यदि केन्द्र इस विषय को नहीं सुलझाता है, तो राष्ट्र का यह एक महान् दुर्भाग्य होगा।

*अध्यक्ष: मेरा यह स्वभाव नहीं है कि किसी का पक्ष लूं।

*पं. लक्ष्मीकांत मैत्र: बिल्कुल ठीक, मैं अपने मित्र से निवेदन कर रहा हूं कि वे इस विषय में उदार बनें।

*अध्यक्ष: मान लीजिये, यदि इस विषय को स्थगित कर दिया जाये।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: स्थगित किया जा सकता है। बात यह है कि मैं यह नहीं समझ सकता हूं कि प्रान्तीय सरकारों से इस विषय पर किस प्रकार परामर्श किया जा सकता है और किस प्रकार शीघ्र विनिश्चय किया जा सकता है।

*अध्यक्ष: आप उनसे परामर्श कर सकते हैं।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: यदि अध्यक्ष की ओर से यह सुझाव है, तो स्वीकार करने के अलावा मेरे पास और कोई चारा नहीं है।

*अध्यक्ष: अध्यक्ष की ओर से इस सुझाव पर इतना जोर नहीं है। पर मैं देखता हूं कि सभा में पर्याप्त रूप से विरोधी भावनाओं को प्रकट किया गया है और मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि इन भावनाओं के प्रति मेरी सहानुभूति है। वास्तव में यह सुझाव अध्यक्ष की ओर से नहीं है, वरन् सभा की ओर से है।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: यदि आप सहमत हैं, तो इसे एक सप्ताह के पश्चात् लिया जा सकता है।

*अध्यक्ष: हां, हम ऐसा कर सकते हैं।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मैं यह सुझाव दूंगा कि मसौदा-समिति इस विषय को सम्बद्ध मंत्रालयों के पास भेजे।

प्रविष्टि 39

*अध्यक्ष: चूंकि प्रविष्टि 39 पर कोई संशोधन नहीं है, अतः मैं इस पर सभा का मत लूंगा।

प्रविष्टि 39 राज्य सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 40

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि राज्य सूची 2 की प्रविष्टि 40 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'40. Intoxicating liquors, that is to say, the production, manufacture, possession, transport, purchase and sale of intoxicating liquors.'"

(40. मादक पानों अर्थात् मादक पानों का उत्पादन, निर्माण, कब्जा, परिवहन, क्रय और विक्रय।)

यह संशोधन इस कारण आवश्यक है कि विष और औषधि को हमने समवर्ती सूची में रख दिया है और अफीम केन्द्रीय सूची में है। अत: यह प्रविष्टि राज्य सरकारों के प्रयोजनों के लिये पर्याप्त होगी। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को पेश करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** उत्पादन और निर्माण में क्या अन्तर है? क्या कोई सूक्ष्म अन्तर है?

***अध्यक्ष:** उत्पादन और निर्माण में?

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं समझता हूं कि समस्त संभावनाओं का समावेश करने के लिये यह एक वैध पदावली है।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि यही व्याख्या है।

अत: मैं संशोधन पर सभा का मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि राज्य सूची 2 की प्रविष्टि 40 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'40. Intoxicating liquors, that is to say, the production, manufacture, possession, transport' purchase and sale of intoxicating liquors.'"

(40. मादक पानों, अर्थात् मादक पानों का उत्पादन, निर्माण, कब्जा, परिवहन, क्रय और विक्रय।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 40 सूची 2 में प्रविष्ट की जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 40 राज्य सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 41

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 107 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 41 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'41. Relief of the disabled and unemployable.'"

(41. अंगहीनों और नौकरी के लिये अयोग्य व्यक्तियों की सहायता।)

मूल प्रविष्टि का पाठ इस प्रकार था "गरीबों की सहायता: बेकारी।" "बेकारी" को हम समवर्ती सूची में ले जा रहे हैं। अत: केवल गरीबों की सहायता रह जाती है। सभा के कई सदस्यों ने यह अनुभव किया कि "गरीब" शब्द का रखना भावना पर आघात करना है। वास्तव में जिस सहायता का अर्थ वहां पर है, वह गरीबों की सहायता नहीं हैं, वरन् केवल उन लोगों की सहायता है, जिन्हें सहायता की आवश्यकता है। अंगहीनों और नौकरी के लिये अयोग्य व्यक्तियों की सहायता। इसी कारण यह शब्द रखे गये हैं। मैं आशा करता हूं कि सभा इस संशोधन को स्वीकार करेगी।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ अपने संशोधन के केवल एक भाग को ही मैं पेश करना चाहूंगा। श्रीमान्, मैं संशोधन पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 107 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:–

'41-A. Relief of the poor, control of begging poor houses, training and employment of young persons.'"

(41-क. गरीबों की सहायता, भीख मांगने पर नियंत्रण, गरीब गृह, युवकों को प्रशिक्षा और नौकरी।)

इस संशोधन को पेश करने में मेरा उद्देश्य केवल यह है कि भीख मांगने पर नियंत्रण के लिये उपबन्ध करना। इस विषय पर कल कुछ वाद-विवाद हुआ था। और प्रश्न यह है कि क्या यह आवश्यक नहीं होगा कि इस सूची में विधान के लिये मद के रूप में भीख मांगने को विशिष्ट रूप में रखा जाये।

परन्तु जहां तक नौकरी का संबंध है, मुझे यह जान कर खुशी हुई है कि वह तृतीय सूची में रखा गया है, जो वास्तव में एक सुधार है और इस बात पर मुझे प्रसन्नता हुई है।

जहां तक भीख मांगने के नियंत्रण का संबंध है, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या इसे भी सूची 3 में रखना प्रस्थापित किया गया है या किसी अन्य मदों के अन्तर्गत इसको समझ लिया गया है। इसका मुझे विश्वास नहीं है। यदि मेरे मित्र इस विषय पर कुछ प्रकाश डालें, तो मैं अपने संशोधन पर विचार कर सकूं।

अध्यक्ष: आप कौन-सा संशोधन पेश कर रहे हैं?

डॉ. पी.एस. देशमुख: संशोधन संख्या 41-क। शेष संशोधनों को मैं पेश नहीं कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 245 पेश नहीं किया गया।)

श्री एच.वी. कामत: श्रीमान्, समवर्ती सूची में एक नई प्रविष्टि 27 नौकरी और बेकारी है। ये शब्द बहुत व्यापक है। इस बात के अतिरिक्त कि 'अंगहीनों' शब्द का प्रयोग तो किया ही गया है, मैं अपने माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से यह जानना चाहूंगा कि यहां "नौकरी के अयोग्य" शब्द में क्या अर्थ निहित है। कोई व्यक्ति नौकरी के लिये अयोग्य है-क्या इस कथन का इसके अलावा अन्य कोई अर्थ है कि चूंकि यह अंगहीन है, इस कारण नौकरी के अयोग्य है: अथवा क्या इसका यह अर्थ है कि एक मानव कोटि ऐसी है, जिसके लिये राज्य काम की व्यवस्था नहीं कर सकता है, यद्यपि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अनुसार हमने यह निर्धारित किया है कि राज्य को प्रत्येक व्यक्ति के काम करने के अधिकार की रक्षा करनी चाहिये।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: मैं यह तुरन्त स्वीकार करूंगा कि इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त करने का जो अवसर मेरे माननीय मित्र श्री कामत को मिला, वह मुझे नहीं मिला, अत: मैं उनके उठाये गये प्रश्न को नहीं समझ सका हूं।

श्री एच.वी. कामत: श्रीमान्, खेदपूर्वक मुझे बाधा देनी पड़ती है कि मैंने इंग्लैण्ड में शिक्षा नहीं पाई थी।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: यह सुझाव उन लोगों की ओर से आया था, जिनको अधिकांश हम लोग बहुत अधिक सम्मान करते हैं। स्पष्टतया यह विचार प्रतीत होता है कि वे लोग, जो अंगहीन हैं और किसी न किसी कारणवश नौकरी नहीं कर सकते हैं।

जहां तक डॉ. देशमुख द्वारा पेश किये गये संशोधन का संबंध है, भिक्षा के बारे में कल कुछ वाद-विवाद हुआ था और उस समय डॉ. अम्बेडकर ने यह बताया था कि वह समवर्ती सूची में प्रविष्टि 24 आवारागर्दी के अन्तर्गत आ जाता है। यदि अंगहीनों और नौकरी के लिये अयोग्यों के लिये उचित सहायता प्रदान की जा सकती है तो मैं समझता हूं कि अधिकांश रूप में उन लोगों द्वारा भीख मांगना तो बन्द हो जायेगा, जो वास्तव में जरूरतमंद हैं।

डॉ. पी.एस. देशमुख: यद्यपि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की व्याख्या से मैं संतुष्ट नहीं हूं, पर फिर भी मैं अपने संशोधन को वापस करने की प्रार्थना करता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 107 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 41 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जाये:

'41. Relief of the disabled and unemployable.'"

(41. अंगहीनों और नौकरी के लिये अयोग्यों की सहायता।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 41 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 41 राज्य सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 42

प्रविष्टि 42 सूची 2 में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 43

*पं. ठाकुरदास भार्गव: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3626 के निर्देशानुसार सूची 2 में की प्रविष्टि 43 सूची 3 में प्रविष्टि 9-क के रूप में स्थानान्तरित की जाये।"

इस प्रविष्टि के संबंध में यह स्पष्ट है कि धार्मिक धर्मस्व इत्यादि, इत्यादि का प्रान्तीय महत्व है तथा अन्तर्राजकीय महत्व भी है। ऐसी बहुत सी संस्थायें हैं, जो प्रान्तीय महत्व से अधिक महत्व की संस्थायें कही जा सकतीं हैं। उदाहरणार्थ गांधी राष्ट्रीय स्मारक, कस्तूरबा न्यास, कमला नेहरू चिकित्सालय, बेगम आजाद चिकित्सालय इत्यादि, इत्यादि। धार्मिक संस्थायें तो हमारे देश में बहुत हैं, विशेष कर बड़े-बड़े नगरों में। सोमनाथ का मन्दिर, बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका, विश्वनाथ, मदुरा, श्री रंग और बहुत से अन्य मंदिर, जिनके प्रति लोगों को श्रद्धा है और वे भारत के सब भागों से वहां पूजन करने जाते हैं। इसी प्रकार हमारे यहां बड़े बड़े मठ और अखाड़े हैं। उदाहरणार्थ, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द मिशन, गुरुद्वारे, धर्मशाला इत्यादि इत्यादि। इनमें से कुछ की आय तो विश्वविद्यालय तक चलाने के लिये पर्याप्त है। करोड़ों लोग दान भेंट से लाभ उठाते हैं, अत: इस प्रकार की पूर्ति संस्थाओं के प्रति यह बहुत आवश्यक है कि राज्य के साथ-साथ केन्द्र को भी विधान बनाने की शक्ति हो। उन संस्थाओं के लिये, जिनका प्रान्तीय या स्थानीय महत्व है, विधान बनाने का अधिकार केवल राज्य को ही हो। अत: मैंने यह सुझाव दिया है कि जहां तक इन अन्य संस्थाओं का संबंध है, दोनों राज्यों तथा केन्द्र को विधान बनाने की शक्ति होगी। इन दोनों में अन्तर स्पष्ट नहीं है अत: यह हो सकता है कि यह निश्चय करना कि कौन स्थानीय महत्व रखता है और किसका स्थानीय महत्व से अधिक महत्व है, कठिन होगा। पर चूंकि यह एक ऐसा विषय है जिसमें दोनों केन्द्र तथा प्रान्तों का समान हित है, अत: किसी स्वार्थ संघर्ष के लिये अवसर नहीं है।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

जब अनुच्छेद 19 में के मूलाधिकार पर आते हैं, तो किसी सीमा तक धर्म का अधिकार दो उपखण्डों में बांध दिया गया है, जो इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा राज्य के लिये किसी ऐसी विधि के बनाने में रुकावट न डालेगी, जो–

(क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनियमन अथवा निर्बन्धन करती हो;

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार उपबंधित करती हो, अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक प्रकार की धर्म संस्थाओं को हिन्दुओं के सब वर्गों और विभागों के लिये खोलती हो।"

जब हम इस विषय के इस पहलू पर विचार करते हैं, तो यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि केन्द्र को विधान बनाने का अधिकार होना चाहिये। अत: मेरा निवेदन यह है कि इस प्रविष्टि को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानान्तरित किया जाये।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): श्रीमान्, मेरे मित्र पंडित भार्गव द्वारा पेश किये गये संशोधन का हार्दिक समर्थन करने के लिये मैं यहां आया हूं। सामान्यता इस प्रकार के संशोधन के समर्थन की आवश्यकता नहीं है और न इस प्रकार का समर्थन करने ही दिया जाता है, पर मैंने स्वयं ऐसा करना आवश्यक समझा, क्योंकि मुझे कुछ आशंकायें थीं। इस संबंध में जिन आधारों का उल्लेख पंडित भार्गव ने किया है, मैं उनका भी समर्थन करता हूं।

जब इस सूची में मैंने इस प्रविष्टि को देखा, तो निस्सन्देह मेरे मन में यह बात पैदा हुई कि यदि राज्य सूची में इतनी महत्वपूर्ण संस्थाओं को रहने दिया जाता है, तो जिस प्रकार से उनका पोषण तथा देख रेख होनी चाहिये, वह शायद न हो। अत: मैंने सोचा कि विशेष कर एक नई प्रविष्टि प्रविष्ट कराने के हेतु गुरुद्वारा के संबंध में मैं एक संशोधन पेश करूं और संशोधन संख्या 253 के द्वारा मैंने ऐसा किया। मैंने विशेषकर उन गुरुद्वारों के पोषण और नियंत्रण को लिया था, जो हैदराबाद और आसाम जैसे प्रान्तों में हैं और जो ऐतिहासिक महत्व के स्थान हैं। इन गुरुद्वारों के मामले को रखने के लिये उन स्थानीय विधान-मंडलों में न तो कोई सिख प्रतिनिधि होगा और न उसके होने की कोई संभावना है। अत: मैंने सोचा कि समवर्ती सूची में एक विशेष प्रविष्टि होनी चाहिये और मैंने उस संशोधन की सूचना भेज दी। अब चूंकि पंडित भार्गव ने यह संशोधन पेश कर दिया है कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये, अत: मुझे अपने संशोधन के पेश करने की आवश्यकता नहीं है और मैं सम्पूर्ण हृदय से पंडित भार्गव के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3626 के निर्देशानुसार सूची 2 में की प्रविष्टि 43 सूची 3 में प्रविष्टि 9-क के रूप में स्थानान्तरित की जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

सूची 2 की प्रविष्टि 43 सूची 3 में स्थानान्तरित की गई।

प्रविष्टि 44

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 44 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जायेः–

'44. Theatres, dramatic performances, cinemas, sports, entertainments and amusements, but not including the sanctioning of cinematograph films for exhibition.'"

(44. नाट्य शाला, नाटक अभिनय, चल चित्र, क्रीड़ा, प्रमोद और विनोद, पर इसके अन्तर्गत प्रदर्शन के लिये चल चित्रों की मंजूरी नहीं है।)

आपकी अनुमति से मैं संशोधन संख्या 287 भी पेश करता हूं जो मेरे नाम से है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में राज्य-सूची की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 में 'not including' शब्दों के स्थान में 'subject to the provisions of list I with respect to, शब्द रखे जायें।

संशोधित संशोधन इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"44. नाट्य शाला, नाटक, अभिनय, चल चित्र, क्रीड़ा, प्रमोद और विनोद, परन्तु प्रदर्शन के लिये चल चित्रों की मंजूरी के संबंध में सूची 1 के उपबन्धों के अधीन।"

यह विचार के प्रदर्शन के लिये चल चित्रों की मंजूरी केन्द्र को स्थानान्तरित की जाये स्वीकार कर लिया गया है। यहां अन्य कुछ अन्तर नहीं है सिवा इसके कि 'क्रीड़ा, प्रमोद और विनोद' शब्द संविधान के मसौदे की मूल प्रविष्टि में जोड़ दिये गये हैं।

***अध्यक्षः** डॉ. पी.एस. देशमुख और श्री राजबहादुर अपने-अपने संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं।

संशोधन संख्या 268 श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 में 'entertainments and amusements' शब्दों के स्थान में 'playgrounds, gymnasia and stadia' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, "प्रमोद और विनोद" शब्द मूल मसौदे में नहीं थे। मैं समझता हूं कि इन शब्दों को रखकर नागरिकों के जीवन में बाधा डालने के लिये जितनी शक्तियां आवश्यक हैं उनसे अधिक शक्तियां अपने ऊपर लेने का सरकार प्रयास कर रही है। एक दिन बम्बई के पत्रों में यह समाचार था कि सरकार रमी जैसे निर्दोष खेल को रोकने का प्रयत्न कर रही है। मैं समझता हूं कि इस प्रकार के प्रमोदों को तो सरकारी क्षेत्र से बाहर रखना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** सूची में वह प्रविष्टि 45 के रूप में प्रस्तुत है।

***श्री एच.वी. कामतः** वह "प्रमोद और विनोद" पद के अंतर्गत आता है। मैं नहीं चाहता हूं कि प्रमोद और विनोद पर किसी रूप में भी सरकारी बाधा हो। आधुनिक युग में सरकारें इतनी शक्तियां ग्रहण करती चली जा रही हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि उनके शक्ति प्राप्त करने के लोभ की सीमा का प्रसार आकाश तक है। आकाश को सीमा मान कर सरकार प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण करती चली जा रही है। मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती है कि प्रमोद का किसी सूची में यहां क्योंकर उल्लेख किया जाये। मैंने विशेषकर "खेल के मैदानों, व्यायामशालाओं और क्रीड़ा स्थलों" का उल्लेख किया है क्योंकि अभी हाल में रूस और यहां तक कि इटली और जर्मनी ने भी इस शताब्दी की तृतीय दशाब्दी में सरकार द्वारा वृत्ताकार क्रीड़ा स्थलों, बड़े-बड़े खेल के मैदानों तथा विश्राम के लिये और संस्कृति प्रदर्शन के लिये तत्कथित उद्यानों की स्थापना की। संभव है कि सरकार इस ओर अग्रसर हो और करोड़ों नागरिकों के लिये इन चीजों का संगठन करे। परन्तु प्रमोद और विनोद के लिये विधान बनाने से तो यह भिन्न है। हमारे यहां संस्कृत की एक पुरानी कहावत है:

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम।

किसी सरकार की यदि ऐसी इच्छा हुई तो वह विनोद अर्थात् निर्दोष प्रमोद को इस उपबन्ध के क्षेत्र के अन्तर्गत मान सकती है।

जिस प्रकार से आप मनुष्यों को मार-मार कर एक सा नहीं बना सकते हैं, जिस प्रकार से आप मनुष्यों में गोली के भय से भक्ति और आज्ञाकारिता नहीं ला सकते हैं उसी प्रकार से आप विधान द्वारा मनुष्यों को सदाचारी नहीं बना सकते हैं। यदि मानवता के विरुद्ध अपराध किया जाता है तो राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिये और अपराधी को दंड देना चाहिये। परन्तु मानवता के विरुद्ध अपराधों के लिये दंड देना और बात है और अपराधों के लिये परिस्थितियां पैदा करना और बात है। और आप यहां यही कर रहे हैं। सरकार कुछ प्रमोदों और विनोदों के लिये विधान बनाने का प्रयास कर रही है। कोई-कौन यह नहीं जानता कि कौन कौन से विनोद

इस कोटि में आते हैं और कौन से नहीं। मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि इस रूप में इस प्रविष्टि में क्यों रूप भेद करना पड़ा है। मसौदे में की पुरानी प्रविष्टि 44 को जैसी वह थी वैसी ही रहने दिया जाता। मैं यह नहीं जानता हूं कि यह परिवर्तन क्यों किया गया। मुझे खुशी होगी यदि 'प्रमोद और विनोद' शब्दों को अपमार्जित कर दिया जाये चाहे मेरा संशोधन "खेल के मैदानों इत्यादि" के जोड़ने का मंजूर न हो। पर 'प्रमोद और विनोद' शब्द न रहने चाहियें।।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये।"

इस संशोधन को पेश करने का मेरा कारण केवल यह है कि मैं नाट्यशालाओं, चल चित्रों और नाटक अभिनयों को प्रौढ़ शिक्षा की उन्नति का बहुत ही महत्वपूर्ण आधुनिक साधन समझता हूं। अपने देश में यदि हम प्रत्येक व्यक्ति को साक्षर बनाना चाहते हैं तो यह प्रविष्टि सूची 3 में जानी चाहिये जिससे कि समस्त राष्ट्र के शैक्षणिक प्रयोजनों के लिये चल चित्रों के उत्पादन और प्रयोग का सामंजस्य तथा विनियम हो सके। इस प्रविष्टि को सूची 3 में रखकर हम किसी की शक्तियों का हरण नहीं करेंगे।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश की गई नई प्रविष्टि के समर्थन के लिये मैं खड़ा होता हूं। इस अवसर पर श्री कामत ने जो कुछ कहा है मैं उस सबका विरोधी हूं। मेरी धारणा है कि प्रमोद और विनोद यदि गरीबों के लिये प्राप्य हो सकते हैं तो उन पर प्रान्तीय सरकारों की शक्ति होनी चाहिये। आज विनोद के साधन केवल धनियों को उपलब्ध हैं। जीवन के इन उपकरणों से गरीब वंचित हैं। सोवियत संघ का अभिलेख इस संबंध में वास्तव में प्रशंसनीय है। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी द्वारा पेश किये गये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ श्रीमान्, क्लबों और अन्य स्थानों में लोगों की क्रीड़ाओं में राज्य द्वारा अनुचित हस्तक्षेप के संबंध में जो कुछ मेरे माननीय मित्र श्री कामत ने कहा है उसे मैं समझता हूं। पर मैं नहीं समझता हूं कि यह प्रविष्टि किसी रूप में भी उस विषय से संबंध रखती हो। इसका वास्तविक संबंध कुछ मात्रा तक उस नियंत्रण से है जो राज्य को स्वास्थ्य, नैतिकता और लोक व्यवस्था के लिये उन स्थानों पर होना चाहिये जो जनसाधारण के लिये हैं। जनसाधारण के लिये इन स्थानों पर इन तीन विषयों का परिमाण राज्य को करना होगा। मेरे मित्र जिस विषय के बारे में सोचते हैं वह तो उन्हें अगली प्रविष्टि 45 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अधीन सोचना चाहिये। बम्बई सरकार का अभी-अभी का रमी रोकने का आदेश इस कारण है कि उसमें बाजियां लगने लगी थीं। जो लोग इस खेल को खेलते हैं वे इतनी ऊंची-ऊंची बाजी लगा कर खेलते हैं कि वह द्युत रूप धारण कर लेता है और इसी कारण बम्बई सरकार को प्रविष्टि 45 के अधीन जो शक्ति प्राप्त है उसके आधार पर उसने धन के लिये रमी खेलने के प्रतिषेध का प्रयास किया है। मैं नहीं समझता हूं कि विचाराधीन इस विशिष्ट प्रविष्टि का लोग जिन बातों में या प्रकारान्तरों में आनन्द उपभोग करते हैं उनको निर्बंधित करने में कोई राज्य सरकार दुरुपयोग करेगी।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लूंगा। संशोधन संख्या 287।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन संख्या 287 और 111 दोनों एक पूरी प्रविष्टि के भाग हैं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में राज्य सूची की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 में 'not including' शब्दों के स्थान में 'subject to the provisions of List I with respect to' शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद संशोधन संख्या 287 द्वारा संशोधित रूप में संशोधन संख्या 111।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 44 के स्थान में निम्न प्रविष्टि रखी जायेः–

'44. Theatres, dramatic performances, cinemas, sports, entertainments and amusements but subject to the provisions of List I with respect to the sanctioning of cinematograph films for exhibition.'"

(44. नाट्यशाला, नाटक अभिनय, चलचित्र, क्रीड़ा, प्रमोद और विनोद परन्तु प्रदर्शन के लिये चलचित्रों की मंजूरी के संबंध में सूची 1 के उपबन्धों के अधीन।)

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 में 'entertainments and amusements' शब्दों के स्थान में 'playgrounds, gymnasia and stadia' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 111 में सूची 2 की प्रस्थापित प्रविष्टि 44 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 44 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 44 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 45

*__अध्यक्ष:__ संशोधन संख्या 313 इस प्रविष्टि के अपमार्जन के लिये है। वह संशोधन नहीं है, पर प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना इस पर भाषण दे सकते हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, पण लगाना और जुआ इस प्रविष्टि द्वारा इस अनुसूची में विधिवत् बनाये जा रहे हैं। मैं सोचता था कि जुआ अपराध है अत: मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि जुआ और पण लगाना इस अनुसूची के अधीन विधिवत् कार्य के समान उपबन्धित कर दिये गये हैं। मुझे वास्तव में दु:ख हुआ जब कि सूची 1 की प्रविष्टि संख्या 78 बिना किसी विरोध के पारित कर दी गई। वह प्रविष्टि "भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार द्वारा संघटित लाटरी" है। मैं समझता हूं कि जिस सिद्धान्त के प्रति हम वचनबद्ध है यह उसके विपरीत है। जुए और पण लगाने पर रोक होनी चाहिये। श्रीमान्, मैं इस प्रविष्टि का घोर विरोध करता हूं।

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू__ (उड़ीसा : जनरल): माननीय सभापति जी, मैं इससे इस लिये प्रतिरोध करता हूं कि हम लोग जब राष्ट्र बनाते हैं सत्य और अहिंसा पर और महात्मा गांधी का इतना बड़ा आदर्श हम अपने सामने रखकर चलते हैं तो हम लोग जो विधान बनाते हैं उसमें बैटिंग, गैम्बलिंग वगैरह का जिक्र भी नहीं होना चाहिये। इससे तो यह प्रतीत होता है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार जो है वह गैम्बलिंग और बैटिंग को मदद देगी और कन्ट्रोल करेगी। क्या महाभारत का उदाहरण हमें याद नहीं है और हमारा उन पर टैक्स लगाना ठीक नहीं मालूम होता है।

लाटरी के बारे में जो हमने कलाज में रखा है वह भी ठीक नहीं है।

*__सरदार हुकम सिंह:__ क्या माननीय सदस्य यह चाहते हैं कि पण लगाना और जुआ न हो?

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू:__ जी हां, मैं यह चाहता हूं।

*__सरदार हुकम सिंह:__ कौन उसका प्रतिषेध करे?

*__श्री लक्ष्मीनारायण साहू:__ संविधान-सभा, जो इस समय नियम बना रही है उसका प्रतिषेध करे। (इसलिये सभापति जी, मैं इसका प्रतिरोध करता हूं।)

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मेरे दोनों मित्र श्री शिब्बन लाल और श्री साहू ने इस प्रविष्टि 45 के आशय को बिल्कुल ही गलत समझा है और उनकी यह मिथ्या धारणा है कि यदि इस प्रविष्टि को निकाल दिया जायेगा तो देश में किसी प्रकार का पण लगाना और जुआ न होगा। मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि यदि इस प्रविष्टि को निकाल दिया जाये तो पण लगाने और जुआ खेलने पर कोई भी नियंत्रण न रहेगा। क्योंकि यदि प्रविष्टि 45 वर्तमान है तो उसका प्रयोग पण लगाने और जुए की आज्ञा देने के लिये किया जा सकता है या उनके प्रतिषेध करने के लिये किया जा सकता है। यदि यह प्रविष्टि नहीं रहेगी तो इस विषय में प्रान्तीय सरकारें निरुपाय हो जायेंगी।

मैं आशा करता हूं कि वे जो कुछ कर रहे हैं उसे समझें। यदि यह प्रविष्टि निकाल दी जाती है तो इसका यह भी परिणाम होगा कि यह विषय अपने आप ही सूची 1 की प्रविष्टि 91 के अधीन हो जायेगा। फल वही होगा अर्थात् यह कि केन्द्रीय सरकार जुआ होने दे या उसका प्रतिषेध करे। अत: जो प्रश्न उठता है वह यह है कि यह प्रविष्टि यहां रहे या यहां से हटा कर सूची 1 में एक विशिष्ट मद के रूप में रखी जाये और या इसे प्रविष्टि 91 के अन्तर्गत समझ लिया जाये। यदि मेरे मित्र इस बात के बहुत उत्सुक हैं कि किसी रूप में भी पण लगाना और जुआ न हो तो ठीक बात यह होगी कि स्वयं संविधान में वे एक ऐसा अनुच्छेद रखें जिसके द्वारा पण लगाना और जुआ अपराध माने जायें। जो राज्य द्वारा असह्य हो। जिस रूप में वह है वह निरोधात्मक है और जुए का प्रतिषेध करने की राज्य को पूर्ण शक्ति होगी। मैं आशा करता हूं कि इस व्याख्या से इस प्रविष्टि पर की अपनी आपत्ति को वे वापस ले लेंगे।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 45 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 45 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 38–*(जारी)*

*__माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:__ क्या मैं आपसे यह निवेदन करूं कि आप पिछली प्रविष्टि 38 और पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र के संशोधन संख्या 311 को फिर से ले लें? श्रीमान्, मैंने यह सुना था कि आपने इस प्रविष्टि को स्थगित करने के निदेश श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को दिये थे, पर मैं अपने माननीय मित्र पंडित मैत्र के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

*__अध्यक्ष:__ बहुत अच्छा, प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 38 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 38 समवर्ती सूची में स्थानान्तरित की गई।

प्रविष्टि 46

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 46 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 46 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

मसौदा-समिति को मैं यह बताना चाहता हूं कि वर्तमान भू अभिलेख स्थिति के संबंध में प्रान्तों में परस्पर इतना अन्तर है कि भूमि के बारे में कोई भी अखिल भारतीय विश्वसनीय सांख्यिकी प्राप्त नहीं की जा सकती है। यह सत्य है कि मेरे संयुक्त प्रान्त में पटवारी लोग इन सब अभिलेखों को रखते हैं और वे बड़े योग्य होते हैं और उनसे हमें बहुत सी सांख्यिकी मिल सकती है। पर बिहार में पटवारी नहीं हैं इस कारण बिहार सरकार के पास बहुत सी महत्वपूर्ण सांख्यिकी नहीं है। एक यह प्रश्न उठा था कि बिहार में कितनी भूमि में ईख बोई जाती है। और बिहार सरकार इसकी सूचना न दे सकी। अत: बिना किसी ठीक भू अभिलेख के समस्त देश के लिये समरूप की सांख्यिकी बनाये रखना असंभव है और यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है जिसके लिये उपबन्ध करना चाहिये। जो संशोधन मैंने प्रस्तुत किया है कि कृषि तथा भूमि और अन्य सम्बद्ध विषयों को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये उसके अनुसार मैं यह सुझाव रखता हूं कि इसे भी उसी प्रकार से सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये और इस प्रकार हमारे यहां भू अभिलेख रखने की एक समान प्रणाली और भू राजस्व की समान दर हो जायेगी और मैं समझता हूं कि यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि यह नहीं किया जायेगा तो आपको अखिल देश की एक समान सांख्यिकी नहीं मिल सकेगी और कृषि उन्नति में कमी हो जायेगी।

चौधरी रणबीर सिंह (ईस्ट पंजाब : जनरल): सभापति महोदय, मुझे खेद है कि मैं समय पर संशोधन न दे सका। मैं ब्रजेश्वर दयाल जी की तरह से इसको फर्स्ट लिस्ट में नहीं चाहता। लेकिन मैं चाहता हूं कि इसको कांकरेन्ट लिस्ट में भेज दिया जाये और उसके लिये मेरा जो कारण है वह यह है कि अभी तक लैंड रेवेन्यू जो एसेज की जाती है वह मुखतलिफ प्रान्तों में मुखतलिफ सिस्टम की बिना पर की जाती है। मैं यह चाहता हूं कि लैंड रेवेन्यू टैक्स यूनीफार्म तरीके से एसेज हो सके जिस तरह से दूसरे इन्कम टैक्स एसेज किये जाते हैं। उसी तरह से लैंडरेवेन्यू भी उसी बेसिस पर टैक्स हो सके। सारे देश के अन्दर हम एक ही ढंग के सिस्टम काम में ला सकते हैं। और वह मैं समझता हूं कि वह ढंग सब से बेहतर है जो हमारा प्रिंसिपल है दूसरे इन्कम्स को टैक्स करने का वही हमारा लैंड रेवेन्यू के टैक्स करने का होना चाहिये। जैसे आपने इन्कम टैक्स मे तीन हजार तक माफी दी है उसी तरह एक किसान की भी जिसकी आमदनी तीन हजार तक नहीं है उस पर कोई टैक्स नहीं लगना चाहिये। लाखों करोड़ों किसान जो हैं वह कान्सटीटियुएन्ट असेम्बली की तरफ आंखें खोले हुये देख रहे हैं और वह यह तव्क्को करते हैं कि यह असेम्बली कोई न कोई ऐसा कानून उनके लिये बनायेगी जिससे उनके साथ हजारों साल से जो अन्याय होता आया है वह दूर हो।

[चौधरी रणबीर सिंह]

वह अन्याय मैं समझता हूं कि दूर हो सकता है जब हम इसको कान्करेन्ट लिस्ट में भेज दें ताकि आने वाले भविष्य के लिये यकसा कानून बने और कानून भी उसी बिना पर बनाया जाये जिससे दूसरे इन्कम टैक्स किये जाते है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: इस संशोधन को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं। चूंकि हमारी राजस्व निर्धारण की प्रणाली वर्तमान काल में विनियमित है, इसके कारण समस्त प्रान्तीय प्रशासन में उथल-पुथल हो जायेगी। बाद में इस विषय पर संसद द्वारा अथवा विभिन्न प्रान्तों द्वारा अनुसंधान किया जा सकता है, और यदि वे भू राजस्व आरोपण करने के किसी प्रबन्ध को स्वीकार कर लें और उन सिद्धान्तों को स्वीकार कर लें जो आयकर के आरोपण में माने जाते हैं तो उस समय बाद में इस प्रविष्टि में परिवर्तन किया जा सकता है, पर आज ऐसा करना तो बिल्कुल असंभव है। इस विषय पर प्रान्तीय मुख्य मंत्रियों के साथ सम्मेलन में बहुत देर तक विचार किया गया और इस प्रविष्टि को जहां स्थान दिया गया है उसमें कोई परिवर्तन न करने के वे सर्वथा विरुद्ध थे।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 46 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 46 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 46 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 46 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 47

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: मैं अपने संशोधन संख्या 315 को पेश नहीं करना चाहता हूं।

*अध्यक्ष: इस प्रविष्टि पर अन्य और कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 47 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 48

*श्री **ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3631 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः मैं भी अपने संशोधन संख्या 316 को पेश करता हूं:

"कि सूची 2 को प्रविष्टि 48 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं इनको स्वीकार नहीं करता हूं।

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3631 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 48 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 48 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 48 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 49

*श्री **ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3632 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

प्रविष्टि 46 और 49 पर अपने दोनों संशोधन पेश करने का उद्देश्य यह है कि ये कर समस्त देश में एक से होने चाहियें और इसी कारण मैंने ये पेश

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

किया है कि ये प्रविष्टियां सूची 3 में ले जायी जायें। मेरी सारी योजना इस विचार को प्रस्तुत करती है कि दोनों केन्द्र और प्रान्तों को मिलकर सहयोग के साथ काम करने के हेतु कृषि और भूमि सम्बन्धी सब बातें सूची 3 में रखी जायें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** प्रविष्टि 46 पर विचार प्रस्तुत करते हुये जो तर्क मैंने दिये थे उनके आधार पर मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3632 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 49 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि संख्या 49 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 49 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 50

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 50 के अन्त में 'or roads' शब्द जोड़ दिये जायें।"

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 50 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

मेरा उद्देश्य केवल यह है कि आप अन्तर्देशीय जल-पथों अथवा सड़कों द्वारा ले जाने वाले यात्रियों और वस्तुओं पर कर आरोपण कर रहे हैं। ये सड़कें और जल-पथ कई राज्यों में से जाते हैं। एकरूपता, नियंत्रण और सामंजस्य रखने के लिये यह आवश्यक है कि केन्द्र को कुछ शक्ति हो मैं यह सुझाव करता हूं कि यह प्रविष्टि सूची 3 में रखी जाये जिससे कि केन्द्र और प्रान्त अपने कार्य में सामंजस्य स्थापित कर सकें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 50 के अन्त में 'or roads' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 50 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 50 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 50 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 51

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3633 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 51 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

कदाचित यह एक महत्वपूर्ण संशोधन है कि इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये। कृष्य आयकर करारोपण का एक बहुत ही महत्वपूर्ण मद है। मैं इस कर की समस्त आय को प्रान्त को देने के लिये तैयार हूं। पर समस्त देश में इसके आरोपण का समान परिणाम होना चाहिये। मान लीजिये मद्रास किसी दर से आरोपण करे और केन्द्र किसी और दर से। इससे बड़ा असन्तोष होगा। एकरूपता और सामंजस्य के लिये इस प्रविष्टि को सूची 3 में स्थानान्तरित किया जाये जिससे कि यदि विरोधी विधान हों तो देश के सर्वोत्तम हित के लिये उनमें सामंजस्य किया जा सके।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3633 में 'deleted' शब्द के स्थान में 'transferred to List I' शब्द और अंक रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 51 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 51 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 51 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 52

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3634 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

'कि सूची 2 में की प्रविष्टि 52 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।'"

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 52 में से 'non-narcotic drugs' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

यह केवल आनुषंगिक है।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 52 में से 'non-narcotic drugs' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्य 3634 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

'कि सूची 2 में की प्रविष्टि 52 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।'"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 52 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 52 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 53

प्रविष्टि 53 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 54

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 54 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

***अध्यक्ष:** अन्य कोई संशोधन नहीं है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 54 सूची 1 में स्थानान्तरित की जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 54 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 54 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 55

प्रविष्टि 55 राज्य सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 56

(संशोधन संख्या 120 पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 56 सूची 3 में स्थानान्तरित की जाये और उसके अंत में यह व्याख्या जोड़ दी जाये:

'*Explanation.*—Nothing in this entry will be construed as limiting in any way the authority of the Union to make laws with respect to taxes on income accruing from or arising out of professions, trades, callings and employments.'"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(व्याख्या.—वृत्ति, व्यापार, आजीविका और नौकरी से उद्भूत आय पर करों के संबंध में संघ के विधि बनाने के प्राधिकार पर किसी प्रकार के परिसीमन के रूप में इस प्रविष्टि की किसी बात का अर्थ नहीं लगाया जायेगा।)

श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि संयुक्त प्रान्त के प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्थापित संशोधन में भी यह व्याख्या है, पर उस संशोधन को पेश करने के लिये वे यहां पर नहीं हैं। मैं यह आवश्यक समझता हूं कि यह संशोधन वहां होना चाहिये। अन्यथा यह आपत्ति होगी कि वृत्ति पर कोई कर संघ के आय कर आरोपण करने के प्राधिकार को परिसीमित करने के रूप में समझा जायेगा। इस कारण मैं समझता हूं कि इस व्याख्या को जोड़ना आवश्यक है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं समझता हूं कि शायद यह संशोधन मिथ्या धारणा पर आश्रित है। यह प्रविष्टि विशुद्ध रूप में प्रान्तीय प्रविष्टि है। आय कर आरोपण करने की केन्द्र की शक्ति को यह परिसीमित नहीं कर सकती है। इसके विपरीत इस प्रविष्टि 56 को इस प्रकार क्रियान्वित किया जा सकता है कि वह उस आय कर पर भी अपना अधिकार करने लगे जो केवल केन्द्र द्वारा उद्ग्राह्य है। श्रीमान्, आपको स्मरण होगा कि अनुच्छेद 256 में मैंने एक संशोधन पुर:स्थापित किया था जिसमें यह कहा गया था कि स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा उद्गृहीत कोई भी कर आय कर नहीं समझा जायेगा। यह संशोधन आवश्यक नहीं है।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, मैं इस संशोधन पर जोर नहीं देता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि प्रविष्टि 56 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

प्रविष्टि 56 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

*__अध्यक्ष:__ श्री पाटिल और श्री गुप्ते द्वारा एक नई प्रविष्टि रखने के लिये संशोधन की सूचना है।

(यह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

प्रविष्टि 57

*__अध्यक्ष:__ कोई संशोधन नहीं है।

प्रविष्टि 57 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 58

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"सूची 2 की प्रविष्टि 58 के स्थान में यह प्रविष्टि रखी जायेः–

'58. Taxes on sale or purchase of goods.

58A. Taxes on advertisements.'"

(58. वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।

58-क. विज्ञापनों पर कर।) 'turnover शब्द को निकाल देने का हम प्रयास कर रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 121 में सूची 2 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 58 और 58-क को सूची 1 में स्थानान्तरित किया जाये।"

श्रीमान्, वस्तुओं के क्रय विक्रय और विज्ञापनों पर कर के बारे की यह एक महत्वपूर्ण प्रविष्टि है।

विभिन्न प्रान्तों द्वारा विक्रय कर के आरोपण ने बड़ी गड़बड़ी पैदा कर दी है और व्यापारिक क्षेत्रों में इस कर पर भिन्न-भिन्न दर के संबंध में बहुत रोष है।

भिन्न-भिन्न स्थानों में इसका भिन्न-भिन्न रूप है और प्रान्त में के व्यापार और उद्योग पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। इस कारण समाचार पत्रों का इस मत पर बहुत अधिक जोर है कि इन करों का आरोपण केन्द्र द्वारा हो। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि समस्त आय प्रान्तों को दे दी जाये, पर जिन सिद्धान्तों पर इन करों को आश्रित किया जाता है और जिस रीति से इनका उद्ग्रहण किया जाता है इन बातों को केन्द्र विनिश्चित करे। मैं नहीं समझ पाता हूं कि इस प्रविष्टि में ये किस प्रकार रख दिये गये हैं। विज्ञापनों के संबंध में कल ही बड़ा वाद-विवाद हुआ था कि यह संशोधन अनुच्छेद 13 के विरोध में है। विज्ञापनों पर कर का वास्तविक अर्थ है मत स्वातंत्र्य पर कर। आप इस विषय पर अपने आदेश का स्थगन कर सकते हैं और मैं नहीं समझ पाता हूं कि यह पेश ही किस प्रकार किया जा सकता है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 122 की सूचना कई सदस्यों ने दी है।

***श्री वी. आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3638 के निर्देशानुसार सूची 2 की प्रविष्टि 58 में 'purchase of goods' शब्दों के पश्चात् 'other than Newspapers' शब्द, और 'taxes on advertisements' शब्दों के पश्चात्, 'other than those appearing in Newspapers, शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): मैं सुझाव रखता हूं कि इसे भी स्थगित रखा जाये।

*__अध्यक्षः__ यह वही प्रश्न है जो कल उठाया गया था। मैंने अपना आदेश देने के लिये इसे स्थगित किया था।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं सुझाव देता हूं कि संशोधन संख्या 122 को एक स्वतन्त्र संशोधन के रूप में समझा जाये जिसको एक और प्रविष्टि द्वारा लाया जा सकता है। और यदि मंजूर कर लिया जायेगा तो बाद में मसौदा-समिति दोनों को मिला देगी। इस बात के अधीन रहते हुये यह प्रविष्टि पारित की जा सकती है। जो लोग 122 में रुचि रखते हैं उनको उसे एक अतिरिक्त प्रविष्टि के रूप में प्रस्तुत करने के लिये अनुमति दे दी जाये।

*__अध्यक्षः__ जहां तक समाचार-पत्र और विज्ञापन का संबंध है आपकी बात उनको स्पर्श तक नहीं करती है।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ यदि यह सोचा जाये कि मसौदा-समिति इसके लिये कहीं अन्य उपबन्ध करे तो इस प्रविष्टि पर एक बार सभा द्वारा विनिश्चय कर लेने पर उसको दुबारा लेना कठिन हो जायेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ तीनों सूचियों पर चर्चा समाप्त करने के पूर्व ही इस विषय को प्रस्तुत किया जा सकता है।

*__अध्यक्षः__ मैं इसे पृथक् रूप में लेने की उस समय आज्ञा देने के लिये तैयार हूं जब हम 88-क को लें जिसको हमने कल स्थगित किया था। अत: स्थिति यह है कि विज्ञापन संबंधी विषय स्थगित किया गया, पर उसको छोड़कर, डॉ. अम्बेडकर द्वारा संशोधित रूप में इस प्रविष्टि पर मत लिया जाये।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ जबकि आदेश लम्बित है तो यह किस प्रकार पारित किया जा सकता है।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ यदि इसे स्थगित कर दिया जाये तो कार्य अधिक सरल हो जायेगा।

*__अध्यक्षः__ अच्छा, तो इसे स्थगित रहने दीजिये। हम इसे 88-क के साथ ले लेंगे। जिसको हमने कल स्थगित किया था।

सूची 2 की प्रविष्टि 58 स्थगित की गई।

प्रविष्टि 59

*__अध्यक्षः__ प्रविष्टि 59।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं प्रस्ताव पेश करता हूं

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 59 के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:-

'Subject to the provisions of entry 21 of list III'"

सूची 3 में हम यह कहेंगे कि करारोपण के सिद्धान्त निर्धारित करने की शक्ति केन्द्र को होनी चाहिये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 59 के अन्त में यह जोड़ दिया जायेः–

'Subject to the provisions of entry 21 of list III.'"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*** अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रविष्टि 59 सूची 2 का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में प्रविष्टि 59 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टियां 60 से 63

प्रविष्टि 60 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 61 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 62 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 63 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 64

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 64 अपमार्जित की जाये।"

वह समवर्ती सूची में ले ली गई है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 2 की प्रविष्टि 64 अपमार्जित की जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

सूची 2 की प्रविष्टि 64 राज्य-सूची में से अपमार्जित की गई।

प्रविष्टियां 65 और 66

प्रविष्टि 65 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 66 राज्य-सूची में प्रविष्ट की गई।

***अध्यक्षः** कुछ नई प्रविष्टियां प्रस्थापित की गई है। सं. 322।

प्रविष्टि 67

***काका भगवन्त राय** (पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 2 में यह नई प्रविष्टि प्रविष्ट की जाये:–

'6. Allowances to be paid to a ruler of a State in part III of the First Schedule.'"

(67. प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्य के शासक को दिये जाने वाला भत्ता।)

श्रीमान्, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्य के शासक को राज्य के राजस्व में से भत्ता दिया जायेगा और उसका भार राज्य के बजट पर होना चाहिये। अत: यह उचित तथा ठीक है कि राज्य के विधान-मंडल को उस पर विचार करने की शक्ति होनी चाहिये। राज्य के लोगों को ही वे राजस्व देने होंगे जिनमें से यह भत्ता दिया जायेगा। अत: राज्य के लोक प्रतिनिधि का इस विषय में हाथ होना चाहिये और मेरी प्रविष्टि द्वारा राज्य के विधान-मंडलों को शासकों को दिये जाने वाले भत्ते पर विचार करने का अवसर मिलेगा। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय को सूची 2 में रखा जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, यह विषय संविधान के उस भाग के अन्तर्गत आ जायेगा जिसे हम वर्तमान मसौदे में जोड़ना चाहते हैं और जिस भाग में शासकों को दिये जाने वाले समस्त भत्ते रखे जायेंगे। अभी मैं किसी ऐसे संशोधन की आवश्यकता नहीं समझता हूं। मैं समझता हूं कि जिस भाग को संशोधन द्वारा पुर:स्थापित करने का हम विचार कर रहे हैं उस भाग को देख कर मेरे मित्र यह समझ जायेंगे कि उनके उद्देश्य की पूर्ति हमारी प्रस्थापना से होती है या नहीं। यदि उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है तो जिस समय वह भाग सभा के समक्ष आये उस समय उस पर संशोधन पेश करने में वे बिल्कुल नियमानुकूल होंगे।

***काका भगवन्त राय:** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***अध्यक्ष:** इसके बाद मुद्रित सूची अंक 2 में नई प्रविष्टियों के रूप में कई संशोधन हैं।

(संशोधन संख्या 3642, 3643, 3644, 3645, 3646, 3647, 3648, 3649 और 3650 पेश नहीं किये गये।)

इतने ही संशोधन सूची 2 के संबंध में हमारे पास थे।

सूची 3 प्रविष्टि 1

***अध्यक्ष:** अब हम सूची 3 पर आते हैं। सूची 3 की प्रविष्टि संख्या 1। इस पर मुझे कोई संशोधन दिखाई नहीं देता है अत: मैं उस पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 1 समवर्ती सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 2

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम प्रविष्टि 2 पर आते हैं। इस पर भी मुझे कोई संशोधन नहीं दिखाई देता है। मैं उस पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 2 समवर्ती सूची में प्रविष्ट की गई।

प्रविष्टि 2-क

***अध्यक्ष:** इसके बाद हम प्रविष्टि 2-क पर आते हैं। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 3 की प्रविष्टि 2 के पश्चात् यह प्रविष्टि प्रविष्ट की जाये:–

'2-A. Preventive detention for reasons connected with stability of the Government established by law and the maintenance of public order and services or supplies essential to the life of the community; persons subjected to such detention.'"

(2-क. विधि द्वारा स्थापित राज्य की सुदृढ़ता से सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समुदाय के लिये अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं को बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिये निवारक निरोध; ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इसका विरोध करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री कामत द्वारा संख्या 289 का एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामत:** श्रीमान्, सूची 5 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 89 को मैं पेश करता हूं।

"कि सूची 1 (षष्ठ सप्ताह) के संशोधन संख्या 124 में सूची 3 की प्रस्थापित नई प्रविष्टि 2-क अपमार्जित की जाये।"

*__अध्यक्षः__ यह संशोधन तो है नहीं, वरन् अपमार्जन की मांग है। पर मैं आपको भाषण देने दूंगा।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, मैं समझता हूं कि सूची 1 में प्रविष्टि 3 के स्वीकार कर लेने पर हमें निवारक विरोध के लिये और अधिक क्षेत्र अथवा आधार की व्यवस्था नहीं करनी चाहिये। मैं समझता हूं कि हमने संविधान में बहुत अधिक सीमा तक प्रजा की स्वतन्त्रता को निर्बन्धित कर दिया है और सूची 1 के मद 3 में, जिसको हमने कुछ दिन पूर्व ही पारित किया है यह उपबन्ध कर दिया गया है कि केन्द्रीय संघ की विधायिनी शक्ति का विस्तार भारत की प्रतिरक्षा विदेशीय कार्य या सुरक्षा संबंधी कारणों से भारत के राज्य-क्षेत्र में निवारक निरोध तक है। मैं ऐसी किसी अन्य युक्तियुक्त परिस्थितियों की कल्पना नहीं कर सकता हूं जिनमें निवारक निरोध प्रयुक्त हो सके या प्रयुक्त किया जाये। राज्य द्वारा निवारक निरोध की शक्ति का प्रयोग सिवा भारत की प्रतिरक्षा विदेशीय कार्य या सुरक्षा संबंधी कारणों के अन्यत्र नहीं होना चाहिये और यह शक्ति संघ विधान-मंडल को सौंपी जा चुकी है। इस विषय को समवर्ती सूची में रखना मैं कल्याणकारी या बुद्धिमानी की बात नहीं समझता हूं—अर्थात् यह कि यह विषय दोनों के संघ तथा राज्यों के अधिकार में रहे। विधि द्वारा स्थापित राज्य की सुदृढ़ता से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समुदाय के लिये अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं के बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिये निवारक निरोध संबंधी शक्तियां हमें नहीं सौंपनी चाहियें। संसार के मैं किसी भी ऐसे संविधान से परिचित नहीं हूं जिसमें किसी अनुच्छेद के रूप में अथवा संविधान की अनुसूची के रूप में एकक अथवा केन्द्र को ऐसी व्यापक शक्ति दी गई हो। हां, इस बात से तो मैं भली भांति परिचित हूं कि आपात काल में ये शक्ति केन्द्र की हो जाती है। इसके लिये हमने अध्याय 11 में उपबन्ध कर दिया है जिसको यह सभा स्वीकार कर चुकी है। सूची 1 की प्रविष्टि 3 के अधीन केन्द्र को निवारक निरोध की शक्ति प्राप्त है मसौदा-समिति का यह उपक्रम बहुत ही खतरनाक है और मैं आशा करता हूं कि सभा शासन सुदृढ़ता संबंधी आधारों पर निरोध के लिये केन्द्र और राज्यों में और अधिक शक्ति निहित करने के इस उपक्रम में सहयोग नहीं देगी। इसकी शब्दावली बहुत ही अस्पष्ट है उसका अर्थ हानिकारक भावों से परिपूर्ण है और उसका अभिप्राय संकटपूर्ण है और अपने देश के लिए इस संविधान में हम जिस लोकतंत्रात्मक गणराज्य के निर्माण करने का विचार प्रस्तुत करते हैं यह उसकी भवना के अनुकूल नहीं है। मैं यह समझता हूं कि शासन सुदृढ़ता संबंधी आधारों पर यदि केन्द्र या राज्यों को शक्ति सौंपी जाती है तो ऐसा स्पष्ट कहिये और उसे राज्यद्रोह कहिये या और कुछ कहिये और उचित वैधिक विचार के पश्चात् दंडनीय अपराध के रूप में उसके लिये उपबन्ध करिये। पर मैं इस प्रकार की शक्तियों को केन्द्र या राज्यों को नहीं सौंपना चाहता हूं कि वे किसी व्यक्ति को इस संदेह पर निरुद्ध कर सकें कि वह विधि द्वारा स्थापित सरकार की सुदृढ़ता को हानि पहुंचायेगा। आप उसको बन्दी बनाने तथा उसके संबंध में ठीक वैधिक विचार करने और उस पर दोष सिद्ध करने के लिये उपबन्ध बना सकते हैं। पर उसे केवल इस आधार पर निरुद्ध करना कि जिन लोगों के हाथों में शक्ति है वे यह सोचते हैं कि सरकार की सुदृढ़ता संकट में है एक बहुत ही बड़ा दुखदायी दुष्कर्म होगा जिसका आधुनिक काल में प्रयोग हो रहा है। श्रीमान्, मैं समझता हूं कि यह बड़ा गम्भीर विषय है। सिद्धान्तहीन व्यक्तियों के हाथों में पड़ने पर ऐसा उपबन्ध बड़े भयंकर परिणामों का कारण होगा। अतः मैं समझता हूं कि इस प्रविष्टि को इस सूची में से अपमार्जित किया जाये।

***अध्यक्ष:** भावी कार्यक्रम पर कुछ घोषणा करने के लिये मुझसे कहा गया था। आगामी सप्ताह का कार्यक्रम मैं प्रस्थापित करता हूं अर्थात् आगामी सोमवार से सप्ताह के अन्त तक का।

5 सितम्बर, सोमवार: पंचम और षष्ट अनुसूचियां और द्वितीय अनुसूची।

6 सितम्बर, मंगलवार: 263-क, 264, 264-क, 265, 265-क और 266 अनुच्छेद।

7 सितम्बर, बुधवार: 281, 282, 282-क और 283 अनुच्छेद।

8 सितम्बर, बृहस्पतिवार: 296, 299, 302, 243, 244, 245 और 234-क अनुच्छेद।

9 सितम्बर, शनिवार: 304 और 305 अनुच्छेद तथा अष्टम अनुसूची।

यदि मुझे यह अनुभव हुआ कि जितनी शीघ्रता से हम कार्य करना चाहते हैं उतनी शीघ्रता से कार्य नहीं हो रहा है और इन सब बातों को हम दो सप्ताह में पूरा नहीं कर सकेंगे तो फिर मुझे यह विचार करना पड़ेगा कि हम एक दिन में दो बार बैठें या नहीं क्योंकि इस कार्यक्रम को समाप्त करने के लिये मैं आगामी सप्ताह से आगे नहीं जाना चहता हूं। काम में हम जितनी प्रगति करेंगे उसके अनुसार हम अपने कार्यक्रम की व्यवस्था करेंगे।

मैंने सोचा था कि हम आज इस सूची 3 को समाप्त कर देंगे पर हम न कर सके। अत: अब केवल यही मार्ग है कि या तो हम आज दोपहर बाद बैठें या कल।

***सेठ गोविन्द दास:** आपने उस तिथि की घोषणा नहीं की जिस तिथि को यह सत्र समाप्त होगा। मैं इस बात को जानना चाहता था जिससे कि हम अपने कार्यक्रम नियत कर सकें।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में इसके बारे में कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है क्योंकि यह जानना कठिन है कि हम कितनी प्रगति कर सकेंगे। पर हम यथा संभव शीघ्र ही इस कार्य को समाप्त करना चाहते हैं।

कल हम प्रात:काल नौ बजे समवेत, होंगे। 11 बजे तक हम इसे समाप्त कर देंगे।

इसके पश्चात् सभा शनिवार 3 सितम्बर, 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. IX.26.49
320

अंक 9
संख्या 25

शनिवार,
3 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)* 1417–1477

सप्तम अनुसूची—*(जारी)*

[सूची 3 (समवर्ती सूची) प्रविष्टि 2–क, 3 से 25, 25–क, 26, 26–क, 27, 28, 28–क, 29 से 31, 31–क, 32, 33, 33–क तथा ख, 34, 34–क, 35, 35–क, 36 तथा नवीन प्रविष्टि 88–क पर विचार] 1417–1477

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 3 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे, उपाध्यक्ष महोदय, श्री वी.टी. कृष्णमाचारी के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–*(जारी)*

सप्तम अनुसूची—*(जारी)*

सूची 3 (समवर्ती सूची) प्रविष्टि 2-क

***उपाध्यक्ष (श्री वी.टी. कृष्णमाचारी):** अब हम समवर्ती सूची की प्रविष्टि 2-क पर विचार करेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने संशोधन संख्या 290 में एक शाब्दिक परिवर्तन करने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूं। श्री कामत ने संशोधन संख्या 289 को उपस्थित किया है। मैं अगली प्रविष्टि को उपस्थित करना चाहता हूं और उसमें एक साधारण शाब्दिक परिवर्तन करने के लिए आपकी अनुमति चाहता हूं। मैं यह जानता हूं कि यह संशोधन स्वीकार नहीं किया जायेगा और इस पर विचार तक नहीं किया जायेगा। इसलिये इस संशोधन को सुगढ़ बनाने में कोई हानि नहीं है। क्या मैं आपकी अनुमति से "बलपूर्वक सरकार का तख्ता उलटने" शब्दों के स्थान पर "राज्य की सुरक्षा" शब्दों को रख सकता हूं? "राज्य की सुरक्षा" पदावली अधिक उपयुक्त पदावली है और यह परिवर्तन भी केवल शाब्दिक परिवर्तन ही है।

***उपाध्यक्ष:** जी हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं अपने मित्र के विचारार्थ यह सुझाव रख सकता हूं कि यदि वे इन शब्दों को अर्थात् "विधि के अधीन स्थापित सरकार की स्थिरता से संसक्त" शब्दों के स्थान में "राज्य की सुरक्षा से संसक्त" शब्दों को स्वीकार कर लें तो मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं, क्योंकि मैं यह देखता हूं कि हमने सूची 1 की संशोधित प्रविष्टि 3 में इसी भाषा को प्रयोग किया है। हमने उसमें "भारत की सुरक्षा" पदावली रखी है। मैंने जिन शब्दों का सुझाव रखा है उनसे यदि मेरे मित्र को संतोष हो जाता है तो मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं डॉ. अम्बेडकर का आभारी हूं, किन्तु मैं भी उपाध्यक्ष महोदय से बिल्कुल यही परिवर्तन करने के लिये आज्ञा मांग रहा था।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ आप की शब्दावली भिन्न थी।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं एक संशोधित संशोधन उपस्थित करने जा रहा था और वह अक्षरशः उसी प्रकार है जिसका अभी डॉ. अम्बेडकर ने सुझाव रखा है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ तब उसके सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है। यदि मेरे माननीय मित्र अपने संशोधन को उसी रूप में उपस्थित करें जिस रूप में मैंने उसे प्रस्तुत करने का सुझाव रखा है, तो मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मुझे अपना संशोधन अवश्य ही उपस्थित करना चाहिये।

*__उपाध्यक्षः__ चूकि डॉ. अम्बेडकर उसे स्वीकार करने जा रहे हैं; क्या यह आवश्यक है कि माननीय सदस्य महोदय उसे उपस्थित करें और उस पर बोलें?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ यदि मेरे माननीय मित्र इसे स्वीकार नहीं करते कि मैं एक ऐसे संशोधन को उपस्थित करने जा रहा हूं जो उनके विचारों के अनुरूप है और एक सही संशोधन है, तो इसका कोई इलाज नहीं है किन्तु मैं अपना संशोधन उपस्थित करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 124 में सूची 3 की प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 2-क में 'Stability of Government (सरकार की स्थिरता)' शब्दों के स्थान पर 'Security of the State (राज्य की सुरक्षा)' शब्द रखे जायें।"

"सरकार की स्थिरता" पदावली उपयुक्त पदावली नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं इस संशोधन को स्वीकार कर रहा हूं, इसलिये मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं यह जानता हूं। किन्तु यह सभा को भी बताना है। मैं केवल एक दो शब्द कहूंगा। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने जिस नवीन प्रविष्टि का अर्थात् जिन "सरकार की स्थिरता से संसक्त कारणों के लिए निवारक निरोध"

शब्दों का प्रस्ताव रखा है उस प्रसंग में "सरकार की स्थिरता" शब्द अस्पष्ट हैं। "सरकार" और "राज्य" में अन्तर है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसी कारण मैंने इसे स्वीकार किया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** किन्तु श्रीमान्, उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उन्होंने इसे किस कारण स्वीकार किया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह कह चुका हूं कि "राज्य की सुरक्षा" पदावली यथोचित पदावली है। इसलिए इस सम्बन्ध में किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य महोदय ने जो संशोधन उपस्थित किया है वह स्वीकार किया जा चुका है। इसलिये अब विस्तृत तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** किन्तु सभा को यह सूचित किया जाना चाहिये। खराब मसौदे को रोशनी में लाने से इतनी घबड़ाहट क्यों होती है? बात यह है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि मेरे यह स्वीकार करने से कि मैंने गलती की है मेरे माननीय मित्र को संतोष हो जाये तो मैं यह स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इसे केवल सभा को ही न जानना चाहिये बल्कि सभी लोगों को जानना चाहिए। मसौदे में "सरकार की स्थिरता" शब्द है। उनसे मंत्रिमंडल की अस्थिरता भी अभिप्रेत हो सकती है और इस कारण विपक्षी दल के लोग बन्दी भी बनाये जा सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अच्छी बात है, हमने गलती की है। क्या यह काफी है?

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से और कोई संशोधन नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): मैं इस संशोधन पर बोलना चाहता हूं। उपाध्यक्ष महोदय, मसौदा समिति के सभापति महोदय ने जिस नवीन प्रविष्टि का प्रस्ताव रखा है उसके सम्बन्ध में कुछ शब्द बोलने के लिये मैं अपने स्थान से उठा हूं।

इस प्रविष्टि से भारत सरकार को विधि के अधीन स्थापित राज्य की सुरक्षा के हित में तथा सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने और समुदाय के लिये अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं को बनाये रखने के लिये लोगों को निरुद्ध करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

केन्द्र को जो शक्ति प्रदान की गई है वह एक बहुत ही सीमित शक्ति है। निवारक निरोध के अतिरिक्त भारत सरकार को उस समय तक कोई शक्ति प्राप्त नहीं है जब तक कि स्थिति इतनी न बिगड़ जाये कि आपात सम्बन्धी उपबन्ध

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

प्रयोग में लाये जा सकें। किसी शरारत को आरम्भ में ही समाप्त कर देने के लिये भारत सरकार को अधिक शक्ति दी जानी चाहिये थी। यदि भारत सरकार का यह विचार हो कि बिना उसके सहयोग अथवा सहायता के किसी राज्य की सरकार प्रभावपूर्ण ढंग से अराजकता को फैलने से नहीं रोक सकती तो उसे कदम उठाने और स्थिति को अपने हाथ में लेने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। उसके क्षेत्राधिकार को परिसीमित करना मूर्खता ही है विधि और व्यवस्था को सशक्त तथा सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि सार्वजनिक-व्यवस्था की सुरक्षा के सम्बन्ध में समवर्ती अधिकार हों। यदि हम यह चाहते हैं कि आपात सम्बन्धी उपबन्ध अभी प्रयोग ही में न आयें तो यह आवश्यक है कि हम केन्द्र के क्षेत्राधिकार को अधिक विस्तृत बनायें। जब कभी यह प्रश्न उपस्थित हो कि विधि और व्यवस्था बनाये रखने के मार्ग पर चला जाये अथवा प्रान्तीय स्वशासन बनाये रखने के मार्ग पर तो हमें पहले मार्ग का अनुसरण करने में कोई संकोच न होना चाहिये।

मुझे खेद है कि मैं श्री कामत से इस प्रसंग में भी सहमत नहीं हूं। उन का राजनैतिक सिद्धान्त वास्तव में व्यक्तिवाद और दार्शनिक अराजकतावाद का विचित्र सम्मिश्रण है। इन दोनों वादों का हमारे जीवन में कोई स्थान नहीं है। समूहवाद की शक्तियां इतनी प्रबल हो गई हैं और निरन्तर इतनी प्रबल होती जा रही हैं कि कोई भी राजनीति प्रेमी, जब तक कि वह एक काल्पनिक जगत में न रहना चाहे, व्यक्तिवाद और दार्शनिक अराजकतावाद के प्रवर्तक मिल और बैकुनिन की मौखिक प्रशंसा भी न करेगा।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 124 में, सूची 3 की प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 2-क में 'Stability of Government (सरकार की स्थिरता)' शब्दों के स्थान पर 'Security of the State (राज्य की सुरक्षा)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, संशोधित रूप में संशोधन पर मत लिया जाना चाहिये। सूचना-पत्र में जिस रूप में वह उल्लिखित है उस रूप में उस पर मत नहीं लिया जाना चाहिए।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 124 पर उस रूप में मत लेता हूं जिस रूप में डॉ. अम्बेडकर ने उसे संशोधित किया है। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची-3 की प्रविष्टि-2 के पश्चात्, निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'2A. Preventive detention for reasons connected with the security of the State and the maintenance of public order and services or supplies essential

to the life of the community; persons subjected to such detention.'"

(2-क राज्य की सुरक्षा से, सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने से अथवा समुदाय के लिये अत्यावश्यक संभरणों और सेवाओं को बनाये रखने से संसक्त कारणों के लिये निवारक निरोध, ऐसे निरुद्ध व्यक्ति।)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 2-क, संशोधित रूप में समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 3

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 3 के स्थान पर, निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'3. Removal from one State to another State of prisoners, accused persons and persons subjected to preventive detention for reasons specified in entry 2-A of this List.'"

(3. कैदियों, अभियुक्त व्यक्तियों तथा इस सूची की प्रविष्टि 2-क में उल्लिखित कारणों से निवारक निरोध में किये गये व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं संशोधन संख्या 291 को नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 292। संशोधन के प्रस्तावक उपस्थित नहीं हैं। इस लिये यह संशोधन नहीं उपस्थित किया जा रहा है।

मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 3 के स्थान पर, निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'3. Removal from one State to another State of prisoners, accused persons and persons subjected to preventive detention for reasons specified in entry 2-A of this List.'"

(3. कैदियों, अभियुक्त व्यक्तियों तथा इस सूची की प्रविष्टि 2-क में उल्लिखित कारणों से निवारक निरोध में किये गये व्यक्तियों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 3, संशोधित रूप में समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 4

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 4 से 'for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule (प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 में इस समय उल्लिखित)' शब्द और अंक निकाल दिये जाये।"

***उपाध्यक्षः** इस प्रविष्टि के सम्बन्ध में अन्य कोई संशोधन नहीं है।

मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 4 से 'for the time being specified in Part I or Part II of the First Schedule (प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 में इस समय उल्लिखित)' शब्द और अंक निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 4, संशोधित रूप में सूची 3 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 4, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 5

***उपाध्यक्षः** श्री कामत अपनी जगह पर नहीं हैं। उनके नाम से जो संशोधन था वह (अर्थात् संशोधन संख्या 293) उपस्थित नहीं किया जाता।

प्रविष्टि 5 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 6

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 6 में, 'infants (शिशु)' शब्द के पश्चात् 'care and protection of destitute and abandoned children and youth (निराश्रितों तथा परित्यक्त शिशुओं और युवकों का पोषण और रक्षण)' शब्द रखे जायें।"

अथवा, विकल्पत:

"सूची 3 की प्रविष्टि 6 में, 'infants (शिशु)' शब्द के पश्चात् 'protection of childhood and youth against exploitation and against moral and material abandonment (शोषण और नैतिक तथा भौतिक परित्यजन से शैशवावस्था तथा युवावस्था का रक्षण)' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, ऐसे शिशुओं और बालकों के पोषण की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में जिनके शोषण की अथवा नैतिक अथवा भौतिक परित्यजन की सम्भावना हो यह मेरा दूसरा प्रयास है। पिछली बार मैंने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया था कि इस प्रविष्टि को संघ की अनन्य शक्तियों की सूची में स्थान दिया जाये। यह कहा जा सकता है कि यह विषय केन्द्र के अनन्य क्षेत्राधिकार में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। मैंने अब इसे सूची 2 में प्रविष्टि करने का प्रस्ताव रखा है ताकि इसके सम्बन्ध में राज्यों को और केन्द्र को समवर्ती क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। यह भी कहा जा सकता है कि "शिशु और अवयस्क" शब्दों में मेरे प्रस्ताव का आशय आ जाता है और मूल मसौदे की प्रविष्टि 6 के अधीन बच्चों और युवकों के लिये बहुत कुछ किया जा सकता है।

मैं पहले बतला चुका हूं और इसे फिर दुहराता हूं कि "शिशु" शब्द का विशेष अर्थ है और उससे सभी बच्चों का अर्थ प्रकट नहीं होता। इसके अतिरिक्त "अवयस्क" शब्द से सभी अवयस्क बच्चों के अर्थ का बोध नहीं होता। "अवयस्कता" का विधि के अनुसार अर्थ लगाया जाता है और इस कारण वही लोग अवयस्क कहे जाते हैं जो विधि के अधीन अवयस्क समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीमान्, इस प्रविष्टि के पांचों शब्द अर्थात् "विवाह और विवाह-विच्छेद; शिशु और अवस्यक; दत्तक ग्रहण" यह व्यक्त करते हैं कि विधि के अधीन लोगों को कौन से अधिकार प्राप्त हैं और किसी प्रकार भी यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे उनका पोषण और रक्षण भी अभिप्रेत है।

इसके अतिरिक्त यह देखा जा सकता है कि धार्मिक संगठन अथवा साहित्यक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को सहायता देने के सम्बन्ध में उपबन्ध तथा प्रविष्टियां हैं। मेरे कुछ मित्रों ने मेरा ध्यान राज्य-सूची की प्रविष्टि 42 और 43 की ओर आकृष्ट किया है। ये दो प्रविष्टियां इन संस्थाओं को केवल आर्थिक सहायता देने के सम्बन्ध में हैं। किन्तु मैं यह चाहता हूं कि केन्द्र और राज्य निराश्रित तथा परित्यक्त बच्चों की देख रेख का दायित्व स्वयं ग्रहण करें। इस सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में कोई उपबन्ध नहीं है। वर्तमान काल तथा वर्तमान स्थिति को देखते हुए यदि इस सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में कोई उपबन्ध न रखा गया तो यह बहुत अनुचित होगा। यदि हम विदेशों की विधियों की परीक्षा करें तो हम यह देखेंगे कि इस विषय के सम्बन्ध में बहुत सावधानी बरती गई है। कुछ ही वर्ष पूर्व अर्थात् 1946 और 1948 में इंग्लिस्तान की संसद ने इस विषय के सम्बन्ध में नवीन विधि निर्मित की।

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

इस प्रश्न के दो पहलू हैं। अपराधी बच्चों के सम्बन्ध में तो प्रान्तों ने विधियां बनाई हैं किन्तु जहां तक निराश्रित और परित्यक्त बच्चों के पोषण के सम्बन्ध में प्रान्तों के अथवा केन्द्र के दायित्व का सम्बन्ध है, अभी तक किसी भी विधि का निर्माण नहीं हुआ है। मैंने अपने संशोधन में अनुच्छेद 31 की ही शब्दावली रखी है जिसमें कहा गया है कि "शोषण और नैतिक तथा भौतिक परित्यजन से शैशवावस्था तथा युवावस्था का रक्षण होगा"। यह कहा जाता है कि चूंकि इसे राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में स्थान दिया गया है, इसलिये केन्द्र को इस विषय के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्राप्त है। मुझे इस तर्क से संतोष नहीं होता और वास्तव में मेरा यह विश्वास है कि यह तर्क असंगत हैं इस विषय को राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के अध्याय में सम्मिलित करने का अर्थ यह नहीं है कि इस सम्बन्ध में विधिनिर्माण की शक्ति प्रदान की गई है। यह विशेष रूप से इस कारण भी कहा जा सकता है कि चूंकि हम एक प्रकार से संघीय व्यवस्था स्थापित करने जा रहे हैं। इसलिये यह हमेशा विवादग्रस्त ही रहेगा कि इस सम्बन्ध में दायित्व केन्द्र का है या प्रान्तों का चूंकि इस सम्बन्ध में सन्देह बना रहेगा इसलिये श्रीमान्, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि समवर्ती सूची में इस सम्बन्ध में कोई उपबन्ध हो, ताकि इसका दायित्व राज्यों और केन्द्र दोनों पर हो।

मैंने विधान-सभा में इस सम्बन्ध में एक विधेयक उपस्थित करने की सूचना दी है और यह मैंने संविधान में समाविष्ट निदेशक तत्वों के आधार पर दिया है। यदि हम इस प्रविष्टि को स्थान नहीं देते हैं तो यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि यह विषय केन्द्र के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता क्योंकि बोर्स्टल संस्थाओं पर राज्यों का अधिकार है और वे ही इस सम्बन्ध में कार्य कर सकते हैं तथा इस कारण प्रान्तों को ही इस सम्बन्ध में विधि बनानी चाहिये। इस भ्रम को तथा इस कठिनाई को दूर करने के लिये और बच्चों तथा युवकों की देखरेख करने में यदि केन्द्र के लिये कोई बाधा हो तो उसे दूर करने के लिये मैंने यह तर्क उपस्थित किया है कि इस प्रविष्टि को स्थान दिया जाये। यदि हम अन्य देशों की विधियों की परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि वहां 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों की देखरेख की जाती है और अब 25 वर्ष तक की आयु के बच्चों की देखरेख की जाने लगी है। उन देशों के निवासियों की यह धारणा है कि राज्य अब केवल आरक्षियों और न्यायाधीशों का संगठन नहीं रह गया है और वह अब एक सामाजिक निगम होने जा रहा है। किसी भी सामाजिक निगम में बच्चों तथा युवकों की देखरेख तथा रक्षा का सबसे अधिक महत्व है।

इस दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस प्रविष्टि को स्थान दिया जाये। मुझे आशा है कि हम इस सम्बन्ध में कटु वाद-विवाद करके कल के समान अपना समय नष्ट नहीं करेंगे जब कि खाद्य में अपमिश्रण-सम्बन्धी मद को स्वीकार

करने के लिये मसौदा-समिति के नेताओं तथा प्रवर्तकों के सामने बहुत समय तक तर्क रखे गये थे। मैं यह कहूंगा कि यह उस मद से अधिक महत्वपूर्ण है और यदि किसी नियम-सम्बन्धी आपत्ति के कारण अथवा किसी अन्य कारण इस प्रविष्टि का विरोध किया गया और यह स्वीकार नहीं की गई तो यह शर्म की बात होगी। मैं यह जानता हूं कि इस सभा के बहुत से माननीय सदस्य इस प्रविष्टि का समर्थन करना चाहते हैं। इसलिये मुझे आशा है कि इस विषय पर अधिक वाद-विवाद नहीं होगा और डॉ. अम्बेडकर मेरे दो संशोधनों में से किसी एक को स्वीकार कर लेंगे। मैं अपने दूसरे संशोधन को पहले संशोधन से अधिक अच्छा समझता हूं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र डॉ. पंजाबराव देशमुख ने जिस संशोधन को उपस्थित किया है उसका समर्थन करते हुए मुझे बहुत हर्ष का अनुभव हो रहा है। मसौदा-समिति तथा इस सभा से मेरी यह अपील है कि वे यह समझें कि यह विषय अर्थात् शोषण अथवा परित्यजन से बच्चों के रक्षण का विषय एक महत्वपूर्ण विषय है और इसमें जो सिद्धान्त सन्निहित है उसे स्वीकार करें। विशेषतया मसौदा-समिति से मेरी यह अपील है कि वह इस विषय को यथोचित प्रविष्टि के रूप में स्थान दे। जब तक राज्य इस सम्बन्ध में विधि बनाने की जिम्मेदारी स्वयं न ले मेरे विचार से इसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जायेगा। मैं यह जानती हूं कि इस मामले की उपेक्षा नहीं की गई है और मसौदा-समिति के सभापति यह कहेंगे कि तीनों सूचियों में इस सम्बन्ध में कई प्रविष्टियां हैं और बच्चों, निराश्रितों और परित्यक्तों की रक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था की गई है। मैं यह जानती हूं कि यह सिद्धान्त निदेशक तत्वों के अध्याय से स्वीकार किया गया है। अनुच्छेद 31 के खण्ड 6 में इस संशोधन की शब्दावली में ही यह सिद्धान्त रखा गया है। बच्चों और युवकों को शोषण से तथा नैतिक और भौतिक परित्यजन से बचाने के लिए व्यवस्था की गई है। श्रीमान्, डॉ. पंजाबराव ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसकी भाषा इसी प्रकार है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि निदेशक तत्वों के अधीन इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। यह इस सम्बन्ध में एक पवित्र घोषणा मात्र ही होगा कि हमारा उद्देश्य यह है कि बच्चों की रक्षा के लिये कुछ किया जाये। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। किसी भी प्रविष्टि में इस विषय का उल्लेख नहीं किया गया है। यदि आप तीनों सूचियों की परीक्षा करें तो आप देखेंगे कि किसी भी सूची में स्पष्ट शब्दों में इस सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि नहीं रखी गई हैं कोई भी स्पष्ट प्रविष्टि न होने के कारण बच्चों की यथोचित रक्षा न हो सकेगी। इस विषय के सम्बन्ध में भ्रम बना ही रहेगा। यह ज्ञात नहीं रहेगा कि इस विषय के सम्बन्ध में राज्य विधि बनायें अथवा केन्द्र अथवा दोनों विधि बनायें।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

इसलिये श्रीमान्, मसौदा-समिति से मेरी यह अपील है कि इस विषय को विचाराधीन समवर्ती सूची में अथवा अन्य किसी सूची में सम्मिलित किया जाये।

जब तक राज्य स्वयं इसकी जिम्मेदारी न लेगा तब तक कुछ न किया जा सकेगा। राज्य को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी ऐसी संस्था को, जो निजी तौर पर अथवा किसी दानी द्वारा शिशुओं की रक्षा के उद्देश्य से चलाई गई हो, कुछ सहायता दे अथवा कुछ दान या चंदा दे। हम जानते हैं कि इन संस्थाओं को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये कितना संघर्ष करना पड़ रहा है। धन के अभाव के कारण ये संस्थाएं अच्छी नहीं चल रही हैं। ऐसी दशा में गरीबों के ये घर गरीब बच्चों की सेवा नहीं कर सकेंगे। यदि इनके सम्बन्ध में राज्य स्वयं जिम्मेदारी न लेगा तो मैं कह नहीं सकती कि ये किस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकेंगे। यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसे निजी तौर पर निबटाने के लिये लोगों पर छोड़ दिया जाये। इसकी जिम्मेदारी राज्य को स्वयं लेनी चाहिये। केवल निदेशक तत्वों के रूप में पवित्र घोषणाओं के उल्लेख मात्र से कोई लाभ न होगा, जब तक कि राज्य उनको प्रयोग में न लाये।

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि इस सम्बन्ध में दण्ड-विधि है। मैं यह जानती हूं कि परित्यजन के सम्बन्ध में दण्ड-विधि है। मैं यह भी भली-भांति जानती हूं कि यह मामला कितनी दूर तक आज कल चला जाता है। यह सच है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध परित्यजन का दोष सिद्ध होने पर उसे दण्ड दिया जाता है किन्तु परित्यक्त बच्चे का क्या होता है? प्रश्न यह है। वह कहां जाये? वह कब तक इसकी प्रतीक्षा करेगा कि कोई व्यक्ति आगे बढ़ेगा और उसकी रक्षा करेगा? इसलिये श्रीमान्, यह एक बहुत खतरनाक मामला है। यदि हम बच्चों को उनके भाग्य पर छोड़ देंगे तो वे भीख मांगने लगेंगे और चोरी करने की अथवा इसी प्रकार की अन्य बुरी आदतों के शिकार हो जायेंगे। इसलिये राज्य का यह कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के बच्चों की समय पर सहायता करे और इनकी उन्नति की ओर ध्यान दे। इन बच्चों से ही हम भविष्य के लिये आशा कर सकते हैं और वास्तव में इन बच्चों की शिष्टता, सदाचार, सुन्दर स्वास्थ्य और नैतिक बल पर ही राष्ट्र का भविष्य निर्भर है।

श्रीमान्, जब मसौदा-समिति जंगली पक्षियों की रक्षा के सम्बन्ध में एक प्रविष्टि रख सकती है तो क्या बच्चों का जंगली पक्षियों के वर्ग से भी कम महत्व है? इसलिये जब आप संविधान में जंगली पक्षियों के लिये उपबन्ध रख सकते हैं तो मैं आपसे अपील करती हूं कि परित्यक्त बच्चों की रक्षा के सम्बन्ध में भी उसमें यथोचित प्रविष्टि रखी जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के इस प्रविष्टि के सम्बन्ध में उत्तर देने के पूर्व मैं भी बोलना चाहता हूं।

*__उपाध्यक्षः__ श्रीमती दुर्गाबाई, क्या आप समाप्त कर चुकी हैं?

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाईः__ मैं समाप्त कर चुकी हूं। मुझे और कुछ नहीं कहना है। मैं केवल यह चाहती हूं कि डॉ. अम्बेडकर हमें यह आश्वासन दें कि वे इस उद्देश्य से संविधान के सभी खण्डों की परीक्षा करेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे प्रस्ताव को स्वीकार करने में उनके लिये आसानी होगी। वे जिस सूची में चाहें इसे स्थान दें। इस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु हमें यह आश्वासन मिलना चाहिये कि इस प्रविष्टि को संविधान में स्थान दिया जायेगा और यह न कहा जायेगा कि इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में कठिनाइयां हैं। श्रीमान्, मैं मसौदा-समिति से तथा इस सभा से अपील करती हूं कि वे यह समझें कि इस विषय का कितना अधिक महत्व है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने जिस संशोधन को उपस्थित किया है और जिसका समर्थन श्रीमती दुर्गाबाई ने किया है उसका समर्थन करने के लिये मैं भी उठा हूं यदि शोषण और नैतिक तथा भौतिक परित्यजन से शैशवावस्था तथा युवावस्था का रक्षण करना है तो इस सम्बन्ध में भारत सरकार को आवश्यक शक्तियां प्रदान की जानी चाहियें। यदि हम भावी पीढ़ी को नैतिक तथा भौतिक शोषण से मुक्त करना चाहते हैं तो भारत सरकार को चाहिये कि वह लोगों को जनन-नियंत्रण के लिये आवश्यक सुविधाएं प्रदान करे।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मेरा यह निश्चित मत है कि वैश्यावृत्ति का वैज्ञानिक दृष्टि से नियमन होना चाहिये। श्रीमान्, 1938 में, जब मैं गया की नगरपालिका का एक सदस्य था, तो मैंने उसके सामने एक संकल्प रखा था। उस संकल्प का आशय वही था जो डॉ. पी.एस. देशमुख के संशोधन संख्या 252 का है। नगरपालिका के सामने मैंने जो संशोधन रखा था वह वैश्यावृत्ति के नियमन तथा नियंत्रण और वैश्यागृहों को बनाये रखने के सम्बन्ध में था। इस प्रस्ताव का भी यही आशय है। मुझे खेद है कि नगरपालिका के अध्यक्ष ने उस संकल्प को यह कह कर उपस्थित नहीं करने दिया कि यह विषय नगरपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारें इस विषय में दिलचस्पी लें ताकि देश के युवक नैतिक परित्यजन से बच सकें। इस सभा के समक्ष मैं एक अन्य तर्क भी रखना चाहता हूं। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह जन्म से लेकर वयस्क होने तक प्रत्येक बच्चे का पोषण करे। राज्य को चाहिये कि वह भारतीय संघ के प्रत्येक नागरिक को शिक्षा तथा चिकित्सा-सम्बन्धी सुविधाएं तथा आजीविका के साधन प्रदान करें। परिवारों का स्वरूप बड़ी शीघ्रता से बदल रहा है। मैं कह नहीं सकता कि अन्त में उन्हें कौन-सा स्वरूप प्राप्त होगा किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी संदेह नहीं है कि आज उनकी स्थिति ऐसी नहीं है कि वे शैशवावस्था तथा युवावस्था को नैतिक तथा भौतिक परित्यजन से बचा सकें। इसलिये राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह देश के युवाओं को

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

सभी कुप्रभावों से बचावें। प्लेटो के कथनानुसार परिवार मनुष्य के प्रेम और स्नेह को परिसीमित कर देता है। जिस किसी का परिवार में ही पालन-पोषण होता है उसकी बुद्धि तथा नैतिकता का विकास नहीं हो पाता। यदि मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने में समर्थ बनाना है तो उसे पारिवारिक जीवन के कुप्रभावों से बचाना होगा। यदि उसे उन्नति के उच्चतम शिखर में पहुंचाना है और उसे अपने अन्त:करण को पूर्ण रूप से विकसित करने में समर्थ बनाना है तो प्लेटो की रिपब्लिक पुस्तक में वर्णित सिद्धान्तों के अनुसार निजी सम्पत्ति और विवाह को समाप्त करना होगा। डॉ. पी.एस. देशमुख ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख ने प्रविष्टि 6 में बच्चों की रक्षा के सम्बन्ध में जिन शब्दों को स्थान देने के सम्बन्ध में अपना संशोधन उपस्थित किया है वे अप्रासंगिक हैं क्योंकि प्रविष्टि 6 भले ही शिशुओं और अवयस्कों के सम्बन्ध में हो किन्तु उसके सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह हैसियत के विषय में है। प्रविष्टि 6 में शिशुओं और अवयस्कों की हैसियत का उल्लेख है किन्तु "निराश्रित और परित्यक्त बच्चों और युवाओं की देखरेख तथा रक्षा" का हैसियत से कोई सम्बन्ध नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ इसी कारण मैं यह चाहता था कि इस सम्बन्ध में एक अलग प्रविष्टि को स्थान दिया जाये। एक अलग प्रविष्टि को स्थान देने के सम्बन्ध में मेरे नाम से एक संशोधन है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं अभी प्रस्तुत संशोधन पर विचार कर रहा था। ये शब्द प्रविष्टि 6 में, बिना उसके स्वरूप को बिगाड़े हुए, नहीं रखे जा सकते। इसलिये इस अवसर पर इन शब्दों को स्थान देने के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, उसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

अब मैं, श्रीमान्, बच्चों की रक्षा के प्रश्न को उठाता हूं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं तथा इस सभा का प्रत्येक सदस्य, तथा मसौदा-समिति के सदस्य, इस सम्बन्ध में कुछ भी आपत्ति नहीं कर सकते कि राज्य को बच्चों की रक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। इस सम्बन्ध में कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता किन्तु प्रश्न यह है कि मसौदा-समिति ने जो सूची तैयार की है उसमें क्या यह विषय नहीं आ गया है? इन प्रविष्टियों में हमने केवल उन विषयों का, तथा उन विषयों के वर्गों का उल्लेख किया है जिनके विषय में विधि बनाई जा सकती है। हमने इसका उल्लेख नहीं किया है कि विधि का उद्देश्य क्या होगा।

यदि कोई विधान-मंडल स्थितिवश यह विचार करे कि उसे बच्चों की रक्षा करनी चाहिये, तो वह यह कर सकता है। प्रश्न यह है कि क्या यह सम्भव नहीं है कि इन प्रविष्टियों के अधीन राज्य बच्चों की रक्षा के लिये व्यवस्था कर सके?

मेरे विचार से सूची 2 में जो प्रविष्टियां हैं उनमें से किसी के भी अधीन राज्य बच्चों की रक्षा के उद्देश्य से विधि बना सकता है। उदाहरणार्थ सूची 2 की प्रविष्टि 2 के अधीन, जो न्याय-प्रशासन के सम्बन्ध में है, राज्य को इसकी स्वतंत्रता है कि वह बाल-अपराधियों के लिये न्यायालय स्थापित करे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मेरा यह उद्देश्य नहीं है। मैंने बाल-अपराधियों के न्यायालयों की कभी चर्चा नहीं की।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कारागारों, सुधारालयों और बोर्स्टल संस्थाओं का ही उदाहरण लीजिये। वे दंड के सिद्धान्त के आधार पर नहीं बल्कि सुधार के सिद्धान्त के आधार पर विशेष प्रकार के न्यायालय स्थापित कर सकते हैं। शिक्षा का ही उदाहरण लीजिये।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाईः** श्रीमान्, क्या मैं निवेदन कर सकती हूं कि अपराधी बच्चों का विषय निराश्रित तथा परित्यक्त बच्चों के विषय से बिलकुल भिन्न है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जैसाकि मैं कह रहा था, सूची 2 की प्रविष्टि 18 के अधीन, जो शिक्षा के सम्बन्ध में है, बच्चों के लिये, और परित्यक्त बच्चों के लिये भी, विशेष प्रकार के शिक्षालय स्थापित किये जा सकते हैं। प्रविष्टि 42 के अधीन, जो संस्थाओं के निगमन के सम्बन्ध में है, राज्य बच्चों की देख-रेख के लिये स्थापित संस्थाओं को पंजीबद्ध कर सकता है, अथवा इस कार्य के लिये स्वयं किसी निगम को स्थापित कर सकता है।

इसलिये यदि मेरे मित्र यह समझें कि मैं यह सच्चे हृदय से कह रहा हूं कि सूची 2 में जो प्रविष्टियां हैं उनके अधीन राज्य बच्चों की रक्षा के उद्देश्य से हर प्रकार की व्यवस्था कर सकता है तो मेरे विचार से इस सम्बन्ध में अलग प्रविष्टि रखने का कोई अर्थ नहीं होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूं, बच्चों की रक्षा का विषय किसी विधि का विषय नहीं है, वह विधि का लक्ष्य हो सकता है।

डॉ. पी.एस. देशमुखः आपने जंगली चिड़ियों की रक्षा के सम्बन्ध में भी उपबन्ध रखा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह देखता हूं कि मेरे दोनों मित्र इस प्रश्न को छेड़ते रहने पर तुले हुए हैं। इसलिये मेरी उनसे यह प्रार्थना है कि वे इस आश्वासन पर अपने संशोधन को वापस ले लें कि मसौदा-समिति संविधान को दुहराते समय इस विषय पर विचार करेगी और यदि किसी सूची में इस प्रकार की प्रविष्टि को रखने से कोई लाभ दिखाई देगा तो वह उस पर विचार करेगी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

और सभा के सामने एक प्रस्ताव उपस्थित करेगी। इस अवसर पर मुझे इसे स्वीकार करने में कठिनाई दिखाई दे रही है क्योंकि मुझे इस विषय पर पूरी तौर से विचार करने का समय नहीं मिला है। इस प्रकार की प्रविष्टि को स्थान देने के पूर्व पूरी तौर पर विचार करने की आवश्यकता है।

***उपाध्यक्षः** क्या डॉ. देशमुख अपने संशोधन पर मत लेने के लिए जोर देते हैं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे कम से कम यह कहें कि मेरे स्वतंत्र प्रविष्टि-विषयक संशोधन उठाये जाने के पहले वे इसके पक्ष में उन तर्कों की अपेक्षा कुछ अधिक सारपूर्ण तर्क उपस्थित कर सकेंगे जो उन्होंने अभी तक प्रस्तुत किये हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं पूरे प्रश्न पर विचार करूंगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** चूंकि मैं एक अन्य संशोधन को उपस्थित कर रहा हूं, इसलिये मैं इस संशोधन पर मत लेने के लिये जोर नहीं देता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि संख्या 6 सूची 2 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 6 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टियां 7 से 14 तक

प्रविष्टि 7 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 8 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 9 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 10 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 11 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 12 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 13 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 14 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 15

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 15 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः–

'15. Actionable wrongs [(15) अभियोज्य दोष]'"

जिन शब्दों को निकाल देने का प्रस्ताव मैंने रखा है वे प्रस्ताव में अनावश्यक हैं।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 15 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः– '15. Actionable wrongs [(15) अभियोज्य दोष]'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि संख्या 15, संशोधित रूप में, सूची 3 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 15, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 16

प्रविष्टि 16 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 17

*__श्री आर.वी. धुलेकर__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रविष्टि 17 के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं। प्रविष्टि 17 विधि-वृत्तियों, वैधक वृत्तियों और अन्य वृत्तियों के सम्बन्ध में है। श्रीमान्, अपनी अनुमति से मैं केवल वैधक-वृत्ति पर बोलूंगा और अन्य वृत्तियों को अन्य सज्जनों के विचारार्थ छोड़ दूंगा।

पहले मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि कुछ समय से भारत में 'मेडिकल' शब्द प्रयुक्त रहा है और उसके कारण स्वास्थ्य के प्रश्न के औषधीय अंग पर ही अधिक जोर दिया जाता रहा है। 'मेडिकल' शब्द भ्रामक है। उसका अर्थ केवल औषधीय उपचार है। इसलिये स्थिति ऐसी हो गई है कि हम यह समझने लगे हैं कि औषधि-विभाग का प्रशासन केवल इस आधार पर हो सकता है कि कौन सी औषधियां देश के लिये उपयोगी होंगी। श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि वैधक के प्रश्न पर कई दृष्टिकोणों से विचार करने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह ऐसा प्रबन्ध करे कि प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक शरीरधारी मनुष्य जीवन के परिरक्षण, रक्षण तथा कालवृद्धि की कुछ न कुछ जानकारी प्राप्त कर सके। "मेडिकल" शब्द एक गलत शब्द है। मेरा यह निवेदन है कि भारत में जो शब्द प्रचलित था वह था "आयुर्वेद" जिसका अर्थ है जीवन-विज्ञान।

इस प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने के पश्चात् मैंने यह अनुभव किया कि अंग्रेजों के राजकाल में इस विषय को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना

[श्री आर.वी. धुलेकर]

दिया जाना चाहिये था और इस समय भी यही दशा है। मेरी यह धारणा है कि भारत सरकार जीवन-विज्ञान की शिक्षा देने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कर रही है। जीवन-विज्ञान अर्थात् आयुर्वेद इस देश का आधारभूत विधान है और हजारों वर्षों से इसकी शिक्षा दी जाती रही है। किन्तु विदेशियों को तथा विदेशी शिक्षा का आविर्भाव होने पर आयुर्वेद को पीछे धकेल दिया गया। कई मंचों से स्वास्थ्य मंत्री तथा अन्य लोग यह कहते रहते हैं कि आयुर्वेद कोई विज्ञान नहीं है, यद्यपि भारत में बहुत प्राचीन काल से इसकी शिक्षा दी जाती रही है और इस समय भी इस विद्या से 85 प्रतिशत लोगों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। मेरा यह अनुरोध है कि हमारी शब्दावली से "मेडिकल" शब्द निकाल दिया जाय।

कुछ समय से "मेडिकल" विभाग के साथ "हेल्थ" शब्द को भी जोड़ने का प्रयास किया जाता रहा है। प्रान्तों में "हेल्थ" विभाग है और केन्द्र में भी "हेल्थ" विभाग है। चूंकि इस समय समवर्ती सूची पर विचार हो रहा है, इसलिये मेरा यह निवेदन है कि देश के औषधि-सम्बन्धी प्रश्न की ओर अर्थात् स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्न की ओर यथेष्ट ध्यान दिया जाना चाहिये। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो राज्य को ही लोगों के स्वास्थ्य के परिरक्षण के लिये जिम्मेदार ठहराते हैं। मैं इस सम्बन्ध में भोर समिति के प्रतिवेदन से सहमत नहीं हूं और मैं यह नहीं चाहता कि इसकी जिम्मेदारी केवल राज्य पर ही हो। यदि भोर समिति के प्रतिवेदन के अधीन हमने प्रति वर्ष करोड़ों रुपया खर्च भी कर दिया तो हम देखेंगे कि भारत का स्वास्थ्य का प्रश्न कुछ भी हल नहीं हुआ है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि केवल "वैधक वृत्ति" आदि शब्दों को रखने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। जीवन-विज्ञान कोई वृत्ति नहीं हो सकता। मैं सभा का ध्यान इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि जब तक हम इस सिद्धान्त को न अपनायेंगे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन के सम्बन्ध में, अपने शरीर अपने स्वास्थ्य तथा सफाई के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत जानकारी होनी चाहिये, तब तक हम स्वास्थ्य के प्रश्न को हल नहीं कर सकते।

इसलिये मेरा यह निवेदन है कि "विधि-वृत्तियों, वैधक वृत्तियों और अन्य वृत्तियों" शब्दों को आप प्रविष्ट तो करें किन्तु आप वृत्ति की अपेक्षा मनुष्य को दी जाने वाली औषधीय शिक्षा पर अधिक जोर दें। मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि आप वैधक-वृत्ति पर नियंत्रण रखना चाहते हैं तो आपको उसे केवल पंजीबद्ध कर देने से संतोष न कर लेना चाहिये। वैधक-वृत्ति लूट-खसोट का साधन हो गई है। वह मनुष्य की सेवा का साधन नहीं रह गई है। इसलिये इस सभा को मैं यह सलाह देता हूं कि वैधक-वृत्ति को नियंत्रित करते समय मेरे विचारों की ओर ध्यान दिया जाये और उसे लूट-खसोट का साधन नहीं बल्कि मनुष्य की सेवा का साधन बनाया जाये।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 17 सूची 3 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 17 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि 17क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 17 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'17-A. Vocational and technical training of labour (17-क. श्रमिकों का व्यावसायिक और शिल्पी प्रशिक्षण)'"

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 249 उपस्थित नहीं किया गया है। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 17 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'17-A. Vocational and technical training of labour (17-क. श्रमिकों का व्यावसायिक और शिल्पी प्रशिक्षण)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 17-क समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 18

प्रविष्टि 18 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 19

प्रविष्टि 19 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 20

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रविष्टि 20 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'20. Drugs and poisons, subject to the provisions in entry 62 of list I with respect to opium (20. अफीम विषयक सूची 1 की प्रविष्टि 62 में के उपबन्धों के अधीन रहते हुए औषधि और विष।)'"

(श्री कामत ने अपना संशोधन उपस्थित नहीं किया।)

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 20 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'20. Drugs and poisons, subject to the provisions in entry 62 of list I with respect to opium (20. अफीम विषयक सूची 1 की प्रविष्टि 62 में के उपबन्धों के अधीन रहते हुए औषधि और विष।)'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 20, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 21

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 21 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'21. Mechanically propelled vehicles including the principles on which taxes on such vehicles are to be levied (21. यंत्र-चालित यान जिनके अंतर्गत वे सिद्धान्त भी हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर लगाया जाना है।'")

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 21 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'21. Mechanically propelled vehicles including the principles on which taxes on such vehicles are to be levied (21. यंत्र-चालित यान जिनके अंतर्गत वे सिद्धान्त भी हैं जिनके अनुसार ऐसे यानों पर कर लगाया जाना है।)'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 21, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टियां 22 से 25 तक

प्रविष्टि 22 समवर्त्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 23 समवर्त्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 24 समवर्त्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 25 समवर्त्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि 25क

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 25 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'25-A. Vital statistics including registration of births and deaths (25-क. जीवन सम्बन्धी सांख्य की, जिसके अंतर्गत जन्म और मृत्यु का पंजीयन भी है)'"

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 25 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'25-A. Vital statistics including registration of births and deaths (25-क. जीवन सम्बन्धी सांख्य की, जिसके अंतर्गत जन्म और मृत्यु का पंजीयन भी है)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 25-क समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 26

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'26. Welfare of labour including conditions of work, provident funds, employers' liability, workmen's compensation, invalidity and age pensions and maternity benefits.'"

(26. श्रमिकों का कल्याण जिसके अंतर्गत कार्य की शर्तें, भविष्य निधि, नियोजक-उत्तरवादिता, कर्मकार-प्रतिकर, असमर्थता और वार्धक्य-निवृत्ति वेतन और प्रसूति सुविधाएं भी हैं।)'"

उपाध्यक्षः अब मैं संशोधन संख्या 132 को सभा के समक्ष रखता हूं।

प्रस्ताव यह है किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 26 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'26. Welfare of labour including conditions of work, provident funds, employers' liability, workmen's compensation, invalidity and age pensions and maternity benefits.'"

[उपाध्यक्ष]

(26. श्रमिकों का कल्याण जिसके अंतर्गत कार्य की शर्तें, भविष्य निधि, नियोजक-उत्तरवादिता, कर्मकार-प्रतिकर, असमर्थता और वार्धक्य-निवृत्ति वेतन और प्रसूति सुविधाएं भी है।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 26, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि 26क

*उपाध्यक्ष: अब डॉ. देशमुख अपनी नवीन मद 26-क को उपस्थित कर सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 छटा सप्ताह के संशोधन संख्या 133 में प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 26-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'26-B. Welfare of peasants, farmers, and agriculturists of all sorts. (26-ख. सभी प्रकार के किसानों, खेतिहरों और कृषकों का कल्याण।)'"

उपाध्यक्ष: क्षमा कीजिये। मुझे पहले डॉ. अम्बेडकर से प्रविष्टि 26-क के सम्बन्ध में अपना संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 133 उपस्थित करने को कहना चाहिये था। उसके पश्चात् आप अपनी नवीन प्रविष्टि उपस्थित कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि

"सूची 3 की प्रविष्टि 26 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'26-A. Social insurance and social security (26-क. सामाजिक बीमा और सामाजिक सुरक्षा)'"

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है। मैं इसे मत लेने के लिये सभा के सामने रखता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 26 के पश्चात् निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:–

'26-A. Social insurance and social security (26-क. सामाजिक बीमा और सामाजिक सुरक्षा)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 26-क, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

***उपाध्यक्षः** अब डॉ. देशमुख अपना संशोधन संख्या 250 उपस्थित कर सकते हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 133 में, प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 26-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः–

'26-B. Welfare of peasants, farmers and agriculturists of all sorts. (26-ख. सभी प्रकार के किसानों, खेतिहरों और कृषकों का कल्याण।)'"

श्रीमान्, यह वास्तव में एक दुर्भाग्य की बात है कि इस वर्ग के लोगों के कल्याण के सम्बन्ध में सभा को स्मरण कराने की तथा इस उद्देश्य से एक संशोधन उपस्थित करने की आवश्यकता पड़ रही है। यह सर्वविदित है और घोषित भी किया जाता है कि भारत कृषकों का देश है और यहां केवल उनकी जनसंख्या ही अधिक नहीं है किन्तु जिस कार्य को वे करते हैं उसका भी महत्व बहुत अधिक है। इसी वर्ग के लोग वास्तव में भारत के प्रभु हैं। किन्तु इस पर भी उनके कल्याण की किसी को चिन्ता नहीं है, इसकी केवल दो प्रकार से व्याख्या हो सकती है। या तो यह जिम्मेदारी इतनी बड़ी है कि इसे लेने के लिये कोई तैयार नहीं है या इसका महत्व इतना कम है कि इस सम्बन्ध में न तो किसी उपबन्ध को रखने की आवश्यकता है और न किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता है और न संविधान में ही कोई विशेष प्रविष्टि रखने की आवश्यकता है।

श्रीमान्, मुझे आश्चर्य है कि कई बहुत ही महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में इस प्रकार का निश्चय क्यों किया है। उनके प्रति उसने जो रुख अपनाया है उसके सम्बन्ध में मैं अपना असंतोष प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। मेरे विचार से उसके सदस्यों ने एक रट पकड़ ली है और उन पर एक जिद सवार है जैसे कि ये लोग ही हमेशा शक्तिसम्पन्न रहेंगे। वे यह समझते हैं कि किसी प्रश्न का दूसरा पहलू हो ही नहीं सकता और इन प्रविष्टियों का एक निर्वचन के अतिरिक्त अन्य निर्वचन किया ही नहीं जा सकता। ईश्वर न करे ऐसा हो किन्तु प्रतिदिन संसद की सर्वसत्ता को कम करके जिस शक्ति को वे राष्ट्रपति को दे रहे हैं, उसके लिये सम्भव है एक दिन उन्हें स्वयं अफसोस करना पड़े। सम्भव है कि वे अधिक काल तक शक्तिसम्पन्न न रहें और अन्य लोग निर्णय करें और इन शक्तियों का प्रयोग करें। सम्भव है इन्हीं लोगों को विरोध-प्रदर्शन करना पड़े, काले झंडे के जलूस निकालने पड़ें और संसद से उठ कर चला जाना पड़े। यदि यह सब हुआ तो मुझे कुछ आश्चर्य न होगा। इस समय इन लोगों पर जिद सवार है। मुझे खेद है कि एक दूसरे की बात मान कर समझौते से काम नहीं किया जाता किन्तु प्रत्येक नये सुझाव का और प्रत्येक नवीन प्रविष्टि का विरोध किया जाता है। बच्चों की रक्षा सम्बन्धी प्रविष्टि का भी बहुत विरोध किया गया और यह कहते हुए किसी को भी खेद होगा कि अपनी बात रखने के लिए खींचातानी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

का तर्क उपस्थित किया गया। डॉ. अम्बेडकर ने मेरे सामने वही तर्क ला खड़े किये जो पहले मैंने ही उपस्थित किये थे और जिन्हें उन्होंने उस समय स्वीकार नहीं किया था। प्रविष्टि 6 का जो निर्वचन उन्होंने अब किया है वही निर्वचन मैंने कल किया था। पहले उन्होंने यह कहा था कि "शिशु और अवयस्क" के अंतर्गत सब कुछ आ जाता है। अब वे कहते हैं कि "शिशुओं" के साथ बच्चों का उल्लेख करना उपयुक्त न होगा। यह बहुत आश्चर्य की बात है और बहुत खेदजनक भी है किन्तु मुझे आशा है कि जहां तक मेरे इस संशोधन का सम्बन्ध है....

*उपाध्यक्ष: हम प्रविष्टि 6 पर नहीं बल्कि प्रविष्टि 26 पर विचार कर रहे हैं।

*डॉ. पी.एस. देशमुख: श्रीमान्, अब मैं प्रविष्टि 26 पर आ गया हूं। मुझे आशा है कि जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है, माननीय डॉक्टर महोदय भिन्न रुख अपनायेंगे।

इस संशोधन को स्थान देने की बहुत आवश्यकता है विशेषतया इसलिये कि यह इस तथ्य पर आधृत है कि किसानों और खेतिहारों के कल्याण की किसी को चिन्ता नहीं है। श्रमिकों के प्रश्न को लीजिये। समय-समय पर श्रमिकों का विशेष प्रतिनिधित्व होता रहा है और समय-समय पर श्रमिकों के प्रतिनिधि आते रहे हैं और श्रम-मंत्री नियुक्त होते रहे हैं। श्रमिकों के कल्याण की ओर श्रम मंत्री तथा हमारा प्रशासन यथेष्ट ध्यान देता रहा है। कृषकों की तुलना में श्रमिकों की संख्या बहुत कम है किन्तु फिर भी हम यह मांग करते रहते हैं कि उनके लिये अस्पताल खुलने चाहियें। वायु प्रतिबंधित (एयर कंडिशंड) कारखाने खुलने चाहियें और उनके लिये चिकित्सा, सफाई आदि की सुविधाएं होनी चाहियें। कृषकों की इतनी अधिक संख्या होने पर भी और उनके श्रम से सबके जीवित रहने, अपना पालन करने और सम्पन्न होने पर भी और उनके श्रम से सबके जीवित रहने, अपना पालन करने और सम्पन्न होने पर भी उनके कल्याण के लिये एक भी पदाधिकारी नियुक्त नहीं किया गया है। मुझे इसका खेद है और प्रसन्नता भी है कि केन्द्र में स्थायी कृषि-समिति का सदस्य होने के नाते मैंने सबसे पहले इस पर जोर दिया कि केन्द्र के कृषि-मंत्रणालय के अधीन कृषकों के कल्याण का विषय भी होना चाहिये। मुझे यह ज्ञात हुआ कि यह सुझाव विधि-मंत्रणालय के सामने रखा गया—यद्यपि मैं कह नहीं सकता कि विधि मंत्रणालय का उससे क्या सम्बन्ध था–और उसने यह निर्वचन किया कि यह केन्द्र के कृषि मंत्रणालय के अधीन नहीं आ सकता क्योंकि "कृषि" का विषय एक प्रान्तीय विषय है।

कठिनाइयां ये हैं और ये डॉ. अम्बेडकर को अच्छी प्रकार विदित है। मुझे आशा है कि यदि वे गलती ही करेंगे तो कम प्रविष्टियों को स्थान देने की ही गलती न करके अधिक प्रविष्टियों को स्थान देने की ही गलती करेंगे। मुझे अभी भी यह आशा है कि वे इस विषय पर सहानुभूति के साथ विचार करेंगे और इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे। मुझे यह देखकर कुछ भी आशा नहीं रह जाती कि वे बहुत ही विचित्र तर्क उपस्थित करते हैं जैसे कि वे यह कह चुके हैं कि बच्चों के कल्याण का विषय आरक्षी-सूची में सम्मिलित किया जा सकता

है। यह एक बहुत ही विचित्र तर्क है किन्तु वे शक्ति-सम्पन्न और अधिकार-सम्पन्न हैं और उन्हें पूरी सभा का समर्थन भी प्राप्त है। इसलिये वे जो कुछ कहते हैं वही विधि है। इस स्थिति में भी मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि वे कुछ रियायत करें और इस सुझाव को ठुकरा न दें। यदि एक अधिक प्रविष्टि रखना गलती है तो वे यह गलती करें और यह इसलिये कि इस सभा के बहुत से सदस्यों की इस सम्बन्ध में प्रबल भावनाएं हैं।

मुझे आशा है कि वे इस प्रविष्टि पर इस दृष्टि से विचार करेंगे। मैंने यह देखा है कि इस विषय का किसी स्थल पर भी उल्लेख नहीं है। कहीं पर भी यह नहीं कहा गया है कि कृषि-मंत्री का यह कर्तव्य है कि वह किसानों और खेतिहरों के कल्याण की विशेष चिंता करे। इसे सभी स्वीकार करेंगे कि हमारे गांवों के असंख्य किसानों और खेतिहरों की अपेक्षा श्रमिकों के लिये शिक्षा तथा सफाई का प्रबन्ध अच्छा है और उनके कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह स्थिति इस कारण है कि श्रमिकों के लिये बहुत कुछ दिया गया है और किसानों के लिये कुछ भी नहीं किया गया है। यह कहा जा सकता है कि सारी सरकार का ध्यान आखिर श्रमिकों की ओर ही तो है। यदि आपका यह विचार है कि कुछ लाख श्रमिकों के कल्याण के लिये विशेष पदाधिकारियों की आवश्यकता है तो किसानों और खेतिहरों के लिये कुछ अधिक विशेष पदाधिकारियों को क्यों नियुक्त नहीं किया जाता? वे कम से कम समय-समय पर यह तो बता सकेंगे कि कौन सी बातें आवश्यक हैं। इस समय दशा दयनीय है। मेरे विचार से इस स्थल पर इस आशय के एक उपबन्ध को विशेष रूप से रखने से कोई हानि नहीं होगी कि राज्य और विधान-मंडल पर इसकी जिम्मेदारी है कि वे किसानों और कृषकों के कल्याण के लिये कदम उठायें। मुझे विश्वास है कि यदि इस प्रकार के पदाधिकारी नियुक्त किये गये होते तो कृषकों की यह दशा नहीं हुई होती। हमने अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिये भी पदाधिकारियों को नियुक्त किया है। हमने यह क्यों किया? हमने यह इसलिये किया कि हम यह जानते हैं कि उनके मार्ग में विशेष कठिनाइयां हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र ने यह कहा है कि "हमने अनुसूचित जातियों के लिये भी श्रम-सम्बन्धी पदाधिकारियों को नियुक्त किया है"। केवल अनुसूचित जातियों को ही इन पदाधिकारियों की आवश्यकता है। वे 'भी' शब्द का क्यों प्रयोग करते हैं? मुझे इस शब्द पर आपत्ति है। उन्हें इसे वापस लेना चाहिये।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** ये विशेष पदाधिकारी विशेष वर्गों के लिये ही हैं।

***श्री एस. नागप्पाः** उन्हें, अर्थात्, अनुसूचित जातियों को उनकी आवश्यकता है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ यदि वे अनुसूचित जातियों के लिये ही नियुक्त किये जाते हैं तो उनके कारण अनुसूचित जातियों का अवश्य ही कल्याण तथा उन्नति हुई है। यदि वे अनुसूचित जातियों की सहायता करते हैं.....

*__उपाध्यक्षः__ माननीय सदस्य महोदय अपने समय से अधिक समय ले चुके हैं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ अच्छी बात है, श्रीमान्। यदि इन पदाधिकारियों की नियुक्ति से अनुसूचित जातियों को कुछ भी लाभ हुआ है तो किसानों, खेतिहरों और कृषकों के लिये भी ये क्यों नियुक्त न किये जायें? हम जानते हैं कि वे भी अशिक्षित हैं और उनके लिये सफाई की कोई व्यवस्था नहीं है और उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि ये मंत्रणालय किसानों की दशा पर विचार करते और उनके कल्याण की चिंता करते तो अभी तक उनकी बहुत उन्नति हो जाती।

श्रीमान्, मैं अधिक समय नहीं लेना चाहता किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं डॉ. अम्बेडकर को विश्वास दिलाने के लिये अन्य तर्क नहीं उपस्थित कर सकता, यद्यपि साधारणतया उन्हें विश्वास नहीं हुआ करता। मुझे आशा है कि कम से कम इस प्रविष्टि के सम्बन्ध में वे सहानुभूति से विचार करेंगे और मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे क्योंकि इसे कोई भी कृषि-मंत्री अपना कर्त्तव्य नहीं समझता। कम से कम केन्द्र के माननीय कृषि-मंत्री महोदय को तो मैंने यह कहते हुए सुना ही है कि भारत शासन अधिनियम के उपबन्ध उनके मार्ग में बाधा डालते हैं। वास्तव में केवल इस अनुसूची के ही सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसमें यथोचित उपबन्धों का अभाव है। इस दृष्टि से श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि यह प्रविष्टि अत्यंत आवश्यक है।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार से इस प्रसंग में श्रमिकों अथवा कृषकों की शिकायतें दूर करने का प्रश्न नहीं उठता। मैं डॉ. अम्बेडकर से केवल यह पूछना चाहता हूं कि क्या "श्रमिकों के कल्याण" के सम्बन्ध में प्रविष्टि 26 में "श्रमिक" शब्द में कृषक और किसान सन्निहित हैं या नहीं अथवा क्या उसमें केवल औद्योगिक श्रमिक ही सन्निहित हैं। जहां तक मैं समझता हूं, "श्रमिक" शब्द में केवल औद्योगिक श्रमिक ही सन्निहित हैं और कृषक सन्निहित नहीं है। यदि यह बात है तो मैं डॉ. देशमुख के संशोधन का हृदय से समर्थन करता हूं।

श्रीमान्, यदि आप औद्योगिक श्रमिकों के लिये विधि बनायेंगे तो आप कृषकों को उससे वंचित नहीं कर सकते। इसलिये किसानों और खेतिहरों का या तो प्रविष्टि 26 में उल्लेख होना चाहिये अथवा, जैसाकि डॉ. देशमुख ने प्रस्ताव किया है, इस सम्बन्ध में एक पृथक् प्रविष्टि रखनी चाहिये। किसान ही देश की रीढ़ हैं। हमें केवल औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण की चिंता न करनी चाहिये और वह इसलिये

कि वे आवाज उठा सकते हैं और अपनी शिकायतें सरकार तक पहुंचा सकते हैं और उन्हें दूर भी करवा करते हैं। किसान अपनी आवाज नहीं उठा सकते और वे सुसंगठित भी नहीं हैं किन्तु हमें उनकी उपेक्षा न करनी चाहिये। मेरी अपनी यह धारणा है कि श्रम विधि सम्बन्धी प्रविष्टि सूची में होनी चाहिये। मैं जानता हूं कि वह समवर्ती सूची में होगी और प्रत्येक प्रान्त अपनी इच्छानुसार विधि बना सकेगा। इस समय बंबई प्रान्त ने एक ऐसी विधि बनाई है जो संयुक्त प्रान्त की विधि के विपरीत है और संयुक्त प्रान्त की विधि बंगाल की विधि के विपरीत है। यदि केन्द्र में श्रमिकों का कोई संगठन होता तो मुझे विश्वास है कि श्रमिकों की दशा वह न होती जो आज है।

इसलिये मैं यहां तक कहने के लिए तैयार हूं कि सभी प्रकार की श्रमविधि के सम्बन्ध में सूची 1 में प्रविष्टि होनी चाहिये किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो मैं श्रीमान्, यह अवश्य कहूंगा कि किसी भी स्थिति में उन श्रमिकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती जो कृषक, किसान, खेतिहर आदि कहे जाते हैं। आप औद्योगिक श्रमिकों का विशेष रूप से उल्लेख कर रहे हैं और उनके सम्बन्ध में संविधान में एक प्रविष्टि रख रहे हैं। इसका क्या अर्थ लगाया जायेगा? यह समझा जायेगा कि सभा ने जहां औद्योगिक श्रमिकों को अधिमान दिया है वहां किसानों की उपेक्षा की है। यह इसलिये किया गया है कि श्रमिक शोर मचा सकते हैं और सरकार के मंत्रियों से मिल सकते हैं तथा अपनी शिकायतें दूर करवा सकते हैं। यह बहुत ही अनुचित है इसलिये मैं डॉ. देशमुख के संशोधन का पूरे जोर से समर्थन करता हूं, जब तक मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर हमें यह विश्वास नहीं दिलाते कि "श्रमिक" शब्द में कृषि सम्बन्धी श्रमिक भी सन्निहित हैं। यदि वे किसी प्रकार सभा को यह विश्वास दिला दें कि इस शब्द में कृषि-सम्बन्धी श्रमिक भी सम्मिलित हैं तो मैं उनकी शब्दावली को स्वीकार करने तथा डॉ. देशमुख के संशोधन का विरोध करने के लिये तैयार हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उपाध्यक्ष महोदय, डॉ. देशमुख ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करता हूं। किसानों, खेतिहरों और कृषकों के प्रश्न की उपेक्षा की जा रही है। जहां तक औद्योगिक श्रमिकों का सम्बन्ध है उनकी ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। वास्तव में सरकार उनके प्रति बहुत दुलार दिखाती है किन्तु जहां तक कृषि सम्बन्धी श्रमिकों तथा किसानों, खेतिहारों और कृषकों का सम्बन्ध है उनका हर कदम पर बलिदान किया जाता है। ऊपर पूंजीपति हैं और नीचे श्रमिक हैं और इन दोनों के बीच में दब कर मध्यम वर्गों का अस्तित्व ही मिटने जा रहा है। यदि यह प्रविष्टि स्वीकार कर ली गई तो सरकार को अवश्य ही उनके प्रश्न की जांच करनी पड़ेगी, उनके लिये यथोचित विधि का निर्माण करना होगा और एक प्रशासन सम्बन्धी कार्यक्रम निश्चित करना होगा। मेरा यह निवेदन है कि इस विषय का बहुत महत्व है और इस प्रकार की प्रविष्टि से

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कोई हानि नहीं होगी। वास्तव में इससे इस प्रश्न की ओर सरकार तथा विधान-मंडल का और जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट होगा। इसलिये मेरा यह विचार है कि इस दृष्टि से यह प्रविष्टि स्वीकार की जानी चाहिये।

चौधरी रणवीर सिंह (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉ. देशमुख के संशोधन का पुरजोर समर्थन करता हूं। आज आप देखिये, लेबर का ही मुकाबला कर लीजिये, किसानों के साथ, कि हालत कितनी मुखतलिफ है। लेबर के लिये हमारे कांस्टीट्यूशन के अन्दर एक धारा आने वाली है इस धारा के अन्दर अगर उसकी बोली बोलने वाले पच्चीस बच्चे भी इकट्ठे हो जायेंगे तो भी स्टेट जिम्मेदारी लेगी उसको बढ़ाने के लिये। लेकिन करोड़ों ऐसे किसान हैं जिनके बच्चों के लिये न कोई स्कूल की सहूलियत है न उनके लिये कोई अस्पताल की सहूलियत है। मुझे जो कोई हमारे वेस्ट पंजाब या दूसरे इलाकों से आये हुये हैं उनसे पूरी हमदर्दी है। मैं किसी से पीछे नहीं, उनके लिये उनके बच्चों के लिये अस्पताल मिले, स्कूल मिले, लेकिन किसानों के बच्चों के लिये न कोई स्कूल है न कोई अस्पताल है। तो अगर जैसा डॉक्टर साहब ने कहा कि एक एंट्री का सवाल है, मैं कहता हूं कि एंट्री का सवाल नहीं। यह किसानों की जान और मौत का सवाल है। अगर आप इस एंट्री को यहां दाखिल कर देते हैं तो उन्हें कुछ आशा बंधती है। आज लाखों और करोड़ों किसान आपकी तरफ, इस सभा की तरफ देख रहे हैं और वह इस उम्मीद में बैठे हैं कि नया कानून जब लागू होगा तो उनके लिये कोई न कोई भलाई वाला होगा। लेकिन अगर आप उनके वेलफेयर के नाम को भी इंक्लूड नहीं कर सकते हैं तो उसका आप अंदाजा लगा सकते हैं कि उससे उन्हें कितनी निराशा होगी।

इसलिये मैं हाउस का ज्यादा समय न लेते हुये इस संशोधन का पुरजोर समर्थन करता हूं और यह आशा करता हूं कि यह भाई जिन्हें कल एडल्ट एलेक्टोरेट के सामने जाना है वह अपने आगे का और भविष्य का ध्यान रखेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, क्या मैं व्याख्या कर सकता हूं? इस सूची में जो प्रविष्टियां हैं उनके सम्बन्ध में कुछ भ्रम तथा मिथ्या धारणा का परिचय मिल रहा है। मेरे मित्र डॉ. देशमुख के संशोधन का आशय यह है कि सभी प्रकार के किसानों, खेतिहरों और कृषकों के कल्याण के लिये व्यवस्था की जाय। मैं इसे स्पष्टतया समझना चाहता हूं कि इन साधारण शब्दों अर्थात् "सभी प्रकार के कृषक" शब्दों का अर्थ क्या है। क्या वे यह चाहते हैं कि राज्य को जमींदारों के कल्याण की भी चिन्ता करनी चाहिये, जो पांच लाख का भूमि राजस्व देते हैं?

*__श्री आर.के. सिधवाः__ आप उन शब्दों को निकाल सकते हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ उसमें मालगुजार भी सम्मिलित होंगे। किसी प्रविष्टि को स्वीकार करने के पूर्व मुझे यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि उसके शब्दों का अर्थ क्या है। "कृषक" शब्द का कोई निश्चित अर्थ नहीं है। उसका अर्थ दबैल आसामी भी हो सकता है। उसका अर्थ किसी ऐसे व्यक्ति से भी हो सकता हैं जो वास्तव में खेतिहर हो। उसका अर्थ किसी ऐसे व्यक्ति से भी हो सकता है जिसके पास केवल दो एकड़ भूमि हो। उसका अर्थ किसी ऐसे व्यक्ति से भी हो सकता है जिसके पास पांच हजार एकड़ भूमि हो अथवा पांच लाख एकड़ भूमि हो।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मैं उस पदावली को निकालने के लिये तैयार हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह एक कठिनाई हैं दूसरी बात यह है कि मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने, दिखाई यह देता है कि, विभिन्न प्रविष्टियों तथा उनके अर्थ की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। जहां तक कृषि का सम्बन्ध है, हमने तद्विषयक दो स्पष्ट प्रविष्टियां सूची 2 में रखी हैं अर्थात्, प्रविष्टि संख्या 21, जिसका विषय कृषि है, और प्रविष्टि संख्या 24, जिसका विषय भूमि है। यदि वे इन दो प्रविष्टियों को देखें तो.....

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ कितनी तर्कशून्य बातें कही जा रही हैं। यदि देखा जाय तो श्रमिकों के कल्याण के सम्बन्ध में एक स्पष्ट प्रविष्टि है। फिर उनके व्यावसायिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अलग उपबन्ध क्यों रखा जा रहा है? कृपा करके तर्कशून्य बातें न कहिये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह मेरा काम नहीं है कि मैं प्रशासन के दोष सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर दूं। मैं केवल यह स्पष्ट कर रहा हूं कि प्रविष्टियों का अर्थ क्या है। जैसाकि मैं कह चुका हूं हम सूची 2 में दो प्रविष्टियां रख चुके हैं। प्रविष्टि संख्या 21 कृषि के सम्बन्ध में है, जिसके अंतर्गत "कृषि-शिक्षा और गवेषणा, मारकों से रक्षा तथा उद्भिद रोगों का निवारण भी है।"

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ तब आप "श्रमिकों का कल्याण" शब्दों को क्यों रखना चाहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ आप कुछ धैर्य क्यों नहीं रखते? मैं अपने काम को जानता हूं। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं अपना काम नहीं जानता? मैं अपना काम जानता ही हूं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ मैं आपके रुख को भी जानता हूं। हर किसी को बेवकूफ बनाने की कोशिश न कीजिये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ हम इस सम्बन्ध में एक प्रविष्टि रख चुके हैं, जिसके अधीन कोई भी राज्य केवल कृषि के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि कृषकों के सम्बन्ध में भी कल्याणकारी कार्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त प्रविष्टि 24 भी है जिसमें यह उपबंधित है कि इस विषय के सम्बन्ध में विधि बनाई जा सकती है—"भूमि अर्थात् भूमि में या भूमि पर अधिकार, भूधृति, जिसके अन्तर्गत भूस्वामी और किसानों का सम्बन्ध भी है।" इस प्रविष्टि के अधीन किसानों के सभी आर्थिक हितों के सम्बन्ध में कार्यवाही की जा सकती है। इसलिये जहां तक प्रविष्टियों का सम्बन्ध है उनमें किसी ऐसी बात का अभाव नहीं है जिसके कारण प्रान्तीय सरकारें कृषक वर्गों के कल्याण के लिये कुछ न कर सकें।

अब मैं उस प्रश्न को लेता हूं जिसे मेरे मित्र श्री सिधवा ने उठाया है और जो मेरे विचार से, बहुत उपयुक्त प्रश्न है। उन्होंने यह पूछा है कि "श्रमिक" शब्द का क्या अर्थ है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में मुझसे यह पूछा है कि क्या "श्रमिक" शब्द में औद्योगिक श्रमिक तथा कृषि-सम्बन्धी श्रमिक दोनों सम्मिलित हैं। मेरे विचार से उनका प्रश्न यही था। मैं यह जोर देकर कहता हूं कि उस शब्द में दोनों प्रकार के श्रमिक सन्निहित हैं। उद्देश्य यह नहीं है कि इस प्रविष्टि में केवल औद्योगिक श्रमिक ही सम्मिलित किये जायें। प्रविष्टि 26 के अधीन केन्द्र अथवा प्रान्त श्रमिकों के लिये कोई भी कल्याणकारी कार्य कर सकते हैं, चाहे वे श्रमिक औद्योगिक श्रमिक हों अथवा कृषि-सम्बन्धी श्रमिक।

इसी प्रकार काम की शर्तों, भविष्य-निधि, नियोजक-दातव्य, कर्मियों के प्रतिकर, स्वास्थ्य बीमा तथा असमर्थता-निवृत्तिवेतन के प्रश्न सभी श्रमिकों के सम्बन्ध में उठेंगे चाहे वे औद्योगिक श्रमिक हों अथवा कृषि-सम्बन्धी श्रमिक। इसलिये जहां तक इस प्रविष्टि 26 का सम्बन्ध है, यह केवल औद्योगिक श्रमिकों ही तक सीमित नहीं है। इस कारण मेरे मित्र डॉ. देशमुख ने जिस संशोधन का प्रस्ताव रखा है वह बिल्कुल अनावश्यक है। वह अनावश्यक ही नहीं है बल्कि अस्पष्ट और अनिश्चित भी है और उसमें प्रयुक्त शब्दावली को विधि की शब्दावली भी नहीं कहा जा सकता।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ क्या कृषि सम्बन्धी श्रमिकों के अतिरिक्त देश में अन्य लोगों के वर्ग नहीं हैं? क्या डॉ. अम्बेडकर ने 'खेतिहरों' और 'किसानों' के बारे में कुछ नहीं सुना है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ जैसाकि मैं स्पष्ट कर चुका हूं उनके कल्याण के लिये प्रांतीय सूची की प्रविष्टि 21 तथा प्रविष्टि 24 के अधीन कार्यवाही की जा सकती है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं सभा के समक्ष संशोधन संख्या 250 (अर्थात् डॉ. देशमुख के संशोधन को) रखता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (छठा सप्ताह) के संशोधन संख्या 133 में, प्रस्तावित नवीन प्रविष्टि 26-क के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:

'26.B. Welfare of peasants, farmers and agriculturists of all sorts. (26-ख. सभी प्रकार के किसानों, खेतिहरों और कृषकों का कल्याण।)'"

संशोधन गिर गया।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान्, मैं मत विभाजन की मांग करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** सदस्य कृपया अपने हाथ खड़े करें।

सभा में सदस्यों ने हाथ खड़े करके मत-विभाजन किया।

हां वाला पक्ष	:	26
नहीं वाला पक्ष	:	42

संशोधन गिर गया।

प्रविष्टि 27

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 27 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:-

'27. Employment and unemployment. (27. नौकरी और बेकारी।)'"

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 27 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:-

'27. Employment and unemployment. (27. नौकरी और बेकारी।)'"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 27, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 28

***उपाध्यक्षः** प्रविष्टि 28 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

***श्री एस. नागप्पाः** उस पर मत लेने के पूर्व मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य महोदय तीन मिनट में समाप्त कर दें।

***श्री एस. नागप्पाः** उपाध्यक्ष महोदय, "व्यापार-संघ" शब्द केवल औद्योगिक श्रमिकों के प्रसंग में ही प्रचलन में है। माननीय डॉ. अम्बेडकर ने यह कहने की कृपा की थी कि "श्रमिक" शब्द में कृषि सम्बन्धी श्रमिक भी सम्मिलित हैं। जब यह अनुच्छेद इस संविधान में रखा जा रहा था तो उस समय मैंने इस आशय का एक संशोधन प्रस्तुत किया था कि "श्रमिक" शब्द में कृषि सम्बन्धी श्रमिक भी सन्निहित होने चाहियें। उन्होंने कृपा करके उसे स्वीकार किया था और स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि उससे कृषि सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के कर्मी भी अभिप्रेत हैं।

इसके अतिरिक्त "श्रमिक विवादों" के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि श्रमिकों का आपस में भी विवाद हो सकता है। मेरे उन मित्रों ने, जिन्होंने कृषि सम्बन्धी श्रमिकों के पक्ष में मत दिया है, स्थिति को ठीक नहीं समझा है, क्योंकि उन्होंने कृषकों और कृषि सम्बन्धी श्रमिकों में कोई विभेद नहीं किया है। कृषक भी कठिन परिश्रम करता है। किन्तु वह किसके लिये परिश्रम करता है? वह अपने लिये परिश्रम करता है। किन्तु कृषि सम्बन्धी श्रमिक अन्य लोगों के लिये परिश्रम करता है। कृषि सम्बन्धी श्रमिक मजदूरी पाता है किन्तु कृषक अपने लिये परिश्रम करता है। और सम्पत्ति का अर्जन स्वयं करता है। कृषकों और कृषि सम्बन्धी श्रमिकों में अन्तर है और इसे समझना चाहिये। यदि मेरे मित्र तर्क से काम लें और कृषि-सम्बन्धी श्रमिकों की रक्षा के सम्बन्ध में, तथा उन्हें सभी प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान करने के सम्बन्ध में, एक खण्ड रखने के लिये इस सभा से अनुरोध करें तो मैं भी उनके साथ हूं। अन्यथा मेरी समझ में नहीं आता कि कृषकों को इस प्रकार की सुविधा क्यों दी जा रही है। आखिर प्रकृति ने कृषि और भूमि सभी लोगों को समान रूप से प्रदान की है। किन्तु लालच अथवा वृत्तिवश कृषकों ने अन्य लोगों की भूमि स्वयं ले ली है। अब वे यह चाहते हैं कि उन्हें अधिक सुविधाएं दी जाये। यह एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था है और इसके लिये सहमत होना अनुचित ही होगा। मेरे विचार से इस देश में कृषकों की इस प्रकार रक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। उसे केवल कृषि करने तथा राज्य से राजस्व देने का अधिकार है।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य महोदय को जो समय दिया गया था उसे वे समाप्त कर चुके हैं।

***श्री एस. नागप्पाः** यह एक महत्वपूर्ण विषय है। इस देश के 70 प्रतिशत लोग कृषि सम्बन्धी श्रमिक हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** इसका सम्बन्ध कृषि सम्बन्धी श्रमिकों से नहीं है।

***श्री एस. नागप्पाः** इसका कृषि सम्बन्धी श्रमिकों से बहुत सम्बन्ध है। यदि आप उन्हें संगठित करके उनका एक संघ बना दें तो सरकार अवश्य ही उनका समर्थन करेगी, कृषि सम्बन्धी श्रमिकों को संगठित करना कोई आसान काम नहीं है। लगभग सभी कृषि सम्बन्धी श्रमिक अशिक्षित और अबोध हैं। मेरे विचार से यह भविष्य की सरकार का कर्तव्य है कि वह इन लोगों के लिये जो कुछ भी आवश्यक हो उसे करे। मुझे आशा है कि वयस्क मताधिकार के फलस्वरूप भविष्य की सरकार में यही लोग होंगे। वही वास्तविक स्वामी होंगे और सच्चे अर्थ में शक्ति-प्रयोग करेंगे। किन्तु मेरे विचार से किसी भी बुद्धि-सम्पन्न, न्याय-सम्पन्न, तथा उदारता-सम्पन्न सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह इन लोगों को यथोचित अधिकार प्रदान करे।

***उपाध्यक्षः** अब मैं प्रस्ताव पर मत लूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं एक शब्द कहना चाहता हूं। श्रमिकों के कल्याण के प्रसंग में "व्यापार संघ" शब्दों का बहुत व्यापक अर्थ है और उनसे न केवल औद्योगिक संगठनों के व्यापार-संघ अभिप्रेत हो सकते हैं बल्कि कृषि सम्बन्धी श्रमिकों के व्यापार-संघ भी अभिप्रेत हो सकते हैं। इस दशा में मुझे सन्देह है कि इस स्थल पर "औद्योगिक" शब्द प्रविष्ट करने से कहीं "व्यापार-संघ" पदावली का अर्थ तथा विस्तार सीमित तो न हो जायेगा। किन्तु मैं किसी संशोधन को उपस्थित नहीं कर रहा हूं। मैं यह चाहता हूं कि मसौदा-समिति को इस पदावली की परीक्षा करने तथा इस पर विचार करने का अवसर दिया जाये। मैं चाहता हूं कि इस प्रविष्टि को इस समय इसी रूप में रहने दिया जाये। मैं यह सन्देह प्रकट कर चुका हूं कि चूंकि "व्यापार-संघ" पदावली का व्यापक अर्थ है इसलिये सम्भव है कि इस प्रविष्टि के एक अंश को संशोधित करने की आवश्यकता पड़े।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है उसके अधीन रहते हुए मैं प्रविष्टि 28 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है किः–

"प्रविष्टि 28 सूची 3 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 28 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि 28-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि-28 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः–

'28-A. Commercial and industrial monopolies, combines and trusts.
(28-क. वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गुट्ट और न्यास।)'"

डॉ. पी.एस. देशमुखः मैं अपना संशोधन उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** मैं अब संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 28 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः–

'28-A. Commercial and industrial monopolies, combines and trusts,
(28-क. वाणिज्यिक और औद्योगिक एकाधिपत्य, गृट्ट और न्यास।)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 28-क समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 29

***अध्यक्षः** प्रविष्टि-29 के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है। इसलिये मैं उस पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 29 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, सभा ने कृपा करके कल मेरे संशोधन का एक भाग स्वीकार किया था। किन्तु शब्दावली के सम्बन्ध में हमने अभी कोई निश्चय नहीं किया है। जब हम राज्य-सूची पर विचार कर रहे थे तो यह निर्णय किया गया था कि "खाद्य पदार्थों में उपमिश्रता" के विषय को सूची 3 में प्रविष्ट किया जाये। इसलिये सम्भवतः यह उचित ही होगा कि हम इस अवसर पर इस प्रविष्टि कि शब्दावली पर विचार करें। साथ ही मैं यह भी चाहता हूं कि मेरा पहला संशोधन भी स्वीकार किया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या मैं इस ओर ध्यान दिला सकता हूं कि प्रविष्टि 29-क का आशय सूची 1 की प्रविष्टि-69-क में आ गया है, जिसे सभा ने व्यापक शब्दों को प्रविष्ट करके पारित किया है? "वस्तु" शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसमें कृषि से उत्पादित वस्तु आदि भी सम्मिलित हैं। इसी प्रकार कल श्री मैत्र के प्रस्ताव के फलस्वरूप प्रविष्टि संख्या 29-ख स्वीकार की गई और वह अब सूची 3 की प्रविष्टि संख्या 20-क है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं अपने मित्र के सुझाव का पहला अंश स्वीकार करता हूं। मैं प्रविष्टि 29-क को रखने का प्रस्ताव नहीं उपस्थित कर रहा हूं। किन्तु मैं यह स्पष्ट रूप से नहीं समझ सका कि क्या सूची 2 की प्रविष्टि को केवल हटा कर दूसरी जगह रखा गया है या अन्य कोई कार्यवाही की गई है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः वह हटा कर समवर्ती सूची में प्रविष्टि 20-क के रूप में रख दी गई है। सभा ने यही प्रस्ताव पारित किया था।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः क्या यह अच्छा नहीं होगा कि उसके विस्तार को बढ़ाया जाये?

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मेरे विचार से "खाद्य पदार्थों में अपमिश्रण" में सब कुछ आ जाता है।

*डॉ. पी.एस. देशमुखः यदि यह बात है तो मैं अपना संशोधन उपस्थित नहीं करता।

प्रविष्टि 30 तथा 31

*उपाध्यक्षः अब मैं प्रविष्टि 30 तथा प्रविष्टि 31 पर मत लेता हूं।

प्रविष्टि 30 तथा प्रविष्टि 31 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि 31-क

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रविष्टि 31 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:-

'31-A. Ports, subject to the provisions of List I with respect to major ports. (31-क. पत्तन, महापत्तनों के सम्बन्ध में सूची-1 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।)'"

*उपाध्यक्षः प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 31 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:-

'31-A. Ports, subject to the provisions of List I with respect to major ports. (31-क. पत्तन, महापत्तनों के सम्बन्ध में सूची 1 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए।)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 31क समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 32

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 32 निकाल दी जाये।"

यह हटाकर सूची 1 में रख दी गई है।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 32 निकाल दी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 32 समवर्ती सूची से निकाल दी गई।

प्रविष्टि 33

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 33 निकाल दी जाये।"

जैसाकि मैं कह चुका हूं, यह भी हटा कर सूची 1 में रख दी गई है।

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है किः

"प्रविष्टि 33 निकाल दी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 33 समवर्ती सूची से निकाल दी गई।

प्रविष्टि 33-क तथा प्रविष्टि 33-ख

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 33 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टियां रखी जायें:–

'33-A. Custody, management and disposal of property (including agricultural land) declared by law to be evacuee property.

33-B. Relief and rehabilitation of persons displaced from their original place of residence by reason of the setting up of the Dominions of India and Pakistan.'"

(33-क. विधि द्वारा निष्क्राम्य घोषित सम्पत्ति की (कृषि भूमि सहित) अभिरक्षा, प्रबन्ध और व्ययन।

33-ख. भारत और पाकिस्तान की डोमिनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवास-स्थान से स्थानान्तरित हुए व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास।)

(संशोधन संख्या 296 उपस्थित नहीं किया गया।)

*__उपाध्यक्षः__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 33 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टियां रखी जायें:–

'33-A. Custody, management and disposal of property (including agricultural land) declared by law to be evacuee property.

33-B. Relief and rehabilitation of persons displaced from their original place of residence by reason of the setting up of the Dominions of India and Pakistan.'"

(33-क. विधि द्वारा निष्क्राम्य घोषित सम्पत्ति की (कृषि भूमि सहित) अभिरक्षा प्रबंध और व्ययन।

33-ख. भारत और पाकिस्तान की डोमिनियनों के स्थापित होने के कारण अपने मूल निवास-स्थान से स्थानान्तरित हुए व्यक्तियों की सहायता और पुनर्वास।)

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 33-क और 33-ख समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 34

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ इसके सम्बन्ध में एक संशोधन है। इस संशोधन के उपस्थित किये जाने के पश्चात् श्रीमान्, मैं इस प्रविष्टि पर बोलना चाहता हूं।

*__श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 34 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

34. Economic, educational and social planning. (34. आर्थिक, शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक योजना।)'"

मैंने "शिक्षा सम्बन्धी" शब्दों को भी प्रविष्ट किया है। मेरे विचार से इस सभा के अधिकांश सदस्य मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि सामाजिक योजना शिक्षा-सम्बन्धी योजना से बिल्कुल भिन्न है और उसमें शिक्षा-सम्बन्धी योजना का आशय सन्निहित नहीं है। सामाजिक योजना के अन्तर्गत समाज के लिये योजना बनाई जायेगी। उसके फलस्वरूप समाज का ढांचा बिलकुल ही भिन्न आधार पर खड़ा किया जा सकता है। वास्तव में वह आर्थिक योजना से सम्बन्धित है। इसलिये मुझे आशा है कि जो कठिनाई मुझे दिखाई दे रही है उसकी ओर मसौदा समिति और विशेषत: डॉ. अम्बेडकर ध्यान देंगे। संघ-सूची के अधीन केन्द्र ने शिक्षा-मान निश्चित करने के लिये शक्ति ग्रहण की है। प्रविष्टि 40 के अधीन उसने महत्वपूर्ण

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

शिक्षा संस्थाओं को चलाने का भार स्वयं स्वीकार किया है। प्रविष्टि 40-क के अधीन वह वैज्ञानिक तथा शिल्पी संस्थाओं का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने जा रहा है। प्रविष्टि 57-क के अधीन वह उच्च-शिक्षा की संस्थाओं के शिक्षामानों को बनाये रखने तथा उनका एकीकरण करने का भार स्वीकार कर रहा है। यदि संघ इन सब कार्यों को करने का प्रयन्त करने जा रहा है तो मेरे विचारों से संघ को प्रान्तों में शिक्षा-सम्बन्धी योजनाओं को चलाने के लिये अवश्य ही शक्ति प्राप्त होनी चाहिये।

संघ-सूची पर विचार-विमर्श होते समय कुछ मित्रों ने यहां तक कह डाला कि विश्वविद्यालय की शिक्षा संघ के ही अधीन होनी चाहिये। मैं उनसे इस सीमा तक सहमत नहीं हूं किन्तु, मेरे विचार से, केन्द्र को प्रान्तों के लिये अवश्य ही शिक्षा-योजनाएं चलानी चाहियें। मेरी यह धारणा है कि आर्थिक तथा सामाजिक योजना में शिक्षा-सम्बन्धी योजना सम्मिलित नहीं है और इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि या तो इस प्रविष्टि में "शिक्षा-सम्बन्धी" शब्द रखे जायें या शिक्षा-सम्बन्धी योजना के लिये एक अलग प्रविष्टि रखी जाये। डॉ. अम्बेडकर इन दो सुझावों में जिसे अधिक सुविधाजनक समझें उसे प्रयोग में लायें। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस कठिनाई का अनुभव करेंगे और हमें बतायेंगे कि क्या वे इससे सहमत नहीं हैं कि सामाजिक और आर्थिक योजना का विशेष अर्थ है और वास्तव में शिक्षा-सम्बन्धी योजना उनका महत्वपूर्ण अंग नहीं है, भले ही वह एक साधारण अंग हो, अथवा क्या वे यह समझते हैं कि संघ को सारे देश के लिये शिक्षा-सम्बन्धी योजना बनाने के लिये शक्ति प्राप्त है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** उपाध्यक्ष महोदय, मेरी बहिन श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं केवल उच्च शिक्षा के क्षेत्र में केन्द्र को योजना बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि भारत सरकार को शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं को अबाध रूप से प्रयोग में लाने के लिये शक्ति प्रदान की जाये। यदि हमें अपने राष्ट्र को शीघ्र ही समुन्नत बनाना है तो यह शक्ति केन्द्र को अवश्य ही दी जानी चाहिये। केन्द्र का यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि शिक्षा के प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों में हमारे बच्चे गलत ढंग की शिक्षा प्राप्त न करें। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का जो प्रभाव बच्चों पर पड़ जाता है वह, चाहे विश्वविद्यालयों में उसे मिटाने के लिये कितने ही प्रयास क्यों न किये जायें, कभी मिटता नहीं। वास्तव में प्रान्तीय सरकारों की प्रान्तीयता की भावनाओं को देखते हुए खतरा इसका है कि वे बच्चों के मस्तिष्कों को दूषित कर देंगे। यदि भारत की एकता के दृष्टिकोण को विकसित करना है तो शिक्षा-सम्बन्धी योजना के विषय को समवर्ती सूची में रखना चाहिये ताकि केन्द्र किसी समुचित ऐहिक आधार पर हमारी शिक्षा के लिये योजना बना सके।

श्रीमान्, इस प्रश्न के एक अन्य अंग की ओर भी मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं।

प्रविष्टि 34 इस प्रकार है:

"आर्थिक और सामाजिक योजना।"

राजनैतिक योजना का क्या होगा?

***कुछ माननीय सदस्यः** यह बहुत खतरनाक सिद्ध होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह संविधान में संशोधन करके व्यवहार में आ सकती है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मुझे बोलने दीजिये। राजनैतिक योजना की भी आवश्यकता है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में दार्शनिक सम्राटों के अनुशासन तथा प्रशिक्षण के लिये एक कठोर प्रणाली का प्रतिपादन किया है। हमें भी ऐसी व्यवस्था स्थापित करनी चाहिये, जिससे हमें शासक तथा प्रशासक, प्राप्त हो सकें। इस समय देश में नेताओं का अभाव है। नात्सी जर्मनी में भी शासकों और प्रशासकों को एक योजना के आधार पर प्रशिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया था। इस देश में भी इस प्रकार का प्रयास करना चाहिये। केवल लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं से पर्याप्त लाभ न होगा।

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप इस देश में नात्सीवाद चाहते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** विचारों का नामकरण आसान है। विचारों का नामकरण न होना चाहिये। नाम लिखी हुई चिप्पियां और व्यापार चिह्न डाक घरों और सरकारी विभागों के लिये हैं।

हमारे राजनैतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में इसी प्रकार योजनाओं को प्रयोग में लाने का प्रयास किया जाना चाहिये। हमारी वैदेशिक नीति एक योजना के अधीन निश्चित की जानी चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मेरे माननीय मित्र श्री केसकर आज यहां उपस्थित हैं। दूर के और निकट के लक्ष्यों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख होना चाहिये। भू-राजनीति के अध्ययन के लिये इस देश में एक संस्था स्थापित की जानी चाहिये। हमारे राजनैतिक जीवन के अंग प्रत्यंग का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित योजना के आधार पर निर्माण होना चाहिये। राजनैतिक क्षेत्र में जो भी कदम उठाया जाये वह किसी योजना के अधीन उठाया जाये।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मुझे यह प्रतीत होता है कि पिछली बार जब मैं बोला था तब से एक युग बीत गया है। बात यह नहीं है कि मेरी जबान लम्बी नहीं है। केवल मैं इस सभा में इस कारण नहीं बोलना चाहता कि कहीं कार्य की प्रगति में बाधा न पड़े। किन्तु आज मेरी माननीय मित्र श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाला जो भाषण दिया उसने मेरी निद्रा भंग कर दी। किन्तु मैं यहां अपनी माननीय मित्र श्रीमती

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

पूर्णिमा बनर्जी के भाषण की प्रशंसा करने नहीं उपस्थित हुआ हूं, बल्कि पूरे जोर से उसका विरोध करने के लिये उपस्थित हुआ हूं। श्रीमान्, हम इन सूचियों के, अर्थात् सूची 1, 2 और 3 के अन्त तक पहुंच गये हैं, किन्तु हम देखते क्या हैं? हम यह देखते हैं कि स्थिति यह है कि राज्य अब राज्य अथवा प्रान्त नहीं रह गये हैं। वे अब नगरपालिकाओं अथवा स्थानीय निकायों के समान हो गये है। सब शक्तियां छीन कर सूची 1 में अथवा सूची 3 में रख दी गई हैं। इस प्रसंग में मुझे उपनिषद् के ये शब्द स्मरण हो आते हैं:

"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

सब कुछ निकाल देने पर भी पूर्णता बनी ही रहती है जैसे कि पूर्ण चन्द्र से चाहे जितने टुकड़े काट दिये जाये किन्तु पूर्ण चन्द्र पूर्ववत् बना ही रहता है। इन सभी सूचियों पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् हम इसी स्थिति को प्राप्त हो गये हैं। प्रान्तों के पास कुछ भी शक्ति नहीं रह गई है किन्तु फिर भी पूर्ण चन्द्र पूर्ववत् पूर्ण चन्द्र बना हुआ है।

श्रीमान्, मैं इस सभा का ध्यान उस संशोधन की ओर आकृष्ट करता हूं, जिसे मेरे माननीय मित्र श्री सन्तानम् ने प्रस्तावित किया था, अथवा जिसकी उन्होंने सूचना दी थी। वह संशोधन संख्या 366 है, जिस के द्वारा इस प्रविष्टि को निकाल देने का यथेष्ट प्रयास किया गया है। अच्छा तो यही होता कि प्रविष्टि 34 निकाल ही दी जाती। आर्थिक और सामाजिक योजना का आखिर क्या अर्थ है? किसी प्रान्त अथवा राज्य के लिये आर्थिक और सामाजिक योजना बनाने का कार्य विधान-मंडल के लिये छोड़ देना चाहिये। जब कभी सूची 2 और सूची 3 को लेकर विरोध होगा तो केन्द्र द्वारा प्रस्तावित विधि ही प्रभावी होगी। इस दशा में इस प्रविष्टि को रखकर क्या केन्द्र की विधि से सामाजिक अथवा आर्थिक योजना के सम्बन्ध में राज्य के साधारण कार्यों में हस्तक्षेप न होगा? सामाजिक और आर्थिक योजना का आशय क्या है? सूची 2 में जिन विषयों का भी उल्लेख है उनसे आर्थिक योजना स्वतः बन जाती है। सूची 2 में आर्थिक योजना का उल्लेख करना और केन्द्र को आर्थिक योजना में हस्तक्षेप करने का क्षेत्राधिकार देने के लिये इस स्थल पर एक अन्य प्रविष्टि रखना मेरे विचार से नासमझी ही होगी। मेरी माननीय मित्र श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी ने "शिक्षा-सम्बन्धी" शब्दों को जोड़कर राज्यों की शक्तियां सीमित करके और भी अधिक नासमझी का परिचय दिया है। यह उपयुक्त व्यवस्था है कि शिक्षा राज्यों के हाथ में रहे। शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं के बारे में केन्द्र क्यों हस्तक्षेप करे? राज्यों की यही सम्मति है कि इन पर प्रान्तों का ही अधिकार हो। जब आप इस स्थल पर "शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं" शब्दों को रखना चाहते हैं तो "स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुविधाओं" शब्दों को भी क्यों नहीं रखते? आप केवल शिक्षा पर ही क्यों जोर देते हैं? यदि आप श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी के संशोधन को

स्वीकार करते हैं तो मैं आप से पूछता हूं कि "स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं" शब्दों को आप क्यों नहीं रख रहे हैं, क्योंकि स्वास्थ्य का प्रश्न शिक्षा के प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण है? यदि श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी का उद्देश्य यह है कि सभा का ध्यान शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया जाये तो मैं पूछता हूं कि वे शिक्षा के पहले स्वास्थ्य के बारे में क्यों विचार नहीं करतीं? आखिर शिक्षा से स्वास्थ्य का अधिक महत्व है। इसके अतिरिक्त कोई कला प्रेमी सदस्य यह भी कह सकता है कि कला सम्बन्धी सुविधाओं का भी उल्लेख होना चाहिये। एक सुविधा के अनन्तर दूसरी सुविधा का उल्लेख हो सकता है और इस प्रकार राज्यों को जो शक्तियां प्रदान की गई हैं उनको यथासम्भव कम किया जा सकता है। श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी का यही उद्देश्य है, जिसका इस सभा को कदापि अनुमोदन न करना चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि, यद्यपि अब देर हो गई है किन्तु यदि यह सम्भव हो तो, अच्छा यही होगा कि सभा प्रविष्टि 34 को बिल्कुल निकाल ही दे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मुझे इसका बहुत खेद है कि मैं श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा प्रस्तुत संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे विचार से "शिक्षा" शब्द ही प्रविष्टि बिल्कुल अनावश्यक है। "सामाजिक" शब्द इतना व्यापक है कि उससे "धार्मिक योजना" के अतिरिक्त समाज से सम्बन्धित अन्य किसी भी बात का बोध हो सकता है। "सामाजिक" शब्द का विपरीत शब्द केवल "धार्मिक" ही होगा। राज्य केवल "धर्म" के सम्बन्ध में योजना नहीं बना सकता। अन्य सभी विषयों के सम्बन्ध में राज्य योजना बना सकता है।

मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने जो विचार व्यक्त किये हैं उनके सम्बन्ध में उनसे मेरा यह अनुरोध है कि वह यह देखें कि इस प्रविष्टि को समवर्ती सूची में रखा गया है। इस कारण राज्यों को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वे जैसी भी योजनाएं चाहें बनायें। केवल उस दशा में, जब केन्द्र कोई योजना बनाये और राज्य भी कोई ऐसी योजना बनाये जो केन्द्र की योजना के विरुद्ध हो तो राज्य की योजना अलग रख दी जायेगी। यह राज्य की योजना बनाने की शक्ति में हस्तक्षेप नहीं है। इस लिये मेरा यह निवेदन है कि इस प्रविष्टि को उसी भाषा में रहने दिया जाये जिस भाषा में यह इस समय है।

*__उपाध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 34 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:-

'34. Economic, educational and social planning (34. आर्थिक, शिक्षा-सम्बन्धी और सामाजिक योजना'"

संशोधन गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रविष्टि 34 सूची 3 का अंग बना ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 34 समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 34-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 34 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:–

'34-A. Archaeological sites and remains. (34-क. पुरातत्व सम्बन्धी स्थान और अवशेष।)'"

यह समवर्ती विषय होगा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 34 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:

'34-A. Archaeological sites and remains. (34-क. पुरातत्व सम्बन्धी स्थान और अवशेष।)'"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 34-क समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

(इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने सभापति-आसन रिक्त कर दिया और उस पर अध्यक्ष महोदय आसीन हो गये।)

प्रविष्टि 35

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 35 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये।

'35. The principles on which compensation for property acquired or requisitioned for the purposes of the Union or of a State or for any other

Public purpose is to be determined and the form and the manner in which such compensation is to be given.'"

(35. संघ के या राज्य के या किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अर्जित या अधिगृहीत सम्पत्ति के लिऐ प्रतिकर निर्धारण करने के लिए सिद्धान्त तथा वैसे प्रतिकर के दिये जाने का रूप और रीति।)

***अध्यक्षः** इसके सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 35 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जायेः

'35. The principles on which compensation for property acquired or requisitioned for the purposes of the Union or of a State or for any other public purpose is to be determined and the form and the manner in which such compensation is to be given.'"

(35. संघ के या राज्य के या किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजन के लिए अर्जित या अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए प्रतिकर निर्धारण करने के लिए सिद्धान्त तथा वैसे प्रतिकर के दिये जाने का रूप और रीति।)

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 35, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 35-क

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 की प्रविष्टि 35 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः

'35-A. Trade and commerce in, and the production, supply and distribution of the products of industries where the control of such industries by the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.'"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(35-क. यहां संसद् से विधि द्वारा किन्हीं उद्योगों का संघ द्वारा नियंत्रण लोक-हित में इष्टकर घोषित किया गया है उन उद्योगों में व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, सम्भरण और वितरण।)

(संशोधन संख्या 331 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 35 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:

'35-A. Trade and commerce in, and the production, supply and distribution of the products of industries where the control of such industries by the Union is declared by Parliament by law to be expedient in the public interest.'"

(35-क. जहां संसद् से विधि द्वारा किन्हीं उद्योगों का संघ द्वारा नियंत्रण लोक-हित में इष्टकर घोषित किया गया है उन उद्योगों में व्यापार और वाणिज्य तथा उनका उत्पादन, सम्भरण और वितरण।)

प्रविष्टि 35-क समवर्त्ती सूची का अंग बना ली गई।

प्रविष्टि 36

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 36 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'36. Inquiries and statistics for the purposes of any of the matters specified in list II or list III.'"

(36. सूची 2 या सूची 3 में उल्लिखित विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जांच और सांख्यकी।)

***अध्यक्ष:** इस सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 3 की प्रविष्टि 36 के स्थान पर निम्नलिखित प्रविष्टि रखी जाये:

'36. Inquiries and statistics for the purposes of any of the matters specified in list II or list III.'"

[36. सूची 2 या सूची 3 में उल्लिखित विषयों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जांच और सांख्यकी।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

प्रविष्टि 36, संशोधित रूप में, समवर्ती सूची का अंग बना ली गई।

नवीन प्रविष्टि

***अध्यक्षः** पंडित गोविन्दवल्लभ पंत ने एक नवीन प्रविष्टि प्रस्तावित की है।

(संशोधन संख्या 144 उपस्थित नहीं किया गया।)

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची 3 में निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः

"Protection of children and youth from exploitation and abandonment, *vide* article of (VI).'"

[बच्चों और युवाओं की शोषण और परित्यजन से रक्षा, देखिये (भाग 6 का) अनुच्छेद।]

श्रीमान्, दो अवसरों पर मैं इसी प्रकार के संशोधन उपस्थित कर चुका हूं.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस संशोधन पर अन्य संशोधनों के साथ विचार किया जा चुका है और इस सम्बन्ध में उत्तर देते हुए मैंने अपने मित्र से कहा था कि इस विषय पर मसौदा-समिति विचार करेगी। उस समय वे इससे सहमत हो गये थे।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मेरा केवल यह निवेदन है कि मसौदा-समिति के निर्णय के अनुसार शब्दों में हेरफेर किया जाये किन्तु जिस रूप में मैंने इस प्रविष्टि को प्रस्तुत किया है उसी रूप में इसे उस समय तक स्वीकार कर लिया जाये। इसे इस कारण छोड़ न दिया जाये कि मसौदा-समिति इस पर विचार करेगी। जो शब्द भी उपयुक्त समझे जायें वे रखे जायें, किन्तु बच्चों और युवाओं की शोषण और परित्यजन से रक्षा के सम्बन्ध में एक प्रविष्टि हो। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे कृपा करके स्वीकार कर लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं अपने मित्र से कह चुका हूं कि यदि मैं यह देखूंगा कि उनके उद्देश्य की पूर्ति अन्य प्रविष्टियों से नहीं होती है तो मैं तद्विषयक किसी प्रविष्टि को रखने का यथासम्भव प्रयास करूंगा। मैं उन्हें यह आश्वासन दे चुका हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे मैं और सभा के कुछ अन्य सदस्य बहुत महत्व देते हैं। अभी सवा ग्यारह ही बजे हैं और हमारे पास बहुत समय है। यदि विद्वान डॉक्टर महोदय को आधे घंटे की आवश्यकता है तो वे इतना समय ले सकते हैं। हम इतनी देर विश्राम करके समवेत हो सकते हैं। ताकि वे निश्चित रूप से बता सकें कि इस प्रकार की प्रविष्टि की आवश्यकता है या नहीं। हमने विभिन्न प्रविष्टियों पर विचार-विमर्श किया हैं श्रमिकों के कल्याण के सम्बन्ध में हमने एक प्रविष्टि रखी है। फिर भी हमने श्रमिकों के व्यावसायिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक प्रविष्टि रखी है। यदि इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर ने यह निर्णय किया कि श्रमिकों के कल्याण के विषय में एक प्रविष्टि रखने पर भी उनके व्यावसायिक तथा शिल्पी प्रशिक्षण के सम्बन्ध में एक अलग प्रविष्टि रखने की आवश्यकता है तो मेरी समझ में नहीं आता कि बच्चों की देखरेख के सम्बन्ध में वे खींचातानी का निर्वचन क्यों करते हैं। श्रीमान्, मेरा विश्वास है कि बच्चों के सम्बन्ध में जिस प्रविष्टि का प्रस्ताव मैंने किया है उसे यदि स्थान दे दिया गया तो उससे कोई हानि न होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस विषय पर बहुत ध्यानपूर्वक विचार करूंगा। मुझे इस उद्देश्य से पूरी सहानुभूति है। इसके अतिरिक्त मैं और कह भी क्या सकता हूं?

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मुझे इस आश्वासन से संतोष कर लेना चाहिये। मुझे आशा है कि अन्ततोगत्वा इस आशय की एक प्रविष्टि रखी जायेगी।

***अध्यक्षः** कुछ अन्य संशोधन भी हैं। डॉ. देशमुख। संशोधन संख्या 252।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"सूची-3 में निम्नलिखित नवीन प्रविष्टियां रखी जायें:

'(1). Regulation, control and maintenance of public houses. [(1) वैश्या-गृहों का नियमन, नियंत्रण और उन्हें बनाये रखना।]'

अथवा विकल्पतः

'Regulation and control of prostitution and regulation, control and maintenance of public houses. (वैश्यावृत्ति का विनियमन और नियंत्रण और वैश्यागृहों का विनियमन, नियंत्रण और उन्हें बनाये रखना।)'"

इनमें से कोई भी स्वीकार किया जा सकता है। मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता....

***श्री आर.के. सिधवा:** श्रीमान् मैं यह बताना चाहता हूं कि प्रान्तीय सरकारें भी ये कार्य कर सकती हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं सभा का ध्यान अपने माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के भाषण की ओर दिलाना चाहता हूं जिसमें उन्होंने बताया था कि चूंकि प्रान्तों ने इस प्रकार की कोई विधि नहीं बनाई है इसलिए नगरपालिकाओं को इस सम्बन्ध में कोई शक्ति नहीं प्राप्त है। यदि हमें एकरूपता लानी है और राज्यों को इसकी स्वतंत्रता देनी है कि यदि वे चाहें तो वैश्यावृत्ति का प्रतिषेध करें अथवा उसे समाप्त करें, तो इस उद्देश्य की पूर्ति केवल अन्य प्रविष्टियों के निर्वचन से न होगी। इसलिये डॉ. अम्बेडकर के सामने मैं यह सुझाव रखता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार कर लें। किन्तु यदि वे इसे स्वीकार नहीं करना चाहते तो मैं इस पर जोर नहीं देता कि इस पर मत लिया जाये।

किन्तु अगले संशोधन पर मैं जोर देता हूं और उसे बहुत महत्वपूर्ण भी समझता हूं। वह इस प्रकार है कि:

"सूची 3 में निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जाये:

'Establishment and maintenance of National forms and parks. (राष्ट्रीय फार्मों और पार्कों की स्थापना तथा उन्हें बनाये रखना।)'"

यहां एक शब्द गलत छप गया है। जहां दूसरी जगह "फार्म" शब्द आया है वहां उसके स्थान पर "पार्क" शब्द होना चाहिये। इस प्रसंग में भी यह कहा जा सकता है कि यह शक्ति प्राप्त है ही और इसका प्रयोग विभिन्न प्रविष्टियों के अधीन किया जा सकता है। मेरे विचार से अब वह समय निकट है जब हम विभिन्न विषयों के राष्ट्रीयकरण को महत्व देने लगेंगे। बहुत सी ऊसर भूमि पड़ी हुई है और उसे सहकारी फार्मों, राष्ट्रीय फार्मों और पार्कों में परिणत किया जा सकता है। अब राष्ट्रीय पार्कों की आवश्यकता समझी जाने लगी है क्योंकि उन का केवल आमोद-प्रमोद ही के लिए नहीं बल्कि अन्य प्रयोजनों के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। कृषि के सम्बन्ध में भी वे कई प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। फार्मों में ही नहीं बल्कि पार्कों में भी हम जन साधारण को तथा कृषकों को भूमि क्षय को रोकने आदि की शिक्षा दे सकते हैं। ये सब चीजें आधुनिक जीवन की आवश्यकताएं हैं। यदि हम अमेरिका अथवा अन्य सभ्य देशों में जायें तो हम देखेंगे कि केवल राज्य ही बड़े-बड़े फार्मों को नहीं बनाये रखते बल्कि संघीय सरकार भी उन्हें बनाये रखती है और उनकी अच्छी देखरेख होती है। मेरे विचार से इस प्रकार के स्पष्ट उल्लेख से कोई हानि न होगी और उचित यही है कि यह प्रविष्टि स्वीकार कर ली जाये।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय इस पर नियंत्रण रखकर किसी अनुज्ञा (पर्मिट) प्रणाली को अस्तित्व में लाना चाहते हैं?

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ जी नहीं, श्रीमान्,।

*__श्री महावीर त्यागीः__ कहा यह गया है कि वैश्यावृत्ति का विनियमन तथा नियंत्रण होना चाहिये। मैंने अनुज्ञाओं से खाद्य नियंत्रण तथा गृहवासन-नियंत्रण के बारे में तो सुना है। क्या इसका अर्थ यह है कि सरकार अनुज्ञाओं को जारी करेगी?

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ जी हां, श्रीमान्, उद्देश्य यही है। अनुज्ञप्तिप्राप्त (लाइसैंसदार) वैश्या-गृह भी हैं जहां डाक्टर समय-समय पर जाते हैं। योनि रोगों पर इसी प्रकार नियंत्रण रखा जा सकता है। यह कोई नई बात नहीं है। कई देशों में इस प्रकार की व्यवस्था है। यदि वैश्यावृत्ति को रहने ही देना है तो यह आवश्यक है कि राज्य का उस पर नियंत्रण हो। डाक्टरी परीक्षा की तथा इन गृहों के लिए अनुज्ञप्तियों की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि यह बला देश भर में न फैलने पाये और लगभग प्रत्येक घर में और समाज के प्रत्येक वर्ग में अपने लिए स्थान न बनाये। इस वृत्ति पर नियंत्रण रखने, तथा इसके लिए अनुज्ञप्तियां देने का उद्देश्य यह है कि इसका प्रसार न हो और अन्य लोग इसे न अपनाने लगें। मेरे विचार से मेरे मित्र को फ्रांस जाने का अवसर नहीं मिला, नहीं तो वे कहीं अधिक समझदार हो जाते।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैं आपको अपने अनुभव के लिए बधाई देता हूं!

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ अध्यक्ष महोदय, मेरे विचार से स्थिति की गम्भीरता को नहीं समझा गया हैं मैंने फ्रांस तथा अन्य देशों के बारे में केवल पुस्तकें पढ़ी हैं और वहां का मुझे कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं है, किन्तु मैं यह कह सकता हूं कि इस प्रश्न का इतना अधिक राष्ट्रीय महत्व है कि भारत सरकार को इस सम्बन्ध में कोई कदम उठाना चाहिए, जिससे देश के युवाओं की नैतिक परित्यजन से रक्षा हो सके। मेरे मित्र श्री देशमुख के भाषण का आशय बहुत कुछ यह था कि इस वृत्ति को पूर्णतया समाप्त करना सम्भव है। मैं उनके इस विचार से सहमत नहीं हूं। वैश्यावृत्ति एक प्राचीन वृत्ति है। यह उतनी ही प्राचीन है जितने प्राचीन पर्वत हैं और इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। इस वृत्ति का आधार मनुष्य प्रकृति ही है। हम केवल इसका नियमन कर सकते हैं। अनुज्ञप्तियों की व्यवस्था पूर्णतया वैज्ञानिक व्यवस्था है। यदि हमें देश के युवाओं की रक्षा करनी है तो हमें केवल प्रान्तीय सरकारों का भरोसा न करना चाहिए। मैंने एक अवसर पर श्री देशमुख के आज के संशोधन के समान ही एक संकल्प 1938 में गया की नगरपालिका के सामने रखा था जबकि मैं उसका एक सदस्य था। नगरपालिका के अध्यक्ष ने उसे इस आधार पर अनियमित घोषित कर दिया कि यह विषय नगरपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं आता और इसके सम्बन्ध में नगरपालिका को प्रान्तीय सरकार द्वारा निर्मित विधि की आवश्यकता है।

*__एक माननीय सदस्यः__ क्या माननीय सदस्य महोदय का यह सुझाव है कि सभी अनुज्ञप्तियां दिल्ली से जारी की जायें?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ जब हम इस शक्ति का उल्लेख समवर्ती सूची में कर रहे हैं तो इसका अर्थ यह है कि केन्द्र को योजना बनाने तथा नियमन करने की शक्ति प्राप्त है और वह यह कह सकता है कि प्रान्तीय सरकारें उसके आदेशानुसार कार्य करें। यदि प्रान्तीय सरकारें कुछ न कर पायें तो केन्द्र कदम उठायेगा। प्रान्तीय सरकारों ने इस सम्बन्ध में अधिक कार्य नहीं किया है। इसलिये इस जिम्मेदारी को केन्द्र को स्वीकार करना चाहिये।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ अध्यक्ष महोदय, मुझे श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के दृष्टिकोण पर एक प्रकार आश्चर्य ही हुआ। वे कहते है कि यह वृत्ति शताब्दियों पूरानी है और यह समाप्त नहीं की जा सकती है। भारत में वैश्यावृत्ति एक कलंक है और उसे देखकर हमें लज्जा आती है। यह खेद की बात है कि श्री ब्रजेश्वर प्रसाद उसे जारी रखने के पक्ष में बोले हैं। मुझे इसका खेद है कि यद्यपि प्रान्तीय सरकारों को इस सम्बन्ध में शक्तियां प्रदान की गई हैं किन्तु वे अभी तक इस वृत्ति को समाप्त नहीं कर सकी हैं। मैं यह जानता हूं कि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में कदम उठाया है किन्तु यदि डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि उन्हें इस सम्बन्ध में कोई शक्ति प्राप्त नहीं है तो दोष हमारा है। यह भी एक बुरी बात है कि अनुज्ञप्तियां देकर वैश्यावृत्ति को चलने दिया जाये। आज कल भी अनुज्ञप्तियां दी जाती हैं किन्तु यह एक दूसरी बात है। यदि इस प्रकार की वृत्ति को जारी रखा जायेगा तो यह समाज के लिए एक लज्जा की बात होगी। मैं यह कहता हूं कि प्रान्तीय सरकारों को इसे रोकने के लिए तुरन्त ही कार्यवाही करनी चाहिये और मैं डॉ. देशमुख के संशोधन का समर्थन करता हूं। मैं केवल यह कहता हूं कि इस संशोधन की इस कारण आवश्यकता नहीं है कि प्रान्तीय सरकारों को इस सम्बन्ध में आज भी शक्तियां प्राप्त हैं। किन्तु यदि डॉ. अम्बेडकर यह समझते हों कि उन्हें इस प्रकार की शक्ति प्राप्त नहीं है, तो मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं क्योंकि इस प्रविष्टि के कारण समाज के एक वर्ग की नैतिकता में सुधार होगा। बात यह नहीं है कि उस वर्ग को इस वृत्ति की आवश्यकता है। कुछ परिस्थितियों के कारण यह वृत्ति चलती रही है। वास्तव में इसे अब समाप्त कर देना चाहिए और इसे किसी प्रकार का प्रोत्साहन न देना चाहिए। मैं यह जानता हूं कि कुछ प्रान्तीय सरकारों ने इस ओर कदम उठाये हैं और वैश्याओं के किसी वर्ग ने सरकार से कहा है कि यह वृत्ति उनकी आजीविका का साधन रही है और उन्हें इस साधन से वंचित कर दिया गया है। आज भी मुझे ज्ञात हुआ है कि पाकिस्तान की सरकार का यह विचार है कि वैश्यावृत्ति को समाप्त कर दिया जाये। मैं यह भी जानता हूं कि इस नगर के मध्य में यह व्यापार किन स्थानों में किया जाता है और इसकी क्या दशा है।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: सम्भवत: सदस्य महोदय इस विषय पर जो वैज्ञानिक विचार हैं उनके परिचित नहीं हैं। यदि आप इस वृत्ति को समाप्त कर देंगे तो यह लुके छिपे चलने लगेगी।

*श्री आर.के. सिधवा: मेरे मित्र महोदय ही इन वैज्ञानिक उपायों को समझा करें। उनको वे मुबारक हों। उन्होंने योनि-रोगों आदि की जो चर्चा की है उसे मैं समझता हूं। मेरा आशय यह है कि यह चीज समाप्त की जानी चाहिए। यह एक कलंक और लज्जा की बात है। इसलिए मैं यह कहता हूं कि यदि इस सम्बन्ध में पूरी शक्तियां नहीं दी गई हैं, और डॉ. अम्बेडकर का भी यही विचार है, तो मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं। अन्यथा मैं जानता हूं कि प्रान्तीय सरकारों को यह शक्ति प्राप्त है क्योंकि कुछ प्रान्तों में इस सम्बन्ध में अधिनियम भी हैं।

सेठ गोविन्द दास (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): सभापति, जी, मुझे जीवन में जो सबसे आश्चर्यजनक घटनायें आन पड़ी हैं उनमें से आज का श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का भाषण भी है। जबकि हम हाउस का एक दूसरे प्रकार से उत्थान करना चाहते हैं और नैतिक दृष्टि से समाज की एक नयी रचना करना चाहते हैं उस समय मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि हमारे समाज में ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो वैश्यावृत्ति को अभी भी हमारे देश में कायम रखना चाहते हैं।

हम लोगों ने जो गत तीस वर्षों से गांधी के नेतृत्व में चलते रहे हैं, नैतिक विषयों की एक धारणा बनाई थी और हम यह आशा करते थे कि हमारे देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् जो नया विधान हम देश का बनायेंगे उस विधान में इस प्रकार की नैतिकताओं के लाने का हम प्रयत्न करेंगे, जिससे वैश्यालय जहां पर मदिरा पी जाती है, ऐसे स्थान या जहां पर जुआ खेला जाता है, ऐसी जगह, इन सबका हमारे समाज में से लोप हो जाये। परन्तु हम देखते हैं कि अभी भी हमारे बीच इस तरह के विचार मौजूद हैं जो इन संस्थाओं को रखना चाहते हैं। मैं डॉक्टर अम्बेडकर साहब से यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि वह इस बात को देखें कि जो मुद्दे यहां पास करते हैं वह नैतिकता की नींव पर खड़े रह सकें और हमारे जिस नये समाज की रचना हो वह समाज ऐसा हो जो केवल इस देश के लिये नहीं बल्कि सारे संसार के लिये आदर्श समाज हो सके।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: मैं अपनी एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ उसकी आवश्यकता नहीं है। आपने जो कुछ कहा है उसे हम सभी समझते हैं। उसका हर किसी ने अपने ढंग से निर्वचन किया है।

*__श्री. नज़ीरुद्दीन अहमद:__ श्रीमान्......

*__एक माननीय सदस्य:__ बहस समाप्त की जाये।

*__अध्यक्ष:__ मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को बुला चुका हूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ एक वक्ता महोदय ने अभी कहा था कि वैश्यावृत्ति का पूर्णतया प्रतिषेध कर देना चाहिये। यह जिस भावना से प्रेरित हो कर कहा गया है उसका समर्थन मैं ही नहीं बल्कि सारी सभा करती है, परतु प्रश्न यह है कि क्या यह व्यावहारिक है और क्या यह उचित भी है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ क्या यह कोई ऐसा प्रश्न है जिस पर बहस की आवश्यकता है? प्रश्न केवल यह है कि क्या इस सम्बन्ध में राज्यों को शक्ति प्राप्त है अथवा केन्द्र को अथवा क्या यह समवर्ती विषय है। यह प्रत्येक विधान-मंडल के तय करने की बात है कि इस शक्ति का प्रयोग किस प्रकार होना चाहिये और इस वृत्ति का पूर्ण रूप से प्रतिषेध कर देना चाहिये अथवा इसे थोड़ा बहुत चलते देना चाहिये। हमें इससे विधान-मंडलों के लिये छोड़ देना चाहिये।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ मेरा निवेदन है कि यह संशोधन तर्कसंगत है। संशोधन में "वैश्यावृत्ति के विनियमन और नियंत्रण" के लिये व्यवस्था की गई है। एक माननीय सदस्य महोदय यह कहते हैं कि वैश्यावृत्ति को पूर्णतया समाप्त कर देना चाहिये और विनियमन तथा नियंत्रण की आवश्यकता नहीं है। मेरा निवेदन है कि यह न तो अनावश्यक है और न अव्यावहारिक। आप वैश्यावृत्ति को समाप्त नहीं कर सकते हैं। आप केवल उसका विनियमन कर सकते हैं। और उस पर नियंत्रण रख सकते हैं। आप उसका प्रतिषेध नहीं कर सकते हैं। यदि आप यह करेंगे तो आप समाज को अपनी सुरक्षा के एक साधन से वंचित कर देंगे। अव्यावहारिक आदर्शवाद के कारण ही यह आपत्ति की गई है। मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन में सिद्धान्ततः अथवा व्यवहारतः कुछ दोष नहीं है। इसी कारण मैंने कुछ शब्द कहे हैं।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं भी बोलना चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ बहस समाप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है। प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, इन प्रविष्टियों के अधीन राज्य को इस सम्बन्ध में पर्याप्त शक्ति दी गई है और वह इन मामलों का विनियमन कर सकता है, अर्थात् वैश्यागृहों के सम्बन्ध में कार्यवाही कर सकता है और बड़े पैमाने पर फार्मों को भी चला सकता है। यदि मेरे मित्र डॉ. देशमुख लोक-व्यवस्था के सम्बन्ध में सूची 2 की प्रविष्टि 1 को देखें, और पुलिस के सम्बन्ध में प्रविष्टि-4 को देखें, और दंड-विधि के सम्बन्ध में समवर्ती सूची की प्रविष्टि को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि इन मामलों के विनियमन के लिये पर्याप्त शक्ति की व्यवस्था की गई है। यदि वे भूमि के सम्बन्ध में प्रविष्टि 24 को तथा कृषि के सम्बन्ध में राज्य-सूची की प्रविष्टि 21 को देखें तो उन्हें ज्ञात होगा कि राज्यों को अपने फार्म स्थापित करने, अथवा जो कुछ भी चाहें उसे स्थापित करने के लिये पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई है।

इसलिये केवल यह प्रश्न रह जाता है कि फार्मों को स्थापित करने और वैश्यागृहों के विनियमन का विषय समवर्ती सूची में रखा जाना चाहिये या नहीं। मेरे विचार से इन विषयों को समवर्ती सूची में अथवा राज्य-सूची में रखने की कसौटी यह होनी चाहिये कि ये विषय सारे भारत के लिये महत्वपूर्ण हैं अथवा स्थान-विशेष के लिये। मेरे विचार से वैश्यावृत्ति, वैश्यागृहों के विनियमन और फार्मों की स्थापना के विषयों का केवल स्थानीय महत्व है। इसलिये अच्छा यही होगा कि ये राज्यों के लिये छोड़ दिये जाये। इनके सम्बन्ध में कार्यवाही करने के लिये उन्हें पर्याप्त शक्ति प्राप्त है। मैं कह नहीं सकता कि इस कार्य को केन्द्र कैसे करेगा। केन्द्र के पास कोई कृषि-भूमि नहीं है। यदि केन्द्र कोई फार्म स्थापित करना चाहेगा तो वह कृषकों से भूमि अवाप्त करेगा। यह कार्य राज्य भी कर सकते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इन प्रविष्टियों को समवर्ती सूची में रखने से क्या लाभ होगा। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिन प्रदेशों को हम अपने राज्य कहते हैं वे यूरोप के बहुत से राज्यों से बहुत बड़े हैं।

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाईः__ क्या डॉ. अम्बेडकर एक बात स्पष्ट करेंगे? प्रविष्टि में वैश्यावृत्ति के विनियमन अथवा प्रतिषेध का उल्लेख है। मैं नहीं जानती कि इस प्रसंग में नियमन का क्या अर्थ है। मेरे विचार से "पूर्ण प्रतिषेध" शब्द होने चाहियें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ राज्य वैश्यागृहों का नियमन भी कर सकते हैं और प्रतिषेध भी कर सकते हैं। राज्य यह कर सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ अब मैं संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है किः

"सूची-3 में निम्नलिखित नवीन प्रविष्टियां रखी जायेः-

'(i) Regulation, control and maintenance of public houses.' [(1) वैश्यागृहों का विनियमन, नियंत्रण और उन्हें बनाये रखना।]'"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं दूसरी नवीन प्रविष्टि पर मत लेता हूं:–

"(ii) Regulation and control of prostitution and regulation, control and maintenance of public houses. [(2) वैश्यावृत्ति का विनियमन और नियंत्रण और वैश्यागृहों का विनियमन, नियंत्रण और उन्हें बनाये रखना।]"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ अब मैं तीसरी नवीन प्रविष्टि पर मत लेता हूं:–

"(iii) Establishment, maintenance of National Parks and Farms. [(3) राष्ट्रीय फार्मों और पार्कों की स्थापना तथा उन्हें बनायें रखना।]"

संशोधन गिर गया।

*__अध्यक्ष:__ इसके पश्चात् सरदार हुकम सिंह का संशोधन संख्या 253 आता है।

(संशोधन संख्या 253 और 325 उपस्थित नहीं किये गये।)

मुझे केवल इन्हीं नवीन प्रविष्टियों की सूचना दी गई थी। इस प्रकार तृतीय सूची समाप्त हो जाती है।

---

*__अध्यक्ष:__ सभा को स्मरण होगा कि हाल में एक प्रविष्टि के सम्बन्ध में एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था किन्तु उस पर उस समय विचार नहीं किया गया था। यह प्रश्न उठाया गया है कि अनुसूची-7 की सूची 1 की एक प्रविष्टि, जिसका आशय नीचे दिया हुआ है, नियमानुकूल है या नहीं। वह प्रविष्टि इस प्रकार है:

"88-क. समाचार पत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।"

यह तर्क उपस्थित किया गया है कि चूंकि अनुच्छेद-13 में यह निर्धारित किया गया है कि सब नागरिकों को वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार होगा। इसलिये यह प्रविष्टि उससे असंगत है और इस कारण नियम विरुद्ध है। यह तर्क भी उपस्थित किया गया है कि इस मूलाधिकार के सम्बन्ध में केवल एक ही परिसीमन है, जो अनुच्छेद-13 के खण्ड (2) में निर्धारित है। प्रस्तावित प्रविष्टि उसके अधीन भी नहीं आती और इस कारण भी नियम-विरुद्ध है। समझा यह जा रहा है कि अमरीका के उच्चतम-न्यायालय ने "एलिस ली ग्रोसजीन बनाम अमेरिकन प्रेस कम्पनी" के मामले में जो निर्णय किया है वह तर्कसंगत है। उसमें यह कहा गया था कि लुइसिआना के विधान-मंडल का एक अधिनियम, जिसके अधीन प्रति सप्ताह 20,000 से अधिक ग्राहक-संख्या वाले समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और सामयिक प्रकाशनों की कुल पावती के आगम पर 2 प्रतिशत का अनुज्ञप्ति-कर लगाया गया था संघीय संविधान का खण्डनकारी है और उससे समाचार-पत्रों के

[अध्यक्ष]

स्वातंत्र्य का न्यूनन होता है। मैंने इस प्रश्न का निर्णय करना है कि अनुसूची-7 की सूची-1 की प्रविष्टि अथवा किसी अन्य सूची की इसी प्रकार की प्रविष्टि नियमानुकूल है या नहीं। मुझे इसकी चिंता नहीं है कि इस प्रविष्टि पर आधृत कोई विधि नियम-विरुद्ध है या नहीं अथवा उससे अनुच्छेद-13 में वर्णित अधिकारों का खण्डन होता है या नहीं। इसका निर्णय न्यायालय करेंगे। प्रस्तावित प्रविष्टि से संघीय विधान-मंडल को केवल समाचार-पत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त होता है। अनुच्छेद-13 में किसी स्थल पर यह निर्धारित नहीं किया गया है कि समाचार-पत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर नहीं लगाया जायेगा। इसलिये यह नहीं दिखाई देता कि यह प्रविष्टि अनुच्छेद-13 से असंगत है। कर-सम्बन्धी किसी उपबन्ध पर स्वतंत्र रूप से विचार करना होगा और उसके गुण-दोषों के आधार पर ही उसके सम्बन्ध में निर्णय करना होगा और उसे वाक-स्वातंत्र्य तथा अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के मूलाधिकार के प्रश्न से अलग करना होगा। अमरीका के उच्चतम-न्यायालय के निर्णय के अधीन भी, जिसे तर्कसंगत समझा जा रहा है, सभी प्रकार के करों का अपवर्जन नहीं हो जाता। उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—"हमने जो कुछ कहा है उसका उद्देश्य यह नहीं है कि समाचार-पत्रों के स्वामी उन साधारण करों से मुक्त हैं जिन्हें सरकार अपनी आवश्यकतानुसार लगायेगी। किन्तु यह कोई साधारण कर नहीं है। यह एक ऐसा कर है जिसका बहुत काल तक समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य के अपहरण के लिये दुरुपयोग किया गया है और उसका एक इतिहास है।" इस निर्णय में आगे कहा गया है– "यह कर इस कारण बुरा नहीं है कि इस से अपील करने वालों के धन की हानि होती है। यदि केवल यही बात होती तो एक भिन्न ही प्रश्न उठता। यह इसलिये बुरा है कि इसके इतिहास को देखते हुए तथा इसे भी देखते हुए कि वह इस समय किस स्थिति में लगाया जा रहा है, यह स्पष्ट हो जाता है कि सूचना के वितरण को जानबूझ कर सीमित करने के लिये कर लगा कर प्रयास किया जा रहा है। यद्यपि संविधान की प्रत्याभूतियों के अधीन जनसाधारण को सूचना प्राप्त करने का अधिकार है।" यह कर उन पत्रों पर लगाया गया था जिनकी प्रति सप्ताह 20,000 से अधिक प्रतियां बिकती थीं। इन समाचार-पत्रों, तथा इनसे कम ग्राहक संख्या वाले समाचार-पत्रों के बीच प्रतिस्पर्धा थी और न्यायाधीशों ने यह निर्णय किया कि 20,000 से अधिक ग्राहक संख्या वाले समाचार-पत्रों के प्रति विभेद बरतने से दो प्रकार बाधा होती है। एक तो उनकी आय कम हो जाती है और दूसरे प्रत्यक्षत: उनकी ग्राहक-संख्या कम हो जाती है। यदि किसी मामले में यह प्रश्न उठाया गया कि किसी विशेष कर से वाक-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का न्यूनन होता है तो उसके सम्बन्ध में निर्णय किया जा सकता है, किन्तु यह निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि समाचार-पत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने

वाले विज्ञापनों पर कर नहीं लगाया जा सकता। इसलिये प्रस्तावित प्रविष्टि नियमित है।

अब हम उस प्रविष्टि को उठाते हैं।

*__श्री देशबन्धु गुप्त__ (दिल्ली): श्रीमान्, चूंकि यह विषय मसौदा-समिति के विचाराधीन है, इसलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि इसे बाद में उठाया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ 58 सज्जनों ने जिस संशोधन को उपस्थित किया है उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूं।

*__श्री महावीर त्यागी:__ श्रीमान्, क्या मैं आपको सूचित कर सकता हूं कि इस सभा के बहुत से सदस्य इस प्रविष्टि को निकालने के पक्ष में हैं? इस कारण आप कृपा करके इसके लिये अपनी सहमति प्रदान करें कि इस पर मसौदा-समिति आगे विचार करे और तब तक यह स्थगित रखा जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, यदि इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय इसे उपस्थित करना चाहें तो मैं इसे स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।

*__श्री रामनाथ गोयनका__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, हाल में आपने डॉ. अम्बेडकर से प्रार्थना की थी कि वे इसका विकल्प तैयार रखें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ उन्होंने इस प्रकार की कोई बात नहीं कही थी।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ श्रीमान्, इस विषय पर कुछ समय लगेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, संशोधन यहां है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ मेरा यह सुझाव है कि हम मसौदा-समिति से सम्पर्क रखें और एक ऐसा सूत्र निश्चित करें जिसे सभी स्वीकार कर सकें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ जो सूत्र इस समय है उसे आपने ही प्रस्तावित किया है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ हम आपसे परामर्श कर सकेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, यदि प्रविष्टि 88-क उपस्थित की जाये तो मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।

*__श्री एस. नागप्पा:__ वह उपस्थित की जा चुकी है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ वह अभी नहीं उपस्थित की गई है। वह सूची-1 की प्रविष्टि 88-क थी, राज्य-सूची की नहीं। यह आपत्ति की गई थी कि वह नियमित नहीं है और वह उपस्थित नहीं की गई है। इसलिये यदि श्री गोयनका उसे उपस्थित करना चाहें........

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ श्रीमान्, मैं रस्मी तौर से यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि उस विषय को स्थगित रखा जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ क्यों? हम सारी सूची को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। इसी कारण हमने शीघ्र काम किया और कई सदस्यों को जितना वे बोलना चाहते थे उतना बोलने भी नहीं दिया। अब चूंकि हमारे सामने एक स्पष्ट संशोधन है, जिस पर कई लोगों ने हस्ताक्षर किये हैं, इसलिये उसे स्थगित करने की क्या आवश्यकता है?

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ वह स्पष्ट नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने ही उसके मसौदे के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति की थी और यह कहा था कि उसका उपयुक्त मसौदा तैयार करने में वे हमारी सहायता करेंगे।

*__अध्यक्षः__ जहां तक मैं समझता हूं डॉ. अम्बेडकर ने हाल में यह कहा था कि प्रश्न केवल यह है कि यह प्रविष्टि सूची 1 में होनी चाहिये या सूची 2 में। उन्होंने कहा था कि नीति के प्रश्न के सम्बन्ध में अभी निर्णय करना है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यदि आप इसे सूची 1 में रखना चाहते हैं तो मैं इसके लिये तैयार हूं।

*__अध्यक्षः__ जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है कि इस प्रविष्टि को किस स्थल पर रखा जाये, इस मसौदा-समिति विचार करेगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ कठिनाई वास्तव में यह है। यह प्रविष्टि आरम्भ में सूची 2 में थी। इस पर यह आपत्ति की गई थी कि इसे सूची 2 में न रखना चाहिये बल्कि इस रूप में इसे सूची 1 में रखना चाहिये। यदि यही इच्छा है तो मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः__ श्रीमान्, क्या मैं इस संशोधन को उपस्थित कर सकता हूं?

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3582 और 3588 के सम्बन्ध में, सूची 1 की प्रविष्टि 88 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन प्रविष्टि रखी जायेः–

'88-A. Taxes on newspapers including advertisements published therein. (88-क. समाचारपत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।)'"

मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं इस संशोधन के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहूं क्योंकि मेरे माननीय मित्र श्री गोयनका ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी है। श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

*श्री देशबन्धु गुप्तः श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि द्वितीय सूची की प्रविष्टि 58 का क्या होगा, जो कल स्थगित रखी गई थी?

*अध्यक्षः वह नहीं रहेगी।

*श्री देशबन्धु गुप्तः वह कल इस कारण स्थगित की गई थी कि ये दो प्रविष्टियां एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

*अध्यक्षः वह इस कारण स्थगित की गई थी कि उसे सूची 2 में रखने के सम्बन्ध में एक संशोधन था। यदि उसे सूची 1 में रखा गया तो वह संशोधन अनियमित हो जायेगा।

*श्री देशबन्धु गुप्तः दो संशोधन हैं। एक संशोधन का उद्देश्य यह है कि यह सूची 1 में रखी जाये। और दूसरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रविष्टि 58 के विस्तार की परिभाषा की जाये। कल यह संशोधन इस कारण स्थगित किया गया कि सभा इस विषय पर विचार नहीं कर रही थी। इन दोनों को एक साथ उठाना चाहिये।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मेरे लिये यह आवश्यक नहीं है कि मैं इसे स्वीकार करूं। ये दोनों सम्बद्ध नहीं है। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं।

*अध्यक्षः एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 122, इस संशोधन के कारण स्थगित किया गया था। यदि अभी जो संशोधन उपस्थित किया गया है वह स्वीकार कर लिया जाता है तो संशोधन संख्या 122 अनियमित हो जाता है और सभा के सामने केवल डॉ. अम्बेडकर का प्रस्ताव, अर्थात् संशोधन संख्या 121, रह जाता है।

*श्री रामनाथ गोयनकाः क्या सूची 2 में आनुषंगिक संशोधन नहीं करना होगा? राज्य-सूची में राज्यों को विक्रय पर और विज्ञापनों पर भी कर लगाने की कुछ शक्तियां दी गई हैं। यदि इस विषय को सूची 1 में रखा जाता है तो हमने जिस आनुषंगिक संशोधन की सूचना दी है.....

*अध्यक्षः इस सम्बन्ध में सूचना दी गई है कि इसे सूची 1 में सम्मिलित किया जाये। यदि यह सूची 1 में रख दिया जाता है तो यह अपने पहले स्थान पर नहीं रह जाता।

*श्री रामनाथ गोयनकाः किन्तु सूची 2 की प्रविष्टि में अपवाद रखना होगा और प्रविष्टि में इस प्रकार के शब्द रखने होंगे: "वस्तुओं का विक्रय, समाचार-पत्रों के विक्रय के अतिरिक्त।"

*अध्यक्षः इसकी आवश्यकता नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह किसी प्रकार भी आनुषंगिक संशोधन नहीं हैं दोनों संशोधन स्वतंत्र संशोधन हैं। एक संशोधन का आशय यह है कि इस प्रविष्टि में एक नवीन प्रविष्टि अर्थात् प्रविष्टि संख्या 88-क जोड़ कर इसे अधिक विस्तृत बनाया जाये। इसके अतिरिक्त एक अन्य संशोधन भी है जो सूची 2 में विक्रय-कर सम्बन्धी प्रविष्टि 58 के बारे में मेरे संशोधन पर संशोधन है। इस संशोधन में कहा गया है कि "वस्तुओं" शब्द के साथ कुछ ऐसे शब्द जोड़ दिये जायें जिनसे समाचारपत्रों का अपवर्जन हो जाये। इसके सम्बन्ध में इसके गुण-दोषों के आधार पर निर्णय किया जायेगा। इस समय हमने इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या हमें सूची 1 को, उसमें प्रविष्टि 88-क को वर्तमान रूप में रखकर, अधिक विस्तृत बनाना चाहिये।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ स्थिति इस प्रकार है। हमने सूची 1 में इस आशय की एक प्रविष्टि प्रस्तावित की है कि समाचारपत्रों तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर लगने वाले करों के विषय को सूची 1 में रखा जाये और यह प्रस्ताव भी उपस्थित किया है कि प्रान्तों को समाचारपत्रों पर किसी प्रकार का कर लगाने का अधिकार नहीं होना चाहिये। इसलिये संशोधन संख्या 57 सूची 2 की प्रविष्टि 58 के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 122 का आनुषंगिक संशोधन है। इस कारण इन दोनों संशोधनों पर एक साथ विचार करना होगा। कल जब सूची 2 को प्रविष्टि 58 का प्रश्न उठाया गया था तो आपने यह कहकर उसे स्थगित कर दिया था कि इन प्रविष्टियों को एक साथ लेकर इन पर निर्णय किया जायेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ इनको एक-एक करके उठाया जा सकता हैं एक संशोधन को पहले उठाया जा सकता है। और दूसरे को उसके बाद उठाया जा सकता है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ श्रीमान्, क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि पहले हम सूची 2 की प्रविष्टि 58 को उठायें और तद्न्तर प्रविष्टि 88-क को?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ आप उन्हें चाहे जिस प्रकार उठाये किन्तु मैं आपसे कहना चाहता हूं कि दूसरे संशोधन पर जो मतदान होगा उसकी पहले संशोधन पर दिये हुए मत से कोई संगति नहीं होगी। सभा को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह एक संशोधन को स्वीकार करे और दूसरे संशोधन को अस्वीकार करे।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ मैं चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में आप अपना निर्णय सुनायें। यदि आप समाचारपत्रों पर कर के विषय को सूची 1 में रखते हैं तो वह सूची 2 में नहीं रखा जा सकता। यदि उसे सूची 1 में रखा जाता है तो वह सूची 2 में अपने आप ही नहीं रह जाता।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह सूची 2 में केवल इस अर्थ में नहीं रहेगा कि उसका करों से कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। किन्तु जहां तक वस्तुओं के विक्रय का सम्बन्ध है, यह विषय उस सूची में रहेगा। क्या आप उसे भी निकाल

देना चाहते हैं? यदि मैं ठीक समझ पाया हूं तो आपका दुहरा उद्देश्य है। आप यह चाहते हैं कि समाचारपत्रों पर कोई कर भी न लगे और विक्रय-कर अधिनियम के अधीन भी उन्हें कोई कर न देना पड़े। सच्ची बात यह है कि मैं यह नहीं चाहता कि आप दोनों ओर से लाभ उठायें।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस विषय को सोमवार की सुबह तक स्थगित रखा जाये ताकि हम मिल कर एक साथ विचार कर सकें और फिर आपके सम्मुख उपस्थित हों क्योंकि चाहे जो भी निर्वचन किया जाये, जो कुछ कहा गया है वही हमारे संशोधन का उद्देश्य है। हमारा उद्देश्य वही है। हमें केवल साधारण ज्ञान ही है और डॉ. अम्बेडकर हमारा पथप्रदर्शन कर सकेंगे। कर लगाने का मूल अधिकार प्रान्तों से लेकर केन्द्र को दिया जाना चाहिये। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है तो हमें किसी अन्य संशोधन को उपस्थित करना होगा, जिससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो सकेगी। हमारा उद्देश्य यही है।

*__अध्यक्ष:__ डॉ. अम्बेडकर, यदि यह विषय स्थगित किया जाये तो क्या आप को कुछ आपत्ति है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं स्पष्ट शब्दों में स्थिति स्पष्ट कर दूं। मुझे आदेश मिला है कि मैं प्रविष्टि 88-क को स्वीकार करूं। मैं उस आदेश के अधीन प्रविष्टि 88-क को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। दूसरे प्रस्ताव (अर्थात् संशोधन संख्या 122) के सम्बन्ध में मुझे इस प्रकार का कोई आदेश नहीं मिला है। मैं देखता हूं कि उसे स्वीकार करना मेरे लिये कठिन होगा। समाचारपत्रों को सभी प्रकार के करों से मुक्त करने के प्रस्ताव को स्वीकार करना मेरे लिये असम्भव है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ बात यह नहीं है। मैं यह चाहता हूं कि कर लगाने का अधिकार केन्द्र को प्राप्त हो और प्रान्तों को प्राप्त न हो। डॉ. अम्बेडकर से मैं यह कहना चाहता हूं कि आदेश इस प्रकार है कि कर लगाने का अधिकार प्रान्तों से ले लिया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ आप कृपया आदेश का निर्वचन मुझे न सुनायें। मैं जानता हूं कि वह क्या है। मुझे उसके सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ उसकी शब्दावली के अनुसार उसका निर्वचन मैं आप को सुनाता हूं। *(विघ्न)*

*__श्री देशबन्धु गुप्त:__ चूंकि डॉ. अम्बेडकर ने आदेश की चर्चा की है मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूं कि जब यह प्रश्न उस प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था, जिसने यह आदेश दिया था, तो उस समय यह स्पष्ट था कि ये दो संशोधन सम्बद्ध हैं। हम यह चाहते थे कि यह कर केन्द्रीय कर हो और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय न हो।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह उचित नहीं है कि यहां उन विषयों की चर्चा की जाये जिन पर अन्यत्र विचार-विमर्श हुआ था। किन्तु, जैसाकि मैं कह चुका हूं, मैं उस आदेश का अनुसरण करने के लिये तैयार हूं। दूसरे विषय को मेरे मित्रों ने छिपा कर आगे बढ़ाया है और वह इस कारण कि उन्होंने अन्यत्र मुझे यह कहते हुए सुना कि इस संशोधन को लाकर कैसी गड़बड़ की गई है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ यदि डॉ. अम्बेडकर का विचार है कि हमने गड़बड़ की है तो हम उसे दूर करना चाहते हैं। *(विघ्न)*

*__अध्यक्ष:__ मैं यह देखता हूं कि इस विषय के सम्बन्ध में बहुत उत्तेजना है। इसलिये अच्छा यह होगा कि इसे किसी दूसरे दिन उठाया जाये, जबकि उत्तेजना इतनी अधिक न हो।

प्रातःकाल मुझसे कुछ माननीय सदस्यों ने कहा था कि उन्हें यह बता दिया जाये कि भाषा का प्रश्न कब उठाया जायेगा। कल मैंने शुक्रवार, 7 सितम्बर तक का कार्यक्रम बताया था। हमने जो अस्थाई कार्यक्रम बनाया था, उसमें हमने सम्मत्ति और भाषा-सम्बन्धी अनुच्छेदों के लिये तीन दिन अर्थात् तारीख 10, 12 और 13 रखे थे। किन्तु वह केवल अस्थाई कार्यक्रम था। यदि सदस्यों को इन तारीखों के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं है तो हम इन्हीं को रख सकते हैं।

*__सेठ गोविन्ददास:__ श्रीमान्, अभी आपने कहा है कि ये तारीखें अस्थाई रूप से रखी गई हैं। इससे क्या मैं यह समझूं कि यदि भाषा का प्रश्न इन तारीखों पर नहीं उठाया जा सका तो वह कम से कम इस सत्र में अवश्य उठाया जायेगा और जिन तारीखों पर वह उठाया जायेगा उनकी सूचना लोगों को पहले से दी जायेगी ताकि वे उस अवसर पर उपस्थित हो सकें?

*__अध्यक्ष:__ उसे न उठाने का कोई प्रश्न नहीं है। वह अवश्य ही उठाया जायेगा। जैसाकि मैं कह चुका हूं, यदि सभा को कोई आपत्ति नहीं है तो मैंने ये तारीखें निश्चित की हैं। मैं यह कह चुका हूं कि ये अस्थाई हैं और वह इस अर्थ में कि उन्हें मैंने निश्चित किया है और सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह अन्य तारीखों को निश्चित करे। किन्तु यदि सभा को कोई आपत्ति नहीं है तो मैं इन प्रश्नों को 10, 12 और 13 तारीखों को उठाऊंगा।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर__ (मद्रास : जनरल): क्या मैं आपसे अनुरोध कर सकता हूं कि इन्हें 10, 12 और 13 तारीखों को न उठा कर 12, 13 और 14 तारीखों को उठाया जाये?

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्ल__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि अनुच्छेद 264-क, 265 और 266 पर या तो 10 तारीख को या 13 तारीख के पश्चात् विचार-विमर्श किया जाये क्योंकि जिन सदस्यों

और प्रधान-मंत्रियों की इनमें दिलचस्पी है उनमें से अधिकांश इस समय यहां नहीं हैं। यदि 6 तारीख को इन अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श किया गया तो वे उसमें भाग नहीं ले सकेंगे। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इन अनुच्छेदों को भाषा के प्रश्न पर विचार-विमर्श कर लेने के पश्चात् उठाया जाये ताकि प्रत्येक व्यक्ति को सूचना भी मिल जायेगी और यहां आने के लिये समय भी मिल जायेगा।

*__अध्यक्षः__ मसौदा-समिति जिस क्रम से मसौदों को तैयार कर रही है उसी क्रम के अनुसार मैंने कार्यक्रम भी निश्चित किया है। इन अनुच्छेदों के मसौदे तैयार हैं, इसीलिये इनको पहले रखा गया है। अन्य अनुच्छेदों के मसौदे तैयार नहीं हैं। इस पर सदस्य यह शिकायत करेंगे कि मसौदों के मिलने के बाद उन्हें संशोधनों की सूचना देने के लिये समय नहीं मिला। जैसाकि मैं कह चुका हूं, जिस क्रम से मसौदे तैयार हुए हैं उसी क्रम से वे कार्यक्रम में रखे गये हैं। मैं आशा करता हूं कि उन पर विचार करने के दिन तक सदस्य आ जायेंगे। अभी भी पर्याप्त समय है। हमने यह कल घोषित कर दिया था।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या मसौदा अन्तिम रूप से तैयार है ताकि उस पर सभा में बहस हो सके।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि वह तैयार है।

*__श्री के.एम. मुंशी__ (बम्बई : जनरल)**:** इन अनुच्छेदों के मसौदे तैयार हैं। मेरे विचार से जो भी विचार-विमर्श अब करना है वह कल तक समाप्त हो सकता है और फिर यह मामला सभा के सामने रखा जा सकता है। यह आवश्यक है कि हम प्रतिदिन निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करें। यदि हम किसी मामले को स्थगित करेंगे तो उससे आगे चलकर बहुत कठिनाई पैदा हो जायेगी। ये मसौदे तैयार हैं। केवल कुछ प्रधान-मंत्री यह चाहते हैं कि एक दो उपबन्धों को दुहराया जाये और यह कल तक किया जा सकता है। अन्यथा सोमवार के लिये कोई कार्य नहीं रह जायेगा। यदि इन मसौदों को अलग रख दिया गया तो परसों के लिये कुछ भी काम न रह जायेगा। अब कुछ ही अनुच्छेद रह गये हैं, किन्तु यदि हम प्रतिदिन कार्य न करेंगे तो उन्हें समय पर समाप्त करना कठिन हो जायेगा।

*__अध्यक्षः__ हमने सोमवार के लिये पांचवी और छठी अनुसूचियां रखी हैं। मेरे विचार से वे उस दिन समाप्त हो जायेंगी। यदि वे समाप्त न हुई तो हम दूसरे दिन भी उन पर विचार करते रहेंगे।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ जब तक हमें कार्यक्रम की सूचना पर्याप्त समय पहले न दी जायेगी तब तक हममें से कुछ लोगों के लिये असुविधा होगी।

*__अध्यक्षः__ मैंने कल यह घोषित किया था कि यह विषय सोमवार को उठाया जायेगा।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ हम ऐसी जगहों में रह रहे हैं जो नगर से बहुत दूर हैं।

*__अध्यक्षः__ आजकल कुछ ही घंटों में किसी जगह भी पहुंचा जा सकता है।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह जान सकता हूं कि भाषा के प्रश्न पर बहस करने के लिये आप कौन सी तारीखें रखना चाहते हैं?

*__अध्यक्षः__ मैं अभी यह घोषित कर चुका हूं कि सम्पत्ति के प्रश्न पर तथा भाषा के प्रश्न पर बहस करने के लिये हमने तीन दिन निश्चित किये हैं। ये दिन सितम्बर की 10, 12 और 13 तारीखों को पड़ते हैं।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः__ क्या मैं यह समझूं कि इन तारीखों को सम्पत्ति के प्रश्न पर निर्णय कर लेने के पश्चात् ही भाषा के प्रश्न को उठाया जायेगा?

*__अध्यक्षः__ जी हां।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः__ क्या मैं यह सुझाव रखने की घृष्टता कर सकता हूं कि चूंकि 10 तारीख को शनिवार है और 11 तारीख को रविवार है इसलिये भाषा के प्रश्न के लिये 12 सितम्बर की तारीख रखी जाये?

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि भाषा का प्रश्न वास्तव में 12 तारीख को ही उठाया जायेगा क्योंकि 10 तारीख को हम सम्पत्ति के प्रश्न पर विचार करने जा रहे हैं।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः__ भाषा के प्रश्न को दैव पर न छोड़कर उस पर 12 तारीख को विचार किया जाये। मेरी यही प्रार्थना है।

*__अध्यक्षः__ यदि भाषा के प्रश्न पर निश्चित तारीख को अर्थात् 10 तारीख को विचार किया जायेगा तो उससे कोई हानि नहीं होगी। यदि 10 तारीख को हमने सम्पत्ति-सम्बन्धी अनुच्छेद को कुछ पहले समाप्त कर दिया तो हम भाषा के प्रश्न को उठा लेंगे। किन्तु मैं नहीं समझता कि हम उसे 10 तारीख को समाप्त कर सकेंगे। उस पर 12 तारीख तक बहस होती रहेगी।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं एक सुझाव रखना चाहता हूं। हम यह मान ले रहे हैं कि मसौदे समय पर तैयार हो जायेंगे। इस समय तक हमें कोई भी मसौदा नहीं दिया गया है। इसलिये हम अपना कार्यक्रम इस शर्त के साथ निश्चित करें कि मसौदे सदस्यों को काफी समय पहले दे दिये जायेंगे ताकि वे संशोधनों की सूचना दे सकें। भाषा और सम्पत्ति के प्रश्न महत्वपूर्ण प्रश्न हैं और पेचीदे भी हैं।

***अध्यक्ष:** सोमवार को जिन दो अनुसूचियों पर विचार करना है उनके मसौदे सदस्यों को दे दिये गये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** जी हां। वे दे दिये गये हैं।

***अध्यक्ष:** मंगलवार के कार्यक्रम के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 263 आदि के मसौदे सदस्यों के पास आज पहुंच जायेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** छठी अनुसूची का मसौदा हमें नहीं दिया गया है।

***अध्यक्ष:** वह आज दे दिया जायेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं सम्पत्ति तथा भाषा-सम्बन्धी अनुच्छेदों के मसौदों के बारे में बोल रहा था।

***अध्यक्ष:** मैं भाषा-सम्बन्धी अनुच्छेद के मसौदे के बारे में कुछ नहीं जानता।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं मसौदे को दे चुका हूं। उसके सम्बन्ध में सूचना दी गई है। और वह तुरन्त ही सदस्यों को दे दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** हम उसे सदस्यों के पास आज रात भेज देंगे।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, भाषा-सम्बन्धी अनुच्छेद पर विचार करने के लिये आपने केवल दो दिन रखे हैं। मेरा निवेदन है कि भाषा का प्रश्न हम लोगों के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसलिये सम्भव है कि हममें से अधिकांश लोग बहस में भाग लेना चाहेंगे। मेरे विचार से इसके लिये दो दिन का समय बहुत कम है। हमें इस पर विचार करने के लिए चार या पांच दिन की आवश्यकता होगी।

***अध्यक्ष:** यदि आवश्यकता हुई तो दोनों दिन सभा दो बार समवेत हो जायेगी। इस प्रकार दो दिन में ही चार दिन का समय मिल जायेगा।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** मेरा केवल यह निवेदन है कि अधिक दिनों की आवश्यकता होगी।

***अध्यक्ष:** सब कुछ बहस की प्रगति पर निर्भर रहेगा। अब सभा सोमवार, तारीख 5 सितम्बर, के प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा सोमवार तारीख 5 सितम्बर, 1949, के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.26.49
320

अंक 9
संख्या 26

सोमवार
5 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[पांचवीं अनुसूची: पैरा 1 से 6 पर विचार]
[छठी अनुसूची: पैरा 1 पर विचार] .... [1479–1550]

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 5 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—जारी

पांचवीं अनुसूची

***अध्यक्षः** अब हम पांचवीं अनुसूची को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमानः

"कि पांचवीं अनुसूची के स्थान पर यह अनुसूची रखी जायेः—

'FIFTH SCHEDULE

[Articles 215-A(a) and 215-B(1)]

PROVISIONS AS TO THE ADMINISTRATION AND CONTROL OF SCHEDULED AREAS AND SCHEDULED TRIBES

Part I

GENERAL

1. *Interpretation.*—In this Schedule, unless the context otherwise requires, the expression "State" means a State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule.

2. *Executive power of a State in scheduled areas.*—Subject to the provisions of this Schedule, the executive power of a State extends to the scheduled areas therein.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

3. *Report by the Governor or Ruler to the Government of India regarding the administration of the scheduled areas.*—The Governor or Ruler of each State having scheduled areas therein shall annually, or whenever so required by the Government of India, make a report to that Government regarding the administration of the scheduled areas in the State and the executive power of the Union shall extend to the giving of directions to the State as to the administration of the said areas.

Part II

ADMINISTRATION AND CONTROL OF SCHEDULED AREAS AND SCHEDULED TRIBES

4. *Tribes Advisory Council.*—(1) There shall be established in each State having scheduled areas therein and, if the President so directs, also in any State having scheduled tribes but not scheduled areas therein, a Tribes Advisory Council consisting of not more than twenty members of whom as nearly as may be, three-fourth shall be the representatives of the scheduled tribes in the Legislative Assembly of the State:

Provided that if the number of representatives of the scheduled tribes in the Legislative Assembly of the State is less than the number of seats in the Tribes Advisory Council to be filled by such representatives, the remaining seats shall be filled by other members of those tribes.

(2) It shall be the duty of the Tribes Advisory Council to advise on such matters pertaining to the welfare and advancement of the scheduled tribes in the State as may be referred to them by the Governor or Ruler, as the case may be.

(3) The Governor or Ruler may make rules prescribing or regulating as the case may be—

(a) the number of members of the Council, the mode of their appointment and the appointment of its Chairman and of the officers and servants thereof;

(b) the conduct of its meetings and its procedure in general; and

(c) all other incidental matters.

5. *Law applicable to scheduled areas.*—(1) Notwithstanding anything contained in this Constitution the Government or Ruler, as the case may be, may by public notification direct that any particular Act of Parliament or of the Legislature of the State shall not apply to a scheduled area or any part thereof in the State or shall apply to a scheduled area or any part thereof in the State subject to such exceptions and modifications as he may specify in the notification.

(2) The Governor or Ruler, as the case may be, may make regulations for the peace and good government of any area in a State which is for the time being a scheduled area.

In particular and without prejudice to the generality of the foregoing power, such regulations may—

(a) prohibit or restrict the transfer of land by or among members of the scheduled tribes in any such area;

(b) regulate the allotment of land to members of the scheduled tribes in such areas;

(c) regulate the carrying on of business as money-lender by persons who lend money to members of the scheduled tribes in such areas.

(3) In making any regulation as is referred to in sub-paragraph (2) of this paragraph, the Governor or Ruler may repeal or amend any Act of Parliament or of the Legislature of the State or any existing law which is for the time being applicable to the area in question.

(4) All regulations made under this paragraph shall be submitted forthwith to the President and until assented to by him shall have no effect.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(5) No regulation shall be made under this paragraph unless the Governor or the Ruler making the regulation has, in the case where there is a Tribes Advisory Council for the State, consulted such Council.

Part III

SCHEDULED AREAS

6. *Scheduled Areas.*—(1) In this Constituion the expression "scheduled areas" means such areas as the President may by order declare to be scheduled areas.

(2) The President may at any time by order—

(a) direct that the whole or any specified part of a scheduled area shall cease to be a scheduled area or a part of such an area;

(b) alter, but only by way of rectification of boundaries, any scheduled area;

(c) on any alteration of the boundaries of a State or on the admission into the Union or the establishment of a new State, declare any territory not previously included in any State to be, or to form part of a scheduled area, and any such order may contain such incidental and consequential provisions as appear to the President to be necessary and proper, but save as aforesaid, the order made under sub-paragraph (1) of this paragraph shall not be varied by any subsequent order.

Part IV

AMENDMENT OF THE SCHEDULE

7. *Amendment of the Schedule.*—(1) Parliament may from time to time by law amend by way of addition, variation or repeal any of

the provisions of this Schedule and when the Schedule is so amended any reference to this schedule in this Constitution shall be construed as a reference to such Schedule as so amended.

(2) No such law as is mentioned in sub-paragraph (1) of this paragraph shall be deemed to be an amendment of this Constitution for purposes of article 304 thereof.'"

[पंचम अनुसूची

[अनुच्छेद 215-क (क) और 215-ख (1)]

अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित आदिमजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के सम्बन्ध में उपबन्ध।

भाग 1

साधारण

1. **निर्वचनः–** इस अनुसूची में, जब तक कि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो 'राज्य' पद से अभिप्रेत प्रथम अनुसूची के भाग 1 और 3 में उल्लिखित राज्य।

2. **अनुसूचित क्षेत्रों में राज्य की कार्यपालिका शक्ति.–** इस अनुसूची के उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उसके अनुसूचित क्षेत्रों तक होगा।

3. **अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में भारत शासन को राज्यपाल या शासक द्वारा प्रतिवेदन.–**प्रत्येक राज्य का राज्यपाल या शासक जिसमें अनुसूचित क्षेत्र है, प्रतिवर्ष अथवा जब भी भारत शासन इस प्रकार की अपेक्षा करे, उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में भारत शासन को प्रतिवेदन करेगा तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति राज्य को उक्त क्षेत्रों के प्रशासन के विषय में निदेश देने तक विस्तृत होगी।

भाग 2

अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित आदिमजातियों का प्रशासन और नियंत्रण

4. **आदिमजाति मंत्रणा-परिषद्.–**(1) प्रत्येक राज्य में जिसमें अनुसूचित क्षेत्र है, तथा, यदि राष्ट्रपति ऐसा निदेश दे तो, किसी ऐसे राज्य में भी जिसमें अनुसूचित आदिमजातियां हैं, किन्तु, अनुसूचित क्षेत्र नहीं है, एक आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जायेगी जिसके बीस से अधिक सदस्य न होंगे जिनमें कि यथाशक्य निकटतम तीन चौथाई उस राज्य की विधान सभा में के अनुसूचित आदिमजातियों के प्रतिनिधि होंगे:

परन्तु यदि उस राज्य की विधान सभा में के अनुसूचित आदिमजातियों के प्रतिनिधियों की संख्या आदिमजाति मंत्रणा परिषद् में ऐसे प्रतिनिधियों द्वारा भर जाने वाले स्थानों की संख्या कम है तो शेष स्थान उन आदिमजातियों के अन्य सदस्यों द्वारा भरे जायेंगे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् का यह कर्तव्य होगा कि वह उस राज्य में की अनुसूचित आदिमजातियों के कल्याण और उन्नति से सम्बद्ध ऐसे विषयों पर मंत्रणा दे जो उनको यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा सौंपे जायें।

(3) राज्यपाल या शासक–

(क) परिषद् के सदस्यों की संख्या, उनकी नियुक्ति की तथा परिषद् के सभापति तथा उसके पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्ति की रीति के,

(ख) उसके अधिवेशन के संचालन तथा उसकी साधारण प्रक्रिया के, तथा

(ग) अन्य सब प्रासंगिक विषयों के यथास्थिति विहित करने या विनियम करने के लिये नियम बना सकेगा।

5. **अनुसूचित क्षेत्रों में लागू विधि.**–(1) इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी यथास्थिति राज्यपाल या शासक लोक अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि संसद का या उस राज्य के विधान-मंडल का कोई विशेष अधिनियम उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग में लागू न होगा अथवा राज्य में के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग में ऐसे अपवादों और रूप भेदों के साथ लागू होगा जैसे कि वह अधिसूचना में उल्लिखित करे।

(2) यथास्थिति राज्यपाल या शासक राज्य में के किसी ऐसे क्षेत्र की शान्ति और सुशासन के लिये विनियम बना सकेगा जो कि तत्समय अनुसूचित क्षेत्र है।

विशेषतया तथा पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले ऐसे विनियम—

(क) ऐसे क्षेत्र में अनुसूचित आदिमजातियों के सदस्यों द्वारा या में भूमि के हस्तान्तरण का प्रतिषेध या निर्बंधन पर सकेंगे।

(ख) ऐसे क्षेत्रों में की आदिमजातियों के सदस्यों की भूमि बांटने का विनियम कर सकेंगे।

(ग) ऐसे व्यक्तियों के द्वारा जो ऐसे क्षेत्र की अनुसूचित आदिमजातियों के सदस्यों को धन उधार देते हैं, साहूकार के रूप में कारबार करने का विनियम कर सकेंगे।

(3) ऐसे किसी विनियम बनाने में जैसा कि इस कंडिका की उपकंडिका (2) में निर्दिष्ट हैं, राज्यपाल या शासक संसद के या उस राज्य के विधान-मंडल के अधिनियम को अथवा किसी वर्तमान विधि को जो प्रश्नास्पद क्षेत्र में तत्समय लागू है, निरसित या संशोधित कर सकेगा।

(4) इस कंडिका के अधीन बनाये गये सब विनियम तुरन्त राष्ट्रपति को प्रेषित किये जायेंगे और जब तक वह उनको अनुमति न दे दे तब तक उनका कोई प्रभाव न होगा।

(5) इस कंडिका के अधीन कोई विनियम तब तक न बनाया जा सकेगा जब तक कि विनियम बनाने वाले राज्यपाल या शासक ने, उस राज्य के लिये आदिमजाति मंत्रणा परिषद् होने की अवस्था में ऐसी परिषद् से परामर्श न कर लिया हो।

भाग 3

अनुसूचित क्षेत्र

6. **अनुसूचित क्षेत्र.–**(1) इस संविधान में 'अनुसूचित क्षेत्रों' पदावली से अभिप्रेत है ऐसे क्षेत्र जिन्हें राष्ट्रपति आदेश द्वारा अनुसूचित क्षेत्र होना घोषित करे।

(2) राष्ट्रपति किसी समय भी आदेश द्वारा–

(क) निदेश दे सकेगा कि कोई सम्पूर्ण अनुसूचित क्षेत्र या उसका कोई उल्लिखित भाग अनुसूचित क्षेत्र या ऐसे क्षेत्रों का भाग न रहेगा।

(ख) किसी अनुसूचित क्षेत्र को बदल सकेगा, किन्तु केवल सीमाओं का शोधन करके ही बदल सकेगा।

(ग) किसी राज्य की सीमाओं के किसी परिवर्तन पर अथवा संघ में किसी नये राज्य के प्रवेश पर अथवा नये राज्य की प्रस्थापना पर ऐसे किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र या उसका भाग घोषित कर सकेगा जो पहले से किसी राज्य में समाविष्ट नहीं है तथा ऐसे किसी आदेश में ऐसे प्रासंगिक और आनुषंगिक उपबन्ध हो सकेंगे जैसे कि राष्ट्रपति को आवश्यक और उचित प्रतीत हों, किन्तु उपर्युक्त रीति से अन्यथा इस कंडिका की उपकंडिका (1) के अधीन निकाला गया आदेश किसी अनुगामी आदेश से परिवर्तित नहीं किया जायेगा।

भाग 4

अनुसूची का संशोधन

7. **अनसूची का संशोधन–**(1) संसद समय-समय पर विधि द्वारा, जोड़ फेर फार या निरसन करके, इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी तथा जब अनुसूची इस प्रकार संशोधित हो जाये तब इस संविधान में इस अनुसूची के प्रति किसी निदेश का अर्थ ऐसा किया जायेगा कि मानो वह निदेश इस प्रकार संशोधित ऐसी अनुसूची के प्रति है।

(2) ऐसी कोई विधि जो इस कंडिका की उपकंडिका (1) में वर्णित है, इस संविधान के अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिये इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।]

इस संशोधित अनुसूची के द्वारा जो सभा के समक्ष रखी गई है मूल अनुसूची 5 में क्या मुख्य परिवर्तन किये जा रहे हैं। उसे मैं संक्षेप में बता देना चाहता हूं। पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन इसके द्वारा किया जा रहा है पैरा 4 में जिसमें जनजाति

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मंत्रणा परिषद् की स्थापना का प्रावधान किया गया है। मूल पैरा के अनुसार हर राज्य के लिये जहां अनुसूचित प्रदेश या अनुसूचित जातियां हैं, यह आवश्यक था कि वहां कि जनजाति मंत्रणा परिषद् हो ही। पर अब सोचा यह गया कि ऐसे राज्य के लिये जहां अनुसूचित जाति के कुछ लोग बसते तो हों पर वहां अनुसूचित प्रदेश न हों, संविधान में मंत्रणा परिषद् का प्रावधान रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। सोचा यह गया कि अगर वहां के अनुसूचित जाति के लोगों के प्रयोजना के लिये जो वहां यत्र-तत्र बिखरे हुये बस गये हैं मंत्रणा परिषद् का निर्माण करना जरूरी ही हुआ तो इसको राष्ट्रपति पर छोड़ दिया जाये और वह इसकी आवश्यकतानुसार व्यवस्था करेंगे। इसलिये यहां "यदि ऐसा निदेश दे तो, किसी ऐसे राज्य में भी जिसमें अनुसूचित आदिमजातियां हैं किन्तु अनुसूचित क्षेत्र नहीं है, एक आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जायेगी" शब्द रखे गये हैं। जिन राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं वहां आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् की स्थापना करना अनिवार्य होगा। पर उन राज्यों में जहां आदिमजाति के लोग बसते हैं पर कोई अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं मंत्रणा-परिषद् की स्थापना का प्रश्न राष्ट्रपति के हाथ में छोड़ा गया है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया है पैरा 5 में। संसद एवं स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियों को अनुसूचित क्षेत्रों में प्रयोगतत्व करने के बारे में इस पैरा में प्रावधान किया गया है। मूल मसौदे के पैरा 5 में यह कहा गया था कि अगर आदिमजाति-मंत्रणा-परिषद् यह निदेश दे कि संसद या स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियां अनुसूचित क्षेत्रों में भी संशोधित रूप में लागू की जायें तो राज्यपाल को मंत्रणा-परिषद् के ऐसे निदेश को पूरा करना ही होगा। अब सोचा यह गया है कि संसद या स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियों को अनुसूचित क्षेत्रों में लागू किया जाये या नहीं इस प्रश्न को राज्यपाल के हाथ में छोड़ना ही ज्यादा अच्छा होगा और उसको इस संबंध में निर्णय करने की पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिये। वह स्वविवेक से जैसा ठीक समझे करे। मूल मसौदे में यह बात नहीं थी। मूल मसौदे के अनुसार राज्यपाल को मंत्रणा-परिषद् के निदेश पर चलना लाज़िमी था।

दूसरा महत्व का परिवर्तन किया गया है पैरा 6 में। मूल मसौदे में एक तालिका में यह निश्चित कर दिया था कि अमुक-अमुक प्रान्त के अमुक-अमुक क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र समझे जायेंगे। पर अभी इस समय यह बताना सम्भव नहीं है कि भाग 3 के राज्यों के कौन-कौन क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र समझे जायेंगे। इसलिये अब मूल मसौदे में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है। महसूस यह किया गया कि प्रस्तुत संशोधन से वह कठिनाई भी दूर हो जायेगी जिसका कि मैंने अभी उल्लेख किया है और प्रावधान भी लचीला बन जायेगा। इसलिये इसको राष्ट्रपति का छोड़ना ही अच्छा है।

दूसरा महत्व का परिवर्तन जिसकी ओर सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करना चाहूंगा वह किया गया है पैदा 7 में जो अब इस अनुसूची के भाग 4 का अंग है। इसी परिवर्तन के द्वारा अनुसूची 5 में संशोधित करने का प्रावधान किया गया है। मूल मसौदे में इस अनुसूची में संशोधन करने के लिये कोई प्रावधान नहीं रखा गया था। अब यह कर दिया गया है कि संसद इसमें चाहे तो संशोधन कर सकती

है और मेरी समझ से यह वांछनीय भी है कि इस अनुसूची में संशोधन करने का अधिकार संसद को प्राप्त रहना चाहिए। राज्य के भीतर एक और राज्य की सृष्टि करने में कोई लाभ नहीं है और फिर यह भी वांछनीय नहीं है कि इस तरह का विशेष प्रावधान संविधान में रखा जाये जिसके अधीन कुछ आदिमजाति के लोगों पर संसद या स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियां लागू न की जायें। यहां पैरा 5 के उप पैरा 2 में जो यह प्रावधान रखा गया है कि राज्यपाल को यहां (क), (ख) और (ग) में वर्णित विषयों के बारे में ऐसे विनियमन बनाने का अधिकार होगा जिनको इन विषयों के बारे में संसद या स्थानीय विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियों पर प्राधान्य प्राप्त रहेगा वह ऐसा नहीं चाहिये कि उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सके। संसद को यह अधिकार रहना चाहिये कि समय तथा स्थिति के अनुसार वह उसमें आवश्यक परिवर्तन कर सके। इस लिये यहां संशोधित अनुसूची के भाग 4 के पैरा 7 में यह कहा गया है कि संसद इसमें ऐसे संशोधन कर सकती है जैसा कि वह आवश्यक समझे और इन संशोधनों को संविधान का संशोधन न माना जायेगा बल्कि साधारण विधि प्रक्रिया द्वारा ही ये संशोधन किये जायेंगे।

मैं यह बता दूं कि मसौदा-समिति ने प्रान्तों के प्रतिनिधियों से जिनका कि इस मामले में भावी अनुसूचित क्षेत्रों और आदिमजातियों से सम्बन्ध है अच्छी तरह विचार-विमर्श करके ही यह संशोधन यहां रखा है। माननीय मित्र श्री ठक्कर की राय को भी हमने ध्यान में रखा है जो इस मामले की यथेष्ट जानकारी रखते हैं। मैं यह निर्विरोध कह सकता हूं कि इस नवीन अनुसूची को सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त हो चुका है जिनका कि इस मसले से संबंध है। आशा है कि पुरानी अनुसूची 5 के स्थान पर इस नई अनुसूची को रखने में सभा को कठिनाई न होगी।

***अध्यक्ष:** मूल अनुसूची पर और इस नई अनुसूची पर भी कितने ही संशोधन आये हैं। पुरानी अनुसूची पर जो संशोधन आये हैं उन पर यहां विचार करने में मेरी समझ से कोई लाभ नहीं है क्योंकि पुरानी अनुसूची को रखने का यहां कोई प्रस्ताव ही नहीं पेश किया गया है। इसलिये हम उन्हीं संशोधनों को अब लेंगे जो डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित नई अनुसूची के संबंध में आये हैं। उन पर एक-एक करके अब विचार किया जायेगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): मैं यह सुझाव दूंगा कि डॉ. अम्बेडकर की इस बात को ध्यान में रखते हुये कि इस नई अनुसूची पर सभी वर्ग सहमत हैं, हमें यहां केवल उन्हीं संशोधनों पर विचार करना चाहिये जिनमें किसी मुख्य बात में परिवर्तन करने का सुझाव दिया गया है।

***अध्यक्ष:** हम ज्यों-ज्यों संशोधनों को लेते जायेंगे यह देख लेंगे कि किन में खास परिवर्तन का सुझाव दिया गया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन नं. 154 को यहां रखना चाहता हूं पर उसका पहला हिस्सा निकाल कर। इसमें कोई खास परिवर्तन की बात नहीं कही गई है। केवल मसौदे की रचना में परिवर्तन करने की बात कही गई है। यदि अनुमति हो तो इसे पेश करूं।

***अध्यक्षः** हां, आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची 1 (सातवें सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 2 के स्थान पर यह रखा जायेः

'2. The executive power of a State shall extend to the Scheduled Areas within the State subject to the provisions of this Schedule.' "

[2. इस अनुसूची के उपबन्धों के अधीन रहते हुये किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्रों तक होगा।]

इस संबंध में मेरा जो दूसरा संशोधन है मैं उसे भी पेश किये देता हूं। यहां भी पहले हिस्से को मैं निकाल देता हूं। मेरा प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (सातवें सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 2 में:

(क) 'extends' शब्द की जगह 'shall extend' शब्द रखे जायें।

(ख) 'therein' शब्द के स्थान पर 'within the State' शब्द रखे जायें।"

मैं यह कहूंगा कि इन संशोधनों का सम्बन्ध केवल मसौदे की रचना से है और जो परिवर्तन यहां मैंने सुझाये हैं उनकी ओर मैं मसौदा-समिति का ध्यान आकृष्ट करूंगा। पैरा 2 में "shall extend" शब्दों को रखना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि मूल संशोधन के पैरा 3 में इसी रूप में यह बात कही गई है। वहां यही कहा गया है कि "the executive power of the Union shall extend" यहां पैरा 2 में यह शब्द रखे गये हैं "the executive power of a State extends"। बजाय "extend" शब्द रखने के "shall extend" शब्द यहां होने चाहियें।

(संशोधन नं. 156 और 157 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन केवल मसौदे की रचना के संबंध में हैं और वह स्वयं मसौदा-समिति की मर्जी पर इन्हें छोड़ना चाहते हैं। इसलिये मैं नहीं समझता कि इन पर मत लेना आवश्यक है। इन पर मसौदा-समिति विचार कर लेगी। अब हम पैरा 3 पर आते हैं।

(संशोधन नं. 158, 159 और 160 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं यह सुझाव देना चाहता हूं श्रीमान, कि पैरों पर हम एक-एक करके विचार करते जायें और उसे पास करते जायें।

*अध्यक्षः हां ऐसा ही किया जायेगा। पैरा 1 पहले लिया जाता है।

*श्री ए.वी. ठक्कर (सौराष्ट्र): समूची अनुसूची के बारे में मैं आमतौर पर कुछ बातें कहना चाहता हूं। कब मुझे इसका मौका दिया जायेगा?

*अध्यक्षः आये हुये संशोधनों में से किसी एक पर विचार करते समय मैं आपको बोलने का मौका दे दूंगा। उस समय आप संशोधन और अनुसूची सभी के बारे में अपनी राय जाहिर कर दीजियेगा।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उन्हें अभी अपनी राय जाहिर करने का मौका दे दिया जाये श्रीमान्! उसके बाद इस पर विचार करें।

*अध्यक्षः इसमें दो घंटे का समय लग जायेगा और फिर उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति करनी होगी। मैं सभा का इतना समय नहीं लेना चाहता।

*श्री अमिय कुमार घोष (बिहार: जनरल): मैं यह सुझाव दूंगा, श्रीमान, कि पहले सभी संशोधन पेश कर दिये जायें। उसके बाद आम बहस की जाये और फिर संशोधनों पर एक-एक करके मत ले लिया जाये।

*अध्यक्षः संशोधनों पर एक-एक करके यहां विचार किया जायेगा। प्रस्ताव यह है:

"कि पांचवीं अनुसूची का पैरा 1 अनुसूची का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 1 पांचवीं *अनुसूची में* शामिल किया गया।

पैरा 2

*अध्यक्षः पैरा 2 पर जो संशोधन श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने पेश किया है उस पर मैं राय नहीं लूंगा क्योंकि वह मसौदा की रचना के बारे में है। अब प्रस्ताव यह है:

"कि पांचवीं अनुसूची का पैरा 2 अनुसूची का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 2 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

पैरा 3

*अध्यक्षः संशोधन नं. 161 का भी केवल मसौदे की रचना से सम्बन्ध है।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू (संयुक्तप्रांत : जनरल): मैं यह जानना चाहता हूं, श्रीमान्, कि आप क्या प्रणाली यहां अपनाने जा रहे हैं। सदस्यों को इन प्रावधानों पर आमतौर पर बहस करने की आप अनुमति दे रहे हैं या नहीं?

*अध्यक्ष: इसकी अनुमति मैं दूंगा।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू: अगर हर पैरा पर अलग-अलग विचार करके उनको स्वीकार किया जायेगा तो इस सूरत में भी क्या आम बहस का मौका मिल पायेगा?

*अध्यक्ष: अगर ऐसा कोई संशोधन आ जाता है जिस पर आम बहस चल पड़ती है तो उस सिलसिले में समूची अनुसूची पर आम बहस करने का मौका मैं दूंगा।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू: अब तक तो आप यह प्रणाली बरतते आ रहे थे कि सभी संशोधनों के पेश कर दिये जाने के बाद अनुच्छेद पर आम बहस का मौका देते थे क्या अब इस प्रणाली को छोड़ देंगे?

*अध्यक्ष: आम बहस को तो मैं नहीं रोक रहा हूं। यदि किसी अनुच्छेद पर कोई संशोधन ही नहीं है तो उस पर बोलने की क्या जरूरत है? हां यदि कोई सदस्य किसी अनुच्छेद पर कुछ कहना चाहते हों तो उनको बोलने का मौका जरूर दिया जायेगा।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास : जनरल): यदि अनुमति हो तो एक सुझाव रखूं श्रीमान्। अच्छा यह होगा कि आप बहस के लिये किसी एक पैरा को ले लें। मेरा सुझाव यह है कि इसके लिये पैरा 4 को हम लें। उस पर कई संशोधन भी आये हैं। वस्तुतः सारी अनुसूची का दारोमदार इसी पैरा पर है। आप इसी पर सभा को आम बहस का मौका दें।

*अध्यक्ष: आम बहस शुरू की जायेगी पैरा 4 और 5 पर विचार करते समय।

*बाबू रामनारायण सिंह (बिहार : जनरल): अगर किसी पैरा पर कोई संशोधन न भी आया हो तो हो सकता है कि उस पर कुछ कहना जरूरी हो।

*अध्यक्ष: वैसी सूरत में बोलने से किसी को रोका नहीं जायेगा। किसी पैरा पर कोई सदस्य अगर कुछ बोलना चाहेगा उसे उसकी अनुमति मिलेगी।

*बाबू रामनारायण सिंह: समूची अनुसूची के बारे में भी बोलने की अनुमति सदस्य को मिलनी चाहिये।

*अध्यक्ष: हां, पैरा 4 पर विचार करते समय इसकी भी अनुमति दी जायेगी।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना: मेरा सुझाव यह है श्रीमान, कि पहले सारे संशोधन पेश हो जायें और तब अनुसूची पर आम बहस शुरू की जाये।

*अध्यक्ष: मैं हर पैरा पर पुकार कर दूंगा और अगर कोई सदस्य बोलना चाहता तो तो वह बोल सकता है।

*पं. हृदयनाथ कुंजरू: यदि अनुमति हो श्रीमान, तो एक सुझाव मैं रखूं। जैसाकि प्रो. शिब्बन लाल ने अभी सुझाया है, अगर आप की अनुमति हो तो पहले सारे

संशोधन पेश कर दिये जायें। उस हालत में भी हर पैरा पर अलग-अलग मत लेने का अधिकार तो आपको रहेगा ही। इस व्यवस्था से यह होगा कि जो सदस्य अनुसूची पर आम तौर से कुछ कहना चाहते हैं उन्हें अपनी बात कहने का मौका मिल जायेगा और इस व्यवस्था में अतिरिक्त समय भी नहीं लगेगा।

***अध्यक्ष:** क्या आपका यह कहना है कि पहले सभी संशोधन पेश हो जायें और तब हर पैरा पर अलग मत लिया जाये?

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** हां, मेरा यही कहना है।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है। मैं ऐसा कर सकता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** हर पैरा पर अलग-अलग मत लेने के पहले मेरा ख्याल है कि जो भी सदस्य आम तौर पर अनुसूची पर कुछ कहना चाहते होंगे उन्हें इसका मौका दिया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मैं इसका मौका दूंगा। पैरा 2 पर मत लिया जा रहा है। अब हम लेंगे पैरा 3 को।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इससे तो बड़ी पेचीदगी पैदा हो जायेगी और सभा गुंजलक में पड़ जायेगी। इससे कहीं अच्छा यह होगा कि आम बहस का पहले मौका दे दिया जाये। जिसके लिये समय की एक उचित अवधि निर्धारित कर दी जाये। इसके बाद क्रमश: हर पैरा के संशोधनों पर मत लिया जाये। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो संशोधनों को लेकर बड़ी गुंजलक पैदा हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि कितने सदस्य आम बहस में हिस्सा लेना चाहते हैं?

(करीब 12 सदस्य खड़े हुए)

***अध्यक्ष:** इसमें तो कम से कम तीन घंटे लगेंगे। 12 सदस्य बोलना चाहते हैं तो इसमें इतना समय तो लग ही जायेगा। मैं समय की बचत करना चाहता था। पर अगर सदस्य लोग यह नहीं चाहते हैं कि दशहरा के पहले द्वितीय पठन समाप्त हो तो मुझे इसी तरह चलना होगा। इस तरह तो दशहरा से पहले शायद हम द्वितीय पठन न समाप्त कर पायेंगे। सभा का सारा प्रोग्राम ही उलट-पलट जायेगा।

मेरा ख्याल है कि अच्छा यह होगा कि पहले सभी संशोधनों को पेश करने की अनुमति दे दी जाये और फिर आम बहस शुरू की जाये।

***माननीय श्री विनोद बिहारी झा** (बिहार : जनरल): यह व्यवस्था हमारे लिये अधिक अभिनन्दनीय होगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद**: मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 3 में 'the executive power of the Union shall extend to the giving of directions' (संघ की कार्य पालिका शक्ति.... निदेश देने तक विस्तृत होगी) शब्दों के स्थान पर 'the Union Government may give directions' (संघ-शासन निदेश दे सकता है) शब्द रखे जायें।"

प्रस्तुत प्रसंग में यह पदसंहति जो उक्त संशोधन में प्रयुक्त की गई वह सीधी नहीं है। मेरे संशोधन को स्वीकार करने से यहां शब्द भी कम रखने पड़ेंगे।

मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (1) में, 'there shall be established' (स्थापित की जायेगी) शब्दों के स्थान पर 'The Governor or the Ruler, as the case may be, shall establish' (यथास्थिति राज्यपाल या शासक स्थापित करेगा) शब्द रखे जायें।"

मैं यह भी प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (1) में 'twenty members' (बीस सदस्य) शब्दों की जगह (क) 'twenty members appointed by him' (उसके द्वारा नियुक्त बीस सदस्य) शब्द रखे जायें।"

अंश (ख) को मैं नहीं पेश कर रहा हूं।

उसके बाद मैं यह भी प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (2) में, 'advise on such matters' (ऐसे विषयों पर मंत्रणा दे) शब्दों की जगह 'advise the Governor or Ruler on such matter' (राज्यपाल या शासक को ऐसे विषयों पर मंत्रणा देगा) शब्द रखे जायें।"

फिर उसके बाद मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (2) में, 'by the Governor or Ruler, as the case may be' (यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा)

शब्दों की जगह 'by him' (उसके द्वारा) शब्द रखे जायें।"

पैरा 4 के संबंध में मेरे संशोधन बस इतने ही हैं। इस पैरा के संबंध में चन्द बातों की ओर सभा का और खास करके मसौदा-समिति का ध्यान मैं आकृष्ट करना चाहता हूं। यह पैरा शुरू होता है इस रूप में:

"There shall be established in each state having scheduled areas therein and....... a Tribes Advisory Council." बजाय इसके कि हम यहां 'there shall be established....... इत्यादि' रखें हमें इसे इस रूप में रखना चाहिये 'the Governor or Ruler shall establish....... इत्यादि' इस रूप में रखने से यह होगा कि हमारा मन्तव्य स्पष्ट हो जायेगा और सन्देह की कोई गुंजाइश न रह जायेगी। मेरा दूसरा सुझाव यहां यह है कि 'twenty members' की जगह 'twenty members appointed by him' शब्द रखे जायें। अच्छा यही होगा कि हम इस पैरा को इसी रूप में रखें कि 'राज्यपाल या शासक........ स्थापित करेगा।' मेरा दूसरा संशोधन है पैरा 4 के उप-पैरा (2) के बारे में। इस उप-पैरा में जहां यह कहा गया है 'the Tribes Advisory Council to advise' (आदिमजाति मंत्रणा परिषद् राय देगी) वहां होना यह चाहिये कि 'the Tribes Advisory Council to advise the Governor or Ruler' (आदिमजाति मंत्रणा परिषद् राज्यपाल या शासक को राय देगा)। इस रूप में रखने से यह उप-पैरा पूर्णार्थक बन जायेगा। फिर इसी उप-पैरा में यहां यह कहा गया है 'by the Governor or Ruler, as the case may be' (यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा), मेरा संशोधन यह है कि इसके स्थान पर केवल 'by him' आना चाहिये। मेरे पूर्ववर्ती संशोधन को देखते हुए यहां केवल 'by him' शब्द ही रहने चाहियें। एक सुझाव मैं पैरा 4 के उप-पैरा 3 (क) के बारे में भी दे देना चाहता हूं। वहां 'members of the Council' यह पदसंहति प्रयुक्त की गई है। अनुसूची में हर जगह जहां मंत्रणा-परिषद् का जिक्र आया है वहां उसका पूरा नाम यानी 'Tribes Advisory Council' ही रखा गया है और केवल 'Council' का प्रयोग उसके लिये कहीं नहीं किया गया है। इसलिये मसौदे की एकरूपता के ख्याल से यहां भी परिषद् का पूरा नाम 'Tribes Advisory Council' ही रखना चाहिये।

संशोधन नं. 162 के सम्बन्ध में मैं मसौदा से अनुरोध करूंगा कि वह खुद उस पर विचार कर ले या डॉ. अम्बेडकर के उत्तर द्वारा इसका समाधान कर दे। अगर आप ठीक समझें श्रीमान्, तो उसे मसौदा-समिति पर ही छोड़ दिया जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): पैरा 4 के संबंध में आमतौर पर मैं चन्द बातें कहना चाहता हूं। यदि मुझे इसका मौका दे दिया जाये तो मैं अपना संशोधन पेश नहीं करूंगा।

***अध्यक्ष:** आपको मौका मिलेगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा 3 में 'Governor or Ruler' शब्दों के आगे 'as the case may' शब्द जोड़ दिये जायें।"

मेरा दूसरा संशोधन यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा 3 (क) में 'Council' शब्द के स्थान पर 'Tribes Advisory Council' शब्द रख दिये जायें।"

मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा 3 (ख) में 'its procedure' (उसकी प्रक्रिया) शब्दों की जगह 'the procedure to be followed' (बरती जाने वाली प्रक्रिया) शब्द रखे जायें।"

अन्तिम संशोधन नं. 170 के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा श्रीमान्, कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित मूल पैरा में संशोधन करने की जरूरत है। मेरा ख्याल है कि मैंने जो सुझाव दिया है उसे यहां रखना इस प्रसंग में अधिक उपयुक्त होगा।

इसके बाद मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (1) में, 'any particular Act of Parliament or of the Legislature of the State' (संसद का या उस राज्य के विधान-मंडल का कोई विशेष अधिनियम) शब्दों के स्थान पर 'any particular existing law or any law that may be passed by the Parliament or by the Legislature of the State' (कोई विशेष वर्तमान विधि या संसद अथवा उस राज्य के विधान-मण्डल द्वारा पास की हुई कोई विधि) शब्द रखे जायें।"

मेरा यह अन्तिम संशोधन मेरे अन्य संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है।

***प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना:** पैरा 4 पर मेरा एक संशोधन है श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** उन सबको मैं बाद में लूंगा।

*श्री **नज़ीरुद्दीन अहमदः** संशोधन नं. 172 के सम्बन्ध में मुझे यह निवेदन करना है पैरा 5 के उप-पैरा (1) में यह कहा गया है कि "राज्यपाल या राजप्रमुख लोक-अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि संसद का या उस राज्य के विधान-मण्डल का कोई विशेष अधिनियम उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग में लागू न होगा... इत्यादि' इस संशोधन नं 20 को मैं मसौदा-समिति पर ही छोड़ता हूं और उससे अनुरोध करूंगा कि वह स्वयं इस पर विचार करे।

उसके बाद मेरा दूसरा संशोधन यह है श्रीमान्, जिसे मैं उपस्थित करता हूं:—

"संशोधन-सूची 1 (सातवाँ सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 में:–

(क) उप-पैरा (2) में 'may make' शब्दों की जगह 'may after previous consultation with the Tribes Advisory Council' (आदिम जाति मंत्रणा-परिषद् से परामर्श लेकर...... बना सकेगा) शब्द रखे जायें।

(ख) उप-पैरा (5) निकाल दिया जाये।"

मेरे संशोधन के फलस्वरूप पैरा 5 की जो इबारत बनती है उसे देखते हुए इस उप-पैरा को रखना अनावश्यक है।

तत्पश्चात् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान्:—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में, 'any area in a State which is for the time being a scheduled area' (राज्य में के किसी क्षेत्र की....... जो तत्समय अनुसूचित क्षेत्र है) शब्दों के स्थान पर 'any scheduled area' (किसी अनुसूचित क्षेत्र की) शब्द रखे जायें।"

'अनुसूचित क्षेत्र' पद संहति की परिभाषा हमने दे रखी है इसलिये यहां अनुसूचित क्षेत्र रखना ही पर्याप्त है।

उसके बाद मैं अब यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:–

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में, 'In particular and without prejudice etc.' (विशेषतया तथा पूर्ववर्ती शक्ति की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले) आदि शब्दों से जो वाक्य प्रारम्भ किया गया है उसे उप-पैरा (3) बना दिया जाये और बाद के उप-पैरों को तदनुसार संख्याबद्ध करके दिखाया जाये।"

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

मूल संशोधन को कुछ इस तरह भाषाबद्ध किया गया है कि वह बड़ा जटिल सा बन गया है। इसे और सरल रूप में रखने के विचार से मैंने यह संशोधन रखा है। सोचने की मूल बात यहां यह है कि पैरा 5 के उप-पैरा (2) का जो उपरोक्त अंश है वह स्वत: एक स्वतंत्र उप-पैरा है। मैं चाहता यह हूं कि इस अंश को एक स्वतंत्र उप-पैरा के रूप में रखा जाये न कि इसे उप-पैरा (2) के अंग के रूप में रखा जाये। यह एक स्वतंत्र उप-पैरा है और इसे स्वतंत्र उप-पैरा के रूप में यहां रखना चाहिये। बाद के उप-पैरों को तद्नुसार पुन: संख्या-बद्ध करके रखना चाहिये। दूसरे सभी स्थलों पर इस तरह के अंश को एक स्वतंत्र उपखण्ड के रूप में ही रखा गया है अत: कोई कारण नहीं है कि इसे एक स्वतंत्र उप-पैरा के रूप में यहां क्यों न रखा जाये।

दूसरा प्रस्ताव मैं यह रखता हूं श्रीमान्:—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा के उप-पैरा (2) (ग) में 'carrying of business as money, lender by persons who lend money' (ऐसे व्यक्तियों द्वारा, जो धन उधार देते हैं, साहूकार के रूप में कारबार करना) शब्दों के स्थान पर केवल 'business of money lending' (धन उधार देने का कारबार) शब्द रखने चाहियें।"

मूल संशोधन में जो पदसंहति प्रयुक्त की गई है वह बड़ी जटिल है। आखिर धन उधार देने का कारबार वही करेगा जो साहूकार या महाजन होगा। फिर सीधी सी बात को इस रूप में कि "ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो धन उधार देते हैं, साहूकार के रूप में कारबार करना" रखने की क्या जरूरत है? इतने अधिक शब्दों को न रखकर केवल 'धन उधार देने का कारबार' कहना ही यहां पर्याप्त है।

अब मैं अपना संशोधन नं. 178 पेश करता हूं। मैं यह निवेदन कर दूं कि इसके द्वारा मूल संशोधन में मैंने यत्र तत्र अल्प शाब्दिक परिवर्तन ही किया है जिसकी सूचना में कार्यालय को दे दूंगा। ये परिवर्तन साधारण तरह के हैं न कि महत्वपूर्ण। अस्तु मैं यह संशोधन प्रस्तावित करता हूं श्रीमान्:—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (3) के स्थान पर यह नया उप-पैरा रखा जाये।"

'(3) The Governor or Ruler, by regulation made under sub-paragraph (2) of this paragraph, may, notwithstanding anything contained in any other part of this Constitution, direct that any existing law or any law that may be passed by the Parliament of by the Legislature of the State shall not apply with or shall

apply such modifications and changes, to any scheduled area or part thereof.' "

[(3) इस संविधान के अन्य किसी भाग में अन्यथा किसी बात के होते हुये भी, इस पैरा के उप-पैरा (2) के अधीन निर्मित किसी विनियम के द्वारा राज्यपाल या शासक यह निदेश दे सकता है कि कोई वर्तमान विधि या संसद अथवा उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत कोई विधि, किसी अनुसूचित क्षेत्र पर या उसके किसी भाग पर अमुक संशोधन या परिवर्तन के साथ लागू होगी।]

मेरा ख्याल है कि मुझे यह बात यहां बता देनी चाहिये कि आखिर किस कारण से मैंने यह संशोधन रखा है। पैरा 5 के उप-पैरा (3) में यह कहा गया है "ऐसे किसी विनियमन को बनाने में जैसी कि इस पैरा के उप-पैरा (2) में निर्दिष्ट है, राज्यपाल या शासक संसद के या उस राज्य के विधान-मण्डल के अधिनियम को अथवा किसी वर्तमान विधि को जो प्रश्नास्पद क्षेत्र में तत्समय लागू है, निरसित या संशोधित कर सकेगा।"

मेरे संशोधन का मूल अभिप्राय यह है कि "संसद के राज्य के विधान-मण्डल के किसी अधिनिमय को निरसित या संशोधित कर सकेगा" ये शब्द यहां न रखे जायें। इन शब्दों का प्रयोग यहां हमें बचाना चाहिये। इस उप-पैरा का मतलब यह नहीं है। कि राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त रहे कि वह संसद के या राज्य के विधान-मण्डल के किसी अधिनियम को वह निरसित या संशोधित कर दे। इसके द्वारा राज्यपाल को यह अधिकार दिया जा रहा है कि वह विधियों में ऐसा परिवर्तन या अनुकूलन कर सकता है जिससे वह कबायली इलाकों पर लागू हो सके। इसलिये मेरा कहना यह है कि हमें यहां यह न रखना चाहिये कि वह संसद के या राज्य के अधिनियम को "निरसित या संशोधित कर सकेगा"। सच तो यह है कि वह किसी अधिनियम को निरसित या संशोधित नहीं करता है। वह ऐसा कर नहीं सकता है। 'अधिनियम को निरसित करना' इसका एक खास अर्थ होता है। किसी राज्य का राज्यपाल किसी अधिनियम को नहीं निरसित करता है। उसे अधिकार इतना ही है कि वह संसद के किसी अधिनियम या विधि को अनुसूचित क्षेत्र पर लागू न होने दे या विधि में ऐसा संशोधन या परिवर्तन करे कि वह अनुसूचित क्षेत्र पर संशोधित रूप में लागू हो सके। मेरा ख्याल यह है कि अधिनियम को निरसित या संशोधित करने का अधिकार उसे नहीं दिया जा सकता है। वह अधिनियम में संशोधन कर सकता है या यह कह सकता है कि वह लागू नहीं होता है। आशा है सभा को यह संशोधन मान्य होगा।

दूसरा संशोधन मैं यह पेश करता हूं श्रीमान्:—

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (3) में—"

(क) 'regulation' शब्द की जगह 'regulations' रखा जाये।

(ख) 'as is referred to' शब्दों की जगह केवल 'under' शब्द रखा जाये।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

(ग) 'repeal or amend any Act of Parliament or of the Legislature of the State or any existing law which is for the time being applicable to the area in question' (संसद के उस राज्य के विधान-मण्डल के अधिनियम को अथवा किसी वर्तमान विधि को जो प्रश्नास्पद क्षेत्र में तत्समय लागू है निरसित या संशोधित कर सकता है) शब्दों के स्थान पर 'direct that any existing law or any law that may be passed by the Parliament or by the Legislature of the State shall apply with such modification and changes as he thinks fit' (निदेश दे सकता है कि कोई वर्तमान विधि या संसद अथवा उस राज्य के विधान-मण्डल द्वारा स्वीकृत कोई विधि ऐसे संशोधन या परिवर्तनों के साथ जिन्हें कि वह ठीक समझे, लागू होगी) शब्द रखे जायें।"

यह संशोधन एक तरह से संशोधन नं. 178 का रूपान्तर मात्र है। इसलिये अगर संशोधन नं. 178 को सभा नहीं भी स्वीकार करती है तो इस संशोधन नं. 179 के विभिन्न अंगों को वह स्वीकार कर सकती है।

उसके बाद आता है मेरा संशोधन नं. 180 जिसे मैं पेश करता हूं। वह यों है:

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (4) में 'shall be submitted to the President and until assented to by him shall have no effect." (राष्ट्रपति को प्रेषित किये जायेंगे और जब तक वह उनको अनुमति न दे दे तब तक उनका कोई प्रभाव न होगा) शब्दों की जगह 'shall be valid on receiving the assent of the President' (राष्ट्रपति की अनुमति मिलने पर ही मान्य होंगे) शब्द रखे जायें।"

डॉ. अम्बेडकर ने संशोधित उप-पैरा जो प्रस्तावित किया है उसमें कहा गया है कि विनियम बनते ही राष्ट्रपति के पास तुरंत भेज दिये जायेंगे। मैं नहीं समझ पाता कि यहां 'तुरंत' शब्द रखने का क्या मतलब है। उसके बाद फिर वह यह कहते हैं कि 'जब तक राष्ट्रपति उनको अनुमति न दे दे तब तक उनका कोई प्रभाव न होगा।" साधारणत: इस संबंध में जो प्रक्रिया व्यवहृत होती है उसे बताने के लिये ही यह उप-पैरा रखा गया है। साधारणत: यही प्रक्रिया काम में लाई जाती है कि राष्ट्रपति के अनुमति देने पर ही विनियम प्रभावी माना जाता है। राष्ट्रपति की अनुमति उस पर मिलना आवश्यक है। पर यह कहना कि विनियम तुरंत बनते ही राष्ट्रपति को भेजा जायेगा बिल्कुल बेमतलब है। वह राष्ट्रपति के पास यथा समय भेजा ही जायेगा। इसमें जल्दी की क्या बात है यदि ऐसी ही स्थिति होगी कि फौरन राष्ट्रपति के पास उसका भेजना जरूरी है तो राज्यपाल तो उसे फौरन भेजेगा ही। किन्तु यह बात यहां रखना कि विनियम तुरंत राष्ट्रपति के पास भेजा

जायेगा सर्वथा अनावश्यक है। कहना यहां इतना ही है कि राष्ट्रपति की अनुमति मिलने पर ही विधेयक कानून बन सकता है।

इसके बाद अब मैं अपना संशोधन नं. 184 पेश करता हूं। प्रस्ताव यह है श्रीमान्ः—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के भाग 3 के शीर्षक में 'Areas' शब्द की जगह 'Area' शब्द रखा जाये।"

अब मैं अपना संशोधन नं. 186 पेश करता हूं जो यों हैः—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 के उप-पैरा (1) में जहां कहीं भी 'areas' शब्द आये हैं उसकी जगह 'area' शब्द रखा जाये।"

इन दोनों संशोधनों के संबंध में मुझे यह कहना है कि यहां उप-पैरा (1) में जहां इस शब्द की परिभाषा दी गई है वहां यह शब्द 'area' बहुवचन में रखा गया है पर उप-पैरा (2) में यह शब्द सभी जगह एकवचन में प्रयुक्त किया गया है। एकवचन या बहुवचन जिसमें भी इसे रखिये पर रखिये सब जगह एक ही रूप में। मेरा ख्याल है कि इसे एकवचन में रखना ही उचित है और एकवचन में रखने से बहुवचन का भी अर्थ शामिल है।

अब मैं पेश करता हूं अपना संशोधन नं. 187 जो यों हैः—

"कि संशोधन-सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 के उप-पैरा (2) में 'as appear' शब्दों की जगह 'as may appear' शब्द रखे जायें।"

मेरे कुछ संशोधन इतने ही हैं। मैं यह मानता हूं कि इनमें अधिकांश संशोधनों में केवल मसौदे की रचना में हेर फेर करने की बात ही कही कई है और मसौदा-समिति का ध्यान इन बातों की ओर आकृष्ट करने के लिये ही मैंने इन्हें पेश किया है।

और अगर आगे आपकी अनुमति हो तो श्रीमान, तो एक अन्य छोटी बात की ओर भी सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। संविधान में जहां कहीं भी "Scheduled Castes", "Scheduled Tribes" और "Scheduled Areas" यह पद संहतियां प्रयुक्त हुई हैं, तब जगह इनके आरम्भ के वर्णों को बड़े में रखा जाये या सब जगह छोटे में रखा जाये। यों तो यह एक महत्वशून्य सी बात लगती है पर मेरे विचारधारा के लोगों के लिये यह महत्व रखती है। "Scheduled Castes" पद संहति में तो दोनों शब्दों के आरम्भ के अक्षरों को बड़े में रखा है पर जहां "Scheduled Tribes" रखा है वहां दोनों ही के आरम्भिक अक्षरों को छोटे में रखा है। यही बात 'Scheduled Area' पद संहति के साथ है। ऐसी पद संहतियां जिनसे किसी वर्ग विशेष या क्षेत्र विशेष का बोध होता है उनके शब्दों के आरम्भ के अक्षरों में बड़े में ही देना ठीक है। इससे उस वर्ग या स्थान को जिसके लिये

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कि पद संहति प्रयुक्त की जाती है, समुचित महत्व प्राप्त होता है और व्याकरण की दृष्टि से सर्वत्र एक रूपता बनी रहती है। "Non-regulated provinces" को भी बड़े अक्षर से हमने रखा है। मेरा ख्याल है कि मसौदा-समिति को तृतीय पठन में "Scheduled Areas" को भी बड़े अक्षर से रख देना चाहिये।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:—

> "कि ऊपर के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 3 में जहां भी 'scheduled areas' शब्द आये हैं, उनके आगे 'Scheduled Tribes' शब्द रख दिये जायें और 'whenever so required by the Government of India' (या जब भी भारत शासन इस प्रकार की अपेक्षा करे) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस अनुसूची के संबंध में जो कुछ मुझे कहना है वह तो मैं उस समय कहूंगा जब उस पर आम बहस शुरू होगी पर अभी केवल यह बता देना चाहता हूं कि यह संशोधन मैं क्यों पेश कर रहा हूं। इस अनुसूची के भाग 1 का शीर्षक यह रखा गया है:—

> "Provisions as to the Administration and Control of Scheduled Areas and Scheduled Tribes" पर भाग 3 में "scheduled tribes" का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसा क्यों किया गया यह मैं समझ नहीं पाता हूं। राज्यपाल या शासक भारत सरकार को जो रिपोर्ट दे वह अवश्य ही ऐसी व्यापक होनी चाहिये कि उसमें सभी अनुसूचित जातियों के प्रशासन का हाल दिया हो चाहे वह अनुसूचित क्षेत्र के अन्दर रहती हो या उसके बाहर। अगर रिपोर्ट केवल अनुसूचित क्षेत्र के अन्दर रहने वाली अनुसूचित जातियों तक ही सीमित रहेगी तो फिर इसका मतलब यह होगा कि भारत सरकार को सभी अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी न हो सकेगी। इन जातियों के लाखों लोग ऐसे होंगे जो अनुसूचित क्षेत्र के बाहर रहते होंगे। बिना यह जाने हुए कि अनुसूचित क्षेत्रों का परिसीमन किस प्रकार होगा यह तर्क करना बेकार होगा कि रिपोर्ट में सभी अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में उल्लेख दिया रहेगा या नहीं किया रहेगा। हमें मालूम नहीं कि सारा बिहार अनुसूचित क्षेत्र माना जायेगा या नहीं। पर बहस की गरज से मान लीजिये हम यह मान लेते हैं कि सारा बिहार अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दिया जायेगा। तो उस सूरत में अध्यक्ष महोदय, मेरा यह संशोधन अनावश्यक है। पर अभी हमें यह तो मालूम है नहीं कि राष्ट्रपति अनुसूचित क्षेत्रों के परिसीमन के बारे में रिपोर्ट देने के लिये जिस आयोग को नियुक्त करेंगे वह रिपोर्ट क्या देगा। जब तक कि इस आयोग की रिपोर्ट के फलस्वरूप अनुसूचित क्षेत्रों का परिसीमन नहीं हो जाता है मैं इस बात के लिये अभी अवश्य आग्रह करूंगा कि एक ऐसा पक्का उपबंध यहां जरूर रहना चाहिये जिससे राज्यपाल के लिये यह अनिवार्य हो कि रिपोर्ट में वह यह भी बताये कि सभी अनुसूचित जातियों के लिये यानी हर राज्य के पिछड़े हुए लोगों के

लिये क्या किया गया है। आशा है डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार करेंगे और उस हालत में इस पैरा का यह रूप होगा:—

"The Governor or Ruler of each State having scheduled areas and scheduled tribes therein shall annually make a report to the Government of India regarding the administration of the scheduled areas and scheduled tribes in that State and the executive power of the Union shall extend to the giving of directions to the State as to the administration of the said areas and scheduled tribes of the State."

[प्रत्येक राज्य का राज्यपाल या शासक जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं, प्रति वर्ष उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियों के प्रशासन के बारे में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करेगा तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति राज्य को, उस राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियों के प्रशासन के विषय में निदेश देने तक विस्तृत होगी।]

मेरे संशोधन के दूसरे हिस्से में यह कहा गया है कि "or whenever so required by the Government of India" (अथवा अब भी भारत सरकार इस प्रकार की अपेक्षा करे) शब्द हटा दिये जायें। मेरी समझ से इन शब्दों को निकाल देना जरूरी है। संविधान में इस बात का उपबंध रहना चाहिये कि प्रतिवर्ष राज्यपाल या शासक अनुसूचित जातियों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करेगा। मालूम नहीं यह अनुसूची कब तक बनी रहेगी। और जब तक यह मालूम न हो जाये मैं इस बात पर जोर देने के लिये विवश हूं कि अनुसूचित जातियों की दशा सुधारने का काम तेजी से होना चाहिये। उनकी दशा सुधारने का काम किया नहीं जा सकता है अगर राष्ट्र को यही मालूम हो कि इस दिशा में क्या किया जा रहा है। इसलिये मेरी समझ से जरूरी यही है कि प्रतिवर्ष प्रतिवेदन करने पर यहां जोर दिया जाये। मैं यह मंजूर करता हूं कि अपने संशोधन के इस दूसरे अंश के लिये मुझे कोई विशेष आग्रह नहीं है क्योंकि कोई कारण नहीं है कि हम यह संदेह करें कि सरकार सोती रहेगी और बीस साल में कहीं एक बार प्रतिवेदन की अपेक्षा करेगी। सरकार के बारे में ऐसा सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। इसलिये अपने संशोधन के इस दूसरे अंश के लिये विशेष जोर नहीं दूंगा पर इस बात के लिये अवश्य आग्रह करूंगा कि प्रतिवेदन सभी अनुसूचित जातियों के शासन के बारे में होना चाहिये।

मेरा दूसरा संशोधन है नं. 33 का जिसे मैं पेश करता हूं। वह यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(2) It shall be the duty of the Tribes Advisory Council generally to advise the Governor or Ruler of the State on all matters

[श्री जयपाल सिंह]

pertaining to the administration, advancement and welfare of the Scheduled Tribes of the State.' "

(आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् का साधारणतः यह कर्तव्य होगा कि वह राज्य के अनुसूचित जातियों के प्रशासन, समुन्नति तथा कल्याण से सम्बद्ध सभी विषयों पर राज्य के राज्यपाल या शासक को मंत्रणा दे।)

मेरा ख्याल है कि मेरा यह संशोधन बिल्कुल स्पष्ट है। मेरा यह संशोधन मूल मसौदे के पक्ष में है। आशा है डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार करेंगे।

अब मैं पेश करता हूं संशोधन नं. 47 को जो यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (1) में 'as the case may be' शब्दों के आगे 'if so advised by the Tribes Advisory Council' शब्द जोड़े जायें।"

मैं देखता हूं कि इस नई पांचवीं अनुसूची में, किसी तरह ऐसा हो गया है—और शायद यह जान बूझ कर नहीं किया गया है—कि यहां आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् का उल्लेख ही नहीं आ पाया है। मूल मसौदे में आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् को ही प्राधान्य दिया गया था और अनुसूचित जातियों के सुधार के काम की प्रेरणात्मक शक्ति उसी को दी गई थी। पर अब इस नई अनुसूची में तो यह बात नहीं रह गई है और सारा अधिकार दे दिया गया है राज्यपाल या शासक को। मुझे खेद है कि इस स्थिति को मैं स्वीकार करने में असमर्थ हूं। अध्यक्ष महोदय, सभा को सखेद मुझे यह भी कहना पड़ रहा है कि गत कई दिनों से कुछ लोग आपस में गुप्त परामर्श करते रहे हैं और उनकी बैठकें होती रही हैं। पर उस संबंध में मुझसे कभी कोई परामर्श नहीं लिया गया। इस नई अनुसूची के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी दलों से परामर्श लेकर उसको यहां रखा गया है। इस सिलसिले में जो भी बैठकें लोगों की हुई हैं उनमें मुझे कभी नहीं बुलाया गया। उस नई पांचवीं अनुसूची में यह परिवर्तन अचानक बज्रपात की तरह हमारे सामने आया है। इस सूची को लेकर मुझे कोई शिकायत नहीं है। मेरा कहना यह है कि इस प्रस्तावित अनुसूची के सुधार की काफी गुंजाइश अभी है। आदिवासी होने के नाते मुझे इसका हक था और होना चाहिये कि पहले मुझसे इस परिवर्तन के बारे में परामर्श लिया जाता।

अब मैं अपना संशोधन नं. 50 पेश करता हूं जो यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में, 'in any such area' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

इस संशोधन के पीछे भी कारण वही है जिसका मैं अभी पहले जिक्र कर चुका हूं अर्थात् यह कि अनुसूचित जातियों को जो भी लाभ हम पहुंचाना चाहते

हैं वह केवल उन्हीं तक सीमित न रहना चाहिये जो अनुसूचित क्षेत्रों में रहते हैं बल्कि वह सभी अनुसूचित लोगों को मिलना चाहिये जो कि राज्य में रह रहे हैं।

मेरा एक और संशोधन रह गया है जो है नं. 52 का। मैं उसे भी उपस्थित किये देता हूं।

वह यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (5) में, 'consulted' शब्द की जगह 'been so advised' शब्द रखे जायें।"

यहां भी मेरा उद्देश्य यही है कि आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् वस्तुत: एक प्रभावी निकाय हो और वास्तविक शक्ति उसके हाथ में रहे। राज्यपाल या शासक को कार्रवाई करने की शक्ति जरूर प्राप्त रहे उस पर मुझे रंच मात्र भी आपत्ति नहीं है पर मैं यह अवश्य महसूस करता हूं कि 'consulted' शब्द यहां ठीक नहीं होगा। मेरे इस संशोधन के स्वीकृत होने पर उप-पैरा का रूप यहां हो जायेगा: "इस पैरा के अधीन कोई विनियम तब तक न बनाया जायेगा जब तक कि विनियम बनाने वाले राज्यपाल या शासक को, उस राज्य के लिये आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् होने की अवस्था में ऐसी परिषद् से ऐसा करने की राय न मिल गई हो।"

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं मेरे इन संशोधनों में मुख्यत: दो सैद्धान्तिक बातों पर ही जोर दिया गया है। एक तो यह कि इस अनुसूची के उपबन्धों से लाभ पहुंचना चाहिये। अनुसूचित जातियों के सभी लोगों को और दूसरे यह कि आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् वस्तुत: एक प्रभावशाली निकाय होना चाहिये न कि केवल दिखावे का।

***श्री युधिष्ठिर मिश्र** (उड़ीसा राज्य): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:—

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (1) में, 'if the President so directs' (यदि राष्ट्रपति ऐसा निदेश दे) शब्दों को हटा दिया जाये।"

डॉ. अम्बेडकर की वक्तृता मैंने यहां सुनी है। आपका कहना है कि जिस राज्य में अनुसूचित क्षेत्र हैं वहां तो आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् की रचना करना राष्ट्रपति के लिये अनिवार्य है पर जिस राज्य में ऐसे क्षेत्र नहीं हैं उसके लिए मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जाये या न की जाये यह राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ा गया है।

मेरे संशोधन का अभिप्राय यह है कि इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को जो स्वविवेकानुसार चलने का अधिकार दिया गया है वह उठा दिया जाये। अनुसूचित जातियां बहुत पिछड़ी हुई हैं श्रीमान्, और केन्द्र तथा राज्य में दोनों ही जगह, शासन को इनकी उन्नति के लिये खास तौर पर ध्यान देना जरूरी है। मेरे ख्याल में इसी उद्देश्य से कुछ क्षेत्रों को यहां अनुसूचित क्षेत्र तथा कुछ जातियों को अनुसूचित जातियों के नाम से वर्णित किया गया है। जिस राज्य में अनुसूचित क्षेत्र है अगर

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

उसके लिये आदिम जाति मंत्रणा-परिषद् की स्थापना की जाती है तो फिर ऐसे राज्य की अनुसूचित जातियों के लिये भी यही बात क्यों न रखी जाये जहां कोई अनुसूचित क्षेत्र नहीं है? अगर यह बात राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दी जाती है तो होगा यह कि उसे केन्द्र तथा प्रान्त की कार्यपालिका की राय पर चलना होगा और हो सकता है कि प्रान्तीय शासन ऐसी परिषद् का बनना ही पसन्द न करे। इसलिये मेरा यह कहना है कि अनुसूचित जातियों के लाभ के लिये हमें ऐसा उपबन्ध रखना चाहिये कि जिस राज्य में अनुसूचित क्षेत्र न भी हों वहां के लिये राष्ट्रपति को ऐसी मंत्रणा-परिषद् की स्थापना करना लाजिमी होगा।

अब मैं अपना दूसरा संशोधन—नं. 33 को-पेश करता हूं जो यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(2) It shall be the duty of the Tribes Advisory Council to advise the Government of the State on all matters pertaining to the administration of the scheduled areas and the welfare and advancement of the scheduled tribes in the State.' "

[आदिजाति मंत्रणा-परिषद् का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन से तथा राज्य की अनुसूचित जातियों के कल्याण और उन्नति से सम्बद्ध सभी विषयों पर राज्य की सरकार को मंत्रणा दे।]

इस प्रस्तावित अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (2) में यह कहा गया है कि आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् राज्य की सरकार को, राज्य की अनुसूचित जातियों के कल्याण और उन्नति से सम्बद्ध ऐसे विषयों पर मंत्रणा देगी जो उनको, यथास्थिति, राज्यपाल या शासक द्वारा सौंपे जायें। अपने संशोधन के द्वारा यहां एक तो यह उपबन्ध रखना चाहता हूं कि मंत्रणा-परिषद् अनुसूचित जातियों के कल्याण और उन्नति से सम्बद्ध विषयों पर मंत्रणा देने के अलावा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में भी वह राज्य की सरकार को मंत्रणा देगी। दूसरी बात मैं यहां यह रखना चाहता हूं कि मंत्रणा-परिषद् को जो मंत्रणा देने का अधिकार है वह केवल कार्यपालिका की मरजी तक सीमित न रहे बल्कि कार्यपालिका द्वारा न सौंपे गये ऐसे विषयों पर भी मंत्रणा दे सके। अगर मंत्रणा-परिषद् को मंत्रणा देने का अधिकार केवल उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में होगा जो राज्यपाल या शासक उसे सौंपेंगे तो फिर इस अनुसूची का उद्देश्य ही खत्म हो जायेगा। हो सकता है श्रीमान, कि किसी विषय को, जिसका समूची अनुसूचित जातियों पर असर पड़ता हो राज्यपाल मंत्रणा-परिषद् को सौंपे ही नहीं। ऐसे विषय के बारे में मंत्रणा देने का उसे अधिकार न रहेगा और उसके सम्बन्ध में वह कुछ कह नहीं सकेगी। हम अनुच्छेद 215-ख में यह पहले ही कह चुके हैं श्रीमान, कि पांचवीं अनुसूची के उपबन्ध लागू होंगे अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण के बारे में। पर इस प्रस्तावित

अनुसूची के अनुसार मंत्रणा-परिषद् को अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में मंत्रणा देने का कोई अधिकार नहीं रहेगा। यह मंत्रणा-परिषद् आखिर केवल मंत्रणा देने वाला निकाय होगा। राज्यपाल के लिये लाजिमी नहीं है कि वह उसकी मंत्रणा को माने ही। इस तरह तो यह परिषद् सर्वथा नाम मात्र की ही रह जायेगी।

अब मैं अपना संशोधन नं. 46 पेश करता हूं जो यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (1) में, 'as the case may be' (यथास्थिति) शब्दों के आगे 'on the advice of the Tribes Advisory Council' (आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् की राय पर) शब्द जोड़ दिये जायें।"

यदि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य न हो तो वह मेरे संशोधन नं. 51 पर विचार करे। मैं उसे उपस्थित करता हूं वह यों है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (5) में, 'No' शब्द के आगे 'notification or' शब्द जोड़ दिये जायें।"

इन दोनों ही संशोधनों का अभिप्राय यह है श्रीमान, कि पैरा 5 के उप-पैरा (1) के अधीन अगर कोई अधिसूचना निकाली जाये तो उसके लिये आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् से सलाह जरूर ली जाये। संशोधन नं. 20 में, राज्यपाल या शासक द्वारा निकाली जाने वाली अधिसूचना में तथा उनके द्वारा प्रख्यापित होने वाले विनियम में भेद किया गया है। विनियम के लिये तो यह कहा गया है कि राज्यपाल या शासक बिना मंत्रणा-परिषद् की राय लिये उसको प्रख्यापित नहीं कर सकता है पर अधिसूचना के लिये यह रखा गया है कि बिना मंत्रणा-परिषद् की राय के वह निकाली जा सकती है। इसलिये मेरा कहना यह है कि अधिसूचना के लिये भी मंत्रणा-परिषद् की राय अवश्य ली जानी चाहिये। इस बात को चाहे आप उप-पैरा (1) में रखिये या उप-पैरा (5) में।

उसके बाद मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं श्रीमान्:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (1) में, 'scheduled area' शब्दों के आगे 'scheduled tribes' शब्द जोड़े जायें।"

इस आशय का एक संशोधन श्री जयपाल सिंह ने भी पेश किया है। इसको उपस्थित करने में मुझे कहना यह है कि शासन का कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह जो अधिसूचना निकाले या विनियम प्रख्यापित करे वह न केवल अनुसूचित क्षेत्रों के कल्याण और समुन्नति के लिये हो बल्कि सारी अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए भी। अगर पांचवीं अनुसूची का पैरा 5 इसी रूप में रखा जाता है तो राज्यपाल के लिये यह लाजिमी न रह जायेगा कि वह ऐसा निदेश कि संसद या राज्य के विधान-मण्डल का कोई विशेष अधिनियम अमुक खास कबायली जाति पर लागू न होगा।

[श्री युधिष्ठिर मिश्र]

इस संशोधन को रखने का खास प्रयोजन यह है श्रीमान्, कि मध्य प्रान्त और उड़ीसा में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनको हो सकता है अनुसूचित क्षेत्र न ठहराया जाये पर उसमें कुछ अनुसूचित जातियों रहती हैं जिनमें भूमि विषयक विशेष तरह के कानून चलन में हैं। उदाहरण के लिये मैं बताऊं कि मध्य प्रान्त और उड़ीसा में गैर-आदिमजाति के लोग आदिमजाति वालों की जमीन अवाप्त नहीं कर सकते जब तक कि सरकार इसके लिये स्वीकृति न दे दे। अब श्रीमान्, राज्यपाल या शासक अगर इस पैरा कि अनुसार विनियम नहीं बनाता है और सम्पत्ति हस्तान्तरण के सम्बन्ध में जो कानून है उनको गैर आदिम जातियों के लिये लागू रखता है तो मैं यह कहूंगा कि हमारा यह कहना कि सरकार आदिम जातियों के हित को सुरक्षित रखने के लिये तैयार है बिल्कुल बे-माने है।

*__अध्यक्षः__ आप अपना संशोधन नं. 49 भी पेश कर रहे हैं?

*__श्री युधिष्ठिर मिश्रः__ हां श्रीमान्। मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में, 'for the time being a scheduled area' शब्दों के आगे 'and also for the welfare and advancement of the scheduled Tribes' शब्द जोड़ दिये जायें।'

इसका मतलब भी वही है जो संशोधन नं. 48 का है।

*__अध्यक्षः__ जहां तक मैं देखता हूं, इस प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची पर अब और कोई संशोधन नहीं रह गया।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ मेरे कुछ संशोधन हैं श्रीमान्।

*__अध्यक्षः__ ये संशोधन बिल्कुल आखिरी समय आये हैं और सदस्यों को वितरित भी नहीं किये जा पाये हैं। आज प्रातः 8-58 पर तो ये मिले हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मुझे कोई जानकारी नहीं है कि किस बारे में यह हैं। इनको उपस्थित करने की अनुमति न मिलनी चाहिये।

*__अध्यक्षः__ अगर आपको कोई संशोधन रखना है तो भाषण के सिलसिले में उसके लिये जो कुछ कहना हो कह दीजियेगा। सभा को मैं बता दूं कि प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना और डॉ. देशमुख के कई नये संशोधन मुझे मिले हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ उनकी प्रतियां हमारे पास नहीं हैं। हम लोगों को यह नहीं मालूम है कि संशोधन में उन्होंने कहा क्या है।

*__अध्यक्षः__ डॉ. देशमुख का संशोधन आज सवेरे 9-20 पर मिला है। प्रो. सक्सेना के संशोधन आये हैं आज 8-58 पर। नियम के हिसाब से तो आपके सभा शुरू होने से पहले जरूर पहुंच गये हैं पर मेरी समझ से इनको लेने से सदस्यों को बड़ी असुविधा होगी।

*डॉ. पी.एस. देशमुख (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मेरे संशोधनों का संबंध केवल मसौदे की रचना से है।

*अध्यक्षः अच्छी बात है, वह मसौदा-समिति को सुपुर्द कर दिये जायेंगे। हां प्रो. सक्सेना, मेरा ख्याल है आपके किसी संशोधन में कोई खास सार की बात तो नहीं है?

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः ये संशोधन जरूरी हैं।

*अध्यक्षः नियम के अनुसार सदस्य को सभा की बैठक शुरू होने से पूर्व संशोधन की सूचना देने का अधिकार है और प्रो. सक्सेना के संशोधन बैठक शुरू होने से पहले आ चुके हैं।

*प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः अध्यक्ष महोदय, इस बात के लिये कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि आपने मुझे अपने संशोधनों को पेश करने की अनुमति दी। इन संशोधनों को उपस्थित करने में मेरा एक ही उद्देश्य है। अनुसूचित क्षेत्रों का तथा अनुसूचित जातियों का अस्तित्व हमारे लिये उसी तरह कलंक की बात है जैसा कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता की व्यवस्था का रहना। हमारे ये कबायली बन्धु आज भी दीन हीन दशा में अर्ध मानव की तरह जो अपना जीवन बिता रहे हैं यह एक ऐसी बात है जिसके लिये हमें लज्जित होना चाहिये। माना कि अब तक हमारा देश गुलाम था और उस पर अंग्रेजों का आधिपत्य था फिर भी हम अपने को सर्वथा दोष मुक्त नहीं मान सकते हैं। इसलिये मेरा ख्याल यह है कि जहां तक हो सके जल्द से जल्द अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जातियों को देश के अन्य वर्गों और प्रदेशों के समकक्ष ला देना चाहिये और उनका भी पूरा विकास करना चाहिये। मैं केवल यही चाहता हूं कि इन क्षेत्रों और जातियों को शीघ्र से शीघ्र इस तरह समुन्नत बनाया जाये कि उनमें और देश के अन्य वर्गों और क्षेत्रों में कोई अन्तर न रह जाये। मैं यह चाहता हूं कि इनको समुन्नत बनाने की जिम्मेदारी संघ-शासन पर रहनी चाहिये। यह जरूर है कि राज्यपाल या शासकों को भी इस दिशा में अपना काम करना होगा पर मैं चाहता यह हूं कि इनकी समुन्नति का पूरा दायित्व होना चाहिये केवल केन्द्रीय शासन पर। इसलिये मेरे संशोधनों में यही कहा गया है कि जहां-जहां भी राज्यपाल या शासक शब्द आये हैं उनके स्थान पर राष्ट्रपति और संसद शब्द रख दिये जायें। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करता हूं:—

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (3) में तथा पैरा 5 के उप-पैरा (1) 'राज्यपाल या शासक' शब्दों की जगह 'राज्यपाल या शासक के परामर्श से राष्ट्रपति' शब्द रख दिये जायें।"

प्रस्तावित अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा (3) में कहा गया है कि:—

"राज्यपाल या शासक मंत्रणा-परिषद् के सदस्यों की संख्या इत्यादि......... विषयों के यथास्थिति विहित करने या विनियम करने के लिये नियम बना सकेगा।"

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मंत्रणा-परिषद् एक महत्वपूर्ण निकाय होगा। यह निकाय अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन चलायेगा। और अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिये मंत्रणा देगा। इसके सदस्यों की संख्या यथा इससे संबंधित अन्य बातों की जिम्मेदारी यहां राज्यपाल को दी गई है। मैं चाहता यह हूं कि इन सब बातों के लिये जिम्मेदारी होनी चाहिये राष्ट्रपति पर और वही राज्यपाल या शासक के परामर्श से जैसा चाहे करे। यही बात मैं पैरा 5 में भी चाहता हूं। वहां कहा यह गया है कि:—

"Notwithstanding anything contained in this Constitution the Governor or Ruler, as the case may be, may by public notification direct that any particular Act of Parliament or of the Legislature of the State shall not apply to a scheduled area or any part thereof in the State or shall apply to a scheduled area or any part thereof in the State subject to such exceptions and modifications as he may specify in the notification."

[इस विधान में किसी बात के होते हुये भी यथास्थिति राज्यपाल या शासक लोक-अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि संसद या उस राज्य के विधान-मण्डल का कोई विशेष अधिनियम उस राज्य में के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग में लागू न होगा अथवा राज्य में के अनुसूचित क्षेत्र या उसके किसी भाग में ऐसे अपवादों और रूप भेदों के साथ लागू होगा जैसा कि वह अधिसूचना में अल्लिखित करे।]

आप यह देखेंगे कि इसके अनुसार संविधान में किसी बात के होते हुये भी लोक-अधिसूचना द्वारा राज्यपाल या शासक संसद के अधिनियम को किसी अनुसूचित क्षेत्र के लिए निराकृत या प्रभाव शून्य कर सकता है। अपने संशोधन द्वारा मैं चाहता यही हूं कि यहां "राज्यपाल या शासक" शब्दों के स्थान पर "राज्यपाल या शासक के परामर्श से राष्ट्रपति" शब्द रख दिये जायें। यहां मेरे सुझाये गये शब्दों को रखना उचित और लोकतंत्रीय है। राज्यपाल को यह अधिकार नहीं प्राप्त रहना चाहिये कि संसद के किसी अधिनियम को वह निराकृत कर सके।

मेरा दूसरा संशोधन यह है श्रीमान्:—

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा 4 में 'All' शब्द के बाद 'notifications and' शब्द जोड़ दिये जायें।"

ऐसा करना जरूरी है क्योंकि उप-पैरा (1) में 'लोक-अधिसूचना द्वारा' ऐसा निदेश करने का अधिकारियों को हम अधिकार दे रहे हैं। मैं चाहता हूं कि ये अधिसूचनायें भी राष्ट्रपति की स्वीकृति से ही निकाली जायें।

पैरा 5 के उप-पैरा (5) के सम्बन्ध में मैं इस संशोधन का प्रस्ताव रखता हूं:—

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (5) में शब्द के बाद 'notification or' शब्द जोड़ दिये जायें।"

इसको रखने में मेरा उद्देश्य यह है कि सभी अधिसूचनायें आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् से परामर्श ले लेने पर ही निकाली जायें।

पैरा 6 (1) के सम्बन्ध में मेरा यह संशोधन है श्रीमान्:—

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 के उप-पैरा (1) में 'President may by order' शब्दों के स्थान पर 'Parliament may by law' शब्द रखे जायें।"

इन सब बातों को राष्ट्रपति के हाथ में छोड़ना ठीक नहीं होगा। यह अधिकार संसद को प्राप्त रहना चाहिये कि वह विधि द्वारा किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करे।

बाकी जो मेरे संशोधन हैं श्रीमान्, वह मेरे ऊपर के संशोधनों के फलस्वरूप यहां आवश्यक हो जाते हैं। उनमें पहला संशोधन यह है:—

"कि संशोधन सूची 1 (सातवां सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 के उप-पैरा (2) में 'such order may' शब्दों की जगह 'such law may' शब्द रखे जायें।"

इस बात को देखते हुये कि ये आदेश यानी 'आर्डर' होंगे अनुसूचित क्षेत्रों की सीमा में परिवर्तन करने के बारे में यह जरूरी है कि यह काम राष्ट्रपति के आदेश द्वारा न किया जाये बल्कि संसद निर्मित विधि के द्वारा किया जाये।

मेरा दूसरा संशोधन यह है:—

"कि पैरा 6 के उप-पैरा (2) (ग) में 'to the President' शब्दों की जगह 'to the Parliament' शब्द रखे जायें।"

मेरे पूर्ववर्ती संशोधन के फलस्वरूप यह संशोधन आवश्यक हो जाता है।

अब मैं अपने अन्तिम महत्वपूर्ण संशोधन को लेता हूं जिसकी सूचना मैं दे चुका हूं। वह यों है:—

"कि पैरा 6 के उप-पैरा 2 (ग) में 'Save as aforesaid, the order made under sub-paragraph (1) of this paragraph shall not be varied by any subsequent order.'

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(किन्तु उपर्युक्त नीति से अन्यथा इस पैरा के उप-पैरा (1) के अधीन निकाला गया आदेश किसी अनुगामी आदेश से परिवर्तन नहीं किया जायेगा।) शब्दों को निकाल दिया जाये।

इस संशोधन को रखने में मेरा उद्देश्य यह बताता है कि देश का यह विशाल संख्यक अनुसूचित वर्ग जो अर्ध मानव की तरह दीन-हीन जीवन बिता रहा है वह हमारे लिये एक कलंक की बात है। दस साल के अन्दर इस समुदाय को हमें देश के शेष समुदाय के स्तर पर ला देना चाहिये ताकि उनमें और बाकी लोगों में कोई अन्तर न रह जाये। मैं चाहता यह हूं कि इस कलंक को दूर करने का भार संसद पर होना चाहिये और उसको यह अधिकार मिलना चाहिये कि वह इस अवधि के अन्दर इस अनुसूचित जाति के समुदाय को देश के शेष लोगों के साथ मिलाकर एक कर दे।

*__अध्यक्ष:__ सारे संशोधन अब पेश हो चुके हैं।

*__एक सदस्य:__ मेरा एक संशोधन है जिसे मैं अभी तक पेश नहीं कर सका हूं।

*__अध्यक्ष:__ आपका संशोधन पुरानी अनुसूची के संबंध में है। पुरानी अनुसूची पर आये संशोधनों की मैं अनुमति नहीं दे रहा हूं। पुरानी अनुसूची अब पूरी बदल गई है।

चूंकि सभी संशोधन पेश हो चुके हैं। इसलिये अब अनुसूची तथा संशोधन पर बहस की जा सकती है।

*__श्री कुलधर चालिहा__ (आसाम : जनरल): इस अनुसूची पर मुझे जो संशोधन रखने हैं उनकी सूचना मैं नहीं दे सका क्योंकि संशोधन सूची ही मुझे कल रात को दस बजे मिली।

*__अध्यक्ष:__ संशोधनों पर कोई संशोधन नहीं रखे जा सकते हैं।

*__श्री कुलधर चालिहा :__ ये संशोधन तो मुझे मिले ही कल रात को 10 बजे?

*__अध्यक्ष:__ वे शनिवार को ही वितरित कर दिये गये थे। पांचवीं अनसूची वितरित की गई थी शुक्रवार को। कल रात को जो सूची वितरित की गई थी वह तो कल तक आये सभी संशोधनों की सूची थी।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ छठी अनुसूची कल रात को वितरीत की गई है।

*__अध्यक्ष:__ छठी अनुसूची शनिवार को वितरीत की गई थी।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुसूची का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं श्रीमान्। अनुसूची का समर्थन तो मैं कर रहा हूं पर यह बता देना चाहता हूं कि इस अनुसूची के कुछ उपबन्धों से मेरा मतैक्य नहीं है। चन्द दिन पहले यहां सभा में मैंने यह कहा था कि कबायली जातियों के लिये सर्वोत्तम शासन व्यवस्था यह होगी कि उनके प्रदेश को केन्द्र प्रशासनाधीन रख दिया जाये।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य से मैं यह कहूंगा कि यहां एक वाक्य में यह कहना कि: "मैं अनुसूची का समर्थन करने के लिये खड़ा हो रहा हूं" और फिर बाद के दूसरे वाक्य में यह कहना कि "अनुसूची के उपबन्धों से मेरा मतैक्य नहीं है" बिल्कुल बे माने है। सदस्यों के भाषण में आखिर कुछ सामञ्जस्य तो रहना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं कह यह रहा था श्रीमान् कि मैं अनुसूची को स्वीकार कर रहा हूं इसलिये कि सभा इसे मान चुकी है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में यही होता है कि बहुमत के निर्णय को मानना होता है चाहे उसके संबंध में किसी की निजी राय कुछ भी क्यों न हो। इसी नाते मैंने उक्त बात कही थी। मैं आपके इस कथन को स्वीकार करता हूं कि परस्पर विरोधी बातें कहना न उचित है, न तर्क संगत है और न शोभनीय ही है।

दिल्ली के संस्करण में "स्टेट्स मैन" ने 4 सितम्बर 1949 के अपने सम्पादकीय लेख में यह कहा है:—

"अभी हाल में संविधान सभा ने यह स्वीकार किया है कि संघ के तथा राज्य के निचले सदनों में दस साल तक आदिमजातियों के लिए स्थान रक्षित रखे जायेंगे। इस निर्णय से किसी को कोई विवाद नहीं हो सकता है। पर उस निर्णय को उपादेयता निर्भर करती है इस बात पर कि उनके प्रतिनिधि चुने किस तरह जाते हैं। क्या ऐसे लोगों को उनका प्रतिनिधि बनाया जाता है जो उनके विश्वस्त नेता और हित चिन्तक हैं या दलगत सम्बन्धों के आधार पर इनके प्रतिनिधि चुने जाते हैं? स्वभाव तथा बुद्धि की दृष्टि से जो लोग लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के अनुपयुक्त हैं उनमें राजनैतिक कलह का क्या कुपरिणाम हो सकता है इसको और प्रान्तों में शायद ध्यान ही नहीं दिया गया है।"

आगे चल कर यही पत्र यह कहता है:—

"पर दिल्ली में कुछ पर्यवेक्षकों को संकट का एक नया आभास मिला है। अभी हाल में आदिमजातियों के जो उपद्रव हुए हैं और उन्होंने अपनी पुरानी बर्बर प्रथाओं को अपनाने की जो प्रवृत्ति दिखलाई है इससे लोगों में बड़ी बेचैनी पैदा हो गई है। इस समूची आदिमजाति-समस्या पर फिर से छानबीन करना वांछनीय समझा जा रहा है। शायद ऐसा करने से ही यह भरोसा हो सकता है कि अनुसूचित क्षेत्रों में लोकतंत्रीय व्यवस्था का जो प्रयोग चालू हो रहा है उसमें कबायली लोग तो सहानुभूतिपूर्वक दिलचस्पी लेंगे ही पर भारतीय संघ राज्य के राष्ट्रपति तथा विभिन्न राज्यों के राज्यपाल भी अपने को उन आदिमजातियों का विशेष संरक्षक समझेंगे जिनके हित को देखने का भार संविधान द्वारा इन पर दिया जा रहा है। अगर ये लोग अपने कर्त्तव्य का पालन उसी बुद्धिमत्ता और समझदारी से करें जिससे कि स्वर्गीय सर अकबर हैदरी ने आसाम में किया था तो, सभी कुछ ठीक-ठीक चलेगा और ज्यादा गड़गड़ी न होने पायेगी।"

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

इस संबंध में मुझे और कोई बात नहीं कहनी है। आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् की स्थापना के पक्ष में मैं नहीं हूं। मंत्रणा-परिषद् की स्थापना का जिक्र करना मूल प्रश्न को टालना है। आदिम-जाति के लोगों की मांग यह नहीं है कि मंत्रणा-परिषद् स्थापित की जाये बल्कि मांग वह इस बात की करते हैं कि संविधान द्वारा उनको यह प्रत्याभूति मिलनी चाहिये कि सभी कबायली लोगों को जीवन यापन का साधन प्राप्त रहेगा। नि:शुल्क शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी सभी सुविधायें प्राप्त रहेंगी। यह मांग ऐसी मांग नहीं है जिसे असम्भव कहा जाये। देश के सभी नागरिकों के लिये इन सुविधाओं की मांग नहीं की जा रही है। यह मांग की जा रही है देश के केवल ढाई करोड़ लोगों के लिये। आर्थिक दृष्टि से हमारे प्रान्त आज कमजोर हैं और वह इस स्थिति में नहीं हैं कि इस दायित्व का भार वहन कर सकें। इसलिये मैं यह कह रहा हूं कि कबायली इलाकों को केन्द्र प्रशासनाधीन कर दिया जाये। अगर इतने कम लोगों को भी जीवनयापन के साधन की तथा नि:शुल्क शिक्षा और चिकित्सा की गारन्टी भारत सरकार नहीं दे सकती है तो फिर उसे बने रहने का क्या अधिकार है? केन्द्र आदिमजाति वालों को यह सभी सुविधायें दे सकता है। प्रान्तीय शासनकारों को किसी तरह कम किये बिना ही ऐसा वह कर सकता है। आदिमजाति वालों के लिये सर्वोत्तम शासन व्यवस्था यह होगी कि सारे कबायली इलाके को केन्द्र प्रशासन के अधीन रख दिया जाये। इस ध्येय की प्राप्ति मे एक ही रुकावट है। आदिमजातियों की सांस्कृतिक समुन्नति तथा आर्थिक विकास में प्रबल बाधक बन रही है क्षेत्र विस्तार की हमारी लालसा।

यदि कबायली इलाकों को केन्द्र प्रशासन में रख दिया जाता है तो इससे देशवासियों को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा। अगर किसी प्रान्तीय हित का देश हित से मेल नहीं खाता है तो उस सूरत में मैं तो देश का साथ दूंगा न कि प्रान्त का। देश हित का प्रादेशिक हितों से कभी विरोध हो नहीं सकता है। और अगर ऐसा कोई हित है जिसका देशहित से सामञ्जस्य नहीं बैठता है तो उस हित का हमें विरोध करना होगा; उसे समाप्त कर देना होगा। ऐसे किसी प्रान्तीय हित की चर्चा करना ही बेकार है जो देश हित के प्रतिकूल हो।

इस पैरा 4 के सम्बन्ध में एक और बात है जिसकी ओर सभा का ध्यान में आकृष्ट करना चाहूंगा। आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् में राज्य के विधान-मण्डल के वह सभी सदस्य रहने चाहियें। जो आदिमजातियों के प्रतिनिधि रूप में वहां पहुंचे हैं। इनकी सर्वाधिक संख्या है बिहार में। यहां करीब 55 कबायली प्रतिनिधि राज्य के विधान-मण्डल में आयेंगे। अवश्य ही मंत्रणा-परिषद् के लिये यह संख्या कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है। इस मंत्रणा-परिषद् को आखिर केवल परामर्श देने का ही तो अधिकार प्राप्त रहेगा। इसे कोई विधायिनी या कार्यपालिका शक्ति तो प्राप्त न रहेगी। अगर ऐसी शक्ति उसे प्राप्त रहती तो इस सूरत में तो पचास या पचपन सदस्यों को परिषद् में रखना अवांछनीय भी कहा जा सकता था। पर चूंकि मंत्रणा-परिषद् केवल एक परामर्श देने वाला निकाय होगा न कि विधि बनाने वाला या अधिशासीय निकाय इसलिये पचास सदस्यों का इसमें होना ज्यादा नहीं कहा जा सकता है।

पैरा 5 में दो बातों का उपबंध हमें जरूर रखना चाहिये था। आदिमजाति वालों की जमीन गैर आदिमजाति के लोगों के पास न जा सकेगी। इसके लिये संविधान

में एक उपबंध रहना चाहिये था। मैं यह मांग कर रहा हूं, मनुष्यता के नाम पर। अगर संविधान में ऐसा उपबन्ध नहीं रखा जाता है, तो इसका जो राजनैतिक परिणाम होगा, उसको हम शायद अभी ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहे हैं। इससे होगा यह कि आदिमजातियों और गैर-आदिमजातियों के आपसी संबंध में कटुता पैदा हो जायेगी। कबायली क्षेत्रों में राज्य के प्रति अनिष्ठा उत्पन्न होगी।

मैं चाहता यह हूं, श्रीमान्, कि कबायली इलाकों की कोई जमीन, जिस पर किसी आदिमवासी का स्वामित्व है, वह बिना डिप्टी कमिश्नर की अनुमति के किसी आदिमवासी को भी न बेची जा सके और न बंधक रखी जा सके। सन्थाल परगनों में ऐसी व्यवस्था है। मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि गैर आदिमवासियों को उस जमीन या सम्पत्ति से वंचित किया जाये, जो अनुसूचित क्षेत्रों में उनको मिल चुकी है। पर इन क्षेत्रों में गैर आदिवासियों को अब और जमीन कभी न मिलनी चाहिये। अनुसूचित जातियों के हितार्थ इस संरक्षण का संविधान में होना जरूरी है। यह बात आदिमजाति के नेताओं की मांगों से भी सर्वथा संगत है। अगर इतना संरक्षण संविधान द्वारा उनको दे दिया जाता है, तो इससे अनुसूचित जातियों में राज्य निष्ठा की भावना उत्पन्न होगी। राज्य निष्ठा पैदा होती है, सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर। आन्ता की तरह राज्य निष्ठा कोई ईश्वर दत्त वस्तु नहीं है। अगर राज्य निष्ठा कोई ईश्वर प्रदत्त वस्तु होती, तो हमें जीवन के साथ प्राप्त होती, तो फिर राज्य निष्ठा का प्रश्न ही क्यों उठता? बजाय इसके कि हम अल्पसंख्यकों को राज्यनिष्ठ होने का, देश के प्रति सच्चा होने का उपदेश दें, चाहिये हमें यह कि हम उन स्थितियों को दूर कर दें जिनसे राज्य के प्रति अनिष्ठा की भावना पैदा होती है और लोग किसी विदेशी शक्ति के प्रति सहानुभूति या निष्ठा रखने लगते हैं। अभी अभी हमें यह आशंका थी, श्रीमान्, कि यहां एक पृथक् मुसलिम राज्य की मांग में अनुसूचित जाति के लोग मुसलिम लीग का साथ देंगे, किन्तु सौभाग्य से यह संकट अब नहीं रह गया। अगर हम यह चाहते हैं कि भविष्य में कभी हमारे सामने फिर ऐसा संकट न आये, तो हमें अनुसूचित जातियों की आशंकाओं को दूर करना ही होगा। इस लिये अगर हमें अपने मार्ग से किंचित् हटना भी पड़े तो भी हमें हटना होगा। एक असंतुष्ट अल्पसंख्यक समुदाय राज्य की स्थिरता के लिये हमेशा खतरा बना रहता है। इन्हीं अल्पसंख्यकों के कारण ही समूचा यूरोप आज टुकड़े-टुकड़े हो गया है। संगीन मौकों पर जब राष्ट्र को किसी विषय विपत्ति का सामना करना पड़ता है, उस समय सन्तुलन शक्ति आ जाती है, अल्पसंख्यकों के हाथ में, वह चाहे जिस पक्ष का पलड़ा भारी कर सकते हैं। अगर राष्ट्र को विदेशी शत्रु का सामना करना पड़ जाता है, तो उस समय यह परमावश्यक हो जाता है कि समूचा राष्ट्र राज्य का साथ दे। ऐसे संगीन मौके पर अगर अल्पसंख्यक लोग कहीं विद्रोह की आग जला बैठे, तो फिर कोई राज्य उससे अपनी रक्षा नहीं कर पा सकता है। मैं पुनः इस बात का आग्रह करूंगा कि भूमि के हस्तान्तरण को रोकने या नियंत्रण करने का अधिकार राज्यपालों को न दिया जाये। अनुसूचित क्षेत्रों की जमीन गैर आदिम जातियों के हाथ में न पड़े, इसके लिये संविधान में उपबंध रहना चाहिये।

दूसरी मांग मैं इस बात की करता हूं कि अनुसूचित क्षेत्रों में किसी भी महाजन को धन उधार देने के कुव्यवसाय की अनुमति न मिलनी चाहिये। यह व्यवसाय

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

पल्लवित होता है, गरीब और अनपढ़ आदिवासियों के शोषण पर, इस लिये इस कुव्यवसाय की अनुमति देना ही गलत होगा। यह कर्तव्य होना चाहिये कि राज्य इन क्षेत्रों में महाजनी का काम वह खुद करे। इस बात की गारण्टी संविधान द्वारा प्राप्त रहनी चाहिये कि कोई भी महाजन इन क्षेत्रों में धन उधार देने का व्यवसाय न कर पायेगा।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): माननीय सभापति जी, आदिवासियों के लिये जो प्रबन्ध किया जा रहा है, उसके लिये मुझे कुछ कहना है, क्योंकि मैंने आदिवासियों के बीच कुछ काम किया है।

पहले मैं एक बात यह कह देना चाहता हूं कि अभी यहां यह बात नहीं आई है कि शिड्यूल्ड ट्राइब्स कौन हैं। आगे अच्छी तरह सोच विचार कर यह देख लेना चाहिये कि कौन शिड्यूल्ड ट्राइब्स हैं। यहां हम लोगों ने जो शिड्यूल्ड एरियाज बनाये हैं, उनको भी देख लेना चाहिये कि कौन से शिड्यूल्ड एरियाज हैं। और फिर हम जो इतनी पावर प्रेजीडेंट को दे रहे हैं कि कौन एरिया शिड्यूल्ड होगा, इसको वह डिक्लेयर करेगा, यह ठीक नहीं है। जैसे कि मेरे मित्र शिब्बन लाल जी ने कहा है कि यह पावर पार्लियामेंट को देना चाहिये। अगर यह पावर पार्लियामेंट के हाथ में नहीं रहेगी, तो एरियाज के डिस्ट्रीब्यूशन में जब एक लिमिट से दूसरी लिमिट को किया जायेगा, तो बहुत एजीटेशन हो सकता है। इस लिये यह पावर प्रेजीडेंट को न देकर पार्लियामेंट के हाथ में रखनी चाहिए।

और एक बात मैं कहना चाहता हूं, ट्राइब्स एडवाइजरी काउन्सिल के बारे में। यह ठीक है कि हम लोग एक ट्राइब्स एडवाइजरी काउन्सिल बनाते हैं और उसमें 20 मेम्बर रखते हैं और 20 मेम्बर में से तीन चौथाई हम लोग ट्राइब्स के आदमियों को रखते हैं। लेकिन बाकी एक चौथाई किसको रखेंगे, इसका कुछ जिक्र यहां नहीं है। मैं चाहता हूं कि यह जो एक चौथाई हों या उन आर्गनाइजेशन्स में से हों, जो कि उन एरियाज में काम करते हैं, तभी गवर्नर को यह मालूम हो सकेगा कि ट्राइबल लोगों की क्या जरूरतें हैं। कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि वहां कुछ आर्गनाइजेशन्स काम करते हैं वह क्रिश्चियन हैं और कुछ हिन्दू हैं। उनमें आपस में कुछ खराबी हो सकती है। मेरे विचार में यह कहना ठीक नहीं है। जो उस एरिया में काम करते हैं, उन्होंने तो ऐबोरिजनल्स (आदिमजातियों) के लिये अच्छा ही काम किया है और अच्छा ही काम करते हैं और आखरी पावर तो हम गवर्नर के हाथ में दे देते हैं। इसी लिये हम को यह सोचकर जो आर्गनाइजेशन्स वहां काम करते हैं, उनको उस एक चौथाई में शामिल करना चाहिये।

और शिड्यूल्ड ट्राइब्स के बारे में जो कि आगे आने वाली बात है, मैं यह कहना चाहता हूं कि उड़ीसा में एक जाति दम्बो और पानी है, जिसको हम शिड्यूल्ड ट्राइब्स में रखते हैं। लेकिन हम देखते हैं कि वह इतने चतुर हैं कि सब गड़बड़ वही करते हैं। इस लिये जब वह एरिया आवेगा उस वक्त हम शिड्यूल्ड ट्राइब्स में से दम्बो और पानी को निकाल देंगे। अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो शिड्यूल्ड ट्राइब्स के लिये, जो कि वास्तव में आदिवासी हैं, हम जो भी प्रबन्ध करेंगे। उसका

उनको कोई फायदा नहीं मिलेगा। इसी लिये मैं कहता हूं कि उड़ीसा में जो दम्बो और पानी है, उनको शिड्यूल्ड ट्राइब्स में से निकाल देना चाहिये।

और यह रूल्स कैसे होंगे, यह कुछ नहीं बतलाया गया है। हम लोग इसका अनुमान भी नहीं कर सकते कि रूल्स कैसे होंगे। जब रूल्स के बारे में हम कुछ नहीं कह सकते, तो सन्देह हो जाता है। मैं समझता हूं कि जैसे कि पहले से हैं:—

> "Provided that where such Acts relate to any of the following subjects, that is to say marriage, inheritance of property and social customs of the tribes etc., etc."

कम से कम यह तीन चीजें डॉक्टर अम्बेडकर को अपने अमेंडमेंट में शामिल करना चाहिये, जिससे कि यह कम से कम मालूम हो जायेगा कि आदिवासियों के मैरिज, इनहैरिटेंस ऑफ प्रापर्टी और सोशल कस्टम में कोई अदल बदल नहीं कर सकेगा। इसके बाद मैं यह कहना चाहता हूं कि धीरे-धीरे यह सब उड़ीसा में एक शायर जाति है वह अब हिन्दू जाति बन गई है। पहले वे आदिवासी थे, पर अब हिन्दू हो गये हैं। एबोरिजनल्स के कुछ रीति-रिवाज हिन्दुओं के अन्दर आ गये हैं और हिन्दुओं के कुछ अच्छे रीति-रिवाज आदिवासियों के भीतर आ गये हैं। ऐसा मेल जोल धीरे-धीरे होता रहता है। अगर एडवाइजरी काउन्सिल में कुछ नान एबोरिजनल्स को न मिलाया जायेगा, तो ऐसा भाव पैदा हो सकता है कि वह हमसे अलग हैं और कुछ बरस बाद फूट का भाव पैदा हो सकता है। और शायद इसी लिये यह अमेंडमेंट दिया गया है कि दस बरस तक यह चलेगा और उसके बाद क्या होगा यह अभी कुछ मालूम नहीं। मैं समझता हूं कि उसमें दस बरस या बीस बरस के बारे में कुछ चिन्ता नहीं करना चाहिये, क्योंकि आदिवासी इतने पिछड़े हुए हैं कि उनके लिये दस बरस से बीच बरस भी किया जा सकता है। तो हम लोगों को कोई शंका नहीं करनी चाहिये। शंका तो इस बात की है कि हम लोग जोर जबरदस्ती करके इनके ऊपर प्रभाव न डालें। जैसा हम लोगों में से कोई कोई अभी ख्याल करते हैं कि एबोरिजनल्स को जोर जबरदस्ती करके हम लोगों के साथ मिला लेना चाहिये। यह ठीक नहीं है। उन लोगों को हम लोगों के साथ धीरे-धीरे ही मिलने देना चाहिये। यही बात मैं कहना चाहता हूं।

*__बाबू रामनारायण सिंह__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, सभा का ज्यादा समय मैं नहीं लूंगा। क्योंकि आज-कल मैं प्राय: यहां चुप ही रहा करता हूं। माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद को केन्द्र प्रशासन से बड़ा प्रेम है। पर मैं उनसे यह कहूंगा कि वह केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में जो स्थिति वर्तमान है, उसको देखें और इसके लिये उन्हें दूर जाने की जरूरत नहीं। वह........

*__अध्यक्ष:__ उनकी बात को महत्व देने की हमें जरूरत नहीं है, योंकि उन्होंने खुद अपने किसी संशोधन को पेश नहीं किया है। उनकी सूचना उन्होंने दे रखी है।

*__बाबू रामनारायण सिंह:__ धन्यवाद, श्रीमान। मेरा ख्याल है, माननीय मित्र को दिल्ली की स्थिति का ही अध्ययन करना चाहिये, जहां यह इस समय रह रहे हैं। उनको यह देखना चाहिये कि आखिर खुद दिल्ली का प्रशासन कैसा चल रहा है। मैं तो केवल इस लिये यहां खड़ा हुआ हूं, श्रीमान, कि आपको, इस सभा

[बाबू रामनारायण सिंह]

को तथा समस्त देश को मैं उन वचनों की याद दिला दें, जो इस विषय के सम्बन्ध में पहले हमने दे रखे हैं, उन दलीलों की याद दिला दूं जो इस विषय के सम्बन्ध में पहले हम पेश किया करते थे। भारतीय राष्ट्रीय महा सभा कांग्रेस के आदेशानुसार ही हम केन्द्रीय विधान-मण्डल में सदा इस नीति की वकालत करते रहे हैं कि देश का प्रशासन सर्वथा एक सा रहना चाहिये और किसी प्रदेश के साथ इस सम्बन्ध में कोई भेद भाव न बरता जाना चाहिये। हम यह चाहते थे कि देश में सर्वत्र एक तरह की प्रशासन व्यवस्था रहे। 'पिछड़े हुए प्रदेश' 'अपवर्जित प्रदेश' या 'अंशत: अपवर्जित प्रदेश' इन सब पद संहतियों से हम बड़ी लज्जा का बोध करते थे। किन्तु मुझे यह देखकर दुख हो रहा है और इससे देश के प्रत्येक व्यक्ति को दुख हो रहा होगा, श्रीमान, कि अब हम उन्हीं बातों को करने जा रहे हैं, जिनका कि ब्रिटिश अमलदारी में हम विरोध किया करते थे। अंग्रेजों की अमलदारी के जमाने में हम यह नहीं चाहते थे कि पिछड़े प्रदेश या अपवर्जित प्रदेश बोलकर कोई भी प्रदेश हमारे देश में हो, पर अब हम 'अनुसूचित क्षेत्र' नाम से इन्हीं प्रदेशों को रख रहे हैं। इन प्रदेशों की शासन व्यवस्था देश के अन्य प्रदेशों से भिन्न होगी। अंग्रेजी अमलदारी में यह प्रदेश प्रशासन के सम्बन्ध में अन्य प्रदेशों से सर्वथा पृथक् रखे गये थे। पर शासकों ने इन प्रदेशों के बाशिन्दों की वास्तविक भलाई के लिये कुछ भी नहीं किया। मैं धन्यवाद देता हूं, ईसाई उपदेशकों को, जिन्होंने कबायली लोगों का काफी सुधार कर दिया है।

मैं एक बात यहां कह दूं, श्रीमान। मेरी इन बातों का यह मतलब न लगाया जाना चाहिये कि मैं इस बात के खिलाफ हूं कि पिछड़े हुए लोगों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया जाये। उनकी मांगें पूरी की जायें। मैं यह चाहता हूं कि उनकी मांगें पूरी की जायें। मैं भी जानता हूं और सभी लोग जानते हैं कि देश के हर भाग में पिछड़े हुए लोग हैं। हर गांव में, हर शहर में, यहां इस दिल्ली में भी आपको इस वर्ग के लोग मिलेंगे। उनकी समस्या का इलाज यह नहीं है कि इनके इलाकों को अलग कर दिया जाये या यत्र तत्र इनके लिये कुछ कर दिया जाये। मैं जानता हूं कि 'अनुसूचित क्षेत्र' के नाम से किसी भाग को पृथक् करके या ऐसी ही और कोई बात करके भारत सरकार इनकी भलाई के लिये कुछ ज्यादा नहीं कर सकती है। जैसा कि अंग्रेजी अमलदारी के जमाने में कहा जाता था और माननीय सदस्य बन्धु भी इसे जानते हैं कि देश में एक ऐसा वर्ग है, जिसके लिये शासन को कुछ विशेष सुविधायें या रियासतें देना जरूरी है। शासन को चाहिये कि वह तीन चार बातों को पूरा करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लें। एक तो वह यह करे कि देश के सभी आदिमजातियों और पिछड़े हुए लोगों के बच्चों को अपने खर्चे से शिक्षा प्रदान करा दे। उनको जो शिक्षा दी जाये, उसमें सैनिक शिक्षा भी शामिल रहे। शिक्षित बना देने के बाद इनको सरकारी नियुक्तियों में प्राथमिकता दी जाये। उसके बाद शासन को यह कहना चाहिये कि हर आदिमजाति वाले को और पिछड़े हुए वर्ग के व्यक्ति को कुछ भूमि दे। इतना हो जाने पर मेरा यह ख्याल है कि ये लोग देश के अन्य लोगों के स्तर पर आ जायेंगे और इनमें और बाकी लोगों में कोई सामाजिक अन्तर न रह जायेगा। फिर समूचा देश एक स्तर पर आ जायेगा; और न कोई पिछड़ा हुआ रह जायेगा और न कोई कबायली।

फिर एक बात और है, श्रीमान। आखिर भविष्य के सम्बन्ध में हमारी आकांक्षायें क्या हैं? दुर्भाग्य से हमारा देश आज कितने ही वर्गों में, सम्प्रदायों में बंटा हुआ है। हमें इस तरह चलना चाहिये कि ये सारे सम्प्रदाय और वर्गगत भेदभाव दूर हो जायें और समूचा देश एक राष्ट्र का—भारतीय राष्ट्र का रूप धारण कर ले। पर इस लक्ष्य की प्राप्ति हम अंग्रेजों के पथ पर चलकर इस वर्ग और उस वर्ग की, इस क्षेत्र और उस क्षेत्र की सृष्टि करके नहीं कर सकते हैं। ऐसा करने से तो हम लक्ष्य प्राप्ति में कभी सफल नहीं हो सकेंगे। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर का यह संशोधन उतना घातक नहीं है, जितना कि हमारी पूर्व की व्यवस्था थी। उनके इस संशोधन के या मूल अनुसूची के खिलाफ मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। पर मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि सभा में विचारार्थ ऐसा प्रस्ताव न आना चाहिये था।

***श्री यदुवंश सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यहां खड़ा हो रहा हूं, इसलिये कि डॉ. अम्बेडकर को तथा उनके साथियों की इस संशोधित अनुसूची 5 को प्रस्तुत करने के लिये धन्यवाद दूं। इस संशोधित अनुसूची के लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं, क्योंकि मूल अनुसूची बड़ी कठोर थी, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने खुद कहा है।

आदिम जातियों की समस्या या इस समस्या का समाधान एक बड़ा कठिन और नाजुक प्रश्न है। इसलिये इन समस्याओं के समाधान का उपबंध बनाने में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम उन लोगों का हाथ न बांध दें, जो कबायलियों का हित साधन करना चाहते हैं यह सच है और हम सभी हर एक आदमी इस पर एक मत है कि आदिम जातियों की जो समस्या बहुत पुरानी है, हाल की नहीं है। उनका शोषण, उनकी गरीबी, उनकी आर्थिक तथा सामाजिक दीनावस्था यह सभी ऐसी बातें हैं, जिनके लिये न केवल प्रान्तीय सरकारों को बल्कि केन्द्रीय सरकार को खास तौर पर ध्यान देने की जरूरत है। किन्तु इस काम के लिये जैसा कि बाबू रामनारायण सिंह ने यहां ठीक ही कहा है, हमें निर्भर करना होगा राज्य के विधान मण्डलों पर, उनकी सरकारों पर। उनके सुधार के लिये हमें विश्वास रखना होगा, प्रान्तीय सरकारों पर तथा उन गैर सरकारी निकायों पर, जो कबायली इलाकों की स्थिति सुधारने के काम में लगे हुए हैं। यहां न केवल मैं अपना ही धन्यवाद श्री ठक्कर बापा को अर्पित करूंगा, बल्कि कबायलियों के हितार्थ काम करने वाले सभी कार्यकर्त्ताओं की ओर से उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करूंगा। इस वृद्धावस्था में भी वह इन इलाकों का दौरा करते रहते हैं। मुझे यहां यह कहने की जरूरत नहीं कि अगर उनके परामर्श पर हम चलते रहे और अगले दस साल तक अगर वह हमारे बीच रह गये, तो इस अरसे के अन्दर हम वह काम कर देंगे कि न केवल संसद के समक्ष हम उस पर अभिमान कर सकेंगे, बल्कि अपने कामों द्वारा हम कबायली भाइयों को वस्तुत: सुखी बना देंगे। आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से उनको सर्वथा समुन्नत बना देंगे।

जहां तक कि माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह के संशोधन का संबंध है, मैं एक बात कहना चाहता हूं। उनका पहला संशोधन इस आशय का है कि न केवल अनुसूचित क्षेत्रों में बसने वाले कबायलियों के ही संबंध में राज्यपाल राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे, बल्कि प्रान्त के सभी कबायलियों के बारे में वह राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे। अवश्य ही यह एक विचारणीय सुझाव है। आशा है, डॉ. अम्बेडकर इस पर विचार करेंगे। इस बात को न हमी चाहते हैं और न डॉ. अम्बेडकर कि राज्यपाल

[श्री यदुवंश सहाय]

इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति को जो प्रतिवेदन भेजें, उसमें केवल अनुसूचित क्षेत्रों में बसने वाले कबायलियों की स्थिति पर ही प्रकाश डाला रहे। हम यह जानते हैं कि अनुसूचित क्षेत्रों से बाहर बसने वाले कबायली तो और भी पिछड़े हैं, और भी कम संगठित हैं और उनकी समुन्नति की चिन्ता करने वाले लोग भी बहुत कम हैं। इस लिये अगर सुझाव हो, तो श्री जयपाल सिंह का यह संशोधन हमें जरूर स्वीकार करना चाहिये।

एक और बात है, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा, श्रीमान। आदिम-जाति-मंत्रणा परिषद् के बारे में यह कहा गया है कि उसे और अधिक अधिकार प्राप्त रहने चाहियें, मामलों की सुनवाई का अधिकार उसे प्राप्त रहना चाहिये। यह सब बातें उसके बारे में यहां कहीं गई हैं। पर मेरा कहना यह है, श्रीमान, कि मंत्रणा परिषद् को तो हमें यही काम सौंपना चाहिये कि वह कबायलियों की उन्नति और कल्याण का काम देखे, अनुसूची में उसे ठीक ही यह काम दिया गया है। अगर राजनीतिक काम देकर हम मंत्रणा-परिषदों का हाथ बांध देते हैं, तो ख्याल कीजिये कि इन परिषदों की क्या गति होगी। आप जानते ही हैं कि कई जगह हमारी ग्राम पंचायतें राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और दाव पेच का अखाड़ा बन गई हैं। अगर वस्तुतः आप कबायली लोगों को उन्नत चाहते हैं, तो मंत्रणा-परिषद को मामलों की सुनवाई का, भूमि सम्बन्धी झगड़ों को निपटाने का अधिकार देकर उसके कमिश्नर को गुरु बना दीजिये। नई अनुसूची में इस सम्बन्ध में जो उपबन्ध रखे गये हैं, वह बिल्कुल ठीक हैं। जहां तक कि उनकी भूमि का सम्बन्ध है, न हम यह चाहते हैं और न प्रान्तीय सरकारें यह चाहती हैं कि उनकी जमीन उनके हाथ से निकल कर गैर कबायलियों के कब्जे में आये। प्रान्तीय सरकारों ने तो ऐसे कानून बना दिये हैं कि उनकी जमीनें दूसरों के हाथ में न पहुंच सकें। हमारे अपने प्रान्त में तो हमने 1937 से भी पहले "छोटा नागपुर टिनैंसी एक्ट" में ऐसा संशोधन कर दिया कि कबायलियों की जमीनें गैर कबायलियों के पास न जा सकें। मूल अनुसूची में तो कई उपबंध ऐसे थे, जिनसे बड़ी कठिनाई पैदा हो सकती थी। उसमें यह कहा गया था कि अनुसूचित क्षेत्र में कोई भी भूमि सरकार कबायली के सिवाय और किसी को बन्दोबस्त नहीं कर सकती है। अनुसूचित क्षेत्रों में केवल कबायली लोग ही तो नहीं रहते। वहां हरिजन भी हैं और अन्य भी कई पिछड़ी हुई जातियां रहती हैं, जो और नहीं तो कम से कम आर्थिक दृष्टि से तो कबायलियों की तरह ही पिछड़ी हुई हैं। तो क्या हमारा मतलब यह है, श्रीमान्, कि उन अनुसूचित क्षेत्रों में जहां हरिजन और अन्य पिछड़ी जातियां भी हैं, वहां भी सरकार जमीन का बन्दोबस्त हरिजनों और अन्य पिछड़ी हुई जातियों के लिये करे ही नहीं। अवश्य ही इस सम्बन्ध में हमें प्राथमिकता देनी होगी इन क्षेत्रों के कबायलियों को और हरिजनों को दोनों को ही। अगर इन सब बातों की व्यवस्था करके उपबन्धों को और लचीला बना दिया जाये तो इस सम्बन्ध में और कुछ कहने की हमें जरूरत नहीं रह जाती है। अवश्य ही सरकार के इस बात का ख्याल रखना होगा और हमें भी इसका ख्याल होगा कि इस सम्बन्ध में प्राथमिकता प्राप्त हो कबायलियों को। अगर उनके पास जमीन नहीं है, तो सबसे पहले जमीन मिलनी चाहिये, वहां उन्हें।

जहां तक कि अनुसूची के अन्य उपबन्धों का सम्बन्ध है, उन पर हमें यहां बहस करने की जरूरत नहीं है। भविष्य में जब अनुसूचित क्षेत्रों का प्रश्न लिया

जायेगा, उस समय प्रान्तीय सरकारें राष्ट्रपति को, जिनको अनुसूचित क्षेत्रों की रचना का अधिकार यहां दिया गया है, ठीक-ठीक सलाह देंगी। अभी तो बहुत ऐसे प्रदेश हैं, जिनको अनुसूचित क्षेत्रों में शामिल नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये लटेहर सब-डिवीजन को लीजिये, जहां से निर्वाचित होकर मैं आया हूं। वहां भी कबायली काफी हैं, पर बाहुल्य है गैर कबायलियों का ही। इन सब पर हमें अभी यहां विचार करने की जरूरत नहीं है। मैं इतना ही कहूंगा कि इन सब बातों को प्रान्तीय सरकारों पर तथा अपने नेताओं पर छोड़ने में, जिन पर कबायलियों की समुन्नति का भार दिया गया है, हमें नुकसान कुछ नहीं होगा।

श्री ए.वी. ठक्कर: अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित इस संशोधित अनुसूची 5 का समर्थन करने में मुझे बड़ी खुशी हो रही है और वह दो कारणों से। एक तो यह कि इस नई अनुसूची में सारी बातें संक्षेप में रखी गई हैं। इस संक्षिप्त कारण में छोटी मोटी दो एक बातों के सिवाय अनुसूची की अन्य सभी बातें ज्यों की त्यों रखी गई हैं। बल्कि हम यह कहेंगे कि अब अनुसूची की परिधि और विस्तृत हो गई है, क्योंकि उन रियासतों के कबायली लोग भी अब इसमें शामिल कर लिये गये हैं जो रियायतें की संघबद्ध हो गई है या प्रान्तों में मिल गई है। राजपूताना के उन प्रदेशों में, मध्य भारत की रियासतों में, विन्ध्य के पहाड़ी प्रदेशों में, हिमाचल में, तथा ट्रावनकोर और कोचीन के पश्चिमी घाटों में बसने वाली कबायली जातियों को मूल अनुसूची में नहीं रखा गया था, पर अब नई अनुसूची में इन सबको शामिल कर लिया गया है। यह एक बहुत बड़ा सुधार है, जिसका असर न केवल लाखों बल्कि भारतीय रियासतों में बसने वाले करोड़ों कबायली लोगों पर पड़ेगा।

सुधार की दूसरी बात इसमें यह की गई है कि आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् की स्थापना का उपबंध इसमें रखा गया है और देश के इतिहास में यह पहला मौका है, जब एक ऐसे परिषद् को अस्तित्व में लाने की बात कही गई है। अब कबायली जातियों के उत्थान के लिये महात्मा गांधी का आन्दोलन चल रहा था, उस समय भी प्रशासन के बारे में उन जातियों की कोई समिति नहीं गठित की गईं थी। अनुसूचित क्षेत्रों के लिये यह पहली बार आदिम-जाति मंत्रणा परिषद् की स्थापना की जा रही है। निश्चय ही उनकी समुन्नति के लिये यह एक बड़ा कदम उठाया गया है। इतना ही नहीं कि आदिम जाति मंत्रणा-परिषद् स्थापित होगी, बल्कि उस परिषद् में तीन चौथाई सदस्य होंगे, कबायली जाति के लोग। अगर ये लोग चाहें तो कबायली लोगों के उत्थान सम्बन्धी विधियों के निर्माण में तथा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित क्षेत्रों की प्रशासन व्यवस्था को चलाने में इस मंत्रणा-परिषद् से पर्याप्त लाभ लाभ उठा सकते हैं। लेकिन आशंका मुझे इस बात की है कि हमारे कबायली बन्धु अभी भी उन उपबंधों से लाभ उठाने में संभवत: संकोच करेंगे और इनसे लाभ न उठा पायेंगे। देश के समतल भागों में बसने वाले कबायलियों को ही नहीं, बल्कि पहाड़ी प्रदेशों में और पहाड़ों पर रहने वाले सुदूरवर्ती हिमाचल प्रदेश और विन्ध्य प्रदेश में बसने वाले और छोटा नागपुर, ट्रावनकोर और कोचीन के पहाड़ों में बसने वाले कबायलियों को भी हमें उच्चस्तर पर लाना होगा। इन पहाड़ी प्रदेशों में अभी भी कितने ऐसे स्थान हैं जहां ईसाई उपदेशक नहीं पहुंच पाये हैं पर, मुझे खुशी है आपको यह बताने में कि हमारे कतिपय नये नये सामाजिक कार्यकर्ता ट्रावनकोर और कोचीन के पहाड़ी इलाकों में भी पहुंच रहे हैं। इन बन्धुओं के

[श्री ए.वी. ठक्कर]

सम्बन्ध में हम लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। एक उदाहरण देकर मैं अपने इस कथन की पुष्टि करूंगा। आसाम-कबायली समिति के साथ जब मैं आसाम के कबायली इलाकों में दौरा कर रहा था, उस समय दौरे के सिलसिले में मैं–समिति के अध्यक्ष श्री गोपीनाथ बारदोलोई, वहां के प्रसिद्ध मंत्री रेवरेंड निकल्स राय तथा समिति के और सभी सदस्य—सन् 1947 में पहली बार लुसाई और नागा पहाड़ियों में पहुंचा। समिति के सभी सदस्य यहां तभी पहली बार आये थे। मेरे जैसे आदमी की बात तो जाने दीजिये, आसाम के प्रधान मंत्री भी इससे पहले कभी उन इलाकों में नहीं पहुंचे थे। इस लिये इन कबायलियों के बारे में जितनी ही अधिक हम जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, वह देश के लिये हितकर होगा और इस तरह हम इन लोगों को अपने में मिलाकर देश को एक कर सकेंगे।

अभी उस दिन माननीय मित्र डॉ. कुंजरू ने मुझसे यह कहा कि "ठक्कर साहब, हमारे लिये आप एक दौरे का प्रबंध क्यों नहीं कर देते कि आसाम के बाहरी इलाकों में, जहां कबायली लोग बसते हैं यानी बालपारा, सादियां और तिरिप के इलाकों में जाकर मैं उनके संबंध में जानकारी हासिल कर सकूं।" उनके इस प्रश्न के उत्तर में मैं यहां यह कहता हूं कि अगर भारत सरकार इस सभा के 40 या 50 सदस्यों की यात्रा का प्रबन्ध कर दे और ये लोग कबायली इलाकों का दौरा करें, तो इससे उनको बहुत जानकारी मिलेगी और कबायलियों की समस्या का हल निकालने में बड़ी आसानी हो जायेगी। मैं तो यहां तक कहूंगा कि माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह को भी अपने प्रान्त बिहार के बाहर के कबायलियों कें बारे में कोई जानकारी नहीं है। दूसरे इलाकों में वह बहुत कम जाते हैं। मैं चाहता हूं कि वह दूसरे इलाकों में भी जायें। बिहार के सिवाय देश के अन्य भागों में जहां भी कबायलियों के सम्बन्ध में जानकारी पाने के लिये वह यात्रा करना चाहें, इसके लिये मैं चाहता हूं कि खर्च वगैरह का इन्तजाम कर दिया जाये। आखिर केवल बिहार प्रान्त के कबायलियों की जानकारी पाने से देश भर के कबायलियों की जानकारी तो नहीं मिल पायेगी। देश में बिहार जैसे अन्य कितने ही प्रदेश हैं, जहां कबायली लोग बसते हैं और उन्हें चाहिये कि उन अन्य प्रदेशों के कबायलियों की भी चिन्ता करें, जहां इनके लिये उत्थान का काम करना बिहार की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है। बिहार के कबायली लोग दूसरे प्रदेशों के कबायलियों की तुलना में बहुत ज्यादा उन्नत हैं। इसके लिये मैं उदाहरण आपके सामने रखूंगा। उरांव और मुंडा ये दो कबायली जातियां हैं और रांची जिले में, जो बिहार के कबायलियों का एक केन्द्र है, मुख्यतः यही दो जातियां पाई जाती हैं। उसी के पड़ौस में सरगुजा नाम की एक रियासत है, जो मध्य प्रान्त में है। सरगुजा में भी उरांव और मुंडा जातियां हैं और यहां की यह जातियां रांची की इन जातियों की अपेक्षा बीस गुना ज्यादा जंगली हैं। इन प्रदेशों में काम करने वाले मित्रों तथा साथी कार्यकर्त्ताओं से और मध्य प्रान्त के सरकारी कर्मचारिवृन्द की ओर से, जो यहां कबायलियों के कल्याण काम में लगे हुए हैं, जो कागजात अभी मिले हैं, उनको पढ़ने से मुझे यह मालूम हुआ है कि सरगुजा की उरांव और मुंडा जातियों के लोग अपने पहाड़ी स्थानों में उत्तर मैदान में आने के लिये किसी भाव पर तैयार नहीं हैं, चाहे उन्हें कितना लोभ क्यों न दीजिये। रांची के उरांव और मुंडों में तथा पाल की रियासत सरगुजा की इन्हीं जातियों में इतना जबरदस्त अन्तर है। दूसरी

एक बात यह भी है कि गत दो वर्षों ही के अन्दर कबायलियों की दशा सुधारने की दिशा में कितनी प्रगति हुई है, इसकी जानकारी लोगों को बहुत ही कम है। दो वर्षों के अन्दर ही यानी 1947 से 1949 के भीतर बम्बई, मध्य प्रान्त तथा बिहार आदि प्रान्तों की सरकारों ने इस काम में आश्चर्यजनक प्रगति की है। इस की जानकारी हममें से बहुत कम लोगों का है। मैं आपको एक बात बताऊंगा और शायद यह कोई गोपनीय बात नहीं है, जिस पर मैं प्रकाश डाल रहा हूं। डॉ. अम्बेडकर एक हफ्ता पहले मुझसे यह पूछ रहे थे कि "क्या कोई प्रान्तीय सरकार कबायली लोगों के उत्थान के लिये कोई व्यावहारिक काम भी कर रही है?" मैंने जवाब दिया "जरूर कर रही हैं। डॉ. अम्बेडकर, आपको इस बात की जानकारी नहीं है कि विभिन्न प्रान्तों में इसके लिये क्या किया जा रहा है।" समय-समय पर मैं इन इलाकों में जाया करता हूं और वहां सामाजिक कार्यकर्ताओं को मशविरा दे आया करता हूं। बम्बई सरकार ने अभी हाल में यह व्यवस्था चालू की है कि प्रान्त के ग्यारह बारह जिलों को, जहां कबायली लोगों की आबादी का प्राधान्य है, पिछड़े हुए लोगों के लिये कई इंस्पेक्टर नियुक्त कर दिये हैं। मध्य प्रान्त की सरकार ने भी ऐसा ही किया है। और कहीं बड़े पैमाने पर किया है। बम्बई और मद्रास के मुकाबिले में मध्य प्रान्त को बहुत पिछड़ा हुआ समझा जाता है। यहां कई रियासतें प्रान्त में मिला दी गई हैं और इन रियासतों की कबायली आबादी शेष समूचे प्रान्त की कबायली आबादी से कहीं अधिक है। पर यहां की सरकार कबायलियों की समुन्नति के लिये पानी की तरह रुपये बहा रही है। क्या आपने सुना है कि कोई प्रान्तीय सरकार कबायलियों की भलाई के लिये स्थापित एक विभाग पर पचास लाख रुपया सालाना खर्च करती है। मध्य प्रान्त की सरकार आज उनके लिये इतना खर्च कर रही है। मुझे मालूम नहीं कि उस प्रान्त के मुख्य मंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल यहां उपस्थित हैं या नहीं, पर मैंने आपके सामने जो कहा है बिल्कुल सच है और इसके लिये मध्य प्रान्तीय सरकार को हमें बधाई देनी चाहिये। एक ही बात मैं और कहूंगा। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के इस सुझाव के संबंध में कि कबायली क्षेत्रों को केन्द्र प्रशासनाधीन कर दिया जाये, अध्यक्ष महोदय ने यह निर्णय दे ही दिया है कि यह सुझाव ऐसा नहीं है कि इस पर गम्भीरता-पूर्वक कोई ध्यान दिया जाये। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह फर्माया है कि कबायली इलाकों को केन्द्र प्रशासनाधीन रखा जाये और उनके शासन का खर्च केन्द्र बरदाश्त करे। मैं पूछता हूं कि केन्द्र को क्या और कोई काम नहीं करना है? क्या उस कम कार्यभार है? केन्द्र पर तो पहले से ही दायित्वों का इतना भार है कि उस कबायली इलाकों के प्रशासन का भार डालना बहुत बड़ा बोझ उसके लिये हो जायेगा। त्रिपुरा मनिपुर, कूच-बिहार तथा भूपाल आदि कितनी रियासतें आज केन्द्र द्वारा प्रशासित हो रही हैं। फिर केन्द्र पर और अधिक भार क्यों लादा जाये?

और फिर यह काम वस्तुत: प्रान्तीय सरकारों का है। यह जरूर है कि इसके लिये निदेश केन्द्र से आना चाहिये और खर्च भी केन्द्र ही को करना चाहिये। आदिम जातियों की समुन्नति के नाम में जो खर्च लगेगा, उसकी एक बड़ी राशि केन्द्र से मिलनी चाहिये। पर उनकी समुन्नति का काम प्रान्तीय सरकारों को ही अपने हाथ में लेना होगा। केन्द्र उसको अपने हाथ में नहीं ले सकता है। केन्द्र के पास तो पहले से ही दायित्वों का बड़ा बोझ है। अन्तर्राष्ट्रीय मसलों को उसे देखना होगा, युद्ध और शान्ति संबंधी प्रश्नों को उसे देखना होगा और प्रान्तों को भी उसे निदेश देना ही होगा। इस लिये केन्द्र पर और दायित्व भार लादना वस्तुत: एक

[श्री ए.वी. ठक्कर]

अपराध करना होगा। अक्सर यह शिकायत की जाती है कि जो संविधान हम बना रहे हैं, उसमें सारी शक्ति केन्द्र अपने हाथ में लेता जा रहा है। यही बात इस सम्बन्ध में भी होगी। फिर आप केन्द्र को क्यों कहते हैं कि वह इस काम को भी अपने हाथ में ले ले? और वह भी उस सूरत में, जब कि यह काम केन्द्र का है नहीं। यह काम ऐसा है जिसके लिये कई संस्थाओं की जरूरत है। यह काम हमें दस वर्ष के अन्दर पूरा कर लेना है। दस साल के बाद तो स्थान-रक्षण की जो व्यवस्था है, उसे बिल्कुल उठा ही देना होगा। आवश्य ही इस व्यवस्था को उठाने के साथ हम उस विभाग को न उठा देंगे जो आदिम जातियों के कल्याणार्थ स्थापित होंगे। इस बात का मुझे पक्का विश्वास है कि यह विभाग बना रहेगा। पर दस साल के बाद स्थान-रक्षण की व्यवस्था को जरूर उठा देंगे। जिसको आज हम उनके आश्वासन के लिये रख रहे हैं। उस समय वह इतनी बड़ी तादाद में विधान मण्डलों में न आ सकेंगे, जितनी संख्या में वह आज आये हैं। इसलिये इस दस साल की लघु अवधि का हमें अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिये और यह तभी हो सकता है, जब कि कई एजेंसियां इस दिशा में काम करें। केवल केन्द्रीय शासन के काम करने से हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

मुझे बड़ी खुशी हो रही है, सभा को यह बताने में कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन नं. 20 का मैं समर्थन करता हूं। इसके द्वारा मूल अनुसूची की सारी बातें संक्षेप में रख दी गई हैं और इस अनुसूची की परिधि पहले से और व्यापक हो गई है। देश के सारे आदिमजातियों की कुल संख्या है, ढाई करोड़। इसमें सभी इलाकों के आदिमजाति के लोग आ गये। यदि राज्यों को हम इस अनुसूची में शामिल करते, तो करीब इनकी एक तिहाई से भी ज्यादा आबादी अपेक्षित रह जाती और खास करके रियासतों के आदिवासी उपेक्षित रह जाते, जिनकी जानकारी में हमें पहली बार हो रही है। रिसायतों के कबायली लोगों की कभी किसी ने चिन्ता नहीं की। उन तक पहुंचने की अनुमति ही पहले कहां मिलती थी? इसलिये मैं कहूंगा कि इस संशोधन 20 द्वारा मूल अनुसूची में बहुत सुधार हो गया है और मुझे आशा है कि भारत सरकार इनकी समुन्नति के लिये काफी धन की स्वीकृति देगी। इस समस्या के पीछे मूल प्रश्न है, खर्च का। केन्द्र आज किस तरह आर्थिक तंगिश में है यह मैं जानता हूं। पर यह स्थिति दो एक साल के अन्दर जाती रहेगी। उसके बाद केन्द्र को प्रति वर्ष कम से कम एक करोड़ रुपये प्रान्तों तथा रियासतों को इस काम के लिये मदद के रूप में जरूर देना चाहिये। मैं यह कहूंगा कि इस काम के लिये प्रान्तों की अपेक्षा रियासतों को अधिक रकम की जरूरत है।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, शुरू में ही मैं यह बता देना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा क्षेत्र प्राप्त है। आदिम-जाति समिति को, जिसने देश भर का दौरा करके यह देखा कि कबायलियों को कैसी कठिन निर्योग्यताओं के अधीन अपना जीवन यापन करना पड़ रहा है, मसौदा समिति को भी इस बात के लिये बड़ा श्रेय प्राप्त होना चाहिये कि उसने योग्यता के साथ एक ऐसी अनुसूची तैयार करके यहां पेश की, जिससे कबायलियों की दशा सुधारने में बहुत बड़ी मदद मिल जायेगी। मैं एक ऐसे प्रदेश से आया हूं, श्रीमान, जो विभिन्न कबायली और आदिवासी लोगों से बसा हुआ है। मैं यह महसूस करता हूं कि इस अनुसूची से देश के दलित वर्गों के समुत्थान के इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ हो रहा है। मैं इस बात का गर्व अनुभव कर रहा हूं कि

अब इस नई व्यवस्था में उन लोगों को भी समुन्नत स्थान मिलेगा, समुन्नति का अवसर मिलेगा, जो शताब्दियों से उपेक्षित होते आ रहे हैं।

मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता हूं। अनुसूची की दो एक बातों के सम्बन्ध में ही कुछ कहूंगा। माननीय मित्र श्री जयपाल ने पैरा 3 के सम्बन्ध में एक संशोधन रखा है कि "अनुसूचित क्षेत्रों" के साथ "अनुसूचित जातियां" शब्द भी जोड़ दिये जायें। प्रान्तों में बहुत सी अनुसूचित जातियां ऐसी हैं, जो एक जगह नहीं बसी हैं, बल्कि तमाम प्रान्त में इधर-उधर बिखरी हुई हैं। विधान मण्डलों में इनको प्रतिनिधान देने के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई है। प्रौढ़ मताधिकार की अपनी योजना के अनुसार ही 75 हजार की आबादी पर एक प्रतिनिधि लिया जायेगा। पर कबायली लोगों की आबादी एक जगह बसी हुई नहीं है। वे लोग हर प्रान्त में यत्र तत्र बिखरे हुए रूप में आबाद हैं इसलिये मैं नहीं समझता कि अपनी योजना के अनुसार इनको विधान मण्डलों में काफी जगह मिल सकेगी। मद्रास की विधान सभा में कुल सदस्य हैं 215 और उनमें कबायली जातियों का केवल एक प्रतिनिधि है। प्रस्तुत अनुसूची के भाग 2 में आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् की स्थापना का उपबंध रखा गया है, जिसमें यह कहा गया है कि मंत्रणा-परिषद् के तीन चौथाई सदस्य प्रान्तीय विधान-सभा से लिये जायेंगे। जब तक यहां कोई ऐसी योजना नहीं बनाई जाती, जिसके अनुसार इन बिखरे हुए कबायलियों को विशेष प्रतिनिधान प्राप्त हो सके, कबायली लोग अधिक संख्या में विधान सभाओं में नहीं पहुंच सकते हैं और न मंत्रणा-परिषद् में पहुंच सकते हैं। इस लिये मेरा यह ख्याल है कि हमें कोई न कोई उपाय ऐसा निकालना चाहिये, जिससे कबायलियों के लिये मंत्रणा-परिषद् में पहुंचना सम्भव हो सके।

यदि मंत्रणा-परिषद् के लिये विधान-सभा से पर्याप्त सदस्य पाना सम्भव न हो, तो एक दूसरा सुझाव यह भी दिया गया है कि मंत्रणा-परिषद् खुद सदस्य वरण कर ले। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि मन्त्रणा-परिषद् के लिये केवल ऐसे ही लोगों का वरण किया है, जो कबायलियों के समुत्थान के लिये काम कर रहे हों, जिनको कबायलियों के साथ पूरी सहानुभूति हो।

मैं जानता हूं कि दक्षिण में बहुत सी कबायली जातियां हैं, मसलन टोडा, पुलिया आदि जातियां जिनकी आबादी धीरे-धीरे घटती जा रही है। अभी हाल में ग्रीस के राजकुमार पीटर जब नीलागरि आये हुए थे, तो उन्होंने टोडा जाति के समुत्थान के मसले का अध्ययन किया था और उनके समुत्थान के लिये कुछ सुझाव मद्रास सरकार को आपने दिये थे। माननीय मित्र श्री ठक्कर बापा ने यह कहा ही है कि उनके समुत्थान के लिये न केवल सरकार को ही काम करना होगा, बल्कि उन सब लोगों को, जिन्हें इनके समुत्थान को वास्तविक चिन्ता है, उनको समुन्नति के लिये उपाय सोचना होगा।

आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् के बारे में यहां यहा कहा गया है, श्रीमान, कि यह परिषद् केवल एक मंत्रणा-दायी निकाय होगा। मैं यह महसूस करता हूं कि कुछ ऐसा उपबंध यहां अवश्य रखना चाहिये कि मंत्रणा-परिषद् की सिफारिशें आदेश मूलक समझी जायें और उन पर सरकार को अमल करना लाजिमी हो। यदि ऐसा उपबंध रख दिया जाता है, तो आदिम-जातियों के समुत्थान के लिये हमारी यह व्यवस्था बहुत कुछ कारगर हो सकेगी।

[श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले]

यहां यह भी कहा गया है, श्रीमान्, कि कबायलियों के लिये स्थान रक्षण की व्यवस्था केवल दस साल के लिये रहनी चाहिए। श्री ठक्कर बापा ने आदिमजातियों के लिय, दलितों के लिये बड़ी सेवाएं की हैं, पर स्थान रक्षण सम्बन्धी व्यवस्था की अवधि के बारे में मैं उनसे सहमत नहीं हूं। कबायलियों की दशा इतनी खराब है कि दस साल के अन्दर तो कोई भी सरकार इनकी दशा नहीं सुधार सकती है, यह असम्भव कार्य है। इसलिये मेरा ख्याल यह है कि उन के हर तरह समुन्नत होने के लिये जो हमने दस साल की अवधि सोच रखी है, वह काफी नहीं है। हमें इस ख्याल को हटा देना चाहिये कि दस साल के अन्दर हम इनकी दशा सुधार सकेंगे।

इन शब्दों के साथ मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तुत की हुई इस अनुसूची 5 का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं।

***श्री जयपाल सिंह:** अध्यक्ष महोदय, यह दुर्भाग्य ही की बात है कि मुझे शुरू में ही अपनी तथा अपनी यात्रा की चर्चा करनी पड़ रही है, ताकि माननीय मित्र श्री ठक्कर बापा के भ्रम को दूर कर सकूं। अभी कुछ मिनट पहले आपने यह फरमाया है कि मैं अपने प्रान्त बिहार की बाबत जानकारी जरूर रखता हूं, पर बिहार के बाहर के आदिम जातियों के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है। आपने यह भी कहा कि मैंने बहुत कम भ्रमण किया है, यह संकेत दिया है कि निजी सौजन्य से तथा अपने पूंजीपति सहायकों की मदद से वह मेरी अखिल-भारतीय यात्रा की व्यवस्था कर देंगे, ताकि पश्चिमोत्तर भारत आदि प्रदेशों की यात्रा कर मैं और बुद्धिमान बन जाऊं, कुछ और जानकारी हासिल कर लूं। मैं समझता था कि वह मुझे अच्छी तरह जानते हैं, पर मैं देखता हूं कि वे मुझे नहीं जानते हैं। मैं उन्हें बताऊं कि कई वर्षो तक मैं मध्य प्रान्त में रह चुका हूं। वहां कोई ऐसी रियासत नहीं है, जहां मैं न गया होऊं। मैं उन्हें यह भी बताऊं कि पूर्वी बंगाल में भी मैं पांच साल तक रह चुका हूं और वहां मेरा एक काम यह भी था कि वहां के अगम्य, अन्तर्वर्ती प्रदेशों में जाकर, निवासियों की दशा का अध्ययन किया करता था। पश्चिमी बंगाल, जहां आदिवासियों की एक बड़ी आबादी रहती है, मेरे घर के बिल्कुल पड़ौस में पड़ता है। साल साल तक मैं जमशेदपुर में रह चुका हूं, जहां पश्चिमी बंगाल तथा अन्य जगहों से काफी आदिवासी आया करते हैं। ठक्कर बापा तो आसाम गये हैं, एक उपसमिति के साथ अभी केवल दो साल पहले। पर मैं उनको बताऊं कि आसाम के हर कबायली प्रदेश में मैं गया हूं और न सिर्फ एक बार, दर्जनों बार। न मद्रास से मैं अपरिचित हूं और न बम्बई से। मैं उन लोगों में नहीं हूं, जो अपनी यात्रा के प्रोग्राम का विज्ञापन किया करते हैं, जैसा कि माननीय ठक्कर बापा या अन्य लोग करते हैं। मैं बिना कोई शोर मचाये अपने आदिवासियों के बीच घूमा करता हूं। और उनको समझने की कोशिश करता हूं और शीघ्रता में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता हूं। गत ग्यारह वर्षो से यथाशक्ति मैंने यह कोशिश की है कि गैर आदिवासियों को यह समझा सकूं कि आदिवासियों में आत्म-सम्मान की कितनी प्रबल भावना है, उनकी सस्कृति में कितनी बारीक बातें हैं। कतिपय विदेशी मानव विज्ञान वेत्ताओं के अधीन रहकर दो साल तक अध्ययन करने का मुझे मौका मिल चुका है। मुझे नहीं मालूम कि श्री ठक्कर साहब को कितनी आदिवासी भाषाओं की जानकारी है।

*श्री ए.वी. ठक्कर: एक की भी नहीं।

*श्री जयपाल सिंह: मुझे खुशी है कि आप इतने सच्चे हैं कि यह स्वीकार कर लिया कि आप एक भी आदिवासी भाषा नहीं जानते हैं।

*श्री ए.वी. ठक्कर: बस एक गुजरात के कबायलियों की भाषा मैं जरूर जानता हूं।

*श्री जयपाल सिंह: उनके जीवन के इस सान्ध्य काल में भी मैं उन्हें यह सुझाव दूंगा कि अगर उनके कार्यकर्त्ता उन्हें अनुसूचित जातियों की, आदिवासियों की या अन्य दलित वर्गों की, जिनके बीच उन्हें काम करना पड़ता है—भाषा सीख लें, तो वह और अच्छा काम कर सकेंगे। मसलन दक्षिणी बिहार तथा छोटा नागपुर के इलाकों में काम करने वाले उनके कार्यकर्त्ता अगर सन्थाली, उराव या मुंडारी भाषायें सीख जायें—और मैं बता दूं कि इन सबको जानता हूं—तो आदिवासी उनको इतने सन्देह की दृष्टि से नहीं देखेंगे, जितना कि वह उनको देखते हैं। गैर आदिवासियों के प्रति वह बड़े ही संदिग्ध रहते हैं और उनका संदिग्ध होना ठीक ही है, क्योंकि गैर कबायली लोगों ने उनके साथ सदा डिकुओं की चाल चली है। 'डिकू' शब्द मेरा निकाला हुआ नहीं है, जैसा कि बिहार के कई मंत्री प्रायः कहा करते हैं। आज करीब अस्सी वर्षों से मेरी पैदाइश के बहुत पहले से यह शब्द अधिकार-अभिलेख में आ रहा है। अतीत काल में गैर आदिवासियों ने वह 2 कारनामे किये हैं कि उनसे आदिवासियों को भारी क्षति पहुंची है।

अवश्य ही, इस बात को भी मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं कि उनमें से श्री ठक्कर सरीखे चन्द्र व्यक्तियों ने इन असहायों की अमूल्य सेवाएं की हैं। मैं अपना गुण-गान करने के लिये यहां नहीं खड़ा हुआ हूं, पर सभा को यह जरूर बता देना चाहता हूं कि भारत का या बाहर का मैंने उतना कम भ्रमण नहीं किया है, जितना कि मेरे माननीय मित्र ने। मैं नहीं जानता कि माननीय श्री ठक्कर साहब ने कितनी बार दुनिया का भ्रमण किया है। मैं कम से कम दो बार सारी दुनिया घूम चुका हूं। पांच साल तक मैं अफ्रीका में रह चुका हूं। पालिनेसिया के आदिवासियों को मैंने देखा है। आज की तथा पूर्ववर्त्ती शासन कालीन आदिवासी सदस्य को मैंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की कोशिश की है, न कि राजनीतिक दृष्टिकोण से, जैसा कि आज देश के बहुत से लोगों की प्रवृत्ति है। अच्छा यह होगा कि हम इस समस्या की तह तक पहुंचने की कोशिश करें, आदिवासियों के मन की बात जानने की कोशिश करें, ताकि हम समझ सकें कि उनसे हम किस तरह वह सब काम करा सकते हैं जो उनकी समुन्नति के लिये हम आवश्यक समझते हैं। आखिर 24.8 लाख आदिवासियों को अपनी गोद में लिये नहीं फिर सकते हैं। उनको अपने पांव पर खड़ा होने की शिक्षा हमें देनी होगी। अपने आदरणीय मित्र की एक भूल और मैं सुधार देना चाहता हूं। उनकी संख्या ढाई करोड़ ही नहीं है, जैसा कि वह फरमाते हैं। उनकी संख्या है, 24.8 लाख। वह ढाई करोड़ से ज्यादा हैं। पर मैं इस संख्या के प्रश्न पर कोई बहस नहीं करना चाहता।

*अध्यक्ष: 24.8 लाख तो ढाई करोड़ से कम होता है।

*__श्री जयपाल सिंह:__ अस्तु, माननीय मित्र श्री वक्तृता में आशा की एक सुनहली झलक अवश्य वर्तमान है। मुझे विशेषत: खुशी इस बात की है कि अपने भाषण में आप राजनीतिक देशबंदी की भावना से सर्वथा ऊपर उठ गये हैं और इस समस्या पर एक महामना व्यक्ति की तरह विचार करने की कोशिश की है, जो उनके और पूर्व वृत्त के सर्वथा अनुरूप है। मूल अनुसूची के सम्बन्ध में जो कतिपय संशोधन आपने भेजे थे, मैं उनको लेकर बड़ा चिन्तित था। किन्तु सौभाग्य से आपने उनको पेश करने का इरादा छोड़ दिया और उनको सर्वथा भुला दिया। अवश्य ही ऐसा करने के लिये आपको साहस से काम लेना पड़ता है। मैं आपकी राजनीतिज्ञता की प्रशंसा करता हूं।

निस्सन्देह यह संशोधित अनुसूची मूल अनुसूची से कहीं अधिक व्यापक है। उसके उपबंधों को और व्यापक बनाने के उद्देश्य से ही मैंने अपने संशोधन रखे हैं और आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर और उनकी मसौदा-समिति कुछ ऐसा यंत्र जरूर निकालेंगे कि मेरे पांचों संशोधनों में सुझाई गई बातों को किसी तरह अनुसूची में समाविष्ट किया जा सके। समूची स्थिति में अब एक बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। न केवल देश स्वातंत्र्य के कारण, बल्कि रियासतों के विलीनीकरण की व्यवस्था के कारण इस आदिमजाति समस्या का समूचा नक्शा ही बिल्कुल बदल गया है। संख्या की दृष्टि से अब आदिवासियों को कहीं भी अपने को असहाय समझने की जरूरत नहीं है। हां, उड़ीसा की समस्या अवश्य ही एक कठिन समस्या है। वह इसलिये नहीं कि समस्या ही वहां अजेय है, बल्कि इसलिये कि वहां की समस्यायें तब तक हल नहीं की जा सकती हैं, जब तक कि धन की तुरन्त उनको मदद न मिले। उत्तम से उत्तम सद्भिप्राय रखते हुए भी उड़ीसा अपने पिछड़े हुए वर्गों के लिये, आदिवासियों तथा दलितों के लिये, अधिक कुछ नहीं कर सकता है, जब तक कि केन्द्र से एतदर्थ उसे कोई विशेष निधि न प्राप्त हो। आसाम के साथ भी यही बात है। मुझे बड़ी खुशी है कि माननीय मित्र पंडित रविशंकर शुक्ल ने अपने यहां अपनी तुच्छ शक्ति के अनुसार इस काम का श्री गणेश कर दिया है। मेरी समझ से पचास लाख की रकम कोई ऐसी बड़ी रकम नहीं है, जिस पर हम उमंग से फूले न समायें। पर मुझे खुशी इस बात की जरूर है कि आपने काम शुरू कर दिया है। इस काम के लिये जो धन-राशि आपने निकाली है, उसके आगे एक शून्य और बढ़ा दें, तो अवश्य ही मैं उनको मुबारकबाद दूंगा। असल में इस काम के लिये जरूरत धन की है और यही कारण है कि कुछ लोगों ने जो इसके लिये एक अवधि सीमा निर्धारित करने का सुझाव दिया है, उससे मैं मतैक्य नहीं रखता हूं। बल्कि मैं तो यह चाहता हूं कि यहां यह रखा ही न जाये कि अमुक अवधि की समाप्ति पर ये प्रावधान प्रवंतन में न रह जायेंगे। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि दस बरस या बीस तक हम आदिवासियों और दलितों को शेष लोगों के स्तर पर लाने के लिये काम करते रहें और उसके बाद राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करके इस बात का अनुसंधान करायें कि कहां तक समुत्थान सम्बन्धी उपायों को सफलता मिली है; उन उपबन्धों को समाप्त कर दिया जाये या उनकी अवधि और बढ़ा दी जाये। दस साल के बाद इन सब बातों का अनुसंधान करके ही ये उपबन्ध समाप्त किये जायें या प्रवर्तमान रखे जायें। कल्पना जगत में रहना और यह सोचना कि दस साल के अन्दर इनकी दशा सुधर जायेगी, एक भारी बेवकूफी होगी। यह काम दस बरस में नहीं पूरा हो सकेगा, इसके लिये और लम्बी अवधि अपेक्षित है। दस साल तो लग जायेंगे आपको इसमें ही कि

आदिवासियों को इस बात पर राजी कर लें कि अपने स्थानों से निकल कर मैदानी इलाकों में आकर वह हम लोगों को सहयोग देने लग जायें। सन्देह का जो वातावरण आज उन लोगों में वर्तमान है, उसे हमें दूर करना होगा। हमें चाहिये यह कि यथार्थवादी की तरह इस समस्या पर विचार करें। इसलिये, अध्यक्ष महोदय, मैं तो यह चाहता हूं कि दस साल की समाप्ति पर स्थिति का अवलोकन किया जाये। उस समय हम लोग तथा देशवासी लोग सभी इस बात का पता लगा सकेंगे कि इनकी समुन्नति के लिये हम क्या कर पाये हैं और तब हम इस बात का फैसला करेंगे कि इन उपबंधों को आगे दस या पन्द्रह साल के लिये चालू रखा जाये या नहीं। मैं इस विचार के सर्वथा विरुद्ध हूं कि इन उपबंधों के लिये दस साल की या अन्य कोई कालावधि निर्धारित कर दी जाये और उस अवधि की समाप्ति कर ये उपबंध प्रभावी न रह जायें।

अगर मद्रास से आये हुए मित्रों की अनुमति हो, तो चन्द शब्द मैं अपनी हिन्दी में—जो मैंने बिहार में सीख रखी है–कह दूं।

श्री जयपाल सिंह: सभापति जी, मैं ड्राफ्टिंग कमेटी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि यह इन्तजाम, यह नया बन्दोबस्त, यह नया शिड्यूल उन्होंने स्वीकार कर लिया है। मैं आप से यही अर्ज करूंगा कि आपकी जो ट्रांसलेशन कमेटी है, वह शिड्यूल ट्राइब्स का उल्था वनजाति न करे। आपके यहां जो उत्था किया गया है, उन सबमें आदिवासी शब्द का व्यवहार नहीं किया गया है। क्यों? मैं आपसे यही सवाल पूछता हूं कि क्यों? आदिवासी का व्यवहार क्यों नहीं किया गया और वन जाति क्यों? हमारी कौम में कई ऐसे हैं, जो वन में नहीं रहते। आप भी पश्चिमी बंगाल में रहती हैं, वहां एक भी जंगल नहीं है, वहां एक पेड़ का निशान भी नहीं है। तो वह वनजाति कैसे हुई? वनजाति तो वही हो सकती है, जो जंगल में आबाद हो। मैं चाहता हूं कि जो आपकी ट्रांसलेशन कमेटी है, उसको आपकी तरफ से फरमान हो जाये कि शिड्यूल्ड ट्राइब का उल्था आदिवासी होना चाहिये। आदिवासी शब्द में इज्जत है। आप उनको क्यों पुराने लफ्जों में गाली देना चाहते हैं, वनजाति यानी जंगलों का रहने वाला। मेरी पहली बात यह हुई।

दूसरी बात मेरी यह है कि यहां कई एक मेम्बरान हैं जो दुनिया को दिखलाना चाहते हैं कि उनका हृदय सहानुभूति खून से बह रहा है। पहले क्या हुआ वह बात आप छोड़ दीजिये। मगर मैं आपके सामने यह अर्ज करना चाहता हूं कि वे यह कहते हैं कि भविष्य में वे अपनी जान देने को तैयार हैं। जब कभी, जनाब, इलेक्शन आते हैं, तो ऐसे ऐसे मैनीफैस्टो और ऐसे-ऐसे कागज़ निकाले जाते हैं।.....

***माननीय श्री धनश्याम सिंह गुप्त** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल)**:** अगर अनुमति हो, तो एक बात कहने के लिये माननीय सदस्य की वक्तृता में हस्तक्षेप करूं? अब इस शब्द का प्रयोग हम बिल्कुल नहीं कर रहे हैं। इस शब्द को हमने हटा दिया है।

***श्री जयपाल सिंह:** किस शब्द को?

***माननीय श्री धनश्याम सिंह गुप्त:** 'वन जाति' शब्द को, जिसका आपने अभी हवाला दिया है। हमारी कठिनाई यह है कि हम मसौदे का अनुवाद कर रहे हैं, न कि उसका सुधार।

*__श्री जयपाल सिंहः__ मुझे खुशी है कि आप में अब अधिक बुद्धि आ गई है।

*__सरदार भूपेन्द्र सिंह मान__ (पूर्वी पंजाब : सिख): इसकी जगह नया शब्द क्या रखा गया है?

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ अब हम 'जन जाति' शब्द प्रयोग में ला रहे हैं।

*__अध्यक्षः__ इसके लिये एक दूसरा शब्द है 'आदिमजाति', जो बिहार में काम करने वाले एक संगठन या निकाय के लिये प्रयुक्त किया जा रहा है।

__श्री जयपाल सिंहः__ खैर जो भी हो, आपने मेरे परामर्श को सुन लिया है। मेरे विचारानुसार तो आदिवासी ही होना चाहिये। अगर आप सैंट्रल प्राविंसेज और बम्बई की तरफ जायें तो वहां आप देखेंगे कि बहुत ही जगहें है, जहां आदिवासी सेवा मण्डल वगैरह काम कर रहे हैं। इस शब्द का बहुत दिनों से व्यवहार हो चुका है। इस शब्द को सब आदिवासी समझते हैं। तो अगर आप इस शब्द का व्यवहार करें, तो में कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि इसके कोई गलत माने हो सकते हैं। मेरे विचार में तो आदिवासी ही होना चाहिये। मैं आदिवासी हूं। मैं अपने को आदिवासी कहता हूं। तो फिर आप मुझे क्यों दूसरा नाम देंगे। मैं बड़े हर्ष से आदिवासी शब्द का स्वागत करूंगा।

इसके बाद, सभापति जी, मैं आपसे कह रहा था कि कई आदमी हैं कि जिनका दिल जलता है। क्यों? आदिवासियों की सेवा करने के लिये। ऐसे ऐसे जितने सदस्य हों, चाहे यहां विधान-परिषद् में या इसके बाहर, उनसे मैं यही कहूंगा कि काम ज्यादा कीजिये और बात कम कीजिये। जब तक अपने दिल में, अपने हृदय में, जिस जाति के मध्य में आप सेवा करते हैं, उसका आदर सम्मान नहीं करते हैं, तो आप सेवा करने के काबिल नहीं हैं। जिस प्रकार से छह हजार मील से अंग्रेज़ हिन्दुस्तान का पुनरुत्थान करने के लिये यहां पधारे थे, उस किस्म का उद्देश्य अगर आपके दिल में है, तो आप आदिवासी इलाकों से निकल जाइये। "Physician, heal thyself".

यही मैं आपसे कहूंगा। पहले अपने को सुधार लीजिये, फिर दूसरों को सुधारने की चिन्ता कीजिये।

सभापति जी, इसके अलावा और भी बहुत सी बातें हैं।

*__अध्यक्षः__ मगर आप हिन्दी में क्यों चले गये? मैंने समझा था कि कुछ मद्रासी भाइयों के लिये आपको कोई खास बात हिन्दी में कहनी थी।

*__श्री जयपाल सिंहः__ चन्द शब्द मैं मद्रासी जबान में भी कहना चाहता हूं, श्रीमान।

*__अध्यक्षः__ कुछ जरूरत नहीं। वह मान लेंगे कि आप कई भाषायें जानते हैं।

*__श्री जयपाल सिंहः__ चन्द शब्द अपनी भाषा में कह कर, जो कि इस देश की प्राचीनतम भाषा है, मैं अपनी बात समाप्त ही करने जा रहा था। यह देश

हम लोगों के प्राचीनतम वर्ग का ही देश है और श्री मुंशी को पाकर हम लोग बहुंत खुश हैं। इस अनुसूची 5 का समर्थन मैं अपनी वेश भूषा यानी धनुष वाण, व्याघ्र चर्म, कर्ण कुण्डल, ढोल और वंशी धारण करके नहीं कर रहा हूं, जिससे श्री मुंशी को निराशा हुई होगी। मुझे खेद है कि मैं उनको निराश कर रहा हूं। पर अगले जाड़े में उस संगठन को शिक्षा प्रदान करके, जिसके मुख्य जन्मदाता श्री मुंशी हैं, मैं प्रसन्नता लाभ अवश्य करूंगा। उन्होंने मुझे आमंत्रण भी दे रहा है कि नर्तकों का एक दल लेकर मैं पश्चिमी भारत में पहुंचूं। उस मौके पर मैं यह दिखा दूंगा। कि आदिवासी लोग शेष भारतवासियों को क्या सीख दे सकते हैं।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): मैं यह जानना चाहता हूं कि माननीय सदस्य ने क्या कभी आदिवासी वेश भूषा धारण भी की है?

*__श्री जयपाल सिंह:__ आखिर मि. दास यह क्यों समझते हैं कि मैं वह पोशाक कभी पहनता ही नहीं, जिसे हमारी जाति वाले पहना करते हैं। सहयोग तभी होगा, जब उभय पक्ष परस्पर सहयोग देने पर राजी हों। अविश्वास और शंका की जो भावना पहले दोनों तरफ वर्तमान थी, वह दोनों ही तरफ से उठ जानी चाहिये। गैर आदिवासियों को मित्र के रूप में आदिवासियों के पास पहुंचना चाहिये। और फिर आदिवासियों को भी अपना समुचित स्थान, संविधान द्वारा देश के राष्ट्रीय जीवन में जो उनको सम्मान का स्थान प्राप्त होने जा रहा है, उसे ग्रहण करना चाहिए। मैं जानता हूं, प्रत्युत्तर में आदिवासी लोग अवश्य सद्भावना प्रदर्शित करेंगे। गत आम चुनाव के समय दौरे में चक्रधरपुर में, अध्यक्ष महोदय, मैं आपको याद दिलाऊं, आपने कहा था कि गत छह हजार वर्षों से आदिवासी लोग अपनी मर्यादा के लिये, अपने आत्म सम्मान के लिये लगन के साथ संघर्ष करते आ रहे हैं। अब आगे हमेशा चिरकाल तक वह यही कोशिश करेंगे कि भारत के सम्मान को क्षति न पहुंचने पाये। पांचवीं अनुसूची पर आये हुए इन संशोधनों का मैं बड़ी खुशी से समर्थन करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ क्या अभी और कई भाषणों की जरूरत है?

*__श्री विश्वनाथ दास:__ सन् 1934 के विधान को तोड़ने के प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद मैं सन् 1937 का चुनाव लड़ा था। चुनाव हो जाने के बाद कांग्रेस का आदेश मिला कि हम लोग रूढ़ि भंग करने का काम प्रारम्भ कर दें। उसके बाद हमारी दूसरी मंजिल आई उस समय, जब सन् 1935 के विधान को तोड़ने के उद्देश्य से हम प्रान्तों में शासनारूढ़ हो गये और अपने मंत्रिमण्डल बना लिये, पर आज हमें यह देखकर घोर आश्चर्य हो रहा है कि सन् 1935 के विधान से हम अब अधिक चिपकते जा रहे हैं। यही नहीं, बल्कि आज तो ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो सन् 1935 के अन्य उपबंधों को रखना ही काफी नहीं है। आज हम सन् 1935 के विधान के विधान उपबंधित अंशत: अपवर्जित क्षेत्रों को भी रखने में खुश हो रहे हैं। इन सब बातों से दुखी हो कर मैं इस सोच विचार में पड़ गया हूं कि पहले हमने जो कदम उठाया था, वह क्या गलत और बुद्धिमत्ताशून्य था? आज हम सन् 1935 के विधान के वृहद् अंश को उठाकर ज्यों का त्यों यहां रख रहे हैं। हमारा यह काम ठीक है या गलत; इसका निर्णय मैं देश की भावी संततियों पर छोड़ता हूं। पर मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि जिस तरह हम यहां चल रहे हैं अधिकांश विषयों के सम्बन्ध में हम जो सन् 1935 के विधान के महत्वपूर्ण अंशों को यहां स्थान दे रहे हैं, उससे मैं किसी

[श्री विश्वनाथ दास]

तरह खुश नहीं हूं। चालीस साल तक लड़ने के बाद बड़ी मुश्किलों से तो हम कहीं उस साम्प्रदायिक विष को दूर कर पाये हैं, जो सन् 1909 के मारले मिण्टो सुधार द्वारा तथा बाद के सन् 1919 और 1935 के अधिनियमों द्वारा भारतीय राजनीति में प्रविष्ट कराया गया था। इस बुराई को दूर करने के लिये हमें घोर संघर्ष करना पड़ा है, बड़ी मुश्किलें झेलनी पड़ी हैं। इस बुराई को दूर करने में देश को और हम को बड़ी क्षति उठानी पड़ी है। देश दो भागों में—पाकिस्तान, हिन्दुस्तान—बंट गया, तब कहीं जाकर यह बुराई दूर हो पाई।

पर हम अब क्या कर रहे हैं? आदिमजाति मंत्रणा-परिषदों का अनुसूचित क्षेत्रों का संविधान में उपबन्ध करके हम एक नया जहर, एक प्रजातीय जहर पैदा कर रहे हैं। मैं पूछता हूं, श्रीमान् इस उपबंध से लाभान्वित कौन होगा? जहां तक हो सका है स्थिति के निराकरण के लिये हम ने भरपूर कोशिश की है। यथा शक्ति अपने आदर्शों पर डटे रहने की हमने कोशिश की है। हमारी राष्ट्रीय महा सभा दुनिया का एक प्रबलतम साम्राज्य विरोधी संगठन मानी गई है। रंग भेद के विरुद्ध संघर्ष को करने वाली एक महत्तम संस्था दुनिया में यह मानी गई है।

मताधिकार पाने के लिये अमरीका के निग्रो आज सौ साल से भी ज्यादा अरसे से लड़ते आ रहे हैं। पर अमेरिका के अन्य नागरिकों के समान उन्हें अभी तक पूर्ण मताधिकार नहीं प्राप्त हो पाया है। जब अमेरिका की यह हालत है, तो अन्य राज्यों की तो बात ही जाने दीजिये। जहां उन्हें असंख्य यातनायें भुगतनी पड़ रही हैं।

हमने डंके की चोट से यह ऐलान कर दिया है कि भारत का प्रत्येक नागरिक, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, बिना किसी जाति, वर्ग या सम्प्रदाय भेद के बराबर समझा जायेगा और यहां नागरिकता के समान अधिकार सबको प्राप्त रहेंगे। हमने इतने ही से सन्तोष नहीं किया, बल्कि देश के लाखों या यों कहिये कि करोड़ों लोगों को, जिन्होंने मताधिकार पाने की कभी कल्पना भी नहीं की थी, फौरन मताधिकार दे दिया। प्रौढ़ मताधिकार की व्यवस्था द्वारा हमने देश के सभी लोगों को, सभी कबायलियों को मताधिकार दे दिया है। इतना ही नहीं, संविधान में मूल अधिकारों को स्थान देकर हमने ऐसे अल्पतम अधिकारों और विशेष अधिकारों की प्राप्ति सुनिश्चित कर दी है, जो मनुष्य के लिये सर्वथा आवश्यक हैं। मैं यह आपसे अपील करता हूं, श्रीमान्, कि इतना सब कर देने पर अब हमारे लिये क्या यह उचित है कि अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों का, मंत्रणा-परिषदों का तथा इसी तरह की अन्य बातों का उपबंध करके हम वर्ग भेद, स्थान भेद पैदा करें? ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने तो कबायली जातियों को तथा अनुसूचित क्षेत्रों को यहां सैकड़ों वर्षों तक इसलिये रखा कि दुनिया के सामने बतौर नुमाइश के वह उन्हें पेश करना चाहते थे, ताकि अपना यहां बने रहने का औचित्य बता सकें। पर इस बुराई को बनाये रखने का, उसे स्वामित्व प्रदान करने का अब हमें क्या प्रयोजन रह गया है? अब इनको रखने की कतई कोई जरूरत नहीं है। हम इस कार्यक्रम को पूरा करने का वायदा कर चुके हैं कि कबायलियों का, दलितों का, देश की आम जनता का, सबका-जीवन स्तर हम ऊंचा करेंगे और उनको सभ्य बनायेंगे। फिर इन कबायली इलाकों को, मंत्रणा-परिषदों और इसी तरह की अन्य बातों को संविधान

में रखने की अब क्या जरूरत है? मैं अपील करता हूं कि इस सम्बन्ध में सभा सोच समझ कर तर्क से काम ले।

माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह ने यहां यह शिकायत की है कि उनके परोक्ष में इस मसले पर परामर्श करने के लिये सदस्यों की गोष्ठियां हुई हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि इस तरह की कोई बात नहीं हुई है। मैं उनसे आग्रह करूंगा कि इस अविश्वास-भाव का परित्याग कर दें। जिन लोगों के प्रति वह ऐसा अविश्वास कर रहे हैं वह ऐसे लोग नहीं हैं जिन पर अविश्वास करने की कोई गुंजाइश हो। इन लोगों ने तो यथाशक्ति प्रयास इसी बात का किया है। सभी सम्बन्धित हितों को संतोष हो सके और ऐसी योजना उपस्थित की जाये, जो यहां सबको मान्य हो जाये। यही कारण है, जिसके लिये कि खुद माननीय ने मसौदा समिति को धन्यवाद दिया है, ठक्कर बापा को धन्यवाद दिया है जिनसे बढ़कर कबायली लोगों के हितों का अनन्य सेवक मिलना मुश्किल है। दो व्यक्तियों की तुलना करना एक बड़ा अप्रिय या घृणित काम है पर मुझे कोई चारा नहीं रह गया है। माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह की तुलना मैं ठक्कर बापा से नहीं करूंगा। मेरे लिये या किसी के लिये भी यह एक हास्यास्पद बात ही होगी कि किसी एक व्यक्ति को वह चाहे कितना ही महान क्यों न हो, हम जहाड़ी जातियों का एक मात्र प्रतिनिधि मान लें। हमारे माननीय मित्र आवास करते हैं, आलीशान इम्पीरियल होटल के तिमंजिले पर एक सुसज्जित फ्लैट में। ठक्कर बापा से आप जैसे व्यक्ति की तुलना करना अशोभनीय मालूम पड़ता है।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य से मैं यह कहूंगा कि व्यक्तियों का उल्लेख यहां न करें।

***श्री विश्वनाथ दासः** मैं समझता हूं, श्रीमान्, और ऐसा नहीं करूंगा। पर ठक्कर बापा की निन्दा के प्रति अपना आक्रोश मैं अवश्य व्यक्त करूंगा।

मसौदा समिति ने जो मसौदा इस सम्बन्ध में हमारे सामने रखा है, उसके लिये मैं कहूंगा, श्रीमान, कि समिति को मैं कुछ अधिक धन्यवाद नहीं दे सकता हूं। पर मैं यह जरूर मानता हूं कि एक सर्वमान्य योजना तैयार करने में समिति को जो सुबह से शाम तक विभिन्न व्यक्तियों, हितों और वर्गों के पास दौड़कर जाना पड़ा है, उनकी हाजिरी देनी पड़ी है, इसमें उसे बड़ी कठिनाई और असुविधायें भुगतनी पड़ी हैं।

इन अनुसूचियों के अधीन कबायली लोगों की समुन्नति के लिये हमने कुछ पर्याप्त उपबंध रखे हैं, यह संतोष मुझे नहीं हो रहा है। इन लोगों को और सुविधायें उपलब्ध होनी चाहियें। सन् 1940 में उड़ीसा में जो घटनायें घटी थीं, वह मुझे याद हैं। सवार और पन (जिसको यहां आपने आदिवासी माना है) जातियों के आपसी मतभेद को लेकर जो फिसाद पैदा हुआ था, वह मुझे याद है। उस फिसाद में सैकड़ों की जानें गईं और ऐसे समय जब हम जेलों में बन्द थे और वहां प्रान्तीय शासन चल रहा था, भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 93 के अधीन उनके मतभेद का फल यह हुआ था कि कबायलियों (सवार जाति वाले) और ईसाई मत को अपनाने वालों (पन जाति वाले) में लड़ाई हो पड़ी थी। सवार जाति वालों का यह विश्वास था कि ईसाई धर्म को अपना लेने वाले पन लोग उनके शोषक

[श्री विश्वनाथ दास]

हैं और उनको उनके धन, भूमि, सम्पत्ति से वंचित कर रहे हैं। इस संघर्ष का अन्ततोगत्वा परिणाम यह हुआ कि हजारों सवार जाति वाले जेलों में डाल दिये गये। क्या बिना भेदभाव किये सभी कबायलियों को आप सुविधायें दे देना चाहते हैं? जो उपबंध आप रख रहे हैं, उनसे तो सभी कबायलियों के लिये अपने को आदिवासी घोषित करने की सुविधा मिल जायेगी और ये सब ही आदिवासी होने का दावा करने लगेंगे। कुछ दिन हुए बिहार के एक सज्जन मेरे पास पहुंचे और एक चुनाव सम्बन्धी प्राधिकारी के खिलाफ यह शिकायत की कि वह उनका नाम आदिवासी सूची में नहीं रखता है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ क्या मैं इन हरिजन सज्जन का नाम जान सकता हूं, जिनका आप यहां हवाला दे रहे हैं?

*__अध्यक्ष:__ इसकी जरूरत नहीं है।

*__श्री विश्वनाथ दास:__ इस घटना से सभा यह समझ सकती है कि जाल में फंसाने के लिये चारा किस तरह फेंका जाता है। यहां इस बात के लिये रास्ता खुला रख छोड़ा गया है कि गैर आदिवासी भी आदिवासी होने का दावा कर सकें। माननीय मित्र को चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। मेरा कहना यही है कि इन उपबंधों से गैर आदिवासियों के लिये यह सम्भव हो जायेगा कि अपने को आदिवासी कह कर उनको प्राप्त होने वाली सुविधाओं का वह दावा करें।

माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह ने 6 हजार वर्ष पूर्व के इतिहास का यहां उल्लेख किया है। उनसे इतिहास पर बहस करने मैं नहीं आया हूं। इतिहास और पुराणों की जो बात आप कर रहे हैं, उससे हम सब भी परिचित हैं। इसलिये एक दीर्घकाल पूर्व के निकाले गये सिद्धान्तों की चर्चा करना यहां गलत है। आदिवासी और अनादिवासी प्रश्न को यों ही न छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वैसा होने से राजनीतिज्ञ लोग इससे अपना स्वार्थ साधन करने लग जायेंगे। उड़ीसा में ब्राह्मणों का एक वर्ग है, श्रीमान्, जो अपने को आर्य अर्थात् जंगल ब्राह्मण कहता है। उनको आप आदिवासी मानेंगे या गैर आदिवासी? आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच अन्तर करने से जो मुसीबतें पैदा होंगी, उनसे मुल्क को आखिर बचाया क्यों न जाये? मैंने ठक्कर बापा से आग्रह किया है कि इस विपत्ति जनक 'आदिवासी' पद संहति से देश को बचाया जाये। जब तक ऐसी पदसंहतियों को रखेंगे, उन्हें मान्यता देंगे, तब तक वर्गों में अन्तर और भेदभाव बढ़ता ही जायेगा और आर्य या जंगल ब्राह्मण जैसे वर्ग यही कोशिश करेंगे कि आदिवासी में उनको शुमार किया जाये। इसलिये मैं श्री जयपाल सिंह से, ठक्कर बापा से, यही अनुरोध करूंगा कि पार्थक्य की मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करने वाले उन अन्तरों को स्थायी न बनाया जाये। यह एक अभिशाप है, जिसने भारत को अब तक विभक्त रखा है।

मैं खुद यह दावा करता हूं, श्रीमान्, कि श्री जयपालसिंह की तरह मैं भी आदिवासी हूं, इस देश का मूल वासी हूं। अगर इनको जमीन की जरूरत है, अवश्य इनको जमीन दी जाये। अगर इनकी समुन्नति सम्बन्धी योजनाओं के लिये धन की

जरूरत है, तो केन्द्रीय शासन को धन देना चाहिए। मैं केन्द्र से यह आग्रह करूंगा कि दलित एवं पीड़ित वर्गों की उन्नति के लिये जो भी धनराशि अपेक्षित हो, उसको वह मंजूर करे। यह सब किया जाये, पर अतीत कालीन या आज कल होने वाले अत्याचारों की बारम्बार यहां भर्त्सना करना और साथ ही इस भेदभाव को स्थायी भी बनाना सर्वथा निष्प्रयोजन है। मैं श्री जयपाल सिंह से तथा उनके विचार वाले सभी लोगों से यह अपील करूंगा कि वे अपने प्रभाव का उपभोग करें, देश की भलाई में और देश को इस पार्थक्य की मनोवृत्ति से बचाने में।

बस एक बात और मुझे कहनी है, श्रीमान्। इस अनुसूची के उपबंधों के समर्थन में मैंने इतना सब कुछ तो कहा, पर अब चन्द बातें इसकी आलोचना में भी कहूंगा। हमने केन्द्र द्वारा मनोनीत राज्यपालों को ही रखने का उपबन्ध नहीं किया है, बल्कि राजप्रमुखों को भी रखने का उपबंध किया है, जो पैतृक आधार पर पीढ़ी दर पीढ़ी चलते जायेंगे और हटाये न जा सकेंगे। अपनी स्थिति और सम्पत्ति के कारण जीवन भर के लिये स्थायी शासक बने रहने के कारण, इनको महती प्रतिष्ठा प्राप्त रहेगी। बड़ा प्रभाव प्राप्त रहेगा; जिसकी आप उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इन शक्तिशाली पदाधिकारियों के हाथ में आप महत्वपूर्ण अधिकार दे रहे हैं। उनको इतने अधिकार देकर आप उन्हें इस बात का मौका देंगे कि आदिवासियों को मिला कर वह अपने प्रभाव को और बढ़ा सकें। किसी राजप्रमुख पर लांछन लगाने के हेतु मैं यह सब नहीं कह रहा हूं। अपने उड़ीसा प्रान्त का जो मुझे अनुभव है, उसके आधार पर मैं यह कह रहा हूं। वहां कुछ शासकों ने आदिवासियों से मिलकर वहां की स्थिति से तथा आदिवासियों की प्रजातीय और साम्प्रदायिक भावना से लाभ उठाकर कांग्रेस तथा शासन के विरुद्ध एक मोर्चा कायम करने की कोशिश की है। इसलिये मैं यह कह रहा हूं कि जो अधिकार आज आप राजप्रमुखों को दे रहे हैं, उनके बल पर वह बड़ी खुराफात पैदा कर सकते हैं। जवाब में आप यह कह सकते हैं कि राष्ट्रपति की स्वीकृति का उपबंध जब रखा गया है, बिना उसकी स्वीकृति के राजप्रमुख कुछ नहीं कर सकता है। इसलिये वैसी कोई क्षति नहीं पहुंच सकती है, जिसकी कि आशंका यहां की जा रही है। पर मैं यह कहता हूं कि आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् की स्वीकृति हो जाने पर राष्ट्रपति के लिये अगर यह असम्भव नहीं तो बड़ा कठिन तो हो ही जायेगा कि वह मंत्रणा-परिषद् की सिफारिशों को नामंजूर करे। ऐसी हालत में मैं यह अनुभव करता हूं कि ऐसे महत्वपूर्ण अधिकारों को राजप्रमुखों के हाथ में छोड़ना ठीक न होगा।

अपने प्रान्त में मैं यह जानता हूं कि भूमि के हस्तान्तरण के बारे में जो वर्तमान विधि है, उसे गैर-आदिवासियों के हक में बड़ा कठोर बना दिया गया है। जब ऐसी बात है, अर्थात् जब जनता के प्रतिनिधि मंत्रीगण ही भूमि, न केवल भूमि के हस्तान्तरण के बारे में, बल्कि भूमि के स्वामित्व के बारे में भी पहाड़ी जातियों के हित-रक्षार्थ ऐसी सुनिश्चित और महत्वपूर्ण कार्यवाही स्वत: कर रहे हैं, तो फिर संविधान में ऐसा खण्ड क्यों रखा जाये, जिसके अधीन वर्तमान अधिनियमों के विषय में भी हस्तक्षेप किया जा सकता हो। आप ऐसा क्यों करें? मैं मसौदा समिति से पुन: यह कहूंगा कि ऐसा करना अनावश्यक है, अवांछनीय है। ऐसी हालत में, इस प्रस्ताव की कुछ बातों से चाहे मुझे कितनी भी सहानुभूति क्यों न हो, इसका विरोध करने के सिवाय मुझे और कोई चारा नहीं है।

*श्री के.एम. मुंशी (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस बहस में कतई दखल नहीं देना चाहता था। पर माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह की दो बातों की वजह से मुझे बोलना पड़ रहा है। उन्होंने यह शिकायत की है कि हममें से कुछ लोगों ने, जिन्हें इस समस्या से दिलचस्पी है, इस पर विचार करने के लिये जो गोष्ठी बुलाई थी, उसमें उन्हें न बुलाया गया और न उनकी राय ली गई। उनको यह मानना होगा कि उनका यह दोषारोप अनुचित है। बिहार के श्री यदुवंश सहाय को हमने उन्हें बुलाने के लिये तीन बार भेजा था। उन्होंने श्री यदुवंश सहाय से तो यह कह दिया कि अभी आता हूं, पर आये आप कतई नहीं।

दूसरी बात आपने यह कही है कि चूंकि वह आदिवासी वेशभूषा में धनुष वाण धारण कर यहां नहीं आये, इससे मुझे बड़ी निराशा हुई है। अवश्य ही मुझे बड़ी निराशा हुई है, पर इस कारण से नहीं कि वह आदिवासी पोशाक में यहां नहीं पधारे हैं, बल्कि इसलिये कि अनुसूची के इस नये मसौदे को जिसके द्वारा मूल अनुसूची में बहुत सुधार कर दिया गया है, उन्होंने अपना पूरा हार्दिक समर्थन नहीं किया है। सभा के कई सदस्यों ने जिसमें कई प्रान्तीय मिनिस्टर भी शामिल हैं, जो जैसा कि ठक्कर बापा ने बताया है, बड़े पैमाने पर सुधार-कार्य कर रहे हैं, यह महसूस किया कि मूल अनुसूची सन्तोषजनक नहीं है। इसलिये अनुसूची में परिवर्तन करना दो कारणों से आवश्यक समझा गया। पहला कारण तो यह है कि हमने समूचे देश के लिये एक तरह की संहिता निर्धारित कर रखी है, पर कबायलियों की समस्या सर्वत्र एक सी नहीं है। एक प्रान्त में उनकी समस्या कुछ है तो दूसरे प्रान्त में कुछ है। यहां तक कि एक जिले में भी उनकी कुछ समस्या है, तो दूसरे जिले में कुछ और। सुतरां मूल अनुसूची को ज्यों का त्यों रखने से उनके हितों को नुकसान पहुंचता। दूसरा कारण यह है कि भाग 3 की रियासतें भी अब इस योजना में शामिल की जा रही हैं। पुराने मसौदे का सम्बन्ध केवल प्रान्तों से था। इसलिये समूचे देश के लिये एक तरह की योजना तैयार करना जरूरी था, जो सभी अनुसूचित जातियों पर समान रूप से लागू होता हो।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, मूल अनुसूची में यह सब संशोधन करने का हमारा मूल उद्देश्य वही है, जो माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह का है, अर्थात् यह कि अनुसूचित जातियों का जीवन आगे चलकर उसी स्तर पर लाया जा सके, जिस पर कि देश के अन्य लोगों का है और ये लोग राष्ट्र में घुल मिल कर एक हो जायें। इनके सामाजिक जीवन में और यहां के अन्य लोगों के सामाजिक जीवन में कोई अन्तर न रह जाये। जहां तक इस उद्देश्य का सम्बन्ध है, हम सब एकमत हैं। पर माननीय मित्र श्री जयपाल ने उस बैठक में आने की क्यों नहीं कृपा की, जिसमें इस प्रश्न पर विचार करने के लिये उन्हें आमंत्रित किया गया था, इसे मैं समझ सकता हूं। वस्तुतः इस उद्देश्य की प्राप्ति वह जिस तरीके से करना चाहते हैं, वह उससे सर्वथा भिन्न है, जिसे कि इस सभा ने और राष्ट्रीय महासभा ने अपना रखा है। माननीय मित्र की यह विचारधारा दो बातों पर आधृत है। पहली बात है तथ्य सम्बन्धी प्रश्न, जिस पर हम दोनों में सर्वथा मतैक्य नहीं है। दूसरी बात यह है कि हम दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है। मैं पहली बात को लेता हूं।

उनका ख्याल यह है कि सभी कबायली जातियां, जो हर प्रान्त में तीस से लेकर पचास वर्गों में विभक्त हैं और जिन सबको वह आदि वासी कहते हैं, वह

सब एक समुदाय के अंग हैं। अपने प्रान्त के बारे में मैं जो कुछ जानकारी रखता हूं, उसके आधार पर मैं यह कहूंगा कि उनका यह ख्याल बिल्कुल गलत है। हर प्रान्त में अपनी अलग अनुसूचित जातियां हैं, जो नस्ल के ख्याल से, भाषा के ख्याल से, सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों के ख्याल से एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। एक जाति दूसरे से बिल्कुल भिन्न है और साम्य की कोई बात इनमें नहीं पाई जाती है। हमारे अपने प्रान्त में ही पांच कबायली जातियां हैं, दुब्ला, भील, कोली, बरदा तथा गोंद-और संविधान के अनुसार ये सभी अनुसूचित जाति मानी जायेंगी। मैं इन जातियों के बारे में कुछ जानकारी जरूर रखता हूं। ये सब एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। मुझे विश्वास है कि कोई भी इस बात से सहमत नहीं होगा कि बिहार के सन्थाल, बम्बई के गोंड या भील और आसाम के नागा ये सब एक नस्ल के हैं और इनका धार्मिक तथा सामाजिक आचार विचार एक है। ये भिन्न-भिन्न सभ्यताओं को मानते हैं और भिन्न-भिन्न युग में इनका प्रादुर्भाव हुआ है। इन सबको शेष देश के स्तर पर लाने के लिये हमें भिन्न-भिन्न बातों का ख्याल रखना होगा। इन सबको आदिवासी कहना और एक समुदाय का मानना न केवल असत्य बात ही होगी, बल्कि ऐसा करना तो इन जातियों के लिये सर्वथा ही अहितकर होगा। इसलिये, समाज में इनको समुचित स्थान दिलाने के हेतु यह आवश्यक है कि उनकी समुन्नति के लिये भिन्न-भिन्न उपाय अपनाये जायें। हम लोगों में तथा माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह के दृष्टिकोण में यही मुख्य अन्तर है। इस देश में आदिवासी लोग एक सुसम्बद्ध समूह या वर्ग के रूप में नहीं हैं कि कोई आदमी उनकी ओर से बोल सके या उनको एक समूह के रूप में सुसम्बद्ध करने के लिये कोई आन्दोलन चला सके। अगर ऐसी कोई नीति यहां बरती जाती है, तो उससे खुद आदिवासियों का ही बड़ा अहित होगा।

दूसरी बात जिस पर हम लोगों में सैद्धान्तिक मतभेद है, वह यह है। हम यह चाहते हैं कि देश की अनुसूचित जातियों को उन जातियों के विघातक आघात से सुरक्षित रखा जाये, जिनकी संस्कृति उनकी संस्कृति से समधिक उन्नत और प्रभावशाली है और उनको इस बात के लिये उत्साहित किया जाये कि वह अपने जातीय जीवन और संस्कृति को और समुन्नत करें। पर इसके साथ ही हम यह भी चाहते हैं। कि अनुसूचित जातियां अपने देश के राष्ट्रीय जीवन में भी अधिकाधिक हाथ बटाती जायें। यह न होना चाहिये कि राष्ट्र से असम्बद्ध होकर ये लोग पृथक्-पृथक् वर्गों के रूप में या छोटे-छोटे जनतन्त्र के रूप में स्थायी होकर यहां रहें। हम चाहते यह हैं कि अपनी स्वकीय संस्कृति का विकास करते हुए ये लोग राष्ट्र में मिलकर एक हो जायें। पर श्री जयपाल सिंह के संशोधनों से तो यह मालूम पड़ता है कि वह चाहते ये हैं कि वे लोग छोटे-छोटे असम्बद्ध वर्ग के रूप ही में बने रह कर स्वतंत्र रूप से अपना विकास करें और राष्ट्र में घुल मिल न जायें। हमारा और माननीय मित्र श्री जयपाल सिंह का, दोनों का लक्ष्य यही है कि सभी अनुसूचित जातियों के लोग देश के राष्ट्रीय जीवन में घुल मिलकर एक हो जायें। पर उनके संशोधन से हमारे इस लक्ष्य की पूर्ति न हो सकेगी; बल्कि उल्टे इससे उसको क्षति पहुंचेगी।

माननीय मित्र का एक संशोधन यह भी है (संशोधन नं. 27) कि "Scheduled Areas" शब्द जहां कहीं भी आये हैं, उनके आगे सर्वत्र "Scheduled Tribes"

[श्री के.एम. मुन्शी]

शब्द भी रख दिये जायें। इसका मतलब तो यह होगा कि अनुसूचित जाति का कोई सदस्य यदि किसी नगर में आ जाता है और वहां जीवन में घुल मिलकर एक हो जाता है, तो उस हालत में भी उसे वहां के समाज का सदस्य न समझा जाये, बल्कि अनुसूचित जाति के सदस्य के रूप में ही उसे देखा जाये, और उसकी हिफाजत के लिये वहां भी एक आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् जरूर रहे। इससे तो यह समूचा उद्देश्य ही विनष्ट हो जायेगा, जिसे वह अपनी अभीष्ट बताते हैं।

अपने दूसरे संशोधन नं. 33 के द्वारा वह यह चाहते हैं कि पैरा 4 के उप पैरा (2) में ये शब्द जोड़ दिये जायें:–

"It shall be the duty of the Tribes Advisory Council generally to advise the Governor or Ruler of the State on all matters pertaining to be administration, advancement and welfare of the Scheduled Tribes of the State."

(आदिमजाति मंत्रणा-परिषद् का साधारणत: यह कर्तव्य होगा कि वह राज्य के अनुसूचित जातियों के प्रशासन, समुन्नति तथा कल्याण से सम्बद्ध सभी विषयों पर राज्य के राज्यपाल या शासक को मंत्रणा दे।)

मूल उप पैरा में 'प्रशासन' शब्द जान बूझ कर नहीं रखा गया है और इस कारण से कि प्रशासन शब्द के अन्तर्गत तो कलक्टर, इन्सपेक्टर या पुलिस सुपरिन्टेंडेंट की नियुक्ति की बात भी आ जायेगी। प्रशासन शब्द के अन्तर्गत तो वनों का प्रशासन, शान्ति और सुव्यवस्था का प्रशासन ये सभी बातें आ जायेंगी। अवश्य ही हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि इन सभी बातों के बारे में राज्यपाल मंत्रणा-परिषद् से राय ले। यहां हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि अनुसूचित जातियों की समुन्नति तथा कल्याण से सम्बद्ध विषयों के बारे में ही राज्यपाल मंत्रणा-परिषद की राय ले। अगर यहां 'प्रशासन' शब्द भी जोड़ दिया जाता है, जैसा कि माननीय मित्र संशोधन नं. 23 के द्वारा चाहते हैं, तो इसका मतलब तो यह होगा कि किसी जिला के भी किसी छोटे अनुसूचित क्षेत्र में भी, बिना मंत्रणा-परिषद् की राय लिये कुछ किया ही न जा सकेगा। अवश्य ही यह एक ऐसी स्थिति है, जो कभी वांछनीय नहीं कही जा सकती है।

माननीय मित्र जयपाल सिंह ने दूसरे संशोधन पेश किये हैं, नं. 47 और 52 के। इसी तरह श्री युधिष्ठर मिश्र ने अपना संशोधन नं. 46 पेश किया है। इन सभी संशोधनों का आशय यह है कि आदिम-जाति मंत्रणा-परिषद् एक छोटा-मोटा ऐसा निकाय हो, जिसे इस अनुसूची के अन्तर्गत आने वाले सभी विषयों के बारे में राज्यपाल को मंत्रणा तथा सहायता देने की शक्ति प्राप्त रहे। इसका मतलब तो यह है कि इन सभी विषयों के बारे में एक ऐसी उत्तरदायी शासन व्यवस्था होनी चाहिये, जिसके अधीन कि राज्यपाल मंत्रिमण्डल की बात न मानकर सभा की बात माने। यह सर्वथा निरर्थक बात है। पहली बात को ही लीजिये। मूल पैरा में यह कहा गया है कि संसद या उस राज्य के विधान-मंडल का कोई अधिनियम, जो अनुसूचित क्षेत्र पर लागू होता है, उसके बारे में यदि राज्यपाल यह समझता हो

कि अनुसूचित जातियों के हितार्थ उस अधिनियम का कोई खास अंश उस क्षेत्र पर लागू न होना चाहिये, तो उसे ऐसा निर्णय करने की स्वतन्त्रता रहेगी। क्या आप यह समझते हैं कि छोटी-छोटी अनुसूचित जातियों की हर मंत्रणा-परिषद् के लिये यह सम्भव हो सकेगा कि संसद के व्यापक अधिनियम के संबंध में वह किसी एक निश्चय पर पहुंच सकें या यह तय कर सकें कि अधिनियम के अमुक-अमुक उपबंध अनुसूचित क्षेत्रों पर न लागू किये जायें? प्रस्तुत मसौदे के अनुसार विनियमों के बार में राज्यपाल मंत्रणा-परिषदों से राय जरूर लेगा, पर अधिसूचना के लिये यह कहा गया है कि किसी केन्द्रीय अधिनियम या राज्य के विधान-मंडल के किसी अधिनियम के बारे में अगर राज्यपाल का यह ख्याल हो कि किसी केन्द्रीय अधिनियम या उस राज्य के विधान-मंडल को किसी अधिनियम का कोई अंश अनुसूचित जातियों के उस क्षेत्र पर लागू न होना चाहिए, तो इसके लिये मंत्रणा-परिषद् से परामर्श लेना उसके लिये जरूरी नहीं होगा क्योंकि ऐसी कार्यवाही के बारे में प्रान्तीय शासन पर ही हमने अपना पूर्ण विश्वास रख छोड़ा है। भूमि के हस्तान्तरण के बारे में तथा अनुसूचित जातियों के कल्याण से सम्बद्ध अन्य विषयों के बारे में जो विनियम बनाये जायेंगे, उनके बारे में मंत्रणा परिषद् की राय लेना जरूरी होगा। यह तो स्वाभाविक है कि परामर्श के प्रसंग में अनुसूचित जातियों के हित शासन के समक्ष जरूर रखे जायेंगे, पर यहां यह उपबंध रखना कि राज्यपाल को इस सम्बन्ध में मंत्रणा-परिषद् की राय के अनुसार ही निश्चय करना होगा, ठीक न होगा क्योंकि ऐसे उपबंधों से खुद अनुसूचित जातियों का अहित होगा। हो सकता है कि परामर्श ले लेने पर राज्यपाल यह महसूस करे कि परिषद् की राय ठीक नहीं है। उदाहरण के लिये आप महाजनी या साहूकारी की बात को ही लीजिये। मुझे विश्वास है कि मेरी तरफ के आदिवासी साहूकारी सम्बन्धी कानून का क्या-क्या असर पड़ेगा, इसे कभी नहीं समझ सकते हैं। और अगर इसके बारे में उनकी राय ली जाती है, तो मुझे विश्वास है कि वह साफ-साफ कह देंगे कि इस कानून का एक अक्षर भी वह नहीं समझ सकते हैं। इसलिये यहां 'advice' शब्द की जगह 'consulted' शब्द जानबूझ कर रखा गया है।

इस सम्बन्ध में अन्तिम संशोधन है, प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना का जिसमें यह कहा गया है कि किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने का अधिकार केन्द्रीय संसद के हाथ में होना चाहिये। मेरी राय में ऐसा करना ठीक नहीं होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूं, यह समस्या सर्वत्र एक सी नहीं है। न केवल प्रान्तों में ही बल्कि जिलों में भी इस समस्या का रूप विभिन्न है। संसद के लिये यह सम्भव न हो सकेगा। कि विधि द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों की घोषणा करे। इसलिए मेरा कहना यही है कि समूची अनुसूची जिस रूप में यहां रखी गई है, वह अनुसूचित जातियों के लिये हितकर है और सभा को इसे इसी रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये।

***अध्यक्ष:** अब मैं बहस बन्द कर देना चाहता हूं। डॉ. अम्बेडकर जवाब में कुछ कहना चाहते हैं, क्या?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** जवाब में जो कुछ कहना आवश्यक था, उसे श्री मुंशी ने यहां कह दिया है। मैं नहीं समझता कि मैं कोई और बात कह कर सभा को लाभान्वित कर सकता हूं।

***अध्यक्षः** तो अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मेरे संशोधनों पर मत लेने की जरूरत नहीं है। उस पर मसौदा समिति, अगर विचार करना चाहे, तो विचार कर ले।

***श्री के.एम. मुन्शीः** आपके कुछ संशोधन तो बहुत ही बहुमूल्य हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** पर सभा तो उनको अस्वीकार ही करेगी।

***अध्यक्षः** प्रथम दो पैरों को हम पास कर चुके हैं। अब लिया जाता है, तीसरा पैरा। इस पर पहला संशोधन है श्री जयपाल सिंह का, जो 23 नं. का है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 3 में जहां कहीं भी 'scheduled areas' शब्द आये हैं, उनके आगे 'scheduled tribes' शब्द रख दिये जायें और 'whenever so required by the Government of India" (या जब भी भारत शासन इस प्रकार की अपेक्षा करे) शब्द निकाल दिये जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:–

"कि प्रस्तावित पैरा 3 पांचवीं अनुसूची का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 3 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

पैरा 4

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** अपने संशोधन नं. 31 और 32 को वापस लेने की मैं अनुमति चाहता हूं।

संशोधन नं. 31 और 32 सभा की अनुमति से वापस लिये गये।

***श्री जयपाल सिंहः** श्री मुंशी ने जवाब में जो कुछ कहा है, उसे मैं माने लेता हूं और अपना संशोधन नं. 33 वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन नं. 33 वापस ले लिया गया।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में, प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 4 के उप-पैरा 3 में तथा पैरा 5 के उप-पैरा (1) में 'राज्यपाल

या शासक' शब्दों की जगह 'राज्यपाल या शासक के परामर्श से राष्ट्रपति' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अन्य सभी संशोधनों पर मत नहीं लिये जा रहे हैं। मेरा ख्याल है कि ये सभी संशोधन पैरा 4 के सम्बन्ध में हैं। अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्तावित पैरा 4 पांचवीं अनुसूची का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 4 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

पैरा 5

***श्री युधिष्ठिर मिश्रः** संशोधन नं. 46, 48 और 51 को, जो मेरे नाम से हैं, मैं वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से ये संशोधन वापस लिये गये।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (1) में 'as the case may be' (यथा स्थिति) शब्दों के आगे 'on the advice of the Tribes Advisory Council' (आदिम जाति मंत्रणा-परिषद् की राय पर) शब्द जोड़ दिये जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में "in any such area" शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि उक्त संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में 'consulted' शब्द की जगह 'been so advised by' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (4) में 'all' शब्द के आगे 'notifications and' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (5) में 'No' शब्द के आगे 'notification or' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** बाकी जो संशोधन हैं, वह श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के हैं और मेरा ख्याल है कि वह यह नहीं चाहते हैं कि उन पर राय ली जाये। सो अब प्रस्ताव यह है:

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

"कि पांचवीं अनुसूची का प्रस्तावित पैरा 5 उस अनुसूची का अंग समझा जाये।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

पैरा 5 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

पैरा 6

***अध्यक्षः** अब आते हैं संशोधन नं. 185, 186 और 187। मैं समझता हूं कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद यह नहीं चाहते हैं कि इन पर मत लिया जाये। अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 6 के उप-पैरा (1) में 'President may by order' (राष्ट्रपति आदेश द्वारा) शब्दों की जगह 'President may by law' (राष्ट्रपति विधि द्वारा) शब्द रखे जायें।

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन नं. 20 में प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची के पैरा 5 के उप-पैरा (2) में,—

(क) 'such order may be' (ऐसे किसी आदेश में) शब्दों की जगह 'such law may' (ऐसी किसी विधि में) शब्द रखे जायें;

(ख) 'to the President' (राष्ट्रपति को) शब्दों की जगह 'to the Parliament' (संसद को) शब्द रखे जायें; तथा

(ग) 'but save as aforesaid, the order made under such paragraph (1) of this paragraph shall not be varied by any subsequent order' (किन्तु उपर्युक्त रीति से अन्यथा इस कंडिका की उपकंडिका (1) के अधीन निकाला गया आदेश किसी अनुगामी आदेश से परिवर्तित नहीं किया जायेगा) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

"कि पांचवीं अनुसूची का प्रस्तावित पैरा 6 इस अनुसूची का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 6 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

पैरा 7

प्रस्तावित पैरा 7 पांचवीं अनुसूची में शामिल किया गया।

***अध्यक्षः** अब प्रस्ताव यह है:

"कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित पांचवीं अनुसूची यथा प्रस्तावित रूप में संविधान का अंग समझी जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पांचवीं अनुसूची संविधान में शामिल की गई

षष्ठ अनुसूची

***अध्यक्षः** अब हम छठीं अनुसूची को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्:

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (1) में 'the tribal areas' शब्दों के पूर्व 'subject to the provisions of this paragraph' शब्द रखे जायें।"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मूल मसौदे में केवल इतना ही कहा गया था कि आदिमजाति क्षेत्र वह क्षेत्र माने जायेंगे, जो इस अनुसूची से संलग्न सारिणी में दिये गये हैं। सारिणी में दिये गये इन क्षेत्रों की सीमा को व्याख्यापित करने का अधिकार राज्यपाल को नहीं दिया गया था। अब महसूस यह किया जाता है कि सारिणी के दिये गये इन क्षेत्रों की सीमा को व्याख्यापित करने का अधिकार राज्यपाल को मिलना आवश्यक है। राज्यपाल को यह अधिकार देने के लिये ही संशोधन में रखे गये इन शब्दों को जोड़ने का सुझाव दिया जा रहा है।

***अध्यक्षः** संशोधन नं. 99 भी तो पैरा 1 के बारे में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अनुमति हो तो उसे भी पेश कर दूं?

***अध्यक्षः** हां, उसे भी आप पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव यह रखता हूं, श्रीमानः

"कि पैरा 1 उप-पैरा (3) के स्थान पर यह उप-पैरा रखा जायेः

'(3) The Governor may, by public notification—

(a) include any area in Part I of the said Table,

(b) create a new autonomous district,

(c) increase the area of any autonomous district,

(d) diminish the area of any autonomous district,

(e) unite two or more autonomous districts or parts thereof so as to form one autonomous district, and

(f) define the boundaries of any autonomous district:

Provided that no order shall be made by the Governor under clauses (b), (c), (d) and (e) of this sub-paragraph except after consideration of the report of a Commission appointed under sub-paragraph (1) of paragraph 14 of this Schedule.' "

[(3) राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा—

(क) उक्त सारिणी के भाग (क) में किसी क्षेत्र को डाल सकेगा;

(ख) नया स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा;

(ग) किसी स्वायत्तशासी जिले का क्षेत्र बढ़ा सकेगा;

(घ) किसी स्वायत्तशासी जिले का क्षेत्र घटा सकेगा;

(ङ) दो या अधिक स्वायत्तशासी जिलों या उनके भागों को मिलाकर एक स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा; तथा

(च) किसी स्वायत्तशासी जिले की सीमायें परिभाषित कर सकेगा:

परन्तु राज्यपाल इस उपकंडिका के खण्ड (ख), (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कोई आदेश इस अनुसूची की कंडिका 14 की उपकंडिका (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद ही निकाल सकेगा।]

इस संशोधन में नई बातें रखी गई हैं, उस पैरा (3) के खण्ड (ङ) और (च) में, जिसकी ओर सभा का ध्यान जाना चाहिए। यहां खण्ड (ङ) में जो नई बातें रखी गई हैं, उनको रखने की जरूरत है, क्योंकि स्थिति विशेष में हो सकता है कि दो या अधिक स्वायत्तशासी जिलों को मिलाकर एक जिला बना देना जरूरी हो जाये। खण्ड (च) की जरूरत इसलिए है कि हो सकता है कि विभिन्न आदिम जातियों के बीच झगड़ा पैदा हो जाने पर जिले की सीमाओं को परिभाषित करने की आवश्यकता पड़ जाये।

परन्तुक में एक परिवर्तन किया गया है। इस परन्तुक को अगर आप मूल परन्तुकों से मिला कर पढ़ेंगे तो देखेंगे कि इस उप पैरा 3 के साथ मूल मसौदे में दो परन्तुक रखे गये थे। प्रथम परन्तुक के अनुसार राज्यपाल खण्ड (ख) या (ग) के अधीन काम कर सकता था, आयोग की सिफारिश के आधार पर। पर खण्ड (घ) या (ङ) के अधीन चलने के लिये उसके लिये यह जरूरी था कि सम्बन्धित स्वायत्तशासी जिलों की जिला परिषदों से स्वीकृत एक संकल्प वह प्राप्त कर ले और तभी वह खण्ड (घ) और (ङ) के अधीन कार्यवाही कर सकता था। सोचा यह जा रहा है कि उप पैरा (3) के विभिन्न अंशों के लिये दो परन्तुक रख कर विभेद बरतना आवश्यक नहीं है। अच्छा यह होगा कि उस उप-पैरा की सभी बातों के लिये एक तरह का उपबंध रखा जाये और यह उपेक्षित रखा जाये कि राज्यपाल इस अनुसूची के पैरा 14 के उप-पैरा (1) के अधीन नियुक्त होने वाले आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद ही इस सम्बन्ध में आदेश निकाल सकेगा।

***अध्यक्ष:** जहां तक इस छठी अनुसूची का संबंध है, सारी अनुसूची में परिवर्तन का सुझाव नहीं रखा गया है, बल्कि उसके चन्द पैराग्राफों में परिवर्तन करने के लिये संशोधन उपस्थित किये गये हैं। इसलिए मैं चाहता यह हूं कि इस अनुसूची के हर पैरे पर पृथक्-पृथक् विचार कर लिया जाये। पहले पैरा के बारे में मसौदा-समिति की तरफ से दो संशोधन आये हैं, जो पेश हो चुके हैं। अब मैं उन संशोधनों को लेता हूं जिनकी सूचनायें आई हैं। संशोधन-सूची में जो दूसरा खण्ड छपा है, उसमें कई संशोधन आ गये हैं।

(संशोधन नं. 3489, 3490 तथा 3491 पेश नहीं किये गये।)

[अध्यक्ष]

एक संशोधन इस आशय का है कि 1 से 16 तक के पैरे हटा दिये जायें। मैं नहीं जानता कि इस पर विचार किया जाये या नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस पर विचार करने की जरूरत नहीं है।

***अध्यक्ष:** ठीक है। तो सदस्यगण हर पैरा पर अपना मत दे सकते हैं।

संशोधन नं. 101 अब लिया जाता है, जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में है।

***श्री कुलधर चालिहा:** मेरा एक संशोधन है, जो 100 नं. का है। मैं चाहता यह हूं, श्रीमान, कि दोनों परन्तुक हटा दिये जायें। पर उक्त संशोधन में केवल एक परन्तुक को ही हटाने की बात कहीं गई है।

पैरा 14 को अगर पढ़ें, तो देखेंगे कि उसमें यह कहा गया है:

"provision of educational and medical facilities and communications in such districts;

the need for any new or special legislation in respect of such districts; and the administration of the laws, regulations and rules made by the District and Regional Councils."

(ऐसे जिलों में शिक्षा तथा चिकित्सा की सुविधाओं और संचार के उपबंधों की; ऐसे जिलों के बारे में किसी नये या विशेष विधान की आवश्यकता की; तथा

जिला और प्रादेशिक परिषदों द्वारा बनाई गई विधियों, विनियमों और नियमों के प्रशासन की।)

किन्तु इन विषयों का उल्लेख आपको पैरा 3 में नहीं मिलेगा। वहां अन्य विषयों का ही उल्लेख है। जब तक कि पैरा 14 में संशोधन या परिवर्तन नहीं कर दिया जाये, मैं नहीं समझता कि उसके अन्दर ये विषय आ सकते हैं। इसलिए मेरा अभिप्राय यह है कि इस समूचे पैरा को ही हटा दिया जाये, ताकि आयोग रखने की कोई आवश्यकता न रहे और राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा यह सब कर ले।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** मसौदा-समिति द्वारा रखे गये संशोधन नं. 134 को अगर माननीय सदस्य पढ़ें, तो उन्हें अपनी इस शंका समाधान मिल जायेगा। उसमें ये सभी बातें आ गई हैं।

***श्री कुलधर चालिहा:** यह संशोधन मैंने पढ़ा है। कुछ हद तक ये बातें उसके अन्दर आ जाती हैं, पर मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह सब आयोग द्वारा किया जाये। राज्यपाल के करने का मतलब ही हुआ कि वहां का मंत्रिमण्डल करेगा। मैं नहीं चाहता कि आयोग को यहां प्रविष्ट किया जाये। राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि मंत्रिमण्डल से परामर्श और विचार-विमर्श करके इन बातों के सम्बन्ध में व्यवस्था करे। अगर यह बात आयोग के ऊपर छोड़ी जाती हैं, तो साफ है कि काम में बहुत विलम्ब होगा। फिर आपने यह भी तय नहीं किया है कि आयोग की रचना कैसे होगी और उसके सदस्य कौन होंगे; विधान-मण्डल के प्रतिनिधि उसमें होंगे या नहीं या केवल स्वायत्तशासी जिलों से ही चुने हुए सदस्य उसमें लिये जायेंगे। मैदानी इलाके, जो किसी तरह पर्वतीय क्षेत्रों में शामिल दिखा दिये गये हैं, वह प्रतिनिधान पाने से सदा अपवर्जित ही रहेंगे। जब तक यह स्पष्ट नहीं कह दिया जाता कि विधान-मण्डल के सदस्यों को भी उसमें प्रतिनिधि रूप में रखा जायेगा, इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि यह पैरा 14 काफी नहीं होगा, आपको यह घोषित कर देना चाहिये कि आयोग का गठन कैसे किया जायेगा। जब तक इस सम्बन्ध में समुचित रूप से निर्णय नहीं कर लिया जाता है, यह त्रुटि बनी ही रहेगी। इसलिये मैं यह कहता हूं कि इस परन्तुक को हटा दिया जाये, सुतरां मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि संशोधन-सूची (द्वितीय खण्ड) के संशोधन नं. 3487 के सम्बन्ध में पैरा 1 के उप-पैरा (3) का परन्तुक हटा दिया जाये।"

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद :** इस सम्बन्ध में मेरे तीन और संशोधन हैं। मैं जानना यह चाहता हूं कि क्या संशोधन नं. 188, 190 और 191 को भी अभी पेश कर दूं?

***अध्यक्ष:** आप उन्हें पेश कर सकते हैं। संशोधन नं. 101 और 102 का तो वही आशय है, जो श्री चालिहा के संशोधन का है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं संशोधन नं. 103 को पेश करता हूं मेरा प्रस्ताव यह है:

"कि पैरा 1 के अन्त में यह अंश जोड़ दिया जाये—

"इस खण्ड के अधीन राज्यपाल अपने कृत्यों का निष्पादन राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में करेगा।' "

या विकल्पशः यह

"इस खण्ड के अधीन राज्यपाल अपने कृत्यों का निष्पादन स्वविवेक से करेगा।"

मेरे दूसरे संशोधन भी हैं, जिन्हें मैं अभी पेश करना चाहता हूं। प्रस्ताव यह है।

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (3) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रखा जाये।"

दूसरा संशोधन में यह प्रस्तावित करता हूं:

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (3) के दोनों परन्तुक हटा दिये जायें।"

*__अध्यक्ष:__ आपका यह संशोधन तो उसी आशय का है, जो श्री चालिहा के संशोधन का है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ उस सूरत में आप इसे प्रस्तावित न मानिये। अगर सभा इन संशोधनों को स्वीकार कर लेती है, तो इसका असर यह होगा कि आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों का प्रशासन केन्द्राधीन हो जायेगा। मैं बड़ी गम्भीरता के साथ ही यह सुझाव रख रहा हूं कि देशहित के लिये यह आवश्यक है कि ये सारे क्षेत्र केन्द्राधीन कर दिये जायें। इस छठी अनुसूची के बारे में मैंने 49 संशोधन भेजे हैं। और इसी तरह पांचवीं अनुसूची के सम्बन्ध में भी 49 संशोधन मैंने रखे थे। इन संशोधनों को, जो मैंने यहां पेश नहीं किया, उसका कारण यह नहीं है कि इनके लिये मैं विशेष चिन्तित नहीं हूं।

वस्तुत: इनकी चिन्ता मुझे बहुत है, पर चूंकि सभा ने यहां यह इच्छा व्यक्त की थी कि दशहरा की छुट्टी शुरू होने से पहले इन सब पर यहां विचार समाप्त हो जाना चाहिये, इसलिये मैंने इन्हें पेश नहीं किया। पर अगर सचिन्त होने का प्रमाण आप इसी बात को मानते हैं कि संशोधन को लोग उपस्थित ही करें, तो मैं अपने सभी 49 संशोधनों को पेश करने के लिये तैयार हूं।

मैं इसके विरुद्ध हूं, श्रीमान, कि कबायली इलाकों को प्रान्तीय शासकों के हाथ में दे दिया जाये। विरुद्ध मैं इसलिये हूं कि आसाम प्रान्त की सीमा पांच या छह विदेशों की सीमा से मिली हुई है। मेरा मतलब है चीन, तिब्बत, बरमा और पाकिस्तान से। आसाम प्रान्त में तरह तरह के संघर्ष चल रहे हैं। अहोम, आसामी, बंगाली, मुसलमान और मंगोलों के बीच परस्पर संघर्ष वहां चल रहे हैं। इस संघर्ष ने कितना उग्र रूप धारण कर लिया है, इसका पता सदस्यों को नहीं है। यही कारण है, जो वह यह नहीं समझ रहे हैं कि आसाम सरकार के सामने कितनी गहन स्थिति आ पड़ी है। पूर्वी बंगाल से एक बड़े पैमाने पर लोग वहां जबरदस्ती पहुंच रहे हैं। आसाम सरकार उनके प्रवेश को रोकने में असमर्थ हो रही है। आसाम सरकार ने, हम जानते हैं, केन्द्र से इसके लिये अनुरोध भी किया है कि बाहर से आने वालों को रोकने में वह उसकी सहायता करे। पर, जैसे भी हो, केन्द्र ने इस सम्बन्ध में उसको सुविधा और सहायता नहीं दी, जिसका फल यह हो रहा है कि न केवल पूर्वी बंगाल से, बल्कि अन्य सीमावर्ती देशों से भी, जिनका मैंने जिक्र किया है, अवांछनीय लोग, पांचवें दस्ते के लोग वहां बड़ी तादाद में प्रविष्ट होते जा रहे हैं। आज आसाम में, श्रीमान, बंगालियों और आसामियों का झगड़ा, हिन्दू और मुसलमान का झगड़ा, कबायलियों और गैर कबायलियों का झगड़ा बहुत जोरों पर चल रहा है और वहां की सरकार के लिये यह झगड़ा एक बड़ी समस्या हो गया है। प्रान्तीय बजट की 72 प्रतिशत रकम तो सरकारी नौकरों का वेतन चुकाने में ही खत्म हो जाती है।

इसलिए, श्रीमान्, ठीक यही है, कुशल मूलक यही है, नीति के नाते वांछनीय यही है, सामरिक दृष्टि से भारत सरकार के लिये हितकर यही है और राजनैतिक दृष्टि से भी वांछनीय यही है कि इस वृहत क्षेत्र का प्रशासन प्रान्तीय शासन के

हाथ में न दिया जाये और खास करके उस प्रान्त के प्रदेश का, जहां राजनैतिक स्थैर्य का सर्वथा अभाव है। प्रान्तीय स्वायत्त शासन से अधिक प्रिय है मुझे अपना देश। मैं जानता हूं कि आसाम की समस्यायें इतनी जटिल, इतनी गहन हैं कि प्रान्तीय शासन उनका समाधान नहीं कर सकता है। उसके पास इसके लिये पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं हैं। इसलिए इन समस्याओं को छोड़िये, विशेषज्ञों के हाथ में, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, शिक्षकों, इंजिनियरों, डॉक्टरों, समाजशास्त्री वेत्ताओं, दार्शनिकों तथा मनोविज्ञान वेत्ताओं के हाथ में। राजनीतिज्ञों को तो इस समस्या में दखल न देने दीजिये।

***अध्यक्षः** मिस्टर चालिहा, तो मैं मान लूं कि आपका संशोधन पेश हो चुका है?

***श्री कुलधर चालिहाः** हां, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि इस पैरा पर अब और कोई संशोधन रह गया है। डॉ. अम्बेडकर, आप कुछ कहना चाहते हैं क्या?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इन संशोधनों पर बोलते हुए सिर्फ दो बातें ऐसी कही गई हैं, जिनका जवाब जरूरी है। पहली बात कही है श्री चालिहा ने। मैं यह जरूर कहूंगा कि श्री चालिहा के इस संशोधन रखने पर मुझे आश्चर्य हुआ है, क्योंकि पांचवीं अनुसूची की तरह यह छठी अनुसूची भी मसौदा-समिति ने तैयार की है, आसाम के मुख्य मंत्री और श्री निकल्स राय से परामर्श करके आपसी रजामन्दी से। परामर्श के लिये जो बैठक हुई थी, उस में श्री चालिहा भी उपस्थित थे और मसौदा समिति द्वारा संशोधित इस नई अनुसूची को आपने भी उस समय स्वीकार किया था। अस्तु, जो सन्देह उनके दिमाग में हो रहा है, उसे दूर करने के लिये मुझे ज्यादा समय की जरूरत नहीं है। उनके मन में सन्देह इस बात को लेकर है कि आखिर आयोग का गठन किस प्रकार किया जायेगा और कौन लोग उसके सदस्य होंगे। मेरा ख्याल है कि श्री चालिहा अगर छठी अनुसूची को जरा ध्यान से पढ़ेंगे, तो उन्हें इस बात का पता चल जायेगा कि आयोग को नियुक्त करने में राज्यपाल स्वविवेक से काम नहीं कर सकेगा। इस सम्बन्ध में स्वविवेक का अधिकार राज्यपाल को दिया ही नहीं गया है। ऐसी हालत में यह स्वतः स्पष्ट है कि आयोग की रचना करने में, इसे परिभाषित करने में कि आयोग को किन-किन बातों के आधार पर विचार करना है, राज्यपाल को स्थानीय मंत्रियों से पथप्रदर्शन मिलेगा। इसलिए मैं नहीं समझता कि जो आशंकायें उन्होंने व्यक्त की हैं, उनकी कोई भी गुंजाइश है।

अब मैं माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन को लेता हूं। जहां तक कि मेरा सम्बन्ध है, मैं यह महसूस करता हूं कि यह एक ऐसा संशोधन है, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने गम्भीर तर्क उपस्थित किये हैं। आपका कहना यह है कि आसाम का समूचे कबायली इलाकों को प्रान्तीय शासन के हाथ से निकाल कर केन्द्र के शासनाधीन रख देना चाहिये। जो संशोधन उन्होंने रखा है, उसका यही असर होगा। इसके सिवाय उसका आखिर और मतलब ही क्या हो सकता है? वह चाहते यह हैं कि इस समस्त क्षेत्र को केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बना दिया जाये। पर वह दो बातें भूल जाते हैं, जिनमें पहली बात यह है। हमने यह जरूर किया है कि इस प्रदेश में रहने वाले कबायलियों के सन्तोष के लिये स्वायत्तशासी जिलों के निर्माण की व्यवस्था कर दी है, ताकि प्रथम दस साल तक तो उन्हें अपने प्रदेश के शासन

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

के बारे में उनको स्वतंत्रता प्राप्त रहे, पर हमने यह उपबंध कहीं नहीं किया है कि ये स्वायत्तशासी जिले आसाम प्रान्त का अंग ही न रह जायेंगे। इसलिए यह तो बहुत ही मुश्किल है कि प्रान्त का कुछ हिस्सा तो राज्यपाल के प्रशासन में रखा जाये और कुछ हिस्से को केन्द्र प्रशासनाधीन रख दिया जाये।

दूसरी बात जो माननीय मित्र भूल रहे हैं, वह यह है। आप इस तथ्य को ध्यान में नहीं रख रहे हैं। कि मसौदा-समिति ने स्वायत्तशासी जिलों के निर्माण की व्यवस्था करने में इस बात को भी ध्यान में रखा है कि स्वायत्तशासी जिलों की सीमाओं पर कतिपय ऐसे इलाके हैं, जो 'सीमावर्ती क्षेत्र' के नाम से ज्ञात हैं। इस अनुसूची में यह भी उपबन्ध रखा गया है कि जहां तक आसाम के इन सीमावर्ती क्षेत्रों के प्रशासन का सम्बंध है, राज्यपाल राष्ट्रपति के अधीन उसका प्रशासन चलायेगा। इसलिए, स्थिति की दृष्टि से इन सीमावर्ती क्षेत्रों का जो भी महत्व हो, केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त रहेगा कि वह उन उपद्रवकारी तत्वों के अस्तित्व को ही वहां न रहने दे, जिनका माननीय मित्र ने यहां हवाला दिया है। इसलिए मैं समझता हूं कि ये सभी संशोधन अनावश्यक हैं और इनकी यहां कोई जरूरत नहीं है।

***श्री कुलधर चालिहा:** संशोधन नं. 139 को आप स्वीकार कर रहे हैं, क्या?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस समय बिना उसे देखे और विचारे मैं कोई जवाब नहीं दे सकता। इस समय तो मैं केवल आपके तथा श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधनों की बात कह रहा था। मेरी समझ से यह अनावश्यक हैं।

***अध्यक्ष:** संशोधन नं. 139 तो अभी पेश ही नहीं हुआ है। वह पैरा 14 के बारे में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उस पर तो विचार उस समय किया जायेगा, जब हम पैरा 14 पर पहुंचेंगे।

***श्री कुलधर चालिहा:** पर वस्तुत: उसका सम्बन्ध इस पैरा से भी है।

***अध्यक्ष:** पैरा 14 को हम अभी नहीं ले सकते हैं। अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहले लिया जाता है, संशोधन नं. 98, जो डॉ. अम्बेडकर का है। प्रश्न यह है:

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (1) में 'tribal areas' शब्दों के पूर्व 'subject to the provisions of this paragraph' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब लेता हूं, संशोधन नं. 99 को। प्रश्न यह है:

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (3) के स्थान पर यह उप-पैरा रखा जाये-

'(3) The Governor may, by public notification—

(a) include any area in Part I of the said Table,

(b) create a new autonomous district,

(c) increase the area of nay autonomous district,

(d) diminish the area of any autonomous district,

(e) unite two or more autonomous districts or parts thereof so as to form one autonomous district,

(f) define the boundaries of any autonomous district.

Provided that no order shall be made by the Governor under clauses (b), (c), (d) and (e) of this sub-paragraph except after consideration of the report of a Commission appointed under sub-paragraph (1) of paragraph 14 of this Schedule.' "

[(3) राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा–

(क) उक्त सारिणी के भाग में किसी क्षेत्र को डाल सकेगा;

(ख) नया स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा;

(ग) किसी स्वायत्तशासी जिले का क्षेत्र बढ़ा सकेगा;

(घ) किसी स्वायत्तशासी जिले का क्षेत्र घटा सकेगा;

(ङ) दो या अधिक स्वायत्तशासी जिलों या उनके भागों को मिलाकर एक स्वायत्तशासी जिला बना सकेगा; तथा

(च) किसी स्वायत्तशासी जिले की सीमायें परिभाषित कर सकेगा।

परन्तु राज्यपाल इस उपकंडिका के खण्ड (ख), (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कोई आदेश इस अनुसूची की कंडिका 14 की उपकंडिका (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के बाद ही निकाल सकेगा।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** मेरा ख्याल है कि इसके पास हो जाने पर अब अन्य संशोधनों का, जो परन्तुक को हटाने के बारे में हैं, सवाल ही नहीं उठता है। अब रह जाता है सिर्फ एक संशोधन, जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है। अब मैं इस पर सभा का मत लेता हूं। प्रश्न यह है:–

"कि पैरा 1 के अन्त में यह रखा जाये—

"कि राज्यपाल इस पैरा के अधीन अपने कृत्यों का निष्पादन राष्ट्रपति के एजेंट के रूप में करेगा।' "

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने दो और संशोधन रखे हैं।

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 188। प्रश्न यह है:

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (2) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब लिया जाता है संशोधन नं. 190। प्रश्न यह है:—

"कि पैरा 1 के उप-पैरा (3) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब डॉ. अम्बेडकर द्वारा यथा संशोधित पैरा 1 पर मत लिया जाता है। प्रस्ताव यह है:–

"कि पैरा 1 यथा संशोधित रूप में, अनुसूची का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

पैरा 1 यथा संशोधित रूप में षष्ठ अनुसूची में शामिल किया गया।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार, तारीख 6 सितम्बर सन् 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.27.49
320

अंक 9

संख्या 27

मंगलवार
6 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[छठी अनुसूची : कण्डिका 2 से 15 पर विचार] .... [1551–1618]

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 6 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–*(जारी)*

छठी अनुसूची–*(जारी)*

कण्डिका 2

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (1) में 'not less than twenty and not more than forty members' इन शब्दों के स्थान पर 'not more than 24 members' ये शब्द रख दिये जायें।"

यह संशोधन इसलिये पेश किया है, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि पहले की संख्या 40 शायद बहुत बड़ी रहेगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (2) को हटा दिया जाये।"

यह संशोधन इसलिये पेश किया है, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि पहले की संख्या 40 शायद बहुत बड़ी रहेगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (2) को हटा दिया जाये।"

इसे हटाने का कारण यह है कि हम निर्वाचन-क्षेत्रों को परिसीमित करने का कार्य नियमों पर छोड़ देना चाहते हैं तथा संविधान में रखना नहीं चाहते।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (7) के खण्ड (घ) के पश्चात् निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(dd) the term of office of members of such Councils;'"

[(घघ) ऐसी परिषदों के सदस्यों की पदावधि।]

इसे नियम-निर्माण की शक्तियों में नहीं रखा गया था।

*__श्री कुलधर चालिहा__ (आसाम: जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन संख्या 3487 के निर्देश से, कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (5) के अन्त में निम्न जोड़ दिया जाये:—

'Subject to such directions as may be given by the Governor or by the Legislature of the State.' "

कण्डिका 2, उप-कण्डिका (5) में लिखा है:

"Subject to the provisions of this Schedule the administration of an autonomous district shall in so far as it is not vested under this Schedule in any Regional Council within such district, be vested in the district council for such district and the administraton of an autonomous region shall be vested in the Regional Council for such region."

यदि आप इस उप-कण्डिका को ऐसे ही रहने देंगे तो हमारे साथ अन्याय होगा, जब तक कि यह परन्तुक न जोड़ दिया जाये, कि

"Subject to such directions as may be given by the Governor or by the Legislature of the State."

नागा लोग बहुत पुराने ढंग के और सीधे होते हैं और वे अपने प्राचीन ढंग को नहीं भूल पाये हैं जब कि किसी के विरुद्ध उन्हें शिकायत होने पर तत्काल न्याय होता था। यदि आप उन्हें यह अनुमति देते हैं कि वे हम पर शासन कर सकें या प्रशासन चला सकें, तो यह प्रशासन या न्याय का निराकरण होगा और अराजकता के समान होगा।

यदि आप इस अनुसूची की पृष्ठभूमि पर विचार करेंगे तो आपको पता लगेगा कि अब भी अंग्रेजी मनोवृत्ति काम कर रही है। वही पुरानी पार्थक्य प्रवृत्ति है और आप उन्हें हमसे पृथक् रखना चाहते हैं। इस प्रकार आप एक आदिमजातिस्तान बना रहे हैं जैसे कि आपने पाकिस्तान बनाया है। अन्ततोगत्वा यह परिणाम होगा कि आप एक साम्यवादस्थान बना देंगे, और इसी कारण मैं इस संशोधन का सुझाव दे रहा हूं।

"Subject to such directions as may be given by the Governor or by the Legislature of the State."

वहां हमारे देश के बहुत से लोग हैं, कई आसामी, पंजाबी और सिख हैं—सब देशी लोग हैं। आप उन्हें कुशासन के, आदिम शासन के हवाले नहीं कर सकते। यह असम्भव है कि वे इस प्रकार रह सकें। कहा जाता है कि वे बहुत लोकतन्त्रात्मक लोग हैं, प्रतिकार करने में बहुत लोकतन्त्रात्मक हैं, और इस रूप में लोकतन्त्रात्मक हैं कि वे विधि को पहले अपने हाथ में ले लेते हैं। और कुछ

आदमी यह धमकी देते हैं कि वे इतने लोकतन्त्रात्मक हैं कि वे हमारे सिर उड़ा देंगे। गत तीन सहस्र वर्षों में वे हमारे सिर नहीं उड़ा सके, और 1948 तक वे कुछ भी नहीं कर सके और हमें यह भय नहीं है कि यदि उन्हें प्रशासन की स्वतन्त्रता नहीं दी गई तो वे हमारे सिर उड़ा देंगे। यह धमकी व्यर्थ और मूल्यहीन है। हमें कुछ लोगों की इन धमकियों से डरना नहीं चाहिये कि वे हम पर चढ़ बैठेंगे। कुछ लोग धमकियों से ये बातें हम पर थोपना चाहते हैं और हमें इन न्यस्तस्वार्थ लोगों से सावधान रहना चाहिये। हमसे दूर कोई आदिमजाति स्थान रखने की आवश्यकता नहीं है अन्यथा विपत्ति के समय वे हमारे शत्रुओं के सहायक होंगे।

इस अनुसूची के अनुवर्ती उपबन्धों में आप देखेंगे कि संसद का कोई अधिनियम उन पर तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि वे उसके लिये सहमत न हो जायें। क्या आपने कभी सुना है कि संसद का अधिनियम किसी पर तब तक लागू न हो जब तक कि वह सहमत न हो जाये? ऐसी बात असम्भव है अत: मैं कहता हूं कि इस अनुसूची की इस प्रकार रचना की गई है कि इसकी पृष्ठभूमि उन्हें हम से अलग रखना तथा एक आदिमजाति स्थान बनाना है। और इसका परिणाम यह होगा कि वहां साम्यवादस्थान बन जायेगा। साम्यवादी आ जायेंगे और उन्हें पूरी स्वतन्त्रता मिल जायेगी, जैसे मनिपुर में एक मन्त्री पहले से ही साम्यवादी था। आप, राज्यपाल कुछ कार्यवाही नहीं कर सकेगा, आपकी संसद कुछ नहीं कर सकेगी। यदि आप इस प्रकार चलेंगे तो वहां कोई शासन नहीं रहेगा। समूची अनुसूची इस प्रकार रची गई है कि वह शासन का निराकरण है। अतएव मैं इसे मसौदा लेखन समिति के विचारार्थ पेश करता हूं। मैं डॉ. अम्बेडकर से भी अनुरोध करता हूं कि वे इस पर पुनर्विचार करें और इस अनुसूची को इस प्रकार न बनायें जैसे कि अब बनाया है।

*अध्यक्ष: आप संख्या 257 को भी पेश कर सकते हैं।

***श्री कुलधर चालिहा:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 105 में, कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (1) में, 'not more than twenty-four members' इन शब्दों के स्थान पर, (जिन्हें रखने की प्रस्थापना है), 'not more than fifteen members' ये शब्द रख दिये जायें।"

नागा पहाड़ियों में केवल एक लाख सत्तर हजार लोग हैं और लगभग दस आदिमजातियां हैं। यदि आप प्रत्येक जिले के लिये 24 सदस्य रखेंगे तो यह बहुत अधिक है। अत: मैंने अपने संशोधन में चौबीस के स्थान पर 15 रखने का सुझाव दिया और तृतीयांश राज्यपाल द्वारा मनोनीत होंगे। उचित अनुपात रखने के लिये 10 निर्वाचित होंगे और पांच राज्यपाल द्वारा चुने जायेंगे। अत: मैं इस संशोधन को स्वीकार करने के लिये सदन से अनुरोध करता हूं। चौबीस रखने से कोई लाभ नहीं है। यह तो अत्यधिक है। लगभग 1,70,000 जनसंख्या की दस आदिम जातियां हैं और ग्राम अथवा आदिमजातियां लगभग 1,000 से 2,000 प्रति दस आदिमजातियां हैं। उनके इतने सदस्य नहीं होने चाहिये। यह तो झगड़े का कारण पैदा करना है। अतएव

[श्री कुलधर चालिहा]

सदस्य कम होने चाहियें। मैं तो यह चाहता हूं कि संख्या केवल पांच ही रहे। यह इतनी नहीं होनी चाहिये, क्योंकि इससे अनन्त गड़बड़ होगी और राज्यपाल के लिये आफत हो जायेगी तथा हमारे लिये आफत हो जायेगी।

(संशोधन संख्या 3493 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** संख्या 109, 110, 111 और 112 ये सब 3493 पर आधारित हैं। अत: अब उनका प्रश्न ही नहीं उठता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): यह तो स्वतन्त्र संशोधन के रूप में भी ठीक बैठ सकता है। मैं केवल 110 को पेश करूंगा और कुछ व्यापक बातें कहूंगा।

श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन संख्या 3493 में, प्रस्थापित कण्डिका 2 की नई उप कण्डिका (7-क) के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'The functions of the Governor under sub-paragraph (7) shall be exercised by him as the agent of the President.' "

[उप-कण्डिका (7) के अन्तर्गत राज्यपाल के कृत्यों का प्रयोग वह राष्ट्रपति के अभिकर्ता के रूप में करेगा।]

मैं कण्डिका 2 के सर्वथा विरुद्ध हूं। मैं भारत को प्रान्तों में विभाजित करने के विरुद्ध हूं। मैं आसाम को उप-प्रान्तों में विभाजित करने का कभी समर्थन नहीं कर सकता। कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (4) में भी यही बात है। मैं जिला परिषदों और प्रादेशिक परिषदों के विरुद्ध हूं क्योंकि उनसे इस देश में एक और पाकिस्तान स्थापित हो जायेगा। आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों में सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिये मुझे किसी से कम जोश नहीं है। क्योंकि इन उद्देश्यों की सफलता पर ही राज्य की सफलता को प्रत्याभूत किया जा सकता है। किन्तु हमने जो कदम उठाया है वह न आदिमजातियों के कल्याण के लिये हितकर है और न समूचे भारत की जनता के हित में है।

संसदात्मक जीवन का उत्तरदायित्व वे ही लोग वहन कर सकते हैं जो योग्य, बुद्धिमान, न्यायप्रिय तथा साक्षर हैं। आदिमजातियों के हाथ में विस्तृत राजनैतिक शक्ति देना देश भर में अराजकता, गड़बड़ तथा अव्यवस्था को आमन्त्रण देना है।

मेरे से यह प्रश्न पूछा जा सकता है "कि आदिमजातीय लोग आप से आकर यह कहें कि वे राजनैतिक स्वायत्तता और जिला तथा प्रादेशिक परिषदों में निहित सब शक्तियां चाहते हैं तो आप उन्हें क्या कहेंगे?" मैं इस मांग को कभी स्वीकार नहीं करूंगा। मैं स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हूं। मैं अधिकतम संख्या के अधिकतम हित के सिद्धान्त में विश्वास करता हूं। मैं आदिमजातियों की बलिवेदी

पर भारत के हित कर बलिदान कभी नहीं करूंगा। स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त से यूरोप में बहुत गड़बड़ हुई है। इसी के कारण मेरे जीवनकाल में दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं। इसी से भारत का विभाजन, अग्निकांड, लूट, हत्या और महिलाओं तथा बालकों पर जघन्यतम अत्याचार हुये हैं। इसी से गांधी जी की हत्या हुई। मैं, इस आधार पर कि स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त का सबको समर्थन करना चाहिये, इन जिला और प्रादेशिक परिषदों के निर्माण का समर्थन नहीं कर सकता। जो लोग राजनैतिक रूढ़ि-सिद्धान्तों में विश्वास करते हैं वे कण्डिका 2 के उपबन्धों का समर्थन कर सकते हैं। मैं इसका कट्टर विरोध करता हूं।

यह तर्क पेश किया जा सकता है कि हम जिला और प्रादेशिक परिषदों को शक्ति देकर कोई नई बात नहीं कर रहे है।

आदिमजातीय क्षेत्रों में लोकतन्त्रात्मक संगठन हैं। कण्डिका 2 में विद्यमान वस्तुस्थिति को केवल सांविधानिक मान्यता प्रदान की जा रही है। श्रीमान, मैं इन युक्तियों से बिल्कुल प्रभावित नहीं हूं। यदि कोई बुराई है तो उसको समाप्त करना चाहिये चाहे वह कितनी भी पुरानी क्यों न हो।

एक और युक्ति पेश की जा सकती है कि अनुसूचित क्षेत्रों के विषय में जो सुधार इसमें रखे गये हैं वे आदिमजातियां समिति के प्रतिवेदन पर आधारित हैं जिसके सभापति श्री ठक्कर बापा थे और कि इसे आसाम के मुख्य मन्त्री का समर्थन प्राप्त था। मेरा यह ख्याल है कि उस प्रतिवेदन के राजनैतिक आशय को पूरी तरह नहीं समझा गया है। हम सारे देश के लोगों की बहुत कुसेवा कर रहे हैं। स्पष्ट कहा जाये तो मेरा अपना यह ख्याल है कि आपसे अनुरोध किया जाना चाहिये कि आप इस अनुसूची पर पुनर्विचार करने के लिये मसौदा-समिति को निदेश दें। हम समूचे देश के हितों को खटाई में डाल रहे हैं। यह ऐसा प्रश्न नहीं है जिससे केवल आसाम के लोगों का ही सम्बन्ध है। इस बात का समस्त भारत पर प्रभाव पड़ता है। इसका समूचे देश की प्रतिरक्षा पर प्रभाव पड़ता है। मुझे आशा है मेरे आसामी मित्र कालानुसार कार्य करेंगे तथा इस प्रश्न पर इसी दृष्टिकोण से विचार करेंगे। श्रीमान, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप इस अनुसूची को पुनर्विचार के लिये मसौदा-लेखन समिति के पास भेज दीजिये। इसकी पुनर्रचना पंचम अनुसूची के समान होनी चाहिये। विद्यमान षष्ठ अनुसूची में बहुत कठिनाइयां हैं और इसे अभी समुचित रूपेण संशोधित नहीं किया गया तो इससे बाद में गड़बड़ तथा अराजकता हो सकती है।

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन के नाम पर जो संशोधन संख्या 192 है उसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। बस ये ही संशोधन पेश होने थे।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस वाद-विवाद में भाग लेना नहीं चाहता था। किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से सदस्य आसाम की आदिमजातीय स्थिति को अच्छी प्रकार नहीं समझते, और इससे बड़ी बात यह है कि, कई सदस्य परामर्शदात्री उप-समिति की सिफारिशों की पृष्ठभूमि समझने में असमर्थ रहे हैं, जिसे संविधान-सभा ने आसाम की आदिमजातीय स्थिति के विषय में छानबीन करने के लिये नियुक्त किया था।

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

मैं यह कहना चाहता हूं श्रीमान, कि आसाम में तीन प्रकार की आदिमजातियां हैं। एक तो मैदानी आदिमजातियां हैं—ये लोग आदिवासी हैं और उनकी अपनी कोई संस्कृति या सभ्यता नहीं है। वे शनैः शनैः अन्य मैदानी लोगों के वर्ग और संस्कृति में विलीन हो गये, अधिक उचित यह कहना होगा कि वे आर्य संस्कृति में विलीन हो गये हैं। अब इन लोगों को अल्पसंख्यकों आदि अल्पसंख्यकों के साथ रख दिया गया है, और उन्हें अन्य अल्पसंख्यक जातियों के समान अधिकार दे दिये गये हैं।

फिर असली पर्वतीय आदिमजातियां हैं। वे भी दो स्पष्ट श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं। इन पर्वतीय आदिमजातियों की एक श्रेणी पर भारत के गवर्नर-जनरल के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल का प्रशासन रहेगा, और अन्य श्रेणी का जो पष्ठ अनुसूची के अंतर्गत आती है, स्वायत्तता प्राप्त वर्गों के रूप में प्रशासन चलाने की प्रस्थापना है। हमें षष्ठ अनसूची में प्रथम श्रेणी से कोई मतलब नहीं है, सिवाय उस हद तक कि कण्डिका 17 में यह उपबन्ध है कि इस समय जो क्षेत्र राज्यपाल द्वारा, गवर्नर-जनरल के अभिकर्ता के रूप में प्रशासित है, उसे उनके स्वविवेक के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में ही, स्वायत्त-शासी जिलों की श्रेणी में लाया जा सकता है। उस प्रयोजन के लिये राज्यपाल को कण्डिका 17 के अधीन शक्ति दी गई है जिसका मैंने उल्लेख किया है।

अब मैं सदन को यह सूचना देना चाहता हूं कि इस समय अभिकरण क्षेत्रों में इन आदिम जातियों की कोई स्वशासन संस्थायें नहीं हैं। संविधान के मसौदे में उपबन्ध है कि इन क्षेत्रों पर सीधा राज्यपाल का प्रशासन होगा और उस पर कोई निर्बन्धन नहीं होगा। किन्तु ऐसा समय आ सकता है जब कि वे अपना शासन आप करने के योग्य हो जायें। प्रस्थापना यह है कि उस समय उन्हें स्वायत्तशासी जिलों की श्रेणी में ले लिया जाय। ये क्षेत्र हिमालय की तराई में ब्रह्मपुत्र के उत्तरी तट पर स्थित हैं। दूसरे, जो स्वायत्तशासी जिलों की श्रेणी में आते हैं, वे नदी के दक्षिणी तट पर बर्मा तथा पाकिस्तान की सीमा पर हैं। उनमें कोई छह विविध प्रकार की आदिमजातियां हैं और उनके लिये स्वायत्तशासी जिलों की योजना है।

अब मैं आपके समक्ष वह पृष्ठभूमि रखना चाहता हूं जिस पर यह मसौदा बनाना पड़ा था। आपको यह अज्ञात नहीं है कि ब्रिटिश सरकार का शासन तथा विदेशी प्रचारकों की कार्यवाहियां सदा साथ-साथ चलती थीं। पहले वे क्षेत्र बिल्कुल अपवर्जित क्षेत्र थे क्योंकि मैदानों में से कोई भी वहां जाकर उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता था। 15 अगस्त, 1947 तक, जब भारत स्वाधीन हुआ था, यही स्थिति थी। तब तक विदेशी शासकों को इन क्षेत्रों में यह अधिकार था कि वे जिसे चाहते 24 घण्टों में उस स्थान से निकाल सकते थे। फिर, श्रीमान, इन क्षेत्रों में से कुछ संग्रामीय प्रदेश थे। युद्ध काल में, तत्कालीन शासकों और अधिकारियों ने इन आदिमजातीय लोगों में पार्थक्य और अलहदगी की भावना उत्पन्न कर दी थी और उन्हें आश्वासन दे दिया था कि युद्ध के अंत में वे स्वतन्त्र राज्य बनाकर अपने घर का स्वयं अपना प्रबन्ध करेंगे। उन्हें यह विश्वास करा दिया गया कि समस्त पर्वतीय क्षेत्रों का एक प्रान्त बना दिया जायेगा और किसी अनुत्तरदायी राज्यपाल के अधीन रख दिया जायेगा। आपने सम्भवतः पत्रों में पढ़ा होगा कि इंलिस्तान में योजना

बनाई गई थी, जिसमें आसाम के भूतपूर्व राज्यपालों ने भाग लिया था, कि वहां एक प्रकार का देशी-राज्य बना दिया जाये।

अब श्रीमान, इस पृष्ठभूमि को लेकर हमने 1946 में पड़ताल आरम्भ की। इस क्षेत्र के लोगों में पहले से ही यह पार्थक्य तथा अलहदगी के भाव भरे हुये थे। इस समिति के समक्ष सबसे अधिक आवश्यक बात यह थी कि क्या एकीकरण के प्रयोजन के लिये शक्ति के उपाय, आसाम रायफलों और सैनिक बलों के प्रयोग के उपाय प्रयुक्त होने चाहियें, अथवा ऐसे उपाय काम में आने चाहियें जिनसे इन लोगों के हार्दिक सहयोग को प्राप्त करके इन क्षेत्रों पर शासन किया जा सके।

श्रीमान, यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इन पर्वतीय आदिमजातियों में कुछ सस्थायें हैं, जो मेरे विचार में, इतनी अच्छी हैं कि यदि हम उन्हें नष्ट करना चाहें तो मैं उसे बहुत बुरा समझता हूं। इनमें एक बात जो इन आदिमजातियों में मुझे बहुत अच्छी लगी उनकी झगड़े सुलझाने की प्रणाली है। जो मामले हमारी दण्ड संहिता के अनुसार हत्या कहलायेंगे उन्हें यह लोग केवल पंचायत के विनिश्चयों से और प्रतिकर देकर निबटा दिया करते हैं। फिर वहां जो लोकतन्त्र प्रचलित है—यद्यपि वह एक रूप में सीमित है कि वह किसी उपजाति या प्रदेश तक ही सीमित होता है—पर उससे किसी निष्पक्ष अभ्यासी के हृदय में प्रशंसा के भाव उठेंगे। और फिर उनके ग्राम्य प्रशासन का उदाहरण लीजिये। वहां जैसे काम होता है उसे देखते हुये जिला अधिकारियों को कुछ नहीं करना पड़ता। 'आओ नागा' लोगों का मामला लीजिये जो समाज के समस्त कृत्यों को अपने समाज के कुछ आयु-वर्गों में बांट देते थे। लड़के कुछ सादे कृत्य करेंगे, और राज्य के भारी कृत्य प्रौढ़ों पर छोड़ देंगे, और वृद्ध लोग विवाद होने पर तथा भूमि के वितरण आदि के विषय में अपने निर्णय देंगे। दूसरे शब्दों में, वे एक प्रकार की स्वायत्तता का उपयोग कर रहे हैं, जिसको, मेरे विचार में और आदिमजातीय उप-समिति के विचार में, नष्ट करने की बजाय बनाये रखना चाहिये। सुशासन के लिये जिस वस्तु की आवश्यकता है वह वहां पहले ही है।

यह सत्य है कि इन आदिमजातीय लोगों में से कुछ लोग कभी-कभी नराखेट करते हैं, किन्तु यह स्पष्टत: समझ लेना चाहिये कि ऐसा तभी होता है जब एक उपजाति की दूसरी उपजाति से शत्रुता होती है। इन लोगों में वंशपरम्परा से सामूहिक घृणा की भावना होती है। अत: हमारे सामने यह प्रश्न पेश हुआ था कि क्या हम बल प्रयोग करके उनमें शत्रुता तथा घृणा की भावना उत्पन्न करें या हम उन्हें सद्भावना तथा प्रेम द्वारा शासन के विस्तृत सिद्धान्तों के अन्तर्गत लायें। मन्त्रणा समिति ने सोचा कि बाद वाला उपाय ही अपनाना चाहिये। मैं स्वयं गांधीवाद में दृढ़ विश्वास रखता हूं। अत: यदि गांधी प्रणाली का अनुसरण करना है, तो वही तरीका अपनाना पड़ेगा जो हमने सर्वोत्तम समझा है। अब उसी पृष्ठभूमि पर यह मसौदा तैयार करके आपके समक्ष रखा गया था। इस बीच, भारत की शासन व्यवस्था में बहुत परिवर्तन हो गये हैं। अब केन्द्र को अधिक शक्तियां दी जा रही हैं जितनी पहले कल्पना नहीं थी। अत: इस समय उन शक्तियों को समुचित स्थान पर रखना है। जो संशोधन पेश किये गये हैं उन पर की गई आलोचना से इसी प्रवृत्ति का संकेत मिलता है कि हमने इन स्वायत्तशासी परिषदों को अधिक शक्तियां दे दी हैं, शायद उनसे

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

भी कहीं अधिक, जो आसाम राज्य का विधानमण्डल दे सकता था। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। वास्तव में, इन उपबन्धों में केवल इतनी सी बात है कि आदिमजातीय समाजों में जो चीज पहले ही लागू है वही इनमें रख दी गई है, और इसलिये हम अत्यधिक कुछ नहीं दे रहे हैं जैसा कि मेरे कुछ मित्रों ने कहा है।

फिर उन संशोधनों को लेते हैं जिन्हें श्री चालिहा ने पेश किया है, केवल दिमारपुर को छोड़ कर जिस पर उन्हें आपत्ति थी उसे नागा पर्वतों में समाविष्ट कर दिया गया है, और शेष सबको मसौदा-लेखन समिति ने स्वीकार कर लिया है। यह सत्य है कि वह क्षेत्र केवल प्रशासनीय सुविधा के लिये नागा पहाड़ियों में शामिल किया गया है। पर मसौदा-लेखन समिति ने दो बातों के लिये उपबन्ध कर दिया है। एक यह है कि किसी समूचे क्षेत्र को स्वायत्तशासी जिले से निकाला जा सकता है। दूसरी बात यह उपबन्ध किया गया है कि जो लोग वहां या वैसे ही क्षेत्र में रह रहे हैं उन्हें पड़ोस के किसी सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र में अपना मतदान करने का अधिकार होगा।

अत: मेरा निवेदन है कि यहां कोई ऐसी प्रस्थापना नहीं की गई है जो इस संविधान के ढंग या ढांचे के अनुरूप न हो जो हम सब भारत के लिये बना रहे हैं, और जहां कहीं भी कोई असंगति थी तो उसे हटा दिया है। मुझे तो केवल यही कहना है। अत: मेरी प्रार्थना है कि इन संशोधनों के प्रस्तावक इस मसौदे की पृष्ठभूमि पर तथा पहले पहाड़ियों में जो विशेष परिस्थितियां थीं उन पर भी विचार करें।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी__ (आसाम : जनरल): क्या मैं माननीय सदस्यों से निवेदन कर सकता हूं कि वे नये संविधान के उपबन्धों को देखें जिनके अनुसार आदिमजातीय क्षेत्र में रहने वाले अन-आदिमजातीय लोग उन अन्य क्षेत्रों में अपने मत का प्रयोग कर सकते हैं जो आदिमजातीय क्षेत्र में समाविष्ट नहीं हैं? पहली बात तो यह है कि इस समय के आदिमजातीय क्षेत्रों का रूप अन्तिम नहीं है। राज्यपाल को उनकी सीमायें निश्चित करने की शक्ति दी गई है। फिर 16 (क) इस प्रकार है:-

"Exclusion of areas from autonomous districts in forming constituencies in such districts.—For purposes of elections to the Legislative Assembly of Assam, the Governor may by order declare that any area within an autonomous district shall not form part of any constituency to fill a seat or seats in the Assembly reserved for any such district, but shall form part of a constituency to fill a seat or seats in the Assembly not so reserved to be specified in the order."

यही संशोधन हम पेश करेंगे। आप देखेंगे कि हमने मैदान के किसी व्यक्ति के साथ कोई बुराई नहीं की है। पर हमने इन क्षेत्रों की स्वायत्तता को उस हद तक स्वीकार किया है जिस हद तक कि आदिमजातियां उनका प्रयोग करने में समर्थ हैं।

मुझे आशा है, श्रीमान, कि जिन संशोधनों की सूचा भेजी गई है उन्हें इन परिस्थितियों को समझ कर पेश किया जायेगा और विनाशात्मक आलोचना की भावना से पेश नहीं किया जायेगा।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (युक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई की वक्तृता को ध्यान से सुना है। मैं स्वीकार करता हूं कि मैं स्वायत्तशासी जिलों में स्थिति से बहुत परिचित नहीं हूं और इसलिये, मैं उनकी बात को स्वीकार करता हूं और मैं उन्हें आश्वासन देना चाहता हूं कि सदन उन्हें पूरा अवसर देगा कि वे जैसे भी चाहें उस क्षेत्र में शासन चलायें। पर मैं यह अनुभव करता हूं कि कोई ऐसा तरीका अवश्य होना चाहिये जिससे कि ये स्वायत्तशासी जिले कम से कम बाद में किसी दिन समूचे प्रान्त की सामान्य जनसंख्या में विलीन हो सकें तथा उसके भाग बन सकें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि आप चाहें, तो, श्रीमान, मैं इस समय कुछ बातें कहना चाहता हूं और फिर शायद कई सदस्य बोलने की आवश्यकता ही न समझें और मेरे विचार में ये सब संदेह समाप्त हो जायेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं तो केवल यही कहना चाहता था कि यदि इस योजना को स्थायी संविधान में रखा जायेगा तो इसका अर्थ यह होगा कि आसाम के कुछ क्षेत्र सदा के लिये संसद के नियंत्रण से परे होंगे। मैं चाहता हूं कि दस वर्षों के लिये, पंद्रह वर्षों के लिये या किसी नियत अवधि के लिये यह उपबन्ध किया जा सकता है और इसके साथ उनके कल्याणार्थ आप जो चाहें रख सकते हैं, और हमें कुछ समय की कल्पना करनी चाहिये जिसके बाद ये लोग प्रान्त की सामान्य जनसंख्या में लीन हो सकें तथा उसके भाग बन जायें और उनके लिये भिन्न प्रान्त की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। मैंने समस्त सूची का अध्ययन करने का प्रयत्न किया, और जो संशोधन पेश होने हैं उनमें मैंने ऐसा कोई उपबन्ध नहीं देखा। डॉ. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 20 पेश किया है जिससे संसद अनुसूची का संशोधन कर सकती है, किन्तु ऐसे किसी तरीके का संकेत नहीं किया गया है जिससे उन क्षेत्रों को शेष आसाम से अधिक सम्पर्क में लाया जा सके। यह पार्थक्य स्थायी रूप धारण कर लेगा तथा उससे उस प्रान्त का विभाजन हो सकता है। माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई ने हमें वह पृष्ठभूमि दिखा दी है जिसके अधीन यह किया गया है, किन्तु मैं यह चाहता हूं कि उस पृष्ठभूमि के आधार पर हमें भविष्य को पहले ही जान लेना चाहिये और इस संशोधन का इस प्रकार संशोधन करने के लिये प्रयत्न करना चाहिये कि काफी समय के पश्चात्, दस पंद्रह वर्ष के पश्चात्, ये अनुसूचित क्षेत्र शायद आवश्यक न रहें और वे समस्त आसाम प्रान्त के भाग बन जायें।

***अध्यक्ष:** कण्डिका 20 के अधीन संसद को शक्ति दी गई है कि वह समूची अनुसूची का ही निरसन कर सकती है, यदि वह उचित समझे। आप और क्या चाहते हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैंने अपनी वक्तृता में इस बात का निर्देश किया है।

***अध्यक्ष:** क्या डॉ. अम्बेडकर इस समय कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि आप चाहें, श्रीमान, अब माननीय सदस्य बोलना चाहते हैं तो उन्हें बोलने दीजिये।

†***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** अध्यक्ष महोदय, इस सदन में आदिमजातीय लोगों के हितों के रक्षण के प्रश्न पर जो वक्तृता दी गई उसे मैंने बहुत ध्यान से सुना है। आदिमजातीय सदस्यों की सम्मति को सुनने के पश्चात्, इस सदन के अन-आदिमजातीय सदस्यों के, जिन्हें आदिमजातीय क्षेत्रों की स्थिति का बहुत कम ज्ञान है, विचारों के सुनने के पश्चात्, मेरे मन में यही प्रतिक्रिया हुई है: भारत, स्वतन्त्र भारत, हम हैं। उनके पारस्परिक अन्तरों के कारण ही भारत मुगलों तथा पठानों के हाथ से निकल गया। यह मुसलमानों को प्रसन्न करने की नीति का ही परिणाम था कि हमने अंततः इस भारत के कुछ समृद्ध भागों को पूर्णतः अपने हाथ से खो दिया और उनका पाकिस्तान बन गया है। मैं चाहता हूं कि यह सदन, तथा इस सदन के द्वारा, भारत के लोग यह जान जायें कि प्राधिकार युक्त लोगों को तथ्यों का गलत ज्ञान है उसके कारण तथा प्राधिकारहीन व्यक्तियों की इस विषय में अनभिज्ञता के कारण, भारत की बहुत हानि होने वाली है तथा भारत समस्त आदिमजातीय क्षेत्रों को खो देने वाला है। सच तो यह है, श्रीमान, मैं कहता हूं मुझे आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में कोई ठोस ज्ञान नहीं है और इसके साथ ही मैं कहूंगा कि यहां मेरे किसी भी माननीय मित्र को, यहां तक कि आसाम के माननीय मुख्यमन्त्री को भी, भारत के आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है (साधु, साधु)। इसका कारण माननीय मुख्य मंत्री की ओर से उपेक्षा या अवज्ञा नहीं है, वरन् वह वस्तुस्थिति है जो इस देश की स्वतन्त्रता से पूर्व वहां थी। स्वतन्त्रता से पूर्व जब वे माननीय मुख्य मन्त्री थे तब भी उन्हें आदिमजातीय क्षेत्रों में जाने का अधिकार नहीं था, उन्हें उन क्षेत्रों में अबाध प्रवेश करने की स्वतन्त्रता नहीं थी और वे वहां गवर्नर की अनुमति से ही जा सकते थे, अन्यथा नहीं। यह स्थिति थी। माननीय रेवरेण्ड निकल्स राय, जो एक मन्त्री थे, वे भी किसी अन्य आदिमजातीय क्षेत्र में नहीं जा सकते थे, शायद वे केवल खासी पहाड़ियों में ही जा सकते थे। वास्तव में वे कभी कहीं भी नहीं गये, शायद कार्यवश नागा पहाड़ियों में ही कभी गये होंगे। मैं नहीं जानता, पर ऐसा कोई सूचना का साधन नहीं है। जिससे वे या जनता में कोई भी या मन्त्रिमण्डल में कोई भी इन आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में कुछ जान सके। श्रीमान, ब्रिटिश लोगों ने इन आदिमजातीय क्षेत्रों को पूर्णतः संरक्षित रखा था। जब आई.सी.एस. अधिकारी भारत आते थे तो सबसे पहले उन्हें आसाम प्रान्त में ऐसे प्रदेश ढूंढ़ने की चिन्ता होती थी जहां मच्छर, वकील तथा राजनीतिक लोग न हों। वहां अफसरों का यही पहला उद्देश्य होता है और वे इन पर्वतीय क्षेत्रों के प्रशासन के लिये जो भी नियम बनाते थे, वे कार्य के लिये जो भी नियम बनाते थे, वे नियम इसलिये बनाये जाते थे कि इन आदिम जातीय क्षेत्रों को शेष भारत से बिल्कुल भिन्न देश बना दिया जाये, जहां यूरोपीय लोग यूरोपीयों के समान रह सकें, वैसी ही जलवायु का आनन्द ले सकें, वैसे ही प्राधिकार का तथा भारत में वे जो कुछ चाहें उसको आनन्द भोग सकें। यही सब उनका उद्देश्य होता था। यही उद्देश्य था। अतः ईसाई प्रचारकों के अतिरिक्त किसी को भी, किसी अन्य धर्म के प्रचारकों को इन क्षेत्रों में नहीं जाने दिया जाता था। नियमों विनियमों में ऐसा कोई उपबन्ध नहीं था कि कोई व्यक्ति वकील की या ऐसी कोई सहायता प्राप्त कर सके, चाहे कितना भी गम्भीर अपराध

†माननीय सदस्य ने अंग्रेजी वक्तृता को शुद्ध नहीं किया।

क्यों न हो, क्योंकि उसे प्रतिरक्षा कराने का अधिकार ही नहीं था। वह प्रतिरक्षा कराने के लिये विशेष अनुमति ले सकता था; पर उसे प्रतिरक्षा कराने का अधिकार नहीं था: व्यवहार न्यायालयों की तो बात ही क्या है। किसी वकील को इन पहाड़ियों में रहने या वहां वकालत करने का अधिकार नहीं था। कोई दूसरे लोग भी प्राधिकारियों की अनुमति के बिना इन क्षेत्रों में जा नहीं सकते थे। अंग्रेज इन क्षेत्रों की जनता को यथासम्भव पिछड़ी हुई रखना चाहते थे। मैं आपको बताता हूं और सदन को यह जानकर आश्चर्य होगा कि नागा पहाड़ियों में–नागा का अर्थ है नंगा–लोग पहले नंगे फिरा करते थे। वहां एक उपायुक्त था जो धोती पहनने पर नागा को कोड़े लगाया करता था। अंग्रेज चाहते थे कि नागा लोग जैसे हैं वैसे ही रहें; वे उचित रूप से वस्त्र धारण न करें; वे सभ्य लोगों के समान न रहें, मैं आपको बता सकता हूं, वहां यही स्थिति थी।

*__श्री कुलाधर चालिहा:__ नागाओं को धोतियां नहीं पहनने दी जाती थीं। उपायुक्त का सदा यही आदेश था।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ और भी आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि अंग्रेजों के आने से पहले, ये नागा लोग आसामियों के मित्र थे। उन्होंने आसामी भाषा अपना ली थी। दस वर्ष पहले तक यही हाल था, जब तक कि अंग्रेजों ने बलात् रोमन लिपि नहीं थोपी। उस समय तक आसामी भाषा नागाओं की न्यायालय भाषा थी। गत दस वर्षों में उन्होंने साधारण बंगाली के स्थान पर रोमन लिपि रखने का प्रयत्न किया है। ऐसे ही नियम बल्लीपारा सीमान्त प्रदेश, सदिया सीमान्त प्रदेश में और समस्त पर्वतीय क्षेत्रों में लागू थे, जिनमें गारो पहाड़ियां भी आ जाती हैं। गोरो पहाड़ियों में बहुत से अन–आदिमजातीय लोग हैं। गारो पहाड़ियों में भी ब्रिटिश शासन के पूर्ववर्ती दिनों में, पहले आसामी तथा बंगला ही न्यायालय–भाषाएं थीं। अंग्रेजों ने शनैः शनैः इन लिपियों और भाषाओं को हटा कर अंग्रेजी जारी की। वे ऐसा ही करते थे। मुझे बहुत खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि डॉ. अम्बेडकर अनुसूची 6 के विषय में यही कर रहे हैं कि वे, कुछ मामलों को छोड़कर, बिल्कुल ब्रिटिश प्रणाली का ही अनुसरण कर रहे हैं। जहां तक आदिमजातीय क्षेत्रों का सम्बन्ध है वे अंग्रेजी प्रणाली को ही जारी रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका यह कार्य जानबूझ कर नहीं अज्ञानतावश है। अतः मैं इस सदन से सादर निवेदन करूंगा कि वह अधीर न हो और समस्त प्रश्न पर उचित दृष्टिकोण से विचार करे। आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में संविधान ऐसे व्यक्तियों द्वारा बनाया जाना चाहिये जिन्हें आदिमजातीय क्षेत्रों के मामले का सीधा और अच्छा ज्ञान हो। मैं यथाशक्य पूरे बल से कहता हूं कि इन व्यक्तियों में किसी को भी आदिमजातीय क्षेत्रों में चलने वाले मामलों का पूरा ज्ञान नहीं है, चाहे वे व्यक्ति मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी हों, चाहे डॉ. अम्बेडकर हों या मेरे माननीय मित्र आसाम के मुख्य मन्त्री हों। इसके उचित कारण हैं, मैं उनका अपराध नहीं बताता। किन्तु, स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात्, वे उस ज्ञान का अर्जन कर सकते हैं, वे वहां जाकर पता लगा सकते हैं। इस सदन की छोटी–सी समिति को, जिसमें आदिमजातीय तथा अन–आदिमजातीय लोग हों, उन क्षेत्रों में जाना चाहिये, स्वयं वहां की स्थिति देखनी चाहिये और इस अनुसूची में समस्त संविधान को संशोधित कर देना चाहिये। अब तो यही उपाय है। यदि आप समस्त आदिमजातीय

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

लोगों को खोना नहीं चाहते, यदि आप आदिमजातीय क्षेत्रों पर नियंत्रण खोना नहीं चाहते, तो इस सदन के लिये यही उपाय शेष रह जाता है कि वह छोटी-सी एक समिति बना दे जिसमें हमारे विश्वासपात्र लोग हों। उन्हें आदिमजातीय क्षेत्रों में जाकर समस्त संविधान का संशोधन करने दीजिये। वही ठीक उपाय होगा।

हम आदिमजातीय लोगों को मिलाना चाहते हैं। अब तक हमें यह अवसर नहीं दिया गया था। चाहे आदिमजातीय लोग कितना ही चाहते थे, उन्हें हममें मिल जाने का अवसर नहीं मिला। यहां तक कि, मैं शिलांग में रहते हुये किसी खासी से कोई सम्पत्ति नहीं खरीद सकता जब तक कि राज्य के प्रधान से या उपायुक्त से मुझे अनुमति प्राप्त न हो जाये। मुझे आदिमजातीय क्षेत्रों में कोई सम्पत्ति खरीदने का अधिकार नहीं है। भारतीय को उपायुक्त या राज्य के मुखिया की अनुमति के बिना उन क्षेत्रों में भूमि खरीदने का अधिकार नहीं है। यह बात अब भी है। यदि यह संविधान पारित हो जायेगा तो यह निर्योग्यता जारी रहेगी। मुझे आदिमजातीय लोगों से मिलने नहीं दिया जाता, उन्हें मुझसे मिलने नहीं दिया जाता। ये मेरे मित्र श्री निकल्स राय स्वायत्तशासी जिले मांगने आये हैं। आप स्वायत्तशासी जिले क्यों चाहते हैं? मेरे माननीय मित्र श्री बारदोलोई कहते हैं कि वे स्वायत्तशासी जिले इसलिये चाहते हैं ताकि आदिम जातीय लोगों को स्वशासन की कला में शिक्षित किया जा सके। उन्हें स्थानीय स्वशासन ही क्यों नहीं दे देते (बाधा)। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इनमें से किसी जिले में कोई नगरपालिका नहीं है, शायद केवल शिलांग प्रशासित क्षेत्रों में है। आसाम का नगरपालिका अधिनियम इनमें से किसी आदिमजातीय क्षेत्रों में लागू नहीं है। आदिमजातीय क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन अधिनियम लागू नहीं है जिसके कारण जिला मण्डलियां तथा स्थानीय मण्डलियां बनती हैं। यदि आप आदिमजातीय क्षेत्रों के लोगों को वास्तव में स्वशासन की कला सिखाना चाहते हैं। तो आप इन क्षेत्रों में इस अधिनियम को क्यों लागू नहीं कर देते? आप इन नागरिक प्रयोजनों के लिये स्वायत्तशासी जिले क्यों चाहते हैं? नगरपालिका अधिनियम क्यों लागू नहीं कर देते? तब उन्हें स्वशासन की कला स्वयं आ जायेगी। आप ये स्वायत्तशासी जिले बनाकर, जो स्वायत्तशासी रहेंगे, उन्हें हमसे अलग क्यों करना चाहते हैं? क्या आप आदिमजातीय तथा अन-आदिमजातीय लोगों को मिलाना चाहते हैं, या उन्हें अलग-अलग रखना चाहते हैं? यदि आप उन्हें अलग रखना चाहते हैं तो वे तिब्बत से मिल जायेंगे, वे बर्मा से मिल जायेंगे, वे शेष भारत से कभी नहीं मिलेंगे, आप मेरे से सुन लीजिये।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): आपत्ति।

***श्री कुलधर चालिहा:** श्री जयपाल सिंह शिलांग के अंग्रेजी क्लब में जाते हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** यह स्वायत्तशासी जिला एक शस्त्र है जिससे आदिमजातीय लोगों को अन-आदिमजातीय लोगों से अलग रखने के उपाय किये जाते हैं और आजादी के पश्चात् हम जिस मित्रता की स्थापना की आशा करते थे वह न होगी। अंग्रेजी काल में हमें वहां अपनी संस्कृति नहीं फैलाने दी जाती थी। अंग्रेजों के जाने के पश्चात् भी हम डॉ. अम्बेडकर के नये संविधान में यही बात देखते हैं।

*श्री ए.वी. ठक्कर (सौराष्ट्र): क्या मैं अपने माननीय मित्र से पूछ सकता हूं कि क्या इसमें अत्यधिक बहुमत से, मानो दो-तिहाई बहुमत से परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

*श्री रोहिणी कुमार चौधरी: बदल सकता है। अत: मैं सदन के उन सदस्यों से जो आसामी नहीं हैं प्रार्थना करता हूं कि वे इस आसाम प्रान्त के मामले में अधिक रुचि लें। यह आवश्यक है कि माननीय सदस्य ऐसा करें ओर एक समिति, एक बुद्धिमान समिति, बनाने के लिये सहमत हो जायें, उन्हें उन क्षेत्रों में घूमने दें और स्वयं वहां का हाल देखकर उनसे बात करके व्यक्तिगत ज्ञान प्राप्त करने दें। आप देखेंगे कि आदिमवासियों की यह घृणा न्यस्तस्वार्थी लोगों द्वारा पैदा की हुई वस्तु है। पहले आदिमजातीय लोगों और अन-आदिमजातीय लोगों में अन्तर्विवाह होते थे। वे ही स्वार्थी लोग इस घृणा को बनाये रख रहे हैं।

*श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): माननीय सभापति जी, इस विषय में मेरा कुछ कहना है। मैं आसाम प्रदेश में 1938 की साल में, भ्रमण करने नहीं, काम करने के लिये गया था। वहां बाढ़ थी। उस बाढ़ के काम में मैं आसाम प्रदेश गया था और हर एक जिला घूमा, लेकिन नागा हिल्स में नहीं जा सका। क्यों नहीं जा सका इसका उत्तर आगे जो वक्ताओं ने कहा है उससे आपको स्पष्ट मालूम हो गया होगा। उसका कारण क्या था? तो उसके बारे में इतना ही कहना चाहता हूं कि यह नागा लोग हैड हंटर हैं इसीलिये हम लोगों को उनके बीच में काम करने का मौका नहीं मिला था। उन लोगों के लिये अवश्य सतर्कता के साथ हम लोगों को कानून बनाना है। तो भी अभी हम लोग जो रीजनल कौंसिल बनाते हैं, मेरा ख्याल होता है कि रीजनल कौंसिल से हम लोगों को भी फायदा नहीं होगा और उन लोगों को भी फायदा नहीं होगा। क्योंकि उन लोगों की हर एक ट्राइब में एक-एक संस्था है जैसी कि हम लोगों को पंचायत होती है। वह हर एक गांव के आगे बैठकर पंचायत करते हैं। उनके एक-एक गांव के रीति रिवाज में दूसरे गांव के रीति रिवाज से फर्क भी होता है। इसलिये हम लोग जो रीजनल कौंसिल बनायेंगे उसमें एक तरह का कानून बनाने से गांव-गांव में भी बहुत झगड़ा हो जायेगा। यह देखते हुये मैं यह भी कहूंगा कि हम लोगों की जो क्षमता है, केन्द्र और प्रदेश को, उसे उस जगह पर जोर से रखना चाहिये। हम लोग उसको छोड़ देते हैं। छोड़ देने से क्या होगा? फल यह होगा कि वह हम लोगों के साथ न रह कर क्रमश: अलग हो जायेंगे। उनके अलग हो जाने के बाद, दस बरस के बाद, आप देखेंगे कि उन लोगों का भाव एक दूसरे तरीके से हो गया है और इस भाव से कभी-कभी वह ऐसे हो जायेंगे कि वह लड़ेंगे झगड़ेंगे और वह यह कहेंगे कि हम एक-दम स्वतन्त्र हैं। इसीलिये हम लोगों को अच्छी तरह से देखना चाहिये।

मैं उड़ीसा में कन्ध लोगों के भीतर काम करता हूं और उन लोगों में ह्यूमन सेक्रीफाइस होता था। उस ह्यूमन सेक्रीफाइस को जोर जबरदस्ती से बन्द कर दिया गया और उन आदमियों को बहुत नरम भी कर दिया गया है तो भी अभी तक हम लोग उसको थोड़ा-थोड़ा छोड़ देते हैं। क्योंकि वह थोड़ा-सा सेक्रीफाइस जरूर करते हैं। ह्यूमन सेक्रीफाइस बहुत भीतर में होता है। हम लोगों के कान में यह बात आती है तो भी हम लोग नहीं पकड़ते है। यह ठीक है तो भी ऐसे जो आदमी थे कन्ध लोग जिनमें अब भी थोड़ा ह्यूमन सेक्रीफाइस चलता है। उनको हम लोगों ने आईने के भीतर ले लिया है। तो क्यों नागा लोगों को हम एक दम स्वतन्त्र कर दें। हम रीजनल कौंसिल बनाकर उनको बहुत आईने के भीतर नहीं ला सकते हैं। यह मैं समझता हूं तो भी हम लोगों को यह देखना चाहिये कि क्योंकि हम भारत को एक बन्धन में बांधने की कोशिश करते हैं तो उस बन्धन

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

में उनको जो हम डर से अलहदा रखते हैं यह ठीक नहीं है। इसीलिए मैं चाहता हूं कि इसको थोड़ा और भी सोच विचार कर हम लोगों को जरा तेजी करनी चाहिये और जब हम ऐसा कर सकेंगे तब हम लोगों का बल हो सकता है।

एक बात मैं और कहना चाहता हूं। रोहिणी कुमार चौधरी जी ने कहा है कि शिलांग में रहते हुये भी वह खासी से जमीन खरीद नहीं कर सकते हैं। हम लोगों के यहां उड़ीसा में भी ऐसा ही आईन है और हम चाहते हैं कि जो आदमी अबारिजनल है उसको सोचने बूझने की शक्ति नहीं है इसलिये उससे कोई आदमी धोखा देकर जमीन न छीनने पावे। इसीलिये उनके लिये स्वतन्त्र जमीन का आईन होना चाहिये और इसीलिये हमने ऐसा रखा है। और हम चाहते हैं कि उसको और भी कठिन कर दिया जाये ताकि बाहर के आदमी जो अबारिजनल नहीं हैं। जमीन न ले सकें। तो रोहिणी बाबू की यह शिकायत है कि वह जमीन नहीं खरीद सकते हैं पर यह तो होना ही चाहिये कि जब तक उन लोगों को अपने लिये सोचने बूझने की शक्ति नहीं है तब तक हम आईन बनाकर उनको बचायें। तो मैं इसी लिये चाहता हूं कि यह सब आईन होते हुये भी हम लोग इस कौंसिल को ऐसी क्षमता दें कि जो उन लोगों के रीति रिवाज हैं उन पर अच्छा प्रभाव डाल सके। अगर हम ऐसा करेंगे तो हम नागा हिल्स को भारत के साथ ला सकेंगे क्योंकि उसको हम अपना अंश मानते हैं और उन लोगों को जोर के साथ अपने अन्दर लाने की कोशिश करेंगे, एकदम छोड़ नहीं देंगे। क्योंकि शायद दस बरस के बाद उनमें और हममें अन्तर हो जाये। इसीलिये यह ख्याल रख कर थोड़ा कुछ और बदल करना चाहिये और यहां जो प्रीमियर बारदोलोई जी का और रोहिणी बाबू का मतान्तर है और श्री कुलाधर चालिहा जी का जो मतान्तर होता है उसका हम श्रद्धा से देखते हुये भी चाहते हैं कि उसका कुछ थोड़ा विचार होना चाहिये।

***श्री जयपाल सिंह:** अध्यक्ष महोदय, मुझे यह स्वीकार करना होगा कि आज प्रात: कुछ सदस्यों ने, यह कल्पना करके कि यदि सदन इस बात को या उस बात को पारित कर देगा तो आसाम के आदिमजातीय लोग क्या-क्या कर देंगे, जितना गरल उगला है उससे मैं स्तम्भित हो गया हूं। मैं चाहता हूं कि इनमें कुछ सदस्य उस समय उपस्थित होते जब कि आदिमजातीय समिति समवेत हुई थी और माननीय सरदार पटेल ने यह स्पष्ट किया था कि उन्होंने आसाम सम्बन्धी आदिमजातीय उप-समिति की सिफारिशों को क्यों स्वीकार किया था। क्या मैं उस बात को केवल दोहरा दूं जो उन्होंने कही थी? आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों को इन सिफारिशों को स्वीकार करने के लिये सहमत करने में बहुत कठिनाई पड़ी थी तथा बहुत लम्बी वार्ता हुई थी। भारत के अवशिष्ट लोगों की ओर से सुनिश्चित वचन दिया गया था कि इन समझौतों, इन वचनों को पूरा किया जायेगा। इसी सुनिश्चित समझौते के आधार पर ही आदिमजातीय लोग उस आंदोलन को बन्द करने के लिये राजी हो गये थे। जिसकी प्रेरणा पुराने शासकों ने जाते समय उन्हें दी थी। मैं चाहता हूं कि लोग कुछ जान कर बात करें। मास्को स्थित सुयोग्य राजदूत ने, विदाई के समय, हमें परिस्थितियों को सम्भालने के दो उपाय बताये थे। एक था शक्ति का उपाय, दूसरा ज्ञान का उपाय। दूसरे कुछ सदस्यों की जोरदार भाषा में शक्ति-उपाय का आभास है। वे चाहते हैं कि आसाम के आदिमजातीय लोगों को अपनी इच्छाओं

तथा अभिव्यक्त मर्जी के विरुद्ध कार्य करने के लिये बाध्य किया जाये। मेरा सुझाव है कि यह कोई उपाय नहीं है। यदि आप ऐसा करेंगे तो वही वस्तु होगी जिसकी आपको आशंका है। आपके इस कार्य से भारत का खण्डन रुकेगा नहीं, अधिक हो जायेगा। अब अंग्रेजों को दोष देना व्यर्थ है कि उन्होंने क्या किया और किसी विशेष प्रकार से कार्य करने में उनका क्या उद्देश्य था। उसे दोष देने से क्या लाभ है? अब तो सारी बात हमारे हाथ में है। हमें इन समस्याओं के विषय में राजनीतिज्ञता से काम लेना चाहिये। आसाम के आदिमजातीय लोगों की नीयत पर सन्देह करने से किसी को कोई लाभ नहीं होगा। क्या मेरे मित्रों को यह विश्वास है कि नागा अपने वचन का पक्का नहीं है? क्या आपका यह मतलब है कि लुशाई पहाड़ियों के लोग हमें धोखा देने का प्रयत्न कर रहे हैं? उनका क्या मतलब है? नेताओं और आदिमजातीय उप-समिति के बीच, जो कि वहां गई थी, सुनिश्चित समझौता हुआ है। फिर यह संदेह क्यों? मैं जानता हूं कि उनके कुछ भ्रमणों में कठिनाइयां थीं। उप-समिति को कई जगह जाने से रोक दिया गया था, यह मैं जानता हूं। पर ये सब बाधात्मक बातें किसी की प्रेरणा से हुई थी, इसका ठोस प्रमाण हमारे पास है और अब अंग्रेजों के चले जाने पर हमें ही इस स्थिति को संभालना होगा। आसाम सीमान्त रायफल्स से सहायता लेने या और किसी प्रकार से उनका दमन करने का उपाय सफल नहीं होगा। हमें अपने सह-नागरिकों में, उन पहाड़ियों के आदिमजातीय लोगों के हृदयों में विश्वास पैदा करना होगा। हमें यह करना चाहिये, और सच्चे हृदय से करना चाहिये, और उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये और ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वे भारतीय संघ के शत्रु हैं। वे शत्रु नहीं हैं। मेरे मित्रों की शिकायत है कि उन्होंने इन क्षेत्रों को नहीं देखा है। ठीक यही कारण है कि उन्हें इन आदिमजातियों के विषय में बोलते समय सावधान रहना चाहिये।

मैं चाहता हूं कि समूचा देश मेरे मित्र, माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई की कठिनाई को समझे, जो कठिनाइयां उन्हें तथा उनके सहयोगियों को आसाम के पूर्णतः अपवर्जित क्षेत्रों के विषय में सर्वप्रथम निश्चय करने में झेलनी पड़ी हैं। मैं नहीं समझता कि यह कहना सर्वथा सत्य है कि अन-आदिमजातीय लोगों के लिये इन प्रदेशों में जाना असम्भव ही है। निस्सन्देह तथा कथित आंदोलन इन क्षेत्रों में जाने से अपवर्जित थे। यह बिल्कुल ठीक है। पर मैं नहीं समझता कि यह बात कही जा सकती है कि सामाजिक कार्यकर्ता भी समानरूपेण अपवर्जित थे। मैं नहीं समझता कि ऐसा कहा जा सकता है। आसाम बहुत कठिनाइयों वाला प्रान्त है। अन्तर्वर्गीय शत्रुता केवल पर्वतीय क्षेत्र में ही नहीं है। वह शत्रुता क्या है जो पहाड़ियों और मैदान के लोगों में है? वह शत्रुता क्या है जो मैदानी आदिमजातीयों और पहाड़ी आदिमजातीयों में है? मैं और भी बता सकता हूं। पर इस समय इस प्रकार का राग अलापना असामयिक होगा। पर पहाड़ी लोग सहमत हो गये हैं.........

***श्री कुलधर चालिहा:** क्या मैं माननीय सदस्य से जान सकता हूं कि क्या वे पहाड़ी आदिमजातीयों तथा मैदानी आदिमजातीयों के मध्य की शत्रुता का कोई उदाहरण दे सकते हैं? क्या वे एक भी उदाहरण दे सकते हैं? व्यापक बातें कहने से कोई लाभ नहीं है, यदि वे एक भी उदाहरण न दे सकें।

***श्री जयपाल सिंह:** मैं नहीं समझता, श्रीमान्, कि मेरे लिये विस्तार की बातें कहना आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि यह आवश्यक है। यदि सदन मेरे कथन

[श्री जयपाल सिंह]

को स्वीकार करने के लिये तैयार है तो कर सकता है। पर मैं अब भी कहता हूं कि कई प्रकार की शत्रुतायें विद्यमान हैं। सौभाग्य से, नये ढांचे में, हमें भूतकाल को भूल जाने का अवसर है और हम सुखपूर्वक नया अध्याय आरम्भ कर सकते हैं, जिसे आरम्भ करने के विषय में पहाड़ी लोगों ने आश्वासन दे दिया है, और मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आदिमजातीय समिति ने उन पहाड़ी आदिमजातीयों की इच्छायें पूरी करने के लिये यथासम्भव प्रयत्न किया है। और स्वयं आदिमजातिय लोग, स्वयं पहाड़ी आदिमजातीय लोग, प्रान्त के नेताओं की इच्छा पूरी करने के लिये, काफी झुक गये हैं। पहाड़ी प्रदेशों को सदा के लिये पृथक् रखने का कोई प्रश्न नहीं है। यह उनके लिये अच्छा नहीं है। यह बात आसाम के लिये भी अच्छी नहीं है। शेष भारत के लिये भी अच्छी नहीं है। यह नहीं होगा। संसार दिन प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है, चाहे आप इसे चाहें या न चाहे। भारत शेष संसार से अलग नहीं रह सकता, पहाड़ी आदिमजातियां भी नहीं रह सकतीं। और यह बात भी है कि गत विश्व युद्ध में इन प्रदेशों पर विभिन्न युद्ध करने वाले बलों का अधिकार रहा है। अब वे दुर्गम नहीं हैं। इन प्रदेशों में, इन पहाड़ी प्रदेशों में जो पहले दुर्गम थे नये विचार पहुंच गये हैं। स्थिति बिल्कुल बदल गई है। अब नई विचारधारा आ गई है। नागा को अनन्त रूप में नरभक्षी समझना ठीक नहीं है। मैं चाहता हूं कि लोग हेमनडोर्फ की पुस्तक 'The Naked Nagas' (नंगे नागे) पढ़ें और उन्हें समझने का प्रयत्न करें, चाहे ने नागा पहाड़ियों में न गये हों। लोगों को समझना चाहिये कि नागा लोगों के दिमाग में क्या विचार काम कर रहे हैं। इन लोगों के विषय में बहुत सी पुस्तकें हैं। मैं जानता हूं मेरे कुछ मित्र समझते हैं कि ये पुस्तकें अभारतीय लोगों द्वारा लिखी हुई हैं, अत: वे व्यर्थ हैं। मैं ऐसे दृष्टिकोण को गलत समझता हूं। बहुत से वैज्ञानिक हुये हैं, धर्मवृत्ति के लोग हुये हैं और बहुत से अन्य लोग हुये हैं जिन्होंने आसाम की पहाड़ी आदिमजातियों के विषय में पुस्तकें लिखीं हैं, और मैं केवल यही चाहता हूं कि मेरे कुछ मित्र उनमें से कुछ पुस्तकें पढ़ें, और फिर वे समझ जायेंगे कि मेरे मित्र श्री बारदोलोई और उसके सहयोगियों को जो समस्यायें हल करनी हैं वे सचमुच बहुत बड़ी हैं, और मुझे सचमुच बहुत ही प्रसन्नता है कि उन्होंने साहस बटोरा है और उन्हें विश्वास है कि उप-समितियों ने जिस प्रकार के शासन, जिस प्रकार के प्रशासन की सिफारिश की है, चाहे वह बिल्कुल वैसा न हो जैसा वे चाहते हैं, पर उससे उन्हें आसाम के एकीकरण का अवसर मिलेगा, जो पहले बिल्कुल भिन्न खण्डों में विभाजित रखा गया था। मैं सदस्यों से अनुरोध करता हूं कि वे आदिम जातियों के विषय में बोलते समय उदार बनें, उनके प्रति उदार हों और उन्हें भारत का शत्रु न समझें। यहां कुछ लोगों के मन में यही भाव बाकी है। वे ऐसा समझते प्रतीत होते हैं कि वे भारत से अलग होकर बर्मा में मिल जायेंगे या साम्यवादियों से मिल जायेंगे या ऐसी कोई बात होगी। मैं इतना निराशावादी नहीं हूं। वास्तव में मैं आसाम के भविष्य के विषय में बहुत आशावादी हूं विशेषत:, यदि षष्ठ अनुसूची को, चाहे उसमें कुछ भी कमियां हों, यथेष्ट भावना से क्रियान्वित किया जाये-उदारता की भावना से और आसाम के पहाड़ी लोगों की सेवा करने की सच्ची इच्छा से, उन्हें अपने सहदेशीय समझ कर, ऐसे लोग समझ कर जिन्हें हम अपने में मिलाना चाहते हैं, जिन्हें हम अपने में से निकलने नहीं देना चाहते और जिनके लिये हम कितना ही त्याग करेंगे जिससे कि वे हमारे साथ रहें—इस भावना से क्रियान्वित किया जाये।

***श्री ए.वी. ठक्करः** अध्यक्ष महोदय, मैं इस विषय पर बोलना अपना कर्तव्य समझता हूं क्योंकि मैं उस समिति के सदस्यों में से एक था जो आसाम के आदिमजातीय मामलों की पड़ताल करने के लिये नियुक्त की गई थी। दुर्भाग्य से उस समय कुछ काल के लिये मैं बीमार था जब कि समिति भ्रमणार्थ गई थी, और इसलिये मैं सब भागों को नहीं देख सका जो समिति ने देखे। पर मैं कह सकता हूं कि मुझे काफी ज्ञान है और मैंने लुशाई पहाड़ियां देखी हैं, चाहे नागा पहाड़ियां नहीं देखी हैं पर नागा पहाड़ियों में मैं बहुत पहले–1926 में गया था। मैंने, हमारे मित्र श्री मुहम्मद सादुल्ला की कृपापूर्ण अनुमति से, जो उस समय मन्त्री थे, कोहिमा देखा था, कोहिमा को, जो नागा पहाड़ियों की राजधानी है, मुख्य मुकाम है, मैं देख पाया था। उस समय मैं देख सका था कि नागा लोग, सचमुच में नंगे नागा थे, चाहे शायद अब हम उन्हें नंगे न देख सकें। किन्तु मुझे उस अज्ञान पर बहुत लज्जा का अनुभव होता है, जो हम आदिमजातियों के विषय में, विशेषतः आसामी आदिमजातियों के विषय में दिखा रहे हैं। (साधु, साधु)। अपने मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी के विषय में भी मैं यही बात कहूंगा।

सर्वप्रथम मैं अपने मित्र श्री लक्ष्मीनारायण साहू का उत्तर देने का प्रयत्न करूंगा। वे उड़ीसा के विषय में कह रहे थे, किन्तु वे इस शती की बात नहीं कह रहे थे, वे गत शती की बात कर रहे थे,–1846 की, जब श्री मेकडोनाल्ड ने 'मारिया' अर्थात् नरमेधयज्ञ को वहां बन्द करवाया था। किन्तु सौ वर्ष पहले की बात की चर्चा वे अब 1949 में क्यों कर रहे हैं? वे ठीक कह रहे थे कि आज भी हम वहां नरमेधयज्ञ की शिकायतें सुनते हैं। पर क्या आजकल हत्यायें नहीं होतीं? क्या आजकल गोलियां नहीं चलतीं? इसी प्रकार, 1850 में जो मारिया यज्ञ होते थे वे 1949 में भी या 1950 में भी होते हैं। प्राचीन काल की स्थिति की अब की स्थिति से तुलना क्यों करते हैं?

श्री रोहिणी कुमार चौधरी की बातों के विषय में मुझे भय है कि वे संविधान सभा में आसाम राजनीति को ले आये हैं। मैं आपकी अनुमति से, श्रीमान, उनसे पूछना चाहता हूं कि उन्होंने आदिमजातीय समिति के समक्ष, जो आसाम का भ्रमण कर रही थी, साक्षी क्यों नहीं दी। उन्हें ऐसा करने का अधिकार था, उन्हें अधिकार था कि वे स्वायत्तशासी जिलों या प्रादेशिक परिषदों के विष्य में अपने विचार पेश करते। यह बात नहीं है कि उन्हें इसका पता नहीं था–वे समिति के सब सदस्यों से सरलता से जान सकते थे, वे सब उनके मित्र थे। वे ऐसा कर सकते थे पर उन्होंने इसकी परवाह नहीं की।

नागा लोगों के विषय में मैं उस दिन अपने माननीय मित्र रेवरेण्ड निकल्स राय से बात कर रहा था। उन्होंने मुझे इस बात का स्मरण कराया कि नागों में 7 उपजातियां हैं जिनमें प्रत्येक की भिन्न उपभाषा है। मैंने यह बात कई वर्षो पहले पढ़ी थी पर मैं भूल गया था, उन्होंने मुझे स्मरण करा दिया। और कौन नहीं जानता कि इस समय भी उनमें नराखेट की परिपाटी है? वे इतने अविकसित हैं, वे सभ्यता में इतने पिछड़े हुये हैं कि वे अपने पड़ौसी ग्रामीणों से जाकर लड़ते हैं–हमारे मित्र श्री जयपाल सिंह ने मैदानी आदिमजातियों के साथ लड़ाई की जो बात कही थी उसका तो कहना ही क्या—प्रत्युत नागों की एक आदिमजाति दूसरी नागा आदिमजाति को मारती है,—'आओ नागा' और 'सेमा नागा' लोग लड़ते हैं, एक

[श्री ए.वी. ठक्कर]

दूसरे के शीश काट देते हैं और अपनी विजय के प्रतीकस्वरूप उन शीशों को अपने द्वार पर लटका देते हैं। गतवर्ष भी जब मेरे एक मित्र नागा पहाड़ियों को देखने गये थे तो उन्होंने कहा था कि न्यायालय में 150 मुकदमें चल रहे थे जिनमें 150 व्यक्तियों पर नराखेट या उसमें भाग लेने का दोषारोपण था। अब आप ऐसी बात के विषय में क्या कहते हैं? आज भी विद्यमान इस स्थिति पर क्यों ध्यान नहीं देते हैं? समिति ने, कठिनाइयां होते हुये भी केवल नागों की ही नहीं, समस्त आदिमजातीय क्षेत्रों के लोगों की वस्तुस्थिति की पड़ताल की और वह कुछ विशेष परिणामों पर पहुंची जिन पर अनुसूची संख्या 6 आधारित है। नागों के साथ व्यवहार करना बहुत कठिन है, मैं जानता हूं। समिति में एक नागा सदस्य था, श्री इमती उनका नाम था। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातमक थे। किसी प्रकार उन्होंने कुछ समय के लिये समिति के साथ कार्य किया था, पर बाद में वे हट गये क्योंकि उनके अन्य नागा मित्रों ने उन्हें समिति के साथ काम करने से मना कर दिया, हमारी सहायता करने से और हमारा साथ देने से मना कर दिया। वह दुर्भाय की बात थी।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ श्री इमती गोलाघाट के हैं, वे ईसाई हैं और गोलाघाट में ही उनका पालन पोषण हुआ था।

*__श्री ए.वी. ठक्कर:__ क्या वे नागा नहीं हैं?

*__श्री कुलधर चालिहा:__ वे नहीं है। वे गोलाघाट में जन्मे थे तथा पले थे।

*__श्री ए.वी. ठक्कर:__ किन्तु वे आदिमजातीय हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुझे खेद है, मेरी सूचना तो यह है कि वे नागा हैं—उन्होंने स्वयं मुझे यही बताया था।

*__श्री जयपाल सिंह:__ वे नागा ही हैं।

*__श्री ए.वी. ठक्कर:__ वे ईसाई हैं तो क्या हुआ है? वे 'आओ नागा' थे, यही मेरे अन्य मित्रों ने मुझे बताया था। यदि आप चाहें तो मैं एक पत्र लिखकर उनसे पूछूंगा कि वे नागा हैं या मिहिर हैं। पर इससे मामला नहीं बदलता।

समिति ने यथाशक्ति प्रयत्न किया तथा यह स्वायत्तशासी जिलों की प्रस्थापना रखी जो केवल समिति को ही स्वीकार्य नहीं थी, वरन् विविध आदिमजातियों को भी पसंद थी। जब मैंने इन स्वायत्तशासी जिलों के विषय में सुना तो मुझे भी आश्चर्य हुआ, मैं आपको बता देता हूं, क्योंकि मैंने भारत में कहीं अन्यत्र किसी भाग में स्वायत्तशासी जिलों का नाम नहीं सुना। पर बाद में मित्रों के समझाने से मुझे पता लगा कि वहां वही सम्भव मार्ग है और इसलिये स्वायत्तशासी जिलों की प्रणाली को रखना चाहिये और समुचित समय आने पर ही भविष्य में उसमें रूपभेद होना चाहिये। कोई कारण नहीं है कि हम इस स्वायत्तशासी जिलों की व्यवस्था से क्यों घबरायें और उसे सफल क्यों न बनायें, जैसे कि वह स्थायी समय के लिये राज्यों में राज्य बनाना है। यह स्थायी समय के लिये नहीं है। सब संविधान बदल सकते हैं, सब विधियां बदल सकती हैं, और जब हम समझें कि उसके लिये समय उपयुक्त है तो हम विधि को बदल सकते हैं, संविधान को बदल सकते

हैं। इस बीच में हमें यथासम्भव अच्छे प्रकार से आदिमजातियों के प्रश्न का अध्ययन करना चाहिये।

*__माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय__ (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, यहां जो आक्षेप किये गये हैं, उनमें से कुछ अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हैं और वे आसाम के पहाड़ी लोगों की हालत के ज्ञान के अभाव पर आधारित हैं। मैं चाहता हूं कि माननीय सज्जन, मेरे आसाम वाले मित्र इन स्थानों पर जाते, लोगों से मिलते जुलते और इन लोगों की भावना का पता लगाते, इन लोगों की इच्छा का पता लगाते, जो सभाओं में, समितियों में और उस उप-समिति में भी प्रकट की गई थीं, जिसका मैं सदस्य था। श्रीमान, एक दूसरे से उलझे हुए लोगों में सद्भावना उत्पन्न करने का पहला सिद्धान्त यह है कि एक को दूसरे को स्थिति में स्वयं को रखना चाहिये। मैं चाहता हूं कि मेरे कुछ मित्र, जो बोले हैं, अपने आपको इन आदिमजातीय लोगों के स्थान पर रखें, उनकी हालत में रखें, उनके विचारों का अध्ययन करें, समझें कि उनकी आकांक्षायें और इच्छायें क्या हैं, और यदि वे उनके स्थान पर होते, तो क्या वे ऐसा चाहते कि उन भावनाओं तथा आकांक्षाओं को कुचल दिया जाता और उन्हें भी तलवार से डरा दिया जाता, या वे ऐसे चाहते कि उन्हें प्रेम तथा मेल जोल से तथा शनैः-शनैः पारस्परिक सद्भावना से जीता जाता। जिस प्रकार मेरे मित्रों ने यहां, शायद ज्ञानाभाव से, वक्तृतायें दी हैं, यदि वही रुख स्थिर रहे, तो इससे पहाड़ी लोगों और इन वक्ताओं के बीच के अच्छे सम्बन्ध सचमुच बिगड़ जायेंगे; किन्तु मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि हमें माननीय श्री गोपीनाथ बरदोलोई जैसा नेता प्राप्त हैं, जो इन पहाड़ी लोगों के प्रति बहुत दयालु तथा सहानुभूतिपूर्ण हैं और जिनका सब पहाड़ी लोग आदर करते हैं, चाहे वे कहीं हों, और जिन्होंने इन पहाड़ी आदिमजातियों की स्थिति का बहुत ध्यान से मनन किया है।

मैं स्वयं पर्वतीय होने के कारण यह जानता हूं कि मेरी क्या भावनायें हैं। ईसाई होने के नाते मैं सर्वत्र विश्व-बन्धुता चाहता हूं। मैं यही समस्त भारत में चाहता हूं तथा आदिमजातीय लोगों में भी चाहता हूं। अतएव, जब मैं इस सदन में बोलता हूं, तो मैं पहाड़ी आदिमजातियों की भावनाओं के ज्ञान से बोलता हूं। मैं मानवजाति की व्यापकता और भ्रातृत्वभावना के साथ भी बोलता हूं। मैं सब लोगों को एक ही तल पर उठाने के उच्च आदर्श को ध्यान में रख कर बोलता हूं।

एक माननीय सज्जन ने कहा है कि पर्वतीय आदिमजातियों को संस्कृति सिखानी है, जिसके विषय में उन्होंने 'हमारी संस्कृति' शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है मैदानी लोगों की संस्कृति। किन्तु संस्कृति क्या है? क्या परिधान, या खाना पीना ही संस्कृति है? यदि खाना पीना या रहन-सहन की प्रणाली का ही नाम संस्कृति है, तो पहाड़ी आदिमजातियां दावा कर सकती हैं कि उनकी व्यवस्था बहुत से मैदानी लोगों से उत्तम है। मेरे विचार में मैदानी लोगों को उनके स्तर पर उठना चाहिये। आदिमजातीय लोगों में वर्ग वर्ग में अन्तर नहीं है। राजा और मुखिया भी अपने श्रमिकों के साथ खेतों में काम करते हैं। वे साथ भोजन करते हैं। क्या मैदानों में ऐसा होता है? समस्त भारत उस समता के स्तर पर अभी नहीं पहुंच पाया है। क्या आप उस व्यवस्था को समाप्त करना चाहते हैं? क्या आप उन्हें कुचल

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

कर यह चाहते हैं कि उनकी संस्कृति उस संस्कृति में लीन हो जाये, जिसके अनुसार एक व्यक्ति नीचा और दूसरा व्यक्ति ऊंचा है? आप कहते हैं "मैं पढ़ा हुआ हूं और आप अशिक्षित हैं, इसलिये आपको मेरे चरणों पर बैठना चाहिये।" पहाड़ी आदिमजातियों में ये सिद्धान्त नहीं है। जब वे बैठते हैं, तो चाहे शिक्षित हों या अशिक्षित, छोटे हों या बड़े, वे साथ बैठते हैं। आसाम की पहाड़ी आदिमजातियों में वह समता की भावना है, जो आप मैदानी लोगों में नहीं देखते।

मैं उन कुछ वक्तव्यों को पढ़ता हूं, जो आसाम सरकार ने पहाड़ी क्षेत्रों के विषय में दिये हैं:—

"वे आदिमजातियां मंगोली वंश की हैं जो भारत में अन्यत्र कहीं नहीं पाई जातीं, और वे अधिकांश भारतीयों से इतनी ही भिन्न हैं, जितने कि भारतीय यूरोपीयों से भिन्न हैं, कुछ अन-आदिमजातीय दुकानदारों तथा पदाधिकारियों के अतिरिक्त, किसी क्षेत्र में जनसंख्या एकरूप है। अत: नागा पहाड़ियों में कोई पर्यटक नागों के अतिरिक्त किसी को नहीं पायेगा, लुशाई पहाड़ियों में लुशाइयों को ही पायेगा।"

वे लोग बाहर से आये हैं। वे कभी किसी हिन्दू या मुस्लिम राज्य में नहीं रहे। उनके अपने नियम हैं, उनकी अपनी भाषा है, न्यायालय और संस्कृति है। यह कहना कि इन लोगों की संस्कृति को दूसरी संस्कृति में लीन करना चाहिये, किसी ऐसे व्यक्ति को बहुत आश्चर्यजनक प्रतीत होगा, जो भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहता है और सब लोगों को साथ लाना चाहता है, जब तक कि वह दूसरी संस्कृति अधिक अच्छी न हो और जब तक वह विलय शनै:-शनै: विकास द्वारा न हो।

फिर यहां यह कहा गया है:

"वे बहुमुखी भाषायें तिब्बत-बर्मी भाषा परिवार की हैं, केवल खासी मोन-खमेर परिवार की हैं। इनमें से कोई भाषा भारत में कहीं अन्यत्र नहीं बोली जाती।

इनमें से कोई भी आदिमजाति हिन्दू धर्म या इस्लाम की अनुयायी नहीं है, केवल उत्तर कचर पहाड़ियों में कचरियों की एक शाखा ऐसी है, जो हिन्दू धर्म के एक रूप पर आचरण करती है। उत्तर पहाड़ियों में तिब्बती बुद्धमत आ गया है तथा तिरप सीमान्त प्रदेश में बर्मी बुद्धमत आ पहुंचा है। बहुत से आदिमजातीय लोग ईसाई हैं—विशेषत: नागों, लुशाइयों और खासियों में। शेष आदिमजातीय लोग अनिमी हैं। अनिमियों और दूसरों में कोई साम्प्रदायिक भावना नहीं है।"

हिन्दू गोमांस नहीं खाते, पर आदिमजातियां खाती हैं। मुस्लिम शूकर-मांस नहीं खाते, पर आदिमजातियां खाती हैं। अतएव ये लोग न हिन्दू हैं और न मुस्लिम ही हैं। सरकारी सूचना है कि पहाड़ी लोगों की अपनी संस्कृति हैं, जो मैदानी संस्कृति

से बिल्कुल भिन्न है। उनकी सामाजिक रचना ग्राम, वंश और आदिमजाति से बनी है और उनका दृष्टिकोण तथा ढांचा प्रबल रूप से लोकतन्त्रात्मक है। जाति या पर्दा प्रथा नहीं है और बाल विवाह नहीं होते।

हां, पहाड़ी आदिमजातियों की यह संस्कृति है। भारत को समता और सच्चे लोकतन्त्र की उस भावना को तथा विचार को पहुंचना चाहिये, जो आदिमजातीय लोगों में पाया जाता है। उन्हें एक क्षण के लिये भी यह बात नहीं सोचनी चाहिये कि इन लोगों को अपने लोकतन्त्र और समता का त्याग करके दूसरी संस्कृति में लीन हो जाना चाहिये, जो उनके लिये बिल्कुल नई चीज़ है, जिससे वे अपने समाज के लिये बिल्कुल उपयुक्त नहीं समझते।

यह कथन बहुत आश्चर्यजनक है कि यदि इन क्षेत्रों में पष्ठ अनुसूची लागू कर दी जायेगी, तो आदिमजातियां शत्रु बन जायेंगी या वे आसाम पर आक्रमण कर देंगी या तिब्बत में मिल जायेंगी। यह विचार तो तथ्यों को ठीक न समझने के कारण उत्पन्न हुआ है। और पहाड़ी लोगों तथा मैदानी लोगों में समझौता कराने की समस्या को सुलझाने का यह गलत मनोवैज्ञानिक ढंग है। इस अनुसूची से इन पहाड़ी क्षेत्रों को कुछ स्वशासन मिल जाता है, किन्तु जिला परिषदों द्वारा बनाई गई विधियां तथा विनियम आसाम के राज्यपाल के नियंत्रण तथा स्वीकृति पर निर्भर होंगे। उससे अधिक एकसूत्रता कैसे लाई जा सकती है? आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों सम्बन्धी उप-समिति ने सिफारिश की थी कि षष्ठ अनुसूची में उल्लिखित जिलों को एक प्रकार का स्वशासन मिलना चाहिये, जिससे वे अपनी संस्कृति तथा आत्मीयता के अनुसार अपना शासन चला सकें। कांग्रेस का सिद्धान्त यही रहा है कि सब वर्गों को अपनी आत्मीयता तथा संस्कृति के अनुसार विकसित होने दिया जाये। यदि ऐसी बात है, तो उप-समिति ने इन पहाड़ी क्षेत्रों के लिये इस प्रकार के स्वशासन की सिफारिश करके ठीक ही किया है, पर वे आसाम के राज्यपाल के नियंत्रण के अधीन होंगे। यहां तक कि इन जिला परिषदों द्वारा जो विनियम या विधियां बनाई जायेंगी, वे भी राज्यपाल की सहमति पर निर्भर होंगी। राज्यपाल अपनी स्वीकृति रोक सकता है। वहां पाकिस्तानी प्रभाव कहां है, जिसका उल्लेख एक वक्ता ने किया था। षष्ठ अनुसूची से किसी हद तक वे लोग संतुष्ट हो जायेंगे और इसके साथ ही साथ वे शेष प्रान्त से संयुक्त भी रहेंगे।

इस सम्बन्ध में एक और बात पर विचार करना चाहिये। सीमान्त के क्षेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये इन लोगों को संतुष्ट रखना होगा। आप उन पर बल-प्रयोग नहीं कर सकते। मानव प्रकृति ही ऐसी है कि जब आप किसी से कुछ करवाने के लिये बल-प्रयोग करते हैं, तो वह किसी और के पास दौड़ता है। यदि आप भारत की भलाई के लिये उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहते हों, तो आपको उनमें एक मित्रता तथा एकता की भावना उत्पन्न करनी होगी, जिससे वे यह अनुभव कर सकें कि उनकी संस्कृति और रहन-सहन को समाप्त नहीं किया गया है और उन पर बलात् दूसरे प्रकार की संस्कृति नहीं थोपी गई है। इसी कारण उप-समिति ने सोचा कि इन लोगों को संतुष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि उन्हें कुछ स्वशासन दे दिया जाये, जिससे कि वे अपनी आत्मीयता तथा संस्कृति के अनुसार प्रगति कर सकें। इससे वे संतुष्ट रहेंगे और वे अनुभव करेंगे कि भारत उनका घर है और वे तिब्बत या बर्मा में मिलने का विचार नहीं करेंगे। किन्तु यदि आप इस सदन के लिए दो माननीय सदस्यों द्वारा प्रतिपादित विचारों पर चलें, तो उसका

[माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय]

प्रभाव एकरूपता नहीं होगा, वरन् उसके परिणामस्वरूप ये पहाड़ी आदिमजातियां भारत से अलग हो जायेंगी और वह सचमुच बहुत दुर्भाग्य की बात होगी। मेरे आसामी माननीय मित्रों में से एक ने जो वक्तव्य दिया था कि आसाम के मुख्य मंत्री इन लोगों की स्थिति को नहीं जानते, उस कथन पर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे विचार में उन माननीय मित्र ने इन प्रदेशों को देखा नहीं है और वे उनकी हालत नहीं जानते हैं। आसाम के मुख्य मन्त्री ने इन क्षेत्रों को देखा है और वे इनकी हालत को जानते हैं। मैं उनकी हालत को जानता हूं। मैं उनकी भावनाओं को जानता हूं। हम उनसे बड़ी सभाओं में मिले हैं। हम उनसे समितियों में मिले हैं और कई बार मिले हैं। हम उनसे मिलने गए, उनकी बात सुनी और उनमें से कई हमारी उप-समिति के सहयोगी भी थे, जो इन पहाड़ी आदिमजातियों की हालत का पता लगाने गई थी। और बहुत से लोग वहां साक्ष्य देने के लिये आये थे और उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। पष्ठ अनुसूची के उपबन्ध उप-समिति की सिफारिशों पर ही आधारित हैं, जो उसने इन पहाड़ी लोगों के कथनों पर, जिनमें से कुछ हमारी उप-समिति के सदस्य थे, विचार करने के पश्चात् पेश कीं।

एक महाशय ऐसे बोले कि मानो उन्हें पहाड़ी आदिमजातियों के उत्थान में बहुत दिलचस्पी है। पहाड़ी आदिमजातियों के उत्थान की, उन्नति की, आकांक्षा की सदिच्छा के लिये मैं उन सज्जन का, चाहे वे कोई भी हों, धन्यवाद देता हूं। किन्तु उन्नति बल द्वारा नहीं हो सकती। उन्नति एक उच्चतर संस्कृति, उच्चतर विचार-धारा आ जाने से होती है, और बल द्वारा नहीं होती। लोग उन्नति को तब स्वीकार करेंगे, जब आप उन्हें कोई ऐसी चीज देखने दें, जो उससे अच्छी हो जो इस समय उनके पास है। पहाड़ी लोग समझते हैं कि उनकी ग्राम परिषदें, या जिन्हें ग्राम पंचायतें कहा जा सकता है, उनके लिये नियमित न्यायालयों और आसाम के उच्च न्यायालय से कहीं अच्छी हैं। उनके लिये उच्च न्यायालय में जाना इतना खर्चीला पड़ता है कि कुछ तो वहां जा ही नहीं सकते। उनके पास इसके लिये धन नहीं है। अतएव कुछ पहाड़ी आदिमजातियों के लिये ग्राम न्यायालय अधिक सुविधाजनक हैं। आसाम सरकार आसाम के मैदानों में भी ग्राम पंचायतें स्थापित करने का प्रयत्न कर रही हैं। हां, उससे नियमित न्यायालयों में बहुत से विधिवाद कम हो जायेंगे, पर जनता के लिये वे अच्छे रहेंगे। स्वायत्तशासी जिलों में ग्राम परिषदों से और जिला परिषदों से वे लोग अपना शासन अपने ढंग से चला सकेंगे और अपने ही ढंग से अपना विकास कर सकेंगे। आप लोगों को उन वस्तुओं से वंचित क्यों करते हैं, जिन्हें वे अच्छी समझते हैं और जिनसे पृथ्वी पर किसी को हानि नहीं पहुंचती? इससे भारत को हानि नहीं पहुंचती। आप उन्हें अपने ही ढंग से उन्नति क्यों नहीं करने देना चाहते? गांधी सिद्धान्त समूचे भारत में ग्राम पंचायतों को प्रोत्साहन देना है। फिर पहाड़ी लोगों द्वारा मांगी गई जिला परिषदों की स्थापना पर किसी को आपत्ति क्यों होनी चाहिये? इतने स्वशासन से वे यह अनुभव करने लगेंगे कि समस्त भारत को उनसे सहानुभूति है और भारत उन पर कोई ऐसी वस्तु नहीं लादेगा, जो उनकी भावनाओं तथा संस्कृति को नष्ट कर दे। अतः मेरे विचार में, इस सदन में अनावश्यक तूफान खड़ा कर दिया गया है, और यह बिल्कुल अभीष्ट नहीं है, पर मुझे आशा है कि इन समस्याओं का अधिक अच्छे प्रकार से अध्ययन किया जायेगा।

यदि संसद इन आदिमजातीय क्षेत्रों को देखने के लिये एक समिति नियुक्त कर दे, तो मैं इसे बहुत पसन्द करूंगा। शायद वे देखेंगे कि कुछ स्थानों पर वे इतने अधिक उन्नत हैं कि समस्त भारत को उनका अनुसरण करना चाहिये। उन क्षेत्रों में नर और नारी में कोई अन्तर नहीं है; स्त्री काम करती है, बाजार जाती है और सब प्रकार का व्यापार करती है और वह स्वतन्त्र है। मैदानों में स्त्री अब स्वतन्त्र होने लगी है, और अभी स्वतन्त्र नहीं हुई है। किन्तु कुछ पहाड़ी जिलों में स्त्री परिवार की प्रधान होती है. उसके हाथ में ही थैली होती है और वह पुरुषों के साथ खेतों में जाती है। वहां नर और नारियां किसी प्रकार के श्रम पर शर्म अनुभव नहीं करते। आसाम के मैदानों में कुछ लोग हैं, जिन्हें जमीन खोदने में शर्म आती है। किन्तु एक पहाड़ी में यह बात नहीं होती। क्या आप पहाड़ी लोगों पर इस प्रकार की संस्कृति थोप कर उनकी समता की भावना तथा श्रम-महत्व की भावना को नष्ट कर देना चाहते हैं? जो इस समय उनमें विद्यमान है। संस्कृति की बात क्यों करते हैं? पहाड़ी क्षेत्रों में एक प्रकार की संस्कृति है, जो मैदानों की संस्कृति से कहीं अच्छी है। अतः आसाम की आदिमजातियों सम्बन्धी उप-समिति ने यह विनिश्चय किया है कि यह सबसे अच्छा उपाय है कि उन्हें अपनी संस्कृति के अनुसार और अपनी बुद्धि के अनुसार प्रगति करने दिया जाये और साथ ही समस्त भारत से एक सूत्रित होने दिया जाये।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ आप हमारे लोगों के विरुद्ध प्रचार क्यों करते हैं? क्या हम अपने गांवों में जमीन खोद कर मकान नहीं बनाते? आप हमारे लोगों की निन्दा क्यों करते हैं?

*__माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:__ उनमें से कई नहीं करते। मैं किसी की निन्दा नहीं कर रहा हूं। मैं तथ्यों को बता रहा हूं। सारा आसाम जानता है कि आसाम के कुछ लोग जमीन नहीं खोदना चाहेंगे।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ कृपया अपनी बात वापस लीजिये।

*__अध्यक्ष:__ माननीय सदस्य ने कोई ऐसी बात नहीं कही है, जिसे वापस लेने की आवश्यकता हो। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह कहना उनके लिये सर्वथा उचित था।

*__माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:__ मैं किसी की निन्दा नहीं कर रहा। कुछ लोग मिट्टी नहीं खोदेंगे, क्योंकि उनमें बड़प्पन की भावना है। किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में आपको ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती। यह एक तथ्य है, जो समस्त आसाम में विदित है। मेरे अपने विभाग—लोक निर्माण विभाग—में हमारे यहां सड़क मिट्टी का काम होता है और हमें कुछ स्थानीय लोगों को वह काम करना सिखाना पड़ता है, और आसाम में मिट्टी उठाने तथा सड़कें बनाने के लिये श्रमिक बिहार और नवाखाली से मंगाने पड़ते हैं। मैं यह तथ्य बता रहा हूं।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ हां, माननीय मंत्री ने वहां हिन्दू श्रमिकों को हटा दिया है और नवाखाली के मुसलमानों को नियोजित कर लिया है। उनका यह ख्याल है कि हम मिट्टी नहीं खोद सकते।

*__माननीय रेवरेण्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः__ यह बिल्कुल गलत बात है।

जब मैं संस्कृति की बात करता हूं, तो मेरा यह मतलब है। इन पहाड़ी लोगों के लिये श्रम एक सम्मान की बात है। सब नर और नारियों साथ काम करती हैं। ऊंची प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति जैसे राजा और मन्त्री भी दूसरे लोगों के समान ही कार्य करते हैं, जब कि यह सिद्धान्त भारत में सर्वत्र नहीं पाया जाता है और भारत को उस स्तर तक उठना होगा, जब वे यह अनुभव करें कि श्रम में सम्मान है। जब पहाड़ी लोगों में ऐसी संस्कृति है, तो उन्हें उसका विकास क्यों नहीं करने देते और अन्य सबके लिये छोटा सा आदर्श क्यों नहीं बनने देते–इससे समस्त भारत का भला होगा?

अंत में, श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करता हूं। साथ ही बैठने से पूर्व मैं एक और बात कहना चाहता हूं कि ये पहाड़ी लोग अनुभव करते हैं कि षष्ठ अनुसूची से ही उन पर बहुत नियंत्रण कर दिया गया है और वे जो कुछ चाहते थे, वह सब कुछ उन्हें नहीं मिला है। मेरे विचार में हममें से कई इस बात को समझते हैं। आसाम के माननीय मुख्य मन्त्री श्री बारदोलोई भी इसे समझते हैं। किन्तु परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम सब मान गये हैं, जिससे समझौता हो जाये और सब दलों में शान्ति हो जाये। अतः मैं नहीं समझता कि पहाड़ी क्षेत्रों को अत्यधिक मिला गया है। उनके विचारों के अनुसार उन्हें पर्याप्त नहीं मिला है, किन्तु साथ ही उन्हें आसाम के राज्यपाल के नियंत्रण में रख दिया गया है और इसी प्रकार उन्हें एकसूत्रित किया जायेगा।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): क्या, श्रीमान, मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि इस अनुसूची के विषय में जो अत्यन्त मतभेद प्रकट किया गया है, उसे देखते हुए, इसका निश्चय किसी अधिक शुभ दिवस तक के लिये स्थगित कर दिया जाये?

*__अध्यक्षः__ मैं डॉ. अम्बेडकर से कहूंगा कि वे उत्तर दें। मेरे विचार में अब इसे समाप्त ही कर देना अच्छा है। हम काफी बहस कर चुके हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ हम इस प्रश्न पर दो घण्टे बहस कर चुके हैं और मेरे विचार में यह बहस अधिकांशतः उन विषयों पर थी, जिनका इस अनुसूची से सचमुच कोई सम्बन्ध नहीं है। अब हमें अनुसूची पर ही बोलना चाहिये और जब तक किसी सदस्य को कोई नई बात कहनी न हो, हमें बहस जारी रखने की आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्षः__ मैं आपसे उत्तर देने के लिये पहले ही कह चुका हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं, श्रीमान। हमारे सामने दो संशोधन हैं और मेरा विचार है कि व्यापक वाद-विवाद का उत्तर देने से पहले मैं उन्हें निबटा दूं।

पहला संशोधन सं. 100 है, जो श्री चालिहा ने पेश किया है। इसके सम्बन्ध में मेरी समझ में नहीं आता कि यह कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (5) में कैसे

उपयुक्त है। उप-कण्डिका (5) में प्रादेशिक तथा जिला-परिषदों के क्षेत्राधिकार का ही उल्लेख है। उसका उन निदेशों से कोई सम्बन्ध नहीं है, जो राज्यपाल या राज्य के विधान मण्डल द्वारा दिये जा सकते हैं। हम तो केवल एक जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् का निर्माण ही कर रहे हैं। यदि माननीय सदस्य ऐसा कोई संशोधन पेश करना चाहते थे, तो उन्हें उपयुक्त उपबन्ध पर उसे पेश करना चाहिये था। इस अनुसूची में ऐसी विषय-वस्तु है, जिससे जिला परिषद् तथा प्रादेशिक परिषद् का सम्बन्ध होगा। अतः मैं बिल्कुल यह समझने में असमर्थ हूं कि इस स्थान पर उस संशोधन की क्या उपयुक्तता है।

संशोधन संख्या 257 के सम्बन्ध में, जिसके द्वारा माननीय सदस्य परिषद् की सदस्यता को 15 तक सीमित रखना चाहते हैं, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह बिल्कुल अनावश्यक है, क्योंकि मेरे अपने संशोधन में लिखा है 'चौबीस से अधिक'। चौबीस अधिकतम हैं। तत्पश्चात्, यदि पन्द्रह से कम सदस्यों की परिषद् बनाना आवश्यक हो, तो भी मेरा संशोधन काफी होना चाहिये। अतः मैं कहता हूं कि संशोधन संख्या 257 तो बिल्कुल अनावश्यक है।

अब इन संशोधनों को समाप्त करने के पश्चात् मैं इस व्यापक वाद-विवाद के प्रश्न पर आता हूं कि क्या आसाम में रहने वाली आदिमजातियों के प्रयोजन के लिये प्रादेशिक तथा जिला परिषदें होनी चाहियें। श्रीमान, इस मामले के विषय में मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहस में भाग लेने वाले कई सदस्यों ने इस पष्ठ अनुसूची के उपबन्धों का ठीक तरह अध्ययन नहीं किया। मुझे इस विषय में विश्वास है कि यदि उन्होंने इस अनुसूची का अध्ययन किया होता, तो वे ऐसा प्रश्न नहीं उठाते, जैसा कि उन्होंने उठाया है कि इन प्रादेशिक और जिला-परिषदों का निर्माण करके हम कुछ जनता को पृथक् कर रहे हैं। इससे कोई ऐसी बात नहीं होती।

अब आसाम में आदिमजातियों की स्थिति भारत के अन्य भागों की आदिमजातियों से कुछ भिन्न है।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** कृपया पहाड़ी आदिमजातियां कहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे शब्दावली से कोई मतलब नहीं है। इस समय मैं आसाम और अन्य क्षेत्रों के विषय में बोल रहा हूं। आसाम के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में आदिमजातियां लगभग हिन्दू बन गई हैं। जिनके बीच में वे रहती हैं, उस जनता की सभ्यता और संस्कृति को उन्होंने लगभग अपना सा लिया है। आसाम की आदिमजातियों के विषय में ऐसी बात नहीं है। उनकी जड़ें अब तक उनकी अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति में ही जमी हुई हैं। उन्होंने मुख्यतः या अधिकांशतः हिन्दुओं के तरीकों या रहन-सहन को नहीं अपनाया है। उनकी दायभाग विधियां, उनकी विवाह सम्बन्धी विधियां, परिपाटियां आदि हिन्दुओं की विधियों आदि से बिल्कुल भिन्न हैं। मेरे विचार में यही मुख्य अन्तर है, जिसके प्रभाव से हमने आसाम के लिये अन्य प्रदेशों में अपनाई गई योजना से भिन्न योजना रखी है। दूसरे शब्दों में आसाम की आदिमजातियों की स्थिति, चाहे कोई भी कारण हो, कुछ-कुछ वैसी ही है, जैसी संयुक्त राज्य में श्वेत निष्क्रमणार्थियों की तुलना में वहां के रेड इण्डियन आदिवासियों की है। अब रेड इण्डियनों के लिये संयुक्त राज्य ने क्या किया? जहां तक मुझे पता है, उन्होंने यही किया कि ऐसे सुरक्षित

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

क्षेत्र बना दिये, जहां रेड इण्डियन ही रहते थे। वे स्वयं एक गणराज्य हैं। निस्संदेह संयुक्त राज्य की विधि के अनुसार वे अमरीका के नागरिक हैं। पर वह तो अमरीका के संविधान के प्रति नाममात्र की निष्ठा है। वास्तव में वे अलग, स्वतन्त्र लोग हैं। संयुक्त राज्यों ने यह सोचा कि उनकी विधियां और रहन-सहन, उनकी आदतें और जीवन प्रणालियां इतनी भिन्न थीं कि उन्हें एक ही बार में उन विधियों के अन्तर्गत लाना हानिकारक होगा, जो विधियां श्वेत लोगों द्वारा श्वेत लोगों के लिये तथा श्वेत सभ्यता के अभिप्राय से बनाई जाती हैं।

मैं मानता हूं कि हम प्रादेशिक और जिला परिषदों का निर्माण किसी हद तक उसी तरीके से कर रहे हैं, जिस तरीके को संयुक्त राज्यों ने रेड इण्डियनों के लिये अपनाया था। किन्तु मेरा कहना यह है कि जिन लोगों ने इस अनुसूची की आलोचना इस आधार पर की है कि हम प्रादेशिक और जिला परिषदें बना रहे हैं वे उन एकता के बन्धनों को समझ ही नहीं पाये, जो हमने इस संविधान में रखे हैं। अत: मैं ऐसे कुछ उपबन्धों का निर्देश करना चाहता हूं, जिससे कि इस पृथक्करण का निराकरण हो जाता है।

पहली बात तो हमने यह की है कि हमने यह उपबन्ध किया है कि आसाम सरकार का कार्यपालिका-क्षेत्राधिकार आसाम के केवल अन-आदिमजातीय क्षेत्रों तक ही नहीं, वरन् आदिमजातीय क्षेत्रों तक भी विस्तृत होगा, जिसका अर्थ यह है कि आसाम सरकार का कार्यपालिका-प्राधिकार ऐसे क्षेत्रों में भी प्रयुक्त होगा, जहां कि स्वायत्तशासी जिले हैं। जैसा कि आप देखेंगे, यह बात भारत-शासन-अधिनियम, 1935 के उपबन्धों की तुलना में बहुत सुधार है। उस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार कार्यपालिका दो श्रेणियों में विभाजित थी, एक तो प्रान्त की सरकार कहलाती थी और दूसरी कार्यपालिका, जहां तक आदिमजातीय क्षेत्रों का सम्बन्ध है, स्वविवेकयुक्त राज्यपाल था। यह बात केवल आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में ही नहीं थी, प्रत्युत अन्य क्षेत्रों के पूर्णत: अपवर्जित क्षेत्रों पर भी लागू थी। उन क्षेत्रों में जो कार्यपालिका प्राधिकार था, वह प्रान्त की कार्यपालिका नहीं थी, वरन् स्वविवेकयुक्त राज्यपाल था। हमने उस विभेद का अन्तर कर दिया है, जिससे कि सारा आदिमजातीय क्षेत्र, जिसमें स्वायत्तशासी जिले भी समाविष्ट हैं, अब प्रान्तीय सरकार के प्राधिकार के अन्तर्गत हैं। एक और वस्तु, जो एकता पैदा करने वाली है और जिस पर माननीय सदस्यों ने कोई ध्यान नहीं दिया है, यह है: कि कुछ कृत्यों को छोड़कर, जैसे कि कुछ नियत क्षेत्रों में जैसे कि साहूकारा भूमि आदि के विषय में विधि-निर्माण, तथा कुछ न्यायपालिका सम्बन्धी कृत्यों को छोड़कर, जिनका प्रयोग ग्राम्य पंचायतें या प्रादेशिक परिषदें या जिला परिषदें करेंगी, संसद का प्राधिकार और आसाम विधान मण्डल का प्राधिकार प्रादेशिक परिषदों तथा जिला परिषदों पर विस्तृत होता है। वे विधि-निर्माण के विषय में संसद के प्राधिकार से मुक्त नहीं हैं, और नये संशोधन का यह उद्देश्य है कि वे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार से भी मुक्त नहीं हैं। मेरा निवेदन है कि यह भी एकता उत्पन्न करने वाला प्रभाव है।

एकता उत्पन्न करने वाली एक और बात यह है: कि संसद द्वारा निर्मित विधियां और आसाम के विधान मण्डल निर्मित विधियां इन प्रादेशिक परिषदों तथा जिला

परिषदों पर स्वतः लागू हो जायेंगी, जब तक राज्यपाल यह न सोचे कि वे लागू नहीं होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में यह सिद्ध करना राज्यपाल का कर्तव्य होगा कि आसाम के विधान-मण्डल या राज्यपाल द्वारा निर्मित विधि लागू क्यों न हो। साधारणतः स्थानीय विधानमण्डल द्वारा निर्मित विधियां तथा संसद द्वारा निर्मित विधियां इन क्षेत्रों पर भी लागू होंगी। मैं कहता हूं कि यह एक और बात है, जिससे एक-सूत्रता उत्पन्न होगी। एक और भी एकताकारी प्रभाव है, जिसका निर्देश मुझे करना चाहिये। हम यह नहीं कह रहे हैं कि हमने प्रादेशिक परिषदें या जिला परिषदें बनाकर आदिमजातीय लोगों को जो राजनैतिक प्राधिकार या शक्ति दी है, वही एक प्रभाव-क्षेत्र है, जिस पर उनका अधिकार होगा। दूसरी ओर हमने यह उपबन्ध रखा है कि आदिमजातियों को, जिनके लिये प्रादेशिक परिषदें और जिला परिषदें बनाई गई हैं, आसाम के विधान मण्डल में भी और संसद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा, जिससे आसाम के लिये विधियां बनाने में तथा समूचे भारत के लिये विधियां बनाने में भी उनका हाथ होगा। यदि वे इस प्रतिनिधित्व चक्र से, यदि मैं ऐसा कह सकूं, जिसका मैंने उल्लेख किया है, अर्थात् आसाम के विधान-मण्डल में प्रतिनिधित्व तथा संसद में प्रतिनिधित्व, संसद् द्वारा बनाई गई विधियों के प्रवर्तन तथा आसाम विधान-मण्डल द्वारा निर्मित विधियों के प्रवर्तन से एकता उत्पन्न नहीं होगी, तो मैं जानना चाहता हूं कि प्रादेशिक परिषदों तथा जिला परिषदों को समस्त प्रान्त के राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध बनाने के लिये हम और किस एकताकारी प्रभाव का उपबन्ध कर सकते हैं।

अतएव मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि प्रादेशिक परिषदों और जिला परिषदों का निर्माण करके हमने आसाम की जनता को दो पृथक् भागों में-अर्थात् आदिमजातीय तथा अन-आदिमजातीय-मैं बांट दिया है। इसके विपरीत, हमने प्रतिनिधित्व के बहुत से स्थान रखे हैं, जिनमें दोनों आपस में मिल सकते हैं, एक दूसरे पर प्रभाव डाल सकते हैं, एक दूसरे से सम्पर्क बना सकते हैं और एक दूसरे से कुछ सीख सकते हैं। मुझे विश्वास है कि प्रादेशिक परिषदों तथा जिला परिषदों के उपबन्ध के विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये गये हैं, वे बिल्कुल भ्रम के आधार पर या इस अनुसूची में समाविष्ट अन्य उपबन्धों को ठीक प्रकार न पढ़ने के कारण ही उपस्थित किये गये हैं।

श्रीमान, मेरे मित्र श्री चालिहा ने अपना संशोधन पेश करते समय जो रुख अपनाया था, उस पर तथा मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी के रुख पर भी मुझे कुछ आश्चर्य सा हुआ। मैं अनुभव करता हूं कि वे अब एक संयुक्त तथा सुखी परिवार नहीं हैं। इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं समझता, पर मैं कह सकता हूं कि जब ये संशोधन किये गये थे, तब वे श्री चालिहा की सहमति से किये गये थे, वे आसाम के मुख्य मन्त्री की सहमति से किये गये थे, और मेरे मित्र श्री निकल्स राय की सहमति से भी किये गये थे, जो इसमें सम्बद्ध मुख्य पक्ष हैं। मैं देखता हूं कि अब वे एक दूसरे की आलोचना ऐसे कारणों से कर रहे हैं, तो इस अनुसूची के बाहर हैं। इस मत भेद का, इस स्पष्ट मतभेद और विरोध का, जो उन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध प्रदर्शित किया है, मुझे कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता, और इसीलिये मैं उस मामले में नहीं पड़ना चाहता, जिसे मैं शुद्धतः घरेलू कलह समझता हूं।

*श्री रोहिणी कुमार चौधरीः क्या माननीय डॉ. अम्बेडकर को हम पर आक्षेप करने का अधिकार है?

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं कोई आक्षेप नहीं कर रहा हूं, मैं तो यही कह रहा था, श्रीमान, कि यह एक घरेलू कलह है, जिसमें मैं नहीं पड़ूंगा। मेरा अपना ख्याल यह है कि हमने सर्वोत्तम उपबन्ध बना दिया है..........

*श्री कुलधर चालिहाः मुझे इस पर आपत्ति है सत्यनिष्ठा से अभिव्यक्त मत में डॉक्टर अम्बेडकर स्वार्थ का आरोप करते हैं।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं कोई स्वार्थ का आरोप नहीं कर रहा हूं। इस अनुसूची में जो भी परिवर्तन किये गये हैं, उनमें श्री चालिहा का भाग है। मैं चाहता हूं कि वे इससे इनकार करें। क्या वे इससे इनकार कर सकते हैं?

*श्री कुलधर चालिहाः हां, मैं इनकार करता हूं। मैंने श्री बारदोलोई को बता दिया था कि मैं कई बातों से सहमत नहीं हूं।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः उन्होंने श्री बारदोलोई के कानों में कह दिया होगा। उन्होंने मसौदा-समिति में इन परिवर्तनों के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा। मैंने उनसे हस्ताक्षर नहीं करवाये थे, जैसा कि मैं अन्य मामलों में करवाता था, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि कोई सदस्य अपनी बात से फिर जाये। किन्तु, मैं यह कह रहा था कि प्रादेशिक परिषदों तथा जिला-परिषदों को खास प्रयोजनों के लिये खास स्वायत्तता दी गई है और उसके साथ ही साथ उनका प्रान्त के जीवन और समस्त देश के जीवन के साथ सम्बन्ध भी कर दिया गया है। यदि वे इन परिस्थितियों से, जो एकसूत्रता लाने वाली होती है, आदिमजाति के लोगों का आसाम के तथा देश के शेष मैदानी लोगों से सम्बन्ध नहीं होता या एकता नहीं होती, तो ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का कारण कहीं अन्यत्र ढूंढ़ना होगा। मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा कि यदि आप प्रादेशिक परिषदें बनायेंगे, तो आदिमजातीय क्षेत्रों की हालत तिब्बत जैसी हो जायेगी या और किसी क्षेत्र के समान हो जायेगी। मैं नहीं जानता कि यह भविष्यवाणी केवल आदिमजातीय क्षेत्रों तक ही सीमित है। मुझे भय है कि आसाम ही चला जा सकता है। उसके लिये हम संविधान में कोई उपबन्ध नहीं कर सकते, मुझे इस पर विश्वास है।

*श्री बी. दास (उड़ीसा : जनरल): क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि क्या वे जानते हैं कि ब्रिटिश अभिकर्ता अब भी आसाम-बर्मा सीमा पर काम कर रहे हैं और वे करेनों और बर्मियों की लड़ाई कराने के उत्तरदायी हैं, और वे ही ब्रिटिश अभिकर्ता आसाम के आदिमजातीय क्षेत्रों में अब भी काम कर रहे हैं? अपने मित्र रेवरेण्ड निकल्स राय की वक्तृता को सुनने के बाद मैं यह सोचता हूं कि वे आदिमजातीय क्षेत्रों को इसी लिये अलग रखना चाहते हैं, जिससे इन आदिमजातीय क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रभाव बना रहे। सरकार के सदस्य होने के नाते डॉ. अम्बेडकर इन आदिमजातीय क्षेत्रों के विषय में बहुत कुछ जानते हैं—और मुझे कुछ पता लगा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं केवल यही बात कह सकता हूं कि ऐसे उपाय ढूंढ़ना सर्वथा सम्भव है, जिससे हम इस विदेशी प्रभाव को दूर कर सकते हैं।

***श्री बी. दासः** मसौदा-लेखन समिति.........

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मसौदा-लेखन समिति का इस विदेशी प्रभाव को हटाने से कोई सम्बन्ध है। यह किसी और निकाय का कृत्य है, किन्तु मैं अपने मित्र को आश्वासन दे सकता हूं कि इस विदेशी प्रभाव को हटाना कठिन नहीं होगा।

***अध्यक्षः** मैं विविध संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (1) में 'not less than twenty and not more than forty members' इन शब्दों के स्थान पर 'not more than twenty-four members' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 105 में कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (1) में 'not more than twenty-four members' इन शब्दों के स्थान पर (जिन्हें रखने की प्रस्थापना है), 'not more than fifteen members' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (2) को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (7) के खण्ड (घ) के पश्चात् निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

(dd) 'the term of office of members of such Councils."

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची (ग्रंथ 2) के संशोधन संख्या 3487 के निर्देश से कण्डिका 2 की उप-कण्डिका (5) के अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'Subject to such directions as may be given by the Governor or by the Legislature of the State.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन संख्या 3493 में कण्डिका 2 की प्रस्थापित उप-कण्डिका (7क) के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:-

'the functions of the Governor under sub-paragraph 7 shall be exercised by him as the agent of the President.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में केवल ये ही संशोधन हैं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 2 छठी अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 2 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 3

***श्री कुलधर चालिहा:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन सं. 3494 के निर्देश से कण्डिका 3 के स्थान पर निम्न कण्डिका रख दी जाये:-

3. The Governor shall make laws and regulations and entrust the District Council and Regional Councils with such powers as the State Legislature may approve.' "

[3. राज्यपाल विधियां और विनियम बनाये और जिला परिषद तथा प्रादेशिक परिषदों को ऐसी शक्तियां देगा, जो राज्य का विधान मण्डल अनुमोदित करे।]

श्रीमान, आप कण्डिका 3 में देखेंगे कि प्रादेशिक और जिला परिषदों को ऐसी शक्तियां दे दी गई हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसमें लिखा है कि उन्हें रक्षित बनों के अतिरिक्त अन्य बनों के प्रबन्ध के विषय में, कृषि के प्रयोजन के लिये नहरों या जल-प्रवाह के प्रयोग के विषय में विधियां बनाने की शक्ति होगी। यदि चाहें तो वे आपको जल-प्रयोग से रोक सकते हैं। फिर उसमें यह विषय है "झूमकी प्रथा का अथवा अन्य प्रकारों की स्थानान्तरणशील कृषि की प्रथा का विनियमन।" मान लीजिये कि कुछ लोग पहाड़ियों में रहते हैं और उनके पास सम्पत्ति है; उनकी वैवाहिक और सामाजिक परिपाटियां भी हैं। प्रादेशिक परिषदों

को हिन्दुओं की विवाह तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी विधियों को बदलने का अधिकार होगा। अतः विद्यमान खण्ड के स्थान पर मैंने निम्न शब्द रखे हैं:—

"The Governor shall make laws and regulations and entrust the District Council and Regional Councils with such powers as the State Legislature may approve."

वे बहुत संगत हैं और बहुत सुन्दर हैं और इससे राज्यपाल को शक्ति मिल जाती है। हां यह संशोधन संख्या 114 के कारण नरम पड़ गया है, जिसके अन्त में कहा गया है "इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विधियां तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखी जायेंगी और जब तक वह उनको अनुमति न दे दे, प्रभावी न होगी।" साथ ही प्रादेशिक परिषदों को अन्त में विनियम बनाने की शक्ति दी गई है। यह केवल उसे नरम बनाने के लिये है। यदि उन्होंने उसे जोड़ना बुद्धिमानी समझा, तो फिर यह आडम्बर क्यों? मसौदा-लेखन समिति मेरे संशोधन को स्वीकार कर सकती थी। वे स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि राज्यपाल को ऐसा करने का अधिकार होगा। यह बात स्पष्ट करने के स्थान पर और यह कहने के स्थान पर कि राज्यपाल को अधिकार होगा, आप वह शक्ति दे देते हैं और फिर आप कहते हैं "इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विधियां तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखी जायेंगी और जब तक वह उनको अनुमति न दे दे, प्रभावी न होंगी।" वास्तव में यह संशोधन वैसा ही है, जैसा कि मेरा है और इसलिये डॉ. अम्बेडकर को मेरा संशोधन स्वीकार कर लेना चाहिये थे, इसकी बजाय कि वे कुछ जोड़कर उसका असर कम करें और विधि-निर्माण का आडम्बर करें। मसौदा-लेखन समिति के संशोधन को स्वीकार करने की बजाय मेरा संशोधन स्वीकार करना अधिक अच्छा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** माननीय सदस्य ने मेरे लिये इसका प्रस्ताव कर दिया है। यदि आप ऐसा समझ लें कि वह पेश कर दिया गया है, तो इससे समय बच जायेगा।

***अध्यक्ष:** मैं मान लेता हूं कि उन्होंने प्रस्ताव कर दिया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं इसे औपचारिक रूप से पेश करूं?

***अध्यक्ष:** हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 3 की उप-कण्डिका (3) के पश्चात् निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:

'(3) All laws made under this paragraph shall be submitted forthwith to the Governor and until assented to by him shall have no effect.' "

[(3) इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विधियां तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखी जायेंगी और जब तक वह उनको अनुमति न दे, दे प्रभावी न होंगी।]

(संशोधन संख्या 258 पेश नहीं किया गया।)

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 114 में कण्डिका 3 की उप-कण्डिका (3) के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(3) All laws made under this paragraph shall be submitted to the Governor who shall forthwith place then before the legislature of the State and until agreed to by the Legislature and assented to be the Governor such laws shall have no effect.' "

[(3) इस कण्डिका के अधीन बनाई गई सब विधियां राज्यपाल को पेश की जायेंगी, जो उन्हें राज्य के विधान-मण्डल के समक्ष पेश करेगा और जब तक विधान-मण्डल सहमत न हो और राज्यपाल द्वारा स्वीकृत न हो, तब तक वे विधियां प्रभावी नहीं होंगी।]

श्रीमान, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि केवल यही पर्याप्त नहीं होना चाहिये कि विधियों पर राज्यपाल की स्वीकृति मिल जाये, किन्तु राज्यपाल को चाहिये कि वह उन सब विधियों को विधान मण्डल के समक्ष यथासम्भव शीघ्र पेश करे और जब तक विधान मण्डल सहमत न हो जाये या जब तक राज्यपाल ऐसी विधि पर अनुमति न दे दे, तब तक वह विधि लागू नहीं होगी। मेरा निवेदन है, श्रीमान, इस परिवर्तन पर कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। विधान मण्डल में ऐसे सदस्य हैं, जो आदिमजातीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं और सरकार बहुत से आदिमजातीय सदस्यों और सदन के समर्थन से कृत्य करेगी, और इसलिये जब तक इस पर सरकार के मुख्य बहुमत दल की स्वीकृति न मिल जाये, तब उसे विधि के रूप में लागू न किया जाये। चाहे किसी विधि का उस क्षेत्र के लोगों से विशेष सम्बन्ध हो, जिस क्षेत्र की जिला-परिषद् ने उस विधि को पारित किया है, चाहे उस क्षेत्र के लोगों से उसका सम्बन्ध हो, पर उसका सम्बन्ध पड़ौस के दूसरे क्षेत्रों के लोगों से भी निस्सन्देह हो सकता है, अतः उसे समस्त प्रान्तीय विधान मण्डल के समक्ष रखा जाना चाहिये और जिला-परिषद् के ही समक्ष नहीं रखा जाना चाहिये। अतएव जो भी विधि जिला-परिषद् या प्रादेशिक परिषद् द्वारा पारित की जाये, वह प्रान्त के मुख्य विधान-मण्डल में जानी चाहिये और यदि प्रान्त का विधान मण्डल सहमत हो जाये, तब ही उसे राज्यपाल के पास भेजने का प्रश्न उठाना चाहिये, और यदि राज्यपाल अपनी अनुमति दे दे, तो वह विधि लागू हो जानी चाहिये। मुझे आशा है कि यह संशोधन डॉ. अम्बेडकर को स्वीकार्य होना चाहिये।

***अध्यक्षः** श्री कुलाधर चालिहा ने संशोधन संख्या 260 की सूचना दी है, जो संशोधन सं. 259 जैसा ही है; उसे पेश करना आवश्यक नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): संशोधन सं. 195। यह भाषा सम्बन्धी संशोधन है। मैंने इस संशोधन का उद्देश्य पंचम अनुसूची के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है। मैं केवल यही चाहता हूं कि मसौदा-लेखन समिति उस पर विचार करे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 114 में कण्डिका 3 की प्रस्थापित उप-कण्डिका (3) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये।"

श्रीमान, मेरा यह मत है कि यदि राज्यपाल को यह देखभाल की या जिला-परिषदों द्वारा पारित विधियों को रोकने की शक्ति दी जाती है, तो संघर्ष अवश्य होगा। इससे प्रान्तीय सरकार और जिला तथा प्रादेशिक परिषदों के बीच कटुता और दुर्भावना उत्पन्न हो जायेगी। इससे प्रान्तीय स्वायत्तता से टक्कर होगी। अतएव प्रान्तीय सरकारों की रक्षा के लिये, प्रान्तीय प्राधिकारियों के हाथों को मजबूत बनाने के लिये यह अपेक्षित है कि इस शक्ति को राष्ट्रपति के हाथ में रखा जाये। मैं वास्तव में यह चाहता हूं कि केन्द्र में आसाम की आदिमजातियों का भारसाधक एक अलग मन्त्रिपद होना चाहिये, जिसमें अनुसूची की कण्डिका 19 में नत्थी सारिका के भाग 1 तथा 2 दोनों आ जायें। मेरा यह मत है कि यह इतना महत्वपूर्ण कार्य है कि इसे राज्यपाल के हाथ में नहीं छोड़ना चाहिये। ऐसा करना जोखिम की बात है। यदि किसी कारण राज्यपाल इस कण्डिका के अधीन अपने कृत्यों को नहीं कर पाता है, तो सारे देश का हित संकट में पड़ जायेगा। मुझे यह भी भय है कि राज्यपाल अपने कृत्यों को समुचित रूप से शायद पूरा न कर सके, क्योंकि संसदीय लोकतन्त्रात्मकता तथा संकीर्ण प्रान्तवाद के विचार उसके मार्ग को अवरुद्ध बना सकते हैं।

एक और भी कारण है, जिससे मैं इस शक्ति को राज्यपाल के हाथ में देने के विरुद्ध हूं। मैं सदन में अल्पमत वालों में हूं। मैं अपने अल्पमत का एकमात्र सदस्य हूं। मैं राजनैतिक संकेन्द्रण में विश्वास करता हूं। मेरा यह मत है, मुझे अपने मत में विश्वास है कि विकेन्द्रीकरण वर्गहीन समाज का एक लक्षण है। वह केवल वर्गहीन समाज में ही सफल हो सकता है, जहां राजनैतिक हिंसा समाप्त हो गई है तथा स्वयं राज्य भी क्षीण हो गया है। कल इस सदन के प्रांगण में दिये गये इस सुझाव का मैं प्रबल खण्डन करता हूं कि भारत सरकार की वैदेशिक मामलों में व्यस्तता के कारण, भारत सरकार की विदेशी राज्यों की समस्या में व्यस्तता के कारण, केन्द्र अधिक उत्तरदायित्व लेने के अयोग्य है। हमने यह राजनैतिक विकेन्द्रण की योजना मुस्लिम लीग को प्रसन्न करने के लिये, राजाओं को प्रसन्न करने के लिये, स्वीकार की थी। यह हमारी असावधानी थी, यह हमारी ओर से महान कर्तव्योपेक्षा का कार्य था कि हमने एकदम उस शासन-व्यवस्था को नहीं अपनाया, जिसके लिये हम वचनबद्ध थे, जो अस्मरणीय काल से भारत में सब शासनों का समानाधार रहा है। मेरा आशय एकात्मक शासन-व्यवस्था से है। मैं अपने संशोधन को सदन के विचारार्थ पेश करता हूं।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं? मैं नहीं समझता कि इसमें वाद-विवाद की कोई बात है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, अपने मित्र श्री चालिहा के संशोधन सं. 113 के विषय में मैं सचमुच समझ नहीं पाया कि उसका आशय क्या है। उसमें लिखा है कि:

"The Governor shall make laws and regulations and entrust the District Council and Regional Councils with such powers as the State Legislature may approve.' "

मैं नहीं समझता कि इसका क्या आशय है। अत: मैं यह कहने में असमर्थ हूं कि मैं इसे स्वीकार करता हूं।

मेरे संशोधन और मेरे माननीय मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी के संशोधन में कुछ विशेष अन्तर नहीं है, केवल इतनी सी बात है कि मेरे माननीय मित्र यह बात नहीं समझ पाये हैं कि "राज्यपाल" शब्द का क्या अर्थ है। वे कहते हैं कि विधियां आसाम के विधान मण्डल द्वारा अनुमोदित होंगी। मेरे संशोधन के अनुसार वे विधियां आसाम के मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर राज्यपाल द्वारा स्वीकृत होंगी, क्योंकि इस समस्त योजना में हम लोग 'in his discretion' इन (स्वविवेक सम्बन्धी) शब्दों को हटा रहे हैं। जहां भी राज्यपाल शब्द आता है, वहां उसका अर्थ है 'मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर कार्य करता हुआ राज्यपाल'। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि क्या वे सचमुच यह समझते हैं कि मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर चलकर राज्यपाल द्वारा किसी विधि का अनुमोदन करने में तथा आसाम के विधान मण्डल द्वारा ही उसका अनुमोदन होने में कोई गम्भीर अन्तर है। मेरे विचार में मेरी योजना मूल योजना से कहीं अधिक संगत है कि आदिमजातीय लोगों को संविधान-दत्त कुछ अन्तर्विष्ट अधिकार होने चाहियें कि वे कुछ विषयों पर विधियां बना सकें। ऐसी अवस्था में मेरी कण्डिका (3) इस योजना से कहीं अधिक संगत है और आसाम मन्त्रिमण्डल को उससे कुछ शक्ति मिल जाती है कि वह राज्यपाल को यह मन्त्रणा दे सकता है कि वह किसी विधि को स्वीकार करे या अस्वीकार करे। विधान-मण्डल का हस्तक्षेप बिल्कुल अनावश्यक है।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ यदि मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर की बात को ठीक समझा हूं, तो मैं अपना संशोधन वापस लेने के लिये तैयार हूंगा। मेरा मतलब यह है कि यदि राज्यपाल को मन्त्रिमण्डल मन्त्रणा देगा, और मन्त्रिमण्डल विधान मण्डल का मत लेगा, तो फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यदि मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा का यह अर्थ है कि मन्त्रिमण्डल तब तक ऐसा कोई कोर्य नहीं करेगा, जब तक कि सदन को उस पर विचार करने का अवसर न मिला हो, तो मेरे विचार में यही बात मैं चाहता हूं और यही बात डॉ. अम्बेडकर चाहते हैं। ऐसी स्थिति में मैं अपना संशोधन वापस ले लूंगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मेरे विचार में मैंने जितना कहा है, वे उससे अधिक समझ रहे हैं। मैं उन्हें यह आश्वासन तो नहीं दे सकता।

*__अध्यक्ष:__ मैं संशोधन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधन-सूची (ग्रंथ 2) के संशोधन सं. 3494 के निदेश से कण्डिका 3 के स्थान पर निम्न कण्डिका रख दी जाये:—

'3. The Governor shall make laws and regulations and entrust the District Council and Regional Councils with such powers as the State legislature may approve.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 114 में कण्डिका 3 की उप-कण्डिका (3) के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(3) All laws made under this paragraph shall be submitted to the Governor who shall forthwith place them before the legislature of the State and until agreed to by the legislature and assented to by the Governor such laws shall have no effect.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 114 में कण्डिका 3 की प्रस्थापित नई उप-कण्डिका (3) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 3 की उप-कण्डिका (2) के पश्चात् निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:—

'(3) All laws made under this paragraph shall be submitted forthwith to the Governor, and until assented to by him shall have no effect.' "

[(3) इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विधियां तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखी जायेंगी और जब तक वह उनको अनुमति न दे दे, प्रभावी न होंगी।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 3 अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 3 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 4

***श्री कुलधर चालिहा:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 4 के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'4. The Governor shall constitute courts with such powers as he may deem proper and in making appointments and conferring judicial powers he shall follow as nearly as possible the Criminal and Civil Procedure Codes of India, and the High Court of Assam shall exercise all the appropriate powers conferred on it by law.' "

[4. राज्यपाल न्यायालयों का निर्माण करेगा, जिनमें ऐसी शक्तियां होंगी, जो वह उचित समझें और नियुक्तियां करने में तथा न्याय शक्तियां प्रदान करने में वह यथासम्भव भारत की आपराधिक और व्यवहार प्रक्रियाओं का अनुसरण करेगा, और आसाम का उच्च न्यायालय उन सब उचित शक्तियों का प्रयोग करेगा, जो उसे विधि द्वारा प्रदान की जायेंगी।]

श्रीमान, कण्डिका 4 से स्वायत्तशासी प्रदेशों की प्रादेशिक परिषदों को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त होंगी:

"(1) The Regional Council for an autonomous region in respect of areas within such region and the District Council for an autonomous district in respect of areas within the district other than those which are under the authority of the Regional Councils, if any, within the district may constitute village councils or courts for the trial of suits and cases other than those to which the provisions of sub-paragraph (1) of paragraph 5 of this Schedule apply or those arising out of any law made under paragraph 3 of this Schedule, to the exclusion of any court in the State, and may appoint suitable persons of such courts, and may also appoint such officers as may be necessary for the administration of the laws made under paragraph 3 of this Schedule.

(2) Notwithstanding anything in this Constitution the Regional Council for an autonomous region or any Court constituted in this behalf by the Regional Council or, if in respect of any area within an autonomous district there is no Regional Council, the District Council for such district, or any court constituted in this behalf be the District Council, shall exercise the powers

of a Court of Appeal in respect of all suits and cases between the parties all of whom belong to scheduled tribes within such region or area, as the case may be, other than those to which the provisions of sub-paragraph (1) of paragraph 5 of this Schedule apply, and no other Court in the State shall have appellate jurisdiction over such suits or cases and the decision of such Regional or District Council or Court shall be final."

[(1) स्वायत्तशासी प्रदेश की प्रादेशिक परिषद् ऐसे प्रदेश के भीतर के क्षेत्रों के बारे में, तथा स्वायत्तशासी जिले की जिला-परिषद् उस जिले के भीतर की प्रादेशिक परिषदों के, यदि कोई हो, प्राधिकाराधीन क्षेत्रों से उस जिले के भीतर के अन्य क्षेत्रों के बारे में ऐसे व्यवहारवादों और मामलों के परीक्षण के लिये, जिनके सभी पक्ष ऐसे क्षेत्रों के भीतर की अनुसूचित आदिम जातियों के ही हैं तथा जो उन व्यवहार वादों से भिन्न हैं, जिन्हें इस अनुसूची की कण्डिका 5 की उप-कण्डिका 1 के उपबन्ध लागू होते हैं, उस राज्य के प्रत्येक न्यायालय का अपवर्जन कर के ग्राम-परिषद् या न्यायालय गठित कर सकेगी तथा उचित व्यक्तियों को ऐसे ग्राम-परिषदों के सदस्य अथवा ऐसे न्यायालयों के पीठासीन पदाधिकारी नियुक्त कर सकेगी, जो अनुसूची की कण्डिका 3 के अधीन बनाई हुई विधियों के प्रशासन के लिये आवश्यक हों।

(2) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी स्वायत्तशासी प्रदेश की प्रादेशिक अथवा उस प्रादेशिक परिषद् द्वारा उस लिये गठित कोई न्यायालय अथवा यदि किसी स्वायत्तशासी जिले के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के लिये कोई प्रादेशिक परिषद् न हो, तो ऐसे जिले को जिला-परिषद् अथवा उस जिला-परिषद् द्वारा उसलिये गठित कोई न्यायालय इस अनुसूची की कण्डिका 5 की उप-कण्डिका 1 के उपबन्ध जिन व्यवहार वादों और मामलों को लागू होते ही उनको छोड़कर यथास्थिति ऐसे प्रदेश अथवा क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त व्यवहार वादों और मामलों में, जिनमें सारे पक्ष अनुसूचित आदिमजातियों के हों, अपीलीय न्यायालय की शक्तियां प्रयोग में लायेगा तथा उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय को छोड़कर किसी दूसरे न्यायालय को ऐसे व्यवहार वादों अथवा मामलों में क्षेत्राधिकार न होगा।]

क्या आप इस उपबन्ध की असंभवता को समझते हैं कि उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय का भी क्षेत्राधिकार जिला परिषदों तथा प्रादेशिक परिषदों पर विस्तृत नहीं होगा? अतएव मैंने अपना संशोधन भेजा है। मैं देखता हूं कि उन्होंने 119 तथा 120 में वही बात नरम भाषा में रख दी है।

[श्री कुलधर चालिहा]

119 में उन्होंने कहा है कि 'except the High Court and the Supreme Court shall have urisdiction over such suits or cases.' 120 में उन्होंने कहा है:

"The High Court of Assam shall have and exercise such jurisdiction over the suits and cases to which the provisions of sub-para (2) of this para. Apply as the Governor may from time to time by order specify."

किन्तु यहां जिला न्यायालय को उस स्वाभाविक क्षेत्राधिकार से वंचित कर दिया गया है, जो उसे मिलना चाहिये था। अत: डॉ. अम्बेडकर के संशोधनों के बावजूद उसमें अधिक सुधार नहीं होता। उससे साधारण न्यायालय अपने समुचित क्षेत्राधिकार से वंचित हो जाते हैं। आपने उसे अपमार्जित कर दिया है। आपने उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय का ही निर्देश किया है तथा जिला न्यायालय का नाम काट दिया है। शायद वे निर्माण बहुत सामान्य होंगे और कारण नही होंगे, पर फिर भी वे उच्च न्यायालय के पास जायेंगे। जिला न्यायालय को क्यों नहीं? जिला न्यायालय देश की विधियों से सुपरिचित होंगे और मेरे विचार में उनका उल्लेख होना चाहिये था। अतएव मेरा संशोधन मसौदा-समिति के संशोधन से कहीं अधिक अच्छा है। शायद वे जल्दी में है और इन अनुसूचियों को भागदौड़ में पारित कर रहे हैं। यदि आप समूची अनुसूची को शीघ्रता में पारित कर देंगे, तो आप देखेंगे कि आपने आसामी लोगों की अपेक्षा कर दी है। आपने उनके विषय में कभी नहीं सोचा और वहां के जिला न्यायाधीश के न्यायालय की अवहेलना कर दी और आप उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय पर पहुंच गये। अतएव मैं सदन से अनुरोध करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (1) में 'or those arising out of any law made under paragraph 3 of this Schedule' ये शब्द तथा अंक हटा दिये जायें।"

ये अनावश्यक हैं।

श्रीमान, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) में 'shall have appellate jurisdiction over such suits or cases and the decision of such Regional or District Council or Court shall be final' इन शब्दों के स्थान पर 'except the High Court and Supreme Court shall have jurisdiction over such suits or cases.' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) के पश्चात् निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:

'(3) The High Court of Assam shall have and exercise such jurisdiction over the suits and cases to which the provisions of

sub-paragraph (2) of this paragraph apply, as the Governor may from time to time by order specify.' "

[(3) इस कण्डिका की उप-कण्डिका (2) के उपबन्ध जिन व्यवहार वादों ओर मामलों पर लागू होते हैं, उन पर आसाम का उच्चतम न्यायालय ऐसा क्षेत्राधिकार रखेगा और प्रयोग करेगा, जैसा कि समय-समय पर राज्यपाल आदेश द्वारा उल्लिखित करे।]

इस संशोधन से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है। पहले कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) के अधीन जिला न्यायालय का विनिश्चय अन्तिम होता। अब हमने यह उपबन्ध कर दिया है कि उनकी अपील उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय में जा सकेगी, जो एक महत्वपूर्ण उपबन्ध था।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रंथ 2) के संशोधन संख्या 3496 में षष्ठ अनुसूची की कण्डिका 4 की उप-कण्डिका के प्रस्थापित परन्तुक में....."

***अध्यक्ष:** किन्तु, श्री चौधरी, संशोधन सं. 3496 तो एक परन्तुक जोड़ने के विषय में था और वह संशोधन पेश नहीं किया गया है और इसलिये यह उपबन्ध आता ही नहीं। अत: आपके संशोधन के लिये कोई स्थान नहीं है। यह तो ऐसे संशोधन पर संशोधन है, जो पेश ही नहीं किया गया है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** किन्तु ऐसे संशोधन पहले हुए हैं।

***अध्यक्ष:** पर अब आप इसे कहां रखेंगे? स्वतन्त्र रूप से?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** फिर, क्या मैं उस पर सामान्य रूप से बोल सकता हूं?

***अध्यक्ष:** हां, मैं संशोधनों को समाप्त कर लूं, तभी आप बोल सकते हैं। फिर श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन सं. 197 है। पर वह रचना सम्बन्धी संशोधन है। फिर एक संशोधन की ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में सं. 198 है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, मैं इस संशोधन को किसी टिप्पणी के बिना ही पेश करता हूं। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"किसी सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 120 में कण्डिका 4 की प्रस्थापित नई उप-कण्डिका (3) के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(3) The High Court of Assam shall have and exercise such jurisdiction over the suits and cases to which the Provisions of sub-paragraph (2) of this paragraph apply

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

as the President may by order from time to time declare and prescribe.' "

[(3) जिन वादों और मामलों पर इस कण्डिका की उप-कण्डिका (2) के उपबन्ध लागू होते हैं, उन पर आसाम के उच्च न्यायालय को ऐसा क्षेत्राधिकार होगा और वह उसका प्रयोग करेगा, जैसा कि राष्ट्रपति समय-समय पर घोषित करे तथा निर्धारित करे।]

***अध्यक्षः** मेरे ख्याल में ये ही संशोधन हैं। नहीं, एक और है, श्री साहू का सं. 261 है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं, कि.........

***अध्यक्षः** किन्तु आपका संशोधन डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन सं. 119 के पश्चात् अब नहीं आता, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह कहा गया है कि "shall have appellate jurisdiction over such suits etc." इन शब्दों के स्थान पर "except the High Court and the Supreme Court shall havejurisdiction over such suits or cases." ये शब्द रख दिये जायें।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहूः** फिर मैं अपने संशोधन को पेश नहीं करता।

***अध्यक्षः** फिर, आप अब बोल सकते हैं, श्री चौधरी।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** श्रीमान, पहाड़ियों में न्याय प्रशासन की वर्तमान स्थिति यह है। व्यवहार वादों में पहले अन्तिम अपीलीय प्राधिकारी राज्यपाल होता था। उपायुक्त को तथा सहायक उपायुक्त को ही मूल्य तक के व्यवहार वादों पर विचार करने का क्षेत्राधिकार था। जहां तक आपराधिक वादों का सम्बन्ध है, उपायुक्त तथा सहायक उपायुक्त जो दण्ड देना चाहते, दे सकते थे। हां, उच्च न्यायालय उसका पुनरीक्षण कर सकता था। किन्तु जहां तक राज्यों का सम्बन्ध है, प्रान्त के उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप करने का जरा भी क्षेत्राधिकार नहीं है।

अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के सम्बन्ध में एक और बात कहना चाहता हूं। जहां भी अन-आदिमजातियों तथा आदिमजातियों के बीच व्यवहार वाद हो, जिसमें जिला न्यायालय का क्षेत्राधिकार हो, क्या वहां न्यायालयों को पूरा क्षेत्राधिकार होगा या उसके लिये कोई और प्रक्रिया होगी। कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) में लिखा है:

"(2) Notwithstanding anything in this Constitution the Regional Council for an autonomous region or any court constituted in this behalf by the Regional Council or, if in respect of any area within an autonomous district there is no Regional Council, the District Council for such district, or any court constituted in this behalf by the District Council, shall exercise the powers of a Court of Appeal in respect of all suits and cases

between the parties all of whom belong to scheduled tribes within such region or area, as the case may be, other than those to which the provisions of sub-paragraph (1) of paragraph 5 of this Schedule apply, and no other Court in the State..."

[(2) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी स्वायत्तशासी प्रदेश की प्रादेशिक परिषद् अथवा उस प्रादेशिक परिषद् द्वारा उस लिये गठित कोई न्यायालय अथवा यदि किसी स्वायत्तशासी जिले के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के लिये कोई प्रादेशिक परिषद् न हो, तो ऐसे जिले की जिला परिषद् अथवा उस जिला परिषद् द्वारा उस लिये गठित कोई न्यायालय इस अनुसूची की कण्डिका 5 की उप-कण्डिका (1) के उपबन्ध जिन व्यवहार वादों और मामलों को लागू होते ही उनको छोड़कर यथास्थिति ऐसे प्रदेश अथवा क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त व्यवहार वादों और मामलों में, जिनमें सारे पक्ष अनुसूचित आदिमजातियों के हों, अपीलीय न्यायालय की शक्तियां प्रयोग में लायेगा तथा उच्च न्यायालय और उच्चतम-न्यायालय को छोड़कर किसी दूसरे न्यायालय को ऐसे व्यवहार वादों अथवा मामलों में क्षेत्राधिकार न होगा।]

बाद के अंश में संशोधन करने की प्रस्थापना है। किन्तु मैं इन शब्दों पर बल देना चाहता हूं 'between parties all of whom belong to the scheduled tribes'। मान लीजिये, कोई ऐसा मामला है जिसमें एक पक्ष अन-आदिमजातीय है, फिर कण्डिका 4 में और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत क्या उपबन्ध बनाया गया है? मैं तो यही जानना चाहता हूं। दुर्भाग्य से, इस समय जब कि मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूं, मैं डॉ. अम्बेडकर के ध्यान को आकृष्ट नहीं कर सकता। जब आदिमजातीय और अन-आदिमजातीय व्यक्ति के बीच विवाद होगा, तब अपीलीय न्यायालय कौन-सा होगा? क्या ज़िला परिषद् के न्यायालय का ही पूरा क्षेत्राधिकार होगा या वह मामला उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन किसी और न्यायालय को भेजा जा सकेगा? विद्यामान व्यवस्था के अधीन तो जब भी किसी आदिमजातीय और अनआदिमजातीय व्यक्ति के बीच कोई विवाद होता है, यदि प्रतिवादी या अभियुक्त व्यक्ति अन-आदिमजातीय होता है, तो उसे वकील द्वारा सफाई पेश करने का अधिकार होता है और उस पर सामान्य प्रक्रिया लागू होती है। परन्तु मैं इस बात को स्पष्ट करवाना चाहता हूं कि क्या किसी स्वायत्तशासी जिले के न्यायालयों में, और मसौदा-लेखन समिति की धारणा के अनुसार स्वायत्तशासी जिलों में बहुत से अन-आदिमजातीय जिले होंगे, यथा गारो पहाड़ियों में, नागा पहाड़ियों में और खासी पहाड़ियों में—क्या वहां पर अन-आदिमजातियों पर व्यवहार प्रक्रिया संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध लागू होंगे, या उन पर साधारण विधियां, प्रधान विधियां या आदिम विधियां लागू होंगी, जो आदिमजातीय लोगों के ही लिये हैं। यह पहला प्रश्न है।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

दूसरा प्रश्न यह है। क्या इन लोगों को व्यवहार न्यायालय में वकील द्वारा पेश होने का या सफाई पेश करवाने का अधिकार होगा या नहीं? और तीसरी बात यह है कि क्या उन मामलों की अपीलें उच्च न्यायालय में जायेंगी या जिला न्यायालय में जायेंगी, क्योंकि उप-कण्डिका 2 में अपील पर विचार करते समय केवल अनुसूचित आदिमजातियों की अपीलों का ही विशेष उल्लेख है। क्या नागा पहाड़ियों में और गारो पहाड़ियों में न्याय-प्रशासन उसी अर्ध-जंगली ढंग से होगा, जैसा पहले होता था, या उसमें आदिमजातीय लोगों के पक्ष में या आदिम-जातीय क्षेत्रों में रहने वाले अन-आदिमजातीय लोगों के पक्ष में कोई परिवर्तन होगा? इस समय पहाड़ियों में न्याय-प्रशासन के लिये विशेष नियम हैं, जहां न्यायालय के लिये कोई बाध्यता नहीं है कि वह वकील को पेश होने दे, जहां वकीलों को तब ही पेश होने दिया जाता है, जब कि अन-आदिमजातीय लोग या तो प्रतिवादी हों या अभियुक्त हों, इस समय वकीलों को केवल इसी प्रकार पेश होने दिया जाता है। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अन्तर्गत अपीलें उच्च न्यायालयों को जायेंगी, जिन्हें एक प्रकार की पुनरीक्षण शक्ति होगी। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या इन पहाड़ियों में अन-आदिमजातीय लोगों को उच्च न्यायालय में या जिला न्यायालय में अपील करने का हक होगा, क्योंकि इस में संशोधन में केवल आदिमजातियों का उल्लेख है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मुझे यह कहना होगा कि मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरे माननीय मित्र ने मुझसे ऐसे प्रश्न पूछ हैं। मेरे विचार में वे स्वयं उनका उत्तर दे सकते हैं। पर अब उन्होंने मेरे से वे प्रश्न पूछे हैं, अत: मैं उनका उत्तर दूंगा।

पहले प्रश्न का, कि क्या आदिमजातीय क्षेत्रों में स्थापित न्यायालयों में वकीलों को पेश होने दिया जायेगा, उत्तर बहुत साधारण है। पहली बात यह है कि प्रान्तीय सरकार को सूची 3 की वृत्तियों सम्बन्धी प्रविष्टि के अधीन यह अधिकार होगा कि वह विधि-सम्बन्धी वृत्ति के विषय में कोई विधि बना सकती है; और यदि विधि के अन्तर्गत वे ऐसा उपबन्ध कर दें कि वकीलों को स्वायत्तशासी जिलों कें जिला न्यायालयों में पेश होने का अधिकार होगा, तो वह विधि लागू होगी, जब तक कि राज्यपाल का यह ख्याल न हो कि वह विधि वहां लागू नहीं होनी चाहिये। अतएव, वह मामला बिल्कुल स्पष्ट है।

इस कण्डिका के अन्तर्गत जो न्यायाधिकरण स्थापित होंगे, उनके विनिश्चिय की अपीलों के सम्बन्ध में जो प्रश्न है, उसका उत्तर भी सर्वथा साधारण है। कण्डिका में प्रथम ही यह उपबन्ध है कि एक अपील न्यायालय वहां स्थापित होगा। अब राज्यपाल या प्रान्तीय मन्त्रि मण्डल या तो अपील का एक नया न्यायालय स्थापित कर सकता है और उस अवस्था में सब अपीलें उसी न्यायालय को जायेंगी, या वे जिला न्यायालय को ही अपील न्यायालय घोषित कर सकते हैं, जो ग्राम पंचायतों तथा अन्य न्यायालयों द्वारा किये गये विनिश्चयों की अपीलें सुनेगा। अतएव वहां भी अपीलों के लिये उपबन्ध है। अब मेरे संशोधन के अनुसार अपील के जिला न्यायालय के पश्चात् एक और अपील हो सकती है जो या तो उच्च न्यायालय को या उच्चतम न्यायालय को जा सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैंने उप-कण्डिका (2) की इन पंक्तियों को विशेषत: पढ़कर सुनाया था:–

"......the Regional Council for an autonomous region or any court constituted in this behalf by the Regional Council or, if in respect of any area within an autonomous district there is no Regional Council, the District Council for such district, or any court constituted in this behalf by the District Council, shall exercise the powers of a Court of Appeal in respect of all suits and cases between the parties all of whom belong to scheduled tribes...."

[......स्वायत्तशासी प्रदेश की प्रादेशिक परिषद् या उस प्रादेशिक परिषद् द्वारा उस लिये गठित कोई न्यायालय अथवा, यदि किसी स्वायत्तशासी जिले के अन्तर्गत किसी क्षेत्र के लिये कोई प्रादेशिक परिषद् न हो, तो ऐसे जिले की जिला-परिषद् अथवा उस जिला-परिषद् द्वारा गठित कोई न्यायालय समस्त वादों और मामलों में, जिनमें सारे पक्ष अनुसूचित जातियों के हों, अपीलीय न्यायालय की शक्तियां प्रयोग में लायेगा......]

यदि कोई एक पक्ष अनुसूचित आदिमजाति का सदस्य न हो तब क्या होगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि एक पक्ष आदिमजातीय है और दूसरा अन-आदिमजातीय है, तो साधारण विधि लागू होगी।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** आपने इसका उपबन्ध कहां किया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यह तो इसका निष्कर्ष ही है। अब भी इसमें लिखा है–"where the parties are...."। मेरे विचार में इसमें कोई कठिनाई नहीं है और मुझे आशा है मेरे मित्र इसे समझ गये हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** कहीं कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है, श्रीमान।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** साधारण न्यायालय के क्षेत्राधिकार को उसी हद तक अपवर्जित किया गया है जिस हद तक कि कण्डिका 4 में उपबन्धित है। अन्यथा साधारण न्यायालय का क्षेत्राधिकार ज्यों का त्यों है। इन क्षेत्रों में केवल वे ही न्यायालय नहीं होंगे; प्रान्तीय सरकार द्वारा स्थापित अन्य न्यायालय भी होंगे, जो प्रान्त की सामान्य विधि के प्रशासन के लिये होंगे।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 4 के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(4) The Governor shall constitute courts with such powers as he may deem proper and in making appointments and conferring

[अध्यक्ष]

judicial powers he shall follow as nearly as possible the Criminal and Civil Procedure Codes of India, and the High Court of Assam shall exercise all the appropriate powers conferred on it by law.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (1) में 'or those arising out of any law made under paragraph 3 of this schedule' ये शब्द अपमार्जित कर दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 118।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वह पेश नहीं हुआ।

***अध्यक्षः** हां, फिर संशोधन सं. 119।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) में, 'shall have appellate jurisdiction over such suits or cases and the decision of such Regional or District Council or Court shall be final' इन शब्दों के स्थान पर 'except the High Court and the Supreme Court shall have jurisdiction over such suits or cases' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 4 की उप-कण्डिका (2) के पश्चात् निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:—

'(3) The High Court of Assam shall have and exercise such jurisdiction over the suits and cases to which the provisions of sub-paragraph (2) of this paragraph apply as the Governor may from time to time by order specify.' "

[(3) इस कण्डिका की उप-कण्डिका (2) के उपबन्ध जिन व्यवहार वादों और मामलों पर लागू होते हैं, उन पर आसाम का उच्च न्यायालय ऐसा

क्षेत्राधिकार रखेगा और प्रयोग करेगा, जैसा कि समय-समय पर राज्यपाल आदेश द्वारा उल्लिखित करे।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा प्रस्तावित संशोधन संख्या 118 है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 के संशोधन संख्या 120 में कण्डिका 4 की प्रस्थापित नई उप-कण्डिका (3) के स्थान पर निम्न रख दी जायेः—

'(3) The High Court of Assam shall have and exercise such jurisdiction over the suits and cases to which the provisions of sub-paragraph (2) of this paragraph apply as the President may be order from time to time declare and prescribe.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मैं समस्त कण्डिका पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 4 पष्ठ अनुसूची का भाग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 4 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 5

***अध्यक्षः** फिर कण्डिका 5 इस पर दो संशोधन हैं। पहला है। सं. 199।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 5 की उप-कण्डिका (1) और (2) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर, जहां भी वह हो, 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये।"

***अध्यक्षः** फिर संशोधन सं. 262 तथा 263। श्री साहू!

श्री लक्ष्मीनारायण साहूः सभापति जी, मेरा संशोधन यह है:

"That for the heading to paragraph 5, the following be substituted:—

'Conferment of powers.' "

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

I also move:

"The after sub-paragraph (3) of paragraph 5, the following new sub-paragraph be added:—

'(4) Notwithstanding anything contained in sub-paragraph (1) of paragraph 5, in a trial between a tribal and non-tribal, the proceedings ahall be in accordance with the Civil Procedure Code, 1908, and Criminal Procedure Code, 1890.' "

मेरा इतना कहने का मतलब है कि इससे साफ हो जायेगा कि जब ट्राइबिल और नान-ट्राइबिल के बीच कुछ झगड़ा हो गया, तो उसका विचार क्रिमिनल प्रोसीजर कोड (Criminal Procedure Code, 1890) या सिविल प्रोसीजर कोड (Civil Procedure Code, 1908) से होगा। क्योंकि यह जब तक ठीक नहीं होता, तो उन लोगों का हिल्स वालों का यह विचार हो सकता है कि कोई आदमी के साथ जो ट्राइबिल नहीं है, उनके साथ ट्राइबिल का अगर कोई झगड़ा ऐसा हो जाये, तो कैसे विचार किया जायेगा।

वह नागा लोग उनके आईन पर विचार करेंगे, तो नान-ट्राइबिल का सर काट कर ले सकते हैं। ईस्टर्न और वेस्टर्न ट्राइबिल एरिया में बहुत ऐसा होता हैं मैं जानता हूं कि मेरे एक मित्र पर नार्थ वेस्टर्न फ्रण्टियर का जिरगा आईन से 20 हजार रुपया जुर्माना कर दिया। अगर 20 हजार रुपये जुरमाना नहीं दिया, तो उसका सिर काट दिया जायेगा। इस हालत में उनको 20 हजार रुपया देना पड़ा। उन्होंने यहां आकर गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया से नालिश किया और मुकदमा किया और इसमें उनका करीब 10 हजार रुपया खर्च हो गया। मगर उनको 20 हजार रुपया वापस मिल गया। फिर वह आखिर में हमारे यहां बिहार गवर्नमेंट में Mycology डिपार्टमेण्ट में नौकर हो गया और वह अब काम करता है।

इसलिये मैं चाहता हूं कि यह जो ओरिजनल एरिया है, उन लोगों के बहुतेरे ऐसे नाम हैं, जिससे वह सब मुकदमे उठा करते हैं। हम लोगों के प्रदेश में ऐसे मुकदमे होते हैं कि कोई आदमी चोरी किया, तो उसको कठिन सजा देते हैं। थोड़ी चोरी के लिये तो एक अंगारा लेते हैं और गरम अंगारे को उसके गाल में लगा देते हैं। अगर ज्यादा चोरी किया, तो उसके ऊपर जुरमाना होता है और एक छोटा-सा टुकड़ा सोने का गरम करते हैं और उसके मुंह में डाल देते हैं। यह सब जगह ट्राइबिल और नान-ट्राइबिल एरिया में यह खराबी होती है। इसलिये मैं चाहता हूं कि यह प्रोविजन अगर यहां पर रखा जाये, तो बहुत अच्छा होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मुझे भय है कि संशोधन सं. 263 द्वारा उठाये गये प्रश्न का तो डॉ. अम्बेडकर ने पिछली कण्डिका की बहस के समय ही उत्तर दे दिया था।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 5 के शीर्षक के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:—

'Conferment of powers.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर सदन का मत लेता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या उस पर मत लेना आवश्यक है, क्योंकि यह सिद्धान्त पिछले संशोधनों के सम्बन्ध में अस्वीकृत हो गया था, जब कि सदन 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर 'राष्ट्रपति' रखने के लिये सहमत नहीं हुआ था?

***अध्यक्षः** पर मैं इस सदन का मत ले लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 5 की उप-कण्डिका (1) और (2) में 'राज्यपाल' शब्द के स्थान पर जहां भी वह हो, 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 5 की उप-कण्डिका (3) के पश्चात् निम्न नई उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:—

'(4) Notwithstanding anything contained in sub-paragraph (1) of paragraph 5, in a trial between a tribal and non-tribal, the proceedings shall be in accordance with the Civil Procedure Code, 1908, and Criminal Procedure Code, 1890.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कण्डिका 5 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

कण्डिका 5 को अनुसूची में जोड़ दिया गया।

कण्डिका 6

कण्डिका 6 को अनुसूची में जोड़ दिया गया।

कण्डिका 7

कण्डिका 7 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 8

*श्री **कुलधर चालिहा:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:—

"कि कण्डिका 8 के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'(8) The Governor shall lay down rules to assess, collect land revenue and impose taxes for the District Councils and Regional Councils and place them before the State Legislature.' "

यदि आप कण्डिका 8 को देखेंगे, तो आपको पता लगेगा कि परिषदों को आसाम की जिला मण्डलियों से अधिक शक्ति दे दी गई है। भूराजस्व संग्रह करने की शक्ति सरकार के हाथ में होती है और मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इन प्राथमिक, प्राचीनकालीन प्रादेशिक तथा जिला परिषदों को इतनी शक्ति क्यों दी जाये कि वे वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं, पशुओं, यानों पर करारोपण कर सकें और भूराजस्व संग्रह कर सकें। आसाम में आसाम सरकार के भूराजस्व कर्मी वृन्द भूराजस्व संग्रह करते हैं और वही प्रक्रिया अब भी नागा पहाड़ियों में लागू है। यह उपबन्ध तो असंगत और अवनतिशील है। इसे बनाते समय देश की भूविधियों पर विचार नहीं किया गया और इससे सब का निराकरण हो जाता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मसौदा-लेखन समिति कुछ ताव में आ गई प्रतीत होती थी और वह किंकर्तव्यविमूढ़ थी, तब किसी ने उस प्रदेश का ज्ञान न होते हुए उसे कुछ बता दिया और उन्हीं विधियों को रख दिया गया। प्रान्त की साधारण विधियों को समाप्त करके इसके समान नई विधियों को इस कण्डिका में क्यों रखा जाता है? मेरा सुझाव बहुत सीधा है और मसौदा-लेखन समिति को उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। उसमें लिखा है:

"The Governor shall lay down rules to assess, collect land revenue and impose taxes for the District Councils and Regional Councils and place them before the State Legislature."

इसमें विधानमण्डल का हाथ होना चाहिये। जिला या प्रादेशिक किसी वस्तु पर कर लगा सकती है; वह किसी प्राणी पर कर लगा सकती है जो अकल्पनीय बात है। अतएव हमें आदिमजातीय लोगों की विधियों को शेष प्रान्त के सभ्य नियमों के स्तर पर लाना चाहिये। यह दुर्भाग्य की बात है कि उन विधियों का समर्थन करने वाले लोग विद्यमान हैं, और इसलिये उन्हें सभ्य मानों तक लाने के लिये मैंने अपने संशोधन का सुझाव दिया है और मुझे आशा है कि मसौदा-लेखन समिति इसे स्वीकार कर लेगी। वास्तव में नागा लोगों की आवाज विधान-मण्डल में भी होगी, और जब ऐसे प्रश्न विधान मण्डल के समक्ष आयेंगे, तब वे कह सकेंगे कि उनमें क्या त्रुटि है और बता सकेंगे कि उनमें क्या चीज है, जो हटा दी जानी चाहिये। अतएव यह छोटा-सा संशोधन आपकी स्वीकृति के लिये पेश किया है। मसौदा-लेखन समिति को इसे स्वीकार कर लेना चाहिये और इस अवनतिशील तथा आदिमकालीन कण्डिका 8 को अनुसूची में नहीं रखना चाहिये। यह आदिमकालीन

विधि है और आदिमकालीन नियम है। किसी ने उनके दिमाग में यह बात घुसेड़ दी है कि यह अच्छी विधि है। इतनी अवनतिशील विधियां कभी जनता पर नहीं लादी गईं।

***अध्यक्षः** फिर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन सं. 201 है, जो उन्हीं संशोधनों के समान है, जिनके अनुसार राष्ट्रपति को सब मामलों में शक्ति दी जाती है, और मैं नहीं समझता कि मुझे उनकी अनुमति देनी चाहिये।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'8. The Governor shall lay down rules to assess, collect land revenue and impose taxes for the District Councils and Regional Councils and place them before the State Legislature.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मैं कण्डिका 8 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कण्डिका 8 पष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

कण्डिका 8 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 9

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 9 की उप-कण्डिका (1) को हटा दिया जाये।"

इस कण्डिका में खनिजों को निकालने के लिये आसाम सरकार द्वारा अनुज्ञा देने का निर्देश है। अब यह मामला केन्द्रीय सरकार का विषय बन गया है और इसलिये इस उप-कण्डिका को यहां रखना अनावश्यक है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 9 की उप-कण्डिका (1) को हटा दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 9 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 9 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 10

***श्री कुलधर चालिहा:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 10 के स्थान पर निम्न रख दी जाये:—

'10. The Governor shall make regulations to control money lending and trading in the tribal areas.' "

[10. राज्यपाल आदिमजातीय क्षेत्रों में साहूकारी और व्यापार का नियंत्रण करने के लिये विनियम बनायेगा।]

मैं देखता हूं कि कण्डिका 10 में जिला परिषदों को शक्ति दी गई है कि वे अन-आदिमजातियों द्वारा साहूकारी और व्यापार के विषय में विनियम बना सकती हैं। उप-कण्डिका (2) के अधीन ऐसे विनियम—

"(क) विहित कर सकेंगे कि उस लिये दी गई अनुज्ञप्ति रखने वाले के अतिरिक्त और कोई साहूकारी का कारबार न करेगा;

(ख) साहूकार द्वारा लगाई जाने या वसूल की जाने वाली ब्याज की अधिकतम दर विहित कर सकेंगे;

(ग) साहूकारों द्वारा लेखा रखने का तथा जिला-परिषदों द्वारा उस लिये नियुक्त पदाधिकारियों द्वारा ऐसे लेखे के निरीक्षण का उपबन्ध कर सकेंगे; और

(घ) विहित कर सकेंगे कि कोई व्यक्ति, जो जिले में निवास करने वाली अनुसूचित आदिमजातियों का नहीं है, जिला परिषद् द्वारा उस लिये दी गई अनुज्ञप्ति के बिना किसी वस्तु में थोक या फुटकर कारबार न करेगा।"

इस अन्तिम उपबन्ध को देखिये। इन विनियमों के अन्तर्गत, यदि (घ) के समान नियम होगा तो क्या किसी आसामी, मारवाड़ी, सिंधी, पंजाबी या सिक्ख के लिये जो मैदानों से या बम्बई से गये हों वहां नागा पहाड़ियों में व्यापार करना सम्भव होगा? कम से कम इतना ही कहा जा सकता है कि यह असम्भव उपबन्ध है। ये उपबन्ध इतने खराब हैं कि मुझे विश्वास है कि इससे बचने का एकमात्र तरीका मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेना ही है। मैंने एक नरम ही संशोधन भेजा है कि "राज्यपाल आदिमजातीय क्षेत्रों में साहूकारी और व्यापार के नियंत्रण के लिये विनियम बनायेगा।" अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजों का विश्वास किया जाता था। क्या आप समझते हैं कि हमारा विश्वास नहीं किया जायेगा? अंग्रेजों ने यह धारणा उत्पन्न कर दी थी कि वे उनके परम मित्र हैं और हिन्दू तथा मैदानी लोग उनके शत्रु हैं। उन्होंने यही धारणा उत्पन्न की थी। मेरे विचार में हम उसी पर स्थिर हैं और वही धारणा पुन: स्थापित कर रहे हैं और हम अपने व्यापारियों को वहां जाकर व्यापार करने नहीं देते। मेरा संशोधन अनुमतिमूलक विधि है। राज्यपाल को नियम विनियम बनाने की शक्ति होगी और यदि वह समझता है कि कोई व्यक्ति आपत्तिजनक है या वांछनीय है तो वह उन लोगों को जाने से रोक सकता है। अत: मेरा निवेदन है कि इस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

मसौदा-लेखन समिति द्वारा बनाये गये उपबन्ध ऐसे हैं कि कोई सभ्य सरकार उन्हें नहीं बना सकती। मुझे बहुत क्षोभ है कि ये नियम इतनी जल्दबाजी में बनाये जा रहे हैं और समस्त पृष्ठभूमि पर विचार नहीं किया जा रहा और इन बातों का क्या प्रभाव होगा इस पर भी विचार नहीं किया जा रहा है। वे नियम बनाकर "साहूकारों द्वारा लेखा रखने का तथा जिला परिषदों द्वारा उस लिये नियुक्त पदाधिकारियों द्वारा ऐसे लेख के निरीक्षण का उपबन्ध कर सकेंगे।" क्या उन्हें हिसाब आता है? क्या उनके यहां पर्याप्त मात्रा में साक्षर व्यक्ति हैं? क्या आपने इन बातों पर विचार किया है? यह असम्भव बात है। आपने इन चीजों को नहीं समझा है। आपने इस समस्या पर कभी अखिल-भारतीय दृष्टिकोण से विचार नहीं किया है और आप कुछ लोगों के उस कथन पर विश्वास कर लेते हैं जो ठीक नहीं है।

श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधन को इस सदन की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 10 की उप-कण्डिका (2) में, 'such regulation may' इन शब्दों के स्थान पर, 'in particular and without prejudice to the generality of the foregoing power, such regulations may' ये शब्द रख दिये जायें।'

यह केवल भाषा सम्बन्धी परिवर्तन है।

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 10 की उप-कण्डिका (2) के पश्चात् निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जायेः—

'(3) All regulations made under this paragraph shall be submitted forth with to the Governor and, until assented to be him, shall have no effect.

[(3) इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे और जब तक वह उनकी अनुमति न दे दे प्रभावी न होंगे।]

*__अध्यक्षः__ श्री नज़ीरुद्दीन के दो संशोधन हैं जो भाषा सम्बन्धी हैं और एक अन्य संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का है जो 'राज्यपाल' के स्थान पर 'राष्ट्रपति' रखने के विषय में है, उनको पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. अम्बेडकर ने श्री चालिहा के तथा मेरे तथा अन्य सदस्यों के संशोधनों पर जो उत्तर दिये हैं उन्हें हम सुनते रहे हैं। प्रत्येक अवसर पर उन्होंने अपने समर्थनार्थ आसाम के मुख्य मंत्री का या अन्य व्यक्तियों का हवाला दिया है। मैं उनसे जानना चाहता हूं कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने उनसे जाकर यह कहा था कि यह उपबन्ध संविधान

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

में रहना चाहिये–यह उपबन्ध की कोई व्यक्ति जो उस जिले में रहने वाली अनुसूचित आदिमजाति का है वह किसी वस्तु का थोक या फुटकर व्यापार नहीं करेगा जब तक कि उसे जिला परिषद् से अनुज्ञप्ति न मिल जाये? क्या इस सदन में कोई ऐसा व्यक्ति है जो आदिमजातीय तथा अन-आदिमजातीय व्यक्तियों के बीच इस विभेदात्मक व्यवहार का समर्थन करेगा, वह भी ऐसे स्थान पर जहां वे बहुत समय से साथ रहते रहे हैं? ऐसे उपबन्ध पर तो अंग्रेजों को भी शर्म आ जाती। शिलांग को ही लीजिये जहां बहुत से अन-आदिमजातीय लोग फुटकर व्यापार कर रहे हैं। क्या आप यह कहते हैं कि शिलांग के नगर में रहने वाले आदिमजातीय लोगों को अनुज्ञप्ति की अपेक्षा नहीं होगी पर अन-आदिमजातीय लोगों को आवश्यकता होगी? क्या कोई ऐसा है जो ऐसे विभेदात्मक व्यवहार का समर्थन करता है मुझे आश्चर्य है? यदि कोई ऐसा है जो आदिमजातीय और अन-आदिमजातीय लोगों के बीच विभेद का समर्थन करता है तो मैं कहता हूं कि उसके साथ बहस करना ही व्यर्थ है।

***अध्यक्ष:** पहला संशोधन, जिस पर मत लेना है, श्री चालिहा का संशोधन सं. 123 है।

प्रश्न यह है:

'कि कण्डिका 10 के स्थान पर, निम्न रख दी जाये:—

'10. The Governor shall make regulations to control money lending and trading in the tribal areas.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं उन मामलों के विषय में एक दो शब्द कह सकता हूं जिन पर मेरे मित्र इतने विक्षुब्ध हैं? वहां परित्राणों के रूप में तीन बातें रखी हुई है जिन पर मेरे मित्र ने विचार नहीं किया है। कण्डिका 10 का पहला परन्तुक यह है कि "परन्तु इस कण्डिका के अधीन ऐसे विनियम तब तक न बना सकेंगे जब तक कि वे जिला-परिषद की समस्त सदस्य संख्या के तीन चौथाई से अन्यून बहुमत से पारित न किये जायें।" एक तो यही परित्राण है। दूसरा परित्राण प्रस्तावित संविधान के पृष्ठ 184 पर दिया हुआ है। उसमें लिखा हैं "परन्तु यह और भी कि ऐसे किन्हीं विनियमों के अधीन यह क्षमता न होगी कि जो साहूकार या व्यापारी ऐसे विनियमों के बनने के समय से पूर्व जिले के अन्दर व्यापार करता रहा है, उसको अनुज्ञप्ति होना अस्वीकृत कर दिया जाये।" अत: विद्यमान अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरी बात जिस पर मेरे मित्र ने ध्यान देने की चिन्ता नहीं की वह मेरा संशोधन है जिसे मैंने अभी पेश नहीं किया है, कि "इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे तथा जब तक वह उनको अनुमति न दे दे प्रभावी न होंगे।"

ये सब सावधानियां यहां रखी गई हैं।

वे कहते हैं कि मसौदा-लेखन समिति ने जो कुछ किया है वह बर्बरता है, जो अंग्रेजी सरकार ने भी नहीं किया था। मैं बता सकता हूं कि वे इस बात को भूल जाते हैं कि यह अपवर्जित क्षेत्र पूर्णतः राज्यपाल के ही स्वविवेक में था; यह उसका दोष था, हमने राज्यपाल के उस स्वविवेक को सर्वथा समाप्त कर दिया है। अब वह मंत्रिमण्डल की मन्त्रणा पर ही कार्य कर सकता है।

अब मुझे आश्चर्य है कि क्या मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी इस स्पष्टीकरण से संतुष्ट हैं जो मैंने दिया है?

***माननीय सदस्यगणः** कदापि नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं जानता हूं कि मैं जो कुछ दे सकता हूं आप उससे अधिक चाहते हैं। आप भूखे डेविड कूपर फील्ड के समान हैं जो अधिकाधिक भोजन मांगता था।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन सं. 124 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 10 की उप-कण्डिका (2) में, 'such regulations may' इन शब्दों के स्थान पर 'in particular and without prejudice to the generality of the foregoing power such regulations may' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन सं. 125 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 10 की उप-कण्डिका (2) के पश्चात्, निम्न उप-कण्डिका जोड़ दी जाये:—

'(3) All regulations made under this paragraph shall be submitted forthwith to the Governor and, until assented to by him, shall have no effect.'"

[(3) इस कण्डिका के अधीन निर्मित सब विनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे तथा जब तक वह उनको अनुमति न दे दे प्रभावी न होंगे।]

संशोधन स्वीकार हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 10 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 10 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 11

*__श्री कुलधर चालिहा:__ मैं संशोधन सं. 126 को पेश नहीं कर रहा हूं।

*__अध्यक्ष:__ श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का संशोधन सं. 204 उसी आशय का है जिस आशय का 126 था।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान, मेरा उद्देश्य यह है कि वह अधिसूचना भारत के शासकीय सूचना पत्र में प्रकाशित हो। यदि आप चाहें तो मैं उसे पेश नहीं करूंगा।

*__अध्यक्ष:__ यह मेरे चाहने या न चाहने का प्रश्न नहीं है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ आप अनुमति देंगे तो मैं उसे पेश कर दूंगा।

*__अध्यक्ष:__ आप चाहते हैं कि वह भारत के शासकीय सूचना-पत्र में प्रकाशित हो?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ हां, श्रीमान।

*__अध्यक्ष:__ पर यह प्रश्न केवल आसाम के सम्बन्ध में है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ यह मेरे द्वारा प्रस्तावित संशोधन का अंग है।

*__अध्यक्ष:__ इसी लिये मैंने कहा कि यह अनावश्यक है क्योंकि आपने जिस सिद्धान्त का समर्थन किया है उसे सदन अनेक बार रद्द कर चुका है।

अब मैं कण्डिका 11 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 11 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

कण्डिका 11 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 12

*__अध्यक्ष:__ कण्डिका 12। संशोधन सं. 127।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि षष्ठ अनुसूची की कण्डिका 12 के खण्ड (ख) को हटा दिया जाये।"

श्रीमान, तथ्य कल्पना से भी अधिक विचित्र है। स्वायत्तशासी जिले पर संसद को भी शक्ति नहीं होगी जब तक कि प्रादेशिक या जिला परिषद् सहमत न हो जाये। खण्ड इस प्रकार है:

"The Governor may, by public notification, direct that any Act of Parliament or of the Legislature of the State to which the provisions

of clause (a) of this paragraph do not apply shall not apply to an autonomous district or an autonomous region, or shall apply to such district or region or any part thereof subject to such exceptions or modifications as he may with the approval of the District Council for such district or the Regional Council for such region specify in the notification, if a resolution recommending the issue of such directions passed by such District Council or such Regional Council, as the case may be."

राज्यपाल को शक्ति नहीं है और संसद को भी कोई शक्ति नहीं है जब तक कि प्रादेशिक परिषद् या जिला परिषद् प्रस्ताव द्वारा किसी विशेषज्ञ उपाय की सिफारिश न करे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्या मैं कार्यावली पर मेरे संशोधन सं. 12 की ओर ध्यान आकृष्ट कर सकता हूं? वह पेश होने वाला है अतः मेरे मित्र का यह संशोधन सर्वथा अनावश्यक होगा। उसमें मैं उन शब्दों को हटा रहा हूं जिन पर उन्हें आपत्ति है।

***श्री कुलधर चालिहाः** मुझे प्रसन्नता है कि एक बार तो मसौदा-समिति को कुछ अकल आई है। यह सौभाग्य की बात है कि मसौदा-समिति को पहली बार अकल आई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** क्योंकि पहली ही बार आपने मुझे अपनी युक्तियों से विश्वास उत्पन्न करा दिया है।

श्रीमान, मैं अब अपना संशोधन सं. 128 पेश करूंगा:

"कि कण्डिका 12 के खण्ड (ख) में, 'with the approval of the District Council for such district or the Regional Council for such region specify in the notification if a resolution recommending the issue of such direction is passed by such District Council or such Regional Council, as the case may be' इन शब्दों के स्थान पर 'specify in the notification' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस संशोधन द्वारा राज्यपाल को जिला परिषद् या प्रादेशिक परिषद् द्वारा पारित किसी प्रस्ताव के बन्धन से स्वतन्त्र कर दिया गया है। अब यह मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर यह निश्चय कर सकता है कि संसद द्वारा या आसाम के विधान मण्डल द्वारा पारित कोई विधि विशेष उस क्षेत्र पर लागू हो या न हो।

*अध्यक्ष: इस कण्डिका पर दो संशोधन सं. 205 और 206 हैं जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में हैं। हम उनमें सन्निहित सिद्धान्तों पर अनेक बार विचार कर चुके हैं और उन्हें अस्वीकार कर चुके हैं। अतएव मैं नहीं समझता कि हमें उन पर विचार करना चाहिये। प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 12 के खण्ड (ख) में 'with the approval of the District Council for such district or the Regional Council for such region specify in the notification, if a resolution recommending the issue of such direction is passed by such District Council or such Regional Council, as the case may be' इन शब्दों के स्थान पर 'specify in the notification' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 12 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 12 को अनुसूची में जोड़ दिया गया।

कण्डिका 13

*अध्यक्ष: संशोधन सं. 129।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 13 में, 'the State of Assam shall' इन शब्दों के पश्चात् 'be first placed before the District Council for Discussion and then after such discussion' ये शब्द रख दिये जायें।"

***अध्यक्ष:** श्री रोहिणी कुमार चौधरी का संशोधन सं. 130। वह लगभग वैसा ही है जैसा 129 है। क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 129 में, कण्डिका 13 में 'and then after such discussion' इन शब्दों के पश्चात् (जिनके प्रविष्ट करने की प्रस्थापना है) 'and such separate statement pertaining to autonomous districts shall be subject to such modifications and alterations as the State Legislature may make' ये शब्द रख दिये जायें।"

यह केवल औपचारिक संशोधन है। मेरे विचार में मसौदा-लेखन समिति की यह मंशा है कि स्वायत्तशासी जिले के प्राक्कलित आय तथा व्यय में राज्य का विधान मण्डल परिवर्तन या रूपभेद कर सकेगा। यह स्पष्टत: एक भूल है, और इन शब्दों को जोड़ने से आशय सर्वथा स्पष्ट हो जायेगा। अन्यथा सदन के समक्ष उस विवरण को पेश करना व्यर्थ होगा, जब तक कि वह उमसें परिवर्तन या रूपभेद न कर सके।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं संशोधन सं. 131 तथा 132 में से किसी को पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप श्री रोहिणी कुमार चौधरी के संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे यह शिकायत है कि यद्यपि 'धारा 177' ये शब्द मूल मसौदा में हैं, फिर भी मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने अपना संशोधन सं. 130 लाना उचित समझा है। उसे 177 के अन्तर्गत वित्त-विवरण मानने का यही प्रभाव होगा कि उस पर आसाम विधान मण्डल विचार करेगा तथा मतदान करेगा। संशोधन भी पेश हो सकते हैं और विनियोग विधि लागू होगी। केवल यही बात है कि आसाम विधान मण्डल द्वारा उस पर विचार होने से पूर्व यह वांछनीय है कि जिला परिषद् को यह कहने का अधिकार होना चाहिये कि धन का वितरण कैसे हो। मुझे आशा है अब वे संतुष्ट हैं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 13 में, 'the State of Assam' इन शब्दों के पश्चात् 'be first placed before the District Council for discussion and then after such discussion' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 129 में, कण्डिका 13 में, 'and then after such discussion' इन शब्दों के पश्चात् (जिनके प्रविष्ट करने की प्रस्थापना है), 'and such separate statement pertaining to autonomous districts shall be

[अध्यक्ष]

subject to such modifications and alterations as the State Legislature may make' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 13 पृष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 13 को अनुसूची में जोड़ दिया गया।

कण्डिका 14

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** आपकी अनुमति से मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन सं. 3500, 3501 तथा 3502 के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:

"कि पष्ठ अनुसूची की कण्डिका 14 के स्थान पर निम्न रख दी जाये:–

'The Governor of Assam as the Agent of the President—

'(or alternatively the Governor of Assam) in his discretion इन शब्दों का मैं प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं, श्रीमान:

'may at any time appoint a commission consisting of not less than seven members, of whom not less than three shall be members of the scheduled tribes and the rest shall be chosen from the ranks of eminent anthropologists retired judges of the Supreme Court and of the High Courts and men of science and letters, to examine and report on an matter specified by him relating to the administration of the autonomous districts and autonomous regions in the State, or may appoint a similar commission to inquire into and report from time to time on the administration of autonomous districts and autonomous regions in the State generally and in particular on—

(a) the provision of educational, cultural, medical, economic and religious facilities and communications in such districts and regions;

(b) the need for any new or special legislation is respect of such districts and regions;

(c) the administration of the laws, regulations and rules made by the District and Regional Councils, and define the procedure to be followed by such Commission."

मुझे केवल दो ही बातें कहनी हैं। मैंने इस आयोग का क्षेत्र बढ़ा दिया है। मैंने कहा है कि वह शैक्षणिक, चिकित्सा सम्बन्धी, आर्थिक और धार्मिक सुविधाओं के उपबन्धों की जांच करेगा। ये शब्द मूल कण्डिका में नहीं हैं।

***अध्यक्षः** शैक्षणिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें तो उसमें हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** किन्तु सांस्कृतिक और धार्मिक सुविधायें नहीं हैं। अतएव मेरे संशोधन से आयोग का क्षेत्र तथा कृत्य विस्तृत हो जाते हैं दूसरी बात, श्रीमान, "मैंने आयोग के सदस्यों की नियुक्ति के विषय में राज्यपाल के अधिकार-क्षेत्र को भी सीमित कर दिया है। उसे स्वतन्त्रता नहीं है कि वह जिसे चाहे चुन ले। उसे उन्हीं श्रेणियों के व्यक्तियों में चुनाव करना होगा जिनका उल्लेख मैंने अपने संशोधन में किया है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं कहना।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं नहीं समझता कि यह संशोधन आवश्यक है। जहां तक........

***अध्यक्षः** पहले आपको ही कुछ संशोधन पेश करने हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, श्रीमान, मैं पहले उन्हें पेश करूंगा। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) में, 'autonomous districts in the State' इन शब्दों के पश्चात्, 'including matters specified in clauses (b), (c), (d) and (e) of sub-paragraph (3) of paragraph (1) of this schedule' ये शब्द, कोष्टक, अक्षर तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें।"

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) में, 'autonomous districts' इन शब्दों के पश्चात्, 'and autonomous regions' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के खण्ड (क) और (ख) में, दोनों पर जहां भी 'district' शब्द है उसके पश्चात्, 'and regions' ये शब्द रख दिये जायें।"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (3) में, 'autonomous districts' इन शब्दों के पश्चात्, 'and autonomous regions' ये शब्द रख दिये जायें।"

इनमें से कुछ संशोधन तो दूसरों के परिणामस्वरूप हैं। दूसरे शुद्धतः मौखिक हैं।

***श्री कुलधर चालिहाः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन सं. 3500 और 3501 के निर्देश से, कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के खण्ड (ग) के पश्चात् निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:—

'(d) inclusion or exclusion of any tribal area from any district or Regional Council.' "

[(घ) किसी आदिमजातीय क्षेत्र को किसी जिला या प्रादेशिक परिषद् में समाविष्ट करना या उससे अपवर्जित करना।]

कण्डिका 14 की उप-कण्डिका 14 में यह उपबन्ध है कि एक आयोग नियुक्त होगा जो स्वायत्तशासी जिलों के प्रशासन की जांच करेगा और प्रतिवेदन देगा। किसी न किसी प्रकार वे एक उपबन्ध रखना छोड़ गये हैं कि जिला या प्रादेशिक परिषदों में किसी आदिमजातीय क्षेत्र को मिलाया जा सकता है या उससे अलग किया जा सकता है। वे कहते हैं कि वह आयोग निम्न विषयों पर प्रतिवेदन देगा:—

"(क) ऐसे जिलों में शिक्षा और चिकित्सा की सुविधाओं और संचार के उपबन्धों पर;

(ख) ऐसे जिलों के बारे में किसी नये या विशेष विधान की आवश्यकता पर; तथा

(ग) जिला और प्रादेशिक परिषदों द्वारा बनाई गई विधियों, नियमों और विनियमों के प्रशासन पर।"

मुझे पता लगा है कि आयोग को किसी आदिमजातीय क्षेत्र को समाविष्ट करने या अपवर्जित करने की शक्ति होगी, किन्तु मैं देखता हूं कि आयोग द्वारा उस प्रश्न की पड़ताल करने सम्बन्धी कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। हो सकता है कि कुछ मैदानी क्षेत्र आदिमजातीय क्षेत्रों में समाविष्ट कर लिये गये हों और यदि आयुक्त उन्हें हटाना चाहे तो उसे उनमें जाने की शक्ति होनी चाहिये। श्रीमान, मैंने अत्यन्त साधारण संशोधन रखा है कि "जिला या प्रादेशिक परिषद् में किसी आदिमजातीय क्षेत्र को समाविष्ट करना या उसमें से निकालना।" मुझे विश्वास है कि मसौदा-लेखन समिति ने जो अमैत्री दिखाई है उसके पश्चात् वह इस मैत्री का प्रदर्शन करेगी और वे इसे स्वीकार करके मेरे संशोधन को (घ) में समाविष्ट कर लेंगे, जिससे खण्ड बहुत सुधर जायेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं अपने माननीय मित्र का उस संशोधन की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं जो मैंने इस अनुसूची की कण्डिका 1 पर पेश किया था, जिससे उप-कण्डिका (3) के उपबन्ध कुछ बदल दिये गये थे। अब वे जिस मामले का उपबन्ध करना चाहते हैं उसका विनियमन आयोग की सिफारिश पर होगा। वह कण्डिका पहले ही पारित हो चुकी है और इसलिये यह अनावश्यक है।

*__श्री कुलधर चालिहाः__ क्या वह संशोधन संख्या 99 है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ हां, 99 है।

*__श्री कुलधर चालिहाः__ किन्तु फिर भी यहां कण्डिका 14 में आपने आयोग को (क), (ख) और (ग) तक सीमित कर दिया है। मुझे यही कठिनाई है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यही पारित हुआ है।

*__श्री कुलधर चालिहाः__ यह पहले ही पारित हो चुका है, पर साथ ही आपने (क), (ख) और (ग) में उसे सीमित कर दिया है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं अपने माननीय मित्र को यह समझा देता हूं कि उप-कण्डिका का क्या प्रभाव है जो आदिमजातीय क्षेत्रों में परिवर्तन करने के विषय में है। उसमें दो श्रेणियां हैं, एक तो समाविष्ट करने के विषय में और दूसरी अपवर्जन के विषय में है। पहली यह है: उक्त तालिका के किसी भाग में समावेश, जो (क) है। यह काम तो राज्यपाल आरम्भ में ही कर सकता है। उसके लिये आयोग की किसी सिफारिश की अपेक्षा नहीं है। किन्तु मेरे संशोधन के अनुसार यदि (ख), (ग), (घ) और (ङ) के अधीन कोई कार्यवाही करनी है तो आयोग की सिफारिश अपेक्षित है और जैसा कि मैंने कहा है उस भाग को सदन ने पारित कर दिया है। इस पर पुनर्विचार करना सम्भव नहीं है।

*__श्री कुलधर चालिहाः__ इस अनुसूची की कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन के विचार के साथ आपने इसे फिर सीमित कर दिया है। आपने संशोधन सं. 99 रखा है पर फिर इसे सीमित कर दिया है। मैं सुनना चाहता हूं कि इस विषय में डॉ. अम्बेडकर को क्या कहना है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह कण्डिका 14 द्वारा सीमित नहीं होता।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ यदि माननीय सदस्य कृपया संशोधन सं. 134 पर ध्यान देंगे तो उन्हें पता लगेगा कि उनके मन में जो उद्देश्य है वह इस संशोधन से पूरा हो जाता है, क्योंकि इसके अनुसार कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) में 'autonomous districts in the State' के पश्चात् 'including matters specified in clauses (b), (c), (d) and (e) of sub-paragraph (3) of paragraph (1) of this Schedule' इन शब्दों को रखने की प्रस्थापना है।

***श्री कुलधर चालिहा:** धन्यवाद, श्रीमान।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (युक्त प्रान्त: जनरल): मुझे इसे समझने में कुछ कठिनाई है। श्री चालिहा द्वारा प्रस्तावित संशोधन का यह आशय है कि राज्यपाल द्वारा नियुक्त आयोग किसी नये आदिमजातीय क्षेत्र के समावेश पर ही विचार न करे वरन् उसके अपवर्जन पर भी विचार करे। किसी क्षेत्र को दूसरे आदिमजातीय क्षेत्र में शामिल किये बिना किसी विद्यमान आदिमजातीय क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है और उस चीज़ के लिये यहां उपबन्ध नहीं है। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन सं. 99 में यही उपबन्ध है कि किसी क्षेत्र को एक आदिमजातीय क्षेत्र से निकाला जा सकता है और दूसरे क्षेत्र में मिलाया जा सकता है किन्तु आयोग को यह शक्ति नहीं दी गई है कि वह किसी क्षेत्र को पूर्णत: अपवर्जित करने की वांछनीयता की जांच कर सके और उस पर प्रतिवेदन दे सके। किसी क्षेत्र को अपवर्जित करने की शक्ति संसद में ही होगी। संसद को शक्ति होगी कि वह किसी क्षेत्र को आदिमजातीय क्षेत्र में से निकाल सके, पर वह आयोग की सिफारिशों पर विचार किये बिना भी ऐसा करेगी, क्योंकि आयोग को इस मामले पर विचार करने की शक्ति नहीं होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मैं अपने माननीय मित्र, पण्डित कुंजरू की कठिनाई के उत्तर में कह सकता हूं कि मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र श्री चालिहा के संशोधन का प्रयोजन स्पष्ट नहीं समझा है। श्री चालिहा का संशोधन यह है 'inclusion or exclusion of any tribal area from any District or Regional Council' अर्थात् जिला या प्रादेशिक परिषद् के क्षेत्राधिकार का न्यूनन। श्री चालिहा यही कह रहे हैं, मेरे माननीय मित्र यही कह रहे हैं कि किसी स्वायत्तशासी जिले में से किसी जिले को निकालकर आसाम के व्यापक राज्य-क्षेत्र में शामिल कर दिया जाये। ये दोनों भिन्न-भिन्न मामले हैं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** आयोग से इस मामले पर प्रतिवेदन देने के लिये क्यों न कहा जाये?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** आयोग को प्रतिवेदन देने की शक्ति है। यदि मेरे माननीय मित्र उपबन्ध को पढ़ेंगे तो वे देखेंगे उसमे लिखा है "The Govt. of Assam may at any time appoint a Commission to examine and reprt on any matter." "any matter" में कण्डिका 1 के उपबन्ध भी समाविष्ट हो जाते हैं और उनका विशेष रूप से उल्लेख भी है। "specified by him relating to the administration of the autonomous districts in the State or may appoint a Commission to inquire into and report from time to time on the administration of autonomous districts." में उल्लिखित मामले अर्थात् 'any matters' भी समाविष्ट हैं। मैंने अपना संशोधन सं. 134 इसलिये पेश किया है जिससे कि 'any matters' ये शब्द स्पष्ट हो जायें और उनका निर्वचन न करना पड़े। मैंने अब

स्पष्टतः उल्लेख कर दिया है कि उनमें "वे मामले भी शामिल हो सकते हैं जिनका उल्लेख इस अनुसूची की कण्डिका 1 की उप-कण्डिका (3) के खण्ड (ख), (ग), (घ) और (ङ) में है" और उनका निर्देश आयोग को दिया जायेगा। मेरे संशोधन सं. 134 का यही उद्देश्य है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैं इस संशोधन का उद्देश्य बिल्कुल ठीक समझ गया हूं और मुझे इस कण्डिका के खण्ड (ख), (ग), (घ) और (ङ) के विषय का भी ज्ञान है पर मैं यह कहता हूं कि स्वायत्तशासी प्रदेशों के प्रशासन सम्बन्धी मामलों पर विचार करने के लिये जो आयोग नियुक्त होगा उसे यह प्रतिवेदन देने की शक्ति नहीं प्रतीत होती है कि किसी क्षेत्र को जो किसी आदिमजातीय क्षेत्र में समाविष्ट हो उससे निकाल कर सामान्यतः प्रशासनिक क्षेत्र में समाविष्ट कर दिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे माननीय मित्र को उस तालिका की कण्डिका (3) (घ) को देखना चाहिये।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** वह तो आपके ही संशोधन द्वारा हटा दिया गया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे विचार में यह तो संसद को विधि द्वारा करना होगा।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** आयोग की सिफारिशें बिना ही? संसद के समक्ष आयोग का प्रतिवेदन होना चाहिये किन्तु अब उसे यह मामले पर ऐसे ज्ञान के आधार पर विचार करना होगा जो उसे प्राप्त हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह मामला राज्यपाल की क्षमता में नहीं है। जैसा कि हमने पारित किया है आदिमजातीय क्षेत्रों से किसी क्षेत्र का अपवर्जन ऐसा मामला है जो राज्यपाल के क्षेत्राधिकार से निकाल दिया गया हैं यह निश्चय करना संसद पर छोड़ दिया गया है। यह आयोग राज्यपाल का ऐसे मामलों का निबटारा करने में केवल पथ-प्रदर्शन करेगा जिनका उल्लेख उप-कण्डिका (3) के खण्ड (ख), (ग), (घ) और (ङ) में है। कोई मामला जो इससे बाहर हो वह संसद के विचार करने का विषय है। संसद इस आयोग से स्वतन्त्र कोई आयोग नियुक्त कर सकती है और फिर विधि बना सकती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** इसके लिये कोई उपबन्ध नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** किसी उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है। संसद आसाम मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर काम कर सकती है। यदि संसद समझती है कि वह मन्त्रणा स्वतन्त्र नहीं है और स्वतन्त्र साक्ष्य चाहिये, तो संसद को आजादी है कि वह आयोग नियुक्त करके अपनी ओर से जांच कर सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 134 के निर्देश से, षष्ठ अनुसूची की कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के पश्चात् निम्न उपबन्ध जोड़ दिया जाये:

'Provided that the State Legislature shall be represented by two members elected by the Assam Legislative Assembly.' "

मैं सदन द्वारा संशोधित और पारित कण्डिका 3 की ओर सदन का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं जिसमें लिखा है कि जिला परिषदों द्वारा पारित समस्त विधियां राज्यपाल के समक्ष रखी जायेंगी और राज्यपाल मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर अपनी अनुमति देगा। अर्थात्, जिला परिषदों और प्रादेशिक परिषदों द्वारा पारित विधियों के मामले में विधान मण्डल अपने मन्त्रियों के द्वारा हस्तक्षेप कर सकेगा। इस आयोग की नियुक्ति का एक उद्देश्य यह भी होगा कि क्या ऐसे जिलों के विषय में किसी नये या विशेष विधान की, उप-खण्ड (ख) के अधीन, आवश्यकता है। आयोग से आशा की जायेगी कि वह ऐसे जिलों के विषय में नये या विशेष विधान की आवश्यकता पर प्रतिवेदन दे। इसके अतिरिक्त कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (2) में लिखा है कि ऐसे किसी आयोग का प्रतिवेदन उस पर राज्यपाल की सिफारिशों के साथ, राज्य के विधान मण्डल के समक्ष मन्त्री द्वारा पेश किया जायेगा और वह उसके साथ एक स्पष्टीकरण का स्मरणपत्र भी लगा देगा जिसमें यह बताया गया हो कि आसाम सरकार उस पर क्या कार्यवाही करना चाहती है। इस उप-कण्डिका से यह पता है कि विधान मण्डल समस्त प्रतिवेदन पर विचार करेगा। अत: मेरा यह ख्याल है कि जब आयोग से किसी नये विशेष विधान की आवश्यकता पर प्रतिवेदन देने की आशा की जाये, और जब आयोग के प्रतिवेदन को विचारार्थ राज्य के विधान मण्डल के समक्ष रखा जाये, तब यह उचित ही है कि प्रान्तीय विधान मण्डल के दो सदस्य आयोग में हों। ये दो सदस्य, जो प्रतिवेदन की सामग्री एकत्र करते समय आयोग के साथ होंगे, सदन में भी अपनी महत्वपूर्ण मन्त्रणा दे सकेंगे। यदि आसाम प्रान्त के सदस्यों की राय का, षष्ठ अनुसूची पर वाद-विवाद के विषय में, जो आसाम से सम्बद्ध है, कोई भी महत्व है तो मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे। मेरे विचार में हम काफी एकमत हैं—मुझे दोनों मन्त्रियों के विषय में कुछ पता नहीं है परन्तु शेष हम सब एकमत हैं—कि इस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** राज्यपाल किसी को आयोग में नियुक्त करने के लिये स्वतन्त्र है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** राज्यपाल पर कोई भी सीमायें नहीं हैं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं कहता हूं कि दो सदस्य विधान-मण्डल द्वारा निर्वाचित होने चाहियें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उसे ऐसा करने का वर्जन नहीं है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** ऐसा कहने में क्या बुराई है। कोई व्यक्ति जीवे या मरे। आप कहते क्यों हैं 'मरो'? मैं कहना चाहता हूं 'जीवो'। कृपया मेरे संशोधन को स्वीकार कर लीजिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** राज्यपाल मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा पर आयोग नियुक्त करेगा। आप समझते हैं कि आपका मन्त्रिमण्डल विधान-मण्डल से दो व्यक्तियों को नियुक्त नहीं करेगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** मैं चाहता हूं कि वे विधान मण्डल द्वारा निर्वाचित हों। मैं सभा द्वारा निर्वाचन को महत्व देता हूं। मेरे विचार में माननीय डॉ. अम्बेडकर भी इसे महत्व देते थे, पर वे अब अपना विचार बदल सकते हैं।

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा प्रस्थापित कुछ और संशोधन भी हैं: 207–"राज्यपाल" के स्थान पर "राष्ट्रपति"; 208–"राज्यपाल" के स्थान पर "राष्ट्रपति"; 209–"राज्य-विधान मण्डल" के स्थान पर "संसद"; 210–"आसाम" के स्थान पर "संघ"; 211–"राज्य" के स्थान पर "संघ" 212–"राज्यपाल" के स्थान पर "राष्ट्रपति"; 213–"राज्य में" के स्थान पर "आसाम राज्य में"।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इन्हें पेश नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** इस कण्डिका के सारे संशोधन पेश हो चुके हैं। क्या आप कुछ कहना चाहते हैं, डॉ. अम्बेडकर?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन सं. 3500, 3501 तथा 3502 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

"कि षष्ठ अनुसूची की कण्डिका 14 के स्थान पर निम्न कण्डिका रख दी जाये:—

'The Governor of Assam as the agent of the President may at any time appoint a Commission consisting of not less than seven members of whom not less than three shall be members of the scheduled tribes and the rest shall be chosen from the ranks of eminent anthropologists, retired judges of the Supreme Court and of the High Courts and men of science and letters, to examine and report on any matter specified by him relating to the administration of the autonomous districts and

[अध्यक्ष]

autonomous regions in the State, or may appoint a similar commission to inquire into and report from time to time on the administration of autonomous districts and autonomous regions in the State generally and in particular on—

(a) the provision of educational, cultural, medical, economic and religious facilities and communications in such districts and regions;

(b) the need for any new or special legislation in respect of such districts and regions;

(c) the administration of the laws, regulations and rules made by the District and Regional Councils, and define the procedure to be followed by such Commission.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) में, 'autonomous districts in the State' इन शब्दों के पश्चात् 'including matters specified in clauses (b), (c), (d) and (e) of sub-paragraph (1) of this schedule' ये शब्द, कोष्ठक, अक्षर तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) में, 'autonomous districts' इन शब्दों के पश्चात्, 'and autonomous regions' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के खण्ड (क) और (ख) में, दोनों स्थानों पर, जहां भी 'districts' शब्द हैं, उसके पश्चात् 'and regions' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (3) में, 'autonomous districts' इन शब्दों के पश्चात् 'and autonomous regions' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 2) के संशोधन सं. 3500 और 3501 के निर्देश से, कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के खण्ड (ग) के पश्चात्, निम्न नया खण्ड जोड़ दिया जाये:—

'(d) inclusion or exclusion of any tribal area from any District or Regional Council.' "

[(घ) किसी आदिमजातीय क्षेत्र को किसी जिला या प्रादेशिक परिषद् में समाविष्ट करना या उससे अपवर्जित करना।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 135 के निर्देश से षष्ठ अनुसूची की कण्डिका 14 की उप-कण्डिका (1) के पश्चात् निम्न उपबन्ध जोड़ दिया जाये:

'Provided that the State legislature shall be represented by two members elected by the Assam Legislative Assembly.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 14 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 14 अनुसूची में जोड़ दी गई।

कण्डिका 15

(संशोधन सं. 140 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि कण्डिका 15 की उप-कण्डिका (3) को हटा दिया जाये।"

यह इसलिये कि इसमें राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति दी गई थी जो उसे देने की स्थापना अब नहीं है।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 142: स्वविवेक के प्रश्न पर हम इतनी बार विचार कर चुके हैं। क्या इसे पेश करना आवश्यक है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जैसे आप निदेश दें, श्रीमान।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि यह आवश्यक है। संशोधन 214: फिर "राज्यपाल" के स्थान पर "राष्ट्रपति"; संशोधन 215: "राज्य-विधान-सभा" के स्थान पर "संसद"; संशोधन 216: वह तो वही है जो डॉ. अम्बेडकर का है। ये ही सब संशोधन हैं। डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं। जैसा कि मैं कह चुका हूं। हम राज्यपाल का स्वविवेक समाप्त कर रहे हैं जो हमने पहले उसे दिया था और इस लिये इस उप-कण्डिका (3) को हटाना आवश्यक है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कण्डिका 15 की उप-कण्डिका (3) को हटा दिया जाये।

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कण्डिका 15 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में कण्डिका 15 को अनुसूची में जोड़ दिया गया।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान, मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि हमें कुछ मिनट अधिक बैठकर इस अनुसूची को समाप्त कर देना चाहिये।

***अध्यक्षः** इसमें समय लगेगा। हम शायद समाप्त न कर सकें। मैं सदन को अभी स्मरण कराने जा रहा था कि हम अपने अनुसूचित समय से बहुत पीछे हैं और उस समय की कमी को पूरा करने के लिये कुछ करना होगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त तथा बरारः जनरल): आज हमारे पास कोई और कार्य नहीं है और हम मध्याह्नातर में बैठ सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आप चाहें तो हम कल बैठ सकते हैं आज हमने कुछ बचे हुये अनुच्छेदों पर विचार करने के लिये मसौदा-लेखन समिति की बैठक बुलाई है।

***अध्यक्षः** बहुत अच्छा। हम उस पर कल विचार करेंगे। सदन कल के 9 बजे तक के लिये स्थगित होता है।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 7 सितम्बर 1949 के 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.28.49
350

अंक 9
संख्या 28

बुधवार
7 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[षष्ठ अनुसूची : कंडिका 16 से 18, 1 और 20 पर विचार]
[अनुच्छेद 281 से 282-ग पर विचार] .... [1619–1699]

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 7 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा–*जारी*

षष्ठ अनुसूची–*(जारी)*

कण्डिका 16

**अध्यक्ष:* अब हम कंडिका 16 को लेंगे। श्रीयुत कुलाधर चालिहा अपना संशोधन संख्या 143 पेश कर सकते हैं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 16 के द्वितीय परन्तुक को अपमार्जित किया जाये।"

मेरा संशोधन बहुत ही साधारण है और मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति इसे स्वीकार करेगी। मैं यह चाहता हूं कि हमारे राज्यपाल को अपनी शक्तियों का ठीक-ठीक प्रयोग करने की शक्ति हो। यदि आप कंडिका 16 को पढ़ें, तो आपको विदित होगा कि वह इतने प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया है कि आपात में वह ठीक प्रकार से कार्यवाही न कर सकेगा। वह कंडिका इस प्रकार है—

"जिला या प्रादेशिक परिषद् का विघटन:– इस अनुसूची की कंडिका 14 के अधीन नियुक्त आयोग की सिफारिश पर राज्यपाल लोक-अधिसूचना द्वारा किसी प्रादेशिक या जिला परिषद् का विघटन कर सकेगा, तथा—

(क) परिषद् के पुनर्गठन के लिये तुरन्त ही नया साधारण निर्वाचन करने के लिये निदेश दे सकेगा, अथवा

(ख) राज्य के विधानमंडल के पूर्व अनुमोदन से ऐसी परिषद् के प्राधिकार-क्षेत्र के प्रशासन को राज्यपाल अपने हाथ में ले सकेगा अथवा ऐसे क्षेत्र के प्रशासन को ऐसे आयोग के, जो उक्त कंडिका के अधीन नियुक्त हुआ है, अथवा अन्य किसी निकाय के, जिसे वह समुपयुक्त समझता है, हाथ में 12 से अनधिक मास की कालावधि के लिये दे सकेगा।"

[श्री कुलधर चालिहा]

और इसके बाद परन्तुक हैं—

"परन्तु जब इस कंडिका के खंड (क) के अधीन कोई आदेश दे दिया गया हो, तब राज्यपाल प्रशासनास्पद क्षेत्र के प्रशासन के बारे में साधारण निर्वाचन होने पर परिषद् के पुनर्गठन के प्रश्न के लम्बित रहने तक इस कंडिका के खंड (ख) में निर्दिष्ट कार्यवाही कर सकेगा।"

और भी परन्तुक है—

"परन्तु यह और भी कि यथास्थिति जिला या प्रादेशिक परिषद् को, राज्य के विधानमंडल के सामने अपने विचारों को सुनाने का अवसर दिये बिना इस कंडिका के खंड (ख) के अधीन कोई कार्यवाही न की जायेगी।"

श्रीमान्, इस कंडिका की भाषा मुझे बहुत ही जटिल प्रतीत होती है। राज्यपाल को सर्वप्रथम एक आयोग नियुक्त करना होगा और उस आयोग की सिफारिश पर उसे आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करना होगा और फिर उस प्रतिवेदन को स्वीकृति के लिये विधानमंडल में रखना होगा और यदि वह स्वीकार हो जायेगा, तो परिषद् के पुनर्गठन के लिये तुरन्त साधारण निर्वाचन करने के आदेश देगा और उस क्षेत्र के प्रशासन को अपने हाथों में लेगा। परन्तु इस रक्षा कवच को भी पर्याप्त नहीं समझा गया और आगे यह और उपबन्ध किया गया है कि जिला या प्रादेशिक परिषद् को राज्य के विधानमंडल के सामने अपने विचारों को रखने का अवसर दिये बिना कोई कार्यवाही नहीं की जायेगी। उनके विचार कब सुने जायेंगे? किस स्थिति में? और उनके परामर्श करने की क्या आवश्यकता है? इस जिला या प्रादेशिक परिषद् जैसे तुच्छ निकाय के फिर विचार सुने जायेंगे। क्यों? आयोग समवेत होगा, प्रश्नों के विभिन्न पहलुओं की जांच करेगा और विभिन्न दलों के विचार सुने जायेंगे। इसके बाद उसकी सिफारिश राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत की जायेगी और आवश्यक परीक्षण के पश्चात् वह उसको विधानमंडल के समक्ष स्वीकृति के लिये रखेगा। तो फिर विधानमंडल द्वारा जिला या प्रादेशिक परिषदों के फिर से विचार सुनने की कहां और क्या आवश्यकता है और कब? क्या विधानमंडल की दूसरी बैठक होगी? राज्यपाल की कार्यवाही की स्वीकृति के लिये पहली बैठक हुई। और फिर इसमें रीति और प्रणाली की जो जटिलता है तथा जितना समय लगेगा, उसकी ओर ध्यान दीजिये। व्यवहार्यत: वह आपात काल है। संभवत: लोग अपनी जिद पर अड़े हुए हैं। वह विधि का पालन नहीं करते हैं। वह अशान्त हैं और इसी कारण राज्यपाल द्वारा यह कार्यवाही आवश्यक है और उसे तुरन्त यह कार्यवाही करनी चाहिये। पर आप राज्यपाल को इस प्रकार जकड़ देते हैं कि वह आपात में कार्यवाही नहीं कर सकता है। जब कि परिस्थिति ऐसी है कि कार्यवाही एक दिन ही में कर देनी चाहिये, पर यहां जो पद्धति निर्धारित की गई है, उसमें एक वर्ष से अधिक लगेगा। श्रीमान, मैं समझता हूं कि मेरी प्रस्थापना बहुत युक्तियुक्त है और पहला परन्तुक ही पर्याप्त है। जब राज्यपाल कार्यवाही करना चाहे, तो उसे किसी समय

कार्यवाही करने दीजिये और यह आवश्यक नहीं है कि उसे प्रादेशिक अथवा जिला परिषद् द्वारा विधानमंडल को किये गये प्रतिनिधित्व के घेरे में फिर से डाल दिया जाये। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी फिर से सुनवाई हो। जैसा कि मैंने कहा था, मेरा संशोधन युक्तियुक्त है और मैं इसे सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं और मैं आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार करेंगे।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन हैं, जिनको मैं नियम विरुद्ध ठहराता हूं, क्योंकि वे उन्हीं आधारों पर हैं, जिन आधारों पर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के अन्य संशोधन हैं। डॉ. अम्बेडकर क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): यदि आसाम के मुख्य मंत्री के इस विषय पर कुछ विचार हैं, तो मैं उनको सुनना चाहूंगा।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, कंडिका 16 के दूसरे परन्तुक को हटाने के संबंध में श्री चालिहा द्वारा अभी पेश किये गये संशोधन पर जो कुछ मुझे कहना है, वह यह है कि हर मामले में जहां इस प्रकार की कार्यवाही की जाती है, वहां जिन पक्षों पर कार्यवाही का प्रभाव पड़ता है, उनको विचार सुनाने का एक अवसर दिया जाता है। इस बात से मैं सहमत हूं कि इस परन्तुक में ऐसा कोई तंत्र निर्धारित नहीं किया गया है, जिसके द्वारा यह कार्य हो सके। अत: यदि श्री चालिहा अपने संशोधन में यह रूपान्तर करें कि 'opportunity of being heard by the legislature' शब्दों के स्थान में 'an opportunity of placing the views of the Regional Council' शब्द रखें, तो उनके संशोधन का आशय पूरा हो जायेगा।

***श्री कुलधर चालिहा:** मैं ऐसा करने के लिये तैयार हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्री चालिहा के संशोधन पर श्री बारदोलोई का जो संशोधन है, जिसे श्री चालिहा ने स्वीकार कर लिया है, मैं उसे स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। परन्तुक अब इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Provided further that no action shall be taken under clause (b) of this paragraph without giving the District or the Regional Council, as the case may be, an opportunity of placing their views before the legislature of the State."

[परन्तु यह और भी कि यथा स्थिति जिला या प्रादेशिक परिषद् को, राज्य के विधानमंडल के सामने अपने विचारों को रखने का अवसर दिये बिना इस कंडिका के खंड (ख) के अधीन कोई कार्यवाही न की जायेगी।]

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 16 के द्वितीय परन्तुक के स्थान में यह परन्तुक रखा जाये:—

'Provided further that no action shall be taken under clause (b) of this paragraph without giving the District or the Regional Council, as the

[अध्यक्ष]

case may be, an opportunity of placing their views before the legislature of the State.' "

[परन्तु यह और भी कि यथा स्थिति जिला या प्रादेशिक परिषद् को, राज्य के विधानमंडल के सामने अपने विचारों को रखने का अवसर दिये बिना इस कंडिका के खंड (ख) के अधीन कोई कार्यवाही न की जायेगी।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कंडिका 16 पष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में कंडिका 16 षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट की गई।

नई कंडिका 16-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि कंडिका 16 के पश्चात् यह कंडिका रखी जाये:—

'16A. *Exclusion of areas from autonomous districts in forming constituencies in such districts.*—For the purposes of elections to the Legislative Assembly of Assam the Governor may by order declare that any area within an autonomous district shall not form part of any constituency to fill a seat or seats in the Assembly reserved for any such district but shall form part of a constituency to fill a seat or seats in the Assembly not so reserved to be specified in the order.' "

(16क. **स्वायत्तशासी जिलों में निर्वाचन क्षेत्रों के बनाने के हेतु ऐसे जिलों से क्षेत्रों का अपवर्जन**–आसाम की विधान-सभा के निर्वाचनों के प्रयोजन के लिये राज्यपाल आदेश द्वारा घोषित कर सकेगा कि किसी स्वायत्तशासी जिले के अन्दर का कोई क्षेत्र ऐसे किसी जिले के लिये सभा में रक्षित स्थान या स्थानों को भरने के लिये किसी निर्वाचन-क्षेत्र का भाग न होगा, किन्तु इस प्रकार रक्षित न हुए सभा में के स्थान या स्थानों के भरने के लिये आदेश में उल्लिखित निर्वाचन क्षेत्र का भाग होगा।)

इस कंडिका का उद्देश्य यह है कि जो लोग स्वायत्तशासी जिलों में शामिल हैं, पर उन लोगों के समुदाय में नहीं हैं, जो उन स्वायत्तशासी जिलों में बसे हुये

हैं, उन लोगों को उनके अपने निर्वाचन-क्षेत्र नियत करके विधान-सभा में स्थान प्राप्त करने का अवसर देना।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 16क षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

कंडिका 16क षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट की गई।

***अध्यक्षः** पंडित कुंजरू द्वारा एक और संशोधन की सूचना है। वह कंडिका 19 के संबंध में है। अतः वह बाद में आयेगी।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): बहुत अच्छा, श्रीमान्।

कंडिका 17

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि कंडिका 17 की उप-कंडिका (2) के पश्चात् यह उप-कंडिका प्रविष्ट की जाये:—

'(3) In the discharge of his functions under sub-paragraph (2) of this paragraph as the agent of the President, the Governor shall act in his discretion.' "

[(3) इस कंडिका की उप-कंडिका (2) के अधीन राष्ट्रपति के अभिकर्त्ता के रूप में अपने कृत्यों के निर्वहन में राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य करेगा।]

***अध्यक्षः** इसी आधार पर श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के कुछ संशोधन हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि कंडिका 17 की उप-कंडिका (2) के स्थान में यह उप-कंडिका रखी जाये:—

'The administration of the tribal areas of Assam specified in the Table shall be carried on by the President through the Governor of Assam as his agent and the provisions of Part VIII of this Constitution shall apply thereto as if such area were a territory specified in Part IV of the First Schedule.' "

(सारिणी में उल्लिखित आसाम के जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा आसाम के राज्यपाल को अपना अभिकर्त्ता बना कर किया जायेगा और इस

संविधान के भाग 8 के उपबन्ध उन पर इस रूप में लागू होंगे, मानो कि वे क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग 4 में के उल्लिखित राज्यक्षेत्र हों।)

श्रीमान्, इस संशोधन का पूर्ण उद्देश्य यह है कि सारिणी के दोनों भागों को राष्ट्रपति के शासन के अधीन लाना। मैं इस विषय पर कई बार बोल चुका हूं। मैं विस्तारपूर्वक नहीं बोलूंगा और अपने तर्कों को नहीं दुहराऊंगा। मुझे इस बात पर विश्वास है कि अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनाई गई नीति बहुत पुष्ट थी। मैं इस बात के प्रति बिल्कुल उत्सुक नहीं हूं कि बिहारी, बंगाली, उड़िया और आसामी लोगों को इन राज्यक्षेत्रों में जाने दिया जाये या नहीं। यह एक ऐसा विषय है, जिसका समूचे देश की प्रतिरक्षा से संबंध है। वह एक ऐसा क्षेत्र है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त है। अतः समस्त जनजाति क्षेत्र केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र होने चाहियें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** तो मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर पहले मत लेता हूं। प्रश्न यह है: "कि कंडिका 17 की उप-कंडिका (2) के पश्चात् यह उप-कंडिका प्रविष्ट की जाये:–

'(3) In the discharge of his functions under sub-paragraph (2) of this paragraph as the agent of the President the Governor shall act in his discretion.' "

[(3) इस कंडिका की उप-कंडिका (2) के अधीन राष्ट्रपति के अभिकर्त्ता के रूप में अपने कृत्यों के निर्वहन में राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य करेगा।]

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर मत लेता हूं, जो वास्तव में उस संशोधन पर संशोधन है, जो अभी पारित हो चुका है। प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 17 की उप-कंडिका (2) के स्थान में यह उप-कंडिका रखी जाये:—

'The administration of the tribal areas of Assam specified in the Table shall be carried on by the President through the Governor of Assam as his agent and the provisions of Part VIII of this Constitution shall apply thereto as if such area were a territory specified in Part IV of the First Schedule.' "

(सारिणी में उल्लिखित आसाम के जनजाति क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा आसाम के राज्यपाल को अपना अभिकर्ता बनाकर किया जायेगा और इस संविधान के भाग 8 के उपबन्ध उन पर इस रूप में लागू होंगे, मानो कि वे क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग 4 में के उल्लिखित राज्य हों।)

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कंडिका 17 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में कंडिका 17 षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट की गई।

कंडिका 18

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि कंडिका 18 की पंक्ति 22 में से 'in his discretion' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

"कि कंडिका 18 का खंड (ग) अपमार्जित किया जाये।"

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 148 और 149 नियम विरुद्ध घोषित किये जाते हैं। इसके बाद संशोधन संख्या 223, 224, 225 और 226 हैं, जो न्यूनाधिक रूप में इसी आधार पर हैं। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, क्या आप संशोधन संख्या 226 पेश करना चाहेंगे? अन्य तीन संशोधनों को मैंने नियम विरुद्ध ठहरा दिया है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान, मैं अपने किसी भी संशोधन को पेश करना नहीं चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन संख्या 146 और 147 पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है कि:

"कि कंडिका 18 की पंक्ति 22 में से 'in his discretion' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 18 का खंड (ग) अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 18 संशोधित रूप में स्वीकार की जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में कंडिका 18 षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट की गई।

कंडिका 19

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 150 और 151 के निर्देशानुसार कंडिका 19 और संलग्न सारिणी के स्थान में यह कंडिका और सारिणी रखी जाये:

'19. *Tribal areas.*—(1) The areas specified in Parts I and II of the Table below shall be the tribal areas within the State of Assam.

(2) The United Khasi-Jaintia Hills District shall comprise the territories which before the commencement of this Constitution were known as the Khasi States and the Khasi and Jaintia Hills District, excluding any areas for the time being comprised within the cantonment and municipality of Shillong but including so much of the area comprised within the municipality of Shillong as formed part of the Khasi State of Mylliem:

Provided that for the purposes of clauses (e) and (f) of sub-paragraph (1) of paragraph 3, paragraph 4 and paragraph 5 and sub-paragraph (2), clauses (a), (b) and (d) of sub-paragraph (3) and sub-paragraph (4) of paragraph 8 of this Schedule, no part of the area comprised within the municipality of Shillong shall be deemed to be within the District.

(3) Any reference in Table below to any district (other than the United Khasi-Jaintia Hills District) or administrative area, shall be construed as a reference to that district or area on the data of commencement of this Constitution:

Provided that the tribal areas specified in Part II of the Table below shall not include any such areas in the plains as may, with the previous

approval of the President, be notified by the Governor of Assam in this behalf.

Table.

PART I

1. The United Khasi-Jaintia Hills District.
2. The Garo Hills District.
3. The Lushai Hills District.
4. The Naga Hills District.
5. The North Cachar Hills.
6. The Mikir Hills District.

PART II

1. Nort-East Frontier Tract including Balipara Frontier Tract, Tirap Frontier Tract, Abor Hills District, Misimi Hills District.
2. The Naga Tribal Area.' "

[19. **आदिमजाति क्षेत्र**— (1) निम्न सारिणी के भाग (1) और (2) में उल्लिखित क्षेत्र आसाम राज्य के भीतर आदिमजाति क्षेत्र होंगे।

(2) शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र के अन्तर्गत तत्समय समाविष्ट किन्हीं क्षेत्रों को अपवर्जित करके किन्तु शिलांग के नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्रों को जितना कि मिललैम खासी राज्य का भाग था, सम्मिलित करके खासी राज्य तथा खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले के नाम से इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व ज्ञात क्षेत्रों से मिलकर संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिला बनेगा:

परन्तु इस अनुसूची की कंडिका 3 की उप-कंडिका 1 के खंड (ङ) और (च) कडिका 4, कंडिका 5, और उप-कंडिका (2), कंडिका 8 की उप-कंडिका 4, उप-कंडिका 3 के खंड (क), (ख) और (घ) के प्रयोजनों के लिये शिलांग के नगर क्षेत्र में समाविष्ट कोई क्षेत्र उस जिले के अन्दर नहीं समझे जायेंगे।

(3) निम्न सारिणी में (संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले से अन्य) किसी जिले के या प्रशासी क्षेत्र के प्रति कोई निर्देश उस जिले या प्रदेश के प्रति इस संविधान के प्रारम्भ पर निर्देश समझा जायेगा:

परन्तु निम्न सारिणी के भाग 2 में उल्लिखित अदिमजाति क्षेत्रों के अन्तर्गत मैदानों में के कोई ऐसे क्षेत्र न होंगे, जैसे कि राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन से आसाम का राज्यपाल उसके लिये, अधिसूचित करे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

सारिणी

भाग 1

1. संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिला।
2. गारे पहाड़ी जिला।
3. लुसाई पहाड़ी जिला।
4. नागा पहाड़ी जिला।
5. उत्तरी कछार पहाड़ियां।
6. मिकिर पहाड़ियां।

भाग 2

1. उत्तरी पूर्वीय सीमान्त इलाका, जिसके अन्तर्गत वालिपारा सीमान्त इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अबोर पहाड़ी जिला और मिसिमि पहाड़ी जिला भी हैं।
2. नगा आदिमजाति क्षेत्र।]

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** श्रीमान, आपकी अनुज्ञा से मैं संशोधन संख्या 330, 332 और 333 एक साथ पेश करूंगा।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 16 के पश्चात् यह कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'16A. Provisions applicable to areas specified in Part 1A of the Table appended to paragraph 19.

(1) Notwithstanding anything contained in this Constitution, no Act of Parliament or of the Legislature of the State shall apply to any tribal area specified in Part I A of the Table appended to paragraph 19 of this Schedule unless the Governor by public notification os directs: and the Governor in giving such directions with respect to any Act may direct that the Act shall in its application to the area or to any specified part thereof have effect subject to such exceptions or modifications as he thinks fit.

(2) The Governor may make regulations for the peace and good government of any such tribal areas and any regulation so made may repeal or amend any Act of Parliament or of the Legislature of the State or any existing law which is for the

time being applicable to such area Regulations made under this sub-paragraph shall be submitted forthwith to the President and until assented to by him shall have no effect.' "

[16क. कंडिका 19 की सारिणी के भाग 1क में उल्लिखित क्षेत्रों पर लागू होने वाले उपबन्ध।

(1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इस अनुसूची की कंडिका 19 की सारिणी के भाग 1क में उल्लिखित किसी आदिमजाति क्षेत्र पर संसद अथवा राज्य के विधानमंडल का कोई अधिनियम तब तक लागू नहीं होगा, जब तक कि राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा इस प्रकार का निदेश न दे; और किसी अधिनियम के सम्बन्ध में ऐसे निदेश देते हुए राज्यपाल यह निदेश देगा कि उस क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग पर उस अधिनियम के लागू होने का प्रभाव उन अपवादों या रूपान्तरों के अधीन होगा, जैसा वह उचित समझे।

(2) किसी ऐसे आदिमजाति क्षेत्र के शान्तिप्रिय और अच्छे शासन के लिये राज्यपाल विनियम बनायेगा और इस प्रकार निमित कोई विनियम संसद या राज्य के विधानमंडल के किसी अधिनियम को या किसी वर्तमान विधि को, जो उस समय ऐसे क्षेत्र में प्रयुक्त हो, निरसित या संशोधित करेगा। इस उप-कंडिका के अधीन निमित विनियम तुरन्त ही राष्ट्रपति के पास भेजे जायेंगे और जब तक उसकी अनुमति प्राप्त न हो, तब तक उनका कोई प्रभाव नहीं होगा।]

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 में 'Parts I and II' शब्द और अंकों के स्थान में 'Parts I, IA and II' शब्द और अंक रखे जायें।"

मेरा अन्तिम संशोधन यह है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका की सारिणी के भाग 1 के स्थान में यह भाग रखा जाये:

'PART I

1. The Lushai Hills District.

2. The Naga Hills District.

3. The North Cachar Sub-division of Cachar District.

PART 1A

1. The Khasi and Jaintia Hills District excluding the cantonments and the municipality of Shillong but including so much of the

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

area comprised within such municipality as forms part of the Mylliem State.

2. The Garo Hills District.

3. The Mikir Hills portion of Nowgong and Sibsagar District excepting the mouzas of Barpathar and Sarup athar.'"

[भाग 1

1. लुसाई पहाड़ी जिला।

2. नगा पहाड़ी जिला।

3. कछार जिले का उत्तर कछार का इलाका।

भाग 1क

1. शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र को अपवर्जित कर के परन्तु शिलांग के नगर क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट वह क्षेत्र, जो मिललैम का भाग है, उसे सम्मिलित कर खासी और जयंतीया पहाड़ी जिला।

2. गोरा पहाड़ी जिला।

3. बरपाथर और सरूपाथर के मौजों को छोड़कर नौगोंग और सिबसागर जिलों का मिकिर पहाड़ी भाग।]

उस कठिनाई को इस सभा और विशेषकर अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर के सामने रखने के लिये, जिसका मैं अनुभव करता हूं, मैंने ये संशोधन प्रस्तुत किये हैं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई कंडिका 19 की सारिणी 1 में जो क्षेत्र उल्लिखित हैं, उसके अन्तर्गत वे सब क्षेत्र समाविष्ट हैं, जो पहले अपवर्जित अथवा अंशत: अपवर्जित क्षेत्र समझे जाते थे। इन क्षेत्रों में अन्तर यह था कि अपवर्जित क्षेत्रों के सम्बन्ध में तो राज्यपाल अपने स्वविवेक के अनुसार कार्य कर सकता था, पर अंशत: अपवर्जित क्षेत्रों में वह अपने व्यक्तिगत निर्णय का ही प्रयोग कर सकता था। दूसरे शब्दों में अपवर्जित क्षेत्रों के लिये अपने मंत्रियों से परामर्श करने के लिये वह बाध्य न था, पर अंशत: अपवर्जित क्षेत्रों के लिये जब तक वह यह अनुभव न करे कि उसे मंत्रियों के परामर्श के विमुख जाना ही है, तब तक वह उनकी मंत्रणा के अनुसार ही कार्यवाही करने के लिये बाध्य है। अब यह अन्तर नहीं रहता है, क्योंकि लगभग सभी मामलों में यह अपेक्षित है कि राज्यपाल मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार कार्यवाही करेगा।

*श्री **टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): सिवाय एक के।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** मैंने लगभग कहा है। अपवाद केवल कंडिका 19 की सारिणी के भाग 2 में उल्लिखित क्षेत्रों के सम्बन्ध में है। उनके सम्बन्ध में वह अपने स्वविवेक के अनुसार कार्यवाही करेगा, क्योंकि वह राष्ट्रपति के अभिकर्त्ता के रूप में कार्यवाही करेगा और यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति द्वारा दिये गये निदेशों में प्रान्तीय मंत्रियों द्वारा कोई रूपान्तर नहीं करने दिया जा सकता है। परन्तु यद्यपि अपवर्जित और अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में वैधिक अन्तर संविधान के मसौदे द्वारा मिटा दिया गया है, पर अन्तर की जो बात थी, वह अब भी बनी हुई है। पिछड़े हुए क्षेत्रों को अपवर्जित और अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में विभाजन करने का आधार यह था कि जो क्षेत्र अपने हितों की रक्षा करने में पूर्णतया असमर्थ थे, उनको अपवर्जित क्षेत्र बना दिया गया, और अन्य पिछड़े हुए क्षेत्र मैदान के लोगों से सम्पर्क रखने के कारण अपने हितों की रक्षा करने में उन लोगों से अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में हैं, जो अत्यन्त पिछड़े हुए क्षेत्रों में रह रहे हैं, अर्थात् अपवर्जित क्षेत्रों में, अतः उनको अंशतः अपवर्जित क्षेत्र बना दिया गया। यह अन्तर कर दिया गया था, इसका अर्थ यह हुआ कि अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले लोग हमारे दृष्टिकोण से चाहे कितने ही पिछड़े हुए हों, पर वे अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से अधिक उन्नत हैं।

अब जो षष्ठ अनुसूची में प्रबन्ध किया गया है, वह कुछ विषयों में अत्यन्त पिछड़े हुए लोगों के हितों की रक्षा के सम्बन्ध में है। यह जो रक्षण किया जा रहा है, मैं उसके विरुद्ध बिल्कुल नहीं हूं। वरन् मैं उसका स्वागत करता हूं और मैं आशा करता हूं कि आदिमजाति के लोगों के लिये राज्य का जो कर्तव्य है उसके प्रति राज्य की नवीन जागृति अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले लोग, जो कि शताब्दियों से उपेक्षित रहे हैं, उनकी हालतों को शीघ्र ही उन्नत करने में सहायक होगी। परन्तु इस प्रयोजन के लिये क्या यह आवश्यक है कि जो क्षेत्र पहले अपवर्जित क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थे, उनसे अधिक उन्नत क्षेत्रों को नहीं आधारों पर रखा जाये, जिन पर अत्यन्त पिछड़े हुए क्षेत्र हैं? उन क्षेत्रों में जो पहले अपवर्जित क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थे, उनसे अधिक उन्नत क्षेत्रों को उन्हीं आधारों पर रखा आये, जिन पर अत्यन्त पिछड़े हुए क्षेत्र हैं? उन क्षेत्रों में जो पहले अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों के नाम से प्रसिद्ध थे, मैं स्थानीय स्वशासन स्थापित करने के पूर्णतया पक्ष में हूं; अर्थात् खासी राज्यों को छोड़कर जो अंग्रेजों द्वारा प्रशासित खासी और जयंतीया पहाड़ियों के भागों से उस समय बिल्कुल पृथक् थे, खासी और जयंतीया की पहाड़ी, गारो पहाड़ी जिला और मिकिर पहाड़ी जिला। श्रीमान, मैं जानता हूं कि बारदोलोई समिति का प्रतिवेदन और आसाम सरकार का ज्ञापन इस विषय में क्या कहते हैं। इन लेख्यों में यह कहा गया है कि जिन क्षेत्रों का मैंने अभी उल्लेख किया है, उन क्षेत्रों में रहने वाले लोग पिछड़े हुए हैं। पर यह बात अब भी है कि 14 वर्ष पूर्व वे लोग उन लोगों से अधिक उन्नत समझे जाते थे, जो उस समय अपवर्जित कहे जाने वाले क्षेत्रों में रहते थे। खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले या गारो पहाड़ी जिले या मिकिर पहाड़ी जिले में रहने वाले लोगों की हालतों को सुधारने के लिये

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

क्या यह आवश्यक है कि वहां के रहने वाले लोगों और नगा पहाड़ी जिले, लुसाई पहाड़ी जिले और कछार जिले के उत्तरी कछार इलाके के लोगों में कोई अन्तर न रखा जाये? मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि पहले बताये गये क्षेत्रों के लोगों का स्तर क्यों किराया जाये और उनको इतना निरुपाय क्यों समझा जाये, जब कि मैदान में रहने वाले लोगों के समागम में आकर उनमें चेतना जागृति हो गई है और नगा पहाड़ियों में रहने वाले लोगों की अपेक्षा वे अपने मुख्य हितों की अधिक अच्छी देखभाल कर सकते हैं। इस बात पर विचार किया जा सकता है कि यदि पहले अंशत: अपवर्जित क्षेत्र कहे जाने वाले क्षेत्रों में जिला परिषदें या प्रादेशिक परिषदें स्थापित कर दी जायें, तो उनकी कोई हानि नहीं होगी और इसलिये ऐसा कोई कारण नहीं है कि उनको वे अधिकार देने में, जो वहां के रहने वाले इस संविधान के अधीन प्राप्त करेंगे, कोई आपत्ति हो।

श्रीमान्, इस बात को स्पष्ट समझने के लिये हमें यह सोचना चाहिये कि समतल जिलों के सम्बन्ध में क्या हम किसी ऐसे प्रबन्ध को स्वीकार करेंगे। संभव है, कोई यह कहे कि यदि किसी स्थानीय निकाय के लिये उन अधिकारों का उपभोग करना वांछनीय है, जो षष्ठ अनुसूची के अधीन प्रादेशिक तथा जिला परिषदों को दिये जा रहे हैं, तो ऐसा कोई करण नहीं है कि अधिक उन्नत लोग क्यों कर उनका उपभोग न करें। ऐसी दशा में हमारा उत्तर क्या होगा? हमारा उत्तर यह होगा कि षष्ठ अनुसूची के उपबन्ध चाहे कितने ही अच्छे प्रतीत हों, वे विभिन्न जिलों में रहने वाले लोगों को पृथक्-पृथक् करते हैं और इस प्रकार एकता को और भी अधिक कठिन बना देते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने जो सारिणी हमारे समक्ष रखी है, उसमें उन जिलों को समाविष्ट देखकर, जो पहले अंशत: अपवर्जित क्षेत्र कहे जाते थे, इसी कठिनाई का मैं अनुभव करता हूं। जब ये लोग इतने उन्नत हो चुके हैं कि मान लीजिये कि नगा पहाड़ी जिले में रहने वाले लोगों की अपेक्षाकृत वे अपनी देखभाल अच्छी प्रकार से कर सकते हैं, तो हम इस बात पर क्यों अफसोस करें? उनके लिये हम प्रबन्ध को इतना कड़ा क्यों बनायें? और भावी परिवर्तनों को और भी अधिक कठिन क्यों बनायें? हमारी नीति यह होनी चाहिये कि अपने हितों के समझने में उन्होंने जो स्वाभाविक उन्नति की है, उससे लाभ उठायें और किसी प्रकार से उनके अत्यावश्यक हितों पर कोई प्रभाव डाले बिना उनको अन्य क्षेत्रों के अर्थात् समतल जिलों में निकटतर लायें। मैंने जो पहला संशोधन पेश किया है, उसका यही प्रयोजन है। जो स्थिति मैंने ग्रहण की है, वह यदि ठीक है और माननीय सदस्य यदि मेरे विचारों से सहमत हैं और यदि डॉ. अम्बेडकर इसके विरुद्ध कोई विश्वासप्रद तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं, तो यह वांछनीय है कि मेरी सारिणी के भाग 1क में उल्लिखित आदिमजातियों के लिये भाग 1 में उल्लिखित आदिमजाति क्षेत्रों के लिये किये गये प्रबन्ध से भिन्न प्रकार का प्रबन्ध होना चाहिये।

भारत शासन अधिनियम के अधीन अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों के सम्बन्ध में राज्यपाल दो शक्तियों का प्रयोग करता है। सर्वप्रथम केन्द्रीय या प्रान्तीय विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधि में अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में प्रवृत करने के लिये वह रूप भेद या संशोधन कर सकता है। दूसरी बात यह है कि चाहे अपवर्जित क्षेत्र हो अथवा अंशतः अपवर्जित आदिमजाति क्षेत्रों के शान्तिमय तथा सुशासन के लिये नियम बनाने की उसे शक्ति है। यह समझ लिया गया था कि अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के हितों की रक्षा केवल इन्हीं उपबन्धों द्वारा राज्यपाल पर्याप्त रूप से कर सकेगा। अपवर्जित क्षेत्रों में कहीं-कहीं पर आदिमजाति परिषदें थीं तथा अन्य प्रबन्ध भी थे, जिनमें लोग आपस में मंत्रणा कर सकते थे, परन्तु बारदोलोई समिति के प्रतिवेदन के अनुसार अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में जो प्रबन्ध था, वह इस प्रकार का नहीं था। प्रान्तीय विधानमंडल के लिये अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का किसी न किसी रूप में निर्वाचन होता ही है यद्यपि कुछ स्थानों में यह निर्वाचन परोक्ष रूप में होता है, पर फिर भी अंशतः अपवर्जित क्षेत्र अपवर्जित क्षेत्रों से इस सम्बन्ध में अच्छी स्थिति में हैं। अब इन दोनों को एक ही कोटि में रखा जा रहा है। मैं यह सोचने का साहस करता हूं कि मेरी सारिणी के भाग 1क में उल्लिखित क्षेत्रों का शासन यदि हम वैसा ही रखें, जो भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन वर्तमान था, तो अंशतः अपवर्जित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के हितों और समूचे आसाम प्रान्त के हितों का साधन अच्छे प्रकार से होगा। मैं पहले कह चुका हूं और किसी मिथ्याभ्रम को पैदा होने से रोकने के लिये फिर यह कहना चाहूंगा कि मैं उन लोगों के हितों की पूर्ण रक्षा के पक्ष में हूं, जो राज्य की सहायता के बिना अपनी देखभाल करने में असमर्थ होंगे। मैंने सभा को जो कुछ निवेदन किया है, वह यह है कि जो क्षेत्र इस समय अपवर्जित तथा अंशतः अपवर्जित क्षेत्र के नाम से विख्यात हैं, उनके साथ एक ही प्रकार का व्यवहार करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह उन क्षेत्रों के लोगों के मानसिक विकास और व्यावहारिक ज्ञान के अन्तर के अनुकूल नहीं है।

मेरे अन्तिम हो संशोधन कंडिका 19 के साथ संलग्न सारिणी के सम्बन्ध में हैं। मैंने जो पहला संशोधन पेश किया है, उसके अनुसार मैंने सारिणी को तीन भागों में बांटा है–1, 1क और 2। जो बातें मैं कह चुका हूं, उनको ध्यान में रखते हुए इसकी व्याख्या अपेक्षित नहीं है। अंतिम संशोधन के लिये कुछ व्याख्या अपेक्षित है। सारिणी के भाग 1क के मद 1 में मैंने खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले के क्षेत्र में परिवर्तन नहीं किया है। दूसरे शब्दों में खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले के अन्तर्गत केवल वही क्षेत्र समाविष्ट होगा, जो क्षेत्र उसके अन्तर्गत अब है और बारदोलोई समिति ने भी यही सिफारिश की थी। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई सारिणी में यह कहा गया है कि मिललैम राज्य को शिलांग नगर क्षेत्र का वह भाग मिल जाना चाहिये जो अन्य का भाग था। श्रीमान्, इसका अर्थ यह

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

है कि शिलांग नगरपालिका, जो दो या तीन पीढ़ियों से स्थित है, उसके क्षेत्र में से वह भाग चला आयेगा, जिस पर वह इतने दीर्घ काल से शासन कर रही है। निस्सन्देह बारदोलोई समिति के समक्ष परिस्थिति सम्बन्धी समस्या तथ्य वर्तमान थे, परन्तु फिर भी उसने इस सम्बन्ध में इस प्रकार के किसी भी परिवर्तन की सिफारिश नहीं की। हां, हम से अब यह कहा जाता है कि खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले का क्षेत्र बढ़ा देना चाहिये और तदनुसार शिलांग नगर क्षेत्र को घटा देना चाहिये।

श्रीमान, यह कोई छोटा विषय नहीं है। आदिम-जाति के लोगों की स्थिति की व्याख्या करते हुए आसाम सरकार के ज्ञापन में यह कहा गया है कि शिलांग नगर क्षेत्र का अधिकतर भाग मिललैम राज्य के अन्तर्गत है। मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि इस प्रकार का परिवर्तन किया जाये। इस सारिणी को प्रस्तुत करते हुए, जो कि संविधान के मसौदे में दी हुई सारिणी से बिल्कुल भिन्न है, डॉ. अम्बेडकर ने इस परिवर्तन की पुष्टि में एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने इस विषय को ऐसा समझा मानों इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, अत: इस पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है। पर, मैं तो यह समझता हूं कि यह विषय इतना तुच्छ नहीं है, जितना कि वे इसे समझते हैं। यह कुछ महत्व का विषय है कि जो क्षेत्र शिलांग नगरपालिका के क्षेत्राधिकार में इतने दीर्घ काल तक रहा हो, उसे उससे छीन लिया जाये और आदिम क्षेत्र में समाविष्ट कर दिया जाये। यदि यह मंशा है कि इस क्षेत्र में रहने वाले आदिम जाति के लोग जिला परिषद् के निर्वाचनों में मत दे सकें, तो ऐसा करने दिया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश की गई कंडिका 16क में जो मतदाता आदिम जाति क्षेत्र के नहीं हैं, उनको आदिम जाति के मतदाताओं से पृथक् करने का उपबन्ध है। इसी आधार पर शिलांग नगर क्षेत्र में रहने वाले आदिमजाति के लोगों को जिला परिषद् के निर्वाचनों में मत देने के लिये हम एक उपबन्ध बना सकते हैं, पर ऐसी कोई बात नहीं है कि इस प्रयोजन के लिये शिलांग नगर क्षेत्र का कोई भाग, वास्तव में एक बड़ा भाग, उससे क्यों अपवर्जित किया जाये और मिललैम राज्य को क्यों दिया जाये। श्रीमान्, मैं यह जानता हूं कि 25 खासी राज्यों को खासी और जयंतीया पहाड़ी जिलों में विलीन करने की बातें चल रही हैं, परन्तु विलीन हो जाने पर भी कोई ऐसी बात नहीं होगी कि शिलांग नगर क्षेत्र को किसी उस क्षेत्र से वंचित कर दिया जाये, जिस पर उसका इस समय नियंत्रण है। यदि वहां के लोग अधिक उन्नत जीवन व्यतीत करने के अभ्यस्त हो गये हैं और यदि उनक हितों की अब तक पर्याप्त रूप से रक्षा हुई है, तो इस बात को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व, कि वर्तमान प्रबन्ध असन्तोषजनक है, उन लोगों पर है जो वर्तमान स्थिति में परिवर्तन कराना चाहते हैं। श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि जो संशोधन मैंने सभा के समक्ष प्रस्तुत किये हैं, उनके कारणों की मैंने पर्याप्त रूप से व्याख्या कर दी है।

*__अध्यक्षः__ पंडित कुंजरू, आपने अपने संशोधन संख्या 333 के भाग 1क में उसी पदावली का प्रयोग किया, जिसका डॉ. अम्बेडकर ने दिया है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरूः__ श्रीमान्, मैं समझता हूं कि ऐसा नहीं है।

*__अध्यक्षः__ वही शब्द हैं, "शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र को अपवर्जित करके, किन्तु उस नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्र को, जितना मिललैम राज्य का भाग था, सम्मिलित करके।"

*__पं. हृदयनाथ कुंजरूः__ श्रीमान्, मुझे बड़ा खेद है। यह एक भूल हो गई। ये शब्द वहां नहीं होने चाहियें थे। "किन्तु उस नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्र को, जितना मिललैम राज्य का भाग था, सम्मिलित करके" शब्द कट जाने चाहियें। मैं समझता हूं कि इस मद को उसी रूप में रहने देना चाहिये जैसा कि वह संविधान के मसौदे में है। इसी रूप में बारदोलोई समिति ने सिफारिश की है।

*__अध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन पर कुछ संशोधन हैं। वे बहुत देर में आये हैं। मैं देखता हूं। कि एक ही प्रभाव के कई संशोधनों की सूचना दी है। उनमें मैं एक को पेश होने दूंगा। श्री चालिहा और एक और सज्जन, जिनका नाम मैं पढ़ नहीं सकता हूं, यह चाहते हैं कि संशोधन संख्या 331 में "किन्तु शिलांग नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्रों को जितना कि मिललैम खासी राज्य का भाग था, सम्मिलित करके" शब्दों को निकाल दिया जाये। यदि आप चाहते हैं, तो उसे पेश कर सकते हैं।

*__श्री कुलधर चालिहाः__ श्रीमान्, "नगा पहाड़ी जिला" शब्दों के पश्चात् "सिवाय मौजा डीमापुर के" शब्द प्रविष्ट करने का एक और संशोधन है।

*__अध्यक्षः__ आप दोनों को पेश कर सकते हैं। मैं देखता हूं कि श्री दास ने भी इसी प्रकार के संशोधन की सूचना दी है।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी__ (आसाम : जनरल): क्या मैं इस बात की व्याख्या कर सकता हूं कि इन संशोधनों को पेश करके हम क्या चाहते हैं। सर्वप्रथम यह कि शिलांग का समस्त नगर क्षेत्रमय उस क्षेत्र के जिस पर मिललैम राज्य का स्वामित्व है, किसी भी प्रकार के स्वायत्तशासी जिले के क्षेत्राधिकार से अपवर्जित किया जाये और दूसरी बात यह है कि नगा पहाड़ी में डीमापुर मौजा, जिसमें आदिमजाति के लोगों का निवास नहीं है, वह नगा पहाड़ी की जिला परिषद् के क्षेत्राधिकार के बाहर हो।

*__अध्यक्षः__ श्री चालिहा अपना संशोधन पेश करेंगे और इस बात को स्पष्ट करेंगे।

श्री कुलधर चालिहा: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 5 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 331 में भाग 1 के मद 3 में 'Naga Hills District' शब्दों के पश्चात् 'except the mauza of Dimapur' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

श्रीमान, मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 5 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 331 में से 'but including so much of the area comprised within the municipality of Shillong as formed part of the Khasi-State of Myelliem' (किन्तु शिलांग नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्रों की, जितना कि मिललैम खासी राज्य का भाग था, सम्मिलित करके) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

श्रीमान्, सर्वप्रथम मैं डीमापुर के मौजे को लूंगा। उसका इतिहास बताने में मैं कुछ अधिक समय लूंगा और मैं सभा से धैर्यपूर्वक सुनने के लिये निवेदन करूंगा। यह कहा जाता है कि यह देश, जिसको ब्रह्मपुत्र की घाटी भी कहा जाता है, कछारियों ने ईसा से 3000 वर्ष पूर्व जीत लिया था और अभी कुछ समय पूर्व तक वह उनके अधिकार में रहा। इसका निर्देश आपको गेट कृत आसाम के इतिहास के 247 से 249 पृष्ठों में मिलेगा।

"ऐसा प्रतीत होता है कि तेरहवीं शताब्दि में कछारी राज्य का ब्रह्मपुत्र के दक्षिणी किनारे किनारे डिक्कू से कलंग तक या उसके परे तक विस्तार हुआ और उसमें धानसिरी की घाटी और वह क्षेत्र भी आ गया, जो अब उत्तरी कछार का इलाका है...। इस शताब्दी के अन्त में, यह कहा जाता है कि डिक्कू नदी के पूर्व के सीमान्त कछारी क्षेत्र अहोमों के आक्रमण से पीछे हटे। सौ वर्ष तक यह नदी दोनों राष्ट्रों की सीमा रही और सन् 1490 तक उनमें परस्पर कोई बैर-विरोध नहीं हुआ और सन् 1490 में इस नदी के किनारे एक युद्ध हुआ। अहोम हारे और संधि करने के लिये विवश किये गये। पर उनकी शक्ति शीघ्रता से उत्तरोत्तर बढ़ती कई और 30 वर्ष के काल में ही, यद्यपि वे हार चुके थे, उन्होंने शनैः शनैः कछारी सीमा को धानसिरी नदी तक पीछे हटा दिया।"

सन् 1526 में जब फिर युद्ध हुआ तो इस नदी का निकट भाग दो युद्ध क्षेत्रों का स्थान बना। पहले युद्ध में कछारी विजयी हुए, पर दूसरे युद्ध में उनकी करारी हार हुई 1531 में फिर विरोध बढ़ा और जो अब गोलाघाट का इलाका कहा जाता है, उसके दक्षिण में फिर आपस में मुठभेड़ हुई, जिसमें कछारी हारे और उनके राजा का भाई डेटचा मारा गया। विजय के पश्चात् अहोम आगे बढ़े और धानसिरी नदी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर गये और इस नदी के किनारे कछारियों की राजधानी डीमापुर तक घुस गये, जो गोलाघाट के पैंतालीस मील दक्षिण में है।

कछारियों का राजा खुनखारा गया और विजयी लोगों ने उसके सम्बन्धी डेटसुंग को उसके स्थान में गद्दी पर बैठा दिया।

"डिमापुर के खंडहर, जो अब भी वर्तमान हैं, यह सिद्ध करते हैं कि उस काल में कछारियों ने सभ्यता में जो उन्नति की थी, वह अहोमों की सभ्यता से बहुत अधिक बढ़ी चढ़ी थी। गृह निर्माण के लिये ईंटों के प्रयोग को अहोम लोग नहीं जानते थे और उनके घर शाल और बांस के बने हुए होते थे और मिट्टी चढ़ाई हुई दीवालें होती थीं। इसके विपरीत डीमापुर तीन ओर से लगभग दो मील लम्बी ईंट की दीवाल से घिरा हुआ था और उसकी चौथी ओर अर्थात् दक्षिण में धानसिरी नदी बहती थी। पूर्व की ओर ईंटों का एक दृढ़ सुन्दर द्वार था, जिसकी डाट नोकदार थी और दुहरे भारी दरवाजों के कब्जों के लिये पत्थर फंसे हुए थे। उसके दोनों ओर ठोस ईंटों की अष्टकोणीय मीनारें थीं और मुख्य केन्द्रीय द्वार तक के बीच के स्थान में सुन्दर ढली हुई ईंटों की दिखावटी खिड़कियां थीं।"

"उस घेरे के अन्दर एक मन्दिर और कदाचित हाट स्थान के खंडहर हैं, जिनमें ध्यान देने योग्य औसतन लगभग 12 फीट ऊंचे और 5 फीट घेरे के रेतीले पत्थर के गढ़े हुए स्तम्भों की दुहरी पंक्ति है। कुछ V आकार के आश्चर्यजनक स्तम्भ भी हैं, जो वास्तव में स्मारक हैं। डीमापुर में कई सुन्दर हौज हैं, जिनमें से दो तीन तीन सौ गज के वर्गाकार हैं।

सन् 1531 से पहले विश्व युद्ध तक डीमापुर का मौजा अहोम राजाओं के अधीन था और सिवसागर जिला अंग्रेजों के अधीन था, पर किसी तरह से मनीपुर का राजनैतिक अभिकर्त्ता अथवा कोहिमा का उपायुक्त किसी स्टेशन मास्टर से अप्रसन्न हो गया, जिससे उसके साथ विनम्रता का व्यवहार नहीं किया, चूंकि पहले दर्जे के डिब्बे में उसके लिये स्थान रक्षित नहीं किया गया था। और या कोई तार ठीक-ठीक रूप से प्राप्त नहीं किया गया था और इस कारण एक प्रतिनिधित्व किया गया और डीमापुर स्टेशन नागा पहाड़ी में समाविष्ट किया गया और सिवसागर जिले के इलाके गोलाघाट से उसे अलग कर दिया गया, जिसका वह अंग्रेजी राज तक में लगभग सौ वर्ष तक भाग रहा था। उन दिनों यथासंभव आसामियों को दमन करने का अंग्रेजों का उद्देश्य था क्योंकि उनमें राजनैतिक चेतना आ चुकी थी और उन दिनों वहां बड़े कुसमय का सामना करना पड़ा था। श्रीमान्, अपने जीवनारम्भ में मैं गोलाघाट का न्यायाधीश था और इस इलाके का आभार कुछ काल तक मुझ पर रहा और मैं जानता हूं कि उस स्थान में 20,000 लोग रहते हैं और उस भाग में एक भी नगा नहीं है।

श्रीमान्, अब वह एक समृद्धिशाली भाग है, जिसमें आपको आसामी, बंगाली, सिन्धी, पंजाबी, सिख, मारवाड़ी इत्यादि करोड़ों रुपये लगाकर व्यापार करते हुए मिलेंगे। पर क्या आप उनके भाग्य के बाबत जानते हैं? उनको अपने बिस्तर बोरिये

[श्री कुलधर चालिहा]

समेत 24 घंटे में निकाला जा सकता है, उनके व्यापार का सर्वनाश किया जा सकता है और वे फिर भी उसी क्षेत्र में समाविष्ट रहेंगे। कदाचित यह एक दुर्भाग्य की बात है, मसौदा-समिति इस बात पर ध्यान क्यों नहीं देती है। श्रीमान्, दैवयोग से आसाम के अपवर्जित क्षेत्र का मैं अध्यक्ष हूं तथा हरिपुर की अखिल भारीय अपवर्जित क्षेत्र का भी अध्यक्ष था और अपवर्जित क्षेत्रों के बारे में मुझे बहुत से लोगों से अधिक अच्छा ज्ञान है। अपवर्जित क्षेत्रसंघ आसाम का मैं एक दीर्घकाल तक अध्यक्ष रहा, अत: मैं अति विनम्र होकर यह कहता हूं कि डीमापुर मौजा का नगा पहाड़ी में सम्मिलित करना न्याय से विमुख होना है। यह कार्य इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि एक सभ्य समूह को, एक उन्न समुदाय को, एक उन्नत सम्प्रदाय को उन स्वायत्तशासी जिलों की दया पर छोड़ देना, जिसमें प्राचीन नियम तथा दण्ड-विधि और व्यवहार प्रक्रिया संहिता के प्राचीन तरीके हैं। यदि वे सुनने का कष्ट करें, तो मैं यह निवेदन करता हूं कि वे हमारे इस तुच्छ सुझाव को स्वीकार करें। वे बातें कर रहे हैं, मेरे कहने पर भी वे मेरे भाषण पर कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं; मुझे खेद है कि जो कुछ मैंने कहा है, उसको डॉ. अम्बेडकर बिल्कुल नहीं सुन रहे हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ माननीय सदस्य को उस समय तक रोक देना चाहिये, जब तक कि मसौदा-समिति के सदस्य उनकी बात पर ध्यान न दें।

*__अध्यक्ष:__ मैं अपने कर्तव्य को जानता हूं।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ मसौदा-समिति से मैं फिर यह कहना चाहता हूं कि मौजा डीमापुर में सभ्य मनुष्य निवास करते हैं, मद्रास से, बम्बई से, आसाम से बंगाल से, पंजाब से तथा अन्य प्रान्तों से आये हुए व्यक्ति और करोड़ों रुपया लगा चुके हैं और यदि इस क्षेत्र पर आदिम जाति क्षेत्र के समान किसी उपायुक्त द्वारा शासन किया जाता है, तो जो चाहे वह कर सकता है या स्वायत्तशासी परिषदों या प्रदेशों द्वारा शासन किया जाता है जिनमें, जैसा कि अब किया जा रहा है, सिवाय आदिमजाति के अन्य कोई सदस्य नहीं हो सकता है, तो इन लोगों का सर्वनाश हो जायेगा और उनको 24 घंटे में कुचला जा सकता है। अत: मसौदा-समिति से मैं निवेदन करता हूं कि वे इस बात पर कुछ ध्यान दें और डीमापुर मौजे को पृथक् कर दें। पहले विश्व युद्ध तक वह सिवसागर जिले के गोलाघाट इलाके में सम्मिलित था। वह नगा पहाड़ियों में कभी नहीं रहा। यहां मैं यह कहना चाहूंगा कि श्री गुहा वहां उस इलाके के पदाधिकारी थे, और वे डीमापुर मौजे के बाबत जानते हैं और यह भी जानते हैं कि वह गोलाघाट इलाके में है। मैं स्वयं वहां न्यायाधीश था और मैं उस भाग से भली भांति परिचित हूं। मैं निवेदन करता हूं कि आप इस संशोधन को स्वीकार करेंगे और गौरव तथा सम्मान की ओर ध्यान नहीं देंगे।

शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र के संबंध में मैं यह कहना चाहूंगा कि समस्त क्षेत्र में आसाम, बंगाल तथा अन्य क्षेत्रों के लोग निवास करते हैं। खासी आदिमजाति के लोग इतने उन्नत हो गये हैं कि उनमें विद्वान भी हैं, कॉलेजों के मुख्य शिक्षक तथा मंत्री हैं और यदि उन्हें आदिमजाति कहें, तो यह तो उनके साथ अन्याय है। आसाम में यहां सबसे अधिक साक्षरता है और इसलिये मैं समझता हूं कि मिललैम राज्य, जो शिलांग नगर क्षेत्र के अन्तर्गत है, उसे सारिणी के भाग 1 से अपवर्जित किया जाये। सभा की स्वीकृति के लिये मैं ये दोनों संशोधन प्रस्तुत करता हूं और मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति इन्हें स्वीकार करेगी।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ अध्यक्ष महोदय, मुझे यह विश्वास नहीं है कि मेरे माननीय डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन पेश किया है, उसका ठीक-ठीक अर्थ मैंने समझ लिया है या नहीं। पर मैं यह कहूंगा कि जो संशोधन उन्होंने आज प्रातःकाल पेश किया है, वह केवल एक धोखा है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ किस बात का धोखा?

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ अम्बेडकर इस संशोधन से यह बताना चाहते हैं कि शिलांग नगर क्षेत्र के किसी भाग को स्वायत्तशासी जिले में सम्मिलित करने के संबंध में उन्होंने अपने विचार बदल दिये हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैंने अपने विचार नहीं बदले हैं।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ जिस रूप में संशोधन की कंडिका (2) प्रस्तुत है, वह......।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ श्रीमान्, क्या मैं यह बता सकता हूं कि हम लोग इस विषय में कोई रुचि नहीं रखते हैं और किसी प्रकार के धोखे की कोई आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्षः__ धोखे का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि कंडिका बिल्कुल स्पष्ट है और वे शिलांग नगरक्षेत्र का अपवर्जन करना चाहते हैं, सिवाय उसके उस भाग के, जो मिललैम राज्य के अन्तर्गत था।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ परन्तु उसमें वह भाग सम्मिलित है, जो मिललैम राज्य का भाग है; यही तो मेरी कठिनाई है। वे शिलांग नगर और कटकक्षेत्र का अपवर्जन करते हैं, परन्तु उतने क्षेत्र को सम्मिलित करते हैं, जो शिलांग नगरक्षेत्र के अन्तर्गत है और मिललैम के खासी राज्य का भाग है।

*__अध्यक्षः__ कोई धोखा नहीं है। इसको वहां इतने शब्दों में कह दिया गया है। आप कहते हैं कि यह धोखा है, क्योंकि यहां इतने अधिक शब्दों में इसे स्पष्ट कहा गया है।

*श्री रोहिणी कुमार चौधरी: मैं समझ गया। यदि डॉ. अम्बेडकर धोखे का अभ्यास न करें, तो वे एक कुशल योद्धा नहीं होंगे। पर मैंने यह समझा कि कुछ माननीय सदस्यों को उन्होंने अपने परन्तुक में जो कुछ कहा है, उससे शायद वैसा ही भ्रम हो जाये, जैसा कि मुझे हुआ था।

इस परन्तुक में कुछ परन्तुकों को शिलांग नगर क्षेत्र के मिललैम भाग में प्रवृत्त होने से अपवर्जित करने का प्रयास किया गया है। मैं अभी यह सिद्ध करूंगा। कि ये अपवाद बहुत दूर तक नहीं जाते हैं। मेरी पहली प्रस्थापना यह है कि उनके संशोधन की कंडिका में आये हुए ये शब्द "किन्तु शिलांग के नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्रों को जितना कि मिललैम खासी राज्य का भाग था, सम्मिलित करके" अपमार्जित कर दिये जायें और इसके परिणामस्वरूप भाग 1 की सारिणी (1) जिसमें यह कहा गया है–"संयुक्त खासी जयन्तीया पहाड़ी जिला" उसके साथ "शिलांग के नगर और कटक क्षेत्र के सिवाय" शब्द जोड़ दिये जायें। मूल मसौदे में "शिलांग नगर को अपवर्जित करके खासी और जयंतीया पहाड़ी जिला" "शिलांग नगर" शब्द पर्याप्त रूप से व्यापक हैं; उसके अन्तर्गत शिलांग का समस्त नगर क्षेत्र तथा कटक क्षेत्र सम्मिलित था। यदि मूल मसौदा जैसा है, वैसा ही रहता, तो मुझे कोई आपत्ति न थी। अब मैं इन इन शब्दों को निकालना चाहता हूं और यह भी कि सारिणी में तद्नुसार संशोधन किया जाये और यह स्पष्ट कह दिया जाये–"शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र को छोड़कर संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिला।"

आइये, हम यह देखें कि इस परन्तुक के अधीन हमें क्या लाभ हैं। परन्तुक के अधीन डॉ. अम्बेडकर ने कंडिका (3) की उप-कंडिका (1) के खंड (ङ) और (च) को प्रवर्तन से पृथक् कर दिया है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: आप अब उसका अध्ययन कर रहे हैं?

*श्री रोहिणी कुमार चौधरी: कंडिका 3 की उप-कंडिका (1) के खंड (ङ) में कहा गया है: "ग्राम या नगर समितियों या परिषदों की स्थापना और उनकी शक्तियां"। यहां तक तो ठीक है। इस खंड के निकालने से शिलांग नगर क्षेत्र में जहां तक कि उसमें मिललैम राज्य समाविष्ट है, ग्राम या नगर समितियां स्थापित करने का प्रश्न नहीं पैदा होगा। पर इससे कोई अधिक लाभ नहीं; उससे केवल एक भ्रम का निराकरण हो जायेगा, ज्योकि अन्यथा उत्पन्न होता। खंड (च) में कहा गया है: "ग्राम या नगर प्रशासन से सम्बन्ध कोई अन्य विषय, जिनके अन्तर्गत ग्राम या नगर आरक्षी और लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता भी है।" यह भी जहां तक हैं, वहाँ तक ठीक हैं। क्योंकि यदि ये खंड (ङ) और (च) पवृत्त रहते, जो उसका आशय यह होता कि शिलांग नगर क्षेत्र के अन्तर्गत अर्थात् आसाम की राजधानी में आसाम आरक्षी के अतिरिक्त एक और आरक्षी होती। वह नगर आरक्षी होती

या ग्राम आरक्षी होती और लोक-स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के लिये एक और प्रबन्ध होता, जिसका वास्तव में स्वायत्तशासी जिला पालन नहीं कर सकता था। पर कंडिका 3 के अन्य उपबन्ध प्रवृत्त होंगे, अर्थात् भूमि का बांट, उस पर स्वामित्व या उसका प्रयोग, किसी वन का प्रबन्ध, सरदारों की नियुक्ति या उत्तराधिकार इत्यादि इत्यादि के उपबन्ध। आइये हम यह देखें कि इस संशोधन से और किन-किन बातों से छुटकारा मिलता है।

इसके पश्चात् कंडिका 6 से छुटकारा है। कंडिका 6 में कहा गया है कि स्वायत्तशासी जिले की जिला परिषद् प्राथमिक विद्यालयों, औषधालयों, बाजारों, नौघाट, मीनक्षेत्र, सड़कों और जलपथों की स्थापना, निर्माण और प्रबन्ध कर सकेगी। क्या मैं डॉक्टर अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि इस संशोधन का क्या अर्थ है? मिललैम राज्य में समाविष्ट शिलांग के नगर क्षेत्र में मीनक्षेत्र कहां है? मीनक्षेत्र और सड़कें आसाम सरकार की है? इस कंडिका के वर्जन से किसको किस प्रकार का लाभ है? यह पूर्णतया निर्रथक है।

इसके पश्चात् कंडिका 8 की उप-कंडिका (4) से छुटकारा दिया गया है। कंडिका 8 की उप-कंडिका (4) में यह कहा गया है कि उप-कंडिका (2) और (3) में उल्लिखित करों में से किसी के उदग्रहण और संग्रह को उपबन्धित करने के लिये यथास्थिति प्रादेशिक परिषद् या जिला-परिषद् विनियम बना सकेगी। यह केवल किसी कर के उदग्रहण पर लागू होता है। ये वे खंड हैं, जिनको उन्होंने शिलांग नगर के उस भाग में प्रवृत्त होने से वर्जित कर दिया है, जो मिललैम राज्य के अन्तर्गत है।

***अध्यक्षः** श्री चौधरी, शायद आपने यह ध्यान नहीं दिया कि डॉ. अम्बेडकर ने दो नई कंडिका 4 और 5 और प्रविष्ट कर दी हैं।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ "परन्तु कंडिका 3 की उप-कंडिका 1 के खंड (ङ) और (च) के प्रयोजनों के लिये......।

***अध्यक्षः** उसके बाद उन्होंने कंडिका 4 और 5 प्रविष्ट की हैं।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ वे इस संशोधन में नहीं हैं।

***अध्यक्षः** अपना संशोधन पेश करते समय उन्होंने इन कंडिकाओं को प्रविष्ट कर दिया था।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरीः__ मुझे हर्ष है कि उन्होंने कंडिकायें (4) और (5) प्रविष्ट कर दी हैं, जो स्वायत्तशासी जिले में न्याय प्रशासन के संबंध में हैं। मुझे खुशी है कि ये खंड प्रवृत्त नहीं होंगे और जैसी स्थिति थी, वैसी ही रखी गई है। आसाम की उच्च न्यायालय को शिलांग नगर पालिका पर पूरा-पूरा अधिकार

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

है। वहां की न्यायपालिका एक साधारण न्यायपालिका है, जैसी कि अन्य प्रान्तों में है। पर उन्होंने जिस कंडिका को वर्जित नहीं किया है, वह कंडिका 10 है, जो मेरी सम्मति में इन सब कंडिकाओं से अधिक आपत्तिजनक है। कंडिका 10 में कहा गया है कि स्वायत्तशासी जिले की जिला परिषद् उस जिले में ऐसे लोगों की, जो उसमें निवास करने वाली आदिम जातियों से भिन्न हैं, साहूकारी और व्यापार के विनियमन और नियंत्रण के लिये विनियम बना सकेगी। राज्यों में व्यापारिक संस्थायें तथा बैंक हैं और जिला परिषद् की ऐसी स्थिति होगी कि वह उसके कार्यों का विनियमन कर सके और यह भी कि यह विनियम यह विनिधान कर सकता है कि अनुज्ञप्ति प्राप्त व्यक्तियों के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति साहूकारी नहीं कर सकता है। सामान्यतया आसाम का साहूकारों का अधिनियम शिलांग के नगरक्षेत्र पर लागू होगा, पर इस कंडिका के कारण आसाम का साहूकारों का अधिनियम प्रवृत्त नहीं हो सकेगा और जिला परिषद् द्वारा एक और साहूकारों का अधिनियम पुरःस्थापित किया जा सकता है। कंडिका 10 के खंड (घ) में कहा गया है:

"कोई व्यक्ति, जो जिले में निवास करने वाली अनुसूचित आदिमजातियों में का नहीं है, जिला परिषद् द्वारा इसलिये दी गई अनुज्ञप्ति के बिना किसी वस्तु में थोक या फुटकर कारबार न कर सकेगा।"

इस संशोधन के बाद भी यह प्रवृत्त रहेगा।

शिलांग नगरक्षेत्र का दो तिहाई मिललैम राज्य का है और यदि यह दो तिहाई ले लिया जाता है, तो नगर का एक बहुत ही छोटा-सा भाग शेष रहता है। कटक क्षेत्र रह जायेगा, जिसमें न्यूनाधिक रूप में मनुष्य अस्थायी रूप में निवास करते हैं और जो पहले शिलांग का ब्रिटिश भाग कहा जाता था, वह रह जायेगा, जिसमें सचिवालय तथा अन्य कार्यालयों के भवन और कुछ दुकानों सहित गोहाटी सड़क का कुछ भाग है। यदि हम मिललैम राज्य के भाग को निकाल दें, तो शिलांग नगरक्षेत्र में केवल यही रह जायेगा। जो लोग खासी नहीं हैं, उनमें से अधिकांश जो कि सरकारी कार्यालयों में काम कर रहे थे और जो वहां कारबार कर रहे हैं, मिललैम राज्य में रहते हैं। ये सब लोग उस लाभ का उपभोग करेंगे, जिसका अन्य लोग उपभोग करते हैं। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या सभा को यह स्थिति स्वीकार्य है कि स्वयं उसी नगर में, जिसके एक बड़े भाग में खासी जाति से भिन्न लोग रह रहे हैं, जिनको वहां अपनी रोजी कमाने के लिये जाने को विवश होना पड़ा है, उन लोगों को उन लाभों से वंचित रखा जाये, जिसका नगर के अन्य भाग में रहने वाले लोग उपभोग करते हैं? मुझे खेद है कि ऐसे विषय में सभा को जो रुचि दिखानी चाहिये, वह नहीं दिखा रही है। उन लोगों को जो अपने व्यवसाय के कारण वहां रहने के लिये विवश हैं, जो आसाम की राजधानी शिलांग होने के कारण वहां रह रहे हैं, क्यों साधारण सुविधाओं से वंचित रखा

जाये। अब भी राजधानी को उसके मूल स्थान गोहाटी में ले जाने के लिये कोलाहल हो रहा है। शिलांग में वे बिना उपआयुक्त की अनुज्ञा से संपति अर्जन नहीं कर सकते हैं और उनको उस नगर के एक तिहाई भाग में ही रहना पड़ेगा और इस उपबन्ध के कारण वे बाहर की कोई भूमि नहीं खरीद सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति भूमि खरीदना चाहता है, तो वह सरकार की अनुज्ञा पर निर्भर है और शायद अनुज्ञा न भी मिले। इसका कोई उपचार नहीं है। आदिमजातियों से खरीदने की बात दूर रही यदि श्री गुहा कोई जमीन मुझसे खरीदना चाहें, तो बिना सरकार की अनुज्ञा से वे भी नहीं खरीद सकते हैं। यदि संपत्ति विक्रय की अनुज्ञा देने का अधिकार जिला परिषद् को दे दिया गया, तो स्थिति और भी अधिक खराब हो जायेगी।

अतः इन सब कठिनाइयों का निराकरण करने के लिये मैं सभा के प्रत्येक सदस्य से निवेदन करता हूं कि वह हमारी स्थिति पर विचार करे कि वे हमारी संपत्ति के संबंध में क्या हमको इन्हीं निर्योग्यताओं के अधीन रखना चाहते हैं, जो कि इस संविधान में दी हुई हैं। ऐसी निर्योग्यतायें भारत में और किसी स्थान में नहीं हैं और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से वे और भी बढ़ जायेंगी। यदि वस्तुस्थिति ऐसी ही रहती है, जैसी अब है कि खासी राज्य बिना शिलांग के होगा, तब तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। सामान्य नागरिकों के अधिकार छीनने के लिये डॉ. अम्बेडकर इस उपबंध को पुरःस्थापित करने के लिये क्यों उत्सुक हैं, यह बात समझ में नहीं आती है। उनपर जो जादू डाला गया है, वह जितना मैं देख सकता हूं, उससे भी अधिक है। मेरी समझ में यह नहीं आता है कि उन जैसा व्यक्ति इस प्रकार साधारण लोगों के अधिकारों को सीमाबद्ध करने का क्यों प्रयास कर रहा है उनसे मुझे बड़ा असन्तोष हो रहा है। वे एक ऐसी स्थिति तक पहुंच चुके हैं, जहां से वे किसी अनाथ का उपहास कर सकते हैं, चाहे वे उसे ओलीवर ट्विस्ट कहें या डेविड कोपरफील्ड कहें। वे एक ऐसी स्थिति तक पहुंच चुके हैं। कि वे एक भूखे अनाथ का उपहास कर सकते हैं। पर मैं आशा करता हूं कि वे ओलीवर ट्विस्ट और डेविड कोपरफील्ड को भूल जायेंगे और बर्कीस को याद करने का प्रयत्न करेंगे। बर्कीस की इच्छा होने दीजिये—मैं बर्कीस अम्बेडकर से निवेदन करूंगा कि चाहे उन पर जादू तथा इन्द्रजाल का कितना ही प्रभाव क्यों न हो, पर सभा के समक्ष जो युक्तियुक्त प्रस्थापना रखी जाये, उसे वे स्वीकार करें।

***अध्यक्षः** मैं सुझाव रखता हूं कि इस विषय में अपना मत प्रकट कर आसाम के मुख्य मंत्री सभा की सहायता करेंगे।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** श्रीमान, जो संशोधन सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं, उन पर बोलने का जो अवसर आपने मुझे दिया है, उसके लिये में कृतक्ष हूं।

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

अंशत: अपवर्जित क्षेत्रों और अपवर्जित में पुराने अन्तर को अनाये रखने का जो डॉ. कुंजरू का संशोधन है उसका मैं विरोध करता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** हमें श्री बारदोलोई का भाषण सुनाई नहीं देता है।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:** मैं समझता हूं कि मुझे बहुत जोर से बोलना चाहिये। मैं यह कह रहा था कि डॉ. कुंजरू का संशोधन उन पुराने अन्तरों को बनाये रखने का प्रयास करता है, जो प्रान्त के अंशत: अपवर्जित क्षेत्रों और पूर्णत: अपवर्जित क्षेत्रों में थे। पूर्णत: अपवर्जित क्षेत्र राज्यपाल के स्वविवेक के अधीन थे और अंशत: अपवर्जित क्षेत्र उसके व्यक्तिगत निर्णय के अधीन थे। सन् 1947 से ये क्षेत्र दोनों अंशत: अपवर्जित क्षेत्र और पूर्णत: अपवर्जित क्षेत्र प्रान्तीय सरकार के प्रशासन के अधीन हैं और मैं इस समय आपको यह भी बता दूं कि इस काल में ऐसी कोई बात नहीं हुई, जिसके आधार पर यह सिद्ध किया जा सके कि प्रशासन बुरा हो गया है, या ऐसी अन्य कोई बात हुई है। अत: मैं जो कुछ बताना चाहता हूं, वह यह है कि उस सामान्य ढांचे में परिवर्तन करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, जो राज्यपाल की शक्तियों के सम्बन्ध में इस संविधान द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

***पं. हृदयदाथ कुंजरू:** क्या मैं श्री बारदोलोई से यह पूछ सकता हूं कि क्या वे यह अनुभव करते हैं कि मेरा संशोधन सन् 1947 में संशोधित किये हुए रूप में भारत शासन अधिनियम सन् 1935 की धारा 92 के उपबन्धों की लगभग प्रतिलिपि ही है?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:** मैं यह जानता हूं। पर मैं यह बताना चाहता हूं। कि इस अन्तर को बनाये रखने की षष्ठ अनुसूची के स्वीकार हो जाने के पश्चात् कोई भी आवश्यकता नहीं है। इस बात की ओर मैं संकेत करना चाहता हूं। सर्वप्रथम 1947 से पूर्व भी अंशत: अथवा पूर्णत: अपवर्जित क्षेत्र दोनों ही का पूरा का पूरा प्रशासन कुछ विनियमों के अधीन किया जाता था, जो राज्यपाल के नाम से प्रख्यापित होते थे और राज्यपाल या जिला पदाधिकारी इन क्षेत्रों का प्रशासन देखते थे। परन्तु वास्तव में जो कुछ यह जिला पदाधिकारी करते थे वह यह था कि ग्राम न्यायालय के प्राधिकार को लगभग सभी कार्यों में वे स्वीकार कर लेते थे। केवल प्रशासन क्षेत्र में ही नहीं वरन् न्याय प्रशासन के क्षेत्र में भी स्वीकार करते थे। वर्तमान षष्ठ अनुसूची में केवल इसी बात को कुछ सीमा तक विधि का रूप दिया गया है। उस समय तक जो कुछ होता था, उसकी किसी सीमा तक विधि का रूप देने का इसमें प्रयास किया गया है और उस सीमा के परे समस्त क्षेत्रों के लिये, दोनों प्रशासन क्षेत्र में तथा न्याय क्षेत्र में भी, प्रशासन इस संविधान के सामान्य क्रियाकरण के अनुसार कर दिया है। समस्त प्रकार्यों में कुछ सीमा के बाद प्रशासन शेष सरकार को दे दिया गया है। अत: श्रीमान, मैं यह

नहीं समझ सकता हूं कि उन छः जिलों में भी, जिनको अब षष्ठ अनुसूची में रख दिया गया है, यदि हम आदिम हम आदिम जातियों की दो श्रेणीयों रखेंगे, तो वस्तुस्थिति में कैसे सुधार हो जायेगा।

श्री चालिहा ने जो संशोधन प्रस्तुत किया है, उससे हमें पूर्ण सहानुभूति है। आदिम जाति क्षेत्रों की परामर्शदात्री उप-समिति ने इस विषय में अनुसंधान किया है। यह बिल्कुल सत्य है कि प्रशासनीय कारणवश 35 या 40 वर्ष पूर्व—मेरे विचार से 35 वर्ष ही अधिक ठीक है—डीमापुर का क्षेत्र नगा पहाड़ी प्रशासन के अधीन लाया गया था। गोलाघाट इलाके के सारापठान और बोरपठान मौजे इस कारण अंशतः अपवर्जित क्षेत्र के अन्तर्गत लाये गये थे कि यह भाग—डीमापुर का मौजा सामान्य प्रशासन से बिल्कुल पृथक् हो गया था। अतः उन्हें उसे नगा पहाड़ी के प्रशासन के साथ रखना पड़ा। हमें इस क्षेत्र के निवासियों से पूछताछ करने का अवसर मिला था और वे उसे नगा स्वायत्तशासी जिले में सम्मिलित करने के कट्टर विरोधी थे। उनकी आकांक्षाओं से हम पूर्ण सहानुभूति रखते हैं—इस बात पर विचार करते हुए कि किसी समय यह स्थान कछारियों के एक बड़े साम्राज्य की राजधानी था। पर इसका उपचार पहले से ही संविधान में कर दिया गया है और मैं समझता हूं कि हमारे लिये अब यह संभव नहीं है कि हम खास-खास मौजों के मामले को एक-एक करके उठायें। ऐसे मामलों को सुलझाने के लिये संविधान केवल सामान्य अनुच्छेद या उपबन्धों की व्यवस्था कर सकता है। यह देख लिया गया होगा कि उपखंड (3) की कंडिका 1 के अधीन स्वायत्तशासी जिले के किसी भी क्षेत्र को घटाया जा सकता है। मैं नहीं जानता हूं कि 'घटाना' शब्द ऐसे मामलों पर लागू होगा या नहीं और इस शब्द के स्थान में 'अपवर्जन' शब्द रखने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी (जिससे शायद प्रयोजन की पूर्ति और भी अच्छे प्रकार से हो जायेगी) और यदि आवश्यक हो, तो तृतीय पठन में यह ठीक कर लिया जाये।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यदि आप श्री चालिहा का संशोधन स्वीकार कर लें, तो क्या हानि होगी?

*__माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:__ कोई हानि नहीं है। पर मौजा डीमापुर कह कर सीमा नियत करना कठिन होगा। हमें सीमा की परिभाषा करनी होगी।

*__श्री कुलधर चालिहा:__ सीमा तो है। आप सिबसागर जिले के पुराने मानचित्र को देख सकते हैं, जो भारत सरकार, भू-परिमाप विभाग तथा आसाम तक से प्राप्त किया जा सकता है।

*__माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:__ पर यह एक ऐसा विषय है, जिस पर विवाद हो सकता है। नगा यह कहेंगे कि उनका जिला वहां तक होगा और डीमापुर के लोग यह कहेंगे कि उनकी सीमा वहां तक पहुंचेगी। इस विषय का निबटारा षष्ठ अनुसूची के उपबन्धों के अधीन किया जा सकता है, जिसको हम स्वीकार

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

कर चुके हैं। अतः (यद्यपि इस संशोधन के उद्देश्य से मुझे पूर्ण सहानुभूति है) यह आवश्यक नहीं है कि कई स्थानों के विवरण में जाया जाये, जिनके लिये इस प्रकार का सीमा विभाजन वांछनीय होगा।

इसके पश्चात् एक और उपबन्ध 16क है, जिसमें यह कहा गया है कि किसी भी क्षेत्र में रहने वाला व्यक्ति, चाहे वह स्वायत्तशासी जिले में ही हो, मताधिकार के प्रयोजनार्थ आदिम जाति निर्वाचन क्षेत्र की बजाय साधारण निर्वाचन क्षेत्र में मताधिकार का प्रयोग कर सकेगा। उपबन्ध 16क, जिसे हम अभी पारित कर चुके हैं, उस के अधीन ऐसा करना भी संभव है।

इसके बाद श्री चौधरी के संशोधन के सम्बन्ध में मुझे यह विश्वास नहीं है कि वह संशोधन ही था, पर उन्होंने कुछ बातें कहीं थीं। शिलांग नगर की वास्तविक स्थिति समझना हमारे लिये बहुत आवश्यक है। यह बात सत्य है कि उसका आधे से अधिक क्षेत्र मिललैम राज्य में सम्मिलित है। हमारे सामने इस समय जो प्रश्न है, वह यह है कि जिला परिषद् को मय अपनी शक्तियों के किस प्रकार बनाये रखा जाये और साथ ही साथ शिलांग नगर के प्रशासन के साथ उसका सम्बन्ध बना रहे। प्रश्न यह है। जैसा कि मैं समझ पाया हूं, मसौदा-समिति का विचार यह है कि नगरपालिका और साधारण प्रशासन पर तो प्रान्तीय सरकार का अथवा प्रान्तीय सरकार द्वारा सृजित किसी प्रधिकारी का अधिकार रहे, परन्तु इस क्षेत्र की आदिम जाति के लोगों का जिला परिषद् में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार उनसे न छिने। मेरा विश्वास है कि हमारे समक्ष यह जो संशोधन प्रस्तुत किया गया है, वह इसी विचार से प्रस्तुत किया गया है कि सर्वप्रथम शिलांग क्षेत्र में समस्त नगरक्षेत्र को सम्मिलित करते हुए समान रूप का प्रशासन होने दिया जाये और इसके साथ ही साथ आदिम जाति के लोगों के जिला परिषद् में अपना प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाये। यह देखना होगा कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित नया संशोधन उन अधिकारों और शक्तियों को जिला परिषद् के प्रवर्तन में लाने से अपवर्जित करने के लिये है, जिनको नगरपालिका के प्रशासन के रूप में सरकार के प्राधिकार के अधीन नगरपालिका प्रयोग में ला सकेगी और ये सब शक्तियां दी हुई हैं। दूसरी बात यह है कि उनके न्यायालय में न्याय संबंधी अधिकारों को भी कंडिका 4 और 5 में मान लिया गया है, जो न्याय संबंधी विषय के संबंध में हैं।

***एक माननीय सदस्यः** भूमि का बंटवारा?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** भूमि का बंटवारा तो वहां बहुत थोड़ा सा है। सब भूमि पर अब लोगों का अधिकार है और खासी राज्यों के आसाम में विलीन हो जाने से यह जिला परिषद् के प्रशासन के अधीन हो जाता है, इससे भूमि अंर्जन करने के सरकार को सब अधिकार होंगे।

***अध्यक्षः** साहूकारी संबंधी कंडिका 10 के बारे में क्या है?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** यदि स्वायत्तशासी जिला बना रहता है, तब तो कोई भी कठिनाई नहीं है। तीन चौथाई लोगों का निर्वाचन होगा। वे किसी भी नये विनियम को ला सकते हैं और उस कंडिका के उपबन्धों के अनुसार सारा का सारा पुराना प्रशासन रहेगा। जब हम निश्चित रूप में यह जानते हैं कि ये राज्य क्षेत्र आसाम के जिलों में विलीन किये जा रहे हैं, तो मैं नहीं समझता हूं, कोई गलत बात हो सकती है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** क्या मुझे व्याख्या करने की अनुज्ञा प्राप्त हो सकती है? डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के अनुसार कंडिका 10 शिलांग नगरक्षेत्र के उस भाग पर लागू होगी, जो मिललैम राज्य के अधीन है, क्योंकि जहां तक कंडिका 10 का संबंध है, नगरक्षेत्र का वह भाग जिला परिषद् के अधीन होगा और कंडिका 10 के अधीन जिला परिषद् यह विनिधान कर सकेगी कि परिषद् द्वारा मंजूर की गई अनुज्ञप्ति के बिना कोई व्यक्ति, जो उस जिले में निवास करने वाली अनुसूचित आदिम जाति का सदस्य नहीं है, वह थोक या फुटकर कारबार नहीं कर सकेगा। क्या आसाम के मुख्य मंत्री यह चाहते हैं कि यह खंड शिलांग नगरक्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों पर प्रयुक्त हो, जिसकी भूमि मिललैम राज्य की है और क्या वे यह चाहते हैं कि डीमापुर, जिसमें आदिम जाति का एक भी व्यक्ति नहीं है, वह भी इस विनियम के अधीन हो?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** डीमापुर का प्रश्न नहीं उठाना चाहिये, क्योंकि यह सीधी सी बात है कि वह षष्ठ अनुसूची से बिल्कुल ही पृथक् हो जायेगा और यदि वह उसके अन्तर्गत रहता है, तो मेरा विचार है कि उसका शासन कंडिका 10 के द्वारा होगा। कंडिका 10 में क्या कहा गया है, इसको समझना आवश्यक है। जो निवासी आदिम जाति का नहीं है, उसके लिये अनुज्ञप्ति प्राप्त करने के भाग को आपने पढ़ा है। इसके विरुद्ध ये परिमाण हैं:

> "इस कंडिका के अधीन कोई भी ऐसा विनियम नहीं बनाया जायेगा, जो जिला परिषद् की समस्त सदस्य संख्या के तीन चौथाई से अन्यून बहुमत द्वारा पारित न किया गया हो।"

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** तीन चौथाई का तो क्या कहना। नगरपालिका में एक भी ऐसा व्यक्ति न होगा, जो आदिम जाति का न हो।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोईः** यह तो केवल तीन चौथाई के सम्बन्ध से ही लागू होगा। उनमें से तीन चौथाई का निर्वाचन होगा और एक चौथाई का नामनिर्देशन और ये नामनिर्देशित व्यक्ति कोई भी हो सकते हैं। यह कहीं नहीं कहा गया है कि यह लोग वे नहीं हो सकते हैं, जो आदिम जाति के न हों। इसके अतिरिक्त एक उपबन्ध यह भी है:

[माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई]

"ऐसे किन्हीं विनियमों के अधीन यह क्षमता न होगी कि जो साहूकार या व्यापारी ऐसे विनियमों के बनने के समय से पूर्व जिले के अन्दर व्यापार करता रहा है, उसको अनुज्ञप्ति देना अस्वीकृत कर दिया जाये।"

कहने का आशय यह है कि वह पुराने मामलों पर लागू नहीं होगा। वह नये मामलों पर लागू होगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** एक सूचना सम्बन्धी प्रश्न है, क्या मैं माननीय सदस्य से यह पूछ सकता हूं कि क्या कोई गैर आदिमजाति व्यक्ति स्वायतशासी परिषद् का सदस्य हो सकता है?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:** कोई रुकावट नहीं है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** है।

***एक माननीय सदस्य:** क्या यह संविधान-सभा है, अथवा आसाम-सभा?

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि मुख्य मंत्री को अपनी रीति के अनुसार बोलने दिया जाये।

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:** इस कंडिका के अधीन निर्हित सब विनियम राजयपाल के पास भेजे जायेंगे और उनकी अनुमति प्राप्त की जायेगी। यदि कोई विनियम हानिकारक होगा, तो राज्यपाल उस पर अनुमति नहीं दे सकता है। पर यह सोचा गया है कि उप-कंडिका 10 फिर भी कड़ाई के साथ क्रियान्वित होगी, व्यक्तिगत रूप से तो मैं उपखंड (छ) के अपमार्जन से सहमत हो सकता हूं, पर इस तथ्य के कारण कि पहले से ही इस बात को देखने के लिये कि इस उपखंड के अधीन कोई अन्याय न हो सके, इतने परिमाण हैं कि मैं उसका अपमार्जन आवश्यक नहीं समझता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या श्री बारदोलोई से मैं एक प्रश्न पूछ सकता हूं? श्रीमान, मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या आसाम में आदिमजातियों के सम्बन्ध की समिति ने, जिसके श्री बारदोलोई अध्यक्ष थे, इस बात की ओर संकेत किया है कि शिलोंग नगरक्षेत्र की सीमाओं में रहने वाले आदिमजाति के लोगों पर वर्तमान प्रणाली के कारण कोई अन्याय हुआ है या नहीं?

***माननीय श्री गोपीनाथ बारदोलोई:** मुझे विश्वास है कि कोई भी अन्याय नहीं हुआ। बल्कि आसाम सरकार के हाथ में जो वित्तीय व्यवस्था है, उसकी सहायता से जो कुछ किया जा सकता है, वह सब कुछ करने का प्रयास कर रही है।

मुझे यह भी ज्ञात है कि जिला परिषदों द्वारा शक्तियों के किसी भी दुरुपयोगों को रोकने के लिये पर्याप्त परिमाण हैं।

*__अध्यक्षः__ आसाम के मुख्य मंत्री ने जो कुछ सुझाव दिया है, वह यह है कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से कोई आपत्ति नहीं होगी, यदि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये कंडिका 19 (2) के परन्तुक में कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) के खंड (छ) को भी शामिल कर लिया जाये। उसमें यह शक्ति दी गई है कि कोई व्यक्ति, जो जिले में निवास करने वाली अनुसूचित आदिमजाति का नहीं है, किसी वस्तु में थोक या फुटकर कारबार न कर सकेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, मैंने यह नहीं समझा था कि कंडिका 19 का नया मूल पाठ रखने वाला मेरा संशोधन संख्या 331 कोई इस प्रकार की कठिनाई उत्पन्न करेगा, जो मुझे अब दिखाई देती है। अतः मैंने कंडिका 19 में निहित उपबन्धों की व्याख्या करने में अधिक समय व्यतीत करना आवश्यक नहीं समझा। परन्तु अब चूंकि इस विषय पर एक उग्र रूप का इतना विवाद हो चुका है कि इस नई संशोधित कंडिका 19 में निहित उपबन्धों की व्याख्या करने के लिये मैं बाध्य हो गया हूं।

विवाद मुख्यतया कंडिका 19 की उप-कंडिका (2) पर हुआ है। मैं यह बताना चाहूंगा कि इसका क्या आशय है। इसका यह आशय है कि जहां तक संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले का सम्बन्ध है, जिसका सारिणी के भाग 1 की प्रविष्टि 1 के रूप में उल्लेख किया गया है, शिलांग नगरक्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित क्षेत्र का वह भाग जो मिललैम के खासी राज्य का भाग है, वह संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले का अंग होगा। इसका अर्थ यह है कि मिललैम राज्य का भाग, जो शिलांग में सम्मिलित है, वह संयुक्त खासी जयन्तीया पहाड़ी जिले का भाग होगा। यह अनुभव किया गया है कि मिललैम राज्य का यह भाग कंडिका 19 के नये उपबन्धों के अधीन अब वास्तव में दो क्षेत्राधिकारों के अधीन है। वह शिलांग नगरपालिका के क्षेत्राधिकार के अधीन है, क्योंकि इस उपबन्ध से हम शिलांग नगरपालिका की सीमाओं में परिवर्तन नहीं कर रहे हैं। आसाम विधान-मंडल द्वारा पारित किये गये नगरपालिका अधिनियम द्वारा परिभाषित रूप में शिलांग नगरपालिका की सीमायें ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। इस अधिनियम के अनुसार मिललैम राज्य का यह विशेष भाग नगरक्षेत्र का भाग है। यह सोचा गया कि यह दुहरा क्षेत्राधिकार अर्थात् संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले का और नगरपालिका का, परस्पर विरोधी बन सकता है। इस विरोध का निराकरण करने के लिये मैंने उपखंड (2) में एक परन्तुक जोड़ दिया है। इस परन्तुक का यह प्रभाव है कि परन्तुक में उल्लिखित प्रयोजनों के लिये संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले की जिला परिषद् का क्षेत्राधिकार रद्द कर दिया गया है और परन्तुक में उल्लिखित प्रयोजनों के लिये नगर पालिका का क्षेत्राधिकार जितना निर्बन्धित किया गया है उतना जिला परिषद् का क्षेत्राधिकार इस क्षेत्र पर बना रहेगा। परन्तुक इस विचार से रखा गया है कि क्षेत्राधिकार में संघर्ष न हो। इसके विपरीत कुछ लोगों ने यह कहा है कि मिललैम

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

राज्य क्षेत्र को संयुक्त खासी जयन्तीया पहाड़ी जिले से पूर्णतया अपवर्जित कर दिया जाये और उसे शिलांग नगर क्षेत्र का अंग बना दिया जाये।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ जैसा कि अब है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं नहीं जानता हूं कि अब ऐसा है या नहीं। बात यह है कि जैसा उस ओर से किसी ने कहा था—मैं समझता हूं कि शायद मेरे मित्र श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने कहा था—वास्तव में नगर क्षेत्र का तीन चौथाई इस क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इस बात में रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि जहां तक विवाह विधि, उत्तराधिकार विधि तथा अन्य रीतिरिवाज का सम्बन्ध है, मिललैम राज्य के इस भाग में निवास करने वाले व्यक्ति समस्त जिले में समान विधि, समान रिवाज, समान विवाह विधि तथा संस्कारों का पालन करते हैं। अत: मान लीजिये कि इस क्षेत्र को संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिले से पूर्णतया अपवर्जित कर दिया जाता है, तो फल यह होगा कि ये लोग यद्यपि विवाह विधि, रिवाजों इत्यादि के पालन करने में मिललैम राज्य के शेष भाग के अपने भाइयों के समान हैं, पर वे एकदम उत्तराधिकार की समाान्य विधि, विवाह की सामान्य विधि तथा उन समस्त सामान्य विधि के अधीन हो जायेंगे, जिनको संसद बनायेगी या आसाम विधान-मण्डल बनायेगा। मैं नहीं समझता हूं कि कुछ लोगों को, जो कुछ विषयों में समान रीति का पालन करते हैं, इस प्रकार पृथक् करना ठीक है। कुछ लोग तो अपनी आदिमजाति सम्बन्धी स्वायत्तता को प्राप्त करेंगे और कुछ लोग उस सामान्य विधि के अधीन रहेंगे, जसके अधीन शेष जनता है। इस कारण मसौदा-समिति ने समझा कि उपखंड (2) में दिये हुए उपबन्ध और जो परन्तुक उसके साथ हैं, ये ही इस समस्या के ठीक हल हैं अर्थात् यह कि मिललैम राज्य का वह भाग, जो नगरक्षेत्र का भाग है, वह नगर क्षेत्र के अधीन रहे, और जिस प्रयोजन के लिये जिला परिषद् बनाई जा रही है, उसके लिये वह भाग जिला परिषद् के अधीन रहे। इसमें कोई संघर्ष नहीं है और यह उस मूल प्रयोजन की पूर्ति करता है कि एक समान श्रेणी के लोगों को उसी प्रकार की विधि और उसी प्रकार की प्रशासनीय पद्धति के अधीन रखना चाहिये, जो उन सबके लिये होनी चाहिये।

अब इस बात पर विवाद हो सकता है कि इस परन्तुक के अन्तर्गत जितने विषय आने चाहिये, क्या उन सब विषयों के लिये यह परन्तुक पर्याप्त रूप से व्यापक है अथवा बहुत संकीर्ण है। इसके बारे में अपना मत प्रकट करने के लिये मैं उद्यत नहीं हूं। इस विषय में दो मुख्य प्रतिनिधियों ने मसौदा-समिति को पथप्रदर्शित किया है, जिनको इस विषय का पर्याप्त ज्ञान है और इस विषय सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त हैं। ये दो प्रतिनिधि आसाम के मुख्य मन्त्री और उनके साथी रेवरेन्ड निकल्स राय है। यदि वे यह समझते हैं कि अन्य कुछ विषयों को सम्मिलित करना चाहिये तो मसौदा-समिति वास्तव में कोई आपत्ति नहीं करेगी, क्योंकि मसौदा-समिति का इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ क्या यह बात है कि गैर-आदिमजाति लोग, जो शिलांग में रह रहे हैं, वे इस विषय में कुछ नहीं कह सकते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ किस विषय में?

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ जिस विषय को आप अभी ले रहे थे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं इस बात को समझ नहीं सका। हमने जो कुछ किया है, वह यह है कि जो लोग इस भाग में निवास करते हैं, उनको दुहरे अधिकार प्राप्त हैं। शिलांग नगरपालिका के अधीन उन्हें अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार है और जिला परिषदों में अपने प्रतिनिधि चुनने का भी उन्हें अधिकार होगा। इसके परे क्षेत्राधिकार बिल्कुल पृथक् है। मैं समझता हूं कि जहां तक इस नई कंडिका 19 का सम्बन्ध है, अन्य और कोई बात नहीं है।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ एक सूचना सम्बन्धी प्रश्न है, जो सदस्य इस समय बोल रहे हैं, क्या उनके कहने का यह अभिप्राय है कि डीमापुर के वे लोग, जहां कि एक भी आदिमजाति का व्यक्ति नहीं है और शिलांग के लोग पूर्णतया रेवरेन्ड निकल्स राय की सम्मति पर निर्भर हैं?

*__अध्यक्ष:__ डीमापुर के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहीं कहा है। वे बारदोलोई द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रश्न को ले रहे हैं कि कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) का उपखंड (घ) इस परन्तुक में शामिल कर दिया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मुझे कोई आपत्ति नहीं है। हम इस विषय को उन्हीं पर छोड़ते हैं। यदि वे समझते हैं कि कुछ विषयों को शामिल किया जाये, तो हम क्यों आपत्ति करें? हम उनकी मंत्रणा के अनुसार कार्य कर रहे हैं।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ क्या एक प्रश्न सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के लिये मैं डॉ. अम्बेडकर से कुछ पूछ सकता हूं? क्या मसौदा-समिति या श्री बारदोलोई तथा रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकोल्स राय ने, जिन्होंने आदिमजाति क्षेत्र समितियों के प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर किये थे, कोई ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था, जिसमें शिलांग नगर क्षेत्र के अन्दर रहने वाले आदिमजाति के लोगों की स्थिति में परिवर्तन करने के लिये निवेदन किया गया हो?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ न तो मैंने उनके प्रमाणपत्रों पर आपत्ति की और न मैंने यह परीक्षण किया कि उन्होंने अपने आपको किसी ऐसे प्रतिनिधित्व से सुरक्षित कर लिया है या नहीं।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ मैं यह प्रश्न इस कारण कर रहा हूं कि मेरे माननीय मित्र ने आसाम के मुख्य मंत्री और रेवरेन्ड निकल्स राय के प्राधिकार का उल्लेख

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

किया था। इन दोनों सदस्यों ने समिति के उस प्रतिवेदन पर हस्ताक्षर किये हैं, जिसका मैंने उल्लेख किया था और उस समिति की यह राय है कि शिलांग नगरक्षेत्र की सीमा वही रहनी चाहिये, जो अब है और उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की स्थिति में परिवर्तन करने का वह कोई सुझाव नहीं रखती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** ऐसा उन्होंने किया होगा, पर वह प्रति-वेदन और अधिक परीक्षण के लिये किसी ऐसे प्रमाण के रूप में नहीं हो सकता है जो किसी स्वीकृत बात के विरुद्ध हो। जैसा कि मैंने कहा था, मसौदा समिति ने समझा कि यह एक ऐसा स्थानीय विषय है कि वे इस विषय के किसी मुख्य जानकार की मंत्रणा के बिना इस पर कार्रवाई नहीं कर सकते थे। हमने उनकी मंत्रणा ली और उसके अनुसार काम किया। यदि वे समझते हैं........।

***श्री कुलधर चालिहाः** डीमापुर में समस्त भारत के लोग रहते हैं।

***अध्यक्षः** डीमापुर के सम्बन्ध में कुछ कहने से कोई लाभ नहीं। डीमापुर के बाबत उन्होंने कुछ नहीं कहा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उसके बारे में मैंने अब तक कुछ नहीं कहा है। मैं इस बात पर आ रहा हूं, अब मैं स्वायत्तशासी जिले से कुछ क्षेत्रों के उपवर्जन पर आता हूं।

इस सम्बन्ध में मैं सभा को नये अनुच्छेद 16क की याद दिलाऊंगा, जिसको हमने अभी पारित किया है। मैं यह चाहूंगा कि आप उसे देखें। अनुच्छेद 16क को बनाते हुए दो प्रश्न उठाये गये थे। एक प्रश्न तत्कथित गारो पहाड़ी के दो मौजों के सम्बन्ध का था। उसके साथ-साथ मेरे मित्र श्री चालिहा द्वारा डीमापुर क्षेत्र का भी प्रश्न उठाया गया था और मैं समझता हूं कि मेरा यह कहना ठीक है कि उस सम्मेलन में वे उपस्थित थे। आसाम के तीन प्रतिनिधि श्री बारदोलोई, रेवरेन्ड निकोल्स राय और श्री चालिहा भी इस सम्मेलन में उपस्थित थे और इस बात पर विचार किया गया था कि गारो पहाड़ी के इन मौजों को और डीमापुर क्षेत्र को स्वायत्तशासी जिले से पृथक् किया जाये या नहीं। सम्मेलन में यह कहा गया था कि चूंकि इन मौजों के लोगों के जीवन में—उनके आर्थिक जीवन में और स्वायत्तशासी जिलों में रहने वाले लोगों के जीवन में घनिष्ट सम्बन्ध है, इसलिये स्वायत्तशासी जिलों से उनको पृथक् करना वांछनीय नहीं है। अतः यह कहा गया था कि यदि इन क्षेत्रों को अर्थात् गारो पहाड़ी के तीन मौजों में और डीमापुर के क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को केवल विधान-सभा में राजनैतिक प्रतिनिधित्व देने के लिये ही पृथक् कर दिया जाये, तो वह पर्याप्त होगा। मेरे मित्र श्री चालिहा ने यह निश्चित रूप से कहा था, जिन्होंने अब डीमापुर क्षेत्र के प्रश्न को खड़ा कर दिया है। अतः इन लोगों के निवेदन करने पर तथा आसाम के इन तीन प्रतिनिधियों के कहने पर कंडिका 16क जिस रूप में है, उस रूप में निर्मित की

गई थी। यदि उस समय वे इस बात से सहमत हो जाते कि इनको पूर्णतया पृथक् कर देना चाहिये और इनको स्वायत्तशासी क्षेत्र का अंग न बनाया जाये तो उनकी इच्छा का पालन करने में हमें कोई आपत्ति नहीं होती। अतः मसौदा समिति को उस काम के करने के लिये दोष देने से कोई लाभ नहीं, जिसके करने के लिये उसे मंत्रणा नहीं दी कई थी। कंडिका 16क में मसौदा समिति और श्री चालिहा सहित आसाम के तीनों प्रतिनिधियों के निश्चयों को साकार रूप दिया गया है और श्री चालिहा ने डीमापुर क्षेत्र के विषय को सर्वप्रथम उठाया था।

श्री कुलधर चालिहाः क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि मुझे वहां परामर्शदाता के रूप में तथा देखने के लिये जाने को कहा गया था। मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि मैं मसौदा-समिति का सदस्य था और आपको मेरा वहां नाम भी नहीं मिलेगा।

***अध्यक्षः** किसी ने यह नहीं कहा कि आप मसौदा-समिति के सदस्य थे। उन्होंने केवल यह कहा है कि आप वहां उपस्थित थे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह उनकी राय है। एक और बात बतानी है, वह संशोधन 99 के अन्तर्गत है जो राज्यपाल को सीमाओं में परिवर्तन करने, क्षेत्रों को घटाने इत्यादि का अधिकार देती है। किसी क्षेत्र को पृथक् करना, स्वायत्तशासी क्षेत्र में जो क्षेत्र अब सम्मिलित है, उसे उस क्षेत्र से अपवर्जित करना राज्यपाल के लिये सर्वथा संभव होगा। यदि यह बात स्पष्ट नहीं है, तो इस प्रकार कोई विशिष्ट खंड सम्मिलित करने के लिये मसौदा-समिति बिल्कुल तैयार है। परन्तु बहुत ही विनम्र शब्दों में मैं यह कहना चाहूंगा कि यह बहुत बुरी बात है कि प्रतिनिधि किसी सम्मेलन में आयें, किसी समझौते से सहमत हों, और फिर उस समझौते से विमुख हो जायें, संशोधन प्रस्तुत करें और मसौदा-समिति की आलोचना करने का हठ ठानें और यह कहें कि उसने कुछ ऐसा काम किया है, जो या तो प्रतिनिधियों की इच्छा के विरुद्ध है.....।

***श्री कुलधर चालिहाः** नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे बहुत खेद है। मैं.....।

***श्री कुलधर चालिहाः** नहीं, नहीं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे बहुत खेद है। अतः जहां तक अनुच्छेद 16-क का सम्बन्ध है, राजनैतिक आवश्यकताओं के लिये पृथक्करण की उसमें व्यवस्था है। यदि पूर्ण पृथक्करण की मांग है, तो मैं निवेदन करता हूं कि उसकी व्यवस्था उस कंडिका में कर दी गई है, जिसे हम पारित कर चुके हैं। यदि उस

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में यह व्यवस्था नहीं है, तो इस बात को बिल्कुल स्पष्ट करने के लिये एक खंड जोड़ने को मैं उद्यत हूं कि यदि ठीक समझे, तो किसी क्षेत्र के अपवर्जन करने का अधिकार राज्यपाल को है। नई कंडिया 19 में दिये हुए मेरे संशोधन का जहां तक सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि समस्त विवादास्पद प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका है।

इसके पश्चात्, श्रीमान, मैं अपने माननीय मित्र श्री कुंजरू के संशोधन को लेना चाहता हूं, जो एक और कंडिका बढ़ाने के सम्बन्ध का है। यह देखा गया होगा कि उनका संशोधन पंचम अनुसूची की कंडिका 5 को दुहराने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसको पारित किया जा चुका है और जो आसाम को छोड़कर अन्य राज्यों के आदिमजाति क्षेत्रों और अनुसूचित क्षेत्रों के सम्बन्ध का है। इससे अधिक उनके संशोधन में और कुछ नहीं है। उनके संशोधन के विरुद्ध मेरा निवेदन यह है: उनकी नई कंडिका के उपखंड (1) का जहां तक सम्बन्ध है, वह बिल्कुल अनावश्यक है। उस पर षष्ट अनुसूची की कंडिका 12 (ख) लागू होती है, जिसमें राज्यपाल को यह शक्ति दी गई है कि वह संसद द्वारा निर्मित विधियों को या आसाम विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधियों को लागू करे, या न करे या कुछ रूप भेदों सहित लागू करे। अत: वह परन्तुक पूर्णतया अनावश्यक है और वह पहले से ही हमारे मसौदे में सम्मिलित है।

उपखंड (2) के सम्बन्ध में स्थिति यह है। यह सत्य है कि जहां तक पंचम अनुसूची का सम्बन्ध है, उस क्षेत्र के सम्बन्ध में विनियम बनाने की शक्ति हम राज्यपाल को अवश्य देते हैं, परन्तु षष्ट अनुसूची के लिये वह शक्ति हम राज्यपाल को देने की प्रस्थापना नहीं करते हैं। इस कारण ही पंचम अनुसूची में आदिम जातियों को अपने लिये कोई विनियम बनाने का प्राधिकार नहीं है, पर षष्ट अनुसूची में हमने कुछ विषयों में विधि बनाने का अधिकार जिला परिषद तथा प्रादेशिक परिषद् को दिया है। अत: मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जहां विनियम बनाने की शक्ति आदिमजातियों को नहीं दी गई है, वहां यह आवश्यक है कि विनियम बनाने की शक्ति राज्यपाल को दी जाये। परन्तु जब कि स्वयं आदिमजाति परिषदों को विनियम बनाने की शक्ति दे दी गई है, तो मुझे यह प्रतीत होता है कि राज्यपाल को वैसे ही विनियम बनाने की शक्ति देना बिल्कुल व्यर्थ ही है। यही कारण है कि हम जहां तक षष्ट अनुसूची का सम्बन्ध है राज्यपाल को यह शक्ति नहीं देना चाहते हैं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि उनका संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है।

एक और बात है, जिसे मैं बिल्कुल स्पष्ट करना चाहूंगा। षष्ट अनुसूची के अधीन जिला परिषद् को विनियम बनाने की जो शक्ति हम दे रहे हैं, वह कोई नई शक्ति नहीं है। यह बात सत्य है कि आसाम में अब भी कुछ ऐसे विनियम हैं जो आदिम जाति को विनियम बनाने की वही शक्ति देते हैं, जो हम अपनी अनुसूची द्वारा दे रहे हैं। अत: यह अनुसूची कोई नई नहीं है। वह केवल उस

स्थिति को बनाये रखने वाली है कि कुछ विषयों में विनियम बनाने की शक्ति अब आदिमजातियों की है। अतः जिन बातों को मैंने कहा है, उनके कारण उनका संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है। अतः मैं उसका विरोध करता हूं।

***अध्यक्षः** मैं यह सुझाव देने वाला था कि हमने जो वाद-विवाद किया है, उससे जितना मतभेद प्रकट होता है, वास्तव में जो विचार यहां प्रकट किये गये हैं, उनमें उतना मतभेद नहीं है। जैसा कि डॉ. अम्बेडकर के कथन से मैं समझा हूं, मैं विश्वास करता हूं कि यदि दो संशोधन स्वीकार कर लिये जायें, तो बहुत कुछ मतभेद दूर हो जायेगा। अतः मैं यह सुझाव देने वाला था कि वे कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) के खंड (घ) को इस परन्तुक में सम्मिलित कर लें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि हम मसौदा-समिति पर छोड़ दें तो वह यह काम कर लेगी।

***अध्यक्षः** मैं यह सुझाव देने वाला था कि संशोधन संख्या 99 में उप-कंडिका (3) के खंड (ख) में 'diminish the area of an autonomous district' शब्दों के पश्चात् 'or exclude any area from an autonomous district' शब्द बढ़ा दें। इसके अन्तर्गत सब बातें आ जायेंगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** ऐसा करने के लिये हम बिल्कुल तैयार हैं।

***अध्यक्षः** मैंने इस कठिनाई का अनुभव किया। मुझे सम्मिलित करते हुए इस सभा के कई सदस्य स्थानीय परिस्थिति से परिचित नहीं हैं, अतः आसाम के सम्बन्ध में किसी निश्चित विचारधारा को नहीं अपना सकते हैं। हमें वहां के अपने मित्रों की बात माननी पड़ेगी। चूंकि कुछ विषयों में उनमें मतभेद है, हमारे लिये बड़ी विषम स्थिति हो जाती है। अतः मैं यह सुझाव दूंगा कि इस बात को स्थानीय सरकार पर छोड़ देना सर्वोत्तम होगा। जो सुझाव मैंने दिया है, उससे स्थानीय सरकार इस विषय पर विचार कर सकेगी। मैं समझता हूं कि ये दो सुझाव जो मैंने दिये हैं, उन पर डॉ. अम्बेडकर को कोई आपत्ति नहीं होगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जी नहीं, श्रीमान्, मैं 10(2)(ख) को इस परन्तुक में जोड़ने के लिये तैयार हूं, और दूसरे विषय में 'power to exclude' शब्दों को जोड़ने के लिये उद्यत हूं।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि इससे आसाम के मित्रों को सन्तोष होगा।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** श्रीमान्, आपकी प्रस्थापना को मैं नहीं समझ पाया हूं।

***अध्यक्षः** मेरी पहली प्रस्थापना यह है कि कंडिका 19 क उप-कंडिका (2) पर जो परन्तुक डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है, उसमें कंडिका 10 (2) (घ) जोड़ दी जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): वह इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"कंडिका 10 की उप-कंडिका 2 का खंड (घ) जोड़ दिया जाये।"

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** श्रीमान, आपका सुझाव क्या है?

***अध्यक्ष:** कंडिका 19 में यह प्रविष्ट करने के लिये है–

"19. Exclude any area from part I of the suggested Table."

(19. सुझाई गई सारिणी के भाग 1 में से किसी क्षेत्र को अपवर्जित करना।)

कृपया संशोधन संख्या 99 को देखें, जिसको हम पारित कर चुके हैं।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** खंड (2) के परन्तुक में यह प्रस्थापना है.........।

***अध्यक्ष:** नहीं, 'कंडिका 8' शब्दों के पश्चात् 'कंडिका 10, की उप-कंडिका (2) के उपखंड (घ)' शब्द प्रविष्ट करना।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** यही तो कठिनाई है। स्थानीय सरकार को यह शक्ति दी जा चुकी है कि जिला परिषद् द्वारा बनाये गये किसी विनियम को प्रभाव में आने से रोक दे। स्थानीय सरकार को यह शक्ति दी जा चुकी है कि जिले में साहूकारी के विनियमन और नियंत्रण के लिये जिला परिषद् जो विधि पारित करे, उसे प्रभाव में आने से वह रोक दे। कंडिका 10 की उप-कंडिका (3) इस प्रकार है:

"इस कंडिका के अधीन निर्मित सब विनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे, तथा जब तक वह उनकी अनुमति न दे दे, प्रभावी न होंगे।"

किसी क्षेत्र के अपवर्जन के लिये यदि हम अब राज्यपाल को शक्ति दें, तो वह बहुत अधिक व्यापक हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** यह स्थिति नहीं है।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** मेरा पूरा प्रश्न यह है कि जब हमने यह उपबन्ध कर दिया है कि इस कंडिका के अधीन (जिला परिषद् द्वारा) निर्मित सब विनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे तथा जब तक वह उनकी अनुमति न दे दे, प्रभावी न होंगे, तो स्थानीय सरकार को शक्ति मिल ही गई।

***अध्यक्ष:** यह कौन सी कंडिका है?

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** वह डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 125 है:

"कि कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) के पश्चात् यह उप-कंडिका प्रविष्ट की जाये:—

'(3) इस कंडिका के अधीन निर्मित सब अधिनियम तुरन्त राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे तथा जब तक वह उनकी अनुमति न दे दे, प्रभावी न होंगे।' "

श्रीमान, इसके अन्तर्गत सब बातें आ जाती हैं। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि राज्यपाल की शक्तियां बहुत अधिक व्यापक बना दी जायें।

***अध्यक्षः** कंडिका 19 के अधीन प्रस्थापना भिन्न है।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि आप कंडिका 19 में एक ऐसे विषय को क्यों रखें, जो कंडिका 10 में आ गया है।

***अध्यक्षः** विचार यह है कि 'कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) के उपखंड (घ)' को रखा जाये, न कि समस्त उप-कंडिका 10 को।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** इस परन्तुक में यहां रखने से क्या लाभ वह कंडिका 10 के अधीन है ही।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** कंडिका 10 की उप-कंडिका (2) के उपखंड (घ) के अन्तर्गत केवल व्यापार आता है, साहूकारी नहीं। और इसी को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है।

***अध्यक्षः** अपवर्जन का प्रश्न मूल मसौदे में था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्री निकल्स राय सब कुछ ठीक है। मैं नहीं समझता हूं कि आपको कोई हानि होगी।

***माननीय रेवेरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स रायः** मैं यह पूछ रहा हूं, आप मूल पाठ में एक इस प्रकार का संशोधन रख रहे हैं या नहीं जिससे किसी स्वायत्तशासी जिले के किसी क्षेत्र को अपवर्जन करने की शक्ति राज्यपाल को दी जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** 'अपवर्जन करने' की शक्ति भी हम दे रहे है। 'घटाने' का वास्तविक अर्थ 'अपवर्जन' ही है।

***अध्यक्षः** 'घटाने' से अभिप्राय 'अपवर्जन' का है।

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** श्रीमान्, मैं मानता हूं कि वह ठीक होगा। अध्यक्ष महोदय, जिस स्पष्ट रीति से डॉ. अम्बेडकर ने शिलांग नगरक्षेत्र की स्थिति को सभा के समक्ष प्रस्तुत किया है, उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। मैं समझता हूं कि सभा ने यह समझ लिया है कि शिलांग नगरक्षेत्र दो क्षेत्रों का बना हुआ है, जिनको पहले ब्रिटिश क्षेत्र और मिललैम राज्यक्षेत्र कहा जाता था, और जब तक मिललैम राज्य के प्राधिकारी सहमत न हो जाते थे, तब तक मिललैम राज्यक्षेत्र पर प्रान्तीय विधानमंडल अथवा संसद का कोई भी अधिनियम लागू नहीं होता था। परन्तु नागरिक प्रयोजनों के लिये मिललैम राज्य ने स्थानीय सरकार को शक्ति दे दी थी और वह शक्ति केवल नागरिक प्रयोजनों के लिये थी। अत: श्रीमान्, उस क्षेत्र पर जिला परिषद् की शक्ति रहनी चाहिये; और जैसा कि राज्यों के मंत्रालय से विदित हुआ है, यह मिललैम राज्य जिला परिषद् से संयुक्त किया जा रहा है, तो यह क्षेत्र जिला परिषद् का अंग होना चाहिये और भूमि के सम्बन्ध में जिला परिषद् की शक्ति के अधीन रहेगा। परिस्थितियां वही रहेंगी, पर वहां समस्त नागरिक विधियां लागू होंगी। इसके साथ ही साथ, श्रीमान्, खासी जयंतीया पहाड़ियों के सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर ने जो परन्तुक पेश किया है, उसमें यह कहा गया है कि खासी राज्य इस क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया जायेगा। इस बात के कारण, मैं समझता हूं कि सभा पर जो दबाव डाला गया है, वह बहुत ही युक्तियुक्त है। जनता के दृष्टिकोण से उस क्षेत्र में आदिमजाति के लोग रहने चाहिये, वे उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारों को चाहेंगे, जो उन्हें पहले प्राप्त थे, पर इस परन्तुक के अनुसार तो मिललैम राज्य की न्यायपालिका भी वहां प्रकार्य नहीं कर सकेगी; क्योंकि कंडिका 4 और 5 के द्वारा जिला परिषद् की न्याय शक्ति का इस क्षेत्र से अपवर्जन कर दिया गया है। मेरे विचार से, श्रीमान्, जो लोग आदिमजाति के नहीं हैं उनके उद्वेगों को शान्त करने के लिये यह एक बड़ी रियायत है। वास्तव में यह एक बड़ी रियायत है और इन क्षेत्रों को जिला न्यायालय में रखने की अपेक्षा पूर्णतया नियमित न्यायालय की शक्ति के अधीन रख देने में आदिमजाति के लोगों के लिये भी त्याग है। श्रीमान्, इस बात से मैं बहुत अधिक प्रसन्न नहीं हुआ हैं, पर शिलांग के लोगों की वर्तमान परिस्थितियों के अधीन और जनता के सब वर्गों की विचारधारा के अनुसार मैंने सोचा कि मेरे और अन्य वर्गों के बीच यह एक समझौता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** कंडिका 10 (घ) पर आसाम के मुख्य मंत्री ने जो सुझाव दिया है, क्या माननीय सदस्य उसका विरोध कर रहे हैं?

***माननीय रेवरेन्ड जे.जे.एम. निकल्स राय:** मैं उसका विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं कह चुका हूं। मैं नहीं चाहता हूं कि मुझे टोका जाये। श्रीमान्, आज ही मुझे दिल्ली छोड़कर आसाम जाना है। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह जो समझौता हुआ है, वह सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये विचारों के अनुरूप है और समस्त सम्भाव्य परिस्थितियों पर विचार करते हुए तथा सब पक्षों की भावनाओं पर विचार

करते हुए वह संशोधन मान्य है जिसे मसौदा-समिति ने प्रस्तुत किया है और इस कारण डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे शीघ्रता करनी पड़ी क्योंकि आज मुझे यहां से जाना है, वरना मैं इस वाद-विवाद में और अधिक भाग लेता। शिलांग की इस कठिन परिस्थिति को समझने में मसौदा-समिति ने जो यह सब प्रयत्न किया है उसके लिये मैं उसे धन्यवाद देता हूं।

श्री बी. दास (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, इस संशोधन के पक्ष में मत देने के पूर्व क्या मैं यह जान सकता हूं कि इसके कारण शिलांग में के अधिकांश नागरिकों को मताधिकार से वंचित तो नहीं होना पड़ेगा और शिलांग नगरक्षेत्र में इस समय निवास करने वाली जनता के कुछ वर्ग को नागरिक स्वातंत्र्य, अधिकारों तथा विशेषाधिकारों से वंचित तो नहीं किया जायेगा। रेवरेन्ड निकल्स राय का जब मैंने भाषण सुना तो मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि वे पुरानी व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं। परन्तुक में वे 10 (2) (घ) को सम्मिलित कराना नहीं चाहते हैं जिसकी माननीय अध्यक्ष ने सिफारिश की है। डॉ. अम्बेडकर हमारे समक्ष इस बात की व्याख्या करें कि उन लोगों को वे क्यों मताधिकार से वंचित करना चाहते हैं? वे उन लोगों का नागरिक स्वातंत्र्य क्यों छीनना चाहते हैं जिसका उन्होंने शिलांग नगरक्षेत्र में वर्षों तक उपभोग किया है? मेरी बातों का कुछ अंश डीमापुर पर भी लागू होता है। डॉ. अम्बेडकर ने आज प्रातःकाल कई बार अपने विचार बदले हैं और मैं उनको एक बार भी न समझ पाया। श्रीमान, इस सभा में मैं चाहे मूर्ख ही क्यों न हूं पर सभा को यह बता देना चाहता हूं कि रेवरेन्ड निकोल्स राय ने जो कुछ अभी कहा वह केवल 'द्विराष्ट्र सिद्धान्त' के सम्बन्ध में है।

***अध्यक्षः** आपने उनको सुना नहीं है।

***श्री बी. दासः** मैं उनको समझ गया हूं। मुझे बड़ा दुःख है कि डॉ. अम्बेडकर जैसे महान उद्धारक ने षष्ठ अनुसूची की कंडिका 19 (2) पर संशोधन संख्या 331 में ऐसी कालविरुद्ध बात पुरःस्थापित की है जो शिलांग नगरक्षेत्र के लोगों को नागरिक स्वातंत्र्य से वंचित करती है और शिक्षित वर्ग के लोगों को आदिवासियों पर निर्भर करने के लिये विवश करती है। श्रीमान्, षष्ठ अनुसूची के इस उपबन्ध से मैं घृणा करता हूं जिसके द्वारा आप जीवन की प्रारम्भिक हालतों को बनाये रखना चाहते हैं। मैंने आपको कल चेतावनी दी थी और आज फिर चेतावनी देता हूं। अंग्रेज और अमरीकी मिशन की सहायता से अंग्रेज गुप्तचर तथा साम्यवादी इन आदिमजाति क्षेत्रों के द्वारा आ रहे हैं और इसका उत्तरदायित्व रेवरेन्ड निकोल्स राय पर होगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, इस विषय पर अब मत लिया जाये।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर मत लूंगा।

[अध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 16 के पश्चात् निम्न कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'16.A. *Provisions applicable to areas specified in Part 1 A of the Table appended to paragraph 19.*

(1) Notwithstanding anything contained in this Constitution no Act of Parliament or of the Legislature of the State shall apply to any tribal area specified in Part 1A of the Table appended to paragraph 19 of this Schedule unless the Governor by public notification so directs; and the Governor in giving such directions with respect to any Act may direct that the Act shall in its application to the area or to any specified part thereof have effect subject to such exceptions or modifications as he thinks fit.

(2) The Governor may make regulations for the peace and good government of any such tribal area and any regulation so made may repeal or amend any Act of Parliament or of the Legislature of the State or any existing Law which is for the time being applicable to such area. Regulations made under this sub-paragraph shall be submitted forthwith to the President and until assented to by him shall have no effect.' "

[16-क. कंडिका 19 की सारिणी के भाग 1 क में उल्लिखित क्षेत्रों पर लागू होने वाले उपबन्ध।

(1) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी इस अनुसूची की कंडिका 19 की सारिणी के भाग 1 क में उल्लिखित किसी आदिमजाति क्षेत्र पर संसद अथवा राज्य के विधान-मण्डल का कोई अधिनियम जब तक लागू नहीं होगा तब तक कि राज्यपाल लोक अधिसूचना द्वारा इस प्रकार का निदेश न दें; और किसी अधिनियम के सम्बन्ध में ऐसे निदेश देते हुए राज्यपाल यह निदेश देगा कि उस क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग पर उस अधिनियम के लागू होने का प्रभाव उन अपवादों या रूपान्तरों के अधीन होगा जैसा वह उचित समझे।

(2) किसी ऐसे आदिमजाति क्षेत्र के शान्तिप्रिय और अच्छे शासन के लिये राज्यपाल विनियम बनायेगा और इस प्रकार निर्मित कोई विनियम संसद

या राज्य के विधान-मंडल के किसी अधिनियम को या किसी वर्तमान विधि को जो उस समय ऐसे क्षेत्र में प्रयुक्त हो निरसित या संशोधित करेगा। इस उप-कंडिका के अधीन निमित विनियम तुरन्त ही राष्ट्रपति के पास भेजे जायेंगे और जब तक उसकी अनुमति प्राप्त न हो तब तक उनका कोई प्रभाव न होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किया गया संशोधन, कंडिका (1)।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): एक सूचना सम्बन्धी प्रश्न है, श्रीमान्, क्या डॉ. अम्बेडकर ने मसौदा-समिति की ओर से आपका सुझाव स्वीकार कर लिया है?

***अध्यक्षः** जी हां, और इसी कारण मैं कंडिकाओं को पृथक्-पृथक् रख रहा हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 150 और 151 के निर्देशानुसार कंडिका 19 और संलग्न सारिणी के स्थान में यह कंडिका और सारिणी रखी जाये:—

19. *Tribal areas.*—(1) The areas specified in Parts I and II of the Table below shall be the tribal areas within the State of Assam.'"

[19. ***आदिमजाति क्षेत्र.***–(1) निम्न सारिणी के भाग (1) और (2) में उल्लिखित क्षेत्र आसाम राज्य के भीतर आदिमजाति क्षेत्र होंगे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है: कंडिका (2)।

"(2) The United Khasi-Jaintia Hills District shall comprise the territories which before the commencement of this Constitution were known as the Khasi States and the Khasi and Jaintia Hills District, excluding any areas for the time being comprised within the cantonment and municipality of Shillong, but including so much of the area comprised within the municipality of Shillong as formed part of the Khasi State of Mylliem:

Provided that for the purposes of clauses (e) and (f) of sub-paragraph (1) of paragraph 3, paragraphs 4 and 5, paragraph 6,

[अध्यक्ष]

and sub-paragraph (2), clauses (a), (b) and (d) of sub-paragraph (3) and sub-paragraph (4) of paragraph 8, and clause (d) of sub-paragraph (2) of paragraph 10 of this Schedule, no part of the area comprised within the Municipality of Shillong shall be deemed to be within the District."

[(2) शिलांग, कटक और नगर क्षेत्र के अन्तर्गत तत्समय समाविष्ट किन्हीं क्षेत्रों को अपवर्जित करके किन्तु शिलांग के नगर क्षेत्र के अन्दर समाविष्ट इतने क्षेत्रों को जितना कि मिललैम खासी राज्य का भाग था सम्मिलित करके खासी राज्य तथा खासी और जयंतीया पहाड़ी जिले के नाम से इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व ज्ञात क्षेत्रों से मिल कर संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिला बनेगा:

परन्तु इस अनुसूची की कंडिका 3 की उप-कंडिका 1 के खंड (ङ) और (च), कंडिका 4, कंडिका 5, कंडिका 6 और कंडिका (2) उप-कंडिका 4, उप-कंडिका 3 के खंड (क), (ख) और (घ) और कंडिका 8 की उप-कंडिका 4 तथा कंडिका 10 की उप-कंडिका 2 के खंड (घ) के प्रयोजनों के लिये शिलांग के नगर क्षेत्र में समाविष्ट कोई क्षेत्र उस जिले के अन्दर नहीं समझे जायेंगे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है: कंडिका 3।

"(3) Any reference in the Table below to any district (other than the United Khasi-Jaintia Hills District) or administrative area, shall be construed as a reference to that district or area on the date of commencement of this Constitution:

Provided that the tribal areas specified in Part II of the Table below shall not include any such areas in the plans as may, with the previous approval of the President, be notified by the Governor of Assam in this behalf."

[(3) निम्न सारिणी में (संयुक्त खासी-जयंतीया पहाड़ी जिले से अन्य) किसी जिले के या प्रशासी क्षेत्र के प्रति कोई निर्देश उस जिले या प्रदेश के प्रति इस संविधान के प्रारम्भ पर निर्देश समझा जायेगा:

परन्तु निम्न सारिणी के भाग 2 में उल्लिखित आदिमजाति क्षेत्रों के अन्तर्गत मैदानों में के कोई ऐसे क्षेत्र न होंगे जैसे कि राष्ट्रपति के पूर्व अनुमोदन से आसाम का राज्यपाल उस लिये अधिसूचित करे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** सारिणी भाग 1 और 2। प्रश्न यह है:

Table

PART I

1. The United Khasi-Jaintia Hills District.
2. The Garo Hills District.
3. The Lushai Hills District.
4. The Naga Hills District.
5. The North Cachar Hills.
6. The Mikir Hills.

PART II

1. North-East Frontier Tract including Balipara Frontier Tract, Tirap Frontier Tract, Abor Hills District, Misimi Hills District.
2. The Naga Tribal Area.

[सारिणी

भाग 1

1. संयुक्त खासी जयंतीया पहाड़ी जिला।
2. गारे पहाड़ी जिला।
3. लुसाई पहाड़ी जिला।
4. नगा पहाड़ी जिला।
5. उत्तरी कछार पहाड़ियां।
6. मिकिर पहाड़ियां।

भाग 2

1. उत्तरी पूर्वी सीमान्त इलाका जिसके अन्तर्गत बालिपारा सीमान्त इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अबोर पहाड़ी जिला और मिसिमि पहाड़ी जिला भी है।
2. नगा आदिमजाति क्षेत्र।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में कंडिका 19 और सारिणी, भाग 1 तथा भाग 2 षष्ठ अनुसूची का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में कंडिका 19 और सारिणी, भाग 1 तथा भाग 2 षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट किये गये।

कंडिका 1

*__अध्यक्षः__ एक ऐसा सुझाव है कि हम संशोधन संख्या 99 को फिर लें और उसमें एक खंड और जोड़ें:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका 1 की उप-कंडिका (3) के खंड (1) के पश्चात् यह खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(aa) exclude any area from Part I of the said Table.' "

[(कक) तत्कथित सारिणी के भाग 1 में से किसी क्षेत्र को अपवर्जित करना।]

स्थानीय सरकार को किसी क्षेत्र के उपवर्जन करने की यह खंड शक्ति देता है। यह सत्य है कि यह बात उपखंड (घ) में आ जाती है जिसमें "किसी स्वायत्तशासी जिले के क्षेत्र को घटाना" कहा गया है। पर इस विषय को सब प्रश्नों से परे करने के लिए इसको रखने का प्रयास किया गया है।

प्रश्न यह है:

"कि षष्ठ अनुसूची की कंडिका एक की उप-कंडिका (3) के खंड (क) के पश्चात् यह खंड प्रविष्ट किया जाये:

'(aa) exclude any area from Part I of the said Table.' "

[(कक) तत्कथित सारिणी के भाग 1 में से किसी क्षेत्र को अपवर्जित करना।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

कंडिका 20

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि कंडिका 19 के पश्चात् यह नई कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'20. *Amendment of the Schedule.*—(1) Parliament may from time to time by law amend by way of addition, variation or repeal any of the provisions of this Schedule and when the Schedule is so amended, any reference to this Schedule in this Constitution shall be construed as a reference to such Schedule as so amended.

(2) No such law as is mentioned in sub-paragraph (1) of this paragraph shall be deemed to be an amendment of this Constitution for purposes of article 304 thereof.' "

[20. **अनुसूची का संशोधन.**–(1) संसद समय-समय पर विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करके इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी, तथा अब अनुसूची इस प्रकार संशोधित की जाये, तब इस संविधान में इस अनुसूची के प्रति कोई निर्देश इस प्रकार संशोधित अनुसूची के प्रति निर्देश समझा जायेगा।

(2) कोई ऐसी विधि जो इस कंडिका की उप-कंडिका (1) में वर्णित है इस संविधान के अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।]

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 153 में प्रस्थापित नई कंडिका 20 के स्थान में यह कंडिका रखी जाये:—

'20. *Parliamentary Commission and Amendment of the Schedule*— (1) As soon as may be after the commencement of the Constitution but not later than two years thereafter, there shall be the constituted a Parliamentary Commission consisting of fifteen members of whom ten shall be elected by the House of the People and five shall be elected by the Council of States in accordance with the system of proportional representation by single transferable vote.

(2) It shall be the duty of the Commission to investigate the entire problem of the tribal people and the tribal areas of Assam and to make recommendations to the President as to,—

(i) ways and means by which the tribal people may rise up to the level of the rest of the population educationally and economically so that at the end of a period of ten years since the commencement of the Constitution, these special provisions for the tribal people and the tribal areas in Assam may not be necessary and may be abolished, and

(ii) legislation that should be undertaken by Parliament to revise this Schedule with the above-mentioned purpose in view.

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(3) On receiving the report of this Parliamentary Commission, Parliament may by law amend by way of addition, variation or repeal any of the provisions of this Schedule, and when the Schedule is so amended, any reference to this Schedule in this Constitution shall be construed as a reference to such Schedule as so amended.

(4) No such law as is mentioned in sub-paragraph (3) of this paragraph shall be deemed to be amendment of this Constitution for purpose of article 304 thereof.'"

[20. **संसदीय आयोग और अनुसूची का संशोधन.**–(1) इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र, परन्तु आरम्भ से दो वर्ष के बाद तक नहीं, पन्द्रह सदस्यों का एक संसदीय आयोग बनाया जायेगा जिसमें दस सदस्य लोक-सभा द्वारा और पांच सदस्य राज्य-परिषद् द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(2) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह आदिमजाति के लोगों और आसाम के आदिमजाति क्षेत्रों की पूर्ण समस्या का अनुसंधान करे और राष्ट्रपति को इन विषयों के सम्बन्ध में सिफारिश करे—

(1) वे रीतियां और उपाय जिनके द्वारा आदिमजाति के लोग शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्र में शेष जनसंख्या के स्तर पर आ सकें जिससे कि इस संविधान के प्रारम्भ होने से दस वर्ष की अवधि के अन्त में आदिमजाति के लोगों और आसाम के आदिमजाति क्षेत्रों के लिए इन विशिष्ट उपबन्धों को हटाया जा सके, और

(2) वह विधान जिसका संसद द्वारा उपरोक्त प्रयोजन हेतु इस अनुच्छेद के पुनरीक्षण के लिए उपक्रम किया जाये।

(3) संसदीय आयोग से प्रतिवेदन प्राप्त कर संसद विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करके इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी, तथा जब इस प्रकार संशोधित की जाये, तब इस संविधान में इस अनुसूची के प्रति कोई निर्देश इस प्रकार संशोधित अनुसूची के प्रति निर्देश समझा जायेगा।

(4) कोई ऐसी विधि जो इस कंडिका ही उप-कंडिका (3) में वर्णित हैं इस संविधान के अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।]

श्रीमान्, अपने संशोधन की अन्तिम दो कंडिकाओं में मैंने डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये संशोधन के दोनों खंडों को रखा है और मैंने उसमें केवल प्रथम दो खंड जोड़े हैं। मैं यह चाहता हूं कि आदिमजाति क्षेत्रों की हालतों का एक आयोग द्वारा अनुसंधान किया जाये। पिछले दो दिन के वाद-विवाद से यह प्रकट हुआ है कि अधिकांश सदस्य आसाम प्रान्त के बारे में कुछ नहीं जानते हैं और श्री रोहिणी कुमार ने तो यहां तक कहा है कि आसाम के मुख्यमंत्री तक वहां के हालातों से पूर्णतया परिचित नहीं हैं और इन प्रतिनिधियों में से बहुत से कुछ क्षेत्रों में नहीं गये हैं। मैं समझता हूं कि यह समस्या बहुत महत्वपूर्ण है विशेषकर इस कारण कि आसाम सीमा प्रान्त है। गत युद्ध में वह बहुत ही महत्वपूर्ण क्षेत्र था। अत: मैं समझता हूं कि इन क्षेत्रों का विषय केवल आसाम के लिए ही नहीं वरन् समस्त भारत के लिए चिंता का विषय होना चाहिये।

अत: मैं चाहता हूं कि नये संविधान के अनुसार नये निर्वाचन के पश्चात् नई संसद एक आयोग नियुक्त करे और उस आयोग में दोनों सदनों के सदस्य हों। यह आयोग वहां के हालातों का अनुसंधान करे और प्रतिवेदन भेजे और फिर उस प्रतिवेदन के अनुसार संसद विधान बनाये। उद्देश्य यह होना चाहिये कि कम से कम दस वर्ष में हम इन लोगों को शेष जनसंख्या में विलीन कर सकें और वे आसाम की समस्त जनसंख्या का एक मुख्य अंग बनें। इस काल में यदि आवश्यक हो तो इस अनुसूची में परिवर्तन किया जाये। कल डॉ. अम्बेडकर ने हमें यह बताया था कि उन्होंने दो उग्र विचारधाराओं के बीच के मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास किया है। पर वे यह स्वीकार करते हैं कि हम इन लोगों को शेष जनता के साथ एक रूप में मिले जुले चाहते हैं। श्रीमान, मैं समझता हूं कि जब जब पृथक् निर्वाचन हुए उसका फल यह निकला कि पृथकता बढ़ती ही गई और उनको मिलाने का कोई प्रयत्न सफल न हुआ।

मुझे जिस बात का भय है वह यह है। यद्यपि इन आदिमजातियों की वर्तमान परिस्थिति में यह आवश्यक होगा कि उनके लिए पर्याप्त परिमाणों का उपबन्ध किया जाये और उनकी आर्थिक व्यवस्था में कोई उग्र परिवर्तन न किया जाये, पर मैं यह भी सोचता हूं कि पृथकता को दूर करने और प्रान्त की समस्त जनसंख्या के साथ शनै: शनै: इन्हें मिलाने के लिए कुछ करना चाहिए। अत: मैं यह सुझाव रखता हूं कि चूंकि यह सभा वहां के लोगों की हालातों से परिचित नहीं है और आसाम के लोगों का इस विषय में मतभेद है, इस संविधान में इस आयोग के लिए उपबन्ध बनाया जाये। यह कहा जा सकता है कि कंडिका 16 में एक आयोग की व्यवस्था कर दी गई है। वह एक ऐसा आयोग है जो विशेषकर तीन विषयों के सम्बन्ध में राज्यपाल को प्रतिवेदन करेगा जो विषय स्वयं राज्यपाल के अधिकार के अन्तर्गत आते हैं। मैं यह चाहता हूं कि आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार सम्पूर्ण अनुसूची में परिवर्तन हो सके। यह सत्य है कि यह शक्ति संसद को है और वह ऐसा कर सकती है। पर संसद को इन आदिमजातियों की हालत की कोई

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

सूचना प्राप्त नहीं होगी। साथ ही साथ जब तक संसद के पास पूरी सूचना नहीं होगी तब तक संसद कदाचित् इस शक्ति का प्रयोग न करे। इसलिये मैं यह कहता हूं कि स्वयं संविधान में यह रख दिया जाये कि दो वर्ष के अन्दर अथवा जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र एक आयोग बनाया जाये जो प्रतिवेदन करे और संसद इस अनुसूची के पुनरीक्षण करने में अग्रसर है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ अध्यक्ष महोदय, आयोग के विचार का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा होता हूं। मेरे विचार में अभी यह बात स्पष्ट नहीं है कि वह दोनों सदनों—उत्तर सदन और प्रथम सदन के सदस्यों का आयोग हो या वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया हुआ निकाय हो। मैं समझता हूं कि संसद के सदनों के सदस्य कृत्यों का ठीक प्रकार से निर्वहन करने में समर्थ नहीं होंगे क्योंकि वे अनभिज्ञ हैं। वे आदिमजाति की समस्याओं से परिचित नहीं हैं और विशेषकर आसाम की सीमा पर की समस्याओं से जो बहुत ही जटिल हैं। सभा के समक्ष मैंने कई बार अपने विचार रखे हैं। मैं समझता हूं कि इस निकाय में वे लोग सदस्य हों जो विशेषज्ञ हों, जो इन क्षेत्रों की समस्या को जानते हों तथा जो परिस्थिति की यथार्थता को समझते हों और जो इन क्षेत्रों के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को समझते हों। सदनों के सदस्यों के पक्ष में मैं नहीं हूं क्योंकि मेरे मन में कुछ ऐसी धारणा है कि ये सदस्य प्रान्तीय स्वायत्तता की ओर झुक जायेंगे। मैं चाहता हूं कि भाग 1 और 2 में उल्लिखित क्षेत्र केन्द्रीय प्रशासनिक क्षेत्र हों और इस कारण मेरी सम्मति यह है कि प्रान्तीय सदस्यों को इस निकाय का सदस्य न बनने दिया जाये।

दूसरी बात यह है कि मेरे मित्र श्री सक्सेना ने इस संशोधन का मसौदा ठीक नहीं बनाया है। एक स्थान पर—मैं खंड 2 (1) की ओर निर्देश कर रहा हूं—वे यह कहते हैं कि दस वर्ष की समाप्ति के पहले षष्ठ अनुसूची के पूर्ण निरसन की सिफारिश करने की शक्ति संसद को नहीं होगी और इसके बाद वे खंड (3) में यह कहते हैं "संसदीय आयोग से प्रतिवेदन प्राप्त कर संसद विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करके इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी।" श्रीमान्, 2 (1) के अनुसार संसद को यह शक्ति प्राप्त नहीं है। सम्पूर्ण अनुसूची के निरसन की सिफारिश करने की शक्ति आयोग को प्राप्त नहीं है, पर खंड (3) में मेरे मित्र यह कहते हैं कि ऐसी बात हो सकती है। इसके बाद खंड 2 के उपखंड (2) में यह दिया हुआ है—

'वह विधान जिसका संसद द्वारा उपरोक्त प्रयोजन हेतु इस अनुच्छेद के पुनरीक्षण के लिए उपक्रम किया जाये।'

यदि 'पुनरीक्षण' शब्द के पश्चात् 'अथवा निरसन' शब्द वहां होते तो वह अधिक संतोषजनक होता। मैं समझता हूं कि यह आयोग बहुत ही आवश्यक है। यह ठीक है संसद जब चाहे तब आयोग नियुक्त कर सकती है। पर मेरे मित्र श्री सक्सेना यह चाहते हैं कि इस संविधान के प्रारम्भ के दो वर्ष के अन्दर आयोग नियुक्त करने के लिए सरकार और संसद को बंधन में डाल दिया जाये। मेरे मित्र श्री सक्सेना द्वारा पेश किये गये संशोधन का समर्थन करने में मुझे खुशी है।

माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं करता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 153 में प्रस्थापित नई कंडिका 20 के स्थान में यह कंडिका रखी जाये:—

'20. *Parliamentary Commission and Amendment of the Schedule*—(1) As soon as may be after the commencement of the Constitution, but not later than two years thereafter, there shall be constituted a Parliamentary Commission consisting of fifteen members of whom ten shall be elected by the House of the People and five shall be elected by the Council of States in accordance with the system of proportional representation by single transferable vote.

(2) It shall be the duty of the Commission to investigate the entire problem of the tribal people and the tribal areas of Assam and to make recommendations to the President as to,—

(i) ways and means by which the tribal people may rise up to the level of the rest of the population educationally and economically so that at the end of a period of ten years since the Commencement of the Constitution, these special provisions for the tribal people and the tribal areas in Assam may not be necessary and may be abolished, and

[अध्यक्ष]

(ii) legislation that should be undertaken by Parliament to revise this Schedule with the above-mentioned purpose in view.

(3) On receiving the report of this Parliamentary Commission, Parliament may by law amend by way of addition, variation or repeal any of the provisions of this Schedule, and when the Schedule is so amended, any reference to this Schedule in this Constitution shall be construed as a reference to such Schedule as so amended.

(4) No such law as is mentioned in sub-paragraph (3) of this paragraph shall be deemed to be amendment of this Constitution for purposes of article 304 thereof.'"

[20. **संसदीय आयोग और अनुसूची का संशोधन.**–(1) इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र परन्तु प्रारम्भ के दो वर्ष के बाद तक नहीं, पन्द्रह सदस्यों का एक संसदीय आयोग बनाया जायेगा जिसमें दस सदस्य लोक-सभा द्वारा और पांच सदस्य राज्य-परिषद् द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(2) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह आदिमजाति के लोगों और आसाम की आदिमजाति क्षेत्रों की पूर्ण समस्या का अनुसंधान करे और राष्ट्रपति को इन विषयों के सम्बन्ध में सिफारिश करे—

(1) वे रीतियां और उपाय जिनके द्वारा आदिमजाति के लोग शैक्षण्कि और आर्थिक क्षेत्र में शेष जनसंख्या के स्तर पर आ सकें जिससे कि इस संविधान के प्रारम्भ होने से दस वर्ष की अवधि के अन्त में आदिमजाति के लोगों और आसाम के आदिमजाति क्षेत्रों के लिए इन विशिष्ट उपबन्धों को हटाया जा सके, और

(2) वह विधान जिसका संसद द्वारा उपरोक्त प्रयोजन हेतु इस अनुच्छेद के पुनरीक्षण के लिए उपक्रम किया जाये।

(3) संसदीय आयोग से प्रतिवेदन प्राप्त कर संसद विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करके इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी, तथा जब इस प्रकार संशोधित की जाये, तब इस संविधान में इस अनुसूची के प्रति कोई निर्देश इस प्रकार संशोधित अनुसूची के प्रति निर्देश समझा जायेगा।

(4) कोई ऐसी विधि जो इस कंडिका की उप-कंडिका (3) में वर्णित है इस संविधान के अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि कंडिका 19 के पश्चात् यह नई कंडिका प्रविष्ट की जाये:

'20. *Amendment of the Schedule*—(1) Parliament may from time to time by law amend by way of addition, variation or repeal any of the provisions of this Schedule and when the Schedule is so amended, any reference to this Schedule in this Constitution shall be construed as a reference to such Schedule as so amended.

(2) No such law as is mentioned in sub-paragraph (1) of this paragraph shall be deemed to be an amendment of this Constitution for purposes of article 304 thereof.' "

[**20. अनुसूची का संशोधन**–(1) संसद समय-समय पर विधि द्वारा जोड़, परिवर्तन या निरसन करे इस अनुसूची के उपबन्धों में से किसी का संशोधन कर सकेगी, तथा जब अनुसूची इस प्रकार संशोधित की जाये, तब इस संविधान में इस अनुसूची में प्रति कोई निर्देश का प्रकार संशोधित अनुसूची के प्रति निर्देश समझा जायेगा।

(2) कोई ऐसी विधि जो इस कंडिका की उप-कंडिका (1) में वर्णित है इस संविधान के अनुच्छेद 304 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का संशोधन नहीं समझी जायेगी।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

कंडिका 20 षष्ठ अनुसूची में प्रविष्ट की गई।

***अध्यक्षः** अब मैं समूची अनुसूची पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुसूची 6 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुसूची 6 संविधान में प्रविष्ट की गई।

अनुच्छेद 281

***अध्यक्षः** इसके बाद हम अनुच्छेद 281 पर आते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि अनुच्छेद 281 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Interpretation '281. In this Part, unless the context otherwise requires, the expression 'State' means a State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule.' "

निर्वाचन [281. इस भाग में जब तक प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो 'राज्य' पद से प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में उस समय उल्लिखित राज्य अभिप्रेत है।]

***अध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन नहीं है। प्रश्न यह है कि:

"कि अनुच्छेद 281 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

Interpretation '281. In this Part, unless the context otherwise requires, the expression 'State' means a State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule.' "

निर्वाचन [281. इस भाग में जब तक प्रसंग से अन्यथा अपेक्षित न हो 'राज्य' पद से प्रथम अनुसूची के भाग 1 या भाग 3 में उस समय उल्लिखित राज्य अभिप्रेत है।]

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 281 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 282 से 282-ग

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3034 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 282 के स्थान में ये अनुच्छेद रखे जायें:

Recruitment and conditions of service of persons serving the Union or a State.

'282. Subject to the provisions of this Constitution, Acts of the appropriate Legislature may regulate the recruitment and conditions of service of persons appointed to public services, and to posts in connection with the affairs of the Union or of any State:

Provided that it shall be competent for the President in the case of services and posts in connection with the affairs of the Union and for the Governor or, as the case may be, the Ruler of a State in the case of services and posts in connection with the affairs of the State to make rules regulating the recruitment and the conditions of service of persons appointed to such services and posts until provision in that behalf is made by or under an Act of the appropriate Legislature under this article, and any rules so made shall have effect subject to the provisions of any such Act.

Tenure of office of person serving the Union or a State.

282.A. (1) Except as expressly provided by this Constitution, every person who is a member of a defence service or of a civil service of the Union or of an all India service or holds any post connected with defence or any civil post under the Union, holds office during the pleasure of the President, and every person who is a member of a civil service of a State or holds any civil post under a State holds office during the pleasure of the Governor or, as the case may be, the Ruler of the State.

(2) Notwithstanding that a person holding a civil post under the Union or a State holds office during the pleasure or the President or, as the case may be, of the Governor of Ruler of the State, any contract under which a person, not being a member of a defence service or of an all India service or of a civil service of the Union or a State, is appointed under this Constitution to hold such a post may, if the President or, the Governor or the Ruler, as the case may be, deems it necessary in order to secure the services of a person having special qualifications, provide for the payment to him of compensation if before the expiration of an agreed period that post is abolished or he is for reasons not connected with any misconduct on his part, required to vacate that post.

Dismissal, removal or reduction in rank of persons employed in civil capacities under the Union or State.

282.B. (1) No person who is a member of a civil service of the Union or an all India service or a civil service of a State or holds a civil post under the Union or a State shall be dismissed or removed by an authority subordinate to that by which he was appointed.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) No such person as aforesaid shall be dismissed or removed or reduced in rank until he has been given a reasonable opportunity of showing cause against the action proposed to be taken in regard to him:

Provided that this clause shall not apply—

(a) where a person is dismissed, or removed or reduced in rank on the gound of conduct which has led to his conviction on a criminal charge;

(b) where an authority empowered to dismiss or remove a person or to reduce him in rank is satisfied that for some reason to be recorded by that authority in writing it is not reasonably practicable to give that person an opportunity of showing cause;

(c) where the President or Governor or Ruler, as the case may be, is satisfied that in the interest of the security of the State it is not expedient to give to that person such an opportunity.

(3) If any question arises whether it is reasonable practicable to give notice to any person under clause (b) of the proviso to clause (2) of this article, the decision thereon of the authority empowered to dismiss or remove such person or to reduce him in rank as the case may be, shall be final.

All India services

282-C. (1) Notwithstanding anything in Part IX of this Constitution if the Council of States has declared by resolution supported by not less than two-thirds of the members present and voting that it is necessary or expedient in the national interest so to do, Parliament may be law provide for the creation of one or more All India Services common to the Union and this Chapter, regulate the recruitment and the conditions of service of persons appointed to any such service.

(2) The services known on the date of commencement of this constitution as the Indian Administrative Service and the Indian Police Service shall be deemed to be services created by Parliament under this article.' "

[282. इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए समुचित विधान-मंडल के अधिनियम संघ या किसी राज्य के कार्यों से सम्बद्ध लोक सेवाओं और पदों के लिये भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेंगे:

संघ या राज्य की सेवा करने वाले व्यक्तियों की भर्ती तथा सेवा की शर्तें

परन्तु जब तक इस अनुच्छेद के अधीन समुचित विधान-मंडल के अधिनियम के द्वारा या अधीन उस लिए उपबंध नहीं बनाये जाते तब तक यथास्थिति संघ के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के बारे में राष्ट्रपति को तथा राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के बारे में राज्य के राज्यपाल या शासक को, ऐसी सेवाओं और पदों के लिये भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाले नियमों के बनाने की क्षमता होगी तथा किसी ऐसे अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए उस प्रकार निर्मित कोई नियम प्रभावी होंगे।

282क. (1) इस संविधान द्वारा स्पष्टतापूर्वक उपबंधित अवस्था को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति, जो संघ की प्रतिरक्षा, सेवा या असैनिक सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का सदस्य है, अथवा संघ के अधीन प्रतिरक्षा से सम्बंधित किसी पद को अथवा किसी असैनिक पद को धारण करता है, राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त को धारण करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति, जो राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य है, अथवा राज्य के अधीन किसी असैनिक पद को धारण करता है, यथास्थिति राज्य के राज्यपाल या शासक के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करता है।

संघ या राज्यों की सेवा करने वाले व्यक्तियों की पदावधि

(2) इस बात के होते हुए भी कि संघ या राज्य के अधीन असैनिक पद को धारण करने वाला कोई व्यक्ति यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्य के राज्यपाल या शासक के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करता है कोई संविदा, जिसके अधीन कोई व्यक्ति, जो प्रतिरक्षा सेवा या अखिल भारतीय सेवा अथवा संघ या राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य नहीं है, ऐसे किसी पद को धारण करने के लिये इस संविधान के अधीन नियुक्त होता है, यह उपबंध कर सकेगी कि यदि यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक विशेष अर्हताओं वाले किसी व्यक्ति की सेवा को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक समझता है तो, यदि करार की हुई कालावधि की समाप्ति से पहले उस पद का अन्त कर दिया जाता है अथवा उसके द्वारा किये गये किसी उवचार से असम्बद्ध कारणों के लिये उससे पद रिक्त करने की अपेक्षा की जाती है तो, उसे प्रतिकार दिया जायेगा।

282ख. (1) जो व्यक्ति संघ की असैनिक सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य है, अथवा संघ के या राज्य के अधीन असैनिक पद को धारण करता है, वह अपनी नियुक्ति करने

असैनिक हैसियत से नौकरी में लगे हुए व्यक्तियों की पदच्युति, पद से हटाया जाना या पंक्ति-च्युत किया जाना।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायेगा अथवा पद से हटाया नहीं जायेगा।

(2) उपयुक्त प्रकार का कोई व्यक्ति तब तक पदच्युत नहीं किया जायेगा, अथवा पद से नहीं हटाया जायेगा, अथवा पंक्तिच्युत नहीं किया जायेगा, जब तक कि उसके बारे में प्रस्थापित की जाने वाली कार्यवाही के खिलाफ कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर उसे न दे दिया गया हो:

परन्तु यह खंड वहां लागू न होगा।

(क) जहां कोई व्यक्ति ऐसे आचार के आधार पर पदच्युत किया गया या हटाया गया या पंक्तिच्युत किया गया है। जिसके लिए दंड दोषारोप पर वह सिद्ध दोष हुआ है,

(ख) जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाली किसी प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायेगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये, अथवा

(ग) जहां यथास्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक का समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह इष्टकर नहीं है कि उस व्यक्ति को ऐसा अवसर दिया जाये।

(3) यदि कोई प्रश्न पैदा नहीं होता है कि क्या इस अनुच्छेद के खंड (2) के परंतुक खंड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं तो ऐसे व्यक्ति को यथास्थिति पदच्युत करने या पद से हटाने अथवा उसे पंक्तिच्युत करने की शक्ति वाले प्राधिकारी का उस पर विनिश्चय अन्तिम होगा।

282-ग (1) भाग 9 में किसी बात के होते हुए भी यदि राज्य परिषद् ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित कर दिया है कि राष्ट्रहित में ऐसा करना आवश्यक या इष्टकर है तो संसद विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिये सम्मिलित एक या अधिक भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबन्ध कर सकेगी तथा इस अखिल अध्याय के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए किसी ऐसी सेवा के लिए भर्ती का, तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का, विनियमन कर सकेगी।

अखिल भारतीय सेवाएं

(2) इस संविधान के प्रारम्भ पर भारत प्रशासन सेवा और भारत आरक्षी सेवा नाम से ज्ञात सेवाएं इस अनुच्छेद के अधीन संसद द्वारा सृजित सेवाएं समझी जायेंगी।

श्रीमान्, जो संशोधन मैंने पेश किये हैं उनके संबंध में इस समय मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं, क्योंकि अनुच्छेद स्वयं ही बहुत स्पष्ट हैं। कई ऐसे संशोधन हैं जिनमें कुछ आलोचनात्मक प्रश्न उठेंगे और उन संशोधनों को निपटाने के लिए जो व्याख्यायें आवश्यक होंगी उनको उस समय मैं सभा के समक्ष प्रस्तुत कर सकूंगा।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 3—श्री सतीश चन्द्र सामन्त।

***श्री सतीश चन्द्र सामन्त** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): आदरणीय अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 2 में प्रस्तावित अनुच्छेद 282 के साथ यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided further that no person shall be eligible for appointment to any of the superior public services and posts is connection with affairs of the Union unless he is thoroughly conversant with any other regional language of India besides the National language of India.' "

[परन्तु यह और भी कि यदि कोई व्यक्ति भारत की राष्ट्र भाषा के सहित अन्य किसी प्रादेशिक भाषा का पूर्ण जानकार नहीं है तो संघ संबंधी किसी उच्च लोकसेवा तथा पद पर नियुक्त होने का वह पात्र नहीं होगा।]

श्रीमान्, मैंने जो संशोधन पेश किया है, उसके सम्बन्ध में मैं विश्वविद्यालय आयोग के प्रतिवेदन और उसकी सिफारिशों की ओर निर्देश करना चाहता हूं, तथा गत अगस्त में दिल्ली में भाषा सम्मेलन द्वारा पारित एक संकल्प की ओर भी निर्देश करना चाहता हूं। डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन के सभापतित्व में विश्वविद्यालय आयोग ने यह सिफारिश की है कि राज्य भाषा के साथ-साथ प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को एक और प्रादेशिक भाषा सिखायें। भाषा सम्मेलन में भी एक संकल्प पारित किया है कि प्रान्त या राज्य की प्रादेशिक भाषा को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति को भारत की किसी अन्य प्रादेशिक भाषा का ज्ञान होना चाहिये। श्रीमान्, भारत एक ऐसा देश है जिसमें बहुत सी भाषाये हैं, एक दूसरे से भिन्न बहुत सी भाषायें हैं और भारत को एक बनाने के लिये सब भारतीयों को एक भाषा सीखनी चाहिये और उसके द्वारा साधारण व्यक्ति से अथवा परस्पर परिचय बढ़ाना चाहिये। जब तक हम सबकी एक भाषा नहीं होती तब तक हमें एक और प्रादेशिक भाषा सीखनी चाहिये। अत: मैं चाहता हूं कि कम से कम संघ के उच्च पदाधिकारी

[श्री सतीश चन्द्र सामन्त]

भारत की सरकारी भाषा के साथ-साथ भारत की एक और प्रादेशिक भाषा को भी जानें जिससे कि वे जनसाधारण से सम्पर्क में आ सकें और स्वतन्त्रतापूर्वक मिल-जुल सकें। श्रीमान, मैं यह जानता हूं कि मेरे संशोधन के विरुद्ध यह कहा जायेगा कि यह बात नियम विनियमों के अधीन आ जायेगी। पर इस विषय के महत्व को समझते हुए मैं निवेदन करता हूं कि यह संशोधन संविधान में प्रविष्ट कर दिया जाये। यह मेरी प्रार्थना है और मैं आशा करता हूं कि सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी।

***अध्यक्षः** दो संशोधन संख्या 4 और 5 और हैं जो इसी प्रकार के हैं। उनका पेश किया जाना आवश्यक नहीं है। इसके बाद हम संशोधन संख्या 6 पर आते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3034 में प्रतिस्थापित अनुच्छेद 282 'Acts of the appropriate Legislature may regulate' शब्दों के स्थान में, 'the Union Public Service Commission as respects the All-India Services and also as respects other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission as respects the State Services and also as respects other services and posts in connection with the affairs of the State shall make regulations on all matters relating to' शब्द रखे जायें और परन्तुक अपमार्जित किया जाए।"

श्रीमान, मैं चाहता हूं कि हमारे आयोग इंग्लैंड के विटले आयोग के आधार पर बनाये जाएं और मैं यह चाहता हूं कि इन आयोगों की वैसी ही शक्तियां और वैसे ही कृत्य होने चाहियें। मैंने इस विषय पर बड़ी सावधानी से विचार किया है। यह संशोधन 1948 में भेजा गया था और तब से इस प्रश्न पर मेरे विचारों में परिवर्तन हो गया है। मैं यह बात मानने के लिये तैयार हूं कि भर्ती की शक्ति संसद के हाथों में सौंपी जाये। पर किसी दशा में भी मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूं कि यह शक्ति प्रान्तीय विधानमंडल को दी जाये। यदि यह शक्ति संसद के हाथों में सौंपी जायेगी तो यह हमारे राज्य के आधार को सुदृढ़ बनायेगा। इसके प्रति मैं सभा के समक्ष कुछ युक्तियां तथा तर्क प्रस्तुत करना चाहता हूं कि इस प्रस्थापना के पक्ष में मैं क्यों हूं इससे राज्य के लोक सेवकों के मन में प्रतिभूति की भावना उत्पन्न होगी। संप्रदायवाद तथा प्रान्तीयता की उन्नति में इसके कारण रुकावट पड़ेगी और राष्ट्रीयता के भावों की वृद्धि होगी। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारों में नियुक्त सब सेवकों पर यदि भर्ती और सेवा की शर्तों के एक से नियम लागू हों तो भारत की सब पंक्तियों के अधिकारियों में एकता की भावना की उन्नति होगी। असंतोष का संकट दूर हो जायेगा। एक संतुष्ट और कुशल शिष्ट जन सत्ता

उन बहुत सी समस्याओं को हल करने में सहायक होगी जो आज हमें भयभीत कर रही है। आधुनिक संसार शिष्ट जन सत्ता की ओर बढ़ रहा है। हमारे राजनैतिक विकास में प्रबन्धात्मक राज्य ही अगला कदम है। इस समय एक जागृत आधुनिक शिष्ट जन सत्ता की आवश्यकता है। हमें अपने असैनिक सेवा के आधार को दृढ़ बनाना चाहिये और उसकी उन जन नायक से रक्षा करनी चाहिये जो लोकतंत्र के नाम से रात दिन उन लोगों पर अपना आधिपत्य जमाने और अपनी इच्छा के अनुसार उनसे काम कराने का प्रयत्न करते रहते हैं जो मानसिक तथा नैतिक रूप में उनसे उच्च हैं। जनोत्साह रूपी उच्च आसन पर विराजे हुये छोटी-2 स्थिति तथा निम्न सामर्थ्य के व्यक्ति शक्ति तथा प्राधिकार सम्पन्न स्थिति में रख दिये गये हैं। कोई भी असैनिक सेवक राजनैतिक उथल-पुथल के आधार पर उच्च पद प्राप्त करने वाले इन व्यक्तियों के विरोधी तथा हास्यास्पद कृत्यों का सहन नहीं करेगा। यदि किसी संप्रदाय को, जो अज्ञानता और निर्धनता में जकड़ा हुआ है, वयस्कम ताधिकार के दोषों से बचाना है तो असैनिक सेवाओं को प्रान्तीय स्वायत्तता के क्षेत्र से परे रखना चाहिये।

*श्री फूल सिंह** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3034 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में 'affairs of the Union of any State' शब्दों के पश्चात् 'and fix the minimum as well as the maximum amount of salary of a Government servant as also lay down the conditions to the fulfilled by a group of persons to the able to be included in the list of public servants' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

मेरे संशोधन का प्रथम भाग उस सिद्धान्त को सक्रिय रूप प्रदान करता है जिसे सभा अनुच्छेद 34 और 31 में स्वीकार कर चुकी है अर्थात् निर्वाह भृति और समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक, यद्यपि अनुच्छेद 34 में कृषि, उद्योग तथा अन्य प्रकार के श्रमिक के लिये निर्वाह भृति की सिफारिश की गई है, पर सरकारी सेवकों के लिये ऐसा कोई सुझाव नहीं है। यही तक नहीं सरकारी सेवकों के वेतन में परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसे भी है जिनको 3 रुपया या 8 रुपया मासिक मिलता है और ऐसे भी हैं जिनको जितने के वे योग्य हैं या जितने की उन्हें आवश्यकता है उससे अधिक मिलता है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि उच्चतर पंक्ति के सरकारी सेवकों के मामले में सेवा के संविदा तक का पालन नहीं किया जाता है। संविदा के अनुसार एक आई.सी.एस. 2250 रुपये का अधिकतम वेतन

[श्री फूल सिंह]

प्राप्त करने का पात्र है। आजकल मुख्य आयुक्त 3500 रुपये पाता है और आयुक्त 3000 रुपये, और आज जो लोग आयुक्त और मुख्य आयुक्त हैं वे कौन लोग हैं? ये वही हैं जो कल कलक्टर और डिप्टी कलक्टर थे। स्वतंत्रता के बाद भारत की सेवाओं में से अंग्रेजों के एकदम निकल जाने से इन उच्चतर पंक्तियों पर आने का उन्हें सरल अवसर मिला और यह एक ऐसी उन्नति थी जिसके लिये उनसे संविदा किया गया था और न स्वप्न में इसकी उन्हें आशा थी। वैयक्तिक वेतन अथवा किसी ऐसे ही अन्य साधन के रूप में इन लोगों के लिये उच्चतर वेतन प्राप्त कराने की युक्तियां खोज ली गई हैं। यह वास्तव में उचित ही है कि किसी सरकारी सेवक को जो वेतन मिले उसका न्यूनतम तथा अधिकतम हम नियत कर दें जिससे कि कोई हानि न हो। आजकल जो दशा है उसमें वेतन उत्तरदायित्वों के अनुसार नहीं है। विभागों के सचिवों का उदाहरण लीजिये जिनको पहले वह काम करना पड़ता था जिसे अब मंत्री करते हैं। इस प्रकार के पुरःस्थापन होने के पश्चात् इसमें सन्देह नहीं कि इन सचिवों का उत्तरदायित्व कम हो गया है, पर उनके वेतन में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई है। वे वही वेतन पा रहे हैं जो उनको इस सरकार की स्थापना के पूर्व मिलता था।

*__अध्यक्षः__ जहां तक मैं समझता हूं कि वर्तमान पदधारियों से इसका कोई संबंध नहीं है। यह उन लोगों की भर्ती के सम्बन्ध में है जो भविष्य में सेवक होंगे।

*__श्री फूल सिंहः__ 282 और 283 भावी पदधारियों की ओर निदेश करते हैं तथा वर्तमान पदधारियों की ओर भी और 283-क अन्तर्वर्ती काल की ओर निर्देश करता है। ये पेश नहीं किये गये हैं। पर मैं यह समझता हूं कि मैं इन सभी विषयों को ले लूं और सभा को उन्हीं तर्कों को पुनः सुनने के कष्ट से बचाऊं। मेरा निवेदन केवल यही है कि यह उचित ही है कि हम वेतन का वह न्यूनतम तथा अधिकतम नियत कर दें जो एक सरकारी नौकर को मिले, यह मेरे संशोधन के प्रथम भाग के संबंध में है।

जहां तक दूसरे भाग का संबंध है यह एक बड़ी रोचक बात है कि जो लोग सरकारी सेवक कहे जाते हैं वे उन लोगों का केवल एक अल्पांश है जो कि वास्तव में सरकारी नौकर हैं पर उनको ऐसा नहीं समझा जाता है। यदि अस्थायी रूप में ही कोई पद सृजित किया जाता है तो उस पद का अधिकारी सरकारी सेवक कहा जाता है। लोक कर्मशाला विभाग (पी.डब्ल्यू.डी.) तथा अन्य विभाग के देहात में उन हजारों कर्मियों को देखिये जिनका काम अस्थायी रूप का नहीं

है। उनके कार्य के समाप्त होने की कोई आशा नहीं है। पर फिर भी वे सरकारी सेवक नहीं कहे जाते हैं। ऐसे मामलों को एक प्रान्तीय सरकार के सामने रखने का मुझे अवसर मिला और सेवा की उच्चतर पंक्तियों के लोगों द्वारा जो उत्तर मुझे मिला वह यह था कि यदि इन लोगों को सरकारी सेवक कहा जायेगा तो वे अपने कार्य करने के प्रयत्नों में शिथिल हो जायेंगे यदि यह सत्य है तो सब सरकारी सेवकों पर लागू होनी चाहिये और यदि यह झूठ है तो इस बहाने से इन लोगों को दंड देना ठीक नहीं है।

मेरा निवेदन यह है कि यदि हम नियम बना दें तो अधिक अच्छा होगा जिससे कि जनता का कोई वर्ग जो सरकार की सेवा कर रहा है उन शर्तों को पूरा करता है तो उसे अपने आप ही उस सूची के अन्तर्गत आने का अधिकार है। केवल वेतन से ही नहीं बल्कि अन्य बातों से भी उन्हें वंचित रखा जाता है। यदि उच्चतर पंक्ति के किसी सरकारी नौकर को स्थानान्तरित किया जाता है तो उसे केवल एक तरफ का भाड़ा ही नहीं मिलता है, केवल उसके लिये ही भाड़ा नहीं मिलता है वरन् उसके परिवार के लिये भी मिलता है पर कभी-कभी सबसे निचली पंक्ति के लोगों को किराया मिलता ही नहीं और यदि उनको मिलता भी है तो परिवार होने पर भी उनको केवल अकेले को एक ओर का भाड़ा मिलता है। जो उच्चतर पंक्ति में हैं उनको सवारी या दौरे का भी भत्ता मिलता है, पर जो सबसे निचली पंक्ति में हैं उनको, चाहे उनका इलाका चालीस मील के क्षेत्रफल का हो, साइकिल तक नहीं दी जाती है।

श्रीमान्, यदि इन लोगों का समावेश सरकारी सेवकों की कोटि में कर लिया जाता है तो उनके बहुत से कष्ट दूर हो जायेंगे और इससे उन लोगों की उन्नति हो जायेगी जो वास्तव में उसके योग्य हैं और जो मातृभूमि की सच्ची सेवा कर रहे हैं।

इन चन्द बातों को कह कर श्रीमान् मैं निवेदन करता हूं कि मेरे संशोधनों पर विचार किया जाये और उनको स्वीकार किया जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह के संशोधन संख्या 2 में प्रस्तावित अनुच्छेद 282 में 'Acts of the appropriate Legislature' शब्दों के स्थान में 'Acts of Parliament' शब्द रखे जायें।"

मेरे इस संशोधन के साथ-साथ मेरे संशोधन संख्या 231 पर विचार होना चाहिये। श्रीमान्, मैं उसे पेश करता हूं:

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के परन्तु, के स्थान में यह परन्तुक रखा जाये:

'Provided that Parliament may by law specify the public services in the States with regard to which Acts of appropriate Legislature may regulate the recruitment and conditions of service of persons appointed to them.' "

[परन्तु संसद विधि द्वारा राज्यों की उन लोक सेवाओं का उल्लेखन करेगी जिनके लिये समुचित विधान-मंडल के अधिनियम भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेंगे।]

डॉ. अम्बेडकर का संशोधन यह उपबंधित करता है कि "इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुये समुचित विधान-मंडल के अधिनियम संघ या किसी राज्य के कार्यों से सम्बद्ध लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेंगे।" मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि समस्त देश में महत्वपूर्ण लोक सेवाओं की भर्ती के सम्बन्ध में एकरूपता लाई जाये अभी तक जिन सेवाओं में कुछ एकरूपता है वे सेवायें भारतीय प्रशासनीय सेवायें (जो भारतीय असैनिक सेवाओं के स्थानापन्न हैं) और भारतीय आरक्षी सेवायें हैं। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि इस प्रथा का अन्य महत्वपूर्ण सेवाओं पर भी प्रचलन किया जाये।

डॉ. पी.एस. देशमुख (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में जहां 'may' शब्द प्रथम बार आया है उसके स्थान में 'shall' शब्द रखा जाये।"

श्रीमान्, इस अनुच्छेद के उपबन्धों के समूचे ढांचे को देखते हुए मैं यह आवश्यक समझता हूं कि अनुच्छेद 282 के उपबन्धों को अनिवार्य बना दिया जाये न कि उनको इस प्रकार संदेहात्मक स्थिति में छोड़ा जाये जैसा कि यहां किया गया है। शायद यह कहा जाये कि 'may' शब्द में 'shall' का बल है। यदि आपकी यही धारणा है तो 'shall' शब्द का प्रयोग क्यों नहीं करते? अत: मैं यह सुझाव दूंगा कि यदि यह समझा जाता है कि यह परिवर्तन सम्पूर्ण स्थिति के अधिक अनुरूप होगा और हमारे उद्देश्य की ओर अधिक अच्छे रूप में पूर्ति करेगा, तो मेरा यह संशोधन स्वीकार किया जाये।

*डॉ. **मनमोहन दास** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided that, in order to be recruited for any of the posts in connection with the affairs of the Union, a candidate must be thoroughly conversant in the following languages:—

(i) The official language of the Union.

(ii) The English language.

(iii) Any other regional language of the Union except the official language.' "

[परन्तु संघ के कार्यों से सम्बद्ध किसी पद पर भर्ती होने के लिये किसी उम्मीदवार को इन भाषाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

(1) संघ की सरकारी भाषा।

(2) अंग्रेजी भाषा।

(3) सरकारी भाषा को छोड़कर अन्य कोई एक प्रादेशिक भाषा।]

श्रीमान्, मेरा संशोधन यह प्रस्थापित करता है कि संघ सरकार के अधीन पदाधिकारी के रूप में भर्ती होने के लिये किसी उम्मीदवार को कम से कम तीन भाषाओं का अर्थात् अंग्रेजी, संघ की सरकारी भाषा और देश की सरकारी भाषा से भिन्न एक प्रादेशिक भाषा का ठीक काम करने लायक ज्ञान होना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन के अनुच्छेद 282 में राष्ट्रपति को केन्द्रीय सरकार के अधीन सेवाओं की भर्ती के सम्बन्ध में नियम तथा विनियम बनाने की शक्ति सौंपी गई है। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है मेरा संशोधन इन विनियमों के कुछ सिद्धान्तों के पुर:स्थापन करने का प्रयास करता है। ये सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि मैं यह अनुभव करता हूं कि इनको राष्ट्रपति के प्रसाद तथा इच्छा पर नहीं छोड़ देना चाहिये वरन् इनको संविधान में स्थान मिलना चाहिये।

श्रीमान्, केन्द्र के किसी सरकारी पदाधिकारी को अंग्रेजी का काम करने लायक ज्ञान अत्यावश्यक रूप से अपेक्षित होना चाहिये क्योंकि आज अंग्रेजी व्यवहार्यत: संसार की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन गई है। इसके साथ-साथ 150 वर्षों से भी पूर्व से अंग्रेजी माध्यम द्वारा ही वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक विषयों की शिक्षा इस देश के लोगों को दी जा रही है। यह बात भी है कि भारत और विदेशों का सम्बन्ध, जो दिन प्रति दिन अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है, अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा ही निभाया

[डॉ. मनमोहन दास]

जा रहा है। अतः यह हमारी सरकार के लिये हानिकारक होगा यदि केन्द्रीय सरकार के अधीन पदाधिकारियों में अंग्रेजी भाषा में काम करने लायक ज्ञान का अभाव हो।

दूसरी बात यह है कि संघ सरकार के अधीन हमारे पदाधिकारियों को हमारी राष्ट्रभाषा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये क्योंकि यह संघ की सरकारी भाषा है।

तीसरी बात यह है कि संघ सरकार के अधीन हमारे पदाधिकारियों के लिये हमारी सरकारी भाषा से भिन्न किसी प्रादेशिक भाषा का काम करने लायक ज्ञान रखना अपेक्षित होगा। श्रीमान, भारतीय संघ में भिन्न-भिन्न भाषा भाषी अनेक प्रांत हैं और केन्द्रीय सरकार को सदैव प्रान्तों और राज्यों से निकट सम्पर्क में रहना चाहिये। अतः यह आवश्यक है तथा अत्यावश्यक है कि केन्द्रीय सरकार के अधीन हमारे पदाधिकारियों को उन राज्यों की प्रादेशिक भाषा का कम से कम कुछ काम करने लायक ज्ञान होना चाहिये जो आज भारतीय संघ में सम्मिलित है। भारत के राज्यों की प्रादेशिक भाषाओं का यह ज्ञान एक दूसरे दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। यह शैक्षणिक अर्हताओं को एक स्तर पर बनाये रखने के हेतु है विशेषकर हमारी केन्द्रीय सेवाओं के सदस्यों में भाषा सम्बन्धी अर्हताओं को।

श्रीमान्, इस सभा ने अभी तक देश की सरकारी भाषा को नहीं चुना है। इस विषय पर वाद-विवाद से कटु परिणाम उत्पन्न हो जाने की आशंका से बचने के लिये हमने इस वादहेतु को अब तक स्थगित रखा है। पर वह समय आ गया है जब कि हम और अधिक समय के लिये इस विषय को स्थगित नहीं रख सकेंगे और अविलम्ब ही हमें कुछ न कुछ विनिश्चय करना पड़ेगा। श्रीमान, जनसंख्या के उस एक वर्ग को जिसकी मातृ भाषा इस सभा द्वारा देश की सरकारी भाषा स्वीकार की जायेगी, उन वर्गों की अपेक्षा जिनकी मातृ भाषा भारत की इस सरकारी भाषा के समान नहीं होगी, अनुचित, अन्यायपूर्ण तथा स्वाभाविक लाभ होगा। इस अन्तर को मिटाने के लिये.......

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं समझता हूं कि मेरे मित्र इस विषय पर बहुत कुछ कह चुके हैं, और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। हम उनकी बात समझ गये हैं। हमें आज कम से कम एक अनुच्छेद तो समाप्त कर लेना चाहिये।

***डॉ. मनमोहन दास:** यदि यह बात है तो मैं चुप होता हूं।

डॉ. पी.एस. देशमुख: श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के परंतुक में से 'and any rules so made shall have effect subject to the provisions of any such Act' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

मेरा प्रयोजन साधारण सा है क्योंकि इससे पूर्व के शब्दों में यह कहा गया है कि "जब तक समुचित विधान-मंडल के अधिनियम के द्वारा या अधीन उस

लिये उपबन्ध नहीं बनाये जाते तब तक यथास्थिति संघ के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के बारे में राष्ट्रपति को तथा राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के बारे में राज्य के राज्यपाल या शासक को, ऐसी सेवाओं और पदों के लिये शर्तों तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाले नियमों के बनाने की क्षमता होगी।"

इन आरम्भ के शब्दों पर विचार करते हुये यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार का कोई खंड जोड़ने की आवश्यकता नहीं है जिसके द्वारा ये नियम किसी ऐसे अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुये प्रभावी हों। यदि ये शब्द "जब तक समुचित विधान-मंडल...... इत्यादि इत्यादि" वहां पर हैं तो उपरोक्त नाम के प्राधिकारियों द्वारा निर्मित नियम केवल तभी तक प्रवर्तनीय होंगे जब तक कि समुचित विधान-मंडल उस विषय का निपटारा अधिनियम द्वारा करता है।

दो और संशोधन हैं। वे अधिकतर मसौदा सम्बन्धी हैं और मैं उन्हें मसौदा-समिति पर छोड़ने के लिये तैयार हूं। अत: मैं उनको पेश करना नहीं चाहता हूं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided further that all tests, examinations, interviews and competitions held for the purpose of selecting candidates for services and posts in connection with the affairs of the Union or a State shall, as far as practicable, be conducted in the language recognised for the official purposes of the Union or the State as the case may be.' "

(परन्तु यह और भी कि संघ अथवा राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के लिये अभ्यर्थी चुनने के प्रयोजन के लिये सब इम्तिहानों, परीक्षाओं, परिचयों तथा प्रतियोगिताओं का संचालन जहां तक हो सके यथास्थिति संघ अथवा राज्य के सरकारी प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात भाषा में किया जायेगा।)

यह बहुत ही साधारण संशोधन है। 150 वर्षों से समस्त देश की यह शिकायत रही है कि देश में जो बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति उत्पन्न हुए उनको अंग्रेजों ने कभी अभिज्ञात नहीं किया। उनका एक अपने ही ढंग का बुद्धिवाद था जिसके द्वारा वे समझते थे कि वे इस देश पर प्रशासन चला सकेंगे। अत: जिन लोगों ने अंग्रेजी भाषा सीखी और जो अंग्रेजी ढंग से आचरण करने लगे उनको शिक्षित समझा गया और देश की सरकार का प्रभार सम्भालने के लायक समझा गया। मुझे

[श्री महावीर त्यागी]

दुख यह है कि आज भी वही हालत है। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था देश ने स्वतंत्रता के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध ही युद्ध नहीं किया। वह गोरी जाति के ही विरुद्ध न था। वह युद्ध हमने नौकरशाही के विरुद्ध लड़ा था और हम उससे मुक्त होना चाहते थे। और अब वह नौकरशाही वैसी ही है जैसी कि थी। मेरी सम्मति के अनुसार शासन उन लोगों के द्वारा नहीं चलाया जाना चाहिये जो भाड़े के टट्टू हैं जो अपनी बुद्धि को भाड़े पर चलाते हैं। मैं तो एक भिन्न विचारधारा का व्यक्ति हूं। अंग्रेजी शिक्षा को मैं भारत के लिये अभिशाप समझता हूं। ये सब पुस्तक-कीट जो अपने विदेशी उच्चारण पर गर्व करते हैं उच्चतर भावना के शिकार होते हैं। सामान्यतया ये लोग कदाचारी तथा अराष्ट्रीय हैं। मैं समझता हूं कि सरकारी सेवकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार वेतन दिया जाये और अपनी बुद्धि का सौदा करने के लिये उन्हें प्रोत्साहित न किया जाये। राज्य की सेवा करने के लिये उन्हें स्वयंसेवकों की भांति अपने आपको अर्पण करना चाहिये। तभी पुरानी शैली में परिवर्तन होगा और यह तभी हो सकता है जब कि हम अंग्रेजी भाषा का परित्याग करें और गौरव सहित अपनी संस्कृति को अपनायें। सारा जोर अंग्रेजी भाषा पर है। सेवा के लिये अभ्यर्थी चुनने की वर्तमान प्रणाली के मैं विरुद्ध हूं। मेरे मित्र श्री मनमोहन दास शिकायत करते हैं कि यदि हिन्दी सरकारी भाषा बना दी जायेगी तो जो लोग हिंदी भाषा भाषी प्रान्त के नहीं हैं वे उन लोगों से प्रतियोगिता में पिछड़ जायेंगे जो हिंदी भाषा भाषी प्रान्त के हैं। अत: मैं सुझाव देता हूं कि सब बातों की परीक्षा केवल हिंदी में ही न ली जाये। मैं अकेली हिंदी के पक्ष में नहीं हूं। मेरा निवेदन यह है कि प्रत्येक अभ्यर्थी की उसकी मातृ भाषा में परीक्षा ली जाये। अपनी मातृ भाषा में कोई व्यक्ति अपने विचारों की सर्वोत्तम अभिव्यंजना कर सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): तो फिर लोक सेवा आयोग के सदस्यों को उस अभ्यर्थी की भाषा सीखनी पड़ेगी जिसकी वे परीक्षा करना चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** यदि आप इस प्रकार का विधान बनायेंगे तो उनको वे भाषायें सीखनी पड़ेंगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** भारत में लगभग 130 मुख्य भाषायें हैं और लगभग 200 बोलियां हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** किसी अभ्यर्थी की बुद्धिमानी परखने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि इस बात की परीक्षा की जाये कि उसने कितनी मात्रा में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की उच्चारण शैली को ग्रहण किया है। आप उसकी परीक्षा हिन्दुस्तानी में, मद्रासी में, बंगाली में या अन्य किसी भाषा में कर सकते हैं। भाषा

में विज्ञ होना ही शिक्षा की एकमात्र कसौटी नहीं है। शिक्षित होने के लिये व्यक्ति में संसार का सामान्य ज्ञान होना चाहिये और उसे यह सिद्ध करना चाहिये कि स्वयं अपने ऊपर आचरण करके उसने ज्ञान से पूर्ण लाभ उठाया है और उसने ज्ञान को हृदयंगम कर लिया है। अपने स्वभाव और व्यवहार में उसे अपने ज्ञान को चरितार्थ करना चाहिये। परन्तु आज जैसा कि हम देखते हैं विशेष जोर शुद्ध अंग्रेजी और स्वीकृत अंग्रेजी शैली में मेज पर के अच्छे आचरण पर है। ऐसे व्यक्तियों को परिचयों में चुना जाता है। यदि इसी तरह की हालत रहती है तो हम कभी भी स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकते। देश के सच्चे सपूतों को सरकारी नौकरी में भर्ती करने की एक मात्र ठीक विधि यह है कि अभ्यर्थियों की उनकी मातृभाषा में परीक्षा ली जाये।

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य ने विस्तारपूर्वक अपने विचार प्रकट कर दिये हैं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ यदि आपको विश्वास हो गया है तो मैं आपका कृतज्ञ हूं।

*__अध्यक्षः__ मैंने यह नहीं कहा कि मुझे विश्वास हो गया है। आपने जो कुछ कहा उसे मैंने समझ लिया। समस्त सम्बद्ध संशोधन पेश हो चुके हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ आपकी अनुज्ञा से श्रीमान्, मैं कुछ शब्द कहूंगा। मैं दो मिनट से अधिक नहीं लूंगा।

मेरे मित्र श्री त्यागी द्वारा पेश किये गये इस संशोधन पर मैं यह कहना चाहता हूं कि उनका उद्देश्य बहुत उच्च है, पर मुझे शंका है कि उनके संशोधन के प्रवर्त्तन करने में बड़ी कठिनाई होगी। आरम्भ में ही मैं यह कह दूं कि इस प्रकार से किसी भी भाषा का विरोध करना पूर्णतया तर्क विरोधी है। अंग्रेजी भाषा का विरोध भी तर्क विरोधी है। हमने भारत में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध युद्ध किया पर अंग्रेजी भाषा के विरुद्ध कभी युद्ध नहीं किया। सभा को मैं यह याद दिलाऊंगा कि तुर्की के विदेशी राज्य से स्वतंत्र होने के पश्चात् ही कमाल अतातुर्क ने तुरन्त ही समस्त तुर्की के लिये रोमन लिपि स्वीकार की और उसको प्रख्यापित किया।

श्रीमान्, इस संशोधन के स्वीकार करने में दो कठिनाइयां हैं। सर्वप्रथम यह कि संघ के कार्यो से सम्बद्ध पद सबके सब एक ही श्रेणी के नहीं होते हैं। क्या श्री त्यागी यह चाहते हैं कि वाणिज्य दूत और राजनय संबंधी पदों के लिये भी अभ्यर्थियों की परीक्षा भारतीय संघ की सरकारी भाषा में ही हो?

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैंने यह कहा था कि उस प्रदेश की भाषा में जहां का वह अभ्यर्थी है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ वे मेरी बात नहीं समझ पाये। मैं उनसे यह जानना चाहता हूं कि बाहर वाणिज्य दूत तथा राजनय संबंधी पदों के लिये चुने जाने वाले व्यक्तियों की केवल भारतीय भाषा में ही परीक्षा ली जाये।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैंने "जहां तक हो सके" कहा है। यदि आप फ्रांस स्थित अपने दूतावास के लिये अभ्यर्थी चुन रहे हैं उसे फ्रैंच का ज्ञान होने दीजिये। पर उसकी परीक्षा उसकी ही मातृभाषा में हो। यदि किसी व्यक्ति की परीक्षा मराठी भाषा में ली जाती है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मेरे मित्र ने सब इम्तिहान, परीक्षायें, परिचय और प्रतियोगितायें, एक साथ अपने संशोधन में रख दी हैं। मैं उनको यह कहूंगा कि उनके संशोधन के भावों का मैं सम्मान करता हूं। मैं केवल उन व्यावहारिक कठिनाइयों को बता रहा हूं जो इस संशोधन के स्वीकार करने में आयेंगी। इंग्लैंड में भी राजनय संबंधी और यहां तक कि गृह असैनिक सेवाओं की नियुक्तियों के लिये भी निर्वाचन मंडलियों द्वारा संचालित सब परीक्षायें अंग्रेजी भाषा में नहीं ली जाती हैं।

*__अध्यक्षः__ श्री कामत ने केवल दो मिनट लेने का वचन दिया था, पर उन्होंने उससे अधिक समय ले लिया है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, मैं कुछ क्षणों में समाप्त किये देता हूं। सभा को मैं यह बता दूं कि इंग्लैंड में सब परीक्षायें अंग्रेजी ही में नहीं होती हैं। उसी प्रकार भारत में भी यह व्यवहार्य नहीं होगा कि सब इम्तिहान और परीक्षायें संघ या राज्य की सरकारी भाषा में ही ली जायें।

मैंने यह कहा था कि संघ के पदों की भिन्न-भिन्न श्रेणियां हैं और प्रत्येक श्रेणी के लिये विशिष्ट अर्हताओं की आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि किसी विशेष राज्य के लिये यह आवश्यक हो कि वह ऐसे पदाधिकारी रखना चाहे जो संघ सरकार से संबंध बनाये रखने के प्रयोजन के लिये हों। ऐसे पदों के लिये केवल राज्य की भाषा का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होगा। संघ की सरकारी भाषा के ज्ञान के साथ-साथ कदाचित् विदेशी भाषा का ज्ञान भी उन पदाधिकारियों के लिये जो राज्य और केन्द्र में संबंध बनाये रखने के लिये हैं तथा उन पदाधिकारियों के लिये जो विदेशों में हैं आवश्यक होगा। अतः मैं समझता हूं कि श्री त्यागी का संशोधन.......

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य अपनी समय-सीमा पार कर चुके हैं। क्या डॉ. अम्बेडकर बोलना चाहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं एक भी संशोधन को स्वीकार नहीं करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के साथ यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided further that no person shall be eligible for appointment to any of the superior public services and posts in connection with the affairs of the Union unless he is thoroughly conversant with any other regional language of India besides the National language of India.'"

[परन्तु यह और भी कि यदि कोई व्यक्ति भारत की राष्ट्र भाषा के सहित अन्य किसी प्रादेशिक भाषा का पूर्ण जानकार नहीं है तो संघ संबंधी किसी उच्च लोक सेवा तथा पद पर नियुक्त होने का वह पात्र न होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3034 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में 'Acts of the appropriate Legislature may regulate' शब्दों के स्थान में 'the Union Public Service Commission as respects the All-India services and also as respects other services and posts in connection with the affairs of the Union, and the State Public Service Commission as respects the State Services and also as respect other services and posts in connection with the affairs of the State shall make regulations on all matters relating to' शब्द रखे जायें और परन्तुक अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 3034 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में 'affairs of the Union or any State' शब्दों के पश्चात् 'and fix the minimum as well as the maximum amount of salary of a Government servant, as also lay down the conditions to be fulfilled by a group of persons to be able to be included in the List of public servants' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद संशोधन संख्या 228।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ प्रस्थापित नये अनुच्छेद 282-क पर मेरे संशोधन 8 के बारे में क्या हुआ?

*__अध्यक्षः__ अभी मैं अनुच्छेद 282-क को नहीं ले रहा हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ मुझे खेद है, श्रीमान्।

*__अध्यक्षः__ उस समय मैंने कहा था कि आप उसे पेश न करें और आपने उसे पेश नहीं किया था। हमने अभी अनुच्छेद 282-क नहीं लिया है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में 'Acts of the appropriate Legislature' शब्दों के स्थान में 'Acts of Parliament' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 में जहां 'may' शब्द प्रथम बार आया है उसके स्थान में 'shall' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के परंतुक के स्थान में यह परंतुक रखा जायेः—

'Provided that Parliament may by law specify the public services in the States with regard to which Acts of appropriate Legislature may regulate the recruitment and conditions of service of persons appointed to them.'"

[परन्तु संसद विधि द्वारा राज्यों की उन लोक सेवाओं का उल्लेख करेगी जिनके लिये समुचित विधान-मंडल के अधिनियम भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेंगे।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के परंतुक में से 'and any rules so made shall have

effect subject to the provisions of any such Act' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided further that all tests, examinations, interviews and competitions held for the purpose of selecting candidates for services and posts in connection with the affairs of the Union or a State shall, as far as practicable, be conducted in the language recognised for the official purposes of the Union or the State as the case may be.' "

[परन्तु यह और भी कि संघ अथवा राज्य के कार्यों से सम्बद्ध सेवाओं और पदों के लिये अभ्यर्थी चुनने के प्रयोजन के लिये सब इम्तिहानों, परीक्षाओं, परिचयों तथा प्रतियोगिताओं का संचालन जहां तक हो सके यथास्थिति संघ अथवा राज्य के सरकारी प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात भाषा में किया जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282 के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that, in order to be recruited for any of the posts in connection with the affairs of the Union, a candidate must be thoroughly conversant in the following languages:—

(i) The official language of the Union.

(ii) The English language.

(iii) Any other regional language of the Union except the official language.' "

[परन्तु संघ के कार्यों से सम्बद्ध किसी पद पर भर्ती होने के लिये किसी उम्मीदवार को इन भाषाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये:—

(1) संघ की सरकारी भाषा।

[अध्यक्ष]

(2) अंग्रेजी भाषा।

(3) सरकारी भाषा को छोड़कर अन्य कोई एक प्रादेशिक भाषा।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि इतने ही संशोधन हैं। अब मैं डॉ. अम्बेडकर की प्रस्थापना पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 282 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 282 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 282-क

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3034 में प्रस्थापित अनुच्छेद 282-क में—

(1) खंड (1) में दो स्थान पर आये हुए 'holds' शब्द के स्थान में 'shall hold' शब्द रखे जायें; और 'during the pleasure of the President' और 'during the pleasure of the Governor of the State' शब्दों के स्थान में 'until he attains the age of sixty eight' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, मैं समझता हूं.....

***अध्यक्षः** आप खंड (2) और (3) पेश नहीं कर रहे हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जी नहीं, वे 282-ख के सम्बन्ध में हैं। इस संशोधन के पेश करने के समय से अब मैंने अपनी स्थिति में रूपभेद कर लिया है। अब मैं इस प्रस्थापना के पक्ष में हूं कि राज्य का प्रत्येक असैनिक सेवक, चाहे वह संघ में हो चाहे प्रान्तों में, केवल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करे। मैं इस प्रस्थापना से सहमत नहीं हो सकता हूं कि राज्य का प्रत्येक सेवक यथास्थिति राज्य के राज्यपाल या शासक के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करे। राज्यपाल या शासक का अर्थ मंत्रिमंडल से है।

***अध्यक्षः** आप अपने ही संशोधन का समर्थन नहीं कर रहे हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, इस प्रश्न पर मैंने आपकी अनुज्ञा ले ली थी। श्रीमान्, मैंने आपसे यह निवेदन किया था कि चूंकि मैं उस संशोधन को पेश कर चुका था, पर अब मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि यह ठीक है कि राज्य के सब असैनिक सेवक राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करें।

***अध्यक्षः** आपके संशोधन को पेश करने और मुझसे आपने जो निवेदन किया था उसके बीच में इतना कम समय था कि उसके बारे में कोई निर्णय करना मेरे लिये कठिन था।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यदि आप इस समय इस अनुच्छेद पर मेरा भाषण देना उचित नहीं समझते हैं तो साधारण वाद-विवाद के समय जब इस अनुच्छेद को लिया जाये मैं उस समय आपकी अनुज्ञा से कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** मैं वचन तो नहीं देता हूं। आप अपने अवसर की प्रतीक्षा करें।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या माननीय सदस्य 86 साल तक की आयु रखना चाहते हैं अथवा यह 68 की मुद्रण त्रुटि है?

***अध्यक्षः** हम इससे अगले डॉ. देशमुख के संशोधन सं. 235 को लेते हैं।

(संशोधन संख्या 235, 236 और 237 पेश नहीं किये गये।)

मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 282-क पर इतने ही संशोधन हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं कुछ बातें कहना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** मैं ऐसा नहीं समझता हूं। मैं समझता हूं कि यह अच्छा है कि आपकी बातों के बिना ही हम अग्रसर हों।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जैसी आपकी इच्छा श्रीमान्, मेरे लिये तो आपके शब्द विधिवत हैं।

***अध्यक्षः** 282-क पर और संशोधन नहीं हैं। प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 282-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

अनुच्छेद 282-क संविधान में प्रविष्ट किया गया।

अनुच्छेद 282-ख

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद पर मेरे पास कई संशोधन हैं। आज हम एक या दो संशोधन पेश कर सकते हैं। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद संख्या 9।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** कल बोलने के अपने अधिकार को मैं रक्षित रखना चाहूंगा। पांच मिनट में मैं अपने संशोधन को पढ़ और उस पर भाषण नहीं दे सकता हूं।

***अध्यक्षः** आप अपना संशोधन इस समय पेश कर सकते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3034 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 282-ख में–

खंड (2) में 'by an authority subordinate to that by which he was appointed' शब्दों के स्थान में 'except by an order of the Union Public Service Commission, or, as the case may be, by the State Public Service Commission' शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** आप पिछले संशोधन का खंड (2) पढ़ रहे हैं। वह 282-क के सम्बन्ध का है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** वह 282-ख के सम्बन्ध का है।

***श्री जसपतराय कपूरः** आपको संशोधन संख्या 9 पेश करना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जी नहीं, संख्या 9, 282-ग के सम्बन्ध में है। श्रीमान्, ये पुराने संशोधन हैं।

***अध्यक्षः** पर पुराना अनुच्छेद पेश नहीं किया गया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** यह 282-ख पर संशोधन है।

"जो व्यक्ति संघ की असैनिक सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य है, अथवा संघ के या राज्य के अधीन असैनिक पद को धारण करता है, वह अपनी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायेगा अथवा पद से हटाया नहीं जायेगा।"

श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को पेश करना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि ये संशोधन (2) और (3) ठीक बैठते ही नहीं हैं। वे 282-ख के साथ ठीक नहीं बैठते हैं, अतः उनकी बात नहीं उठती है।

***श्री महावीर त्यागीः** उनको पेश किया गया समझ लिया जाये।

***अध्यक्षः** नहीं, उनको पेश किया गया नहीं समझा जा सकता है क्योंकि वे ठीक नहीं बैठते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं उनमें संशोधन करने का प्रयास करूंगा, और आपकी अनुज्ञा से श्रीमान, उन्हें कल पेश करूंगा।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि एक बज चुका है और हमको अब उठ जाना चाहिये। एक सुझाव यह दिया गया है। कि हम दोपहर बाद समवेत हों।

***माननीय सदस्यः** जी हां, हम दोपहर बाद समवेत होंगे।

*अध्यक्षः कुछ कठिनाइयां हैं। मंत्रिमंडल की बैठक है जिसमें डॉ. अम्बेडकर को उपस्थित होना है।

*श्री आर.के. सिधवा (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मसौदा-समिति बाद में समवेत हो सकती है।

*अध्यक्षः मसौदा-समिति का मैं जिक्र नहीं कर रहा हूं। मंत्रिमंडल की बैठक है।

*श्री आर.के. सिधवाः परन्तु मसौदा-समिति के और भी तो सदस्य हैं जो उपस्थित हो सकते हैं।

*अध्यक्षः अनुसूचित समय में हम बहुत काम कर सकते हैं यदि सदस्य समय के प्रति सावधान रहें। मैं समझता हूं कि मेरे मार्ग में कुछ कठिनाई है। यदि कोई सदस्य भाषण देने का आग्रह करता है तो उस सदस्य को भाषण देने से रोकना मेरे लिये बड़ा कठिन है।

*श्री आर.के. सिधवाः हम बैठने और कार्य समाप्त करने के लिये तैयार हैं। हम सात या आठ घंटे बैठ सकते हैं।

*अध्यक्षः यह सम्भव नहीं है। हम आठ घंटे तक नहीं बैठ सकते हैं। आखिरकार हम मनुष्यों की तरह से ही काम कर सकते हैं। यंत्रों की भांति हम काम नहीं कर सकते हैं। अतः मैं इसे सम्भव नहीं समझता हूं। आप क्या कहते हैं, डॉ. अम्बेडकर, क्या दोपहर बाद बैठक कर सकते हैं?

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं आशा करता हूं कि मंत्रिमंडल की बैठक से मैं लगभग साढ़े पांच बजे लौट आऊंगा। यदि सभा उसके दो घंटे बाद तक बैठने के लिये तैयार है तो मैं पूर्णतया तैयार हूं, पर साढ़े पांच बजे के बाद से ही हमारी मसौदा-समिति की बैठक है, क्योंकि यदि हम उन अनुच्छेदों को तैयार नहीं कर लेंगे जो स्थगित रखे गये हैं तो आगे बढ़ना कठिन हो जायेगा। हमें विनिश्चय करने के लिये किसी अन्य स्थान को जाना पड़ेगा और फिर यहां आना पड़ेगा। यदि सभा चाहती है तो मसौदा-समिति की बैठक हम किसी अन्य समय के लिये रख सकते हैं।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः और भी कठिनाइयां हैं जिनको मैं रखना चाहता हूं। कितने ही समय तक बैठने की मैं चिन्ता नहीं करता हूं। जिस बात की मैं चिन्ता करता हूं वह केवल यह है कि संशोधनों पर विचार करने के लिये हमें यथेष्ट समय मिलना चाहिये। मसौदा-समिति अभी तक अपने कई महत्वपूर्ण संशोधन तैयार नहीं कर पाई है। मैं आपसे बहुत सम्मानपूर्वक यह निवेदन करूंगा कि आप हमारी स्थिति पर विचार करें। यदि संशोधन के मसौदा बनाने में या उन पर भाषण देने में बिना पर्याप्त तैयारी के हमें भाग लेना पड़ता है तो परिणाम यह होगा कि असंगत

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

बातें होंगी। मैं निवेदन करता हूं कि आपने अन्तिम मसौदों पर विचार करने के लिये मसौदा-समिति को हमें पर्याप्त समय देना चाहिये। वे अपने विचार प्रति दिन बदलते रहते हैं। वे शायद यह सोचते हैं कि हमें इस विषय में कोई भाग नहीं लेना है—ये बात दूसरी है—पर मैं तो यहां कुछ करने के लिये—अपना कर्तव्य करने के लिये आया हूं। ऐसी दशा में मैं समझता हूं कि संशोधन हमारे पास इतने समय पूर्व आ जायें कि हम उन पर विचार कर सकें। यदि हमें दोपहर बाद भी बैठना है तो आपके पास यह विचार करने के लिये कहां समय है कि कौन-कौन से संशोधन रखे जायें और फिर वे संशोधन कार्यालय को समय में भेज दिये जायें जिससे कि वह उनको ठीक समय में सदस्यों के पास भेज सके?

***अध्यक्षः** लगभग पंद्रह अनुच्छेदों पर के संशोधनों को तो हम भेज ही चुके हैं। अनुच्छेद 281 और 282 पर हम विचार समाप्त कर चुके हैं। 282-क को भी हम समाप्त कर चुके हैं। इसके बाद 282-ख, 282-ग, 283, 243, 244 245, 274-क से ङ तक, 264, 265, 265क और 266 आते हैं। ये सब कल घुमाये जा चुके हैं अतः सदस्यों के पास संशोधनों की सूचना देने का समय था।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** वे हमारे पास अप्रासंगिक रूप में आ रहे हैं। वास्तव में ये संशोधन अनियमित क्रम में आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में मदारी की रीति का पालन किया गया है। वास्तव में उनको सही रूप में देखने के लिये सदस्यों को कोई अवसर नहीं मिलता। दोपहर बाद की बैठकों में संशोधनों पर ठीक विचार नहीं हो सकेगा। मैं स्वयं कितने ही समय तक बैठने के विषय पर चिन्तित नहीं हूं। प्रश्न केवल यह है कि संशोधनों पर विचार करने के लिये हमें पर्याप्त समय मिलना चाहिये। यद्यपि मसौदा-समिति हमारे सुझावों को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है, पर फिर भी यथासंभव हमें संशोधनों का अध्ययन तो करना ही पड़ता है। अतः हम समय चाहते हैं। सारी कठिनाई मसौदा-समिति की है, पर शायद वे स्वयं कुछ और ही बातों के सहारे हैं। पर हमारी स्थिति पर भी विचार करना चाहिये। और भी अनेक महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं। जिन पर विचार करना होगा। अभी हमें जो महत्वपूर्ण संशोधन दिये गये हैं उनमें से बहुत से इतने परस्पर भिन्न हैं, इतने कठिन और इतने जटिल हैं कि प्रत्येक अनुच्छेद पर प्रसंगानुसार विचार करना पड़ेगा। हम मसौदा-समिति के सभापति की सी भाग्यशाली स्थिति में नहीं हैं जिनकी सेवा में बड़े योग्य सहायक हैं। उन्हें किसी तर्क पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है और जब उत्तर देने का समय आता है तो वे कह सकते हैं कि वे कुछ नहीं कहना चाहते हैं। हमारी स्थिति उतनी अच्छी नहीं है। अतः मेरा निवेदन यह है कि संशोधन के अध्ययन के लिये हमें कुछ समय मिलना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ जहां तक इन अनुच्छेदों का सम्बन्ध है, मैं समझता हूं कि किसी भी सदस्य को यह शिकायत नहीं हो सकती है कि उसे संशोधनों पर विचार करने के लिये पर्याप्त समय नहीं मिला।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ इसमें कोई संदेह नहीं कि हमें संशोधन मिल गये हैं। हमें अगले सप्ताह के भाषा और प्रतिकर सम्बन्धी विषय के संशोधन मिल गये हैं। हम उन्हें प्राप्त कर चुके हैं, पर श्रीमान्, जहां तक सभा के कार्यक्रम का प्रश्न है आपको विदित है कि पिछले दस दिनों से मसौदा-समिति हमसे यह कहती चली आ रही है कि वह तैयार ही नहीं है और जब उसने हमसे दो घंटे बैठने के लिये कहा तो हमने उसकी बात मान ली। हम सरकारी धन का अपव्यय कर रहे हैं और वह तैयार नहीं हो पाती। मेरा निवेदन यह है कि सरकारी रुपया बचाने के लिये, यदि मसौदा-समिति तैयार नहीं है तो 15 दिन को सभा स्थगित कर दी जाये जिससे कि संशोधन तैयार हो जायें और मसौदा-समिति अपना पूरा कार्यक्रम तैयार कर ले। कल हम दोपहर बाद बैठने के लिये तैयार थे, परसों हम दोपहर बाद बैठने के लिये तैयार थे, पर डॉ. अम्बेडकर कार्य में व्यस्त थे। अत: राज्य के इस समस्त व्यय का उत्तरदायित्व डॉ. अम्बेडकर पर होगा न कि सभा के सदस्यों पर।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ मैं निवेदन करता हूं कि यह बहुत अनुचित है क्योंकि यदि परसों से पहले कार्यावली पर के काम को समाप्त कर लिये जाने को सभा तैयार है तो हम सभा को यह आश्वासन दे सकते हैं कि शुक्रवार के लिये हमारे पास काफी काम होगा, पर प्रश्न यह है कि क्या सभा कार्यावली पर के काम को समाप्त करने के लिये तैयार है।

*__अध्यक्ष:__ अगले मंगलवार तक के लिये काफी काम है क्योंकि ये अनुच्छेद जो सदस्यों के सामने है सम्भव है परसों तक का समय ले लें और उसके बाद शनिवार, सोमवार और मंगलवार के लिये हमारे पास महत्वपूर्ण विषय विचार के लिये हैं। अत: काम काफी है, और कोई काम नहीं ले सकते हैं। यह इस कारण नहीं है कि मसौदा समिति तैयार नहीं कर पाई है। आगामी बुधवार तक के लिये उसने हमें काफी काम दे रखा है।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ हम दोपहर बाद बैठना चाहते हैं।

*__अध्यक्ष:__ यह बात नहीं है कि हम दोपहर बाद इसलिये न बैठ रहे हों कि हमारे पास काम नहीं है। अन्य कारणोंवश यह सुझाव दिया गया है कि हम न बैठें। मैं यह सभा पर छोड़ दूंगा कि वह दोपहर बाद बैठना चाहती है या नहीं।

*__माननीय सदस्य:__ जी नहीं।

*__श्रीमती जी. दुर्गाबाई__ (मद्रास : जनरल): हमें 5-30 के बाद समवेत होने दीजिये।

*श्री विश्वनाथ दास (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मैं अपनी और अपने मित्रों की ओर से बोल रहा हूं कि जैसा मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने सुझाया है उसके अनुसार हम सात या आठ घंटे तक बैठने के लिये राजी नहीं हैं। जैसा कि आपने सही सुझाव दिया है हम मनुष्य हैं और पक्ष में विवरणपूर्ण वाद-विवाद हो जाने के पश्चात् और उसके बाद यहां अच्छे रूप में वाद-विवाद हो जाने के पश्चात् हम बहुत लम्बे और व्याख्यात्मक भाषण नहीं सुनना चाहते हैं। अतः मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप वक्ताओं के भाषणों पर नियंत्रण रखें। इस प्रकार से मैं समझता हूं कि समय की बचत की सम्भावना हो सकती है, श्रीमान्, मसौदा-समिति पर दोषारोपण करने के लिये मेरे पास कोई बात नहीं है *(बाधायें)*। वह हमसे बधाई पाने के योग्य हैं। वह बड़ा कठिन परिश्रम कर रही है। उन्हें हमसे बहुत कम अवकाश मिलता है और मसौदा-समिति के काम पर टीका टिप्पणी और आलोचना करना अन्याय तथा क्रूरता है। श्रीमान्, इन शब्दों में मैं आपसे निवेदन करूंगा कि आप वाद-विवाद पर नियंत्रण करें और यथासम्भव शीघ्र समाप्त करने का प्रयत्न करें।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: श्रीमान्, मैं कुछ शब्द कहना चाहूंगा।

*अध्यक्ष: आवश्यक नहीं है। मैं इस प्रश्न पर कोई वाद-विवाद नहीं चाहता हूं। यदि सभा मुझसे सहयोग करेगी तो मैं सभा की कार्यवाहियों का संचालन कर सकूंगा। सदस्यों से मेरा प्रथम निवेदन यह है कि वे संशोधनों की सूचना देने की प्रवृत्ति को कम कर दें। इसके कारण कार्यालय को घोर परिश्रम करना पड़ता है क्योंकि उन्हें रात को देर तक कई पृष्ठों को छापना पड़ता है और उनको बांटना होता है और फिर मैं देखता हूं कि उनमें से कई संशोधन कभी-कभी पेश नहीं किये जाते हैं, कभी-कभी उन पर जोर नहीं दिया जाता है, कभी-कभी उनको वापस ले लिया जाता है और उनमें से अधिकांश गिर जाते हैं। अतः सर्वप्रथम मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे इस बात पर विचार कर लिया करें कि जिन संशोधनों की वे सूचना देने का विचार करते हैं वे क्या वास्तव में ऐसे संशोधन हैं जो इस सभा के लिये विचारणीय हैं। वास्तव में जो संशोधन नियमानुसार हैं उनको अध्यक्ष के नाते नियम विरुद्ध घोषित करना मेरे लिये कठिन है। मैं उनको नियम विरुद्ध घोषित नहीं कर सकता हूं। पर सदस्यों से मेरा निवेदन यह है कि वे संशोधनों पर विचार करें और यदि वे यह अनुभव करें कि वे वास्तव में आवश्यक हैं तो वे उनकी सूचना दें। मेरा दूसरा निवेदन यह है कि अपने भाषणों को संक्षिप्त करें। यदि हम ऐसा कर सकेंगे तो मैं समझता हूं कि हम अनुसूचित समय में कार्य समाप्त कर लेंगे। परन्तु यदि हम प्रति दिन संशोधनों की सूचना देते रहेंगे और प्रत्येक संशोधन पर भाषण देते रहेंगे तो मैं नहीं कह सकता हूं कि हम कब तक समाप्त कर सकेंगे।

जहां तक आज के सायंकाल के सत्र का सम्बन्ध है, एक ऐसा सुझाव है कि हम 5.30 से 7.30 तक बैठें। क्या सभा की यही इच्छा है।

*कई माननीय सदस्यः जी हां।

*कई माननीय सदस्यः जी नहीं।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः दिन में दो बार बैठने के लिये विवश होने की अपेक्षा हम अपने संशोधनों और भाषणों को कम कर देंगे। यह बात नहीं है कि हम काम न करना चाहते हों। कुछ काम घर पर होना चाहिये और कुछ यहां।

*अध्यक्षः इस प्रकार के विषय में जब सभा में मतभेद हो गया है तो मैं सभा के किसी वर्ग को जो अधिक बैठना नहीं चाहता है उसे अधिक बैठने के लिये विवश नहीं करूंगा। आज सायंकाल को हम नहीं बैठेंगे।

*श्री जसपतराय कपूरः श्रीमान्, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं *(बाधायें)* कि यदि हमारे पास पूरा कार्यक्रम हो जिसे आप 17 तारीख तक समाप्त करना चहाते हैं तो उस समय तक हम कार्य समाप्त कर सकते हैं। हममें से अनेक सदस्य 17 तारीख से पूर्व कार्य समाप्त करने के लिये उत्सुक हैं।

*अध्यक्षः मैं यह काम करूंगा। सभा कल प्रातःकाल 9 बजे तक के लिये स्थगित हुई।

इसके पश्चात् सभा बृहस्पतिवार ता. 8 सितम्बर सन् 1949 के प्रातः नौ बजे तक के लिये स्थगित हुई।

Con. 3. IX.29.49
350

अंक 9
संख्या 29

बृहस्पतिवार
8 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 282-ख, 282-ग और 274-क से 274-ङ
के भाग 10-क पर विचार] .... [1701–1779]

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 8 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रात: नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

अनुच्छेद 282-ख

***अध्यक्ष:** हम अनुच्छेद 282-ख उठायेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार:जनरल): श्रीमान्, यह संशोधन संख्या 8 अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (1) के सम्बन्ध में है। इस खण्ड की अन्तिम पंक्ति में ये शब्द हैं, "अपनी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा"। मैं यह चाहता हूं कि इन शब्दों के स्थान पर "संघ के लोक सेवा आयोग अथवा, यथास्थिति, राज्य के लोक सेवा आयोग के आदेश के अतिरिक्त अन्य प्रकार" शब्द रखे जायें। क्या मैं इस संशोधन को उपस्थित कर सकता हूं?

***अध्यक्ष:** जी हां।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (1) में, 'by an authority subordinate to that by which he was appointed (अपनी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा)' शब्दों के स्थान पर 'except by an order of the Union Public Service Commission, or, as the case may be, by the State Public Service Commission (संघ के लोक सेवा-आयोग अथवा, यथास्थिति, राज्य के लोक सेवा आयोग के आदेश के अतिरिक्त अन्य प्रकार)' शब्द रखे जायें।"

मेरे संशोधन का उद्देश्य स्पष्ट है। संघ या राज्य के अधीन अनेक हैसियतों से नौकरी में लगे हुए व्यक्तियों की पदच्युति, पद से हटाया जाना अथवा पंक्तिच्युति लोक सेवा आयोग के हाथ में होनी चाहिये। मैं यह चाहता हूं कि अनुशासन के मामले केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय मंत्रियों के हाथ में नहीं रहने चाहियें। श्रीमान् मैं किसी ऐसी कार्यवाही का सुझाव नहीं रख रहा हूं जो संसार के किसी अन्य भाग में नहीं की जाती। इंग्लिस्तान, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, तथा आस्ट्रेलिया में लोक-सेवक मंत्रियों के अधीन नहीं रहते। इस व्यवस्था से न कोई कलह उत्पन्न

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

हुआ है और न प्राधिकार के सम्बन्ध में कोई भ्रम हुआ है। मुझे इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है कि आज की स्थिति में यदि हमें अपनी असैनिक सेवा का निर्माण ठोस वैज्ञानिक आधार पर करना है तो हमें उसे मंत्रियों के नियंत्रण में नहीं रखना चाहिये। नौकरों का मंत्रियों के नियंत्रण से मुक्ति का महत्व यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतना तो है ही जितना न्यायपालिका की कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्ति का है। मेरा नम्र निवेदन है कि लोक सेवकों का मंत्रियों से अधिक महत्व है। "लोग आते जाते रहते हैं किन्तु वे जहां के तहां रहते हैं।" चाहे मंत्री मंत्रिमण्डल में कितनी ही जल्दी क्यों न आयें और कितनी ही जल्दी उसे छोड़कर चले क्यों न जायें किन्तु लोक सेवक बने ही रहते हैं। यदि लोक-सेवकों को सुरक्षा तथा मंत्रियों के हस्तक्षेप से मुक्ति का आश्वासन दिया जाये तो हमारे राष्ट्रीय जीवन में नींव सुदृढ़ हो सकती है। यदि वे मंत्रियों के कृपापात्र नहीं बन पाते हैं तो निर्दोष होने पर भी उनकी बदली हो जाती है और उन्हें दूर के अनजान जिलों में भेज दिया जाता है। इससे वे यह समझने लगते हैं कि वे अरक्षित हैं। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि देश को एक ही प्रशासन की आवश्यकता है। श्रीमान्, मेरा यह मत है कि सभी असैनिक सेवक, संघ के लोक सेवा आयोग के नियंत्रण में रहने चाहिये। मैं यह रियायत करने के लिये भी सहमत हूं कि नियंत्रण राज्यों के लोक सेवा आयोग के हाथ में भी रहे। मैं यह चाहता हूं कि भारत के असैनिक सेवक चाहे वे केन्द्र के हों या प्रान्तों के, केन्द्रीय लोक सेवा आयोग के अधीन हों। श्रीमान्, आज कल का समय बहुत कठिन समय है। हमारा सारा समाज अवनति तथा पतन को प्राप्त हो रहा है। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा समाज नई व्यवस्था के जन्म की प्रसव पीड़ा को अधिक काल तक न सहता रहे तो हमें अपनी असैनिक सेवाओं की नींव सुदृढ़ भूमि पर रखनी चाहिये।

***अध्यक्षः** क्या आप खण्ड (3) के सम्बन्ध में अपना संशोधन नहीं उपस्थित कर रहे हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जी हां, उपस्थित कर रहा हूं। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "खण्ड (3) के परन्तुक की कण्डिका (ख) में, 'where an authority empowered to dismiss a person or remove or reduce him in rank (जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाले किसी प्राधिकारी)' शब्दों के स्थान पर 'if the Union Public Service Commission, or, as the case may be, the State Public Service Commission (यदि संघ के लोक सेवा आयोग, अथवा, यथास्थिति, राज्य के लोक सेवा आयोग)' शब्द रखे जायें।"

मुझे इस संशोधन के सम्बन्ध में थोड़े से शब्द कहने हैं। इस परन्तुक में पदच्युत करने, पद से हटाने और पंक्तिच्युत करने का प्राधिकार तीन प्राधिकारियों को, अर्थात् ऊंचे अधिकारियों को, राज्यपाल को और राष्ट्रपति को प्रदान किया गया हैं मेरे विचार से राज्यों को भी दोषी लोकसेवकों को पदच्युत करने की कुछ शक्ति प्राप्त होनी चाहिये, विशेषत: जब प्राधिकारियों को यह विश्वास हो जाये कि कोई व्यक्ति राजद्रोही है और उसे सेवा में रहने देना उचित नहीं है। किन्तु यह शक्ति कई प्राधिकारियों को प्राप्त नहीं होनी चाहिये। कई प्राधिकारियों को यह शक्ति प्रदान करना उचित नहीं है। यदि आप ऐसा करेंगे तो पदाधिकारी अपने को सुरक्षित नहीं समझेंगे।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 10–श्री जसपत राय कपूर।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282–ख में से, खण्ड (2) का उपखण्ड (ख) निकाल दिया जाये और इस अनुच्छेद का खण्ड (3) भी निकाल दिया जाये और उसके बाद के उपखण्ड (ग) को उपखण्ड (ख) कहा जाये।"

प्रस्तावित अनुच्छेद 282–ख का खण्ड (2) इस प्रकार है:–

"(2) उपर्युक्त प्रकार का कोई व्यक्ति तब तक पदच्युत नहीं किया जायेगा, अथवा पद से नहीं हटाया जायेगा, अथवा पंक्तिच्युत नहीं किया जायेगा, जब तक कि उसके बारे में प्रस्थापित की जाने वाली कार्यवाही के खिलाफ कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर उसे न दे दिया गया हो:"

खण्ड (2) के इस सारवान अंश के साथ तीन परन्तुक हैं, जिनमें से परन्तुक (ख) इस प्रकार है:–

"जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाले किसी पदाधिकारी का समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायेगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये;"

मैं इस उपखण्ड (ख) को निकालना चाहता हूं।

इसके अतिरिक्त मैं एक अन्य खण्ड को भी निकालना चाहता हूं। वह खण्ड (3) है, जो इस प्रकार है:–

"यदि कोई प्रश्न पैदा होता है कि क्या इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के परन्तुक के खण्ड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं तो ऐसे व्यक्ति को यथास्थिति,

[श्री जसपतराय कपूर]

पदच्युत करने या पद से हटाने अथवा उसे पंक्तिच्युत करने की शक्ति वाले प्राधिकारी का उस पर विनिश्चय अन्तिम होगा।"

यह स्पष्ट हो गया होगा कि खण्ड (3) का निकाला जाना आनुषंगिक है। जब उपखण्ड (ख) और खण्ड (2) निकाले जायेंगे तो उसे भी निकालना आवश्यक हो जायेगा।

श्रीमान्, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 282-ख का उद्देश्य सरकारी नौकरों की रक्षा करना है ताकि वे ये समझें कि वे तब तक दंडित नहीं किये जायेंगे जब तक इसके लिए कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर न दिया जायेगा कि उन्हें दंडित करने का आदेश क्यों न दिया जाये। किन्तु श्रीमान्, यद्यपि इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि सरकारी नौकरों को यह विश्वास दिलाया जाये कि वे सुरक्षित हैं किन्तु दुर्भाग्य से इस अनुच्छेद की शब्दावली कुछ ऐसी है कि खण्ड (2) के सारवान अंश में जो उपबन्ध हैं उनका आगे आने वाले विस्तृत परन्तुकों से अपहरण हो जाता है। इस प्रकार इस खण्ड के सारवान अंश में जो कुछ प्रदान किया गया है वह आगे के परन्तुकों द्वारा तो लिया गया है। यह अनुच्छेद पुराने भारत शासन अधिनियम की धारा 240 के आधार पर बनाया गया है। वास्तव में भारत शासन अधिनियम की पूरी धारा 240 ले ली गई है और उसे इस स्थल पर समाविष्ट कर दिया गया है। केवल दो और बातें जोड़ दी गई हैं। परन्तु उन दोनों से सरकारी नौकरों के हितों की हानि होती है। भारत शासन अधिनियम की धारा 240 के साथ जो दो नवीन अंश जोड़े गये हैं वे प्रस्तावित अनुच्छेद का खण्ड (2) का उपखण्ड (ग) तथा खण्ड (3) हैं। मेरा यह निवेदन है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक जन्मसिद्ध मूलभूत तथा प्रारम्भिक अधिकार प्राप्त है कि बिना सुनवाई हुए वह दंडित नहीं किया जायेगा। यह सच है कि इस अनुच्छेद में इस अधिकार को स्वीकार किया गया है किन्तु, जैसाकि मैं निवेदन कर चुका हूं, इस अधिकार को एक स्थल पर केवल स्वीकार मात्र करना और कई परन्तुकों को रखकर उसे पूर्णरूप से नहीं तो उसके सार को अपहृत करना न्यायपूर्ण नहीं प्रतीत होता।

देखिये तो यह परन्तुक किस प्रकार के हैं। पहला परन्तुक इस प्रकार है:-

"जहां कोई व्यक्ति ऐसे आचार के आधार पर पदच्युत किया गया या हटाया गया या पंक्तिच्युत किया गया है जिसके लिये दंड दोषारोप पर वह सिद्ध दोष हुआ है।"

उस सरकारी नौकर को इसके लिये कारण दिखाने का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं समझी गई है कि उसे पदच्युत करने, पद से हटाने अथवा पंक्तिच्युत करने के लिये आदेश क्यों न दिया जाये। खण्ड (2) का खण्ड (क) वर्तमान रूप में बहुत विस्तृत है। उसमें कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति सिद्धदोष हुआ हो, चाहे वह दोष कितना ही नगण्य क्यों न हो (क्योंकि साधारणतया उसका यही आशय है), तो वह पदच्युत किया जा सकता है, इत्यादि, और उसे इसके लिये कारण दिखाने का अवसर देने की आवश्यकता नहीं समझी गई है कि उसके खिलाफ इस प्रकार का आदेश क्यों नहीं निकाला जाये। यह बहुत विस्तृत उपबंध है और इसलिये, मेरे विचार से, यह आवश्यक है कि कोई इस आशय का खण्ड जोड़ा जाय कि यदि किसी दंड-दोषारोप के आधार पर कोई व्यक्ति सिद्धदोष हो तो उस दंड-दोषारोप में दुराचार भी अन्तर्ग्रस्त होना चाहिये।

यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इस आशय का उपखण्ड नहीं है किन्तु कोई भी उच्च पदाधिकारी किसी नगण्य दोष के कारण, जिसके लिये कोई सरकारी नौकर सिद्धदोष हुआ हो, उसे पदच्युत अथवा पंक्तिच्युत करने की मूर्खता नहीं करेगा। यह सच है कि यह खण्ड इसी रूप में पुराने भारत शासन अधिनियम में था और यह कहा जा सकता है कि सरकारी नौकरों ने इस खण्ड के रहने के कारण कभी यह अनुभव नहीं किया कि अनुचित रूप से अत्याचार होने अथवा दंड दिये जाने के कारण उन्हें उत्पीड़न सहन करना पड़ा है। किन्तु जब हम सब कुछ नये सिरे से आरम्भ करने जा रहे हैं और एक नवीन संविधान का निर्माण कर रहे हैं तो आखिर इस प्रकार की कमियों को क्यों पूरा न किया जाये....

*__अध्यक्ष:__ माननीय सदस्य महोदय से मैं कहूंगा कि वे अपने विचार संक्षेप में व्यक्त करें यह संशोधन स्पष्ट है और सदस्य यह आसानी से समझ सकते हैं कि इसका प्रभाव क्या होगा।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ मैं अपने विचार अवश्य ही संक्षेप में व्यक्त करना चाहता हूं और इसी कारण मैंने इस खण्ड के सम्बन्ध में एक संशोधन को उपस्थित नहीं किया है। मैं इस विषय पर अधिक कुछ नहीं कहूंगा।

दूसरा परन्तुक, जिसे निकालने के सम्बन्ध में मैंने अपना संशोधन उपस्थित किया है, इस प्रकार है:

"जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाले किसी प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि किसी कारण से जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायेगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये;"

इस दशा में सम्बन्धित व्यक्ति को इस प्रकार का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकता जब किसी सरकारी नौकर को कारण दिखाने का अवसर देना युक्तियुक्त रूप से व्यवहार्य न हो। यह पूछा जा सकता है कि यदि कोई व्यक्ति फरार हो जाये तो उसे यह अवसर किस प्रकार दिया जा सकेगा। मेरा सीधा-साधा उत्तर यह है कि सूचना उस जगह के पते से भेज दी जाये जहां वह फरार होते समय रहता था, अथवा उस पते से भेज दी जाये जो उसने अपने मालिक को दिया हो। इससे अवश्य ही यह समझा जायेगा कि उस व्यक्ति को युक्तियुक्त अवसर मिल गया है। न्यायालयों में अथवा कम्पनी की विधि के अधीन यह होता ही है। यदि किसी साझीदार को उसके पंजीबद्ध निवास स्थान पर सूचना दे दी जाती है तो वह पर्याप्त समझा जाता है। इसलिये मेरा निवेदन है कि यदि किसी सरकारी नौकर के खिलाफ कोई आदेश दिया जाता है तो उसे सूचना देने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

मैं चाहता हूं कि खण्ड (3) को भी निकाल देना चाहिये और यदि परन्तुक (ख) को निकालने के सम्बन्ध में मेरे संशोधन को स्वीकार किया गया तो खण्ड (3) को भी निकालना आवश्यक होगा।

[श्री जसपतराय कपूर]

इसके अतिरिक्त खण्ड (3) बहुत सख्त है क्योंकि उसके अधीन सरकारी नौकर को पदच्युत करने वाले अथवा अन्य प्रकार दंडित करने वाले प्राधिकारी का इस सम्बन्ध में निर्णय कि उसे सूचना देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं, अन्तिम निर्णय हो जाता है। इस निर्णय के खिलाफ कोई अपील तक नहीं की जा सकती है। इससे खण्ड (2) के उपखण्ड (ख) का आशय और भी कठोर हो जाता है।

मैं परन्तुक (ग) के सम्बन्ध में एक शब्द और कहूंगा। इसका यह आशय है कि यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक का समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह इष्टकर नहीं है कि उस व्यक्ति को ऐसा अवसर दिया जाये तो इस प्रकार का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। राजनैतिक सिद्धदोषों के सम्बन्ध में भी यदि किसी सिद्धदोष की स्वतंत्रता का अपहरण किया जाता है तो सरकार, जैसाकि हम सभी जानते हैं जो व्यक्ति निरुद्ध किया जाता है उसे सूचित करती है कि वह किस स्थिति में और किन कारणों से निरुद्ध किया जा रहा है। उसे इसके लिये कारण दिखाने का अवसर दिया जाता है कि उसके खिलाफ अमुक-अमुक आदेश क्यों न निकाला जाये अथवा उसकी पुष्टि क्यों न की जाये। किन्तु इस उपखण्ड के अधीन यदि किसी सरकारी नौकर को पदच्युत किया जाता है, पद से हटाया जाता है अथवा पंक्तिच्युत किया जाता है तो उसे इस प्रकार का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि सरकारी नौकर को इस प्रारम्भिक अधिकार से क्यों वंचित किया जा रहा है। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे सरकारी नौकर योग्यता से कार्य करें, यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे सरकारी नौकर प्रसन्न और सन्तुष्ट रहें, यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे सरकारी नौकर सुरक्षा का अनुभव करके अपने कार्य में तल्लीन हों तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम यह उपबन्धित करें कि उनके खिलाफ तब तक आदेश नहीं दिये जायेंगे जब तक उन्हें इसके लिये कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर न दिया जायेगा कि उन्हें क्यों दंडित न किया जाये।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों से कहना चाहता हूं कि मैं आज अर्थात् दोपहर के भोजन तक 245वें अनुच्छेद तक सभी अनुच्छेदों को समाप्त कर देना चाहता हूं और मैं इस सम्बन्ध में माननीय सदस्यों से सहयोग चाहता हूं। संशोधन बहुत कुछ स्पष्ट ही है और यह भी स्पष्ट है कि उनका क्या प्रभाव होगा। इस कारण संशोधनों के पक्ष में अथवा विपक्ष में लम्बे भाषण देने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये माननीय सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि वे संशोधनों को केवल उपस्थित ही करें और यदि वे बोलना ही चाहें तो दो मिनट से अधिक समय न लें।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मुझे अपने संशोधन संख्या 239, 244 और 245 को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये।

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'Conduct (आचार)' शब्द के पश्चात् 'involving moral turpitude (जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो)' शब्द रखे जायें।"

अथवा, विकल्पत:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'charge (दोषारोप)' शब्द के पश्चात् 'involving moral turpitude (जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हों)' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) में और खण्ड (3) में, 'practicable (व्यवहार्य)' शब्द के स्थान पर 'possible (सम्भव)' शब्द रखा जाये।"

मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ग) में 'is satisfied (का समाधान हो जाता है)' शब्दों के स्थान पर 'certifies (प्रमाणित करता है)' शब्द रखे जायें।"

इन संशोधनों के सम्बन्ध में मुझे सभा का अधिक समय लेने की आवश्यकता नहीं है। संशोधन संख्या 239 के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि यह स्पष्ट है कि कई मामलों में न्यायालयों में लोगों को सिद्ध-दोष घोषित किया जाता है किन्तु उन मामलों में कोई ऐसी बातें नहीं होती जिनके आधार पर उन्हें पद से हटाया जा सकता है। यदि इस खण्ड को वर्तमान रूप में रहने दिया गया और जिन शब्दों का मैंने प्रस्ताव रखा है उन्हें प्रविष्ट नहीं किया गया तो प्रत्येक दोष सिद्धि के आधार पर लोक-सेवक पदच्युत किये जा सकेंगे अथवा पद से हटाये जा सकेंगे। यह संतोषजनक व्यवस्था नहीं है। मैं जानता हूं कि कई मामलों में लोग सैद्धान्तिक आपत्ति करने पर सिद्धदोष घोषित किये जाते हैं जैसाकि टीका न लगवाने पर। कई मामले लापरवाही के भी होते हैं। कई मामले ऐसे होते हैं जिनमें दुराचार का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि किसी लोक-सेवक को केवल दोषसिद्धि के आधार पर पदच्युत किया गया अथवा पद से हटाया गया तो जनसाधारण को बहुत क्षोभ होगा। मेरा यह विनम्र निवेदन है कि इस प्रकार के मामलों के सम्बन्ध में उनके गुण-दोषों पर विचार करके निर्णय किया जाये। मेरी यह धारणा है कि किसी मामले में विमुक्ति का आदेश भी दोषसिद्धि के समान ही माना जा सकता है। यह हो सकता है कि किसी विधि सम्बन्धी बात के आधार पर कोई व्यक्ति भले ही विमुक्त किया गया हो किन्तु स्थिति को देखते हुए निर्णय से उसका दोष सिद्ध होता हो। इसके विपरीत किसी विधि-सम्बन्धी बात के आधार पर किसी व्यक्ति के खिलाफ दोषसिद्धि का आदेश दिया गया हो किन्तु स्थिति को देखते हुए निर्णय से वह निर्दोष सिद्ध होता हो। इस दशा में उचित यही होगा कि उसे पदच्युत न किया जाये अथवा पद से न हटाया जाये। इस स्थिति में मेरा सभा से निवेदन है कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये ताकि यथास्थिति ईमानदार लोगों की रक्षा हो सके और बेईमान लोगों को दंडित किया जा सके।

अपने संशोधन संख्या 244 के सम्बन्ध में मुझे यह निवेदन करना है कि, जैसाकि श्री जसपतराय कपूर कह चुके हैं, यह सच है कि जो कुछ एक हाथ

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

से दिया जा रहा है वह दूसरे हाथ से छीन लिया जा रहा है। इसमें नियमों को संतुलित किया गया है। किन्तु व्यवहार में तराजू को न तो मालिक के हित के लिये और न नौकर के हित के लिये झुकाना चाहिये। अनुच्छेद 282-ख का यह उपबन्ध न्यायोचित है। किन्तु हमें यह देखना चाहिये कि व्यवहार में लोग उसके कारण कठिनाई में न पड़ें। इसी कारण मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि "व्यवहार्य" शब्द के स्थान पर "सम्भव" शब्द रखा जाये। साधारणतया जब कभी सम्भव होगा सम्बन्धित व्यक्ति को कारण दिखाने के लिये सूचना देने का प्रयास किया जायेगा। यह उचित नहीं है कि उसे अपने सामने न आने दिया जाये और उसे कारण दिखाने का अवसर न दिया जाये। ताकि कारण दिखाने के लिये अवसर देने के सम्बन्ध में "व्यवहार्य" शब्द का दुरुपयोग न किया जाये, मैंने यह कहा है कि जहां युक्तियुक्त रूप से यह "सम्भव" हो, उसे इसका अवसर दिया जाये। इससे प्रत्येक लोक-सेवक को अवश्य ही यथोचित अवसर प्राप्त हो जायेगा।

संशोधन संख्या 245 के सम्बन्ध में भी मैं एक शब्द कहना चाहता हूं। इस उपबन्ध में "समाधान हो जाता है" शब्दों को प्रयोग किया गया हैं हम जानते हैं कि "समाधान" शब्द का क्या निर्वचन किया जाता है। वास्तव में राष्ट्रपति का समाधान नहीं होता। साधारणतया प्रभारी मंत्री का समाधान होता है। वास्तव में मंत्री का भी समाधान नहीं होता। समाधान होता है किसी सचिव अथवा उपसचिव का। इसलिये सतर्क रहने की दृष्टि से मैं "समाधान होता है" शब्दों के स्थान पर "प्रमाणित करता है" शब्दों को रखना चाहता हूं। प्रमाणित होने पर पूरी सतर्कता बरती जा सकेगी। प्रमाणपत्र देने के पूर्व प्रभारी मंत्री अथवा राष्ट्रपति सम्बन्धित प्रश्न पर विचार करेगा। यदि "प्रमाणित करता है" शब्द रहेंगे तो प्रमाणपत्र देने के पूर्व सम्बन्धित प्राधिकारी अवश्य ही विचार करेगा। किन्तु यदि "समाधान हो जाता है" शब्द रहे और यह समाधान लोक-सेवक के परोक्ष में हुआ तो जो रक्षा उसे प्रदान की गई है वह अस्पष्ट और भ्रामक ही सिद्ध होगी।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 240 में जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है, तीन भाग हैं। पहले भाग का आशय पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन संख्या 239 से पूरा हो जाता है। दूसरे भाग का आशय संशोधन संख्या 10 से पूरा हो जाता है, जो श्री जसपतराय कपूर के नाम से है। केवल तीसरे भाग का आशय, जिसका उद्देश्य उपखण्ड (ग) को निकालता है, उपस्थित किये हुए किसी संशोधन से पूरा नहीं होता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जी हां, श्रीमान्, स्थिति यही है। यद्यपि मेरे संशोधन के पहले भाग का उद्देश्य वही है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का है किन्तु उन दोनों में कुछ शाब्दिक अन्तर है। इसलिये यदि आपकी अनुमति हो तो मैं पहले भाग को भी उपस्थित करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है।

***श्री. नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक में,—

(1) उपखण्ड (क) में 'on the ground of conduct which has led to his conviction on a criminal charge (ऐसे आचार के आधार पर.......जिसके लिए

दंड दोषारोप पर वह सिद्ध-दोष हुआ है)' शब्दों के स्थान पर 'on the ground that he has been convicted of an offence involving moral turpitude (इस आधार पर......कि वह किसी ऐसे दोष के लिये सिद्ध-दोष हुआ है जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त है)' शब्द रखे जाये; और

(2) उपखण्ड (ग) निकाल दिया जाये।"

अपने अन्य संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 246 के सम्बन्ध में, जिसका उद्देश्य खण्ड (3) को निकालना है मेरा यह निवेदन है कि उसका आशय श्री जसपतराय कपूर के संशोधन संख्या 10 से पूरा हो जाता है और इसलिये मैं उसे नहीं उपस्थित करना चाहता।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण है और इसका बहुत से सरकारी नौकरों के हितों पर प्रभाव पड़ता है। उच्च सरकारी पदाधिकारियों के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वे बहुत सुरक्षित हैं। वे प्रभावशाली हैं और अपनी चिंता स्वयं कर सकते हैं। उनमें से बहुत कम लोगों के साथ अन्याय होगा और यदि हुआ तो उसका निराकरण हो जायेगा। किन्तु मध्यम वर्ग के बहुत से लोक-सेवकों के प्रति जो बहुत दूरी पर जिलों में अथवा परगनों में सड़ते रहते हैं, यदि अन्याय हुआ तो उसके कारण उन्हें कहीं अधिक कष्ट सहन करना पड़ेगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि उन उपबन्धों पर, जिनका उन पर प्रभाव पड़े और जिनके कारण उनके प्रति बहुत अन्याय हो सकता हो सभा सावधानी से विचार करे।

इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में कहा गया है कि कोई पदाधिकारी तब तक पदच्युत नहीं किया जायेगा अथवा पद से नहीं हटाया जायेगा, अथवा पंक्तिच्युत नहीं किया जायेगा जब तक कि उसके बारे में प्रस्थापित की जाने वाली कार्यवाही के खिलाफ कारण दिखाने का युक्तियुक्त अवसर उसे न दे दिया गया हो। इसके बाद परन्तुक आता है। मेरा निवेदन है कि खण्ड (2) द्वारा जो सुरक्षा प्रदान की जा रही है उसका परन्तुक से पूर्णतया निराकरण हो जाता है। पहले परन्तुक का आशय यह है कि यदि कोई व्यक्ति दंड दोषारोप पर सिद्ध-दोष होने पर पदच्युत किया गया हो तो उसे कारण दिखाने का अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव यह स्पष्ट कर चुके हैं कि ऐसा दोष-सिद्ध होना चाहिये जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो। कई दोष ऐसे भी हैं जैसे आघात करना, किसी चहारदीवारी के अन्दर घुस जाना, विधि की दृष्टि में मान हानि अथवा इसी प्रकार की अन्य बातें जिन्हें संक्षेप में ऐसे दोष कहा जाता है जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त नहीं होता। इस प्रकार के सभी मामलों में यदि कार्यालय का मालिक किसी को निकाल बाहर करने का प्रयास करे तो उसे कारण दिखाने का अवसर दिया जाना चाहिये। हम केवल यही मांग कर रहे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई:जनरल): खण्ड (3) को निकालने के सम्बन्ध में कोई संशोधन नहीं है। आपका संशोधन केवल उपखण्ड (ख) को निकालने के सम्बन्ध में है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी हां, मैंने इस संशोधन की भी सूचना दी है। संशोधन संख्या 246 देखिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) को निकालने के सम्बन्ध में एक संशोधन श्री जसपतराय कपूर के नाम से है।

***अध्यक्षः** एक संशोधन माननीय सदस्य महोदय (मि. नज़ीरुद्दीन अहमद) के नाम से भी है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** वे अपना भाषण जारी रखें। मैं केवल उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहता था।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** खण्ड (3) को निकालने के सम्बन्ध में मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी किन्तु मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं क्योंकि श्री जसपतराय कपूर उसे उपस्थित कर चुके हैं। मैंने यह बताया था कि मैं उसे क्यों नहीं उपस्थित कर रहा हूं किन्तु सम्भवतः डॉ. अम्बेडकर उससे अधिक दिलचस्प किसी बात को सुन रहे थे।

श्रीमान् खण्ड (3) को निकालने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा जा चुका है। उसे मेरे मित्र श्री जसपतराय कपूर ने उपस्थित किया था। वे उसे उपस्थित कर चुके हैं। चूंकि आपने इस प्रश्न की ओर संकेत किया था और मुझे भी निर्देश दिये थे इसलिये मैंने उसे उपस्थित नहीं किया। मैं समझता हूं कि उसे उपस्थित करना अनावश्यक है।

यह परन्तुक बहुत ही महत्वपूर्ण है। परन्तुक (क) में यह प्रतिबन्ध रखा गया कि यदि कोई पदाधिकारी या लोक-सेवक दंड-दोषारोप पर सिद्धदोष हुआ हो तो उसे पद से हटाने, पदच्युत करने अथवा पंक्तिच्युत करने पर कारण दिखाने का अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु किसी अपराध के मामले में सिद्ध दोष होने का अर्थ यह नहीं है कि उसने अवश्य ही दुराचार किया हो। कई सम्मानित लोग भी किसी कारण से उत्तेजित होने पर लोगों पर आघात करते हैं और उन्हें सिद्धदोष भी घोषित किया जाता है। किन्तु उसकी नैतिकता तथा विद्वत्ता पर इसकी छाया बिल्कुल भी नहीं पड़ती और न वह इस कारण सरकारी नौकरी के अयोग्य ही हो जाता हैं यदि वह किसी ऐसे मामले में सिद्धदोष बताया गया हो जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो तो निस्सन्देह उसे अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं आनी बातों को परन्तुक (क) तक ही सीमित रखना चाहता हूं जिसके अधीन ऐसे दोषों के लिये कारण दिखाने का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है, जिनसे दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो, क्योंकि इन दोषों के लिये दोष सिद्धि अन्तिम होगी और वुछ बातों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं होगी।

श्री जसपतराय कपूर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि हमेशा अवसर देने की आवश्यकता क्यों है। "यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये" पद का क्या अर्थ है? वास्तव में किसी

कार्यालय में काम करने वाले व्यक्ति को बड़ी आसानी से सूचना दी जा सकती है। यदि वह भाग जाता है तो उसे उस कारण भी पदच्युत किया जा सकता है। यदि वह छुट्टी पर रहता है तो उसका पता ज्ञात होोता है और सूचना उस पते से भेजी जा सकती है। मैं केवल यह चाहता हूं कि अवसर दिया जाना चाहिये। अवसर देने का बहुत महत्व है। कभी स्पष्टीकरण से किसी मनोविकल के सम्बन्ध में कई सारपूर्ण बातें ज्ञात हो सकती हैं और उनसे उस व्यक्ति को सहायता मिल सकती है। अवसर न देने का अर्थ है न्याय न करना।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मेरा एक संशोधन जिसका आशय किसी अन्य संशोधन से पूरा नहीं होता इस परन्तुक के खण्ड (ग) को निकालने के सम्बन्ध में है। इसे मैं बहुत महत्व देता हूं। खण्ड (ग) इस प्रकार है:—

"जहां, यथा स्थिति राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक का समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में यह इष्टकर नहीं है कि उस व्यक्ति को ऐसा अवसर दिया जाये।"

"राज्य की सुरक्षा" पदावली प्रत्येक व्यक्ति को इतनी प्यारी है कि प्रत्येक जगह उसी को काम में लाया जाता है। परन्तुक (ग) में उस पर बहुत जोर दिया गया है। यद्यपि इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि राज्य की सुरक्षा को बनाये रखना आवश्यक है। किन्तु मेरी समझ में यह बिल्कुल नहीं आता कि जब कोई सरकारी पदाधिकारी पद से हटाया जाता है या पदच्युत किया जाता है और उसे इसके लिये कारण दिखाने का अवसर दिया जाता है कि उसे पदच्युत क्यों न किया जाये अथवा पद से क्यों न हटाया जाये तो इससे राज्य की सुरक्षा पर क्या असर पड़ता है। मैं केवल यह चाहता हूं कि उसे इसके लिये अवसर मिलना चाहिये। यदि कोई पदाधिकारी बहुत ही अनुचित व्यक्ति है और वह राज्य की सुरक्षा को हानि पहुंचाता है और इस सम्बन्ध में उसके सभी कार्य बहुत ही खतरनाक हैं तो उसे निरुद्ध किया जा सकता है। तब भी उसे स्पष्टीकरण का अवसर देने से राज्य की सुरक्षा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि उसका आचरण खराब है और उसके कारण देश की सुरक्षा पर प्रभाव पड़ता है तो उससे निबटने के लिये बहुत सी शक्तियां प्रदान की गई हैं। किन्तु यह न्यायपूर्ण तथा युक्तियुक्त न होगा कि उसे किसी कारण से स्पष्टीकरण के अवसर से वंचित किया जाये। श्रीमान्, मेरे विचार से, इस प्रकार के प्रसंग में राज्य की सुरक्षा का कोई भी प्रश्न नहीं उठता। किसी व्यक्ति को ऐसा अवसर देने से राज्य की सुरक्षा पर कभी भी कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि वह व्यक्ति निरुद्ध है तो उसे कारागार में सूचना दी जा सकती है और वह अपना स्पष्टीकरण भेज सकता है। उस पर विचार करने में कोई हानि नहीं होगी। उसके प्रति न्याय करने में क्या हानि होगी? वह राज्य की सुरक्षा के लिये खतरनाक हो सकता है किन्तु इस कारण उससे यथोचित रूप से निबटने के लिये पर्याप्त उपबन्ध हैं। हम इस समय सेवाओं की सुरक्षा पर विचार कर रहे हैं। हम इस पर विचार कर रहे हैं कि सेवकों को कारण दिखाने का अवसर देना चाहिये या नहीं यदि हम यह कहते हैं कि राज्यपाल की अथवा राष्ट्रपति की यह सम्मति है कि सम्बन्धित व्यक्ति बहुत खतरनाक है और इसी आधार पर उसे पदच्युत कर देना चाहिये तो बात दूसरी हो जाती है। किन्तु जब उसे इस आधार पर पदच्युत अथवा पंक्तिच्युत नहीं किया

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

जाता है कि उससे राज्य की सुरक्षा को खतरा है तब अपने कदाचार अथवा कमी को स्पष्ट करने के लिये अवसर न देने के लिये राज्य की सुरक्षा का कारण एक बहाना ही होगा।

मेरे विचार से "राज्य की सुरक्षा" जैसी उच्च पदावली को रखने का कोई अर्थ नहीं होगा यदि यह पदावली रखी गई तो प्रत्येक व्यक्ति यही चिल्लायेगा "राज्य की सुरक्षा, राज्य की सुरक्षा, राज्य की सुरक्षा"। मेरा यह निवेदन है कि यदि किसी पदाधिकारी को कारण दिखाने का अवसर देने से भारत की सुरक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ेगा और यदि भारत की सुरक्षा इसी पर निर्भर है तो मेरे विचार से भारत में कोई सुरक्षा नहीं है। यदि किसी साधारण पदाधिकारी को सफाई का अवसर देने से भारत की सुरक्षा पर प्रभाव पड़ता है तो वास्तव में वह बहुत खतरे में है। ऐसे मामलों में होता यह है कि ऊंचे पदाधिकारी लोगों को बिना पर्याप्त कारण के पदच्युत कर देते हैं। यह कभी द्वेष भाव से भी किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि हमेशा निरपेक्ष होकर ही यह किया जाता है। हम इस प्रकार की बातें सुनते हैं। ये बातें समाचार-पत्रों में नहीं प्रकाशित होती हैं और न इनके विषय में विधान सभाओं में प्रश्न ही पूछे जाते हैं, किन्तु होती हैं यह प्राय: कारण दिखाने का अवसर देने से अपराधी के वक्तव्य का उल्लेख रहेगा उसे कारण लिखने की आज्ञा देने से किसी प्रकार की हानि नहीं होगी और लाभ बहुत होगा। सम्भव है किसी पदाधिकारी ने द्वेष के कारण उसे पदच्युत किया हो। उससे ऊंचा पदाधिकारी उसके स्पष्टीकरण को पढ़ेगा और उसके प्रति न्याय करेगा। उपबन्धित यह है कि उसे पदच्युत करने वाले पदाधिकारी का निर्णय अन्तिम होगा। एक उच्च पदाधिकारी को ऐसी शक्ति प्रदान करना, जिसे वह मनमाने ढंग से प्रयोग कर सकता है, बहुत ही अनुचित है। वास्तव में वह पदाधिकारी ही शिकायत करेगा, वही निर्णय करने वाला न्यायाधीश होगा और वही अपील सुनने वाला अन्तिम प्राधिकारी भी होगा। उसके प्राधिकार पर आपत्ति करने का कोई अर्थ नहीं होगा। इस परन्तुक के खण्ड (क) और (ख) 1935 के भारत शासन अधिनियम की धारा 240 के परन्तुक से लिये गये हैं। उस समय इन खण्डों को उचित ही कहा जा सकता था क्योंकि एक साम्राज्यशाही सरकार शासन कर रही थी और वह जिसे चाहती थी पदच्युत कर देती थी और उसे सफाई देने का अवसर नहीं देती थी। किन्तु अब हम स्वतंत्र भारत में रह रहे हैं। हमें अपने गरीब कर्मचारियों के अधिकारों तथा उनकी स्वतंत्रताओं को सुरक्षित रखने की चिंता होनी चाहिये। वे मध्यम वर्ग के लोग होते हैं और उन्हें रक्षा की आवश्यकता होती है। इसलिये भारत शासन अधिनियम में ये खण्ड (क) और (ख) चाहे जिस कारण रखे गये हों किन्तु स्वतन्त्र भारत में उनके लिये कोई स्थान नहीं है। हमें अपना दिमाग खुला रखना चाहिये और सफाई देने के अधिक अवसर देने चाहियें। हमारा यह कर्तव्य है कि हम सफाई देने का अवसर प्रदान करें। यदि युक्तियुक्त असर नहीं दिया गया तो सुरक्षा का भी कोई अर्थ नहीं रह जाता।

श्रीमान्, इन संशोधनों पर बहुत सावधानी से विचार किया जाना चाहिये क्योंकि इनका उन कर्मचारियों पर प्रभाव पड़ेगा जो अपने असंतुष्ट पदाधिकारियों की दया पर निर्भर रहेंगे। उन्हें पर्याप्त रक्षण की आवश्यकता होगी। जो भी रक्षण प्रदान

किया गया है वह नाम मात्र का ही रक्षण है और उसका केवल मनोवैज्ञानिक आधार ही है। आपको सफाई देने का अवसर प्रदान करना चाहिये। इस परन्तुक के ये खण्ड प्रयोग में नहीं आ सकते और इन्हें निकाल देना चाहिये। परन्तुक (क) को इस प्रकार परिवर्तित कर देना चाहिये कि वह केवल दुराचार सम्बन्धी अपराधों के सम्बन्ध में ही रह जाये।

श्रीमान्, मैं जितना समय लेना चाहता था उससे कुछ अधिक समय ले चुका हूं। मुझे आपका यह निर्णय शिरोधार्य है कि हमें अपने भाषणों को जितना छोटा हो सके उतना छोटा कर देना चाहिये। मैं विश्वास दिलाता हूं कि मैं छोटे से छोटे भाषण दूंगा।

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 241। श्री शिब्बन लाल सक्सेना। जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनसे संशोधन संख्या 241 और 242 दोनों का आशय पूरा हो जाता है।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रान्तःजनरल): श्रीमान्, मैं बोलना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ अभी नहीं। अब संशोधन संख्या 243 आता है। श्री कामत! आपके संशोधन का आशय भी एक उपस्थित किये गये संशोधन से पूरा हो जाता है।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): उसमें उसका पूरा आशय नहीं आता। उसके विकल्प का आशय पूरा नहीं होता।

*__अध्यक्षः__ अच्छी बात है। भाषणों के समय के सम्बन्ध में मैं सख्ती बरतना चाहता हूं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ किन्तु इस विषय के महत्व को देखते हुए कुछ ढील होनी ही चाहिये। यदि मैं किसी तर्क को दुहराऊं तो मुझे रोक दिया जाये।

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य महोदय संशोधन संख्या 243 के विकल्प को न पढ़ें।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"(क) प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख में, खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) में, 'that for some reason to be recorded by that authority in writing it is not reasonably practicable to give that person an opportunity of showing cause (किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायेगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये)' शब्दों के स्थान पर 'on grounds to be recorded in writing that the whereabouts of that person are unknown (इस कारण से, जो लेखबद्ध किया जायेगा, कि उस व्यक्ति का पता ज्ञात नहीं है)' शब्द रखे जायें;

[श्री एच.वी. कामत]

(ख) प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक का उपखण्ड (ग) निकाल दिया जाये।

(ग) प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।"

इस अनुच्छेद में जिस अन्याय को स्थान दिया गया है उसके विरुद्ध कई माननीय सदस्यों ने आवाज़ उठाई है और मैं भी उनका साथ देना चाहता हूं। हम संविधान की प्रस्तावना में यह घोषित कर चुके हैं कि संविधान का आधार-स्तम्भ न्याय ही होगा। हमने अपने आदर्श को प्रस्तावना में ही सम्मानित स्थान प्रदान किया है और कहा है कि सभी को सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक न्याय प्रदान किया जायेगा। मुझे आशा है कि हम लोगों के किसी वर्ग को भी, चाहे वह लोक-सेवकों का वर्ग हो अथवा अन्य लोगों का, उस आधारभूत न्याय से वंचित नहीं रखेंगे जिसका उन्हें अधिकार है। मैं इस पर विचार कर रहा था कि इन अनुच्छेदों को अर्थात् अनुच्छेद 282-क, 282-ख और 282-ग को संविधान में समाविष्ट करने की आवश्यकता है या नहीं। मैं विचार कर रहा था कि क्या हम इस सभा में समवेत होकर केवल वकीलों के समान असैनिक सेवकों के लिये मूल-नियम अथवा असैनिक-सेवा-सम्बन्धी नियमावली बना रहे हैं अथवा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् स्वतन्त्र लोगों के लिये एक संविधान का निर्माण कर रहे हैं—वह संविधान जिसमें स्वतन्त्रता, समता तथा न्याय के आदर्शों का समावेश है। इन अनुच्छेदों से असैनिक-सेवा-सम्बन्धी नियमावली का ही स्मरण होता है। संविधान में इन अनुच्छेदों की आवश्यकता नहीं है। संसार के किसी भी संविधान में इस प्रकार के नियम समाविष्ट नहीं हैं। एक स्वतन्त्र देश का संविधान बनाने में हमारी मसौदा समिति का पथ प्रदर्शन 1935 के भारत शासन अधिनियम से ही होता है मुझे इसका खेद है। मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने बताया था कि असैनिक सेवाओं के सम्बन्ध में हमारे संविधान में भारत शासन अधिनियम के उपबन्धों की नकल करना कितना अन्यायपूर्ण होगा। कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि यह हमारे सुनाम पर एक कलंक है और इससे उस न्याय का अपहरण होता है जिसे हमने अपने संविधान की प्रस्तावना में स्थान देकर सारे संसार में घोषित किया है। मेरा केवल यह निवेदन है कि यदि हम इस अनुच्छेद को इसी रूप में स्वीकार कर लेंगे तो सेवाओं में लगे हुए लोगों का अपने काम में मन नहीं लगेगा। उनका नैतिक पतन हो जायेगा और वे योग्यता से काम नहीं करेंगे। उनके सर पर हमेशा ही तलवार लटकती रहेगी। वह जाने कब गिर जाये, जाने कब कोई सनकी और विघातक मंत्री उसे गिरा दे।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य महोदय तीन मिनट से अधिक समय ले चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं पांच मिनट से अधिक नहीं लूंगा। मैं आज किसी अन्य अनुच्छेद पर नहीं बोल रहा हूं।

***अध्यक्षः** आप अपने व्याख्यान को समाप्त कीजिये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, वह व्याख्यान नहीं है। किन्तु यदि आप उसे यह कहते हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

श्रीमान्, मैं यह कह रहा था कि सार्वजनिक सेवाओं में लगे हुए लोग, जब उनके सर पर यह तलवार लटकती रहेगी तो अपने काम में मन नहीं लगायेंगे। द्वेष रखने वाला कोई मंत्री किसी असैनिक सेवक को बिना सफाई देने का अवसर दिये हुए ही, किसी दिन पदच्युत कर सकता है अथवा पद से हटा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुच्छेद में राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल का उल्लेख किया गया है, किन्तु उसका अर्थ है मंत्री अथवा मंत्रिपरिषद्। कोई भी मंत्री अपनी धुन में किसी लोक-सेवा को यह सूचना दे सकता है–"राज्य की सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए मैं आपके विरुद्ध कार्यवाही करता हूं। आप सेवा से अलग किये जाते हैं।" यह किसी भी व्यक्ति के लिये अन्यायपूर्ण है। असैनिक सेवक का तो कहना ही क्या।

उपखण्ड (ख) के सम्बन्ध में मेरे विचार से पंडित ठाकुरदास भार्गव अथवा मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि केवल एक स्थिति में लोक-सेवक को सफाई देने के सम्बन्ध में सूचना नहीं दी जा सकेगी और वह तब नहीं दी जा सकेगी जब वह लापता होगा। इसी कारण मैंने विकल्पतः संशोधन (क) उपस्थित किया है जिसका आशय यह है कि, "किसी कारण से जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है इत्यादि, इत्यादि" शब्दों के स्थान पर, "इस कारण से जो लेखबद्ध किया जायेगा, कि उस व्यक्ति का पता ज्ञात नहीं है" शब्द रखे जायें। केवल इसी स्थिति में किसी लोक-सेवक को सूचना नहीं दी जा सकेगी। इस अनुच्छेद की दो कमियां यह हैं कि खण्ड (ख) और (ग) के अधीन कोई व्यक्ति, उसे बिना सफाई देने का अवसर दिये हुए तुरंत ही हटाया जा सकता है। यदि सूचना देना सम्भव न हो तो मैं चाहता हूं कि प्राधिकारी इसका उल्लेख करे कि उस व्यक्ति का पता ज्ञात नहीं है। यदि उसका पता ज्ञात है तो राज्य पर इसका दायित्व है कि वह उस व्यक्ति को सफाई देने का अवसर दे। इस कारण खण्ड (ग) निकाल दिया जाना चाहिये। यह बहुत ही अनुचित है कि किसी व्यक्ति को तुरंत ही निकाल दिया जाये और उसे अपनी सफाई देने का अवसर भी न दिया जाये। आपको स्मरण होगा कि पिछले महायुद्ध में जेलों में बन्दियों को सूचित किया गया था कि वे किस कारण बन्दी बनाये गये हैं और उन्हें लिख कर अर्जी देने का अवसर दिया गया था। सरकारी सेवक, जो राज्य के शासन-संगठन के मुख्य अंग हैं, इससे भी वंचित रहेंगे।

एक अन्य प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कुछ कहना चाहता हूं। इस अनुच्छेद में अपील के किसी अधिकार का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख नहीं है। मेरी यह धारणा है कि प्रत्येक लोक-सेवक को हटाने के पहले इसका कारण दिखाने का तो अवसर मिलना ही चाहिये कि वह क्यों नहीं हटाया जाये और साथ ही इस प्रकार के आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार भी प्राप्त होना चाहिये।

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य आठ मिनट ले चुके हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, दुर्भाग्य से....

*__अध्यक्षः__ मेरी रियायत से उन्हें लाभ नहीं उठाना चाहियें।

श्री एच.वी. कामतः मैं अपना भाषण समाप्त कर रहा हूं। यदि इस अनुच्छेद को बिना किसी संशोधन के दुर्भाग्य से स्वीकार कर लिया गया तो मेरी यह धारणा

[श्री एच.वी. कामत]

है कि लोक-सेवक चाहे वे संघ के हों अथवा राज्यों के, जिनका देश के सुयोग्य प्रशासन के लिये बहुत महत्व है, केवल गुलाम और दास होकर रह जायेंगे। मैं यह सोच कर कांप उठता हूं कि यदि यह स्थिति उत्पन्न हुई तो हमारे प्रशासन का क्या होगा। श्रीमान्, मैं सिफारिश करता हूं कि मेरे संशोधन....

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 247।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान्, मैं समाप्त कर रहा हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं अगले संशोधन के प्रस्तावक को उसे उपस्थित करने के लिए बुला चुका हूं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ मुझे खेद है कि आज आप बहुत सख्ती कर रहे हैं।

*__अध्यक्षः__ मुझे खेद है कि मैंने जो ढील दी है उससे आप लाभ उठा रहे हैं। संशोधन संख्या 247, श्री मुनावल्ली।

*__श्री बी.एन. मुनावल्ली__ (बंबई राज्य): श्रीमान् मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) में 'If (यदि)' शब्द के स्थान पर 'if, on the application of the person, so affected, (यदि, संबंधित व्यक्ति के आवेदनपत्र देने पर)' शब्द रखे जायें।

(2) सातवें सप्ताह की सूची 1 के संशोधन संख्या 2 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) में 'any person (किसी व्यक्ति)' शब्दों के स्थान पर 'him (उसे)' शब्द रखा जाये।"

यदि यह नहीं किया गया तो अनुच्छेद 282-ख (2) (ख) के अधीन जिस व्यक्ति को सूचना नहीं दी जायेगी उसके संबंधी अथवा मित्र आपत्ति करेंगे, अथवा यदि नौकरों का कोई संगठन अस्तित्व में होगा तो वह आपत्ति करेगा। इस प्रकार इस खण्ड के अधीन आपत्ति करने की बहुत गुंजाइश है। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि केवल संबंधित व्यक्ति ही आपत्ति कर सके। केवल उसी व्यक्ति को आपत्ति करनी चाहिये ताकि उस पर विचार करके विधि के अनुसार उसे निबटाया जा सके। इस अनुच्छेद में जो सामान्य सिद्धान्त सन्निहित हैं उनका विभिन्न राष्ट्रों की विधियों में समावेश है। अमरीका में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया है कि नौकरी स्थायी होनी चाहिये। इंग्लिस्तान में भी स्थायी नौकरी की परम्परा इतनी सुदृढ़ है कि कोई नवीन मंत्रिमण्डल उसे खण्डित नहीं कर सकता। इस प्रकार के सभी उपबन्धों का सार इस अनुच्छेद में समाविष्ट है। कुछ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि इस अनुच्छेद में जो कुछ उपबंधित है वह परन्तुक द्वारा समाप्त कर दिया गया है। श्रीमान्, बात यह नहीं है। मेरे विचार से यह परन्तुक

केवल उन असैनिक सेवकों पर लागू होगा जिनकी वफादारी के संबंध में बहुत सन्देह होगा। ऐसे असैनिक सेवक भी रहते हैं जिनकी, उनके राजनैतिक संबंधों के कारण आलोचना होती है और वर्तमान सरकार के प्रति जिनकी वफादारी के संबंध में संदेह प्रकट किया जाता है। इस स्थिति में उनसे इस परन्तुक के अधीन निबटने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। अन्य राष्ट्रों के इतिहास में भी ऐसी विधियों का उल्लेख मिल सकता है। उदाहरणार्थ, जब 1933 में जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवादी पदारूढ़ हुए तो उन्होंने असैनिक सेवा विधि प्रख्यापित की जिसमें यह उपबन्धित था कि वे असैनिक सेवक, जिनके राजनैतिक संबंधों पर सन्देह प्रकट किया जा सकता है और जिनकी आलोचना की जा सकती है, पदच्युत अथवा पंक्तिच्युत किये जा सकते हैं। उनके विरुद्ध भी वहां सख्त कार्यवाही की गई जिन्होंने उस समय की सरकार का खुले तौर पर विरोध किया। इसी प्रकार हमारे देश में भी, इन असैनिक सेवकों के सम्बन्ध में, जिनकी वफादारी पर संदेह किया जा सकता है और जो सरकार का खुले तौर पर विरोध करते हैं, कोई ऐसा उपबन्ध होना चाहिये जिसके आधार पर विभागों के प्रधान उनके विरुद्ध यथोचित कार्यवाही कर सकें। इसलिये मेरे विचार से इस परन्तुक को रहने देना चाहिये। मैं इस अनुच्छेद के उपबन्धों का हृदय से समर्थन करता हूं।

***श्री महबूब अली बेग** (मद्रास : मुस्लिम)**:** अध्यक्ष महोदय, यह एक खेद की बात है कि इस महत्वपूर्ण विषय को जिसका लाखों लोक-सेवकों पर प्रभाव पड़ता है, ऐसे समय में हमारे सामने रखा गया है जब हमारे पास बहुत कम समय रह गया है। किन्तु अध्यक्ष महोदय ने कृपा करके हमें इस संबंध में अपने संशोधन उपस्थित करने का समय दे ही दिया है। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) में, 'aforesaid shall be (उपर्युक्त प्रकार का कोई व्यक्ति तब तक)' शब्दों के पश्चात् 'suspended (निलम्बित)' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:–

'for offences of bribery, corruption or treason, or offences involving moral delinquency (घूसखोरी, भ्रष्टाचार अथवा देशद्रोह के अपराधों के लिये अथवा ऐसे अपराधों के लिये जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो)'"

अब मैं 325वें संशोधन को उठाता हूं।

***अध्यक्ष:** उसका आशय एक उपस्थित किये गये संशोधन से पूरा हो गया है।

***श्री महबूब अली बेग:** संशोधन संख्या 325, 326 और 327 उपस्थित किये जा चुके हैं। किन्तु मैं उनके सम्बन्ध में बोलूंगा। तब, श्रीमान्, मैं संशोधन संख्या

[श्री महबूब अली बेग]

328 को उठाता हूं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के पश्चात् निम्नलिखित नवीन खण्ड रखा जाये:

'The Parliament, in the case of Union services, and the Legislature of the State, in the case of State services, shall lay down rules and regulations in this behalf to be followed by the appropriate authority.'"

(संघीय सेवाओं के सम्बन्ध में संसद और राज्य की सेवाओं के संबंध में राज्य का विधानमण्डल इस संबंध में नियम तथा विनियम निर्धारित करेगा जिनका समुचित प्राधिकारी अनुसरण करेगा।)

अनुच्छेद 282-क के अधीन लोक-सेवक, यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करता है। इससे यह प्रकट होता है कि विधि की स्थिति यह है कि यदि कोई लोक-सेवक पदच्युत किया गया हो अथवा पद से हटाया गया हो तो वह किसी न्यायालय द्वारा अपने को अपने पद पर नहीं नियुक्त करा सकता। विधि-संकत स्थिति इस प्रकार है। इस कारण यह बहुत ही आवश्यक है कि हम पर्याप्त न्यायपूर्ण रक्षणों को रखें ताकि सेवक कार्यालय में अपने को सुरक्षित समझें क्योंकि इसी प्रकार राज्य का तथा प्रशासन का कल्याण निर्भर रहता है। श्रीमान्, इस अनुच्छेद 282-ख में इस प्रकार के रक्षणों की व्यवस्था है। हमें यह देखना है कि वे पर्याप्त तथा न्यायपूर्ण हैं या नहीं। अनुच्छेद 282-ख पर वादानुवाद करते समय हमें इसी प्रश्न पर विचार करना है। मेरे पहले संशोधन में, अर्थात् संशोधन संख्या 323 में यह प्रस्ताव रखा गया है कि कोई लोक सेवक तब तक निलम्बित नहीं किया जा सकता है जब तक उसे इसके मिलये कारण दिखाने का अवसर न दिया जाये कि वह क्यों न निलम्बित किया जाये। निलम्बन का दंड एक कठोर और गम्भीर दंड है। जहां तक संशोधन संख्या 323 का सम्बन्ध है उसमें, श्रीमान्, यही प्रस्ताव रखा गया है।

मेरा संशोधन संख्या 324 खण्ड 2 के परन्तुक के उप-खण्ड (क) के सम्बन्ध में है। मेरा यह प्रस्ताव है कि जब कोई व्यक्ति ऐसे आचार के आधार पर पदच्युत किया गया या हटाया गया या पंक्तिच्युत किया गया हो जिसके लिये दंड-दोषारोप पर वह सिद्धदोष हुआ है तो उस लोक सेवक को इसके लिये कारण दिखाने का अवसर देने की आवश्यकता नहीं है कि वह क्यों न पदच्युत किया जाये अथवा पद से हटाया जाये। मुझसे पहले बोलने वाले कई माननीय सदस्य यह तर्क उपस्थित कर चुके हैं कि कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के लिये सिद्ध-दोष तथा दंडित हो सकता है जिसका लोक-सेवक के कर्तव्य से विमुख होने से अथवा दुराचार से अथवा नैतिक पतन से कोई सम्बन्ध न हो और ऐसे मामलों के उन्होंने उदाहरण भी दिये हैं। मैंने भी दो तीन उदाहरण दिये हैं जैसे घूसखोरी, भ्रष्टाचार अथवा देशद्रोह के अपराध अथवा ऐसे अपराध जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो। यदि कोई लोक-सेवक इन अपराधों के मामलों में, जो बहुत ही गम्भीर मामले होंगे,

सिद्धदोष अथवा दंडित हुआ तो उसे सफाई का अवसर न देना चाहिये। यह उचित ही प्रतीत होता है किन्तु यदि आप यह कहते हैं कि वह दंड-न्यायालय के सम्मुख सिद्ध-दोष हुआ है और इस कारण उसे किसी प्रकार का अवसर नहीं देना चाहिये तो इसका अर्थ यह होगा कि इसके अन्तर्गत बहुत से मामले आ जायेंगे। इस कारण, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि मसौदा-समिति ने जिस संशोधन का मसौदा तैयार किया है उसे मेरे प्रस्ताव के अनुसार संशोधित कर देना चाहिये।

मैंने देशद्रोह शब्द को जानबूझ कर इस कारण रखा है। खण्ड (ग) के अधीन सम्भवत: सभी ऐसे मामले आ जाते हैं जिनमें किसी व्यक्ति पर यह सन्देह किया जाता है कि वह वफादार नहीं है। किन्तु यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि यह सिद्ध नहीं हो सकता कि कोई लोक-सेवक वफादार नहीं है। यह भी सच है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध केवल आरोप मात्र ही हों। मेरा निवेदन है कि या तो उसे यह सिद्ध करने का अवसर दिया जाये कि वह बेवफा नहीं है या न्यायालय में उस पर मुकदमा चलाया जाये और यह प्रमाणित किया जाये कि वह बेवफा और देशद्रोही है। इस स्थिति में उसे सफाई देने का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य आरोपों के संबंध में यह उचित नहीं है कि उसे यह बताने का अवसर न दिया जाये कि वह किस प्रकार बेवफा नहीं है और उसे क्यों न पदच्युत किया जाये।

श्रीमान्, खण्ड (ख) के संबंध में मेरे माननीय मित्रों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि किसी ऐसे मामले की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें किसी व्यक्ति को सूचना नहीं दी जा सकती और युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया जा सकता। मेरी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार का खण्ड रखा ही क्यों गया है जबकि उद्देश्य यह न हों कि अपराधी के लापता हो जाने पर जांच करने वाले अधिकारी के काम में सुविधा हो जाये। इस स्थिति के लिये जो प्रक्रिया निश्चित की गई है उसका आसानी से अनुसरण किया जा सकता है। मेरी समझ में नहीं आता कि यह खण्ड रखा ही क्यों गया है। खण्ड (ग) के संबंध में मेरा निवेदन है कि यह एक दुर्भाग्य की बात है कि यह खण्ड प्रविष्ट किया गया है। भारत शासन अधिनियम की धारा 240 तक में इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है। जब यह विदेशी सरकार ने, एक दफ्तरी सरकार ने इसकी आवश्यकता नहीं समझी तो....

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य महोदय केवल वही बातें दुहरा रहे हैं जो कई सदस्य कह चुके हैं। वे अपने को संशोधन संख्या 328 तक सीमित रखें।

***श्री महबूब अली बेग:** मेरे विचार से उपखण्ड (ग) न केवल अनावश्यक है किन्तु प्रतिक्रियावादी भी है और इस कारण उसे निकाल देना चाहिये।

खण्ड (3) के सम्बन्ध में भी मेरा निवेदन है कि भारत शासन अधिनियम की धारा 240 में इस प्रकार के खण्ड को भी समाविष्ट नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि खण्ड (ख) में ये शब्द हैं: "जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाले किसी प्राधिकारी का समाधान हो जाता है।" ये शब्द पर्याप्त हैं। सम्भवत: इसी कारण इस प्रसंग में खण्ड (3) को स्थान नहीं दिया गया है।

[श्री महबूब अली बेग]

अपने संशोधन संख्या 328 के संबंध में मेरा निवेदन है कि वह बहुत आवश्यक है। इस का कारण यह है कि और यह हम जानते ही हैं कि इन नियम और विनियमो को विधान-मण्डल नहीं बनाता बल्कि सरकार बनाती है। मैं यह चाहता हूं कि इन नियमों तथा विनियमों को विधान-मण्डल बनाये न कि सरकार। आप जिन रक्षणों को रख सकते हैं....

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): यदि माननीय सदस्य महोदय अनुच्छेद 282 को देखें तो उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि वे जो कुछ चाहते हैं वह सब उसमें दिया हुआ है।

*__श्री महबूब अली बेग:__ मैं यह चाहता हूं कि जिन व्यक्तियों को पद से हटाना होगा उन्हें, चूंकि न्यायालय सहायता नहीं दे सकेंगे, इसलिये आप पर्याप्त न्यायपूर्ण रक्षणों की व्यवस्था करें। इन रक्षणों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख हो और उन्हें संसद अथवा विधान-मण्डल निश्चित करें और समुचित प्राधिकारी उन्हें व्यवहार में लायें। "युक्तियुक्त अवसर" शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। हम जानते हैं कि कई मामलों में सरकारी नौकर, पद से हटाये जाने पर न्यायालय के सामने जाते हैं और वहां उनसे यह कह दिया जाता है कि इस विषय के संबंध में न्यायालय का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है क्योंकि वे सम्राट के प्रसाद-पर्यन्त ही पद धारण करते हैं। न्यायालय के सामने जाने वाले व्यक्ति के अधिकारों को न्यायालय केवल इस प्रकार रक्षित कर सकता है कि वह इसकी जांच करेगा कि युक्तियुक्त अवसर क्या है और सरकार ने तथा विधान मण्डल ने जिस प्रक्रिया को निर्धारित किया है उसका समुचित प्राधिकारी ने उस व्यक्ति को पदच्युत करने के पूर्व संतोषजनक रूप से अनुसरण किया है या नहीं। इसी स्थिति में न्यायालय कह सकता है कि उस आपदग्रस्त व्यक्ति को "युक्तियुक्त अवसर" दिया गया है या नहीं और न दिये जाने पर वह उसकी आपत्ति के निवारण के लिये कदम उठा सकता है। इस पर भी उसकी पूर्ण रूप से रक्षा नहीं की जा सकती और उसे अपने पद पर फिर से नियुक्त नहीं किया जा सकता और उसे केवल प्रतिकर दिया जा सकता है। मैं केवल उस उपचार की चर्चा नहीं कर रहा हूं जो उसके लिये न्यायालय में सहायक हो सकता है किन्तु यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि उसे यह विश्वास दिलाने के लिये कि यह सुरक्षित है और अपने पद पर आसीन रहेगा यह आवश्यक है कि ये नियम बनाये जायें और संबंधित प्राधिकारी उनका पूर्ण रूप से अनुसरण करें। यद्यपि खण्ड (3) में कहा गया है कि "यदि कोई प्रश्न पैदा होता है कि क्या खण्ड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं," किन्तु उसमें किसी अपीलीय प्राधिकारी के संबंध में उपबंध नहीं है जो यह पता लगा सके कि जिन कारणों के आधार पर समुचित प्राधिकारी ने यह कहा है कि उसका समाधान हो गया है कि सूचना देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है वे कारण उपर्युक्त हैं या नहीं। जो व्यक्ति सरकारी सेवक को पदच्युत करेगा उसी को यह निर्णय करना है कि सूचना देना युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य है या नहीं। आपने इस आशय का कोई उपबन्ध नहीं रखा है कि एक अपीलीय प्राधिकारी इस विषय की जांच करेगा और यह निर्णय करेगा कि जिस समुचित प्राधिकारी ने उस सरकारी सेवक

को युक्तियुक्त अवसर नहीं दिया उसका उसे बिना सूचना दिये हुए पदच्युत करना ठीक कार्यवाही है या नहीं। यदि आप यह कहते हैं कि इस संबंध में विधान मण्डल उपबन्ध रख सकते हैं तो आप इसे इसी समय, जबकि इस विषय पर विचार हो रहा है, स्पष्ट कर दें।

इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यद्यपि इस अनुच्छेद में रक्षणों को रखने का प्रयास किया गया है किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि वे रक्षण पर्याप्त तथा न्यायपूर्ण नहीं हैं, और उन लाखों सरकारी नौकरों के हितों की रक्षा के लिये, जिनकी सुयोग्यता तथा ईमानदारी पर ही हमारा प्रशासन टिका हुआ है। मेरे संशोधनों को स्वीकार कर लेना चाहिये।

(संशोधन संख्या 367 उपस्थित नहीं किया गया।)

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** अध्यक्ष महोदय, इस बहस को ध्यानपूर्वक सुनते हुए मैं यह विचार कर रहा था कि इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में रखने से इसे संविधान से निकाल देना ही अच्छा होगा या नहीं। वास्तव में यह एक आधारभूत सिद्धान्त है कि किसी व्यक्ति को, बिना उसकी सफाई सुने हुए सिद्ध-दोष नहीं कहा जायेगा। यदि यह अनुच्छेद निकाल दिया जायेगा तो प्रत्येक व्यक्ति कम से कम न्यायालय के सामने तो जा सकेगा और उससे कह सकेगा, "मुझे दंडित करने के पूर्व मेरी बात तो सुन लीजिये।" मैं यह जानता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को परन्तुकों के कारण नहीं बल्कि उसमें से सन्निहित इस आधारभूत सिद्धान्त के कारण रखा है कि सरकारी सेवा में लगे हुए लोगों को यह प्रत्याभूति दी जाती है कि बिना उनकी सुनवाई हुए वे न तो सेवा से हटाये जायेंगे और न दंडित किये जायेंगे। किन्तु, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि परन्तुकों के कारण सब कुछ नष्ट हो गया है। वास्तव में खण्ड (क) के अधीन, पंडित जवाहरलाल नेहरू, आप तथा सम्भवत: सभा के आधे सदस्य पदच्युत किये जा सकेंगे क्योंकि सत्याग्रह आन्दोलन में हम लोग ऐसे दोषारोपों पर, जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त था, सिद्धदोष हुए थे। श्रीमान्, मुझे आशा है कि पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जिस संशोधन की सूचना दी है वह स्वीकार कर लिया जायेगा।

खण्ड (ख) और (ग) के सम्बन्ध में, मेरी समझ में नहीं आता, कि कारण दिखाने का अवसर देने से ही खतरा कैसे पैदा होगा? आप किसी व्यक्ति को यह आश्वासन देने नहीं जा रहे हैं कि उसकी सफाई स्वीकार कर ली जायेगी। मैं यह चाहता हूं कि इन उपखण्डों को अर्थात् उपखण्ड (ख) और (ग) को निकाल देना चाहिये। यह कहा जाता है कि सेवाओं में साम्यवादी भी हैं और उन्हें हटाना आवश्यक है और इसीलिये इस खण्ड की आवश्यकता समझी गई है। यह कहा जाता है कि कारण दिखाने का अवसर देना कठिन होगा। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि संविधान में इस खण्ड को समाविष्ट करके आप सेवाओं को साम्यवादियों के अड्डे बना देंगे। मुझे साम्यवाद अथवा किसी प्रकार के दर्शन से भय नहीं है किन्तु इस खण्ड से आप लोगों में यह भावना उत्पन्न करेंगे कि उनके प्रति अन्याय हुआ है और इसी के कारण वे यह शिकायत करेंगे कि उनकी सुनवाई नहीं हुई। इस प्रकार की भावनाओं के कारण ही लोगों में असंतोष फैलता है और वे बेवफा हो जाते हैं। इस कारण मेरा निवेदन है कि सेवाओं में लगे हुए लोगों

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

को संतुष्ट रखने के लिये आपको चाहिये कि आप उन्हें सफाई देने तथा सुने जाने का अवसर दें। मैं यह नहीं कहता कि आप उनकी सफाई को हमेशा स्वीकार ही कर लें किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि उन्हें सफाई देने का अवसर दिया जाये। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** बहस समाप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है। प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं एक दो शब्द कहना चाहता हूं।

संशोधनों को प्रस्तावित करने वाले विभिन्न वक्ताओं की आलोचनाओं को सुनने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि वे दो विषयों में स्पष्ट भेद नहीं कर पाये हैं यद्यपि वे बिल्कुल भिन्न तथा पृथक् हैं। ये विषय पदच्युत करने के कारण और सूचना न देने के कारणों के संबंध में है। यह अनुच्छेद 282-ख पदच्युत करने के कारणों के सम्बन्ध में नहीं है। इस विषय के संबंध में समुचित विधान मण्डल अनुच्छेद 282 के अधीन विधि बनायेगा। असैनिक सेवा में लगा हुआ कोई व्यक्ति कैसे मामलों में सेवा से हटाया जाये यह एक ऐसा विषय है। जिसका विनियमन संसद विधि द्वारा करेगी। अनुच्छेद 282-ख का इस विषय से कोई संबंध नहीं है।

जैसाकि मैं कह चुका हूं यह अनुच्छेद 282-ख केवल पदच्युत करने के पूर्व सूचना न देने के संबंध में है ताकि संबंधित व्यक्ति को उसके लिये कारण दिखाने का अवसर मिल जाये कि उसके खिलाफ जो कार्यवाही की जाने वाली है वह क्यों न की जाये। इस खण्ड का उद्देश्य इस सामान्य सिद्धान्त को निर्धारित करता है कि प्रत्येक मामले में सूचना दी जायेगी। केवल तीन मामलों में जिनका उपखण्ड (क), (ख) और (ग) में उल्लेख है, सूचना देने की आवश्यकता नहीं है। इस अनुच्छेद में केवल इतना ही कहा गया है। मेरे विचार से मेरे माननीय श्री कामत की यह बहुत ही गलत आलोचना है कि यह अनुच्छेद लज्जाजनक है अथवा यह संविधान पर एक कलंक है।

***श्री एच.वी. कामत:** *(विघ्न)*.....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार से तो असैनिक सेवा की सुरक्षा के लिये सम्भवत: इससे अच्छा उपबन्ध नहीं रखा जा सकता क्योंकि इससे पदच्युत

करने का पदाधिकार ही परिसीमित हो जाता है। उसमें कहा गया है कि किसी व्यक्ति को तब तक नहीं पदच्युत किया जायेगा जब तक उसे इसके लिये कारण दिखाने का अवसर नहीं दिया जायेगा कि उसे क्यों पदच्युत न किया जाये। यदि इस प्रकार का उपबन्ध लज्जा का विषय हो सकता है तो मुझे यह कहना पड़ेगा कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत की जो औचित्य की भावना है उससे मेरी भावना भिन्न है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं इस अनुच्छेद के परन्तुकों की चर्चा कर रहा था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं परन्तुकों को भी उठाऊंगा।

जहां तक खण्ड (2) का सम्बन्ध है, मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि साधारण ज्ञान रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति इससे सहमत होगा कि राज्य की असैनिक सेवा में लगे हुए लोगों की रक्षा के लिये यही सबसे उपयुक्त परन्तुक है। यह प्रश्न उठाया गया है कि यदि किसी अपराध के संबंध में कोई व्यक्ति सिद्धदोष हुआ है तो उसे सूचना देने की आवश्यकता नहीं है। मेरा निवेदन है कि इसका आशय भी गलत समझा गया है क्योंकि किसी राज्य के बनाये हुए विनियमों में यह उपबंधित किया जा सकता है कि यद्यपि कोई व्यक्ति किसी अपराध के संबंध में सिद्धदोष हुआ हो किन्तु यदि उस अपराध में दुराचार अन्तर्ग्रस्त न हो तो यह आवश्यक नहीं है कि वह राज्य की सेवा से हटाया जाये। संसद को इस प्रकार की विधि बनाने की पूरी स्वतंत्रता है। प्रत्येक दंड दोषारोप के आधार पर उदाहरणार्थ, मोटर चलाने से सम्बंधित विधि के अधीन अथवा संसद की अथवा किसी राज्य की बनाई हुई किसी साधारण विधि के अधीन सिद्धदोष होने पर यह आवश्यक नहीं है कि किसी व्यक्ति को पदच्युत किया जाये। संसद को यह निश्चित करने की स्वतंत्रता रहेगी कि किन मामलों में पद से नहीं हटाया जायेगा। संसद को राजनैतिक अपराधों का अपवर्जन कराने की पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। संक्षेप में यह खण्ड केवल सूचना देने के संबंध में है। संसद राजनैतिक अपराधों के लिये पाये हुए दंडों का अपवर्जन कर सकती है और ऐसे अपराधों का भी अपवर्जन कर सकती है जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त न हो। संसद की इस स्वतंत्रता पर उपखण्ड (क) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और न उसके कारण वह परिसीमित ही होती है। मैं इसे स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

उपखण्ड (ख) के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि इसकी पूरी शब्दावली भारत शासन अधिनियम की धारा 240 से ली गई हैं मेरे विचार से इस संबंध में सभी सहमत होंगे कि सेवाओं की रक्षा ही के लिये भारत शासन अधिनियम में धारा 240 प्रविष्ट की गई थी। अंग्रेजों ने भी जो असैनिक सेवाओं को सुरक्षित रखने के लिये बहुत इच्छुक थे, उपखण्ड (ख) के समान परन्तुक को रखने की आवश्यकता का अनुभव किया। इसलिये हम किसी ऐसे उपबन्ध को नहीं रख रहे हैं जो पहले नहीं था। उपखण्ड (ग) के संबंध में यह समझा गया है कि कुछ ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें दोषारोप को प्रकट करने से राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ सकती है। इसलिये यह उपबंधित किया गया है कि उपखण्ड (ग)

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

के अधीन राष्ट्रपति यह कह सकता है कि कुछ मामलों में सूचना नहीं दी जायेगी। मेरे विचार से यह एक बहुत ही उपर्युक्त उपबन्ध है और चाहे इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इससे राष्ट्रपति को उपखण्ड (2) के उपबन्धों का निरसन करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है किन्तु मेरे विचार से राज्य के कल्याण को ध्यान में रखते हुए इसे रहने देना चाहिये।

खण्ड (3) के संबंध में मैं बताना चाहता हूं कि इसे जानबूझ कर प्रविष्ट किया गया है। यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मानें कि यह खण्ड (3) नहीं रखा गया है तो क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि यदि किसी व्यक्ति को उपखण्ड (क) अथवा (ख) अथवा (ग) के अधीन सूचना नहीं दी गई हो तो वह किसी न्यायालय के सामने जाकर यह कह सकेगा कि उसे बिना सफाई का अवसर दिये हुए ही पदच्युत कर दिया गया है। न्यायालयों ने "समाधान" शब्द का दो प्रकार निवर्चन किया है—एक प्रकार के निवर्चन का संबंध तो पदाधिकारी की मनोदशा से है और दूसरे प्रकार के निवर्चन का भौतिक दशा से अर्थात् स्थिति विशेष से है। इस प्रकार के मामलों में यह अनुभव किया गया है कि अच्छा यह होता है कि इस संबंध में न्यायालयों को क्षेत्राधिकार नहीं प्राप्त हो और पदाधिकारी का निर्णय ही अन्तिम समझा जाये। इसी कारण खण्ड (3) में यह उपबन्ध रखना पड़ा कि यदि पदाधिकारी की यह धारणा हो कि सूचना देना अव्यवहार्य है अथवा राष्ट्रपति का यह विचार हो कि कुछ परिस्थितियों में सूचना नहीं दी जा सकती है तो न्यायालय आपत्ति नहीं कर सकेंगे।

मैं एक अन्य भ्रम को भी दूर करना चाहता हूं। कुछ लोगों का यह विचार है कि असैनिक सेवा के संबंध में मैंने जिन उपबन्धों को रखा है उनके अधीन सरकार को किसी भी असैनिक सेवक को पदच्युत करने की पूर्ण शक्ति है और खण्ड (2) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) को रखने से यह शक्ति और भी बढ़ गई है। मेरा निवेदन है कि यह भी एक भ्रम है क्योंकि लोक सेवा आयोग संबंधी उपबन्धों के अधीन जिन्हें हम पारित कर चुके हैं हमने यह उपबन्ध रखा है कि यदि कोई असैनिक सेवक सेवा की शर्तों के संबंध में किसी पदाधिकारी की कार्यवाही से असंतुष्ट है तो वह लोक सेवा आयोग में अपील कर सकेगा। इसलिये ऐसे मामलों में भी जहां सरकार ने किसी सेवक को सफाई देने का अवसर नहीं दिया हो वह सेवक लोक सेवा आयोग में अपील कर सकता है कि उसकी सेवा की नियमों के उपबन्धों का खण्डन किया गया है और उसे अनियमित रूप से पदच्युत किया गया है। इसलिये मेरे विचार से माननीय सदस्यों ने इस अनुच्छेद के उपबन्धों के सम्बन्ध में जो भय प्रकट किये हैं वे निराधार हैं और इस अधिनियम के उपबन्धों को अनुच्छेद 282 के उपबन्धों को तथा लोक सेवा आयोग सम्बन्धी उपबन्धों को गलत समझ कर ही प्रकट किये गये हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (1) में 'by an authority subordinate to that by which he was appointed (अपनी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी से निचले किसी प्राधिकारी द्वारा)' शब्दों के स्थान पर 'except by an order of the Union Public Service Commission, or as the case may be, by the State Public

Service Commission (संघ के लोक सेवा आयोग अथवा, यथास्थिति, राज्य के लोक सेवा आयोग के आदेश के अतिरिक्त अन्य प्रकार) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) के परन्तुक की कण्डिका (ख) में 'where an authority empowered to dismiss a person or remove or reduce him in rank (जहां किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या पंक्तिच्युत करने की शक्ति रखने वाले किसी प्राधिकारी)' शब्दों के स्थान पर 'if the Union Public Service Commission or, as the case may be, the State Public Service Commission (यदि संघ के लोक सेवा आयोग अथवा यथास्थिति राज्य के लोक सेवा आयोग) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ख में से, खण्ड (2) का उपखण्ड (ख) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'conduct (आचार)' शब्द के पश्चात् 'involving moral turpitude (जिसमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'charge (दोषारोप)' शब्द के पश्चात् 'involving moral turpitude (जिस

[अध्यक्ष]

में दुराचार अन्तर्ग्रस्त हो)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक में से उपखण्ड (ग) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख में, खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) में 'that for some reason to be recorded by that authority in writing it is not reasonably practicable to give that person an opportunity of showing cause (किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध किया जायेगा, यह युक्तियुक्त रूप में व्यवहार्य नहीं है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाये)' शब्दों के स्थान पर 'on grounds to be recorded in writing that the whereabouts of that person are unknown (इस कारण से, जो लेखबद्ध किया जायेगा, कि उस व्यक्ति का पता ज्ञात नहीं है)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) में और खण्ड (3) में 'practicable (व्यवहार्य)' शब्द के स्थान पर 'possible (सम्भव)' शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ग) में 'is satisfied (का समाधान हो जाता है)' शब्दों के स्थान पर 'certifies (प्रमाणित करता है)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) में 'if (यदि)' शब्द के स्थान पर 'if, on the application of the person, so affected, (यदि सम्बन्धित व्यक्ति के आवेदन-पत्र देने पर)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (3) में 'any person (किसी व्यक्ति)' शब्दों के स्थान पर 'him (उसे)' शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) में 'aforesaid shall be (उपर्युक्त प्रकार का कोई व्यक्ति तब तक)' शब्दों के पश्चात् 'suspended (निलम्बित)' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये:-

'for offences of bribery, corruption or treason, or offences involving moral turpitude (घूसखोरी, भ्रष्टाचार अथवा देशद्रोह के अपराधों के लिये अथवा ऐसे अपराधों के लिये जिनमें दुराचार अन्तर्ग्रस्त हों)'"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ख के पश्चात् निम्नलिखित नवीन खण्ड रखा जाये:-

'The Parliament, in the case of Union services, and the Legislature of the State, in the case of State services, shall lay down rules and regulations in this behalf to be followed by the appropriate authority.'"

[अध्यक्ष]

(संघीय सेवाओं के संबंध में संसद और राज्य की सेवाओं के संबंध में राज्य का विधान मण्डल इस संबंध में नियम तथा विनियम निर्धारित करेगा जिन का समुचित प्राधिकारी अनुसरण करेगा।)

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर के मूल संशोधन, अर्थात् अनुच्छेद 282-ख पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ख को संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 282-ख संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 282-ग

***अध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 282-ग को उठाते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ग के खण्ड (1) में से 'if the Council of States has declared by resolution supported by not less than two-thirds of the members present and voting that it is necessary or expedient in the national interest so to do. (यदि राज्य परिषद् ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित कर दिया है कि राष्ट्रहित में ऐसा करना आवश्यक या इष्टकर है तो)' शब्द निकाल दिये जायें और 'other provisions of this chapter (इस अध्याय के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए)' शब्दों के पश्चात् 'Union Public Service Commission shall (संघीय लोक सेवा आयोग....कर सकेगा)' शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 282-ग का उद्देश्य केवल यही है कि संविधान की संघीय नींव सुरक्षित रहे। इसी कारण यह शक्ति उत्तर सदन को दी गई है। वह इस सम्बन्ध में कदम उठा सकता है। अवर सदन को इस सम्बन्ध में कोई शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त उत्तर सदन को केवल संकल्प पारित करने की ही शक्ति नहीं है बल्कि

संकल्प को उलटने की भी शक्ति प्राप्त है। मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर इस संविधान की संघीय नींव को सुरक्षित रखने की आवश्यकता ही क्या हैं हमारा संविधान केवल संघीय संविधान ही नहीं है। वह एकसत्तात्मक संविधान भी है। आखिर संविधान की एकसत्तात्मक नींव को क्यों न सुरक्षित रखा जाये? संघीय शासन की प्रवृति एकसत्तात्मक शासन की ओर ही रहती है। हमें देश को पीछे ढकेलने का प्रयास नहीं करना चाहिये। मैं इस देश की सभी सेवाओं के केन्द्रीकरण के पक्ष में हूं। मुझे विश्वास है कि देश में लोगों का कोई वर्ग भी संघीय अधिकारों को नहीं चाहता।

मैं इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करना चाहता हूं। देश में कौन लोग संघीय व्यवस्था का संरक्षण चाहते हैं। मैं इस देश के औद्योगिक श्रमिकों का प्रश्न उठाता हूं। श्रीमान्, कार्ल मार्क्स की यह आकांक्षा थी कि औद्योगिक श्रमिकों के अन्तर्राष्ट्रीय विचार हों। इस समय के संसार में अपनी स्थिति को देखते हुए उनके लिये अन्तर्राष्ट्रीय विचारों का समर्थन होने के अतिरिक्त और कुछ चारा भी नहीं है। इसलिये ये औद्योगिक श्रमिक स्थानीय अधिकारों के समर्थक नहीं हैं।

*अध्यक्ष: इन सब बातों का इस संशोधन से कोई संबंध नहीं है।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: इस अनुच्छेद का उद्देश्य संघीय संविधान की रक्षा करना ही है अन्यथा इस शक्ति को प्रदान करने का कोई अर्थ नहीं है। मैं इस संविधान के सैद्धान्तिक आधार के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं। यदि आप यह चाहते हैं कि मैं केवल उपबन्धों के संबंध में ही बोलूं और उनके दार्शनिक आधार के बारे में कुछ न कहूं तो मैं इसके लिये तैयार हूं।

*अध्यक्ष: मेरे विचार से आप अपने संशोधन तक ही सीमित रहें और आधार के संबंध में कुछ न कहें।

*श्री ब्रजेश्वर प्रसाद: अच्छी बात है, श्रीमान्।

यदि यह शक्ति संसद को दे दी गई और केवल उत्तर सदन को ही न दी गई तो इससे कोई खतरा पैदा नहीं होगा क्योंकि इस प्रकार यह शक्ति वास्तव में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को मिल जायेगी और कोई भी मंत्रिमण्डल, यदि उसके होश-हवास ठीक हैं तो जब तक आवश्यकता ही न होगी अथवा जब तक उसने इस उद्देश्य से कला संबंधी साधनों को समुन्नत न किया हो तब तक सेवाओं का केन्द्रीकरण नहीं करेगा। संशोधन के दूसरे भाग में यह कहा गया है कि भर्ती तथा सेवा की शर्तो का विनियमन करने की शक्ति संसद को प्रदान करनी चाहिये। मैंने यह सुझाव रखा है कि यह शक्ति संघीय लोक सेवा आयोग को प्राप्त होनी चाहिये।

मुझे कुछ अन्य बातें भी कहनी थीं किन्तु चूंकि, श्रीमान्, आप यह नहीं चाहते कि मैं इस अनुच्छेद के सैद्धान्तिक आधार के संबंध में बोलूं इसलिये मैं अब समाप्त करता हूं।

*अध्यक्ष: जी हां, क्योंकि वह सब केवल अनुमान ही है। अब हमारे सामने डॉ. देशमुख का संशोधन संख्या 249 है। किन्तु यह, मेरे विचार से, मसौदे के शोधन के संबंध में ही है। इसके पश्चात् संशोधन संख्या 250 आता है।

डॉ. पी.एस. देशमुख (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): इन संशोधनों का उद्देश्य मसौदे का शोधन ही है और इसलिये मैं इसके लिये तैयार हूं कि मसौदा-समिति ही इन पर विचार करे।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 251 का उद्देश्य भी मसौदे का शोधन ही है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** किन्तु मैं संशोधनों के संबंध में बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** अच्छी बात है, पहले मैं इन्हें समाप्त कर लूं। संशोधन संख्या 368, श्री मुनिस्वामी पिल्ले।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं अपने संशोधन को उपस्थित करता हूं। वह इस प्रकार है:

> "सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 2 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 282-ग के खण्ड (1) में 'Union and States (संघ और राज्यों के लिये)' शब्दों के पश्चात् 'giving equal opportunities to all unrepresented communities (सभी ऐसे समुदायों को समान अवसर देते हुए जिनका प्रतिनिधित्व नहीं हुआ हो)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

इस खण्ड में संघ तथा राज्यों के लिये अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण तथा भर्ती आदि के विनियमन के संबंध में विधि बनाने के लिये संसद को शक्ति देने के बारे में उपबन्ध रखे गये हैं। इसलिये मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं सभा के ध्यान में लाऊं कि केन्द्र तथा प्रान्त दोनों की सेवाओं में पिछड़े हुए समुदायों के बहुत कम लोग हैं। श्रीमान्, कुछ विशेषाधिकार प्राप्त समुदायों के प्रभाव के कारण ये पिछड़े हुए समुदाय सेवाओं में अपना भाग नहीं पा सके। चूंकि इस खण्ड में भर्ती के नियमों तथा विनियमों के संबंध में विधि बनाने के बारे में उपबन्ध है, इसलिये मैं यह चाहता हूं कि इसके पूर्व कि कोई विधि बनाई जाये, सच्चे आंकड़े इकट्ठे किये जायें ताकि यह ज्ञात हो सके कि प्रान्तों तथा संघ की सेवाओं में किन समुदायों के कितने लोग लगे हुए हैं। इसके पश्चात् ऐसी विधियां बनाई जायें जिनसे वे लोग, जो सेवाओं से अलग रखे गये हैं, अन्य लोगों के साथ समान अवसर पा सकें।

***अध्यक्ष:** श्री मुनिस्वामी पिल्ले, एक अन्य उपबन्ध भी है जिसमें इसी के संबंध में व्यवस्था की गई है। क्या यह आवश्यक है कि इसे घुमा फिरा कर यहां इस प्रकार लाया जाये?

***श्री बी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** एक रुकावट है। मेरे कुछ मित्र, जो कल बोले थे, राज-भाषा के ज्ञान की चर्चा कर रहे थे। श्रीमान्, मेरे विचार से, चूंकि भाषा के संबंध में बाद में एक खण्ड है इसलिये यह उचित नहीं है कि राज-भाषा संबंधी कोई प्रतिबन्ध रखा जाये। किन्तु मेरी यह धारणा है कि इस समय जो भाषा

सभी प्रान्तों में बोली जाती है उसी को अपनाया जाये और उस समय तक अपनाया जाये जब तक संसद विधि द्वारा यह निश्चित न कर दे कि किस प्रान्त और राज्य में कौन सी भाषा प्रयोग में आयेगी। इस शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का पूरे जोर से समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के संबंध में अन्य कोई संशोधन नहीं है। डॉ. देशमुख, आप बोलना चाहते थे।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** श्रीमान्, मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन का समर्थन करता हूं, जिसका उद्देश्य यह है कि निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायें:

"यदि राज्य-परिषद् ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित कर दिया है कि राष्ट्र-हित में ऐसा करना आवश्यक तथा इष्टकर है तो"

मैं भी इसी आशय का एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 250 उपस्थित करना चाहता था, किन्तु चूंकि अब उसी के समान एक संशोधन उपस्थित किया जा चुका है, इसलिये उसे मैं अब उपस्थित नहीं करूंगा। मैं समझ नहीं पाया हूं कि इस उपबन्ध की क्या आवश्यकता है। किसी भी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में केन्द्रीय संसद की लोक-सभा के अतिरिक्त अन्य किसी सभा को कदम उठाने की शक्ति नहीं दी गई है। किन्तु इस स्थान पर जहां तक मैं समझता हूं, पहली बार राज्य-परिषद् को कदम उठाने की शक्ति दी जा रही है। श्रीमान्, केन्द्रीय सेवाओं को रखना या तो उचित है या अनुचित है। यदि उन्हें रखना उचित है तो उन्हें आरम्भ करने के मार्ग में ही इतने रोड़े नहीं अटकाने चाहियें। यदि उन्हें रखना अनुचित है तो उनके संबंध में कोई उपबन्ध ही नहीं होना चाहिये। मेरा यह विचार है कि अखिल-भारतीय सेवाओं को स्थापित करने की ओर ही अधिक प्रवृत्ति रहेगी। इसलिये मेरे विचार से उनके निर्माण को ही एक दुष्कर कार्य बनाना कोई अर्थ नहीं रखता। संकल्प को पारित करने के लिये राज्य-परिषद् के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों को कम से कम दो तिहाई संख्या के समर्थन की आवश्यकता क्यों हो? मेरे विचार से ये शब्द बिल्कुल आवश्यक हैं, जब तक कि उद्देश्य यह न हो कि राज्य-परिषद् जैसे निर्रथक सदन को कुछ प्रतिष्ठा अथवा कुछ कार्य प्रदान किया जाये। मेरे विचार से ऐसे महत्वपूर्ण विषय के संबंध में राज्य-परिषद् को कदम उठाने की शक्ति प्रदान करने की जो कल्पना जागी है उसकी तह में यही चिंता है। मेरे विचार से इन शब्दों से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी और इसलिये मेरा यह प्रस्ताव है कि ये निकाल दिये जायें।

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** केवल एक शब्द। मेरे विचार से न तो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने संशोधन उपस्थित करने के लिये और न डॉ. देशमुख ने उसका समर्थन करने के लिये अनुच्छेद 282 के उपबन्धों का सावधानी से अध्ययन किया। अनुच्छेद 282 के आरम्भ में यह निर्धारित किया गया है कि केन्द्र के अधीन जो सेवाएं होंगी उनके लिये भर्ती करने के लिये केन्द्र को, तथा राज्यों

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

के अधीन जो सेवाएं होंगी उनके लिये भर्ती करने के लिये तथा शर्तें रखने के लिये राज्यों को स्वतन्त्रता होगी। इस प्रकार अनुच्छेद 282 में हमने पूर्ण क्षेत्राधिकार के संबंध में उपबन्ध रखे हैं। अनुच्छेद 282 द्वारा राज्यों को जो स्वतन्त्रता दी गई है उसके कुछ अंश का अनुच्छेद 282-ग द्वारा अपहरण होता है। यह स्पष्ट है यदि इस स्वतन्त्रता का आगे चलकर भी अपहरण करना है तो इस संबंध में केन्द्र को कुछ प्राधिकार प्राप्त होना चाहिये। इस प्रकार अनुच्छेद 282 द्वारा प्रदत्त अधिकार का अपहरण करने के लिये केन्द्र को शक्ति प्रदान करने का केवल यह उपाय है कि उत्तर-सदन के दो-तिहाई सदस्यों की सहमति प्रदान की जाये। अनुच्छेद 282 में केवल उत्तर-सदन का उल्लेख किया गया है। राज्य-परिषद् राज्यों की प्रतिनिधि-सभा है और इसलिये यदि वह कोई संकल्प पारित करती है तो उसका अर्थ यह है कि राज्यों ने उसके लिये प्राधिकार प्रदान कर दिया है। इसी कारण अनुच्छेद 282-ग में ये शब्द रखे गये हैं।

***अध्यक्षः** मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन के दो भागों पर अलग-अलग मत लेता हूं। पहला भाग इस प्रकार है।

प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ग के खण्ड (1) में से 'if the Council of State, has declared by resolution supported by not less than two-thirds of the members present and voting that it is necessary or expedient in the national interest so to do (यदि राज्य-परिषद् ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून संख्या द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित कर दिया है कि राष्ट्र-हित में ऐसा करना आवश्यक या इष्टकर है तो)' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** दूसरा भाग इस प्रकार है। प्रस्ताव यह है किः

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ग के खण्ड (1) में 'other provisions of this Chapter (इस अध्याय के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए)' शब्दों के पश्चात् 'Union Public Service Commission shall (संघीय लोक सेवा आयोग. ....कर सकेगा)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** इसके अतिरिक्त श्री मुनिस्वामी पिल्ले का संशोधन है।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः** मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत अनुच्छेद पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 282-ग संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 282-ग संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 283

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 283 पर आते हैं। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची (अंक 2) के संशोधन संख्या 3037 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:-

"अनुच्छेद 383 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:-

Transitional provisions.

'283. Until other provision is made in this behalf under this Constitution, all the laws in force immediately before the commencement of this Constitution and applicable to any public service or any post which continues to exist after the commencement of this Constitution, as an All-India service or as service or post under the Union or a State shall continue in force so far as consistent with the provisions of this Constitution.'"

अन्तर्वर्ती उपबन्ध

(283. जब तक इस संविधान के अधीन इसलिये अन्य उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सब प्रवृत्त विधियां, जो किसी ऐसी लोक-सेवा या किसी ऐसे पद को, जो इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् अखिल भारतीय सेवा के अथवा संघ या राज्य के अधीन सेवा या पद के रूप में बने रहते हैं, लागू हो, वहां तक प्रवृत्त बनी रहेगी जहां तक कि वे इस संविधान के उपबन्धों से संगत हो।)

यह केवल अन्तर्वर्ती उपबन्ध है।

***अध्यक्षः** इस संबंध में संशोधन संख्या 12 श्री जसपतराय कपूर के नाम से है। वह उपस्थित नहीं किया जा रहा है।

[अध्यक्ष]

संशोधन संख्या 252 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है, केवल मसौदे के शोधन के सम्बन्ध में है। संशोधन संख्या 253, जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है, उपस्थित नहीं किया जा रहा है?

तब कोई संशोधन नहीं उपस्थित किया गया हैं क्या कोई सज्जन इस अनुच्छेद के संबंध में कुछ कहना चाहते हैं?

(कोई सदस्य बोलने के लिये नहीं उठा।)

तब मैं अनुच्छेद 283 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 283 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 283 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 302

*__अध्यक्ष:__ अब हम अनुच्छेद 302 उठाते हैं। डॉ. अम्बेडकर!

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) में 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) के दूसरे परन्तुक में 'bring against the Government of India or Government of a State such proceedings as are mentioned in Chapter III of Part X of this Constitution (भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के खिलाफ उन कार्यवाहियों के चलाने के किसी व्यक्ति के अधिकार को निर्बन्धित करती है जो इस संविधान के भाग 10 के अध्याय 3 में वर्णित है)' शब्द और अंकों के स्थान पर 'bring appropriate proceedings against the Government of India or Government of a State (भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के खिलाफ समुचित कार्यवाहियों के चलाने के किसी व्यक्ति के अधिकार को निर्बन्धित करती है)' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (2) में 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (3) में 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द रखे जायें।"

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (4) में–

(क) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात्, जहां वह पहली बार आया है, 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

(ख) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के स्थान पर जहां वह दूसरी बार आया है, 'as Governor or Ruler (राज्यपाल या राजप्रमुख के रूप में)' शब्द रखे जायें।"

(ग) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात्, जहां वह तीसरी बार आया है, 'or the Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

*__एक माननीय सदस्यः__ श्रीमान्, संशोधन संख्या 13 का क्या होगा?

*__अध्यक्षः__ कार्यावली में वह नहीं दिया हुआ है। वह स्थगित रखा गया है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ संशोधन संख्या 14, 16, 17 और 18 का उद्देश्य केवल मसौदे का शोधन है। केवल संशोधन संख्या 15 के संबंध में सम्भवतः कुछ व्याख्या की आवश्यकता है। इस संशोधन के उपस्थित करने की आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि अध्याय 3 के निर्देश का अर्थ वास्तव में अनुच्छेद 274 का निर्देश होता है। अनुच्छेद 274 सरकार के विरुद्ध व्यवहार-वाद लाने के संबंध में है और यह अनुच्छेद दो भागों में विभाजित किया गया है एक भाग संविधान के प्रारम्भ पर व्यवहार-वाद लाने का अधिकार जिस रूप में है उसके संबंध में है। दूसरा भाग सरकार के विरुद्ध व्यवहार-वाद लाने के अधिकार के संबंध में आगे व्यवस्था करने की संसद की शक्ति के बारे में है। जो शब्द हैं उन्हीं को रहने दिया गया तो इसका अर्थ केवल यह होगा कि अधिनियम के प्रारम्भ पर अनुच्छेद 274 जिस रूप में होगा उसी रूप में उसकी शर्तों के अनुसार सरकार के विरुद्ध व्यवहार-वाद लाया जा सकेगा। "समुचित कार्यवाहियां" शब्द इसलिये प्रविष्ट किये जा रहे हैं कि उनके अन्तर्गत अधिनियम के प्रारम्भ पर व्यवहार-वाद लाने का अधिकार जिस रूप में होगा वही नहीं आ जायेगा बल्कि संसद विधि द्वारा बाद में तत्कालीन सरकार के विरुद्ध जिस कार्यवाही की व्यवस्था करेगी वह भी आ जायेगी। इस संशोधन को इसी कारण उपस्थित किया गया है। मैं सभा को यह भी बताना चाहता हूं कि यदि इस संशोधन को स्वीकार किया गया तो मुझे अनुच्छेद में भी एक आनुषंगिक संशोधन करना होगा क्योंकि उसमें एक बात रह गई है।

*अध्यक्ष: इस संबंध में कई संशोधन हैं जो छपे हुए संशोधनों के अंक 2 में छपे हुए हैं। मैं कह नहीं सकता कि माननीय सदस्य उन्हें उपस्थित करना चाहते हैं या नहीं। संशोधन संख्या 3203—श्री कामत।

*श्री एच.वी. कामत: अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधन संख्या 3203 को उपस्थित करता हूं मैं संशोधन संख्या 3204, 3205 तथा 3206 को नहीं उपस्थित कर रहा हूं क्योंकि इस अनुच्छेद में जो परिवर्तन किये गये हैं उनके कारण उनकी आवश्यकता नहीं रह गई है। संशोधन संख्या 3203 इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) में 'duties (कर्त्तव्यों)' शब्द के स्थान पर 'functions (कृत्यों)' शब्द रखा जाये।"

मेरी यह धारणा है कि इस अनुच्छेद के प्रसंग में "कृत्यों" शब्द से "कर्त्तव्यों" शब्द की अपेक्षा अच्छी प्रकार अर्थबोध होता है। हम किसी पदाधिकारी अथवा प्रतिष्ठित व्यक्ति के कृत्य और शक्तियां कहते हैं और उसके कर्त्तव्य नहीं कहते।

खण्ड (2) के संबंध में मुझे थोड़ी सी कठिनाई का अनुभव हो रहा है। खण्ड (2) में कहा गया है कि राष्ट्रपति के, अथवा राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख के खिलाफ उसकी पदावधि में किसी प्रकार की दंड कार्यवाही किसी न्यायालय में संस्थित नहीं की जायेगी और न चालू रखी जायेगी। मेरे हृदय में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि क्या अपनी पदावधि में किये हुए किसी अपराध के संबंध में राष्ट्रपति का अथवा राज्यपाल का अथवा राजप्रमुख का कोई दायित्व नहीं है। ईश्वर न करे कि ऐसा हो, किन्तु चूंकि मनुष्य प्रकृति दोषपूर्ण है इसलिये यदि दुर्भाग्य से राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल अथवा किसी राज्य का शासक अपराध कर बैठे तो क्या इस खण्ड का यह अर्थ है कि उसके खिलाफ निर्धारित अवधि तक कोई कार्यवाही संस्थित नहीं की जायेगी अथवा क्या उसका अर्थ यह है कि उसकी पदावधि तक कार्यवाही नहीं संस्थित की जायेगी क्योंकि प्रारम्भिक प्रमाण मिलने पर राष्ट्रपति पद त्याग कर देगा, चाहे वह कितने ही काल तक अपने पद पर आसीन क्यों न रहा हो। क्या राज्यपाल अथवा राजप्रमुख के अपराध करने पर राष्ट्रपति उसे पद से हटायेगा? "उसकी पदावधि में" पदावली बहुत बहुत अस्पष्ट ही है। मुझे आशा है कि मसौदा-समिति की ओर से चाहे डॉ. अम्बेडकर उत्तर दें अथवा श्री कृष्णमाचारी, वे इस विषय पर कुछ रोशनी डालेंगे और इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के आशय को स्पष्ट करेंगे।

(संशोधन संख्या 3207, 3208, 3209 और 3210, 19 और 256 उपस्थित नहीं किये गये।)

*अध्यक्ष: अब श्री कामत द्वारा उपस्थित एक ही संशोधन है। क्या डॉ. अम्बेडकर उस पर कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** जी नहीं, श्रीमान्। सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर कुछ कहना चाहते हैं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय अनुच्छेद 302 के परन्तुक को डॉ. अम्बेडकर जिन कारणों से संशोधन करना चाहते हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं संविधान के अन्य भागों में हमने मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी है। उच्च न्यायालयों को भी मूलाधिकारों के संबंध में आवश्यक लेख निकलने का क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। जब अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है तो यह आवश्यक है कि इन अधिकारों में हस्तक्षेप होने पर उसके निराकरण के लिये भी कोई व्यवस्था होनी चाहिये। इसी कारण हमने यह उपबन्ध रखा है कि मूलाधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये उच्च न्यायालय को आवश्यक उपचार करने का पूर्ण क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इस अनुच्छेद का दूसरा परन्तुक इस प्रकार है:

> "परन्तु यह और भी कि इस खण्ड की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा मानो की वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के खिलाफ उन कार्यवाहियों के चलाने के किसी व्यक्ति के अधिकार को निर्बन्धित करती है जो इस संविधान के भाग 10 के अध्याय 3 में वर्णित हैं।"

यह केवल उन व्यवहार-वादों के संबंध में है जो भारत-मंत्री अथवा सरकार के विरुद्ध लाये जायेंगे और जिनका भाग 10 के अध्याय 3 में उल्लेख है। इस परन्तुक का ऐसा अर्थ भी लगाये जाने का खतरा है जिससे संविधान के अन्य भागों में प्रत्याभूत मूलाधिकारों का निराकरण हो जायेगा। इसी कारण माननीय डॉ. अम्बेडकर ने सभा के सामने यह संशोधन रखा है जिसके फलस्वरूप मूलाधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये प्रभावपूर्ण उपचारों का सहारा लिया जा सकता है। इसकी इस कारण भी बहुत आवश्यकता है कि भारत शासन अधिनियम की तत्स्थायी धारा 202 में यह उपबन्ध है कि उच्च न्यायालय सरकार के विरुद्ध कोई लेख नहीं निकाल सकते। इसलिये यह स्पष्ट करने के लिये कि पहले के भारत शासन अधिनियम की धारा 202 के अधीन उच्च न्यायालयों के लिये जो निर्बन्धन रखे गये हैं वे अब नहीं रहेंगे, यह संशोधन उपस्थित किया गया है। इसलिये यदि विधि द्वारा अथवा अन्य प्रकार प्रदत्त कृत्य को व्यवहार में लाते हुए सरकार अपनी शक्ति की सीमाओं का अतिक्रमण करती है तो आपदग्रस्त व्यक्ति आवश्यक उपचार के लिये प्रार्थना कर सकेगा। जैसाकि माननीय डॉ. अम्बेडकर बता चुके हैं, संविधान के अन्य भागों में इसके फलस्वरूप कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी। उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालयों ने सरकार के खिलाफ लेख निकालने के संबंध में जो निर्बन्धन रखे हैं उन्हें दूर किया जाये। जब सरकार अर्धन्यायिक अथवा विधि संबंधी कृत्यों को करती है जो उच्च न्यायालयों को भी आवश्यक लेख निकालने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। 1935 के अधिनियम के अधीन मद्रास के उच्च न्यायालय ने यह मत प्रकट किया है कि इस प्रकार का लेख नहीं निकाला जा सकता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही इस परन्तुक में रूप-भेद किया जा रहा है। यह भय न होना चाहिये कि विनियमन करने वाले

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

अधिनियम के दिनों में गवर्नर जनरल और उच्चतम न्यायालय के बीच जो संघर्ष हुआ था उसकी पुनरावृत्ति होगी। वह सब अब नहीं होगा और मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि संविधान में प्रत्याभूत मूलाधिकारों को व्यवहार में लाने में इस अधिकार को उच्च न्यायालय बुद्धिमत्ता से प्रयोग में लायेंगे।

***अध्यक्षः** क्या आप श्री कामत के संशोधन के संबंध में कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** हमने उनके लिये इसका अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

***अध्यक्षः** अब मैं श्री कामत के संशोधन संख्या 3203 पर मत लेता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या पदावधि के संबंध में मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जायेगा?

***अध्यक्षः** श्री कृष्णमाचारी सभा को बता चुके हैं कि इसकी व्याख्या आप को सुना दी गई है।

***श्री एच.वी. कामतः** जी नहीं, उसकी व्याख्या नहीं की गई है।

***अध्यक्षः** हो सकता है कि आप उस व्याख्या को स्वीकार न करें।

***श्री एच.वी. कामतः** कोई कारण नहीं बताये गये हैं। यदि वे नहीं बताना चाहते हैं तो मैं उन्हें बाध्य नहीं करूंगा। यदि वे मेरे प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं तो बात दूसरी है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मुझे यह सलाह दी गई है कि इन शब्दों को इसी रूप में रहने दिया जाये।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर श्री कामत का एक संशोधन इस आशय का है कि अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) में "कर्त्तव्यों" शब्द के स्थान पर "कृत्यों" शब्द रखा जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** "कृत्य" शब्द का अधिक व्यापक अर्थ होता है और उसमें "शक्ति और कर्त्तव्य" दोनों सन्निहित होते हैं। हमने शक्तियों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है जिनमें सभी कृत्य आ जाते हैं। इस प्रकार के किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) में 'duties (कर्त्तव्यों)' शब्द के स्थान पर 'functions (कृत्यों)' शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** यही एक संशोधन उपस्थित किया गया है। अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णामाचारीः** सभी संशोधनों पर एक साथ मत लिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** यदि सदस्य चाहें तो मैं उन पर अलग-अलग मत लूंगा।

अच्छी बात है। मैं उन पर एक साथ मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है किः

"(1) अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) में 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

"(2) अनुच्छेद 302 के खण्ड (1) के दूसरे परन्तुक में 'bring against the Government of India or the Government of a State such proceedings as are mentioned in Chapter III of Part X of this Constitution (भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के खिलाफ उन कार्यवाहियों के चलाने के किसी व्यक्ति के अधिकार को निर्बन्धित करती है जो इस संविधान के भाग 10 के अध्याय 3 में वर्णित हैं)' शब्द और अंकों के स्थान पर 'bring appropriate proceedings against the Government of India or the Government of a State (भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के खिलाफ समुचित कार्यवाहियों के चलाने के किसी व्यक्ति के अधिकार को निर्बन्धित करती है)' शब्द रखे जायें।"

"(3) अनुच्छेद 302 के खण्ड (2) में, 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द रखे जायें।"

"(4) अनुच्छेद 302 के खण्ड (3) में 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात् 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द रखे जायें।"

"(5) अनुच्छेद 302 के खण्ड (4) में–

(क) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात्, जहां वह पहली बार आया है, 'or Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

(ख) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के स्थान पर, जहां वह दूसरी बार आया है, 'as Governor or Ruler (राज्यपाल या राजप्रमुख के रूप में)' शब्द रखे जाये।

[अध्यक्ष]

(ग) 'Governor (राज्यपाल)' शब्द के पश्चात्, जहां वह तीसरी बार आया है, 'or the Ruler (या राजप्रमुख)' शब्द प्रविष्ट किये जायें।

संशोधन स्वीकार कर लिये गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 302, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 302, संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243, 244 तथा 245 का शीर्षक निकाल दिया जाये।"

इस पर मत लिया जाये ताकि अन्य अनुच्छेदों को अलग-अलग उठाया जा सके। यह एक स्वतंत्र संशोधन है।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243, 244 तथा 245 का शीर्षक निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 243 और अनुच्छेद 243, 244 तथा 245 का शीर्षक निकाल दिया गया।

भाग 10-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि भाग 10 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन भाग प्रविष्ट किया जाये:

"Part XA

Trade, Commerce and Intercourse within the territory of India.

Freedom of trade, commerce and intercourse throughout the territory of India.

274A. Subject to the other provisions of this Part, trade, commerce and intercourse throughout the territory of India shall be free.

274 B. Parliament may, by law enacted by virtue of powers conferred by this Constitution, impose such restrictions on the freedom of trade, commerce or intercourse between one State and another or within any part of the territory of India as may be required in the public interest.

Power of Parliament to impose restrictions on trade, commerce and intercourse by law.

274C. (1) Notwithstanding anything contained in article 274B of this Constitution neither Parliament nor the Legislature of a State shall have power to make any law giving or authorising the giving of preference to one State over another or making any discrimination or authorising the making of any discrimination between one State and another by virtue of any entry relating to trade or commerce in any of the Lists in the Seventh Schedule.

Restrictions on the legislative powers of the Union and of the States with regard to trade and commerce.

(2) Nothing in clause (1) of this article shall prevent Parliament from making any law giving any preference or making any discrimination as aforesaid if it is declared by such law that it is necessary to do so for the purpose of dealing with a situation arising from scarcity of goods in any part of the territory of India.

274D. Notwithstanding anything contained in aricle 274A or article 274C of this Constitution, the legislature of a State may, by law—

Restrictions on trade, commerce and intercourse among States.

(a) impose on goods which have been imported from other States any tax to which similar goods manufactured or produced in that State are subject, so, however, as not to discriminate between goods so imported and goods so manufactured or produced; and

(b) impose such reasonable restrictions on the freedom of trade, commerce or intercourse with or within that State as may be required in the public interest:

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Provided that no Bill or amendment for the purposes of clause (b) of this article shall be introduced or moved in the legislature of the State nor shall any Ordinance be promulgated for the purpose by the Governor or Ruler of the State without the previous sanction of the President.

Appointment of authority to carry out the provisions of articles 274A to 274D.

274E. Parliament may by law appoint such authority as it considers appropriate for carrying out the purposes of articles 274A, 274B, 274C and 274D of this Constitution, and confer on the authority so appointed such powers and such duties as it thinks necessary."

भाग 10-क

भारत के राज्य-क्षेत्र के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम

भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता

274-क. इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।

व्यापार, वाणिज्य और समागम पर विधि द्वारा निर्बन्धन लगाने की संसद की शक्ति।

274-ख. संसद ऐसी विधि द्वारा, जो इस संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच अथवा भारत राज्यक्षेत्र के किसी भाग के भीतर व्यापार, वाणिज्य या समागम की स्वतन्त्रता पर ऐसे निर्बन्धन आरोपित कर सकेगी जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हों।

व्यापार और वाणिज्य के विषय में संघ और राज्यों की विधायिनी शक्तियों पर निर्बन्धन।

274-ग. (1) इस संविधान के अनुच्छेद 274-ख में किसी बात के होते हुए भी सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में व्यापार और वाणिज्य सम्बन्धी किसी प्रविष्टि के आधार पर न तो संसद को, और न राज्य के विधान मण्डल को, कोई ऐसी विधि बनाने की शक्ति होगी जो एक राज्य को दूसरे राज्य से अधिमान देती या दिया जाना प्राधिकृत करती है अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में कोई विभेद करती या किया जाना प्राधिकृत करती है।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में की कोई बात संसद को ऐसी कोई विधि बनाने से न रोकेगी जो कोई ऐसा अधिमान देती या दिया जाना प्राधिकृत करती है, अथवा कोई ऐसा विभेद करती है या किया जाना प्राधिकृत करती है, यदि ऐसी विधि द्वारा यह घोषित किया गया हो कि भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में वस्तुओं की दुर्लभता से उत्पन्न किसी स्थिति से निबटने के प्रयोजन के लिये ऐसा करना आवश्यक है।

राज्यों के पारस्परिक व्यापार, वाणिज्य और समागम पर निर्बन्धन।

274-घ. अनुच्छेद 274-क या अनुच्छेद 274-ग, में किसी बात के होते हुए भी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा–

(क) अन्य राज्यों से आयात की गई वस्तुओं पर कोई ऐसा कर आरोपित कर सकेगा जो कि उस राज्य में निर्मित या उत्पादित वैसी ही वस्तुओं पर लगता हो किन्तु इस प्रकार की उससे इस तरह आयात की गई वस्तुओं तथा ऐसी निर्मित या उत्पादित वस्तुओं के बीच कोई विभेद न हो, तथा

(ख) उस राज्य के साथ या भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतन्त्रता पर ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धन आरोपित कर सकेगा जैसे कि लोकहित में अपेक्षित हों:

परन्तु इस अनुच्छेद के खंड (ख) के प्रयोजनों के लिये कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना राज्य के विधान मण्डल में पुर:स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जायेगा और इस प्रयोजन के लिये राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना कोई अध्यादेश भी प्रख्यापित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 274-क से 274-घ तक के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिये प्राधिकारी की नियुक्ति।

274-ङ संसद विधि द्वारा ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगी जैसा कि वह इस संविधान के अनुच्छेद 274-क, 274-ख, 274-ग, और 274-घ के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिये समुचित समझे तथा इस प्रकार नियुक्त प्राधिकारी को ऐसी शक्तियां और ऐसे कर्तव्य सौंप सकेगी जैसे कि वह आवश्यक समझे।)]

श्रीमान्, इस समय मैं सभा को केवल यह सूचित करना चाहता हूं कि आरम्भ में व्यापार और वाणिज्य के स्वातन्त्र्य-संबंधी अनुच्छेद संविधान के मसौदे के विभिन्न भागों में बिखरे हुए थे। एक अनुच्छेद, अर्थात् अनुच्छेद 16, मूलाधिकारों की सूची में था और उसमें कहा गया था कि संसद द्वारा बनाई हुई विधि के अधीन रहते हुए भारत के राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र व्यापार और वाणिज्य अबाध होगा। अन्य अनुच्छेद

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अर्थात्, अनुच्छेद 243, 244 और 245 संविधान के मसौदे में अन्यत्र समाविष्ट थे। जब बहस हो रही थी तो यह देखा गया कि इस सभा के बहुत से सदस्य अनुच्छेद 243, 244 और 245 का आशय इस कारण नहीं समझ सके कि ये अनुच्छेद सोलहवें अनुच्छेद से अलग रखे गये थे। इसलिये व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य-सम्बन्धी उपबन्धों का पूर्ण चित्र सभा के सामने रखने के लिये मसौदा-समिति ने यह विचार किया कि संविधान के विभिन्न भागों में बिखरे हुए इन विभिन्न अनुच्छेदों को एक ही भाग में क्रमानुसार रख दिया जाये ताकि एक ही दृष्टि डालने पर ज्ञात हो जाये कि भारत में व्यापार और वाणिज्य के स्वातन्त्र्य के संबंध में क्या उपबन्ध हैं। मैं यह भी बताना चाहता हूं कि इस भाग में दिये हुए उपबन्धों का उद्देश्य यह नहीं है कि व्यापार और वाणिज्य की पूरी स्वतंत्रता हो अर्थात् संसद और राज्यों को भारत में सर्वत्र व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य-विषयक आधारभूत उपबन्ध में अपवाद करने की शक्ति से वंचित नहीं किया गया है। व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य को कुछ परिसीमाओं के अधीन प्रदान किया गया है, जिन्हें संसद अथवा विभिन्न राज्यों के विधान-मण्डल घोषित कर सकते हैं, किन्तु शर्त यह है कि संसद को व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य को परिसीमित करने की शक्ति केवल उन्हीं मामलों के संबंध में प्राप्त है जो भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में वस्तुओं की दुर्लभता से संबंधित हों और राज्यों को उन मामलों के संबंध में प्राप्त है जो सार्वजनिक कल्याण से संबंधित हों। यदि राज्य लोक-हित की दृष्टि से व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य को परिसीमित करना चाहें तो उन्हें यह शर्त भी पूरी करनी होगी कि उन्हें व्यापार और वाणिज्य के स्वातंत्र्य संबंधी किसी विधेयक के लिये पहले राष्ट्रपति की मंजूरी लेनी होगी अन्यथा वे इस प्रकार की विधि नहीं बना सकेंगे। अनुच्छेद 274-ङ से संसद को केवल अमरीका के अन्तर्राज्यिक आयोग के समान एक प्राधिकारी को नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्राधिकारी का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख न करके इस विषय को यों ही छोड़ दिया गया है ताकि संसद जिस प्राधिकारी को नियुक्त करना चाहे करे।

यदि बहस में कोई और प्रश्न उठाये गये तो मैं सहर्ष उनका उत्तर दूंगा।

*__अध्यक्ष:__ हमें संशोधन एक-एक करके उठाने होंगे। पहला संशोधन शीर्षक के सम्बन्ध में है जो पंडित ठाकुरदास भार्गव के नाम से है (संशोधन संख्या 339)।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ इस संशोधन को उपस्थित करने के पूर्व मैं विनयपूर्वक यह निवेदन करता हूं कि मुझे सभी संशोधनों को एक साथ उपस्थित करने की आज्ञा दी जाये।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन भाग 10-क के शीर्षक में 'Trade, Commerce and Intercourse (व्यापार, वाणिज्य और समागम)' शब्दों के स्थान पर 'Trade and Commerce (व्यापार और वाणिज्य)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-क में 'Part (भाग)' शब्द के स्थान पर 'Constitution (संविधान)' शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'restrictions (निर्बन्धन)' शब्द के पूर्व 'reasonable (युक्तियुक्त)' शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'trade commerce or intercourse (व्यापार, वाणिज्य या समागम)' शब्दों के स्थान पर 'trade or commerce (व्यापार या वाणिज्य)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'public interest (लोक-हित)' शब्दों के स्थान पर 'interests of the general public (जनसाधारण के हित)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में 'to one State over another (एक राज्य को दूसरे राज्य से)' शब्दों के स्थान पर 'to any State as against any other State in the Union or to any part within that State (एक राज्य को संघ के किसी अन्य राज्य से अथवा उस राज्य के किसी भाग को)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में 'between one State and another (एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच)' शब्दों के स्थान पर 'between any State and another State of the Union or between any parts within that State (किसी राज्य और संघ के किसी अन्य राज्य के बीच अथवा उस राज्य के किन्हीं भागों के बीच)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में से 'by virtue of any entry relating to trade or commerce in any of the Lists in the Seventh Schedule (सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में व्यापार और वाणिज्य संबंधी किसी प्रविष्टि के आधार पर)' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'a situation (किसी स्थिति)' शब्दों के स्थान पर 'any emergent situation (किसी आपात की स्थिति में)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'scarcity (दुर्लभता)' शब्द के पूर्व 'temporary (अस्थाई)' शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'for the period of emergency (आपात काल तक)' शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'for such period as the situation lasts (ऐसी अवधि के लिए जब तक स्थिति बनी रहे)' शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ का खण्ड (ख) निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में से 'or intercourse (अथवा समागम)' शब्द निकाल दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में से 'with or (अंग्रेजी के शब्द विद आर)' शब्द निकाल दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'in the public interest (लोक-हित में)' शब्दों के स्थान पर 'in the interests of the general public and are not inconsistent with the provisions of article 13 (जनसाधारण के हित में अपेक्षित हों और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों से असंगत न हों)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'public interest (लोक-हित)' शब्दों के स्थान

पर 'interests of the general public (जनसाधारण के हित)' शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'during any period of emergency arising from scarcity of goods within the State for the period of such emergency (किसी ऐसे आपात-काल में जो राज्य में वस्तुओं की दुर्लभता के कारण उत्पन्न हुआ हो, ऐसे आपात-काल तक)' शब्द अन्त में जोड़ दिये जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के अन्त में निम्नलिखित नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'The President shall be competent to revoke such sanction when he considers it expedient to do so in the interest of the general public and on such revocation being made the law of the State imposing restrictions shall become void.'"

(राष्ट्रपति ऐसी मंजूरी का प्रतिसंहरण करने में सक्षम होगा जब कि वह यह समझेगा कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना इष्टकर है और ऐसे प्रतिसंहरण के पश्चात् राज्य की जिस विधि के अधीन निर्बन्धन आरोपित होते हों वह शून्य हो जायेगी।)

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ङ निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ङ के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'274F. Notwithstanding anything contained in this Constitution any citizen or State shall have the right to move the Supreme Court by appropriate proceedings for the enforcement of the rights conferred by article 13 or Part X-A of the Constitution.'"

(274-च. इस संविधान की किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक नागरिक अथवा राज्य के संविधान के अनुच्छेद 13 अथवा भाग 10-क द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये समुचित कार्यवाही से उच्चतम न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार होगा।)

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अथवा विकल्पत:

"अनुच्छेद 16 में 'Parliament (संसद)' शब्द के पश्चात् 'under articles 274 B and 274C (अनुच्छेद 274-ख तथा 274-ग के अधीन)' शब्द और अंक प्रविष्ट किये जायें।"

इन संशोधनों के संबंध में मेरा यह निवेदन है कि इस विषय के प्रति मेरा दृष्टिकोण डॉ. अम्बेडकर के दृष्टिकोण से भिन्न है। मेरे मतानुसार व्यापार और वाणिज्य तथा समागम के ये अधिकार परिसीमित नहीं होने चाहियें और यदि परिसीमित हों तो केवल आपात-संबंधी उपबन्धों से परिसीमित हों किन्तु उनके मतानुसार इस संबंध में केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकार को शक्ति प्राप्त होनी चाहिये और ये अधिकार परिसीमित होने चाहियें। हम अनुच्छेद 16 को पारित कर चुके हैं जिसकी शब्दावली इस प्रकार है:

"इस संविधान के अनुच्छेद 244 के उपबन्धों के और संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के अधीन रहते हुए भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा।"

यह अनुच्छेद अभी इसी रूप में है। अभी तक इस आशय का कोई संशोधन पारित नहीं हुआ है कि यह निराकृत किया गया है। इस अनुच्छेद के प्रत्याभूत अधिकारों के अध्याय में होने से हमें यह आश्वासन मिलता है कि यह एक मूलाधिकार है। मैं यह जानता हूं कि यह मूलाधिकार "संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के अधीन रहते हुए" शब्दों से बहुत परिसीमित हो गया है। इसके अधीन रहते हुए, हम जिस संविधान को पारित कर चुके हैं उसके द्वारा इस मूलाधिकार की भारत के नागरिकों को प्रत्याभूति दी गई है। इसके साथ ही मेरा आप से यह भी अनुरोध है कि आप इस पर भी विचार करें कि अनुच्छेद 13 का क्या प्रभाव होगा। इस विषय से उसका जो अंश संबंधित है वह इस प्रकार है:

"सब नागरिकों को (घ) भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरता का, (ङ) भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, (च) सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का, तथा (छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार होगा।"

मेरा यह निवेदन है कि डॉ. अम्बेडकर का यह उपबन्ध कुछ सीमा तक अनुच्छेद 13 के भाग (घ) से (छ) तक का खण्डन करता है। जहां तक अनुच्छेद 13 के उपबन्धों को मैं समझ पाया हूं उनका आशय यह है कि अनुच्छेद 16 के अधीन रहते हुए, जिसे कि हम पारित कर चुके हैं, प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक वृत्ति, व्यापार अथवा कारबार करने का अधिकार है। उसके अनुसार केवल लोक-हित साधन की दृष्टि से नागरिकों के अधिकारों को कुछ अंश में निर्बन्धित किया जा सकता है। आप देखेंगे कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन के कई स्थलों में "लोक-हित" पदावली रखी है और इसके स्थान पर मैंने "जनसाधारण के हित" पदावली रखने का प्रयास किया है। मेरी यह धारणा है कि इन दो पदावलियों में बहुत अन्तर है। किसी राज्य के प्रसंग में "लोकहित" पदावली में अधिक से अधिक उस राज्य के लोगों का हित ही सन्निहित होगा, यद्यपि "लोक" शब्द से

लोक-समूह का बोध होता है। इस प्रकार "लोक-हित" का अर्थ किसी राज्य के निवासियों के एक भाग का हित भी हो सकता है। किन्तु यदि "जनसाधारण के हित" पदावली प्रयोग में लाई जाये तो उसका अर्थ होगा समस्त भारत के जनसाधारण के हित। इसकी सम्भावना है कि कई अवसरों पर डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में "लोक-हित" पदावली का जो अर्थ है उसका अनुच्छेद 13 में प्रयुक्त "जनसाधारण के हित" पदावली के अर्थ से विरोध हो। जब इस प्रकार का विरोध उत्पन्न होगा तो उससे प्रान्तीयता को बढ़ावा मिलेगा और जनसाधारण का कल्याण न होकर कुछ ही लोगों का कल्याण होगा। यदि हम "जनसाधारण के हित" पदावली को न रखकर "लोक-हित" पदावली को रखते हैं तो यही परिणाम होगा।

यदि यह सच है कि अनुच्छेद 16 द्वारा नागरिकों को एक मूलाधिकार प्रदान किया गया है और वह समुचित कार्यवाही के साधन से उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है तो इसका अर्थ यह है कि जो अधिकार प्रदान किया गया है उसका, यदि हम इन अनुच्छेदों को उनके वर्तमान रूप में पारित करते हैं तो उनसे, निराकरण हो रहा है। इन्हें पारित करने के पश्चात् अनुच्छेद 16 द्वारा प्रदत्त कोई भी मूलाधिकार अपरिसीमित नहीं रह जायेगा। इसलिये, मेरा यह निवेदन है कि हम जिस अधिकार की प्रत्याभूति दे चुके हैं उसमें हस्तक्षेप कर रहे हैं। उस अधिकार की रक्षा के लिये ही मैंने एक संशोधन उपस्थित किया है, जिसके द्वारा अनुच्छेद 16 को भी संशोधित करने का प्रयास किया गया है। मेरा उद्देश्य यह है कि या तो अनुच्छेद 16 से संबंधित संशोधन स्वीकार कर लिया जाये अथवा यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये:

> "इस संविधान की किसी बात को होते हुए भी प्रत्येक नागरिक अथवा राज्य को संविधान के अनुच्छेद 13 अथवा भाग 10-क द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये समुचित कार्यवाही से उच्चतम न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद 16 के "संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के अधीन रहते हुए" शब्दों का अर्थ केवल यह होगा कि यह अधिकार केवल उन उपबन्धों के अधीन होगा जो इस संशोधन द्वारा समाविष्ट किये जा रहे हैं। अनुच्छेद 274-ग और 274-घ में उसी प्रकार की विधियों का वर्णन है जिनकी अनुच्छेद 16 में कल्पना की गई है। मैं किसी ऐसी अन्य विधि की कल्पना नहीं कर सकता जिससे भारत के नागरिकों की स्वतंत्रताओं का परिसीमन हो सकता है। ये दो उपबन्ध पर्याप्त हैं। इन अनुच्छेदों के संबंध में भी मेरा विनम्र निवेदन है कि यदि प्रान्तों को किसी अन्य राज्य के नागरिकों पर निर्बन्धन आरोपित करने की स्वतन्त्रता दी गई तो एकता, एक-राष्ट्र, एक-शासन और एक-देश की चर्चा व्यर्थ सिद्ध होगी। इसका आभास इस समय भी मिल रहा है। समाज के जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं के संबंध में कुछ शक्तियां भारत सरकार प्रयोग में लाती है और कुछ शक्तियां प्रान्त प्रयोग में लाते हैं। इस संबंध में सभा को विदित है और पूर्वी पंजाब के हम लोगों को भी विदित है कि ये शक्तियां किस प्रकार प्रयोग में आ रही हैं। यद्यपि सारे देश में अन्न दुर्लभ है और विदेशों से बहुत मात्रा में अन्न मंगाया जा रहा है और "अधिक अन्न उपजाओ" का आन्दोलन बड़े जोरों से चलाया जा रहा है

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

किन्तु हम जानते हैं कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार के शक्ति-प्रयोग के कारण आज स्थिति यह है कि पूर्वी पंजाब में करोड़ों रुपयों का अन्न नष्ट हो रहा है।

श्रीमान्, यदि आप कृपा करके डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन द्वारा अधिनियमित होने वाले उपबन्धों को पढ़ें तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि प्रत्येक राज्य को व्यापार, वाणिज्य तथा समागम पर लोक-हित की दृष्टि से युक्तियुक्त निर्बन्धन आरोपित करने का अधिकार दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि बंबई के लोग यह कह सकते हैं कि बंबई के लोगों के हितों को ध्यान में रखकर वह कपड़े के व्यापार पर कुछ निर्बन्धन आरोपित करेंगे। इसी प्रकार पूर्वी पंजाब में हमारे पास अपनी आवश्यकताओं से कहीं अधिक चना रहता है। यदि केन्द्रीय सरकार अथवा स्थानीय सरकार ने यह निर्णय किया कि उसका निर्यात नहीं होगा तो यह हो सकता है कि यद्यपि पूर्वी पंजाब में चना 6 रु. या 7 रु. के भाव से बिक रहा हो किन्तु बंगाल के कुछ भागों में अथवा मद्रास में वही चना 20 रु. अथवा 22 रु. के भाव से बिके। पूर्वी पंजाब में अधिक चना होने के कारण न तो बंबई को और न मद्रास को फायदा होगा और न अन्य प्रदेशों में चने का मूल्य अधिक होने से पूर्वी पंजाब के लोगों को ही फायदा होगा। यह कोई कपोल-कल्पित चित्र नहीं है। इस समय यही हो रहा है और पहले भी यही होता आया है। मैं केन्द्रीय सरकार के तथा प्रान्तीय सरकार के लोगों के पास भी गया और मैंने उन्हें सारी कथा सुनाई किन्तु फिर भी उन्होंने कोई कदम नहीं उठाया।

श्रीमान्, जहां तक व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता का संबंध है, मैं यह चाहता हूं कि वह अबाध हो और केवल ऐसे समय में जब चीजें दुर्लभ हों अथवा आयात उपस्थित हो, लोक-हित को ध्यान में रखकर निर्बन्धन आरोपित किये जायें। यदि हम वास्तव में यह भावना जाग्रत करना चाहते हैं कि हम एक ही देश के विभिन्न भागों के निवासी हैं और हमारी एक ही सरकार है तो साधारण काल में किसी प्रकार के निर्बन्धनों की आज्ञा न देनी चाहिये। अनुच्छेद 243 की योजना में एक प्रकार का अधिमान अथवा विभेद सन्निहित है। अनुच्छेद 274-क में एक ऐसा उपबन्ध है जिसका मैं स्वागत करता हूं। उसमें कहा गया है कि व्यापार और वाणिज्य अबाध होगा। किन्तु मुझे "इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए" शब्दों पर आपत्ति है। मैं यह चाहता हूं कि "भाग" के स्थान पर "संविधान" शब्द रखा जाये। यदि संविधान द्वारा कोई निर्बन्धन रखे गये हैं तो मैं उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। इस भाग में व्यापार के स्वातन्त्र पर कई अनावश्यक निर्बन्धन लगाये गये हैं, जिनके कारण तबियत खीझ उठती है। इस संविधान में सर्वत्र यही दिखाई देता है कि एक हाथ से जो कुछ दिया गया है वह दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि अनुच्छेद 13 के अधीन जो अधिकार दिये गये हैं वे केवल उन निर्बन्धनों से सीमित हों, जिन्हें हम रख आये हैं, और वे इस अनुच्छेद के निर्बन्धनों से सीमित न हों। मेरे विचार से इस प्रकार के निर्बन्धनों से प्रान्तीय द्वेष को बढ़ावा मिलेगा किन्तु प्रान्तीय प्रेम के कारण सारे भारत को हानि होगी।

अनुच्छेद 274-ख के संबंध में मैं निवेदन कर चुका हूं कि मैं "निर्बन्धन" शब्द के पूर्व "युक्तियुक्त" शब्दों की प्रविष्ट करना चाहता हूं। अनुच्छेद 13 में,

जो एक न्याय्य अनुच्छेद है हमने "युक्तियुक्त" शब्द रखा है। प्रश्न यह उठता है कि इस अध्याय के अधीन जो अधिकार दिये जा रहे हैं वे न्याय्य होंगे या नहीं। मैं यह समझता हूं और डॉ. अम्बेडकर ने जो शब्द रखे हैं उनका भी यही अर्थ है कि ये अधिकार न्याय्य नहीं होंगे। यदि वे यह कहते हैं कि ये न्याय्य होंगे तो मैं अपने कुछ संशोधन वापस ले लूंगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** डॉ. अम्बेडकर हमें यह बता चुके हैं कि अनुच्छेद 16 में जो मूलाधिकार वर्णित हैं उनमें वे परिवर्तन करने जा रहे हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, अनुच्छेद 16 द्वारा मूलाधिकार प्रदान किये गये हैं, इस कारण वह एक न्याय्य अनुच्छेद है। मैं यह जानता हूं कि इसके उत्तर में यह कहा जायेगा कि उसमें "संसद द्वारा बनाई हुई किसी विधि के अधीन रहते हुए" शब्द रखे गये हैं। किन्तु अब वह और भी अधिक परिसीमित कर दिया गया है क्योंकि अब राज्य भी इन अधिकारों का अपहरण कर सकते हैं। मैं केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि नागरिकों के मूलाधिकारों का अपहरण नहीं होना चाहिये। और इसलिये मैंने जितने भी संशोधन उपस्थित किये हैं उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिये और इस अधिकार को न्याय्य अधिकार बना देना चाहिये।

अन्य संशोधनों के संबंध में, जिन्हें मैं सभा को पढ़कर सुना चुका हूं, मैं सभा का अधिक समय नहीं लूंगा। मैं प्रत्येक संशोधन पर नहीं बोलूंगा क्योंकि जिन शब्दों में वे रखे गये हैं उनसे उनका आशय स्पष्ट हो जाता है। मैं केवल उन सिद्धान्तों के संबंध में कुछ शब्द कहूंगा जिन पर वे आधृत हैं।

श्रीमान्, व्यापार और समागम के संबंध में मेरी यह आपत्ति है। अनुच्छेद 13 में कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक को भारत के किसी भाग में संचरण का तथा निवास करने और बस जाने का अधिकार होगा। यह समागम तो मेरी समझ में आता है। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि "समागम" शब्द का अन्य अर्थ क्या है। अनुच्छेद 13 में हम युक्तियुक्त निर्बन्धन रख चुके हैं और हमें अन्य निर्बन्धनों को रखने की आवश्यकता नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि राज्यों के बीच किस प्रकार का समागम होगा। मेरे विचार से तो केवल व्यक्तियों के बीच समागम हो सकता है। श्रीमान्, इस अध्याय में और अनुच्छेद 13 में जो अन्तर है वह यह है राज्य कोई व्यक्ति नहीं है। राज्यों के बीच बहुत कम अवसरों पर व्यापार, वाणिज्य और समागम होगा, किन्तु कई अवसरों पर ऐसे मामले उठ खड़े होंगे जिनमें व्यक्तियों के हित अन्तर्ग्रस्त होंगे। यदि अनुच्छेद 13 को वर्तमान रूप में रहने दिया गया तो मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 274-क आदि के अधीन लोगों को इस मूलाधिकार से वंचित नहीं रखा जा सकेगा। यदि मैं कोई व्यापार अथवा वृत्ति करता हूं तो मैं यह जानना चाहूंगा कि अनुच्छेद 13 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकार के होते हुए कौन राज्य उस पर निर्बन्धन लगा सकेगा। ऐसे अवसर उत्पन्न होंगे जब अनुच्छेद 13 और वर्तमान अनुच्छेद एक दूसरे के लिये खण्डनकारी सिद्ध होंगे। इसलिये मैंने इस आशय का एक संशोधन उपस्थित किया है कि ये निर्बन्धन अनुच्छेद 13 के उपबन्धों के अधीन होना चाहिये। यदि वह स्वीकार कर लिया गया तो यह न्याय्य अधिकार बनाया जा सकता है। मेरा निवेदन है कि संशोधन

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

के प्रस्तावक महोदय के मस्तिष्क में यही विचार प्रधान है कि अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 16 के अधीन बहुत विस्तृत अधिकार दिये गये हैं इसलिये उन्हें परिसीमित करना आवश्यक है। मेरे विचार से इन अधिकारों में इस प्रकार रद्दोबदल न करनी चाहिये।

अनुच्छेद 274-ग के संबंध में अपने संशोधन के बारे में मैं निवेदन कर चुका हूं कि उसकी अंतिम दो पंक्तियों को निकाल देना चाहिये। मैं यह कहना चाहता हूं कि "सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में व्यापार और वाणिज्य संबंधी किसी प्रविष्टि के आधार पर "शब्दों को यदि निकाल दिया गया तो सुचारु व्यवस्था स्थापित हो जायेगी और कहीं भी विभेद अथवा अधिमान की संभावना नहीं रह जायेगी।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 274-ग (2) में "भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में वस्तुओं की दुर्लभता से उत्पन्न किसी स्थिति से निबटने के प्रयोजन के लिये ऐसा करना आवश्यक है" शब्द प्रयुक्त हैं। अकाल आदि के समय यदि यह प्रयोग किया जाता है तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। किन्तु इस प्रकार की शक्ति वास्तविक आपात के समय में ही प्रयोग की जानी चाहिये। अन्यथा इस अधिकार का इस प्रकार प्रयोग होगा कि उससे जनसाधारण का अहित होगा भले ही किसी राज्य के निवासियों को उससे लाभ हो।

इसी प्रकार श्रीमान्, अनुच्छेद 274-घ के संबंध में मुझे उसके खण्ड (क) पर कोई आपत्ति नहीं है किन्तु उसके खण्ड (ख) पर गम्भीर आपत्ति है। मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं हैं। यदि संसद को उसी प्रकार शक्तियां दी जा रही हैं जैसे कि वे आरम्भ में दी गई थीं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। संसद उस पर सामान्य दृष्टि से अर्थात् सारे भारत को दृष्टि में रख कर विचार करेगी। किन्तु यदि ये शक्तियां राज्यों को दी गईं तो वे इस पर अपने ही स्वार्थों को सामने रख कर विचार करेंगे जिसके कारण पारस्परिक द्वेष बढ़ेगा। इसलिये जहां तक राज्यों का संबंध है सरकार को उन्हें इस शक्ति को प्रयोग न करने देना चाहिये। जब तक वे उसे संसद द्वारा प्रयोग न करें। यदि किसी राज्य को खण्ड (क) के अधीन अपनी शक्तियों को प्रयोग करने दिया जाता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि यह अधिकार उपयुक्त ही है। किन्तु यदि आप खण्ड (ख) को भी इसी रूप में बनाये रखना चाहते है तो मैं कह नहीं सकता कि उसका परिणाम क्या होगा। यह मेरी समझ में आता है कि जब महामारी जैसे संक्रामक रोग फैलें तो स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अनुच्छेद 13 के अधीन निरोध विनियम लगाये जा सकते हैं। और समागम को निर्बन्धित किया जा सकता है किन्तु यदि साधारण काल में भी सामान्य समागम की आज्ञा नहीं दी गई अथवा उसे निर्बन्धित किया गया तो, इसका अर्थ यह होगा कि जनसाधारण के विरुद्ध रक्षा अधिनियमों के अधीन आदेश निकाले जा रहे हैं और उन्हें किसी राज्य में प्रवेश करने से रोका जा रहा है जो सर्वथा अनुचित है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह जिस राज्य में जाना चाहे जाये और किसी राज्य को भारत के शेष भाग के लोगों के समागम को रोकने का अधिकार नहीं है। "जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हो" शब्द रखकर किसी राज्य को यह शक्ति प्रदान करना अत्यन्त भयास्पद है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मंजूरी का रक्षा-कवच रखा गया है ताकि इस शक्ति का दुरुपयोग न हो सके। यह रक्षा-कवच भ्रामक है। यदि कोई रक्षा-कवच है तो वह यह है कि पहले राष्ट्रपति की मंजूरी लेनी होगी। हम जानते हैं कि राष्ट्रपति कैसे मंजूरी देते हैं। इसका केवल यह अर्थ है कि कोई सचिव अथवा मंत्री अथवा कोई अन्य व्यक्ति, जो दिलचस्पी रखता हो, राष्ट्रपति का आदेश प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार मंजूरी आसानी से मिल सकती है। इसलिये यह शक्ति राज्यों को प्राप्त न होनी चाहिये। यदि खण्ड (ख) को रखना ही है तो मेरा यह प्रस्ताव है कि मंजूरी ऐसी हो जो वापस ली जा सके। जैसे ही सरकार का यह विचार हो कि इस शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है तो वह मंजूरी वापस लेने के लिये सक्षम होनी चाहिये ताकि उस मंजूरी की सीमा तक उस प्रान्त की शक्तियां कम की जा सकें।

इन संशोधनों पर सभा को सावधानी से विचार करना चाहिये क्योंकि यह विषय भी एक महत्वपूर्ण विषय है और इसलिये भी कि जो संशोधन उपस्थित किये जा रहे हैं उनसे सारे भारत के लोगों के अधिकार सीमित हो रहे हैं। इस कारण मेरा यह मत है कि राज्यों को यह शक्तियां नहीं दी जानी चाहिये क्योंकि उसका अर्थ यह होगा कि प्रत्येक राज्य भारत के अन्य भागों तथा उनके निवासियों के लिये बाधा खड़ी कर सकेगा जिससे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जो भारतीय एकता के लिये घातक सिद्ध होगी।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मेरे नाम से बहुत से संशोधन हैं। मैं केवल एक संशोधन, अर्थात् संशोधन संख्या 295, उपस्थित करना चाहता हूं। वह अनुच्छेद 274-घ के संबंध में है।

***अध्यक्ष:** जब हम अनुच्छेद 274-घ को उठायेंगे तो उस समय उस पर विचार करेंगे। मैं पहले संशोधनों को उसी क्रम से उठाऊंगा जिस क्रम से वे नये अनुच्छेदों के संबंध में कार्यावली में दिये हुये हैं।

(संशोधन संख्या 317, 318, 319 और 320 उपस्थित नहीं किये गये।)

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:-

'274A. Subject to other provisions made in this Constitution, trade and commerce in any State or territory of India or between any two or more States of the Union, shall be as may be determined by the Parliament from time to time.'"

(274-क. इस संविधान के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुये, किसी राज्य में अथवा भारत राज्य-क्षेत्र में अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच व्यापार, वाणिज्य और समागम उस प्रकार होगा जैसे संसद समय-समय पर निश्चित करेगी।)

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'274B. Parliament may by law enacted by virtue of powers conferred by this Constitution impose such restrictions on trade and commerce in or between any parts of India as may be determined by the Parliament from time to time.'"

(274-ख. संसद ऐसी विधि द्वारा जो इस संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो, भारत के किन्हीं भागों में अथवा भागों के बीच, व्यापार, वाणिज्य या समागम पर ऐसे निर्बन्धन आरोपित कर सकती है जो संसद समय-समय पर निश्चित करे।)

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'274-C. (1) Legislature of a State shall not make any law giving or authorizing the giving of preference to one State over another or making any discrimination or authorizing the making of any discrimination between one State and another except with the consent of the Parliament.

(2) Legislature of a State may, however, by law—

(a) impose on goods imported from other States any tax to which similar goods manufactured or produced in that State are subject so as not to discriminate between goods so imported and goods so manufactured or produced; and

(b) impose such reasonable restrictions on trade and commerce or inter-commerce with or within that State as may be required in the public interest with the previous approval of the Parliament.'"

[274-ग. (1) किसी राज्य का विधान-मण्डल कोई ऐसी विधि नहीं बनायेगा जो एक राज्य को दूसरे राज्य से अधिमान देती या दिया जाना प्राधिकृत करती

है अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में कोई विभेद करती या किया जाना प्राधिकृत करती है, जब तक कि इसके लिये संसद सहमत न हो।

(2) किन्तु राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा–

(क) अन्य राज्यों से आयात की गई वस्तुओं पर कोई ऐसा कर आरोपित कर सकेगा, जो उस राज्य में निर्मित अथवा उत्पादित वैसी ही वस्तुओं पर लगता हो, ताकि इस प्रकार आयात की गई तथा निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं के बीच कोई विभेद न हो; और

(ख) उस राज्य के साथ या भीतर व्यापार और वाणिज्य अथवा समागम परा संसद की पूर्व मंजूरी से ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धन आरोपित कर सकेगा जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हों।]

मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'274-D. Parliament may, by law, appoint such authority or delegate its powers to such person or persons and confer on them, such powers and duties as it thinks necessary.'"

(274-घ. संसद विधि द्वारा ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगी अथवा ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को अपनी शक्तियां सौंप सकेगी और उन्हें ऐसी शक्तियां तथा ऐसी कर्तव्य प्रदान कर सकेगी, जैसे कि वह आवश्यक समझे।)

अध्यक्ष महोदय, कम से कम मुझे इसका खेद नहीं है कि अब हम यह अनुभव करने लगे हैं कि हमारे मूलाधिकार बड़े बोझिल हैं। और उनके कारण हमारे कार्य में तथा संविधान में भी बाधा पड़ रही है। मेरी हमेशा ही यह धारणा रही है कि ये मूलाधिकार भूतों के समान हैं, जिन्हें हम भावी संसदों की छाती पर बिठा रहे हैं ताकि वे उनसे हमेशा संघर्ष कर सकें। इसलिये मुझे इसका आश्चर्य नहीं है कि हमने इन मूलाधिकारों को जिस स्याही से अंकित किया है, उसके सूखने के पूर्व ही हम यह अनुभव करने लगे हैं कि कुछ शक्तियों तथा विशेषाधिकारों को, जिन्हे हम परमावश्यक समझते थे और कुछ मूलाधिकारों को जिन्हें प्रयोग में लाना हम अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे, बनाये रखना हमारे लिये सुविधाजनक नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने साहस करके कहा है कि भारत के विभिन्न भागों के बीच व्यापार और वाणिज्य को उतना स्वतंत्र नहीं रखा जा सकता, जितना स्वतंत्र हम रखना चाहते थे। हमने इस अनुच्छेद को (अर्थात् अनुच्छेद 16 को) मूलाधिकार विषयक अनुच्छेद बनाया और उसके द्वारा ऐसा अधिकार प्रदान किया जो न्याय्य हैं, किन्तु अब दूसरी पठन समाप्त होने के पूर्व ही हम लोगों से कहने जा रहे हैं कि अब हमने यह निर्णय किया है कि यह न्याय्य अधिकार न्याय्य नहीं रहेगा

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

मुझे इस संबंध में संदेह है कि यह अधिकार रहेगा भी या नहीं। मैं आशा करता हूं कि अन्तिम मसौदा तैयार करने के पूर्व हम समझेंगे कि इन मूलाधिकारों को रखकर हमने कौन सी गलतियां की हैं। वास्तव में उनमें से अधिकांश उस अर्थ में मूलाधिकार नहीं रह गये हैं, जिस अर्थ में हम उन्हें रखना चाहते थे। जो शेष रह जाते हैं और किसी प्रकार मूलाधिकार कहे जा सकते हैं, उनमें भी समय-समय पर रद्दोबदल की जाती है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, उसका संसद की प्रभुता तथा सर्व सत्ता पर प्रभाव पड़ता है। अपने संशोधनों के संबंध में मेरा यह निवेदन है कि मैं यह नहीं चाहता कि हम हमेशा के लिये विभिन्न राज्यों के वाणिज्यिक तथा व्यापारिक संबंधों को विकृत कर दें और संसद के विवेक को सीमित कर दें।

व्यापार और वाणिज्य कोई ऐसे विषय नहीं हैं, जिनके संबंध में हमेशा के लिये निर्णय किया जाता है। उनके संबंध में आये दिन प्रश्न उठते हैं। वे अनेक प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं अथवा ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि पूरे निर्णय को ही उलटना पड़े। यह स्थिति किसी एक राज्य के संबंध में अथवा अनेक राज्यों के संबंध में उत्पन्न हो सकती है। हमने कितनी शान से यह निर्णय किया था कि व्यापार सर्वत्र आबाध होगा। यह कोई आसान काम नहीं है और मुझे आशा है कि जब बहुत से लोग यह समझने लगे हैं। उदाहरणार्थ, हम यह जानते हैं कि संघ के विभिन्न अंगों में से कोई अधिक समुन्नत है, तो कोई कम। आसाम अथवा उड़ीसा के समान कुछ प्रदेश पिछड़े हुए हैं, क्योंकि वहां बहुत कम उद्योग हैं और वहां के निवासियों के हाथ में वहां का बहुत कम व्यापार है। अन्य संघागों के स्तर पर लाने के लिऐ सम्भवत: हमें उनकी रक्षा करनी पड़े। हमें उद्योग तथा अन्य बातों के बारे में रियायत के संबंध में अपने उपबंधों में समय-समय पर परिवर्तन करने की भी आवश्यकता पड़ सकती है। इसलिये मेरे विचार से तथाकथित विभेद को निषिद्ध करना अनुचित है क्योंकि इससे जो लोग पिछड़े हुए हैं, जो अधिक समुन्नत लोगों के साथ मुकाबला नहीं कर सकते और इस कारण जिन्हें सहायता अपेक्षित है, उन्हें सहायता नहीं मिल सकेगी। इस दृष्टि से मेरे संशोधनों द्वारा संसद को इस संबंध में पूर्ण स्वतन्त्रता देने का प्रयास किया गया है, ताकि वह सारे संघ के लिये अथवा किसी राज्य अथवा किन्हीं राज्यों के लिये ही नहीं बल्कि सभी राज्यों के लिये व्यापार वाणिज्य संबंधी नीति निश्चित कर सके। इसलिये अपने संशोधन संख्या 340 में मैंने जिस उपबन्ध का प्रस्ताव रखा है वह एक सीधा-सादा उपबन्ध ही है।

यदि हम प्रस्तावित नवीन अनुच्छेदों का विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि उन्हें समझना बहुत ही कठिन है। मेरे विचार से यह आलोचना ठीक है कि यह संविधान वकीलों का संविधान तथा "वकीलों के लिये स्वर्ग" होने जा रहा है। क्योंकि उसमें इतनी कमियां रह गई हैं कि कई खण्डों का तो वर्षों तक बहस करने के पश्चात् हम ठीक निर्वचन कर पायेंगे। श्रीमान्, यदि आप अनुच्छेद 274 को पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि संविधान में यह सबसे अधिक आश्चर्यजनक अनुच्छेद है। कई अन्य अनुच्छेद भी आश्चर्यजनक हैं। यदि हम इसकी गिनती करें कि इस संविधान में "होते हुए भी" शब्द कितनी बार आये हैं तो मुझे विश्वास है कि हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि "संसद" अथवा "संविधान" शब्दों की अपेक्षा भी ये शब्द बहुत

अधिक बार आये हैं। श्रीमान्, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन करना चाहता हूं। पहले हम यह उपबंधित करते हैं और कहते हैं, अथवा घोषित करते हैं, कि अमुक व्यक्ति पुरुष है। किन्तु इसके पश्चात् हम कहते हैं कि इस घोषणा के होते हुए भी वह साड़ी पहनेगा और केवल साड़ी ही पहनेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इसके लिये कोई निषेध नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** इस बात के होते हुए भी कि आप पुरुष समझे जाते हैं और इस बात के होते हुए भी कि आप केवल साड़ी ही पहनते हैं: आप गांधी टोपी भी पहनेंगे। इसके पश्चात् "इस बात के होते हुए भी" शब्द दुबारा आते हैं इस बात के होते हुए भी कि आप पुरुष हैं। इस बात के होते हुए भी कि आप केवल साड़ी ही पहनेंगे और इस बात के होते हुए भी कि आप गांधी टोपी भी पहन सकते हैं आपको इसकी स्वतंत्रता है कि आप अपने को नारी कहें (हास्य)। जहां तक इस अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 274 का संबंध है उसमें इसी प्रकार के हास्यास्पद शब्द रखे गये हैं। यदि आप उसे पढ़ें, तो आप देखेंगे कि जैसे ही पहला भाग समाप्त होता है तो हम कहते हैं, "पहले भाग में जो कुछ कहा गया है उसके होते हुए भी ये बातें होंगी।" दूसरे खंड में हम कहते हैं, "पहले खंड में जो कुछ कहा गया है उसके होते हुए तथा अन्य खंडों में जो कुछ कहा गया है, उसके होते हुए भी" और फिर कुछ अन्य बातें कहते हैं। मेरे विचार से इससे अच्छा मसौदा बनाया जा सकता है। यदि पेचीदी स्थितियों के संबंध में भी उपबन्ध बनाने हैं और वर्तमान उपबन्धों का आशय भी रखना है, तो एक सीधा-सादा मसौदा बनाया जा सकता है, जो इतना दुर्बोध न हो और जिसे केवल विशाल-बुद्धि-सम्पन्न लोग ही न समझ सकें, भले ही हम यह मान लें कि भविष्य में भारत में केवल विशाल-बुद्धि-सम्पन्न पुरुष ही जन्म लेंगे। यदि यह संविधान जनसाधारण के लिये बनाया जा रहा है और यदि इसका उनके अधिकारों तथा विशेषाधिकारों पर प्रभाव पड़ेगा, तो इसकी आवश्यकता है कि संविधान के मसौदाकार अधिक स्पष्ट, सुबोध तथा सरल भाषा को प्रयोग करें।

मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदासभार्गव यह बता चुके हैं और इस पर खेद प्रकट कर चुके हैं कि न केवल व्यापार और वाणिज्य, बल्कि समागम भी अबाध नहीं होने जा रहा है। इस समागम में भी हम बाधा पहुंचाने जा रहे हैं। इस प्रकार हम भविष्य की संसदों के स्वविवेक से निर्णय करने के मार्ग में बाधायें खड़ी कर रहे हैं। यह देखते हुए कि विभिन्न संघांगों ने समान रूप से उन्नति नहीं की है, मेरा यह विचार है कि व्यापार और वाणिज्य के संबंध में हमेशा के लिये निर्णय नहीं किया जा सकता। इसकी आवश्यकता पड़ सकती है कि हमें विभिन्न राज्यों की रक्षा करनी पड़े, क्योंकि वे इस स्थिति में नहीं हैं कि अन्य राज्यों से मुकाबला कर सकें। मैंने इस विषय का सावधानी से अध्ययन किया है और मैं यह कह सकता हूं कि इस संबंध में कई प्रश्न उठ सकते हैं उदाहरणार्थ, एक प्रश्न यह है कि उद्योगों की समुचित व्यवस्था किस प्रकार की जाये अर्थात् क्या नये उद्योग उन स्थानों में आरम्भ किये जायें, जहां कोई उद्योग नहीं है, अर्थात् उन स्थानों में जहां वे पहले से चल रहे हैं। भारतीय संघ की यह नीति रहेगी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

कि वह नये उद्योग आरम्भ करने के लिये लोगों को प्रोत्साहित करेगा। यदि उन्हें प्रोत्साहित करना आवश्यक है तो उन्हें कई प्रकार से सहायता देना तथा उनके साथ रियायत करना भी आवश्यक होगा।

एक बार यह शिकायत की गई थी कि सभी उद्योगपति भारतीय रियासतों को चले जा रहे हैं, क्योंकि वहां उन्हें कुछ ऐसे एकस्व, विशेषाधिकार तथा सुविधायें प्राप्त हैं, जो उन्हें ब्रिटिश भारत में प्राप्त नहीं हैं। इसलिये भारतीय रियासतों में उद्योगों के विकास को रोकने के लिए कदम उठाना पड़ा। जहां यह कदम उठाना पड़ा है, वहां अन्यत्र उद्योगों को कुछ विशेषाधिकार तथा कुछ रियायतें प्रदान करके तथा उन राज्यों के मार्ग में बाधा डाल कर प्रोत्साहित करना होगा, जो अपेक्षाकृत अधिक समुन्नत हैं, ताकि उन उद्योगों से कोई मुकाबला न कर सके। ऐसी स्थितियों की कल्पना की जा सकती है।

इसलिये मैं आशा करता हूं कि इस पूरे अध्याय को अधिक सरल बनाया जायेगा। राज्यों तथा संसद दोनों के हाथ बांध देने के स्थान पर अच्छा यह होगा कि हम किसी भी नीति को निर्धारित न करें और सब कुछ संसद के लिये छोड़ दें। अन्यथा जो स्थिति इस समय अनुच्छेद 16 के संबंध में उत्पन्न हुई है, वही स्थिति अनुच्छेद 274 के संबंध में भी उत्पन्न होगी। इस कारण अच्छा यह होगा कि हम सरल उपबन्धों को रखें। मैंने उन्हें बहुत ही सरल बना कर रखा है। मुझे आशा है कि संविधान के मसौदाकार उन्हें पसंद करेंगे। यदि वे उन्हें स्वीकार करेंगे तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि उनकी कठिनाई दूर हो जायेगी। किन्तु यदि वे अपने ही मसौदे के स्वीकार किये जाने पर जोर दें, तो व्यापार और वाणिज्य का पनपना तो दूर रहा उनका बने रहना भी कठिन हो जायेगा।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'prevent Parliament from making any law' (संसद को ऐसी कोई विधि बनाने से न रोकेगी) शब्दों के पश्चात् (हिन्दी में पूर्व) 'with previous consultation of the Government and legislature of a State' (किसी राज्य की सरकार तथा उसके विधान-मण्डल से पहले परामर्श करके) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, मैं इस नये भाग-10क का स्वागत करता हूं। इसकी आवश्यकता है कि भारत राज्य-क्षेत्र में विभिन्न राज्यों के बीच होने वाले व्यापार, वाणिज्य तथा समागम की शर्तों को विधि का रूप देकर उन्हें एक ही स्थान पर रख दिया जाये ताकि यह ज्ञात हो सके कि नवीन संविधान के अधीन व्यापार और वाणिज्य का किस प्रकार विनियमन होगा। मैं इस समय केवल अपने संशोधन के संबंध में ही बोलूंगा। मैं नहीं समझता कि संसद अथवा संघ राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप

करेंगे, यद्यपि मुझसे पूर्व बोलने वाले दो वक्ताओं ने यह कहा है। अपने संशोधन के संबंध में मुझे यह कहना है कि यद्यपि अनुच्छेद 274-ग (1) में व्यापार और वाणिज्य के बारे में संघ की तथा राज्यों की विधायी शक्तियों को निर्बन्धित करने की आज्ञा दी गई है, किन्तु खण्ड (2) में यह शक्ति ले ली गई है और भारत के किसी भाग में वस्तुओं की दुर्लभता से उत्पन्न किसी स्थिति से निबटने के लिये संसद को विशेष शक्ति प्रदान की गई हैं। मुझे यह मान्य है कि संसद को यह शक्ति प्राप्त हो, किन्तु साथ ही मैं चाहता हूं कि मेरे संशोधनों को स्वीकार करके सब कुछ स्पष्ट कर दिया जाये और अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) को प्रयोग में लाने के पूर्व जिन राज्यों पर उसका प्रभाव पड़ेगा, उनकी सरकारों तथा विधान मण्डलों से परामर्श किया जाये। यह कोई क्रांतिकारी विचार नहीं है और न यह मूल मसौदे के उपबन्धों से भिन्न ही है। मैं केवल प्रान्तीय विधान मण्डलों तथा प्रान्तीय सरकारों की स्थिति को स्पष्ट करना चाहता हूं। संघ सरकार पर इसका दायित्व है कि वह राज्यों की सरकारों तथा विधान मंडलों से परामर्श करें।

***अध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): इस अनुच्छेद के संबंध में अन्य संशोधन भी हैं।

***अध्यक्ष:** बाद में देखा जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** संशोधन संख्या 294 नवीन अनुच्छेद 274-घ से सुसम्बद्ध है। अब पुराने अनुच्छेद 244 के स्थान पर अनुच्छेद 274-घ रख दिया गया है। श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:-

'It shall not be lawful for any State either to impose any tax on goods imported from any State or to impose any restrictions on the freedom of trade, commerce or intercourse with any State.'"

(किसी राज्य के लिये किसी अन्य राज्य से आयात की गई वस्तुओं पर कोई कर आरोपित करना अथवा किसी राज्य से व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन आरोपित करना वैध नहीं होगा।)

मैं यह चाहता हूं कि इस देश में एकता की भावना के विकास के मार्ग में कोई बाधा न पड़े। इस देश में प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकार कर चुका है। अब इस विषय के संबंध में यदि किसी प्रकार की कमी को रहने दिया गया, तो उसका बहुत ही अनुचित परिणाम होगा। मैं यह जानता हूं कि इस शक्ति को निर्बन्धित किया गया है। किन्तु फिर भी मेरी यह धारणा है कि अच्छा

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

यह होगा कि हम इस आधारभूत सिद्धान्त का अनुसरण करें, जिसे हम मूलाधिकारों के संबंध में अपना चुके हैं। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है कि प्रान्तीय सरकारों की वित्तीय स्थिति कैसी हो जायेगी। चाहे कोई संविधान हो या न हो, भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह इस देश में शांति, समुन्नति तथा समृद्धि को बनाये रखे। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं कहना है।

*__श्री बी.पी. झुनझुनवाला:__ श्रीमान्, मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन के संबंध में एक संशोधन की सूचना दे चुका हूं। मेरे संशोधन पुराने अनुच्छेद 243, 244 आदि के सम्बन्ध में हैं। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 287 में प्रस्तावित अनुच्छेद 244 के खण्ड (ख) में (प्रस्तावित) शब्द और अंक 'Article 13' (अनुच्छेद 13) के पश्चात् 'and with the general economic improvement of India as a whole' (और सारे भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार होने पर) शब्द जोड़ दिये जायें।"

एक अन्य संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 293 भी है, जो इस प्रकार है:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 292 ने प्रस्तावित अनुच्छेद 244 के प्रस्तावित खंड (ग) में 'Constitution' (संविधान) शब्द के पश्चात् 'and with the general economic improvement of India as a whole' (और सारे भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार होने पर) शब्द जोड़ दिये जायें।"

अब ये सभी अनुच्छेद बदल दिये गये हैं। किन्तु मैं बदले हुए अनुच्छेदों के संबंध में अपने संशोधन उपस्थित नहीं कर सका। पंडित भार्गव ने इन सभी अनुच्छेदों के संबंध में एक संशोधन उपस्थित किया है और इन्हें 274-क, 274-ख, 274-ग, 274-घ तथा 274-ङ की संख्यायें दी हैं।

मेरे संशोधन का मुख्य उद्देश्य यह है कि किसी राज्य का विधान-मण्डल अथवा संसद चाहे जो कुछ भी पारित करे, किन्तु राज्यों के बीच व्यापार और वाणिज्य के संबंध में निर्बन्धन आरोपित करने वाली कोई विधि अथवा आदेश संविधान के अनुच्छेद 13 और 16 से असंगत नहीं होना चाहिये और उससे भारत की आर्थिक स्थिति के सुधार के मार्ग में कोई बाधा भी नहीं पड़नी चाहिये। पंडित भार्गव अनुच्छेद 18 की चर्चा कर चुके हैं और यह बता चुके हैं कि प्रत्येक नागरिक का यह मूलाधिकार है कि वह व्यापार और वाणिज्य अबाध रूप से करे। उन्होंने विस्तृत रूप से "लोक-हित" शब्दों की भी चर्चा की और बताया कि राज्य ने उनका किस प्राकर दुरुपयोग किया है। उन्होंने पूर्वी पंजाब में चने के व्यापार का उदाहरण दिया और बताया कि पंजाब की सरकार ने इस पर अजीब निर्बन्धन लागू कर किस प्रकार इसे हानि पहुंचाई है। इसी प्रकार कई अन्य मामलों में भी राज्यों ने विधि बनाते समय अथवा आदेश देते समय भारत के हितों को भुला दिया और राज्य-विशेष अथवा हित-विशेष का ही ध्यान रखा। यदि इस प्रकार की विधियों और आदेशों पर निर्बन्धन लगाने की किसी समय आवश्यकता हो सकती है, तो

वह वर्तमान समय ही है क्योंकि इस समय आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन गिरती जा रही है। बिना प्रान्तीय विधान-मंडलों तथा संसद का निराहर किये हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि उन पर किसी न किसी प्रकार का अंकुश रखने की आवश्यकता है। इसी दृष्टि से पंडित भार्गव ने एक संशोधन की सूचना दी है। वह अनुच्छेद 274-ङ के संबंध में है और इस प्रकार है:

"इस संविधान की किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक नागरिक अथवा राज्य को संविधान के अनुच्छेद 13 अथवा भाग 10-क द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये समुचित कार्यवाही से उच्चतम न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार होगा।"

इसके साथ मैं यह भी जोड़ना चाहता हूं कि जब किसी राज्य के विधान मंडल अथवा संसद द्वारा पारित किया हुआ आदेश अथवा विधि भारत की सामान्य आर्थिक नीति से असंगत हो, तो कोई भी राज्य अथवा नागरिक उच्चतम न्यायालय को परिचालित कर सकेगा।

मुझे बताया गया है कि संविधान का अनुच्छेद 16, जिसके द्वारा अबाध रूप से व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया गया है, निकाला जा रहा है और डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, उससे उच्चतम न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार भी समाप्त किया जा रहा है। यदि इस अधिकार को समाप्त किया जा रहा है तो इसकी बहुत आवश्यकता है कि पंडित भार्गव के अनुच्छेद 274-ङ संबंधी अनुच्छेद को मेरे संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया जाये। मैं कुछ उदाहरण दूंगा जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार संसद तथा राज्यों की कई विधियों से भारत की आर्थिक स्थिति के सुधार में बाधा पड़ी है।

सम्भव है, माननीय सदस्यों ने भारत के निर्यात व्यापार के संबंध में जो विज्ञप्ति निकाली थी, उसे तथा उस पर एक संवाददाता की आलोचनाओं को देखा होगा। उसने अवनति का एक कारण यह भी बताया है कि हमने तिलहन का उतना निर्यात नहीं किया, जितना हम कर सकते थे और वह इस कारण की प्रांतीय सरकारों ने उसके इधर-उधर ले जाने पर कुछ निर्बन्धन लगा दिये जिसके कारण उसका मूल्य बढ़ गया। इसके कारण सारे भारत की आर्थिक स्थिति बहुत गिर गई। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सरसों के इधर-उधर ले जाने पर निर्बन्धन लगा दिये और उसे बाहर नहीं जाने दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सारा सरसों संयुक्त प्रान्त के व्यापारियों को ही पेरना पड़ा। उन्होंने सरसों के तेल को संयुक्त प्रान्त में तथा अन्य स्थानों में बहुत दामों में बेचा। तेल को संयुक्त प्रान्त से बाहर जाने दिया गया। इस प्रकार अन्य जगहों के कारखानों को तिलहन पेरने तथा सस्ते भाव पर लोगों के हाथ तेल बेचने से रोका गया। इस वर्ष कई प्रान्तों में सरसों अप्राप्त है और उन लोगों को भी, जो देहाती ढंग से अर्थात् घानियों से तेल पेरते हैं, तिलहन प्राप्त नहीं है। मेरे पास पटना के सदाकत आश्रम से, जिसने कई ग्राम्य उद्योग चलाये हैं, यह शिकायत आई है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार के सरसों

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

के निर्यात को निषिद्ध करने से उन्हें सरसों नहीं मिल रहा है और कुछ लोग उसे अन्य प्रकार मंगा रहे हैं, इत्यादि, और उसने मुझसे पूछा है कि क्या मैं उन्हें सरसों उन लोगों से नहीं दिला सकता, जिन्हें वह मिल रहा है। मैंने उसका प्रबन्ध कर दिया है। किन्तु मेरा यह निवेदन है कि इस संबंध में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सारे भारत तथा विशेषतः जनसाधारण के हितों अथवा आर्थिक स्थिति का ध्यान नहीं रखा।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मैं एक उदाहरण और दूंगा और वह आलू के बीजों के संबंध में है। हाल में ही यह आदेश निकाला गया कि आलू का बीज एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त के निर्यात नहीं किया जाये, जब तक कि निर्यात करने वाला व्यक्ति माल पाने वाले व्यक्ति के कृषि विभाग से, अर्थात् उसके प्रान्त के कृषि विभाग से, एक प्रमाण-पत्र न प्राप्त कर ले। यह पूछा गया कि इसका अर्थ क्या है। जब माल पाने वाले व्यक्ति के प्रान्त के कृषि विभाग से पूछा गया तो यह बताया गया कि प्रान्त में स्थापित किये हुए बरफ के गोदामों में जो आलू इकट्ठा है वह खर्च हो जाना चाहिये, तभी अन्य प्रान्तों से आलू का बीज मंगाया जा सकेगा। श्रीमान्, इस व्यवस्था में दो दोष हैं। पहला दोष यह है कि इस निर्बन्धन के कारण संयुक्त प्रान्त में आलू के बीज का मूल्य बढ़ जायेगा। क्योंकि जिन लोगों ने उसे इकट्ठा कर रखा है, उन्हें उस पर एकस्व प्राप्त रहेगा और वे मूल्य बढ़ाते जायेंगे। दूसरी बात यह है और वह बहुत महत्वपूर्ण है कि आदेश निकालते समय संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इस पर विचार नहीं किया, यद्यपि भारत सरकार के रेलवे विभाग ने उस आदेश का समर्थन कर दिया, कि संयुक्त प्रान्त में ही उगाये हुए आलू के बीजों से फसल अच्छी नहीं होती। उसी प्रदेश के बीज की अपेक्षा अन्य प्रदेश से मंगाये हुए बीज से फसल अच्छी होती है। बिहार में बहुत अच्छा आलू का बीज पैदा होता है और वहां से वह सारे भारत को भेजा जाता है। इस दशा में, संयुक्त प्रान्त की सरकार के इस आदेश से न केवल उस प्रान्त में मूल्य बढ़ जायेगा, बल्कि वहां तथा अन्यत्र आलू की फसल अच्छी नहीं होगी।

श्रीमान्, कृषि विभाग के पदाधिकारी ने कहा था कि प्रान्त के बरफ के गोदामों में इकट्ठा किये हुए बीज के खर्च हो जोने पर वह निर्यात की आज्ञा दे देगा। किन्तु बीज कुछ ही दिन तक बोये जा सकते हैं और सरकारी विभागों की दफ्तरी कार्यवाही के कारण निर्यात का आदेश निकलने तक इतना समय बीत जायेगा कि फिर बीज नहीं बोये जा सकेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि बिहार के काश्तकारों के आलू के बीज सड़ जायेंगे ओर अन्य प्रान्त भी समय पर बीज न प्राप्त कर सकेंगे। इससे आलू कम बोया जायेगा और कम पैदा होगा। किन्तु, श्रीमान्, बहुत कठिनाई से यह आदेश हटाया गया है।

इसके अतिरिक्त हाल में हिमाचल प्रदेश से एक आदेश निकाला गया है जिसके अधीन आलू पर निर्यात-कर लगाया गया है। हम सभी को यह विदित है कि इस समय आवश्यकता है कि खाद्यान्नों का भाव यथाशीघ्र गिराया जाये। यद्यपि आलू को तरकारी समझा जाता है, किन्तु इसका बहुत कुछ अन्न के समान ही उपयोग होता है। आलू पर निर्यात कर लगाने से उस राज्य को अधिक आय हो सकती

है। किन्तु उससे आलू का मूल्य बढ़ जायेगा। यदि उस राज्य ने आलू को स्वतंत्र रूप से निर्यात करने दिया होता तो आलू का मूल्य यहां भी गिर जाता और लोगों को वह इस समय से कहीं सस्ते भाव में प्राप्त होता।

एक अन्य उदाहरण भी है, जो यद्यपि बहुत प्रासंगिक नहीं प्रतीत होता किन्तु यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उसकी चर्चा करना चाहता हूं। 1940 में बिहार और संयुक्त प्रान्त की सरकारों ने यह आदेश निकाला कि चूंकि चीनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में मौजूद है, इसलिये अब गन्ना न पेरने देना चाहिये। इस उद्योग में लगे हुए लोगों ने तथा जनसाधारण ने, इस विचार से कि काश्तकारों को हानि न हो, गन्ना पेरने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनकी प्रार्थना की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि गन्ने को खेतों में सूखने दिया गया और काश्तकारों का करोड़ों रुपयों का नुकसान हो गया। यही नहीं बाद को संयुक्त प्रान्त और बिहार की सरकारों ने गन्ने का मूल्य गिरा दिया। 1940 अथवा 1939 में, मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है, 11 अथवा 12 आने का भाव था किन्तु दूसरे ही वर्ष 4 आने 9 पाई का भाव रखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि चीनी के उद्योग को कम गन्ना उगाये जाने के कारण धक्का लगा। कम से कम बिहार में ऐसा धक्का लगा कि अभी तक यह उद्योग वहां संभल नहीं पाया है।

मैं एक उदाहरण और दूंगा। वह चीनी का उदाहरण है। मैं यह देख रहा हूं कि इस समय भारत सरकार प्रतिदिन चीनी के नियंत्रण के संबंध में विज्ञप्ति निकाल रही है। यह ठीक है कि मूल्य को बढ़ने से रोका जाये, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उसे सफलता प्राप्त होगी या नहीं। सिंडीकेट ने कारखानों को चीनी अधिक दाम पर बेचने की आज्ञा देकर तथा चुपचाप या खुली तौर पर ऊपर की रकम लेकर अच्छा काम नहीं किया। यदि बाजार में चीनी अधिक दाम पर भी बिक रही थी तो कारखानेदारों तथा सिंडीकेट को ऊपर की रकम नहीं लेनी चाहिये थी, क्योंकि किसी को तो आखिर उचित कदम उठाना चाहिये ही। यह कहकर हमेशा गलत कदम उठाते न रहना चाहिये कि अन्यथा अन्य लोग लाभ उठायेंगे। इस प्रकार तो एक दूषित चक्र स्थापित हो जायेगा। भारत सरकार को नवम्बर 1948 में ही बता दिया गया था कि चीनी की कमी हो जायेगी और उसके सामने उस समय की गन्ने की फसल से अधिक चीनी तैयार करने के कुछ उपाय रखे गये थे। एक सुझाव यह था कि जो गन्ना दूर से लाया जाता है, उसके लिये अधिक मूल्य देना चाहिये और एक सुझाव यह था कि यदि गन्ना बाद को उस समय पेरा जाता है, जब उसमें सक्रोज कम मात्रा में रह जाता है, तो चीनी के मूल्य में कुछ अन्तर करना चाहिये। यदि भारत सरकार इन दो सुझावों को समझने का प्रयास करती और इन्हें स्वीकार कर लेती तो यह स्थिति उत्पन्न न होती और चीनी सस्ते भाव पर मिलती। जैसाकि मैं आरम्भ में कह चुका हूं, बिना राज्य के विधान-मंडलों अथवा संसद का अथवा किसी प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय मंत्री का निरादर किये हुए मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे संशोधन के साथ पंडित ठाकुरदासभार्गव के संशोधन को स्वीकार करना बहुत आवश्यक है। यह विषय न्याय्य होना चाहिये और केवल अस्थायी आपात की स्थितियों के लिये अपवाद होना चाहिये। इससे रोकथाम हो सकेगी।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, मैं समझ नहीं पाया कि श्री झनझुनवाला ने अपना संशोधन क्यों उपस्थित किया है। जो आपत्तिजनक

[श्री कुलाधर चालिहा]

अंश था, उसे डॉ. अम्बेडकर निकाल चुके हैं और उन्होंने एक नवीन अनुच्छेद उपस्थित किया है, जो पहले के अनुच्छेद से कहीं अच्छा है। यद्यपि मसौदा समिति से हमारा प्राय: मतभेद रहा है किन्तु यह कहा जा सकता है कि इस संबंध में वह इससे अच्छा मसौदा नहीं तैयार कर सकती थी। मैं यह देखता हूं कि बंबई में जब सूती कपड़ा खरीदा जाता है तो उस पर कर लगाया जाता है और उस पर फिर आसाम में कर लगाया जाता है। इस विभेद को समाप्त कर दिया गया है। अब अन्तर्राज्यिक व्यापार में एकरूपता आ जायेगी। अब यदि आलू के बीजों को शिलांग से कलकत्ता अथवा बिहार भेजा जायेगा तो उन पर पहले के समान कर नहीं लगेगा। मेरी समझ में नहीं आया कि श्री झुनझुनवाला ने अपने संशोधन पर इतना लम्बा भाषण क्यों दिया। मैं देखता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से वर्तमान विधि में बहुत सुधार हो जायेगा और मैं हृदय से उसका समर्थन करता हूं तथा श्री झुनझुनवाला के संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, माननीय सदस्य महोदय पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये हैं, उनका मैं समर्थन करना चाहता हूं। जहां तक इन अनुच्छेदों का संबंध है इनमें जितने कम निर्बन्धन हो सकें उतने रखने चाहियें और व्यापार और वाणिज्य को अबाध रूप से चलने देना चाहिये। जनसाधारण के हित में अथवा आपात के समय जब बहुत ही आवश्यकता हो तभी निर्बन्धन लगाने चाहिये। पंडित भार्गव के संशोधनों का उद्देश्य यह है कि सरकार को केवल जनसाधारण के हित में युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाने की ही शक्ति प्रदान की जाये। उन्होंने अनुच्छेद 274-ग के संबंध में भी कुछ संशोधन उपस्थित किये हैं और संशोधन संख्या 353 द्वारा यह प्रस्ताव रखा है कि "दुर्लभता" शब्द के पूर्व "अस्थायी" शब्द रखा जाये तथा संशोधन संख्या 354 द्वारा यह प्रस्ताव रखा है कि "आपात काल तक" शब्द जोड़ दिये जायें। मैं मसौदा समिति से प्रार्थना करता हूं कि वह इस पर विचार करे कि उनके संशोधन संख्या 343 को स्वीकार किया जा सकता है या नहीं, जिसमें यह सुझाव रखा गया है कि अनुच्छेद 274-ख में "निर्बन्धन" शब्द के पूर्व "युक्तियुक्त" शब्द रखा जाये। वह इस पर भी विचार करे कि उनके संशोधन संख्या 345 को भी स्वीकार किया जा सकता है या नहीं, जिसमें यह सुझाव रखा गया है कि "लोक-हित में" शब्दों के स्थान पर "जन साधारण के हित में" शब्द रखे जायें। मैं उससे यह प्रार्थना भी करता हूं कि वह इस पर भी विचार करें कि संशोधन संख्या 353 और 354 को स्वीकार किया जा सकता है या नहीं।

चूंकि इरादा यह है कि मूलाधिकारों के अध्याय में से अनुच्छेद 16 को निकाल दिया जाये और उसकी एवज में अनुच्छेद 274-क को रखा जाये इसलिये, मेरे विचार से, एक अतिरिक्त खण्ड, अर्थात् अनुच्छेद 274 का खण्ड (च), जोड़ने के संबंध में पंडित भार्गव का जो संशोधन है, उसे स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। अन्यथा यह जानने पर भी कि कुछ निर्बन्धन तथा कार्यवाहियां अवैध हैं, इस संबंध में संदेह रहेगा कि कोई व्यक्ति न्यायालय के सामने अपने मामले

को रख सकता है या नहीं। इसलिये मैं पंडित भार्गव के विभिन्न संशोधनों का समर्थन करता हूं और मसौदा समिति से प्रार्थना करता हूं कि वह विशेषत: संशोधन संख्या 343, 345, 353, 354 तथा 366 पर विचार करे। इन शब्दों के साथ मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधनों का समर्थन करता हूं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, यह नवीन अध्याय, अर्थात् भाग 10-क, एक बहुत महत्वपूर्ण अध्याय है। इस अनुच्छेद 274-क का आशय वही है जो अनुच्छेद 16 का आशय था, जो पहले संविधान के मूलाधिकारों के अध्याय में था। अब वह संविधान का एक साधारण अनुच्छेद रह जायेगा। इस दृष्टि से हमने कुछ खोया है। अन्य प्रस्तावित अनुच्छेदों को भी सावधानी से संशोधित करने की आवश्यकता है और मुझे इसकी प्रसन्नता है कि पंडित ठाकुरदास भार्गव ने इनके संबंध में संशोधन उपस्थित किये हैं। पहले के अनुच्छेद 244 के संबंध में मैंने भी एक संशोधन उपस्थित किया था जिसका आशय यह था कि उस अनुच्छेद का खण्ड (ख) निकाल दिया जाये। निस्सन्देह वह संशोधन अब अनियमित हो गया है क्योंकि सब कुछ बदल दिया गया है और एक दूसरे रूप में रख दिया गया है। इसलिये पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उन्हीं का मैं समर्थन करना चाहता हूं। मैं देखता हूं कि विशेषत: अनुच्छेद 274-ख विषयक उनके संशोधन संख्या 343 के विरुद्ध कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। वास्तव में मूलाधिकार संबंधी अनुच्छेद 13 में भी वे उन सभी मूलाधिकारों पर लगाये निर्बन्धनों के आगे "युक्तियुक्त" शब्द रखवा चुके हैं। मेरा विचार है कि अबाध रूप से व्यापार करने का अधिकार एक बहुत आवश्यक अधिकार है और यदि उस पर कोई निर्बन्धन लगाये जायें तो वे "युक्तियुक्त" हों, ताकि यह अधिकार न्याय्य हो सके और संसद् अथवा राज्यों के विधान-मंडलों के ऐसे निर्बन्धन लगाने पर; जो युक्तियुक्त न हों, लोग न्यायालय के सामने जा सकें।

श्री झुनझुनवाला ने विस्तारपूर्वक बताया कि व्यापार करने की स्वतन्त्रता में किस प्रकार हस्तक्षेप किया जा सकता है। मैं भी उसी प्रकार का ब्यौरा दे सकता था किन्तु, श्रीमान्, मैं देखता हूं कि आप इस अनुच्छेद को शीघ्र समाप्त करना चाहते हैं इसलिये मैं ब्यौरा नहीं दूंगा। किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि हाल में मुझे यह जानकर दु:ख हुआ कि पूर्वी पंजाब की सरकार के निर्बन्धन लगाने के कारण वहां से करोड़ों मन चना बाहर नहीं जा सका। जब भारत बाहर से अन्न मंगा रहा है और उस पर करोड़ों रुपया खर्च कर रहा है, इस क्षेत्र में से करोड़ों मन चने को बाहर न जाने देना तथा उसे वहीं खराब होने देना अन्तर्प्रान्तीय व्यापार की सुविधा न देना एक अपराध है।

मेरे विचार से मेरे संशोधन को भी, जिसका उद्देश्य अनुच्छेद 274-ग के भाग (2) को निकालना है, और जिसके समान ही एक संशोधन पंडित ठाकुरदास भार्गव ने भी उपस्थित किया है, स्वीकार कर लिया जाना चाहिये ताकि किसी प्रकार का विभेद न हो सके और जब प्रान्त अपने ही लिये अन्न रखना चाहें तो कम से कम केन्द्र उन्हें रोक सके। मेरे विचार से यह संशोधन एक बहुत ही महत्वपूर्ण संशोधन है और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर का भी यही विचार होगा कि इसे स्वीकार करने में समझदारी ही है।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ अध्यक्ष महोदय, मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं मसौदा समिति को खुश करूं, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि भारत राज्य-क्षेत्र

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

में व्यापार, वाणिज्य तथा समागम के संबंध में सभा के समक्ष जो संशोधन रखे गये हैं वे इतने उत्कृष्ट हैं कि मनुष्य उनसे उत्कृष्ट अनुच्छेद नहीं रच सकता है।

सभा को इन अनुच्छेदों के विरुद्ध उपस्थित किये गये दो प्रकार के तर्कों पर विचार करना है। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने जो संशोधन शृंखला उपस्थित की है, उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि इन अनुच्छेदों के संबंध में यथास्थिति संसद को अथवा राज्यों के विधानमंडलों को जो सीमित स्वविवेक का अधिकार दिया गया है उसे और भी अधिक सीमित कर दिया जाये। मेरे माननीय मित्र चाहते हैं कि अनुच्छेद 274-ख में "युक्तियुक्त" शब्द रखा जाये ताकि जो भी निर्बन्धन लगाये जायें वे युक्तियुक्त हों। मैं यह जानता हूं कि अन्य प्रसंग में विशेषतः अनुच्छेद 13 के संबंध में, हम उनके संशोधनों को स्वीकार कर चुके हैं और मैं यह भी जानता हूं कि इससे कितनी अधिक मुकदमेबाजी होने लगेगी। मेरे माननीय मित्र को राज्यों को इस संबंध में शक्ति दिये जाने पर भी आपत्ति है, ताकि व्यापार और वाणिज्य पर बहुत ही कम निर्बन्धन लगे। उनके अन्य संशोधन आनुषंगिक ही हैं। निस्सन्देह इस संबंध में लोगों का अपना मत हो सकता है कि "लोक-हित में" शब्द रखे जायें अथवा "जनसाधारण के हित में"। वास्तव में उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि उसे जितना अधिक अस्पष्ट हो सके, उतना अधिक अस्पष्ट बना दिया जाये।

मैं सभा को यह बताना चाहता हूं कि मेरे विचार से, देश की भावी आर्थिक उन्नति को ध्यान में रखते हुए हम व्यापार और वाणिज्य के संबंध में इससे अधिक न तो स्वातंत्र्य दे सकते हैं और न रियायत ही कर सकते हैं। यदि हम इस अनुच्छेद को मूलाधिकार के रूप में रहने दें और अनुच्छेद 16 में हमने जो निर्बन्धन रखा है उसे न रखें तो, मेरे विचार से, इस देश की अधिक उन्नति कदापि नहीं हो सकेगी। यदि माननीय सदस्य महोदय नागरिक स्वातंत्र्य के अधिकार को व्यापार और वाणिज्य संबंधी अधिकारों के साथ मिला देते हैं तो इससे अर्थ-भ्रम ही होगा और लाभ कुछ नहीं होगा। अब संसार इस स्थिति को प्राप्त है कि व्यापार और वाणिज्य बिना नियंत्रण के अथवा बिना सरकार के निर्देशन के नहीं चल सकता। यदि मेरे माननीय मित्रों का यह विचार है कि अभी उन्नीसवीं शताब्दी का ही युग है, जब व्यापार-स्वातंत्र्य के समर्थक संसार भर से जो कुछ चाहते थे, मंगा लेते थे, तो वे भ्रम में हैं।

मैं अपने माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के एक संशोधन को उठाता हूं। उन्हें अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) की शब्दावली पर आपत्ति है। वे यह चाहते हैं कि वस्तुओं की दुर्लभता से उत्पन्न होने वाली स्थिति के पहले "अस्थायी" शब्द रख दिया जाये। मैं अपने माननीय मित्र से पूछता हूं कि इस समय देश के विभिन्न भागों में जो वस्तुओं को दुर्लभता व्याप्त है, वह क्या अस्थायी है? क्या यह स्थिति बहुत कुछ स्थायी नहीं है, अथवा क्या यह वर्षों तक अथवा दशाब्दियों तक नहीं रहने वाली है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** बिल्कुल नहीं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** यदि मेरे माननीय मित्र का यह मत है तो मैं केवल यह कह सकता हूं कि मेरा उनसे मतभेद है। मेरा अपना यह मत है कि अन्न

की तथा कई अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की वर्तमान दुर्लभता एक दशाब्दि में भी समाप्त होने वाली नहीं है। यदि मेरे माननीय मित्र आशावादी हैं तो मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है। मैं उन्हें केवल यह बताना चाहता हूं कि मैं उस श्रेणी के लोगों में से नहीं हूं जिनका यह मत है। मुझे यह कहने का अधिकार है कि इस संविधान का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि यह इस देश के नागरिकों को जीवित रहने के लिये समर्थ बनाये। इस आधारभूत सिद्धान्त के संबंध में कोई मतभेद नहीं हो सकता। मेरा यह विश्वास है कि हम राज्य को ऐसी सुव्यवस्था स्थापन से नहीं रोक सकते जिससे अधिक से अधिक लोगों का लाभ हो।

इस अध्याय के उपबन्धों के संबंध में मैं यह कहना चाहता हूं। एक सीमा तक व्यापार और वाणिज्य की स्वतन्त्रता देना आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस सीमा तक राज्य को निर्बन्धन लगाने से रोकना होगा, ताकि कुछ पदारूढ़ व्यक्तियों की सनक से अथवा कुछ राज्यों की संकुचित प्रान्तीय नीतियों के आधार पर काम न होने लगे और उसका कुप्रभाव देश की सुव्यवस्था पर न पड़ने लगे। मेरे विचार से इस संबंध में अनुच्छेद 274-क में एक सामान्य उपबन्ध रख दिया गया है और संसद को भी इस संबंध में शक्ति प्रदान की गई है जो, मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, परिसीमन की शक्ति पर तथा व्यापार और वाणिज्य पर नियंत्रण रखने में प्रान्तीय द्वेष से प्रेरित नहीं होगी ओर साधारणतया किसी प्रान्त के साथ पक्षपात नहीं करेगी। व्यापार पर निर्बन्धन लगाने के लिए कुछ शक्तियों की आवश्यकता है और उनके संबंध में ये उपबन्ध रखे गये हैं।

इसके अतिरिक्त यह प्रश्न भी उठता है कि संसद को राज्यों के बीच विभेद करने की शक्ति प्रदान करना उचित है या नहीं। यह हो सकता है कि पदारूढ़ लोगों के, कम से कम उनमें से अधिकांश के, कुछ विशेष प्रकार के विचार हों। हमें राज्यों के बीच विभेद न बरते जाने के लिये रोकथाम संबंधी कुछ उपबन्ध रखने चाहियें। ये अनुच्छेद 274-ग में रखे गये हैं। साथ ही किसी समय कुछ विभेद की आवश्यकता भी होगी। मैं एक बहुत ही विषम स्थिति का उदाहरण देता हूं, यद्यपि यह स्थिति उन आकस्मिक स्थितियों के समान नहीं है जिनकी मेरे मित्रों ने चर्चा की है। यदि कपड़े के वितरण के संबंध में, जो अधिकतर बंबई के कारखानों में उत्पादित होता है, भारत सरकार यह कहे कि मद्रास को केवल दस गज प्रति व्यक्ति के हिसाब से दिया जाये और पंजाब तथा दिल्ली को बीस गज प्रति व्यक्ति के हिसाब से दिया जाये, क्योंकि मद्रास में थोड़ा बहुत करघे से बना हुआ कपड़ा भी मिलता है और वहां के लोगों को उसे काम मे लाना चाहिये, तो किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिसे मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव, उच्चतम न्यायालय के सामने जाने का अधिकार देना चाहते है; इस कारण शिकायत होगी कि उसे करघे से बने हुए कपड़े के लिये बहुत अधिक मूल्य देना पड़ रहा हैं मिल के बने हुए कपड़े के आयात पर निर्बन्धन लगने से उसे करघे से बना हुआ कपड़ा अधिक खरीदना पड़ेगा और उसके लिये अधिक मूल्य भी देना पड़ेगा, जिस पर वह आपत्ति करेगा और मामले को उच्चतम न्यायालय में ले जाना चाहेगा। क्या यह होने देना चाहिये? साधारण प्रकार का कपड़ा बहुत मात्रा में उपलब्ध रहेगा। केवल देश के हित का ध्यान रखकर इसकी आवश्यकता पड़ सकती है कि मद्रास का ग्राहक जो कपड़ा खरीदता है, उसके लिये वह थोड़ा

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

सा अधिक मूल्य चुकाये। यह बहुत ही युक्तियुक्त निर्बन्धन है। किन्तु यदि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव की बात मान ली गई, तो जिस किसी व्यक्ति को भारत सरकार के इस प्रकार के निर्णय से असंतोष होगा, वह मामले को उच्चतम न्यायालय में ले जा सकेगा। श्रीमान्, अनुच्छेद 274-ग (2) का उद्देश्य केवल यह है कि भारत सरकार को चीजों के इधर उधर ले जाने पर निर्बन्धन लगाने की शक्ति प्राप्त हो जाये ताकि देश में सुव्यवस्था रहे और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिये चीजें मिलती रहें। जैसाकि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना हाल में कह चुके हैं। मनुष्य की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये सबसे पहले उसके जीवन को धारण करने के लिये उसकी जो आवश्यकताएं हैं, वे पूरी होनी चाहियें। मेरी यह धारणा है कि यदि इस संविधान के फलस्वरूप आने वाली सरकार को अधिक काल तक पदारूढ़ रहना है, तो उसे देश की व्यवस्था पर नियंत्रण रखने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त होनी चाहिये ताकि जनसाधारण, को न कि इने गिने व्यापारियों को, लाभ हो सके।

अनुच्छेद 274-घ के संबंध में मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव चाहते हैं कि या तो वह पूर्ण रूप से संशोधित कर दिया जाये ताकि उसका स्वरूप ही बदल जाये अथवा उसे निकाल ही दिया जाये। मेरी यह धारणा है कि एक प्रान्तीय सरकार के लोगों के प्रति अपना कर्तव्य यथोचित रूप से पालन न करने के कारण उन्हें जो कटु अनुभव हुआ, उसी के फलस्वरूप उन्होंने यह प्रस्ताव रखा है। किन्तु कुछ मामलों में कठोरता हो जाने का अर्थ यह नहीं है कि विधि में दोष है। हम किसी भी कारण से राज्यों को स्वविवेक से निर्णय करने के अधिकार से पूर्णतया वंचित नहीं कर सकते, विशेषतया जबकि केन्द्रीय सरकार को समान राजस्व-नीति तथा समान आर्थिक नीति को प्रयोग में लाने के लिये पर्याप्त शक्ति प्राप्त है। इस उद्देश्य की पूर्ति इससे हो जाती है कि अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) के अधीन राज्य जो भी विधि बनायेंगे, उनके लिये उन्हें पहले राष्ट्रपति की मंजूरी लेनी होगी।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ क्या प्रान्तों को तथा राज्यों के विधान-मण्डलों को यह शक्ति नहीं देने के लिये यह पर्याप्त कारण नहीं है?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ इसी कारण के आधार पर उन्हें यह शक्ति दी जानी चाहिये। इस संबंध में राज्यों को कुछ अधिकार होना चाहिये और केन्द्र को केवल यह देखने के लिये हस्तक्षेप करना चाहिये कि कहीं केन्द्र की आर्थिक नीति अथवा राजस्व नीति में तो अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं हो रहा है। जहां तक उनमें हस्तक्षेप न होता हो, वहां तक राज्यों को अपने मामले स्वयं निबटाने के लिये थोड़ी बहुत शक्ति प्रदान होनी चाहिये।

इस अध्याय के ब्यौरे को समाप्त करने के पूर्व मैं कुछ शब्द और कहना चाहता हूं। डॉ. अम्बेडकर ने अथवा मसौदा-समिति के अन्य सदस्यों ने अपनी सनक के कारण प्रान्तों तथा केन्द्र के हितों को संतुलित करने के संबंध में उपबन्ध नहीं रखे हैं। ये उपबन्ध उन देशों के अनुभव के आधार पर रखे गये हैं, जिन्होंने अपने संविधानों में केन्द्रीय विधान-मंडलों की शक्ति पर निर्बन्धन रखे हैं, अथवा

केन्द्रीय विधान मण्डलों को विशेष शक्तियां प्रदान की हैं। मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव जानते हैं कि अमरीका के संविधान के वाणिज्य संबंधी खण्ड के अधीन न्यायालयों के कितने अधिक निर्णय विधि-स्वरूप माने जाने लगे हैं। इसके अतिरिक्त मैं कह नहीं सकता कि वे यह समझते हैं या नहीं कि इधर उधर चीजों को ले जाने के जिस अधिकार को हमने स्वीकार किया है, उसे व्यापार और वाणिज्य के संबंध में नहीं देना चाहिये। बहुत कुछ इसी अधिकार के समान एक अधिकार आस्ट्रेलिया के संविधान के अनुच्छेद 92 में भी सन्निहित है जिसके कारण आस्ट्रेलिया की आर्थिक स्थिति आज भी डावांडोल है। आस्ट्रेलिया में लोग यह अनुभव करते हैं कि उनके संविधान में संशोधन संबंधी उपबन्ध इतने जटिल हैं कि वे आसानी से संविधान का संशोधन नहीं कर सकते। इस कारण अनुच्छेद 92 बना हुआ है और किसी भी प्रगतिशील विधि के लिये बाधक है। यह उचित हो या अनुचित, किन्तु आस्ट्रेलिया के लोग अपनी सरकार का समर्थन करते हैं। वे बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना चाहते थे किन्तु अनुच्छेद 92 बाधक सिद्ध हुआ और सरकार इस संबंध में कार्यवाही नहीं कर सकी। इस संविधान को प्रयोग में लाने के संबंध में भावी सरकारों को पंगु बनाने का कोई अर्थ नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ इस स्थिति का अनुभव प्रथम बार कब किया गया?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ यदि मेरे माननीय मित्र मुझसे यह कहलाना चाहते हैं कि मैंने इस स्थिति का अनुभव अपने माननीय मित्र डॉ. देशमुख के बताने पर किया, तो यह बात नहीं है। इसका अनुभव बहुत पहले किया जा चुका है। संविधानों का प्रत्येक विद्यार्थी यह जानता है कि विभिन्न संविधानों में इस प्रकार के अनुच्छेद हैं। चूंकि इन संविधानों को प्रयोग में लाने में लोगों ने कठिनाई का अनुभव किया है, इसलिये सभा के सामने हमने व्यापार और वाणिज्य पर नियंत्रण रखने के संबंध में यह अध्याय रखा है, जिसमें विस्तृत तथा संतुलित उपबन्ध हैं। श्रीमान्, मेरा यह सुझाव है कि अच्छा यही होगा कि सभा इस योजना को अस्वीकार न करे, क्योंकि इस समय यही सबसे उपयुक्त योजना तैयार हो सकती है, क्योंकि हमें भविष्य का ध्यान रखना है और देश के कल्याण का भी ध्यान रखना है, जो इस पर ही निर्भर है कि संविधान किस प्रकार प्रवर्त्तन में आये।

श्रीमान्, मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

*__श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यरः__ अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य के संबंध में इन अनुच्छेदों के रूप में जो योजना निश्चित की गई है, वह बहुत विचार-विमर्श के पश्चात् निश्चित की गई है। अन्तर्राज्यिक व्यापार और वाणिज्य के कारण आस्ट्रेलिया तथा अमरीका के समान कई संघीय संविधान वाले देशों के संविधान के विशेषज्ञों को सरदर्द रहा है। मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस योजना में भारत के बड़े हितों तथा राज्यों के भी हितों का ध्यान रखा है तथा इस देश के भूगोल को भी दृष्टि में रखा है क्योंकि यहां किसी एक प्रदेश के हित अन्य प्रदेशों के हितों से भिन्न हैं। इसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं कि देश के एक भाग में कभी लोग अकाल से पीड़ित रहते हैं, तो दूसरे भाग में सम्पन्नता छाई रहती है। हो सकता है कि देश के किसी भाग में खाद तथा अन्य वस्तुओं की आवश्यकता हो और उसी भाग से मुनाफाखोर वस्तुओं को बाहर भेजना चाहे। साथ ही देश की सुव्यवस्था

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

तथा भावी सम्पन्नता के हित में एक सीमा तक व्यापार स्वातंत्र्य की भी प्रत्याभूति होना आवश्यक है।

मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी बता चुके हैं कि आस्ट्रेलिया के संविधान में व्यापार-स्वातंत्र्य संबंधी इस खण्ड के कारण बहुत कठिनाई उत्पन्न हुई है और उच्च से उच्च न्यायालयों ने परस्पर विरोधी निर्णय किये हैं। आस्ट्रेलिया के कृषि प्रधान प्रदेशों के लोगों की यह भावना रही है कि उद्योग-प्रधान प्रदेशों के लोगों के हित साधन के लिये उनके हितों का बलिदान किया जा रहा है और कृषि प्रधान तथा उद्योग-प्रधान प्रदेशों के लोगों के बीच प्रतिस्पर्धा रही है। इसलिये संघीय संविधान में पहले आप को भारत के बड़े हितों को ध्यान में रखकर और यथासम्भव व्यापार और समागम का स्वातंत्र्य प्रदान करने का प्रयास करना होगा। किन्तु आप प्रदेशों के हितों को भी बिल्कुल ही नहीं भुला सकते। साथ ही संकट काल में भारत के किसी भाग में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों को हल करने के लिये केन्द्र को हस्तक्षेप करने की शक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये। आप के समक्ष जो योजना रखी गई है, उसमें इन तीनों बातों को ध्यान में रखा गया है।

अब मैं उन आलोचनाओं को उठाता हूं, जो इस सभा में की गई हैं। योजना इस प्रकार है। अनुच्छेद 274-क में व्यापार और वाणिज्य-विषयक समान्य सिद्धान्तों को निर्देशक सिद्धान्तों के रूप में रखा गया है। अनुच्छेद 274-ख में कुछ निर्बन्धन रखे गये हैं "जैसेकि लोक-हित में अपेक्षित हो"। मैं इस दार्शनिक विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि "जनसाधारण के हित" और "लोक-हित" में क्या अन्तर है। मेरे विचार से उसमें कुछ भी सार नहीं है। मेरे विचार से "लोक-हित" और जनसाधारण के हित में कोई अन्तर नहीं है। इसलिये अनुच्छेद 274 में व्यापार-स्वातंत्र्य की जो प्रत्याभूति दी गई है, उसे अबाध रखने के स्थान पर संसद को कुछ मामलों में इस स्वातंत्र्य में हस्तक्षेप करने की शक्ति प्रदान की गई है और इस संबंध में अनुच्छेद 274-ख में उपबन्ध रखे गये हैं। अर्थात् भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग के कल्याण के हेतु ऐसे निर्बन्धन आरोपित किये जा सकते हैं, जैसेकि लोक-हित में अपेक्षित हों। अनुच्छेद 274-ख में यही सिद्धान्त सन्निहित है।

अनुच्छेद 274-ग के संबंध में मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिन लोगों ने उस पर आपत्ति की है, वे मूल अनुच्छेद 16 से सहमत हैं। वास्तव में अनुच्छेद 16 के अधीन जिस व्यापार-स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी गई है, उससे कहीं अधिक व्यापार-स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति इस अनुच्छेद में दी गई है। अनुच्छेद 16 द्वारा संसद को उस अनुच्छेद के अधीन प्रदान किये हुए किसी भी अनुच्छेद के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। जहां तक अनुच्छेद 274-ग का संबंध है, उसमें यह कहा गया है कि संसद अथवा राज्य के विधान-मण्डल विभेद नहीं बरतेंगे और इस प्रकार उनकी हस्तक्षेप करने की शक्ति को परिसीमित कर दिया गया है और व्यापार-स्वातंत्र्य को अधिक विस्तृत कर दिया गया है। इस कारण भारत राज्यक्षेत्र में व्यापार-स्वातंत्र्य के समर्थक एक ऐसे अनुच्छेद पर आपत्ति नहीं कर सकते, जो व्यापार-स्वातंत्र्य को सीमित बनाने के स्थान पर उसे अधिक विस्तृत बना देता है।

दूसरी आलोचना इस प्रकार है कि व्यापार और वाणिज्य के संबंध मे किसी शक्ति का उल्लेख नहीं होना चाहिये। इसका विशेष प्रकार से इसलिये उल्लेख दिया गया है कि वस्तुओं के प्रदाय तथा अन्तर्देशीय उद्योग के संबंध में, जो व्यापार और वाणिज्य पर निर्भर तो है, किन्तु जिसका उनसे प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, विभिन्न राज्यों की बहुत सी शक्तियां हैं। उद्देश्य यह नहीं है कि प्रान्तों अथवा राज्यों की इन शक्तियों में हस्तक्षेप किया जाये। इसलिये अनुच्छेद में ही इस संबंध में उपबन्ध रख दिये गये हैं कि भले ही संसद को अथवा विधान-मंडलों को व्यापार और वाणिज्य के संबंध में शक्तियां प्राप्त हों, किन्तु वे कोई ऐसी विधि नहीं बनायेंगे जिससे विभेद होता हो।

अनुच्छेद 274-ग के संबंध में मेरा यह निवेदन है कि यह सम्भव है कि भारत के महाद्वीप में सर्वत्र स्थिति एक समान न हो। सम्भव है कि किसी भाग में मुनाफाखोर हों और दूसरे भाग में वितंडावादी। यह भी सम्भव है कि कोई भाग अकाल अथवा दुर्लभता से पीड़ित हो। विशेष प्रकार की स्थितियों से निबटने के लिये विशेष प्रकार की कार्यवाही की आवश्यकता पड़ सकती है। हो सकता है कि जब किसी भाग में वस्तुओं की दुर्लभता हो, तो किसी ऐसे भाग के लोग, जहां से वस्तुएं मुनाफे के लिये निर्यात होती हों, उस भाग के लोगों के कष्ट को न समझ पाये। संसद को इस प्रकार की स्थिति पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। इस अनुच्छेद का यही उद्देश्य है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अनुच्छेद 274-घ के उपबन्धों पर आपत्ति की गई है। उसके द्वारा राज्यों को कोई अबाध शक्ति नहीं प्रदान की गई है। उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है:

> "परन्तु इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिये कोई विधेयक या संशोधन राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना राज्य के विधान-मंडल में पुर:स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जायेगा और इस प्रयोजन के लिये राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना कोई अध्यादेश भी प्रख्यापित नहीं करेगा।"

इसलिये यदि किसी प्रदेश विशेष के प्रेम के कारण अथवा पृथक् होने की भावना के कारण बिना भारत के हित को ध्यान में रखे हुए कोई विधेयक अथवा संशोधन प्रस्तावित किया जायेगा, तो राष्ट्रपति को, अर्थात् भारत के मंत्रिमंडल को, यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह मंजूरी नहीं दे। इसलिये राज्यों के विधान मंडलों को केवल सीमित शक्ति ही दी गई है। आखिर यह शक्ति है किस प्रकार की? यह शक्ति किसी राज्य से अथवा किसी राज्य के अन्दर व्यापार, वाणिज्य तथा समागम के स्वातंत्र्य के संबंध में ऐसे निर्बन्धन लगाने के संबंध में है, जैसे कि लोक-हित में अपेक्षित हों। इसलिये मंजूरी देने के पहले राष्ट्रपति को यह देखने का अवसर मिलेगा कि वह विधि लोक-हित में अपेक्षित है या नहीं और जो निर्बन्धन लगाया जा रहा है, वह युक्ति-युक्त है या नहीं। इन निर्बन्धनों को परिभाषा करने के लिए किसी एक सूत्र को निर्धारित नहीं किया जा सकता।

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि इस कथन में कुछ भी सार नहीं है कि इन अनुच्छेदों से जिन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है, उनका खण्डन होता है। यदि किसी व्यक्ति को अनुच्छेद 13 के अधीन भारत राज्य-क्षेत्र में पर्यटन करने, सम्पति धारण करने आदि का अधिकार प्राप्त है, तो इनसे वह किसी प्रकार सीमित नहीं होता। अनुच्छेद 16 में जिस व्यापार स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी गई है, उसके सार को इनमें सुरक्षित रखा गया है। हमने राज्यों तथा केन्द्र के लिये किसी प्रकार की विभेद-मूलक विधियों का बनाना निषिद्ध कर दिया है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्ताव पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो कुछ कहा है, उससे अधिक और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। पहला संशोधन शीर्षक के संबंध में है।

प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन भाग 10-क के शीर्षक में 'Trade, Commerce and Intercourse' (व्यापार, वाणिज्य और समागम) शब्दों के स्थान पर 'Trade and Commerce' (व्यापार और वाणिज्य) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-क के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:-

'Subject to other provisions made in this Constitution, trade and commerce in any State or territory of India or between any two or more States of the Union, shall be as may be determined by the Parliament from time to time.'"

(274-क. इस संविधान के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य में अथवा भारत राज्य-क्षेत्र में अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच व्यापार, वाणिज्य और समागम इस प्रकार होगा, जैसे संसद समय-समय पर निश्चित करेगी।)

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"उपरोक्त संशोधन संख्या 292 में प्रस्तावित अनुच्छेद 274-क के प्रस्तावित खण्ड (ग) में 'Part' (भाग) शब्द के स्थान पर 'Constitution' (संविधान) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 274-क संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-क संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि.......

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** आप कृपा करके सभी संशोधनों पर एक साथ ही मत लें। इससे समय की बचत हो जायेगी। वे सभी गिरने जा रहे हैं।

***अध्यक्ष:** मैंने यह विचार किया कि मेरे लिये रस्म पूरी करनी आवश्यक है। आपने जो सुझाव रखा है, उसका मैं अनुसरण करूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'274 B. Parliament may by law enacted by virtue of powers conferred by this Constitution impose such restrictions on trade and Commerce in or between any parts of India as may be determined by the Parliament from time to time.'"

(274-ख. संसद ऐसी विधि द्वारा, जो इस संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति के अधीन बनाई गई हो, भारत के किन्हीं भागों में अथवा भागों के बीच व्यापार, वाणिज्य या समागम पर ऐसे निर्बन्धन आरोपित कर सकती है जो संसद समय-समय पर निश्चित करे।)

[अध्यक्ष]

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'restrictions' (निर्बन्धन) शब्द के पूर्व 'reasonable' (युक्तियुक्त) शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'Trade Commerce or Intercourse' (व्यापार, वाणिज्य या समागम) शब्दों के स्थान पर 'Trade or Commerce' (व्यापार या वाणिज्य) शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ख में 'Public interest' (लोक-हित) शब्दों के स्थान पर 'Interests of the general public' (जनसाधारण के हित) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 274-ख संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-ख संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 284-ग निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'274 C. (1) Legislature of a State shall not make any law giving or authorizing the giving of preference to one State over another or making any discrimination or authorizing the making of any discrimination between one State and another except with the consent of the Parliament.

(2) Legislature of a State may, however, by law—

(a) impose on goods imported from other States any tax to which similar goods manufactured or produced in that State are subject so as not to discriminate between goods so imported and goods so manufacutred or produced; and

(b) impose such reasonable restrictions on trade and commerce or intercourse with or within that State as may be required in the public interest with the previous approval of the Parliament.'"

[274-ग. (1) किसी राज्य का विधान-मंडल कोई ऐसी विधि नहीं बनायेगा, जो एक राज्य को दूसरे राज्य से अधिमान देती या दिया जाना प्राधिकृत करती है अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में कोई विभेद करती या किया जाना प्राधिकृत करती है, जब तक कि इसके लिये संसद सहमत न हो।

(2) किन्तु राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा–

(क) अन्य राज्यों से आयात की गई वस्तुओं पर कोई ऐसा कर आरोपित कर सकेगा, जो उस राज्य में निर्मित अथवा उत्पादित वैसी ही वस्तुओं पर लगता हो, ताकि इस प्रकार आयात की गई तथा निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं के बीच कोई विभेद न हो;

(ख) उस राज्य के साथ या भीतर व्यापार और वाणिज्य अथवा समागम पर संसद की पूर्व मंजूरी से ऐसे युक्तियुक्त निर्बन्धन आरोपित कर सकेगा, जैसेकि लोक-हित में अपेक्षित हो।]

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में 'to one State over another' (एक राज्य को दूसरे राज्य से) शब्दों के स्थान पर 'to any State as against any other State in the Union or to any part within that State' (एक राज्य को संघ के किसी अन्य राज्य से अथवा उस राज्य के किसी भाग को) शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में 'between one State and another' (एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच) शब्दों के स्थान पर 'between any State and another State of the Union or between any parts within that State' (किसी राज्य और संघ के किसी अन्य राज्य के बीच अथवा उस राज्य के किन्हीं भागों के बीच) शब्द रखे जाये।"

[अध्यक्ष]

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (1) में से 'by virtue of any entry relating to trade or commerce in any of the lists in the Seventh Schedule' (सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में व्यापार और वाणिज्य संबंधी किसी प्रविष्टि के आधार पर) शब्दों को निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'prevent Parliament from making any law' (संसदों को ऐसी कोई विधि बनाने से न रोकेगी) शब्दों के पश्चात् (हिन्दी में पूर्व) 'with previous consultation of the Government and Legislature of a State' (किसी राज्य की सरकार तथा उसके विधान-मंडल से पहले परामर्श कर के) शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'a situation' (किसी स्थिति) शब्दों के स्थान पर 'any emergent situation' (किसी आपात की स्थिति में) शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'Scarcity' (दुर्लभता) शब्द के पूर्व 'Temporary' (अस्थायी) शब्द रखा जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'for the period of emergency' (आपात काल तक) शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ग के खण्ड (2) में 'for such period as the situation lasts' (ऐसी अवधि के लिये जब तक स्थिति बनी रहे) शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें"

संशोधन गिर गये।

*अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 274-ग संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-ग संविधान का अंग बना लिया गया।

---

*अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2821 में प्रस्तावित अनुच्छेद 244 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'244. It shall not be lawful for any State either to impose any tax on goods imported from any State or to impose any restrictions on the freedom of trade, commerce or intercourse with any State.'"

(244. किसी राज्य के लिये किसी अन्य राज्य से आयात की गई वस्तुओं पर कोई कर आरोपित करना अथवा किसी राज्य से व्यापार, वाणिज्य अथवा समागम की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन आरोपित करना वैध नहीं होगा।)

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'274 D. Parliament may, by law appoint such authority or delegate its powers to such person or persons and confer on them such powers and duties as it thinks necessary.'"

(274-घ. संसद विधि द्वारा ऐसे प्राधिकारी की नियुक्ति कर सकेगी अथवा ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को अपनी शक्तियां सौंप सकेगी और उन्हें ऐसी शक्तियां तथा ऐसे कर्त्तव्य प्रदान कर सकेगी, जैसे कि वह आवश्यक समझे।)

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ का खण्ड (ख) निकाल दिया जाये।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में से 'or intercourse' (अथवा समागम) शब्द निकाल दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में से 'with or' (अंग्रेजी के शब्द विद आर) शब्द निकाल दिये जायें।"

[अध्यक्ष]

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'in the public interest' (लोक हित में) शब्दों के स्थान पर 'in the interests of the general public and are not inconsistent with the provisions of article 13' (जनसाधारण के हित में अपेक्षित हों और अनुच्छेद 13 के उपबन्धों से असंगत न हों) शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'public interest' (लोक हित में) शब्दों के स्थान पर 'interests of the general public' (जनसाधारण के हित) शब्द रखे जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के खण्ड (ख) में 'during any period of emergency arising from scarcity of goods within the State for the period of such emergency' (किसी ऐसे आपात-काल में, जो राज्य में वस्तुओं की दुर्लभता के कारण उत्पन्न हुआ हो, ऐसे आपात-काल तक) शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें।"

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-घ के अन्त में निम्नलिखित नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'The President shall be competent to revoke such sanction when he considers it expedient to be so in the interests of the general public and on such revocation being made the law of the State imposing restrictions shall become void.'"

(राष्ट्रपति ऐसी मंजूरी का प्रतिसंहरण करने में सक्षम होगा, जब कि वह यह समझेगा कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना इष्टकर है और ऐसे प्रतिसंहरण के पश्चात् राज्य की जिस विधि के अधीन निर्बन्धन आरोपित होते हों, वह शून्य हो जायेगी।)

संशोधन गिर गये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 274-घ संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-घ संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में से प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ङ निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 274-ङ संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 274-ङ संविधान का अंग बना लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 269 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 274-ङ के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'274 F. Notwithstanding anything contained in this Constitution any citizen or State shall have the right to move the Supreme Court by appropriate proceedings for the enforcement of the rights conferred by article 13 or Part X-A of the Constitution.'"

(274-च. इस संविधान की किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक नागरिक अथवा राज्य को संविधान के अनुच्छेद 13 अथवा भाग 10-क द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये समुचित कार्यवाही से उच्चतम न्यायालय को परिचालित करने का अधिकार होगा।)

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से हमें इन्हीं संशोधनों को निबटाना था।

सभा अब कल प्रात: नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 9 सितम्बर के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.30.49
350

अंक 9
संख्या 30

शुक्रवार
9 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

[अनुच्छेद 264, 265, नवीन अनुच्छेद 265-क, 266, सप्तम अनुसूची तथा अनुच्छेद 250, अनुच्छेद 202, नवीन अनुच्छेद 234-क, अनुसूची अनुच्छेद 242-क, अनुच्छेद 248-क, 263 और नवीन अनुच्छेद 263-क पर विचार] .... 1781–1846 से 1856

भारतीय संविधान सभा

शुक्रवार, 9 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रात: नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

*श्री युधिष्ठिर मिश्र (उड़ीसा स्टेट्स): महोदय, इससे पूर्व कि हम आज की कार्यवाही प्रारम्भ करें, मैं आपका ध्यान अन्तर्राष्ट्रीय संख्यांकों के विषय में एक पुस्तिका की ओर आकर्षित करना चाहूंगा जो कल परिचालित की गई है और जिसे संविधान सभा के कार्यालय की ओर से वितरित किया गया। यह पुस्तिका हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा निकाली गई है और इसमें कुछ आपत्तिजनक पैराग्राफ हैं। आपकी जानकारी के लिए मैं इसमें से एक या दो वाक्य पढ़कर सुनाऊंगा। प्रथमत: महोदय, क्या मैं जान सकता हूं कि क्या संविधान सभा के कार्यालय से ऐसी पुस्तिका परिचालित की जा सकती है जिसमें कि प्रधान मंत्री के विरुद्ध और कुछ अन्य मंत्रियों के विरुद्ध भी आपत्तिजनक टिप्पणियां हैं?

*अध्यक्ष: यह संविधान सभा के कार्यालय द्वारा परिचालित नहीं की गई है।

*श्री युधिष्ठिर मिश्र: यह सदस्यों को कार्यालय द्वारा भेजी गई डाक में थी।

*अध्यक्ष: कार्यालय को ऐसा नहीं करना चाहिए था। मुझे इसकी जानकारी नहीं थी। एक अन्य पुस्तिका के वितरण के विषय में एक अन्य सदस्य से मुझे शिकायत प्राप्त हुई थी, परन्तु वह सदन के सदस्यों को नहीं अपितु पत्रकार दीर्घा में वितरित की गई थी। चूंकि वह पत्रकार दीर्घा में वितरित की गई थी, अत: मैंने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु यह पुस्तिका कार्यालय से वितरित की गई है। मुझे वस्तुत: खेद है, ऐसा नहीं किया जाना चाहिए था।

अब हम अनुच्छेद 264 को लेंगे। संशोधन संख्या 270।

अनुच्छेद 264

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (बम्बई : जनरल): महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 264 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाये:

'264(1) The property of the Union shall be exempt from all taxes imposed by a State or by any authority within a State. Exemption of property of the Union from State Taxation.

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) Nothing in clause (1) of this article shall, untill Parliament by law otherwise provides, prevent any local authority within a State from imposing any tax on any property of the Union to which such property was immediately before the commencement of this Constitution liable or treated as liable so long as that tax continues to be levied in that State.'"

संघ की सम्पत्ति को राज्य के करों से छूट

[264. (1) किसी राज्य द्वारा अथवा राज्य के अंतर्गत किसी प्राधिकारी द्वारा आरोपित सभी करों से संघ की सम्पत्ति विमुक्त होगी।

(2)जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की कोई बात किसी राज्य के अन्तर्गत किसी प्राधिकारी को संघ की किसी सम्पत्ति पर कोई ऐसा कर आरोपित करने में बाधा नहीं डालेगी जिसका दायित्व इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले, ऐसी सम्पत्ति पर था या समझा जाता था जब तक कि वह कर उस राज्य में लगा रहे।]

इस पर संशोधन पेश किये जाने के पश्चात् यदि वाद-विवाद हुआ तो मैं अपने संशोधन पर बोलूंगा।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 303 की सूचना श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा दी गई है, परन्तु वह मूल अनुच्छेद के विषय में है। क्या आप इसे पेश करना चाहते हैं?

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रांत और बरार : जनरल): मुद्रित सूची के पृष्ठ 28 पर संशोधन संख्या 208 तथा 209 मेरे नाम में हैं। मैंने प्रक्रिया नियमों के अनुसार काफी समय पूर्व इन संशोधनों की सूचना दी थी। सूची 9 (सप्तम सप्ताह) में इसी आशय का एक अन्य संशोधन संख्या 435 भी मेरे नाम में है।

***अध्यक्षः** हम इसे बाद में लेंगे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): महोदय, मैं अपना संशोधन संख्या 303 पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** आपके संशोधन का इस अनुच्छेद के साथ मेल नहीं बैठता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** महोदय, क्या मैं भाग (ख) पेश करूं?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): महोदय, इसका भी परन्तुक के साथ मेल नहीं बैठता।

***अध्यक्षः** इसमें कोई परन्तुक नहीं है, अतः (ख) का मेल नहीं बैठता।

***श्री आर.के. सिधवाः** मैं समझता हूं कि प्रक्रिया नियमों के अनुसार जिन संशोधनों की सूचना मैंने दी है उनके मुकाबले ऐसे संशोधनों को वरीयता नहीं दी जानी चाहिए जिनकी सूचना बाद में दी गई है।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि यह सूची कई दिन पूर्व परिचालित की गई थी।

(संशोधन संख्या 304 पेश नहीं किया गया।)

***श्री आर.के. सिधवाः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 270 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 264 के स्थान पर यह रखा जाये:

'264. The property of the Union shall, save in so far as the Parliament may by law otherwise provide, be as much liable to all taxes imposed by any local authority within a State as any property of an individual.'"

['264. संघ की सम्पत्ति पर, जब तक संसद अन्यथा, उपबन्ध न करे, ऐसे सभी कर वैसे ही आरोपित होंगे जैसे किसी राज्य में किसी स्थानीय प्राधिकरण द्वारा लगाये गये कर किसी व्यक्ति की सम्पत्ति पर आरोपित होते हों']

महोदय, जहां तक संघ की सम्पत्तियों पर कराधान का सम्बन्ध है यह संशोधन अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भारत के राज्यक्षेत्र में संघ की सम्पत्तियां हैं: डाक व तार, सीमा-शुल्क कार्यालय, उत्पादन-शुल्क और महालेखा परीक्षक का कार्यालय, सबसे महत्वपूर्ण हैं रेलवे की सम्पत्तियां। इन सम्पत्तियों को स्थानीय निकायों के कराधान से मुक्त करने का प्रस्ताव है। यह विवादास्पद विषय पिछले 25 वर्षों से प्रान्तीय सरकारों और संघ की सरकारों के बीच कलह का कारण रहा है। स्थानीय प्राधिकरण इन सम्पत्तियों के लिए सेवाओं की व्यवस्था करते हैं और इसीलिए इन पर कर लगाते हैं। अतः मुझे संघ की सम्पत्तियों को कर-मुक्त रखने का तथा पक्षपातपूर्ण विभेद करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। संघ सरकार के सर्वोच्च होने का यह अर्थ नहीं है कि जो कर स्थानीय निकायों को, जोकि वित्तीय मामलों में दुर्बल हैं, देय हैं वे उन्हें न मिलें और वे अपने न्यायोचित कर भी न लें जिनके कि वे अधिकारी हैं जहां तक सीमा शुल्क और डाक व तार के भवनों का संबंध है, अनेक नगरों में इनके कार्यालय किराये के भवनों में है और वहां कर लगने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, परन्तु जहां इनके भवन संघ की अपनी सम्पत्तियां हैं वहां करों का प्रश्न अवश्य पैदा होता है। प्रायः प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम में रेलवे की सम्पत्ति है और इस अनुच्छेद द्वारा रेलवे की सम्पत्तियों को कर-मुक्त रखने का प्रस्ताव है। रेलवे अधिनियम, जिसे रेलवे स्थानीय प्राधिकरण कराधान अधिनियम, 1941 के नाम से जाना जाता है, की धारा 35 के अंतर्गत यदि कोई स्थानीय प्राधिकरण कर लगाना चाहे तो उसके लिए रेलवे प्राधिकारियों को एक अधिसूचना जारी करनी पड़ती है। महोदय, इतना ही नहीं बल्कि स्थानीय प्राधिकरण को अधिकारियों के समक्ष यह सिद्ध करना पड़ता है कि कर देय है। दूसरे यह कहा गया है कि सिद्ध करने का दायित्व प्राधिकारियों पर है, यद्यपि यह तथ्य सर्वज्ञात है कि सफाई, स्वास्थ्य, मल-सफाई, सड़कों, रोशनी, अग्निशमन आदि सेवाओं की व्यवस्था स्थानीय प्राधिकरण द्वारा की जाती है, ये सब सेवाएं रेलवे भवनों में उपलब्ध कराई जाती है, इस पर भी जब उनसे कर देने के लिए कहा जाता है जिसे लेने के वे अधिकारी हैं, तो अनेक मामलों में देय राशियां अदा नहीं की जातीं। मैं ऐसे उदाहरण दूंगा जहां स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा प्राधिकारियों के कहने के अनुसार सेवायें उपलब्ध कराये जाने पर भी रेलवे प्राधिकारियों ने ऐसी देय राशियां अदा नहीं की हैं जोकि उन्हें देनी चाहिए थीं। प्रायः सभी प्रांतीय मंत्रियों ने इस विषय में सर्वसम्मत्ति से संकल्प किया है कि ये कर अदा किये जाने चाहिएं। मैं इन संघीय भवनों पर करों की अदायगी के संबंध में विभिन्न सरकारों की राय अभी आपके समक्ष उद्धृत करूंगा जिससे आप देखेंगे कि एक भी प्रांतीय सरकार ने ऐसा नहीं कहा है कि संघ की सम्पत्तियां कर-मुक्त रहनी चाहिए।

[श्री आर.के. सिधवा]

बंगाल में रिश्रा-कोत्रागार में जोत और मल-सफाई दरों के लिए दायित्व घोषित करने हेतु 1916 में एक अधिसूचना प्रकाशित की गई थी। 16 जनवरी, 1944 को उस क्षेत्र को दो नगरपालिकाओं में विभाजित कर दिया गया और रेलवे ने 1 अप्रैल, 1946 को अनायास ही इस आधार पर अदायगी बन्द कर दी कि इस हेतु नई अधिसूचना जारी करना आवश्यक है। ऐसी अधिसूचना 25 अगस्त, 1948 को जारी की गई। इसके अतिरिक्त, यद्यपि बिजली कर अदा करने के दायित्व की घोषणा भारत सरकार द्वारा 1945 में कर दी गई थी, तथापि रेलवे प्रशासन द्वारा किसी न किसी बहाने भुगतान रोके रखा गया और फिर रेलवे बोर्ड सहमत हो गया, परन्तु फिर भी बोर्ड ने बाद में कह दिया कि ये देनदारियां देय नहीं हैं और इनकी अदायगी नहीं की जानी चाहिए। कंचरापाड़ा नगरपालिका में, लम्बे समय तक पत्र-व्यवहार करने पर भी मल-सफाई शुल्क अदा करने के लिए रेलवे बोर्ड की सम्मति नहीं मिली और रेलवे बोर्ड ने 2 नवम्बर, 1948 को उत्तर दिया कि नगरपालिका से उन्हें कोई जल-मल निकास सेवा नहीं मिली, हालांकि तथ्य यह है कि इस आशय के सभी अनुरोधों के अनुसार काम कर दिया गया था।

महोदय, इस विवाद के कारण अगस्त 1948 में प्रांतों के विभिन्न मंत्रियों का दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ वहां पर एकत्रित मंत्रियों की राय यह थी कि हम स्पष्ट रूप से और सर्वसम्मत्ति से इस बात का समर्थन करते हैं कि संघ की सम्पत्ति पर कर लगना चाहिए। मद्रास के मंत्री.....

***अध्यक्ष:** श्री सिधवा, दुर्भाग्य की बात यह है कि प्रांतों के अनेक "प्रीमियर" इस परिषद् के सदस्य हैं और उनमें से एक ने भी इस अनुच्छेद में कोई संशोधन भेजना उचित नहीं समझा। केवल आपने ही अपने संशोधन की सूचना दी।

***श्री आर.के. सिधवा:** महोदय, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जहां तक इस विषय का संबंध है, मैं सभी प्रांतों का प्रतिनिधित्व करता हूं। मैं स्थानीय प्राधिकरण संघ (लोकल अथॉरिटीज यूनियन) के प्रेजीडेन्ट की हैसियत से बोल रहा हूं। स्थानीय प्राधिकरणों की पहल से एक सम्मेलन बुलाया गया था.....

***अध्यक्ष:** मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट कर दूं कि सम्मेलनों में उन्होंने जो कुछ कहा, आप उससे निष्कर्ष नहीं निकाल सकते जबकि उन्होंने स्वयं इस सभा में कुछ कहना उचित नहीं समझा है।

***श्री आर.के. सिधवा:** यद्यपि, उन्होंने संशोधन नहीं दिये हैं वे अधिकृत प्रवक्ता के रूप में मुझ पर भरोसा करते हैं कि उन्होंने सारी बात मुझ पर ही छोड़ दी है। महोदय, मैं यह कह रहा था कि यह आय स्थानीय निकायों के संसाधनों का मुख्य स्रोत है। महोदय, मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि कोई भी सदस्य जो स्थानीय निकायों में रुचि रखता हो, वह यह नहीं कहेगा कि यह कर नहीं लगने चाहिए।

***अध्यक्ष:** मैं इसके गुण-दोषों की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल यह कह रहा हूं...

***श्री आर.के. सिधवा:** महोदय, मैं कह रहा हूं कि कोई भी सदस्य जो स्थानीय निकायों में रुचि रखता है; ऐसे अनेक सदस्य हैं जिनकी इसमें कोई रुचि नहीं है.....

***अध्यक्ष:** मंत्रियों ने अन्यत्र जो कुछ कहा, जब तक वे उसी बात को इस सभा में नहीं दोहराते तब तक आप उनकी बात पर निर्भर नहीं कर सकते।

***श्री आर.के. सिधवा:** इन करों के विषय में प्रान्तों में क्या हो रहा है वही मैं रिकार्ड से उद्धृत करके बता रहा हूं। मद्रास के मंत्री की यह राय थी कि निजी सम्पत्ति और प्रान्तीय सरकारों की सम्पत्तियों पर कराधान के जो सिद्धांत लागू होते हैं उन्हीं सिद्धान्तों का रेलवे की सम्पत्ति पर कराधान के संबंध में भी पालन किया जाना चाहिए। मैं उनका भाषण विस्तार से यहां उद्धृत करना नहीं चाहता। बम्बई सरकार ने बहुत बड़े शब्दों में कहा है कि रेलवे एक वाणिज्यिक उपक्रम है और रेलें लाभ कमाने के लिए चलाई जाती हैं और स्थानीय कराधान के विषय में उन्हें विशेषाधिकार वाला दर्जा देने का कोई न्यायसंगत कारण नहीं है, विशेषकर तब जबकि रेलवे कालोनियों के निवासी स्थानीय प्राधिकरणों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सड़कों एवं अन्य सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। महोदय, बम्बई प्रांत में, लाभ के प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली सम्पत्ति के संबंध में प्रांतीय सरकार को भी कोई छूट नहीं मिलती है और उसे सम्पत्ति संबंधी स्थायी कर देने ही पड़ते हैं। इसका कोई कारण नहीं है कि रेलवे प्रशासन के साथ ठीक वैसा ही व्यवहार न किया जाये जैसाकि अन्य वाणिज्यिक उपक्रमों के साथ किया जाता है, चाहे वे निजी हों अथवा राज्य के। असम सरकार का विचार है कि केन्द्रीय सरकार की रेल सम्पत्ति पर वैसे ही स्थायी कर लगने चाहिएं जैसे कि प्रांतीय सरकार की संपत्ति पर लगते हैं। मध्य प्रांत और बरार सरकार का यह मत है कि रेलवे एक वाणिज्यिक उपक्रम है जो भारी लाभ अर्जित करता है और यह न्यायसंगत एवं उचित ही होगा कि अन्य वाणिज्यिक उपक्रमों की तरह वे भी नगर-क्षेत्रों में, जहां सम्पत्तियां स्थित हों, सफाई तथा अन्य सुविधाओं की लागत एवं रख-रखाव में अपना योगदान करे। संयुक्त प्रांत की सरकार ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा है कि इस छूट का कोई औचित्य नहीं है और यह कि इसका कोई कारण नहीं है कि डोमिनियन सरकार की सम्पत्ति को ऐसे विशेषाधिकार मिलें, जबकि उसकी सम्पत्तियां स्थानीय निकायों के अधिकार क्षेत्र में स्थित हैं और इस कारण वह स्थानीय निकायों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाओं का लाभ उठा रही हैं। ये कुछ सरकारों के विचार हैं। इनमें पता चलेगा कि प्रांतीय सरकारें कर प्राप्त करने के विषय में स्थानीय निकायों का समर्थन करने की कितनी इच्छुक हैं, क्योंकि यह स्थानीय निकायों की आय का मुख्य स्रोत है। महोदय, मैं आपको एक उदाहरण दे सकता हूं। हावड़ा नगरपालिका ने सरकार से अभ्यावेदन किया है कि यदि इन करों से छूट दी गई तो उसे 2,06,000 रुपये की हानि होगी। महोदय, आप समझ सकते हैं कि इससे हावड़ा जैसी छोटी-सी नगरपालिका को इतने राजस्व की हानि होगी।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद के कारण तो वह हानि नहीं होती। दूसरे पैरा में उसके बचाव के लिए उपबन्ध हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** महोदय मैं, इस बात को मानता हूं। मैं तो केवल वह उद्धृत कर रहा हूं जो दूसरे पैरा के बावजूद हो रहा है, जो वर्तमान अधिनियम

[श्री आर.के. सिधवा]

में लगभग उसी रूप में विद्यमान है। इसके अतिरिक्त यह प्रश्न विधान सभा के विचाराधीन रहा है और कई बार इस पर चर्चा हो चुकी है और अनेक सदस्यों ने इन करों की अदायगी से संघ सरकार को छूट देने विषयक भेदभावपूर्ण विधान बनाने के लिए सरकार के प्रति विरोध प्रकट किया है और इस पर घोर आपत्ति की है।

इसका परिणाम यह होगा कि स्थानीय निकायों पर भारी आर्थिक बोझ पड़ जायेगा और उनकी वर्तमान कठिनाइयां और ज्यादा बढ़ जायेंगी। महोदय, मैं आपको विश्वास दिला दूं कि सीमा कर और सम्पत्ति पर लगने वाला कर ही स्थानीय निकायों की आय के मुख्य स्रोत हैं। आखिर हमें यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिए कि केन्द्रीय सरकार हमारी अपनी सरकार है, प्रान्तीय सरकारें भी हमारी अपनी सरकारें हैं और स्थानीय निकाय भी हमारी अपनी सरकारें हैं। स्थानीय निकाय ऐसे निकाय हैं जिनकी पर्याप्त सीमा तक सहायता की जानी चाहिए। ये वे निकाय हैं जहां हमारे भावी विधायक आरम्भिक प्रशिक्षण पाते हैं।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र__ (पश्चिम बंगाल : जनरल): सीमा कर इस अनुच्छेद से प्रभावित नहीं होते।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ मैं उसका केवल उल्लेख कर रहा था। विधान मंडल के जो सदस्य स्थानीय निकायों में रह चुके हैं वे वास्तव में बहुत उपयोगी रहे हैं। वहां प्रशिक्षण प्राप्त होता है। स्थानीय निकायों का फलना-फूलना आवश्यक है और केन्द्रीय सरकार एवं प्रांतीय सरकारों को उनकी सहायता करनी चाहिये। वित्तीय दृष्टि से वे सब ओर से अशक्त हैं। उन्हें अपने कर लगाने के लिए कहा जाता है परन्तु उनके स्रोत बहुत सीमित हैं। यदि आप विदेशों में जाएं तो देखेंगे कि वहां स्थानीय निकायों को भारी सहायता दी जाती है और केन्द्रीय सरकार द्वारा उन्हें एकमुश्त अनुदान दिये जाते हैं। उनके सभी विभागों के लिए उन्हें अनुदान दिये जाते हैं। इंग्लैंड में, राज्य की सम्पत्ति पर लगने वाले करों का एक चौथाई भाग स्थानीय निकायों को दिया जाता है। ऐसा ही संयुक्त राज्य अमेरिका में भी किया जाता है क्योंकि वे महसूस करते हैं कि स्थानीय निकाय समूची राष्ट्रीय सरकार की धुरी हैं।

मैं महसूस करता हूं कि इस सभा द्वारा और कुछ माननीय सदस्यों द्वारा इस विषय को हल्के-फुल्के ढंग से लिया गया है। मुझे विश्वास है कि जिन सदस्यों ने स्थानीय निकायों में रुचि ली है वे इस विषय में बहुत उत्सुक हैं। मुझे खेद है कि माननीय पंडित गोविन्द वल्लभ पंत जिन्होंने एक संशोधन की सूचना दी है, वह उसे पेश करने के लिए यहां उपस्थित नहीं हैं। उन्होंने वास्तव में इस विषय पर लोहा लिया है। मैं समझ नहीं पाया कि प्रांतीय मंत्रियों की सर्वसम्मत राय न मानकर वित्त मंत्री अथवा रेल मंत्री इसके आड़े क्यों आ रहे हैं। यदि आप सब प्रांतीय सरकारों की सर्वसम्मत राय को मानने से इंकार करते हैं और केन्द्र में केवल एक मंत्री पर निर्भर करते हैं तो मैं आपको बता दूं कि स्थानीय निकाय और प्रांतीय सरकारें सन्तोषजनक ढंग से काम नहीं कर सकतीं। ये हमारे अपने संविधान की ही सृष्टि है। यदि आप इन निकायों द्वारा सर्वसम्मति से व्यक्त किये गये विचार को सुनने के लिए तैयार नहीं हैं, तो मैंने अभी उद्धृत किया है, तो यह बताने के लिए और क्या प्रमाण दिया जा सकता है कि इन निकायों को सहायता की आवश्यकता है।

इस प्रश्न पर विचार व्यक्त करने के पश्चात् मैं इस बात का भी उल्लेख करना चाहता हूं कि रेलवे विभाग यह महसूस करता है और इस बात की शिकायत भी करता है कि उस पर युक्तिसंगत कर नहीं लगाया जाता अथवा कि उस पर भारी कर लगाये जाने की संभावना है। मद्रास सरकार ने यह सुझाव दिया है कि एक समिति नियुक्त की जाये जिसमें केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारों और स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि हों जो इस समस्या का हल ढूंढें और फिर ऐसी राशि निर्धारित की जाये जो न्यायसंगत हो। मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने अपना संशोधन प्रस्तुत करते समय कोई भाषण नहीं दिया। अत: मुझे मालूम नहीं कि उन्हें क्या-क्या आपत्तियां हैं। परन्तु यदि वह समझते हैं, जैसा कि मेरा पूर्वानुमान है, कि संघ सरकार सर्वोच्च सरकार है और चूंकि संघ सरकार का स्थायी निकायों में कोई प्रतिनिधि नहीं है अत: संघ सरकार पर कोई कर नहीं लगाये जा सकते, तो महोदय मुझे यह कहना है कि यदि इस तर्क को मान लिया जाये तो ऐसी अनेक वाणिज्यिक एवं औद्योगिक संस्थायें हैं जिनका स्थानीय निकायों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं होता और इस कारण स्थानीय निकाय उन पर कोई कर नहीं लगा सकते। इसके अतिरिक्त, वह कहेंगे कि "प्रतिनिधित्व के बिना कोई कराधान नहीं" अत: चूंकि संघ सरकार द्वारा स्थानीय निकायों को कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता इसलिए यह उचित नहीं है कि उन पर कोई कर लगाया जाये। मैं अपने मित्र डॉ. अम्बेडकर को बता दूं कि स्थानीय निकायों की कर लगाने की शक्ति निर्बाध नहीं है। यह शक्ति प्रांतीय सरकार और केन्द्रीय सरकार की मंजूरी के अध्यधीन है। मैं ऐसी नगरपालिका विधियां, बौरो नगरपालिका विधियां, जिला नगरपालिका विधियां और नगर निगम विधियां उद्धृत कर सकता हूं जहां यह निर्धारित किया गया है कि स्थानीय निकायों द्वारा लगाया जाने वाला कोई भी कर, चाहे वह कम हो अथवा अधिक, प्रान्तीय सरकार और संघ सरकार की मंजूरी के अध्यधीन होगा।

ऐसी स्थिति में मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर यह नहीं कह सकते कि चूंकि उनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है अत: उन पर कर नहीं लगाना चाहिए। यदि कोई कर लगाया जाता है तो वह मामला अन्त में अनुमोदन के लिए केन्द्रीय सरकार के समक्ष आयेगा। तब केन्द्रीय सरकार उसे रद्द कर सकती है। उसने पहले ऐसा किया भी है। कई नगर निगमों ने कुछ कर लगाये हैं और केन्द्रीय सरकार ने उन्हें अस्वीकृत किया है अत: यह तर्क कदापि युक्तिसंगत नहीं है। मैं चाहता था कि वह अपना संशोधन प्रस्तुत करते समय इसका कारण बताते और मैं यह जानना चाहूंगा कि उनकी समिति प्रांतीय सरकारों के मंत्रियों की सर्वसम्मत राय को स्वीकार न करने पर क्यों अड़ी हुई है। मेरे मित्र कह सकते हैं कि इस अनुच्छेद का प्रारूप सम्भवतया सभी प्रांतों के "प्रीमियरों" से परामर्श करने के पश्चात् तैयार किया गया था। मैं तो इसका सत्यापन नहीं कर सकता। जो कुछ वह कहते हैं मैं उस पर विश्वास करने के लिए तैयार हूं, परन्तु मुझे मालूम नहीं है। यदि मैं वहां होता तो मैं उन "प्रीमियरों" के समक्ष उनके अपने ही प्रांतीय स्थानीय शासन मंत्रियों की राय प्रस्तुत करता जिन्होंने इस सम्मेलन में भाग लिया था और अपनी-अपनी राय व्यक्त की थी।

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्री के कहने पर नियुक्त की गई स्थानीय वित्त समिति (लोकल फाइनेंस कमेटी) की बैठक इस विषय पर विचार करने के लिए 11 जून, 1949 को हुई थी जब संविधान का निर्माण हो रहा था, क्योंकि उनका विचार था कि यदि वे इस विषय पर विचार नहीं करते तो उनकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया जायेगा। मैं समिति की बैठक में उपस्थित सभी प्रांतीय मंत्रियों द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया प्रस्ताव उद्धृत करता हूं:

[श्री आर.के. सिधवा]

"जहां तक संघ की सम्पत्तियों का रेलवे की सम्पत्तियों के सिवाय संबंध है, स्थानीय कराधान का वहीं आधार, अर्थात्, जो आधार प्रांतीय सरकार की सम्पत्तियों पर लागू होता है, लागू किया जाना चाहिए और कर निर्धारण की वही पद्धति भी लागू की जानी चाहिए जिसका सुझाव ऊपर (अर्थात् संकल्प संख्या 1 में) दिया गया है।"

संकल्प संख्या 1 रेलवे की सम्पत्ति के विषय में है।

"केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों के साथ चर्चा करने के पश्चात् समिति की राय है कि रेलवे की सम्पत्ति स्थानीय करों के लिए उसी प्रकार देय ठहराई जानी चाहिए जैसे कि प्रान्तीय सरकार की सम्पत्तियां हैं जहां तक रेलवे की सम्पत्ति पर कर के निर्धारण का संबंध है, समिति का विचार है कि उचित कर-निर्धारण सुनिश्चित करने के लिए रेलवे प्राधिकारियों, प्रांतीय सरकारों और स्थानीय निकायों के प्रतिनिधियों का एक स्वतंत्र तंत्र होना चाहिए।"

इससे आप देखेंगे कि किसी प्रकार का अतिरिक्त कर यद्यपि लगाया नहीं जाता अथवा वे लगा नहीं सकते, फिर भी रेलवे मंत्रालय की इच्छाएं पूरी करने के लिए एक मार्ग निकाला गया है और इसके बावजूद, यह संकल्प प्रारूप समिति के पास भेज दिया गया, मैं नहीं कह सकता कि डॉ. अम्बेडकर ने इस पर विचार किया अथवा नहीं। उन्हें इस समिति को स्पष्टीकरण देना चाहिए क्योंकि यह समिति भारत सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी, स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को सुव्यवस्थित करने के लिए नियुक्त की गई थी, और इन सब तथ्यों के बावजूद, मंत्रियों की राय को और इस समिति की राय को ध्यान में नहीं रखा गया है, और हमें बताया गया है कि या तो रेल मंत्री या फिर वित्त मंत्री इस समिति के सर्वसम्मत निर्णय को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। इस समिति द्वारा सर्वसम्मति से व्यक्त की गई राय की आप क्यों उपेक्षा कर रहे हैं? यह कोई काल्पनिक प्रश्न नहीं है। यदि यह तर्क दिया जाये कि बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं लगाया जा सकता तो मैंने उन्हें उत्तर दे दिया है कि यह तर्क युक्तिसंगत नहीं है। स्थानीय निकाय अनेक हितों पर कर लगाते हैं परन्तु उनका प्रतिनिधित्व वहां नहीं होता। यदि कर लगाया भी जाता है तो तत्संबंधी अधिकार निर्बाध नहीं है और उन्हें अन्त में उसके लिए केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती है। स्थानीय निकाय यदि कोई अच्छा काम करते हैं तो आप उनके आड़े क्यों आते हैं? केन्द्रीय सरकार कहती है कि हम उन्हें मान्यता नहीं देते क्या इस संविधान का उद्देश्य यह है कि इन छोटे-छोटे निकायों को समाप्त कर दिया जाये? हमारा उद्देश्य यह है कि ये छोटे-छोटे निकाय उस स्तर पर लाये जाये जहां ये फल-फूल सकें। केन्द्रीय सरकार इन निकायों को आवश्यक धनराशि देने को तैयार नहीं है। कुछ प्रांतीय सरकारें इनके धन से अधिक से अधिक लाभ उठा रही हैं सीमा कर केन्द्रीय सरकार ले लेती है। कुछ दिन पूर्व सीमा कर के लिए मैंने प्रारूप समिति के साथ बहुत तर्क-वितर्क किया। उसने प्रांतीय सरकार से यह कहना बन्द कर दिया है कि वह सीमा कर लगाये। धन की आवश्यकता प्रत्येक प्राधिकरण को होती है। मैं केन्द्रीय विधान मंडल का सदस्य हूं। मैं भी इसके लिये उतना ही उत्सुक हूं जितने कि मेरे मित्र हैं कि केन्द्र शक्तिशाली हो। परन्तु इसके साथ-साथ मैं यह भी नहीं चाहता कि स्थानीय निकायों को इस प्रकार संसाधनों से वंचित किया जाये।

मैं इस विषय में बहुत दृढ़ हूं क्योंकि गत बीस वर्षों से मैं इसके लिये संघर्ष करता रहा हूं। केवल मैं ही नहीं अपितु प्रांतीय सरकारें और प्रत्येक निकाय इसके लिए संघर्ष करता रहा है। मैं तथ्य उद्धृत करके इस बात को सिद्ध करने के लिए तैयार हूं। डॉ. अम्बेडकर इसे गलत सिद्ध करके दिखायें। यदि वह अपनी बात को सही सिद्ध कर दें तो मैं यह सिद्ध करने के लिए किसी भी जांच के लिए तैयार हूं कि प्रान्तीय सरकारें पूर्णतया इस बात के पक्ष में हैं कि संघ की सम्पत्ति पर कर लगाये जायें। यदि नहीं, तो वह बतायें कि उनके विचार क्या हैं। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ मैं इस अनुच्छेद के संबंध में कुछ बातें कहना चाहता हूं। मेरी राय में इस अनुच्छेद से कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या संघ की सम्पत्ति पर राज्यों में कर लगाये जायें अथवा क्या उसे ऐसे कराधान से पूर्ण छूट होनी चाहिए। मैं न तो इस सिद्धांत का परीक्षण करूंगा और न ही इसका खण्डन करूंगा कि राज्य की सम्पत्तियों पर कर नहीं लगने चाहिएं परन्तु संघ की सम्पत्ति के कराधान के संबंध में इस देश में वास्तव में जो प्रथा रही है मैं उसी के प्रकाश में कुछ विचार व्यक्त करूंगा।

मैं समझता हूं कि यह तथ्य इस सदन के अधिकांश सदस्यों को मालूम नहीं है कि इस प्रश्न पर वर्ष 1941 में एक विधेयक के रूप में विचार किया गया था। मैं 1941 की सेंट्रल लेजिस्लेटिव असेम्बली की कार्यवाहियों से, जब इस विधेयक पर चर्चा हुई थी और इसे पास किया गया था, कोई ब्यौरा नहीं दे रहा हूं अपितु मैं लेजिस्लेटिव के नवम्बर 1941 के अधिवेशन के खण्ड 4 में दी गई कार्यवाहियों के कुछ पृष्ठों का सरसरी तौर पर उल्लेख करूंगा और उनकी ओर सदन का ध्यान आकर्षित करूंगा। जिस विधेयक पर विचार किया गया था और जिसे अंतत: पास कर दिया गया था उसका नाम है रेलवे स्थानीय प्राधिकरण कराधान विधेयक (द रेलवेज लोकल अथारिटीज टेक्सेशन बिल) उस विधेयक में — मैं उसका सार दे रहा हूं—यह तर्क दिया गया था कि रेलवे सम्पत्ति पर तब तक कोई स्थानीय कर नहीं लगाया जायेगा जब तक कि स्थानीय निकाय रेलवे के लिए विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध नहीं कराते। मैं आपको स्पष्ट बता दूं कि मैंने उस तर्क का कड़ा विरोध किया था और उस विधेयक पर हुई सम्पूर्ण चर्चा के दौरान मैं स्थानीय प्राधिकरणों की ओर से जमकर लड़ा था क्योंकि मैं महसूस करता था कि ऐसी शर्त के देश की स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की वित्तीय स्थिति के लिए घातक परिणाम होंगे। तथापि, एक समझौता हुआ। भारत के विभिन्न निगमों के महापौरों को एक साथ बुलाया गया और एक सम्मेलन हुआ जिसमें मैंने भी भाग लिया था और अन्त में एक सूत्र में बनाया गया जो किसी तरह हम सबको मान्य था।

अब इस सिलसिले में जिस बात पर विचार करना होगा वह यह है क्या हम इस स्थिति में हैं कि संघ की सम्पत्तियों को स्थानीय करों से छूट दे दें? इसमें अन्तर्ग्रस्त सिद्धांत के अलावा, हम यह देखें कि व्यावहारिक दृष्टि से यह कहां तक न्यायसंगत है सभी नगरपालिकाओं में सम्पत्तियों पर कुछ प्रकार के कर लगाये जाते हैं और सम्पत्तियों की परिभाषा नगरपालिका विधियों में अलग-अलग प्रकार से की गई है। सामान्यतया भूमि का कोई खण्ड जिसकी कतिपय सीमाएं हों उसे सम्पत्ति कहा जाता है।

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

नगरपालिकाओं के भिन्न-भिन्न स्वरूपों के शुल्क हैं जैसे सम्पत्ति शुल्क, सफाई व्यवस्था शुल्क, विद्युत शुल्क, शिक्षा शुल्क, जल शुल्क, इत्यादि। ऐसा होता है कि नगरपालिका के आधारक्षेत्र की सीमाओं में स्थित किसी भी सम्पत्ति के लिए कराधान की इन मदों से किसी भी रूप में छूट नहीं होती। यदि किसी नगरपालिका के क्षेत्र में कोई बंजरभूमि का टुकड़ा भी है और व्यावहारिक रूप से नगरपालिका इसके लिए कोई सेवा उपलब्ध नहीं करती है तो भी वह बंजरभूमि सम्पत्ति की परिभाषा में आती है और इस रूप में उस पर सभी प्रकार के कर लगते हैं, नगरपालिका द्वारा सेवाएं उपलब्ध कराने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद, मुगलसराय जैसे बड़े नगरों में आप देखें कि वहां रेलवे की कितनी विशाल सम्पत्ति विद्यमान है। कंचरापाड़ा में लिलुआह, जमालपुर, मुगलसराय और अन्य स्थानों पर रेलवे वर्कशॉप हैं, कर्मचारियों के क्वार्टर हैं, रेलवे कालोनियां हैं, रेलवे साइडिंग हैं, रेलवे लाइनें इत्यादि हैं, इन रेलवे सम्पत्तियों पर स्थानीय कराधान के विषय में निगमों और सरकार के बीच निरन्तर विवाद रहा है। और करों से बचने के लिए अनेक मामलों में रेलवे विभाग ने बाद में जल पूर्ति, विद्युत और सफाई आदि के लिए अपने प्रबन्ध किये और उसने यह तर्क दिया कि "हमने अपने प्रबन्ध किये हैं, अतः सरकारी सम्पत्तियों पर कर नहीं लगाये जा सकते।" मेरा निवेदन है कि यह तर्क आपत्तिजनक है। जैसाकि मैंने कहा, मेरे द्वारा कथित आधारों पर करों से छूट किसी निजी व्यक्ति को कदापि नहीं दी जाती। मैं मानता हूं कि प्रारूप समिति के नवीनतम संशोधन से मूल प्रारूप में काफी सुधार हुआ है। इसमें उपबन्ध है कि संविधान के प्रारम्भ के तुरन्त पश्चात् की अवधि के लिए संघ की सम्पत्ति पर लगने वाले सभी कर तब तक लगाये जाते रहेंगे जब तक कि संसद अन्यथा उपबन्ध न करे। यह निश्चित रूप से एक सुधार है। परन्तु मैं भारतीय संसद द्वारा भविष्य में देखे जाने के लिए यह बात कह देना आवश्यक समझता हूं कि यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। यह केवल रेलवे की सम्पत्ति का प्रश्न नहीं है, यद्यपि राज्यों में संघ की सम्पत्ति का वह बहुत बड़ा भाग है। 1941 के अधिनियम के नियम के अनुसार यदि सरकार इस विषय में अधिसूचना जारी करती है तो उन पर स्थानीय कर वसूल किये जा सकते हैं। परन्तु वे कर रूपभेदित होंगे। वहां मापदण्ड सेवाएं प्रदान करने का होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आपने पांच मिनट से अधिक समय ले लिया है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः** कोई बात नहीं। मेरे पश्चात् कोई अन्य सदस्य भाषण देने वाला नहीं है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। मैं आरम्भ से ही नगरपालिकाओं और सभी स्थानीय निकायों के हितों की रक्षा हेतु लड़ता रहा हूं और भावी सांसदों को यह चेतावनी देना एक अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि वे इस विषय में बहुत धीमी गति से और बड़ी सावधानी से चलें और मात्र सिद्धांत से ही प्रेरित न हों। रेलवे की सम्पत्तियों पर लगाया जाने वाला निगमों, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों और यूनियन बोर्डों के लिए राजस्व का बड़ा महत्वपूर्ण स्रोत है। यह बात भुलाई नहीं जानी चाहिये कि रेलवे की सम्पत्तियों को इस कराधान से मुक्त रखने से इन स्थानीय स्वायत्तशासी निकायों के राजस्व के स्रोतों को गहरा आघात पहुंचेगा। यह तो रहा एक पहलू। इसका एक अन्य पहलू भी है। आपने अनुच्छेद 264 में उपबन्ध किया है कि संघ की सम्पत्ति पर करारोपण नहीं होगा, और निस्संदेह सैद्धांतिक रूप से

यह सही है और अनुच्छेद 266 में आपने उपबन्ध किया है कि राज्य की आय पर केन्द्रीय सरकार कर नहीं लगाएगी। निस्संदेह यह पारस्परिकता का सिद्धांत है कि सामान्य भाषा में अर्थ है "तुम मेरा उपकार करो मैं तुम्हारा करूंगा।" और इन दोनों के बीच स्थानीय स्वायत्तशासी निकायों को हानि उठानी होगी। मुख्य विचारणीय बात यही है। नगरपालिकाओं में अनाथालयों, औषधालयों, स्कूलों, मंदिरों, मस्जिदों, धर्मशालाओं आदि जैसी मानवीय एवं सार्वजनिक संस्थाओं तक को स्थानीय कराधान से मुक्त नहीं रखा जाता, यद्यपि ये संस्थाएं आय अर्जित करने वाली नहीं होतीं और जैसा कि मैंने कहा, यद्यपि ये संस्थाएं नगरपालिका द्वारा उपलब्ध की जाने वाली सेवाओं का किसी भी प्रकार उपयोग नहीं करती, तथापि इनका पक्ष नहीं लिया जाता और इस आधार पर न तो कर में कमी की जाती है और न ही कर से छूट दी जाती है। इस स्थिति में ऐसा उपबन्ध करना बहुत खतरनाक है कि संघ की सम्पत्ति पर करारोपण नहीं होगा।

परन्तु यह प्रश्न केवल रेलवे सम्पत्ति का नहीं है, भारत सरकार की अनेक प्रकार की बहुत सी सम्पत्तियां हैं। उदाहरणस्वरूप आप सिन्द्री स्थित उर्वरक कारखाने को ले लीजिये। क्या आप कहना चाहते हैं कि वहां का स्थानीय निकाय—चाहे वह स्थानीय बोर्ड हो अथवा यूनियन बोर्ड हो—उस पर स्थानीय कर लगाने का अधिकारी नहीं होगा? इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों पर टकसाले हैं, मुद्रा कार्यालय हैं, डाक-तार और टेलीफोन कार्यालय भवन हैं, रिजर्व बैंक के कार्यालय हैं। देश भर में अनेक अन्य केन्द्रीय संस्थाएं उभर रही हैं और यदि आप एक प्रकार का सामान्य उपबन्ध कर देते हैं कि संघ की किसी भी सम्पत्ति पर स्थानीय करारोपण नहीं होगा तो स्वायत्तशासी निकायों की वर्तमान अति नाजुक वित्तीय स्थिति को देखते हुए और यह देखते हुए कि यदि इन उपबन्धों को अक्षरश: प्रभावी कर दिया गया तो इस पर उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी, हमारे लिए इसे स्वीकार करना बहुत कठिन होगा। परन्तु इस उपबन्ध की एक विशेष बात यही है कि कम से कम संविधान के प्रारम्भ की तिथि से इन निकायों को पूर्ववत् में कर लगाने की शक्ति प्रदान की गई है और यह बात मानने के लिए मैं प्रारम्भ समिति का कृतज्ञ हूं परन्तु यह संघ की सभी प्रकार की सम्पत्ति के लिए सांविधिक छूट का उपबन्ध संविधान में समाविष्ट नहीं किया जाता तो मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता होती। इसे छोड़ा जा सकता था, इसे संविधान में समाविष्ट नहीं किया जाना चाहिए था। यह सारी बात संसद पर छोड़ दी जानी चाहिए थी, संसद जो चाहे निर्णय करती। परन्तु चूंकि प्रारूप समिति आदर्श के रूप में भारत सरकार अधिनियम, 1935 का लगभग पूर्णरूपेण पालन कर रही है अत: मुझे कुछ नहीं कहना है। मैं तो केवल एक चेतावनी देना चाहूंगा कि प्राधिकारी भविष्य में इस प्रश्न को हल्के ढंग से न लें, क्योंकि यह निगमों, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों, स्थानीय बोर्डों, यूनियन बोर्डों आदि जैसी स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं के कल्याण और अस्तित्व का प्रश्न है। इन सबका भाग्य इन उपबन्धों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यदि उनके कराधान के अधिकार को बने रहने दिया जाता है तो ठीक है। इससे उनके लिए अपना काम चलाने के लिए किंचित साधन उपलब्ध होते रहेंगे। यदि इनका कराधान का यह अधिकार समाप्त किया गया तो स्वायत्तशासी संस्थाओं के लिए घातक ही सिद्ध होगा। मुझे केवल यही कहना है। महोदय, आपका धन्यवाद।

*__श्री चिमनलाल चाकूभाई शाह__ (सौराष्ट्र): अध्यक्ष, महोदय, अनुच्छेद 264 को अनुच्छेद 266 के साथ ही पढ़ा जाना चाहिए जो कि मैं समझता हूं शीघ्र ही संशोधन संख्या 272 के अंतर्गत पेश किया जायेगा। इन दोनों अनुच्छेदों में

[श्री चिमनलाल चाकूभाई शाह]

पारस्परिकता का सिद्धांत अन्तर्ग्रस्त है, अर्थात् संघ की सम्पत्ति पर राज्य द्वारा कर नहीं लगाये जायेंगे और राज्य की सम्पत्ति पर संघ द्वारा कर नहीं लगाये जायेंगे। मैं इस सिद्धांत को स्वीकार करता हूं। परन्तु जब संघ की सम्पत्ति को राज्य के कराधान से मुक्त रखा जाता है तो इसका अर्थ यह भी है कि राज्य के भीतर किसी भी प्राधिकरण द्वारा कराधान से भी वह मुक्त होगी। मैं भी यह मानता हूं कि ऐसा ही होना चाहिए, क्योंकि यदि यह बात स्थानीय प्राधिकरणों की इच्छा पर छोड़ दी जाती है कि वे जैसे चाहे वैसे संघ की सम्पत्ति पर कर लगायें तो राज्य के लिए यह आसान हो जायेगा कि वह करारोपण का काम स्थानीय प्राधिकरण को सौंप दे जिससे कि स्थानीय प्राधिकरण संघ की उस सम्पत्ति पर कर लगा सके जिस पर कि स्वयं राज्य नहीं लगा सका हो। इसलिए, अनुच्छेद 264 और 266 में अन्तर्भूत सिद्धांत के साथ मेरा कोई विवाद नहीं है तथापि, मैं सदन का ध्यान दो बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

जिस स्थानीय प्राधिकरण के साथ मेरा संबंध रहा है, वह है बम्बई नगर निगम और मैं उसकी ओर से बोल रहा हूं। बंबई नगर निगम का अपने राजस्व के स्रोत बढ़ाने के लिए बम्बई सरकार के साथ अनेक वर्षों से विवाद चल रहा है। यह विवाद अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। अभी हाल ही में बम्बई सरकार ने निगम के राजस्व के स्रोत बढ़ाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए श्री ए.डी. शराफ की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की है। एक स्थानीय निकाय के राजस्व के स्रोत बहुत सीमित और साथ ही बेलचक होते हैं। स्थानीय निकाय को उस अधिनियम के क्षेत्राधिकार में रहकर ही करारोपण करना होता है जिसके द्वारा उसे करारोपण की शक्ति प्रदान की गई हो। इसके विपरीत केन्द्रीय सरकार की करारोपण की शक्ति असीम होती है। स्थानीय प्राधिकरणों के दायित्व और उत्तरदायित्व उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं और इनके साथ-साथ उनका व्यय भी बढ़ रहा है। बम्बई नगर निगम को हालांकि उसे सबसे अधिक समृद्धिशील निगमों में से एक माना जाता है अपना व्यय वहन करने में कठिनाई अनुभव हो रही है। गत वर्ष बम्बई सरकार ने उसके घाटे को पूरा करने के लिए 50 लाख रुपये का अनुदान दिया था और उसी प्रकार इस वर्ष भी 50 लाख रुपये दिये हैं। यह इसलिए सम्भव हुआ है कि प्रान्त की कांग्रेस सरकार का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण है और निगम में कांग्रेस दल बहुमत में है और ये दोनों सहयोग से काम कर रहे हैं। परन्तु मेरा निवेदन है कि स्थानीय प्राधिकरण को ऐसी स्थिति में नहीं रहने दिया जाना चाहिए कि वह प्रत्येक बार भीख मांगे। अत: कोई ऐसी कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए जिससे कि स्थानीय प्राधिकरण राजस्व के अपने न्यायोचित स्रोतों से वंचित हो जाये। मुझे विश्वास है कि अनुच्छेद 264 का उद्देश्य स्थानीय प्राधिकरणों को भूखा मारना नहीं है और यदि माननीय वित्तमंत्री इस बारे में आश्वासन दें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

अनुच्छेद 266 में कहा गया है कि राज्य की सम्पत्ति एवं आय संघीय कराधान से मुक्त होगी। क्या इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ होगा कि राज्य के भीतर यदि किसी स्थानीय प्राधिकरण की सम्पत्ति एवं आय भी कराधान से मुक्त होगी? यदि इसका यही अर्थ है तो मुझे बड़ी खुशी होगी। दूसरे, अनुच्छेद 266 के खण्ड (2) और (3) के अंतर्गत संसद को राज्य द्वारा किये जाने वाले किसी व्यापार अथवा कारोबार पर करारोपण की शक्ति प्रदान की गई है। क्या अनुच्छेद 264 में भी तदनुरूप उपबन्ध नहीं किया जाना चाहिए? क्योंकि हम जिस राष्ट्रीयकरण

की नीति पर चल रहे हैं, उसके अनुसार हो सकता है कि केन्द्रीय सरकार बड़े-बड़े उपक्रमों का अधिग्रहण करे और इसके पास प्रचुर सम्पत्ति हो जाये और ऐसी सम्पत्तियां राज्य के सीमा क्षेत्र में भी हो सकती है। तो क्या आप चाहेंगे कि राज्य को और स्थानीय प्राधिकरणों को संघ की उन सम्पत्तियों पर करारोपण की अनुमति नहीं दी जाये जो कारोबार के लिए संघ के स्वामित्व में हैं? उदाहरणार्थ, अनेक स्थानीय प्राधिकरण परिवहन सेवाओं, सार्वजनिक उपयोग की कम्पनियों, विद्युत उपक्रमों आदि का अधिग्रहण कर रहे हैं। मैं चाहूंगा कि इस विषय में आश्वासन दिया जाये कि ऐसी परिवहन सेवाओं और सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं से स्थानीय प्राधिकरणों को होने वाली आय संघ के करारोपण से, विशेषकर आयकर से, मुक्त होगी। उदाहरणार्थ, बम्बई नगर निगम ने हाल ही में ट्रामवे, बस और विद्युत उपक्रमों का अधिग्रहण किया है। यह उसके लिए काफी अतिरिक्त राजस्व का स्रोत होगा और यदि उस पर कर, विशेषकर आयकर लगेगा तो उसका राजस्व का यह स्रोत घट जायेगा। अत: मैं डॉ. अम्बेडकर से अनुरोध करूंगा कि वह इन दो बातों पर विचार करें, अर्थात् (1) क्या अनुच्छेद 266 में यह आवश्यक नहीं है....

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: अभी हम अनुच्छेद 264 पर विचार कर रहे हैं, न कि अनुच्छेद 266 पर। जब हम अनुच्छेद 266 पर विचार करेंगे तो इस बारे में भी विचार किया जायेगा।

*श्री चिमनलाल चाकूभाई शाह: यदि आप चाहते हैं कि मैं अभी इस बारे में कुछ नहीं कहूं तो मैं नहीं कहूंगा। परन्तु मैं समझता हूं कि ये दोनों अनुच्छेद परस्पर सम्बद्ध हैं और एक को दूसरे के साथ ही पढ़ा जाना आवश्यक है। इसी एक कारण से स्थानीय निकायों को संघ की सम्पत्ति पर करारोपण की अनुमति नहीं दी जा रही है, क्योंकि अनुच्छेद 266 के अन्तर्गत आप राज्य की सम्पत्ति को और राज्य की सम्पत्ति से होने वाली आय को भी संघीय कराधान से मुक्त रख रहे हैं। इन्हीं दो बातों की ओर मैं सदन का ध्यान आकृष्ट करना चाहता था।

*श्री बी.एम. गुप्ते (बम्बई : जनरल): महोदय, मैं श्री सिधवा के संशोधन का समर्थन करता हूं। केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति को स्थानीय निकायों के कराधान से मुक्त रखने के विषय में काफी समय से शिकायत रही है और यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रारूप समिति ने इसे दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। वर्तमान स्थिति का कुछ सिद्धांतों के आधार पर पक्ष लिया जाता है और मैं यह मानने को तैयार हूं कि वे सैद्धांतिक रूप से सही हैं, परन्तु मैं समझता हूं कि व्यावहारिक दृष्टि से वे सही नहीं हैं।

इसके पक्ष में एक इस सिद्धांत का सहारा लिया जाता है कि स्थानीय निकायों में केन्द्रीय सरकार का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है और इसके पास कराधान पर नियंत्रण रखने के कोई समाधान नहीं हैं, और यह तर्क दिया जाता है कि कराधान की शक्ति लगभग विनाशकारी शक्ति है। अत: यह स्वाभाविक है कि केन्द्रीय सरकार ऐसी शक्ति स्थानीय निकायों को आंख मूंद कर नहीं दे सकती। सिद्धांतत: तो यह बात सही है परन्तु व्यवहार में सही नहीं है क्योंकि स्थानीय निकाय आखिर राज्य के अधीन हैं और राज्य केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: ऐसी कोई बात नहीं है।

*श्री बी.एम. गुप्ते: यद्यपि जिस संविधान का हम देश के लिए निर्माण कर रहे हैं उसमें इसे हम संघीय राज्य कहते हैं फिर भी जो चित्र सामने उभर रहा

[श्री बी.एम. गुप्ते]

है वह संघीय राज्य का नहीं हैं। मैं तो इसे एकात्मक सरकार का विकेन्द्रीकृत रूप कहूंगा। इस संविधान के अन्तर्गत न केवल स्थानीय निकाय अपितु कोई राज्य भी संघ की अवज्ञा नहीं कर सकता। अत: यह कहना सही नहीं है कि स्थानीय निकाय पर केन्द्र का कोई नियंत्रण नहीं होता। अन्यथा भी कराधान की कुछ व्यावहारिक सीमाएं हैं। स्थानीय निकाय साधारण व्यक्तियों पर जिस दर से कराधान कर सकता है उससे अधिक दर से संघ की सम्पत्ति पर कर नहीं लगा सकता। यदि कर की दर अत्यधिक ऊंची होगी तो करदाता उसके विरुद्ध आवाज उठा देंगे और यदि कर की दर अत्यधिक ऊंची नहीं है तो कोई कारण नहीं है कि उसी दर पर संघ की सम्पत्ति पर कर न लगाया जाये। इसके अतिरिक्त जिला न्यायाधीश अथवा नगर दण्डाधिकारी से न्यायिक अपील भी की जा सकती है। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि स्थानीय निकाय की कराधान शक्ति पर केन्द्र का कोई नियंत्रण नहीं है। अत: इस आधार पर वर्तमान स्थिति का समर्थन नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त एक अन्य सिद्धांत का सहारा लिया जाता है और वह यह है कि स्थानीय निकाय आखिर सरकार की ही अधीनस्थ इकाइयां हैं, केन्द्रीय सरकार, राज्यों और स्थानीय निकायों को मिलाकर सम्पूर्ण सरकार बनती है और प्रशासन का एक अंग प्रशासन के दूसरे अंग पर कर नहीं लगा सकता। यह तर्क भी मान्य नहीं है। मैं आपको एक अन्य उदाहरण दूंगा। आप एक ही सरकार के दो विभागों को लें। यदि केन्द्रीय सरकार का एक विभाग दूसरे विभाग को तार भेजता है तो स्वाभाविक है कि उसे तार शुल्क अदा करना होगा। एक विभाग नामे डालता है और दूसरा विभाग जमा करता है। अत: मेरा निवेदन है कि इस मामले में यह सुविधा का और सापेक्ष आवश्यकता का प्रश्न अधिक है, न कि शुद्ध सिद्धांत का अथवा कड़े नियम का।

जहां तक सापेक्ष आवश्यकता का संबंध है, मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछना चाहूंगा कि क्या स्थानीय निकाय की धन की आवश्यकता अधिक है अथवा संघ की सम्पत्ति को कराधान से मुक्त रखने की आवश्यकता अधिक है। स्थानीय निकाय प्रतिदिन लोगों के सम्पर्क में आते हैं, इनके क्रियाकलापों का लोगों के दैनिक जीवन से संबंध रहता है, अत: यह स्वाभाविक है कि उनके उत्तरदायित्व भी अधिक होते हैं। उनकी वित्तीय स्थिति पहले ही सुदृढ़ नहीं है। केन्द्रीय सरकार उन्हें कोई अनुदान नहीं देती। और केन्द्रीय सरकार यदि उन्हें कोई अनुदान नहीं देती तो उसे कम से कम अपनी सम्पत्तियों पर स्थानीय निकायों को कर क्यों नहीं अदा करना चाहिए? इन करों से स्थानीय निकायों की कार्यकुशलता बढ़ेगी और उस सीमा तक बढ़ी हुई स्थानीय निकायों की कार्यकुशलता से स्थानीय निकायों के क्षेत्रों में स्थित केन्द्रीय सरकार की सम्पत्तियां और उन सम्पत्तियों से लाभ उठाने वाले व्यक्ति लाभान्वित होंगे। फिर संघ सरकार द्वारा एक-एक भेद किया जाता है। संघ सरकार सेवाओं के लिए लगाये जाने वाले कर अदा करने को तैयार है। मैं जानता हूं कि सेवाओं संबंधी करों और गैर सेवा करों के बीच भेद किया जाता है, परन्तु वह भेद केवल इस सिद्धांत के आधार पर किया जाता है कि स्थानीय निकायों को सेवाओं संबंधी करों से कोई लाभ नहीं अर्जित करने चाहिए। कोई सेवा संबंधी कर ठीक उसी राशि तक सीमित होना चाहिए जो इस सेवा के प्रयोजनार्थ आवश्यक है। सेवाओं संबंधी कर और गैर-सेवा कर के वर्गीकरण की व्यवस्था इसी आशय से की गई थी। इसका अर्थ यह नहीं हैं कि गैर-सेवा करों से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।

स्थानीय निकायों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाओं से अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है। मान लीजिये कि किसी नगर में केन्द्रीय सरकार का एक बहुत बड़ा कार्यालय है और उस कार्यालय तक सड़क से होकर पहुंचने का रास्ता है। स्थानीय निकाय द्वारा उस सड़क का निर्माण किया जाता है, वहां प्रकाश की व्यवस्था की जाती है और उसकी सफाई की जाती हैं। आप कहेंगे कि क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से उसका लाभ नहीं होता अतः आप गैर सेवा कर अदा करने के लिए बाध्य नहीं हैं, परन्तु आपको स्थानीय निकाय की सामान्य सेवा का लाभ अवश्य प्राप्त होता है जिसका इन गैर सेवा करों द्वारा रख रखाव होता है। अतः इस संबंध में इस भेद का लाभ नहीं उठाया जाना चाहिए। स्थानीय निकायों का रख रखाव किया जाना आवश्यक है और राज्य से अथवा केन्द्र से अनुदान प्राप्त किये बिना ही वे कार्य नहीं कर सकते। इसमें सिद्धांत का कोई प्रश्न नहीं है, स्वयं अनुच्छेद में ही एक अपवाद है, और इसलिए इस संशोधन को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

यह बात निश्चित रूप से स्वीकार्य है कि केन्द्र अनिवार्यतः शक्तिशाली होना चाहिए परन्तु दुर्बल इकाइयों अथवा दुर्बल लघु इकाइयों के आधार पर केन्द्र शक्तिशाली नहीं हो सकता। ये स्थानीय निकाय लघु इकाइयां हैं जिनका जनता से घनिष्ठ सम्पर्क होता है और जब तक वे कुशलतापूर्वक कार्य नहीं करते और शक्तिशाली नहीं होते तब तक उनकी अकुशलता एवं दुर्बलता का प्रभाव स्वयं संघ सरकार पर पड़ना अवश्यम्भावी है। अतः मैं संशोधन का समर्थन करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** महोदय, अब प्रस्ताव मतदान के लिए रखा जाये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि प्रश्न अब मतदान के लिए रखा जाये"।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***श्री आर.के. सिधवा:** जो सदस्य बोले हैं उनके विचारों की समानता की दृष्टि से क्या माननीय डॉ. अम्बेडकर कृपया स्थिति पर पुनर्विचार करेंगे?

***बाबू राम नारायण सिंह** (बिहार : जनरल): महोदय, यह अनुच्छेद बहुत महत्वपूर्ण है अतः इस पर चर्चा इतनी जल्दी समाप्त नहीं की जानी चाहिए।

***अध्यक्ष:** सदस्यों ने अपने-अपने विचार सदन के समक्ष व्यक्त कर दिये हैं। अब डॉ. अम्बेडकर वाद-विवाद का उत्तर देंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, सर्वप्रथम मैं प्रस्तावित अनुच्छेद के खण्ड (2) के उपबन्धों का उल्लेख करूंगा। मैं समझता हूं कि इस बात पर सभी सहमत होंगे कि इस खण्ड (2) का आशय यथापूर्व स्थिति बनाये रखना है। फलतः खण्ड (2) के उपबंधों के अन्तर्गत जो नगरपालिकाएं संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले संघ की सम्पत्तियों पर कोई विशेष कर लगा रही हों ऐसी सम्पत्तियों पर अथवा किसी भी ऐसी सम्पत्ति पर जो उन करों के लगाये जाने के लिए दायी हों अथवा दायी मानी जाती हों, वे कर लगाती रहेंगी। खण्ड (2) का मात्र यही प्रयोजन है कि जो कर इस समय लगाये जा रहे हैं उनके स्वरूप की जांच करने का संसद को प्राधिकार हो। खण्ड (2) में केवल एक बचाव खण्ड के सिवाय और कुछ नहीं है, अर्थात्, "जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करें।" जब तक संसद अन्यथा उपबन्ध नहीं करे, वर्तमान स्थानीय प्राधिकरण चाहे वे नगरपालिकाएं हों अथवा स्थानीय बोर्ड, केन्द्र की सम्पत्तियों पर कर लगाते रहेंगे। अतः जहां तक यथापूर्व स्थिति का संबंध है, अनुच्छेद 264 में किये गये उपबन्धों के साथ कोई टकराव नहीं हो सकता।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

केवल एक यही प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि क्या खण्ड (2) द्वारा दिया गया अधिकार पूर्ण होगा अथवा उसमें अन्तर्विष्ट इस परन्तुक के अध्यधीन होगा कि "जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे" एक अन्य स्थान पर इस विषय पर चर्चा के दौरान मैंने सदन के विचारार्थ कुछ तर्क दिए थे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): वह "अन्य स्थान" कौन-सा है जिसका मेरे माननीय मित्र उल्लेख कर रहे हैं? क्या इस सभा का कोई अन्य सदन भी है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता, इसीलिए मैं "एक अन्य स्थान" कह रहा हूं। चूंकि वहां जो तर्क मैंने दिये थे उन्हें विकृत रूप में उद्धृत किया गया है, इसलिए मैं समझता हूं कि सदन उनके महत्व से प्रभावित नहीं हुआ है। अत: मैं अपने उन तर्कों को दोहराना चाहूंगा चूंकि वे मेरे ही तर्क हैं और मैं उन्हें इस तरह दोहराना चाहूंगा कि सदन उन्हें समझ सके।

तब मैंने कहा था कि स्थानीय प्राधिकरण को इस बात का पूर्णाधिकार देना कठिन है कि वह संघ की सम्पत्तियों पर बिना किसी सीमा अथवा शर्त के जैसे चाहे कर लगाये और इसके लिए मैंने दो तर्क दिये थे। प्रथम, मैंने कहा था, और अब मैं यहां भी कहता हूं, कि सिद्धांत रूप से यह सोचना असम्भव है कि किसी संगठन विशेष में किसी व्यक्ति का अथवा उसके हितों का प्रतिनिधित्व न हो और उस संगठन को उस व्यक्ति की सम्पत्ति पर कर लगाने का असीम अधिकार दे दिया जाये। यह सिद्धांत प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल है और मैंने कहा था कि जहां तक स्थानीय प्राधिकरणों का संबंध है, चाहे वे नगरपालिकाएं हों अथवा स्थानीय निकाय या जिला बोर्ड हों, उनमें केन्द्रीय सरकार का वास्तव में कोई प्रतिनिधि नहीं होता। यही बात मैंने अन्यत्र कही थी। दूसरे मैंने कहा था कि किसी स्थानीय निकाय को कराधान का अधिकार स्थानीय विधानमण्डल, अर्थात् राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधि से प्राप्त होता है। केन्द्र के लिए यह जानना असम्भव है कि कराधान का कौन-सा विशेष स्रोत, जो संविधान द्वारा राज्य विधानमंडल को दिया गया है, उस राज्य विधानमंडल द्वारा स्थानीय प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया जायेगा। स्थानीय प्राधिकरण की कराधान की शक्ति आखिर राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई जाने वाली विधि से ही प्राप्त होगी। इस समय यह जानना पूर्णत: असम्भव है कि राज्य विधानमण्डल केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति पर स्थानीय निकाय को कौन-सा विशेष कर लगाने का अधिकार देगा फलत: यह न जानते हुए कि कर का स्वरूप क्या होगा, कितना कर लगाया जायेगा, केन्द्रीय सरकार से यह आशा करना वस्तुत: अनुचित है कि वह कर का स्वरूप जाने बिना, उसका परिणाम जाने बिना, स्थानीय निकाय के प्राधिकार के प्रति अपने को समर्पित कर दे।

यही कारण है कि खण्ड (2) में यह प्रतिबन्ध रखने का विचार है कि, इससे पहले कि संसद स्थानीय प्राधिकरण को केन्द्र की सम्पत्ति पर कर लगाने दे, संसद को अवसर प्राप्त होना चाहिए कि वह स्थानीय प्राधिकरण की करारोपण की शक्ति की जांच करे और यह भी देखे कि स्थानीय प्राधिकरण कितना कर लगाना चाहता है। जैसाकि मैंने कहा, संसद का अथवा जिन्होंने इस अनुच्छेद का प्रस्ताव किया है उनका ऐसा आशय कदापि नहीं है कि संसद खण्ड (2) द्वारा प्राप्त अधिकार

का जब प्रयोग करे तो वह स्थानीय प्राधिकरण द्वारा लगाये जाने वाले करों से केन्द्रीय सम्पत्ति को पूर्णतया मुक्त रखे। इस परन्तुक को जोड़ने का मात्र यही कारण है कि पूर्व इसके कि संसद स्थानीय प्राधिकरण द्वारा केन्द्र की सम्पत्ति पर लगाये जाने वाले कर को स्वीकार करें, संसद को उन करारोपण प्रस्तावों की जांच करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। जहां तक खण्ड (2) का संबंध है मैं नहीं समझता कि इसमें कोई असमानता की बात है। दूसरे, स्थानीय प्राधिकरणों को जो वित्तीय संसाधन इस समय उपलब्ध है उनमें खण्ड (2) से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

तथापि, एक बात अब मेरे ध्यान में आई है कि खण्ड (1) में एक प्रकार की त्रुटि है जिसे दूर करने के लिए मैं तैयार हूं। खण्ड (2) उन नगरपालिकाओं अथवा स्थानीय प्राधिकरणों के मामलों से संबंधित है जो वह कर लगाते रहे हैं। हमारा भी यह विचार है कि यह वांछनीय है कि यह अधिकार केवल उन नगरपालिकाओं अथवा स्थानीय प्राधिकरणों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए जो इस प्रकार का प्रयोग करते रहे हैं, अपितु संसद केन्द्र की सम्पत्ति पर करारोपण का विशेषाधिकार उन नगरपालिकाओं तथा स्थानीय बोर्डों को भी दे जिन्होंने अब तक इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया अथवा कर नहीं पाये। अतः मैं खण्ड (1) में निम्नलिखित शब्द जोड़ने के लिए तैयार हूं:

"After the words 'The property of the Union shall' the words save in so far Parliament may by Law otherwise provide,' be added."

["'किसी राज्य द्वारा', शब्दों से पहले 'जहां तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, वहां तक' शब्द जोड़े जाएं।"]

इसका आशय यह है कि संसद को यह अधिकार मिल जायेगा कि वह अन्य ऐसी नगरपालिकाओं को तथा अन्य स्थानीय बोर्डों को करारोपण का अधिकार दे सके अथवा उनके द्वारा करारोपण को मान्यता दे सके जिन्हें अब तक ऐसी मान्यता प्राप्त नहीं है। मैं समझता हूं कि यह एक त्रुटि है जिसे मैं सुधारने के लिए तैयार हूं ताकि जो स्थानीय प्राधिकरण करारोपण करते रहे हैं और जो नहीं करते रहे हैं उनमें कोई भेदभाव न रहें। संविधान को स्वीकृत करने के पश्चात् भी संसद को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह विधि का निर्माण करके उन नगरपालिकाओं और स्थानीय प्राधिकरणों को करारोपण का अधिकार दे सके जो अब तक करारोपण नहीं कर रहे हैं। इससे परे जाने के लिए मैं तैयार नहीं हूं।

***श्री श्यामनन्दन सहाय** (बिहार : जनरल) वर्तमान भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत भी नगरपालिकाओं को भारत सरकार के भवनों पर करारोपण की अनुमति नहीं थी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यही बात मैंने कही है। मैं अपना तर्क विस्तृत रूप में रख सकता था परन्तु मैं ऐसा नहीं चाहता क्योंकि मैंने स्वीकार कर लिया है कि यथापूर्व स्थिति बनाये रखनी चाहिए। केवल संवैधानिक दृष्टि से मुझे खण्ड (2) पर घोर आपत्ति होती और मैं इसकी अनुमति न देता परन्तु हम प्रारम्भिक अवस्था से नहीं चले हैं, इस पर बहुत कुछ लिखा गया है जो हमारे समक्ष है, अतः जो लिखा है उसे मैं समाप्त करना नहीं चाहता। यही कारण है कि मैं खण्ड (2) को रखूंगा और खण्ड (1) संशोधित करूंगा जिससे कि संसद उन नगरपालिकाओं को केन्द्रीय सम्पत्ति पर करारोपण की अनुमति दे जो अब तक उस पर करारोपण नहीं करती रही है।

***बाबू राम नारायण सिंह:** डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि संसद स्थानीय निकायों के अपने-अपने दावों पर बाद में विचार करेगी। मैं जानना चाहता हूं कि इस संविधान

[बाबू राम नारायण सिंह]

के पारित होने का तत्काल क्या परिणाम होगा। उदाहरणार्थ मेरे प्रान्त बिहार में कुछ जिला बोर्ड, विशेषकर हजारी बाग जिला बोर्ड, सरकारी कोयला खान से सड़क उपकर के रूप में सदा भारी राशि प्राप्त करते हैं। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या इस संविधान के पारित होते ही वह अदायगी समाप्त कर दी जायेगी अथवा संसद द्वारा इसका निर्णय किये जाने तक वह अदायगी जारी रहेगी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मैं करारोपण के अलग-अलग मामलों पर कोई मत व्यक्त नहीं कर सकता, परन्तु सामान्य प्रस्ताव पूर्णतया स्पष्ट है कि यदि कोई नगरपालिका अथवा स्थानीय बोर्ड केन्द्र की सम्पत्ति पर तथा ऐसी अन्य सम्पत्ति पर जिसकी करारोपण के लिए देयता ठहराई जाये, कर लगाता रहा तो वह आगे भी लगाया जाता रहेगा। जो नगरपालिकाएं वे कर लगा रही हैं उनकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा।

***श्री आर.के. सिधवाः** इस समय, भारतीय रेलवे करारोपण अधिनियम के अंतर्गत, यदि स्थानीय निकाय कर की अदायगी की मांग करते हैं तो उसके लिए एक अधिसूचना जारी करनी होती है। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या डॉ. अम्बेडकर उस धारा को संशोधित करने पर विचार करने के लिए तैयार हैं? निस्संदेह, इसमें यहां संशोधन नहीं किया जा सकता, परन्तु क्या रेलवे मंत्री यह आश्वासन देने के लिए तैयार हैं कि संसद में उसमें संशोधन होने जा रहा है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मेरी कामना है कि मेरे मित्र श्री सिधवा रेलवे कराधान अधिनियम से उचित सबक सीखें, संसद ने एक अधिनियम पारित करके स्वेच्छा से मान लिया है कि स्थानीय प्राधिकरण रेलवे की सम्पत्ति पर कर लगा सकते हैं। कोई भी संसद स्वेच्छा से मान सकती है कि स्थानीय प्राधिकरण उसकी सम्पत्ति पर कर लगाये और यह संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि संसद इसी ढंग से अपनी अन्य सम्पत्तियों पर स्वेच्छा से कर लगाये जाने की अनुमति नहीं देगी। यदि रेलवे सम्पत्ति करारोपण अधिनियम को उचित ढंग से कार्य रूप नहीं दिया जाता अथवा यदि उसमें कोई त्रुटि है तो संसद उसमें संशोधन कर सकती है और मैं समझता हूं कि श्री सिधवा न्यायालय में भी जा सकते हैं और यदि रेलवे सम्पत्ति करारोपण अधिनियम के अन्तर्गत धन देय हो तो उसे वसूल कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन सदन के मतदान के लिए रखूंगा। संख्या 435, श्री सिधवा।

***श्री आर.के. सिधवाः** महोदय, उन्होंने खण्ड (1) में जो सुधार किया है उसको देखते हुए मैं अपने संशोधन पर जोर नहीं देता।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं खण्ड (1) में डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा रूप भेदित रूप में प्रस्तावित अनुच्छेद को सभा के मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 264, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 264, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 265

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 265, एक संशोधन है जिसकी सूचना पंडित गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा दी गई है और इसमें अनुच्छेद 264-क रखने का प्रस्ताव है, परन्तु वह उपस्थित नहीं हैं। अत: अब हम अनुच्छेद 265 को लेते हैं। संशोधन संख्या 306।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय मैं प्रस्तुत करता हूं: "कि अनुच्छेद 265 में, 'a Union railway (संघ रेल)' शब्दों, जहां कभी भी इनका प्रयोग हुआ हो, के स्थान पर, 'any railway (किसी रेल)' शब्द रखे जाएं।"

सप्तम अनुसूची की सूची 1 में हमने जो परिवर्तन किये हैं यह मुख्यत: उनका पारिणामिक संशोधन है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 265 में, संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2953 के संदर्भ में–

(क) 'save in so far as Parliament may, by law, otherwise provide (जहां तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे)' शब्द निकाल दिये जायें,

(ख) 'any such law imposing (तथा विद्युत के विक्रय पर कोई कर-आरोपण करने)' से आरम्भ होने वाले और 'substantial Quantity of electricity (विद्युत की प्रचुर मात्रा के अन्य उपभोक्ताओं से लिया जाता है, इतना कम होगा जितनी कि कर की राशि है)' से समाप्त होने वाले शब्द निकाल दिये जायें।"

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद में चूंकि कोई अन्य संशोधन प्रस्तुत करने के लिए नहीं है अत: यदि कोई सदस्य बोलना न चाहता हो तो मैं प्रश्न सभा के मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 265 में, 'a Union railway (संघ रेलवे)' शब्दों, जहां कहीं भी ये प्रयोग में आये हों, के स्थान पर, 'any railway (कोई रेलवे)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 265 में, संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2953 के संदर्भ में–

(क) 'save in so far as Parliament may, by law otherwise provide (जहां तक कि संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे)' शब्द निकाल दिये जायें,

[अध्यक्ष]

(ख) 'any such law imposing (तथा विद्युत के विक्रय पर कर-आरोपण करने)' से आरम्भ होने वाले और 'substantial quantity of electricity (विद्युत की प्रचुर मात्रा के अन्य उपभोक्ताओं से लिया जाता है, इतना कम होगा, जितनी कि कर की राशि है)' से समाप्त होने वाले शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है किः

"कि अनुच्छेद 265, संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने।"

प्रस्तावित स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 265, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 265-क

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं: "कि अनुच्छेद 265 के पश्चात् यह अनुच्छेद अन्तःस्थापित किया जायेः

Exemption from taxation by State in respect of water or electricity in case of certain authorities.

'265 A. (1) Save in so far as the President may by order other wise provide, no law of a state in force immediately before the commencement of this Constitution shall impose, or authorise the imposition of , a tax in respect of which any water or electricity stored, generated, consumed, distributed or sold by any authority established by any existing law or any law made by Parliament for regulating or developing any inter-State river or river-valley.

Explanation—In this clause, the expression 'law in force' has the same meaning as in artile 307 of this Constitution.'"

पानी या विद्युत के विषयों में राज्य द्वारा लिये जाने वाले करों से कुछ अवस्थाओं में विमुक्ति।

[265-क (1) जहां तक कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्यथा उपबन्ध करे, उसको छोड़कर इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले किसी राज्य में की गई प्रवृत्ति विधि, किसी पानी या विद्युत के बारे में, जो किसी अन्तर्राज्यिक नदियों या नदी-दूनों के विनियमन या विकास के लिए किसी वर्तमान विधि से, अथवा संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि से, स्थापित किसी प्राधिकारी द्वारा जमा की गई, पैदा की गई, उपमुक्त, वितरित या बेची गई है, कोई कर आरोपित नहीं करेगी और न कर का आरोपित करना प्राधिकृत करेगी।

व्याख्या.—इस खण्ड में, "प्रवृत्ति विधि" अभिव्यक्ति का वही अर्थ है जो इस संविधान के 307 अनुच्छेद में है।]

अनुच्छेद के निम्नलिखित पैराग्राफ में, मैं आपकी अनुमति से कुछ नये शब्द पुन:स्थापित करना चाहता हूं और उन शब्दों के साथ मैं इसे पेश करता हूं:–

"(2) The Legislature of a State may by law impose, or authorise the imposition of, any such tax as is mentioned in clause (1) of this article but no such law have any effect unless it has, after having been reserved for the consideration of the President, received his assent, and if any such law provides for the fixation of the rates and other incidents of such tax by means of rules or orders to be made under the law by any authority, the law shall provide for the previous consent of the President being obtained to the making of any such rule or order."

[(2) किसी राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में वर्णित कोई कर आरोपित या आरोपित करना प्राधिकृत, कर सकेगा, किन्तु ऐसी किसी विधि का तब तक कोई प्रभाव न होगा जब तक कि उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए रक्षित रखे जाने के पश्चात् उसकी अनुमति मिल गई हो, तथा यदि ऐसी कोई विधि ऐसे करों की दरों और अन्य प्रासंगिक बातों को किसी प्राधिकारी द्वारा, उस विधि के अधीन बनाये जाने वाले नियमों या आदेशों के द्वारा, नियत करने का उपबंध करती है, तो वह विधि ऐसे किसी नियम या आदेश के बनाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति किए जाने का उपबंध करेगी।]

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद संशोधन संख्या 308 पेश नहीं कर रहे हैं। चूंकि इस प्रस्ताव में अन्य कोई संशोधन नहीं है, मैं इस सभा के मतदान के लिए रखूंगा। प्रश्न यह है:

"कि नया अनुच्छेद 265-क संशोधित रूप में पेश किये गये रूप में संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नया अनुच्छेद 265-क संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 266

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 266 के स्थान पर यह अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए:

'266. (1) The property and income of a State shall be exempt from Union taxation.

Exemption of the Governments of States in respect of Union taxation.

(2) Nothing in cluase (1) of this article shall prevent the Union from imposing or authorising the imposition of any tax to such extent, if any, as Parliament may by law provide in respect of a trade or business of any kind carried on by, or on behalf of, the Government of a State, or any operations connected therewith, or any property used or occupied for the purposes thereof, or any income accruing or arising therefrom.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall apply to any trade or business, or to any class of trade or business which Parliament, may by law declare as being incidential to the ordinary functions of government.'"

संघ के कराधान से राज्यों की सरकारों की विमुक्ति।

[266. (1) राज्य की सम्पत्ति और राज्य संघ के कराधान से विमुक्ति होगी।

(2) खण्ड (1) की किसी बात से संघ को राज्य की सरकार द्वारा, या की ओर से, किए जाने वाले किसी प्रकार के व्यापार या कारोबार के बारे में, अथवा उनसे संबंधित किन्हीं क्रियाओं के बारे में, अथवा उनके प्रयोजनों के लिए उपयोग में आने वाली या आधिपत्य में की गई, किसी सम्पत्ति के बारे में अथवा उनसे प्रोद्भूत या उत्पन्न किसी आय के बारे में, किसी कर को ऐसे विस्तार तक, यदि कोई हो, जिसे कि संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, आरोपित करने या आरोपित करना प्राधिकृत करने में रुकावट नहीं होगी।

(3) खण्ड (2) की कोई बात किसी ऐसे व्यापार या कारबार अथवा व्यापार या कारबार के किसी ऐसे प्रकार को लागू न होगी जिसे कि संसद विधि द्वारा घोषित करे कि वह सरकार के मामूली कृत्यों से प्रासंगिक है।]

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): मैं संशोधन संख्या 309 पेश नहीं कर रहा हूं।

***श्री पी.टी. चाको** (त्रावनकोर और कोचीन संयुक्त राज्य): मैं प्रस्ताव करता हूं:

"That in amendment No. 272 of list IV (Seventh Week) in clause (2) the proposed article 266 after the words 'trade or business of any kind carried on' the words 'beyond its limits' be inserted."

[कि सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 272 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 266 के खण्ड (2) में किए जाने वाले 'किसी प्रकार के व्यापार या कारोबार' शब्दों से पहले 'उसकी सीमाओं से परे' शब्द रखे जाएं।]

मेरे संशोधन का प्रयोजन यह है कि किसी राज्य की सभी प्रकार की सम्पत्ति एवं आय को, चाहे वह राज्य अपनी सीमाओं के भीतर ही कारोबार या व्यापार कर रहा हो, संघ के कराधान से छूट हो। उस मामले में जहां राज्य अपनी सीमाओं से परे कारोबार या व्यापार कर रहा हो संघ की राज्य की सम्पत्तियों या आय पर कर लगाने की कोई शक्ति नहीं होगी। जब इस सभा ने अनुच्छेद 264 को स्वीकृति दी थी जिसमें राज्य द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कर लगाये जाने से छूट की व्यवस्था है, तब इसने अन्तःशासकीय कराधान से छूट के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था। मैं केवल यह चाहता हूं कि इस सिद्धांत का विस्तार किया जाये और इसे राज्यों के मामलों में भी लागू किया जाये। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में संघ की सम्पत्ति अथवा राज्य की सम्पत्ति पर पारस्परिक कराधान से छूट की कोई व्यवस्था नहीं है। परन्तु संविधान की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने पारस्परिक कराधान से छूट का सिद्धांत स्पष्टतः निर्धारित किया है। इस निर्णय पर पहुंचा गया था कि कर लगाने की शक्ति से दूसरे पक्ष के संसाधनों

को समाप्त किया जा सकता है। हाल में कुछ समय पहले तक तो राज्य के किसी अधिकारी की आय पर संघ का कर नहीं लगता था। बाद में इस सिद्धांत को लागू करते हुए उच्चतम न्यायालय ने एक ओर सरकारी तथा परम्परागत कृत्यों के बीच व दूसरी ओर राज्यों द्वारा केवल लाभ अर्जित करने के विचार से किये जाने वाले व्यापार अथवा वाणिज्य के बीच स्पष्ट अन्तर करना आरम्भ कर दिया। राज्य द्वारा किये जाने वाले व्यापार अथवा वाणिज्यिक के मामलों में छूट बन्द कर दी गयी, क्योंकि उसे सरकारी कृत्यों से भिन्न करार दिया गया। परन्तु "सहकारी कृत्य" को परिभाषित करना इतना सरल नहीं है। अतीत में जिस कार्य को राज्य के कार्यकलापों का खतरनाक विस्तार माना जाता होगा, उसे अब सरकार का अपरिहार्य कृत्य माना जा सकता है। राज्य सरकार का अस्तित्व केवल अपने लिये नहीं होता है। वह केवल लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से गैर सरकारी क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करती। निस्संदेह सार्वजनिक उपयोगिता की सीमाओं और प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना राज्य का कर्तव्य है। आजकल राज्य की अवधारणा ऐसी है कि उसके अपनी सीमा के भीतर व्यापार अथवा वाणिज्य करने के काम को प्राय: राज्य का कृत्य ही माना जाता है, कामनवेल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया के संविधान में पारस्परिक कराधान से छूट के संबंध में एक स्पष्ट उपबंध है। उपर्युक्त संविधान की धारा 114 इस प्रकार है:

> "कोई राज्य कामनवेल्थ की संसद की सहमति के बिना नौसेना अथवा थलसेना नहीं बनायेगा अथवा उसका रखरखाव नहीं करेगा अथवा कामनवेल्थ की किसी प्रकार की सम्पत्ति पर कोई कर नहीं लगायेगा और न ही कामनवेल्थ किसी राज्य की किसी राज्य की सम्पत्ति पर कोई कर लगायेगा।"

यह अनिवार्य उपबंध है और राज्य की सब प्रकार की सम्पत्तियां कर से मुक्त हैं।

महोदय, दूसरी बात यह है कि यदि राज्य की सम्पत्ति पर बिना सोच विचार किये अन्धाधुंध कर लगाने की शक्ति संघ को दे दी गयी तो इससे राज्य की प्रगति में बाधा पड़ेगी। कराधान सदैव दोहरी धार वाला हथियार होता है और इसमें कराधान व्यवस्था को विनियमित करने की असीम शक्ति होती है। राज्य द्वारा चलाये जाने वाले किसी उद्योग पर कोई कर लगाये जाने से उस राज्य का वह उद्योग चलाने का उत्साह समाप्त हो जाता है। इसका परिणाम यह होगा कि सार्वजनिक उपयोगिता वाली सेवाओं अथवा अन्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने के प्रति राज्य निरुत्साहित होगा। कुछ प्रगतिशील राज्यों के पास सामाजिक कार्यक्रम से संबंधित कुछ सुनियोजित योजना हो सकती है। इसमें पहले से ही विद्यमान अनेक बाधाओं में आप एक और बाधा जोड़ कर ऐसे सामाजिक कार्यक्रम को ठप्प कर रहे हैं।

संक्षेप में, इस कराधान के परिणामस्वरूप राज्य द्वारा किये जाने वाले सामाजिक कार्यों के क्रियान्वयन में बाधा पड़ेगी और वास्तव में इससे राज्य की अपनी जनता की सेवा करने की क्षमता कम हो जायेगी। राज्य को कोई ऐसी व्यक्ति नहीं समझा जा सकता जो अपना कारोबार चला रहा हो। व्यक्ति के मामले में सारा लाभ उसकी जेब में जाता है जिसके परिणामस्वरूप धन उसके हाथों में सिमट जाता है और उससे उसकी आर्थिक शक्ति में वृद्धि हो जाती है, जिसका उपयोग वह अपने सहयोगियों का और शोषण करने के लिए कर सकता है। व्यक्ति की आय पर इस प्रयोजन से कर लगाया जाता है कि उसके हाथों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न होने पाये। राज्य के मामले में यह है कि अपने द्वारा अर्जित लाभ का उपयोग राज्य अपनी जनता की और अधिक अच्छी तरह सेवा करने के लिए कर सकता है।

[श्री पी.टी. चाको]

मैं यह भी कहना चाहता हूं कि प्रस्तावित कराधान से उद्योगीकरण जो हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है के प्रसार में भी बाधा पड़ेगी। उदाहरण के लिए मेरे राज्य त्रावणकोर को ही लीजिए। इस राज्य में सघन आबादी है। यह भारत में ही नहीं अपितु समूचे विश्व में सर्वाधिक सघन आबादी वाला राज्य है। अधिकांश लोग खेती पर निर्भर करते हैं। वहां पर कृषि योग्य भूमि बहुत सीमित है। अन्य स्थानों पर उपलब्ध भूमि की काश्त के लिए श्रमिकों की व्यवस्था करना एक बड़ी समस्या है, जबकि त्रावणकोर में उपलब्ध श्रमिकों का उपयोग करने के लिए भूमि जुटाने की समस्या है। ऐसे राज्य में जनता की समस्या का एकमात्र समाधान राज्य का उद्योगीकरण ही है। अत: राज्य ने उद्योगीकरण की एक सुदृढ़ नीति तैयार की और पांच करोड़ की भारी भरकम रकम इस प्रयोजन के लिए लगा दी। उद्योगीकरण के कार्य में राज्य को भारी सफलता मिली है। प्रस्तावित कराधान का प्रभाव निश्चय ही यह होगा कि उद्योगों में और अधिक पूंजी लगाने का इस जैसे राज्य का उत्साह कम हो जायेगा। इस प्रकार के राज्य के लिए उद्योगीकरण एक महत्वपूर्ण समस्या है, राज्य के 70 लाख निवासियों के लिये यह जीवन मरण की समस्या है। राज्य का उद्योगीकरण करना वहां पर सरकारी कृत्य है। राज्य की सम्पत्ति पर और राज्य द्वारा चलाये जा रहे उद्योगों पर कर लगाने की शक्ति केन्द्रीय सरकार को देने से राज्य उद्योगों में और पूंजी लगाने के प्रति हतोत्साहित होंगे। इसके अतिरिक्त, निजी उद्यमियों के लिए राज्य के कुछ संसाधनों का उपयोग करना असम्भव हो जायेगा। ऐसे मामलों में, जहां कोई व्यक्ति निजी पूंजी लगाने को तैयार न हों, राज्य का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे प्रयोजनों के लिए पूंजी लगाये। इस प्रकार का कर ऐसे संसाधनों का उपयोग करने के लिए राज्य द्वारा धन लगाये जाने में बाधक होगा और राज्य को हतोत्साहित करेगा।

अन्त में, महोदय, मैं यह कहना चाहूंगा कि प्रस्तावित कर से राज्य के साधारण काम काज में भी बाधा पैदा हो सकती है। जैसा कि मुख्य न्यायधीश मार्शल ने कहा है, कि कर लगाने की इस शक्ति से दूसरे पक्ष के संसाधनों को समाप्त किया जा सकता है। यदि कर लगाने की शक्ति को स्वीकार कर लिया गया तो कराधान की सीमा निर्धारित करने में राज्य की राय का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। कर लगाने का अधिकार प्राप्त हो जाने पर यदि कर कम लगाया जा सकता है तो अधिक भी लगाया जा सकता है। यदि किसी राज्य पर हल्का कर लगाया जा सकता है तो भारी कर भी लगाया जा सकता है। सामान्यत: राज्य कर सीमा से बाहर किये जाने वाले व्यापार या वाणिज्य को मात्र शासकीय कृत्य से भिन्न माना जा सकता है। किसी राज्य द्वारा उसकी अपनी राज्य सीमा से बाहर किये जाने वाले व्यापार का उद्देश्य केवल लाभ अर्जित करना हो सकता है, और यही उचित कारण है जिसकी वजह से राज्य द्वारा अपनी सीमा से बाहर किये गये व्यापार पर संघ द्वारा कर लगाया जा सकता हैं मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि प्रस्तावित अनुच्छेद का आधारभूत सिद्धांत युक्तिसंगत नहीं है। संघ को दी जाने वाली प्रस्तावित शक्ति से राज्य की प्रगति में निश्चय ही बाधा पड़ेगी। इससे राज्य को सामाजिक कार्यक्रमों में रुकावट आयेगी। इससे औद्योगीकरण का प्रसार रुक जायेगा और अन्त में, इससे राज्य का कार्य संचालन ही ठप्प हो सकता है। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह राज्यों व उनके सामाजिक कार्यक्रमों पर पड़ने वाले इसके प्रत्यक्ष प्रभाव पर विचार करे।

*__श्री एस.पी. नटराज पिल्ले__ (त्रावणकोर और कोचीन संयुक्त राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 272 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 266 के खंड (2) में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that the trade or business which was carried on by or on behalf of the Government of a State before the commencement of this Constitution and any income accruing or arising therefrom shall not be liable to Union Taxation.'"

[परन्तु इस संविधान के लागू होने से पूर्व किसी राज्य सरकार द्वारा अथवा उसकी ओर से किये जाने वाले व्यापार या कारबार और उससे प्रोद्भूत या उत्पन्न किसी आय पर संघ से कर आरोपित नहीं किये जा सकेंगे।]

महोदय, मेरे संशोधन का केवल सीमित उद्देश्य है। मैं राज्य में केवल विद्यमान वाणिज्य या व्यापार अथवा उससे प्रोद्भूत आय को संघ के कराधान से मुक्त करना चाहता हूं। इस संबंध में मेरा सभा से निवेदन है कि यदि इस अनुच्छेद को, जिस रूप में यह इस समय है, तत्काल लागू कर दिया गया तो राज्य की वित्त व्यवस्था एकदम लड़खड़ा जायेगी। और सम्भवत: सभी वित्तीय गतिविधियां ठप्प हो जायेंगी। कम से कम दक्षिण भारतीय राज्यों में तो निश्चय ही ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी। उदाहरण के लिए, महोदय, मैसूर और त्रावणकोर में गत दो दशकों या इससे अधिक अवधि में उद्योगीकरण की सक्रिय नीति अपनाई गई है और उसका अनुसरण किया गया है और उद्योगों में करोड़ों रुपये की धन राशि लगायी गयी है। यदि हम केवल त्रावणकोर के मामले पर ही विचार करें तो वहां उद्योगों में लगभग पांच छह करोड़ रुपये की धनराशि लगी हुई है और इस संसाधन से राज्य को प्रतिवर्ष पचास से साठ लाख रुपये तक का शुद्ध राजस्व प्राप्त होता है। उद्योगीकरण की नीति केवल जनता की भौतिक स्थिति में सुधार लाने के लिये ही नहीं अपनायी गयी थी बल्कि सरकार की उत्तरोतर बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धन जुटाने के एक तरीके के रूप में भी अपनाई गयी थी। यह प्रयास सफल रहा था। वित्तीय एकीकरण योजना के परिणामस्वरूप जिसे अब इस महासंघ बनने के परिणामस्वरूप अपनाया गया है जिसकी यहां व्यवस्था की जा रही है, वर्तमान अनुमान के अनुसार त्रावणकोर राज्य को अपने राजस्व में 40 प्रतिशत का घाटा उठाना होगा। आपको यह जानकर हैरानगी होगी कि त्रावणकोर अपने बजट में अपने राजस्व का 40 प्रतिशत शिक्षा, जन-स्वास्थ्य और सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर खर्च करने के लिए रखता है। इस वित्तीय एकीकरण के परिणामस्वरूप पड़ने वाले सम्भावित अन्तर के अतिरिक्त यदि वाणिज्य तथा उद्योगों से राज्य को होने वाली आय पर संघ कर तत्काल लागू कर दिया गया तो उपर्युक्त अन्तर बहुत अधिक बढ़ जायेगा और इसके परिणामस्वरूप राज्य की वित्तीय व्यवस्था ठप्प हो जायेगी।

परन्तु, महोदय, यह सब कुछ कहते हुए भी मैं एक क्षण के लिए भी यह नहीं भूलता कि संघ पर भारी जिम्मेदारियां हैं और उसे अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए वित्तीय संसाधन जुटाने की परम आवश्यकता है। परन्तु इसके साथ ही महोदय, केन्द्र को भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि यदि राज्यों को भी अपनी जिम्मेदारियां निभानी हैं, अपने कर्तव्यों को पूरा करना है तो उन्हें भी वित्तीय

[श्री एस.पी. नटराज पिल्लै]

संसाधन उपलब्ध होने चाहिएं। मैंने यहां पर कहते हुए सुना है कि केन्द्र का प्राधिकार अबाध और व्यापक है और उनकी मांगें सर्वोपरि हैं।, परन्तु मेरे विचार में यह दृष्टिकोण पूरी तरह सही नहीं है। जहां तक राज्यों व केन्द्र का संबंध है, वे केन्द्रीय सरकार के ही दो भिन्न-भिन्न व विशिष्ट कृत्यों का निर्वाह करते हैं। एक की अदक्षता अथवा अक्षमता दूसरे की दक्षता एवं क्षमता को निश्चय ही प्रभावित करेगी।

ऐसी परिस्थितियों में यह अत्यन्त आवश्यक है कि राज्य के वित्तीय संसाधनों पर किसी प्रकार का कोई ऐसा प्रभाव न पड़े जिससे राज्य के दक्षतापूर्वक कार्य करने में बाधा पड़े। इस संक्रमण काल में, जैसाकि मैंने पहले कहा है, जब विचाराधीन वित्तीय एकीकरण योजना के परिणामस्वरूप इस बात की सम्भावना है कि राज्य अपने राजस्व का 40 प्रतिशत भाग खो देगा, तो राज्य में वाणिज्य अथवा व्यापार से होने वाली आय पर आयकर लगाने का यह उपबन्ध लागू नहीं किया जाना चाहिये।

भारत सरकार ने एक भारतीय राज्य वित्त जांच समिति की नियुक्ति की थी और उन्होंने राज्य वित्त से संबंधित मामलों पर गम्भीरता से विचार-विमर्श करने के बाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रकाशित किया है। उस प्रतिवेदन के खण्ड एक के पृष्ठ 47 पर उन्होंने प्रारूप संविधान के अनुच्छेद 266 का उल्लेख किया है, जो कि इस मिलते-जुलते अनुच्छेद के बारे में है, और वह निम्नलिखित शब्दों में है:

> "फिर भी, हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि यदि इस उपबंध की उसके वर्तमान रूप में (अर्थात् राज्य के व्यापार पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र को दिये जाने के रूप में) अधिनियमित कर दिया जाये तो भारतीय राज्यों के वित्तीय संसाधनों पर इसका उस सीमा तक विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिस तक अब वे उन उद्यमों से करमुक्त आय प्राप्त करते हैं और कुछ राज्यों में यह आय बहुत अधिक हैं इसलिये हम सिफारिश करते हैं कि यदि अनुच्छेद 266 को उसके वर्तमान रूप में लागू किया जाना है तो राज्य के स्वामित्व वाले अथवा राज्य द्वारा संचालित विद्यमान उद्यमों को संघीय करों से उस सीमा तक छूट दी जानी चाहिये जितनी छूट के वे इस समय अधिकारी हैं...."

मैंने अपने संशोधन में इसी विचार को रखा है और मेरा उद्देश्य राज्य स्वामित्व वाले व राज्य द्वारा संचालित विद्यमान उद्यमों को संघीय कराधान से छूट दिलाना है। नया संविधान तुरन्त लागू किये जाने से उत्पन्न होने वाली कठिन स्थिति से निपटने के लिए राज्य को इस कदम से राहत मिलेगी। जब उनका राजस्व पर्याप्त कम हो जाना हो तो ऐसी स्थिति में हमें कोई ऐसा उपबन्ध अधिनियमित नहीं करना चाहिए जिससे राजस्व में और कमी हो जाये। प्रस्तावित अनुच्छेद का खण्ड (2) राज्यों में भविष्य में होने वाले व्यापार अथवा कारबार या उससे प्रोद्भूत आय पर कर लगाने का अधिकार संसद को प्रदान करता है। इसलिये जब ऐसा किया जा रहा है तो मैं इस सामान्य सिद्धांत से पूर्णतया सहमत हूं कि चूंकि आयकर संघीय वित्तीय की मद है अतः संघ को अपनी मांग पूरा करने के लिए आय पर कर लगाने का अधिकार व आवश्यकता है। परन्तु जब राज्य अपने द्वारा किये गये निवेश पर राजस्व की कुछ राशि प्राप्त कर रहा है और जब उसके आधार पर एक वित्तीय व्यवस्था बनी हुई है और उनका प्रशासनिक ढांचा उस पर आधारित

है तो इस कराधान को तुरन्त लागू करने और सारी व्यवस्था को बिगाड़ने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं होगी। इससे सरकार के कार्यकलापों की गति धीमी पड़ जायेगी और साथ ही प्रशासन की कार्यकुशलता में भी गिरावट आयेगी।

इसलिये मैं प्रारूप समिति से गम्भीरतापूर्वक अनुरोध करता हूं कि वह इस बात पर विचार करे कि क्या भारतीय राज्य वित्त जांच समिति द्वारा की गयी सिफारिश के अनुरूप यह छूट दी जा सकती है और मेरे संशोधन को स्वीकार करें जिससे, मैं महसूस करता हूं कि, वर्तमान स्थिति में राज्य को पर्याप्त सहायता मिलेगी। त्रावणकोर को, जिस स्थिति में वह इस समय है, आवश्यकता से अधिक जनसंख्या और पुनर्गठन योजनाओं की गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उसने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की नीति अपनायी है, उसका अगला कदम मद्यनिषेध लागू करना है और वहां भू-राजस्व निर्धारण और मूल कर पर कराधान की व्यवस्था में सुधार लागू किये जा रहे हैं। मेरे विचार में ऐसे राज्य को बिना स्तर गिराये प्रशासन चलाते रहने देने के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध कराना उचित ही होगा।

***श्री एस.बी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैंने दो संशोधन संख्या 312 व 436 भेजे हैं। मैं दोनों को प्रस्तुत करूंगा, वे एक ही मामले से संबंधित हैं।

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 4 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 272 में प्रस्तावित अनुच्छेद 266 के खण्ड (3) के स्थान पर यह रखा जाये:–

'(3) Nothing in clause (2) shall apply to—

(a) any trade or business, or to any class of trade or business which the Government of a State was carrying on as an ordinary function of such Government, at the commencement at this Constitution.'"

[(3) खण्ड (2) की कोई भी बात—

(क) किसी व्यापार या कारबार, अथवा व्यापार का कारबार के प्रकार को लागू नहीं होगी जिसे राज्य सरकार इस संविधान के लागू होने के समय उस सरकार के साधारण कृत्य के रूप में चला रही थी।]

महोदय, मैं खण्ड (ख) को प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं क्योंकि यह पहले से ही उसमें है।

महोदय, मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं कि:–

"कि सूची 5 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 312 में, अनुच्छेद 266 के प्रस्तावित खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में,

at the commencement of this Constitution शब्दों के पश्चात् 'and such programmes of their development and expansion the preparations for which are complete, शब्द अन्तःस्थापित किये जायें।"

[श्री एस.बी. कृष्णमूर्ति राव]

महोदय, अनुच्छेद 266 के खण्ड (1) के अन्तर्गत राज्य की आय और सम्पत्ति को सामान्य छूट दी गयी है....

*__अध्यक्ष:__ आप संशोधन संख्या 312 के खण्ड (ख) को प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं?

*__श्री एस.बी. कृष्णमूर्ति राव:__ अनुच्छेद 266 के वर्तमान खण्ड (3) में (ख) पहले ही से है इसीलिए मैं उसे प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं। वह पहले से है। खण्ड (1) में राज्य की सम्पत्ति एवं आय के संबंध में सामान्य छूट की व्यवस्था है। खण्ड (2) में राज्य द्वारा किये जाने वाले किसी व्यापार या कारबार पर संसद को कर लगाने की शक्ति प्रदान की गयी है। खण्ड (3) में खण्ड (2) के संबंध में देने की व्यवस्था है, जिससे संसद किसी व्यापार या कारबार को कानून पास करके सरकार के साधारण कृत्यों का आनुषंगिक कृत्य घोषित कर सके, मेरा निवेदन यह है कि खण्ड (3) का मैसूर अथवा त्रावणकोर जैसे राज्यों की वित्तीय व्यवस्था पर अत्यधिक विपरीत प्रभाव पड़ेगा, जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री चाको और श्री नटराज पिल्लै पहले निवेदन कर चुके हैं। मैसूर सरकार ने गत पचास वर्षों में राज्य के स्वामित्व वाले तथा राज्य से सहायता प्राप्त उद्यमों के बारे में उचित नीति अपना कर अनेक उद्योगों का विकास किया है। वित्तीय एकीकरण संबंधी प्रस्ताव के अनुसार जिसकी राज्य वित्त जांच समिति द्वारा सिफारिश की गयी है, अनेक केन्द्रीय करों की राशि केन्द्र के पास जायेगी। वास्तव में, उनके प्रतिवेदन के पृष्ठ 30, पैराग्राफ 32 में कहा गया है कि इस समय राजस्व के संघीय स्रोतों पर मैसूर की निर्भरता वस्तुत: बहुत अधिक है और प्रांतीय करों में तत्काल वृद्धि करने की गुंजाइश सीमित है। इन प्रस्तावों के परिणामस्वरूप मैसूर को लगभग 321.59 लाख रुपये की हानि होगी। नि:संदेह केन्द्रीय सरकार ने आगामी 15 वर्षों की अवधि में इस हानि की 60 प्रतिशत तक क्षतिपूर्ति कर देने का प्रस्ताव किया है। परन्तु जो बाकी रह जायेगा उनमें कुछ ही औद्योगिक उपक्रम होंगे और सार्वजनिक उपयोगिता वाले उपक्रम पन-बिजली कारखाने औद्योगिक तथा अन्य कारखाने जैसे लौह तथा इस्पात कारखाने होंगे। मैसूर सरकार पहले ही पन-बिजली, औद्योगिक व लौह तथा इस्पात कारखानों पर 15 करोड़ रुपये खर्च कर चुकी है जैसाकि राज्य वित्त जांच समिति के प्रतिवेदन के पृष्ठ 31 पर कहा गया है। वे लगभग 12 प्रकार के उद्योग चला रहे हैं, जैसे सैंट्रल इंडस्ट्रियल वर्क्स, साबुन कारखाना, पोर्सलेन कारखाना, रेशम बुनाई कारखाना, बिजली कारखाना, द मैसूर इम्पलीमेंट्स फैक्टरी, द मैसूर क्रोमेट फैक्टरी, सिल्क एण्ड फिलेचर फैक्टरी, आयरन एण्ड स्टील वर्क्स, राष्ट्रीयकृत मोटर परिवहन, द संडलवुड आयल फैक्ट्री, आदि। अब यदि इन सभी उद्योगों पर, जिनका आरम्भ और विकास उस अवधि में हुआ था जबकि उन पर कोई केन्द्रीय कर नहीं थे, अनुच्छेद 266 के परिणामस्वरूप कर लगाये जाते हैं तो मैं इस सभा से यह निवेदन करना चाहता हूं कि ऐसा करने से राज्य की अर्थव्यवस्था को बड़ा भारी आघात पहुंचेगा। मैसूर ने आगामी दो या तीन वर्षों में 1,000 और इससे अधिक जनसंख्या वाले प्रत्येक गांव में बिजली पहुंचाने की व्यापक योजनाएं बना रखी हैं। हमने बंगलौर शहर में विद्युत संचालित ट्राली बसें चलाने की भी योजना बनाई हुई है। ग्राम विकास व शिक्षा प्रसार के लिए भी हमने योजना बनाई हुई है। केन्द्र द्वारा राजस्व के केन्द्रीय संसाधनों को अपने हाथ में ले लिये जाने से मैसूर की वित्तीय स्थिति एकदम लड़खड़ा जायेगी। यदि शासन

के अंग के रूप में सरकार द्वारा किये जा रहे व्यापार व कारबार पर ये उद्योग वे हैं जो मैसूर सरकार के उद्योग विभाग द्वारा चलाये जा रहे हैं—अतिरिक्त कर भी लगा दिये गये तो, वित्तीय स्थिति बहुत बिगड़ जायेगी और सरकार शिक्षा के आगे विकास के जो कार्य करना चाहती है तथा जनता को जो-जो अन्य सुविधाएं देना चाहती है, उनमें बाधा पड़ेगी।

मेरा नम्र निवेदन यह है कि भारत सरकार की वित्तीय नीति से राज्यों को मदद मिलनी चाहिए, न कि उनके विकास में बाधा पड़नी चाहिए। वास्तव में मुझे पता चला है कि वित्त मंत्रियों के सम्मेलन में इस आशय का आश्वासन दिया गया था। हमारे वित्त मंत्री डॉ. जॉन मथाई यहां पर उपस्थित हैं और यदि वह इस बात का आश्वासन दे कि ऐसे उद्योगों पर जो सरकार के साधारण कृत्य के रूप में राज्य द्वारा पहले आरम्भ किये जा चुके हैं और अब चलाए जा रहे हैं, कर नहीं लगायें जायेंगे, तो मैं अपने संशोधनों पर जोर नहीं दूंगा। वास्तव में मैसूर में बिजली सबसे सस्ती दरों पर दी जाती है। औद्योगिक उपक्रमों के विकास हेतु 6 से 2 पाई तक प्रति यूनिट के हिसाब से बिजली दी जाती है। सिंचाई के प्रयोजन के लिए हम आधा आना प्रति यूनिट के हिसाब से बिजली देते हैं। मेरे विचार में इतनी सस्ती बिजली समूचे भारत में कहीं भी उपलब्ध नहीं है। यदि हमें उद्योगीकरण की इस नीति को जारी रखना है तो मेरा निवेदन यह है कि ऐसे उद्योगों और व्यापार पर केन्द्रीय कर न लगाये जायें जिनको सरकार पहले से चला रही है। निःसंदेह, खण्ड (3) में यह कहा गया है कि संसद कानून पास करके ऐसी घोषणा कर सकती है। जहां तक राज्य द्वारा भविष्य में आरम्भ किये जाने वाले उद्यमों का संबंध है, मैं भी इस प्रस्ताव से सहमत हूं। कुछ राज्य केन्द्रीय करों से बचने के लिए कुछ उद्योगों व निजी व्यापार और कारबार को अपने हाथ में ले सकते हैं और राज्य के किसी विभाग के रूप में चला सकते हैं। ऐसे कामों को रोका जाना चाहिये, परन्तु यह बात भविष्य में लगाये जाने वाले उद्योगों पर और भविष्य में किये जाने वाले कारोबार पर लागू होनी चाहिए, सरकार द्वारा अपने कृत्य के रूप में पहले से चलाये जा रहे व्यापार व कारोबार तथा उद्योगों पर ये कर नहीं लगाये जाने चाहिए और यह खण्ड राज्य के विकास में बाधक सिद्ध नहीं होना चाहिए। मेरा नम्र निवेदन यह है कि ये संशोधन स्वीकार कर लिये जायें अथवा यदि माननीय डॉ. अम्बेडकर इन्हें स्वीकार करने पर सहमत न हों तो यदि वह कोई ऐसा आश्वासन दे दें तो मैं इन संशोधनों पर जोर नहीं दूंगा।

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने चार संशोधनों के नोटिस दिये हैं। चूंकि वे सभी दूसरे संशोधन से संबंधित हैं....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मेरे पांच संशोधन हैं, पांचवा संशोधन छठी सूची में संख्या 338 वाला है जिसे मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** आप उसे पेश कर सकते हैं, औरों का प्रश्न नहीं उठता।

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं।

"कि सूची चार (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 272 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 266 के खण्ड (1) में 'exempt from (संघ के कराधान से विमुक्त होंगी)' शब्दों के स्थान पर 'subject to (पर संघ के कर आरोपित होंगे)' शब्द रखे जायें।"

महोदय, इस उपबंध के समर्थन में यदि कोई संवैधानिक औचित्य कहा जा सकता है तो वह यह है कि कनाडा अथवा आस्ट्रेलिया के संविधान में ऐसा उपबंध है। मुझे विश्वास है कि हमारे मामले में स्थिति वैसी नहीं है। भारत में घटक

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

एकक, भारतीय राज्य व प्रान्त कनाडा और आस्ट्रेलिया के घटक एककों के समान नहीं है। भारतीय इतिहास के तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ये प्रान्त व भारतीय राज्य कभी भी किसी भी रूप में प्रभुसत्ता सम्पन्न नहीं रहे। वे सदा भारत सरकार के सेवक व एजेन्ट के रूप में कार्य करते रहे हैं। मेरे विचार में संघीय कराधान के क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए, संघीय कराधान के क्षेत्र को कम करके कोई हानि नहीं उठानी चाहिए।

केवल संवैधानिक आधार पर ही नहीं, बल्कि राजनैतिक कारणों से भी मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं। प्रांतों को व्यापक स्वायत्ता देना जोखिम से भरा है, खतरनाक है। मुझे विश्वास है कि हम अपने संविधान में इस अनुच्छेद का उपबंध केवल इसलिए कर रहे हैं कि इस सभा के अधिकांश सदस्य राज्य अधिकारों के समर्थक हैं। तथ्य यही है कि सभी प्रान्त व भारतीय राज्य, हम भले ही उनको कोई भी संवैधानिक दर्जा दे दें, भारत सरकार के एजेंट व सेवक हैं। हम इन तथ्यों की अनदेखी नहीं कर सकते। इस देश में एक पार्टी का शासन है और किसी अन्य पार्टी के सत्ता में आने की कदापि कोई गुंजाइश नहीं है और न ही प्रांतों के स्वायत्तशासी होने की कोई सम्भावना है। वे सभी कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में संगठित हैं। राज्यों के हाथ में करारोपण की यह शक्ति दिये जाने का न तो ऐतिहासिक औचित्य है और न संवैधानिक ही। यदि स्थिति के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया जाये तो राज्य की सम्पत्ति व आय पर संघीय कर लगाने का केन्द्र को अधिकार है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैसूर में व्याप्त स्थिति से 20 वर्ष से अधिक समय से भली-भांति परिचित होने व त्रावणकोर में वर्तमान स्थिति से भी भली भांति परिचित होने के कारण मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि मैसूर और त्रावणकोर के प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों से मैं सहमत हूं, मेरी उनके साथ सहानुभूति है जिन्होंने इतने अच्छे ढंग से इस सभा में अपना पक्ष प्रस्तुत किया। इसके साथ ही मैं कहना चाहूंगा कि हमें इस मामले पर भारतीय उद्योग व भारतीय प्रगति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करना होगा।

जहां तक मैसूर तथा त्रावणकोर के उन उद्योगों के संबंध में, जो कुछ समय से चल रहे हैं, कोई छूट देने का प्रश्न है, मेरे विचार में उस बारे में कोई विचार नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि भारत सरकार तथा भारतीय संसद इस संबंध में बहुत अनुकूल रवैया अपनाएगी और ऐसे उद्योगों को अपेक्षित प्रोत्साहन देगी जो लम्बे समय से फल-फूल रहे हैं। यह कहना आवश्यक है कि सर एम. शेषाद्रि अय्यर, सर एम. विश्वेश्वरय्या जैसे योग्य दीवानों तथा मैसूर के अन्य प्रतिभा-सम्पन्न दीवानों के रहते मैसूर ने बड़ी तीव्र गति से प्रगति की है और मेरे विचार में भारत के इस भाग में रहने वाले लोग भी मैसूर की प्रगति के उतने ही इच्छुक हैं। हम नहीं चाहते कि मैसूर भारत सरकार से प्राप्त होने वाली राजसहायता पर निर्भर करे, यद्यपि कुछ समय तक ऐसा करना आवश्यक है जब तक कि वित्तीय स्थिति ठीक न हो जाये—लगभग पन्द्रह वर्ष तक। अर्थात् जहां तक इन दो राज्य विशेषों का संबंध है, आप एक स्पष्ट उपबन्ध कीजिये कि संसद छूट दे सकती है। इस धारा के अंतर्गत संसद को यह शक्ति दी जा रही है कि वह ऐसा-ऐसा कर सकती है। कर लगाना संसद का कोई कर्तव्य नहीं है और मुझे विश्वास है कि व्यापार और उद्योग के व्यापक हित में संसद उन उद्योगों पर कर नहीं लगाएगी जो पनपते रहे हैं।

जहां तक भारत के अन्य भागों का संबंध है, इस मामले पर भिन्न तरीके से विचार करना होगा। ब्रिटिश शासन काल में विभिन्न कारणों से उद्योगों का समाजीकरण आरम्भ नहीं हुआ। प्रांत लगभग पुलिस राज्य की तरह ही कार्य कर रहे थे और उन्होंने उद्योगों की बड़ी-बड़ी योजनाओं में कोई रुचि नहीं ली थी, सिवाय प्याकरा योजना और ऐसी ही अन्य परियोजनाओं के, जबकि सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर मद्रास सरकार के सदस्य थे। ऐसे उद्योगों को प्रारम्भ करना, जो सम्भवत: आर्थिक दृष्टि से सफल न हो पायें और साथ ही निजी उद्यमों के लिये भी घातक सिद्ध हों, प्रांतों के लिये खतरा उठाने वाली बात है। हमारा उद्देश्य प्रमुख उद्योगों का समाजीकरण हो सकता है, परन्तु यदि हमारे उद्देश्य को फलीभूत होना है और उसके उत्कृष्ट परिणाम निकलने हैं तो निश्चय ही उसकी गति धीमी रखनी होगी। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, नि:संदेह ऐसा समय आयेगा जब अधिकांश प्रमुख उद्योग राज्य द्वारा अपने हाथ में ले लिये जायेंगे। इस उपबंध का उद्देश्य यही है कि यदि कोई व्यापार आरम्भ किया जाये तो केन्द्र चाहे तो उस पर कर लगा सकेगा।

आस्ट्रेलिया, कनाडा व अमरीका के संविधानों का उल्लेख किया गया है। उस पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। जब कनाडा और आस्ट्रेलिया के संविधान बनाये गये थे तब यह नहीं सोचा गया था कि समाजीकरण की बड़ी-बड़ी योजनाएं आरम्भ की जायेंगी। इसलिये उन्होंने सामान्य भाषा में केवल इतना ही लिखा था कि केन्द्र या संघ सरकार द्वारा राज्य की सम्पत्ति पर कर नहीं लगाया जायेगा और प्रांतीय सरकार के आग्रह पर संघ सरकार की सम्पत्ति पर कर नहीं लगाया जायेगा। जहां तक अमरीका का संबंध है, शुरू-शुरू में यद्यपि डाक्ट्रिन ऑफ इन्स्ट्रूमेंटलिटी के माध्यम से कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं था, उन्होंने यह निर्णय किया था कि राज्य संघ सरकार की सम्पत्ति पर कर नहीं लगा सकता और संघ सरकार राज्य के माध्यमों पर कर नहीं लगा सकती, क्योंकि दोनों एक ही मिश्रित तंत्र के अंग हैं और यदि आप एक को दूसरे की सम्पत्ति पर कर लगाने की अनुमति देंगे तो इससे पूरे तंत्र की व्यवस्था बिगड़ सकती है। बाद में डाक्ट्रिन ऑफ इन्स्ट्रूमेन्टलिटी को ही राज्य के व्यापक हित में नहीं पाया गया है और हाल ही में समूची राय ही बदल गयी है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय के एक बहुत ही सुलझे हुए न्यायाधीश ने 'स्प्रिंग्स ऑफ द स्टेट ऑफ न्यूयार्क' के नाम से विख्यात मामले में, जो उन कुछ स्प्रिंग्स के बारे में था जिनसे संबंधित कार्य न्यूयार्क राज्य करता था-उस कार्य के इस सन्दर्भ में यह निर्णय दिया गया कि राज्य को कर से कोई छूट नहीं है। उन्होंने कहा था "आपको राज्य की एक प्रकार की गतिविधि और दूसरी प्रकार की गतिविधि के बीच कोई तो अन्तर रखना पड़ेगा। निस्संदेह, उसकी कोई दृढ़ परिभाषा नहीं की जा सकती। जो गतिविधि एक क्षेत्र में हो रही है वह राज्य की प्रगति और उस राज्य विशेष में शासन प्रणाली के विकास के साथ-साथ सरलता से दूसरे क्षेत्र में जा सकती है।

परन्तु सामान्यत: विद्यमान परिस्थितियों में आजकल व्यापार या कारबार करना सरकार का सामान्य या मामूली कृत्य नहीं माना जा सकता। वह मामूली कृत्य के रूप में बदल सकता है, उसके कुछ पहलू मामूली कृत्य के रूप में बदल सकते हैं, विशेषकर परिवहन सेवा और कुछ प्रमुख उद्योग राज्य के उद्यम के अंग बन सकते हैं। प्रस्तुत खण्ड इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद के खण्ड (1) की किसी बात से संघ को राज्य की सरकार द्वारा, या की ओर से, किये जाने वाले किसी प्रकार के व्यापार या कारबार

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

के बारे में, अथवा उनसे संबंधित किन्हीं क्रियाओं के बारे में अथवा उनके प्रयोजनों के लिये उपयोग में आने वाली या आधिपत्य में की गई, किसी सम्पत्ति के बारे में, अथवा उनसे प्रोद्भूत या उत्पन्न किसी आय के बारे में, किसी कर को ऐसे विस्तार तक, यदि कोई हो, जिसे कि संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, आयोजित करने या आरोपित करना प्राधिकृत करने में रुकावट नहीं होगी।"

संसद समय विशेष की प्रगतिशील प्रवृत्ति को ध्यान मे रखेगी और तदनुसार तत्काल घोषणा कर सकेगी। हो सकता है कि पहले वह सरकार का मामूली कृत्य न रहा हो। अब वह सरकार का मामूली कृत्य हो सकता है। खण्ड (3) में पर्याप्त लचीलापन रहेगा जिससे सरकार किसी व्यापार अथवा उद्योग विशेष पर, जिन्हें सार्वजनिक उपयोगिता सेवा के रूप में आरम्भ किया गया हो, कर से छूट दे सके अथवा उनको नियमित राज्य उद्योग घोषित कर सके। संसद द्वारा बनाये गये कानून को कोई चुनौती नहीं दे सकता, क्योंकि संसद ने यह बता दिया है कि कोई उद्योग विशेष राज्य का मामूली कृत्य है, जबकि किसी अर्थशास्त्री के विचार के अनुसार वह सरकार का मामूली कृत्य नहीं है। संसद देश के लिये कानून बनायेगी और एकमात्र वही इस बात का निर्णय करेगी कि क्या यह सरकार का मामूली कृत्य है या नहीं। इसलिये:

(क) कर संबंधी उपबन्ध के प्रवर्तन से किसी उद्योग विशेष और व्यापार विशेष को छूट दे सकने की संसद की सम्पूर्ण शक्ति को ध्यान में रखते हुए;

(ख) इस बात को ध्यान में रखते हुए कि संसद के लिये कोई कर लगाना अनिवार्य नहीं है;

(ग) इस बात को ध्यान में रखते हुए कि राज्य के अग्रेसर विकास और समय परिवर्तन के साथ राज्य उद्योग की अवधारणा ही बदल सकती है; और

(घ) एक राज्य व दूसरे राज्य के बीच परस्पर संबंधों को ध्यान में रखते हुए।

राज्य विशेषों के बीच, ऐसे राज्यों, जो कुछ उद्योग चला रहे हैं तथा अन्य राज्यों के बीच, अन्तर करना बहुत कठिन हो जायेगा। परन्तु प्रशासनिक नीति के रूप में और संसदीय विधान के मामले के रूप में मैसूर और त्रावणकोर जैसे राज्यों को छूट दी जा सकती है जो बहुत लम्बे समय से व्यापार व कारबार कर रहे हैं और ये उद्योग आज इतने ठोस हैं और मजबूत आधार वाले होते हैं कि वे छूट दिये जाने के योग्य भी हैं, परन्तु दूसरी ओर विधि का ऐसा कोई सामान्य सिद्धांत बनाने से, कि इस समय भी जबकि अभी प्रान्त अपने पैरों पर खड़े भी नहीं हुए हैं, प्रत्येक व्यापार और कारबार कराधान से मुक्त है विभिन्न प्रांत अव्यवहारिक योजनाएं आरम्भ करने लगेंगे, सम्भव है कि वे समूचे देश के व्यापार और उद्योग के सामान्य हितों की उपेक्षा कर दें। सम्भव है कि वे एक प्रकार के उद्योग और दूसरे प्रकार के उद्योग के बीच अन्तर पर ध्यान न दें। उन परिस्थितियों में डॉ. अम्बेडकर द्वारा जोड़ा गया विशिष्ट उपबन्ध बहुत हितकर होगा और वह सभी देशों में लोकतंत्रात्मक व संघीय नीति के समुन्नत सिद्धांतों के अनुरूप है। इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***माननीय डॉ. जॉन मथाई** (संयुक्त प्रांत : जनरल): महोदय, मैं आज प्रातः इस विषय पर वाद-विवाद के दौरान दिये गये विभिन्न सुझावों के ब्यौरे में नहीं

जाना चाहता। परन्तु मैं कुछ सामान्य बातें कहना चाहूंगा और मुझे आशा है कि उनसे इस चर्चा में भाग लेने वाले माननीय सदस्यों द्वारा व्यक्त शंकाओं का समाधान हो जायेगा।

त्रावणकोर के मेरे मित्रों के मन में भारी शंकाएं हैं कि त्रावणकोर के उस व्यक्ति द्वारा जो आज केन्द्र में वित्त मंत्री है, इस उपबंध का उपयोग किस प्रकार किया जायेगा और त्रावणकोर की जनता के मन में व्याप्त शंकाएं उसके पड़ोसी मैसूर राज्य में भी व्याप्त हैं मैं अपनी ओर से व केन्द्रीय सरकार के अपने सहयोगियों की ओर से पूरी तरह से स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि देश के उद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने और उसे सफल बनाने की अपेक्षा अन्य कोई ऐसी बात नहीं जिसके लिए हम इतने अधिक चिन्तित हों। और यदि इस बात की कोई आशंका हो कि इस उपबन्ध से देश में निजी उद्यम अथवा राज्य संचालित उद्यम के माध्यम से होने वाली उद्योगीकरण की प्रगति में कोई बाधा पड़ेगी तो मैं इस सभा को आश्वस्त करना चाहता हूं कि इस उपबन्ध विशेष का उपयोग ऐसी किसी बात के लिये नहीं किया जायेगा, क्योंकि देश के उद्योगीकरण के संबंध में इस उपबंध को लागू करने से कोई रोक लगने या बाधा पड़ने की यदि किंचित मात्र भी सम्भावना हुई तब जहां तक हमारा अर्थात् केन्द्रीय सरकार का संबंध है, हम सभा को आश्वासन देते हैं कि इस उपबन्ध के प्रवर्तन में देश की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन कर दिया जायेगा।

केन्द्र के वित्त मंत्री के रूप में आज मेरे सामने देश में प्रत्यक्ष कराधान के वर्तमान ढांचे के औद्योगिक विकास पर पड़ने वाले सही-सही प्रभाव को तय करने से अधिक बड़ी कोई समस्या नहीं है। जहां तक हमारा, अर्थात् केन्द्रीय सरकार का संबंध है, हम इस बात के लिए बहुत उत्सुक हैं कि जन-अपेक्षाओं के अनुरूप देश के प्रत्यक्ष कराधान के ढांचे में इस प्रकार परिवर्तन किया जाये कि औद्योगिक विकास के मार्ग में आने वाली बाधाएं केवल दूर ही न हों जायें, बल्कि शीघ्र से शीघ्र समाप्त हो जायें। केन्द्रीय सरकार इस विचार को मन में रखकर उद्योगीकरण की समस्या का समाधान करना चाहती है। मैं चाहता हूं कि सभा मेरे इस आश्वासन को स्वीकार करे कि यदि इस उपबन्ध से किसी भी संबंधित राज्य में उद्योगीकरण में रुकावट की किंचित भी सम्भावना हुई तो हम इस उपबंध को लागू नहीं करेंगे।

एक अन्य मामला भी है जिसके संबंध में मैं कुछ कहना चाहता हूं। मेरे विचार में आज सुबह जो भाषण दिये गये वह यह मान कर दिये गये थे कि केन्द्र और राज्यों के वित्तीय उद्देश्यों में एक प्रकार का अनिवार्य संघर्ष है इससे अधिक असत्य कोई बात नहीं हो सकती।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वाह-वाह।

***माननीय डॉ. जॉन मथाई:** आज जिस प्रकार की घटनाएं घट रही हैं और जैसे-जैसे हम देश में राजनीतिक व आर्थिक दोनों दृष्टि से, संयुक्त ढांचे की आवश्यकता को अधिक से अधिक महसूस कर रहे हैं, केन्द्र और राज्यों के बीच हितों की समानता का अत्यन्त निकट होना अनिवार्य है। यदि इस प्रकार के किसी उपबंध को लागू करने से यह पाया गया कि राज्य की वित्तीय स्थिति में कोई कठिनाई पैदा हो रही है तो इस समस्या की चिन्ता केवल राज्य को ही नहीं होगी बल्कि केन्द्र को भी होगी। उस समस्या का सामना आज मुझे अनेक मामलों में करना पड़ रहा है। इसलिए यदि इस संबंध के लागू करने से किसी राज्य को बजट संबंधी कठिनाई का सामना करना पड़ता है तो सभा इस बात पर विश्वास कर सकती है कि केन्द्र को भी उस बात की उतनी ही चिन्ता होगी, जितनी कि राज्य को, कि आवश्यक समायोजन करके स्थिति का समाधान किया जाये।

[माननीय डॉ. जॉन मथाई]

वे अधिकांश उद्योग विशेष, जिनका आज प्रातः त्रावणकोर व कोचीन और मैसूर की ओर से उल्लेख किया गया है, उस वर्ग के उद्योग हैं जिन्हें सार्वजनिक उपयोगिता वाले उपक्रम कहा जाता है। सार्वजनिक उपयोगिता का विषय ऐसा सरल नहीं है जिसकी न्यायालय द्वारा अपेक्षित सूक्ष्मता से परिभाषा की जा सकती हो। परन्तु हम सभी सामान्य रूप से इस बात को जानते हैं कि सार्वजनिक उपयोगिता वाली संस्थाओं से क्या तात्पर्य है। इसलिये मैं केवल केन्द्रीय सरकार की ओर से ही नहीं, बल्कि प्रारूप समिति की ओर से भी जो इस उपबंध को करने के लिए जिम्मेदार है, यह आश्वासन दे सकता हूं कि राज्यों द्वारा चलाये जाने वाले ऐसे उद्योगों पर इस उपबंध में उल्लिखित किसी प्रकार का कोई कर लगाने का हमारा इरादा नहीं है जिनका उद्देश्य सार्वजनिक उपयोगिता की सेवाएं उपलब्ध कराना है। जहां तक हमारे इरादों का संबंध है, यह बात उस उपबंध के कार्यक्षेत्र से बिल्कुल बाहर है जिस पर आज चर्चा की जा रही है।

मैं एक अन्य आश्वासन भी देना चाहता हूं कि यदि कहीं ऐसा होता है कि यह उपबंध किसी राज्य के स्वामित्व वाले औद्योगिक उपक्रम के संबंध में लागू किया जाता है और यदि वहां पर उसी प्रकार का केन्द्र के स्वामित्व वाला कोई उपक्रम भी है तो हमारा यह इरादा है कि राज्य के स्वामित्व वाले उपक्रम पर लगाई गई देयताएं केन्द्र के स्वामित्व वाले उपक्रम पर भी समान रूप से लागू की जायेंगी। जैसी कि सभा को जानकारी है, हमारा विचार है कि अब के बाद जब केन्द्र किसी औद्योगिक स्वरूप वाले उपक्रम का प्रवर्तन करेगा तो ऐसे उपक्रम की व्यवस्था व प्रबन्ध स्वतंत्र सार्वजनिक निगम के आधार पर किये जायेंगे। औद्योगिक उपक्रम चलाने वाले इन उपक्रमों के साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा इसी प्रकार के औद्योगिक उपक्रमों के संबंध में राज्यों के साथ होगा। केन्द्र सरकार द्वारा सीधे, विभाग के माध्यम से, चलाये जाने वाले उद्योगों के साथ रेलवे तथा डाक व तार विभाग के सदृश ही व्यवहार किया जायेगा जिनसे यह आशा की जाती है कि यदि उनके बजट में कुछ फालतू धनराशि हुई तो, वे देश के सामान्य राजस्व में कुछ अंशदान करेंगे।

अतः मैं यह आश्वासन दे सकता हूं। सर्वप्रथम, सार्वजनिक उपयोगिता वाले उपक्रमों पर इस उपबंध के अधीन लगाये जाने वाले कर नहीं लगाये जायेंगे तथा दूसरे यह कि औद्योगिक उपक्रमों के कराधान के संबंध में केन्द्र व राज्य के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा, और मुझे आशा है कि अब इस उपबन्ध को स्वीकार करने में सभा को अधिक कठिनाई नहीं होगी।

एक बात और है जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं। जहां तक बजट संबंधी कठिनाइयों का संबंध है, जो इस उपबंध के अधीन करारोपण के परिणामस्वरूप राज्यों को हो सकती हैं, सभा को यह बात स्मरण रखनी होगी कि जैसा कि विश्व में प्रत्येक संघीय सरकार के मामले में होता है वैसे ही हम यहां पर राष्ट्रीय महत्व की विकास परियोजनाओं तथा सार्वजनिक उपयोगिता वाले आवश्यक उपक्रमों को बढ़ावा देने हेतु राज्यों की सहायता के लिये केन्द्र से राज्यों को राजसहायता या अनुदान देने की शीघ्र व्यवस्था कर रहे हैं। यदि ऐसा होता है कि इस उपबंध के अधीन करारोपण के कारण राज्य के वित्तीय संसाधनों को गहरा आघात पहुंचता है तब यह मानते हुए कि विकास परियोजनाएं राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाएं हैं, स्वतः ही केन्द्र की भी यह जिम्मेदारी बन जाती है कि राज्य के वित्तीय संसाधनों में होने वाली कमी को अपने संसाधनों की शक्ति के अनुसार पूरा करे। मैं आरम्भ

में कही गई अपनी बात पर बल देने के लिये कह रहा हूं कि आज जो व्यवस्था अभी धीरे-धीरे पनप रही है और इस संविधान के लागू होने तक जिसका अन्तिम रूप सामने आ जायेगा, उसमें वित्तीय मामलों के संबंध में केन्द्र और राज्यों के बीच हितों में पूर्ण समानता है। यह कल्पना करके कि केन्द्र और प्रान्तों के बीच सतत संघर्ष चलता रहेगा इस उपबन्ध पर आपत्ति करने का कोई औचित्य नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस अनुच्छेद का केवल खण्ड (3) ही आलोचना का विषय रहा है। इस अनुच्छेद के किसी अन्य भाग पर कोई टीका-टिप्पणी नहीं की गयी। मेरे विचार में वित्त मंत्री द्वारा पूरी तरह आश्वस्त कर देने वाले इस भाषण के बाद इस सभा में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसके मन में यह शंका रह गई हो कि संसद द्वारा इस शक्ति का उपयोग राज्य के वित्तीय संसाधनों पर कोई ध्यान दिये बिना किया जायेगा। मेरे विचार में इस संबंध में मुझे कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री पी.टी. चाकोः** माननीय वित्त मंत्री द्वारा दिये गये आश्वासन को ध्यान में रखते हुए मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***श्री पी.एस. नटराज पिल्लेः** मैं भी अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***श्री एस.बी. कृष्णमूर्ति रावः** मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद क्या चाहते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं अपना संशोधन वापस नहीं ले रहा।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 1 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 272 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 266 के खण्ड (1) में 'exempt from (संघ के कराधान से विमुक्त होंगी)' शब्दों के स्थान पर 'subject to (पर संघ के कर आरोपित होंगे)' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 266 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 266 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 296 और 299

***अध्यक्ष:** दो अनुच्छेद 296 व 299 हैं और कुछ सदस्यों ने मुझे सूचित किया है कि उन्हें कुछ संशोधनों की सूचना बहुत देर से प्राप्त हुई है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं उनको स्थगित करने के लिए तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** अत: ये दो अनुच्छेद (296 और 299) स्थगित रहेंगे।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या हमें इस बात का आश्वासन मिल सकता है कि ये कब लिये जायेंगे।

***अध्यक्ष:** आगामी सप्ताह में किसी दिन। मैं माननीय सदस्यों को बताना चाहता हूं कि हम राज्यों से संबंधित कुछ अनुच्छेदों, एक अनुसूची और कुछ अन्य दो या तीन विविध अनुच्छेदों को छोड़कर शेष सभी अनुच्छेदों व अनुसूचियों पर चर्चा समाप्त करना चाहते हैं। यह सभा पर निर्भर करता है कि हम कितनी जल्दी शेष सभी अनुच्छेदों पर विचार पूरा कर सकेंगे।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्य प्रांत और बरार : जनरल): मेरे विचार में अधिक से अधिक 17 तारीख तक।

***अध्यक्ष:** वे मेरे मन में है, परन्तु यह सभा पर निर्भर करता है।

***एक माननीय सदस्य:** कोई तारीख निश्चित कर दीजिए।

***अध्यक्ष:** यदि हम शीघ्रता से आगे बढ़े तो मुझे तारीख निश्चित करने की आवश्यकता नहीं है।

अब मैं सप्तम अनुसूची में प्रविष्टियों को विचार के लिये लेता हूं, जो रह गयी थीं—सूची एक में 88-क और *सूची दो* में 58 व 58-क।

सप्तम अनुसूची तथा अनुच्छेद 250—*जारी*

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 में प्रविष्टि 88 के पश्चात् यह प्रविष्टि अन्त: स्थापित की जाये:

'88A. Taxes on the sale or purchase of newspapers and on advertisements published therein.'"

[88-क. समाचार पत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।]

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 58 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जायें:

'58. Taxes on the sale or purchase of goods other than Newspapers.

58-A. Taxes on advertisements other than advertisements published in Newspapers.

[58. समाचारपत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।

58-क. समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।]

महोदय, मैं अनुच्छेद 250 के अन्य संशोधन संख्या 374—को भी प्रस्तुत करना चाहता हूं जो वास्तव में इसी का भाग है।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 250 के खण्ड (1) में, उपखण्ड (घ) के पश्चात् ये उप-खण्ड जोड़े जायें:

'(e) taxes other than stamp duties on transactions in stock exchanges and futures markets;

(f) taxes on the sale or purchase of newspapers and on advertisements published therein.'"

[(ङ) श्रेष्ठ चत्वरों ओर वायदा बाजारों के सौदों पर मुद्रांक शुल्क से अन्य कर;

(च) समाचारपत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।]

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ मैं यह बताना चाहता हूं कि अनुच्छेद 250 पर, पुनर्विचार करने के लिये सभा की औपचारिक अनुमति लेनी होगी जो संशोधन संख्या 374 के संबंध में आवश्यक है।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ मेरा एक व्यवस्था का प्रश्न है कि किसी ऐसे अनुच्छेद पर, जिस पर विचार पूरा हो चुका है और वह सभा द्वारा पास किया जा चुका है, पुनर्विचार नहीं किया जा सकता।

*__अध्यक्ष:__ यही प्रश्न श्री कृष्णमाचारी ने उठाया है।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ नहीं, महोदय, उन्होंने उस विषय पर पुन: चर्चा करने के लिए संशोधन प्रस्तुत किया है। मेरा व्यवस्था का प्रश्न यह है कि उस पर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ इस बात का निर्णय अध्यक्ष महोदय करेंगे कि आप ठीक कह रहे हैं या वह ठीक कह रहे हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ एक अन्य बात भी है जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यह प्रविष्टि 88-क के बारे में है। यह वही संशोधन है जो श्री झुनझुनवाला ने प्रस्तुत किया था। प्रारूप समिति ने उसे चुराया है और अब वह ऐसे पास कराया जा रहा है जैसे उनका ही हो। कितनी विचित्र बात है कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन संख्या 379 है जो भारतीय दण्ड संहिता की चोरी से संबंधित धारा है। क्या इस प्रकार की साहित्यिक चोरी की अनुमति है?

*__अध्यक्ष:__ आपको यह बताने का श्रेय मिल सकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ वह इससे पूरी तरह संतुष्ट हैं। उन्होंने चोरी अथवा लूट की कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ परन्तु चोरी एक संज्ञेय अपराध है। वह अक्षम्य भी है। इसमें किसी का शिकायत कराना आवश्यक नहीं, आपत्ति न होने से नहीं चलेगा।

*__अध्यक्षः__ हम प्रविष्टियों पर पहले विचार करेंगे।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ महोदय, पिछली बार जब यह मामला सभा के समक्ष आया था तब इस पर काफी वाद-विवाद हुआ था; ठीक-ठाक आशय क्या है इसमें सभा क्या कर सकती है और मैं क्या स्वीकार करने को तैयार हूं। आपने सुझाव दिया था कि इस मामले को प्रारूप समिति के पास दोबारा भेजा जाये। प्रारूप समिति ने उस पर विचार करने के बाद कुछ नये प्रस्ताव रखे हैं। प्रस्ताव यह है कि समाचारपत्रों और समाचारपत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों पर करों को सूची 1 में रखा जाये। प्रारूप समिति अब इस विषय पर सहमत हो गयी है। दूसरा संशोधन—संख्या 379—एक परिणामिक संशोधन मात्र है, क्योंकि समाचारपत्रों और समाचारपत्रों के विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर को सूची 1 में लाया गया है, इसलिये विक्रय कर अधिनियम के अधीन समाचारपत्रों पर कराधान को निकालना तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों को राज्य विधानमंडल के अधिकारक्षेत्र से निकालना आवश्यक है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 8 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 378 में, सूची 1 में प्रस्तावित नई प्रविष्टि 88-क के स्थान पर यह रखा जाये:

'88-A. Taxes on advertisements published in Newspapers.'"

[88-क. समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।]

"कि सूची 8 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 379 में सूची 2 में प्रस्तावित प्रविष्टि 58 में से 'other than Newspapers (समाचारपत्रों को छोड़ कर अन्य वस्तुओं)' शब्द निकाल दिये जायें।"

महोदय, जब कुछ समय पहले यह मामला सभा के समक्ष आया था तब हमारे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने इस प्रस्ताव का अब जिसे वह प्रस्तुत करने की अनुमति मांग रहे हैं या जो उन्होंने प्रस्तुत कर दिया है पुरजोर विरोध किया था। मैं चाहता था कि पिछली बार की कार्यवाही और भाषण मेरे हाथ लग जाते तो मैं उनको सभा के समक्ष रख देता, परन्तु दुर्भाग्य से वे मुझे नहीं मिले। परन्तु सभा को याद होगा और आपको भी याद होगा कि इन्होंने कहा था कि वह किसी भी परिस्थिति में बिक्री कर को सूची में शामिल करने की अनुमति नहीं देंगे।

*__अध्यक्षः__ इस मामले को प्रारूप समिति द्वारा पुनर्विचार किये जाने के लिए स्थगित कर दिया गया था। समिति द्वारा पुनर्विचार किये जाने और दूसरा संशोधन प्रस्तुत किये जाने पर कोई रोक नहीं है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ मैं जानता हूं कि ऐसा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी राय बदल सकता है, परन्तु डॉ. अम्बेडकर को अपना संशोधन प्रस्तुत करते हुए सभा को यह बताना चाहिये था कि किन कारणों से उन्हें अपने विचारों को बदलना आवश्यक हो गया।

मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित रूप में इस संशोधन में यह कहा गया है कि समाचारपत्रों पर बिक्री कर को जो कि

राज्य सूची में है, सूची 1 में भी लाया जाना चाहिए। यह द्वेषजनक भेद करने वाली बात है। महोदय जिन मदों पर प्रान्त कर लगाते हैं उनकी सूची में सैकड़ों मदें हैं। उनमें से एक मद को अलग निकाल करके संघ सूची में डालना, मेरे विचार में आपत्तिजनक, द्वेषजनक और अनुचित है। देश की अधिकांश जनता इसका गलत अर्थ निकाल सकती है। उनके मन में संदेह पैदा होगा कि संविधान सभा को इस मद विशेष को जो सूची 2 में ठीक थी, निकाल कर सूची 1 में डालने की क्यों आवश्यकता पड़ी। यह तर्क दिया जा सकता है कि ऐसा इसलिये किया गया है कि समाचारपत्रों का मूलभूत अधिकारों से संबंध है, जैसा कि पहले कहा गया था उस दिन आपने अपने विनिर्णय में ठीक ही कहा था कि मूलभूत अधिकार भाषण और अभिव्यक्ति से संबंधित है। करों का भाषण और अभिव्यक्ति के साथ क्या संबंध है?

इसलिये, मैं इस बात को समझ नहीं पा रहा हूं कि इस मद को सूची 1 में क्यों लाया जा रहा है। जब प्रारूप समिति के सभापति जैसे एक बहुत ही जिम्मेदार सदस्य का विचार उस दिन भिन्न था, तो उन्हें हमको समझाना चाहिए कि इसका उद्देश्य क्या है। यदि मैं संतुष्ट हो गया होता तो मैं इस बात को उठाता ही नहीं, भले ही सारा बिक्री कर केन्द्र के पास चला जाये। जिस रूप में बिक्री कर इस समय विभिन्न प्रान्तों में लगाया जाता है, उससे व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में गम्भीर समस्याएं पैदा हो रही हैं। बम्बई में एक वस्तु पर बिक्री कर लगाया जाता है, वही वस्तु मध्य प्रान्त में भेजी गयी तो वहां उस पर पुनः कर लगाया जाता है। इसलिये निश्चय ही मैं चाहता हूं कि बिक्री कर केन्द्रीय सरकार के कार्यक्षेत्र में आना चाहिए। जिस रूप में यह इस समय लगाया जाता है। इससे देश की समूची अर्थव्यवस्था गड़बड़ा जाती है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि केवल यही मद विशेष क्यों चुनी गयी है। देश की जनता इसे पक्षपात का उदाहरण भी मान सकती है। वर्तमान परिस्थितियों में इसका सर्वोत्तम तरीका यह है कि इस मद के प्रश्न को तब तक स्थगित रखा जाये जब तक बिक्री कर के समूचे प्रश्ने के बारे में निर्णय नहीं कर लिया जाता। केन्द्रीय सरकार बिक्री कर को अपने नियंत्रण में ले ले। मैं इसके पक्ष में हूं।

मेरे मित्र श्री गोयनका द्वारा पेश किए गए संशोधन पर मेरे भी हस्ताक्षर हैं। जब मैंने हस्ताक्षर किए थे तब मेरे मन में यह बात स्पष्ट थी कि यह केवल विज्ञापन से संबंधित है, न कि बिक्री कर से। परन्तु बाद में मेरा ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया कि जिस भाषा का प्रयोग किया गया है उससे इसमें बिक्री कर भी आ जाता है। मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने उस पर हस्ताक्षर करके गलती की। मैं आमतौर पर बिना पढ़े और उसके आशय को बिना समझे किसी कागज पर हस्ताक्षर नहीं करता। परन्तु मेरा आशय अब भी वही है जो पहले था कि बिक्री कर को सूची 1 में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

महोदय, सम्भव है कि विज्ञापन और बिक्री कर से समाचारपत्रों को छूट देने के प्रयोजन से इस मद को सूची 1 में शामिल किया जा रहा हो। मैं राष्ट्रवादी समाचारपत्रों का बहुत सम्मान करता हूं जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दिनों में, जिसका मुख्य उद्देश्य राष्ट्रवादी समाचारपत्रों को कुचल देना था, देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ते रहे हैं। मैं इस बात को निर्विवाद रूप से मानता हूं कि उनको हर प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए इसमें कोई शंका की बात नहीं है। परन्तु आज समझ में नहीं आता कि किस समाचारपत्र को राष्ट्रवादी कहा जाये? एक समाचारपत्र का 12 वर्ष से अधिक समय तक सम्पादक व मालिक रहने के कारण मैं जानता हूं कि उन दिनों उनको किन समस्याओं का सामना करना पड़ा होगा। मैं उनके

[श्री आर.के. सिधवा]

सम्मुख नत-मस्तक हूं। भारत के सबसे बड़े राष्ट्रवादी समाचारपत्रों में से एक "द बम्बई क्रॉनिकल" को दो बार बन्द कराया गया, परन्तु वह आज भी चल रहा है। इसका श्रेय श्री होरनीमन और ब्रेलवी जैसे योग्य सम्पादकों को जाता है। बम्बई में एक लखपति द्वारा चलाये गये "इंडियन डेली मेल" को भी बन्द कराने का प्रयास किया गया और वास्तव में ब्रिटिश सम्राज्यवाद की एजेंसी द्वारा बन्द करा दिया गया। राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने जो कुछ किया मैं उसकी सराहना करता हूं, परन्तु मैं चाहता हूं कि उनके द्वारा की गयी सेवाओं को मान्यता देते हुए उनकी खुले रूप में सराहना की जाये। आप इस मद को सूची 1 में रखकर जनता के मन में पेचीदगियां और संदेह क्यों पैदा करना चाहते हैं? मेरा अभिप्राय यह है कि यदि आप छूट देना चाहते हैं तो मैं उस आधार पर इसके पक्ष में हूं जिसका मैंने उल्लेख किया है। आप इस बात की चिन्ता न करें कि अन्य समाचारपत्र इसका लाभ उठाएंगे, क्योंकि यह कर भी तो खराब चीज है। मैं जानता हूं कि आज 80 प्रतिशत समाचारपत्र छोटे समाचारपत्र हैं और वे प्रस्तावित कर का बोझ सहन नहीं कर सकते। केवल 15 प्रतिशत समाचारपत्र आज धन में खेल रहे हैं और यह पूछा जा सकता है कि उन्हें कर क्यों नहीं देना चाहिए? देशबन्धु गुप्ता मेरे मित्र हैं, मैं उनका बहुत सम्मान करता हूं। वह साधारण व्यक्ति से महान व्यक्ति बन गये हैं। श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार भी उस प्रकार के सज्जन पुरुष हैं, जिन्होंने इसी प्रकार उन्नति की है। परन्तु उन लोगों को क्यों छूट दी जाए जो अन्य कारबार में धनवान बन गये? कल मैं पढ़ रहा था कि कोई अमरीकी सिंडीकेट "सिविल एण्ड मिलीटरी गजट" खरीदने जा रहा है। वे भारत के महत्वपूर्ण समाचारपत्रों को हर कीमत पर खरीदना चाहते हैं। क्या उनको छूट दिया जाना उचित है? मै भारतीय तथा विदेशी समाचारपत्रों में कोई भेद नहीं चाहता। यदि करोड़ों रुपये का भुगतान करके "टाइम्स ऑफ इंडिया" खरीदा जा सकता है तो यह सिंडीकेट सभी महत्वपूर्ण समाचारपत्रों को खरीद सकता है। उनको कर से छूट क्यों दी जानी चाहिए? यदि आप संविधान में इस कर का प्रावधान करते हैं तो आप सर्वदा के लिये बन्ध जायेंगे। मेरा निवेदन यह है कि यह मामला सभा के समक्ष ठीक ढंग से पेश नहीं किया गया है और यह कहने के लिए मेरे मित्र श्री गोयनका मुझे क्षमा करेंगे कि यह घपला उन्हीं का किया हुआ है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं माननीय मित्र को बता दूं कि किसी किस्म की छूट देने की कोई व्यवस्था नहीं की जा रही है?

***श्री आर.के. सिधवा:** ठीक है, श्री कृष्णमाचारी, अच्छा यही होगा कि हम इस बात को सहज बुद्धि पर छोड़ दें। आप यहां यह कहने के अधिकारी नहीं हैं कि छूट देने पर विचार नहीं किया जा रहा। मैं जानता हूं कि किस बात पर विचार किया जा रहा है। इसीलिये मुझे चिन्ता है। हमें स्पष्टवादी होना चाहिए। किसी को धोखा देने के लिए इस प्रकार की बातें नहीं की जानी चाहिए। यह जनता की आंखों में धूल झोंकने के सिवाय और कुछ नहीं है। हमें निष्कपट और ईमानदार होना चाहिए। आप जनता के साथ छल नहीं कर सकते और न ही सभा की आंखों में धूल झोंक सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर बहुत चतुर हो सकते हैं परन्तु चतुराई भी हमेशा नहीं चल सकती। हम समझते हैं कि पर्दे के पीछे क्या है। मुझे इस तरीके से इसका लाया जाना पसंद नहीं, यदि इस संशोधन को स्थगित कर दिया जाये तो हम अपना दिमाग लगा कर और विचार-विमर्श करके एक उपयुक्त संशोधन ला सकते हैं। यदि सहमति हो तो मैं एक ऐसा संशोधन पेश करने के लिए तैयार हूं कि समाचारपत्रों पर कोई कर न लगाया जाये। मैं निश्चय

ही महसूस करता हूं कि राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने राष्ट्र की बहुत सेवा की है और उस सेवा की मान्यता के रूप में यदि आप उनको छूट देना चाहते हैं तो मैं उस पर सहमत हूं। मैं तो इससे और आगे जाकर सभी समाचारपत्रों को छूट देने पर भी सहमत हूं। इसलिये कि इस संशोधन को स्वीकार करने के बजाय श्री गोयनका और श्री गुप्ता को मैं यह सुझाव देना चाहता हूं "आओ हम अपना दिमाग लगा कर एवं विचार-विमर्श करके छूट के लिये एक संशोधन रखें जिससे हमारे बारे में कोई गलतफहमी न रहे।" मैं अपनी बात को दोहराता हूं कि इस महान संस्था, इस संविधान सभा, के साथ धोखेबाजी नहीं की जानी चाहिए। इस गौरवमयी संस्था की आंखों में धूल नहीं झोंकी जानी चाहिए। मैं विशेषकर अपने संविधान के संबंध में स्पष्टवादिता अपनाये जाने के पक्ष में हूं। अध्यक्ष महोदय, मैं आशा करता हूं कि आप भी डॉ. अम्बेडकर व सर्वश्री गोयनका और गुप्ता से अनुरोध करेंगे कि वे किसी ऐसी बात को इसमें न लाएं जिससे संविधान सभा का उपहास हो। इस महान संस्था का उपहास नहीं किया जाना चाहिए। इस बात को लेकर आलोचना नहीं होनी चाहिए कि हमने किसी व्यक्ति को लाभ पहुंचाने के लिये किसी न किसी तरीके से मूलभूत अधिकारों के नाम पर इस मद को सूची-1 में अन्तरित कर दिया जिसका मैं मूलतः विरोध करता हूं। मूलभूत अधिकारों के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। मैं इस संविधान सभा के हित में जिसका मैं बहुत सम्मान करता हूं आपसे जो इस सभा के अध्यक्ष व संरक्षक हैं पुनः अपील करता हूं, अत्यन्त विनम्रता से अनुरोध करता हूं कि आप कृपा करके इस द्वेषपूर्ण भेद वाले काम को रोकें। मैं फिर इस बात को दोहराता हूं कि इन करों से 80 प्रतिशत समाचारपत्रों को हानि पहुंचेगी। केवल कुछ ही समाचारपत्र इन करों का बोझ सहन कर सकेंगे। आखिरकार, समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर करों का भुगतान वे ही करेंगे जो विज्ञापन देंगे। सिनेमा-कर का भुगतान कौन करता है? उपभोक्ताओं को करना पड़ता है। प्रान्तीय सरकारें सिनेमा पर कर लगाती हैं, सिनेमा मालिक उपभोक्ताओं पर लगाते हैं। इसी प्रकार यदि कोई कर विज्ञापनों पर लगाया जाता है तो उसका भुगतान विज्ञापन देने वालों को करना पड़ेगा। मैं उस स्थिति की परिकल्पना नहीं करना चाहता। मैं नहीं चाहता कि छोटे समाचारपत्रों को कोई आघात पहुंचे। यदि 10 बड़े समाचारपत्र हैं जिनको छूट मिल जायेगी तो मुझे उसकी कोई परवाह नहीं, परन्तु 80 प्रतिशत को हानि नहीं पहुंचनी चाहिए। हमें इसी दृष्टि से स्थिति का समाधान करना चाहिए।

*__अध्यक्षः__ श्री सिधवा, मैं स्वीकार करता हूं कि मैं आपके नैतिक रोष से सहमत नहीं हूं। मुझे इसका कोई कारण नहीं दिखाई देता। प्रारूप समिति द्वारा प्रस्तुत यह एक सीधा-सादा संशोधन है और प्रस्तावित संशोधन में मुझे कोई गलत बात नजर नहीं आती।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ सभी मदों में से समाचारपत्रों को ही क्यों चुना गया?

*__अध्यक्षः__ यह एक अलग बात है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ यही तो बात है, उस सूची में से केवल इसी को क्यों निकाला गया है?

*__एक माननीय सदस्यः__ प्रतीक्षा कीजिए और देखिए।

*__श्री देशबन्धु गुप्त__ (दिल्ली): अध्यक्ष महोदय, यह देखकर मुझे कोई कम संतोष नहीं हुआ है कि प्रारूप समिति ने सभा के समक्ष प्रस्तुत संशोधनों को लाने में मेरे मित्र श्री गोयनका व सभा के अनेक सदस्यों के विचारों का आदर किया है यह और भी संतोष की बात है कि डॉ. अम्बेडकर ने भी इन संशोधनों पर

[श्री देशबन्धु गुप्त]

अपनी सहमति व्यक्त की है और इस संबंध में उनका पूरा समर्थन प्राप्त है। श्री सिधवा ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है। सभा को मालूम है कि उस दिन जब सभा में इस विषय पर चर्चा हुई थी तब मैंने समाचारपत्रों पर कर लगाने पर ही मूल आपत्ति की थी। यदि आज सभा यह निर्णय कर ले कि समाचारपत्रों पर ऐसा कोई कर नहीं लगेगा तो इसे मेरे और प्रेस से संबंधित मेरे मित्रों से अधिक प्रसन्नता किस को नहीं होगी। नि:संदेह ऐसा ही होना चाहिए क्योंकि किसी भी स्वाधीन देश में जहां लोकतंत्रात्मक सरकार है, बिक्री कर अथवा विज्ञापन-कर जैसा कोई कर नहीं है।

परन्तु मेरे मित्र श्री सिधवा का यह तर्क मेरी समझ में नहीं आता कि वह एक सांस में कहते हैं कि वह समाचारपत्रों को सभी करों से छूट देने को तैयार हैं और दूसरे ही सांस में कहते हैं कि जहां तक बिक्री-कर का संबंध है, समाचारपत्रों तथा अन्य वस्तुओं में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। मेरे लिए इस तर्क को समझना बहुत कठिन है। मेरा कहना यह है कि निश्चय ही समाचारपत्रों के संबंध में भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। समाचारपत्र उद्योग वैसा उद्योग नहीं है जैसे कि अन्य उद्योग हैं। समूचा विश्व इस बात को मानता है। उन्हें एक कर्तव्य का निर्वाह करना होता है और मुझे प्रसन्नता है कि भारत में समाचारपत्रों ने जन सेवा के अपने कर्तव्य को बहुत ही प्रशंसनीय ढंग से निभाया है और उस पर गर्व करने का निश्चित आधार है। मैं सभा से व अपने मित्र श्री सिधवा से आशा करता हूं कि वे इस बात का ध्यान रखें कि परमात्मा न करे कि कभी कर लगाने का कोई प्रस्ताव संसद के समक्ष आये परन्तु यदि ऐसा समय आये तो उस समय वे उसका विरोध करें।

महोदय, आखिर यह एक समर्थकारी खण्ड है। इसमें यह नहीं कहा गया है कि समाचारपत्रों पर बिक्री तथा विज्ञापन कर लगाया ही जायेगा। आज सभा समाचारपत्रों की बिक्री अथवा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर लगाये जाने की स्वीकृति तो नहीं दे रही। हमने तो केवल इस बात पर जोर दिया है कि समाचारपत्रों को प्रान्तीय सरकारों के कार्यक्षेत्र से निकाल लिया जाना चाहिए और संघ सूची में शामिल कर देना चाहिए जिससे यदि कभी समाचारपत्रों पर कोई कर लगाने का प्रस्ताव हो तो तत्संबंधी कार्यवाही उसके समस्त पहलुओं को समझ कर समूचे देश के प्रतिनिधियों द्वारा की जाये। यह काम किसी प्रान्त के किसी मंत्रालय द्वारा अलग से नहीं किया जाना चाहिए। हमारे संशोधन का मूल आशय यह था, जब हमने प्रारूप समिति और अन्य सदस्यों को, विशेषकर डॉ. अम्बेडकर को, यह समझाने का प्रयत्न किया था तब इस विषय को संघ सूची में अन्तरित करने के पक्ष में हमारा तर्क राजनीतिक था। यह नहीं समझा जाना चाहिए कि मैं और भारतीय प्रेस से संबंधित मेरे मित्र ऐसे कर लगाने के लिये किसी प्रकार से वचनबद्ध हैं अथवा वे सहमत हो गये हैं। बिल्कुल नहीं। हम सदा इसके विरुद्ध रहे हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि बम्बई और मद्रास के दो प्रान्तों को छोड़कर अन्य सभी प्रान्त अब तक प्रेस की स्वतंत्रता के पक्ष में रहे हैं। उन्होंने समाचारपत्रों पर कर लगाने के अपने अधिकार का उपयोग कभी नहीं किया है। परन्तु जब से देश में इस विषय पर चर्चा होने लगी है, समूचे प्रेस ने मूल कारणों से उसका जबरदस्त विरोध किया है और मांग की है कि यदि ऐसे कर लगाये जाने हैं तो वे केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने चाहिए। यह मांग करते हुए क्या हमें इस बात का पता नहीं है कि जिन प्रान्तों ने ऐसे कोई कर नहीं लगाये हैं, वहां से

प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र आज भी अछूते हैं, विशेषकर दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र जो केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं और जिन पर बिक्री कर तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक संसद ऐसा कर लगाने पर सहमत न हो जाये। यदि आज दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचारपत्रों सहित सभी समाचारपत्र एक स्वर से इन करों को लगाये जाने का विरोध कर रहे हैं और इस विषय को संघ सूची में शामिल किये जाने की मांग कर रहे हैं तो वे ऐसा इसलिये नहीं कर रहे कि कुछ धनराशि की बचत हो, बल्कि इसलिये कर रहे हैं कि इसमें प्रेस की स्वतंत्रता का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है। उनके संघ सूची में अन्तरण की वकालत करते हुए हम दिल्ली तथा अन्य प्रान्तों में, जिन्होंने ऐसे कर लगाने के लिए अब तक कोई कार्यवाही नहीं की है, ऐसे कर लगाये जाने का जोखिम उठाने को तैयार हैं। परन्तु हम इस मामले को प्रान्तों पर नहीं छोड़ना चाहते हैं ताकि प्रेस की स्वतंत्रता पर कोई आंच न आए। संसद में हमारा पूर्ण विश्वास है, हमें देश की सामूहिक बुद्धिमता पर भरोसा है और हमें इसमें कोई संदेह नहीं कि जब इस मामले पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जायेगा तब समाचारपत्रों पर ऐसे कोई कर नहीं लगाये जायेंगे, परन्तु हमें प्रान्तीय सरकारों में उतना विश्वास नहीं है। केवल इसी आशा में तथा इस स्थिति को पूरी तरह समझते हुए ही हम, एक समझौते के रूप में, अथवा यूं कहिए कि अपेक्षाकृत एक कम बुराई के रूप में, इन दो करों को प्रान्तीय सूची से केन्द्रीय सूची में अन्तरित किए जाने के लिए सहमत हुए हैं।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता ही है कि मेरे मित्र श्री सिधवा किसी समय समाचार जगत से संबंधित थे, ठीक अनेक अन्य राजनीतिक नेताओं की तरह जो कि अपने जीवन के दौरान किसी न किसी समय प्रेस से संबंधित रहे हैं तथा मुझे विश्वास है कि यदि इन करों को अधिरोपित किए जाने का प्रश्न, किसी भी समय, संसद के समक्ष आया तो इसे उनका पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त होगा तथा वह संसद द्वारा समाचारपत्रों की बिक्री अथवा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर लगाए जाने के किसी भी प्रयास के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करेंगे।

मुझे यह प्रतीत होता है कि कुछ स्तरों पर समाचारपत्रों के विरुद्ध एक सामान्य पूर्व धारणा बनी हुई है जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा का विश्वास है। यह हो सकता है कि कुछ समाचारपत्रों ने यह धारणा उत्पन्न कर दी है कि वे "धनकुबेर" हैं, परन्तु उनकी संख्या कितनी है? महोदय, मैं समाचारपत्रों की अर्थव्यवस्था पर चर्चा करने में तथा समाचारपत्रों का इस बारे में सही चित्र सामने रखने में सभा का समय नहीं लेना चाहता कि आज विश्व के अन्य स्वतंत्र देशों के करों की तुलना में उनकी क्या स्थिति है। परन्तु मैं श्री सिधवा तथा उनके जैसे विचारों वाले व्यक्तियों को यह बता देना चाहता हूं कि हो सकता है कि कुछ ऐसे बड़े समाचारपत्र हों जोकि कर अदा कर सकते हों और यह कि यह हो सकता है कि ऐसे समाचारपत्रों को करों की चपेट में लाने के लिए इन करों के बारे में सोचा गया था, परन्तु मैं यह दावे से कह सकता हूं कि अधिकांश समाचारपत्र इन करों से बिल्कुल तबाह हो जायेंगे और यदि इस देश में स्वाधीन पत्रकारिता की कोई आशा है तो उसे केवल तभी पूरा किया जा सकता है जब हम समाचारपत्रों को अकेला छोड़ दें तथा इन विशेष करों को उन पर न थोपें। अन्यथा हम छोटे समाचारपत्रों के, जोकि अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए एक लम्बे समय से संघर्ष करते आ रहे हैं, पूंजीपतियों के हाथों में चले जाने का मार्ग प्रशस्त कर देंगे।

[श्री देशबन्धु गुप्त]

महोदय, मेरा विचार है कि आपसे बेहतर यह कोई नहीं जानता कि "सर्चलाइट", जिसके कि आप संस्थापक थे, क्यों एक शृंखला में शामिल हो गया है। अन्य और भी समाचारपत्र इसी प्रकार किसी न किसी शृंखला में शामिल हो गये हैं। यदि आप समाचारपत्रों का विगत इतिहास देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि भारत में एक भी ऐसा राष्ट्रीय समाचारपत्र नहीं था जिसे कि इसके संस्थापक द्वारा लोगों से धन मांग कर आरम्भ न किया गया हो। महोदय, कौन यह नहीं जानता कि स्वर्गीय मदन मोहन मालवीय को घर-घर जाकर, लोगों से हाथ जोड़ कर उनसे एक सर्वाधिक बड़े समाचारपत्र के शेयर खरीदने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी थी जिसके स्वामित्व के लिए आज दिल्ली को गर्व है।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य के भाषण में बाधा नहीं डालना चाहता हूं। परन्तु फिर भी यहां हम केवल संघ सूची में प्रविष्टि के बारे में विचार कर रहे हैं।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** महोदय, क्योंकि श्री सिधवा ने यह प्रश्न उठाया है कि समाचारपत्र एक पृथक् व्यवहार के हकदार नहीं हैं, मैं केवल उस धारणा को दूर करने का प्रयास कर रहा हूं। मैं इस बात के प्रति पूरी तरह सचेत हूं कि मुझे सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहिए। परन्तु फिर भी क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण विषय है, मैं आपकी अनुमति चाहता हूं कि मुझे कुछ अधिक समय दिया जाये।

अन्य अनेक समाचारपत्रों का इतिहास भी यही बताएगा कि उनकी शुरुआत भी काफी संकटपूर्ण रही थी और यह कि जिन लोगों ने उन्हें आरम्भ किया था उन्होंने वाणिज्यिक उद्देश्य से ऐसा नहीं किया था। यह सच है कि गत कुछ वर्षों में कुछ समाचारपत्रों ने पिछले युद्ध के कारण वित्तीय रूप से लाभ उठाया है। परन्तु उनका विगत इतिहास भुलाया नहीं जाना चाहिए तथा हमें इस तथ्य की अवहेलना नहीं करनी चाहिए कि आखिरकार, समाचारपत्रों को एक महान कार्य सम्पन्न करना है और यह कि वे एक लोकतंत्रीय प्रणाली की सरकार के अस्तित्व के लिए अत्यावश्यक हैं। वे मतदाताओं को शिक्षित करने तथा देश में लोकतंत्रीय सरकार को ठीक से चलाने के लिए अत्यावश्यक हैं। इन परिस्थितियों में समाचार जगत को कमजोर बनाने के लिए उठाए गए किसी भी कदम से यह समझा जाएगा कि यह लोकतंत्रीय सरकार को हानि पहुंचाने वाला कदम है बल्कि इसमें लोगों की स्वाधीनता ही खतरे में पड़ जाएगी जैसा कि अमरीका के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने जिनके स्मरणीय निर्णय का कुछ दिन पूर्व उल्लेख किया गया था, ठीक ही कहा है। उसके अनुसार, "प्रेस को बेड़ियां पहनाने का मतलब है स्वयं अपने आपको बेड़ियां पहनाना।" अतः प्रेस की स्वतंत्रता के नाम में तथा भारतीय पत्रकारिता के भविष्य के नाम में, मैं इस सभा से अपील करता हूं कि वह इस बात को ध्यान में रखे कि समाचारपत्र निश्चय ही भिन्न व्यवहार के हकदार हैं। समाचारपत्र सरकार के लिए भी इतने ही अत्यावश्यक हैं जितने कि देश के हित के लिए तथा हमें सदैव ही इन्हें इसी रूप में देखना होगा।

महोदय, मैं आशा करता हूं कि इस सभा के अधिकांश सदस्य इस बात से भली प्रकार परिचित हैं कि 1942 के स्वाधीनता आन्दोलन में 145 समाचारपत्रों में से 96 समाचारपत्रों ने 9 अगस्त के स्मरणीय प्रस्ताव के पास किये जाने के तुरन्त पश्चात् स्वेच्छा से अपने कार्यालय बन्द कर दिये थे। क्या आप समस्त विश्व के इतिहास में ऐसा कोई अन्य उदाहरण बता सकते हैं जबकि इतनी बड़ी संख्या में समाचारपत्रों ने अल्प सूचना पर अपने कार्यालय बन्द कर दिए हों और इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की हो कि भविष्य में उनके साथ क्या बीतेगी?

उनमें से अधिकांश केवल अपने कार्यालय बन्द करके ही संतुष्ट नहीं रहे अपितु उनके मालिकों तथा सम्पादकों ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तथा जेलों में गए। महोदय, आज भी ऐसे राष्ट्रवादी समाचारपत्र हैं जिन्होंने स्वयं पर स्वेच्छा से रोक लगा रखी है तथा वे शराब और विदेशी कपड़ों के विज्ञापन नहीं छापते। महोदय, क्या इस बात से इन्कार किया जा सकता है कि इन समाचारपत्रों ने अपने सामने एक आदर्श रखा है और वे इन आदर्शों का पालन करने के लिए प्रयत्नशील रहते आये हैं? क्या वे ऐसे करों से छूट प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं? हो सकता है कि यदि ऐसे कर न लगाए जाएं तो इससे कुछ समृद्ध समाचारपत्रों को भी लाभ पहुंचे। परन्तु ऐसे समाचारपत्र तो आरम्भ से ही लाभ उठाते चले आ रहे हैं। उन्हें विगत समय में बड़े पैमाने पर सरकारी संरक्षण मिलता रहा है तथा शायद् सभा को यह जानकर आश्चर्य होगा कि देश में आज कुछ ऐसे समाचार पत्र हैं जो कि 1942 में स्वेच्छा से बन्द कर दिये गए थे तथा जो स्वाधीनता संग्राम में सदैव ही अग्रणी रहे हैं, परन्तु आज कुछ सरकारों द्वारा विज्ञापन देने के सिलसिले में उनके साथ भेदभाव बरता जा रहा है। कुछ मामलों में पुराने परिपत्रों पर अब भी अमल हो रहा है तथा इन राष्ट्रवादी समाचारपत्रों के साथ सरकारी विज्ञापन दिए जाने के बारे में भेदभाव बरता जा रहा है।

***अध्यक्ष:** इस समय हमारे सामने किसी परिपत्र अथवा कर लागू करने के निर्णय का प्रश्न नहीं है। जो प्रश्न हमारे समक्ष इस समय है, वह केवल संविधान में प्रावधान के बारे में है। जब कर लगाने का प्रश्न पैदा होगा, ये सभी तर्क तब पैदा होंगे।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** महोदय, मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हमारी सरकार ने भी परिवहन सुविधाओं के मामले में, डाक सेवा की दरों में रियायतों के मामले में तथा अनेक अन्य रियायतों के मामले में प्रेस के पृथक् स्वरूप को स्वीकार किया है। अत: यह पहले ही स्वीकार किया जा चुका है कि प्रेस के साथ विशिष्ट व्यवहार किया जाना चाहिए।

मैं इस तर्क को और अधिक विस्तृत नहीं करना चाहता परन्तु मैं सभा के समक्ष यह कहना चाहता हूं कि इस प्रश्न का एक अन्य पहलू भी है और इस बात का कारण भी है कि हम इन विषयों को केन्द्र के कार्यक्षेत्र में अन्तरित करने की मांग क्यों करते हैं। मद्रास में प्रवर समिति के समक्ष एक विधेयक लम्बित पड़ा है। मैं इस विधेयक के कुछ खण्डों के संदर्भ में कुछ बात करना चाहता हूं। मद्रास विधेयक के अंतर्गत विज्ञापनों से होने वाली सकल आय पर दस प्रतिशत विज्ञापन कर लगाने का प्रावधान है।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): केवल उन्हीं समाचारपत्रों पर जिनकी आय न्यूनतम है।

***श्री रामनाथ गोयनका** (मद्रास : जनरल): ऐसी बात नहीं है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** यदि आप विधेयक को देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह प्रावधान सभी समाचारपत्रों पर लागू होता है। मद्रास सरकार ने समाचारपत्रों की विज्ञापन से होने वाली आय पर दस प्रतिशत कर लगाने का ही प्रस्ताव नहीं रखा है अपितु उनके विधेयक में सरकार को कुछ समाचारपत्रों को इन करों से छूट देने की शक्ति देने की व्यवस्था भी की गई है। इसमें भी प्रावधान है कि समाचारपत्रों को अपने कृत्य आरम्भ करने से पूर्व लाइसेंस लेना होगा। तो वे समाचारपत्रों के प्रति तथा पत्रकारिता के सम्माननीय व्यवस्था के प्रति ऐसा सम्मान व्यक्त करते हैं। इस बात को तनिक भी नहीं समझा जा रहा है। कि समाचारपत्र लोकतंत्र के वास्तविक जीवन रक्षक हैं तथा जनसाधारण के अधिकारों के लिए लड़ने वाले हैं। बम्बई सरकार ने भी $6^1/_4$ प्रतिशत का कर लगा दिया है और

[श्री देशबन्धु गुप्त]

वह भी विज्ञापनों से होने वाली सकल आय पर। इससे हमारे आंखें खुल गईं और इससे इस बात का स्पष्ट पता चलता है कि यदि इन करों को प्रान्तीय सरकारों के अधिकार तंत्र में रहने दिया गया तो एक दिन ऐसा आ सकता है जबकि अधिकांश छोटे समाचारपत्रों को बन्द हो जाना पड़ेगा। समाचार जगत की इस धारणा के अन्तर्गत हो मेरे मित्र, श्री गोयनका तथा अन्यों ने अपेक्षाकृत कम बुराई के रूप में यह सुझाव दिया था कि इन करों को कम से कम केन्द्रीय सूची में तो अन्तरित कर दिया जाए, ताकि देश कुछ मिलाकर यह निर्णय कर सके कि क्या समाचारपत्रों पर कोई कर लगाया जाना चाहिए और यदि लगाया जाना है तो कितना लगाया जाये।

मैं कुछ शब्द और कह कर समाप्त करूंगा। महोदय, हालांकि मैं अपने मित्र, डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करता हूं, केवल यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि हम भविष्य में समाचारपत्रों पर ऐसा कर लगाए जाने पर सहमत हैं। शायद सभा को मालूम है कि ऑल इण्डिया न्यूज़पेपर्स एडिटर्स कान्फरेंस, इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसायटी तथा इण्डियन लैंग्वेजेज एण्ड न्यूजपेपर्स एसोसिएशन—भारत में प्रेस का प्रतिनिधित्व करने वाले इन तीनों निकायों ने गत मास दिल्ली में बैठक की तथा समाचारपत्रों पर ऐसे सभी करों के विरुद्ध एक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया। नि:संदेह, मैं आयकर तथा अधिकर का उल्लेख नहीं कर रहा हूं, जिस पर कि किसी को कोई आपत्ति नहीं है। इन सभी निकायों ने इस प्रश्न को बहुत गम्भीरता से लिया है। मैं आशा करता हूं कि कोई भी निर्णय जो यह सभा लेगी अथवा संसद भविष्य में लेगी उसमें वे इस बात को ध्यान में रखेंगे कि एक सुदृढ़ तथा स्वतंत्र प्रेस का अस्तित्व देश के हित के लिए अत्यावश्यक है और यह कि प्रेस को कमजोर बनाने के लिए की गई कोई भी कार्यवाही लोकतंत्र को कमजोर बनाएगी, सरकार को कमजोर बनाएगी तथा लोगों की शक्ति को क्षीण करेगी। महोदय, इन शब्दों के साथ मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन का समर्थन करता हूं तथा मैं एक बार फिर उनका धन्यवाद करता हूं। उन्होंने समाचारपत्रों के दृष्टिकोण को भली प्रकार समझा है।

***प्रो. एन.जी. रंगा:** अध्यक्ष महोदय, मुझे प्रसन्नता है कि यह खण्ड संविधान में शामिल करने के लिए लाया गया है। यह आवश्यक है कि समाचारपत्र केन्द्रीय कराधान की परिधि में आने चाहियें। इससे यह भी पता चलता है कि यह समाचारपत्र जगत (फोर्थ एस्टेट) आज कितना मजबूत हो चुका है। यदि इस देश के समाचारपत्र, विशेषकर दैनिक समाचारपत्र, इतने सशक्त न बन गए होते तो कराधान की सूचियों में ये अदल-बदल करना सम्भव न होता जिन्हें कि संविधान में शामिल किए जाने का प्रस्ताव है। यदि मद्रास सरकार ने दैनिक समाचारपत्रों तथा अन्य समाचारपत्रों की विज्ञापनों से होने वाली आय पर कर लगाने का प्रस्ताव लाने की पहलकदमी न की होती तो यह प्रश्न इतनी गम्भीरता से विचार के लिए सामने न आता। मद्रास सरकार द्वारा एक बार कराधान का प्रस्ताव किए जाने के पश्चात् समाचारपत्र जगत के मेरे मित्रों ने अपनी आंखें खोलीं तथा देखा कि यदि प्रान्तीय सरकार को ऐसा कर लगाने की शक्ति कभी दे दी जाती है तो उनके तथा उनकी आय के विरुद्ध चाहे कितनी ही हानिकर कार्यवाही की जा सकती है। अत: उन्होंने इस प्रश्न को इस मंच पर उठाया है तथा वे इसे, केन्द्रीय कराधान की मद के रूप में, केन्द्रीय सूची में शामिल कराये जाने में सफल हुए हैं। महोदय, मेरा इस बारे में कोई विद्वेष नहीं है, परन्तु मैं यह अवश्य कहना चाहूंगा कि गत युद्ध से लेकर समाचारत्रों की वित्तीय स्थिति में भारी परिवर्तन आया है। गत युद्ध से

पूर्व इस देश के अनेक समाचारपत्रों की भले ही जो भी स्थिति रही हो, परन्तु इस युद्ध से लेकर अब तक इनमें से अधिकांश ने भारी लाभ कमाया है तथा इनमें से अनेक मात्र स्वाधीन पत्रिकाएं, मात्र स्वाधीन समाचारपत्र नहीं रहे हैं। वरन अब स्वामियों तथा स्वामित्व की शृंखला में शामिल हो चुके हैं।

*__श्री देशबन्धु गुप्त:__ क्या मैं अपने माननीय मित्र से जो पश्चिमी देशों का भ्रमण कर चुके हैं, यह पूछ सकता हूं कि भारत के समाचारपत्रों में से सर्वोत्तम समाचारपत्रों की पश्चिमी देशों के समाचारपत्रों की तुलना में स्थिति कैसी है?

*__प्रो. एन.जी. रंगा:__ मैं कामना करता हूं कि मेरे माननीय मित्र इतना धन अर्जित करने के अपने प्रयास में पूरे सफल रहें जितना कि पश्चिमी देशों के समाचारपत्रों के स्वामी अर्जित कर रहे हैं। मुझे वस्तुत: उनसे कोई ईर्ष्या नहीं होगी यदि उनका समाचारपत्र आजकल के समय "न्यूयार्क टाइम्स" की तरह फले-फूले तथा वह प्रत्येक रविवार 60 अथवा 64 पृष्ठों का समाचारपत्र निकाल कर अपने पाठकों की सेवा करें, परन्तु यदि वह सारी आय अपने लिए ही रखेंगे तथा उसका कुछ भी भाग देश को देने के लिए तैयार नहीं होंगे तो मुझे विद्वेष होगा। महोदय, इसी कारण मैं यह कहता हूं कि उन समाचारपत्रों के साथ जो कि किसी न किसी प्रकार इतना भारी लाभ अर्जित करते हैं तथा उन समाचारपत्रों के साथ जो कि विशिष्टतया निर्धारित न्यूनतम राशि से अधिक लाभ अर्जित करते हैं, कोई विशिष्ट व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, परन्तु दूसरी ओर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ये विज्ञापनों से होने वाली अपनी आय से उसी प्रकार कर का भुगतान करें जिस प्रकार कि किसी भी अन्य सम्पदा को करना पड़ता है।

*__श्री रामनाथ गोयनका:__ वे आयकर तथा अधिकर देते हैं।

*__प्रो. एन.जी. रंगा:__ इसके बावजूद भी वे भारी लाभ कमाते हैं। मेरे माननीय मित्र, श्री गोयनका स्वयं भी यह सब कुछ अवश्य जानते होंगे, अपनी हानि के लिए नहीं अपितु अपने लाभ के लिए। यह सुनिश्चित करना होगा कि इन समाचारपत्रों से इतना भुगतान और अंशदान कराया जाये जितना कि वे कर सकते हैं। मुझे इसका कोई कारण नजर नहीं आता कि उन्हें ये रियायतें क्यों दी जाती रहें। अब समय आ गया है कि हमारे राजनीतिज्ञ तथा हमारे विधायक अपने स्वाधीन रूप में इस बात पर बलपूर्वक आग्रह करें तथा यह सुनिश्चित करें कि ये लोग, भले ही ये इतने शक्तिशाली हैं। तथा निकट भविष्य में इनके अधिकाधिक शक्तिशाली बनने का खतरा है, आशा के अनुरूप उसी तरह तथा वास्तव में उत्तरोत्तर अधिक अंशदान करें जिस तरह कि हमारे देश में आय का कोई भी अन्य स्रोत करता है।

महोदय, यह सच है कि समाचारपत्र एक महान राष्ट्रीय हित की पूर्ति करते हैं, अन्यथा वे विद्यमान ही न रहें। उनको उसी प्रकार निषिद्ध कर दिया जायेगा जिस प्रकार कि ताड़ी तथा मदिरा और इस प्रकार की अन्य वस्तुओं को निषिद्ध किया जाता है। समाचारपत्रों को केवल इसलिए चलते रहने दिया जाता है कि वे लाभदायी प्रयोजन पूरा करते हैं। जब तक उन्हें अपना व्यवसाय जारी रखने दिया जाता है, तब तक उनके साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो कि अन्य सभी व्यवसायों के साथ किया जाता है और उन्हें किसी विशेषाधिकार की मांग नहीं करनी चाहिए। मेरे माननीय मित्र, श्री देशबन्धु गुप्ता ने समाचारपत्रों द्वारा स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किए गए योगदान का वाक्पटुता से उल्लेख किया है। वे प्रशंसा के पात्र हैं तथा उनमें से वे भी जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपने कार्यालय बन्द करने का साहस किया। परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि जो लाभ वे आज अर्जित कर रहे हैं, कल भी अर्जित करेंगे तथा तत्पश्चात् भी......

***अध्यक्षः** मैं श्री रंगा को बताना चाहूंगा कि आज हम कराधान के किसी प्रस्ताव पर चर्चा नहीं कर रहे हैं परन्तु हम केवल संविधान में एक प्रविष्टि पर चर्चा कर रहे हैं।

***प्रो. एन.जी. रंगाः** वास्तव में, मुझे प्रसन्नता है कि संविधान में यह प्रविष्टियां की जा रही हैं। परन्तु मुझे अधिक प्रसन्नता होती यदि इस मद को समवर्ती सूची में रखा जाता, ताकि यह प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार दोनों के लिए वरदान सिद्ध होती।

***श्री रामनाथ गोयनकाः** क्या आपने काराधान को समवर्ती सूची में रखा है? क्या आपने हमारे संविधान में इसके बारे में कभी सुना है?

***प्रो. एन.जी. रंगाः** उस सीमा तक जिस तक इसे सम्भवतया वहां रखा जा सकता है।

***अध्यक्षः** श्री गोयनका मुझे आशा है कि आप समाचारपत्रों के इतिहास में नहीं जायेंगे। यह सब कुछ हम पहले ही कर चुके हैं।

***श्री रामनाथ गोयनकाः** अध्यक्ष महोदय, मैं इस वाद-विवाद में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था, परन्तु सर्वश्री रंगा तथा सिधवा ने मुझे कुछ शब्द कहने के लिए बाध्य किया। जहां तक मेरा संबंध है, मुझे इस बात पर गर्व नहीं है कि इस प्रविष्टि को केन्द्रीय सूची में स्थान मिला हैं वास्तव में, विश्व के उन्नत लोकतंत्रात्मक देशों में इस कर की 150 वर्ष पूर्व निन्दा की जा चुकी है। मैं सचमुच शर्मिन्दा हूं कि इस देश के संविधान में ऐसी प्रविष्टि देखी जाए। विश्व में ऐसा कोई भी संविधान नहीं है जिसमें कि समाचारपत्रों पर कर की ऐसी कोई प्रविष्टि हो केवल यही एक देश है जहां कि हमने इसे रखा है, इसलिए नहीं कि ऐसा करना सही है परन्तु इसलिए कि हमारे यहां सिधवा जैसे तथा रंगा जैसे लोग हैं और इसी कारण इस सूची में यह प्रविष्टि रखी गयी है। महोदय, मुझे विश्वास है कि जब सेन्ट्रल पार्लियामेंट के लिए कराधान संबंधी मामले पर निर्णय लेने का समय आयेगा तो वह इस बात को ध्यान में रखकर निर्णय नहीं करेगी कि समाचारपत्र परिचालन, विज्ञापनों तथा ऐसी अन्य बातों से कितनी आय अर्जित करते हैं, अपितु इस आधार पर करेगी कि वे कितना शुद्ध लाभ अर्जित करते हैं। मैं उन लोगों में से हूं जो यह कहेंगे कि समाचारपत्र पैसा बनाने वाले संस्थान नहीं हैं। मैं यह कहूंगा कि समाचारपत्रों का कार्य लोक सेवा है तथा लोगों के लिए सूचना की मुक्त धारा बनाये रखना है। मैं उनमें से हूं जो कि अत्यंत स्पष्टतया कहेंगे कि समाचारपत्रों को अत्यधिक धन अर्जित करने की अनुमति नहीं रहनी चाहिए, परन्तु आप बिक्री अथवा विज्ञापनों पर, भले ही वे कितने भी हों, कर लगाकर वह धन नहीं लेंगे तथा समाचारपत्रों को पूर्ववत् लोगों की सेवा करने देते रहेंगे।

***एक माननीय सदस्यः** आप बिरले ही लोगों की सेवा करते हैं।

***श्री रामनाथ गोयनकाः** मैं यह कहना चाहूंगा कि यदि समाचारपत्रों पर कोई कर लगाया जाता है तो वह उनके द्वारा अर्जित शुद्ध लाभ पर लगाया जाना चाहिए। मैं उन लोगों में से हूं जो यह कहेंगे कि यदि कोई समाचारपत्र अपनी पूंजी के तीन प्रतिशत से अधिक लाभ कमाता है तो शेष धन राज्य द्वारा ले लिया जाना चाहिए, परन्तु इससे पूर्व कि आप उन्हें सेवा करने दें, आप उनसे धन छीन नहीं सकते। जहां तक कि समाचारपत्र अर्थव्यवस्था का संबंध है आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि समाचारपत्रों की प्रकाशित प्रतियों में जो अखबारी कागज प्रयोग होता है, उसकी लागत समाचारपत्र की बिक्री से प्राप्त शुद्ध धनराशि के बराबर

ही होती है। अत: सकल आय केवल विज्ञापन से होने वाली आय ही होती है और यदि आप इस सकल राजस्व का 10 प्रतिशत, 15 प्रतिशत या 20 प्रतिशत ले लेते हैं, तो समाचारपत्र-अर्थव्यवस्था पर इसका क्या प्रभाव होगा? क्या आप अपने समाचारपत्रों को "मैनचेस्टर गार्डियन", "द लन्दन टाइम्स" और "द न्यूयार्क टाइम्स" के समतुल्य चाहते हैं, अथवा क्या आप यह चाहते हैं कि आपके समाचारपत्र इस देश में प्रकाशित होने वाले एक प्रकार के बेकार के पत्र हों?

***श्री आर.के. सिधवा:** असंतुलन पत्र प्रस्तुत कीजिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मेरा एक व्यवस्था का प्रश्न है। क्या हम सूची में सम्मिलित मद पर विचार कर रहे हैं अथवा कराधान के किसी प्रस्ताव पर?

***अध्यक्ष:** आपका व्यवस्था का प्रश्न बिल्कुल ठीक है। मैंने वर्तमान वक्ता को कई बार स्वयं याद दिलाया है कि हम कराधान के किसी प्रस्ताव पर चर्चा नहीं कर रहे हैं, वरन केवल संविधान की एक प्रविष्टि पर विचार कर रहे हैं।

***श्री रामनाथ गोयनका:** मैं आपके निर्णय का आदर करूंगा। परन्तु जहां तक समाचारपत्रों का संबंध है, उन्हें इस प्रविष्टि को सूची 1 अथवा 2 में देखकर कोई गर्व नहीं है, परन्तु एक समझौते के तौर पर हम इस पर सहमत हुए थे और मैं यह कहता हूं कि इस कर को, जिसकी कि विश्व के सभी उन्नत लोकतंत्रात्मक देशों में 150 वर्ष पूर्व निन्दा की गई है, इस संविधान में कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए था, और क्योंकि इस मामले के बारे में हमारे कुछ मतभेद हैं इसलिये हम इस पर सहमत हुए हैं, और मैं आशा करता हूं तथा मुझे विश्वास है कि केन्द्रीय सरकार यह कर लागू नहीं करेगी।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में अब आगे चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

***श्री बी.एल. सौंधी** (पूर्वी पंजाब : जनरल): महोदय, चर्चा समाप्त की जाए।

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिम बंगाल : जनरल): मैं केवल कुछ ही शब्द कहना चाहूंगा। मैं चाहता हूं कि बिक्री कर को केन्द्रीय सूची में डाल दिया जाए। वास्तव में इस संबंध में एक संशोधन भी था।

बिक्री कर के कारण विभिन्न प्रान्तों में इतना भ्रम है कि इस बात को विनियमित करने तथा इसके अन्तर्गत सभी को जो कठिनाई हो रही है, उसे दूर करने के लिए कुछ करना ही होगा।

***अध्यक्ष:** हम इस समय उस पर चर्चा नहीं कर रहे हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल) इस पर चर्चा समाप्त करने से बहुत बातों का प्रकट होना टल जाएगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा ने जो कहा कि इन प्रविष्टियों के प्रति मेरा दृष्टिकोण असंगत रहा है, इस बारे में मैं स्पष्टीकरण के रूप में एक या दो बातें कहूंगा। महोदय, इस विषय पर पिछली बार जो चर्चा हुई उसके दौरान मैंने कहा था कि समाचारपत्रों का अनुच्छेद 13 से जो कि मूल अधिकारों के बारे में है। गहरा संबंध है। अत: समाचारपत्रों के बारे में कोई भी प्रावधान करते समय यह एक ऐसा विषय है जिसे ध्यान में रखना होगा।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दूसरी बात यह है कि जहां तक मूल अधिकारों के किसी विनियमन का संबंध है, संविधान के अनुच्छेद 27, जिसे कि हम पहले ही पास कर चुके हैं, के अंतर्गत हमने मूल अधिकारों संबंधी सभी मामले संसद के लिए छोड़ दिए हैं तथा हमने राज्यों के लिए कोई शक्ति नहीं छोड़ी है। अत: मुझे एवं प्रारूप समिति को यह प्रतीत हुआ कि इन बातों को अर्थात् यह कि समाचारपत्र मूल अधिकारों के अंतर्गत आ रहे हैं, तथा मूल अधिकारों से संबंधित सभी कानून संसद के लिए छोड़े जा रहे हैं, दृष्टिगत रखते हुए यह परिणाम स्वाभाविक ही है कि कराधान के लिए समाचारपत्र भी केन्द्र के प्राधिकार के अंतर्गत आने चाहिएं।

तीसरी बात, जिसने कि प्रारूप समिति को प्रभावित किया तथा मुझे भी, यह थी कि इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि समाचारपत्रों का संबंध मूल अधिकारों से है, अर्थात् अभिव्यक्ति एवं विचार की स्वतंत्रता से यह वांछनीय है कि उन पर लगाया गया कोई भी कर एक समान होना चाहिए तथा यह भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिए। यह समानता केवल तब ही सुनिश्चित की जा सकती है जबकि कानून बनाने का मामला संसद पर छोड़ दिया जाए। ये वे तीन बातें हैं जिन्होंने कि मुझे प्रभावित किया तथा उस दृष्टिकोण के संबंध में प्रारूप समिति को भी प्रभावित किया जो कि उसने अपनाया है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात केवल यह थी कि यह मद ऐसी मद नहीं थी जिसका संबंध मात्र कानून बनाने से हो। जहां तक कि समाचारपत्रों को सूची 2 की प्रविष्टि 58 में 'माल' शब्द के अंतर्गत सम्मिलित किया गया, इसका संबंध कर लगाने से भी था। अत: हमने सोचा कि प्रान्तों को ऐसे राजस्व से जो कि वे बिक्री कर अधिनियम के अंतर्गत समाचारपत्रों पर कर लगाकर प्राप्त कर सकते हैं, वंचित न करने के लिए जो कार्यवाही उचित रहेगी, वह यह है कि समाचारपत्रों पर बिक्री कर को अनुच्छेद 250 में शामिल कर दिया जाए जिसमें कि अनेक अन्य मदें सम्मिलित हैं तथा जिसमें यह प्रावधान है कि यदि इन मदों पर कोई कर लगाया गया तो प्राप्त होने वाला राजस्व विभिन्न प्रान्तों में वितरित कर दिया जाएगा।

अत: जो एकमात्र प्रश्न विचारार्थ पैदा होता है वह यह कि सूची 2 से सूची 1 में किए जा रहे इस अन्तरण से क्या हम एक प्रकार से प्रान्तों की वित्त व्यवस्था को हानि पहुंचा रहे हैं। मेरा उत्तर है कि हम प्रान्तों को कुछ भी हानि नहीं पहुंचा रहे हैं, क्योंकि यदि सभा मेरे संशोधन संख्या 374 को पास करने के लिए सहमत हो जाती है तो प्रान्तों को समाचारपत्रों की बिक्री पर लगे किसी कर का वह भाग मिल जाएगा जो कि वे वसूल करते और जो कि अब उन्हें संशोधन संख्या 374 के अन्तर्गत प्राप्त हो जाएगा। ये प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए हमने, जैसाकि मैंने अभी-अभी कहा, इस सामान्य विचार को सामने रखा है कि समाचारपत्रों का संबंध मूल अधिकारों से होने के नाते, इन्हें केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आना चाहिए और यह कि प्रान्तों को जो वित्तीय लाभ होना था, उसको नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। ये परिवर्तन करते समय प्रारूप समिति को उक्त दोनों विचारों ने प्रभावित किया है।

मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा द्वारा किए गए तर्कपूर्ण भाषण के होते हुए भी जो कि मैं भली प्रकार समझ सकता हूं क्योंकि एक अन्य स्थान पर हुई महान

हानि के कारण वह बहुत खीझ रहे हैं, मेरा निवेदन है कि उन प्रविष्टियों पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती जिनका कि हमने प्रस्ताव रखा है।

***श्री आर.के. सिधवा**: महोदय, मुझे डॉ. अम्बेडकर की टिप्पणियों पर आपत्ति है जबकि उन्होंने कहा कि मैं किसी हानि के कारण बहुत खीझ रहा हूं। यदि आप उनसे इन टिप्पणियों को वापस लेने के लिए नहीं कहेंगे तो मैं भी उनके बारे में इसी तरह की टिप्पणी करूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर**: महोदय मैं, अपने शब्दों को वापस लेने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। परन्तु मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूं।

***अध्यक्ष**: इससे मामले का समाधान हो जाता है। अब मैं संशोधन मतदान के लिए रखूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 8 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 378 में सूची 1 में प्रस्तावित नई प्रविष्टि 88-क के स्थान पर यह रखा जाए:

'88-A. Taxes on advertisements published in newspapers.'"

[88-क. समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।]

मेरे विचार में "नहीं" वालों की संख्या अधिक है।

***कुछ माननीय सदस्य**: महोदय, "हां" वाले अधिक हैं।

***अध्यक्ष**: नहीं।

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष**: अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत मूल प्रस्ताव को मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 1 में प्रविष्टि 88 के पश्चात् यह प्रविष्टि अन्तः स्थापित की जाए:

'88-A. Taxes on the sale or purchase of newspapers and on advertisements published therein.'"

[88-क. समाचारपत्रों के क्रय या विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टि 88-क सप्तम अनुसूची की संघ सूची में जोड़ दी गई।

[अध्यक्ष]

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि सूची 8 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 379 में, सूची 2 में प्रस्तावित प्रविष्टि 58 में से 'other than newspapers (समाचारपत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं)' शब्द निकाल दिये जायें।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत की गई प्रविष्टि को मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह हैः

"कि सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 58 के स्थान पर ये प्रविष्टियां रखी जाएं:

'58. Taxes on sale or purchase of goods other than newspapers.

58-A. Taxes on advertisements other than advertisements published in newspapers.'"

[58 समाचारपत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।

58-क. समाचारपत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

प्रविष्टियां 58 तथा 58-क संशोधित रूप में, सप्तम अनुसूची की राज्य सूची में जोड़ दी गईं।

अनुच्छेदों पर पुनर्विचार

***अध्यक्षः** आज हमारी कार्यसूची में ऐसे अनेक अनुच्छेद हैं जिनके लिए उन अनुच्छेदों पर पुनर्विचार करना अपेक्षित है जो कि पास किये जा चुके हैं। पहला है अनुच्छेद 250 जिसका कि उन संशोधनों से गहरा संबंध है जिन्हें कि हमने अभी-अभी पास किया है। नियमों के अन्तर्गत कोई भी प्रश्न जिस पर कि संविधान सभा एक बार निर्णय ले चुकी हो, सिवाए इसके कि उपस्थित तथा मतदान करने वाले कम से कम एक चौथाई सदस्य इसकी स्वीकृत दें, दोबारा विचारार्थ नहीं लिया जाएगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या सभा की स्वीकृति है?

***माननीय सदस्यः** हां।

***श्री आर.के. सिधवाः** महोदय, दूसरे वाचन के समय जब अनुच्छेद एक-एक करके पास किए जा रहे हों, उन पर दोबारा विचार किया जाना अनुमतेय नहीं है। यदि आप इस प्रथा को अनुमति देंगे तो यह भविष्य के लिए एक खराब उदाहरण होगा। यदि कोई अन्य सदस्य किसी अनुच्छेद पर पुनर्विचार किए जाने का प्रस्ताव रखें तो आप उसे इन्कार नहीं कर सकते। तब फिर अन्तिम रूप से तो कुछ भी नहीं किया जा सकता।

***अध्यक्षः** मैं किसी को इन्कार नहीं कर सकता। इन्कार करना सभा का काम है। यदि एक चौथाई सदस्य चाहते हैं कि किसी प्रश्न को दोबारा लिया जाए तो उसे पुनः लिया जा सकता है मैं देख रहा हूं कि एक चौथाई से अधिक सदस्य इस अनुच्छेद 250 पर पुनः विचार करने के इच्छुक हैं।

अन्य अनुच्छेद भी हैं जिन्हें भी दोबारा लिया जाना होगा और जिनका कि आज की कार्य सूची में उल्लेख है: अनुच्छेद 239-242, 248-क, 263, 202 क्या मैं यह समझूं कि सभा इन सभी अनुच्छेदों पर पुनर्विचार किए जाने की अनुमति देती है?

*__श्री आर.के. सिधवा:__ महोदय, हो सकता है कि सदस्यों को कुछ अनुच्छेदों पर तो आपत्ति नहीं हो, परन्तु कुछ पर हो, अत: अनुच्छेदों को एक-एक करके रखा जाए।

*__अध्यक्ष:__ मैं उन्हें एक-एक करके रखूंगा। अनुच्छेद 239 से 242 मैं यह समझता हूं कि सभा उन पर पुनर्विचार के लिए अनुमति देती है।

*__अनेक माननीय सदस्य:__ हां।

*__अध्यक्ष:__ अनुच्छेद 248-क, मैं यह समझता हूं कि सभा इस पर भी पुनर्विचार की अनुमति देती है।

*__अनेक माननीय सदस्य:__ हां।

*__अध्यक्ष:__ अनुच्छेद 263, मैं यह समझता हूं कि सभा उस पर पुनर्विचार के लिए अनुमति देती है।

*__अनेक माननीय सदस्य:__ हां।

*__अध्यक्ष:__ अनुच्छेद 202, मैं यह समझता हूं कि सभा इस पर पुनर्विचार के लिए अनुमति देती है।

*__अनेक माननीय सदस्य:__ हां।

*__अध्यक्ष:__ इन सभी अनुच्छेदों पर पुनर्विचार की अनुमति दी गई है। अनुच्छेद 250 डॉ. अम्बेडकर।

अनुच्छेद 250

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ डॉ. अम्बेडकर इसे पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। यह अब एक औपचारिक मामला ही है तथा इसे मतदान के लिए रखा जा सकता है।

*__अध्यक्ष:__ क्या कोई सदस्य डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत किए गए संशोधन संख्या 374 के बारे में कुछ बोलना चाहते हैं?

(कोई भी सदस्य खड़ा नहीं हुआ।)

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ महोदय, यह एक परिणामिक संशोधन है।

*__अध्यक्ष:__ इस पर कोई भी संशोधन नहीं है। मैं इसे मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 250 के खंड (1) में, उप-खंड (घ) के पश्चात् ये उप-खंड जोड़े जायें:

'(e) Taxes other than stamp duties on transactions in stock-exchanges and futures market;

[अध्यक्ष]

(f) taxes on sale and purchase of newspapers and on advertisements published therein.'"

[(ङ) श्रेष्ठि चत्वरों और वायदा बाजारों के सौदों पर मुद्रांक शुल्क से अन्य कर;

(च) समाचारपत्रों के क्रय-विक्रय तथा प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 202

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 202.

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** सभापति महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"That in clause (1) article 202, after the words 'to issue' the words 'to any person or authority including in appropriate cases any Government within those territories,' be inserted."

[कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में, 'प्रयोजन के लिए' शब्दों के पश्चात् 'उन राज्य क्षेत्रों में किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के प्रति, या समुचित मामलों में किसी सरकार को' शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।]

अनुच्छेद 302 में संशोधन करने का प्रस्ताव रखते हुए मैंने कहा था कि अनुच्छेद 202 में पारिणामिक संशोधन की आवश्यकता होगी। अत: मैं यह प्रस्ताव कर रहा हूं कि संशोधित रूप में इस अनुच्छेद 202 का पाठ अब निम्न प्रकार होगा:

"Notwithstanding anything contained in article 25 of this Constitution every High Court shall have power, throughout the territories in relation to which it exercises jurisdiction to issue to any person or authority including in appropriate cases any Government within those territories directions or orders in the nature of writs of habeas corpus, mandamus, prohibition, quo warranto and certiorari, for the enforcement of any of the rights conferred by Part III of this Constitution and for any other purpose."

[इस संविधान के अनुच्छेद 25 में किसी बात के होते हुए भी, प्रत्येक उच्च न्यायालय को, उन क्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके संबंध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए तथा किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्य क्षेत्रों में के किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के प्रति, या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निदेश या बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेक्षण के प्रकार के लेख निकालने की शक्ति होगी।]

यह मात्र पारिणामिक है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): आपने "समुचित मामलों में" शब्द क्यों रखे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्योंकि समुचित मामले संसदीय विधि द्वारा निर्धारित किए जाएंगे।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है।

"that in clause 1 of Article 202 after the words 'to issue' the words 'to any person or authority including in appropriate cases any Government within those territories' be inserted.'"

[कि अनुच्छेद 202 के खंड (1) में "प्रयोजन के लिए" शब्दों के पश्चात् "उन राज्य क्षेत्रों में के किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के प्रति या समुचित मामलों में किसी सरकार को," शब्द अंत:स्थापित किए जाएं।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नवीन अनुच्छेद 234-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 234 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद अंत:स्थापित किया जाए:

'234 A. (1) The executive power of the Union shall also extend to the giving of directions to a State as to the measures to be taken for the protection of the railways within the State.

(2) Where by virtue of any direction given to a State under clause (1) of this article costs have been incurred in excess of those which would have been incurred in the discharge of the normal duties of the State if such direction had not been given there shall be paid by the Government of India to the State such sum as may be agreed or in default of agreement, as may be determined by an arbitrator appointed by the Chief Justice of India in respect of the extra costs so incurred by the State.'"

[234-क. (1) किसी राज्य में रेलों की रक्षा के लिये किये जाने वाले उपायों के बारे मे उस राज्य को निदेश देने तक भी संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होगा।

(2) जहां इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन किसी राज्य को दिए गए निदेश के कारण उससे अधिक खर्च होता है जो यदि ऐसा निदेश नहीं दिया गया होता तो राज्य के मामूली कर्तव्यों के पालन में खर्च होता, वहां उस राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पाई जाये, अथवा करार के अभाव में जिसे भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।']

महोदय, सर्वप्रथम सारी पुलिस प्रांतीय सूची में है। परिणामत: रेलवे के सम्पत्ति का संरक्षण भी प्रांतीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में है। ऐसा अनुभव किया गया कि कुछ विशेष मामलों में केन्द्र को यह वांछनीय प्रतीत हो सकता है कि प्रांत विशेष उपाय करके रेलवे सम्पत्ति का संरक्षण करे तथा उस प्रयोजन के लिए अब केन्द्र यह चाहता है कि इसे यह शक्ति प्रदान की जाये कि वह उनकी ओर से निदेश दे सके। यह संभव है कि केन्द्र द्वारा दिए गए विशेष निदेशों के कारण, प्रांतों द्वारा सामान्य से अधिक धनराशि खर्च की जाए। उस स्थिति में ऐसी अतिरिक्त राशि का निर्धारण या तो सहमति द्वारा किया जा सकता है अथवा यदि कोई सहमति नहीं होती है तो भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा चुने हुए किसी मध्यस्थ द्वारा किया जा सकता है। यह दूसरा खंड उन अन्य खंडों के अनुरूप है जो कि हमने जहां तक कि अतिरिक्त व्यय का संबंध है, केन्द्र तथा राज्यों में विवादों को निपटाने हेतु संविधान में पास किए हैं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय मैं इस उपबंध की, जिसका संबंध कि केवल रेलवे सम्पत्ति से है, आवश्यकता से संतुष्ट नहीं हूं। मैं नहीं जानता कि रेलवे की सम्पत्ति के संबंध में आशंका का क्या कारण है। सारे देश में ही केन्द्र की सम्पत्ति विद्यमान होगी, तब फिर केवल इसी मामले में ही संरक्षण के लिए तथा विशेष निदेश जारी करने के लिए विशिष्ट उपबंध क्यों होना चाहिए? सभा इस बात को जानती है कि केन्द्र को विभिन्न मामलों में निदेश जारी करने का तथा कुछ निदेश देने का जो कि कानून तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक है, प्राधिकार प्राप्त है तथा अपनी सम्पत्ति के संरक्षण हेतु सामान्य रूप से ऐसे अनुदेश जारी करने की शक्ति केन्द्र के पास है। अत: मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि इसका विशिष्टतया उल्लेख करने और रेलवे सम्पत्ति का ही विशेष उल्लेख करने की क्या आवश्यकता है और वे क्या कारण हैं जिनसे कि हमे केवल रेलवे सम्पत्ति को ही संभवतया क्षति पहुंचने की आशंका है। मैं यह उचित नहीं समझता कि सामान्य शक्ति होने के बावजूद भी हमें इस प्रकार के भय हों। हमने केन्द्र को पहले ही आवश्यकता से अधिक शक्ति से युक्त कर दिया है और इस अनुच्छेद की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। बहरहाल, इस अनुच्छेद की आवश्यकता के लिए जो औचित्य प्रस्तुत किया गया है उससे मैं संतुष्ट नहीं हूं। इस भय के कोई कारण नहीं हैं कि ऐसे अनुच्छेद के न रहने से प्रांत निदेशों का पालन नहीं करेंगे और यह कि व्यय के संबंध में कुछ विवाद उठ खड़े होंगे। कुछ मामले ऐसे हैं जो सामान्य प्रशासन के दौरान पैदा हो सकते हैं तथा उनका समाधान सामान्य तरीके से किया जा सकता है तथा असामान्य उपबंधों तथा समाधान के असामान्य तरीकों की कोई आवश्यकता नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद के खंड (1) का पूर्ण समर्थन करता हूं परन्तु मैं खंड (2) का घोर विरोध करता हूं। प्रांतों के कर्तव्यों के साधारणतया निर्वहन में जो व्यय हुआ होता उससे जितना अधिक व्यय हो गया, उसके बारे में केन्द्र तथा राज्यों के बीच यदि कोई विवाद उठ खडा होता है तो उसके लिए मध्यस्थ नियुक्त करने का कोई कारण नहीं है। स्वामी तथा सेवक को एक ही मंच पर स्थान नहीं दिया जा सकता। ऐसी कोई कार्यवाही बहुत गलत होगी जिससे कि भारत सरकार के प्रभुत्व और शक्ति में कमी आए।

अत: मैं यह चाहता हूं कि व्यय के संबंध में यदि केन्द्र तथा प्रांतों के बीच कोई विवाद उठ खड़ा होता है, तो मामला पूर्णत: राष्ट्रपति के हाथ में छोड़ दिया जाना चाहिए।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, यह खंड बहुत आवश्यक है। मेरे मित्र श्री देशमुख ने जब यह कहा कि हमारे द्वारा पारित वर्तमान अनुच्छेद में ही पर्याप्त उपबंध है तो मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि वह बुनियादी तौर पर गलती पर हैं। रेलवे पुलिस राज्य के प्राधिकार के भीतर का विषय है। एक प्रविष्टि के रूप में पुलिस सूची 1 में सम्मिलित नहीं है। फलस्वरूप केन्द्र के पास किसी पुलिस संबंधी मामले के लिए कानून बनाने का तनिक भी कोई अधिकार नहीं है और न ही तो, कानूनी अधिकार न होने के नाते, उसके पास कोई कार्यपालक अधिकार है। अत: जहां तक रेलवे की सम्पति के संरक्षण का प्रश्न है, यह विषय पूर्णत: राज्य के कार्य पालन अधिकार के भीतर है। ऐसी स्थिति में, ऐसा करने के दो ही तरीके हैं। या तो केन्द्र को अपनी संपत्ति के संरक्षण के लिए पुलिस अधिकार दिया जाना चाहिए, जिस परिस्थिति में कि जो अनुच्छेद मैंने प्रस्तुत किया है, वह अनावश्यक हो जाता है, अथवा हमारे पास ऐसा उपबंध होना चाहिए जिसका कि मैंने सुझाव दिया है, अर्थात् निदेश देने की शक्ति का उपबंध। मान लीजिये कि केन्द्र के पास रेलवे सम्पति के संरक्षण के लिए पुलिस है तो उस पुलिस का प्रांत की पुलिस से टकराव हो सकता है। अत: यह दोहरा क्षेत्राधिकार, सुझाई गई योजना से टाला गया है, अर्थात् यह कि केन्द्र के पास निदेश देने का प्राधिकार होना चाहिए कि रेलवे पर अधिक पुलिस तैनात की जाए बेहतर सावधानियां बरती जाएं ताकि कोई विवाद न हो और यदि अधिक व्यय आता है तो केन्द्र को उसे वहन करने के लिए तैयार करना चाहिए। मुझे इसमें कोई कठिनाई नजर नहीं आती। डॉ. देशमुख का यह तर्क कि इस मामले के लिए पहले से ही प्रावधान है, नितांत गलत है।

***डॉ. पी.सी. देशमुख:** क्या कारण है कि जहां तक कि केन्द्र की शेष सम्पत्ति का प्रश्न है, हम उसके संरक्षण की कोई आवश्यकता नहीं समझते? आप रेलवे सम्पत्ति तथा अन्य सम्पत्ति में अंतर किस प्रकार करते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्योंकि हम सोचते हैं कि रेलवे सम्पत्ति की ओर अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है और यात्रियों की सुरक्षा का प्रश्न भी है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 234 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद अंत:स्थापित किया जाए:

Control of the Union over States as respects protection of railways

'234A.(1) The executive power of the Union shall also extend to the giving of direction to a State as to the measures to be taken for the protection of the railway within the State.

(2) Where by virtue of any direction given to a State under clause (1) of this article costs have been incurred in excess of those which would have been incurred in the discharge of the normal duties of the State if such direction had not been given, there shall be paid by the Government of India to the State such sum as may be agreed or in default of agreement, as may be determined by an arbitrator appointed by the Chief Justice of India in respect of the extra costs so incurred by the State.' "

[अध्यक्ष]

[234-क (1) किसी राज्य में रेलों की रक्षा के लिए किये जाने वाले उपायों के बारे में उस राज्य को निदेश देने तक भी संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार होगा।

रेलों की रक्षा के बारे में संघ का राज्यों पर नियंत्रण

(2) जहां इस अनुच्छेद के खंड (1) के अधीन किसी राज्य को दिए गए निदेश के कारण उससे अधिक खर्च होता है जो यदि ऐसा निदेश नहीं दिया गया होता तो राज्य के मामूली कर्तव्यों के पालन में खर्च होता, वहां उस राज्य द्वारा किये गये अतिरिक्त खर्चों के बारे में भारत सरकार द्वारा उस राज्य को ऐसी राशि दी जायेगी जो करार पाई जाये, अथवा करार के अभाव में जिसे भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नियुक्त मध्यस्थ निर्धारित करे।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नवीन अनुच्छेद 234-क संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 242-क

***अध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, आप संशोधन संख्या 372-क प्रस्तुत कर सकते हैं जोकि शीर्षक के बारे में है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यदि संशोधन संख्या 373 पास कर दिया जाता है तो इसके फलस्वरूप शीर्षक भी निकल जायेगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** महोदय मैं संशोधन संख्या 373 प्रस्तुत करता हूं:

"कि अनुच्छेद 242 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद अंत:स्थापित किया जाए:

'242 A. (1) Parliament may by law provide for the adjudication of any dispute or complaint with respect to the use, distribution or control of the waters of, or in any inter state river or river valley.

Adjudication of disputes relating to waters of inter State rivers or river valleys.

(2) Notwithstanding anything contained in this Constitution, Parliament may, by law, provide that neither the Supreme Court nor any other court shall exercise jurisdiction in respect of any such dispute or complaint as is reffered to in clause (1) of this article.'"

अंतराज्यिक नदियों या नदी दूनों के जल संबंधी विवादों का न्यायनिर्णयन

242-क (1) संसद विधि द्वारा किसी अंतराज्यिक नदी या नदी दून के या में जल के प्रयोग, वितरण या नियंत्रण के बारे में किसी विवाद या फरियाद के न्याय निर्णयन के लिए उपबंध कर सकेगी।

(2) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी संसद विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी कि न तो उच्चतम न्यायालय और न अन्य कोई न्यायालय इस अनुच्छेद के खंड (1) में निर्दिष्ट किसी विवाद या फरियाद के बारे में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा।]

महोदय, इस अनुच्छेद में मूलतः राष्ट्रपति द्वारा कार्यवाही का प्रावधान था। ऐसा विचार था कि जल संबंधी ऐसे विवाद आदि बहुत ही कम हो सकते हैं तथा इनका निपटान एक प्रकार के विशिष्ट तंत्र द्वारा किया जा सकता है जिसकी नियुक्ति की जा सकती है। परन्तु इस बात को देखते हुए कि अब हम विभिन्न निगम बना रहे हैं, तथा इन निगमों को सम्पत्ति तथा अन्य वस्तुएं ग्रहण करने की शक्ति दी जाएगी काफी विवाद पैदा हो सकते हैं और परिणामस्वरूप इन प्रश्नों से निपटने के लिए एक स्थायी निकाय की नियुक्ति आवश्यक हो जाएगी। अतः यह महसूस किया गया कि मूल प्रारूप अथवा प्रस्ताव इतना संकीर्ण तथा अपरिवर्तनीय प्रकार का है कि उसके अंतर्गत ऐसी लचीली कार्यवाही नहीं की जा सकती जो कि इन समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक हो। इसलिए मैं इस नए अनुच्छेद का प्रस्ताव रख रहा हूं जिसके अंतर्गत कि इन विवादों के निपटान के लिए संसद विधि बना सकेगी।

***श्री आर.के. सिधवाः** अनुच्छेद 242 को निकाल देने का प्रस्ताव है। तो फिर यह नया अनुच्छेद 242-क किस प्रकार अनुच्छेद 242 के पश्चात् आएगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह अनुच्छेद केवल स्थान की ओर संकेत करता है।

***अध्यक्षः** हम अनुच्छेद 242 पास कर चुके हैं। अब क्या कोई सदस्य इस नए अनुच्छेद के बारे में बोलना चाहता है। इस पर कोई संशोधन नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इस अनुच्छेद के खंड (1) का समर्थन करता हूं परन्तु मैं यह समझता हूं कि इन अंतरराज्यी नदियों तथा नदी घाटियों संबंधी विवादों के समाधान के लिए कानून बनाने की शक्ति संसद को देने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार से यह विषय राष्ट्रपति के पास ही दिया जाना चाहिए था।

***अध्यक्ष महोदयः** अब मैं नये अनुच्छेद 242-क को मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 242-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ

नया अनुच्छेद 242(क) संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 372-क।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय मैं प्रस्ताव करता हूं:

"that the heading above Article 239, and Articles 239, 240, 241 and 242 be deleted."

[कि अनुच्छेद 239 के ऊपर शीर्षक तथा अनुच्छेद 239, 240, 241 और 242 को निकाल दिया जाए।]

ये अनुच्छेद 242-क के अंतर्गत आ जाते हैं तथा इस प्रकार अनावश्यक हैं।

***अध्यक्षः** क्या कोई सदस्य इस संशोधन के बारे में कुछ कहना चाहता हूं? इस पर कोई संशोधन नहीं है। तब फिर मैं इसे मतदान के लिए रखता हूं।

प्रश्न यह है:

"that the heading above Article 239, and Articles 239, 240, 241 and 242 be deleted."

[कि अनुच्छेद 239 के ऊपर शीर्षक तथा अनुच्छेद 239, 240, 241 और 242 को निकाल दिया जाए।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 239 के ऊपर शीर्षक तथा अनुच्छेद 239, 240, 241, और 242 को निकाल दिया गया।"

अनुच्छेद 248-क, 263 तथा 263-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय मैं तीन संशोधन संख्या 380, 381 और 382 प्रस्तुत करना चाहूंगा जिनके द्वारा तीन नये अनुच्छेद लाये जा रहे हैं और मैं संशोधन संख्या 382 से आरंभ करता हूं क्योंकि शेष पारिणामिक हैं।

***अध्यक्षः** ठीक है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 263 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद अंत:स्थापित किया जाए:

"263 A. All moneys received by or deposited with—

Custody of suitors' deposits and other moneys received by public servants and courts.

(a) any officer employed in connection with the affairs of the Union or of a State in his capacity as such, other than revenues or public moneys raised or received by the Government of India or the Government of a State, as the case may be, or

(b) any court within the territory of India to the credit of any cause, matter account or persons, shall be paid into the public account of India or of the State, as the case may be.'"

[263-क यथास्थिति भारत के लोक लेखे में या राज्य के रोक लेखे में—]

(क) यथास्थिति भारत सरकार या राज्य की सरकार द्वारा वसूल किये गए या प्राप्त राजस्व या लोक धन को छोड़कर, संघ या राज्य के कार्यों के संबंध में नौकरी में लगे हुए किसी पदाधिकारी को उसकी उस हैसियत में, अथवा

लोक-सेवकों और न्यायालयों द्वारा प्राप्त वादियों के निक्षेप और अन्य धन की अभिरक्षा

(ख) किसी वाद, विषय, लेख या व्यक्तियों के नाम में जमा किये गये भारत के राज्य क्षेत्र के अंदर किसी न्यायालय को, प्राप्त या निक्षिप्त सब धन डाले जायेंगे।]

अध्यक्ष महोदय, यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं अन्य संशोधन भी प्रस्तुत करूंगा तथा कुछ सामान्य टिप्पणियां करना ताकि सदस्य उन परिवर्तनों को समझ सकें जो कि हम करने जा रहे हैं।

***अध्यक्षः** हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन संख्या 380 तथा संशोधन संख्या 381 प्रस्तुत करता हूं। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 248-क के स्थान पर यह अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए:

'248A. (1) Subject to the provisions of article 248B of this Constitution and to the provisions of this Chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues received by the Government of India and all loans raised by them by the issue of treasury bills, loans or ways and means advances and all moneys received in repayment of loans shall form one consolidated fund to be entitled "The Consolidated Fund of India" and all revenues received by the Government of a State loans raised by the Government of a State by the issue of treasury bills, loans or ways and means advances and all moneys received by a State in repayment of loans shall form to one consolidated fund to be entitled "The Consolidated Fund of the State".

Consolidated Funds and Public Accounts of India and of the States.

(2) All other public moneys received by or on behalf of the Government of India or the Government of a State shall be credited to the public account of India, or of the State, as the case may be.

(3) No moneys out of the Consolidated Fund of India of a State shall be appropriated except in accordance with law and for the purposes and in the manner provided in this Constitution.'"

[248-क (1) इस संविधान के अनुच्छेद 248-ख के उपबंधों के तथा कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम को पूर्णतः या अंशतः राज्यों को सौंपे जाने के बारे में इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व, तथा उसके द्वारा राज हुण्डियों को निकालकर, उधार द्वारा या अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिए गए सभी उधार तथा उधारों के प्रतिदान में प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि बनेगी जो भारत की संचित निधि के नाम से ज्ञात होगी तथा किसी राज्य सरकार को प्राप्त सब राजस्व, राज्य सरकार द्वारा राजहुण्डियों को निकाल

भारत और राज्यों की संचित निधियां और लोक लेखे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

कर, उधार द्वारा या अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिए गए सब उधार और उधारों के प्रतिदान में इस राज्य को प्राप्त सब धनराशियों की एक संचित निधि बनेगी जो "राज्य की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

(2) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा या ओर से, प्राप्त अन्य सब सार्वजनिक धन यथास्थिति, भारत के या राज्य के लोक-लेखे में जमा किये जाएंगे।

(3) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन निधि की अनुकूलता से तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जाएंगे।]

संशोधन संख्या 381

"कि अनुच्छेद 263 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाए:

Custody of Consolidated Funds, Contingency Funds and moneys credited to the public accounts and the payment of moneys into and withdrawal of moneys from such Funds and public accounts.

'263 (1) The custody of the Consolidated Fund and the Contingency Fund of India, the payment of moneys into such Funds, the withdrawal of moneys therefrom the custody of public moneys other than those credited to such Funds received by or on behalf of the Government of India, their payment into the public account of India and the withdrawal of moneys from such account and all other matters connected with or ancillary to matters aforesaid shall be regulated by law made by Parliament, and, until provision in that behalf is so made by Parliament, shall be regulated by rules made by the President.

(2) The custody of the Consolidated Fund and the Contingency Fund of a State, the payment of moneys into such Funds, the withdrawal of moneys therefrom, the custody of public moneys other than those credited to such Funds received by or on behalf of the Government of a State, their payment into the public account of the State and the withdrawal of moneys from such account and all other matters connected with or ancillary to matters aforesaid shall be regulated by law made by the Legislature of the State, and until provisions in that behalf is so made by the Legislature of the State, shall be regulated by rules made by the Governor of the State.'"

संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं में जमा धनराशियों की अभिरक्षा तथा ऐसी निधियों और लोक लेखाओं में धनराशियों का संदाय तथा धनराशियों का निकाला जाना।

[263 (1) भारत की संचित निधि और भारत की आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधियों में धन का डालना, उनसे धन का निकालना ऐसी निधियों में जमा किये जाने वाले धन से अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त लोक-धन की अभिरक्षा, उनका भारत के लोक-लेखे में दिया जाना तथा ऐसे लेखे से धन का निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन संसद द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक उसके लिए उपबंध इस प्रकार न किया जाये तब तक राष्ट्रपति द्वारा निर्मित नियमों से होगा।

(2) राज्य की संचित निधि और राज्य की आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधियों में धन का डालना, उनसे धन का निकालना, ऐसी निधियों में जमा किये धन से अतिरिक्त राज्य की सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त धन की अभिरक्षा, उनका राज्य के लोक लेखे में दिया जाना तथा ऐसे लेखे से धन को निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक इसलिये उपबंध उस प्रकार नहीं किया जाये तब तक, राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों से होगा।]

संक्षेप में, ये परिवर्तन दो प्रकार के हैं। मूल रूप से अनुच्छेद 248-क में संचित निधि का विस्तार सीमित था। संचित निधि में उधार के आगमों, राजहुंडियों तथा अर्थोपाय अग्रिमों का विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं था। अब हम उनका विशेष उल्लेख करना चाहते हैं जिससे कि वे संचित निधि का भाग बन जाएं।

दूसरी बात यह है कि संचित निधि को परिभाषित करने में हमने इसमें कुछ ऐसी धनराशियां जोड़ दीं जो कि राज्य को प्राप्त होती है, परंतु वे करों या उधारों आदि से आगम नहीं हैं, जिसका परिणाम यह था कि राज्य को राजस्व या उधारों से भिन्न प्राप्त लोक धनराशियां भी विनियोग अधिनियम, अर्थात् अनुच्छेद 248-क के खंड (3) में समाविष्ट उपबंधों के अध्यधीन आ गई। स्पष्ट है कि धन का निकाला जाना जो कि राज्य की संचित निधि का भाग नहीं बन सकता, किसी विनियोग अधिनियम के अधीन नहीं लाया जा सकता। उन्हें मुक्त रखा जाएगा ताकि उन्हें ऐसे तरीके से, ऐसे प्रयोजनों के लिए तथा ऐसे समयों पर निकाला जा सके, परन्तु यह कि यह उन शर्तो के अध्यधीन रहेगा जो कि संसद द्वारा उसके लिए विशिष्टतया निर्धारित की जाएं। अत: संचित निधि की परिभाषा को स्पष्टतया विस्तृत करने तथा संचित निधि को अन्य उन निधियों से, जो कि अनिवार्यतया लोक लेखे में समाविष्ट होती है। अलग करने के लिए ही वह परिवर्तन किए गए हैं। इन परिवर्तनों का कोई अन्य प्रयोजन नहीं है। वित्त मंत्रालय ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि विनियोग अधिनियम से संबंधित हमारा उपबंध अन्य धनराशियों के लिए भी लागू कर दिया गया है जोकि साधारणतया लोक लेखे में समाविष्ट होती है और यह कि इससे परेशानी पैदा होने की संभावना है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही मूल अनुच्छेद में अब ये उपबंध जोड़े गए हैं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 263 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद अंत:स्थापित किया जाये:

'263 A. All moneys received by or deposited with—

Custody of suitors' deposits and other moneys received by public servants and courts.

(a) any officer employed in connection with the affairs of the Union or of a State in his capacity as such, received by the Government of India or the Government of a State, as the case may be, or

(b) any court within the territory of India to the credit of any cause, matter, account or persons, shall be paid into the public account of India or of the State, as the case may be.'"

[अध्यक्ष]

263-क यथास्थिति भारत के लोक लेखे में या राज्य के लोक लेखे में—

लोक सेवकों और न्यायालयों द्वारा प्राप्त वादियों के निक्षेप और अन्य धन की अभिरक्षा।

(क) यथास्थिति भारत सरकार या राज्य की सरकार द्वारा वसूल किये गए या प्राप्त राजस्व या लोक धन को छोड़ कर, संघ या राज्य के कार्यों के संबंध में नौकरी में लगे हुए किसी पदाधिकारी को उसकी हैसियत में, अथवा

(ख) किसी वाद, विषय, लेखे या व्यक्तियों के नाम में जमा किये गये भारत के राज्य क्षेत्र के अंदर किसी न्यायालय को प्राप्त या निक्षिप्त सब धन डाले जायेंगे।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नया अनुच्छेद 263-क संविधान में जोड़ दिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 248-क के स्थान पर यह अनुच्छेद प्रतिस्थापित किया जाए:

Consolidated Funds and Public Accounts of India and of the States.

'248A. (1) Subject to the provisions of article 248B of this Constitution and to the provisions of this chapter with respect to the assignment of the whole or part of the net proceeds of certain taxes and duties to States, all revenues received by the Government of India and all loans raised by them by the issue of treasury bills, loans or ways and means advances and all moneys received in repayment of loans shall form one consolidated fund to be entitled "The Consolidated Fund of India" and all revenues received by the Government of a State, loans raised by the Government of a State by the issue of treasury bills, loans or ways and means advances and all moneys received by a State in repayment of loans shall form one consolidated fund to be entitled "The Consolidated Fund of the State".

(2) All other public moneys received by or on behalf of the Government of India or the Government of a State shall be credited to the public account of India, or of the State, as the case may be.

(3) No moneys out of the Consolidated Fund of India or of a State shall be appropriated except in accordance with the law and for the purposes and in the manner provided in this constitution.'"

भारत और राज्यों की संचित निधियां और लोक लेखे।

[248-क (1) इस संविधान के अनुच्छेद 248-ख के उपबंधों के तथा कुछ करों और शुल्कों के शुद्ध आगम को पूर्णत: या अंशत: राज्यों को सौंपे जाने के बारे में इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, भारत सरकार द्वारा प्राप्त सब राजस्व, तथा उसके द्वारा राजहुण्डियों को निकालकर उधार द्वारा या अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिए गए सभी उधार तथा उधारों के प्रतिदान में प्राप्त सब धनों की एक संचित निधि बनेगी जो "भारत की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी तथा राज्य सरकार को प्राप्त सब राजस्व किसी राज्य सरकार द्वारा राजहुण्डियों को निकाल कर उधार द्वारा या अर्थोपाय पेशगियों द्वारा लिए गए सब उधार और उधारों के प्रतिदान में इस राज्य को प्राप्त सब धनराशियों की एक संचित निधि बनेगी जो "राज्य की संचित निधि" के नाम से ज्ञात होगी।

(2) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा या की ओर से प्राप्त अन्य सब सार्वजनिक धन, यथास्थिति, भारत के या राज्य के लोक-लेखे में जमा किये जाएंगे।

(3) भारत की या राज्य की संचित निधि में से कोई धन निधि की अनुकूलता से तथा इस संविधान में उपबंधित प्रयोजनों और रीति से अन्यथा विनियुक्त नहीं किये जाएंगे।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 248-क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 263 के स्थान पर यह अनुच्छेद रखा जाए:

Custody of Consolidated Funds, Contingency Funds and moneys credited to the public accounts and the payment of moneys into and withdrawal of moneys from such Funds and public accounts.

'263 (1) The custody of the Consolidated Fund and the Contingency Fund of India, the payment of moneys into such Funds, the withdrawal of moneys therefrom the custody of public moneys other than these credited to such Funds received by or on behalf of the Government of India, their payment into the public account of India and the withdrawal of moneys from such account and all other matters connected with or ancillary to matters aforesaid shall be regulated by law made by Parliament, and, until provision in that behalf is so made by Parliament, shall be regulated by rules made by the President.

(2) The custody of the Consolidated Fund and the Contingency Fund of a State, the payment of moneys into such Funds, the withdrawal of moneys therefrom, the custody of public moneys other than these credited to such Funds received by or on behalf of the Government of a State, their payment into the public account of the State and the withdrawal of moneys from such account and all other matters connected with or ancillary to matters aforesaid shall be regulated by law made by the Legislature of the State, and until provisions in the behalf is so made by the Legislature of the State, shall be regulated by rules made by the Governor of the State.'"

[अध्यक्ष]

[263 (1) भारत की संचित निधि और भारत की आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधियों में धन का डालना, उनसे धन का निकालना ऐसी निधियों में जमा किये जाने वाले धन से अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त लोक-धन की अभिरक्षा, उनका भारत के लोक-लेखे में दिया जाना तथा ऐसे लेखे से धन का निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन संसद द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक उसके लिए उपबंध इस प्रकार नहीं किया जाये तब तक, राष्ट्रपति द्वारा निर्मित नियमों से होगा।

संचित निधियों, आकस्मिकता निधियों और लोक लेखाओं में जमा धनराशियों की अभिरक्षा तथा ऐसी निधियों और लोक लेखाओं में धनराशियों का संदाय तथा धनराशियों का निकाला जाना।

(2) राज्य की संचित निधि और राज्य की आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी निधियों में धन का डालना, उनसे धन का निकालना, ऐसी निधियों में जमा किये धन से अतिरिक्त राज्य की सरकार द्वारा या उसकी ओर से प्राप्त लोक धन की अभिरक्षा, उनका राज्य के लोक लेखे में दिया जाना तथा ऐसे लेखे से धन का निकालना तथा उपर्युक्त विषयों से संसक्त या सहायक अन्य सब विषयों का विनियमन राज्य के विधान मंडल द्वारा निर्मित विधि से होगा तथा जब तक उसके लिए उपबंध इस प्रकार नहीं किया जाये तब तक, राज्य के राज्यपाल द्वारा निर्मित नियमों द्वारा किया जाएगा।]

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 263, संशोधित रूप में, संविधान में जोड़ दिया गया।

उसके पश्चात् सभा शनिवार, 10 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिए स्थगित हुई।

Con. 3. IX.31.49
320

अंक 9

संख्या 31

शनिवार,
10 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[अनुच्छेद 24 पर विचार] 1857-1972

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 10 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 24

***अध्यक्ष:** इस समय हम अनुच्छेद 24 को लेंगे और हम संशोधन संख्या 369 से आरम्भ करेंगे। माननीय सदस्यों पर मैं इस बात का जोर डालना चाहता हूं। कि इस अनुच्छेद पर हमें आज वाद-विवाद समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि सोमवार और मंगलवार के लिये हमने भाषा सम्बन्धी एक अन्य विषय नियत कर दिया है।

इस संशोधन पर मेरे पास लगभग 97 संशोधन आ चुके हैं। उनमें से बहुत से एक दूसरे से मिलते हैं और कुछ आपस में समान हैं। मैं आशा करता हूं कि सदस्यगण अपने संशोधनों को पेश करने का आग्रह करते समय इस बात का ध्यान रखेंगे जिससे कि विभिन्न सदस्यों द्वारा अपने अपने संशोधन पेश करते समय हमारे समक्ष वे ही तर्क न दुहराये जायें। सबसे पहला संशोधन जिसे हम लेंगे वह संशोधन संख्या 369 है।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह समझूं कि यदि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद एक बजे तक समाप्त नहीं हो पाता है तो फिर उसे दोपहर बाद भी जारी किया जायेगा जिससे कि हमें सोम और मंगल भाषा सम्बन्धी प्रश्न के लिये मिल सकें?

***अध्यक्ष:** इस पर हम सोमवार को विचार करेंगे। यदि आवश्यक हुआ। तो आज हम दोपहर बाद सत्र रखेंगे।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

"कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law.

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

Compulsory acquisition of property.

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning, any commercial or industrial undertaking shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition, unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined.

(3) No such law as is referred to in clause (2) of this article made by the Legislature of a State shall have effect unless such law having been reserved for the consideration of the President has received his assent.

(4) If any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution has, after it has been passed by such Legislature, received the assent of the President, the law so assented to shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.

(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or penalty or for the promotion of public health or the prevention of danger to life or property.

(6) Any law of a State enacted, not more than one year before the commencement of this Constitution, may within three months from such commencement be submitted by the Governor of the State to the President for his certification; and thereupon if the President by public notification so certifies, it shall not be called in

question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article or sub-section (2) of section 299 of the Government of India Act, 1935.' "

[24. (1) कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। सम्पत्ति का अनिवार्य अर्जन।

(2) कोई स्थावर और जंगम सम्पत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है।

(3) राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि ऐसी विधि को, राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने के पश्चात् उसकी अनुमति न मिल गई हो।

(4) यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने किसी लम्बित विधेयक को ऐसे विधान-मंडल द्वारा पार किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो इस प्रकार अनुमति विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।

(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से–

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य जो कोई विधि किसी कर या अर्थ दंड के आरोपण या उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिये अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या सम्पत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, प्रभाव नहीं होगा।

(6) राज्य की कोई विधि, जो इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष से अनधिक पहले अधिनियमित हुई हो ऐसे प्रारम्भ से तीन महीने के अन्दर उस राज्य के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष उसके प्रमाणन के लिये रखी जा सकेगी, तथा ऐसा होने पर यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति ऐसा प्रमाणन देता है तो किसी न्यायालय

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

> में उस पर उस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के अथवा भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 की उपधारा (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।]

श्रीमान, इस सभा में इस संविधान के कई अनुच्छेदों पर पर्याप्त समय तक वाद-विवाद हुआ है। ऐसे और कई अनुच्छेद होने के बारे में मुझे संदेह है जिन पर इतना अधिक वाद-विवाद हुआ हो जितना इस वर्तमान अनुच्छेद पर जिसे मैंने पेश किया है। इस वाद-विवाद में कई महान विधि विशारदों ने भाग लिया है। चाहे वाद-विवाद निजी रूप में हुआ हो तथा किसी अन्य स्थान पर हुआ हो—और यह स्वाभाविक ही है कि उन्होंने इस विषय पर बहुत अधिक प्रकाश डाला है—वास्तव में इतना अधिक प्रकाश कि टकराते हुए प्रकाश के किरण पुंजों से कुछ अंधकार सा हो गया है। परन्तु जो प्रश्न हमारे समक्ष हैं, वे वास्तव में बड़े साधारण हैं।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, माननीय प्रधान मंत्री का भाषण इस ओर सुनाई नहीं दे रहा है।

*__श्री जसपतराय कपूरः__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): वे जो कुछ कहते हैं उसका हम एक-एक शब्द सुनना चाहते हैं।

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः__ श्रीमान, मैं कह रहा था कि इस सभा में नहीं वरन् बाहर परस्पर सदस्यों में इस अनुच्छेद पर जो महान वाद-विवाद हुआ है उसके होते हुए भी जो प्रश्न इसमें अन्तर्ग्रस्त हैं वे उस विवाद की तुलना में सरल हैं। यह सच है कि इन प्रश्नों पर दो दृष्टिकोण हैं—वे दो दृष्टिकोण हैं संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार और उस संपत्ति में संप्रदाय का हित अथवा संप्रदाय का अधिकार। यह आवश्यक नहीं है कि इन दोनों में परस्पर विरोध हो, कभी-कभी ये दोनों एक हो जाते हैं और यदि आप चाहें तो कभी-कभी इन में कुछ मामूली सा विरोध भी हो जाता है। यह संशोधन जो मैंने पेश किया है उसमें इस विरोध से बचने या उसे दूर करने का प्रयत्न किया गया है और इन दोनों व्यक्तिगत अधिकार और साम्प्रदायिक अधिकार को पूर्णतया मानने का भी प्रयत्न किया गया है।

सर्वप्रथम हमें यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है, बिना प्रतिकार के अधिकार च्युत करने का कोई प्रश्न नहीं है। यदि लोक प्रयोग के लिये संपत्ति अपेक्षित है तो यह एक सुस्थापित विधि है कि राज्य द्वारा वह अर्जित की जानी चाहिये और यदि आवश्यक हो तो दबाव डाल कर अर्जन कर लेना चाहिये और प्रतिकर देना चाहिये और उस विधि में प्रतिकर पर विचार करने की रीति निर्धारित है। साधारणतया ऐसे अर्जुन के सम्बन्ध में जिनको छोटी-छोटी संपत्तियों का अर्जन कहा जा सकता है और नगर इत्यादि के सुधार के लिये यदि आप चाहें तो तुलना में उसे बड़ी संपत्ति का अर्जन भी कह सकते हैं। विधि स्पष्ट रूप में निर्धारित कर दी गई है। परन्तु आज सम्प्रदाय को समाज सुधार और समाज विकास इत्यादि की बड़ी-बड़ी योजनायें अधिकाधिक संख्या में लेनी होंगी जिन पर छोटे-छोटे भूमि के टुकड़े या इमारतों के व्यक्तिगत अर्जन के

दृष्टिकोण से विचार नहीं किया जा सकता है। कठिनाइयां उत्पन्न होती ही हैं, परन्तु अन्य प्रकार की कठिनाई के अतिरिक्त समय का भी प्रश्न है। यह एक ऐसा विधान है जिसे सम्प्रदाय, अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के रूप में राज्य की उन्नति और क्षेम के लिये बहुत आवश्यक समझता है और यह एक ऐसा विधान है जिसका प्रभाव करोड़ों पर पड़ता है। यह स्पष्ट है कि इस विधान को आप बहुत काल के लिये न्यायालयों में लगातार मुकदमेबाजी पर नहीं छोड़ सकते हैं। अन्यथा करोड़ों लोगों के भविष्य पर प्रभाव पड़ेगा और राज्य रूपी विशाल भवन की जड़ें तक हिल जायेंगी; अतः हमें इन बातों को दृष्टि में रखना पड़ा। यदि हमें संपत्ति पर अधिकार करना है; यदि राज्य की यही इच्छा है तो हमें यह देखना पड़ेगा कि उचित तथा न्यायपूर्ण प्रतिकर दिया जाये, क्योंकि हम उचित तथा न्यायपूर्ण प्रतिकर के आधार पर अग्रसर हुए हैं। परन्तु जब हम उसके औचित्य पर विचार करते हैं तो हमें यह सदैव स्मरण रखना पड़ेगा कि औचित्य केवल व्यक्ति पर ही लागू नहीं है वरन् सम्प्रदाय कर भी है। कोई व्यक्ति सम्प्रदाय के अधिकारों का पूर्णतया अतिक्रमण नहीं कर सकता है और यदि बहुत ही आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कारण नहीं है, तो किसी संप्रदाय को व्यक्ति के अधिकारों में ठेस लगाना तथा उन पर आक्रमण करना नहीं चाहिये।

इस सबका किस प्रकार संतुलन किया जाये? कुछ सीमा तक आप वैध साधनों द्वारा इसका संतुलन कर सकते हैं, परन्तु संतुलन करने वाला प्राधिकारी देश का केवल सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-मंडल ही हो सकता है जो अपने समक्ष लौकिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की उन सब बातों को रख सकता है जो इस विषय में उत्पन्न होती हैं। यदि आप इस अनुच्छेद को पढ़ने की कृपा करेंगे तो आपको इसमें विचार का एक क्रम मिलेगा और यह अनुच्छेद उन विभिन्न बातों को निर्दिष्ट करता है और मैं समझता हूं कि एक न्यायोचित रूप में उनको निर्दिष्ट करता है। यह सच है कि कुछ माननीय सदस्य इस अनुच्छेद की आलोचना करेंगे कदाचित् कुछ आच्छादन होने के प्रति, कदाचित् कुछ सदस्य यह समझें कि इधर-उधर किसी शब्द या पद में स्पष्टता का अभाव है। कुछ हद तक ऐसा हो ही जाता है और विशेषकर जबकि आप बहुत से विचारों, दृष्टिकोणों और बातों को एक साथ मिलाते हैं और उनको एक या कुछ पदों में रहते हैं।

इस अनुच्छेद का मसौदा जिसे प्रस्थापित करने का मुझे गौरव मिला है, वह बहुत अधिक परामर्श का परिणाम है और वास्तव में यह इस प्रश्न पर विभिन्न दृष्टिकोणों को एक साथ मिलाने और उनमें समझौता करने के प्रयत्न का परिणाम है। मैं समझता हूं कि यह प्रयत्न बहुत कुछ अंश में सफल हुआ है। शायद यह प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल न हो जो उसके एक भाग पर दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक जोर डालना चाहें, परन्तु मैं समझता हूं कि यह समझौता ठीक है और इसमें केवल व्यक्ति के ही प्रति नहीं वरन् सम्प्रदाय के प्रति भी न्याय किया गया है।

इस अनुच्छेद के प्रथम खंड में यह आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित किया गया है कि विधि के प्राधिकार के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। दूसरे खंड में कहा गया है कि उस

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

विधि में सम्पत्ति के लिये प्रतिकर की व्यवस्था होनी चाहिये और या तो वह विधि प्रतिकर की राशि नियत करे या उन सिद्धान्तों का उल्लेख करे जिनके अधीन या जिस रीति से वह प्रतिकर निश्चित किया जायेगा। विधि में यह व्यवस्था होनी चाहिये। संसद को यह कहना चाहिये। इस कार्य में न्यायपालिका के बीच में आने का कोई निर्देश नहीं है। इस बात पर बहुत विचार किया गया है और इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है कि न्यायपालिका का दखल कहां होता है। महान विधि विशारदों ने हमें बताया है कि सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि इस खंड की ठीक-ठीक रचना होने पर न्यायपालिका का न तो दखल होना चाहिये और न दखल होता है। संसद स्वयं प्रतिकर निश्चित करती है या उस प्रतिकर के सिद्धान्त निश्चित करती है और उन पर सिवाय इस एक कारण के आधार पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि जब यह समझा जाये कि उस विधि का पूर्ण दुरुपयोग किया गया है और जहां कि वास्तव में संविधान के साथ धोखा हुआ है। न्यायपालिका का दखल इस बात के देने में होता ही है कि संविधान के साथ धोखा हुआ है या नहीं। परन्तु सामान्यतया यह मानना पड़ता है कि राष्ट्र के समस्त सम्प्रदाय का प्रतिनिधान करने वाली कोई संसद अपने ही संविधान के साथ कभी धोखा नहीं करेगी और व्यक्ति के प्रति तथा सम्प्रदाय के भी प्रति न्याय करने के लिये बहुत उत्सुक रहेगी।

अन्य खंडों के बारे में मुझे बहुत कम कहने की आवश्यकता है सिवाय इसके कि खंड (4) उन विधेयकों के सम्बन्ध में है जो इस समय राज्य के विधान-मंडलों में लम्बित हैं। सभा को यह विदित होगा कि ऐसे विधेयक लम्बित हैं। इन उपक्रमों के प्रति किसी शंका को मिटाने के लिये उसमें यह कहा गया है कि जैसे ही राष्ट्रपति उस विधि पर अनुमति दे देते हैं उस अधिनियम के उपबन्धों पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जानी चाहिये। इसके पूर्व यह भी कहा जा चुका है कि वह विषय राष्ट्रपति के पास भेजा जायेगा। यदि आप चाहें तो यह एक प्रकार की रुकावट है यह देखने के लिये कि जल्दी में विधान-मंडल ने कोई ऐसा काम तो नहीं कर दिया है जो उसे नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा है तो निस्सन्देह राष्ट्रपति उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करेगा और संसद के विचार-विमर्श के लिये ऐसे परिवर्तनों का सुझाव देगा जैसे वह उचित समझे।

अन्त में कुछ ऐसे रक्षात्मक खंड हैं जिनके बारे में मुझे बहुत अधिक नहीं कहना है। खंड (6) में पुनः ऐसी कोई विधि निर्दिष्ट है जो गत वर्ष पार कर दी जा चुकी है या इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष पूर्व। उसमें कहा गया है कि यदि राष्ट्रपति प्रमाणन कर देता है तो अन्य कोई आपत्ति नहीं उठानी चाहिये। इस अनुच्छेद को पढ़ते हुए मुझे यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि इस पर जो हमने इतना अधिक वाद-विवाद किया था वह यहां नहीं वरन् अन्यत्र ही हुआ। यह वाद-विवाद होना ही था कदाचित् इस अनुच्छेद पर नहीं तो शायद अन्य मतभेदों पर जो सदस्यों के मन में है और मेरा विश्वास है बहुत से बाहर के लोगों के मन में भी है।

हम एक महान संक्रान्ति के युग में होकर गुजर रहे हैं। वास्तव में इस बात को बार-बार कहा जाता है। परन्तु पुरानी बातों को दुहराना ही पड़ता है और उनको

याद रखना पड़ता है, वरना उनके भूल जाने से हम अपने आप को कठिनाइयों और संकटों में डाल देंगे। जब हम एक महान संक्रान्ति काल में से गुजरते हैं तो अनेक प्रणालियों में–यहां तक कि विधि की प्रणाली में भी—परिवर्तन हो जाता है। जो विचार हमें आधारभूत प्रतीत होते हैं उनमें परिवर्तन हो जाता है। और मैं सभा का ध्यान इसी संपत्ति संबंधी विचारधारा की ओर आकर्षित करता हूं जो कि हमें एक अपरिवर्तनशील विचारधारा सी प्रतीत होती है परन्तु जिसमें समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं और बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं और जिसमें आज कल बड़े वेग से परिवर्तन हो रहा है। एक समय ऐसा था जबकि संपत्ति मानव प्राणियों में होती थी। राजा सबका स्वामी होता था। भूमि, पशु तथा मनुष्य इन सबका स्वामी होता था। प्राचीन काल में संपत्ति का अनुमान जितने गाय-बैल आपके पास होते थे उनसे लगाया जाता था। उसके बाद भू संपत्ति अधिक महत्वपूर्ण हुई। धीरे-धीरे मनुष्यों के रूप में संपत्ति न रही। यदि आप उस पिछले काल को लें जब कि दास प्रथा पर वाद-विवाद होता था तो आपको विदित हो जायेगा कि मानव के रूप में संपत्ति के संबंध में उस समय कितने ऐसे ही तर्क प्रस्तुत किये जाते थे जो कभी-कभी अन्य प्रकार की संपत्ति पर प्रस्तुत किये जाते हैं। दास प्रथा का अन्त हो ही गया।

शनैः शनैः संपत्ति के रूप में परिवर्तन हुआ और यह परिवर्तन विधि के द्वारा इतना नहीं हुआ वरन् मानव समाज की प्रगति के द्वारा हुआ। भविष्य के समान वर्तमान हाल में भी संभव है कि भूमि एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रकार की संपत्ति हो। कोई व्यक्ति इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। फिर भी वर्तमान काल में अन्य प्रकार की संपत्ति उद्योगोन्नत देशों में बहुत महत्वपूर्ण है। अन्ततः आप संपत्ति के इस रूप पर पहुंचते हैं जो एक करोड़पति के हाथों में एक कागज के बंडल में निहित है जिसमें करोड़ों की प्रतिभूतियां और हुन्डियां इत्यादि हैं। आज संपत्ति का यही रूप है और करोड़पति का यही वास्तविक रूप है। कदाचित यह एक आश्चर्यजनक रूप है कि उस संपत्ति की बड़ी सावधानी से रक्षा करनी पड़ती है जो कि बड़ी-बड़ी संपत्तियों के रूप में केवल एक पत्र है। दूसरे शब्दों में संपत्ति आज कल अधिकाधिक रूप में एक प्रत्यय का प्रश्न होता जाता है। वह अधिकाधिक अभौतिक होती चली जा रही है तथा अधिकाधिक निराकार रूप ग्रहण करती चली जा रही है। एक प्रत्ययवान व्यक्ति के पास अधिक संपत्ति है, वह संपत्ति खड़ी कर सकता है और उस प्रत्यय से आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। परन्तु जिस व्यक्ति का प्रत्यय नहीं है वह कुछ भी नहीं कर सकत है। सभा के सामने केवल यह दिखाने के लिये मैं यह कह रहा हूं कि अनेक औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की क्रान्तियों के कारण जबकि समाज में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं इस संपत्ति के विचार में भी परिवर्तन हो रहा है।

एक और परिवर्तन होता है। संपत्ति तो संपत्ति ही रहती है पर उस संपत्ति के स्वामित्व का विस्तार हो जाता है। एक छोटे से अंश का स्वामी होने की अपेक्षा व्यक्ति न्यूनाधिक रूप में एक बहुत बड़े अंश का स्वामी बनना आरम्भ कर देता है और उसके बाद वह एक बहुत बड़ी संपत्ति का साझीदार बन जाता है। और उससे लाभ उठाता है यद्यपि वह उसका पूर्ण स्वामी नहीं होता है। इस प्रकार से सहयोगी उपक्रम आरम्भ हुए और इसी प्रकार से संयुक्त श्रेष्ठि प्रणाली आरम्भ हुई। इस तरह एक प्रकार से संपत्ति के एक बहुत बड़े समूह का, जिसको कभी एक व्यक्ति संधारण नहीं कर पाता था सिवाय कभी किसी बिरले के, एक सदस्य के

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

रूप में उसके एक आंशिक स्वामी होने के विचार का प्रसारण हुआ है। आधुनिक समय में एक सीमित संख्या के व्यक्तियों में धन तथा संपत्ति पर एकाधिकार करने की प्रवृति पाई गई है। भारत में यह बात इतनी लागू नहीं होती है क्योंकि इस दिशा में हम अभी इतना आगे नहीं बढ़े हैं। परन्तु जहां औद्योगिक देशों की वेग से उन्नति हुई है वहां पूंजी पर एकाधिकार हुआ है जिसका फल यह हुआ कि संपत्ति का प्राचीन विचार तथा उसके लिये स्वतंत्र प्रयत्न सरलता से प्रयोज्य नहीं हो पाता है क्योंकि अन्त में कुछ थोड़े से व्यक्ति, जिनका पूंजी पर पूर्ण एकाधिकार है, वास्तव में अपना आतंक जमा देते हैं, छोटे-छोटे दुकानदारों को वे अपनी व्यापार नीति से और इस कारण से कि उनके पास बहुत अधिक धन है मिटा सकते हैं। बिना कुछ प्रतिकर दिये वे उन्हें जड़ से मिटा देते हैं। चन्द व्यक्तियों में धन शक्ति को केन्द्रित करने की इस आधुनिक प्रवृत्ति से छोटे आदमी जड़ से मिट जाते हैं। इस प्रकार से संपत्ति पर वैयक्तिक स्वामित्व की विचारधारा का ह्रास केवल उस सामाजिक प्रगति के कारण नहीं हुआ है जो हमें होती हुई दिखाई देती है तथा न संपत्ति पर सहकारी स्वामित्व की नई विचारधारा के ही कारण हुआ है, वरन् इस पुरानी विचारधारा के प्रबल होने के कारण हुआ है कि एक धनवान जिसके पास पूंजी है वह छोटे लोगों को कौड़ियों के मोल खरीद सकता है।

व्यक्ति की आप किस प्रकार से रक्षा करना चाहते हैं? यह कहते हुए मैंने आरम्भ किया था कि दो दृष्टिकोण हैं—व्यक्ति का दृष्टिकोण और सम्प्रदाय का दृष्टिकोण। परन्तु उन चन्द व्यक्तियों के सिवाय जो स्वयं अपनी रक्षा करने में पर्याप्त रूप से समर्थ हैं आज हम व्यक्तिक की किस प्रकार रक्षा कर सकते हैं। उनकी संख्या कम हो गई है। ऐसी स्थिति में राज्य को संपत्ति पर वैयक्तिक अधिकार की रक्षा करनी होगी। चाहे उसके पास संपत्ति हो, पर उसके लिये वह निरर्थक हो सकती है, क्योंकि मार्ग में कोई एकाधिकार आड़े आ आये और उसे संपत्ति के उपयोग करने से रोके। अत: जब आप यह कहते हैं कि आप व्यक्ति के अधिकार की रक्षा करते हैं तो यह विषय इतना साधारण नहीं है क्योंकि पूंजीवाद और समाजवाद दोनों में आज जो भिन्न-भिन्न शक्तियां कार्य कर रही हैं उनके कारण व्यक्ति संभवत: अपने उस अधिकार को पूर्ण रूप से खो दे।

खैर, यह एक महान् प्रश्न है और कोई भी इसके विभिन्न पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचार कर सकता है। सभा के समक्ष इन अधिक व्यापक वाद हेतुओं की ओर मैं संकेतमात्र करना चाहता हूं क्योंकि मुझे कुछ थोड़ी सी यह आशंका है कि यह सभा कहीं इस समस्या के उन मानवी तथा अन्य पहलुओं की उपेक्षा करते हुए, जो आज वास्तव में संसार का रूप बदल रहे हैं, अत्यन्त बारीक तथा चातुर्य्यपूर्ण वैंध तर्कों से प्रभावित न हो जाये।

सभा को इस समस्या के संक्रान्तिक तथ क्रान्तिकारी पहलुओं को भी ध्यान में रखना है क्योंकि जब आप आज भारत में की भू समस्या पर विचार करते हैं तो आप किसी ऐसी बात के बारे में विचार कर रहे हैं जो प्रगतिशील, गतिमान,

परिवर्तनशील तथा क्रांतिकारी है। भली प्रकार से ये बात भारतवर्ष की दशा दोनों रूपों में बदल सकती है—चाहे आप उनको निपटायें या न निपटायें—वह कोई स्थायी बात नहीं है। वह एक ऐसी बात है जो पूर्णतया निरपेक्ष रूप से विधि तथा संसद के नियंत्रण के अधीन नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि परिवर्तनशील वातावरण में विधि और संसद स्वयं ठीक रूप में नहीं मिल बैठ पाते हैं तो वे परिस्थितियों का पूर्ण रूप से नियंत्रण नहीं कर पाते हैं। यह एक महान तथ्य है। अत: भारत में तेजी के साथ बदलती हुई स्थिति के प्रसंगानुसार हमें इस प्रश्न पर विचार करना है तथा इस अखिल संसार और एशिया के प्रसंगानुसार हमारा इससे संबंध है।

यह कहना होगा कि इन समस्याओं पर हमें विधि तथा स्मृति संबंधी संकीर्णता में पड़ कर विचार नहीं करना है। यहां कुछ ऐसे माननीय सदस्य हैं जो शुरू से भूमि के स्वामी हैं, जमींदार हैं। स्वभावत: वे यह समझते हैं कि इस भूमि संबंधी विधान से उनके हितों पर प्रभाव पड़ेगा। परन्तु मैं समझता हूं कि जिस रूप में आज इस भूमि संबंधी विधान पर विचार किया जा रहा है—किसी अन्य स्थान के अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त के भूमि सम्बन्धी विधान से मैं कुछ अधिक परिचित हूं—जहां तक उनका संबंध है शायद उनको यह रूप पूर्णतया ठीक न प्रतीत हो, परन्तु उनके ही दृष्टिकोण से यह रूप किसी उस अन्य रूप से अधिक न्याययुक्त तथा अच्छा है जो कि बाद में होने वाला है। वह रूप संभवत: किसी विधान के द्वारा न हो। भूमि समस्या को शायद किसी और रूप में तय किया जाये। यदि आप अखिल विश्व तथा अखिल एशिया की स्थिति पर ध्यान दें तो बड़ी-बड़ी संपदाओं के धीरे-धीरे सुधार करने के अतिरिक्त अन्य कोई बात अधिक महत्वपूर्ण तथा मुख्य नहीं है।

यह कोई आज की नीति नहीं है बल्कि राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा वर्षों पूर्व निर्धारित की गई प्राचीन नीति है कि भारत में जमींदारी प्रथा अर्थात् बड़ी-बड़ी संपदाओं पर अधिकार रखने की प्रणाली को मिटा दिया जाये।

जहां तक हमारा संबंध है हम लाग जिनका कांग्रेस से संबंध है वे यह स्वाभाविक ही है कि उस प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से शत प्रतिशत सक्रिय करेंगे और हमारे मार्ग में कोई विधि संबंधी बारीकियां तथा कोई परिवर्तन आड़े नहीं आयेगा। यह बिल्कुल स्पष्ट बात है। हम अपने वचनों का पालन करेंगे। सीमाओं के अन्तर्गत कोई भी न्यायाधीश तथा कोई भी सर्वोच्च न्यायालय अपने आपको एक तीसरा सदन नहीं बना सकता है। समस्त संप्रदाय की इच्छा का प्रतीक संसद की संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न इच्छा के परे किसी सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायपालिका का निर्णय नहीं टिक सकता है। यदि यदा कदा हमसे कोई गलती हो जाती है तो वह उसे बता सकती है परन्तु अन्तत: जहां कि संप्रदाय के भविष्य का प्रश्न है मार्ग में कोई न्यायपालिका आड़े नहीं आ सकती है। परन्तु फिर भी अपने देश की न्यायपालिका, सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालयों को हमें सम्मान करना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति होते हुए उनका यह कर्तव्य है कि वे यह देखें कि उत्तेजनावश तथा आवेश में आकर कहीं जनता के प्रतिनिधियों ने भी गलती तो नहीं की है-उनसे गलती हो सकती है। न्यायालय के निष्पक्ष वातावरण में उनको यह देखना चाहिये कि कोई

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

भी ऐसा काम न किया जाये जो संविधान के विरुद्ध हो, जो देश के हित के विरुद्ध हो और जो संप्रदाय के अधिक व्यापक अर्थ में उसके विरुद्ध हो। अत: यदि ऐसी कोई बात होती है वे उस बात की ओर ध्यान आकर्षित करें, पर यह स्पष्ट है कि कोई भी न्यायालय, कोई भी न्यायपालिका एक तीसरे सदन के रूप में, एक प्रकार से शुद्ध करने वाले तीसरे सदन के रूप में प्रकार्य नहीं कर सकते हैं। अत: यह आवश्यक है कि इन परिसीमाओं के अधीन न्यायपालिका को प्रकार्य करना चाहिये।

आपने यह निश्चय किया है, इस सभा ने यह विनिश्चत किया है और शायद अधिकांश प्रान्तीय सरकारों ने यह विनिश्चय किया है कि दूसरा सदन रखा जाये। ऐसा क्यों निश्चित किया गया है? दूसरा सदन भी अधिकतर एक निर्वाचित सदन है। शायद ऐसा उन्होंने इसलिये विनिश्चित किया है कि प्रथम सदन के शीघ्रता में किये गये किसी विनिश्चय पर हम कहीं रोकथाम चाहते हैं जिस विनिश्चय के प्रति बाद में स्वयं उसी सदन को खेद हो और वह उसे वापस लेना चाहे। अत: इस दृष्टिकोण से किसी छोटे मामले के लिये नहीं वरन् इस आधारभूत सिद्धान्त के लिये जिसको आप निर्धारित करते हैं यह वांछनीय है कि कुछ लोग रखे जाये जिनका यह कर्तव्य हो कि वे यह देखें कि आप गलती तो नहीं करते हैं यह वांछनीय है कि कुछ लोग रखे जाये जिनका यह कर्तव्य हो कि वे यह देखें कि आप गलती तो नहीं करते हैं क्योंकि कभी-कभी विधान-मण्डल भी गलती कर सकता है परन्तु अन्त में तथ्य यह है कि विधान-मंडल सर्वोच्च है और सामाजिक सुधार के ऐसे उपक्रमों में न्यायालय द्वारा उस के मार्ग में बाधा नहीं होनी चाहिये। अन्यथा आप आश्चर्य जनक कार्यपद्धतियां अंगीकर करेंगे और यह सत्य है कि उनमें से एक पद्धति संविधान में परिवर्तन करने की है, दूसरी वह है जिसे हम समुद्र पार के देशों में देखते हैं कि कार्यपालिका जो कि न्यायपालिका को नियुक्त करने की प्राधिकारिणी है वह अपने पक्ष में विनिश्चय कराने के लिये अपनी इच्छा के अनुकूल न्यायाधीशों को नियुक्त करती है, परन्तु यह एक बहुत अच्छी रीति नहीं है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस संकल्प में जो विचार प्रस्तुत किया है, वह दोनों व्यक्ति और संप्रदाय की रक्षा करता है। उसमें अन्तिम प्राधिकार संसद को दिया गया है केवल किसी भीषण त्रुटि के मामले में, संविधान के विरोध करने या ऐसे ही अन्य मामलों में, उच्चतर न्यायालयों को जांच का अधिकार है अन्यथा नहीं। और अन्त में कुछ लम्बित विषयों के सम्बन्ध में तथा उन विषयों के सम्बन्ध में जो पार किये जा चुके हैं, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किसी प्रकार की बाधा न हो। मैं इस संशोधन को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इससे पूर्व कि हम इस संशोधन के वाद विवाद में अग्रसर हों जो कि इस समय अनुच्छेद 24 के मसौदे के रूप में है मैं औचित्य सम्बन्धी प्रश्न के संबंध में एक प्रारंभिक आपत्ति करूंगा। अपना निवेदन करने के पूर्व मैं यह कहना चाहूंगा कि इस अनुच्छेद में बाधा डालने के लिये मैं ऐसा नहीं कर रहा हूं, परन्तु मैं स्वयं अपनी इस

तुच्छ रीति से एक दोष की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जो इसमें है। श्रीमान, आपका तथा माननीय प्रस्तावक महोदय का ध्यान मैं इस अनुच्छेद के खंड (4) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जो इस प्रकार है:—

"If any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution has, after it has been passed by such Legislature, received the assent of the President, the law so assented to shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article."

[यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने किसी लम्बित विधेयक को ऐसे विधान-मंडल द्वारा पार किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो इस प्रकार अनुमत विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।]

श्रीमान, यदि आप मूलाधिकार समिति की सिफारिशों पर इस सभा के वाद-विवाद की ओर कृपा कर निर्देश करेंगे तो आपको विदित होगा कि उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था कि प्रतिकर दिये बिना किसी संपत्ति पर अधिकार या उसका अर्जन नहीं किया जायेगा। श्रीमान, इसी विचार को माननीय प्रधान मंत्री ने भी अभी प्रकट किया था, जबकि इस विषय पर प्रारम्भिक भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि बिना प्रतिकर के अधिकार च्युत करने का प्रश्न ही नहीं है। इस सभा में जो हमने सिद्धान्त स्वीकार किया था उसका तथा अपना संशोधन पेश करते हुए अभी माननीय प्रधान मंत्री ने जो वक्तव्य दिया उसका मैं आधार ग्रहण करता हूं। अब यदि हम सावधानीपूर्वक खंड (4) के शब्दों को पढ़ें....।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मेरे मित्र किस मूलाधिकार का उल्लेख कर रहे हैं?

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन का खंड 19। यदि आप को पृष्ठ संख्या चाहिये तो वह मैं आपको बताऊंगा।

***कुछ माननीय सदस्य:** परन्तु हमने क्या अनुच्छेद पास किया है।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे सदस्य को अपनी बात कहने दें अभी वे औचित्य प्रश्न पर नहीं आये हैं। वे प्रारम्भिक बातें कर रहे हैं। उन्हें अपने औचित्य प्रश्न को रखने दीजिये।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** यदि आप इस अनुच्छेद के खंड (4) को पढ़ेंगे तो यह विदित होगा कि विधान-मंडल में लम्बित विधेयक पर किसी न्यायालय में

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है। खंड (2) में ही हमने यह उपबन्ध किया है कि संपत्ति पर कब्जा या उसका अर्जन करने के लिये जो कोई विधि पार की जाती है वह प्रतिकर का उपबन्ध करे और या तो प्रतिकर की राशि को नियत करे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख करे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है और खंड (4) में निर्धारित किया है कि यदि कोई विधेयक खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है तो किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकती है जिसका अभिप्राय यह है कि वह विधान-मंडल को यह शक्ति दे रहा है कि यदि वह आवश्यक समझे तो बिना किसी प्रतिकर के दिये संपत्ति पर कब्जा करने या उसका अर्जन करने की विधि पारित कर सकता है। प्रतिकर का उपबन्ध खंड (2) में ही है अन्यत्र नहीं।

पं. बालकृष्ण शर्मा (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि जो तर्क माननीय सदस्य ने प्रस्तुत किये हैं वे किसी प्रकार से भी औचित्य प्रश्न से संबंधित नहीं हैं? वे सभा के समक्ष केवल प्रस्थापना पर वाद-विवाद कर रहे हैं और इस कारण.....।

*__अध्यक्ष:__ जहां तक मैं समझ पाया हूं वे खंड (4) के सम्बन्ध में अपना औचित्य प्रश्न कर रहे हैं। मैं यह नहीं जानता कि वे ठीक हैं या गलत। मैं केवल यह बता रहा हूं कि जो कुछ मैंने उनकी बात से समझा है उसके अनुसार वे किस बात पर जोर दे रहे हैं। खंड (4) जिस रूप में इस समय प्रस्तुत किया गया है उसके अधीन यदि कोई विधेयक जो कि इस समय लम्बित है या जो इस संविधान के प्रारम्भ के समय लम्बित रहेगा उसमें यदि प्रतिकर देने का या जिस सिद्धान्त अथवा रीति के अनुसार प्रतिकर निश्चित किया जायेगा उसके निर्धारण करने का उपबन्ध नहीं होता है और यदि वह विधेयक पारित हो जाता है और उस पर राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो उस पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकती है। उनका औचित्य प्रश्न यह है कि लम्बित विधेयकों के विषय में इसके द्वारा आप खंड (2) का शून्यन कर रहे हैं। उनका यही औचित्य प्रश्न है।

*__श्री श्यामानन्दन सहाय:__ मेरा प्रश्न ठीक यही है।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ यदि हम पूर्ववर्ती खंड में रूप में भेद करें तो भी कोई औचित्य प्रश्न आ जाता है? यह हमारा निकाय सर्वोच्च है।

*__श्री श्यामानन्दन सहाय:__ बिल्कुल ठीक। हम उसे समझ लें। सभा को इस बात का ज्ञान हो जाना चाहिये कि वह क्या पारित कर रही है। यदि सभा किसी ऐसे विधान को पारित करने के लिये उद्यत है जो विधान-मंडल को बिना प्रतिकर के अधिकारच्युत करने के विधान तक को पारित करने की शक्ति देता है और यदि ठीक यही विचार माननीय प्रधान मंत्री का है जो इस संशोधन के पेश करने वाले हैं तब तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मेरा आधार जो कुछ हम इस सभा में मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के खंड 19 तथा इस

संविधान के खंड 13 और 15 में पारित कर चुके हैं और जो कुछ इस अनुच्छेद के खंड (2) में दिया हुआ है उन पर है और जब मैं यह देखता हूं कि खंड (4) उन उपबन्धों का उल्लंघन करता है तथा उनका खंडन करता है तो, श्रीमान मेरा यह विचार करना स्वाभाविक है कि जब तक उसमें उचित रूप से संशोधन न किया जाये तब तक इस प्रकार के उपबन्ध को संविधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये। मेरी पूरी बात यह है। यह भी सच है कि खंड (6) के संबंध में भी यही तर्क है, पर एक सी बात होने के कारण मैं आपका और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं।

अपने स्थान ग्रहण करने के पूर्व जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि यह एक ऐसी बात है जो बहुत महत्वपूर्ण है। सभा को यह जानना चाहिये कि हमारी स्थिति क्या है। हम एक ऐसी विधि पार करना चाहते हैं जिसके द्वारा हम बिना प्रतिकर के अधिकार च्युत कर सकते हैं। यदि सभा का यह विचार नहीं है और यदि इस संशोधन में यह विचार निहित नहीं है तो उसका उचित रूप में संशोधन होना चाहिए और श्रीमान, यदि यह कहा जाये कि यह नहीं हो सकता कि विधान-मंडल जिसमें बड़े-बड़े योग्य व्यक्ति होते हैं तथा विभिन्न सरकारों में भी ऐसे व्यक्ति होते हैं, इस कारण वह बिना प्रतिकर के विधान नहीं पारित करेगा और किसी ऐसे विधान के पारित होने की हम आशंका न करें तो मैं केवल यही कहूंगा कि माननीय प्रधान मंत्री जैसा लोकतंत्रवादी नेता हमें व्यक्तियों की सद्भावना पर निर्भर होने की मंत्रणा नहीं देगा और न अपने अधिकारों की रक्षा के लिये स्वयं संविधान के उपबन्धों पर निर्भर होने की।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय इसमें संदेह नहीं कि खंड (4) खंड (2) का एक अपवाद है। "सब अनुच्छेदों में उनके पूर्ववर्ती अनुच्छेदों के अपवाद हैं।" हम सदैव यही कहते हैं कि "इस बात के होते हुये भी" और "परन्तु" इत्यादि इत्यादि और मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि कोई औचित्य प्रश्न उठता हो क्यों खंड (4) खंड (2) का केवल अपवाद है। ऐसा अपवाद हम रखें या न रखें यह बात दूसरी और क्या किसी सारवत् खंड में कोई अपवाद हो सकता है यह बात दूसरी है। प्रत्येक परन्तुक हम ऐसे अपवाद को प्राधिकृत करते हैं। अतः मैं जो कुछ निवेदन करना चाहता हूं। वह यह है कि माननीय सदस्य ने कोई औचित्य प्रश्न नहीं किया है। हां, यदि हम अपवाद को हटा दें और प्रधान मंत्री को यह शक्ति दे दें कि खंड (2) में ऐसा अपवाद नहीं किया जायेगा तो बात दूसरी है।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): मैं बोलना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ क्या आप औचित्य प्रश्न का समर्थन करना चाहते हैं?

*__श्री विश्वनाथ दासः__ मैं इस औचित्य प्रश्न का विरोध करना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ आप के विरोध की आवश्यकता नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान, मैं कुछ का समर्थन करना चाहता हूं और कुछ का विरोध।

*__अध्यक्षः__ आप ने अवश्य ही भाषण देने की बात पक्की कर ली!

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान, औचित्य प्रश्न से दो बातें पैदा होती हैं। पहली यह कि मूलाधिकारों पर के अपने ही विनिश्चयों का हम विरोध कर रहे हैं। जहां तक तर्क के इस अंश का संबंध है मैं उसका समर्थन करता हूं। सभा ने जो विनिश्चय किया था उसको केवल नियमित दीति से ही बदला जा सकता है और यदि हमें खंड (4) को स्वीकार करना है तो हमें नियमित रूप से अपने विनिश्चय को बदलना चाहिये अर्थात् जिस रूप से नियमों में निर्धारित है। अतः नियमित रूप से हमारे विनिश्चयों के बदले जाने के अधीन औचित्य प्रश्न का यह भाग सही है।

औचित्य प्रश्न के दूसरा भाग, कि यह खंड (2) का उल्लंघन करता है, वास्तव में कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। यह तो शायद औचित्य पर तर्क है। औचित्य को मैं नहीं लेना चाहता हूं, पर मैं समझता हूं कि वह औचित्य प्रश्न नहीं है। वैध रूप में विधि बनाने और अपवाद का उपबन्ध करने की शक्ति इस सभा को है।

*__अध्यक्षः__ मैं नहीं समझता हूं कि माननीय सदस्य ने एक औचित्य प्रश्न उठाया हो। इस अनुच्छेद में कई खंड हैं उनमें से कुछ उन बातों को विशिष्टता प्रदान करते हैं जो पूर्ववर्ती खंड में कही गई हैं। सब विधानों में ऐसा बहुधा होता है और इससे कोई वास्तविक औचित्य प्रश्न पैदा नहीं होता। यह एक प्रश्न है कि यह खंड रहे या न रहे और यह उसके गुणावगुण पर निर्भर करता है और इसका विनिश्चय करना सभा के हाथों में है और इस कारण कोई औचित्य प्रश्न नहीं है।

इसके बाद मैं सदस्यों से संशोधनों को लेने के लिये निवेदन करूंगा।

*__श्री बी. दासः__ एक सूचना संबंधी प्रश्न है, श्रीमान, क्या प्रत्येक सदस्य अपना संशोधन पेश करेगा और उस पर भाषण देगा या सब संशोधनों के पेश हो जाने के बाद भाषण देने की आज्ञा मिलेगी?

*__अध्यक्षः__ प्रत्येक सदस्य जो अपना संशोधन पेश करेगा उससे मैं आशा करूंगा कि वह अपना भाषण दे जिससे कि उसे दुबारा भाषण न देना पड़े।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान, एक और कठिनाई है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या खंडवार संशोधन लिये जायेंगे क्योंकि सूची से मुझे यह विदित होता है कि उनको इसी प्रकार से सामूहिक रूप में रखा गया है।

*__अध्यक्षः__ मैं संशोधनों को लूंगा और फिर वाद विवाद होगा और मत लेने के समय मैं यह निश्चित करूंगा कि समस्त अनुच्छेद को लिया जाये या खंडों को पृथक्-पृथक् लिया जाये।

*__श्री दामोदर स्वरूप सेठ__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्तावित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24 (a) The property of the entire people is the mainstay of the State in the development of national economy.

(b) The administration and disposal of the property of the entire people are determined by law.

(c) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the Republic and its toiling masses.

(d) Private property and economic enterprises as well as their inheritence may be taxed, regulated, limited, acquired and requisitioned, expropriated and socialised but only in accordance with the law. It will be determined by law in which cases and to what extent the owner shall be compensated.

(e) Expropriation over against the States, local self-governing institutions, serving the public welfare, may take place only upon the payment of compensation.' "

[24 (क) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में समस्त लोक की सम्पत्ति राज्य का सबसे बड़ा आधार है।

(ख) समस्त लोक की संपत्ति का प्रशासन और यापन विधि द्वारा विनिश्चित किया जाता है।

(ग) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की वहीं तक प्रत्याभूति की जाती है जहां तक कि वे गणराज्य तथा उसके श्रमिक वर्गों के साधारण हितों से संगत है।

(घ) निजी संपत्ति तथा आर्थिक उद्यमों तथा उनके उत्तराधिकार पर भी करारोपण, उनका विनियमन, परिसीमन, अर्जन तथा अधिग्रहण, हरण तथा समाजीकरण होगा परन्तु केवल विधि के अनुसार। विधि द्वारा यह विनिश्चय किया जायेगा कि किन विषयों में और किस सीमा तक स्वामी को प्रतिकर दिया जाये।

(ङ) राज्यों और लोक कल्याणार्थ स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की संपत्ति का हरण प्रतिकर देने पर ही हो सकेगा।]

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

श्रीमान, अपने इस संशोधन के समर्थन में बोलने के पूर्व यदि मैं प्रस्तावित संशोधन की भूमिका के रूप में कुछ कहूं तो आशा करता हूं कि मुझे क्षमा कर दिया जायेगा। जनता के आर्थिक अधिकारों के प्रश्न पर उचित रूप से विचार करने में मेरी तुच्छ सम्मति से यह संविधान का मसौदा असफल रहा है और कदाचित एक दु:खद रूप में असफल रहा है। मुझे विश्वास है कि यह अनुच्छेद 24 जो कि इस समय विचाराधीन है वह भारत के पूंजीवादियों के हाथों में शीघ्र ही एक अधिकार पत्र होने वाला है। कुछ वर्ष पूर्व जब हम विदेशी शासन के अधीन थे हम बड़े उत्साहपूर्वक यह आशा कर रहे थे और यह आशा निराशा में आशा की किरण की भांति न थी कि स्वतंत्र भारत में इस देश की जनता वास्तव में एक जनता के संविधान का निर्माण कर सकेगी तो समष्टि रूप से श्रमिक वर्गों के लिये एक अधिकार पत्र के समान होगा। परन्तु खेद है, श्रीमान, कि स्वदेशी राज्य के दो वर्षों ने हमें केवल निराश ही नहीं किया, वरन् उच्चतर जीवनयापन तथा समृद्धिशाली भारत की हमारी आशायें धूल में मिला दी गईं। जनता का जीवन स्तर शनै: शनै: नीचे गिर रहा है और जीवन के लिये आवश्यक उपकरणों का मूल्य दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि इस मूल्य-वृद्धि तथा जनता की अधोगति को प्राप्त होती हुई इस आर्थिक दशा का कहां और कब अन्त होगा। श्रीमान, मध्यम वर्ग के लोगों की दशा अकथनीय रूप में दयनीय है। यह सब उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक "भारत छोड़ो संकल्प" के समक्ष हो रहा है जिसमें इस दशा के श्रमिक वर्गों को राम राज्य का पक्का वचन दिया गया था अर्थात् यह कि विदेशियों से राजनैतिक और आर्थिक शक्ति छीन कर उनके हाथों में सौंप दी जायेगी। यह भी सत्य है कि अब भी यह प्रयत्न किया जाता है कि कुछ प्रलोभनयुक्त वचनों और मधुर शब्दों द्वारा थपकियां देकर श्रमिक वर्ग को सुषुप्त दशा में कर दिया जाये। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो, श्रीमान, अब भी भारत के माननीय प्रधान मंत्री ने, जिन्होंने अभी इस अनुच्छेद 24 को पेश किया है, लक्ष्यमूलक संकल्प पर भाषण देते हुए अत्यन्त स्पष्ट और जोरदार शब्दों में घोषणा की थी कि वे समाजवाद के पक्ष में हैं और भारत समाजवादी गणराज्य बन कर रहेगा। यदि वास्तव में इस देश में समाजवादी गणराज्य की स्थापना करनी है या जैसा कि बार-बार राष्ट्रीय कांग्रेस भारत के प्रधान निश्चित रूप से कहते हैं कि आगामी पांच वर्ष में भारत में वर्गहीन समाज हो जायेगा तो समाजवादी गणराज्य या वर्गहीन समाज हमारे इस देश में आकाश से तो टपकेगा नहीं। यदि उनका वास्तव में कुछ अर्थ है तो इसके लिये जनता के आर्थिक अधिकारों के प्रश्न पर ठीक रूप से विचार कर कुछ प्रारम्भिक कार्य करने और मार्ग प्रशस्त करने की आवश्यकता है।

श्रीमान, यह पूरा का पूरा अनुच्छेद 24 और विशेषकर खंड (2) को अस्पष्ट रूप में ही नहीं बनाया गया है वरन् इसका रूप बड़ा दुखद है। यह स्पष्ट नहीं है कि "लोक प्रयोजनों के संपत्ति अर्जन" में भूमि तथा उद्योगों का समाजीकरण निहित है या एक वर्ग के लोगों से दूसरे वर्ग के लोगों में संपत्ति का अनिवार्य हस्तान्तरण है। यह तर्क भली प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि इन शब्दों का अर्थ सरकार, स्थानीय स्वायत्तशासी निकाय और अन्य पूर्त्त तथा लोक संस्थाओं के केवल साधारण प्रयोग के लिये संपत्ति के अर्जन से है और इसका विस्तार

राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण तक नहीं किया जा सकता है। अतः इस विषय को स्पष्ट करना आवश्यक है और मेरी तुच्छ सम्मति में स्पष्टीकरण तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि हम इस विचार तथा मैं तो यह कहूंगा कि इस सिद्धान्त का परित्याग न करें कि संपत्ति में मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है तथा इस विचार का भी कि संपत्ति व्यक्तित्व की अनुमान सूचक है और संपत्ति पर कोई आक्रमण करना स्वयं व्यक्तित्व से हस्तक्षेप करना है। व्यक्तित्व को हम संपत्ति के साथ नहीं मिला सकते हैं और न हम संपत्ति के सामाजिक तथा प्रकार्य संबंधी रूप को ही भूल सकते हैं। मनुष्य का संपत्ति में कोई प्राकृतिक अधिकार नहीं है। संपत्ति का दावा संप्रदाय द्वारा अभिज्ञात विधि के आधार पर किया जाता है। श्रीमान, संपत्ति संबंधी विधियों में रूप भेद करने और जनता के सार्वजनिक, सामाजिक और आर्थिक हितों के लिये उसे अर्जन करने का अधिकार समाज ने सदैव अपने लिये सुरक्षित रखा है। संपत्ति एक सामाजिक संस्था है और अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान यह भी सार्वजनिक हितों के विनियमों और दावे के अधीन है।

समय-समय में संपत्ति संबंधी विधियों में परिवर्तन हुआ है। मध्य युग में बिना प्रतिकर के अनेक स्वामित्व संबंधी विधियों को मिटा दिया गया। उदाहरणार्थ, अमरीका में जब दासत्व की विधि को मिटाया गया तो दास-स्वामियों को कोई प्रतिकर नहीं किया गया। यद्यपि उस दावे को प्राप्त करने के लिये उनमें से बहुतों को नकद धन देना पड़ा था। यह समझ लेना चाहिये कि समस्त जनता की संपत्ति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में राज्य का मुख्य आधार है और निजी संपत्ति पर अधिकार संप्रदाय के मार्ग में आड़े नहीं आने या संप्रदाय के लिये अहितकारी रूप में प्रयुक्त नहीं होने दिया जायेगा। जनता के सार्वजनिक हित में विधि द्वारा संपत्ति का विनियमन, परिसीमन तथा हरण करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये। प्रतिकर के सिद्धान्त को संपत्ति हरण करने के लिये एक शर्त के रूप में वेद वाक्य के समान नहीं स्वीकार किया जा सकता है। मृत्यु कर बिना प्रतिकर के आंशिक हरण का एक रूप है और संसार के कई समुन्नत देशों में वित्त व्यवस्था का वह एक प्रमुख अंग है।

संसार में यह एक मानी हुई सी बात है कि संपत्ति के स्वामियों को पूर्ण प्रतिकर सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति की महान योजनाओं का क्रियान्वित होना असंभव कर देगा। आपात काल में अथवा विदोहन को मिटाने के लिए और आर्थिक कल्याण की वृद्धि करने के विचार से बड़े-बड़े उद्योगों का समाजीकरण करने के प्रयोजन हेतु अधिगृहीत तथा अर्जित की गई संपत्ति के लिये सब दशाओं में तथा बाज़ार भाव से संपत्तियों के स्वामियों को धन देना राज्य के लिये असंभव है। संसार के कई विचारकों ने एक मध्यम मार्ग के रूप में आंशिक प्रतिकर का सुझाव दिया है और उनकी यह धारणा है कि आंशिक प्रतिकर से न तो समाजीकरण में रुकावट पड़ेगी और न इससे अधिक संख्या में लोग अपने जीवन-यापन के साधन से वंचित हो जायेंगे। यदि समाजीकरण का धीरे-धीरे प्रसार करना है और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था को एक व्यापक क्षेत्र में बनाये रखना है तो आंशिक प्रतिकर के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यदि आर्थिक व्यवस्था में समाजवादी आधारों के अनुसार परिवर्तन हो जाता है तो आंशिक प्रतिकर भी न्याययुक्त नहीं रहेगा। ऐसी दशा में

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत रूढ़गत स्वार्थों से युक्त व्यक्ति जो कुछ दावा कर सकते हैं वह यह है कि राज्य के अन्य नागरिकों के साथ-साथ उन्हें भी समान अवसर और समान भाग मिले। अत: श्रीमान, प्रतिकर के विषय पर अंधविश्वास करना संभव नहीं है और राज्यों को समाज की इच्छा तथा प्रचलित सामाजिक वातावरण के अनुसार प्रतिकर विनिश्चित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया जाये।

श्रीमान, जनता की आवश्यकतायें बहुधा यह अपेक्षित कर देती हैं कि संपत्ति का एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में हस्तान्तरण किया जाये। उदाहरण के रूप में विभिन्न नगरपालिकाओं के अधीन तथा उनके द्वारा प्रबन्धित लोक-उपयोग उपक्रमों का कुछ समय के बाद प्रान्तीय आधार पर संग्रह करना पड़ता है। लोक कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि उनको एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में अर्थात् प्रान्तीय प्राधिकारी में हस्तान्तरण किया जाये। परन्तु इस हस्तान्तरण में प्रतिकर होना चाहिये विशेष कर जबकि विधि द्वारा भिन्न-भिन्न लोक प्राधिकारियों को पृथक्-पृथक् हिसाब, वित्त, परिसम्पत्ति और देय रखने दिया जाता है। अत: बिना प्रतिकर के लोक संपत्ति का एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में हस्तान्तरण करने से निम्नतर श्रेणी की संस्थाओं और निकायों की सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था जर्जरित हो जायेगी और वह पारस्परिक सौहार्ध भी जर्जरित हो जायेगा जो संघ राज्य के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लिये बहुत आवश्यक है। अत: प्रान्तों, राज्यों, स्थानीय स्वायत्तशासी निकायों और लोक हित के कार्य में लगी हुई संस्थाओं की संपत्ति हरण करने पर प्रतिकर का उपबन्ध करना आवश्यक है।

अत: श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि इस सभा के माननीय सदस्य मेरे इस संशोधन पर गंभीर विचार करेंगे और भारत के श्रमिक वर्गों के हित में यदि वे यह वांछनीय समझते हैं कि उनके आर्थिक अधिकारों पर समुचित रूप में तथा उस भावना से जिससे कि उन पर विचार किया जाना चाहिये यदि विचार किया जाता है तो इस सभा के माननीय सदस्यों के लिये मेरा संशोधन स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 से 769 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property saved by authority of law.

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial

undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition except on payment in cash or bonds or both of the amount determined as compensation in accordance with principles laid down by such law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or for the promotion of public health or the prevention of danger to life or property.' "

[24. (1) विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।

(3) खंड (2) की किसी बात से–

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य कोई विधि किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या संपत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, प्रभाव नहीं होगा।]

श्रीमान, क्या मैं संशोधन संख्या 516 भी पेश कर सकता हूं जो वास्तव में इसका ही भाग है?

***अध्यक्षः** वह पृथक् है। हम उसे बाद में लेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, इस पर टीका करने के पूर्व मैं यह चाहता हूं कि सभा मेरे तथा माननीय प्रधान मंत्री के संशोधन में जो अन्तर है

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

उसे समझ ले। प्रधान मंत्री के संकल्प के खंड (1) में वही कहा गया है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा परन्तु विशेष अन्तर खंड (2) में है। उनके संशोधन में खंड (2) भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 की शुद्ध प्रतिलिपि है। केवल 3 शब्द निकाल दिये गये हैं। मैं खंड (2) को पढ़कर सुनाऊंगा:

"किसी भूमि का अथवा किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम का अथवा किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में किसी अंश का सार्वजनिक प्रयोजन के लिये अनिवार्य अर्जन की तब तक कोई विधि बनाने की शक्ति न अधिराज्य विधान-मंडल को और न प्रान्तीय विधान-मंडल को होगी जब तक कि वह विधि अर्जित संपत्ति का प्रतिकर "देने के लिये" उपबन्ध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिन से प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है।"

अत: पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्थापित इस नये अनुच्छेद से हम अपने नये संविधान में धारा 299 के उपबन्धों को सदैव के लिये रख रहे हैं। केवल दो अपवाद किये गये हैं और वे खंड (4) और (6) हैं।

इन संशोधनों की योजना विशेष रूप से संयुक्तप्रान्त तथा बिहार और मद्रास के जमींदारी विधान की रक्षा के लिये की गई है। खंड (4) संयुक्तप्रान्त के ज़मींदारी उन्मूलन विधेयक की रक्षा के लिये है और खंड (6) बिहार और मद्रास विधान-मंडल द्वारा पार किये गये अधिनियमों की रक्षा के लिये है। इस विषय में भी मुझे आशंका है कि यदि उन नये संशोधनों को पारित कर लिया जाता है जिनकी सूचना श्री अल्लादी और श्री मुंशी ने संख्या 504 से 506 तक के संशोधनों के संबंध में दी है तो मैं समझता हूं कि अपने वर्तमान रूप में मद्रास और बिहार के विधेयक भी इस संविधान के कुछ विरुद्ध हो जायेंगे। अत: वास्तव में केवल जिस अधिनियम की रक्षा की गई है वह संयुक्तप्रान्त का जमींदारी संबंधी विधान है।

श्रीमान, अब मैं सभा से यह प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या सभा इस स्थिति की रक्षा करने के लिये उद्यत है कि संयुक्तप्रान्त की जमींदारी संपत्ति को छोड़कर देश में अन्य कोई संपत्ति लोक प्रयोजनों के या राज्य के हित के लिये अर्जित नहीं की जायेगी? माननीय प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद में ये शब्द हैं:—

"कोई..... संपत्ति..... कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबंध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है।"

विधि में 'प्रतिकर' शब्द से 'ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर' अभिप्रेत है। ठीक और उचित प्रतिकर क्या होगा? पंडित जवाहरलाल नेहरू के संशोधन के अधीन

इस बात का विनिश्चय करने के लिये संसद अन्तिम प्राधिकार नहीं है। संसद या विधान-मंडल कोई भी राशि नियत कर सकते हैं या प्रतिकर निश्चित करने के लिये कोई भी सिद्धान्तों का उल्लेख कर सकते हैं फिर भी सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम रूप में यह विनिश्चित करेगा कि जो राशि नियत की गई है या प्रतिकर निश्चित करने के लिये जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है वे ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर का सुनिश्चयन करते हैं या नहीं। अत: पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये संशोधन में अन्तिम विनिश्चय सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार में है और वह भली प्रकार यह घोषणा कर सकता है कि प्रतिकर निश्चित करने के लिये जिन सिद्धान्तों का संसद ने उल्लेख किया है वे कपटयुक्त हैं। इस प्रकार यह विनिश्चय करने के लिये कि 'ठीक और न्यायोचित प्रतिकर' क्या है सर्वोच्च न्यायालय न कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद अन्तिम प्राधिकार है। अत: आप देश के मुख्य उद्योगों का अर्जन नहीं कर सकते हैं और न उनका राष्ट्रीयकरण कर सकते हैं क्योंकि आप ठीक और न्यायोचित प्रतिकर नहीं दे सकते हैं। इसी कारणवश किसी अन्य प्रान्त में उदाहरणार्थ, राजस्थान में आप जमींदारी संपत्ति का भी अर्जन नहीं कर सकते हैं। यदि माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्थापित रूप में यह अनुच्छेद पार किया जाता है तो उसका अर्थ यह होगा कि इस देश में पूंजीवादी प्रणाली को ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। न हम मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर सकते हैं और न सिवाय संयुक्तप्रान्त के हम ज़मींदारी पर ही अधिकार कर सकते हैं।

ऐसी स्थिति होने के कारण मुझे आश्चर्य है कि जवाहरलाल जी ने जिस रूप में इस अनुच्छेद को प्रस्थापित किया है उस रूप में यह सभा शायद ही इसे स्वीकार करे। अपने संशोधन में मैंने यह कहा है—

"कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का अधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।"

अत: मेरे संशोधन के अधीन संपत्ति पर अधिकार करने के लिये दिये जाने वाले प्रतिकर को नियत करने के नियम संसद निर्धारित कर सकती है और किसी विशेष संपत्ति के लिये जो कुछ प्रतिकर संसद ठीक समझती है वह भी ठीक और न्यायोचित प्रतिकर होगा और हमारी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद द्वारा जो विधि बनाई जायेगी वहीं अन्तिम होगी। संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न अपनी संसद द्वारा निर्धारित किये गये सिद्धान्तों का कोई सर्वोच्च न्यायालय अथवा कोई अन्य निकाय निर्णय करने नहीं बैठेगा।

मैं यह चाहता हूं कि सभा इस मूल प्रश्न पर विचार करे कि क्या वह इस बात के लिये तैयार है कि वह उस संसद की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता पर जिस संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा कोई और प्राधिकारी रखे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

क्या वह इस रीति से भावी संसद के हाथ बांधने के लिये तैयार है? हमारी वर्तमान संविधान-सभा की इस बात पर आलोचना की जाती है कि इसका निर्वाचन उन लोगों के परोक्ष मत के आधार पर हुआ है जिनका स्वयं निर्वाचन एक संकीर्ण मताधिकार न कि वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। नई संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होगा और इस अनुच्छेद से हम उस भावी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद को बंधन में डाल रहे हैं जिसका वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन होगा और यह कहते हैं कि वह उन सिद्धान्तों के निश्चित करने के लिये अन्तिम रूप में प्राधिकृत नहीं होगी जिनके अनुसार राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जित की जायेगी।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि एक ऐसे मुख्य विषय पर जिस पर कि इस सभा में ही इतना तीव्र मतभेद है हमें भावी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद को इस प्रकार बंधन में नहीं डालना चाहिये। मेरा संशोधन यथार्थ रूप में ससंद को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता की स्थिति में रहने देता है और वह उन सिद्धान्तों को निश्चित कर सकती है जिनके अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा और उन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कोई भी यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय तक भी आपत्ति नहीं कर सकता है। कुछ विषयों में राष्ट्र के हित में बिना किसी प्रतिकर के दिये संपत्ति पर कब्जा करना पड़े और यह भी संभव हो सकता है कि कुछ विषयों में संसद पूर्ण प्रतिकर देना विनिश्चित करे, पर यह पूर्णतया संसद के निर्णय के अनुसार होगा और हमें विश्वास है कि संसद का निर्णय बिल्कुल ठीक होगा। प्रधान मंत्री के अनुच्छेद 24 के अनुसार संसद द्वारा निर्मित विधि पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आपत्ति की जा सकती है और इस सम्बन्ध में न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा कि प्रतिकर तथा वे सिद्धान्त जिनके अनुसार प्रतिकर निश्चित किया जायेगा उचित हैं या नहीं। इस प्रश्न का निश्चय करना है कि हम उस रूप में अनुच्छेद 24 को रखें या किसी ऐसे अन्य रूप में जैसा कि मैंने प्रस्थापित किया है जिसके अनुसार संसद का विनिश्चय अंतिम है।

श्रीमान, इस संविधान निर्माण में मैंने सदैव बड़ी रुचिपूर्वक भाग लिया है और कुछ अनुच्छेदों का मैंने घोर विरोध किया है। अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 280 जैसे अनुच्छेदों को जिन्हें हम पार कर चुके हैं। मैंने पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी कहा है और यह कहा है कि जो संविधान हमने निर्माण किया है उसमें ये कलंक के समान हैं। पर मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद को यदि उस रूप में पार किया जाता है जिस रूप में प्रधान मंत्री ने इसे रखा है तो हमारे संविधान में यह सबसे बड़ा कलंक होगा। यह मैं इसलिये कहता हूं कि सर्वप्रथम जैसा कि मैं कह चुका हूं यह संशोधन संसद की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का हरण करता है और दूसरी बात यह है कि कांग्रेस इतने वर्षों से जिन सिद्धान्तों पर खड़ी रही है यह उनका खंडन कर देगा।

इस अनुच्छेद में एक बड़ी रोचक बात है जिसको मुझे बता देना चाहिये। इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) एक प्रकार से इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि खंड (2) को संयुक्तप्रान्त, बिहार और मद्रास में बड़ी-बड़ी जमींदारियों

का अर्जन करने के लिये लागू किया जायेगा। तो उसमें निर्धारित सिद्धान्तों के कारण बड़ी गड़बड़ और क्रान्ति फैल जायेगी। खंड (4) और (6) में यह कहा गया है कि इस संविधान के प्रारंभ पर जो अधिनियम और विधेयक पास हो चुके हैं या विधान-मंडलों के समक्ष लम्बित हैं उनके संबंध में सर्वोच्च न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी, पर अन्य विधेयकों और अधिनियमों के सम्बन्ध में आपत्ति की जा सकती है। अतः यहां तक कि जमींदारी संपत्ति के सम्बन्ध में भी विभेद है, वह जमींदारी संपत्ति जो अर्जित हो चुकी है या किसी लम्बित विधेयक के अधीन अर्जित होने वाली है और एतत्पश्चात् जो जमींदारी संपत्ति अर्जित की जायेगी इनमें विभेद है। और ज़मींदारी संपत्ति तथा औद्योगिक संपत्ति में भी विभेद है। और सभा को मैं यह बता दूं कि कांग्रेस ने सदैव विभेद का विरोध किया है।

माननीय प्रधान मंत्री से उनके भाषण में बार-बार संसद की अन्तिम सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का उल्लेख सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और फिर भी उन्होंने इस रूप में अनुच्छेद प्रस्थापित किया है जो उस संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का हरण करेगा और यह संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता सर्वोच्च न्यायालय के उन चन्द न्यायाधीशों के हाथों में सौंप दी गई है जो संसद की समझी बूझी इच्छा को रद्द कर देंगे चाहे वे कितने ही योग्य हों। अब आइये हम यह देखें कि आखिर इससे लाभ किसको होगा? मैं कहता हूं कि लाभ केवल वकीलों को होगा, उन वकीलों को जो सर्वोच्च न्यायालयों में मुकदमे को लड़ेंगे और संपत्ति का अधिकांश भाग इन वकीलों की जेबों में जायेगा। यदि इस रूप में इस अनुच्छेद को पार किया जाता है तो यह वकीलों के लिये स्वर्ग तुल्य हो जायेगा।

जैसा कि मैंने कहा था कि कांग्रेस इतने वर्षों से जिन सिद्धान्तों पर खड़ी रही है यह उनका खंडन कर देगा ओर यह कांग्रेस के कई संकल्पों का विरोध करता है। यहां मैं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गोल मेज सम्मेलन में जो भाषण दिया था उसकी कुछ कंडिकायें उद्धृत करूंगा जिससे कि हमें यह विदित हो जाये कि उन्होंने क्या कहा था। उन्होंने कहा थाः

"यह विचार करना मेरे लिये सुखद है कि स्वतंत्र भारत अखिल विश्व को एक भिन्न प्रकार की शिक्षा देगा और संसार के समक्ष एक भिन्न प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करेगा। मैं यह नहीं चाहूंगा कि भारत पूर्णतया एकाकी जीवन बिताये जिसके कारण उसे सबसे पृथक् रहना पड़े और वह किसी व्यक्ति को अपनी सीमाओं में प्रवेश न करने दे अथवा अपनी सीमाओं के अन्तर्गत व्यापार न करने दे। मेरे मन में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो मुझे स्थितियों का संतुलन करने के लिये करनी होंगी। संभव है अनेक वर्षों तक पद्दलितों को उठाने के लिये, गिरे हुओं को उस दलदल में से निकालने के लिये, जिसमें पूंजीवादियों ने, जमींदारों ने तथा तत्कथित उच्चतर वर्गों ने और बाद में अन्तिम तथा वैज्ञानिक रूप से अंग्रेज शासकों ने उन्हें फंसा दिया है, भारत विधान पारित करने में लगा रहे। यदि हम इन लोगों को उस दलदल में से निकालना चाहते हैं तो भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य होगा कि वह अपने घर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

को सुव्यवस्थित करने के लिये लगातार उन लोगों को अधिमान दे और उस भार से मुक्त करे जिसके नीचे वे दबे जा रहे हैं। और यदि भूमि के स्वामी, जमींदार, धनी व्यक्ति और वे लोग जो आज विशेषाधिकारों का उपभोग कर रहे हैं मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि वे चाहे अंग्रेज हों या भारतवासी। यदि वे यह देखते हैं कि उनके साथ विभेद बर्ता जा रहा है तो मैं उनसे सहानुभूति अवश्य रखूंगा पर उनकी मदद कर सकने पर भी मैं उनकी मदद नहीं कर सकूंगा क्योंकि इस कार्य में मैं तो उनकी मदद चाहूंगा और उनकी मदद के बिना उन लोगों को उस दलदल में से बाहर नहीं निकाला जा सकता है।

यदि आप चाहें, और यदि विधि द्वारा अछूतों की सहायता की जाये और मीलों राज्यक्षेत्र अलग नियत किया जाये, तो आप अछूतों की हालत देखिये। इस समय उनके पास कोई भूमि नहीं है, वे पूर्णतया तत्कथित उच्च वर्ग की और मैं तो यह भी कहूंगा कि राज्य तक की दया पर जीवन बिना रहे हैं। बिना शिकायत किये तथा बिना विधि की सहायता प्राप्त किये उनको एक क्षेत्र से निकाल कर दूसरे क्षेत्र में पटका जा सकता है। अत: विधान-मंडल का प्रथम अधिनियम यह होगा कि परिस्थितियों में थोड़ा बहुत संतुलन करने के लिये इन लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक अनुदान दिया जाये।

यह अनुदान किसकी जेबों में से आयेगा? स्वर्ग से तो नहीं आयेगा। राज्य के लिये स्वर्ग धन की वर्षा नहीं करेगा। यह स्वाभाविक ही है कि वह धन धनिक वर्गों से जिसमें अंग्रेज भी शामिल हैं, प्राप्त होगा। क्या वे यह कहेंगे कि यह बर्ताव विभेदात्मक है? वे यह समझ सकेंगे कि उनके साथ यह विभेदात्मक बर्ताव नहीं है क्योंकि वे अंग्रेज़ हैं, उनके साथ यह विभेदात्मक बर्ताव होगा कि उनके पास धन है और औरों के पास नहीं है। अत: यह सघर्ष धनी और निर्धनों में होगा।

***अध्यक्ष:** माननीय वक्ता को मैं बाधा देना नहीं चाहता हूं। पर वे जो इतने लम्बे उद्धरण को पढ़ रहे हैं उसमें मुझे कोई बल नहीं दिखाई देता है। इस समय हम जिस अनुच्छेद पर विचार कर रहे हैं उसके साथ यह किस प्रकार संगत है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं इस वाक्य को अभी समाप्त कर दूंगा। उसके बाद उसकी संगति सिद्ध करूंगा।

***अध्यक्ष:** आपको पूरा भाषण न पढ़ना चाहिये, केवल उस विशिष्ट वाक्य को ही पढ़ देते।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** जी नहीं। वह भी आवश्यक था।

"अत: यह संघर्ष धनी और निर्धनों में होगा; और यदि किसी बात का डर है तो मुझे आशंका है कि यदि ये सब वर्ग उन लाखों निरीह लोगों पर बन्दूकें तान कर यह कहें कि 'जब तक आप हमारी संपत्ति और हमारे अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं करेंगे तब तक आप अपनी सरकार नहीं बना सकेंगे।' तब तो राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना नहीं हो सकेगी।"

इस उद्धरण की संगति यह है कि राष्ट्रपिता ने कहा है कि इन अछूतों, दलितों और गिरे हुओं को दलदल में से निकालने के लिये भारत परिस्थितियों का संतुलन करने के लिये विधान पारित करने में लगा रहेगा। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय सरकार का पहला भार परिस्थितियों का संतुलन करना होगा। परन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह संशोधन इन सब बातों को असंभव बना देता है। परिस्थितियों के संतुलन की कोई संभावना नहीं रही, क्यों बिना पूर्ण प्रतिकर दिये लोक प्रयोजनों के लिये हम किसी संपत्ति को नहीं ले सकते हैं। राष्ट्रपिता ने इसके लिये एक सूत्र दिया था। उन्होंने कहा था:

> "मेरे पास एक और सूत्र भी है, जिसका जल्दी में मसौदा बनाया गया है क्योंकि जब मैं लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू के भाषण सुन रहा था उस समय मैंने उसका मसौदा बनाया था। वह वर्तमान अधिकारों के संबंध में है।
>
> वैध रूप से अर्जित किसी वर्तमान हित में तथा जो सामान्य रूप से राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध नहीं है उस हित में बिना उन हितों के लिये प्रयोज्य विधि के अनुसार हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।"

वे गोल मेज़ सम्मेलन में हमारी ओर से उड़ रहे थे कि संपत्ति के प्रत्येक हक्क की जांच की जाये कि वह वैध है या नहीं। वे इस बात को देखने के लिये लड़ रहे थे कि जो संपत्ति अर्जित की गई है वह वैध रूप में अर्जित की गई है और वह राष्ट्र के हितों के विरोध में न थी। राष्ट्रपिता का यह विचार था। उन्होंने वास्तव में यह कहा था:

> "यदि उन्हें कुछ रियायत मिली है जो इस कारण मिली है कि उन्होंने उस समय के पदाधिकारियों की कुछ सेवा की जिसके फलस्वरूप उन्हें कुछ मील जमीन मिल गई, ठीक है, पर यदि सरकार पर मेरा कब्जा होता तो मैं तुरन्त ही उस भूमि पर से उनका कब्जा छीन लेता। मैं इस बात का विचार न करता कि वे भारतीय हैं और उतनी ही तत्परता से मैं सर हूबर्ट कार और मि. वैन्यल से भी कब्जा छीन लेता चाहे वे कितने ही भले हों और चाहे मुझसे कितनी ही मित्रता रखते हों। विधि, चाहे कैसे भी व्यक्ति हों, उनका सम्मान करने वाली नहीं होगी।"

यदि उनको यह विदित हो जाता कि उन्होंने बिना किसी वैध अधिकार के संपत्ति अर्जित की है तो वे उससे कब्जा छीन लेने के पक्ष में थे। यथार्थत: मेरा संशोधन जिसे मैं बाद में पेश करूंगा वह सुझाव करता है कि देशभक्तों की जो संपत्ति जब्त की जा चुकी है वह उनको वापस कर दी जाये और उन लोगों की संपत्ति जिन्होंने केवल पदाधिकारियों की सेवा कर के प्राप्त की है वह उनसे छीन ली जाये। आपकी अनुमति से महात्मा गांधी ने आगे जो कुछ कहा उसको मैं उद्धृत करना चाहूंगा। उन्होंने कहा था:

> "और फिर आपको 'राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध नहीं' होना है। मेरे विचार में कुछ एकाधिकार हैं, इसमें सन्देह नहीं उनको वैध रूप से अर्जित किया

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

गया है, जो राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध स्थापित किये गये हैं। मैं आपको एक उदाहरण दूं जो आपके लिये प्रमोद का साधन होगा परन्तु वह स्वाभाविक आधार पर आश्रित है। इस एक अनोखी वस्तु को लीजिये जिसको नई दिल्ली कहा जाता है। उस पर करोड़ों रुपया खर्च कर दिया गया। मान लीजिये कि भावी सरकार इस निर्णय पर पहुंचती है कि यह देखकर कि हमारे पास यह एक अनोखी वस्तु है इसको कुछ लाभदायक रूप में बदल दिया जाये। कल्पना करिये कि पुरानी दिल्ली में प्लेग या हैज़ा हो रहा है.......

*__अध्यक्षः__ श्री सक्सेना, मैं नहीं समझता हूं कि आपका यह सब उद्धृत करना ठीक है। आप जो कुछ कह रहे हैं उसको मैं नहीं समझ पाया हूं। क्या आप अपने संशोधन पर भाषण दे रहे हैं या क्या जो संशोधन पेश हो चुका है उसका आप विरोध कर रहे हैं या आप किसी अन्य बात का ही समर्थन कर रहे हैं?

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ मैं यह सिद्ध करने के लिये यह उद्धृत कर रहा हूं कि महात्मा गांधी ने कहा था कि यदि संपत्ति वैध रूप से अर्जित की हुई नहीं है तो वे उसको छीनने के लिये तैयार हो जायेंगे।

*__अध्यक्षः__ आपके संशोधन में तो कोई ऐसी बात नहीं कही गई है।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ मैं अपने संशोधन में कह चुका हूं कि सर्वोच्च न्यायालय के स्थान में संसद को ही वह विनिश्चय करने का अन्तिम प्राधिकार है कि प्रतिकर दिया जाये या नहीं। मेरे संशोधन और प्रधान मंत्री के संशोधन में यही अन्तर है। विधि अन्तिम वस्तु है। मेरे संशोधन के अनुसार अन्तिम निर्णायक संसद है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ पंक्तियां और उद्धृत करना चाहूंगा।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि आपको समय का भी विचार करना चाहिये। जितना समय मैं किसी अन्य व्यक्ति को देता उससे अधिक समय मैं आपको दे चुका हूं। अच्छा हो यदि आप उद्धरणों को छोड़ दें और अपनी बात कहें।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं केवल दो पंक्तियां और पढ़ूंगा। महात्मा गांधी ने कहा थाः

"यदि राष्ट्रीय सरकार इस परिणाम पर पहुंचती है कि वह स्थान आवश्यक है तो इस बात की चिंता नहीं कि किन-किन स्वार्थों का सम्बन्ध है उनसे कब्जा छीन लिया जायेगा। मैं आपको यह बात दूं कि बिना किसी प्रतिकर के क्योंकि यदि आप यह चाहते हैं कि यह सरकार प्रतिकर दे तो उसे एक से छीन कर दूसरे को देना होगा, और यह असंभव है।"

प्रतिकर देने के संबंध में राष्ट्रपिता ने यह कहा था।

मैं कांग्रेस के इन सिद्धान्तों का समर्थक हूं। समाजवादियों ने खड़े होकर इस अनुच्छेद की आलोचना की है कि वह लोकतंत्रात्मक नहीं है। मैं इस कारण इस संशोधन का विरोध करता हूं कि जीवन भर मैं जिस बात का समर्थन करता आया हूं और इन समस्त वर्षों में राष्ट्रपिता तथा कांग्रेस ने जिस बात का समर्थन किया उसका यह निराकरण है। प्रधान मंत्री के भाषण में मुझे वह ओज नहीं मिला जो बहुधा उनके भाषणों में हुआ करता है। यह स्पष्ट है कि उनके हृदय में उथल-पुथल मची हुई है और उन्होंने एक ऐसा संशोधन पेश किया है जिसमें उन्हें विश्वास नहीं है और मैं यह कहना चाहता हूं कि उनका संशोधन स्वीकार न किया जाये। सभी की स्वीकृति के लिये मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ श्री ब्रजेश्वर प्रसाद-385।

(जैसे ही ब्रजेश्वर प्रसाद मंच की ओर बढ़े तालियां बजाई गईं।)

*__एक माननीय सदस्य:__ तालियां माननीय सदस्य को निमंत्रित करती हैं कि वे संक्षेप में अपना भाषण दें।

*__अध्यक्ष:__ तालियां तुम्हें प्रसन्न करने के लिये हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

'24. (1) All private property in the means of production may be acquired by the Government of India.

(2) The President shall determine in each case, to what extent, if any, the owner whether a private individual, a State, a local self-governing institution or a company, shall be compensated.

(3) That within four years from the date of the commencement of this Constitution, the Union Government shall become the owner of all private property in land which is being used or capable of being used for agricultural purposes.......'"

[24. (1) उत्पादन के साधनों में समस्त निजी संपत्ति भारतीय सरकार द्वारा अर्जित की जायेगी।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(2) प्रत्येक विषय में राष्ट्रपति यह निश्चय करेगा कि उसके स्वामी को, चाहे वह कोई निजी व्यक्ति, राज्य, स्थानीय स्वायत्तशासी संस्था अथवा कंपनी हो, यदि प्रतिकर दिया जाये तो कितना दिया जाये।

(3) इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से चार वर्षों के अन्तर्गत संघ सरकार उस भूमि रूपी समस्त निजी संपत्ति की स्वामिनी हो जायेगी। जिसका कृषि प्रयोजनों के लिये उपयोग हो रहा है अथवा हो सकता है....।]

आपकी अनुमति से मैं खंड (4) को अपमार्जित करना चाहता हूं।

4..........

"........(4) वयस्क मताधिकार के आधार पर बनी हुई मतदाताओं की सूची में के मतदाताओं की समस्त संख्या के 51 प्रतिशत द्वारा यदि अनुसमर्थित कर दिया जाता है तो इस अनुच्छेद के उपबन्धों में संशोधन हो सकेगा।"

क्या मैं अन्य संशोधन 387, 390, 391 को भी पेश कर सकता हूं?

*__अध्यक्षः__ मैं नहीं समझता हूं कि आप 391 पेश कर सकते हैं क्योंकि वह 385 के संगत नहीं है। मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि आप अपने एक संशोधन से ही संतुष्ट रहें और विषय से संगत रहें।

*__श्री बी. दासः__ अध्यक्ष महोदय, मैं निवेदन करता हूं कि यह संशोधन नियम विरुद्ध है क्योंकि समस्त वर्तमान विधियों का यह शून्यन करता है और प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये संकल्प का शून्यन करता है।

*__अध्यक्षः__ ये सब संशोधन मूल रूप में पेश किये गये अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने के लिये हैं जिस प्रकार से मूल रूप में निर्मित अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने का प्रधान मंत्री का संशोधन है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ श्रीमान, आपके समक्ष मैं यह और प्रस्तुत करना चाहूंगा कि जो पद्धति आज हमने अंगीकार की है वह वह नहीं है जिस पर हम अब तक चलते आये हैं, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर को ही अनुच्छेद 24 अथवा संशोधित रूप में कोई अन्य अनुच्छेद पेश करना था। जब मसौदा समिति की ओर से कोई अनुच्छेद पेश हो चुका है तो इस पर संशोधन पेश करने का अधिकार और किसी व्यक्ति को नहीं है।

श्रीमान, सभा के माननीय सदस्यों के ताली बजाने के लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। इस संशोधन को या इस अनुच्छेद के स्थान में दूसरा अनुच्छेद रखने के लिये जो मैंने यह प्रस्ताव पेश किया है वह कोई बढ़ चढ़कर बातें बनाने की भावना से नहीं है। मैं सादा विचारों का व्यक्ति हूं और मैं केवल एक बात जानता हूं कि इस प्रश्न पर कि संपत्ति का किस प्रकार विनियमन किया जाये कांग्रेस हाई कमान्ड ने निश्चय किया है और सदैव वे ही इस बात का निश्चय करेंगे और

इस प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिये संसद के पास कोई शक्ति नहीं है। जब तक इस देश में निर्धनता तथा निरक्षरता है कोई भी संसद भारतीय राजनीति में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकेगी। इसी कारण मैने 'संसद' शब्द को निकाल दिया है और इसके स्थान में 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया है। जब मैं 'राष्ट्रपति' कहता हूं तो मेरा आशय उस एक व्यक्ति राष्ट्रपति से नहीं है। मेरा आशय मंत्री मंडल के, कांग्रेस हाई कमाण्ड के, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल और अन्य लोग हैं, उन सब सदस्यों के परामर्श सहित राष्ट्रपति से है।

इस अनुच्छेद के पेश करने में मेरा केवल यह है कि प्रतिकर और न्याय्यता के प्रश्न पर जो वाद-विवाद उत्पन्न हो गया है उसका अन्त कर दिया जाये। मेरे मन में यह विचार बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि हम अपने संविधान में इन सिद्धान्तों को रखेंगे तो उसका परिणाम सामाजिक अन्याय होगा। परिणाम यह होगा कि समस्त देश में शीघ्र ही उथल-पुथल, अराजकता और गृह युद्ध फैल जायेगा। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक यह संविधान प्रवृत्त हैं कोई भी सरकार, कोई भी लोकतंत्रात्मक सरकार–कांग्रेस सरकार का तो कहना भी क्या बिना प्रतिकर दिये संपत्ति पर अधिकार करने का साहस न करेगी। परन्तु मैं समझता हूं कि संकट के समय में जब कि देश में दुर्व्यवस्था और हत्या का संकट उपस्थित हो तो समाज के मूल आधार में ही परिवर्तन करने की शक्ति भारतीय सरकार के हाथों में सौंपी जाये जिससे कि राज्य की जड़ें मजबूत हो जायें। इस समय प्रतिकर और न्याय्यता के प्रश्न को अधिकतम संख्या के अधिकतम कल्याण में बोधक नहीं होने देना चाहिये। अतः इस विचार से मैंने इस अनुच्छेद को उस अनुच्छेद के स्थान में रखने के लिये पेश किया है।

मेरी यह धारणा है कि इस समय दिल्ली में लोगों के एक दल के हाथ में सब कुछ है जो अपनी उच्च बौद्धिक योग्यता तथा गुणों के कारण तथा अपनी भलमंसी और आचरण के कारण निजी संपत्ति के सिद्धान्त के विनियमन के प्रश्न पर सुदूरवर्ती तथा निष्पक्ष विचार करने में समर्थ हैं। इस तर्क पर जोर दिया जा सकता है कि हम प्रतिकर न दें और न्याय्यता स्वीकार कर लें तो देश में औद्योगिक उन्नति नहीं होगी। औद्योगिक उन्नति मेरे हृदय को बहुत प्रिय है परन्तु करोड़ों के कष्ट और भारत की भूख से पीड़ित जनता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस कारण मैं जनता को अधिमान देता हूं। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि कुछ पूंजी लगाने वालों को, विदेशी हों या भारतीय, लाभ या अवसर की हानि होगी क्योंकि किसी प्रकार से किसी परिस्थिति में भी कुछ मुट्ठी भर लोगों के लिये करोड़ों के हितों का बलिदान नहीं किया जा सकता।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व में दो या तीन तर्कों को और लूंगा। संसद के हाथों में शक्ति सौंपने के मैं विरुद्ध हूं क्योंकि जहां तक किसी संपत्ति के विनियमन के प्रश्न का संबंध है मैं समझता हूं कि एक ऐसे देश में जहां करोड़ों आदमी निरक्षर और निर्धन हैं वहां वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संसद अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकेगी।

हमारे मनों में यह भी आशंका है कि भावी भारतीय संसद के अधिकांश सदस्य जमींदार श्रेणी में से आयेंगे जिसमें से प्रत्येक के पास अपनी-अपनी निजी संपत्तियां

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

होंगी। अत: उन लोगों के लिये जिनके पास अपनी निजी संपत्ति है इतना आदर्शवादी होना तथा इस वस्तुस्थिति पर निष्पक्ष विचार रखना बहुत कठिन होगा। मेरी यह धारणा है कि जमींदारी प्रथा समाजवाद और उन्नति के लिये सबसे बड़ी रुकावट है। मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त में बहुत कुछ सत्य निहित है कि समाज के प्रभावशील दल के हाथों में राज्य विदोहन का एक यंत्र है। इसी लिये मैं कहता हूं कि संसद के हाथों में से शक्ति ले लेनी चाहिये और अपने दार्शनिक शासकों के हाथों में सौंप देनी चाहिये।

मैं यह जानता हूं कि यह संविधान इस देश का स्थायी संविधान नहीं होगा। अत: यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आप इस संविधान में ऐसे उपबन्ध क्यों रख रहे हैं जिनमें आन्तिरक मूल्य के केवल साधारण सिद्धान्त हों? मेरे विचार से यह संविधान दस वर्ष से अधिक नहीं ठहरेगा। इस धारणा पर विचार करते हुए मैं चाहता हूं कि सब शक्तियां अपने नेताओं के हाथ में सौंपी जायें।

इस प्रश्न को मैंने प्रान्तीय विधान मंडलों के क्षेत्र से बाहर रखा है क्योंकि मैं समझता हूं कि एकरूपता के लिये यह बहुत ही आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों को कोई शक्ति नहीं सौंपी जाये। प्रान्तीय विधान मंडलों के सौंपे जाने के लिये यह शक्ति बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रान्तीय मन्त्रियों की बौद्धिक योग्यता के विरुद्ध मैं नहीं कर रहा हूं, पर प्रान्तीय मंत्री केवल प्रान्तीय समस्याओं पर ही विचार करने के आदी हो गये हैं अत: वे किसी बात पर अखिल भारतीय रूप में नहीं विचार कर सकते हैं। अत: मैं इस पक्ष में हूं कि यह शक्ति किसी प्रान्तीय सरकार के हाथ में न दी जाये।

अन्त में मेरी सम्मति यह है कि लोगों को केन्द्रीय सरकार के द्वारा अधिक न्याय प्राप्त करने की आशा है अपेक्षाकृत प्रान्तीय सरकारों के। अत: यदि केन्द्रीय सरकार को अनन्य शक्ति दे दी जाती है तो अल्पसंख्यक वर्गों की आशंकाओं तथा उन लोगों की आशंकाओं का निराकरण हो जायेगा जिनके पास कुछ निजी संपत्ति है। अत: मैं चाहता हूं कि यह शक्ति केन्द्रीय सरकार को सौंप दी जाये। कहीं एक खेर और कहीं एक पन्त होने से इस बात में कोई अन्तर नहीं आता है कि प्रान्तीय सरकारें जनता की विश्वासपात्र नहीं रहीं।

एक बात और कहने के पश्चात् मैं समाप्त कर दूंगा। मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ मैंने कहा है उसकी पलक मारते ही पूर्ति हो जायेगी। मैं यह नहीं चाहता हूं कि निजी संपत्ति को 26 जनवरी, 1950 को मिटा दिया जाये। मैं यह कहता हूं कि यह शक्ति भारतीय सरकार के हाथों में सौंप दी जाये और इस ओर प्रगति के साधन पर विनिश्चय करना राष्ट्रपति तथा भारतीय सरकार पर छोड़ दिया जाये। मेरे इस संशोधन पर सभा द्वारा गंभीर विचार करने के लिये मैं जोरदार सिफारिश करता हूं। उत्तेजनावश मैंने यह संशोधन पेश नहीं किया है। संशोधन में व्यक्त किये गये विचारों का मैं कट्टर समर्थक हूं और लोगों को उससे सहमत या असहमत होने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

***अध्यक्ष:** दो और संशोधन हैं जिनमें संशोधित अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने का प्रयत्न किया गया है। मैं यह चाहूंगा कि पहले उनको पेश किया जाये।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law. Private property.

(2) No property, movable, or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired under any law unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired:

Provided that where an entire category of property, movable or immovable, is taken possession of or acquired under any law passed by Parliament or the legislature of a State for the distinct purpose and object of gradually and peacefully establishing a classless society in India, the principles of law authorising the taking possession of or acquisition shall in no case be called in question in any court:

Provided further that it shall be the natural right of every citizen whose property is taken possession of or acquired to get rectified in a proper court of law any wrong done to him in the process of execution of the law prividing for compensation.' "

[24. (1) कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। निजी संपत्ति

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, किसी विधि के अधीन कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित संपत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो।:

परन्तु जब स्थावर या जंगम संपत्ति के पूरे एक वर्ग को संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित किसी विधि के अधीन भारत में शनैः शनैः शांतिपूर्वक

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

एक वर्गहीन समाज बनाने के स्पष्ट प्रयोजन या उद्देश्य से कब्जाकृत या अर्जित किया जाता है तो कब्जाकृत या अर्जित करने का प्राधिकार देने वाली विधि के सिद्धान्तों पर किसी दशा में भी किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी:

परन्तु यह और भी कि प्रत्येक नागरिक को, जिसकी संपत्ति को कब्जाकृत या अर्जित किया जाता है, यह स्वाभाविक अधिकार होगा कि प्रतिकर के उपबन्ध करने वाली विधि के प्रवर्तन की रीति में यदि उसके साथ कोई त्रुटि हो गई है तो वह किसी समुचित न्यायालय में उस त्रुटि को ठीक करा ले।]

श्रीमान, माननीय पंडित जवाहरलाल द्वारा व्यक्त किये गये पर्यवेक्षण और विचारों के प्रति सचित सम्मान प्रकट करते हुए मैं इस अनुच्छेद के उस मसौदे से सहमत नहीं हूं जो उन्होंने पेश किया है। मेरे कारण ये हैं, सर्वप्रथम तो यह कि इस अनुच्छेद का नाम उपयुक्त नहीं है। हम मूलाधिकारों पर वाद-विवाद कर रहे हैं और इस विशिष्ट अनुच्छेद में हम निजी संपत्ति की उस सीमा का वर्णन कर रहे हैं जहां तक कि एक नागरिक उस पर अधिकार रख सकेगा। यह अनिवार्यत: संपत्ति अर्जन का विषय नहीं है और इस कारण इसका नाम "निजी संपत्ति पर अधिकार" या "निजी संपत्ति" के रूप में बदल दिया जाये।

इसके बाद यद्यपि प्रकट रूप में माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया गया अनुच्छेद संपत्तियों में परस्पर विभेद नहीं करता है, परन्तु तथ्य का जो रूप है उसके अनुसार वह औद्योगिक संपत्ति और भूसंपत्ति में विभेद करता है। संपत्तियों में परस्पर यह विभेद, जो कि इस अनुच्छेद में है, मेरी दृढ़ धारणा है कि एक बहुत ही दु:खदायी वातावरण इस देश में, जोकि पहले से ही असंतोष से परिपूर्ण है, उत्पन्न करेगा। मैंने अपने संशोधन में इस पूरे अनुच्छेद को इस प्रकार से रखने का प्रयास किया है कि यद्यपि इस समय देश की बहुत ही गंभीर परिस्थितियों में हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की संपत्तियों का हम समाजीकरण कर सकें पर हम इस अनुच्छेद को पर्याप्त रूप से लचीला बना दें जिससे कि भविष्य में जब कभी अवसर मिले तो संसद औद्योगिक अथवा भूसंपत्ति के समाजीकरण करने का उपक्रम कर सके। पंडित जी ने जिस रूप में इस अनुच्छेद को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है उसके अनुसार उन प्रान्तों में भूसंपत्ति के सामाजीकरण का उपबन्ध है जो या तो आवश्यक अधिनियम पारित कर चुके हैं या 26 जनवरी, 1950 तक जब तक हम इस संविधान को प्रवर्तन में लाने की आशा करते हैं, अधिनियम पारित कर चुके होंगे या विधेयक पुर:स्थापित कर चुके होंगे।

परन्तु अन्य उन प्रान्तों के लिये, जो उपर्युक्त अवधि के अन्तर्गत जमींदारी उन्मूलन के लिये जिसके प्रति हम वचनबद्ध हैं, न विधेयक पेश कर सकेंगे अथवा न अधिनियम पारित कर सकेंगे, इस प्रस्थापित अनुच्छेद में कोई उपबन्ध नहीं है। संविधान का यह बहुत ही प्रमुख भाग है और यह ठीक कहा गया है कि यह अनुच्छेद इस संविधान का प्राण है अत: इस अनुच्छेद के महत्व को समझने के लिये हमारे पास उपयुक्त भूमिका होनी चाहिये।

हमारी जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक कांग्रेस आज अकेली सबसे बड़ी संस्था है। उसने अपने उद्देश्य के रूप में इस देश में एक परस्पर सहयोगी संयुक्त वर्ग स्थापित करना स्वीकार कर लिया है, और यह परस्पर सहयोगी संयुक्त वर्ग भारत में एक वर्गहीन समाज की स्थापना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत: इस अनुच्छेद को उस दिशा का एक समुचित रूप में मार्ग प्रदर्शन करना चाहिये। पर जिस रूप में यह प्रस्थापित किया है उस रूप में मैं समझता हूं कि वह उस मार्ग का प्रदर्शन नहीं करता है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भारत में हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवव्था का स्वरूप अनुच्छेद 24 पर केन्द्रित होगा, इस कारण यदि हम निजी संपत्ति की परिभाषा करने में कोई भी त्रुटि करते हैं तो मैं समझता हूं कि हम एक ऐसा कार्य करेंगे जो भारत में एक वर्गहीन समाज बनाने के मार्ग पर अग्रसर होने में एक बहुत बड़े बाधक के रूप में आड़े आयेगा। अत: मैंने इस अनुच्छेद का इस प्रकार से संशोधन कर दिया है कि वह एक वर्गहीन समाज स्थापित करने के लोक बुद्धि की प्रतीक भारतीय संसद को उचित पथ प्रदर्शन कराने में सहायक होगा।

इसके साथ-साथ मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध किया है कि संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के प्रयोग में कोई त्रुटि हो गई है और किसी व्यक्ति के साथ कोई अन्याय हो गया है तो उस व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह न्यायालय में उसके निराकरण कराने का प्रयत्न करे। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उस महान व्यक्ति राष्ट्रपिता ने, जिसके बारे में यह ठीक कहा गय है कि उसने घूल से हमें मानव रूप दिया, उस रामराज्य का विचार और चित्र हमारी जनता के सामने प्रस्तुत किया था जिसका अर्थ एक साधारण व्यक्ति के लिये केवल राजनैतिक कल्याण ही नहीं था वरन् हमारे आर्थिक अभावों से छुटकारा भी था। अत: हमें सच्चाई के साथ यह देखना चाहिये कि हमारे संविधान में आर्थिक अभावों से इस छुटकारे की प्रत्याभूति एक सर्वसाधारण व्यक्ति को दी जाये।

यदि आप 'मूलाधिकार' संबंधी अध्याय में विभिन्न अनुच्छेदों के अन्य भिन्न-भिन्न उपबन्धों को देखेंगे तो आपको विदित होगा कि प्रत्येक मूलाधिकार के साथ कुछ न कुछ शर्त लगी हुई है। और उदाहरण के रूप में वाक् स्वातंत्र्य, संथा स्वातंत्र्य, वैयक्तिक स्वातंत्र्य में निर्धारित की गई प्रत्येक शर्त नागरिक की ओर एक कर्तव्य का संकेत करती है। इसी प्रकार से निजी संपत्ति के विषय में भी कुछ शर्त होनी चाहिये। और वह शर्त यह होनी चाहिये कि निजी संपत्ति केवल एक लोक न्यास है और संप्रदाय के कहने पर या सरकार के कहने पर वह संप्रदाय के लाभ के लिये होनी चाहिये।

कुछ लोग इस बात से सहमत हैं कि इस अधिकार को न्याय्य बना दिया जाये। इस विषय का ज्ञान न होने के कारण मैं न्याय्यता की पेचीदगियों को पूर्णतया नहीं समझ पाता हूं और मैं यह नहीं जानता हूं कि हमारा एक वर्ग इस बात से कैसे भयभीत है कि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित हमारी जनता की ठोस इच्छा तथा हमारे नेताओं की बुद्धिमानी की प्रतीक संसद किसी उस संपत्ति का प्रतिकर देने में, जो जनता की सार्वजनिक भलाई के लिये कब्जाकृत या अर्जित की जाती है, न्याय के अतिरिक्त कुछ और भी करेगी। संपत्ति के संबंध में यूगोस्लाविया के

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

संविधान की धारा 24 की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करूंगा जिसमें यह कहा गया है:

"संप्रदाय के हित में तथा विधि के आधार पर न्याय की भावना में तथा सामाजिक संघर्ष को मिटाने के विचार से नागरिकों के परस्पर आर्थिक संबंधों में हस्तक्षेप करने का अधिकार और कर्तव्य राज्य का होगा।"

उसी संविधान में अनुच्छेद 37 में यह निर्धारित है:

"निजी संपत्ति की प्रत्याभूति की जायेगी। संपत्ति के निजी स्वामित्व द्वारा आरोपित आभारों को अभिज्ञात किया जायेगा। संपत्ति का उपयोग संप्रदाय के हित के लिये हानिकारक नहीं होना चाहिये। निजी स्वामित्व का क्षेत्र, सीमा और परिसीमा विधि द्वारा विनियमित की जायेगी।"

इसी प्रकार से आयरलैंड के संविधान में भी निजी संपत्ति के अधिकार पर परिसीमायें लगाई गई हैं। इन सब उदाहरणों में संप्रदाय के कहने पर तथा संप्रदाय की प्रतीक सरकार के कहने पर जब भी आवश्यक हो संपत्ति सामाजिक भलाई के लिये प्राप्त की जा सकती है।

कुछ लोगों द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इस अनुच्छेद का मसौदा बनाने में इस महान कांग्रेस संस्था के सदस्यों ने उन वचनों को भंग कर दिया है जो जनता को दिये गये थे। वचन ये थे कि जब निजी संपत्ति को कब्जाकृत या अर्जित किया जायेगा तो उसके स्वामी को हम न्यायोचित ठीक-ठीक प्रतिकर देंगे। हम उन्हें प्रतिकर देने से विमुख नहीं होते हैं। पर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जनता के एक और महानतर वर्ग को, जन साधारण को हम यह वचन दे चुके हैं कि उनके लिये उत्तरोत्तर जीवन का उच्च स्तर बनाने का हम भरसक प्रयत्न करेंगे। हमें इस उद्देश्य की भी प्राप्ति करनी है। अत: हमारी यह जो आलोचना की जाती है कि जनता के एक वर्ग को हम किसी बात से वंचित कर रहे हैं वह पूर्णतया गलत है। विभिन्न वर्गों को दिये गये वचनों का हमें समायोजन करना पड़ेगा और इस संबध में यह स्मरण रखना चाहिये कि एक प्रगतिशील राष्ट्र को काल की आवश्यकता तथा मांग के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में बार-बार परिवर्तन करना होगा।

मुझे एक बात और कहनी है। विगत दो वर्षों से अर्थात् 15 अगस्त, 1947 से हमारा यह दु:खद अनुभव है कि इस देश के रूढ़गत स्वार्थों से युक्त व्यक्तियों की ओर सहयोगी भावना का हाथ फैलाने पर भी उन्होंने इसका स्वागत नहीं किया है। पूंजी लगाने में लोगों को झिझक है और राष्ट्र निर्माण में उद्योगों तथा वस्तु निर्माताओं ने अपना समुचित सहयोग नहीं दिया है। अत: अब यह वो समय है कि हम अपना ध्यान उस ओर से हटायें और जन साधारण से शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करें। हमें ठीक प्रकार से अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ सभा की स्वीकृति के लिये मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 24 पर, जिसका हमारे राज्य के सामाजिक और आर्थिक ढांचे से मुख्य संबंध है, बड़ी व्याकुलता से अपने नाम के कई संशोधनों को पेश करने के लिये मैं खड़ा होता हूं।

श्रीमान, प्रधान मंत्री ने सभा में यह कहा है कि उसके समक्ष जो यह मसौदा है वह अनेक बड़े-बड़े वकीलों के लगातार एक बड़े प्रयत्न करने के फलस्वरूप बन पाया है। अतः मैंने स्वयं से यह प्रश्न किया कि इतने विशेषज्ञों द्वारा बनाये गये इस मसौदे के होते हुए भी क्या मुझे कुछ कहना चाहिये। पर मेरे विचार में यह आया कि वकील चाहे जितने ही महान क्यों न हों, यह संभव हो सकता है कि उनकी दृष्टि पर विधि संबंधी सूत्रों का पर्दा पड़ गया हो और वे कभी-कभी वृक्षों के कारण वन को भूल जाते हैं। अतः मैं संशोधन संख्या 386, 395, 403, 410, 418 और 431 पेश करता हूं:—

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'property' शब्द के पश्चात् 'except in the national interest and' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'taken possession of or acquired' शब्दों के स्थान में जब कि वे दूसरी बार आते हैं 'to be taken possession of or acquired' शब्द रख दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'to be determined' शब्दों के पश्चात् अर्द्ध विराम और 'provided that such principles or such manners of determination of compensation shall not be called in question in any court' शब्द जोड़ दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) को अपमार्जित किया जाये।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(4) Any bill pending before the Legislature of a State at the commencement of the Constitution shall not, after its subsequent enactment, be called into question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[श्री एच.वी. कामत]

[इस संविधान के प्रारम्भ पर राज्य के विधान-मंडल में लम्बित किसी विधेयक पर उसके बाद में अधिनियम बन जाने पर किसी न्यायालय में इस बात पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है।]

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'may within three months from such commencement be submitted by the Governor of State to the President for his certification; and thereupon, if the President by public notification so certifies, it' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

सभा के विचारार्थ इन अनेक संशोधनों को प्रस्तुत करते हुए, श्रीमान, क्या मैं कुछ बातें कह सकता हूं? प्रधान मंत्री ने सभा में यह बातें बताईं। सर्वप्रथम यह कि राज्य की नीति यह है कि प्रतिकर के बिना सम्पत्ति हरण न हो और दूसरी बात यह कि व्यक्ति का अधिकार किसी दशा में भी साधारण सम्प्रदाय के अधिकार या हितों पर अतिक्रमण नहीं कर सकता है। उन्होंने यहां तक कहा कि इन मूल नीतियों के होते हुए भी व्यक्ति की रक्षा करनी ही होगी। उन्होंने कहा कि कुछ चन्द लोग वास्तव में ऐसे हैं जो स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि क्या इन चन्द व्यक्तियों की रक्षा का सिद्धान्त हमारे राज्य की आधारशिला होनी चाहिये। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि न्याय का हक तो चन्द व्यक्तियों को ही है, परन्तु राज्य को जिनकी रक्षा करनी है जिनको सहारा देना है उनकी संख्या बहुत बड़ी है। किसी दशा में, किसी रूप में, किसी परिस्थिति में उन चन्द व्यक्तियों के साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया जा सकता जो कि एक महानतर समुदाय के हितों के लिये अहितकर हो। यदि यह नहीं माना जाता है कि न्याय तो चन्द व्यक्तियों को ही प्राप्त हो सकेगा पर रक्षा बहुतों की होगी तो श्रीमान, मैं समझता हूं कि हमारे इस देश में जो शताब्दियों की निर्धनता तथा पीड़ाओं से दबा पड़ा है ऐसे कवि, पैगम्बर और नेता पैदा होंगे जो लोगों से वही कहेंगे जो गत शताब्दी में इंग्लैंड की क्रान्ति में कवियों ने कहा था। उस कवि ने यह कह कर अंग्रेजों की भर्त्सना की थी:

"ऐ इंग्लैंड के मनुष्यों! तुम क्यों उन लार्डों के लिये हल चलाते हो जो तुम्हारा पतन करते हैं? क्योंकि परिश्रम करके तथा सावधान होकर ऐसे सुन्दर वस्त्र बुनते हो जिन्हें तुम्हारे ही आततायी पहनते हैं? इस गहरी निद्रा को छोड़कर अविजित संख्या में शेरों के समान उठो, ओस के समान अपनी शृंखलाओं को पृथ्वी पर झटक कर पटक दो, तुम बहुत हो, वे थोड़े हैं!"

अत: श्रीमान, बहुत विनम्र होकर मैं यह सुझाव दूंगा कि हमारे राज्य की आधारशिला यह होनी चाहिये कि रक्षा बहुतों की की जाये और न्यायपूर्ण व्यवहार चन्द व्यक्तियों के साथ किया जाये। हां, न्याय से किसी को वंचित नहीं किया जाये।

प्रधान मंत्री संपत्ति प्रणाली के विकास तक को खोजने लगे। मैं समझता हूं कि संपत्ति के बारे में विचार संपत्ति पर दैवी अधिकार अर्थात् निजी संपत्ति की अक्षुण्णता से लेकर श्री प्रोधोन के तत्कालीन विचार कि 'संपत्ति चोरी है' तक हैं संपत्ति के पक्ष तथा विपक्ष में जो आन्दोलन हुए हैं वे सब इसी संपत्ति संबंधी विचारधारा पर आश्रित हैं। एक ओर तो हमारे यहां संपत्ति पर दैवी अधिकार, निजी संपत्ति की अक्षुण्णता जैसे विचार हैं, पर इस सिद्धान्त का मेरे विचार से अब खंडन हो चुका है। यह सिद्धान्त मृतप्राय है, इसकी वही दशा हुई जो राजाओं के दैवी अधिकार की हुई। यदि संपत्ति पर किसी का भी अधिकार है तो मैं केवल यही कह सकता हूं कि संपत्ति पर मनुष्य का दैवी अधिकार नहीं है, वरन् सम्पत्ति पर ईश्वर का ही अधिकार है और इस प्रकार पृथ्वी पर जितनी उसकी सन्तानें हैं उन सबका अधिकार है। संपत्ति के कारण इन सब कष्टों से छुटकारा हो सकता था इन सब कष्टों को दूर किया जा सकता था, यदि मनुष्य केवल यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेता कि संपत्ति का आशय यही है कि समस्त मानवता के हित में उसका ठीक-ठीक तथा बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया जाये।

इसी आधार पर महात्मा गांधी ने शिक्षा दी और अपरिग्रह के सिद्धान्त को जीवन में अपनाया कि संपत्ति स्वामियों को सम्प्रदाय के कल्याणार्थ संपत्ति का केवल न्यासी होना चाहिये। यदि हमारे देश में और विशेष कर संसार में संपत्ति के स्वामी यदि इस बात के अर्थ और भाव दोनों को मान लेते तो बहुत से कष्टों की रोकथाम हो जाती परन्तु लोगों ने अपनी मूर्खतावश महात्मा तथा अन्य पैगम्बरों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जो मानव इतिहास में उनसे पूर्व हुए थे। यदि ईषोपनिषद् का 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' के महान आदर्श का संपत्ति के स्वामी पालन करते तो संपत्ति के बारे में इतना झगड़ा तथा विवाद न होता। परन्तु श्रीमान, मानवता के भाग्य में यह नहीं बदा था। जैसा कि एक महान् इतिहास लेखक ने कहा है, मानवता का इतिहास मनुष्य के अपराधों, मूर्खताओं और अज्ञानताओं से भरा पड़ा है।

*__अध्यक्ष:__ मनुष्य की अज्ञानताओं और मूर्खताओं का हम जिक्र न करें। विचाराधीन अनुच्छेद पर ही हम अपने विचार सीमित रखें।

*__श्री एच.वी. कामत:__ जिस प्रकार प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में संपत्ति के विचार के विकास के बारे में उल्लेख किया था उसी प्रकार से मैं उस विषय के बारे में अपने तर्कों का क्रमश: विकास कर रहा हूं।

श्रीमान, मेरे संशोधनों के बारे में, संख्या 386 का संशोधन बहुत ही स्पष्ट संशोधन है जिसमें मैंने यह उपबन्ध करने का प्रयत्न किया है कि सिवाय राष्ट्रीय हित के अन्य प्रयोजन के लिये सम्पत्ति अर्जित नहीं की जायेगी। प्रधान मंत्री ने कहा है कि चन्द लोगों की रक्षा करनी चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि चन्द लोगों को न्याय मिलना चाहिये अत: यदि हम विशिष्ट रूप से यह उपबन्ध करें कि राष्ट्रीय हित के लिये ही संपत्ति अर्जित की जायेगी तो हम यह प्रत्याभूति करते हैं कि चन्द व्यक्ति जो संपत्ति के स्वामी हैं उनके साथ न्यायपूर्वक व्यवहार किया जायेगा क्योंकि प्रधान मंत्री के अनुसार उनके ही विचारों के अनुसार चन्द व्यक्ति जनता के, समूचे राष्ट्र के हितों का अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। राष्ट्रीय हित

[श्री एच.वी. कामत]

में कोई भी सपत्ति अर्जित की जा सकती है और की जानी चाहिये। यह मेरे प्रथम संशोधन के संबंध में है।

मेरा दूसरा संशोधन संख्या 395 केवल शाब्दिक संशोधन है और उसे मैं उचित अवसर पर विचार करने के लिये मसौदा समिति की बुद्धिमत्ता पर छोड़ता हू।

संशोधन संख्या 403 एक मुख्य संशोधन है अत: उस पर कुछ बातें कहने के लिये मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं। इस संशोधन में मैंने यह उपबन्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रतिकर देने और प्रतिकर नियत करने के सिद्धान्तों और निश्चय करने की रीति पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। जिस रूप में यह खंड था वह कुछ अस्पष्ट है यद्यपि प्रधान मंत्री ने यह कहा था कि अन्त में संसद और विधान मंडल ही सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न होंगे। पर मैं समझता हूं कि उन चन्द व्यक्तियों के लिये कोई ऐसी गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये कि वे संप्रदाय के हित के विरुद्ध लड़ने का विचार अपने मस्तिष्क में लायें। इस प्रयोजन को विचार में रखते हुए मैं इस प्रश्न पर इस खंड को स्पष्ट करना चाहता हूं कि प्रतिकर के सिद्धान्तों तथा उसकी रीति पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। जो कुछ भी न्याय्य है जिस पर भी आपत्ति की जा सकती है वह केवल इन सिद्धान्तों का प्रयोग है। यदि कोई दुखी व्यक्ति यह समझता है कि सिद्धान्तों का गलत प्रयोग किया गया है या अन्यायपूर्ण प्रयोग किया गया है तो उसको न्यायालय जाने का और वहां विधि के प्रयोग पर आपत्ति करने का अधिकार है, परन्तु यदि संसद या विधान मंडल प्रतिकर का हिसाब लगाने के सिद्धान्त तथा उसकी रीति निर्धारित करते हैं उदाहरणार्थ, यह हिसाब फैलाते हैं कि कितने वर्षों में, नकद देकर या हुंडी के रूप में इत्यादि, इत्यादि तो इन सब बातों पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। इस आधार पर नियत किया गया प्रतिकर अर्थात् यह कि इन सिद्धान्तों का प्रयोग न्याय्य बना दिया जाये। यूरोप में बने हुए अन्तिम संविधान पश्चिमी जर्मनी के वोन संविधान में इसी प्रकार एक खंड है। संपत्ति के प्रति इस खंड में न्याय्य भाग यह है कि "प्रतिकर की सीमा के संबंध में विवाद होने पर साधारण न्यायालय में अपील की जा सकती है।" मैंने अपने संशोधन संख्या 403 के द्वारा यह प्रयास किया है कि प्रतिकर के सिद्धान्त और रीति न्याय्य नहीं होंगे वरन् प्रतिकर की राशि या उन सिद्धान्तों के प्रयोग पर न्यायालय में आपत्ति की जा सकती है।

संशोधन संख्या 410 इस अनुच्छेद के खंड (3) से संबंध रखता है जो राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित किसी विधेयक पर अपनी संपत्ति देने या न देने की शक्ति राष्ट्रपति को सौंपता है। मैं समझता हूं कि जहां तक इस संपत्ति का संबंध है जो राज्य के विधानमंडल के क्षेत्र के अधीन है अर्थात् जहां तक सप्तम अनुसूची की सूची 2 में अंकित सम्पत्ति का संबंध है, यदि राज्य उस संपत्ति को उस अनुच्छेद के अधीन अर्जित करना चाहता है तो राज्य द्वारा उस संपत्ति के अन्तिम रूप में अर्जित करने में कोई बाधा या रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि खंड (3) जिस रूप में है उसी रूप में स्वीकार किया जाता है तो मुझे भय है कि कहीं उसका परिणाम राज्य और समूचे संघ के लिये दुखदायी न हो। उदाहरण के रूप में मान

लीजिये कि इस अनुच्छेद के अधीन संघ के किसी अनुपूरक एकक ने संपत्ति अर्जित करने की विधि पारित कर दी पर कुछ हितों में अन्तर्ग्रस्त व्यक्तियों ने केन्द्र या राष्ट्रपति पर जो डालने का प्रयत्न किया और यदि दुर्भाग्यवश राष्ट्रपति भी उस उपक्रम के पक्ष में ऐसे अनेक कारणों से नहीं जिनको लेने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है और विधान-मंडल द्वारा पारित विधि पर राष्ट्रपति अपनी अनुमति नहीं देता है तो राज्य और संघ सरकार में परस्पर घोर विरोध होना अवश्यम्भावी है और एक बार राज्य और संघ सरकार में फूट के बीज डल जाने पर मैं नहीं कह सकता हूं कि उसकी बेल कहां तक बढ़ेगी और राज्य और संघ में कब तक यह संघर्ष होता रहेगा। इस आकस्मिकता को दूर करने के लिये मैं चाहता हूं कि उस संपत्ति के संबंध में जो राज्य के क्षेत्र के अधीन है राज्य के विधान-मंडल को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न बना दिया जाये और यह चाहता हूं कि उसके प्रवर्तन में आने के पूर्व उस विधान पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक नहीं है। इसके बाद में संशोधन संख्या 418 पर आता हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि वह न्यूनाधिक रूप में एक शाब्दिक संशोधन है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ खंड (3) पर के पूर्व संशोधन पर मेरा संशोधन संख्या 418 एक आनुषंगिक रूप में है। खंड (3) पर के संशोधन में मैंने यह प्रयास किया है कि प्रवर्तन में आने से पूर्व राज्य विधान मंडल के विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता अपमार्जित की जाये। और जैसा कि यहां इस संशोधन संख्या 418 में भी है, मैं खंड (4) को उसी आधार पर तथा इसी प्रभाव के लिये कि उसको प्रवर्तन में लाने के लिये राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक नहीं है, उसका फिर से मसौदा बनाना चाहता हूं कि जब उसको स्वाभाविक रूप में अधिनियमित किया जाता है तो उसको प्रभावी होना चाहिये और शेष खंड ठीक है।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 431 पर आता हूं। खंड (4) और (6) समान हैं सिवाय इसके कि खंड (4) लम्बित विधेयकों के संबंध का है और खंड (6) उन विधेयकों के संबंध का है, जिनको राज्य अधिनियमित कर चुका है और राज्य के विधान पर राष्ट्रपति के अनुमति संबंधी उपबन्धों के अपमार्जित करने का प्रयास करने वाला जो संशोधन खंड (3) पर मैंने पेश किया है वह दोनों खंड (4) और खंड (6) पर लागू होता है और इन खंडों में जहां-जहां राष्ट्रपति को रखा गया है वहां मैंने राज्य की विधि को प्रवर्तन में लाने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति वाले उपबन्ध के अपमार्जन करने का संशोधन पेश किया है। यह संशोधन संख्या 431 के संबंध में है।

समाप्त करने के पूर्व मैं केवल एक बात पर जोर देना चाहूंगा। और वह यह है। अपने मूलाधिकार 9 में हमने यह उपबन्ध किया है कि मनुष्यों में परस्पर कोई विभेद नहीं होना चाहिये। केवल स्त्री और बच्चों के संबंध में उस अनुच्छेद पर एक विभेदात्मक परन्तुक है। मैं समझता हूं कि यह बहुत ही उचित होता कि हम किसी प्रकार के विभेद की भूसंपत्ति और औद्योगिक संपत्ति में व्यवस्था न करते (वाह, वाह), यदि हम यह निर्धारित करना चाहते हैं कि भूसंपत्ति का अर्जन न्याय्य नहीं है। मैं इस बात का स्वागत

[श्री एच.वी. कामत]

करता कि औद्योगिक संपत्ति तथा वाणिज्यिक पूंजी का अर्जन भी न्याय्य नहीं हो।

एक और बात इस संबंध में अनुच्छेद 13 के खंड (1) के उपखंड (च) में है जो संपत्ति के अर्जन, धारण और व्यय के अधिकार प्रदान करता है। उस पर एक परन्तुक (5) है "उक्त खंड के उपखंड (ख), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों के अथवा किसी अनुसूचित आदिम जाति के हितों के संरक्षण के लिये युक्ति युक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उस के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।" इन दो अनुच्छेदों को ध्यान में रखते हुए मैंने अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे के खंड (2) पर इस संशोधन का सुझाव दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं यह विशिष्ट रूप से उपबन्ध करना चाहता हूं कि औद्योगिक संपत्ति के विषय में भी जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी हो, प्रतिकर देने के सिद्धान्त और रीति न्याय्य नहीं होंगे। यह भूसंपत्ति और औद्योगिक संपत्ति में अविभेद के सिद्धान्त के निकट होगा जिसके प्रति कुछ प्रान्तों ने कार्यवाही कर दी है। मैंने केवल प्रतिकर की राशि को न्याय्य बनाने का उपबन्ध किया है क्योंकि प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में यह कहा था कि कुछ चन्द व्यक्तियों की भी रक्षा करनी होगी और इस कारण मैं समझता हूं कि उनको जो रक्षा-कवच मिल सकता है वह प्रतिकर की राशि के संबंध में है। और किसी आधार पर वे न्यायालय नहीं जा सकते और प्रतिकर देने के सिद्धान्तों तथा रीति पर आपत्ति नहीं कर सकते।

अन्त में मैं भारत शासन अधिनियम का उल्लेख करूंगा जिसका अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे के खंड (6) के जिक्र है। भारत शासन अधिनियम की धारा 299 में की उपधारा (3) में यह निर्धारित है कि राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित किये गये विधेयकों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उनको मुख्य राज्यपाल की अनुमति के लिये भेजा जाये। मुझे भय है कि राष्ट्रपति को अनुमति देने या न देने की जो शक्ति दी गई है उसके कारण भविष्य में कहीं विकट उलझनें न पैदा हो जायें और राज्य और संघ में विरोध न होने देने का एक मात्र मार्ग यह है कि राज्य के क्षेत्र में जो संपत्ति है उसे अर्जन करने की संपूर्ण शक्ति विधान-मंडल को दे दी जाये।

अत: सभा के गंभीर तथा परिपक्व विचारार्थ में अपने इन कई संशोधनों को प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, आपके नाम से कई संशोधन है, पर यह नहीं प्रतीत होता कि वर्तमान वाद-विवाद तथा वर्तमान संशोधनों में वे किस प्रकार ठीक बैठेंगे। उनमें से कुछ वर्तमान संशोधन के संबंध में है जिसे प्रधान मंत्री ने पेश किया है; कुछ उन पहले संशोधनों के संबंध में हैं जिनको पेश नहीं किया गया। जो पहले संशोधनों के संबंध में हैं, उन्हें मैं नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। अत: केवल

एक संशोधन संख्या 387 रहा जिसमें आप 'Law' शब्द के स्थान में 'President रखना चाहते हैं। आप इस विषय पर विस्तारपूर्वक बोल ही चुके हैं अतः मैं इसे पेश किये हुए रूप में माने लेता हूं।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संस्था 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'Law' शब्द के स्थान में 'President' शब्द रखा जाये।"

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे भी कई संशोधन हैं। क्या मैं उनकी संख्याओं की सूची आपको दूं?

***अध्यक्ष:** मेरे पास सूची है।

***प्रो. के.टी. शाह:** ये संशोधन उन संशोधनों के स्थान में हैं जिनको मैंने मूल अनुच्छेद के लिये भेजा था और इस कारण वे पेश नहीं किये जायेंगे।

मेरा पहला संशोधन संख्या 388 है।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no rights of absolute property shall be allowed to or recognised in any individual, partnership firm, or joint stock company in any form of natural wealth such as land, forests, mines and minerals, water of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the union; and that ultimate ownership of these forms of natural wealth shall always be deemed to vest in and belong to the people of India collectively; and that they shall be owned, worked, managed or developed by collective enterprise only, eliminating altogether the profit motive from all such enterprise.' "

[परन्तु किसी व्यक्ति, साझे का फर्म, या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के किसी प्रकार के प्राकृतिक धन जैसे भूमि, वन, खानें तथा खनिज पदार्थ, नदी, तालाब के और संघ के समुद्र तट के चहुं ओर समुद्र के जल पर निरपेक्ष संपत्ति के अधिकार न होने दिये जायेंगे और न अभिज्ञात किये जायेंगे; और इस प्रकार के प्राकृतिक धन का पूर्ण स्वामित्व भारत की जनता में सामूहिक रूप से निहित रहने दिया जायेगा और केवल सामूहिक उद्यम द्वारा ही, इन सब उद्यमों में लाभ की भावना का पूर्ण रूप से परित्याग कर, उन पर स्वामित्व या उनका संचालन या प्रबंधन या उनमें विकास किया जायेगा।]

[प्रो. के.टी. शाह]

इसके बाद संशोधन संख्या 394 है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में:—

(1) 'No property' शब्द के स्थान में 'Any property' शब्द रख दिये जायें।

(2) 'shall be taken' शब्द के स्थान में 'may be taken' शब्द रख दिये जायें।

(3) 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'subject to such compensation if any' शब्द रख दिये जायें।

(4) 'acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'acquired as may be determined by the principles laid down in the law for calculating the compensation' शब्द रखें जायें।

श्रीमान, यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं उस संशोधित खंड को पढ़ दूं जो इस उखड़ी हुई शैली से अधिक स्पष्ट होगा। संशोधित खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Any property movable or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial undertaking, may be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition subject to such compensation, if any, for the property taken possession of or acquired as may be determined by the principle laid down in the law for calculating the compensation."

[कोई स्थावर या जंगम संपत्ति जिस के अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है तो कब्जाकृत या अर्जित की गई संपत्ति के विषय में विधि द्वारा प्रतिकर का हिसाब लगाने के लिये निर्धारित सिद्धान्तों द्वारा यदि कोई प्रतिकर है तो उसके असीर सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कल्लाकुल या अर्जित की जायेंगी।]

इसके बाद, श्रीमान–

(5) यह अन्त में जोड़ दिये जायें:

'(a) any public utility, social service, or civic amenity which has been owned, worked, managed or controlled, by any individual, partnership firm, or joint stock company for more than 20 years continuously immediately before the day this Constitution comes into force;' "

[परन्तु किसी लोक उपादेयता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 20 वर्ष से अधिक काल से स्वामित्व, संचालन, प्रबन्धन या नियंत्रण है।]

मैंने 'immediately' (सद्य) शब्द जोड़ दिया हे। इस संबंध में मेरे पास, संशोधन संख्या 490 है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी समय से नहीं बल्कि सद्य पूर्व।

इसके बाद, श्रीमान–

"(b) any agricultural land forming part of the proprietary of any land-owner, howsoever described, which has remained uncultivated or undeveloped continuously for ten years or more immediately before the day this Constitution comes into force;

"(c) any urban land, forming part of the proprietary of any individual partnership firm or joint stock company, which has remained unbuilt upon or undeveloped in any way for fifteen years or more continuously immediately before the day this Constitution comes into effect;

"(d) any agricultural land forming part of the proprietary of any landowner, howsoever described, which has remained in the ownership or possession of the same individual or his family for more than 25 years continuously immediately before the day when this Constitution comes into operation;

[प्रो. के.टी. शाह]

"(e) any mine, forest or mining or forest concession which has remained in the ownership or possession of the same individual, partnership firm, or joint stock company for at least twenty years immediately before the day this Constitution comes into operation;

"(f) any share, stock, bond, debenture or mortgage on any joint stock company, owning, working, managing or controlling any industrial or commercial undertaking which has been owned, worked, controlled or managed by the same joint stock company, or any combination or amalgamation of it with any other company for more than thirty years continuously immediately before the day this Constitution comes into operation;

or

which has paid in the course of its operations and existance in the aggregate, in the shape of dividend or interest, a sum equal to or exceeding twice the paid up value of its shares, stock, bonds or debentures;

or

whose total assets (not including goodwill) at the time of the acquisition by the State of any such undertaking are less in value than its total liabilities."

[(ख) कोई कृष्यभूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 10 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनजुती तथा अविकसित रूप में पड़ी रही हो;

(ग) कोई नगर में की भूमि जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का अधिकार हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 15 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनिर्मित तथा अविकसित पड़ी रही हो;

(घ) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 25 वर्ष से अधिक समय तक उसी व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के कब्जे में रही हो;

(ङ) कोई खान, वन या खनिज पदार्थ निकालने का कर्म या वन संबंधी रियायतें जो उसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के स्वामित्व या कब्जे में इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व न्यूनातिन्यून 20 वर्ष तक रही हो;

(च) किसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में, जो किसी ऐसे औद्योगिक या वाणिज्यिक उपक्रम की स्वामिनी, संचालिका, प्रबंधिका, या नियंत्रिका है, कोई अंश, श्रेष्ठि, हुंडी, ऋणपत्र या रहन जिस उपक्रम पर उसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का या किसी अन्य कंपनी से मिलकर या उसमें विलीन होकर उनका स्वामित्व, संचालन, नियंत्रण या प्रबन्धन इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार तीस वर्ष से अधिक काल तक रहा हो;

या

जो अपने प्रवर्तन तथा जीवन काल में लाभांश या ब्याज के रूप में अंश, श्रेष्ठि, हुंडी या ऋणपत्र के प्राप्त किये हुए भाग से औसतन दुगना दे चुकी हो;

या

किसी उपक्रम को राज्य द्वारा अर्जित करते समय उसकी सकल सम्पत्ति उसकी पूर्ण देयता से मूल्य में कम हो तो उन पर कोई भी प्रतिकर नहीं दिया जायेगा।]

इसके बाद संख्या 410 है जिसे कामत साहब पेश कर ही चुके हैं और उस पर मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता हूं। इसके बाद संख्या 419 है। मैं पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में—

(1) 'If any' शब्द के स्थान में 'any' शब्द रखा जाये।

(2) 'has, after it has been' शब्द के स्थान में 'may be' शब्द रखे जायें।

(3) 'received the assent of the President' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।

(4) 'assented to' शब्द के स्थान में 'passed' शब्द रखा जाये।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year' शब्दों के स्थान में 'at any time' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'may within three months' शब्दों से लेकर 'Government of India Act, 1935' तक के शब्दों के स्थान में 'shall not be called in question in any Court on the ground that it contravenes any provision of this article' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, अब मैं उन संशोधनों पर भाषण देता हूं जिनको एक साथ लेने से एक रचनात्मक प्रस्थापना बन जाती है और माननीय प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये संशोधन में निर्धारित नीति के स्थान में वह एक नीति के रूप में है। प्रधान मंत्री ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की है कि इस संविधान के अधीन बिना प्रतिकर के संपत्ति नहीं ली जायेगी। बिना किसी विभेद तथा रूपभेद के यदि यह सब संपत्ति पर लागू किया जाता है तो मुझे खेद है कि कि इस विचार में मैं साथ नहीं दे सकता हूं। क्योंकि सभी संपत्ति ऐसी नहीं हैं कि उसका वर्तमान स्वामी न्याय और नीति में प्रतिकर पाने के किसी अधिकार का दावा कर सके क्योंकि संपत्ति का उद्भव सदैव अनापत्तिजनक नहीं होता है।

एक महान फ्रांस के विचारक ने यह प्रश्न पूछा कि 'संपत्ति क्या है' और उसने यह कहकर उसका उत्तर दिया कि "वह चोरी है।" 'चोरी' शायद एक बहुत ही उदार सा शब्द है क्योंकि संपत्ति अधिकतर—यदि आप उसके उद्भव को लें तो बल, छल तथा हिंसा द्वारा अर्जित की गई है जिसको किसी भी नीति के अनुसार न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। जिन लोगों ने न मालूम कब से बल, छल अथवा हिंसा से अथवा किसी भी ऐसे ही प्रकार से संपत्ति अर्जित की है और इन बातों पर बिना विचारे ही आप यदि उनको प्रतिकर देने का प्रयास करते हैं तो मेरे विचार से आप उन नैतिक सिद्धान्तों का पालन नहीं कर रहे हैं जो हमारे इस संविधान को अनुप्राणित करते हैं।

इस वाद-विवाद में एक पूर्व वक्ता ने मनुष्यों पर स्वामित्व रखने के अधिकार अर्थात् दास प्रथा का उल्लेख किया था जिसका प्रचलन संयुक्त राज्यों के दक्षिणी राज्यों में था और जिसको मिटाने के लिये एक गृह युद्ध हुआ था। संपत्ति के इस रूप को मिटाना पड़ा था और मुझे पूर्ण विश्वास है कि बिना किसी प्रतिकर के। यह सच है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने अधीन वैस्ट इंडीज उपनिवेशों में स्थित दासों के स्वामियों को प्रतिकर दिया था जबकि उन्होंने बिना किसी हिंसा

के दास प्रथा को मिटाने का निश्चय किया था। परन्तु नैतिक प्रस्थापना आपत्तिजनक नहीं होती है क्योंकि संयुक्त राज्य के विषय में, तथा अन्य देशों के उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जहां कि निकृष्ट कोटि की संपत्ति का उन लोगों ने प्रतिकर नहीं किया जिन्होंने उन संपत्ति के स्वामियों से उन संपत्तियों को लिया।

इस विषय में मैं सुझाव देता हूं कि आर्थिक और नैतिक रूप में कुछ अन्तर है। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि संपत्ति का रूप नैतिक नहीं है। यह एक आर्थिक व्यवस्था है जिसका नैतिकता से घनिष्ट संबंध है। मैं तो यह कहूंगा कि आर्थिक व्यवस्था की नैतिकता से इसी अन्तर के कारण क्षति हुई है तथा संपत्ति को अक्षुण्ण मानने से और चाहे संपत्ति बल या छल किसी प्रकार से अर्जित की गई हो, चाहे उसका उपयोग हो रहा हो या दुरुपयोग या कोई उपयोग न हो उसका प्रतिकर मांगने से आर्थिक व्यवस्था की क्षति हुई है।

बाद में मैं तर्क के उस भाग पर आऊंगा जो बिना किसी शर्त के या मेरे संशोधन के अनुसार जिसमें किसी शर्तों के आधार पर प्रतिकर निर्बन्धित किया गया है, प्रतिकर देने का प्रयास करता है। परन्तु इस समय यह बताने से ही मेरा संबंध है कि लोक उपादेयता, सामाजिक सेवायें तथा नागरिक सुविधायें वर्तमान प्रणाली के अधीन निजी उद्यम के अन्तर्गत हैं। इन पर व्यक्तिगत रूप में व्यक्तियों का स्वामित्व है जिनको पर्याप्त लाभ होता है। ये उद्यम एकाधिकार के रूप में होते हैं या हो जाते हैं और उनको चाहे व्यक्ति या साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनियां चलायें, वे मेरी सम्मति में, संप्रदाय से वह वस्तु छीनना चाहते हैं जो संप्रदाय की हैं और होनी चाहियें।

अत: ऐसे उद्यमों के लिये मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि, कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये। जिस संशोधन का मैंने सुझाव दिया है उसमें कहा गया है कि अब तक चाहे जो कुछ हुआ हो एतत्पश्चात् इस संविधान के अधीन किसी व्यक्ति में अथवा साझे की फर्म में अथवा संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में जिसका किसी लोक उपादयेता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा के संचालन, नियंत्रण, प्रबन्धन या प्रवर्तन से संबंध है, संपत्ति पर निरपेक्ष अधिकार न होने दिया जायेगा और न अभिज्ञात किया जायेगा, और भविष्य में इनका प्रवर्तन पूर्णतया लोकहित तथा लोक उद्यम के हेतु किया जायेगा जिसमें किसी प्रकार का कोई निजी लाभ नहीं होगा।

मुझे विश्वास है कि जो लोग मेरे जैसे विचार नहीं रखते हैं वे इस संबंध में मेरे संशोधन की वास्तविक शब्दावली की सावधानी से पूरी जांच करेंगे, शर्तें निर्धारित करने में मैं बहुत उदार रहा हूं। मैं फिर कहता हूं कि मैंने केवल भविष्य का ही निर्देश किया है और इस कारण अतीत में जो कुछ हुआ उस पर कोई विचार नहीं किया, यहां तक इन उपादेयता की सेवाओं तथा सुविधाओं पर भी कोई विचार नहीं किया। मैं समझता हूं कि भविष्य के बारे में भी स्वामित्व के निरपेक्ष अधिकार को किसी निजी रूप में, चाहे वह व्यक्ति हो, फर्म हो या कंपनी, संविधान के अधीन अभिज्ञात नहीं करना चाहिये। परन्तु एतत्पश्चात् उसका सामूहिक उद्यम द्वारा बिना किसी लाभ की भावना के सार्वजनिक हित के लिये संचालन करना चाहिये। मुझे विश्वास है कि इस भाग में उदारता का जो प्रमुख रूप है उसे स्वीकार तथा अभिज्ञात किया जायेगा और प्रधान मंत्री इस संशोधन को स्वीकार करने से सहमत होंगे।

[प्रो. के.टी. शाह]

खंड (2) के संबंध में मैंने सुझाव दिया है कि कोई निश्चित खंड होना चाहिये। खंड को निषेधात्मक रूप में आरम्भ करने के स्थान में, जिससे कुछ ऐसी ध्वनि सी निकलती प्रतीत होती है कि प्राथमिक अधिकार तथा अतिक्रमण करने का अधिकार व्यक्ति का है, मैं कदाचित् निश्चित रूप से राज्य या संप्रदाय के किसी संपत्ति अर्जन करने के अधिकार को निर्धारित करूंगा, यदि किसी प्रयोजन के लिये राज्य या संप्रदाय उस संपत्ति का अर्जन करना आवश्यक समझे। उसको 'लोक प्रयोजनों के लिये' शब्दों से सीमित कर दिया गया है। 'लोक प्रयोजनों' में मैं केवल बिना किसी पारिश्रमिक के तथा सार्वजनिक नागरिक सुविधाओं को ही शामिल नहीं करता हूं। उदाहरणार्थ, जब आप किसी विशाल नगर की गंदी आबादी को, हटाना चाहते हैं और उसमें जो व्यक्ति रह रहे हैं उनसे आप वह भूमि लेना चाहते हैं तो बगीचे या खुले स्थानों के रूप में आप लोक प्रयोजनों के लिये उसका अर्जन कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि 'लोक प्रयोजन' की यह एक बड़ी ही विधिवत् श्रेणी होगी। परन्तु ऐसा लोक प्रयोजन भी हो सकता है जो केवल इसी प्रकार का न हो—खुले स्थान, बगीचे या बाग बनाने का ही न हो—स्कूल, चिकित्सालय व शरणगृह बनाने का ही न हो, वरन् उन भूमियों को अधिक मितव्ययी तथा अधिक लाभदायक बनाने का हो—मेरा अभिप्राय यह है कि व्यक्ति के लिये नहीं वरन् सम्प्रदाय के लिये।

लोक प्रयोजनों के लिये भूमि अर्जन, किसी भी लोक प्रयोजन के लिये किसी भी प्रकार की स्थावर या जंगम संपत्ति का अर्जन, जिसमें लोक हित के लिये उस उद्यम का संचालन भी है, मैं समझता हूं कि एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संप्रदाय का प्राकृतिक अधिकार है जिसको किसी ऐसे अपवाद के अधीन नहीं होना चाहिये जो खंड (2) के शब्दों में यदि निर्धारित नहीं तो निहित अवश्य है। अत: मैंने यह सुझाव दिया है कि कोई ऐसी संपत्ति, लोक प्रयोजन के लिये यदि कोई प्रतिकर है तो उसके अधीन परन्तु इस बात की परिभाषा न करते हुए कि 'लोक प्रयोजनों' का वास्तविक अर्थ क्या है, अर्जित की जा सकती है। प्रतिकर या हिसाब लगाने—वास्तव में तो प्रतिकर के मूल आधार पर ही मैं स्पष्ट शब्दों में चेतावनी देना चाहूंगा। न तो सब संपत्ति प्रतिकर के योग्य ही है और न इस संविधान में प्रतिकर के अधिकार को बिना किसी रूप भेद तथा शर्त के स्पष्ट रूप में अभिज्ञात ही करना चाहिये जैसा कि मुझे इस विचाराधीन खंड में प्रतीत होता है। और इसी कारण इस पर मैंने संशोधन पेश किया है। कोई प्रतिकर है भी या नहीं और बिना आपत्ति के प्रत्येक मामले में दिया जाना चाहिये, इस संबंध में मैं सन्देह के लिये स्थान अवश्य रखूंगा। इस प्रकार 'यदि कोई' शब्द में सन्देह प्रकट कर देने के कारण मैं और अधिक आगे बढूंगा तथा यह कहूंगा और वह यह है कि स्थावर या जंगम संपत्ति के अर्जन करने के पश्चात् विधि उन सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण करे जिनके अनुसार प्रतिकर का हिसाब लगाया जायेगा और वह विधि प्रत्येक मामले में सही राशि निर्धारित करने का प्रयत्न न करे।

विधि में राशि निर्धारित करने पर आपत्ति करने के कारण और उन सिद्धान्तों को श्रेय देने के कारण, जिनके अनुसार प्रतिकर का हिसाब लगाया जायेगा, अब मैं आपको बताऊंगा। कदाचित् प्रश्नों का प्रभाव होने के कारण यदि विधान मंडल

द्वारा यह राशि निर्धारित की जाती है तो इस तथ्य के अतिरिक्त कि विधान मंडल वैयक्तिक अभिज्ञातों के अनन्त क्रम में संलग्न हो जायेगा, उस प्रत्येक मांग की आन्तरिक या सच्चे न्याय के आधार पर नहीं वरन् पक्षों की विचारधारा के आधार पर नियत किये जाने की अधिक संभावना है। मैं समझता हूं कि प्रत्येक संपदा, प्रत्येक अंश अथवा श्रेष्ठि अथवा ऋणपत्र, जैसी भी सूरत हो, उसके लिये प्रत्येक के ब्यौरे में विधान मंडल का जाना नैतिक रूप से गलत होगा। विधान मंडल के लिये यह ही सर्वोत्तम मार्ग होगा कि वह मोटे-मोटे सिद्धान्तों को निर्धारित कर दे जिनके अनुसार जहां प्रतिकर देना विनिश्चित किया जाये वहां उसका हिसाब लगाया जा सके और यह हिसाब उन न्यायाधिकारों द्वारा लगाया जाये जिनके संबंध में मैं सदैव यह आग्रह करता रहा हूं कि वे सरकार के किसी भी अन्य विभाग के चाहे वह कार्यपालिका का हो अथवा विधान मंडल का, प्रभाव या संपर्क से मुक्त रहने चाहिये। जिन सिद्धान्तों को आप अपने संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न विधान मंडल में निर्धारित करें उनके प्रशासन को आप न्यायपालिका को सौंप दें तो आप ठीक कार्य करेंगे।

यह कहने के पश्चात् मैं संपत्ति की कुछ श्रेणियां निर्धारित करता हूं जिनके लिये मेरे विचारानुसार कोई प्रतिकर न तो उचित ही है और न दिया जाना चाहिये, और जिस विषय को मैं प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूं उसके दोनों आर्थिक तथा नैतिक रूप में, मेरी धारणा है कि, ये बातें निहित हैं। अर्थात् किसी कृष्य संपत्ति को जो किसी प्रकार के स्वामित्व का भाग हो और कुछ वर्षों तक बिल्कुल ही उपयोग में न लाया गया हो, कुछ वर्षों तक उपेक्षित पड़ी रही हो, उसको बिना प्रतिकर के लिया जा सकता है। 'भूमि पूर्णतया अनुपयोगी रूप में पड़ी रही है अथवा जमींदारी समाज के लिये उपयोगी नहीं रही और इस कारण समाज के लिये अनुपयोगी होने के कारण, उपेक्षित रहने के कारण अथवा अदक्षता या उदासीनता के कारण संप्रदाय के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह स्वामी को प्रतिकर दे। अत: मेरा यह सुझाव है कि किसी संपत्ति के लिये जिसका ठीक-ठीक उपयोग किया जा सकता है, जिसके द्वारा संप्रदाय की उन्नति तथा संपत्ति में उन्नति हो सकती है, परन्तु जो स्वामी की उदासीनता, अदक्षता, उपेक्षा अथवा अन्य कारणों से इस प्रकार के उपयोगों में नहीं लाई गई है तो उसके स्वामी को कोई प्रतिकर नहीं मिलना चाहिये और इस प्रकार की संपत्ति पर यदि संप्रदाय कोई प्रतिकर देता है तो वह गलती करता है।

यही मैं उन लोग उपयोगिता तथा सामाजिक सेवाओं के बारे में कहता हूं जिनका अब तक निजी रूप से व्यक्तियों, आगमों या फर्मों द्वारा संचालन किया जाता था परन्तु सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार जो उनके हाथों में न रहनी चाहिये थी। पर चूंकि वे उनके हाथों में रही हैं इस कारण हम उन्हें प्रतिकर दें, परन्तु ये उस काल तक से जिसका मैंने सुझाव दिया है या किसी ऐसे ही काल तक से अधिक काल तक के लिये उनके अधिकार में न रही हों। यहां भी मेरे तर्क का मूलभूत आधार यही है। जनता को लाभ से वंचित कर उन्होंने इस प्रकार के एकाधिकार से, इस प्रकार की लोक सेवाओं से जितना उचित होना चाहिये उससे कहीं अधिक लाभ उठा लिया है तथा रकम बना ली है; अत: ऐसी सेवाओं के लिये प्रतिकर की मांग करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। जिस काल तक वे

[प्रो. के.टी. शाह]

इसको धारण किये रहे हैं यदि वह उस काल से अधिक है जिसका मैंने उल्लेख किया है तो धारणा यह की जाती है कि उनको आवश्यकता से अधिक प्राप्त हो चुका। अत: विधि या नीति या अर्थव्यवस्था किसी आधार पर भी उनके लिये प्रतिकर उचित नहीं है और न उनको दिया जाना चाहिये।

इस प्रकार से नगर को भूमि के संबंध में भी जिसको अधिकतर केवल इस आशा में अपने पास रहने दिया जाता है कि आबादी के बढ़ने से सामाजिक सेवाओं और लोक उपयोगिता में प्रगति होने से भूमि का मूल्य बढ़ जायेगा। लोग उस भूमि पर और अधिक पूंजी नहीं लगाते हैं, वरन् तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि सामाजिक बलों के संयोग तथा प्रवर्तन से उस भूमि का मूल्य नहीं बढ़ जाता है। वे केवल प्रकृति की शक्तियों का उन भूमियों पर प्रभाव पड़ने देते हैं अत: उनको कोई प्रतिकर नहीं देना चाहिये। मैं समझता हूं कि वे समाज के प्रति दोषी हैं और यह ठीक संप्रदाय के अधिकार की बात है कि उत्पादन के मुख्य साधनों को अपने अधिकार में करने और उनमें उन्नति न करने तथा उनको उपयोग में न लाने के कारण संप्रदाय उनसे समाज के प्रति दोषी के रूप में व्यवहार करे। अत: इस प्रकार के असामाजिक अथवा यहां तक कि समाज विरोधी व्यवहार के कारण प्रतिकर मांगने का उन्हें कोई हक्क नहीं है।

अब मैं अन्य प्रकार के प्राकृतिक धन को लेता हूं जैसेकि खानों तथा खानों के लिये रियायतें जो कि एकाधिकारों के रूप में है। ये प्रकृति की देन है और यह संप्रदाय की वस्तु है, परन्तु संप्रदाय से छीन कर उसे निजी व्यक्तियों को दे दिया गया है—इससे अधिक तीखे शब्दों का प्रयोग में नहीं करूंगा। यदि हमारी विवशता या विदेशियों के राज्य के कारण यदि ये चीजें व्यक्ति के हाथों में पड़ गई हैं तो हमें ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती कि हम इस लोक अधिकार के साथ यह जो अन्याय हुआ है, उसको जो बलात् कर दिया है, उसे क्योंकर अभिज्ञात किया जाये। जितने वर्ष मैंने कहे हैं यदि उतने समय के लिये उसको चला लिया गया है तो जिन लोगों का उन पर अधिकार रहा है उन्होंने पर्याप्त मात्रा से अधिक धन कमा लिया है अत: चाहे वे कोयले की खान वाले हों या लोहे की खान वाले हों या सोने की खान वाले हों वे और अधिक प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं।

प्राकृतिक धन के इन रूपों को छोड़कर अब मैं आगे बढ़ता हूं—औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रम जो अपने ही रूप में भूमि, खानों या वनों जैसे उत्पादनों के मुख्य साधनों से कम दोषपूर्ण नहीं है। उस समय प्रचलित अर्थव्यवस्था के कारण ये भी निजी व्यक्तियों के हाथों में चले गये हैं और अब शिकायत करना बहुत अबेर की बात हो गई है। पर वे चल रहे हैं और जो वर्षों से चल रहे हैं उनमें बहुत फायदा हो रहा है; इनको प्रतिकर मांगने का हक्क नहीं होना चाहिये क्योंकि उन्हें काफी मिल चुका है।

मैंने ये तीन श्रेणियां निर्धारित की हैं सर्वप्रथम वे जिनको औसतन उनके अंश पूंजी या ऋण पत्रों या श्रेष्ठि या जो कुछ भी हो उसका दुगना प्राप्त कर चुके हैं और इस प्रकार इतने वर्षों में उन्होंने अपनी लगाई हुई रकम पा ली है, अत:

यह आवश्यक है यह ठीक तथा न्याययुक्त है कि संप्रदाय को उनके उद्यम पर अधिकार करने दिया जाये और वह उसका इस प्रकार संचालन करे जिस प्रकार से राष्ट्र के लिये एक उचित रूप से सामंजस्यपूर्ण तथा योजित अर्थव्यवस्था के अनुसार उसका संचालन होना चाहिये और फिर वे लोग इसे पूरी अवधि अर्थात् 30 वर्ष से चाहे लाभ सहित अथवा लाभ रहित रखे हुए हैं उन्होंने अपने आपको आवश्यकता से अधिक अक्षय तथा अनुपयोगी सिद्ध कर दिया है, अत: वे इस संपत्ति को अपने अधिकार में बनाये रखने के योग्य नहीं हैं। अत: उनको अधिकार च्युत कर देना चाहिये। अन्य लोगों को जितना धन उन्होंने लगाया है उससे कहीं अधिक, बहुत अधिक प्राप्त हो चुका है, अत: और अधिक प्रतिकर का उन्हें कोई हक्क नहीं है। खान संबंधी कारखानों तथा मूलभूत उद्योगों संबंधी जैसे कि लोहा, इस्पात, महाजनी तथा बीमा व्यवसाय के मैं उदाहरण नहीं देना चाहता हूं जिन्होंने पिछली पीढ़ी या इससे भी अधिक समय से विशेषकर जब से कि स्वदेशी आन्दोलन चला बहुत अधिक लाभ तथा अधिक धन कमा लिया है और यह मान लेना चाहिये कि उन्होंने अपनी लगाई हुई रकम से अधिक रकम प्राप्त कर ली है, तो इन मामलों में, विशेषकर उनमें जो देश की उन्नति के लिये मूलभूत रूप से आवश्यक हैं, किसी कृत्रिम मूल्य पर प्रतिकर, देना, मैं निवेदन करता हूं कि पूर्णतया अनुचित है और न दिया जाना चाहिये। अत: मैंने इस संशोधन द्वारा यह सुझाव दिया है कि इस प्रकार की संपत्ति के लिये कोई प्रतिकर न दिया जाये।

अन्त में औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उपक्रमों के लिये, उन उपक्रमों के लिये जिनका देना पावना आपस में सम नहीं है, जिनका पावना देने से बहुत कम है और इस कारण वह सदैव घाटे का व्यवसाय है। तो ऐसे व्यवसायों पर प्रतिकर देना व्यर्थ के कार्य, अतिव्ययी तथा अमितव्ययी कार्य संचालन पर किश्त देना है अत: प्रतिकर नहीं दिया जाना चाहिये। कई बार राज्य ने पूर्वकाल में उन उद्यमों पर अधिकार दिया है जो दो या तीन या चार वर्ष पहले से अपने साधनों को इस प्रकार से नष्ट कर रहे थे कि वे अपने व्यवसाय को एक अनोखा सा असंभव रूप दे रहे थे। मैं विशेषकर कुछ रेलमार्गों के बारे में कह रहा हूं जिन पर राज्य को अधिकार करना पड़ा था और जो करार की शर्तों के अनुसार इस प्रकार से संचालित हो रही थीं कि उनसे जो पावना होता था वह उसे देने से बहुत कम होता था जो हमें प्राप्त होता था। ऐसे किसी विषय में, मैं निवेदन करता हूं कि केवल इस आधार पर प्रतिकर देना अनुचित, अबुद्धिमत्तापूर्ण, अमितव्ययी तथा नीति विरोधी है कि वह घाटे का व्यवसाय है अथवा यह कि किसी प्रतिकर के लिये उसके स्वामियों ने अपने आपको सर्वथा अक्षय तथा अयोग्य सिद्ध कर दिया है क्योंकि केवल अपनी ही असावधानी के कारण के उस व्यवस्था को चलाने में असफल रहे।

अन्य संशोधन जो मैंने पेश किये हैं वे प्रक्रिया संबंधी हैं, अत: उन पर मैं सभा का बहुत अधिक समय नहीं लूंगा। मैं नहीं समझता हूं कि उदाहरण के रूप में राज्य के मुखिया और विधानमंडल में किसी ऐसे संघर्ष के लिये गुंजाइश छोड़ना वांछनीय है जिसे कि मिटाया जा सकता है; अत: खंड (3) जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि इस प्रकार के प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये रक्षित रखा जाये और उसे महत्व का मद बनाया जाये, मेरी सम्मति में अबुद्धिमत्तापूर्ण है और इस कारण इसको निकाल देना चाहिये। इसी कारण मैंने इस खंड को अपमार्जन करने का सुझाव दिया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इसी प्रकार से लम्बित विधेयकों को अथवा संविधान के प्रवर्तन में आने से एक वर्ष पूर्व या कितने ही समय पूर्व पारित किये गये विधेयकों को, मेरी सम्मति में, इस देश के सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न प्राधिकारी की स्वीकृति या अनुमति के लिये रक्षित रखना आवश्यक नहीं होना चाहिये और यथा स्थिति केन्द्रीय प्राधिकारी, राष्ट्रीय प्राधिकारी तथा स्थानीय या राज्य प्राधिकारी में परस्पर एक प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये। मुझे विश्वास है कि संक्षेप में ये जो बातें मैंने प्रस्तुत की हैं उनको सभा की स्वीकृति प्राप्त होगी और मेरे ये संशोधन स्वीकार किये जायेंगे।

***श्री जदुवंश सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2), (3), (4), (5) और (6) को अपमार्जित किया जाये।"

सदस्यों को इस समय तक मेरे इस संशोधन के पेश करने का न्याययुक्त आधार स्पष्ट हो गया होगा। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि हमारे समक्ष जिस रूप में इस अनुच्छेद का मसौदा प्रस्तुत है वह विचारों की अवस्था तथा अस्पष्टता का एक बहुत ही आश्चर्यजनक उदाहरण है। देश की संपत्ति से सम्बन्धित इस प्रकार के महत्वपूर्ण तथा प्रमुख विषय पर संभवत: आपको इस प्रकार के गड़बड़ विचारों का संघर्ष कहीं नहीं मिलेगा। इस महान निकाय के रूप में भावी विधान-मंडल के लिये तथा इससे देश की आगे आने वाली संतति के लिये हम संपत्ति की नींव रखने जा रहे हैं, पर मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि इस कार्य में हम पूर्णतया असफल रहे हैं। इस सभा के सदस्यों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं में समझौता करने का ज्यों ज्यों अधिक प्रयास किया गया है त्यों त्यों ही अधिक अस्पष्ट यह मसौदा होता गया। आप जानते ही हैं कि संपत्ति का प्रश्न केवल इस देश का ही नहीं वरन् अन्य देशों के ध्यान को भी आकर्षित कर रहा है। कई देशों ने भूमि संबंधी तथा उद्योग संबंधी सुधारों ने शताब्दियों पुरानी संपत्ति की परिभाषा का पूर्णतया खंडन कर दिया है। हमसे यह आशा की जाती थी कि कम से कम करोड़ों व्यक्तियों पर प्रभाव डालने वाले इस विषय पर देश की भावी आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव डालने वाले इस विषय पर हम संपत्ति विषयक नीति की स्पष्ट शब्दों में व्यंजना करेंगे। पर हम यह देखते हैं कि इस मसौदे पर किसी वर्ग में भी विश्वास की भावना जाग्रत नहीं हुई है।

उद्योगपतियों और पूंजीवादियों को लीजिये। वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। बड़े-बड़े जमींदारों को लीजिये। वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। जहां तक करोड़ों देशवासियों का संबंध है यदि इस संविधान के मसौदे पर आपके समक्ष अपने भाव प्रकट करने की शक्ति उनमें होती तो वे यही कहते कि वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। जिन लोगों के नाम से हम यहां आये और इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हीं के कारण हम

यह संविधान बना रहे है—उनको हम क्या दे रहे हैं? मैं इस विवाद में नहीं पड़ूंगा कि इस अनुच्छेद में जैसे प्रतिकर का उपबन्ध किया गया है वह पूंजीवाद की उस उन्नति का निराकरण कर सकता है या नहीं जो इस देश में इतनी शीघ्रता के साथ हो रही है और जिसका देश की भावी राजनैतिक तथा आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नतियों पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

इतना कहना पर्याप्त होगा कि संपत्ति के प्रति विचारधारा बदलती रही है। संसार ही परिवर्तनशील है। शासक के दैवी अधिकार से हम अब जनता की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता तक आ गये हैं। परन्तु जहां तक संपत्ति के प्रश्न की वास्तविकताओं का संबंध है हमारे विचारों में परिवर्तन नहीं हुआ है। क्या हम भविष्य के लिये यह आशा बंधा रहे हैं कि जनता के हित के लिये इस देश में उद्योग का राष्ट्रीयकरण या सामाजिककरण होगा? नहीं। यह संविधान इस प्रकार की कोई आशा नहीं बंधाता है; बल्कि भावी संतति को, भावी विधान निर्माताओं को वे जिस उद्योग का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं उसके लिये पूर्ण प्रतिकर देने के लिये बाध्य करता है।

इस अनुच्छेद से किसी के मन में भी किसी प्रकार का उत्साह नहीं हुआ है। जहां तक विधेयकों का संबंध है हमें क्या मिलता है? वहां गड़बड़ी का साम्राज्य है क्योंकि केवल एक प्रान्त में हम यह देखते हैं कि वहां जो विधेयक लम्बित है उसको यहां अभिज्ञात किया जा रहा है। क्या संविधान के बनाने वालों का यह कर्तव्य है कि वे उन विधेयकों पर विचार करें जो लम्बित हैं, जो अभी प्रवर समिति को नहीं पहुंच पाये हैं। जहां तक संशोधनों का संबंध है मैं यह देखता हूं कि सर्वत्र दुर्व्यवस्था और गड़बड़ का राज्य है। अन्य प्रान्तों पर क्या प्रभाव होगा? संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार को छोड़ दीजिये। आसाम, बंगाल तथा मध्य प्रान्त तक के मार्ग प्रदर्शन के लिये आप क्या नीति निर्धारित कर रहे हैं जहां कि निकट भविष्य में ही जमींदार का उन्मूलन करना पड़े? क्या उनको प्रतिकर देने के लिये कहा जायेगा या क्या उनकी खंड (4) और (6) के अधीन रक्षा की जायेगी?

आपसे मैं इस बात कर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा कि समस्त संविधान में यही अनुच्छेद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और इस सभा के सदस्यों की परख की यही एक कसौटी है। हम असफल हो चुके हैं क्योंकि जिस रूप में हमने प्रत्येक बात को लिया है उसमें हम उलझनों के शिकार हो गये हैं। जब हमारे समक्ष समस्यायें खड़ी होती हैं तो या तो हम उनसे कतराते हैं या हम दो भिन्न-भिन्न रूप में उनका निर्वचन करते हैं। इस विषय पर दो विचारधारायें हैं और उनमें से एक यहां होनी चाहिये—या तो प्रतिकर होना चाहिये या नहीं। यह कहना बिल्कुल ही अलग है कि अपने देश की वर्तमान स्थिति में, देश के वर्तमान संकट में हमें इस रूप में कार्य करने में अग्रसर नहीं होना चाहिये कि ऐसा विधान न हो कि जिससे हमारे बड़े-बड़े उद्योगपति भयभीत हो जायें और पूंजी लगाने में झिझक उठें। मैं समझता हूं कि राज्य के विधान मंडल और संसद देश के संकट का अवश्य ध्यान रखेगी। पर यह और ही बात है कि आगे आने वाली सब सन्ततियों के भावी पथ में ऐसे उपबन्धों द्वारा आप बन्धन लगा रहे हैं शायद इसी बात के कारण हमने देश के सामने आर्थिक नीति की स्पष्ट परिभाषा नहीं की है।

[श्री जदुवंश सहाय]

संभव है मेरी भविष्यवाणी सही न हो, पर मुझे भय है कि इस संविधान को जिस पर हमने इस सभा में विगत दो वर्षों से श्रम किया है, फेंक न दिया जाये क्योंकि यह एक बहुत बड़ी विवादास्पद बात होगी और क्योंकि हम ऐसी प्रणाली ग्रहण कर रहे हैं जो न सही है, न गलत है और न सही तथा गलत के बीच की है। हमारी बुद्धि में संघर्ष तथा अस्पष्टता है। अत: मेरा विचार यह है कि केवल प्रथम खंड रहे और शेष सबको अपमार्जित किया जाये। यह राज्य के विधान मंडलों अथवा संसद अथवा उन नेताओं पर जो शासन चलाते हैं छोड़ दिया जाये कि वे देश को निदेश दें और यह कहें कि किसी प्रान्त में संपत्ति के संबंध में विधियों को किस प्रकार सूत्रित किया जाये। परन्तु ईश्वर के लिये संविधान को उन बातों से न भरिये जो आपको संसार के किसी भी संविधान में नहीं मिलती हैं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 390, 391, 392 और 393 नियम विरुद्ध ठहराये जाते हैं। संशोधन संख्या 396 शाब्दिक है और उसका पेश किया जाना आवश्यक नहीं है। श्री बी. दास अपना संशोधन संख्या 397 पेश करें।

***श्री बी. दास:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'unless the law provides for fair and equitable compensation' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, आपकी आज्ञा से मैं संशोधन संख्या 427 भी पेश करूंगा।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year before the commencement of this constitution' शब्दों के स्थान में 'after August 15, 1947' शब्द और अंक रखे जायें।"

श्रीमान, माननीय पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि यदि मेरे दो संशोधनों को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह परिस्थिति को ठीक रूप से स्पष्ट कर देगा ओर हम उस जाल में नहीं फसेंगे जिसके बारे में हमने अभी अपने माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा सुना था जो कुछ दिनों बाद संसद में विरोधी दल के नेता होंगे।

9 अगस्त, 1942 को हमारे नेताओं को राष्ट्र के लिये "भारत छोड़ो" युद्ध का नारा देने के कारण बन्दी किया गया था और वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने का उचित तथा दृढ़ विचार लेकर कारागृह से बाहर निकले। 1945-46 में हमारे

नेताओं ने राष्ट्र के लिये कांग्रेस का निर्वाचन संबंधी घोषणापत्र निकाला जिसमें भूमि प्रणाली के सुधार तथा संपति अर्जन को निर्दिष्ट करते हुए घोषणा की गई थी:

> "भूमि प्रणाली का सुधार, जिसकी प्रमुख रूप से आवश्यकता है उसमें किसान और राज्य के बीच में मध्यवर्तियों का निकालना निहित है। अत: इन मध्यवर्तियों के अधिकार को उचित प्रतिकर देकर अर्जित कर लेना चाहिये।"

अधिकांश कांग्रेस नेताओं ने, जिनमें से कुछ यहां हैं और कुछ यहां से बाहर हैं, यह मान लिया है कि अर्जित संपत्ति का उचित प्रतिकर देना चाहिये। किसी प्रकार से इस सभा में तथा इससे बाहर इस बात पर बहुत ही विवाद चल रहा है कि राष्ट्रीयकरण तथा संपत्ति हरण होना चाहिये और ठीक तथा उचित प्रतिकर नहीं देना चाहिये। जब 1947 में कांग्रेस को शक्ति मिली तो दुर्भाग्यवश उसका युवक वर्ग राष्ट्रीयकरण तथा संपत्तिहरण की बातें करने लगा। उनमें से आज कुछ इस सभा के तथा कांग्रेस सरकार तक के सदस्य हैं और वे इस 'संपत्ति हरण' शब्द पर चुप है जिसकी मेरे पुराने मित्र, लोकतंत्रात्मक समाजवादी नेता, प्रो. शाह ने इतने निश्चित रूप से परिभाषा की है।

हम कांग्रेसियों पर देश के प्रति एक महान कर्तव्य है। क्या हमें समाजवादियों के जाल में फंसना है और विधि की शरण लेनी है और विधि के नाम पर कोई प्रतिकर नहीं देना है या हमें कांग्रेस के इस संसदीय घोषणापत्र पर अटल रहना है कि उचित प्रतिकर दिया जाये? इसी कारण मैं चाहता हूं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये संशोधन में घोषणापत्र के साथ शब्द ज्यों के त्यों पुर:स्थापित कर दिये जायें।

दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में जिसमें यह कहा गया है कि "कोई विधि जो संविधान के प्रारंभ से एक वर्ष पूर्व पारित कर दी गई है" मैं यह देखता हूं अन्य लोगों ने भी इस प्रकार के संशोधन प्रस्तुत किये हैं कि डेढ़ वर्ष होना चाहिये। विषय को अस्पष्ट क्यों बनाया जाता है? हमने स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता प्राप्त कर ली—यद्यपि वह स्वाधीनता आज संयुक्त राष्ट्र संघ के देशों के साथ गठबंधन पर आश्रित है। यह क्यों नहीं कहते कि "कोई विधि जो 15 अगस्त, 1947 के बाद पारित हुई है?" इससे पंडित जी ने जो संशोधन पेश किया है उसमें कोई अन्तर नहीं आता है बल्कि इससे एक ऐसी तिथि नियत हो जाती है जो सर्वविदित है और इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष पूर्व की बातें करने से कोई लाभ नहीं।

पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को, चाहे मेरे संशोधन सभा द्वारा स्वीकार किये जायें या नहीं, मुझे तो स्वीकार करना ही है क्योंकि उससे कोई अधिक अच्छी प्रस्थापना सभा में सदस्यों ने जो प्रस्तुत या पेश की हैं उनमें नहीं है। उसको स्वीकार करने में हमें यह मानना पड़ेगा कि हम अपने मूलभूत आदर्शों से विलग हो रहे हैं। हम उस निर्वाचन संबंधी घोषणापत्र पर वापस पहुंच जाते हैं जिसने देश को गत चार वर्ष तक बड़ी-बड़ी आशायें बंधाई थीं और बड़े-बड़े आदर्श प्रदान किये थे अर्थात् 1945-46 का घोषणापत्र। शायद जैसे ही हमने शक्ति का प्रयोग किया, राष्ट्र के नेता अधिकार लिप्सा में बौखला गये और कांग्रेस पक्ष के नेता यह समझने लगे कि आदर्शवाद ठीक वस्तु नहीं है और जीवन में समझौता होना चाहिये।

[श्री बी. दास]

पर मैं उनमें से नहीं हूं जो समाजवादियों द्वारा दबा दिये जायेंगे। यदि समाजवादी देश पर कांग्रेस के स्थान में अधिकार करना चाहते हैं तो वे यह योजना बनायें कि वे क्या करेंगे। समाचार पत्रों में या मंच पर कांग्रेस के नेताओं की कुछ आलोचना करने के अलावा समाजवादियों ने देश के लिये न तो कोई रचनात्मक किया और न उसके लिये कोई योजना बनाई जिससे कि राष्ट्र प्रशासन पर नियंत्रण करने के लिये देश की महान कांग्रेस संस्था के उत्तराधिकारी होने की वे अपनी योग्यता सिद्ध कर सकें। आज प्रात:काल 'स्टेट्समेन' में एक छोटा सा नोट पढ़कर मुझे हंसी आई जिसमें लेखक ने जिक्र किया है कि कांग्रेस सरकार का विरोध करने के लिये उन्होंने संसद में अपना एक समाजवादी लोकतंत्रात्मक दल बनाया है उसने कहा है कि अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातों, सभा में असंगत बकवास तथा बाहर बिना किसी काम के अलावा उन्होंने अब तक कोई ऐसा योजित कार्यक्रम नहीं बनाया है जिसके द्वारा वे देश में बेहतर सरकार की स्थापना कर सकें या ऐसी सरकार स्थापित कर सकें जो रचनात्मक समाजवाद का एक शान्तिपूर्ण युग ला सके। जैसा कि मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कुछ मिनट पूर्व समाजवादी कार्यक्रम की परिभाषा की थी उससे यदि मैं कुछ समझा हूं तो यह है कि वे सारी संपत्तियों को अधिकार च्युत करना चाहते हैं। मैंने टोका था "मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह भारत के नागरिकों की समस्त जगम संपत्ति का हरण करना क्यों नहीं चाहते हैं?" इससे उनको तथा समाजवादी दल को कुछ संपत्ति तथा धन अपने तत्कथित कार्यक्रम को चलाने के लिये उसी प्रकार से मिल जायेगा जैसे पाकिस्तान सरकार भारतवर्ष में आये हुए विस्थापित हिन्दू और सिखों की 4,000 करोड़ की संपत्ति जब्त करके काम चला रही है। यह सही हल नहीं है। अधिक धन पैदा करने का सही हल संपत्ति हरण नहीं है। अधिक उत्पादन तथा लोक की अधिक कुशल क्षेत्र के लिये प्रो. के.टी. शाह और शायद समाजवादी लोग देश में उद्योगों का जिस प्रकार संचालन करना चाहते हैं वह संचालन संपत्ति हरण द्वारा नहीं होगा। यदि उद्योगों का हरण किया जाता है तो कोई उद्योग जीवित नहीं रह सकता है। यदि संपत्ति हरण से समाजवादी श्रमिक अधिक उत्पादन करने के लिये अधिक अच्छा कार्य करेंगे तो मैं समझता हूं कि समाजवादी इस रूप में गलत सोच रहे हैं। जन और घंटे के आधार पर पर्याप्त उत्पादन कर के ही इन उद्योगों को भारत के राष्ट्रीय आकलन को बनाये रखने के लिये पर्याप्त उत्पादन करना चाहिये, चाहे उन उद्योगों पर किसी व्यक्ति का निजी रूप में अथवा राज्य का स्वामित्व हो। यदि मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह जो राष्ट्रीय योजना समिति के मंत्री थे उन सुन्दर तथा अध्ययनशील अंकों के लिखने के बाद इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि राष्ट्रीय आकलन का तब तक पोषण नहीं किया जा सकता जब तक समस्त संपत्ति का हरण न किया जाये, चाहे वह भूमि के रूप में संपत्ति हो अथवा चाहे वह लोक उपयोगी व्यवसाय अथवा अन्य व्यवसाय के रूप में हो, यदि समाजवादियों का इसी प्रकार का स्वप्न है तो मुझे उन पर दया आती है और निकट भविष्य में भारत सरकार की बागडोर कभी उनके हाथों में न हो सकेगी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू का संशोधन स्वीकार करते हुए मैं समझौते को स्वीकार करता हूं। यद्यपि उससे मेरी आत्मा को संतोष नहीं होता है पर उससे वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और इसी आधार पर मैं उसका समर्थन करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ संशोधन संख्या 398 उसी प्रकार का है जैसा 397। 390 का प्रथम भाग भी उसी प्रकार का है। अत: इनका पेश किया जाना आवश्यक नहीं है।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि भाग (क) संशोधन संख्या 397 या 398 से कुछ भिन्न प्रकार का है?

*__अध्यक्ष:__ आप अपने संशोधन के खंड (ख) और (ग) पेश कर सकते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ संशोधन संख्या 389 में (ख) और (ग) भी आ जाते हैं।

*__अध्यक्ष:__ हां, उसे श्री जदुवंश सहाय पेश कर चुके हैं। अत: इन सब संशोधनों को पृथक् पृथक् पेश करना आवश्यक नहीं है।

*__श्री एस. नागप्पा__ (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'for Compensation for' शब्दों के स्थान में 'Compensation not more than 5 per cent of the market value of' शब्द रखे जायें।"

जब इन शब्दों को बदल दिया जायेगा तो वह खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"No property movable or immovable, including any interest in, or in any Company owning, any Commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition unless the law provides compensation not more than 5 per cent of the market value of the property taken possession of or acquired etc."

[कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित संपत्ति के लिये बाजार दर का 5 प्रतिशत से अनाधिक प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो, इत्यादि इत्यादि।]

हमने इस अनुच्छेद को अन्याय्य बना दिया है। जब हम ऐसा करते हैं तो कोई सिद्धान्त होना चाहिये। प्रतिकर के रूप में अधिकतम हम क्या दे सकते हैं? न्याय्य

[श्री एस. नागप्पा]

प्रतिकर तो हम देंगे ही नहीं। जो कुछ भी हम देंगे उसे ठीक तथा उचित समझा जायेगा। इन दिनों राज्य ने जमींदारों और पूंजीवादियों की संपत्ति अर्जन करने में रक्षा की है। देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिये अब हमें राज्य के लिये, राज्य के कल्याण के लिये, जन साधारण की बेहतरी के लिये उस संपत्ति की अपेक्षा है। अत: अब हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि संपत्ति का उचित रीति से प्रयोग न करके अर्थात् जो पूंजी उनके कब्जे में है उससे अपेक्षित मूल्य राशि का उत्पादन न करके राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के गिराने में इन पूंजीवादियों और जमींदारों पर किस प्रकार का उत्तरदायित्व रहा है। इसके फलस्वरूप उत्पादन गिराने का उत्तरदायित्व उन पर है। उदाहरण के रूप में उस जमींदार को लीजिये जिससे पास हमारों एकड़ भूमि है। कभी-कभी पर्याप्त रूप से श्रम जीवी न मिलने के कारण वह अपनी समस्त भूमि को नहीं जोत पाता और अधिकांश भूमि बंजर हो जाती है और यदि वह जोतता भी है तो वह उतना परिश्रम नहीं करता जितना कि अपेक्षित तथा आवश्यक है और शायद वह इस भूमि से उतनी मात्रा में उत्पादन न कर सके जितना कि हो सकता है। अत: राष्ट्रीय संपत्ति में हानि पहुंचाने का उत्तरदायित्व उस पर है। अत: वह प्रतिकर नहीं वरन् किसी और ही वस्तु के योग्य है। राष्ट्र को राष्ट्रीय संपत्ति से वंचित करने के लिये उसे फटकार मिलनी चाहिये।

अब हमें यह खुशी है कि देश ने यह समझ लिया है कि हमें संपत्तियों पर किसी व्यक्ति अथवा निगम का स्वामित्व नहीं होने देना चाहिये वरन् समस्त संपत्ति समूचे रूप में देश के अधिकार में रहे। हम जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर रहे हैं। दो प्रान्तों में यह कार्य आरम्भ हो चुका है। तो अब यह भूमि किसके पास जाये? वह छोटे छोटे जमींदारों के हाथ में न जानी चाहिये। वह राज्य के पास जाये। कुछ चंद जमींदारों के स्थान में हमें असंख्य जमींदार नहीं बनाने चाहियें। यह जमींदारी का उन्मूलन नहीं है। और यदि आप अधिक प्रतिकर देते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि यह जमींदारी का क्रय करना है न कि उन्मूलन। जब आप राज्य के लिये संपत्ति अर्जित करते हैं। तो राज्य का उस पर नियंत्रण होना चाहिये। आखिर जिस व्यक्ति का उस पर कब्जा है वह व्यक्ति भूमि का उपयोग करने के लिये ही तो है। उसका स्वामी बनना उसके लिये आवश्यक नहीं है। आज एक पट्टादार उस भूमि का स्वामी नहीं है जिसका वह उपयोग कर रहा है। सरकार उसकी स्वामिन है क्योंकि सरकार ने एक एक इंच कर के उस पर अधिकार किया है अत: सरकार ही उसकी स्वामिन होनी चाहये। पट्टादार को केवल भूमि का उपयोग करने का अधिकार है। वह यह नहीं कह सकता कि भूमि उसकी है। जमींदार भी केवल जनता की ओर से भूमि के रक्षक थे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। वे लोगों से लगान का संग्रह भी करते थे। अब आप लगान उठाने के अधिकार को छीन रहे हैं और जनता को भूमि दे रहे हैं जो अब तक जमींदार के अधीन उसे जोत रहे थे। आप राज्य को भूमि नहीं दे रहे हैं। आप जमींदारों से भूमि छीन कर कई छोटे जमींदार बना रहे हैं जिनकी संख्या पहले जमींदारों से बहुत अधिक होगी। इस प्रकार आप भूमि की समस्या को नहीं सुलझा सकते हैं। इस समस्या का हल भूमि का राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण करने में निहित

है। उस स्थान के व्यक्ति उस स्थान की भूमि के स्वामी होने चाहियें, भूमि के जोतने वाले भूमि के स्वामी होने चाहियें। तभी आप यह कह सकते हैं कि आपने राज्य के प्रयोजनों के लिये भूमि अर्जित की है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक आप यह नहीं कह सकते कि आपने समस्या हल कर दी है।

हमने आरम्भ में यह विनिश्चय किया था कि हमारा उद्देश्य एक सहयोगी संयुक्त राष्ट्र बनाना है। जब तक आप भूमि का समाजीकरण नहीं करते तब तक आप इस प्रकार का राष्ट्र नहीं बना सकते। जमींदारों से अर्जित भूमि की एक सहयोगी आधार पर योजना बनानी चाहिये और कुशल किसानों को इस अनुदेश सहित दी जानी चाहिये कि वे अधिकाधिक अनाज उगायें। अब मैं जो प्रस्थापना करना चाहता हूं वह यह है कि इस प्रयोजन के लिये जब आप भूमि अर्जित करते हैं तो ठीक तथा उचित यही है कि आप 5 प्रतिशत या इससे कम दें। इन चन्द शब्दों के साथ सभा को स्वीकृति के लिये मैं इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करता हूं।

*अध्यक्ष: श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 401 पेश किये जा चुके संशोधनों के अन्तर्गत आ जाता है।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: जी नहीं।

*अध्यक्ष: 'उचित प्रतिकर', 'पूर्ण प्रतिकर' इत्यादि इत्यादि पदों का एक ही अर्थ है।

*श्री नज़ीरुद्दीन अहमद: उनमें परस्पर कुछ अन्तर झलकता है।

*अध्यक्ष: हां, परन्तु इस प्रकार के अन्तर मसौदा संबंधी विषय हैं। संशोधन संख्या 402 भी आ जाता है।

*पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): 402 का मद (3) पूर्णतया भिन्न है। यह किसी के अन्तर्गत नहीं आता है।

*अध्यक्ष: संशोधन संख्या 402 में खंड (3) जिसमें 'सिद्धान्तों' शब्द के पूर्व 'समुचित' शब्द रखने का प्रयास किया गया है, केवल यह ही नया है। आप उसे पेश कर सकते हैं।

*पं. ठाकुरदास भार्गव: मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में '(principles)' शब्द के पूर्व '(appropriate)' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

श्रीमान, इसके पश्चात् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'Constitution' शब्द के पूर्व 'and designed to execute a scheme of agrarian reform by abolition of Zamindari and

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

conferring rights of ownership on peasant proprietors for such compensation as the Legislature of the State considers fair' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***अध्यक्षः** आपका संशोधन संख्या 479 पेश नहीं किया जा सकता है। वह पहले संशोधनों के अन्तर्गत आ जाता है। आप संशोधन संख्या 487 पेश कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** तो फिर, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'or specifies the' शब्दों के पूर्व 'proper' अथवा विकल्पतः 'fair' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

इसके बाद, श्रीमान, मैं यह पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'having been' शब्दों के स्थान में 'is' शब्द रखा जाये।"

***अध्यक्षः** आपका संशोधन संख्या 503 संशोधन संख्या 389 के अन्तर्गत आ जाता है संशोधन संख्या 512 भी पेश नहीं किया जा सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** तो फिर, आपकी अनुमति से मैं यह पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जायेः—

'(7) If any State passes a law designed to execute a scheme of agrarian reform in the State by abolition of Zamindari conferring rights of ownership on peasant proprietors or at least rights of occupancy for such compensation as the State Legislature considers fairs on the line of the law referred to in clause (4) of this article, such low shall be submitted by the Governor or the Ruler as the case may be, to the President for his certification. If the President by public notification certifies the law, it shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.,"

[(7) जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर या किसी ऐसे प्रतिकर के लिये उनके कब्जा रखने का कम से कम अधिकार देकर, जिसे इस अनुच्छेद के खंड (4) में निर्दिष्ट विधि के आधार पर राज्य विधान-मडल ठीक समझे, यदि कोई राज्य अपने यहां कृषि सुधार की योजना प्रवृत्त करने के लिये विधि पारित करता है तो इस विधि को प्रमाणन के लिये राष्ट्रपति के पास यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा भेजा जायेगा। यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति उस विधि को प्रमाणित कर देता है तो उस विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंडों का उल्लंघन करती है।]

इन संशोधनों के संबंध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि लोक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन करने के वर्तमान सिद्धान्तों की इस प्रस्थापित अनुच्छेद के खंड (5) द्वारा रक्षा की गई है। वर्तमान विधि 1894 के अनिधियम 1 में है जिसके अनुसार संपत्ति के अर्जन करने या अधिग्रहण करने के पूर्व प्रतिकर दे दिया जाता है। विधि में जो प्रतिकर दिया जाना निर्धारित किया गया है वह अर्जन करने के समय के बाजार मूल्य के सहित 15 प्रतिशत और है जो व्यवस्था में उथल-पुथल होने के कारण है। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 24 का खंड (5) उस विधि की रक्षा करता है और इस कारण बाद में विधान-मंडल द्वारा किसी अन्य उपबन्ध बनाने के पूर्व यह विधि प्रवृत्त रहेगी और यदि कोई भूमि अर्जित की जाती है तो वह इस विधि के अनुसार अर्जित की जायेगी। वर्तमान विधि के अधीन कोई कार्यपालिका पदाधिकारी प्रतिकर निश्चित करता है, पर उसका निश्चय अन्तिम नहीं होता। इस आदेश से असन्तुष्ट कोई व्यक्ति व्यवहार न्यायालय या किसी जिला न्यायाधीश के यहां जा सकता है और वहां यदि कार्यपालिका पदाधिकारी या राजस्व पदाधिकारी या जो कोई भी पदाधिकारी प्रतिकर निश्चित करता है उससे वह संतुष्ट नहीं है तो उस आदेश को पुनरीक्षित करा सकता है। इसके पश्चात् वह व्यवहार वाद हो जाता है और व्यवहार न्यायालय यह मालूम करती है कि बाजार मूल्य क्या है और उसमें 15 प्रतिशत जोड़ देती है। वर्तमान विधि यह है। संशोधन संख्या 369 के अनुसार यदि बाद में विधानमंडल द्वारा कोई विधि पारित की जाती है तो वह विधि अनुच्छेद 24 में दिये हुए आधार पर होगी।

जिस रूप में यह अनुच्छेद 24 है उस रूप में उसमें जो भी व्यक्ति उसे पढ़ता है उसे धोखे में डालने का प्रयास किया गया है कि वह न्याय्य अधिकार है। इस सभा में नहीं पर अन्यत्र हमसे यह कई बार कहा गया है कि यह अधिकार न्याय्य है। इस बात में अपवाद दिया गया था कि जहां तक जमींदारों का संबंध है यह न्याय्य नहीं होना चाहिये। सारा वाद-विवाद इसी प्रश्न पर था कि संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में जो अधिकार दिया गया था वह न्याय्य है या नहीं। आरम्भ से ही मेरा यह मत रहा है कि संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में कोई न्याय्यता नहीं है क्योंकि विधान मंडल के सिद्धान्त निर्धारण करने के पश्चात् वे सिद्धान्त अपरिवर्तनीय हो जाते हैं। उन सिद्धान्तों पर किसी न्यायालय में आपत्ति

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

नहीं की जा सकती। कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न नहीं ला सकता है कि जो सिद्धान्त विधान मंडल ने निर्धारित किये हैं वे पर्याप्त प्रतिकर देने में असमर्थ हैं। स्वयं 'प्रतिकर' शब्द का अर्थ समुचित रूप में जैसे को तैयार है। स्वयं 'प्रतिकर' शब्द में पर्याप्तता तथा पूर्णता का भाव निहित है, यद्यपि 'प्रतिकर' के इस अर्थ के प्रति भी शंकायें प्रकट की गई हैं। मैं यह नहीं जानता हूं कि इस प्रतिकर शब्द का यह अर्थ है या नहीं, पर जिस रूप में मैंने इस अनुच्छेद को समझा है उसके अनुसार यह बात मेरे मन में बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि विधि पुस्तक में खंड (2) इसी रूप में रहता है तो विधान मंडल ही प्रतिकर के अन्तिम निर्णायक होंगे न कि न्यायालय।

होगा यह कि यदि किसी विधान में सिद्धान्त निर्धारित कर दिये जाते हैं तो अन्त में वही सिद्धान्त यह विनिश्चित करेंगे कि प्रतिकर क्या होना चाहिये। हां, यदि व्यवहार्यत: कोई प्रतिकर नहीं दिया जाता है तब तो कोई व्यक्ति न्यायालय जा सकता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार जो प्रतिकर दिया जाता है वह इस धारा को धोखा देना है तो इस दशा में उस विषय को न्यायालय में ले जाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि यदि 100 रुपये के स्थान में 1 रुपया दिया जाता है तो 'प्रतिकर' शब्द के साथ पूर्ण अत्याचार होगा। यदि सौ रुपये में से एक रुपया दिया जाता है तब तो वह धोखा होगा, यदि अट्ठानवे रुपये या पांच रुपये दिये जाते हैं तो वह धोखा नहीं होगा। श्रीमान, यह खंड (2) मेरी समझ से हमारे साथ धोखा है क्योंकि मैं समझता हूं कि वह न्याय्य नहीं है। जनसाधारण में विश्वास उत्पन्न कराने के लिये उसे न्याय्य का रूप दे दिया गया है। मेरा निवेदन यह है कि वह एक ही प्रकार से न्याय्य हो सकता है और यही मैंने अपने संशोधन संख्या 402 में आपके विचारार्थ प्रस्तुत किया है कि 'सिद्धान्तों' शब्द के पूर्व 'समुचित' शब्द जोड़ दिया जाये। यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेती है तो इसका यह अर्थ होगा कि सिद्धान्त समुचित तथा उचित होने चाहियें और इन समुचित सिद्धान्तों का केवल एक ही परिणाम होगा वह यह कि पूर्ण या उचित प्रतिकर दिया जायेगा। श्रीमान, मेरा आग्रह यह है कि यदि 'सिद्धान्तों' शब्द यहां बिना किसी विशेषण के रहता है तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह खंड न्याय्य नहीं है। अत: यदि सभा मेरा संशोधन स्वीकार कर लेती है तो हम इस अधिकार को न्याय्य बना सकते हैं चूंकि संविधान के निर्माताओं का यह उद्देश्य स्पष्ट है कि ऐसा होना चाहिये। अत: मेरा निवेदन यह है कि मेरा संशोधन स्वीकार करने में सभा एक अच्छी मंत्रणा को स्वीकार करेगी।

अपने समाजवादी मित्रों के तर्क मैंने सुने हैं जिनका यह विचार है कि यदि विधानमंडल कुछ प्रतिकर या सिद्धान्त नियत करता है तो इस विषय में न्यायालय को कोई अधिकार नहीं होना चाहिये, अन्तिम रूप में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होना चाहिये। मैं उनसे झगड़ा नहीं करता हूं क्योंकि यह केवल एक दृष्टिकोण है, पर वह लोग जो इस बात में विश्वास करते हैं कि अन्य देशों के समान इस देश में नागरिक अधिकारों के अन्तिम निर्णायक न्यायालय हैं, उनके लिये यह स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद 24 न्यायता के उस सिद्धान्त तथा संपत्ति के अधिकार के विरोध में है, जो अनुच्छेद 13 के अधीन अभिज्ञात तथा प्रत्याभूत है।

श्रीमान, जब यह संशोधन पेश किया था उस समय हमसे यह कहा था कि संप्रदाय के अधिकार के विरोध में व्यक्ति के अधिकारों पर भी विचार करना चाहिये। मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं। अपने संविधान के उद्देश्यमूलक प्रस्ताव में हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि हम सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय को सुनिश्चित करना चाहते हैं। मैं यह चाहता हूं कि व्यक्ति का गौरव और राष्ट्र की एकता अवश्य होनी चाहिये। श्रीमान, मैं यह समझता हूं कि व्यक्ति के अधिकारों और संप्रदाय के अधिकारों में सुखद सहयोग होना चाहिये और इस विषय में कांग्रेस तथा समस्त देश जमींदारी के उन्मूलन के लिये वचनबद्ध है। हमारे लिये अपने वचनों से विमुख होना और यह कहना कि जमींदारी का उन्मूलन नहीं होगा, ठीक नहीं होगा। मैं यह नहीं चाहता हूं कि इस समूची बात पर इस प्रकार संकल्प किया जाये। देश के प्रत्येक व्यक्ति को इस विषय में विधान के व्यापक सिद्धान्तों को समझना तथा स्वीकार करना चाहिये।

खंड (4) के संबंध में मैंने संयुक्तप्रान्त का विधान देखा है और इस विधान के संचालन करने वाले जो सिद्धान्त हैं उनसे मैं संतुष्ट हूं। इस संविधान का पूरा मतलब यह है कि किसान संपत्ति का स्वामी हो जाये और प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमि का स्वामी हो जाये जिससे कि वह भूमि में पूरी रुचि रखे और उसमें जितनी उन्नति कर सकता है उतनी उन्नति करे। मैं इस सिद्धान्त को स्वीकार करता हूं कि यदि कृषि सुधार के प्रयोजनों के लिये, जिस आधार पर किसान या कृषक स्वामी बनाये जाते हैं और जमींदारी मिटाई जाती है, तो इस दशा में उतना प्रतिकर दिया जाये कितना न्यायोचित है और उसके लिये राज्य विधानमंडल अन्तिम निर्णायक तथा सर्वोत्तम विचारक है। इसी लिये मैंने संशोधन संख्या 514 प्रस्तुत किया है जिसमें एक और खंड अर्थात् खंड (7) और रखने का प्रयास किया है जिसमें मैंने यह कहा है कि यदि ऐसा अवसर हो जब कि कोई राज्य भविष्य में इस प्रकार की विधि चाहे तो खंड (4) के अधीन वह उस विधि का लाभ उठा सकता है।

खंड (6) के प्रति मैंने एक संशोधन रखा है कि उसे अपमार्जित किया जाये। बिहार विधि से मैं बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूं। मैंने बिहार विधि का अध्ययन किया और जब मैंने उसके उपबन्धों को पढ़ा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके उपबन्धों में कहा गया है कि किसी खास तिथि से जबकि लोक अभिसूचना हो चुकी है संपत्ति के सब अधिकारों का हरण कर लिया जायेगा और जो लोग आज संपत्ति के स्वामी हैं, श्रीमान, यदि उनका भूमि पर कब्जा है तो वे केवल कब्जा रखने वाले किसान हो जायेंगे। जहां तक इस विधि का संबंध है बिहार सरकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि यदि वह इस नये आधार पर विधि रखना चाहती है, यदि वह जमींदारी मिटाना चाहती है और उसके बाद उसके स्थान के स्वामित्व के पूर्णाधिकार सहित किसानों को स्वामी बनाना चाहती है तो मैं उसके साथ सहमत हूं। श्री मुंशी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने एक और संशोधन पेश करने का प्रयास किया है और उसमें कहा गया है कि यदि ऐसी विधि राष्ट्रपति के पास जाती है तो राष्ट्रपति को इस विधि में किसी उल्लिखित संशोधन को कराने की शक्ति होगी।

और फिर मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि मद्रास, संयुक्तप्रान्त और बिहार सरकार ही इस रीति से ऐसी विधियां क्यों पारित करें और अन्य राज्यों को जमींदारी उन्मूलन

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

करने की स्वतंत्रता से क्यों वंचित रखा जाये। मैं समझता हूं कि हमें न्याययुक्त होना चाहिये। यदि संयुक्तप्रान्त के विधान के आधार को विधि द्वारा स्वीकार किया जाता है जो हमें यह देखना चाहिये कि अन्य सब मामलों में वही सिद्धान्त लागू हों। "जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर कृषि सुधार होना चाहिये।" शब्द मेरे संशोधन में हैं और ये सिद्धान्तपुष्ट हैं। युगों के अनुभव ने इन्हें पवित्र कर दिया है। हां, ऐसे लोग हैं जो उन संपत्तियों के एक दीर्घ काल से स्वामी बने हुए हैं और अपने स्थानों से उनके अनुपस्थित रहने से उनके द्वारा अधिकारों का प्रयोग संप्रदाय के लिये उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना कि अन्य लोगों के द्वारा हो सकता है। जब तक यह अपवाद नहीं किया जाता व उचित नहीं होगा और यह सब प्रान्तों के लिये प्रयोज्य कर देना चाहिये।

मैंने संशोधन संख्या 406 रखा है जिसमें 'having been' शब्दों के स्थान में 'is' शब्द रखने का प्रयास है। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उसका यह अर्थ होगा कि उसके कारण प्रान्तीय सरकार को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये उसे रोके रखने के लिये बाध्य होना पड़ेगा और फिर राष्ट्रपति अनुमति देगा क्योंकि आज यदि राष्ट्रपति की अनुमति के लिये प्रान्तीय सरकार विधेयक को रोके नहीं रखती हैं तो एक कठिनाई उत्पन्न होगी क्योंकि वह राष्ट्रपति के पास भेजा नहीं जायेगा।

इन सभी के संबंध में मुझे यह निवेदन करना है कि कई बार हमसे यह कहा जा चुका है कि ये मूलाधिकार न्याय्य है। पर अब मैं यह देखता हूं कि इस बात के प्रयत्न किये जा रहे हैं कि भारत के नागरिकों को जिन अधिकारों की प्रत्याभूति की गई है वे एक-एक करके छीने जा रहे हैं। दो या तीन दिन पूर्व मुझे यह कहने का अवसर मिला था कि अनुच्छेद 16 के अधिकारों को छीनने का प्रयास किया जा रहा है और वे छीन लिये जायेंगे। और अनुच्छेद 13 भी मैं देखता हूं कि इतने रक्षणों से लादा जा रहा है और इतने रूप भेदों के अधीन किया जा रहा है कि वह भी छीना जा रहा है। और यह विचार अनुच्छेद 15 न तो मूलाधिकार है और न न्याय्य।

यदि हम वास्तव में वैसा ही संविधान बनाना चाहते हैं जिसकी हम सारे देश में प्रशंसा करते रहे हैं तो अनुच्छेद 24 जैसा उपबन्ध हमें अधिनियमित नहीं करना चाहिये क्योंकि इस देश में न्यायालय के शासन का वह स्वयं ही निराकरण करता है। अपने देश में जहां कि हमें रक्तहीन क्रान्ति से स्वतन्त्रता मिल गई है, यह आवश्यक है कि हम इस बात का ध्यान रखें कि अनुशासन और लोकतंत्रात्मक आदर्श हमारे हृदयों में स्थापित हों और देश की विधि वह विधि हो जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति पर शासन हो। जब तक न्यायालयों को शक्ति नहीं दी जायेगी और यदि जनता के नागरिक अधिकारों और स्वातंत्र्य के अन्तिम निर्णायक न्यायालय नहीं होंगे और यदि केवल विधि निर्माताओं को ही शक्ति दी जाती है, तो मैं समझता हूं कि हमारी ऐसी दशा हो जायेगी कि कार्यपालिका पदाधिकारी हमें हमारे अधिकारों से वंचित करेंगे और यह बहुत गलत होगा। सरकार की कार्यवाहियों में मुझे एक

ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है कि सर्वत्र हम न्यायालय की शक्तियों के नाश करने का प्रयास करते हैं और उसके स्थान में विधान-मंडल या कार्यपालिका को शक्ति देते हैं।

कार्यपालिका पदाधिकारी क्या है? मान लीजिये कि कोई कार्यपालिका पदाधिकारी मेरे भाग्य का निर्णय करता है; तो वह एक ऐसा व्यक्ति है जो मेरी संपत्ति लेने और मुझे बहुत कम प्रतिकर देने में रुचि रखता है। यह उचित नहीं है। वह एक ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिये। जो हमेशा सरकारी हित का प्रतिनिधित्व करे। न्यायालय की नियुक्ति भी सरकार द्वारा होगी। इन न्यायालयों को हमारे नागरिक अधिकारों का निर्णय करने दीजिये जिससे कि लोगों को विश्वास हो, और फिर श्रीमान, जमींदारी इत्यादि को छोड़कर साधारण संपत्तियों के विषय में मुझे पूर्ण संतोष नहीं हुआ है कि संप्रदाय के सिद्धान्तों को उच्चता का सिद्धान्त व्यक्ति के अधिकारों के ऊपर किस प्रकार आ गया। आखिर ऐसी विधि कहां है कि सिवाय उस व्यक्ति के शेष समाज के लाभार्थ आप उस व्यक्ति के अधिकारों का बरबस हरण करें? गत साठ वर्ष या इससे अधिक समय से जिस कल्याणकारी नियम को हमने स्वीकार किया है वह यह है कि प्रतिकर की राशि नियत करने के लिये उस समय का बाजार भाव ही उचित आधार है और इससे हमें तब तक च्युत नहीं होना चाहिये जब तक कि कोई कृषि सुधार संबंधी योजना न हो, जो करोड़ों व्यक्तियों तथा मुकदमेबाजी से संबंध रखती है। मैं जानता हूं कि मेरे समाजवादी मित्र यहां आते हैं। उनमें से कुछ स्वयं बड़े धनवान हैं और जो वह प्रचार करते हैं उसका पालन नहीं करते और वे जितनी सम्पत्ति बटोर सकते हैं उसके बटोरने में लगे हुए हैं। मैं इस समय सभा के विचारार्थ जनसाधारण के विचार रखना चाहता हूं। जनसाधारण आप के 'संपत्ति चोरी है' के सिद्धान्त को अभिज्ञात नहीं करता है। वह संपत्ति की अक्षुण्णता में विश्वास करता है। मान लीजिये किसी रेल के मार्ग अथवा सरकार के किसी उपक्रम के लिये किसी भूमि या संपत्ति को लिया जाता है, इसमें संदेह नहीं कि यह लोक प्रयोजन के लिये है, परन्तु यदि पूर्ण प्रतिकर नहीं दिया जाता है तो क्या किसी को संतोष हो जायेगा। तथा क्या इसके लिये कोई मान्य तर्क है कि उसे पूर्ण प्रतिकर क्यों न दिया जाये? सत्य तो यह है कि आप जिस प्रकार विधि अधिनियमित करना चाहते हैं यदि उसी प्रकार से विधि अधिनियमित करेंगे कि जनता के नागरिक अधिकारों का अन्तिम निर्णायक विधान मंडल है न कि न्यायालय, तो किसी को विश्वास नहीं होगा और लोगों के विश्वास को जर्जरित करना राजनीति नहीं है।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'is to be determined' शब्द के पश्चात् 'and paid' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी है जो संख्या 434 पर है। उसके प्रथम भाग को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं जिसके द्वारा मैंने 24-क जोड़ने का

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

प्रयास किया है, परन्तु श्रीमान, उसके अन्तिम भाग को पेश करने की मैं अनुमति मांगता हूं जिसको यहां 24-ख के रूप में रखा गया है और यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है तो उसकी संख्या 24-क करनी होगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 के निर्देशानुसार प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:—

'24-A. Nothing in this Constitution shall prevent the Parliament from exercising jurisdiction over the State Legislature from acquiring any properties movable or immovable belonging to any public charitable trust without compensation and for the purpose of better utilization and management of the trust property.'"

[24-क. इस संविधान की किसी बात से किसी स्थावर या जंगम संपत्ति पर जो किसी लोक पूर्त न्यास का हो, बिना प्रतिकर के तथा न्यास संपत्ति के अधिक अच्छे उपयोग तथा प्रबन्ध के प्रयोजन के लिये संसद को क्षेत्राधिकार के प्रयोग करने में और विधान-मंडल को इस संपत्ति के अर्जन करने में कोई बाधा नहीं होगी।]

श्रीमान, इसमें सन्देह नहीं कि यह संविधान में एक बड़ा महत्वपूर्ण उपबन्ध है और इस कारण यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि हम इन उपबन्धों पर इतने दीर्घ काल से विचार-विमर्श कर रहे हैं। हमारे इतने प्रयत्न करने पर भी कोई ऐसा सूत्र नहीं निकल पाया। जो प्रत्येक व्यक्ति को मान्य हो। श्रीमान, संपत्ति पर दावा या संपत्ति के प्रति हमारी विचारधारा वैयक्तिक स्वातंत्र्य के ही बाद की बात है, और वैयक्तिक स्वातंत्र्य सब राजनैतिक विचार तथा संविधानों का मुख्य तत्व है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे ही निजी संपत्ति की विचारधारा में बड़े-बड़े परिवर्तन होते जाते हैं। एक ओर पूंजीवाद का आधिक्य है तो दूसरी ओर रूस का उदाहरण है जहां सब निजी संपत्तियां जब्त की जा चुकी हैं। भारत संसार के एक महान् राष्ट्र के रूप में आ चुका है और केवल एक इसी बात पर कि हम अब किस प्रकार से निजी संपत्ति पर विचार करेंगे, यदि इस देश का शासन तथा भाग्य नहीं तो राजनीति की स्थिति तो निर्भर करेगा ही।

इस अनुच्छेद के रूप में जो सूत्र यहां प्रस्तुत किया गया है वह मेरी सम्मति से बेमन से बनया गया है। वह न तो निजी संपत्ति की रक्षा करता है न उसको जब्त करता है। यदि जनता की पुकार को सुनना आवश्यक है जो साम्यवादी विचारों से अधिकाधिक प्रभावित होती जा रही है कि समस्त भूमि, सब खानें और सब वस्तुयें जनता की हैं और उन पर किसी व्यक्ति का संरक्षित या पृथक् अधिकार

नहीं हो सकता है, यदि हम इस विचार को क्रियान्वित करना चाहते हैं या लोगों की इच्छा का सम्मान करना चाहते हैं या लोगों की मांगों के अनुसार कार्यवाही करना चाहते हैं जो विचार कि साम्यवाद को दूर रखने के हमारे सब प्रयत्नों के होते हुए भी हमारी जनता के लिये अधिकाधिक प्रिय होते चले जा रहे हैं, यदि हम अपने कई बार घोषित किये गये वचनों से, जो भिन्न-भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में दिये गये थे, विमुख नहीं होना चाहते हैं तो इस विशेष सूत्र में हम जितना आगे बढ़े हैं उससे बहुत आगे बढ़ना हमारे लिये आवश्यक होगा। परन्तु श्रीमान, मैं एक सतर्कतापूर्ण बात की मंत्रणा देना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि देर या अबेर में भारत में कोई निजी संपत्ति नहीं रहेगी। हम शीघ्रता से इस आदर्श, इस ध्येय और यदि आप चाहते हैं तो इस दुर्घटना की ओर बढ़ रहे हैं। परन्तु वर्तमान समय में अपने माननीय मित्र श्री सहाय द्वारा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर मैं इस वस्तुस्थिति को कुछ अनिश्चित, अपरिभाषित तथा लचीली रखना पंसद करता।

श्रीमान, जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूं कि ऐसे विषय में और इस दशा में तो किसी प्रकार से भी हमें वचन देने या संसद की शक्तियों को शृंखलाबद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। यह एक ऐसा विषय है जिसके लिये एक बहुत सतर्कतायुक्त तथा पूर्ण विचार अपेक्षित है और मैं समझता हूं कि इस समय इसके लिये जितना समय आवश्यक है उतना समय देना हमारे लिये असंभव है। मेरी सम्मति में इस विषय में समस्त संगत सूचना एकत्रित करने तक का हमें समय नहीं मिला और यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो यह कहूंगा कि हममें से सबसे योग्य व्यक्ति समस्त भारत में संपत्ति के प्रति कोई निश्चित नीति विनिश्चित नहीं कर सके। जिस संशोधन की सूचना दी गई है और जो इस सभा में प्रस्तुत किया गया है उसके रूप में यह स्पष्ट है कि अपने मित्र समाजवादियों को शामिल करते हुए बहुत कम लोग इस विषय में स्पष्ट विचार रखते हैं कि निजी संपत्ति के अधिकारों पर हम किस प्रकार से विचार करें और जहां तक समस्त निजी संपत्ति का प्रश्न है, हम उन अधिकारों का संरक्षण करें या निराकरण करें। और यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि समाजवादियों ने भी संपत्तिहरण का समर्थन नहीं किया है।

ऐसा होने के कारण यह विनिश्चय करना कोई आसान कार्य नहीं है कि सीमा कहां निर्धारित की जाये या विभाजन पंक्ति कहां खींची जाये। विशेषकर जबकि हम संविधान बना रहे हैं, हमारे पास इस पूरे उपद्वीप की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का अनुसंधान करने के लिये समय नहीं है, जिसके जिले जिले की परिस्थितियों में अन्तर है और प्रान्तों की परिस्थितियों में तो और भी अधिक अन्तर है। हम में से प्रत्येक के विचार भिन्न-भिन्न हैं और स्थान-स्थान पर भूमि की भिन्न-भिन्न लगानदारी है, जागीर, जमींदारी, इजारदारी, मालगुजारी इत्यादि इत्यादि और इन सब पर एक प्रकार से विचार करना और कोई ऐसा सूत्र निकालना, जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मान्य ही न हो पर जिसके बारे में हम यह निश्चित रूप से कह सकें कि इससे भारत का कल्याण होगा और इस विषय के लिये अन्य कोई हल अधिक उपयुक्त नहीं होगा, हमारे लिये संभव नहीं है।

इस दृष्टिकोण से मैं इस बात को अधिक पसन्द करता हूं कि जो कुछ हम कहें और जिसका हम उपबन्ध करें वह प्रथम खंड है और जो कि वास्तव में

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

वही है जो कि भारत शासन अधिनियम में है कि "कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" यदि हम ऐसा करते तो वे सब भिन्न-भिन्न बातें, जो हमने इस अनुच्छेद में शामिल की हैं जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने इस सभा के समक्ष प्रस्तुत किया है, अनावश्यक हो जातीं। स्थितिवश यह अनुच्छेद जटिल हो गया है; इसमें 'सिवाय' और 'अलावा' रखने होंगे; इसमें 'इस या उस बात के होते हुए' रखना होगा, 'इसकी कोई बात उस पर लागू नहीं होगी।' और 'जो कुछ कहा गया है उसके अधीन" इत्यादि इत्यादि इसमें रखने होंगे। मैं नहीं समझता हूं कि भविष्य के बारे में हम इतना शीघ्र तथा इतने निश्चित रूप से निर्णय करने की स्थिति में हैं कि हम कोई ऐसा सूत्र निर्धारित कर सकें जो निस्सन्देह समस्त देश के लिये लाभदायक हो। अत: मैं इस बात पर जोर दूंगा कि हम केवल यही कहें कि संसद विधि द्वारा समय-समय पर संपत्ति अधिकारों पर विनिश्चय करे।

मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह और कामत के दो रुचिकर भाषण हुए हैं। कुछ परिभाषाओं को उद्धृत करके उन्होंने संपत्ति का वर्णन किया है। श्री कामत ने कहा था कि किसी व्यक्ति ने संपत्ति को चोरी कहा है। मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह और भी आगे बढ़े और उन्होंने उद्धरण दिये कि संपत्ति को 'लूट, डकैती, धोखा' और न मालूम क्या क्या कहा गया है। इस विचार से मैं कांप उठता हूं कि प्रो. शाह जिस सुन्दर अचकन को पहने हुए हैं और श्री कामत ने अपने कंधों पर जो रेशमी वस्त्र डाल रखा है उनका क्या होगा यदि हम इनमें से किसी परिभाषा को स्वीकार कर लें ओर उन परिभाषाओं के पीछे जो प्रयोजन है उस पर अमल करें। पर इतना ऊंचा उड़ने या इतना उच्च नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्श प्राप्त करने में असमर्थ हैं जिस पर यदि मुझे ऐसा कहने की अनुमति है तो हमारे ये आध्यात्मिक मित्र उड़ रहे हैं। इस महत्वपूर्ण विषय में हम अपने भावी उत्तराधिकारों को किसी नीति के प्रति वचनबद्ध नहीं कर सकते हैं जो उनके स्वविवेक को शृंखलाबद्ध करे और जो कदाचित् उनके मार्ग में अगणित कठिनाइयां उत्पन्न करे। हम वित्तीय संकट में भी फंसे हुए हैं; यह केवल इस देश का ही संकट नहीं है; यह वह संकट है जिसका अखिल विश्व को सामना करना है।

इन परिस्थितियों के अधीन भी, चाहे हम इसे न चाहें, हमें पूंजीवादियों तथा उन लोगों के साथ खिचड़ी पकानी होगी जिनके पास बड़ी-बड़ी संपत्तियां हैं और जो परिणाम होगा उसको ध्यान में रखते हुए हम उनकी पूर्णतया उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इसके विपरीत लोगों की यह मांग है कि समस्त भूमि पर अधिकार कर वे उसका पुनर्विभाजन करना चाहते हैं। मैं समझता हूं कि बरार प्रान्त में दो तिहाई से अधिक भूमि साहूकारों के कब्जे में है। यह स्वाभाविक है कि जब समस्त राष्ट्र यह विचार कर रहा है और उसमें यह चेतना आ गई है तो वे यह न चाहें कि कोई एक व्यक्ति ऐसी विस्तृत संपत्तियों पर एकाधिकार रखे। अत: इस बात पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है कि संपत्ति का कोई पुनर्विभाजन न हो, विशेषकर भू-संपत्ति का। यदि हम इस मांग का विरोध करना चाहते हैं तो हमें दृढ़ निश्चय करना होगा और यह स्पष्ट कहना होगा कि निजी संपत्ति के अधिकार उसी प्रकार के बने रहेंगे जैसे कि वे इस समय वर्तमान हैं। परन्तु कोई आधे मन की, कोई ऐसी मध्यवर्ती बात हम नहीं रख सकते हैं जैसी कि यहां प्रस्तुत की गई है, जो न तो हमें उन लोगों के निकटतर ले जाती है जिन्हें हम

प्रसन्न करना चाहते हैं और न उस घोषणा के अनुरूप रहती है जिसको हम समय-समय पर घोषित कर चुके हैं। श्रीमान, इन परिस्थितियों के अधीन यह अधिक अच्छा होगा कि संपत्ति के अधिकार के अधिक विवरणपूर्ण वर्णन को हम भावी संसद पर छोड़ दें।

श्रीमान, मैंने जो दूसरा संशोधन पेश किया है वह विशेषकर धार्मिक न्यास के संबंध का है। श्रीमान, मैं जानता हूं कि जिस प्रकार से इन धार्मिक न्यासों का प्रबन्ध किया जाता है उससे अधिकांश शक्ति परिचित हैं और मैं जानता हूं कि यह आवश्यक है कि प्रतिकर का प्रश्न इस विषय में नहीं उठ सकता है। जितना शीघ्र राष्ट्र के हितार्थ इन बड़ी-बड़ी संपत्तियों का हम उपयोग करें उतना ही अधिक अच्छा होगा। यह एक ऐसी बात है जो बहुत ही वांछनीय है और श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि अनुच्छेद 24 के साथ इसको जोड़ देने की जो मैंने प्रस्थापना की है वह भी स्वीकार कर ली जायेगी।

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 405; यह उस संशोधन में आ जाता है जिसको डॉ. पी.एस. देशमुख ने अभी पेश किया है। संशोधन संख्या 406; श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान, एक बज चुका है।

*__अध्यक्षः__ तो फिर हम चार बजे समवेत होंगे।

*__श्री एच.वी. कामतः__ श्रीमान, यदि आपके लिये सुविधाजनक हो तो क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि हम रात्रि में नौ बजे समवेत हों।

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से सदस्यों के लिये नौ बजे की अपेक्षा 4 बजे समवेत होना अधिक उपयुक्त होगा। सभा 4 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा दोपहर बाद चार बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

**संविधान सभा दोपहर के भोजन के बाद चार बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुन समवेत हुई।*

*__अध्यक्षः__ श्री नज़ीरुद्दीन अहमद!

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के पश्चात् यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that when any such law provides for the acquisition by any State of the interests of the Zamindars of various degrees and other intermediaries for the purpose of abolishing the Zamindari system, it shall be sufficient if the law provides for the payment of compensation

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

amounting to not less than twelve times the estimated average net income of the Zamindar of any degree or any intermediaries whose interests are to be acquired.' "

[परन्तु जब कोई विधि जमींदारी प्रथा को उन्मूलन करने के प्रयोजन के लिये भिन्न-भिन्न कोटि के जमींदारों तथा अन्य मध्यवर्तियों के हितों का किसी राज्य द्वारा अर्जित किये जाने का उपबन्ध करती है तो यदि वह विधि किसी कोटि के जमींदार या मध्यवर्ती की, जिनके हित अर्जित किये जा रहे हैं, अनुमानित औसत शुद्ध आय के बारह गुने से अन्यून राशि का प्रतिकर देने का उपबन्ध करती है तो यह पर्याप्त होगा।]

मेरा संशोधन संख्या 417 अन्य संशोधनों के अन्तर्गत आ चुका है।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के स्थान में यह खंड रखा जाये:

'(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect the provisions of any existing law or of any law which the State may hereafter make which imposes or levie any tax or penalty which seeks to promote public health or to prevent danger to life and property.' "

[(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त इस अनुच्छेद के खंड (2) की किसी बात का वर्तमान विधियों के या किसी उस विधि के उपबन्धों पर, जिसे संसद एतत्पश्चात् बनाये और जो किसी ऐसे कर या शक्ति का आरोपण या उद्ग्रहण करती हो जिसमें लोक-स्वास्थ्य की उन्नति का या जीवन-संकट तथा संपत्ति-संकट से बचने का प्रयास हो, कोई प्रभाव नहीं होगा।]

मैं संख्या 425 को भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) तथा खंड (6) में से 'Save as provided in the next succeeding clause' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'clause (2) of this article' शब्द, कोष्ठक और संख्या अपमार्जित किये जायें।"

संख्या 439 को मैं पेश नहीं करता हूं।

प्रस्थापित नया अनुच्छेद 24 यद्यपि प्रकट रूप में नहीं तो कम से कम प्रभाव के रूप में एक अत्यन्त क्रान्तिकारी उपबन्ध है। इसमें सरकार की नीति में एक घोर बिलगता का संकेत है। प्रकट रूप में यह अनुच्छेद साधारण सा है पर जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रभाव के रूप में यह बहुत ही संकटजनक है।

जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है जो कई संशोधनों पर अपना प्रभाव डालता है। सभा के समक्ष सारी समस्या का निचोड़ एक सिद्धान्त पर निर्भर करता है और वह सिद्धान्त प्रतिकर का सिद्धान्त है। लोक प्रयोजनों के लिये अर्जित भूमि या संपत्तियों के लिये क्या आपको प्रतिकर देना चाहिये या नहीं? सभा में इस नये अनुच्छेद 24 के पेश होने के पूर्व प्रतिकर का एक निश्चित अर्थ था कि पर्याप्त, उचित, वैध तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जाये। प्रकार चाहे जो कुछ हो जो कुछ आप लेते हैं उसके एवज में आपको देना चाहिये। अनुच्छेद 24 के पुर:स्थापन होने के पूर्व भारत में यही विचार प्रचलित था और समस्त सभ्य देशों में यही विचार अब भी है। इस अनुच्छेद के चित्रपट पर आने के पूर्व भारत में भी यही विचार था। श्रीमान, उचित प्रतिकर देना इतना न्यायपूर्ण, इतना उचित और इतना तर्कयुक्त प्रतीत होता है कि इसके समर्थन के लिये किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। नये अनुच्छेद में प्रतिकर देने का एक उपबन्ध है। परन्तु प्रसंग को ध्यान में रखते हुए तथा कुछ उद्घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए और उन कुछ सूक्ष्म उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए जो इसके जालरन्ध्र में छिपे पड़े हैं इस विषय पर विचार करते समय प्रत्येक व्यक्ति को कदाचित् बड़ी होशियारी तथा सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये।

इस सभा में माननीय प्रधान मंत्री द्वारा की गई कुछ उद्घोषणाओं के कारण परिस्थिति बहुत विषम हो गई है। श्रीमान, उनके लिये मेरे हृदय में बड़ा सम्मान और प्रेम है परन्तु जिस वैध प्रस्थापना की परिभाषा उन्होंने प्रस्तुत की है उससे सम्मानपूर्वक विरोध प्रकट करना अपेक्षित है। उन्होंने जोर देकर यह कहा है कि संपत्ति जनता की है, लोक की है। मैं उनके शब्दों को ज्यों का त्यों उद्धृत नहीं करता हूं पर उन्होंने जो कुछ कहा है उसका आशय कुछ ऐसा था कि "संपत्ति जनता की है, और जनता उसे लेना चाहती है, अत: वह उसे ले सकती है; प्रतिकर तथा प्रतिकर की पर्याप्तता का इसमें कोई दखल नहीं है।" पर जैसा कि मैं निवेदन कर रहा हूं प्रतिकर की पर्याप्तता या उसका औचित्य और ऐसी ही समान बातें बहुत ही मुख्य हैं। जहां तक समस्त संभव संसार का संबंध है विधि यह है कि लोकप्रयोजनों के लिये जब आप संपत्ति लेते हैं तो आप उचित तथा पर्याप्त प्रतिकर दें।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

केवल रूस में ऐसा है कि बिना प्रतिकर के अथवा केवल नाममात्र के प्रतिकर के संपत्ति ले ली जाती है। आज हम रूस के उदाहरण की नकल कर रहे हैं जो इस विषय का इस सभ्य संसार में एक अनोखा उदाहरण है। इस उदाहरण का हम अनुसरण करने जा रहे हैं। वास्तव में, जहां तक इस विषय से संबंध है इस अनुच्छेद के निर्माता और समर्थकों में कोई अन्तर नहीं है, सिवाय नीति के प्रवर्त्तन की रीति में। श्रीमान, इस विषय में साम्यवादियों और समाजवादियों में मैं विश्वास करता हूं और इस अनुच्छेद के समर्थक मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग का नाश कर देंगे और उन्हें मिटा देंगे। ये तीन कोटि के व्यक्ति अपने आदर्शों में परस्पर सहमत हैं, वे केवल इनके हल करने की रीति और इनको प्राप्त करने के व्यावहारिक उपाय में मतभेद रखते हैं। साम्यवादी बल तथा हिंसा प्रयोग द्वारा उनकी हत्या करेंगे, समाजवादी तर्क, भाषण और सिद्धान्त द्वारा उनकी हत्या करेंगे और यह विदित ही है कि प्रो. शाह ऐसा करेंगे ही और इस वर्तमान अनुच्छेद के प्रवर्त्तक वैध साधनों से उनकी हत्या करेंगे। इन सबकी अन्तिम इच्छा में वस्तुत: कोई अन्तर नहीं है। अब प्रश्न यह है। हम मार्ग के मध्य में हैं और मार्ग दो दिशाओं की ओर जाता है। जिस ओर बढ़ा जाये, प्रश्न यह है—उस ओर जिस ओर कि साम्यवादी बढ़े हैं या उस ओर जिस ओर समस्त सभ्य संसार बढ़ा है?

श्रीमान, आपके समक्ष संक्षेप में मैं संसार के समस्त भागों में प्रतिकर की विधि पर बयान दूंगा। यह पूरा विषय विस्तारपूर्वक ब्रिटेन की एनसाइक्लोपीडिया के अंक 6, पृष्ठ 177 से 179 तक प्रतिकर विषय के अन्तर्गत दिया हुआ है। उस सबको मैं लेना नहीं चाहता हूं। केवल कुछ बातों का जिक्र करना चाहता हूं। इस महान प्राधिकारी की सम्मति के अनुसार प्रतिकर उस सम्पत्ति के स्वामी को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति या संतोष है जिसे राज्य अपने प्रयोजनों के लिये ले लेता है। वैयक्तिक स्वामित्व के अधिकार को रूस में चुनौती दी गई है जिसने निजी संपत्ति के अधिकार को मेट दिया है और बिना प्रतिकर के तत्कथित लोक प्रयोजन के लिये संपत्ति का हरण किया है। परन्तु अधिकतर सोवियत रूस से संयुक्त राष्ट्र को अपनी नीति उलटनी पड़ी। उन पर अब संप्रदाय का प्रभाव पड़ा है और इन राज्यों ने कुछ सुधार के नाम पर निजी संपत्ति को अपर्याप्त प्रतिकर देकर या बिना किसी प्रतिकर के ले लिया है।

श्रीमान, अब मैं संसार के अन्य भागों को लेता हूं। इनमें वैयक्तिक स्वामित्व को समस्त सभ्य संसार की केवल व्यवहार विधि में ही नहीं अपितु युद्ध तथा शांति दोनों कालों में राष्ट्रीय विधियों में भी माना गया है। उस प्रामाणिक पुस्तक में यह कहा गया है कि युद्ध काल के पश्चात् शांति संधियों में भी राष्ट्रों ने जिस एक सिद्धान्त का सम्मान किया था वह निजी संपत्ति की अक्षुण्णता थी। जहां तक व्यवहार विधि का संबंध है फ्रांसीसियों की व्यवहार संहिता में यह कहा गया है कि "लोक उपयोगिता के प्रयोजनों के और पर्याप्त प्रतिकर देने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" बैल्जियम की विधि भी इसी प्रकार की है। इटली संहिता में कहा गया है कि राज्य द्वारा संपत्ति अर्जन करने के लिये उचित क्षति की पहले पूर्ति करना आवश्यक है। स्पेन

संहिता भी इसी प्रकार की है अर्थात् यह कि 'ठीक मूल्यन' के अनुसार प्रतिकर दिया जाना चाहिये। दक्षिणी अमरीका के राज्यों की विधि भी इसी प्रकार की है। जर्मन संहिता के अनुच्छेद 153 में यह कहा गया है कि 'पर्याप्त प्रतीक' दिया जाना चाहिये। संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) की विधि यह है कि 'पूर्ण प्रतिकर' दिया जाना चाहिये। संयुक्त राष्ट्र अमरीका कहता है कि 'उचित प्रतिकर' दिया जायेगा।

*__एक माननीय सदस्यः__ आप दुबारा कह रहे हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं एक बड़े प्रमाणित प्राधिकारी को उद्धृत कर रहा हूं और यह कह रहा हूं कि समस्त सभ्य संसार में यह विधि है। क्या हमें इस विधि का पालन करना चाहिये जिसका सभ्य संसार पालन कर रहा है अथवा हम संपत्तिहरण का रूस का तरीका अपनायें? प्रश्न यह है। जहां तक वर्तमान अनुच्छेद का संबंध है मैं कुछ शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं जैसे कि 'ठीक प्रतिकर' या 'पूर्ण प्रतिकर' या 'न्यायोचित प्रतिकर'। परन्तु एक माननीय सदस्य एक ऐसा ही संशोधन पहले ही पेश कर चुके हैं इस कारण मैंने अपने संशोधन को पेश नहीं किया चूंकि मेरे संशोधन में केवल शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव था। सारभूत प्रश्न यह है कि क्या हम अपने संविधान में यह उपबन्ध करें कि जब कभी राज्य द्वारा लोक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन की विधि बने तो उसमें हम यह उपबंध करें कि उस विधि में 'उचित तथा न्यायपूर्ण' प्रतिकर के लिये उपबंध हो। जैसा कि मैंने आपको अभी कहा था कल तक विधि इसी प्रकार की थी और इस बात का कोई स्पष्टीकरण अपेक्षित न था। परन्तु सभा में की गई कुछ घोषणाओं तथा कुछ खंडों तथा उपखंडों की भाषा के कारण मैं समझता हूं कि यह स्पष्टीकरण बहुत आवश्यक है। सच तो यह है कि यदि हम लोक प्रयोजनों के लिये बिना प्रतिकर के अथवा नाममात्र के प्रतिकर के निजी संपत्ति का हरण चाहते हैं तो इस बात को ठीक प्रकार से, पूर्ण रूप से तथा स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये। इसके अलावा प्रतिकर देने का उपबंध दिया गया है। वह प्रान्तीय सरकार को यह स्वतंत्रता देता है कि वह नाममात्र के प्रतिकर पर भूमि हरण कर ले। इस अनुच्छेद में एक कमी है, भाषा संबंधी कमी है, यद्यपि सभ्य देशों में सदैव इसका अर्थ यही रहा है।

मैं निवेदन करता हूं। कि प्रतिकर पूर्ण, ठीक, न्यायोचित या पर्याप्त होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं कहेंगे तो निजी संपत्ति के विरुद्ध बड़ी-बड़ी शैतानियां की जायेंगी। यदि हम निजी संपत्ति का सम्मान नहीं करेंगे तो मूल अथवा संविधानिक अधिकारों की सब बातें निष्फल हो जायेंगी। अनुच्छेद 13 हम पारित कर ही चुके हैं जिसके खंड (1) के उपखंड (1) में यह कहा गया है "कि समस्त नागरिकों को संपत्ति अर्जन, संधारण और यापन का अधिकार होगा।" जब हम संपत्ति अर्जन, संधारण और यापन का अधिकार देते हैं तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई व्यक्ति उसे ले तो उसका पूरा मूल्य दे।

राष्ट्रीयकरण के बारे में हम बातें सुनते हैं। यदि बिना मूल्य दिये राष्ट्रीयकरण किया जाता है तो उसका पतन एक प्रकार की सस्ती राष्ट्रीयता में होगा। जिस

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आकलन के रूप को प्राप्त करने में हम सफल हुए हैं यह उसके व्यावहारिक नाश में सहायक होगा। यदि बड़ी-बड़ी लिमिटेड कंपनियों के उद्योगीकरण के लिये चन्दा मांगने हम जनता के पास जायें तो न कोई आकलन है और न धन। हमारे पूंजीवादी मर चुके हैं। हमें अब विवश होकर विदेशी बाजारों की ओर झुकना पड़ा है, केवल बड़ी राशियों का कर्ज लेने के लिये ही नहीं बल्कि हमारे देश में वाणिज्यिक उपक्रम करने के लिये प्रेरित करने के लिये भी। इस अनुच्छेद में कुछ खंडों का स्पष्ट उदाहरण है जो हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं और जिनकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करूंगा। क्या कोई विदेशी, जिसमें कुछ थोड़ा-सा चातुर्य्य तथा थोड़ी सी व्यापार बुद्धि है, हमारे देश के राष्ट्रीयकरण में अपना धन लगाने का विचार करेगा जिसके द्वारा उसे दो प्रकार की हानि होने की संभावना है? संपत्ति हरण के द्वारा उनकी पूंजी या पूंजी की वृद्धि में हानि अथवा अंशतः हानि होगी, यदि उनका व्यापार सफल होता है और फिर भारत के उद्योगीकरण में उसकी सहायता करने से वे अपने निजी व्यापार को अपने घर में खो देंगे। इन परिस्थितियों में भारत में विदेशी व्यापार की वृद्धि में दुहरी रुकावटें हैं।

इसके पश्चात् अनुच्छेद 13 का खंड (5) है जो कुछ निर्बन्धन विनिहित कर एक हद तक सीमा निर्धारित करता है। जिस निर्बन्धन का जिक्र है वह केवल यह है "सामान्य लोक के लिये इनमें से किसी अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बन्धन।" केवल यही शर्त है कि संपत्ति पर अपने अधिकार का मुझे लोक के अहित में प्रयोग नहीं करना चाहिये। अनुच्छेद 13 में संपत्ति के अधिकार पर विचार नहीं किया गया है। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय में अनुच्छेद 24 अनुच्छेद 13 का प्रत्यक्ष विरोध करेगा, जैसा कि मैंने पहले वाद-विवाद के अन्तर्गत एक औचित्य प्रश्न के सिलसिले में कहा था कि अप्रासंगिक होने का हमें अधिकार है। जो औचित्य प्रश्न उठाया गया था वह वास्तविक नहीं था। अन्याय का वह एक स्पष्ट उदाहरण था जिसका माननीय सदस्य ने उस औचित्य प्रश्न के उठाने में सहारा लिया था। यदि हम इस अनुच्छेद के खंड (4) को स्वीकार कर लेते हैं तो घोर अन्याय जड़ पकड़ जायेगा। इस कारण मैंने उस माननीय सदस्य का घोर विरोध किया था जिसने औचित्य प्रश्न उठाया था। परन्तु मैं इस बात में उनसे पूर्ण सहानुभूति रखता हूं तथा सहमत हूं और उनके इस विचार को अपना निर्बल समर्थन प्रदान करता हूं कि यह खंड बहुत ही बुरा है जो एक बहुत बड़ी मात्रा में अन्याय कायम करेगा।

उस मुख्य भाव को लीजिये जो इन संशोधनों के पीछे छिपा हुआ है और वह है जमींदारी का उन्मूलन। किसी कारणवश कुछ लोग सोचते हैं कि जमींदारी संपत्ति कोई संपत्ति नहीं है और उसका हरण इस मूर्खतापूर्ण आधार पर बिना किसी प्रकार की दया या प्रतिकर के किया जा सकता है कि वह लोक लाभ के लिये हितकर होगा, मानो जमींदार तो लोक का अंग ही नहीं है। यहां मैं यह स्पष्ट कह दूं कि मैं जमींदार नहीं हूं और न जमींदारों में मेरा कोई हित है।

***श्री बी. दासः** मैं समझता हूं कि आप जमींदार हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्री दास कहते हैं कि वे समझते थे कि मैं ज़मींदार हूं......

***एक माननीय सदस्यः** वे चाहते होंगे कि आप इस कल्पना से आनन्द उठायें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्री दास बहुत सी ऐसी बातों को सोच लेते हैं जो असत्य हैं। मैं एक बहुत छोटा सा जमींदार था, पर मैंने उसे 5 या 6 वर्ष पूर्व बेच दिया चूंकि मैंने इस बात का आभास कर लिया था कि क्या होने वाला है। आज मैं स्वाधीन, स्वतंत्र तथा मोह से परे हूं और एक ऐसा व्यक्ति हूं जिसका इस विषय में कोई स्वार्थ नहीं है। मैं सुरक्षित तथा प्रसन्न हूं। पर वे बिचारे जमींदार जो देश की विधि के सुदृढ़ाधार में विश्वास करते थे वे आज दुखी हैं, पर अधिक समझदार हो गये हैं। इस काम में हमें संपत्ति के अधिकार इत्यादि के संविधानिक सिद्धान्तों पर चलना चाहिये। यदि यह आवश्यक है कि जमींदारी अर्जित की जाये और इस के प्रति कोई संदेह भी नहीं है तो जिस वस्तु की मैं मांग करता हूं वह केवल यह है कि समुचित प्रतिकर दिया जाये। जब इंग्लैंड की बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो अंशदाइयों को पूर्ण प्रतिकर दिया गया था। भारत में जब हमने रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण किया था उस समय यद्यपि मंदी थी फिर भी हमने बाजार भाव का पूरा मूल्य दिया था। प्रश्न यह है कि क्या जमींदारी संपत्ति अन्य संपत्तियों से भिन्न है जिससे कि इसके साथ हम सौतेला व्यवहार करें? जमींदार संख्या में बहुत कम हैं और बिखरे पड़े हैं। उनके पास संतोष करने के लिये किसान हैं और सरकार अपने को ऐसी दुखद स्थिति में समझती है कि वह उनको मार सकती है और उनकी मृत्यु पर किसी को शोक नहीं होगा। यदि हम नागरिक अधिकारों को मेट देते हैं तो इसका यह प्रभाव होगा कि शीघ्र ही वह हम को ही जकड़ेगा।

जमींदारी संपत्ति के संबंध में हमें यह जानना चाहिये कि उसका क्या आशय है। हिंदू राजाओं के काल में जमींदार नाम की कोई वस्तु नहीं थी। मुस्लिम काल में प्रशासनीय आवश्यकता के आधार पर उनका स्वतः ही सृजन हो गया। परिस्थितिवश सैनिक, राज्यपाल, विधि तथा व्यवस्था के बनाये रखने, सैनिक चौकियों को बनाये रखने और स्थानीय क्षेत्रों के राजस्व से अपना निर्वाह करने के लिये भारत के सुदूरवर्ती कोनों में भेजे गये।

***श्री विश्वनाथ दासः** इस इतिहास को हम सब जानते हैं।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को याद रखना चाहिये कि आज रात तक हमें इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद समाप्त कर देना है। ये सारा वाद-विवाद रुचिकर हो सकता है पर हमें अपने विचार अनुच्छेद तक ही सीमित रखने चाहियें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** सभा के समक्ष जिस बात पर मैं जोर दे रहा हूं वह यह है कि जमींदारी संपत्ति भी अन्य संपत्ति के समान है। मुगल बादशाहों

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के लिये लगान वसूल करने उस लगान से अपना निर्वाह करने में सुविधा होने के कारण जमींदारों का अपने आप सृजन हो गया और लगान वसूल करने के लिये कई लोगों ने स्वत: अपनी सेवायें अर्पित कीं। इन प्रारंभिक रूपों में जमींदारियां बनीं। अन्य संपत्तियों के समान जमींदारी भी हस्तान्तरणीय थी और राजस्व के जल्दी वसूल करने के लिये शुरू-शुरू के अंग्रेजी प्रशासकों ने बकाये के लिये जमींदारी की बिक्री का उपबन्ध किया था। जमींदार साधारण संपत्ति के समान है। वर्तमान जमींदारों ने उसके लिये नकद रुपया दिया है। अत: बिना पर्याप्त प्रतिकर के यदि हम जमींदारी को जब्त कर लेते हैं तो हम किसी भी व्यापार, कार्य अथवा लिमिटेड कंपनी को इस तत्कथित आधार पर जब्त कर सकते हैं कि वे 'लोक हित' के लिये होंगी। ऐसी बहुत सी संपत्तियां तथा व्यापार, कार्य हैं जो लोगों के पास आंधी के फल की तरह से आ गई हैं। यदि उन्हें आंधी के फल के समान भी कोई अधिकार प्राप्त हो चुका है तो क्या यही कोई आधार है कि बिना प्रतिकर दिये लोक लाभ के लिये इन संपत्तियों को जब्त कर लिया जाये? मैं निवेदन करता हूं कि नहीं। तो फिर जमींदारी संपत्ति के विषय में यह विभेद क्यों? संशोधन संख्या 406 में प्रतिकर देने पर मैंने एक सीमा निर्धारित की है। मैंने उसे जमींदारों की शुद्ध वार्षिक आय का बारह गुना रखा है। वास्तव में तो इन संपत्तियों के मूल्यन का साधारण नियम यह है कि 5 प्रतिशत आय के आधार पर वह 20 गुना हो। पर शुद्ध वार्षिक लाभ का मैं 12 गुना ही रखूंगा। वह पूर्ण जब्ती और.......।

*__श्री विश्वनाथ दास:__ श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है। हम प्रतिकर के प्रश्न पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं। हम संशोधित अनुच्छेद 24 पर वाद-विवाद कर रहे हैं जिसमें विधि का उपक्रम करने के लिये प्राधिकार का उपबन्ध किया जा रहा है। अत: इन सब बातों की कोई आवश्यकता नहीं है।

*__अध्यक्ष:__ प्रतिकर के संबंध में कोई निश्चित अंक निर्धारित कर भावी विधान के स्वविवेक को माननीय सदस्य सीमित करना चाहते हैं और मैं समझता हूं कि ऐसा करने में वे पूर्णतया नियमानुकूल हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ इस स्पष्टीकरण के लिये, श्रीमान, मैं आपका कृतज्ञ हूं। श्री विश्वनाथ दास ने न तो इस संशोधन को समझा है और न मेरे भाषण को। न्यूनतम प्रतिकर की राशि मैं 12 गुना सीमित करना चाहता हूं। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्त, वे 8 गुना देना चाहते हैं। मैं उसे 12 गुना करना चाहता हूं। संयुक्त प्रान्त के विधान में एक और कमी है। आय में से अनुमानित कृषि आय-कर काट लिया जायेगा। अनुमानित कृषि आयकर अभी-अभी पुर:स्थापित किया गया है। यह आधा अथवा उच्चतर आय क्षेत्रों में बड़े-बड़े जमींदारों के लिये आधे से भी अधिक है। इस दशा में वार्षिक आय के आठ गुने से आशय वार्षिक आय के चार गुने से है। यह आठ गुना तो अत्युक्ति पूर्ण तथा कल्पनात्मक अंक है। वास्तव में तो वह बहुत ही कम है। अत: खंड (2) के परन्तुक द्वारा मैं एक सीमा निर्धारित करना चाहता हूं।

दूसरी बात जिसकी ओर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं वह खंड (4) का अपमार्जन है। यदि हम उसको रखेंगे तो प्रभाव यह होगा कि कोई विधि जो

पारित कर दी जाती है। और उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाती है तो वह विनियमित हो जायेगी, पर ऐसी कोई विधि जो अभी तक पारित नहीं हुई है या एतत्पश्चात् पारित होगी उसकी ऐसी लाभदायक स्थिति नहीं होगी। अत: जिन प्रान्तों ने पहले से विधि पारित कर ली है वे अधिक लाभदायक स्थिति में रहेंगे। खंड (2) में अपेक्षित रीति के अनुसार उन्हें प्रतिकर नहीं देना पड़ेगा। उन प्रान्तों में परस्पर जो इस दौड़ में प्रथम हैं और जो बाद में शरीक हुए हैं इस आधार पर यह विभेद क्यों करना चाहिये? प्रतिकर का सिद्धान्त सबके लिये अनिवार्य है। केवल इस आधार पर कि इस कार्य को पहले ले चुके हैं प्रान्तों में परस्पर कोई विभेद नहीं होना चाहिये।

खंड (5) के एक अन्य संशोधन के प्रति जिन सिद्धान्तों को पेश करना मैंने चाहा है उनको प्रभावी बनाने के लिये वह एक शाब्दिक परिवर्तन के रूप का है।

इसके बाद खंड (6) पर एक संशोधन है जो प्रतिकर के प्रश्न पर गंभीर प्रभाव डालेगा। इस खंड में कहा गया है कि इस अनुच्छेद के खंड (2) के होते हुए भी अर्थात् इस बात के होते हुए भी कि उसमें कैसे भी प्रतिकर के लिये उपबन्ध न हो, जो विधियां एक वर्ष के अन्तर्गत पारित हो जाती हैं वे मान्य होंगी। ये विषय पर्याप्त प्रतिकर देने पर निर्भर करते हैं। यदि हम वास्तव में उचित प्रतिकर नहीं देते हैं तो यह एक बड़ा अन्याय होगा और खंड (6) और (4) की ऐसी रचना की गई है कि वे स्पष्ट तथा आवश्यक सूचना नहीं देते हैं। इन विभेदात्मक उपबन्धों के उद्देश्य का किसी न किसी को अनुमान लगाना होगा। वास्तविक प्रयोजन को छिपा लिया गया है। यदि प्रतिकर का सिद्धान्त एक प्रान्त के लिये अनिवार्य है तो वह सब प्रान्तों के लिये अनिवार्य होना चाहिये। यदि किसी प्रान्त ने कोई ऐसी विधि बनाई है जो इस सिद्धान्त का उल्लंघन करती है तो उस सीमा तक वह उस शक्ति से बाहर तथा शून्य होनी चाहिये। अनुच्छेद 24 को हम मूलाधिकारों के अध्याय में रख रहे हैं और खंड (2) में हमने यह उपबन्ध किया है कि जब कोई ऐसी विधि पारित की जाती है जो इन अनुच्छेदों के मूल सिद्धान्तों का पूर्णत: अथवा अंशत: खंडन करती है तो उस सीमा तक वह विधि शून्य हो जायेगी। अत: जिन प्रान्तों ने खंड (2) के सिद्धान्तों की उपेक्षा की है, उनके लिये कोई अपवाद क्यों होना चाहिये? ये सिद्धान्त अटल हैं और सब दशाओं में इनका पालन होना चाहिये और यदि कोई उल्लंघन करता है तो वह जान बूझ कर एक पुष्ट सिद्धान्त का उल्लंघन करता है और उसे क्षमा नहीं करना चाहिये। मैं यह निवेदन करता हूं कि प्रतिकर की विधि समान रूप से सब पर लागू होनी चाहिये। मुझे बड़ा खेद है कि जितना समय मुझे लेना चाहिये था उस से मैंने कुछ अधिक समय लिया, पर मुझे विश्वास है कि सभा में इस विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है और अधिक समय तक बोलने का कारण यही है।

*__अध्यक्ष:__ संशोधन संख्या 409—श्री भारती!

*__श्री एल. कृष्णास्वामी भारती__ (मद्रास : जनरल): पेश नहीं कर रहा हूं।

*__अध्यक्ष:__ संशोधन संख्या 416, 417 और 421 उन संशोधनों में आ जाते हैं जो पेश हो चुके हैं। संशोधन संख्या 423 ।

*__श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उप खंड (ख) में 'property' शब्द के पश्चात् 'or for ensuring full employment to all and securing a just and quitable economic and social order' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, जिस उद्देश्य से मैं यह संशोधन पेश कर रही हूं वह यह है कि उन खंडों तथा सिद्धान्तों को प्रभावी बनाया जाये जिनको हम राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त निर्धारित करते समय पारित कर चुके हैं। जहां हम यह कह चुके हैं कि राज्य एक ऐसा समाज बनाने का प्रयत्न करेगा जिसमें आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक न्याय राज्य की समस्त संस्थाओं को अनुप्राणित करेगा। हम यह कह चुके हैं कि नर और नारियों के लिये जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था की जायेगी और देश के आर्थिक साधनों का इस प्रकार संचालन किया जायेगा कि उसका केन्द्रीकरण चन्द व्यक्तियों में न हो और उसका संचालन जनसाधारण के लिये अहितकारी न हो। जिस समय इन खंडों पर विचार किया जा रहा था हमने यह सोचा था—हममें से कुछ ने बड़े गम्भीर रूप में सोचा था कि मूलाधिकार में जीविकोपार्जन के अधिकार, सम्मानपूर्वक रोटी कमाने के अधिकार की प्रत्याभूति सब लोगों को दी जाये। पर उस समय हमने यह सोचा कि ऐसा करने के लिये समाज की एक नई व्यवस्था बनानी पड़ेगी जिसमें कदाचित् कुछ समय लगेगा और इस कारण जीविकोपार्जन का अधिकार राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों में शामिल किया गया। इन सिद्धान्तों को हम नितान्त आवश्यक तथा भविष्य में अपने वास्तविक पथ प्रदर्शक समझते हैं। इस कारण संपत्ति अधिकारों से संबंध रखने वाले इस अनुच्छेद में उपबन्ध नहीं किये जाते हैं और भावी राज्य की आर्थिक नीति यदि किसी प्रकार से श्रृंखलाबद्ध तथा कड़ी कर दी जाती है तो हम समझते हैं कि जो अनुच्छेद हम पार कर चुके हैं उनमें हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

संयुक्तप्रान्त के विधान जमींदारी उन्मूलन विधेयक का जिक्र किया गया है। शायद हम में से कुछ लोगों को याद होगा कि उस समय हमने भी यह संकल्प पार किया था कि संयुक्त प्रान्त की सभा पूंजीवाद के मिटाने के लिये वचनबद्ध है। यदि उस संकल्प का प्रभावी अर्थ है और यदि हमें इस बात का ध्यान रखना है कि देश इस प्रकार से उन्नति करे कि जिससे जनसाधारण के हित के लिये राज्य के साधनों का सदुपयोग को तो यह बहुत ही आवश्यक है कि जब लोक कल्याण के लिये ऐसी मांग हो तो हम ऐसा कर सकें। यह उपबंध होना चाहिये कि प्रतिकर दिया जाये, क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि प्रतिकर देने के लिये हम सब उत्सुक हैं, पर यदि हम ऐसा करने में असमर्थ हैं तो खंड में यह उपबन्ध होना चाहिये कि बिना प्रतिकर के संपत्ति ली जा सके। हम यह देखने के लिये उत्सुक हैं कि समाज में शान्तिपूर्वक परिवर्तन हो अत: इस बात का कोई भय नहीं कि हम किसी को अधिकार च्युत कर देंगे। जैसा कि आपने देखा होगा संयुक्त प्रान्त का जमींदारी उन्मूलन विधेयक जमींदारों

को केवल प्रतिकर ही नहीं देता है वरन् पुनर्वासन अनुदान भी देता है। अत: यह सिद्ध होता है कि बदला लेने की भावना से सभा भविष्य में प्रकार्य न कर सकती है और न करेगी ही और जो नई व्यवस्था की जायेगी वह मनमाने रूप में नहीं की जायेगी, इस भावना को रखते हुए यदि ऐसा अवसर आये और सम्भवत: ऐसा अवसर आयेगा, जबकि देश में प्रचलित पूंजीवाद प्रणाली को सार्वजनिक कल्याण के लिये हाथ में लेना पड़े तो यहां एक ऐसा उपबन्ध होना चाहिये जिससे कि वह संविधान समस्त भावी प्रगति की व्यवस्था कर सके और इस प्रकार जनता से उचित सम्मान प्राप्त कर सके और अपने में भावी उन्नति के लिये उन बीजों को रख सके जिस पर हमारे देश का कल्याण निर्भर है। इन शब्दों में मैं अपना संशोधन पेश करती हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 424 किसी संशोधन में आ गया है। संख्या 428।

***श्री कला वैंकट राव** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'one year' शब्दों के स्थान में 'eighteen months' रख दिये जायें।"

अपनी ओर से इसके कारण एक और विषय पर भाषण देने के पश्चात् अन्त में मैं बताऊंगा जो इस खंड से संबंधित है। मैं समझता हूं कि माचियावेली ने यह कहा है कि कोई व्यक्ति अपने पिता के हत्यारे को क्षमा कर सकता है पर उस व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकता जो उसकी संपत्ति को छीनता है। शायद यही कारण है कि इस विषय पर यहां तथा अन्यत्र इतना वाद विवाद हुआ है। संपत्ति एक प्रकार की ही नहीं है, संपत्ति कई प्रकार की है। श्रीमान्, आपको तथा माननीय सदस्यों को विशेषकर यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) में एक विशेष प्रकार की संपत्ति अर्थात् जमींदारी संपत्ति की ओर निर्देश किया गया है। मेरा वास्तव में यह ख्याल है कि इस विशिष्ट प्रकार के लिये 'संपत्ति' शब्द का प्रयोग ही नहीं करना चाहिये क्योंकि 1802 या इससे पूर्व बंगाल में जब सनद की गई थी जिस समय कि स्थायी बन्दोबस्त पुर:स्थापित किया गया था तो मिल्कियत इस्तमरारी सनद ने जमींदार को केवल लगान वसूल करने का अधिकार दिया था। लगान वसूल करने के लिये वे केवल अभिकर्त्ता थे और उनसे उस लगान का एक अंश पेशखास के रूप में सरकार को देने के लिये कहा गया था। अत: यह धारणा कि इस कारबार में जमींदारों को संपत्ति का अधिकार है सत्य से परे है। यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि जिस वस्तु पर किसी व्यक्ति का स्वयं कब्जा नहीं है उसे वह किसी अन्य व्यक्ति को नहीं दे सकता है। अनादि काल से इस देश की परम्परा और विधि यही रही है कि कृषक अथवा समाज जिसका वह सदस्य है वह उस गांव या किसी विशेष संपत्ति का स्वामी है। अत: जब कि केवल लगान वसूल करने का अधिकार जमींदार को दिया गया था तो यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि इन सज्जनों को एक प्रकार की संपत्ति प्रदान की गई थी क्योंकि स्वयं अधिकार देने वाले का उस भूमि पर कोई संपत्ति अधिकार नहीं था।

[श्री कला वैंकट राव]

दूसरी बात यह है कि आरम्भ से ही लगान वसूल करने के अधिकार को भी निर्बन्धित कर दिया गया था। 1802 के विनियम संख्या 25 द्वारा मद्रास में 13 जुलाई, 1802 को मिल्कियत इस्तमरारी की सनद दी गईं थीं। उसी दिन चार और अधिनियम निकाले गये थे। पट्टा विनियम कहे जाने वाले विनियम संख्या 30 में यह निश्चित रूप से कहा गया था कि प्रत्येक पट्टादार से जो लगान उगाया जायेगा वह वहीं होना चाहिये जो उस तिथि को था और उसमें कोई परितर्वन नहीं होना चाहिये। 'अपरिवर्तनीय' शब्द का प्रयोग 1802 के विनियम संख्या 30 में हुआ था। उसी दिन तथा उसी सरकार द्वारा विनियम प्रस्थापित होने के कारण हमें इस परिणाम पर पहुंचना पड़ेगा कि यद्यपि सनद द्वारा लगान लगाने का अधिकार उसे दिया गया था पर उसी दिन के एक और विनियम में यह कहा गया था कि किसी विशिष्ट पट्टादार द्वारा दिये जाने वाले लगान को जमींदार न बढ़ायें। एक बड़े संघर्ष के पश्चात् इस बात को 1802 के विनियम संख्या 5 द्वारा स्पष्ट किया गया था जिसमें यह निश्चित रूप से कहा गया था......।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है कि क्या इस अनुच्छेद के मसौदे के खंड (4) और (6) पर विचार करते हुए जमींदारी के सम्पूर्ण इतिहास को लेना हमारे लिये हितकर है?

***श्री कला वैंकट राव:** इस सभा में ही यह प्रश्न पूछा गया है कि जमींदारी संपत्ति के बारे में किसी प्रकार का विभेद क्यों किया जाये जैसा कि खंड (4) और (6) में स्पष्ट है। मेरी धारणा यह है कि जमींदारी संपत्ति ही नहीं है और इस कारण अन्य प्रकार की संपत्तियों से इसमें विभेद होना चाहिये। इतिहास के अपने ज्ञान के आधार पर तथा जमींदारी संबंधी विधान के आधार पर मैं यह जोर देकर कह सकता हूं कि जैसा हमें अन्य संपत्ति की श्रेणियों के बारे में विदित है इसको सच्ची संपत्ति कभी नहीं समझा गया।

मैं इसे उदाहरण देकर स्पष्ट करूंगा। और मैं आपको वह बात कह रहा हूं जो हमारे मुख्य राज्यपाल ने कही थी जब उन्होंने सन् 1939 में मद्रास विधान-सभा में भू-संपदा समिति के प्रतिवेदन पर वाद-विवाद में भाग लिया था। मान लीजिये कि दिल्ली के निकट गांव में मेरा एक घर है। मान लीजिये मैं बी.एल. परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और अपनी वकालत आरम्भ करने के लिये दिल्ली आ रहा था। मैंने वह मकान श्री मुंशी को किराये पर दिया और ये कहा कि "आप प्रति मास 8 रुपये किराया मुझे दिया करें।" मैं वहां से चलने ही वाला था कि मुझे श्री कृष्णास्वामी अय्यर मिले और उनसे मैंने कहा कि "श्री मुंशी से प्रति मास 8/- रुपये ले लिया करिये और मुझे 6/- रुपये भेज दिया करिये और उसमें आपको जो कष्ट होगा उसके लिये कमीशन के रूप में 2/- रुपये आप ले लिया करिये।" दस वर्ष बाद मैं अपने स्थान पर वापस गया और मैंने देखा कि छत पर कुछ टाइलें थीं अथवा फर्श पर सीमेंट बिल्कुल न रहा मैंने श्री मुंशी से पूछा "यह क्या बात है कि आपने मेरे घर की यह बुरी दशा कर रखी है यद्यपि मैंने आपको 8/- रुपये, एक बहुत ही कम किराये पर मकान दिया था।" श्री मुंशी ने मुझे

उत्तर दिया–"मैं इस मकान के लिये 24/- रुपये हमेशा देता रहा और श्री कृष्णास्वामी अय्यर सदैव यह किराया मुझसे लेते रहे।" 8/- रुपये से 24/-रुपये तक की वृद्धि अप्राधिकृत थी और वह हमेशा उस व्यक्ति की जेब में गई जिससे मैंने किराया उघाने के लिये कहा था। फल यह हुआ कि इस वृद्धि से न तो किरायेदार और न मकान मालिक को कोई लाभ हुआ। इस 16/- रुपये के फर्क को वे सज्जन अपनी जेब में रखते गये जो केवल किराये उघाने वाले थे। यदि इस व्यापार में तत्कथित संपत्ति नाम की वस्तु श्री कृष्णास्वामी अय्यर को मिल सकती है तो जमींदारों के पास भी संपत्ति है।

मद्रास में सन् 1802 में सब संपदा का कुल लगान 72 लाख रुपया था जिसमें से पेशकश के रूप में 48 लाख रुपया सरकार को दे दिया जाता था। इस समय मद्रास के जमींदार 219 लाख रुपया लगान के रूप में वसूल करते हैं पर आज भी वही 48 लाख रुपये पेशकश के रूप में सरकार को देते हैं। इस कारण मैं यह कहता हूं कि वस्तुत: यह संपत्ति नहीं है अत: इस पर भिन्न रूप में विचार करना चाहिये।

इसके पश्चात् इस संबंध में मुझे यह कहना है कि जमींदार ने अपने आभारों का निर्वहन सदैव उस रूप में नहीं किया जिस रूप में वे सनद में नियत किये गये थे। यह निर्धारित किया गया था कि सिंचाई के साधन इत्यादिकों का वह पोषण करेगा। उसने ऐसा कोई कार्य कभी नहीं किया। सिंचाई के समस्त साधन बिगड़े पड़े हैं और रैयत बिना कुछ हित के लगान बढ़ा दिये गये। श्री वेबलन ने "कुछ नहीं की एवज में कुछ पाने की बिक्री के योग्य अधिकार" के रूप में संपत्ति में रूढ़गत स्वार्थों की परिभाषा की है। सूचना देकर लगान उघाने के इस प्राधिकरण को हम समाप्त कर सकते थे पर हम प्रतिकर दे रहे हैं और इस लिये उन्हें चाहिये कि हमें धन्यवाद दें। बहुत से जमींदार मुगल राज्य के पतन काल में बन गये थे जबकि दुर्व्यवस्था थी। आज हम उनको विधि अनुसार प्रतिकर देना चाहते हैं। बिहार को 130 करोड़ देना है; संयुक्त प्रान्त को भी ऐसी ही बड़ी राशि देनी है और मद्रास को $15\frac{1}{2}$ करोड़ देना है। यह सब धन जमींदारों के पास जायेगा चूंकि उनके पास सनद हैं। इन सनदों को हम रद्दी कागज नहीं समझ रहे हैं। सच तो यह है कि हम उन्हें बीजक समझ रहे हैं। इन बीजकों का हम वह मूल्य दे रहे हैं जो इनके इतिहास से संबंधित है और जो न्यायोचित है। अत: मेरी धारणा यह है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से जमींदारी अधिकार के नाम से कही जाने वाली संपत्ति के प्रकार पर हमें उन साधारण प्रकार की संपत्ति से भिन्न रूप में सोचना पड़ेगा जिनको हम सामान्यतया देखते हैं।

अनुकूलित भारत शासन अधिनियम की धारा 299 में कुछ परिवर्तन करके वर्तमान अनुच्छेद के रूप में उसका फिर से मसौदा बना दिया गया है। मुख्य परिवर्तन केवल यह है कि 'देना' शब्द छोड़ दिया गया है। एक प्रसिद्ध स्मृतिज्ञ की यह धारणा है कि जब तक 'देना' शब्द वहां पर है हमें देश के ग्राह्य सिक्के में ही प्रतिकर देना होगा अत: नकद प्रतिकर देना होगा। अत: बहुत से प्रान्तीय विधान-मंडलों को हानि होगी। और इस खंड के अधीन यह राशि हुंडियों में दी जा सकती है। अत: प्रान्तीय सरकारें शीघ्र ही प्रतिकर की प्रथम किश्त देने के प्रश्न पर पुन: विचार कर सकती हैं। यह सत्य है कि हुंडियों के रूप में इस प्रकार से भुगतान

[श्री कला वैंकट राव]

करना प्रान्तीय सरकारों के लिये लाभदायक होगा, विशेषकर मद्रास में जहां कि धारा 50 में अन्तर्वर्ती भुगतान के लिये उदारतापूर्ण उपबन्ध है। यदि किसी संपदा की आय 6 लाख है तो आधारभूत वार्षिक राशि एक लाख होगी। जब तक हम पूरा प्रतिकर नहीं दे सकेंगे तब तक हमें एक लाख देना होगा। और ये राशियां प्रतिकर का भाग नहीं होंगी। यदि हम धन या हुंडी के रूप में इस समय भुगतान करते हैं, तो ब्याज के रूप में हमें अधिक लाभ होगा।

*__अध्यक्ष:__ माननीय सदस्य को यह याद दिलाऊंगा कि यहां हम मद्रास के विधेयक पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं।

*__श्री कला वैंकट राव:__ श्रीमान, मैं केवल उदाहरण दे रहा हूं।

*__अध्यक्ष:__ मैं जानता हूं कि वे वहां पर राजस्व मंत्री थे और उस विधेयक के संबंध में अन्य किसी व्यक्ति से अधिक जानते हैं। पर उस ज्ञान का लाभ वे इस सभा को न दें। वे अपने आपको अनुच्छेद तक ही सीमित रखें।

श्री कला वैंकट राव: श्रीमान, मैं अभी समाप्त करता हूं। कुछ वर्षों तक अन्तर्वर्ती भुगतान के रूप में एक लाख रुपया प्रति वर्ष की दर से देने की अपेक्षा हम हुंडियों पर केवल 30,000/- रुपया ब्याज के रूप में देंगे।

मैं केवल एक बात और कहना चाहूंगा। प्रतिकर अथवा प्रतिकर के सिद्धान्त नियत करने का संसद का अधिकार अक्षुण्ण रखना चाहिये। केवल विधि के साथ छल-कपट करने पर ही न्यायालय उस विषय में हस्तक्षेप कर सकती है।

श्रीमान्, जैसा कि आपने बताया था इनके पूर्ण विवरण में जाना मेरे लिये न्यायसंगत नहीं है। मैं केवल यह बताने का प्रयास कर रहा था कि जमींदारी संपत्ति एक भिन्न प्रकार की संपत्ति है और इस कारण खंड (4) और (6) में उस पर ठीक विचार किया गया है।

इस संबंध में मैं अपने मित्रों को वह बात कहना चाहूंगा जो श्री फोस्डिक ने कही थी "इतिहास की धारा हमें भविष्य की ओर बहाये ले जा रही है और यह मायाजाल, की प्रतिभूति परिवर्तन के अभाव पर निर्भर है, असंतुलन का शायद एक बड़ा ही भयानक रूप है जो लोगों की बुद्धि को कष्ट देता है।" इन चन्द शब्दों में मैं प्रस्तावक महोदय से प्रार्थना करता हूं कि खंड (6) में 'एक वर्ष' के स्थान में 'अठारह मास' रखने के मेरे संशोधन को स्वीकार करें और इसका कारण केवल यह है कि यदि यह संविधान 26 जनवरी, 1950 को प्रवृत्त नहीं होता है तो मद्रास विधेयक के लिये कुछ कठिनाई हो जायेगी। जिसको मार्च सन् 1949 में अनुमति मिली है। यदि प्रस्तावक महोदय मेरा संशोधन स्वीकार कर लेते हैं तो यह कठिनाई दूर हो जायेगी। मेरा संशोधन केवल औपचारिक संशोधन है और प्रस्तावक महोदय से इसे स्वीकार करने के लिये मैं प्रार्थना करता हूं।

श्रीमान, आपको धन्यवाद।

***माननीय श्री कृष्ण वल्लभ सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता हूं। यदि माननीय प्रस्तावक महोदय श्री कला वैंकट राव द्वारा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर लेंगे तो मेरे उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह नवीन खंड जोड़ दिया जाये।

'(7) The provisions of clause (2) of this article shall not apply to any property belonging to evacuees to the territory now included in Pakistan and declared as evacuee property by any law promulgated to deal with such property in the event of failure of any agreement being arrived at between India and Pakistan on the subject of property belonging to evacuees to both the countries.' "

[(7) इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्ध इस समय पाकिस्तान में सम्मिलित राज्य क्षेत्र को गये विस्थापितों की किसी उस संपत्ति पर लागू नहीं होंगे जो उस संपत्ति पर विचार करने के लिये प्रख्यापित किसी विधि द्वारा, दोनों देशों के विस्थापितों की संपत्ति के विषय पर भारत और पाकिस्तान में किसी करार के न होने के कारण, विस्थापित संपत्ति घोषित की जा चुकी है।]

'संप्रदाय' शब्द गलती से 'देशों' शब्द के स्थान पर लिखा गया है।

श्रीमान, इसी विषय पर एक और संशोधन है जिसे मैं भेज चुका हूं, वह संख्या 510 पर है। वह इस प्रकार है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के पश्चात् यह नया उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(c) the provision of any law already enacted or which may be enacted for the administration or disposal of any property which may under or for the purpose of that law be regarded as evacuee property.' "

[(ग) किसी ऐसी विधि के उपबंध जो किसी उस संपत्ति के प्रशासन या यापन के लिये अधिनियमित किये जा चुके हैं या अधिनियमित होंगे जो इस विधि के अधीन या उसके प्रयोजन के लिये विस्थापित संपत्ति समझी जाये।]

[श्री जसपतराय कपूर]

श्रीमान, इन दोनों संशोधनों पर माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर से वाद-विवाद करने का अवसर मुझे मिला था और उस वाद-विवाद के फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इन संशोधनों के प्रयोजन की पूर्ति भले प्रकार से हो जायेगी यदि संशोधन संख्या 510 में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जाये अत: इस दुबारा बनाये गये मसौदे को पेश करने की मैं आपसे अनुज्ञा चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ संशोधन को पढ़िये।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के अन्त में 'or' शब्द जोड़ दिया जाये।"

ये केवल औपचारिक बात है, मुख्य बात ये है–

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के पश्चात् यह उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(c) the provisions of any existing law made or of any law that the State may hereafter make in pursuance of any agreement arrived at with a foreign State or otherwise with respects to property declared by law to be evacuee property.' "

[(ग) विधि द्वारा विस्थापित संपत्ति घोषित की गई संपत्ति के संबंध में किसी विदेशी राज्य से अथवा अन्यथा किये गये करार के पालनार्थ किसी वर्तमान विधि के या एतत्पश्चात् राज्य द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंध।]

*__अध्यक्ष:__ आप इसे पेश कर सकते हैं।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ धन्यवाद, श्रीमान, एक और संशोधन जो मेरे नाम से है वह संशोधन संख्या 488 है।

*__अध्यक्ष:__ 511 के बारे में क्या?

*__श्री जसपतराय कपूर:__ मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं। आपकी अनुज्ञा से जो संशोधन इस समय मैंने पेश किया है वह 510 और 433 का स्थान ग्रहण करेगा। संशोधन संख्या 488 जो मेरे नाम से है वह इस प्रकार है:—

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'determined' शब्द के पश्चात् 'and given' शब्द जोड़ दिये जायें।"

*अध्यक्षः यह तो आ चुका है।

*श्री जसपतराय कपूरः श्रीमान, मुझे खेद है। एक और संशोधन जो मेरे नाम से है वह संख्या 495 है। श्रीमान, यदि वह पहले पेश किये गये संशोधनों के अन्तर्गत नहीं आता है तो मैं उसे पेश करता हूं।

*अध्यक्षः मुझे पता नहीं, आप उसे औपचारिक रूप में पेश कर सकते हैं।

*श्री जसपतराय कपूरः

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'unless such law having been reserved for the consideration of the President, has received his assent' शब्दों के स्थान में 'has received the assent of the President' शब्द रख दिये जायें।"

इसके बाद एक और संशोधन 508 है। श्रीमान, मैं उसे पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) का उपखंड (क) अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान, मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस रीति से प्रतिकर के इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है और इस विषय पर अनावश्यक रूप से यह जो लम्बा वाद-विवाद चल रहा है उसके कारण मैं बहुत दु:ख अनुभव कर रहा हूं और मेरा विश्वास है कि ऐसा कह कर मैं सभा के अन्य अनेक सदस्यों के विचारों को व्यक्त कर रहा हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि वे भी दु:ख अनुभव कर रहे हैं। यह प्रतिकर का विषय हमारे सामने एक नये विषय के रूप में नहीं रखा गया है। देश का ध्यान यह विगत कई वर्षो से आकर्षित किये हुए हैं। देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों द्वारा समाचार पत्रों में तथा मंच पर इस पर वाद-विवाद हुआ है जब हम मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन पर वाद-विवाद कर रहे थे उस समय यहां इस संविधान सभा में भी इस पर वाद-विवाद हो चुका है और हम सब समस्त राजनैतिक पक्ष अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार, इस समय की सरकार, प्रधान मंत्री तथा संविधान सभा इस विषय पर एक निश्चित विनिश्चय पर पहुंच चुके हैं, और हमारे लिये या मसौदा समिति के लिये जो कुछ शेष रह गया था वह यह था कि उन निश्चित रूप से स्वीकार किये गये सिद्धान्तों और वचनों के अनुसार एक अनुच्छेद तैयार करें।

परन्तु दुर्भाग्यवश हम देखते हैं कि जो अनुच्छेद इस समय हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है, अधिकतर उन सब बातों, को, उस पूरे प्रश्न को, वाद-विवाद तथा अन्तिम विनिश्चय के लिये फिर से रख दिया गया है। मेरे मित्र श्री श्यामानंदन सहाय द्वारा एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था, पर श्रीमान, आपने इसे अस्वीकार कर दिया, उसके औचित्य प्रश्न होने के अलावा उनकी इस प्रार्थना में बहुत सार

[श्री जसपतराय कपूर]

था कि इस अनुच्छेद के अधिकांश भाग में ऐसी बातें हैं जो इस संविधान सभा में विनिश्चित की गई बातों तक का विरोध करती हैं।

श्रीमान, हम यह देखें कि वे कौन-कौन सी भिन्न-भिन्न बातें हैं जिन पर देश में तथा इस संविधान सभा में भी वाद-विवाद हो चुका है और जिन पर अन्तिम विनिश्चय हो चुका है। जहां तक कांग्रेस का संबंध है, सरकार का सम्बन्ध है, माननीय प्रधान मंत्री का संबंध है और इस सभा का संबंध है ये तीन बातें निश्चित की जा चुकी हैं। पहली यह है कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया जायेगा। दूसरी यह कि जिनसे जमींदारी अधिकार अर्जित किये जायेंगे उन्हें ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जायेगा और तीसरी यह कि अन्य संपत्ति जिसे हम अर्जित करें उसके लिये उचित तथा ठीक प्रतिकर दिया जायेगा। ये तीन बातें हैं जिनका निश्चय कर लिया गया है और जिनके प्रति कांग्रेस वचनबद्ध है। यही हमने अपने निर्वाचन संबंधी घोषणा पत्र में रखी थीं। यही इस सभा में ता: 6 अप्रैल, सन् 1948 को घोषित किये गये सरकारी संकल्प में भी रखी गई थीं। और फिर यही बातें 6 अप्रैल सन् 1949 को प्रधान मंत्री ने संसद में घोषित की थीं। यही नहीं 6 अप्रैल, 1949 को माननीय प्रधान मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य में वे पूंजी लगाने वाले विदेशियों को आश्वासन देने के लिये और आगे बढ़ चुके थे और यह कहा था कि उनके किसी औद्योगिक कारखाने के अर्जन करने पर केवल उन्हें ठीक तथा उचित प्रतिकर ही नहीं दिया जायेगा बल्कि उनके धन को उनके देश ले जाने के कार्य में भी उन्हें आवश्यक सुविधायें दी जायेंगी। हमारी, संविधान सभा की, सरकार की और माननीय प्रधान मंत्री की ये प्रतिज्ञायें हैं।

श्रीमान, मेरे विचार में ऐसा आता है और मुझे विश्वास है कि यहां उपस्थित अन्य सदस्यों के विचार में भी यही है कि पहले हमने जो कुछ कहा अथवा वचन दिये हैं उनसे पूर्णतया अथवा अंशतया पीछे हटना न उचित है, न ठीक है और न वांछनीय ही है। श्रीमान, हम यह देखें कि आया यह अनुच्छेद जो कुछ हमने विनिश्चित किया है उसके अनुरूप है या हमारी उन प्रतिज्ञाओं से कोई विलगन है। यदि उन प्रतिज्ञाओं से कोई विलगन है तो निश्चय ही हमें वह स्वीकार नहीं करना चाहिये।

खंड (2) में यद्यपि यह मान लिया गया है कि संपत्ति का प्रतिकर निश्चय किये बिना संपत्ति अर्जित नहीं की जायेगी, परन्तु उसमें ये तीन मुख्य शब्द प्रतिकर के संबंध में नहीं दिये गये हैं कि वह ठीक, न्याययुक्त तथा न्यायोचित होगा जिन शब्दों का प्रयोग हम अपने निर्वाचन संबंधी घोषणापत्रों में, यहां किये गये विनिश्चयों में, प्रधानमंत्री के वक्तव्यों में और औद्योगिक नीति पर सरकारी वक्ताओं में करते आये हैं। श्रीमान, ये शब्द बहुत ही आवश्यक हैं और मैं नहीं समझ पाता हूं कि इन शब्दों का प्रयोग यहां पर क्योंकर न हो। यदि यह समझा जाता है कि ये शब्द व्यर्थ तथा अनावश्यक हैं तो मैं इस बात को ठीक नहीं समझता हूं क्योंकि इन शब्दों को उचित विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद और किसी निश्चित प्रयोजन

से निकाला गया है। श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि ऐसा नहीं होना चाहिये। मेरा एक संशोधन जिसको अब एक और संशोधन के कारण रोक दिया गया है जिसको एक और माननीय सदस्य पेश कर चुके हैं उसमें मैंने यह चाहा था कि 'प्रतिकर' शब्द के पहले कम से कम 'न्यायोचित' शब्द रख दिया जाये। 'ठीक' और 'न्याययुक्त' शब्दों को निकाल देने के लिये मैं सहमत हो गया था क्योंकि ऐसा प्रतीत हुआ कि इस बात पर बहुत अधिक उत्तेजना हो रही है और इस बात के कारण कि उन शब्दों का यहां रखना हमारे कुछ मित्रों को कहीं कष्टदायक न हो। इन तीन शब्दों में से मैंने सोचा कि यदि हम केवल 'न्यायोचित' शब्द रखेंगे तो यह उनको मान्य होगा और इससे मसौदे में कुछ न कुछ तो कम से कम सुधार हो ही जायेगा। श्रीमान, मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि 'प्रतिकर' शब्द के पहले 'न्यायोचित' शब्द क्योंकर न रखा जाये। आखिर इस संकल्प के निर्माताओं और माननीय प्रस्तावक महोदय का क्या आशय है? क्या उनका यह आशय नहीं है कि न्यायोचित प्रतिकर न दिया जाये? यदि उनका आशय यही है तब तो इस शब्द को वहां रखा जाये और यदि यह आशय नहीं है तो हम अपने कर्तव्य, आश्वासनों तथा वचनों से पीछे हट रहे हैं। यह कहा जाता है कि यदि हम यहां 'न्यायोचित' शब्द रख देंगे तो वह न्याय्य हो जायेगा। किसी बात के न्याय्य होने से हम क्यों डरें? माननीय प्रधान मंत्री ने बड़े उत्साहपूर्वक तथा बड़े उच्च स्वर में यह कहा था "अपने वचनों पर शत-प्रतिशत खड़े रहने की हमारी दृढ़ धारणा है"-उन्होंने इसी पद का प्रयोग किया था। मैं इससे न अधिक चाहता हूं न कम। यदि आप किसी वक्तव्य को बड़े उत्साहपूर्वक देते हैं तो यदि वह वास्तव में तथ्य नहीं है तो उससे वह तथ्य नहीं बन जाता। हमारे वचन क्या थे? यही कि जमींदारी का उन्मूलन करेंगे। ठीक है। औद्योगिक संपत्ति के अर्जन करने का अधिकार हम रक्षित रखें। ठीक है। परन्तु तीस वचन के बारे में क्या हुआ, जिसको विदा कर दिया गया है कि हम 'ठीक', 'न्याययुक्त' तथा 'न्यायोचित' प्रतिकर देंगे? अधिक से अधिक जो वचन हम ने दिये थे उनका 66 प्रतिशत पालन किया है। इन तीन में से इस समय केवल दो स्वीकार किये गये हैं। तीसरा हवा में उड़ा दिया गया। श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि यह कहना सही नहीं है कि हम अपने वचनों का शत प्रतिशत पालन कर रहे हैं।

श्रीमान, मैं यह कह रहा था कि ऐसा क्यों है कि इनको न्याय्य बनाने से हम डरते हैं? मुझे अपने विधान मंडलों में विश्वास है, मुझे अपने संसद में विश्वास है और मुझे विश्वास है कि कभी कोई राज्य का विधान मंडल या संसद कोई ऐसी विधि अधिनियमित नहीं करेगा, जिसके द्वारा न्यायोचित प्रतिकर दिये जाने के उपबंध बनाये बिना किसी संपत्ति को लोक प्रयोजनों के लिये ले लिया जाये। यदि न्यायोचित प्रतिकर देने का आशय वास्तविक है तो हम यह क्यों सोचें कि न्यायालय का निर्णय विधि में जो कुछ हम उपबंध करेंगे उसके विरुद्ध होगा? हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिये। 'न्यायोचित' शब्द बहुत लचीला है। आज जो न्यायोचित है वह कल न्यायोचित न रहे। जैसा कि मैं समझता हूं 'न्यायोचित' वह है जो वर्तमान राजनैतिक सिद्धान्तों, समाज द्वारा स्वीकृत वर्तमान आर्थिक सिद्धान्तों, के अनुसार हो और यह निश्चित है कि हमारे न्यायाधीश और न्यायालय जिनके प्रति हमारा अनुभव बहुत ही संतोषजनक है वे हमें असफल बनायेंगे क्या हमने यह नहीं देखा है कि तत्कालीन स्वीकृत राजनैतिक तथा आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार उसी एक निधि का निर्वचन

[श्री जसपतराय कपूर]

समय-समय पर भिन्न-भिन्न न्यायाधीशों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में किया गया है? उदाहरणार्थ राजद्रोह विधि को ही लीजिये। इस विधि का एक खास उपबंध आज भी है वैसा ही जैसा कि वह पहले था। परन्तु सन् 1906 में लोकमान्य तिलक के समय में राजद्रोह विधि का निर्वचन आज के निवर्चन से पूर्णतया भिन्न था। उस समय भी राजद्रोह था वह अब सरकार की आलोचना मात्र है और वह भी एक साधारण आलोचना और उसको केवल सहन ही नहीं किया जाता है और केवल न्यायालय ही नहीं वरन् हम लोग भी उसे प्रोत्साहित करते हैं। मेरा निवेदन यह है कि हमारे न्यायाधीशों ने सदैव समाज की आवश्यकता के अनुसार तत्कालीन स्वीकृत राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों के अनुसार विधियों का निर्वचन किया है। एक और उदाहरण लीजिये, समाज के परिवर्तनशील विचारों तथा आवश्यकताओं के साथ-साथ हिन्दू विधि पर निर्णय तथा उसका निर्वचन बदलता गया। इस विषय के मुझे और अधिक विस्तार में नहीं जाना है। मैं निवेदन करता हूं कि ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण हम इन उपबन्धों को न्याय्य बनाने में डरें।

इसके पश्चात्, श्रीमान, मैं यह निवेदन करता हूं कि यदि कोई व्यक्ति किसी खास विधेयक, किसी खास अधिनियम को न्यायालय में ले जाता है तो अधिक से अधिक क्या होगा? यदि हम किसी अधिनियम में यह उपबंध करें कि किसी संपत्ति के अर्जन के लिये हम 100/- रुपये देंगे और यदि न्यायालय यह घोषित करती है कि 100/- रुपया न्यायोचित नहीं है और वह यह निर्णय करती है कि 125/- या 150/- रुपया होना चाहिये तो हमारी कोई हानि नहीं होती है क्योंकि इस अनुच्छेद के निर्माताओं ने खंड (5) के उपखंड (ख) का उपबंध करके बड़ी सावधानी की है जिसमें कहा गया है "आगामी अनुवर्त्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से—

(ख) एतत्पश्चात् राज्य जो कोई विधि किसी कर या अर्थदंड के आरोपण या उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिये, अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या सम्पत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये, उसके उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।"

आपका ध्यान मैं विशेषतया "किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के लिये" शब्दों की ओर आकर्षित करता हूं। यह एक बहुत बड़ा अधिकार है जिसे आप अपने लिये रक्षित रख रहे हैं। यदि 100/- रुपये के स्थान में न्यायालय यह निर्णय करता है कि आप को 150/- रुपया देना चाहिये, तो यह क्यों न कहा जाये "धन्यवाद हजूर, हम 150/- रुपया देंगे" और फिर वापस आकर 5 (ख) के अधीन एक विधि अधिनियमित कर दीजिये कि "उसमें से 33 फीसदी कर ले लिया जायेगा" और कर के रूप में वह 50/- रुपये ले लीजिये। अत: मैं निवेदन करता हूं कि खंड 5(क) के अधीन इन शक्तियों के हमारे लिये रक्षित होने से हमारे लिये यह नितान्त आवश्यक है कि इस समूची बात को न्याय्य बनाने से हम डरें। यह वही जिसे हम 'गुनाह बेलज्जत' कहते हैं। इन सब बातों का विरोध

क्यों लें? आप इस बात के भागी क्यों बनते हैं कि आप अपनी विधि को न्याय्य बनाने से डरते हैं? हमें उससे लाभ कुछ नहीं होगा और हानि अधिक होगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि "प्रतिकर" शब्द के पूर्व कम से कम "न्यायोचित" शब्द जोड़ दिया जाये और खंड (2) में कुछ आनुषंगिक संशोधन कर दिये जायें जिसकी मैं सूचना दे चुका हूं, यद्यपि ये आनुषंगिक संशोधन करना एक छोटा सा विषय है।

श्रीमान, खंड (4) और (6) जिनको इस अनुच्छेद में रखने का प्रयास किया गया है उनके संबंध में हम क्या देखते हैं? जो मनुष्य इन खंडों को पढ़ता है उसका सर्वप्रथम यह विचार होता है कि ये खंड ऐसे हैं कि जिनको समझना कठिन है। हां, हम लोग जो यह जानते हैं कि इन खंडों के पीछे वास्तव में क्या वे इनके उद्देश्य और कारण को समझ सकते हैं। पर यदि कोई विदेशी इन खंडों को पढ़े तो आश्चर्य में पड़ कर वह अपनी आंखें मलेगा और यह पूछेगा कि इन खंडों में क्या तर्क है, क्या आधार है? वह यहां तक भी कह सकता है कि इन खंडों का आखिर क्या अर्थ है? किस प्रयोजन के लिये इनको रखा गया है। खंड (4) में कहा गया है "इस संविधान के प्रारंभ पर विधान मंडल में लम्बित कोई विधेयक इत्यादि इत्यादि। जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत्त होगा उस तिथि को यह विधान मंडल में केवल लम्बित विधेयक को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है? इसके लिये न कोई तर्क है न कोई कारण। ये केवल मनमानी बात है।

और फिर, श्रीमान, खंड (4) राज्यों में परस्पर विभेद उत्पन्न करता है। विधान-मंडल वाले और बिना विधान-मंडल के राज्यों में वह विभेद उत्पन्न करता है। हम यह जानते हैं कि हमारे यहां कई ऐसे राज्य हैं जिनमें विधान-मंडल नहीं हैं। यदि राज्य के विधान-मंडल में विधेयक लम्बित है तो उसे खंड (4) का लाभ होगा। पर यदि दुर्भाग्यवश किसी राज्य में विधान-मंडल नहीं है तो उसे खंड (4) के उपबंधों से कोई लाभ नहीं होगा। राज्यों में परस्पर विभेद करना मुझे तो व्यर्थ सा प्रतीत होता है। केवल यही नहीं, खंड (6) उन राज्यों में भी परस्पर विभेद उत्पन्न करता है जिनमें राज्यपाल है और जिनमें राज्यपाल नहीं है। खंड (6) में कहा गया है "राज्य की कोई विधि, जो इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष से अनधिक पहले अधिनियमित हुई हो, ऐसे प्रारम्भ से तीन महीने के अन्दर राज्य के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष उसके प्रमाणन के लिये रखी जा सकेगी" इत्यादि इत्यादि और इसके पश्चात् यदि राष्ट्रपति उस अधिनियम को प्रमाणित कर देता है तो वह एक बहुत अच्छी विधि बन जाती है और खंड (2) के सारे उपबंध रद्द किये जा सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश यह मैं नहीं जानता हूं—किसी राज्य में शासक है, राज्यपाल नहीं तो चाहे उसने उससे पूर्व विधि अधिनियमित कर ली हो या इन उपबंधों से प्रलोभित होकर इस समय से ता: 26 जनवरी, 1950 तक विधि अधिनियमित कर ले, जिस तारीख को यह संविधान प्रवृत्त होगा तो भी वह राज्य खंड (6) के उपबंधों से लाभ नहीं उठा सकता है। यह विभेद क्यों? क्या हमारा विचार यह है कि उन राज्यों में क्रान्ति के लिये प्रोत्साहन किया जाये? क्या हमारा विचार यह है कि वहां के नागरिकों से आन्दोलन करने को कहें कि वे एक राज्यपाल की मांग करें जिससे कि खंड (6) के उपबंधों का लाभ उठा सकें? कई माननीय सदस्यों को जो ऐसे राज्यों के प्रतिनिधि हैं इस

[श्री जसपतराय कपूर]

बात का बड़ा दु:ख है और यह ठीक है क्योंकि वे यह कहते हैं "हम भी अपने राज्य में जमींदारी उन्मूलन करना चाहते हैं; हम भी अपने राज्य में जागीरदारी उन्मूलन करना चाहते हैं, पर हममें से कुछ के यहां विधान-मंडल नहीं है और न हमारे यहां राज्यपाल, हैं।" जब कि एक राज्य जिस में विधान-मंडल तथा राज्यपाल है वह अब से लेकर 26 जनवरी, 1950 तक एक विधि अधिनियमित कर और प्रतिकर के लिये कोई उपबंध बनाये बिना ही जमींदारी और औद्योगिक संपत्ति का विनियोग कर सकता है—क्योंकि खंड (4) और (6) का अर्थ यही है। आपका विचार दूसरी बात है—पर जिस राज्य में न तो विधान-मंडल है और न राज्यपाल उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं होता है। यह द्वेष उत्पन्न करने वाला विभेद क्यों? मैं यह नहीं चाहता हूं कि उनको भी वही अधिकार हो; मैं तो केवल यह निवेदन कर रहा हूं कि अपने वर्तमान रूप में खंड (4) और (6) की प्रविष्टि कितनी मूर्खतापूर्ण है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं खंड (4) में एक और भी दोष है: निर्माताओं का उद्देश्य खंड (4) से संयुक्त प्रान्तीय जमींदारी विधेयक का परित्राण है और खंड (6) से मद्रास और बिहार के अधिनियमों का परित्राण है। यदि आप इसी बात को स्पष्ट रूप से वहां रख देते तो वह केवल उसी सीमा तक को दोष होता। पर आप उस बात को तो स्पष्ट कहते नहीं वरन् इस उपबंध को सामान्य रूप में रखते हैं जिसका यह आशय है कि कोई भी राज्य यहां तक कि संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार भी कोई ऐसी विधि अधिनियमित कर सकते हैं जिसके द्वारा वे जमींदारी अथवा अन्य किसी प्रकार की सम्पत्ति के विनियोग करने का अधिकार प्रतिकर के रूप में एक कौड़ी तक देने का उपबंध किये बिना अपने ऊपर ले सकते हैं। आखिर इन खंडों का यही तो अर्थ है। ये दूसरी बात है कि आप न्यायवश ऐसा न करें पर इस विषय पर विधि निश्चित तथा स्पष्ट होनी चाहिये।

इस अनुच्छेद को इस रूप में रखकर और खंड (4) और (6) को इस रूप में रखकर एक बात जो हम प्रत्येक व्यक्ति के मन में पैदा करेंगे वह यह है कि इस समय से लेकर इस संविधान के प्रवृत्त होने की तिथि तक का समय भारत के इतिहास में एक घोर अंधकार का काल होगा। क्या गणराज्य से पूर्ण के काल को इतना अधंकारमय इस कारण बनाया जा रहा है कि गणराज्य बनाने के बाद का काल अधिक प्रकाशमय प्रतीत हो? वह समय तो स्वयं ही प्रकाशमय होगा। गणराज्य के पूर्व काल को, एक पांच माह के काल को, इतना अंधकारमय, इतना धुंधला बनाने से कोई लाभ नहीं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि मूलाधिकारों में विशेषकर इन खंड (4) और (6) को रखना बड़ा हास्यास्पद प्रतीत होता है। ये खंड कोई भी मूलाधिकार प्रदान नहीं करते हैं और सच पूछो तो मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार करते समय जो मूलाधिकार हम स्वीकार कर चुके हैं ये उनका भी निराकरण करते हैं। श्रीमान, आपकी अनुज्ञा से मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के साथ जो संकल्प स्वीकार किया गया था उसे मैं पढ़कर सुनाना चाहूंगा।

*अध्यक्षः मैं माननीय सदस्य से भाषण समाप्त करने के लिये कहूंगा।

*श्री जसपतराय कपूरः मैं समाप्त कर रहा हूं, श्रीमान्, दो मिनट से अधिक समय मैं नहीं लूंगा।

मैं उसे पढूंगा भी नहीं, माननीय सदस्य उसे भली प्रकार जानते हैं। मैं तुरन्त ही अपने अगले संशोधन को लूंगा जिसमें खंड (5) के उपखंड (क) के अपमार्जन का प्रयास है। खंड (5) के उपखंड (क) में यह कहा गया है "आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से (क) का किसी वर्तमान विधि के उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।" क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि इस उपखंड की क्या आवश्यकता है? वे वर्तमान विधियां कौन-कौन सी हैं जो विचाराधीन हैं? मैं तो केवल एक ही विधि को जानता हूं और वह विधि भू-संपत्ति अर्जन के संबंध में भू-अर्जन अधिनियम है। जहां तक इस अधिनियम का संबंध है वह अवश्य ही खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप है क्योंकि उस अधिनियम में यह स्पष्ट निर्धारित है कि किस आधार पर संपत्ति अर्जित की जायेगी। उस अधिनियम के परित्राण के लिये इस खंड की आवश्यकता नहीं है। अन्य किन अधनियमों की ओर संकेत है यह मैं नहीं जानता। मैं यह अवश्य चाहूंगा कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाये कि देश में आज वे कौन-कौन सी विधियां प्रवृत्त हैं जिनके परित्राण करने का इस खंड द्वारा विचार किया गया है। क्या अन्य कोई ऐसी विधि है जिसके उपबंध खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप नहीं हैं? मैं तो किसी ऐसी विधि से परिचित नहीं हूं, यद्यपि विधि संबंधी विषयों का विशेषज्ञ न होने के कारण मैं इस विषय पर पक्की राय देने का साहस नहीं कर सकता हूं, अपितु माननीय प्रस्तावक महोदय से इस विषय पर प्रकाश डलवाना चाहता हूं कि खास विधियां कौन-कौन सी हैं जो उनके विचार में हैं और जिनका वे परित्राण चाहते हैं। यदि कोई एक ऐसी विधि है जिसके उपबंध खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप नहीं हैं तो उस अधिनियम का परित्राण क्यों किया जाये। इस अनुच्छेद 24 का उद्देश्य मूलाधिकारों के लिये उपबंध करना है, उनका परित्राण करना है, न कि किसी ऐसी विधि का जो मूलाधिकारों की जड़ काटती है।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि यह खंड निकाल दिये जायें। अन्यथा इस अन्तर्वर्ती काल में बिना उचित प्रतिकर दिये राज्यों को संपत्ति विनियोग करने के लिये विधि बनाने में शीघ्रता करने के लिये प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि ये सब विधियां उस तिथि को वर्तमान विधियां। समझी जायेंगी जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत्त होगा और ये विधियां न्यायालय की जांच के परे हो जायेंगी।

अन्त में मैं विस्थापितों की संपत्ति संबंधी अपने संशोधन पर आता हूं जो वास्तव में सब संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह सब संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है पर मैं उस पर विस्तारपूर्वक नहीं बोलूंगा क्योंकि यह विषय बड़ा ही कोमल है और दूसरी बात यह है कि मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि माननीय प्रस्तावक महोदय द्वारा यह स्वीकार किया जा रहा है। इसके सम्बन्ध में मैं केवल एक ही बात कहूंगा। हमारे शरणार्थी भाई, जो पश्चिमी पंजाब से आये हैं, लगभग

[श्री जसपतराय कपूर]

1500 करोड़ की संपत्ति छोड़ आये हैं और इस देश में विस्थापितों की संपत्ति का मूल्य लगभग 500 करोड़ है। इस विषय पर इस देश तथा पाकिस्तान में बातचीत हो रही है और इस बातचीत को माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर जैसे कुशल व्यक्ति कर रहे हैं। उनका सरल स्वभाव होने पर भी, उनकी युक्तियुक्त प्रकृति होने पर भी, उनमें इतनी महानता होने पर भी अब तक वे इस विषय पर कोई समझौता नहीं कर सके हैं। अभी तक तो वे पाकिस्तान को इस विषय पर समझौता करने के लिये समझा बुझा रहे हैं। संभवत: समझौता हो या न हो। दोनों दशाओं में यह आवश्यक है कि बाद में आवश्यकता पड़ने पर हमें कोई ऐसी विधि बनानी पड़े और इस कारण इस विषय पर समस्त वर्तमान विधियां तथा अध्यादेश खंड (2) के उपबंधों से परे होने चाहियें। क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो दुर्भाग्यवश बाद में किसी प्रकार के समझौते के न होने के कारण हमें विस्थापितों की संपत्ति का विनियोग करना पड़े तो उस समय हम शरणार्थियों की 1500 करोड़ तक की संपत्ति से ही हाथ नहीं धो बैठेंगे वरन् खंड (2) के अधीन विस्थापितों को भी प्रतिकर देने के लिये हमें विवश होना पड़ेगा। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि यह आवश्यक है और चूंकि यह स्वीकार किया जा रहा है इस कारण इस विषय पर मुझे और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इन बातों के और अपने संशोधनों के सहित जो अनुच्छेद पेश किया गया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 474। माननीय सदस्यों को मैं यह याद दिलाऊंगा कि आज हमें यह अनुच्छेद समाप्त करना है चाहे कितना समय लग जाये और मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वे अपनी बातों को यथासम्भव संक्षेप में कहें।

***श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहीम** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:–

'and accept on payment of fair and equitable compensation based on the market value of the property.' "

मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'provides for fair and equitable compensation based on market value' शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 24 एक मुख्य मूलाधिकार निर्धारित करता है और मैं समझता हूं कि यह कहते हुए मैं ईअत्युक्ति नहीं कह रहा हूं कि देश की समस्त अर्थव्यवस्था इस मूलाधिकार के समुचित प्रवर्त्तन पर निर्भर करती है। खंड (1) में यह उपबंध है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। यह मूलाधिकार है जिसके सृजन का प्रयास इस अनुच्छेद द्वारा किया गया है। पर इस खंड द्वारा जिस मूलाधिकार को देने का प्रयास किया गया है उससे नागरिकों को बाद के खंड (2) द्वारा वास्तव में वंचित कर दिया गया है क्योंकि उसमें विधान मंडल को खंड (1) द्वारा किये गये उनके अधिकार के पूर्ण मूल्य को विनिश्चित करने की शक्ति दी गई है। किसी संपत्ति का मूल्य खुले बाजार में उसकी जो कीमत मिले उस पर निर्भर करता है, पर खंड (2) में कहा गया है कि विधान मंडल द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार मूल्य नियत किया जा सकता है। तो फिर खुले बाज़ार में उस संपत्ति का क्या मूलय होगा? खंड (2) के कारण संपत्ति के मूल्य में अविश्वास निश्चित है और भूमि में अप्रतिभूति की भावना निश्चित है। देश की अर्थव्यवस्था में संपत्ति के मूल्य के इस अविश्वास और अप्रतिभूति की भावना का क्या प्रभाव पड़ेगा? यह प्रश्न उत्पन्न होता है। मैं यह कहूंगा कि इसके कारण खंड (2) पूर्णतया उन सब बातों को छीन लेता है जो खंड (1) द्वारा नागरिकों को दी गई हैं।

इस समय भी वर्तमान विधि के अधीन हम यह देखते हैं कि संपत्ति पर प्रतिकर जिस भूमि को अर्जित किया जाता है उसके निकटवर्ती उसी प्रकार की भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार दिया जाता है। जो विधि इस देश में लागू है उसका यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है, पर इस खंड का इस सिद्धान्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह सिद्धान्त पूर्णतया रद्द हो जायेगा। विधान-मंडल कोई भी प्रतिकर राशि नियत कर सकता है प्रतिकर की मात्रा विधान-मंडल पर निर्भर करेगी और प्रतिकर देने का सिद्धान्त भी विधान मंडल पर निर्भर करेगा। ऐसी दशा होने पर मूल्य के बारे में कोई विश्वास नहीं हो सकता है। लोगों के लिये भूमि या वाणिज्यिक उपक्रमों या उद्योगों में रुपया लगाने के लिये कोई प्रेरणा न मिलेगी। यह खंड बहुत ही व्यापक है और इसमें सब प्रकार की संपत्ति शामिल कर ली गई हैं जिसका फल यह होगा कि वाणिज्यिक उपक्रमों या भूमियों में रुपया लगाने की प्रेरणा लोगों में नहीं होगी। खंड (2) के कारण यह समस्या उत्पन्न होती है।

मैं सभा से निवेदन करूंगा कि इस विषय पर वे निष्पक्ष होकर तथा बिना किसी प्रेम तथा ईर्ष्या के विचार करें। यह विषय देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालने वाला है। क्या यह खंड लोगों के दिलों में वह विश्वास उत्पन्न करेगा जिसकी किसी वाणिज्यिक उपक्रम तथा किसी कृषि संबंधी उपक्रम की सफलता के लिये नितांत आवश्यकता है? निस्सन्देह रूप में नहीं करेगा, क्योंकि संपूर्ण चित्र अस्पष्ट है और कोई व्यक्ति यह नहीं जानता है कि किस समय विधान-मंडल किस प्रकार की संपत्ति का क्या मूल्य रखेगा। केवल इसी दृष्टिकोण से मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह इस खंड पर ध्यान दे और मेरा संशोधन केवल इसी दृष्टिकोण पर आश्रित है। मैं नहीं समझता हूं कि संसार के किसी भाग में विधान-मंडल की इच्छा के अनुसार किसी भी प्रकार की संपत्ति के लिये प्रतिकर दिया जाता हो। शायद इस अनुच्छेद के निर्माताओं पर जमींदारी प्रथा के उन्मूलन करने के वर्तमान प्रश्न का भूत सवार था। यदि आप यह चाहते हैं कि बिना किसी प्रतिकर

[श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहीम]

के ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन हो तो आप इस प्रयोजन के लिये कोई और अनुच्छेद बना सकते हैं। इस विषय को संपत्ति के सामान्य विचार तथा संपत्ति के सामान्य मूलाधिकार से न मिलाइये।

मेरे मित्र माननीय श्री कला वैंकट राव ने जमींदारों के बारे में कुछ कहा था। वे इस धारणा को लेकर चले कि जमींदारों का समूचा वर्ग राजस्व देने वाले किसानों का है; पर मैं उनको यह स्मरण कराऊंगा कि वह प्रस्थापना ऐसी नहीं है जिसे बिना किसी शर्त के मान लिया जाये। ऐसे जमीदार हैं जो शासकों तथा राजकुमारों के वंशज हैं और ऐसे जमींदार हैं जिन्होंने उस भूमि की पूरी कीमत दी है जो उन्होंने आरम्भ में ईस्ट इंडिया कंपनी से खरीदी थी और ऐसे भी ज़मींदार हैं जिन्होंने उन लोगों के वंशजों को पूरी कीमत दी है जिनको आरम्भ में लगान इकट्ठा करने वाला नियुक्त किया गया था। उत्तराधिकारी सरकारों की जानकारी तथा पूर्ण सम्मति से उन्होंने उनको पूरी कीमत दी है। उत्तराधिकारी सरकारों ने राजस्व देने वाले किसानों तक को अपनी संपत्ति को अपनी संपत्ति समझने दिया है और उसे उन्हें निकालने, पट्टे पर देने तथा रहन रखने का अधिकार दिया है। अत: क्या वे इन संपत्तियों के वास्तविक स्वामी नहीं हैं? इन जमींदारों के लिये प्रतिकर का हिसाब लगाते समय आपको इस बात पर भी विचार करना पड़ेगा।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि अपने संशोधन के महत्व पर और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उद्देश्य केवल यह है कि लोगों में विश्वास उत्पन्न करा दिया जाये और वे यह समझने लगें कि देश के प्रशासन की दृष्टि में संपत्ति का पूरा मूल्य होगा और संपत्ति का मूल्य विधान-मंडलों की मनमानी इच्छा के अनुसार नहीं होगा। और इस प्रकार उद्योग की उन्नति, कृषि की उन्नति और वाणिज्य की उन्नति हो सके। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं सभा के समक्ष अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 475—श्री फूलसिंह।

***श्री फूल सिंह** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के स्थान में यह रखा जाये:

'(2) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the toiling masses.

(2a) In the case of acquisition or taking possession of any property movable or immovable including any interest in or in any company owning any commercial or industrial undertaking such property shall be acquired or taken possession of only in accordance with

law which shall determine the cases in which compensation is to be allowed as also the amount of compensation to be allowed and the manner in which the compensation is to be given.

(3) No such law shall be called in question in a court of law on the points stated in clause (2a) above.'"

[(2) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की उस सीमा तक प्रत्याभूति की जाती है जिस सीमा तक वे श्रमिक वर्गों के सामान्य हितों से संगत हैं।

(2क) किसी स्थावर या जंगम संपत्ति के, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, अर्जन करने में उस संपत्ति को ऐसी विधि के अनुसार कब्जाकृत या अर्जित किया जायेगा जो उन मामलों का विनिश्चय करेगी, जिन में प्रतिकर दिया जाना है तथा प्रतिकर की राशि और प्रतिकर देने की रीति पर भी विनिश्चय करेगी।

(3) उपरोक्त खंड (2क) में कथित विषयों के संबंध में किसी ऐसी विधि पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी।]

श्रीमान, जो बातें इस संबंध में विचारार्थ प्रस्तुत होती हैं वे केवल ये हैं कि अर्जन करने के विषय में क्या कोई प्रतिकर दिया जाये या नहीं और यदि दिया जाये तो प्रतिकर की क्या राशि हो और उसके देने की क्या रीति हो। दूसरी बात यह है कि क्या यह अधिकार न्याय्य होना चाहिये। यह हमें निजी संपत्ति के इस प्रश्न की ओर ले जाता है कि क्या वह निरपेक्ष अधिकार हो अथवा एक ऐसा अधिकार हो जो श्रमिक वर्गों के हितों से संगत हो। यह धारणा कि बिना प्रतिकर के अर्जन न होना चाहिये, भविष्य को प्रतिबन्धित करती है या जब तक यह विधि है तब तक भविष्य को बन्धनयुक्त कर देती है। ऐसी उदाहरण सरलता से सोचे जा सकते हैं जिनमें बिना प्रतिकर के संपत्ति अर्जन केवल ठीक ही नहीं वरन् आवश्यक होगा। इन परिस्थितियों के अधीन इस बात को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ देना सर्वोत्तम होगा कि समय-समय पर संसद के समक्ष जो भिन्न-भिन्न मामले आये उनके लिये प्रतिकर दिया जाये या नहीं।

इसी प्रकार प्रतिकर की राशि संपत्ति के मूल्य के निर्देशानुसार ही विनिश्चित नहीं की जा सकती है। ऐसी वक्ता भी यहां आये हैं जिन्होंने पूर्ण प्रतिकर तक का समर्थन दिया है। मुझे आश्चर्य होता है कि "बाजार मूल्य" शब्द रखने में उन्हें क्यों हिचकिचाहट हुई। पूर्ण प्रतिकर क्या है? "बाजार मूल्य" समुचित शब्द होता। पर मैं समझता हूं यदि "पूर्ण प्रतिकर" माना जाता है तो यह कहना अधिक अच्छा होगा कि कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये क्योंकि जो कुछ थोड़े से विधान भिन्न-भिन्न

[श्री फूल सिंह]

राज्यों के समक्ष हैं उनसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि यदि पूर्ण प्रतिकर दिया जाता है तो अर्जन हो ही न सकेगा।

प्रतिकर की राशि नियत करते समय केवल संपत्ति के मूल्य पर ही नहीं वरन् अन्य ऐसी कई बातें हैं जिन पर विचार करना होगा। प्रतिकर देने की राज्य की सामर्थ्य, लाभ, जो संपत्ति का स्वामी उठा चुका है, और प्रयोजन जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जा रही है ये उन बातों में से चन्द बातें हैं जिन पर इस बात का विनिश्चय करते समय विचार करना पड़ेगा कि प्रतिकर की क्या राशि होनी चाहिये। इसी प्रकार से यह प्रश्न भी कि प्रतिकर नकद दिया जाये या वह अर्जन के समय या बाद की किसी तिथि को दिया जाये, सदैव के लिये विनिश्चित नहीं की जा सकती है।

इन सब बातों को इस समय विनिश्चित करना होगा जब वह विशेष मामला पैदा हो और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार उस पर विनिश्चित करना होगा। श्रीमान, इन सब विषयों पर सदैव के लिये विनिश्चित करना राष्ट्रीय समबुद्धि में विश्वास का खोना है। मैं समझता हूं कि जो लोग बाद में आयेंगे और जो इन विषयों पर विनिश्चित करेंगे और विधान बनायेंगे, वे इन सब संगत बातों पर विचार करेंगे और मैं समझता हूं कि उनके निर्णय में बाधा न डालना अधिक अच्छा होगा। इस कारण मैं न तो यह विचार रखता हूं कि प्रतिकर सदैव दिया जाये, न इस विचार का समर्थन करता हूं कि प्रतिकर बिल्कुल ही न हो। मैं समझता हूं कि सर्वोत्तम तथा समुचित मार्ग यह होगा कि प्रत्येक मामले के पैदा होने पर उसे संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये।

इसके बाद इस अधिकार की न्याय्यता के बारे का विषय है। माननीय प्रधान मंत्री द्वारा आज प्रात: जो संशोधन पेश किया गया था उसमें यह कहा गया है कि केवल दो शर्तों के अधीन पारित की गई विधि पर आपत्ति नहीं की जायेगी और वे शर्त ये हैं या तो जब संविधान प्रवृत्त हो, उस समय विधान लम्बित हो या उस संविधान के प्रवृत्त हो जाने की तिथि से एक वर्ष के भीतर विधान पारित हो जाये। जब इस खंड की तथ्यों से तुलना की जाती है तो स्थिति यह है कि केवल तीन प्रान्तों में संयुक्त प्रान्त, बिहार और मद्रास में न्यायालयों को विधान की वैधता की अथवा अन्यथा उसकी जांच न करने दी जायेगी। पर इसमें उन सब अनेक राज्यों के संबंध में विचार नहीं किया गया है जो हमारे संघ में विलीन हो गये हैं और जहां विधान मंडल नहीं हैं और इस कारण वहां नये संविधान के प्रवर्त्तन में आने के पूर्व कोई विधान पुर:स्थापित नहीं किया जा सकता है। यह कहना असंगत नहीं होगा कि इस प्रकार के उपबंध की उन्हीं राज्यों में सबसे अधिक आवश्यकता है। अत: मैं सुझाव रखता हूं कि ऐसे सब विधानों की रक्षा करना अधिक अच्छा होगा चाहे इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के समय वे लम्बित हों या चाहे किसी बाद की तिथि में उनका पुर:स्थापन किया जाये, इन सब विधानों की न्यायालय के हस्तक्षेप से रक्षा होनी चाहिये।

अपने पूर्व तर्क को दुहरा कर मैं समय खोना नहीं चाहता हूं। मैं समझता हूं कि जब राष्ट्र के प्रतिनिधि बैठेंगे तो वे एक ऐसे विधान पारित करने की सावधानी

रखेंगे जो ठीक तथा न्याययुक्त होगा और यदि समस्त राष्ट्र के प्रतिनिधि गलती करते हैं तो मुझे इस बात में सन्देह है कि कोई न्यायालय उस गलती को सुधार सके। किसी न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने देना ऐसी विधियों के पुरःस्थापन करने के उद्देश्य ही को नष्ट करना है।

इन शब्दों में सभा के स्वीकार्थ मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

*__श्री गुप्तनाथ सिंह__ (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में—

(1) 'no property' शब्द के स्थान में 'all property' शब्द रखे जायें।

(2) 'unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of compensation, or specifies the principles which the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'with or without compensation as determined by law' शब्द रखे जायें।"

यदि आप निजी संपत्ति के इतिहास की खोज करेंगे तो आपको यह देख कर दुःख होगा कि वह एक धोखे, महापातक, विदोहन, संपत्ति हरण, अमानवता, अन्याय, दगा, कष्ट, क्रूरता तथा आंसुओं से भरी कहानी है। अतः श्रीमान, निजी संपत्ति का संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है। एक फ्रांसीसी लेखक के शब्दों में, एक वाक्य में ही "सब संपत्ति चोरी है।" वास्तव में यह आश्चर्यजनक सा प्रतीत होता है, पर तथ्य यही है कि संपत्ति चोरी है। ईसा मसीह, महर्षि व्यास तथा महात्मा गांधी ने इसी बात की घोषणा तथा पुष्टि की। श्रीमान, यदि आप महाभारत के शांति-पर्व के अध्याय 15 के श्लोक को देखें तो आपको विदित होगा कि ऋषिवर ने संपत्ति का सुन्दर तथा स्पष्ट वर्णन किया है। वे कहते हैं:

ना छित्वा परमर्माणि, ना कृत्वा कर्म दृष्करम्।
ना हत्वा मत्स्य वातीयं प्राप्नोति महती श्रियम्।।

महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 15, श्लोक 2.

अतुल धन, अपार पूंजी तब तक संग्रह नहीं हो सकती है जब तक कि आप दूसरों का दिल न दुखायें, महापातकी कर्म न करें और लोगों को उसी प्रकार न फंसा कर उनकी हत्या न करें, जैसे कि मछुआ मछलियों को जाल में फंसा कर काट-काट कर मारता है। जब मैंने प्रथम बार इस श्लोक को तथा उस फ्रांसीसी लेखक के कथन को देखा तो मैं उस पर विश्वास न कर सका, इस विचार से

[श्री गुप्तनाथ सिंह]

सहमत न हो सका, पर धीरे-धीरे समाज में क्रियान्वित प्रवृत्तियों तथा शक्तियों को देखना आरम्भ किया तो मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि ये विचार बिल्कुल सही हैं। लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर की मांग करते हैं। यदि आप मुझे वैदिक शब्दावली का प्रयोग करने देंगे तो अपने पूंजीवादी तथा जमींदार मित्रों से पूछूंगा:-

"कस्यस्विद्धनम्।"

यदि किसी की संपत्ति है? हमारे पूंजीवादी मित्र जमींदार भाई लाल-लाल आंखें निकालें, घूंसा ताने और उन्मत हुए आगे बढ़कर यह कहेंगे "ऐ छोकरे, क्या तू यह नहीं जानता कि सारा संसार हमारी उंगली के इशारे पर नाचता है।"

"भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया"

इसी कारण वे प्रतिकर की मांग करते हैं। पर मैं आपसे यह कहता हूं कि जिसको वे निजी संपत्ति कहते हैं वह संपत्ति राष्ट्र की है। वैदिक भाषा में यह कहा जा सकता है:

"ईशावास्यमिदं सर्वम्।"

यह सब संपत्ति ईश की है और ईश का प्रतिनिधि राष्ट्र है, और राष्ट्र का प्रतिनिधि समाज है और समाज का प्रतिनिधि किसान तथा श्रमिक है जो लाखों करोड़ों की संख्या में है। अत: सारी संपत्ति समाज की है, न कि किसी विशेष व्यक्ति की।

अत: ये सब बड़े-बड़े भवन, कोठियां और सब कारखाने राष्ट्र के तथा समाज के हैं, न कि किसी विशेष व्यक्ति के। लोग कहते हैं कि उन्होंने कुछ कारखाने खरीदे हैं, कुछ भवन बनाये हैं और कुछ भूमि खरीदी है। पर मैं उनसे पूछता हूं कि उन्हें रुपया कहां से मिला, उन्होंने रुपया किस प्रकार कमाया और किस ने भवनों तथा कारखानों का निर्माण किया। उनको लाखों करोड़ों व्यक्तियों ने बनाया, भूमि को किसानों और मजदूरों ने जोता, न कि इन कारखानों के स्वामियों ने तथा जमींदारों ने। अत: अधिकार के रूप में ये लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर पाने योग्य नहीं हैं और न वे प्रतिकर की मांग कर सकते हैं। औचित्य के आधार पर तो उनकी कोई मांग नहीं टिकती है, और यदि आप संपत्ति के स्वामियों, जमींदारों और पूंजीवादियों की आय की जांच करें तो उन्होंने जितना धन लगाया है उसका कई गुना धन वे ले चुके हैं, उसका उपभोग कर चुके हैं। वे लाखों रुपया प्राप्त कर चुके हैं, वे लाखों रुपया अपने आनन्द के लिये बहा चुके हैं। करोड़ों रुपये के जेवर वे खरीद चुके हैं। उन्होंने आय के कई साधन पैदा कर लिये हैं।

मनु के अनुसार भूमि किसान की है-

"स्थाणुछेदस्य केदारम।"

भूमि उस व्यक्ति की है जो उसे जोतता बोता है, न कि किसी बड़े जमींदार मित्र की। अतः हमारे जमींदार मित्रों द्वारा प्रतिकर की मांग सही नहीं है। मैं उनसे केवल एक प्रश्न पूछता हूं। क्या मुगल बादशाहों के वंशजों को लाल किले तथा अन्य वस्तुओं के लिये प्रतिकर दिया जायेगा? कुछ समय पूर्व संयुक्त प्रान्त के किसी समाचार पत्र में मैंने एक समाचार देखा था कि मुगल बादशाहों के वंशजों ने पंडित जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की थी कि उनके पूर्वजों की संपत्ति का उन्हें प्रतिकर दिया जाये। क्या यह अनोखी बात नहीं है? क्या अंग्रेजों ने मुगल बादशाहों के वंशजों के लिये लाल किले तथा अन्य बड़ी-बड़ी इमारतों और भवनों के लिये प्रतिकर दिया है। अंग्रेजों द्वारा कई इमारतें बनवाई गई थीं, यद्यपि धन हमारा ही था पर जब उन्होंने छोड़ा तो क्या हमने उन्हें कुछ दिया है? वे लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं। उनको कुछ भी प्रतिकर नहीं दिया जाना चाहिये। अधिकार के रूप में वे इसकी मांग नहीं कर सकते हैं, पर यह हमारी उदारता है कि हम उन्हें कुछ दे रहे हैं। बिहार में हमने तीन गुने से 20 गुने तक प्रतिकर दिया है, मद्रास में भी सरकार ने प्रतिकर दिया है और संयुक्त प्रान्त में भी सरकार कुछ दे रही है, पर अधिकार के रूप में जमींदार किसी प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं।

एक बात है जो मुझे अच्छी नहीं लगी है। पूंजीवाद और जमींदारों के मिटाने में कुछ विभेद कर दिया गया है, कारखाने तथा उत्पादन के अन्य साधनों के राष्ट्रीयकरण और जमींदारी के उन्मूलन में विभेद कर दिया है। भूमि और कारखाने दोनों ही एक श्रेणी के हैं और दोनों का राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण होना चाहिये। अनुकूल अवसर होने पर इन दोनों को मिटाने का उपबन्ध संविधान में होना चाहिये।

पंडित जी ने एक संशोधन पेश किया है और भाषण दिया है। यदि आप पंडित नेहरू का भाषण किसी व्यक्ति को दें और यह न कहें कि यह किसका भाषण है और उस संशोधन को भी दें जो उन्होंने पेश किया है तो वह व्यक्ति यही कहेगा कि भाषण तो किसी क्रान्तिकारी व्यक्ति ने दिया है और जिसने, संशोधन पेश किया है वह क्रान्तिकारी नहीं है। पंडित नेहरू के तो निस्सन्देह क्रान्तिकारी विचार हैं, पर अपने वर्तमान रूप में यह अनुच्छेद न जाने किन शक्तियों द्वारा नियंत्रित मस्तिष्कों द्वारा बनाया गया सा प्रतीत होता है।

औचित्य के आधार पर लोगों को प्रतिकर नहीं मिलना चाहिये पर विधि में कोई ऐसा उपबन्ध बनाना चाहिये। कि उन संपत्तियों के लिये जिनके लिये प्रतिकर दिया जाये, जो प्रतिकर पाने के योग्य हैं उनको प्रतिकर दिया जाये। देश में तथा संसार में जो विचारधारा प्रबल रूप धारण किये हुए है वह पूंजीवाद के मिटाने की है और देश को यह बात समझ लेना चाहिये तथा इसके अनुसार कार्य करना चाहिये। अतः मैं सभा से संशोधन को स्वीकार करने का निवेदन करता हूं।

(संशोधन संख्या 481 पेश नहीं किया गया।)

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में से 'and either fixes the amount of the compensation

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्द उपमार्जित किया जाये।"

यह संशोधन उन अन्य कई संशोधनों में से एक था जिनकी मैंने सूचना दी थी, पर जिनको और लोग पेश कर चुके हैं। अपने संशोधन द्वारा मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि अर्जित संपत्ति के लिये जो प्रतिकर दिया जाये वह ठीक तथा न्यायोचित हो। जहां तक मूल्य नियत करने और प्रतिकर विनिश्चित करने की रीति का विषय है, समवर्ती सूची की सप्तम अनुसूची के मद 35 में हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि दोनों केन्द्र तथा राज्यों को यह अधिकार होगा। आज प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में कहा है कि जो प्रतिकर दिया जायेगा वह न्यायोचित तथा ठीक होगा। यह विचारपूर्ण कथन सरकार का 6 अप्रैल, 1948 को अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा में भी था। यही सिद्धान्त 6, अप्रैल, 1949 को माननीय प्रधान मंत्री के कथन में भी दुहराया गया था जिसमें विदेशी पूंजी को आमंत्रित किया गया था।

अत: ऐसा कोई कारण नहीं है कि प्रतिकर को स्पष्ट रूप में न्यायोचित, ठीक या न्याययुक्त, अनुच्छेद निर्माताओं को इनमें से जो भी शब्द माननीय हो वह क्यों न कहा जाये, जिससे कि इस बात में कोई संदेह न रहे कि संपत्ति अर्जित होने पर जो प्रतिकर दिया जायेगा वह ठीक तथा न्यायोचित होगा। पूंजी लगाने वालों के मनों मे विश्वास उत्पन्न करने का यह विषय है और यदि हम यह चाहते हैं कि देश का अधिकाधिक औद्योगीकरण हो और लोगों को औद्योगिक उपक्रमों में अपना धन लगाने के लिये प्रोत्साहित किया जाये, तो किसी न किसी प्रकार की ऐसी प्रत्याभूति होनी चाहिये कि जब कभी इन संपत्तियों का उपक्रमों को राज्य द्वारा अर्जित किया जायेगा तो ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जायेगा। यह निश्चय है कि लोगों को इससे उत्साह होगा और औद्योगिक उन्नति में भी प्रगति होगी। यह एक मनोवैज्ञानिक बात है और संभव है कि यह उत्साह भंग करे। आर्थिक दशा तो खराब है ही और यदि इस खंड से उत्साह भंग होता है तो आर्थिक दशा को यह और भी अधिक खराब करेगा। आर्थिक दशा के बिना सुधारे जिन राष्ट्र निर्माण संबंधी तथा अन्य सुधार संबंधी योजनाओं की हम उत्कंठापूर्वक आशा कर रहे हैं, उनका संचालन करना कठिन होगा। मेरे संशोधन का उद्देश्य संपत्ति अर्जन करने पर दिये जाने वाले प्रतिकर की परिभाषा करना है और मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति उसे स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 485 पेश नहीं किया गया।)

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): श्रीमान मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में से 'either fixes the amount of compensation or' शब्दों

को अपमार्जित किया जाये; और उस खंड के अन्त में ये परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'Provided that in applying such principles, due regard shall be paid to the consideration whether the property in question is being utilised by the owner or holder so as to make a definite contribution to be sum total of the country's wealth:

Provided further that this proviso shall apply also in the case of all laws which have been passed within one year before the commencement of this Constitution and to all Bills pending at the time of the commencement of this Constitution.'"

[परन्तु इन सिद्धान्तों के पालन करने में इस बात का उचित ध्यान रखा जायेगा कि विषयान्तर्गत संपत्ति का उपयोग स्वामी या अधिकारी द्वारा इस प्रकार से तो नहीं हो रहा है कि जो देश की पूंजी की वृद्धि में सहायक हो।

यह और भी कि यह परन्तुक उन सब विधियों पर लागू होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व एक वर्ष के अन्तर्गत पार हो चुके हैं और उन सब विधेयकों पर लागू होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ के समय लम्बित हैं।]

अपने संशोधन पर बोलने के पूर्व मैं अपने माननीय प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्थापित अनुच्छेद पर कुछ बातें कहना चाहता हूं। इस अनुच्छेद में दो प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हैं। एक राज्य द्वारा संपत्ति अर्जन है और दूसरा उसके लिये प्रतिकर देना।

हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने जिस मुख्य सिद्धान्त की व्याख्या की है वह यह है कि व्यक्ति का हित संप्रदाय या राज्य के हित से निम्नतर है और कोई भी देशभक्त इस सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में यदि राज्य या संप्रदाय कुछ मांग करता है तो व्यक्ति उसे बिना किसी आपत्ति के पूरा करे। संपत्ति अर्जित करते समय पूरा का पूरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उसे राज्य के हित के लिये अर्जित किया जा रहा है या नहीं। दूसरी बात यह है कि जब संपत्ति अर्जित की जाती है तो संपत्ति के स्वामी को उचित प्रतिकर दिया जाता है या नहीं।

वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके अधीन राज्य संपत्ति अर्जित करे? जिस रूप में हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने इस सिद्धान्त की व्याख्या की है यदि उस रूप में उसे लागू किया जाता है तो मैं विश्वासपूर्वक समझता हूं कि राज्य को किसी विशेष व्यक्ति की संपत्ति केवल तभी अर्जित करनी चाहिये जब कि वह राष्ट्र के हित में हो, न कि केवल यह कह कर कि "हम किसी विशेष उद्योग का

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं और इस कारण हम उसका अर्जन करना चाहते हैं।" किसी विशेष उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो सकता है कि राष्ट्र के हित में बिल्कुल ही न हो। मैं आपको इंग्लैंड का उदाहरण दूंगा जो इतना उन्नत देश है और जहां अभी-अभी परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया था। और उसके प्रति यह प्रतिवेदन है (परसों समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है) कि इंग्लैंड का राष्ट्रीयकरण किये हुए परिवहन—मार्ग सेवायें, जहाज पर माल उतारना चढ़ाना तथा जल मार्ग—का अन्त राज्य स्वामित्व के प्रथम वर्ष 1948 में 47,33,000 पौंड की हानि के रूप में हुआ और प्रतिवेदन को असंतोषजनक रूप में समझा गया और यह भविष्यवाणी की गई कि 1949 में और अधिक हानि का होना अवश्यम्भावी है।

जैसा मैं कह चुका हूं इस अनुच्छेद के संबंध में दो सिद्धान्त हैं जिन पर विचार करना है। एक संपत्ति अर्जन है। मेरे संशोधन का विशेषकर इस प्रथम सिद्धान्त से संबंध है। यदि कोई संपत्ति या उद्योग अर्जित किया जाता है तो इस बात पर उचित ध्यान देना चाहिये कि क्या इन सिद्धान्तों का पालन किया जा रहा है और इस अनुच्छेद के खंड (2) में वर्णित प्रतिकर के लिये सिद्धान्तों को नियत करते समय राज्य के विधान मंडल तथा संसद को यह कहना चाहिये कि उस संपत्ति से, चाहे वह जमींदारी संपत्ति हो या औद्योगिक हो, राज्य को यदि कोई लाभ है तो वह क्या है और यह भी कि सिद्धान्त निर्धारित करते हुए इस बात पर विचार करना चाहिये जिसको मैंने यहां कहा है "कि उस संपत्ति का उपयोग स्वामी या अधिकारी द्वारा इस प्रकार से हो रहा है कि जो देश की पूंजी की वृद्धि में सहायक हो" या स्वामी समाज विरोधी या राष्ट्र विरोधी कार्यों में अपनी शक्ति के साथ उस संपत्ति को भी बरबाद कर रहा है। यदि हमें यह विदित होता है कि उस निजी संपत्ति या उस निजी उद्योग का स्वामी देश की पूंजी बढ़ाने में अच्छी उन्नति कर रहा है और समाज विरोधी कार्यों में न तो व्यस्त हुआ है तथा न व्यस्त हो तो इस दशा में राज्य को उसकी संपत्ति अर्जित नहीं करनी चाहिये और यदि उसको अर्जित करना ही है तो पूर्ण प्रतिकर दिया जाना चाहिये। इस बात को विधान सभा में परिभाषित की गई औद्योगिक नीति में स्पष्ट कर दिया गया है जिसमें यह कहा गया है कि कम से कम दस वर्ष तक कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायेगा और दस वर्ष के बाद इस स्थिति पर विचार किया जायेगा कि किसी उद्योग का अर्जन करना उचित है अथवा नहीं और तब उस उद्योग को अर्जित किया जायेगा।

यदि इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है जैसा कि वह विधान सभा में स्वीकार कर लिया गया है और जैसा कि हमारे आदरणीय प्रधान मंत्री द्वारा कई बार स्पष्ट किया जा चुका है तो मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि उद्योगपतियों में तथा जनता में इतना उथल पुथल क्यों है और पूंजी क्यों रुकी पड़ी है तथा उद्योग में क्यों नहीं लगाई जाती है।

दूसरा प्रश्न जो लोगों का ध्यान आकर्षित किये हुए है वह यह है कि यदि हमारे उद्योग अर्जित कर भी लिये जायेंगे तो उनके लिये समुचित प्रतिकर दिया

जायेगा या नहीं। इस विषय पर भी हमारे प्रधान मंत्री ने कहा है कि यदि राज्य को कोई संपत्ति अपेक्षित है तो उसके हरण करने का तो प्रश्न ही नहीं है। जनता यह देख रही है कि इस अनुच्छेद 24 पर संविधान सभा क्या करती है। अत: इस अनुच्छेद को पेश करते हुए हमारे प्रधान मंत्री ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि किसी संपत्ति का हरण नहीं होगा और यदि किसी संपत्ति को अर्जित किया जायेगा तो प्रतिकर देकर अर्जित किया जायेगा।

जो प्रश्न शेष रह जाता है वह केवल यह है कि प्रतिकर किस रूप का होगा वह न्यायोचित तथा उचित प्रतिकर होगा या कोई भी प्रतिकर होगा जिसे संसद विनिश्चित करेगी और जो निर्णय तथा सिद्धान्त संसद द्वारा विनिश्चित किये जायेंगे वे न्याय्य होंगे या नहीं। बाहर जनता का ध्यान केवल इसी बात की ओर लगा हुआ है। इस बात पर मतभेद है और किसी का भी पक्ष लेने के लिये मैं सक्षम नहीं हूं। परन्तु यदि यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि वह न्याय्य होगा तो किसी प्रकार की शंका या मूलाधिकार के अतिक्रमण करने की कोई बात नहीं रह जाती है जैसा कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कहा है कि यह अनुच्छेद एक प्रकार से हमारा मूलाधिकार अतिक्रमण करने वाला है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रतिकर देते समय सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना होगा वह यह है कि जिस व्यक्ति को प्रतिकर दिया जा रहा है वह उस संपत्ति का उपयोग देश की उन्नति तथा की पूंजी वृद्धि के लिये कर रहा है या नहीं। यह बात उस सिद्धान्त में शामिल हो जानी चाहिये जिसको विधि निर्धारित करे। यदि उद्योगपतियों या जमींदारों ने अपनी संपत्ति का प्रयोग अधिकतर समाजविरोधी या राष्ट्रविरोधी कार्यों में किया है और वे उपयोगी नहीं रहे हैं। तो इस बात पर, मैं समझता हूं कि, प्रतिकर के लिये राशि या सिद्धान्त नियत करते समय संसद अवश्य विचार करे। यदि ये बातें इस अनुच्छेद में आ जाती हैं तो बाजार में किसी प्रकार की हलचल की आवश्यकता नहीं होगी।

एक विचार यह भी है कि प्रतिकर उस प्रयोजन पर भी निर्भर करे जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जाती है अर्थात् यह कि यदि वह लोकोपकारी प्रयोजन के लिये या किसी योजना के अधीन अर्जित की जाती है तो प्रतिकर कम हो सकता है। इस संबंध में मुझे यह कहना कि यदि इस बात पर इस खंड में विचार कर लिया गया है–यद्यपि मैं यह नहीं जानता हूं कि यह बात उस खंड में है या नहीं—2तो एक साधारण कोटि के मनुष्य के पास यदि कोई ऐसी संपत्ति है जो लोकोपकारी प्रयोजन के लिये आवश्यक है, अथवा किसी योजना के अन्तर्गत आ जाती है, तो उन लोगों को पूर्ण प्रतिकर मिलना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, मेरा संशोधन निरोध प्रकार का है:

That in amendment No. 369 of List VII (seventh week) at the end of Clause (2) of the proposed article 24, the following proviso be added:—

"Provided that no compensation shall be payable to any owner or holder of any movable or immovable property, who, having owned or held

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

such property for thirty years continuously immediately before the coming into force of this Constitution, has either not habitually resided within the state where such property is situated, or has not done anything to develop such property."

सभापति जी, हम लोग जो संविधान अब तैयार कर रहे हैं उस संविधान के प्रारम्भ में जो बात हम लोगों ने प्रकाशित की थी उसमें यह आता है कि हम लोग सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सुविधा हर एक आदमी को देंगे। जब हम संविधान के आरम्भ में यह बात दुनिया से कहते हैं तो यह तब हम इसे कैसे हल करेंगे इसके लिये क्या योजना हम लोग बनाते हैं इसका भी विचार करना चाहिये। इस विषय में बहुत सदस्यों ने कहा है कि सम्पत्ति जो है इस विषय का जो विचार है, यह संविधान में सबसे बड़ा विचार है। इसको बहुत अच्छी तरह से सोच विचार करके तय करना ठीक है।

पहले हम लोग स्वतंत्र भारत की क्या रूप रेखा रखते थे इसको देखना चाहिये; जब हम बराबर बोलते हैं कि हम लोग श्रेणी विभाग तोड़ देंगे और हम लोग धर्म पर यह देश नहीं रखेंगे, इसको सेक्युलर स्टेट बनायेंगे, तो किस तरह से इसको हम जरूर कर सकेंगे इस पर भी विचार करना चाहिये। डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स में हम लोगों ने यह भी कहा है कि हम ऐसा करेंगे कि–

"operation of the economic system does not result in the concentration of wealth and means of production in the common detriment."

जब एक एक आदमी के पास सम्पत्ति ज्यादा हो जायेगी तो हम लोगों की जो नई रूप रेखा है उसे हम कैसे बना सकेंगे। कभी नहीं बना सकेंगे। इस लिये हम इस सम्पत्ति के बारे में जब विचार करते हैं तो बहुत गहराई से विचार करना चाहिये। कुछ ले लीजिये, आज बड़े-बड़े शिल्प कारखाने हैं। उस कारखाने में एक आदमी के पास इतना पैसा ज्यादा हो जाता है, दस बरस, बीस बरस बाद और इतना बड़ा हो जाता है कि उसको मालूम नहीं होता है और कोई आदमी है, वह दिन प्रति दिन अपने रुवाब में चलता है, अपने को बहुत बड़ा आदमी समझता है, और दुनिया में सब आदमी को बहुत छोटा समझता है। इस लिये उसको तोड़ना होगा। मैं गरीब घर का आदमी हूं। बचपन से मैट्रीकुलेशन तक इस शरीर पर मैंने कमीज भी नहीं पहना था। मैं जानता हूं कि भूख क्या चीज़ है। जब में इंजीनियरिंग कालिज में पढ़ता था तब खाने को नहीं पाया तब इंजीनियरिंग कालिज को छोड़ कर आया और सुसाइड करने गया था। इसी लिये मैं चाहता हूं कि इसका प्रबन्ध बहुत अच्छी तरह से होना चाहिये। एक आदमी एक दिन में 600 रु., 800 रु. या 1,000 रु. कमाता है, तो सारे देश में हर एक आदमी के उपार्जन देखता

हूं तो औसत छह आने निकलता है। तो इससे हम जो स्वतंत्र भारत में उसमें हम आदमियों को सुख कैसे दे सकेंगे। मेरे देश उड़ीसा के लिये सब आदमी कहते हैं कि उड़ीसा बहुत कंगाल देश है और बहुत छोटा देश है, क्यों ऐसा हुआ है इसको भी देखना चाहिये। जब मैं उड़ीसा की बात कहता हूं तो कोई कोई कहेंगे कि यह प्राविंशियलिज्म है। यह प्राविंशियल्ज्मि नहीं है बल्कि में जीना चाहता हूं और मेरे चारों तरफ जो आदमी रहते हैं उनकी तन्दुरुस्ती कैसे ठीक होगी और किस तरह वह अच्छी तरह रह सकेंगे यह भी मुझे देखना है। मैं आपको कहता हूं कि उड़ीसा की जितनी जमीन है वह सब एबसेंटी लैंडलार्ड के हाथ में चली गई है। वह उड़ीसा में नहीं रहते हैं बाहर रहते हैं और वह रुपया लेने को ही आते हैं। जब आप इन लोगों की जमींदारी का हाल देखेंगे तो आप जानेंगे कि इन्होंने बहुत ज्यादा रुपया भी खर्च करके इसको नहीं कमाया है। सनसेट ला में उड़ीसा की ज़मींदारी चली गई। उस समय हाईकोर्ट कलकत्ता में था। कटक में नहीं था, इसलिये बहुत आदमियों की जमींदारी चली गई। इस तरह उड़ीसा की दो तिहाई जमीन एबसेंटी लैंडलार्ड के हाथ में चली गई। इस वजह से उड़ीसा कैसे बढ़ सकता है। मैं इसी लिये चाहता हूं कि ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिसमें हम एक दम निश्चिन्त हो सकें कि जिन जिन लोगों के साथ में बहुत जमीन है और जो कि इसकी उन्नति भी नहीं करते हैं और 30 वर्ष तक उसको भोग चुके हैं। उनको कुछ नहीं देना चाहिये। उनको तो कुछ देना ही नहीं। हम दुनिया नये ढंग से बनाना चाहते हैं और सम्पत्ति को एक दम उठा देना चाहते हैं। और हम लोगों का पहले भी यह आदर्श था:–

> अर्थमनर्थं भावय नित्यम्
> नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्
> पुत्रादार्य धनभाजां भीतिः
> सर्वत्रैषां कथिता नीतिः

यह शंकराचार्य का है। इस आदर्श पर हम इस देश के लोगों को तैयार करते थे। फिर पश्चिम से एक हवा आई जिसमें कम्पिटीशन की स्पिरिट थी और उन लोगों को उस ढंग से चलना पड़ा। उस ढंग से चलने से यह हुआ कि जो छोटा आदमी था वह पिस गया और जिसकी ज्यादा ताकत थी वह कांकरर की माफिक हो गया है। उनके पास कोई आईन नहीं है। जिसका जोर था उसी का मुल्क हो गया। इसी लिये मैं कहना चाहता हूं कि हम लोग जो नये ढंग से हिन्दुस्तान को बनाना चाहते हैं तो इस नये ढंग की रूप रेखा अच्छी तरह देखकर और हर एक प्रान्त में इसका कैसे सुप्रबंध हो सकता है इसका सोच विचार हमें करना चाहिये। मैंने तो अपने प्रान्त का ख्याल करके यह प्रोवाइजो रखा है। आप जो कुछ करते हैं ठीक है। तो भी भाई जब इसको आप नहीं करेंगे तो मेरे देश के लिये ठीक नहीं होगा। इसी लिये मैंने यह प्रोवाइजो दिया है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अच्छी तरह से सोच विचार करें।

आदिवासियों में यह प्रबन्ध है कि जितनी जमीन है वह जमीन सबको ठीक तौर से बांट की जाती है और बीच बीच में जब किसी के पास बढ़ जाती है तो उसको दस बारह बरस में फिर ठीक कर लेते हैं। हम लोगों का जो समाज है वह अचलायतन है। वह बहुत दिन से हिमालय के माफिक चुप करके रहा है, वह अचल होकर रहा है, चलता नहीं है और जो पश्चिम से आये उनके हाथ

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

जो लोग मिल गये वह अपने आदमियों के साथ बहुत अत्याचार करने लगे और उन्होंने उनको छोटा कर दिया। इसी लिये अभी जब हम नया भारत बनाते हैं तो हम को इस तरह का एक प्रोवीजन रखना चाहिये, इतना ही मैं कहना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ श्री महबूब अली बेग, संख्या 493।

*__श्री महबूब अली बेग__ (मद्रास : मुस्लिम): मेरा एक संशोधन 482 भी है।

*__अध्यक्षः__ आप उसे भी पेश कर सकते हैं।

*__श्री महबूब अली बेगः__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'unless due compensation is paid for' अथवा विकल्पतः 'unless the law provides for due compensation' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में यह जोड़ दिया जाये:

'(3) no such law as is referred to in clause (2) of this article made by the legislature of the State shall have effect, unless such law receives the assent of the President.'"

[(3) राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि ऐसी विधि को राष्ट्रपति की अनुमति न मिल गई हो।]

श्रीमान, मेरे और संशोधन पेश हुए संशोधनों में आ चुके हैं अतः मैं उन्हें पेश नहीं करना चाहता हूं; पर उन पर मैं अपने विचार प्रकट करूंगा। श्रीमान, मेरे संशोधनों के दो प्रयोजन हैं। प्रथम यह कि उनमें इस बात का प्रयास है कि संपत्ति पर व्यक्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में घोषित किया जाये जो विधान-मंडल अथवा किसी अन्य प्राधिकार से स्वतंत्र हो। दूसरा यह कि मेरे संशोधन

में यह प्रयास किया गया है कि इस अधिकार को निश्चित रूप से न्याय्य बना दिया जाये। यद्यपि लोक प्रयोजनों के लिये व्यक्तियों की संपत्ति के अर्जन करने का अनापत्तिनीय अधिकार सरकार को होना चाहिये, परन्तु संपत्ति के स्वामियों को समुचित मूल्य से कम मूल्य देकर संपत्ति छोड़ने के लिये वह बाध्य नहीं कर सकती है और जिस व्यक्ति की संपत्ति अर्जित की जाती है न्यायालय द्वारा उसका मूल्य निश्चित कराने के उस व्यक्ति के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है। हमारे राज्य ने अभी तक निजी संपत्ति को मिटाया नहीं है, किसी रूप में भी इस संविधान में न तो उसे मिटाया गया है और न मिटाया जा रहा है। मैं अनुच्छेद 13, खंड (1) उपखंड (च) की ओर निर्देश कर रहा हूं, अर्थात् यह कि "इस अनुच्छेद के अन्य उपबंधों के अधीन सब नागरिकों को संपत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार होगा।" और जो उपखंड इस अधिकार पर नियंत्रण रखता है वह उपखंड (5) है, और उसमें यह कहा गया है "उपखंड (घ), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट, न डालेगी......।" इस उपखंड (5) में भी जो इस मूलाधिकार में रूपभेद करता है आप इन अधिकारों में से किसी अधिकार के प्रयोग पर केवल निर्बन्धन लगा सकते हैं।

अत: श्रीमान, यह स्पष्ट है कि हमारे संविधान में निजी संपत्ति के मिटाने की वैसी प्रस्थापना नहीं है जैसी संयुक्त राज्य सोवियत रूस के संविधान में है। संयुक्त राज्य सोवियत रूस ने स्पष्टतया निजी संपत्ति को मिटा दिया है। हमारी समाज का आधार अभी तक पारिभाषिक रूप में कथित अर्थव्यवस्था की पूंजीवादी प्रणाली पर है जिसका यह अभिप्राय है कि संपत्ति व्यक्तियों द्वारा, न कि समस्त लोक द्वारा संधृत है। हमारी प्रणाली इंग्लैंड और अमरीका में प्रचलित प्रणाली के समान है और अमरीका के संविधान में यह स्पष्ट निर्धारित है कि राज्य किसी व्यक्ति की उसके जीवन, स्वातंत्र्य या संपत्ति से विधि की उचित आदेशिका के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है। इंग्लैंड में भी यही बात है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड की वर्तमान समाजवादी सरकार ने जब निजी स्वामियों से खनिजाधिकार अर्जित किये तो उसने खानों का जो मूल्य न्यायालयों ने निश्चित किया उससे अधिक प्रतिकर दिया था।

अत: श्रीमान, उनका समाज निजी संपत्ति के अभिज्ञान पर आधृत है और अर्थ–व्यवस्था की पूंजीवादी प्रणाली पर आधृत है। जिन लोगों की संपत्ति अर्जित की जाती है उनको उचित मूल्य मिलना चाहिये और जो तंत्र इस बात को निश्चित करेगा कि ठीक मूल्य क्या है वह न्यायालय है। अत: श्रीमान, निजी संपत्ति के रूप में संपत्ति के दो महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य सहयोगी बातें यह हैं कि ये अधिकार मूलाधिकार हैं और ये अधिकार निस्संदेह न्याय्य हैं, पर हमको यह अधिकार है कि हम निजी संपत्ति को बिल्कुल ही मिटा दें, जो हमने अभी तक नहीं किया है। यदि निजी संपत्ति को मिटा दिया जाये और लोगों को नि:शुल्क चिकित्सा तथा नि:शुल्क शिक्षा का आश्वासन दे दिया जाये और उनको नौकरी का आश्वासन दे दिया जाये तो बात दूसरी है। समाज की रूपरेखा बदली नहीं है।

[श्री महबूब अली बेग]

आज इस समय जिस बात का मैं प्रयास कर रहा हूं वह यह है कि यद्यपि अनुच्छेद 13 के अधीन और स्वयं इस अनुच्छेद के खंड (1) के अर्थ के अधीन हम निजी संपत्ति अभिज्ञात करते हैं, पर खंड (2) के अधीन जिस बात का हम प्रयत्न कर रहे हैं वह यह है कि हम विधान-मंडल को जो कुछ वह चाहें उतना प्रतिकर मंजूर करने या संपत्ति का मूल्यांकन करने के सिद्धान्त बनाने की शक्ति दे रहे हैं। श्रीमान, अब हमारे समाने यह प्रश्न है कि क्या किसी संविधान के अधीन जिसमें मूलाधिकार निर्मित हैं इस बात की अनुमति है कि देश के विधान-मंडल को उन मूलाधिकारों पर विचार करने, उनको बिगाड़ने तथा उनका न्यूनन करने की शक्ति दी जाये। मेरा निवेदन यह है कि इस अनुच्छेद को उस अध्याय में स्थान मिला है जो मूलाधिकार पर विचार प्रस्तुत करता है। मूलाधिकार वे हैं जो विधान-मंडलों और विशेषकर संसदात्मक लोकतंत्र में पक्षात्मक विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से परे हैं। ज्यों ही वे विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाते हैं त्यों ही वे मूलाधिकार नहीं रहते हैं। अनुच्छेद 24 का जैसा प्रधान मंत्री ने संशोधन किया है उसके अधीन आप जनता को क्या मूलाधिकार दे रहे हैं? वह कुछ भी मूलाधिकार नहीं हैं। यदि मूलाधिकार संबंधी अनुच्छेद के अन्तर्गत इन अधिकारों का वर्णन ही न किया जाता तो अच्छा होता। प्रधान मंत्री के भाषण से जो बात मैंने समझी वह केवल यह है, "हां", आपके अधिकार अभिज्ञात किये जाते हैं" और "जब उनको अर्जित किया जायेगा तो आपको प्रतिकर दिया जायेगा।" "प्रतिकर की राशि जो आप को दी जायेगी वह क्या होगी इसका न्यायालय द्वारा निश्चय नहीं होगा।" सत्य तो यह है कि उसका विधि तथा न्यायालय से कोई संबंध नहीं होगा। प्रतिकर क्या होगा यह विनिश्चय करने की शक्ति वह न्यायालय को सौंप देगा। वह विधान मंडल को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न कहता है। यह कहना अधिक ठीक होगा कि संविधान 'संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न' है। विधान मंडल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका और हम सब पर संविधान का शासन है। किसी विधान मंडल को संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण करने की शक्ति नहीं मिल सकती है। जब तक लोकेच्छा द्वारा संविधान का संशोधन न हो तब तक वह मान्य है।

अतः श्रीमान, संविधान इस रूप में संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है कि जनता संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है और यदि जनता संविधान में परिवर्तन करने के विशिष्ट प्रयोजन से सदस्यों का निर्वाचन करती है तो यह कहना सही है कि वह निकाय जिसे जनता ने संविधान में परिवर्तन करने के लिये निर्वाचित किया है संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है। मूलाधिकार का अतिक्रमण करते हुए विधान-मंडल के संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न होने की बात कदापि ठीक नहीं है। चाहे आप अनुच्छेद 24 के अधीन मूलाधिकार की घोषणा करें या न करें। यदि अनुच्छेद 24 को न तो अधिनियमित किया जाता और न प्रस्थापित किया जाता तो अच्छा होता, तब तो मैं इस बात को समझ सकता था। यदि विधान मंडल कि लिये जैसे चाहे वैसे प्रतिकर देना विधि के अधीन होता तब तो उसका यह अधिकार होता। अतः श्रीमान, यह कहना मिथ्या, असत्य तथा भ्रमात्पादक है कि अनुच्छेद 24 के अधीन हम संपत्ति के अधिकार घोषित कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य यह बात पहले कह चुके हैं।

*__श्री महबूब अली बेग:__ इस कारण जो संशोधन संख्या 482 मैंने पेश किया है उसमें वह प्रस्थापना है कि प्रतिकर देने के विषय में राशि नियत करने को तथा उन सिद्धान्तों के निर्धारित करने को जिनके अनुसार प्रतिकर विनिश्चित किया जायेगा, विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये। यदि यह आवश्यक हो कि किसी भूमि को लोक प्रयोजन के लिये अर्जित किया जाये तो वह यह कहते हुए एक अधिनियम पार करे कि प्रतिकर देकर इस संपत्ति को अर्जित किया जायेगा। प्रतिकर क्या हो, इस विषय पर न्यायालय द्वारा विचार होना चाहिये।

इसके बाद, श्रीमान, खंड (3) के संबंध में एक बात है। मैं यह कह चुका हूं कि राज्य-विधान-मंडल या संघ-विधान-मंडल जो विधि पार करे उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिये। इस खंड के प्रस्थापित रूप में यह कहा गया है 'ऐसी विधि को, राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने के पश्चात्।' मैं यह चाहता हूं कि यह बात स्पष्ट कह दी जाये कि उन सब विधियों को, जिनके द्वारा संपत्ति अर्जित करने का प्रयास किया गया हो, आवश्यक रूप से राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिये।

श्रीमान, खंड (4) के संबंध में मुझे एक शब्द कहना है और वह यह है। प्रधान मंत्री ने आज प्रात:काल यह कहा था कि खंड (1) के अधीन जब तक विधान-मंडल अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे तब तक वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे रखा गया है। संभवत: उनका आशय यह था कि यदि विधान मंडल ऐसा प्रतिकर मंजूर करे जो केवल नाममात्र का ही हो, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। श्रीमान, मेरा प्रश्न यह है। आप उन विषयों में लाभ क्यों नहीं उठाने देते जो खंड (4) के अधीन आते हैं? मैं यह पूछता हैं कि क्या यह उचित है कि एक व्यक्ति जिसको उसकी संपत्ति से वंचित किया गया है उससे यह प्रश्न करने का अवसर भी छीन लिया जाये कि उसे जो प्रतिकर दिया गया है वह केवल नाममात्र का है अथवा वह कानून के प्रति धोखा है? जिस मनुष्य को इस प्रकार से सताया गया है उसे हम न्यायालय में उस विषय को ले जाने के उसके अधिकार से तथा न्यायालय से यह विनिश्चित करने के लिये निवेदन करने से क्यों वंचित करें कि आया वह प्रतिकर नाममात्र का है अथवा आया वह कानून के प्रति धोखा है, जब कि खंड (2) के अधीन इन परिस्थितियों में यह अधिकार दिया गया है? इस कारण यह बहुत ही अयुक्तियुक्त है और जैसा कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव और श्री जसपतराय कपूर ने स्पष्ट कहा है, ऐसी बात विधि के क्षेत्र में नई है, अन्यायपूर्ण, अनुचित तथा विभेदात्मक है। अत: खंड (4) को निकाल देना चाहिये।

खंड (6) के प्रति मेरा संशोधन यह है। जब कुछ स्थानीय विधान मंडलों ने कुछ अधिनियम पार किये थे तो उस समय जो विधि प्रचलित थी वह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 थी। जमींदारी उन्मूलन करने के लिये विधियां अधिनियमित की गई थीं और वह विधि प्रयोज्य थी। मैं यह पूछता हूं कि क्या यह उचित है कि आप उन लोगों को न्यायालय जाने और यह विनिश्चय करने के लिये निवेदन करने से रोकें कि वे अधिनियम शक्ति के अन्तर्गत हैं या बहिर्गत?

[श्री महबूब अली बेग]

इस विषय में भी, जैसा कि मैं कह चुका हूं कि व्यक्ति को खंड (2) के अधीन न्यायालय में यह सिद्ध करने का, कि प्रतिकर केवल नाममात्र का है, जो कुछ भी अवसर था वह भी छीन लिया गया है। मैंने अभी तक कोई ऐसा संविधान नहीं देखा है जिसमें जो अधिकार पहले दे दिये गये हों और जिनको कुछ विधियों के अधीन अधिनियमित कर दिया गया हो उनको जानबूझ कर छीन लिया गया हो। श्रीमान, जैसा मैं कह चुका हूं इस विषय में भी यह बात बहुत अन्यायपूर्ण, अनुचित तथा विभेदात्मक है।

अपने बैठने से पूर्व माननीय मित्र श्री कला वैंकट राव द्वारा कहीं गईं कुछ बातों के प्रति मैं एक शब्द कहूंगा। जिस प्रान्त के वे राजस्व मंत्री थे उसके विधान मंडल से मैं सहमत था कि ज़मींदारी का उन्मूलन किया जाये। उनके मन में इस विचार के आने से पूर्व सन् 1938 में जमींदारी उन्मूलन समिति के सदस्य के रूप में मैंने इस बात का स्पष्ट रूप से समर्थन किया था कि इन जमींदारियों को मिटा दिया जाये क्योंकि वे काल-विरुद्ध हैं और उनसे अब कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। मेरी यह भी धारणा थी कि इन संपत्तियों के स्वामी किसान हों न कि जमींदार। यहां तक मैं उनसे सहमत हूं। पर मैंने देखा कि सन् 1802 से सही या गलत रूप से, मेरे विचारानुसार गलत रूप से, स्थायी बंदोबस्त विनियम 25 द्वारा स्वामित्वाधिकार जमींदारों को सौंपे गये थे।

*__अध्यक्ष:__ इस विषय का लेना आवश्यक नहीं है।

*__श्री महबूब अली बेग:__ मैं केवल बता रहा हूं। मेरे मित्र कला वैंकट राव ने यह गलत कहा कि उस विनियम द्वारा स्वामित्वाधिकार जमींदारों को नहीं सौंपे गये। स्वयं 'सनद मिल्कियत इस्तमरारी' पद का जब अनुवाद किया जाता है तो उसका 'भूमि में स्वामित्व की स्वामी बन्दोबस्ती सनद' अर्थ होता है। केवल अधिनियम द्वारा ही नहीं वरन् जैसा कि मैंने कहा था उस विधान के आधार पर, जो मेरे विचारानुसार गलत पार हुआ था, सर्वोच्च न्यायालय की यह धारणा है कि जमींदार ही स्वामी है। इस आधार पर वय, रहन तथा अन्य प्रकार के बहुत से काम हुए। 150 वर्ष के काल में इन जमींदारों तथा उन लोगों ने जिनको जमींदारों ने अधिकार हस्तान्तरण किये, पृथक् सत्ता के वैध अधिकार प्राप्त कर लिये।

प्रतिकर के प्रश्न पर मैं अपने माननीय मित्र से मतभेद रखता हूं। मैंने कहा था कि प्रतिकर देना चाहिये। उनके तथ्य तथा विधि संबंधी कथन में जो कई असत्य बातें हैं, मैं उनका निर्देश नहीं करना चाहता हूं।

अतः यह प्रश्न कि जमींदारी उन्मूलन करने वाले अधिनियमों में जो प्रतिकर दिया गया है वह न्याययुक्त, ठीक तथा न्यायोचित है या वह केवल नाममात्र का है, इस पर विनिश्चय करना न्यायालय पर छोड़ दिया जाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं जब तक हम समाज की रूप रेखा को पूंजीवादी प्रणाली की समाज से समाजवादी समाज में परिवर्तित नहीं करते हैं जिसमें व्यक्ति संपत्ति का स्वामी नहीं होता है

वरन समस्त लोक या राज्य या सहयोगी अभिकरण स्वामी होता है, तब तक हम इस तथ्य से बाहर नहीं हो सकते हैं कि उचित और ठीक प्रतिकर दिया जाये।

श्रीमान, यह कहने के लिये मैं विवश हूं कि इस विषय में हम बहुत दृढ़ तथा साहसी नहीं है। यदि हम यह समझते हैं कि समाज में परिवर्तन होना चाहिये तो हमें कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिये और साहसपूर्वक तद्नुसार कार्य करना चाहिये। संपत्ति पर इस प्रकार के विचार से हम कठिनाइयों में पढ़ जायेंगे।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपनी बातें दुहरा रहे हैं।

***श्री महबूब अली बेगः** जैसा कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने पूछा था लोक पर और विशेष कर उन लोगों पर, जिनसे हम यह कहते हैं, जिनसे सरकार यह कहती है कि वे कारखानों तथा औद्योगिक उद्यमों में अपना धन लगायें, इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वे ऐसा करने का साहस करेंगे? क्या कोई व्यक्ति अपने धन को किसी उद्यम में लगाने के लिये अग्रसर होगा? वह इसे पढ़ेगा और कहेगा.....।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि आपने पर्याप्त समय से अधिक समय ले लिया है। अब आप समाप्त करिये।

***श्री महबूब अली बेगः** श्रीमान.......।

***माननीय सदस्यगणः** शान्ति, शान्ति।

***अध्यक्षः** संख्या 499 ।

***श्री अजीत प्रसाद जैन** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं उसे पेश करना नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्षः** संख्या 500 ।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जायेः—

'(4) No law making provision as aforesaid shall be called in question in any court either on the ground that the compensation provided for is inadequate or that the principles and the manner of compensation specified are fraudulent or iniquitous.' "

[श्रीमती रेणुका रे]

[(4) उपरोक्त किसी भी उपबंध बनाने की विधि पर किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि जिस प्रतिकर का उपबंध किया गया है वह अपर्याप्त है या प्रतिकर के उल्लिखित सिद्धान्त और रीति में धोखा है या वे न्यायोचित नहीं हैं, आपत्ति नहीं की जायेगी।]

इतनी देर के बाद भी मैं इस संशोधन को पेश करने के लिये विवश हूं क्योंकि हमारे सामने एक बहुत ही वास्तविक तथा सच्ची कठिनाई है। जिस मसौदे पर हम विचार कर रहे हैं उसके खंड (4) और (6) से हमें यह विदित होता है कि संपत्ति के लिये प्रतिकर के विषय का लम्बित विधान या वह विधान जो अधिनियमित किया जा चुका है इनको अन्य प्रकार की संपत्ति पर प्रतिकर से भिन्न आधार पर समझा जायेगा। यदि किसी प्रकार की जमींदारी संपत्ति के लिये किसी अपवाद खंड का रखना आवश्यक हो जाता है—असल बात पर आते हुए इससे आशय यह है कि संयुक्तप्रान्त, मद्रास और बिहार के जमींदारी विधेयक का अपवाद करना है; तो अनिवार्यत: यह निष्कर्ष निकलता है कि जमींदारी संपत्ति के सहित अन्य सब संपत्ति अन्य क्षेत्रों में न्याय्य होनी चाहिये। इसका आशय यह है कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद के प्राधिकार पर न्यायालय द्वारा आपत्ति की जायेगी। मैं जानती हूं कि कुछ वकीलों में इस बात पर मतभेद है। कुछ वकीलों की यह धारणा है कि यद्यपि अन्य प्रकार की संपत्तियों को न्याय्य रूप में शामिल किया गया है, परन्तु न्यायालय संसद के प्रतिकर के सिद्धान्त निर्धारित करने के प्राधिकार पर तब तक आपत्ति नहीं करेगी जब तक कि धोखे का उद्देश्य न हो। कुछ वकील संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के इस विचार का समर्थन करते हैं कि 'प्रतिकर' शब्द का आशय बराबर का मूल्य है। मैं न तो वकील हूं और बाल की खाल खींचने के तर्कों में पड़ने की न मुझ में योग्यता है और न अधिकार ही है, जो कि वकीलों की बड़ी प्रिय वस्तु है, पर इस विषय से अनभिज्ञ होने के नाते मैं यह जानना चाहूंगी कि यह अन्तर क्योंकर किया गया है। क्या यह इसलिये है कि संयुक्तप्रान्त के जमींदारी विधेयक के उपबंधों से धोखे का उद्देश्य प्रकट होता है या उसके उपबंधों के अधीन प्रतिकर नहीं दिया जायेगा? ऐसा क्यों है कि संयुक्तप्रान्त, मद्रास और बिहार के जमींदारी विधेयकों के लिये विशेष उपबंध बनाये गये हैं। जो वकील यह विचार रखते हैं कि यदि धोखे का उद्देश्य नहीं है तो न्याय्यता पर आपत्ति नहीं की जायेगी; यदि वे ठीक हैं तो खंड (4) और (6) का शामिल करना आवश्यक नहीं है। जैसा कि हम देख सकते हैं समस्त वैध परिभाषाओं से विहीन स्थिति यह हो जाती है कि खंड (4) और (6) के अन्तर्गत आई हुई संपत्ति के अतिरिक्त अन्य संपत्तियों के विषय में अन्तिम शब्द संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद का नहीं होगा वरन् न्यायालय का होगा। मैं यह पूछना चाहूंगी कि इस प्रक्रिया के लिये कौन सा न्याय है? और भी अन्य न्याय्य मूलाधिकार है, परन्तु वे अधिकार भी परन्तुकों के अधीन हैं कि यह विधि के प्राधिकार के अधीन है। उदाहरणार्थ, भाषण तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार, निरायुध स्वतंत्रता से एकत्रित होना, संस्थाओं या संघों का निर्माण करना—इन सबके लिये परिसीमायें हैं जिनके कारण वे संसद के अधिकार के अधीन आ जाते हैं। 1947 में ऐसा क्या न्याययुक्त प्रमाण है जिससे हम संपत्ति को एक बहुत ही भिन्न आधार पर रख सकते हैं? पंडित नेहरू ने आज प्रात:काल अपने भाषण में कहा गया था कि

संपत्ति की विचारधारा की परिवर्तनशील है। संपत्ति के साथ सटी हुई अक्षुण्णता अब नहीं रही है। आज जब कि हम इस विषय को विनिश्चित कर रहे हैं तो हमें इस पर इस प्रकार विनिश्चय करना चाहिये कि संसद का ही प्राधिकार सर्वोच्च होगा और समस्त कालों के लिये रूढ़ गत हित का निर्धारण हमें नहीं करना चाहिये।

यह सत्य है कि संसद कभी कभी शीध्रता में विधान पार कर देती है। ठीक है, उसके लिये हमारे पास द्वितीय आगार है जैसा कि पंडित जी ने आज प्रात:काल बताया था। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद का खंड (3) है जो राष्ट्रपति को—केन्द्रीय सरकार को अन्तिम शक्ति प्रदान करता है। क्योंकि किसी ऐसे विधान के प्रवर्त्तन में आने से पूर्व राष्ट्रपति को उस पर अनुमति देनी होगी। मैं समझती हूं कि यहां जो रक्षा कवच हैं वे वास्तव में पर्याप्त हैं। हमारा यह काम नहीं है कि हम ऐसे उपबंध रखें कि जिनके कारण न्यायालय द्वारा भिन्न-भिन्न निर्वचन किये जायें। जब कि कुछ वकीलों में ही भिन्न-भिन्न निर्वचन हो सकते हैं तो उन निर्वचनों की संख्या पर विचार करिये जो भिन्न-भिन्न न्यायालयों द्वारा भिन्न-भिन्न विनिश्चयों के रूप में हमारे सामने आयेंगे। जैसा कि मैंने पहले कहा था यह वास्तव में वकीलों की प्रिय वस्तु होगी और मुकदमेबाजी और भी अधिक फैल जायेगी।

***अध्यक्षः** आप इस बात को पुष्ट कर चुकी हैं।

***श्रीमती जी. रेणुका रे:** संपत्ति के अपहरण का प्रश्न नहीं है। राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण का प्रश्न वास्तव में आज नहीं उठ रहा है। ये बातें तो इस विषय को अस्पष्ट बनाने के लिये उठाई गईं हैं। सरकार अपनी आर्थिक नीति निर्धारित कर चुकी है। उस नीति में सिवाय जमींदारी संपत्ति के उन्मूलन के किसी भी प्रकार के राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण का समावेश नहीं है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, क्या आपके द्वारा मैं वक्ता से यह जान सकती हूं कि यदि इस प्रकार नियत किया गया प्रतिकर कपटमय है तो क्या उनका इरादा यह है कि इसे फिर भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाये?

***श्रीमती रेणुका रे:** मैं यह कहती हूं कि यह कौन विनिश्चय करेगा कि क्या कपटमय है? क्या संयुक्तप्रान्त का जमींदारी विधेयक या उसमें नियत किया गया प्रतिकर आज कपटमय है, और यदि वह नहीं है तो हम एक अपवाद खंड का उपबंध क्यों कर रहे हैं। इस कारण मैं कहती हूं कि इस विषय में संसद को ही सर्वोच्च शक्ति होनी चाहिये और इस आधार पर भी कि वह कपटमय है संसद के विनिश्चयों पर आपत्ति करना न्यायालय पर नहीं छोड़ा जा सकता है। न्यायालय तो यह भी विनिश्चित कर सकता है कि आधा मूल्य तक देना कपटमय है। जब तक यह संशोधन शामिल नहीं किया जायेगा तब तक उसे ऐसा करने से रोकने के लिये कोई बात नहीं है।

जैसा कि मैंने कहा था वादहेतुओं में अस्पष्टता हो गई है। संपत्तिहरण करने का प्रश्न प्रस्तुत कर दिया गया है। इस समय संपत्तिहरण का कोई प्रश्न नहीं है और मैं नहीं समझती हूं कि भावी संसद में भी जब तक संविधानिक प्राधिकार

[श्रीमती रेणुका रे]

है, जब तक उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है, बिना प्रतिकर दिये संपत्तिहरण का प्रश्न कभी उठे। यहां तक कि वे लोग भी, जो एक नवीन आर्थिक रूप रेखा चाहते हैं और जो वर्तमान अर्थव्यवस्था को शनैः शनैः एक नवीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में विश्वास करते हैं जिसमें आर्थिक न्याय्य का प्रचलन है, यह नहीं चाहते हैं कि निराश्रितों और निर्धनों के एक नये वर्ग का निर्माण किया जाये। राज्य के लिये एक नया उत्तरदायित्व पैदा करना न तो हम चाहते हैं और न भावी सरकार चाहेगी। अतः न वर्तमान और न भावी संसद बिना प्रतिकर के संपत्तिहरण करेगी क्योंकि उनका उद्देश्य धन के विषम विभाजन में कमी करना होगा न कि किसी ऐसे नये वर्ग का निर्माण करना जो राज्य के लिये चिन्ता का विषय बने।

*__अध्यक्षः__ आशा करता हूं कि अब आपने भाषण समाप्त कर दिया।

*__श्रीमती रेणुका रेः__ मुझे एक या दो बातें ही और अधिक कहनी हैं।

*__अध्यक्षः__ और अधिक बातें या और अधिक शब्द?

*__श्रीमती रेणुका रेः__ और अधिक बातें, श्रीमान। आज के भाषणों में एक और प्रश्न जो उठाया गया है वह यह है कि वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस खंड को मसौदे में रखना हमारे लिये आवश्यक है। श्री हिम्मतसिंहका ने यह प्रश्न किया था कि यदि आप इस विषय पर पूंजीवादियों का समाधान नहीं करते हैं तो उत्पादन में किस प्रकार वृद्धि होगी। मैं यह कहती हूं कि पूंजीवादियों को हम सुविधाओं पर सुविधायें देते हुए चले जा रहे हैं पर फिर भी उत्पादन में अब तक कोई वृद्धि नहीं हुई है। राष्ट्र के लिये पूंजी तथा उत्पादन वृद्धि का विषय आज एक बहुत ही आवश्यक विषय है। यदि पूंजीवादी इसके अनुसार नहीं चलते हैं तो इस लक्ष्य के लिये हमें साधन खोजने पड़ेंगे। यदि वे इस कार्य में सहायक नहीं होते हैं तो हम उनके धन के आसरे नहीं बैठे रहेंगे पर मैं यह नहीं समझ पाती कि इस अनुच्छेद का इस बात से क्या संबंध है। यह कोई ऐसा उपबंध तो नहीं है जो विधान मंडल के किसी अधिनियम में सन्निविष्ट किया जा रहा हो पर यह तो एक ऐसी बात है जिसे भविष्य के स्थायी संविधान के लिये हम विचार कर रहे हैं।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व मैं यह बताना चाहूंगी कि यदि हम संविधानिक उपचारों को नहीं रखेंगे, यदि हम भविष्य को शृंखला में जकड़ देंगे तो एक समय ऐसा आयेगा जब अतिरिक्त संविधानिक उपचारों की शरण ली जायेगी और उस समय इस संविधान को रद्दी कागज के समान समझा जायेगा।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू से विशेषकर बहुत ही निवेदन करूंगी, जो सबसे अधिक आर्थिक न्याय तथा सामाजिक न्याय में विश्वास करते हैं, कि वे मेरे संशोधन को स्वीकार करें और खंड (4) के स्थान में मेरे संशोधन को रखें। मसौदा समिति से मैं निवेदन करती हूं कि यदि उसमें कोई मतभेद

है तो यह संशोधन उसे मिटा देगा। यदि उसका यह विश्वास है कि इस उपबंध का आशय न्याय्यता नहीं है तो मेरे संशोधन पर उसकी क्या आपत्ति हो सकती है?

अन्त में मैं इस सभा से निवेदन करती हूं कि हम कोई ऐसी बात स्वीकार न करें जिसके बारे में हमारी सन्तति यह कहे कि अन्य समस्त अधिकारों की अपेक्षा संविधान में रूढ़गत स्वार्थों के भरने में हमारी रुचि तथा चिन्ता अधिक रही। उन्हें यह कहने का अवसर न दीजिये कि संपत्ति अधिकार ही एकमात्र मूलाधिकार था जिसके प्रति हमने बहुत ही उत्कंठा प्रकट की क्योंकि इस रीति से अनुच्छेद 24 का सन्निवेश कर उसी अधिकार को हमने दुहरा आश्वासन दिया–हम यह न भूलें कि किसी भी आर्थिक अधिकार को मूलाधिकारों में सन्निविष्ट नहीं किया गया है—अन्य सब निदेशकों में भविष्य के लिये पवित्र आशाओं के रूप में हैं।

*__अध्यक्ष:__ श्री सिद्धावीरप्पा; संख्या 502।

*__बेगम ऐजाज रसूल__ (संयुक्तप्रान्त: मुस्लिम): श्रीमान, क्या मैं आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित कर सकती हूं कि इस समय सवा सात बज चुके हैं और हमें बैठे हुए सात घंटे से भी अधिक हो चुका है? अभी ऐसे वक्ता बहुत हैं जो इस महत्वपूर्ण विषय में भाग लेना चाहते हैं। अत: क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकती हूं कि सभा की अनुमति लेने के पश्चात् सोमवार तक के लिये आप इस वाद-विवाद को स्थगित करें और सोमवार को फिर आरम्भ करें?

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): जी नहीं, हममें से अधिकांश व्यक्ति इस विषय को आज ही समाप्त करना चाहते हैं।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि जमींदारों को पूर्ण प्रतिकर नहीं मिल सकता है, तो कम से कम उन्हें अपनी पूरी बात तो कह लेने दीजिये।

*__सरदार हुकम सिंह__ (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): हां, उन्हें अपनी अन्तिम सांसें और आहें तो भर लेने दीजिये।

*__श्री देशबन्धु गुप्त__ (दिल्ली): श्रीमान, क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि साधारण वाद-विवाद सोमवार तक के लिये स्थगित किया जाये और संशोधन पर वाद-विवाद आज समाप्त कर दिया जाये?

*__श्री एच.वी. कामत:__ मेरा सुझाव है कि हम आज रात को दस बजे व्यालू के पश्चात् समवेत हों।

*__अध्यक्ष:__ मेरा इरादा आज इस अनुच्छेद को समाप्त करने का था और इस इरादे को मैंने सभा के समक्ष कई बार प्रकट किया था और मैंने यह भी चाहा था कि भाषण देते समय वक्ता भी इस बात का विचार रखें। पर दुर्भाग्यवश जब वक्ता अपने संशोधनों पर विचार प्रकट कर रहे हैं और जब वे विषय के अन्तर्गत हैं, तो उनको रोकना मेरे लिये संभव नहीं है। इस कारण मैं उन्हें न रोक सका

[अध्यक्ष]

और जितना समय मैंने सोचा था उससे अधिक समय लग गया। अब कुछ सदस्यों ने यह सुझाव दिया है कि मैं सोमवार तक के लिये स्थगित कर दूं। इस विषय पर मैं सभा के विचार जानना चाहूंगा।

("स्थगित करो" तथा "स्थगित न करो" की पुकार)

सभा में (हाथ उठाकर) मत विभाजन हुआ।

पक्ष में : 48

विपक्ष में : 47

*__श्री श्यामानंदन सहायः__ श्रीमान, कुछ भ्रम हो गया। मैंने समझा कि जो लोग इस अनुच्छेद को सोमवार को रखना चाहते हैं वे इस समय हाथ उठायें।

*__अध्यक्षः__ सभा में लगभग बराबर मत हैं। 48 स्थगन के पक्ष में और 47 विपक्ष में।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि मुझे इस मतदान के निर्वचन करने की आज्ञा है तो इस मतदान का अर्थ यह हुआ कि इस सभा का एक वृहदांश स्थगन चाहता हैं हमने अपेक्षाकृत बहुत ही कम महत्वों के विषयों पर बहुत अधिक समय तक वाद-विवाद किया है। आजकल हम दो सत्र कर रहे हैं। परन्तु एक बड़े ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद के वाद-विवाद को हम बहुत शीघ्र समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं केवल इसलिये कि द्वितीय पठन लगभग 17 सितम्बर को समाप्त हो जाये। क्या यह इतना महत्वपूर्ण प्रयोजन है कि ऐसे वाद-विवाद पर अधिक समय देने की अपेक्षा इस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये हम किसी भी सीमा तक चले जायें?

*__अध्यक्षः__ सभा सोमवार प्रातःकाल नौ बजे तक के लिये स्थगित की जाती हैं।

इसके पश्चात् सभा सोमवार ता. 12 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.32.49
320

अंक 9
संख्या 32

सोमवार
12 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 24 और भाग 14-क (भाषा) पर विचार] .... [1973–2112]

भारतीय संविधान सभा

सोमवार, 12 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 24—*(जारी)*

***अध्यक्ष:** अब हम शेष संशोधनों को लेंगे।

***श्री एच. सिद्धावीरप्पा** (मैसूर राज्य): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के अन्त में यह व्याख्या जोड़ दी जाये:—

'*Explanation.*—The provisions of this clause shall not refer to the system of land tenure called Ryotwari anywhere in the Union including the Indian States.' "

[*व्याख्या.*–इस खंड के उपबन्ध देशी राज्यों के सहित संघ में कहीं भी रैयतवारी के नाम की भूमि लगानदारी की प्रणाली को निर्दिष्ट नहीं करेंगे।]

बहुत संक्षेप में मैं उन कारणों की व्याख्या करूंगा, जिन्होंने मुझे यह संशोधन रखने के लिये प्रेरित किया है। मैं इस बात से अपरिचित नहीं हूं कि मद्रास और बिहार में जमींदारी मिटाने के अधिनियम रैयतवारी प्रथा का निर्देशन नहीं करते हैं। संयुक्तप्रान्त के विधान-मण्डल में लम्बित विधेयक भी वास्तव में रैयतवारी प्रथा पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता है।

श्रीमान, जैसा कि आपको विदित है, रैयतवादी प्रथा के अधीन भूमि का स्वामी स्वयं कृषक ही होता है, चाहे वह स्वयं खेती करे या मजदूरों की सहायता से खेती कराये। राज्य और उसके बीच में अन्य कोई अभिकर्त्ता नहीं है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो जमींदारी प्रथा के समान बिना परिश्रम किये आय पाता हो। यदि आप खंड (4) को देखेंगे, तो आपको विदित होगा कि वह संयुक्तप्रान्त के लम्बित विधेयक की ओर ही निर्देश नहीं करता है, वरन् ऐसे किसी भी विधेयक

[श्री एच. सिद्धावीरप्पा]

की ओर निर्देश करता है, जो इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व किसी राज्य के विधान-मंडल में प्रस्थापित किया जायेगा।

कुछ लोगों का, जिनके अपने कुछ प्रिय सिद्धांत हैं, यह विश्वास है कि लगानदारी के प्रकार पर बिना विचार किये सब प्रकार की भूमियों का राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं इस सभा के दो माननीय सदस्यों द्वारा पेश किये गये संशोधन संख्या 385 और 391 की ओर निर्देश करूंगा। यह देखा गया होगा कि रैयतवारी प्रथा के अधीन थोड़ी-थोड़ी भूमि पर स्वामित्व है और दाय विधि की मिताक्षर प्रणाली के अनुसार भूमियां और भी अधिक छोटी-छोटी टुकड़ियों में बंटती चली जा रही हैं। इन टुकड़ियों के लिये भूमि सुधार की कोई और ही प्रणाली अपेक्षित है। जिन संशोधनों की ओर मैंने अभी निर्देश किया है, अर्थात् संशोधन संख्या 385 और 391, इनकी शैली को आप यदि ग्रहण करेंगे, तो यह भी हो सकता है कि किसी राज्य का अति उत्साही विधानमंडल इन रैयतवारी भूमि के नाम की भूमियों के लिये भी विधान बना दे। इसके लिये चेतावनी देने और ख्याल रखने के लिये मैंने यह संशोधन पेश किया है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह वर्णन कर दूं कि संशोधन संख्या 504 शाब्दिक है और संशोधन संख्या 505 से सम्बन्धित है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) में से 'save as provided in the next succeeding clause' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (1) के स्थान में यह उपखंड रखा जाये:

'(a) The provisions of any existing law other than a law to which the provisions of clause 6 of this article apply, or' "

[(क) उस विधि के अतिरिक्त जिस पर इस अनुच्छेद के खंड (6) के उपबन्ध लागू होते हैं, अन्य किसी वर्तमान विधि के उपबन्ध, अथवा]

यदि सभा इस मूल प्रस्ताव को देखे, जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया था, तो उसे यह विदित होगा कि खंड (5) में 'आगामी अनुवर्ती खंड में उपबंधित रीति के अतिरिक्त अन्य कोई बात इत्यादि इत्यादि' शब्द थे। 'आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त अन्य कोई बात' दोनों उपखंड (क) और उपखंड (ख) पर लागू होते हैं। पर वह उपखंड (ख) पर लागू होने के उद्देश्य से नहीं

है और इस कारण यह आवश्यक नहीं है कि वह उपखंड (क) में रखा जाये। संशोधन संख्या 504 का उद्देश्य यह है कि खंड (5) को पहली पंक्ति में से इन शब्दों को हटाकर इस परित्राण खंड को उपखंड (क) में स्थानान्तरित किया जाये।

यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है और मैं नहीं समझता हूं कि इसकी और अधिक व्याख्या करने में मैं सभा का समय लूं।

मैं एक और विषय का वर्णन करूंगा, जो यदि मुझे इस प्रकार से व्यक्त करने की आज्ञा हो तो, मैं यह कहूंगा कि वह एक मुद्रण त्रुटि है। वह यह है। खंड (1) में 'प्रतिकर निश्चित किया जायेगा' शब्दों के पश्चात् 'और दिया जायेगा' शब्द छूट गये हैं। मैं आशा करता हूं कि तृतीय पाठ में अथवा किसी उपयुक्त समय में 'और दिया जायेगा' शब्द स्वीकार कर लिये जायेंगे।

*__अध्यक्षः__ इस प्रकार के संशोधन हैं।

*__श्री के.एम. मुन्शीः__ मैं संख्या 506 को पेश नहीं करना चाहता हूं।

*__श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 360 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) The Parliament may by law in case the social and economic condition so necessitate, provide for the socialization of any class of property on such terms and conditions as provided in the law.' "

[(7) यदि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक है, तो संसद विधि द्वारा ऐसे निबन्धों और शर्तों पर सम्पत्ति की किसी श्रेणी का सामाजीकरण करने के लिये उपबन्ध करेगी, जैसे उस विधि में उपबन्धित हों।]

मेरे संशोधन से चार बातें पैदा होती हैं। सर्वप्रथम निर्बन्धनों की कोई न्यायता नहीं है। दूसरी बात यह है कि प्रतिकर का कोई जिक्र नहीं हैं। मेरी तीसरी बात उस समय की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में है। चौथी सामाजीकरण है। अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे में अथवा उसके खंड (6) में इन चारों में से एक भी बात नहीं आती है।

पहली बात अर्थात् न्याय्यता के सम्बन्ध में मैं निवेदन करता हूं कि मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन द्वारा उद्धृत सांविधानिक उपबन्धों की बड़ी सूची के होते हुये भी ये उपबन्ध ऐसे समय में विधि पुस्तकों में आये, जब कि संपत्ति का अर्थ आज के अर्थ से भिन्न था। अनेक अन्य बातों के अर्थ के समान सम्पत्ति का पुराना

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

अर्थ किसी ऐसी वस्तु से था, जो अपनी सत्ता रखती हो, जो स्थायी हो, परन्तु वर्तमान अर्थ किसी ऐसी वस्तु से है, जो अस्थायी हो। प्राचीन स्मृति शास्त्र ने संसार को जो कुछ दिया, वह एक गतिहीन न्याय विज्ञान था और आधुनिक संसार ने गतिमान न्याय विज्ञान दिया। जैसा माननीय प्रधान मन्त्री ने कहा था, सम्पत्ति का आज कल अर्थ आकलन, प्रामीसरी नोट और प्रतिभूतियों से है, चांदी और सोने से उतना नहीं है; स्त्री और बच्चों से उसका अर्थ नहीं है।

सम्पत्ति का आधुनिक अर्थ प्रक्रियात्मक है: उसके द्वारा किये गये कार्य से है, उसकी गतिविधि से है। आप सम्पत्ति को अपने घर में जमा करके नहीं रख सकते हैं अथवा बिना इस बात के विचारे कि उससे कोई प्रयोजन सिद्ध हो रहा है या नहीं, कोई प्रकार्य या कार्य हो रहा है या नहीं, आप उसको हमेशा अपने कब्जे में नहीं रख सकते हैं। सम्पत्ति का पुराना अर्थ आज कल नहीं माना जा सकता है। अत: दो बातें पैदा होती हैं। समाज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में संपत्ति का क्या प्रकार्य, कार्य अथवा स्थान है? दूसरी बात यह है कि जो व्यक्ति संपत्ति पर कब्जा रखता है, वह उस संपत्ति से क्या करता है? यदि वह सम्पत्ति किसी प्रकार्य या कार्य करने में सहायक नहीं होती है और समाज की परिवर्तनशील व्यवस्था तथा परिवर्तनों में कोई स्थान नहीं रखती है, तो वह सम्पत्ति कुछ नहीं है। वह निरर्थक है ओर उस पर सम्पत्ति के रूप में कोई दावा नहीं कर सकता है। अत: जब कि यह कहा जाता है कि इस समय अन्धकार है, प्रकाश नहीं है और हर एक बात की आलोचना की जाती है, तो मैं सम्मानपूर्वक यह निवेदन करूंगा कि रात्रि में भी, जब कि प्रकृति में अन्धकार छाया रहता है, प्रकाश तब भी रहता है, पर वह प्रकाश आपको दिखाई नहीं देता है, क्योंकि आप अपने चहुं ओर के वातावरण से आंखें बन्द किये हुए होते हैं।

अत: मेरा आदरपूर्वक यह निवेदन है कि श्री नज़ीरुद्दीन के इस विचार में, कि प्रतिकर और न्याय्यता को लगभग सब स्मृति शास्त्रों में स्थान दिया गया है, कोई बल नहीं है, क्योंकि सम्पत्ति का अर्थ बदल गया है, परिस्थिति बदल गई है, हालत बदल गई और समाज गतिहीन दशा से—केवल स्थान और सत्ता की स्थिति, जो पहले थी, उससे बदल कर गतिमान हो गया है—और पुराने अर्थ वर्तमान परिस्थितियों में ठीक नहीं हैं; यहां तक कि अमरीका के बहुत से संपत्ति के विषय में जागरूक व्यक्तियों ने, जो 1936 तक कुछ पुरानी विचारधाराओं, धारणाओं और विधि के उदाहरणों को माने हुए थे, 1936 से उसमें परिवर्तन कर दिया है। उदाहरणार्थ, न्यूनतम मजूरी विधेयक जैसे विधेयक, कारखानों में काम करने के घंटों से सम्बन्ध रखने वाली बातें, कल्याणकारी अधिनियम और अन्य अनेक बातें, जिनको कभी अमान्य तथा अमरीका के सांविधानिक विधि के विरुद्ध समझा जाता था, उनको 1936 के बाद से मान्य समझा गया है। और भी बहुत सी बातें इसी प्रकार से मान्य समझी जाने लगेंगी, क्योंकि जो

न्यायाधीश उनका निर्वचन करते थे बदल गये हैं और समय परिवर्तन के साथ-साथ संपूर्ण विचारधारा ही बदल गई है।

अभी मैं जर्मनी के 1919 के संविधान के उपबन्ध को प्रस्तुत करूंगा। उसमें एक अनुच्छेद 155 है। उसमें कहा गया है:

"राज्य द्वारा भूमि का वितरण तथा प्रयोग इस प्रकार किया जायेगा कि उसका दुरुपयोग न हो सके और प्रत्येक जर्मन तथा समस्त जर्मन कुटुम्बों के लिये स्वच्छ निवास स्थान का सुनिश्चियन हो सके; विशेषकर उनके लिये, जिनके बहुत से बच्चे हैं, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार रहने के लिये कम खर्च का गृह हो। जिन लोगों ने युद्ध में भाग लिया है, उनके विषय में गृह संबंधी विधियों के निर्माण करने में विशेष विचार किया जायेगा।

गृह निर्माण की आवश्यकता की पूर्ति के लिये, अथवा भू-परिमाप के प्रयोजन के लिये। भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये, कृषि और पशुपालन के सुधार के लिये जब अपेक्षित होगा, तब भू-सम्पत्ति का हरण किया जा सकेगा। धार्मिक न्यास समाप्त कर दिये जायेंगे।

सम्प्रदाय के प्रति भू-स्वामी का यह कर्तव्य है कि उसकी भूमि में खेती हो और उसका पूर्ण उपयोग हो, भूमि पर परिश्रम न करके अथवा धन न लगा कर जो भू-संपति के मूल्य में वृद्धि होगी, उसका सम्प्रदाय के लिये प्रयोग किया जायेगा।"

प्रोधोन ने अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में संपत्ति के इस अर्थ का प्रतिपादन किया था कि उन पदार्थों को प्राप्त करने का प्रत्येक नागरिक को अधिकार—मूल अधिकार है, जो जीवित रहने के लिये उसकी आवश्यकताओं के उत्पादन के लिये आवश्यक हैं। मैं अमरीका के संविधान पर एक पुस्तक से उद्‌धृत करता हूं, आप जानते हैं, यह संविधान संपत्ति के विषय को न्याय्य बनाता है और उसमें यह नहीं कहा गया है कि विधि संबंधी न्यायालय का इस विषय में अन्तिम आदेश होगा, वरन् यह कि प्रतिकर का सम्पूर्ण विषय न्यायालय के क्षेत्राधिकार से पृथक् किया जा सकता है। उसमें यह कहा गया है "जब गैर सरकारी सम्पत्ति लोक अथवा अर्धलोक प्रयोजन के लिये ली जाती है, संविधान के अनुसार यह आवश्यक है कि उसके स्वामी को 'उचित प्रतिकर' दिया जाये। पर इस प्रतिकर को किस प्रकार निश्चित किया जाता है? प्रथा यह है कि सरकारी पदाधिकारी सर्वप्रथम स्वयं मूल्यांकन करते हैं और जो वे उचित समझते हैं, वह स्वामी को देने के लिये कहते हैं। अधिकतर स्वामी उस मूल्य को अस्वीकार करते हैं और अधिक पाने के लिये कहते हैं। और फिर सौदा तय करने की साधारण रीति के अनुसार एक समझौता किया जाता है, अथवा कोई समझौते की रकम तय की जाती है। परन्तु यदि इस

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

प्रकार से स्वामी को उतना नहीं मिलता है, जितना वह उचित प्रतिकर के रूप में समझता है, तो वह न्यायालय में अपील करता है।" "आगे जो कुछ कहा गया है, वह महत्वपूर्ण है। "परन्तु यह एक प्रशासनीय न्यायाधिकरण द्वारा भी विनिश्चित किया जा सकता है, जिसकी तथ्य के प्रश्नों के सम्बन्ध में नियमित न्यायालयों में कोई अपील नहीं हो सकती, बशर्ते कि किसी उचित प्रशासनीय कार्य प्रणाली का अनुसरण किया गया हो।" आप इस बात पर ध्यान देंगे कि यदि किसी उचित प्रशासनीय कार्यप्रणाली का अनुसरण किया गया है, तो तथ्य के प्रश्नों के संबंध की अपील न्यायालय में नहीं हो सकती है।

अत:, श्रीमान, नागरिक के लिये अनिवार्य रूप में श्री नज़ीरुद्दीन द्वारा जिस पवित्र अधिकार की मांग की गई है अर्थात् यह कि प्रतिकर के लिये मुकद्दमा चलाने का अधिकार हो, तो यद्यपि उस बात को विधि पुस्तकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, पर संसार में यह बात अब कहीं भी वर्तमान नहीं है। व्यवहार में किसी के लिये अब यह संभव नहीं है कि वह खड़ा होकर यह कहे "यह मेरी भूमि है, मैं इसे नहीं छोडूंगा। चाहे जो कुछ हो, यह मेरे पास ही रहेगी।" चाहे उसकी आवश्यकता उन बच्चों के लिये चिकित्सालय बनवाने के लिए हो जो क्षय रोग से पीड़ित हैं। आधुनिक संसार में कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं रख सकता है।

प्रतिकर के संबंध में मैं निवेदन करना चाहता हूं कि सम्पत्ति मनोवृति पर निर्भर करती है। आप संपत्ति का तब तक ही उपभोग कर सकते हैं, जब तक कि समाज इस संपत्ति पर आपका अधिकार रहने दे, जब तक कि समाज आपको उसका उपभोग करने दे। संपत्ति पर अधिकार सामाजिक परिस्थितियों द्वारा परिसीमित है। मेरा जो आशय है, उसे मैं एक उदाहरण द्वारा व्यक्त करूंगा। मान लीजिये, आप कोई पद धारण किये हैं। आप अपने कार्यालय नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक कि राज्य आपके लिये परिवर्तन का प्रबन्ध न करे। और आप अपने काम पर भी तब तक नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक कि सामाजिक परिस्थितियां आपकी सहायक न हों और परिवहन के सेवक आपके लिये प्रिरिश्रम न करें। यदि सामाजिक परिस्थितियां आपके अनुकूल न हों, तो आप अपनी संपत्ति से कुछ भी पैदा नहीं कर सकते हैं। यदि आपके पड़ोसी न चाहें, तो आप इस संपत्ति पर अधिकार भी नहीं रख सकते हैं और यदि समाज आपको सम्पत्ति का उपभोग नहीं करने देता है तो आप उसका उपयोग नहीं कर सकते हैं। अत: संपत्ति की मनोवृति आपके चारों ओर के सामाजिक परिवर्तनों से प्रतिबन्धित एक सामाजिक मनोवृति है। अत: जब कोई सम्पत्ति किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये अपेक्षित है, तो आप उस संपत्ति के प्रतिकर के लिये अपने निबन्धन नहीं रख सकते हैं। प्रतिकर से आशय समस्त जनता की इच्छा है। यदि समाज यह नहीं चाहता है कि आप संपत्ति पर अधिकार रखें, तो आप अधिकार नहीं रख सकते हैं। आप इसको अनाचार नहीं कह सकते

हैं क्योंकि संपत्ति स्वयं अपने स्वरूप में एक सामाजिक मनोवृति है और इसी कारण आदिकाल से ऐसी बात चली आ रही है कि आपसे महान् कोई भी मनुष्य आप की संपत्ति पर अधिकार कर सकता है। मध्ययुग में वह व्यक्ति बादशाह होता था और आधुनिक युग में यह महानता जनता की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता में निहित है। अत: संपत्ति नाम की ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिस पर आप दावा कर सकें और प्रतिकर के लिये अपने निबन्धन रख सकें। उचित प्रतिकर इस बात पर निर्भर करता है कि उस संपत्ति का क्या प्रयोग होता है और उससे क्या प्रकार्य किया जा सकता है।

*अध्यक्ष: क्या मैं माननीय सदस्य को यह याद दिला सकता हूं कि इस बात पर अन्य कई वक्ताओं ने जोर दिया है?

*श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा: श्रीमान, उचित प्रतिकर संबंधी विषय को मैंने समाप्त कर दिया है। तीसरी बात, जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूं, वह सामाजिक और आर्थिक दशा है। श्रीमान, यह एक नया पद है, जिसका मैंने प्रयोग किया है। किसी में भी खड़े होकर यह कहने की सामर्थ्य नहीं है कि मैं यह करना चाहता हूं और यह नहीं, क्योंकि सामाजिक बल इतना अधिक है कि समाज जो चाहता है, वह उससे करा लेता है, चाहे उसकी इच्छा न हो। वह परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है, वह नहीं कर सकता है। आज कल मनुष्य से वह काम करा लिया जाता है, जो स्वयं उसकी इच्छा के विरुद्ध हो और उसे ऐसे स्थान को ले जाया जाता है, जहां जाने की उसकी इच्छा नहीं है। समय बदल रहा है। शक्तियां वैयक्तिक स्वेच्छा पर प्रभाव डाल रही हैं। अत: ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं कि कोई व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार काम नहीं करा सकता अथवा जैसा चाहता है, वैसा नहीं कर सकता है अथवा जो कुछ नहीं करना चाहता है उसके करने से मना नहीं कर सकता है। उन्नति के इस सामूहिक आन्दोलन के मार्ग में समाज के वर्ग तक नहीं टिक पाते हैं। ऐसा होने के कारण कोई भी व्यक्ति उस संपत्ति के विषय में अपने निबन्धन नहीं रख सकता है, जिसको अवाप्त किया जाता है अथवा जो प्रयोग उसका किया जाता है, उसके बारे में भी कोई शर्त नहीं रख सकता है। जन शक्ति और सामाजिक शक्ति का यह सामूहिक प्रभाव है, जो इस मार्ग में की समस्त कठिनाइयों को दूर करेगा।

अत: मैं समस्त देश की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों पर जोर देना चाहता हूं। समाज का एक छोटा-सा भाग, चाहे वह शासक हो या विधान मंडल, जो कुछ सामाजिक और आर्थिक बलों की मांग है, उसके विरुद्ध अपने निबन्धन नहीं रख सकता है। अत: मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप अपनी आंखें बन्द करके यह न कहें कि हमको अंधकार दिखाई देता है। अंधकार तो आपको इसलिये दिखाई देता है कि आपने अपनी आंखें बन्द कर ली हैं। ये सामाजिक शक्तियां कहीं न

[श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा]

कहीं अपना काम कर रही हैं। परिस्थिति की वास्तविकता को पहचानिये। कोई भी मनुष्य यह कल्पना नहीं कर सकता है कि कुछ काल पश्चात् ही वह कहां होगा। आप यह भी कल्पना नहीं कर सकते हैं कि आप जहां हैं, वहां भी रहेंगे या नहीं।

अतः हमें समय के अनुसार चलना चाहिये। यदि हम समय के अनुसार नहीं चलेंगे, तो उसका अर्थ होगा निष्क्रियता और मृत्यु और हम विपत्ति को आमंत्रित करेंगे। जो लोग समय के साथ नहीं चलते है वे ही यह कहते हैं कि उनके चारों ओर अंधकार है, उनके चारों ओर कदाचार है और पवित्रता कहीं भी नहीं है। अनादि काल से परिवर्तन होते चले आये हैं, उलटफेर होते रहे हैं, क्रान्तियां हुई हैं और जो लोग परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको नहीं बना सके उनका नाश हो गया। परिवर्तन होगा और अवश्य होगा। और जो लोग संपत्ति की पवित्रता की पुकार कर रहे हैं तथा ऐसी ही अन्य बातों की पुकार कर रहे हैं, उनका नाश हो जायेगा।

***अध्यक्षः** आप अन्य वक्ताओं की बातों को नहीं, वरन् अपनी बातों को भी दुबारा कह रहे हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्माः** श्रीमान, मेरी धारणा यह है कि सामाजिक और आर्थिक दशाओं में परिवर्तन होता है और हमें समय के अनुसार चलना चाहिये। एक बात और कहनी है, श्रीमान।

***अध्यक्षः** आपको अभी कुछ और बातें भी कहनी हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्माः** समाजीकरण को केवल स्पर्श करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** इस प्रश्न पर कई भाषण हो चुके हैं और कई संशोधन आ चुके हैं।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्माः** पर समाजीकरण को किसी सदस्य ने छुआ तक नहीं है।

***अध्यक्षः** तो अन्य विषयों की अपेक्षा, जिनको पहले लिया जा चुका था, आप इसी विषय पर भाषण देते।

***श्री कृष्ण चन्द्र शर्माः** मुझे खेद है, श्रीमान, पर मैं बहुत ही संक्षेप में बोलूंगा। मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि हमारे लोकतंत्रात्मक गणराज्य होने के कारण जिसमें कि सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता जनता में निहित कर दी गई है, जनता को यह अधिकार होगा कि वह सम्पत्ति का जो चाहे सो करे। आरम्भ में संपत्ति एक सामूहिक वस्तु थी। बाद में जैसे जैसे विकास हुआ और खेती होने लगी, भूमि पर वैयक्तिक अधिकार होने लगा और वह उस व्यक्ति विशेष की संपत्ति हुई, जिसने झाड़ियों को साफ किया और उस भूमि को कृषियोग्य बनाया; इसी कारण वह

उसका स्वामी हो गया। अब चूंकि खेती और उत्पादन के तरीके बदल गये हैं समाज के हित में, राज्य के हित में, यह अच्छा है कि संपत्ति फिर सामूहिक वस्तु हो जाये। सामाजिक उन्नति के हित में, वातावरण के अनुसार यह ठीक है कि संपत्ति—यदि परिस्थितियां यही चाहती हैं, तो वैयक्तिक वस्तु के बजाय—वैयक्तिक अधिकार में होने के बजाय—समाज के अधिकार की वस्तु हो जाये। श्रीमान, मैं अपना प्रस्ताव पेश करता हूं।

*__अध्यक्षः__ कार्यावली में जो संशोधन दिये हुए थे, वे सब समाप्त हो चुके हैं। प्रस्थापना और संशोधनों पर अब वाद-विवाद हो सकता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि संशोधन संख्या 504, जिसे श्री मुंशी ने पेश किया है, वह मेरे संशोधन संख्या 425 में आ जाता है?

*__अध्यक्षः__ आ सकता है, उनसे पेश करने के लिये कहने की मैंने गलती की। अब प्रस्थापना और संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ संशोधन संख्या 504 ठीक वैसा ही है, जैसा कि संशोधन संख्या 425।

*__श्री कामेश्वर सिंह (दरभंगा के)__ (बिहार : जनरल): श्रीमान, संविधान के इस बहुत ही महत्वपूर्ण मद पर मुझे अपने विचार प्रकट करने का अवसर देने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। इस अनुच्छेद में वह सिद्धान्त निहित है और यह अनुच्छेद उस कार्यप्रणाली को निर्धारित करता है, जिसके अनुसार जब कि गैर सरकारी संपत्ति को लोक प्रयोजनों के लिये अवाप्त करना आवश्यक समझा जायेगा, तो राज्य द्वारा उसको अवाप्त किया जायेगा।

मेरे हृदय को बड़ा धक्का लगा, जब मैंने अपने प्रधान मंत्री जैसे महान व्यक्ति तथा माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर, श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर, श्री के.एम. मुंशी और संयुक्तप्रान्त के मुख्य मंत्री जैसे विधि के शास्त्रियों और संविधान के विशेषज्ञों द्वारा प्रस्थापित संशोधन को पढ़ा।

मैं यह समझ पाता हूं कि इतने महान व्यक्तियों ने इस प्रस्थापना में क्यों साथ दिया कि यदि इस संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् यदि कोई जाप्ती का कानून पारित किया जाता है, तो वह न्याय्य है; जब कि यदि ऐसी कोई विधि इस संविधान के प्रारम्भ के पूर्व लम्बित है या पारित हो चुकी है, तो वह न्याय्य नहीं है। सभा से और प्रस्तावक महोदय से मैं यह पूछता हूं कि वह स्वयं विचार करें कि क्या इस प्रकार का अन्तर उचित और ठीक है।

न्यायालयों से इन दो प्रकारों के विधानों का अपवर्जन करके क्या इस संशोधन के लेखक महोदय ने यह नहीं मान लिया है कि इस विधान के उपबन्ध इतने

[श्री कामेश्वर सिंह]

अन्यायपूर्ण और अनुचित हैं कि वे न्यायालय की जांच पड़ताल के सामने नहीं टिक सकते हैं? वास्तव में संशोधन के खंड (4) और (6) इस अनुच्छेद में दिये हुए सामान्य सिद्धान्त के अर्थ और भाव का विरोध करते हैं और मूलाधिकार समिति की उन सिफारिशों को अस्वीकार करते हैं, जो इस सभा ने स्वीकार कर ली हैं और जो संविधान के मसौदे में समाविष्ट कर दी गई हैं। ये खंड प्रशासी प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किसी जाप्ती के कानून तक को बिना किसी विरोध के चलने देना चाहते हैं और जनता के एक वर्ग को उस रक्षण से वंचित करते हैं, जो संविधान द्वारा अन्य व्यक्तियों को प्राप्त है। क्या इतनी महान सभा को यह शोभा देता है कि इस प्रकार के असमान भेदभावों का पुरःस्थापन कर वह उन सिद्धान्तों को तिलांजलि दे और उस भवन को कुरूप बना दे जिसके निर्माण करने का प्रयास न्याय, स्वातन्त्र्य, समानता और भ्रातृत्व रूपी चार स्तम्भों पर किया जा रहा है? हम जानते हैं कि संविधान कुछ मूलाधिकारों की समस्त नागरिकों के लिये प्रत्याभूति करता है और उन अधिकारों के रक्षण के लिये एक न्यायालय का सृजन करता है। तो फिर क्या यह इस देश के उस सर्वोच्च न्यायिक न्यायाधिकरण में भी विश्वास का अभाव प्रकट नहीं करता है, जिसकी स्थापना विधि पालन के लिये की गई है? मुझे विवश होकर यह कहना पड़ता है कि मुझे आशा न थी कि इतने महान व्यक्ति, जिनका इस संशोधन से सम्बन्ध है, वे ऐसी प्रवृत्ति ग्रहण करेंगे।

अभी उस दिन ही तो भारत के मुख्य राज्यपाल ने देश की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में न्यायपालिका के कर्तव्यों के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था:—

"विधि के निष्पक्ष निर्वचन द्वारा और मनुष्य में तथा राज्य और प्रजा में स्वतंत्र रूप से ठीक न्याय करके ही न्यायपालिका लोकतंत्र के झंडे को ऊंचा रखती है और इस देश के निर्धन से निर्धन व्यक्ति में यह विश्वास उत्पन्न कराकर ही लोकतंत्र का झंडा ऊंचा रह सकता है कि उसके प्रति किये गये अन्याय का निराकरण किया जायेगा और उसकी न्याययुक्त शिकायतों को दूर किया जायेगा।"

सभा ने यह ध्यान दिया होगा कि इस संशोधन के खंड (4) और (6) सताये हुए पक्ष को न्यायालय में जाने के अधिकार से वंचित करते हैं और इस प्रकार कार्यपालिका के प्राधिकारी को एक स्वेच्छाचारी की स्थिति में रखते हैं।

मैं यह चाहूंगा कि सभा इस बात को समझे कि जिस संविधान को हम आत्मार्पित कर रहे हैं, उसमें निहित सिद्धान्त वैयक्तिक स्वातंत्र्य के अधिकार की प्रत्याभूति करते हैं और वह उन साधारण अधिकारों और तर्क पर आश्रित हैं, जो कि समस्त लोकतंत्र का मूल सिद्धान्त है। तो फिर क्या इस प्रकार का भेदभाव, जिसको इस

संशोधन द्वारा पुर:स्थापित किया जा रहा है, साधारण अधिकारों और तर्क के अनुरूप है? क्या यह उन परिस्थितियों द्वारा पैदा हुए डाह और ईर्ष्या से युक्त नहीं है, जो परिस्थिति की अब बदल गई है?

मैं यह जानता हूं कि कांग्रेस पक्ष, जिसका सभा में भारी बहुमत है, जमींदारी प्रथा को मिटाने के लिये वचनवद्ध है, परन्तु समान रूप से वह उचित प्रतिकर देकर ही ऐसा करने के लिये वचनबद्ध है। अपने वचन के प्रथम भाग का पालन करने में, न्यायपालिका में प्रतिकर के निश्चयन के विषय को जाने से रोककर— राज्य विधान मंडल द्वारा शक्ति का दुरुपयोग कर क्या वह अपने वचन के दूसरे भाग के पालन करने से विमुख नहीं हो रही है? जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं कहा था "या तो संसद स्वयं प्रतिकर नियत करती है या प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धान्त नियत करती है और सिवाय एक बात के उसका विरोध नहीं करना चाहिए। जहां यह समझा जाये कि विधि का बहुत अधिक दुरुपयोग किया गया है और जहां कि वास्तव में संविधान का उल्लंघन किया गया है, तो संभवत: न्यायपालिका का वहां यह देखने के लिये पदार्पण हो जाता है कि संविधान का उल्लंघन हुआ है या नहीं।" परन्तु जहां तक लम्बित विधान और आधुनिक अधिनियमों का संबंध है, इस संकीर्ण प्रयोजन के लिये भी न्यायपालिका का द्वार बन्द कर दिया गया है। मैं विनम्र निवेदन करता हूं कि यह भेदभाव बहुत ही अनुचित है।

और इसके पश्चात् खंड (4) और (6) (यद्यपि इतने अधिक शब्दों के द्वारा नहीं वरन् वास्तव में) जमींदारी सम्पत्ति और अन्य प्रकार की संपत्तियों में मद्रास, बिहार और संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में विभेद करते हैं और यदि प्रान्तों को ऐसी इच्छा है, तो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व उनको जाप्ती के विधान अधिनियमित करने के लिये गुंजाइश की व्यवस्था करते हैं। वास्तव में संशोधन का पूर्वगामी प्रभाव है और वह भारत शासन अधिनियम की धारा 299 के न्याय अधिकारों तक का हरण करता है। यह संशोधन एक बहुत ही कलुषित सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह कलुषित है, क्योंकि यह वास्तविक रूप में एक प्रकार की गैर-सरकारी संपत्ति का दूसरे प्रकार की गैर-सरकारी संपत्ति में विभेद करता है। यह कलुषित है, क्योंकि यह भारतीय संघ के नागरिकों के एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग से भिन्न प्रकार का बर्ताव करता है। यह कलुषित है, क्योंकि गैर-सरकारी संपत्ति का परोक्ष रूप से हरण करने की मंजूरी देता है। इस संशोधन के समर्थकों से मैं विनम्र निवेदन करूंगा कि वे संविधान में इस कलुषित सिद्धान्त का पुर:स्थापन न करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो आज हम कुछ लोगों का जो दुर्भाग्य होगा वह समस्त देश का दुर्भाग्य हो सकता है। कांग्रेस संगठन ने महान् तथा उच्च सिद्धांतों पर अपना उच्च निर्माण किया है। देश का भाग्य उसके हाथों में है और उसे महान कर्त्तव्य करने हैं और बड़ा भारी उत्तरदायित्व अपने कंधों पर वहन करना है। इस संशोधन

[श्री कामेश्वर सिंह]

के प्रस्तावक महोदय से मैं आग्रह करूंगा कि सभा से वे कोई ऐसा कार्य न करायें, जो उस महान संगठन द्वारा अंगीकृत सिद्धान्तों का हनन करे या अपने सिद्धान्तों के पालनार्थ जो प्रतिज्ञा उसने की है, उसके विरुद्ध वह कार्य हो।

***अध्यक्षः** मैं देखता हूं कि चारों तरफ कुछ ऐसी फुसफुसाहट हो रही है, जिससे मैं समझता हूं कि जितनी बाधा मुझे यहां हो रही है, उतनी ही माननीय सदस्यों को हो रही होगी और मैं सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे वाद विवाद का कार्य इस प्रकार से चलने दें, जिससे कि उसमें सब को रुचि हो।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय प्रधान मंत्री ने जिस रूप में अनुच्छेद 24 पेश किया है, उस रूप में उसका समर्थन करते हुए मैं कुछ शब्द कहने के लिये सभा से क्षमा मांगता हूं, केवल इस कारण कि इस अनुच्छेद में आई हुई कुछ बातों के संबंध में मैं माननीय प्रधान मंत्री से सदैव एकमत नहीं रहा हूं और अब मैंने उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट हृदय से स्वीकार कर लिया है।

(इस समय अध्यक्ष महोदय ने आसन रिक्त किया और उसके पश्चात् उपाध्यक्ष महोदय श्री वी.टी. कृष्णमाचारी ने वह आसन ग्रहण किया।)

धारा 199 के पद 'payment' (देना) ने, जिसको संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में रखा गया है, कुछ कठिनाई पैदा की है कि वह कुछ क्षेत्रों में व्यक्त किये गये इस विचार का समर्थन करता है कि 'देना' शब्द में राज्य में प्रचलित सिक्के के रूप में देने का अर्थ निहित है न कि हुंडी के रूप में और संभवतः किस्त के रूप में भी नहीं, वरन् संपत्ति के अनिवार्य अर्जन पर तुरंत मुआविजा देने के रूप में। खंड (2) जिस रूप में सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया है उसमें 'देने' का कोई उल्लेख नहीं है, क्योंकि 'देने' पद में निर्वचन संबंधी कुछ कठिनाई पैदा हो गई हैं। अब जो अनुच्छेद का मसौदा बनाया गया है उसमें केवल यह उपबन्धित किया गया है कि जिस संपत्ति पर अधिकार किया जाता है, या जिस संपत्ति को अर्जित किया जाता है, उसके प्रतिकर के लिये विधि में व्यवस्था होनी चाहिये। इस बात को सभा द्वारा पारित की गई समवर्ती सूची की प्रविष्टि 35 के साथ लेने से, जो संबद्ध विधानमंडल को मुआविजा देने की रीति उपबन्धित करने का अधिकार देती है, इस विषय के सब प्रकार के सन्देहों का निराकरण हो जाता है कि प्रतिकर उसी समय राज्य के प्रचलित सिक्के में दिया जाये या नहीं।

खंड (2) का दूसरा भाग जिस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है वह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 में और अनुच्छेद 24 मूल मसौदे में, जो सारवत्

रूप में धारा 299 की प्रतिलिपि मात्र है, 'प्रतिकर' पद के अर्थ पर हुआ है। एक ओर इस बात पर जोर दिया गया है कि 'प्रतिकर' शब्द में ही यह बात आ जाती है कि वह अर्जन करने की तारीख में जो संपत्ति का मूल्य है, उसके बराबर होना चाहिये, अर्थात् बाजार भाव के बराबर। दूसरी ओर से इस बात पर जोर दिया गया है कि जिस रूप में यह खंड है, उसे उसी रूप में मानते हुए जो उस सिद्धान्त के उल्लेख करने वाली विधि की ओर निर्देश करता है, जिसके अनुसार तथा जिस रीति से प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, वह उस सिद्धान्त बनाने के विषय में, जिसके अनुसार तथा जिस रीति से प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, विधान मंडल को स्वतंत्रता देता है। प्रसंग में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि धारा 299 में और। अनुच्छेद 24 में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह उस भाषा के समान नहीं है जिसका प्रयोग अन्य संविधानों में उचित प्रतिकर देकर संपत्ति के अनिवार्य अर्जन संबंधी उपबन्धों में प्रयोग किया गया है। उचित शब्द को जिसे अमरीका और आस्ट्रेलिया के संविधानों में स्थान दिया गया है, धारा 299 और अनुच्छेद 24 में से निकाल दिया गया है। आस्ट्रेलिया और अमरीका के संविधानों में उस सिद्धान्त और रीति का भी कोई निर्देश नहीं है, जिसके द्वारा प्रतिकर निश्चित किया जायेगा। स्वयं अपने रूप में ही सब प्रकार के अर्जन के लिये एक सा नहीं हो सकता है। सिद्धान्त बनाते हुए विधान मंडल को अनिवार्यत: संपत्ति के प्रकार पर, इतिहास और उपभोग पर, विधान के एक वृहद् जन समुदाय पर पड़ने वाले प्रभाव पर तथा अन्य ऐसी ही बातों पर ध्यान देना होगा। आगे एक और भी बात है कि अनुसूची 7 में समवर्त्ती सूची की प्रविष्टि 35 को सभा द्वारा पारित कर विधानमंडल को प्रतिकर के सिद्धान्तों और रीति के बनाने की पूर्ण शक्ति दे दी गई है।

संविधानिक विधि का यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि संविधान के उपबन्धों के अधीन किसी विशेष विषय पर विधि पारित करने की शक्ति जब विधान मंडल को दे दी जाती है—चाहे वह विधान मंडल केन्द्रीय संसद हो अथवा प्रान्तीय विधान मंडल हो विधान मंडल के अधिनियम पर निर्णय करना न्यायालय का काम नहीं होता है। न्यायालय अपने आप को विधान मंडल से बड़ा नहीं समझ सकता है और पुनर्विचार अथवा पुनर्विलोकन न्यायालय के रूप में वह विधानमंडल के अधिनियम पर निर्णय नहीं दे सकती है। विधानमंडल चाहे बुद्धियुक्त कार्य करे अथवा बुद्धिहीन कार्य करे। विधान मंडल द्वारा निर्मित सिद्धान्त किसी न्यायालय को उपयुक्त प्रतीत हो या न हो। सामान्यतया न्यायालय कार्य विधान मंडल द्वारा अपनी शक्तियों के अन्तर्गत अधिनियमित की गई विधि का प्रशासन करता है। हां, यदि विधान में किसी कृत्रिम उपाय का सहारा लिया गया है, यदि वह विधायी शक्ति की सीमाओं को अतिक्रमण करने की कोई युक्ति है अथवा निजी विधि की भाषा में यदि वह शक्ति का कपटमय प्रयोग है, तो न्यायालय उस विधान को अमान्य तथा अधिकार

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

से बाहर का विधान घोषित कर सकता है। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि वह विधान अधिकार के अन्तर्गत है। किसी संविधानिक विधि को नगरपालिका के अधिनियम के समान नहीं माना जा सकता है और विधानमंडल इस अत्यधिक शक्ति के अन्तर्गत, जो उसे सौंपी गई है, किसी भी विधान का अधिनियमन कर सकती है। जैसा कि मैं बता चुका हूं, इस सभा द्वारा पारित कर दिये गये मद 35 के समान मद भारत शासन अधिनियम, 1935 में नहीं है, जो विधानमंडल को प्रतिकर के सिद्धान्त को बनाने की शक्ति प्रदान करता हो और अनुच्छेद 24 की किसी भी रचना में यह एक महत्वपूर्ण बात है, जिस पर विचार करना होगा। मैं यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद के सभा द्वारा विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने के पूर्व ही मैंने अपने विचार औपचारिक रूप में माननीय प्रधान मंत्री के समक्ष प्रकट कर दिये थे। अनुच्छेद 24 के मुख्य भाग पर जो विचार मैंने प्रकट किये थे, उनमें इस बात पर जोर दिया गया था कि खंड (2) और (3), जो प्रकटतया संयुक्तप्रान्त सभा में इस समय लम्बित विधान के सम्बन्ध में रखे गये थे, वे अनावश्यक हैं। पर यह सोचा गया कि इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि बहुत अच्छे प्रकार से सोची समझी गई सम्मति स्वयं अपने रूप में कोई ऐसी प्रत्याभूत नहीं हो सकती है कि देश की सर्वोच्च न्यायालय उससे भिन्न अर्थ न निकाले तथा इस समस्या के गुरुत्व के कारण समस्त सम्बद्ध व्यक्तियों के सर्वोत्तम हित में यह वांछनीय समझा गया कि मुकदमेबाजी को समाप्त किया जाये और इस अनुच्छेद में खंड (2) और (3) के समावेश करने का यही कारण है।

जैसाकि मैं बता चुका हूं, खंड (2) और (3) मुख्यत: संयुक्तप्रान्त के उसके उस विधान के संबंध में रखे गये थे, जो इस समय संयुक्तप्रान्त सभा में लम्बित हैं और वे इस संविधान के पारित होने के बाद तक चलते रहेंगे। ये दो खंड...

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** खंड (4) और (6) होना चाहिये, न कि खंड (2) और (3)।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** इसके लिये मैं आपका आभारी हूं।

ये दो खंड राष्ट्रपति के विचार के लिये विधेयक को रोकने और राष्ट्रपति को अपने निर्णय का प्रयोग करने तथा उस उपक्रम पर अपनी अनुमति देने के लिये उपबन्ध करते हैं। राष्ट्रपति से यह आशा की जाती है कि वह इस बात पर ध्यान दें कि वह विधेयक अनुच्छेद 24 की मुख्य योजना के अनुरूप है और यदि उस विधेयक में उन सिद्धान्तों का पालन नहीं किया गया है, जो विधान द्वारा विचार किये गये विषय के प्रकार के लिये समुचित प्रतिकर के सम्बन्ध में है, तो उससे यह आशा नहीं की जाती है कि उस विधेयक पर वह अपनी अनुमति दे। इस

प्रसंग में तथा इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति की अनुमति केवल औपचारिक अनुमति नहीं है। यदि उसे इस बात का समाधान हो जाता है कि उस विधेयक में उस रूप तथा उस सीमा तक का न्याय नहीं है जिसका मैंने उन लोगों के स्वामित्व अधिकार के संबंध में संकेत किया है, जिनको संपत्ति से वंचित किया जायेगा, तो उसका यह स्पष्ट कर्तव्य होगा कि अनुमति न दे। न्यायालय में इस विषय पर मुकदमेबाजी होने के स्थान में तथा जनता के उस एक बड़े भाग को ध्यान में रखते हुए, जिस पर इस विधान का प्रभाव पड़ेगा और भिन्न-भिन्न न्यायालयों में मुकदमा होने से जो विलम्ब, कष्ट, व्यय और दु:ख उन्हें उठाना होगा, राष्ट्रपति की अनुमति के फल के रूप में इस विधान को अन्तिम प्रभाव दिया गया है। संयुक्तप्रान्त के विधेयक से मैं पूर्णतया परिचित नहीं हूं और उस उपक्रम की न्याय्यता पर अथवा अन्यथा कुछ कहने की स्थिति में मैं नहीं हूं। खंड में एक विधेयक की ओर निर्देश किया गया है, क्योंकि यह आशा की जाती है कि सामान्यतया वह विधेयक विधि के रूप में पारित नहीं होगा। वरन् जब तक कि नया संविधान पारित नहीं होता, तब तक वह लम्बित रहेगा, यह हो सकता है कि एक इस प्रकार का समुचित उपबंध संक्रांति कालीन उपबंधों में रखना पड़े कि यदि कोई विधेयक इस संविधान के पारित होने की तारीख तक लम्बित है, तो उसको नये संविधान के प्रवर्तन में आने के बाद भी किया जायेगा तथा जारी रखा जायेगा।

अन्तिम खंड स्पष्टतया मद्रास संपदा उन्मूलन अधिनियम तथा बिहार अधिनियम पर विचार करने के उद्देश्य से है। इस अधिनियम की मान्यता के विरोध में सूचनायें दी जा चुकी हैं। मद्रास सरकार द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के अनुसार भी यह अधिनियम वास्तव में कई बातों में अधूरा है और संभवत: दोषपूर्ण है। मद्रास सरकार ने जो स्थिति ग्रहण की है, वह यह है कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसको यह प्राधिकार है कि वह कई संपदाओं को सूचित करे और बिना किसी प्रतिकर के दिये हुए उन पर अधिकार करे। सरकार की ओर से यह कहा जाता है कि इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन परिमाप और बन्दोबस्त समाप्त होने के पश्चात् तक प्रतिकर देने में वह अपनी इच्छा के अनुसार समय लगायेगी, जिसमें संभवत: कई वर्ष लगेंगे। उन संपदाओं पर अधिकार करने के समय सरकार ने प्रतिकर का कोई अंश तक नहीं दिया है और यह कहा जाता है कि उसको यह परामर्श दिया गया है कि वह जमींदारों द्वारा यह समझौता करने पर भी, कि जो राशि दी जाती है, उसका हिसाब अन्त में जो कुछ प्रतिकर निश्चित किया जाये, उसमें से कर लिया जाये, वह प्रतिकर नहीं दे। अधिनियम में यह उपबन्ध किया गया है कि प्रतिकर देने संबंधी कुछ विषय के नियम बनाये जायें और समाचार पत्रों में यह प्रकाशित हुआ था कि जिस समय मद्रास के इस विधेयक पर अनुमति दी गई थी, तो वह इस आधार पर थी कि यथासंभव शीघ्र नियम बना दिये जायेंगे

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

और वे नियम मुख्य राज्यपाल के समक्ष रखे जायेंगे। मद्रास सरकार के विचार के अनुसार इन नियमों का न बनना तुरन्त ही संपत्ति पर अधिकार करने के मार्ग में आड़े नहीं आ सकता है।

समाचार पत्रों से मुझे विदित होता है कि इस अधिनियम की मान्यता के विरोध में मुकदमा चलाने की सूचना कई जमींदारों ने दी है। यदि इन परिस्थितियों में विधि को अपनी रीति के अनुसार क्रियान्वित होने दिया जाये और यदि इन लोगों को जिन पर प्रभाव पड़ेगा, मुकदमा चलाने दिया जाये, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस बात पर अन्तिम निश्चय होने तक वर्षों लग जायेंगे और फिर न्यायालयों के मुकदमों के निर्णयों के बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। एक न्यायालय, सरकार के पक्ष में निर्णय करे, दूसरा न्यायालय जमींदार के पक्ष में निर्णय करे। अध्यक्ष द्वारा प्रमाणपत्र का उपबन्ध करके खंड (6) भविष्य में इन सब मुकदमेबाजी को समाप्त करने के उद्देश्य से है। मुकदमेबाजी का बहुत से लोगों पर प्रभाव पड़ने का विचार करते हुए, कृषि के भविष्य और अपने प्रान्त में कृषि उन्नति का विचार करते हुए जिस रूप में खंड (6) माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है, उसका मैं पूर्ण समर्थन करता हूं। कई बार मैंने मद्रास के इस विधेयक के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये हैं और मैं यह भी कह दूं कि मैं भी एक छोटा-मोटा जमींदार हूं, जिस पर मद्रास के इस विधान का भारी प्रभाव पड़ेगा। यदि केवल पारिभाषिक दृष्टिकोण से इस विषय पर विचार किया जाये, तब तो उचित रीति यही होगी कि भारतीय शासन विधि, 1935 की धारा 299 का समुचित रूप में संशोधन किया जाये या मद्रास विधान मंडल द्वारा पारित की गई विधि को प्रणाली के अनुसार चलने दिया जाये, जब तक कि पुनर्विचार का अन्तिम न्यायालय इसका निश्चय न करे। पर मैंने सोचा कि माननीय प्रधान मंत्री ने सरकार को राष्ट्रपति से इस विषय में स्पष्टीकरण करा लेने का जो यह खंड पेश किया है, वह मुकदमेबाजी का अन्त कर देगा। राष्ट्रपति तभी प्रमाणपत्र देगा तथा दे सकेगा, जब कि उपबन्धों को जांच लेने के पश्चात् उसे यह समाधान हो जाये कि वह विधेयक संविधान के उपबन्धों के अनुकूल है और जिन जमींदारों पर प्रभाव पड़ेगा, उनको उचित तथा ठीक प्रतिकर यथा संभव शीघ्रता से दिया जा रहा है और इस विषय के समस्त पहलुओं पर विचार करते हुए, जो उस संपत्ति से संबंध रखते हैं, जिससे उनको वंचित किया जा रहा है, वह प्रमाणपत्र देगा। यदि राष्ट्रपति किसी संशोधन का सुझाव देता है और सरकार तथा संबद्ध विधान मंडल उस संशोधन को स्वीकार करना नहीं चाहती है, तो राष्ट्रपति का यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वह प्रमाणपत्र को रोक ले और फिर उस विषय का न्यायालय में निर्णय होगा। मैं नहीं समझता हूं कि उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण कोई भी मंत्रिमंडल किसी भी बताये गये दोष को शीघ्रता के साथ इस सरल रीति से दूर करने के स्थान में लम्बी मुकदमेबाजी करके उस विषय का निश्चय कराना चाहेगा। इस पूर्ण विश्वास और आशा के

साथ कि सद्भावनापूर्ण वातावरण होगा और सरकार इस विषय में उचित तथा व्यापक विचारधारा ग्रहण करेगी, मैं प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत किये गये खंड का समर्थन करता हूं।

माननीय प्रधान मंत्री ने जिन सामान्य पहलुओं को लिया था, उन पर कुछ शब्द कहूंगा। यद्यपि मेरा पेशा वकालत है पर मैं इस बात का दावा कर सकता हूं कि मैंने कानूनी दृष्टि से कानून का कभी अध्ययन नहीं किया। मेरे विचार के अनुसार यदि विधि अपने विशालतर प्रयोजन को सिद्ध करना चाहता है, तो उसका सामाजिक विकास के यंत्र के रूप में उपयोग करना चाहिये। हमारे पूर्वजों ने संपत्ति को ही अन्तिम लक्ष्य कभी नहीं समझा था। संपत्ति धर्म के लिये है।

(इस समय अध्यक्ष ने शासन ग्रहण किया।)

समाज के प्रति व्यक्ति का क्या धर्म है, क्या कर्तव्य है, यही बात हमारे सामाजिक भवन की आधारशिला थी। धर्म समाज-कल्याण की विधि है और युग के अनुसार उसमें परिवर्तन होता है। पूंजीवाद की जो प्रथा पश्चिम में प्रचलित है, उसका विकास औद्योगिक क्रान्ति से हुआ और वह हमारी सभ्यता के मूलभूत विचारों के प्रतिकूल है। संपत्ति का एकमात्र लक्ष्य यज्ञ है और सामाजिक प्रयोजनों के लिये उपयोग है, यह वह विचार है, जो महात्मा गांधी के जीवन और शिक्षाओं का मूल मंत्र है। इस दृढ़ आशा में कि यह संशोधन इस देश के करोड़ों कृषकों की सामाजिक उन्नति को और अधिक गति प्रदान करेगा, मैं माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत की गई प्रस्थापना का पूर्ण हृदय से समर्थन करता हूं।

*__श्री श्यामानंदन सहाय__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, कुछ घबराहट के साथ मैं यहां खड़ा होता हूं, क्योंकि मुझे यह विश्वास नहीं है कि आज मेरे विचारों का यहां किस रूप में स्वागत किया जायेगा।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसकी आप चिंता न करें।

*__श्री श्यामानंदन सहाय:__ पंडित बालकृष्ण शर्मा के होते हुए भी इस सभा की बुद्धिमानी, चातुरी और दक्षता में मुझे पर्याप्त विश्वास है कि इस समय सभा में जो विषय विचाराधीन है, उस पर मुझे अपने स्वतंत्र तथा स्पष्ट विचार प्रकट करने में बाधा न होगी।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ मैं माननीय सदस्य को केवल प्रोत्साहित कर रहा था।

*__श्री श्यामानंदन सहाय:__ श्रीमान, अनेक रूप में यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि यह संशोधन माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया गया है, इस रूप में दुर्भाग्यपूर्ण है कि किसी उद्देश्य को प्राप्त करने में तथा किसी ऐसी प्रस्थापना को मान लेने में, जो चाहे उनके विचार के प्रतिकूल ही क्यों न हो, समस्त उपचारों और ऐश्वर्य की झूठी प्रतिष्ठा को तिलांजलि देने का गुण उनमें विद्यमान है और कुछ इस रूप में भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो प्रस्थापना मैं आपके समक्ष रख रहा हूं, उसके बराबर का पलड़ा वास्तव में बहुत ही भारी कर दिया गया है। अतः मुझे इस कमी के

[श्री श्यामानंदन सहाय]

साथ-साथ आगे बढ़ना है पर यह आशा है कि मेरे निवेदनों पर उपयुक्त क्षेत्रों में यथोचित विचार किया जायेगा। यद्यपि इस समय सभा में पंडित जी उपस्थित नहीं हैं, पर मैं समझता हूं कि उन्होंने इस काम की बागडोर एक और योग्य व्यक्ति संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध के प्रधान मंत्री के हाथ में सौंप दी है। मैं उनसे विशेष रूप में निवेदन करूंगा कि सभा में मैं जो थोड़ी सी बातें रखूं, उन पर वे विचार करें और उतना विचार करें, जितना विचार करना उन पर उचित है।

निजी संपत्ति, परिवर्तित परिस्थितियां, काल का प्रभाव और जो शक्तियां हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, उनके बारे में सभा में काफी कहा जा चुका है। मैंने उन बातों को बड़े आदर और ध्यान से सुना है। पर उनकी विवरण पूर्ण आलोचना किये बिना मैं इस सभा में यह कहूंगा कि निजी संपत्ति पर अधिकार का अभिज्ञान एक ऐसी वस्तु है, जिसका विकास समाज के विकास के साथ-साथ हुआ। वह कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो कि यकायक आकाश से टपक पड़ी हो, वरन तथ्य तो यह है कि पुराने समय में निजी संपत्ति पर अधिकार का अभियान शक्ति से ऊपर न्याय के सिद्धान्त का अभिज्ञान था। मित्र लोग शायद मुझसे सहमत न हों। मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि इस वाद-विवाद में मैं आपका अधिक समय लूं, जो कि इस समय एक दकियानूसी विषय हो गया है। परन्तु यदि मैं इस तथ्य का आप लोगों पर जोर न डालूं कि वास्तव में यह विषय इतना सरल नहीं है, जैसा कि कुछ आलोचक समझते हैं और यहां खड़े होकर कहते हैं कि निजी संपत्ति के सिद्धान्त का भंडा फोड़ हो चुका, तो मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाऊंगा। चाहे हम इस बात को चाहें या न चाहें, चाहे हम उसे स्वीकार करें या न करें, पर यह बात तो है ही कि यदि आप संपत्ति पर एक अविचारणीय विषय के रूप में विचार करते हैं, तो आप वास्तव में 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' के सिद्धान्त को फिर से ग्रहण करते हैं। एक समय यह लाठी शारीरिक बल के रूप में थी और आज वह जन बल के रूप में है।

मैं इस बात में पूरा विश्वास करता हूं कि उत्पादन के साधनों का समाजीकरण इस विकासमय रीति के लिये एक निश्चित स्थिति है। यह होना चाहिये। मेरा झगड़ा तो केवल उन लोगों से है: जो विकासमय रीति से उसे बाहर निकालना चाहते हैं और क्रांति द्वारा उसे लाना चाहते हैं। मैं उन रीतियों को नहीं मानता हूं, जो शीघ्रता से इसको इस रूप में क्रियान्वित करना चाहती है। कभी-कभी मेरे समाजवादी मित्र नवयुवकों के समान शीघ्रता में कार्य करना आरम्भ कर देते हैं, जिसमें केवल गाड़ी से छूट जाने का ही भय नहीं रहता है, वरन् यह भी भय रहता है कि उत्सव में सम्मिलित न हो सकेंगे। इस बात को विनिश्चित करने के लिये बड़ी योग्यता की आवश्यकता है कि समाज के ढांचे में इस महत्वपूर्ण परिवर्तन को करने के लिये उचित अवसर कौन सा है। यदि पूर्ण परिपक्व होने से एक दिन पूर्व ही आप आम तोड़ लेते हैं, तो आप उसकी मिठास, सुबास और स्वाद से वंचित

हो जाते हैं, चाहे आपको इस बात का संतोष हो जाये कि आम आपके पास है और आपने उसे खा भी लिया है। मैं इस बात का दावा करता हूं कि उत्पादन के समस्त साधनों के समाजीकरण तथा राष्ट्रीयकरण के महान कदम उठाने का अभी समय नहीं है। समाजवादी सिद्धान्त के कुछ महानतम विचारकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि इसके पूर्व कि आप समाजवादी रीतियों और उत्पादन के समाजवादी साधनों को अंगीकार करें, व्यक्तिगत प्रयत्न पूर्ण पराकाष्ठा तक पहुंच जाना चाहिये।

मैं अपने प्रत्येक मित्र से, अपने उस सच्चे मित्र से जिसे नारा नहीं बल्कि देश प्यारा है, यह पूछता हूं कि क्या हमने वास्तव में इतनी उन्नति कर ली है कि हम देश की संपत्ति का वितरण कर सकें। यदि आज हम वितरण आरम्भ कर दें, तो माननीय प्रधान मंत्री, इस संशोधन के प्रस्तावक महोदय के शब्दों में—हम केवल अपनी निर्धनता का ही वितरण कर सकेंगे, क्योंकि हमारे पास केवल यही (निर्धनता) सम्पत्ति है। इसका अन्तिम विश्लेषण मनुष्य को ही एक मात्र आधार मानकर करना चाहिये और कोरे मनुष्य को ही नहीं, वरन् अपने मनोवैज्ञानिक विचारों से युक्त मनुष्य को। यदि आप निजी संपत्ति के बढ़ाने की प्रेरणा को मिटा देंगे, तो आप मनुष्य को अन्ततः यंत्रवत् बना देंगे। आरम्भ में शायद आपको कुछ फल मिले, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह काल की कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा। जिन देशों में इस रीति को अपनाया गया था, उनमें भी अब लोग यह सोचने लगे हैं कि लोगों को कुछ निजी संपत्ति रखने देना और उसको बढ़ाने की प्रेरणा करने देना लाभदायक है।

अब हम भूमि समस्या पर विचार करें। मैं यह मानता हूं कि भूमि समाजीकरण और राष्ट्रीयकरण संबंधी स्थिति, उद्योगों की स्थिति जैसी नहीं है और न उसके समान ही है। उद्योगों से पर्याप्त कार्य नहीं लिया गया है, परन्तु भूमि से पर्याप्त कार्य ले लिया गया है। परन्तु फिर भी हमारी कठिनाई यह है कि इस दिशा में यदि हम एक बार कार्यारंभ कर देते हैं, तो हम और लोगों को भयभीत कर देते हैं और फिर हम स्वयं यह नहीं जानते कि हमें कहां रुकना है। मान लीजिये कि आप कुछ जमींदारों को हटा देते हैं, तो बाद में क्या होगा? भू-सम्पत्ति फिर भी कुछ लोगों के ही हाथों में रहेगी। यदि तुलना उन लोगों से की जाये, तो फिर भी भूमिहीन रहेंगे और जिनकी संख्या बहुत बड़ी है। अतः मैं जो प्रश्न पूछूंगा, वह यह है कि कब तक, कितनी बार और किस सीमा तक हम संतुलन करने के लिये अग्रसर होने के लिये तैयार हैं।

कुछ लोगों ने संपत्ति को चोरी का रूप दिया है। श्रीमान, इसका कारण मैं अज्ञानतर समझता हूं। वे इस बात को नहीं समझते हैं कि इस समय अधिकाराधीन अधिकांश संपत्ति वास्तव में खरीदी हुई है, चाहे वह भू-संपत्ति हो अथवा अन्य प्रकार की। कुछ वर्षों पूर्व तक भूमि में धन लगाना सबसे अधिक सुरक्षित था। बुढ़ापे के लिये, अचानक दुर्घटना में, विधवाओं और अनाथ बच्चों के लिये वह बीमा के समान समझी जाती थी। यह बात दूसरी है कि इन संपत्तियों को ले लेना ही हम विनिश्चित करें, पर इस सीमा तक तो हम न जायें कि संपत्ति को हम चोरी कहें। मेरी तुच्छ सम्मति में तो संपत्ति के विषय में इस प्रकार का जो विचार उत्पन्न हुआ है, वह बहुत ही गलत है।

[श्री श्यामानंदन सहाय]

मद्रास के एक और मित्र ऐसा विचार रखते हुए प्रतीत होते हैं कि उन्होंने यह कह कर एक बड़ा तीर मारा है कि उनके प्रान्त में जिन जमींदारों ने 40 लाख रुपये की आय से कार्यारम्भ किया था, वे अब 240 लाख रुपये की आय कर रहे हैं। मैं अपने मित्र को यह बता दूं कि उन्होंने केवल एक ही संख्या को लिया है; अर्थात् उस संख्या या आय को, जो अभी जमींदारी का बंदोबस्त करते समय की है। यदि वे किसी दूसरी संख्या को देखने का कष्ट उठाते, तो उनको इस बात का समाधान हो जाता कि उनकी इस बात में कुछ भी महत्व नहीं है। वह जमींदारी के बंदोबस्त होने के समय कृषि में आई हुई भूमि तथा इस समय खेती में आई हुई भूमि की संख्या है।

***श्री कला वेंकटा राव** (मद्रास : जनरल): मैं इन संख्याओं को जानता हूं, परन्तु क्या माननीय सदस्य मुझे यह समझा सकते हैं कि इससे परिस्थिति में किस प्रकार सुधार होगा?

***श्री श्यामानंदन सहाय:** मैं आशा करता हूं कि थोड़ी देर के बाद मैं अपने मित्र को विश्वास दिला सकूंगा और यह सिद्ध कर सकूंगा कि उससे परिस्थिति में किस प्रकार सुधार होगा। यदि वे इसकी खोज में और आगे बढ़े होते, तो उनको यह विदित हो जाता कि इस समय कृषि में आई हुई भूमि जो पहले थी, उससे बहुत अधिक है। क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि ये सब कृषि योग्य किस प्रकार बनी? क्या वह जादू के डंडे के जोर से बन गई? यह कहा जा सकता है और कदाचित ऐसा कहना ठीक ही है कि वह किसानों, खेत जोतने वालों के कारण बनी। मैं इस बात को मानता हूं। परन्तु साधनों की व्यवस्था किसने की? श्रीमान, ये प्रश्न हैं, जिन पर मैं समझता हूं कि उन लोगों को विचार करना चाहिये जिनको आज ईश्वर ने यह सत्ता दी है कि वे इन बातों पर विचार करें कि इस देश की राजस्व प्रणाली में क्या उन्नति की जाये, किस कार्य पद्धति का अनुसरण किया जाये और क्या परिवर्तन किया जाये। श्रीमान, जमींदारों के सौभाग्य से इस देश में भूराजस्व की दो प्रणालियां है। एक रैयतवाड़ी प्रथा है, जिसमें जमींदार नहीं है और दूसरी जमींदारी प्रथा है। यदि आप रैयतवाड़ी प्रथा में दिये गये लगान और जमींदारी प्रथा में दिये गये लगान की तुलना करें, तो आपको विदित होगा कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में लगानदारी की जो शर्तें हैं, वे किसी रूप में भी जमींदारी क्षेत्रों की शर्तों से अच्छी नहीं हैं। श्रीमान, यह मैं बंगाल के पलाउड आयोग के नाम से ज्ञात आयोग के आधार पर कह रहा हूं, जिसने अन्ततः जमींदारी प्रथा को मिटाने के लिये विनिश्चय किया था। उन्होंने भी यह स्पष्ट बता दिया था कि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में भी लगानदारी की शर्तें किसी रूप में भी अच्छी नहीं हैं। यदि आप रैयतवाड़ी क्षेत्रों के लगान की तुलना जमींदारी क्षेत्रों के लगान से करेंगे, तो आपको आश्चर्य होगा। मद्रास प्रान्त में औसतन लगान 6 रुपये से 7 रुपये प्रति एकड़ के बीच में हैं और सजल भूमि के लिये वह औसतन 10 रुपये से 12 रुपये प्रति एकड़ के बीच में है; और बिहार, बंगाल तथा अन्य स्थानों में स्थायी रूप से बंदोबस्त किये गये। जमींदारी क्षेत्रों में लगान 3 रुपये से 4 रुपया प्रति एकड़ के बीच में है।

*__श्री विश्वनाथ दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, मैं एक औचित्य प्रश्न करने के लिये खड़ा होता हूं। वह यह है। हम यहां यह वाद-विवाद कर रहे हैं कि अनुच्छेद 24 को, जो सप्तम अनुसूची में की राज्य सूची के मद संख्या 9 का प्रयोग है, रखा जाये या नहीं। इस समय हमारे सामने जमींदारी भूमि के अर्जन करने के सम्बन्ध का कोई विधेयक लम्बित नहीं है, जिस पर हम विचार कर रहे हों, जिससे कि जमींदारी और रैयतवाड़ी भूमि के लगानों की तुलना की जाये। अतः इस प्रकार की तुलना और वाद-विवाद औचित्य से परे है।

*__अध्यक्ष:__ अन्य वक्ताओं ने इस विषय को सामान्य रूप में लिया है और जमींदारों के प्रतिनिधि को उसका दृष्टिकोण प्रस्तुत करने से मैं नहीं रोक सकता हूं।

*__श्री श्यामानंदन सहाय:__ श्रीमान, वास्तव में ठीक स्थिति यह है कि अनुच्छेद 24 पर विचार किया जा रहा है और वह निजी संपत्ति पर प्रतिकर दिये जाने के संबंध में है, और कई बार यह सुझाव दिया जा चुका है कि प्रतिकर न दिया जाये और निजी संपत्ति पर अधिकार को मानना आवश्यक नहीं है। भूमि एक प्रकार की निजी संपत्ति है। अतः इस विचार के अतिरिक्त भी कि अन्य व्यक्ति इस विषय पर भाषण दे चुके हैं, मैं समझता हूं कि मुझे यह कहने का हक है कि निजी संपत्ति को मानना चाहिये और उसके अर्जन पर पूर्ण प्रतिकर देना चाहिये।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ यह मान लिया गया है कि जमींदारी कोई संपत्ति नहीं है।

*__श्री श्यामानंदन सहाय:__ श्रीमान, एक और प्रकार की भी निजी संपत्ति है और वह उद्योग है। उद्योगपतियों के बारे में हमने ऐसा बहुत सुना है कि उन्होंने बहुत लाभ उठाया है। हमारे मित्रों और आलोचकों ने केवल उस लाभ की ओर ही ध्यान दिया है, जो उद्योग तथा उद्योगपतियों को हुआ है? पर क्या उन्होंने यह सोचा है कि इस लाभ से वे क्या करते हैं? यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो यह कहूंगा कि इसका उत्तर सरल है और वह है—कारखाने और अधिक संख्या में कारखाने। इस देश में वर्तमान कालीन पूंजीवादियों का यदि आप वर्णन करना चाहते हैं, तो उनका "कारखाने बनाने वाला समाज" के सदस्य कहने से अधिक अच्छा या अधिक बुरा वर्णन आप नहीं कर सकते हैं। मैं अपने मित्रों से निवेदन करता हूं कि वे इस बात पर विचार करें कि देश के लिये यह अच्छा है या बुरा, हमारे सामने बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं। प्रत्येक दिन हम यह सुनते हैं कि उत्पादन पूर्ण रूप में होना चाहिये और अधिक उत्पादन होना चाहिये। यदि हम उत्पादन के सब साधनों का समाजीकरण आरम्भ कर दें और निजी प्रयत्नों को सर्वोत्तम रूप से कार्य करने का कोई अवसर न दें, तो यह एक दम कैसे हो सकता है?

अतः श्रीमान, संपत्ति पर अधिकारों को मानने और इस संविधान में उनकी प्रत्याभूति करने पर मुझे अपने नेताओं को बधाई देनी चाहिये। बधाई देते हुए मेरे

[श्री श्यामानंदन सहाय]

मन में एक विचार आता है कि प्रतिकर खंड का नया मसौदा केवल संपत्तियों के प्रकारों में ही नहीं वरन् एक ही प्रकार की संपत्ति में कुछ विभेद उत्पन्न करता है। उड़ीसा के मेरे मित्र श्री विश्वनाथ दास चाहे जो कुछ कहें, सच बात यह है कि और इस बात को माननीय प्रस्तावक महोदय ने कल अपने भाषण में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि खंड (4) और (6) को केवल कुछ प्रान्तों में कुछ विधेयक और अधिनियमों संबंधी प्रयोजन की पूर्ति के लिये ही मसौदे में रखा गया है। यदि श्री विश्वनाथ दास इस देश की बातों को समझने का कष्ट करते, तो उनको यह ज्ञात हो जाता कि उनका संबंध केवल भूमि से ही है।

इस मसौदे में हमें प्रतीत होता है कि स्वयं अपनी न्यायपालिका से बचने का प्रयत्न किया गया है। सर्वत्र यह एक स्वीकृत सिद्धान्त है कि न्यायपालिका लोकतंत्र की अन्तिम संरक्षिका तथा उसे सुरक्षित रखने वाला साधन है। अत: श्रीमान, क्या यह उचित होगा कि अपने संविधान के प्रारम्भ में ही एक ऐसी प्रक्रिया निर्धारित करें, जिसके द्वारा, चाहे वह कितने ही न्यून रूप में क्यों न हो, हम अपनी न्यायपालिका के प्रति असम्मान तथा विश्वास का अभाव प्रकट करें? इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता और न इस बात पर जोर देने की आवश्यकता ही है कि न्यायपालिका विधानमंडल की शक्तियों को ग्रहण नहीं कर सकती है। यह एक साधारण सी बात है कि वह ऐसा नहीं कर सकती है। न्यायपालिका आपकी विधि का केवल निर्वचन कर सकती है और वह एक उचित तथा ठीक रीति से। मैं पूछता हूं कि इस समय क्या यह बुद्धिमानी होगी कि न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट रूप से मिटाने के लिये ऐसा उपबन्ध बनाया जाये? इसके पक्ष में हमारे समक्ष कुछ आधार प्रस्तुत किये गये हैं और कुछ कठिनाइयां बताई गई हैं।

हमें यह बात नहीं भुला देनी चाहिये कि लोकतंत्र तथा स्वेच्छाचारी, अल्पजनसत्तात्मक इत्यादि प्रकार के अन्य शासनों में मुख्य अंतर यह है कि लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति केवल परस्पर नागरिकों में ही नहीं, वरन् नागरिक और राज्य में भी उचित तथा निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था करती है और जिस पद्धति का इस प्रयोजन के लिये विकास किया, वह क्या है? न्यायपालिका के अतिरिक्त अन्य किसी को मैं तो नहीं समझता हूं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस बात को मानना तथा यह निर्धारित करना कि किसी प्रयोजन के लिये न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र मिटा दिया जाये, गलत होगा।

श्रीमान, जो कठिनाई माननीय प्रस्तावक महोदय द्वारा विचारी गई है, वह अधिकांश रूप में वह है, जिसको उन्होंने 'विलम्बकारी तथा वित्तीय' कहा है। प्रस्तावक महोदय ने अपने भाषण में कहा था "यदि हम इन अधिनियमों पर न्यायालय द्वारा विचार होने दें, तो इसके कारण हम इतनी लम्बी मुकदमेबाजी में फंस जायेंगे कि हम कोई भी सुधार नहीं कर सकेंगे और यदि हम बाजार भाव के अनुसार प्रतिकर दें, तो जमींदारी उन्मूलन करने के लिये वित्तीय साधन हम कभी नहीं जुटा सकेंगे।" सम्मानपूर्वक मैं उनसे मत-विरोध रखता हूं। केवल इस आधार पर किसी लम्बी

मुकदमेबाजी के कारण सरकार के मार्ग में बाधा नहीं हो सकती है कि सरकार किसी समय भी एक ऐसा वैध उपबन्ध बना सकती है कि वह जो कुछ प्रतिकर उचित समझे, वह देगी, परन्तु यदि बाद में न्यायालय यह विनिश्चित करे कि उससे अधिक प्रतिकर दिया जाना चाहिये, तो सरकार उतना प्रतिकर देगी। यह कोई नई प्रक्रिया नहीं है, भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन इसका पालन होता है। भूमि अर्जन पदाधिकारी पंचाट निश्चित करता है, संपत्ति पर अधिकार करता है और यदि अन्त में न्यायाधीश यह विनिश्चित करता है कि अधिक प्रतिकर दिया जाना चाहिये, तो उस पक्ष को अतिरिक्त राशि दे दी जाती है। अत: भूमि के विषय में जो सुधार हम देश में करना चाहते हैं, उसके मार्ग में लम्बी मुकदमेबाजी की बात रुकावट के रूप में नहीं आयेगी।

अब वित्तीय विषय को लीजिये। तीन प्रान्त, जिनसे हमारा इस समय सम्बन्ध है, और जिनके लिये मुझसे यह कहा गया है कि खंड (4) और (6) का विशेष रूप से मसौदा बनाया गया है, उनके विषय में हम यह देखते हैं कि जैसा माननीय प्रधान मंत्री तथा मद्रास के राजस्व मंत्री ने कई बार स्पष्ट कर दिया है मद्रास के विषय में तो कोई कठिनाई नहीं है। उनके अनुसार कुछ केवल 15 करोड़ रुपये की वित्तीय आवश्यकता है, जिसको मद्रास जैसे प्रान्त के लिये यदि एक वर्ष में नहीं तो अधिक से अधिक दो या तीन वर्ष में पूरा करना कठिन नहीं होना चाहिये। संयुक्त प्रान्त में माननीय मुख्य मंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्यों ने एक ऐसी योजना निकाली है, जो मैं समझता हूं कि जितना जमींदारों को देना है, उससे भी अधिक द्रव्य संचित करेगी। वह एक प्रकार की ऐसी योजना होगी, जिसे आप सुधार न्यास योजना कह सकते हैं, जिसमें अन्त में न्यासियों को हानि की अपेक्षा लाभ होता है। मेरी सम्मति के अनुसार बिहार में इन दोनों प्रान्तों की अपेक्षा स्थिति अधिक सरल है, क्योंकि वहां की सरकार बड़ी-बड़ी सम्पदाओं का अर्जन आरम्भ में करना चाहती है और उनकी बचत से वे छोटी-छोटी सम्पदाओं का अर्जन करने का विचार रखती है। उसने भारत सरकार को यह भी सूचित कर दिया है। कि वह अभी 5000 रुपये के कम की जमींदारी पर अधिकार करना नहीं चाहती है (कदाचित् अभी शब्द का प्रयोग मैं अपनी ओर से कर रहा हूं और इस शब्द का प्रयोग बिहार सरकार ने शायद नहीं किया है।) यदि ऐसा है, तो बिहार में भी प्रतिकर देने की समस्या कठिन नहीं है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि न तो लम्बी मुकदमेबाजी और न वित्तीय समस्या ही इतनी जटिल है कि संविधान में इस प्रकार का उपबन्ध बनाये बिना, जिस पर मैं इस समय वाद-विवाद कर रहा हूं, भूमि सुधारों को न किया जा सके।

श्रीमान, मेरा विश्वास है कि हमारे प्रशासक इन कठिनाइयों के प्रति सच्चे तथा शुद्ध रूप से सशंकित हों। यदि आज भी प्रस्थापनायें वैसी ही हैं, जैसी कि थी,

[श्री श्यामानंदन सहाय]

तो मुझे इन सरकारों में किसी सरकार के भूमि सुधार के उपक्रम करने में उन वित्तीय साधनों के ही होते हुए, जो उनके कब्जे में हैं, कोई शंका नहीं है।

अब हमें यह देखना चाहिये कि जमींदारी समस्या और अर्जन करने पर प्रतिकर देने पर देश और कांग्रेस किस रूप में देखती आई है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आपको यह विदित होगा कि 1995 तक में अखिल भारतीय कांग्रेस ने एक संकल्प पारित किया था, जिसको मैं सभा की सूचनार्थ पढ़कर सुनाऊंगा।

वह इस प्रकार है:

"इस कांग्रेस का यह दृढ़ विश्वास है कि भूमि के सम्बन्ध में राज्य की मांग पर एक युक्तियुक्त तथा निश्चित परिसीमन रखना चाहिये और जहां स्थायी बंदोबस्त प्रवृत्त नहीं है, वहां सब क्षेत्रों में, चाहे वह रैयतवाड़ी हो या जमींदारी, स्थायी बंदोबस्त पुन: स्थापित करना चाहिये या 60 वर्ष से अन्यून काल के लिये बंदोबस्त पुन:स्थापित करना चाहिये।"

कुछ लोग यह सोचते प्रतीत होते हैं कि 1915 कब की समाप्त हो गई और मैं कोई ऐसा राग अलाप रहा हूं, जो एक दीर्घ काल से निष्प्राण सी है या मिल चुकी है। पर मैं समझता हूं कि विशेषकर ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर उन सम्मतियों पर विचार न करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा, जो केवल 35 वर्ष पूर्व ही मानी गईं थीं।

खैर, आधुनिक काल को लेते हुए भी, श्रीमान, मैं आपको सन् 1939 में वृन्दाबन में सरकार पटेल द्वारा दिये गये उस वक्तव्य का स्मरण कराऊंगा, जहां तक आप और महात्मा जी भी उपस्थित थे। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की ओर निर्देश करते हुए सरदार ने यह प्रकट किया था कि भारत का राष्ट्रीय और आर्थिक कल्याण इसमें नहीं है। कांग्रेस के घोषणा पत्र में, यद्यपि उसमें राज्य और किसान के मध्य किसी अभिकर्त्ता के हटाने का समर्थन किया गया था, यह माना गया था—मैं उस संकल्प की भाषा का ही प्रयोग कर रहा हूं—'कि उचित प्रतिकर देकर अन्तर्वर्ती अभिकर्ताओं के अधिकार अर्जित किये जायें।' यहां तक कि 1948 और 1949 तक में (दोनों वर्षों की 6 अप्रैल को) भारत के माननीय प्रधान मंत्री ने नीति के दो वक्तव्य निकाले थे और उन दोनों में उन्होंने यह स्पष्ट कहा था कि निजी सम्पत्ति का अर्जन केवल उचित तथा समप्रतिकर देकर ही किया जायेगा। अत: सम प्रतिकर एक अभिज्ञात तथ्य प्रतीत होता है।

जो बात मुझे वास्तव में परेशान कर रही है, वह यह है कि यह कौन विनिश्चित करेगा कि समप्रतिकर क्या है। राज्य संपत्ति पर अधिकार कर रहा है; नागरिक इस विषय में अन्तर्ग्रस्त हैं। क्या राज्य अन्तिम निर्णायक होगा? समप्रतिकर निश्चित करने के लिये राज्य कोई भी यंत्र स्थापित करे, पर वह यंत्र स्वयं सरकार के अतिरिक्त अन्य कोई होना चाहिये। कुछ मिनट पूर्व बोलने वाले एक माननीय मित्र ने कहा था कि किसी प्रकार का प्रशासी न्यायाधिकरण स्थापित किया जा सकता है। इसके

विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। परन्तु जब नागरिक और राज्य में परस्पर कोई मामला हो, तो ऐसा कोई यंत्र स्थापित करना चाहिए, जो यह विनिश्चित करे कि समप्रतिकर क्या होगा, चाहे वह यंत्र न्यायिक हो, चाहे प्रशासी न्यायाधिकरण हो।

इसके पश्चात् आइये, श्रीमान, हम स्वयं इस संविधान-सभा को लें और इसमें जो मत प्रकट किये गये हैं तथा जो सिद्धान्त स्वीकार किये हैं, उनकी जांच करें। उद्देश्य मूलक संकल्प में, जिसको हम यहां पारित कर चुके हैं, हमने यह स्पष्ट निर्धारित कर दिया है कि राज्य के नागरिकों के लिये यह संविधान किस बात का प्रयास करेगा और उनको किन-किन बातों की प्रत्याभूति देगा। अन्य बातों के साथ-साथ विधि के समक्ष परिस्थिति की समता की प्रत्याभूति की गई है। श्रीमान, यदि हम इस प्रत्याभूति की तराजू पर खंड (4) और (6) के इस मसौदे को तोलें, तो इस बात में मुझे कोई संदेह नहीं है कि यह सभा इस बात को स्वीकार करेगी कि वहां तक खंड (4) और (6) का सम्बन्ध है, इनमें परिस्थिति की कोई समता नहीं है। विधि के समक्ष समता का दावा करने की बात तो दूर रही, ये तो हम को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने तक का अवसर नहीं देते हैं। और किस लिये? इस बात पर विचार करने के लिये नहीं कि प्रतिकर उचित है या नहीं। खंड (2) केवल प्रतिकर देने के सिद्धान्त का निर्धारण करता है, अन्य किसी स्थान में हमने यह नहीं कहा है कि प्रतिकर दिया जायेगा। और खंड (4) और (6) में यह कहा गया है कि "इस प्रकार अनुमति प्राप्त विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्न किया जायेगा कि यह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का विरोध करती है।" और यह विरोध प्रतिकर के समूचे सिद्धान्त पर हो सकता है। यहां तक कि उदाहरण के रूप में यदि कोई प्रान्त प्रतिकर न देना विनिश्चय करता है, तो इसका विरोध न्यायालय में नहीं किया जा सकता है। अभी उस दिन माननीय प्रधान मंत्री ने मसौदे के इस खास भाग पर बोलते हुए यह कहा था कि यह उपबन्ध कर दिया गया है कि यदि संविधान से कुछ छल किया जाता है, तो उस विषय को न्यायालय में ले जाया जा सकता है। मैं उन विधि विशेषज्ञों से जो सभा में उपस्थित हैं और विशेषकर संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री से यह निवेदन करूंगा कि वे इस बात पर विचार करें कि क्या खंड (4) और (6) में यह गुंजाइश है कि कोई पक्ष, यदि विधानमंडल द्वारा कोई प्रतिकर नहीं दिया जाता है तो वह, न्यायालय में जा सके। यदि स्थिति यही है, तो मैं निवेदन करता हूं कि इस खंड को यदि पूर्णतया अपमार्जित करने के लिये नहीं तो तो उसमें संशोधन करने के लिये मैंने एक बड़ा मजबूत मामला बना लिया है।

इस विषय को इस सभा में हुए वाद-विवाद ने तथा खंड 13 (च) ने और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है, जिस खंड में हमने "संपत्ति के अर्जन, यापन और संधारण" की प्रत्याभूति की है और आगे चलकर हमारे संविधान के अनुच्छेद 15 में जिसमें हमने प्रत्येक व्यक्ति को "विधियों के समरक्षण" की प्रत्याभूति की है। मैं यह पूछूंगा—क्या यह विधियों का समरक्षण है कि एक जमींदार वर्ग को उस की अर्जित की गई सम्पत्ति के लिये प्रतिकर के अधिकार के सम्बन्ध में न्यायता

[श्री श्यामानंदन सहाय]

के अधिकार से वंचित किया जाये और अन्य प्रान्त के अन्य जमींदारों को वही अधिकार दिया जाये? इस विषय में तथ्य की बात यह है कि केवल तीन प्रान्तों पर प्रभाव पड़ता है। मान लीजिये बाद में जमींदारी अर्जन करने के लिये यदि मध्यप्रान्त, उड़ीसा या बंगाल कोई विधेयक प्रस्तुत करता है, तो उन प्रान्तों के जमींदारों को विधि का रक्षण प्राप्त होगा। उनको न्यायालय जाने तथा न्याय कराने का अधिकार होगा। दूसरी ओर हम लोगों को जो कि बिहार संयुक्त प्रान्त और मद्रास के हैं, उनको इस अधिकार से वंचित किया जा रहा है। मैं इस सभा से यह पूछूंगा कि क्या यही "विधि का समरक्षण" है? "विधि के समरक्षण" की हमने प्रत्याभूति की है; इसको हम पारित कर चुके हैं। कुछ मित्र खड़े होकर यह कहेंगे "श्रीमान, यह सभा सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न निकाय है और हम सब कुछ कर सकते हैं।" ऐसे मित्रों से मेरा विनम्र निवेदन यह है कि इस सभा को चाहे अपने आपको मूर्ख बनाने का अधिकार हो, पर बुद्धिमान लोग सदैव इस सभा को यही परामर्श देंगे कि वह ऐसी बात का प्रयत्न न करे। श्रीमान, खंड (4) और (6) में जो बात हम रख रहे हैं, वह महत्वपूर्ण है। यहां तक कि जो संशोधन श्री मुन्शी ने भेजा था कि प्रमाणित करने के पूर्व राष्ट्रपति उस विधेयक को, किसी ऐसे संशोधन के लिये जिसे वह आवश्यक समझे, वापस कर सकता है, उस संशोधन को पेश नहीं किया गया है। अत: इसका अर्थ यह निकलता है कि राष्ट्रपति या तो उस विधेयक को स्वीकार करे या अस्वीकार। और किसी भी राष्ट्रपति के लिये समूचे विधेयक को अस्वीकार कर देना बहुत ही कठिन होगा। मैं संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री अथवा अन्य मित्रों से यह पूछता हूं कि क्या यह ठीक नहीं है कि यहां कोई ऐसा उपबन्ध रखा जाये, जो राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वह सम्बद्ध विधान मंडल को अपनी मंत्रणा तथा सम्मति दे सके? क्या उस पर केवल उसका स्वीकार करना तथा अस्वीकार करना छोड़ देना ठीक होगा? मैंने समझा कि वह प्रस्थापना ऐसी है कि जिसे देखते ही अस्वीकार कर दिया जायेगा और अब भी समय है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:** मैंने समझा कि उपबन्धों में यह निहित है।

***श्री श्यामानंदन सहाय:** निहित बातें तो बहुत सी हैं, पर हम कुछ बातों को स्पष्ट भी कराना चाहते हैं। मैं निवेदन करता हूं कि यह एक ऐसी बात है, जिस पर गम्भीर विचार करना चाहिये। अभी समय नहीं बीता है। मैं समझता हूं कि अब भी समय है कि इन खंडों में कोई ऐसा संशोधन प्रस्तुत किया जा सकता है और आपकी विशेष सम्मति से तो वह इसी समय हो सकता है।

श्रीमान, मैं जानता हूं कि मैंने आपका बहुत समय लिया है। परन्तु समाप्त करने के पूर्व मैं अपनी बातों को फिर दुहराऊंगा। जैसा कि मैंने कहा था कि कांग्रेस घोषणा पत्र अप्रैल, 1949 में ही माननीय प्रधान मंत्री द्वारा की गई नीति घोषणा, उद्देश्यमूलक संकल्प और मूलाधिकार समिति का प्रतिवेदन हमने केवल प्रतिकर पर अर्जन के जिस सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है, उससे हम खंड (4)

और (6) में विमुख न हों। और फिर हमारे संविधान के मसौदे में अनुच्छेद 13 (च) और 15 ऐसे हैं, जो सब नागरिकों के लिये विधि का समरक्षण करने की प्रत्याभूति करते हैं और यद्यपि इस सुझाव को देर में आया हुआ समझा जायेगा, पर मैं निवेदन करूंगा कि खंड (4) और (6) का अपमार्जन करने के लिये संशोधन आये हुए हैं और प्राधिकारियों को इन सुझावों पर भी विचार करने का अधिकार है, जिन को मैं इतनी देर के बाद पेश कर रहा हूं।

जैसाकि मैं अभी कह चुका हूं, राष्ट्रपति का प्रमाणपत्र उसको कोई विकल्प प्रदान नहीं करता है और मैं समझता हूं कि अन्ततोगत्वा इसका फल यही होगा कि उसे विधेयक स्वीकार करना पड़ेगा। श्रीमान, चूंकि आपने इस विषय पर वाद-विवाद करने के लिये बारह घंटे दिए हैं, मैं नहीं समझता हूं कि इस समाजवादी कार्यपद्धति के अनुसार मुझे पर्याप्त समय मिला हो, जिसमें मैं जमींदारों के विचारों को रख सकता था। फिर भी मैं अब समाप्त करूंगा। परन्तु समाप्त करने के पूर्व मैं फिर प्राधिकारियों से निवेदन करूंगा कि केवल जमींदारों के हित के लिये ही नहीं, वरन् संविधान निर्माण के सामान्य हित में उन बातों पर विचार करें, जो मैंने कही हैं। यहां मुझे एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस समय याद आई, जिसका उल्लेख स्वर्गीय पंडित मोतीलाल ने "सर्चलाइट" नामक प्रसिद्ध मानहानि के मामले में बहस करते हुए किया था। उन्होंने कहा था कि न्यायपालिका के लिये केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह अच्छी विधि निर्धारित करे, पर यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि वह यह भी विश्वास उत्पन्न कराये कि वह अच्छी विधियां निर्धारित कर रही हैं और नागरिक का हित उसके हाथों में सुरक्षित है। श्रीमान, विधानमंडल के लिये यह और अधिक महत्वपूर्ण है और संविधान-सभा के लिये तो यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि हम ऐसी विधि निर्धारित करें, जो जनता के समस्त वर्गों में यह विश्वास उत्पन्न करे कि वह उचित, ठीक तथा सम है। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह खंड (4) और (6) को अपमार्जन करने के मेरे सुझाव को स्वीकार करे। यदि अपने सुझाव पर इस सभा की स्वीकृति प्राप्त करने में मैं असफल रहा, तो लार्ड बाइटन के शब्दों में यह कह कर मैं संतोष कर लूंगा "कि मेरे लिये केवल यही सान्त्वना है कि हम पर अत्याचार करने वाले आखिर हैं, हमारे ही देशवासी।"

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** अध्यक्ष महोदय, यह एक आश्चर्यजनक बात है कि इस प्रस्थापना ने, जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है और जिसका श्री अल्लादी कृष्णास्वामी जैसे महान स्मृतिज्ञ ने समर्थन किया है, सभा में एक प्रकार के विरोधी मत तथा भावनाओं को उत्तेजित किया है। यहां मेरे जमींदार मित्र हैं, जो इसके विरोधी हैं, क्योंकि वे यह सोचते हैं कि इस अनुच्छेद में कोई ऐसी बात है जिसके द्वारा उनको कष्ट होगा। कुछ अन्य व्यक्ति मुझ जैसे भी हैं जो माननीय प्रधान

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

मंत्री द्वारा पेश किये गये इस संशोधन का इस कारण विरोध करते हैं कि वे समझते हैं कि इसमें कुछ ऐसी कमियां हैं, जो हमारे राज्य के लिये—चाहे वह प्रान्तीय हो अथवा केन्द्रीय—लोक सुख और सार्वजनिक कल्याण को शीघ्र प्राप्त करने के हेतु कार्य करने में कठिनाई उत्पन्न करेगी। यहां हमने कुछ ऐसे सिद्धान्त निर्धारित किये हैं, जो अधिकतम व्यक्तियों के लिये अधिकतम कल्याण के आधार पर न्याययुक्त नहीं माने जा सकते हैं। इस अनुच्छेद का खण्ड (2) निश्चित रूप से यह निर्धारित करता है कि लोक-प्रयोजन के लिये संपत्ति का अर्जन हो सकता है, परन्तु प्रतिकर देने के सिद्धान्तों को निर्धारित किये बिना अथवा अर्जित वस्तुओं के लिये वास्तविक रूप में प्रतिकर दिये बिना उनको अर्जित नहीं किया जा सकता। जब कि इस अनुच्छेद मैं यह कहा गया है कि "जिस संपत्ति पर कब्जा किया जाता है या जिसको अर्जित किया जाता है, वह तब तक कब्जाकृत या अर्जित नहीं की जायेगी, जब तक कि वह विधि उस सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो, या प्रतिकर की राशि नियत न करती हो या उसके सिद्धान्तों का उल्लेख न करती हो।" तो इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि हम यहां एक प्रकार के विधि सम्बन्धी श्लेष के लिये गुंजाइश छोड़ रहे हैं। यहां आज श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने यह निश्चित रूप से कहा है कि यह खंड किसी व्यक्ति को न्यायालय जाने और इस आधार पर सरकार के विनिश्चिय पर आपत्ति करने का अधिकार नहीं देता है कि जो प्रतिकर दिया जा रहा है, यह अपर्याप्त है अथवा जो सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं, वे किसी भी रूप में अनुचित तथा कष्ट युक्त हैं। यह वह बात है, जो महान स्मृतिज्ञ श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने हमसे कही।

अब यदि वास्तव में ऐसा ही है, तो हम उस संशोधन को क्यों न स्वीकार करें, जो मेरी बहन श्रीमती रेणुका रे द्वारा पेश किया गया है? उस संशोधन में उन्होंने यह निश्चित रूप में कहकर बादहेतु को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि उपरोक्त किसी भी विधि बनाने वाले उपबन्ध पर किसी भी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि जिस प्रतिकर की व्यवस्था की गई, वह अपर्याप्त है अथवा प्रतिकर के जिस सिद्धान्त या रीति का उल्लेख किया गया है, वह अनुचित तथा कपटमय है। यदि इस अनुच्छेद के खंड (2) का वास्तव में वही अर्थ है जो कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी बताते हैं अथवा जो अन्य विधि के पंडित मानते हैं, तो मैं समझता हूं कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि माननीय प्रधान मंत्री श्रीमती रेणुका रे के संशोधन को स्वीकार न करें, जिससे कि विषय स्थिति स्पष्ट हो जाती है और कोई सन्देह नहीं रहता है। सभा को समक्ष जो प्रस्तावना है, उसके सम्बन्ध में मेरा यह पहला सुझाव है। जिस रूप में यह खंड है, उसमें कई कमियां हैं। ऐसे होने के कारण हमारी इन सब शिकायतों से कि या तो न्यायपालिका इसमें हस्तक्षेप करेगी या हम न्यायपालिका को एक तीसरा सदन बना रहे हैं या ऐसी ही अन्य बातों से हमें कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि जिस रूप

में यह प्रस्थापना है, उसका स्वार्थात व्यक्तियों द्वारा इस रीति में निर्वचन किया जा सकता है, जो हमारी सामाजिक उन्नति में दुर्गम कठिनाइयां उत्पन्न करेगा। अतः मेरा निवेदन यह है कि इस प्रस्थापना को स्वीकार करते हुए उसके साथ-साथ हम श्रीमती रेणुका रे के संशोधन को भी स्वीकार करें।

यदि मैंने इस अनुच्छेद को ठीक-ठीक समझ लिया है, तो इसका आशय केवल यही है, कि हम यहां वह सिद्धान्त निर्धारित कर रहे हैं, जो सार्वजनिक कल्याण के लिये कुछ कार्य करने की दिशा में राज्यों को सुविधा प्रदान करेगा और उस सार्वजनिक कल्याण की प्राप्ति में किसी निजी स्वार्थ द्वारा बाधा नहीं होने दी जायेगी। मैं समझता हूं कि इस प्रस्थापना का यही सार है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु मा कश्चित दुःखभाग् भवेत्।।

यह है, जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं। समाज के प्रत्येक प्राणी को इस संसार में सुखी होने दो। किसी को कोई रोग न हो। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य के देखने की शक्ति का विकास करने दो और किसी को दुखी न होने दो। यह वह प्रार्थना है, जो भारतीय विचार की महान, गहनता से उत्पन्न हुई है और यह वह प्रार्थना है, जिसमें हम अनादि काल से विश्वास करते रहे हैं।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि यह अनुच्छेद इस प्रार्थना को साकार बनाने का प्रयत्न है और हमारे सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन करने के लिये सरकार के मार्ग को प्रशस्त करने के लिये है। परन्तु जैसा कि मैंने बताया है कि खंड (2) दोषयुक्त है। यदि, जैसा कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा है, वह दोषयुक्त नहीं हैं। तो खंड (4) और (6) की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। यदि वास्तव में इस अनुच्छेद में निर्धारित किये गये सिद्धान्तों को हमने न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे कर दिया है, तो खंड (4) और (6) बिल्कुल अनावश्यक हैं। परन्तु हमने इन खंडों को केवल इस लिये रखा है कि हमने यह चाहा कि कुछ सामाजिक विधानों का सुनिश्चियन किया जाये, जो संयुक्त प्रान्त तथा मद्रास में बनाये जा रहे हैं या बनाये जायेंगे। अतः हम सोचते हैं कि खंड (2) में ऐसी कोई बात हो सकती है, जो इस दशा में हमारे प्रयत्नों का खंडन करे। यदि हम इन बातों को अव्यक्त रूप में रख कर यहां इस प्रस्थापना पर वाद-विवाद कर रहे हैं, तब तो मैं सभा से निवेदन करूंगा कि वह ऐसा न करे और श्रीमती रेणुका रे द्वारा प्रस्तुत किये सुझाव को स्वीकार कर इस बात को बिल्कुल स्पष्ट कर दे और संदेह के लिये कोई स्थान न रहने दे।

संपत्ति के बारे में कई प्रश्न उठाये गये हैं: निजी सम्पत्ति की अक्षुण्णता के बारे में प्रश्न किये गये हैं: निजी सम्पत्ति के बारे में ये प्रश्न कि उससे कार्य करने और समाज को उन्नत बनाने की प्रेरणा मिलती है, तथा इस प्रकार के सम्बन्ध में भी प्रश्न की विधि पुस्तक में इस प्रकार की विधि को लाने की अवांछनीयता, जो उस प्रेरणा का नाश करेगी, जिसका व्यक्ति उस समय अनुभव करता है, जबकि

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

उसे यह आश्वासन दे दिया जाता है कि उसकी निजी सम्पत्ति को छूआ तक नहीं जायेगा। ये ऐसे प्रश्न हैं, जो मूलवाद हेतुओं के कारण हैं। इस समय जो मूलवाद हेतु सभा के समक्ष प्रस्तुत है, वह यह है कि अपने संविधान में हम किस प्रकार की सामाजिक विचारधारा को रखें और किस प्रकार की सामाजिक विचारधारा को उसमें न आने दें। यह सिद्धान्त ओर सब बातों से महान है—किसी विचार को पुष्ट करने वाला वह सिद्धान्त अथवा कार्य की कोई ऐसी प्रणाली, जो मुख्य रूप से समूचे समाज के संचालन पर प्रभाव डालता है। हमने यह देखा है कि 1890 के लगभग डार्विन द्वारा प्रस्तुत किया गया सिद्धान्त-समर्थ जीवित रहता है—सच माना गया था। शारीरिक विकास के आधार पर इस सत्य को सिद्ध किया गया था और उन वैज्ञानिकों के पर्यवेक्षण के आधार पर, जिन्होंने सर्व प्रथम समाज के समक्ष विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि प्रकृति पूर्णतया संघर्षरत है और केवल समर्थ ही जीवित रह सकते हैं और प्रकृति में चारों ओर घोर युद्ध हो रहा है। यह ज्ञान, यह विचार पाश्चात्यों के मन में यहां तक जड़ जमा गया है कि उनका प्रत्येक राष्ट्र शस्त्रास्त्र की वृद्धि कर समर्थ बनने के प्रत्यन में लगा और इसका फल यह हुआ कि पच्चीस या तीस वर्षों में उनके यहां दो सर्वनाशकारी युद्ध हुए। हमें यह देखना है कि समाज के प्रति यह विचार कि केवल समर्थ ही जीवित रहेगा, ठीक है या नहीं। बाद में हमने यह मालूम किया कि प्रकृति में केवल समर्थ के जीवित रहने का सिद्धान्त ही क्रियान्वित नहीं हो रहा है, वरन् परस्पर सहायता का सिद्धान्त भी पाया जाता है और यद्यपि प्रकृति भीषण संघर्ष में रत है, परन्तु फिर भी वह पालक के रूप में भी है। इसी प्रकार यदि हम आज यहां खड़े होकर यह कहें कि "जी नहीं, संपत्ति परम पवित्र है, संपत्ति से हाथ नहीं लगाया जायेगा और सम्पत्ति को छोड़ने का कोई भी प्रयत्न उन सिद्धान्तों का खंडन करेगा, जो परम्परा से अक्षुण्ण माने जाते हैं", तो मैं सभा को यह ज्ञात कराना चाहूंगा कि यह वह रूप नहीं है; जिस रूप में आप के पूर्वज इस प्रश्न पर विचार करते थे। भगवत् गीता का यह प्रसिद्ध कथन आपको स्मरण रखना चाहिये–

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

गीताकार ने यह निश्चित रूप से कहा है कि संपत्ति अर्जन करने में जो लोग केवल अपनी सुविधाओं का ही विचार रखते हैं ओर जो यह भूल जाते हैं कि अन्ततः इस समस्त समाज की उत्पत्ति यज्ञ की भावना से हुई है, बलिदान की भावना से हुई है, परस्पर सहायता की भावना से हुई है, वे चोर और पापी हैं। जैसा कि आप जानते हैं, गीताकार ने यह स्पष्ट कहा है–

सह यज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति।
अनेक प्रसविष्यध्वं एषवोडस्त्विष्ट-कामधुक्।।

प्रजापति ने इस अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की.....

***अध्यक्षः** इस सभा के लिये माननीय सदस्य बहुत अधिक दार्शनिक हो गये हैं। वे अपने भाषण को संकल्प तक ही सीमित रखें।

***श्री कला वेंकटा रावः** संस्कृत से इतना परिचित होने के कारण मुझे आशा है कि वे संस्कृत भाषा का राष्ट्रीय भाषा के रूप में समर्थन करेंगे।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** इस बात को जानते हुए कि माननीय सदस्य संस्कृत के पंडित हैं, इस गौरव को मैं उनके लिये छोड़ता हूं। श्रीमान, जैसा कि मैंने कहा था, इस सब के पीछे यह विचार है कि समस्त समाज की उत्पत्ति बलिदान की भावना से हुई है और इस कारण कोई भी व्यक्ति, चाहे वह जमींदार हो या पूंजीवादी, यदि यहां सभा में खड़ा होकर यह कहता है कि उसके अधिकारों का रक्षण होना चाहिये, उनको संरक्षित रखना चाहिये, तो मैं समझता हूं कि वह अपनी ही परम्परा के प्रति, अतीत की अपनी ही भावनाओं के प्रति सच्चा नहीं है, जो उसे अन्धकारमय युग में सहारा देती रही है और इस कारण अपने जमींदार मित्रों से मैं यह कहूंगा कि इस तुच्छ रूप में इस प्रश्न की ओर न देखिये।

राज्य के रूप में, राजनैतिक पक्ष के रूप में हमारे ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि हम कुछ सम्पत्तियों के अर्जन को न्याय्य बना दें और कुछ अन्य प्रकार की सम्पत्तियों को अन्याय्य बना दें, तो हम अपने ऊपर यह आक्रमण होने देंगे कि हम यहां निश्चित रूप में समाज के एक वर्ग को—समाज के पूंजीवादी वर्ग को—सुविधा दे रहे हैं। क्या खंड (2) का यह अर्थ है कि हम पूंजीवादियों के लिये न्यायालय जाने का दरवाजा खुला रख रहे हैं और उनको यह दावा करने दे रहे हैं। कि जिस सिद्धान्त के आधार पर प्रतिकर निश्चित किया गया है, वह कपटयुक्त है अथवा जो प्रतिकर दिया गया है, वह पर्याप्त अथवा उचित नहीं है? क्या खंड (2) का यही अर्थ है? श्रीमान, यदि यही अर्थ है, तब तो मैं निवेदन करता हूं कि यदि हमारे विरोधी आकर यह कहें कि हम पूंजीवादियों के पिछलग्गू होकर कार्य कर रहे हैं, तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यदि हमारा यह आशय नहीं है, तो हमें स्पष्ट रूप में यह कह देना चाहिये कि किसी ऐसी विधि पर, जो सामाजिक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन करने के उपबन्ध बनाती है, किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि प्रतिकर की जो व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है या इस आधार पर कि जिन सिद्धान्तों के अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा, वे कपटमय अथवा अनुचित हैं, कोई प्रश्न नहीं उठाया जायेगा। मैं यही निवेदन करना चाहता हूं। यदि हम यह बात स्पष्ट नहीं करते हैं, तो मैं समझता हूं कि हम उन महा भीषण परिणामों के लिये मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, जो हमें भुगतने होंगे। इन शब्दों में मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूं और माननीय प्रधान मंत्री से यह निवेदन करता हूं कि जो संशोधन पेश किया गया है, उसे वे स्वीकार करें। इस संशोधन के सहित यह प्रस्थापना सभा के समक्ष एक आदर्श प्रस्थापना होगी और इस कारण

[पं. बालकृष्ण शर्मा]

इस प्रस्थापना का अपने उच्च स्वर में समर्थन करने में मुझे कोई संकोच नहीं होगा, परन्तु जब तक कि इस बात को स्पष्ट नहीं किया जाता है, तब तक मैं इस विचार को स्वीकार नहीं कर सकता हूं कि सभा इसे स्वीकार करे।

*__श्री जगन्नाथ बख्श सिंह__ (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, खंड (4) के अपमार्जन के लिये मैं एक संशोधन पेश करता हूं, पर आपके आदेश के अनुसार तथा इस तथ्य के कारण कि साधारण वाद-विवाद आरम्भ हो गया है, मैं विशेषकर खंड (4) पर साधारण रूप में भाषण दूंगा। मैं यह निवेदन करूंगा कि इस संशोधन के खंड (6) का मैं समान रूप से विरोधी हूं, परन्तु चूंकि मैं समझता हूं कि ऐसे कई माननीय सदस्य हैं, जो इस खंड के बारे में मुझसे अधिक जानते हैं, इसलिये मैं उनके तर्कों को मानूंगा और इस संशोधन के इस अंग पर मैं सभा में भाषण नहीं दूंगा।

श्रीमान, अब तक संपत्ति का अनिवार्य अर्जन भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 जिस रूप में भारतीय स्वाधीनता अधिनियम तथा अनुषांगिक आदेशों द्वारा अनुकूलित की गई है, उसके अनुसार किया जाता है। इस धारा का अभी तक संपत्ति अर्जन करने में प्रयोग नहीं किया गया है। मैं समझता हूं कि जब तक जो संपत्ति अनिवार्य रूप से अर्जित की गई है, वह 1894 के अधिनियम 1 अर्थात् भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन की गई है। अधिकारों की न्याय्यता के मुख्य प्रश्न के सम्बन्ध में इस अधिनियम की धारा 23 में दो उपबन्ध हैं, जिनका मैं यहां वर्णन करूंगा। धारा 23 की उपधारा 1 में यह उपबन्ध है कि अर्जित भूमि का प्रतिकर निश्चित करने में सर्व प्रथम बाजार भाव पर विचार किया जायेगा। उपधारा (2) में आगे चलकर यह निर्धारित किया गया है कि "जैसा कि ऊपर उपबन्ध किया गया है, बाजार भाव के साथ-साथ अर्जन के अनिवार्य प्रकार पर विचार करते हुए न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसे बाजार भाव पर 15 प्रतिशत पंचाट देगा।"

इसके अतिरिक्त उसी अधिनियम की धारा 35 से संलग्न एक परन्तुक है, जो इस प्रकार है—'यदि कलक्टर और जिन का हित है, वे लोग प्रतिकर की पर्याप्तता या उसके किसी भाग के देने पर मतभेद रखते हैं, तो कलक्टर ऐसे मतभेद को न्यायालय के विनिश्चय के लिये भेजेगा।"

श्रीमान, ये उपबन्ध एक उस अधिनियम के अधीन निजी संपत्ति के अर्जन पर समुचित या कदाचित् समुचित से भी अधिक प्रतिकर देने के लिये हैं, जिस को स्मृतिज्ञों के उस निकाय ने अधिनियमित किया था, जिसको कार्यपालिका के आतंक में आया हुआ निकाय कहा जा सकता है और जिसको उस संविधान के अधीन क्रियान्वित किया गया है, जो कार्यपालिका को न्यायपालिका से उच्च मानने वाले सिद्धान्त पर आश्रित था।

क्या यह वैषम्य व्यंग्यात्मक महत्व से परिपूर्ण नहीं है कि यह संविधान, जो कि विधिवत् शासन के प्रति अपने सम्मान के लिये प्रसिद्ध है, जो प्रत्येक व्यक्ति को न्यायपालिका में जाने के अधिकार की प्रत्याभूति का दावा करता है, उस में प्रस्थापित संशोधन के खंड (4) जैसा परन्तुक है, जो व्यक्ति को एक अपने आधारभूत अधिकार में राज्य सरकार द्वारा बाधा डालने पर भी न्याय की मांग करने से रोकता है?

खंड (4) उन राज्यों के लिये दो सिद्धान्त निर्धारित करता है, जिनके विधान मंडल में इस संविधान के प्रारम्भ के समय जमींदारी उन्मूलन विधेयक लम्बित हैं। ये सिद्धान्त यह हैं। सर्वप्रथम प्रतिकर विनिश्चय करने और देने का सिद्धान्त और रीति निर्धारण करने की शक्ति राज्य सरकारों में हस्तान्तरित करना और दूसरा यह कि उपरोक्त प्रकार से निर्धारित किये गये सिद्धान्त और रीति के सम्बन्ध में न्यायालय में प्रश्न करने के क्षेत्राधिकार का अपवर्जन। श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जिनकी वैध विषयों में सम्मतियां प्रमाण के रूप में मानी जाती हैं, आज जिस संशोधित रूप में अनुच्छेद 24 है, उसका स्पष्टीकरण किया है। इस विषय से अनभिज्ञ मुझ जैसे व्यक्ति के लिये यह संभव नहीं हो सकता है कि उन्होंने जो सम्मतियां प्रकट की हैं, उनकी उलझनों पर विचार करें, परन्तु जैसा कि मैं निवेदन कर चुका हूं, मेरा सम्बन्ध मुख्यतया खंड (4) से है। खंड (4) के सम्बन्ध में श्री अल्लादी ने कहा है कि यह विशिष्ट खंड संयुक्त प्रान्त के विधेयक के सम्बन्ध में है। उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया कि वे यह नहीं जानते कि उस विधेयक में जो उपबन्ध हैं, वे ठीक हैं या नहीं। श्री अल्लादी तथा अन्य विख्यात विधि पंडित और व्यक्ति मूलाधिकार समिति के सदस्य थे और संयुक्त प्रांत का विधेयक मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के बहुत दिनों बाद प्रस्तुत हुआ था। मैं यह भी मानता हूं कि मसौदा-समिति के अन्य सदस्य भी उस विधेयक की उलझनों से परिचित नहीं हैं, जो संयुक्त प्रान्त के विधान मंडल में लम्बित है। अत: यदि मैं उस विधेयक को कुछ विस्तारपूर्वक लूं, जो संयुक्त प्रान्तीय विधान मंडल में लम्बित है, तो यह विषय से असंगत बात नहीं होगी। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय को मैं बहुत ही अधिक विस्तारपूर्वक नहीं लूंगा।

वह विधेयक एक बहुत ही बड़ा विधान है और उसमें 310 खंड हैं और यदि उपखंडों को भी शामिल किया जाये, तो संख्या 1000 तक हो जायेगी और इस विधेयक को विस्तारपूर्वक सुनने के लिये इस सभा के पास समय नहीं है। इस बात पर विचार करते हुए मैंने दो बातों पर ही बोलना निश्चय किया है और उनको भी बहुत संक्षेप में। ये दो बातें हैं, सर्वप्रथम प्रतिकर का प्रभाव और दूसरी यह कि यह स्वामियों के कितने अधिकार का हरण करता है। श्रीमान, संयुक्त प्रांत का क्षेत्रफल लगभग 6 करोड़ एकड़ है और इसका 59 प्रतिशत उन किसानों के अधिकार में है, जिनको स्थानान्तरणीय अधिकार मिलेंगे। एक प्रतिशत जमींदारों के कृष्णाधिकार में है, जिनको वह भूमि अपने जीवनयापन के लिये मिलेगी। एक प्रतिशत के हिसाब से जमींदारों के प्रत्येक कुटुम्ब के लिये यह 3.74 एकड़ के लगभग होती है और

[श्री जगन्नाथ बख्श सिंह]

सरकारी हिसाब से जमींदारों के कुटुम्ब 20 लाख हैं और हमारे हिसाब से 23 लाख हैं। यह मिलकर संयुक्त प्रान्त की भूमि के क्षेत्रफल का 60 प्रतिशत होता है। कुछ क्षेत्रफल के 59 प्रतिशत के लिये जमींदार मध्यवर्ती व्यक्तियों के रूप में समझे जाते हैं। 'मध्यवर्ती व्यक्ति' का अर्थ उस व्यक्ति के रूप में लेते हुए, जिसकी स्थिति राज्य और किसान के बीच में है, ऐसी भूमि का 49 प्रतिशत मध्यवर्ती व्यक्तियों के अधिकार में है। शेष 10 प्रतिशत भूमि अर्थात् 216 लाख एकड़ कृषि के योग्य बनाई जाने वाली ऊपर भूमि है, जिसके लिये जमींदारों ने सीधा सरकार से बंदोबस्त किया है। इस भूमि में कोई किसान नहीं है और इस कारण उसके लिये कोई मध्यवर्ती व्यक्ति नहीं है। इस समस्त क्षेत्रफल के 59 प्रतिशत पर, जिसमें कि जमींदार राज्य और किसान के बीच में मध्यवर्ती व्यक्ति है, जो प्रतिकर देना विचारा गया है, वह लगभग प्रत्येक संपदा के लाभ का अठगुना है। 5000/- रुपये भू-राजस्व से कम की आमदनी पर भिन्न प्रकार से पुनर्निवासन अनुदान देने के लिये उपबन्ध बनाये गये हैं। 5000/- रुपये से अधिक पर केवल आठगुना ही है, परन्तु उच्चकोटि में प्रतिकर लाभ का केवल तिगुना ही है। यह मैं संयुक्त प्रांत के माननीय मुख्य मंत्री के उस वक्तव्य के आधार पर कह रहा हूं, जो स्वयं उन्होंने 10 जून को लखनऊ में संवाददाताओं के सम्मेलन में दिया था। जिन लोगों को अपने लाभ का तिगुना मिलेगा, उनका प्रतिकर उनकी वार्षिक आय का 75 प्रतिशत होगा। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति जिसकी आय एक लाख रुपया है, उसे अपनी सब सम्पत्ति का 75000/- रुपया प्रतिकर मिलेगा। 2½ प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज का हिसाब लगाने से इसका अर्थ यह हुआ कि अब इस समय की एक लाख की आय के स्थान में उसे 1875/- रुपये की आय होगी। संयुक्त प्रान्त के क्षेत्रफल के 49 प्रतिशत भूमि अर्जन करने के प्रतिकर के सम्बन्ध में यह स्थिति है।

शेष 40 प्रतिशत भूमि, जिसके सम्बन्ध में मैं यह कह चुका हूं कि जमींदार मध्यवर्ती व्यक्ति नहीं हैं, उसको सरकार बिना किसी प्रतिकर के अर्जित कर रही है। यह उस दो करोड़ एकड़ भूमि के बारे में है, जिस में चरागाह, विविध प्रकार के वृक्ष, जंगल, वन, तालाब, कुंए तथा सुधार और उन्नति की अन्य वस्तुएं तथा ऊसर क्षेत्र और ऐसे उर्वरा क्षेत्र भी हैं, जिनका राजस्व अन्य जोती हुई भूमि से कम नहीं है। यह सब भूमि बिना किसी प्रतिकर के अर्जित की जा रही है और इस बात पर ध्यान दीजिये कि इस अधिकार के हरण करने से छोटे जमींदारों को बड़े जमींदारों से अधिक हानि होगी। सभा के समक्ष में एक खास बात रखूंगा।

**श्री महावीर त्यागी* (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं यह जान सकता हूं कि उस भूमि से कुछ भू-राजस्व प्राप्त होता है या नहीं?

***श्री जगन्नाथ बख्श सिंह:** उस भूमि पर उसी प्रकार से भू-राजस्व दिया जाता है, जैसे कि जोती हुई भूमि पर। जिन जमींदारों ने इस भूमि को खरीदा है, उन्होंने उसकी कीमत दी है और इन क्षेत्रों से उन्हें जो आय होती है, उसको भू-राजस्व में निर्धारण करने के अतिरिक्त उस पर आयकर भी लगाया जाता है, जिससे उस भूमि के मूल्य में कोई संदेह नहीं रह जाता है।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मैं यह निवेदन करूंगा कि वे इस विशेष विधेयक को अधिक विस्तारपूर्वक न लें।

***श्री जगन्नाथ बख्श सिंह:** मैं और अधिक विस्तारपूर्वक उसे नहीं लूंगा। श्रीमान, यह प्रश्न कदाचित् उसके विस्तार से सम्बन्ध नहीं रखता है और न किसी विशेष प्रान्त से ही सम्बन्ध रखता है, जब कि मैं यह कहता हूं कि जमींदारी का अर्जन कांग्रेस की सरकार और किसानों के बीच में से मध्यवर्ती व्यक्तियों को हटाने के वचन के पालन करने के रूप में क्रियान्वित किया जा रहा है। यह वचन सन् 1945-46 के कांग्रेस के निर्वाचन सम्बन्धी घोषणापत्र में था और इस को कई बार विधान मंडलों में तथा विधान मंडलों से बाहर दुहराया गया है। उस संकल्प को पढ़कर सुनाने में मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता हूं। पर सभा की सूचनार्थ यहां मैं यह निवेदन करूंगा कि इस वचन का पालन करने के विचार से संयुक्त प्रांतीय विधान-सभा ने 8 अगस्त 1946 को एक संकल्प पारित किया था। इस संकल्प में यह कहा गया है:

> "यह सभा इस प्रान्त में से जमींदारी प्रथा मिटाने के सिद्धान्त को स्वीकार करती है, जिसमें कृषक और राज्य के बीच में मध्यवर्ती व्यक्ति होते हैं और यह संकल्प करती है कि इन मध्यवर्ती व्यक्तियों के अधिकारों को उचित प्रतिकर देकर अर्जित किया जाये।"

(इन शब्दों पर ध्यान दिया जा सकता है।)

> "और इस प्रयोजन के लिये योजना तैयार करने को सरकार एक समिति नियुक्त करे।"

इस प्रस्ताव को माननीय राजस्व मंत्री ने पेश किया था और संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने एक लम्बे भाषण द्वारा इसका समर्थन किया था। अपने भाषण में उन्होंने कहा था। *(भाषण उन्होंने हिन्दुस्तानी में दिया था।)* "हमारा फर्ज है कि हम जमींदारों के साथ इन्साफ करें।" उनके शब्दों से और इस संकल्प के अर्थ से हम बहुत प्रफुल्लित हुए थे। इस पर मैं कोई आलोचना नहीं करूंगा। सभा के निर्णय पर ही मैं इस बात को छोड़ दूंगा कि प्रतिकर और अधिकार हरण करने

[श्री जगन्नाथ बख्श सिंह]

की जिन शस्त्रों को मैंने बहुत ही संक्षेप में बताया है, वे इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि जैसा सरकार ने कहा था कि इंसाफ करना उसका फर्ज है, उसके अनुसार संयुक्त प्रान्त के जमींदारों को उचित प्रतिकर मिल रहा है या नहीं। ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये। सभा इन पर निर्णय करे।

अन्त में मैं केवल यही कहूंगा कि निजी संपत्ति के विषय में न्याय्य अधिकारों का मामला अभेद्य है। जमींदारों को प्रतिकर देने के विरुद्ध निधि की कमी कोई तर्कपूर्ण बात नहीं है, जब कि राज्य सरकार को अर्जित भूमि के स्थानान्तरणीय अधिकारों को किसानों में बेचने से 45 करोड़ रुपये की कोरी बचत है। निजी संपत्ति के सब प्रकारों के साथ समान बर्ताव करना एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसके प्रति यह सभा लक्ष्य संबंधी संकल्प में की गई घोषणा और पारित अनुच्छेद 15 के उपबन्धों द्वारा वचनबद्ध है। श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि इस सभा की पूर्व प्रतिज्ञाओं के विपरीत होने के अतिरिक्त, यदि इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाता है, तो वह उस संपत्ति संबंधी मूलाधिकार पर अनुदाहरणीय आक्रमण के रूप में होगा, जिसको पवित्र समझा गया है और संसार के लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण संविधान ने जिसकी प्रत्याभूति की है। अत: इस संशोधन में खण्ड (4) का तथा खंड (6) का भी अपमार्जन करना और न्याय्य बाद हेतु के रूप में उचित तथा ठीक प्रतिकर देने के लिये उपबन्ध करना एक नैतिक आभार है। श्रीमान, न्याय न केवल करना ही चाहिये और न करने के लिये कहना ही चाहिये, वरन् ऐसा प्रतीत होना चाहिये कि न्याय किया जा रहा है। उपखंड (4) और (6) के अपमार्जन का मैं जोरदार समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पन्त** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, जब से प्रधान मंत्री ने इस अनुच्छेद को सभा के समक्ष रखा है, तब से कई संशोधन पेश हो चुके हैं। कई कारणों वश इस अनुच्छेद पर आक्रमण किया गया है। बहुत से संशोधन परस्पर एक दूसरे के विरोधी हैं और पूर्णतया विपरीत हैं। कुछ वक्ता इस कारण इस खंड से संतुष्ट नहीं हैं कि इसमें बहुत अधिक दिया गया है और कुछ यह सोचते हैं कि इसके अधीन जो प्रतिकर ग्राह्य है, वह भ्रमात्मक है और शायद उससे उन्हें संतोष न हो।

मैं समझता हूं कि श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा स्पष्ट व्यक्त कर देने पर तथा पेश करते समय प्रधान मंत्री के गंभीर भाषण देने पर भी अभी कुछ भ्रम है। मेरे प्रान्त के जमींदार दल के नेता राजा जगन्नाथ बख्श सिंह, जो उस संयुक्त प्रवर समिति के भी सदस्य हैं, जो इस विधेयक पर विचार कर रही है, यह चाहते हैं कि जमींदारी का प्रतिकर भूमि अर्जन अधिनियम में निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार दिया जाना चाहिये, अर्थात् यह कि जमींदारी को बाज़ार-दर में 15 प्रतिशत और मिलाकर मिलना चाहिये। उनकी बात सुनने के पश्चात् तो मुझे ऐसा लगता

है कि यदि हम खंड (4) को पुनःस्थापित नहीं करते, तो एक बड़ी भारी भूल होती। रूढ़िगत स्वार्थों का कठिनाई से नाश होता है। परन्तु कभी-कभी वे किसी विषय में उदार विचार रखना तो दूर रहा, समझदारी तक के विचार रखने में असमर्थ हो जाते हैं।

उन्होंने उस विधेयक की आलोचना की है, जिसको संयुक्त प्रान्तीय विधान मंडल में प्रस्तुत करने का मुझे सौभाग्य मिला था। उस विधेयक को लेने के पूर्व, चूंकि उन्होंने भारत शासन अधिनियम, 1935 का उल्लेख किया और यह कहा कि पहले धारा 299 को कभी लागू नहीं किया गया, मैं इस संबंध में कुछ बातें कहना चाहूंगा। यदि अब भी वे कुछ समझने की प्रवृत्ति रखते हैं, जिसके बारे में मुझे संदेह है, तो जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, उससे उनकी कुछ धारणायें मिट जायेंगी। संयुक्त प्रवर समिति को इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला था और उसमें जो कुछ कहा गया था, उससे उनको संतोष हो जाना चाहिये। इस समिति में इस प्रश्न पर विचार किया गया था और जो महत्वपूर्ण सामान्य सिद्धान्त है, उसे स्वीकार किया गया था। वैयक्तिक संपत्ति का किसी विशिष्ट तथा सीमित प्रयोजन के लिये अर्जन किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये संपत्ति के किसी वर्ग का साधारण अर्जन हो सकता है। इसके सिद्धान्तों का विनिश्चय प्रयोजन, परिस्थितियां तथा अन्य मुख्य तथा संगत बातों के आधार पर, जिनका इन वाद-हेतुओं से संबंध है, किया जायेगा। जब कि किसी संपत्ति का अर्जन डाकखाने, रेलवे स्टेशन या कोठार-घर के लिये किया जायेगा, तो उसके लिये भूमि अर्जन अधिनियम के अनुसार धन दिया जायेगा, जिसमें एक निश्चित तथा ठीक परिमाण विनिहित है; वह यह कि बाजार-दर के हिसाब से धन दिया जायेगा। परन्तु जब कि संपत्ति का अर्जन किसी ऐसे विशिष्ट प्रयोजन के लिये नहीं किया जाता है, वरन् जब कि आप बहुत से लोगों की संपत्ति संकुचित रूप में किसी उत्पादन के प्रयोजन के लिये नहीं, बल्कि लोक-कल्याण की उन्नति हेतु अर्जित करते हैं, तो उस प्रयोजन तथा उस अवसर का उचित विचार रखते हुए सिद्धान्त बनाये जायेंगे, जिसके लिये ऐसा कदम उठाना पड़ा है।

कुछ मित्रों ने निजी संपत्ति के उस अधिकार का उल्लेख किया है, जिसका इस विधेयक में उपबन्ध किया गया है। उनको मैं उस लक्ष्यमूलक संकल्प की याद दिलाऊंगा, जिसको हमने प्रथम दिन पारित किया था। उनको मैं इस विधेयक की प्रस्तावना की भी याद दिलाऊंगा। कभी-कभी हम यह भूल जाते हैं कि मूलभूत तथा मुख्य सिद्धान्त क्या है—जोकि उस विधान की आत्मा है, जिसका हम उपक्रम कर रहे हैं और उस संविधान का प्राण है, जिसका हम निर्माण कर रहे हैं। प्रस्तावना में हम यह कहते हैं:—

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पन्त]

न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये.....।"

मैं निवेदन करता हूं कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन और भू-सुधार विधेयक, जिसको हमने अपने विधान मंडल में पुरःस्थापित किया है, वह हमारे गणराज्य के समाज संबंधी उद्देश्यों की उन्नति के लिये है। अतः जब हम उसके उपबन्धों की जांच करें, तो हमें उस सर्वोच्च लक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिये, जिसको हमारे राज्य ने प्रस्तुत किया है और जिसकी स्वयं राज्य ने व्याख्या की है। माननीय प्रधान मंत्री ने जो कुछ कहा था, मैं उसके एक-एक शब्द का समर्थन करता हूं और मैं फिर कहता हूं कि जमींदारों से हमारा कोई विरोध नहीं है, मैं तो उनसे मैत्री रखना चाहता हूं और प्रत्येक का मित्र होना चाहता हूं। मैं यह समझता हूं कि हम अपने उत्तरदायित्वों का पूर्णरूप से निर्वहन नहीं करेंगे, यदि हम जान बूझ कर किसी विशिष्ट वर्ग को हानि पहुंचाना चाहें। अतः मैं उचित प्रतिकर का समर्थक हूं, प्रत्येक व्यक्ति के लिये उचित प्रतिकर हो—पर वह उचित प्रतिकर क्या है? प्रश्न तो यही है। न्याय की परिभाषा किसी परिमाण के रूप में नहीं की जा सकती है। जब हम एक वृहद रूप में सामाजिक सुधार पुरःस्थापित करते हैं, तो उन निबन्धनों के अनुसार प्रतिकर की व्यवस्था करना बहुत ही अनुचित होगा, जिनकी राज्य पूर्ति नहीं कर सकता, जिनका सम्भवतया पालन नहीं किया जा सकता और जिनसे या तो राज्य का तंत्र छिन्न-भिन्न हो जायेगा, या जिनके बोझ से राज्य दब जायेगा। इन दोनों बातों से हमें रक्षा करनी है। राज्य की सामर्थ्य सीमित है। अब हम लोक-कल्याण के लिये कोई उपक्रम कर रहे हैं, तो प्रत्येक वर्ग के साथ न्यायोचित व्यवहार करने के साथ-साथ हमें मुख्य प्रयोजन का सदैव ध्यान रखना चाहिये और वह मुख्य प्रयोजन समस्त राज्य का कल्याण और समस्त सम्प्रदाय का कल्याण है। किसी वर्ग को, किसी भी हित को इस मार्ग में आड़े नहीं आने दिया जायेगा, और यदि कोई आड़े आयेगा, तो उसे कुचल दिया जायेगा, वह छिन्न-भिन्न हो जायेगा, टिक नहीं सकता।

अतः जब कि मुझसे यह कहा जाता है कि मैंने न्याय करने के लिये कहा था, तो मैं कहता हूं कि मैंने न्याय किया है और संयुक्त प्रान्तीय जमींदारी उन्मूलन विधेयक की जांच करने के लिये मैं उसे किसी भी मध्यस्थ मंडली के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये तैयार हूं और वह मंडली उसमें उपबन्धित प्रतिकर के रूप पर अपने विचार प्रकट कर सकती है। यदि कोई व्यक्ति, जोकि उत्तरदायित्वपूर्ण है और जो इन बातों में दूर तक जा सकता है और जो सदैव उस सर्वोच्च प्रयोजन को अपने ध्यान में रख सकता है, जिसका हमारा राज्य समर्थक है, वह प्रसन्नता से इस कार्य को करने का कष्ट करे और मुझे विश्वास है—और इस आशा में

मैं स्वयं अपनी प्रशंसा करने के लिये तैयार हूं कि जो कुछ हमने किया है, उस के लिये वह मुझे बधाई देगा और मैं यह दावा करती हूं कि जिन लोगों ने सावधानी पूर्वक इस विधेयक की जांच की है, वे लगभग इसी परिणाम पर पहुंचे हैं और मेरे ही प्रान्त में बहुत से लोग यह सोचते हैं कि हमने बहुत उदारता की है।

आखिर वह प्रतिकर क्या है, जिसका हमने उपबन्ध किया है। हमारे यहां लगभग 20 लाख जमींदार हैं। 19 लाख से अधिक को हमने उनकी शुद्ध वार्षिक आय का 28 गुना प्रतिकर के रूप में उपबन्ध किया है। क्या कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि यह अपर्याप्त है? आप यह देखें कि कोई भी व्यक्ति, जो 5,000/- रुपये या इससे कम राजस्व में देता है, तो उसे शुद्ध वार्षिक आय का 10 गुने से कम प्रतिकर नहीं मिलेगा। क्या यह अनुचित है, क्या यह अपर्याप्त है कि चाहे कोई व्यक्ति कितना ही अधिक राजस्व देता हो, उसे शुद्ध आय के अठगुने से कम नहीं मिलेगा। जो लोग जमींदारी के इतिहास से परिचित हैं, वे जानते होंगे कि जब अंग्रेजों ने सर्वप्रथम इस पद्धति का पुर:स्थापन किया था, तो जमींदारों को जो कुछ वे एकत्रित करते थे, उसका केवल दस प्रतिशत ही रखने दिया जाता था और कुछ लोग तो ऐसे थे, जिनसे जितना वे एकत्रित करते थे, उससे भी अधिक देने के लिये कहा जाता था। अत: आज जो कुछ जमींदार दे रहे है या अपने पास रख रहे हैं, वह कानून द्वारा बनाया गया है। प्राचीन काल में उनकी ऐसी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी। अंग्रेजी सरकार ने प्रारम्भ में शुद्ध उगाही का उनको केवल 10 प्रतिशत दिया। मैं उनको 20 प्रतिशत देने को तैयार हूं और उन को बाजार-दर से प्रतिकर दूंगा और इससे उन्हें संतोष हो जाना चाहिये। आखिर प्रतिकर के बारे में ये परम्परागत धारणायें क्या हैं? क्या उन पर हमने कभी गंभीर विचार करने का प्रयत्न किया है? यदि आप बाजार-दर भी लें, तो भी प्रतिकर किस बात पर निर्भर है? बाज़ार-दर न्यूनाधिक रूप से राज्य द्वारा बनती है, यदि आप अपनी मुद्रा का मूल्य कल ही गिरा दीजिये, तो बाजार-दर गिर जायेगा और इसके विपरीत परिस्थितियों में दर सौगुना बढ़ जायेगा। चूंकि हमने इस विधान को जमींदारी उन्मूलन करने के लिया था, जमींदारियों का बाजार दर बहुत कुछ गिर गया और जमींदारों को ग्राहक तक नहीं मिलते और फिर मुझे यह अधिकार है, सरकार को यह अधिकार है कि समस्त आय के 95 प्रतिशत तक भू-राजस्व लगा दें या रुपये में 15 आने तक कृषि आय कर लगा दें; किसी राज्य को ऐसा करने से कोई नहीं रोक सकता है। अत: न्यायोचित प्रतिकर क्या है, इसकी आप किस प्रकार परिभाषा करेंगे; आप यह कैसे परिभाषित कर सकते हैं कि इन परिस्थितियों में युक्ति युक्त क्या है? यह एक ऐसा विषय है, जिस पर इन सब संगत बातों पर विचार करते हुए विनिश्चित किया जा सकता है। अत: इस आश्चर्यजनक तथा प्रिय पद 'न्याय्य' की हम बहुत अधिक दुहाई न दें, जिसका प्रभाव आज मेरे बहुत से मित्रों पर छाया हुआ है।

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत]

और यदि आप न्याय्यता की दृष्टि से भी इसकी ओर देखें तो भी मैं आपसे कहूंगा कि जहां तक मेरे विधेयक की पहुंच है, वह जमींदारों को व्यवहार न्यायालय में जाने का हक देता है। प्रतिकर पदाधिकारी द्वारा उनको दी जाने वाली रकम को इस विधेयक के अनुसार यदि वे न्याययुक्त नहीं समझते हैं, तो वह व्यवहार न्यायालय में जा सकते हैं, वे उच्च न्यायालय में अपील कर सकते हैं, अत: न्यायालय को अलग नहीं किया गया है। न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को हमने मिटाया नहीं है। जो कुछ हम चाहे हैं, वह यह है। न्याय करने के लिये हमारे भरसक प्रयत्न करने पर भी ऐसी धारणायें हैं, जो तर्क पर आश्रित नहीं हैं, वरन् शायद ईर्ष्या या अज्ञानता से परिपूर्ण स्वार्थ पर आश्रित हैं कि जो कुछ व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त तथा तुच्छ है; अत: खंड (4) जैसा खंड रखना आवश्यक है, क्योंकि में जानता हूं कि हमारे जमींदारों और ताल्लुकेदारों में अब भी मुकदमेबाजी की लगन है। पुराने जमाने में वे सांड़ों या कबूतरों की लड़ाई में मग्न रहते थे। वे दिन हवा हो गये। पर उन्हें तो कहीं लड़ना ही है और वह लड़ाई अब न्यायालयों में होती है।

पर जब हम इतनी महान् समस्या को सुलझाने में लगे हुए हैं, जिसका प्रभाव केवल हजार दो हजार व्यक्तियों पर ही नहीं पड़ेगा, वरन् वास्तव में करोड़ों व्यक्तियों पर पड़ेगा, तो हम ऐसे ऐश्वर्य में नहीं पड़ सकते हैं। परिणाम चाहे कितना ही निष्फल क्यों न हो, पर इसके करने में जो कुछ तनाव है, उससे हमें बचना चाहिये। और फिर हम तो इससे भी आगे बढ़ गये हैं। हमने केवल पर्याप्त प्रतिकर ही देना निश्चित नहीं किया है, परन्तु इसके साथ-साथ प्रतिकर को समूचे रूप में या उसके किसी अंश को नकद देने के लिये हम किसानों से एक बड़ी राशि एकत्रित करने का महान प्रयत्न करने वाले हैं। मैं आशा करता हूं कि हम कोई ऐसी रीति खोज निकालेंगे, जिसे के द्वारा यदि हम धन संग्रह करने में सफल हुए, तो उस धन का उत्पादन संबंधी प्रयोजन के लिये प्रयोग किया जायेगा। धन संग्रह करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ महीनों में हमने 150 करोड़ रुपया एकत्रित करना निश्चित किया है। हमारा यह विचार है। क्या इससे यह संकेत नहीं मिलता कि हमारी इच्छा केवल यही नहीं है कि हम न्याय करें, वरन् यह भी है कि इस समस्या को सदैव के लिये सुलझा दें, जिससे कि भविष्य में इस पर कोई विवाद खड़ा न हो। जहां तक जमींदारी उन्मूलन का प्रश्न है, यदि इस विधि में कोई सामान्य उपबन्ध न भी होता, तो भी मैं सभा से एक विशिष्ट उपबन्ध बनाने के लिये कहता, जिससे कि बाद में कोई कठिनाई न हो। मैं यह मानता हूं कि हमें प्रत्येक व्यक्ति को न्यायोचित प्रतिकर देना पड़ेगा।

पर किसी भी मामले में हम यह नहीं चाहते कि मुकदमेबाजी में हम फसें और मेरा यह विचार है कि यदि किसी समय यह विधान मंडल चाहे कि उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो और उस पर नियंत्रण हो, चाहे वह सब उद्योगों के संबंध में

हो या वस्त्र अथवा खनिज पदार्थों संबंधी उद्योग के लिये हो, उसको यह अधिकार होगा कि इस प्रयोजन के लिये सिद्धान्त बनाये और विधि पारित करे और वे सिद्धान्त किसी भी न्यायालय में अकाट्य होंगे। उन पर प्रश्न नहीं किया जायेगा, क्योंकि उन पर आपत्ति करने की केवल यही शर्त है कि वह संविधान के विरुद्ध हो, जैसा कि श्री अल्लादी ने कहा है, जो कि इस देश में पैदा हुए महान स्मृतिज्ञों में से हैं। कोई भी विधानमंडल इस अधोगति को प्राप्त नहीं हो सकता है कि वह संविधान का विरोध करे। विधानमंडल संविधान के संधारण और उसकी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये हैं। अत: ऐसी शंकायें हमें नहीं रखनी चाहियें।

मैं नहीं समझ पाता हूं कि किसी भी क्षेत्र में किसी प्रकार का संदेह क्यों होना चाहिये। कुछ मित्र सोचते हैं कि यह खंड समाजीकरण में बाधा डालेगा। मैं नहीं समझता हूं कि इसका क्या आशय है। परन्तु सेठ दामोदर स्वरूप ने, जो मैं समझता हूं समाजवादी पक्ष के माने हुए प्रतिनिधि हैं, स्वयं यह कहा है कि विधि के अलावा अन्य किसी प्रकार से अर्जन नहीं होना चाहिये और यह भी कहा कि प्रतिकर दिया जाना चाहिये। इस बात को समाजवादियों तक ने माना है। पर यह स्पष्ट है कि उस प्रयोजन का विचार करते हुए, जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जाती है और उन परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए जिनके अन्तर्गत संपत्ति अर्जित की जाती है, राज्य केवल उतना ही प्रतिकर दे सकता है, जितना न्यायोचित समझा जायेगा।

अत: जिन लोगों ने विरोधी संशोधन पेश किये हैं, मैं उनसे यह निवेदन करता हूं कि शंका के लिये कोई कारण नहीं है। जब हम समाजीकरण करेंगे, उस समय हम कुछ सिद्धान्तों की परिभाषा तथा व्याख्या करेंगे और आप स्वयं यह चाहते हैं कि वे सिद्धान्त संविधान के विरोध में न हों; अत: कोई कठिनाई क्योंकर हो? आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि यह खंड आड़े आयेगा? आज हमारी कठिनाई यह है कि हम उत्पादन चाहते हैं, अधिकाधिक उत्पादन चाहते हैं और इस समय की यथार्थता की पूर्ण उपेक्षा करते हुए हमें अपने आपको काल्पनिक शंकाओं से भयग्रस्त नहीं होना चाहिये। कुछ मित्रों ने यहां धन लगाने वालों का पुन: विश्वास प्राप्त करने के बारे में कहा है। मैं नहीं जानता हूं कि हमने उसे क्योंकर खो दिया है? यदि धन लगाने वाले धन नहीं लगाना चाहते, तो वह इस कारण नहीं है कि उन्हें आश्वासन दिलाने का भरसक प्रयत्न करने में सरकार असफल रही है। परन्तु यदि इन आश्वासनों के देने पर भी धन नहीं लगाया जाता है, तो मैं सभा को यह भी याद दिलाऊंगा कि अनुच्छेद 24 के उपबंध भारत शासन अधिनियम की धारा 299 से बहुत अधिक व्यापक है। जब तक भारत शासन अधिनियम की धारा 299 रही, तब तक उनको कोई शंका न थी। भारत शासन अधिनियम केवल संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के संबंध का था और हमारा अनुच्छेद 24 केवल संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के ही संबंध में नहीं है, वरन्

[माननीय श्री गोविन्द बल्लभ पंत]

लोक प्रयोजन के लिये संपत्ति पर अपना कब्जा करने के लिये भी है। अत: यह अधिक व्यापक है।

भारत शासन अधिनियम की धारा 299 जिस समय प्रवृत थी, उस समय जब उनको कोई शंका न थी, तो मुझे कोई भी ऐसा कारण नहीं दिखाई देता कि हमारे नये संविधान के इस 24 अनुच्छेद के कारण उनको क्यों शंका, अशान्ति या अविश्वास हो। इसमें उनको और भी अधिक आश्वासन दिया गया है और किसी अन्य बात के अतिरिक्त मैं यह कहता हूं कि कांग्रेस अपने अहिंसा धर्म के सहित न्यायोचित प्रतिकर के पक्ष में है। पर उस न्यायोचित्य का निर्णय विधानमंडल द्वारा होगा, न कि न्यायालय द्वारा, क्योंकि केवल विधानमंडल ही उन बातों का जिनका ऐसे पेचीदे मामलों से संबंध है व्यापक रूप से विचार करने में समर्थ है। ऐसी कोई न्याय्य सामग्री नहीं है जिसको इन बातों पर विनिश्चय प्राप्त करने के लिये किसी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाये। इन परिस्थितियों में संभवत: अन्य कोई और मंच नहीं हो सकता है। कभी-कभी हमें केवल घरेलू परिस्थितियों पर ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर भी विचार करना पड़ता है। उदाहरण के रूप में चीन में जो कुछ हुआ, उसकी हम उस समय उपेक्षा नहीं कर सकते, जब कि हम अपने देश में जमींदारी उन्मूलन करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं। बर्मा में जो कुछ हो रहा है, उसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। पर किसी भी न्यायालय से यह नहीं कहा जा सकता कि वह बर्मा जाये, वहां जांच करे और प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। इस प्रयोजन के लिये कोई आयोग नियुक्त नहीं हो सकता। अत: हमें विधान मंडल में विश्वास करना पड़ा और यदि हमें स्वयं अपने ही में विश्वास नहीं है, तो मैं कहता हूं कि हमें अन्यत्र कहीं संतोष नहीं मिल सकता। इस कारण सभा से मेरा निवेदन यह है कि इस अनुच्छेद को उसके ठीक तथा पूर्ण अर्थ के सहित लें, उसके व्यापक क्षेत्र को समझें तथा उसकी परिसीमाओं को भी समझें और यह याद रखें कि जो कुछ हम करते हैं, वह उस उद्देश्य के अनुसार है, जिसको हमने अपने सामने रखा है।

***श्री विश्वनाथ दास:** श्रीमान, हमारे आज के वाद-विवाद में बड़े महत्वपूर्ण सिद्धान्त, जैसे कि निजी संपत्ति की उपादेयता, रक्षण और परिरक्षण, पर्याप्त प्रतिकर, संविधानिक परिमाण तथा अन्य ऐसी ही बातें प्रस्तुत की गई हैं। मुझे तो यह प्रश्न बहुत ही सरल दिखाई देता है और मैं अपने माननीय मित्रों से निवेदन करूंगा कि वे इस विषय के उस रूप पर विशेष ध्यान दें, जिसका हमारे वाद-विवाद से सीधा संबंध है।

स्थिति यह है। इस संविधान से संलग्न राज्य अनुसूची के नाम से ज्ञात सप्तम अनुसूची की सूची 2 हम स्वीकार कर ही चुके हैं। उसके अन्तर्गत राज्यों की हमने, जब कभी अपेक्षित हो, अनिवार्य अर्जन करने के लिये उपक्रम करने की

शक्ति सौंप दी है। मद संख्या 9 भूमि के रूप में संपत्ति अर्जन करने के विषय में है। इस समय विवादान्तर्गत अनुच्छेद 24 के अधीन उपबन्धों में इस शक्ति को निर्बन्धित करने का प्रयास किया जा रहा है। अतः प्रश्न केवल यह है कि प्रान्तों को, जो कि नये संविधान में राज्य कहे जाते हैं, जो शक्तियां आपने दी हैं, उन को क्या आप पलटना, विशेषित करना या उसमें रूपभेद करना चाहते हैं या इस संविधान से लग्न अनुसूची 7 के अधीन उन प्रान्तों या राज्यों को जो प्रकार्य तथा जो शक्तियां सौंपी गई हैं, उनको आप प्रयोग करने देना चाहते हैं।

इस संबंध में मैं माननीय सदस्यों का ध्यान मद संख्या 9 की ओर आकर्षित करूंगा, जिसमें प्रतिकर के सिद्धान्त को मान लिया है और स्वीकार कर लिया है। दो प्रश्न अपने आप पैदा होते हैं। प्रथम प्रश्न यह है कि अनिवार्य अर्जन पर राज्य प्रतिकर दे या न दे। इसका उत्तर अनुसूची के मद संख्या 9 में है। यहां हम उन लोगों से भिन्न मत रखते हैं, जिनकी यह धारणा है कि प्रतिकर न दिया जाये। इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने से हम लज्जित नहीं हैं कि राज्य द्वारा अनिवार्यतः अर्जित की गई संपत्ति का प्रतिकर दिया जायेगा।

श्रीमान, इस स्थिति को ग्रहण कर लेने के पश्चात् अन्य बात जो आवश्यक तथा प्रमुख है, वह यह है कि क्या प्रान्त की कार्यपालिका विधानमंडल से कोई शक्ति प्राप्त किये बिना स्वयं अर्जन कार्य कर सकती है। इसका उत्तर अनुच्छेद 24 का खंड (1) है। बिहार के अपने माननीय मित्र से मैं पूर्णतया सहमत हूं, जिन्होंने इस बात के समर्थन करने का पूरा प्रयत्न किया कि शेष अनुच्छेद अनावश्यक हैं। माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिये बहुत आदर और सम्मान होते हुए भी मुझे यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि इसको मूलाधिकार कहना और राज्यों को इस सभा के मत द्वारा जो शक्तियां दी जा चुकी हैं, उन पर प्रतिबन्ध के रूप में इसे प्रस्तुत करना मेरे मनोविचारों के बिल्कुल विरुद्ध है। आप चुपड़ी और दो-दो नहीं ले सकते हैं। संविधान के कुछ पहलुओं पर विधान बनाने की शक्ति इस संविधान के अधीन आप राज्यों को दे चुके हैं। अब यहां खड़े होकर यह कहने में क्या न्याय और क्या युक्ति है—"शाबाश, मेरे नेक बच्चो, मैंने आपको शक्ति तो दे दी है, पर रूढ़िगत स्वार्थों के लिये परित्राण हैं।" मुझे तो निबन्धों में यह परस्पर विरोध दिखाई देता है। मैं यह स्पष्ट स्वीकार करूंगा और अपने विरोध को प्रकट करूंगा कि आपने पहले ही राज्य और राज्य विधान मंडल के साथ कम उदार होकर व्यवहार किया है। आपने प्रान्तों को स्वायत्तता तो दी, पर जिस स्वायत्तता देने का आपने डंका पीटा, उसी स्वायत्तता को आपने मेंट दिया। 1935 के अधिनियम के अधीन राज्य, को जो स्वायत्तता प्राप्त थी, वह भी सब उससे छिन गई। उदाहरण के रूप में कर उदग्रहण करने, कर वसूल करने और राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित सिद्धान्त के अनुसार उसका वितरण करने की शक्ति की व्यवस्था तो आपने संविधान में की है। पर कर उदग्रहण करने का उत्तरदायित्व

[श्री विश्वनाथ दास]

जो राज्य के विधान मंडलों का उत्तरदायित्व है, उसे राज्य से छीन लिया गया है और अब प्रान्तीय गतिविधि के क्षेत्र में आप एक और महत्वपूर्ण प्रस्थापना लेकर आते हैं, जो मूलाधिकार के वेश में है वह है, संपत्ति अर्जन के विषय में विधान बनाने का अधिकार। कम से कम सच बात तो कह दी जाये। सीधे खड़े होकर हम यह कह दें "ये हैं, आपके राज्य। हम आपमें विश्वास नहीं करते। आप प्रत्येक प्रान्त में अपने 200 सदस्य रख सकते हैं और प्रत्येक सदस्य का 150/- रुपया मासिक वेतन रख सकते हैं, परन्तु आपको विधान बनाने की शक्ति नहीं होगी, चाहे वह कर निर्धारण के संबंध की हो या किसी भी बात पर विधान बनाने के संबंध की हो।" जब तक ऐसा नहीं किया जाता, तब तक मैं समझता हूं कि हम उस रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं, जिसकी हमसे आशा की जाती है। इस प्रकार से आप कब तक राज्यों को सहारा देते रहेंगे? इसी संविधान के अनेक अन्य उपबंधों में आपने राज्यों को सहारे के बल टिकाने की व्यवस्था की है। आपको मैं यह चेतावनी देता हूं कि जब तक आप सहारा देते रहेंगे, तब तक आप राज्य के विधान मंडलों में उस उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न नहीं होने देंगे, जिसका होना आप उनमें चाहते हैं: अमरीका या आस्ट्रेलिया के संयुक्त राष्ट्र ने राज्यों को बहुत अधिक शक्तियां दी हैं। क्या कोई इस प्रकार की शिकायत हुई है, जिसमें उन शक्तियों का दुरुपयोग किया गया हो, जो राज्यों को दी गई हैं? तो फिर राज्य के विधान मंडलों के भावी क्रियाकरण के प्रति यह संदेह क्यों, जबकि आपने राज्य के विधान मंडलों के क्रियाकरण में कोई ऐसे दुरुपयोग का उदाहरण न तो वर्तमान भारत में और न संसार के किसी अन्य भाग में ही देखा है?

राज्यों को जो उत्तरदायित्व सौंपा जा रहा है, उसके बारे में इतना कहने पर अब मैं अनुच्छेद 24 के वास्तविक कलेवर पर आता हूं। खंड (6) पर मुझे घोरतम आपत्ति है। किसी संविधान के प्रति तो क्या कहा जाये, बल्कि विधान तक का यह खंड खंडन करता है। खंड (6) को आप रखते ही क्यों हैं? मद्रास और बिहार ने क्या पाप किया है? उन्होंने भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 के निबन्धनों में विधान पारित किया है। इस संबंध में भारत शासन अधिनियम, 1935 बहुत ही महत्वपूर्ण तथा आवश्यक परित्राण निर्धारित करता है। और इन अभागे मंत्रिमंडलों ने अपने विधानमंडलों में जो विधेयक पुनःस्थापित किये हैं, उनकी सम्मति प्राप्त कर ली है। इन अभागे प्रान्तों के विधानमंडल के दोनों सदनों ने इन विधेयकों की पूरी-पूरी जांच कर ली है। जब भारत शासन अधिनियम, 1935 पार्लियामेंट में बनाया जा रहा था, उस समय लार्ड सभा में यह ठीक समझा गया कि द्वितीय सदनों की इस कारण व्यवस्था की गई है कि प्रान्तों के प्रथम सदन द्वारा किसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण

कार्य में रोक लगायें। इन दोनों मामलों में इन प्रान्तों के इन विधानों को दोनों प्रथम तथा उत्तर सदनों ने स्वीकार कर लिया है। राज्यपाल तथा मुख्य राज्यपाल भी इनके साथ हैं। तो फिर राष्ट्रपति की अनुमति के लिये इन अधिनियमों को रखवा कर इन विधानमंडलों को लज्जित करने तथा निरादर करने की इस अति अस्वाभाविक रीति को आप क्यों ग्रहण करते हैं? इस संबंध में संविधान-सभा के इस अन्यायपूर्ण कार्य के समान क्या अन्य कोई कार्य है, जिसमें कि विधानमंडल द्वारा पारित किये गये अधिनियम को, जिसे राज्यपाल ने स्वीकार कर लिया हो और जिस पर मुख्य राज्यपाल ने अनुमति दे दी हो, फिर राष्ट्रपति की सम्मति के लिये भेजा जाये? संविधान निर्माताओं के संबंध में तो क्या कहा जाये, पर मेरी सम्मति से किसी भी विधानमंडल के प्रति यह अन्यायपूर्ण कार्य है। अतः इस सम्बन्ध में खंड (6) के प्रति मैं अपना घोरतम विरोध प्रदर्शित करता हूं।

खंड (6) के बारे में इतना कह कर मैं खंड (4) पर आता हूं। इन तीन प्रान्तों में परस्पर तुलना कीजिये। आप इन दो प्रान्तों को ही किसी विधान पारित करने में जल्दी करने के पाप के कारण क्यों ठुकरायें। यह एक ऐसा विषय है, जिसके बारे में मुझे आशा थी कि माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू इसकी कुछ व्याख्या करेंगे। इस व्याख्या के लिये मैं उत्सुक रहा, पर दुर्भाग्यवश ऐसी कोई व्याख्या नहीं की गई। क्या मसौदा-समिति हमें यह समझाने की कृपा करेगी कि यह भेदभाव क्यों किया गया है? यदि खंड (2) इतना निष्कलंक, पवित्र और बहुत ही लाभदायक है, तो खंड (4) क्यों आवश्यक है? अब से पश्चात् आप उड़ीसा, बंगाल, आसाम तथा शेष भारत में जमींदारी अर्जन करना असंभव बना रहे हैं। कुछ सदस्यों ने इसे पढ़ने का जितनी बार प्रयास किया है, उससे अधिक बार पढ़ने पर मैं यह दावा कर सकता हूं, कि इस संविधान के अधीन अब से पश्चात्, एक वर्ष के पश्चात्, जमींदारी अर्जन करना इसके कारण असंभव हो जायेगा। जमींदार चतुर तो हैं ही, अपनी थैली के बल पर, अपनी तीव्र मानसिक शक्ति, कुशाग्र बुद्धि और चातुर्य के बल पर और सबसे बड़ी बात यह कि उस किराये की बुद्धि के बल पर, जो भारत में सरलता से प्राप्त हो जाती है और जिसकी व्यवस्था अच्छे-अच्छे विश्वविद्यालय करते हैं, वे इस संबंध में भविष्योन्नति का मार्ग इस संविधान द्वारा ही रोक देंगे। संविधान सभा के सदस्यों को मैं आपके द्वारा चेतावनी देता हूं। और इस संबंध में मुझे बहुत दुख है, यहां तक कि आंखों में आंसू तक आ जाते हैं, क्योंकि किसानों का संगठन करने के लिये भारत में सबसे प्रथम व्यक्ति मैं था। मैं आन्ध्र जमींदारी रैयत संघ और मद्रास के प्रेसीडेंसी प्रोपराइटरी रैयत संघ को, जो कि इस रूप के किसानों के दो शक्तिशाली संगठन थे, सन् 1920 से चला रहा था—यह वह समय था, जब कि भारत में कहीं भी किसानों के संगठन की चर्चा तक न थी। मैंने समझा था कि अंग्रेजों के अधीनभारत में नहीं, परन्तु

[श्री विश्वनाथ दास]

स्वतंत्र भारत में हम अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेंगे। भारत में स्वतंत्रता प्राप्त करने के दो वर्ष पश्चात् मैं देखता हूं कि मैं वहीं हूं, जहां कि सन् 1920 में था। इस अनुच्छेद पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही इसके बारे में मेरी ये शंकायें हैं। पद धारण करते ही मैंने जमींदारी मिटाने के विधान को लेना चाहा और आज भी मुझे याद है कि मंत्रियों के सम्मेलन में बम्बई में जब हम इस विषय पर वाद-विवाद कर रहे थे और जब मैंने इस विषय को उठाया, तो कांग्रेस हाई कमान्ड के एक बड़े प्रभावशाली सदस्य मुझ पर टूट पड़े और कहने लगे "क्या जमींदारों को प्रतिकर आप देंगे?" श्रीमान, मैं जहां था वहीं हूं, पर मैं देखता हूं कि औरों में परिवर्तन हुआ है। मित्रों के भाषणों में जमींदारों के लिये उचित तथा न्याययुक्त प्रतिकर की मांग की गई है। एक कार्यालय के अतिरिक्त जमींदारी और क्या है। स्थायी बन्दोबस्त आनियमनों में यही विचार व्यक्त किया गया है। श्रीमान, मान लिया जाये कि वह कार्यालय नहीं है, तो प्रकाशम समिति के प्रतिवेदन को देखिये, जिसका केवल प्रथम सदन ने ही समर्थन नहीं किया है, वरन् मद्रास विधानमंडल के उत्तर सदन ने भी किया है। यह वृहद् सरकारी प्रतिवेदन स्थायी बन्दोबस्त के बारे में कांग्रेस के संकल्पों के निबन्धनों के अनुसार अपना मत प्रकट करता है। हम केवल अपने निर्वाचकों को दिये हुए वचनों पर ही अटल नहीं है, वरन् देश के स्वतंत्र हो जाने से जो परिवर्तन हो रहे हैं, उनकी ओर भी हमें देखना है।

सभा का मैं और अधिक समय नहीं लूंगा। पर श्रीमान, निर्वाचन काल की प्रतिज्ञाओं का उल्लेख किया गया है। हां, निर्वाचकों को हमने वचन दिया था और उन वचनों के आधार पर हमने निर्वाचन लड़े थे। 1937 और 1946 के निर्वाचनों में हमने लोगों को जमींदारी उन्मूलन करने के वचन दिये थे और अपने वचनों पर जोर दिया था। उस वचन का आप किस प्रकार पालन करेंगे? सन् 1937 में दुर्भाग्य से अपने वचनों में हम यह कह गये कि हम भारत शासन अधिनियम, 1935 के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। निर्वाचन के पश्चात् ही हमसे पद धारण करने के लिये कहा गया। मैं कुछ उन अभागों में से था, जिन्होंने पद धारण किये और जिन्होंने मंत्रिमंडल बनाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। उस समय हमें यह निर्देश दिये गये थे कि हम गतिरोध उत्पन्न कर दें और उस अधिनियम के क्रियाकरण को कठिन तथा असम्भव बना दें।

श्रीमान, अपने माननीय मित्र मसौदा-समिति के सभापति तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर तथा अन्य मित्रों को विषय का विशिष्ट ज्ञान रखने और इन उपबन्धों पर इस प्रकार शक्कर चढ़ाने का कार्य करने में सबको मात करने पर, कि जिसके द्वारा आज उन्होंने असंभव को संभव कर दिया, मुझे बधाई देनी चाहिये।

संविधान के मसौदे पर ध्यान दीजिये? 1935 के अधिनियम को रद्द करने के बारे में आपको कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि 1935 का अधिनियम इतना अच्छा था कि इस समय हम उसके उपबन्धों को अपने संविधान में इतने पूर्ण रूप से ले सकते हैं, तो क्या जब हमने इस अधिनियम के विरुद्ध संघर्ष करने और गतिरोध उत्पन्न करने का संकल्प किया था, उस समय हम कांग्रेसी बेवकूफ थे? जो कुछ भी हो, उस शक्कर चढ़ी गोली को निगल जाने के लिये हमें विवश करने पर, जिसमें 1935 के अधिनियम के सिवाय और कुछ न था, मसौदा-समिति के सदस्यों को मैं धन्यवाद देता हूं। इन परिस्थितियों में मेरे लिये अपने उन मित्रों का समर्थन करने के अलावा और कोई चारा नहीं है, जिनकी मांग यह है कि खंड (1) के अलावा इस अनुच्छेद के प्रत्येक अन्य खंड को रद्द कर दिया जाये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है, तो मैं अपने मित्रों को चेतावनी देता हूं कि सिवाय मद्रास, बिहार और संयुक्त प्रान्त इन तीनों प्रान्तों के हम अन्य कहीं जमींदारी नहीं मिटा सकेंगे।

*माननीय सदस्यगण: अब इस विषय पर मत लिया जाये।

*बेगम ऐज़ाज रसूल (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इतनी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद इस महत्वपूर्ण तथा विवादास्पद विषय पर; मेरे प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री पंडित गोविन्द बल्लभ पन्त के भाषण के बाद, मुझे भाषण देने के लिये आमंत्रित करना मेरा सौभाग्य है या दुर्भाग्य। परन्तु एक प्रकार से मैं समझती हूं कि यह अच्छा ही है, चूंकि अपने भाषण में अपने प्रान्त के बारे में मैं कुछ भी कहूं, उसके बाद वे कोई उत्तर नहीं दे सकेंगे, यद्यपि मुझे विश्वास है कि कुछ बातें जो उन्होंने कही हैं, उनका उत्तर देते हुए मेरे पास पुष्ट प्रमाण है।

कल अनुच्छेद 24 पर यह संशोधन पेश करते हुए माननीय प्रधान मंत्री ने ठीक कहा था कि इस संविधान में ऐसे थोड़े से ही अनुच्छेद हैं, जिन पर इस अनुच्छेद से अधिक मात्रा में तथा अधिक उग्र रूप में वाद-विवाद हुआ हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक वर्ष से अधिक समय से इस सभा के सदस्य तथा बाहर के भी व्यक्ति इस बात के प्रति बहुत उत्सुक रहे हैं कि संविधान में जो संपत्ति अर्जन और प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित किये जायेंगे, उनका क्या रूप और प्रकार होगा। श्रीमान, माननीय प्रधान मंत्री के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शन करते हुए मैं यह कहने के लिये विवश हूं कि जो संशोधन उन्होंने प्रस्थापित किया है, वह न्याय और औचित्य पर आश्रित सिद्धान्तों का निर्धारण नहीं करता है। अनुच्छेद में दो सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं। पहला संपत्ति अर्जन खंड (1) है और दूसरा खंड (2) प्रतिकर देने की रीति और प्रकार है। श्रीमान, इसके बाद के अनुच्छेद 25 (1) यह स्पष्ट निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय

[बेगम ऐज़ाज रसूल]

में जाने का अधिकार होगा। यह केवल संपत्ति अर्जन के विषय में ही नहीं है, वरन् प्रत्येक प्रयोजन के लिये है। परन्तु साधारण रूप में भी किस व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी अधिनियम के विरुद्ध मामला चला दे, जो संपत्ति अर्जन का प्राधिकार देता है, यदि उसकी सम्पत्ति में प्रतिकर उचित नहीं है। अत: श्रीमान, मेरा विरोध यह है कि इस संघ में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय में जाने और न्याय प्राप्त करने का अधिकार दिया है, तो केवल उन लोगों से खंड (4) और (6) के अधीन यह अधिकार क्यों ले लिया जाये, जो संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार इन तीन प्रान्तों में अपनी संपत्ति वे वंचित किये जा रहे हैं और जिनके ऊपर एक ऐसा विधान लागू किया जा रहा है, जो अधिकांश लोगों को अपनी जीवका के साधन से वंचित करेगा। मैं यह मानती हूं कि किसी देश के संविधान में ऐसे अपवाद नहीं किये जाते हैं और इसका कारण मैं अनुभव करती हूं कि यदि इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) रहने दिये जाते हैं, तो इस संविधान में यह एक बड़ा कलंक होगा। किसी देश का संविधान कुछ चंद वर्षों के लिये ही नहीं बनाया जाता है या किसी राजनैतिक पक्ष के किसी कार्यक्रम या आवश्यकता की सुविधा के लिए नहीं बनाया जाता है: वह पीढ़ियों तक के लिये बनाया जाता है और सब लोगों के लिये बनाया जाता है और खंड (4) और (6) जैसे उपबन्धों का रखना संविधान निर्माताओं के लिये कोई श्रेय की बात नहीं होगी और ये खंड भद्दे कलंक के रूप में रहेंगे। अत: मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि सद्‌भावना का प्रसार हो और इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण उपबन्ध को सम्मिलित न किया जाये।

कुछ लोग शायद यह समझेंगे कि मैं ऐसा भाषण इस कारण दे रही हूं कि स्वयं मुझ पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। परन्तु, श्रीमान, मैं यह कहूंगी, चाहे मेरी बात इस सभा में हल्की ही क्यों न समझी जाये, और मैं यह जानती हूं कि ऐसा कहते हुए मैं हजारों व्यक्तियों की भावनाओं और विचारों को प्रकट कर रही हूं कि इस प्रकार के विभेदात्मक खंडों को संविधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये। भारत के कई समाचार पत्रों में इस विषय पर मुख्य लेख निकले हैं और उन्होंने घोर विरोध प्रकट किया है।

संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने कहा था कि जमींदारी उन्मूलन विधेयक, जिसको उन्होंने सभा में पुर:स्थापित किया है और जो इस समय प्रवर समिति के समक्ष है, जिसका सदस्य होने का मुझे सौभाग्य है, किसी भी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है और प्रतिकर के संबंध में जो उपबन्ध उन्होंने बनाये हैं, उनको कोई भी विधि-प्राधिकारी हो, ठीक मानेगा। मैं उनको सम्मानपूर्वक यह सुझाव दूंगी कि यदि यही बात है, तो फिर इस खंड (4) को क्यों प्रविष्ट किया गया है, जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि उनके कहने पर ही प्रविष्ट किया जा रहा है? यदि वे यह समझते हैं कि उनका आधार इतना सुरक्षित है कि संयुक्त

प्रान्त के जमींदारों को वे जितना प्रतिकर दे रहे हैं, उसकी मान्यता, औचित्य और न्यायोचित्य को वे किसी भी न्यायालय में रख सकते हैं, तो मैं निवेदन करती हूं कि वे हमें उस अधिकार से वंचित न करें, जो इस संविधान के अधीन प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी न्यायालय में मामला पेश करने के संबंध में दिया गया है। संयुक्त प्रान्त के माननीय मुख्य मंत्री ने यह भी कहा था कि अवध के ताल्लुकदारों को मुकदमेबाजी का चाव है। श्रीमान्, मैंने समझा था कि यह बात हमारे पक्ष में जायेगी। यदि हम अपने धन को और लोगों में बांट देते हैं और वकीलों को धनवान होने में सहायता देते हैं, तो मैं नहीं समझती हूं कि इसके लिये हमारी निन्दा हो। मैंने खंड (4) और (6) के अपमार्जन करने की इस कारण सूचना दी है कि मैं समझती हूं कि ऐसे उपबन्धों को, जो कि अधिकतर संसदीय विधान के आधार पर हैं, देश के संविधान में स्थान ही न मिलना चाहिये।

मेरी आपत्ति दो बातों पर आश्रित है। एक जैसा कि मैं कह चुकी हूं, यह है कि कुछ प्रान्त, जिनमें संपत्ति अर्जन का विधान या तो लम्बित है या पारित हो चुका है, उनको उस मूलभूत अधिकार तथा मूलाधिकार से वंचित किया जा रहा है, जो भारत के प्रत्येक नागरिक को दिया गया है, अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय में मामला चलाने का अधिकार। दूसरी बात है, औद्योगिक और जमींदारी संपत्ति में विभेद, क्योंकि इन तीन प्रान्तों के विधान में जमींदारी संपत्ति को ही लिया गया है। केवल यही नहीं, वरन् इसका यह भी आशय है कि संघ के किसी अन्य प्रान्त में, जैसे कि मध्य प्रान्त, पूर्वी पंजाब, राजस्थान इत्यादि में यदि कोई जमींदारी संबंधी विधान प्रस्तुत किया जाता है, तो उन प्रान्तों के लोगों को न्याय्य अधिकार प्राप्त होंगे। मुझे बहुत दुख है कि देश के संविधान में इस प्रकार के विभेद को स्थान नहीं मिलना चाहिये। श्रीमान् मुझे आशंका है कि आप मुझे समय नहीं देंगे. ..।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि आप भाषण समाप्त कर दें, क्योंकि 12.30 पर वाद-विवाद समाप्त करने के पूर्व मैं एक और सदस्य को कुछ समय के लिये भाषण देने का अवसर देना चाहता हूं।

*__बेगम ऐज़ाज रसूलः__ मैं केवल संयुक्त प्रान्त के बारे में कुछ बातें कहना चाहती हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं नहीं समझता हूं कि यह आवश्यक है।

*__बेगम ऐज़ाज रसूलः__ मैं आपकी कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे भाषण देने का अवसर दिया, पर मुझे खेद है कि जो समय मुझे दिया गया है, वह इतना कम है कि मैं कोई भी बात पूरी तरह से नहीं कह सकती हूं। संयुक्त प्रान्त के प्रधान मंत्री से मैं यह निवेदन करना चाहूंगी कि वे इस बात पर विचार करें कि इस खंड (4) को प्रवेश करा कर क्या वे अपने ऊपर यह अधिकार नहीं ले रहे हैं कि यदि विधान-मंडल यह समझे कि वित्तीय कारणों के आधार पर वह किसी प्रकार का कोई प्रतिकर नहीं दे सकता है, तो वे प्रतिकर न दें। माननीय प्रधान मंत्री ने कल यह कहा था कि विधान-मंडल सर्वोच्च है और उसके विनिश्चयों का कोई न्यायालय अतिक्रमण नहीं कर सकता है। यदि यह बात है, तो मूलाधिकारों को क्यों संविधान में रखा गया है? केवल इसलिये रखा गया है, तो इस बात

[बेगम ऐज़ाज रसूल]

का भय है कि लोग अन्य लोगों के अधिकारों का हरण न करें और इसलिये कुछ आधारभूत मूलाधिकार निर्धारित किये गये हैं, जो किसी भी विधान के क्षेत्र से परे हैं और जिनको प्रान्तीय या केन्द्रीय विधान-मंडल छू तक नहीं सकते। अतः मेरा आग्रह यह है कि या तो अनुच्छेद 24 को मूलाधिकारों के अध्याय में न रखा जाये और यदि उसको रखा जाता है, तो उसे बिना खंड (4) और (6) के रखना चाहिये। संयुक्त प्रान्त में लगभग एक करोड़ व्यक्तियों पर जमींदारी संबंधी विधान का प्रभाव पड़ रहा है। जो प्रतिकर प्रस्थापित किया गया है, वह इतना कम है कि उन लोगों के लिये अपने जीवन निर्वाह के लिये योजना बनाना बहुत कठिन होगा। क्या हमारे मुख्य मंत्री ने इस बात पर विचार किया है कि उन लोगों का क्या होगा? उनके पास जीविका का कोई ठीक साधन नहीं है; उनको गलियों में फैका जा रहा है। देश के समाजीकरण का अर्थ है कि सर्वत्र समाजीकरण हो। आप हमारे बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा की प्रत्याभूति कीजिये—प्रत्येक नागरिक को निःशुल्क भैषजिक सहायता और नौकरी की प्रत्याभूति कीजिये और हम किसी भी प्रतिकर की मांग नहीं करेंगे—संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री को मैं चेतावनी देती हूं कि जमींदारों के लिये कोई समुचित व्यवस्था किये बिना उनकी जीविका के साधन से उन्हें वंचित कर वे स्वयं अपने लिये ऐसी समस्यायें खड़ी कर रहे हैं, जिनका सामना करना उनके लिये कठिन होगा। इन कुछ शब्दों में, मैं आशा करती हूं कि कुछ माननीय सदस्यों को इन खंडों के अन्याय के बारे में मैं विश्वास करा सकी हूं।

*__अध्यक्षः__ मौलाना हसरत मोहानी साहिब मैं आपको यह याद दिलाना चाहता हूं कि हम 12.30 पर इस विषय को समाप्त कर रहे हैं।

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं समय का ध्यान रखूंगा।

*__श्रीमती रेणुका रे__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने अभी कहा था कि आप 12.30 बजे वाद-विवाद समाप्त करना चाहते हैं। मैं आपसे यह निवेदन करूंगी कि समस्त संविधान यह एक बड़ा ही मूलभूत खंड है और कई सदस्य इस अनुच्छेद पर बोलना चाहते हैं। मैं आशा करती हूं कि आप पूर्ण रूपेण वाद-विवाद होने देंगे।

*__अध्यक्षः__ इस विषय पर पर्याप्त रूप से वाद-विवाद हो चुका है।

*__मौलाना हसरत मोहानीः__ अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह घोषणा कर दूं कि इस सारी विधि का मैं घोर विरोध करता हूं—मेरा आशय संयुक्त प्रान्त की सरकार तथा उसके मुख्य मंत्री द्वारा ग्रहण की गई विधि से है, जो इस धोखे में

है कि उनकी योजना से ज़मींदारी का उन्मूलन हो जायेगा। मैं समझता हूं कि उसके द्वारा ऐसी कोई बात नहीं होगी। मैं निवेदन करता हूं कि 'धोखे में है' शब्दों का मैंने जानबूझ कर प्रयोग किया है, क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री जैसे चतुर राजनीतिज्ञ को यदि उन्होंने अब तक नहीं समझा है, तो अब यह समझ जाना चाहिये कि उनकी योजना से जमींदारी का उन्मूलन नहीं होगा; वरन् उससे, मैं कहता हूं कि एक बड़े भयंकर रूप की ज़मींदारी प्रथा की स्थायी रूप से स्थापना हो जायेगी और इस प्रकार वे कुछ थोड़े से बड़े जमींदारों की जमींदारी छीनने की ही प्रस्थापना प्रस्तुत करते हैं और इस प्रकार प्राप्त की गई भूमि को वे उन छोटे-छोटे किसानों और यहां तक कि भूहीन मजदूरों में बांटना चाहते हैं, जो इस समय जो लगान दे रहे हैं, उसका दस गुना देने को तैयार हैं। वे कहते हैं कि यदि वे किसान दस गुना दे देंगे, तो वे उन्हें भूमिदार बना देंगे। मैं कहता हूं कि इस वाग्जाल में कोई भी नहीं फंसेगा। इसका क्या अर्थ है? जमींदार और भूमिदार में कोई अन्तर नहीं है। शायद पंडित पंत यह कहेंगे कि चूंकि 'जमीन' फारसी का शब्द है और 'भूमि' शब्द संस्कृत का है, इस कारण वे उस शब्द के स्थान में इस शब्द को रखना चाहते हैं। मैं कहता हूं कि इस धोखे में कोई नहीं आयेगा। मैं इसे केवल वाग्जाल कहता हूं। जिन भूमिदारों की वे उत्पत्ति कर रहे हैं, बाद में वे ही जमींदार हो जायेंगे और जैसा कि मैं कहता हूं, वे केवल उन बड़े जमींदारों को वंचित करेंगे, जो 5000/- रुपये से अधिक लगान देते हैं और उनके स्थान में वे बहुत से जमींदार बना देंगे। एक बड़े जमींदार और छोटे जमींदार में विभेद करने से कोई लाभ नहीं। जमींदार रहेंगे, और मैं यह मानता हूं कि यदि उनकी योजना अधिक न्याययुक्त आधार पर आश्रित होती तो उससे जमींदारी का उन्मूलन हो जाता। मैं कहता हूं कि यदि वे अपनी योजना को इस आधार पर बनाते कि बड़े-बड़े जमींदारों की भूमि को किसानों या राज्य को स्थानान्तरित कर दिया जाये, तो उससे कुछ लाभ होता।

हमारे प्रधान मंत्री माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अभी उस दिन अपने प्रारम्भिक भाषण में स्वयं यह स्वीकार किया था, जब उन्होंने कहा था "जिस संकल्प को मैं पेश कर रहा हूं, इसमें व्यक्तियों के अधिकार और संप्रदाय के अधिकार में संघर्ष को मिटाने का और इन दोनों अधिकारों पर पूर्णतया विचार करने का प्रयत्न किया गया है।" आगे चल कर वे कहते हैं "कि हमें इन बातों पर विचार करना होगा: हमें राज्य के लिये सम्पत्ति को लेना है और हमें यह देखना है कि उनको ठीक न्यायोचित प्रतिकर मिले।" मैं कहता हूं कि यदि हमारे प्रधान मंत्री के इस कथन को आप स्वीकार करें और यह भी स्वीकार करें कि भूमि का स्वामित्व जमींदारों से राज्य को स्थानान्तरित किया जायेगा, तब तो इसका कुछ अर्थ भी होगा। परन्तु आप क्या करने जा रहे हैं? आप एक अनोखी रीति अपना रहे हैं: आप कुछ बड़े-बड़े जमींदारों की जमीन जप्त कर रहे हैं और उस सीधे खुले बाजार में ले जा रहे हैं: आप उसे इन भावी भूमिदारों और किसानों को लाभ पर बेच रहे हैं। मैं कहता हूं कि 'काम पर' क्योंकि पंडित पंत ने स्वयं यह स्वीकार

[मौलाना हसरत मोहानी]

किया है कि वे लगभग 180 करोड़ रुपया इन भावी भूमिदारों से प्राप्त कर लेंगे और 140 करोड़ रुपया प्रतिक में देंगे। मैं कहता हूं कि 40 करोड़ रुपये की यह अधिक राशि—मैं कहता हूं कि यह एक निम्नतम कोटि का चोर बाजार है *(इसको मैं कुछ और नहीं कह सकता)*। हम सब अनाज मंडियों और कपड़े की मंडियों में जो चोर बाजार हो रहा है, उसकी निंदा करते हैं और मैं कहता हूं कि इसकी हमें और भी अधिक निंदा करनी चाहिये। इन बड़े जमींदारों से हम बिना किसी तुक के अधिकार छीन रहे हैं और उसे खुले बाजार में ले जाकर उन लोगों को बेचना चाहते हैं, जो छोटे जमींदार हैं।

अत: जो कुछ मैं निवेदन करता हूं, वह यह है कि मैं यह कभी नहीं मान सकता कि यह योजना जमींदारी उन्मूलन करने की योजना है। इस बात पर मैं आग्रह करता हूं, जमींदारी उन्मूलन करने के स्थान में यह उन भूमिदारी की बुरी प्रथा की स्थायी स्थापना करेगी, जिनको आप बना रहे हैं ओर जिनका वैसा ही ऐश्वर्य होगा। हम जमींदारों पर यह आपत्ति करते रहे हैं कि जमींदार होने का वे लाभ उठाते हैं और भूमि जोतने वाले को वे कोई लाभ नहीं होने देते। परन्तु यदि आप छोटे-छोटे जमींदार बना देंगे, तो वे भी ऐसा ही करेंगे और इससे बचने का कोई उपाय नहीं श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि यदि वे यह कहें कि मैं निषेधमूलक आलोचना कर रहा हूं तो अपने माननीय मित्र पंडित पंत को सुझाव देने के लिये मेरे पास और कुछ है और वह यह कि वे अपना पूरा साहस बटोरकर आगे आयें और कम से कम उन कठिनाइयों को समझ कर, जो उनके मार्ग में आयेंगी तथा जमींदारों की ही आलोचना को नहीं, बल्कि जो आलोचना मैंने यहां की है, उसे समझ कर यह कहें कि वे संयुक्त प्रान्त के विधान-मंडल में इस विधेयक पर विचार-विमर्श स्थगित कर देंगे। मैं उनको चुनौती देता हूं कि वे आगे आयें और मेरे तर्क का खंडन करें। यदि नहीं कर सकते हैं, तो यहां इस सभा में वे इस अनुच्छेद पर विचार-विमर्श स्थगित करें और संयुक्त प्रान्त की सभा में भी विधेयक को स्थगित करें। मैं कोई असाधारण बात का सुझाव नहीं दे रहा हूं। वह यहां उस दिन हो चुकी है, जब कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने हिंदू संहिता विधेयक प्रस्थापित किया था। यह अनुभव करके कि इस विधेयक का घोर विरोध हो रहा है, उन्हें उस पर विचार-विमर्श स्थगित करने का उपक्रम किया। अपनी बचत करने के लिये उन्होंने स्वयं नहीं कहा बल्कि सरदार को यह काम सौंपा जिन्होंने अगली बैठक में यह कहा "हम इस पर विचार-विमर्श स्थगित करते हैं।" मैं समझता हूं कि वह वाद-विवाद एक अनिश्चित तिथि के लिए स्थगित हो गया है वह फिर नहीं लिया जायेगा। श्रीमान, मैं वह सुझाव रखता हूं कि मेरे माननीय मित्र पंडित पंत इसी प्रक्रिया को अंगीकार करें और सबको स्थगित करें अन्यथा वे आगे आये और सबसे पहले मेरी आलोचनाओं का उत्तर दें।

*__कई माननीय सदस्य:__ अब इस विषय पर मत लिया जाये।

*__अध्यक्ष:__ वाद-विवाद बन्द करने का प्रस्ताव पेश हो चुका है।

*__श्री अलगू राय शास्त्री:__ अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूं कि यह मामला बहुत अहम है और बहुत महत्वपूर्ण है।

*__अध्यक्ष महोदय:__ यहां दो चार घंटे और स्पीच हो जाने की वजह से इस मामले की अहमियत कुछ कम नहीं होती। इसलिये मैं समझता हूं कि इस पर और ज्यादा बहस न की जाय और क्लोजर जो पेश हो गया है, उसके बारे में मैं पूछ रहा हूं।

प्रश्न यह है:

"अब इस विषय पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्ष:__ पंडित नेहरू!

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि आप अनुमति दें, तो मेरे माननीय मित्र श्री मुंशी उत्तर देंगे।

*__अध्यक्ष:__ श्री मुंशी उत्तर देंगे।

*__श्री के.एम. मुंशी:__ अध्यक्ष महोदय, जिन लोगों ने विभिन्न संशोधन पेश किये हैं, उनके भाषण धैर्यपूर्वक सुनने के पश्चात् मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि जो अनुच्छेद माननीय प्रधान मंत्री ने पेश किया है, उसे उन्हीं के शब्दों के अतिरिक्त कि यह एक ठीक समझौता है, जिसे समस्त सभा को एकमत होकर स्वीकार करना चाहिए, अन्य किसी रूप में और अधिक अच्छे प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

सब पक्षों ने अपने-अपने दृष्टिकोण को बड़ी योग्यता से प्रस्तुत किया है। प्रधान मंत्री और मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री के बड़ी योग्यतापूर्ण विचार व्यक्त करने के पश्चात् बहुत कुछ कम कहा जा सकता है। पर सरसरी तौर पर मैं कुछ संशोधनों का उल्लेख करूंगा, जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

ये संशोधन चार श्रेणियों में आते हैं। एक श्रेणी के संशोधनों में कहा गया है कि कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये। दूसरी श्रेणी के संशोधनों में कहा गया है कि संसद को मूलाधिकार के अधीन संपत्ति पर अधिकार नहीं करना चाहिये, वरन् राष्ट्रपति को अर्थात् कार्यपालिका को करना चाहिये। यह क्रूरता की ओर मुड़ना है; इस विषय पर मैं आगे और कुछ नहीं कहूंगा। तीसरी श्रेणी में कहा गया है कि प्रतिकर नियम कर देने के पश्चात्, चाहे वह प्रतिकर 'कपटयुक्त या अन्यायपूर्ण' हो, संसद को बिना किसी न्यायिक पुनर्विलोकन के संपत्ति पर अधिकार करने की पूर्ण

[श्री के.एम. मुंशी]

शक्ति दे देनी चाहिये। मैं संशोधन के शब्दों ही का प्रयोग कर रहा हूं और इस प्रकार संविधान द्वारा संसद को कोई ऐसी विधि पारित करने का अधिकार देना, जो कपटयुक्त या अन्यायपूर्ण हो। चौथा.....।

***श्रीमती रेणुका रे:** अध्यक्ष महोदय, मुझे यह कहना पड़ेगा कि सारी बात को गलत समझा गया है। बात यह है कि वह संसद ही होनी चाहिये, जो यह विनिश्चय करेगी कि सिद्धांत कपटयुक्त है या नहीं, न कि न्यायालय। संशोधन इस बात का समर्थन नहीं करता है कि कपटयुक्त आधारों को गहण करने दिया जाये, परन्तु संसद ही इस बात का विनिश्चय करेगी कि किसी अधिनियम में कपटयुक्त उपबन्ध हैं या नहीं। इस गलत पाठ को शुद्ध कर लेना चाहिये।

***श्री के.एम. मुंशी:** मैं किसी व्यक्ति की बात का गलत अर्थ या गलत निर्वचन नहीं करना चाहता हूं और फिर अपनी आदरणीया श्रीमती रेणुका रे की बात का तो विशेषकर। जिस संशोधन को वे विधि पुस्तक में रखना चाहती हैं, वह इस प्रकार है:

> "पूर्वकथित प्रकार से किसी विधि बनाने वाले उपबन्ध पर इस आधार पर कि जिस प्रतिकर की व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है अथवा इस आधार पर कि प्रतिकर के जिन सिद्धांतों और रीति का उल्लेख किया गया है, वे कपटयुक्त तथा अन्यायपूर्ण हैं, किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं किया जायेगा।"

वे इस संविधान को अपने हाथों में लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में जाना चाहती हैं। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

एक और श्रेणी संशोधनों की इस प्रकार की है, जब मूलाधिकार के साथ कोई कपट किया गया हो, तो सम्बन्धित पक्ष न्यायालयों के समक्ष जा सकते हैं। परन्तु न्यायालयों को सिद्धान्तों, रूप और रीति सबकी जांच करनी चाहिये, जिससे कि जैसा माननीय प्रधान मंत्री ने कहा था, सर्वोच्च न्यायालय तीसरा पुनरीक्षण करने वाला सदन हो जायेगा, जो संसद के दोनों सदनों से अधिक शक्तिशाली होगा। ये तीसरी श्रेणी के संशोधन हैं।

चौथी श्रेणी जमींदारों के सम्बन्ध में है, जो खंड (4) और (5) को निकालने के प्रयास में है, जिन खंडों पर मेरे माननीय मित्र पंडित गोविन्द बल्लभ पंत ने पूर्ण रूप से विचार प्रकट किये हैं।

श्रीमान, इस सभा के विनिश्चयों से या कांग्रेस के वचनों से या सरकार के वचनों से हम पीछे नहीं हट सकते हैं। जहां तक हमारे वचनों का सम्बन्ध है, वे अच्छी प्रकार से ज्ञात है और वे घोषणापत्रों में हैं। 1945 के निर्वाचन सम्बन्धी घोषणा-पत्र में हमने जमींदारों को न्यायोचित प्रतिकर देने तक का वचन दिया था।

श्रीमान, इस सभा के सम्बन्ध में भी, अप्रासंगिकता का दोषी हुए बिना, मैं निवेदन करता हूं कि जो प्रस्थापना उसने अंगीकार की है, उससे वह पीछे नहीं हट सकती है। जब यह विषय परामर्शदात्री समिति के समक्ष प्रस्तुत हुआ, तो उसने खंड (1) और (2) को सर्वसम्मति से स्वीकार किया। उस समय यह आशा की जाती थी कि संविधान-सभा में अन्तिम विचार-विमर्श करने के बहुत पूर्व ही जमींदारी मिटा दी जायेगी। सभा में इसको पेश करते हुए सरदार पटेल ने यह कहा था:

"अनेक लोक प्रयोजनों के लिये भूमि का अर्जन किया जायेगा, केवल भूमि ही नहीं, वरन् अनेक अन्य वस्तुओं का अर्जन करना पड़ेगा। राज्य प्रतिकर देकर उनका अर्जन करेगा, उनका हरण नहीं करेगा।"

आगे चलकर जमींदारी के सम्बन्ध में उन्होंने यह कहा था:

"यह खंड जो यहां है, कल या परसों विधि का रूप धारण नहीं करेगा। वह कम से कम एक वर्ष और लेगा।"

वास्तव में उस समय हमने सोचा था कि हमारी गति इतनी अधिक होगी कि हम अपने संविधान को एक वर्ष में समाप्त कर देंगे। यह निर्देश उनकी ओर से है, परन्तु दुर्भाग्यवश उनकी आशायें झूठी सिद्ध हुईं।

"वह कम से कम एक वर्ष और लेगा। इससे पूर्व बहुत-सी जमींदारी मिटा दी जायेंगी। वर्तमान विधियों के अधीन भी चाहे ठीक प्रतिकर देकर अथवा पर्याप्त प्रतिकर देकर अथवा जैसा भी विधान-मंडलों ने ठीक समझा, उसके अनुसार जमींदारी मिटाने का विधान विभिन्न प्रान्तों में प्रस्तुत हो गया है। अर्जन की विधि अब भी वर्तमान है और विधान-मंडल जमींदारी मिटाने का उपक्रम कर रहे हैं।"

अत: सभा ने दो वर्ष पूर्व यह कह कर इस संकल्प पर छाप लगा दी थी कि यद्यपि हमारे इस संविधान के पारित करने के बहुत पहले जमींदारी मिटा दी जायेगी, परन्तु जहां तक अन्य सम्पत्ति का सम्बन्ध है, उनको इस अनुच्छेद के खंड (2) के आधार पर अर्जित किया जायेगा।

अत: इस सभा ने यह स्थिति स्वीकार कर ली है कि अर्जन केवल विधि द्वारा ही हो सकता है, कि जब संसद विधि द्वारा संपत्ति अर्जन करती है, तो वह प्रतिकर नियत कर सकती है और यह कि चूंकि जमींदारी मिटा दी गईं होती, इस कारण इस अनुच्छेद में उसके निमित्त उपबन्ध बनाने की कोई आवश्यकता न थी। इस सभा का यह विनिश्चय है। इस अनुच्छेद में इस विनिश्चय का पालन किया गया है, सिवाय इसके कि आज जो परिस्थितियां विद्यमान हैं, उनके आधार पर इसमें कुछ रूप भेद कर दिया गया है, चूंकि वह आवश्यक है।

जैसा कि बताया जा चुका है, हमने संसद के क्षेत्र और शक्तियों को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है। सदस्य कृपया सूची 3 की 55 प्रविष्टि को देखें,

[श्री के.एम. मुंशी]

जिसको यह सभा पारित कर चुकी है। प्रतिकर के सिद्धांतों, रूप और रीति पर विधान बनाने की शक्तियां एक मात्र संसद तथा राज्य के विधान-मंडलों पर छोड़ दी गई हैं। जैसा कि सदस्यों को विदित है, भारत शासन अधिनियम की धारा 299 की भाषा में 'प्रतिकर देना' शब्दों का प्रयोग है। जिसका कम से कम एक दृष्टिकोण के अनुसार यह अर्थ है कि नकद देना चाहिये और देना अर्जन से पूर्व की स्थिति है।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): क्या मैं अपने माननीय मित्र की गलती ठीक कर सकता हूं: क्या वे अनुसूची 7 की सूची 3 की प्रविष्टि 35 का उल्लेख कर रहे हैं?

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी की स्मरण शक्ति निस्सन्देह मेरी स्मरण शक्ति से कहीं अधिक शुद्ध है। मैं क्षमा चाहता हूं प्रविष्टि 35 है, न कि 55। उनको यह मानना पड़ेगा कि मैं एक बहुत वृद्ध व्यक्ति हूं।

*__एक माननीय सदस्य:__ ऐसे आप दिखाई तो नहीं देते हैं।

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ अपने माननीय मित्र की तुलना में।

यह कहना सही नहीं है कि संसद् को पूर्ण शक्तियां नहीं दी गई हैं। वह प्रतिकार का स्वरूप तथा उसके दिये जाने की रीति नियत कर सकती है। अर्जित भूमि के बदले में वह हुंडियां या भूमि दे सकती है। पहले भारत के विधान-मंडलों को जितनी शक्तियां प्राप्त थीं, उससे भी अधिक व्यापक शक्तियां उसके पास हैं। अत: संसदीय शक्तियां और अधिक बढ़ गई हैं। न्याय्यता के विषय में और विशेषकर वकीलों के लिये बार-बार चाहे जो कुछ भी कहा गया हो, यह याद रखिये कि दो बातों की एक मात्र निर्णायक संसद ही है। सर्वप्रथम तो वह निर्धारित सिद्धांतों के औचित्य की एक मात्र निर्णायिका है, जब तक कि वे सिद्धांत रूप में हैं। दूसरी बात यह है कि यह प्राधिकृत रूप से निर्धारित कर दिया गया है और इसके बारे में रंचमात्र भी संदेह नहीं है कि भिन्न-भिन्न वर्ग की संपत्ति के लिये और भिन्न-भिन्न उन उद्देश्यों के लिये, जिसके हेतु संपत्तियां अर्जित की जाती हैं, सिद्धांतों में परिवर्तन होगा। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा कहा जा चुका है। अंग्रेजी की विधि पुस्तकों में हमें कई अधिनियम मिलते हैं, भूमि अर्जन अधिनियम, भूमि सम्बन्धी खंडों का अधिनियम, निवासन अधिनियम, इन सबमें केवल संपत्ति के प्रकार के अनुरूप ही नहीं, वरन् जिस प्रयोजन के लिये संपत्ति अर्जित की जाती है, उसके अनुरूप प्रतिकर का भिन्न-भिन्न आधार है। प्रत्येक विषय में जिन सिद्धांतों को लागू किया जायेगा, उनका विनिश्चय करने वाली तथा उनकी निर्णायिका संसद है।

इस सम्बन्ध में यदि मुझे आज्ञा हो, तो मैं अपने निजी अनुभव का उदाहरण दूंगा। खेर के मंत्रिमंडल काल में जिसका सदस्य होने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त

था, सन् 1938 में बम्बई सरकार ने बारदोली की भूमि का अर्जन करना चाहा। एक सम्पत्ति का मूल्य पांच लाख था। पर एक ऐसे बाजार में, जिसमें और कोई खरीददार न था और उस संपत्ति के खरीदने के लिये आयुक्त राज्य के किसी पुराने दीवान को अपने साथ लाये थे, उस सम्पत्ति को लगभग 6000/- रुपये में खरीदा गया। उस सम्पत्ति से लगभग 80,000/- रुपया वार्षिक आय थी, जिसका वह लगभग 10 वर्ष से उपभोग कर रहा था। हमने एक ऐसा मसौदा बनाया कि इस सम्पत्ति का क्रय ऐसी परिस्थितियों में किया गया था कि उसे उचित बाजार दर न मिल पाई और गम्भीर राजनैतिक परिस्थितियों के कारण सामान्यतया कोई खरीददार खड़ा नहीं हुआ। इस कारण एक सिद्धांत निर्धारित करना पड़ा, जिसके आधार पर उसके उस समय के स्वामी को 6 प्रतिशत मिलाकर वह राशि दे दी जाये मुझे यह सूचना मिली कि उस समय की भारत सरकार ने अपने कानूनी परामर्शदाताओं के पास इस विषय को भेजा और दो बातों पर उनसे सम्मति ली। सर्वप्रथम इस बात पर कि उस अधिनियम में प्रतिकर का जो आधार हमने निर्धारित किया था, उसमें भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 के अर्थ से संगत सिद्धांत है या नहीं, दूसरी इस बात पर कि भूमि अर्जन अधिनियम में निर्धारित सिद्धांत से विलग होना बम्बई विधान-सभा की शक्तियों के अधीन है या नहीं। इन दोनों बातों में हमारी स्थिति को वैध माना गया और मुख्य राज्यपाल (गवर्नर जनरल) ने उस विधेयक पर मंजूरी दे दी।

सिद्धांत विधि के कठोर नियम नहीं होते हैं, जिनका यंत्रवत् पालन किया जाये। प्रत्येक स्थिति की परिस्थिति की देखभाल कर उनको सूचित किया जायेगा, जो सुधार किये जायेंगे, उनके अनुसार, जिस प्रयोजन के लिये संपत्ति अर्जित की जायेगी, उसके अनुसार उनको सूचित किया जायेगा। प्रत्येक विषय में संसद इस बात का निर्णय करेगी कि क्या उचित तथा न्यायोचित है और जो सिद्धांत निर्धारित किये गये हैं, क्या वे उन परिस्थितियों के अनुसार उचित तथा न्यायोचित प्रतिकर देने की व्यवस्था करते हैं।

न्याय्यता का प्रश्न इस वाद-विवाद में अनावश्यक रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है। किसी भी सभ्य देश में यदि लिखित संविधान है, तो उसका प्रत्येक अनुच्छेद तथा संसद द्वारा निर्मित प्रत्येक विधि इस रूप में न्याय्य है कि न्यायालय यह विनिश्चय करने के लिये उनमें से प्रत्येक का परीक्षण कर सकता है कि विधि निर्माण प्राधिकारी ने अपनी शक्तियों के अन्तर्गत कार्य किया है और उसके उपबन्धों के अर्थ और प्रभाव का सुनिश्चयन हो सकता है। चाहे आप "प्रतिकर पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी" शब्दों का प्रयोग करें, फिर भी न्यायालय को 'न्यायालय में आपत्ति' का क्या अर्थ है: क्या जिस बात पर आपत्ति की जायेगी, वह प्रतिकर है; क्या विधि में विधान-मंडल प्रतिकर पर संपत्ति अर्जन कर रहा है, इन पर निर्णय करने का अधिकार होगा। इस बात में कोई भ्रम नहीं होना चाहिये।

[श्री के.एम. मुंशी]

जब तक आप जनजाति की विधि को ग्रहण नहीं करेंगे, जिसमें कि जनजाति के सरकार की आज्ञा ही अन्तिम शब्द होता है, तब तक आप वकीलों के दल से नहीं बच सकते हैं। परन्तु एक बात स्पष्ट है। वकीलों के दल का शासन सदैव आततायियों के दल के शासन से अच्छा है।

*__एक माननीय सदस्य:__ वकीलों को एक अनुसूची में क्यों न रख दिया जाये।

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ हम उन्हें एक अनुसूची में रख सकते हैं; स्वयं अपने ऊपर विधान बनाने में उन्हें बड़ी खुशी होगी; पर विधि को वे न्यायालय में ले जायेंगे और सफल होंगे—अनुसूची हो या न हो।

प्रश्न यह है कि इस अनुच्छेद में न्याय्यता कहां तक है? इस अनुच्छेद द्वारा यह अपेक्षा की जाती है कि यदि विधान-मंडल को इस संविधान द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्व का प्रयोग करना है, तो उसे प्रतिकर के सिद्धांत निर्धारित करने चाहिये; उसे प्रतिकर के उस रूप और रीति को निर्धारित करना चाहिये, जिसके अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा और यदि वह उतना प्रतिकर देता है, जो क्षति के बराबर है, तो कोई न्यायालय इस उपक्रम की नीति का खंडन नहीं करेगा। ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र संघ के न्यायालयों द्वारा तथा अमरीका के उस सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी यह बात बार-बार निर्धारित की है, जिसके संविधान में ये शब्द हैं—"उचित प्रतिकर" और जहां संविधान में "उचित विधि का खंड" है। संसद की सद्भावना के स्थान में न्यायालय अपनी सद्भावना नहीं रखेगा; अनिवार्यत: बाजार-भाव के स्तर के आधार पर वह प्रतिकर की पर्याप्तता पर निर्णय नहीं करेगा; वह तब तक संसद के निर्णय पर आपत्ति नहीं करेगा, जब तक कि अपर्याप्तता इतनी अधिक न हो कि जो सम्पत्ति पर स्वामित्व रखने के मूल अधिकार के प्रति धोखा हो।

जो लोग न्याय्यता से डरते हैं, उनके मन में यह आशंका है कि यदि प्रतिकर के सिद्धांतों का निर्धारण करने वाली विधि न्यायालय में जाती है, तो न्यायालय सदैव बाजार-भाव के स्तर पर प्रयोग करेगा। यह बात कभी नहीं हुई। जैसा कि मैंने कहा था अमरीका में, जहां कि 'उचित प्रतिकर' शब्द संविधान में है और जहां 14वां संशोधन सर्वोच्च न्यायालय को 'उचित विधि का खंड' से सुसज्जित करता है, उसे इस रूप में कभी नहीं माना गया। अमरीका के एक मामले में प्रतिकर के रूप में केवल एक डालर दिया गया था, यद्यपि वह एक अन्तिम कोटि का तथा असामान्य मामला था। न्यायालय का यह विचार हुआ कि मामले की परिस्थितियों को देखते हुए एक डालर ही ठीक प्रतिकर है। अत: हमें यह न मानना चाहिये कि हमारे सर्वोच्च न्यायालय में एक ऐसी मूर्खमंडली होगी, जो हर प्रकार के अर्जन पर बाजार-भाव के नियम को निर्विभेद रूप से लागू करेगी।

यह ठीक है कि इससे संविधान से हम इस प्रकार के खंड को बाहर नहीं निकाल सकते हैं। यह अनावश्यक है कि सम्पत्ति अर्जन के विषय में विधान-मंडल

के अधिकार की समुचित रूप में परिभाषा होनी चाहिये। यह भी समान रूप से आवश्यक है कि जहां हमारे संविधान में दिये हुए सम्पत्ति पर कब्जा करने के मूलाधिकार का त्रुटिपूर्ण हरण हो; जहां अपने अधिकारों से बाहर कार्य करते हुए, या प्रतिकर की राशि अथवा उन सिद्धांतों के बिना नियत किये हुए जिनके अनुसार वह प्रतिकर निश्चित किया जायेगा, विधान-मंडल ने सम्पति पर अधिकार कर लिया हो या जहां अर्जन के रूप में सम्पत्तिहरण हो; जहां निर्धारित सिद्धांत नाममात्र के हों या जहां प्रतिकर के सिद्धांत अथवा रीति अथवा स्वरूप उचित समाधान न प्रदान करने वाले हों या जैसा कि मेरे एक महामान्य मित्र ने कहा है, जहां यह समूची व्यवस्था संविधान के प्रति धोखा हो, तो न्यायिक पुनर्विलोकन होने दिया जाये। अतः मैं निवेदन करता हूं कि आपके समक्ष जिस रूप में यह मसौदा रखा गया है, वह उस प्रत्येक विचार का समाधान करता है, जो माननीय समस्यों के किसी भी वर्ग द्वारा इस सभा में प्रस्तुत किया गया है।

एक और अन्य प्रश्न जमींदारी का है और मेरे माननीय मित्र, मुख्य मन्त्री पंत के योग्यतापूर्ण तथा स्पष्ट विचार प्रदर्शन के पश्चात् मुझे और अधिक कुछ नहीं कहना चाहिये। जैसा कि इस विवाद में एक समय प्रतीत हुआ था, मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह वाद-विवाद संयुक्तप्रांत के मुख्य मंत्री और संयुक्तप्रान्त के जमींदारों में विवाद का विषय बन जाये। आपको देश के एक समूचे रूप पर ध्यान देना चाहिये। दो वर्ष पूर्व इस संविधान-सभा ने यह आशा की थी कि इस संविधान का अन्तिम स्वरूप बनने के पूर्व ही जमींदारी का उन्मूलन हो जायेगा। अतः खंड (4) और (6) के रखने में हम संविधान-सभा के विनिश्चय से पीछे नहीं हट रहे है। इस प्रश्न में कितने मनुष्य फंसे हुए हैं, इस ओर ध्यान दीजिये। जो संकट है उनकी कल्पना करिये। न तो इस विवाद के गुणावगुणों से और न जमींदारों की उत्पत्ति से मेरा सम्बन्ध है, जिसका वर्णन मेरे मित्र श्री कला वेंकटा राव ने किया है। मेरा सम्बन्ध केवल इस बात के बताने से है कि मद्रास, बिहार और संयुक्तप्रान्त के विधेयक देश के समक्ष आ गये हैं। उनके अनुसार कार्यवाही आरम्भ हो गई है। इस संविधान के प्रवर्तन में आने के पश्चात् हम बहुत से लोगों को उनके अधिकारों के प्रति अनिश्चित दशा में नहीं रहने दे सकते हैं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूलः** क्या मैं यह जान सकती हूं कि एक प्रांत में जांच के लिये एक मामला प्रतिकर सम्बन्धी सिद्धांतों के विनिश्चय करने के लिये पर्याप्त नहीं है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** आप यह समझ जायेंगी कि इसके गुणावगुणों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि खंड (4) और (6) निकाल दिये जाते हैं, तो क्या होगा? न तो मैं मद्रास, संयुक्तप्रान्त या बिहार का हूं और न मेरे कोई जमींदारी है, परन्तु हम इन विधानों की मान्यता के विषय पर न्यायालय में इस कारण आपत्ति नहीं करने देंगे कि इन बातों का प्रभाव बहुत दूर तक होगा और उनका करोड़ों व्यक्तियों

[श्री के.एम. मुन्शी]

पर प्रभाव पड़ेगा। यही कारण है कि मैं इससे सहमत हूं और मैं समझता हूं कि यह एक बहुत ही पुष्ट आधार है। तीन जमींदारी विधानों के लिये परिमाण का उपबन्ध किया गया है। तीनों विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत होंगे और यदि वे उचित समझते हैं, तो यह देखने के विचार से कि न्याय किया जा रहा है, वे प्रान्तीय मन्त्रिमंडलों से परामर्श करेंगे या उसको मंत्रणा देंगे। विधानों का न्यायिक पुनर्विलोकन नहीं होगा।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल)**:** श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि वह इस अनुच्छेद के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं या विपक्ष में?

***अध्यक्षः** आप स्वयं परिणाम निकाल सकते हैं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** यदि आप न्यायिक पुनर्विलोकन चाहते हैं, तो मैं आपको बता दूं कि परिणाम क्या होगा। इन तीन विधान द्वारा सात करोड़, चालीस लाख एकड़ पर प्रभाव पड़ा है। दूसरी बात यह कि सात करोड़, बीस लाख किसानों, भूमि के जोतने वालों, पर प्रभाव पड़ा है। यदि आप इन जमींदारों की संख्या लें, जिनको 16 वर्ष की आय से न्यून मिलेगा, जिसको प्रतिकर का सदैव एक उदारतापूर्ण रूप माना गया है, तो वे लोग 13,000 हैं, यदि आप 12 वर्ष की आय लें, तो 5,000 लोगों पर केवल प्रभाव पड़ेगा इसके विरुद्ध सात करोड़, बीस लाख किसान हैं। क्या आप यह चाहते हैं कि इन सब लोगों के अधिकार 6 वर्ष तक लटकते रहें और मुकदमेबाजी की ये कठिन रीति अधीन न्यायालय से, जिला न्यायालय को और जिला न्यायालय से उच्च न्यायालय को तथा इसी प्रकार से और आगे चलती रहे और ये सब नई व्यवस्थायें, जिनकी स्थापना की जा चुकी हैं, उलट दी जायें? हम ऐसा नहीं कर सकते हैं। यह तो एक क्रांति हो। केवल 5,500 जमींदारों के हितों का परिमाण करने के लिये ही हम उससे पीछे नहीं हट सकते........।

***बेगम ऐज़ाज रसूलः** क्या मैं, यह जान सकती हूं कि आपने इन अंकों की गणना किस प्रकार की है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** मुझे ये अंक यहां उपस्थित मंत्रियों से प्राप्त हुए हैं और उन्हें ये अंक उन लेखों से प्राप्त हुए हैं, जो उनके पास हैं। जो कुछ अंक उन्होंने मुझे दिये हैं, यदि वे सही नहीं हैं, तो मैं भी सही नहीं हूं।

***बेगम ऐज़ाज़ रसूलः** क्या मैं माननीय सदस्य को सूचना दे सकती हूं कि केवल संयुक्तप्रान्त में आश्रित व्यक्तियों को छोड़कर, जिन लोगों पर सीधा प्रभाव पड़ता है, उनकी संख्या 22 लाख है?

*श्री के.एम. मुन्शीः मेरे पास संयुक्तप्रान्त के भी अंक हैं। संयुक्तप्रान्त में केवल 10,000 जमींदार हैं जिनको 13 वर्ष की आय से कम प्राप्त हुआ है। ये अंक मैंने पंडित पंत से लिये हैं और इन पर विवाद करने के लिये कोई कारण प्रतीत नहीं होता है। पर यदि यह भी मान लिया जाये कि वे लोग 10,000 नहीं बल्कि 30,000 हैं तो भी क्या आप इस संख्या की तुलना सात करोड़ बीस लाख से कर सकते हैं। क्या आप देश में क्रान्ति-किसान विद्रोह-कराना चाहते हैं और चन्द हजार व्यक्तियों को अपने ऐश्वर्य में मस्त रखना चाहते हैं जिससे कि वे लोग उन सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करते रहें जो उन्हें पिछली शताब्दियों में प्राप्त थे?

*एक माननीय सदस्यः व्यक्तिगत हानि के बारे में क्या विचार है?

*श्री के.एम. मुन्शीः श्रीमान, व्यक्तिगत दृष्टिकोण से मैं इस पर विचार नहीं कर रहा हूं। मैं जानता हूं कि मेरे कुछ मित्र जिनको कल तक 5,000 रुपया मासिक आय थी आज उनकी आय कम होकर 500 रुपया तक रह गई है। परन्तु इस जमींदारी विधान पर हम व्यक्तियों को ध्यान में रख कर विचार नहीं कर सकते हैं। यह एक राष्ट्रीय तथा सामाजिक क्रान्ति है जिसको हम प्राप्त कर चुके हैं और उससे हम पीछे नहीं हट सकते हैं।

*एक माननीय सदस्यः राज्य किस प्रकार।

*श्री के.एम. मुन्शीः मैं चाहता हूं कि आप मेरे भाषण में बाधा देना बन्द करें। मैं निवेदन करता हूं। कि सब महत्वपूर्ण बातों पर वाद-विवाद करने के पश्चात् जो यह समझौता किया गया है वही सर्वोत्तम और ठीक समझौता है और मैं यह चाहता हूं कि सभा इसे स्वीकार करे।

श्रीमान, कुछ संशोधन हैं जिनको मैं स्वीकार करना चाहता हूं। एक श्री यदुवंश सहाय का संशोधन संख्या 405 है जो 'और दिया जाना है' शब्द 'प्रतिकर निश्चित किया जाना है' शब्दों के बाद जोड़ने के लिये है। ये शब्द टाइप की गलती से रह गये।

अन्य संशोधन जिनको मैं स्वीकार करता हूं संख्या 504 और 505 हैं जो शाब्दिक रूप के हैं। और इसके बाद मैं संख्या 428 को स्वीकार करता हूं जिसे मेरे मित्र श्री कला वैंकटा राव ने पेश किया है। वे यह चाहते हैं कि एक वर्ष के काल को बढ़ा कर अठारह महीने कर दिया जाये क्योंकि कुछ लोग यह समझते हैं कि मद्रास और बिहार के विधानों के लिये ठीक-ठीक तिथि नियत नहीं की जा सकती है। एक अन्य संशोधन जिसे मैं स्वीकार करता हूं वह भी जसपतराय कपूर द्वारा विस्थापितों की सम्पत्ति के संबंध में पेश किया गया है। माननीय गोपालस्वामी आयंगर के सुझाव देने पर उन्होंने उसका फिर से मसौदा बनाया है और कुछ भाषा संबंधी सुधार किया है जिससे कि यही अर्थ बोध हो।

[श्री के.एम. मुन्शी]

इन पांच संशोधनों के अतिरिक्त मैं और सब संशोधनों का विरोध करता हूं। मैं आशा करता हूं कि सभी इन संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद को स्वीकार करेंगे।

*__श्री जसपतराय कपूर__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं श्री मुंशी से प्रश्न कर सकता हूं कि–

*__अध्यक्ष:__ मैं नहीं समझता हूं कि और अधिक प्रश्न किये जायें या उत्तर दिये जायें।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ मेरे मित्र ने श्री सहाय का संशोधन स्वीकार कर लिया है, पर अधिमान मेरे संशोधन को मिलना चाहये क्योंकि 'paid' शब्द वास्तव में 'given' शब्द से बेहतर है।

*__अध्यक्ष:__ मैं नहीं जानता, स्वीकार करना या न करना उनका काम है। अब अधिक प्रश्न नहीं होंगे। मैं संशोधन पर मत ले रहा हूं।

इस प्रश्न पर मत लेने की जिस प्रक्रिया का मैं पालन कर रहा हूं वह यह है। सर्वप्रथम मैं उन संशोधनों को लूंगा जिनमें मूल संशोधन 369 के स्थान में अन्य संशोधन रखने का प्रयास किया गया है। इनके समाप्त हो जाने के पश्चात् मैं कंडिकाओं को क्रमानुसार लूंगा और प्रत्येक कंडिका के संशोधनों को लूंगा।

प्रथम संशोधन, जिसमें समूची बात को बदलकर रखने का प्रयास किया गया है, संख्या 383 है जिसे श्री दामोदर स्वरूप ने पेश किया है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 361 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये–

'24. (a) The property of the entire people is the main stay of the State in the development of the national economy.

(b) The administration and disposal of the property of the entire people are determined by law.

(c) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the Republic and its toiling masses.

(d) Private property and economic enterprises as well as their inheritance may be taxed, regulated, limited, acquired and requisitioned, expropriated and socialised but only in accordance with the law. It will be determined by law in which cases and to what extent the owner shall be compensated.

(e) Expropriation over against the States, local self-governing institutions, serving the public welfare, may take place only upon the payment of compensation.' "

[24. (क) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में समस्त लोक की संपत्ति राज्य का सबसे बड़ा आधार है।

(ख) समस्त लोक की संपत्ति का प्रशासन और यापन विधि द्वारा विनिश्चित किया जाता है।

(ग) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की वहीं तक प्रत्याभूति की जाती है जहां तक कि वे गणराज्य तथा उसके श्रमिक वर्गों के साधारण हितों से संगत है।

(घ) निजी संपत्ति तथा आर्थिक उद्यमों तथा उनके उत्तराधिकार पर भी करा रोपण, उनका विनियमन, परिसीमन, अर्जन तथा अधिग्रहण, हरण तथा समाजीकरण होगा परन्तु केवल विधि के अनुसार विधि द्वारा यह विनिश्चय किया जायेगा कि किन विषयों में और किस सीमा तक स्वामी को प्रतिकर दिया जाये।

(ङ) राज्यों और लोक कल्याणार्थ स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की संपत्ति हरण प्रतिकर देने पर ही हो सकेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद मैं प्रो. सक्सेना के संशोधन संख्या 384 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 से 769 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law.

[अध्यक्ष]

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning, any commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition except on payment in cash or bonds or both of the amount determined as compensation in accordance with principles laid down by such law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or for the promotion of public health or the prevention of danger to life and property.' "

[24. (1) विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है। ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।

(3) खंड (2) की किसी बात से—

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य कोई विधि किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या संपत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन संख्या 385 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:—

"कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:–

'24. (1) All private property in the means of production may be acquired by the Government of India.

(2) The President shall determine in each case to what extent, if any, the owner whether a private individual, a State, a local self-governing institution or a company, shall be compensated.

(3) That within four years from the date of the commencement of this Constitution, the Union Government shall become the owner of all private property in land which is being used or capable of being used for agricultural purposes.

(4) Any existing law or the provisions of any law which may thereafter be made contrary to the provisions of this article shall be null and void.

(5) The provisions of this article may be amended if ratified by the people signified by 51 per cent of the total number of voters on the electoral list framed on the basis of adult franchise.' "

[24. (1) उत्पादन के साधनों में समस्त निजी संपत्ति भारत सरकार द्वारा अर्जित की जायेगी।

(2) प्रत्येक विषय में राष्ट्रपति यह निश्चय करेगा कि उसके स्वामी को, चाहे वह कोई निजी व्यक्ति राज्य, स्थानीय स्वायत्तशासी संस्था अथवा कंपनी हो, यदि प्रतिकर दिया जाये तो कितना दिया जाये।

(3) इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से चार वर्षों के अन्तर्गत संघ सरकार उस भूमि रूपी समस्त निजी संपत्ति की स्वामिन हो जायेगी जिसका कृषि प्रयोजनों के लिये उपयोग हो रहा है अथवा हो सकता है।

(4) कोई वर्तमान विधि या एतत्पश्चात् निर्मित किसी विधि के उपबंध इस अनुच्छेद के उपबंधों के विरुद्ध है तो वे रद्द हो जायेंगे।

[अध्यक्ष]

(5) वयस्क मताधिकार के आधार पर बनी हुई मतदाताओं की सूची में के मतदाताओं की समस्त संख्या का 51 प्रतिशत द्वारा यदि अनुसमर्थित कर दिया जाता है तो इस अनुच्छेद के उपबंधों में संशोधन हो सकेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद श्री त्रिपाठी का संशोधन संख्या 472।

*__श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी__ (मध्यप्रान्त और बरार राज्य): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

*__अध्यक्षः__ इसके बाद मैं खंड (1) के संशोधनों को लेता हूं। पहला संशोधन श्री कामत द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 386 है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में, 'property' शब्द के पश्चात् 'except in national interest and' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ इसके पश्चात् श्री ब्रजेश्वर प्रसाद द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 387 है। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'law' शब्द के स्थान में 'the President' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ इसके बाद प्रो. के.टी. शाह का संशोधन संख्या 388 है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह परंतुक जोड़ दिया जाये:—

'Provided that no rights of absolute property shall be allowed to or recognised in any individual partnership firm, or joint stock company in any form of natural wealth, such as land, forests, mines and minerals, waters of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the Union; and that ultimate ownership in these forms

of natural wealth shall always be deemed to vest in and belong to the people of India collectively; and that they shall be owned, worked, managed or developed by collective enterprise only, eliminating altogether the profit motive from all such enterprise.' "

[परन्तु किसी व्यक्ति, साझे की फर्म, या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के किसी प्रकार के प्राकृतिक धन जैसे भूमि, वन, खाने तथा खनिज पदार्थ, नदी, तालाब और संघ के समुद्रतट के चहुं ओर समुद्र के जल पर निरपेक्ष संपत्ति के अधिकार न होने दिये जायेंगे और न अभिज्ञात किये जायेंगे; और इस प्रकार के प्राकृतिक धन का पूर्ण स्वामित्व भारत की जनता में सामुहिक रूप से निहित रहने दिया जायेगा और केवल सामुहिक उद्यम द्वारा ही, इन सब उद्यमों में लाभ की भावना का पूर्ण रूप से परित्याग कर, इन पर कब्जा या उनका संचालन या प्रबंधन या उनमें विकास किया जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद हम उस संशोधन पर आते हैं जिसमें (2) से लेकर (6) तक के सब खंड आ जाते हैं। मैं उनको पृथक्-पृथक् करके भी लूंगा, पर इस समय मैं संख्या 389 को लेता हूं जिसमें इन सब पांच खंडों के अपमार्जन का प्रयास किया गया है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के (2), (3), (4), (5) और (6) खंडों को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद मैं खंड (2) पर आता हूं। इस खंड पर कई संशोधन हैं मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन संख्या 394 को लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में—

(1) 'No property' शब्द के स्थान में 'Any property' शब्द रखे जायें।

(2) 'shall be taken' शब्दों के स्थान में 'may be taken' शब्द रख दिये जायें।

(3) 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'subject to such compensation, if any' शब्द रखे जायें।

[अध्यक्ष]

(4) 'acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'acquired as may be determined by the principles laid down in the law for calculating the compensation' शब्द रखे जायें।

(5) अन्त में यह जोड़ दिया जाये:

"Provided that no compensation whatsoever shall be payable in respect of:—

(a) any public utility, social service, or civic amenity which has been owned, worked, managed or controlled, by an individual, partnership firm, or joint stock company for more than 20 years continuously immediately before the day this Constitution comes into force;

(b) any agricultural land forming part of the proprietory of any land-owner, howsoever described, which has remained uncultivated ro undeveloped continuously for ten years or more immediately before the day this Constitution comes into force;

(c) any urban land, forming part of the proprietory of any individual, purtnership firm or joint stock company, which has remained unbuilt upon or undeveloped in any way for fifteen years or more continuously immediately before the day this Constitution comes into effect;

(d) any agricultural land forming part of the proprietory of any land-owner, howsoever described, which has remained in the ownership or possession of the same land-owner or his family for more than 25 years continuously immediately before the date when this Constitution comes into operation;

(e) any mine, forest or mining or forest concessaion which has remained in the ownership or possession of the same individual, partnership firm, or joint stock company for at least twenty years immediately before the day this Constitution comes into operation;

(f) any share, stock, bond, debenture or mortgage on any joint stock company, owning, working, managing or controlling any industrial or commercial undertaking which has been owned, worked, controlled or managed by the same joint stock company or any combination or amalgamation of it with any other company for more than thirty years continuously immediately before the day this Constitution comes into operation:

or

which has paid in the course of its operations and existence in the aggregate in the shape of dividend or interest, a sum equal to or exceeding twice the paid-up value of its shares, stock, bonds or debentures;

or

whose total assets (not including goodwill) at the time of the acquisition by the State of any such undertaking are less in value than its total liabilities."

[परन्तु–

(क) किसी लोक उपदेयता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से संघ पूर्व 20 वर्ष से अधिक काल से स्वामित्व, संचालन, प्रबंधन या नियंत्रण है;

(ख) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 10 वर्ष इतने अधिक समय अनजुती तथा अविकसित रूप में पड़ी रही हो;

[अध्यक्ष]

(ग) कोई नगर में की भूमि जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का अधिकार हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 15 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनिर्मित तथा अविकसित पड़ी रही हो;

(घ) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 25 वर्ष से अधिक समय तक उसी व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के कब्जे में रही हो;

(ङ) कोई खान, वन या खनिज पदार्थ निकालने का फर्म या वन संबंधी रियायतें जो उसी व्यक्ति, साझे की फर्म, संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के स्वामित्व या कब्जे में इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व न्यूनातिन्यून 20 वर्ष तक रही हो;

(च) किसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में, जो किसी ऐसे औद्योगिक या वाणिज्यिक उपक्रम की स्वामिनी, संचालिका, प्रबंधिका या नियंत्रिका है, कोई अंश, श्रेष्ठि, हुंडी, ऋणपत्र या रहन जिस उपक्रम पर उसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का या किसी अन्य कंपनी से मिलकर या उसमें विलीन होकर उनका स्वामित्व, संचालन, नियंत्रण या प्रबन्धन इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार तीस वर्ष से अधिक काल तक रहा हो;

या

जो अपने प्रवर्त्तन तथा जीवन काल में लाभांश या ब्याज के रूप में अंश, श्रेष्ठि, हुंडी या ऋणपत्र के प्राप्त हुए भाग से औसतन दुगना दे चुकी हो;

या

किसी उपक्रम को राज्य द्वारा अर्जित करते समय उसकी सकल संपत्ति उसको पूर्ण देयता से मूल्य में कम हो तो इन पर कोई प्रतिकर नहीं दिया जायेगा।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद श्री कामत का संशोधन संख्या 395।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में दूसरी बार आए हुए शब्द 'taken possession of or acquired' के स्थान में 'to be taken possession of or acquired' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री बी. दास द्वारा पेश किया गया संशोधन सं. 397।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'unless the law provides for fair and equitable compensation' शब्द रखे जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके बाद श्री नागप्पा द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 400।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन सं. 400 वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** इसके पश्चात् संख्या 402। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में–

'principal' शब्द के पूर्व 'appropriate' शब्द जोड़ दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** श्री कामत द्वारा पेश किया गया संशोधन सं. 403।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'to be determined' शब्दों के पश्चात् एक अर्द्ध-विराम और 'provided that such principles or such manner of determination of compensation shall not be called in question in any court' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** डॉ. देशमुख द्वारा पेश किया गया संशोधन संख्या 404।

प्रश्न यह है:

"सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन सं. 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'the compensation is to be determined' शब्दों के पश्चात्

[अध्यक्ष]

'and paid' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** इसके बाद संशोधन संख्या 405 आता है जिसे श्री मुंशी ने स्वीकार कर लिया है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'the compensation is to be determined' शब्दों के पश्चात् 'and given' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के पश्चात् निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that when any such law provides the acquisition by any State of the interests of the Zamindars of various degrees and other intermediaries for the purpose of abolishing Zamindari system, it shall be sufficient if the law provides for the payment of compensation amounting to not less than twelve times the estimated average net income of the Zamindar of any degree or intermediary whose interests are to be acquired.'"

[परन्तु जब कोई विधि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करने के प्रयोजन के लिए भिन्न-भिन्न कोटि के जमींदारों तथा अन्य मध्यवर्त्तियों के हितों का किसी राज्य द्वारा अर्जित किये जाने का उपबंध करती है तो यदि वह विधि किसी कोटि के जमींदार या मध्यवर्ती की, जिनके हित अर्जित किये जा रहे हैं, अनुमानित औसत शुद्ध आय के बारह गुने से अन्यून राशि का प्रतिकर देने का उपबंध करती है तो यह पर्याप्त होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*श्री **फूल सिंह** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 475 को वापस लेना चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

*श्री **गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन संख्या 476 को वापस लेना चाहूंगा।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'provides for fair and equitable compensation based on market value' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation for the property taken posession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'unless due compensation is paid for' अथवा विकल्पत: 'unless the law provides for due compensation' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

*श्री **प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं अपने संशोधन को वापस लेना चाहता हूं।

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

*श्री **बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं:

सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'or specifies the' शब्दों के पश्चात् 'proper' या विकल्पत: 'fair' शब्द प्रतिष्ट किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के अन्त में यह नया परंतुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided that no compensation shall be payable to any owner or holder of any movable or immovable property, who, having owned or held such property for thirty years continuously immediately before the coming into force of this Constitution, has either not habitually resided within the State where such property is situated or has not done anything to develop such property.' "

[परन्तु स्थावर या जंगम संपत्ति के किसी ऐसे स्वामी या धारण करने वाले को कोई प्रतिकर नहीं दिया जायेगा जो इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने से सद्यपूर्व उस संपत्ति पर लगातार तीस वर्ष तक कब्जा करते हुए या उसको धारण करते हुए उस राज्य में स्थायी रूप से निवास न करता हो या उस संपत्ति की उन्नति के लिए उसने कुछ भी न किया हो।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(3) No such law as is referred to in clause (2) of this article made by the Legislature of the State shall have

effect, unless such law receives the assent of the President.' "

[(3) राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी न होगी जब तक कि ऐसी विधि को राष्ट्रपति की अनुमति न मिल गई हो।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'unless such law having been reserved for the consideration of the President has received his assent' शब्दों के स्थान में 'has received the assent of the President' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'having been' शब्दों के स्थन में 'is' शब्द रखा जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जायेः—

'(4) Any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution shall not, after its subsequent enactment, be called into question in any Court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[(4) इस संविधान में प्रारम्भ पर राज्य के विधान-मंडल में लम्बित किसी विधेयक पर उसके बाद में अधिनियम बन जाने पर किसी न्यायालय में इस बात पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में—

(1) 'If any' शब्द के स्थान में 'any' शब्द रखा जाये।

(2) 'has after it has been' शब्दों के स्थान में 'may be' शब्द रखे जायें।

(3) 'received the assent of the President' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।

(4) 'assented to' शब्दों के स्थान में 'passed' शब्द रखा जाये।

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में 'Constitution' शब्द के पश्चात् 'and designed to execute a scheme of agrarian reform by abolition of Zamindari and conferring rights of ownership on peasant proprietors for such compensation as the Legislature of the State considers fair' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जायेः—

'(4) No law making provision as aforesaid shall be called in question in any court either on the ground that the compensation provided for is inadequate or that the principles and the manner of compensation specified are fraudulent and inequitous.'

[(4) उपरोक्त किसी भी उपबंध बनाने की विधि पर किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि किस प्रतिकर का उपबंध किया गया है वह अपर्याप्त है या प्रतिकर के उल्लिखित सिद्धान्त और रीति में धोखा है या वे न्यायोचित नहीं हैं, आपत्ति नहीं की जायेगी।]"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के अन्त में यह व्याख्या जोड़ दी जाये:—

'*Explanation.*—The provisions of this clause shall not refer to the system of land tenure called Ryotwari any where in the Union including the Indian States.' "

[*व्याख्या*—इस खंड के उपबंध देशी राज्यों के सहित संघ में कहीं भी रैयतदारी के नाम की भूमि लगानदारी की प्रणाली को निर्दिष्ट नहीं करेंगे।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect the provisions of any existing law or of any law which the State may hereafter make which imposes or levies any tax or penalty which seeks to promote public health or to prevent danger to life and property.' "

[(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबंधित रीति के अतिरिक्त इस अनुच्छेद के खंड (2) की किसी बात का वर्तमान विधियों के या किसी उस विधि के उपबंधों पर जिसे संसद एतत्पश्चात् बनाये और जो किसी ऐसे कर या शक्ति का आरोपण या उद्ग्रहण करती हो जिसमें लोक स्वास्थ्य की उन्नति का या जीवन संकट तथा संपत्ति संकट से बचने का प्रयास हो, कोई प्रभाव नहीं होगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) में 'property' शब्द के पश्चात् 'or for ensuring full employment to all and securing a gust and equitable economic and social order' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) में से 'save as provided in the next succeeding clause' शब्दों को निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (क) के स्थान में यह उपखंड रखा जाये।

(a) the provisions of any existing law other than a law to which the provisions of clause (6) of this article apply, or

[(क) उस विधि के अतिरिक्त किसी अन्य वर्तमान विधि के उपबन्ध जिस पर इस अनुच्छेद के खण्ड (6) के उपबन्ध लागू होते हैं, अथवा]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (क) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** ये दो संशोधन नये रूप में रखे गये हैं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के उपखंड (ख) के पश्चात् यह नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(c) The provisions of any existing law made or of any law which the State may hereafter make, in pursuance of any agreement arrived at with a foreign State or otherwise with respect to property declared by law to be evacuee property.' "

[(ग) किसी विदेशी राज्य से अथवा अन्यथा किये गये करार के पालनार्थ विधि द्वारा विस्थापित संपत्ति घोषित की गई संपत्ति के बारे में निर्मित किसी वर्तमान विधि या एतत्पश्चात् बनाई जाने वाली किसी विधि के उपबन्ध।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year' शब्दों के स्थान में 'at any time' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year before the commencement of this Constitution' शब्दों के स्थान में 'after August 15, 1947' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'one year' शब्दों के स्थान में 'eighteen months' शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष**: प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'may within three month' से लेकर 'Government of India Act, 1935' तक के शब्दों के स्थान में यह रख दिया जाये:–

'shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes any provision of this article.' "

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'may within three months from such commencement be submitted by the Governor of the State to the President for his certification; and thereupon, if the President by public notification so certifies it' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'clause (2) of this article' शब्द, अंक और कोष्ठक अपमार्जित किये जायें।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) को अपमार्जित किया जाये।"

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) If any State passes a law designed to execute a scheme of agrarian reform in the State by abolition of Zamindari conferring rights of ownership on peasant proprietors or at least rights of occupancy for such compensation as the State Legislature considers fair on the lines of the law referred to in clause (4) of this article such law shall be submitted by the Governor or the Ruler as the case may be, to the President for his certification. If the President by public notification certifies the law, it shall not be called in question

in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[(7) जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर या किसी ऐसे प्रतिकर के लिये उनका कब्जा रखने का कम से कम अधिकार देकर, जिसे इस अनुच्छेद के खंड (4) निर्दिष्ट विधि के आधार पर राज्य विधान-मंडल ठीक समझे, यदि कोई राज्य अपने यहां कृषि सुधार की योजना प्रवृत्त करने के लिये विधि पारित करता है तो इस विधि को प्रमाणन के लिए राष्ट्रपति के पास यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा भेजा जायेगा। यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति उस विधि को प्रमाणित कर देता है तो उस विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंड का उल्लंघन करती है।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) The Parliament may by law in case the social and economic conditions so necessitate, provide for the socialization of any class of property on such terms and conditions as provided in the law.' "

[(7) यदि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक है तो संसद विधि द्वारा ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर संपत्ति की किसी श्रेणी का समाजीकरण करने के लिये उपबन्ध करेगी जैसी उस विधि में उपबन्धित हों।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 के निर्देशानुसार प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'24-A. Nothing in this Constitution shall prevent the Parliament from exercising jurisdiction over and, the State Legislature from

[अध्यक्ष]

acquiring any properties movable or immovable belonging to any public charitable trust without compensation and for the purpose of better utilization and management of the trust property.' "

[24क. इस संविधान की किसी बात से किसी स्थावर या जंगम संपत्ति पर जो किसी लोक पूर्त्त न्यास की हो बिना प्रतिकर के तथा न्यास संपत्ति के अधिक अच्छे उपयोग तथा प्रबन्धन के प्रयोजन के लिये संसद को क्षेत्राधिकार के प्रयोग करने में और विधान-मंडल के उस संपत्ति के अर्जन करने में कोई बाधा नहीं होगी।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** अब मैं प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के मूल संशोधन संख्या 369 के स्वीकृत संशोधनों द्वारा संशोधित रूप पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है :

"कि संशोधित रूप में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 स्वीकार किया जाये।"

संशोधन स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 24 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

इसके बाद दोपहर बाद के चार बजे तक के लिए सभा स्थगित हुई।

संविधान सभा दोपहर के बाद चार बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुनर्समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 14-क—भाषा

*__अध्यक्ष:__ अब हमें भाषा सम्बन्धी अनुच्छेदों को लेना है। मैं जानता हूं कि यह एक ऐसा विषय है जो कुछ समय से सदस्यों के विचारों में आन्दोलन पैदा करता रहा है; इस कारण इस वाद-विवाद में जो वक्ता भाग लेंगे उनसे मैं एक निवेदन करूंगा। मेरा निवेदन किसी विशिष्ट प्रस्थापना के पक्ष में नहीं है वरन् वह उन भाषणों के प्रकार के सम्बन्ध में है जो सदस्यों द्वारा दिये जायेंगे। हम यह न भूल जायें कि भाषा के प्रश्न पर जो कुछ भी विनिश्चय किया जाता है उसका पालन समूचे देश द्वारा किया जायेगा। देश के समूचे संविधान में ऐसा अन्य कोई पद नहीं है जिसका वास्तविक व्यवहार द्वारा प्रति दिन, प्रति घंटा और मैं तो यहां तक कहूंगा कि प्रति क्षण पालन किया जाना अपेक्षित हो। अत: सदस्यों को यह याद रखना होगा कि इस सभा में वाद-विवाद द्वारा किसी बात में सफलता प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं होगा। इस सभा का विनिश्चय समूचे देश को मान्य होना चाहिये। यदि हम किसी विशिष्ट प्रस्थापना को बहुमत द्वारा पार करने में सफल हो भी गये परन्तु यदि वह देश की जनता के किसी विशेष वर्ग को स्वीकार न हुआ चाहे वह वर्ग उत्तर देश का हो या दक्षिण देश का हो तो इस संविधान का पालन करना एक बहुत ही कठिन कार्य हो जायेगा। अत: इस भाषा सम्बन्धी प्रश्न पर जब कोई सदस्य भाषण देने के लिये खड़ा हो तो मैं उनसे यह याद रखने के लिए अति गम्भीर निवेदन करूंगा कि वे एक भी शब्द या पद ऐसा न निकालें जिससे दु:ख हो। जो कुछ कहा जाये वह संयत भाषा में कहा जाये जिससे कि वह तर्कयुक्त प्रतीत हो और ऐसे विषय में आवेश उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिये कोई अपील नहीं होनी चाहिये।

इसके बाद जिस प्रक्रिया का मैं पालन करना चाहता हूं उसके बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं जिससे कि उस प्रक्रिया के लिए मुझे सभा की अनुमति प्राप्त हो जाये।

मैंने देखा है कि इन अनुच्छेदों पर लगभग तीन सौ या इससे भी अधिक संशोधन हैं। यदि प्रत्येक संशोधन को पेश किया जाये और यदि प्रत्येक संशोधन पेश करने वाले को भाषण देने के लिये मैं दस मिनट दूं तो मैं नहीं जानता हूं कि इसमें कितने घंटे लग जायेंगे। बहुत से संशोधन एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, बहुतों के अर्थ में केवल नाममात्र का अन्तर है बहुत से ऐसे हैं जिनके कारण सिवा शब्दों के और कुछ अन्तर व्यवहार्यत: नहीं होता है। हां कुछ अवश्य ऐसे हैं जो सारवत् हैं। अत: मैं समस्त संशोधनों को पेश किये गये रूप में मान लेने का

[अध्यक्ष]

प्रस्ताव रखता हूं और सदस्यों से निवेदन करता हूं कि वे सीधे वाद-विवाद आरम्भ कर दें। प्रत्येक सदस्य जो भाषण देना चाहता है उसे अपने संशोधन पर बोलने की स्वतन्त्रता है। पर उसे यह स्मरण रखना चाहिये कि वह अपने भाषण में दस मिनट या अधिक से अधिक पन्द्रह मिनट ही लगायें। यदि वह सब संशोधनों या समस्त उत्पन्न हुई प्रस्थापनाओं को लेना चाहता है तो शायद जिस विशिष्ट प्रस्थापना को वह महत्व देता है उसका पूर्ण विवरण करने के लिए उसके पास समय नहीं रहेगा। अत: यह स्वाभाविक है कि इस समय-सीमा का पालन करने में सदस्यों को उन्हीं खास बातों पर ध्यान रखना पड़ेगा जिसको वह महत्व देना चाहते हैं। यदि सभा सहयोग देती है और यदि सदस्य सहयोग देते हैं तो फिर ऐसा कोई कारण नहीं है, कि जैसे हमने शेष संविधान को युक्तियुक्त समय में समाप्त किया है उसी प्रकार हम इस प्रश्न के वाद-विवाद को युक्तियुक्त समय में समाप्त न कर पायें। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या सभा उस प्रक्रिया को स्वीकार करती है जिसका मैं पालन करना चाहता हूं।

*__माननीय सदस्यगण:__ जी हां।

*__श्री महावीर त्यागी:__ श्रीमान, यह जो प्रक्रिया सुझाई गई है, उसे मैं स्वीकार नहीं करता हूं, यदि सब संशोधनों पर वाद-विवाद होने दिया जायेगा तो कोई भी यह ठीक-ठीक नहीं समझ पायेगा कि किसी विशिष्ट संशोधन का क्या महत्व है तथा संशोधन पर संशोधन का क्या अर्थ है। अत: यदि आपकी सुझाई गई प्रक्रिया का पालन किया जाता है तो सभा को वाद-विवाद का पूरा-पूरा लाभ नहीं होगा। अत: मैं सुझाव देता हूं कि आप इन संशोधनों की सूचियों की मुख्य-मुख्य बातों को पेश किया हुआ मान लें और उन पर सभा का विनिश्चय ले लें जिससे कि इन विनिश्चयों को बाद में मसौदा-समिति द्वारा शामिल कर दिया जाये। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा और यदि अंक इत्यादिकों के विषय पर एक साथ वाद-विवाद किया जायेगा, तो कोई यह नहीं समझ सकेगा कि उसे क्या कहना है। अत: मैं निवेदन करता हूं कि यह सुझाई गई प्रक्रिया ठीक नहीं होगी।

*__अध्यक्ष:__ मैं समझता हूं कि सदस्यों ने संशोधन पढ़ लिये हैं और उनका महत्व समझ लिया है। (कई माननीय सदस्य: जी हां) इस आधार पर मैंने यह सुझाव सभा के समक्ष रखा है।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि डॉ. अम्बेडकर का सरकारी संशोधन और दो और पेश कर दिये जायें और इसके बाद एक-एक करके सब पेश कर दिये जायें। वे महत्व के संशोधन नहीं रहे हैं। अत: यदि आप डॉ. अम्बेडकर और उनके साथियों से यह कहें कि वे अपने संशोधन पेश करें ओर उसके बाद उनके संशोधनों पर संशोधन पेश होने दिये जायें, ऐसा करने से माननीय सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिल जायेगा।

*__अध्यक्ष:__ सदस्यों को यह कहने का अधिकार है कि वे किसी विशिष्ट संशोधन को पेश करना नहीं चाहते हैं। अन्यथा मैं सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझूंगा। अब हम वाद-विवाद आरम्भ करें।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ डॉ अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित संशोधन पर मैंने संशोधन प्रस्थापित किया है। यदि वे यह कह दें कि वे अपना संशोधन पेश करना नहीं चाहते हैं.......।

*__अध्यक्ष:__ आपका संशोधन पेश किया हुआ माना जायेगा।

*__सेठ गोविन्द दास__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) **:** मैं यह जानना चाहूंगा कि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि आपने कहा है कि सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जायेगा, वाद-विवाद सब संशोधनों पर किया जायेगा या प्रत्येक प्रश्न पर।

*__अध्यक्ष:__ मैं उसी प्रक्रिया का पालन करूंगा जिसका मैंने आज पहले एक अन्य प्रस्थापना के सम्बन्ध में पालन किया था जिस पर हमारे पास कई संशोधन आये थे। पहले मैं उन संशोधनों को लूंगा जिनके अन्तर्गत समस्त बातें आ जाती हैं और उनके समाप्त हो जाने के बाद मैं एक-एक कंडिका को लूंगा, यदि सदस्य इस प्रकार से उन पर विवाद करना चाहेंगे।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ आपने यह कहा था कि हम सब संशोधनों को पेश किया हुआ समझेंगे। वह क्रम क्या होगा जिसके अनुसार आप सदस्यों को भाषण देने के लिये बुलायेंगे?

*__अध्यक्ष:__ वही क्रम जिसका सामान्यतया सभा का कोई अध्यक्ष पालन करता है।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्ल__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल)**:** वाद-विवाद के लिये क्या हम संशोधनों को एक-एक करके लेंगे। या हम उन सबको इकट्ठा लेंगे?

*__अध्यक्ष:__ सबको इकट्ठा।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:__ यदि हम संशोधनों को एक-एक करके लें तो हम प्रत्येक विषय पर एकाग्रचित्त होकर विचार कर सकेंगे। अन्यथा इतनी अधिक गड़बड़ी फैलेगी कि आप स्वयं वक्ताओं का क्रम नियत नहीं कर सकेंगे।

*__अध्यक्ष:__ इसी कारण मैंने यह सुझाव दिया था कि भाषण देते समय सदस्य उसी विशेष बात पर जोर दें जिसको वे महत्व देते हैं।

****श्री मुहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अभी तक कुछ संशोधन आ रहे हैं; क्या हम यह समझें कि इन सबको पेश किया हुआ माना जायेगा?

****अध्यक्ष:** इस क्षण तक जो संशोधन मुझे प्राप्त हुये हैं उन सबको। उनको आज शाम तक घुमा दिया जायेगा।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** क्या आपके लिये यह संभव होगा कि आप अनुच्छेद को एक-एक करके ले सकें?

***अध्यक्ष:** मत लेते समय।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** हम अनुच्छेदों को एक-एक करके ले सकते हैं और उस समय उसी अनुच्छेद पर वाद-विवाद सीमित रखा जायेगा; इसके बाद दूसरा अनुच्छेद लिया जा सकता है, इस प्रकार यदि एक ही सदस्य उस अनुच्छेद पर बोलना चाहता है तो वह बोल सकता है।

***अध्यक्ष:** मैं इसे पसन्द नहीं करता, पर हां, सभा को इस बात का अधिकार है।

***एक माननीय सदस्य:** क्या प्रत्येक सदस्य को जिसने संशोधन पेश किया है उसे बोलने का अधिकार होगा?

***अध्यक्ष:** अभी मैं कुछ नहीं कह सकता हूं। मैंने अभी उन सदस्यों की गणना नहीं की है जिन्होंने संशोधन पेश किये हैं। पर संशोधन पेश करने वाले प्रत्येक सदस्य को मैं अवसर देने का प्रयत्न करूंगा।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उन सदस्यों के लिए क्या है जिन्होंने संशोधन पेश नहीं किये हैं? क्या उनको भी बोलने का अधिकार होगा?

***अध्यक्ष:** मैं प्रत्येक सदस्य को बोलने का अवसर देने का प्रयत्न करूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर:** श्रीमान, आपने जो यह सुझाव दिया है उसके अनुसार सब संशोधन पेश किये हुए समझे जायेंगे। श्रीमान, क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि यह पूरा अध्याय भाषा के सम्बन्ध का है। अब तक इस सभा में इस प्रथा का पालन होता रहा है कि जब किसी विशिष्ट अध्याय पर विचार किया जाता है तो प्रत्येक अनुच्छेद को अलग-अलग लिया जाता हे। इस अध्याय में अनुच्छेद पूर्णतया भिन्न-भिन्न विषयों पर हैं। कोई अनुच्छेद अंक सम्बन्धी है तो कोई उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय की भाषा के सम्बन्ध में है और एक अनुच्छेद उस भाषा के सम्बन्ध का है जिसका राज्यों में परस्पर संचार में प्रयोग होगा। ये सब अनुच्छेद पूर्णतया भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखते हैं, अतः मैं यह निवेदन करूंगा कि प्रक्रिया में जिस अन्तर का आपने सुझाव दिया है वह

माना जाये पर जहां तक प्रत्येक अनुच्छेद का सम्बन्ध है जिस प्रक्रिया का अब तक पालन किया गया है उसी का पालन किया जाये। अन्यथा गड़बड़ हो जायेगी।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ संविधान निर्माण के इस अन्तिम समय में यह परिवर्तन क्यों किया जाये?

*__अध्यक्षः__ क्योंकि यह अन्तिम समय है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ तो समय-सीमा कुछ बढ़ा दी जाये।

*__अध्यक्षः__ इस विषय पर पुनः विचार करने के लिये मैं तैयार हूं दस मिनट की जगह मैं कुछ और समय दे सकूंगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं चाहता हूं कि प्रत्येक सदस्य विषय से संगत रहे।

*__अध्यक्षः__ ठीक यही कठिनाई है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैंने कुछ संशोधन पेश किये हैं। श्रीमान, यदि किसी समय मैं विषय से संगत न रहूं तो आप मुझे रोक सकते हैं।

*__माननीय श्री जवाहरलाल नेहरूः__ आपने यह आदेश दे दिया है कि जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी है उन सबको पेश किया हुआ समझा जायेगा। अनुमानतः लगभग दो सौ या तीन सौ संशोधन हैं। मेरा ख्याल है कि उनमें से कुछ एक-दूसरे से मिले जुले हैं और कुछ असामयिक हैं। यदि हम उन सबको पेश किया हुआ समझ लेंगे तो उसमें बहुत समय लगेगा। मैं केवल यह सुझाव दे रहा हूं कि जो सदस्य अपने संशोधन वापस करना चाहते हैं वे आपको लिखित सूचना देकर वापस कर सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ मैं इससे भी कुछ और आगे बढ़ने के लिए तैयार हूं। मैं प्रत्येक संशोधन को पुकारूंगा और तत्सम्बन्धी सदस्य यह कह सकता है कि वह उसे पेश करना चाहता है या नहीं।

*__श्री देशबन्धु गुप्त__ (दिल्ली): चूंकि मसौदा-समिति इस विषय पर एकमत होकर कोई संशोधन पेश नहीं कर सकी है मैं इतनी अबेर होने पर भी यह सुझाव रखता हूं कि इस समूचे प्रश्न पर एक बार और विचार करने के लिये नौ या ग्यारह सदस्यों की एक समिति नियुक्त कर दी जाये और वह समिति कोई एक स्वीकृत संशोधन प्रस्तुत करने का प्रयास करे।

*__एक माननीय सदस्यः__ जी हां।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ वैसा कोई संशोधन वाद-विवाद का आधार हो सकता है और मतभेद कम किया जा सकता है। श्रीमान, आपकी अनुमति से मैं यह सुझाव देता हूं कि ये सदस्य उस समिति में हों। माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू......।

*__एक माननीय सदस्यः__ जी नहीं, हम इस विचार से सहमत नहीं हैं।

*__अध्यक्षः__ मैं नहीं समझता हूं कि वह व्यवहारणीय है। मैं समझता हूं कि इसी प्रक्रिया का पालन किया गया है। इससे कोई अन्तर नहीं होता है।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ यदि हमें कोई मान्य हल मिल सकता है तो उससे समय बच जायेगा और परेशानी से बच जायेंगे।

*__अध्यक्षः__ इससे कोई अन्तर न होगा। मैं समझता हूं कि यदि इस वाद-विवाद को समाप्त कर दिया जाये तो अच्छा है।

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान, क्या मैं आपका यह आदेश प्राप्त कर सकता हूं कि अब तक जो संशोधन पेश हो चुके हैं वे ही केवल रहेंगे और आगे संशोधन स्वीकार नहीं किये जायेंगे जिससे कि सभा को समय तथा खर्चे की बचत हो।

*__अध्यक्षः__ इस विषय पर अब मत लिया जायेगा। प्रश्न यह है:

"कि जिस प्रक्रिया का मैंने सुझाव दिया है उसे सामान्यतया स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

*__अध्यक्षः__ अब मैं एक-एक करके संशोधन को पुकारूंगा।

संशोधन संख्या 65।

*__श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव__ (मैसूर राज्य): श्रीमान, मैंने एक संशोधन भेजा है कि भाषा के विषय को भावी संसद पर छोड़ दिया जाये। यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो यह सब वाद-विवाद मिट सकता है।

*__अध्यक्षः__ ऐसे अन्य कई संशोधन हैं जिनको यदि स्वीकार कर लिया जाये तो शेष सब संशोधन महत्वहीन हो जाते हैं और क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं। अब मैं प्रत्येक संशोधन को पुकारूंगा और यदि कोई सदस्य अपना संशोधन वापस लेना चाहता है तो वह मुझे बता दे।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 65 और 66 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

संशोधन संख्या 67।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ श्रीमान, में प्रत्येक पद को अलग-अलग पेश करना चाहता हूं।

*__अध्यक्षः__ इस दृष्टिकोण से मत लेते समय प्रश्न होगा।

*माननीय पं. रविशंकर शुक्लः जहां तक संशोधन संख्या 67 का सम्बन्ध है उसमें तीन संशोधन हैं। एक अनुच्छेद 99 और 184 को अपमार्जित करने के लिये है। उसे मैं पेश करना नहीं चाहता हूं। उसको छोड़ दिया जाये। संशोधन संख्या 67 के सम्बन्ध में मैंने प्रत्येक अनुच्छेद पर अलग-अलग संशोधन की सूचना दी है। मैं चाहता हूं कि उनको पेश किया हुआ समझा जाये न कि संशोधन संख्या 67 को। संशोधन संख्या 67 को पेश किया हुआ समझा जाये, और अन्य संशोधनों को पेश किया हुआ समझा जाये।

*अध्यक्षः अन्य संशोधन कौन से हैं?

*माननीय पं रविशंकर शुक्लः मैंने अपने नाम से प्रत्येक अनुच्छेद पर संशोधन भेजे हैं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 68 और 69 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

*माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, संशोधन संख्या 69 के सम्बन्ध में मेरा एक औचित्य प्रश्न है। क्या मैं उसे इस समय प्रस्तुत करूं या मत लेते समय?

*अध्यक्षः मत लेते समय।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 70, 71 और 72 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः मैं अपना संशोधन संख्या 73 पेश नहीं कर रहा हूं।

*श्री महावीर त्यागीः श्रीमान, मैं उसे पेश करता हूं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84 और 85 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

*डॉ. पी.एस. देशमुखः श्रीमान, यदि कोई संशोधन किसी दूसरे संशोधन से पूर्णतया समान है तो क्या उस समान संशोधन को कई सदस्यों द्वारा पेश करने दिया जायेगा?

*अध्यक्षः मत लेते समय मैं उनको छोड़ दूंगा।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 86, 87, 88, 89 और 90 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुए समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 91 पेश नहीं किया गया।)

[अध्यक्ष]

(जिस सदस्य ने संशोधन संख्या 92 की सूचना दी थी उसने यह संकेत किया कि उसके संशोधन को पेश किया हुआ समझा जाये।)

(संशोधन संख्या 93 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103 और 104 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

*__श्री महावीर त्यागी:__ जो सदस्य अपने संशोधन पेश नहीं कर रहे हैं वे आपके पास एक परची भेज दें और इस प्रकार समय बच सकता है।

(जिस सदस्य ने संशोधन संख्या 105 की सूचना दी थी उसने संकेत किया कि उसका संशोधन पेश किया हुआ समझा जाये।)

(संशोधन संख्या 106 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 107, 108, 109 और 110 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 111 और 112 पेश नहीं किये गये।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 113, 114, 115, 116 और 117 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 118 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 119 और 120 की सूचना दी थी उन्होंने यह संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

*__श्री एच.वी. कामत:__ एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, क्या किसी सदस्य के लिये यह उचित है कि वह ऐसे संशोधनों की सूचना दे जो परस्पर असंगत हों? डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे कई संशोधनों की सूचना दी है जो परस्पर असंगत हैं।

*__अध्यक्ष:__ इस सभा के सदस्यों के लिये असंगत होना कोई असाधारण बात नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख:__ उक्त माननीय सदस्य को भी सम्मिलित करते हुये *(हंसी)*।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मेरे संशोधन उनके समान असंगत नहीं हैं।

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 121, 122 और 123 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 124 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166 और 167 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 168 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 169, 170, 171, 172, 173, 174 और 175 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

(संशोधन संख्या 176 पेश नहीं किया गया।)

(जिन सदस्यों ने संशोधन संख्या 177 और 178 की सूचना दी थी उन्होंने संकेत किया कि उनके संशोधन पेश किये हुये समझे जायें।)

***अध्यक्षः** क्या मेरे लिए यह आवश्यक है कि शेष संशोधनों के लिये मैं इसी रीति का पालन करूं? कोई भी उन्हें वापस करने के लिये तैयार नहीं होगा। 178 संशोधनों को लेने के बाद मैं नहीं समझता हूं कि शेष संशोधनों के लिये इसी रीति का पालन करना मेरे लिये आवश्यक है, और उन सबको मैं पेश किया हुआ मान लेता हूं।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** क्या मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित कर सकता हूं कि हम में से कुछ लोगों ने आज ही संशोधनों की सूचना दी है और आपने उनको कार्यक्रम में रख लिया है। श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि उन संशोधनों को भी पेश किया हुआ समझा जायेगा?

***अध्यक्षः** इस बैठक के आरम्भ होने के समय तक जिन संशोधनों की सूचना दी जा चुकी थी उनको पेश किया हुआ समझा जायेगा। उनको आज सायंकाल को घुमा दिया जायेगा। समय नहीं था।

अब हम वाद-विवाद आरम्भ करेंगे। श्री गोपालस्वामी आयंगर प्रथम संशोधन संख्या 65 पेश करेंगे।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल)**:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह समझता हूं कि इस पूरे के पूरे संशोधन को पढ़ना मेरे लिये अनावश्यक है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि वह आवश्यक है।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** आरम्भ में ही मैं यह कहना चाहता हूं कि इस दोपहर बाद के सभारम्भ में जो अपील की थी उसके पालन करने

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

का मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। मैं संक्षेप में बोलने का प्रयास करूंगा और इससे अधिक क्या हो सकता है कि इस विषय पर विचार प्रस्तुत करने में मेरा यह प्रयत्न होगा कि मैं विषय से संगत रहूं। यह समस्या हमारे सामने बहुत समय पहले से है। इस पर हमने छोटे-छोटे समूहों में, बड़े-बड़े समूहों में देश में समाचार-पत्रों में तथा अन्य रूप से भी वाद-विवाद कर लिया है। इन विभिन्न स्थानों में इस समस्या पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस विषय पर सदैव मतैक्य नहीं रहा है। फिर भी एक बात ऐसी थी जिस पर हम सब लगभग एक ही परिणाम पर पहुंचे थे कि भारत की किसी एक भाषा को हम समस्त भारत की सार्वजनिक भाषा के रूप में चुन लें और उस भाषा का संघ के सरकारी प्रयोजनों में प्रयोग हो। इन भाषा को चुनने में अनेक बातों पर विचार किया गया। इन वाद-विवादों के अन्त में जिस निर्णय पर पहुंचे उसको मैं सरलता से न मान सका क्योंकि उसका अर्थ था कि उस भाषा को विदा कर दिया जाये जिसके द्वारा मेरे विचार से हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की है। यद्यपि अन्त में मैंने उस निर्णय को स्वीकार किया कि उस भाषा को धीरे-धीरे छोड़ा जाये और उसके स्थान में हम इस देश की एक भाषा को रखें, पर ऐसा नहीं कि बिना किसी दु:ख के मैंने यह निर्णय मान लिया हो।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): दुर्भाग्यवश जो कुछ माननीय सदस्य कह रहे हैं वह मुझे सुनाई नहीं दे रहा है। क्या कोई व्यक्ति ध्वनि प्रसारक को ठीक करेगा?

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:__ जैसाकि सब माननीय सदस्यों को विदित है कि इस विशिष्ट विषय पर अन्तिम विनिश्चय यह है कि नये संविधान के अधीन संघ के समस्त सरकारी प्रयोजनों के लिये हम हिन्दी भाषा को ग्रहण करें। निस्सन्देह, यह एक अन्तिम लक्ष्य है जिसे प्राप्त करना है। इसमें यह भाव निस्सन्देह रूप में निहित है कि जब हम उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं तो हमें उस भाषा को विदा करना होगा जिसमें हममें से कई पले पोसे हैं और जैसा कि मैंने कहा था जिसकी शक्ति से हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की है—मेरा अभिप्राय भाषा से है।

आगे चल कर अंग्रेजी भाषा के स्थान में हिन्दी भाषा रखने का विनिश्चय कर लेने पर हमें दो और विनिश्चय इसी विनिश्चय के सम्बन्ध में करने पड़े। ये विनिश्चय ये थे कि हम अंग्रेजी भाषा को एकदम नहीं छोड़ सकते हैं। अंग्रेजी भाषा को हमें कई वर्षों तक रखना पड़ा जब तक कि हिन्दी भाषा केवल इसी आधार पर नहीं कि वह एक भारतीय भाषा है बल्कि इस आधार पर अपने लिये स्थान न बना ले कि भाषा के रूप में जो कुछ भविष्य में हमें कहना या करना है उस सबके लिये वह एक सफल साधन हो सके और जब तक हिन्दी वह स्थान प्राप्त न कर ले जिसको अंग्रेजी आज संघ प्रयोजनों के लिये प्राप्त किये हुए हैं। अत: हमने इसके बाद विनिश्चय किया, अर्थात् यह कि पन्द्रह वर्ष तक

जिन प्रयोजनों के लिये आज अंग्रेजी भाषा का प्रयोग हो रहा है उन सब प्रयोजनों के लिए उसका प्रयोग होता रहेगा और संविधान के प्रारम्भ पर भी प्रयोग होगा।

इसके बाद श्रीमान, हमें इस समस्या के अन्य पहलुओं पर भी विचार करना पड़ा। उदाहरणार्थ हमें अंकों के विषय पर भी विचार करना पड़ा जिसके बारे में चन्द टिप्पणियों में कुछ अधिक विवरणपूर्ण बातें मुझे कहनी पड़ेंगी। इसके बाद हमें राज्यों की भाषा के विषय पर विचार करना था और हमने यह निश्चय किया कि जहां तक हो सके किसी राज्य में बोली जाने वाली भाषा को उस राज्य में सरकारी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा के रूप में अभिज्ञात करना चाहिये और अन्तर्देशीय संचार तथा उस राज्य और केन्द्र में परस्पर संचार के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बना रहे, परन्तु यदि दो राज्यों में परस्पर यह करार हो गया है कि अन्तर्देशीय संचार हिन्दी में हो तो वह होने दिया जाये।

इसके बाद हमने भाषा के उस रूप पर विचार किया जिसका हमारे विधान मंडलों या देश के सर्वोच्च न्यायालयों में प्रयोग होगा और बहुत विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचे कि यद्यपि संघ की भाषा 'हिन्दी' का वाद-विवाद के लिये केन्द्रीय विधानमंडल में प्रयोग होगा और राज्य के विधानमंडलों में ऐसे प्रयोजनों के लिये राज्य की भाषा का प्रयोग हो सकेगा, पर यदि हम अपनी विधि के मूल पाठ और उस मूल पाठ के न्यायालयों में निर्वचन के संबंध में वर्तमान संतोषजनक वस्तुस्थिति को कायम रखना चाहते हैं तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि वह भाषा अंग्रेजी हो जिसमें विधान, चाहे वह विधेयकों तथा अधिनियमों के रूप में हो अथवा नियमों तथा आदेशों के रूप में हो, और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों का निर्वाचन आगे आने वाली कई वर्षों तक अंग्रेजी में हो। मेरा विचार यह है कि भविष्य में कई वर्षों तक इसे रखना होगा। यह इस कारण नहीं है कि इन प्रयोजनों के लिये हम हर प्रकार से अंग्रेजी भाषा रखना चाहते हों। यह इस कारण है कि जिस भाषा को हम संघ के प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात करते हैं और जिन भाषाओं को हम राज्य के प्रयोजनों के लिये अभिज्ञात करते हैं वे काफी उन्नत नहीं हैं और जिन प्रयोजनों का मैंने वर्णन किया है अर्थात् विधियों तथा न्यायालयों द्वारा विधियों के निर्वचन का वे पर्याप्त रूप से सही अर्थबोध नहीं कर पाती हैं।

इसके बाद हमें एक व्यापक तथ्य को अभिज्ञात करना है वह यह कि यद्यपि संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिये हमने हिन्दी भाषा को अभिज्ञात कर लिया है फिर भी हमें यह मानना चाहिये और आज वह भाषा काफी उन्नत नहीं है। कई दिशाओं में उसे बहुत ही समृद्धिशाली बनाना अपेक्षित है, उसमें आधुनिकता लाना अपेक्षित है, उसे विचार ग्रहण करने के लिये और केवल विचार ही नहीं वरन् शैली अभिव्यंजना और अन्य भाषाओं की वाक्य शैली ग्रहण करने के लिये सामर्थ्यवान बनाना बनाना अपेक्षित है। इस प्रयोजन के लिये इस मसौदे में हमने एक अनुच्छेद रखा है जो राज्य के लिये यह कर्तव्य निर्धारित करता है कि वह भाषा की प्रगति

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

में उन्नति करे जिससे उसमें ये सब समृद्धियां आ आयें और कालान्तर में वह उस अंग्रेजी भाषा का सम्यक् रूप से स्थान ग्रहण करने के लिये पर्याप्त रूप में समुन्नत हो जाये जिसके लिये हमारा यह निश्चित विचार है कि वह कालान्तर में हमारी सरकारी रूप से अभिज्ञात कार्यवाहियों तथा कार्यों में न रहे। जिस मसौदे को मैंने पेश किया है उसके सामान्यतया ये विषय आधार स्वरूप हैं।

इस मसौदे पर विचार करते हुये मैं सभा के समक्ष एक या दो तथ्य रखना चाहता हूं। प्रथम तथ्य जिसे मैं सभा के समक्ष रखना चाहता हूं वह यह है कि यह मसौदा बहुत विचार तथा बहुत वाद-विवाद के पश्चात् तैयार हुआ है। परिणामस्वरूप जो कुछ यह बना है यह उन मतों का परस्पर समझौता है जिनमें समझौता करना सरल नहीं था, इस कारण जब आप इस मसौदे की ओर ध्यान दें तो आपको इसे किसी ऐसे मसौदे के रूप में नहीं लेना होगा जिसे मुझ जैसे किसी एक व्यक्ति ने अथवा यदि मैं अपने अन्य दो साथियों को शामिल कर लूं तो उन तीन व्यक्तियों ने, जिनके नाम यहां दिये गये हैं प्रस्थापित किया हो। इसे ऐसा मसौदा नहीं समझना चाहिये जिसे हमने प्रस्तुत किया हो। यह मसौदा एक उस समझौते का परिणाम है जिसके लिये विचारों तथा हितों का महान बलिदान किया गया है और मसौदे के इस रूप को इस प्रकार का बनाया गया है कि वह इस पूरी सभा को मान्य हो।

इसके पश्चात् मैं सभा का ध्यान इस मसौदे में निहित एक या दो मूलभूत सिद्धांतों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। इस मसौदे के निर्माताओं के अनुसार हमारी मूलभूत नीति यह होनी चाहिये कि संघ प्रयोजनों के लिये भारत की सामान्य भाषा हिन्दी हो और लिपि देवनागरी लिपि हो। इस मूलभूत नीति का एक भाग यह भी है कि संघ के सब सरकारी प्रयोजनों में जिन अंकों का प्रयोग होगा वे वे अंक होने चाहिये जिनको भारतीय अंकों का अखिल भारतीय रूप कहा जाता है। इस मसौदे के लेखकों का यह विचार है कि इस संबंध में सदा के लिये इस मूलभूत नीति के ये तीनों पद मुख्य भाग होने चाहियें। इस तथ्य पर मैं इस कारण जोर देना चाहता हूं कि मैं जानता हूं कि इस सभा में एक ऐसी मत धारा है कि जहां तक भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का संबंध है उनको इस योजना में उसी आधार पर रखना चाहिये जिस पर अंग्रेजी भाषा है। जिन लोगों पर इस मसौदे का उत्तरदायित्व है वे इस प्रस्थापना के समर्थक नहीं हैं। हम समझते हैं कि इस देश की सार्वजनिक भाषा में जिस सीमा तक हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि स्थायी रूप ग्रहण करे उसी सीमा तक इस मूलभूत नीति में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का भी एक स्थायी रूप हो। इस मसौदे का मूलाधार यह है।

यह सच है कि उन लोगों से समझौता करने के लिये जिनका मत भिन्न प्रकार का था हमने इस मसौदे में एक दो रियायतें ऐसी कर दीं जिनके बारे में हमने यह सोचा कि इन रियायतों के कारण वे लोग हमारे साथ हो जायेंगे। एक रियायत

यह है कि यद्यपि भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप ही अंकों का स्थायी रूप होगा, पर राष्ट्रपति प्रथम पन्द्रह वर्ष की अवधि तक, जिसमें लगभग समस्त प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होगा, यह निदेश दे सकेगा कि संघ के किसी एक अथवा अधिक प्रयोजनों के लिये भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी अंकों का भी प्रयोग हो।

दूसरी रियायत जो दी गई है वह यह है कि विशिष्ट सरकारी प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले भारतीय अंकों के रूप में प्रश्न उन प्रश्नों में से एक होना चाहिये जो अनुच्छेद 301-ख—मैं समझता हूं वह अनुच्छेद 301-ख ही है—के अधीन नियुक्त किये जाने वाले आयोग के पास भेजे जायेंगे और आयोग का यह एक कर्तव्य होगा कि वह इस विषय पर सिफारिश करे। उस आयोग द्वारा यह बात कही जाने की हमने कल्पना कर ही ली है "भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के स्थान में अंकों के देवनागरी रूप रखे जायें।" परन्तु हम यह रियायत देने के लिये तैयार हैं क्योंकि हमने यह सोचा कि यह एक ऐसी भावना है जिसकी वे लोग प्रशंसा करेंगे जिनका विचार कुछ भिन्न है और हमें यह भी पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में इस प्रकार के जिस निष्पक्ष आयोग की रचना की जायेगी उसके समक्ष भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को रखने के पक्ष के तर्क ऐसी किसी सभा के वातावरण की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध होंगे जिसमें उतना मतभेद हो जितना आज इस सभा में दिखाई दे रहा है। इन जोखिमों को उठाने के लिये हम तैयार हैं। इन तथ्यों का वर्णन मैंने यह प्रकट करने के लिये किया है कि जो लोग इस मूलभूत नीति के समर्थक हैं जिसकी मैंने व्याख्या की है उन्हें कितना महान त्याग भिन्न-भिन्न विचारों के समर्थकों के लिये एक उचित समझौता करने के प्रयोजनार्थ करना पड़ा है।

मैं समझता हूं कि अब इस सभा के समक्ष भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप की मांगों की सिफारिश करना मेरे लिये आवश्यक नहीं होगा। इसके बारे में सदस्यों ने बहुत कुछ पढ़ लिया होगा और मुझे विश्वास है कि मेरे बाद में बोलने वाले सदस्य इसके बारे में बहुत कुछ कहेंगे अतः इस विषय के इतिहास में मैं नहीं जाना चाहता हूं। मैं केवल एक या दो तथ्यों का वर्णन करूंगा। अंकों के इन रूपों ने हमारे देश में जन्म लिया था अतः इन अंकों के लगभग उस विश्वव्यापी प्रयोग को, जिसको इस समय देश की भावी भाषा के स्वरूप का एक भाग बनाया जा रहा है, बनाये रखने में हमें गौरव होना चाहिये। (वाह, वाह) दूसरी बात यह है कि शायद एक या दो अपवादों के समस्त संसार में इन अंकों को अपना लिया है। यही मार्ग केवल ठीक है कि हम समस्त संसार के साथ रहें, या कि वह वास्तव में एक विपरीत रूप में होना चाहिये, सारा संसार तो हमारा साथ देने के लिये तैयार है जिन्होंने वास्तव में ये अंक संसार को दिये हैं। तो क्या हम संसार के इस गौरवपूर्ण पद को और इससे जो सब लाभ हमें होते हैं उनको ठुकरा दें? क्या हम किसी ऐसी वस्तु को अपनाने के लिये, ऐसा करें जिसको इस देश तक में सर्वत्र नहीं अपनाया गया है और भविष्य में जिसका संसार में प्रयोग होना असंभव

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

है? इसके पूर्व कि सभा इस विषय पर किसी परिणाम पर पहुंचे इन दो तथ्यों को मैं विशेषकर सभा के समक्ष रखना चाहूंगा।

श्रीमान, इस विशेष विषय के संबंध में कई विकल्प प्रस्थापित किये गये हैं, परन्तु मैं केवल अन्तिम विकल्प की ओर निर्देश करूंगा जो आज ही आपको दिया गया है उस ओर प्रस्थापना में यह कहा गया है कि भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को लगभग उसी आधार पर रखा जायेगा जिस आधार पर इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी भाषा को रखा गया है। इसका आशय यह है कि प्रथम पन्द्रह वर्ष तक भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का प्रयोग होता रहेगा और उसके बाद संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये कि किन-किन प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय रूप वा देवनागरी रूप अथवा दोनों का प्रयोग किया जाये। यह प्रस्थापना बड़ी सुन्दर सी लगती है। पर इसमें यह भावना छिपी हुई है कि देश में से भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को हटाने की आशा की आप कल्पना करते हैं। जिन लोगों पर इस मसौदे का उत्तरदायित्व है उन लोगों की ऐसी आशा नहीं है जिसकी वे देश तथा संसार के विशालतम हितों में शांति जैसी वस्तु के साथ कल्पना कर सकें। अतः इस समूची समस्या पर इस गलत विचारधारा के कारण मुझे विवश होकर यह कहना पड़ता है कि हमारे इस विशिष्ट विचार के मानने वालों के लिये इस विकल्प पर विचार करना संभव नहीं हो सकता है।

इसके बाद श्रीमान, उस उपबंध के बारे में कुछ शब्द कहूंगा जिसको हमने अध्याय तीन में रखा है अर्थात् न्यायालय की भाषा। हम इसे मुख्य तत्व समझते हैं कि जब तक हिन्दी उस सीमा तक उन्नत न हो जाये कि वह विधि-निर्माण तथा विधि-निर्वचन के लिये उपयुक्त वाहक बन सके और उसके पश्चात् संसद पूर्ण विचार कर इस परिणाम पर पहुंचे कि वह अंग्रेजी भाषा का स्थान ले सकेगी तब तक सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी का प्रयोग होता रहेगा। मेरा अपना विचार यह है कि विधेयकों तथा विधियों के रूप में और इन विधियों के निर्वचन के रूप में अंग्रेजी पन्द्रह वर्ष से बहुत अधिक काल तक के लिये रहेगी। यह मेरा निजी अनुमान है। यह आवश्यक है कि हम यह समझ लें कि यह अध्याय क्योंकर रखा गया है। विधि निर्माण और विधि-निर्वचन के लिये सुनिश्चित अर्थबोध बहुत अपेक्षित है; इसके लिये कई पदों और शब्दों की आवश्यकता होती है जिनका एक निश्चित अर्थ हो गया है; और जब तक हिन्दी भाषा इस स्थिति को प्राप्त न हो तब तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होगा और यद्यपि मैं स्वयं हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ हूं (वाह, वाह) पर मैं नहीं समझता हूं कि अभी हिन्दी भाषा उस स्थिति के निकट तक भी पहुंच पाई हो। इस सभा में जो कुछ होता है उसका हिन्दी अनुवाद मैंने बहुत कुछ देखा है और मुझे यह कहना पड़ता है कि जो कुछ थोड़ी बहुत हिन्दी मैं जानता हूं उससे इस प्रकार के अनुवाद को समझने में मुझे कुछ भी सहायता नहीं मिलती है। संभव है कि मुझ से अधिक हिन्दी जानने वाले उसे समझ सकें; शायद कभी-कभी मैं इस कारण उसे नहीं समझ पाता हूं कि इन अनुवादों में संस्कृत के अधिक शब्दों का प्रयोग किया जाता

है। पर यह वह हिन्दी नहीं है जिसे आप न्यायालय या विधायी प्रयोजनों के हेतु प्रयोग में ला सकें।

मैं एक निजी अनुभव-जन्य कहानी आपको सुना सकता हूं। दस वर्ष पूर्व मैं जम्मू और काश्मीर राज्य का संविधान बना रहा था। एक धारा में विधानमंडल की भाषा का वर्णन करना था और जो पदाधिकारी उसका मसौदा बना रहे थे उन्होंने भारत शासन अधिनियम की भाषा का केवल अनुकरण किया था अर्थात् यह कि भाषा अंग्रेजी होनी चाहिये, परन्तु यदि कोई सदस्य अंग्रेजी से अपरिचित अथवा पर्याप्त रूप से परिचित नहीं था तो वह किसी उस भाषा में भाषण दे सकता था जिससे वह परिचित हो। संयोगवश ऐसा हुआ कि जब मैं इस मसौदे पर विचार कर रहा था स्वर्गीय सर तेज बहादुर सप्रू श्रीनगर पहुंचे और मैंने सोचा कि उनकी उपस्थिति से लाभ उठाऊं और उनसे मंत्रणा लूं और मैंने उस मसौदे को उनके पास भेज दिया। मुख्य रूप से जिस अंश का उन्होंने विरोध किया वह यह विधानमंडल की भाषा संबंधी धारा थी। उन्होंने कहा "एक ऐसी देशी रियासत में जहां न्यायालयों और पाठशालाओं इत्यादि की भाषा उर्दू है वहां क्या आप वास्तव में विधानमंडल की भाषा अंग्रेजी रख सकते हैं?" मेरा उनसे लम्बा वाद-विवाद हुआ; मैंने उनसे कहा, "मैं आपकी बात समझता हूं। मैं इस बात से सहमत हूं कि वहां तक तो विधान-मंडल की भाषा उर्दू होनी चाहिये जहां तक कि जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते हैं उनको उर्दू में बोलने दिया जाये। पर आप हैं एक बड़े वकील और मान लीजिये कि कल मैं आपको यहां की उच्च न्यायालय या प्रीवी परिषद् में ले जाना चाहूं और आपसे इस संविधान की किसी धारा के निर्वचन करने और उस पर तर्क करने के लिये कहूं और यदि वह उर्दू में बना हुआ है तो क्या आप इस कार्य को सुखपूर्वक कर सकेंगे?" उन्होंने मेरे तर्क को समझा। समझौते के रूप में मैंने उनसे कहा "वाद-विवाद के लिये मैं उर्दू को विधान मंडल की भाषा के रूप में एक परन्तुक सहित रख दूंगा कि विधेयकों और अधिनियमों का प्राधिकृत मूल रूप अंग्रेजी में ही होगा।" उन्होंने तुरन्त ही मेरे इस सुझाव को स्वीकार किया और सोचा कि जो समस्या हम दोनों के सामने थी उसका यही सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण हल है।

इसका उल्लेख मैं आपके सामने इसलिये कर रहा हूं कि हमें भी ऐसी ही समस्या का सामना करना है। हमारी न्यायालयों में अंग्रेजी की प्रथा है, अंग्रेजी में बनी हुई विधियों के वे आदी है; अंग्रेजी में निर्वचन करने के वे आदी हैं। हमें सदैव अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी भाषा में समुचित पर्याय नहीं मिल पाते हैं और उसके बाद उन सब उदाहरणों और आदेशों के सहित उस शब्द का निर्वचन नहीं कर पाते हैं जिसका निर्देश केवल अंग्रेजी शब्दों की ओर होता है न कि हिन्दी शब्दों की ओर। इसी कारण यदि इस संविधान को क्रियान्वित करना है तो हमने यह नितान्त आवश्यक समझा, इसे लगभग मूल तत्व के समान समझा कि यह अध्याय संविधान में रखा जाये।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

श्रीमान, मैं अन्य विषयों में नहीं जाना चाहता हूं, क्योंकि मेरे लिये जो समय नियत किया गया था मैंने उससे अधिक समय से लिया है। मैं केवल सभा से यह निवेदन करूंगा कि हम इस समस्या पर विशुद्ध लक्ष्यमूलक दृष्टिकोण से ध्यान दें। केवल भावनाओं से अथवा किसी भी बात के पुनरुत्थान के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा से हम प्रभावित न हों। हमें इस विषय पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना है। हमें उस तन्त्र को ग्रहण करना है जो-जो कुछ हम भविष्य में करना चाहते हैं उसके लिये सबसे अधिक लाभदायक हो और श्रीमान, मैं आपसे सहमत हूं कि यदि इस विषय पर हमें सभा में मतविभाजन करना पड़ा तो यह एक बहुत ही दु:खदायी बात होगी, ऐसे प्रमुख विषय पर किसी एक परिणाम पर पहुंचने में अपनी असमर्थता का वह एक बड़ा ही निराशाजनक उदाहरण होगा। मुझे विश्वास है कि हम लोगों में सद्भावना रहेगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि भाग 14 के पश्चात् यह नया भाग जोड़ दिया जाये:–

'New Part XIV-A

CHAPTER I—LANGUAGE OF THE UNION

301A. (1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script and the form of numbers to be used for the official purposes of the Union shall be the international form of Indian numerals.

Official language of the Union.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, for a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, the English language shall continue to te used for all the official purposes of the Union, for which it was being used at such commencement:

Provided that the President may, during the said period, by order authorise for any of the official purposes of the Union the use of the Hindi language in addition to the English language and of the Devanagari form of numerals in addition to the international form of Indian numerals.

(3) Notwithstanding anything contained in this article, Parliament may by law provide for the use of the English language after the said period of fifteen years for such purposes as may be specified in such law.

301B. (1) The President shall, at the expiration of five years from the commencement of this Constitution and thereafter at the expiration of ten years from such commencement, by order constitute a commission which shall consist of a Chairman and such other members representing the different languages specified in Schedule VII-A as the President may appoint, and the order shall define the procedure to be followed by the Commission.

Commission and Committee of Parliament on official language.

(2) It shall be the duty of the Commission to make recommendations to the President as to—

(a) the progressive use of the Hindi language for the official purposes of the Union;

(b) restrictions on the use of the English language for all or any of the official purposes of the Union;

(c) the language to be used for all or any of the purposes mentioned in article 301E of this Constitution;

(d) form of numerals to be used for any one or more specified purposes of the Union:

(e) any other matter referred to the Commission by the President as regards the official language of the Union and the language of inter-State communication and their use.

(3) In making their recommendations under clause (2) of this article, the Commission shall have due regard to the industrial, cultural and scientific advancement of India, and the just claims and the interests of the non-Hindi speaking areas in regard to the public services.

(4) There shall be constituted a Committee consisting of thirty members of whom twenty shall be members of the House of the People and ten shall be members of the Council of States chosen respectively by the members of the House of the People and the members of the

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

Council of States in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(5) It shall be the duty of the Committee to examine the recommendations of the Commission constituted under this article and to report to the President their opinion thereon.

(6) Notwithstanding anything contained in article 301-A of this Constitution, the President may after consideration of the report referred to in clause (5) of this article issue directions in accordance with the whole or any part of the report.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGES

Official language or languages of a State.

301C. Subject to the provisions of articles 301D and 301E, a State may by law adopt any of the languages in use in the State or Hindi as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State:

Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the English language shall continue to be used for those official purposes within the State for which it was being used at the commencement of this Constitution.

Official language for communication between one State and another or between a State and the Union.

301D. The language for the time being authorised for use in the Union for official purposes shall be the official language for communication between one State and another State between a State and the Union:

Provided that if two or more States agree that the Hindi language should be the official language of communication between such States, that language may be used for such communication.

301E. Where on a demand being made in that behalf the President is satisfied that a substantial proportion of the population of

a State desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State he may direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.

Special provision relating to language spoken by a section of the population of a State

CHAPTER III—LANGUAGE OF SUPREME COURT AND HIGH COURTS, ETC.

Language to be used in the Supreme Court and in the High Courts and for Acts, Bills, etc.

301F. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides—

(a) all proceedings in the Supreme Court and in every High Court,

(b) the authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in either House of Parliament or in the house or either House of the Legislature of a State,

(ii) of all Acts passed by Parliament or the Legislature of a State and of all ordinances promulgated by the President or a Governor or a Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and bye-laws issued under this Constitution or under any law made by Parliament or the Legislature of a State, shall be in the English language.

Special procedure for enactment of certain laws relating to language.

301G. During the period of fifteeen years from the commencement of this Constitution no Bill or amendment making provision for the language to be used for any of the purposes mentioned in article 301F of this Constitution shall be introduced or moved in either House of Parliament without the previous sanction of the

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

President, and the President shall not give his sanction to the introduction of any such Bill or the moving of any such amendment except after he has taken into consideration the recommendations of the Commission constituted under article 301B of this Constitution and the report of the Committee referred to in that article.

CHAPTER IV—SPECIAL DIRECTIVES

Language to be used for representation for redress of grievances.

301H. Every person shall be entitled to submit a representation for the redress of any grievance to any officer or authority of the Union or a State in any of the languages used in the Union or in the State, as the case may be.

Directive for development of Hindi.

301-I. It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichments by assimilating without interfering with its genius, the forms, style and expressions used in Hindustani and in the other languages of India, and drawing, wherever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages.

Schedule VIIA

1.	Assamese	8.	Marathi
2.	Bengali	9.	Oriya
3.	Canarese	10.	Punjabi
4.	Gujarati	11.	Tamil
5.	Hindi	12.	Telugu
6.	Kashmiri	13.	Urdu'"
7.	Malayalam		

[नवीन भाग 14-क

राजभाषा

अध्याय-1 संघ की भाषा

संघ की राजभाषा।

301 क. (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिये संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी:

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी संसद उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा अंग्रेज़ी भाषा का ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबन्धित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।

राजभाषा के लिये संसद का आयोग और समिति।

301ख.(1) राष्ट्रपति इस संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेगा जो एक सभापति और सप्तम (क) अनुसूची में उल्लिखित भिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जैसे कि राष्ट्रपति नियुक्त करे, तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया भी आदेश परिभाषित करेगा।

(2) राष्ट्रपति को–

(क) संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के;

(ख) संघ की राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धनों के;

(ग) अनुच्छेद 301ङ में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के;

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के;

(ङ) संघ की राजभाषा तथा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग से पृच्छा किये हुये किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करने का आयोग का कर्तव्य होगा।

(3) खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य परिषद् के सदस्य होंगे जो कि क्रमश: लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य परिषद् के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(5) इस अनुच्छेद के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना समिति का कर्तव्य होगा।

(6) अनुच्छेद 301क में किसी बात के होते हुये भी राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा।

अध्याय–2 प्रादेशिक भाषायें

301ग. राज्य की राजभाषा या राजभाषायें। अनुच्छेद 301घ और 301ङ के उपबन्धों के अधीन रहते हुये राज्य विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा:

परन्तु जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

301घ. एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा। संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा होगी:

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

301ङ. किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में। तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाषा में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

अध्याय–3 उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

301च. इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक– उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

(क) उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियां;

(ख) जो–

(1) विधेयक, अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले जो संशोधन, संसद के प्रत्येक सदन में अथवा राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुर:स्थापित किये जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ,

(2) अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित किये जायें, तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या शासक द्वारा प्रस्थापित किये जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ, तथा

(3) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के अधीन, अथवा संसद् या राज्यों के विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ,

अंग्रेजी भाषा में होंगे।

301छ. इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्षों की कालावधि तक अनुच्छेद 301च में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिये उपबन्ध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पुर:स्थापित और न प्रस्तावित किया जायेगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुर:स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किये जाने की मंजूरी अनुच्छेद 301ख के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर, तथा उस अनुच्छेद के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर, विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा। भाषा सम्बन्धी कुछ विधियों के अधिनियमित करने के लिये विशेष प्रक्रिया।

अध्याय–4 विशेष निदेश

301ज. किसी व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथा स्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा। व्यथा के निवारण के लिये अभिवेदन में प्रयोक्तव्य भाषा।

[माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर]

हिन्दी भाषा के विकास के लिये निदेश।

301झ. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुये तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिये मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

अनुसूची 7क

1. असामिया	8. मराठी
2. बंगला	9. उड़िया
3. कन्नड़	10. पंजाबी
4. गुजराती	11. तामिल
5. हिन्दी	12. तेलगू
6. काश्मीरी	13. उर्दू]
7. मलयालम	

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** जिस मसौदे की ओर माननीय सदस्य अभी निर्देश कर रहे थे उसके संबंध में उसके यह विचार हैं कि उस मसौदे के किसी भाग पर अलग या केवल उसी भाग पर विचार किया जा सकता है?

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मेरा ख्याल है कि मैंने यह कहा था कि इस योजना पर समष्टि रूप में विचार करना चाहिये। वह बहुत वाद-विवाद तथा समझौते के फलस्वरूप बन पाई है। यदि मैं इस योजना पर जोर दे सकता हूं तो यह कहूंगा वह सब मिलकर एक योजना है। हम उसके किसी एक भाग को नहीं छोड़ सकते और यदि वह कोई बहुत ही तुच्छ या शाब्दिक सुधार हो या चाहे वह कोई छोटा-सा सारवत विषय तक हो जिसे आप रखना चाहते हैं तो बात दूसरी है इससे कोई अधिक अन्तर नहीं होता है। परन्तु इस मसौदे में महत्वपूर्ण बातें ये हैं कि सबको मिलाकर वह एक पूर्णरूप ग्रहण करता है और यदि आप उसके एक भाग को छेड़ेंगे तो अन्य बातें निष्फल हो जायेंगी।

***सेठ गोविन्द दास:** श्रीमान, मेरे लिये आज यह एक समस्या है कि सभा को किस भाषा में सम्बोधन करूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है। माननीय सदस्य हिन्दी का समर्थन कर रहे हैं अत: उन्हें अंग्रेजी में नहीं बोलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मुझे इसमें कोई औचित्य प्रश्न की बात नहीं दिखाई देती है। सभा के किसी सदस्य को हिन्दी में या अंग्रेज़ी में या किसी अन्य भारतीय भाषा में बोलने का हक है।

*__सेठ गोविन्द दासः__ आरम्भ में ही मैं अपने दक्षिण भारत के मित्रों को कुछ शब्द कहना चाहूंगा। जैसा कि मैंने अभी कहा था पिछले कुछ दिनों से मेरे लिये यह एक समस्या रही और मैं इस बात पर विचार करता रहा कि मैं अंग्रेजी में बोलूं या उस राज की भाषा में बोलूं जो आज इस सभा द्वारा स्वीकार की जायेगी।

श्रीमान, मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि जहां तक हम सबका संबंध है हमारे विचार निश्चित हैं और मैं यह आशा नहीं करता हूं कि मैं किसी भी मित्र को अपने विचार का समर्थक बना लूंगा। अतः मैं यह नहीं चाहता हूं कि हमारे देश के इतिहास के अभिलेखों में यह बात रहे कि जब मैं हिन्दी को अपने देश की राज भाषा बनाने के पक्ष में भाषण दे रहा था मैं अंग्रेजी में, एक विदेशी भाषा में बोला और इस कारण मैं हिन्दी में बोलना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि यदि दक्षिण भारत के मेरे मित्र मेरे भाषण को ध्यानपूर्वक सुनेंगे तो मैं ऐसी भाषा में बोलने का प्रयत्न करूंगा कि मैं जो कुछ कहूंगा उसके एक-एक शब्द को वे समझ सकें।

*__श्री एस. नागप्पाः__ एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान, माननीय सदस्य जो कुछ कहेंगे उसे हमें समझाये बिना ही विजय प्राप्त करना चाहते हैं। यदि वे यह चाहते हैं कि सभा उनका साथ दे तो क्या उनका यह कर्तव्य नहीं है......।

*__अध्यक्षः__ इसमें कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। यह उनके निर्णय करने की बात है कि वे सभा का साथ चाहते हैं या नहीं।

*__पं. गोविन्द मालवीय__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं इस सभा के उन सदस्यों की ओर से जो हिन्दी के समर्थक हैं यह निवेदन कर सकता हूं कि माननीय सदस्य अंग्रेजी में भाषण दें?

सेठ गोविन्द दास (सी.पी. और बरार : जनरल): सभापति जी, आज के दिन को मैं अपने जीवन के दिनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूं। आज जो कुछ हो रहा है उससे मुझे हर्ष भी कम नहीं है। मैं आपको भी इस बात के लिये धन्यवाद देता हूं कि मैंने समय-समय पर इस विषय को अनेक रूपों में आपके सामने उपस्थित किया और आपने मेरी बातें सुनीं। आपके पहले इस विधान परिषद् के प्रथम दिवस जब आपके ही प्रान्त के श्री सच्चिदानन्द सिंह हमारे सभापति थे उस दिन भी मैंने इस विषय को उठाया था। उसके पश्चात् मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों को इस सम्बन्ध में बहुत कष्ट देता रहा हूं। इस विधान परिषद् में घूम-घूमकर इस हाल में मीलों चल कर और उनके घरों पर जाकर, उनके प्रान्तों में जाकर इस विषय पर मैं इस विधान परिषद् के सदस्यों से अनुनय विनय करता रहा हूं और मुझे इस बात पर भी बड़ा हर्ष है कि हमारे प्रधान मंत्री जी

[सेठ गोविन्द दास]

के शब्दों में 95 प्रतिशत बातों पर हम लोगों का एक मत भी हो गया है। परन्तु एक बात मैं अवश्य कहना चाहता हूं कि जिन विषयों पर हमारा मतभेद है, उन विषयों को भी हमें शान्ति से हल करना चाहिये। यदि हम ऐसे विषयों पर मत भी लें, मत विभाजन भी करावें, तो भी उससे किसी प्रकार की कटुता नहीं आने देनी चाहिये। हम लोगों ने प्रजातंत्र को स्वीकार किया है और प्रजातंत्र में बहुमत से ही सारे काम चल सकते हैं। यदि किसी विषय पर मतभेद होता है, तो उसका निर्णय केवल बहुमत से ही हो सकता है और बहुमत जो भी निर्णय करे, उसे अल्प मत वालों को सिर झुका कर स्वीकार करना चाहिये, बिना किसी प्रकार की कटुता के, आपने भी यही अपील की थी। अभी श्री गोपालस्वामी आयंगर जी ने भी यही अपील की और मैं भी यही अपील करना चाहता हूं।

मैं अपने दक्षिण भारत के माननीय सदस्यों और जिन प्रान्तों में हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती, उन प्रान्तों के सब माननीय सदस्यों का अत्यन्त अनुग्रहीत हूं कि उन्होंने कम से कम एक बात स्वीकार कर ली। और वह बात यह है कि चाहे आप उसे राष्ट्र भाषा कहें, चाहे आप उसे राज्य भाषा कहें, वह हिन्दी ही हो सकती है और उसकी लिपि देवनागरी जैसा कि मैंने अभी कहा था। हमारे प्रधान मंत्री जी के शब्दों में भाषा का विषय 95 प्रतिशत हल हो गया है। जो पांच प्रतिशत बाकी है, उसमें कुछ सैद्धान्तिक बातें हैं। उन सिद्धान्त की बातों को यदि हमारे दक्षिण भारत के माननीय सदस्य और दूसरे प्रान्तों के सदस्य स्वीकार नहीं करते, तो उन्हें हमें भी वैसी ही स्वतंत्रता देनी चाहिये कि हम भी अपने सिद्धान्तों पर स्थित रहें और बिना किसी प्रकार की कटुता आये हम ऐसी बातों को बहुमत से निपटा लें।

अंकों का प्रश्न लीजिये। अंकों का एक प्रश्न है, जो यहां पर सभी लोगों के हृदयों में एक क्षोभ उत्पन्न कर रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्षोभ की क्या आवश्यकता है। मैं माननीय सदस्यों का ध्यान गत दो या तीन वर्षों की घटनाओं की ओर ले जाना चाहता हूं। जब पहले पहल मैंने भाषा और लिपि का प्रश्न उनके सामने रखा, तब अंकों का प्रश्न उन्होंने नहीं उठाया था। आज यह प्रश्न जितने महत्व का हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं को दिखता है, उस समय उन्होंने इस उस दृष्टि से नहीं देखा था। मैं उनकी स्मरण शक्ति को ताजा करने के लिये उस फार्मूला को यहां पढ़ना चाहता हूं, जिस पर उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में हस्ताक्षर किये थे। यह फार्मूला यहां मैं पढ़ता हूं, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में।

"हम लोग इस बात के पक्ष में हैं कि भारत के विधान में यह रखा जाये कि राष्ट्र भाषा और राष्ट्र लिपि हिन्दी और देवनागरी होगी। राष्ट्र संघ पार्लियामेंट

में सब काम हिन्दी और देवनागरी अक्षरों के द्वारा अथवा उस समय तक के लिये, जो संघ पार्लियामेंट निश्चित करे, अंग्रेज़ी में होगी।"

अंग्रेजी में वह इस प्रकार है:

"We support the view that the Union Constitution should lay down that the national language and character shall be Hindi and Devanagari respectively, that in the Federal business parliament shall be transacted in Hindi written in Devanagari character or, for such period as the Federal parliament decides in English.'"

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार: मुस्लिम): एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्, सभा में यह कौन-सा लेख पढ़ा जा रहा है?

सेठ गोविन्द दास: यह वह डाकूमेंट है, जिस पर यहां के सदस्यों ने हस्ताक्षर किये थे और जो फार्मूला भाषा के सम्बन्ध में उन्होंने स्वीकार किया था।

इस फार्मूले पर साधारण सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं थे। हमारे मद्रास के श्री गोपालस्वामी आयंगर ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं। डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने इस पर हस्ताक्षर किये हैं, प्रोफेसर रंगा, श्री अलगेसन, श्री थिरुमल राव, श्री अन्नत शयनम् आयंगर, श्री कला वैंकटा राव के इस पर हस्ताक्षर हैं।

***श्री कला वैंकटा राव** (मद्रास : जनरल): मेरा नाम क्यों लिया जा रहा है? मेरे प्रति जो निर्देश है, उसे मैं नहीं समझता हूं।

***सेठ गोविन्द दास:** मैंने जिस फार्मूला को अभी पढ़ा है, उस पर आपने हस्ताक्षर किये हैं। इस संबंध में आपको घसीटा गया है या आपका नाम आया है।

सेठ गोविन्द दास: मैं यह कहना चाहता हूं कि जिस समय आपने देवनागरी को स्वीकार किया थ, उस समय आपने देवनागरी के अंकों को भी उसके साथ स्वीकार किया था। अन्यथा आप उस समय भी यह कहते कि इसमें इंटरनेशनल न्यूमरल्स की बात रखी जानी चाहिये।

इसमें हमारे बम्बई के बन्धुओं के हस्ताक्षर हैं। श्री निजलिंगप्पा, श्री जेठे, श्री पाटस्कर, श्री गुप्ते इत्यादि के।

हमारे बंगाल के बन्धुओं के भी इस पर हस्ताक्षर हैं। श्री मैत्र, श्री मजूमदार, श्री गुहा, श्री सुरेन्द्र मोहन घोष और दूसरे सज्जन।

उड़ीसा के श्री विश्वनाथ दास, श्री बी. दास, श्री लक्ष्मी नारायण साहू, श्री युधिष्ठर सिंह, आसाम के श्री रोहिणी कुमार, श्री चालिहा ने भी इस पर हस्ताक्षर किये हैं। हिन्दी भाषा-भाषी सभी सदस्यों के इस पर हस्ताक्षर हैं।

[सेठ गोविन्द दास]

तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह न्यूमरल्स का जो सवाल उठा, वह सवाल बहुत पीछे और हाल का ही उठा हुआ है और इस सवाल को उस समय किसी ने महत्व नहीं दिया था।

मैं यह नहीं कहता कि आज इस विषय को उठाने का किसी को अधिकार नहीं है। अवश्य है। मेरे कहने का मतलब केवल यह है कि जब से स्वयं किसी समय देवनागरी लिपि को जिस रूप में वह है, उस रूप में स्वीकार करना चाहते हैं, तो उनको उसके अंकों को भी स्वीकार करना चाहिये; क्योंकि अंक लिपि के अन्दर होते हैं। लिपि के बाहर नहीं होते। और उस समय जब वे इस बात को स्वीकार कर रहे थे, तो आज बिना किसी रोष के, बिना किसी क्रोध के और बिना किसी क्षोभ के उन्हें कम से कम हमें अपने मन पर स्थित रहने की स्वतंत्रता देनी चाहिये। उन्होंने यदि अपना मत बदल दिया है और वह विरोध में वोट करना चाहते हैं, तो करें, परंतु हम यदि अपने पुराने मत पर स्थित हैं, तो उन्हें हमारे प्रति किसी रोष की भावना को नहीं रखना चाहिये।

अब दूसरी बातों को हम लें। श्रीयुत आयंगर साहब ने जो धारा यहां पर पेश की है, उसमें उन्होंने यद्यपि हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार किया है, पर उसी के साथ उस धारा को ध्यानपूर्वक देखने से यह प्रयत्न दिखाई देता है कि वह समय दूर से दूर रखा जा रहा है, जब कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले सके। इस विधान-परिषद् में दो प्रकार के माननीय सदस्य दिखते हैं। एक वे हैं, जो हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार करते हैं, परन्तु उसे दूर से दूर टालना चाहते हैं। दूसरे वे लोग हैं, जो अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को जल्दी से जल्दी ले आना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की कार्यकारिणी का जो प्रस्ताव है, उसकी ओर मैं माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने कहा है कि हमको धीरे-धीरे उस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि 15 वर्ष में अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले ले और 15 वर्ष में या उसके पश्चात् इस देश में अंग्रेज़ी का स्थान न रहे। पर जो भाषण श्रीयुत गोपाल स्वामी आयंगर जी ने आज दिया है, उसमें उन्होंने कहा कि 15 वर्ष के बाद भी एक लम्बे समय तक हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान नहीं लेने देना चाहिये। कम से कम हम लोगों का यह मत नहीं है, यह मैं कह देना चाहता हूं मेरी स्पष्ट राय है कि यदि अंग्रेजी को देश से जाना है, तो वह जल्दी से जल्दी जाये। यदि हम 15 वर्ष का समय स्वीकार करते हैं, तो यह मतलब नहीं है कि उससे पहले हिन्दी अंग्रेजी का कोई भी स्थान नहीं ले। आप जानते हैं, इस भवन के सारे सदस्य जानते हैं कि पहले हमारा यह मत था कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी कितने समय में ले, इस विषय को पार्लियामेंट पर छोड़ दिया जाये। जो फार्मूला मैंने अभी पढ़ा उसे जो हिन्दी भाषा नहीं हैं, उन्होंने भी स्वीकार किया था। फिर

हम पांच वर्ष पर आये। उस समय हमने सोचा था कि पांच वर्ष में यदि हम प्रयत्न करेंगे, तो हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर प्रतिष्ठित कर सकेंगे। उसके बाद यहां पर राष्ट्र भाषा कन्वेन्शन हुआ। यद्यपि उसको हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर उसमें किस प्रकार के महानुभाव आये थे, इस पर विचार कीजिये।

मैं कहना चाहता हूं कि इस प्रकार का कन्वेन्शन इससे पहले इस देश में कभी नहीं हुआ। उसमें बंगाल से डॉक्टर सुनीति कुमार चटर्जी और श्री सजनीकांत दास, जो कि बंगीय साहित्य परिषद् के मंत्री हैं, आये थे। उसमें कर्नाटक से भी श्रीयुत एस. कृष्ण शर्मा आये थे, जो कन्नड़ साहित्य परिषद् के मंत्री हैं। उसमें मलयालम के महाकवि बलातोल पधारे थे, जिनका मलयालम साहित्य में वहीं स्थान है जोकि बंगीय साहित्य में रवीन्द्र बाबू का था। मलयालम के श्री कुशान राजा भी उसमें आये थे। मराठी के महामहोपाध्याय श्री काने जी उसमें नहीं आ सके। उन्होंने उसके लिये अपना मत भेजा था। उड़ीसा से भी आर्तवल्लभ महन्ती आये थे। तामिल के श्री नीलकंठ शास्त्री और डॉक्टर राधबन जी आये थे। तेलगू के श्री सोमय्या जी आये थे और श्री विश्वनाथ सत्य नारायण जी पधारे थे। इस प्रकार इस परिषद् को यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने बुलाया था, पर इसमें अन्य भाषाओं के बड़े-बड़े विद्वानों ने भाग लिया था और उन्होंने यह तय किया कि अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को दस वर्ष में लेना चाहिये। तो पांच वर्ष से हम दस वर्ष पर आ गये और हमने यह स्वीकार किया है कि धीरे-धीरे दस वर्ष में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले, उसके पश्चात् जब हमारे दक्षिण भारत के बन्धुओं ने कहा कि दस वर्ष का समय कम मालूम होता है और यह पन्द्रह वर्ष होना चाहिये, तो हमने 15 वर्ष स्वीकार कर लिया। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा करके हमने उन पर कोई अपकार किया है। उपकार तो उनका कह मानते हैं और उनके अनुग्रहीत हैं कि उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा और देवनागरी को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया, पर हम यह अवश्य कहना चाहते हैं कि उनके सुभीते के लिये हमने स्वीकार किया कि दस वर्ष के स्थान पर 15 वर्ष कर दिये जायें, तो हमें आपत्ति नहीं। हम इस बात को जानते हैं कि किसी व्यक्ति के जीवन में पांच या पन्द्रह या दस वर्ष कोई चीज हो सकते हैं, परन्तु देश के जीवन में यह समय बहुत बड़ा समय नहीं है। इसलिये हमने दस वर्ष के स्थान पर 15 वर्ष को स्वीकार किया। सवाल यह है कि हम 15 वर्ष में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिन्दी को लाना चाहते हैं या पन्द्रह वर्ष में भी नहीं। कांग्रेस कार्यकारिणी ने इस सम्बन्ध में अपना स्पष्ट मत दिया है जो राष्ट्र भाषा कन्वेन्शन हुआ, उसने भी इस विषय में साफ तौर पर कहा है। फिर आज जब श्री गोपालस्वामी आयंगर जी यह कहते हैं कि वह तो 15 वर्ष के बाद भी एक बड़े लम्बे समय को देखते हैं, जिस समय कि हिन्दी अंग्रेज़ी का स्थान ले सकेगी। मैं तो बड़े अदब के साथ उनसे यह कहना चाहता हूं कि

[सेठ गोविन्द दास]

कम से कम हम लोग इस बात को स्वीकार नहीं करते। यह हमारा स्पष्ट रूप से निवेदन है। दूसरा विषय यह है।

तीसरा विषय जिस पर मैंने सुधार पेश किया है, वह यह है कि जिन प्रान्तों में हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है और जिन प्रान्तों की अदालतों में आज हिन्दी चल रही है, वहां पर हम क्यों अंग्रेज़ी को थोपना चाहते हैं। आप संयुक्त प्रान्त को ही लीजिये। वहां पर सारे विलों के मसविदे, सारे प्रस्ताव, सारे प्रश्न हिन्दी में ही होते हैं। अब जो आयंगर जी की धारा यहां पेश हो रही है, उसमें तो यह कहा गया है कि सारे बिल, सारे इस तरह के जितने कार्य हैं, वह अंग्रेज़ी में हों। यह तो मामले को आगे न बढ़ाकर पीछे हटाना हुआ, इसको हम भला कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि जिन प्रान्तों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहां भी अंग्रेज़ी को लादा जाये। जहां कचहरियों में अभी भी हिन्दी में काम चल रहा है, वहां भी अंग्रेज़ी को लादा जाये। यह तीसरा विषय है, जिसमें हम बहुत बड़ा मतभेद रखते हैं, अपने दक्षिण भारत के बन्धुओं से।

अब मुझे कुछ अन्य बातें कहनी हैं। हम हिन्दी का पक्ष लेने वालों पर एक आक्षेप होने वाला है। कि हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखते हैं। यह आक्षेप हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने हम पर किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि जहां तक हम लोगों का सम्बन्ध है, हम इस विषय को साम्प्रदायिकता की दृष्टि से जरा भी नहीं देखते। हम इस विषय को राष्ट्रीय दृष्टि से देखते हैं। मैं अपने सम्बन्ध में आपसे कह सकता हूं कि 30 वर्ष के सार्वजनिक जीवन में मैं आज तक किसी भी साम्प्रदायिक संस्था का सदस्य नहीं रहा हूं। यह बात मौलाना अबुल कलाम साहब जानते हैं कि जब सन् 21 में खिलाफत का आन्दोलन चला था, तो मैं स्वयं सैंट्रल खिलाफत कमेटी का सदस्य था। दूसरे लोगों को आप ले लीजिये। जैसे टंडन जी हैं और दूसरे लोग, जो आज हिन्दी के आन्दोलन में किसी प्रकार का भाग ले रहे हैं, क्या कभी उनका किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिक संस्था से सम्बन्ध रहा है।

अपने सम्बन्ध में इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली दो बातें मैं आपको और बताना चाहता हूं। एक जमाना था कि जब हमारे जबलपुर नगर में हिन्दू मुसलमानों के दंगे हुआ करते थे। उस समय हमारे यहां एक मस्जिद तोड़ दी गई। उस मस्जिद को मैंने वहां अपने धन से बनवा दिया। हमारे प्रान्त के खंडवा नगर में कुछ लाख रुपया लगाकर मेरी माता के नाम पर मेरे पिता जी ने एक धर्मशाला बनवाई है। इस धर्मशाला में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की स्थापना की गई है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा विनोवा भावे जी ने की। इस मन्दिर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति के साथ सब धर्मों के ग्रन्थों की भी स्थापना की गई है। वहां कुरान की स्थापना की गई है, बाईबिल की स्थापना की गई है बौद्ध धर्म के ग्रंथों की स्थापना की गई है, जैन धर्म के ग्रंथों की स्थापना की गई है, सिख धर्म और पारसी धर्म के ग्रन्थ भी वहां स्थापित हैं। सब धर्मों के ग्रन्थों की वहां पर इज्जत के साथ स्थापना की

गई है। हिन्दी आन्दोलन करने वालों को साम्प्रदायिक कहना यह एक बड़ा भारी अन्याय है। उर्दू भाषा केवल मुसलमानों की ही अकेली भाषा है, यह मैं नहीं कहता। मैं यह मानता हूं कि उर्दू भाषा में इस देश के बड़े-बड़े हिन्दू विद्वानों ने, कवियों ने भी रचना की है। मगर मैं एक बात कहे बिना नहीं रह सकता कि उर्दू भाषा अधिकतर देश के बाहर की चीजों को ही देखती रही है। आप उर्दू के साहित्य को अच्छी तरह देख सकते हैं। साहित्य का मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान है। आप उर्दू साहित्य को देखेंगे, तो आपको कहीं भी हिमालय का वर्णन नहीं मिलेगा। आपको उसकी जगह कोह काफ का वर्णन मिलेगा। हमारे देश की कोयल को आप कभी उसके साहित्य में नहीं पायेंगे। आपको सिर्फ बुलबुल का वर्णन मिलेगा। भीम और अर्जुन की जगह पर आपको रुस्तम का वर्णन मिलेगा। जिसका इस देश से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिये मैं कहना चाहता हूं कि हम पर साम्प्रदायिकता का जो आक्षेप हो रहा है, वह बिल्कुल गलत है। मैं आपसे यह बात उर्दू के किसी द्वेष की वजह से नहीं कह रहा हूं। हम उर्दू से प्रेम रखते हैं और बराबर उससे हमारा प्रेम रहेगा। मगर मैं यह अवश्य कहूंगा। कि हिन्दी के समर्थक साम्प्रदायिक नहीं, जो उर्दू का समर्थन करते हैं, वे साम्प्रदायिक हैं।

हमारा देश सेक्यूलर स्टेट है और हम सब लोग इसको स्वीकार करते हैं। हम सब धर्म वालों को एक ही दृष्टि से देखते हैं। हम किसी धर्म के बीच में रोड़ा अटकाना नहीं चाहते, पर हम इस बात को मानते हैं कि सेक्यूलर स्टेट होते हुए भी हमारे देश में दो संस्कृति हैं या नहीं।

चीन में भी मुसलमान रहते हैं, रूस में भी मुसलमान रहते हैं, मगर चीन और रूस के मुसलमानों और वहां के अन्य धर्मावलंबियों में कोई भेद नहीं है। वहां के निवासियों के नाम भी हम देखें, तो हमें कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता। उनकी पोषाक, उनकी भाषा और उनकी संस्कृति एक ही है। यह बात सत्य है कि सेक्यूलर स्टेट को हमने मान लिया है। मगर हमने इसका यह अर्थ तो कभी नहीं समझा कि सेक्यूलर स्टेट मानना अनेक संस्कृतियां मानना है। यह एक पुराना देश है और इसका पुराना इतिहास है। इस देश में हजारों वर्षों से एक ही संस्कृति चली आई है और वह परम्परा अभी तक कायम है। इस परम्परा को रखने के लिये और इस बात का खंडन करने के लिये कि हमारी दो संस्कृतियां हैं, हम इस देश में एक भाषा और एक लिपि रखना चाहते हैं।

प्रान्तीय भाषाओं से हमारा कोई द्वेष नहीं है। प्रान्तीय भाषाओं की तरक्की बगैर केन्द्रीय भाषा की भी उन्नति नहीं हो सकती। यह बात मैं अपने मित्रों को खुश करने के लिये नहीं कह रहा हूं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सभापति के नाते मैंने जो भाषण मेरठ में दिया था, उस वक्त भी मैंने यह बात साफ कर दी थी कि

[सेठ गोविन्द दास]

हर प्रान्तीय भाषा की भी उन्नति होनी चाहिये और अपने-अपने प्रान्त में उसका सर्वोच्च स्थान होना चाहिये। वहां की शिक्षा का माध्यम, वहां की अदालतों की भाषा, वहां की असेम्बली की भाषा, प्रान्तीय भाषा हो। प्रान्तीय भाषा के सिवाय प्रान्तों में रहने वाली अन्य जनता की भाषा को उस प्रान्त में मान्य न किया जाये, यह भी मैं नहीं कहता। पर जिस प्रकार कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में कहा और स्वीकार किया है कि अगर किसी प्रान्त में 20 प्रतिशत व्यक्ति इस बात की इच्छा करें कि अमुक भाषा उस प्रान्त में स्वीकार की जाये, तभी यह हो। अगर एक प्रतिशत, दो प्रतिशत व्यक्ति इस बात की मांग करें कि उनके प्रान्त में दूसरी भाषा को भी स्वीकार किया जाये तो यह एक प्रकार से उस प्रान्त की भाषा के विकास में बाधा डालना होगा। इसलिये मैंने एक और संशोधन भेजा है, जिसमें यह कहा गया है कि अगर किसी प्रान्त में 20 प्रतिशत व्यक्ति यह मांग करें कि अमुक भाषा वहां और स्वीकार की जाये, तो जैसा कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपने एक प्रस्ताव में मान लिया है, वहां पर यह बात की जा सकती है। अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी जल्दी से जल्दी ले ले, यह हमारा सबसे बड़ा लक्ष्य है। इसके लिये मैंने अपने संशोधन में जो बात कही है, वह यह है कि एक कमीशन स्थापित हो। एक पार्लियामेंटरी कमेटी स्थापित की जाये। एक प्रकार की दो चीजें न हों। बल्कि एक ही चीज हो, यानी पार्लियामेंटरी कमेटी। पार्लियामेंटरी कमेटी को यह काम सौंप दिया जाये कि वह 15 वर्ष के अन्दर धीरे-धीरे हिन्दी को अंग्रेज़ी के स्थान पर किस प्रकार ला सकती है।

अन्त में मैं कहना चाहता हूं कि स्वतंत्रता के साथ, स्वतंत्र भारत कैसा होगा, इसकी भी हमने कल्पना की थी। इस देश की जनता ने भी कल्पना की थी। वह कल्पना तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक कि हम भाषा के प्रश्न को हल न कर लें। स्वराज्य का अर्थ इस देश के लोग तभी समझेंगे, जब कि भाषा का प्रश्न पूरी तरह से हल हो जायेगा।

मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि हिन्दी भाषा को इस देश के सभी निवासी राष्ट्र भाषा के रूप में, राज्य भाषा के रूप में, स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि भाषा के विषय में किसी प्रकार की कटुता न आने पावे। जहां तक हिन्दी का सवाल है, उसको पंडित जवाहरलाल नेहरू का भी आशीर्वाद है। और आज नहीं, यह आशीर्वाद उसे 18 वर्ष पहले प्राप्त हो चुका था। इस सम्बन्ध में उन्होंने ने 18 वर्ष पहले जो एक पत्र लिखा था, वह मैं आपको पढ़कर सुनाता हूं।

कोलम्बो 16.5.31

मुझे बहुत खेद है कि मैं इस समय मदुरा नहीं आ सकता। मैं चाहता था कि मैं वहां आऊं और तामिलनाद प्रान्त के भाइयों से मिलूं और अगर उसकी

कुछ सेवा कर सकूं, तो वह करूं। खास कर मैं हिन्दी सम्मेलन में हिस्सा लेना पसन्द करता। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा होना तो पूरी तौर से तय हो गया है और कांग्रेस का कार्य भी अब बहुत कुछ हिन्दी ही में होता है। यह बहुत खुशी की बात है कि तामिलनाद प्रान्त में हिन्दी का प्रचार खूब हो रहा है। इस शुभ कार्य में मैं खुशी से सहायता देता, लेकिन मजबूरी से नहीं आ सकता।

मैं आशा करता हूं कि हिन्दी सम्मेलन सफलता से होगा और उसके कारण हिन्दी प्रचार और भी बढ़ेगा।

—जवाहरलाल नेहरू

यह पंडित जी ने 18 वर्ष पहले लिखा था और मुझे इस बात को देखकर हर्ष होता है कि 18 वर्ष पहले उन्होंने जो भविष्यवाणी की थी, उसको आज हम पूरा करने के लिये यहां पर एकत्रित हुए हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ अध्यक्ष महोदय,...

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य संस्कृत में भाषण देंगे।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ सभा के समक्ष बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। मैं समझता हूं कि इतने बड़े महत्वपूर्ण विषय पर, जिसका प्रभाव चौंतीस करोड़ व्यक्तियों पर पड़ता है, कोई झगड़ा नहीं होना चाहिये, परन्तु साथ ही साथ मैं यह भी कहूंगा कि कोई अनुचित अथवा जल्दबाजी में समझौता भी नहीं होना चाहिये। भारत की विशाल जनसंख्या की तुलना में ऐसे समझदार व्यक्तियों का यह कार्य नहीं है कि यहां आकर परस्पर सौजन्य प्रकट करें और केवल समझौते की भावनावश किसी ऐसी बात को स्वीकार करें, जिसका बाहर के अनेक व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता हो (वाह, वाह)।

श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि हम उन क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं, जिनको संक्षिप्त रूप में अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र कहा जाता है। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि कुछ सदस्यों ने समझौते में, करार में, भाग लिया हे। ऐसा करार लोगों के लिये मान्य नहीं होगा और वे उसे स्वीकार नहीं करेंगे। मैं निवेदन करता हूं कि ऐसे विषय में हमें सतर्क होकर तथा विभिन्न अनुभवों के आधार पर कार्य करना चाहिये। किसी प्रकार की विवशता नहीं होनी चाहिये, स्वतंत्र स्वेच्छाकृत भावनाओं के आधार पर राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। यदि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार की जाने वाली है, तो इसके लिये स्वतंत्र तथा स्वेच्छाकृत इच्छा होनी चाहिये। इसके पूर्व कि हिन्दी को अंतिम रूप में अपनी राष्ट्रभाषा स्वीकार किया जा सके, लोगों को उसके सौन्दर्य तथा अन्य गुणों को समझ लेना चाहिये। मुझसे पहले बोलने वाले मेरे विद्वान मित्र जब हिन्दी में भाषण दे रहे थे, मैंने

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

उन लोगों तक को, जो थोड़ी बहुत हिन्दी जानते हैं, यह कानाफूसी करते सुना कि वह भाषा समझ में नहीं आ रही है। अतः मैं निवेदन करता हूं कि हम एक दम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न न करें।

जिस संशोधन को मैंने सभा के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस किया है, वह संशोधन संख्या 277 है। उस संशोधन का पढ़ना आवश्यक नहीं है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि माननीय सदस्य उसे पढ़ चुके हैं। मेरे संशोधन का मुख्य प्रयोजन यह है कि अखिल भारतीय भाषा की हम एक दम घोषणा न करें। मेरा उद्देश्य यह है कि अंग्रेजी भाषा का जिन प्रयोजनों के लिये प्रयोग होता था, उन सब प्रयोजनों के लिये भारत की राज भाषा के रूप में जब तक प्रयोग होता रहे, तब तक किसी ऐसी अखिल भारतीय भाषा का विकास न हो, जिसमें विज्ञान, गणित, साहित्य, इतिहास, दर्शन और राजनीति संबंधी भिन्न-भिन्न विषयों के लिये विचारों की अभिव्यक्ति हो सके। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय पर इसी रीति से विचार होना चाहिये। सदैव के लिये अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये भाषा की उपयुक्तता का विषय एक ऐसा विषय नहीं होना चाहिये, जिसे निर्वाचकों के बिना किसी आदेश के 315 सदस्यों द्वारा विनिश्चित होने के लिये छोड़ दिया जाये। सौजन्य और उदारता से प्रेरित हो जाना सरल है। यह कोई विवाह संस्कार या भोज का विषय नहीं है, जहां हम उदारता दिखा सकें। यह एक ऐसा विषय है, जो जनता द्वारा स्वयं अपनी इच्छा से स्वीकार किया जाने वाला विषय होना चाहिये।

मैं निवेदन करता हूं कि जहां तक हिन्दी भाषा का संबंध है, उसे अभी अपना दावा पूरा करना है। हिन्दी भाषा के समर्थकों को मैंने यह कहते सुना है कि यही समय है, जब कि हमें हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये। मैंने यह भी कहते हुए सुना है कि यदि हम इस समय हिन्दी को स्वीकार नहीं करेंगे तो उसका अवसर सदैव के लिये खो जायेगा। यदि यही बात है, तो हिन्दी को तुरन्त स्वीकार करने का पक्ष सबल नहीं है। यदि यह सत्य है कि यह सभा, उदारहृदया तो वह है ही, लोक सुविधा का विचार किये बिना, आधुनिक संसार में अखिल भारतीय भाषा के आवश्यक गुणों पर विचार किये बिना, स्वेच्छाकृत रीति से स्वीकार करना चाहिये, तो मैं समझता हूं कि लोक मत का सुनिश्चयन कर लेना चाहिये। पर मैं यह देखता हूं कि जहां सभा को सावधान करना चाहिये और व्यावहारिक आधार ग्रहण करना चाहिये, वहां इस सभा की आवश्यकता से अधिक उदार हो जाने की प्रवृत्ति हो जाती है।

हम कह चुके हैं कि हम राष्ट्रीयकरण चाहते हैं। मैं आशा करता हूं कि यह स्पष्ट हो चुका है कि आप एक दम राष्ट्रीयकरण नहीं कर सकते हैं और वह बहुत ही अवांछनीय होगा। रेलों में से हमने कक्षान्तर को मिटाना चाहा। चार कक्षों के हमने तीन कक्ष कर दिये। मुझे विश्वास है कि अब यह सबको स्पष्ट हो

चुका है कि हमें चतुर्कक्ष प्रणाली को फिर अपनाना होगा। पूंजीवाद को हम एक दम मिटाना चाहते हैं। मेरे विचार से अब यह समझ लिया गया है कि यद्यपि पूंजीवाद दोषपूर्ण है, पर उसकी अभी आवश्यकता है, उसमें रूप भेद कर देना चाहिये, पर उसे मिटाना नहीं चाहिये। इसी प्रकार से औद्योगीकरण के क्षेत्र में असंयत वार्ता के कारण पूंजी रुक गई है। अतः मेरा यह विचार है कि भाषा के विषय में हमें बड़ी सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये।

मेरा सुझाव यह है कि अंग्रेज़ी जब तक बनी रहे, तब तक अखिल भारतीय भाषा का विकास न हो। विधायी मत द्वारा आप किसी भाषा को आधुनिक संसार के लिये उपयुक्त नहीं बना सकते हैं। भाषा की उपयुक्तता के लिये कई बातें अपेक्षित हैं। उसके लिये महान लेखकों, महान विचारकों, महान व्यक्तियों, वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों, साहित्यिकों, नाटक लेखकों तथा अन्य व्यक्तियों की आवश्यकता है। किसी प्रकार का आक्षेप किये बिना मेरा यह विश्वास है कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जो इस रूप में अभी प्रारम्भिक स्थिति में है।

अब भारत स्वतंत्र है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आधुनिक बलों से हमें लड़ना-झगड़ना है। मैं निवेदन करता हूं कि इस आधुनिक संसार में हम अंग्रेज़ी को नहीं हटा सकते हैं। अन्य भाषायें हम चाहे जो कुछ रखें, हमें अंग्रेज़ी रखनी चाहिये। अंग्रेज़ी अनिवार्य है। पर इस विषय में कुछ निम्न भावनाओं का प्रदर्शन कर रहे हैं। मेरा विचार है कि भाषा के विषय में कोई निम्न भावना नहीं होनी चाहिये।

***एक माननीय सदस्य:** उच्च भावना!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** चाहे वह उच्च भावना हो, पर वह भी बुरी बात है। वह एक प्रकार की दुर्बलता होगी। मैं निवेदन करता हूं कि अंग्रेज़ चले गये हैं; अंग्रेजों का प्रभुत्व हटाने योग्य था। पर उनकी भाषा के सम्बन्ध में क्या विचार है? क्या अंग्रेजी भाषा ब्रिटेन की भाषा है? मैं निवेदन करता हूं कि वह संसार की भाषा है। अन्य कई उपनिवेशों तथा अन्य कई देशों को लीजिये। जापान को ही लीजिये। जापान ने सोचा कि उसे संसार में उन्नति करनी चाहिये। उसने स्वेच्छा से अंग्रेजी भाषा को राजभाषा स्वीकार किया। वे अमरीका तथा अन्य स्थानों को गये और अंग्रेजी सीखी और अंग्रेजी भाषा की सहायता से उनके लिये अंग्रेज़ी विज्ञान, आधुनिक विचार तथा संसार की क्रियाओं में प्रवेश करने का मार्ग मिला। दुर्भाग्यवश यदि जापान गत युद्ध में प्रवेश न होता, तो जापान संसार के बड़े राष्ट्रों में होता। इसी कारण मैं यह निवेदन करता हूं कि अंग्रेजी अनिवार्य होनी चाहिये। संभव है कि यह एक अरुचिकर आवश्यकता हो; पर है यह एक आवश्यकता।

मेरे मत के अनुसार राष्ट्र भाषा चुनने का विषय दो शर्तों पर निर्भर होना चाहिये। इन शर्तों को रखने के पूर्व माननीय सदस्यों से मैं स्थिति पर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा। मैं अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के दृष्टिकोण से कह रहा हूं—यदि

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आपको हिन्दी सीखनी है, तो एक विदेशी भाषा के रूप में आपको उसे सीखना है। अपनी मातृभाषा आप बिना साक्षरता के सीख सकते हैं; परन्तु किसी विदेशी भाषा को आप पुस्तक द्वारा ही सीख सकते हैं। किसी अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों में सर्वप्रथम किसी बालक को अपनी मातृभाषा में साक्षर होना चाहिये और उसके बाद ही वह अखिल भारतीय भाषा हिन्दी सीख सकता है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि इसके पूर्व कि हम भारत की जनता पर अनिवार्य अखिल भारतीय भाषा का आरोपण करें, यह आवश्यक है कि उसे अपनी मातृभाषा में साक्षर पहले से होना चाहिये। पचास वर्ष घोर परिश्रम करने के पश्चात् और प्राथमिक शिक्षा के बारे में चालीस वर्ष से अधिक काल तक वार्ता करने के पश्चात् हम अपनी जनता में 13 या 15 प्रतिशत से अधिक साक्षर नहीं बना पाये हैं। हमारी जनता में कम से कम 45 प्रतिशत पूर्णतया निरक्षर हैं। क्या यह बात तर्क के सामने टिक सकती है कि आप भारत की जानता को राजभाषा के रूप में हिन्दी एकदम सिखा सकते हैं? आप ऐसा नहीं कर सकते। मैं निवेदन करता हूं कि भारत की जनता पर राष्ट्रभाषा का आरोपण करने के पूर्व यह आवश्यक है कि जनता को साक्षर बनाने का आन्दोलन हो और जो लोग नहीं चाहते हैं, उन पर एक विदेशी भाषा का आरोपण करने के पूर्व प्रत्येक क्षेत्र में साक्षरता का अधिकतम प्रतिशत होना चाहिये।

दूसरी शर्त, जिसे मैं विनिहित करना चाहूंगा, वह यह है कि आप प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण करें। इसका कारण सरल है। इस राजकीय समझौते के मसौदे में हम यह अभिज्ञात करते हैं कि प्रादेशिक भाषायें होनी चाहियें। यदि हम प्रादेशिक भाषायें रखते हैं, तो एक ही प्रान्त में भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले भिन्न-भिन्न लोगों में परस्पर झगड़े होंगे। इन सब कष्टों से बचने के लिये सामान्यतया एक भाषा बोलने वाले लोगों को एक प्रान्त में रखना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे, तो यह कठिनाई होगी कि किसी क्षेत्र में अल्पसंख्यक वर्ग पर बहुसंख्यक वर्ग द्वारा अत्याचार होगा।

मैं उन अनेक वाद-विवादों में नहीं पड़ना चाहता हूं, जो इस समय हो रहे हैं। मेरा विश्वास है कि जब हम इस आधार पर प्रान्तों का निर्माण करेंगे, तो सब वाद-विवाद शान्त हो जायेंगे। यदि हम इस समय ऐसा नहीं करते हैं, तो यह कभी नहीं हो सकेगा और अगणित कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी। यदि प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण कर दिया जाता है, तो वे एक विदेशी अखिल भारतीय भाषा पर विचार कर सकेंगे। मैं निवेदन करता हूं कि भारत जैसे आधुनिक राज्य के लिये हमें एक आधुनिक भाषा की अपेक्षा है। वह एक ऐसी मिश्रित भाषा होनी चाहिये जिसमें भारत की समस्त भिन्न-भिन्न भाषाओं का योग हो। मैं वह व्यक्ति नहीं हूं, जो भारत की एक राजभाषा में विश्वास न करता हो पर तथ्यों की मैं अपेक्षा नहीं कर सकता हूं। देशभक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर भी मैं तथ्यों

की ओर से आंखें नहीं मीच सकता हूं। अतः किसी उपयुक्त भाषा का विकास होने के लिये समय देना चाहिये हमारा संविधान और हमारी विधियां अंग्रेज़ी में हैं और उसके स्थान में दूसरी भाषा रखने के लिये हम केवल पन्द्रह वर्ष का उपबन्ध कर रहे हैं। यदि आप अपनी विधियों का ही अनुवाद करने का प्रयास करेंगे, तो आपको विदित होगा कि सही-सही अनुवाद करना कितना कठिन है।

आखिर कोई यथार्थवादी हल होना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि यदि हम यथार्थवादी रूप में कार्य नहीं करेंगे, तो फल यह होगा कि कई अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में प्रतिक्रिया होगी। उस भाषा को सीखना और अखिल भारतीय भाषा में कृत्यों का निर्वहन करने के लिये उस भाषा पर पर्याप्त अधिकार करना उनके लिये कठिन हो जायेगा। इस एक बड़ी बात को याद रखना है कि स्वयं हिन्दी की उन्नति करनी होगी। यह पन्द्रह वर्षों का विषय नहीं है, यह तो प्रयोग तथा अनुभव का विषय है। ऐसे महान लेखक और महान विचारकों के होने में कई वर्ष लगेंगे, जो इसकी उन्नति करेंगे और दूसरी बात यह है कि लोगों को केवल वार्तालाप की हिन्दी बोलने के लिये ही नहीं—जो कि बहुत सरल है—वरन् साहित्यिक हिन्दी सीखने के लिये, जो बहुत ही कठिन है बहुत समय की अपेक्षा है।

मैं निवेदन करता हूं कि प्रस्थापित अनुच्छेद 301ख के एक खंड, खंड (3) में यह उपबन्ध किया गया है कि अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के दावों को जहां तक हो सकेगा, लोक सेवाओं के लिये व्यक्ति चुनने में माना जायेगा। मैं निवेदन करता हूं कि इससे पर्याप्त रूप में कठिनाई उत्पन्न होगी। अहिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में के एक लड़के का उदाहरण लीजिये। उसे अपनी मातृभाषा सीखनी होगी, जो प्रादेशिक भाषा से भिन्न हो सकती है। संभव है, उस लड़के को फिर कोई ऐसी मातृभाषा सीखनी पड़े जो प्रादेशिक भाषा से भिन्न हो। इस प्रकार उसे आरम्भ में दो भाषायें सीखनी होंगी। यदि वह लोक सेवाओं में तथा आन्तरिक राजनैतिक क्षेत्र और बाह्य क्षेत्र में भी उच्चतर सम्मान प्राप्त करने का अभिलाषी है, तो उसे अंग्रेजी सीखनी होगी और उसके बाद उसे राजभाषा हिन्दी सीखनी होगी। शक्ति के इस महान ह्रास की ओर तनिक विचार करिये, जो हमारे लड़के और लड़कियों को इन भाषाओं को सीखने में करना होगा। फल यह होगा कि निम्नतर साधन वाले मध्य वर्ग के व्यक्ति अंग्रेजी सीखने से वंचित रह जायेंगे। यकायक अखिल भारतीय भाषा स्वीकार करने का परिणाम यह होगा कि अंग्रेजी की पाठशालायें कम हो जायेंगी और हिन्दी की पाठशालायें अधिक हो जायेंगी यद्यपि हम एक वर्गहीन समाज बनाने के प्रयत्न में हैं, पर इस प्रकार धनी और अधिक धनी हो जायेंगे और निर्धन अधिक निर्धन। केवल धनी लोगों के बच्चे ही अंग्रेजी पढ़ सकेंगे और इस कारण उन विदेशी क्षेत्र की कार्रवाइयों में, उन अखिल भारतीय क्षेत्र की कार्रवाइयों में, जिनमें पश्चिमी विज्ञान और कला से लाभ उठाने के लिये अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अपेक्षित है, केवल धनी वर्ग के बच्चे ही भाग ले सकेंगे। निर्धन तथा मध्यम

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वर्ग इससे वंचित रहेंगे। इस यकायक परिवर्तन का यह प्रभाव होगा। जब अंग्रेज़ यहां आये, तो राजभाषा फारसी थी और अंग्रेजी भाषा का शिक्षा के माध्यम के रूप में पुर:स्थापन करने के लिये उन्होंने साठ वर्ष तक प्रतीक्षा की। और फिर उन्होंने उसे अनिवार्य नहीं बनाया, वे बड़ी सावधानी से आगे बढ़े। मैं निवेदन करता हूं कि हमें उनके अनुभव से लाभ उठाना चाहिये। मैंने अपने संशोधन में कहा है कि प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये और जब हम यह देखें कि प्रत्येक राज्य में कम से कम 60 प्रतिशत अपनी मातृभाषा में साक्षर हैं और जब कि प्रान्त भी भाषा के आधार पर विभाजित कर दिये गये हैं, तब एक आयोग होना चाहिये और आयोग के प्रतिवेदन पर विधान-सभाओं, विधान-परिषदों तथा संसद में भी वाद-विवाद हो और उसके बाद काफी समय तक वे वाद-विवाद देश के समक्ष रहने दिये जायें और तब हम अधिक वास्तविक तथा यथार्थ रूप में यह जान सकेंगे कि क्या होना चाहिये। और तभी जनता के लिये राष्ट्रभाषा का चुनना या विकास करना सरल होगा। यदि हम इस प्रकार अग्रसर होंगे, तो राष्ट्रभाषा को स्वीकार करना और उसको चुनना सरल होगा, अन्यथा इससे बड़ी कठिनाइयां पैदा होंगी। इन विषयों पर अधिक समय तक विचार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इस विषय पर विनिश्चय अधिक व्यापक वाद हेतुओं पर आश्रित होना चाहिये।

मैं निवेदन करता हूं कि हिन्दी के साथ-साथ अन्य भाषाओं का भी दावा है, मैंने एक संशोधन प्रस्तुत किया है कि बंगला को अपनी मांगें मिलनी चाहिये। यह केवल एक सुझाव के रूप में है कि समस्त अधिराज्य में बंगला अत्युन्नत भारतीय भाषा है। यह वे लोग स्वीकार करते हैं, जिनको इस विषय पर बोलने का अधिकार है। मैं निवेदन करता हूं कि प्रथम बंगला पुस्तक 'चर्या' बारहवीं शताब्दी में प्रकाशित हुई थी। संस्कृत को छोड़कर खोजी हुई पुस्तकों में यह सबसे प्राचीन भारतीय पुस्तक है। इसके बाद 16वीं और 17वीं शताब्दियों में कई बंगला पुस्तकें निकली थीं। इसके बाद अनेक लेखक हुये—चारुचन्द्र दत्त, बंकिम चटर्जी और अन्य अनेक लेखक और अच्छे लेखकों की महान कोटि को छोड़कर स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर, जिन्होंने बंगला साहित्य को बहुत ही सुन्दर देन दी। उन्होंने बहुत कुछ लिखा और बंगला साहित्य को एक बड़ी देन दी और विचारों के लिये वह सर्वोत्तम साधन है। और मेरा विश्वास है कि यदि आप गुणावगुणों के आधार पर भाषा का विचार करें, तो बंगला का दावा सबसे पहले है। अन्य भाषाओं की उपयोगिता तथा सौन्दर्य का मैं अपकर्ष करना नहीं चाहता हूं, मैं तो केवल बंगला के दावे को उचित स्तर पर रख रहा हूं। मैं निवेदन करता हूं कि बंगला भाषा बहुत उन्नत है और उसके साथ केवल यही एक कठिनाई है कि उसको अधिकांश व्यक्तियों द्वारा बोला नहीं जाता है। परन्तु राजभाषा का निर्णय केवल एक इस तथ्य पर ही नहीं करना चाहिये कि उसे अधिकांश व्यक्ति बोलते हैं। आधुनिक विचारों, वैज्ञानिक, साहित्यिक तथा

अन्य विचारों को अभिव्यक्त करने की भाषा की उपयुक्तता भी एक महत्वपूर्ण बात होनी चाहिये। बंगला भाषा के सौन्दर्य का वर्णन करने में मैं सभा का समय लेना नहीं चाहता हूं।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ हम संस्कृत के बारे में आपके विचार सुनना चाहते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ जो कुछ मैं कहना चाहता था, उसका अनुमान कर लेने के लिये मैं माननीय सदस्य श्री गुप्ता का बड़ा कृतज्ञ हूं। यदि आपको कोई भाषा स्वीकार करनी है तो आप संसार की सर्वोत्तम कोटि की भाषा को क्यों न स्वीकार करें? यह बड़े खेद का विषय है कि आज हम यह भी नहीं जानते कि संसार के अन्य भागों में संस्कृत का कैसा और क्या सम्मान है। संस्कृत के बारे में यह सिद्ध करने के लिये मैं संक्षेप में उन कुछ बातों को उद्धृत करूंगा कि सभ्य संसार में इस भाषा का कितना सम्मान है। श्री डब्ल्यू.सी. टेलर कहते हैं "संस्कृत वह भाषा है, जो अतुलनीय सम्पन्नता तथा विशुद्धता से परिपूर्ण है।"

*__अध्यक्षः__ मैं यह सुझाव दूंगा कि आप इस विषय को रहने दें, क्योंकि जिन लोगों ने मूल रूप के संशोधनों की सूचना दी है, मैं उनके प्रतिनिधियों को बुलाना चाहता हूं और मैं एक उस सज्जन को भी आमंत्रित करूंगा, जिन्होंने संस्कृत के बारे में सूचना दी है कि वे उसके बारे में भाषण दें। माननीय सदस्य ने बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत की सूचना दी थी। अतः मेरा विचार है कि इस विषय को वे यहीं छोड़ दें। मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि मैं उस सज्जन को, जिसने अन्य भाषाओं को न लेकर संस्कृत की सूचना दी है, उसे संस्कृत के बारे में बोलने दूं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ बहुत अच्छा, श्रीमान, मैं इसमें बाधा नहीं डालूंगा, मैं केवल कुछ उद्धरण दूंगा। प्रो. मेक्समूलर कहते हैं "संस्कृत संसार की सर्वोच्च कोटि की भाषा है, बड़ी ही आश्चर्यजनक तथा सर्वांगपूर्ण है।" सर विलियम जोन्स ने कहा है "संस्कृत की रूपरेखा अत्यन्त आश्चर्यजनक है, वह ग्रीक से अधिक पूर्ण है, लेटिन से अधिक प्रचुर है और दोनों से कहीं अधिक विशुद्ध है। जब हमारा ध्यान संस्कृत साहित्य की ओर जाता है, तो उसके अनन्त विशाल रूप का भाव स्वयं उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में दीर्घातिदीर्घ जीवन उसकी रचनाओं को एक बार पढ़ने तक के लिये पर्याप्त नहीं हैं, जो इसके साहित्य में भरी पड़ी हैं और जो हिमालय के सदृश्य प्रकट रूप में हैं और जिसमें भारत ही नहीं, वरन् बाहर के किसी भी देश की बड़ी से बड़ी रचनाओं से बड़ी रचनायें हैं।" सर डब्ल्यू. हन्टर कहते हैं "संसार के व्याकरणों में पाणिनी का व्याकरण सर्वोच्च स्थान पर है। मानवी आविष्कार तथा उद्योग के एक बहुत ही शोभायमान कृत्य के रूप में वह स्थित है.....। हिन्दुओं ने अनुपम शोभायुक्त भाषा, साहित्य और धर्म का निर्माण किया है।" प्रो. बिटने कहते हैं "रचना में अनुपम प्रसाद गुण संस्कृत को भारत-यूरोप कुटुम्ब की भाषाओं में प्रथम स्थान प्रदान करता है।" प्रो. बोप कहते हैं "एक समय संसार की भाषा संस्कृत ही थी।" श्री दुबोस कहते है "यूरोप की

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आधुनिक भाषाओं की जननी संस्कृत है।" प्रो. बेवर कहते हैं "पाणिनी के व्याकरण को संसार में सबसे अधिक संक्षिप्त तथा सबसे अधिक पूर्ण माना जाता है।" प्रो. विल्सन कहते हैं "हिन्दुओं के सिवाय अन्य कोई राष्ट्र अभी तक ऐसी उच्चारणानुकूल पूर्ण प्रणाली नहीं खोज पाया है।" प्रो. थोमसन कहते है "संस्कृत में व्यंजनों का प्रबन्ध क्रम मानव प्रतिभा का एक अनुपम उदाहरण है।" ढाका विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. शहीदुल्ला, जो समस्त संसार में संस्कृत के विद्धान के रूप में प्रसिद्ध हैं, कहते हैं "संस्कृत प्रत्येक व्यक्ति की भाषा है, चाहे वह किसी जाति का हो।"

*__एक माननीय सदस्यः__ आपका क्या विचार है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मेरा विचार यह है कि वह एक बहुत उच्च कोटि की भाषा है।

*__एक माननीय सदस्यः__ क्या इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाये या नहीं? इस समय तो उसे कोई नहीं बोलता है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ जी हां, और इसका सरल सा कारण यह है कि वह सबके लिये निष्पक्ष रूप से कठिन है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रों के लिये हिन्दी सरल है, पर अन्य क्षेत्रों के लिये वह कठिन है। मैं आपको एक ऐसी भाषा देता हूं, जो सबसे अधिक उन्नत तथा उच्च कोटि की है और वह निष्पक्ष रूप से कठिन है, उसका सीखना सबके लिये समान रूप से कठिन है। भाषा चुनने में कुछ निष्पक्षता होनी चाहिये। यदि हमें कोई भाषा स्वीकार करनी है तो वह भाषा उन्नत, उच्च कोटि की और सर्वोत्तम होनी चाहिये। तो फिर संस्कृत के दावे को हम क्यों अस्वीकार करें। मैं यह नहीं समझ पाता हूं। यदि अहिन्दी भाषा-भाषी लोगों को कोई भाषा सीखनी है, तो कदाचित वे किसी ऐसी भाषा को सीखने की अपेक्षा, जिसको संस्कृत से बहुत निम्न स्थान, गुण तथा पद प्राप्त है, संस्कृत को सीखना चाहेंगे। और फिर हिन्दी लिपि के विषय में मेरे पास बनारस विश्वविद्यालय के एक आचार्य श्री सी. नारायना मेनन का एक लेख है, जिन्होंने 'लिपि सुधार' नामक एक पुस्तिका लिखी है। उन्होंने, यह बतलाया है कि हिन्दी लिपि बहुत ही दोषपूर्ण है। उसके हाथ पैर सब दिशाओं में अग्रसर होते हैं। लिपि सुडौल तथा सुन्दर नहीं है और भाषा शीघ्र तथा सरलतापूर्वक नहीं लिखी जा सकती। श्रीमान, आधुनिक भाषा के लिये लिपि का विषय भी एक पहलू है, जिस पर विचार होना चाहिये।

श्रीमान, मैंने कुछ अधिक समय ले लिया है, पर मैं निवेदन करता हूं कि ये बातें बहुत गंभीर है और मैं यह निवेदन करता हूं कि जल्दी में हमें कोई

कदम नहीं उठाना चाहिये। हम सबको एक भाषा का विकास करना चाहिये और ग्रहण करने के पूर्व उसका परीक्षण करना चाहिये। मैं निवेदन करता हूं कि बंगाली, संस्कृत, अन्य भाषायें बहुत हैं और उन पर विचार करना चाहिये।

*__श्री सारंगधर दास__ (उड़ीसा राज्य): क्या मैं माननीय सदस्य से एक प्रश्न पूछ सकता हूं कि.........

*__अध्यक्षः__ न कोई प्रश्न किया जाये और न कोई उत्तर दिया जाये।

*__श्री सारंगधर दासः__ मैं उन्हें स्पष्ट नहीं सुन पाया, मैं केवल यह जानना चाहता था कि क्या उन्होंने यह कहा था कि जापान की राजभाषा अंग्रेजी थी।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ जी हां।

*__अध्यक्षः__ वक्ताओं को चुनने में जिस प्रक्रिया का मैं पालन कर रहा हूं, उसे मैं सदस्यों को समझा दूं। मैं उन संशोधनों को ले रहा हूं, जो मूल रूप के हैं और उन संशोधनों के प्रस्तावकों से भाषण देने के लिये कहूंगा, जिससे कि मूल रूप के सब विचार सर्वप्रथम सभी के सामने प्रस्तुत हो जायें।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): मैं आशा करता हूं कि संशोधनों का भेजना ही वक्ताओं को बुलाने का एक मात्र आधार नहीं है।

*__अध्यक्षः__ जी नहीं, वास्तव में वह कोई आधार नहीं है। पर मैं उन वक्ताओं को चुन रहा हूं, जिन्होंने मूल रूप के संशोधनों की सूचना दी है, जिससे कि वे अपने संकल्पों पर बोल सकें। श्री कृष्णामूर्ति राव।

*__श्री एस.वी. कृष्णामूर्ति रावः__ श्रीमान, मैंने चार संशोधन भेजे हैं। संशोधन संख्या 69 में कहा गया है कि जैसी स्थिति है, वैसी ही रखी जाये और भाषा के विषय को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। यह सत्य है कि जब माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन हमें दिया जा रहा था, मैंने सोचा कि हमने झगड़े का अन्त कर दिया है और भाषा के विषय पर विनिश्चय कर लिया है। श्रीमान, वह संकल्प अत्यन्त कल्याणकारी है, जो एक ओर हिन्दी के समर्थकों को यह क्षेत्र प्रदान करता है कि वे अपनी भाषा को उन्नत बनायें और भारत की सार्वजनिक भाषा के रूप में उसका शनैः शनैः पुरःस्थापन करें। दूसरी ओर वह भारत के अन्य लोगों के भय का निराकरण करता है कि भाषा का आरोपण नहीं होगा और धीरे-धीरे अपने हिन्दी भाषा-भाषी मित्रों के समकक्ष होने और भारत की हिन्दी भाषा-भाषी जनसंख्या में अपना स्थान ग्रहण करने के लिये उन्हें समय दिया जायेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश इस संकल्प पर इतने संशोधनों की सूचना दी गई है कि उनकी संख्या को देखकर मैं घबरा गया और मैं सोचता हूं कि यह अच्छा होगा कि इस प्रश्न को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये। गत दो वर्ष

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

से हम इस प्रश्न पर बक झक करते रहे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि यद्यपि हमने कई प्रश्नों पर परस्पर समझबूझ कर विनिश्चय किया है, पर इस मुख्य प्रश्न पर हम समझौता नहीं कर पाये हैं। अत: श्रीमान, मेरा निवेदन यह है कि जैसी स्थिति है, वैसी ही बनाये रखने के मेरे संशोधन को यह सभा स्वीकार करे।

मेरा दूसरा संशोधन उस खंड के बारे में है, जो राष्ट्रपति को भारत की सार्वजनिक भाषा में भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ अंकों के देवनागरी रूप को पुर:स्थापित करने की शक्ति देता है। मेरा निवेदन यह है कि इस प्रकार से नहीं होना चाहिये। वास्तव में जैसा कि माननीय श्री गोपाला स्वामी आयंगर कह चुके हैं और जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को विदित है, यह अन्तर्राष्ट्रीय अंक हमारे अंक हैं और केवल इस कारण कि वे भारत से बाहर चले गये और अन्य लोगों ने उनका विकास किया और उनको वर्तमान रूप दिया, इसलिये हम उन्हें किसी विदेशी वस्तु के रूप में देखें और उनका परित्याग करें, मेरे विचार से तो मूर्खता की पराकाष्ठा होगी। श्रीमान क्या हम पीछे हट रहे हैं या शेष संसार के साथ-साथ हम आगे बढ़ रहे हैं? यह एक महानतम देन है, जिसे भारत ने संसार की वैज्ञानिक विचारधारा को अर्पित किया है और उसमें क्रांति की है और अन्तर्राष्ट्रीय अंक, जिनका मूल रूप भारतीय है और जो हमारे ही अंक हैं, उनसे मुझे इतना प्रेम है कि मैं कुछ और नहीं मान सकूंगा। और अपने अंकों के रूप में हमें उनको फिर प्राप्त कर लेना चाहिये और संसार के समक्ष यह उद्घोषणा कर देनी चाहिये कि वे हमारे हैं और मेरे विचार से उन्हें विदेशी समझ कर उनका परित्याग करना समस्त देश के हित में नहीं है। अत: मेरा संशोधन यह है कि अनुच्छेद 301-क के खंड (2) के परन्तुक में–उसके पिछले भाग में राष्ट्रपति को जो शक्ति दी गई है, "परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में आदेश द्वारा अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा", इस संबंध में मेरा आशय यह है कि "भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप" शब्द निकाल दिये जायें और हम केवल अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप पर दृढ़ रहें, क्योंकि वह वास्तव में हमारा ही है।

इसके बाद मेरा अगला संशोधन संख्या 188 है और वह है, हिन्दी भाषा का विकास करने के लिये एक विद्वत्परिषद् स्थापन करने के बारे में, जिससे कि वह समस्त भारत को मान्य हो। मेरा सम्मानपूर्वक यह निवेदन है कि आज हिन्दी केवल एक प्रादेशिक भाषा तथा प्रान्तीय भाषा है, और केवल इसलिये कि 32 करोड़ लोगों में से लगभग दस करोड़ लोगों द्वारा वह बोली जाती है, हम उसे सार्वजनिक भाषा के स्तर पर ले जा रहे हैं। मैं भारत में बोली जाने वाली सब भाषाओं को–तामिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, बंगला, गुजराती और अन्य सब भाषाओं को अपनी राष्ट्रभाषायें कहूंगा। परन्तु संघ के प्रयोजनों के लिये हम एक भाषा चाहते हैं और हिन्दी को वह भाषा मानने के लिये तैयार हैं। पर हिन्दी को अभी एक ऐसी भाषा

के रूप में बनना है कि उसका प्रभाव राष्ट्रीय जीवन के समस्त अंगों में प्रकट हो और इसके लिये उसे बहुत उन्नति करनी चाहिये। मेरा निवेदन यह है कि हिन्दी आज उस स्थिति तक उन्नत नहीं है। अपनी कुछ दक्षिण भारतीय भाषाओं से यह सिद्ध करने के लिये मैं उद्धरण दे सकता हूं कि आज हिन्दी जितनी उन्नत है, उससे वे कहीं अधिक उन्नत हैं। कुछ उदाहरण लीजिये। लाहौर में प्रकाशित महान हिन्दी-अंग्रेजी कोष (Great Indian English Dictionary) में कुछ वैज्ञानिक पदों के लिये ये शब्द हैं।

'हाइड्रोजन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'उद्जन' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'आइजन' है,
'ब्रोमीन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'द्रुरोघ्री' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'बरामीन' है,
'नाइट्रोजन के लिये प्रयुक्त शब्द	'भूपाथिड' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'नेट्रोजन' है,
'आइडीन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'जाने बुकी' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'एथेन' है,
'आक्सीजन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'जारक' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'आक्षजन' है,
'कार्बन' के लिये प्रयुक्त शब्द	'प्रागार' है,
श्री बनर्जी द्वारा प्रयुक्त शब्द	'कराजन' है,

अब तक हाइड्रोजन, आक्सीजन और कार्बन के लिये कन्नड़ में हम 'जलजनक', 'सरजनक', 'आम्लजनक' और 'इंगला' प्रयोग में लाते हैं। अत: भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक शब्दों के लिये भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है। यदि यही दशा होगी, तो हमारे विद्यार्थी और वैज्ञानिक शेष संसार के साथ किस प्रकार निभा सकेंगे? मेरी यह धारणा है कि जहां तक वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक शब्दों का सम्बन्ध है, हमें अतर्राष्ट्रीय शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। संविधान की धारा 41 जैसे अनुच्छेद को लीजिये। उसमें कहा गया है कि भारत का एक राष्ट्रपति होगा। इसके हमारे पास यहां चार अनुवाद हैं और जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे बिल्कुल ही भिन्न हैं।

श्री सुन्दरलाल के अनुवाद में 'हिन्द का एक प्रेजीडेन्ट होगा' है, श्री राहुल सांकृत्यायन 'भारत का एक राष्ट्रपति होगा' कहते हैं, श्री गुप्ता कहते हैं 'भारत का एक प्रधान होगा' और काका कालेलकर 'प्रेजीडेन्ट' का अनुवाद 'परम पंच' करते हैं।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में हम 'अध्यक्ष' शब्द का प्रयोग करते हैं, जो सरलता से समझ में आ जाता है। इस शब्द का प्रयोग क्यों नहीं करते।

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

इन चार अनुवादों में से कुछ सांविधानिक शब्दों का मैं आपको उदाहरण दूंगा। कम्पेन्सेशन (compensation) : कन्नड़ में हम 'प्रिहार' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'नुकसार भरी' शब्द का प्रयोग करते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायण 'क्षतिपूर्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, गुप्ता जी 'मुआवजा' शब्द का प्रयोग करते हैं और श्री सुन्दरलाल 'यतजाना' कहते हैं। सिटिजन (citizen): हम पौर कहते हैं। काका कालेलकर 'नागर' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'नागरिक' कहते हैं, गुप्ता जी, 'जान पद' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'नागरा' कहते हैं।

रिपब्लिक (Republic): हम 'जनता राज्य' शब्दों का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'लोकराज' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'गणराज्य' कहते हैं, गुप्ता जी 'गणराज्य' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'लोक राज' कहते हैं।

ओथ (oath): हम 'प्रमाण' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'सौगंध, शपथ, हलफ' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'सम्मोदन, शपथ' कहते हैं, श्री गुप्ता जी 'निश्चयोक्ति, शपथ' कहते हैं, और श्री सुन्दरलाल 'वचन भरना, हलफ उठाना, कहते हैं। 'रेसिडयूरी पावर्स' '(Residuary powers) शब्द को लीजिये। हम 'शेषाधिकार' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'बाकी बचे अधिकार' कहते हैं। श्री राहुल सांकृत्यायन 'शोषाधिकार' कहते हैं, गुप्ता ही 'अवशिष्ट विधान शक्ति' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'रही सही शक्ति' कहते हैं।

लेजिस्लेशन (legislation) शब्दों को लीजिये: हम 'शासन कानून' शब्द का प्रयोग करते हैं। काका कालेलकर 'कानून' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'व्यवस्था' कहते हैं, गुप्ता जी 'विधान' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'कानून' कहते हैं।

ओथेंटिकेशन (authentication) शब्द को लीजिये: काका कालेलकर 'सचियाना, परमानन, सही करना' कहते हैं, श्री राहुल सांकृत्यायन 'प्रमाणित करना' कहते हैं, गुप्ता जी 'प्रमाणिकता' कहते हैं और श्री सुन्दरलाल 'सही करना' कहते हैं।

मैंने केवल पांच शब्द लिये हैं और इनके लिये प्रत्येक अनुवाद भिन्न-भिन्न शब्द रखता है। तो फिर इनमें से किस शब्द का हम संविधान में प्रयोग करें? मेरा निवेदन यह है कि सांविधानिक पदों का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निश्चित अर्थ होता है। उदाहरणार्थ, आप 'पार्लियामेंट' शब्द को लीजिये, संसार में आप कहीं भी चले जायें, उसका एक ही अर्थ है। उसके लिये हम किसी शब्द का प्रयोग करें? मैं निवेदन करता हूं कि इन शब्दों का विकास विशेषज्ञों की एक समिति को करना होगा और वह समिति केवल हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की ही नहीं होगी, वरन् भारत

की समस्त महत्वपूर्ण भाषाओं के विशेषज्ञ उसमें होंगे। इसी कारण मैंने संशोधन संख्या 188 प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है:

"कि उपरोक्त संशोधन संख्या 65 में प्रस्थापित अनुच्छेद 301-1 को उसी अनुच्छेद के खंड (1) के रूप में पुनरांकित किया जाये और इस खंड को खंड (2) के रूप में जोड़ दिया जाये:

'(2) The President shall appoint a permanent Commission consisting of experts in each of the languages mentioned in Schedule VII-A for the following purposes:—

(i) to watch and assist the development of Hindi as the common medium of expression for all in India,

(ii) to evolve common technical terms not only for Hindi but also for other languages mentioned in Schedule VII-A for use in science, politics, economics and other technical subjects,

(iii) to evolve a common vocabulary acceptable to all the component parts in India.' "

[(2) निम्न प्रयोजनों के लिये राष्ट्रपति अनुसूची 7क में उल्लिखित प्रत्येक भाषा के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग नियुक्त करेगा।

(1) भारत में सबके लिये अभिव्यंजना के एक माध्यम के रूप में हिन्दी की उन्नति की देखभाल करना और उसमें सहायता देना,

(2) केवल हिन्दी के लिये ही नहीं, वरन् अनुसूची 7क में उल्लिखित अन्य भाषाओं के लिये भी विज्ञान, राजनीति, अर्थ शास्त्र और अन्य प्रौद्योगिक विषयों में प्रयुक्त करने के लिये एक समान प्रौद्योगिक पदों का विकास करना,

(3) भारत में के समस्त अंगभूत भागों के लिये एकमान्य शब्द संग्रह का निर्माण करना।]

मैं आशा करता हूं कि श्री गोपालस्वामी आयंगर इस संशोधन को स्वीकार करने की अपनी कोई युक्ति निकालेंगे। यथार्थत: मेरी कठिनाई यह है कि भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में हम एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में करते हैं। इसके मैं कुछ उदाहरण दूंगा।

'एअरक्रेफ्ट' (aircraft) शब्द के लिये काका कालेलकर की शब्दावली में 'हवागाड़ी' शब्द दिया हुआ है। 'विमान' शब्द का क्यों न प्रयोग हो? इसका

[श्री एस.वी. कृष्णामूर्त्ति राव]

अधिकतर प्रयोग होता आया है। 'बैंक (Bank) के लिये इसमें 'साहूकार, बंक' दिया गया है, जब कि संस्कृत में इसके लिये बड़ा ही सुन्दर शब्द 'धन कोठी' दिया हुआ है। दक्षिणी भारत में 'मिनिस्टर' के लिये हम 'मंत्री' शब्द का प्रयोग करते हैं और अपने हिन्दी के भाषा-भाषी मित्रों से जो निमंत्रण हमें मिलते हैं, उनमें मैं, देखता हूं, 'मंत्री' शब्द का प्रयोग 'सेक्रेटरी' के रूप में है।

'कौंसिल ऑफ स्टेट्स' (Council of States) के लिये 'रियासत सदन' अनुवाद रखा गया है। रियासतें अब नहीं रहीं। 582 रियासतों में से केवल दो या तीन रह गई हैं, परन्तु फिर भी 'स्टेट' का पुराना अर्थ चला आ रहा है और उसका अब भी प्रयोग होता है।

'कोर्ट' शब्द का अनुवाद 'कचहरी' किया गया है। हम लोग दक्षिण में 'कचहरी' शब्द का प्रयोग कार्यालय के लिये करते हैं।

ये वे शब्द हैं, जिनका भारत की सब भाषाओं में सामान्यतया प्रयोग होता है। मैंने देवनागरी अक्षरों का सीखना केवल उस समय आरम्भ किया, जब कि अपने जेल के जीवन में मैंने हिन्दी सीखी। बहुत काल तक दक्षिण में हिन्दी को मुसलमानी भाषा कहा जाता था। यह हिन्दी हिन्दुस्तानी का विवाद केवल उत्तर में है। परन्तु फिर भी हम हिन्दी को स्वीकार करने के लिये तैयार हैं। वह एक बहुत अच्छा संकेत था, जबकि मौलाना अबुल कलाम आजाद ने हमसे यह कहा था कि देवनागरी लिपि में हिन्दी भारत की सार्वजनिक भाषा होनी चाहिये। परन्तु उत्तर भारत के कुछ समाचारपत्रों में उन पर नियमित रूप से बौछार की जा रही हैं और उन पर यह दोषारोपण किया जा रहा है कि वे भारत के लोगों पर उर्दू आरोपित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस समय इस विषय पर हम कोई सक्रिय विचार नहीं कर सकते हैं। देश के महानतर हित के लिये इस प्रश्न पर, एक शान्त वातावरण में जब कि भावावेश ठंडा हो जाये, विनिश्चय करना चाहिये। मेरे संशोधन का यह उद्देश्य है।

जहां तक कालावधि का संबंध है मेरा निवेदन यह है कि 15 वर्ष की कालावधि में कोई कमी नहीं होनी चाहिये। श्रीमान, मैंने हिन्दी सीखने का प्रयास किया है। मैंने हिन्दी की कुछ पुस्तकों का अपनी भाषा कन्नड़ में अनुवाद भी किया है। परन्तु इस सभा के समक्ष हिन्दी में भाषण देने का विचार मेरे लिये बड़ा कठिन है। इस भाषा की जटिलताओं को, हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की मुहावरेदार भाषा को हम नहीं सीख सकते हैं। उसके सीखने में समय लगता है। मैं इस बात की चुनौती देता हूं। श्री गोविन्द दास, टंडन जी या गुप्ता जी इनमें से कोई तामील लोगों में जाकर रहे और तामील भाषा का बोलना सीखें, मैं यह कहूंगा कि इसमें जितनी समय लगे, वह हिन्दी भाषा का दक्षिण में पुर:स्थापन करने के लिये पर्याप्त है।

उनको 15 वर्ष ही नहीं, वरन् 20 या 25 वर्ष लगेंगे। यह समस्या वास्तव में कठिन है। आप केवल अपने ही दृष्टिकोण से इस पर विचार नहीं कर सकते हैं। इसी कारण मैं यह निवेदन करता हूं कि कालावधि आवश्यक है और पंद्रह वर्ष न्यूनतम अवधि है, जिसे हम स्वीकार कर सकते हैं।

संसार में कोई भाषा अपने आपको सबसे पृथक् नहीं रख सकती है। मैसूर संविधान-सभा द्वारा तैयार की गई पारिभाषिक शब्दों की एक शब्दावली मेरे पास है। मैंने इस पुस्तक को उठाया और यह जानने का प्रयास किया कि उसमें कितने उर्दू या हिन्दुस्तानी के शब्द हैं। उसमें हमने 67 शब्द ऐसे रखे हैं, जिनका मूल रूप उर्दू या हिन्दुस्तानी है। अपने विशुद्धवाद में क्या हम इन सब शब्दों को छोड़ दें? यदि आप अंग्रेजी को ही लें और उस भाषा के इतिहास तथा विकास को देखें, तो उसको अन्तर्राष्ट्रीय महत्व केवल इस कारण प्राप्त हुआ है कि उसने स्वतंत्रतापूर्वक अन्य भाषाओं से शब्द अपनाये हैं। यदि हिन्दी भारत की सामान्य भाषा होना चाहती है और उन्नतशील राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करना चाहती है, तो उसे अन्य सब भाषाओं से स्वतंत्रतापूर्वक शब्द ग्रहण कर अपना विकास करना चाहिये। जहां तक भाषा के विकास का सम्बन्ध है, हम किसी संकीर्ण दृष्टिकोण को नहीं अपना सकते हैं। बैंच, रेल, टेबुल इत्यादि शब्दों को लीजिये, इनमें से बहुत से शब्द प्रचलित हो गये हैं। हिंदी में हम बैंच शब्द के लिये क्या शब्द बना सकते हैं। क्या हम इन शब्दों में रद्दोबदल करेंगे? मैं समझता हूं कि यह बहुत ही घातक नीति होगी।

श्रीमान, इसके बाद मेरा संशोधन 'कन्नड़' शब्द के प्रति है। अनुसूची में इसका उल्लेख 'केनेरीज' के रूप में किया है। कन्नड़ का यह विकृत रूप है और इसका प्रयोग केवल मिशनरी लोगों द्वारा किया जाता था, जिन्होंने निस्सन्देह कन्नड़ भाषा की महान सेवा की। कन्नड़ वह शब्द है, जिसका प्रयोग हमारे एक कवि नृयुंपग में नवीं शताब्दी में किया था।

श्रीमान, इन शब्दों के सहित सभा की स्वीकृति के लिये मैं अपने संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

मौलाना हिफजुर्रहमान (यू.पी. : मुस्लिम): जनाब वाला, मेरी तरमीम या संशोधन जवान के मामले में यह है कि हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी जबान या भाषा होनी चाहिए और स्क्रिप्ट, लिपि या रसमुलखत देवनागरी और उर्दू दोनों स्क्रिप्ट होने चाहिए और जिस-जिस जगह या आर्टिकिल में हमारे मुअज्जिज दोस्त गोपालस्वामी आयंगर ने हिन्दी का जिकर किया है, उस आर्टिकिल में हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी इस्तेमाल होना चाहिये और जिस जिस जगह उन्होंने हिन्दुस्तानी का जिक्र किया है, वहां पर हिन्दी और उर्दू होना चाहिए और इस हिन्दुस्तानी को इतना डेवलप किया जाये, ताकि उसमें उर्दू, हिन्दी, बंगाली और हिन्दुस्तान की तमाम जबानें समा सकें और पूरी तरह तरक्की दे सकें।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

ज़बान का मसला और भाषा का मसला इतना अहम है कि इस पर हमें ध्यान देना बहुत ही जरूरी है और जब हमें इस विधान परिषद् में आकर इस मामले पर गौर करने का मौका मिल रहा है, तो मैं इस हाउस के सामने अपने ख्यालात रखना जरूरी समझता हूं।

इस वक्त जबान का मसला हमारे मुल्क में बहुत ज्यादा अहमियत अख्तियार कर गया है। इसलिये कि हम जब अपनी आजादी की जंग और लड़ाई को देखते हैं, तो तीस वर्ष की लड़ाई जो कि महात्मा गांधी के हाथों से लड़ी गई, उसमें जब जब भी हमारे सामने जबान का मसला आया है, तो वह बहुत ज्यादा अहमियत के साथ आया है इसलिये मैं आज इस बात से बहुत ज्यादा ताआज्जुब करता हूं और हैरान भी हूं कि जिस चीज से कल सारी कांग्रेस मुत्तफिक थी और जिस मसला (जबान) के मुताल्लिक कोई इख्तलाफ नहीं करता था और सभी यह कहते थे कि मुल्क की राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए, जो हिन्दी और उर्दू लिपि में लिखी जाये। आज वही भाई इसको बदलना चाहते हैं।

महात्मा गांधी ने जिन बातों को बहुत ज्यादा अपनाया था और जो चन्द बातें उनके नजदीक बहुत ही अहम और जरूरी थीं, उनमें आजादी के साथ भाषा और जबान का मसला भी उनके सामने बहुत ही जरूरी और अहम रहा। और जब शुरू में हिन्दुस्तान में जबान का मसला आया, तो उनको हिन्दी के साहित्य सम्मेलन ने अपना मेम्बर बना लिया और उन्होंने हिन्दी को आगे बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन जब उन्होंने यह सुना और आहिस्ता-आहिस्ता यह देखा कि हिन्दी से वह मुराद नहीं है, जो कि महात्मा गांधी चाहते थे, बल्कि उसको अलग जबान देखा, जो कि संस्कृताइजड है और उसको ज्यादा से ज्यादा संस्कृताइज़्ड करने की कोशिश की जाती है और उसी जबान को हिन्दी कहा जाता है, तो उन्होंने उसके साथ इख्तलाफ किया और उसके बाद उन्होंने इस बात का ऐलान भी किया और कहा कि मैं हिन्दी का मतलब हिन्दुस्तानी देखता हूं और इसीलिये उन्होंने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी का प्रचार भी किया और जब कभी इस मामले पर उनके साथ बात हुई, तो उन्होंने कहा कि मैं हिन्दी का मतलब उस जबान से लेता हूं, जो कि उत्तरी हिन्दुस्तान में बोली जाती है और जिसको कि हिन्दू, मुसलमान, जो तमाम हिन्दुस्तान में बसने वाले हैं, बोलते और समझते हैं। इसी जबान को महात्माजी ने हिन्दुस्तानी या हिन्दी कहा, लेकिन जब उन्होंने यह देखा कि हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी कहने और समझाने से भी वह मतलब हासिल नहीं होता जो वह चाहते थे, तो आखिरकार उन्होंने एक तरफ साहित्य सम्मेलन से इस्तीफा दे दिया और दूसरी जानिब हिन्दुस्तानी भाषा को अपनाया और कहा कि मुल्क की राष्ट्रीय भाषा यही सादा जबान हो सकती है और यह भी कहा कि मैं राष्ट्रीय भाषा हिन्दी को नहीं चाहता हूं, बल्कि हिन्दुस्तानी जबान को चाहता हूं और उसी का प्रचार करूंगा। चुनाचे उसके प्रचार के सिलसिले में उनको बहुत कामयाबी हुई और उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन को बतला दिया कि वह हिन्दुस्तानी जबान ही को मुल्क की आम और सादा जबान मानते हैं। चुनाचे उन्होंने उसी हिन्दुस्तानी के मुताल्लिक कोशिश की।

मुझे याद है और भूला नहीं हूं कि जब 30 जनवरी को वह अजीम और सबसे बड़ा हादसा पेश आया और जब किसी जालिम ने महात्मा गांधी को हम से छीन लिया, उस हादसे से तीन राज पहले जो बातें मेरी महात्मा गांधी से बिरला हाउस में हुईं, उस वक्त दस या ग्यारह बजे थे, उन्होंने मुझे कहा कि अब मुल्क में अमन हो गया है और मुझे बहुत खुशी हुई है। जिस तरह से देहली में अमन कायम करने के लिये आपने मेरा साथ दिया है, उसी तरह हिन्दुस्तानी जबान के प्रचार के लिये हिन्दुस्तान में कोशिश करनी है और आप लोगों को मेरा इसमें साथ देना होगा। हमने उस वक्त उनसे कह दिया कि हम आपके साथ हैं।

गांधी जी का ख्याल था कि हिन्दुस्तान का नाम बहुत ऊंचा और बुलंद हो और इसके लिये उन्होंने अपने जीवन भर कोशिश की और इसी के लिये जान दी और कामयाब हुए। तो अब मैं हैरान हूं कि हिन्दुस्तान का हर एक आदमी आला और अदना, जो यह चाहता है कि हिन्दुस्तान का नाम ऊंचा और बुलंद हो, वह कैसे गांधी जी के एक बड़े नियम और उसूल को भूल गये हैं और जिस हिन्दुस्तानी जबान का गांधी जी प्रचार करते थे और उसको यूनियन की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे, उसको बिल्कुल खत्म करना चाहते हैं और उसकी जगह हिन्दी जबान को दे रहे हैं। मैं हैरान हूं कि कांग्रेसमैन महात्मा गांधी के उन उसूलों को आज कैसे भूल गये हैं, जबकि उनका नाम हर एक बात के साथ लेते हैं। मैं हैरान हूं कि उनके आदर्शों को कैसे भुला दिया गया है।

शायद अब यह कहा जाये कि इस मामले में गांधी का नाम क्यों लाया जाता है, तो मेरा जवाब यह होगा कि मैंने उनका नाम इस वास्ते लिया कि यह मामला खुद गांधी जी के वास्ते एक अहम और जरूरी मामला था और कांग्रेस ने भी हिन्दुस्तानी ही को मुल्क की जबान तस्लीम किया था। इसलिये जो कुछ महात्मा गांधी ने कहा है और जो उनके उसूल थे, उन पर चलना चाहिये और जो कुछ उन्होंने कहा है, उसके साथ किसी को इख्तीलाफ नहीं होना चाहिये। महात्मा गांधी ने जिन बातों पर जोर दिया था, उनमें जबान का मसला भी एक था।

एक दफा जब उनको अपना अखबार बन्द करने की जरूरत महसूस हुई, वह उस वक्त हुई कि जब वह हिन्दुस्तानी में भी अखबार निकालते थे। उस वक्त उन्होंने कहा कि जो आर्टिकिल या अखबार मैं हिन्दुस्तानी में निकालता हूं, अगर उस पर लोग नाराज हैं, तो मैं ऐसा क्यों करता हूं और वह मेरे अखबार को नहीं पढ़ेंगे। उनका यह ख्याल है कि ऐसा करने से सिर्फ मैं हिन्दुस्तानी अखबार को ही बन्द कर दूंगा। लेकिन मैं हिन्दुस्तानी अखबार के साथ-साथ हिन्दी अखबार को भी बन्द कर दूंगा। उस वक्त हमने उनसे कहा था, कि आप दोनों में से एक को भी बन्द न करें। जितनी भी कमी आपको इसमें होगी वह सब हम सारे हिन्दुस्तान में घूम कर पूरी कर देंगे और आपको खरीददार मुहैया करेंगे। चुनाच: सिर्फ देहली में हमने एक दिन में उनको एक सौ खरीददार दिये थे। तो मेरे कहने का मतलब यह है कि महात्मा गांधी हिन्दुस्तान के लिये हिन्दुस्तानी जबान को ही

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

निहायत जरूरी ख्याल करते थे। वह इसको हिन्दुस्तानी कह कर ही मानते थे, हिन्दी कर कह नहीं मानते और अगर कभी हिन्दी कहा भी, तो बाद में अपनी राय बदल ली। चुनाचः उससे मालूम होता है कि उन्होंने काफी विचार के बाद और बहुत जुस्तजू करने के बाद यह सोचा कि हमारे मुल्क हिन्दुस्तान की जबान हिन्दुस्तानी होनी चाहिये। लेकिन आज यहां पर हिन्दी को उसी हिन्दुस्तानी की जगह रखा जा रहा है और गांधी जी के और कांग्रेस की तीस साला तारीख के खिलाफ गलत कदम उठाया जा रहा है। पहले पहल में हिन्दी को हिन्दुस्तानी से बहुत ज्यादा बाहर नहीं समझता था, लेकिन जब हिन्दी हिन्दुस्तान की यूनियन की जबान बनाने के लिये मुल्क में चर्चा शुरू हुई, तो मुझे अन्दाजा हुआ कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में क्या फर्क है और यह मालूम हुआ कि हिन्दी का मतलब उस जबान से है, जो कि संस्कृताइज्ड हो और जिसमें फारसी, अरबी और उर्दू के अल्फ़ाज़ न हों और अगर हों भी, तो उनको दर किया जाये और उनकी जगह नये अल्फाज ले लिये जायें। हमें बार-बार इसकी तरफ तवज्जह दिलायी जाती है और इतमीनान दिलाये जाते हैं और कहा जाता है कि ऐसा नहीं है। और हिन्दी से मुराद यह नहीं है कि उसके वह शब्द या अल्फ़ाज़ जो कि बराबर बोले जाते हैं और जो अरबी, फारसी या उर्दू के अल्फाज़ इसमें हैं, वह निकाल दिये जायें। कहा जाता है, वह निकाले नहीं जायेंगे, बल्कि उसमें रखे गये हैं और रहेंगे। और तसल्ली दी जाती है कि यह सब अल्फाज़ इसमें मौजूद होंगे। लेकिन आप यू.पी. को लीजिये। जैसाकि मैंने पार्टी मीटिंग में भी कहा था, वहां पर उन्होंने हिन्दी जबान को सूबे की जबान और इलाका की जबान करार दिया है और सरकारी जबान भी बना दिया है। चुनाचः उसमें नये-नये अल्फ़ाज़ सामने आ रहे हैं और वहां पर अब नये-नये तरीके बनाये गये हैं और जहां-जहां भी उर्दू अल्फ़ाज़ थे, उनको हटा दिया गया है और उन सबकी जगह पर नये-नये शब्द और अल्फ़ाज़ मुकर्रर किये गये हैं और जो अल्फ़ाज़ अवाम बोलते थे, उनको निकाल दिया गया है। आज विचार करें, तो मैं कहता हूं कि वजीर और नायब वजीर शब्दों को सब जानते हैं। कौन नहीं जानता कि वजीर किये कहते हैं, लेकिन वजीर और नायब वजीर कहना जुल्म हो गया है। उसके बजाय "सचिव" और "उपसचिव" का लफ्ज अख्तियार किया गया है। इसी तरह यही नहीं, बल्कि आम बोलचाल जो सुबह से शाम तक गांव वाले भी बोलते और समझते हैं, जैसे मुकद्दमा, मिस्ल मुद्दई-मुद्दालय आज उनको हटा कर मुकद्दमा के मुतल्लिक ऐसी भाषा और ऐसी जबान लाई जाई जा रही है, जो आम तरीके से सारे देश में हिन्दू भी पूरे तरीके से नहीं समझते हैं और न बोलते हैं। इससे यह बात मालूम होगी कि हिन्दी कहने का मतलब यह है कि यह संस्कृताइज्ड हिन्दी होगी, जिसमें से हजारों उर्दू के शब्द निकाल कर उनकी जगह दूसरे लफ्ज लाये जायें और साथ ही यह भी कहते रहेंगे कि उर्दू अल्फाज़ नहीं निकाले जायेंगे, मगर प्रेक्टिस और अमल में उसके बरअक्स कोशिश की जा रही है कि किस तरीके से हिन्दुस्तानी और उर्दू के अल्फाज़ रखे जायें। मेरे भाई सेठ गोविन्द दास ने अभी-अभी कहा है कि हमें उर्दू से प्रेम है, मगर उर्दू मुसलमानों की जबान है।

*__सेठ गोविन्द दासः__ श्रीमान, व्याख्या के रूप में एक बात है, मैंने यह कभी नहीं कहा कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है।

*__मौलाना हिफजुर्रहमानः__ जो कुछ आपने फरमाया है, वह अब फरमा दीजिये। उर्दू यहां के एक खास फिरके की जबान मान कर ही तो आपने यह ऐतराज किया कि उर्दू जबान के मुतल्लिक मैं यह कहे बगैर नहीं रह सकता कि इसमें बाहर की चीज़ें भी मिलती हैं। मैं गुजारिश करूंगा कि उर्दू को मुसलमान ईरान से लेकर आये थे, न स्पेन से और न अरब से, बल्कि उर्दू जबान यहां के प्रेम और हिन्दू-मुसलमान की बोलचाल और बाजारों, मकानों और गलियों, कूचों में रहन-सहन से वजूद में आई और हिन्दू-मुस्लिम मुहब्बत और प्रेम का संगम बन कर पैदा हुई। मगर आज वही उर्दू जबान, जिसको हम सब कल तक सीने से लगाते थे, आज नफरत से देखते हैं कि चूंकि यह बाहर की चीजें रखती है, इसलिये यूनियन की जबान नहीं हो सकती।

मगर मैं दावे से कहता हूं कि यह गलत है, बल्कि इसके खिलाफ उर्दू में हिन्दुस्तान और भारत के ख्यालात और यहां की संस्कृति के विचार भरे पड़े हैं। आप उर्दू शायरी और शायरों के कलाम को पढ़ें, तो आपको अपनी गलती खुद मालूम हो जायेगी। क्या आप नहीं जानते कि हाल ही के मजहबी शायर मुहसिल काकोरी ने पैगम्बर इस्लाम (सलेअला अलह वसलम) की तारीफ की है, उसमें कहते हैं:

सिम्त काशी से चला जानिबे मथुरा बादल,
बरक के कांधे पे लाई है सवा गंगा जल,
खबर उड़ती हुई आई है जहां में यह अभी,
कि चले आते हैं तीर्थ को हवा पर बादल, (वगैरह वगैरह)।

इस तरीके की शायरी में भी गंगा और मथुरा का जिक्र आया है और शायर ने मक्का, मदीना और ज़मज़म को काशी, मथुरा और गंगाजल के रंग में दिखाया है। ऐसी सूरत में यह कहना कि उर्दू बाहर की जबान है, का ख्याल पेश करती है, मैं किस तरीके से कहूं कि इससे ज्यादा गलत बात दूसरी नहीं है, आज हमारे दिमाग में यह चीज़ आ गई है कि जिसकी वजह से हम महात्मा जी के बने बनाये उसूल को अपने हाथ से मिटाने की कोशिश कर रहे हैं।

मोहसिम की तरह नजीर अकबराबादी की सारी शायरी इसी ढंग पर है, जिसमें हिन्दुस्तान ही के इस्तेआराम, तशबीहात और विचार मौजूद हैं। वह मौत का नक्शा खींचते हुए कहते हैं:

जब चलते-चलते रस्ते में यह गौन मेरी ढल जायेगी,
एक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पायेगी,
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बंट जायेगी,
वही पूत जनवाई बेटा क्या बन्जारन पास न आयेगी,
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बन्जारा।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

बंजारा जब अपना सामान लाद कर चलता है और ठाठ छोड़ जाता है, यानी जब आदमी मरेगा, तो अपना सब सामान यहीं छोड़ जायेगा। उसमें ठाठ, बधिया, वही पूत, जनवाई, बंजारा इसी मुल्क और मुल्क की भाषा के विचार हैं, अरबी और फारसी के नहीं हैं। इसके अलावा अमीर खुशरू, हाल के शायर डॉक्टर इकबाल, अकबर इलाहबादी के कलाम में बहुत कुछ इस मुल्क का है। अगर आप इसे हिन्दुस्तान की जबान कहें, तो मैं मानता हूं। लेकिन इस बात को साफ अल्फाज़ में मानना पड़ेगा, जो मौजूदा संस्कृताइज्ड और अरबी जबान जिसको सारे मुल्क की जबान कहा जा रहा है, वह कभी सारे मुल्क की जबान नहीं बन सकती। इसी तरह उर्दू से हमारी इस्तेला में वह उर्दू हो गई है, जिसमें अरबी फारसी के अल्फाज़ का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल है। मगर वह उर्दू हमारे रहन सहन और हमारी बाजारी कारोबार की उर्दू नहीं बन सकती। इसी लिये महात्मा जी ने ठीक फरमाया था कि अगर यूनियन की कोई आम जबान बन सकती है, जो तमाम मुल्क में बोली और समझी जा सके, तो वह हिन्दुस्तानी है। जिसमें उर्दू और हिन्दी दोनों जबानें समाई हुई हैं और उसमें बंगाली के अल्फाज की भी समाई है और देश की दूसरी जबानों के अल्फ़ाज़ भी आ जाते हैं। इसलिये जो हजरात हिन्दी को मुल्क की जबान, सरकारी जबान बनाना चाहते हैं, वह दूसरे शब्दों में यह कहना चाहते हैं कि सरकारी जबान वह होनी चाहिये, जो संस्कृत ही के जरिये तरक्की पाती रही है। उर्दू के हजारों अल्फ़ाज़ जो उर्दू, फारसी, अरबी के बोले और समझे जा रहे हैं और मुल्क की बोली में दाखिल हैं, उनको निकाल कर संस्कृताइज़्ड अल्फाज बनाये जायें और इस तरह लिट्रेरी हिन्दी मुल्क की जबान हो, इसी तरह उर्दू को मुल्क की जबान बनाने का आजकल यह मतलब लिया जाता है कि वह जबान, जो अरबी, फारसी ही के जरिये तरक्की कर रही है और उसमें संस्कृत के नये अल्फाज की गुन्जायश नहीं है और पुराने अल्फ़ाज़ भी मतरूक हों, यह दोनों बातें और दोनों ख्याल गलत हैं उनके बजाय देश की सरकारी भाषा वह होनी चाहिये, जो उत्तरी हिन्दुस्तान में सादा और सिम्पल रंग में बोली जाती है और जिसमें पूरे देश के अन्दर फैलने और आसानी के साथ फलने और फूलने की गुंजाइश है और वह बनावटी रंग में किसी की बनाई हुई जबान नहीं है। एक बात यह भी काबिल तवज्जह है कि कुछ भाइयों ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जिक्र करते हुए कहा कि महात्मा जी ने कहा था कि हिन्दुस्तान की जबान हिन्दी है, तो मैं आपसे कहूंगा कि उस ख्याल को बदल दिया गया था, चुनाचे आखिरदम तक महात्मा जी ने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के जरिये इसी का प्रचार किया है कि सारे मुल्क की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी ही है। इसके अलावा तीस वर्ष से इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्लेटफार्म से पूरे इत्तेफ़ाक के साथ इस बात का ऐलान होता रहा है कि हिन्दुस्तान

की सरकारी जबान हिन्दुस्तानी ही होगी और उसकी जब भी तारीफ की गई, तो यह कि हिन्दुतानी जबान वह है, जो बिहार से लेकर फ्रान्टियर तक बोली जाती है। अगर वह हिस्सा, जो फ्रान्टियर तक निकल गया है, उसको छोड़ दिया जाये, तब भी यह जबान बिहार से लेकर मशरकी पंजाब तक बोली और समझी जाती है और यही नहीं, बल्कि सारे देश में हिन्दू और मुसलमानों में इसके बोलने और समझने वाले मौजूद हैं। आप महात्मा जी के उसूल को भुलाकर और तीस साला इंडियन नेशनल कांग्रेस के इतिहास और तारीख को भुलाकर हमको उस चीज के कबूल करने पर मजबूर करते हैं, जो जबान की तारीख और कांग्रेस की तारीख दोनों के खिलाफ है। और उसको हम पर इम्पोज करना चाहते हैं और तिवर बदल कर यह कहते हैं कि मुल्क की वही भाषा हो सकती है और होगी, जिसको हम यूनियन की भाषा करार दे दें। मैंने पार्टी मीटिंग में भी चैलेंज किया था और आज भी दरयाफ्त कर रहा हूं कि बतलाया जाये कि आज किसलिये महात्मा जी के उसूल और कांग्रेस के तीस साला फैसले के खिलाफ यह बेदलील बात कही जा रही है; मगर अफसोस कि मुझको न वहां जवाब मिला और न इस वक्त। आखिर बतलाइये तो कि महात्मा जी के उसूलों में तबदीली क्यों हुई और कांग्रेस के फैसले को क्यों बदला गया। मैं तो यह साफ कहूंगा कि बदकिस्मती और बदनसीबी से जब पार्टीशन हुआ, तो उस पार्टीशन की वजह से दिमागों पर जो बुरा असर पड़ा, उसके नतीजे में हम इतने बड़े उसूल को भूले जा रहे हैं और यह पार्टीशन के असरात का ही रिएक्शन है और इसी को सामने रखकर हम यह सोच रहे हैं और उस गम और गुस्से में जो कि खुद अपने हाथों पेश आया और जिसके लिये सभी मुजरिम हैं हिन्द यूनियन के एक फिरके के खिलाफ तंगनज़री और तंग दिली का सबूत पेश कर रहे हैं और जबान के मसले को पोलीटिकली तंग ख्याली से तय करना चाहते हैं और जबान को मुल्क की जबान की हैसियत से फैसला करना नहीं चाहते हैं; मगर यह खतरनाक तर्ज अमल है। मगर हैरान हूं कि बार-बार तकरीरों में इन्हीं जजबात का मज़ाहिरा किया जा रहा है और बाहमी प्रेम और शान्ति से मसला को हल करने की जगह मरऊब करने वाले मुस्से से काम लिया जा रहा है। मगर मेरे ख्याल में, बल्कि हर अकलमन्द की निगाह में, यह तरीका किसी तरह भी मुल्क की तरक्की और जबान की तरक्की दोनों के लिये मुफीद नहीं। गर्ज कोई जबान भी मुल्क की कौमी या सरकारी जबान बनाई जाये, वह ऐसी होनी चाहिये, जो सारे देश के बसने वालों के लिये आसान हो और जिसको वह खुश दिली के साथ कबूल करें और अक्सीरियत के बलबोते पर जबर्दस्ती ठोंसी हुई न हो, वरना तो वह कभी आम कबूलियत हासिल नहीं कर सकती। इसी लिये महात्मा जी ने हिन्दुस्तानी को यूनियन की सरकारी जबान बतलाया था, या बनाने की कोशिश की थी। और इसी को कांग्रेस अपने सीने से लगाकर तीस साल तक दुनियां के सामने इसका प्रचार करती रही है। लिहाजा अगर हम इसके खिलाफ हो कर तंग दायरा में ही रहना चाहते हैं, जैसा कि आज कल

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

हो रहा है, तो यह न होना चाहिये कि दुनिया में जबानें सिमटने से कभी तरक्की नहीं करती, बल्कि फैलने और हर जबान से फायदा उठाकर आम मकबूल जबान बनने से तरक्की पाती है। वह लोगों के दिमागों पर इम्पोज नहीं की जाये, बल्कि अपनी हमागीरी और फैलाव से आम मकबूलियत हासिल करती हैं। चुनाचे तारीख बतलाती है कि दुनिया की जबानों ने तरक्की की है, फैसले से, दूसरी जबानों के लफ्ज ले लेने से उनको अपने रंग में ढाल देने से, अपने सांचे में ढाल देने और अगर आप रेडियो लाउडस्पीकर के लिये नये-नये अल्फ़ाज़ बनाकर लिखें और पेश करेंगे तो एक तमाशा-सा हो जायेगा, जिस तरह का तमाशा मुझ को यू.पी. असेम्बली में नज़र आता है। एक मेम्बर होने की हैसियत से मैंने देखा कि वजीर लोग खड़े होते हैं और वह ऐसे अल्फ़ाज़ पढ़ते हैं, जिनका समझना खुद उनको मुश्किल हो जाता है। इसके बाद दस या तीस मिनट बाद जब वह बोलने को खड़े होते हैं, तो फिर उसी जबान पर आ जाते हैं, जिसको महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी जबान कहा है और जिसको इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी जबान कहा है। इसलिये अगर आप हिन्दुस्तानी जबान को नहीं मानते और हिन्दी भाषा को लाते हैं, तो आप एक सही तरीका इख्तयार नहीं करते हैं। मैं समझता हूं कि चाहे हम मामले में फिरकावाराना तरीके से सोचने का इरादा न किया गया हो, बल्कि यह चीज खुदबखुद हमारे अन्दर आ गई हो, मगर है यही बात। क्योंकि बाज हालात ऐसे होते हैं कि आदमी के दिल में एक चीज आ जाती है और पता भी नहीं चलता कि किस रास्ते से वह आ गई। इसलिये हिन्दुस्तानी की बजाय हिन्दी को लाना हो सकता है कि इस रास्ते से हुआ हो। पार्टीशन हुआ और उसने एक जहर पैदा किया, यह आज उसका ही रिएक्शन हो रहा है। आज यह ख्याल किया जा रहा है कि एक तबके को मरऊब करने के लिये एक ऐसी चीज को सामने लाया जाये कि जिससे यह साबित किया जा सके कि यह जबान का मसला जबान के तरीके से नहीं, बल्कि इस तरीके से हल किया जाये। यह कहा गया है कि हम सिर्फ एक हिन्दी जबान इसलिये चाहते हैं कि हम संस्कृति (तहजीब और कल्चर) एक चाहते हैं। दो नहीं चाहते हैं। मैं नहीं समझता कि इससे आप की क्या मुराद है। हिन्दुस्तान में कुछ लोग पंजाबी जबान बोलते हैं, कुछ बंगाली बोलते हैं और दूसरे दूसरी जुबानें बोलते हैं; अगर यही बात है कि उसका असर संस्कृति और तहजीब और तमद्दुन पर पड़ता है, तो हिन्दुस्तान की सारी रियासतों और इलाकों की जबानों को मटियामेंट कर देना चाहिये। क्योंकि संस्कृति तभी महफूज रह सकती है कि जब कि सारे मुल्क की एक जबान हो। मैं तो समझता हूं कि मुख्तलिफ जबानें बोलने से तहजीब पर कोई खास असर नहीं पड़ता है। स्वीट्जरलैन्ड एक छोटा-सा मुल्क है, जहां चार जबानें बोली जाती हैं और चारों जबानों में वहां काम होता है; उन सबको रियासत और स्टेट ही जबान समझा जाता है, लेकिन उससे वहां की तहजीब पर कोई असर नहीं पड़ता। वहां चार

जबानें यानी इटालियन, फ्रैंच, जर्मन और वहां की जबान बोली जाती है, पर उससे वहां की तहजीब पर कोई असर नहीं पड़ा। और अगर असर पड़ता है, तो फिर ऐसी जबान को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिये, तो किसी तन्हा एक फिरके की तरजीही जबान न हो। बल्कि एक नई जबान हो। या ऐसी जबान हो, जो सब फिरकों के लिये आसान हो और मुल्क के तमाम बसने वाले खुशी से उसको कबूलकर लें। वरना दूसरों पर अपनी संस्कृति को ठूंसना इन्साफ और ईमानदारी के खिलाफ है। कुछ लोग फरमाते हैं कि रूस में लोगों के नाम एक हैं और लोगों का रहन-सहन एक है। माफ कीजिये, इन चीजों की यहां बहस नहीं थी, लेकिन इनको यहां छेड़ा गया। आपको मालूम होना चाहिये कि रूस में कई सौ मुख्तलिफ जबानें बोली जाती हैं और उन सबको स्टेट की जबानें तस्लीम कर लिया गया है। रूस में अब भी धर्म की वजह से अब्दुल रहमान वगैरह लोगों के नाम हैं, तो किसी का नाम अब्दुल रहमान होने से या किसी का शान्ति प्रसाद होने से किसी मुल्क की तहजीब में कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर किसी धर्म की वजह से किसी का नाम खुदा के नाम पर या ईश्वर के नाम पर पड़ता है, तो उससे कोई फर्क नहीं पड़ता और अगर कोई संस्कृति ऐसी है कि जिसमें हर एक शख्स एक ही रंग में ढला नजर आता हो, तो इस मुल्क में मुझे तो वह संस्कृति नज़र नहीं आती। यहां जो साहबान बैठे हैं, उनके मुख्तलिफ लिबास हैं, वह मुख्तलिफ बोलियां बोलते हैं और भांति-भांति के उनके नाम हैं; उससे क्या उनके कल्चर पर असर पड़ता है। नहीं, बल्कि पार्टीशन के असर से आप उन चीज़ों को एक सीधे रास्ते से नहीं, टेड़े रास्ते से लाकर एक कम्यूनिटी को यह बताना चाहते हैं, उसको आयन्दा उस रंग में रंगना है। यह तरीका जबान के मसलों को हल करने का नहीं होता। जबान को जबानों के तरीके पर हल कीजिये। दलायल से हल कीजिये, तब हम समझें कि यह बात है। जो दलायल दिये जा रहे हैं, यह महात्मा गान्धी का उसूल नहीं है और कांग्रेस का उसूल नहीं है। अगर आप जबान को जबान के एतबार से देखें, तो न तो साहित्य हिन्दी इस मुल्क की जबान हो सकती है और न अरबी उर्दू इस मुल्क की जबान हो सकती है, बल्कि जबान तो सहल और सीधी हिन्दुस्तानी बन सकती है। इसलिये इसी भाषा को हम लें और वह भी मुल्क की जबान बन सकती है।

इसके साथ ही साथ जहां तक स्क्रिप्ट का ताल्लुक है, उसमें मैं यह गुजारिश करूंगा कि जबान के मसले में और इसमें कुछ फर्क है। हम देखते हैं कि बाज रसमुलखत ऐसे हैं, बाज लिपि ऐसी है, जिनमें बाज अल्फाज ठीक तरह अदा नहीं हो सकते। ऐसी सूरज में कि आज जिस जबान में हम बोलते हैं, कल आप हिन्दी को मुल्क की राष्ट्रीय भाषा कह कर क्या आप यह नहीं कहेंगे कि तुम को शक्ति कहना चाहिये, ताकत नहीं कहना चाहिये, क्योंकि हिन्दी वाले कहते हैं कि ताकत न बोलो, पर शक्ति बोलो।

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

वह कहते हैं कि हृदय बोलो, कल्ब या दिल न बोलो। समाज कहो, मजलिस न कहो। एवान न कहा जाये, भवन कहा जा सकता है। हम यह कहते हैं कि हिन्दी कहती है कि भवन कहिये और उर्दू कहती है कि एवान कहिये, तब हिन्दुस्तानी सामने आकर दोनों का मिलाप कराती है और दोनों का संगम बन कर प्रेम से कहती है कि समाज भी कहिये और मजलिस भी कहिये। इसी लिये मैं कहता हूं कि ऐसी जबान होनी चाहिये कि जिसमें आम तौर पर बोले जाने वाले सब अल्फ़ाज़ हों। जिसमें ताकत भी हो और शक्ति भी, हृदय भी और कल्ब भी। और समाज, मजलिस और सोसायटी सभी बोलने की गुन्जायश हो और वह ऐसी जबान हो, जिसमें हम आजादी से बोल सकें। रसमुलखत अगर आप देवनागरी को रखना चाहते हैं, तो मैं इसके खिलाफ नहीं हूं। लेकिन अगर आप अव्वल पोजीशन में देवनागरी को रखते हैं, तो एडिशिनल पोजीशन में उर्दू लिपि को भी रखें। सरकारी इख्तलात वगैरह दूसरी इन्फर्मेशन और अदालत के कामों में बराबर उर्दू रस्मुलखत की भी इजाजत होनी चाहिये।

श्री महावीर त्यागी: आप हिन्द से कैसे मंजूर कहेंगे?

मौलाना हिफजुर्रहमान: मैं समझता हूं कि अगर आप इस तरीके से जबान के मसले को हल करें, तो यकीनन मुल्क की जबान ऐसी जबान होगी, जिससे सबको पूरे तौर पर इतमीनान होगा, जिसको लोग अपने मुल्क में खुशी के साथ बोल और समझ सकेंगे और उसके जरिये मुल्क के मामलात में दिलचस्पी ले सकेंगे।

इसके साथ हिन्दसों का भी ताल्लुक है, जैसा कि अभी मेरे भाई त्यागी जी ने कहा, तो जहां, तक पन्द्रह साल तक अंग्रेजी को रखने का सवाल है, मुझे इससे कोई खास बहस नहीं है। इस बारे में मैं एक और मौके पर अर्ज कर चुका हूं। मैं तो कहता हूं कि आप इस मुल्क में यहां की जबान को, इसे चाहे आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी कहें, जितनी जल्द ही लाना चाहें, लायें। मुझे इससे इन्कार नहीं है। लेकिन जो दलाइल अंग्रेजी को पन्द्रह साल तक कायम रखने के सिलसिले में और जो अंग्रेजी न्यूमर्ल्स को रखने के बारे में दिये गये हैं, उनसे मैं सहमत हूं। अगर हम पन्द्रह साल अंग्रेजी जबान को तसलीम करते हैं, तो अंग्रेजी हिन्द से खुद-बखुद शामिल हो जाते हैं।

श्री महावीर त्यागी: अगर आप उर्दू लिखेंगे, तो सात सौ छयासी तो अंग्रेजी में ही लिखा जायेगा।

मौलाना हिफजुर्रहमान: अगर आप अंग्रेजी को तसलीम करते हैं, तो उर्दू या अंग्रेजी में सात सौ छयासी लिखने में हमारे नज़दीक कोई खास दिक्कत नहीं है। जो दयायल अंग्रेजी हिन्दस के लिये दिये गये, उनको सुनने से पहले मैं उनकी अहमियत नहीं समझता था। अलबत्ता उसके बाद मुझे इस बात का अहसास हुआ

कि जो जबान एक मुद्दत तक रखी जाती है, उसके न्यूमर्ल्स रखने से हमें अपने काम में ज्यादा सहूलियत होगी, बनिस्बत देवनागरी हिन्दसों के रखने के, लेकिन ज्यों-ज्यों तरक्की होती जायेगी ओर अंग्रेज़ी की जगह पर हिन्दुस्तानी होती जाये, तो आप बेशक हिन्दुस्तानी हिन्दसे, जो भी आप तसलीम करें, उनको भी काम में ला सकते हैं, यानी नागरी हिंदसे इस्तेमाल कर सकते हैं।

जहां तक डाइरेक्टिव प्रिंसिपल का ताआल्लुक है, उसमें मैं यह समझता हूं कि उसमें जो आपने यह रखा है कि हिन्दी ऐसी तरक्की होनी चाहिये, जिसमें तमाम हिन्दुस्तान की जबानें और कल्चर समा सके। तो मैं यह कहना चाहता कि आप हिन्दी के बजाय यह हैसियत हिन्दुस्तानी को दीजिये और उसमें यह साफ कर दिया जाये कि वह जबान ऐसी हो कि जिसमें इतना फैलाव हो कि उसमें साहित्य हिन्दी, साहित्य उर्दू, उड़िया, पंजाबी, बंगला इन तमाम जबानों के फैसले की गुंजायश हो।

जहां तक रिजनल जबान का और रिजनल लैंग्वेज का ताल्लुक है, जो उस फेहरिस्त और लिस्ट दी गई है, मैं उससे सहमत हूं। मैं इसकी ताईद करता हूं। मैं मानता हूं कि बेशक इलाकों में और सूबों में उन जबानों को सरकारी जबान की हैसियत में दूसरे दर्जे में यकीनन होना चाहिए। यू.पी. में मैं ईमानदारी के साथ अपनी यह राय रखता हूं कि हिन्दुस्तान के इतने बड़े सूबे में, जो यू.पी. कहलाता है, और देहली में, इन दो सूबों में उर्दू जबान यानी सिम्पल और साफ जबान को भी सरकारी जबान होना चाहिये था, क्योंकि इस जबान का यह बहुत बड़ा गहवारा है और इसी में इसने परवरिश पाई है। अब्बल तो यू.पी. में हिन्दुस्तानी जबान ही को सरकारी जबान होना चाहिये। लेकिन अगर आज हिन्दी रखी गई है तो उर्दू को भी दूसरी जबान की हैसियत से होना चाहिये, जो सरकारी जबान की तरह तालीम में, हाई कोर्ट में और लेजिस्लेचर में कानून के अन्दर कायम रहे। वह उन जगहों में गुंजायश पा सके और इस्तेमाल की जा सके और उसको बरता जा सके।

इसलिये मैं अपनी तकरीर को खत्म करते हुए हाउस से, भवन से, अपील करूंगा कि वह इस बात पर गौर करें कि हमारी युनिट की जबान हिन्दुस्तानी होनी चाहिये, जो तमाम भाषाओं के मुकाबले में एक ऐसी सिम्पल जबान है, जो यूनियन की और मुल्क की जबान हो सकती है और जिस तरह मैंने स्वीट्जरलैंड की मिसाल दी कि वहां चार-चार जबानें इस्तेमाल होती हैं, उसी तरह अगर पन्द्रह साल तक अंग्रेज़ी जबान यहां रहेगी, तो उर्दू को भी अगर मुस्तकिल तौर पर साथ में रखा जाये और उसकी लिपि को भी शामिल रखा जाये, तो इससे कोई दिक्कत पेश नहीं आती। इतने बड़े मुल्क के लिये अगर दो लिपि हमेशा के लिये जारी रहें, तो कोई दिक्कत नहीं पेश आती। कोई परेशानी पेश नहीं आती। और अगर सिकुलर स्टेट को हम सही मानों में सिकुलर स्टेट मानते हैं, तो मैं गुजारिश करूंगा

[मौलाना हिफजुर्रहमान]

कि सिकुलर स्टेट एक दावा है और दावा कभी सही नहीं हो सकता। जब तक उसके पीछे दलील और रीजन न हो। अगर हम सिकुलर स्टेट कहते हैं, तो हमें इस किस्म के मामलों में तंग दायरे में होकर सोचने की कोशिश नहीं करनी चाहिये और उन जबानों को जिनको हमने यहीं परवरिश किया है। और जिस उर्दू को हम आज तक यहां कहते रहे, तर्क नहीं करना चाहिए। इन मसलों पर हमें अपने दिल को पूरे तौर पर साफ करके सोचना चाहिये। तब यकीनन आप इस बात से सहमत होंगे कि मुल्क की जबान हिन्दुस्तानी और हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये और देवनागरी लिपि के साथ-साथ उर्दू स्क्रिप्ट और लिपि भी शामिल होनी चाहिये।

***अध्यक्षः** यह सभा कल प्रातःकाल नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा मंगलवार तारीख 13 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.33.49
320

अंक 9
संख्या 33

मंगलवार
13 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[नवीन भाग 14-क (भाषा) पर विचार किया गया] .... 2113–2218]

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 13 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रात: नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—(जारी)

नवीन भाग 14-क (भाषा)—(जारी)

*__अध्यक्ष:__ दो या तीन संशोधन और हैं जिन्हें मैं आधारभूत समझता हूं। एक संस्कृत भाषा के संबंध में, किन्तु मुझे पंडित मैत्र यहां नहीं दिखाई देते। दूसरा संशोधन श्री शंकर राव देव के नाम से है, जिसका आशय यह है कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् अंग्रेजी भाषा के पक्ष में सभी रक्षण स्वत: समाप्त हो जाने चाहिये। इसे भी मैं एक आधारभूत संशोधन समझता हूं। इसके अतिरिक्त एक संशोधन और है, जिसकी सूचना डॉ. सुब्बारायन ने दी थी। वह रोमन लिपि के संबंध में है। पहले मैं इनके प्रस्तावकों को बुलाऊंगा और उसके पश्चात् सामान्य बहस होगी।

*__श्री आर.वी. धुलेकर__ (संयुक्तप्रान्त: जनरल): संशोधन संख्या 240 की सूचना मैंने दी है।

*__अध्यक्ष:__ तब आइये।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त: जनरल): एक संशोधन मेरे नाम से भी है।

*__अध्यक्ष:__ संशोधन सभी के नाम से हैं किन्तु मैंने कहा था "आधारभूत संशोधन"।

*__श्री आर.वी. धुलेकर:__ अध्यक्ष महोदय, हिन्दी के देश की राज-भाषा हो जाने से मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को नहीं हो सकती। मैं सभा को स्मरण कराना चाहता हूं कि मैं जब इस सभा में पहले दिन बोला था तो मैं हिन्दी में ही बोला था। उस समय उस पर आपत्ति की गई थी और यह कहा गया था कि मैं जिस भाषा को देश की राष्ट्र-भाषा कह रहा हूं उसमें न बोलूं मैंने इस आशय के एक संशोधन को उपस्थित करने का प्रयास किया था कि प्रक्रिया समिति सभी नियमों को हिन्दी भाषा में बनाये और उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर दिया जाये। मैंने यह कहा था कि हिन्दी के संस्करण को ही प्रामाणिक संस्करण

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री आर.वी. धुलेकर]

समझा जाये और यदि निर्वचन के संबंध में कोई विवाद हो तो हिन्दी के संस्करण को ही प्रमाण माना जाये। उस दिन यद्यपि स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय ने मेरी बातों को अनियमित घोषित करने का प्रयास किया था किन्तु मैंने यह मांग की थी कि संविधान सभा का सदस्य होने के नाते, तथा इस देश की एक सन्तान होने के नाते मुझे उस भाषा में बोलने का अधिकार है जिसे मैं इस देश की राष्ट्रभाषा समझता हूं। इस बीच एक शक्ति उत्पन्न हो गई और आज मैं यह देखता हूं कि देवनागरी लिपि सहित हिन्दी इस देश की राज-भाषा हो गई है।

*__कुछ माननीय सदस्यः__ अभी नहीं।

*__श्री आर.वी. धुलेकरः__ कुछ लोग कहते है "अभी नहीं" किन्तु मैं यह कहता हूं कि यह एक तथ्य है। आप उस दिन को न आने देने के लिए कितना ही प्रयास क्यों न करें और, यद्यपि मैं उसे सुदिन समझता हूं किन्तु, भले ही आप उसे कुदिन समझें परन्तु वह दिन आ ही गया है। आप कितना ही विरोध क्यों न करें किन्तु देश ने यह निर्णय कर ही लिया है। कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी भाषा के साथ रिआयत की गई है किन्तु मैं समझता हूं "नहीं यह बात नहीं है।" यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही हुआ है। यह उस ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ है जो कई वर्षो से, वास्तव में कई शताब्दियों से प्रवर्त्तन में रही है। मैं निवेदन करता हूं कि स्वामी रामदास ने हिन्दी में लिखा, तुलसीदास ने हिन्दी में लिखा, और आधुनिक काल के सन्त स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में लिखा। वे गुजराती थे किन्तु लिखते थे हिन्दी में। वे हिन्दी में क्यों लिखते थे? इस कारण कि इस देश की राष्ट्र-भाषा हिन्दी थी। इसके अतिरिक्त मैं निवेदन करता हूं कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जब कांग्रेस में प्रवेश किया तो उन्होंने तुरन्त ही अंग्रेजी भाषा छोड़ दी और हिन्दी में बोलने लगे। उन्होंने अंग्रेजी में लिखने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपनी जीवनी भी हिन्दी में लिखी और उसका महादेव देसाई से अनुवाद कराया। जिन लोगों को यह भ्रम है कि यह भाषा लादी जा रही है, उनसे मेरा निवेदन है कि वह लादी नहीं जा रही है। हिन्दी इस देश में सर्वत्र बोली जाने लगी है और अब वह घर कर गई है। भाषाओं के बीच तनातनी रही और वे एक दूसरे से बाजी मारने की कोशिश में रहीं। जो भाषा शक्ति-सम्पन्न थी और जिसमें राष्ट्र-भाषा के तत्व थे वही आज इस देश की राष्ट्र-भाषा हो सकी है।

*__श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी__ (मैसूर राज्य): क्या हम राज-भाषा नहीं कहेंगे?

*__श्री आर.वी. धुलेकरः__ मैं कहता हूं कि वह राज-भाषा है और वह राष्ट्र-भाषा भी है। आपको इस पर आपत्ति हो सकती है। आप भले ही अन्य किसी राष्ट्र के हों किन्तु मैं भारतीय राष्ट्र का, हिन्दी राष्ट्र का, हिन्दू राष्ट्र का, हिन्दुस्तानी राष्ट्र का हूं। मैं कह नहीं सकता कि आप यह क्यों कह रहे हैं कि वह राष्ट्र-भाषा

नहीं है। आपमें से कुछ लोग चाहते हैं कि संस्कृत राष्ट्र-भाषा हो जाये। मेरा निवेदन है कि संस्कृत अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है—वह विश्व की भाषा है। संस्कृत भाषा में चार सौ धातु हैं। संस्कृत सब धातुओं की मूल है। संस्कृत सारे विश्व की भाषा है। आप देखेंगे कि हिन्दी के राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा हो जाने के पश्चात् संस्कृत किसी दिन विश्व की भाषा हो जायेगी।

आज, चूंकि हमें राष्ट्रीयता से प्रेम है इसलिये मैं यह कहता हूं कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा है। आप कहते हैं कि हिन्दी राज-भाषा है, किन्तु मैं यह कहता हूं कि वह राष्ट्र-भाषा है। आपका यह कथन गलत है कि वह राज-भाषा है। भाषाओं की दौड़ में हिन्दी आगे बढ़ निकली है और अब आप उसे अपने लक्ष्य तक पहुंचने से नहीं रोक सकते। मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है कि संसद को इसका निर्णय करना चाहिये कि इस समय की राज-भाषा अर्थात् अंग्रेजी देश में कब तक चलती रहेगी। आपको कांग्रेस से भय है। आपको अपनी भावी संसद से भय है। इसी कारण इस प्रस्ताव में आपने आयोगों और समितियों का आयोजन किया है। मैं आपको बताना चाहता हूं कि जब दो या तीन वर्ष के पश्चात् केन्द्रीय विधान-सभा में नये सदस्य आयेंगे तो ये सीगफीड और मैजिनों रक्षा-पंक्तियां किसी काम की नहीं रह जायेंगी। वे यही कहेंगे कि इस देश की भाषा हिन्दी है। मैंने तो यही निश्चय किया है।

*__एक माननीय सदस्यः__ किन्तु आपका निश्चय हमारे लिये बन्धनकारी नहीं है।

*__श्री आर.वी. धुलेकरः__ मैं इस आशय के एक संशोधन को भेज चुका हूं कि इन सब आयोगों और समितियों को समाप्त कर देना चाहिये। आप कितना ही सुदृढ़ बांध क्यों न बना डालें। किन्तु भारत की राष्ट्रीय गंगा की वेगवती धारा उसे तोड़ कर अलग फेंक देगी और आयोगों और समितियों के संबंध में एक खण्ड को रखने में आपने जितना भी परिश्रम किया है वह विफल हो जायेगा। उसे प्रविष्ट करके आप केवल विद्वेष के बीज बोयेंगे और ....

*__अध्यक्षः__ मैं माननीय सदस्य महोदय से कहता हूं कि वे विचाराधीन प्रश्न को उठायें और अपने विषय तक ही सीमित रहें। मेरे विचार से इस प्रकार बोलने से आप अपने मामले को आगे नहीं बढ़ा रहे हैं।

*__श्री आर. वी. धुलेकरः__ श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि आप पहले ही दिन ऐसी कार्यवाही कर रहे हैं जिसे मिटाने के लिए संसद को कदम उठाना पड़ेगा। अर्थात् उसे यह निर्णय करना पड़ेगा कि इन आयोगों और समितियों को समाप्त किया जाये।

यदि आप इस राष्ट्र-भाषा के विकास के लम्बे इतिहास पर विचार करेंगे तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि इस देश की राज-भाषा को पन्द्रह वर्ष तक रहने देने का मैं केवल इस कारण विरोध नहीं कर रहा हूं मेरी यह धारणा है कि उसके नाम पन्द्रह वर्ष का पट्टा लिखने से राष्ट्र का हितसाधन नहीं होगा। मेरे मित्र मुझसे पूछते हैं, "अंग्रेजी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार न करके आप

[श्री आर.वी. धुलेकर]

करेंगे क्या?" मैं आपसे विनयपूर्वक तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि आप स्थिति पर विचार करें। मैं यह अवश्य कहूंगा कि आप देश के हृदय से परिचित नहीं हैं। अंग्रेजी भाषा वीरों की भाषा नहीं है। वह वैज्ञानिकों की भी भाषा नहीं है। विज्ञान का एक शब्द भी अंग्रेजी भाषा का नहीं कहा जा सकता और न अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त अंक ही उस भाषा के अंक हैं। आप कहते हैं अगले पन्द्रह वर्षों तक इस अंग्रेजी भाषा को इस देश की राज-भाषा के रूप में रहने दिया जाये। जब मैं यह विचार करता हूं कि स्वराज्य स्थापित होने के पश्चात् भी हमारे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय तथा वैज्ञानिक अंग्रेजी भाषा में ही काम करते रहेंगे तो मैं कांप उठता हूं। और लोग क्या कहेंगे? लार्ड मैकाले की आत्मा क्या कहेगी? वह निश्चय ही हम पर हंसेंगे और कहेंगे "जानी वाकर का अब भी बोल बाला है।" वे यह भी कहेंगे, "भारतीयों को अंग्रेजी भाषा से इतना प्रेम हो गया है कि वे उसे पन्द्रह वर्ष तक रहने देना चाहते हैं।" यहां कुछ लोग कहते हैं कि वह बीस वर्ष तक रहेगी, और कुछ कहते है कि वह पचास वर्ष तक रहेगी, और कुछ तो यह कहते हैं कि न जाने कब तक वह हमारी राज-भाषा बनी रहेगी।

मैं अपने इन मित्रों से एक सीधा-सादा प्रश्न पूछता हूं और वह यह है। 1920 में अथवा 1885 में भी—क्योंकि इस सभा में कई लोग मुझसे वृद्ध हैं—हम इस देश की भाषा के संबंध में क्या विचार कर रहे थे? स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् हमारी भाषा क्या होनी चाहिये? मैं यह कहूंगा कि जिन लोगों का यह विचार था कि अंग्रेजी हमारी राज-भाषा होनी चाहिये वे सोते ही रह गये और स्वराज्य आ गया। जब 18 वर्ष की आयु में मैंने कांग्रेस में प्रवेश किया तो मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि स्वराज्य आयेगा। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह न था कि एक विशेष प्रकार से हम अपना शासन चलायेंगे। मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि हमारी भाषा कैसी है। मुझे इसमें कुछ भी संदेह न था कि हमारा देश कैसा है। मुझे इसमें कुछ भी सन्देह न था कि हमारी सभ्यता और संस्कृति कैसी है। यदि मुझे कुछ सन्देह ही होता तो मैं सुबह से शाम तक इस देश की सेवा क्यों करता और वह भी अपने जन्म दिन से ही अर्थात् जब से मैं वयस्क हुआ? मुझे विश्वास था कि मेरा देश मेरी अपनी भाषा को, तथा संस्कृति को, अपनायेगा। किन्तु आज मैं लोगों से यह सुन रहा हूं कि इस देश में पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी रहने देनी चाहिये। क्या अभी हम उससे तृप्त नहीं हुये हैं? वह पिछले दो सौ वर्षो से चलन में रही है और इस काल में हमें एक विदेशी भाषा के कारण दासत्व का अनुभव हुआ है। इस अंग्रेजी भाषा ने किसी महान पुरुष को उत्पन्न नहीं किया। हमारे दासत्व काल में भी हमारे यहां महान् पुरुषों ने जन्म लिया। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी भाषा के कारण ही हमें स्वातंत्र्य प्राप्त हुआ। मैं कहता हूं "नहीं"। केवल वही लोग स्वातंत्र्य-संग्राम में भाग लेने आगे बढ़े जो अंग्रेजी भाषा को भूल गये थे, और जो अंग्रेजी भाषा से बहुत घृणा करते थे, और जिन्हें यह विदित था कि अंग्रेजी भाषा एक विष है जिससे हमारे देश की मृत्यु हो जायेगी। मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर से नम्रतापूर्वक कहता हूं, "मैं आपकी भाषा नहीं समझता हूं। आप भी मेरी भाषा नहीं समझते हैं। आप इस देश की भाषा से पिछले चालीस वर्षों तक परिचित नहीं थे इसलिये आज आप मेरी भाषा नहीं समझ सकते।"

श्रीमान्, मैं यह स्वीकार करता हूं कि आज मैं उनकी भाषा को नहीं समझता हूं और आगे चल कर भी नहीं समझूंगा। वे अंग्रेजी भाषा के समर्थन में तर्क उपस्थित कर रहे हैं। श्रीमान् वे सदा यही विचार करते थे कि स्वराज्य नहीं आयेगा। इसी कारण इस ओर के मेरे मित्र हमेशा अंग्रेजी में ही काम करते रहे। हम छोटे लोगों ने अपने बढ़े-चढ़े पेशों को छोड़ दिया किन्तु अन्य लोग अपने बढ़े चढ़े पेशों को अंग्रेजी भाषा की सहायता से चलाते रहे। आज भी यदि संघीय न्यायालय में मैं वकालत करने लगूं तो मेरी वकालत खूब चल सकती है। किन्तु हमने गरीब रहने, देश को स्वतंत्र करने, तथा देश को बन्धनों से, विदेशी भाषा के बन्धनों से मुक्त करने का प्रण किया है। किन्तु यहां आप यह कहते हैं कि इस परिवर्तन को पन्द्रह वर्ष के लिए स्थगित कर दिया जाये। तब मैं पूछता हूं, आप वेदों और उपनिषदों को कब पढ़ेंगे? आप रामायण और महाभारत कब पढ़ेंगे और आप लीलावती तथा गणित की अन्य पुस्तकों को कब पढ़ेंगे? आप अपने तंत्रों को कब पढ़ेंगे? क्या पन्द्रह वर्ष के पश्चात्? आप लोग यह कह सकते हैं क्योंकि आप इस कथन में विश्वास रखते हैं कि "आप मरा तो जग मरा। हम इस देश में, इस पवित्र देश में, अंग्रेजी भाषा को राज-भाषा के रूप में आरोपित कर ही दें।" मेरे मित्र कहते हैं कि वे हिन्दी भाषा नहीं सीख सकते और उसके अंकों को तो कदापि नहीं सीख सकते। तब मैं आपसे पूछता हूं कि संसार के अन्य देश किस भाषा को आपकी राज-भाषा समझते हैं? मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो भारत-सरकार के विश्वास-भाजन हैं किन्तु मुझे यह सूचना मिली है कि रूस में जब हमारे राजदूत ने अपने परिचयपत्रों को अंग्रेजी भाषा में दिया तो उस देश ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। उनसे कहा गया कि उन्हें अपने परिचयपत्रों को अपनी ही भाषा में प्रस्तुत करना चाहिये। जब उन परिचयपत्रों को हिन्दी में भेंट किया गया तभी उन्हें स्वीकार किया गया। एक देश रूस है जो यह जानता है कि किसी देश की भाषा का किस प्रकार सम्मान करना चाहिये और एक हमारे मित्र हैं जो यह भी नहीं जानते कि अपनी भाषा का सम्मान किस प्रकार करना चाहिये। वे यह समझते हैं कि इस देश में वे अजनबी हैं यद्यपि यह देश उनका अपना देश है। वे यह कहते हैं कि धुलेकर एक ऐसी भाषा बोल रहे हैं जो हमारे देश की भाषा नहीं है। मैं यह कहता हूं और मेरा यह दावा है कि इस सभा में ही मैं एक ऐसा आदमी हूं जो हिन्दी भाषा से, मातृ-भाषा से प्रेम कर सकता है। मैं ही एक ऐसा आदमी हूं जो भारतीय विचारों को व्यक्त कर सकता हूं। *(विघ्न)*। मेरे अधिकांश मित्रों का जन साधारण से कोई सम्पर्क नहीं है। दर्शकों की गैलरियों की ओर देखिये। कितने थोड़े से लोग आपकी बात सुनने आये हैं। वे इस कारण नहीं आये हैं कि वे जानते हैं कि अब आप देश का हित साधन नहीं कर रहे हैं और वह इससे सिद्ध हो जाता है कि आपने इतने गलत और इतने बड़े प्रस्ताव को उपस्थित किया है कि वह समझ ही में नहीं आ सकता। आपको अपने प्रस्ताव में कम से कम शब्द रखने चाहियें। वह जितना लम्बा होगा उतना ही हमारा संविधान आशक्त हो जायेगा। आपने उस पर कई चीजें लटकाने तथा मोर्चाबन्दी करने और मैजिनो रक्षा-पंक्ति बनाने का प्रयास क्यों किया है। आपने यह इसलिये किया है कि आप का दिल यह कहता है कि यह देश की आवाज नहीं है। कहा जाता है कि हिन्दी भाषा को हमें देवनागरी लिपि और अनेक प्रकार के तांत्रिक अंकों के साथ नहीं रखना चाहिये और....

***एक माननीय सदस्यः** और मंत्रों के साथ भी।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** और मंत्रों के साथ भी ताकि भारत की आने वाली पीढ़ियां उसे ठुकरा न दें। मैं नम्रतापूर्वक बताना चाहता हूं कि इन मैजिनों रक्षा-पंक्तियों के होते हुये भी हिन्दी इस देश की भाषा होगी और देवनागरी लिपि तथा अंक इस देश की लिपि और अंक होंगे। मेरी यह प्रार्थना है कि इस प्रश्न को संसद के निर्णय के लिए छोड़ दिया जाये। क्या मैं अपने मित्रों से एक प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या वे लोकतंत्र से भय करते हैं? क्या वे संसद से भय करते हैं? क्या वे हमारी भावी संसदों में आने वाले अपने ही पुत्र-पौत्रों से भय करते हैं? क्या वे इसी कारण इस प्रश्न को संसद के निर्णय के लिए नहीं छोड़ना चाहते? वही लोग लोकतंत्र से भय करते हैं जो आयोगों और समितियों के लिए उपबन्ध पर उपबन्ध रख रहे हैं और वह इस कारण कि लोकतंत्र पर उनका विश्वास नहीं है। उनका इस पर विश्वास नहीं है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि न्याय करेंगे।

कल मेरे मित्र मि. हिफजुर रहमान ने एक अपील की थी—मैं कह नहीं सकता कि वे सभा में उपस्थित हैं या नहीं—जी हां, वे यहां है—और मैं उसके उत्तर में एक दो शब्द कहना चाहता हूं। उनको इससे बहुत परेशानी है और वे इससे बहुत उलझन में भी पड़े हुये हैं कि भारत के लोग हिन्दुस्तानी को क्यों भूल गये है, उर्दू लिपि को और फारसी लिपि को और हिन्दुस्तानी के नाम से विख्यात सभी सरो-सामान को क्यों भूल गये हैं। महात्मा गांधी का नाम लेकर उन्होंने अपील की थी कि हम हिन्दुस्तानी को देश की राज-भाषा बनायें और उसे फारसी और देवनागरी लिपियों में लिखें। मेरे विचार से वे इतिहास को भूल गये हैं और मैं उन्हें उसका कुछ स्मरण कराना चाहता हूं।

पिछले अडतीस वर्षों में, जब मैं कांग्रेस में था, इस मनाने की नीति का, अथवा इस मैत्री की नीति का, अथवा इस हिन्दुस्तानी के मामले का जो इतिहास रहा उसे कुछ स्मरण करने की आवश्यकता है। लोकमान्य तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और महात्मा गांधी का नाम लेकर मैं पूछता हूं कि पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों को भी क्यों स्थापित नहीं किया जाये? मैं यह कहता हूं कि कुछ हजार मुसलमानों के अतिरिक्त, जो इस देश के सपूत हैं, और जो अब भी हमारे साथ हैं, अन्य सभी मुसलमान हमारे साथ नहीं रहे, वे इस देश को अपना देश नहीं समझते थे। इसी कारण वे पृथक् होना चाहते थे। वे पृथक् निर्वाचन क्षेत्र चाहते थे। 1916 में भी और उसके पूर्व भी कांग्रेस यह जानती थी कि वह विदेशी शासकों के विरुद्ध एक त्रिमुखी संग्राम नहीं कर सकती और इसलिये.....

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप अपने संशोधन के संबंध में बोल रहे हैं? आपका साथ कोई नहीं दे रहा है।

***श्री आर.वी. धुलेकरः** जी हां, मैं हिन्दुस्तानी का विरोध कर रहा हूं और मैं जानता हूं कि आप मेरा साथ कभी नहीं देंगे।

मैं यह कह रहा था कि कांग्रेस यह जानती थी कि वह त्रिमुखी संग्राम नहीं कर सकती है और इसीलिये देश के अधिकांश मुसलमानों को संग्राम से अलग

रखना पड़ा। भारतीयों और अंग्रेजी सरकार के बीच सीधे-सीधे संग्राम हुआ। और इस मनाने वाली नीति के कारण...

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य महोदय को यह स्मरण कराना चाहता हूं कि यह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है। हम भाषा के प्रश्न पर बहस कर रहे हैं और वह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक प्रश्न नहीं है।

श्री आर.वी. धुलेकर: जी नहीं, श्रीमान्, किन्तु मैं मौलाना रहमान को जानता हूं और मुझे संयुक्त प्रान्त का अनुभव भी है। उन्होंने वहां और यहां भी भाषण दिये हैं। मैं यह कहता हूं कि मैंने कल जो कुछ सुना वह साम्प्रदायिक आधार को मानकर कहा गया था। मैं उन्हें इतिहास का राष्ट्रीय निर्वचन सुनाने जा रहा हूं। मौलाना आजाद और किदवई साहब के समान हमारे मित्रों को छोड़कर अधिकांश मुसलमान.....

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल)**:** क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या यह सब प्रासंगिक है?

***अध्यक्ष:** जी नहीं, मैं वक्ता महोदय को इसका कई बार स्मरण करा चुका हूं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** किन्तु फिर भी वे वही बातें कहते जाते हैं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार से आप अपने पक्ष का समर्थन नहीं कर रहे हैं।

***श्री आर.वी. धुलेकर:** श्रीमान्, मैं इस विषय पर अधिक कुछ नहीं कहूंगा। अंग्रेजों से संघर्ष करने के लिए उस नीति को अपनाना आवश्यक था। अब हमें यह ज्ञात हुआ है कि वह नीति असफल रही और उसके कारण हम विपत्ति में पड़ गये हैं। हमने इन कष्टों को मैत्री से और भ्रातृभाव से झेला। हमने कष्ट सहन किये और कष्ट सहन कर रहे हैं। इसलिये मुझे यह बहुत दु:ख के साथ कहना पड़ रहा है कि इस देश के प्रश्न को असाम्प्रदायिक आधार पर हल करने के लिये सच्चाई से प्रयत्न करने पर भी परिणाम यह हुआ है कि हमें अब भी कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं। इसलिये मैं चाहता हूं कि मेरे मित्र मौलाना हिफजुर रहमान यह अच्छी प्रकार समझ लें कि यह हमारे सच्चे प्रयत्नों, अर्थात् विफल हुये सच्चे प्रयत्नों की प्रतिक्रिया ही है कि दूसरी ओर तेजी आ गई है.....

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** वाह, वाह!

***श्री आर.वी. धुलेकर:** मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मैं अपने माननीय मित्र प्रधानमंत्री महोदय के विचारों को व्यक्त कर सका हूं। वास्तव में यदि उनके प्रयत्न सफल हुये होते और उन्होंने तथा राष्ट्रपिता ने जो कुछ कहा था वह चरितार्थ हुआ होता तो मुझसे अधिक प्रसन्नता और किसी को न हुई होती। एक क्षण के लिये भी यह विचार न कीजिये कि मैं साम्प्रदायिक विचार रखता हूं। यदि मैं हिन्दुस्तानी

[श्री आर.वी. धुलेकर]

का विरोध करता हूं तो इस कारण विरोध नहीं करता हूं कि मुझे इन लोगों से प्रेम नहीं है। मैं उसका विरोध इनसे प्रेम, सच्चा प्रेम, भाई-भाई का प्रेम होने के कारण ही करता हूं। यदि आज कोई व्यक्ति हिन्दुस्तानी के पक्ष में बोले तो उसकी बातों को कोई नहीं सुनेगा। आपकी बातों से लोगों को भ्रम होगा। और लोग कुछ का कुछ बयान करेंगे। इसलिये मौलाना हिफजुर रहमान को सच्चे दिल से मैं यह सलाह देता हूं कि वे दो तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करें, उसके पश्चात् वे उर्दू भाषा को, फारसी लिपि को अपना सकेंगे। किन्तु आज वे इसका विरोध न करें क्योंकि हमारा राष्ट्र, वह राष्ट्र जिसने अनेक कष्ट सहन किये हैं, आज उनकी बातें सुनने के लिए तैयार नहीं है। मैंने उनकी बातें सुनी हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूं और मैं यह जानता हूं कि उनकी धारणा क्या है। मैं स्वयं फारसी का विद्यार्थी रहा हूं। मैंने उर्दू भी पढ़ी है और मैं उससे प्रेम करता रहा हूं। मैं यह कह सकता हूं कि मैंने फारसी और उर्दू में अपने मित्र मौलाना हिफजुर रहमान से कहीं अधिक लिखा है। बीस वर्ष तक मेरे पास एक मुसलमान क्लर्क रहा। जब झांसी में और अन्य जगहों मे हिन्दु मुसलमानों का दंगा हुआ तो वह मेरे ही पास रहा। मेरे कई मित्र मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे कहा, "आपके पास एक मुसलमान क्लर्क है, उसे निकाल दीजिये।" मैंने कहा, "नहीं वह मेरा भाई है, वह मेरा अपना संबंधी है, रक्त संबंधी है।" मेरा यह विश्वास है कि भारत में रहने वाले तथा पाकिस्तान में रहने वाले सभी मुसलमान मेरे रक्त संबंधी हैं और मेरे भाई है। अपने देश पर तथा अपने पर अटल विश्वास होने के कारण ही मैं आज तक कांग्रेस में हूं। कांग्रेस हिन्दुओं अथवा मुसलमानों की नहीं है। वह सभी की है यह सुन कर आश्चर्य हो सकता है: कि एक व्यक्ति, जिसका यह दावा हो कि हिन्दी राष्ट्र भाषा हो वह यह भी दावा करता है कि वह फारसी और उर्दू का भी मित्र है। मुझे बहुत सहानुभूति है......

*__अध्यक्ष:__ अच्छा यह होगा कि माननीय सदस्य महोदय अब समाप्त कर दें। उनकी बातें प्रासंगिक नहीं हैं और सभा उन्हें सुनने के लिये तैयार नहीं है।

*__श्री आर.वी. धुलेकर:__ इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधनों को उपस्थित करता हूं और इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं कि देवनागरी लिपि तथा हिन्दी अंकों के साथ हिन्दी भाषा को सीधे-सीधे स्वीकार किया जाये, क्योंकि कोई अन्य भाषा भारत की राज-भाषा नहीं हो सकती, एक क्षण के लिए भी नहीं हो सकती।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आरम्भ में ही आपसे तथा सभा से इसके लिये क्षमा चाहता हूं कि जब उसकी बैठक प्रारम्भ हुई और आपने कृपा करके मुझे अपने संशोधन पर बोलने के लिए बुलाया तो उस समय मैं यहां उपस्थित नहीं था। इसका कारण यह था कि मैं अन्यत्र भारत-सरकार की एक महत्वपूर्ण समिति में काम कर रहा था। इसलिये यह बात नहीं थी कि मैं अपने शैथिल्य के कारण नहीं आ सका।

श्रीमान्, मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं एक ऐसे संशोधन का प्रस्तावक हूं जिससे इस सभा के बहुत से सदस्यों तथा बाहर के लोगों को भी आश्चर्य हुआ

है। मैं यह कहूंगा कि इस प्रस्ताव का देश में कई लोगों ने स्वागत किया है और कई लोगों ने स्वागत नहीं भी किया है। मुझे कुछ सूचनायें मिली हैं और मेरे पास बहुत सी चिटिठ्यां भी आई हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि मैंने बहुत उपयुक्त तथा सम्मानपूर्ण मार्ग का अवलम्बन किया है। कुछ पत्रों से यह भी प्रकट होता है कि संस्कृत को भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव रख कर मैं भारत को कई शताब्दी पीछे ढकेल रहा हूं। मैं आपको तुरंत ही यह बता देना चाहता हूं कि मेरा यही दृढ़ विश्वास है कि इस देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् यदि इस देश की कोई भाषा राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा हो सकती है तो वह नि:संदेह संस्कृत ही है।

*__कुछ माननीय सदस्य:__ जी नहीं, जी नहीं।

*__कुछ माननीय सदस्य:__ जी हां, जी हां।

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:__ मैं उन लोगों के हृदयों को दुखित नहीं करना चाहता जिनका यह विचार है कि हिन्दी पर ही उनका अस्तित्व निर्भर है। उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु वे इसका ढोल न पीटें क्योंकि इससे अन्ततोगत्वा उन्हें का उद्देश्य विफल हो जायेगा। अध्यक्ष महोदय, मैंने आरम्भ से ही अपने मित्रों से अपना संशोधन, अर्थात् संस्कृत को भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के बारे में अपने प्रस्ताव को अपनाने के लिये इसलिये आग्रह नहीं किया कि इस सभा के कई जिम्मेदार माननीय सदस्य यहां के दो महत्वपूर्ण विरोधी पक्षों के बीच सम्मानपूर्ण समझौता कराने के लिये गम्भीर प्रयत्न कर रहे थे और उनके संबंध में मैं स्वयं चिंतित था। मैं अलग रहा और मैंने किसी पक्ष का भी साथ नहीं दिया क्योंकि मैं समझता था कि मैं सच्चाई के साथ किसी पक्ष का भी समर्थन नहीं कर सकता हूं। किन्तु जब बातचीत एक स्तर तक पहुंच गई, और हमें यह आशा होने लगी कि भारत की राज-भाषा के संबंध में सर्वसम्मति से एक ऐसा सूत्र अपनाया जाने वाला है जो दोनों पक्षों को मान्य होगा और दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए पर्याप्त त्याग करने वाले हैं, तो उस समय मैंने यह विचार किया कि मुझे अपना संस्कृत भाषा-संबंधी प्रस्ताव उपस्थित नहीं करना चाहिये क्योंकि उससे बिगाड़ होने की आशंका थी। किन्तु हमारे दुर्भाग्य से और मैं कहूंगा कि देश के दुर्भाग्य से घटना-चक्र की गति ही बदल गई और वह भी एक ऐसे विषय के कारण जो मेरे विचार से बहुत छोटा था और जिसका महत्व अपेक्षाकृत बहुत कम था। यह खेदजनक है।

आज हम इस संविधान-सभा में भारत की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के संबंध में जो निर्णय करने जा रहे है। वह एक भाग्य-विधायक निर्णय है। श्रीमान् सभा की इस समय की भावनाओं को देखते हुये मुझे वास्तव में इसका भय है कि बहुमत से चाहे जो भी संशोधन स्वीकार किया जाये, अर्थात् चाहे देवनागरी लिपि और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूपों के साथ हिन्दी के संबंध में मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा मसौदा समिति की ओर से उपस्थित प्रस्ताव स्वीकार किया जाये अथवा दूसरे वर्ग का, अर्थात् पूर्ण हिन्दी और सब कुछ हिन्दी ही में चाहने वाले वर्ग का प्रस्ताव स्वीकार किया जाये, हारा हुआ वर्ग उस सभा

[पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र]

से हताश होकर और बहुत कटुता लेकर बाहर जायेगा? यह कटुता कई सप्ताह से इस प्रश्न पर वाद-विवाद होने के कारण उत्पन्न हुई है। इसी कारण मैं सभा से यह आग्रह करने के लिए आगे बढ़ा हूं कि केवल संस्कृत को ही भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये और अन्य किसी भाषा को स्वीकार न किया जाये, यद्यपि मैं जानता हूं कि यह मेरी धृष्टता है। श्रीमान्, संक्षेप में मेरे संशोधनों का उद्देश्य यह है कि मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो मसौदा उपस्थित किया है उसमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत रखा जाये और तत्स्थानी परिवर्तन किये जायें......

*__पं. बालकृष्ण शर्मा__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): क्या अंक भी संस्कृत ही में रहेंगे?

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः__ मैं इस प्रश्न को अभी उठाऊंगा।

इसके अतिरिक्त मेरे नाम से एक अन्य सारवान संशोधन भी है जिसका आशय यह है कि संघ की भाषाओं की सूची में संस्कृत का भी उल्लेख किया जाये। यह एक आश्चर्य की बात है कि मेरे संशोधन की सूचना देने के पूर्व किसी ने भी संस्कृत को भारत की भाषाओं में से एक भाषा मानने के औचित्य पर विचार तक नहीं किया। हम इतने नीचे गिर गये हैं। मैं संस्कृत को स्वीकार करने के संबंध में आपसे गम्भीरतापूर्वक आग्रह करते हुये तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। इस देश में कौन व्यक्ति यह कहेगा कि संस्कृत भारत की भाषा नहीं है? मुझे यह तर्क सुनकर आश्चर्य हुआ कि वह भारतीय भाषा नहीं है, वह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है। जी हां, वह अवश्य ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अथवा विश्व-भाषा है और वह इस अर्थ में कि वह महत्वपूर्ण, सुसम्पन्न और महान होने के कारण भारत की सीमाओं को पार करके सुदूर देशों में प्रतिष्ठित हुई है। संस्कृत भाषा में भारत की प्राचीन प्रौढ़ संस्कृति मूर्तिमान होने के कारण ही भारत के बाहर सभी देश हमें आदर की दृष्टि से देखते हैं। क्या इस सभा में कोई व्यक्ति इस कथन के विरुद्ध कुछ कह सकता है? क्या संसार भारत का सम्मान उसके भौगोलिक आकार अथवा वृहत् जनसंख्या के कारण करता है? विद्वेष रखने वाले विदेशियों ने हमारे देश का वर्णन करते हुये कहा है कि यह देश अपनी विभिन्न संस्कृतियों तथा भाषाओं के कारण दयनीय दशा को प्राप्त है। ऐसी धारणा होने पर भी उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूर्व का सन्देश ज्ञात करने का प्रयास किया और संस्कृत भाषा का आश्रय लिया।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, मैं इस संबंध में सूचना चाहता हूं कि यह भाषा सन्कृत कही जाती है या संस्कृत?

*__पं. लक्ष्मीकांत मैत्रः__ मैं इस हास्य के लिये अपने माननीय मित्र श्री कामत का आभारी हूं। यह हास्य ही है तो ठीक है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ यह हास्य नहीं है। मैं हास्य नहीं करना चाहता था।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः__ चूंकि मैं अंग्रेजी भाषा में बोल रहा हूं इसलिये यह स्वाभाविक है कि मैं उस भाषा के अनुसार ही शब्दों का उच्चारण करूं।

श्रीमान्, संस्कृत की परम्परा संसार की सभी भाषाओं की परम्परा से अधिक प्राचीन और सम्मानपूर्ण है। मैंने संसार के कुछ महान प्राच्य-वेत्ताओं की सम्मतियों का संग्रह किया है। प्रोफेसर मैक्समूलर, कीथ, टेलर, सर विलियम हंटर, सर विलियम गोलबक, सेलीगमैत, शोपेनहावर, गेटे तथा इन्हीं के समान मैकडोनेल और डुबोई जैसे कई अन्य लोगों ने संस्कृत को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, और वह हमें खुश करने के लिए नहीं, क्योंकि जब इन लोगों ने अपनी सम्मतियां व्यक्त की थीं उस समय हम एक विदेशी शक्ति के अधीन थे, जिसकी ओर से हमारे विरुद्ध मिस मेयो के समान कई लोग प्रचार करते थे। यह सभा को स्मरण होगा कि महात्मा गांधी ने मिस मेयो की "मदर इंडिया" नाम की पुस्तक को "नालियों के इंस्पेक्टर की रिपोर्ट" कहा था। विदेशों में भारत के विरुद्ध स्वार्थ-साधकों के इतना दूषित प्रचार करने पर भी संसार को इन प्राच्य-वेत्ताओं से धीरे-धीरे वास्तविक भारत का परिचय मिला। इन प्राच्य-वेत्ताओं ने संस्कृत भाषा तथा संस्कृत साहित्य के अध्ययन में ही अपना सारा जीवन लगा दिया। इन महान सेवकों को यह घोषित करते हुये तनिक भी संकोच नहीं हुआ कि "संस्कृत संसार की सबसे प्राचीन और सुसम्पन्न भाषा है। वही एक विश्व-भाषा है और संसार की सभी भाषाओं की जननी है।"

आज भारत को सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् अपने भाग्य का स्वरूप स्वयं निश्चित करने का अवसर मिला है। मैं गम्भीरतापूर्वक पूछता हूं कि क्या वह संसार की भाषाओं की मातामही, संस्कृत भाषा को अपनाने में जो अब भी सजीव और सशक्त है, लज्जा का अनुभव कर रहा है? स्वतंत्र भारत में उसे जिस पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकार है उसको हम क्या उसे नहीं प्रदान करेंगे? मैं गम्भीरतापूर्वक यह प्रश्न पूछता हूं। मैं यह जानता हूं कि यह कहा जायेगा कि यह एक मृत भाषा है। जी हां, मृत किसके लिए? मृत आपके लिये, क्योंकि आप स्वयं मृत हैं और महानता की भावना से तथा अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की महान तथा उत्कृष्ट बातों से प्रेरित नहीं होते। आप छाया के पीछे दौड़ते रहे हैं और आपने अपने महान साहित्य की सारवान बातों को समझने का कभी भी प्रयास नहीं किया। यदि संस्कृत एक मृत भाषा है तो मैं यह कहूंगा कि वह अपनी कब्र से हम पर शासन कर रही है। भारत में कोई भी व्यक्ति संस्कृत से पीछा नहीं छुड़ा सकता। हिन्दी को इस देश की राज-भाषा बनाने के संबंध में आपने जो प्रस्ताव रखा है उसमें एक अनुच्छेद में आपने यह उपबन्ध रखा है कि इस भाषा के लिये स्वतंत्रता से संस्कृत से शब्द लेने होंगे। इस प्रकार परोक्ष में आपने संस्कृत को स्वीकार किया है क्योंकि अन्यथा आप असहाय और अशक्त हैं।

किन्तु मेरा यह निवेदन है कि वह मृत भाषा नहीं है। मैंने जिन स्थानों की यात्रा की है वहां जब कभी मैं अपने आशय को अन्य भाषाओं में नहीं समझा सका तो मैंने संस्कृत का आशय लिया और मुझे अपने आशय को सुबोध करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। बीस वर्ष पूर्व जब मैं मद्रास में था तो मैं मदुरा, रामेश्वरम्, तिरुपति आदि के मंदिरों में गया किन्तु अंग्रेजी भाषा द्वारा अथवा किसी भी अन्य भाषा द्वारा मैं अपने आशय को नहीं समझा सका किन्तु जिस क्षण मैंने संस्कृत में बोलना आरम्भ किया उसी क्षण वहां के लोग मेरे आशय को समझने लगे और हम विचारों का आदान-प्रदान करने लगे। मैं यह धारणा बना कर लौटा

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

कि कम से कम मद्रास में संस्कृत भाषा में वर्णित संस्कृति विद्यमान है। अपनी तामिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ जैसी प्रादेशिक भाषाओं के लिये सम्भवतः बहुत उत्साह होने पर भी दक्षिणात्यों ने संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया।

हमें संस्कृत का बहुत मोटा ज्ञान है। हम समझते हैं कि संस्कृत में भारी भरकम शब्द तथा लम्बी-लम्बी आडम्बरपूर्ण पदावलियां ही होती है और उसकी एक ही शैली है जो बाण की कादम्बरी अथवा हर्ष चरित्र अथवा दशकुमार चरितम् में मिलती है। किन्तु मैं निवेदन करना चाहता हूं कि एक प्रख्यात कवि ने थोड़ा बहुत गर्वान्वित होकर ये शब्द कहे थेः–

साहित्य सुकुमारवस्तुनि

दृढ़-नय-ग्रह-ग्रंथिल-

तर्क-वाङमय-संग-विधातरि

समान-लीलायिता भारती।

आपका विचार है कि मैं सीधी-सादी संस्कृत में सरल तथा प्रभावपूर्ण रचनायें नहीं कर सकता हूं "चाहे कवित्व के समान कोई सुकुमार विषय हो, अथवा दर्शन और तर्क के समान विद्वत्तापूर्ण किन्तु शुष्क विषय हो, मैं इस भाषा में बड़ी सुगमता से रचनायें कर सकता हूं।" संस्कृत एक ऐसी भाषा है कि उसका उपयोग दर्शन और विज्ञान जैसे बहुत गम्भीर विषयों के लिये भी किया जा सकता है और बहुत सरल साहित्य के लिये भी। वह सभी प्रकार के विचारों को व्यक्त करने के लिये बहुत सरल माध्यम है। मुझे विश्वास है कि जिन लोगों को संस्कृत का ज्ञान है वे कुछ शताब्दी पूर्व इस महान कवि ने जो कुछ कहा था उसके प्रत्येक शब्द का समर्थन करेंगे।

***एक माननीय सदस्यः** क्या आप कृपा करके संस्कृत में बोलेंगे ताकि हम सभी लोग आपके विचारों को समझ सकें?

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः** मैं यहां अपनी संस्कृत की विद्वता को नहीं बघारना चाहता। मैं वह गलती करने नहीं जा रहा हूं जो यहां मेरे कुछ मित्रों ने की है। उनसे प्रार्थना की गई कि वे अंग्रेजी में बोलें ताकि उन्हें सभी लोग समझ सकें किन्तु अपने अत्यधिक उत्साह के कारण वे अपनी पसन्द की भाषा में ही बोलते रहे। मैं यह नहीं करूंगा। मैं यह चाहता हूं कि इस सभा का प्रत्येक माननीय सदस्य मेरे विचारों को समझे। यदि मैं संस्कृत में बोल सकता हूं तो यह मेरे लिये कोई बड़े गौरव की बात नहीं है। मुझे संस्कृत में बोलने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। यदि मैं उस भाषा में नहीं बोल सकता हूं तो मुझे अपनी संस्कृति तथा शिक्षा पर लज्जा आनी चाहिये। मुझे उस प्रकार देखने का प्रयास न कीजिये जैसे कि आप किसी विचित्र वस्तु को देखते हों। जब मैं संस्कृत के पक्ष में बोल रहा हूं तो सभा में कहीं पर भी मेरी बातों का मखौल न उड़ाया जाये। मैं इस

सभा के प्रत्येक सदस्य से पूछता हूं, चाहे वह किसी भी प्रान्त का क्यों न हो, "क्या आप अपनी मातामही को अस्वीकार करना चाहते हैं?"

श्रीमान्, हम इस देश की प्रान्तीय भाषाओं पर अर्थात् बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दी, तामिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड़ आदि पर गर्व करते हैं। उनमें भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के वैभव के अनेक रूप प्रदर्शित हैं यह किसी एक प्रान्त की सम्पत्ति नहीं है। यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। किन्तु इन सभी भाषाओं का स्रोत संस्कृत ही है। वही सब भाषाओं की जननी है। दक्षिण की भाषाओं ने भी अपने शब्द भंडार को सुसम्पन्न बनाने के लिये संस्कृत से शब्द लिये हैं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि हम दिल लगाकर काम करें तो हम अपने जीवन के सामान्य प्रयोजनों के लिये संस्कृत की एक सरल, सशक्त, सुगढ़ तथा सुमधुर शैली विकसित कर सकते हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इसी समय से सभी लोग संस्कृत में बोलने लगेंगे। मेरे संशोधन का उद्देश्य यह नहीं है। मैंने अपने संशोधन में यह प्रस्ताव रखा है कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी उन सभी प्रयोजनों के लिये राज्य की राज-भाषा के रूप में प्रयोग की जायेगी, जिन प्रयोजनों के लिये वह संविधान के प्रारम्भ के पूर्व प्रयोग की जाती थी। इस अवधि के पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर संस्कृत उत्तरोत्तर प्रयुक्त होगी। मेरे संशोधन का उद्देश्य यही है।

मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि प्रत्येक प्रान्त में और प्रत्येक विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा सिखाने के लिये प्रबन्ध हैं। मुझे जैसे कुछ लोगों न इस आशा में कि हिन्दी देश की राज-भाषा के रूप में स्वीकार होगी उसे प्रचलित करने का प्रयास किया किन्तु हमें, कम से कम बंगाल में, हिन्दी अध्यापकों के मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। आपको यह सुनकर आश्चर्य हुआ होगा। यह एक समस्या है। यदि आप अपने सहस्त्रों नवयुवकों को हिन्दी सिखाना चाहते हैं तो आपको अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी। आपको साहित्य की आवश्यकता पड़ेगी। आपको छापेखानों, पुस्तकों, पाठ्य-पुस्तकों, प्रारम्भिक पुस्तकों, अध्यापकों और सभी बातों की आवश्यकता पड़ेगी। यह एक बहुत बड़ी कठिनाई है। चाहे केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, यह समस्या आसानी से हल होने वाली नहीं है। आपको यह स्मरण रखना होगा कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपने को हिन्दी का विद्वान कह सकता है। मैंने उनकी परीक्षा करवाई है, जिनमें वे निकम्मे साबित हुये हैं। इसके विपरीत यदि आप संस्कृत को राजभाषा बनायेंगे तो आप देखेंगे कि उसे सिखाने के लिये पहले से ही प्रबन्ध है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक स्तर तक संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है और उसके पश्चात् ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। इसलिये संस्कृत के पठन-पाठन के संबंध में कोई कठिनाई नहीं होगी।

***श्री बी.एन. मुनावल्ली** (बंबई : जनरल): वही कठिनाई होगी।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** मैं जानता हूं कि चूंकि श्री मुनावल्ली बूढ़े हैं—मुझे आशा है कि वे बूढ़ा कहने से रुष्ट न होंगे—इसलिये उनके लिये एक नई भाषा

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

सीखना कठिन होगा। किन्तु यदि श्री मुनावल्ली का यह विचार हो कि वे संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी अधिक सरलता से सीख सकते हैं तो उनसे मेरा कोई झगड़ा नहीं है। वे अपना यह विचार बनायें रखें।

मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने बहुत विद्वेष की भावना देखी है। मैं यह नहीं कहता कि यह भावना ठीक है किन्तु मैं यह अवश्य अनुभव करता हूं कि यह भावना विद्यमान है। कई लोग यह सोचने लगे हैं, "सब भाषाओं में से आखिर हिन्दी को ही राष्ट्र भाषा क्यों बनाया जा रहा है? आखिर वह है तो एक प्रान्तीय भाषा ही।" यह सभी स्वीकार करेंगे कि वह एक प्रान्तीय भाषा है। आप एक प्रान्तीय भाषा को राष्ट्र भाषा का पद देने जा रहे हैं। आप इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। इसमें बहुत कुछ सच्चाई है। इसे कौन स्वीकार नहीं करेगा कि बंगला, तामिल, तेलुगु, गुजराती, मलयालम, मराठी और कन्नड़ भाषाओं का साहित्य सुसम्पन्न है और उन भाषाओं के बोलने वाले उन पर गर्व कर सकते हैं?

किन्तु अहिन्दी क्षेत्रों के सदस्य इसके लिये आग्रह नहीं कर रहे हैं कि उनकी प्रान्तीय भाषाओं को भारत की राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। क्या आप समझते हैं कि इसमें कितनी त्याग की भावना है? मैंने इसके लिये कभी अनुरोध नहीं किया कि बंगला को देश की राज भाषा बनाई जाये। मैंने इसका सुझाव कभी नहीं रखा यद्यपि मेरी यह धारणा है कि मेरी भाषा और मेरा साहित्य बहुत सुसम्पन्न है और उसे कबीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने और भी अधिक सुसम्पन्न बना दिया है तथा उसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्ति करा दी है। मैंने यह विचार किया कि संघ के हितों को ध्यान में रखकर हमें एक दूसरे से सहयोग करके एक ऐसी भाषा बनानी चाहिये, वह हिन्दी ही क्यों न हो, जिसे हम सारे देश में काम में ला सकते हैं।

किन्तु बहुत आगे बढ़ने पर भी हम एक स्थान पर अटक गये। मेरा अपना यह विचार है कि यह एक दुर्भाग्य की बात है और खेदजनक भी है। मेरे कुछ मित्रों ने मेरी आलोचना करते हुये कहा है, "जब आप एक ऊंट को निगल गये हैं तो एक मक्खी को निगलने में क्यों परेशान हो रहे हैं?" वे पूछते हैं कि जब आप हिन्दी लिपि के लिये सहमत हो गये हैं तो हिन्दी अंकों पर क्यों आपत्ति कर रहे हैं। क्या आपका सचमुच यह विचार है कि जब तक प्रत्येक बात शत प्रतिशत हिन्दी में न हो तब तक भारतीय स्वातंत्र्य से कोई लाभ नहीं है और उसका कोई अर्थ नहीं है? क्या कोई व्यक्ति वास्तव में यह विचार रखता है? यदि वास्तव में यह बात है तो उन्हें यह भी समझना चाहिये कि दूसरे पक्ष के लोग भी अपनी भाषाओं को अपनाने के लिये यही तर्क उपस्थित कर सकते हैं। श्रीमान्, इस प्रश्न पर बहुत तनातनी रही है। माननीय गोविन्द बल्लभ पन्त ने एक अवसर पर एक बहुत सुन्दर भाषण दिया। उन्होंने कहा "हम अहिन्दी-भाषी लोगों पर इस भाषा को नहीं थोपना चाहते हैं।" यह वक्तव्य भारत के सबसे बड़े प्रान्त के प्रधान मंत्री की शोभा बढ़ाता है। किन्तु दुर्भाग्य से वही प्रान्त, न कि मेरा प्रान्त, इस संबंध में अब समस्या रूप हो गया है। भाषा का विवाद वहीं से आरम्भ हुआ है। हिन्दी उर्दू का तथा हिन्दी, भाषा और नागरी अंकों का विवाद वहीं से

आरम्भ हुआ और वह इतना बढ़ गया कि दोनों पक्षों को अपने मतभेदों को मिटाने के लिये कदम उठाना पड़ा। जब हमारे प्रयत्न किसी अंश में सफल नहीं हुये और समझौते के लिये कई वक्ताओं ने जो अपीलें कीं वे भी निष्फल हुईं तो संयुक्तप्रान्त के प्रधानमंत्री ने घोषित किया: "नहीं, नहीं। हम आप पर हिन्दी थोपने नहीं जा रहे हैं, हम एक ऐसा सूत्र अपनायेंगे जिस पर सब सहमत होंगे।" यदि यह हिन्दी भाषा को, देवनागरी लिपि को, हिन्दी अंकों को थोपना नहीं है तो मुझे बताया जाये कि थोपना क्या होता है। यदि आप यह कहते हैं कि हिन्दी सभी की सहमति से स्वीकार की जायेगी और वह थोपी नहीं जायेगी, और साथ ही हिन्दी की सभी मांगों को स्वीकार करने के लिये जोर देते हैं, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि हम स्वेच्छा से आत्मसमर्पण करने की मांग करते हैं? अपने प्रस्ताव के संबंध में साफ-साफ बातें कहिये। इस प्रकार भाषा का प्रश्न हल नहीं किया जाता। भाषा राष्ट्र की जीवनदायिनी शक्ति होती है। उसके साथ मखौल नहीं किया जा सकता। मेरा यह विश्वास है कि भाषा किसी नपी तुली प्रक्रिया के अनुसार नहीं बनाई जा सकती और न वह किसी निश्चित तिथि तक ही तैयार हो सकती है। इस प्रकार की अन्य बातों के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। भाषा सजीव होती है—उसका विकास होता है और वह उन्नति करती है।

अब यदि सारे भारत के लिये आप एक भाषा को स्वीकार करना चाहते हैं तो इस पद पर प्रतिष्ठित होने का सबसे अधिक अधिकार किस भाषा को है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लोकतंत्र की दृष्टि से और इस दृष्टि से कि सबसे अधिक लोग किस भाषा को बोलते हैं, और समझते हैं, सम्भवत: यह अधिकार हिन्दी को है। उसे लगभग चौदह करोड़ लोग बोलते हैं और उसी का सबसे अधिक अधिकार है। किन्तु हिन्दी की अनेक बोलियां हैं। संयुक्तप्रान्त के लोगों ने मुझे बताया है कि यदि हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया तो पश्चिमी संयुक्तप्रान्त के लोगों को उसे नये सिरे से सीखना होगा क्योंकि वे उस भाषा से अनभिज्ञ हैं। जब 1931 के आंकड़ों के आधार पर यह दावा किया जाता है कि हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसे अधिकांश लोग बोलते हैं तो लोगों का साधारणतया लोकतंत्र के संबंध में जो विचार होता है उसकी दृष्टि से यह ठीक हो सकता है। यदि किसी देश का एक बहुत बड़ा वर्ग एक भाषा को बोलता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह भाषा अधिकांश लोगों की भाषा हो।

इस संबंध में मैं आपको एक उदाहरण दूंगा जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि भाषा के प्रश्न के संबंध में कितनी उत्तेजना उत्पन्न हो सकती है। मैं आपको बताऊंगा कि पिछले वर्ष पूर्वी पाकिस्तान में क्या हुआ। बंगाल के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान के निर्माता ने यह आदेश निकाला कि सारे पाकिस्तान की राज-भाषा उर्दू होगी। आप जानते हैं कि पूर्वी बंगाल में इस आदेश से क्या प्रतिक्रिया हुई? पूर्वी पाकिस्तान के बंगाली मुसलमान यह जानकर कि उन पर उर्दू थोपी जा रही है, बहुत उत्तेजित हुये और उन्होंने पूछा, "क्या आप हमारी बंगला भाषा को नष्ट करने जा रहे हैं? हमने पाकिस्तान के इस्लामी राज्य की स्थापना में हृदय से आप

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

का साथ दिया है। क्या अब आप हमारी भाषा में हस्तक्षेप करने जा रहे हैं? "पूर्वी पकिस्तान में सर्वत्र प्रदर्शन होने लगे और ऐसे अवसरों पर साधारणतया जो कदम उठाये जाते हैं वे कदम उठाये गये, अर्थात् अश्रु गैस छोड़ी गई और लाठियां चलाई गईं इत्यादि। पाकिस्तान के अधिकारियों ने यह कह कर लोगों को डराया कि इस आन्दोलन के लिये हिन्दुओं का पंचम स्तम्भ उत्तरदायी है। किन्तु तुरन्त ही मुसलमानों का विद्वानों का वर्ग तथा उनकी शैक्षिक तथा सांस्कृतिक संस्थायें आगे बढ़ीं और उन्होंने कहा कि यह सब बकवास है। उन्होंने कहा, "आप रवीन्द्र नाथ ठाकुर की भाषा का गला घोटना चाहते हैं। हम इसे सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं।" भाषा के प्रश्न को लेकर विद्रोह करने पर लोगों पर लाठी चलाई जाती हैं और उन्हें बन्दी बनाया जाता है। ढाका में विद्यार्थियों और प्रोफेसरों की एक सभा में मि. जिन्ना ने जब लोगों से यह कहा कि वे अर्बी लिपि में उर्दू को नवनिर्मित इस्लामी राज्य की भाषा के रूप में स्वीकार करें तो 'नहीं, नहीं' की आवाजें सुनाई दीं। जब वे और कुछ कहने लगे तो इस प्रकार के नारे जोर-जोर से लगाये जाने लगे और बन्द नहीं हुये। ये बातें समाचारपत्रों में नहीं आईं। सात दिन तक प्रयत्न किये गये किन्तु वे सब विफल हुये और मि. जिन्ना को कराची वापस जाना पड़ा। इसके पश्चात् इस आशय की एक विज्ञप्ति निकाली गई कि पूर्वी पाकिस्तान की राजभाषा बंगला ही रहेगी। पाकिस्तान के बंगला बोलने वाले मुसलमानों ने कहा कि वे अर्बी लिपि में उर्दू को इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि मि. जिन्ना केन्द्रीय पाकिस्तान में बंगला को भी एक राज-भाषा बनायें। उन्होंने कहा कि पूर्वी पाकिस्तान में उर्दू स्वीकार करने के पूर्व वे कराची जायेंगे और देखेंगे कि प्रत्येक स्थान पर उर्दू के साथ बंगला भी लिखी हुई है या नहीं। पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमानों से यह प्रत्युत्तर पाने पर अधिकारियों के होश-हवास ठीक हो गये। इसके पश्चात् अधिकारियों ने कहा कि बंगला रोमन लिपि में लिखी जायेगी। ऐसा नहीं किया गया। हाल में उन्होंने कुछ चुनी हुई जगहों में बंगला को अर्बी लिपि में लिखने का प्रयोग किया है। किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न अवश्य ही निष्फल होंगे।

मेरा यह निवेदन है कि भाषा का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि यदि आप केवल मतों अथवा आदेशों से उसके संबंध में निर्णय कर देंगे तो उससे उन लोगों के दिलों को गहरी चोट पहुंचेगी जिन्होंने उसे स्वेच्छा से स्वीकार नहीं किया होगा। वे दुखित हो उठेंगे और उसका परिणाम यह होगा कि सब कुछ विच्छिन्न हो जायेगा। श्रीमान्, मैं निराशावादी नहीं हूं किन्तु मेरी यह धारणा है कि यदि समझौता नहीं किया गया तो भाषा के संबंध में चाहे कोई भी निर्णय क्यों न किया जाये, उससे हम लोगों में अवश्य ही उत्तेजना फैलेगी। मैंने अपने माननीय मित्र श्री गोपालास्वामी आयंगर के तर्कसंगत किन्तु भावनाशून्य भाषण को सुना। उसमें एक वेदना छिपी थी किन्तु उससे यह दृढ़ निश्चय भी प्रकट होता था कि वे इतना ही आगे बढ़ने को तैयार हैं और इससे आगे नहीं बढ़ सकते। जब वे बोल रहे थे तो बीच में मैंने उनसे पूछा था, "श्रीमान्, क्या आपका विचार यह है कि हमें पूरे मसौदे को स्वीकार करना होगा अथवा क्या हम उसके कुछ अंशों को भी स्वीकार कर सकते हैं?" उन्होंने कहा, "जी नहीं, उसे आदि से अन्त तक एक ही समझना चाहिये।" उनका विचार यह है और मेरी समझ में यह ठीक ही विचार है कि

भाषा संबंधी उपबंधों का यह अध्याय या तो पूरा स्वीकार किया जाये या पूरा अस्वीकार कर दिया जाये। इसका अर्थ यह नहीं है कि यत्र-तत्र थोड़े बहुत परिवर्तन नहीं किये जा सकते। किन्तु यदि केवल पहले भाग को अर्थात् देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को स्वीकार किया जाता है और शेष अंश को अस्वीकार कर दिया जाता है तो हमें यह कदापि मान्य नहीं होगा। हिन्दी को इसी शर्त पर स्वीकार किया जा सकता है कि अन्य उपबन्धों को भी स्वीकार किया जाये। (वाह, वाह)

मैं स्थिति को बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हूं। श्रीमान्, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम एक प्रान्तीय भाषा को थोपने अथवा उसे राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने से जो प्रान्तीय विद्वेष तथा कटुता स्वभावतः फैलेगी उसे नहीं उत्पन्न होने देना चाहते तो हमें संस्कृत को स्वीकार करना चाहिये, जो सभी भाषाओं की जननी है और जो, मेरे विचार से, पर्याप्त प्रयत्न करने से पन्द्रह वर्ष में सीखी जा सकती है और जिसे सिखाने के लिये देश में इस समय भी आवश्यक सुविधायें तथा प्रबन्ध विद्यमान हैं। सम्भवतः उसे इस समय प्रयोग में लाना असम्भव प्रतीत हो—15 वर्ष में, इस पीढ़ी में सम्भवतः उसे प्रयोग में न लाया जा सके यद्यपि जो लोग उसे जानते हैं उसे अधिक प्रयोग करने लगें। किन्तु आने वाले पीढ़ी उसे सीख सकती है और उसे सभी प्रयोजनों के लिये प्रयोग में ला सकती है।

इसी बीच मैं यह नहीं चाहता कि देश का प्रशासन अयोग्यता से होने लगे। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी को ही देश की राज भाषा रहने दिया जाये। मैं यह जानता हूं कि जब मैं अन्यत्र अपने एक भाषण में इन्हीं विचारों को व्यक्त कर रहा था तो मेरी बड़ी आलोचना हुई थी। हिन्दी भाषी क्षेत्र के मेरे एक मित्र ने कहा, "देखिये, मैत्र, आप अगले पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी रहने देने के पक्ष में बड़े उत्साह से तर्क उपस्थित कर रहे हैं। आपका विचार क्या है? क्या आप उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जब अंग्रेज वापस आ जायेंगे?" मैंने उनसे कहा कि हम अंग्रेजों से अंग्रेजों के प्रभुत्व से, क्रुद्ध थे। अंग्रेजी भाषा तथा संस्कृति से हमारा कोई द्वेष नहीं था। जब पिछली शताब्दी में अंग्रेज इस देश में पहले पहल आये तो अंग्रेजी भाषा को कोई नहीं समझ पाता था। लोग उसका एक शब्द भी नहीं जानते थे। यह कहा जाता है कि उन दिनों एक व्यापारिक संस्था में काम करने वाला बंगाली बाबू अपने अफसर के पास गया और उसने उससे कहा, "श्रीमान्, आज रथ यात्रा है, छुट्टी छुट्टी।" अफसर ने पूछा, "रथ क्या होता है?" अपनी टूटी फूटी अंग्रेजी में वह बाबू नहीं समझ सका कि रथ कैसा होता है और उसने कहा, "चर्च, चर्च, बुडन चर्च सर। जगन्नाथ सिटिंग, रोप एंड पुल सर।" बेचारा युरोपियन हक्का बक्का सा रह गया। आरम्भ में लोगों को इसी प्रकार की अंग्रेजी का ज्ञान था किन्तु बाद को राजा राम मोहन राय, केशव चन्द्र सेन, बंकिम चन्द्र, रमेश दत्त तथा अन्य लोगों ने अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया। कुछ ही वर्षो पश्चात् कुमारी तोरू दत्त, माइकेल मुधुसूदन दत्त, और अन्य लोगों ने अंग्रेजी भाषा में बहुत ही सुन्दर पद्य तथा गद्य की रचना की। ये रचनायें अंग्रेजी साहित्य में उत्कृष्ट गीति-काव्य समझी जाती हैं। इसी प्रकार आरम्भ में कुछ कठिनाई हो सकती है किन्तु यदि आप परिश्रम करेंगे तो आप थोड़े ही समय में संस्कृत सीख सकते हैं। इस बीच वैज्ञानिक तथा उच्च कोटि की शिक्षा के लिये, तथा न्यायपालिका के कार्य के लिये, भारत में अंग्रेजी ही प्रयोग में आयेगी।

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

श्रीमान्, मुझे अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य से प्रेम है। अंग्रेजों के शासन-काल में जहां हमें मानहानि, कष्ट तथा दु:ख सहन करना पड़ा वहां हमने यह अनमोल रत्न भी प्राप्त किया। मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर ने कहा है कि इसी शस्त्र द्वारा हमने स्वराज्य भी प्राप्त किया। जब उन्होंने यह कहा तो मैंने देखा कि लोग हंस रहे थे। किन्तु क्या यह प्रस्ताव गम्भीरतापूर्वक रखा गया है कि इस देश से अंग्रेजी भाषा को पूर्णतया निकाल दिया जायेगा और हमारे भावी जीवन में उसका कोई हिस्सा नहीं रहेगा? यदि आज श्री कृष्णमाचारी अथवा मौलना अबुल कलाम आजाद, अथवा पंडित बालकृष्ण शर्मा और मुझे अंग्रेजी भाषा में नहीं बल्कि अपनी अपनी भाषाओं में आपस में वार्तालाप करना पड़े तो एक अजीब कोलाहल होने लगेगा। अंग्रेजी भाषा के कारण ही हम इस कोलाहल से बच सके हैं और एक दूसरे के निकट आ सके हैं। यदि इस देश से अंग्रेजी भाषा को निकालने का प्रयास किया गया तो भारत में फिर बर्बरता फैल जायेगी। हमें एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी अपनानी चाहिये अंग्रेजी एक ऐसी भाषा है जिसे साठ करोड़ लोग बोलते हैं। अंग्रेजी अब केवल अंग्रेजों की ही सम्पत्ति नहीं रह गई हैं वह उनकी सम्पत्ति भी है और मेरी सम्पत्ति भी। एक वायसराय ने "बाबूज इंग्लिश" नाम की एक पुस्तक लिखी है, जिसमें एक बहुत ही सुन्दर अध्याय है। अंग्रेज यह जानते हैं कि भारतीयों को अंग्रेजी भाषा का कितना वृहत ज्ञान है और वे यह भी जानते हैं कि भारतीय इस भाषा को कितना स्पष्ट और सही बोलते हैं। हमें यह ख्याति प्राप्त है। मुझे पन्द्रह वर्ष तक उच्च कोटि के अंग्रेजों से मिलने जुलने का अनुभव है। मैं यह देखता था कि पहले की विधान-सभा के यूरोपियन सदस्य अंग्रेजी भाषा पर हमारे अधिकार की प्रशंसा करते थे, वे प्राय: कहते थे, "हमें आश्चर्य होता है कि आप लोग गृहमंत्री अथवा रेल मंत्री के भाषण को सुनने के पश्चात् तुरन्त ही किस प्रकार आलोचना करने लगते हैं। हम यह नहीं कर सकते। हमें इस आलोचना के लिये तैयारी करने के लिये बहुत समय चाहिये।" इस प्रकार उन के ही क्षेत्र में हमने उन्हें पछाड़ा था। अंग्रेजी भाषा ने हमारे लिये विश्व के एक वृहत् ज्ञान भंडार के द्वार खोल दिये हैं, जो कई युगों के पश्चात् भरपूर हुआ है। यह हमारे लिये हितकर न होगा कि हम उसके द्वार अब बन्द कर दें। यदि अंग्रेजी रहेगी तो आप हिन्दी को और किसी भी प्रान्तीय भाषा को विकसित कर सकेंगे। भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा को अपने ढंग से स्वतंत्रता से विकसित होने दीजिये और अन्य भाषाओं से कई वस्तुओं को लेकर अपने-अपने भंडार को सुसम्पन्न बनाने दीजिये। यदि आप यह करना चाहते हैं तो आपको संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिये।

इस्राइल में क्या हो रहा है? अब चूंकि यहूदियों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है इसलिये उन्होंने इबरानी को ही अपने देश की राजभाषा बनाया है। वे अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता तथा अपनी परम्परा का आदर करना चाहते थे। अध्यक्ष महोदय, मैं इस उद्देश्य से यह संशोधन उपस्थित कर रहा हूं कि संस्कृत के अध्ययन से हमारे प्राचीन वैभव का पुनरावर्त्तन हो। हमें अपना संदेश पश्चिम को भी सुनाना चाहिये। पश्चिम भौतिकवाद की सभ्यता को अपनाये हुये है। हमें पश्चिम को गीता का, वेदों का, उपनिषदों तथा तंत्रों का और चरक तथा सश्रुत

आदि का संदेश सुनाना चाहिये। इन्हीं बातों के कारण संसार हमारा आदर करने लगेगा, न कि राजनैतिक वाद-विवादों अथवा वैज्ञानिक खोजों के कारण जो उनकी खोजों की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। रताध्वस्त पश्चिमी देशों में नैतिकता तथा धार्मिक अथवा आध्यात्मिक जीवन भी विनिष्ट हो गया है। और वे पथ प्रदर्शन के लिये आपकी ओर देख रहे हैं।

स्थिति यह है और इस स्थिति में संसार आपसे संदेश चाहता है। आप अपने दूतावासों द्वारा विदेशों को क्या संदेश देने जा रहे हैं। वे नहीं जानते हैं कि आपके राष्ट्रीय कवि कौन हैं, आपकी भाषा क्या है और आपके पूर्वजों ने किन विषयों में अद्वितीय उन्नति की थी।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अंकों के विषय में बहुत कम लोग यह जानते हैं कि संसार को भारत की क्या देन रही है। उसकी देन केवल अंकों के संबंध में ही नहीं है बल्कि बीजगणित, गणित-पदावली, दशमलव प्रणाली, त्रिकोणमिति आदि के संबंध में भी है। ये संसार को भारत की देन है। मद्रास के हमारे ख्यातनामा मित्र ने भारतीय दर्शन के अमोल रत्नों को लोक हितार्थ संसार के सामने रखा—मेरा मतलब विश्वविद्यालय आयोग के सभापति तथा मास्को में हमारे वर्तमान राजदूत से है जिन्हें हमारे उद्योग तथा रसद के मंत्री, डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी के पिता जी दक्षिण से लाये थे और जिन्हें उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में सभी प्रकार की सुविधायें प्रदान की थीं। यदि आप उस भाषा से परिचित नहीं हैं जो आपको अपने पूर्वजों से मिली है और जिसमें आपकी संस्कृति मूर्तिमान है, तो मैं कह नहीं सकता कि आप संसार को क्या भेंट करेंगे।

मैं कह नहीं सकता कि मेरी अपील का मेरे उत्तर भारत के अथवा दक्षिण भारत के मित्रों के हृदयों पर कुछ प्रभाव पड़ेगा या नहीं। आपको अपने पूर्वजों की भाषा संस्कृत का हृदय से सम्मान करना चाहिये। जब आज आपको आने वाली पीढ़ियों के भाग्य का निर्माण करने का अवसर मिला है तो क्या आपको अपने पूर्वजों की इच्छा के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिये? हम कलह को छोड़कर उत्साह से संस्कृत को स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा तथा राज-भाषा के रूप में स्वीकार करें। मेरा यह सच्चा विश्वास है कि यदि हम संस्कृत को स्वीकार कर लेंगे तो ये सब कठिनाइयां समाप्त हो जायेंगी तथा सभी विद्वेष तथा कटुता मिट जायेगी और लोगों के हृदयों में भी परिवर्तन हो जायेगा। निस्सन्देह, सम्भव है कि कुछ कठिनाई अनुभव हो किन्तु किसी के प्रभुत्व की, अथवा किसी के दलित होने की भावना बिल्कुल भी नहीं रह जायेगी। इसी विश्वास से मैं आपसे उस महान संस्कृति तथा सभ्यता के नाम पर जिसका हम सभी को गर्व है तथा उन महान् ऋषियों के नाम पर जिन्होंने इस भाषा को हमें दिया है, अपील करता हूं कि आप इस संशोधन का समर्थन करें। कम से कम एक बार तो संसार को बताइये कि हम भी अपनी आध्यात्मिक संस्कृति की सुसम्पन्न परम्परा का सम्मान करना जानते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं ऐसे व्यक्तियों को बुला रहा हूं जिन्होंने आधारभूत महत्व के संशोधनों की सूचना दी है। जब वे समाप्त कर चुकेंगे तब हम अन्य प्रश्नों को उठा सकते हैं। मि. एंथनी ने इस आशय के एक संशोधन की सूचना दी है कि

[अध्यक्ष]

किसी अन्य लिपि को न रखकर रोमन लिपि को रखा जाये। मेरे विचार से यह बहुत कुछ आधारभूत महत्व का संशोधन है।

***मि. फ्रैंक एंथनी** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने दो संशोधनों की सूचना दी है। ये संशोधन आठवीं सूची में दिये हुये हैं और इनकी संख्या 338 और 347 है। पहला संशोधन इस प्रकार है:

"चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) में 'Devanagari Script (देवनागरी लिपि)' शब्दों के स्थान पर 'the Roman Script (रोमन लिपि)' शब्द रखे जायें।"

मेरा दूसरा संशोधन इस प्रकार है:

"चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 301-ग के वर्तमान परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित परन्तुक रखा जाये:

'Provided that no change shall be made in the medium of instruction of any State University or in the languages officially recognised in the law courts of a province or State without the previous sanction of Parliament.'"

(परन्तु बिना संसद की पहले स्वीकृति लिये हुये, किसी राज्य के किसी विश्वविद्यालय के शिक्षा के माध्यम, अथवा किसी प्रान्त अथवा राज्य के न्यायालयों में स्वीकृत भाषाओं में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा।)

श्रीमान्, मैंने वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ही इन दो संशोधनों की सूचना दी है। मैंने जो निष्कर्ष निकाला है वह मेरा अपना निष्कर्ष है, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि वह वास्तविकता पर आधृत है और यह विश्वास भी है कि वह इस देश के अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक कल्याण के सिद्धान्त पर आधृत है।

श्रीमान्, इस विषय पर बोलते हुये, जो दुर्भाग्य से बहुत विवादग्रस्त विषय हो गया है, मैं आरम्भ में ही यह बता देना चाहता हूं कि मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सौभाग्य से मैं जबलपुर का निवासी हूं जो एक हिन्दी भाषी क्षेत्र है। मेरा यह भी सौभाग्य रहा है कि छोटी आयु से ही मैं देवनागरी लिपि में हिन्दी सीखता रहा हूं। मध्यप्रान्त में सामान्यत: अपराध के मामलों में गवाहों से हिन्दी में ही प्रति प्रश्न पूछे जाते हैं। हत्या के बीसों मामलों में अफसरों के सामने हिन्दी में ही तर्क उपस्थित करने होते हैं, क्योंकि वे अंग्रेजी नहीं जानते।

मैं आरम्भ में ही यह भी कहना चाहता हूं कि मैं इस सिद्धान्त को पूर्णतया स्वीकार करता हूं कि यदि भारत में वास्तविक अर्थ में एकता स्थापित करनी है

और राष्ट्रीय भावना जाग्रत करनी है तो हमारी एक राष्ट्र भाषा होनी चाहिये। इस तर्क को सभी को स्वीकार करना चाहिये। मेरी मातृभाषा अंग्रेजी है। चूंकि मैं भारतीय हूं और अंग्रेजी मेरी मातृ भाषा है इसलिये मेरी यह धारणा है कि अंग्रेजी एक भारतीय भाषा है। मुझसे पूर्व बोलने वाले माननीय सदस्य महोदय ने अभी कहा कि अंग्रेजी पर अंग्रेजों का ही एकाधिपत्य नहीं है। वह संसार के विभिन्न भागों के लोगों की या तो मातृ भाषा हो गई है या उन्होंने उसे अपना लिया है। यद्यपि अंगेजी मेरी मातृ-भाषा है, और यद्यपि मेरा यह दावा है कि अंग्रेजी एक भारतीय भाषा है, किन्तु मैं जानता हूं कि कई कारणों से अंग्रेजी इस देश की राष्ट्र भाषा नहीं हो सकती है।

साथ ही मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता, यद्यपि मुझे इसका खेद है, कि अंग्रेजों के प्रति विद्वेष और प्रतिहिंसा का जो रुख अपनाया जा रहा है वह मेरी समझ में नहीं आता। जैसाकि मेरे माननीय मित्र श्री मैत्र ने कहा है, राजनीति के संबंध में यह समझ में आता है और यह ठीक भी प्रतीत होता है कि अंग्रेजों के प्रति कटुता रही हो तथा क्षोभ भी रहा हो। किन्तु हमें भ्रम में न पड़ना चाहिये और उलटे सीधे ढंग से विचार न करना चाहिये। अंग्रेजों के प्रति अपने क्रोध को हम अंग्रेजी भाषा पर न उतारें। जैसाकि उन्होंने कहा था, अंग्रेजी भी कुछ ही ऐसी सुन्दर चीजों में से एक है जिसे अंग्रेजों ने अकस्मात बिना अधिक सोचे-विचारे इस देश को प्रदान किया। अंग्रेजी के ज्ञान से भारतीयों के लिये साहित्य, विचार तथा संस्कृति के एक बहुत बड़े भंडार के द्वार खुल गये। मेरी समझ में नहीं आता कि अंग्रेजी के प्रति इतनी कटुता का रुख क्यों अपनाया जा रहा है और उसे मिटा देने का प्रयास क्यों किया जा रहा है। यह जानबूझ कर लोगों को हानि पहुंचाना ही है। आखिर दो सौ वर्ष के काल में हमारे देशवासियों ने अंग्रेजी का जो ज्ञान प्राप्त किया है वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। मैं यह बिना किसी संकोच के कहता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत नेतृत्व का इसी कारण दावा कर सका है और इसी कारण उसे स्वीकार भी कर सका है कि विदेश में हमारे प्रतिनिधियों को आत्मविश्वास है और वे अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में अंग्रेजी में आत्मविश्वास से बोल सकते हैं।

श्रीमान्, एक समय इस देश की राष्ट्र-भाषा के संबंध में मुझे कुछ भी संदेह नहीं था। दुर्भाग्य से जो वाद-विवाद चल पड़ा है उसके आरम्भ होने के पूर्व मैं बिना किसी सन्देह के यह माने हुए था कि हिन्दी ही इस देश की राष्ट्र-भाषा होगी। उस समय किसी लिपि के प्रति मेरा कोई विशेष रुझान नहीं था। सौभाग्य से मैं देवनागरी लिपि जानता हूं। वह संसार की बहुत सरल लिपियों में से एक है। इस दुखद वाद-विवाद के चलने के पूर्व मैं बिना किसी संकोच के देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लेता। किन्तु आज मेरा विचार बदल गया है। मैं किसी को दु:ख पहुंचाना नहीं चाहता। किन्तु मैं यह कहूंगा, कि हमारे उन मित्रों ने, जिन्होंने बड़े उत्साह से और बहुत कुछ कट्टरपंथी से हिन्दी का समर्थन किया है, हिन्दी को अन्य लोगों की अपेक्षा बहुत हानि पहुंचाई है। वे भले ही यह न कहें किन्तु अन्य अहिन्दी प्रदेशों के लोगों ने उनके कार्यों में, भाषणों में तथा उनके रुख में कट्टरपंथी की असहिष्णुता ही देखी। उन्होंने अपनी कट्टरपंथी तथा असहिष्णुता से बड़ा क्षोभ उत्पन्न कर दिया है। जिसके परिणामस्वरूप जो भाषा स्वभावत: इस देश की राष्ट्र-भाषा स्वीकार की जाती उसका

[मि. फ्रैंक एंथनी]

विरोध होने लगा है। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि, चूंकि उस महत्वपूर्ण विषय के संबंध में दुर्भाग्य से बड़ी सरगर्मी और असहिष्णुता उत्पन्न हो गई है इसलिये यह आवश्यक है कि हिन्दी के स्वरूप तथा विस्तार की परिभाषा की जाये। मैं एक हिन्दी भाषी प्रान्त का निवासी हूं। इस विवाद के आरम्भ होने के पूर्व हम जानते थे कि हिन्दी का एक स्वरूप है और वह स्वरूप किसी साहित्यिक की हिन्दी का स्वरूप नहीं है बल्कि एक साधारण आदमी की हिन्दी का स्वरूप है। आज हम क्या देखते हैं? कट्टरपंथी तथा धर्मांधता की भावना से ही शोधन की प्रक्रिया आरम्भ की गई है। जब तक इस भाषा की परिभाषा नहीं की जाती, मेरी यह धारणा है कि इस धर्मांधता के आन्दोलन में साधारण हिन्दुओं तथा जन साधारण पर एक दुर्बोध तथा नवीन संस्कृतनिष्ठ हिन्दी थोप दी जायेगी। ऐसी भाषाओं के विरुद्ध, जो संस्कृत अथवा हिन्दी से नहीं निकली हैं, एक प्रकार की प्रतिहिंसा बरती जा रही है। साधारण भाषा को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा है। आज कल 'सबेरा' शब्द सम्भवत: इसलिये काम में नहीं लाया जाता कि वह उर्दू का शब्द है और हमारे मित्र "प्रात:काल" बोलते हैं। जब मैं अपने नौकर से प्रात:काल कहता हूं तो वह नहीं समझता कि मैं क्या कह रहा हूं। एक विद्यार्थी ने मुझसे कहा कि उसे बराबर यह पंक्ति रटाई जाती है: "हिन्दी के विरुद्ध भाषण देने से साम्प्रदायिक भावना उत्पन्न होती है"।

हम अपने लोगों पर इस प्रकार की हिन्दी को थोपने का प्रयास कर रहे हैं। यदि आप अपने हिन्दी में लिखे हुए संविधान को ही देखेंगे तो आप बता सकेंगे कि कितने हिन्दी-भाषी हिन्दू ही उसे समझ सकते हैं। मैंने तथाकथित हिन्दी अनुवाद को पढ़ने का प्रयास किया किन्तु चार वाक्यों में मैं एक शब्द को भी नहीं समझ सका। मैंने अपने कई कोषों को निकाल कर भी देखा किन्तु ये अपरिचित शब्द कोषों में भी नहीं मिलते। आप मुझसे कैसे आशा करते हैं कि मैं एक ही दिन में हिन्दी के इस नवीन स्वरूप से परिचित हो जाऊंगा? इसलिये मेरे विचार से यह आवश्यक है कि हम इस भाषा की परिभाषा करें।

यदि हम इस अवसर पर राष्ट्र-भाषा के संबंध में जल्दबाजी तथा असहिष्णुता से निर्णय करेंगे तो उससे हिन्दी-भाषी हिन्दू ही अकारण बहुत बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे। जब मैं जबलपुर अपने घर जाता हूं तो हिन्दी भाषी हिन्दू लड़के ही आकर मुझसे शिकायतें करते हैं:

"नागपुर विश्वविद्यालय की जल्दबाजी की नीति से हमारा जीवन ही खराब हो रहा है। हम दसवीं कक्षा तक पहले निकलते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने घरों में हम हिन्दी ही बोलते हैं किन्तु हम अभी इस कोटि की हिन्दी नहीं सीख पाये हैं कि पहली श्रेणी में उपाधि प्राप्त कर सकें। नागपुर विश्वविद्यालय में एकाएक हिन्दी में काम होने लगा है।"

यदि हिन्दी-भाषी हिन्दुओं को ही इतनी कठिनाई हो रही है तो इसकी कल्पना की जा सकती है कि मध्यप्रान्त में भाषा पर आधृत अल्पसंख्यकों की क्या दशा

होगी। आप उन्हें एकाएक निरक्षर बना दे रहे हैं। इस पर भी आप ऐहिक लोकतंत्र की दुहाई देते हैं। एक ओर आप अवसर-समता की चर्चा करते हैं और दूसरी ओर आप एकाएक ऐसी नीतियों को प्रयोग में लाते हैं जिनसे अवसर-समता के सिद्धान्त का ही हनन होता है।

श्रीमान्, मुझे खेद है कि मुझे इस विषय पर इतने जोश के साथ बोलना पड़ रहा है। इसका कारण यही है कि इस संबंध में मेरी प्रबल धारणा है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, इस संबंध में मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है। मुझे अपने मित्रों के उद्देश्यों पर कोई आपत्ति नहीं है, और मैं समझता हूं कि उनके उद्देश्य सच्चे उद्देश्य हैं, किन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जिन लोगों को उनसे मतभेद है वे उनकी सच्चाई का अर्थ कुछ दूसरा ही लगाते हैं। उनकी यह धारणा है कि उनकी इस कट्टरपंथी और असहिष्णुता के पीछे उनका कुत्सित साम्प्रदायिक उद्देश्य छिपा हुआ है और चाहे उनका यह लक्ष्य हो या न हो किन्तु इससे ऐहिक राज्य का आदर्श मिट्टी में मिल जायेगा। यह मेरी समझ में नहीं आता। आपको डर किस चीज़ का है? आप में से कुछ लोग पिछले दो सौ वर्षों के दासत्व को नहीं भूल पाये हैं। जैसाकि मेरे मित्र पंडित मैत्र ने कहा है, भाषा एक सजीव तथा सक्रिय वस्तु है। आप उसे एक ही सांचे में नहीं ढाल सकते। आप कृत्रिम रूप से भाषा के विकसित तथा अनुप्राणित होने की प्रक्रिया नहीं निश्चित कर सकते हैं। हम क्या करने का प्रयास कर रहे हैं? आपको यह डर लगा हुआ है कि हिन्दू अब इतने अशक्त हो गये हैं कि वे अब अपनी ही संस्कृति तथा अपनी ही भाषा का खण्डन कर देंगे। ताकि हिन्दू अपनी भाषा को विकसित करने में अपनी संस्कृति का खण्डन न करें, आप एक ठोस सूत्र रख देना चाहते हैं। यह मेरी समझ में नहीं आता। आपको डर किसका है। हिन्दी अवश्य ही स्वाभाविक रूप से विकसित होकर राष्ट्र-भाषा के स्वरूप को प्राप्त होगी और उसके इस विकास में बाधा कौन डाल सकता है? श्रीमान्, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यह रुख उन कुछ अंग्रेजों के रुख के समान ही है जो एक सुबह एकाएक जागकर रोमण आक्रमण का और उससे उत्पन्न हुई कटुता का स्मरण करने लगें और अंग्रेजी से लैटिन के सभी शब्दों को निकाल बाहर करने के लिये एक आन्दोलन चलायें। अंग्रेजी से लैटिन के सभी शब्दों को निकालने के आन्दोलन में और हिन्दी से उर्दू और फारसी के सभी घुले मिले शब्दों को निकालने के आन्दोलन में कोई अन्तर नहीं है।

मैं अपने मुसलमान मित्रों के पक्ष का समर्थन नहीं कर रहा हूं। मैंने उनके पक्ष का तथा मुस्लिम लीग की राजनीति का कभी भी समर्थन नहीं किया, किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि किसी भी भाषा का विकास प्राकृतिक धाराओं से होता है और मेरे मित्र इन प्राकृतिक धाराओं को न तो रोक सकते हैं और न उन्हें शिथिल ही कर सकते हैं। चाहे आप इसे पसंद करें या नापसंद, हिन्दी में बाहर से शब्द लिये जायेंगे और सम्भवत: आपके इस रुख के कारण सभी भाषाओं से लिये जायेंगे। मुझे इसका खेद है कि किसी कारण से, यद्यपि यह तर्कयुक्त कारण नहीं है,—कम से कम मेरे विचार से तर्कयुक्त कारण नहीं है—आपने अंग्रेजी को उन भाषाओं की सूची में नहीं रखा है, जिनसे हिन्दी के लिये शब्द लिये जा सकते हैं। यह किस तर्कयुक्त कारण के आधार पर किया गया है सिवाय इसके

कि इस अवसर पर भी आपके हृदय में अंग्रेजों के प्रति जो घृणा है वह जाग उठी है? आखिर यदि आज कल आप किसी अच्छे पढ़े लिखे हिन्दू से वार्तालाप करेंगे तो वह कई अंग्रेजी शब्दों को प्रयोग करेगा क्योंकि वे हिन्दी भाषा में घुल मिल गये हैं। किन्तु फिर भी किसी तर्कयुक्त कारण से नहीं, बल्कि मैं कहूंगा कट्टरपंथी से और तर्कशून्यता से, अंग्रेजी को उन चौदह भाषाओं की सूची से मनमाने तौर पर, निकाल दिया गया है, जिनसे हिन्दी के लिये शब्द रखे जा सकते हैं।

मैंने रोमन लिपि सहित हिन्दी-विषयक इस संशोधन को इस कारण प्रस्तुत किया है कि वस्तुस्थिति को देखते हुए और देश के हितों को ध्यान में रखते हुए मेरी यह धारणा है कि हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। मुझे यह विदित है कि देश के इस समय के वातावरण के कारण तथा सभा के वर्तमान रुख के कारण भावनावश अथवा प्रतिक्रियावश हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे। यह न समझा जाये कि मैं किसी को दु:ख पहुंचाना चाहता हूं, किन्तु मैं यह अवश्य पूछना चाहता हूं कि आखिर लिपि किस प्रकार पवित्र होती है। यदि देवनागरी लिपि हिन्दी-भाषी हिन्दुओं के लिये पवित्र है तो इस संबंध में भारत में एकरूपता कैसे आ सकती है और अन्य लोगों से यह कैसे कहा जा सकता है कि वे अपनी मातृ-भाषाओं अर्थात् प्रान्तीय भाषाओं की लिपियों को छोड़ कर देवनागरी लिपि को अपनायें?

मेरी यह धारणा है कि यदि हममें साहस तथा कल्पना का अभाव नहीं है तो हम रोमन लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें। कई कारणों से इस पर विचार किया जाना चाहिये। और इसके पक्ष में निर्णय करना चाहिये। बीस लाख जवानों को युद्ध काल में तीन-चार वर्ष में ही रोमन लिपि द्वारा हिन्दी में साक्षर बनाया गया था। यदि हम रोमन लिपि को स्वीकार कर लेंगे तो हम भारतीय एकता तथा राष्ट्रीय एकता के पथ पर बहुत आगे बढ़ जायेंगे। मुझे विश्वास है कि यदि हम हिन्दी के लिये रोमन लिपि को स्वीकार कर लेंगे तो प्रान्तीय भाषाओं के लिये भी उसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इससे आप तुरन्त ही प्रान्तों के आपस के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषा-संबंधी व्यवहार को बहुत आगे बढ़ा देंगे।

किन्तु जैसाकि मैं कह चुका हूं इसके लिये साहस और कल्पना की आवश्यकता है। इसके लिये आवश्यकता है भावना और प्रतिक्रियावादी शक्तियों के वश में न आने की और उनका विरोध करने की। मैं कह नहीं सकता कि यह किया जायेगा या नहीं। मेरा यह विचार है कि हम प्रादेशिकता के हित में बहुत रियायत कर रहे हैं, यद्यपि मेरे मित्र शंकर राव देव मेरे इस विचार से सहमत नहीं होंगे और एक सीमा तक मैं स्वयं उनसे सहमत हूं। मैं यह जानता हूं कि विभिन्न प्रान्तों के लोगों की अपनी मातृ-भाषाओं के संबंध में कैसी प्रबल धारणायें हैं। यह स्वाभाविक ही है। यह स्वाभाविक ही है कि तामिल, तेलगू, बंगला और गुजराती सुसम्पन्न होंगी और पूर्ण रूप से विकसित होंगी किन्तु मेरा यह विचार करना भी स्वाभाविक है कि हम भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को एक सीमा तक ही व्यक्त करते हैं तथा इसके नाते को भी एक सीमा तक ही लगाते हैं—केवल उसी सीमा तक जो हमें हितकर प्रतीत होती है। किन्तु जब हमें वह हितकर नहीं प्रतीत होने लगती तो हम एक ऐसी नीति के पक्ष में तर्क उपस्थित करने लगते हैं जिसका विकास होने पर देश का अवश्य ही खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

केवल वही व्यक्ति जो जानबूझ कर बेईमानी करना चाहता हो यह तर्क उपस्थित करेगा कि जिस लड़के ने अपनी प्राथमिक तथा माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा बंगला में प्राप्त की होगी वह हिन्दी का भी आदर कर सकेगा। यदि हम राष्ट्र भाषा में वास्तव में दिलचस्पी रखते हैं तो हमारे हितों को जो क्षति होती है उसे हम सब सहन करें। मद्रासी, बंगला और गुजराती सभी तथा हिन्दी भी राष्ट्रीय एकता के लिये क्षति सहन करे। इसी कारण मैंने इस संशोधन को उपस्थित किया है। मैं यह कहता हूं कि बिना संसद की पहले से मंजूरी लिये हुए विश्वविद्यालयों को शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन न करना चाहिये। और न्यायालयों की भाषा में भी बिना संसद की मंजूरी के परिवर्तन न करना चाहिये। मैंने परामर्श देने के उद्देश्य से ही इस संशोधन को उपस्थित किया है।

अब मैं न्यायालयों के प्रश्न को उठाता हूं। आपने केवल उच्च न्यायालयों के संबंध में व्यवस्था की है। अन्य न्यायालयों में क्या होगा? यदि कल किसी प्रान्त की अथवा राज्य की भाषा प्रयोग में लाई जायेगी, और यह निश्चित ही है कि कुछ प्रान्तों में वह तुरंत ही प्रयोग में लाई जायेगी, तो क्या होगा? सत्र न्यायालयों में, उदाहरणार्थ मध्यप्रान्त में, मद्रासी न्यायाधीश क्या करेंगे? क्या आप इन लोगों से यह कहने जा रहे हैं कि वे अपने विचारपूर्ण निर्णयों को जिनमें विधि का निर्वचन भी किया जाता है, हिन्दी में लिखें? यह बहुत ही अजीब बात होगी। उनका निर्वचन करने तथा अंग्रेजी में अनुवाद करने की आवश्यकता होगी ताकि उच्च न्यायालय उन अनुवादित निर्णयों पर विचार कर सकें। और अपना निर्णय सुना सकें। निर्वचन होते समय इन निर्णयों की शक्ति तथा गठन बहुत कुछ भंग हो जायेगा। यदि मेरा दूसरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उससे यह निश्चित हो जायेगा कि प्रत्येक प्रान्त में प्राकृतिक विकास के अनुसार ही परिवर्तन होंगे। इसका अवश्य ही यह परिणाम होगा कि केन्द्र में ही नहीं बल्कि प्रान्तों में भी राष्ट्र-भाषा प्रत्येक क्षेत्र में समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगी।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली)**:** मैं जानना चाहता हूं कि क्या यह सच नहीं है कि आज कल संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में अधीन न्यायालय उर्दू में निर्णय सुनाते हैं और उच्च न्यायालयों के विचारार्थ उनका अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है?

***मि. फ्रैंक एंथनी:** मैं इस संबंध में कुछ नहीं जानता।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** अब हिन्दी को स्वीकार किया गया है किन्तु अभी तक संयुक्तप्रान्त, बिहार और पंजाब में अधीन न्यायालय निर्णय उर्दू में सुनाते थे।

***मि. फ्रैंक एंथनी:** मुझे बिहार के बारे में जानकारी है क्योंकि मैंने वहां सत्र न्यायालयों के सामने तर्क उपस्थित किये हैं। वहां अंग्रेजी प्रयोग में आती है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** मेरा मतलब यह है कि सत्र न्यायालयों के उपयोग के लिये लेखों का अनुवाद किया जाता है।

***मि. फ्रैंक एंथनी:** जैसाकि मैं कह चुका हूं, कई वर्षों से सभी न्यायालयों में एक प्रकार का कार्य स्थानीय अथवा प्रान्तीय भाषाओं में किया जा रहा है।

अभियुक्त की परीक्षा मातृभाषा में ही होती है। कुछ लेखों को हिन्दी में ही रखा जाता है। मैं उस आधारभूत कार्य की चर्चा कर रहा हूं जिसे अधीन न्यायालय भी करते हैं, जैसेकि सत्र न्यायालयों का निर्णय लिखना। मेरी यह धारणा है कि यदि किसी प्रकार का परिवर्तन करना ही है तो उसे इस अवसर पर नहीं करना चाहिये। परिवर्तन बाद में उस समय किया जा सकता है जब हमें विश्वास हो जायेगा कि हमारे न्यायाधीशों को हिन्दी का इतना ज्ञान है कि वे उस भाषा में निर्णयों को सुन्दर विश्लेषणात्मक शैली में उसी प्रकार लिख सकते हैं जैसे वे अंग्रेजी में लिख सकते हैं।

श्रीमान्, मेरे विचार से रोमन लिपि सहित हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने के संबंध में और बिना पहले संसद की मंजूरी लिये हुए किसी प्रान्त में, किसी विश्वविद्यालय अथवा किसी न्यायालय की भाषा अथवा भाषाओं में परिवर्तन न किये जाने के संबंध में मैं अपने तर्कों को उपस्थित कर चुका हूं। श्रीमान्, मैं अपना प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।

*__अध्यक्षः__ वक्ताओं के चुनने में मुझे बहुत कठिनाई हो रही है। हमारे सामने कई संशोधन हैं—गिनने पर मुझे ज्ञात हुआ है कि संशोधनों के प्रस्तावकों की संख्या साठ या इससे कुछ अधिक है। यदि मैं उन नामों को गिनूं जो संशोधनों के साथ दिये गये हैं तो उनकी संख्या सौ से भी अधिक होगी। इस स्थिति में वक्ताओं को चुनने में मेरे लिये बहुत कठिनाई हो रही है। अभी तक मैंने ऐसे लोगों को बोलने के लिए बुलाया है जिनके संशोधन बहुत कुछ आधारभूत महत्व के थे। किन्तु थोड़ी देर बाद ऐसे लोग नहीं रह जायेंगे और मेरे लिये वक्ताओं को चुनना कठिन हो जायेगा। जिस किसी सदस्य ने किसी संशोधन की सूचना दी है वह यह समझता है कि उसके संशोधन का समर्थन होना चाहिये और उसे बोलने का अवसर मिलना चाहिये। जिन लोगों ने संशोधनों की सूचना नहीं दी है वे भी यह समझते हैं कि उन्हें बोलने का अवसर मिलना चाहिये। सभा के सभी सदस्य इन दो श्रेणियों में से किसी न किसी श्रेणी के हैं। मैं चाहता हूं कि इस विषय में सभा मेरा पथप्रदर्शन करे।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): इसका अर्थ केवल यह है कि इस बहस के लिए पहले जितना समय रखा गया था उससे उसमें कुछ अधिक समय लगेगा।

*__श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह सुझाव है कि प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि बोलने के लिये बुलाये जायें। हमारे यहां लोगों के दो वर्ग हैं, एक तो वे जो हिन्दी-भाषी प्रान्तों के हैं और एक वे जो हिन्दी-भाषी प्रान्तों के नहीं हैं। दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है। किसी अवसर पर सम्भव है हम कोई ऐसा समझौता कर लेंगे जिससे सभी को संतोष होगा। इसलिये उचित यह होगा कि बोलने के लिये एक दो मद्रास के लोग बुलाये जायें और इसी प्रकार से मध्यप्रान्त से और अन्य प्रान्तों से बुलाये जायें। आखिर सभी का दृष्टिकोण बहुत अंश में एक समान ही है।

*__अध्यक्षः__ सौभाग्य से मतभेद का आधार प्रान्तीय नहीं है।

***श्री सारंगधर दास** (उड़ीसा राज्य): श्रीमान्, क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि जो प्रान्त हिन्दी भाषी नहीं हैं उनके प्रतिनिधियों को बोलने का अधिक अवसर दिया जाये यदि केवल हिन्दी-भाषी लोगों को अपने पक्ष का विज्ञापन करने का अवसर दिया गया.....

***अध्यक्ष:** यदि माननीय सदस्य महोदय जिस समय से यह बहस आरम्भ हुई है तब से इस सभा में उपस्थित होते और उन्होंने वक्ताओं के नाम गिने होते, तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि अभी तक हिन्दी-भाषी वक्ताओं की संख्या अन्य लोगों की अपेक्षा कम रही है।

***श्री राम सहाय** (मध्य भारत): मेरा निवेदन है कि हिन्दी के मामले में स्टेट के नुमाइन्दों को अपने ख्यालात इजहार करने का मौका दिया जाये।

अध्यक्ष: स्टेट की हिन्दी में और दूसरी जगह की हिन्दी में क्या कोई अन्तर है?

श्री राम सहाय: नहीं, एक ही चीज है, मगर इंटरस्ट्स, आवश्यकताएं, समस्यायें अलग-अलग हैं।

अध्यक्ष: मैंने यह समझ लिया है कि हर एक प्रान्त का ख्याल रखकर और सब चीजों का ख्याल रखकर मैं जितना मौका होगा सबको दूंगा। मगर यह बात गैर-मुमकिन है कि सब आदमियों को मौका मिले। मैं नहीं जानता कि कब तक इस पर बहस चलती रहेगी।

माननीय सदस्य: कल तक।

अध्यक्ष: मैं कह नहीं सकता कि सभा इस विषय पर कब तक विचार करना चाहेगी।

पहले टाइम लिमिट मुकर्रर कर दिया गया था मगर वह बात नहीं रही। मैं हर आदमी को 15 मिनट और 20 मिनट देने की कोशिश करता हूं और ज्यादा और कम भी कर सकता हूं। मगर मैं इस बात की कोशिश करता हूं कि कोई आदमी इधर उधर की बातें न कहे। जो बात बोले मौजूं बोले। जब मैं देखता हूं कि कोई आदमी असंगत बोलता है तो मैं उसको रोकने की कोशिश करता हूं और रोक देता हूं। इसलिये मुझे समय को देखते हुए रोकने में दिक्कत पड़ती है, इस बात का ख्याल हर एक मेम्बर को ध्यान में रखना चाहिये।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** क्या आप कृपा करके कल तक बहस को जारी न रखेंगे क्योंकि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है?

***अध्यक्ष:** यह सभा पर निर्भर है। हम इस प्रश्न पर आज अन्त में विचार करेंगे।

*__श्री देशबन्धु गुप्तः__ जब तक किसी एक सूत्र के संबंध में सभी सहमत न हो जायें तब तक बहस चलती रहे।

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): वक्ताओं के चुनने की जिस प्रणाली के संबंध में आपने निर्णय किया है, उसको ध्यान में रखते हुए क्या मैं पूछ सकता हूं कि क्या सभा के सदस्य आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिये खड़े होते रहें अथवा आप स्वयं उनका नाम पुकारेंगे।

*__अध्यक्षः__ वे मेरा ध्यान आकृष्ट करने के लिये खड़े होते रहें और इस बीच मैं चुन भी लूंगा।

*__एक माननीय सदस्यः__ मेरा यह सुझाव है कि पांच या दस मिनट की काल-सीमा भी निश्चित कर दी जाये।

*__अध्यक्षः__ मेरे विचार से हमें अपने भाषणों को सीमित करना होगा।

*__पं. गोविन्द मालवीय__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): आपने जो कुछ कहा है उसे ध्यान में रखते हुए अर्थात् इसे ध्यान में रखते हुए कि आप किसी वक्ता को कोई अप्रासंगिक बात नहीं कहने देंगे, मेरे विचार से काल-सीमा का प्रश्न नहीं उठता। यदि किसी वक्ता के दो मिनट बोलने के पश्चात् आप यह देखें कि वह अप्रासंगिक बातें कर रहा है तो या तो उससे विषय पर आने के लिये कहा जा सकता है या अपना भाषण समाप्त करने के लिये कहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मुझे यह कहना है कि यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है और सभा के प्रत्येक सदस्य की इसमें इतनी अधिक दिलचस्पी है कि यह नहीं कहा जा सकता कि इस बहस को एक दिन दिया जाये, अथवा आधा दिन, अथवा दो दिन, अथवा इससे भी अधिक समय। जब तक इस विषय के संबंध में कोई नया तर्क अथवा नया दृष्टिकोण उपस्थित किया जा सकता है यह आपके ही स्वविवेक पर निर्भर है कि बहस कितने समय तक चले। यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि मेरे विचार से आप स्वविवेक से जहां तक हो सके इस बहस को चलने दें।

*__अध्यक्षः__ जी हां, आप इसे मेरे स्वविवेक पर छोड़ दें।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले__ (मद्रास : जनरल): भाषा-प्रश्न के लिये दो दिन दिये गये थे और विभिन्न प्रान्तों से अधिकांश सदस्य यही धारणा बना कर आये हैं कि यह बहस केवल दो दिन तक चलेगी। इसलिये मेरे विचार से यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस बहस को आज सायंकाल समाप्त कर दिया जाये और तत्पश्चात् इस प्रश्न पर मत लिया जाये।

*__अध्यक्षः__ केवल इसी कारण बहस नहीं समाप्त की जा सकती। सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे पूरे सत्र तक सभा में रहेंगे।

काज़ी सैय्यद करीमुद्दीन (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): जनाब सदर, मेरे नाम जो तरमीमें हैं। पहली तरमीम यह है:

"That in amendment No. 65 of fourth List, for the proposed New Part XIV-A, the following be substituted:—

301 A.—The Parliament by law provide the National language of the Union within six months after the election of the Parliament on the basis of adult Franchise.'"

(चौथी सूची के संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन भाग 14-क के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

''301 क-प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर संसद का निर्वाचन होने के छह महीने के अन्दर संसद विधि द्वारा राष्ट्र-भाषा को निर्धारित करे।')

और दूसरी तरमीम यह है कि अगर यह मंजूर न हो तो हिन्दुस्तान की नेशनल लैंग्वेज हिन्दुस्तानी होनी चाहिये। जनाब सदर, जो फिजा इस वक्त पैदा हो गई है उसमें मैं नहीं समझ सकता कि आया मेरी तरमीम मंजूर होगी या नहीं होगी। लेकिन जैसा कि गालिब ने कहा है "तमाशा ऐ अहले करम देखते हैं"।

हमको यह नहीं देखना है कि आप इसको मंजूर करते हैं या नहीं करते हैं। हमें यह देखना है कि जो पोजीशन यहां पर सन् 1947 में थी क्या वही अब भी है या उसमें कुछ कमी बशी वाकै हुई है और अगर हुई है तो क्यों ऐसा हुआ है।

आज यहां पर यह कहा जाता है कि मुसलमान यहां पर कम्यूनल इलैक्शन पर आये हैं तो इस बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि सन् 47 से कब्ल जो हिन्दुस्तान में जनरल इलैक्शन हुआ है वह सब कम्यूनल बेसिस पर हुआ है। मुसलमानों का इलैक्शन भी कम्यूनल बेसिस पर हुआ है और कांग्रेस के जो मेम्बर इलेक्ट हुए हैं वे भी कम्यूनल बेसिस पर हुए हैं और ऐसी फिज़ा होने की वजह से ही इस वक्त जज़बात इतने उभरे हुए हैं। मि. धुलेकर ने अभी-अभी कह दिया है कि उर्दू मुसलमानों की जबान नहीं है लेकिन हमारे जज़बात इस वक्त बहुत भड़क गये हैं, आप हमसे दो साल के बाद उर्दू या फारसी की मांग कर लें तो वह मंजूर की जायेगी। लेकिन इस वक्त इस बात की कोई गुंजाइश नहीं है कि इस मांग को पूरा किया जाये। जनाब सदर, मैंने इसी वजह से अपनी तरमीम पेश की है। अगर यह इस फिजा में इस बात को नहीं सोच सकते हैं तो जब हिन्दी हिन्दुस्तान की जबान मुकर्रर हो जाये तब यह कैसे इस बात को सोच सकेंगे। तो मेरी गुजारिश यह है कि जब जनरल इलैक्शन हो जाये और सब हिन्दू मुसलमान मेम्बर ज्वाइंट इलेक्टोरेट के जरिये से यहां के पार्लियामेंट में मेम्बर होकर आ जायें उस वक्त अगर वह पार्लियामेंट यहां की जबान के मामले का फैसला कर दे तो वह निहायत ही मुनासिब होगा बजाय इसके कि इस मामले को इस वक्त

मौजूदा फिज़ा में फैसला किया जाये। हो सकता है कि अब जो फैसला किया जायेगा वह कुछ सूबों को मंजूर न हो और कुछ दीगर लोगों को मंजूर न हो, ऐसा करना मुनासिब नहीं है।

जनाब सदर, मौजूदा तरज़ेअमल अख्तियार किये जाने की सबसे बड़ी भारी वजह यह है कि सन् 1947 के बाद पाकिस्तान ने अपने मुल्क में उर्दू जबान को नेशनल जबान करार दिया है और हो सकता है कि उसी की रियेक्शन की वजह से यहां हिन्दुस्तान में हिन्दी जबान को मुकर्रर किया जा रहा है और वह भी देवनागरी रस्मुलखत में।

जनाब सेठ गोविन्द दास साहब ने कुछ मेम्बरों के नाम बताये हैं जो कि इसके हक में दस्तखत कर गये थे। लेकिन बाद में वह बदल गये हैं। मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि जो हिन्दी और देवनागरी के हक में थे वह क्या तमाम के तमाम कांग्रेस के मेम्बर नहीं हैं? उन्होंने कुर्बानियां की हैं और उनकी जातें कुर्बानी से वाबस्ता हैं और अगर यह हिन्दी को देवनागरी रम्मुलखत में करना चाहते हैं तो क्या वह कांग्रेस की क्रीड के मुताबिक है। जो मेम्बरान दस्तखत करने के बाद बदल गये हैं। वह चूंकि कांग्रेस की क्रीड को कबूल कर चुके हैं इसलिये उन्होंने ऐसा करना मुनासिब ख्याल किया है और बदल गये हैं। कांग्रेस ने तो यह मान लिया था कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी जबान दोनों देवनागरी और उर्दू रस्मुलखत में रायज़ होंगी। अगर आज महात्मा गांधी जिन्दा होते तो वह देखते कि कांग्रेस एक रौक की तरह इस मामले में खड़ी होती है ताकि दोनों रस्मुलखत यहां मुकर्रर किये जायें।

मेरे दोस्त मि. धुलेकर ने कहा कि गांधी जी ने हिन्दुस्तानी देवनागरी और उर्दू जबान में अपीजमेंट की वजह से कहा था। तो क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि जो कुछ भी कांग्रेस करती है वह सिर्फ अपीजमेंट की वजह से करती है और यह जो यहां पर सिकुलर स्टेट कायम किया गया है वह भी अपीजमेंट की वजह से किया गया है? मैं यह कहूंगा कि जितने भी सैक्शन यहां हिन्दुस्तान में रहते हैं यह उन सबका मुल्क है और उनको इस मुल्क में रहने का हक़ है और अगर गांधी जी ने इस बात को कायम किया था कि हिन्दुस्तान की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी, जो कि दोनों उर्दू और देवनागरी रस्मुलखत में लिखी जायेंगी, और कांग्रेस ने भी इस बात को तस्लीम किया था जो आज इसको बदलने के लिये कहा यह जाता है कि यह सब अपीज़मेंट के लिये किया गया था। मैं सेठ गोविन्द दास की यादाश्त के लिये उनकी तवज्जुह उनकी ही अपनी ही तकरीर की तरफ दिलाना चाहता हूं जो कि उन्होंने सन् 1945 में बजट के मौके पर की थी और यह कहा था कि मुझे बहुत ही अफसोस है कि मैं अपनी तकरीर हिन्दुस्तानी में नहीं कर सकता हूं। क्या वह इस बात को सिर्फ तीन साल ही मैं भूल गये? सन् 1945 में उनकी नेशनल ज़बान हिन्दुस्तानी थी और आज देवनागरी रस्मुलखत में हिन्दी हो गई है। क्या उनसे मैं पूछ सकता हूं कि आज उनके पास इस बात का क्या जवाब है? सन् 1947 में इंडियन नेशनल कांग्रेस ने यह कबूल किया था कि हिन्दुस्तान की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी जिसके दोनों उर्दू और देवनागरी रस्मुलखत होंगे। लेकिन आज यह फ़रमाया जाता है कि सिर्फ देवनागरी रस्मुलखत होगा। उसकी वजह यह है, जैसकि मैं बता चुका हूं, सन् 1947 के पार्टीशन के

बाद पाकिस्तान ने अपनी नेशनल ज़बान उर्दू होने का ऐलान किया और उसी को रियेक्शन की वजह से आज यहां हिन्दुस्तान में हिन्दी और देवनागरी रस्मुलखत मुकर्रर किया जा रहा है। इस बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर आप देवनागरी रस्मुलखत रखते हैं तो उसके साथ-साथ उर्दू रस्मुलखत भी रखिये।

हिन्दुस्तान के चार करोड़ मुसलमानों को यू.पी., बिहार और बरार के मुसलमानों को लीजिये। वह अपनी तालीम, अपनी मादरी ज़बान, यानी उर्दू में पा रहे हैं और अगर आज आप यहां की नेशनल लैंग्वेज हिन्दी कर देंगे तो क्या यह मुमकिन हो सकता है कि वह मुसलमान सरकारी नौकरियां हासिल कर सकें। जैसे कि आप दूसरी ज़बान को पांच या दस साल की मुद्दत दे रहे हैं, वैसे आप इसको खत्म करने में कोई वक्त नहीं दे रहे हैं और हिन्दी रस्मुलखत को मुकर्रर कर रहे हैं। मैं हिन्दी के खिलाफ नहीं हूं। लेकिन जब यहां की ज़बान हिन्दुस्तानी है तो उर्दू के बारे में इस कदर नफ़रत क्यों जाहिर की जाती है।

आपने खुद ही इस बात को मान लिया है कि अंग्रेजी दस या पन्द्रह बरस तक यहां की ज़बान रहेगी। लेकिन यू.पी., बिहार और बरार और तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमानों के राइट्स को नज़रअन्दाज़ करके आप उर्दू रस्मुलखत को खत्म कर देना चाहते हैं और इस रेजोल्यूशन के जरिये से और अपनी मैजोरिटी के ज़रिये से आप इसको एकदम खत्म और बन्द करना चाहते हैं। यह क्यों हो रहा है वह इसलिये कि मेरी दानिस्त में यह जज़्बात की वजह से हो रहा है। यह सेंटीमेंट की वजह से है। यह रियेक्शन की वजह से है।

पं. गोविन्द मालवीय (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह कौन कहता है?

काजी सैयद करीमुद्दीनः यह रेजुलेशन कहता है।

पं. गोविन्द मालवीयः कहां।

काज़ी सैयद करीमुद्दीनः रस्मुलखत देवनागरी हो यह इसका पहला कलाज है। यू.पी. में कई हज़ारहा गवर्नमेंट सर्वेंट मुसलमान ऐसे हैं जो फक्त उर्दू जानते हैं। अगर आपने नेशनल लैंग्वेज देवनागरी कर दी तो मुमकिन नहीं है कि मुसलमान नौकरी कर सकें। जब तक आप दस साल का वक्त मुकर्रर न करें तब तक वह अच्छी तरह हिन्दी नहीं सीख सकते। यह मेरी दरख्वास्त है। मैं हाउस से कहना चाहता हूं कि जिस चीज को आपने सन् 1947 तक कबूल किया था और महात्मा जी का इशारा था, बल्कि वह कहते थे कि मैं इसके लिये लडूंगा तो आज जो महात्मा जी के पैरोकार हैं वह उनकी बात न मानकर एकदम से हिन्दुस्तानी को छोड़ कर उसके उर्दू के रस्मुलखत को बन्द करने का क्या मतलब है। इसके लिये जो धुलेकर जी ने अपनी राय दी है उसके अलावा और कोई वजह नहीं हो सकती है।

सेठ गोविन्द दास जी ने कहा कि उर्दू न मानने की एक वजह यह है कि इसको जब हम पढ़ते हैं तो उसमें रुस्तम और सोहराब का जिक्र निकलता है। इसके लिये मैं यह कहता हूं कि जब यहां की ज़बान हिन्दुस्तानी होगी और रस्मुलखत उर्दू और देवनागरी दोनों होंगे तो क्या हिन्दुस्तान के लीडर्स के नाम का इनमें जिक्र न होगा और अगर हम अंग्रेजी ज़बान को पंद्रह साल के लिये रखते हैं तो क्या उसमें हिन्दुस्तान पर जुल्म करने वाले लार्ड क्लाइव और वारिन हैसटिंगज़ का ज़िक्र नहीं आता है। तो अगर रुस्तम और सोहराब के नाम जो कि पारसी हैं अगर उर्दू भाषा में आते हैं तो उस ग्राउंड पर आप उसको दूर करते हैं तो मेरे ख्याल में यह काफी वजह नहीं है।

उन्होंने यह कहा कि कोई मुल्क और देश ऐसा नहीं कि जहां एक कलचर और एक ज़बान न हो और उन्होंने मिसाल रूस की दी। मेरी समझ में रूस की तारीख सेठ जी ने नहीं पढ़ी है। वहां सोलह ज़बानें हैं। जिन्होंने रूस की मिसाल दी है उन्होंने आपकी बात को काट दिया है। वहां पर जो रेज़ोल्यूशन और गज़ट छपते हैं तो वहां की सोलह ज़बानों में छपते हैं। आज हमको एक-दम से कानून के जरिये से, मजारिटी के जरिये से यह पास करते हैं कि नेशनल लैंग्वेज देवनागरी स्कृष्ट हो उर्दू न हो। मेरी दानिस्त में यह एक इन्तहाई जुल्म होगा और यह मिसाल पेश करना कि रूस में एक जबान है सरासर गलती है।

दूसरी बात, जैसे कि हमारे जब्बलपुर के मेम्बर ने कहा है, कि जिस तरह से हिन्दी लिखी जा रही है और बोली जा रही है, मालूम होता है कि इसके लिये एक इंटरप्रेटर की जरूरत पड़ेगी। अगर आज सपरू साहब जिन्दा होते तो यही कहते जैसाकि उन्होंने पहले फरमाया था कि अगर हिन्दी का यही लै लो निहार रहा तो वह जमाना दूर नहीं जबकि हिन्दी के लिये एक इंटरप्रेटर की जरूरत पड़ेगी।

तो मैं कहता हूं कि एक सलीस जबान जिसको हिन्दू मुसलमान सब जाति के लोग अच्छी तरह से समझते हैं और जिसमें सब अपने ख्यालात और जज़बात का इज़हार कर सकते हैं वह ज़बान इन दोनों के मिलने से ही हो सकती है और जिसका नाम हिन्दुस्तानी है। मैं उम्मीद करता हूं कि इन उसूलों पर गौर करते हुए जो महात्मा गांधी जी ने बयान किये थे, और महात्मा जी की फोटू आपके सामने है, वह आपकी तरफ देख रहे हैं कि आप इन पर कायम हैं या नहीं, इन पर गौर करते हुए आप इसका फैसला करें और जज़बात में गायब होकर दूसरी बात न करें।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): माननीय सभापति जी, मैं उत्कल का आदमी होते हुए भी राष्ट्र भाषा हिन्दी होनी चाहिये इस बारे में मैं पूरी सम्मति देता हूं। जो रेजोल्यूशन हम लोगों के सामने है उस पर बहुत विचार किया गया है और विचार करके इस प्रस्ताव को बनाया गया है। इसीलिये मैं इसका साधारण तौर से समर्थन करता हूं। समर्थन करते हुए भी जिस बारे में मैंने अपनी अमेंडमेंट दी है उसके बारे में भी मैं कुछ कहूंगा। पहले तो हमें यह देखना चाहिये कि यह झगड़ा क्या होता है कि भारतवर्ष में राष्ट्र भाषा होनी चाहिये या नहीं। अभी

तक कोई-कोई कहते हैं कि राष्ट्रभाषा हम नहीं मानते हैं, इसको आफीशियल लैंग्वेज मानते हैं। यह बहुत दु:ख की बात है। जब हम भारतवर्ष को एक राष्ट्र समझते हैं और बनाने के लिये कोशिश करते हैं तब तो आफीशियल लैंग्वेज क्यों इसको नेशनल लैंग्वेज भी बोलना चाहिये। फिर यह राष्ट्र-भाषा होते हुए भी प्रत्येक प्रदेश में जो भाषा है उन भाषाओं में परिवर्तन करने के लिए कोई नहीं कहता हैं इसीलिये मैंने एक संशोधन का प्रस्ताव दिया है कि जब पांच वर्ष के बाद या दस वर्ष के बाद एक कमेटी या कमीशन बैठकर हिन्दी भाषा को मजबूत करने के लिए कोशिश करेगी तो उसके साथ-साथ प्रत्येक प्रान्तीय भाषा को मजबूत करने के लिए भी कुछ ख्याल रखा जाये। हर एक प्रान्त और हर एक प्रान्तीय भाषा जब दृढ़ हो जायेगी तो हमारी राष्ट्रीय भाषा भी दृढ़ हो जायेगी।

कोई-कोई कहते हैं कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी में कुछ फर्क है और कोई कहते हैं कि कुछ फर्क नहीं है। मैं तो इस बात की इसीलिये चिन्ता करता हूं कि आपके ब्रेन है और उस ब्रेन की एक कैपेसिटी रहती है कि वह कितने शब्द ग्रहण कर सकेगा। उसको कुछ असीम शक्ति नहीं है। इसलिये दुनिया में जितने शब्द डिक्शनरी में आते है हर एक आदमी उन डिक्शनरी के सब शब्दों को ग्रहण नहीं कर सकता। इस कारण हम लोगों को थोड़े शब्द ग्रहण करने हैं और थोड़े शब्द जो बोलते हैं उनको फेंक देना है। हर एक भाषा में भी यह बात होती है। आप लोग इस बात को देखिये कि संस्कृत भाषा सब प्रान्तीय भाषाओं की जननी है। और संस्कृत भाषा में जितने शब्द हैं उन शब्दों से हम जो शब्द किसी काम के लिये लेना चाहते हैं तो वह शब्द मिल जाता है। लेकिन हम उस शब्द का प्रयोग नहीं करते। मैं एक शब्द के लिए आप से कहता हूं। हम लोग उड़ीसा में "पवन" शब्द बोलते हैं। संस्कृत में भी यही शब्द है "पवन"। अर्थ "हवा"। लेकिन यह शब्द प्रचलित नहीं होता है। बंगला में पवन कोई नहीं समझता है। इसलिये मैं कहता हूं कि जब हम राष्ट्र-भाषा हिन्दी बनावेंगे तो वह ठीक है कि थोड़े शब्द हम फेंक देंगे।

और हिन्दी भाषा को जब हम ग्रहण करते हैं तो उसका साहित्य भी ग्रहण करते हैं। हिन्दी भाषा को ग्रहण करके हम उसके साहित्य को फेंक दें ऐसा नहीं होगा। इसलिये जब हम हिन्दी को आफीशियल लैंग्वेज मानते हैं तो हिन्दी के साथ उसका जो साहित्य है उसको भी हमें ग्रहण करना चाहिये। ऐसा नहीं कि ऐसी हिन्दी बनावें कि जो शब्द हों सब सरल ही हों और भारत के सब आदमी उसको सरलता से समझ सकें। ऐसा नहीं होगा। और जब हम लोग अंग्रेजी बोलते हैं, तो हम लोगों का क्या ख्याल रहता है कि अच्छी तरह से अंग्रेजी बोलें यह नहीं है कि जैसी भी हो बोल कर छुट्टी करें। तो जैसी भी हो, हम राष्ट्रीय भाषा बनायेंगे, यह ख्याल भी ठीक नहीं है। हां यह ठीक है कि हिन्दी मे जब शब्द भंडार पूर्ण नहीं है, तो दूसरी दूसरी भाषाओं में जो शब्द हैं, उन शब्दों को लेकर हिन्दी भाषा की समृद्धि करनी चाहिये। इसलिये कमीशन बनाते हैं और कमेटी बिठाते हैं, मैं इसका स्पष्ट समर्थन करता हूं। कोई सज्जन एक अमेंडमेंट लाये हैं कि राष्ट्र-भाषा भी हो सकती है। वैसे तो मैं भी कह सकता हूं कि उड़िया भाषा भी हो सकती है। उड़िया भाषा मेरी बंगाली के मुकाबिले बहुत प्राचीन है। जब उड़िया भाषा भाषा के रूप में दिखाई दिया तब बंगला भाषा का जन्म नहीं

हुआ था। इसी तरह से दक्षिण के मेरे भाई कहेंगे कि उनकी भाषा बहुत प्राचीन है। यह सब ठीक नहीं होता है। यह प्राचीन और अल्पप्राचीन का सवाल नहीं है। हिन्दी और देवनागरी को जब हम राष्ट्र-भाषा बनाना चाहते हैं और वह होना चाहिये तो उसके साथ-साथ हमें यह भी ख्याल रखना चाहिये कि दूसरी प्रान्तीय भाषायें भी अपनी जगह उन्नति कर सकें। उनकी प्रगति उससे रुके नहीं।

यहां एक बात और मैं कहना चाहता हूं कि अंग्रेजी का जो मोह है, वह कुछ लोगों में इतना है कि वह समझते हैं कि जब अंग्रेजी नहीं होगी तो हम मर जायेंगे। यह तो ऐसा ही हुआ कि शराब पीना बन्द हो जाये तो कुछ लोग मर जायेंगे, जो उनको दारू पीने को नहीं मिलेगा। अगर अंग्रेजी जाने से कुछ थोड़े आदमी मर जाते हैं तो क्या हुआ। हमें तो सारे राष्ट्र और देश का हित ध्यान में रखकर कदम उठाना चाहिये। और अगर ऐसा करने से कुछ थोड़े से आदमियों को असुविधा भी होती है, तो भी उन्हें उसको ग्रहण कर लेना चाहिये। एक झगड़ा यहां पर न्यूमरल्स का पैदा हो गया है कि आया इंटरनेशनल फार्म की गिनतियां रहें, या देवनागरी के रहें। दस करोड़ आदमी हमारे दक्षिण के भाई अड़ गये हैं कि हम और सब तो मान लेते हैं लेकिन यह नहीं मानेंगे, तो क्या किया जाये। उनको तो इसमें जिद हो गई है, तो दुनिया तो सिर्फ युक्ति से नहीं चलती भावप्रवणता भी है। तो हमें ही बाहर के न्यूमरल्स मान लेना चाहिये। रहा संस्कृत को राष्ट्र भाषा बनाने के बारे में सुझाव। अगर सारे दक्षिण के भाई और सब लोग संस्कृत को मान लेते हैं तो मेरा कोई हर्जा नहीं है, मैं भी उसको मान लूंगा। डर भी होता है कि संस्कृत भाषा बहुत कठिन है, उसको पढ़ने में बहुत समय लग जायेगा, तब तो दूसरी बात है। हिन्दी भाषा भाषी देश में ज्यादा तादाद में है, और इसलिये हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिये। लेकिन हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने से यह न हो जाये कि प्रान्तों की भिन्न-भिन्न भाषायें उनका साहित्य वगैरह लुप्त हो जाये। हर एक प्रान्तीय भाषा की रक्षा होनी चाहिये। और जो कमीशन या कमेटी बने उसको इस तरफ अपना ध्यान रखना चाहिये और ज्यादा न कहकर मैं आखिर में इतना ही कहूंगा कि जो आदमी कहते हैं कि रोमन केरेक्टर अगर अपनाया जाये, तो बहुत अच्छा होगा, वह यह नहीं समझते हैं कि स्क्रिप्ट कैसे बनती है। वह भाषा का जो स्वर होता है, वह स्वर जो प्रकट करने के लिए होता है, उससे स्क्रिप्ट बनती है। रोमन केरेक्टर में हिन्दी भाषा को लिखने से वह समझ में नहीं आती है, और उसमें ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि रोमन स्क्रिप्ट एकदम अग्रहणीय है। वह तो इतनी भद्दी और उसकी साइंटिफिक बेसिस ही नहीं है। देवनागरी से लिखी जाने वाली हिन्दी साइंटिफिक है और उसे ही ग्रहण कर लेना चाहिये।

*__माननीय श्री एन.वी. गाडगिल__ (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं कोई लम्बा भाषण नहीं देना चाहता। कल और आज प्रात: मैंने इस सभा में जो कुछ सुना और इन तीन सौ पचास संशोधनों की सूची में जिसमें दुर्भाग्य से एक संशोधन मेरे नाम से भी है, मैंने जो कुछ देखा उसकी ओर ध्यान देते हुए मैं सभा से अपील करता हूं कि वह समयोचित कदम उठा कर इस विवाद को समाप्त कर दें।

श्रीमान्, इस संशोधनों के विभिन्न उद्देश्य हैं और जहां एक ओर संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने को कहा गया है तो वहां दूसरी ओर अंग्रेजी को कम से कम एक शताब्दी तक रहने देने के लिये कहा गया हैं मेरी यह धारणा है कि जिस जिम्मेदारी से हमने इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल किया है उसी जिम्मेदारी का इस संबंध में भी परिचय देने के लिये हम अपील करें।

मेरे माननीय मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगार ने जिस प्रस्ताव को उपस्थित किया है उसका विश्लेषण करने पर मुझे विश्वास हो गया है कि वर्तमान स्थिति में यही सबसे उपयुक्त प्रस्ताव है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस स्थिति में यही प्रस्ताव न्यायोचित है। किन्तु हमें सभी प्रश्नों को तुरन्त ही हल करने की आकांक्षा नहीं होनी चाहिये। हमें कुछ प्रश्नों को दस पन्द्रह वर्ष पश्चात् आने वाली पीढ़ी के लिये छोड़ देना चाहिये। मैं यह देखता हूं कि इस प्रस्ताव के फलस्वरूप हमारे सामने कुछ मोटी मोटी बातें तथा कुछ सिद्धान्त आते हैं। पहली बात यह है कि इस संबंध में अधिकांश लोग सहमत हैं कि हिन्दी संघ की राजभाषा होनी चाहिये। मेरे विचार से इस प्रकार की घोषणा करके हमने एक बहुत बड़ी बात हासिल की है। देवनागरी लिपि को स्वीकार करने के संबंध में जो प्रस्ताव है वह भी एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव है। मेरी दृष्टि से सारे संघ में राजभाषा के लिये एक ही लिपि स्वीकार करना भी एक बहुत बड़ी बात है।

श्रीमान्, इस प्रस्ताव से मुझे आदान-प्रदान की भावना का भी परिचय मिलता है, क्योंकि इसमें पन्द्रह वर्ष का जो समय रखा गया है उस काल में वे लोग भी जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, उस भाषा को सीख लेंगे अथवा उसका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

आखिर विभिन्न संशोधनों से तथा भाषाओं से यही प्रकट होता है कि मतभेद केवल अंकों के संबंध में है। यदि हम देश की एकता को अंकों की बलि-वेदी पर चढ़ा देंगे तो यह एक बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। इसलिये मैं अपने हिन्दी भाषी मित्रों से, जिनसे मैं सिद्धान्ततः सहमत हूं, व्यावहारिक व्यवहारवादी होने के नाते, क्योंकि किसी व्यक्ति ने मुझे राजनीतिज्ञ भी कहा है, अपील करता हूं कि कुछ बातें अगली पीढ़ी के लिये भी छोड़ दी जायें। अगली पीढ़ी अंकों के प्रश्न को हल करे। मेरे विचार से यह कोई ऐसी कठिन समस्या नहीं है कि हल ही न हो सके। यदि सद्भाव हो तो वह हल हो सकती है। किन्तु इस समय बहुत उत्तेजना है और लोगों का प्रभाव पड़ रहा है। इसलिये इस समय चाहे जो भी प्रयत्न किये जायेंगे उनसे दो पक्षों का मतभेद मिटेगा नहीं, बल्कि उलटे बढ़ेगा। इसलिये मैं अपने आदरणीय मित्र श्री पुरुषोत्तम दास टंडन से अपील करता हूं कि वे एक बड़े भाई के समान इसे हल करने के लिये अपनी ओर से कोई कदम उठायें। यह एक निश्चित बात है कि हिन्दी एक प्रान्तीय भाषा है।

***अध्यक्षः** मैं वक्ता महोदय से प्रार्थना करता हूं कि वे किसी व्यक्ति के संबंध में कुछ न कहें। इससे वह व्यक्ति कठिनाई में पड़ जाता है।

*माननीय श्री एन.वी. गाडगिल: मैं आपके निर्णय को स्वीकार करता हूं और मैं चाहता हूं कि इस प्रकार की जो चर्चा मैंने की है उसे वाद-विवाद के विवरण से निकाल दिया जाये। आखिर हिन्दी है प्रान्तीय भाषा ही। कई भाषाऐं ऐसी हैं जिनका साहित्य बहुत बढ़ा चढ़ा है किन्तु फिर भी हमने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी भाषी लोगों ने यह भी एक बहुत बड़ी बात हासिल की है। यदि आप यह चाहते हैं कि अन्य लोग भी उसे स्वीकार करें तो उसका उपाय यह नहीं है कि आप उन्हें अपनी संख्या से प्रभावित करें। उसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि आप उन्हें राजी करें और स्थिति को होशियारी से सम्हालें। यदि अगले दस या पन्द्रह वर्षों में हिन्दी-भाषी लोग अन्य भाषा-भाषी लोगों के बीच अनेक साधनों द्वारा प्रचार करें तो मुझे कुछ भी संदेह नहीं है कि जिन लोगों ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अंग्रेजी सीखी थी वह हिन्दी भी सीख लेंगे।

आखिर कोई भी ऐसा भारतीय नहीं है जो यह पूछने पर कि वह अंग्रेजी अपनाने के लिए तैयार है या किसी भारतीय भाषा को जो उसकी मातृभाषा भी हो सकती है, यह कहेगा कि वह अंग्रेजी अपनाने को तैयार है। इसलिये हिन्दी-भाषी लोग पहले के समान आशा और विश्वास के साथ कार्य करें और अन्य बातों को प्रचार द्वारा लोगों को मजबूर न करके बल्कि उन्हें राजी करके हासिल करें। जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है उसमें ही आजकल की प्रचार प्रणाली से कहीं अच्छी प्रचार प्रणाली निर्धारित की गई है और उससे हिन्दी-भाषी लोगों के उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

पिछले तीन वर्षों में हमने देखा है कि किसी भी महत्वपूर्ण विषय के संबंध में मतविभाजन नहीं हुआ है और इस प्रकार उसके संबंध में निर्णय नहीं किया गया है। हम इस परिपाटी को भंग न करें। संसार को यह विदित हो जाये कि सभी ऐसे महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में, जो इस संविधान के आधार-स्तम्भ हैं, इस सभा में एकमत से निर्णय किये गये। यदि विचाराधीन विषय के संबंध में भी एक मत से निर्णय किया गया तो किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न नहीं होगी। जैसाकि मैं कह चुका हूं, यदि हिन्दी-भाषी लोग जिनका इस देश में बहुमत है और सम्भवत: इस सभा में भी बहुमत है, इसके लिए कोई कदम उठायें तो मेरे विचार से, इस के लिये इतिहास में उनकी प्रशंसा की जायेगी। मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता किन्तु आशा करता हूं कि सभा मेरे सुझावों को स्वीकार कर लेगी।

*श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियार (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, दाक्षणात्यों के लिये यह एक बहुत ही कठिन समस्या है। दक्षिण के लिये यह प्रश्न जीवन और मृत्यु का है और यह आवश्यक है कि इसे यथोचित रूप से हल किया जाये। श्रीमान्, यहां जो निर्णय किया जायेगा उसे लेकर दक्षिण के प्रतिनिधियों को अपने लोगों के सामने जाना होगा और आप समझ सकते हैं कि उसका क्या महत्व होगा। उत्तर भारत के मेरे मित्रों ने मुझे बताया है कि यदि वे अंकों के मामले में झुके तो मतदाता उनकी आलोचना करेंगे और जब वे चुनाव में खड़े होंगे तो उनका जीवन संकट में पड़ जायेगा। जब हम अपनी भाषाओं को छोड़कर और उत्तर की भाषा को अपना कर अपने प्रान्तों में अपने निर्वाचकों के सामने जायेंगे तो हमारी क्या दशा होगी? इन लोगों को इसकी चिन्ता नहीं है कि हम किस स्थिति में पड़ जायेंगे। श्रीमान्, हिन्दी-भाषी लोग जिस देश-भक्ति

और दृढ़ता से अपने निर्णयों को प्रयोग में ला रहे हैं उसकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं किन्तु उन्हें यह भी समझना होगा कि इस प्रकार की देश-भक्ति हममें भी है, हममें भी अपनी भाषा, अपने साहित्य आदि के लिये भक्ति तथा प्रेम है।

आखिर स्थिति क्या है? हमारे क्षेत्रों की भाषायें हिन्दी से अधिक विकसित हैं और उनका साहित्य भी हिन्दी के साहित्य से अधिक वृहत् है। यदि हम हिन्दी को स्वीकार करने जा रहे हैं तो वह इस कारण नहीं कि वह उत्कृष्ट भाषा है, इस कारण नहीं कि वह सबसे अधिक सुसम्पन्न है, इस कारण नहीं कि संस्कृत के समान वह अन्य भाषाओं की जननी है। इस प्रकार की कोई बात नहीं है। हम उसे केवल इस कारण स्वीकार करने जा रहे हैं कि बहुत से लोगों की भाषा हिन्दी है। यह बात भी नहीं है कि इस देश के अधिकांश लोग हिन्दी भाषी है। केवल बात इतनी है कि भारत में जो भाषायें बोली जाती हैं उनमें से हिन्दी बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है। केवल इसी आधार पर यह दावा किया जा रहा है कि हिन्दी को सारे देश की राज-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। श्रीमान्, व्यवहारवादी होने के कारण हम यह दावा नहीं करते कि हमारी भाषाओं को स्वीकार किया जाये, भले ही वे अधिक विकसित हों, अधिक प्राचीन हों, तथा उनका साहित्य अधिक श्रेष्ठ हो और वे करोड़ों वर्षों से प्रचलन में रही हों।

*अध्यक्षः क्या मैं सदस्यों से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे विभिन्न भाषाओं के साहित्यों की तुलना न करें। मैं कह नहीं सकता कि सभा में कोई सदस्य ऐसा भी है जो इस देश में प्रचलित सभी भाषाओं के साहित्य से परिचित है। जब कोई सदस्य यह कहता है कि उसकी भाषा का साहित्य अमुक-अमुक भाषा के साहित्य से अधिक श्रेष्ठ है तो वह एक ऐसे तर्क का प्रतिपादन करता है जो स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के तर्क से इस प्रश्न को हल करने में कोई सहायता नहीं मिलती। हम ऐसे तर्कों तक ही सीमित रहें जो सामान्यतः स्वीकार किये जा सकते हैं और ऐसे विवादों में न पड़ें जिनसे हम दूर रह सकते हैं।

*प्रो. एन.जी. रंगा (मद्रास : जनरल): जब तक तुलना न की जायेगी तब तक अपने पक्ष का समर्थन कैसे किया जा सकता है?

*अध्यक्षः आप हृदय में इसका निश्चय कर लें किन्तु इसे कहें नहीं।

*प्रो. एन.जी. रंगाः मेरे विचार से यह युक्तियुक्त नहीं है।

*श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियारः चाहे जो भी हो मैं यह कह रहा था कि हिन्दी का दावा उसके साहित्य उसकी प्राचीनता आदि पर नहीं आधृत है। श्रीमान्, इस स्थिति में मैं चाहता हूं कि यहां बैठे हुए हिन्दी-भाषी भाई इस पर विचार करें कि क्या यह उचित है कि वे जो कुछ चाहते हैं उसका दावा करें क्योंकि यदि हम दक्षिण के लोग उनके सभी दावों को स्वीकार करेंगे तो हम एक संकटपूर्ण स्थिति में पड़ जायेंगे। मैं यह चाहता हूं कि वे इस प्रश्न पर विचार करें और गम्भीरता से विचार करें।

[श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार]

श्रीमान्, जैसाकि मैं कह चुका हूं, जिस स्थिति में हम इस समय हैं उसके कारण हमने नागरी लिपि सहित हिन्दी को राज-भाषा मान लिया है। किन्तु मैं यह कह चुका हूं कि आप राष्ट्रभाषा शब्दों को प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि जिस प्रकार अंग्रेजी अथवा अन्य कोई भाषा हमारे लिये राष्ट्र-भाषा नहीं है उसी प्रकार हिन्दी भी राष्ट्र-भाषा नहीं है। हमारी अपनी भाषायें हैं जो राष्ट्र-भाषायें हैं और वे हमें उतनी ही प्रिय हैं जितनी प्रिय हिन्दी-भाषी लोगों को अपनी भाषा है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, हम हिन्दी को तथा नागरी लिपि को राज-भाषा और राजलिपि के रूप में स्वीकार करने के लिये इसलिये सहमत हुए कि उस भाषा को भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक लोग बोलते हैं। यदि केवल इस कारण आप यह कहना चाहते हैं कि कल ही से परिवर्तन कर दिया जाये और कल ही से हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया जाये तो मेरे विचार से लोगों को यह मान्य नहीं होगा। नैराश्य फैलने के अतिरिक्त इसका और भी बुरा परिणाम होगा।

मैं यह कहना चाहता हूं कि दक्षिण के लोग हताश हो रहे हैं। दक्षिण में शायद ही कहीं स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना का परिचय मिले। श्रीमान्, जब हम देश के सबसे उत्तर में इस राजधानी में आते हैं तो हम यह अनुभव करते हैं कि हम परदेशी हैं और हममें यह भावना उत्पन्न नहीं होती कि सारा राष्ट्र और सारा देश हमारा ही है। जब तक दक्षिण के लोगों को यह समझाने का प्रयास नहीं किया जाता कि इस देश से उनका भी संबंध है और देश में एक प्रकार की एकता है, मेरे विचार से दक्षिण के लोगों को संतोष नहीं होगा। उनके हृदयों में कटुता रह ही जायेगी और यह इस समय नहीं कहा जा सकता कि इसका परिणाम क्या होगा।

मैं यह कहने आया हूं कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों में एक प्रश्न भारत की राजधानी भी है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। कभी-कभी लोग इस पर हंसते हैं। वे इस प्रश्न की गम्भीरता को नहीं समझते। जब किसी व्यक्ति को दो हजार मील की दूरी तय करके यहां काम करने आना होता है तो यह स्वाभाविक ही है कि वह यह समझता है कि वह अपनी भूमि में नहीं है। वह यह समझता है कि वह परदेश में आया हुआ है। दिल्ली के सामाजिक जीवन में कितने मद्रासी भाग लेते हैं, मैं यह पूछता हूं। मैं यहां पिछले दो तीन वर्षों से हूं। मैं दिल्ली के अथवा संयुक्तप्रान्त के बहुत कम लोगों को जानता हूं। स्थिति यह है। जब तक दक्षिण को कुछ सुविधायें नहीं दी जायेंगी, जब तक राजधानी किसी ऐसी जगह नहीं बनाई जाये जहां लोग आसानी से आ सकते हैं, और जिसे संयुक्तप्रान्त अथवा पंजाब के लोग अपना प्रदेश न समझें, तब तक दक्षिण के लोगों की यह धारणा न मिटेगी कि वे परदेश जा रहे हैं। हाल में यह कहा गया था कि मद्रासी ऊंची ऊंची जगहों पर हैं। इससे क्या यह प्रकट होता है कि यहां किसी अंश में भी राष्ट्रीयता है? यदि पंजाबियों को और यू.पी. वालों को उन जगहों पर रहने की योग्यता नहीं है तो इन पर मद्रासी क्यों न रहें? आखिर जब आपका यह दावा है कि पिछले दो वर्षों में आपने उन्नति की है, तो क्या उन लोगों ने उसमें कुछ भी योग नहीं दिया है जो ऊंची जगहों पर हैं? श्रीमान्, इस प्रकार की बातों से एकता स्थापित नहीं होगी।

यह भाषा का प्रश्न राजधानी, पदों आदि के प्रश्नों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। यदि आप किसी चीज को थोपना चाहते हैं और यह भावना उत्पन्न करते हैं कि आप उसे अन्य लोगों पर थोपने जा रहे हैं, तो चाहे आप वास्तव में थोपने जा रहे हैं या न जा रहे हों और, जैसा कि किसी व्यक्ति ने कहा था चाहे वह हमारे लिये कदम उठाना स्वाभाविक ही था और उसके अतिरिक्त हम और कुछ कर भी नहीं सकते थे किन्तु फिर भी यदि यह भावना न रही कि उत्तर भारत दक्षिण भारत पर कोई चीज थोप रहा है तो इसका परिणाम बहुत कटु होगा। उत्तर भारत के अपने मित्रों से मैं यह नहीं कहना चाहता कि सब कुछ अव्यवस्थित हो जायेगा। किन्तु मेरे विचार से उन्हें यह अवश्य ही समझना चाहिये कि जब हम एक साथ रहना चाहते हैं और एक ही राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो इसे एक दूसरे का ध्यान रखकर व्यवस्था करनी चाहिये। और हमें किसी ऐसी चीज को ऐसे लोगों पर थोपने का प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिये जो उसे नहीं स्वीकार करना चाहते हैं अथवा जिनके स्वीकार करने के संबंध में संदेह है।

आखिर हमने काहे की मांग की है? हमने यह मांग की है कि हमें तैयारी करने के लिये समय दिया जाये। हमारी यही सबसे पहली मांग थी। दूसरे पक्ष के नेता इसके लिये सहमत हो गये। उन्होंने कहा कि वे तैयारी के लिये पन्द्रह वर्ष दे देंगे। मसौदे में क्या कहा गया है? मसौदे में यह बात उलट दी गयी है। पहले खंड में कहा गया है कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी प्रयोग की जाती रहेगी। दूसरे खंड में कहा गया है कि पांच वर्ष के पश्चात् एक आयोग अथवा एक समिति नियुक्त की जायेगी और वह समिति सिफारिश करेगी कि किन प्रयोजनों के लिये हिन्दी प्रयोग की जा सकती है और राष्ट्रपति तदनुसार आदेश देगा। इसका अर्थ क्या है? कम से कम उन विषयों के संबंध में जिनके बारे में आदेश दिया जायेगा, पन्द्रह वर्ष की अवधि को कम करके पांच वर्ष की अवधि रख दी गई है। इसके अतिरिक्त आप कहते हैं कि दस वर्ष के पश्चात् एक और आयोग नियुक्त होगा और वह आयोग एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेगा और उस प्रतिवेदन के आधार पर आदेश दिये जायेंगे। इसका अर्थ क्या है? आपका यह केवल कथन मात्र है कि आप पन्द्रह वर्ष दे रहे हैं किन्तु पांच वर्ष के पश्चात् और दस वर्ष के पश्चात् आप हिन्दी प्रयोग में लाने जा रहे हैं जिसका अवश्य ही यह परिणाम होगा कि हममें से वे लोग जो प्रशासन में, शासन में, विधान-मंडल में तथा अन्यत्र किसी जगह पर नहीं होंगे वे अपना हिस्सा न पा सकेंगे क्योंकि तब तक वे तैयारी नहीं कर सकेंगे। मसौदे के पहले भाग में आशा बंधाई गई है किन्तु दूसरे भाग में उस आशा का भी निराकरण कर दिया गया है और हमें केवल पत्थर ही पत्थर दिये गये हैं।

मैं कह नहीं सकता कि यह मसौदा किसने बनाया है। इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि उसका प्रस्ताव श्री गोपालस्वामी आयंगर ने उपस्थित किया है। किन्तु जब तक पन्द्रह वर्ष की अवधि वास्तविक नहीं बनाई जाती और इन समितियों और आयोगों तथा पांच और दस वर्ष पश्चात् होने वाले परिवर्तनों के कारण भ्रामक बनाई जाती है तब तक कम से कम मैं उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं। हम दक्षिण के लोगों का मुख्यतः इन्हीं बातों से संबंध रहेगा।

[श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार]

सम्भवतः दक्षिण ही इस देश का एक ऐसा भाग है जो समझता है कि वह तुरंत ही अन्य प्रान्तों के स्तर पर नहीं आ सकेगा, विशेषतः मेरा प्रदेश तो यही समझता है क्योंकि वहां तामिल बोली जाती है। हमें इसका गर्व रहा है कि हमारा संस्कृत से कोई संबंध नहीं रहा है। हमारा यह दावा नहीं है। कि तामिल संस्कृत से निकली है अथवा वह संस्कृत पर किसी प्रकार आधृत है। हम अपनी शब्दावली को यथासम्भव विशुद्ध रखने का प्रयास करते रहे है और हमने उसमें संस्कृत के शब्दों को नहीं मिलने दिया है। अब हमें अपने इस रवैये को छोड़ना है। हमें संस्कृत से शब्द लेने हैं और अपनी कार्यप्रणाली ही बदल देनी है। इसका उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो बाल्यकाल से केवल अपनी ही भाषा बोलते आये हैं और जो इस पर गर्व करते रहे हैं कि उनकी भाषा का संस्कृत से कोई संबंध नहीं है और वही एक ऐसी भाषा है जो संस्कृत की तुलना में खड़ी रह सकती है। आप इस पर विचार करें। इस स्थिति में हमें पहले अनिच्छा होने पर भी, अपने दृष्टिकोण को बदलना है और फिर हिन्दी का अथवा संस्कृत का अध्ययन करना है। आपको पहले लोगों को शिक्षा देनी होगी। मेरा मतलब यह है कि नई व्यवस्था को स्वीकार करने में समर्थ होने के लिये उन्हें तैयार करना होगा। इस के पश्चात् उन्हें हिन्दी का अध्ययन करना होगा ताकि वे उन लोगों के साथ अपने लिये भी यथोचित स्थान प्राप्त कर सकें जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है।

यही नहीं आप हमारे लिये सदा के लिये रुकावट डाल रहे हैं। जिन लोगों की मातृ-भाषा हिन्दी है वे केवल हिन्दी सीखेंगे। किन्तु हमें दक्षिण में न केवल हिन्दी सीखनी पड़ेगी बल्कि अपनी मातृ-भाषा भी सीखनी पड़ेगी। हम अपनी मातृ-भाषा नहीं त्याग सकते। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक भाषा भी सीखनी होगी। इस व्यवस्था से आप हमारे लिये सदा के लिये रुकावट पैदा कर रहे हैं। आप उत्तर भारत के निवासियों को यह समझना होगा कि हम कितना त्याग कर रहे हैं।

आखिर बदले में हम क्या चाहते हैं? हम यह कहते हैं कि लिपि को ही नहीं बल्कि अंकों को भी रखकर इस विषय को पेचीदा न बनाइये। अंक लेखे, आंकड़ों आदि के संबंध में काम में आते हैं। आप केवल भाषा और लिपि का ही नहीं बल्कि अंकों का भी अपहरण करना चाहते है। आप यह कहते हैं कि भविष्य में हिन्दी अंकों में ही लेखा रखा जायेगा और हिन्दी अंकों में लिखा हुआ लेखा ही आय-कर प्राधिकारियों के सामने रखा जा सकेगा। श्रीमान् बहुत काल से हमें इन्हीं अंकों का अभ्यास रहा है। आखिर अंकों के प्रश्न का केवल दक्षिण भारत से ही संबंध नहीं हैं यह सुविधा का प्रश्न है और इससे भारत के और भारत के बाहर के लोगों का संबंध है। आंकड़े बाहर भी भेजे जाते हैं। लेखे और विज्ञान में विशेष अंकों का प्रयोग होता है। यदि आप यह कहते हैं कि हिन्दी अंकों को स्वीकार करना ही होगा तो आप अनेक काम किस प्रकार करेंगे? यदि आप बाहर की बातें सीखना चाहेंगे, चाहे वह विज्ञान हो अथवा महाजनी, आपको बाहर की किताबें पढ़नी होंगी और उनमें अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में ही विवरण दिया होगा।

आखिर अन्तर्राष्ट्रीय अंकों पर क्या आपत्ति है? यह आपत्ति केवल इस धारणा से की जा रही हैं कि हमें शत प्रतिशत हिन्दी स्वीकार करनी चाहिये। कहा जाता है कि चूंकि आप हिन्दी भाषा को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गये हैं इसलिये हिन्दी अंकों को भी स्वीकार कर लीजिये। आपको इसकी चिंता नहीं है। कि इसका परिणाम क्या होगा। आखिर सारा संसार अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार कर रहा है। आप सारे भारत पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। फिर आपको क्यों संकोच हो रहा है?

लोक अधिकतर भावनाओं से ही प्रेरित होते हैं और उन भावनाओं को पूरा करना कठिन होता है। जो बातें कही जाती है उनका भी कुछ महत्व नहीं होता क्योंकि हम अपनी भाषा को त्याग कर हिन्दी को स्वीकार कर चुके हैं। जो बातें की गई हैं और जो बातें की जाने वाली है उनसे कहीं अधिक आपत्तिजनक हिन्दी-भाषी लोगों का हमारे साथ व्यवहार तथा उनका मांग करने का ढंग है। कहा जाता है, "निस्संदेह आपको स्वीकार करना ही चाहिये।" इस प्रकार की बातों से ही हमारा धैर्य टूटता है। मैं उत्तर भारत के लोगों से अपील करता हूं कि वे इस प्रकार का रुख न अपनायें। हमें यह भावना उत्पन्न करनी है कि हमारा एक ही देश है और हमें एक साथ रहना है। हमें एक राष्ट्र का निर्माण करना है। इस समय वह अस्तित्व में नहीं है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब पारस्परिक आदान-प्रदान हो और एक दूसरे के लिये जगह बनाई जाये और प्रत्येक व्यक्ति को किसी के हुक्कों के अधीन हो जगह न मिले। तभी भारत उन्नति कर सकता है और सफलता के साथ कार्य कर सकता है तथा एक राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

अन्यथा कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में क्या होगा और उसकी कल्पना ही से मैं कंपित हो उठता हूं। एक दूसरे का ध्यान रखकर कार्य करना चाहिये। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि यदि देश में संकट उपस्थित होगा तो बाहर के देश हमेशा उससे लाभ उठाने का प्रयास करेंगे। हमारे सामने बर्मा और अन्य देशों के उदाहरण हैं। यदि कल इस देश में कोई संकट उपस्थित हुआ तो क्या स्थिति होगी? जब तक आप एक राष्ट्र का निर्माण नहीं करते और प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न नहीं करते कि देश के मामलों में उसका भी हाथ है और यह देश उसका अपना देश है और इसी भावना को बनाये रखते हैं कि देश के एक भाग का दूसरे भाग पर प्रभुत्व है तब तक मुझे विश्वास है कि देश न तो सुरक्षित रह सकता है और न उसकी उन्नति ही हो सकती है। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं हिन्दी भाषी लोगों से फिर अपील करता हूं कि वे प्रभुत्व रखने और हुक्म देने के रुख को त्याग दें और अन्य लोगों के साथ अपने लिये भी जगह बनायें।

***श्री सतीश चन्द्र सामन्त** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 225 और 278 का प्रस्ताव रखा है। संशोधन संख्या 223 में मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि बंगला को भारत की राज-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। भाषा के संबंध में यह कहा जा सकता है कि बच्चे अपनी माता की गोद में ही भाषा सीख जाते हैं और जिस भाषा को वे बोलते

[श्री सतीश चन्द्र सामन्त]

हैं वह उनको मातृ-भाषा कही जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मातृ-भाषा प्यारी होती है। इस समय अपने देश के प्रशासन के लिये हमें एक राज-भाषा, एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है। इसलिये विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित भाषाओं तथा मातृ-भाषाओं के संबंध में कोई विवाद नहीं होना चाहिये। मुझे किसी भाषा से कोई शिकायत नहीं है। मैं केवल इस आदरणीय सभा के विचारार्थ उसके सामने बंगला का प्रश्न रखना चाहता हूं।

बंगला एक सुसम्पन्न भाषा है और उसका अपना दीर्घकालीन इतिहास है। उसका साहित्य प्राचीन तथा ओजस्वी है। उसका अपना शब्द विज्ञान आदि भी है। इसलिये यह अप्रासंगिक न होगा कि मैं सभा की स्वीकृति के लिये बंगला के प्रश्न को उसके सामने रखूं। मैं यह जानता हूं कि मेरे अधिकांश मित्र एक ऐसी भाषा को स्वीकार करने पर तुले हुये हैं जो अन्य भाषाओं की अपेक्षा भारत के लोगों को अधिक सुबोध होगी। मेरा यह निवेदन है कि किसी भाषा को स्वीकार करने की कसौटी यह नहीं होनी चाहिये कि वह अधिक लोगों को सुबोध है। अन्य बातों पर भी विचार करना चाहिये। जब हम किसी भाषा को अपनी राज-भाषा अथवा राष्ट्र-भाषा बनायें तो हमें यह आशा करनी चाहिये कि वह इस योग्य है कि हम उसे एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बना सकेंगे। इस दृष्टि से हमें देखना चाहिये कि भारत की किस भाषा ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में स्थान प्राप्त किया है भले ही वह थोड़ा सा ही क्यों न हो। मेरा निवेदन है कि आक्सफोर्ड और वार्सा के समान विदेश के विश्वविद्यालयों में बंगला की शिक्षा दी जाती है और अमरीका के हार्वार्ड विश्वविद्यालय में रवीन्द्रवाद की शिक्षा दी जाती है। पेरिस, म्यूनिख, मास्को और रोम की भाषा संबंधी संस्थाओं में भी उसे स्वीकृति प्रदान की गई है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि बंगला के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संबंध हैं। अब बंगला की शब्दावली पर विचार कीजिये।

वैज्ञानिक शब्दावली के प्रश्न को लीजिये। सर पी.सी. राय, शांति निकेतन के जगदानन्द राय, बंग वासी कालेज के स्वर्गीय प्रिंसिपल जी.सी. बोस ने तथा राजेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी और अन्य लोगों ने बंगाली की वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने के लिए अधिक परिश्रम किया। बंगला की मासिक पत्रिका ज्ञान-विज्ञान वैज्ञानिक शब्दावली के विकास के संबंध में ही निकलती है बंगला में यह सब चीजें हैं।

इन बातों के अतिरिक्त मेरा आपसे निवेदन है कि आप आदरणीय कवि, गुरु देव, श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर के संबंध में भी विचार करें। उन्होंने विश्व भारती की स्थापना की थी जिसमें उन्होंने बंगला तथा अन्य भारतीय भाषाओं तथा कुछ अन्य देशों की भाषाओं की शिक्षा का प्रबन्ध किया था। भारत में ही नहीं बल्कि सारे संसार में रवीन्द्र नाथ के नाम से हर कोई व्यक्ति परिचित है। इस सभा में भी कोई स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं है जो इस नाम को न जानता हो। रवीन्द्र नाथ के गीति-काव्य को तथा गीतों को सभी लोग सीखते हैं और गाते हैं। संसार की कई भाषाओं में उनका अनुवाद हो चुका है और अमोल रत्नों के समान उनका संग्रह किया गया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातक कक्षाओं से ऊपर की कक्षाओं में भी सभी भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जाती है।

एक अन्य बात की ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं और वह यह है। अब हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है। अपने स्वातंत्र्य-संग्राम में हमें महान गीत बन्दे मातरम् से प्रेरणा मिली है। इस मंत्र के लिये सहस्त्रों लोगों ने बलिदान किया। बन्दे मातरम् के लिये सहस्त्रों लोगों ने अपना धन, सम्पत्ति सभी कुछ बलिदान कर दिया। इस गीत से भारत के प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा मिली थी। इस गीत को बंकिम चन्द्र चटर्जी ने रचा था और यह हमें उनकी पुस्तक 'आनन्द मठ' से प्राप्त हुआ था। आप अपनी राष्ट्र-भाषा और राज-भाषा को चुनने जा रहे हैं, इस कारण मैं आपके दिल व दिमाग को इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं।

श्रीमान्, मेरा किसी भाषा से कोई झगड़ा नहीं है। मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि बंगला में 1200 ई. से ही अरबी, तुर्की और फारसी से शब्द लिये जाते रहे हैं। बाद को उस भाषा में पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषाओं से भी शब्द लिये जाते रहे। यद्यपि आरम्भ में बंगला प्राकृत थी, और इस कारण उसमें बहुत से शब्द संस्कृत के हैं, किन्तु उसमें इन भाषाओं से भी शब्द लिये जाते रहे हैं। जब आप राष्ट्र-भाषा तथा राज-भाषा को चुनें तो इस पर भी विचार करें।

बंगला में प्राचीन प्रथाएं, संस्कृत, साहित्य सभी कुछ है। इसके अतिरिक्त मेरा यह भी निवेदन है कि बंगला ने अन्य दिशाओं में भी प्रगति की है। बंगला की टाइप की मशीन भी है और मेरे माननीय मित्र तथा इस सभा के सदस्य आनन्द बाजार पत्रिका के श्री सुरेश चन्द्र मजूमदार ने बंगला की लिनोटाइप मशीन बनाई है। 1915 से बंगला की शीघ्र लिपि चलन में है। इस प्रकार इस भाषा में राजकीय कार्य आसानी से किया जा सकता है। भारत में इस कार्य के लिये वह बहुत उपयुक्त प्रमाणित होगी।

श्रीमान्, इस संबंध में बहुत से विवाद चल पड़े हैं और मैं उनमें से किसी में भी नहीं पड़ना चाहता। मैंने आपके समक्ष बंगला के पक्ष में तर्क उपस्थित किये हैं किन्तु जहां तक मेरा संबंध है मैं उस भाषा को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं जिसे इस सभा के अधिकांश सदस्य स्वीकार करेंगे। किन्तु उस भाषा को इस सभा के कम से कम तीन चौथाई सदस्य स्वीकार करें क्योंकि यदि इससे कम संख्या हुई तो फिर विवाद होगा और लोग उसे हृदय से स्वीकार नहीं करेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि जिन लोगों को राष्ट्र-भाषा सीखनी होगी उनके लिये कुछ कठिनाई होगी। हम भारतीयों ने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिये बहुत कष्ट सहन किये हैं और बलिदान दिये हैं। क्या आप अपनी राष्ट्र-भाषा के लिये कुछ कष्ट सहन नहीं कर सकते हैं? हमें और प्रत्येक व्यक्ति को इतना बलिदान करने के लिये तैयार रहना चाहिये। जिम्मेदारी हमारी ही है। हमें उस भाषा को चुनना चाहिये जिसे सभी लोग स्वीकार कर सकते हैं और जिसके लिये थोड़ा बहुत त्याग कर सकते हैं। संस्कृत की चर्चा की गई है। हिन्दी की चर्चा की गई है। मैं उनके विरोध में कुछ नहीं कहने जा रहा हूं क्योंकि प्रत्येक भाषा का आदर करना चाहिये। मैं यहां अपने मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि वे विवाद में न पड़ें। वे अपने तर्कों को शांतिपूर्ण तथा न्यायपूर्ण ढंग से उपस्थित करें ताकि एक ऐसी भाषा चुनी जा सके जिसे हम सभी स्वीकार कर सकें। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं सिफारिश करता हूं कि मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

*श्री अलगू राय शास्त्री (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं तो आपकी आज्ञा से यह निवेदन करना चाहता हूं कि श्री माननीय गोपालस्वामी आयंगर जी ने जो अपना संशोधन पेश किया है उसके स्थान पर वह छोटा सा संशोधन स्वीकार किया जाये जो मैं रख रहा हूं।

That in amendment No. 65 above, for the proposed new Part XIV-A, the following be substituted:—

"NEW PART XIV A

301-A. (1) The Official language of the Union shall be Hindi in Devnagri Script.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, it shall be open to the Government of the Union to use English for the purposes for which it has been in use all these years, during a transition period extending over 15 years at the most.

(3) It shall be the duty of the Government of the Union to encourage the progressive use of Hindi in Devnagri Script in Governmental affairs in such a manner that after the end of the said transition period of 15 years Hindi may replace English completely."

[उपरोक्त संशोधन संख्या 65 में प्रस्तावित नवीन भाग 14-क के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:–

नवीन भाग 14-क

301-क (1) संघ की राज-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।

(2) इस अनुच्छेद के खंड (1) में किसी बात के होते हुये भी इतने वर्षों तक जिन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी काम में आती रही है उन प्रयोजनों के लिये अन्तरिम काल में अधिक से अधिक पन्द्रह वर्ष तक उसे प्रयोग करने की संघीय सरकार को स्वतंत्रता होगी।

(3) संघ की सरकार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह राजकीय कार्यों के लिये देवनागरी लिपि सहित हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग को इस प्रकार प्रोत्साहित करें कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् हिन्दी अंग्रेजी का पूर्ण स्थान ले ले।]

जो संशोधन गोपालस्वामी आयंगर जी ने उपस्थित किया है, उसको देखा जाये तो वह अपने तरीके की एक पुस्तक बन जाता है। हम विधान बना रहे हैं। उसमें मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख होना चाहिये। धारा 99 जो कि ड्राफटिंग कमेटी ने

पहले तैयार की थी उसमें केवल इतने ही शब्द आये थे कि पार्लियामेंट की भाषा हिन्दी होगी, या अंग्रेजी होगी। थोड़ े ही में यह बात समाप्त कर दी गई थी। किन्तु अब जो संशोधन हमारे सामने आया है उसमें अनेक बातों का समावेश है। बहुत सी चीजें उसमें मिला दी गई हैं। जब मैंने शुरू में ड्राफटिंग कमेटी की धारा पढ़ी थी तो मैं यह समझता था कि हिन्दी या इंग्लिश के ही कह देने से भाषा का पूरा रूप हमारे सामने आ जाता हैं अंग्रेजी तो एक अनिवार्य चीज इसलिये बन गई है कि हमारा देश बहुत दिनों से, लगभग दो सौ वर्ष से, अंग्रेजी साम्राज्यशाही के नीचे दबा रहा है और जो हमारे विदेशी शासक थे उनकी भाषा हमारे ऊपर लाद दी गई थी। उस लादी हुई भाषा से कोने कोने में हमारे केन्द्रीय शासन में भी, अंगेजी का बोलबाला हुआ, और उसका साम्राज्य भी। आज वह बहुत ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठित दिखलाई देती है। कल तक तो वह इस देश की स्वामिनी थी। लेकिन जब हमने अपनी स्वतंत्रता का आन्दोलन शुरू किया था तब हमारे सामने आदर्श क्या था। हम क्या समझते थे स्वतंत्रता के आन्दोलन का अर्थ? हम स्वतंत्रता चाहते थे। अंग्रेजी साम्राज्यशाही से स्वतंत्रता चाहते थे तो उसमें हमको अपने स्वराज्य की कल्पना करते हुये यह बात सफाई से दिखलाई पड़ती थी कि हमारा स्वराज्य होगा '"स्व" शब्द संस्कृत का शब्द है। यह शब्द हिन्दी में भी जैसे का तैसा ले लिया गया है। तो '"स्व" शब्द के अर्थ में अपनी जो हमारी इंडिविजुऐलिटी है, जो हमारा व्यक्तित्व है, जो कुछ हम हैं, वह सब आता है। उसका राष्ट्रीय अर्थ था कि हम एक राष्ट्र हैं, हम एक जाति हैं, हम एक देश हैं, हमारा एक पुराना इतिहास है। हमारी एक भाषा है और उस भाषा में हमारे पास साहित्य है। उस भाषा का रूप हम बतलाते रहे हैं। उस भाषा में वैदिक संस्कृति का एक रूप हमारे सामने रहा है। जिसका एक काफी अर्से तक प्रभुत्व था। किन्तु भाषा एक जगह टिकती नहीं। जिस अंग्रेजी भाषा का बड़ा भारी महत्व रोज बताया जाता है उसका पुराना नमूना क्या था? उसमें किस प्रकार से पहले किंग शब्द लिखा जाता था? और आज कैसा लिखा जाता है? "Kynge" अभी मैं पढ़कर आया हूं, पुराना स्टाइल। उसका तलफ्फुज, उसके लिखने का तरीका, सब भिन्न था। थोड़े से शब्दों में यह अंग्रेजी भाषा बोली जाती थी। कार्ल मार्क्स ने इंडस्ट्रियल रिवोल्यूशन इंग्लिस्तान के बारे में जो लिखा है वह मौजूद है। जब विदेशों में उनके व्यापार को फैलाने के लिए इंग्लिस्तान के खेतिहारों की जमीनें ले ली गईं थीं और उन पर भेड़ों के पालने के लिये फार्म खोले गये जिसके ऊपर "ऊजड़ गांव", "डेज़र्टेड विलेज", नाम की पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई, तो उसका चित्रण करते हुये एक हिस्टोरियन ने पुरानी अंग्रेजी में, गांव में जो दुर्वयवस्था फैल गई थी उसका चित्रण किया है। कार्ल मार्क्स ने यह चित्रण अपनी "कैपिटल" नामक पुस्तक में दिया है। उस चित्रण की भाषा पुरानी अंग्रेजी का सुन्दर उदाहरण है।

उस अंग्रेजी भाषा से आज की अंग्रेजी भाषा का कोई ताल्लुक नहीं है। रसकिन, डिकेन्स, शेक्सपियर और मिल्टन की अंग्रेजी और पुरानी अंग्रेजी के स्टाइल में अन्तर है, भाषा एकसी नहीं रहती, भाषा रूपान्तरित होती रहती है, उसका विकास होता रहता है। उसी वैदिक संस्कृत के स्रोत से हमारी वह भाषा उत्पन्न हुई जो हमारी राष्ट्र–भाषा होने जा रही है। तो हम अपने स्वरूप में प्रकट होना चाहते थे। पराधीनता की बरफ के नीचे हमारे जातीय जीवन के गुलाब का पौधा दबा

[श्री अलगू राय शास्त्री]

हुआ था, उसकी पत्तियां सूख गई थीं, फूल सूख गये थे, एक सूखा डंठल बाकी था। हम समझते थे कि बसंत आयेगा, हम समझते थे कि बरफ पिघलेगी और हम जागेंगे और हमारा गुलाबी जीवन विकसित होगा। हमारे जातीय जीवन के गुलाब में गुलाब के ही फूल फूलेंगे। हमारे देश को सदियों की गुलामी में दबा रहना पड़ा है। हमारे इस हरे भरे मैदान में बाहर से बहुत दफा आक्रमण हुये हैं और उन आक्रमणों का फल यह हुआ है कि हम पर पराधीनता का बोझा हो गया, उस पत्थर के नीचे हमारा जातीय जीवन दब गया और हम उससे अपने को निकालने का उद्योग करते रहे हैं। उस उद्योग का एक रूप था और वह था हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन। उन आन्दोलनों से हम गुजरे हैं। उनका एक लम्बा इतिहास है। उस इतिहास की सबसे आखिरी कड़ी वह लड़ाई की कड़ी है जिसने हमको ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लोहा लेने के लिए विवश किया था। सन् 1857 का आन्दोलन, जिसे बलवा या विद्रोह कहा जाता है, उसका एक प्रतीक था। उसमें जो चित्र हमको दिखलाई पड़ते है। जब आबजेक्टिव रिजोल्यूशन, जब लक्ष्य का प्रस्ताव, यहां उपस्थित था उस समय में बोला था और मैंने कहा था कि उस आन्दोलन में जो चित्रपट है उसमें एक तरफ झांसी की रानी दिखलाई पड़ती है, दूसरी तरफ बहादुरशाह दिखलाई पड़ते हैं। हमको दिखलाई पड़ती है अवध के नवाबों की बेगमें एक तरफ और दूसरी तरफ हमें दिखाई पड़ते हैं टीपू सुल्तान। उसी में हमें तांतिया टोपे, नाना फड़नवीस दिखाई देते हैं, जिन सबके मिले हुये रक्त से जो धारा बही थी उसी से हमारी स्वतंत्रता की भावना का जो सुन्दर वृक्ष था वह पल्लवित हुआ था और बढ़ा था, और अन्त में महात्मा गांधी के नेतृत्व में हम लोगों ने वह दिन देखा कि आज इस भवन में उस महापुरुष का अभिवन्दन करते हैं और हम स्वतंत्र हुये हैं। स्वतंत्र हम हुये तो हमारी "स्व" भी विकसित होना चाहिये, हमारा जीवन विकसित होना चाहिये।

हमारे जीवन का भी कोई इतिहास है। कुछ लोग कहते हैं कि हमारी भाषा नहीं है, हमारा कुछ नहीं है, हमें सब कुछ निर्माण करना है। मैं विनयपूर्वक कहूंगा कि हमारी एक राष्ट्रीय भाषा है, एक ऐसी भाषा कि जिसको अधिकांश आदमी इस देश में समझते हैं, यह मेरा अनुभव है। सन् 1942 में मैं बम्बई से आया और भागा हुआ फ्रंटियर गया। आज खान बन्धु यहां दिखाई नहीं देते, इससे हृदय को वेदना होती है। मैंने दरयाये सरआब के किनारे उनके कैम्प में फ्रंटियर गांधी के दर्शन किये थे। वहां मैं जिन वालंटियरों से बात करता था तो पश्तों में नहीं करता था और न अंग्रेजी में करता था। मैं सीधी सादी हिन्दी में बोलता था, जैसा कि आज बोल रहा हूं, और उसको वह सब समझते थे। मैं सन् 1928 में मद्रास गया, लाला लाजपत राय के साथ, और वहां भी मैंने लोगों से बात की। अंग्रेजी बोलने का मुझे अभ्यास नहीं है, इसलिये मैं हिन्दी में ही बोलता था और लोग मुझको समझते थे और मुझसे बातचीत करते थे। मैंने कोकानडा कांग्रेस के अवसर पर जब स्वर्गीय जमना लाल जी बजाज की अध्यक्षता में हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था तो कुछ बालिकाओं को कविता पाठ करते सुना था। उन्होंने इतनी अच्छी तरह कविता पाठ किया कि उतनी अच्छी कविता हम उत्तर भारत के लोग, जो कि हिन्दी जानने का नाज़ करते हैं, शायद न पढ़ सकें। हिन्दी एक अन्त:प्रान्तीय

भाषा है जिसको हम राष्ट्र-भाषा बनाने का संकल्प कर रहे थे और यह महात्मा गांधी की प्रेरणा है जिससे यह कल्पना हमारे सामने आई। हमको स्वतंत्र होना था, अंग्रेजों को जाना था। अंग्रेज जाते तो अपने साथ अपनी भाषा भी लेकर जाते और हमको अपनी भाषा को बोलने का अवसर मिलता अंग्रेजों की भाषा हम ने स्वेच्छापूर्वक नहीं सीखी थी। यह तो लार्ड मेकाले की स्कीम थी कि उनको सस्ते क्लर्क चाहिये थे जिससे हमको उन्होंने पढ़ाया। जिन लोगों ने उस भाषा को शुरू में सीख लिया वह उस शासन व्यवस्था के साथ अधिक सम्पर्क में आ गये और उस हकूमत के साथ उनके मिल जाने के कारण उनको उससे स्वाभाविक रूप से ममता हो गई है। लेकिन जब स्वतंत्रता आती तो वह अपनी भाषा लेकर आती अपना वेष लेकर आती, अपनी भावनाओं को लेकर आती, अपनी कामनाओं और आकांक्षाओं को लेकर आती और वह आई है।

"भाषा भेष और भोजन है जिसको अपना प्यारा।

उस पर कभी नहीं चलने को है औरों का चारा।।"

इस भावना के कारण हमें अपनी राष्ट्रीय भाषा को लाने की स्वाभाविक प्रेरणा थी। वह क्या भाषा है? इसमें सन्देह नहीं कि जितनी भाषाएं इस देश में बोली जाती हैं उनकी जननी संस्कृत है। संस्कृत ही से जितनी यहां की भाषाएं हैं उनका जन्म हुआ है और संस्कृत के अक्षय भंडार से सब भाषाओं ने अपने शब्द लिये हैं। लेकिन वह जो वृद्धा माता है आज वह इस तख्त पर नहीं बैठ सकती। उसकी इन बेटियों में जो ज्येष्ठा हो और श्रेष्ठ हो और सबसे बड़ी हो वह बैठ सकती है। इस देश में बहुत से पुरुष हैं, पर श्रीमान् जी, परमात्मा ने आपको इस योग्य बनाया है कि आप इस आसन पर विराजमान हैं और हमारी कामना है कि इंडिया को रिपब्लिक घोषित होने पर आप ही उसके पहले अध्यक्ष बनें। कौन इस पद को नहीं चाहता मगर उस आसन पर बैठने की सबमें योग्यता नहीं है। हम चाहते हैं कि जो हमारी पहली विधान परिषद् का अध्यक्ष है वही रिपब्लिक का अध्यक्ष हो तो इसमें क्या हम कोई बड़ी अतिशयोक्ति करते हैं या कोई लोभ प्रदर्शित करते हैं।

***अध्यक्ष:** आप यह असंगत बात कहते हैं।

***श्री अलगू राय शास्त्री:** जब हम इस विषय पर विचार करते हैं कि कौन राष्ट्र-भाषा हो तो यह तो सब मान लेते हैं कि अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। तो फिर जो भाषायें प्रचलित हैं उनमें कौन हो सकती है? हिन्दी को ही अन्तर्प्रान्तीय भाषा होने का गौरव प्राप्त है। इस देश के अधिकांश पुरुष, स्त्रियां और बच्चे इसी भाषा को बोलते हैं। कुछ भाइयों ने कहा है कि उनका साहित्य ऊंचा है। हम तसलीम करते हैं कि उनका साहित्य ऊंचा होगा। किन्तु वह यह बतायें कि क्या उस भाषा में बोलने वालों की संख्या ईमानदारी के साथ उस संख्या से अधिक है जो कि इस भाषा में बोलने वालों की है। अगर नहीं है तो अधिकांश आदमी जिस लिपि को जिस भाषा को समझते हैं, वहीं भाषा होनी चाहिये, अंग्रेजी को रिप्लेस करने के लिये या कोई दूसरी भाषा होनी चाहिये। हिन्दी की होड़ है अंग्रेजी के साथ। उसकी बंगाली से होड़ नहीं है, तेलुगु से होड़ नहीं है, तामिल से होड़ नहीं है, कनाड़ी से होड़ नहीं है, पश्तो या किसी दूसरी भाषा से नहीं है। उसकी

[श्री अलगू राय शास्त्री]

होड़ तो केवल अंग्रेजी से है। अंग्रेजी हुकूमत गई, अंग्रेज गवर्नर जनरल और गवर्नर गये। अब भारतीय गवर्नर और गवर्नर-जरनल हैं। अब भारतीय भाषा भी होनी चाहिये। सब बातों को देखने से, उसकी सरलता और सुगमता को देखने से हिन्दी को ही वह महत्व प्राप्त हो सकता है। हिन्दी वालों को न किसी से कोई कलह है, न कोई द्वेष है। केवल हिन्दी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि इस भाषा को सब जानते हैं और यह सर्वप्रिय है। तो इसके लिये किसी के मन में यह रोष क्यों हो कि हिन्दी भाषा वाले चाहते हैं कि अन्य भाषाओं पर वह अपनी भाषा लाद दें। यह प्रश्न नहीं है। लादना तो आप चाहते हैं ड्राफटिंग कमेटी लादना चाहती है जिसने हिन्दी के लिये लिखा है कि वह राज्य की पार्लियामेंट की भाषा होगी। दूसरी भाषाओं को यह स्थान प्राप्त नहीं है। और भाषायें प्रान्तीय भाषाएं हैं। हो सकता है कि इक्के दुक्के आदमी उसको प्रान्त के बाहर बोलते हों, पर किसी भाषा को यह गौरव प्राप्त नहीं है कि वह अन्तर्प्रान्तीय हो। यह भाषा यू.पी. में, बिहार में, सी.पी. में, मध्य भारत में, राजपूताना में और पेशावर में भी बोली जाती है और सभी जगह समझी जाती है। इतना बड़ा जिसका व्यापक क्षेत्र है उसी को राष्ट्र-भाषा बनाना चाहिये। इसको राष्ट्र-भाषा बनाने में कोई गौरव मुझे नहीं है जो कि हिन्दी बोलता हूं, वरन् यह गौरव उनको है जो हिन्दी उतनी तेज़ी से नहीं बोल सकते हैं, जिनको इस पर इतना कंट्रोल या अधिकार और अभ्यास नहीं है, परन्तु फिर भी वे स्वीकार करते हैं कि वह सरल है, सुगम है। इसकी लिपि की विशेषता कुछ मैं कहूंगा। मेरे एक भाई ने तो कहा कि रोमन लिपि होनी चाहिये। वे विद्वान हैं। श्री एंथनी के विद्वान होने में कौन शक कर सकता है? किन्तु इस संबंध में आप विचार करें। लिपियां दो प्रकार की होती हैं। एक शीघ्र लिपि और एक सामान्य लिपि। सामान्य लिपि के लिये यह आवश्यक है कि जो अक्षर और जो शब्द जिस तरह बोला जाता हो वैसे ही लिखा जा सके, जैसे मेरा चित्र मेरे सामने आ जाये। यह तो है लांग हैंड की विशेषता। यह तो हुई सामान्य लिपि की विशेषता। शार्टहैंड में तरह-तरह की योजना बनानी पड़ती है और तरह-तरह के ढंग निकालने होते हैं। जिससे थोड़े से चिन्हों में ज्यादा बात लिखी जा सके। हम बचपन में बच्चों को जब पढ़ाते हैं तो अ, आ के अक्षर से शुरू करते हैं अगर हम बोलें 'ए' और काम ले उस ध्वनि से हम "अ" और "आ" का तो यह उचित नहीं हो सकता है। इस तरह से अगर लड़के की पढ़ाई हो तो वह एक गलत ट्रेनिंग होगी। अंग्रेजी या रोमन लिपि से ए, बी,, सी, डी आदि अक्षरों का ताल्लुक है। बोलने को "ए" "बी" और काम लेना है "अ" "आ" "ब" का। बोलें "सी" और उससे काम लें "क" "का" और "स" का। इस तरह तो यह कोई भाषा नहीं है और यह लिपि के साथ कोई न्याय नहीं है। रोमन लिपि में जब हम अक्षरों को बोलते हैं और जो अक्षर पढ़े जाते हैं तो उनसे मालूम होता है कि वह हमारे साथ एक अन्याय हैं शार्टहैंड में पिटमैन ने जो पद्धति तैयार की है और जो यहां पर शार्टहैंड के रिपोर्टर बैठे हैं वे सब जानते हैं कि पिटमैन ने भी हिन्दी को ध्वनि की पद्धति पर अवलम्बित जो स्क्रिप्ट है उसको स्वीकार किया है। उसने "क" "ख" "ग" इस प्रकार के अक्षरों की ध्वनि के अनुकूल माना है।

शार्टहैंड वालों ने भी इस सिस्टम को आसान समझा है और उसको मान लिया हैं इसलिये यह विवाद खत्म हो जाता है कि लिपि में कौन सुन्दर है। लिपि की दृष्टि से न रोमन लिपि आ सकती है और न कोई दूसरी लिपि देवनागरी के

सामने आ सकती है। उर्दू की लिपि में भी वही दोष है जो रोमन लिपि में है। उर्दू लिपि में भी अक्षरों का उच्चारण, उनकी ध्वनियें कुछ हैं और काम उनसे कुछ और लिया जाता है। बोलेंगे "अलिफ" और काम लेंगे उससे "अ" और "आ" तथा "ए" का। बोलेंगे "लाम" काम लेंगे "ल" का। लोकाट लिखना होगा तो "लाम" "वाव" "काफ" "अलिफ" और "टे" अक्षरों का प्रयोग करेंगे। ध्वनि के साथ इसका कोई संबंध नहीं है। यह कैसा अन्याय है? सामान्य लिपि के लिये ऐसा करना उचित नहीं। शार्टहैंड के लिये ही अक्षरों को तोड़ा मरोड़ा जा सकता हैं परन्तु उसमें भी मैं कह चुका हूं कि ध्वनि के आधार पर ही अक्षरों को लेना चाहिये। हिन्दी को जो लिपि है और उसकी जो वर्णमाला है वह बहुत ही सरल है और बहुत ही सुगमता से वह सीखी जा सकती है। उसके स्वरों का उच्चारण भी बहुत सुन्दर और सरल है। बहुत आसानी के साथ उसका उच्चारण किया जा सकता है। इसका उच्चारण साफ है। स्वरों में "अ" का उच्चारण आता हैं इसके बदले में कोई और स्वर नहीं है। ये सब स्वर वैज्ञानिक तरीके पर हैं। उनकी कुछ कैटेगरी हैं जैसे अकुहविजर्सनीयनां कंठः, इचुयशानां तालुः "अ" कवर्ग तथा "ह" कंठ से और "इ" चवर्ग "ग" और "श" तालु से निकलते हैं। इसी प्रकार दूसरे अक्षरों को अलग-अलग वर्गो में बांटा गया है। अलग-अलग अक्षरों और वर्गों के अलग-अलग देवता हैं। किसी का इन्द्र किसी का वरुण इत्यादि। तो हमारी वैज्ञानिक आधार पर जो यह भाषा है उसको समझते में किसी भी विद्यार्थी को कठिनता नहीं होती है, वह कुछ ही सप्ताह में उसकी वर्णमाला को आसानी से सीख सकता है और अच्छी तरह से उसको ज्ञान हो जाता है। मैं समझता हूं कि ड्राफटिंग कमेटी के विद्वानों ने और कानून विशारदों ने भी इस बात का अनुभव किया है और उन्होंने हिन्दी भाषा को ड्राफ्ट में लिखा है और हिन्दी कहते ही उसकी लिपि, देवनागरी लिपि, स्वयं सामने आ जाती है। जब हम अंग्रेजी भाषा कहते हैं तो उसकी लिपि रोमन हमारे सामने आ जाती है यह अंग्रेजी भाषा, हमारी भाषा इन पन्द्रह वर्षों के लिये होगी। हमारे काम चलाने के लिये यह भाषा होगी, इसको हम इन्कार नहीं कर सकते हैं और इसको हम हटा भी नहीं सकते हैं। अंग्रेजी भाषा को हम 15 वर्ष तक सरकारी काम चलाने के लिये अवश्य रखेंगे। 15 वर्ष के अन्दर जो हमारे सरकारी नौकर हैं वह इसका काफी ज्ञान प्राप्त कर लेंगे और काफी अच्छी तरह से और आसानी से वे उसे सीख सकते हैं। 15 वर्ष का समय काफी है और हिन्दी भाषा ऐसी कठिन नहीं है कि हमारे सरकारी कर्मचारी उसको नहीं सीख सकें। जब हमारे आई.सी.एस. के आदमियों को दो साल की ट्रेनिंग में कई भाषाओं को सीखना पड़ता है और वे उसका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो इसमें कोई शक नहीं है कि वह हिन्दी भाषा को उस 15 वर्ष के अन्दर सीख सकेंगे। जो लोग स्वतंत्र सरकार के कर्मचारी हैं, जिनको काफी ज्ञान है, वह अवश्य इन वर्षों में हिन्दी भाषा का ज्ञान अच्छी तरह से प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनमें योग्यता है, और उन्हें पूरी सुविधा है और पर्याप्त अवकाश।

अंग्रेजी भाषा हमारे देश की किसी प्रान्त की भाषा नहीं है, न वह किसी जगह की सरकारी ही भाषा है। यह भाषा तो विदेशी सरकार के जो शासक थे उनकी भाषा है। उनके लाभ के लिये, उनके दफ्तर में कर्मचारियों के काम करने की भाषा है। जब उन्होंने इस भाषा को मेहनत करके सीख लिया है और उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, जब कि वह भाषा एक विदेशी भाषा थी, इस देश

[श्री अलगू राय शास्त्री]

में उसका जन्म नहीं हुआ, वह विदेशियों के जरिये इस देश में लाई गई थी और जिन्होंने अपनी सुगमता के लिये अपने राज्य का काम चलाने के लिये इस को इस देश में थोपा था, उनकी यह भाषा थी, तो मैं आपने यह पूछना चाहता हूं कि क्या आप इतना परिश्रम अपनी भाषा "हिन्दी" को सीखने के लिये क्या नहीं कर सकते हैं? अंग्रेजी भाषा को सीखने के लिये जब आपने इतने कष्ट सहे हैं तो हिन्दी भाषा तो उससे भी सरल है और थोड़ी सी मेहनत करने पर वह सरलता से सीखी जा सकती है।

हमारे जो नन्हें से बच्चे हैं उनको इस भाषा के सीखने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। हमारे जो कर्मचारी हैं वह बहुत तो रिटायर हो जायेंगे और फिर 15 वर्ष का जो अवकाश दिया गया है वह बहुत ज्यादा है उसमें वह सरलता से और सुगमता से इस भाषा को सीख सकते हैं। यदि हमें अपनी राष्ट्र-भाषा बनानी है उसका निर्माण करना है, तो हमें उसमें योग्यता हासिल करनी चाहिये। दूसरी भाषाओं से उसकी कोई होड़ नहीं है। अंग्रेजी का तो प्रारम्भ से ही विकास हुआ है और सदियों से वह एक देश की राष्ट्र-भाषा रही है और इन्होंने उसको दूसरे देशों में भी अपने लाभ के लिये थोपा। इस भाषा को सीखने से हमारे बच्चों की भी भावनायें वैसी ही हो जाती हैं और वह उसी तरह से सब बातों को देखने लगते हैं। अंग्रेजों के साथ हमें डोमिनियन में मिल कर नहीं रहना है। हम लोगों को इस बात का ख्याल करना चाहिये कि स्वराज्य के साथ ही साथ हमारी भी एक भाषा हो जिससे जनता यह समझे और गर्व के साथ कह सके कि हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है। हम लोगों को ऊंच नीच बातों में नहीं पड़ना चाहिये। अगर हम इस तरह से अपनी राष्ट्र-भाषा के मामले को सुलझायेंगे नहीं तो यह तरक्की भी नहीं कर सकेगी और हम लोग भी डूब जायेंगे।

इस्टोनिया और लिथवानिया जिन्होंने पिछली लड़ाई के बाद स्वतंत्रता की मांग की थी उन्होंने यह कहा था कि हमारे ऊपर विदेशियों का आक्रमण हुआ और उन्होंने हमारी राष्ट्र-भाषा को नष्ट करना चाहा। हमने अपनी राष्ट्र-भाषा की रक्षा की थी और उसकी रक्षा करने के लिए हम हर तरह से तैयार थे। ये नन्हीं नन्हीं छोटी रियासतें हैं और हमारे जिले गोरखपुर के बराबर हैं। उन्होंने अपनी भाषा की रक्षा की थी और जर्मनों के आक्रमणों से अपने को बचाया था। उन्होंने विदेशी आक्रमण से अपने को बचाया था।

आज हमारी जितनी प्रान्तीय भाषायें हैं हम उनका विकास चाहते हैं क्योंकि वे हिन्दी की प्यारी बहिनें हैं। उनमें से कई बहुत सुन्दर हैं और अच्छी हैं। मैं इस चीज़ का दावा नहीं करता कि सभी प्रान्तीय भाषाओं से हिन्दी का साहित्य ऊंचा है। मेरा तो मतलब केवल अन्तर्प्रान्तीय दृष्टि से यह है कि हिन्दी एक प्रान्त की नहीं बल्कि अनेक प्रान्तों की भाषा है। यही उसकी विशेषता है। दूसरे प्रान्तों में बड़े-बड़े कवि हुये है। इस चीज की तुलना मैं कबीर और तुलसी से नहीं करता। मैं इस चीज में नहीं जाना चाहता हूं। मैं मानता हूं दक्षिण में त्रिविल्लुवर का तामिल वेद कबीर की रचना के समान है या उससे अच्छा। इससे मेरा विवाद नहीं किन्तु मैं विनय से कहूंगा कि तेलुगू बोलने वाले इस देश में हिन्दी बोलने

वाले बहुत कम संख्या में होंगे। इस चीज से मुझे कोई सरोकार नहीं है कि एक प्रान्तीय भाषा का साहित्य दूसरे से बड़ा है या छोटा।

एक भाषा को लेना है, वह भाषा डिमोक्रेसी के सिद्धान्त से, बहुमत के हिसाब से, हमें लेनी होगी। सब दृष्टि से यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक है और वह बहुत सरल और बहुत ऊंची पहुंची हुई है। सूर के साहित्य की एक दो मिसालें मैं आपके सामने रखता हूं....

"पिया बिनु नागिनी कालड़ी रात।

कबहुंक यामिनि होति जुन्हैया,

डंसि उलटी ह्वै जात।।

मंत्र न फुरत यंत्र नहिं लागत, आयु सिरानी जात।

सूर श्याम बिनु विकल विरहिणी, मुरि मुरि लहरी खात ।। 1 ।।

मैं पूछता हूं कि आप किसी भाषा के साहित्य से उद्धृत कीजिये मैं भी उसको सुनूंगा। इसकी तुलना का कोई पद उपस्थित कर दीजिये। एक से बढ़ कर एक चीज़ भरी पड़ी है, देखिये तुलसी क्या कहते हैं?

अरुण पराग जलज भरि नीके।

शशिहिं भूष अहि लोभ अमीके।

यह है तुलसी का पद।

*__अध्यक्षः__ यह कांस्टीट्यूएंट असेम्बली है, कवि सम्मेलन नहीं है।

*__श्री अलगू राय शास्त्रीः__ मैं एक उदाहरण दे रहा हूं। कहा जाता है कि हिन्दी भाषा अनडेवेलप्ड है, उसमें कुछ नहीं है। श्रीमान् जी, यह कहा गया है। तो मेरी समझ में आया कि मैं कुछ बताऊं कि उसमें कुछ है। उसका बहुत बड़ा साहित्य है। लेकिन हम उसके साहित्य की वजह से उसको इस स्थान पर नहीं रख रहे हैं बल्कि इसलिये कि वह जनता की भाषा है। जो और भाषायें बोलते हैं उनसे अधिक बोलने वालों की यह भाषा है। उसका बहुत विस्तृत क्षेत्र है। इसलिये हम उसको अपना रहे हैं। और हम उसे नहीं अपना रहे हैं, आपको स्वयं उसे अपनाना पड़ रहा है। इसको हर एक व्यक्ति अपना रहा है। इसको हम स्वीकार कर रहे हैं और उसको स्वीकार करना आवश्यक हो गया है क्योंकि हम विदेशी भाषा के स्थान पर स्वदेशी भाषा को रखना चाहते हैं। यह अनिवार्य है ताकि हम अंग्रेजी को हटा सकें। जब हम इस प्रकार हिन्दी को अपनाते हैं तो मैं कहता हूं कि उसकी लिपि तो मौजूद है, ही जिस लिपि में कि ऋग्वेद लिखा गया है और जिस लिपि में हनुमान चालीसा लिखा गया है। जिस लिपि में ऋग्वेद से लेकर तुलसी दास जी का हनुमान चालीसा लिखा गया है उसको

[श्री अलगू राय शास्त्री]

देवनागरी लिपि कहते हैं। इसके लिये कोई दूसरी सुन्दर लिपि कहां से आवेगी? हमारी राष्ट्र-भाषा की देवनागरी लिपि है और उसी के अंक हैं:

तुलसी के शब्दों में जैसे "घटत न अंक नव (9) नव (9) के लिखत पहाड़" यह 9 का अंक देवनागरी लिपि के अंतर्गत है। इसी प्रकार:

"जगते रहु छत्तीस है वै (३६)
रामचरण छ तीन (६३)।
तुलसी देखू विचारि हिय,
है यह मतौ प्रवीन ।। 1 ।।

तो यह अंक जिस तरह पहले लिखे गये हैं, जिस तरह से संस्कृत में ऋग्वेद में और यजुर्वेद में लिखे गये हैं उसी तरह से आज भी प्रचलित हैं। उस पर विवाद किस बात के लिये हो रहा है? लोग कहते हैं कि जरा सी चीज़ के लिये आप मानते नहीं, आप आग्रह करते हैं, दुराग्रह करते हैं। मैं आपसे कहता हूं कि जिस चीज को आप नन्हीं सी चीज समझते है। वह बहुत भारी विष वाली चीज हो सकती है। मैं कहता हूं कि एक आदमी दो सेर दूध पी सकता है मगर एक मक्खी का नन्हा सा सिर उसके साथ नहीं पी सकता है। वह चीज हजम नहीं हो सकती है। हम किस तरह से संख्या के रूप को विकृत कर दें और क्यों कर दें? किसके लिये कर दें? कुछ लोग कहते हैं कि (१) (।) एक तो बिल्कुल मिलता जुलता है। मैं श्रीमान् जी, आपके सामने अपने सूबे की बात निवेदन करना चाहता हूं। हमने अपने सूबे में ग्राम पंचायतों को बनाया है, गांव सभायें बनाई हैं और पांच-पांच गांव सभाओं के बाद अदालत पंचायत बना दी हैं। वह वहां पर चल रही हैं। हमारा सूबा छह करोड़ आदमियों का मुल्क है, हमारा सूबा इंग्लिस्तान से छोटा नहीं है, उससे बड़ा है। उस सूबे में हमने अपने गांवों में पंचायतें बना डाली हैं। उनको टैक्स लगाने का अधिकार दिया गया है। वह अपना एकाउंट रखेंगी, रजिस्टर रखेंगी। अब वह हिसाब कैसे रखेंगे, वह इस तरह रखते हैं कि एक रुपया चार आने तीन पाई को इस तरह।)। लिखते हैं। चवन्नी का एक चिह्न है जिसके लिये एक पाई खींच देते हैं, जो अंग्रेजी में एक का चिह्न है वह इस तरह हिन्दी में चवन्नी।) का चिह्न है। अगर इसको बिकारी वक्र रेखा के बाद खींचा जाये तो एक पैसा हो जाता है।

हमने अपनी गिनती को यहां डेवेलप किया था, इसका विकास यहां किया था। क्या हम इस विकास के बाद इसे ठुकरा सकते हैं? कहा जाता है कि इंडस्ट्री नष्ट हो जायेगी और हमारी फौज़ में गड़बड़ी पड़ जायेगी। मैं कहता हूं कि इंडस्ट्री में क्या दिक्कत पड़ने वाली है। जो कुछ मशीनरी हमें बाहर से मंगवानी पड़ेगी उसके लिये हम उनको डिज़ाइन दे देंगे। मामूली व्यापारी डिजाइन भेज देते हैं और बाहर से साढ़ियां और दूसरी चीजें बाहर विदेशों से बन कर चली आती हैं और क्या विदेशों से ही हमारी सारी चीजें हम मंगवाते रहेंगे? हम उनको यहां ढालेंगे

और उनको अपने अंक देंगे। हमारे अंक हमारे लिये सौभाग्य वाले हैं। हम लोग बड़ी संस्कृति के लोग हैं, हमारा एक बड़ा इतिहास है, हम दूसरों के सामने घुटने टेकने नहीं जा रहे हैं कि तभी काम चलेगा। हम सब चीजें डेवेलप कर सकते हैं। हमारा देश उनके डेवेलप करने में समर्थ है।

अब जिन भाइयों को हिन्दी के सीखने में कठिनाई होती है तो वह देखेंगे कि हिन्दी अत्यन्त सुगम भाषा है। लेकिन यह सही है कि जितना जाल शासन चक्र में अंग्रेजी का फैला हुआ है उसके कारण हम चाहें कि कल ही हिन्दी हो जाये तो उसमें कठिनाई होगी। मुझे दूसरे भाइयों के मुकाबले में हिन्दी बोलने में आसानी होती है। इस दृष्टि से अवश्य ही कुछ वर्ष उन भाइयों को देने होंगे जिससे कि वे अच्छी तरह से हिन्दी भाषा में, अच्छी मुहावरेदार भाषा में अपनी बातें कह सकें। वे उसी भाषा में सोच सकें, उसी में रो सकें, और उसी में गा सकें। भाषा वही होती है जिसमें गाया जा सके और रोया जा सके और इसके लिये समय चाहिये। इसको अच्छी तरह से सीखने के लिये समय चाहिये। तो इसके लिये समय देना आवश्यक है और वह समय पन्द्रह वर्ष का पर्याप्त समय है। मैं समझता हूं कि इतने समय में हम अच्छी तरह से अंग्रेजी को हटा सकते हैं और उसके आसन पर हिन्दी को बिठा सकते हैं यदि हम करना चाहें। हां, यदि ऐसा न करना चाहें तो और बात है। लेकिन करना चाहें तो कर सकते हैं। इसलिये मेरे संशोधन का पूरा हिस्सा यह है कि इस परिवर्तन-काल में जो बीच का समय आवेगा उसमें अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का बिठाने का प्रयत्न किया जाये। जिस तरह एक इमारत है तो अगर उसको हटा कर दूसरा मकान खड़ा करना है तो दूसरा प्रासाद बनाना होगा और उसके लिये 15 वर्ष का समय रखा गया है। उसमें आसानी से यह काम किया जा सकता है। अब इस काम को करे कौन? इसे सरकार करे। सरकार ऐसे कदम उठाये, यह उसके दूसरे हिस्से में लिखा है। अब यह कि कमेटी बना दे या कमीशन बिठा दे, इस तरह से सारे डिटेल्स दिये हुये हैं। जब हम इस दफा को पढ़ते हैं तो यह देखते हैं कि ड्राफटिंग कमेटी ने यह किया है कि जहां एक क्लाज था जो वहां एक दूसरा क्लाज और जोड़ दिया जाये। हर चीज का वह विस्तार करना चाहते हैं। कोई चीज आने वाली पार्लियामेंट के लिये या हुकूमत के लिये नहीं छोड़ना चाहते। हमने मताधिकार, बालिग मताधिकार, की योजना बनाई है। उनके प्रतिनिधि बाद में आवेंगे। और अपने तरीके पर वे सारे राष्ट्र की व्यवस्था करेंगे लोगों की तनख्वाहें क्या हों, कितने नौकर रखे जायें और किस तरह की सुविधायें उनको दी जायें, इन सब चीजों के सोचने का अवसर हम उन लोगों को देने के इच्छुक नहीं हैं। डरते हैं कि कहीं वे पढ़े लिखे लोग आ जावेंगे, कहीं गड़बड़ न हो जाये। ज्यूडिशियरी के सारे प्रावीजन्स, उनके मकान केसे हों, तनख्वाह क्या हों, वह क्या काम करें यह सब बातें यहां रख दी गई हैं। वही प्रकृत्ति यहां मुझे नज़र आती है। कमीशन होगी, कमेटी बनेगी, एक्ट, बिल, रैग्यूलेशन्स सब दूसरे प्रान्तों में भी अंग्रेजी में निकलेंगे। बहुत से सूबों में हिन्दी चल रही है, बहुत मजे में चल रही है, अच्छी तरह से और सफलता से चल रही है, लेकिन आप इस तरह से उतारू हैं कि उनको भी इसमें रख देना चाहते हैं।

श्री गोपालस्वामी अयंगर जैसे मनीषी विद्वान, पंडित, वयोवृद्ध और अनुभवी व्यक्ति का जो संशोधन है उसमें कोई सुधार करने की चेष्टा करना मेरे जैसे आदमी

[श्री अलगू राय शास्त्री]

के लिये दु:साहस मात्र ही है। लेकिन मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि क्या यह बात इस तरह से ठीक नहीं हो जाती कि भावी सरकार के लिये यह छोड़ दिया जाये, वह ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे हिन्दी पन्द्रह वर्ष में, अंग्रेजी का स्थान ले ले और इस देश में अपनी भाषा का राज्य हो जाये। जनता के प्रतिनिधियों का राज्य तो हुआ, किन्तु जनता की भाषा का भी राज्य हो जाना चाहिये। प्रत्येक प्रान्त में देखा जाये तो अधिकतर बोले जाने के कारण जनता की भाषा हिन्दी भाषा है।

कुछ लोग हिन्दी के साथ हिन्दुस्तानी, उर्दू और और चीजों को मिलाते हैं। मैं नहीं समझता नजीर जो आगरे के बड़े सुन्दर कवि थे और जिन्होंने लिखा है:

"अब्र था छाया हुआ और फसल थी बरसात की।

थी ज़मीं पहने हुये वर्दी हरी बानात की।।

हिन्दी से बाहर की चीज़ कैसे कहा जा सकता है? उनकी यह कविता हिन्दी है और हिन्दी का ही एक स्टाइल है, एक ढंग है, एक पद्धति है। "रब का शुक्र अदा कर भाई, जिसने हमारी गाय बनाई" यह कोई मेरठ के एक मौलवी साहब थे जिनकी लिखी किताबों में हमने पढ़ा है। इसको क्या हम हिन्दी क्षेत्र से बाहर निकालने वाले हैं? जो मौलवी साहब हैं, मौलाना साहब हैं उनके मुंह में लामुहाला ऐसे शब्द आवेंगे और आते हैं और वह हज़म हो गये हैं। वह सब शब्द बने रहेंगे। वह सब हिन्दी का स्टाइल है और हिन्दी के बाहर की यह भाषा नहीं है।

कुछ लोग उर्दू को एक भाषा कहते हैं। उर्दू कोई रीजनल भाषा नहीं है, किसी एक क्षेत्र की भाषा नहीं है, किसी एक बिरादरी की भाषा नहीं है। कुछ लोग उर्दू के अल्फाज़ भी बोलते हैं। मेरी शिक्षा मौलवी साहब के यहां हुई थी, मौलवी साहब मुझे पढ़ाते थे:

"फकत तफावत है नाम ही का,

दरअसल सब एक ही हैं यारो।

जो आब साफी के मौज में हैं,

उसी का जलवा हुबाब में है।।

"काबिले कुर्ब नहीं बे अदबों की सुहबत,

दूर रह उनसे दिला जिनको तेरा पास नहीं।।"

तो इन शब्दों को आप कहां निकाल कर ले जाइयेगा?

*__अध्यक्ष:__ अब आप इनका काफी जिक्र कर चुके हैं।

*__श्री अलगू राय शास्त्री:__ तो यह सब शब्द हिन्दी में हैं, हम उनको निकाल नहीं देते।

मैं यह अर्ज़ कर रहा हूं कि दूसरी भाषाओं के जो प्रचलित शब्द हैं, उनको हम हिन्दी में इनक्लूड करते हैं और जो भाषा इन सबको इनक्लूड करती है, वह हिन्दी है। हिन्दी के कनटेंट्स के बारे में कुछ शब्द कह कर समाप्त करता हूं। हिन्दी है क्या, इसका बड़ा वाद-विवाद है। हिन्दी, हिन्दी है, और क्या कहा जाये। हिन्दी हिन्दी है, और इससे अधिक परिभाषा उसकी नहीं की जा सकती। यह उसी प्रकार है, जैसे मैं कहूं 'आइ एम व्हाट आइ एम'। मैं वही हूं, जो हूं "इदमहंय एडस्मि सोऽस्मि" मैं वह हूं जो हूं। अब इसको क्या डिफाइन किया जाये। भोजपुरी, मिथिला, खड़ी बोली और ब्रजभाषा सब हिन्दी है। "सर बिनु सरसिज, सरसिज बिनु सर। की सरसिज बिनु सूरे।।" मिथिला की यह भाषा हिन्दी है। और यह भी हिन्दी है जो ब्रजभाषा में "अंखिया हरि दर्शन की प्यासी"। यह भी हिन्दी में है जो मेरठ में "रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।" कौन मना करता है कि हिफ़ज़र रहमान साहब को, जो चाहें वे बोल सकते है उस पर वाद-विवाद नहीं है। देवनागरी लिपि में वह सब लिख लिया जा सकता है, और उसको देश के अधिकांश आदमी समझते हैं। न्यूमरल्स अंक, का झगड़ा बिला वजह है। न्यूमरल्स या अंक तो देवनागरी लिपि में इन्क्लूडेड हैं। उनको हम अलग नहीं कर सकते हैं और उनको हमें स्वीकार कर लेना चाहिये। और सरकार के ऊपर यह सारी बातें छोड़ दी जायें कि जैसा उचित समझे करे, कमीशन बनाये, कमेटी बिठाये, ताकि पन्द्रह वर्ष के बाद हिन्दी देवनागरी लिपि में अंग्रेजी का स्थान ले ले। इसके साथ मैं अपने संशोधन को आपकी सेवा में रखता हूं। इस पन्द्रह वर्ष की अवधि में अंग्रेजी चलती रहे। मेरे विचार में विधान में यह धारा होनी चाहिये कि हमारे राष्ट्र की भाषा हमारी सरकारी भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। पन्द्रह वर्ष के अन्तर्कालीन समय में अंग्रेजी चलती रहे, लेकिन उस अवधि के खत्म होने पर हिन्दी अपना पूर्ण स्थान ले सके। इन पन्द्रह वर्षों में सरकार का यह कर्तव्य होना चाहिये। कि ऐसा ढंग निकाले जिसमें हिन्दी अंग्रेजी का पूर्णतया स्थान ले सके। अंग्रेजी भाषा से हमें कोई द्वेष नहीं है। बाद के काल में भी हमारे यहां अंग्रेजी भाषा की यूनिवर्सिटियां होंगी, हमारे दूत भिन्न भिन्न भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे लेकिन वे हस्ताक्षर, संधिपत्र वगैरह पर, अपनी राष्ट्रीय भाषा में ही करेंगे। वह राष्ट्रीय भाषा हिन्दी होगी और लिपि देवनागरी होगी, जिसको हमने ऋग्वेद में पाया है और जिसका शब्द समुद्र उस महासमुद्र से निकला है और जिस को लेकर यह पनपी है और जिसने संसार को जीवन दिया है और जिसका साहित्य, दर्शन-शास्त्र दुनिया की किसी भाषा के मुकाबले में कम नहीं है। इन शब्दों के साथ मैं अपना भाषण समाप्त करता हूं और आपको धन्यवाद देता हूं जो आपने मुझे इतना समय दिया।

***माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अध्यक्ष महोदय, हम एक ऐसे विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं जिसका भारत के किसी एक प्रान्त के लोगों के लिये नहीं बल्कि भारत के करोड़ों निवासियों के लिये बहुत महत्व है। श्रीमान्, यदि हम थोड़ी देर के लिये मतभेद की बातों को भुला दें तो हम देखेंगे कि जिस प्रकार का निर्णय हम करने जा रहे हैं वैसा निर्णय करने का प्रयास भारत के कई सहस्त्र वर्षों के इतिहास में कभी भी नहीं किया गया। इसलिये आरम्भ में ही हम यह समझ लें कि हमने एक ऐसी बात हासिल की है जिसे हमारे पूर्वज हासिल नहीं कर सके थे।

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ सदस्य आवेश में बोले हैं और उन्होंने मतभेद की बातों पर ही अधिक जोर दिया है। मैं मतभेद की बातों के संबंध में कुछ शब्द बाद को कहूंगा। मैं सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस अवसर के अनुरूप उच्च निर्णय करे और अपनी मातृभूमि में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में वास्तविक योग दे ताकि हम सभी और आने वाली पीढ़ियां उस पर गर्व कर सकें।

भारत बहु-भाषा-भाषी देश रहा है। यदि हम प्राचीन इतिहास का अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि इस देश में कोई भी व्यक्ति एक ही भाषा को सभी लोगों से कभी भी नहीं मनवा सका है। मेरे कुछ मित्रों ने उच्च स्वर में कहा कि एक दिन ऐसा आयेगा जब भारत में एक ही भाषा होगी। सच पूछिये तो मेरी यह धारणा नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं भारत में राष्ट्रीय एकता की स्थापना की उपेक्षा कर रहा हूं क्योंकि राष्ट्रीय एकता की शिला पर ही भविष्य की नींव रखी जा सकती है। देश के राष्ट्रीय जीवन में इन तत्वों को स्थान देकर ही एकता स्थापित करनी चाहिये क्योंकि इस समय इनका बहुत महत्व है। इन्हें आत्म सम्मान तथा पारस्परिक सामंजस्य के साथ सजीव रखने की आवश्यकता है। यह भारत का वैभव है कि इस देश के उत्तर से दक्षिण तक पश्चिम से पूर्व तक इतनी अधिक भाषाएं हैं जिनमें से प्रत्येक ने भारतीय जीवन तथा भारतीय सभ्यता को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में योग दिया है।

यदि किसी का यह दावा है कि भारतीय संविधान के एक अनुच्छेद को पारित करने से सभी लोग एक भाषा को स्वीकार करेंगे और उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य किये जायंगे तो श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह सम्भव नहीं है (वाह, वाह)। अनेकता में एकता ही भारतीय जीवन की विशेषता रही है। इसे समझौते तथा सहमति से प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये यथोचित वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। यदि मैं किसी हिन्दी भाषी प्रान्त का निवासी होता तो आज मुझे इस पर गर्व होता कि इस सभा के लगभग सभी सदस्य देवनागरी लिपि सहित हिन्दी को भारत की राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिये तैयार हो गये हैं। यह एक ठोस बात हासिल की गई है। और मुझे आशा है कि हिन्दी-भाषी प्रान्तों के मेरे मित्र इसके महत्व को समझेंगे।

अन्य भाषाओं के लिये जो दावे किये जा सकते हैं उनकी चर्चा मैं नहीं कर रहा हूं। यदि मुझे अकेले अपनी इच्छानुसार किसी भाषा को चुनने दिया जाता तो मैं संस्कृत को चुनता। आज लोग संस्कृत पर हंसते हैं सम्भवत: इस कारण कि वे यह समझते हैं कि किसी आधुनिक राज्य को जो कार्य करने होते हैं उनके लिये वह काम में नहीं लाई जा सकती। मैं संस्कृत के पक्ष में बोल कर आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं इसके लिये पूर्णतया सक्षम नहीं हूं किन्तु मैं यह कह सकता हूं कि इस भाषा में अब भी ऐसा वृहत् ज्ञान भंडार है जिससे भारत की वर्तमान पीढ़ी ने ही नहीं बल्कि पहले की पीढ़ियों ने भी ज्ञानोपार्जन किया और वास्तव में उससे सभ्य संसार में ज्ञान और विद्या के सभी प्रेमियों ने ज्ञान प्राप्त किया। वह हमारी भाषा है, वह भारत की मातृ-भाषा हैं हम उसके

प्रति केवल मौखिक सहानुभूति अथवा आदर प्रदर्शित करने के लिये नहीं किन्तु अपने राष्ट्र के हित साधन के लिये तथा अपने आत्मसाक्षात्कार के लिये और यह ज्ञान प्राप्त करने के लिये कि प्राचीन काल में हमने कौन सी विधि संचित की थी और भविष्य में भी कर सकते हैं, वास्तव में चाहते हैं कि भारत की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में उसे सम्मानित स्थान प्राप्त हो।

मैं इसी प्रकार अन्य भाषाओं को स्वीकार करने के पक्ष में तर्क नहीं उपस्थित कर रहा हूं। यदि मैं यह कहूं कि मुझे अपनी भाषा पर गर्व है तो मुझे आशा है कि आप इसे प्रान्तीयता नहीं कहेंगे। वह एक ऐसी भाषा है जो केवल बंगालियों की भाषा नहीं रही है। पिछली कई शताब्दियों में कई प्रतिष्ठित लेखकों ने उसे धनी बनाया है और वह 'बन्दे मातरम्' की भाषा है। हमारे राष्ट्रीय कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने बंगला में अपनी महान रचनाओं तथा अपने विचारों को संसार के सामने रख कर भारत का नाम तथा प्रतिष्ठा बढ़ाई (वाह, वाह)। वह आपकी भाषा है। वह भारत की भाषा है (वाह, वाह)। मुझे विश्वास है कि दक्षिण भारत के तथा पश्चिमी भारत के मेरे मित्रों की भाषाओं में भी, जिनका उन्हें बहुत गर्व है, महान रचनायें हैं और उनकी भी यथेष्ट रक्षा होनी चाहिये। सभी को यह समझना चाहिये कि इस संविधान में कोई ऐसी बात नहीं रखी गई है जिससे इनमें से कोई भी भाषा नष्ट हो जायेगी अथवा अशक्त हो जायेगी।

हम हिन्दी को क्यों स्वीकार कर रहे हैं? इसलिये नहीं कि वह सबसे उत्कृष्ट भारतीय भाषा है। हम उसे मुख्यत: इस कारण स्वीकार कर रहे हैं कि इस भाषा के बोलने वालों की संख्या अन्य किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या से अधिक है। यदि 32 करोड़ लोगों में से 14 करोड़ यदि किसी एक भाषा को समझते हों, और उसका विकास भी हो सकता है, तो हम कहते हैं कि वह भाषा स्वीकार की जाये किन्तु उसे इस प्रकार अपनाया जाये कि अन्तरिम काल में राजकीय कार्य शिथिल न हो जाये और किसी काल में भी भारत की तथा उसकी अन्य महान भाषाओं की प्रगति शिथिल न हो। हम इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने आपके सामने जो योजना रखी है उसमें कुछ ऐसे सिद्धान्त सन्निहित हैं जिससे हमारे विचार से हमारे उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है और वह केवल दक्षिण भारत के लोगों के लिये ही हितकर प्रमाणित नहीं होगा बल्कि सारे भारत के लिये हितकर प्रमाणित होगा (वाह, वाह)।

आपको अंग्रेजी को हटाने के लिये पन्द्रह वर्ष दिये गये हैं। वह किस प्रकार हटाई जाये? उसे उत्तरोत्तर हटाते जाना होगा। हमें वस्तु-स्थिति को ध्यान में रखकर इस संबंध में निर्णय करना होगा कि कुछ विशेष कार्यों के लिये अंग्रेजी को भारत में जारी रखा जाये या नहीं रखा जाये। मेरे कुछ मित्र बता चुके हैं कि हमने कुछ कारणों से भले ही अंग्रेजी शासन से भारत को मुक्त किया हो किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अंग्रेजी भाषा का भी बहिष्कार करें। हम अंग्रेजी शिक्षा की भलाइयों को तथा बुराइयों को भी अच्छी प्रकार समझते हैं। हम निरपेक्ष होकर तथा अपने देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस संबंध में निर्णय करें कि भविष्य में अंग्रेजी को कैसे प्रयोग किया जायेगा। आखिर उसी भाषा के माध्यम

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

से हमने कई बातें हासिल कीं। अंग्रेजी से केवल राजनैतिक एकता ही स्थापित नहीं हुई जिसके फलस्वरूप हम राजनैतिक स्वातंत्र्य प्राप्त कर सके बल्कि उसने हमारे लिये संसार के कई भागों की सभ्यता के द्वार भी खोल दिये। विशेषत: विज्ञान और कला के क्षेत्रों में उसने हमारे लिये उस ज्ञान-भंडार के द्वार खोल दिये जिसे हम अन्य किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते थे। आज हमारे वैज्ञानिकों ने तथा कला-संबंधी विशेषज्ञों ने जो कुछ कर दिखाया है उसका हमें गर्व है।

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यदि हम इस देश में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग के प्रश्न की संकुचित दृष्टिकोण से परीक्षा करेंगे तो हम आत्म-लाघव का अनुभव करेंगे। यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अंग्रेजी भाषा राजनैतिक प्रयोजनों के लिये प्रयोग की जायेगी अथवा राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में उसकी प्रधानता रहेगी। यह हमारा, अर्थात् स्वतंत्र भारत के लोगों के प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य होगा कि हम इस संबंध में निर्णय करें कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उत्तरोत्तर किस प्रकार प्रयोग में लाया जाये और अंग्रेजी को किस प्रकार त्यागा जाये। यदि हमारी यह धारणा हो कि कुछ प्रयोजनों के लिये हमेशा अंग्रेजी ही प्रयोग में आये और उसी भाषा में शिक्षा दी जाये तो इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। कुछ ऐसे विषय हैं जिनके संबंध में हम साहस से बोल सकते हैं—व्यक्तिगत अथवा वर्गीय हित के लिये नहीं बल्कि जहां हम यह समझते हों कि अमुक अमुक कदम उठाने से सारे देश का हित साधन होगा।

श्रीमान्, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि प्रादेशिक भाषाओं के संबंध में संशोधन में यह प्रस्तावित है कि संविधान में ही भारत की मुख्य-मुख्य प्रादेशिक भाषाओं की सूची का समावेश कर दिया जायेगा। मुझे आशा है कि हम उस सूची में संस्कृत का भी उल्लेख करेंगे। मैं साफ़ बातें कहना चाहता हूं। ऐसे प्रान्तों के लोगों को, जहां हिन्दी नहीं बोली जाती, हिन्दी के संबंध में घबराहट क्यों है? यदि हिन्दी के समर्थक मुझे क्षमा करें तो मैं कहूंगा कि यदि हिन्दी को प्रयोग में लाने की अपनी मांग को उपस्थित करने में वे इतना जोर न दिखाते तो वे जो कुछ चाहते हैं वह उन्हें मिल जाता और भारत की सारी जनता हृदय से उनके साथ सहयोग करती और वास्तव में वे जिन बातों की आशा भी नहीं करते हैं वे भी उन्हें प्राप्त हो जातीं। किन्तु दुर्भाग्य से भय प्रकट किया जा चुका है और कुछ भागों में उसे कार्य रूप में प्रकट किया गया है, जहां उन भाषाओं के बोलने वालों को, जो किसी प्रकार भी हिन्दी से निम्न कोटि की नहीं हैं, वह सुविधायें नहीं दी गई हैं जिनसे उन्हें घृणित वैदेशिक शासन ने भी वंचित नहीं रखा।

जो लोग इस संविधान-सभा में हिन्दी-भाषी प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं उनसे मेरा निवेदन है कि वे यह स्मरण रखें कि हमारी हिन्दी को स्वीकार करने पर उन पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि कुछ सप्ताह पूर्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन की एक सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिन्दी भाषी प्रान्तों में एक या एक से अधिक भारतीय

भाषाओं की अनिवार्य शिक्षा के लिये प्रबन्ध किया जायेगा। (एक माननीय सदस्य: वह एक पवित्र प्रस्ताव ही है!) वह एक पवित्र प्रस्ताव मात्र न रहे। यह पंडित गोविन्द बल्लभ पंत, बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन, बाबू श्री कृष्ण सिन्हा और पंडित रविशंकर शुक्ल जैसे नेताओं की जिम्मेदारी है कि वे भविष्य में कुछ महीनों में ही अपने क्षेत्रों में, विशेषत: जब वहां हिन्दी से अन्य भाषाओं के बोलने वाले लोग हैं, महत्वपूर्ण प्रादेशिक भाषाओं की स्वीकृति के लिये प्रबन्ध करें और यदि आवश्यकता हो तो विधि द्वारा यह प्रबन्ध करें। मैं यह दिलचस्पी से देखता रहूंगा कि ये सुविधायें किस प्रकार दी जाती हैं और बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन के नेतृत्व में एकमत से जो प्रस्ताव पारित हुआ है वह बिहार और संयुक्तप्रान्त जैसे प्रान्तों में किस प्रकार प्रयोग में आता है।

श्रीमान्, इसकी बहुत चर्चा की गई है कि हिन्दी का क्या अर्थ है। किसी भाषा के विकास के संबंध में न तो कोई कृत्रिम राजनैतिक शक्तियां उत्पन्न की जा सकती हैं और न कोई विधि के उपबन्ध रखे जा सकते हैं। विवादों के होते हुये भी और प्रतिष्ठित तथा प्रभावशील व्यक्तियों के होते हुये भी, भाषा का विकास प्राकृतिक रूप से होता है। लोगों के संकल्प से परिवर्तन होते हैं और वे प्राकृतिक रूप से तथा अनजाने होते हैं। संविधान-सभा के किसी प्रस्ताव से किसी भाषा का प्रभुत्व नहीं स्थापित होता। यदि आप यह चाहते हैं कि हिन्दी सारे भारत में अपनायी जाये और केवल कुछ राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी का स्थान न ले तो आप हिन्दी को इस योग्य बनाइये और उसमें प्राकृतिक रूप से न केवल संस्कृत से किन्तु उसकी भगिनी रूप अन्य भारतीय भाषाओं से भी शब्द आने दीजिये। हिन्दी के विकास को कुंठित न कीजिये। मैं अपने बंगाली ढंग से हिन्दी बोल सकता हूं। महात्मा गांधी अपने ढंग से हिन्दी बोलते थे। सरकार पटेल अपने गुजराती ढंग से हिन्दी बोलते हैं। यदि संयुक्तप्रान्त अथवा बिहार के मेरे मित्र यह कहें कि उनकी हिन्दी ही प्रामाणिक हिन्दी है और कोई जो इस प्रकार की हिन्दी नहीं बोल सकेगा। उसका बहिष्कार किया जायेगा तो यह न केवल हिन्दी के लिये बल्कि सारे देश के लिये एक बुरी बात होगी। इसलिये मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इस अनुच्छेद के मसौदे में इस संबंध में उपबंध रखे गये हैं कि इस देश में इस भाषा का विकास किस प्रकार होगा।

मुझे आशा है कि भारत-सरकार एक भाषा-परिषद् स्थापित करेगी और प्रदेशों में भी इसी प्रकार की परिषदें स्थापित की जायेंगी जहां हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का सुचारु रूप से अध्ययन किया जायेगा, साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा और सभी भाषाओं की चुनी हुई रचनाओं को देवनागरी लिपि में प्रकाशित कराने का प्रबन्ध किया जायेगा और जहां वाणिज्यिक औद्योगिक वैज्ञानिक और कला संबंधी शब्दों को निरपेक्ष रूप से निश्चित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया जायेगा। इस संबंध में हम संकुचित दृष्टि से कार्य न करें। मैं अपने विश्वविद्यालय में अपनी मातृ-भाषा को यथोचित स्थान प्राप्त करने में अपना तुच्छ योग दे चुका हूं। इस कार्य को साठ वर्ष पूर्व मेरे आदरणीय पिता ने आरम्भ किया था और पन्द्रह वर्ष पहले उसे सम्पूर्ण करने का भार मुझे उठाना पड़ा। कलकत्ते के लोगों ने बिना किसी संकोच के सभी भारतीय भाषाओं को स्वीकृति प्रदान कर दी। हमने अपने शब्दों को किसी संकुचित भावना से प्रेरित होकर नहीं चुना

[माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी]

बल्कि भविष्य की प्रगति को ध्यान में रखकर चुना। यदि आज यह कहा जाता है कि कला-संबंधी सभी शब्द हिन्दी के हों तो आप इस व्यवस्था को उन प्रान्तों में अपनायें जहां हिन्दी बोली जाती है। बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास का क्या हाल होगा। क्या वे भी अपने राज्यों की भाषाओं के कला-संबंधी शब्द प्रयोग करेंगे? यदि यह हुआ तो विभिन्न राज्यों के विचारों तथा शिक्षा-संबंधी सुविधाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान का क्या होगा। उन लोगों का क्या हाल होगा जो आगे की शिक्षा के लिये विदेश जाते हैं? मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इन प्रश्नों पर विचार करें। हम भावना के आवेश में न बहें। कुछ भावनाओं पर मैं अवश्य गर्व करता हूं। मुझे इसकी चिंता है कि एक ऐसी भाषा अस्तित्व में आ जाये जिसे भारत के सभी लोग न केवल बोलें और लिखें बल्कि जिसमें भारत सरकार का राजकीय कार्य भी किया जाये। हम इसके लिये सहमत हो गये हैं कि वह भाषा हिन्दी होगी। किन्तु उसका पग पग पर इस प्रकार समायोजन करने की आवश्यकता है कि हमारे राष्ट्रीय हितों की हानि न हो और राज्यों की भाषाओं के हितों की भी हानि न हो। यदि आप इस प्रकार कार्य करेंगे तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि हमें पन्द्रह वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी और सभी प्रान्तों के लोग हमारे निर्णय को सहर्ष स्वीकार करेंगे और प्रयोग में लायेंगे।

अन्त में मैं कुछ शब्द अंकों के संबंध में कहूंगा। अंकों के संबंध में बहुत कुछ कहा गया है। अंकों को लेकर हम एक छोटे-मोटे युद्ध में संलग्न हैं। किन्तु जो प्रस्ताव रखा गया है वह केवल दक्षिण-भारत के लोगों के हित साधन के लिये नहीं रखा गया है। इसे सभा के प्रत्येक वर्ग को समझना चाहिये। जब तक हम कोई अन्य निर्णय न करें, अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को जारी रखना, जो थोड़ा बहुत रूप बदल कर अपने जन्म स्थान को लौट आये हैं कई वर्षों तक हमारे हित-साधन के लिये बहुत आवश्यक है। बाद को आयोग की सिफारिशों के आधार पर यदि राष्ट्रपति की यह धारणा हुई कि परिवर्तन करने की आवश्यकता है तो परिवर्तन किया जा सकता है। आंकड़ों के संबंध में, वैज्ञानिक कार्य के संबंध में, वाणिज्यिक उपक्रमों, बैंकों, लेखों, लेखापरीक्षाओं तथा अन्य बातों के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों की आवश्यकता पड़ेगी।

मेरे कुछ मित्र मुझसे पूछते हैं कि जब आप पूरी हिन्दी भाषा को स्वीकार कर रहें हैं और जब कुछ अंक समान ही हैं तो आप कुछ और अंकों को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? प्रश्न तीन या चार अंकों को सीखने का नहीं है। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति हिन्दी अंकों से भी परिचित होगा और वे आरम्भ से ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं। किन्तु प्रश्न तो उनको ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग में लाने का है जिनके लिये वे यथोचित रूप से प्रयोग में नहीं लाये जा सकते।

मेरे कुछ हिन्दी भाषी मित्र मुझसे पूछते हैं, आप हमें अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग में लाने के लिये क्यों बाध्य करते हैं, हम बिहार, मध्यप्रान्त अथवा संयुक्त-प्रान्त में, जहां की राज-भाषा हिन्दी ही होगी, हिन्दी के अंकों को निषिद्ध नहीं

कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि कई कार्यों के संबंध में हिन्दी अंक प्रयोग में आयेंगे। यदि आप अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को भी सीख लेंगे और सारे भारत के राजकीय कार्यों के लिये उन्हें काम में लायेंगे तो क्या हानि होगी? वास्तव में आपको, विशेषत: उच्च-शिक्षा के संबंध में, उनसे लाभ होगा। मैं बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन से अपील करता हूं कि वे समयोचित कार्य करें। यह कोई ऐसा विषय नहीं है जो बहुमत से स्वीकार किया जाये। भले ही उनके पक्ष के कुछ लोगों की यह धारणा हो कि अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय अंक प्रयोग में न आयें और हिन्दी अंकों के साथ उन्हें भी स्वीकार न किया जाये, और भले ही उनकी स्वयं यह धारणा हो कि यह प्रस्ताव न्यायपूर्ण नहीं है, और भले ही वह उन्हें पसंद न हो, किन्तु चूंकि उनके प्रान्त की भाषा हिन्दी को भारत के सभी लोग स्वीकार कर रहे हैं वे राजनीतिज्ञता का परिचय दें और उठ कर यह कहें कि उनकी अपनी भावनायें चाहे जो कुछ भी हों किन्तु उन्हें यह समझौता मान्य है और वे इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं।

हम पिछले वर्षों में इस सभा में कई महत्वपूर्ण प्रस्तावों को पारित कर चुके हैं। हमने साथ-साथ कई संकटों का सामना किया है। यदि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा में, जिसमें केवल एक ही राजनैतिक दल का बोल बाला है, अंकों जैसे प्रश्न के संबंध में मतभेद हो गया तो यह एक लड़कपन की बात होगी। हम अपनी तथा सारे भारत की हंसी करायेंगे और अपने शत्रुओं को बल प्रदान करेंगे। हम अपने मतभेदों पर जोर न देकर अपने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में हमने जो कुछ हासिल किया है उस पर जोर दें। हम संसार को यह बता दें कि हमने यह निर्णय एकमत से और बिना किसी कटुता के किया है। हम इस प्रश्न पर राजनैतिक दृष्टि से विचार न करें।

यह एक दु:ख की बात है कि कुछ क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने से एक कठिन राजनैतिक समस्या उठ खड़ी होगी। इन प्रान्तों के नेताओं को ही साहस करके यहां उठ कर यह कहना है कि वे भारत के हित को ध्यान में रखकर इस समझौते को स्वीकार करते हैं और वे सबका साथ देने के लिये तैयार हैं। यदि नेता यह कह देंगे तो मुझे इस संबंध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि लोग भी इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे। हमने किसी ऐसे प्रान्त में, जहां के विधान-मंडल हिन्दी अंकों को प्रयोग में लाने का निश्चय करें, उनके प्रयोग को, अथवा अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये भी उनके प्रयोग को, निषिद्ध नहीं किया है। हमने केवल यह सिफारिश की है कि एक ऐसा सूत्र स्वीकार किया जाये जो सभी के लिये न्यायपूर्ण हो। मुझे आशा है कि वादानुवाद के समाप्त होने के पूर्व सभी विचार धाराओं के प्रतिनिधि आपस में विचार-विमर्श करके सभा के सामने यह घोषित करेंगे कि श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर का प्रस्ताव एक मत से स्वीकार किया जायेगा।

*__अध्यक्ष:__ सभा चार बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा दोपहर के भोजन के लिये अपराह्न के चार बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

संविधान-सभा दोपहर के भोजन के पश्चात् 4 बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

***अध्यक्ष:** हम बहस जारी रखेंगे। श्री चक्को।

***श्री पी.ए. चाको** (त्रावणकोर और कोचीन का संयुक्तराज्य): श्रीमान्, मेरा यह मत है कि अंग्रेजी के लिये जो भी समय निश्चित किया गया था उस समय तक वह रहे और राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को भावी संसद् हल करे। राष्ट्र-भाषा का विकास होता है, यह कृत्रिम रूप से नहीं बनाई जा सकती। भारत जैसे महान देश की राष्ट्र-भाषा में कुछ आधारभूत बातें अवश्य होनी चाहियें। वह आधुनिक सभ्यता की सभी आवश्यक बातों को व्यक्त करने में समर्थ होनी चाहिये। आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये उस भाषा में पर्याप्त वैज्ञानिक साहित्य होना चाहिये। विचारों का माध्यम होने के कारण भाषा से ही मस्तिष्क का भी विकास होता है। विचारक की भाषा पर ही उसके विचारों की गहनता तथा उसके विचारों का विकास बहुत कुछ निर्भर करता है। प्रत्येक भाषा की अपनी शब्दावली अपनी वाक्य रचना तथा अपनी विचार परम्परा होती है।

कोई व्यक्ति जो केवल आरम्भिक भाषा को ही जानता है उस व्यक्ति के समान विचार नहीं रख सकता जो कि एक सुविकसित भाषा को बोलता है। भारत जैसे महान देश की राष्ट्र-भाषा भी महान होनी चाहिये। भारत की कुछ भाषाओं में वास्तव में बहुत सुन्दर साहित्य है। किन्तु श्रीमान्, मेरे विचार से किसी भी भारतीय भाषा में अच्छा वैज्ञानिक साहित्य नहीं है। हमारी किसी भी भारतीय भाषा में रसायन, भौतिक विज्ञान तथा अन्य विज्ञानों की शिक्षा देना असम्भव है। तुरंत ही प्रयोग में लाने के लिये किसी भाषा को कृत्रिम रूप से नहीं गढ़ा जा सका। उसका विकास होना आवश्यक है। किन्तु इसके लिये समय की आवश्यकता होती है। यदि हम भारत की वर्तमान भाषाओं में से किसी भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करेंगे तो हम राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में बाधा डालेंगे। वह हमारी उच्च शिक्षा के लिये बाधक सिद्ध हो सकती है। इस समय हमें वैज्ञानिक खोज की आवश्यकता है। किन्तु वह भाषा उसके लिये भी बाधक सिद्ध हो सकती है। इसलिये मेरे विचार से हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये जब भारत की कोई भाषा विकसित तथा पुष्ट होकर हमारे सामने आयेगी। तब हम उसे अपनी राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा के रूप में अपना सकते हैं।

अंग्रेजी बहुत ही व्यंजना-सम्पन्न, शब्द-सम्पन्न तथा सरल और सुबोध भाषा है। उसके लिये यह भी सिफारिश की गई है कि उसे सहायक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। उसके स्थान पर किसी अन्य भाषा को रखना असम्भव है। सम्भवत: शैक्सपियर ने इंग्लिस्तान की राष्ट्र-भाषा को हमेशा के लिये निश्चित कर दिया और इटली की राष्ट्र-भाषा को दान्ते ने निश्चित कर दिया। इसी प्रकार भविष्य में कोई प्रतिभाशाली साहित्यिक भारत की राष्ट्र-भाषा को भी निश्चित करेगा।

राष्ट्र-भाषा केवल पारस्परिक समझौते से ही निश्चित की जा सकती है। मेरा विश्वास है कि वह मत लेकर निश्चित नहीं की जा सकती। कोई भी भाषा लोगों पर थोपी नहीं जा सकती। अभी तक कोई भी राष्ट्र बहुसंख्यकों की भाषा को अल्पसंख्यकों पर थोपने में सफल नहीं हुआ है। जारों के रूस में लिथुआनिया की भाषा को बोलने की बिल्कुल मनाही थी और इस संबंध में जो विधि थी उसे तोड़ने के लिये कठोर दंड दिया जाता था और कभी-कभी मृत्यु-दंड भी दिया जाता था। किन्तु दो शताब्दियों के अनन्तर जब लिथुआनिया ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की तो यह ज्ञात हुआ कि 93 प्रतिशत लोग फिर भी लिथुआनिया की भाषा बोलते थे। इसी प्रकार स्पेन में 1923 में कटालान भाषा निषिद्ध घोषित कर दी गई किन्तु 1932 के संग्राम के पश्चात् स्पेन को उस भाषा को स्वीकार करना पड़ा।

हम यह भी जानते हैं कि इसके विपरीत इंग्लिस्तान में क्या हुआ। इस समय भी इंग्लिस्तान में छह बोलियां बोली जाती हैं अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा के रूप में विकसित हो उठी और सभी लोगों ने खुशी से उसे स्वीकार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वैल्स में लोगों ने वैल्स को तथा स्काटलैंड में गेलिक का परित्याग कर दिया। इसी प्रकार हमें भी उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक इस समय की भारतीय भाषाओं में से कोई भाषा समुन्नत न हो जाये। हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक वह पुष्ट न हो जाये और उस स्थिति को प्राप्त न हो जाये जो राष्ट्र-भाषा के लिये आवश्यक है।

मेरे विचार से राष्ट्रभाषा के संबंध में निर्णय करने के पूर्व एक दो बहुत महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल करना आवश्यक है। श्रीमान्, पहला प्रश्न यह है कि हम एक भाषा को राज-भाषा के रूप में अपनायें अथवा कई भाषाओं को। स्विट्ज़रलैंड में लोग चार भाषायें बोलते हैं स्कूलों में वही भाषा शिक्षा का माध्यम होती है जिसे उस क्षेत्र के लोग बोलते हैं जहां स्कूल स्थित होता है। उच्च कक्षाओं में एक दूसरी राष्ट्र-भाषा को सीखना अनिवार्य होता है और फिर आगे चल कर एक तीसरी भाषा को भी। चारों भाषाओं को राज भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है।

युद्ध के पूर्व चेकोस्लोवाकिया में यद्यपि कुछ लोग बोलियों के साथ लगभग बारह भाषाओं को बोलते थे किन्तु दो भाषाओं को राज-भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया था। सरकारी दफ्तरों में, जो दफ्तर जिस क्षेत्र में होता था वहीं की भाषा वहां प्रयोग की जाती थी। अन्य कई देशों में भी एक से अधिक भाषाओं को राज-भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है।

इसलिये इस संबंध में निर्णय करने की आवश्यकता है कि हम एक भाषा को भारत की राज-भाषा के रूप में स्वीकार करें। अथवा कई भाषाओं को अर्थात् बंगला, तामिल, हिन्दी और अंग्रेजी को भी इस रूप में स्वीकार करें। यदि हम एक ही भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने का निर्णय करते हैं तो हमें इस संबंध में भी निर्णय करना होगा कि हमें संघीय सरकार को राज-भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा को प्रयोग में लाने देना चाहिये या नहीं। रूस में उदाहरणार्थ यूरोपीय रूस में ही असंख्य बोलियां के साथ-साथ 76 भाषायें बोली

[श्री पी.ए. चाको]

जाती हैं और केवल एक ही भाषा राज-भाषा है। किन्तु दफ्तरों में संबंधित प्रदेश की भाषा को भी प्रयोग किया जाता है। जहां कई भाषायें बोली जाती हैं और कई बोलियां भी बोली जाती हैं वहां इस संबंध में निर्णय करना होता है कि क्या संघ केवल एक ही राज-भाषा को प्रयोग करे अथवा क्या वह दफ्तरों में संबंधित प्रदेशों की भाषाओं को भी प्रयोग में लाने दे।

मैं यह बताना चाहता हूं कि आयरलैंड में अब भी सभी सरकारी कामों के लिये अंग्रेजी को ही काम में लाया जाता है। आयरलैंड के स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में वहां के लोग अंग्रेजी का विरोध करते थे। 1893 में एक गैलिक लीग स्थापित हुई जिसने आयरलैंड के स्वातंत्र्य संग्राम में प्रमुख भाग लिया। वहां के स्कूलों में आयरिश भाषा एक अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। यद्यपि आयरलैंड के लोग चाहते हैं कि केवल आयरिश भाषा ही राज-भाषा हो किन्तु आयरिश को अंग्रेजी का स्थान लेने में उन्हें बहुत कठिनाई हो रही है।

हम सभी लोग इस संबंध में बहुत कुछ सहमत ही हैं कि अंग्रेजी पन्द्रह वर्ष तक रहे। इसलिये यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है किन्तु इसे तुरन्त ही हल करने की आवश्यकता नहीं है। यह जनतंत्र का एक उत्तम सिद्धान्त है कि जब लोक-प्रतिनिधियों को अपने निर्णयों के संबंध में स्वयं संदेह हो तो उन्हें लोगों की इच्छाओं का आदर करना चाहिये। यद्यपि यह प्रश्न एक महत्वपूर्ण प्रश्न है किन्तु चूंकि इसे तुरन्त ही हल करने की आवश्यकता नहीं है इसलिये मैं यह प्रार्थना करता हूं कि हम लोगों के पास जाकर इस संबंध में उनकी आज्ञा प्राप्त करें। इसके लिये हमें इस प्रश्न को भावी संसद के हल करने के लिये छोड़ देना चाहिये।

जब हमें कई अन्य प्रश्न, जिनका देश के करोड़ों लोगों के जीवन से संबंध है, हल करने हैं तो हम इस प्रश्न के पीछे क्यों पड़े रहें? जब देश के स्वातंत्र्य के लिये वीरता से लड़ने वाले लोग खाने तथा मकान के बिना मर रहे हैं और व्यापार तथा वाणिज्य में दिन प्रतिदिन मन्दी आती जा रही है और बेकारी फैली हुई है जिसका शिकार मुख्यत: दक्षिण हुआ है और जब उत्तर भारत में काश्मीर का प्रश्न हल करना है और दक्षिण में साम्यवादी गुंडाशाही को दूर करना है यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि आज भी मेरे पास इस आशय का एक तार आया है, कि एक ऐसे कांग्रेस कर्मी का लड़का, जो पिछले बीस वर्षों से देश की सेवा करता रहा है, पिछले रविवार को एक साम्यवादी के छुरे का शिकार हो गया—और जब खाद्य के प्रश्न के हल पर देश का भविष्य ही निर्भर है तो यह आदरणीय सभा इस प्रश्न को हल करने में अपना समय नष्ट क्यों करे, क्योंकि इस सभा में लगभग सभी के सहमत होने पर यह निर्णय किया गया है कि इस प्रश्न का जो भी हल निकाला जायेगा उसे पन्द्रह वर्ष पश्चात् व्यवहार में लाया जायेगा।

अंकों जैसे छोटे प्रश्न के संबंध में हमें जिस हठधर्मी का परिचय मिला है, और इस सभा के एक वर्ग ने यह प्रमाणित करने के लिये कि जीवन के लिये सबसे उपयोगी वस्तु देवनागरी अंक ही है जिन विचारों को व्यक्त किया है, उन्हें

ध्यान में रखते हुये मेरे विचार से उचित यही होगा कि हम इस प्रश्न को अधिक गम्भीर लोगों के निर्णय के लिये छोड़ दें। हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियां अधिक सहिष्णु और बुद्धिमान होंगी और वे एकमत से इस प्रश्न को हल कर सकेंगी। हमारी असहिष्णुता के कारण भारत का विभाजन हो चुका है। जो कुछ रह गया है उसे अब हम न विभाजित करें। आने वाली पीढ़ियों पर किसी भाषा को न थोप कर हमें इस प्रश्न को उन्हीं के निर्णय के लिये छोड़ देना चाहिये।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल) : श्रीमान्, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के प्रश्न के कारण हमें कई प्रकार की आशंकायें होने लगी हैं। यदि मैं अपनी भावनाओं को नहीं व्यक्त करूंगा तो मैं अपने प्रति, अपने अन्तःकरण के प्रति और अपने ईश्वर के प्रति सत्यनिष्ठा नहीं रख सकूंगा। पिछले तीन सप्ताहों से मैं कई आशंकाओं से पीड़ित रहा हूं और वे संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त के मेरे मित्रों की उद्दंड प्रवृत्ति के कारण और भी बढ़ गई हैं। यदि मैं उन्हें सच्चाई से नहीं व्यक्त करूंगा तो मैं अपने महान नेता स्वर्गीय महात्मा गांधी के प्रति भी सत्यनिष्ठा नहीं रख सकूंगा।

चूंकि हमें एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है इसलिये मैं हिन्दी को राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें किसी प्रकार की आशंकाएं, संदेह अथवा भय नहीं है। मेरे मित्र डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी आज प्रातः बता चुके हैं कि अहिन्दी प्रान्त, जिनमें दक्षिण-भारत भी सम्मिलित है, किन भयों और संदेहों से पीड़ित है। आज प्रातः जब पंडित लक्ष्मीकान्त मैत्र बोल रहे थे तो मेरे हृदय से यह विचार उठा कि अच्छा यही होगा कि संस्कृत को राज्य की सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। ताकि उस भाषा पर, जो सभी भाषाओं की जननी है, सभी लोगों का समान अधिकार हो। तब इस सभा में उपस्थित संयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रांत के नेताओं तथा उड़ीसा अथवा मद्रास के नेताओं की सन्तानों के बीच किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं होगी। वे सभी संस्कृत सीखेंगे।

हमें आज जो आशंकायें और भय हैं वे हमें कुछ वर्ष पूर्व भी थे जब पदाधिकारी अंग्रेज ही होते थे और सिविल सर्विस की परीक्षायें लंदन में होती थीं। स्वभावतः अंग्रेज ही अधिकतर पदाधिकारी होते थे। जब चूंकि सिविल सर्विस की तथा अन्य सेवाओं की परीक्षायें दिल्ली में होती हैं इसलिये आगे चलकर (मैं इस समय की नहीं बल्कि पन्द्रह वर्ष बाद की बात कह रहा हूं) संयुक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त जैसे हिन्दीभाषी प्रान्तों के लोगों का देश की सिविल सर्विस तथा अन्य सेवाओं में प्रभुत्व रहेगा।

हिन्दी भाषा में किस कोटि की शिक्षा तथा परीक्षायें होंगी और उनका लक्ष्य क्या होगा? मैं अधिक हिन्दी नहीं जानता। मैं थोड़ी बहुत तथाकथित हिन्दुस्तानी जानता हूं, जिसे साधारण लोग बोलते हैं, अर्थात् वह साधारण हिन्दुस्तानी जिसे पदाधिकारी नौकरों से अथवा साधारण कारिन्दों से बोलते हैं। उतनी हिन्दुस्तानी मैं जानता हूं। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि संसार में हिन्दी भाषा में ही क्रियायें लिंगों के अनुरूप होती हैं।

*__एक माननीय सदस्यः__ क्या यह जर्मन भाषा में नहीं होता?

*__श्री बी. दासः__ मैंने जर्मन भाषा सीखने का प्रयास किया था किन्तु मुझे खेद है कि प्रथम युद्ध के छिड़ने पर मुझे वह प्रयास त्यागना पड़ा। किन्तु अब बुढ़ापे में मैं हिन्दी बोलने के लिये तैयार नहीं हूं क्योंकि मुझे हमेशा यह भय रहेगा कि मैं क्रियाओं को ठीक लिंगों के सहित बोल रहा हूं या नहीं। और कहीं हिन्दी भाषी स्त्री और पुरुष मेरी त्रुटियों पर हंस तो नहीं रहे हैं।

किन्तु समस्या यह नहीं है। हमारे बच्चों को जर्मन के समान एक ऐसी भाषा सीखनी होगी जिसके वाक्यों को प्रयोग करते समय उन्हें सावधान रहना होगा कि कहीं वे गलत क्रियाओं को तो नहीं प्रयोग कर रहे हैं। यह एक भय है। किन्तु मैं उसकी उपेक्षा करने के लिए तैयार हूं। परन्तु मैं इस स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं कि आगे पन्द्रह बीस, अथवा तीस वर्ष तक हिन्दी भाषी लोगों की सन्तानों का ही, चाहे वे संयुक्तप्रान्त के हों अथवा मध्यप्रान्त के, अखिल-भारतीय सेवाओं में प्रभुत्व रहेगा।

मैंने देखा है कि पिछले इक्कीस वर्षों में राष्ट्र-भाषा हिन्दी का देश में कितना प्रसार हुआ है। मैं यह कहूंगा कि हिन्दी वक्ताओं को प्रशिक्षा देने में, मेरे मित्र श्री सत्यनारायण तथा श्रीमती दुर्गाबाई के प्रयत्नों के अतिरिक्त बहुत कम काम किया गया है। आज उड़ीसा अथवा मद्रास में पढ़ने वाले वे लोग जो थोड़ी बहुत हिन्दी जानते हैं, क्या हिन्दी भाषी लोगों के साथ प्रतियोगिता में सम्मिलित होने अथवा मेरे मित्र पंडित बालकृष्ण शर्मा के समान संगीत और काव्य की रचना करने, अथवा मेरी मित्र श्रीमती कमला चौधरी के समान सुन्दर कहानियां लिखने की आशा कर सकते हैं? सम्भव है मेरी पीढ़ी पर इसका कोई असर न पड़े किन्तु आने वाली सीढ़ियों पर इसका अवश्य असर पड़ेगा।

हमें यह विदित है कि हमको एक राष्ट्र-भाषा स्वीकार करनी होगी। हम हिन्दी को स्वीकार करते हैं। संयुक्त प्रान्त और मध्य प्रान्त के नेता इतने असहिष्णु क्यों हैं? मैंने यह देखा कि उस तरफ की जगहों से एक के बाद दूसरा नेता आया और वे सब हिन्दी में ही बोले, यद्यपि वे यह जानते थे कि वे संयुक्तप्रान्त के, अथवा मध्यप्रान्त के, अथवा बिहार के सदस्यों से अपील नहीं कर रहे हैं। वे दक्षिण भारत के लोगों, अथवा उड़ीसा के मुझ जैसे लोगों और बंगाल के लोगों से, जो थोड़ी सी ही हिन्दी जानते हैं, अपील कर रहे हैं। यह सभी जानते हैं कि बंगाली थोड़े बहुत कट्टरपंथी होते है। वे किसी भी भारतीय भाषा को अच्छी प्रकार नही सीख पाते यद्यपि वे अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। श्रीमान्, मुझे आशा है कि अब संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त और बिहार के जो सदस्य बोलेंगे तो वे अंग्रेजी में बोलेंगे ताकि दक्षिण-भारत के सदस्य और मुझ जैसे सदस्य जो बहुत कम हिन्दी जानते हैं उन्हें समझ सकें। यदि उन्हें अपनी मातृ-भाषा से इतना अधिक प्रेम है तो वे उसकी सेवा किसी अन्य अवसर पर करें। उनके तर्कों से इसका परिचय मिलना चाहिये कि वे सहिष्णु हैं और वे कुछ प्रदान करना चाहते हैं और वह यह कह कर अपनी उदण्ड मनोवृत्ति का परिचय न दें कि "आप हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें। हमें इसकी चिंता नहीं है कि आपका तथा आपके पुत्रों और पौत्रों का क्या होगा।"

हम नहीं चाहते कि संयुक्तप्रान्त के अथवा मध्यप्रान्त के सदस्य इस प्रकार का रुख दिखायें। इस प्रकार आप न तो भविष्य में, और न अब, हमारा सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। श्रीमान्, मैं इसके विचार से ही उत्तेजित हो उठता हूं और यदि मैं अपने हृदय की बात कह रहा हूं तो अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से ही कह रहा हूं।

श्री एच.जे. खांडेकर (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं माननीय सदस्य महोदय को बताना चाहता हूं कि मध्यप्रान्त में केवल हिन्दी ही नहीं बोली जाती है। वहां मराठी और हिन्दी बोली जाती है।

श्री बी. दासः अच्छी बात है, श्रीमान्। मुझे अपने मित्र का त्रुटिशोधन मान्य है। मेरे मस्तिष्क में जब्बलपुर का जिला है जिसने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति, मेरे मित्र सेठ गोविन्द दास को जन्म दिया है।

श्रीमान्, मैं यह बता चुका हूं कि हम मनुष्य हैं और हम रोटियों के टुकड़ों की समस्याओं से उतने ही प्रभावित होते हैं जितने उच्च राष्ट्रीय आदर्शों से। अब आगे संयुक्तप्रान्त के जो नेता बोलें वे इस समस्या का कोई ऐसा हल बतायें कि जिससे अन्य प्रान्त जैसे उड़ीसा, आसाम, बंगाल अथवा मद्रास, बंबई का एक भाग, मैसूर और त्रावणकोर के समान दक्षिण राज्य, उनके प्रान्त से पिछड़ न जायें। उन्हें इस प्रश्न को हल करना होगा।

उन्हें हमें यह बताना होगा कि वे इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न भारत के तीस करोड़ लोगों को किस प्रकार हिन्दी सिखायेंगे। हमें यह किसी ने नहीं बताया है। केवल प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से और हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बना देने से प्रश्न हल नहीं हो जाता। आखिर पिछले 21 वर्षों में संयुक्तप्रान्त ने अन्य प्रान्तों को कितने अध्यापक भेजे? उसने सौ से अधिक अध्यापक, नहीं भेजे हैं। क्या वे यह आशा करते हैं कि संयुक्तप्रान्त के गांवों के स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों में से प्रत्येक अध्यापक उड़ीसा, बंगाल, आसाम और मद्रास जायेगा और हमारे लड़कों को तथा लड़कियों को इतनी हिन्दी सिखा देगा कि वे प्रतियोगिता में संयुक्तप्रान्त के तथा उत्तर मध्यप्रान्त के लड़कों तथा लड़कियों के साथ भाग ले सकेंगे? यदि संयुक्तप्रान्त के मेरे मित्र सहिष्णु होते तो वे पिछले तीन चार सप्ताह से जिस प्रकार हमारा दिल दुखा रहे हैं उस प्रकार न दुखाते।

अंकों के प्रश्न को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि उन्हें यह नहीं दिखाई देता कि सारे भारत ने सहयोग की भावना दिखाकर हिन्दी को भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। वे आखिर मानते क्यों नहीं हैं? संसार गतिशून्य नहीं है। हम इस संविधान में इस समय जो कुछ रख रहे हैं वह पांच या दस वर्ष पश्चात् निष्क्रमण हो सकता है। हम, हिन्दू जानते हैं कि संसार में कैसे परिवर्तन हो रहे हैं। हम जानते हैं कि ईश्वर की कल्पना में भी अतीत काल से कितने परिवर्तन हुये हैं। ऋग्वेद के काल से लेकर उपनिषदों, पुराणों और भागवत के काल तक तथा फिर आधुनिक काल तक यह कल्पना बदलती रही है। मेरे संयुक्त-प्रान्त के मित्र इस पर इतना अधिक जोर क्यों दे रहे हैं कि देवनागरी के अंक ही काम में लाये जायें और अन्तर्राष्ट्रीय रूप में जो भारतीय अंक हैं उन्हें काम

[श्री बी. दास]

में न लाया जाये। यद्यपि हममें से बहुत से लोग उन्हीं को काम में लाना चाहते हैं? मैंने इस प्रस्ताव का समर्थन किया है कि इन अंकों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय अंक भी काम में लाये जायें। हो सकता है कि हम अकारण भय कर रहे हों। अब से दस या बीस वर्ष पश्चात् यह प्रमाणित हो सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करके हमने गलत कदम उठाया। किन्तु इस समय हमें कोई भय नहीं है और इसलिये सभा को दोनों अंक स्वीकार कर लेने चाहियें।

हम अंकों के जैसे छोटे प्रश्न पर लड़ना नहीं चाहते। संयुक्तप्रान्त तथा उत्तर मध्यप्रान्त के मेरे मित्र इसके लिये क्यों नहीं सहमत होते कि पन्द्रह वर्ष तक दोनों प्रकार के अंक काम में लाये जायेंगे? तब हममें से कई लोग यहां नहीं रहेंगे। पन्द्रह वर्ष पश्चात् कम से कम मैं इस संसार में नहीं रहूंगा। इस काल के पश्चात् जो लोग स्वतंत्र भारत के इस संविधान को पन्द्रह वर्ष तक व्यवहार में लाने के पश्चात् स्वतंत्रता की नवीन लहर से प्रभावित होकर आयें वे एक जगह बैठ कर इस प्रश्न को हल करें कि देवनागरी अंकों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय अंक रहें या नहीं।

डॉ. मुकर्जी ने आज प्रातः ठीक ही कहा कि चूंकि विज्ञान प्रगति कर रहा है और अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग दिखाई देने लगा है, और बाह्य जगत से सम्पर्क बढ़ने लगा है, तथा एक विश्व की भावना भी प्रबल होने लगी है, इसलिये कम से कम विज्ञान तथा कला-कौशल के क्षेत्रों में हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को रखें। यह मेरे निर्णय करने की बात नहीं है कि क्या ठीक है और क्या ठीक नहीं है। मैं केवल एक ऐसे सूत्र को निश्चित करने के लिये प्रयत्न कर सकता हूं जो सभी को मान्य हो ताकि तत्संबंधी अनुच्छेद संविधान में समाविष्ट किये जा सकें। किसी प्रकार की कटुता उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। दक्षिण भारत के सदस्यों को उत्तर भारत के सदस्यों के विचार-विमर्श से रुष्ट न होना चाहिये। साथ ही जब दक्षिण भारत यह चाहता है कि प्राचीन काल के अंकों को प्रशासन में स्थान दिया जाये तो उत्तर भारत को उस पर दबाव नहीं डालना चाहिये। यदि हममें से कुछ लोग उस व्यक्ति की स्मृति के प्रति आदर-भाव रखते हैं जिसने हमें स्वतंत्रता प्रदान की और कारागार के कष्ट सहन किये और उस स्मृति के कारण यदि हम सहयोग करते हैं और किसी का दिल दुखाना नहीं चाहते तो साथ ही संयुक्तप्रान्त के नेताओं से, जो भाषा और अंकों के प्रश्न पर जोर दे रहे हैं, आशा रखते हैं कि वे सहिष्णुता की भावना का परिचय देंगे।

***डॉ. पी. सुब्बारायन** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस आदरणीय सभा के समक्ष प्रथम बार बोल रहा हूं और इस विचार को अपने मस्तिष्क से दूर नहीं कर पा रहा हूं। मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है और वास्तव में और सभी संशोधन उसके अनुगामी हैं।

मेरे संशोधन का आशय यह है कि संघ की भाषा रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी हो। मेरे विचार से हमें संसार के साथ निकट संबंध स्थापित करना चाहिये। संसार

के विभिन्न प्रदेश अब एक दूसरे के निकट आते जा रहे हैं। हमें अब केवल अपने प्रान्तों ही की बात न सोचनी चाहिये। हमें अधिकतर "एक विश्व" के बारे में ही सोचना चाहिये। यदि वास्तव में आपका "एक विश्व" और शान्ति के विचारों में विश्वास है, जिनका महात्मा गांधी ने संसार में प्रचार किया तो मुझे विश्वास है कि आप में से अधिकांश लोग, यदि आप अपने दिलों को टटोलेंगे तो मेरे प्रस्ताव के पक्ष में मत देने के लिए तैयार हो जायेंगे।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): महात्मा गांधी ने कभी यह नहीं कहा कि हिन्दुस्तानी रोमन लिपि में लिखी जाये।

***डॉ. पी. सुब्बारायनः** मैंने रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी का प्रस्ताव इसलिये रखा है कि इस प्रश्न का यह एक ऐसा हल है जिसे स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि दो लिपियों के कारण बहुत कठिनाई हो सकती है।

मैं एक अन्य विषय के संबंध में भी बोलना चाहता हूं। अंग्रेजी के संबंध में आखिर नाक-भौं क्यों सिकोड़ी जा रही हैं? अंग्रेजी से आखिर इतनी नफरत क्यों होने लगी है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के पश्चात् मैं यह समझता था कि हमने नफरत का पूर्णतया परित्याग कर दिया है और अब हम अंग्रेजों के मित्र हो गये हैं। मैं अमरीका का उदाहरण देना चाहता हूं। आज यदि आप अमरीका की जनसंख्या के आंकड़े देखें तो आपको विदित होगा कि वहां केवल बीस प्रतिशत लोग ही अंग्रेज हैं। जहां तक मैंने देखा है, खेलों में भी वहां के जो लोग आते हैं वे कई जातियों के होते हैं। और किसी प्रकार भी ऐंग्लो सैक्सन नहीं कहे जा सकते। डेविस कप के लिये आस्ट्रेलिया के विरुद्ध उन्होंने हाल में जो मैच खेली थी उसमें अमरीका की ओर से स्क्रोएडर तथा गोंजेल्स ने बहुत अच्छा खेला और मैच जीती। क्या स्क्रोएडर और गोंजेल्स से भी अजीब नाम आपने सुने हैं? उनमें से एक जर्मन है और दूसरा पुर्तगाली।

अमरीका में बसने वाले विभिन्न राष्ट्रों के इन लोगों ने एकमत होकर अंग्रेजी को अपनी भाषा माना है। मुझे यह कहने का साहस नहीं है कि हम अंग्रेजी भाषा को लोक-भाषा के रूप में अपनायें यद्यपि लगभग डेढ़ शताब्दी तक वह हमारे देश में प्रचलित रही है और अंग्रेजी भाषा से हमने भी वे सब बातें सीखी हैं जो अन्य देशों ने सीखी हैं।

दुर्भाग्य से हमारी वह स्थिति नहीं है। चाहे कितनी ही बातें क्यों न कहीं गई हों किन्तु अब भी नफरत की भावना तथा आक्रांता की भाषा से दूर रहने की भावना है, यद्यपि आक्रांता बिना एक गोली चलाये हुए अपनी खुशी से इस देश से चला गया है और वह इस कारण कि वह समझ गया कि अब वह समय आ गया है जब उसे राष्ट्र के निर्णय को स्वीकार कर लेना चाहिये। किन्तु फिर भी मैं राष्ट्र की भावना का आदर करने के लिये तैयार हूं।

किन्तु मैं यह चाहता हूं कि माननीय सदस्य महात्मा गांधी का स्मरण करें। मुझसे यह कहा गया है कि इस भाषा संबंधी विवाद में हम महात्मा गांधी का नाम न लें। मैं पूछता हूं कि आखिर क्यों नहीं? क्या इस कारण कि प्रतिदिन

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

माननीय सदस्य उनके पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं और जो कुछ उन्होंने हमें सिखाया है उसके विपरीत कार्य करते हैं। इस दशा में, अध्यक्ष महोदय, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करने के संबंध में आखिर मैं उनका नाम क्यों न लूं?

*__श्री आर.के. सिधवा:__ ठीक है। वे जो कुछ कहते थे वही कहना चाहिये। वे रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी की बात कभी नहीं कहते थे।

डॉ. पी. सुब्बारायन: श्री सिधवा यदि आप कुछ धैर्य रखें और मुझे अपना तर्क पूर्ण रूप से उपस्थित करने दें तो आप समझ जायेंगे कि मैं क्या कहा रहा हूं। मैंने रोमन लिपि के संबंध में उनकी चर्चा नहीं की। केवल हिन्दुस्तानी के संबंध में ही मैंने उनकी चर्चा की। श्रीमान्, मेरा यह तर्क है कि चूंकि अंग्रेजी का प्रश्न ही नहीं रह जाता इसलिये अच्छा यही है कि हम रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी को स्वीकार करें क्यों कि उस लिपि के कारण हमारा संसार से संबंध बना रहेगा।

मैं यह कहता हूं कि अंकों के संबंध में ये सब अनर्गल बातें क्यों कही जा रही हैं। क्या आप बिल्कुल पुरातन होने जा रहे हैं और ऐसी बातें अपनाने जा रहे हैं जो बहुत पहले भुला दी गई हैं और जिन्हें आप अब पुनर्जीवित करना चाहते हैं क्योंकि आप यह समझते हैं कि वे आपकी अपनी हैं? श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि ये अंक उन अंकों से बहुत प्राचीन हैं जिन्हें आप छाती से लगा रहे हैं।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ पूछिये।

*__डॉ. पी. सुब्बारायन:__ इस संबंध में कुछ पूछने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह एक तथ्य है।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ यह तथ्य नहीं है।

*__डॉ. पी. सुब्बारायन:__ आप जो चाहें कहें किन्तु इस संबंध में मेरा अपना मत है।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ आपका मत ही सब कुछ नहीं है।

*__डॉ. पी. सुब्बारायन:__ यह मेरा मत नहीं है। यह एक तथ्य है, केवल मत ही नहीं है। आपका अपना मत है जिसके आधार पर आप तथ्य को ही बदल देना चाहते हैं। श्रीमान्, जहां तक अंकों का प्रश्न है उसके संबंध में मैं तथ्यों को प्रमाणित करने के लिये श्री शर्मा के लाभार्थ इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका से एक उद्धरण देता हूं।

*__पं. बालकृष्ण शर्मा:__ कहिये आपके सूचनार्थ।

*डॉ. पी. सुब्बारायनः मुझे पर्याप्त सूचना प्राप्त है। "हमारे वर्तमान अंकों के बारे में, जो साधारणतया अरबी अथवा हिन्दू-अरबी अंक कहे जाते हैं, विभिन्न प्रकार के दावे किये गये हैं और प्रत्येक में कुछ न कुछ तथ्य है। यह कहा जाता है कि अरबों ने, अथवा ईरानियों ने, अथवा मिश्र निवासियों ने, अथवा हिन्दुओं ने इन अंकों को लिखना आरम्भ किया। व्यापारियों के बीच समागम होने के कारण ये चिह्न विभिन्न देशों में ले जाये गये। इसलिये यह सम्भव है कि हमारे अंक विभिन्न स्रोतों से आये हों। किन्तु जिस देश में इनमें से अधिकांश अंक, प्रयोग में आते थे वह भारत है......"एक चार और छह का अंक ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोक के शिलालेखों में मिलता है। उस समय आपके अंकों के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। दो, चार, छह, सात और नौ का अंक एक शताब्दी बाद के नाना घाट के शिलालेखों में मिलता है।

*पं. बालकृष्ण शर्माः क्या नाना घाट यूरोप में है?

*डॉ. पी. सुब्बारायनः इसीलिये मैं यह कह रहा हूं कि ये हमारे अंक हैं किन्तु दुर्भाग्य से आप यह स्वीकार नहीं कर रहे हैं। मैं केवल यह सिद्ध कर रहा हूं कि इन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई और किसी अन्य स्थान में नहीं हुई। दो, तीन, चार, पांच, छह, सात और नौ के अंक नासिक की गुफाओं में पहली अथवा दूसरी शताब्दी में लिखे गये थे।

*पं. बालकृष्ण शर्माः क्या आपने इन अंकों को नासिक की गुफाओं में लिखा देखा है? क्या आप सभा को इस संबंध में सूचना दे सकते हैं कि क्या ये अंक उन्हीं अंकों के समान हैं जो इस समय प्रयोग में हैं?

*डॉ. पी. सुब्बारायनः मैं माननीय सदस्य महोदय से तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। उन्हें भी अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलेगा। इस समय वे कृपया मेरी बातें धैर्यपूर्वक सुनें। दो, तीन, चार, पांच, छह, सात और नौ के अंक नासिक की गुफाओं में पहली अथवा दूसरी शताब्दी में लिखे गये थे। वे बहुत कुछ हमारे अंकों के समान ही हैं। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि हमारे दो और तीन के अंक उन अंकों के दो और तीन अंकों से ही निकले हैं।

इन प्राचीन भारतीय शिलालेखों में अंकों के स्थानों का अथवा शून्य का कोई प्रमाण नहीं है। सम्भव है अंकों के स्थान हमीं ने निश्चित किये हों। हिन्दुओं के साहित्य में इसका थोड़ा बहुत प्रमाण मिलता है कि शून्य को हम से पहले भी लोग जानते थे। किन्तु नवीं शताब्दी के पूर्व का कोई भी ऐसा शिलालेख नहीं मिलता जिसमें यह चिह्न अंकित हो। हिन्दुओं के अंकों का वह्य देशों से सबसे पहला प्रमाण मेसोपोटामिया के एक पादड़ी सवरूस सिवोख्त के सन् 650 ई. के एक लेख में मिलता है। चूंकि वे नौ चिह्नों का उल्लेख करते हैं इसलिये यह प्रतीत होता है कि शून्य के अंक से वे परिचित थे।

अध्यक्ष: क्या आप उनके निर्णय के आधार पर इस प्रश्न को हल करने जा रहे हैं?

डॉ. पी. सुब्बारायन: उस आधार पर नहीं किन्तु इस आधार पर कि उनकी उत्पत्ति भारत में हुई। मैं केवल यह प्रमाणित कर रहा हूं कि ये हमारे अंक हैं और हमें इनके कारण शर्मिन्दा होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अध्यक्ष: इस ब्यौरे पर अब अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रश्न को अधिक विस्तृत आधार पर हल करने की आवश्यकता है।

डॉ. पी. सुब्बारायन: श्रीमान्, मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि हमें इन अंकों के कारण शर्मिन्दा होने की आवश्यकता नहीं है। वे हमारे ही अंक हैं और हम उन्हीं अंकों को अपना रहे हैं जो हमारे ही थे और जो संसार भर में समझे जाते हैं। इस प्रकार हम संसार के अन्य देशों से भी निकट संबंध स्थापित कर सकते हैं क्योंकि इस समय संसार के साठ प्रतिशत लोग इन अंकों को काम में लाते हैं। इन्हें अपनाने में कोई हानि नहीं है। इस स्थिति में मेरी समझ में नहीं आता कि हम ऐसे अंकों को क्यों अपनायें जो अप्रचलित हों और उन अंकों को क्यों त्याग दें जिनसे हम सुपरिचित हैं और जिन्हें कई वर्षों से काम में ला रहे हैं।

मैं रोमन लिपि की ओर संकेत कर चुका हूं *(विघ्न)*। श्री टी.टी. कृष्णमाचारी एक संविधानिक विशेषज्ञ हैं। मैं विशेषज्ञ होने का दावा नहीं करता। मैं केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि जब संसार के सभी देश इस लिपि से सुपरिचित हैं और वे उत्तरोत्तर एक दूसरे के निकट आ रहे हैं तो इस लिपि को अपनाने से हम उनके निकट रहेंगे और हमारे वैज्ञानिक संसार के वैज्ञानिकों से अपनी ही भाषा में विचार विनिमय कर सकेंगे। संसार के अन्य देशों के निवासी इस लिपि को आसानी से पढ़ सकेंगे और इसलिये हमारा उनके साथ निकट संबंध रहेगा। मुझे आशा है कि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को इससे संतोष हो गया होगा।

जहां तक मेरे अन्य संशोधनों का संबंध है उनके विषय में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरी इच्छा यह है कि श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव के अधीन जो आयोग गठित होने वाला है वह पांच वर्ष के बाद गठित न हो। उसके लिये पांच वर्ष का समय बहुत कम है। वह दस वर्ष अथवा इससे अधिक समय बाद गठित किया जाये और इन दस वर्षों में अंग्रेजी भाषा का ही माध्यम बना रहे। संयुक्तप्रान्त के मेरे मित्र इस पर हंस रहे हैं। यदि हिन्दी के विवाद में उनका भी वही अनुभव होता जो मेरा रहा है तो वे समझ जाते कि मैं उनसे यह कदम उठाने के लिये क्यों अपील कर रहा हूं। हम दाक्षणात्यों ने यह स्वीकार किया कि हमारी एक राष्ट्र-भाषा होनी चाहिये और हमें उत्तर भारत के लोगों की ध्वनि में अपनी ध्वनि भी मिलानी चाहिये। इसलिये आप जो कुछ चाहते थे उसका 95 प्रतिशत हम निगलने के लिए तैयार हो गये। किन्तु आप यह चाहते हैं कि

हम शेष पांच प्रतिशत को भी निगल जायें क्योंकि आपका तामिल की इस कहावत में विश्वास है कि "आपके खरगोश की तीन ही टांगें हैं।"

मुझे तामिल की एक अन्य कहावत भी स्मरण हो आती है जो इस प्रकार है—यदि कोई व्यक्ति आकर आपसे बरामदे में थोड़ी सी जगह मांगता है और आप उसे जगह दे देते हैं तो फिर वह यह मांग करेगा कि उसे घर में ही घुसने दिया जाये। आज आप सज्जनों में से अधिकांश यही कर रहे हैं।

श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यह बहुत आवश्यक है कि आप दाक्षणात्यों की स्थिति को समझें। मैं आपको बताऊंगा कि मद्रास में जब मैं शिक्षा मंत्री था तो मेरे कार्यकाल के पहले तीन महीनों में जब हाई स्कूलों की पहली तीन कक्षाओं में हिन्दी अनिवार्य विषय के रूप में जारी की गई तो क्या हुआ, ताकि आप यह समझ सकें कि मैं इसके लिये इतना चिंतित क्यों हूं कि मैं यहां से कुछ करा कर जाऊं। तीन महीने तक जब कभी मैं घर से निकलता था तो मुझे इन नारों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनाई देता था, "हिन्दी मुर्दाबाद, तामिल जिन्दाबाद। सुब्बारायन मुर्दाबाद, राजगोपालाचारी मुर्दाबाद।" तीन मास तक यही नारे लगाये जाते रहे। और तो क्या हमें उस दंड-विधि संशोधन अधिनियम को भी प्रयोग में लाना पड़ा जिसके विरुद्ध हमने स्वयं आवाज उठाई थी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): वाह, वाह।

***डॉ. पी. सुब्बारायन:** श्री कृष्णमाचारी वाह, वाह कहते हैं। मुझे स्मरण है कि इस सभा में उन्होंने कैसी आलोचना की थी। यदि उस समय वे पदारूढ़ होते तो वे और भी दूषित हथियारों से काम लेते।

श्रीमान्, संयुक्तप्रान्त के अपने सहकारियों को मैं एक सूचना और दूंगा। कांग्रेस पत्रिका अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती है। यदि आप इन दो भाषाओं के प्रकाशनों की ग्राहक संख्या को देखें तो आपको आश्चर्य होगा। हिन्दी के ग्राहकों की संख्या अंग्रेजी के ग्राहकों की संख्या की 1/40वां भाग है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधीजी के प्रयासों तथा अन्य प्रयासों के होते हुये भी जो लोग हिन्दी भाषा के समर्थक हैं उन्हें भी हमें कांग्रेस पत्रिका के हिन्दी संस्करण को खरीदने के लिये तैयार नहीं कर सके हैं। कांग्रेस के मंत्री मेरे माननीय मित्र कलावेंकट राव मुझ से कहते हैं कि मैं संख्या बताऊं। उन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि मैं किन कारणों से संख्या नहीं बताना चाहता।

मैं चाहता हूं कि सभा एक और संशोधन को भी स्वीकार कर ले। जिसका आशय यह है कि परिशिष्ट में चौदहवीं भाषा अंग्रेजी हो। मेरे विचार से मेरे मित्र श्री एंथनी यह अच्छी प्रकार बता चुके हैं कि उसे किन कारणों से रखना चाहिये। और उन्होंने जो कारण बताये हैं वे ठीक हैं। आंग्ल भारतीय समुदाय की जनसंख्या हमारी जनसंख्या की तुलना में नगण्य भले ही हो किन्तु उस समुदाय के लोग वैसे ही भारतीय हैं जैसे अन्य लोग। यदि हम उन्हें अपना निकट संबंधी समझते

[डॉ. पी. सुब्बारायन]

हैं तो हमें अन्य भाषाओं के साथ उनकी भाषा को भी परिशिष्ट में स्थान देना चाहिये। इसलिये मेरी यह धारणा है कि चौदहवीं भाषा अंग्रेजी भाषा होनी चाहिये।

मेरे मित्र श्री लक्ष्मीकान्त मैत्र भी चाहते हैं कि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये। मैं यह चाहता हूं कि संस्कृत को पन्द्रहवीं भाषा के रूप में रखा जाये। संस्कृत हमारी प्राचीन भाषा है और हमें अपने संविधान में उसका उल्लेख करना ही चाहिये। हम उसका इस स्थान पर उल्लेख कर सकते हैं।

सभी बातों पर विचार करने के पश्चात् मेरी यह धारणा है कि हमारे लिये यही उचित है कि हम रोमन लिपि सहित हिन्दुस्तानी को देश की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें।

*__श्री कुलधर चालिहा__ (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. सुब्बारायन ने इस सभा में जो अत्यंत तर्कपूर्ण भाषण दिया है उसके पश्चात् यदि मैं संस्कृत का समर्थन करने के लिये आगे बढ़ूं तो लोग मेरी बातों को पुरानी धुरानी समझेंगे। मेरी अपनी यह धारणा है कि हमें संस्कृत को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिये। संस्कृत सारे भारत में छाई हुई है। चाहे आप कितना ही प्रयास क्यों न करें आप संस्कृत से छुटकारा नहीं पा सकते। वह हमारी संस्थाओं में व्याप्त है और हमारे जीवन में उसी के दर्शन का संचार है। हमें जो कुछ भी सुन्दर अथवा मूल्यवान वस्तु उपलब्ध है और जिन आदर्शों को हम बहुमूल्य समझते हैं, तथा जिनके लिये संघर्ष करते हैं वे सब हमें संस्कृत साहित्य से ही प्राप्त हुये हैं। आखिर हम श्री कृष्ण, बुद्ध तथा राष्ट्रपिता जैसे महान पुरुषों का अनुसरण क्यों करते हैं? यदि हमें संस्कृत की परम्परा प्राप्त नहीं होती तो हम उनका अनुसरण नहीं करते। सबसे सुन्दर साहित्य, सबसे गहन दर्शन तथा सबसे कठिन विज्ञान संस्कृत भाषा ही में उपलब्ध है। क्या कालीदास की शकुन्तला अथवा मेघदूत से अधिक सुन्दर और भी कुछ हो सकता है? संस्कृत भाषा में जिन वस्तुओं का वर्णन है उनसे भी अच्छी वस्तुएं क्या संसार में कोई और हो सकती हैं अथवा जिस संस्कृति का वर्णन उस भाषा में है क्या उससे भी अच्छी संस्कृति और कोई हो सकती है? जहां तक दर्शन का संबंध है हमें तर्कपूर्ण सांख्यदर्शन प्राप्त है, जिसका स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में प्रचार किया था, जिसका परिणाम यह हुआ था कि वहां के लोग यह समझने लगे कि हमारा धर्म सर्वोत्कृष्ट धर्मों में से एक है। यह सब करने में वे इस कारण समर्थ हुये कि उन्हें संस्कृत का गहन ज्ञान प्राप्त था। अपनी अलौकिक शक्ति के कारण ही वे संसार में अपने विचारों का प्रसार कर सके।

मैं अपनी भावनाओं तथा अपने विचारों को उस प्रकार व्यक्त करने में समर्थ नहीं हूं जैसे मेरे मित्र पंडित लक्ष्मी कांत मैत्र ने व्यक्त किये हैं। मेरा संस्कृत का ज्ञान उतना विस्तृत नहीं है जितना उनका है अन्यथा मैं आपको बताता कि संस्कृत में विज्ञान, संगीत, गृह-निर्माण विद्या, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और शल्य चिकित्सा का भी ऐसा साहित्य है कि उस पर आश्चर्य होता है। हम उससे कई चीजें ले सकते हैं। संस्कृत का ऐसा शब्द-भंडार है कि प्रान्तीय भाषा-भाषियों को किसी शब्द की आवश्यकता होती है तो वे उसे संस्कृत ही से लेते हैं। अच्छी

हिन्दी भी संस्कृत ही है। श्रीमान्, जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त हमारे सभी संस्कार मंत्रों के द्वारा ही होते हैं। हमारे जीवन पर संस्कृत का इतना प्रभाव है कि हम उससे छुटकारा नहीं पा सकते। हो सकता है कि आज कुछ ही लोग संस्कृत समझते हैं किन्तु अंग्रेजी का भी आखिर क्या हाल है? केवल एक प्रतिशत अथवा दो प्रतिशत लोग अंग्रेजी बोलते हैं।

जहां तक माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का संबंध है, मैं उसे स्वीकार करता हूं क्योंकि उसमें मध्यम मार्ग का अनुसरण किया गया है। वह भारत के लिये हितकर सिद्ध होता और वह इस कारण नहीं कि हिन्दी अन्य भाषाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट भाषा है। वास्तव में जब मैंने मौलाना साहब जैसे लोगों को हिन्दुस्तानी बोलते हुये सुना तो मैं उस भाषा की गम्भीरता, सुन्दर शैली, लचीलेपन तथा माधुर्य से प्रभावित हुआ और मैंने यह विचार किया कि हिन्दी की अपेक्षा हिन्दुस्तानी ही अच्छी है। आप मुझसे इसका कारण न पूछियेगा क्योंकि मैं आपको नहीं बता सकूंगा। मैं उस भाषा को पढ़ना अथवा लिखना नहीं जानता। किन्तु हिन्दुस्तानी भाषा की गम्भीरता कुछ ऐसी है कि जब मैंने उस भाषा को सुना तो मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ। मैंने कई वक्ताओं को हिन्दी में तथा हिन्दुस्तानी में बोलते हुये सुना है। मैं हिन्दुस्तानी भाषा की गम्भीरता, उसकी सुन्दर अभिव्यंजना तथा उसके लचीलेपन से प्रभावित हुआ और मैंने यह विचार किया कि वह बहुत चित्ताकर्षक भाषा है।

संस्कृत के प्रश्न को फिर उठाते हुये मैं निवेदन करना चाहता हूं कि वह हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओं की जननी है। हम संस्कृत भाषा को अपने से उत्कृष्ट भारतवासी हो सकेंगे क्योंकि संस्कृत सारे भारत में व्याप्त है। यदि हम हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को भी अपनायें, तब भी हम संस्कृत से छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि उसी भाषा में हमारा दर्शन तथा संसार के सभी सुन्दर पदार्थ वर्णित हैं।

जहां तक अंकों का संबंध है यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को अपना लेंगे तो आसमान नहीं गिर जायेगा। जब हम उन्हें डेढ सौ वर्ष तक प्रयोग में लाते रहे हैं तो हम उन्हें अब भी काम में ला सकते हैं। इससे हमारी कोई हानि नहीं होगी। अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को नहीं अपनाने के संबंध में जो कोई तर्क उपस्थित किये गये हैं वह मेरी समझ में नहीं आया क्योंकि आखिर है तो वे हमारे ही अंक। यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को नहीं अपनायेंगे तो हम संसार की बदलती हुई स्थिति के अनुरूप अपना रहन-सहन नहीं रख सकेंगे। हमें चाहिये कि हम अपने दृष्टिकोण को कुछ अधिक आधुनिक तथा प्रगतिशील बनायें। इन शब्दों के साथ मैं समाप्त करता हूं।

***रेवरेंड जिरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं इस सभा का कुछ समय लेना चाहता हूं यद्यपि मैं इसे स्वीकार करता हूं कि मैं जिन बातों को आपके सामने रखना चाहता हूं उन्हें विभिन्न प्रतिष्ठित वक्ता कह चुके हैं। इस पर भी यदि मैं सभा के कुछ मिनट लेना चाहता हूं तो वह केवल इस

[रेवरेंड जिरोम डीसूजा]

कारण कि इस सभा के कई सदस्यों के समान मेरी भी यही धारणा है कि हम इस समय जिस विषय पर विचार कर रहे हैं वह अत्यन्त गंभीर तथा महत्वपूर्ण है।

श्रीमान्, पिछले दो वर्षों में कई बार हमारे सामने विवादग्रस्त प्रश्न आये हैं और उनके संबंध में उत्तेजना भी उत्पन्न हुई है। ऐसे अवसरों पर हममें से वे लोग, जो हमारे वीर योद्धाओं के समान राजनैतिक संघर्ष में जूझते नहीं रहे हैं किन्तु बहुत कुछ निर्लिप्त होकर उसे देख रहे हैं, यह विचार करते थे कि क्या बहस समाप्त होने के पूर्व कोई ऐसा भी समय आयेगा जब हमारी परम्परागत समझौते की भावना प्रभावी होगी और हम एक ऐसा हल निकाल सकेंगे जो सभी को मान्य होगा। वह समझौते की भावना अवश्य प्रभावी हुई और हम एक ऐसा हल निकाल सके जो सभी को मान्य हुआ, जिसे देखकर बहस में दिलचस्पी रखने वालों को तथा इस देश के मित्रों को अत्यंत संतोष हुआ और इस देश से प्रेम न रखने वालों को—क्योंकि मैं उन्हें शत्रु नहीं कहता हूं—अत्यन्त क्रोध हुआ।

हममें से जो लोग यह चाहते थे कि यह प्रश्न भी उसी समझौते की भावना से हल हो, यह देखकर खेद हुआ कि इस प्रश्न के संबंध में कटुता अथवा उत्तेजना उत्पन्न हो गई है, यद्यपि पहले अन्य किसी प्रश्न के संबंध में ऐसा नहीं हुआ था। मैं यह आलोचना की दृष्टि से नहीं कह रहा हूं क्योंकि ऐसा होना अवश्यम्भावी ही था। इसका कारण यह है कि धार्मिक विश्वास के अतिरिक्त मनुष्य के कार्यों में कोई भी ऐसी बात नहीं है जो मनुष्य के जीवन से तथा उसके कार्य-स्रोत से इतना निकट संबंध रखती है जितना कि भाषा, और वास्तव में तो कुछ दशाओं में तो वह मनुष्य जीवन को तथा उसके कार्यों को धार्मिक भावना से भी अधिक प्रभावित करती है।

आखिर यदि हम इस प्रश्न पर विचार करें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि भाषा और वाणी की दैवी शक्ति के अतिरिक्त मनुष्य के पास और कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके कारण वह सृष्टि में अन्य पदार्थों तथा प्राणियों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ कह सके। जब कोई शब्द सुन्दर हो और सच्चाई के साथ बोला गया हो तो उसमें वक्ता की आत्मा तथा उसका अन्तःकरण प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये मनुष्य जीवन की तथा मनुष्य हृदय की, सुन्दर शब्दों से अधिक सुन्दर और कोई देन नहीं है। साथ ही झूठे हृदय से निकले हुये कठोर शब्दों से अधिक घृणित भी कोई चीज नहीं है। जब शब्द अन्तरतम आत्मा से निकलते हैं और उसकी सच्चाई प्रकट करते है तो उनको प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने साथियों पर ऐसा प्रभाव रखता है जो संसार में अद्वितीय होता है।

आखिर महात्मा गांधी जैसा अद्वितीय पुरुष सबके हृदय का सम्राट किस प्रकार हुआ? वह अपनी सच्ची, शुद्ध, प्रकम्पित अद्वितीय वाणी के प्रभाव से ही इस पद को प्राप्त हुआ। जब कभी हम यह देखते हैं कि हमें किसी ऐसी भाषा को नहीं प्रयोग करने दिया जा रहा है जिसे हम समझते हैं कि यह हमारी अपनी भाषा है और इसके द्वारा हम अपनी भावनाओं को सच्चाई से व्यक्त कर सकते हैं तो हम बहुत उत्तेजित हो जाते हैं। यही कारण है कि वे लोग उत्तेजित हैं जो एक विशेष प्रकार की हिन्दी चाहते हैं। यह ही कारण है कि वे लोग उत्तेजित

हैं जो मेरे समान चाहते हैं कि भारतीय संस्कृति की सभी धाराओं का, चाहे वह मुस्लिम भारत की धारा को, अथवा ईसाई भारत की धारा हो, अथवा चाहे वे भारत के विभिन्न भागों की धारायें हों, उस भाषा में संगम हो और वह भाषा राज-भाषा के रूप में और अन्ततोगत्वा भारत की राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार की जाये।

श्रीमान्, मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के लिये जो महत्व भौतिक जलवायु का है वही महत्व उसके मानसिक स्वास्थ्य के लिये भाषा की आत्मा तथा शब्दावली का है। शब्द रूपी जलवायु में ही लोगों की आत्मा तथा संस्कृति सजीव रहती है। यदि किसी वर्ग को यह बौद्धिक जलवायु स्वीकार्य न हो, यदि हमारे बहुरूपी तथा असाधारण राष्ट्र के विभिन्न वर्गों को एक विस्तृत शब्दावली के अर्थ ध्वनि, विचारों तथा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा से संतोष नहीं होता है, क्योंकि उस शब्दावली में विभिन्न संस्कृतियों की अभिव्यंजना होनी चाहिये, तो इस कारण बहुत ही अशांति फैल जायेगी। मेरा निवेदन है कि यदि हमें राष्ट्र-भाषा के विभिन्न शब्दों, उसकी ध्वनि, प्राण तथा आत्मा में अभिव्यक्त होने वाले सांस्कृतिक जलवायु से संतोष नहीं होगा तो हमें ऐसा ज्ञात होगा कि यह देश हमारा नहीं है और यदि भौतिक रूप से नहीं तो बौद्धिक रूप से हमारा देश-निकाला गया है और हम यहां विदेशी हैं। हमारा जो तर्क है उसका यही अर्थ है। इसी कारण हम इस पर बहुत जोर देते हैं कि इस भाषा की शब्दावली उदारता से बनाई जाये।

मुझे इसकी प्रसन्नता है कि हमारे मित्रों ने इस तर्क को स्वीकार कर लिया है। इस आधारभूत प्रश्न के संबंध में हिन्दी के समर्थकों ने हमें आश्वासन दिया है कि वे इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और वास्तव में श्री गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्तावों में यह निर्धारित कर दिया गया है कि हिन्दी में हिन्दुस्तानी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रूप तथा उनकी शैली और पदावली सम्मिलित रहेगी। इससे हमें यह आश्वासन मिल जाता है कि आगे चल कर जैसे जैसे यह भाषा विकसित होगी इसके द्वारा इस राष्ट्र के विभिन्न तत्वों को सुन्दर बौद्धिक तथा सांस्कृतिक वातावरण प्राप्त हो सकेगा। मुझे इस संबंध में सच्चे हृदय से संतोष है कि साधारणतया हमने भाषा के संबंध में तथा उसके स्वरूप और आत्मीयता के संबंध में और वह जिस लिपि में लिखी जायेगी उसके संबंध में भी समझौता कर लिया है।

जब हम इतनी दूर पहुंच गये हैं तो क्या एक छोटी बात के लिये हम अपनी एकता की भावना को भंग कर देंगे? क्या हमारे मित्र फिर यही कहेंगे कि हमारे इतिहास में यह घटना भी घटित हो सकती थी, किन्तु घटित नहीं हुई? हमारे कुछ ही वर्षों के आधुनिक इतिहास में पिछले दस अथवा पन्द्रह वर्षों के घटना चक्र में एक अवस्था ऐसी भी आई जब अधिकांश लोगों ने यह कहा कि देश का विभाजन आवश्यक है। किन्तु चूंकि अब कुछ समय बीत गया है इसलिये एक ऐतिहासिक के समान निर्लिप्त होकर यह कहा जा सकता है कि यदि अमुक अमुक समय पर हम कोई दूसरा कदम उठाते, अथवा कोई दल अथवा अमुक अमुक व्यक्ति थोड़ी सी भिन्न कार्यवाही किये होता, तो हमारे इतिहास का घटनाक्रम बिल्कुल भिन्न होता।

[रेवरेंड जिरोम डीसूज़ा]

किन्तु जब हम घटनाओं के निकट होते हैं, अथवा यों कहिये कि उनमें खोये हुये रहते हैं, तो यह कठिन है कि हम निर्लिप्त तथा दूरस्थ होकर निर्णय करें और इस पर विचार कर सकें कि किसी कार्य का, अथवा कदम का, अथवा निर्णय का, क्या क्या प्रभाव होगा। कोई कार्य साधारण प्रतीत हो सकता है, किन्तु उसके गर्भ में ऐसे तत्व छिपे रह सकते हैं जिनका आगे चलकर विस्फोट हो अथवा जिनका कोई ऐसा विकास हो जिसकी पहले से कल्पना नहीं की जा सकती थी। श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि यहां इस सभा में, चाहे कोई व्यक्ति किसी वर्ग का क्यों न हो किन्तु वह जो कुछ कहता है, और जिस प्रकार के कार्य करता है और इन बहसों में जिस पक्ष का भी समर्थन करता है, उसका अन्त में क्या प्रभाव होगा हम नहीं कह सकते। यह समय ही बता सकता है।

यद्यपि मुझे इसकी प्रसन्नता है कि इस प्रश्न की आधारभूत बातों के संबंध में समझौता हो गया है किन्तु जो बातें रह गई हैं उनके संबंध में मैं प्रार्थना करता हूं कि कदम उठाने में तथा निर्णय करने में ईश्वर हमारा पथ-प्रदर्शन करे जिससे हम इस प्रश्न को इस प्रकार हल करें कि बहुत मूल्य चुका कर तथा अनेक बलिदान करके हमने जो एकता प्राप्त की है वह अखण्ड बनी रहे। इसलिये मेरी यह आशा है, और मैं यह प्रार्थना करता हूं, कि जिन साधारण बातों के संबंध में हमारा अब भी मतभेद है, उससे भाषा-संबंधी भावनाएं उमड़ कर हमारी एकता खंडित न हो। मैं इसे कट्टरपंथी नहीं कहता क्योंकि अज्ञान से ही, न कि कट्टर-पंथी से, अर्थात् जो निर्णय हम करने जा रहे हैं उसका क्या प्रभाव होगा इसका ध्यान न होने के कारण ही ये भावनायें उमड़ती हैं और उत्तेजना फैलती है।

किन्तु मैं इसके लिए अनुरोध करता हूं कि श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उसे स्वीकार कर लिया जाये, और वह इस कारण नहीं कि उसमें सभी कुछ स्वीकार करने योग्य है, बल्कि इसलिये कि उसमें वे सभी बातें सन्निहित हैं जिनके बारे में समझौता हो सकता है। मैं डॉ. सुब्बारायन के इस कथन से सहमत हूं कि यद्यपि यह कहा गया है और इसके संबंध में समझौता भी हो गया है कि पांच वर्ष के अनन्तर इस प्रश्न को फिर उठाया जायेगा किन्तु यह संतोषजनक व्यवस्था नहीं है। जिस आयोग की कल्पना की गई है उसे हम पांच वर्ष के अनन्तर यह नहीं समझा सकेंगे कि अब महत्वपूर्ण परिवर्तनों का समय आ गया है। मुझे आशा है कि इस संबंध में भी कोई ऐसा संतोषजनक सूत्र रखा जा सकेगा जो सभी को मान्य होगा।

घटना चक्र से सभी को विश्वास हो जायेगा कि कई वर्गों के लोग इस काल में इस भाषा पर इतना अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते जितना अधिकार राज-भाषा पर आवश्यक है विशेषतया जब इस भाषा को न केवल राज-भाषा बल्कि राष्ट्र-भाषा भी होना है। जिन लोगों का यह विचार है कि हम बहुत ढीली-ढाली तौर पर हिन्दी का समर्थन कर रहें हैं, उन्हें मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि हम हिन्दी को न केवल राज-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं बल्कि यह भी

चाहते हैं कि उसका विकास हो और वह हमारी सभी देशवासियों की दिल की रानी होकर राज-भाषा के पद से राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो। यही नहीं, बल्कि जैसाकि आज प्रातः श्री घुलेकर कह चुके हैं, हम सच्चे हृदय से यह भी चाहते हैं कि वह एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी हो जाये। हमारी यह इच्छा है। किन्तु यदि उसे एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होना है तो उसकी अन्तर्राष्ट्रीय आत्मीयता को सुरक्षित रखना चाहिये। यदि हम शब्दों का, विचारों का, विचारधाराओं का तथा पदावलियों का बहिष्कार करते हैं और उनके ऐतिहासिक संबंधों की उपेक्षा करते हैं तो हमारी भाषा में वह अन्तर्राष्ट्रीय आत्मीयता नहीं रह जायेगी जो उसका प्रसार हमारे देश के बाहर अन्यत्र करेगी और उसे विदेशियों की एक प्रिय भाषा बना देगी।

शिष्ट लोग अपनी पसंद से विदेशी भाषाओं को चुनते हैं और उन्हें सीखते हैं। फ्रांसीसियों को अपनी भाषा पर गर्व हैं। फ्रेंच भाषा में एक बहुत सुन्दर कथन है जिसका आशय यह है कि सभी लोग दो भाषायें बोलते हैं—एक अपनी भाषा और दूसरी माधुर्यपूर्ण फ्रेंच भाषा। मैं कह नहीं सकता कि यह वाक्य राष्ट्रीय प्रेम के वश होकर कहा गया है अथवा नहीं किन्तु इससे यह अवश्य प्रकट होता है कि उन्हें अपनी भाषा पर गर्व है—एक दिन वह भी आ सकता है जब सारा सभ्य संसार यह कहने लगे कि सभी लोग दो भाषायें बोलते हैं—एक अपनी भाषा और दूसरी माधुर्यपूर्ण भारतीय भाषा। यदि हमें अपनी भाषा को इस पद पर प्रतिष्ठित करना है तो उसमें लोगों के हृदयों को मोहने तथा उन पर अधिकार करने की शक्ति होनी चाहिये। हमारे देश के कई भागों में जिस प्रकार हमारी भाषा कई युगों, संस्कृतियों, जातियों तथा शासन-कालों की परम्परा को लेकर विकसित हुई है उसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीयता की छाप हमारी राष्ट्र-भाषा में होनी चाहिये।

इस सार्वभौमत्व की भावना को ध्यान में रखते हुये मैं अपने उन मित्रों से, जो अंकों के प्रश्न को लेकर अब भी अड़े हुये हैं, अनुरोध करता हूं कि समझौते से जो सूत्र तैयार किया गया है, उसे वे स्वीकार कर लें और प्रश्न के गुण दोषों पर विचार न करें। मेरा अपना यह विश्वास है कि यदि हम गुण दोषों पर भी विचार करें तो अन्तर्राष्ट्रीय अंक अन्य अंकों से बहुत अच्छे हैं। एक अध्यापक होने के नाते, और विज्ञान तथा साहित्य का एक विद्यार्थी होने के नाते, जिसे इस पर गर्व है कि संसार की संस्कृति को हमने शून्य की कल्पना तथा तत्सम्बद्ध अंकों को प्रदान किया है, मैं यह कह सकता हूं कि गुण दोषों की दृष्टि से भी उचित यही है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करें। यदि इस दृष्टि से उन्हें स्वीकार न भी किया जा सकता तब भी मैं यह कहता कि ये अंक अब हममें से बहुत से लोगों के लिये प्रतीक के समान हो गये हैं। ये हमारे देश के विभिन्न तत्वों के समायोजन के प्रतीक हैं और साथ ही सार्वभौमत्व की भावना के भी प्रतीक हैं। इसलिये हम यह चाहते हैं कि ये हमें प्रदान किये जायें। वास्तव में यह किसी प्रकार की रियायत नहीं होगी। किन्तु एक प्रकार का समझौता होगा और उन लोगों की ओर से सार्वभौमत्व की भावना की पुष्टि होगी, जिन्होंने अभी तक इसका प्रमाण नहीं दिया है कि वे उसे स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं।

हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि इस भारतीय भाषा को न केवल हमारे पैंतीस करोड़ भाई बहिनों को सीखना है किन्तु उन अनेक विदेशियों को भी सीखना है

[रेवरेंड जिरोम डीसूज़ा]

जो हमारी संस्कृति का अध्ययन करने, हमारे वाणिज्य में भाग लेने तथा वैदेशिक राजनयिक प्रतिनिधत्व के संबंध में इस देश में आते हैं। यह बात नहीं है कि केवल भारतीयों को ही इस भाषा को इस कारण सीखना है कि इसकी ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, विदेशियों को भी इस विदेशी भाषा को सीखना है। हम पन्द्रह वर्ष की मांग इस कारण भी करते हैं कि भारत के वाणिज्यिक हित इस प्रश्न से सम्बद्ध है। जिन बाहर के देशों को इस भारतीय भाषा के ज्ञान की अपेक्षा है उन्हें इसके अध्ययन के लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त भारत के हितों की दृष्टि से ही नहीं बल्कि संसार के कल्याण की दृष्टि से भी इस सार्वभौमत्व की भावना की आवश्यकता है।

हम संसार को भारत का संदेश, उसके अध्यात्म, प्रेम तथा अहिंसा का सन्देश सुनाना चाहते हैं, जिसका प्रचार महात्मा गांधी करते रहे। हम अन्य लोगों को बताना चाहते हैं कि हमें अतीत से साहित्य तथा कला के कौन से भंडार प्राप्त हुये हैं। जब तक हम अपने द्वार खुले न रखेंगे और जब तक हम उन लोगों को सुविधा प्रदान नहीं करेंगे तो जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा के भागी होना चाहते हैं और जब तक हम उनके आने जाने के लिए मार्ग सुगम नहीं कर देंगे जिससे वे इस देश को परदेश न समझें, तब तक हमें अपने उद्देश्य की पूर्ति में कठिनाई होगी।

मेरा यह निवेदन है कि इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने से हम इन्हें भारत की भावना का प्रतीक बना देंगे और यह प्रदर्शित कर देंगे कि भारत संकुचित राष्ट्रीयता का समर्थक नहीं है, किन्तु महात्मा गांधी तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर और अपने महान प्रधानमंत्री के सिद्धान्तों का अनुयायी है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का समर्थक है। इस दृष्टि से हमें ऐसी कोई बात स्वीकार नहीं करनी चाहिये जिससे सर्वत्र सद्भावना जाग्रत होने में तथा अपनी भाषा पर हमारा अधिकार होने में बाधा पड़े।

इसलिये इन बातों को ध्यान में रखते हुये मैं सच्चे हृदय से अपील करता हूं कि इन मतभेदों को, जिनके कारण इस देश के प्रेमियों को बहुत दुःख हुआ है, अब मिटा दिया जाये और एक महान राजनैतिक दल ने जिस शक्ति, संगठन तथा एकता से स्वतंत्रता प्राप्त की है उसे हमारी इस महान सभा के विचार-विमर्श के अवसान-काल में विनष्ट तथा क्षीण न किया जाये। उससे हमसे जो द्वेष रखते हैं उन्हें तो अवश्य संतोष होगा किन्तु हमसे जो प्रेम करते हैं उन्हें अत्यन्त दुःख होगा। इसलिये श्रीमान्, मैं आपके द्वारा सच्चे हृदय से अपील करता हूं कि हम अपने मतभेदों को समाप्त करें और इस भाषा के प्रश्न के संबंध में ऐसा निर्णय करें जो सभी को स्वेच्छा से मान्य हो और इस बहस के समाप्त होने पर हम इस सभा से दलों में विभाजित होकर न जायें किन्तु भाइयों तथा एक ही माता अर्थात् भारत माता, की सन्तानों के समान जायें। *(उमुल हर्ष ध्वनि)*।

*__श्री बी.एम. गुप्ते__ (बंबई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने संशोधन संख्या 281 की सूचना दी है। इस संशोधन के द्वारा मध्यम मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है। माननीय फादर डिसौजा ने अभी समझौते के लिये बहुत

सबल तर्क उपस्थित किया किन्तु उन्होंने कोई सूत्र प्रस्तुत नहीं किया। मैंने अपने संशोधन द्वारा इसका प्रयास किया है। मैं यह अवश्य जानता हूं कि जो लोग समझौता कराने का प्रयास करते हैं उनकी क्या गति होती है। वे प्राय: दोनों पक्षों को प्रसन्न न करके उन्हें रुष्ट कर देते हैं। किन्तु एकता तथा सामंजस्य बनाये रखने के उद्देश्य से मैंने यह खतरा उठाया है।

मेरे विचार से संशोधन संख्या 65 में, अर्थात् मुंशी आयंगर सूत्र में, दोनों विचार धाराओं के मध्य का मार्ग बड़े सुन्दर ढंग से अपनाया गया है। उसमें तराजू के पलड़े बराबर रखे गये हैं। यह स्वीकार किया गया है कि इस भाषा का नाम हिन्दी होगा किन्तु एक निदेशक खण्ड रखकर हिन्दुस्तानी के समर्थकों को सान्तवना भी दी गई हैं उस खण्ड में भी संस्कृत-निष्ठ हिन्दी के समर्थकों को भी प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है क्योंकि उसमें यह निर्धारित है कि मुख्यत: संस्कृत से ही शब्द लिये जायेंगे। साथ ही अन्य विचारधाराओं के लोगों को भी यह उपबन्ध रखकर प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है कि अन्य भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार नहीं किया जायेगा। यह बहुत ही प्रशंसनीय समझौता है और इस संबंध में जो उपबंध है वह बहुत संतुलित भी है। यदि एक अपवाद न होता तो मैं इसे नट की एक बहुत सुन्दर कला कहता। अपवाद यह है कि अंकों के संबंध में संतुलन बिगड़ गया है। और मैंने अपने संशोधन द्वारा उसे ठीक करने का प्रयास किया है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि अन्य सभी बातों के संबंध में एकमत होते हुये भी इस छोटी सी बात पर इतना अधिक मतभेद है।

यदि हम इन दो मसौदों को मिलायें तो हम देखेंगे कि इस विषय के संबंध में भी बहुत अधिक एकरूपता है। दोनों में यह उल्लिखित है कि वही अंक पन्द्रह वर्ष तक प्रयोग में रहेंगे। दोनों में यह उल्लिखित है कि पांच पांच वर्ष के अनन्तर, जब भाषा-आयोग और संसदीय समिति स्थिति का सिंहावलोकन करेंगी तो, उस समय उन्हें इसकी पूरी शक्ति प्राप्त रहेगी कि वे अंकों के प्रश्न के संबंध में निर्णय करें। इस प्रकार यह उपबंध दोनों मसौदों में समान रूप से है। अन्तर केवल यह है कि मुंशी आयंकर मसौदे में राजकीय प्रयोजनों के लिये काम में आने वाले अंकों के संबंध में केवल अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का ही उल्लेख है। इससे हमारे हिन्दी भाषी मित्र दुखित हैं। उनका विचार है कि यद्यपि उनकी भाषा को सम्मानित किया गया है किन्तु उसके अंकों को उससे निकाल कर अलग फेंक दिया गया है और एकाएक विदेशी अंकों को उन पर थोप दिया गया है। हमें उनके प्रति सहानुभूति होनी चाहिये।

मैं कह नहीं सकता कि उन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई या नहीं हुई, क्योंकि कुछ लोग कहते हैं कि उनकी उत्पत्ति भारत में नहीं हुई और वास्तव में मैं इस विवाद में भी नहीं पड़ना चाहता किन्तु इसे स्वीकार करना होगा कि उनका आकार इस समय विदेशी है, कम से कम हिन्दी भाषा के लिये वह विदेशी ही है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस संबंध में हमें अपने हिन्दी भाषी मित्रों की भावनाओं का आदर करना चाहिये। इन अंकों को एकाएक थोपने से कोई लाभ नहीं होगा। हिन्दी भाषा को उन्हें धीरे-धीरे तथा शांतिपूर्वक अंगीकार करने देना चाहिये। इसलिये अपने संशोधन में मैंने यह प्रस्ताव रखा है कि पहले खंड में इन दोनों अंकों का उल्लेख होना चाहिये। हिन्दी के समर्थकों की विचार-

[श्री बी.एम. गुप्ते]

धारा के लोगों के लिये मैं यह रियायत करना चाहता हूं। इसलिये मैं दक्षिण भारत के अपने मित्रों से अपील करता हूं कि यदि आपका यह मत है ही कि हिन्दी के अंक राजकीय प्रयोजनों के लिये पन्द्रह वर्ष तक की लम्बी अवधि तक प्रयोग में रहें तो इसका उल्लेख खण्ड में क्यों नहीं कर दिया जाता? आप इस संबंध में इतना सोच-विचार क्यों कर रहे हैं?

किन्तु साथ ही हमारे मित्र श्री आयंगर इस पर जोर देते हैं, और ठीक ही जोर देते हैं, कि हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि अन्त में स्थायी रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अंक ही प्रयोग में रहेंगे। इस विचार-धारा से मैं सहमत हूं और इसलिये मैंने यह उपबन्ध रखा है कि भाषा-आयोग तथा संसदीय समिति के इस प्रश्न के संबंध में निर्णय करने के अधिकार के अधीन रहते हुए केवल अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का ही प्रयोग किया जायेगा।

मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से अपील करता हूं कि वे इस बात को स्वीकार कर लें। उन्हें कई कारणों से इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि भाषा का प्रश्न 95 प्रतिशत इस प्रकार हल हुआ है कि उससे उनको संतोष है। मेरी समझ में नहीं आता कि पांच प्रतिशत के संबंध में एकता तथा सद्भावना के हित में वे कुछ उदारता का परिचय क्यों नहीं देते। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है और यह सभी को विदित है कि समुन्नति तथा उपयोगिता की दृष्टि से जहां तक हो सके अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को ही काम में लाना चाहिये, विशेषतया इसलिये कि उनकी उत्पत्ति भारत में हुई है किन्तु मैं उस पर जोर नहीं दूंगा। मैं इस पर जोर देता हूं कि जब आपकी मांग 95 प्रतिशत पूरी हो गई है तो आप केवल पांच प्रतिशत के लिये यह कलह, कटुता तथा दुर्भाव क्यों उत्पन्न करते हैं?

इसलिये मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से प्रार्थना करता हूं कि इस पांच प्रतिशत के लिये जो हल निकाला गया है उसे वे स्वीकार कर लें। जब हम समझौते से तथा सद्भाव से बड़े-बड़े प्रश्नों को हल कर चुके हैं तो उनकी तुलना में यह एक छोटा सा मामला है। यदि हम बहुमत के आधार पर इसके संबंध में निर्णय करें तो उससे लोगों के हृदय में कटुता रह ही जायेगी।

हम इस समय जो कुछ कार्य करेंगे उससे हमारा नवीन संविधान पारित होने के पूर्व ही संकट में पड़ सकता है। जो भी दल पराजित होगा वह संविधान के संशोधन के लिये आन्दोलन चला सकता है और दूसरा दल भी हिंसापूर्ण प्रतिक्रिया का प्रदर्शन कर सकता है। इस प्रकार बहुत काल तक विवाद चलता रहेगा। इसलिये मैं इस आदरणीय सभा से यह अपील करता हूं कि हम कोई ऐसा अकार्य न करें जिससे इतिहास तथा आने वाली पीढ़ियां यह कहें कि हम एकता स्थापित करने के उद्देश्य से एक भाषा की खोज में निकले किन्तु अंकों ने हममें फूट डाल दी। मैं इसका बहुत इच्छुक नहीं हूं कि मेरा सूत्र ही स्वीकार किया जाये किन्तु इसके लिये अवश्य इच्छुक हूं कि समझौता हो जाये। मैं केवल यह चाहता हूं कि इस विषय के संबंध में इस सभा में मतभेद न हो, विशेषतया जबकि उसके सारवान अंश के संबंध में समझौता है।

इन शब्दों के साथ मैं इस प्रश्न को छोड़कर एक अन्य प्रश्न के संबंध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं, जिसका इससे कहीं अधिक महत्व है और जिसके संबंध में बहुत काल तक दिलचस्पी रह सकती है। वह प्रश्न यह है कि इस भाषा का भविष्य में किस प्रकार का विकास हो। कार्यावली में कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनका उद्देश्य यह है कि संस्कृत निष्ठ हिन्दी राज-भाषा हो। इन संशोधनों के अतिरिक्त कुछ प्रभावपूर्ण क्षेत्रों में हिन्दी को संस्कृत निष्ठ बनाने की प्रवृत्ति दिखाई जा रही है। इस प्रवृत्ति के कारण इस भाषा को राज-भाषा के रूप में स्वीकार करने में कठिनाई हो रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विचार धारा के लोग संस्कृत से शब्द लेने के संबंध में जो उपबन्ध रखा गया है मुख्यत: उसी से लाभ उठायेंगे। इस उपबन्ध पर मैं कोई आपत्ति नहीं करता हूं किन्तु मैं यह चाहता हूं कि कोई भी व्यक्ति उससे अनुचित लाभ न उठाये। यह एक समझौता है और इसे समझौता समझ कर ही व्यवहार में लाना चाहिये। मैं संस्कृत का विरोधी नहीं हूं। हममें से अधिकांश उसका विरोध कर ही नहीं सकते क्योंकि वह भाषा हमारे रक्त में प्रविष्ट है। वह हमारी मातृ-भाषाओं की स्रोत है और हमारी संस्कृति का भंडार है। केवल इतनी ही बात नहीं है कि मैं संस्कृत का विरोधी नहीं हूं मैं संस्कृत साहित्य की प्रशंसा करता हूं। संसार का महानतम दर्शन, गहनतम विचार तथा सुन्दरतम कवित्व संस्कृत भाषा में ही है।

इस महानता के होते हुये भी, तथा इस महानता से मोहित होने पर भी, मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि संस्कृत जनसाधारण की भाषा हो सकती है और मैं यह भी स्वीकार नहीं कर सकता कि संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी जनसाधारण की भाषा हो सकती है। इस लोकतंत्र तथा वयस्क मताधिकार के युग में जब हम इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने बैठें तो हमें सबसे पहले जनसाधारण की ओर ही ध्यान देना चाहिये। हमें जनसाधारण की भाषा बोलने में समर्थ होना चाहिये। अन्यथा जहां तक कांग्रेसजनों का सम्बन्ध है, क्योंकि यहां हममें से अधिकांश कांग्रेस-जन ही हैं, हम उसी पीढ़ी को ठुकरायेंगे जिससे हम ऊपर चढ़े हैं। चूंकि जन-साधारण ने हमारे महान संगठन, अर्थात् भारतीय कांग्रेस के साथ सहयोग किया इसी कारण आज हम यहां हैं। जनसाधारण के सहयोग से ही उस संगठन को सारे भारत पर शासन करने की शक्ति प्राप्त हो गई। इसलिये मेरा निवेदन है कि हम कृत्रिम संस्कृतनिष्ठ हिन्दी द्वारा अपने और जन साधारण के बीच एक कृत्रिम दीवार न खड़ी करें। हम भविष्य में अपनी भाषा का विकास इस प्रकार करें कि उसे जनसाधारण आसानी से समझ सके। मैं अपने हिन्दी-भाषी मित्रों से अपील करता हूं कि वे अपने लक्ष्य को नीचा न करें। वे हिन्दी को राज-भाषा के पद पर ही प्रतिष्ठित करके संतोष न कर लें किन्तु उसे सारे राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा भी बनायें। मैं यह स्वीकार करता हूं कि साहित्यिक हिन्दी में संस्कृत का प्राधान्य रहे। जनसाधारण की भाषा में भी संस्कृत का एक स्थान है। किन्तु हम जल्दी बाजी न करें। जल्दी में हम उसका कोई स्वरूप निश्चित न करें। उसका स्वाभाविक विकास होने दीजिये। मुझे आशा है कि शीघ्र ही वह दिन भी आयेगा जब हिन्दी

[श्री बी.एम. गुप्ते]

न केवल राज-भाषा के पद पर बल्कि राष्ट्र-भाषा के पद पर भी प्रतिष्ठित होगी जिसे इस महान देश में सर्वत्र हर कोई आसानी से बोल सकेगा और आसानी से समझ सकेगा।

इन शब्दों के साथ श्रीमान्, मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्ष:** माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** अध्यक्ष महोदय, इस प्रश्न के संबंध में इस सभा में तथा अन्यत्र बहुत वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्क हुआ है। इस पर जो समय लगा है अथवा इससे जो भावनायें जाग्रत हुई हैं उनके कारण मुझे स्वयं कोई खेद नहीं है। सम्भव है कभी मुझे ये भावनायें प्रिय न लगती हों, किन्तु आखिर हमारे सामने जो प्रश्न है वह बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है और यह ठीक ही है कि सजीव लोग उसके संबंध में सजीव ढंग से विचार करें।

हमने विद्वतापूर्ण भाषण सुने हैं और ऐसे भाषण भी सुने हैं जो संभवत: भावनापूर्ण ही थे। मैं कह नहीं सकता कि मैं अपने को किस श्रेणी में रखूं *(हास्य)*। मेरे लिये न तो पहली श्रेणी उपयुक्त है न दूसरी। इसलिये सम्भवत: मुझे आपको किसी तीसरी श्रेणी में रखना होगा। इस प्रश्न में मेरी कई दृष्टिकोणों से बहुत दिलचस्पी है। इस सभा में तथा अन्यत्र जो तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें मैं सुनता रहा हूं और मुझे इसका खेद है कि कभी इस संबंध में मैं स्वयं उत्तेजित हो उठा हूं। मैंने इन सैकड़ों संशोधनों को भी पढ़ा है किन्तु मेरी यह धारणा रही है कि यह विषय जहां तहां शाब्दिक संशोधन करने का नहीं है। यह उससे कहीं गहन विषय है।

मेरे मित्र तथा सहकारी श्री गोपालस्वामी आयंगर ने सभा के सामने जो संशोधन रखा है उसका समर्थन करने के लिये मैं उठा हूं (हर्ष ध्वनि)। मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूं, वह इस कारण नहीं कि मैं यह समझता हूं कि वह हर प्रकार समुपयुक्त है, क्योंकि यदि मुझे पूरी स्वतंत्रता दी जाये तो मैं उसमें जहां तहां परिवर्तन करना चाहूंगा। किन्तु मैं यह जानता हूं कि बराबर कोशिश करने पर तथा विचार-विमर्श करने पर हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं और उसके फलस्वरूप एक सुसम्बद्ध चीज पैदा हुई है। किसी ऐसी सुसम्बद्ध चीज में परिवर्तन करना, जिसमें एक ही विचारधारा सन्निहित हो एक कठिन कार्य हैं आप जहां तहां परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु मेरे विचार से इससे न तो मूल संशोधन का उद्देश्य पूरा हो सकेगा और न परिवर्तन करने वाले का ही। यदि पहले संशोधन को पसंद नहीं किया जाता है और उसे स्वीकार नहीं किया जाता है तो अच्छा यह होगा कि कोई अन्य सम्बद्ध संशोधन उपस्थित किया जाये। यदि मुझे मौका दिया जाता तो मैं सम्भवत: उस संशोधन के कुछ अंगों पर जितना जोर दिया गया है उससे अधिक जोर देता किन्तु जो बातें हुई हैं उन सभी को ध्यान में रखते हुये मेरे विचार से यह संशोधन न केवल अधिक से अधिक समझौते का द्योतक है किन्तु इस कठिन समस्या का बहुत सोच-विचार के पश्चात् निकाला हुआ हल भी है।

आपके सामने जो विभिन्न संशोधन हैं उनमें से किसी के संबंध में मैं नहीं बोलने जा रहा हूं और न उस संशोधन का विश्लेषण ही करने जा रहा हूं जिसका मैं समर्थन कर रहा हूं। मैं आपका ध्यान कुछ अन्य बातों की ओर, कुछ अन्य आधारभूत बातों की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जो इस सभा में तथा देश में इस प्रश्न संबंधी विवाद से उत्पन्न हुई हैं। आखिर यह शब्दों का संघर्ष नहीं है, यद्यपि यहां वह संघर्ष शब्दों से प्रकट किया गया है। यह विभिन्न दृष्टिकोणों का, विभिन्न दिशाओं की ओर लगी हुई दृष्टियों का संघर्ष है।

यह प्राय: कहा जाता है और हम अवश्य ही एक नवयुग के द्वार पर खड़े हैं। प्रत्येक युग का अन्त होता है और वह एक नये युग को जन्म देता है। किन्तु संसार में और विशेषत: भारत में इस समय जो घटनायें घटित हो रही हैं उन्हें देखते हुये यह प्रकट होता है कि हम एक जन्म-मृत्यु के चक्र के साथ संलग्न हैं। जब इन दो घटनाओं का संयोग होता है तो बड़ी बड़ी समस्यायें उत्पन्न होती हैं और जिन लोगों को इन्हें हल करना होता है उन्हें ऊपर ऊपर की बातों से विमोहित न होकर आधारभूत प्रश्नों के बारे में सोचना होता है। मैं कह नहीं सकता कि इस सभा के सभी माननीय सदस्यों ने इन आधारभूत प्रश्नों पर पर्याप्त विचार किया है या नहीं। बहुत से सदस्यों ने अवश्य ही किया होगा। इन आधारभूत प्रश्नों का अपना अस्तित्व है। हमारा उद्देश्य क्या है? हम क्या करने जा रहे हैं? हम किधर जाना चाहते हैं?

भाषा हमारी बहुत ही निकट संबंधिनी है। समाज में जो बातें विकसित हुई हैं उनमें से इसका सबसे अधिक महत्व है और वास्तव में इसी से अन्य बातें विकसित हुई हैं। भाषा एक बहुत बड़ी चीज है इससे हमें अपना ज्ञान होता है। जब भाषा का विकास होता है तो हम उसके द्वारा अपने पड़ौसी को जानने लगते हैं, अपने समाज को जानने लगते हैं, और अन्य समाजों को भी जानने लगते हैं। भाषा से एकता उत्पन्न होती है और फूट भी पड़ती है। यह दो भाषा-भाषियों तथा दो देशों को एक दूसरे के नजदीक भी ले आती है और उन्हें एक दूसरे से दूर भी कर देती है। इसके ये दो गुण हैं इसलिये जब आप एक भाषा के संबंध में विचार करें तो आप इन दो गुणों पर भी विचार करें।

मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि यहां हम सभी लोग भारत की एकता को सुदृढ़ बनाना चाहते हैं। इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। किन्तु इस भाषा के प्रश्न का तथा इसके संबंध में लोगों के दृष्टिकोणों का, विश्लेषण करते हुये कुछ लोग विचार कर सकते हैं कि इससे एकता उत्पन्न होगी और अन्य लोग यह विचार कर सकते हैं कि यदि इसको ठीक प्रकार हल नहीं किया गया तो यह विकटकारी सिद्ध हो सकता है। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि यह सभा इन बड़ी बड़ी बातों को ध्यान में रखकर इस प्रश्न पर विचार करें और हम अपने अपने दृष्टिकोणों से विमोहित न हों।

हमारे राष्ट्रपिता बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने हमारे राष्ट्र के भविष्य को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया था, और इस प्रश्न पर भी विचार किया था। उन्होंने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया और अपने जीवन भर वे अपनी सलाह बराबर देते गये। उससे यह प्रकट होता है

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

कि जैसे अन्य प्रश्नों के संबंध में भी उनकी दृष्टि उन आधार-स्तम्भों पर रहती थी जिन पर हमारा राष्ट्र टिका हुआ है। आपको स्मरण होगा कि वे जिस वस्तु को भी खर्च करते थे वह एक आधारभूत वस्तु होती थी। वे हमारे अस्तित्व की ऊपर की बातों पर अपना समय तथा अपनी शक्ति नष्ट नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने अपने निराले ढंग से इस प्रश्न पर विचार किया था। एक महान साहित्यिक होते हुए भी, यद्यपि उन्हें ज्ञात नहीं था कि वे एक साहित्यिक भी हैं, उन्होंने इस प्रश्न पर कभी किसी साहित्यिक की दृष्टि से विचार नहीं किया था। वे हमेशा भारतीयों के तथा भारतीय राष्ट्र के भविष्य के बारे में सोचते रहते थे और एक-एक ईंट रखकर उसका निर्माण करते रहते थे ताकि हमें अपने दोषों से मुक्ति मिल सके। चाहे वह दोष विदेशियों के प्रभुत्व का हो, अथवा गरीबी का, अथवा हमारे ही बीच की असमता, विभेद, अस्पृश्यता आदि के दोष हों वे प्रत्येक पर ऊंचे स्तर से विचार करते थे और इस संबंध में सोचते रहते थे कि अमुक अमुक कदम से हम जाग्रत तथा शक्तिशाली भारत का निर्माण कर सकेंगे अथवा उससे फूट पड़ेगी और हम अशक्त हो जायेंगे।

उन्होंने सबसे पहले हमें यह शिक्षा दी कि यद्यपि अंग्रेजी भाषा एक महान भाषा है—मेरा भी यही विचार है कि अंग्रेजी से हमारा बहुत हितसाधन हुआ है और उसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा है तथा उन्नति की है—किन्तु किसी विदेशी भाषा से कोई राष्ट्र महान नहीं हो सकता। आखिर क्यों? क्योंकि कोई भी विदेशी भाषा लोगों की भाषा नहीं हो सकती। उससे दो श्रेणियां स्थापित हो जाती हैं। एक श्रेणी उन लोगों की जो विदेशी भाषा की शैली के अनुसार विचार करते हैं और कार्य करते हैं और एक श्रेणी उन लोगों की जो दूसरी ही दुनिया में बसते हैं। इसलिये राष्ट्रपिता ने हमें यह शिक्षा दी कि हम अपना अधिक से अधिक काम अपनी ही भाषा में करने का प्रयास करें।

उन्हें कुछ अंश में सफलता भी प्राप्त हुई और वास्तव में कुछ ही अंश में प्राप्त हुई। सम्भवत: इस कारण कि देश की स्थिति के कारण उससे अधिक सफलता प्राप्त करना कठिन था। किन्तु यह एक तथ्य है कि उनके बराबर शिक्षा देने पर भी तथा इस सभा में उपस्थित कई माननीय सदस्यों के हमारी भाषाओं की उन्नति के लिये प्रयास करने पर भी हम अपना बहुत सा राजनैतिक तथा अन्य प्रकार का कार्य अंग्रेजी भाषा में ही करते रहते हैं। किन्तु यह सच है कि हम स्वयं तथा हमारे करोड़ों लोग एक विदेशी भाषा के सहारे बहुत आगे नहीं जा सकते हैं। इसलिये चाहे अंग्रेजी भाषा कितनी ही महान क्यों न हो—और वास्तव में वह महान है ही—हमें अपना राष्ट्रीय कार्य, अपना सार्वजनिक अथवा निजी कार्य, जहां तक सम्भव हो सके अपनी विभिन्न भाषाओं में तथा विशेषत: उस भाषा में करना है जिसे आप सारे भारत में प्रयोग में लाने के लिये चुनें।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपिता इस पर जोर देते थे कि यह भाषा लोगों की भाषा होनी चाहिये और केवल विद्वान लोगों की भाषा नहीं होनी चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्वान लोगों की भाषा मूल्यवान अथवा आदरणीय नहीं है। हमें विद्वत्ता की, कवियों की, महान लेखकों तथा इस प्रकार के अन्य लोगों की

आवश्यकता है। किन्तु आधुनिक युग में अतीत काल से भी अधिक सार इस तथ्य में है कि यदि कोई भाषा लोगों की भाषा से दूर हुई तो वह महान नहीं हो सकती। वास्तव में जब विद्वानों का जनसाधारण से यथोचित संबंध स्थापित होता है तभी कोई भाषा महान तथा सशक्त होती है। भारत में हमें दो भाषाओं के उदाहरण मिलते हैं, यद्यपि मैं इन भाषाओं से अनभिज्ञ हूं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने यह संबंध बंगला में स्थापित किया और इस प्रकार उस भाषा को पहले से कहीं अधिक महान बना दिया। गांधीजी ने गुजराती भाषा पर इससे भी अधिक प्रभाव डाला। अन्य लोगों के भी उदाहरण हैं किन्तु ये महापुरुष थे।

जिस भाषा को हम सारे भारत के लिये स्वीकार करें उसके संबंध में, अथवा किसी भी भाषा के संबंध में, चाहे वह सारे भारत की भाषा हो या न हो, हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि हम शुद्धता तथा स्पष्टता के प्रेमियों के हाथी-दांत के बने हुए महल में निवास न करें। भाषा के संबंध में यद्यपि शुद्धता तथा स्पष्टता के प्रेमियों का अपना स्थान है और उन्हें बने रहना चाहिये किन्तु भाषा को शुद्धता प्रेमियों अथवा इसी प्रकार के अन्य लोगों की पटरानी बनाना एक खतरनाक बात है क्योंकि तब उसका जनसाधारण से कोई संबंध नहीं रह जाता। इसलिये आपको दोनों बातों की आवश्यकता है। आपको शुद्ध, स्पष्ट, गम्भीर और व्यापक अर्थ वाली भाषा की भी आवश्यकता है और ऐसी भाषा की भी आवश्यकता है जिसका जनसाधारण से निकट संबंध हो और जो जनसाधारण पर ही आश्रित हो।

इस विषय के संबंध में जिस अंतिम बात की ओर राष्ट्रपिता ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था वह यह है कि यह भाषा भारत की सम्यक् संस्कृति की प्रतीक होनी चाहिये। जहां तक हिन्दी भाषा का संबंध है उसमें उस सम्यक् संस्कृति का प्रतिनिधित्व होना चाहिये जो उत्तर-भारत में विकसित हुई, जहां मुख्यत: हिन्दी भाषा का ही बोलबाला रहा। उसमें उस सम्यक् संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिये जो उसे भारत के अन्य भागों से प्राप्त हुई। इसी कारण राष्ट्रपिता ने हिन्दुस्तानी शब्द प्रयोग किया। उन्होंने यह शब्द किसी विशेष अर्थ में प्रयोग नहीं किया बल्कि इस साधारण अर्थ में प्रयोग किया कि यह वह सम्यक् भाषा है जो लोगों की भाषा है, और उत्तर भारत में विभिन्न वर्गों तथा अन्य लोगों की भाषा भी है। इस भाषा की ओर उन्होंने लोगों का तथा राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया। यह कहना छोटा मुंह बड़ी बात होगी कि मैं उनके विचारों से सहमत हूं अथवा असहमत हूं किन्तु लगभग तीस वर्ष से भाषा के संबंध में मैं अपने तुच्छ ढंग से इसी मत का समर्थन करता रहा। जिस मत का मैंने अपने सारे राजनैतिक जीवन में समर्थन किया है उसका अब परित्याग करने के लिये यदि यह सभा मुझसे कहे तो यह मेरे लिये एक कठोरता होगी।

केवल यही नहीं, मेरा यह विश्वास है कि भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में, एक पृथक् राष्ट्र नहीं और ऐसा राष्ट्र भी नहीं जो संसार से अलग रहना चाहे किन्तु ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने और जिसे आत्मविश्वास हो और जो संसार के साथ सहयोग करके, अपना जीवन व्यतीत करे, महात्मा जी का दृष्टिकोण ही सबसे ठीक दृष्टिकोण था। मेरे विचार से अच्छा यह होता है कि इस प्रस्ताव में इस पर अधिक जोर दिया जाता किन्तु जो कुछ हुआ है और जिस प्रकार यह प्रस्ताव रचा गया

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

है उसे देखते हुये मैंने इसका स्वागत किया विशेषतया इसलिये कि इसके एक भाग में उन बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जिन्हें मैं बता चुका हूं। जैसाकि मैं कह चुका हैं, मेरे विचार से अच्छा यह होता कि इसकी ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया जाता। चाहे जो भी हो ध्यान आकृष्ट किया ही गया है, इसलिये मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार किया है। यदि दुर्भाग्य से इस ओर ध्यान आकृष्ट नहीं किया जाता तो मेरे लिये इस प्रस्ताव का स्वीकार करना कठिन हो जाता।

इस समय कई बातों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि एक नये युग का उदय हो रहा है। और इस प्रस्ताव के संबंध में भी यही कहा जा सकता है कि इससे भारत में भाषा संबंधी क्रान्ति का सूत्रपात हो सकता है। यह एक बहुत ही बड़ी क्रान्ति होगी और इसका बहुत दूर तक प्रभाव पड़ेगा। हमें बड़ी सावधानी से उसे ठीक रूप देना है तथा उसे ठीक सांचे में ढालना है और उसे ठीक दिशा की ओर ले जाना है। भाषा का निर्माण मनुष्य करते हैं किन्तु फिर वह भाषा भी उन मनुष्यों का तथा उनके समाज का निर्माण करती है। यह प्रश्न क्रिया और प्रतिक्रिया का है। यह कहा जा सकता है कि यदि कोई भाषा एक अशक्त भाषा हो, अथवा अस्पष्ट भाषा हो, अथवा केवल अलंकारयुक्त ही हो तो आप इन गुणों को उन लोगों में भी प्रतिबिम्बित पायेंगे जो उस भाषा को बोलते हैं। यदि भाषा अशक्त है तो वे लोग भी बहुत कुछ अशक्त ही होंगे और यदि वह अलंकारयुक्त ही है और कुछ नहीं है, तो वे भी अलंकारयुक्त ही हो जायेंगे। इसलिये इसका महत्व है कि आप उसे किस दिशा की ओर ले जायें। यदि कोई भाषा निराली होती है तो उस भाषा को बोलने वाले लोगों के विचार तथा कार्य भी निराले हो जाते हैं।

जब मैंने आरम्भ में कहा था कि इस तर्क और बहस के पीछे विभिन्न दृष्टिकोण हैं तो मेरा आशय यही था। आपकी दृष्टि किस ओर है? इस नवयुग के द्वार पर खड़े होकर क्या आप पीछे की ओर ही मुंह मोड़े रहेंगे और उसी ओर टकटकी लगाये हुये रहेंगे अथवा क्या आप अपने आगे भी देखेंगे? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका उत्तर हममें से प्रत्येक व्यक्ति को देना है क्योंकि इस समय देश में स्वभावतः अतीत की ओर ही टकटकी लगा कर ही देखने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। प्रश्न यह नहीं है कि हम अतीत से संबंध विच्छेद कर दें। यह एक अन्तर्गत तथा खतरनाक बात होगी क्योंकि अतीत से ही हमें अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त है। हमारी जड़ अतीत ही में सुस्थिर है। यदि हम अतीत से संबंध-विच्छेद करते हैं तो हमारी जड़ ही उखड़ जाती है। हम दूसरों की नकल करके बहुत आगे नहीं बढ़ सकते किन्तु यह भी सच है कि जड़ तो जमीन में हो और विकास आकाश की ओर हो और आप हमेशा जमीन की ओर जड़ों की ओर ही न देखते रहें। आगे भी बढ़ा जाता है और हमेशा पीछे ही नही हटा जाता। चाहे आप यह चाहें या न चाहें किन्तु संसार की शक्तियां तथा धारायें आपको आगे ढ़केलेंगी। यदि आपकी दृष्टि पीछे की ओर होगी तो आप बार-बार ठोकर खाकर गिर पड़ेंगे।

इसलिये इस प्रश्न को हल करने में यह एक आधारभूत बात है कि आपकी दृष्टि किस ओर है—आगे की ओर अथवा पीछे की ओर? लोग संस्कृति आदि की चर्चा करते हैं और ठीक ही कहते हैं क्योंकि किसी भी राष्ट्र का सुदृढ़

सांस्कृतिक आधार होना आवश्यक है और, जैसाकि मैं कह चुका हूं। उस संस्कृति की जड़ें लोगों की प्रकृति तथा उनके अतीत में सुस्थिर होनी चाहिये। चाहे कोई संस्कृति कितनी ही अच्छी क्यों न हो, उसकी अच्छी से अच्छी नकल करने पर भी कोई व्यक्ति सुसंस्कृत नहीं हो सकता क्योंकि उसकी संस्कृति होगी आखिर नकली ही। उसे स्वीकार करना ही होगा। आप अवश्य ही अपनी जड़ें उस महान शक्तिशाली संस्कृति में जमाये रखें जिसका उदय सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था और जो इतनी बलशालिनी हो उठी थी कि बाहर से तथा अन्दर से प्रहार पर प्रहार होने पर भी, तथा हमारे गलित पलित हो जाने पर भी, सजीव रही तथा हमें शक्ति प्रदान करती रही। यह संस्कृति बनी ही रहनी चाहिये। किन्तु साथ ही जब आप एक नव युग के द्वार पर हैं तो हमेशा अतीत की ही चर्चा करके आप उसमें ठीक ढंग से प्रवेश नहीं करेंगे। हमारे सामने कई प्रश्न हैं, उनमें से एक प्रश्न भाषा का भी है।

संस्कृतियां भी कई प्रकार की हैं। एक संस्कृति राष्ट्र की तथा लोगों की होती है, जिसका अपना महत्व है, और साथ ही युग की भी संस्कृति होती है जिसे युगधर्म कहते हैं। यदि आप युगधर्म के अनुरूप नहीं चलेंगे तो आप अपने युग के साथ कदम नहीं मिला सकेंगे। चाहे आपकी संस्कृति कितनी ही महान क्यों न हो यदि आप युगधर्म के अनुरूप न चलेंगे तो आप युग के साथ नहीं चल सकेंगे। हमारे देश के तथा अन्य देशों के बुद्धिमान लोग यही शिक्षा देते रहे हैं। एक संस्कृति होती है राष्ट्रीय संस्कृति और एक संस्कृति होती है अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति। इसके अतिरिक्त एक संस्कृति ऐसी होती है जो परम तथा सनातन होती है और उसके कुछ परम आदर्श होते हैं जिनका अनुसरण करना आवश्यक होता है। एक संस्कृति परिवर्तनशील होती है जिसका सामाजिक महत्व के अतिरिक्त अन्य कोई महत्व नहीं होता। उसका किसी विशेष काल, किसी पीढ़ी अथवा युग के लिए महत्व होता है। किन्तु वह, बदलता अवश्य है। युग में परिवर्तन होने पर भी यदि आप उसी को अपनाये रहते हैं तो आप पिछड़ जाते हैं और आप बदलते हुए मानव-समाज के साथ कदम मिलाने में असमर्थ हो जाते हैं। सामाजिक संस्कृति और विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृति भी होती है।

पहले चाहे जो भी स्थिति रही हो किन्तु आज इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि एक शक्तिशालिनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति आज संसार भर में व्याप्त है। यदि आप चाहें तो आप उसे यांत्रिक युग की अथवा उद्योग धंधों और वैज्ञानिक विकास पर आधृत संस्कृति कह सकते हैं। क्या यहां कोई ऐसा माननीय सदस्य उपस्थित है जो यह कह सकता है कि इस संस्कृति को स्वीकार न करने से अथवा अपने लिये उपयोगी बनाने पर और उसकी आधारभूत बातें मानकर भी स्वीकार न करने से केवल पुरानी विचारधाराओं की बार-बार दुहाई देते रहने से हम अधिक उन्नति कर सकते हैं? यदि मुझे क्षमा किया जाये तो मैं यह कहूंगा कि अपने इतिहास में एक समय चूंकि हमने संसार की संस्कृति से जिसमें मैं युद्ध-कौशल तथा अन्य सभी बातों को सम्मिलित करता हूं, संबंध विच्छेद कर लिया था इसलिये हम पिछड़ गये और अन्य लोग हमसे उत्कृष्ट न होने पर भी केवल इस कारण हम पर विजयी हुये कि वे सामाजिक संस्कृति के साथ चलते थे। वे आये और उन्होंने

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

हमें पराजित किया तथा बार-बार हम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अंग्रेज आये और उन्होंने हम पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। क्यों? वह इसलिये कि उनकी संस्कृति सामाजिक संस्कृति थी और वह हमारी प्राचीन संस्कृति से उत्कृष्ट थी। वह भले ही आधारभूत तथा सनातन बातों के संबंध में हमारी संस्कृति से अधिक उत्कृष्ट न रही हो किन्तु युगधर्म की दृष्टि से वह हमारी संस्कृति से अधिक उत्कृष्ट थी। वे आये और उन्होंने हमें पराजित किया तथा इतने अधिक काल तक हम पर अपना प्रभुत्व जमाये रहे।

वे अब चले गये हैं। क्या हम अपने विचारों को तथा अपने कार्यों को फिर उसी प्रकार की संस्कृति के अनुरूप बनाने जा रहे हैं जिसके कारण हम गुलाम हो गये? इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रत्येक माननीय सदस्य कहेगा "नहीं"। किन्तु फिर भी मैं कहूंगा कि जो कुछ मैं कह रहा हूं उससे इस विचारधारा का निकट संबंध है। यह विचारधारा उसी की ओर ले जाती है। यदि आप पीछे की ओर ही देखते रहें यदि आप उसी प्रकार की चर्चा करते रहें जिस प्रकार की चर्चा माननीय सदस्य कल और आज करते रहे हैं तो वह उसी परिणाम की ओर ले जायेगी। जहां तक मेरा संबंध है मुझे उस परिणाम पर पहुंचने में हिचकिचाहट ही नहीं होती है बल्कि मैं उसका विरोध भी करना चाहता हूं क्योंकि मैं समझता हूं कि वह भारत के लिये हानिकर है। आपको तथा मुझे भारत के लोगों पर तथा भारतीय राष्ट्र पर अटल विश्वास है। मुझे विश्वास है कि चाहे भारत के सामने इस समय कितनी ही कठिनाइयां क्यों न हों किन्तु वह अवश्य ही उन्नति करेगा और तीव्र गति से आगे बढ़ेगा। किन्तु यदि हम भारत के पैरों को जीर्ण रीति-रिवाजों से जकड़ देते हैं और वह ठोकर खाकर गिर पड़ता है तो इसके लिये दोषी कौन है? हमारे सामने यह आधारभूत प्रश्न है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य दृष्टि से भी आप इस भाषा के प्रश्न को देखिये। अभी हाल तक, मैं कहूंगा एक पीढ़ी पहले तक फ्रेंच यूरोप की तथा अन्य बड़े-बड़े भूभागों की राजनयिक तथा सांस्कृतिक भाषा थी। यूरोप में ही अंग्रेजी, जर्मन, इटालियन तथा स्पेनिश के समान महान भाषाएं थीं और इसके अतिरिक्त एशियाई भाषाएं भी थीं। किन्तु फिर भी यूरोप में राजनयिक तथा सांस्कृतिक प्रयोजनों के लिये फ्रेंच ही प्रयोग की जाती थी। आज उसे यह प्रतिष्ठित पद प्राप्त नहीं है। किन्तु आज भी राजनयिक तथा सार्वजनिक कार्यों में उसका बहुत महत्व है। किसी ने भी फ्रेंच पर आपत्ति नहीं की। किसी अंग्रेज, अथवा रूसी, अथवा जर्मन, अथवा पोल ने फ्रेंच भाषा पर आपत्ति नहीं की। इस प्रकार यह सभी भाषाएं विकसित होती रहीं और आज यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः जिस उच्च राजनयिक पद पर फ्रेंच प्रतिष्ठित थी उस पद पर अंग्रेजी आ रही है।

फ्रेंच के पूर्व यूरोप की राजनयिक भाषा लैटिन थी। इसी प्रकार भारत में बहुत काल तक संस्कृति तथा राजनयिक भाषा संस्कृत रही है। यह भाषा जनसाधारण की भाषा नहीं थी किन्तु विद्वान तथा शिष्ट लोगों की भाषा थी और राजनयिक प्रयोजनों आदि के लिये काम में आती थी। यदि हम पिछले एक हजार वर्ष के इतिहास को देखें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि केवल भारत में ही नहीं किन्तु सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया में, और केन्द्रीय एशिया के कुछ भागों में भी विद्वानों

की भाषा संस्कृत ही थी। यद्यपि उस सीमा तक नहीं थी जिस सीमा तक भारत में थी। सम्भवत: सभा को यह विदित है कि इस समय संस्कृत के जो सबसे प्राचीन नाटक उपलब्ध हैं वे भारत में नहीं मिले बल्कि गोबी रेगिस्तान की सीमा पर तुर्फान प्रदेश में मिले।

संस्कृत के पश्चात् भारत की तथा एशिया के बहुत बड़े भाग की सांस्कृतिक तथा राजनयिक भाषा फारसी हुई। भारत में उसे यह पद इस कारण प्राप्त हुआ कि यहां का शासन ही बदल गया किन्तु साथ ही वह एशिया के एक बहुत बड़े भाग की सांस्कृतिक तथा राजनयिक भाषा हो गई। वह इस कारण "पूर्व की फ्रेंच" कही जाती थी और अब भी इसी नाम से कही जाती है। जब ये परिवर्तन हो रहे थे तो अन्य भाषाओं का भी विकास हो रहा था। यूरोप के लिये फ्रेंच और एशिया के लिये फारसी बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई। अन्य देशों तथा राष्ट्रों ने भी इन भाषाओं को स्वीकार किया। सम्भव है भारत ने उसे मुख्यत: इस कारण स्वीकार किया हो कि नये शासकों का उस पर प्रभुत्व था किन्तु ऐसे देशों ने भी उसे स्वीकार किया जिन पर उनका प्रभुत्व नहीं था और जिनकी वह भाषा भी नहीं थी क्योंकि फारसी इन प्रयोजनों के लिये एक उपयुक्त भाषा समझी जाती थी। इन लोगों की भाषाओं का विकास हुआ।

हमने अंग्रेजी इस कारण स्वीकार की कि वह विजेता की भाषा थी। जब हमने उसे स्वीकार किया तो इस कारण नहीं स्वीकार किया कि वह एक महत्वपूर्ण भाषा है यद्यपि वह उस समय भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाषा थी। हमने उसे केवल इस कारण स्वीकार किया कि हम पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था। उसने हमारे लिये विदेशी विचारधारा, विदेशी विज्ञान आदि के द्वार खोल दिये और उसके द्वारा हमने बहुत कुछ सीखा। अंग्रेजी भाषा द्वारा हमने जो कुछ सीखा है उसके लिये हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिये। किन्तु साथ ही उसने हम अंग्रेजी जानने वालों और अंग्रेजी न जानने वालों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा कर दी जो, किसी भी राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध होती। सम्भवत: हम आज इसे सहन नहीं कर सकते हैं। इसी कारण यह समस्या भी है।

अंग्रेजी चाहे कितनी ही अच्छी और महत्वपूर्ण भाषा क्यों न हो किन्तु हम इसे सहन नहीं कर सकते कि एक वर्ग अंग्रेजी जानने वाले विद्वानों का हो और एक बहुत बड़ा वर्ग अंग्रेजी न जानने वाले लोगों का हो। इसलिये हमें अपनी ही भाषा को अपनाना चाहिये। किन्तु अंग्रेजी, चाहे आप उसे राज-भाषा कहें अथवा अन्य कोई भाषा, अथवा चाहे आप उसका विधि में उल्लेख करें या न करें किन्तु भारत में अंग्रेजी एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में और एक ऐसी भाषा के रूप में रहनी चाहिये जिसे बहुत से लोग सीखें। और हो सके तो अनिवार्य रूप से सीखें। आखिर क्यों? इस कारण कि अब अंग्रेजी भाषा का उस समय से कहीं अधिक महत्व है जब अंग्रेज यहां आये थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय कोई भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हो सकती है तो वह अंग्रेजी ही है। वह इस समय अन्तर्राष्ट्रीय भाषा नहीं है किन्तु इस समय वह संसार में सबसे वृहत् तथा व्यापक भाषा है। यदि हम संसार के अन्य देशों से सम्पर्क रखना चाहते हैं और हमें सम्पर्क रखना ही चाहिये तो बिना विदेशी भाषाओं को सीखे हुये हम उनसे सम्पर्क

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

कैसे रख सकते हैं? मुझे आशा है कि हममें से बहुत से लोग विदेशी भाषाओं को सीखेंगे जैसे कि रूसी भाषा को जो बहुत ही सुन्दर तथा सुसम्पन्न भाषा है, स्पेनिश भाषा को जिसका भले ही आज अधिक महत्व न हो किन्तु आगे चलकर दक्षिण अमरीका का विकास होने पर उसका महत्व बहुत बढ़ जाने वाला है। फ्रेंच भाषा को जो हमेशा एक महत्वपूर्ण भाषा रही है और आज भी है, जर्मन भाषा को इत्यादि। मुझे आशा है कि हम इन सभी भाषाओं को सीखेंगे। किन्तु यह एक तथ्य है कि सुविधा की दृष्टि से तथा कार्य साधन की दृष्टि से भी अंग्रेजी का हमारे लिये सबसे अधिक महत्व है और हममें से बहुत से लोग उसे जानते भी हैं। यह एक अनर्गल बात होती कि हम जो कुछ जानते हैं उसे भूलने का प्रयास करें अथवा हमने जो कुछ सीखा है उससे हम लाभ न उठायें। किन्तु उसका अवश्य ही गौण स्थान होगा और उसे थोड़े से लोग ही सीखेंगे।

श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर ने सभा के सामने जो प्रस्ताव रखा है उसे इन सब बातों को ध्यान में रखकर रचा गया है। मैं कह नहीं सकता कि इस भाषा का भविष्य कैसा रहेगा। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि हम हिन्दी भाषा को समझदारी से प्रयोग करें, अर्थात् दो प्रकार उसे समझदारी से प्रयोग करें, और उसे ग्रहण करने वाली न कि बहिष्कार करने वाली भाषा बनायें, और उसमें भारत के सभी भाषा तत्वों को सम्मिलित करें, क्योंकि उन्हीं के कारण वह बनी है, और उसमें कुछ पुट उर्दू का अथवा हिन्दुस्तानी का भी रखें—स्मरण रहे विधि द्वारा नहीं बल्कि साधारण विकास द्वारा—और, मैं कहूंगा उसे उन लोगों पर जबरदस्ती नहीं थोपें जो उसे नहीं चाहते हैं तो मुझे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि उसका विकास होगा और वह एक महान भाषा हो जायेगी। मैं कह नहीं सकता कि वह अंग्रेजी का स्थान कहां तक ले लेगी किन्तु यदि हमारे साधारण कार्य से वह अंग्रेजी को बिल्कुल ही बाहर भी निकाल दें तो फिर भी संसार से सम्पर्क बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत के व्यवहार के लिये हमारे लिये अंग्रेजी का महत्व रहेगा।

अब मैं फिर इस प्रश्न के संबंध में जो आधारभूत दृष्टिकोण है उसके बारे में बोलूंगा। क्या आपका दृष्टिकोण जनतंत्रात्मक होने जा रहा है अथवा प्रभुत्वमूलक? मैं यह प्रश्न हिन्दी के प्रेमियों से पूछता हूं क्योंकि यहां तथा अन्यत्र मैंने जो भाषण सुने हैं उनमें से कुछ की यह ध्वनि थी कि हिन्दी भाषी प्रदेश ही सभी बातों के लिये भारत का केन्द्र रहा है और अन्य प्रदेश तो भारत के सीमावर्ती प्रदेश रहे हैं। यह दृष्टिकोण गलत ही नहीं खतरनाक भी है। यदि आप इस प्रश्न पर समझदारी से विचार करें तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि यह दृष्टिकोण जितना हानिकर हो सकता है उतना अन्य कोई दृष्टिकोण नहीं। यदि लोग अथवा लोगों का कोई वर्ग किसी भाषा का विरोध करे तो आप उसे जबरदस्ती उनके गले के नीचे नहीं उतार सकते। आपको इसमें सफलता नहीं मिल सकती। आप जानते हैं कि सम्भव है कोई विदेशी विजेता तलवार के बल से इस प्रकार का प्रयास करे किन्तु इतिहास इसका प्रमाण है कि उसे फिर भी कभी सफलता नहीं मिली। भारत के जनतंत्रात्मक वातावरण में तो इसकी सम्भावना ही नहीं है। आपको भारत के उन विभिन्न प्रान्तों तथा समूहों का सद्भाव प्राप्त करना है जिनकी मातृ-भाषा

हिन्दी नहीं है। आपको उन लोगों की भी सद्‌भावना प्राप्त करनी है जो किसी अन्य रूप में हिन्दी को अर्थात् उर्दू या हिन्दुस्तानी को, बोलते हैं। चाहे आप जीतें या न जीतें किन्तु यदि आप कोई ऐसा प्रयास करेंगे जो अन्य लोगों को प्रभुत्व स्थापित करने अथवा जबरदस्ती किसी चीज को स्वीकार कराने के लिए किया हुआ प्रयास प्रतीत होगा तो आपका वह प्रयास निष्फल रहेगा।

अब मैं एक दो शब्द हिन्दुस्तानी, उर्दू और हिन्दी के बारे में कहना चाहता हूं। इस संशोधन में हमने 'हिन्दी' शब्द को स्वीकार किया है। मुझे 'हिन्दी' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है। मुझे वह पसंद है। मुझे इस संबंध में थोड़ा सा भय था कि अन्य लोगों को सम्भव है इसके सीमित अर्थ का ही बोध हो। मुझे इसका भय था। किन्तु मैंने यह विचार किया कि जिस प्रकार "हिन्दी" शब्द को मैं पसन्द करता हूं उसी प्रकार अन्य लोग भी पसन्द करेंगे। मैं जानता हूं, यहां उपस्थित कई माननीय सदस्य जानते हैं, तथा संयुक्त प्रान्त के प्रतिनिधि जानते हैं, कि वे बड़ी आसानी से उस भाषा को बोल सकते हैं जो उर्दू कही जाती है और उतनी ही आसानी से उस भाषा को बोल सकते हैं जो बहुत कुछ शुद्ध हिन्दी कही जा सकती है। वे दोनों भाषायें बोल सकते हैं। यह ठीक ही है कि हम दोनों भाषाओं को जानें ओर उनमें दिलचस्पी रखें। इसका परिणाम यह है कि उनकी शब्दावली बहुत ही सुसम्पन्न तथा सुन्दर है। मैं कह नहीं सकता कि आपका भी यही अनुभव है या नहीं। हम यह देखते हैं कि कुछ विषयों के संबंध में हम अपने विचार हिन्दी में अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त कर सकते हैं और कुछ विषयों में उर्दू में अधिक उपयुक्त ढंग से व्यक्त कर सकते हैं। किन्हीं विषयों के लिये वह अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त है। मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं इन दोनों माध्यमों को चाहता हूं क्योंकि इनसे हिन्दी, जो देश की राज-भाषा तथा राष्ट्र-भाषा होने जा रही है, सशक्त होगी। हमें लोगों से सम्पर्क बनाये रखना चाहिये। यह एक अच्छी बात है। यदि आप यह करेंगे तो आप अन्य सभी मार्गों को भी खुला रखेंगे। भाषा का विकास इसी प्रकार होता है। यदि किसी व्यक्ति से दबाव पड़ने का भाव न रहे और यह भी भाव न रहे कि जबरदस्ती की जा रही है तो भाषा करोड़ों लोगों के हृदयों में स्थान पा जाती है। लोग धीरे-धीरे उसे ढालते हैं और एक रूप देते हैं।

अंकों के प्रश्न को ही लीजिये। मैं आपसे साफ बातें कहूंगा। मैंने इस प्रश्न पर पहले कभी विचार नहीं किया। किन्तु जब यह मेरे सामने आया और मैंने इस पर विचार किया तो मुझे तुरंत विश्वास हो गया कि इन अंकों को अपनाना ही हितकर है। इन अंकों की उत्पत्ति भारत में हुई और इन्होंने एकरूप धारण किया और अब ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में प्रयोग में आते हैं। मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया कि इन्हीं को अपनाना हितकर है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दी अंकों का निषेध नहीं किया गया है। कोई भी व्यक्ति उन्हें जब चाहे तब प्रयोग कर सकता है। किन्तु राजकीय कार्य में, जिसमें बैंक संबंधी, लेखा-परीक्षा संबंधी तथा जन-गणना संबंधी आंकड़े काम में आते हैं तथा आंकड़ों के खाने बनाने होते हैं, इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग में लाने से लाभ होगा और इससे और लाभ भी होंगे। इन अंकों से आपके तथा अन्य देशों के बीच कम से कम

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

एक दीवार हट जाती है। इसका इस समय बहुत महत्व है क्योंकि विज्ञान के विकास में तथा विज्ञान को व्यवहार में लाने में अंकों का बहुत महत्व है। मैं यह कह चुका हूं कि आप हिन्दी अंकों को भी प्रयोग कर सकते हैं। जो कोई हिन्दी अंकों को सीखेगा वह उन्हें पढ़ भी सकेगा और जब चाहे लिख भी सकेगा। किन्तु यदि आप इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को राजकीय प्रयोजनों तक ही सीमित करने की बात सोचें तो मैं यह बता चुका हूं कि आप कठिनाई में पड़ जायेंगे।

आपको इस पर आपत्ति ही क्या है? क्या आप यह चाहते हैं कि भारत आधुनिक विज्ञान तथा कला में प्रगति करे। मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूं यदि हम इन प्रयोजनों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग नहीं करेंगे तो हम पिछड़ जायेंगे। हम बच्चों के तथा युवाओं के मस्तिष्कों पर बहुत भार डालेंगे और हमारे दफ्तरों में तथा अन्यत्र हमारा काम बहुत बढ़ जायेगा और उस काम का संसार से कोई संबंध नहीं रह जायेगा। इसलिये व्यावहारिक दृष्टि से तथा भावनाओं की दृष्टि से भी इन्हीं अंकों को स्वीकार करना उचित होगा। इसके अतिरिक्त हम किसी विदेशी चीज को नहीं स्वीकार कर रहे हैं, हम अपनी ही चीज को स्वीकार कर रहे हैं, भले ही उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन हो गया हो। इसके अतिरिक्त छपाई में भी इनके कारण हमें सुविधा होती है। सम्भवत: यहां कई माननीय सदस्यों का पत्रों से तथा मुद्रण से संबंध है। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या इन अंकों को हिन्दी अंकों की अपेक्षा अधिक आसानी से कम्पोज नहीं किया जा सकता है और छापा नहीं जा सकता है?

मेरा निवेदन है कि चूंकि हम अंकों के प्रश्न पर आकर रुक गये हैं इसलिये इसका इस आधारभूत दृष्टि से महत्व है कि आखिर हम किस ओर देख रहे हैं। जहां तक मेरा संबंध है मैं हिन्दी अंकों को जानता हूं और मैं उन्हें आसानी से लिख भी सकता हूं और पढ़ भी सकता हूं इसलिये मुझे स्वयं कोई कठिनाई नहीं है। किन्तु जिस प्रकार यहां तथा अन्यत्र यह विवाद खड़ा किया गया है और इस प्रकार का तर्क-वितर्क किया गया है, उसे देखते हुये मेरे हृदय में यही विचार उठा कि इस विवाद के पीछे एक भिन्न ही विचारधारा है। यह विचारधारा विज्ञान को तथा विज्ञान और आधुनिक संसार जिन बातों के प्रतीक हैं उनको प्राचीन दृष्टि से देखने की है। यह पीछे देखना ही है। यह विचारधारा, मेरे विचार से, भारत के लिये घातक है। जिस महान राष्ट्र का हमने स्वप्न देखा है, और जिसके लिये हमने श्रम किया है, उस लक्ष्य तक यह विचारधारा हमें नहीं पहुंचने देगी।

हम एक नवीन युग के द्वार पर खड़े हैं। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि हमारी दृष्टि के सामने भारत का यह चित्र स्पष्ट हो। हम किस प्रकार का भारत चाहते हैं? क्या हम एक ऐसा आधुनिक भारत चाहते हैं जिसकी जड़ें उस अतीत में सुस्थिर हों जिससे हमें प्रेरणा मिलती है जिस आधुनिक भारत में आधुनिक विज्ञान तथा आर्थिक संसार की सभी बातों के लिये स्थान हो, अथवा क्या हम किसी ऐसे प्राचीन युग का आविर्भाव चाहते हैं जिसका वर्तमान युग से कोई भी

संबंध न हो? आपको इन दो दृष्टिकोणों में से किसी एक को अपनाना है। यह प्रश्न दृष्टिकोण का है। आपको इसका निर्णय करना है कि आप पीछे की ओर देखते रहेंगे अथवा आगे की ओर देखेंगे।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): हम अभी तथा एक बजे विसर्जित होने के पूर्व इस सभा के बहुत प्रतिष्ठित तथा माननीय सदस्यों के भाषण सुन चुके हैं। कभी अपने इतने प्रतिष्ठित देशवासियों का विरोध करने में कष्ट होता है किन्तु राष्ट्रों के इतिहास में कई अवसर ऐसे भी आते हैं जब अपनी बात कहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता। मैं केवल विरोध की लालसा से विरोध नहीं कर रहा हूं। मैं इस ऐतिहासिक अवसर पर उन विचारों को व्यक्त करने के लिये उठा हूं जो मेरे अपने विचार हैं।

इस प्रश्न के संबंध में दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण उन लोगों का है जो इस देश में अंग्रेजी भाषा को जब तक हो सके, और जहां तक हो सके बनाये रखना चाहते हैं, और दूसरा दृष्टिकोण उन लोगों का है जो यथाशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर किसी भारतीय भाषा को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है उसके संबंध में हमारे यही दो दृष्टिकोण हैं। मैंने जितने भी संशोधनों की सूचना दी है वह दूसरे दृष्टिकोण से दी है। यदि मैं यह देखता कि अध्याय 14-क के सभी अनुच्छेद इसी ढंग के हैं कि उनसे हमारे उद्देश्य की हानि नहीं हो सकती तो मैं यहां बोलने के लिये कभी नहीं आता। यह ठीक है कि हमने हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि को एक उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। अंकों के संबंध में मैं बाद में बोलूंगा।

इस संबंध में इतना कहकर अब मैं इस अध्याय के व्यावहारिक अंश को उठाता हूं, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति किस उपाय से तथा किस प्रकार करेंगे। हिन्दी भाषा इस देश की राष्ट्र-भाषा तथा राजभाषा होने जा रही है और देवनागरी लिपि उस भाषा की लिपि होने जा रही है। इतना स्वीकार करने पर क्या हमारे लिये यह उचित नहीं है कि हम इस उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए उपाय तथा साधन ढूंढ़ निकालें? यदि हम इस अध्याय के विभिन्न भागों को देखें तो हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि उद्देश्य यह कदापि नहीं है। इस अध्याय में जो बांध रखे गये हैं उन्हें देखते हुये उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि हिन्दी को यथाशीघ्र न आने दिया जाये। यदि इन बांधों को पार नहीं किया गया, अथवा इन्हें तोड़ा नहीं गया, और हिन्दी को अपनाने के लिये मार्ग प्रशास्त नहीं किया गया, तो हमें बहुत बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जब हम इसके अध्याय के उस स्थल पर पहुंचते हैं जहां आयोग और समिति का वर्णन किया गया है, तो हमें बहुत कुछ इस आशय का एक उपबन्ध मिलता है कि पांच वर्ष तक केन्द्र में तथा प्रान्तों में आपकी राज-भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। इसके अतिरिक्त इस अध्याय के अन्य भागों में और रुकावटें भी रखी गई हैं। आप यह देखेंगे कि प्रान्तों में हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में लाना आपके लिये कठिन हो जायेगा।

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

इस सभा के कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि इस प्रश्न का उनके दृष्टिकोण से देखा जाये। प्रान्तों में हम लोगों के लिये कठिनाई है। हम अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को कैसे देंगे? हमारे सामने प्रश्न यह है। चाहे केन्द्र में कुछ भी क्यों न किया जाये हमें प्रान्तों में इस कार्य को सम्पन्न करना ही है। हमारे सामने बहुत बड़ी कठिनाइयां हैं; अब हमने शासन की बागडोर सम्हाली तो हमने ऐसे विभागों को स्थापित करने का प्रयास किया जो हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में ला सकें। अपने प्रान्त में मैंने एक लोक-भाषा-प्रसार विभाग स्थापित किया है। अर्थात् हमने ऐसे लोगों को नियुक्त किया है जो पुस्तकों का अनुवाद करेंगे। चौबीस हजार शब्दों का एक संग्रह तैयार किया गया है। ये शिल्प-संबंधी शब्द हैं और इनकी सभी वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये आवश्यकता पड़ेगी। हमने हिन्दी और मराठी में वैज्ञानिक पुस्तकों का अनुवाद करवाया है। इन दो भाषाओं को हमारे यहां इंटरमिडिएट कक्षाओं तक स्वीकार किया गया है और भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र की बी.ए. तक की पुस्तकों का हिन्दी तथा मराठी में अनुवाद कराने के लिये सामग्री एकत्रित की गई है। सब सामग्री तैयार है किन्तु यहां जिस अनुच्छेद का प्रस्ताव रखा गया है उसके कारण उसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे प्रान्त में दो विश्वविद्यालय हैं। उनमें से एक ने यह निर्णय किया है कि इस वर्ष से अथवा अगले वर्ष से कालेजों में शिक्षा मराठी और हिन्दी में दी जायेगी। दूसरे ने यह निर्णय किया है कि वह हिन्दी को 1952 से शिक्षा का माध्यम बनायेगा। हमारे प्रान्त में अब अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा नहीं दी जाती। 1946 से हमारे हाई स्कूलों में हिन्दी और मराठी के माध्यमों से शिक्षा दी जा रही है। ये दोनों भाषाएं हमारे प्रान्त की स्वीकृत भाषाएं हैं। यदि किन्हीं स्कूलों में अथवा हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बंगला अथवा उर्दू है, अथवा अन्य कोई भाषा है, तो उन्हें हम अनुदान देते हैं। इसलिये तीन वर्ष पश्चात्, जब हमारे प्रान्त के विश्वविद्यालयों से स्नातक शिक्षा समाप्त करके बाहर आयेंगे तो वे अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ होंगे और इस कारण राष्ट्र को उनकी आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रकार हमारा प्रान्त एक संकटपूर्ण स्थिति में पड़ जायेगा।

मेरे विचार से यह हमारा कर्तव्य है कि हम संविधान में इस प्रकार के उपबन्ध रखें कि उनके फलस्वरूप हम अधिक से अधिक उन्नति कर सकें। मेरा निवेदन है कि प्रान्तों को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वे जैसे भी चाहें अपना विकास करें और इस अनुच्छेद में कल्पित स्तर तक पहुंचे जिसमें यह उपबंधित है कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी राष्ट्र-भाषा अथवा राज-भाष होगी।

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): क्या आप यह कह सकते हैं कि प्रान्तों को स्वतंत्रता नहीं है? प्रान्तों को इसकी पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे जो भी विधि बनाना चाहें, बनायें *(विघ्न)*।

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** यदि आप उपबंधों को सावधानी से पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि यह बात नहीं है, मूल संशोधन संख्या 65 में कहा गया है,

"अनुच्छेद 301-घ तथा 301-ङ के अधीन रहते हुए कोई राज्य किसी भाषा को अंगीकर कर सकेगा......" यदि आप अनुच्छेद 301-घ तथा अनुच्छेद 301-ङ को देखें तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि कौन से परिसीमन रखे गये हैं। अनुच्छेद 301-घ में कहा गया है—"संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राज-भाषा होगी।" आगे यह कहा गया है "परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राज-भाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।" जहां तक इस भाग का संबंध है इसकी शब्दावली मूल मसौदे की शब्दावली से अच्छी है किन्तु जहां तक किसी राज्य की राज-भाषा से संबंध है वह अनुच्छेद 301-घ से शासित होती है। उस प्रयोजन के लिये राज-भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा एक राज्य और संघ के बीच संचार के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा होगी। सभी प्रयोजनों के लिये आपको अंग्रेजी भाषा ही प्रयोग करनी होगी। इस संबंध में उपबन्ध रखा गया है कि जहां दोनों राज्य हिन्दी भाषा का प्रयोग करने के लिए सहमत हों वहां वह प्रयोग की जा सकती है। किन्तु जहां तक अन्य राज्यों का संबंध है, और एक राज्य का दूसरे राज्य से संचार का संबंध है और उस राज्य का संघ से संचार का संबंध है, केवल अंग्रेजी भाषा ही प्रयोग की जा सकेगी। इसीलिये मैं यह कर रहा हूं कि हमारा भाषा-स्वातंत्र्य सीमित हो रहा है। जहां तक वह सीमित होता है वहां तक मुझे इस उपबन्ध पर आपत्ति है।

इस मसौदे में मैं सबसे खतरनाक उपबन्ध इसे समझता हूं कि न्यायालयों में तथा उच्च न्यायालयों में, विशेषत: प्रान्तों में अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जायेगी। जब तक न्यायालयों की भाषा नहीं बदली जाती है........

*__एक माननीय सदस्य:__ उच्च न्यायालयों के संबंध में।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:__ जी हां, उच्च न्यायालयों के संबंध में जो कुछ भी आशा नहीं है। जहां तक अधीन न्यायालयों का संबंध है, हिन्दी और मराठी को प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि उनको न्यायालयों की भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। किन्तु होता यह है और यह आज भी हो रहा है कि, यद्यपि हम अपने दावे तथा बयान हिन्दी या मराठी में दे सकते हैं किन्तु न्यायाधीश पूरी गवाही अंग्रेजी में लिखते हैं और अपना निर्णय भी अंग्रेजी में सुनाते हैं। इसलिये लगभग सभी कामों के लिये अंग्रेजी भी प्रयोग की जा रही है। जब तक हमें ऐसे लोग नहीं मिलते, जो इन लोगों की जगह ले सकें, तब तक हमारे लिये अपने प्रान्त में हिन्दी को अंगीकार करना कठिन है।

इसलिये मैं सभी उपबन्धों पर इस दृष्टि से विचार कर रहा हूं। हमें सभी विभागों में तथा सभी स्तरों में हिन्दी को यथाशीघ्र प्रयोग में लाने में समर्थ होना चाहिये। इसी दृष्टि से मेरा यह निवेदन है कि जो निर्बन्धन रखे गये हैं उन्हें हटा देना चाहिये। जहां तक केन्द्र का संबंध है, उसके लिये उपबन्ध रख दिये गये हैं और उसके मार्ग में कोई रुकावटें नहीं हैं। एक अनुच्छेद में यह उपबन्ध

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

है कि जहां तक राज्यों का संबंध है, उन्हें अपने सभी अधिनियम, विधेयक, नियम तथा उपविधियां आदि सभी संघ की भाषा में बनानी होंगी। अर्थात् जब तक अंग्रेजी भाषा है तब तक ये सब चीजें अंग्रेजी में ही बनेंगी। मेरा निवेदन है कि इस संबंध में प्रान्तों को स्वतंत्रता होनी चाहिये। संघ के संबंध में संसद निर्णय कर सकती है किन्तु यदि राज्यों के विधान-मंडल यह निर्णय करना चाहें कि ये चीजें राज्य की भाषा में बनानी चाहिये तो उन्हें इस प्रकार का निर्णय करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध रखा है कि विधान-मंडल जिन विधेयकों तथा अन्य चीजों को पारित करें, उन्हें राज्य की भाषा में पारित करे। किन्तु उनके साथ पाठ का एक अधिकृत अनुवाद भी होना चाहिये।

जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं उसी के समान एक उदाहरण की ओर मैं सभा का ध्यान दिलाना चाहता हूं। संसार के इतिहास में इसके समान केवल एक उदाहरण मिलता है। वह उदाहरण आयरलैंड का है। 1921 में ब्रिटिश सरकार के साथ संधि करने के पश्चात् आयरिश लोगों ने अपने संविधान में सबसे पहले यह रखा कि आयरिश भाषा राष्ट्र-भाषा होगी और साथ ही उन्होंने यह भी रखा कि उनकी दूसरी भाषा अंग्रेजी होगी। मैं बताऊंगा कि यह किन कारणों से किया गया। आयरलैंड में जब तक अंग्रेज शासन करते रहे तब तक उन्होंने आयरिश भाषा के सीखने तथा प्रयोग करने पर प्रतिषेध रखा, जिसका परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक कक्षाओं से लेकर कालेज की कक्षाओं तक अंग्रेजी भाषा ही सिखाई जाती थी और एक शताब्दी तक अर्थात् 19वीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अन्त तक, आयरिश भाषा का उस देश से लोप ही हो गया। इस काल में आयरलैंड का प्रत्येक निवासी केवल अंग्रेजी ही बोलता था। जब 1910 में जनगणना हुई तो यह ज्ञात हुआ कि उस छोटे से द्वीप की तीस चालीस लाख की जनसंख्या में से केवल 21,000 लोग आयरिश भाषा जानते थे। 1921 की संधि के पश्चात् उन्होंने अपने संविधान में सबसे पहला उपबन्ध यह रखा कि आयरिश भाषा उस देश की राष्ट्र-भाषा होगी और यह उपबन्ध उन आयरलैंड निवासियों ने रखा जो उस समय आयरिश भाषा को नहीं जानते थे। केवल 21,000 लोग आयरिश भाषा जानते थे और अवशिष्ट लोगों में अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेजियत थी। इन लोगों ने तुरंत ही यह निर्णय किया कि आयरलैंड की राष्ट्र-भाषा आयरिश होगी।

*__एक माननीय सदस्यः__ इसका परिणाम क्या हुआ?

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ उन्होंने यह केवल कार्यसाधन की दृष्टि से किया। चूंकि उनके लिये अंग्रेजी का बिल्कुल ही परित्याग करना सम्भव नहीं था इसलिये उन्हें उसे दूसरी भाषा के रूप में स्वीकार करना पड़ा, किन्तु विधेयकों के संबंध में यह उपबन्ध रखा गया कि वे उस देश की भाषा, अर्थात् आयरिश, में ही उपस्थित किये जायें। साथ ही उसका अंग्रेजी में अनुवाद अथवा प्रतिरूप भी तैयार किया जाता था। यदि इन दोनों में कहीं भेद होता था तो आयरिश के पाठ को प्रामाणिक तथा अधिकृत समझा जाता था। इसलिये अपने संशोधन में मैंने

इस आशय का एक उपबन्ध रखा है कि हमें राज्य की भाषा में, चाहे वह हिन्दी हो या मराठी, विधि निर्माण की स्वतंत्रता होनी चाहिये और मूल मसौदे के साथ, जिसे हम विधि का रूप देंगे, अंग्रेजी का एक प्रामाणिक पाठ भी होना चाहिये और यदि इन दोनों में विभेद हो तो जहां अंग्रेजी की आवश्यकता हो वहां अंग्रेजी का पाठ प्रामाणिक समझा जाना चाहिये। परन्तु सभी प्रयोजनों के लिये हिन्दी का अथवा राज्य की भाषा का पाठ ही प्रामाणिक समझा जाना चाहिये। मेरे विचार से इस संबंध में हमें स्वतंत्रता होनी चाहिये। इस प्रयोजन के लिये अपनी भाषा प्रयोग करने में प्रान्तों के लिये कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि हम हिन्दी चाहते हैं तो हमें उसे अपनाने दीजिये हमारी स्वतंत्रता को सीमित न करिये।

अंकों के संबंध में सारी सभा में कुछ समय से बहुत उत्तेजना फैली हुई है और पंडित जी जैसे व्यक्ति ने हमसे कहा है कि जहां तक इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का संबंध है उनकी कई प्रयोजनों के लिये आवश्यकता है, और उनमें से कुछ को उन्होंने बताया भी है। कुछ सदस्यों ने, जिनमें मैं भी सम्मिलित हूं, अनुभव किया है कि उनकी भी आवश्यकता है। इस कारण हमने इस आशय का एक संशोधन रखा है कि कुछ प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी के अंक ही काम में लाये जायें अर्थात् लेखा-परीक्षा, बैंक कार्य के और अन्य प्रकार के कारोबारों के कार्य के संबंध में, अथवा राजकीय कार्य के संबंध में, यदि उनकी आवश्यकता हो तो उन्हें काम में लाया जाये। यदि इस अध्याय, अर्थात् अध्याय 14-क के प्रस्तावक महोदय इसे स्वीकार करते हैं तो हमारी कठिनाइयां दूर हो जानी चाहियें। इन्हें भाषा के प्रश्न के साथ मिला कर भ्रम उत्पन्न न किया जाये। हम सभी जानते हैं कि उन्हें समझना कठिन नहीं है। हिन्दी के अंक हिन्दी भाषा के अंग के रूप में प्रयोग किये जायें और जिन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंकों की आवश्यकता हो उन्हें स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जाये। इस संबंध में कोई कठिनाई नहीं है और इसी दृष्टि से मैंने अपना संशोधन बनाया है। मैं यह कहता हूं कि वे उन प्रयोजनों के लिये काम में लाये जायें जिन प्रयोजनों के लिये राष्ट्रपति आदेश द्वारा निदेश करे। इस प्रकार यदि आप अंग्रेजी अंकों को हिन्दी अंकों से पृथक् कर देते हैं तो कोई भ्रम नहीं रह जाता और मेरे विचार से यहां प्रत्येक व्यक्ति इसके लिये सहमत होगा। इससे इस समस्या का ही निराकरण हो जायेगा। किन्तु सभी यह समझ रहे हैं कि अंग्रेजी अंक राज-भाषा हिन्दी के अंग बनाये जा रहे हैं। इस सभा का यह उद्देश्य नहीं है। हम उन प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी के अंकों को काम में ला सकते हैं जिनके लिये उनकी आवश्यकता हो—इस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है और जो प्रान्त अपनी भाषाओं में अंग्रेजी के अंक लिखते हैं उनसे भी हमारा कोई झगड़ा नहीं है। वे उन्हें बराबर काम में लायें, किन्तु यदि वे इस पर भी जोर दें कि संघ की राज-भाषा अर्थात् हिन्दी में भी अंग्रेजी अंक काम में लाये जायें तो उनकी इच्छा पूर्ति के लिए मैंने यह उपबन्ध रखा है कि यदि किसी राजकीय संचार और पत्र-व्यवहार में अंग्रेजी अंक काम में लाना आवश्यक हो तो अंग्रेजी अंकों को काम में लाकर इन प्रान्तों के साथ व्यवहार किया जाये किन्तु भारत के अन्य भागों पर, जहां उनकी आवश्यकता न हो, वे न थोपे जायें। जहां तक हिन्दी भाषी प्रान्तों का संबंध है, उनके साथ जो संचार हो उसमें केवल हिन्दी के अंक ही काम में लाये जायें किन्तु जहां तक उन भागों का संबंध है,

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

जहां कि भाषाओं में अंग्रेजी अंक काम में लाये जाते हैं, उनके साथ जिस हिन्दी में व्यवहार हो उसमें केवल अंग्रेजी के अंक ही काम में लाये जायें। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि इसका हमसे कोई संबंध नहीं है।

***एक माननीय सदस्य:** यदि कोई प्रान्त हिन्दी को नहीं अपनाना चाहे तो क्या आप उसे इसकी स्वतंत्रता देंगे?

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** यह अखिल-भारतीय संघ कह सकेगा कि आप उसे अपनाना चाहते हैं या नहीं। यदि आप यह कहते हैं कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी संघ की भाषा होगी और यदि केन्द्र संसद यह निर्णय करे कि आपसे हिन्दी में व्यवहार होगा, तो केन्द्र आपसे इसी भाषा में व्यवहार करेगा। जहां तक प्रान्तों के लोगों का संबंध है आपके और हमारे बीच में कोई बात नहीं है। आप केन्द्र से जो चाहें तय करें। हम कहते हैं, यदि आप चाहते हैं तो अंग्रेजी अंकों को अपनाइये, अथवा हिन्दी अंकों को अपनाइये और हममें से वे लोग जो दोनों अंकों को अपनाना चाहते हैं दोनों को अपनायें, किन्तु जहां तक हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों का संबंध है, जहां हिन्दी प्रान्तीय भाषा अथवा राज-भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है, उन्हें अंग्रेजी अंकों को स्वीकार करने के लिये विवश न किया जाये, जब तक कि यह प्रान्त स्वयं यह निर्णय न करें कि अंग्रेजी के अंकों को उनकी भाषा का अंग बना लिया जाये।

इसलिये मैंने अपने संशोधन में दो खंड इस आशय के रखे हैं कि जहां तक अंग्रेजी अंकों का संबंध है उन्हें इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। यदि मूल संशोधन के प्रस्तावक महोदय इस संशोधन को स्वीकार कर लें तो अंकों की समस्या हल हो जायेगी। इस समस्या को हल करने के बारे में सुझाव रखा गया है और इस संबंध में उत्तर-भारत तथा दक्षिण-भारत के बीच कोई कलह नहीं है। मैं सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस भाषा के प्रश्न पर उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत की स्थिति की दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिये। जब तक हिन्दी भाषा को केन्द्र अथवा संघ स्वीकार नहीं करेगा तब तक वह एक प्रान्तीय भाषा ही रहेगी। आप किसी भाषा को भी राष्ट्र-भाषा अथवा राज-भाषा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। यदि आप चाहें तो वह हिन्दी हो सकती है, अथवा हिन्दुस्तानी हो सकती है, अथवा बंगला या मराठी हो सकती है, इन सभी भाषाओं के संबंध में प्रस्ताव रखे गये हैं, किन्तु जब एक बार आप किसी भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार कर लें तो आप फिर उसे प्रान्तीय भाषा न कहें। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि जब आप किसी भाषा को संघ की भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर देंगे तो वह आपकी तथा मेरी भाषा हो जायेगी और प्रान्तीय भाषा नहीं रह जायेगी। वह प्रान्तीय भाषा नहीं रह जायेगी और हमारा यह कर्तव्य हो जायेगा कि हम उसे अपनी पूरी शक्ति लगा कर सुसम्पन्न बनायें।

कई माननीय सदस्यों ने कहा है कि एक ही अर्थ में कई शब्द प्रयोग किये जाते हैं। वे कहते हैं कि पंडित सुन्दर लाल अमुक शब्द प्रयोग करते हैं और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हमारे मित्र सेठ गोविन्द जी उसी चीज के लिये दूसरा शब्द प्रयोग करते हैं, इत्यादि। शब्दों का कहीं अन्त नहीं है। यदि आप किसी

भाषा के शब्द-कोष को देखें तो आपको बहुत से शब्द ऐसे मिलेंगे जो समानार्थक होंगे और आपको इसकी स्वतंत्रता है कि आप जिस शब्द को भी चाहें प्रयोग करें। संस्कृत में भी अमर-कोष है, जिसमें अनेक शब्दों के पर्याय हैं। इसी प्रकार एक संस्कृत का शब्द, एक हिन्दी का शब्द, एक फारसी का शब्द और एक बंगला का शब्द समानार्थक हो सकते हैं। ये सभी शब्द एक ही भाषा के भी हो सकते हैं और जब ये कोष में रख दिये जायेंगे तो इन्हें हर कोई प्रयोग कर सकेगा।

इसलिये मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप विचार न करें कि हम इस भाषा को किसी पर थोप रहे हैं। सभा को इसकी स्वतंत्रता है कि वह जिस भाषा को भी चाहे स्वीकार करे। जब आप किसी भाषा को स्वीकार कर लें तो यह न समझें कि वह आप पर थोपी गई है। उस भाषा को आपने अपनी भाषा बनाया है और वह उतनी ही आपकी भाषा है जितनी कि वह मेरी है। इसके पश्चात् कोई प्रश्न ही नहीं उठता और कोई विवाद ही नहीं खड़ा होता। यह बताया जा चुका है, और मुझे इस संबंध में विश्वास है, कि यह सभा देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी को संघ की भाषा के रूप में स्वीकार करेगी। संघ जिन प्रयोजनों के लिये भी आवश्यक समझे अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को प्रयोग करे, और हिन्दी भाषा से उनका कोई संबंध न रहे, किन्तु यदि कुछ प्रान्तों को संतुष्ट करने की आवश्यकता समझी जाये तो संघ उनके प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंकों को प्रयोग करें। किन्तु भारत के अन्य भागों में, जहां की भाषा हिन्दी ही है और जहां इन अंकों की आवश्यकता नहीं है विशुद्ध हिन्दी ही चलन में रहे और उसका अंग्रेजी अंकों से कोई संबंध न रहे।

हमने पन्द्रह वर्ष की काल सीमा निश्चित की है। मैं दक्षिण भारत के अपने मित्रों से कहूंगा कि यदि वे यथाशीघ्र हिन्दी सीख लेंगे तो इससे उनका ही हित साधन होगा, क्योंकि यदि वे शीघ्र हिन्दी नहीं सीखेंगे तो वे पीछे रह जायेंगे। मैं यह साफ कहना चाहता हूं कि जहां तक मेरे दक्षिण भारत के मित्रों का संबंध है, वे बहुत बुद्धिमान हैं। वे बहुत पुरुषार्थी भी हैं और मैंने यह देखा है कि मेरे प्रान्त में कई विभागों में हमारे मद्रासी मित्र कार्य कर रहे हैं और वे उतनी ही योग्यता से कार्य कर रहे हैं जितनी योग्यता से वे लोग कर रहे हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और कहीं तो उनसे भी अधिक योग्यता से कार्य कर रहे हैं। स्थिति यह है। बहुत काल तक प्रशासक रहने के कारण मुझे जो अनुभव हुआ है उसके आधार पर मैं यह कह रहा हूं और मेरे विचार से मैं जिम्मेदारी के साथ बोल सकता हूं। मेरे प्रान्त में उनमें से बहुत से लोग हैं। यहां एक मित्र हैं जो एक समय हमारी प्रान्तीय सेवा में थे। वे हिन्दी तथा संस्कृत भी उतनी ही अच्छी तरह बोल सकते हैं जितनी अच्छी तरह अन्य कोई व्यक्ति। हमारे यहां मद्रासी असैनिक अधिकारी हैं, मद्रासी प्रान्तीय अधिकारी हैं और मैं आपको बताना चाहता हूं कि हमारे यहां एक विभाग ऐसा है जिसका काम सभी जगहों में हिन्दी में ही होता है, भले ही वह मराठी-भाषी जिला हो अथवा हिन्दी-भाषी जिला। उस विभाग में मराठी-भाषी लोग, तेलगू-भाषी लोग, पंजाबी, बंगाली तथा सभी प्रकार

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

के लोग हैं और साधारण कर्मचारियों से लेकर अधिकारियों तक सभी लोग उस विभाग में पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रहे हैं। यह विभाग आरक्षी विभाग है। ये विभिन्न प्रदेशों के रहने वाले कर्मचारी तथा अधिकारी योग्यता से कार्य करते हैं और हिन्दी भाषा में ही विभाग का कार्य करते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि यहां हमारे मित्रों को हिन्दी सीखने से इतना भय क्यों है।

*__एक माननीय सदस्यः__ हमें कोई भय नहीं है।

*__माननीय पं. रविशंकर शुक्लः__ उनके संकोच का कारण यह है कि उन्हें यह भय है कि उनके लिये रुकावटें पैदा कर दी जायेंगी। इसीलिये मैं यह कहता हूं कि आपका, हमारा तथा देश का हितसाधन इसी में है कि आप यथाशीघ्र हिन्दी सीखें क्योंकि तब आपके सामने कोई कठिनाई नहीं रह जायेगी और जिस प्रकार इतने काल तक आप हमारा साथ देते आये हैं उसी प्रकार हमारा साथ देते रहेंगे। आप कभी यह विचार न करें कि हिन्दी को यथाशीघ्र व्यवहार में लाने से हम किसी प्रकार की रुकावट पैदा करना चाहते हैं।

यहां मैं एक पुस्तिका लाया हूं, जिसे मुझे मेरे एक मित्र ने दिया है जो इस सभा के सदस्य हैं और उसमें कहा गया है कि बंगाल के महान समाज-सुधारक केशव चन्द्र सेन ने 1974 में एक लेख लिखा था, जो बंगाल के साप्ताहिक "सुलभ समाचार" में प्रकाशित हुआ था। उसमें यह प्रश्न पूछा गया था कि यदि एक भारतीय भाषा से भारत में एकता स्थापित नहीं की जा सकती तो उसे स्थापित करने का उपाय ही क्या है? एकमात्र उपाय यह है कि सारे भारत में एक ही भाषा प्रयोग की जाये। इस समय भारत में जो भाषाएं प्रचलित हैं उनमें से बहुत सी भाषाओं में हिन्दी का अंश है और हिन्दी लगभग सभी जगह प्रचलित है यदि हिन्दी को ही सारे भारत की भाषा बनाई जाये तो यह प्रश्न आसानी से हल हो सकता हैं मैं यह बताना चाहता हूं कि यह लेख बंगला में लिखा गया था और मैंने उस का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद पढ़ कर सुनाया है। यह लेख 1874 में लिखा गया था। इसमें एक प्रकार की भविष्यवाणी की गई थी क्योंकि आज हम इसी विषय पर विचार-विमर्श कर रहे हैं।

हिन्दुस्तानी, अथवा संस्कृत, अथवा किसी अन्य भाषा का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी के संबंध में मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस अध्याय के निर्माताओं ने यह अनुभव किया है कि हिन्दुस्तानी हिन्दी भाषा की एक शैली मात्र है। वास्तव में जो परिशिष्ट दिया गया है उसमें हिन्दुस्तानी का उल्लेख नहीं है। निदेश संबंधी खण्ड में हिन्दुस्तानी का एक रूप और शैली के नाम से उल्लेख किया गया है। इस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। हम उसे बड़ी खुशी से स्वीकार करेंगे तथा प्रयोग करेंगे। यह कहा जा चुका है कि कोई भाषा किसी संविधान को पारित करने से नहीं बनती। किसी भाषा के प्रेमी ही उसका निर्माण करते है। उसे हम यहां नहीं बना सकेंगे। इस सभा के बाहर जो लोग हैं वे ही उसे बनायेंगे, चाहे हम किसी प्रकार का संविधान क्यों न बनायें।

इसलिये मेरा निवेदन है कि इन चार कारणों से मेरे संशोधन स्वीकार कर लिये जायें। पहला कारण यह है कि इनसे भाषा का प्रश्न हल हो जाता है और दूसरा कारण यह है कि इनसे अंकों का प्रश्न भी हल हो जाता है। प्रान्तों को अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करने दिया जाये और "यदि", "परन्तु", "इसके अथवा उसके अधीन रहते हुए" शब्दों को रखकर उनके मार्ग में बाधा न डाली जाये। इन "यदि", "परन्तु" जैसे शब्दों को तथा परन्तुकों को निकाल दिया जाये और हमें अपना विकास करने की स्वतंत्रता दी जाये। हम आपको यह कर दिखायेंगे कि हमारे प्रान्त में दक्षिण भारत के हमारे मित्र पांच वर्ष में अन्य लोगों के समान ही हिन्दी आसानी से सीख जायेंगे। मेरे पास सामग्री है और अपने प्रान्त में मैंने जो विभाग खोला है उसमें मद्रासी मित्र भी काम कर रहे हैं। इसलिये मेरा निवेदन है कि उच्च न्यायालयों में भी राज-भाषा ही प्रयोग की जाये और यदि अन्यत्र अंग्रेजी भी प्रयोग की जाये तो हम अपने विधान-मंडल में अपने विधेयकों को अपनी इच्छानुसार राज-भाषा में ही पारित करने दिया जाये। इन चार कारणों से मैंने अपने संशोधन उपस्थित किये है और मुझे आशा है कि सभा उन्हें स्वीकार कर लेगी।

जहां तक अंकों का संबंध है, लेखों के विषय में समझौते की दृष्टि से मैंने और कोई चारा न देख कर यह स्वीकार किया है कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् भी विशेष प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी अंक काम में लाये जा सकते हैं। किन्तु मेरे प्रारम्भिक संशोधन का उद्देश्य यह है कि अनुच्छेद 301-क का खण्ड (3) निकाल दिया जाये।

हममें से वे लोग जो इस सभा के सदस्य हैं, तथा कांग्रेस के भी सदस्य हैं, कांग्रेस का अनुसरण करते आये हैं, कांग्रेस ने पन्द्रह वर्ष की अंतिम अवधि निश्चित की है और कहा है कि उसे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमें इस पर विचार नहीं करना चाहिये कि पन्द्रह वर्ष के पश्चात् क्या होगा। आने वाली पीढ़ियों के लिये उपबन्ध रखकर हम उन्हें बन्धन में नहीं डालना चाहिये। पन्द्रह वर्ष के पश्चात् हमारे जो प्रतिनिधि आयेंगे वे इसका निर्णय कर लेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिये। जहां तक हमारा संबंध है हम पन्द्रह वर्ष की अवधि निश्चित करते हैं। कांग्रेस ने यह आज्ञा दी है कि उत्तरोत्तर हिन्दी प्रयोग की जाये। मैंने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। पन्द्रह वर्ष में ही हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं। मेरा यह प्रस्ताव है कि दस वर्ष में हम आयोगों और समितियों का कार्य समाप्त कर दें। संसद इस संबंध में निर्णय करेगी कि किन उपायों तथा साधनों से हिन्दी को अधिक से अधिक पन्द्रह वर्ष में स्वीकार किया जा सकता है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव की भाषा के अनुरूप ही मैंने अपने संशोधनों की भाषा भी रखी है और मुझे आशा है कि यह सभा उन्हें स्वीकार करेगी।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल)**:** क्या कांग्रेस ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है कि हिन्दुस्तानी राज-भाषा होगी?

***माननीय पं. रविशंकर शुक्ल:** जहां तक कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव का संबंध है मेरे विचार से उसमें हिन्दुस्तानी शब्द प्रयोग नहीं किया गया है। उसमें

[माननीय पं. रविशंकर शुक्ल]

कहा गया है कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी राज-भाषा होगी। यदि किसी सदस्य महोदय के पास वह प्रस्ताव हो तो वे उसे माननीय सदस्य महोदय को दे दें।

***श्री राम सहाय** (संयुक्तराज्य, ग्वालियर और इंदौर): अध्यक्ष महोदय, श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो प्रस्ताव रखा है, उसका मैं समर्थन करते हुए सिर्फ इतना निवेदन करूंगा कि इसमें जो तीसरा चैप्टर है, मैं नहीं समझ सका कि उसके रखने की क्या अहमियत है, और उसकी क्यों जरूरत महसूस की गई। जब आफिशियल लैंग्वेज हिन्दी और देवनागरी स्कृष्ट मान ली गई है। साथ ही उसके जब उसे रिप्लेस करने के लिये 15 बरस की मियाद रखी गई है तो सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट्स के लिये किसी दूसरे तरीके पर अलहदा चैप्टर रखने और विचार करने की क्या आवश्यकता है। मैंने सिर्फ इसी वजह से इस प्रस्ताव में तीन अमेंडमेंट पेश किये हैं, जिसमें पहले का मतलब यह है कि तीसरे चैप्टर को अलग कर दिया जाये, दूसरे का तात्पर्य यह है कि जैसाकि धारा 301 (ए) में 15 साल की मियाद रखी गई है, उस तरह से इसमें भी 15 साल की मियाद रख दी जाये। तीसरे अमेंडमेंट का मतलब यह है कि धारा 301(एफ) में उन प्रान्तों के हाई कोर्ट्स को इससे मुस्तसना कर दिया जाये जहां हिन्दी को आफिशियल लैंग्वेज पहले से ही करार दे दिया गया है। मेरे इन तीनों तरमीमों का एक ही मकसद है, और वह यह है कि जहां जिन प्रान्तों में हिन्दी को मान लिया गया है और जिस समय हमारा विधान प्रभावशील होगा उस समय जिस प्रान्त में आफिशियल लैंग्वेज बना दी गई है वहां हिन्दी ही जरूरत रखनी चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि जब हमारा अल्टिमेट आबजेक्ट यह है कि हिन्दी आफिशिल लैंग्वेज रहे तो उन प्रान्तों को जिसमें हिन्दी डेवेलप हो चुकी है उनको फिर यह कहना कि तुम अंग्रेजी में कार्यवाही करो और बाद को हिन्दी में फिर शुरू करना, तो यह तो एक अजीब सी चीज होगी। इसलिये मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर से निवेदन करूंगा कि वह हमारी मुश्किलात पर अच्छी तरह से गौर करें और इस बात को देखें कि दरअसल उन प्रान्तों में जहां हिन्दी अच्छी तरह से डेवेलप हो चुकी है उनको अंग्रेजी सीखने को फिर मजबूर न किया जाये।

यह कहा जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट में जो हाई कोर्ट्स के फैसले जायेंगे, सुप्रीम कोर्ट के जजेज़ के हिन्दी न जानने से उनको कुछ दिक्कत होगी तो उसके लिये मैं निवेदन करूंगा कि उनके लिये ट्रांसलेशन का प्रबन्ध हो सकता है या ज्यादा से ज्यादा यह बात हो सकती है कि हाई कोर्ट्स जजेज़ को कहा जाये कि वह इंग्लिश में जजमेंट लिखें लेकिन सारी प्रोसीडिंग्स इंग्लिश में हो यह ठीक नहीं है। हमारे यहां मध्य भारत में जो धारा सभा का विधान है उसमें धारा सभा की लैंग्वेज हिन्दी रखी गई है। वहां सारी प्रोसीडिंग्स हिन्दी में होती है और तरमीम और प्रस्ताव पेश होते है वह सब हिन्दी में ही होते हैं। फिर इस सबको इंग्लिश में पेश करना शुरू करना व थोड़े समय बाद फिर हिन्दी में करना कहां तक ठीक है और यह एक बेमानी निर्रथक चीज होगी। हमारे यहां हाई कोर्ट का जो विधान हमने बनाया है उसमें हमने वहां हाई कोर्ट की लैंग्वेज हिन्दी रखी

है। फिर मैं नहीं समझता कि इस तरह से हमें इस बात के लिये मजबूर किया जाये कि हम हिन्दी को, जिसको हमने डेवेलप किया है, जिसको हमने सीखा है उसको हम भुला कर अंग्रेजी शुरू करें और अंग्रेजी के बाद फिर हिन्दी में शुरू करें। मैं एक बात खासतौर पर निवेदन करना चाहता हूं कि ग्वालियर में सन् 1901 से हिन्दी की शुरुआत हुई है, उसके बाद सन् 1902 में वहां के तमाम नक्शेजात और जितने स्टेटमेंट्स तैयार होते थे वह सब हिन्दी में तैयार होने लगे। उसके बाद सन् 1919 में वहां को सब कारस्पांडेंस, सिवाय फौरेन और रेजीडेंसी के, हिन्दी में होती थी। अब तो सारी कार्रवाई हिन्दी में ही होने लगी है। इतना ही नहीं इसके बाद जब मध्य भारत यूनियन बनी तो मध्य भारत की बहुत सी रियासतों में अभी तक उर्दू चलती थी, अब वहां भी हिन्दी कर दी गई है। अब फिर उसे अंग्रेजी में शुरू करना वहां तक उचित होगा। इन सब बातों पर खासतौर पर गौर करने की जरूरत है।

अभी शुक्ल जी ने यह फरमाया था कि उन्होंने अपने प्रान्त में ट्रांसलेशन करने के लिये एक कमेटी बनाई है लेकिन उन्होंने उसे अभी कुछ समय से ही बनाया है। लेकिन मैं हाउस की वाकफियत के लिये यह बता देना चाहता हूं कि मध्य भारत में, ग्वालियर स्टेट में, दस साल से कोडिफिकेशन का महकमा मुकर्रर है और उसमें भारत में जितने कानून हैं, जैसे एवीडेंस एक्ट, कांट्रेक्ट एक्ट, क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड, ट्रांसफर ऑफ प्रापर्टी एक्ट वगैरह जितने भी कानून हैं करीब उन सबको ही हिन्दी में ट्रांसलेट कर लिया है और वहां की भाषा भी सरल हिन्दी ही है और वह इतनी अच्छी है कि मैं उसके कुछ कोटेशन्स आपको सुनाता तो आप उसे अवश्य पसन्द करते। पर मैं हाउस का समय नहीं लेना चाहता। जहां हम 50 साल से प्रयत्न कर रहे हैं और जहां हमने दस साल में सब कानूनों को अंग्रेजी से हिन्दी में ट्रांसलेट कर लिया है वहां सारे काम फिर से अंग्रेजी में शुरू नहीं होने चाहियें। अभी मध्य भारत की धारा सभा की तीन बैठकें हुई हैं। उनमें जो 68 बिल पास हुए हैं वे सब हिन्दी में पास हुए हैं। हम यह जरूर करते हैं कि हिन्दी के साथ उसका अंग्रेजी वरशन भी लगा देते हैं, लेकिन मान्यता हिन्दी वरशन को ही दी जाती है न कि अंग्रेजी को। अगर कोई ज्यादा से ज्यादा कैद लगाई जा सकती है तो वह यह है कि हम यूनियन के परपेजेज़ के लिये अंग्रेजी का प्रमाणिक वरशन भी दें, लेकिन यह कहना कि बिल इत्यादि सब अंग्रेजी में ही पास किये जायें यह कोई अच्छी चीज़ नहीं है।

मुझे कुछ सदस्यों से बात करने से यह पता चला कि उनका यह ख्याल है कि अभी हिन्दी इतनी अच्छी तरह डेवेलप नहीं हुई है कि उसमें अच्छी तरह ख्यालात का इजहार किया जा सके। मैं निवेदन करूंगा कि यह ख्याल सही नहीं है। ग्वालियर रियासत में इतना ही नहीं कि हिन्दी को आफिशियल लैंग्वेज 50 साल से बनाया है बल्कि 25 साल से तो रिसाला कानून, यानी ला रिपोर्टर, माहवारी निकल रहा है और उसमें हाई कोर्ट के खास-खास फैसले निकलते हैं। इस रिसाले के अलावा अब दस साल से एक दूसरा ला रिपोर्टर निकल रहा है जिसमें भी हाई कोर्ट के फैसले मासिक निकलते हैं। मैं यह अर्ज करूंगा कि जहां करीब 50 साल से हिन्दी शुरू की गई है और हिन्दी डेवेलप हो गई है, वहां फिर से अंग्रेजी को लाना कोई मुनासिब चीज नहीं होगी।

[श्री राम सहाय]

इस वक्त ज्यादातर कंट्रोवर्सी न्यूमरल्स पर चल रही है। न्यूमरल्स के संबंध में मैं एक बात स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि यह बात कोई अच्छी तो नहीं मालूम देती कि हिन्दी में अंग्रेजी न्यूमरल्स का इस्तेमाल हो, लेकिन आज जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसको मद्देनजर रखते हुए मैं यह मानता हूं कि उनके मान लेने से हमें कोई आपत्ति नहीं करनी चाहिये, और जैसा हमारे साउथ इंडियन मित्र चाहते हैं कि इंटरनेशनल न्यूमरल्स रहें, जो दरअसल में हिन्दुस्तान के ही हैं तो मैं, अध्यक्ष महोदय, हाउस से अपील करूंगा कि उनको मान लेने में कोई आपत्ति करना उचित नहीं, उन्हें स्वीकार ही कर लेना चाहिये। इसलिये मैंने कोई तरमीम न्यूमरल्स के संबंध में नहीं रखी। जहां मैं श्री गोपालस्वामी आयंगर के प्रस्ताव का, तीसरे चैप्टर को छोड़ कर पूरा समर्थन करता हूं वहां मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि वह अपने प्रोपोजल में कोई ऐसी व्यवस्था रखें जिससे कि जिन प्रान्तों में हिन्दी चालू है और बहुत कुछ डेवेलप हो चुकी है, उसको न हटाया जाये। मैं उनसे यह निवेदन करूंगा कि हमारे यहां की हिन्दी की उन्नति उनको यूनियन की हिन्दी भाषा बनाने में बहुत सहायता करेगी। लेकिन अगर उन्होंने यही चाहा कि नहीं वहां सारी कार्यवाही अंग्रेजी में ही होनी चाहिये तो मैं उनसे कहूंगा कि यह हमें बहुत पीछे ले जाना होगा और उसका नतीजा यह होगा कि हिन्दी अच्छी तरह डेवेलप नहीं हो पायेगी। इसलिये मेरा यह नम्र निवेदन है कि इस मसले पर अच्छी तरह विचार करके वह कोई ऐसी व्यवस्था अपने प्रोपोजल में करें, चाहे मेरे अमेंडमेंट को स्वीकार करें या किसी और मित्र के अमेंडमेंट को स्वीकार करें, या कोई नया अमेंडमेंट इस आशय का स्वीकार करें, किन्तु ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दें कि जिसमें उन प्रान्तों में जहां कि हिन्दी अच्छी तरह से प्रचलित है और जहां 50 साल से सारी कार्यवाही हिन्दी में हो रही है, सारे कानून हिन्दी में बन चुके हैं, जहां आफिसेज में सारी कार्रवाई हिन्दी में होती है वहां से हिन्दी को न हटाया जाये क्योंकि वहां उसकी प्रोग्रेस को रोकना किसी तरह मुनासिब नहीं होगा।

इसलिये में ज्यादा वक्त न लेते हुए अपनी तरमीम के बारे में यह निवेदन करूंगा कि वह उसे किसी न किसी रूप में मान लें ताकि मेरे तरमीमों का मकसद पूरा हो जाये।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 14 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.34.49
320

अंक 9
संख्या 34

बुधवार,
14 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रिवी परिषद् क्षेत्राधिकार समाप्ति विधेयक 2219

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[नये भाग 14-क (भाषा) पर विचार] 2219–2332

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 14 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रात: 9 बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रिवी परिषद् क्षेत्राधिकार समाप्ति विधेयक

*__अध्यक्ष:__ कार्यावली पर पहली मद डॉ. अम्बेडकर के एक प्रस्ताव की सूचना है कि वे सपरिषद् बादशाह महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने का विधेयक पेश करना चाहते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं भारतीय अपीलों तथा याचिकाओं के संबंध में सपरिषद् बादशाह महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने का एक विधेयक पेश करने की अनुमति चाहता हूं।

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"That leave be granted to introduce a Bill to abolish the jurisdiction of His Majesty in Council in respect of Indian appeals and petitions."

[कि भारतीय अपीलों तथा याचिकाओं के संबंध में सपरिषद् बादशाह महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने का विधेयक पेश करने की अनुमति दी जाये।]

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं विधेयक को पेश करता हूं।

संविधान का मसौदा—जारी

नया भाग 14-क (भाषा)—*जारी*

(अनेक सदस्य बोलने खड़े हुए)

*__अध्यक्ष:__ श्रीमती जी. दुर्गाबाई।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्, कि क्या हमें प्रत्येक बार आपकी दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा में खड़ा होना चाहिये या कोई ऐसा अन्य उपाय है जिससे उन्हें अवसर मिल सके जिन्हें संशोधन पेश करने हैं?

*__अध्यक्ष:__ मैं यथासम्भव अधिकाधिक सदस्यों को अवसर देने का प्रयत्न करूंगा

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

पर मेरे लिये यह वचन देना कठिन है कि प्रत्येक सदस्य को अवसर मिल जायेगा। मैं अभी सारी स्थिति को स्पष्ट कर देता हूं। कल, मैंने गणित फैलाया था कि कितनी वक्तृतायें हुईं और उन पर कितना समय लगा, और औसत 22 मिनट प्रतिवक्तृता आया। आज मैं नहीं जानता कि सदन कितनी देर बैठना चाहेगा। पहले हमने दो दिन, बल्कि 14 घंटे रखे थे, जिसमें से हम 10 घंटे अब तक व्यय कर चुके हैं। हमारे पास 4 घंटे शेष हैं, अब से 1 बजे तक। यदि सदन एक बजे तक समाप्त करना चाहता है तो यह आवश्यक है....

*__श्री जयनारायण व्यास__ (संयुक्तराज्य राजस्थान): मैं एक बात जानना चाहता हूं, उन संशोधनों की क्या स्थिति है जो सदन के समक्ष नहीं आये?

*__अध्यक्ष:__ प्रत्येक संशोधन सदन के समक्ष है।

*__श्री जयनारायण व्यास:__ किन्तु उन पर विचार नहीं हुआ।

*__अध्यक्ष:__ अब, बहस समाप्त होने के पश्चात् 300 संशोधनों पर मत लेने के काम में ही एक घंटा लग जायेगा। यदि हम 1 बजे तक समाप्त करना चाहें तो वह समय भी इन 4 घंटों में से ही निकालना है और शायद इसका उत्तर भी दिया जायेगा।

*__सेठ गोविन्द दास__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मेरी प्रस्थापना है कि हमें वक्तृताओं के लिये समय बढ़ा देना चाहिये और मतदान सायंकाल 6 और 7 के बीच होना चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ यदि सदन की यह इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं कोई अड़ंगा नहीं लगाऊंगा। मैं इस मामले में सदन की इच्छा जानना चाहता हूं।

*__सरदार हुकम सिंह:__ अनेक संशोधन ऐसे हैं जो बिल्कुल पेश ही नहीं हुए हैं। क्या उन्हें कोई समय मिलेगा?

*__अध्यक्ष:__ जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं यहां प्रत्येक विचार के प्रतिनिधि को अवसर देने का प्रयत्न कर रहा हूं, किन्तु यदि कोई ऐसे हों जो छूट जायें तो वे मुझे याद दिला सकते हैं और मैं उन्हें अवसर दे दूंगा।

*__सेठ गोविन्द दास:__ यह मामला इतना महत्वपूर्ण है कि मैं आपसे फिर प्रार्थना करना चाहता हूं कि आप समय को सायंकाल तक बढ़ा दीजिये।

*__अध्यक्ष:__ यदि सदन की ऐसी इच्छा हो तो मुझे कोई वैयक्तिक आपत्ति नहीं होगी। क्या मैं जान सकता हूं कि क्या सदन समय को सायंकाल तक बढ़वाना चाहता है?

*__कई माननीय सदस्य:__ हां।

*अध्यक्ष: मेरे विचार में 'हां' वाले जीत गये। श्रीमती दुर्गाबाई, क्या मैं आप से निवेदन कर सकता हूं कि आपको जो दृष्टिकोण पेश करना है उसे अन्य वक्ता पेश कर चुके हैं और शायद और भी हों। अत: मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप सबसे महत्वपूर्ण बातें ही कहें।

*श्रीमती जी. दुर्गाबाई (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, भारत की राष्ट्रभाषा का प्रश्न, जो कुछ समय पहले तक लगभग सहमत प्रस्थापना था, अब अकस्मात् एक अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न बन गया है। ठीक कहिये या गलत, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों में ऐसी भावना उत्पन्न कर दी गई है कि हिन्दी भाषा क्षेत्रों की ओर से यह संघर्ष या दृष्टिकोण इस राष्ट्र की मिश्रित संस्कृति पर भारत की अन्य शक्तिशाली भाषाओं के स्वाभाविक प्रभाव को पड़ने से रोकने का संघर्ष है। मैंने कुछ माननीय सदस्यों को, जो हिन्दी और हिन्दी अंकों के समर्थक हैं, यह कहते सुना है, "आपने लगभग 90 प्रतिशत हमारी बात मान ली है; अत: शेष 10 प्रतिशत को मानने में क्यों हिचकिचाते हो।" क्या मैं उनसे पूछ सकती हूं कि हमने यह बात स्वीकार करने में कितना त्याग किया है? कुछ मित्रों ने कहा, "आपने कुछ भी त्याग नहीं किया है। आपको स्वीकार करना है। आपको करना होगा।" अहिन्दी भाषी लोगों से अपनी बात पूर्णत: मनवाने के लिये उनसे ऐसे बात की जाती है।

श्रीमान्, भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त, जो हिन्दी तथा उर्दू का योग है, कुछ और नहीं होनी चाहिये और कुछ और हो भी नहीं सकती है। हमारे लिये यह कम त्याग की बात नहीं है कि, हमारे उन मित्रों की भावनाओं को सन्तुष्ट करने के लिए जिन्होंने देवनागरी लिपि में हिन्दी को स्वीकार कर लिया है, हमें उस सिद्धान्त का त्याग करना पड़ रहा है जिसके लिये हम अब तक लड़े हैं और जिये हैं। यह त्याग हमारे लिये बहुत बड़ी असुविधा है और हमें बहुत दु:ख है कि हम गांधी जी के इस सहिष्णुतापूर्ण सिद्धान्त को, गांधी जी के इस दर्शन को और गांधी जी की इस बात को छोड़ने के लिये तैयार हो गये हैं कि भारत की राजभाषा वह होनी चाहिये जिसे सब समझते हैं और आसानी से बोल और सीख सकते हैं। श्रीमान्, हमने यह त्याग किया है।

कदाचित् टण्डन जी, सेठ गोविन्द दास जी आदि नहीं जानते और उन्हें पता नहीं है कि दक्षिण में हिन्दी भाषा का कितना प्रबल विरोध हुआ है। विरोधी यह समझते हैं, शायद ठीक ही समझते हैं, कि यह हिन्दी के पक्ष का आन्दोलन प्रान्तीय भाषाओं की जड़ खोदना है और यह प्रान्तीय भाषाओं और प्रान्तीय संस्कृति के विकास के लिये गम्भीर बाधा है। श्रीमान्, दक्षिण में हिन्दी विरोधी आन्दोलन बहुत प्रबल है। मेरे मित्र डाक्टर सुब्बरायन ने इस विषय में कल विस्तृत बातें बताई थीं। किन्तु, हमने हिन्दी के समर्थकों ने क्या किया? हमने विकट आन्दोलन का सामना किया और दक्षिण में हिन्दी का प्रचार किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पण्डितों ने भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की आवश्यकता समझी, उससे बहुत पहले, हमने दाक्षिणात्यों ने महात्मा गांधी के आदेश का पालन किया और दक्षिण में हिन्दी प्रसार आरम्भ किया था। हमने पाठशालायें चालू कीं और हिन्दी कक्षायें आरम्भ कीं। इस प्रकार बहुत असुविधा से हम हिन्दी के प्रचार और शिक्षा में बहुत पहले ही लग गये थे।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

श्रीमान्, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारक सभा के प्रयत्नों के अतिरिक्त, मुझे इस संबंध में दक्षिण की स्त्रियों और बच्चों को भूरि-भूरि प्रशंसा करनी चाहिये कि वे हिन्दी सीखने में बहुत लगन से और सच्चे दिल से लगे रहे। श्रीमान्, गांधी जी के प्रयत्नों और प्रभाव से महाविद्यालयों के विद्यार्थियों में ऐसा जोश था कि दिन भर महाविद्यालयों में कठोर श्रम करने के पश्चात् वे इस भाषा को सीखने के लिये सायंकाल हिन्दी कक्षाओं में आते थे। केवल विद्यार्थी ही नहीं, वकील न्यायालय के समय के पश्चात् पदाधिकारी अपना कार्यालय का कार्य समाप्त करने के पश्चात्, सायंकाल, मनोरंजन स्थानों पर न जाकर, हिन्दी कक्षाओं में आकर हिन्दी सीखते थे। मैं आपको यह बात इसलिये कह रही हूं कि मैं यह सिद्ध करना चाहती हूं कि हमने महात्मा जी के आदेश और अनुरोध पर हिन्दी प्रचार का कार्य कितने सच्चे दिल से और ईमानदारी से आरम्भ किया था।

मेरे मित्रों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह सब कुछ हमने राष्ट्रीय भावनाओं को पूरी करने के लिये स्वेच्छा से किया था। इस संबंध में मैं सेठ जमना लाल बजाज द्वारा 1923 में वहां जाने का निर्देश करना चाहती हूं। उस वर्ष, जब सेठ जी कांग्रेस सत्र के लिये कोकानाडा गये थे तब वे कुछ महिला संस्थाओं को देखने गये थे और उन्होंने वहां सैकड़ों महिलाओं को हिन्दी पढ़ते देखा था। याद रखिये, श्रीमान्, यह बात 1923 की है, इसे कोई ढाई दशाब्दियां बीत गई हैं। सेठ जी महिलाओं को हिन्दी सीखती देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उस संस्था को एक महान् राशि दान देना चाहा। पर संस्था ने उस दान को यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि "हम भी यह अनुभव करते हैं कि हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। अत: हम अपने ही प्रयत्नों से इस पाठशाला को चला रहे हैं।" हमने इसी भावना से कार्य किया था।

अब इसका परिणाम क्या है? अब मुझे आश्चर्य है कि हमने इस शताब्दी के आरम्भ में जिस जोश के साथ हिन्दी अपनाई थी उसके विरुद्ध इतना आन्दोलन हो रहा है। श्रीमान्, अहिन्दी भाषी लोगों की भावनाओं में कटुता लाने का कारण आपका यह दृष्टिकोण है कि आप शुद्धत: एक प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं। मुझे भय है कि इससे निश्चय ही उनके भावों और भावनाओं पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जिन्होंने पहले ही देवनागरी लिपि में हिन्दी को स्वीकार कर लिया है। संक्षेप में, श्रीमान्, उनके इस अत्यधिक और कुप्रयुक्त प्रचार के कारण मेरे समान लोगों का समर्थन भी अब प्राप्त नहीं रहा है जो हिन्दी जानते हैं और हिन्दी के समर्थक हैं और नहीं रहेगा।

मैं पहले ही कह चुकी हूं कि राष्ट्रीय एकता के हितार्थ हिन्दुस्तानी ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है। हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे सावधानी और उदारता से काम लें क्योंकि यहां जो अल्पसंख्यक हैं, उन्हें मुस्लिमों के समान, अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के लिये समय चाहिये। श्रीमान्, वे बहुव्यापी भावना को अपनाने के लिये उदारता से एकदम राजी हो गये हैं। साहित्य की उच्चता और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की दृष्टि से तो बंगला ही राष्ट्र भाषा बनने के योग्य है। माधुर्य की दृष्टि से तथा इस आधार पर कि वह भारत में बोली

जाने वाली भाषाओं में संख्या के हिसाब से दूसरी श्रेणी की भाषा है, तेलुगु भारत की राष्ट्र भाषा बनने के योग्य हो सकती थी। श्रीमान् हमने अपना तेलुगु का दावा छोड़ दिया हैं हमने उसके पक्ष में एक शब्द नहीं कहा है। हमने उसका समर्थन नहीं किया है। हमने यह सुझाव नहीं दिया है कि इनमें से किसी प्रान्तीय भाषा को हमारे देश को राष्ट्र भाषा बनाया जाये।

अब, श्रीमान्, जब हमने यह त्याग कर दिया है तब आप आकर कहते हैं कि एक और त्याग कीजिये और 100 प्रतिशत में से शेष 5 प्रतिशत को भी मानिये और हिन्दी अंकों को स्वीकार करिये। मुझे कहना होगा—मुझे ऐसा कहने में हिचक है पर कहना ही होगा कि यह तो भाषा-अत्याचार और असहिष्णुता की हद है। हम हिन्दी को देवनागरी लिपि में स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये हैं, पर मैं सदन को स्मरण कराना चाहती हूं कि हम कुछ खास शर्तों पर ही देवनागरी में हिन्दी को स्वीकार करने के लिए सहमत हुए हैं। पहली शर्त यह है, भाषा का नाम चाहे कुछ भी हो—मैं हिन्दी और हिन्दुस्तानी विवाद पर कुछ नहीं कहना चाहती—आप उसका नाम कुछ भी रखें पर वह सर्वसमाविष्ट होनी चाहिये और इसलिये श्री गोपालस्वामी आयंगर के मसौदे का सम्बद्ध खण्ड सदन को स्वीकार्य होना चाहिये और सदन को नि:संकोच और एकमत होकर उस खण्ड को स्वीकार कर लेना चाहिये। वह भाषा उन शब्दों को ग्रहण करने में सक्षम होनी चाहिये जो इस समय प्रयोग में हैं चाहे वे उर्दू के हों या किसी अन्य भाषा के हों। तभी हमें यह विश्वास होगा कि आप हमें उसे राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिये कह रहे हैं और मध्य प्रदेशीय या उत्तर प्रदेशीय हिन्दी के विशेष रूप के लिये नहीं कह रहे हैं।

दूसरी शर्त यह है, जो इतनी ही महत्वपूर्ण है, कि कम से कम पन्द्रह वर्ष के लिये विद्यमान स्थिति को बनाये रखना होगा, जिससे कि हम उसे सीख सकें और बोल सकें और नई परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को ढाल सकें। हिन्दी क्षेत्रों के लोग इस बात को भी मानने के लिये तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं "आप में से कुछ लोग हिन्दी जानते हैं अत: उस पर कल से या यथा सम्भव अल्पतम काल में अमल करने लगिये।" मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है: "हमारी जिन्दगी में हिन्दी कभी नहीं राष्ट्रभाषा बनेगी।" मैं आपसे पूछती हूं। श्रीमान्, क्या हम इस संविधान को अपने ही लिये और अपने जीवन के ही लिये बना रहे हैं? हमारी संतान और आने वाले वंशजों का क्या होगा? क्या वे इस पर आचरण नहीं करेंगे? मैं अपने वैयक्तिक अनुभव से बात कर रही हूं। मैंने हिन्दी सीखी, मैंने दक्षिण में कम से कम सैकड़ों महिलाओं को हिन्दी सिखाई। मेरा अनुभव यह है: जिन्होंने हिन्दी में उच्चतम परीक्षायें पार की हैं वे लिख सकते हैं पढ़ सकते हैं, पर उनके लिये बोलना असम्भव है, क्योंकि बोलने के लिये खास प्रकार का वातावरण चाहिये, वैसा आवेष्टन चाहिये। दक्षिण में हमें ऐसा वातावरण कहां मिलता है? हमने जो कुछ सीखा है उसे बोलने के लिये हमें दक्षिण में कहीं भी अवसर प्राप्त नहीं होते। आप इस कठिनाई को तब समझेंगे जब आप दक्षिण में आयें और वहां कोई प्रान्तीय भाषा बोलें। अत: धैर्य धरिये और सहिष्णुता तथा सहनशीलता पैदा करिये। हम आपसे इन्हीं चीजों की मांग करते हैं।

तीसरी शर्त जो श्री गोपालस्वामी आयंगर के मसौदे में स्पष्ट नहीं है वह यह है कि अहिन्दी भाषी लोगों के लिये हिन्दी बोलने की बाध्यता की जा रही है।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

आपके लिये भी एक प्रान्तीय भाषा सीखने की इतनी ही बाध्यता होनी चाहिये। कोई बात नहीं है चाहे वह बंगला हो, तामिल, तेलुगु या कन्नड़ या कोई अन्य भाषा हो। कल इस विषय पर बोलते हुए डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने काफी कुछ कहा है और उन्होंने उस प्रस्ताव का निर्देश किया है जो साहित्य सम्मेलन ने अभी दिल्ली में अपने अधिवेशन में पारित किया था। हम ध्यान से देखेंगे कि प्रान्तों के मुख्य मन्त्री, जिन्होंने उसे पारित करवाया था, उस प्रस्ताव को कैसे क्रियान्वित करते हैं।

अंकों के प्रश्न पर, मैं कुछ नहीं कहना चाहती क्योंकि पर्याप्त कहा जा चुका है। आप स्थिति की गम्भीरता को समझ चुके होंगे। इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमें भावना का प्रश्न नहीं होना चाहिये और किसी के लिये यह धर्म का प्रश्न नहीं होना चाहिये। यदि आपके लिये वह धर्म है तो हमारे लिये भी यह धार्मिक मन्त्र बन जायेगा कि हम ऐसी भाषा को स्वीकार न करें जो हमारी नहीं है, जो केवल एक प्रान्तीय भाषा है जो काफी विकसित नहीं है। अतः किसी को यह बात नहीं करनी चाहिये कि यह उसके लिये धर्म है।

श्रीमान्, दूसरा प्रश्न जिसके विषय में मैं बोलना चाहती थी वह यह है कि अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हमें हिन्दी सीखनी पड़ेगी जिसे हमने राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है। हमारी थैली बहुत छोटी है और हम अपने प्रान्तों में निरक्षरता को दूर करने के लिये पहले ही बहुत खर्च कर रहे हैं। अतः केन्द्र का यह कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व है कि वह अहिन्दी भाषी क्षेत्रों वाले प्रान्तों को इस हिन्दी के विकास तथा प्रचार के लिये काफी अनुदान दे।

श्रीमान्, आपने मुझे बोलने का अवसर दिया है और मुझे सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहिये। कृपया याद रखिये कि हम हिन्दी को उन्हीं शर्तों पर स्वीकार कर रहे हैं जिनका मैंने उल्लेख किया है। आपका यह कर्तव्य है कि आपको श्री गोपालस्वामी आयंगर का मसौदा स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। हम भी उसके कुछ उपबन्धों से सहमत नहीं हैं, किन्तु हमने उसे स्वीकार कर लिया है, और इसलिये आपको उसे स्वीकार करने में और उसका समर्थन करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये। धन्यवाद, श्रीमान्।

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आरम्भ में ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं अपने मित्र, श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्तावित संशोधन का समर्थन करने खड़ा हुआ हूं, यह बात नहीं है कि मैं उस संशोधन के प्रत्येक खण्ड से और प्रत्येक बात से सहमत हूं—यह तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि वह निबटारे का सूत्र है, और जब हम निबटारे पर आते हैं तो हम जो चाहते हैं वह बात सौ प्रतिशत पूरी नहीं हो सकती।

***माननीय पं. रवि शंकर शुक्ल** (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): यह निबटारे का सूत्र नहीं है। इसे किसी ने नहीं माना है।

***श्री शंकरराव देव:** हो सकता है कुछ ने न माना हो, तो मुझे पता लगा है कि कइयों ने मान लिया है। मेरा कहना यह है कि इसमें कई बातें ऐसी हैं जो मुझे पसन्द नहीं है या जिन्हें मैं अच्छी नहीं समझता। फिर भी, मैं समझता

हूं कि यह विद्यमान वस्तुस्थिति में इस समस्या का सर्वोत्तम हल है। अतएव, जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं उसका समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं। मैंने स्वयं कुछ संशोधन पेश किये हैं और सदन से उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना करना चाहता हूं, क्योंकि उनसे इस संशोधन का मूल तत्व तो बदलेगा नहीं और इसमें सुधार हो जायेगा जिससे हममें से कुछ लोग इसे अधिक स्वेच्छा से स्वीकार कर सकेंगे।

श्रीमान्, जैसाकि आपने स्वयं कहा है, भाषा के इस प्रश्न से हमारे दिमागों में बहुत उत्तेजना है, जो मेरे विचार में, आजादी के ही प्रश्न से अगले दर्जे पर हैं, क्योंकि यह प्रश्न इस राष्ट्र के भावी विकास और उन्नति के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मेरे पूर्ववर्ती वक्ता व्यक्ति या राष्ट्र के निर्माण और विकास में भाषा के महत्व पर बहुत कुछ कह चुके हैं। मेरे लिये, मेरी माता के बाद, भाषा ही सबसे अधिक प्रिय है, क्योंकि मेरी माता ने नि:संदेह मुझे जन्म दिया है, पर मैं आज जो कुछ हूं, वह भाषा के कारण ही हूं। इसी कारण हममें से बहुत से इस बात को पसन्द नहीं करते, फिर भी इस विवाद से हमारे अन्त:स्थल तक हलचल मच गई है और भावनायें उत्तेजित हो गई हैं और कई बार हमारा विवेक आवरित हो गया है। मैं अपने दाक्षिणात्य भाइयों से तथा उत्तर देशीय भाइयों से भी प्रार्थना करूंगा कि वे इस प्रश्न पर आवेश या भावुकता के दृष्टिकोण से विचार न करें। हमें यथासम्भव उपादेयता के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये; हमें इस प्रश्न पर बुद्धि से काम लेना चाहिये।

हमारा क्या उद्देश्य है? हमें बताया गया है कि हमें अपने देश के लिये एक भाषा चुननी है। अगला प्रश्न यह है, इस भाषा से हमें क्या मिलेगा और उसके क्या कृत्य होंगे? हमें बताया जाता है कि हमारे पास अंग्रेजी का स्थान लेने के लिये एक भाषा होनी चाहिये। सब सहमत हैं कि अंग्रेजी की वही स्थिति नहीं रह सकती जो कि गत एक शताब्दी या उससे अधिक समय से रही है जबकि इस देश पर अंग्रेजों का शासन था। मुझे इस प्रश्न पर बोलने की आवश्यकता नहीं है कि उस भाषा का क्या महत्व है, अथवा, क्या भविष्य में उस भाषा को इस देश के प्रशासन, विज्ञान की विविध शाखाओं, उन्नति आदि में अच्छा और उपयुक्त स्थान मिलना चाहिये। किन्तु सब सहमत हैं कि अंग्रेजी के स्थान पर कोई अन्य भाषा रखनी है, मतभेद इसी बात पर है कि अंग्रेजी के स्थान पर कौन सी भाषा आये और उसके क्या क्या कृत्य हों।

वे हमसे एकता के नाम में, संस्कृति के नाम में अपील करते हैं कि इस देश की एक भाषा होनी चाहिये। वे कहते हैं कि जब तक इस देश की एक भाषा नहीं होगी तब तक एकता और एक संस्कृति नहीं हो सकती और यदि इस देश में एकता और एक संस्कृति नहीं होगी तब तक इस देश का भविष्य अंधकारमय रहेगा। एक ही सांस में हमें बताया जाता है कि प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति होनी चाहिये। कार्यसमिति के प्रस्ताव में कहा गया है कि यद्यपि अंग्रेजी के स्थान पर कोई अन्य भाषा रख दी जायेगी पर जहां तक प्रादेशिक भाषाओं का संबंध है केवल उनकी रक्षा ही नहीं की जायेगी, उनके अस्तित्व को ही नहीं रखा जायेगा, वरन् उनकी उन्नति भी की जायेगी। कार्यसमिति के प्रस्ताव में जो हाल ही में पारित हुआ था लिखा है:–

"प्रान्तों या राज्यों में, जहां अनेक भाषायें बोली जाती हैं, इनमें से कई भाषायें उन्नत हैं और उनका मूल्यवान साहित्य है। उनकी केवल रक्षा ही नहीं होनी

[श्री शंकरराव देव]

चाहिये, वरन् उनका और भी विकास तथा उन्नति होनी चाहिये और उनकी वृद्धि को रोकने वाली कोई कार्यवाही नहीं होनी चाहिये।"

मेरी समझ में नहीं आता कि ये दोनों बातें साथ-साथ कैसे हो सकती हैं। मेरे विचार में हम दो मन से बात कर रहे हैं। हम यह आशा नहीं कर सकते कि समूचे देश के लिये एक भाषा भी बना लें और साथ ही प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति के लिये कार्य भी करें और यह भी कहें कि उनका अस्तित्व बना रहना चाहिये और राष्ट्रीय ढांचे अथवा जीवन में उनका स्थायी स्थान होना चाहिये। मैंने यह समझने का यथासम्भव प्रयत्न किया है कि ये दोनों बातें साथ कैसे हो सकती हैं पर मैं समझ नहीं सका। यदि आप सच्चे हृदय से विश्वास करते हैं कि इस देश के लिये एक भाषा की आवश्यकता है तो सब प्रान्तीय भाषायें समाप्त हो जानी चाहियें चाहे उनका भूत कुछ हो, वर्तमान स्थिति कुछ भी हो। इससे प्रादेशिक भाषाओं वालों को कम से कम पता लग जायेगा कि उनकी विद्यमान स्थिति क्या है और उन्हें स्वतन्त्रता-प्राप्ति से क्या लाभ हुआ है। यदि आप सचमुच यह चाहते हैं और ईमानदारी से यह कहते हैं कि ये प्रादेशिक भाषायें उन्नत होनी चाहियें और उन्हें हानि पहुंचाने वाला कोई कार्य नहीं करना चाहिये तो आप एकता या संस्कृति के नाम पर एक भाषा के लिये नहीं कह सकते। यदि भविष्य में स्वभावतः इस देश में एक भाषा हो जानी है और अन्य प्रादेशिक भाषायें समाप्त हो जानी हैं, यदि यही भविष्य है, तो उसे रोकने वाला में कौन हूं, आप कौन हैं? किन्तु मैं किसी वर्ग को, किसी प्रदेश या किसी सरकार को, चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, कोई ऐसा कार्य जानबूझ कर नहीं करने दूंगा, जिसके परिणामस्वरूप ये भाषायें भारत से लुप्त हो जायें। यदि उन्हें मरना है तो उन्हें अपनी मौत मरने दीजिये और कोई अश्रु नहीं बहाया जायेगा।

***अध्यक्षः** ऐसा सुझाव तो किसी ने नहीं रखा है।

***श्री शंकरराव देवः** मैं यह जानता हूं, श्रीमान्; यद्यपि यह सुझाव नहीं रखा गया है, पर कार्य ऐसे हैं कि इस प्रकार का संदेह है या भावनायें हैं। आप मुझे क्षमा करें यदि मेरी भी ऐसी भावना हो, क्योंकि आखिर इस सदन की अपील देश में, लोगों में और विश्व में पहुंचती है कि एकता के लिये, संस्कृति के लिये हमारी भाषा एक होनी चाहिये। यदि ऐसी बात नहीं है तो हमें सुनिश्चित बात कहनी चाहिये। अंग्रेजी का स्थान लेने वाली इस भाषा के क्या कृत्य होंगे? इस मामले में भी कार्य समिति का प्रस्ताव सुस्पष्ट है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में वे ही कृत्य होंगे जो अंग्रेजी के थे।

***श्री शंकरराव देवः** नहीं, यह भी नहीं।

***अध्यक्षः** जहां तक मैं समझ सकता हूं प्रस्ताव में तो यही बात है।

***श्री शंकरराव देवः** अंग्रेजी में बहुत से कृत्य होते थे जो अब मैं उसमें रखना नहीं चाहता। यदि आप कुछ देर तक सुनेंगे तो श्रीमान्, मैं समझा दूंगा।

जो भाषा अंग्रेजी का स्थान लेगी उनके कुछ सुनिश्चित कृत्य होंगे। जैसाकि मैंने कहा है वे कार्यसमिति के प्रस्ताव में उल्लिखित हैं:–

"अखिल भारतीय प्रयोजनों के लिये एक राज्य भाषा होगी जिसमें संघ का काम होगा। वही प्रान्तीय और राज्य सरकारों के साथ पत्र-व्यवहार की भाषा होगी। केन्द्र के समस्त अभिलेख उसी भाषा में रखे जायेंगे और वहीं अन्तर्प्रान्तीय, अन्तर्राज्यिक वाणिज्य और पत्र-व्यवहार की भाषा रहेगी।"

अंग्रेजी का स्थान लेने वाली भाषा के ठीक ये ही कृत्य बताये गये हैं। संस्कृति का कोई उल्लेख नहीं है, एकता का कोई उल्लेख नहीं है; यह बात नहीं है कि मैं इस देश में एक संस्कृति के विकास के विरुद्ध हूं। मैं यह बताना चाहता हूं कि 'एक संस्कृति' इस नारे में भयानक आशय सन्निहित है। 'संस्कृति' शब्द का ही भयानक आशय है। किसी को उसका अर्थ ठीक-ठीक पता नहीं है। रा. स्व. संघ के प्रधान संस्कृति के नाम से अपील करते हैं। कुछ कांग्रेसी भी संस्कृति के नाम से अपील करते हैं। कोई हमें नहीं बताता कि इस 'संस्कृति' शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या है। आज जैसा कि इसका निर्वचन किया जाता है और उसे समझा जाता है, उसका अर्थ केवल कुछ लोगों का अनेकों पर आधिपत्य होता है। अत: कार्यसमिति के प्रस्ताव में, संस्कृति का उल्लेख नहीं है, एकता का उल्लेख नहीं है। यह बात नहीं है कि हम देश के लिये एक संस्कृति नहीं चाहते। पर हमें इसे मिश्रित संस्कृति कहना चाहिये, फिर भारतीय संस्कृति के विविध अंगों को इस मिश्रित संस्कृति के विकास में अंशदान देने का समान अवसर प्राप्त होगा। यदि आप एक संस्कृति के लिये इस देश से अपील करते हैं तथा उस पर हठ करते हैं तो मेरे लिये इसका अर्थ भारत की आत्मा का हनन है।

यदि मैंने भारतीय संस्कृति को, भारतीय धर्म और भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं को समझने का प्रयत्न किया है, तो वह एकरूपता नहीं है, वरन् विविधता में एकता हैं भारत विविधता का पोषक है। यही हमारी उच्चता है, यही अंशदान भारत विश्व-संस्कृति और विश्व-प्रगति में कर सकता है। मैं देश की एकता में बाधा डाले बिना या उसका हनन किये बिना, संस्कृतियों की विविधता, विभिन्न भाषाओं को बनाये रखना चाहता हूं। अत: जब लोग 'राष्ट्र-भाषा' शब्द का प्रयोग करते हैं तो मेरा हृदय प्रसन्न नहीं होता। मैं स्वीकार करता हूं कि भारत एक राष्ट्र है और मैं भारतीय हूं, पर यदि आप मुझे पूछें, "आप की भाषा क्या है", श्रीमान्, मुझे आप क्षमा करें मैं कहूंगा "मेरी भाषा मराठी है।" मैं तो उनमें से हूं जो यह बल देते रहे हैं कि अंग्रेजी का स्थान लेने वाली भाषा को 'राष्ट्रभाषा' नहीं कहना चाहिये। यदि राष्ट्रभाषा से आपका आशय समस्त देश के लिये एक भाषा से है तो मैं इसके विरुद्ध हूं। मैं यह सर्वथा स्पष्ट करना चाहता हूं। भारत एक राष्ट्र है और मैं भारतीय हूं पर मेरी भाषा मराठी है।

एक माननीय सदस्य: मेरे मित्र एक काल्पनिक प्रयोजन के विरुद्ध प्रलाप कर रहे हैं।

श्री शंकरराव देव: कुछ लोगों में तो कल्पना का भी अभाव है।

अध्यक्ष: मैं आशा करता हूं कि माननीय सदस्य सदन को काल्पनिक वाद-विवाद में नहीं घसीटेंगे।

***श्री शंकरराव देव:** अतएव इस भाषा के कृत्यों को स्पष्ट कर देना चाहिये। यह भाषा या तो राज्य-भाषा होगी या संघ-भाषा होगी या संघानीय भाषा होगी क्योंकि हमने अपने देश के लिए संघान व्यवस्था स्वीकार की है। हमारे यहां स्वायत्तशासी राज्य हैं और इसलिये राज्यों में अपनी-अपनी भाषायें होंगी, और जैसाकि मैं कह चुका हूं कार्यसमिति ने यह स्पष्ट कर दिया है कि राज्य भाषा के क्या कृत्य होंगे।

अब मैं अगली बात पर आता हूं। यहां मेरे कई मित्रों को पता है कि जब इस प्रश्न पर कहीं अन्यत्र प्रथम वार वाद-विवाद हुआ था तो मैं उनमें से था जिन्होंने यह तर्क किया था कि यह राज्य भाषा हिन्दी की बजाय हिन्दुस्तानी कहलानी चाहिये। यह बात नहीं है कि हम हिन्दी के विशेष विरुद्ध हैं, पर कांग्रेसी होने के नाते हमें यह विश्वास हो गया और हमें महात्मा गांधी ने यही सिखाया था कि यदि जनसाधारण को स्वतन्त्रता का उपभोग करना है, तो देश की भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसे वे समझ सकें। तभी आजादी का उनके दैनिक जीवन पर प्रभाव पड़ सकता है और वे राष्ट्र निर्माण में अंशदान दे सकते हैं। अत: कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी को, अपनी भाषा स्वीकार किया और वह चाहती थी कि राज्य भी उसी नाम को, नाम को ही नहीं उसके अर्थ को स्वीकार करे। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि किसी सभा में या समाज में किसी की सारी बात नहीं चल सकती, अत: मैं हिन्दी के लिये सहमत हो गया हूं जब कि उसके अर्थ को अब परिभाषित कर दिया गया हैं मैं हिन्दुस्तानी चाहता था, क्योंकि मैं अनुभव करता था कि उस हालत में नई भाषा के निर्माण में कोई निर्बन्धन नहीं होंगे और कोई विशेष अधिकारी वर्ग नहीं होंगे।

जिन्होंने गत दो दिनों के वाद-विवाद को ध्यान से सुना है उन्होंने समझ लिया होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार करने में कठिनाई कैसे उपस्थित हो गई। वे उन पर आपत्ति क्यों कर रहे हैं? उनकी एक आपत्ति यह है कि वे हिन्दी के नहीं हैं। वे कहते हैं "क्योंकि आप हिन्दी स्वीकार कर रहे हैं, अत: आपको हिन्दी अंक भी स्वीकार करने होंगे।" उन्होंने केवल यही नहीं मान लिया है कि हमने हिन्दी स्वीकार कर ली है, प्रत्युत यह भी मान लिया है कि हमने उत्तर प्रदेश और बिहार में चलने वाली हिन्दी को स्वीकार कर लिया है, इसलिये वे अपनी इच्छानुसार हमें यह बतायेंगे कि हिन्दी क्या है।

मैं अपने आपको इन निर्बन्धनों से स्वतन्त्र करना चाहता हूं और मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे यह बताये कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी क्या है। यह सभा निश्चित करेगी कि हम किसे पसन्द करेंगे। कोई आकर यह नहीं कह सकता कि आप ऐसा नहीं कर सकते। इस सभा को कोई आदेश नहीं दे सकता। हम अपनी भाषा पसन्द करेंगे और उसका नाम भी पसन्द करेंगे। आप यह नहीं कह सकते "यदि हिन्दी नहीं है।" उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य भारत आदि हिन्दी और हिन्दी अंकों को रख सकते हैं। वे अपनी भाषा को अपनी आत्मीयता के अनुसार ढाल सकते हैं। क्योंकि उत्तर प्रदेश और बिहार इन अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग नहीं करेंगे, उसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि केन्द्रीय सरकार उनका प्रयोग नहीं करेगी।

मैं अपने मित्रों को स्मरण कराना चाहता हूं कि वे धोखे में हैं यदि वे समझते हैं कि हमने उनकी भाषा को स्वीकार कर लिया है और हम उसे उनके नमूने पर बनाने जा रहे हैं। इसलिये एक विशेष निदेश है कि राज्य द्वारा स्वीकृत हिन्दी भाषा कैसी होगी। मैं जानता हूं कि मेरे उत्तर भारतीय मित्र इस पर बहुत प्रसन्न नहीं हैं। उन्होंने कहा है "यदि आप ऐसा चाहते हैं तो रख लीजिये।" उन्होंने कहा "यदि आप चाहते हैं तो हम आपको सन्तुष्ट करने के लिये तैयार हैं" किन्तु फिर उन्होंने उसे भाषा के अध्याय में नहीं रखा, वरन् निदेशों के अध्याय में रख दिया।

***पं. बालकृष्ण शर्मा** (युक्तप्रान्त : जनरल): क्या आपकी अनुमति से मैं माननीय सदस्य को, जो बोल रहे हैं, यह बता दूं कि निदेश हमने नहीं दिया है मसौदा समिति ने दिया है?

***श्री शंकरराव देव:** मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि मुझे पण्डित नेहरू का कृतज्ञ होना चाहिये कि उन्होंने यह सुझाव दिया था कि यह निदेश या यह परिभाषा भाषा संबंधी अध्याय में रखी जानी चाहिये।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** कदापि नहीं।

श्री शंकरराव देव: वे नहीं कहते तो यह काम इतनी सुगमता से नहीं हो सकता था। मेरी यह राय है। हो सकता है मैं गलत होऊं। किन्तु मैं सदन का ध्यान विशेषत: इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहता था। उस निदेश में लिखा है:

> "It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India."
>
> [हिन्दी की प्रसार-वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके संघ का कर्तव्य होगा।]

भारत की "सामाजिक संस्कृति" बहुत उम्दा शब्द है। किन्तु मुझे भय है—और भय युक्तिसंगत नहीं होते, साधारणत: वे अयुक्तियुक्त होते हैं किन्तु मनुष्य के जीवन में उनका महत्वपूर्ण भाग होता है—कि इन शब्दों का आशय है कि हमें ऐसी भाषा बनानी चाहिये जिसमें भारत की ये सब विविध संस्कृतियां अभिव्यक्त हों। मैं तो यह अनुभव करता हूं कि अन्ततोगत्वा आप हमसे ऐसी भाषा का विकास करने के लिये कहते हैं जिसमें समस्त संस्कृति, धर्म और हमारा जीवन कार्य अभिव्यक्त होगा। यदि यह होना है तो इतना स्वभावत: होना चाहिये कि हमें कोई कष्ट या दर्द अनुभव न हो।

[श्री शंकरराव देव]

मेरे उत्तर प्रदेशीय तथा बिहारी मित्रों को समझ लेना चाहिये कि हमें क्या करने के लिये कहा गया है। मैं आपसे घुटने टेक कर अनुरोध नहीं करना चाहता—मुझे ऐसी आदत नहीं है। पर मैं आपकी बुद्धि से अनुरोध करना चाहता हूं। हम आपसे कुछ नहीं मांग रहे हैं, हमसे राष्ट्र कुछ मांग रहा है। और हम उसे देने के लिए तैयार हैं। आखिर जब समय आयेगा तब हमें एक भाषा स्वीकार करनी पड़ेगी और अन्य भाषायें शायद पृष्ठभूमि में ही चली जायें। यदि और जब यह होगा, मैं तैयार हूंगा। किन्तु यदि आप मेरी आशंकाओं को मिटाना चाहते हैं, यदि आप मेरा हार्दिक सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जिससे मेरे सन्देह जाग जायें और मेरी आशंकायें दृढ़ हो जायें।

श्रीमान्, मैं सदन का और अधिक समय नहीं लेना चाहता। मैं सदन का ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता था कि हमें विवेक से काम लेना चाहिये। हमें सन्देह या आशंका का कारण उत्पन्न नहीं करना चाहिये। क्योंकि, यद्यपि सन्देह और आशंकायें अयुक्तियुक्त होती हैं, पर फिर भी हमारे कार्यों का निश्चय उन्हीं से होता है। अतः मैं अपने मित्रों से, जो हिन्दी के समर्थक हैं, अपील करना चाहता हूं कि वे स्थिति को स्पष्ट समझें। हमें स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि हम किसी संस्कृति या भाषा विशेष को स्वीकार नहीं कर रहे हैं। हम भाषा का स्वतन्त्र चुनाव कर रहे हैं।

आखिर इस समय क्या दावा किया जा रहा है? दावा यह है कि यह भाषा बहुमत द्वारा बोली जाती है—मुझे उस पर भी विश्वास नहीं है, मैं जानता हूं कि जब मैं राजेन्द्र बाबू पर जाता हूं और जब बिहार के लोग उनके पास आते हैं तब वे हिन्दी नहीं बोलते। यदि मैं गलती पर नहीं हूं तो टण्डन जी भी घर पर हिन्दी नहीं बोलते। अतः जब आप कहते हैं कि हिन्दी को देश में अधिकांश लोग बोलते हैं तो मुझे सन्देह होता है। मैं तो यही मान सकता हूं कि इसे शायद अधिकांश लोग समझते हैं, और वे भी वर्तमान उच्च संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को नहीं समझते जिसे केवल पण्डित ही समझते हैं। जैसा गांधी जी ने कहा था वह सरल भाषा होनी चाहिये जिसे उत्तर के गांवों में लोग समझ सकें। जैसे हम मराठी बोलते हैं, दूसरे तमिल या तेलुगु बोलते हैं। हिन्दी को 14 करोड़ व्यक्ति नहीं बोलते।

यदि कल ऐसा हो जाये कि राजधानी यहां से मदुरा या त्रिवेन्द्रम ले जाई जाये, मैं कह नहीं सकता कि 50 वर्ष के पश्चात् इस देश के बहुमत की भाषा तमिल या तेलुगु नहीं बन जायेगी। आखिर दक्षिण से लोग उत्तर को आते हैं, भाषा के लिये नहीं, हिन्दी से प्राप्त होने वाली संस्कृति के लिए नहीं, वरन् अपनी आजीविका के लिये आते हैं। मैं हिन्दी की संस्कृति या उच्चता को कम नहीं करना चाहता, किन्तु जहां तक संस्कृति का संबंध है, मैं उसे अपनी भाषा मराठी से, और सब भाषाओं की दादी संस्कृत से भी सीख सकता हूं। वे इसके लिये पूरी तरह सम्पन्न हैं।

हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजी को इसलिये स्वीकार नहीं किया था कि वह शासकों की भाषा है, अपितु उन्हें विश्वास था जैसा जवाहरलाल जी ने कहा था कि इससे उनके लिये नये जगह का मार्ग खुल जायेगा। उन्होंने सोचा कि इससे उनका बाह्य

जगत से और उसकी कार्यवाहियों से निकट सम्पर्क स्थापित हो जायेगा। आज भी कोई भारतीय भाषा यह दावा नहीं कर सकती। कदाचित् कल हमारी कुछ भाषायें ऐसा दावा कर सकेंगी। अत: ठीक या गलत, हमारे पूर्वजों ने अंग्रेजी को उसकी उच्चता के कारण स्वीकार किया था।

लोग दक्षिण से आते हैं और हिन्दी बोलते हैं क्योंकि वे यहां रोटी के लिये आते हैं। आखिर लोग रोटी के लिये ही लड़ते हैं। पन्द्रह या दस वर्षों के लिये अंग्रेजी रखने पर इतना विवाद क्यों है? किसी भाषा को सीखने की कठिनाई के अतिरिक्त, लोगों को भय है कि सचिवालय में तथा कार्यालयों में उन्हें पीछे धकेल दिया जायेगा, अधिक अच्छे लोगों द्वारा नहीं, वरन् इस कारण कि वे एक भाषा विशेष में पिछड़े हुये हैं। मेरे मित्र पण्डित शुक्ल ने दाक्षिणात्य भाइयों की बहुत प्रशंसा की है अतएव मुझे उनकी ओर से कोई दावा करने की आवश्यकता नहीं है।

*__एक माननीय सदस्य:__ कृपया ध्वनियंत्र में बोलिये। हम आपकी आवाज सुन नहीं सकते।

*__श्री शंकरराव देव:__ मुझे खेद है; मैं आपकी बात मानूंगा। मुझे ध्वनियंत्र की आदत नहीं है।

श्रीमान्, मैं कह रहा था कि आज यह संस्कृति का या धर्म या परम्परा का प्रश्न नहीं है वरन् रोटी और नौकरियों का प्रश्न है। और यदि आज हिन्दी का इतना मूल्य है और लोग इसे अन्य भाषाओं से अधिक चाहते हैं तो यह बात नहीं है कि यह अन्य भाषाओं से उच्चतर है, वरन् यह नौकरी पाने का एक साधन है। जब मैं यहां आता हूं तो मराठी नहीं बोल सकता, केवल महाराष्ट्र क्लब में बोल सकता हूं किन्तु इससे मुझे नौकरी नहीं मिल सकती।

लोग हमसे आकर कहते हैं "आप ऐसी छोटी सी बात पर क्यों लड़ रहे हैं? आखिर, आप 95 प्रतिशत दे चुके हैं। पांच प्रतिशत और क्यों नहीं दे देते?" मैं सब स्थिति को पूर्णत: स्पष्ट कर देना चाहता हूं। मैंने किसी को कुछ नहीं दिया है। लोगों की गलत धारणा प्रतीत होती है कि हम 95 प्रतिशत मान गये हैं अत: हमें 5 प्रतिशत और मान जाना चाहिये। मैंने इस भाषा को स्वीकार कर लिया है क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि मुझे इस भाषा को ढालने की पूरी स्वतन्त्रता और पूरा अवसर मिले क्योंकि इस भाषा का मुझ पर प्रभाव पड़ेगा। मैं तो उनमें से हूं जो इस सुझाव का समर्थन करना चाहते हैं कि अंग्रेजी भी उन भाषाओं में होनी चाहिये जिनका उल्लेख अनुसूची में किया जायेगा।

श्रीमान्, प्रादेशिक भाषाओं की सूची में, यदि आप देखेंगे तो, आपको हिन्दी का उल्लेख मिलेगा। अत: आज हिन्दी को प्रादेशिक भाषा स्वीकार किया जाता है। उस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु कृपया हमारी कठिनाई को समझिये। आप हिन्दी को प्रादेशिक भाषा रखना चाहते हैं और साथ ही उसे संघ की अथवा राज्यभाषा बनाना चाहते हैं। उससे आपकी स्थिति उच्चतर हो जाती है। आप मुझे क्षमा करेंगे, क्योंकि मैं जानता हूं कि आप यह नहीं चाहते; पर फिर भी ऐसा होता है और आप इसे रोक नहीं सकते। आपको स्वीकार करना होगा कि चाहे कोई व्यक्ति हिन्दी या हिन्दुस्तानी या किसी अन्य भाषा को कितना ही सीख ले,

[श्री शंकरराव देव]

जब तक वह उसकी मातृभाषा नहीं है, जब तक वह उसका 24 घंटे प्रयोग नहीं करता है, वह उसमें पारंगत नहीं हो सकता। और जब तक वह उसमें पारंगत न हो जाये, उसे सचिवालय या किसी अन्य क्षेत्र में अच्छा या उच्च पद प्राप्त नहीं हो सकता। मैं अपने दाक्षिणात्य भाइयों की कठिनाई को जानता हूं। जब से हमारी राष्ट्रीय संस्था में अंग्रेजी भाषा की प्रतिष्ठा मिट गई है, तब से वे कार्यवाही को लगभग देखते ही रहते हैं और उन्हें हाथ उठाने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। मैंने अंग्रेजी सीखी हैं पर मैं जानता हूं कि उस सीखने का क्या अर्थ है। उससे तो मैं उस भाषा के कुछ शब्द केवल बोल लेता हूं। परन्तु यदि मुझे देश का प्रशासन करना हो, तथा पद बनाये रखना हो, तो सीखने का अर्थ उस भाषा में पारंगतता होनी चाहिये; उसके लिये बहुत वर्ष अपेक्षित हैं।

***माननीय सदस्यगण:** माननीय सदस्य दाहिनी ओर भी सम्बोधित करें। हम उनकी आवाज सुन नहीं सकते।

***अध्यक्ष:** अब वे समाप्त कर चुके हैं।

***श्री शंकरराव देव:** मुझे खेद है। मैं यहां पहली बार बोल रहा हूं, मैं इस पाठ को सीख लूंगा और यहां बहुधा आने का प्रयत्न करूंगा।

जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का तथा कालावधि का प्रश्न है, मैं केवल इतना ही कहूंगा कि इस सदन के किसी सदस्य को यह भावना नहीं रखनी चाहिये कि वह कुछ दे रहा है और हम कुछ ले रहे हैं। यह दान नहीं है। हम इस सदन में भिखारी नहीं हैं। प्रत्येक सदस्य को समान अधिकार और सबकी समान स्थिति होनी चाहिये। हम सब मिलकर ऐसी चीज बनाना चाहते हैं जो हम सबके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अत: जब हम कहते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को रहने दीजिये, तो हमारी बात का गलत अर्थ मत समझिये। क्या आपको पता है कुछ मित्र नागरी लिपि के साथ कैसा क्या कर रहे हैं और कैसी गड़बड़ कर रहे हैं, जो जानते हैं और कहते हैं कि मुद्रण-सुलभता, यंत्रलेखन आदि के लिये उसमें परिवर्तन होना चाहिये। क्या आपको पता है कि विनोबा भावे देवनागरी को कैसे लिखते हैं? यदि मेरे कुछ हिन्दी मित्र उसे देखेंगे तो वे रोयेंगे; वे उसे अपनी मातृभाषा स्वीकार नहीं करेंगे। मुझे स्वयं उस पर दु:ख होता है। जब मैं बिनोबा भावे के लेख को पढ़ता हूं, तो मैं पूछता हूं: क्या यह देवनागरी है?

इस परिवर्तन के समर्थक कहते हैं कि देवनागरी हट जायेगी और रोमन लिपि आ जायेगी। मुझे पता नहीं है कौन-सी अधिक अच्छी है या उच्चतर है। किन्तु आज आप अंकों के लिये लड़ रहे हैं। कल आप लिपि के लिये लड़ेंगे, और आप कहेंगे यह हमारी लिपि है और कोई इसे बदल नहीं सकता। फिर हम क्या करेंगे? क्या हम आपसे अनुरोध करेंगे और भिक्षा मांग कर कहेंगे "क्या आप हमें यह परिवर्तन करने देंगे?" नहीं, श्रीमान्। यदि आप इस गलत धारणा पर चलते हैं कि आप हमें कुछ वस्तु दे रहे हैं और हमारा कर्तव्य है कि उसे उसी रूप में बनाये रखें जैसे आपने हमें दी है, और उसके ठीक या गलत होने के विषय में आपका मत निर्णायक होगा, तो कृपया उस ख्याल को छोड़ दीजिये।

*पं. **बालकृष्ण शर्मा** (बलपूर्वक): यह सब किसने कहा है?

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्य से अनुरोध करना चाहता हूं कि वे आवेश में न आयें। ऐसे मामले पर आवेश में आने से कोई लाभ नहीं है।

*पं. **बालकृष्ण शर्मा** (अधिक बलपूर्वक): मैं उनके कथन का विरोध करना चाहता हूं जो सर्वथा काल्पनिक हैं। श्री शंकर राव देव काल्पनिक प्रेतों की रचना करके उनका हनन कर रहे हैं। मैं उनकी रणवीरता की प्रशंसा कर सकता हूं पर इस प्रकार उनकी युक्तियों के प्रति आदर उत्पन्न नहीं हो सकता।

***अध्यक्ष:** यह भी कोई कारण नहीं है।

***श्री शंकरराव देव:** मेरे माननीय मित्र किसी मूर्ख को अपनी कल्पना-क्रीड़ा करने दें। इससे कोई हानि नहीं है। यदि यह इतनी काल्पनिक बात है, और यदि उससे उन पर प्रभाव नहीं पड़ता, तो उन्हें इतना क्रोध क्यों है? उन्हें इतना क्रोध है और उन्हें आवेश आ गया है, उसी से पता लगता है कि मैंने जो कुछ कहा है उससे उनका मर्म स्पर्श हुआ है।

*पं. **बालकृष्ण शर्मा** (बहुत बलपूर्वक): मैं इस बात का विरोध करता हूं कि....

***अध्यक्ष:** मुझे भय है कि यह बात ठीक नहीं है और माननीय सदस्य को आवेश में नहीं आना चाहिये, यदि वे इस सदन में बैठना चाहते हैं।

*पं. **बालकृष्ण शर्मा:** आप चाहें तो मैं चला जा सकता हूं।

***अध्यक्ष:** किसी को आवेश में आने का अधिकार नहीं है।

***श्री शंकरराव देव:** मुझे खेद है कि मैंने जो कुछ कहा है उस पर एक मित्र को आवेश आ गया है। हमें अपनी कल्पना से भी काम लेने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये जब तक कि वह असंसदीय न हो। मैं अधिक नहीं कहना चाहता। मेरे विचार में ये काल्पनिक बातें नहीं हैं। मैं इस विवाद को ध्यानपूर्वक देखता रहा हूं और मैं उनमें से हूं जो चाहते हैं कि यह सदन किसी एकमत विनिश्चय पर पहुंच जाये और मैं अनुभव करता हूं कि जब तक सब बात स्पष्ट न कर दी जाये और लोगों का सब भ्रम न मिटा दिया जाये, तब तक एकता नहीं हो सकती, जो इतनी अपेक्षित है और जिसे सब चाहते हैं। यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि यह संविधान सभा एक भाषा निश्चित कर रही है जो राज्य के लिये होगी, संघ के लिये होगी, जो किसी वर्ग या किसी धर्म के लिये नहीं होगी।

***अध्यक्ष:** आपने यह बात अनेक बार स्पष्ट कर दी है।

***श्री शंकरराव देव:** अब मैं अपने संशोधनों का निर्देश दूंगा। मुझे आशा है मेरे मित्र समझ जायेंगे कि पन्द्रह वर्ष पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर स्वत: हिन्दी या वह भाषा हो जानी चाहिये जिसे हम राज्य-भाषा चुनेंगे। किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि हम कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी का प्रयोग नहीं कर सकेंगे।

[श्री शंकरराव देव]

कुछ दाक्षिणात्य मित्र मेरे से सहमत नहीं हैं। मैं यह भी समझ सकता हूं। पर यह मेरी भावना है और यहां मैं अपने मित्रों से कहूंगा कि वे उस आवाज को सुनें जिसे 30 वर्ष से सुनने का हमें अभ्यास है। वह आवाज कहती है: "यदि सरकारें और उनके सचिव सावधानी नहीं बरतेंगे, तो सम्भव है अंग्रेजी भाषा हिन्दुस्तानी का स्थान हड़प ले" (गांधी जी तो हिन्दुस्तानी ही चाहते थे।) "इससे करोड़ों भारतीयों को, जो कभी अंग्रेजी नहीं समझ सकेंगे बहुत अधिक हानि होगी। निश्चय ही प्रान्तीय सरकारों के लिये यह बिल्कुल आसान बात होनी चाहिये कि वे एक प्रान्तीय भाषा और एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा को स्वीकार करें, जो मेरे विचार में नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये।"

मैं चाहता हूं सदन इस स्थिति को स्वीकार कर ले।

***श्री सतीशचन्द्र** (युक्तप्रान्त : जनरल): कृपया पूरा वाक्य पढ़िये।

***श्री शंकरराव देव:** मैं कण्डिका के अंत तक पढ़ चुका हूं। यदि मैंने कोई गलती की है तो आप अपनी बारी आने पर मुझे ठीक कर सकते हैं। मेरी बात के लिये जो कुछ संगत था वह मैंने पढ़ दिया है.....।

***श्री सतीशचन्द्र:** आप इसी लेख की अन्य कण्डिका को पढ़ सकते हैं जिसमें गांधी जी ने इस सम्भावना का सुझाव दिया है कि केवल नागरी लिपि में हिन्दी को ही भारत की राज्यभाषा स्वीकार किया जाये।

***श्री शंकरराव देव:** मैंने पहली कण्डिका को पूरी तरह पढ़ दिया है क्योंकि पत्र मेरे पास है। मैं इसी के आधार पर बोल रहा हूं। 15 वर्ष पश्चात् अंग्रेजी राज्य की भाषा स्वत: नहीं रहेगी। उसका यह अर्थ नहीं है कि हमें अंग्रेजी को आगे प्रयोग करने की या किसी सुनिश्चित विशिष्ट प्रयोजन के लिये काम में लेने की मनाही है।

मैं समाप्त कर चुका हूं, पर एक वाक्य है जिसे मैं यथाशक्य पूर्ण गम्भीरता के साथ कहना चाहता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं। मैं प्रवीण वक्ता नहीं हूं। मैं यहां पहली बार बोलने आया हूं। यदि मेरे द्वारा कहे गये शब्द या भाव किसी को पसन्द नहीं आये हैं तो मुझे खेद है और मेरे मित्र मेरी इस क्षमाप्रार्थना को स्वीकार करें। मैं समूचे सदन से भी अपील करता हूं कि जहां तक सम्भव हो हमें विभाजन नहीं होने देना चाहिये। हमें इस प्रश्न पर इस सदन को विभाजित नहीं करना चाहिये क्योंकि यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है, और यदि यहां विभाजन हो और हम रोते हुये अथवा दु:खी हृदयों से इस सदन से जायें, तो मुझे भय है कि इस संविधान का क्रियान्वित होना और जनसाधारण की आवश्यकताओं का पूरा तथा स्वतन्त्रता का सफल होना बहुत कठिन कार्य हो जायेगा। अत: मैं अपने सब मित्रों से अनुरोध करना चाहता हूं, चाहे वे दक्षिण के हों या उत्तर के या पूर्व या पश्चिम या केन्द्र के हों। मेरा अनुरोध सबसे है। मैं स्वीकार करता हूं कि माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर का संशोधन आदर्श संशोधन नहीं है; फिर भी यही एक सूत्र है जिस पर मतक्य सम्भव है।

*सरदार हुकम सिंह: श्रीमान्, वातावरण बहुत खिंचावपूर्ण है और तेजी की बातें हो चुकी हैं और मुझे आशा है कि मैं अपनी हल्की आवाज से वातावरण को शान्त बना दूंगा, यद्यपि मुझे भय है कि श्री शंकर राव देव की बात को धैर्यपूर्वक नहीं सुना गया है अत: मेरी वक्तृता में भी बाधा डाली जा सकती है। किन्तु मुझे आशा है कि मुझ पर अधिक अनुग्रह किया जायेगा, क्योंकि यदि मैं किसी विवादास्पद बातों में भी पडूंगा तो मेरी हल्की आवाज और भी धीमी हो जायेगी। बहुत से संशोधन हैं पर मैं 323 और 330 पर ही बोलूंगा।

मेरा संशोधन सं. 323 यह है कि देवनागरी लिपि में हिन्दी के स्थान पर रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी होनी चाहिये। इसी को पहले एक सुविख्यात विद्वान तथा प्रसिद्ध सदस्य श्री सुब्बारायन भी पेश कर चुके हैं। जो बातें पहले ही कही जा चुकी हैं उन्हें मैं फिर नहीं दोहराऊंगा पर मुझे उसके विषय में कुछ कहना अवश्य है।

मैं आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब मैंने प्राथमिक शिक्षा समाप्त की थी और मुझे फारसी तथा संस्कृत दोनों में एक विषय चुनना था तब मैंने संस्कृत चुनी थी और मुझे उसका बहुत शौक हो गया था। मैंने मैट्रिक तक उसे पढ़ा था। इस सदन का सदस्य चुने जाने के पश्चात् भी और जब यह प्रश्न सर्वप्रथम यहां उठा था तब कई सदस्यों ने मुझसे परामर्श लिया था और मैंने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी का पूर्ण समर्थन किया था। यहां इस बात पर बल देना चाहता हूं कि मैं यही समझता था कि इस देश की राष्ट्रभाषा था लिंगुआ फ्रैंका, बनने योग्य कोई अन्य भाषा है ही नहीं।

समय के साथ मैंने अपना मत बदल लिया है। इस हिन्दी के कट्टर समर्थकों के कारण मेरी सहानुभूति उनके साथ नहीं रही है और मुझे कहना होगा कि मैं श्री एन्थनी से सहमत हूं। मैं उनमें से एक हूं जिन्होंने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी का समर्थन करना इसलिये बन्द कर दिया है कि उसके समर्थक बहुत कट्टर हैं और असहिष्णु हैं। जैसा मैं हिन्दी का समर्थन करता था तो मैं समझता था कि वह जनसाधारण की भाषा है जिसे वे बोल सकते हैं और समझ सकते हैं और उनके कानों को मीठी लगती है। नि:संदेह मैं अब भी उस भाषा का समर्थक हूं।

किन्तु जब मैंने हिन्दी के कट्टर समर्थकों को लोक मंचों पर तथा इस सदन में भाषण देते सुना है, तो मुझे भय है कि वे भाषा को अन्य भाषा से शब्द ग्रहण करके उन्नति नहीं करने देना चाहते और उसे सामान्य भाषा के समान विकसित नहीं होने देना चाहते, वरन् वे उसे संस्कृतनिष्ट भाषा बना कर अपना एकाधिपत्य रखना चाहते हैं। मैं इसे फिर स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैं संस्कृत के विरुद्ध नहीं हूं और यदि उसे ही सीधे अपना लिया जाये तो मैं उसका समर्थन करने के लिये तैयार हूं। किन्तु मैं देखता हूं कि सदन उसे नहीं रखना चाहता, अत: मैं कहता हूं कि हमें ईमानदारी से कह देना चाहिये कि क्या हम एक साहित्यिक भाषा को अपना कर उसका नाम हिन्दी रखना चाहते हैं या हम उस भाषा को रखना चाहते हैं जिसे अधिकांश जनता सामान्यत: समझती है और बोलती है।

[सरदार हुकम सिंह]

विभाजन से पूर्व उर्दू और हिन्दी में राष्ट्रभाषा बनने के लिये बहुत द्वन्द्व था। यदि मैं यह कह दूं तो ये दो कट्टरतायें थीं। उर्दू में फारसी और अरबी में से शब्द लिये जाते थे और हिन्दी में संस्कृत से। अत: दोनों में विरोध था। मेरा तो यह विश्वास है कि इसी कारण एक सामान्य भाषा बनाने का प्रयत्न किया गया था और उसका नाम हिन्दुस्तानी रखा गया था। फिर हमारे कुछ सदस्यों तथा बाहर के लोगों के मन में आशंका थी कि हिन्दुस्तानी शायद उर्दू का ही दूसरा नाम होगा। मेरी तुच्छ सम्मति में यह आशंका अब नहीं रही। विभाजन के पश्चात् ऐसी कोई संभावना नहीं है कि हम जो भाषा स्वीकार करेंगे वह इतनी अबाध रूप से फारसी और अरबी से शब्द लेगी। हां, उनसे शब्द लेने का वर्जन नहीं होगा, किन्तु अब ऐसी कोई आशंका नहीं है कि वे मुख्य स्रोत रहेंगे। किन्तु वह आशंका हट जाये तो दूसरी आशंका है। उस भाषा के फारसीनिष्ट या अरबीनिष्ट बनने का भय नहीं है तो दूसरा भय है कि उस भाषा का नाम हिन्दी रख दिया जाये पर वह संस्कृतनिष्ट हो। अत: हम उस भय को भी दूर करना चाहते हैं और ऐसा हम तभी कर सकते हैं जब हम अपनी भाषा को हिन्दुस्तानी कहें, जिसे हमारे अधिकांश लोग समझ सकें, और हिन्दी न कहें जिसमें उपर्युक्त भय है। इसी कारण मैंने प्रस्ताव किया है कि वह हिन्दुस्तानी हो।

फिर मैं लिपि पर आता हूं। मैं उन युक्तियों को नहीं दोहराऊंगा जो पेश हो चुकी हैं, अपितु मैं रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी के पक्ष में केवल चार पांच युक्तियां दूंगा:

(1) रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी सब सशस्त्र बलों में अनिवार्य है और सब लोगों के लिये उसे सीखना सुविधाजनक है चाहे वे उत्तरीय हों चाहे दाक्षिणात्य।

(2) जनता का एक बड़ा अंश है जो रोमन लिपि में अधिक दक्ष है।

(3) जब तक आमूल चूल परिवर्तन न किया जाये, तब तक देवनागरी लिपि मुद्रण के लिये अनुपयुक्त माध्यम होगी।

(4) रोमन लिपि में कुछ बिन्दु आदि जोड़कर हमारे प्रयोजन के उपयुक्त बनाया जा सकता है। स्थानों के नामों, रेलवे टाइम टेबल, तार लिपि आदि में गड़बड़ नहीं होगी।

(5) सब से महत्वपूर्ण कारण यह है कि इससे हमारा बाह्य जगत से संबंध बना रहेगा और इस संबंध में श्री सुभाष चन्द्र बोस का नाम लेना चाहता हूं जिन्होंने इसका समर्थन किया था।

(6) मेरी अन्तिम युक्ति यह है कि इससे वह विरोध भी समाप्त हो जायेगा जो इस सदन में दिखाई देता है और हमारे दाक्षिणात्य मित्र भी भाषा को आसानी से सीख सकेंगे।

फिर मैं अपने द्वितीय संशोधन सं. 330 को लेता हूं।

जहां तक प्रादेशिक भाषाओं का संबंध है, यह लिखा है कि:

"subject to the provisions of 301D and 301E, a State may by law adopt any of the languages in use in the State or Hindi as the language or languages to be used for all official purposes of that State."

[301घ और 301ङ के अधीन, कोई राज्य विधि द्वारा राज्य में प्रयुक्त भाषाओं में से किसी को या हिन्दी को राज्य के सरकारी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में स्वीकार कर सकता है।]

मेरे संशोधन में यह है कि–

"subject to the provisions of 301D and 301E, a State shall by law adopt the language spoken, according to the last census figures available for the purpose by the majority of the population as the language to be used for all official purposes of that State."

[301घ और 301ङ के उपबन्धों के अधीन, राज्य विधि द्वारा उस भाषा को उस राज्य के सरकारी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा के रूप में स्वीकार कर सकता है जो भाषा, उस प्रयोजन के लिये उपलब्ध अन्तिम जनगणना अंकों के अनुसार, अधिकांश जनता द्वारा बोली जाती हो।]

हमारे कुछ माननीय सदस्यों को यह बात विचित्र दिखाई दे सकती है पर पंजाब एक विचित्र ही प्रान्त है। पंजाब में यह प्रश्न अन्तर्प्रान्तीय या अन्तर्प्रदेशीय नहीं है, प्रत्युत साम्प्रदायिक प्रश्न है। यह विभाजनपूर्व के समय की देन है। यदि हम 1931 और 1941 की जनगणना रिपोर्टों को देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उन प्रतिवेदनों के जनगणना आयुक्तों से यह स्पष्ट होगा कि बहुत सम्मानित और आदरणीय लोगों ने एक भाषा या दूसरी भाषा को चुनने के आवेश में अशुद्ध उत्तर दिये थे। जो लोग उर्दू को अपनी भाषा बनाना चाहते थे, पर पंजाबी बोलते थे, उन्होंने उत्तर दिया कि उनकी मातृभाषा उर्दू है। इसी प्रकार उसके प्रत्युत्तर में दूसरी ओर का उत्तर यह था कि उनकी भाषा हिन्दी थी, जब कि वे पंजाबी ही बोलते थे और वही जानते थे। इन परिस्थितियों में, जो अंक एकत्र किये गये थे वे गलत थे और जनगणना आयुक्त को वह प्रयत्न छोड़ देना पड़ा और उसे छोड़ देने की सिफारिश की।

यही कारण था कि 1941 में ये अंक बिल्कुल एकत्र नहीं किये गये। मेरा निवेदन यह है कि गलत उत्तर देने तथा अपनी मातृभाषा को स्वीकार न करने की यह साम्प्रदायिकता विगत की बपौती है और वह विभाजन के पश्चात् भी शेष

[सरदार हुकम सिंह]

है। यदि यह राज्यों पर छोड़ दिया जायेगा–मैं विशेषत: पंजाब की बात कर रहा हूं—कि वे ऐसी भाषा चुनें जो राज्य विधान-मण्डल चाहे, तो भय यह है कि हमारी जनता के अधिकांश लोग, जो पंजाबी को अपनी भाषा मानने से इनकार करते हैं, ऐसी भाषा को राज्य की राजभाषा स्वीकार कर सकते हैं जो मुख्य भाषा नहीं है। मैं यहां यह भी कह सकता हूं कि यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया जाता है तो हिन्दी को पंजाबी से कोई भय नहीं है।

यदि वह राष्ट्रभाषा हो जायेगी तो नि:संदेह प्रत्येक जाति वालों को चाहे वह हिन्दू हो या सिख, चाहे वह बहुसंख्यक जाति का हो या अल्पसंख्यक जाति का हो, उसे पढ़ना होगा और लिखना होगा और उच्चतर अध्ययन में इसे सीखना होगा, क्योंकि उसके बिना उसे इस देश में कहीं कोई नहीं पूछेगा। अत: राज्यों में भी हिन्दी का भविष्य सुरक्षित और प्रत्याभूत होगा, किन्तु मुझे भय यह है कि यदि यह काम राज्य के विधान-मण्डल पर ही छोड़ दिया जाये तो पंजाबी की अपनी स्थिति उसे प्राप्त नहीं होगी। साम्प्रदायिकता की कहीं ठीक प्रकार परिभाषा नहीं की गई है, किन्तु एक सुविधाजनक परिभाषा यह हो सकती है कि लोकतन्त्रीय देश में या कम से कम भारत में बहुसंख्यक जो कुछ कहें या करें वही शुद्ध राष्ट्रीयता है और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय जो कुछ कहे वह साम्प्रदायिकता है। हम इसी आधार पर चल रहे हैं। अल्पसंख्यकों के मन में यह आशंका थी कि पंजाबी बिल्कुल मिट जायेगी अत: उन्होंने बहुसंख्यक जाति के समक्ष अपनी मांग रखी कि उसे अपनाया जाये, किन्तु मुझे भय है कि जैसे हिन्दी के समर्थकों ने अपनी भाषा का अहित किया है, इसी प्रकार सिखों ने पंजाबी का समर्थन करके उसका अहित किया है क्योंकि उनकी मांग को साम्प्रदायिक मांग कह कर उसको बुरा बता दिया गया है।

किन्तु उनके लिये कोई और उपाय था ही नहीं, क्योंकि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय ने उसे अपनी मातृभाषा मानने से इनकार कर दिया, अत: उसका समर्थन करना अल्पसंख्यकों का ही कर्तव्य बन गया और जब उन्होंने ऐसा किया तो उत्तर मिला कि वह साम्प्रदायिक मांग है। नि:संदेह वह अद्‌भुत उत्तर है। पत्रों ने तीव्र प्रचार किया। उन्होंने कहा कि सिख पृथक् राज्य चाहते हैं; वे पार्थक्यवादी हैं वे विभाजनवादी हैं। इस भय के कारण कि पंजाबी को हटाया जा रहा था, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय चाहता था कि सीमाओं का पुनर्निर्धारण हो और भाषावार प्रान्त बन जायें। उसे भी साम्प्रदायिक मांग बता दिया गया। देश के अन्य भागों में वह साम्प्रदायिक नहीं थी, किन्तु पंजाब कें अल्पसंख्यक जाति की मांग साम्प्रदायिक थी। मैं यहां यह भी बता दूं कि आयोग ने भी कह दिया कि पंजाब के विषय में विचार नहीं हो सकता। ये सीमाएं अब के समान ही रहेंगी। जब अल्पसंख्यक जाति चाहती थी कि पंजाबी भाषा को राज्य की सरकारी भाषा बना दिया जाये, तो उन्होंने यह कह दिया कि यह तो कोई भाषा ही नहीं है; यह तो हिन्दी भाषा की उपभाषा मात्र है। इससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि 1932 में पंजाब विश्वविद्यालय ने एक आयोग नियुक्त किया था और उसने स्पष्ट प्रतिवेदन दिया था कि वह देश की उन्नततम भाषाओं में से एक है।

अब एक और उपाय अपनाया गया है। “किसी पर कोई दबाव क्यों हो? प्रत्येक को स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह इच्छानुसार अपनी शिक्षा का माध्यम चुने। किसी

को बाध्यता नहीं होनी चाहिये कि वह अपने बालक को किसी ऐसी भाषा में शिक्षा दे जिसे वह नहीं जानता।" जब पंजाब में ऐसी स्थिति है। मैं यहां विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि हमें साम्प्रदायिक बताया जाता है। मैं अब यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि विभाजन के पश्चात् कोई अल्पसंख्यक साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। यह कहा जा सकता था कि जब तीसरी शक्ति यहां थी तब अल्पसंख्यक जातियां साम्प्रदायवादी थीं और समर्थन के लिये तीसरे पक्ष की ओर देखती थीं किन्तु अब अल्पसंख्यक जो कुछ चाहते हैं उसके लिये उन्हें बहुसंख्यकों का ही मुख ताकना पड़ता है। उसे कृपा के लिये, अधिकारों के लिये या रियायतों के लिये बहुसंख्यकों का मुख ताकना पड़ता है। अब साम्प्रदायिक बनने से किसी अल्पसंख्यकों को लाभ नहीं है। अब अल्पसंख्यक जो कुछ कहते या करते हैं वह साम्प्रदायिकता नहीं है। उनका दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया है। वे शुद्ध लोकतन्त्र चाहते हैं, क्योंकि केवल लोकतन्त्र में ही वे उन्नति कर सकते हैं। यदि वे साम्प्रदायिकता पर अड़े रहेंगे तो यह उनके लिये ही हानिकर होगा तथा उन्हें कुछ लाभ नहीं होगा। किन्तु वे तो बहुसंख्यकों के लोकतन्त्र से नहीं डरते, प्रत्युत बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता से डरते हैं। और पंजाब में यही कठिनाई है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं और इस सदन से अनुरोध करता हूं कि आप ध्यान दें कि मैं यही चाहता हूं कि मुझे बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता से बचाया जाये और इसलिये मैं सदन से निवेदन करता हूं कि मेरे इस संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये।

श्री जयपाल सिंह (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अनुभव करता हूं कि यदि मैं सदन से यह अनुरोध न करूं कि अनुसूची 7-क में कुछ आदिवासी भाषाओं को भी शमिल कर दिया जाये जिन्हें थोड़े से व्यक्ति नहीं, शब्दश: दसियों लाख व्यक्ति बोलते हैं, तो मैं अपना कर्तव्य समुचित रूप से पूरा नहीं कर रहा होऊंगा। मेरे संशोधन सं. 272 में लिखा है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नई अनुसूची 7-क में, निम्न नई मदें जोड़ दी जायें:-

'14. मुंदरी

15. गोंदी

16. ओराओं।'"

श्रीमान्, यदि आप विगत जनगणना में अनुसूचित आदिमजातियों की सूची को देखें तो आपको पता लगेगा कि वहां 176 का उल्लेख है। हां, 176 भाषायें नहीं हैं। वे उप-भाषायें हो सकती हैं और एक भाषा विभिन्न क्षेत्रों में जरा जरा भिन्न हो सकती हैं। आप मुझसे पूछ सकते हैं कि मैंने 176 में से तीन को ही क्यों लिया है। श्रीमान्, मैं नहीं चाहता कि अनुसूची में बहुत सी भाषाओं का भार हो, और इसलिये मैंने केवल तीन महत्वपूर्ण भाषाओं को चुना है। मेरे संशोधन में उल्लिखित पहली भाषा 'मुंदरी' के विषय में मैं कह सकता हूं कि मैंने संथाली का उल्लेख नहीं किया है क्योंकि मुंदरी उन भाषाओं का वंशनाम है जिन्हें कभी आस्ट्रिक भी कहा जाता है और कभी मोन-खमेर भी कहा जाता है। मैं देखता हूं कि गत जनगणना में यह उल्लेख है कि 40 लाख व्यक्ति मुंदरी भाषा बोलते थे। मैं देखता हूं कि इस सूची या अनुसूची में इस समय ऐसी भाषायें समाविष्ट हैं जिन्हें बोलने वाले मुंदरी भाषियों से कम हैं।

[श्री जयपाल सिंह]

इसी प्रकार ओरावों को रखने का मेरा यह कारण है कि ओरावों लोगों का हमारे देश में कोई छोटा वर्ग नहीं है। यहां लगभग ग्यारह लाख ओरावों हैं। हां, यदि भाषा अनुसूची में कन्नरी भाषा के अंतर्गत आ जाती है; अतः वास्तव में, यदि कन्नरी में ओरावों आ जाती है, और यदि मेरे मित्र श्री बोनीफेस लकरा को, जो वह भाषा बोलते हैं, यह संतोष है कि वह उसमें समाविष्ट है, तो मैं मद 16-ओरावों को वापस ले लूंगा।

मैंने यह भी मांग की है कि गोंदो भी एक भाषा होने चाहिये क्योंकि उसके बोलने वाले 32 लाख हैं। इन तीन भाषाओं को स्वीकार करने के लिये सदन से प्रार्थना करने का मेरा मुख्य कारण यह है कि मैं अनुभव करता हूं कि उन्हें स्वीकार करने से प्राचीन इतिहास को खोज करने के कार्य में प्रोत्साहन मिलेगा।

किसी न किसी प्रकार आज सदन में दो वर्ग हैं-शुद्ध हिन्दीवादी और दूसरे लोग जो उदारता से यह स्वीकार करते हैं कि भाषा का विकास समय पर छोड़ देना चाहिये। मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं तो वही स्वीकार करने के लिए तैयार हूं जो सदन विनिश्चय कर दे। किन्तु कई लोगों में जो शुद्धताई की कट्टरता आ गई है उस पर मेरे हृदय में प्रबल विरोध उत्पन्न होता है। भाषा क्या है? भाषा वह है जो बोली जाती है। मेरे विचार में हमारा यह सोचना अवनतिसूचक है कि हम आज बोली जाने वाली भाषा को भावनावश शतप्रतिशत संस्कृत शब्दों से भरकर उन्नत बना सकते हैं। मैं संस्कृत की बहुत प्रशंसा करता हूं। मैं हिन्दी ही बोलता हूं जैसी कि मेरे प्रान्त बिहार में बोली जाती है, किन्तु वह ऐसी हिन्दी नहीं है जैसी कि मेरे मित्र यहां स्वीकार करना चाहते हैं। वही हिन्दी भाषा रखिये जो सब जगह बोली जाती है। उसे अन्य भाषाओं से शब्द लेकर उन्नति करने दीजिये। हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि यदि हिन्दी या हिन्दुस्तानी में अन्य शब्द आ जायेंगे तो वह गरीब हो जायेगी। भाषा का विकास और उन्नति तभी होती है जब उसमें अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करने का साहस हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है आप उसे हिन्दुस्तानी कहिये या हिन्दी। आप जो निश्चय करेंगे मैं जल्दी सीख लूंगा आदिवासी इसे सीख लेंगे। वे दुभाषी या त्रिभाषी होते हैं। पश्चिम बंगाल में संथाल बंगाली भी बोलते हैं और अपनी मातृ-भाषा भी। आप जहां जायेंगे यही देखेंगे कि आदिवासी अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त उस क्षेत्र की भाषा को अपना लेता है।

बिहार का एक भी सदस्य नहीं है जिसे आदिवासी भाषा सीखनी पड़ी हो। क्या मेरे मित्र पण्डित रविशंकर शुक्ल मुझे बता सकते हैं कि यदि मध्य प्रदेश में 32 लाख गोंद लोग भी हैं पर क्या उन्होंने गोंदी भाषा सीखने का प्रयत्न किया है? क्या किसी बिहारी ने संथाली सीखने का प्रयत्न किया है यद्यपि आदिवासियों से अन्य भाषायें सीखने के लिये कहा जाता है? हमारे लिये यह गर्व की बात है कि हम अन्य भाषाएं भी बोल सकते हैं।

मेरे विचार में इसका बदला भी होना चाहिये। कुछ सहिष्णुता की भावना होनी चाहिये, और जो प्रान्त हिन्दी बोलते हैं उन्हें एक अन्य भाषा सीखनी चाहिये। हमें

ऐसी ही भावना प्रदर्शित करनी चाहिये। हमें यह नहीं कहना चाहिये कि शेष देश को हमारी भाषा सीखनी चाहिये क्योंकि हम अन्य कोई चीज नहीं सीखेंगे।

श्रीमान्, जैसाकि मैंने कहा, हमें अभी भारत के वृद्ध पुरातत्व की खोज करनी है। हमें प्राचीन भारत का हाल बहुत कम पता है और प्राचीन भारत के विषय में जानकारी प्राप्त करने का एकमात्र उपाय यही है कि उन भाषाओं को सीखा जाये जो इस देश में भारतीय-आर्यों के आने से पहले प्रचलित थीं। केवल तभी हम जान सकेंगे कि प्राचीन काल में भारत किस प्रकार का था। मैं जानता हूं मेरे मित्र श्री मुंशी का यह ख्याल है कि जब मैं 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग करता हूं, मेरे मन में आदिवासी गणराज्यों का ख्याल होता है। वे शायद समझते हैं कि मैं इस संशोधन द्वारा तीन आदिवासी गणराज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा हूं। श्रीमान्, यह बात नहीं है। सन्थाली को लीजिये। यदि मेरा संशोधन स्वीकार हो जाता है तो उसका प्रभाव पश्चिमी बंगाल, आसाम, नि:संदेह बिहार तथा उड़ीसा पर पड़ेगा। गोंदी का मामला लीजिये। गोंदी मुख्यत: मध्य प्रदेश में है, किन्तु वह हैदराबाद तक विस्तृत है, थोड़ी सी मद्रास में और ज़रा सी बम्बई में भी है। इनमें से कोई भी अलग क्षेत्र नहीं है। वे दूरस्थ प्रान्तों तक फैले हुये हैं। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि इन भाषाओं को प्रोत्साहित और विकसित किया जाये वे स्वयं उन्नत बन सकें और अपनी उन्नति से वे देश की राष्ट्रभाषा को भी उन्नत बना सकें। मैं नहीं चाहता कि हम भाषाजनित साम्राज्यवाद के वशीभूत हो जायें। मैं जहां भी गया वहां की भाषा को सीखना मेरे लिये आनन्द की वस्तु थी।

जहां तक लिपि का संबंध है, मेरे बहुत प्रबल विचार हैं और उसके कारण हैं। मैं अनुभव करता हूं कि हम देवनागरी को स्वीकार करके एक गलत काम कर रहे हैं। मैं तीस वर्ष से डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी की विचारधारा को मानता हूं कि सब भारतीय भाषाओं के लिये अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-प्रणाली होनी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-प्रणाली का अर्थ यह है कि मैं तमिल का ऐसे ही उच्चारण कर सकता हूं जैसे कि कोई तमिल-भाषी करता है। मैं कनेरी भाषा को ऐसे बोल सकता हूं जैसे कोई कनेरी भाषी बोलता है। किसी भाषा को जाने बिना ही मैं उसे पढ़ सकता हूं और उसका उच्चारण कर सकता हूं जैसे उस भाषा वाला उसका उच्चारण करता है, पर मैं जानता हूं कि सदन उसे स्वीकार नहीं करेगा। जब तक मेरे मित्रों में भय-भाव है तब तक मुझे भय है कि उनसे ऐसी लिपि स्वीकार करने का अनुरोध करना व्यर्थ है जो दूसरों को पढ़ाने के या स्वयं पढ़ने के प्रयोजन के लिये ही ठीक न हो।

इसका वाणिज्यिक पहलू भी है। यह सुविख्यात बात है कि मुद्रण कल के सब उत्पादकों को देवनागरी लिपि के कारण सरदर्द रहा है। जितने समय में आप अंग्रेजी में लगभग पन्द्रह बीस हजार प्रतियां छाप सकते हैं उतने समय में देवनागरी में आप इसका दसवां भाग भी नहीं छाप सकते। अब यह इस मामले का वाणिज्यिक पहलू है। मैं भावुकता की बात नहीं कर रहा हूं। मेरे विचार में देश के लिये ऐसी कोई बात करना बुद्धिमानी नहीं है जिससे इसकी प्रगति कम हो जाये। देवनागरी स्वीकार करके हम अपने मार्ग में बाधा डाल रहे हैं, हम तब तक बहुत तीव्र गति से आगे नहीं बढ़ सकेंगे जब तक कि मेरे मित्र ऐसी कलें न बना सकें जो अन्तर्राष्ट्रीय वर्णमाला के समान द्रुतगति से चलेंगी या उससे जरा ही कम गति से चलेंगी।

[श्री जयपाल सिंह]

श्रीमान्, मुझे बहुत अधिक कुछ नहीं कहना है। मुझे तो यही अनुरोध करना है कि इस देश के प्राचीनतम लोगों की भाषाओं को इस अनुसूची में मान्य स्थान मिलना चाहिये। मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं दोनों ओर के सदस्यों को आश्वासन देना चाहता हूं कि मैं इस भाषा तथा लिपि संबंधी झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। सदन जो कुछ स्वीकार कर लेगा, मैं और मेरे लोग शीघ्र उसे अपना लेंगे, और इसी भावना से मैं सदन से कहता हूं कि मेरे संशोधन को स्वीकार करके सहिष्णुता प्रदर्शित करें।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन__ (युक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं उन बातों के विषय में पुनः कुछ नहीं कहना चाहता, जो मेरे पूर्ववर्ती वक्ता कह चुके हैं। मैंने श्री गोपालस्वामी आयंगर द्वारा प्रस्थापित संशोधनों पर कुछ संशोधन पेश किये हैं और मुझे जो कुछ कहना है, मैं अपनी प्रस्थापनाओं के उद्देश्य के यथासंभव निकट रहने का प्रयत्न करूंगा।

श्री गोपालस्वामी आयंगर ने जो वक्तृता दी है वह उनकी प्रस्थापनाओं की भावना की प्रतिबिम्ब है। उनके अनुसार, अंग्रेजी भाषा के बल पर ही हमें स्वतन्त्रता मिली है, और इसलिये यह अपेक्षित है कि अंग्रेजी को प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये—उनके ही शब्दों में—बहुत-बहुत वर्षों तक रखा जाना चाहिये, वास्तव में पन्द्रह वर्षों से भी अधिक समय के लिये रखा जाना चाहिये, यद्यपि इस पन्द्रह वर्ष के काल में उनकी प्रस्थापनाओं के अंतर्गत, अंग्रेजी संघ की भाषा रहनी चाहिये। उनकी दूसरी दृढ़ धारणा यह है कि कोई भी प्रान्तीय भाषाएं, जिनमें हिन्दी भी शामिल है, इतनी उन्नत नहीं है कि उस भाषा की आवश्यकताओं को पूरा कर सके जिसमें सब प्रकार का प्रशासन कार्य, विशेषतः विधि संबंधी उलझनों का भार वहन होना है। उनकी प्रस्थापनाओं की समस्त योजना इन दो दृढ़ धारणाओं पर अवलम्बित है और इन दोनों से प्रभावित है।

उनकी प्रस्थापनाओं में एक तीसरा नवीन भाव भी है, कि कालक्रम से भारत में अंग्रेजी भाषा का चाहे कुछ भी हो, पर हमने अंग्रेजी भाषा से जो अंक सीखे हैं और जिन्हें उनके मसौदे में 'भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप' नाम से पुकारा गया है, वे तो हर हालत में रहने ही चाहियें और उन्हें नागरी लिपि का अभिन्न अंग बनना होगा और जब भी तथा जहां भी देवनागरी लिपि का संघ के प्रयोजनों के लिये प्रयोग करना हो, उन्हें देवनागरी-संस्कृत अंकों का स्थान ग्रहण करना होगा।

मैं पूर्ण नम्रता से इस सदन के माननीय सदस्यों से निवेदन करना चाहता हूं कि वे इन तीन बातों पर जरा ध्यान से विचार करें, यह स्मरण रखते हुये कि आज हम जो कुछ कर रहे हैं उसका प्रभाव केवल हम पर या विविध प्रान्तों के उन थोड़े से नर नारियों पर ही नहीं पड़ेगा जो अंग्रेजी प्रणाली से शिक्षाप्राप्त हैं, और जिनका अंग्रेजी भाषा से ही पोषण तथा विकास हुआ है, प्रत्युत हमारे विनिश्चयों का प्रभाव तथा असर उन करोड़ों नर नारियों के जीवन पर पड़ेगा जिनका अंग्रेजी भाषा से कोई सम्पर्क नहीं है, जिनके लिये अंग्रेजी भाषा से कोई सम्पर्क होना असम्भव है और जिन्हें उनकी विद्यमान स्थिति से उठाकर लोकतन्त्र तथा

प्रशासन का प्रशिक्षण देना है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये, श्रीमान् कि, आज हम यहां जो विनिश्चय करेंगे उसका प्रभाव केवल विद्यमान पीढ़ी पर ही नहीं पड़ेगा, अपितु उन संततियों पर भी पड़ेगा जो अभी उत्पन्न नहीं हुई हैं।

प्रधान मंत्री ने अपने तरीके से हमें चेतावनी दी है कि हमें पीछे की ओर नहीं देखना चाहिये, कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिये जो हमें पीछे की ओर ले जाये। मैं सदा उस विचार से सहमत हूं, और मैंने स्वयं कई वर्षों से यही कहा है कि हमने विगत में जो कुछ प्राप्त किया है उससे हम संतुष्ट नहीं रह सकते, और अतीत में जो व्यवस्था थी, हम अपने आप को पूर्णत: उसी के अनुसार नहीं बना सकते। मैंने लोगों के समक्ष ये आदर्श रखे हैं:

समय भेदेन धर्म भेद:,

अवस्था भेदेन धर्म भेद:।।

समय और अवस्था के अनुसार हमारा धर्म, हमारे कर्तव्य बदल जाते है; ये प्राचीन आदर्श हैं। हमें याद रखना है कि हमारी छोटी-छोटी व्यवस्थाओं का भी समय होता है और फिर उनका समय नहीं रहता। संसार आगे बढ़ता है। आज की व्यवस्थाओं के स्थान पर नई व्यवस्थायें बन जाती हैं, नये तरीके और नई विचारधाराएं आ जाती हैं। अतीत के पदचिह्नों पर सदा एक नवीनता आती है। हम प्रकृति के उस महान मूलभूत तथ्य से पीछा नहीं छुटा सकते, चाहे हम ऐसा करना चाहें भी।

साथ ही, श्रीमान्, हमें स्मरण रखना है, जैसे कि प्रधान मंत्री ने कहा था कि हमारी जड़ अतीत में हैं और हम उससे अपना संबंध नहीं तोड़ सकते। एक प्रकार से हम एक दृढ़ किन्तु अदृश्य शृंखला द्वारा अतीत से बंधे हुए हैं, जो आकाशिक शृंखला है, जो सदा समय के साथ बढ़ती रहती है, किन्तु जो अटूट रहती है। अत: हम जो कुछ करने का प्रयत्न करें, उसमें हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि हम अपने भाग्य की ओर तो बढ़ें ही, पर हमारा अतीत से संबंध जोड़ने वाली वह लम्बी, दृढ़ शृंखला निर्बल न हो जाये, वरन् प्रत्येक कदम पर प्रबल ही हो। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह हमारा मूलभूत राजनैतिक दर्शन होना चाहिये कि हम अतीत में न रहें, पर विद्यमान में रहें जो हमारा अतीत से संबंध जोड़ता है।

मैं उन अच्छाइयों को पूरी तरह से लेने के पक्ष में हूं जो हमें पश्चिम से प्राप्त होती हैं। किन्तु मैं यहां उपस्थित सबसे कहता हूं कि वे याद रखें कि पश्चिम में चमकने वाली सब वस्तु स्वर्ण नहीं है, पश्चिमीय वस्तु अवश्यमेव अच्छी नहीं है, हमारे देश में ही ऐसी उच्च भावनाएं और परम्पराएं स्थापित हुई हैं जिनका प्रभाव, समय बीतने पर, मानवजाति के भाग्य पर अधिकाधिक पड़ेगा।

इन्हीं सिद्धान्तों को सामने रखकर, मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य उस मसौदे का परीक्षण करें जो हमारे मित्र श्री गोपालस्वामी आयंगर ने स्वीकृति के हेतु पेश किया है। मैं इसे पढ़ कर नहीं सुनाऊंगा। मैं मान लेता हूं कि आप इसके प्रत्येक महत्वपूर्ण खण्ड से अवगत हैं। उस मसौदे के अनुसार अंग्रेजी भाषा का अस्तित्व

[माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन]

कम से कम पन्द्रह वर्ष रहेगा, केवल उसका अस्तित्व ही नहीं रहेगा, वरन् संघ संबंधी समस्त मामलों में उसका साम्राज्य रहेगा। मैंने सोचा था कि यद्यपि आने वाले कुछ समय के लिये अंग्रेजी को सरकारी प्रयोजनों के लिये रखना अपेक्षित होगा, पर वह समय इतना लम्बा नहीं होगा। मैंने सोचा था कि इससे बहुत अल्प समय में हम लोगों के पास उस भाषा में कार्य कर सकेंगे जिसे वे समझते हैं। मैं यह नहीं भूलता कि हमारे मित्रों के लिये जो दक्षिण से आये हैं हिन्दी, जिसे राजभाषा बनाने की प्रस्थापना है, सीखना बहुत आसान नहीं होगा। साथ ही मेरा निवेदन है कि दक्षिण के लोग हिन्दी से सर्वथा अपरिचित नहीं हैं। राष्ट्रपिता के निदेश के अंतर्गत, जिनका नाम हमारे हृदय की भावतंत्री को सदा ध्वनित करता रहेगा, हिन्दी का कार्य दक्षिण भारत में 1918 में आरम्भ हुआ था, और इस कालावधि में लाखों नर नारियों ने हिन्दी सीख ली है और जैसाकि मेरे मित्र श्री मोतुरी सत्यनारायण, जो यहां बैठे हैं, आपको अधिक अच्छी तरह बता सकते हैं, प्रतिवर्ष लगभग पचपन साठ सहस्र परीक्षार्थी दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की परीक्षाओं में बैठते हैं जिसका नाम हाल ही में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा रख दिया गया है।

*एक माननीय सदस्य: वे पढ़ लिख सकते हैं किन्तु वे अपनी बात को अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

*माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन: यह हो सकता है। मेरा तो यही कहना है कि इससे पता लगता है कि हिन्दी भाषा दक्षिण भारत में नई चीज नहीं होगी। मैं इस ख्याल में था कि मद्रास के नवयुवकों को हिन्दी सिखाने में पन्द्रह वर्ष का लम्बा समय अपेक्षित नहीं होगा, किन्तु पन्त जी ने कहा कि यह कहना हमारे दाक्षिणात्य भाइयों का काम है कि उन्हें कितना समय चाहिये और मैं इस बात से सहमत हूं कि इस मामले में उनको बाध्य करना हमारा काम नहीं है। हम अपनी सेवाएं अर्पण करेंगे, हम मंत्रणा दे सकते हैं किन्तु हम यह उन पर छोड़ देते हैं कि वे कितना समय चाहते हैं और कितने समय में वे अपने लोगों को संघ के प्रयोजनार्थ हिन्दी प्रयोग करने के योग्य बना लेंगे।

हम इसी भावना से पन्द्रह वर्ष के समय के लिये सहमत हो गये। हमने पांच से आरम्भ किया था, फिर हम दस पर आ गये और फिर हमने देखा कि हमारे दाक्षिणात्य भाई पन्द्रह वर्ष चाहते हैं और हम उस पर सहमत हो गये। किन्तु श्री आयंगर के मसौदे में, एक कठोर उपबन्ध है कि पांच वर्ष तक या अधिक समय तक अंग्रेजी के अतिरिक्त और किसी रूप में हिन्दी का प्रयोग बिल्कुल नहीं होगा, जब तक आयोग सिफारिश न कर दे और वह सिफारिश राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार न कर ली जाये। वह मुझे कुछ कठोर उपबन्ध प्रतीत होता है। यह कुछ कोमल बन सकता था। हिन्दी को उन सरकारी प्रयोजनों से बिल्कुल अलग क्यों रखा जाये जिनके लिये हिन्दी का प्रयोग हमारे दाक्षिणात्य मित्रों को असुविधा हुये बिना हो सकता है? विद्यमान खण्डों के अधीन संघ का कोई मंत्री किसी सरकारी कार्य वश किसी को कोई पत्र हिन्दी में लिख ही नहीं सकता जब तक कि उस पत्र के साथ अंग्रेजी अनुवाद न हो। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में हिन्दी का प्रयोग होना कदापि सम्भव नहीं है। अत: इसका यह आशय हुआ कि पांच वर्ष या अधिक समय तक, जब तक कि आयोग सिफारिश न करे और राष्ट्रपति उसे स्वीकार

न करे तब तक कोई कार्य हिन्दी में नहीं हो सकता, सिवाय अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद के। आप अंग्रेजी में एक पुस्तक प्रकाशित कर सकते हैं और उसका हिन्दी में भी अनुवाद कर सकते हैं। केवल यही कार्य पांच वर्ष या अधिक समय तक हो सकता है। यह कुछ कठोर है। किन्तु मैं इस पर भी सहमत हूं कि पांच वर्ष तक हिन्दी में कुछ नहीं होगा, केवल अंग्रेजी के अतिरिक्त कुछ हो सकता है।

किन्तु मैं आपसे कहता हूं कि इस बात पर विचार करो कि पांच वर्ष के पश्चात् क्या होगा? श्री आयंगर की प्रस्थापना के अधीन, पांच वर्ष के अंत में, भाषा के प्रश्न पर विचार करने के लिये आयोग नियुक्त किया जायेगा। इसका अवश्य यह प्रभाव होगा कि यह पांच वर्ष की कालावधि दो वर्ष या अधिक बढ़ जायेगी, क्योंकि आयोग, अपनी नियुक्ति के पश्चात् समवेत होगा और कदाचित् देश भर में घूमेगा तथा प्रतिवेदन देगा। उसके पश्चात् एक संसदीय समिति बैठेगी और आयोग की प्रस्थापनाओं का परीक्षण करेगी तथा फिर अपनी अन्तिम रिपोर्ट देगी। मैं कोई समय निश्चित नहीं करता। मेरे संशोधन में यही लिखा है कि 'at' के स्थान पर 'before' शब्द रख दिया जाये, ताकि प्रतिवेदन पहले ही तैयार हो जाये तथा सरकार यह निदेश दे सके कि पांच वर्ष के अंत में कुछ परिवर्तन, जो हिन्दी के संबंध में अपेक्षित समझे जायें, प्रभावी हो सकें। मैंने यह छोटा सा संशोधन पेश किया है और मुझे आशा है कि इसे स्वीकार कर लिया जायेगा। इसका यही अर्थ है कि पांच वर्ष समाप्त होने से पूर्व ही आयोग नियुक्त हो जायेगा। किन्तु मैंने अपने संशोधन में स्पष्ट कर दिया है कि जो भी सिफारिशें स्वीकृत होंगी वे केवल पांच वर्ष की समाप्ति पर ही प्रभावी होंगी। और मुझे इसी पर संतोष हो जायेगा कि पांच वर्ष के अन्दर केवल वही काम हिन्दी में हो जो अंग्रेजी का अनुवाद हो।

इसी प्रकार अन्य खण्डों में मैंने कुछ परिवर्तनों की प्रस्थापना की है। जैसाकि अध्यक्ष ने निदेश दिया है, इन संशोधनों के विषय में यह मान लिया गया है कि वे पेश कर दिये गये हैं। अतः मैं उन्हें पढ़ूंगा नहीं। मैं उनके सामान्य प्रयोजन का ही उल्लेख करूंगा। एक संसदीय समिति का सुझाव दिया गया है और यह कहा गया है कि वह आयोग की सिफारिशों पर प्रतिवेदन देगी। मैंने इस आशय का एक छोटा सा खण्ड जोड़ दिया है कि यह समिति अपनी सिफारिशें भी दे सकती हैं– "जो सिफारिशें वह उपयुक्त समझे।" यही थोड़े से शब्द मैंने समिति की नियुक्ति और आयोग की सिफारिशों पर उसके प्रतिवेदन संबंधी खण्ड विशेष में जोड़े हैं। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि इस संसदीय समिति को भी, यदि वह उचित समझे तो, कुछ सिफारिशें करने दीजिये और सरकार को समिति तथा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने दीजिये।

ये ही संशोधन मैंने 301-ख में प्रस्थापित किये हैं।

अब मैं प्रादेशिक भाषाओं संबंधी अध्याय 2 पर आता हूं। श्री आयंगर के मसौदे के 301-ग में लिखा है:–

> "..... a State may by law adopt any of the languages in use in the State or Hindi as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State."

[माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन]

(....राज्य विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा।)

मैं उससे सहमत हूं। मुझे तो केवल परन्तुक पर आपत्ति है। उसमें लिखा है:

"Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the English language shall continue to be used for those official purposes within the States for which it was being used at the commencement of the Constitution."

(परन्तु जब तक राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये इस संविधान के आरम्भ पर वह प्रयोग की जाती थी।)

मेरी समझ में यह नहीं आता है कि राज्यों में अंग्रेजी के प्रयोग को प्रोत्साहित करना अपेक्षित क्यों होना चाहिये। हो सकता है कि संविधान के आरम्भ में वे अंशत: अंग्रेजी का प्रयोग कर रहे हों, किन्तु वे उसे बदलना चाहते हों। मैं जानता हूं कि आपने उपबन्ध किया है कि वे उसे विधि द्वारा बदल सकते हैं। किन्तु वे शायद अंग्रेजी का ही नहीं, अन्य भाषाओं का भी प्रयोग करते हों। अत: मैं परन्तुक के स्थान पर यह वाक्य रखना चाहता हूं:

"Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the language or languages which were being used for official purposes within the State at the commencement of the Constitution shall continue to be so used."

(किन्तु जब तक राज्य का विधान-मण्डल विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर वह भाषा या वे भाषायें राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग की जाती रहेंगी, जो संविधान के आरम्भ पर प्रयोग की जाती थी।)

मेरे अपने प्रान्त में हम इस समय राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। मेरे विचार में बिहार और मध्य प्रदेश में भी उसी का प्रयोग हो रहा है। हमारे लिये नई विधि पारित करके हिन्दी स्वीकार करना अपेक्षित क्यों हो। हम इस समय सरकार के निदेश से हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं और इसलिये मेरे सुझाये हुये शब्द अधिक उपयुक्त होंगे।

फिर अनुच्छेद 301-ङ में लिखा है कि जब राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात किसी अन्य भाषा का प्रयोग

चाहता है तो वह निदेश दे सकेगा कि उस भाषा को भी राजकीय अभिज्ञा दी जाये। मैं उससे सहमत हूं परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस मामले में कांग्रेस कार्यसमिति के निदेश का अनुसरण किया जाये और जनसमुदाय का एक निश्चित अनुपात नियत कर दिया जाये जिसकी मांग पर किसी भाषा को अभिज्ञा दी जाये। मेरे विचार में कार्यसमिति ने 20 प्रतिशत रखा था और हम भी उसे ही मान सकते हैं; अन्यथा केन्द्रीय सरकार के लिये विनिश्चय करना बहुत कठिन हो जायेगा कि कहां स्वीकार करे और कहां अस्वीकार करे और उससे कुछ गड़बड़ तथा कुछ प्रांतों में कुछ कटुता भी हो सकती है। जब कोई अनुपात नियत हो जायेगा, तब केन्द्रीय सरकार के लिये मार्ग साफ हो जायेगा।

और फिर अध्याय 3–"उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय की भाषा"–में जो प्रस्थापनायें रखी गई हैं, वे अवनतिशील हैं, और श्री आयंगर मुझे ऐसा कहने पर क्षमा करेंगे। आपने हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया है। मैं मानता हूं कि आप चाहते हैं कि हिन्दी शनैः शनैः अंग्रेजी का स्थान ले ले। वह तभी हो सकता है जबकि आप हिन्दी को ऐसा अवसर दें कि वह कम से कम हिन्दी प्रान्तों में तो अंग्रेजी का स्थान ले ले। मैं जानता हूं कि हिन्दी के प्रयोग में अहिन्दी प्रान्तों को कठिनाइयां हैं, किन्तु हिन्दी प्रान्तों को कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाइयों की अतिशयोक्ति मत करिये। यह कहा गया है कि उपयुक्त वाग्धाराएं, उपयुक्त पदावलियां या उपयुक्त शब्दावली नहीं मिलती। खैर, यह बात उन पर छोड़ दीजिये जो हिन्दी में कार्य करते हैं। मेरे अपने प्रान्त में, विधेयकों तथा अधिनियमितियों के मूल मसौदे हिन्दी में होते हैं। स्पष्ट है कि हमारे कार्य से दक्षिण के हमारे भाइयों के लिये कोई कठिनाई नहीं होती। आप हमें अपना समस्त कार्य अंग्रेजी भाषा में करने के लिये क्यों बाध्य करते हैं, जब हम उसे हिन्दी में ही कर रहे हैं? फिर आप कहते हैं कि जहां तक उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों का संबंध है, उनका कार्य भी पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी में ही होना चाहिये। मैं मानता हूं कि उच्चतम न्यायालय पन्द्रह वर्षों तक अंग्रेजी में कार्य करे, किन्तु मेरा निवेदन है कि यह अपेक्षित नहीं है कि उस काल में सब उच्च न्यायालय भी अंग्रेजी में कार्य करें। ऐसे उच्च न्यायालय हैं—उनमें से कई राज्यों में नये बने हैं, जहां कार्य हिन्दी में होता है और परम्परा से होता रहा है। उदाहरण के लिये ग्वालियर या इन्दौर को ही लीजिये। मुझे पता है कि वहां अंग्रेजी का भी प्रयोग हुआ है, कुछ बाहर से आयात किये गये न्यायाधीशों ने अंग्रेजी में कार्य किया और उसकी अनुमति दे दी गई; और फिर भी बहुत सा कार्य साथ-साथ हिन्दी में होता रहा है। क्या आप उसे अब रोक देंगे? इसी प्रकार राजस्थान में एक उच्च न्यायालय है और कुछ अन्य राज्यों में भी हैं। क्या आप इन उच्च न्यायालयों को हिन्दी में कार्य करने से रोक देंगे? विद्यमान प्रस्थापना के अंतर्गत इन उच्च न्यायालयों में समस्त हिन्दी कार्य असम्भव हो जायेगा। मैं कहता हूं कि इसे बदलना चाहिये।

फिर एक और प्रकार के उच्च न्यायालय हैं: वे जो अपना कार्य अंग्रेजी में करते रहे हैं किन्तु जो हिन्दी को पन्द्रह वर्ष से बहुत कम समय में अपना सकते हैं। मेरे अपने प्रान्त के, या बिहार के या मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय को ही लीजिये। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारा उच्च न्यायालय पांच वर्षों के पश्चात्

[माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन]

पूर्णत: हिन्दी में कार्य करना आरम्भ कर सकता है। शनै:शनै: आगामी पांच वर्षों में समस्त प्रक्रिया निश्चित की जा सकती है तथा हिन्दी की आवश्यकताओं के अनुसार बनाई जा सकती है। शब्दावली से कोई कठिनाई नहीं होगी। वह तो पहले ही बन चुकी है। बहुत सी शब्दावली है ही, और आवश्यक शब्दों का निर्माण करना आखिर कोई बहुत कठिन कार्य नहीं है। हिन्दी कोई नई भाषा नहीं है। जब आयरलैण्ड ने अपना संविधान बनाया था तब उसने आयरिश भाषा को अपनाया था, जिसमें अधिक साहित्य नहीं था और जिसमें पर्याप्त शब्दावली भी नहीं थी और फिर भी आयर ने उसे अपनाया। हमारी भाषा हिन्दी तो अत्यन्त शक्तिशाली भाषा है।

श्री आयंगर ने कहा कि हिन्दी में शब्दावली का नितान्त अभाव है जिसकी आवश्यकता होगी। उस बात पर मैं क्या कहूं। वे स्वयं कहते हैं कि वे उस भाषा से परिचित नहीं हैं और फिर भी वे उसके विषय में निर्णय देते हैं। मेरा निवेदन है कि यह उचित नहीं है। मेरा तो यह निवेदन है कि हिन्दी, संस्कृत के आश्रय से, जिसके विषय में इस सदन में इतना कहा जा चुका है और जिसका मैं सर्वथा अनुमोदन करता हूं—हिन्दी संस्कृत की सहायता से, शब्दावली की समस्त कठिनाइयों को सुगमता से पार कर सकेगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि पांच वर्षों की समाप्ति से पूर्व ही, हम उच्च न्यायालय का कार्य हिन्दी में चला सकते हैं। किन्तु मैं कहता हूं कि पांच वर्ष तो पर्याप्त समय है ही। हमें इसकी आवश्यकता नहीं है कि पन्द्रह वर्षों तक हमारा कार्य अंग्रेजी में ही चले। फिर उस लम्बे समय तक अंग्रेजी में कार्य करते रहना हमारे लिये अनिवार्य क्यों बनाया जाये? हमें विकास करने के लिये पर्याप्त स्थान दीजिये और फिर पन्द्रह वर्ष पश्चात् समस्त महत्वपूर्ण कार्य, उदाहरण के लिये संघ का कार्य करना सरलतर हो जायेगा क्योंकि उस समय तक हिन्दी प्रान्त वह वातावरण उत्पन्न कर देंगे और वह शब्दावली बना देंगे जो समस्त देश के लिये सहायक होगी।

***मौलाना हसरत मोहानी** (युक्तप्रान्त : मुस्लिम): आपका हिन्दी प्रान्तों से क्या आशय है?

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** मैं उन प्रान्तों का निर्देश कर रहा हूं जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा स्वीकार कर लिया है, उदाहरण के लिये, युक्त प्रान्त ने औपचारिक रूप में हिन्दी को अपनी भाषा मान लिया है: इस प्रकार बिहार ने भी किया है.....

***मौलाना हसरत मोहानी:** युक्त प्रान्त या तो उर्दू प्रान्त है या हिन्दुस्तानी प्रान्त है। वह हिन्दी भाषी प्रान्त नहीं हो सकता।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** यह आपका विचार हो सकता है। मैं हिन्दी, हिन्दुस्तानी या उर्दू के उस विवाद में नहीं पड़ना चाहता। मैं तो केवल यही कहता हूं कि हिन्दी को युक्त प्रान्त की राजभाषा स्वीकार कर लिया गया है। और इसी भाषा में सब सरकारी अधिनियमितियां और आज्ञायें आजकल पारित होती हैं। नि:संदेह बहुत सा कार्य अंग्रेजी में भी हो रहा है, पर शनै:शनै: वह कार्य भी हिन्दी के माध्यम से ही होने लगेगा। ये ही छोटे छोटे रूप भेद हैं जिनका मैंने सुझाव दिया है।

अब मैं 301-क संबंधी अपने मुख्य संशोधन पर आता हूं जो अंकों के विषय में है। मैं जानता हूं, श्रीमान्, कि अंकों के विषय में जो विवाद हुआ है उससे कुछ कटुता उत्पन्न हो गई है। मैं उस कटुता को बढ़ाना कदापि नहीं चाहता। मैं यथासम्भव उसे दूर करूंगा। मैं जानता हूं कि मेरे मद्रास के मित्र हिन्दी अंकों को बदलना चाहते हैं।

*माननीय सदस्यगण: बंगाल भी।

*माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन: मैं गलत कह रहा हूं तो आप शुद्ध कर सकते हैं, किन्तु मैंने अपने बंगाली मित्रों से यह बात कभी नहीं सुनी।

*माननीय सदस्यगण: बम्बई में भी। वास्तव में सब अहिन्दी भाषी लोग यही चाहते हैं।

*माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन: मेरा निवेदन यह है कि यह कहना बिल्कुल शुद्ध नहीं है कि सब अहिन्दी भाषी क्षेत्र यह परिवर्तन चाहते हैं। मैं श्री शंकर राव देव और डॉ. अम्बेडकर से, जो यहां बैठे हैं, पूछता हूं कि क्या महाराष्ट्र के लोग उसे स्वीकार करेंगे।

*श्री शंकर राव देव: मैं कहता हूं कि मैं जो कुछ कहता हूं महाराष्ट्री भी वही बात कहेंगे।

*माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन: महाराष्ट्र के विषय में मैं अपनी जानकारी से निवेदन कर सकता हूं कि वहां लिपि वही है अत: यदि वहां जनमत लिया जाये तो महाराष्ट्र के लोग तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार नहीं करेंगे।

*माननीय सदस्यगण: यदि जनमत गणना होगी तो हिन्दी नहीं रहेगी।

*माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन: मैं माननीय सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे एक-एक करके बाधा डालें और एक ही समय पर अनेक न बोलें। मुझे श्री शंकरराव देव और डॉ. अम्बेडकर का कथन सुन कर प्रसन्नता होगी।

*माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी: इस पर जनमत क्यों न ले लिया जाये?

*श्री एच.जे. खांडेकर (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): मैं महाराष्ट्री हूं और मैं कह सकता हूं कि यदि महाराष्ट्र में जनमत लिया जायेगा तो वे अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार नहीं करेंगे।

*डॉ. पी.एस. देशमुख : (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): मैं भी महाराष्ट्री हूं और मैं कह सकता हूं कि वे अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को स्वीकार नहीं करेंगे।

*अध्यक्ष: यह अपेक्षित नहीं है कि किसी प्रस्थापना विशेष पर सदस्य व्यक्तिगत राय अभिव्यक्त करें।

*माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी: माननीय सदस्य राय पूछ रहे हैं।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** मैंने अपना विचार प्रगट कर दिया था। आप उससे सहमत हों या नहीं। मैंने डॉ. श्याम प्रसाद मुखर्जी से अपनी राय देने के लिये नहीं कहा। मैंने तो यह कहा था और यह बात अब भी कहता हूं और यही कहता हूं कि यदि यह प्रस्थापना महाराष्ट्र के लोगों के पास जाये तो वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे। मेरा भी उस प्रान्त से सम्पर्क है। और मेरे मित्र श्री मुंशी चाहे कुछ भी कहें, मैं तो यही कहता हूं कि जब यह उपबंध गुजरातियों के पास जायेगा तो वे भी इसे स्वीकार नहीं करेंगे।

(कई माननीय सदस्यों द्वारा बाधा।)

क्या इतने लोगों के लिये एक ही समय पर बोलना आवश्यक है? यदि एक व्यक्ति बाधा डाले तो मैं उसकी बात सुन सकता हूं किन्तु जब चार पांच व्यक्ति एक ही समय बोल पड़ें तब मैं किसी की भी बात नहीं सुन सकता।

मैंने श्री शंकर राव देव की बात सुनी है। वे कहते हैं कि यदि समस्त संविधान पर जनता की राय ली जाये तो वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे।

***श्री शंकरराव देव:** इसमें से बहुत कुछ को।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** यदि ऐसी बात है तो इसमें से बहुत कुछ रद्दी की टोकरी में फेंकने लायक है। यदि संविधान के किसी भी भाग को जनता स्वीकार नहीं करेगी तो इसे यहां स्वीकार नहीं करना चाहिये। मैं विनम्रता से निवेदन करता हूं कि मैं समस्त देश में जनमतगणना को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूंगा। यदि प्रान्त हिन्दी को स्वीकार नहीं करें, तो मैं उन पर उसे कभी नहीं लादूंगा। फिर मैं तत्काल कहूंगा कि हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं होनी चाहिये। हिन्दी को किसी प्रान्त पर थोपा क्यों जाये? यह तो प्रान्तों को विनिश्चय करना है कि वे हिन्दी को स्वीकार करेंगे या नहीं करेंगे। वे अंग्रेजी को ही जारी रख सकते हैं या उनकी इच्छा हो तो वे ऐसे प्रान्तों को अपना सकते हैं। मैं उस पर पूर्णत: सहमत होऊंगा, यदि उनका यही विचार है। किन्तु लोगों का मत जानने का कोई उपाय खोजना चाहिये। कुछ विद्यार्थियों ने अभी जनता की इच्छा पूछी थी। हमने उसके विषय में पढ़ा है। जनता की राय का पता लगाने के लिये समस्त देश में दूसरा उपाय भी अपनाया जा सकता है। मद्रास में भी वैसा कर लिया जाये। चाहे यहां मेरे मित्र कुछ भी कहें मुझे तो आशा है कि मद्रास में जनता की बहुत बड़ी संख्या हिन्दी चाहेगी।

***कई माननीय सदस्य:** नहीं, नहीं।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** किन्तु यदि जनता का मत लेना सम्भव नहीं है, तो मैं उन सबसे जो शक्ति-आरूढ़ हैं, कहूंगा कि वे अपने हृदय की छोटी सी आवाज़ को सुन और कोई छोटी सी आवाज को भी न सुनें जिसे वे समझते हैं कि जनता स्वीकार नहीं करेगी...

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ मैं युक्त प्रांत में जनमत लेने की मांग करता हूं कि वह हिन्दी प्रान्त रहेगा या हिन्दुस्तानी प्रान्त होगा। जहां एक भी व्यक्ति संस्कृतनिष्ट हिन्दी नहीं बोलता।

*__अध्यक्ष:__ क्या मैं यह बता दूं कि इस संविधान सभा पर यह भार है कि वह देश के लिये संविधान बनाये? इस सभा के संविधान में जनमत गणना का कोई उपबन्ध नहीं है अत: पूरी या आंशिक जनमत गणना का कोई प्रश्न नहीं है। अत: उस पर कोई विवाद नहीं खड़ा होना चाहिये, क्योंकि वह व्यर्थ होगा।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ मैं उन लोगों से जो शक्ति-आरूढ़ हैं अनुरोध करता हूं कि वे इस मामले पर विचार करें। मैं यह नहीं कहता कि इस मामले पर प्रत्यक्ष जनमत लिया जाये। जनमतगणना क्या है? उसका अर्थ है केवल लोगों की इच्छा। यदि यह लोगों पर छोड़ दिया जायेगा तो वे क्या कहेंगे?...

*__अध्यक्ष:__ जहां तक इस संविधान सभा का संबंध है यह लोगों की इच्छा का प्रतिबिम्ब है।

*__माननीय श्री आर.आर. दिवाकर__ (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, माननीय सदस्य जो कुछ कह रहे हैं वह इस सभा के सदस्यों पर आक्षेप है।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ यदि प्रत्येक बार जब भी हम जनता की इच्छा का निर्देश करें, उस पर यह आपत्ति कर दी जाये कि यह इस सदन के सदस्यों पर आक्षेप है, तो कुछ भी कहना असम्भव हो जायेगा। कभी-कभी सदन की इच्छा लोगों की इच्छा से भिन्न हो सकती है। जहां तक अंकों का संबंध है मैं आपसे कहता हूं कि उस पर विचार करिये। शायद आपने पहले ही दृढ़ निश्चय कर लिया है। फिर भी मैं आपसे कहता हूं कि मैं जो कुछ कहता हूं उसे सुनिये। इस अंकों के प्रश्न पर गरम मत होइये...

*__माननीय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी:__ हमारे लिये यह चेतावनी है।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ आपने दृढ़ निश्चय कर लिया है और आप अपने विरोधियों पर हंसना चाहते हैं। यह आपको शोभा नहीं देता। मैं इस प्रश्न पर गम्भीर हूं। मैं जानता हूं कि श्री आयंगर इस प्रश्न पर गम्भीर हैं। यह लोगों के भविष्य संबंधी मामला है।

हम कई वर्षो से राष्ट्रभाषा की बात करते रहे हैं। सदन के समक्ष यह कोई नया प्रश्न नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी की बात है कि यह राष्ट्रभाषा का विचार बंगाल में उत्पन्न हुआ है, युक्त प्रान्त या बिहार में नहीं। मैं आपको उद्धरण दे सकता हूं किन्तु मैं सदन का समय नहीं लेना चाहता। बंकिम चन्द्र चटर्जी का मूल लेख मेरे पास है। इस विषय पर मेरे पास केशव चन्द्र सेन का मूल कथन है। 1908 में 'बन्देमातरम्' में जो कुछ छपा था उसका मूल मेरे पास है, जिसके सम्पादक श्री अरविन्द्र घोष थे.....

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उसका हमें पर्याप्त पुरस्कार मिल चुका है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडनः** यह विचार वहीं उत्पन्न हुआ था और फिर तिलक ने उसका समर्थन किया और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने उसे अपनाया था। मेरा कहना यह है कि यह आन्दोलन कई वर्षों से चल रहा है और हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने के विषय पर कुछ विचारों को लेकर लोगों ने कार्य किया है। यह तो लगभग स्वीकार ही कर लिया गया है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है और विविध प्रान्तों में इसी धारणा पर काम चल रहा है।

कुछ मिनट पूर्व मैंने बताया था कि मद्रास में क्या कार्य हुआ है। मैं यह भी कह सकता हूं कि बंगाल, आसाम, महाराष्ट्र, गुजरात और उड़ीसा में भी वह कार्य वर्षों से चल रहा है। आज वर्धा से हिन्दी में परीक्षाएं होती हैं और उनमें प्रति वर्ष लगभग 1,40,000 नवयुवक और महिलायें बैठती हैं—वे नवयुवक और महिलायें जो हिन्दी भाषी प्रान्तों की नहीं हैं वरन् जो अहिन्दी भाषी प्रदेशों की होती हैं। उससे सिद्ध होता है कि यह नया विचार नहीं है, उस विचार के आधार पर देश में कार्य होता रहा है।

क्या मैं पूछ सकता हूं, यह अंकों संबंधी विचार देश में कब से है? यदि हिन्दी भाषा को लोग वर्षों से लगभग स्वीकार किये हुए न होते तो कोई भी सदस्य उस भाषा की स्वीकृति के विषय में इस सभा के समक्ष कोई प्रस्थापना लाने का साहस नहीं कर सकता था उसी आधार पर संविधान के मसौदे के भाषा संबंधी खंड की रचना की गई है। किन्तु लोग इन अंकों के विषय में कितने समय से वाद-विवाद कर रहे हैं? केवल दो तीन सप्ताहों से?

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं माननीय सदस्य को सूचना देना चाहता हूं कि यह प्रश्न हमारे समक्ष 15 वर्ष पूर्व दक्षिण की हिन्दी प्रचार सभा के संबंध में उठा था और हमने यह विनिश्चय किया था कि दक्षिण में हिन्दी प्रचार अन्तर्राष्ट्रीय अंकों से होना चाहिये था।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडनः** मैं श्री सन्तानम् के कथन को ठीक मान लेता हूं। मुझे इसका कभी पता नहीं था। किन्तु कभी श्री सन्तानम् ने या मद्रास की हिन्दी प्रचार सभा ने इस प्रश्न को देश के समक्ष नहीं रखा।

***श्री एम. सत्यनारायण** (मद्रास : जनरल): आप स्वयं पन्द्रह वर्ष पूर्व हिन्दी प्रचार सभा में थे।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन :** जब हिन्दी प्रचार सभा से मेरा सम्पर्क था उस समय तो हिन्दी अंक ही प्रयुक्त होते थे। मैं यह सूचना अपने माननीय मित्र श्री सत्यनारायण को दे सकता हूं, जिनका सम्पर्क उस सभा से मेरे बहुत बाद में आरम्भ हुआ था। जब उस सभा से मेरा कुछ संबंध था, जब वह सभा

इलाहाबाद के निदेश से कार्य कर रही थी तब सब कार्य हिन्दी अंकों द्वारा हो रहा था। बाद में ही शायद वे अंग्रेजी अंकों को लाये होंगे; और आज भी मैं उन्हें स्मरण करा सकता हूं कि कम से कम कुछ हिन्दी पुस्तकों में, जो उन्होंने प्रकाशित की हैं, नागरी अंक हैं। मैंने कम से कम एक तो अवश्य देखी है।

*__श्री एम. सत्यनारायण:__ 1927 में थी।

*__माननीय श्री आर.आर. दिवाकर:__ हिन्दी, पंजाबी, उर्दू की क्या स्थिति होगी जिनमें आजकल इन अंकों का प्रयोग हो रहा है?

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ जब भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया है तो उसके अंकों को भी स्वीकार करिये। मैं आपसे कहता हूं इस पर विचार करिये कि क्या हिन्दी पर अंग्रेजी अंक लादने का यह उपयुक्त समय है, जबकि इस विषय पर देश के किन्हीं विचारों पर निश्चित नहीं है? मैं कई बार कह चुका हूं कि मैं किसी प्रान्त पर हिन्दी नहीं थोपूंगा, किन्तु संविधान के द्वारा आप इन अंकों को सरकारी प्रयोजनों के लिये उन सब पर लगभग थोप ही रहे हो जो अपना कार्य नागरी लिपि में करते हैं। मैं आपसे कहता हूं कि वहां आप रुक जाइये। प्रधान मंत्री ने बार-बार कहा है कि भाषाओं का विकास होता है, वे एक दिन में नहीं बनतीं। उन्होंने कई बार ऐसा कहा है।

*__एक माननीय सदस्य:__ वे ठीक हैं।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ वे ठीक हैं। भाषाओं का विकास होता है। किन्तु अंकों का भी विकास होता है *(बाधा)*। अंकों का भी विकास होता है, उनका विकास हुआ है। *(बाधा)*। अंकों का विकास लिपि के साथ हुआ है। लिपि भी उस भाषा के समान ही विकसित होती है जिसमें उनका प्रयोग होता है। लिपि एक दिन में नहीं बनी है। उसके सब भागों का, स्वरों, व्यंजनों और अंकों का विकास हुआ है। यह एक ही कलात्मक पूर्णता है। आप उस पूर्णता के मुख पर कोई चिप्पी नहीं लगा सकते। आज आप कहते हैं "नागरी अंकों को निकाल डालिये।" आप यह भी कह सकते हैं, चाहे आप आज नहीं कह रहे हैं "स्वरों को निकाल दीजिये, अंग्रेजी स्वरों का प्रयोग होने दीजिये और केवल व्यंजनों को ही हिन्दी का रहने दीजिये।" मैं कहता हूं कि आप तमाशा बना देंगे।

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर__ (मद्रास : जनरल): यह तो व्यंग है।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ मेरे मित्र कहते हैं कि यह व्यंग है। वे स्वरों को हटाना बेहूदा समझते हैं। जहां तक हमारा संबंध है, हम अंकों को हटाना भी बेहूदा समझते हैं। इससे किसी को कोई लाभ नहीं होता। आप हमसे ऐसी वस्तु छीन रहे हैं जिससे आप धनी नहीं बनते किन्तु हम अवश्य निर्धन बन जाते हैं।

हमारे अंक प्राचीन बपौती हैं। कभी यह भी कहा गया है कि अंग्रेजी अंक हमारे ही अंक हैं और यह प्रश्न रखा गया है: हम उन्हें वापस क्यों न ले लें? जैसे कि हमारे अंक खो गये थे और हम उन्हें पुन: प्राप्त करने वाले हैं! ऐसी कोई बात नहीं है। नि:संदेह यह अंक-ज्ञान हमारे देश से अरब होता हुआ यूरोप

[माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन]

गया था। उस पर हम सबको गर्व हैं किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि हमारे यहां जिस वस्तु का विकास हुआ है उसे छोड़ दिया जाये और हम उन वस्तुओं को, जो पहले हमारे यहां से गई थीं, उनके परिवर्तित रूप में वापस ले लें। उन्होंने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उनके रूप बदल दिये हैं और हमने अपने रूपों में अपनी आत्मीयता के अनुसार भेद कर लिया है। सर्वत्र परिस्थितियों और वातावरण में परिवर्तन होते हैं। हमारे देश में भी परिवर्तन हुये हैं। जैसाकि मैंने कहा है हमारे अंकों का भी विकास हुआ है। वैदिक काल में वे एक विशेष प्रकार से लिखे जाते थे। फिर परिवर्तन हुए और लगभग सोलह शताब्दियों से वे वर्तमान रूप में लिखे जा रहे हैं। क्या हम उस वस्तु को छोड़ दें जो इतने लम्बे समय से प्रयुक्त होती रही है? मैं कहता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीयतावाद कोई तर्क नहीं है और यह उचित नहीं है कि इस प्रकार हमारे लोगों से अकस्मात् अपने अंकों को छोड़ने के लिये कहा जाये।

*__माननीय श्री आर.आर. दिवाकर:__ हम आजकल दक्षिण में उनका प्रयोग कर रहे हैं।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ मैं श्री दिवाकर से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे धैर्य रखें। उन्हें फिर बाद में मौका मिल सकता है।

देवनागरी लिपि के विषय में, जिसमें अंक भी शामिल हैं, अधिकृत रूप से कहा गया है कि संसार की सब प्रणालियों से हमारी प्रणाली सर्वोत्तम है। मैं आपको एक दो उद्धरण पढ़कर सुनाऊंगा, यद्यपि मेरे पास बहुत से हैं। सुनिये प्रोफेसर मोनियर विलियम्स (Monier Williams) कहते हैं:

"And now a few words in explanation of the Deva-Nagari or Hindu system. This, although deficient in two important symbols. 'represented in the Roman by z and f,....

(which deficiency as you know, has been made up by means of dots.).

".....is, on the whole, the most perfect and symmetrical of all known alphabets. The Hindus hold that it came directly from the Gods—whence its name (*i.e. Devanagari*) and truly its wonderful adaptation to the symmetry of the sacred Sanskrit seems almost to raise it above the level of human inventions."

[अब देवनागरी या हिन्दू प्रणाली के विषय में भी कुछ शब्द कहता हूं। यद्यपि इसमें दो महत्वपूर्ण संकेतों की कमी है, जो रोमन लिपि में 'Z' तथा 'F' द्वारा लिखे जाते हैं,......

[आप जानते हैं कि इस अभाव में बिन्दु लगा कर पूरा कर लिया गया है]

.....फिर भी सब ज्ञात वर्णमालाओं में यह सर्वाधिक सम्पूर्ण तथा व्यवस्थावत है। हिन्दू कहते हैं कि यह लिपि ईश्वर से प्राप्त हुई है इसी कारण उसे 'देवनागरी' कहते हैं और सचमुच पवित्र संस्कृत में इसका आश्चर्यजनक प्रयोग ऐसा है कि इसे मानवीय आविष्कार के स्तर से ऊंचा उठा देता है।]

स्वर्गीय सर इसाक पिटमैन ने, जो ध्वनिकला का आविष्कारक अंग्रेज था, कहा है:

"If in the world we have any alphabets the most perfect, it is those Hindi ones."

[यदि संसार में कोई भी वर्णमाला सर्वाधिक पूर्ण है, तो यह हिन्दी की वर्णमाला ही है।]

मैं अन्य उद्धरणों को नहीं पढूंगा।

कुछ मित्रों ने सुझाव दिया था कि रोमन लिपि को स्वीकार करना चाहिये। उन्हें इन उद्धरणों पर विचार करना चाहिये जो मैंने पढ़कर सुनाये हैं। मेरे विचार में यह सम्भव है कि जब हमारा देश शक्तिशाली बन जाये, तब यूरोपीय राष्ट्र स्वयं हमारी वर्णमाला की उत्तमता के निकटतर आने लगे। हमारी भाषा को रोमन रूप देने का प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी में भी उठा था। इंगलिस्तान के कुछ विद्वान चाहते थे कि यहां के लोगों को रोमन लिपि के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिये। इस पर लम्बा वाद-विवाद चला था और अंत में ब्रिटिश सरकार ने निश्चय किया कि इस देश में रोमन लिपि के प्रयोग से लाभ नहीं होगा और नागरी लिपि सर्वोपयोगी है। अब हमारी भाषा का रोमन रूप बनाने की बात करने के दिन लद गये। मुझे आशा है कि उस प्रश्न पर बल नहीं दिया जायेगा।

तत्पश्चात्, श्रीमान्, संस्कृत को अपनाने के विषय में भी कुछ कहा गया था। संस्कृत प्रेमियों के समक्ष मैं नतमस्तक हूं। मैं भी उनमें से हूं। मुझे संस्कृत से प्रेम है। मेरे विचार में, इस देश में उत्पन्न प्रत्येक भारतीय को संस्कृत पढ़नी चाहिये। संस्कृत द्वारा ही हमारी प्राचीन बपौती बनी रहेगी। किन्तु आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है—यदि उसे अपनाया जा सके तो मुझे प्रसन्नता होगी, और मैं उसके पक्ष में मत दूंगा—किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई क्रियात्मक प्रस्थापना नहीं है कि संस्कृत को राजभाषा बना दिया जाये।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** पन्द्रह वर्ष पश्चात् यह बिल्कुल ठीक रहेगी, यद्यपि आज नहीं है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** मैं नहीं समझता कि आज हमारे लिये अपने संविधान में यह कहना सम्भव होगा कि हिन्दी के स्थान पर संस्कृत होनी चाहिये। मेरे विचार में सबसे व्यावहारिक उपाय यही है कि राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी को स्वीकार कर लिया जाये।

*__श्री महावीर त्यागी:__ अंकों के विषय में आपका संशोधन क्या है, श्रीमान्?

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ अतएव मेरा निवेदन यह है कि इस सम्पूर्ण लिपि देवनागरी में, जो अतीत काल से चली आ रही है, हिन्दी को राजभाषा बनाना चाहिये। यह ठीक नहीं है कि अकस्मात्, जबकि जनता को इस विषय में ज्ञान नहीं है, जबकि यह विषय लम्बे समय तक उनके समक्ष नहीं रहा है, संविधान सभा यह विनिश्चय कर दे कि उस लिपि में से नागरी अंकों को निकाल दिया जाये और उनके स्थान पर तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय अंक या अंग्रेजी अंक रख दिये जायें। दक्षिण भारत के कुछ सदस्यों के मन में अंग्रेजी अंकों के प्रयोग के विषय में कुछ आकर्षण है क्योंकि वे उन्हें अपनी भाषाओं में प्रयोग करते रहे है। मैं शांतिप्रिय व्यक्ति हूं। मैं यथासम्भव कोई झगड़ा नहीं चाहता।

मेरे मित्र डॉ. एस.पी. मुखर्जी ने मुझसे एक प्रकार की व्यक्तिगत अपील की थी। मैं इसके लिये उनका कृतज्ञ हूं। मैं भी चाहता हूं कि भाषा संकल्प एकमत से ही पारित होना चाहिये। उस उद्देश्य से, यद्यपि मेरी प्रबल इच्छा है कि देवनागरी अंकों के विषय में किसी प्रकार कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये, पर अपने दाक्षिणात्य मित्रों की इच्छाओं को पूरा करने के लिये मैंने एक सूत्र पेश किया है। मुझे आशा है कि उसे स्वीकार करना आपके लिये सम्भव होगा। मैं कहता हूं: पन्द्रह वर्ष तक देवनागरी लिपि के लिये भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के अंकों को मान्यता दे दी जाये और समय-समय पर राष्ट्रपति, अर्थात् सरकार को यह विनिश्चय करने दिया जाये कि एक प्रकार के अंकों का प्रयोग कहां होगा और दूसरे प्रकार के अंकों का प्रयोग कहां होगा। बहुत वर्षों तक सरकारी कार्य अंग्रेजी में किया जायेगा। कुछ मित्रों, विशेषत: श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने मुझे सुझाव दिया था कि अंक-संग्रह के लिये, हिसाब के लिये तथा बैंक-व्यवहार के लिये अंग्रेजी अंकों के प्रयोग की अनुमति होनी चाहिये। मैंने देखा कि वे उसके विषय में बहुत दृढ़ थे। अत: एक उपखण्ड में मैंने यह भी रख दिया है कि जहां तक इन मामलों का संबंध है, इस पन्द्रह वर्षों की कालावधि में, केवल अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग होना चाहिये, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को रखने का मुख्य प्रयोजन अंग्रेजी भाषा से ही सिद्ध हो जायेगा, क्योंकि उसमें तो अंग्रेजी अंकों का प्रयोग होगा ही। मैं नहीं समझता कि किसी की यह इच्छा है कि सामान्य हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन में हिन्दी अंकों का प्रयोग होना चाहिये। किन्तु वह भी मैंने सरकार पर छोड़ दिया है। यदि सरकार चाहती है कि किसी कार्य विशेष के लिये अंग्रेजी अंकों का प्रयोग हो, तो वे ऐसा कर सकते हैं। वे केवल तभी हिन्दी अंकों का प्रयोग कर सकते हैं जब वे उन्हें अपेक्षित समझें।

मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि मध्यमार्ग को स्वीकार कर लीजिये और यह हठ मत कीजिये कि सदा सर्वदा के लिये देवनागरी अंकों के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का ही प्रयोग होना चाहिये *(बाधा)*। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि उस प्रस्थापना को यहां स्वीकार मत कीजिये, क्योंकि यह उन लोगों के साथ कठोरता होगी जो अब तक हिन्दी का प्रयोग करते रहे हैं। उनके दिमाग इस प्रकार के परिवर्तन के लिये बिल्कुल भी तैयार नहीं हैं *(बाधा)*। देवनागरी को राजकीय लिपि और हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने के पश्चात् हमें सबको सम्मेलन करने होंगे

और यह विनिश्चय करना होगा कि नागरी वर्णों में क्या परिवर्तन किये जायें। हमारी प्रणाली सम्पूर्ण है, किन्तु कुछ अक्षरों के रूपों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। और कुछ नये अक्षर भी जोड़ने होंगे।

मेरा निवेदन है कि वर्तमान रूप में नागरी लिपि को स्वीकार करने के पश्चात्, हमारे सबके लिये यह सम्भव होगा और भारत सरकार के लिये यह विशेषत: अपेक्षित होगा कि सम्मेलन करके उनमें विचार किया जाये कि आधुनिक काल की आवश्यकताओं के लिये लिपि और अंकों में क्या परिवर्तन किये जायें। प्रधान मंत्री ने उल्लेख किया था कि मुद्रणालय के लिये अन्तर्राष्ट्रीय अंक अधिक उपयुक्त हैं। उनके प्रति पूर्ण आदर भाव से मैं कहता हूं कि वे मुद्रणकार्य से परिचित नहीं हैं। जिन मुद्रण कर्मचारियों से मैं सम्पर्क में आया हूं उन्होंने मुझे यह सूचना दी है कि हिन्दी या अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के प्रयोग में उनके लिये तनिक भी अन्तर नहीं पड़ता। सर्वोत्तम मुद्रण कार्य मोनोटाइप या लीनोटाइप यंत्रों पर होता हैं वास्तव में मेरा निवेदन है कि हमारे अंक अधिक कलापूर्ण हैं और हमारे अक्षरों के रूपों के अनुरूप हैं। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि मैंने जिस भावना से इस मध्यमार्ग को प्रस्तुत किया है उसी भावना से आप इसे स्वीकार कर लीजिये। मैं आपसे कहता हूं कि अधिक कटुता मत बढ़ने दीजिये। अन्यथा यह बात यहीं समाप्त नहीं हो सकती। क्या आप समझते हैं कि इस मामले पर आन्दोलन नहीं होगा? यह बात उन लोगों के हृदयों में अवश्य खटकेगी जो इन अंकों का प्रयोग करते आये हैं और उनसे प्रेम करते हैं—चाहे वे हिन्दीभाषी हों या मराठीभाषी हों या गुजरातीभाषी हों। हम आपकी तमिल या तेलुगु लिपियों में तनिक भी परिवर्तन नहीं कर रहे हैं, किन्तु आप हमारी नागरी लिपि में परिवर्तन कर रहे हैं।

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): यह तो केवल राजकीय प्रयोजनों के लिये ही है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:** मुझे पता है कि यह केवल भारत सरकार के राजकीय प्रयोजनों के लिये है। किन्तु एक बार भारत सरकार इस बात को आरम्भ करेगी, तो यह अवश्य नीचे भी आ जायेगी और फैल जायेगी क्योंकि सरकार सब कार्यवाहियों का केन्द्र है। इसी कारण हमें इस पर आपत्ति है। यदि आप कृपया मेरी बात सुनेंगे तो मैं पूर्ण विनम्रता से आपसे प्रार्थना करूंगा कि मैंने जो मध्यमार्ग रखा है उसे स्वीकार करके मेरे संशोधनों को स्वीकार कर लीजिये।

***माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद** (युक्त प्रान्त : मुस्लिम): जनाब सद्र, मैं इस वक्त थोड़ा सा वक्त हाउस का लूंगा। मैं इसलिये खड़ा हुआ हूं कि आपको बतला दूं जबान के बारे में मेरी राय क्या है और इस सिलसिले में मैंने कांग्रेस पार्टी को जो मशविरा दिया था और ड्राफ्टिंग कमेटी में जो तरजअमल अख्तियार किया था उससे मेरा मकसद क्या था। यह सारी बातें मैं आपके सामने रखूंगा और आपके जरिये मुल्क के सामने लाऊंगा।

इस बारे में कई सवाल हमारे सामने आये थे। पहला सवाल यह था कि अगर हम अंग्रेजी जबान को उस जगह से हटाना चाहते हैं जो उसने हुकूमत और तालीम

[माननीय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद]

में पैदा कर ली है तो उसे किस तरह हटाया जाये। उसे फौरन हटा देना चाहिये या कुछ मुद्दत के अन्दर आहिस्ता-आहिस्ता। आपको याद होगा कि दो वर्ष पहले मैंने यह राय जाहिर की थी कि हमें कम से कम पांच वर्ष तक इन्तजार करना चाहिये यानी पांच वर्ष तक यूनिवर्सिटी में और सरकारी दफ्तरों में अंग्रेजी जबान अपनी जगह कायम रहे। इसके बाद तब्दीली अमल में आये और उस मुद्दत के अन्दर हम अपनी मुल्की जबान को इस काबिल बनाने की कोशिश करें कि वह अंग्रेजी की जगह बाआसानी ले सके। मेरा यह ख्याल कि अंग्रेजी फौरन न हटाई जाये, आमतौर पर पसंद किया गया था। लेकिन जो मुद्दत मैंने ठहराई थी उससे बहुत कम दोस्तों ने इत्तफाक किया था। खासतौर पर दकन और बंगाल के दोस्तों का यह ख्याल था कि इससे बहुत ज्यादा जमाना हमें दरकार होगा। पांच वर्ष की मुद्दत एक ऐसी बड़ी तब्दीली के लिये काफी नहीं हो सकती। मैं तस्लीम करता हूं कि काम के तजरबे और सोच विचार के बाद मुझे भी उन दोस्तों की राय से इत्तफाक करना पड़ा। मैं अब महसूस करता हूं कि मेरा अन्दाजा दुरुस्त न था। पांच छह वर्ष के अन्दर हम किसी तरह भी यह रास्ता तय नहीं कर सकते। मुझे श्री अयंगर की तरमीम से पूरा इत्तेफाक है, कि इसके लिये कम से कम पन्द्रह वर्ष की मुद्दत रखनी चाहिये। आपको मालूम है कि मुझसे ज्यादा इस बात का कोई ख्वायशमन्द नहीं हो सकता कि हम अंग्रेजी भाषा की जगह अपनी मुल्की भाषा को राज करते हुए देखें। शायद यह कहना बेजा न होगा कि मैं पहला शख्स हूं जिसने एसेम्बली में इसकी कोशिश की कि सरकारी बेंच से अंग्रेजी की जगह हिन्दुस्तानी की आवाज बुलन्द हो। लेकिन मामले के तमाम पहलुओं पर गौर और फिक्र करने के बाद मुझे इस नतीजे पर पहुंचना पड़ा कि इस मामले को हम महज अपनी ख्वायश और जज्बे के मातहत अन्जाम नहीं दे सकते। हमें सूरत हाल की मुश्किलों को मानना चाहिये और उसके मुताबिक फैसला करना चाहिये। हमारे रास्ते में दो बड़ी रुकावटें खड़ी हो गई हैं। पहली रुकावट यह है कि हमारी कोई मुल्की भाषा भी ऐसी नहीं है जो फौरन अंग्रेजी की जगह ले सके उसे उभरने, संवरने और बनने के लिये कुछ समय चाहिये। जहां तक हुकूमत के दफ्तरी कामों का लगाव है और जहां तक ऊंचे दर्जे की तालीम का ताल्लुक है हमारी कोई ज़बान भी आज अचानक अंग्रेजी की जगह नहीं ले सकती। इस बात का मानना हमें बहुत दुःख देता है। लेकिन अफसोस के साथ हमें मान लेना पड़ता है अगर इस डेढ़ सौ वर्ष के अन्दर जो अंग्रेजी हुकूमत का ज़माना गुज़र चुका है हमारी मुल्की ज़बान को हुकुमत और तालीम की ज़बान होने का मौका मिला होता तो यकीनन आज हमारी कौमी जबान का भी वही दर्जा होता कि जो दुनिया की इल्मी जबानों का है। मगर बदकिस्मती से ऐसा नहीं हुआ। हुकूमत और तालीम की जबान अंग्रेजी रही और आज हम मजबूर हो गये हैं कि इसी के जरिये अपनी कौमी जिन्दगी के तमाम काम अंजाम दें। दूसरी रुकावट मुल्क में किसी एक आम जबान का न होना है। हम अंग्रेजी जबान की जगह किसी मुल्क की जबान को अचानक लायें तो किस जबान को लायें जो सारे मुल्क में एक तरह पर लिखी और पढ़ी जाती हो। यह हकीकत है कि ऐसी कोई जबान नहीं है। बिला शुभा उत्तरी हिन्दुस्तान की जबान सबसे ज्यादा बोली और समझी जाती है लेकिन अव्वल तो हर जगह लिखी और पढ़ी नहीं जाती दूसरे दकन का हिस्सा उसके दायरे से बिल्कुल बाहर रहा है। वहां बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो उत्तरी हिन्द की

भाषा टूटी फूटी भी बोल सकें। यह बात मान लेनी पड़ती है कि जबान के एतबार से उत्तर और दक्षण दो बिल्कुल अलग-अलग हिस्से हो गये हैं। सिर्फ अंग्रेजी जबान है जिसमें पढ़े लिखे उत्तरियों और दक्कनियों को आपस में मिला दिया है। अंग्रेजी को आज छोड़ दें तो फिर हमारे लिये जबान का कोई रिश्ता बाकी नहीं रहता।

अब अगर हम चाहते हैं कि अंग्रेजी की जगह हमारी मुल्क की जबान तमाम मुल्क की कौमी और फिडरल जबान हो जाये तो इसके सिवा चारा नहीं कि कुछ मुद्दत तक सबर और इन्तेजार करें। और अंग्रेजी को कायम रखते हुए मुल्की जबान की तालीम को आम करने की कोशिश करें। इस काम में हमें सबसे ज्यादा अपने दक्कनी भाइयों की गुडविल और कोआपरेशन की जरूरत है। जब तक वह दिली तौर पर इस काम में हमारा साथ न देंगे हम अपने मकसद में कामयाब नहीं हो सकते। उन्होंने पूरी तैयारी के साथ आमादगी जाहिर की है कि उन्हें पन्द्रह वर्ष का मौका दिया जाये और हमें चाहिये कि खुशी के साथ इस मुद्दत को मंजूर कर लें। अगर एक ऐसा अहम मामला जैसा कि कौमी जबान का मामला है सिर्फ पन्द्रह वर्ष में तय हो जाता है तो हमें तस्लीम करना चाहिये कि यह सौदा बहुत सस्ते में चुका दिया गया है और कौम की जिन्दगी की एक बड़ी कठिन मंजिल आसानी के साथ तय हो गई। एक कौम और मुल्क की जिन्दगी में पन्द्रह वर्ष की मुद्दत कौन सी बड़ी मुद्दत है? यह पन्द्रह दिन से ज्यादा नहीं।

बाज़ दोस्तों ने इस पर यह एतराज किया है कि इस फैसले का असर सूबों पर ही पड़ेगा हालांकि बाज सूबों ने अंग्रेजों को बहुत हद तक उसकी जगह से हटा लिया है और बाज यूनिवर्सिटियों ने फैसला किया है कि यह यूनिवर्सिटी दर्जे की तालीम भी बहुत जल्द अपनी मुल्की जबान के जरिये देना शुरू कर देंगे। इस सिलसिले में सी.पी. की दो यूनिवर्सिटियों का जिक्र किया गया है। मुझे यह कहने में ताअमुल नहीं कि इस तरह जल्दबाजी के फैसले किसी तरह भी कौमी तालीम के मकसद को फायदा नहीं पहुंचा सकते। मुझे अन्देशा है कि इससे तालीम का स्टेण्डर्ड बहुत कुछ गिर जायगा। और तुलवा की तालीमी इस्तेदाद को नुकसान पहुंचेगा। सूबों की गवर्नमेंटों और यूनिवर्सिटियों को मालूम था कि गवर्नमेंट ऑफ इंडिया इस मामले पर गौर कर रही है और एक यूनिवर्सिटी कमीशन बिठा दिया गया है जो और तालीमी मसलों के साथ इस अहम मसले पर भी गौर करेगा। जरूरी था कि वह कमीशन की सिफारिशों का इन्तजार करते और सोच समझ कर कदम उठाते। हम तालीम के मैदान में इस तरह अलग-अलग कदम उठा कर मुल्क की तालीमी जिन्दगी की कोई खिदमत नहीं करेंगे।

माननीय पं. रविशंकर शुक्लः (सी.पी. तथा बरार : जनरल): मैं आपको यह इत्तिला दे दूं कि सी.पी. की यूनिवर्सिटियों ने फैसला 3 वर्ष पहले किया था। यूनिवर्सिटी कमीशन तो इस वर्ष बिठाया गया है।

माननीय मौलाना अबुल कलाम आजादः ठीक है। उन्होंने 3 वर्ष पहले फैसला किया था लेकिन हमें गौर करना है कि यह फैसला मसलेहत के मुताबिक था या नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि यह फैसला हमारी तालीम की मसलेहतों का साथ नहीं देता। और जरूरी है कि उस पर नजरसानी की जाये। यूनिवर्सिटी कमीशन

[माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद]

की सिफारिशें गवर्नमेंट को मिल गई हैं। बहुत जल्द गवर्नमेंट को मौका मिलेगा कि इस पर गौर करेगी। मैं समझता हूं कि आप इससे इत्तेफाक करेंगे कि इस बारे में यूनिवर्सिटियों को अलग-अलग फैसले नहीं करने चाहियें। बल्कि एक फैसला करके तमाम मुल्क को उस पर अमल करना चाहिये।

जहां तक तालीम का ताल्लुक है मैं नहीं समझता कि हमारे लिये पन्द्रह वर्ष तक इन्तजार करना जरूरी होगा। हम इससे पहले यह तबदीली अमल में ला सकते हैं बशर्ते कि ठीक तरीके पर उसकी तैयारी का काम शुरू कर दें। लेकिन कोई ऐसी तबदीली जो फौरन अमल में लाई जाये यकीनन गलत होगी ओर आला तालीम के सारे मैदान को उलट पलट कर देंगे।

इस सिलसिले में अदालतों का सवाल भी हमारे सामने आया है। मेरी कतई राय है कि पन्द्रह वर्ष तक अंग्रेजी जबान को आला अदालतों में जारी रखना चाहिये। अगर हम जल्दबाजी करके अंग्रेजी को हटायेंगे तो तरह-तरह के कानूनी उलझाव पैदा हो जायेंगे। इसके अलावा मुख्तलिफ सूबों की अदालतों में कोई बाहमी रिश्ता जबान की यकसानी का बाकी नहीं रहेगा। यह तबदीली उसी वक्त होनी चाहिये जब अंग्रेजी की जगह एक कौमी जबान हर हिस्से में लिखी और पढ़ी जाने लगे और ऊंचे दर्जे के मतालिब बयान करने के लिये उसका एक ठीक सांचा ढल जाये। यकीनन इस काम के लिये पन्द्रह वर्ष की मुद्दत कोई बड़ी मुद्दत नहीं है।

जबान के सिलसिले में दूसरा सवाल यह सामने आया था कि जिस जबान को हम कौमी जबान करार दें वह कौन सी जबान हो। उसे किस नाम से पुकारना चाहिये।

जहां तक जबान का ताल्लुक है यह बात आमतौर पर मान ली गई है कि मुल्क की कौमी जबान वही जबान हो सकती है जो उत्तरी हिन्द की जबान है। लेकिन उत्तरी हिन्द की जबान के लिये अब तीन नाम पैदा हो गये हैं। उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। और सारा झगड़ा इस बारे में है कि उसे किस नाम से ताबीर करना चाहिये। कुदरती तौर पर इन तीनों नामों के पीछे जबान के अलग-अलग रूप आकर खड़े हो गये हैं और झगड़ा नाम का नहीं है उस रूप का है जो नाम के साथ जुड़ गया है। मैं मुख्तसर लफ्जों में आपको बतला देता हूं कि उन तीनों नामों का असली इखतेलाफ क्या है। उत्तरी हिन्द की जबान अपने ढांचे और सांचे में एक ही है। लेकिन जब वह अदबी यानी लिटरेरी दर्जे में आती है तो उसके दो नाम हो जाते हैं। जिस स्टायल में फारसी जबान की झलक ज्यादा आ जाती है उसे उर्दू कहते हैं। जिसमें संस्कृत की झलक ज्यादा उभरती है उसे हिन्दी कहने लगे हैं। हिन्दुस्तानी के नाम में एक आम और वसीह मफहूम पैदा कर लिया है। यह अपने वसीह दामन में उत्तरी हिन्द की जबान के सारे रूप ले लेता है। इसमें हिन्दी भी आ जाती है उर्दू भी आ जाती है और इससे भी ज्यादा फैलाव की गुन्जाइश निकल आती है। यह गोया ठीक ठीक उस सूरत हाल को नुमायां कर देता है जो इस वक्त उत्तरी हिन्द की जबान की है। यह किसी अनसर को खारिज नहीं करता। सबको अपने अन्दर समेट लेता है।

आज से तकरीबन 25 वर्ष पहले जब यह सवाल ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सामने आया था तो मेरी ही तजवीज से उसने हिन्दुस्तानी का नाम इख्तयार

किया था। मकसूद यह था कि हम जबान के बारे में तंग ख्याली से काम न लें, ज्यादा से ज्यादा वसीह मैदान पैदा कर दें। हिन्दुस्तानी का लफ्ज इख्तयार करके हमने हिन्दी और उर्दू के इख्तेलाफ को भी दूर कर दिया था। क्योंकि जब आसान उर्दू और आसान हिन्दी बोलने और लिखने की कोशिश की जाती है तो दोनों मिलकर एक जबान हो जाती है और उर्दू और हिन्दी का फर्क बाकी नहीं रहता। इस आसान और सहल बोलचाल के चौखटे में नये-नये लफ्जों और तरकीबों के जितने गुल बूटे बनाने चाहें बना सकते हैं। इसमें किसी तरह की रुकावट हमें पेश नहीं आयेगी। अलावा बरीं हिन्दुस्तानी का नाम इख्तयार करके हम जबान के उस फैलाव को बदस्तूर छोड़ देते हैं जो आज उत्तरी हिन्द की भाषा बोलने वालों ने पैदा कर दिया। ऊपर से कोई पाबन्दी और रुकावट नहीं लगाते। गौर कीजिये। आज इस जबान के बोलने वालों का क्या हाल है आज से 70, 80 वर्ष पहले शुमाली हिन्द के लिखने पढ़ने की जबान आमतौर पर उर्दू थी। फिर हिन्दी की तहरीर शुरू हुई और एक दूसरा लिटरेरी ढंग पैदा हो गया। अब उर्दू और हिन्दी दो अलग-अलग नाम हो गये हैं। लेकिन यू.पी., सी.पी., बिहार और पंजाब में आज भी आमतौर पर जो जबान बोली जाती है वह अपने रूप में एक ही है। जिन लोगों ने संस्कृत लिटरेचर से जौक पैदा किया है उनकी जबान पर संस्कृत के लफ्ज़ और संस्कृत रूट से निकले हुए लफ्ज़ ज्यादा आ जाते हैं। जिन लोगों ने फारसी की तालीम पाई है उनकी जबान से फारसी के लफ्ज़ ज्यादा निकल आते हैं। कांग्रेस का फैसला यह था कि यह दोनों किस्म के स्टायल हिन्दुस्तानी में दाखिल हैं और हर स्टायल का बोलने वाला हिन्दुस्तानी बोलता है। अगर हम चाहते हैं कि एक वसीह ताकतवर और इलमी जबान पैदा हो जाये तो हमें चाहिये किसी तरह की बनावटी रोक लोगों पर न लगायें। जो जबान बोलते हैं बोलने दें। कुछ अर्से के अन्दर खुद बखुद एक खास ढंग उभर आयेगा। जब लफ्ज़ ज्यादा चलता हुआ और जबान के कुदरती उसूलों के मुताबिक होगा बाकी रहेगा। जो ऐसा नहीं होगा छूट जायेगा। इल्मी ज़बानें इस तरह नहीं बना करती कि बनावटी कायदों और ठहराई हुई पाबन्दियों के जरिये कोई चीज बना दी जाये। ज़बान बनाई नहीं जाती खुद-ब-खुद बनने लगती है। ढाली नहीं जा सकती खुद-ब-खुद ढलने लगती है। आप लोगों की जबानों पर बनावटी पाबन्दियों के कुफल नहीं चढ़ा सकते अगर चढाइयेगा तो वह लगेंगे नहीं खुद-ब-खुद खुल कर गिर पड़ेंगे। ज़बानों का कानून आपकी पकड़ से बाहर है। आप हर चीज के लिये कानून बना सकते है लेकिन जबानों की कुदरती चाल के लिये कोई कानूनसाजी नहीं की जा सकती। वह खुद-ब-खुद एक रास्ता इख्तयार कर लेती हैं, और सिर्फ उसी रास्ते के जरिये मन्जिल मकसूद तक पहुंच सकती है।

बहरहाल हिन्दुस्तानी का नाम इख्तयार करके कांग्रेस ने जबान की कुदरती हालत का एतराफ किया था और उसे बनावटी पाबन्दियों से महफूज कर देना चाहा था। खुद गांधी जी का और कांग्रेस का इसी पर अमल रहा। उन्होंने सारे मुल्क का एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक दौरा किया और हर जगह हिन्दुस्तानी में तकरीर की। वह दिल्ली या लखनऊ के रहने वाले न थे काठियावार में उनकी परवरिश हुई थी। उनकी हिन्दुस्तानी न तो अदबी उर्दू थी न अदबी हिन्दी। एक मिली जुली किस्म की जबान थी। बहुत से लफ्ज़ और तरकीबें जो बम्बई और गुजरात

[माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद]

के हिन्दुस्तानी बोलने वाले बोल जाते हैं उनकी जबान पर भी चढ़ गई थीं और वह बिला तामुल उन्हें काम में लाते थे। लेकिन फिर भी उनकी यह जबान हिन्दुस्तानी ही जबान थी और करोड़ों हिन्दुस्तानियों के दिलों तक उनका पैगाम इसी जबान के जरिये पहुंचा था। खुद कांग्रेस के प्लेटफार्म को देखिये कि गांधी जी के असर में आने के बाद उसका क्या हाल हुआ। पहले कांग्रेस की तमाम कार्यवाही अंग्रेजी में होती थी। गांधी जी के दौर में हिन्दुस्तानी आई और आज तक उसी जबान में तमाम तकरीरें होती हैं। लेकिन यह हिन्दुस्तानी दिल्ली और लखनऊ की टकसाली जबान नहीं होती, न बनारस के पण्डितों की हिन्दी होती है। एक निहायत वसीह किस्म की जबान हो गई है जिसमें हर तकरीर करने वाला अपनी अपनी तालीम और टेस्ट के मुताबिक जबान का एक ढंग इख्तयार कर लेता है और अपना मतलब हजारों आदमियों को समझा देता है। उर्दू बोलने वाले उर्दू बोलते हैं। हिन्दी बोलने वाले हिन्दी बोलते हैं। बम्बई का मुकर्रर बम्बई की हिन्दुस्तानी बोलेगा। बंगाल का मुकर्रर बंगाली लबों लहजा की हिन्दुस्तानी काम में लायेगा। हिन्दुस्तानी का आम और फैला हुआ नाम इन सबको अपने दायरे में ले लेता है और सबके लिये जगह रखता है। जरूरत है कि हम जबान की यह वुसअत कायम रखें और इसे फैलने और संवरने दें। इसे किसी एक तंग दायरा में महदूद न कर दें। हमें अंग्रेजी जैसी वसीह और इल्मी जबान की जगह एक कौमी जबान पैदा करनी है। वह इसी तरह पैदा हो सकती है कि जबान का दामन ज्यादा वसीह हो। तंग और सिमटा हुआ न हो। अगर आप इसे उर्दू कहेंगे तो यकीनन इसका दायरा वसीह नहीं रहेगा। इसी तरह अगर हिन्दी करार देंगे तो यकीनन एक तंग दायरा में वह सिमट कर रह जायेगी। सिर्फ हिन्दुस्तानी ही का लफ्ज़ है जिसने एक वसीह मफहूम पैदा कर लिया है और जो जबान की हकीकी सूरत हाल को ठीक-ठीक वाजेह कर देता है।

यही वजह है कि जिनकी बिना पर मेरी वर्षों से यह राय रही कि कौमी जबान को हिन्दुस्तानी के नाम से तावीर करना चाहिये और यह याद दिलाना जरूरी नहीं कि अपनी जिन्दगी के आखिरी दिन तक गांधी जी की भी यही राय रही थी। इस गर्ज से उन्होंने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा कायम की इसलिये वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन से अलग हो गये। अब जब कान्स्टीट्यूशन के सिलसिले में यह सवाल कांग्रेस पार्टी के सामने आया तो कुदरती तौर पर मैंने इसी राय पर जोर दिया। मुझे तवक्कों थी कि कम अज कम कांग्रेस के पुराने साथी अपनी जगह से न हिले होंगे, और गांधी जी के सिद्धान्तों पर जमे होंगे, मगर मैं आपसे अपना यह ख्याल छिपाना नहीं चाहता कि मुझे सख्त मायूसी हुई मैंने देखा कि चन्द गिने हुए कदमों के सिवा और सारे कदम अपनी जगह से हट गये हैं।

पार्टी में जैसाकि आपको मालूम है कि कई दिन तक बहसें होती रहीं मगर कोई नतीजा नहीं निकला। बहस का ज्यादा जोर इस पर खर्च होने लगा था कि कब तक अंग्रेजी रखी जाये और कब से नई तबदीली अमल में आये। जबान के सिलसिले में चन्द नई जज़बीजें भी पेश की गईं। एक तजबीज़ यह थी कि कान्स्टीट्यूशन में हिन्दी ही का लफ्ज़ रखा जाये। लेकिन इसके साथ यह तशरीह बढ़ा दी जाये कि हिन्दी में जबान की वह सूरत भी दाखिल है जिसे उर्दू कहते

है। मतलब यह था कि जो फैलाव हिन्दुस्तानी के नाम में बतलाया जाता है वह हिन्दी में पैदा कर दिया जाये। बिल आखिर ड्राफ्टिंग कमेटी के सुपुर्द यह मामला किया गया और इससे दरख्वास्त की गई कि कान्स्टीट्यूशन के इस हिस्सा का एक नया मसौदा इख्तयार करके पेश करे, और इन तमाम तजवीजों को भी पेश नजर रखे जो बहस के दौरान में पेश की गई हैं। कमेटी में चन्द नये मेम्बर भी बढ़ाये गये। उन मेम्बरों में एक मेम्बर मैं भी था।

कमेटी के पहले इजलास में मैं शरीक हुआ। अगर मैंने महसूस किया कि अकसरियत एक खास राय पर पहले से जमी हुई है और वह किसी तरह इस पर राजी नहीं हो सकती कि हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी को इख्तयार किया जाये या हिन्दी की कोई ऐसी तशरीह की जाये कि जिससे उसके मफहूम में कुछ फैलाव पैदा हो सके। चूंकि इस हालत में मेरा कमेटी में रहना बेकार था, इसलिये मैंने इस्तीफा दे दिया और कमेटी से अलग हो गया।

मेरे मुस्तफी होने के बाद फिर नये सिरे से यह मामला कमेटी में उठाया गया और इसकी कोशिश की गई कि मामला में एक खास हद तक बसअत पैदा की जाये। इसी कोशिश का नतीजा वह तरमीम है जो आयंगर साहब ने पार्टी के इजलास में रखी थी और अब आपके सामने आई है।

इसी तरमीम ने मामला में कई तबदीलियां पैदा की हैं, जो काबिले गौर हैं:

(1) जहां तक जबान के नाम का ताल्लुक है हिन्दी ही का नाम रखा गया लेकिन फिर एक दफा बढ़ाकर हिन्दी की नोईयत वाजेह करने की कोशिश की है और इस बात पर जोर दिया गया है कि हिन्दुस्तानी भी इसके मफहूम में दाखिल है।

(2) इस बात पर भी जोर दिया है कि हिन्दुस्तानी कलचर एक कम्पोजिट कलचर है और हिन्दुस्तान की कौमी जबान ऐसी होनी चाहिये जो इस कम्पोजिट कलचर को नुमायां करती हो।

(3) उर्दू जबान के बारे में यह बात साफ कर दी गई है कि मुल्क की रिकेगनाइज्ड् जबानों में से एक जबान वह भी है।

जहां तक उर्दू जबान का ताल्लुक है मामले ने अचानक एक ऐसी सूरत इख्तयार कर ली थी जो आगे चल कर लाखों करोड़ों वाशिन्दों के हकूक पर असर डाल सकती थी लेकिन इस तरमीम ने बहुत हद तक इसका इलाज कर दिया। उर्दू जबान अगर्चे तमाम शुमाली हिन्दुस्तान में फैल गई थी लेकिन इस पैदाइश और तरक्की का असली घर यू.पी. का सूबा था। दिल्ली के बाद लखनऊ उसका मरकजी मकाम बना और अठारवीं और उन्नीसवीं सदी में तमाम मुल्क को उसने एक बनी बनाई जबान दे दी। अगर कांग्रेस के पिछले फैसले के मुताबिक हिन्दुस्तानी को इसके दोनों खतों के साथ इख्तयार कर लिया जाता तो उर्दू का अलग सवाल पैदा नहीं होता। क्योंकि हिन्दुस्तानी के आम मफहूम में उर्दू भी आ जाती और फिर कुछ अरसे के बाद जबान का रूप मिल जुलकर एक ही हो जाता। मगर ऐसा नहीं किया गया और हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी को इख्तयार कर लिया

[माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद]

गया। ऐसी हालत में हकीकत और इन्साफ का तकाजा यह था कि कम से कम उर्दू को उसी जन्म भूमि यानी यू.पी. में सरकारी जगह दे दी जाती, मगर नहीं दी गई और हिन्दी सिर्फ एक खत के साथ सरकारी जबान तस्लीम कर ली गई। अब कुदरती तौर पर यह सवाल पैदा हो गया था कि उर्दू की कोई जगह इंडियन यूनियन में बाकी भी रहेगी या नहीं। यह सच है कि अगर एक जबान लाखों करोड़ों आदमी रात दिन बोल रहे हैं तो इसकी जिन्दगी हकूमत के मानने या न मानने पर मौकूफ नहीं हो सकती। जब तक लोग खुद अपनी मर्जी से उसे न छोड़े कोई भी इन्हें छोड़ने पर मजबूर नहीं कर सकता। ताहम मुल्क के जमहूरी कान्स्टीट्यूशन के लिये यह बात बहुत ही नामौजूं होती कि वह मुल्क की एक ऐसी जबान का एतराफ न करे जिसे लाखों करोड़ों हिन्दू मुसलमान बोल रहे हैं और जो उनकी मादरी जबान है। अब इस तरमीम ने यह बात बिल्कुल साफ कर दी कि मुल्क की मानी हुई जबानों में एक जबान उर्दू भी है। उसके साथ भी हकूमत का वही तर्ज अमल रहेगा जो तमाम मानी हुई जबानों के साथ रहना चाहिये।

मैं आपको यह बतला दूं कि इस दफा में जबान की जो तशरीह की गई है पहले उसे कान्स्टीट्यूशन की दफात में नहीं रखा गया था, डायरेक्टिव में रखा गया था। लेकिन फिर उसे कान्स्टीट्यूशन की एक मुस्तकिल दफा बना दिया गया इस तब्दीली की वजह से मामला की मजबूती ज्यादा वाजेह हो गई।

जहां तक रसमुलखत यानी लिपि का सवाल है कांग्रेस का फैसला यही था कि दोनों लिपियां हमें इख्तयार कर लेनी चाहियें यानी देवनागरी भी और उर्दू भी। इसके खिलाफ यह एतराज किया जाता था कि अगर दोनों लिपियों को मान लेने का यह मतलब समझा गया है कि सरकारी दफ्तरों के तमाम कागजात यकसां तौर पर दोनों लिपियों में लिखे जायेंगे तो इस ढंग का निभाना बहुत मुश्किल हो जायेगा और दफ्तरों का काम, खर्च और मेहनत बहुत बढ़ जायेगी। मैंने इस एतराज़ का वज़न महसूस किया था और इसलिये इससे एत्तफ़ाक़ किया था कि सरकारी दफ्तर के कागजात के लिये सिर्फ देवनागरी ही को इख्तयार कर लिया जाये। लेकिन इस पर जोर दिया था कि हकूमत के तमाम एलान, रेजूल्यूशन, कम्यूनिके और इसी किस्म की तमाम चीजें दोनों लिपियों में निकलनी चाहियें और दफ्तरों और अदालतों में हर तरह की दरख्वास्तें दोनों रसमुलखतों में मंजूर होनी चाहियें। मैंने इस पर जोर दिया था कि यह बात कान्स्टीट्यूशन में आ जाये लेकिन इससे भी एत्तफाक नहीं किया गया अलबत्ता यह बात तस्लीम की गई है कि इण्डियन यूनियन की जितनी मानी हुई जबानें हैं इन सबमें लोगों को हक होगा कि दरख्वास्त दें और दरख्वास्त का जवाब हासिल करें।

मैं नहीं चाहता कि आपसे उस असर को जरा भी छुपाऊं, जो इस तमाम बहस के दौरान में मुझ पर हुआ है। मुझे यह देखकर बड़ी ही मायूसी हुई कि एक तरफ से लेकर दूसरी तरफ तक हर तरफ तंग ख्याली छाई हुई है। तंग ख्याली, आप समझे नेरोमाइन्डेडनेस दिमाग का छोटा और सिमटा हुआ होना और हर तरह के फैलाव और ऊंचाई से इन्कार करना। मैं आपसे कहूंगा कि हम ऐसा

तंग दिमाग ले कर दुनिया की बड़ी कौम नहीं बन सकते। हिन्दुस्तान की कदीम बड़ाई और तरक्की को इसी तंग ख्याली ने जो बाद को पैदा हुई तारीकी मे डाल दिया था। और यह बड़ी ही खतरनाक बात है कि हम फिर इसी तरफ झुक रहे हैं। हिन्दुस्तानी के खिलाफ जो कुछ कहा गया है इसमें सबसे ज्यादा जोर इस बात पर दिया जाता है कि हिन्दुस्तानी का नाम इख्तयार करने से उर्दू के लिये भी गुंजाइश निकल आयेगी लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर निकल आयेगी तो कौन सी कयामत टूट पड़ेगी। आखिर उर्दू हिन्दुस्तान ही की जबान है। हिन्दुस्तान ही की मिट्टी से बनी है। हिन्दुस्तान ही में फूली फली है और हिन्दुस्तान ही के करोड़ों हिन्दु मुसलमानों की मादरी जबान है। आज भी यही जबान है जिसके जरिये मुख्तलिफ सूबों के बाशिन्दे एक दूसरे से बातचीत करते हैं और इन्टर प्राविन्शियल ताल्लुकात का तन्हा हिन्दुस्तानी जरिया है। क्यों हम अपने देश की एक जबान के खिलाफ अपने दिमागों को यहां तक मुखालिफ होने दें? क्यों हमारी दिमागी तंग दिली हमें इतनी दूर तक बहा ले जाये?

मेरे दोस्त मुझे माफ करेंगे अगर मैं कहूं कि इसी दिमागी तंग ख्याली का एक दूसरा मन्ज़र मैंने आदाद यानी न्यूमरल की बहस में देखा कि मैं समझ सकता हूं कि एक शख्त की राय इसके खिलाफ हो कि देवनागरी अददों की जगह इन्टरनेशनल अदद इख्तयार किये जायें। लेकिन यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि इतने तेज जज़बे इसके खिलाफ क्यों पैदा हो जायें। और इतनी सख्त मुखालिफत इसकी क्यों की जाये। आखिर जो कुछ भी हो यह एक मामूली सी बात है। इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि हम एक दूसरे मुल्क की चीज क्यों ले जब कि खुद हमारी चीज मौजूद है। हालांकि यह ख्याल सिरे से बेअसल है। यह अदद जो आज तमाम यूरोप की कौमों में रायज हैं दरअसल हम हिन्दुस्तानियों ही का एक अतया है जो आज से सदियों पहले हमने दुनिया को दिया था। आज अगर हम इसे इख्तयार कर लेते हैं तो अपनी ही चीज को फिर वापसि लेना चाहते हैं। यह हिन्दुस्तानी अदाद पहले अरब में गये थे फिर अरब से यूरोप में गये। यही वजह है कि इनका नाम यूरोप में अर्बी अदाद मशहूर हो गया। हालांकि इनकी पैदाइश हिन्दुस्तान में हुई थी। आदाद का यह ढंग हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी इल्मी ईजाद है। जिस पर इसे बजा तौर पर फख्र करना चाहिये और आज तमाम दुनिया इसका एतराफ कर रही है। यह आदाद जिस तरह अरब में पहुंचे उसकी दास्तान तारीख के सफों तक महफूज कर ली है।

आठवीं सदी मसीह में जब दूसरा आबादी खलीफा अलमन्सूर बगदाद में हुक्मरान था तो हिन्दुस्तान के वैद तबीबों की एक जुमाअत बगदाद पहुंची थी और अलमन्सूर के दरबार में बारयाब हुई थी। इसी जुमाअत में एक तबीब अस्ट्रानोमी का माहर था। और ब्रहमगुप्त की किताब सिद्धान्त इसके साथ थी। अलमन्सूर को जब यह मालूम हुआ तो उसने एक अरब हकीम इब्राहीम अलगजारी को हुक्म दिया कि हिन्दुस्तानी आलम की मदद से सिद्धान्तका तरजमा अरबी में करे। इसी तरजमा के सिलसिले में बयान किया जाता है कि हिन्दुस्तान के आदाद के तरीके से अरब वाकिफ हुए और इसका अजीम उलशान फायदा देखकर उन्होंने फौरन इसे अरबी में इख्तयार कर लिया। लेटिन की तरह अरबी में भी आदाद शुमार करने के लिये खास शकलें न थीं। हर नम्बर और अदद को लफजों में अदा किया जाता था और अगर इख्तेयार की जरूरत होती थी तो मुख्तलिफ हर्फों से काम

[माननीय मौलाना अबुल कलाम आजाद]

लेते थे, जिनके खास खास अदद ठहरा लिये गये थे। अब हिन्दुस्तानी आदाद ने इनके आगे हिसाब की एक निहायत आसान सूरत पेश कर दी है और अरबी आदाद के नाम से वह मशहूर हो गये। फिर यूरोप पहुंच कर उन्होंने वह रूप पैदा कर लिया जो आज इन्टरनेशनल आदाद का हम देख रहे हैं।

मैंने इस पर जोर दिया कि यह आदाद खुद हिन्दुस्तान ही की चीज है बाहर की नहीं है लेकिन फर्ज कर लीजिये कि यह तमाम तर यूरोप ही की ईजाद होती लेकिन अगर हिसाब किताब में वह ज्यादा साफ ज्यादा वाजेह ज्यादा कारआमद है तो क्यों हम बिला ताम्मुल उन्हें इख्तयार न कर लें? क्यों महज़ इस वजह से कि वे किसी दूसरे मुल्क से ताल्लुक रखते हैं हमारे लिये इनका इस्तेमाल काबिल एतराज हो जाये? आप यकीनन इससे इन्कार नहीं कर सकते कि देवनागरी आदाद की जो शकल है इससे ज्यादा साफ और वाजेह शकल इन आदाद की बन गई है। यह ज्यादा आसानी से पहचान लिये जा सकते है और अपनी मजमुई शकल में ज्यादा नुमायां साफ और खुशनुमा मालूम होते हैं। हर शख्स तस्लीम करेगा कि हिसाब में दूसरी शकलों से ज्यादा कारआमद यह शक्लें हैं।

श्री जसपतराय कपूरः कब से यह बात तजर्बे में आई?

माननीय मौलाना अबुल कलाम आजादः जब से यह आदाद मशहूर हुए हैं उस वक्त से इनकी यह खसूसियत भी मशहूर हो गई है। मैं आपके दूसरे मशरकी मुल्कों का हाल बतलाऊंगा। तकरीबन तमाम मशरकी मुल्कों में यह आदाद हिसाब किताब में इख्तयार कर लिये गये हैं। जो लोग यूरपीन जबानें नहीं जानते उन्होंने भी यह आदाद सीख लिये हैं और लिखने पढ़ने में इनसे काम लेते हैं।

बहरहाल जहां तक आदाद के सवाल का ताल्लुक है मुझे मिस्टर आयंगर की तरमीम से पूरा इत्तफाक है। मैं खुश हूं कि यह जरूरी इसलाह अमल में लाई जा रही है।

जहां तक जबान के मसले का ताल्लुक है मैंने आप पर वाजेह कर दिया कि मेरी राय क्या थी और मेरी राय अब भी क्या है। मुझे अफसोस है कि जबान का मसला उस तरीके पर तय नहीं किया गया जिस तरह तय करना था। मैंने कोशिश की। मेरे बाज रुफिका ने भी कोशिश की लेकिन बिल आखिर हमने महसूस किया कि मौजूदा आबहवा में इससे ज्यादा लचक नहीं पैदा की जा सकती, जिस कदर मिस्टर आयंगर की तरमीम में पैदा हो गई है।

आज आप यह फैसला करेंगे कि इण्डियन यूनियन की सरकारी जबान हिन्दी होगी। यह फैसला कीजिये हिन्दी के नाम में कुछ धरा नहीं है। असली सवाल जबान की नोईयत का है। हम हिन्दुस्तानी कह कर उसे उसकी हकीकी सूरत पर कायम रखना चाहते थे। आपकी अकसरियत ने इससे इत्तेफाक नहीं किया लेकिन अब भी यह मुल्क के इख्तयार में है कि हिन्दी की नोईयत को बिगड़ने न दें और उसे एक बनावटी जबान बनाने की जगह एक वाकई बोल चाल की आसान और आम फहम जबान रहने दें। हमें उम्मीद करनी चाहिये कि मौजूदा तंग खयाली की आबो हवा जो पिछली बदकिस्मत सूरत हाल का बक़िया है अब ज्यादा अरसे

तक कायम नहीं रहेगी और बहुत जल्द ऐसी आबो व हवा पैदा हो जायेगी जिसमें लोग हर तरह के वक्ती जज़बों से आज़ाद होकर जबान के मसले को उसकी सही और सच्ची सूरत में देखेंगे।

जनाब सद्र, मैंने हाउस का काफ़ी वक्त लिया। अब मैं और ज्यादा बोझ दोस्तों की तवज्जह पर नहीं डालूंगा। मैं अपनी तक़रीर खत्म करता हूं।

***डॉ. रघुवीर** (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अब तक भाषा के प्रश्न पर उन लोगों ने विचार किया है जिन पर मुख्यत: राजनैतिक विचारों का प्रभाव था। ऐसी समस्याओं पर गर्मी उत्पन्न हो गयी है जिन पर पूर्ण ठंडक से विचार किया जाना चाहिये था और इन पर मतभेद या समझौते से कोई अन्तर नहीं पड़ता या नहीं पड़ना चाहिये। मेरे पूर्ववक्ता माननीय मौलाना साहिब ने हमें महत्वपूर्ण नामों का ध्यान दिलाया है, वे हैं हिन्दी और हिन्दुस्तानी। साधारणत: इन नामों का अत्यधिक महत्व शायद न हो। किन्तु कम से कम डेढ़ शताब्दी के इतिहास में इन दोनों शब्दों, हिन्दी और हिन्दुस्तानी का बहुत भिन्न अर्थ हो गया है। दुर्भाग्य से देश के विरोधी दलों ने इनको लेकर उनका भिन्न-भिन्न अर्थ बना दिया है। उन्होंने हिन्दुस्तानी शब्द के अर्थ को बदलने का प्रयत्न किया है और अब हिन्दी और उर्दू के विषय में भी बहुत मतभेद प्रतीत होता है।

इस अन्तर का ठीक विवेचन एक यूरोपीय शब्द-वैज्ञानिक श्री ग्राउज (Grouse) ने किया था, और देखिये उन्होंने बहुत काल पहले उर्दू के विषय में ये शब्द कहे थे और इन पर कोई मतभेद नहीं है, "उर्दू" एक तुर्की शब्द है और इस शब्द से हम एक और रूप में परिचित हैं, अंग्रेजी शब्द "horde" (होर्द) है जैसे "military hordes" उर्दू शब्द का अर्थ स्पष्ट है। मैं इधर उधर की बातें न बना कर स्पष्ट कहता हूं कि उर्दू के प्रवर्तकों पर एक उत्तरदायित्व है और मुझे आशा है कि वे इसे अपने सिर से नहीं टालेंगे। यह उत्तरदायित्व यह है कि उन्होंने 19वीं शताब्दी में विभाजन आरम्भ किया था।

आरम्भ में हिन्दी उर्दू का अन्तर बड़ा नहीं था। यदि समय होता तो मैं आपको 19वीं शताब्दी से उद्धरण तथा प्राधिकारयुक्त निर्देश देता। 19वीं शताब्दी में उर्दू के लेखकों ने यह नियम बना लिया था अथवा अपना धर्म समझ लिया था कि भारतीय स्रोत से कोई भी साहित्यक शब्द न लिया जाये। उन्होंने भाषा का व्याकरण तथा रचना तो भारत से ली, पर साहित्यक प्रेरणा तथा अन्य बातें अरब और फारस से ली थीं। 19वीं शती में उन्होंने यह अनुभव किया कि फारसी के उड़ जाने से उन्हें जो हानि हुई थी, उसकी कमी को उर्दू का पोषण करके पूरा करना है। 19वीं शताब्दी के यूरोपीय लेखकों के असंख्य उद्धरण हैं जिनमें यह संदेह से परे स्पष्ट किया गया है कि फारसी की समाप्ति मुस्लिम विजेताओं की हानि थी, सम्राटों की भाषा की हानि थी। अत: उस हानि को पूरा करना था। कहा जाता था कि लखनऊ के बाजारों को फारस के इस्पहान के बाजार बनाना था।

अत: 19वीं शताब्दी में यह परम्परा बन गई जिससे उर्दू, फारसी और अरबी शब्दों तथा संस्कृति का कोष बन गई। उसी 19वीं शताब्दी में उसकी प्रतिक्रिया हुई और उसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य का विकास हुआ जिसका आधार और

[डॉ. रघुवीर]

ढांचा उसी भाषा पर आश्रित था जो उर्दू का आधार बनी थी, पर उसकी साहित्यक परम्परा देशीय थी। यह अन्तर बढ़ता ही गया और आज हम देखते हैं कि वे दो साहित्य भिन्न-भिन्न विकसित हो गये है यद्यपि उनका आधार एक ही था।

फिर एक तीसरा शब्द है 'हिन्दुस्तानी'। इस शब्द के विभिन्न लेखकों ने विभिन्न निर्वचन किये हैं। भाषाओं का अभ्यासी होने के नाते मैंने स्वयं निर्णय करने का प्रयत्न किया है कि क्या हम हिन्दुस्तानी का एक अर्थ में और केवल एक ही अर्थ में प्रयोग कर सकते हैं या नहीं। मैंने देखा कि यह असम्भव है। यह ऐसा मामला नहीं है जहां एक शब्द का, जो विविध अर्थो में प्रयुक्त होता रहा है, सभा सुनिश्चित अर्थ बना दे। भारतीय सेना में हिन्दुस्तानी शब्द का विस्तृत प्रयोग होता था, इसका प्रयोग उर्दू शब्द से अधिक होता था। सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ दिनों पहले मैंने बहुत सी पुस्तकें एकत्र की थीं जिनका शीर्षक हिन्दुस्तानी था। मैं दिल्ली के बाज़ार में गया और जो पुस्तकें मिल सकीं मैंने चयन कीं और यहां मेरे पास एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है जो जर्मनी में जर्मनों द्वारा प्रकाशित है। यह 'हिन्दुस्तानी बातचीत व्याकरण' है। आदि से अन्त तक यह उर्दू है, उर्दू के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सहस्रों सहस्रों उद्धरण हैं जिनमें हिन्दुस्तानी का अर्थ उर्दू के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अन्य स्थल हैं जो कम मिलते हैं किन्तु महत्वपूर्ण हैं जहां हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग ऐसा सामान्य हुआ है कि उसमें हिन्दी और उर्दू दोनों समाविष्ट हैं। किन्तु एक बात स्पष्ट है और बिल्कुल स्पष्ट है कि वह भाषा जिसे हम साहित्यिक हिन्दी कहते हैं हिन्दुस्तानी शब्द में समाविष्ट नहीं हो सकती।

मैं न हिन्दी की हिमायत कर रहा हूं और न उर्दू की, वरन् मैं तो आपके समक्ष केवल नामकरण की समस्या पेश कर रहा हूं। यदि हम इस मामले को किसी निष्पक्ष न्यायाधिकरण के पास ले जायें जिसमें उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश हों, उनके समक्ष हिन्दुस्तानी शब्द तथा उसके संबंध में सब साक्ष्य पेश करें, तो न्यायाधिकरण केवल एक ही निर्णय पर पहुंच सकता है और कोई दूसरा निर्णय नहीं हो सकता कि हिन्दुस्तानी उर्दू ही है। कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि साहित्यक तथा उच्च उर्दू अरबीनिष्ट तथा फारसीनिष्ट होती है। दूसरी ओर हिन्दुस्तानी में वह भाषा समाविष्ट हो सकती हैं जिसे सादी हिन्दी कहते हैं, ग्रामों की हिन्दी जिसे खड़ी बोली कहते हैं। मेरा निवेदन है कि साहित्यिक हिन्दी को हिन्दुस्तानी में शामिल नहीं किया जा सकता। हमारे समक्ष यह कठिनाई है किन्तु हम जो विनिश्चय करेंगे वह अलग मामला होगा। जब हिन्दुस्तानी शब्द का निर्वचन भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न कर सकते हैं तो एक स्पष्ट शब्द का प्रयोग करना सदा अच्छा रहता है। माननीय मौलाना साहिब के प्रति मेरे मन में महान् आदर है और मुझे साहित्य के विनम्र विद्यार्थी के रूप में निवेदन करना है कि यदि आप हिन्दी को संकीर्ण भाषा कहते हैं तो वह उपयुक्त शब्द नहीं है। वह सीमाकारक विशेषण आप, कम से कम, हिन्दी के लिये प्रयोग कर ही नहीं सकते। हिन्दी का आधार बहुत विस्तृत है, उर्दू से अधिक। उर्दू तो हद से हद उस लोक भाषा पर आधारित है जो श्रीयरसन के शब्दों में, दिल्ली और मेरठ के बीच में बोली जाती है। उन्होंने हिन्दुस्तानी लोकभाषा के लिये 52 लाख की संख्या बताई है। साहित्यिक हिन्दी का आधार बंगाल की सीमा से लेकर पंजाब की सीमा तक,

नेपाल की सीमा से लेकर गुजरात की सीमा तक की बोलियां हैं। जब आप विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं को लेते हैं तो आपको पता लगेगा कि साहित्यिक हिन्दी में प्राचीन राजपूताना की भाषा, डिंगल, का साहित्य है, अवधी का तथा अन्य उपभाषाओं का, यथा ब्रज और भोजपुरी का साहित्य भी समाविष्ट है। यदि आप उर्दू के एम.ए. का साहित्य पढ़ेंगे तो आपको भारत की किसी उपभाषा का साहित्य नहीं पढ़ना पड़ेगा। क्यों? क्योंकि उर्दू का भारत की उपभाषाओं से कोई संबंध नहीं है।

सर्वप्रथम हिन्दी का आधार बहुत विस्तृत है और राष्ट्रभाषा का आधार सचमुच बहुत विस्तृत होना चाहिये। दूसरी बात यह है कि उर्दू में अरबी और फारसी शब्दों का बाहुल्य है। मेरी प्रथम पाठ्य भाषा उर्दू थी और दूसरी भाषा फारसी थी और मुझे अरबी भी पढ़ने का अवसर मिला था। भाषाओं का अभ्यासी होने के नाते मेरे लिये किसी भाषा विशेष से घृणा करना सम्भव नहीं है और इसलिये घृणा का प्रश्न ही नहीं उठता। आप किसी भाषा के सौंदर्य का प्रेम द्वारा ही आनन्द ले सकते हैं।

मेरे पास भारत सरकार द्वारा प्रकाशित एक उर्दू पत्रिका 'बिसाते आलम' नामक है। अरबी में यह अत्यन्त सुन्दर शीर्षक है और कोई इस शब्द के अर्थ पर आपत्ति नहीं कर सकता। यह एक साहित्यक शब्द है जिसमें बहुत अर्थ सन्निहित हैं। किन्तु क्या भारतीय जनता के लिये उसका कोई अर्थ है? यदि आप इस पुस्तक के अन्दर देखें तो प्रथम पंक्ति यही है:

> "बेनुल अक़्वामी सियासियात व कैफियात के हामिल मुसव्विर माहनामा बिसाते आलम का सालनामा।"

यह इस पत्रिका की शीर्ष रेखा है। यह फारस या अरब में पूर्णतः बोध्यगम्य हो सकता है, पर भारत के किसी भाग में वह बोध्यगम्य नहीं होगा। मैं मौलाना साहिब की सुन्दर वक्तृता को बहुत ध्यान से सुनता रहा हैं। मैंने कुछ शब्द लिख लिये हैं जिनके स्थान पर यदि भारतीय शब्दों को रख दिया जाता तो वे अधिक बोध्यगम्य हो जाते। उदाहरण के लिये उन्होंने 'रियाजी' शब्द का प्रयोग किया था। मेरे समीप बैठे हुए मित्र ने पूछा "उसका क्या अर्थ है?" मैंने उन्हें बताया "इसका अर्थ है 'गणितम'। चाहे तमिल हो, उड़िया हो, असमिया, बंगला या गुजराती हो, हमारी एक सामान्य शब्दावली है, एक सामान्य विचारधारा है और सामान्य जीवन-मूल्य है। विगत में प्रयत्न किया गया था कि उर्दू को सरल बनाया जाये और मुझे आशा है कि भविष्य में इसके लिये और भी प्रयत्न किया जायेगा, किन्तु हम उर्दू को सरल बना कर हिन्दुस्तानी कह दें तब भी हम उसमें उस पदावली का प्रयोग नहीं कर सकते जो अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होगी। हिन्दी और उर्दू भाषाओं पर तथा उनके दावों पर विचार करते समय, कई अग्रिम नेताओं ने, जिनका नाम तथा सम्मान बहुत था, कहा था कि कोई बीच की भाषा होनी चाहिये जो दोनों भाषाओं को एक दूसरे के निकट ला सके। किन्तु आज हिन्दी और उर्दू के बीच का अन्तर मिटाने की समस्या नहीं है, वरन् ऐसी भाषा ढूंढ़ने की समस्या है जो भारत की सब भाषाओं, हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तमिल,

[डॉ. रघुवीर]

असमिया, उड़िया, पंजाबी के बीच का अन्तर मिटा दे। हमें ऐसी भाषा ढूंढ़नी है जो केवल हिन्दी और उर्दू की आवश्यकताओं को ही पूरा न करे, अपितु उत्तर और दक्षिण की समस्त भाषाओं की आवश्यकताओं को भी पूरी करे....

*__एक माननीय सदस्यः__ एक बज चुका है श्रीमान्। वक्ता महोदय भोजन के पश्चात् अपने भाषण को जारी रख सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ मुझे समय का पता है। क्या माननीय सदस्य बहुत समय लेंगे?

*__डॉ. रघुवीरः__ कम से कम आध घंटा।

*__अध्यक्षः__ इतनी अनुमति मैं नहीं दे सकता। मैं मध्याह्नातर में आपको कुछ मिनट दे सकता हूं।

मुझे यह सुझाव दिया गया है कि सदन को 4 बजे की बजाय पांच बजे समवेत होना चाहिये। अतः हम 5 बजे बैठेंगे।

तत्पश्चात् सभा मध्याह्नातर के 5 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा सायंकाल पांच बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

---

*__पं. बालकृष्ण शर्माः__ क्या मैं आपकी अनुमति से प्रस्ताव कर सकता हूं कि इस भाषा संबंधी प्रश्न पर वाद-विवाद समाप्त कर दिया जाये और यदि डॉ. रघुवीर कुछ शब्द और कह कर अपनी वक्तृता समाप्त करना चाहते हैं तो समाप्ति-प्रस्ताव को सदन में पेश करने से पूर्व उन्हें ऐसा कर लेने दिया जाये।

*__अध्यक्षः__ यदि डॉक्टर रघुवीर बोलना उपयोगी समझते हैं, तो खैर, वे दो मिनट ले सकते हैं।

*__डॉ. रघुवीरः__ अध्यक्ष महोदय, मैं सदन के अन्य सदस्यों के साथ अपना महान सन्तोष अभिव्यक्त करना चाहता हूं कि अंकों के विषय पर दोनों विभिन्न दृष्टिकोणों में संतोषजनक समझौता हो गया है। अब वाद-विवाद मैत्री भाव से चल सकता है। इस मामले में मैं सदन को बधाई देना चाहता हूं। अब क्योंकि कोई विवाद नहीं है, अतः वाद-विवाद को समाप्त कर दिया जाये।

*__अध्यक्षः__ समाप्ति प्रस्ताव पेश हो चुका है। मैं मान लेता हूं कि सदन इसे स्वीकार करता है।

*__मौलाना हसरत मोहानीः__ श्रीमान्, आपने समाप्ति-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। मैं अपना संशोधन वापस लेना चाहता हूं, जिसकी मैंने सूचना दी थी, क्योंकि

कल हमारे प्रधान मंत्री ने जो रुख अपनाया था उस पर मुझे अत्यन्त निराशा है तथा मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने आज जो तोषण नीति अपनाई थी उस पर मुझे अत्यन्त खेद है। मैं इस मामले पर भाषण देने के अपने अधिकार का भी परित्याग करता हूं। मैं समस्त बात का ही विरोध करूंगा।

*__अध्यक्षः__ मुझे केवल आपके वापस लेने से मतलब है उसके कारणों से नहीं।

अब मैं जानना चाहता हूं कि मुझे प्रश्न को सदन के समक्ष किस रूप में रखना चाहिये। लगभग 300 संशोधन हैं।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): श्रीमान्, श्री गोपालस्वामी आयंगर कुछ संशोधनों को स्वीकार करने वाले हैं। इन संशोधनों को फिर सदन के समक्ष रखा जाना चाहिये। अन्य सब संशोधनों के विषय में समझ लेना चाहिये कि वे वापस ले लिये गये हैं।

*__श्री के.एम. मुन्शी__ (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि आप सदन को लगभग आध घण्टे के लिये स्थगित कर दें? मुझे आपको यह बताने में बहुत खुशी है कि भाषा संबंधी इस अतीव कठिन प्रश्न पर हममें से अधिकांश सदस्य एकमत हो गये हैं। एक दो छोटी-छोटी बातें रह गई हैं जिनके विषय में संशोधन तैयार किया जा रहा है। उस पर कुछ मिनट लगेंगे। यदि सदन को आपत्ति नहीं है और यदि आप मुझे अनुमति दें तो, श्रीमान्, हम लगभग आध घंटे के लिये स्थगित हो सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ सदन के कुछ समय के लिये स्थगित होने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): कोई नया संशोधन पेश हो तो मुझे उसकी सूचना मिलनी चाहिये।

*__अध्यक्षः__ इस समय कोई संशोधन पेश नहीं किया जायेगा। मेरे विचार मैं वे इस बात पर विचार कर रहे हैं कि किन-किन संशोधनों को स्वीकार किया जाये। उसमें कुछ समय लग जायेगा।

*__श्री महावीर त्यागी__ (युक्तप्रान्त : जनरल): तब संशोधन मसौदा-समिति पर ही छोड़ दिये जायें।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू__ (युक्तप्रान्त : जनरल): मेरा विश्वास है दो तीन मिनट पहले ही समाप्ति-प्रस्ताव पेश हुआ था और आपने उसे स्वीकार कर लिया था। यदि सदन की अनुमति से समाप्ति-प्रस्ताव वापस नहीं लिया जाता तो मैं नहीं समझ पाता कि श्री मुन्शी या कोई भी नया संशोधन कैसे पेश कर सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ डॉ. कुंजरू ने औचित्य प्रश्न उठा दिया है।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ क्या मैं औचित्य प्रश्न के विषय में कुछ शब्द कह सकता हूं? कार्यावली में कई संशोधन हैं। मुख्य प्रस्ताव के प्रस्तावक

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

श्री गोपालस्वामी आयंगर उनमें से किसी को चुन सकते हैं या स्वीकार कर सकते हैं या अस्वीकार कर सकते हैं। समाप्ति के पश्चात् उन्हें बोलने का अधिकार है। अतएव वे बोल सकते हैं तथा बोलते समय किसी संशोधन को स्वीकार कर सकते हैं। समाप्ति का यह अर्थ नहीं है कि समस्त संशोधन, जो पेश हुए थे, अस्वीकृत या रद्द हो गये हैं। यदि वे यहां वहां कुछ शाब्दिक संशोधन करें तो सदन के मत द्वारा उन्हें अनुमति मिल सकती है?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या मैं कुछ शब्द कह सकता हूं, श्रीमान्?

***अध्यक्षः** हां, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद बोल सकते हैं। इस बीच में मैं आशा करता हूं कि श्री गोपालस्वामी आयंगर तथा श्री के.एम. मुन्शी उस चीज को तैयार कर लें। हम औचित्य प्रश्न पर विचार करते हैं, उतनी देर में वे उसे तैयार कर लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय, श्रीमान्......

***माननीय पं. रविशंकर शुक्लः** मेरी प्रस्थापना यह है कि पण्डित बालकृष्ण शर्मा अपने समाप्ति-प्रस्ताव को वापस ले लें।

***अध्यक्षः** मुझे श्री नज़ीरुद्दीन अहमद की बात सुनने दीजिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** अध्यक्ष महोदय, बहुत परिश्रम के पश्चात् हम लगभग एकमत हो गये हैं। किन्तु हमें एक महत्वपूर्ण सांविधानिक प्रश्न का स्मरण रखना है। हम देश के लिये, केवल देश के ही लिये नहीं, अन्य देशों के लिये भी सांविधानिक सिद्धान्तों का उदाहरण पेश कर रहे हैं। पण्डित हृदयनाथ कुंजरू ने एक औचित्य प्रश्न उठाया है कि समाप्ति-प्रस्ताव के स्वीकार होने के पश्चात्, कोई नये संशोधन प्रस्थापित नहीं किये जा सकते। श्री गुप्त ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, अपितु केवल यही कहा कि समाप्ति प्रस्ताव के पश्चात् मुख्य प्रस्ताव के प्रस्तावक को उत्तर देने का अधिकार होगा और वे कुछ संशोधनों को स्वीकार कर सकते हैं। मुझे उस पर आपत्ति नहीं है। किन्तु पण्डित कुंजरू ने यह प्रश्न उठाया था कि समाप्ति प्रस्ताव की स्वीकृति के पश्चात्, कोई नया संशोधन पेश नहीं किया जा सकता, जब तक कि समाप्ति प्रस्ताव वापस न ले लिया जाये। सदन द्वारा स्वीकृत समाप्ति प्रस्ताव को वापस लेने का कोई नियम या पूर्वोदाहरण या परम्परा नहीं है। ये कठिनाइयां हैं।

फिर, मेरा निवेदन है कि चाहे मुझे प्रसन्नता है कि मैत्रीभाव से समझौता तथा निपटारा हो गया है, फिर भी कुछ अमहत्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं, जो संख्या में अल्पसंख्यक हैं, और उन्हें भी प्रस्थापित नये संशोधनों पर विचार करके अपनी सम्मति अभिव्यक्त कर सकें। अतएव जो भी संशोधन पेश किया जाये उसकी उचित सूचना सदस्यों को दी जानी चाहिये जिससे वे उस पर विचार कर सकें। यदि कोई संशोधन पेश किया जाना है तो उस पर निर्णय स्थगित करने से कोई हानि नहीं होगी। हम मामले पर कल विचार करके निर्णय कर सकते हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में शायद वे लोग, जिन्होंने इस समस्या का कोई समझौता सा कर लिया है, इस चीज को ठीक रूप में रखने में कुछ समय लगायेंगे, यह आवश्यक नहीं है कि वे नये संशोधन ही पेश करें, वरन् वे शायद कार्यावली के संशोधनों में से कुछ को स्वीकार कर लें और कुछ को स्वीकार न करें। और यदि वे ऐसा करेंगे तो शायद जो औचित्य प्रश्न उठाया गया है वह उठेगा ही नहीं, किन्तु मुझे पता नहीं है कि परिस्थितियां कैसी होंगी। इस समय तो मेरे विचार में उन्हें कुछ समय देना ही ठीक रहेगा जिससे कि वे समूचे प्रश्न पर उन सब संशोधनों के निर्देश से विचार कर सकें जो पेश हो चुके हैं, और यह देख सकें कि उन संशोधनों को कहां तक स्वीकार कर सकते हैं और कार्यावली पर जो संशोधन हैं उनको सहमत सूत्र में कहां तक जमाया जा सकता है। यदि सदन को आपत्ति न हो तो मैं चाहता हूं कि....

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः** सारी बात को आज समाप्त कर दिया जाये।

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः** क्या मैं एक शब्द कह सकता हूं?

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** इस बीच में, क्या आप औचित्य प्रश्न पर विचार कर रहे हैं?

***अध्यक्षः** मैंने औचित्य प्रश्न पर कुछ भी नहीं कहा है और मैंने सदन को स्थगित अभी नहीं किया है। मैं अभी तक विचार-विमर्श ही कर रहा हूं और मुझे श्री गोपालस्वामी आयंगर की बात सुनने का अधिकार है।

***माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगरः** मैं चार पांच वाक्यों में समझा देना चाहता हूं। उस दिन मैंने जो मसौदा पेश किया था उसमें जो भी परिवर्तन किये जाने चाहियें, उनके संबंध में, मेरा ख्याल है कि हम सदन के बाहर बातचीत करके उन परिवर्तनों के सारांश पर सहमत हो गये हैं। वे अधिक नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि केवल चार पांच परिवर्तन ही किये जाने हैं। उनमें से दो तो केवल शाब्दिक हैं। अन्य दो तीन मामले ऐसे हैं जिनमें कुछ सार अन्तर्ग्रस्त है। वास्तव में हमने इसका कच्चा मसौदा बना लिया है, और यदि आप हमें बीस तीस मिनट दे दें तो हम उस मसौदे को सदन के समक्ष ऐसे रूप में पेश कर सकेंगे जिसे वह स्वीकार कर सकें। मेरा यह सुझाव है कि हमें लगभग आध घंटे पश्चात् समवेत होना चाहिये।

***माननीय सदस्यगणः** हम 6 बजे समवेत हो सकते हैं।

***पं. गोविन्द मालवीय** (युक्तप्रान्त : जनरल)**:** हम संविधान सभा हैं। हम अपने नियम स्वयं बनाते हैं और कोई ऐसी वस्तु जिससे आपके विचार में वह कार्य पूरा होगा जिसके लिये हम यहां हैं, और जिस पर समस्त सदन सहमत हो, निःसंदेह सम्भव होनी चाहिये और वह हो सकती है। मेरा निवेदन है कि हमें नियमों के केवल वैधानिक निर्वचनों पर ही नहीं अड़ना चाहिये और हमें सदन को आध घंटे के लिये स्थगित कर देना चाहिये जिसकी प्रार्थना की गई है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** इसी बीच में, वाद-विवाद जारी रहे।

*__अध्यक्षः__ नहीं, नहीं। जो औचित्य प्रश्न उठाया गया है उस पर मैं कोई विनिश्चय या निर्णय नहीं दे रहा हूं। मेरे विचार में हमें सदन को लगभग पौन घंटे के लिये स्थगित कर देना चाहिये। हम पुनः 6 बजे समवेत होंगे।

तत्पश्चात् सभा छह बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा सायंकाल छह बजे, अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

---

*__श्री के.एम. मुन्शीः__ अध्यक्ष महोदय, मैं समझता हूं कि समाप्ति प्रस्ताव पेश हो चुका है और स्वीकार किया जा चुका है। इसे ध्यान में रखते हुए, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि वाद-विवाद पुनः आरम्भ किया जाये जिससे कि मैं कुछ संशोधन सदन के समक्ष पेश कर सकूं। अतएव मेरा प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि वाद-विवाद पुनः आरम्भ किया जाये।

*__अध्यक्षः__ श्री मुन्शी ने सदन के समक्ष जो प्रस्ताव रखा है वह यह है कि जो समाप्ति-प्रस्ताव स्वीकार किया गया था उसका निरसन कर दिया जाये तथा वाद-विवाद पुनः आरम्भ कर दिया जाये। मैं मानता हूं कि नियमों के अधीन यदि सदस्यों का कुछ प्रतिशत भाग किसी संकल्प या विनिश्चय पर पुनः विचार करना चाहें तो उसका वाद-विवाद पुनः आरम्भ हो सकता है। मैं नहीं समझता कि उस आधार पर कोई कठिनाई है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या सदन वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करना चाहता है।

*__माननीय सदस्यगणः__ हां।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ अध्यक्ष महोदय, कुछ नये संशोधन अभी मुझे दिये गये हैं मुझे उनको पढ़ने के लिये भी पर्याप्त समय नहीं मिला है। मैं केवल यही चाहता हूं कि हमें अवसर दिया जाये जिससे कि नये संशोधनों का परीक्षण हो सके और उनका प्रभाव क्या होगा इस पर ध्यानपूर्वक विचार हो सके। हमें यह सोचना होगा कि अपने किन संशोधनों पर बल दें और किन्हें हम वापस लें। *(बाधा)* हमें ऐसा अवसर देने के लिये, मेरे विचार में हमें कुछ थोड़ा सा समय मिलना चाहिये। नियम 13 (0) है.....*(बाधा)*।

*__श्री सी. सुब्रमणियम__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, प्रस्ताव यह है कि वाद-विवाद पुनः आरम्भ हो। अब हम किसी संशोधन पर विचार कर रहे हैं। यदि माननीय सदस्य ऐसी कोई चीज़ पेश करना चाहते हैं तो वे कह सकते हैं। माननीय सदस्य कुछ ऐसे संशोधनों के विषय में निवेदन करना चाहते हैं जो सदन के समक्ष नहीं हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मेरा निवेदन है कि मुझे अभी कुछ संशोधन दिये गये हैं। मुझे समय नहीं मिला है कि.....

*__अध्यक्षः__ हम इस समय वाद-विवाद को पुनः आरम्भ करने के प्रश्न पर हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उसके संबंध में, मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है।

***अध्यक्षः** इस समय, हमें केवल उसी से संबंध है। जो वाद-विवाद पुनः आरम्भ करने के पक्ष में हैं, वे 'हां' कहेंगे।

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***श्री के.एम. मुन्शीः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 301क के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:-

'(1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script.

The form of numerals to be used for the official purposes of the Union shall be the international form of Indian numerals.'"

[(1) संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा)]

***श्री महावीर त्यागीः** (1) का क्या अर्थ है जबकि (2) है ही नहीं?

***श्री के.एम. मुन्शीः** एक वाक्य के दो भाग कर दिये गये हैं, और 'और' शब्द हटा दिया गया है। यह केवल शाब्दिक परिवर्तन है।

***पं. बालकृष्ण शर्माः** श्री त्यागी का कहना यह है कि केवल एक ही उप-खण्ड है और उसे 1 (1) क्यों रखा जाये।

***श्री के.एक. मुन्शीः** एक उपखण्ड 1(1) है, क्योंकि मूल अनुच्छेद में अन्य उपखंडिकायें (2) तथा (3) हैं। यह (2) नहीं, अपितु दूसरे (2) और (3) हैं।

***अध्यक्षः** मैं समस्त संशोधनों को देखना चाहता हूं।

***श्री के.एम. मुन्शीः** मैं दूसरा संशोधन पेश करता हूं, श्रीमान्।

"कि अनुच्छेद 301-क के खण्ड (3) के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:-

'(3) Notwithstanding anything contained in this article, Parliament may after the said period of fifteen years by law provide for the use of—

(a) the English language, or......'"

[श्री के.एम. मुन्शी]

[(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी संसद् उक्त पन्द्रह साल को कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा का, अथवा...]

*__कुछ माननीय सदस्यगण:__ यहां 'और' होना चाहिये।

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ 'अथवा' शब्द उपयुक्त है; इसका अर्थ 'और' ही है। किन्तु मसौदा समिति उस पर ध्यान से विचार करेगी। हम पैंतालीस मिनट तक जो कुछ कर सके वह हमने किया। हम समझते हैं कि 'अथवा' शुद्ध है। यदि हम देखेंगे कि 'अथवा' अशुद्ध है तो हम उसे बदल देंगे।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): क्या मैं सुझाव दे सकता हूं, श्रीमान्, कि.....

*__अध्यक्ष:__ वे खड़े हैं। उन्हें समाप्त क्यों नहीं कर लेने देते?

*__श्री के.एम. मुन्शी:__

"(b) The Devanagari form of numerals, for such purposes as may be specified in such law."

[(ख) अंकों के देवनागरी रूप का, ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।]

मेरा अगला संशोधन है:–

"कि अनुच्छेद 301-च को अनुच्छेद 301-च का खण्ड (1) बना दिया जाये, और उसमें निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:–

'(2) Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall prevent a State from prescribing, with the consent of the President, the use of the Hindi language or any other language recognised for official purposes in the State for proceedings in the High Court of the State other than judgments, decrees and orders.'"

[(2) खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में किसी बात के होते हुए भी किसी राज्य का राज्यपाल या राज्यप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिये प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय में निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश के अतिरिक्त अन्य कार्यवाहियों के लिये प्राधिकृत कर करेगा।]

इसके पश्चात् दूसरा खण्ड है:–

"(3) Notwithstanding anything contained in sub-clause (b) of clause (1) of this article, when the Legislature of a State has prescribed the use of any language other than English for Bills, Acts, Ordinances and orders having the force of law and rules referred to in the said sub-clause, a translation of the same in English certified by the Governor of the State shall be published and the same shall be deemed to be the authoritative text in English under this article."

[(3) खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में किसी बात के होते हुये भी जहां किसी राज्य के विधान मण्डल ने, उस विधान मण्डल में पुर:स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखण्ड की कण्डिका (उ) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिये अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है वहां उस राज्य के राजकीय सूचना–पत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राज–प्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद उस खण्ड के अभिप्रायों के लिये उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा।]

***माननीय सदस्यगण:** 'Or ruler' का क्या हुआ?

***श्री के.एम. मुन्शी:** ये शब्द कई अनुच्छेदों में गायब हैं और इसे ठीक कर दिया जायेगा। यदि आप चाहें तो मैं यहां 'Governor or Ruler of the State' ये शब्द रख दूंगा। यह माननीय श्री जी.एस. गुप्त के संशोधन सं. 164 से 167 से संबंधित है।

फिर अगला संशोधन है:

"अनुसूची में 'Kanarese' के स्थान पर 'Kannada' शब्द रख दिया जाये और 'Punjabi' के पश्चात् 'Sanskrit' शब्द रख दिया जाये।"

***श्री महावीर त्यागी:** क्या राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित होने वाले विधेयकों और अधिनियमों की भाषा के बारे में कोई संशोधन नहीं है?

***श्री के.एम. मुन्शी:** और कोई संशोधन नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी:** तो फिर यह समझौते का सच्चा निर्वचन नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** अध्यक्ष महोदय, क्या मैं एक मौखिक परिवर्तन का सुझाव दे सकता हूं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** एक औचित्य प्रश्न है। सारा सवाल यह है कि हमें इन संशोधनों पर विचार करने के लिये कुछ तो समय मिलना ही चाहिये। यह तो किसी सदस्य के प्रति सामान्य न्याय ही है। हो सकता है कि सदस्यों की अत्यधिक बहुसंख्या में कोई समझौता हो गया हो किन्तु उससे मामला समाप्त नहीं होता। प्रत्येक सदस्य को अवसर मिलना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में समूचे प्रश्न पर विचार होता रहा है और हम इस पर सब दृष्टिकोणों से पूरा-पूरा विचार कर चुके हैं। ये संशोधन नये इसलिये दिखाई देते हैं क्योंकि हमें जो अनेक संशोधन प्राप्त हुये हैं उनमें कोई संशोधन बिल्कुल इसी भाषा में नहीं है। मुझे पता नहीं है कि यदि इनमें से किसी संशोधन में वास्तव में अन्य इतने संशोधनों का सार आ जाता है जो पेश हुये हैं और सदन के समक्ष रखे गये हैं। अतएव, प्रश्न केवल यही है कि क्या हमें इन संशोधनों पर पुन: विचार करने की औपचारिकता को पूरा करना होगा या हम संशोधनों को स्वीकार कर लेंगे जैसे कि वे पेश किये जा रहे हैं क्योंकि वे अन्य संशोधनों के सार हैं जो कार्यावली में है और क्योंकि वे बहुत से सदस्यों की भावना के प्रतीक हैं, जिनमें आपस में समझौता हो गया है। यदि यह कोई नया प्रश्न होता जो बिल्कुल नया उठाया गया होता तो शायद सूचना मांगने का कोई औचित्य होगा। अतएव नियम 38 (ओ) के अधीन, जिसमें लिखा है:–

"If notice of a proposed amendment has not been given two clear days before the day on which the Constitution or the Bill, as the case may be, is to be considered, any member may object to the moving of the amendment, and such objection shall prevail, unless the President in his discretion allows the amendment to be moved."

[यदि प्रस्थापित संशोधन की सूचना उस दिन से दो दिन पूर्व न दी जाये जिस दिन संविधान या विधेयक पर विचार होना है, तो कोई सदस्य संशोधन के पेश होने पर आपत्ति कर सकता है, और ऐसी आपत्ति ठीक होगी, जब तक कि अध्यक्ष स्वविवेक से उस संशोधन को पेश करने की अनुमति न दे दे।]

मैं समझता हूं यही ऐसा उपयुक्त मामला है कि इन संशोधनों के पक्ष में अध्यक्ष के स्वविवेक का प्रयोग किया जाना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं इस प्रस्ताव का पूरे दिल से सदन की स्वीकृति के लिये समर्थन करता हूं, किन्तु क्या मैं शुद्धत: एक शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव दे सकता हूं?

***अध्यक्ष:** अच्छा हो आप प्रस्तावक को ही वह सुझाव दे दें। मैं एक दो मिनट ठहर सकता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** धन्यवाद, श्रीमान्, मैं ऐसा ही करूंगा।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (युक्तप्रान्त : जनरल): क्या मैं इस संशोधन पर बोल सकता हूं?

*__अध्यक्ष:__ नि:संदेह।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त:__ अध्यक्ष महोदय, इस पर कोई वाद-विवाद नहीं हो सकता क्योंकि आपने कहा है कि श्री मुन्शी ने जो संशोधन पेश किये हैं वे उन संशोधनों में आ जाते हैं जो पहले भेजे गये थे। मैं वे संख्यायें भी बता सकता हूं जिनमें ये संशोधन आ जाते हैं। यदि हम सारे वाद-विवाद को पुन: आरम्भ करें तो मेरा नम्र निवेदन है कि उन्हें इस प्रस्ताव पर वाद-विवाद के रूप में बोलने का अधिकार नहीं हैं यदि उन्हें किसी शाब्दिक संशोधन का सुझाव देना है तो वह दूसरी बात है।

*__एक माननीय सदस्य:__ हममें से कुछ को तीसरा पत्र नहीं मिला है।

*__अध्यक्ष:__ मिल जायेगा। इस बीच श्री सक्सेना इस पर बोलना चाहते हैं। उन्हें बोलने दीजिये।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, यह प्रश्न....

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ श्रीमान्, हमें अभी तक चौथे संशोधन की प्रति नहीं मिली है।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:__ श्रीमान्, यह राष्ट्रभाषा का प्रश्न दो दिनों से गरमागरम वाद-विवाद का विषय बना हुआ है, और इन संशोधनों का सुझाव श्री मुन्शी ने समझौते के रूप में दिया है और उन्होंने यह मान लिया है कि सदन के सदस्य इन संशोधनों पर सहमत हैं। श्रीमान्, मैं बहुत खेद के साथ इनका विरोध करने आया हूं और यह कहना चाहता हूं कि मैं उनसे सहमत नहीं हूं और मैं तथाकथित समझौते के संशोधनों को स्वीकार नहीं करता। मैंने स्वयं अपना संशोधन सं. 70 पेश किया है, किन्तु समझौते के रूप में मैं श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के संशोधन का समर्थन कर सकता हूं। अब जो संशोधन पेश किये गये हैं उन्हें समझौता बताया जाता है किन्तु वे किसी प्रकार सुधार नहीं है और उनसे मेरी या टण्डन जी की कोई बात पूरी नहीं होती। वास्तव में हिन्दी के समर्थक इस मूल बात पर जोर दे रहे हैं कि अंग्रेजी अंक हमारी राष्ट्रभाषा का स्थायी अंग नहीं बनेंगे। किन्तु अब जो संशोधन पेश किया गया है उससे ये तथा कथित अन्तर्राष्ट्रीय अंक, जो अंग्रेजी अंक ही हैं, इस संविधान द्वारा हमारी भाषा का स्थायी अंग बन जायेंगे, और मैं इसे स्वीकार कर ही नहीं सकता। समझौते में केवल यही स्वीकार किया गया है कि पन्द्रह वर्ष पश्चात् संसद देवनागरी अंकों का ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों। उसका अर्थ यह है कि देवनागरी अंकों को कुछ प्रयोजनों के लिये रखा जा सकता है, किन्तु मुख्य अंक अंग्रेजी अंक ही होंगे, और इस संविधान को स्वीकार करके हम इस सदन को और हमारे देश की भावी संतति को बांध रहे हैं कि वे इस संविधान अधिनियम द्वारा अंग्रेजी अंकों को हमारी भाषा का स्थायी अंग

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

स्वीकार करें, और मैं इस बात को कभी नहीं मानूंगा। मेरा ऐसा करने का कारण है। मैं श्री गोपालस्वामी के इस मसौदे को हिन्दी के समर्थकों के साथ धोखा और संविधान के साथ भी धोखा समझता हूं। सच मुच इस मसौदे से अंग्रेजी बहुत वर्षों के लिये स्थिर बन जायेगी, जैसा कि श्री अयंगर ने स्वयं स्वीकार किया है। राष्ट्रपिता ने राष्ट्र को इस खतरे से आगाह कर दिया था, जिसे उन्होंने 21 सितम्बर 1947 को ही देख लिया था, जब उन्होंने उस तारीख के हरिजन में सम्पादकीय लेख लिखा था।

अन्य संशोधन भी हैं जिन्हें टंडन जी ने समझौते के रूप में पेश किया था और मैंने भी समझौते के रूप में स्वीकार कर लिया था। किन्तु क्योंकि वास्तविक समझौता सम्भव नहीं हो सका है अत: मैं अपने संशोधन पर बल दूंगा जो निम्नलिखित है:

"कि उपरोक्त संशोधन 65 में, प्रस्थापित नवीन भाग 14-क के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:

"PART XIV-A

CHAPTER I—LANGUAGE OF THE UNION

301A. (1) The State language of the Union shall be Hindi in Devsnagari script.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article the English language may continue to be used for official purposes of the Union during the period of transition which shall not exceed 5 years, provided that the State language will be progressively utilized until it replaces English completely at the end of the transitional period of five years.

301B. (1) Within three months of the commencement of this Constitution, there shall be constituted a committee consisting of thirty members, of whom twenty shall be members of the House of the People and ten shall be members of the Council of States chosen respectively by the members of the people and the members of the Council of the States in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(2) It shall be the duty of the Committee to make recommendations to the President as to the ways and means which should be adopted as to

the progressive use of the Hindi language for all the official purposes of the Union and the replacement of the English language by the Hindi language at the end of the transitional period of five years.

(3) The Committee shall submit its report within a period of six months from the date of its appointment.

(4) Within a period of three months from the date of submission of its report by the committee, the President shall cause every recommendation made by the Committee together with an explanatory memorandum as to the action taken or to be taken thereon to be laid before each House of Parliament.

(5) (a) When any member of the House of the People or the Council of States cannot adequately express himself in the language in use for the time being in the House of the People or in the Council of States, the House of the People or the Chairman of the Council of States may permit him to address the House in his mother tongue.

(b) The Chairman of the Council of States or the Speaker of the House of the People may, whenever he thinks fit, make arrangments for making available in the Council of States or the House of the People as the case may be summary in Hindi and in the language in use in the House for the time being of the speech delivered by a member in any other language and such summary shall be included in the record of the proceedings of the House in which the speech has been delivered.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGES

301C. (1) A State may by law adopt Hindi or the language or languages in use in the State as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State.

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(2) (a) When any member of a State Legislature cannot adequately express himself in the language in use for the time being in either House of the State Legislature, the Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly may permit him to address the House in his mother tongue.

(b) The Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly may, whenever he thinks fit, make arrangements for making available, in the Legislative Council or the Legislative Assembly as the case may be, a summary in Hindi or in the language in use in either House for the time being of the speech delivered by a member in any other language, and such summary shall be included in the record of the proceedings of the House in which the speech has been delivered.

301D. (1) (a) The language for the time being authorised for use in the Union for official purposes shall be the official language for communication between a State and the Union;

(b) if the language authorised for use in the Union is also the official language of any State, the official language of the Union shall be the official language for communication between that State and another State:

Provided that if two or more States agree that the Hindi language shall be the official language for communication between such States, that language may be used for such communication.

(2) The authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in the House or either House of the Legislature of a State,

(ii) of all Acts passed by the Legislature of a State and of all Ordinances promulgated by a Governor or a Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and byelaws issued under this Constitution or under any law made by the Legislature of a State,

shall be in the official language of the State:

Provided that if the State official language is not Hindi, they shall be accompanied by an authoritative text in Hindi:

Provided also that during the transition period of five years from the commencement of the Constitution, if the State official language is not English, they shall also be accompanied by an authoritative text in English.

301E. Where on a demand being made in that behalf the President is satisfied that a substantial proportion of the population of a State, but not less than 20 per cent desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State, he may direct that such language shall be recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.

CHAPTER III—DIRECTIVE PRINCIPLE

301G. Every person shall be entitled to submit a representation for the redress of any grievance to any officer or authority of the Union or a State in any of the languages used in the Union or in the State, as the case may be.

301H. It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichment by assimilating the forms, style and expressions used in the other languages of India and drawing wherever necessary or desirable for its vocabulary primarily on Sanskrit.

301 I. It shall be the duty of the Union to promote the use of the Devanagari script throughout the territory of India.

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

301 J. It shall also be the duty of the Union to promote the study of Sanskrit throughout the territory of India as it is the source of most of the other languages in India.'"

[भाग 14-क

अध्याय 1 संघ की भाषा

301-क. (1) संघ की राज्य भाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी होगी।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुये भी, संक्रमण काल में जो 5 वर्ष से अधिक नहीं होगा संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रह सकता है, परन्तु राज्य भाषा का प्रयोग प्रगतिपूर्वक होगा जब तक कि वह पांच वर्ष के संक्रमण काल के अन्त में पूर्णतः अंग्रेजी का स्थान ले ले।

301-ख. (1) संविधान के आरम्भ से तीन मास के भीतर, 30 सदस्यों की एक समिति बनाई जायेगी, जिनमें से 20 लोक सभा के सदस्य होंगे तथा 10 राज्य परिषद् के सदस्य जो क्रमशः उन सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(2) समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को सिफारिश करे कि संघ के सब राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग तथा पांच वर्षो के संक्रमण काल के पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी रखने के लिये क्या उपाय तथा साधन अपनाये जायें।

(3) समिति अपनी नियुक्ति की तारीख से 6 मास के भीतर ही अपना प्रतिवेदन पेश कर देगी।

(4) समिति द्वारा प्रतिवेदन पेश करने के पश्चात् तीन मासों में ही राष्ट्रपति समिति की प्रत्येक सिफारिश को, व्याख्यात्मक स्मरण पत्र के साथ कि उस पर क्या कार्यवाही की गई है अथवा की जानी है संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(5) (क) जब लोक सभा या राज्य परिषद् का कोई सदस्य उस समय उस सदन में प्रयोग होने वाली भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, तब लोक सभा का अध्यक्ष या राज्य परिषद् का सभापति उसे अपनी मातृ भाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है।

(ख) राज्य परिषद् का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष, जब भी वह उपयुक्त समझे, यथास्थिति राज्य परिषद् में या लोक सभा में ऐसी वक्तृता का जो किसी सदस्य ने अन्य भाषा में दी हो हिन्दी में अथवा उस समय सदन में प्रयोग होने वाली अन्य भाषा में संक्षेप उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सकता है। और वह संक्षेप उस सदन को कार्यवाही के अभिलेख में समाविष्ट होगा, जिसमें वह वक्तृता दी गई है।

अध्याय 2

प्रादेशिक भाषाएं

301-ग. (1) कोई राज्य विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ हिन्दी को या उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी एक या अनेक को अंगीकार कर सकेगा।

(2) (क) जब राज्य के विधान मण्डल का कोई सदस्य उस समय उस सदन में प्रयोग होने वाली भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, तब विधान परिषद् का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष उसे अपनी मातृ भाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है।

(ख) विधान परिषद् का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष, जब भी वह उपयुक्त समझे, यथास्थिति विधान परिषद् या विधान सभा में ऐसी वक्तृता का, जो किसी सदस्य ने अन्य भाषा में दी हो, हिन्दी में अथवा उस सदन में प्रयोग होने वाली अन्य भाषा में संक्षेप उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सकता है, और वह संक्षेप उस सदन की कार्यवाही के अभिलेख में समाविष्ट होगा, जिसमें वह वक्तृता दी गई है।

301-घ. (1) (क) संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्सम प्राधिकृत भाषा, किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा होगी।

(ख) यदि संघ में प्रयोगार्थ प्राधिकृत भाषा किसी राज्य की राजभाषा भी है, तो संघ की राजभाषा ही उस राज्य और अन्य किसी राज्य के बीच संचार की राजभाषा होगी:

किन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

(2) (क) विधेयक अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले जो संशोधन राज्य के विधान मण्डल के किसी सदन में पुर:स्थापित किये जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

(ख) अधिनियम जो राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित किये जायें, तथा जो अध्यादेश राज्यपाल या शासक द्वारा प्रख्यापित किये जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ।

(ग) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि, जो इस संविधान के अधीन, अथवा राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ उस राज्य की राजभाषा में होंगे:

किन्तु यदि उस राज्य की राजभाषा हिन्दी नहीं है तो, उनके साथ हिन्दी में उनका प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया जायेगा।:

किन्तु यह भी कि इस संविधान के आरम्भ से पांच वर्ष के संक्रमण काल में, यदि उस राज्य की राजभाषा अंग्रेजी नहीं है तो उनके साथ अंग्रेजी में भी उनका प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया जायेगा।

301-ङ तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात, जो बीस प्रतिशत से कम नहीं हो, चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसाकि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

अध्याय 3

निदेशक तत्व

301-छ. किसी व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा।

301-ज. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुये तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भण्डार के लिये मुख्यत: संस्कृत से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

301-झ. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में देवनागरी लिपि के प्रयोग को प्रोत्साहन देना, संघ का कर्तव्य होगा।

301-ञ. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना संघ का कर्तव्य होगा, क्योंकि वह भारत की अन्य भाषाओं में अधिकांश का स्रोत है।]

*श्री **ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** इसकी अपेक्षा नहीं है।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त:** श्रीमान्, वाद-विवाद समाप्त हो।

***श्री मोहम्मद इस्माइल** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इन संशोधनों पर बोलना चाहता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं इन संशोधनों पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं जो अभी पेश किये गये हैं और जिनकी रचना में मेरा हाथ था।

***अध्यक्ष:** क्या यह आवश्यक है? यदि हम अब वाद-विवाद आरम्भ कर देंगे तो पता नहीं वह कब तक चलता रहेगा। यदि कोई सदस्य इन संशोधनों के विरुद्ध है तो मैं उसे अवसर दे दूंगा। मैं नहीं चाहता कि जो सदस्य संशोधनों के पक्ष में हैं वे सदन का समय लें। मैंने श्री सक्सेना को अवसर दे दिया क्योंकि मुझे पता चला था कि वे इन संशोधनों के विरुद्ध थे यदि आप उनका विरोध करना चाहते हैं तो मैं आपको बोलने की अनुमति दे दूंगा।

***श्री जगत नारायण लाल:** मैं उसका विरोध नहीं करना चाहता।

***अध्यक्ष:** तो कृपया इसे रहने दीजिये।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्.....

***अध्यक्ष:** आप विरोध करना चाहते हैं?

***श्री महावीर त्यागी:** मैं इस संशोधन पर संशोधन पेश करना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** खण्डों की संख्याओं के विषय में?

***श्री महावीर त्यागी:** हां, श्रीमान् मैं चाहता हूं कि....

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में उसकी चिन्ता मसौदा समिति कर लेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, अधिक वाद-विवाद नहीं होगा तथा मैं बोलना भी नहीं चाहता। मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि मौलिक खण्ड में दो वाक्यों के बीच में 'और' शब्द था, और अब यह प्रस्थापना है कि 'देवनागरी लिपि' के पश्चात् 'और' को हटा कर 'पूर्ण विराम' रख दिया जाये, और कण्डिका के दो भाग कर दिये गये हैं। मेरा निवेदन है कि प्रथम वाक्य को (क) और दूसरे को (ख) कर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** मेरे समक्ष उसका जो मसौदा है उसमें दो भिन्न कंडिकाएं हैं।

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ अध्यक्ष, अब वाद-विवाद पुनः आरम्भ कर दिया गया है तथा समाप्ति-प्रस्ताव को मिटा दिया गया है, अतः मेरे विचार में मैं उन संशोधनों का निर्देश कर सकता हूं जो मैंने भेजे थे और अब सदन के समक्ष हैं।

*__एक माननीय सदस्यः__ अन्य संशोधन?

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ नहीं, वे ही संशोधन जिनकी मैंने सूचना दी थी; अब समाप्ति-प्रस्ताव मिटा दिया गया है और वाद-विवाद पुनः आरम्भ हो गया है, अतः मेरे विचार में मुझे संशोधनों पर बोलने का अधिकार है।

*__अध्यक्षः__ मूलतः वे ठीक हैं।

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ श्रीमान्, मैं सर्वप्रथम यह कहना चाहता हूं कि मैं उन संशोधनों का विरोध करना चाहता हूं जो अभी श्री के.एम. मुन्शी ने सदन के समक्ष पेश किये हैं। मैंने जो संशोधन भेजे हैं उनका आशय यह है कि सदन संघ भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी को, जो देवनागरी तथा उर्दू लिपियों में लिखी जाये, तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को स्वीकार कर ले। मेरे एक संशोधन में यह भी प्रस्थापना है कि अंग्रेजी भाषा, जो संघ के प्रयोजन के लिये 15 वर्ष तक रहेगी, उसे उस 15 वर्ष के पश्चात् भी जारी रहने दिया जाये जब तक संसद, दोनों सदनों के कुल सदस्यों के बहुमत से, अन्यथा निर्णय न कर दे। मेरे संशोधन का यही आशय है।

*__अध्यक्षः__ संख्या?

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ श्रीमान्, कल माननीय प्रधान मंत्री ने अपनी वक्तृता में कई बातें कहीं जिनमें तीन मुख्य बातें ये थीं। सर्वप्रथम उन्होंने महात्मा गांधी के विचारों का उद्धरण दिया। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि हमें पीछे नहीं हटना चाहिये और बहुत ज्यादा पीछे की ओर देखना भी नहीं चाहिये, नहीं तो हम अपनी प्रगति में पीछे रह जायेंगे। तीसरी बात वे चाहते थे कि हम इस बात को समझें कि संसार छोटा होता जा रहा है और इसलिये हमें यह समझना चाहिये कि संसार का भार हमारे ऊपर प्रति घंटा बढ़ता जा रहा है। यदि हम इन सब सिद्धान्तों का ध्यान रखें तो मेरे विचार में हमारे विचाराधीन विषय का बहुत सरल समाधान हो जायेगा।

सब सहमत हैं कि संघ की राजभाषा कोई भारतीय भाषा ही होनी चाहिये और वह भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसे संघ के बहुत लोग बोलते हों।

यह भी मान लिया गया है कि वह भाषा ऐसी होनी चाहिये जिससे कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की आधुनिक प्रवृत्तियों और आधुनिक स्थितियों को वह आत्मसात कर सकें। इन बातों के विषय में, मैं नहीं समझता कि कोई मतभेद है। किन्तु

वाद-विवाद का विषय केवल यही है कि इन सब शर्तों को पूरी करने वाली भाषा कौन सी है। इस मामले में मैं महात्मा गांधी के शब्दों को उद्धृत कर सकता हूं। महात्मा गांधी ने 10 अगस्त 1947 के एक लेख में कहा था:

"मेरा प्रतिदिन हिन्दुओं और मुसलमानों से सम्पर्क होता है। हिन्दुओं की संख्या अधिक है। उनमें से अधिकांश ऐसी भाषा बोलते हैं जिसमें बहुत कम संस्कृत शब्द होते हैं और फारसी तथा अरबी के शब्द भी अधिक नहीं होते। वे अथवा अधिकांश देवनागरी लिपि नहीं जानते। वे मुझे अंग्रेजी में लिखते हैं और जब मैं उन्हें अंग्रेजी में लिखने पर डांटता हूं तो वे उर्दू लिपि में लिखते हैं। यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी हो और लिपि केवल देवनागरी हो तो उन हिन्दुओं की क्या दशा होगी?"

यह प्रश्न गांधी जी ने पूछा था, बहुत वर्षों पहले नहीं, अभी अगस्त 1947 में ही। यह कहा जा सकता है कि उन्होंने केवल दिल्ली और निकटवर्ती भागों का ही निर्देश दिया है। किन्तु बाद में उसी लेख में वे कहते हैं–मैं उनके ही शब्दों का ठीक उद्धरण दे रहा हूं:

"भारत के करोड़ों ग्रामीणों को पुस्तकों से कोई मतलब नहीं है। वे हिन्दुस्तानी बोलते हैं जिसे मुस्लिम उर्दू लिपि में लिखते हैं तथा हिन्दु उर्दू लिपि या नागरी लिपि में लिखते हैं। अतएव मेरे और आप जैसे लोगों का कर्तव्य है कि दोनों लिपियों को सीखें।"

श्रीमान्, महात्मा गांधी के ये ही विचार हैं। यहां वे स्पष्ट कहते हैं कि लोगों की बहुत बड़ी संख्या हिन्दुस्तानी भाषा ही बोलती है और उनके अनुसार, उर्दू तथा देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करती है। अतएव मैं और मेरे कुछ मित्र इस सदन से अनुरोध करते हैं कि आप संघ की राजभाषा की लिपि के रूप में उर्दू तथा देवनागरी दोनों को स्वीकार कर लें।

आप सब जानते हैं कि यह भाषा हिन्दुस्तानी, विदेशी भाषा नहीं है। यह देशी भाषा है। यह इसी देश में उत्पन्न हुई और उन्नत बनीं। इस भाषा के विषय में एक और लाभ है कि यह भाषा आधुनिक परिस्थितियों में उत्पन्न हुई थी और इसका आधुनिक परिस्थितियों के अन्तर्गत तथा उनके अनुरूप विकास हुआ है। अत: मैं कहता हूं कि आधुनिक विचारों, भावनाओं तथा आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति के लिये वह सर्वोत्तम भाषा है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं। यह हिन्दुस्तानी ही ऐसी भाषा है जिसे इस देश के अधिक से अधिक लोग बोलते हैं।

भूत की ओर जाने के प्रश्न पर मुझे कहना है कि यदि हम पीछे लौटना चाहते हैं तो हमें उसके विषय में तर्कसंगत होना चाहिये। हम भूत की ओर क्यों लौटना चाहते हैं? क्योंकि हमारे कुछ मित्र एक प्राचीन भाषा को राजभाषा बनाना चाहते हैं—केवल एक भारतीय भाषा ही नहीं वरन् देश की प्राचीन भाषा को ही संघ की राजभाषा बनाना चाहते है। यदि इस बात को स्वीकार किया जाये तो मैं साहसपूर्वक कह सकता हूं कि तमिल, या व्यापक रूप में, द्रविड़ भाषायें ही इस देश में बोली जाने वाली भाषाओं में प्राचीनतम हैं। कोई ऐतिहासिक या

[श्री मोहम्मद इस्माइल]

पुरातत्ववेता मेरी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि इस देश में प्राचीनतम द्रविड़ भाषा ही है। तमिल भाषा में उच्च कोटि का साहित्य है। यह अत्यन्त प्राचीन भाषा है। मैं कह सकता हूं कि यह मेरी मातृभाषा है। मुझे उससे प्रेम है और उस भाषा पर मुझे गर्व है। किन्तु, मैं और अन्य तमिल लोग भी इतने समझदार हैं कि वे इस बात पर जोर नहीं देते कि यह देश की प्राचीनतम भाषा देश की राजभाषा बननी चाहिये, क्योंकि हम जानते हैं कि इसे बोलने वाले इतने अधिक नहीं हैं जितने दूसरी भाषा के बोलने वाले हैं, यदि हम प्राचीन की बात करें तो, जैसाकि मैंने कहा है, यही भाषा देश की राजभाषा बननी चाहिये, किन्तु उस भाषा के वक्ता यह दावा नहीं करते।

हां, हमारा अपने अतीत से संबंध है। हम उस बात को भूल नहीं सकते, जैसा कि टण्डन जी ने समझाया है। किन्तु मेरा कहना है कि यदि हमें अतीत की शृंखला से बंधा रहना है तो वह शृंखला कठोर नहीं होनी चाहिये, लचकदार होनी चाहिये। हमें मूल ही बनने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, हमें शाखायें बनने का प्रयत्न करना चाहिये जिस पर नवपल्लव, फल और फूल लगें। अएतव हमें आधुनिक स्थितियों पर भी विचार करना चाहिये।

*__श्री रामनाथ गोयनका__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं पहले ही समाप्त प्रस्ताव कर चुका हूं, और मैं माननीय सदस्य के भाषण के विषय में भी समाप्ति प्रस्ताव कर सकता हूं।

*__अध्यक्षः__ मैं माननीय सदस्य को समाप्त करने का अवसर दूंगा।

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ श्रीमान्, मैं स्वीकार करता हूं कि यदि समाप्ति प्रस्ताव पेश किया जाये और स्वीकृत हो जाये तो यहां कुछ भी नहीं कह सकता। किन्तु क्योंकि ऐसा नहीं हुआ है और वाद-विवाद जारी है, अतः मेरे विचार में मुझे बोलने का अधिकार है।

*__श्री रामनाथ गोयनकाः__ वे तर्क को दोहरा रहे हैं।

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य अपनी वक्तृता को समाप्त कर सकते हैं।

*__श्री मोहम्मद इस्माइलः__ श्रीमान्, अंकों के विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मैं अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप को चाहता हूं क्योंकि देश की कई भाषाओं ने उन अंकों को अपना लिया है। यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या अंकों का प्रश्न देश के समक्ष इतने काल से है जितने काल से राजभाषा का प्रश्न है। मैं प्रश्न पूछता हूं कि क्या लोग नहीं जानते कि यह अंकों का प्रश्न राजभाषा के प्रश्न से सर्वथा भिन्न है। अब अंग्रेजी संघ की राजभाषा है। वह जनता तक नहीं पहुंची। किन्तु अंकों का प्रश्न दूसरा है। जनसाधारण तथाकथित अंग्रेजी अंकों का, जो वास्तव में भारतीय अंक हैं, प्रतिदिन प्रयोग करते हैं। मैंने ठेले वालों, मजदूरों, को इन अंकों का प्रयोग करते देखा है। अब लाखों लोग इन अंकों का प्रयोग करते हैं। अतएव मेरे मित्र चाहते हैं कि इन अंकों को संघ की राजभाषा का स्थायी अंग बना दिया जाये, और वे जनता की भावनाओं को ही व्यक्त कर रहे हैं। वे केवल उसी बात का समर्थन कर रहे हैं जो देश में पहले ही विद्यमान है।

यदि हम अंकों के रूप में परिवर्तन करते हैं तो इससे शक्ति की बरबादी तथा अपव्यय के अतिरिक्त बहुत सी गड़बड़ पैदा हो जायेगी। जैसा बहुधा बताया जा चुका है वे आखिर हमारे ही अंक हैं। अतएव मैं सदन से अब भी अनुरोध करता हूं कि इन अंकों को राजभाषा का स्थायी अंग बना देना चाहिये और कितने ही वर्षों पश्चात् उन्हें नहीं बदलना चाहिये।

संक्षेप में मेरी प्रस्थापना है कि उर्दू और देवनागरी लिपियों में लिखित हिन्दुस्तानी को संघ की राजभाषा स्वीकार करना चाहिये, और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को उस राजभाषा का स्थायी अंग बना देना चाहिये।

*माननीय श्री सत्यनारायण सिन्हा (बिहार : जनरल): श्रीमान्, प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे अवसर दिया जाये।

***अध्यक्ष:** समाप्ति प्रस्ताव पेश किया जा चुका है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि मुझे संशोधन सं. 4 में कुछ खास बातें बतानी हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं.....

***अध्यक्ष:** समाप्ति प्रस्ताव पेश हो चुका है और मैं आपको बोलने की अनुमति नहीं दे सकता। मेरे विचार में आपने पहले वचन दिया था कि आप बोलेंगे नहीं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, समाप्ति प्रस्ताव की स्वीकृति पूर्णत: अध्यक्ष के हाथ में है। मैं संशोधन सं. 4 के विषय में कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** आप संशोधन का विरोध करना चाहते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्। समाप्ति-प्रस्ताव की स्वीकृति इस बात पर निर्भर है कि राष्ट्रपति को संतोष हो जाये कि काफी बहस हो चुकी है।

***माननीय सदस्यगण:** समाप्ति, समाप्ति।

***अध्यक्ष:** मुझे समाप्ति-प्रस्ताव पर मत लेने हैं। मेरे विचार में सदन अधिक वाद-विवाद करना नहीं चाहता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** क्या आपका यह निर्णय है कि समाप्ति प्रस्ताव स्वीकृत हो जाना चाहिये।

***अध्यक्ष:** मुझे इस पर सदन का मत लेना है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ नहीं, श्रीमान्, यह आवश्यक नहीं है। मेरा निवेदन है कि आप इस पर मत लेने के लिए बाध्य नहीं हैं।

*__अध्यक्षः__ मैं यह नहीं कहता कि मैं बाध्य हूं, किन्तु मेरा विचार उस पर सदन का मत लेने का है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं कुछ शब्द कहना चाहता था। इस संशोधन में गम्भीर त्रुटियां हैं।

*__माननीय सदस्यगणः__ नहीं, नहीं (शान्ति, शान्ति)।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह हैः

"कि प्रश्न पर मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ श्री आयंगर, क्या आप समूचे वाद-विवाद के उत्तर स्वरूप कुछ कहना चाहते हैं?

*__माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगरः__ श्रीमान्, इस समय सब प्रसन्नता की मुद्रा में हैं और मैं लम्बी सी वक्तृता देकर इस हर्ष मुद्रा को भंग नहीं करना चाहता। मुझे बड़े संशोधन का प्रस्तावक होने के नाते औपचारिक रूप में उन संशोधनों को स्वीकार करना है जो मेरे माननीय मित्र श्री मुन्शी ने उस संशोधन पर पेश किये हैं। मैं उन्हें पूरी तरह स्वीकार करता हूं।

मुझे एक बात और कहनी है जिसके विषय में मैंने कुछ मित्रों को वचन दिया था जिन्होंने कल कुछ संशोधन पेश किये थे, विशेषतः वह संशोधन जिसका समर्थन श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव ने बहुत युक्तियुक्त भाषण द्वारा किया था। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि हिन्दी भाषा की अस्थिर अवस्था के कारण, विशेषतः राजनैतिक, सांविधानिक, वैज्ञानिक, आदि शब्दों की कमी के कारण, यह वांछनीय है कि एक परिषद् या आयोग संविधान के प्रारम्भ होते ही स्थापित होना चाहिये और वह देश के विभिन्न भागों में इस भाषा की समीक्षा करे और शब्दों तथा अभिव्यक्तियों को निश्चित रूप दे। मेरे विचार में, श्रीमान्, देश की वर्तमान दशा में यह बहुत अच्छा सुझाव है। उन्होंने उस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया था, किन्तु मैं नहीं समझता कि इस बात को पूरी करने के लिये इस मसौदे में कुछ बढ़ाना जरूरी है। उस भाग में एक अनुच्छेद है जिसमें राज्य को यह निदेश दिया गया है कि वह हिन्दी भाषा के विकास के लिये कदम उठाये, उसे उन्नत करने के लिये कदम उठाये, जिससे कि वह हिन्दुस्तानी तथा देश की अन्य भाषाओं की शैलियों, पदावलियों आदि को आत्मसात् कर सके और अपनी शब्दावली की उन्नति के लिये मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः संसार की अन्य सब भाषाओं से शब्द ले सके। यह एक व्यापक निदेश है जो हमने इस भाग 16-क में रखा

है और मुझे विश्वास है इस संविधान के प्रवर्तन में आने के पश्चात् चाहे कोई भी सरकार हो वह इस उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिये आवश्यक कदम उठायेगी और श्री कृष्णमूर्ति के सुझाव पर, मुझे संदेह नहीं है, अवश्य अमल किया जायेगा।

*__अध्यक्षः__ मुझे अब संशोधनों पर मत लेना है। हमारे पास बहुत ज्यादा संशोधन हैं। मैं संशोधन की संख्या बोलता जाऊंगा और जो सदस्य वापस लेना चाहें वे कह दें और मैं मान लूंगा कि सदन उन्हें वापस लेने की अनुमति देता है।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्तः__ श्रीमान्, क्या मैं कुछ सुझाव दे सकता हूं? यदि कोई सदस्य विशेषतः यह चाहता है कि उसके संशोधन पर मत लिया जाये तो वह कह देगा। अन्यथा यदि आप प्रत्येक संशोधन को लेंगे तो इसमें बहुत समय लग जायेगा। मैं समझता हूं कि हमने निश्चय कर लिया है कि केवल कुछ संशोधनों को स्वीकार किया जायेगा, अतः यदि आप कृपया उन्हीं माननीय सदस्यों से पूछें जो अपने संशोधनों पर मतदान चाहते हैं तो इससे बहुत समय बच जायेगा।

*__अध्यक्षः__ क्या सदन की यही इच्छा है?

*__माननीय सदस्यगणः__ हां।

*__अध्यक्षः__ तो मैं चाहता हूं कि सदस्य मुझे बता दें कि वे किन-किन संशोधनों पर मतदान करवाना चाहते हैं।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि मेरे संशोधन पर मतदान हो।

*__अध्यक्षः__ उसकी संख्या क्या है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ सं. 277।

*__श्री जेड.एच. लारी__ (युक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, क्या प्रक्रिया है?

*__अध्यक्षः__ मुझे यह सुझाव दिया गया है कि इसकी बजाय कि मैं प्रत्येक संशोधन पर मत लूं और जिस सदस्य ने उसे पेश किया है उसे वापस ले, और सदन से वापस लेने की अनुमति मांगे, इन बातों की बजाय मुझे केवल उन संशोधनों पर मत ले लेना चाहिये जिस पर उसके प्रस्तावक मतदान करवाना चाहें।

*__श्री जेड.एच. लारीः__ इससे गड़बड़ होगी। उचित तरीक़ा यह है कि जो अपने संशोधन वापस लेना चाहें पहले वापस ले लें।

*__महबूब अली बेग साहिब बहादुर__ (मद्रास : मुस्लिम): जब कोई संशोधन पेश हो तब उसके प्रस्तावक खड़े होकर कहें कि वे उसे वापस लेते हैं और सदन उस वापस लेने को स्वीकार करे। हमारे नियमों में तो यही प्रक्रिया लिखी हुई है।

*__श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर__ (मद्रास : जनरल): प्रत्येक सदस्य को खड़ा होकर कहने की अपेक्षा नहीं है कि वह संशोधन को वापस लेता है। जिन संशोधनों पर प्रस्तावक जोर नहीं देना चाहते उन्हें समझा जाये कि वे वापस ले लिये गये हैं। नियमों के अनुसार ऐसी प्रक्रिया का कोई निषेध नहीं है।

*__माननीय श्री पुरुषोत्तम दास टंडन:__ मैं यही जानना चाहता हूं कि इस मामले में आपका विनिश्चय क्या है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ जिन सदस्यों ने संशोधन पेश किये हैं और उन पर मतदान नहीं करवाना चाहते उनके विषय में यह मान लिया जाये कि उन्होंने आपको प्राधिकार दे दिया है कि वे उन पर जोर देना नहीं चाहते।

*__अध्यक्ष:__ इस मामले में मुझे एक सुझाव देना है। मेरे पास उन सदस्यों की सूची है जिनके नाम से संशोधन हैं। मैं प्रत्येक सदस्य का नाम पुकारूंगा और यदि वह चाहे कि किसी विशेष संशोधन पर मतदान होना चाहिये तो मैं उस पर मत ले लूंगा। मेरे विचार में उससे समस्या सुलझ जायेगी। शेष के विषय में मैं समझ लूंगा कि सदस्य अपने संशोधनों को वापस लेते हैं और सदन उन्हें इसकी अनुमति देता है।

निम्न सदस्यों ने अपने नाम के संशोधनों को वापस लेने की अनुमति मांगी:

सेठ गोविन्ददास

माननीय पं. रविशंकर शुक्ल

श्री अलगू राय शास्त्री

श्री लक्ष्मीकान्त मैत्र

श्री एच.वी. कामत

मौलाना हसरत मोहानी

श्री एल. कृष्णस्वामी भारती

श्री एच.आर. गुरुव रेड्डी

श्री अरुण चन्द्र गुहा

श्री महबूब अली बेग

डॉ. पी. सुब्बरायन

श्री एन. नागप्पा

(संशोधन, सभा की अनुमति से वापस ले लिये गये।)

*__अध्यक्ष:__ प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन 65 में, प्रस्थापित नवीन भाग 16-क के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

‘PART XIV-A

CHAPTER I—LANGUAGE OF THE UNION

301A. (1) The State language of the Union shall be Hindi in Devanagari script.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article the English language may continue to be used for official purposes of the Union during the period of transition which shall not exceed 5 years, provided that the State language will be progressively utilized until it replaces English completely at the end of the transitional period of five years.

301 B. (1) Within three months of the commencement of this Constitution, there shall be constituted a committee consisting of thirty members, of whom twenty shall be members of the Council of States chosen respectively by the members of the House of the People and the members of the Council of States in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

(2) It shall be the duty of the committee to make recommendations to the President as to the ways and means which should be adopted as to the progressive use of the Hindi language for all the official purposes of the Union and the replacement of the English language by the Hindi language at the end of the transitional period of five years.

(3) The Committee shall submit its report within a period of six months from the date of its appointment.

(4) Within a period of three months from the date of submission of its report by the Committee, the President shall cause every recommendation made by the committee together with an explanatory memorandum as to the action taken or to be taken thereon to be laid before each House of Parliament.

[अध्यक्ष]

(5) (a) When any member of the House of the People or the Council of States cannot adequately express himself in the language in use for the time being in the House of the People or in the Council of States, the Speaker of the House of the People or the Chairman of the Council of States may permit him to address the House in his mother tongue.

(b) The Chairman of the Council of States or the Speaker of the House of the people may, whenever he thinks fit, make arrangements for making available in the Council of States or the House of the People as the case may be a summary in Hindi and in the language in use in the House for the time being of the speech delivered by a member in any other language and such summary shall be included in the record of the proceedings of the House in which the speech has been delivered.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGES

301-C. (1) A State may by law adopt Hindi or the language or languages in use in the State as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State.

(2) (a) When any member of a State Legislature cannot adequately express himself in the language in use for the time being in either House of the State Legislature, the Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly may permit him to address the House in his mother tongue.

(b) The Chairman of the Legislative Council or the Speaker of the Legislative Assembly may, whenever he thinks fit, make arrangements for making available, in the Legislative Council or the Legislative Assembly as the case may be, a summary in Hindi or in the language in use in either House for the time being of the speech delivered by a member in any other

language, and such summary shall be included in the record of the proceedings of the House in which the speech has been delivered.

301-D. (1) (a) The language for the time being authorised for use in the Union for official purposes shall be the official language for communication between a State and the Union;

(b) If the language authorised for use in the Union is also the official language of any State, the official language of the Union shall be the official language for communication between that State and another State:

Provided that if two or more States agree that the Hindi language shall be the official language for communication between such States, that language may be used for such communication.

(2) The authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in the House or either House of the Legislature of a State,

(ii) of all Acts passed by the Legislature of a State and of all Ordinances promulgated by a Governor or a Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and bye-laws issued under this Constitution or under any law made by the Legislature of a State,

shall be in the official language of the State:

Provided that if the State official language is not Hindi, they shall be accompanied by an authoritative text in Hindi:

[अध्यक्ष]

Provided also that during the transition period of five years from the commencement of the Constitution, if the State official language is not English, they shall also be accompanied by an authoritative text in English.

301-E. Where on a demand being made in that behalf the President is satisfied that a substantial proportion of the population of a State, but not less than 20 per cent. desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State, he may direct that such language shall be recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.

CHAPTER III—DIRECTIVE PRINCIPLE

301-G. Every person shall be entitled to submit a representative for the redress of any grievance to any officer or authority of the Union or a State in any of the languages used in the Union or in the State, as the case may be.

301-H. It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichment by assimilating the forms, style and expressions used in the other languages of India, and drawing wherever necessary or desirable for its vocabulary primarily on Sanskrit.

301-I. It shall be the duty of the Union to promote the use of the Devanagari script throughout the territory of India.

301-J. It shall also be the duty of the Union to promote the study of Sanskrit throughout the territory of India as it is the source of most of the other languages in India.'"

[भाग 14-क

अध्याय 1

संघ की भाषा

301-क. (1) संघ की राज्य भाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी होगी।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुये भी संक्रमण काल में जो 5 वर्ष से अधिक नहीं होगा संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रह सकता है, परन्तु राज्य भाषा का प्रयोग प्रगतिपूर्वक होगा जब तक कि वह पांच वर्ष के संक्रमण काल के अन्त में पूर्णतः अंग्रेजी का स्थान ले ले।

301-ख. (1) संविधान के आरम्भ से तीन मास के भीतर, 30 सदस्यों की एक समिति बनाई जायेगी, जिनमें से 20 लोक सभा के सदस्य होंगे तथा 10 राज्य परिषद् के सदस्य जो क्रमशः उन सदनों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(2) समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को सिफारिश करे कि संघ के सब राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग तथा पांच वर्षों के संक्रमण काल के पश्चात् अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी रखने के लिये क्या उपाय तथा साधन अपनाये जायें।

(3) समिति अपनी नियुक्ति की तारीख से 6 मास के भीतर ही अपना प्रतिवेदन पेश कर देगी।

(4) समिति द्वारा प्रतिवेदन पेश करने के पश्चात् तीन मासों में ही राष्ट्रपति समिति की प्रत्येक सिफारिश को, व्याख्यात्मक स्मरण पत्र के साथ कि उस पर क्या कार्यवाही की गई है अथवा की जानी है, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

(5) (क) जब लोक सभा या राज्य परिषद् का कोई सदस्य उस समय उस सदन में प्रयोग होने वाली भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, तब लोक सभा का अध्यक्ष या राज्य परिषद् का सभापति उसे अपनी मातृ भाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है।

(ख) राज्य परिषद् का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष, जब भी वह उपयुक्त समझे, यथास्थिति राज्य परिषद् में या लोक सभा में ऐसी वक्तृता का जो किसी सदस्य ने अन्य भाषा में दी हो हिन्दी में अथवा उस समय सदन में प्रयोग होने वाली भाषा में संक्षिप्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सकता है। और वह संक्षेप उस सदन की कार्यवाही के अभिलेख में समाविष्ट होगा, जिसमें वह वक्तृता दी गई है।

अध्याय 2

प्रादेशिक भाषाएं

301-ग. (1) कोई राज्य विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ हिन्दी को या उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली किसी एक या अनेक को अंगीकार कर सकेगा।

[अध्यक्ष]

(2) (क) जब राज्य के विधान मण्डल का कोई सदस्य उस समय उस सदन में प्रयोग होने वाली भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, तब विधान परिषद् का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष उसे अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुमति दे सकता है।

(ख) विधान परिषद् का सभापति या विधान सभा का अध्यक्ष, जब भी वह उपयुक्त समझे, यथास्थिति विधान परिषद् या विधान सभा में ऐसी वक्तृता का, जो किसी सदस्य ने अन्य भाषा में दी हो, हिन्दी में अथवा उस सदन में प्रयोग होने वाली अन्य भाषा में संक्षेप उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर सकता है, और वह संक्षेप उस सदन की कार्यवाही के अभिलेख में समाविष्ट होगा, जिसमें वह वक्तृता दी गई है।

301-घ. (1) (क) संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्सम प्राधिकृत भाषा, किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा होगी।

(ख) यदि संघ में प्रयोगार्थ प्राधिकृत भाषा किसी राज्य की राजभाषा भी है, तो संघ की राजभाषा ही उस राज्य और अन्य किसी राज्य के बीच संचार की राजभाषा होगी:

किन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

(2) (क) विधेयक अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले जो संशोधन राज्य के विधान मण्डल के किसी सदन में पुरःस्थापित किये जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ।

(ख) अधिनियम जो राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित किये जायें, तथा जो अध्यादेश राज्यपाल या शासक द्वारा प्रख्यापित किये जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ।

(ग) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि, जो इस संविधान के अधीन, अथवा राज्य के विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ, उस राज्य की राजभाषा में होंगे:

किन्तु यदि उस राज्य की राजभाषा हिन्दी नहीं है तो, उनके साथ हिन्दी में उनका प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया जायेगा:

किन्तु यह भी कि इस संविधान के आरम्भ से पांच वर्ष के संक्रमण काल में, यदि उस राज्य की राजभाषा अंग्रेजी नहीं है तो उनके साथ अंग्रेजी में भी उनका प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया जायेगा।

301-ङ तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात, जो बीस प्रतिशत से कम नहीं

हो, चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

अध्याय 3

निदेशक तत्व

301-छ. किसी व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक़ होगा।

301-ज. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुये तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भण्डार के लिये मुख्यत: संस्कृत के शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।

301-झ. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में देवनागरी लिपि के प्रयोग को प्रोत्साहन देना, संघ का कर्तव्य होगा।

301-ञ. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन देना संघ का कर्तव्य होगा, क्योंकि वह भारत की अन्य भाषाओं में अधिकांश का स्रोत है।]

संशोधन अस्वीकृत हो गये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) में, 'हिन्दी' शब्द के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' शब्द रख दिया जाये।"

सभा में मत विभाजन हुआ *(हाथ उठा कर)*।

हां: 14

नहीं: शेष, अत्यधिक बहुमत।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): मैं अपने संशोधन सं. 1 को वापस लेने के लिये अनुमति चाहता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

*__अध्यक्ष__: प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) में 'देवनागरी' शब्द के पश्चात् 'और उर्दू' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

सभा में मत विभाजन हुआ *(हाथ उठा कर)*।

हां: 12

नहीं: शेष, अत्यधिक बहुमत।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्ष__: श्री युधिष्ठिर मिश्र अपने आसन पर नहीं हैं। श्री फूल सिंह अपने संशोधन को वापस लेते हैं। सर्वश्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले, शंकर राव देव और आर.वी. धूलेकर अपने संशोधनों को वापस लेते हैं।

अब श्री रामलिंगम् चेटियर का संशोधन है।

*__श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियार__ (मद्रास : जनरल): मेरे संशोधन सं. 105 पर मतदान हो।

*__अध्यक्ष__: प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 65 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-ख के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:–

'301B. The President shall, after the expiration of 15 years from the commencement of this Constitution, lay down the method by which the substitution of English by Hindi should be carried out.'"

[301-ख. राष्ट्रपति, संविधान के आरम्भ से वर्ष की समाप्ति पर, ऐसा उपाय निश्चित करेगा जिससे अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को रखने का कार्य हो सके।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__श्री टी.ए. रामलिंगम् चेट्टियार__: मत ले लिये जायें, श्रीमान्।

सभा में मत विभाजन हुआ *(हाथ उठाकर)*।

हां: 6

नहीं: शेष, अत्यधिक बहुमत।

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

(वैकल्पिक संशोधन, सभा की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***श्री सतीश चन्द्र सामन्त** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति चाहता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***श्री महबूब अली बेग:** मेरे संशोधन सं. 98 का क्या हुआ?

***अध्यक्ष:** मैंने माननीय सदस्य का नाम पुकारा था और उस समय उन्होंने अपने संशोधन पर मतदान के लिये मुझे नहीं कहा। यदि वे अब उस पर मतदान चाहते हैं तो मैं मत ले लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301क के खण्ड (2) का परन्तुक हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

निम्नलिखित सदस्यों ने अपने संशोधनों को वापस लेने की अनुमति चाही:

श्री राम सहाय

श्री महावीर त्यागी

श्री एस.वी. कृष्णमूर्तिराव

श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी

श्री कृष्णचन्द्र शर्मा

श्री युधिष्ठिर मिश्र

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

***डॉ. पी.एस. देशमुख:** मैं अपने संशोधनों को वापस लेता हूं। किन्तु मुझे आशा है कि मसौदा समिति उन पर विचार करेगी। मेरे मसौदे उनके मसौदों से अच्छे हैं।

***अध्यक्ष:** आप उन्हें मसौदा समिति को दे दीजिये।

डॉ. पी.एस. देशमुख और श्री जसपतराय कपूर के संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

*श्री जेड.एच. लारीः मैं अपने संशोधन सं. 258 और 310 पर मतदान चाहता हूं।

*अध्यक्षः प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-घ के विद्यमान परन्तुक के पश्चात्, निम्न जोड़ दिया जाये:

'Provided further that if any Indian language specified in the schedule was used as official language in any State on 15th August 1947—the day of India's Idependence—such language shall also be recognised as official language of the State for 15 years from the date of the commencement of the Constitution and thereafter if so directed by the President.'"

[किन्तु कोई यदि भारतीय भाषा, जो अनुसूची में उल्लिखित हो भारतीय स्वतन्त्रता दिवस, 15 अगस्त 1947 को किसी राज्य में राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती हो तो वह भाषा भी इस संविधान के आरम्भ से पन्द्रह वर्ष तक, और यदि राष्ट्रपति निदेश दे तो बाद में भी, उस राज्य की राजभाषा के रूप में मान्य होगी।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*अध्यक्षः मैं श्री लारी के अगले संशोधन पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-ज के अंत में निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:–

'Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, primary education shall be imparted through the mother tongue of a child where thirty students in a school or eight students in a class make such a demand.'"

[इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुये भी, प्राथमिक शिक्षा बच्चे की मातृ भाषा में दी जायेगी, जहां किसी पाठशाला में 30 विद्यार्थी या किसी एक श्रेणी में 8 विद्यार्थी ऐसी मांग करें।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

श्री बसन्त कुमार दास और श्री बी. सिद्धवीरप्पा ने अपने संशोधनों को वापस लेने की अनुमति चाही।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

*__अध्यक्षः__ श्री जयपालसिंह। मेरे विचार में सदस्य महोदय सदन में नहीं हैं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ श्रीमान्, उनके संशोधन पर मत ले लिये जायें।

*__अध्यक्षः__ श्री लकरा, आप क्या कहते हैं?

*__श्री बोनीफेस लकरा__ (बिहार : जनरल): मैं वापस लेता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

*__अध्यक्षः__ श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं अपने संशोधन सं. 277 और 282 के अतिरिक्त सबको वापस लेता हूं।

(संशोधन सं. 277 और 282 के अतिरिक्त श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के समस्त संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये भाग 14-क के स्थान पर निम्न रख दिया जायेः

'PART XIV-A

CHAPTER I. LANGUAGE OF THE UNION

301-A. The English language shall continue to be used for all the purposes of the Union for which it was being used at the commencement of the Constitution for fifteen years in the first instance and then for such further period, if any, till an All India language is evolved which is of sufficient vigour, richness and flexibility to serve the multifarious purposes and functions of the Union and ascertained and adopted in the manner hereinafter laid down in this part.

301-B. As a first step to facilitate the evolution and ultimate adoption of a Union language referred to in the last preceding article, and to provide

[अध्यक्ष]

for and safeguard the continuance and growth of the regional languages referred to in article—of this Constitution, Parliament may, within ten years from the commencement of this Constitution, by law—

(a) under article 3 of this Constitution regroup and reconstitute, as far as practicable, all the States described in the First Schedule on linguistic bases according to the principal languages described in Schedule VII-A, and

(b) introduce a system of mass literacy among the citizens of India.

301-C. If within the period of ten years from the commencement of this Constitution, or as soon as practicable thereafter, the President is satisfied that the States have been reconstituted in the manner laid down in clause (a) of the last preceding article and a minimum of sixty per cent of the adult and adolescent citizens of India have received primary education as laid down in clause (b) thereof, he shall require the Parliament and the Legislatures of the States to express their views on the question of the selection of the Union language or languages and the respective regional languages.

301-D. The President shall consider the views of the Parliament and the Legislatures of the States and may as soon as practicable, appoint a Language Commission representing the various languages enumerated in Schedule VII-A and also other languages and experts to investigate and report on the suitability of any one or more language or languages to be adopted as the Union language and one or more language or languages for the various States, regard being had to political, literary, official, legal, commercial, medical, technical, scientific, military, international and other needs of India as a whole and of the States.

301-E. The President shall consider the report of the Commission and if he is satisfied that it is thorough and adequate, he shall direct the report to be placed before the Houses of Parliament and the Houses of the Legislatures of the States for expression of their opinions on the suitability or otherwise of any one or more of the Indian languages to be the official language of India as also the regional language or languages of the various States.

301-F. The President on a consideration of the opinions of the Legislatures and other documents and materials available, shall appoint a committee consisting of thirty members of the House of the People and ten members elected by the Council of States on the principle of proportional representation by means of the single transferable vote to report as to the suitability of any one or more language or languages of the Union and of the various States.

301-G. The President shall consider the report of the Committee and may by notification in the Official Gazette direct that one or more languages shall be official language of the Union with effect from such date as may be specially appointed in this behalf in the notification.

301-H. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, Parliament may by law provide for the use of the English language after the date mentioned in the last preceding article for such purposes as may be specified in such law.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGE

301-I. Subject to the provisions of the next succeeding article, a State may, after consideration of the report of the Language Commission referred to in article 301-D of this Constitution and of the report of the Committee referred to in article 301-F of this Constitution, by law adopt

[अध्यक्ष]

any one or more of the languages in use in the State as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State:

Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the English language shall continue to be used for those official purposes within the State for which it was being used at the commencement of this Constitution.

301-J. Where on a demand being made in that behalf, the President is satisfied that a substantial proportion of the population of a State or any substantial part thereof desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State, he may direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose or purposes as he may specify.

CHAPTER III—LANGUAGE OF THE SUPREME COURT AND THE HIGH COURTS, ETC.

301-K. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides—

(a) all proceedings in the Supreme Court and in every High Court,

(b) the authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in either House of Parliament or in the House or either House of the Legislature of a State.

(ii) of all Acts passed by Parliament or the Legislature of a State and of all Ordinances promulgated by the President or the Governor or Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and bye-laws issued under this Constitution or under any law made by Parliament or the Legislature of a State shall be in the English language.

301-L. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides, the proceedings in all courts subordinate to the High Courts shall, subject to the directions of the Supreme Court, be in English or such other language or languages as may be prescribed by the High Court to which such court is subordinate.

301-M. Until the date mentioned in the notification referred to in article 301-G of this Constitution, no Bill or amendment making provision for the language to be used for any of the purposes mentioned in article 301-K of this Constitution shall be introduced or moved in either House of Parliament without the previous sanction of the President, and the President shall not give his sanction to the introduction of any such Bill or the moving of any such amendment except after he has taken into consideration the recommendations of the Commission constituted under article 301-D of this Constitution and the report of the Committee referred to in article 301-F of this Constitution.

301-N. It shall be the duty of the Union to promote the spread of the official language or languages of the Union and to develop the language or languages so as to serve as a medium or media of expression for all elements of the composite culture of India and to secure its or their enrichment by assimilating the forms, style and expressions used in the other languages of India, and drawing wherever necessary or desirable for its vocabulary on Sanskrit and other languages."

"SCHEDULE VII-A

1. Assamese
2. Bengali

[अध्यक्ष]

3. Canarese
4. Gujarati
5. Hindi
6. Hindustani
7. Kashmiri
8. Malayalam
9. Marathi
10. Oriya
11. Punjabi
12. Rajasthani
13. Telugu
14. Urdu. ’”

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

“कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) में, ‘देवनागरी लिपि में हिन्दी’ इन शब्दों के स्थान पर ‘बंगाली’ शब्द रख दिया जाये।”

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

निम्नलिखित सदस्यों ने अपने नाम के संशोधनों के वापस लेने के लिये सदन की अनुमति मांगी:

श्री हरगोविन्द पन्त

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

श्री बी.एम. गुप्ते

आचार्य जुगलकिशोर

श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार

डॉ. रघुवीर

श्री गोकुलभाई दौलतराम भट्ट

मास्टर नन्द लाल

श्री बी.पी. झुनझुनवाला

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

***अध्यक्ष:** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं संशोधन सं. 322 पर मतदान चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि खण्ड (2) के अंतिम परन्तुक को हटा दिया जाये। वे शब्द निरर्थक हैं।

***अध्यक्ष:** मैं तो समूचे संशोधन पर ही मत ले सकता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301क के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'301A. (1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script and the form of numerals to be used for the official purposes of the Union shall be the Devanagari form of numerals.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, for a period of five years from the commencement of this Constitution, the English language and the international form of Indian numerals shall continue to be used for all the official purposes of the Union, for which they were being used at such commencement:

Provided that the President may, during the said period, by order authorise for any of the official purposes of the Union the use of the Hindi language and the Devanagari form of numerals in addition to the English language and the international form of Indian numerals in addition to the Devanagari form of numerals.

(3) Notwithstanding anything contained in this article, the President may by order authorise the use of the English language and the international form of Indian numerals after the said period of five years for such purposes as may be specified in such order.'"

[अध्यक्ष]

[301-क (1) संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी और संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये देवनागरी अंकों का प्रयोग होगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुये भी, इस संविधान के प्रारम्भ से 5 वर्षों तक अंग्रेजी भाषा और भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप ही संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होते रहेंगे, जिनके लिये वे संविधान के आरम्भ पर प्रयुक्त होते थे:

किन्तु उक्त कालावधि में ही राष्ट्रपति आदेश द्वारा प्राधिकृत कर सकता है कि संघ के किसी राजकीय प्रयोजन के लिये अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा तथा देवनागरी अंकों का प्रयोग और देवनागरी अंकों के अतिरिक्त भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप का प्रयोग भी हो सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी, राष्ट्रपति आदेश द्वारा प्राधिकृत कर सकता है कि उन प्रयोजनों के लिये जो उक्त आदेश में उल्लिखित हों, पांच वर्ष की उपरोक्त कालावधि के पश्चात् भी, अंग्रेजी भाषा तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप का प्रयोग हो सकेगा।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** सरदार हुकम सिंह।

***सरदार हुकम सिंह:** मैं संशोधन सं. 330 पर मतदान करवाना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-ग के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'301C. Subject to the provisions of articles 301D and 301E, a State shall by law adopt the language spoken, according to the last census figures available for the purpose, by majority of the population, as the language to be used for all official purposes of that State:

Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law the English Language shall continue to be used for those official purposes within that State for which it was being used at the commencement of this Constitution.'"

[301-ग. अनुच्छेद 301-घ और 301-ङ के उपबन्धों के अधीन रहते हुये कोई राज्य, विधि द्वारा, उस भाषा को उस राज्य के सरकारी प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने वाली भाषा के रूप में स्वीकार कर सकता है, जो भाषा, उस प्रयोजन के लिये उपलब्ध अंतिम जनगणना अंकों के अनुसार, अधिकांश जनता द्वारा बोली जाती हो।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

(डॉ. मनमोहन दास का संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्ष:** श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन:** आप किस संशोधन के विषय में कह रहे हैं, श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** संख्या 333।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टन्डन:** मैं इस पर मतदान करवाना चाहता हूं। मैं इसे वापस नहीं ले रहा हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

Official language of the Union.

'301A. (1) (a) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script.

(b) Notwithstanding anything contained in sub-clause (a) of this clause both Devanagari and international forms of Indian numerals shall be recognised for Devanagari script.

(c) The President may authorise the use of Devanagari form of numerals or the international form of numerals or both the forms for any one or more purposes of the Union.

(d) Notwithstanding anything contained in the foregoing Provisions of this clause, Parliament shall after the expiration of a period of 15 years from the commencement of this Constitution by

[अध्यक्ष]

law prescribe the use of Devanagari numerals or the international form of numerals or both for any one or more specified purposes of the Union.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article for a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, the English language shall continue to be used for all the official purposes of the Union for which it was being used at such commencement:

Provided that the President may during the said period by order authorise for any of the official purposes of the Union other than accounting, auditing and banking the use of the Hindi language in addition to the English language.

(3) Notwithstanding anything contained in this article Parliament may by law provide for the use of the English language after the said period of fifteen years for such purposes as may be specified in such law.'"

[301-क (1) (क) संघ की राजभाषा देवनागरी में लिखित हिन्दी होगी।

संघ की राजभाषा

(ख) इस खण्ड के उपखण्ड (क) में किसी बात के होते हुये भी देवनागरी लिपि के लिये भारतीय अंकों के देवनागरी और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों रूप मान्य होंगे।

(ग) राष्ट्रपति संघ के एक या अनेक प्रयोजनों के लिये देवनागरी अंकों या अन्तर्राष्ट्रीय अंकों या दोनों के प्रयोग को प्राधिकृत कर सकेगा।

(घ) इस खण्ड के पूर्ववर्ती उपखण्डों में किसी बात के होते हुये भी इस संविधान के आरम्भ से पन्द्रह वर्षों की समाप्ति पर संसद विधि द्वारा, संघ के एक या अनेक उल्लिखित प्रयोजनों के लिये देवनागरी अंकों या अन्तर्राष्ट्रीय अंकों या दोनों के प्रयोग को निर्धारित कर सकती है।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के आरम्भ से 15 वर्षों की कालावधि में, अंग्रेजी भाषा संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होती रहेगी जिनके लिये वह संविधान के आरम्भ पर प्रयुक्त होती थी:

किन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा प्राधिकृत कर सकता है कि लेखा, लेखा-परीक्षण तथा बैंक व्यवसाय के अतिरिक्त संघ के किसी राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का भी प्रयोग होगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी संसद, विधि द्वारा उपबन्ध कर सकती है कि पन्द्रह वर्ष की उक्त कालावधि के पश्चात् भी ऐसे प्रयोजनों के लिये जो उस विधि में उल्लिखित हों, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता रहेगा।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर संशोधन सं. 345 है।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** उस पर मतदान हो। मैं उसे वापस नहीं लेताः

***अध्यक्षः** प्रश्न यह हैः

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 302-ख में–

(1) खण्ड (1) में, 'at' शब्द के स्थान पर, दोनों जगह जहां वह शब्द है, 'before' शब्द रख दिया जाये;

(2) खण्ड (2) में उपखण्ड (घ) हटा दिया जाये;

(3) खण्ड (5) में 'thereon' शब्द के पश्चात् 'making such recommendations as they think fit' ये शब्द जोड़ दिये जायें; और

(4) खण्ड (6) में, 'report' शब्द के पश्चात्, जहां वह दूसरी बार आया है, 'which shall come into effect after the expiry of five years from the commencement of this Constitution' ये शब्द जोड़ दिये जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 346।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** उसे मैं वापस लेता हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** संशोधन सं. 348।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** उसे भी मैं वापस लेता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 349।

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** उस पर मतदान होना चाहिये।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि चतुर्थ सूची के संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित ये अनुच्छेद 301-च के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'301F. Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides—'"

***माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडनः** क्या मैं बीच में बाधा डाल सकता हूं: मुझे बहुत खेद है; मैं इसे वापस लेता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** श्री फ्रैंक एन्थनी।

***श्री फ्रैंक एन्थनी** (मध्य प्रदेश और बरार: जनरल): मैं सभा से अपने संशोधन को वापस लेने की अनुमति मांगता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** मेरे ख्याल में सब संशोधन आ चुके हैं। यदि किसी सदस्य का संशोधन रह गया है तो वे मुझे बता सकते हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** श्री मुन्शी के संशोधन।

***अध्यक्षः** उस पर मैं आ रहा हूं: मैं अन्य संशोधनों के विषय में कह रहा हूं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** संशोधन सं. 175, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि उपरोक्त संशोधन सं. 65 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 301-ज में, 'used in the Union or in the State, as the case may be' इन शब्दों के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:-

'specified in Schedule VII A'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

श्री मोहम्मद इस्माइल साहिबः मेरे संशोधन सं. 336, 341, 342 और 344।

***श्री टी.टी. कृष्णामाचारी** (मद्रास : जनरल): वे अन्य संशोधनों में आ जाते हैं।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में संशोधन 336 एक संशोधन में आ जाता है जो गिर गया है। अगला संशोधन 341 है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** मैं इसे वापस लेता हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 342।

***श्री टी.टी. कृष्णामाचारी:** वह भी आ जाता है, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** वह भी हो गया। संशोधन सं. 344।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब:** मैं उसे भी वापस लेता हूं, श्रीमान्।

संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।

***अध्यक्ष:** मेरे विचार में इतने ही संशोधन हैं। यदि किसी सदस्य का संशोधन रह गया है तो वे बता दें, अन्यथा ऐसा समझा जायेगा कि वे सभा की अनुमति से वापस ले लिये गये हैं।

अब मैं श्री मुन्शी के संशोधनों पर मत लेता हूं। किन्तु श्री त्यागी का एक संशोधन कण्डिकाओं की संख्या के विषय में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** इस मामले पर तो हम बाद में विचार करेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** वह स्वीकृत हो गया, श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** इसका यह मतलब नहीं है कि उसे स्वीकार कर लिया गया है। वे उस पर विचार करेंगे।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं उसे स्वीकार नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्ष:** क्या आप उस पर जोर दे रहे हैं?

***श्री महावीर त्यागी:** यदि आप उसे मसौदा समिति को भेज रहे हैं तो मैं उस पर जोर नहीं देता। मैं उसे मसौदा समिति की सद्बुद्धि पर छोड़ देता हूं।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 301-क के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'(1). The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script.

The form of numerals to be used for the official purposes of the Union shall be the international form of Indian numerals.'"

[(1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।

संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 301-क के खण्ड (3) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'(3) Notwithstanding anything contained in this article Parliament may after the said period of fifteen years by law provide for the use of—

(a) the English language, or

(b) the Devanagari form of numerals,

for such purposes as may be specified in such law.'"

[(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी संसद उक्त पन्द्रह साल को कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा का; अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का।

ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अन्य दोनों संशोधनों पर एक साथ मत ले लिये जायें।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 301-च को अनुच्छेद 301-च का खण्ड (1) बना दिया जाये, और उसमें निम्न खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2) Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall prevent a State from prescribing, with the consent of the President, the use of the Hindi language or any other language recognised for official purposes in the State for proceedings in the High Court of the State other than judgments, decrees and orders.'"

[(2) खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में किसी बात के होते हुये भी किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिये प्रयोग होने

वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय में निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश के अतिरिक्त अन्य की कार्यवाहियों के लिये प्राधिकृत कर सकेगा।]

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 301-च के खण्ड (2) के पश्चात्, निम्न जोड़ दिया जाये:

'(3) Notwithstanding anything contained in sub-clause (b) of clause (1) of this article, when the Legislature of a State has prescribed the use of any language other than English for Bills, Acts Ordinances, and Orders having the force of law and rules referred to in the said sub-clause, a translation of the same in English certified by the Governor or Ruler of the State shall be published and the same shall be deemed to be the authoritative text in English under this article.'"

[(3) खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में किसी बात के होते हुये भी जहां किसी राज्य के विधान मण्डल ने, उस विधान मण्डल में पुर:स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखण्ड की कंडिका (घ) में निर्दिष्ट किसी, आदेश नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिये अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है वहां उस राज्य के राजकीय सूचना पत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद उस खण्ड के अभिप्रायों के लिये उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा।]

संशोधन स्वीकृत हो गये।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुसूची में 'Kanarese' के स्थान पर 'Kannada' शब्द रख दिया जाये और 'Punjabi' के पश्चात् 'Sanskrit' प्रविष्ट कर दिया जाये।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन सं. 65 पर मत लूंगा जिस पर ये सब संशोधन पेश किये गये थे।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सं. 65 (प्रस्थापित अनुच्छेद 301-क से 301-झ), श्री मुन्शी के स्वीकृत संशोधनों द्वारा संशोधित रूप में, संविधान का अंग बने:

[अध्यक्ष]

'Part XIV-A

CHAPTER I—LANGUAGE OF THE UNION

Official language of the Union.

301A. (1) The official language of the Union shall be Hindi in Devanagari script. The form of numerals to be used for the official purposes of the Union shall be the international form of Indian numerals.

(2) Notwithstanding anything contained in clause (1) of this article, for a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, the English language shall continue to be used for all the official purposes of the Union, for which it was being used at such commencement:

Provided that the President may, during the said period, by order authorise for any of the official purposes of the Union the use of the Hindi language in addition to the English language and of the Devanagari form of numerals in addition to the international form of Indian numerals.

(3) Notwithstanding anything contained in this article, Parliament may after the said period of fifteen years by law provide for the use of—

(a) the English language, or

(b) the Devanagari form of numerals,

for such purposes as may be specified in such law.

Commission and Committee of Parliament on official language.

301B. (1) The President shall, at the expiration of five years from the commencement of this Constitution and thereafter at the expiration of ten years from such commencement by order constitute a Commission which shall consist of a Chairman and such other members representing the different languages specified in Schedule VIIA as the President may appoint, and the order shall define the procedure to be followed by the Commission.

(2) It shall be the duty of the Commission to make recommendations to the President as to—

(a) the progressive use of the Hindi language for the official purposes of the Union;

(b) restrictions on the use of the English language for all or any of the official purposes of the Union;

(c) the language to be used for all or any of the purposes mentioned in article 301B of this Constitution;

(d) form of numerals to be used for any one or more specified purposes of the Union;

(e) any other matter referred to the Commission by the President as regards the official language of the Union and the language of inter-State communication and their use.

(3) In making their recommendations under clause (2) of this article, the Commission shall have due regard to the industrial, cultural and scientific advancement of India, and the just claims and the interests of the non-Hindi speaking areas in regard to the public services.

(4) There shall be constituted a Committee consisting of thirty members of whom twenty shall be members of the House of the People and ten shall be members of the Council of States chosen respectively by the members of the House of the People and the members of the Council of States in accordance with the system of proportional representation by means of the single transferable vote.

[अध्यक्ष]

(5) It shall be the duty of the Committee to examine the recommendations of the Commission constituted under this article and to report to the President their opinion thereon.

(6) Notwithstanding anything contained in article 301A of this Constitution, the President may after consideration of the report referred to in clause (5) of this article issue directions in accordance with the whole or any part of the report.

CHAPTER II—REGIONAL LANGUAGES

Official language or languages of a State.

301C. Subject to the provisions of articles 301D and 301E, a State may by law adopt any of the languages in use in the State or Hindi as the language or languages to be used for all or any of the official purposes of that State:

Provided that until the Legislature of the State otherwise provides by law, the English language shall continue to be used for those official purposes within the State for which it was being used at the commencement of this Constitution.

Official language for communication between one State and another or between a State and the Union.

301D. The language for the time being authorised for use in the Union for official purposes shall be the official language for communication between one State and another State and between a State and the Union:

Provided that if two or more States agree that the Hindi language should be the official language for communication between such States, that language may be used for such communication.

301E. Where on a demand being made in that behalf the President is satisfied that a substantial proportion of the population of a State desires the use of any language spoken by them to be recognised by that State, he may direct that such language shall also be officially recognised throughout that State or any part thereof for such purpose as he may specify.

Special provision relating to language spoken by a section of the population of a State.

CHAPTER III—LANGUAGE OF SUPREME COURT AND HIGH COURTS, ETC.

301F. (1) Notwithstanding anything contained in the foregoing provisions of this Part, until Parliament by law otherwise provides—

Language to be used in the Supreme Court and in the High Courts and for Acts, Bills, etc.

(a) all proceedings in the Supreme Court and in every High Court,

(b) the authoritative texts—

(i) of all Bills to be introduced or amendments thereto to be moved in either House of Parliament or in the House or either House of the Legislature of a State,

(ii) of all Acts passed by Parliament or the Legislature of a State and of all Ordinances promulgated by the President or a Governor or a Ruler, as the case may be,

(iii) of all orders, rules, regulations and bye-laws issued under this Constitution or under any law made by Parliament or the Legislature of a State, shall be in the English language.

(2) Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall prevent a State from prescribing, with the consent of the President, the use of the

[अध्यक्ष]

Hindi language or any other language recognised for official purposes in the State for proceedings in the High Court of the State other than judgments, decrees and orders.

(3) Notwithstanding anything contained in sub-clause (b) of clause (1) of this article, when the Legislature of a State has prescribed the use of any language other than English for Bills, Acts, Ordinances, and Orders having the force of law, and rules referred to in the said sub-clause, a translation of the same in English certified by the Governor or Ruler of the State shall be published and the same shall be deemed to be the authoritative text in English under this article.

Special procedure for enactment of certain laws relating to language.

301G. During the period of fifteen years from the commencement of this Constitution no Bill or amendment making provision for the language to be used for any of the purposes mentioned in clause (1) of article 301F of this Constitution shall be introduced or moved in either House of Parliament without the previous sanction of the President, and the President shall not give his sanction to the introduction of any such Bill or the moving of any such amendment except after he has taken into consideration the recommendations of the Commission constituted under article 301B of this Constitution and the report of the Committee referred to in that article

CHAPTER IV—SPECIAL DIRECTIVES

Language to be used for representation for redress of grievances.

301 H. Every person shall be entitled to submit a representation for the redress of any grievance to any officer or authority of the Union or a State in any of the languages used in the Union or in the State, as the case may be.

301-I. It shall be the duty of the Union to promote the spread of Hindi and to develop the language so as to serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichment by assimilating without interfering with its genius, the forms, style and expressions used in Hindustani and in the other languages of India, and drawing, wherever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages.

Directive for development of Hindi.

SCHEDULE VII-A

1. Assamese
2. Bengali
3. Kannada
4. Gujarati
5. Hindi
6. Kashmiri
7. Malayalam
8. Marathi
9. Oriya
10. Punjabi
10A. Sanskrit
11. Tamil
12. Telugu
13. Urdu'"

[भाग 14–क

राज भाषा

अध्याय 1–संघ की भाषा

301–क. (1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

संघ की राज्य भाषा

(2) खंड (1) से किसी बात के होते हुए भी इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि के लिये संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिये

[अध्यक्ष]

अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी:

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुये भी संसद उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् विधि द्वारा–

(क) अंग्रेजी भाषा का; अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिये प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हों।

राजभाषा के लिये संसद् का आयोग और समिति।

301-ख. (1) राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारम्भ से पांच वर्ष की समाप्ति पर तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक सभापति और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जैसे कि राष्ट्रपति नियुक्त करे, तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया भी आदेश परिभाषित करेगा।

(2) राष्ट्रपति को–

(क) संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के;

(ख) संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धनों के;

(ग) अनुच्छेद 348 में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के;

(घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिये प्रयोग किये जाने वाले अंकों के रूप के;

(ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग पृच्छा किये हुये किसी अन्य विषय के,

बारे में सिफारिश करने का आयोग का कर्तव्य होगा।

(3) खण्ड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा।

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जायेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य परिषद् के सदस्य होंगे जो कि क्रमश: लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य परिषद् के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति

के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(5) खण्ड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना समिति का कर्तव्य होगा।

(6) अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुये भी राष्ट्रपति खण्ड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा।

अध्याय 2—प्रादेशिक भाषायें

राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं

301-ग. अनुच्छेद 346 और 347 के उपबन्धों के अधीन रहते हुये राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिये प्रयोग के अर्थ उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा:

परन्तु जब तक राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिये इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा।

301-घ. संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त होने के लिये तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिये राजभाषा होगी:

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिये राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिये वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

किसी राज्य के जनसमुदाय के किसी विभाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध।

301-ङ तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये।

अध्याय 3—उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में तथा अधिनियमों, विधेयकों, आदि में प्रयोग की जाने वाली भाषा।

301-च. (1) इस भाग के पूर्ववर्ती उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे, तब तक—

[अध्यक्ष]

(क) उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्य-वाहियां;

(ख) जो–

(1) विधेयक, अथवा उन पर प्रस्तावित किये जाने वाले जो संशोधन संसद के प्रत्येक सदन में पुर:स्थापित किये जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ;

(2) अधिनियम संसद द्वारा या राज्य के विधान मण्डल द्वारा पारित किये जायें, तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित किये जायें, उन सबके प्राधिकृत पाठ; तथा

(3) आदेश नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के आधीन, अथवा संसद या राज्यों के विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के अधीन, निकाले जायें उन सबके प्राधिकृत पाठ,

अंग्रेजी भाषा में होंगे।

(2) खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में किसी बात के होते हुये भी किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिये प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय में की कार्यवाहियों के लिये प्राधिकृत कर सकेगा:

परन्तु इस खण्ड की कोई बात वैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश को लागू न होगी।

(3) खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) में किसी बात के होते हुये भी जहां किसी राज्य के विधान मण्डल ने, उस विधान मण्डल में पुर:स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखण्ड की कण्डिका (घ) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिये अंग्रेजी भाषा से अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है वहां उस राज्य के राजकीय सूचना पत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद उस खण्ड के अभिप्रायों के लिये उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जायेगा।

भाषा संबंधी कुछ विधियों के अधिनियमित करने के लिये विशेष प्रक्रिया।

301-छ. इस संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्षों की कालावधि तक अनुच्छेद 348 के खण्ड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिये प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिये उपबन्ध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना न तो पुर:स्थापित और न प्रस्तावित किया जायेगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुर:स्थापित अथवा किसी संशोधन के प्रस्तावित किये जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खण्ड (1) के अधीन गठित आयोग की

सिफारिशों पर, तथा उस अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर, विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

अध्याय 4—विशेष निदेश

301-ज. किसी व्यथा के निवारण के लिये संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा। व्यथा के निवारण के लिये अभिवेदन में प्रयोक्तव्य भाषा।

301-झ. हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात् करते हुये तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भण्डार के लिये मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुये उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा। हिन्दी भाषा के विकास के लिए निदेश।

20-क.—

1. असमिया	8. मराठी
2. बंगला	9. उड़िया
3. कन्नड़	10. पंजाबी
4. गुजराती	10-क संस्कृत
5. हिन्दी	11. तामिल
6. कश्मीरी	12. तेलुगु
7. मलयालम	13. उर्दू]

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***मौलाना हसरत मोहानी**: मैं चाहता हूं कि मेरा विरोधी मत लिखा जाये और उसके साथ यह भी लिखा जाये कि.....

***अध्यक्ष:** ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं है कि किसी व्यक्ति का मत लिखा जाये, विशेषत: उसके किसी कथन के साथ।

प्रश्न यह है:

"कि भाग 14-क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

भाग 14-क संविधान में जोड़ दिया गया।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: क्या मैं सुझाव दे सकता हूं, श्रीमान, कि सदन को स्थगित करने से पूर्व आप अनुच्छेद 99 और 184 पर भी मत ले लीजिये, क्योंकि वे इस अध्याय से समाप्त हो जाते हैं।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: नहीं, नहीं। वे आज की कार्यावली में नहीं हैं।

*अध्यक्ष: अब आज की कार्यवाही समाप्त होती है, किन्तु सदन को स्थगित करने से पूर्व मैं बधाई के रूप में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। मेरे विचार में हमने अपने संविधान में एक अध्याय स्वीकार किया है जिसका देश के निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। हमारे इतिहास में अब तक कभी भी एक भाषा को शासन और प्रशासन की भाषा के रूप में मान्यता नहीं मिली थी। हमारा धार्मिक साहित्य और प्रकाश संस्कृत में सन्निहित था। नि:संदेह उसका समस्त देश में अध्ययन किया जाता था, किन्तु वह भाषा भी कभी समूचे देश के प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त नहीं होती थी। आज पहली ही बार ऐसा संविधान बना है जबकि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी और उस भाषा का विकास समय की परिस्थितियों के अनुसार ही करना होगा।

मैं हिन्दी का या किसी अन्य भाषा का विद्वान होने का दावा नहीं करता। मेरा यह भी दावा नहीं है कि किसी भाषा में मेरा कुछ अंशदान है किन्तु सामान्य व्यक्ति के समान मैं कह सकता हूं कि आज यह कहना सम्भव नहीं है कि भविष्य में हमारी उस भाषा का क्या रूप होगा जिसे हमने आज संघ के प्रशासन की भाषा स्वीकार की है। हिन्दी में विगत में कई-कई बार परिवर्तन हुये हैं और आज उसकी कई शैलियां हैं, पहले हमारा बहुत सा साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया था। अब हिन्दी में खड़ी बोली का प्रचलन है। मेरे विचार में देश की अन्य भाषाओं के सम्पर्क से उसका और भी विकास होगा। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिन्दी देश की अन्य भाषाओं से अच्छी अच्छी बातें ग्रहण करेगी तो उससे इसकी उन्नति ही होगी, अवनति नहीं होगी।

हमने अब देश का राजनैतिक एकीकरण कर लिया है। अब हम एक दूसरा जोड़ लगा रहे हैं जिससे हम सब एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक हो जायेंगे। मुझे आशा है कि सब सदस्य संतोष की भावना लेकर घर जायेंगे और जो मतदान में हार भी गये हैं वे भी इस पर बुरा नहीं मानेंगे तथा उस कार्य में सहायता देंगे जो संविधान के कारण संघ को भाषा के विषय में अब करना पड़ेगा।

मैं दक्षिण भारत के विषय में एक शब्द कहना चाहता हूं। 1917 में जब महात्मा गांधी चम्पारन में थे और मुझे उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तब उन्होंने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ करने का विचार किया

और उनके कहने पर स्वामी सत्यदेव और गांधी जी के प्रिय पुत्र देवदास गांधी ने वहां जाकर यह कार्य आरम्भ किया। बाद में 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में इस प्रचार कार्य को सम्मेलन का मुख्य कार्य स्वीकार किया गया और वहां कार्य चलता रहा। मेरा सौभाग्य है कि मैं गत 32 वर्षों में इस कार्य से सम्बद्ध रहा हूं–यद्यपि मैं यह घनिष्ट संबंध का दावा नहीं कर सकता। मैं दक्षिण में एक सिरे से दूसरे सिरे को गया और मेरे हृदय में बहुत प्रसन्नता हुई कि दक्षिण के लोगों ने भाषा के संबंध में महात्मा गांधी के अनुरोध के अनुसार कैसा अच्छा कार्य किया है। मैं जानता हूं कि उन्हें कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु उन्हें इस मामले में जो जोश था वह बहुत सराहनीय था। मैंने कई बार पारितोषिक वितरण भी किया है और सदस्यों को यह सुनकर मनोरंजन होगा कि मैंने एक ही समय पर दो पीढ़ियों को पारितोषिक दिये हैं शायद तीन को ही दिये हों—अर्थात् दादा, पिता और पुत्र हिन्दी पढ़कर, परीक्षा पास करके एक ही वर्ष पारितोषिकों तथा प्रमाणपत्रों के लिये आये थे। यह कार्य चलता रहा है और दक्षिण के लोगों ने इसे अपनाया है। आज मैं कह नहीं सकता कि वे इस हिन्दी कार्य के लिये कितने लाख व्यय कर रहे हैं, और मुझे याद नहीं है कि प्रति वर्ष कितने परीक्षार्थी परीक्षाओं में बैठते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस भाषा को दक्षिण के बहुत से लोगों ने अखिल भारतीय भाषा मान लिया है और इसमें उन्होंने जिस जोश का प्रदर्शन किया है उसके लिये उत्तर भारतीयों को उन्हें बधाई देनी चाहिये, मान्यता देनी चाहिये और धन्यवाद देना चाहिये।

यदि आज उन्होंने किसी विशेष बात पर हठ किया है तो हमें याद रखना चाहिये कि आखिर यदि हिन्दी को उन्हें स्वीकार करना है तो वे ही करेंगे, उनकी ओर से हम तो नहीं करेंगे; और आखिर यह क्या बात है जिस पर इतना वाद-विवाद हो गया है? मैं आश्चर्य कर रहा था कि हमें छोटे से मामले पर इतनी बहस करने की, इतना समय बर्बाद करने की क्या आवश्यकता है? आखिर अंक हैं क्या? दस ही तो हैं। इन दस में, मुझे याद पड़ता है कि तीन तो ऐसे हैं जो अंग्रेजी और हिन्दी में एक से हैं,–२,३ और ० मेरे ख्याल में चार और हैं जो रूप में एक से हैं किन्तु उनमें अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। उदाहरण के लिये हिन्दी का ४ अंग्रेजी के ८ (8) से बहुत मिलता-जुलता है, यद्यपि एक ४ के लिये आता है और दूसरा ८ के लिये। अंग्रेजी का ६ हिन्दी के ७ से बहुत मिलता है, यद्यपि उन दोनों के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। हिन्दी का ९ जिस रूप में वह अब लिखा जाता है मराठी से लिया गया है और अंग्रेजी के ९ (9) से बहुत मिलता है। अब केवल दो-तीन अंक बच गये जिनके दोनों प्रकार के अंकों में भिन्न-भिन्न रूप हैं और भिन्न-भिन्न अर्थ है। अतः यह मुद्रणालय की सुविधा या असुविधा का प्रश्न नहीं है जैसा कि कुछ सदस्यों ने कहा है। मेरे विचार में मुद्रणालय की दृष्टि से हिन्दी और अंग्रेजी अंकों में कोई अन्तर नहीं है।

किन्तु हमें अपने मित्रों की भावनाओं का आदर करना है जो उसे चाहते थे, और मैं अपने सब हिन्दी मित्रों से कहूंगा कि वे इसे उस भावना से स्वीकार करें, इसलिये स्वीकार करें कि हम उनसे हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि स्वीकार करवाना चाहते है। और मुझे प्रसन्नता है कि इस सदन ने अत्यधिक बहुमत से इस सुझाव को स्वीकार कर लिया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आखिर यह

[अध्यक्ष]

बहुत बड़ी रियायत नहीं है। हम उनसे हिन्दी स्वीकार करवाना चाहते थे और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया, और हम उनसे देवनागरी लिपि को स्वीकार करवाना चाहते थे, वह भी उन्होंने स्वीकार कर ली। वे हमसे भिन्न प्रकार के अंक स्वीकार करवाना चाहते थे, उन्हें स्वीकार करने में कठिनाई क्यों होनी चाहिये? इस पर मैं छोटा सा दृष्टान्त देता हूं जो मनोरंजक होगा। हम चाहते हैं कि कुछ मित्र हमें निमंत्रण दें। वे निमंत्रण दे देते हैं। वे कहते हैं, "आप आकर हमारे घर में ठहर सकते हैं उसके लिये आपका स्वागत है। किन्तु जब आप हमारे घर आयें तो कृपया अंग्रेजी चलन के जूते पहनिये, भारतीय चप्पल मत पहनिये जैसी कि आप अपने घर में पहनते हैं।" उस निमंत्रण को केवल इसी आधार पर ठुकराना मेरे लिये बुद्धिमत्ता नहीं होगी कि मैं चप्पल को नहीं छोड़ना चाहता। मैं अंग्रेजी जूते पहन लूंगा और निमंत्रण को स्वीकार कर लूंगा, और इसी सहिष्णुता की भावना से राष्ट्रीय समस्याएं हल हो सकती हैं।

हमारे संविधान में बहुत से विवाद उठ खड़े हुये हैं और बहुत से प्रश्न उठे हैं जिन पर गम्भीर मतभेद थे किन्तु हमने किसी न किसी प्रकार उनका निबटारा कर लिया। यह सबसे बड़ी खाई थी जिससे हम एक दूसरे से अलग हो सकते थे। हमें यह कल्पना करनी चाहिये कि यदि दक्षिण हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को स्वीकार नहीं करता तब क्या होता। स्विट्जरलैण्ड जैसे छोटे से, नन्हें से देश में तीन भाषाएं हैं जो संविधान में मान्य हैं और सब कुछ काम उन तीनों भाषाओं में होता है। क्या हम समझते हैं कि हम केन्द्रीय प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये उन भाषाओं को रखने की सोचते जो भारत में प्रचलित हैं तो क्या हम सब प्रान्तों को साथ रख सकते थे, सब में एकता करा सकते थे? प्रत्येक पृष्ठ को शायद पन्द्रह बीस भाषाओं में मुद्रित करना पड़ता।

और यह केवल व्यय का प्रश्न नहीं है। यह मानसिक दशा का भी प्रश्न है जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पड़ेगा। हम केन्द्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक दूसरे के निकटतर आते जायेंगे। आखिर अंग्रेजी से हम निकटतर आये हैं क्योंकि वह एक भाषा थी। अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है, इससे अवश्यमेव हमारे संबंध घनिष्टतर होंगे, विशेषत: इसलिये कि हमारी परम्पराएं एक ही हैं, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बातें एक ही हैं। अतएव यदि हम इस सूत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि या तो इस देश में बहुत सी भाषाओं का प्रयोग होता, या वे प्रान्त पृथक् हो जाते जो बाध्य होकर किसी भाषा विशेष को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। हमने यथासम्भव बुद्धिमानी का कार्य किया है और मुझे हर्ष है, मुझे प्रसन्नता है और मुझे आशा है कि भावी सन्तति इसके लिये हमारी सराहना करेगी।

सदन कल प्रात: के 9 बजे तक के लिये स्थगित होता है।

तत्पश्चात् सभा बृहस्पतिवार तारीख 15 सितम्बर, 1949 के 9 बजे तक के लिय स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.35.49
320

अंक 9

संख्या 35

बृहस्पतिवार,
15 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[नवीन अनुच्छेद 112-ख तथा 15-क पर विचार] 2333–2415

भारतीय संविधान सभा

बृहस्पतिवार, 15 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—जारी

अनुच्छेद 112—ख

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 112-क के बाद यह नया अनुच्छेद रखा जाये:

'112B. Until Parliament by law otherwise provides, the Supreme Court shall also have jurisdiction and powers with respect to matters other than those referred to in the foregoing provisions of this Chapter in relation to which jurisdiction and powers were exercisable by His Majesty in Council immediately before the commencement of this Constitution under any existing law.'

Jurisdiction and powers of His Majesty in Council under existing law in certain cases to be exercisable by the Supreme Court.

[112ख. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध न करे तब तक सर्वोच्च न्यायालय को उन विषयों के सिवाय, जिनका उल्लेख इस संविधान के पूर्ववर्ती उपबन्धों में आया है, अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी जिनके बारे में इस संविधान के प्रारम्भ के ठीक पहले किसी वर्तमान विधि के अधीन सपरिषद् सम्राट के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां लागू होती थीं। क्षेत्राधिकार और शक्तियां होंगी।]

वर्तमान विधि के अधीन सपरिषद् सम्राट् के क्षेत्राधिकार और शक्तियों का कतिपय विषयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य होना।

इस सम्बन्ध में अभी स्थिति यह है, श्रीमान, कि प्रिवी कौंसिल के निर्णय के अनुसार व्यवहार विषयक मामलों में और आयकर से एवं सम्पत्ति के अवाप्तिकरण से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में अन्तर है। उसका कहना है कि आय कर और सम्पत्ति के अवाप्तिकरण से सम्बन्ध रखने वाली कार्रवाई "व्यवहार विषयक कार्रवाई"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में नहीं शामिल की जा सकती है। इसलिए यह बात कही जा सकती है कि जब कि इसके लिये एक विशेष उपबन्ध न रख दिया जाये, सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां व्यवहार विषयक कार्रवाई तक ही सीमित होगी। इस सन्देह को दूर करने के लिये ही इस नवीन अनुच्छेद 112-ख का प्रस्ताव रखा जा रहा है ताकि सर्वोच्च न्यायालय को सभी तरह के मामलों में, चाहे वे व्यवहार विषयक हों या अन्यथा प्रकार के, सुनवाई की पूरी शक्ति प्राप्त हो। इस नवीन अनुच्छेद को प्रस्तावित करने का यही मुख्य कारण है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं, श्रीमान:

> "कि ऊपर के संशोधन नं. 17 में, प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 112-ख में, अन्त में 'or practice' शब्द जोड़ दिये जायें।"

इस संशोधन को रखने का मुख्य कारण यह है, श्रीमान, कि मुझे इसका भरोसा नहीं है कि 'under any existing law' (किसी वर्तमान विधि के अधीन) शब्दों के अन्तर्गत वह सारे क्षेत्राधिकार आ जायेंगे जो इतने दिनों से प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थे। एक या दो दिन में एक विधेयक सभा के समक्ष आने वाला है—मेरा ख्याल है इसी 17 ता. को इस पर विचार होने वाला है-जिसके द्वारा संघ—न्यायालय को ऐसे क्षेत्राधिकार दिये जाने वाले हैं जो प्रिवी कौंसिल को प्राप्त थे। विधेयक के पैरा 2 में यह कहा गया है—

> "As from the appointed day, the jurisdiction of His Majesty in Council to entertain, and save as hereinafter provided to dispose of, appeals and petitions from or in respect of any judgment, decree or order of any court or tribunal (other than the Federal Court) within the territory of India, including appeals and petitions in respect of criminal matters, whether such jurisdiction in exercisable by virtue of His Majesty's prerogative or otherwise, shall cease."

मेरा कहना यह है, श्रीमान, कि यह बात सन्देहास्पद है कि किस तरह से और किन-किन मामलों में प्रिवी कौंसिल अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती आई है। अगर प्रिवी-कौंसिल किसी विधि के अधीन नहीं बल्कि एक प्रथा के अधीन किसी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती आई है तो वह क्षेत्राधकार भी प्रिवी कौंसिल से लेकर हमें संघ-न्यायालय को दे देना चाहिये। इंग्लैंड का संविधान तो बहुत कुछ रूढ़ियों पर आधृत है, इसलिये हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि संघ-न्यायालय को सम्यक् क्षेत्राधिकार प्राप्त रहें और वहां भी अपीलादि के लिये वही खर्च बैठे जो प्रिवी कौंसिल में बैठता था।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 17 में प्रस्तावित अनुच्छेद का संख्या क्रम बदल कर उसे खण्ड 1 के रूप में रखा जाये और उसके आगे यह खण्ड जोड़ा जाये—

'(2) The Supreme Court shall also have jurisdiction to hear appeals against sentences of death passed by Courtsmartial.''

[(2) सर्वोच्च न्यायालय को, सेना-न्यायालय द्वारा दिये गये मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध की गई अपीलों की सुनाई का भी क्षेत्राधिकार प्राप्त रहेगा।]

संविधान के अनुच्छेद 112 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को बड़ी व्यापक शक्तियां दी गई हैं। इसमें कहा गया है कि "भारत के राज्य क्षेत्र में इस संविधान के अनुच्छेद 110 अथवा अनुच्छेद 111 के उपबन्ध जिन मामलों में लागू नहीं हैं उन मामलों में सर्वोच्च न्यायालय स्वविवेक से किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा किसी बात अथवा विषय में दिये हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश की पुनर्विचार प्रार्थना के लिये अनुमति प्रदान कर सकेगा।" इस तरह सर्वोच्च न्यायालय में यह शक्ति अन्तर्निहित तो जरूर है। पर मैं चाहता यह हूं कि संविधान में इसका लिखित उल्लेख आ जाना चाहिये क्योंकि यह एक महत्व का प्रश्न है।

इस मसले के बारे में विचार-विमर्श करने का मौका मुझे ऐसे कई व्यक्तियों से मिला है जो सेना-न्यायालय के निर्णयों से सम्बन्धित थे। इस सम्बन्ध में आश्चर्यप्रद बात मुझे यह लगी कि सेना न्यायालयों में जो व्यक्ति न्यायाधीश का काम करता है वही सरकारी वकील का भी काम करता है। अनुशासन भंग करने के अपराध में जब किसी सैनिक पदाधिकारी के विरुद्ध मामला चलता हैं तो उस मामले की सुनवाई करता है जज-एडवोकेट, जो न्यायाधीश का भी काम करता है और साथ ही सरकारी वकील का भी काम करता है। इसका मतलब यह हुआ कि वही व्यक्ति अभियुक्त के खिलाफ मामले की पैरवी भी करता है और मामले का फैसला भी वही करता है। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक ही है कि वह उस तरह तटस्थ होकर न्याय नहीं कर सकता है जिस तरह कि विधिशास्त्र के अनुसार उसे करना चाहिये। जो व्यक्ति सरकारी वकील हो वही न्यायाधीश का भी काम करे यह ठीक नहीं है। मैं कई मामलों को जानता हूं जिनमें एक इस त्रुटि के कारण समुचित न्याय नहीं हो पाया है।

अभी हाल में ब्रिटिश हकूमत ने सैनिक-न्यायालयों की कार्यविधि के सम्बन्ध में जांच करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति की थी। इस आयोग ने इस बात की सिफारिश की है कि सैनिक-न्यायालयों में जो व्यक्ति न्यायाधीश का काम करता है वही उस मामले में सरकारी वकील काम न करने पाये। इसी लिये मैंने अपना यह संशोधन पेश किया है कि सर्वोच्च न्यायालय को सैनिक न्यायालयों द्वारा दिये गये मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध की गई अपीलों की सुनवाई का अधिकार रहना चाहिये।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल मुस्लिम): मेरे नाम में जो संशोधन है, श्रीमान, उसमें केवल शाब्दिक अदल-बदल की बात ही कही गई है और इस लिए मैं इसे मसौदा-समिति पर ही छोड़े देता हूं। हां अगर आपकी अनुमति हो तो इस पर आम बहस में जरूर भाग लेना चाहता हूं।

प्रस्तुत अनुच्छेद 112-ख बड़ा पेचीदा हो गया है। वस्तुतः इसके ऐसा होने का मुख्य कारण यह है कि इस विषय पर जो अनुच्छेद रखे गये हैं वह एक साथ एक स्थल पर नहीं रखे गये हैं बल्कि थोड़ा—थोड़ा करके उनको किश्तों में रखा गया है। अगर वह सब एक साथ एक जगह रखे जाते तो वह जटिलता न आती। मैं यह कहूंगा कि जिस तरह इन अनुच्छेदों को तैयार किया जा रहा है और रखा जा रहा है उससे यह समझना बड़ा मुश्किल है कि इनका मतलब क्या है। अनुच्छेद 112-ख के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को उन विषयों की सुनवाई का क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है जिन पर सपरिषद् सम्राट् को सुनवाई का अधिकार प्राप्त था। अपील की सुनवाई के बारे में सपरिषद् सम्राट को जो अधिकार प्राप्त थे उनको विधि द्वारा लिपिबद्ध तो कहीं किया नहीं गया है। मेरी समझ से, बजाय इसके कि हम सपरिषद् सम्राट् के अनिश्चित अधिकारों को सर्वोच्च न्यायालय को इस तरह दें, अच्छा यह होगा कि हम यहां यक उपबन्ध कर दें कि आय कर तथा सम्पत्ति के अवाप्तिकरण से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में सभा का ध्यान मैं आकृष्ट करूंगा अनुच्छेद 111-क की ओर, जिसके द्वारा अपराध विषयक मामलों में किसी दण्ड-न्यायालय के निर्णय या आदेश के विरुद्ध की गई अपीलों की सुनवाई का–बशर्ते कि उसमें कोई सारवान् विधि प्रश्न निहित है और अपील करने की अनुमति मिल चुकी है—उसको पूरा अधिकार दिया गया है। फिर अनुच्छेद 112 में यह कहा गया है कि भारत के राज्यक्षेत्रान्तर्गत किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद अथवा विषय में दिये हुए किसी निर्णय, प्रादेश अथवा अन्तिम आदेश की पुनर्विचार प्रार्थना के लिये सर्वोच्च न्यायालय विशेष अनुमति दे सकेगा। मेरी समझ से ये सब जो उपबन्ध रखे गये हैं वह पर्याप्त हैं और अब इस अनुच्छेद 112-ख के द्वारा और अधिक स्पष्टीकरण की कोई जरूरत नहीं है।

फिर अनुच्छेद 112-क के द्वारा हमने यह उपबन्ध कर ही दिये हैं कि सर्वोच्च न्यायालय को अपने द्वारा सुनाये गये निर्णय या दिये गये आदेश पर पुनर्विलोकन करने का अधिकार होगा। ऐसी अवस्था में इस अनुच्छेद 112-ख की कोई वास्तविक उपयोगिता तो दिखाई नहीं देती। इस सम्बन्ध में पास किये गये अनुच्छेदों में अगर कोई खामी रह गई है तो उत्तम यह होगा कि विशेष अधिनियम बना कर उसको दूर कर दिया जाये।

ब्रिटिश संविधान के सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह रूढ़ियों पर आधृत है और सदा परिवर्तित होता रहा है। वहां राजा की शक्तियां क्या हैं इसे कोई नहीं जानता है और न कोई ठीक-ठीक उन शक्तियों की कोई नपी तुली परिभाषा ही दे सकता है। जब कोई प्रश्न खड़ा हो जाता है तो न्यायालय या संसद

द्वारा उनका विनिर्णयन कर दिया जाता है। सुतरां इस प्रस्ताव के विरुद्ध कि सर्वोच्च न्यायालय को मामलों की सुनवाई के बारे में वह सब शक्तियां प्राप्त रहें जो सम्राट् को प्राप्त हैं, दो आपत्तियां उठाई जा सकती हैं। एक तो यह कि इस उपबंध के जरिये सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे अधिकार दिये जा रहे हैं जो अस्पष्ट हैं और जिनकी कोई नपी तुली परिभाषा नहीं दी जा सकती है। दूसरी आपत्ति यह की जा सकती है। इस उपबन्ध से 'सम्राट्' शब्द को स्वतन्त्र भारत के संविधान में स्थायित्व मिल जायेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, प्रो. सक्सेना के संशोधन का समर्थन करने के लिये मैं खड़ा हो रहा हूं। मैं यह महसूस करता हूं कि सैनिक-न्यायालयों को सम्भवतः इस बात का कोई ख्याल नहीं हो सकता है कि मानव जीवन कितनी पवित्र चीज है। मैं मृत्यु-दण्ड के विरुद्ध हूं। इस देश में अहिंसा की परम्परा इतनी मजबूत जड़ पकड़ गई है कि मृत्यु-दण्ड सम्बन्धी मामलों में अन्तिम निर्णय का अधिकार सैनिक-न्यायालयों को देना कभी ठीक नहीं होगा। मृत्यु-दण्ड को हम यहां उठा तो नहीं सकते हैं। पर न्याय सम्बन्धी सभी निकाय यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय भी जनमत का ख्याल जरूर रखेंगे। ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है कि सर्वोच्च-न्यायालय जनमत की तथा इस देश की अहिंसामूलक परम्परा की उपेक्षा करेगा।

***अध्यक्षः** आप कुछ कहना चाहते हैं, डॉ. अम्बेडकर?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जहां तक कि माननीय मित्र पं. ठाकुर दास भार्गव के संशोधन का सम्बन्ध है, मैं नहीं समझता कि इसकी कोई जरूरत है। आमतौर पर 'practice' शब्द का व्यवहार किया जाता है कार्यप्रणाली या जाप्ते की बातों के बारे में। पर अनुच्छेद 112-ख जिसको मैंने प्रस्तावित किया है वह जाप्ते के बारे में नहीं है। उसका सम्बन्ध है अधिकार-क्षेत्र के सारवान प्रश्न से। इसलिए 'practice' शब्द को जोड़ने का जो संशोधन रखा गया है वह अनावश्यक है।

माननीय मित्र प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना के संशोधन के बारे में मुझे दो बातें कहनी हैं। एक तो यह कि अगर इसलिए ही आप यह संशोधन रख रहे हैं कि सैनिक-न्यायालयों द्वारा दिए गए मृत्युदण्ड के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील की जा सके तो इसके लिए भारतीय-सेना अधिनियम (India Army Act) के जरिये ऐसा उपबन्ध किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में माननीय सदस्य का ध्यान मैं अनुच्छेद 114(1) की ओर आकृष्ट करूंगा जिसमें कहा गया है सर्वोच्च न्यायालय को संघ-सूची में दिये गये विषयों के बारे में भी ऐसे और क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां प्राप्त रहेंगी। अनुच्छेद 114(1) की इबारतयों हैः

> "114 (1) संघ-सूची के विषयों में से किसी के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे और क्षेत्राधिकार तथा शक्तियां होंगी जिन्हें संसद विधि द्वारा प्रदान करे।"

यदि संसद यह समझती है कि सर्वोच्च न्यायालय को ऐसी शक्ति प्राप्त होनी चाहिये तो एतदर्थ संसद 'आर्मी एक्ट' में समुचित उपबन्ध रख सकती है। उसके रास्ते में कोई रुकावट नहीं है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

फिर माननीय सदस्य का ध्यान मैं अनुच्छेद 112 की ओर आकृष्ट करूंगा जिसमें विशेष आवश्यक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील की सुनवाई का अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद के अधीन सर्वोच्च न्यायालय सैनिक-न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध की गई अपील की सुनवाई कर सकता है। इसमें कहा यह गया है कि "........ सर्वोच्च न्यायालय स्वविवेक से किसी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण द्वारा किसी वाद या विषय में दिये गये किसी निर्णय, आदेश अथवा अन्तिम आदेश की पुनर्विचार-प्रार्थना के लिए........" यहां जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं वह इतने व्यापक हैं कि इनके अधीन किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा दिये गये निर्णय के विरुद्ध की गई अपील पर सर्वोच्च न्यायालय सुनवाई कर सकता है। इसलिए मेरा कहना यही है कि प्रो. सक्सेना के संशोधन की कोई जरूरत नहीं है।

माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने जो यह संशोधन रखा है कि "existing law" शब्दों के आगे.......

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इस संशोधन को मैंने पेश नहीं किया है।

***अध्यक्षः** आपने इसे पेश नहीं किया है। इसे मसौदा समिति पर आपने छोड़ दिया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खुशी है कि आपने इसे मसौदा समिति पर छोड़ दिया है। अवश्य ही हम उनकी बात पर वाजिब ध्यान देंगे।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** जो आश्वासन यहां दिया गया है उसको देखते हुए मैं अपने संशोधन को वापस ले लेना चाहता हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं भी अपना संशोधन वापस लेता हूं।

(सभा की अनुमति से ये संशोधन वापस लिए गये।)

***अध्यक्षः** तो अब प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 112-ख संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 112-ख संविधान में शामिल किया गया।

नवीन अनुच्छेद 15-क

***अध्यक्षः** अब हम वापस चलते हैं नवीन अनुच्छेद 15-क की ओर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि अनुच्छेद 15 के आगे यह अनुच्छेद रखा जाये:

'15A. (1) No person who is arrested shall be detained in custody without being informed, as soon as may be, of the grounds for such arrest nor shall he be denied the right to consult a legal practitioner of his choice.

Protection against certain arrests and detentions.

(2) Every person who is arrested and detained in custody shall be produced before the nearest magistrate within a period of twenty-four hours of such arrest excluding the time necessary for the journey from the place of arrest to the court of the magistrate and no such person shall be detained in custody beyond the said period without the authority of a magistrate.

(3) Nothing in this article shall apply—

(a) to any person who for the time being is an enemy alien; or

(b) to any person who is arrested under any law providing for preventive detention:

Provided that nothing in sub-clause (b) of clause (3) of this article shall permit the detention of a person for a longer period than three months unless—

(a) an Advisory Board consisting of persons who are or have been or are qualified to be appointed as judges of a High Court has reported before the expiration of the said period of three months that there is in its opinion sufficient cause for such detention, or

(b) such person is detained in accordance with the provisions of any law made by Parliament under clause (4) of this article.

(4) Parliament may by law prescribe the circumstances under which and the class or classes of cases in which a person

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

who is arrested under any law providing for preventive detention may be detained for a period longer than three months and also the maximum period for which any such person may be so detained.'

कुछ अवस्थाओं में बन्दीकरण और निरोध से संरक्षण।

[15क (1) कोई व्यक्ति जो बन्दी किया गया है, ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्य शीघ्र अवगत कराये गये बिना हवालात में निरुद्ध नहीं किया जायेगा और न अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी किया गया है और हवालात में निरुद्ध किया गया है, बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर ऐसे बन्दीकरण से 24 घण्टे की कालावधि में निकटतम दण्डाधिकारी के समक्ष पेश किया जायेगा, तथा ऐसा कोई व्यक्ति उस कालावधि से आगे दण्डाधिकारी के प्राधिकार के बिना हवालात में निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।

(3) अनुच्छेद की कोई बात—

(क) जो व्यक्ति तत्समय शत्रु अन्तर्देशीय है उसको; अथवा

(ख) जो व्यक्ति निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया है उसको लागू न होगी।

परन्तु इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) की कोई बात किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक कालावधि के लिए निरुद्ध करने की अनुमति न देगी जब तक कि:

(क) ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिल कर बनी मंत्रणा-मण्डली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण है; अथवा

(ख) ऐसा व्यक्ति इस अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन संसद निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है।

(4) संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया कोई व्यक्ति तीन मास से अधिक कालावधि के लिए निरुद्ध किया

जा सकता है तथा उस अधिकतम कालावधि को भी विहित कर सकेगी जब तक के लिए ऐसा व्यक्ति निरुद्ध रखा जा सकता है।]

सभा को याद होगा, श्रीमान, कि पूर्व के एक अधिवेशन में जब यहां अनुच्छेद 15 पर विचार किया जा रहा था उस समय इस बात को लेकर बड़ा मतभेद चल पड़ा था कि इस अनुच्छेद में "except according to procedure established by law" शब्द रखे जायें या "due process" शब्द रखे जायें। अन्त में "due process" के बजाय "according to procedure established by law" शब्दों को रखना ही तय रहा। मैं जानता हूं कि सभा के बहुत से सदस्य जिसमें मैं भी एक था, अनुच्छेद 15 में प्रयुक्त शब्दावली से बहुत ही असन्तुष्ट थे। सभा को यह भी स्मरण होगा कि संविधान के प्रारूप के और किसी अंश की जनता द्वारा इतनी भयानक आलोचना नहीं हुई है जितनी कि अनुच्छेद 15 की और यह इसलिए हुआ कि यह अनुच्छेद कार्यपालिका को किसी को बन्दी करने से रोकता है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि इसके लिए विधि होनी चाहिए पर वह विधि ऐसी न होनी चाहिए जो किसी प्रतिबन्ध या परिसीमन के अधीन हो। कहने का मतलब यह है कि सदस्यों ने उस समय महसूस यह किया कि यह विषय रखा तो जा रहा है मूलाधिकार सम्बन्धी अध्याय में पर संसद को पहले से ही यह अधिकार दे दिया जा रहा है कि वह इस आशय की विधि बना सकती है कि अमुक अमुक अवस्थाओं में—जो संसद की समझ में ठीक जंचे—किसी व्यक्ति को बन्दी किया जा सकता है। इसलिए अब इस नवीन अनुच्छेद 15-क को रखकर हम कर यह रहे हैं कि अनुच्छेद 15 को रखने से जो क्षति होती है उसकी पूर्ति किये दे रहे हैं। अर्थात् इस अनुच्छेद 15-क को रखकर हम यह उपबन्ध कर रहे हैं कि "due process" के सिद्धान्त के अनुसार ही किसी को बन्दी या निरुद्ध किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15-क के द्वारा केवल यह किया जा रहा है कि अपराध प्रक्रिया संहिता के दो उपबन्धों को यहां स्थान दिया जा रहा है। ये दोनों उपबन्ध बुनियादी सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखते हैं और हर सभ्य राष्ट्र इनको न्याय का महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानकर बरतता है। यह सच है कि यहां खण्ड (1) और (2) जो उपबन्ध रखे जा रहे हैं वह अपराध—प्रक्रिया संहिता में मौजूद हैं और इसलिए कोई यह कह सकता है कि इन उपबन्धों को यहां स्थान देकर स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया जा रहा है। किन्तु वास्तविकता यही है, जैसा कि मेरा कहना है, किसी इनको यहां स्थान देकर हम महत्वपूर्ण परिवर्तन ही कर रहे हैं क्योंकि इनको संविधान में स्थान देने से यह होता है कि संसद तथा प्रान्तीय विधान-मंडल दोनों पर ही यह प्रतिबन्ध लग जाता है कि वह इन उपबन्धों को निराकृत नहीं कर सकते हैं।

इसमें शक नहीं कि वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य के हिमायतियों को शायद खण्ड (1) और (2) के उपबन्धों से सन्तोष न हुआ होगा। वे शायद यह चाहते हैं कि संविधान में इसके लिये और भी संरक्षण होना चाहिये कि नागरिकों के वैयक्तिक स्वातन्त्र्य पर कार्यपालिका और विधान-मण्डल कोई आघात न सकें; निजी तौर पर मुझे उनके

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

विचार से सहानुभूति है और मैं समझता हूं कि और संरक्षणमूलक उपबन्ध रखने के लिये अनुच्छेद को और विस्तृत किया जा सकता है, पर मनमाने और अवैध बन्दीकरण के विरुद्ध जो उपबन्ध यहां रखे गये है वह मेरी समझ से पर्याप्त हैं और मैं उनसे सर्वथा सन्तुष्ट हूं।

सभा देख ही रही है कि अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) तथा (2) में रखे गये उपबन्धों को कुछ परिसीमनों के अधीन रखा गया है जिनका उल्लेख खण्ड (3) में है। खण्ड (3) में यह कहा गया है कि अनुच्छेद "15-क के खण्ड (1) और (2) की कोई बात उस व्यक्ति पर लागू न होगी जो शत्रु अन्तर्देशीय है और जो.... इत्यादि, इत्यादि।" मैं नहीं समझता कि शत्रु अन्तर्देशीय व्यक्ति के बारे में खण्ड (3) (क) में जो उपबन्ध रखा गया है उसका कोई विरोध किया जा सकता है।

जहां तक कि खण्ड (3) (ख) का सम्बन्ध है, हमें यह मानना ही होगा कि देश की वर्तमान स्थिति में हो सकता है कि कार्यपालिका को ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध करना पड़ जाये जो लोक व्यवस्था को बिगाड़ता हो, जैसा कि समवर्ती सूची में दिया गया है अथवा जो देश की प्रतिरक्षा सेवाओं को बिगाड़ता हो। ऐसे मामले में मैं नहीं समझता कि वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की आवश्यकता को हम राज्य-हित में अधिक महत्वपूर्ण मान सकते हैं। यह कारण है जो खण्ड (3) के उपबन्धों में उपखण्ड (ख) को रखा गया है।

फिर वह लोग, जो इस सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं कि नागरिक को पूर्ण वैयक्तिक स्वातन्त्र्य प्राप्त करना चाहिये, यह भी मंजूर करेंगे कि प्रस्तुत अनुच्छेद द्वारा निवारक निरोध की जो शक्ति दी गई है उस पर दो प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। एक तो यह कि खण्ड (3) के उपबन्धों के अधीन किसी व्यक्ति को हवालात में केवल तीन माह तक ही शासन रख सकता है। अगर तीन महीने के बाद भी उसे वह हवालात में रखना चाहता है तो उसे एतदर्थ मन्त्रणा-मण्डल का प्रतिवेदन प्राप्त करना होगा। कार्यपालिका मन्त्रणा-मण्डल के पास इस सम्बन्ध में जो कागजात भेजेगी उस पर छानबीन करते समय मण्डल अभियुक्त को भी अपनी सफाई पेश करने का मौका देगा कि और तब कहीं सारी बातों का सोच विचार करने के बाद ही यह फैसला देगा कि अभियुक्त व्यक्ति को निरुद्ध रखना जरूरी है। मन्त्रणा-मण्डल से ऐसा प्रतिवेदन पाकर ही कार्यपालिका किसी को तीन मास से अधिक निरुद्ध रख सकती है। दूसरा प्रतिबन्ध यह रखा गया है कि तीन माह से अधिक अवधि के लिए किसी को तभी निरुद्ध रखा जा सकता है जब कि संसद ऐसी कोई विधि बना दे कि अमुक-अमुक तरह के मामलों में ही किसी को तीन मास से अधिक अरसे तक, और अधिक से अधिक इतने दिनों तक निरुद्ध रखा जा सकता है।

कुल मिलाकर मेरा ख्याल यही है कि जो लोग वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य के हामी हैं, उन्हें खुश होना चाहिये कि इस खण्ड का रखा जाना यहां सम्भव हो सका। यह जरूर है कि जो लोग पूर्ण वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य चाहते हैं उन्हें इससे सन्तोष नहीं होगा पर "due process of law" पदसंहिता के न रखने से जो नुकसान हो

सकता है उसकी बहुत कुछ पूर्ति इस अनुच्छेद 15–क के द्वारा जरूर हो जाती है। इन शब्दों के साथ सभा से मैं सिफारिश करूंगा कि वह इसे स्वीकार करे।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** यदि आपकी अनुमति हो, श्रीमान, तो मैं यहां यही बता दूं कि फलां फलां नम्बर के संशोधन मेरे हैं और यह समझ लिया जाये कि वह पेश हो चुके। इससे समय की बचत हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** ठीक है, आपके संशोधन बहुत लम्बे हैं: आप उनकी संख्या बता दें और उनके सम्बन्ध में यह मान लिया जायेगा कि वह पेश किये जा चुके हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मेरा यह अनुरोध है, श्रीमान, कि मेरे सभी संशोधनों के बारे में यह समझ लिया जाये कि वे पेश किये जा चुके हैं। मेरे संशोधन यह हैं:

"कि अनुच्छेद 15 के आगे यह नया अनुच्छेद रखा जाये:

'15A. No procedure within the meaning of the preceding section shall be deemed to be established by law if it is inconsistent with any of the following principles:—

(i) Every arrested person if he has not been released earlier shall be produced before a magistrate within 24 hours of his arrest excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the Court of the Magistrate and informed of the nature of the accusation for his arrest and detained further only by the authority of the Magistrate for reasons recorded.

(ii) Every person shall have the right of access to Courts to being defended by counsel in all proceedings and trials before courts.

(iii) No person shall be subjected to unnecessary restraints or to unreasonable search of person or property.

(iv) Every accused person is entitled to a speedy and public trial unless special law or public interests demand a trial *in camera*.

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(v) Every person shall have the right of cross examining the witness produced against him and producing his defence.

(vi) Every convicted person shall have the right of at least one appeal against his conviction.' "

15B. No procedure within the meaning of Sec. 15 shall be deemed to be established by law in case of preventive detention if it is inconsistent with any of the following principles:—

(i) No person shall be detained without trial for a period longer than it is necessary.

(ii) Every case of detention in case it exceeds the period of fifteen days shall be placed within a month of the date of arrest before an independent tribunal presided over by a judge of the High Court or a person possessed of qualification for High Court Judgeship armed with powers of summary inquiries including examinations of the person detained and of passing orders of further detention, conditional or absolute release and other incidental and necessary orders.

(iii) No such detention shall continue unless it has been confirmed within a period of two months from the date of arrest by on order of further detention from such tribunal in which case quarterly reviews of such detentions by independent tribunal armed with powers of passing of orders of release conditional or otherwise and other necessary and incidental orders shall be made.

(iv) Such detention shall in the total not exceed the period of one year from the date of arrest.

(v) Such detained person shall not be subjected to hard labour or unnecessary restrictions otherwise than for

wilful disobedience of lawful orders and violation of jail rules.' "

[15क. पूर्ववर्ती धारा के प्रयोजन के लिए कोई भी प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी यदि वह इन सिद्धान्तों में किसी से असंगत हो:–

(1) प्रत्येक बन्दी किया गया व्यक्ति, यदि वह पहले ही न छोड़ दिया गया हो तो बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिए अपेक्षित समय को छोड़कर, अपनी गिरफ्तारी से 24 घण्टे के भीतर दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के सामने पेश किया जायेगा और उसे बताया जायेगा कि किस तरह के अभियोग में उसको गिरफ्तार किया गया है और दण्डाधिकारी के आदेश से ही अभिलिखित कारणों के आधार पर और आगे वह निरुद्ध रखा जा सकेगा।

(2) न्यायालय के समक्ष चलने वाली सभी मुकदमों और कार्रवाइयों में हर व्यक्ति को वकील के द्वारा अपना बचाव कराने के लिए न्यायालय में पहुंचने का अधिकार होगा।

(3) किसी व्यक्ति पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगाया जायेगा और न उसकी या उसकी सम्पत्ति की अनुचित तलाशी ली जायेगी।

(4) प्रत्येक अभियुक्त व्यक्ति को इस बात का अधिकार है कि शीघ्र और खुली अदालत में उसका मुकदमा चलाया जाये तब तक कि किसी विशेष विधि या जनहित के लिए बन्द अदालत में मुकदमा चलाना अपेक्षित न हो।

(5) हर व्यक्ति को अपने खिलाफ पेश किये गये गवाह से जिरह करने का और अपना बचाव पेश करने का अधिकार होगा।

(6) हर अभियुक्त व्यक्ति को अपनी दोष-सिद्धि के विरुद्ध कम से कम एक अपील का अधिकार होगा।

15ख. धारा 15 के प्रयोजन के लिए निवारक-निरोध के मामले में, कोई भी प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी यदि वह इन सिद्धान्तों में किसी से असंगत हो—

(1) बिना मुकदमा चलाये किसी व्यक्ति को आवश्यक अवधि से अधिक अरसे तक न निरुद्ध रखा जायेगा।

(2) निरोध सम्बन्धी हर मामला, यदि 15 दिन से अधिक अरसे तक अभियुक्त निरुद्ध रखा जाता है, गिरफ्तारी से 1 महीने के भीतर एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण के सामने पेश किया जायेगा जिसकी

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अध्यक्षता उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की अर्हता रखने वाला कोई व्यक्ति करेगा जिसे सरसरी पूछताछ की, निरुद्ध व्यक्ति से सवाल करने की तथा उसे और आगे निरुद्ध करने, उसे पूर्ण या प्रतिबन्ध सहित विमुक्ति देने का आदेश निकालने की तथा अन्य आनुषंगिक आदेश निकालने की शक्ति प्राप्त रहेगी।

(3) ऐसा कोई निरोध और आगे के लिए जारी न रखा जायेगा जब तक कि गिरफ्तारी की तारीख से 2 महिने की अवधि के अन्दर ऐसे न्यायाधिकरण की ओर से और आगे निरुद्ध रखने के लिए दिये गये आदेश द्वारा उसकी पुष्टि न हो जाये और उस हालत में ऐसे निरोध विषयक मामलों का एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण द्वारा जिसे शर्त सहित या अन्यथा विमुक्ति का आदेश देने का अधिकार रहेगा, त्रैमासिक पुनर्विलोकन किया जायेगा और अन्य आवश्यक तथा आनुषंगिक आदेश निकाला जायेगा।

(4) ऐसा निरोध कुल मिलाकर गिरफ्तारी की तारीख में एक साल से अधिक अवधि तक नहीं जारी रहेगा।

(5) इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति से वैध आदेशों की जानबूझ कर अवहेलना करने तथा जेल के नियमों को भंग करने के लिए जितना अपेक्षित होगा उससे अन्यथा कठोर श्रम न लिया जायेगा और न अनावश्यक प्रतिबन्ध उस पर लगाया जायेगा।]

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) और (2) के स्थान पर यह रखा जाये:—

'15A. No procedure shall be deemed to be established by law within the meaning of article 15 if the law prescribing the procedure for criminal proceedings and trials of accused persons contravenes any of the following established principles and rights—

(a) the right of production of the person under custody before Magistrate within 24 hours of his arrest (excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the court of Magistrate) and further detention only with the authority of the magistrate for reasons recorded;

(b) the right of consultation after arrest and before trial and the right of being defended by the Counsel of his choice;

(c) the right of full opportunity for cross-examination of witnesses produced against the accused and production of his defence;

(d) the right of at least one appeal in case of conviction.' "

[15क. अनुच्छेद 15 के प्रयोजनार्थ कोई प्रक्रिया विधि-स्थापित न मानी जायेगी, यदि अभियुक्त व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने और दण्ड विषयक कार्रवाई की प्रक्रिया विहित करने वाली विधि इन चिरस्थापित सिद्धान्तों और अधिकारों में किसी का उल्लंघन करती हो:—

(क) हवालात में निरुद्ध रखे गये व्यक्ति को इस बात का अधिकार होगा कि उसकी गिरफ्तारी से 24 घंटे के अन्दर (बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिए अपेक्षित समय को छोड़कर) दण्डाधिकारी के समक्ष उसे पेश किया ही जाये तथा और आगे उसे निरुद्ध रखा जाये, केवल दण्डाधिकारी के आदेश से अभिलिखित कारणों के आधार पर ही।

(ख) गिरफ्तारी के बाद और मुकदमा चलने से पहले वकील से सलाह लेने और अपनी मरजी के वकील द्वारा अपना बचाव पेश करने का उसे अधिकार होगा।

(ग) अभियुक्त व्यक्ति को अपने विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने और अपना बचाव पेश करने का पूरा मौका पाने का अधिकार होगा।

(घ) दोषसिद्ध ठहराये जाने पर कम से कम एक अपील का उसे अधिकार होगा।]

"कि ऊपर के संशोधन नं. 3 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) के आगे ये खण्ड जोड़े जायें:—

'(e) right to freedom from torture and unnecessary restraints and from unreasonable search of person and property:

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

(f) right to a speedy and public trial unless special law and public interest demand a trial in camera.'"

[(ङ) यातना से, और अनावश्यक प्रतिबन्ध से तथा शरीर और सम्पत्ति की अनुचित तलाशी से स्वातन्त्र्य पाने का उसे अधिकार होगा।

(च) उसे इस बात का अधिकार होगा कि शीघ्र और खुली अदालत में उस पर मुकदमा चलाया जाये जब तक कि किसी विशेष विधि या जनहित के लिए बन्द अदालत में मुकदमा चलाना अपेक्षित न हो।]

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'a legal practitioner of his choice' शब्दों के स्थान पर 'and be defended by a legal practitioner of his choice in all criminal proceedings and trials' शब्द रखे जायें।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क में खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जायेः—

'(2) Every arrested person if he has not been released earlier shall be produced before a Magistrate within 24 hours of his arrest excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the court of the Magistrate and detained further only by the authority of the Magistrate for reasons recorded.' "

[(2) प्रत्येक बन्दी किया गया व्यक्ति, यदि वह पहले ही नहीं छोड़ दिया गया हो तो, बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिए अपेक्षित समय को छोड़कर अपनी गिरफ्तारी से 24 घण्टे के भीतर दण्डाधिकारी के सामने पेश किया जायेगा तथा और आगे उसे निरुद्ध रखा जायेगा, केवल दण्डाधिकारी के आदेश से अभिलिखित कारणों के आधार पर ही।] या विकल्पशः यह—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:—

'and for reasons recorded' (और अभिलिखित कारणों के आधार पर)।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के बाद ये खण्ड रखे जायें—

'(2a) Every person accused of any offence or against whom criminal proceedings are being taken shall have the full opportunity of cross-examining the witnesses produced against him and producing his defence.

(2b) Every person sentenced to imprisonment shall have the right of at least one appeal against his conviction.' "

[(2क) हर व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग लगाया गया हो या जिसके विरुद्ध दण्ड सम्बन्धी कार्रवाई की जा रही हो, अपने विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने तथा अपना बचाव पेश करने का पूरा मौका दिया जायेगा।

(2ख) हर व्यक्ति को, जिसे कारावास का दण्ड दिया गया हो, अपनी दोष-सिद्धि के विरुद्ध कम से कम एक अपील का अधिकार जरूर होगा।]

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) और (4) के स्थान पर यह रखा जाये:-

'15B. No procedure shall be deemed to be established by law within the meaning of article 15 if the law prescribing the prevention or detention contravenes any of the following principles'—

(1) Such detention without trial shall only be allowable for alleged participation in dangerous or subversive activities affecting the public peace, security of the State and relation between different classes and communities inhabiting India or membership of any organisation declared unlawful by the State.

(2) Such detention shall not be longer than two months unless an independent tribunal consisting of two or more persons

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

being High Court judges or possessing qualifications for High Court judgeships and armed with powers of enquiry including examination of the detainee recommend continuance of detention within the said period of two months.

(3) Such detention shall not exceed the total period of one year.

(4) Such detention shall be free from unnecessary restrictions and hard labour otherwise than for wilful disobedience of lawful orders and violation of jail rules:

Provided that the Parliament shall never be precluded from prescribing other reason and circumstances which may necessitate such detention and the conditions of such detention.' "

[15ख. अनुच्छेद 15 के प्रयोजनार्थ कोई प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी। यदि निवारण या निरोध को विहित करने वाली विधि इन सिद्धान्तों में से किसी का भी उल्लंघन करती हो—

(1) बिना मुकदमा चलाये उसी सूरत में किसी को निरुद्ध रखा जा सकता है जबकि उसके विरुद्ध ऐसी खतरनाक या विप्लवकारी कार्रवाइयों में भाग लेने का आरोप लगाया गया हो जिसका लोक-शान्ति, राज्य की सुरक्षा और भारत में बसने वाले विभिन्न श्रेणी के समुदायों के आपसी सम्बन्ध पर अथवा राज्य द्वारा अवैध घोषित किसी संगठन की सदस्यता पर प्रभाव पड़ता हो।

(2) कोई व्यक्ति इस तरह दो माह से अधिक अवधि तक निरुद्ध न रखा जायेगा तब तक कि दो या अधिक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की अर्हता रखने वाले व्यक्तियों से बना एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरण जिसे उस मामले की जांच करने का, जिसमें निरुद्ध व्यक्ति से जिरह करना शामिल है, प्राप्त है, उक्त दो माह की अवधि के अन्दर उसे और आगे निरुद्ध रखने की सिफारिश न कर दे।

(3) ऐसा निरोध कुल मिलाकर एक साल से ऊपर न जायेगा।

(4) इस तरह निरुद्ध व्यक्ति का अनावश्यक प्रतिबन्ध से तथा वध आदेश की जानबूझ कर अवहेलना करने और जेल के नियमों को भंग करने के लिए जितना अपेक्षित होगा उससे अन्यथा कठोर श्रम से स्वातन्त्र्य प्राप्त रहेगा।:

परन्तु संसद पर, अन्य कारणों या परिस्थितियों को जिनके लिये किसी को निरोध में रखना आवश्यक हो, या ऐसे निरोध के लिए अन्य अवस्थाओं को, विहित कर कभी कोई रोक नहीं होगी।]

दूसरा संशोधन यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक में 'तीन' शब्द के स्थान पर 'दो' शब्द रखा जाये।"

मेरा दूसरा संशोधन यह है:—

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'Board' शब्द के आगे 'with process of enquiry including examination of persons detained' शब्द रखे जायें।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये–

'But in no case more than six months' or 'but in no case more than a year' ('पर किसी भी हालत में 6 महीने से अधिक नहीं' या 'किसी भी हालत में एक साल से अधिक नहीं।')

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में 'circumstances' (परिस्थितियों) शब्द के बाद 'conditions' (अवस्थाओं) शब्द रखा जाये।"

"कि ऊपर के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में 'three months' (तीन माह) शब्दों के स्थान पर 'one month' (एक माह) या 'two months' (दो माह) शब्द रखे जायें।"

मुख्य प्रस्ताव को उपस्थित करने वाले माननीय सदस्य की वक्तृता को सभा ने अभी सुना है। 'due process of Law' शब्दों को लेकर जो भयंकर विवाद और मतभेद यहां साल सवा साल पहले चला था उसे याद दिलाने की कोई जरूरत नहीं है। अनुच्छेद 13 द्वारा 'due process' की प्रक्रिया प्राय: बहुत कुछ सुनिश्चित हो जाती इसलिए अब इसके सारभाग को रखने की बात ही छोड़ दी गई है। मेरा ख्याल यह है कि देश की वर्तमान स्थिति में 'due process' का उपबन्ध

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

रखना निहायत जरूरी है। इस समय देश के लिए केवल यही व्यवस्था ठीक व्यवस्था होगी। अन्य देशों में, जहां लोकतन्त्रीय व्यवस्था एक अरसे से चल रही है, लोगों ने अनुशासन और आत्मनियंत्रण की शिक्षा को पूर्णत: अपना रखा है पर अपने देश में इसकी शिक्षा ही लोगों को नहीं मिली है। यहां निरंकुशवाद सम्बन्धी विचारों का ही प्राधान्य है। सैकड़ों साल से यहां एक विदेशी सत्ता का शासन चलता आ रहा था जिससे हमारा चरित्र इतना गिर गया है कि........

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अध्यक्ष महोदय, मैं एक बात कहना चाहता हूं। माननीय मित्र के एक संशोधन को मानने पर मैं राजी हूं जिसमें यह कहा गया है अभियुक्त को अपना बचाव पेश करने का अधिकार होगा। अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) की अन्तिम पंक्ति में मैं इन शब्दों को जोड़ सकता हूं। उस सूरत में खण्ड का रूप यह हो जायेगा "...कोई व्यक्ति......... न अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा।" मेरा ख्याल है इन शब्दों को रख देने से माननीय मित्र का अभिप्राय पूरा हो जायेगा।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ मुकदमों में और दण्ड सम्बन्धी प्रक्रिया में दोनों में ही यह लागू होगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अवश्य। 'बचाव' शब्द का मतलब यही है। तो अब हम इस पर बहस बन्द कर सकते हैं क्या?

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ हर्जाने के बारे में अनुच्छेद 24 को हम स्वीकार कर चुके हैं। फिर क्या आप यह चाहते हैं कि हर्जाना कतई दिया ही न जाये? अगर आप मेरा संशोधन इसलिए स्वीकार कर रहे हैं कि अब मैं चुप हो जाऊं और आगे न बोलूं तो फिर उसके लिए आप मुझे पूरी कीमत चुकाइये।

हम लोग यह चाहते थे कि "due process of Law" शब्द अनुच्छेद में रखे जायें। मुझे खुशी है कि डॉ. अम्बेडकर ने, जो इस मामले में बहुत सावधान थे, आज यह स्वीकार किया है कि इस सम्बन्ध में उनके भी विचार वही थे जो सभा के अन्य वकील सदस्यों के हैं। पर हमारा दुर्भाग्य यह था कि 'due process of Law' शब्दों को रखने के विरुद्ध सबसे बड़ी अड़चन यहां पेश की सभा के सबसे बड़े विधि शास्त्र विशारद ने और वस्तुत: यह देश का दुर्भाग्य ही है कि हम 'due process' शब्दों को न रख सके। कांग्रेस ने विदेशी हुकूमत के विरुद्ध एक दीर्घकालीन स्वातन्त्र्य संग्राम चलाया था जिसके दौर में कई बार उच्च न्यायालयों ने और सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि नौकरशाही द्वारा पास किये गये कानून अवैध हैं। अब स्वतंत्रता के नाम पर अपने न्यायालयों से यह अधिकार भी छीन लिया जा रहा है। मैं यह कहूंगा कि अपने संविधान में सबसे पहले हमने खत्म किया है न्याय को। आखिर मूल अधिकार होता क्या है? कार्यपालिका तथा विधान-मण्डल की शक्तियों पर प्रतिबन्ध रखने के लिए ही मूलाधिकार का उपबन्ध किया जाता है। संविधान में जो भी मूलाधिकार दिये गये हैं उनको आगे किसी स्थल पर पुन: वापस ले लेने की कोशिश की गई है। अनुच्छेद

15-क इसका एक ज्वलंत उदाहरण है क्योंकि इसके द्वारा कार्यपालिका तथा विधान-मण्डल को, जहां तक कि प्रक्रिया का सम्बन्ध है, हमने देशवासियों के साथ मनमानी करने का अधिकार दे दिया है। जब 'due process' वाले खण्ड को रखवाने में सभा को राजी करने में मैं असफल हो बैठा था उस समय मेरी मानसिक दशा क्या हुई इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूं।

डॉ. अम्बेडकर साहब अब यह फर्माते हैं कि हर्जाने के तौर पर उन्होंने अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) और (2) को संविधान में रख लिया है। अवश्य ही इन दो खण्डों को रखने के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं गोकि आगे चलकर इनमें से एक खण्ड के बारे में मैं उनसे विवाद जरूर करूंगा। फिर भी, एक बिगड़ी हुई बात को बनाने के लिए आपने जो प्रयास किया है उसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं। पर मैं यह नहीं जानता कि आखिर भारत-शासन का वह कौन विभाग है या कौन मंत्री महोदय है जो जनमत के विरुद्ध चलने का साहस करते हैं?

डॉ. अम्बेडकर अब कहते हैं कि वह मेरे इस संशोधन को मानने पर तैयार हैं कि अभियुक्त को अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी के द्वारा अपना बचाव करने का अधिकार होगा। मैं यह कहता हूं कि कोई भी ऐसा देश नहीं है, सभ्य देश नहीं है, जहां यह अधिकार अभियुक्त को न दिया गया हो। इस अधिकार को देने में भी आपने बड़ी कंजूसी से काम लिया है। आपका कहना है कि 'due process' वाले मूल अनुच्छेद को न रखकर बतौर हर्जाने के उन्होंने इन दो खण्डों को स्थान दिया है। दु:ख के साथ मैं यह कहूंगा कि मेरी राय में इसे हर्जाना कहना कतई सही नहीं है। जिन दो उपबन्धों का आपने जिक्र किया है वह लोकतन्त्रीय संविधान के लिए इतने आम हो गये हैं कि बिना हिचक मैं यह कह सकता हूं कि कोई भी सभ्य देश या सभ्य विधान मण्डल ऐसा न होगा जो यह कहने का साहस करे कि इन उपबन्धों को स्थान न मिलना चाहिये।

गिरफ्तारी और निरोध के सम्बन्ध में इन दो उपबन्धों को रखा जा रहा है, पर मैं यह पूछता हूं कि गिरफ्तार किये जाने या निरुद्ध रखे जाने पर अभियुक्त पर क्या बीतती है? उसकी मुसीबत तो शुरू होती है उसके बाद। जब वह गिरफ्तार या निरुद्ध होकर पुलिस के पंजे में पड़ जाता है तो वह बिचारा सर्वथा एकाकी हो जाता है। पुलिस की, राय की सारी शक्तियां तथा अन्य शक्तियां उसके विरुद्ध मिल जाती हैं और वह अपने को सर्वथा असहाय पाता है। पुलिस और न्यायालय के जुल्मों से उसे बचाने के लिए हमने कोई उपबन्ध नहीं रखा है। माना कि उसे मजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर किया जायेगा, पर मजिस्ट्रेट है क्या? सभा के सामने अनुच्छेद 209 आने वाला है और जब हम इस पर पहुंचेंगे तो हमें भास हो जायेगा कि स्वराज की सारी बातें धीरे-धीरे हमसे दूर खिसकती जा रही हैं और स्वराज के जो अधिकार हैं वह हमसे एक-एक करके छीन लिए जा रहे हैं। मजिस्ट्रेट के सारे अधिकार पूर्ववत् बने रहेंगे। जहां तक कि न्यायपालिका और कार्यपालिका के प्रकार्यों को पृथक् करने का सवाल है, इसके बारे में संविधान में कोई परिवर्तन नहीं किया जा रहा है; जब हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि मजिस्ट्रेट के प्रकार्य क्या हैं तो कम से कम इतना तो जरूर करना चाहिये था कि प्रक्रिया के बारे में ही कुछ उपबन्ध रखकर हम उस पर एक तरह का अंकुश रख देते। अगर आप देश के न्यायालयों को यहां तक कि उच्चतम न्यायालयों को भी यह फैसला

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

देने का अधिकार नहीं दे रहे हैं कि कार्यपालिका का अमुक कानून वैध और उचित है या नहीं, तो फिर कुछ न कुछ ऐसा उपबन्ध तो रखिये कि इस कमी को पूरा किया जा सके। अभियुक्त को यह दो अधिकार जो आप दे रहे हैं कि उसे मजिस्ट्रेट के सामने यथासम्भव शीघ्र पेश किया ही जायेगा और यह कि उसे अपनी रुचि के विधि व्यवसायी द्वारा अपना बचाव पेश करने का अधिकार होगा। पर गिरफ्तारी और निरोध के बाद कार्यपालिका की ज्यादती से बचने के लिए उसे आप कोई अधिकार नहीं दे रहे हैं।

अगर आप प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) पर गौर करें, श्रीमान, तो आपको पता चलेगा कि कार्यपालिका की ज्यादती से बचने के लिए उसे और कोई अधिकार तो नहीं ही दिया जा रहा है, पर जो अधिकार उसको प्राप्त हैं वह भी उससे ले लिये जा रहे हैं। इस खण्ड की हबारत यों है:—

"कोई व्यक्ति जो बन्दी किया गया है, ऐसे बन्दीकरण के कारणों से यथाशक्य शीघ्र अवगत कराये गये बिना हवालात में निरुद्ध नहीं किया जायेगा और न अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा।"

इस सम्बन्ध में वर्तमान कानून यह है कि निरोध में कोई व्यक्ति इतनी ही देर तक रखा जायेगा जितनी देर तक उसे वहां रखना आवश्यक और उचित है, और उसके बाद वह एक मिनट के लिए भी न रोका जायेगा। प्रस्तुत खण्ड में तो यह अधिकार भी नहीं किया गया है कि कार्यपालिका को निरुद्ध व्यक्ति को यथाशक्य शीघ्र न्यायालय के समक्ष पेश करना ही होगा। अगर कोई पदाधिकारी किसी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक अवधि तक निरुद्ध रखता है तो उससे इसके लिए जवाब भी तलब नहीं किया जा सकता है। अपने मूलाधिकारों का तो यही मतलब होता है कि विधान-मण्डल या कार्यपालिका से ये अधिकार छीने ही नहीं जा सकते हैं। अगर मेरा बस हो तो मैं तो इन मूल अधिकारों को रखूं ही नहीं, जब तक कि इनके द्वारा इतना भी अधिकार न प्राप्त हो कि नागरिक का स्वातन्त्र्य सुरक्षित रहेगा। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 63 के अधीन अभी होता यह है कि ज्यों ही किसी को गिरफ्तार किया जाता है, उसे गिरफ्तारी के स्थान से निकटतम दण्डाधिकारी के न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घण्टे के भीतर न्यायालय के सामने पेश करना ही होता है।

इसके अलावा, धारा 61 के अधीन जब गिरफ्तार व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर न्यायालय में पेश किया जाता है तो वर्तमान कानून के अनुसार न्यायालय की शक्तियां भी बड़ी सीमित हैं: और ठीक ही सीमित की गई हैं। मजिस्ट्रेट क्या है इसे हम अच्छी तरह जानते हैं और खास करके स्पेशल मजिस्ट्रेट पर तो पुलिस का प्रभाव रहता है क्योंकि पुलिस सुपरिन्टेंडेंट अगर खुफिया तौर पर उसके खिलाफ उच्चप्राधिकारी को एक पत्र भी लिख देता है तो वह मजिस्ट्रेट अपने पद पर नहीं रह जाता है। इसलिए साधारण मजिस्ट्रेट को तो यह साहस ही नहीं हो सकता है

कि पुलिस की मरज़ी के खिलाफ कुछ करे। सुतरां होता यह है कि प्रायः हमेशा वह गिरफ्तार व्यक्ति को निरुद्ध रखने का आदेश देता है। इसी लिये दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 में एक उपबन्ध यह रखा गया है। आपकी अनुमति हो तो मैं उसे सुना दूं। वह यों है:

"जब भी कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है और हवालात में रखा जाता है और यह आभास मिलता है कि जांच का काम 24 घण्टे के अन्दर न पूरा हो सकेगा, जैसा कि धारा 61 में निर्धारित किया गया है और उस पर विश्वास करने का आधार रहता है कि अभियुक्त के विरुद्ध जो आरोप लगाया है या सूचना मिली है वह सही है, तो थाने का इंचार्ज या जांच करने वाला पुलिस-पदाधिकारी, यदि वह नायब थानेदार से नीचे ओहदे का नहीं है, निकटतम दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) को, डायरी में मामले में बारे में जो रिपोर्ट दर्ज की गई हो उसकी नकल फौरन भेज देगा और साथ ही अभियुक्त को ऐसे दण्डाधिकारी को सुपुर्द कर देगा।"

इस उपबन्ध में तथा अन्य उपबन्ध में यह कहा गया है कि अभियुक्त व्यक्ति मजिस्ट्रेट के आदेशाधीन होगा और उसे निरुद्ध तभी रखा जा सकेगा, जब कि मजिस्ट्रेट ऐसा आदेश दे। तृतीय और द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को, जब तक कि खासतौर पर उसे इसका अधिकार न दिया गया हो, अभियुक्त को निरुद्ध रखने की शक्ति नहीं प्राप्त है क्योंकि 1923 में हमने एक कानून पास किया था जिसमें एक उपबन्ध यह रखा गया है:—

"किन्तु तृतीय और द्वितीय श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट जिसको विशेष रूप से ही इसके लिए अधिकार न दिया गया हो (प्रान्तीय शासन द्वारा), अभियुक्त को पुलिस के अधीन हवालात में निरुद्ध रखने का आदेश न दे सकेगा।"

प्रस्तुत खण्ड के द्वारा तो यह अधिकार भी छिन जाता है। मेरे एक मित्र ने इस खण्ड पर एक संशोधन भेजा है जिसमें यह कहा गया है कि केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को ही किसी को निरुद्ध रखने का आदेश देने का अधिकार होगा। मैं उनसे सहमत नहीं हूं क्योंकि जब तक कि द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटों को भी खासतौर पर इसका अधिकार नहीं दिया जाता, इस पर अमल करना बड़ा मुश्किल होगा। जो भी हो, मेरी समझ में यह नहीं आता कि 1923 में पास किये उपबन्ध द्वारा जो अधिकार दिया गया था उसे अब आखिर इस खण्ड द्वारा छीना क्यों जा रहा है।

फिर धारा 167 (3) के द्वारा मजिस्ट्रेट के अधिकार पर एक बड़ा हितकर नियंत्रण लागू किया गया था। इस धारा में कहा गया है कि—

"इस धारा के अधीन विरोध का आदेश देने वाले मजिस्ट्रेट को ऐसे आदेश का कारण अभिलिखित करना होगा।" डॉ. अम्बेडकर से मैं अनुरोध करूंगा कि कृपा कर मेरी बातों को ध्यान से सुनने में अपना सिर्फ आधा मिनट का समय दे दें। मेरा कहना यह है कि यहां आप केवल इन चार शब्दों को 'and for reasons recorded' जरूर जोड़ लें। मजिस्ट्रेट के सामने जब अभियुक्त पेश किया जाता

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

है तो उस समय उसके भाग्य का, इस ओर या उस ओर, फैसला होने जाता है। उस समय, पंजाब और अन्यत्र जो प्रथा है उसके अनुसार, होता यह है कि जब उसे पुनः हिरासत में रखने का आदेश देने की मांग की जाती है तो मजिस्ट्रेट अगर हिरासत में रखने का आदेश देता है, तो उसे अपने ऐसे आदेश का कारण भी लिखना पड़ता है। मजिस्ट्रेट के अधिकार पर यह एक बहुत बड़ा नियंत्रण है। इस आशय के मैंने संशोधन रखे हैं। मैं चाहता यह हूं कि अनुच्छेद 15-क के प्रथम परन्तुक में डॉ. अम्बेडकर कृपया इन चार शब्दों को "and for reasons recorded" जरूर जोड़ दें। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि कृपा कर इस पर विचार करें, कि इन चार शब्दों का क्या अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि अगर इन शब्दों को यहां जोड़ा नहीं जाता है तो अभियुक्त एक महत्वपूर्ण अधिकार से वंचित हो जायेगा। अगर इन शब्दों को रख दिया जाता है तो उससे यह होगा कि ज्यों ही अभियुक्त और उसके सम्बन्ध के कागजात मजिस्ट्रेट के सामने पेश होंगे, मजिस्ट्रेट का यह देखना कर्तव्य हो जायेगा कि अभियुक्त को और कितने दिनों तक हिरासत में रखना जरूरी है और उसे इसके लिए अपने पूरे कारण लिखित रूप में रखने होंगे, जिन पर उससे कोई बड़ा न्यायालय विचार कर सकता है और अभियुक्त मजिस्ट्रेट के फैसले को उस न्यायालय से बदलवा सकता है। मजिस्ट्रेट का आदेश एक न्यायिक आदेश है और ऊपर का न्यायालय उसमें रद्दोबदल कर सकता है। वह आदेश कार्यपालिका का आदेश नहीं है इसलिए मजिस्ट्रेट को अपने आदेश का कारण बताना ही चाहिये। अगर वह कारण बताता है तो हम यह समझ सकते हैं कि उसका आदेश न्याय्य है या नहीं। अगर यहां यह उपबन्ध रखा जाता है कि मजिस्ट्रेट को अपने आदेश का कारण दिखाना होगा तो उस हालत में होगा यह कि मजिस्ट्रेट को अभियुक्त के वकील की बात को ध्यान से सुनकर ही उसे निरुद्ध रखने का आदेश देना होगा और यह बताना होगा कि उसे इतने दिनों के लिए हिरासत में रखना क्यों जरूरी है। अगर आप मजिस्ट्रेट पर यह प्रतिबन्ध नहीं रखते हैं तो बहुत सम्भव यही है कि अपने आप उसके मुंह से यही फैसला निकल बैठेगा कि उसे निरुद्ध रखा जाये।

मैं ऐसे फैसलों से कोई उद्धरण यहां नहीं सुनाना चाहता हूं कि जिसमें ऐसी व्यवस्था के लिए आदेश दिया गया है और इसे हितकर बताया गया है। इससे मैं सभा पर छोड़ता हूं क्योंकि मैं खुद तो प्रस्तुत कानून में ऐसा संशोधन करना आवश्यक समझता ही हूं। इन शब्दों को रखने से यह होगा, श्रीमान कि अभियुक्त व्यक्ति का स्वातन्त्र्य बहुत कुछ सुरक्षित हो जायेगा और फिर इस उपबन्ध 15-क (1) को रखने की भी कोई जरूरत न रह जायेगी। इसकी जरूरत यों न रह जायेगी कि जब अभियुक्त 24 घंटे के अन्दर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा तो उसका वकील भी वहां रहेगा। अगर मजिस्ट्रेट उसे हिरासत में रखने का आदेश देता है तो अभियुक्त उससे ऐसे आदेश का कारण पूछ सकता है। वह मजिस्ट्रेट से यह बताने की मांग कर सकता है कि उसे क्यों हिरासत में रखने का आदेश दिया जाता है। उस सूरत में इस उपबन्ध 15-क (1) का उद्देश्य यों ही पूरा हो जायेगा। यहां खण्ड (2) में इन चार शब्दों को 'and for reasons recorded' के जोड़ देने से उपबन्ध 15-क (1) को रखने की कोई जरूरत न रह जायेगी।

मैं आपको बताऊं कि ऐसे मामलों में आमतौर पर होता क्या है। पुलिस को सारे अधिकार प्राप्त हैं। वह अभियुक्त व्यक्तियों के बारे में गलत सूचना देती है, उसके और उसके रिश्तेदारों के साथ दुर्व्यवहार करती है और उनको निरुद्ध रखने के लिए गलत सूचनायें देती है। आप इसको रोक कैसे सकते हैं जब तक इस खण्ड में ऐसा उपबन्ध न रख दें? यदि अभियुक्त के सम्बन्ध में गलत सूचना दी जाती है तो इसका कोई लिखित विवरण तो रहता नहीं है। फिर आप पुलिस पर कोई प्रतिबन्ध कैसे रख सकते हैं? फिर इस बात की क्या गारंटी है कि इन उपबन्धों पर ठीक-ठीक अमल किया जायेगा? इसलिए पुलिस और मजिस्ट्रेट पर एक मात्र नियंत्रण आप इसी तरह रख सकते हैं कि अभियुक्त को जब पुनः हिरासत में रखने का आदेश पाने के लिए पुलिस मजिस्ट्रेट के सामने उसे पेश करे तो मजिस्ट्रेट अपने आदेश का कारण जरूर बतावे और लिखित रूप में। फिर होगा यह कि मजिस्ट्रेट सोच समझ कर उसे हिरासत में रखने का आदेश देगा और अभियुक्त को तथा उसके वकील को यह बता देगा कि क्यों और कितने दिनों के लिए उसे हिरासत में रखने का आदेश दिया जा रहा है। मैं यह कहूंगा कि अगर वस्तुतः आप यह चाहते हैं कि व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित रहें, तो इस खण्ड में इन शब्दों को आप जरूर ही जोड़िये। अभियुक्त को इतना अधिकार मिलना ही चाहिये। मैं नहीं समझता कि मैं कोई गैर-वाजिब मांग कर रहा हूं।

जहां तक कि मेरे अन्य संशोधन का सम्बन्ध है, मुझे खुशी है कि उनमें से एक को डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया है अतः उसके सम्बन्ध में कुछ कह कर मैं सभा का समय नहीं बरबाद करूंगा। पर मेरे जो दूसरे संशोधन हैं वह भी ऐसे अधिकारों को देने के लिए रखे गये हैं जो दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा दिये गये हैं। डर केवल इस बात का है कि घबराया हुआ विधान-मण्डल या स्वेच्छाचारी शासन कहीं इन अधिकारों को जनता से छीन कर उन पर जुल्म न करने लगे। प्रश्न का यह पहलू विचारणीय है और हमें इसे ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये। समूचे भारत का शासन केन्द्र द्वारा जरूर होता है पर साथ ही प्रान्तीय शासनों और रियासतों की भी हुकूमत यहां चलती है। रियासतों में पुराने जमाने का मनमाना शासन आज भी प्रचलित है। इस समय हमारे लिए इस बात का ख्याल रखना बहुत जरूरी है कि अब नये विधान-मण्डलों का निर्माण हो जाये और वह काम करने लगें तो ऐसा न हो कि इन अधिकारों का, जिनके बारे में उन्हें कोई अनुभव नहीं है, कहीं वह दुरुपयोग न कर बैठें।

कार्यपालिका का हर पदाधिकारी, और विशेषतः भारत का, यही चाहता है कि उसे यथासम्भव अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त रहें। यह लालसा उसके रक्त में समाई रहती है। क्या सभा को याद नहीं है कि सन् 1947 में हमने एक कानून पास किया था जिसके विरुद्ध हमारे वर्तमान एक मन्त्री ने खड़ा होकर यह कहा था कि "यह एक काला कानून है?" क्या हमें यह याद नहीं है कि घबराहट में हमने एक ऐसा कानून यहां पास कर दिया था जिसमें पुलिस को बिना किसी चेतावनी के नागरिकों को गोली मार देने का अधिकार दिया गया था? क्या आप को याद नहीं है कि यहां सभा में हमने एक ऐसा कानून पास किया था कि अगर कोई ऐसा लेख प्रकाशित करता है जिससे विभिन्न समुदायों के पारस्परिक सम्बन्ध के बिगड़ने की लेशमात्र भी आशंका हो, भले ही वह लेख उत्तेजना-शून्य हो, तो न केवल प्रकाशक के अन्य सभी प्रकाशन ही जब्त कर लिये जायेंगे बल्कि

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

जिस प्रेस में वह छपा होगा वह भी जब्त कर लिया जायेगा और इसके लिए न्यायालय कोई सुनवाई न करेगा?

हां, यह मैं जानता हूं कि इन अधिकारों का प्रयोग यहां नहीं किया गया है क्योंकि गृह शासन की बागडोर सरदार पटेल जैसे व्यक्ति के हाथ में है और अपनी हुकूमत कायम हो गई है जो इन अधिकारों का प्रयोग नहीं करना चाहती है। पर मान लीजिये, श्रीमान, कि आप जिन नये राज्यों का निर्माण करने जा रहे हैं वहां के शासकों को ये अधिकार प्राप्त हैं और वह इनका प्रयोग करने लग जाता है। उस हालत में नागरिकों के वैयक्तिक अधिकारों की क्या हालत होगी? हम संविधान बना रहे हैं जनता के स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के लिए। मेरा विनम्र कथन यह है कि अनुच्छेद 15, इन दो संरक्षणों के साथ भी, संविधान के लिए एक कलंक स्वरूप है। जिन अधिकारों को हम सुरक्षित रखना चाहते थे उनको हम सुरक्षित न कर पाये। अवश्य ही मैं कड़े शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं; पर इस सम्बन्ध में मेरी भावनायें बड़ी प्रबल हैं और मैं उन्हें उद्‌गार दिये बिना रह नहीं सकता। मैं चाहता हूं कि सदस्यों को मेरी भावना मालूम हो जाये। मैं यह कहता हूं कि वस्तुत: यही समय है, जब आप विधान-मण्डलों पर कोई रोक लगा सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर पर हमें इसके लिए पूरा दबाव डालना चाहिए और कहना चाहिये कि जनता के लिए कम से कम इतने अधिकार तो हम सुरक्षित रखना ही चाहते हैं। मैं तो यह पसन्द करता हूं कि बजाय इसके कि डॉ. अम्बेडकर शासन द्वारा डाले जाने वाले दबाव का प्रतिरोध करने के, उसके विरोध में वह अपने पद से ही इस्तीफा दे देते, ताकि ऐसे मूलाधिकार संविधान में रखे न जाते।

'due process of law' शब्दों को न रखने की बात पर तो हम राजी हो चुके हैं, पर मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हो सकता हूं कि ये छोटे-मोटे अधिकार भी न रखे जायें। मैं जिन अधिकारों के लिए आग्रह कर रहा हूं वह क्या हैं, इसे मैं आपके सामने रख देता हूं ताकि आप इस पर विचार करें। एक अधिकार हम यह चाहते हैं कि हर व्यक्ति को, जिस पर कोई दोषारोप किया गया हो, अपने विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने का और अपना बचाव पेश करने का अधिकार होना चाहिये। यह तो एक बुनियादी अधिकार है। अगर आप इसे ही नहीं देना चाहते हैं तो फिर मुकदमे का, अदालत द्वारा विचार किया जाने का, जिक्र क्यों कर रहे हैं? क्या हम नहीं जानते हैं कि रोज अभियुक्त व्यक्तियों को इन अधिकारों से वंचित रखा जाता है? छोटे-छोटे शहरों में अदालतें वकील के लिए कब इन्तजार करती हैं? वहां गवाह ही कहां पहुंच पाते हैं? अभियुक्तों को जो अपना बचाव पेश करने का अधिकार है उससे वहां उन्हें वंचित ही रखा जाता है। जहां तक कि जिरह का सम्बन्ध है, हम अच्छी तरह जानते हैं कि धारा 256 के उपबन्धों की अवहेलना की जाती है और कोशिश इस बात की की जाती है कि अभियुक्त को उसके विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने का मौका ही न दिया जाये। इस बात की गारण्टी ही क्या है कि भविष्य में विधान-मण्डल यह कानून न पास करेंगे या कार्यपालिका उनसे ऐसा कानून न पास करा देगी कि अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी मामले की सुनवाई हो सकती है और उसके अपराधी होने का फैसला सुनाया जा सकता है? ऐसे विधान-मण्डलों से भी हम

परिचित हैं जहां ऐसा कानून पास करने की कोशिश की गई है कि अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी मामले पर विचार किया जा सकता है। रौलट-एक्ट को आप नहीं जानते हैं क्या, जिसमें यह कहा गया था कि न वकील रखने दिया जायेगा, न कोई दलील सुनी जायेगी और न सजा के खिलाफ अपील की जा सकेगी?

*__अध्यक्षः__ माननीय सदस्य महोदय ने अपने भाषण में कई बार 'इस सभा' का हवाला दिया है। मैं नहीं समझ पाया कि उनका मतलब किस सभा से है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): इनका मतलब है इस सभा के विधायी पक्ष से।

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ इस सभा के दो स्वरूप है। संविधान-सभा के रूप में यह संविधान बनाने का काम करती है और विधान-सभा के रूप में यह कानून बनाने का काम करती है। यहां इन शब्दों से मेरा मतलब है विधान-सभा। उस सभा के भी प्रधान आप ही हैं, श्रीमान, गोकि हमने उसके लिए एक अध्यक्ष भी रख लिया है। मेरा विनम्र निवेदन यह है, श्रीमान, कि आखिर इस बात की गारण्टी ही क्या है कि अन्य कोई आगामी केन्द्रीय शासन, जिसमें आज के जैसे सदस्य न होंगे, या कोई प्रान्तीय शासन इन अधिकारों का प्रयोग न करेगा? हम यह समझते हैं कि हमारा वर्तमान केन्द्रीय शासन इन पर अमल न करेगा। पर इसके सिवाय और भी शासन तो हैं। उदाहरण के लिए आप राजस्थान को ही लीजिये। अब तक वहां निरंकुश शासन चलता था और अब वहां लोकतन्त्रीय शासन बन रहा है। आपात की दशा सामने आने पर वहां किस हद तक शासन जायेगा यह हम नहीं कह सकते हैं। आपात की स्थिति के सम्बन्ध में.........

*__अध्यक्षः__ आपने रौलट-एक्ट के प्रसंग में इस सभा का जिक्र कैसे किया, मैं यह सोच रहा था।

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ रौलट-एक्ट पास हुआ था 1918 में इसे मैं जानता हूं। मेरा कहना यह है कि इस बात की गारण्टी क्या है कि यह सभा या प्रान्तीय विधान-सभायें रौलट-एक्ट की तरह कोई कानून बनायेगी ही नहीं? इसके लिए यहां सम्यक उपबन्ध रहना चाहिये ताकि न्यायालय यह फैसला दे सकें कि विधान-सभा द्वारा पास किया हुआ अमुक कानून वैध नहीं है। जब आप हर्जाना ही दे रहे हैं तो सच्चाई के साथ पूरा और वाजिब हर्जाना दीजिये। पर आप जो दे रहे हैं वह न पूरा ही है और न समुचित ही है।

अब मैं एक दूसरे खण्ड को लेता हूं जिसमें कहा गया है कि "किसी व्यक्ति पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगाया जायेगा और न उसकी या उसकी सम्पत्ति की अनुचित तलाशी ली जायेगी।" इस खण्ड के पीछे एक इतिहास है। तलाशी वगैरह को लेकर इंग्लैण्ड में क्या-क्या हुआ है, मैं उसकी चर्चा यहां नहीं करूंगा। मैं चर्चा करना चाहता हूं यहां इस बात की कि इसी सभा में गये साल 3 दिसम्बर को क्या हुआ था। आपकी अनुपस्थिति में काजी सैयद करीमुद्दीन ने सभा में एक

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

संशोधन रखा था श्रीमान्। 3 दिसम्बर सन् 1948 के वाद-विवाद की जो रिपोर्ट (अंग्रेजी में) छपी है उसके पृष्ठ 794 पर यह संशोधन किया हुआ है। संशोधन यह है:—

"कि अनुच्छेद 14 में खण्ड (4) के रूप में यह जोड़ दिया जाये—

'(4) The right of the people to be secure in their persons, houses, papers and effects against unreasonable searches and seizures shall not be violated and no warrants shall issue but upon probable cause supported by oath or affirmation and particularly describing the place to be searched and the persons or things to be seized.'"

[(4) अनुचित तलाशियां तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह, पत्रों तथा सामान के विषय में सुरक्षित रहने का जो लोगों को अधिकार प्राप्त है, उसका उल्लंघन नहीं किया जायेगा और सिवाय सम्भावित कारण के जिसका आधार सौगंध अथवा घोषणा होगा, वारंट (अभिपत्र) जारी नहीं किये जायेंगे, और जिस स्थान की तलाशी लेनी होगी और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना होगा, उनका विवरण उनमें विशेष रूप से दिया रहेगा।]

जब हम इस पर विचार कर रहे थे तो अन्त में डॉ. अम्बेडकर ने जिनके विचारों पर एक फौजदारी के वकील का पूरा रंग चढ़ा हुआ है—मैं नहीं जानता कि उन्होंने कभी वकालत की है या नहीं—यह कहा (उनकी बात उक्त रिपोर्ट के पृष्ठ 796 पर आपको मिलेगी)—"अस्तु, श्री करीमुद्दीन द्वारा पेश किये गये संशोधन नं. 512 को स्वीकार करने को मैं तैयार हूं। मेरा ख्याल है कि यह एक उपयोगी उपबन्ध है और संविधान में इसे स्थान दिया जा सकता है। इसमें कोई नई बात नहीं है क्योंकि यह सारा का सारा खण्ड, जिसका सुझाव वह दे रहे हैं दण्ड-व्यवहार-संहिता में पाया जाता है और इसलिए एक तरह से यह कहा जा सकता है कि यह कानून तो देश में अभी भी प्रवर्तमान है। यह नितान्त सम्भव है कि भविष्य के विधान-मण्डल, उनके संशोधन में निर्दिष्ट उपबन्धों का विखण्डन कर दें। किन्तु जहां तक वैयक्तिक स्वतन्त्रता का सम्बन्ध है, ये उपबन्ध इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनको विधान-मण्डल की शक्ति से परे रखना अतीत वांछनीय है और इसी कारण से मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार हुआ हूं।" सभा ने उस संशोधन को स्वीकार कर लिया था। उपाध्यक्ष ने दो बार यह घोषणा कर दी थी कि संशोधन स्वीकृत हुआ। पर बाद में फिर इस सवाल को उठाया गया और अन्ततोगत्वा इसे नामंजूर कर दिया गया।

मैं यह प्रमाणित करने के लिए यहां इस घटना का जिक्र कर रहा हूं कि गोकि मसौदा-समिति को सभा ने नियुक्त किया है और इसे सभा की मरजी के

अनुसार चलना चाहिये, पर उसने ऐसा नहीं किया। दूसरे प्राधिकारियों ने, बाहर के लोगों ने इस पर जोर डाला और वह उनके आगे नतमस्तक हो बैठी। मेरा ख्याल है कि जहां तक इस सभा का सम्बन्ध है, मसौदा-समिति को इसके आदेशों का पालन करना चाहिये था। मसौदा-समिति को चाहिये था कि वह डॉ. अम्बेडकर को अपने इच्छानुसार इस मामले में चलने देती। डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया है कि यह उपबन्ध उपयोगी है। फिर भी उसी आशय के मेरे संशोधन को मानने पर अब वह तैयार नहीं हैं। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि मसौदा-समिति इस सभा के सदस्यों को इच्छा पर अमल नहीं कर रही है। डॉ. अम्बेडकर और श्री मुन्शी के भाषणों से मैं यहां कोई उद्धरण नहीं सुनाना चाहता हूं। श्री मुन्शी की भी इस सम्बन्ध में वही राय थी जो अम्बेडकर की थी। उन्होंने अपनी बात के लिए बड़े सुन्दर तर्क उपस्थित किये थे। इन्हीं सज्जनों के तर्कों से तो मुझे यह सूझ मिली है। जो तर्क मैं रख रहा हूं वह मेरे नहीं हैं बल्कि इन्हीं दोनों सज्जनों के हैं। मुझे वस्तुतः घोर खेद है कि इन लोगों को बाहरी दबाव के आगे सर झुकाना पड़ा। मेरा विनम्र कथन यही है कि जहां तक कि प्रस्तुत संशोधन का सम्बन्ध है उसे डॉ. अम्बेडकर स्वीकार कर चुके हैं और मैं उनसे यह अपील करूंगा कि वह स्थिति के अनुरूप कदम उठावें और मेरे इस संशोधन को स्वीकार करें। अगर, फौजदारी के वकील की हैसियत से उन्होंने कहीं छोटे शहर में वकालत की होगी तो इन्हें यह जरूर मालूम होगा कि जब घरों की तलाशी ली जाती है तो उसमें तलाशी पर कोई एतराज नहीं किया जा सकता है। तलाशी में होता प्रायः यह है कि घर में चीज रख दी जाती है और फिर तलाशी ली जाती है, ऐसे लोगों की मौजूदगी में जिन्हें पुलिस गवाह के रूप में आगे पेश करती है। सभा को मालूम होना चाहिये कि कम से कम 50 प्रतिशत फौजदारी के मामलों में जो कि अदालत के सामने आते हैं, अभियुक्तों को या तो रिहा या दोषमुक्त कर दिया जाता है। इससे सभा समझ सकती है कि इस भ्रष्ट और अयोग्य पुलिस के कारण जनता को कितनी ज्यादतियां और परेशानियां भुगतनी पड़ती हैं और किस जबरदस्त भ्रष्टाचार का शिकार होना पड़ता है।

मैं जानता हूं कि अपने इस कथन के द्वारा हम अपनी ही निन्दा कर रहे हैं। यह कहने में कि पुलिस इतनी खराब, मैं कोई गौरव का बोध नहीं करता हूं। दो शताब्दियों की दासता से मुक्त होकर अब हमने उनका सुधार शुरू किया है और उनके सुधरने में कुछ समय लगेगा। जो मन्त्रिमण्डल आज काम कर रहा है, वही अगर कुछ दिनों तक आगे बना रहा तो मेरा ख्याल है कि स्थिति में काफी सुधार हो जायेगा। पर हमें वस्तुस्थिति पर यथार्थवादी की दृष्टि से विचार करना होगा। हमें यह मान कर नहीं बैठ जाना चाहिये कि सब कुछ ठीक हो रहा है। विनम्रतापूर्वक मैं यह कहूंगा, श्रीमान, मेरा अभिप्राय यह हर्गिज नहीं है कि देश की जो वर्तमान स्थिति है उसमें बुराइयों का कोई वीभत्स चित्र आपके सामने रखूं। पर निस्संदेह देश में इस समय भयंकर भ्रष्टाचार फैला हुआ है, भयानक अत्याचार हो रहे हैं और नागरिकों को कोई स्वातन्त्र्य नहीं रह गया है। हमारे मन्त्रियों को, जिनके हाथ में शासन का सूत्र है, स्थिति का पूरा पता नहीं है। मैं आपको बताऊं, श्रीमान, कि इसी दिल्ली में शरणार्थियों पर क्या जुल्म किया गया है। बिना किसी कानून के पुलिस ने उनका सामान लूट लिया, उनकी दुकानों को तोड़-फोड़ दिया। ऐसा करने के लिए उनके पास कोई कानून नहीं था। पर जब उनसे पूछा गया कि किस कानून के अधीन वह ऐसा कर रहे हैं तो उन्होंने यह जवाब दिया कि मन्त्रिमण्डल के आदेश के अधीन वह ऐसा कर रहे हैं। ऐसी दशा में मेरा

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

कहना यह है, श्रीमान, कि जब तक देश में कानून का शासन नहीं चलता है, जिसमें कि ऐसी स्थिति न उत्पन्न होने पायेगी, जिसमें कि आज हम अपने को पाते हैं, तो हमारी इस स्वतन्त्रता का मूल्य उस कागज के बराबर भी नहीं है जिस पर कि अपनी यह स्वतन्त्रता लिखी गई है।

जिस पंचम अधिकार की मैं मांग कर रहा हूं वह है क्या? अगर किसी व्यक्ति पर दोषारोप किया जाता है और उसे सजा दी जाती है तो उसे कम से कम एक अपील का अधिकार तो जरूर मिलना चाहिये। मेरी मांग यही है। बहुत संघर्ष करने के बाद और वह भी जब कि आपने इस मसले में दिलचस्पी ली, तब कहीं हम संघ-न्यायालय सम्बन्धी एक खण्ड में यह बात रखवा पाये कि इन मामलों में जहां अभियुक्त व्यक्ति को उच्च-न्यायालय द्वारा पहली बार मृत्यु-दण्ड दिया गया है, उच्चतम न्यायालय के समक्ष फैसले के विरुद्ध अपील की जा सकेगी। पर अगर उच्च न्यायालय आजीवन निर्वासन का दण्ड दे तो उसके लिए, भले ही पहली बार उसे ऐसा दण्ड मिला हो, अपील का अधिकार नहीं दिया गया है। मेरा कहना यह है, श्रीमान, कि हर सभ्य देश में एक व्यक्ति के निर्णय को यह बल नहीं दिया गया है कि उसके आधार पर किसी को जीवन भर के लिए निर्वासित किया जा सके। इसलिए मैं चाहता यह हूं कि यहां सामान्य एक उपबन्ध यह रख दिया जाये, हर व्यक्ति को, जिस पर दोषारोप किया गया है या कारावास का दण्ड दिया गया है, कम से कम एक अपील का अधिकार जरूर रहेगा। जब किसी व्यक्ति का स्वातन्त्र्य छिन जाये तो उसे कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार तो मिलना ही चाहिये। मैं नहीं समझता कि उसे यह अधिकार देना गैरवाजिब होगा।

इसी तरह जब आप इस माग पर जाते हैं कि ऐसे मामलों में मुकदमे का फैसला जल्द हो जाना चाहिए, तो आप इस पर विचार कीजिये कि शासन के आखिर काम क्या हैं? न्याय में विलम्ब करने का अर्थ है किसी को न्याय से वंचित रखना। यह एक विदित तथ्य है और इस पर मैं जोर नहीं देना चाहता। मैं उनमें नहीं हूं जो शून्य अधिकार चाहते हैं। समाज के हितार्थ मैं सामाजिक नियंत्रण को आवश्यक समझता हूं। पर मैं यह जरूर चाहता हूं कि नागरिक को वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का जो अधिकार है, वह पूर्णत: सुरक्षित रहना चाहिये। मेरा कहना यह है कि हमें वह साधारण अधिकार अवश्य प्राप्त रहने चाहिये जो हर सभ्य देश में नागरिकों को प्राप्त हैं।

अब मैं उपबन्ध के दूसरे हिस्से को लेता हूं जो निवारक निरोध के सम्बन्ध में है। एक समय था जब बिना मामला चलाये किसी को हिरासत में रखना बहुत भयानक अपराध समझा जाता था और हर आदमी यही कहता था कि बिना समुचित रूप से मामला चलाये किसी भी व्यक्ति को हिरासत में नहीं रखना चाहिये। पर अब सौभाग्य या दुर्भाग्य से हर समय में निवारक निरोध के बारे में कानून बन गये हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे देश में राज्य के संरक्षण के लिए कोई कानून न हो। मैं तो हमेशा से निवारक निरोध के बारे में कानून बनाने का हामी रहा हूं और मुझे खुशी है कि यहां खण्ड (4) में हमने इसके लिए उपबन्ध रखा है। पर साथ ही मैं यह भी चाहता हूं कि निवारक निरोध का अनियमन कानून

द्वारा अवश्य किया जाये। मैं यह चाहता हूं कि हर निरुद्ध व्यक्ति को न्यायत: जो न्यूनतम अधिकार प्राप्त रहना चाहिये उससे वह वंचित न रखा जाये। आखिर मामला चलने तक तो हर अभियुक्त निर्दोष ही माना जायेगा। इसी तरह निरुद्ध व्यक्ति को भी जिस पर मामला नहीं चलाया गया है निर्दोष ही समझा जायेगा। इसलिए उस पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगना चाहिये और न उससे कठोर श्रम लिया जाना चाहिये, जब तक कि वैध नियमों की जानबूझ कर अवहेलना करने या जेल के नियमों को भंग करने के लिए ऐसा अपेक्षित न हो। मेरा सुझाव यही है कि निरुद्ध व्यक्तियों पर अनावश्यक कठोरता न की जानी चाहिये और न अनावश्यक प्रतिबन्ध उन पर लागू करना चाहिये।

डॉ. अम्बेडकर ने जो तीन माह की अवधि निर्धारित की है, उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूं। मैं इसे ठीक नहीं समझता। सामान्य मामलों में हम पुलिस को केस तैयार करने के लिए 15 दिनों का समय देते हैं। इस तरह के मामलों में जब किसी निष्पक्ष न्यायाधिकरण के सामने मामला पेश करने के लिए केस तैयार करना है तो मेरे ख्याल से इसके लिए एक महीने का समय बिलकुल काफी है। समय की आवश्यकता को देखते हुए, मेरा कहना यह है कि दो महीना बीतने के पहले एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण से, न कि मंत्रणा-मण्डली से, इस सम्बन्ध में आदेश अवश्य मिल जाना चाहिये। मैं यहां उन्हीं शब्दों को रखना चाहता हूं जिनको डेढ़ साल पहले खुद डॉ. अम्बेडकर ने प्रयुक्त किया था। 'due process' के प्रश्न पर विचार करने के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी उसके सामने इस बारे में जो मसौदा डॉ. अम्बेडकर ने रखा था उसमें उन्होंने खुद 'निष्पक्ष न्यायाधिकरण' शब्दों को रखा था। उस मसौदे से एक उद्धरण मैं सुनाये देता हूं जिसमें ये शब्द आये हैं:

> "अनुच्छेद 15, 15-क, 15-ख और 15-ग की कोई बात उन व्यक्तियों पर लागू न होगी तो किसी ऐसी विधि के अधीन निरुद्ध किये गये हैं जिसमें ऐसे व्यक्तियों के, जिन पर खतरनाक या विप्लवकारी कारवाइयों में लगे रहने का विश्वास किया जाता है, निवारक निरोध का उपबन्ध किया गया है। परन्तु, बिना किसी तटस्थ न्यायाधिकरण के आदेशों के ऐसा व्यक्ति तीन माह से अधिक अवधि तक निरुद्ध न रखा जायेगा।"

आप 'मंत्रणा-मण्डली' शब्द रख रहे हैं और मैं रख रहा हूं 'निष्पक्ष न्यायाधिकरण' शब्द "निष्पक्ष-न्यायाधिकरण" शब्द से सम्बन्धित व्यक्ति को अनायास यह ख्याल हो आता है कि उसके मामले की सुनवाई निष्पक्ष न्यायाधिकरण करेगा। मैं चाहता यह हूं कि इस निकाय को निरुद्ध व्यक्ति से पूछताछ करने की, उसकी जांच की पूरी शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये। मैं इसे एक बहुत ही हितकर उपबन्ध मानता हूं और इसे न्याय के साधारण बुनियादी सिद्धान्तों में एक समझता हूं।

अभी उस दिन हमने एक अनुच्छेद इस आशय का पास किया है कि अगर किसी असैनिक कर्मचारी को ओहदे में नीचे किया जाता है या उसे हटाया जाता या पद-च्युत किया जाता है, तो उस हालत में उसे अपनी सफाई पेश करने का मौका जरूर दिया जायेगा। जिस व्यक्ति का आप स्वातन्त्र्य छीनने जा रहे हैं उसे आप अपनी सफाई पेश करने का मौका नहीं देना चाहते हैं। डॉ. बख्शी टेकचन्द

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

ने अभी मुझे मद्रास सरकार का एक कानून दिखाया है जिसमें ऐसी स्थिति के लिए वहां के विधान-मण्डल ने बुद्धिमत्ता के साथ कार्यपालिका की शक्तियों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया है कि उसे निरुद्ध व्यक्ति को यह बताना होगा कि क्यों उसे निरुद्ध किया गया है और निरुद्ध व्यक्ति से यह कहना होगा कि वह अपनी सफाई पेश करे। डॉ. अम्बेडकर ने इस उपबन्ध को पेश करते समय यह कहा है कि यह अधिकार मन्त्रणा-मण्डली को मिलना चाहिये। मेरा कहना यह है कि मैं रस्मी बातों के लिए जोर नहीं देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि संविधान में यह उपबन्ध जरूर रखा जाये कि हर निरुद्ध व्यक्ति को यह मौका जरूर दिया जायेगा कि एक न्यायाधिकरण के सामने वह अपने आचरण और अपने विरुद्ध उपस्थित किये गये साक्ष्य के बारे में सफाई दे सके। हो सकता है कि अपने आचरण के बारे में वह संतोषजनक सफाई दे दे। मेरा निवेदन है कि इस खण्ड पर सभा इसी दृष्टिकोण से विचार करे। मैं चाहता हूं कि मन्त्रणा-मण्डली को यह अधिकार प्राप्त करना चाहिये कि वह निरुद्ध व्यक्ति की सरसरी जांच कर सके।

निरोध की अधिकतम अवधि क्या हो, इसके बारे में मेरा विनम्र कहना यह है कि भारत में आदमी की औसत उम्र केवल 23 साल की मानी गई है। ऐसी हालत में इसके लिए एक साल की अवधि कम नहीं कही जा सकती है क्योंकि अगर इस लम्बी अवधि में भी पुलिस उसके विरुद्ध साक्ष्य नहीं उपस्थित कर पाती है तो फिर मैं तो यही समझूंगा कि जिस साक्ष्य के आधार पर उसे निरुद्ध रखने की कोशिश की जा रही है उसका महत्व उस कागज के टुकड़े से अधिक नहीं है जिस पर वह लिखा गया है। इसलिए निरोध की अधिकतम अवधि एक साल ही रहनी चाहिये।

ये तीन संशोधन इस खण्ड में कर दिये जायें तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। मेरी कठिनाई यह है कि अगर संशोधन में सुझाये इन खण्डों को यों ही रहने दिया जाता है तो फिर तीन महीने की अवधि को बदल नहीं सकते हैं। फिर तो यह अवधि रह जायेगी और खण्ड (4) के अघात बनाने वाले कानून में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अवधि तीन महीने से घटा कर दो माह की जाती है। न्यायत: कार्यपालिका निरोध के हर क्षण के लिए जवाबदेह है। हर देश के कानूनों में यही उपबन्ध रखा गया है कि कोई पुलिस का पदाधिकारी किसी व्यक्ति को आवश्यकता से ऊपर एक मिनट के लिए भी हिरासत में नहीं रख सकता है। तीन महीने की अवधि निस्संदेह एक बहुत लम्बी अवधि है। इसे मैं और कम करना चाहता हूं पर दो महीने से कम नहीं। इसलिए, जहां तक कि इन उपबन्धों का सम्बन्ध है, हमें इन्हें इस रूप में लिपिबद्ध करना चाहिये कि कम से कम मेरे ये संशोधन उनमें जरूर आ जायें और देश के नागरिकों के अधिकार उन्हें प्राप्त और सुरक्षित रहें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये—

'(1) Every person arresting another in due course of law shall, at the time of the arrest or as soon as practicable thereafter, inform

that person the reasons or grounds for such arrest, nor shall he be denied the right to consult a legal practitioner of his own choice.''

[(1) हर व्यक्ति, जो कानून के अनुसार किसी को गिरफ्तार करता है, गिरफ्तारी के समय अथवा उसके बाद यथाशक्य शीघ्र गिरफ्तारी के कारण या आधार से उस व्यक्ति को सूचित करेगा और गिरफ्तार व्यक्ति अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से सलाह लेने के अधिकार से वंचित न रखा जायेगा।]

आगे मेरा प्रस्ताव यह है:—

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) को हटा दिया जाये।"

दूसरा प्रस्ताव मेरा यह है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में खण्ड (3) के परन्तुक का उपखण्ड (ख) हटा दिया जाये।"

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): आपके खण्ड (1) में जो 'nor' शब्द आया है उसको फिर आप किस तरह जोड़ रहे हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यह खराब अंग्रेजी नहीं है, मुहाविरे के मुताबिक ठीक है। अगर माननीय मित्र श्री त्यागी के कानों को यह रुचिकर नहीं लगता है तो हम इसे मसौदा-समिति पर छोड़ते हैं, वही इसका उपचार करेगी। मैं उन सब बातों को यहां नहीं रखना चाहता हूं जिनको माननीय मित्र पं. ठाकुर दास भार्गव यहां योग्यता के साथ और विशद रूप से रख चुके हैं। उन्होंने ये सब बातें अपने अनुपम अनुभव के आधार पर प्रामाणिक रूप से कही हैं। एक सच्चे देशभक्त की भावनाओं से ओतप्रोत होकर आपने ये बातें कही हैं। पुलिस के हथकण्डों का उन्हें फौजदारी का वकील होने के नाते पर्याप्त अनुभव प्राप्त है। अब वह वकालत नहीं करते हैं इसलिए वह इन सब प्रश्नों पर पर्याप्त ज्ञान एवं तटस्थता के साथ विचार कर रहे हैं जिसकी हमें इज्जत करनी चाहिये।

मैं अपनी वक्तृता केवल अपने तीन संशोधनों तक ही सीमित रखूंगा जिनको मैंने अभी यहां पेश किये हैं। प्रस्तावित मूल संशोधन के खण्ड (1) में और मेरे सुझाये गये खण्ड (1) में एक अन्तर है। मूल खण्ड में कहा यह गया है कि जब किसी को गिरफ्तार किया जाता है तो उसे यथासम्भव शीघ्र यह सूचित कर दिया जायेगा कि उसे किन कारणों के आधार पर गिरफ्तार किया गया है। इस खण्ड के अनुसार यह बात सर्वथा गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करती है कि वह गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी का कारण चाहे उसी समय बतावे या नहीं। उसको इसकी पूरी आजादी है कि चाहे वह गिरफ्तारी का कारण बतावे या न बतावे। वह गिरफ्तारी का कारण बाद में भी बता सकता है या यह कहिये

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

कि आगे चल कर वह गिरफ्तारी के कारण का आविष्कार कर सकता है। मेरे संशोधन में कहा गया है कि गिरफ्तारी के कारणों की सूचना उसे गिरफ्तारी के समय ही दी जायेगी या उसके बाद यथाशक्य शीघ्र दी जायेगी। मुख्य बात यह है कि इसमें अनावश्यक देर न लगाई जायेगी। कारण सूचित करने में देर तभी लगाई जायेगी जब कि तुरन्त कारण का सूचित करना शक्य न होगा और फिर गिरफ्तार करने वाला व्यक्ति कुछ देर तक ही गिरफ्तारी के कारणों से उसे अनवगत रख सकता है। जहां तक हो सकेगा उसे शीघ्र से शीघ्र कारण बताना ही होगा। मैं सभा के सामने एक उदाहरण रखता हूं। हो सकता है कि गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को किसी तरह इसकी सूचना मिल जाती है। वह भाग पड़ता है ओर पुलिस उसका पीछा करती है। ऐसी अवस्था में गिरफ्तार करने वाले अधिकारी के लिए यह शक्य नहीं हो सकता है कि गिरफ्तारी के समय ही वह उसकी गिरफ्तारी का कारण बता दे। पहले तो उसे यह करना होगा कि वह उसे पकड़े। फिर पकड़ने पर तुरन्त या यथासम्भव शीघ्र उसको गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करायेगा। मेरा मुख्य मतलब यह है कि गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के कारणों को बताने में पुलिस को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। आमतौर पर ऐसी गिरफ्तारियों का कारण यही होता है कि उसके विरुद्ध विश्वसनीय या समुचित कोई ऐसी सूचना प्राप्त रहती है कि उसने गिरफ्तारी के लायक कोई जुर्म किया है या ऐसे जुर्म से सम्बन्धित रहा है या यह कि उसके आचरण या अन्य परिस्थितियों से गिरफ्तार करने वाले अधिकारी को ऐसा सन्देह करने का समुचित कारण है कि गिरफ्तारी के लायक किसी अपराध से वह सम्बन्धित है या ऐसा कोई अपराध वह करने वाला है। साधारणत: ऐसी ही परिस्थितियों में किसी को गिरफ्तार किया जाता है। दूसरी परिस्थितियों जिनमें किसी को गिरफ्तार किया जाता है वह यह होती है कि उसके विरुद्ध अधिपत्र जारी किया गया होता है या समुचित प्राधिकारी द्वारा गिरफ्तारी का आदेश निकला रहता है। इन्हीं अवस्थाओं में पुलिस किसी को गिरफ्तार करती है और पुलिस अगर गिरफ्तारी के ठीक पहले या गिरफ्तार करते समय नहीं तो उसके बाद शीघ्र गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को गिरफ्तारी का कारण बता सकती है।

ऐसे उपबन्ध की जो जरूरत है वह यह है। अपराध प्रक्रिया संहिता में इस तरह के उपबन्ध अवश्य मौजूद हैं पर विधान में इसके लिए स्पष्ट रूप से उपबन्ध रख देना चाहिये ताकि विधान-मण्डल इन हितकर उपबन्धों में आगे कोई परिवर्तन कर सकें। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि संविधान में विशेष सावधानी के साथ इस बारे में पुलिस के अधिकारों को परिसीमित रखा जाये। अगर अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारण या उसके बाद शीघ्र उसकी गिरफ्तारी के कारण से अवगत करा दिया जाता है तो इससे कुछ नुकसान नहीं होगा बल्कि फायदा ही होगा।

मेरे बाकी संशोधन रह जाते हैं दो। एक यह कि प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) का उपखण्ड (ख) और उसके परन्तुक का उपखण्ड (ख) हटा दिये जायें। खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में यह कहा गया है कि "इस अनुच्छेद की कोई बात ऐसे व्यक्ति को लागू न होगी जो निवारक निरोध उपबन्धित करने

वाली किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया।" मैं नहीं समझ पाता हूं, श्रीमान, कि इसको रखने की जरूरत क्या है। किसी को निवारण सम्बन्धी व्यवस्था के लिए अगर निरुद्ध किया जाता है तो उसे यह बता देने में क्या नुकसान है, क्या खतरा या असुविधा है कि उसे निवारक-व्यवस्था के लिए मजिस्ट्रेट के आदेशानुसार या किसी अन्य उच्च पदाधिकारी के आदेशानुसार गिरफ्तार किया जा रहा है या यह कि उसे गिरफ्तार करने के अमुक अमुक कारण हैं। वस्तुत: यह बहुत जरूरी है कि गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी का कारण बता दिया जाये। अगर पुलिस के लिए गिरफ्तारी का कारण बताना लाजिमी नहीं कर दिया जाता है तो फिर तो वह मनमाने तौर पर लोगों को गिरफ्तार करने लगेगी जैसा कि प्राय: होता है। अगर पुलिस बिना समुचित कारण बताये ही किसी को गिरफ्तार करती है तो बाद में चलकर तो वह गिरफ्तारी का कुछ न कुछ कारण खोज ही लेगी।

परन्तुक के उपखण्ड (ख) के बारे में मेरा कहना यह है कि प्रशासन विषयक विस्तार की बातों में जाना ठीक नहीं होगा। यहां इस बारे में बहुत विस्तृत उपबन्ध रखे गये हैं। निवारक-निरोध में रखे गये व्यक्ति के साथ आगे क्या किया जाये, इसे आप विधान-मण्डल पर छोड़ दीजिये। अगर आप अधिक विस्तार में जायेंगे तो इसका नतीजा यह होगा कि जिन मामलों के लिए आपने उपबन्ध नहीं रखा है उनके सम्बन्ध में सन्देह की गुंजाइश हो जायेगी। इसलिए मेरा कहना यह है कि मैंने जो संशोधन रखे हैं उन पर आप ध्यान दीजिये और अगर ये समुचित जंचें तो इसके आशय को अनुच्छेद में स्थान दीजिये।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करती हूं, श्रीमान—

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'as soon as may be' (यथाशक्य शीघ्र) शब्दों के आगे 'being not later than fifteen days' (और अधिक से अधिक 15 दिनों के अन्दर) शब्द रखे जायें।"

दूसरा प्रस्ताव मैं यह रखती हूं:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'a High Court' शब्दों के आगे 'after hearing the person detained' शब्द रखे जायें।"

फिर तीसरा प्रस्ताव मैं यह रखती हूं:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'such detention' शब्दों के आगे 'but so that the person shall in no event be detained for more than six months' शब्द रखे जायें।"

[श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी]

मेरा एक प्रस्ताव यह भी है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'Provided that if the earning member of a family is so detained his direct dependents shall be paid maintenance allowance.'"

[किन्तु अगर परिवार का कमाने वाला सदस्य इस तरह विरुद्ध रखा जाता है तो उसके प्रमुख आश्रितों को भरणपोषण के लिए भत्ता दिया जायेगा।]

प्रस्तुत अनुच्छेद जिस पर अभी विचार चल रहा है एक बड़ा ही गम्भीर अनुच्छेद है क्योंकि इसके द्वारा वह कतिपय स्वातन्त्र्य छिन जाते हैं जो अनुच्छेद 15 के अधीन मूलाधिकारों के रूप में हमें प्राप्त हैं और इसके अनुसार लोगों को गिरफ्तार किया जा सकता है और बिना मामला चलाये ही उनको हिरासत में रखा जा सकता है। मुझे विश्वास है कि मैं यहां के अधिकांश सदस्यों के ही मत को प्रतिध्वनित करती हूं जब मैं यह कहती हूं कि किसी को भी बिना मामला चलाये हिरासत में रखना लोकतन्त्रीय सिद्धान्त के तथा हमारी परम्परागत विचारधारा के सर्वथा प्रतिकूल है। माना कि ऐसी स्थिति आ सकती है जब कि इन निरोध सम्बन्धी शक्तियों पर अमल करना किसी शासन विशेष के लिए आवश्यक हो जा सकता है। खण्ड (1) में कहा यह गया है कि गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को गिरफ्तारी के बाद यथाशक्य शीघ्र उसकी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करा दिया जायेगा। खण्ड (2) में यह कहा गया है कि गिरफ्तारी से 24 घण्टे के अन्दर उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा। पर इससे निश्चित रूप से इस बात का पता नहीं चलता कि आखिर गिरफ्तारी के बाद कितने समय के भीतर बन्दी को गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराया जायेगा। उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने का उपबन्ध जो आप रख रहे हैं उससे क्या यह समझा जाये कि मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने के पहले ही बन्दी को गिरफ्तारी के कारणों से या अभियोग से अवगत करा दिया जायेगा? अपने अल्प दिनों के राजनैतिक जीवन काल में हम लोगों को भी इसका अनुभव मिल चुका है कि हिरासत में रखा जाना क्या है और वह कानून क्या है जिसके अधीन किसी को हिरासत में रखा जाता है। अपने उस अनुभव के आधार पर हम तो यही महसूस करते हैं कि इस खण्ड में इसके लिए एक अवधि अवश्य निर्धारित कर दी जानी चाहिये। यानी अगर कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है और मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है तो अधिक से अधिक 15 दिनों के अन्दर उसे उसकी गिरफ्तारी के कारणों से अवश्य अवगत करा दिया जाये, अगर 24 घण्टे के अन्दर उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने के कारण 24 घण्टे के अन्दर ही उस पर दोषों का आरोप कर देना जरूरी न हो।

प्रस्तुत अनुच्छेद में फिर यह भी कहा गया है कि हवालात में निरुद्ध रखे गये व्यक्ति को तीन माह से ऊपर निरुद्ध न रखा जायेगा जब तक कि मन्त्रणा

मण्डली यह निर्णय न दे दे कि उसे अभी और आगे निरुद्ध रखना जरूरी है। हम यह महसूस करते हैं कि निरुद्ध व्यक्ति को मन्त्रणा-मण्डली के सामने खुद उपस्थित होने और अपनी पूरी बात कहने का अधिकार रहना चाहिये। किसी को किस तरह निरुद्ध रखा जाता है इसे हम अच्छी तरह जानते हैं। अगर कोई व्यक्ति अवांछनीय समझा जाता है तो स्थानीय मजिस्ट्रेट या अन्य स्थानीय प्राधिकारी यह बात अपने अधीनस्थ अधिकारियों पर छोड़ देते हैं कि जिस तरह चाहे स्थिति को सम्भाले या उसके सम्बन्ध में फैसला करे। फिर होता यह है कि निरुद्ध व्यक्ति सर्वथा असहाय हो जाता है क्योंकि वह हिरासत में रहता है और उसे न्यायालय के सामने न उपस्थित होने दिया जाता है और न उसे उस समय यही बताया जाता है कि किस अपराध में उसे निरुद्ध रखा गया है। इसलिए हम तो यही महसूस करते हैं कि हिरासत में रखे जाने पर बन्दी को मन्त्रणा-मण्डली के सामने खुद उपस्थित होने का अधिकार रहना चाहिये और उसकी बातों को सुनने के बाद ही मन्त्रणा-मण्डली उसे दोषी ठहराये या आगे निरुद्ध रखने का निर्णय करे। साधारणत: होना यही चाहिये कि बन्दी के सम्बन्ध की सभी बातों से मन्त्रणा-मण्डली को अवगत कराया जाये।

अपने तीसरे संशोधन में मैंने यह कहा है कि अगर मंत्रणा-मण्डली उसे आगे निरुद्ध रखने का ही निर्णय देती है तो निरोध की अवधि किसी भी सूरत में 6 महीने से ऊपर न जानी चाहिये। अगर इस अवधि में अभियुक्त के विरुद्ध पर्याप्त साक्ष्य मिल जाता है तो उसे न्यायालय के सामने पेश कर दिया जाये अन्यथा उसे मुक्त कर दिया जाये। समुचित रूप से गठित किसी मंत्रणा-मण्डली के सामने उपस्थित होने का और अपना बचाव पेश करने का मौका दिये बिना ही किसी को महीनों हिरासत में रखना सरासर ज्यादती होगी।

अपने संविधान में इन सब बातों के लिए तो अनेक उपबन्ध रखे गये हैं कि अमुक को क्या वेतन मिलेगा, सभा के सदस्यों को क्या भत्ता मिलेगा, अमुक का दर्जा क्या होगा, पर ऐसे निरुद्ध व्यक्ति के परिवार के पोषण के लिए यहां कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। मैं साग्रह यह अपील करूंगा कि निरुद्ध व्यक्ति को भी इसके लिए भत्ता मिलना चाहिये। ऐसी मनमानी बात न होनी चाहिये कि किसी को स्वातन्त्र्य से तो वंचित किया पर उसके आश्रित अपना भरण पोषण कैसे करेंगे, इसकी चिन्ता आश्रितों पर छोड़ दी जाये।

इन शब्दों के साथ मैं अपने संशोधनों को पेश करती हूं और सभा से सिफारिश करती हूं कि वह इन्हें स्वीकार करे।

*डॉ. पी.एस. देशमुख: अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम में कई संशोधन हैं। अपने संशोधन नं. 108 को पेश करने की जरूरत मैं नहीं समझता। पर अपने दो संशोधनों को—नं. 107 और 110 को—मैं जरूर पेश करना चाहता हूं।

मैं प्रस्ताव रखता हूं:

"कि संशोधन सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये—

'(2) Every person who is arrested shall be produced before the nearest magistrate within twenty-four hours and no such person shall be

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

detained in custody longer than twenty-four hours without the authority of a magistrate.'"

[(2) प्रत्येक व्यक्ति, जो बन्दी किया गया है, 24 घण्टे के अन्दर निकटतम दण्डाधिकारी के सामने उपस्थित किया जायेगा और ऐसे व्यक्ति को, बिना दण्डाधिकारी के आदेश के, 24 घण्टे से अधिक हिरासत में न रखा जायेगा।]

मेरा दूसरा प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क का खण्ड (3) हटा दिया जाये।"

इस अनुच्छेद पर कोई सरसरी तौर पर मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं। जिस आवेग के साथ पं. ठाकुर दास भार्गव ने इसका विरोध किया है उससे मेरा मतैक्य तो नहीं है, पर विरोध के जो कारण आपने सभा के सामने रखे हैं वह वस्तुत: ऐसे हैं कि प्रस्तुत अनुच्छेद के सम्बन्ध में हर एक को प्रबल विरोध भाव ही होगा। जैसा कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने खुद कहा है, उन्होंने यह सोच ही रखा था कि इसके विरुद्ध यह दलील दी जायेगी कि इसमें कोई नई बात नहीं कही गई है और इसके अधिकांश उपबन्ध अपराध प्रक्रिया संहिता में मौजूद ही हैं। उनकी इसी बात को विस्तार के साथ यहां रखा है पं. ठाकुर दास भार्गव ने। इस सिलसिले में श्री भार्गव ने यह कहा कि अगर यह अनुच्छेद इसी रूप में, जिसमें कि यह पेश किया गया है, रहने दिया जाता है तो उससे स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा बल्कि वह और भी खराब हो जायेगी।

माननीय मित्र पं. ठाकुर दास भार्गव ने इस सम्बन्ध में अपराध प्रक्रिया संहिता की जिन धाराओं का हवाला दिया है उनके अलावा मैं धारा 81 की ओर भी सभा का ध्यान आकृष्ट करूंगा। पं. ठाकुर दास भार्गव ने धारा 61 का हवाला दिया है जिसमें कहा यह गया है:

"बिना अधिपत्र के बन्दी किये गये किसी व्यक्ति को पुलिस पदाधिकारी हिरासत में उससे अधिक अवधि तक न रखेगा जितना कि मामले की सारी बातों को देखते हुए ठीक होगा, तथा यदि धारा 167 के अधीन एतदर्थ मजिस्ट्रेट का कोई विशेष आदेश नहीं है तो उस हालत में, गिरफ्तारी के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर, 24 घण्टे से ऊपर वह व्यक्ति निरुद्ध न रखा जायेगा।"

सो निरोध की अवधि के समबन्ध में यह उपबन्ध अपराध प्रक्रिया संहिता में ही रखा जा चुका है कि 24 घण्टे से ऊपर किसी को निरुद्ध न रखा जायेगा। इसके अलावा धारा 81 में भी इस सम्बन्ध में उपबन्ध रखा गया है। इस धारा में यह कहा गया है कि:

"बन्दीकरण के अधिपत्र को क्रियान्वित करने वाला पुलिस-पदाधिकारी (धारा 76 के उपबन्धों के अधीन) बिना किसी अनावश्यक विलम्ब के बन्दी व्यक्ति

को उस न्यायालय के सामने उपस्थित करेगा जिसके सामने ऐसे व्यक्ति को उपस्थित करना उसके लिए विधि द्वारा अपेक्षित होगा।"

इनके अलावा धारा 167 में भी इस बारे में उपबन्ध है जिसका जिक्र माननीय मित्र कर ही चुके हैं। इसमें यह कहा गया है कि अगर अनुसंधान का काम चौबीस घण्टे के भीतर पूरा न हुआ तो अधिक से अधिक बन्दी को 15 दिनों तक हिरासत में रोका जायेगा। इनके अलावा बन्द्युपस्थान आदि तरह के अधिकार भी धारा 460 और 461 में प्रावहित किये गये हैं।

अपराध प्रक्रिया संहिता को स्वीकार किया गया आज से बहुत पहले सन् 1898 में और इसके उपबन्धों की तुलना जब मैंने प्रस्तुत अनुच्छेद के उपबन्धों से की तो मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि डॉ. अम्बेडकर जैसे विज्ञ व्यक्ति को इसमें आखिर कौन-सा नवीन उपबन्ध दिखाई देता है जो अपराध प्रक्रिया संहिता में नहीं है। अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों का पालन इधर स्वातन्त्र्य प्राप्ति के बाद जिस तरह किया जा रहा है उससे कहीं अच्छी तरह और विवेक के साथ इनका पालन पहले किया जाता था। देशवासियों के स्वातन्त्र्य को सुरक्षित रखने के लिये ये उपबन्ध पहले पर्याप्त समझे जाते थे। मैं नहीं समझता कि यहां यह कहा जा सकता है कि अपराध प्रक्रिया संहिता के इन उपबन्धों का अनादर या उल्लंघन पहले बहुत से मामलों में हुआ है। फिर भी संविधान में हम इन उपबन्धों को रखने की आवश्यकता क्यों समझते हैं? इस क्यों का उत्तर मिल जायेगा आपको वर्तमान घटनाओं से, देश में आज जो कुछ हो रहा है उससे, प्रान्तों में जिस तरह न्याय एवं व्यवस्था का प्रशासन चल रहा है उससे, अपने जारी किये अध्यादेशों से तथा उन विधियों से जिन्हें कि हमने केन्द्र में भी पास कर रखे हैं।

इसलिए, इस आशंका का कि देशवासियों का स्वातन्त्र्य सुरक्षित न रहेगा, वास्तविक कारण यह नहीं है कि वर्तमान अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध पर्याप्त नहीं हैं। इसका वास्तविक कारण यह है कि इन उपबन्धों का पहले तो काफी आदर किया जाता था पर आजकल यह बात नहीं है। आज इनका पहले का सा आदर नहीं रह गया है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि आज कल इन उपबन्धों को हम मान्यता नहीं दे रहे हैं क्योंकि बहुत से लोग ऐसे हैं जो यह महसूस करते हैं कि अपने अपराध प्रक्रिया संहिता अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता द्वारा जो स्वातन्त्र्य या अधिकार प्राप्त हैं, वह ऐसे हैं कि अब स्वतन्त्रता पा जाने के बाद उनका उपभोग यहां के देशवासी नहीं कर सकते हैं। यह मैं कोई अपनी ओर से नहीं कह रहा हूं बल्कि मैं उद्धृत कर रहा हूं श्री के.एम. मुन्शी जैसे विशिष्ट व्यक्ति के कथन को, जिन्होंने विधान-सभा में स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध अब अनुपयोगी और असामयिक हो गये है, क्योंकि लोगों को अपराध करने की आदत पड़ गई है और अब इस संहिता पर, जिसके द्वारा उनको और स्वातन्त्र्य मिल जाता है, अमल नहीं किया जा सकता है। इससे प्रशासन सम्बन्धी कार्यों की कठिनाई बहुत ही बढ़ जाती है।

अगर यही विचारधारा है और यही मनोवृत्ति है तो फिर अनुच्छेद 15-क भी बहुत उपचारी सिद्ध नहीं हो सकता है। वर्तमान स्थिति अवश्य ही बड़ी भयावह है। हमें ऐसी घटनायें भी मालूम हैं, जहां प्रान्तों में लोगों का स्वातन्त्र्य छिन गया

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

है। मैं आपके सामने दो मर्मस्पर्शी घटनाओं का उदाहरण रखता हूं, जिसे सुनकर सभा के प्रत्येक सदस्य को सोच विचार में पड़ जाना चाहिये। प्रान्तीय विधान-सभा के दो सदस्य, जो अठारह साल से कांग्रेस में थे और कांग्रेस टिकट पर चुने गये थे, बम्बई सरकार के आदेश से हिरासत में रख लिये थे। स्मरण रहे कि बम्बई में कांग्रेस ही शासनारूढ़ है। एक को रिहाई दी गई 11 महीना बाद और इस बीच में उसे कभी यह नहीं बताया गया कि उसके विरुद्ध अभियोग क्या है। बिना मामला चलाये और बिना दोषसिद्ध प्रमाणित किये उसे इतने दिनों तक हिरासत में रखा गया था। जब उसका स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया तो सरकार ने कृपा कर उसे छोड़ने का आदेश दिया। दूसरे सज्जन अभी भी जेल में पड़े हैं। न उन पर मामला चलाया गया है और न उन्हें कभी यही बताया गया है कि उनके विरुद्ध अभियोग क्या है। और फिर सर्वोपरि उनके साथ सुकृत्य यह किया गया है कि उनको यह सूचना दी गई है कि चूंकि विधि द्वारा निर्धारित अल्पतम अवधि तक उनकी उपस्थिति विधान-सभा में नहीं रही है इसलिए वह प्रान्तीय विधान-सभा के अब सदस्य नहीं रह गये हैं। शासन के आदेश से वह हिरासत में रखे गये, जिससे विधान-सभा में उपस्थित होने से वंचित रहे और इसी आधार पर अब उनको विधान-सभा की सदस्यता से वंचित किया जा रहा है। इससे बढ़कर कानून की और क्या अवहेलना हो सकती है? अगर कानून के प्रति यही हमारा आदर-भाव है, अगर प्रान्तों की हुकूमतें इसी तरह काम करती हैं और हम न इस पर विचार कर सकते हैं और न ऐसे आदेशों के औचित्य पर कोई आपत्ति कर सकते हैं तो फिर मूलाधिकारों का कोई भी उपबन्ध हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकता है।

अगर इस तरह की घटनाओं को आप रोकना चाहते हैं तो आपको इस अनुच्छेद में और बहुत से उपबन्ध रखने होंगे जिसके लिए शायद आप तैयार नहीं हैं। इस अनुच्छेद से स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सकता है। इसमें भी वही उपबन्ध है जो अपराध प्रक्रिया संहिता में है। और अगर आप अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों का आदर करने पर तैयार नहीं हैं, तो मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि अनुच्छेद के इन उपबन्धों को भी आपके द्वारा कोई समादर नहीं प्राप्त हो सकता है। जैसा कि माननीय मित्र पं. ठाकुरदास भार्गव ने कहा है इस उपबन्ध को रखकर आप संसद के मार्ग में रोड़ा अटका रहे हैं। व्यक्तियों के स्वातंत्र्य को अगर हम और विस्तृत करना चाहें तो आपका यह उपबंध उसमें बाधक होगा। प्रस्तुत उपखण्ड (3) के द्वारा सभी तरह के निवारक निरोध के मामलों के लिए आप एक प्रक्रिया निर्धारित कर रहे हैं। अगर राज्य का विधान-मण्डल या संसद ही आगे चल कर यह चाहे कि निरुद्ध व्यक्तियों के बारे में उदारता से काम लिया जाये तो संसद ऐसा नहीं कर सकेगी, क्योंकि आपने संविधान में इसके लिए एक उपबन्ध रख दिया है जिसे संसद बदल नहीं सकती है। इसलिए यह उपबन्ध सर्वथा अनावश्यक है। व्यक्ति को जितना बचाव अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों से मिलता है उससे किसी भी तरह ज्यादा बचाव आपके इस उपबन्ध से नहीं मिल पाता है। अगर आप यह समझते हैं कि अपराध प्रक्रिया संहिता का प्रान्तीय सरकारों को आदर करना चाहिये और व्यक्तियों को आदर करना चाहिये, तो इसके लिए कुछ न कुछ व्यवस्था जरूर करनी होगी ताकि इस बुराई को रोका जा सके। पर इसके लिए यह तरीका नहीं है जो आप अपना रहे हैं। अपनी तुच्छ राय तो यही है।

फिर भी अगर इस अनुच्छेद को रखना ही चाहते हैं तो खण्ड (2) के लिए मैंने जो मसौदा दिया है उसे रखिये। इसकी इबारत आपके खण्ड से छोटी है। इसमें सार की बातों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, केवल भाषा में ही थोड़ा हेर फेर किया गया है। हां, खण्ड (3) के सम्बन्ध में श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन रखा उसका समर्थन मैं जरूर करता हूं। अगर पूरे खण्ड को नहीं तो कम से कम खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) को हटाने की सिफारिश मैं जरूर करूंगा। इसमें जो उपबन्ध है उसके द्वारा तो संसद पर बन्धन लग जाता है और निरुद्ध व्यक्तियों को मुक्त करने के बारे में अगर वह कोई प्रक्रिया निर्धारित करना चाहे तो इस उप-खण्ड के कारण नहीं कर सकता हैं इस उपखण्ड से व्यक्ति के अधिकारों का विस्तार नहीं बल्कि न्यूनन हो जाता है। जहां तक मेरा निजी सम्बन्ध है, मैं इससे सहमत हूं कि कानून की अवहेलना को रोकने के लिए हमें बहुत कुछ करना होगा। माननीय मित्र पं. ठाकुर दास ने यह स्वीकार ही किया है कि स्वेच्छाचारिता हमारे रक्त में प्रवाहित हो रही है और सर्वत्र जो घटनायें हो रही हैं वह इस स्वेच्छाचारिता के ही स्पष्ट लक्षण हैं। गोलियां चलने की तथा लाठी चार्ज की कई घटनायें हुई हैं, पर इस बात का अनुसंधान करने की कहीं कोई कोशिश नहीं की गई कि इसके कारण क्या हैं और जनता की शिकायत क्या है। सम्पूर्ण देश में स्वेच्छाचारिता का इतना बोलबाला हो गया है, विधिसंगत शासन का ऐसा अभाव हो गया है कि सम्भव है, शीघ्र ही हम सभी एक दिन इसकी लपेट में आ जायें। जनता शासन से ऊबती जा रही है। अगर आप यह महसूस करते हैं कि शासन आज लोकप्रिय नहीं रह गया है तो इसके कई कारण हैं, पर दुर्भाग्य यह है कि इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

इन बातों की तरफ अगर इसी तरह ध्यान देना है तो माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से मैं यह अनुरोध करूंगा कि वह ऐसी व्यवथा करें जिससे कि समस्या का वास्तविक समाधान हो सके। इन उपबन्धों को रखने से तो यही होगा कि अभी जो स्वातन्त्र्य प्राप्त है, वह भी छिन जायेगा। अगर इसके लिए आप कठोर उपबन्ध नहीं रखना चाहते हैं तो फिर अनुच्छेद 15 में जो व्यवस्थायें हैं उन्हें ही ज्यों का त्यों रहने दीजिये। मैं उन्हीं से सन्तुष्ट हूं। अनुच्छेद 15-क को इस रूप में रखने से अच्छा यह है कि आप इसे बिल्कुल रखिये ही नहीं।

आपसे मैं साग्रह यह कहना चाहता हूं, श्रीमान, कि स्थिति बड़ी गम्भीर है। कानून के प्रति हमारा अवज्ञाभाव बढ़ता जा रहा है। हम अपने देशवासियों को शासन जिस रूप में कर रहे हैं उससे तो कहीं उदार शासन था विदेशी शासकों का। जिन अधिकारों को विदेशी शासकों ने जनता को प्रदत्त कर रखा था अरसा पहले सन् 1898 में, और जो पचास साल तक यहां बने रहे, जो कि यहां उनकी अवहेलना बहुत बार हुई है, उनको अब बिल्कुल मान्यता नहीं दी जा रही है। अगर आप इन अधिकारों को प्रतिष्ठित रखना चाहते हैं, अगर आप जनता के स्वातन्त्र्य को, उनकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो इसके लिए संविधान में आपको इससे कहीं अधिक सर्वांगीण उपबन्ध रखना होगा जो अभी आपने प्रस्तावित किया है।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर की स्वीकारोक्ति सुनकर सभा का चित्त प्रसन्न हो गया होगा। आपने

[श्री एच.वी. कामत]

यह स्वीकार किया है कि सभा द्वारा पूर्व स्वीकृत अनुच्छेद 15 सन्तोषजनक नहीं है और यह बताया कि इस नवीन अनुच्छेद 15-क के द्वारा वह उस क्षति का निराकरण करना चाहते हैं जो अनुच्छेद 15 के कारण हो सकती है। "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः" की पुरानी कहावत के अनुसार आपने उस नवीन अनुच्छेद को स्वीकार कर आधा बचा लेने की सिफारिश की है। मैं चाहता तो यही हूं कि 'अर्धं त्यजति पंडितः' का ख्याल कर हम इन नवीन अनुच्छेद को स्वीकार कर लेते। पर मैं ऐसा महसूस करता हूं, क्योंकि न तो नाम से ही और न अन्यथा ही मैं पंडित हूं, कि इसको स्वीकार करने में हमें आधा से ही हाथ नहीं धोना होगा बल्कि उससे कहीं ज्यादा से। यदि वस्तुतः 'अर्धं त्यजति' की ही बात होती तो इसे स्वीकार करने में मुझे आपत्ति न होती। पर यहां तो आधा से कहीं अधिक का हमें त्याग करना पड़ रहा है।

यही कारण है जो मैंने अपने संशोधनों की सूचना दी है जिनका अभिप्राय यही है कि हम यथासम्भव अधिक से अधिक अधिकारों को बचा लें और अनुच्छेद 15 को स्वीकार करने से जो क्षति हो सकती है उसका निराकरण कर लें। यदि सभा स्वीकृत अनुच्छेद 15 को पढ़े तो वह देखेगी कि उसमें विधि विहित कार्य-प्रणाली का उल्लेख किया गया है। एक बार जब हमने यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया कि विधि-विहित कार्य-प्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार किसी व्यक्ति को प्राण अथवा दैहिक स्वातंत्र्य से वंचित न किया जायेगा तो मैं नहीं समझता कि इस सम्बन्ध में कार्य प्रणाली को निर्धारित करने का काम भावी संसद पर क्यों नहीं छोड़ दिया जाये। इस नवीन अनुच्छेद 15-क को संविधान में रखकर क्यों देश की भावी संसदों का हाथ बांधा जा रहा है? मेरी आशंका यह है कि भावी संसदों पर भरोसा न होने के कारण ही शायद यह उपबन्ध रखने की कोशिश की जा रही है। मैं यह नहीं कहता कि सभा को भावी संसद से डर है पर मसौदा-समिति को ऐसा डर जरूर है। उसको यह डर है कि संसद बुद्धिमत्ता के साथ कार्य-प्रणाली न निर्धारित करेगी। मुझे खेद है कि मसौदा-समिति ऐसे डर से प्रेरित होकर इस नवीन अनुच्छेद को प्रस्तावित कर रही है। इस समूचे अनुच्छेद को, जिसमें व्यक्ति को दैहिक स्वातंत्र्य से वंचित करने के बारे में विधि और कार्य प्रणाली के लिए विस्तृत उपबन्ध रखे गये हैं, हम आसानी से संसद पर छोड़ सकते थे और वही इन सब बातों के लिए विधि बना लेती। वस्तुतः संविधान में इनको रखने की कोई जरूरत नहीं है और हम जबरदस्ती इन्हें यहां रख रहे हैं। हमारे प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 15 में इतना ही रखना पर्याप्त था कि व्यक्ति के प्राण एवं स्वातंत्र्य को परम पवित्र समझा जायेगा और विधि-विहित कार्य-प्रणाली के अधीन ही कोई इनसे वंचित किया जायेगा। विस्तार की शेष बातों को संसद पर छोड़ा जा सकता था और वह आवश्यकतानुसार इस सम्बन्ध में उपबन्ध बनाती।

अब मैं अपने संशोधनों को एक-एक करके उपस्थित करता हूं। पहले लेता हूं अपने संशोधन नं. 104 को जो आठवें सप्ताह की तीसरी सूची में आया है। मेरा प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'as soon as may be' (यथाशीघ्र) शब्दों के स्थान पर 'before the expiration of seven days

after the arrest' (गिरफ्तारी के बाद सात दिन बीतने के पहले) शब्द रख दिये जायें।''

यह तो एक सर्वविदित बात है, श्रीमान, कि पुलिस या अन्य प्राधिकारी जो किसी को गिरफ्तार करते हैं या हिरासत में रखते हैं वह हमेशा उचित और न्यायसंगत अभिप्रायों से ही प्रेरित होकर ऐसा नहीं करते हैं। प्रशासन के क्षेत्र में—एक जिला के प्रशासन में—मैंने कुछ साल तक काम किया है और इस नाते मुझे खुद यह अच्छी तरह मालूम है कि पुलिस लोगों को सुरक्षा या व्यवस्था सम्बन्धी कारणों के लिए ही गिरफ्तार नहीं करती बल्कि कभी-कभी तो सिर्फ अपनी पुरानी अदावट चुकाने के लिए या अपनी प्रतिशोध भावना को सन्तुष्ट करने के लिए लोगों को गिरफ्तार किया करती है। पुलिस या अन्य प्राधिकारी द्वारा की जाने वाली अनुचित गिरफ्तारी की बुराई को दूर करने के लिए मैं अपने संशोधन द्वारा यह चाहता हूं कि यहां यह स्पष्ट उपबन्ध रख दिया जाये कि गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को गिरफ्तारी से सात दिनों के भीतर गिरफ्तारी के कारणों से अवश्य अवगत करा दिया जायेगा। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद में इसके लिए 'यथाशक्य शीघ्र' शब्द रखे गये हैं। बल्कि मुझे तो खुशी होगी कि उसे गिरफ्तारी के समय ही यह बता दिया जाये कि वह क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ आपका अभिप्राय यह है। पर अपने संशोधन द्वारा आप स्थिति को और भी खराब कर रहे हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ फिर साफ-साफ अवधि क्यों नहीं यहां निर्धारित कर दी जाती है? 'यथाशक्य शीघ्र' शब्दों की जगह आप 'फौरन' शब्द रख दीजिये। मैं उसका स्वागत करूंगा। माननीया मित्र श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी ने भी इस पर संशोधन रखा है। उनका कहना है कि 'यथा शक्य शीघ्र' शब्दों के आगे 'अधिक से अधिक 15 दिनों के भीतर' शब्द रखे जायें। मेरे ख्याल में 15 दिनों की अवधि इसके लिए बहुत लम्बी अवधि है। मेरी राय में सबसे अच्छा होगा 24 घण्टे के अन्दर बन्दी को गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करा दिया जाये। पर अगर 24 घंटे के भीतर बन्दी को गिरफ्तारी के कारणों से सूचित करने पर आपको कोई अड़चन है तो सात दिनों के अन्दर उसे सूचित कीजिये। पर सात दिन से ज्यादा यह अवधि न जानी चाहिये।

अब मैं अपने दूसरे संशोधन नं. 108 को लेता हूं। मैं यह प्रस्ताव रखता हूं:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) में अन्त में प्रयुक्त 'Magistrate' शब्द के आगे 'who shall afford such person an opportunity of being heard' (जो ऐसे व्यक्ति को अपनी बात की सुनवाई का मौका देगा) शब्द रख दिये जायें।"

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ माननीय मित्र श्री कामत को मैं यह बता दूं कि इससे तो स्थिति और भी खराब हो जायेगी। 'यथाशक्य शीघ्र' से अभिप्राय ही यही है कि अगर गिरफ्तारी के पहले नहीं तो गिरफ्तारी के बाद फौरन बन्दी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

को गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराया जाये। खण्ड (2) में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी किया गया है और हवालात में निरुद्ध रखा गया है उसे गिरफ्तारी से 24 घंटे की कालावधि में निकटतम दण्डाधिकारी के समक्ष पेश किया जायेगा। कोई दण्डाधिकारी उसे और निरुद्ध रखने का आदेश देने के लिए अपने अधिकार का तब तक प्रयोग की न करेगा जब तक कि उसे यह न मालूम हो कि उसके विरुद्ध अभियोग क्या है।

***श्री एच.वी. कामतः** आपराधिक मामलों में क्या प्रक्रिया बरती जाती है इसकी थोड़ी जानकारी मुझे भी है। ऐसे भी मामलों की मुझे जानकारी है जिनमें पुलिस ने अभियोग-पत्र या चालान मजिस्ट्रेट के सामने नहीं रखा है फिर भी मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को 15 दिनों तक हिरासत में रखने का आदेश दे दिया है। मैं ऐसे भी मजिस्ट्रेटों को जानता हूं जिन्होंने बिना इतना भी देखे कि आखिर मामले में जाहिर तौर पर क्या-क्या बात नजर आती है, अभियुक्त को पुनः हिरासत में भेज दिया है। दूसरी बात डॉ. अम्बेडकर ने यह कही कि वस्तुतः 'यथाशक्य शीघ्र' से उनका मतलब 'फौरन' से ही है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसका मतलब यह है कि हर हालत में 24 घण्टे के अन्दर अभियुक्त को गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करा ही दिया जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आपका ध्यान आकृष्ट करूंगा कतिपय अनुच्छेदों की ओर, जिनमें 'यथाशक्य शीघ्र' पद संहति का प्रयोग किसी सुनिश्चित अर्थ में नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए आप अनुच्छेद 280 को लीजिये जो राष्ट्रपति की आपात शक्तियों के सम्बन्ध में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** 'यथाशक्य शीघ्र' पद संहति के अर्थ में प्रसंगानुसार कुछ अन्तर तो होगा ही।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं नहीं समझता कि सन्देह में पड़े वकीलों और न्यायाधीशों को समझाने के लिए और यह बताने के लिए संविधान में प्रयुक्त शब्द और पदसंहतियों का अर्थ क्या है, डॉ. अम्बेडकर सदा बने ही रहेंगे। मुझे खेद है कि इस देश के न्यायाधीशों और वकीलों के पथ प्रदर्शन के लिए डॉक्टर अम्बेडकर अमर होकर यहां नहीं बने रहेंगे। संविधान केवल डॉ. अम्बेडकर के जीवनकाल तक के लिए ही नहीं बनाया जा रहा है। बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिये भी। मेरा ख्याल है कि हम यहां संविधान में जो कुछ रखें उसका सुनिश्चित अर्थ रहना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** फिर तो आप अपना अमरत्व बड़े सस्ते भाव में बेच रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** शरीर से अमर बने रहने की मुझे तो कोई इच्छा नहीं है। पर डॉ. अम्बेडकर के सम्बन्ध में ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि वह अमर बने रहने की ही कल्पना किये बैठे हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** आपको यह मान लेना चाहिये कि इस संशोधन को रखकर आपने गलती की।

***श्री एच.वी. कामतः** अगर डॉ. अम्बेडकर यह स्वीकार कर लें कि 'यथाशक्य शीघ्र' पदसंहति का प्रयोग करके इन्होंने गलती की है तो मुझे कुछ नहीं कहना रह जायेगा। सच्ची बात स्वीकार करने में प्रतिष्ठा हानि समझ कर वह दुराग्रह कर रहे हैं जो उनको शोभा नहीं देता है।

अस्तु अब मैं पुनः अपने संशोधन नं. 108 की ओर आता हूं। मुझे खुशी है कि श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी ने भी इसी आशय का एक संशोधन रखा है। इन दोनों संशोधनों का आशय यह है कि मंत्रणा-मण्डली बन्दी या निरुद्ध व्यक्ति को अपनी बात की सुनवाई का मौका देने के बाद ही मामले का निर्णय करेगी और जब तक कि सम्बंधित बन्दी व्यक्ति की बात वह न सुन ले, कभी भी मामले का फैसला न करेगी। जो अनुच्छेद डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तावित किया है उससे आपको यह भरोसा नहीं हो सकता है कि बन्दी व्यक्ति की बात सुनने के बाद ही मण्डली मामले का फैसला करेगी। मैं यह चाहता हूं कि अनुच्छेद में यह स्पष्ट उपबन्ध रख दिया जाये कि मंत्रणा-मण्डली अभियुक्त की या उसके वकील की बात सुनने के बाद ही तीन महीने से अधिक अवधि के लिए उसे हिरासत में रखने की सिफारिश करेगी। ऐसा उपबन्ध न रहने पर तो सम्भव है, मंत्रणा-मण्डली भूल कर बैठे और सरसरी तौर पर मामले में अपना फैसला दे दे। खास करके जब मंत्रणा-मण्डली के सामने बहुत से मामले विचाराधीन होंगे तो वह सरसरी तौर पर ही उन पर फैसला दे देगी। इसलिए हमें संविधान में स्पष्ट रूप से यह उपबन्ध रख देना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति को, जो बन्दी किया गया है या हिरासत में रखा गया है, अपनी बात कहने का मौका देने के बाद ही इस अनुच्छेद के अधीन उसे आगे हिरासत में रखा जायेगा।

अब मैं अपने संशोधन नं. 109 को उपस्थित करता हूं श्रीमान्। मेरा प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के उपखण्ड (2) के आगे यह नया उपखण्ड जोड़ दिया जाये—

'(2a) No detained person shall be subjected to physical or mental ill-treatment.' "

[(2-क) किसी निरुद्ध व्यक्ति को किसी शारीरिक या मानसिक दुर्व्यवहार का शिकार न बनाया जायेगा।]

मेरा ख्याल है कि डॉ. अम्बेडकर को नहीं मालूम है कि ब्रिटिश अमलदारी में खासकर सन् 1942 में और उसके फौरन बाद के जमाने में निरुद्ध व्यक्तियों को बहुधा शारीरिक या मानसिक दुर्व्यवहार का शिकार बनाया जाता है। एक या दो जेलखानों में जहां मैं खुद निरुद्ध रखा गया था मुझे इसकी निजी जानकारी है कि कई बन्दियों को, खास कर के 'सी' श्रेणी के बन्दियों को, बुरी तरह पीटा गया है और तरह-तरह की यातनायें उनको पहुंचाई गई हैं। ऐसा भी हुआ है कि

[श्री एच.वी. कामत]

बन्दियों को पहनने को कोई वस्त्र नहीं दिया गया है और कड़ाके की सर्दी में नंगे ठिठुरता हुआ उन्हें रखा गया है। ऐसा भी हुआ है कि बन्दियों की कोठरियों में पानी भर दिया गया है और घण्टों बिचारों को सील भरे फर्श पर बिताने पड़े हैं। इससे न केवल उनके स्वास्थ्य पर ही अहितकर प्रभाव पड़ता था बल्कि कइयों को तो निमोनिया ने पकड़ लिया और वह बिचारे मर गये। आखिर केवल सन्देह के आधार पर ही तो किसी को निरुद्ध रखा जाता है। इसलिए उचित और न्यायसंगत यही है कि संविधान में यह साफ-साफ कह दिया जाये कि किसी बन्दी के साथ कोई शारीरिक या मानसिक दुर्व्यवहार न किया जायेगा। पश्चिमी जर्मनी के नवीनतम संविधान में–बान संविधान में—जोकि संविधान-निर्माण में यह आखिरी बात नहीं है, देश में अव्यवस्था की स्थिति होने पर भी, जो राज्य के लिए बड़ी खतरनाक थी, संविधान रचयिताओं ने एक उपबन्ध इस आशय का रखा है कि किसी बन्दी के साथ कोई शारीरिक या मानसिक दुर्व्यवहार न किया जायेगा। अपने संविधान की प्रस्तावना में हमने न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुता के उच्च आदर्शों को मान्यता दी है और यह घोषणा की है कि हमारा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य नागरिकों को यह सब देगा प्रस्तावना के बाद के अध्याय तीन और चार को पढ़ने से यही आभास मिलता है कि प्रस्तावना के अनुसार ही संविधान में नागरिकों को सारे अधिकार प्रदत्त किये जायेंगे। पर ज्यों ज्यों आगे के अध्यायों की ओर आप बढ़ेंगे और खासकर जब आप संविधान के अन्त पर पहुंचेंगे तो आपको ऐसा मालूम होगा, गोया संविधान के निर्माताओं ने प्रस्तावना की बातों को सर्वथा भुला ही दिया है। ऐसा मालूम पड़ता है मानो प्रस्तावना की बातों का उनको कोई स्मरण ही न रह गया हो। कहीं-कहीं और अनेक स्थलों पर, न्याय को अगर बिल्कुल अस्वीकार नहीं किया गया है तो उसकी प्राप्ति में विलम्ब करने वाले उपबन्ध जरूर रखे गये हैं और आप यह महसूस करेंगे मानो नागरिकों के स्वातंत्र्य को कुचला जा रहा है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि संविधान में इतने मूलाधिकारों को प्रदान करने की घोषणा करने के बाद हम उनका विखण्डन कर रहे हैं और कहीं-कहीं उनका सर्वथा अभिशून्यन कर रहे हैं।

मेरा दूसरा संशोधन है नं. 113 का।

***अध्यक्षः** श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी द्वारा उपस्थित किये गये संशोधनों के अन्तर्गत संशोधन नं. 113 और 114 की बातें भी आ जाती हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** तो अपना दूसरा संशोधन नं. 116 को मैं अब उपस्थित करता हूं। यह संशोधन इस मसले की मूल बात से ताल्लुक रखता है और मेरे ख्याल में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण संशोधन है। संशोधन यह है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क खण्ड (4) के बाद यह नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(5) Notwithstanding anything contained in this article, the powers conferred on the Supreme Court and the High Courts under

article 25 and article 202 of this Constitution as respects the detention of persons under this article shall not be suspended or abrogated or extinguished.' "

[(5) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी इस अनुच्छेद के अधीन व्यक्तियों के निरोध के बारे में संविधान के अनुच्छेद 25 और 202 के अधीन उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को प्रदत्त की गई शक्तियां निलम्बित, निराकृत या समाप्त न की जायेंगी।]

अपने इस प्रस्ताव पर कुछ कहने से पहले मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये प्रस्ताव के बारे में कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। मैं यह जानता हूं कि मेरे संशोधन की भाषा कुछ अच्छी नहीं है। इसमें निहित सिद्धान्त को स्वीकार कर अगर वकील लोग इसे उपस्थित करते तो अवश्य ही वह इससे अधिक भाषा में लिपिबद्ध करते। डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में निवारक निरोध के बारे में विधि-निर्माण का अधिकार संसद को दिया गया है। मैं यह जानना चाहता हूं कि यह खण्ड जिस रूप में उपस्थित किया गया है उससे निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन निरुद्ध रखे गये व्यक्तियों के बारे में उच्च न्यायालयों को या उच्चतम न्यायालय को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त है, खास करके उनको जो बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लिऐ लेख निकालने का अधिकार है, वह तो नहीं समाप्त हो जाता है। यदि प्रस्तुत अनुच्छेद के द्वारा वह अधिकार नहीं समाप्त होता है तो मेरे इस संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर डॉ. अम्बेडकर यह स्पष्ट रूप से कह दें कि निरुद्ध व्यक्तियों के बारे में उच्च न्यायालयों को और उच्चतम न्यायालय को जो शक्ति और क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं और हिरासत में रखे गये व्यक्ति को बन्दी प्रत्यक्षीकरण-लेख जारी करने के लिए उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों में अपील करने का जो अधिकार है, वह प्रस्तुत अनुच्छेद 15-क के द्वारा निराकृत नहीं होता है, तो मैं अपने संशोधन के लिए आग्रह नहीं करूंगा। अन्यथा इसके लिए मैं अवश्य आग्रह करूंगा। इस बात के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। यही कारण है जो अपना यह संशोधन मुझे सभा के समक्ष रखना पड़ा है।

अनुच्छेद 280 को हम पास कर चुके हैं जिसके द्वारा आपात की स्थिति में राष्ट्रपति को असाधारण शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। संविधान के भाग 3—मूलाधिकार—के अधीन प्राप्त अधिकारों को लागू कराने के लिए व्यक्ति को उच्च न्यायालयों या उच्चतम न्यायालय से अपील करने का जो अधिकार है वह, तथा इस सम्बन्ध में न्यायालयों को जो शक्तियां प्राप्त हैं, वह सब इस अनुच्छेद 280 के अनुसार आपात की दशा में निलम्बित हो जायेंगे। मेरा ख्याल है कि अपने संविधान में केवल यही एक अनुच्छेद है जिसके द्वारा संविधान द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों को—इस बारे में व्यक्ति को जो अधिकार प्राप्त हैं उनको तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के अधिकारों को—निराकृत या समाप्त किया गया है।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी वक्तृता में सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य के समर्थकों का जिक्र किया है। मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं सम्पूर्ण स्वातंत्र्य का समर्थक नहीं हूं।

***अध्यक्षः** सम्पूर्ण स्वातंत्र्य की चर्चा आज उन्होंने नहीं की है।

***श्री एच.वी. कामतः** अगर मुझे ठीक याद है तो आपने इसकी चर्चा की है। (माननीय डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकारात्मक रूप से सिर हिलाया) उन्होंने सम्पूर्ण स्वातंत्र्य का जिक्र किया है। मैं इस सिद्धान्त का हिमायती नहीं हूं कि व्यक्ति को सम्पूर्ण स्वातंत्र्य प्राप्त रहना चाहिये। किसी भी व्यक्ति को सम्पूर्ण वैयक्तिक स्वातंत्र्य नहीं प्राप्त रह सकता है अगर वह समाज में रहना चाहता है। संसार का परित्याग कर अगर कोई पूर्णतः सन्यासी बन जाये, न केवल नाम मात्र के लिए बल्कि सही सन्यासी बन जाये, तो बात दूसरी है। जिसे समाज में रहना है उसके वैयक्तिक स्वातंत्र्य पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध तो रहेगा ही। प्रतिबन्धशून्य स्वातंत्र्य देना किसी को सर्वथा स्वच्छन्द बना देना है। दुनिया भर में सर्वत्र शासनों के लिए यह एक सनातन समस्या रही है कि व्यक्ति के स्वातंत्र्य का राज्य की सुरक्षा के साथ सामंजस्य या मेल कैसे बैठ सकता है। इस प्रश्न पर विचारकों का मत एक नहीं है। उन्होंने बिल्कुल परस्पर विरोधी मत दिये हैं। कुछ ने राज्य को बहुत महत्ता दी है और उसे व्यक्ति से बहुत बड़ी चीज़ माना है, उसे ऐसी सर्वोच्च सत्ता माना है जो व्यक्ति को निर्भय हो कुचलने का अधिकार रखती है। अन्य दूसरे विचारकों ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि राज्य व्यक्ति के लिए होता है न कि व्यक्ति राज्य के लिए। राज्य व्यक्ति के लिए है तथा व्यक्ति राज्य के लिए है, इसके बीच का एक सन्तुलित मार्ग हमें अपनाना होगा। हमें यह बता ध्यान में रखनी चाहिये कि राज्य का निर्माण व्यक्तियों ने मिलकर किया है। इसका अस्तित्व व्यक्तियों के सम्मिलित क्रिया के फलस्वरूप हुआ है। इसलिए हमें यह व्यवस्था जरूर करनी चाहिये कि राज्य व्यक्ति के इस दावे की कि उसे न्याय पाने का वैयक्तिक स्वातंत्र्य पाने का अधिकार है, कभी अन्यायपूर्वक अनुरूप से उपेक्षा न करे। अपने इस स्वतन्त्र गणतंत्र के संस्थापकों को संविधान में इसकी व्यवस्था जरूर करनी चाहिये। व्यक्ति के स्वातंत्र्य को अगर हम छीनते हैं, उसको निराकृत या समाप्त करते हैं बिना किसी समुचित कारण के, राज्य की सुरक्षा के हेतु नहीं बल्कि एक वर्ग विशेष के या अधिकारारूढ़ चन्द व्यक्तियों को अधिकार लिप्सा को तृप्त करने के लिए, तो मेरी समझ से ऐसा उपबन्ध सर्वथा निन्दनीय है।

सवाल यह है कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद में ऐसे मामलों के लिए, जिनमें न्याय का दिखावा भी किये बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर लम्बी अवधि तक हिरासत में रखा जाता हो, उपचारार्थ कुछ उपबन्ध रखा गया है या नहीं। इस अनुच्छेद के खण्ड (4) में यह कहा गया है कि किन-किन परिस्थितियों में तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए और अधिक से अधिक किस कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकेगा, इसको संसद विधि द्वारा विहित करेगी। मान लीजिये, संसद के दिमाग में यही आ जाता है कि अभियुक्त को जीवन भर निवारक निरोध में रखना चाहिये और वह विधि द्वारा ऐसा ही विहित करती है तो उसे ऐसा करने से रोका कैसे जा सकता है? सुतरां संरक्षण के लिए न्यायालयों को यह क्षेत्राधिकार प्राप्त रहना चाहिये कि ऐसे मामलों की सुनवाई कर वह फैसला दे सके कि किसी को निवारक निरोध सम्बन्धी विधि के अधीन गलत तो नहीं निरुद्ध रखा जा रहा है और

आवश्यकता से अधिक अवधि के लिए तो नहीं निरुद्ध रखा जा रहा है। यही कारण है जो उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में यह अधिकार निहित रखने का मैं संशोधन रख रहा हूं कि वह निवारक निरोध का उपबन्ध करने वाले प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन निरुद्ध रखे गये व्यक्तियों के मामलों की सुनवाई करके उनके बारे में फैसला कर सकते हैं। पर जैसा कि मैंने कहा है, अगर इस अनुच्छेद के द्वारा उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की शक्तियों का और उनके क्षेत्राधिकार का अभिशून्यन नहीं होता है, तो फिर मेरा यह संशोधन अनावश्यक है। अगर ऐसी बात नहीं है तो मैं कहूंगा कि इस अनुच्छेद में यह एक खामी है और व्यक्ति का स्वातंत्र्य खतरे में पड़ जायेगा अगर अनुचित निरोध के विरुद्ध हम यहां कुछ संरक्षण की व्यवस्था नहीं कर देते हैं। हमें मालूम होना चाहिये कि पहले ब्रिटिश अमलदारी में अक्सर लोगों को अनुचित निरुद्ध रखा गया है। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि भविष्य में ऐसा किया ही जायेगा पर जब हमें यह मालूम है कि अंग्रेजों ने प्रायः केवल सन्देह के आधार पर या सिर्फ इस लिए कि कोई पदाधिकारी किसी नागरिक से प्रतिशोध लेना चाहता था, लोगों को बिना किसी समुचित कारण के निरुद्ध रखा है। तो इस सम्भावना को हमें दूर ही कर देना चाहिये।

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं केवल एक बात और कहना चाहता हूं और वह यह है। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि यह संविधान मानो हम एक अल्पकालिक अवधि के लिए बना रहे हैं, हम यह समझ रहे हैं कि वह संविधान भी तब तक ही चालू रहेगा जब तक कि हम में से कुछ लोग अधिकारारूढ़ रहेंगे। किसी दीर्घकालीन योजना के आधार पर यह संविधान हम नहीं बना रहे हैं। क्या हममें से किसी ने यह भी सोचा है कि अगर कहीं ऐसे लोगों के हाथ शासन आ गया जो हमारे आदर्शों के, लोकतन्त्र सम्बन्धी हमारी विचारधारा के सर्वथा विरुद्ध हैं तो किस तरह वे इसी संविधान का उपयोग हमारे विरुद्ध करेंगे और हमारी स्वतन्त्रता को, हमारे अधिकारों को कुचलेंगे? यह संविधान जो हम बना रहे हैं, हो सकता है हमारे लिए ही घातक सिद्ध हो जाये और हमी को अपने पाश में बांध ले। अगर ऐसा हुआ तो फिर संविधान में ऐसे उपबन्धों को रखने के लिए सिवाय रोने के और कोई चारा न रह जायेगा। मैं आशा करता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं, श्रीमान, कि संविधान बनाने में हम बुद्धिमत्ता से, दूरदर्शिता से काम ले सकें न केवल बुद्धिमत्ता से बल्कि एक दीर्घकालीन संविधान को दृष्टि में रखकर दूरदृष्टि से हम संविधान बना सकें। आशा है कि हम इस बात की कोशिश करेंगे कि जो संविधान हम बना रहे हैं, वह चन्दरोजा न हो, केवल हमारे ही जीवनकाल पर्यन्त न बना रहे, बल्कि हमारी आने वाली कुछ पीढ़ियां भी इसी पर अमल करें। पर अगर दुर्भाग्य से संविधान रचना में हम इस दृष्टिकोण से काम न ले सके तो फिर यह ध्रुव जानिए कि बाइबिल की यह पुरानी बात बिना चरितार्थ हुए नहीं रह सकती कि जहां दूरदृष्टि नहीं है वहां लोगों का विनाश निश्चित है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 15 को जिस तरह पास किया गया है उस पर यहां काफी बहस हुई है और कानून की नियमानुसार कार्यवाही (due process of law) का उपबन्ध न रखने पर यहां अरसे तक बहस चली है। पुनः इस विषय को चलाकर उन सब बातों की पुनरावृत्ति द्वारा सभा का समय मैं नहीं लेना चाहता क्योंकि मसौदा समिति के अध्यक्ष माननीय

[श्री एच.वी. पातस्कर]

डॉ. अम्बेडकर ने खुद यह बात कही है कि अनुच्छेद 15 जिस रूप में पास किया गया है उसे देखते हुए क्षतिपूर्ति के लिए अनुच्छेद 15-क को संविधान में रखना जरूरी है। अपनी बात मैं यहां अम्बेडकर के इस कथन से शुरू करूंगा और इसके पूर्व की बातों में मैं न जाऊंगा। मैंने तीन या चार संशोधन भेजे हैं जिनका आधार वही प्रश्न है जिन पर यहां काफी बहस चल चुकी है और मैं उन सबकी चर्चा यहां नहीं करना चाहता। मैं केवल यह कोशिश करूंगा कि प्रस्तुत मसौदे में, अगर हो सके तो, कुछ सुधार करा दूं। मसौदे में सिद्धान्त सम्बन्धी सुधार तो मेरी समझ से केवल एक ही करना है बाकी सुधार तो गौण बातों को लेकर हैं।

मेरा पहला संशोधन है नं. 105 का जो यों है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'as soon as may be' (यथा शीघ्र) शब्दों के स्थान पर 'within twenty-four hours' (चौबीस घण्टे के भीतर) शब्द रखे जायें।"

जहां तक खण्ड के अभिप्राय का सम्बन्ध है, मैं सिर्फ पांच मिनट के लिए डॉ. अम्बेडकर का ध्यान अपनी बातों की ओर लेना चाहूंगा। इस सम्बन्ध में हम दोनों का मतैक्य है। 'as soon as may be' पद संहति का भाष्य श्री कामत को समझाते हुए उन्होंने खुद यह कहा है कि इस पद संहति का अर्थ वही है जो 'immediately' (फौरन) शब्द का है। उनके अभिप्राय से मैं सर्वथा सहमत हूं और यह कहूंगा कि 'as soon as may be' शब्दों की जगह 'within twenty-four hours' शब्द रख लिए जायें। खण्ड (2) में डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा है: प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी किया गया है और हवालात में निरुद्ध किया गया है, बन्दीकरण से 24 घण्टे के भीतर निकटतम दण्डाधिकारी के समक्ष पेश किया जायेगा और उस कालावधि से आगे दण्डाधिकारी के अधिकार के बिना यह हवालात में निरुद्ध नहीं रखा जायेगा। खण्ड (1) में यह कहा गया है, बन्दी को 'यथाशक्य शीघ्र' बन्दीकरण के कारणों से अवगत कराया जायेगा। अब मान लीजिये कि पुलिस किसी को गिरफ्तार करती है और खण्ड (2) के अनुसार उसे दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के सामने पेश कर देती है पर उसे गिरफ्तारी के कारणों से अवगत नहीं कराती है क्योंकि खण्ड (2) के अधीन अपेक्षित इतना ही है कि 24 घण्टे के अन्दर बन्दी को दण्डाधिकारी के सामने पेश करना होगा। खण्ड (2) का प्रयोजन यह है कि पुलिस 24 घण्टे के अन्दर बन्दी को दण्डाधिकारी के समक्ष पेश कर दे और उक्त कालावधि से आगे उसे तभी निरुद्ध रखे जब कि दण्डाधिकारी ऐसा करने का प्राधिकार दे। बन्दी की बन्दीकरण के कारणों से अवगत कराने के प्रश्न से इस खण्ड (2) का कोई सम्बन्ध नहीं है। खण्ड (1) का सम्बन्ध है इस प्रश्न से कि बन्दी को बन्दीकरण के कारणों से अवगत कराया जाये। इन दोनों खण्डों का सम्बन्ध दो भिन्न बातों से है। किसी खास मामले के बारे में यह कहा जा सकता है कि बन्दी को 24 घंटे के अन्दर दण्डाधिकारी के सामने पेश कर

दिया गया है और दण्डाधिकारी ने यह प्राधिकार दे दिया है कि उसे एक महीना या एक पखवारे के लिए और निरुद्ध रखा जाये, पर अभी तक 24 घंटे की अवधि बीत जाने पर भी बन्दी को बन्दीकरण के कारणों से अवगत नहीं कराया गया है। उनके अभिप्राय से मैं सर्वथा सहमत हूं। मैं उनका ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि खण्ड (2) का सम्बन्ध इस बात से है कि बन्दी को 24 घंटे के अन्दर दण्डाधिकारी के समक्ष जरूर पेश किया जाये और खण्ड (1) का सम्बन्ध इस बात से है कि बन्दी को बन्दीकरण और निरुद्ध रखने के कारणों से अवगत कराया जाये। ये दोनों खण्ड दो भिन्न विषयों के बारे में हैं। मान लीजिये, किसी व्यक्ति को बन्दी किया जाता है और 24 घण्टे के अन्दर उसे दण्डाधिकारी के समक्ष पेश कर दिया जाता है। पुलिस पदाधिकारी के लिए, हम जानते हैं, मजिस्ट्रेट द्वारा आगे निरुद्ध रखने का प्राधिकार प्राप्त कर लेना कठिन नहीं है। उसे फिर हिरासत में रख दिया जाता है और खण्ड (1) के अधीन यह अपेक्षित होने पर कि यथाशक्य शीघ्र बन्दी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराया जायेगा, उसे अभी तक यह नहीं बताया गया कि क्यों उसे बन्दी किया गया है। ऐसा हो सकता है। इसलिए मैं डॉ. अम्बेडकर को यह सुझाव दूंगा—हमारे उद्देश्य एक हैं और हम सभी यह चाहते हैं कि प्रस्तुत खण्ड (1) और (2) के उपबन्ध वर्तमान अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के आधार पर ही रखे जायें—कि इस संशोधन को मान लें। मैं उनसे अपील करूंगा कि यहां जो खामी रह गई है उसे वह दूर कर दें।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि 'यथाशक्य शीघ्र' शब्दों के बजाय आप रखिये '24 घण्टे के अन्दर'। आशा है माननीय डॉ. अम्बेडकर को यह समझाने में मैं सफल हो सका हूं कि खण्ड (1) और (2) दो भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए हैं और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए लागू होते हैं। 'यथाशक्य शीघ्र' और '24 घण्टे के अन्दर' दोनों पद संहतियों का एक ही अभिप्राय है। और फिर डॉ. अम्बेडकर तो मुझ से भी आगे बढ़ जाते हैं, क्योंकि वह यह कहते हैं कि बन्दी को फौरन उसकी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत करा देना चाहिये। अगर उनका यही अभिप्राय है तो मैं उनसे आग्रह करूंगा कि मेरे संशोधन नं. 105 को वह स्वीकार कर लें।

संशोधन नं. 106 में भी उन्हीं उपबन्धों को प्रयोग में लाने की बात कही गई है जो अपराध प्रक्रिया संहिता में पहले से ही मौजूद हैं। अन्य कई तर्कों के साथ पं. ठाकुर दास भार्गव ने प्रश्न के इस पहलू की भी चर्चा की है जिसका उल्लेख मैंने अपने इस संशोधन में किया है। अपराध प्रक्रिया संहिता की धारा 61 के अनुसार पुलिस पदाधिकारी 24 घण्टे तक बन्दी को निरुद्ध रख सकता है। इसी सम्बन्ध में धारा 167 के परन्तुक में यह कहा गया है कि:

"परन्तु तृतीय और द्वितीय श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट, जिसे खासतौर पर (प्रान्तीय सरकार द्वारा) इसके लिए अधिकार न प्राप्त हो, पुलिस की हिरासत में बन्दी को निरुद्ध रखने का प्राधिकार न देगा।"

इस कानून के अनुसार निरोध की अवधि को बढ़ाने का अधिकार केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को या तृतीय और द्वितीय श्रेणी के उन मजिस्ट्रेटों को ही प्राप्त है जिन्हें खासतौर पर इसके लिए प्राधिकार दिया गया है। इस सम्बन्ध में मेरा संशोधन यह है कि "संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) में 'मजिस्ट्रेट' शब्द के आगे, जहां भी वह

[श्री एच.वी. पातस्कर]

प्रयुक्त हुआ है, 'of first class' (प्रथम श्रेणी के) शब्दों को जोड़ दिया जाये।" इन शब्दों को जोड़ने का क्या कारण है यह स्वत: स्पष्ट है। इस संशोधन के सम्बन्ध में भी यहां किसी को सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई मतभेद न होगा। अपराध प्रक्रिया संहिता में अगर यह अधिकार केवल प्रथम-श्रेणी के मजिस्ट्रेटों को और तृतीय और द्वितीय श्रेणी के ऐसे मजिस्ट्रेटों को, जिनको इसके लिए खासतौर पर प्राधिकृत किया गया हो, दिया गया है तो मेरा ख्याल है कि संविधान में भी, जिस आशय का उपबन्ध माननीय डॉ. अम्बेडकर रखना चाहते हैं, वहां यह अधिकार केवल प्रथम श्रेणी के ही मजिस्ट्रेट को दिया जाना चाहिये। ऐसा क्यों होना चाहिये इसे बताने की जरूरत नहीं है क्योंकि नीचे श्रेणी के मजिस्ट्रेट कौन लोग बनाये जाते हैं, न्याय और न्याय विज्ञान के बारे में उनके क्या विचार होते हैं, इसे हम सब भली भांति जानते हैं। शायद इसी लिए अपराध प्रक्रिया संहिता में संशोधन करना पड़ा था क्योंकि यह महसूस किया गया कि यह अधिकार तृतीय और द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को देना—जब तक कि खासतौर पर उसको इसके लिए प्राधिकृत न किया गया हो—ठीक न होगा। इसलिए मैं यह अपील करूंगा कि यह अधिकार केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों को दिया जाये।

इस मसले के सम्बन्ध में अपने एक साथी सदस्य से मैं विचार-विमर्श कर रहा था तो उन्होंने यह कहा कि कठिनाई यह है कि तृतीय और द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट तो नज़दीक में कहीं भी मिल जायेगा पर प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट मिलना आसान नहीं है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि बन्दी को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने में जो समय लगे उसे यहां शामिल न किया जाये। जब नागरिक के स्वातंत्र्य की सुरक्षा के लिए उपबन्ध रखा जा रहा है तो अच्छा यह होगा कि अभियुक्त को तृतीय या द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट के सामने पेश कराने के बजाय उसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के सामने पेश कराइये, भले ही इससे बन्दी को कुछ और अरसा तक हिरासत में क्यों न रहना पड़े। प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट से यह तो उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह पुलिस की रिपोर्ट से, कार्यपालिका के किसी पदाधिकारी की रिपोर्ट से प्रभावित हो जायेगा। इसी दृष्टिकोण से मैंने अपने संशोधन नं. 106 की सूचना दी है। आशा है डॉ. अम्बेडकर को यह संशोधन स्वीकार्य होगा।

मेरा दूसरा संशोधन है नं. 111 का जो यों है:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'law' शब्द के आगे 'of the union' शब्द जोड़ दिये जायें।"

यह संशोधन शाब्दिक हेरफेर के लिए नहीं है बल्कि एक गम्भीर प्रश्न इसमें निहित है अत: इस प्रश्न पर जो मेरे विचार हैं उन्हें मैं सभा के समक्ष पेश कर उन पर जोर देना चाहता हूं। प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) में यह कहा गया है कि "प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी किया गया है और हिरासत में

निरुद्ध किया गया है, निकटतम दण्डाधिकारी के समक्ष इत्यादि, इत्यादि।" इसके खण्ड (1) में कहा गया है कि बन्दी को उसकी गिरफ्तारी के कारणों से अवगत कराया जायेगा। खण्ड (3) एक परन्तुक के ढंग का है या खण्ड (1) और (2) के लिए उसमें अपवाद बताया गया है। खण्ड (3) में कहा यह गया है कि: इस अनुच्छेद की कोई बात नहीं लागू होगी उस व्यक्ति पर जो (क) तत्समय शत्रु अन्तर्देशीय है। जहां तक इस उपबन्ध का सम्बन्ध है इस पर कोई मतभेद हो नहीं सकता है। आगे चल कर उपखण्ड (ख) में यह कहा गया है—जो व्यक्ति किसी निवारक निरोध उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी या निरुद्ध किया गया है उसको भी इस खण्ड की कोई बात लागू न होगी। मेरा कहना यह है कि जहां तक कि निवारक निरोध सम्बन्धी विधियों का सम्बन्ध है, अपने नवीन लोकतन्त्रीय राज्य में इनमें एकरूपता रहनी चाहिये। फिलहाल भिन्न-भिन्न प्रान्तों ने अपने अलग-अलग कानून इस बारे में बना रखे हैं। बंगाल में एक कानून है तो मद्रास में दूसरा कानून है और बम्बई में एक तीसरा ही कानून है। इनके शब्दों में अन्तर है, प्रयोजन में अन्तर है और उस प्रणाली में अन्तर है जिसके द्वारा उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार छीना गया है। इनके बारे में विभिन्न निर्वचन हैं सुतरां इनके सम्बन्ध में बड़ी गुंजायश है। विभिन्न प्रान्तों के प्रचलित लोक सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों में क्या खामियां हैं इसे कई सदस्यों ने यहां बताया है। इस सम्बन्ध में कुछ कह कर सभा का समय लेना बेकार है।

बहैसियत एक वकील के मेरा कहना यह है कि इस सम्बन्ध में जो भी कानून हों उनमें एकरूपता रहनी चाहिये और सिर्फ संघ-शासन को ही ऐसे कानून बनाने का अधिकार रहना चाहिये। मुझ से यह कहा गया है कि चूंकि यह विषय समवर्ती सूची में रखा जा चुका है इसलिए अब इसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता है। दुर्भाग्य से समवर्ती सूची बनते समय मैं यहां उपस्थित नहीं था कि अपने विचार व्यक्त करता। पर मेरी समझ से यह कठिनाई भी नहीं बाधक होती है क्योंकि समवर्ती सूची में, जैसा कि मुझे बताया गया है, लोक-सुरक्षा के बारे में कानून बनाने का उपबन्ध रखा गया है, पर राज्य की सुरक्षा के बारे में कानून बनाने का अधिकार एक मात्र संसद को दिया गया है। और फिर अगर समवर्ती सूची में यह रखा भी गया है तो संविधान में यह रखने में क्या नुकसान है कि जहां निवारक निरोध सम्बन्धी विधियों का सम्बन्ध है जिसमें व्यक्ति के स्वातंत्र्य का प्रश्न निहित है, खण्ड (3) में दिया गया अपवाद केवल संघ द्वारा स्वीकृत विधियों के सम्बन्ध में ही लागू होगा। अगर किसी प्रान्तीय शासन ने इस सम्बन्ध में कोई कानून बनाया है तो वह अनुच्छेद 15-क के उपबन्धों के ही अनुरूप होना चाहिये जिन्हें हम यहां रख रहे हैं, वह उन परिसीमाओं के अन्दर ही होना चाहिये जो व्यक्तियों के बन्दीकरण या निरोध सम्बन्धी विधियों के लिए रखी जा रही है।

इसलिए, मेरी समझ से न्यायसंगत यही है, उचित यही है, देश के प्रशासन के लिए और हमारी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के लिए हितकर यही है कि व्यक्ति के स्वातंत्र्य पर प्रतिबन्ध लगाने के बारे में देश भर में एक सा कानून हो। इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न कानून रखने में कोई लाभ नहीं है। इस सम्बन्ध में कानूनों में एकरूपता न रहने से सारे देश पर बुरा असर पड़ेगा, केन्द्रीय शासन की प्रतिष्ठा पर घातक प्रभाव पड़ेगा, चाहे उन कानूनों को केन्द्रीय शासन ने पास किया हो या प्रान्तीय शासन ने। इसलिए मेरा कहना यही है कि प्रस्तुत संशोधन में एक सारवान

[श्री एच.वी. पातस्कर]

प्रश्न निहित है और मसौदा-समिति से मैं अनुरोध करूंगा कि वह इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करे। मेरा मतलब यह नहीं है कि पुनः मूल बात को उठाऊं या इस पक्ष या उस पक्ष को दोषी ठहराऊं। मैं जानता हूं कि 'कानून की नियमानुसार कार्यवाही' (due process of law) की बात जो यहां नहीं रखी गई उसके लिए डॉ. अम्बेडकर दोषी नहीं हैं जैसा कि एक वक्ता ने यहां संकेत किया है। इसमें दोष हम सबका है। इसके लिए मैं किसी से कम खिन्न नहीं हूं कि हमने ठीक काम नहीं किया। फिर भी मैं यही कहूंगा कि मसौदा समिति को एतदर्थ दोषी बनाने में या उन पर कोई आरोप करने में कोई लाभ नहीं है। असल खराबी यह है कि जब भी सभा के समक्ष ऐसा कोई गम्भीर प्रश्न आता है तो सदस्य उसकी ओर समुचित ध्यान नहीं देते। वह ऐसा क्यों करते हैं उसकी चर्चा मैं नहीं करूंगा।

मैं मसौदा समिति से यह अनुरोध करूंगा कि केन्द्रीय शासन के हित में, समस्त देश के हित में अच्छा यही होगा कि निवारक निरोध सम्बन्धी अप्रिय विषय के बारे में देश भर में एक तरह का कानून रखा जाये। अधिकृत सूत्रों से मुझे यह मालूम हुआ है कि ऐसे उपबन्धों को हमने यहां जिस तरह पास किया है उसके लिए विदेशों में भी हम दोषी ठहराये जा रहे हैं। ऐसी सूरत में क्या यह वांछनीय नहीं होगा कि इसके बारे में देश भर में एक सा कानून हो? हमने स्वतन्त्रता प्राप्त जरूर की है पर वह हमारे लिजए बिल्कुल नई चीज है। लोकतन्त्रात्मक ढंग पर चलना हमने सीखा नहीं है और हमारी कई कार्रवाइयां ऐसी होती हैं जिनको नियंत्रित नहीं किया जा सकता है कि जिसके लिए बिना मुकदमा चलाये लोगों को हिरासत में रखना जरूरी हो जाता है। मेरा कहना यह है कि इस समय जो कुछ हो रहा है उससे हमें गुमराह न होना चाहिये; हितकर सिद्धान्तों के आधार पर ही हमें चलना चाहिये और इसके बारे में अगर कानून की जरूरत पड़े ही, तो इसे हमें संसद पर छोड़ना चाहिये क्योंकि संसद स्थिति पर तटस्थ हो शांतिपूर्वक विचार करके ही कोई कानून बनायेगी। प्रान्तीय शासन इस तरह सोच कर नहीं कानून बना सकता है।

इसमें दूसरी खराबी यह है कि जब भी आप राज्य या प्रान्त को इस सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार देंगे, वह आसान से आसान उपाय ही इसके लिए अपनायेगा क्योंकि मानव-प्रवृत्ति ही ऐसी होती है। जहां कहीं भी ऐसे खुराफात की सम्भावना दिखाई देगी जिसे कानून की साधारण प्रक्रिया द्वारा दबाने में दिक्कत होगी—क्योंकि यह प्रक्रिया कुछ जटिल तो होती ही है—राज्य नागरिक की स्वतन्त्रता को ही कम करना चाहेगा और खुराफात को रोकने के लिए वैसा ही कानून बनायेगा। वस्तुतः मैं तो यह देखता हूं कि यह प्रणाली सफल नहीं हो पाई है। उल्टे, इससे हमारी लोकप्रियता कम हो गई है और हम लोग अप्रिय हो गये हैं। क्योंकि ज्यों ही आप किसी को लोक सुरक्षा सम्बन्धी किसी कानून के अधीन बिना मुकदमा चलाये हिरासत में रख देते हैं वह क्षुब्ध हो उठता है और उसके समर्थकों को एक मौका मिल जाता है। इसलिए मेरी समझ से सर्वोत्तम यही होगा कि, अगर ऐसे कानूनों की जरूरत हो तो देश भर में वह एक तरह के हों और इनको पास करने का अधिकार केन्द्रीय संसद को ही मिलना चाहये जहां सभी राज्यों के प्रतिनिधि समवेत होते हैं और जो प्रान्तीय शासनों की अपेक्षा कहीं अधिक तटस्थता और

गम्भीरता के साथ स्थिति पर विचार करके ही कानून बनायेंगी। इसलिए मैं इस संशोधन को स्वीकार करने की सभा से सिफारिश करूंगा।

यह एक सामान्य सी बात है। सम्भवत: मसौदा-समिति के ख्याल में भी यह बात थी जैसा कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (4) की इबारत से साफ जाहिर है। अगर यह बात न होती तो इस खण्ड में इसका उल्लेख ही न आता। खण्ड (4) में यह कहा गया है:

"संसद विधि द्वारा निहित कर सकेगी कि किन-किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया कोई व्यक्ति तीन महीने से अधिक कालावधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है तथा उस अधिकतम कालावधि को भी विहित कर सकेगी जब तक के लिए ऐसा व्यक्ति निरुद्ध रखा जा सकेगा।"

मेरा संशोधन यह है कि ये अपवाद केवल ऐसे ही व्यक्ति के बारे में लागू होना चाहिये जो निवारक निरोध को उपबन्धित करने वाली किसी संघीय विधि के अधीन बन्दी किया गया हो। आशा है यह संशोधन मसौदा-समिति को मान्य होगा।

मेरा दूसरा संशोधन है नं. 112 का जिसमें यह कहा गया है:

"कि संशोधन सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'or are qualified to be appointed' (अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं) शब्दों को हटा दिया जाये।"

खण्ड (3) के उत्तरार्ध के अंश में एक मन्त्रणा-मण्डली का उपबन्ध किया गया है क्योंकि सोचा यह गया है कि जब बिना मामला चलाये लोगों को निरुद्ध रखने का प्रयास किया जा रहा है तो उनके मामलों पर किसी स्वतन्त्र प्राधिकारी द्वारा विचार किया ही जाना चाहिये ताकि कार्यपालिका की कार्रवाई को, जिसके अधीन व्यक्ति का स्वातंत्र्य छीना जा रहा हो, कुछ समर्थन तो प्राप्त हो जाये। हमें ऐसी घटनाओं का पता है जहां लोगों को लम्बी अवधि तक निरुद्ध रखा गया है। इसलिए यह ठीक ही सोचा गया है कि तीन माह के ऊपर अगर किसी को निरुद्ध रखना है तो इसे कार्यपालिका की मरजी पर न छोड़कर किसी निकाय पर छोड़ना चाहिये जो मामले पर विचार कर यथोचित निर्णय दे। इसलिए यह उपबन्ध एक हितकर उपबन्ध ही है। पर मैं यह चाहता हूं कि यहां 'or are qualified to be appointed' (अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं) शब्दों को हटा दिया जाये। मंत्रणा-मण्डली के उपबन्ध के पीछे मूल विचार ही यह है कि मामला ऐसे न्यायाधिकरण के सामने जाये या ऐसे प्राधिकारी के सामने जाये जो उस पर न्यायिक ढंग से विचार करने में सक्षम हो, जिसे इस काम का अनुभव हो या जो न्याय प्रशासन के काम से सम्बन्धित हो। किन्तु यहां यह कहना कि "or are qualified to be appointed" बिल्कुल खतरनाक बात होगी। यह तो मैं समझ सकता हूं कि मंत्रणा-मण्डली में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने चाहियें जो उस काम को कर रहे हों।

[श्री एच.वी. पातस्कर]

यह भी समझ में आ सकता है कि मंत्रणा-मण्डली ऐसे लोगों से बननी चाहिये जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हों और विचारार्थ पेश किये गये मामलों पर न्यायिक ढंग से विचार कर सकते हों।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी__ (मद्रास : जनरल): माननीय सदस्य क्या खुद अपने जैसे व्यक्तियों को मंत्रणा-मण्डली का सदस्य नहीं बनने देना चाहेंगे?

*__श्री एच.वी. पातस्कर:__ जी नहीं। जहां आपने नियुक्त किये जाने वाले व्यक्तियों का दायरा यहां तक बढ़ाया नहीं कि यह उपबन्ध एक खतरे की चीज बन जायेगा। मंत्रणा-मण्डली के सदस्यों को सम्भवत: नियुक्त करेगी कार्यपालिका और इस उपबन्ध के द्वारा उसे एक छिद्र मिल जायेगा। यह कहना कि वर्तमान कार्यपालिका ऐसा अन्याय करेगी यह उचित नहीं होगा, पर सवाल यह है कि जब ऐसा छिद्र रहने दिया जाता है तो भविष्य में कार्यपालिका का जो भी प्रमुख होगा इससे लाभ उठाकर मंत्रणा-मण्डली में ऐसे आदमी भर सकता है जो इस काम के लिए योग्य न हों। वर्तमान व्यवस्था के अनुसार कोई भी व्यक्ति जिसने कानून शास्त्र में डिग्री प्राप्त की है, वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है और न्यायाधीश होने के नाते वह मंत्रणा-मण्डली का सदस्य बनाया जा सकता है। पर अगर हम इस छिद्र को-"or are qualified to be appointed" शब्दों को—यहां रहने देते हैं तो इसका दुरुपयोग किया जा सकता है। इसके न रखने पर तो मंत्रणा-मण्डली में ऐसे लोग ही लिये जायेंगे जो न्यायाधीश हों, न्यायाधीश का काम कर चुके हों। यह जरूर है कि ऐसे भी कुछ प्रसिद्ध न्याय विशारद व्यक्ति आपको मिलेंगे जो न किसी न्यायासन पर हैं और न रहे हैं। पर इस छिद्र को रहने देने से यह होगा कि इससे विवेकशून्य कार्यपालिका ऐसे लोगों को मनोनीत कर सकती है जो उनके अपने आदमी होंगे। ऐसे बहुत से लोग हमें मिलेंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या रह चुके हैं और मुझे विश्वास है कि ऐसा व्यक्ति जो इस पद पर काम कर चुका है वह ऐसे किसी आदमी से, जो ऐसे पद पर नहीं रहा है, कहीं अधिक स्वतन्त्रता और ईमानदारी के साथ मामलों पर विचार कर सकेगा। इस पर और विस्तार में जाने की मुझे कोई जरूरत नहीं है। ऐसे भी व्यक्ति आपको मिल सकते हैं जो न्यायासन पर नहीं रहे हैं पर न्यायाधीशों से भी योग्य हैं पर वांछनीय यही है कि मंत्रणा-मण्डली में ऐसे ही लोग हों जो न्यायाधीश के रूप में काम कर चुके हों। इसी दृष्टिकोण से अपना यह संशोधन नं. 112 मैंने यहां पेश किया है।

अपनी वक्तृता समाप्त करते हुए अब मैं यह कहना चाहता हूं कि जहां तक शक्य हो सका है, मैंने "कानून की नियमानुसार कार्यवाही" (due process of law) सम्बन्धी मतभेद की चर्चा यहां नहीं चलाई है। मुझे प्रसन्नता है कि डॉ. अम्बेडकर ने और मसौदा-समिति ने इस कमी का निराकरण करना पसन्द किया और इस पद संहति को न रखने से जो क्षति हो सकती है उसकी पूर्ति के लिए नवीन अनुच्छेद 15-क के उपबन्धों को संविधान में स्थान देना ठीक समझा। मसौदा-समिति से मेरा कोई विवाद नहीं है पर जिस उद्देश्य से इस नवीन अनुच्छेद को रखा

जा रहा है उसकी पूर्ति यहां और सन्तोषजनक रूप से की जानी चाहिये ताकि अनुच्छेद 15 जन्य क्षति को नवीन अनुच्छेद 15-क के द्वारा पूरा किया जा सके, जिससे कि उनकी आशंका का निराकरण हो, जिनको दुर्भाग्य से आज ऐसे अन्य कई कानूनों के कारण कष्ट भुगतना पड़ रहा है।

इसलिए सभा से मैं यही सिफारिश करूंगा कि वह मेरे संशोधनों को स्वीकार करे। जहां तक कि मेरे संशोधन नं. 105 और 106 का सम्बन्ध है इसके अभिप्राय के बारे में मसौदा समिति में और मुझमें सर्वथा कोई मतभेद नहीं है। संशोधन नं. 105 के बारे में तो कोई मतभेद है ही नहीं। जहां तक नं. 106 का सम्बन्ध है इसमें वही उपबन्ध रखे गये हैं जो अपराध प्रक्रिया संहिता में वर्तमान हैं और मैं नहीं समझता कि मसौदा-समिति अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों से मुकरना चाहती है। मेरा ख्याल यही है कि यह अधिकार केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों को ही रहना चाहिये। द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटों द्वारा दिये गये अधिकार पर भरोसा करना ठीक नहीं है। अवैतनिक मजिस्ट्रेटों को रखना हमने बिल्कुल उठा नहीं दिया है। उल्टे मैं तो यह देखता हूं कि इनको स्थायी रूप से रखने की कोशिश की जा रही है। क्यों ऐसा किया जा रहा है इस पर मुझे इस बहस के सिलसिले में कुछ कहने की जरूरत नहीं है। इसलिए, मेरी समझ से तो अच्छा यही होगा कि हम अपराध प्रक्रिया संहिता के सिद्धान्तों का अनुगमन करें और इस अधिकार को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों के ही हाथ में दें ताकि न्याय के सम्बन्ध में हमें कुछ निश्चितता रहे। संशोधन नं. 111 में यह कहा गया है कि ऐसे विषयों के बारे में सारे देश के लिए एक सा कानून लागू होना चाहिये। बावजूद इस बात के कि इस विषय को हमने समवर्ती सूची में रख दिया है, हम यहां रख सकते हैं कि यह अपवाद केवल ऐसे ही व्यक्तियों के लिए लागू होगा जो संघ द्वारा स्वीकृत किसी विधि के अधीन बन्दी और निरुद्ध किये गये हैं। आशा है मसौदा-समिति को मेरे विचार जचेंगे।

संशोधन नं. 112 केवल इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि जनता में यह अनुभूति पैदा हो सके कि वर्तमान स्थिति के अनुरूप इस सम्बन्ध में जो सर्वोत्तम व्यवस्था हो सकती है वही रखने का हम प्रयास कर रहे हैं, हम यथाशक्य यह चेष्टा कर रहे हैं कि सबके साथ न्याय हो, अन्याय न हो और उन लोगों को, जो आज दुर्भाग्य से निरुद्ध पड़े हैं, उनको हम समुचित मौका दे रहे हैं।

मसौदा-समिति से और इस सभा से मैं अपने इन संशोधनों को स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्:

"कि संशोधन-सूची 1 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन नं. 1 में प्रस्तावित अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:—

"Provided that in the case of any such person so recommended for detention as stated in sub-clause (a) of clause (3), the total period of his

[श्री आर.के. सिधवा]

detention shall not extend beyond nine months provided the Advisory Board has in its possession direct and ample evidence that such person is a source of continuous danger to the State and the Society.' "

[परन्तु ऐसे किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में, जिसके लिए खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में दिये गये निरोध की सिफारिश की कई है, निरोध की कुल अवधि 9 महीने से ऊपर न जायेगी बशर्ते कि मंत्रणा-मण्डली के पास इस बात का प्रत्यक्ष और पर्याप्त साक्ष्य हो कि कि वह व्यक्ति राज्य एवं समाज के लिए सतत संकट का कारण है।]

प्रस्तुत अनुच्छेद को पढ़ते समय मैंने यह जानना चाहा कि आया इसके द्वारा नजरबन्द को कुछ छूट या सुविधा मिलती है या उनके लिए अपराध प्रक्रिया संहिता या भारतीय दण्ड विधान संहिता में जो उपबन्ध रहे हैं वह और भी कठोर कर दिये गये हैं।

मेरा ख्याल यह है, श्रीमान, कि प्रस्तावित अनुच्छेद के द्वारा नजरबन्दों को कोई रियायत या सुविधा नहीं मिलती है। यह तो मैं महसूस करता हूं कि नजरबन्दों के लिए जो वर्तमान कानून हैं, उनमें कोई कठोरता इस अनुच्छेद के द्वारा तो नहीं आती है, पर इस अनुच्छेद में ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती जिसके लिए इसे संविधान में स्थान दिया जाये। इस तरह के मामलों के लिए संविधान में लचीले उपबन्ध होने चाहियें ताकि देश की स्थिति के अनुसार कानून बनाये जा सकें। मौजूदा हालात में हमें ख्याल रखना होगा वस्तुस्थिति का, यानी शान्ति का, स्थिरता का और लोक व्यवस्था का और इन बातों को देखते हुए संविधान में कठोर उपबन्धों का रखना ठीक नहीं है जो सम्भवत: उस समय के लिए, जब कि देश की शान्ति खतरे में होगी, वांछनीय नहीं हो सकते हैं। मैं यह देखता हूं, श्रीमान, कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) तो अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के प्रतिछवि मात्र हैं जैसा कि यहां कई सदस्यों ने कहा है। खण्ड (3) में मंत्रणा-मण्डली की स्थापना का उपबन्ध रखा गया है। ऐसी मन्त्रणा-मण्डली तो यहां पहले से ही अस्तित्व में है आगे भी बन सकती है। पहले भी नजरबन्दों से सफाई मांगी जाती थी और मंत्रणा-मण्डली, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से बनी होती थी, सम्बन्धित शासनों के मामले के बारे में अपनी राय दे दिया करती थी। मंत्रणा-मण्डली सम्बन्धी उपबन्ध भी कोई नई चीज नहीं है।

खण्ड (4) में यह कहा गया है कि संसद इस सम्बन्ध में विधि बना सकती है और निरोध की तीन माह की अवधि को वह और बढ़ा सकती है। मेरे संशोधन में यह कहा गया है मंत्रणा-मण्डली के सामने मामला जाने पर वह इस बात का ख्याल रखेगी कि बन्दी 9 महीने से ऊपर न नजरबन्द रखा जाये और

9 माह के ऊपर नज़रबन्द रखने का निर्णय वह तभी दे सकती है जब कि उसके पास इसका पक्का प्रमाण हो कि नज़रबन्द व्यक्ति समाज के लिए एक खतरा है, एक अभिशाप है और समाज के स्वातंत्र्य को नष्ट करने पर वह तुला हुआ है। अवश्य ही ऐसे व्यक्ति के शमन के लिए जो हमारे समुचित स्वातंत्र्य को हिंसात्मक उपायों द्वारा ध्वंस करने पर तुला हुआ है, आप जो भी कानून बनाइये, मैं आपके साथ हूं। ऐसे व्यक्ति को कभी शरण न मिलनी चाहिये और न उसको रक्षा मिलनी चाहिये। इस सम्बन्ध में मेरा यह निश्चित मत है। पर मैं यह जरूर कहूंगा कि जो लोग सिर्फ सन्देह के आधार पर नज़रबन्द किये गये हैं उनको हमें पूरा बचाव देना चाहिये। इस प्रयोजन के लिए प्रस्तुत अनुच्छेद में कोई उपबन्ध नहीं रखा गया है। उल्टे मैं यह देखता हूं कि नज़रबन्द को हर तरफ से बांध दिया गया है। हमें यह मालूम है, श्रीमान, कि ब्रिटिश अमलदारी में नज़रबन्दों को जेल में डाल दिया गया था और बाद में विधान मण्डल ने यह कानून बनाया था कि निरोध की अधिकतम अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती है और बाद में चलकर यह अवधि दो साल कर दी गई थी। प्रस्तुत अनुच्छेद में निरोध की कोई अधिकतम अवधि नहीं विहित की गई है और इसके अनुसार किसी को अनिश्चित अवधि के लिए निरुद्ध किया जा सकता है। मंत्रणा-मण्डली कह सकती है कि निरोध जारी रखा जाये। आज इस सम्बन्ध में जो होता है वह यह है। नज़रबन्द से यह पूछा जाता है कि नज़रबन्दी के खिलाफ उसे कुछ कहना है क्या? इसके सिवाय और कुछ नहीं होता है। अभियुक्त के वक्तव्य और खुफिया पुलिस की रिपोर्ट पर विचार करके न्यायाधीश अपनी राय दे देते हैं। मैं निजी तौर पर यही महसूस करता हूं कि अभियुक्त के विरुद्ध जो भी आरोप और साक्ष्य हो, वह उसे जरूर मिलना चाहिये ताकि वह यह बता सके कि उसके विरुद्ध लगाये गये आरोप सही हैं या गलत। अभियुक्त के वक्तव्य के बाद न्यायाधीशों को मामले पर विचार करना चाहिये? पर यह ठीक नहीं है कि महज खुफिया पुलिस की रिपोर्ट पर न्यायाधीश एक तरफा फैसला दे दे। अभियुक्त यह जरूर कहेगा कि "किसलिए आप मुझे नज़रबन्द रख रहे हैं? वह अभियोग क्या है जिसके लिये मैं नजरबंद किया जा रहा हूं। आप मुझसे सफाई मांगते हैं। मैं यह कहता हूं कि मैं कतई दोषी नहीं हूं मुझे कृपया रिहा कीजिये।" दूसरी तरफ न्यायाधीश यह कहेगा कि "आपको नज़रबन्द रखने के पर्याप्त कारण हैं इसलिए आपको एक अनिश्चित अवधि तक नज़रबन्द रखा जायेगा।" यह तो कोई उचित व्यवस्था नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि इस अनुच्छेद के द्वारा वर्तमान व्यवस्था में कोई भी सुधार किया गया है। देश में इस समय जो हालत है उसे मैं समझता हूं पर इसके लिए एक अवधि निर्दिष्ट होनी चाहिये। सारी बातों को न्यायाधीशों की मरजी पर हमें न छोड़ना चाहिये। मैं ऐसा महसूस करता हूं कि अभियुक्त के विरुद्ध जो आरोप हों वह सबको मालूम हो जाने चाहिये। मंत्रणा-मण्डली को यह कहना चाहिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति को इसलिए निरुद्ध किया गया है कि वह समाज के लिए खतरे का कारण है, वह समाज के स्वातंत्र्य को नष्ट करने पर तुला हुआ है। ऐसी व्यवस्था से जनता को शासन के प्रति विश्वास होगा और वह यह समझेगी कि उस व्यक्ति को एक अनिश्चित अवधि तक निरुद्ध रखना ही ठीक है, वह इसी के लायक है। हो सकता है कुछ खास खास मामलों में अभियुक्त के विरुद्ध लगाये आरोपों को गुप्त रखना जरूरी हो। पर ऐसे व्यक्तियों को जब आप नज़रबन्द करना चाहते हैं तो नज़रबन्दी के कारणों से तो जनता को अवगत करा ही देना ठीक होगा। अन्यथा जनता के मन में इस बात को लेकर सन्देह और आशंकायें पैदा होंगी कि अमुक व्यक्ति को आखिर क्यों निरुद्ध रखा जा रहा है।

[श्री आर.के. सिधवा]

इस दृष्टिकोण से मेरा संशोधन स्पष्ट है। उसमें यह कहा गया है कि कोई व्यक्ति 9 महीने से अधिक अवधि तक निरुद्ध न रखा जायेगा और अगर उसे आगे निरुद्ध रखना हो तो उसके विरुद्ध इस बात का स्पष्ट साक्ष्य होना चाहिये कि वह बड़ा खतरनाक और हिंसात्मक व्यक्ति है, समाज के लिए वह खतरे का कारण है और फैसले के जरिये यह सब घोषित हो जाना चाहिये। जनता को इससे अवगत करा देना चाहिये कि न्यायाधीशों की राय यही है कि उसे निरुद्ध रखा जाये क्योंकि उनके पास इसके पर्याप्त साक्ष्य हैं कि वह समाज के लिए खतरनाक है। अगर ऐसा संशोधन अनुच्छेद में कर दिया जाता है तो इस अनुच्छेद को रखना औचित्यपूर्ण माना जा सकता है। अनुच्छेद 15 जनता को स्वातन्त्र्य प्रदान करता है। उसमें यह कहा गया है कि देश के कानूनों के अधीन रहते हुए हर कोई कुछ भी करने का स्वातंत्र्य रखता है। उसको सम्पूर्ण स्वातंत्र्य नहीं दिया गया है। देश के कानूनों के अधीन ही उसे अपने स्वातंत्र्याधिकार का प्रयोग करना होगा। मैं यह नहीं कहता कि हर आदमी को सम्पूर्ण स्वातंत्र्य मिलना चाहिये। देश के कानूनों के अधीन रहते हुए ही उसे अपने स्वातंत्र्याधिकार पर अमल करने का अधिकार होना चाहिये। पर अनुच्छेद 15-क में तो मैं यह देखता हूं निरुद्ध रखे जाने वाले व्यक्ति को कोई भी रियायत या सुविधा कतई दी ही नहीं गई है। उल्टे मैं तो ऐसा महसूस करता हूं कि इस अनुच्छेद के द्वारा आप उसे सर्वथा असहाय अवस्था में डाल रहे हैं। तरह-तरह के कानूनों को संविधान में लिपिबद्ध कर आप उसे सदा के लिए बन्दिश में डाल रहे हैं।

इसलिए मेरी समझ से तो संविधान में अनुच्छेद 15-क को रखने में कोई औचित्य नहीं है। इसके लिए संसद वर्तमान है। कानून बनाने का काम करती है संसद और वही देश की स्थिति को देखते हुए समय-समय पर कानून बना देगी। ऐसा उपबन्ध आप संविधान में क्यों रख रहे हैं? ऐसे अनुच्छेद को संविधान में रखना तो राज्य के लिए अहितकर होगा। संविधान में आप इसे रखना ही किसलिए चाहते हैं? क्यों नहीं संसद पर छोड़ देते हैं? निरुद्ध किया गया व्यक्ति, हो सकता है बिल्कुल निर्दोष हो। आखिर राज्य की व्यवस्था पदाधिकारी ही चलाते हैं और उनकी मनोवृत्ति क्या होती है इसे हम भली भांति जानते हैं। पदाधिकारी तो आखिर पदाधिकारी ही ठहरे। उन्हें तो एक निश्चित प्रक्रिया का ही अनुगमन करना पड़ता है इसलिए अच्छे से अच्छे लोकतन्त्रीय शासन में भी बहुधा सम्भावना इस बात की रहती है कि कानूनों का दुरुपयोग होगा। ऐसी हालत में नज़रबन्द को जो केवल सन्देह के आधार पर नज़रबन्द किया है, समुचित रक्षा प्राप्त रहनी चाहिये। मेरा कहना यही है। जो लोग समाज के स्वातंत्र्य को नष्ट करने पर तुले हैं उनसे मुझे कोई सहानुभूति नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को तो किसी तरह की सहानुभूति नहीं मिलनी चाहिये। इस प्रयोजन के लिए अगर मसौदा-समिति कोई कठोर व्यवस्था भी इस अनुच्छेद में रखना चाहती है तो मैं उसके साथ हूं। पर अन्य किसी प्रयोजन के लिए अगर कोई कठोर कानून यहां रखा जाता है तो मैं साथ नहीं दे सकता। हमें मालूम है कि वर्तमान समय में भी शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों के लिए या अन्य ऐसी बातों के लिए पदाधिकारियों ने लोगों को गिरफ्तार कर निरुद्ध कर दिया है और बाद में फिर मन्त्रियों ने जब यह महसूस किया कि ऐसा करना ठीक नहीं है तो उन्हें छोड़ दिया गया है। जैसा मैंने कहा इस अनुच्छेद के द्वारा तो वर्तमान स्थिति में

कोई भी सुधार नहीं होता है। आखिर किसी प्रयोजन के लिए जब कोई उपबन्ध आप रखते हैं, कोई अनुच्छेद रखते हैं तो उसके लिए कुछ छूट या स्वातंत्र्य तो नागरिकों को देंगे।

***अध्यक्ष:** आप तो अपनी बातों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इस संशोधन को रखने में मेरा क्या उद्देश्य है यह मैं कह ही चुका हूं। सभा से मैं इस बात की सिफारिश करता हूं कि वह इसे स्वीकार करे।

***डॉ. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान:

"कि अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक में यह नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(aa) As soon as may be after the arrest of the person, the grounds on which he has been arrested shall be communicated to him, and he shall be informed that he may submit such explanation as he desires to make, which shall be placed before the Advisory Board referred to in sub-clause (a)' "

[(कक) व्यक्ति की गिरफ्तारी के बाद यथाशक्य शीघ्र उसे गिरफ्तारी के कारण बता दिये जायेंगे और यह कह दिया जायेगा कि वह उस सम्बन्ध में जो भी सफाई देना चाहता हो दे सकता है जिसे उपखण्ड (क) में निर्दिष्ट मंत्रणा मण्डली के समक्ष पेश कर दिया जायेगा।]

यह एक हल्का सा संशोधन है, श्रीमान, और आशा है डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार कर लेंगे और अनुच्छेद 15-क में इसे रख लेंगे। अनुच्छेद की कठोरता बहुत कुछ कम की जा चुकी है और इस प्रयोजन के लिए, आशा है, वह इसे भी मान लेंगे। कई प्रान्तीय विधान-मण्डलों द्वारा स्वीकृत सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियमों में जो उपबन्ध रखे गये हैं उनसे आगे यह संशोधन नहीं जाता है। उदाहरण के लिए लोक-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए जो अधिनियम नं. 1 अभी सन् 1947 में मद्रास में पास किया गया है (The Madras Maintenance of Public Order Act) उसके खण्ड (3) में यह कहा गया है:

"जब किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार द्वारा धारा 2 की उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश निकाला जायेगा तो, प्रान्तीय सरकार आदेश से प्रभावित होने वाले व्यक्ति को, जहां तक कि उन बातों को प्रकाश में लाये बिना उसे सूचित किया जा सकता है जिनका प्रकाशित होना उनकी समझ से लोक हित के प्रतिकूल होगा, उन कारणों को, जिनके आधार पर उसके विरुद्ध आदेश निकाला गया है तथा अन्य ऐसी बातों को, जो उनकी समझ से इसके लिए पर्याप्त होंगी कि वह अगर चाहे तो आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन कर सके, उसे सूचित करेगी। और वह व्यक्ति उस अवधि के अन्दर जो इसके लिए प्रान्तीय सरकार विहित करे, उस आदेश के विरुद्ध लिखित अभ्यावेदन

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

दे सकता है और प्रान्तीय सरकार का यह कर्तव्य होगा कि वह उस व्यक्ति के अभ्यावेदन सम्बन्धी अधिकार की उसे सूचना दे दे और अभ्यावेदन देने का उसे अवसर प्रदान करे।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अभ्यावेदन की प्राप्ति के बाद, या यदि अभ्यावेदन नहीं आया तो अभ्यावेदन के लिए निर्धारित अवधि की समाप्ति पर, प्रान्तीय सरकार उपधारा (3) के अधीन निर्मित मंत्रणा–मण्डली के समक्ष उन कारणों को पेश करेगी जिनके आधार पर उस व्यक्ति के विरुद्ध आदेश निकाला गया है और अगर आदेश निकाला गया है प्रान्तीय शासन के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी या पदाधिकारी द्वारा तो धारा 2 की उपधारा (2) के अधीन उसके द्वारा किया गया प्रतिवेदन और अभ्यावेदन, यदि सम्बन्धित व्यक्ति ने कोई दिया है–इत्यादि इत्यादि.........

उपधारा के शेष अंश को दुहराने की यहां कोई जरूरत नहीं है। मद्रास के अधिनियम में यह उपबन्ध रखा गया है।

'डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट' के अधीन निर्मित नियमों में भी आपको इसी तरह के उपबन्ध मौजूद मिलेंगे। सभा के कतिपय माननीय सदस्य जिनके विरुद्ध सन् 1942 में और उसके बाद के आने वाले वर्षों में 'डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट' के अधीन कार्रवाई की गई थी, उन्हें यह याद होगा कि जिन कारणों के आधार पर उन्हें नज़रबन्द किया गया था उनकी सूचना उन्हें दी गई थी और उनसे यह कहा गया था कि अगर वह चाहें तो नज़रबन्दी के खिलाफ अभ्यावेदन दे सकते हैं।

सन् 1919 में जो कुख्यात रौलट एक्ट पास किया गया था जिसके विरुद्ध हमारे परम श्रद्धेय नेता महात्मा गांधी ने महान आन्दोलन चलाया जिसके परिणतिस्वरूप देश दासता के बन्धन से मुक्त हुआ है, उसमें भी इस तरह के उपबन्ध रखे गये थे।

इंग्लैंड में 'डिफेंस ऑफ रीअल्म एक्ट' के अधीन निर्मित विनियमों में जो 1914 में भी प्रभावी थे जब कि प्रथम विश्व युद्ध छिड़ा था और "डिफेंस ऑफ रीअल्म एक्ट" बनाया गया था और जो बाद में सन् 1939 में भी प्रभावी थे जब कि आपात की अवस्था घोषित की गई थी और देश में गिरफ्तारियां और नजरबन्दियां शुरू हो गई थीं ऐसा ही उपबन्ध रखा गया था।

जैसा कि मैंने अभी कहा है, 1947 के मद्रास वाले अधिनियम 1–"The Madras Maintenance of Public Order Act"—में भी इस तरह का उपबन्ध रखा गया है। दूसरे प्रान्तों में भी इस तरह के अधिनियमों में कुछ न कुछ इस आशय का उपबन्ध रखा गया है। उदाहरण के लिए बम्बई में एक सीमित हद तक यह उपबन्ध है कि जिन कारणों के आधार पर किसी व्यक्ति को बन्दी और निरुद्ध किया गया है उसकी सूचना उसे दी जायेगी और उससे कहा जायेगा कि अगर

वह चाहे तो अपनी सफाई पेश कर सकता है। हां इस बात का उपबन्ध नहीं रखा गया है कि उसकी सफाई किसी न्यायाधिकरण या स्वतन्त्र मंत्रणा-मण्डली के समक्ष पेश की जायेगी। सफाई का उपबन्ध केवल कार्यपालिका के विचारार्थ रखा गया है जो उस पर विचार करके या तो उसे रिहा कर देगी या पूर्वादेश का समर्थन करेगी अथवा और आगे किसी अवधि के लिए जो उसे ठीक जंचे, उसे निरुद्ध रखने का आदेश देगी। संयुक्तप्रान्त में भी यह उपबन्ध तो रखा गया है कि अभियुक्त अपनी सफाई दे सकता है पर यह उपबन्ध नहीं है कि उसकी सफाई किसी निष्पक्ष न्यायाधिकरण के सामने रखी जायेगी। बंगाल में जो नवीनतम कानून इस सम्बन्ध में बना है वह और भी संकुचित है।

मेरा निवेदन यह है कि इस प्रक्रिया के विरुद्ध गम्भीर आपत्ति की जा सकती है और संविधान में ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिये कि अपने विधिनिर्माता, चाहे केन्द्र में या प्रान्तों में कहीं भी इस तरह का कानून न बना सकें। हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि हमारे विधान-मण्डल इस सम्बन्ध में उससे आगे न जायें जो विदेशी शासन ने यहां रौलट एक्ट में रखा था या सन् 1942 में भारत रक्षा अधिनियम (Defence of India Act) में रखा था अथवा इंग्लैण्ड में जो 'डिफेंस ऑफ रीअल्म एक्ट' में, रखा गया था। मैंने जो संशोधन रखा है उसका निचोड़ यही है, श्रीमान्।

प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) में डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा है कि ऐसे व्यक्तियों से जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं, अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते है, मिल कर बनी मंत्रणा-मण्डली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदन नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं।" मंत्रणा-मण्डली की राय का मूल्य ही क्या होगा जब कि अभियुक्त का वह कथन जो उसने सफाई में कहा है उसके सामने नहीं रखा जायेगा? उस सूरत में तो मंत्रणा-मण्डली के सदस्यों को उन कागजात के आधार पर ही अपनी राय देनी होगी जो कार्यपालिका द्वारा उनके सामने रखे जायेंगे और वह कागजात भी प्रायः पुलिस की रिपोर्ट या किसी पदाधिकारी या खुफिया की रिपोर्ट के आधार पर तैयार किये गये होंगे। उन कागजात के आधार पर दी गई राय एक तरफा राय ही समझी जायेगी। अगर, अभियुक्त ने सफाई के रूप में जो कुछ कहा है वह मंत्रणा-मण्डली के सामने नहीं रखा जाता है तो फिर ऐसे तीन व्यक्तियों की जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मंत्रणा-मण्डली बनाने का जो उद्देश्य है वही खत्म हो जाता है और अभियुक्त तब तक सफाई ही नहीं दे सकता जब तक कि उसे यह न बताया जाये कि उसके विरुद्ध आरोप क्या है, वह केवल सन्देह के आधार पर निरुद्ध किया गया है या इसके लिए कोई ठोस कारण है। मैं यह कहूंगा कि यह एक बिल्कुल बुनियादी अधिकार है जो अभियुक्त को प्राप्त रहना ही चाहिये। शायद इस संशोधित नवीन अनुच्छेद में यह बात भूल से छूट गई है और मगर ऐसा है तो आशा करता हूं कि डॉ. अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार कर इस कमी को पूरा कर देंगे।

अब आपकी अनुमति से, श्रीमान, सरसरी तौर पर चन्द बातें प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के सम्बन्ध में कहना चाहूंगा और उसके बाद चन्द शब्द कहना चाहूंगा इस पर आये संशोधनों के बारे में जिन्हें यहां पं. ठाकुर दास भार्गव तथा अन्य माननीय सदस्यों ने उपस्थित किया है।

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

मैं यह महसूस करता हूं—और मेरी इस स्पष्टोक्ति के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूं—कि यह अनुच्छेद 15-क जिसे मसौदा-समिति ने सभा के समक्ष रखा है, एक भयंकर प्रतिगामी उपबन्ध है और इसलिए मैं तो सभा से यह अनुरोध करूंगा कि वह इसे सर्वथा अस्वीकार कर दे और संविधान में इसे कतई स्थान न दे। मैं पूछना चाहता हूं डॉ. अम्बेडकर से, श्री मुन्शी से तथा अपने महान विधि विज्ञान वेत्ता श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर से जिनका सांविधानिक-विधि का ज्ञान देश में किसी से कम नहीं है और जिन्होंने मसौदा-समिति को बहुत कुछ दिया है, कि क्या दुनिया में ऐसा कोई भी लिपिबद्ध संविधान है जिसमें बिना मुकदमा चलाये नागरिकों को शान्ति काल में भी इस तरह निरुद्ध रखने का उपबन्ध रखा गया है? गम्भीर आपात की स्थिति में, उदाहरणार्थ जब कि देश युद्ध में फंसा हो, मूलाधिकारों को भी निलम्बित रखने के लिए उपबन्ध रखे गये हैं। पर ऐसी स्थिति को छोड़कर शान्ति काल के लिए तो कहीं भी किसी संविधान में बिना मुकदमा चलाये नज़रबन्द रखने का कोई उपबन्ध नहीं है। यह उपबन्ध तो जापान के संविधान में भी नहीं जिसका, मसौदा-समिति का कहना है कि, वह अनुगमन कर रही है। जापान का संविधान बनाया गया था सन् 1916 में जब कि युद्ध में परास्त होकर वह विजेता शक्तियों अर्थात् अमेरिका और अन्य मित्र राष्ट्रों द्वारा नियुक्त एक डिक्टेटर के चरणों के नीचे चित्त पड़ा था।

जिस रूप में यह अनुच्छेद रखा गया है उसमें तो मैं समझता हूं कि नागरिकों को मूलाधिकार देने के बजाय यह प्रान्तीय विधान मण्डलों को इस बात की पूरी आजादी दे रहा है कि वह ऐसे कानून बना सकते हैं जिसके अधीन किसी को बिना मामला चलाये बन्दी किया जा सकता है और ऐसी अवधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है जिसे वह ठीक समझे। हां निरोध की अधिकतम अवधि क्या होगी इसे संसद पर छोड़ा गया है।

इसके द्वारा नागरिकों को कोई भी मूलाधिकार नहीं प्राप्त होता है बल्कि कार्यपालिका को स्वातंत्र्य छीनने की स्वाधीनता जरूर प्राप्त होती है। मुझे आश्चर्य हो रहा है इस बात पर कि आखिर मसौदा-समिति के सदस्यों ने जिनमें बड़े-बड़े धुरन्धर विधिशास्त्र वेत्ता हैं, कैसे इसे रखना पसन्द किया है। वस्तुत: यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मसौदा-समिति के सदस्य अपने पूर्व निर्णय से इतनी दूर हट कर अब इस अनुच्छेद 15-क को कैसे पेश कर रहे हैं। आपकी अनुमति से श्रीमान, मैं इस अनुच्छेद का इतिहास सभा के समक्ष रखूंगा जिससे पता चलेगा कि मसौदा-समिति के सदस्य उस उच्च स्तर से जहां वह शुरू में थे किस तरह गिर कर अब अन्ततोगत्वा इस निम्न स्तर पर आये और चाहते हैं कि सभा इसे स्वीकार कर ले।

हमारे कानून मन्त्री डॉ. अम्बेडकर एक बड़े वकील हैं। धुरंधर विधिशास्त्र विशारद और सांविधानिक विधि के प्रकाण्ड पण्डित हैं। पर मैं पूछता हूं कि, अभी जिस उच्च पद पर वह आसीन हैं उस पर आसीन होने के पूर्व उन्होंने मसौदा-समिति के सामने क्या प्रस्ताव रखा था? सन् 1947 में संविधान-सभा के पहली बार समवेत होने के बाद ही सदस्यों से कहा गया था कि वे संविधान के प्रारूप के बारे

में अपने सुझाव दें। इसके बारे में अनेक सुझाव आये थे। उस समय अम्बेडकर संविधान-सभा में एक गैर-सरकारी सदस्य थे। यह गद्दी उस समय उन्हें नहीं मिली थी जिस पर कि आज वह आसीन हैं और मैं सादर कहूंगा कि वह इसके सर्वथा योग्य हैं और योग्यता के साथ इसका निर्वाह कर रहे हैं। 1947 के शुरू में उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने सुझाव दिये थे जिन्हें एक पुस्तिका के रूप में "States and Minorities—what are their rights and how to acquire them in the Constitution of free India" (राज्य और अल्पसंख्यक वर्ग—उनके अधिकार क्या हैं तथा स्वतन्त्र भारत के संविधान में उन्हें कैसे प्राप्त किया जाये) शीर्षक देकर सदस्यों में वितरित किया गया था। इस पुस्तिका के पृष्ठ 9 पर "नागरिकों के मूलाधिकार" शीर्षक अनुच्छेद 2 में यह कहा गया है:

> "No State shall make or enforce any law or custom which shall abridge the privileges or immunities of citizens. Nor shall any State deprive any person of life, liberty and property without due process of law, nor deny to any person within its jurisdiction equal protection of law."
>
> [कोई राज्य ऐसा कोई कानून न बनायेगा और न ऐसे किसी कानून और रूढ़ि को प्रवर्त्तन में लायेगा जिनसे नागरिकों के अधिकारों या विमुक्तियों का न्यूनन होता हो। और न कोई राज्य कानून की नियमानुसार कार्यवाही के बिना किसी व्यक्ति को प्राण, स्वातन्त्र्य और सम्पत्ति के वंचित करेगा और न अपने राज्य-क्षेत्रान्तर्गत किसी व्यक्ति को विधि का समान-संरक्षण देने से इन्कार करेगा।]

यह है सुझाव जो डॉ. अम्बेडकर ने संविधान-सभा की मंत्रणा-समिति (Advisory Committee) को दिया था मार्च सन् 1947 के प्रारम्भ में। गैर-सरकारी सदस्य की हैसियत से तब आप यह राय रखते थे।

इसके बाद आई दूसरी मंजिल जब संविधान-सभा की मंत्रणा-समिति ने इस मसले पर विचार शुरू किया। जैसा कि आपको मालूम ही है, मूलाधिकारों तथा अल्पसंख्यक वर्गों के सम्बन्ध में जो मंत्रणा-समिति बनाई गयी थी वह उन समितियों में थी जिन्हें संविधान-सभा ने सबसे पहले बनाया था और इसके सभापति थे सरदार वल्लभ भाई पटेल। इस समिति में बहुत से सदस्य थे जिनमें मसौदा-समिति के तीन प्रमुख सदस्य डॉ. अम्बेडकर, श्री मुन्शी तथा श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर भी थे इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 23 अप्रैल सन् 1947 को पेश किया था जिसमें उसने कतिपय मूलाधिकारों को संविधान-सभा द्वारा स्वीकृत किये जाने की सिफारिश की थी। इस प्रतिवेदन (रिपोर्ट) में भी "कानून की नियमानुसार कार्यवाही" (due proces of law) सम्बन्धी खण्ड को प्रमुख स्थान दिया गया था। समिति का प्रतिवेदन सभा के सामने विचारार्थ रखा गया 1949 के अप्रैल में। समितियों के प्रवेदनों की जो पहली माला संविधान-सभा के कार्यालय द्वारा निकाली गई थी उसके पृष्ठ 28 पर एक सूची दी गई है "न्याय्य मूलाधिकारों" की। इसके पृष्ठ 29 पर अनुच्छेद 9 में यह कहा गया है—

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

"No person shall be deprived of his life or liberty without due process of law, nor shall any person be denied equality before thae law within the territory of the Union."

[संघ के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को, कानून की नियमानुसार कार्यवाही को छोड़ कर अन्य प्रकार उसके प्राण या स्वातंत्र्य से न वंचित किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को कानून के सामने समता से वंचित किया जायेगा।]

सभा के खूब सोच विचार करने के बाद इस उक्त अनुच्छेद को रखना तय किया था और मसौदा-समिति को इसी के आधार पर मसौदे का प्रारूप बनाने का निदेश दिया था।

पर मसौदा-समिति ने क्या किया? उसने अपनी बैठक की और इस मसले पर विचार कर संविधान का प्रारूप तैयार किया जो फरवरी सन् 1948 में सदस्यों को दिया गया। इसमें जो अनुच्छेद 15 मसौदा-समिति ने रखा उसकी रचना अप्रैल सन् 1947 के निश्चयानुसार न करके एक सर्वथा भिन्न ढंग से की गई। प्रारूप में जो अनुच्छेद 15 रखा गया है वह यों है:—

"No person shall be deprived of this life or personal liberty, except according to procedure established by law. Nor shall any person be denied equality before the law or the equal protection of the laws within the territories of India."

[भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण, दैहिक स्वातंत्र्य से विधि द्वारा नियत कार्य प्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार न वंचित किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता से अथवा विधियों के समरक्षण से वंचित रखा जायेगा।]

इस तरह "due process of law" (कानून की नियमानुसार कार्यवाही) शब्दों को न रखकर जिनका कि इंग्लैण्ड और अमेरिका दोनों ही देशों में एक निश्चित अर्थ हो गया है क्योंकि वहां स्वतंत्रता के लिए कार्यपालिका विरुद्ध जनता ने शताब्दियों तक संघर्ष किया था, मसौदा-समिति ने "according to procedure established by law" (विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली के अनुसार) शब्दों को यहां रखा है संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 15 के सम्बन्ध पृष्ठ के नीचे एक नोट भी दिया गया है जो यों है:

"The Committee is of opinion that the word 'liberty' should be qualified by the insertion of the word 'personal' before it, for otherwise it might be construed very widely so as to include even the freedoms already dealt with in article 13.

The Committee has also substituted the expression 'except according to procedure established by law' for the words 'without due process of law' as the former is more specific (c.f. Art. XXXI of the Japanese Constitution, 1946). The corresponding provision in the Irish Constitution runs: No citizen shall be deprived of his personal liberty save in accordance with law."

[समिति का मत है कि liberty शब्द के पूर्व personal शब्द रखकर इसके अर्थ को सीमित कर देना चाहिये अन्यथा इसका इतना व्यापक अर्थ लगाया जा सकता है कि जिन स्वातंत्र्यों का उल्लेख अनुच्छेद 13 में किया गया है वह भी इसमें शामिल समझे जा सकते हैं।

समिति ने यह भी किया है कि "without due process of law" (बिना कानून की नियमानुसार कार्यवाही के) पदसंहति की जगह "except according to procedure established by law" (विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार) पदसंहति रखी है क्योंकि पिछली पदसंहति अधिक स्पष्ट है। (1946 के जापानी संविधान के अनुच्छेद 31 को देखिये) इसकी जगह आयरिश संविधान में यह उपबन्ध रखा गया है:–"किसी नागरिक को अपने दैहिक स्वातंत्र्य से विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जायेगा।"]

"due process of law" शब्दों की जगह "according to procedure established by law" शब्दों को रखने का कारण यह बताया गया कि पीछे वाली पदसंहति अधिक स्पष्ट और निश्चित है और यह ली गई है जापान के संविधान से। इसमें शक नहीं कि एक माने में यह पदसंहति अधिक स्पष्ट है। पर मसौदा-समिति ने जापान के संविधान से यह बात तो ली पर उसके अन्य कतिपय उपबन्धों को बिल्कुल छोड़ ही दिया है।

एक मिनट के लिए मूल बात से हट कर मैं यह पूछता हूं कि आखिर "due process of law" पदसंहति का अर्थ क्या है? इंग्लैण्ड में पहली बार यह पदसंहति प्रयुक्त की गई थी सन् 1353 में सम्राट् एडवर्ड तृतीय के राज्य काल में जब कि एक विधान पास किया गया था जिसमें उस महा स्वतन्त्रता-पत्र के मुख्य मुख्य सभी अधिकार रखे गये थे जिन्हें राजा जान ने उससे प्राय: एक सौ साल पहले प्रजा को दिया था।

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 15 को स्वीकार करने के समय जब यहां उस पर विचार चल रहा था उस समय मैं उपस्थित नहीं था पर मुझे यह विश्वास है कि सारी बातों पर पूरी तरह विचार हो जाने के बाद ही अनुच्छेद को इस रूप में पास किया गया होगा जिसमें कि यह प्रारूप में रखा गया है।

***डॉ. बख्शी टेकचन्दः** मैं ज्यादा समय नहीं लूंगा श्रीमान!

***अध्यक्षः** आपके बोलने पर मैं आपत्ति नहीं कर रहा हूं। मैं यह पूछ रहा था कि इस प्रश्न पर उस समय पूरी तरह विचार किया गया था या नहीं।

***डॉ. बख्शी टेकचन्दः** इस पर विचार जरूर किया गया था श्रीमान। पर डॉ. अम्बेडकर ने यह वायदा किया था कि वह एक संशोधित अनुच्छेद सभा के सामने रखेंगे और अब मसौदा समिति की तरफ से वह प्रस्तावित कर रहे हैं इस नवीन अनुच्छेद 15-क को। मैं यह कह रहा था कि महा स्वतन्त्रता-पत्र में ये शब्द रखे गये थे: "No person shall be arrested etc..... except according to the law of the land" (देश के कानून के अनुसार छोड़कर अन्य प्रकार से किसी को..... इत्यादि) शुरू में यह पदसंहति रखी गई थी। बाद में चलकर सम्राट् एडवर्ड तृतीय के काल में जो विधान पास हुआ उसमें रखा गया "No person shall be arrested without due process of law" इसके सैकड़ों वर्ष बाद जब कि अमेरिका उपनिवेश ब्रिटेन से पृथक् हुए और अपना संविधान बनाया तो 14वें संशोधन द्वारा उन्होंने संविधान में यह रखा:

> "Nor shall any State deprive any person of his liberty or property without due process of law, nor deny to any person within its jurisdiction equal protection of the law."
>
> [न कोई राज्य अपने राज्य क्षेत्रान्तर्गत किसी व्यक्ति को कानून की नियमानुसार कार्यवाही के बिना उसके स्वातन्त्र्य या सम्पत्ति से वंचित करेगा और न किसी व्यक्ति को विधि का समरक्षण देने से इन्कार करेगा।]

सर्वोच्च न्यायालय के अनेक न्यायाधीशों का यह कहना है कि यह खण्ड अमरीकी जनता के स्वातंत्र्य का मुख्य आधार रहा है। कहा यह जाता है कि वहां के लोगों के अधिकारों को और स्वातंत्र्य को सुरक्षित रखने में जितना हाथ इस एक खण्ड का है उतना और किसी का नहीं। यह स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपना जो मूल मसौदा मंत्रणा-समिति के सामने रखा था उसमें उन्होंने अमरीकी संविधान से ही यह पदसंहति ली थी।

इसके सम्बन्ध में अमेरिका के न्यायालयों ने विभिन्न निर्णय दिये हैं। पर "due process of law" पदसंहति के अर्थ के सम्बन्ध में सर्वोत्तम स्पष्टीकरण किया है अमेरिका के महान कानून ज्ञाता श्री वेब्स्टर ने। उनका कहना है कि "due process of law" का मतलब है ऐसे कानून से जिसके अनुसार किसी अभियुक्त को दण्डित करने से पहले उसकी बातों का सुनना आवश्यक हो; इस पदसंहति का मतलब है ऐसे कानून से जिसके अनुसार सारी बातों की छानबीन कर तब किसके विरुद्ध कार्रवाई की जाये और उस पर मामला चला कर तब उसे दण्ड का फैसला सुनाया जाये। इसमें ये तीन बातें अनिवार्य हैं। एक तो यह कि किसी भी व्यक्ति को दण्डित करने से पहले उसकी बातों को सुनना ही होगा। बाकी दो बातें यह कि बिना पूरी तरह जांच किये न उसके खिलाफ कार्रवाई की जायेगी और न बिना मामला चलाये उसके खिलाफ फैसला दिया जायेगा।

सम्पत्ति के सम्बन्ध में इस पदसंहति के निर्वचन के बारे में अमेरिका के न्यायालयों की रायें बड़ी विभिन्न रही हैं। कुछ न्यायाधीश तो आखिरी हद तक चले गये और यह मत दिया कि इस पदसंहति से व्यक्ति के निजी सम्पत्ति का पूरा बचाव होता है और यह कहा कि इसके अनुसार सम्पत्ति के समाजीकरण के लिए कानून बनाना सर्वथा संविधान के विरुद्ध होगा। इसका विस्तारपूर्वक इतिहास देने की जरूरत नहीं है क्योंकि इससे आज हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।

पर जहां तक कि दैहिक स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में इस पदसंहति के लागू होने का सम्बन्ध है, इसको लेकर वहां कोई मतभेद न्यायाधीशों में नहीं रहा है। इस प्रसंग में इस पदसंहति का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है जिस पर कभी कोई मतभेद नहीं हुआ है।

अब आइये उन कारणों को देखें जिनके आधार पर, मसौदा-समिति का कहना है, कि उसने मूल पदसंहति के स्थान पर जापान के संविधान से यह अनूठी पदसंहति ली है जिस संविधान को बनाया है प्रमुख अमेरिकन कानून वेत्ताओं ने। इसको रखने में एक स्पष्ट लाभ यह है कि 'due process of law' पदसंहति को रखने से न्यायिक निर्णयों में जो परस्पर विरोध होता उससे हम सर्वथा बच जाते हैं।

इस सम्बन्ध में, जापान के संविधान में जो अनुच्छेद रखे गये हैं उन्हें आपकी अनुमति से मैं यहां पढ़कर सुना देना चाहता हूं।

> "Article XXXI. No person shall be deprived of life or liberty, nor shall any other criminal penalty be imposed, except according to procedure established by law."

> [अनुच्छेद 31–विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार किसी व्यक्ति को उसके प्राण या स्वातंत्र्य से न वंचित किया जायेगा और न उस पर कोई आपराधिक दण्ड लागू किया जायेगा।]

अपने संविधान के प्रारूप में यह अनुच्छेद अक्षरश: ज्यों का त्यों ले लिया गया है। पर जापान के संविधान के अन्य और भी कई अनुच्छेद हैं जिनमें 'due process of law' का सार निहित है और जिनके द्वारा नागरिकों के अधिकार संरक्षित रहते हैं। संरक्षित किन्तु इन अनुच्छेदों को अपने संविधान में मसौदा-समिति ने नहीं लिया है। इस सम्बन्ध में अन्य अनुच्छेद जापान के संविधान में यह हैं:—

> "Article XXXIII. No person shall be apprehended except upon warrant issued by a competent judicial officer which specifies the offence with which the person is charged, unless he is apprehended while committing a crime.

> Article XXXIV. No person shall be arrested or detained without being at once informed of the charges against him or without the immediate privilege of counsel; nor shall he be detained without adequate cause; and upon demand of any person such cause must be

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

immediately shown in open court in his presence and the presence of his counsel.

Article XXXV. The right of all persons to be secure in their homes, papers and effects against entries, searches and seizures shall not be impaired except upon warrant issued only for probable cause, and particularly describing the place to be searched and things to be seized, or except as provided by article XXXIII.

Each search or seizure shall be made upon separate warrant issued for the purpose by a competent judicial officer.

Article XXXVI. The infliction of torture by any public officer and cruel punishments are absolutely forbidden.

Article XXXVII. In all criminal cases the accused shall enjoy the right to a speedy and public trial by an impartial tribunal.

He shall be permitted full opportunity of examine all witnesses, and he shall have the right of compulsory process for obtaining witnesses on his behalf at public expense.

At all times the accused shall have the assistance of competent counsel who shall, if the accused be unable to secure the same by his own efforts be assigned to his use by the Government."

[अनुच्छेद 33—किसी व्यक्ति को, जब तक कि वह अपराध करते समय ही न पकड़ लिया जाये, एक सक्षम न्यायिक पदाधिकारी द्वारा निकाले गये अधिपत्र के आधार पर ही, जिसमें उस अपराध का उल्लेख रहेगा जो उस पर लगाया है, गिरफ्तार किया जायेगा, और अन्य किसी प्रकार नहीं।

अनुच्छेद 34—किसी व्यक्ति को, उसके विरुद्ध आरोपित अभियोग से तुरन्त सूचित किये बिना या वकील करने की सुविधा दिये बिना न बन्दी किया जायेगा और न निरुद्ध किया जायेगा। न उसे बिना पर्याप्त कारण के निरुद्ध किया जायेगा। और किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे कारण की मांग करने पर अविलम्ब खुली अदालत

में उसकी तथा उसके वकील की उपस्थिति में उन कारणों को पेश किया जायेगा।

अनुच्छेद 35—अनुचित तलाशियों तथा अपहरण के विरुद्ध अपने शरीर, गृह पत्रों, तथा सापान के विषय में सुरक्षित होने का जो लोगों को अधिकार प्राप्त है उसका उल्लंघन नहीं किया जायेगा और सिवाय सम्भावित कारण के जिसका आधार सौगंध अथवा घोषणा होगा, वारंट (अधिपत्र) जारी नहीं किये जायेंगे, और जिस स्थान पर तलाशी लेनी होगी और जिन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को कब्जे में करना होगा उनका विवरण उनमें विशेष रूप से दिया रहेगा।

हर तलाशी या कब्जा, सक्षम न्यायिक पदाधिकारी द्वारा एतदर्थ निकाले गये अलग-अलग अधिनियम के आधार पर किया जायेगा।

अनुच्छेद 36—किसी सरकारी पदाधिकारी द्वारा यंत्रणा का दिया जाना तथा निर्दय दण्ड सर्वथा वर्जित होंगे।

अनुच्छेद 37—हर आपराधिक मामले में अभियुक्त इस अधिकार का उपयोग करेगा कि एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा शीघ्रता के साथ खुली अदालत में मामले की सुनवाई की जायेगी।

सभी गवाहों से सवाल जवाब करने का उसे पूरा मौका दिया जायेगा और सरकारी खर्च पर अपने लिए गवाहों को अनिवार्यत: उपस्थित कराने का उसे अधिकार होगा।

सब समय अभियुक्त को एक सक्षम वकील की सहायता प्राप्त रहेगी, जिसे अगर अभियुक्त अपने प्रयास से पाने में असमर्थ है तो सरकार उसे अपने काम में लाने के लिए देगी।]

जापान के संविधान में इतने और अनुच्छेद इसके साथ रखे गये हैं। ये सारे के सारे एक प्रसंग में हैं, और कुल मिला कर एक हैं जिनमें 'due process of law' का सार निहित रखा गया है। पर अपनी मसौदा-समिति ने क्या किया है? उसने इनमें से केवल एक अनुच्छेद 31 के उपबन्ध को तो अपने संविधान में रख लिया है पर अनुच्छेद 32 से 37 तक में जो उपबंध हैं उनके समान कोई उपबंध अपने संविधान में नहीं रखा है। 32 से 37 तक के अनुच्छेदों में ऐसे उपबंध हैं जिनके द्वारा इसका पूरा भरोसा मिल जाता है कि मुकदमा ठीक-ठीक तरह से चलाया जायेगा और किसी को भी बिना यह बताये कि क्यों उसे गिरफ्तार किया गया और बिना मामला चलाये निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।

क्या इन उपबन्धों को छोड़ने के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इन्हें इसलिए छोड़ दिया गया है कि इस पदसंहति से एक निश्चित अर्थ का ही बोध हो?

6 दिसम्बर सन् 1948 को जब इस खण्ड पर सभा में विचार किया जा रहा था उस समय एक संशोधन इस पर इस आश्य का था कि "according to

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

procedure established by law" शब्दों की जगह "due process of law" शब्द रखे जायें। इस संशोधन के प्रबलतम समर्थक थे उस समय माननीय मित्र श्री मुन्शी। उन्होंने उस समय जो वक्तृता दी थी आपको सभा की 6 दिसम्बर सन् 1948 की कार्यवाही की जो रिपोर्ट छपी है (हिन्दी संस्करण) उसके 1360-1364 पृष्ठों पर मिलेगी। उसके कुछ अंश मैं यहां पढ़ देना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्य इस प्रतीक्षा में हैं कि आप उनकी ओर ध्यान दें।

***डॉ. बख्शी टेकचन्दः** उनकी वक्तृता से मैं थोड़े से ही वाक्य यहां आपके सामने रखूंगा। उस समय आपने फरमाया था।

"मुझे मालूम है कि कतिपय सदस्यों का यह ख्याल है कि आज इस देश में सद्यस्कृत्यता की जो दशा वर्तमान है उसमें सम्भव है कि इस खण्ड के बड़े घातक परिणाम हों। मैं सम्मानपूर्वक यह कहूंगा कि मैं इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं।"

"दुर्भाग्य से हमारे देश में जो विधान-मण्डल हैं उनमें एक दल का प्रबल बहुमत है और उसको विकट समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। स्वभावतः उसमें एक ऐसी प्रवृत्ति आ गई है कि वे पुलिस तथा अधिशासी वर्ग को व्यापक शक्ति देने वाले कानूनों को जल्दी बाजी में पास कर देना चाहते हैं? यदि ऐसे कानूनों के औचित्य पर निर्णय देने का अधिकार न्यायालय को न रहा तो फिर इन पर कोई रोक न रह जायेगी। उदाहरण के लिए मैं आपको बताऊं, मैंने अभी उस दिन पढ़ा है कि अपने एक प्रान्त में एक ऐसा कानून बनने जा रहा है या शायद बन चुका है जिसके अनुसार अपराधी को मामले की पैरवी के लिए वकील की मदद न दी जायेगी। आखिर इसको आप कैसे रोकेंगे? एक दूसरे प्रान्त के सम्बन्ध में मैंने पढ़ा है कि वहां किसी अधिशासी प्राधिकारी की रिपोर्ट या उसका कहना ही किसी बात का यथेष्ट प्रमाण माना जायेगा। यह ध्यान में रहे कि सरकार के किसी सेक्रेटरी की रिपोर्ट को नहीं बल्कि मामूली प्राधिकारी की रिपोर्ट को यह वजन दिया गया है। इससे अपराधी के लिए बड़ी कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं और मैं समझता हूं, जैसा कि मैं कह चुका हूं कि गणतन्त्र में एक न एक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक-नियंत्रण इन दोनों का पल्ला बराबर रहे।"

"अपनी वर्तमान आकस्मिक आवश्यकता के कारण शायद हम इस बात को भूल गये हैं कि यदि व्यक्ति-स्वातंत्र्य को इतनी गुंजाइश नहीं दी जाती है और न्यायालय का रक्षण इसे नहीं दिया जाता है तो इससे एक ऐसी परम्परा पैदा होगी जिससे अन्ततोगत्वा, जो भी थोड़ा बहुत दैहिक स्वातंत्र्य हमें प्राप्त है वह

भी जाता रहेगा। इसलिए मेरा अपना कहना यह है श्रीमान् कि इस संशोधन को हमें स्वीकार करना चाहिये।"

उस समय श्री मुन्शी का मत यह था। अब उन्होंने अपना विचार बदल क्यों दिया है? अब मैं उस वक्तृता का हवाला दूंगा जिसे खुद डॉ. अम्बेडकर ने यहां 13 दिसम्बर सन् 1948 को दी थी। उनकी यह वक्तृता सभा की 13 दिसम्बर की कार्यवाही की रिपोर्ट में (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ 1661-1664 पर मिलेगी। मैं यहां समूची वक्तृता नहीं उद्धृत करूंगा, केवल उसके चन्द वाक्यों को ही आपके सामने रखूंगा।

'उचित रीति' (due process) पद को रखने के प्रश्न का सम्बन्ध इस प्रश्न से है कि विधान-मण्डल और न्यायपालिका में पारस्परिक सम्बन्ध क्या हो। संघीय संविधान में न्यायाधीश-वर्ग को इस बात का निर्णय करने का सदैव अधिकार होता है कि विधान-मण्डल द्वारा पारित कोई विशेष कानून उसके उन अधिकारों के अन्तर्गत है अथवा परे जो संविधान द्वारा किसी विशेष विधान-मण्डल को कानून बनाने के लिए दिये गये हैं। यदि किसी विशेष विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून उन शक्ति-प्राधिकारों का उल्लंघन करता है जो संविधान द्वारा किसी विशेष विधान-मण्डल को कानून बनाने के लिए दिये गये हैं तो वह कानून अधिकारों से परे हो जायेगा और अमान्य हो जायेगा। यह एक सामान्य बात है जो सब संघीय विधानों में पाई जाती है।"

"मेरे मत से 'उचित रीति' (due process) वाला खण्ड न्यायाधीश-वर्ग को विधान-मण्डल द्वारा निर्मित कानून में एक अन्य आधार पर आपत्ति उठाने का अधिकार प्रदान करता है। वह आधार पर होगा कि वह कानून व्यक्ति के अधिकारों से कतिपय मूल सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। दूसरे शब्दों में, केवल इसी आधार पर ही कि वह कानून विधान-मण्डल के प्राधिकार का उल्लंघन करता है, न्यायाधीश वर्ग को उस पर आपत्ति करने का अधिकार न होगा वरन् कानून बनाने वाले विधान-मण्डल के अधिकारों से सम्बद्ध आपत्ति के अतिरिक्त इस आधार पर भी आपत्ति करने का अधिकार होगा कि कानून अच्छा है या नहीं। जहां तक उसका विधान-मण्डल के प्राधिकार से सम्बन्ध है, वह कानून पूर्णतया कल्याणकर तथा मान्य भले ही हो, पर यह हो सकता है कि वह अच्छा कानून न हो अर्थात् वह कुछ मूल सिद्धान्तों का उल्लंघन करता हो। ऐसी अवस्था में न्यायाधीश वर्ग को उस कानून को अमान्य घोषित करने का अतिरिक्त अधिकार होगा।"

अभी गत दिसम्बर में, इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के यह विचार थे। अब उन्होंने अपने विचार आखिर बदल क्यों दिये हैं? उस बहस में श्री अल्लादी कृष्णस्वामी ने जो वक्तृता दी थी उसका कोई विस्तृत उद्धरण मैं यहां नहीं दूंगा। आपने अपनी वक्तृता में मुख्यत: यही समझाने की कोशिश की थी कि 'due process of law' पदसंहति से अर्थ भ्रम हो सकता है पर इस बात के लिए कोई ठोस कारण आपने नहीं बताया कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में क्यों नहीं इस पदसंहति को प्रयोग किया जाना चाहिये जैसा कि संशोधन में कहा गया था।

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

अपने संविधान के अनुच्छेद 15 में अब इस पदसंहति के स्थान पर, जापानी संविधान के अनुच्छेद 31 से लेकर एक पदसंहति रखी जा रही है पर जापान के संविधान में इस सम्बन्ध में जो अन्य रक्षण मूलक उपबन्ध रखे गये हैं जिनसे व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित रह सकते हैं, उनको यहां नहीं रखा जा रहा है। आखिर उनको क्यों नहीं रखा जा रहा है। इस समय डॉ. अम्बेडकर ने यह वचन दिया था कि सभा के सामने आगे चल कर उस सम्बन्ध में कोई समुचित अनुच्छेद पेश करेंगे और तदनुसार आप पेश कर रहे हैं इस अनुच्छेद 15-क को जो, सादर मैं यह कहूंगा, एक धोखे की पट्टी है जिसकी आड़ में आप व्यक्ति को स्वातंत्र्य से वंचित रख रहे हैं। वस्तुतः इसके सिवाय यह कुछ नहीं है। इस प्रस्तावित अनुच्छेद के प्रथम जो दो खण्ड हैं उनसे तो, जैसा कि पंडित ठाकुर दास भार्गव ने बताया है, उतना ही स्वातंत्र्य नहीं उपलब्ध होता है जितना कि वर्तमान अपराध प्रक्रिया संहिता से नागरिकों को उपलब्ध है। तीसरे खण्ड में एक मन्त्रणा-मण्डली या न्यायाधिकरण की व्यवस्था की गई है जो तीन महीने के अन्दर स्थानीय शासनों को यह राय देगी कि जिन कारणों के आधार पर अभियुक्त को बन्दी किया है वह उसे आगे निरुद्ध रखने के लिए काफी हैं या नहीं। पर सभा के सामने अनुच्छेद का मसौदा रखा गया है उसमें यह उपबंध नहीं रखा गया है कि अभियुक्त को हिरासत में रखने के पहले यह बताया जायेगा कि क्यों उसे बन्दी किया है। इसमें शक नहीं कि मंत्रणा-मण्डली में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहेंगे पर न्यायाधीश क्या कर सकते हैं जब तक कि दूसरे पक्ष की बात सुनने का मौका उन्हें न मिले? उस सूरत में तो वह सिर्फ एकतरफा फैसला ही दे सकते हैं। इसलिए मेरा निवेदन यह है कि प्रस्तुत अनुच्छेद सर्वथा दोषपूर्ण है और इससे नागरिकों को कोई रक्षण मिलता है। यह केवल इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि इस बात का दिखावा किया जा सके कि इसके जरिये कुछ रक्षण दिया जा रहा है। मैं सादर यह निवेदन करूंगा कि इस प्रश्न को निपटाने का यह तरीका उचित नहीं है।

इस सम्बन्ध में पेश किये गये कतिपय संशोधनों के सम्बन्ध में अब मैं और चन्द बातें कहना चाहता हूं। अपनी आज की वक्तृता को मैं कल के बाद नहीं जारी रखना चाहता। अगर इस संशोधन को रखना ही है तो तीन संशोधनों को जिनका पूर्व वक्ताओं ने सुझाव दिया है हमें स्वीकार करना चाहिये। पहला संशोधन वह रखिये जो वैकल्पिक संशोधन है जिसे पं. ठाकुर दास भार्गव ने पेश किया है और जो संशोधन-सूची 1 पृष्ठ 4 पर छपा हुआ है। इसमें यह कहा गया है कि प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के खण्ड (2) के अन्त में "and for the reasons to be recorded" (अभिलिखित कारणों के आधार पर) शब्द जोड़ दिये जायें। अगर किसी व्यक्ति को बन्दी करना है और उसे हिरासत में रखना है तो मजिस्ट्रेट को इसके लिए लिखकर अपने कारण बताने ही चाहियें। मैं नहीं समझता कि इस उपबंध को संविधान में रखने में किसी को कोई भी आपत्ति हो सकती है। दूसरा संशोधन पं. ठाकुर दास भार्गव का हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि किसी को अविवेकतः बन्दी न किया जायेगा। अगर हम जापान के संविधान का अनुकरण कर रहे हैं तो उसके अनुच्छेद में जो उपबन्ध है उन्हें भी हमें अपने संविधान में रखना चाहिये। यदि कार्यपालिका को बन्दी करने और निरुद्ध रखने की शक्ति दी जा रही है तो अभियुक्त

को अपनी सफाई पेश करने का मौका मिलना ही चाहिये। इस संशोधन के सम्बन्ध में मुझे बस इतना ही कहना है।

बस एक बात और कह कर मैं अपनी वक्तृता समाप्त कर दूंगा। मैंने यहां दुनिया के विभिन्न संविधानों की, इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा जापान के संविधानों की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया है। अब मैं सभा का ध्यान, मानवीय अधिकारों के बारे में जो फरमान संयुक्त-राष्ट्र-संघ प्रस्तुत कर रहा है उसकी ओर आकृष्ट करूंगा। जैसा कि माननीय सदस्यों को मालूम है, हमने भी अपने देश से एक प्रतिनिधि संयुक्त-राष्ट्र-संघ की उस समिति में भेज रखा है जो मानवीय अधिकारों के सम्बन्ध में फरमान तैयार कर रही है।

*__प्रो. एन.जी. रंगा__ (मद्रास : जनरल): आखिर, इस सम्बन्ध में कितने विस्तार की बातों का यहां जिक्र किया जायेगा श्रीमान?

*__अध्यक्षः__ अब अपनी दलील वह खत्म कर रहे हैं।

*__प्रो. एन.जी. रंगाः__ अभी बीस मिनट पहले इन्होंने कहा था कि अपनी बात अब खत्म कर रहे हैं।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ माननीय मित्र प्रो. रंगा जो अभी-अभी अमेरिका से लौटे हैं मानवीय अधिकार सम्बन्धी फरमान (Charter of Human Rights) के बारे में कुछ नहीं सुनना चाहते हैं। वह चाहे जो राय रख सकते हैं। इस फरमान से मैं सिर्फ चन्द पंक्तियां ही यहां रखूंगा।

*__श्री महावीर त्यागीः__ यह तो बड़े महत्व की चीज है।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ संयुक्त-राष्ट्र-संघ ने मानवीय अधिकारों के सम्बन्ध में जो फरमान या पत्र (Charter of Human Rights) तैयार किया है उसके कुछ अनुच्छेदों की ओर सभा का मैं ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। वह अनुच्छेद ये हैं:

Article 3 provides: "Everyone has the right to life, liberty and security of person.

Article 7. No one shall be subjected to arbitrary arrest or detention.

Article 8. In the determination of his rights and obligations and of any criminal charge against him everyone is entitled in full equality to a fair hearing by an independent and impartial tribunal.

Article 9. Everyone charged with a penal offence has the right to be presumed innocent until proved guilty according to law in a public

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

trial at which he has had all the guarantees necessary for his defence.

2. No one shall be held guilty of any offence on account of any act or omission which did not constitute an offence, under national or international law at the time when it was committed."

[अनुच्छेद 3—प्रत्येक व्यक्ति को जीने का, स्वतंत्र रहने का तथा वैयक्तिक निशंकता का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद 7—किसी को स्वेच्छाचारिता से न बन्दी किया जायेगा और न निरुद्ध रखा जायेगा।

अनुच्छेद 8—किसी व्यक्ति के अधिकारों और आभारों के तथा उसके विरुद्ध आरोपित अपराधाभियोग के विनिश्चयन में प्रत्येक व्यक्ति को इसका अधिकार प्राप्त है कि पूर्णसमता के साथ एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा उसकी समुचित सुनवाई की जाये।

अनुच्छेद 9—प्रत्येक व्यक्ति को जिसके विरुद्ध दण्डनीय अपराध आरोपित किया गया है, इसका अधिकार प्राप्त है कि तब तक उसे निर्दोष समझा जाये जब तक कि खुली अदालत में, जहां उसे वह सभी प्रत्याभूतियां प्राप्त रही हों जो उसकी प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक हैं, किसी विधि के अनुसार वह दोषी न सिद्ध हो जाये।

2—कोई ऐसा व्यक्ति सिद्ध दोष न ठहराया जायेगा जिस पर किसी ऐसे काम या उपेक्षा के आधार पर अपराध का अभियोग लगाया गया हो जिसे किये जाने के समय राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अपराध की संज्ञा नहीं दी जा सकती थी।]

इस पत्र से और उद्धरण मैं यहां नहीं रखूंगा। सभ्य राष्ट्रों के लिए जो मूल मानवीय अधिकार दिये गये हैं उनका सार यही है जो मैंने सुनाया है। किन्तु अपने संविधान में हम रख रहे हैं ऐसे उपबन्धों को जिनके अनुसार लोगों को, बिना मामला चलाये ही बन्दी और तीन महीने तक निरुद्ध किया जा सकता है और उसके बाद सिर्फ दिखावे के लिए एक ऐसे न्यायाधिकरण द्वारा मामले की सुनवाई की जायेगी जो कार्यपालिका द्वारा पेश किये गये कागजों की एक तरफा जांच करके अपनी राय दे देगा और फिर उसके बाद अभियुक्त को और आगे चाहे जितने दिनों तक निरुद्ध रखा जा सकता है। कुछ प्रान्तों में निरोध की अवधि शुरू में 6 महीने की रखी गई थी और बाद में एक साल की गई और फिर तीन साल कर दी गई। एक प्रान्त में तो ऐसा है कि अभियुक्त को अनिश्चित अवधि तक निरुद्ध रखा जा सकता है। स्वतन्त्र भारत द्वारा निर्मित उसके प्रथम संविधान में आप ऐसे उपबन्धों को स्थान देंगे? फिर तो अपने संविधान की तुलना जब लोग दुनिया के अन्य देशों के संविधानों से करेंगे तो यही कहेंगे कि "यह भी खूब देश है

जिसने अपने विधान-मण्डलों को इस तरह के कानून बनाने की अनुमति दे रखी है।" ऐसी हालत में, मैं यह पूछता हूं क्या अच्छा यह न होगा कि इस विषय को हम यहां रखें ही नहीं और इसे छोड़ दें भावी संसदों की या विभिन्न प्रान्तीय विधान-मण्डलों की सद्‌बुद्धि पर? अनुच्छेद 15-क जैसे अनुच्छेद को स्थान देकर अपने संविधान को कुत्सित बनाने की अपेक्षा क्या यह अच्छा होगा कि इस मसले को हम संसद या प्रान्तीय विधान-मण्डलों के विवेक पर छोड़ दें कि वह जैसा चाहें इस सम्बन्ध में कानून बनावें।

*__श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर__ (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र डॉ. बख्शी टेकचन्द ने तो यहां उन सभी बातों की चर्चा की है जिन पर सभा ने यहां अच्छी तरह विचार कर लिया या और जिन पर पूर्णरूप से वाद-विवाद करने के बाद सभा इस निर्णय पर पहुंची थी कि 'due process' की पदसंहति को इस अनुच्छेद से अवश्य हटा देना चाहिये। जिन कारणों के आधार पर इस पदसंहति को हटाने का निश्चय किया गया था उन पर यहां पूरी तरह से विचार किया गया था। उस अवसर पर मैंने जो कुछ कहा था उसे अब यहां मैं दुहराना नहीं चाहता हूं। हां इतना बता देना चाहता हूं कि इस पदसंहति को हटाने का मुख्य कारण यही समझा गया था कि अगर इसे अनुच्छेद में रहने दिया जाता है तो इससे यह होगा कि निरोध या निर्वासन के सम्बन्ध में अथवा श्रम विनियमन के सम्बन्ध में राज्य कोई विधि ही नहीं बना सकता है। श्रम की समस्या मुख्यत: व्यक्तियों से सम्बन्ध रखती है और मैं यह बता दूं कि अमेरिका की राजनीति में जिस समय अनुदार दल वालों का बोलबाला था उस समय वहां के सर्वोच्च न्यायालय के मतानुसार श्रम-विनियमन सम्बन्धी विधियों को "due process of law" (कानून की नियमानुसार कारवाई) के विपरीत माना जाता था। अमेरिकन श्रमिक से पांच घण्टे काम लिया जाता हो या दस या बारह घंटे उससे दासवत काम लिया जाता हो पर अगर श्रम विनियमन के लिए कोई विधि बनाई जाती थी तो उसे 'due process of law' की पदसंहति में हस्तक्षेप माना जाता था। बाद में चल कर वहां के सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय देकर इस पदसंहति को एक भिन्न निर्वचन दिया था।

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में इस पदसंहति का क्या इतिहास रहा है इसको ध्यान में रखकर, इन सभी बातों पर विचार करने के बाद ही सभा ने जान बूझकर यह निश्चय किया था कि बजाये इसके कि इस पदसंहति के अर्थ को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों पर छोड़ा जाये ओर वे लोग संविधान का स्वरूप निश्चित करें या सर्वोच्च न्यायालय के सभी निर्णयों को पढ़कर उन निर्णयों को मान्य करें जो उन्हें अपनी अनुदार या उग्र चेतना के अनुसार समुचित प्रतीत हों, अच्छा यह होगा कि इस पदसंहति को ही अनुच्छेद से हटा दिया जाये। इसलिए इस समय मैं उन सभी बातों की चर्चा करना नहीं चाहता जिनकी चर्चा यहां पहले की जा चुकी है। उस अवसर पर इस पदसंहति को लेकर बहस यहां हुई उसमें मैंने भाग लिया था और मेरे लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस समय जो वादविवाद चल रहा है उसके प्रयोजन के उन सब बातों की चर्चा करना यहां सर्वथा अप्रासंगिक होगा। पर मैं यह जरूर कह देना चाहता हूं कि उस समय यह अवश्य समझा गया था कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य के लिए कुछ न कुछ प्रत्याभूति संविधान द्वारा अवश्य

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

प्राप्त रहनी चाहिये। हमें कुछ न कुछ ऐसे नियमों को अवश्य मानना होगा जिनसे कि समुचित न्याय मिल सके। उस समय इन प्रश्नों के लिए हम जो कोई उपयुक्त उपबन्ध अनुच्छेद में न रख सकें इसका मुख्य कारण यह है कि कतिपय गौण बातों के बारे में हममें मतभेद हो गया था और हम उनको लेकर तब आपस में लड़ पड़े थे।

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने, जिन्हें वैयक्तिक स्वातंत्र्य के लिए आज भी उतनी ही दिलचस्पी है जितना कि सदा रही है, जब इस संशोधन को यहां पेश करना ठीक समझा है और उनका ख्याल है कि इस नवीन अनुच्छेद को संविधान में स्थान मिलना ही चाहिये। माननीय मित्र डॉ. बख्शी टेकचन्द ने तो यहां तक कह डाला है कि इन नवीन अनुच्छेदों को रखने में उनका भी हाथ हो इसे वह अपने लिए बड़ी लज्जा की बात मानते हैं। मैं पूछता हूं कि आखिर इस अनुच्छेद में खराबी ही क्या है? आइये हम अनुच्छेद का विवेचन करें। इसके प्रथम के दो खण्ड उन्हीं उपबन्धों के आधार पर रखे गये हैं जो वर्तमान अपराध प्रक्रिया संहिता मैं मौजूद हैं और इन उपबन्धों को संविधान में रख कर हम उन्हें स्थायित्व दे रहे हैं। इनको संविधान में रखने में और अपराध प्रक्रिया संहिता में अन्तर इतना ही है कि अपराध प्रक्रिया संहिता में तो केन्द्रीय विधान मण्डल या राज्य का विधान-मण्डल कोई परिवर्तन कर सकता है पर संविधान में इन्हें स्थान देने से यह होगा कि इनमें परिवर्तन फिर उन्हीं उपबन्धों के अधीन किया जा सकेगा जो संविधान के संशोधन के लिए रखे जायेंगे। इसलिए इस अनुच्छेद 15-क में कतिपय महत्वपूर्ण उपबंधों को जिनका सम्बन्ध बुनियादी सिद्धान्तों से है स्थान दिया गया है। अत: मैं नहीं समझता कि इन दो खण्डों के विरुद्ध कोई भी आपत्ति किसी को हो सकती है। यह उपबन्ध अपराध प्रक्रिया संहिता में भी रखे गये हैं और इनको संविधान में रखा जा रहा केवल इसलिए कि कोई विधान-मण्डल इन में कोई परिवर्तन न करने पायें क्योंकि इनका सम्बन्ध बुनियादी समझ कर ही अपराध प्रक्रिया संहिता में रखा गया है।

दूसरी बात यह है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति के लिए संविधान में चाहे आप 'due process' शब्दों को रखिये या 'procedure' को अन्य किन्हीं शब्दों को रखिये, इससे होगा यह कि निरोध या निर्वासन के सम्बन्ध में भी राज्य के सामने दिक्कतें आ जायेंगी। इसे सभी स्वीकार करते हैं कि राज्य की सुरक्षा का प्रश्न भी इतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का प्रश्न। वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दे देने के बाद भी, और इस बात की प्रत्याभूति देने के बाद भी कि किसी को 24 घण्टे से अधिक हिरासत में न रखा जायेगा निरोध के लिये हमें कुछ न कुछ व्यवस्था करनी ही होगी क्योंकि निरोध बुरा जरूर है पर देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है। वैयक्तिक स्वातंत्र्य के बड़े से बड़े हिमायती भी यह मानते हैं कि इस समय देश में ऐसे लोग मौजूद हैं जो अपने संविधान और राज्य की महिमा नष्ट करने पर तुले हुए हैं। अगर हमें समुन्नति करनी है और नागरिकों के स्वातंत्र्य और सम्पत्ति को सुरक्षित रखना है तो जब तक कि इस बुराई को आप समूल नहीं नष्ट कर देंगे या राज्य में समुचित शक्ति न निहित कर देंगे कि वह इनसे लोगों को बचा सके तब तक

तो हम वैयक्तिक स्वातंत्र्य पाने का भी भरोसा नहीं कर सकते हैं जिसको पाने के लिए हम इतने इच्छुक हैं। इसी उद्देश्य से यह नवीन अनुच्छेद प्रस्तावित किया गया है।

इन उपबन्धों में कहा क्या गया है? इनके अनुसार किसी भी व्यक्ति को तीन महीने से ऊपर नहीं निरुद्ध किया जा सकता है जब तक कि मामले पर विचार करके एक न्यायाधिकरण ऐसी राय न दे दे। उस न्यायाधिकरण में ऐसे लोग होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की अर्हता रखते हैं। क्या आप यह कहते हैं कि सेवा निवृत्त अर्थात् अवकाश प्राप्त न्यायाधीश तो इस न्यायाधिकरण के सदस्य हो सकते हैं पर वकील समुदाय के योग्य से योग्य व्यक्ति जिसे उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनने का मौका न मिला हो वह इस न्यायाधिकरण का सदस्य नहीं हो सकता है? अगर इनमें सार्वजनिक सेवा की भावना है तो हम ऐसे वकीलों को भी जो अपने व्यवसाय से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं और जिन्होंने न्यायाधीश पद को नहीं सुशोभित किया हो, इस न्यायाधिकरण का सदस्य बनाया जा सकता है। केवल इसलिए कि वह न्यायाधीश नहीं रहा है, वह न्यायाधिकरण का सदस्य होने के योग्य नहीं है या वह परिस्थिति पर तटस्थ होकर विचार नहीं कर सकता है इसे मानने को कोई तैयार नहीं हो सकता है। साधारणत: न्यायाधिकरण में ऐसे ही लोग होंगे जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुके हों या जो न्यायाधीश होने की योग्यता रखते हों और जिनका चरित्रबल बहुत ऊंचा है। आखिर न्यायाधीश भी कई तरह के होते हैं। हम जो यह कहते हैं कि इस न्यायाधिकरण में न्यायाधीशों का रखना ज्यादा अच्छा होगा वह केवल इस कारण से कि उनको पदावली के सम्बन्ध में निश्चितता रहती है, समाज में उनका एक विशिष्ट स्थान रहता है और मामलों पर सर्वथा तटस्थ और निष्पक्ष भाव से विचार करने के वह आदी रहते हैं। न्यायाधिकरण में इनको रखना इन्हीं सब कारणों से अच्छा समझा गया है।

जो लोग सर्वथा तटस्थ भाव से मामलों पर विचार कर सकते हैं, जो लोग न्यायप्रिय हैं और न्यायोचित व्यवहार करते हैं उन पर यह प्रतिबन्ध लगाना कि वह इस न्यायाधिकरण के सदस्य नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह न्यायाधीश नहीं रह चुके हैं, ठीक नहीं होगा। मुझे विश्वास है कि न्यायाधीशों या सेवा निवृत्त न्यायाधीशों के अलावा भी देश में पर्याप्त संख्या में लोग ऐसे हैं जो इस न्यायाधिकरण का सदस्य बनने के लिए सर्वथा योग्य हैं। जरा कल्पना कीजिये इस स्थिति की कि सर तेज बहादुर सप्रू जीवित हैं पर वह इसके सदस्य नहीं बनाये जा सकते हैं। क्या आपको यह स्थिति स्वीकार है? मैं तो उनको इस न्यायाधिकरण का सदस्य पाकर खुश होता। अभी उस दिन श्री वेंकटरमा शास्त्री एक ऐसे ही निकाय के सदस्य थे। वकील समाज के वह एक अग्रणी व्यक्ति थे और महाधिवक्ता (Advocate General) के उच्चपद को वह सुशोभित कर चुके थे। मद्रास में जो बोर्ड बनाया गया था उसके वह सदस्य थे। उस बोर्ड में वह उन न्यायाधीशों के साथ बैठते थे जो उनसे कहीं कनिष्ठ थे और जो अपनी वकालत के जमाने में उनके नीचे रह कर कुछ सीख सकते थे। इसलिए हमें इस आशय का कोई कठोर उपबन्ध रखने की कोई आवश्यकता नहीं है कि न्यायाधिकरण के सदस्य केवल ऐसे ही लोग हो सकते हैं जो न्यायाधीश हों या रह चुके हों। ऐसा विश्वास करने का सर्वथा कोई कारण नहीं है कि न्यायाधिकरण के सदस्य अभियुक्त की सुनवाई किये बिना ही यह फैसला देंगे कि उसे तीन महीने से ऊपर निरोध में रखने की

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

जरूरत है। ऐसा फैसला तो वह तभी देंगे जब दोनों पक्षों को सुन लेने के बाद उन्हें यकीन हो जायेगा कि अभियुक्त को आगे निरोध में रखना आवश्यक है। सुतरां हर हालत में अभियुक्त एक बार केवल तीन महीने तक ही निरोध में रखा जा सकेगा।

तीन महीने से ऊपर अगर किसी को निरोध में रखना है तो इसके लिए इस विशेष न्यायाधिकरण की स्वीकृति आवश्यक होगी और यह न्यायाधिकरण मामले से सम्बन्ध रखने वाली सारी स्थिति पर विचार करके और उसके सामने जो तथ्य उपस्थित किये जायेंगे उनकी पूरी तरह छानबीन करके ही इस निर्णय पर पहुंचेगा कि अभियुक्त को आगे निरुद्ध रखने के लिए सन्तोषप्रद कारण हैं या नहीं। इसमें मुझे रंच मात्र भी संदेह नहीं है कि साधारणत: हर मामले में अभियुक्त को सूचना जरूर दी जायेगी। किन्तु इस आशय का उपबन्ध रखना कि उसे सूचना देनी ही होगी, उस सिद्धान्त को ही छोड़ना है जिसके आधार पर न्यायाधिकरण का उपबन्ध रखा जा रहा है। बहुत से ऐसे मामले होते हैं जिनमें ठीक-ठीक प्रमाण तो नहीं मिल पाते हैं पर कुछ क्षेत्रों में ऐसी सामग्री मिल जाती है। जिस पर किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को विश्वास हो जायेगा और फिर यह भी बात है कि जो लोग विध्वंसक कार्यों में शामिल हुआ करते हैं वह कभी-कभी इस बात का पूरा ख्याल रखते हैं कि उनके विरुद्ध कोई साक्ष्य न उपलब्ध होने पावे। ऐसे चरम सीमा के मामलों के लिए यह उपबन्ध रखा जा रहा है। पर अगर दूसरी ओर आप यह कहें कि हर मामले में अभियुक्त को सूचना दी ही जानी चाहिये तो इससे यह होगा कि एक बड़ा वितंडा खड़ा हो जायेगा। फिर तो अभियुक्त पर दोषारोप किया जायेगा, उसकी सुनवाई की जायेगी, सवाल जवाब और जिरह होगी, और तब परामर्श करना होगा। उस हालत में तो यह मंत्रणा-मण्डली एक मजिस्ट्रेट की अदालत का रूप धारण कर लेगी जहां उस न्यायालय की सभी बातें होंगी। इससे तो इस अनुच्छेद का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा। इसी लिए यह कहा जा रहा है कि मंत्रणा-मंडली में ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों को रखा जायेगा जिन्हें न्याय तथा विधि का पर्याप्त ज्ञान होगा। आखिर एक ऐसे वकील के लिए जो न्यायाधीश रह चुका हो यह कठिन होगा कि वह मामले पर विचार करने में अपनी विधि प्रियता को छोड़ दे। यही कारण है कि एक न्यायाधिकरण का उपबन्ध यहां किया जा रहा है।

उसके बाद संसद उसमें हस्तक्षेप करेगी। अगर संसद कोई विधि नहीं बनाती है तो जो प्रक्रिया दी गई उसके अनुसार काम किया जायेगा। ऐसे भी मामले हो सकते हैं जिनमें संसद को यह विचार करना पड़े कि आया राज्य के हितार्थ अभियुक्त को तीन महीने से ऊपर निरुद्ध रखना जरूरी है या नहीं। इसके लिए विधि बनायेगी संसद जो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होगी। और फिर (उपरोक्त सांविधानिक प्रत्याभूति के अतिरिक्त) अपराध प्रक्रिया संहिता में और भी प्रत्याभूतियां हैं। अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों को न निरसित किया गया है और न उनमें कोई परिवर्तन किये गये हैं। सांविधानिक प्रत्याभूति द्वारा जो अधिकार प्राप्त हैं वह ऐसे हैं कि उनमें विधान-मण्डल हस्तक्षेप नहीं कर सकते। अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों में तो, सम्भव है कि विधान-मण्डल कोई परिवर्तन कर दे पर इस

प्रस्तुत उपबन्ध में वह कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। सुतरां प्रश्न यह है कि वह अल्पाधिकार कौन हैं जिन्हें हम सुरक्षित रखें।

मैं नहीं समझता कि माननीय मित्र श्री बख्शी टेकचन्द कोई ऐसा संविधान दिखा सकते हैं जिसमें ये सारे उपबन्ध मौजूद हों। मैं उनको चुनौती देने को तैयार हूं कि वह दुनिया का ऐसा कोई भी संविधान पेश करें जिसमें ये सभी उपबन्ध विस्तारपूर्वक दिये गये हों। मैं कह सकता हूं कि एक भी संविधान आपको ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें ये सभी उपबन्ध विस्तार के साथ दिये गये हों। जो संविधान प्रकाश में आ चुके हैं उनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें इतने विस्तृत उपबन्ध रखे गये हों, जिसमें अपराध प्रक्रिया संहिता के ये सारे उपबन्ध लिपिबद्ध किये हों। इतने विस्तृत उपबन्धों को संविधान में स्थान देने से तो विधान-मण्डल के काम में बाधा पड़ेगी, न्यायालयों के काम में बाधा पड़ेगी और न्यायालय वकीलों के लिए अखाड़ा बन जायेंगे। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद 15-क में सावधानी के साथ केवल उन्हीं बातों को रखा है जो मूल सिद्धान्त से सम्बन्ध रखने वाली समझी जा सकती है संविधान के अतिरिक्त उसके लिए और जो प्रत्याभूति आपको चाहिये वह अपराध प्रक्रिया संहिता द्वारा मिल जाती है। अपराध प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों का और अपने संविधान में दिये गये उपबन्धों का साथ-साथ प्रयोग किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मैं और भी कहना चाहता था पर सभा का ज्यादा समय मैं लेना नहीं चाहता है। अच्छा यह होगा कि इस विषय पर जहां तक हो सके जल्द से जल्द हम विचार समाप्त कर दें। यही कारण है कि मैं सभा का और समय इस बारे में नहीं ले रहा हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं आपसे यह अनुरोध करूंगा श्रीमान, कि कृपया आप इस पर प्रकाश डालिये कि यह सत्र (अधिवेशन) कब तक चलेगा।

***अध्यक्ष:** मैं खुद इस मसले पर सोच रहा हूं विचाराधीन कुछ विषय ऐसे हैं जिन पर आगामी अधिवेशन में ही विचार किया जायेगा जो अक्टूबर महीने में बैठेगा। विचारणीय प्रश्न अब यह है कि किन बातों को हम अभी इस अधिवेशन में तय कर लें और किनको अगले अधिवेशन के लिए रखें। विस्तार की बातों पर हम विचार कर रहे हैं और मेरा ख्याल है कि कल मैं सभा को बता सकूंगा कि इन उपबन्धों को हम अगले अधिवेशन के लिए रखेंगे और किन-किन को हम इस वर्तमान अधिवेशन में निबटा देंगे। अगर हम जल्दी-जल्दी अपना काम समाप्त कर सके तो हम यह चाहते हैं कि यह अधिवेशन इसी शनिवार को समाप्त कर दें। पर अगर किसी कारण से हम ऐसा न कर सके तो हमें दूसरे दिन बैठक करनी होगी।

***एक सदस्य:** दूसरा दिन तो रविवार होगा।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं जानता कि रविवार को सदस्य लोग समवेत होना चाहेंगे या नहीं पर मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है। अन्यथा फिर हम सोमवार को बैठेंगे।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): रविवार को प्रात: और सायं दोनों समय हम बैठ जायें और काम समाप्त कर दें।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): हममें से कई कट्टर सनातनी सदस्यों को एक कठिनाई यह है कि हम महालया से पहले अपने घर वापस पहुंच जाना चाहते हैं और यह त्योहार पड़ता है 22 को।

***अध्यक्ष:** महालया सोमवार को तो नहीं है।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** उस दिन तक हमें अपने घर पहुंच जाना है। हो सकता है कि देर करने पर हमें जाने के लिए जगह न मिल सके। इसलिए अगर हम शनिवार को ही अधिवेशन समाप्त कर दें तो इससे हम लोगों को बड़ी सुविधा हो जायेगी।

***अध्यक्ष:** यह बात सदस्यों के हाथ में है। मैं यही कोशिश करूंगा कि काम यथासम्भव शीघ्र समाप्त हो जाये।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): अक्टूबर में हम फिर कब समवेत हो रहे हैं श्रीमान्?

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं सोच पाता हूं 7 अक्टूबर से हमें अपना काम शुरू कर देना होगा। यह कोई अन्तिम फैसला नहीं है पर अभी यही तय रखें।

***माननीय सत्यनारायण सिन्हा** (बिहार : जनरल): 10 से पहले हम नहीं बैठ सकते हैं श्रीमान!

***अध्यक्ष:** फिर तो हमारे पास समय ही नहीं रह जायेगा। दूसरे अधिवेशन में भी एक निश्चित समय के अन्दर ही हमें अपना काम पूरा कर देना है क्योंकि उसके बाद में बैठने के लिए हमारे पास समय नहीं रहेगा। दिवाली पड़ रही है 21 अक्टूबर को। अगर अगले अधिवेशन में हमें छोड़े हुए अनुच्छेदों पर विचार समाप्त कर लेना है तो दिवाली के पूर्व अधिवेशन समाप्त करने से पहले हमें इसमें काफी दिन लग जायेंगे। इसलिए अक्टूबर में हमें यथाशीघ्र समवेत हो जाना चाहिये। यह सब निर्भर करता है इस बात पर कि कितने अनुच्छेद बच जाते हैं अगले अधिवेशन के लिए। इसीलिए मैंने यह कहा था कि इस सम्बन्ध में अधिक निश्चयात्मक रूप से कुछ कह सकूंगा कल।

***एक सदस्य:** अगर हर सदस्य प्रत्येक अनुच्छेद पर बोलेगा, तो फिर तो काम समाप्त करने में हमें लग जायेंगे दो महीने।

***अध्यक्ष:** मैं किसी को बोलने से नहीं रोक सकता हूं।

हमारे सामने कई तिथियां हैं जिनके पहले अपने अधिवेशनों को शुरू और समाप्त कर देना है। तृतीय पठन को हमें समाप्त कर देना है अधिक से अधिक 18 नवम्बर के पहले। इस प्रयोजन के लिए ही हम यह सोच रहे हैं कि तृतीय पठन के लिए अधिवेशन शुरू हो जाये 7 अक्तूबर को जिससे कि हमें उसके लिए 10 दिन का समय मिल जाये। द्वितीय पठन की समाप्ति और तृतीय पठन के आरम्भ के बीच मसौदा-समिति को भी इतना समय मिल जाना चाहिये कि अनुच्छेदों का क्रम ठीक करके, अशुद्धियां को सुधार लें और संविधान को छपवा कर उसे यथासमय

सदस्यों के पास पहुंचवा दें ताकि 7 नवम्बर को जब उस पर विचार शुरू हो तो वह तैयार रहे। इसलिए द्वितीय पठन को तृतीय पठन के प्रारम्भ से काफी पहले समाप्त कर देना आवश्यक है। इसीलिए मैंने यह सुझाव दिया है कि 7 अक्टूबर को अगला अधिवेशन हम शुरू करें और द्वितीय पठन 18 या 19 अक्टूबर को समाप्त कर दें और एक पखवारे का समय मसौदा-समिति को दे दें कि वह इस बीच संविधान को दुहरा जाये ओर उसे छपवा कर सदस्यों को पहुंचवा दें ताकि तृतीय पठन का काम हम 7 नवम्बर को प्रारम्भ कर दें। इन विभिन्न तिथियों के अन्दर हमें अपना काम पूरा कर देना है और इसलिए हमें अपना कार्यक्रम इस हिसाब से बनाना है कि इनके अन्दर ही हम अपना काम निपटा लें।

अब सभा स्थगित होती है कल प्रात: 9 बजे तक के लिए।

इसके पश्चात् सभा शुक्रवार तारीख 16 सितम्बर, सन् 1949 के प्रात: 9 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.36.49
320

अंक 9
संख्या 36

शुक्रवार,
16 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 15-क, 209-क से ङ तथा 303 पर विचार] 2417–2503

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 16 सितम्बर सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रात: नौ बजे, अध्यक्ष महोदय, माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

नवीन अनुच्छेद 15-क—*जारी*

(श्री जसपतराय कपूर अपनी जगह पर उठे)

***अध्यक्ष:** क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं अनुच्छेद 15-क पर बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जी हां, हम अनुच्छेद 15-क पर बहस जारी रखेंगे। श्री जसपत राय कपूर!

श्री रामसहाय (मध्य भारत): मैं पूछना चाहता हूं कि क्या आप असेम्बली का, आगे का प्रोग्राम बता सकते हैं? आप अगर यह पहले वक्त ही अनाउंस कर देते तो ज्यादा अच्छा था। कल आपने आज बताने को फरमाया था।

अध्यक्ष: पहले वक्त इसको बताने में जरा दिक्कत है।

मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे बहस को न बढ़ायें क्योंकि आखिर वह एक ऐसे विषय के संबंध में है जिस पर पिछले सत्र में विस्तृत रूप से विचार-विमर्श हो चुका है। यदि सम्भव हो तो हम इसे आज या कल तक समाप्त कर देना चाहते हैं। यदि इस पर विचार-विमर्श करके इसे कल तक समाप्त कर दिया जाये तो बाद में कुछ अन्य विषय, अर्थात् प्रस्तावना और पहला अनुच्छेद उठाया जा सकता है।

श्री टी.टी. कृष्णमाचारी (मद्रास : जनरल): प्रस्तावना अभी नहीं उठाई जा सकेगी। वह अन्त में उठाई जायेगी।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

*__अध्यक्षः__ अच्छी बात है। हम पहले अनुच्छेद पर विचार करेंगे और हमें विधेयक पर भी विचार करना होगा। सभा को अब यह विदित हो गया होगा कि आज और कल तक उसे कितना कार्य करना है। यदि इस पर विचार किया गया तो मुझे आशा है कि माननीय सदस्य इस बहस को जहां तक सम्भव होगा सीमित करेंगे जिससे हम कल तक बहस समाप्त करके सत्र को भी समाप्त कर देंगे।

*__श्री जसपतराय कपूरः__ श्रीमान्, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं आपकी इच्छा पूरी करने के लिये यथाशक्ति प्रयास करूंगा। वास्तव में अनुच्छेद 15-क की चर्चा से कुछ भी प्रसन्नता नहीं होती। यह सारा अनुच्छेद कर्णकटु है और सच पूछिये तो मूलाधिकार विषयक अध्याय में जिस कट्टरपंथी का अनुसरण किया गया है उसका एक उदाहरण यह अनुच्छेद भी है। इस अध्याय को "मूलाधिकारों पर परिसीमन" शीर्षक के अधीन रखना अधिक उपयुक्त होगा अथवा "मूलाधिकार" शब्द के पश्चात् "तथा उन पर परिसीमन" शब्द रखे जा सकते हैं। इसका कारण यह है कि इस अध्याय में स्वतंत्रता के अधिकारों पर उतना जोर नहीं दिया गया है जितना निर्बन्धनों तथा परिसीमनों पर।

मैं केवल चार या पांच बातों की चर्चा करूंगा। पहली बात यह है कि केवल दो वर्गों के लोग बन्दी किये जा सकते हैं: (1) वे लोग जो किसी स्पष्ट दोषारोप के आधार पर बन्दी किये गये हों, और (2) वे लोग जो किसी स्पष्ट दोषारोप के आधार पर हवालात में निरुद्ध न किये गये हों बल्कि जिन्हें राज्य के हित में निरुद्ध करना आवश्यक हो। पहले वर्ग के लोगों को कोई नये अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं। अनुच्छेद में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को बिना दंडाधिकारी के प्राधिकार के बन्दी नहीं किया जायेगा। किन्तु अपराध प्रक्रिया संहिता के अधीन प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है। यह कहा जा सकता है कि इस संहिता को संसद अथवा प्रान्तीय विधान-मंडल भी बदल सकते हैं। किन्तु हम पूर्ववत् विधान-मंडलों का विश्वास कर सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि वे किसी स्पष्ट दोषारोप के आधार पर भी, बिना किसी दंडाधिकारी के प्राधिकार के, किसी व्यक्ति को चौबीस घंटे से अधिक निरुद्ध करने के संबंध में उपबन्ध नहीं रखेंगे। इसलिये इस स्थल पर जो अधिकार प्रदान किया जा रहा है वह नागरिकों को पहले से ही प्राप्त है। यह भी उपबन्धित किया गया है कि 24 घंटे की कालावधि में वह व्यक्ति दंडाधिकारी के समक्ष पेश किया जायेगा। अपराध प्रक्रिया संहिता में यह उपबन्ध भी है। इसलिये इस अनुच्छेद द्वारा कोई नवीन अधिकार नहीं प्रदान किया जा रहा है और न इसके द्वारा किसी ऐसी बात की प्रत्याभूति दी जा रही है जिसके संबंध में कोई विधानमंडल उपबंध नहीं रखेगा।

जहां तक दूसरे वर्ग के लोगों का संबंध है, अर्थात् जिन लोगों को सुरक्षा के लिये हवालात में निरुद्ध किया जायेगा, उन्हें भी इस अनुच्छेद द्वारा कोई ऐसे अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं जिनकी गिनती की जा सकती है। खण्ड 3 (ख) में यह उपबन्धित है कि "इस अनुच्छेद में की कोई बात जो व्यक्ति निवारक निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी या निरुद्ध किया गया है उसको

लागू न होगी।" इसका अर्थ यह है कि निरुद्ध व्यक्ति को बिना दंडाधिकारी के प्राधिकार के 24 घंटे से अधिक कालावधि तक निरुद्ध न रखने के प्रारम्भिक अधिकार से वंचित किया जा रहा है। निरुद्ध रखने से संबंधित विधि के कुछ उपबन्धों के अधीन रहते हुए वह किसी भी कालावधि के लिये निरुद्ध रखा जा सकता है। किन्तु यह दूसरी बात है। यह कहा जा सकता है कि किसी भी निवारक विधि में बिना दंडाधिकारी के प्राधिकार के किसी व्यक्ति को बन्दी अथवा निरुद्ध करने के संबंध में उपबन्ध नहीं रखे जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि आप विधान-मंडल की सद्‌भावना का विश्वास कर रहे हैं। इस दशा में मूलाधिकारों के अध्याय में किसी बात की प्रत्याभूति देने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस अध्याय में हमें कुछ परमावश्यक मूलाधिकारों के संबंध में उपबंध रखने चाहियें चाहे विधान मंडल युक्तियुक्त ढंग से कार्य करे या न करे। इसलिये बिना दंडाधिकारी के प्राधिकार के निरुद्ध न किये जाने का अधिकार उस व्यक्ति को नहीं दिया जा रहा है जो सुरक्षा के प्रयोजनों के लिये विरुद्ध किया जायेगा।

इसके अतिरिक्त कोई निरुद्ध व्यक्ति कितने ही समय के लिये निरुद्ध रखा जा सकता है। किन्तु यदि वह तीन मास से अधिक काल तक निरुद्ध रखा जाये तो एक मंत्रणा मंडली से परामर्श करना आवश्यक होगा। इसमें भी हम देखते हैं कि मंडली को उसके मामले पर विचार करने के पश्चात् भी वह किसी भी समय के लिये निरुद्ध रखा जा सकता है। मेरे विचार से यह बहुत ही अनुचित है। मेरे विचार से हमें इस आशय का उपबन्ध रखना चाहिये कि ऐसे मामलों पर समय-समय पर विचार किया जायेगा। मैंने इस आशय के एक संशोधन की सूचना दी थी। किन्तु जिस समय उसे उपस्थित करना था उस समय दुर्भाग्य से मैं सभा में नहीं आ सका। यदि डॉ. अम्बेडकर इसकी आवश्यकता देखें तो वे इस स्थल पर इस आशय का एक उपबन्ध रख सकते हैं। मेरा यह सुझाव है कि ऐसे मामले पर तीन-तीन मास में अथवा इससे अधिक समय में विचार किया जाये ताकि निरुद्ध व्यक्ति को इसका संतोष रहे कि उसके मामले पर समय-समय पर विचार किया जा रहा है। अन्यथा इसका अर्थ यह होगा कि यदि उसके तीन मास निरुद्ध रहने के पश्चात् मंत्रणा मंडली का यह विचार हो कि उसे निरुद्ध ही रखा जाये तो उसके मामले पर फिर विचार ही नहीं किया जायेगा और उसे कई वर्षों तक केवल कार्यपालिका की ही दया का आसरा रहेगा।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार : जनरल): क्या वह कितने ही वर्षों तक निरुद्ध रखा जा सकेगा अथवा क्या संसद अधिकतम कालावधि निर्धारित करेगी?

*__श्री जसपतराय कपूर:__ संसद के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह अधिकतम कालावधि निर्धारित करे। खण्ड (4) में कहा गया है कि यदि संसद चाहे तो वह इस प्रकार की विधि बना सकती है किन्तु उस पर इस बात का कोई आभार नहीं है। इसके अतिरिक्त खण्ड (4) के अधीन संसद द्वारा निर्मित विधि के अधीन निरुद्ध किसी व्यक्ति के मामले पर मंत्रणा-मंडली खण्ड (3) के परन्तुक (ख) के अनुसार विचार नहीं करेगी।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ यदि संसद कोई विधि बनायेगी तो वह अधिकतम कालावधि भी निर्धारित करेगी।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ जी हां, किन्तु क्या संसद पर इस प्रकार की विधि बनाने का आभार है? यदि वह कोई विधि भी बनाये तो यह कहां निर्धारित है कि अधिकतम कालावधि निश्चित की जाये, और यदि वह निश्चित की भी गई तो क्या इस अनुच्छेद में किसी कालावधि का सुझाव रखा गया है? क्या इस सभा को संसद के पथ प्रदर्शन के लिये यह सुझाव नहीं रखना चाहिये कि अमुक अमुक कालावधि निरोध की अधिकतम कालावधि होगी और इस संबंध में संसद जो विधि बनाये उसमें इसे निर्धारित करना चाहिये? आप फिर संसद की सद्भावना का विश्वास करके इस विषय को उसके निर्णय के लिये छोड़ रहे हैं। यदि यही बात है तो इस अनुच्छेद 15-क को अकारण रखकर आप यह क्यों प्रदर्शित करना चाहते हैं कि आप कुछ मूलाधिकार प्रदान कर रहे हैं, क्योंकि वास्तव में आप इस संबंध में सुझाव रख रहे हैं कि विधान मंडल को वैयक्तिक स्वातन्त्र्य को परिसीमित करने की कहां तक स्वतंत्रता है? जहां तक निरुद्ध व्यक्तियों का संबंध है, उनकी इस अध्याय में किसी प्रकार की रक्षा नहीं की गई है। मेरा निवेदन है कि यह एक बहुत बड़ी कठोरता है और इससे मूलाधिकारों तथा वैयक्तिक स्वातंत्र्य के मूल पर ही आघात होता है। निरुद्ध व्यक्ति बिना दंडाधिकारी की मंजूरी के ही हवालात में निरुद्ध रखा जा सकता है, और कितने ही समय के लिये निरुद्ध रखा जा सकता है, तथा सम्भव है उसे यह भी न बताया जाये कि उसे किस कारण निरुद्ध किया गया है। उसके मामले पर केवल एक बार विचार किया जायेगा और उस पर समय-समय पर विचार नहीं होगा। मेरा निवेदन है कि यदि डॉ. अम्बेडकर और कोई बात स्वीकार न करें तो कम से कम इसे तो स्वीकार करें कि ऐसे लोगों के मामलों पर समय-समय पर, अर्थात् हर तीन मास के पश्चात् अथवा हर छह मास के पश्चात् विचार किया जायेगा। अन्यथा जहां कोई व्यक्ति निरुद्ध हुआ और मंत्रणा-मंडली ने उसे निरुद्ध रखने के संबंध में एक बार विचार किया वहां यह निश्चित हो गया कि उसके भाग्य में क्या लिखा है। उसके संबंध में कार्यपालिका जो चाहेगी, करेगी। छह महीने बाद अथवा नौ महीने बाद, अथवा बारह महीने बाद, देश की स्थिति बल सकती है। सम्भव है कुछ और बातें प्रकाश में आयें। इस बदली हुई स्थिति को तथा इन नई बातों को मंत्रणा-मंडली के सामने रखना चाहिये क्योंकि इन पर विचार करके वह सरकार को परामर्श देगी कि उस व्यक्ति को छह महीने तक, अथवा नौ महीने तक, अथवा बारह महीने तक हवालात में निरुद्ध रखना आवश्यक है या नहीं। यह बहुत ही साधारण तथा तर्कपूर्ण बात है। कृपया बन्दियों को आशा की इस अंतिम किरण से संचित न कीजिये। हममें से जिन लोगों को विभिन्न सत्याग्रह आन्दोलन में निरुद्ध होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, क्योंकि मैं इसे सौभाग्य ही कहूंगा, वे जानते हैं कि हम किस प्रकार छह मास की अवधि समाप्त होने की बाट जोहते रहते थे। हम यह विचार करते थे कि इस अवधि के समाप्त होने पर अधिकारी हमारे मामलों पर विचार करेंगे और सम्भव है वे इसकी आवश्यकता समझें, अथवा इसे उचित समझें कि हममें से कुछ लोग मुक्त किये जायें। हमारी जो भावनायें रही हैं, तथा हमारा जो अनुभव रहा है, उसे हम न भूलें। हमें यह भी न भूलना चाहिए कि यद्यपि आज हम लोग पदारूढ़ हैं किन्तु कौन कह सकता है कि कल कौन पदारूढ़ होगा और हम उस स्थिति में नहीं पड़ेंगे जिस स्थिति में आज बन्दी हैं। जो कोई भी निरुद्ध किया जाये उसे ये मूलाधिकार प्राप्त होने चाहियें। बिना इन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दिये हुए यह हास्यास्पद ही है कि हमसे इस अनुच्छेद को स्वीकार करने के लिये

कहा जाये और वह भी कहा जाये कि इसके द्वारा इन मूलाधिकारों को प्रत्याभूति दी गई है, यद्यपि वास्तव में बात बहुत कुछ इसके उल्टी है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि मूल अनुच्छेद में ही "यथोचित विधि-प्रक्रिया" शब्द रख दिये जाते किन्तु दुर्भाग्य से मेरे अन्य मित्रों की यह राय नहीं और सभा में "विधि द्वारा विहित प्रक्रिया" पदावली स्वीकार की। मेरे माननीय मित्र, मसौदा समिति के सभापति ने, भी यही राय दी कि यह पदावली बहुत विस्तृत है और इसके कारण परिवर्तित अनुच्छेद 15 में किसी प्रकार की प्रत्याभूति तथा मूलाधिकार नहीं रह जायेगा। क्योंकि संसद जो भी चाहेगी कर सकेगी। इसलिये कोई ऐसा आधारभूत अधिकार नहीं है जिसे संसद समाप्त नहीं कर सकती है। संविधान के किसी खंड में जो आधारभूत बातें हों वे इस प्रकार की होनी चाहियें कि उन्हें संसद, विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य समय, स्वनिर्मित विधि द्वारा समाप्त न कर सके। अनुच्छेद 15 जिस रूप में पारित किया गया है उसमें इस प्रकार का परिसीमन नहीं है। इसी कारण डॉ. अम्बेडकर ने तथा मसौदा समिति ने सतर्क होकर इन खंडों को रखने का विचार किया। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ये खण्ड अपराध प्रक्रिया संहिता में भी हैं किन्तु इन्हें संविधान में इस कारण रखना आवश्यक है। यह सम्भव है कि इस समय उस संहिता में जो कुछ है उसे बदल दिया जाये। वास्तव में मेरे बहुत से मित्र यह चाहते हैं कि यहां कुछ अधिक निबन्धन रखें जाये ताकि बाद में संसद नियमों में तथा अपराध प्रक्रिया संहिता में कोई ऐसे परिवर्तन न कर सके जिनसे ये रक्षण ही समाप्त हो जायें। उदाहरणार्थ "यथाशक्य शीघ्र" शब्दों पर आपत्ति की गई है। वे यह चाहते हैं कि सब कुछ 24 घंटे में ही कर दिया जाये। मैं यह देखता हूं कि व्यावहारिक दृष्टि से इस संबंध में वास्तव में कुछ कठिनाइयां हैं। अपराध प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अधीन जैसे ही कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाये उसे यथाशीघ्र किसी दंडाधिकारी के पास ले जाना चाहिये। उसकी चिंता नहीं की गई है कि उस दंडाधिकारी को उस मामले के संबंध में क्षेत्राधिकार प्राप्त है या नहीं। यह कमी रह गई है। एक तीसरी श्रेणी के दंडाधिकारी को—जब तक दूसरे श्रेणी के दण्डाधिकारी को इस संबंध में शक्ति प्रदान न की जाये—किसी व्यक्ति को 15 दिन की कालावधि के लिये निरुद्ध करने का प्राधिकार प्राप्त नहीं होगा। वर्तमान अपराध प्रक्रिया संहिता में यह दोष है, जो दंडाधिकारी प्रभारी न हो और जो मामले पर विचार भी न करे, 15 दिन की अधिक कालावधि के लिये किसी व्यक्ति को हवालात में निरुद्ध रखने के लिये आदेश दे सकता है। स्थिति यही है। धारा 167 में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि यदि पुलिस इसके लिये अभ्यावेदन करे कि अभियुक्त को अधिक काल तक निरुद्ध रखा जाये तो उसे दंडाधिकारी के सामने पर्याप्त कारण, अर्थात् उसे जो सूचना प्राप्त है, अभियुक्त के विरुद्ध जो अभियोग है, तथा आगे चल कर उस पर जो अभियोग लगाये जायेंगे, वे सब रखने चाहियें ताकि वह इसका निर्णय कर सके कि अभियुक्त को आगे पन्द्रह दिन तक निरुद्ध रखना आवश्यक है या नहीं। सम्भव है कि पुलिस का अधिकारी यह सूचना सीधे-सीधे दे दे। इस दशा में 24 घंटे के अन्दर सूचना देने के संबंध में जो संशोधन है वह सार्थक है। किन्तु ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें इस प्रकार की सूचना देना सम्भव न हो। यदि 24 घंटे में सूचना दे

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

दी गई तो निरुद्ध करने का उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने का उद्देश्य क्या होता है? वह इसलिये निरुद्ध किया जाता है कि वह गवाही में हस्तक्षेप न कर सके। बहुत गम्भीर मामलों में इसके कारण कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। अभियुक्त प्राय: गवाही में हस्तक्षेप करता है और उसे प्राप्त ही नहीं करने देता।

इस स्थिति में मुझे सन्देह है कि प्रत्येक मामले में अभियुक्त को 24 घंटे में वह सब सूचना देना, जो पुलिस को प्राप्त हो, उचित होगा या नहीं। कई मामलों में पुलिस अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है और अपने उत्साह में केवल सन्देह होने पर ही किसी व्यक्ति को बन्दी बना सकती है। और यह भी इच्छा प्रकट कर सकती है कि उसे पन्द्रह दिन के लिये हवालात में निरुद्ध रखा जाये। हमारी सरकार, वह सरकार जिसमें अधिकांश लोग लोक-शासन के पक्ष में हैं, इस प्रकार के दुरुपयोग को नहीं होने देगी। सुविधा इसी में होगी कि इस खण्ड को रहने दिया जाये क्योंकि यह उस धारा का स्थान लेगा जो 24 घंटे के संबंध में है। गवाही प्राप्त करने तथा उसे दंडाधिकारी तथा अभियुक्त के सामने रखने के पूर्व इस प्रकार की सूचना देना खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

जहां तक इस सुझाव का संबंध है कि अनुच्छेद 15 (क) (1) के अन्त में "और न अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षण कराने के अधिकार से वंचित रखा जायेगा" शब्द जोड़ दिये जायें, मैं इससे सहमत हूं। हम जानते हैं कि कई मामलों में, जैसेकि सन् 1942 के आन्दोलन में, गवाहों की परीक्षा करने का अधिक अधिकार प्राप्त था।

***श्री के कामराज** (मद्रास : जनरल): यदि, उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति की अर्थात् किसी साम्यवादी की यह इच्छा हो कि वह एक रूसी वकील से परामर्श करेगा तो क्या इसकी आज्ञा दी जायेगी?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** रूसी वकील रूस के लिये उपयुक्त हो सकता है किन्तु हमारे लिये एक भिन्न प्रकार का वकील उपयुक्त होगा। हम वकीलों के लिये पहले से बुरी भावनायें न बनायें। वास्तव में यदि वकील न होते तो यह संविधान ही अस्तित्व में नहीं आता। वे संसार के कल्याण के लिये बहुत कुछ कर रहे हैं। मैं इस विषय पर अधिक विस्तार से नहीं बोलना चाहता। आप भले ही प्रतिदिन वकीलों से लड़े, किन्तु आपको उनकी सेवाओं की आवश्यकता रहती ही है और उनके बिना आपका काम नहीं चलता। प्राय: उनकी आलोचना की जाती है। और दुर्भाग्य से उनके संबंध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये उन्होंने भागीरथ प्रयत्न किया हैं इसलिये यह शक्ति, अथवा यह अधिकार, विधि द्वारा दिया जाना चाहिये। मैं अपने माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या इस स्थल पर वकील द्वारा प्रतिरक्षा करवाने तथा गवाहों की परीक्षा करने के संबंध में उपबंध न रखने चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि आपात के समय कुछ नहीं किया जा सकता है किन्तु शान्ति-काल में जो व्यक्ति बन्दी किया जाये उसे यह अधिकार प्राप्त होना ही चाहिये।

मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने इस आशय के एक संशोधन की सूचना दी है कि किसी खण्ड में इसका भी उल्लेख होना चाहिये कि फैसला शीघ्र होना चाहिये। इस संबंध में अपराध प्रक्रिया संहिता में इस समय जो उपबन्ध हैं वे पर्याप्त हैं और इसलिये इस आशय के किसी खण्ड की आवश्यकता नहीं है। "शीघ्र" शब्द एक अनिश्चित शब्द है। किसी मामले में जो बात शीघ्र हुई कही जाती है वही किसी दूसरे मामले में शीघ्र नहीं हुई कही जाती है। इसलिये इस प्रकार के खण्ड की आवश्यकता नहीं है।

मैं इसके पक्ष में हूं कि प्रत्येक ऐसे मामले में, जिसमें दंड दिया जाये अथवा दंड सुनाया जाये, कम से कम एक बार अपील कराने का अधिकार अवश्य ही होना चाहिये क्योंकि किसी एक ही व्यक्ति को किसी के स्वातंत्र्य के संबंध में निर्णय करने की शक्ति नहीं दी जा सकती। अपराध-संबंधी वर्तमान विधि में व्यक्ति की रक्षा की अपेक्षा सम्पत्ति की रक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। यह एक दुर्भाग्य की बात है कि पहली सरकार ने और हमारे विजेताओं ने मनुष्यों को उतना मूल्यवान नहीं समझा जितना कि उन्होंने समिति को समझा। मूल्यांकन के इस आधार को बदलने की आवश्यकता है। हम किसी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति के आधार पर, अथवा उसकी साक्षरता के आधार पर, मत देने का अधिकार प्रदान नहीं कर रहे हैं। संविधान के अधीन प्रत्येक मनुष्य को मत देने का अधिकार प्राप्त है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य की हर प्रकार रक्षा करने की आवश्यकता है। मनुष्य योनि एक पवित्र योनि है। इस दृष्टि से मैं यह चाहता हूं कि कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार दिया जाना चाहिये और इसका संविधान में उल्लेख होना चाहिये।

निवारक निरोध के संबंध में, मेरे माननीय मित्र डॉ. बख़्शी टेकचन्द को इस संबंध में संविधान में कोई उपबन्ध रखने पर आपत्ति है। उन्होंने कहा है कि संसार के किसी भी संविधान में निवारण निरोध के संबंध में उपबन्ध नहीं है। उनका आशय यह है कि संसद को इसकी स्वतंत्रता है कि वह किसी अपराध के निवारण के लिये विधि बनाये। इस खण्ड में संसद को इस प्रकार की शक्ति नहीं प्राप्त होती है। हम यह माने लेते है कि इस शक्ति का यहां पर उल्लेख नहीं है। जब तक आप स्पष्ट शब्दों में नहीं कहते हैं कि किसी प्रकार का निवारक निरोध नहीं होना चाहिये तब तक क्या संसद को इसकी स्वतंत्रता नहीं होगी कि.....

***पं. ठाकुर दास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): वर्तमान धारा के अधीन संसद बाद को इस आशय की कोई विधि नहीं बना सकेगी कि कोई भी व्यक्ति तीन मास से कम कालावधि के लिये हवालात में निरुद्ध रखा जा सकता है। वास्तव में इससे स्थानीय कार्यपालिका को किसी व्यक्ति पर बिना मुकदमा चलाये हुए ही उसे तीन मास तक हवालात में निरुद्ध रखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। बाद को संसद तीन मास की अवधि के बारे में कुछ नहीं कर सकेगी। कठिनाई यह है।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ उपबन्ध इस प्रकार है:

"जब तक कि ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं, मिलकर बनी मंत्रणा-मंडली ने तीन महीने की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व प्रतिवेदित नहीं किया है कि ऐसे निरोध के लिये उसकी राय में पर्याप्त कारण है।"

इसका मैं यह निर्वचन नहीं करता कि संसद को तीन मास की कालावधि बदलने की शक्ति प्राप्त नहीं होगी। उसमें केवल यह कहा गया है कि प्राधिकारियों को अधिक से अधिक तीन मास तक निरुद्ध रखने की शक्ति प्रदान की जाती है। बिना मामले को मंत्रणा-मंडली के सामने रखे हुए वे तीन मास की कालावधि को बढ़ा नहीं सकते हैं। उस में संसद के अधिकार का उल्लेख नहीं है। असल में बात यह है, जब कोई व्यक्ति बन्दी किया जाये तो यह आवश्यक है कि उसका मामला मंत्रणा-मंडली के सामने रखा जाये। चाहे जो भी शब्द हों किन्तु मेरा यह विश्वास है कि संसद को यह कहने का अधिकार है, कि इस खण्ड के होते हुए भी, किसी व्यक्ति के निवारक निरोध के हेतु बन्दी किये जाने पर तुरन्त ही उसका मामला मंडली के सामने रखा जायेगा और वह जो भी निर्णय करना चाहेगी, करेगी और वह भी कह सकेगी कि वह व्यक्ति तीन मास के पहले ही मुक्त कर दिया जाये।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ खण्ड (4) के अधीन बनी हुई विधि के अधीन निरुद्ध कोई व्यक्ति क्या अपने मामले को मंडली के विचारार्थ उसके सामने रखवा सकेगा?

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ जी हां।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ जी नहीं, उसे यह सुविधा प्राप्त नहीं होगी।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:__ खण्ड इस प्रकार है:

"संसद विधि द्वारा विहित कर सकेगी कि किन परिस्थितियों के अधीन तथा किस प्रकार या प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक-निरोध को उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा और कितनी अधिकतम कालावधि के लिये वह व्यक्ति इस प्रकार निरुद्ध किया जा सकेगा।"

यह सच है कि दिखाई यह देता है कि यह केवल उन मामलों के संबंध में प्रयुक्त होगा, जिनमें किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक समय के लिये निरुद्ध रखने का प्रयास किया जायेगा। यदि यह तीन मास से कम कालावधि के बारे में है तो इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि इस संबंध में संसद् को अधिकार प्राप्त है या नहीं। इस अनुच्छेद के जिन शब्दों को मैंने पढ़कर सुनाया है, उनका उद्देश्य यह नहीं प्रतीत होता है कि संसद के अधिकारों को सीमित किया जाये। हो सकता है इसके फलस्वरूप पुलिस से सूचना प्राप्त करने का अधिकार न रहे।

सम्भव है, संसद को इसकी स्वतंत्रता होगी कि वह पुलिस को इस संबंध में किसी प्रकार की सूचना न देने की शक्ति प्रदान करे। इस अर्थ में संसद को नागरिक की स्वतंत्रता को परिसीमित करने की शक्ति ले ली गई है। अन्यथा जहां कहीं मंत्रणा-मंडली गठित होगी वहां बिना मंडली के परामर्श के कोई व्यक्ति तीन मास से अधिक समय के लिये निरुद्ध नहीं रखा जा सकता है, चाहे इस संबंध में संसद ने विधि बनाई हो या न बनाई हो। संसद को इस संबंध में विधि बनानी होगी कि किस परिस्थिति में, कौन पदाधिकारी और किस श्रेणी का पदाधिकारी, किसी व्यक्ति को निवारक निरोध के निमित्त हवालात में निरुद्ध कर सकता है।

मैं देखता हूं कि यहां एक कमी रह गई है। मै यह नहीं समझ पाया हूं कि क्या मंत्रणा-मंडली को इसकी स्वतंत्रता है कि वह समय-समय पर अर्थात् तीन मास में या छह मास में कम से कम एक बार मामलों पर पुनर्विचार करे। 1942 में जो लोग निरुद्ध किये गये थे उनके मामलों पर छह मास में एक बार विचार किया जाता था। परन्तुक (क) की जैसी शब्दावली है, उसमें इस प्रकार का कोई उपबन्ध नहीं है। इस परन्तुक को यथोचित रूप से संशोधित करना चाहिये ताकि मंडलों को इन मामलों पर पुनर्विचार करने की शक्ति प्राप्त हो जाये। मसौदा समिति के सभापति महोदय ने कई कठिनाइयों की कल्पना की है और उन सभी को दूर करने के लिये उन्होंने उपबन्ध रखे हैं। किन्तु एक कमी रह गई है वे किसी समय भी तीन मास तक कारागार में नहीं रहे और इसलिये वे इसकी कल्पना नहीं कर सके कि अन्य लोगों को क्या कष्ट झेलने होते हैं। पहली सरकार ने भी मामलों पर छह मास में एक बार पुनर्विचार करने के संबंध में उपबन्ध रखा था, यद्यपि यह कहा जा सकता था कि यह पुनर्विचार-विषयक उपबन्ध निरर्थक था। किन्तु यह दूसरी बात है। हमें यहां समय-समय पर पुनर्विचार करने के संबंध में उपबन्ध रखने चाहियें। मंत्रणा-मंडली की एक ही बैठक नहीं होनी चाहिये। तीन या छह मास के पश्चात् कई ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनके आधार पर उस व्यक्ति को मुक्त करना आवश्यक हो सकता है। इसलिये यह उपबन्ध उस विधि के अधीन होना चाहिये जिसमें समय-समय पर पुनर्विचार करने की व्यवस्था की गई हो।

अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारे कुछ मित्रों ने इस आशय का एक संशोधन रखा है कि किसी व्यक्ति को एक वर्ष से अधिक समय के लिए निरुद्ध न रखा जाये। मैं इससे सहमत हूं कि प्रथम बार किसी को तीन मास से अधिक समय के लिये निरुद्ध न किया जाये, और अधिक से अधिक एक वर्ष के लिये निरुद्ध किया जाये, किन्तु आयात आदि के समय कुछ विशेष मामले भी उठ सकते हैं। ऐसे मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों के संबंध में एक वर्ष का निर्बन्धन होना चाहिये....

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ आपात काल में ये उपबंध प्रभावी नहीं रहेंगे।

*__श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः__ यदि ये उपबन्ध साधारण मामलों के संबंध में है तो किसी ऐसे राजनैतिक दल का भी उदय हो सकता है, जिसके सदस्य हमारे ही समान काले रंग के लोग हों और जो लोगों की आंखें फोड़ कर अथवा हाथ काट कर अथवा अन्य किसी प्रकार के बर्बर उपायों को काम में लाकर

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

अपना आन्दोलन चलायें। मैं कह नहीं सकता कि इस दल के सदस्यों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये। उनकी इस प्रकार की चाले हैं और मैं कह नहीं सकता कि वे अपना रवैया बदलेंगे भी या नहीं। ऐसी स्थिति में राज्य के कल्याण के लिये क्या यह युक्तियुक्त नहीं है कि हम एक ऐसा उपबन्ध रखें जिसमें निरोध-काल सीमित नहीं किया गया हो? हो सकता है कि पदाधिकारी अथवा कार्यपालिका इस शक्ति का दुरुपयोग करे। इसलिये मैं यह कहूंगा कि प्रथम बार एक वर्ष तक निरुद्ध रखा जाये। किन्तु विशेष मामलों में एक वर्ष और निरुद्ध रखा जाये। हमें किसी ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध रखने की अधिकतम कालावधि भी निश्चित कर देनी चाहिये। इस पर भी विचार करना चाहिये कि क्या संसद को इसकी स्वतंत्रता नहीं देनी चाहिये कि वह स्थिति देखकर अधिकतम कालावधि निश्चित करे। यदि इस समय एक वर्ष की कालावधि निर्धारित की जाती है तो सम्भव है बिना संविधान में संशोधन किये हुए, जिसके लिये दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होगी, उसे नहीं बदला जा सके। मैं इस विचार से पूर्णतया सहमत नहीं हूं। इसलिये मैं चाहता हूं कि जो सुझाव मैंने प्रस्तुत किया है उसके अनुसार रूपभेद किया जाये। अन्यथा "विधि विहित" प्रक्रिया से बहुत स्वतंत्रता मिल जायेगी और सरकार किसी नागरिक के स्वातंत्र्य को सीमित ही न कर सकेगी बल्कि उसे मनमाने ढंग से कारागार में भी बन्द करा सकेगी। यदि कोई ऐसा प्रतिद्वन्द्वी दिखाई देगा, जो निर्वाचन में विरोध करेगा तो सम्भावना इसी की होगी कि वह कारागार में बन्द कर दिया जायेगा। इसलिये इस खण्ड में यह उपबन्ध रखकर थोड़ा बहुत सुधार कर दिया जाये कि किसी व्यक्ति की प्रतिरक्षा के लिये वकील रखा जा सकता हैं कोई ऐसा उपबन्ध भी रख देना चाहिये जिससे मंत्रणा मंडली तीन मास के अन्दर मामलों पर विचार कर सके, और कालावधि भी निश्चित कर देनी चाहिये, तथा संसद को यह शक्ति भी प्रदान कर देनी चाहिये कि वह जब चाहे इस संबंध में दूसरी व्यवस्था करे।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर मुझे इसके लिये क्षमा करें किन्तु मुझे बड़ी प्रसन्नता होती यदि डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा-समिति के अन्य सदस्य मसौदा समिति में आने के पूर्व कारावास का कुछ अनुभव कर चुके होते।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं अब उस अनुभव को प्राप्त करने का प्रयास करूंगा।

***श्री महावीर त्यागी:** यद्यपि डॉ. अम्बेडकर को ब्रिटिश सरकार ने यह सौभाग्य प्राप्त नहीं कराया किन्तु मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि जो संविधान वे अपने हाथ से बना रहे हैं उससे उन्हें यह अनुभव अपने जीवन-काल में भी प्राप्त हो जायेगा। एक दिन वह आयेगा कि जिन खण्डों को वे रच रहे हैं उन्हीं के अधीन उन्हें निरुद्ध किया जायेगा *(विघ्न)*। तब उनकी समझ में आयेगा कि उन्होंने क्या गलती की थी। जब तक सभा का अधिवेशन होता है और सदस्य इन जगहों पर

बैठे रहते हैं तब तक सब कुछ सुरक्षित ही है। किन्तु हमें ऐसे उपबन्धों का निर्माण नहीं करना चाहिये जिनको शीघ्र ही हमारे विरुद्ध भी प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा समय भी आ सकता है जब ये खण्ड, जिन पर हम आज विचार कर रहे हैं, किसी सरकार द्वारा अपने राजनैतिक विरोधियों के विरुद्ध स्वतंत्रता से प्रयोग में लाये जायेंगे।

श्रीमान्, इस अनुच्छेद में हम लोगों को अधिकार तथा विशेषाधिकार प्रदान करने जा रहे हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि मसौदा-समिति तथा उसके मित्रों तथा परामर्शदाताओं ने इस स्थल पर दंड-विषयक खंडों को भी रख दिया है, हम इस समय जिस पत्र पर विचार कर रहे हैं वह स्वतंत्रता का अधिकार पत्र है। किन्तु क्या इस स्वतंत्रता को इसी स्थल पर परिसीमित कर देना चाहिये? जब स्वतंत्रता की प्रत्याभूति दी जा रही है तो मसौदा-समिति ऐसे उपबन्धों को क्यों रखना चाहती है जिनके आधार पर लोग निरुद्ध किये जा सकेंगे और उनकी स्वतंत्रता परिसीमित की जा सकेगी? इस अनुच्छेद के आधार पर भावी सरकारें लोगों को निरुद्ध कर सकेंगी और उन्हें स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देना तो दूर रहा, उनकी स्वतंत्रता का अपहरण का सकेंगी।

श्रीमान्, जीवन, स्वातंत्र्य तथा सुख प्राप्ति प्रत्येक व्यक्ति के मूलाधिकार हैं। राज्य अपने किसी अधिकार के कारण अस्तित्व में नहीं आता। वह इस कारण अस्तित्व में आता है कि चूंकि व्यक्ति अपने जीवन और स्वातंत्र्य के जन्मसिद्ध अधिकारों के एक अंश को राज्य को सौंप देता है। सब व्यक्ति जन्म से समान होते हैं। एक सिद्धान्त यह है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-स्वातंत्र्य, स्वतंत्रता तथा सुख प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त है। ये अधिकार देहस्थ हैं और देह से पृथक् नहीं किये जा सकते है। यदि कोई आदमी इन अधिकारों का अपहरण भी करना चाहे तो, मेरा निवेदन है, कि इनका अपहरण नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अधिकार देहस्थ हैं और देह से पृथक् नहीं किये जा सकते। किन्तु व्यक्ति अपने देहस्थ अधिकारों में से कुछ को स्वेच्छा से दे देते हैं और इस प्रकार सब सामाजिक अधिकार एक जगह इकट्ठा होकर राज्य की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार राज्य का निर्माण तथा संगठन लोगों को अपने देहस्थ अधिकारों से वंचित करने से नहीं होता। लोग अपने अधिकारों की वृद्धि करने के लिये ही स्वेच्छा से उनका निर्माण करते हैं और इस प्रकार वैयक्तिक स्वातंत्र्य की अभिवृद्धि करते हैं। लोग इसी उद्देश्य तथा इसी आशा से समाज का निर्माण करते हैं कि उन्होंने जो अधिकार प्रदान किये हैं उनके पूंजीभूत होने से प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण स्वातंत्र्य को प्राप्त कर सकेगा और सुख-सम्पन्नता की प्राप्ति के लिये स्वतंत्रता से यत्न कर सकेगा। और यह कि राज्य व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की रक्षा करेगा और उस में किसी व्यक्ति को हस्तक्षेप न करने देगा।

हम इन अन्तरभूत अधिकारों की प्रत्याभूति देने के लिये एक संविधान बना रहे हैं। जिस संविधान का उद्देश्य यह है कि नागरिकों को मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी जाये, उसमें निरोध-संबंधी कोई खण्ड सुसंगत कैसे कहा जा सकता है। मेरे

[श्री महावीर त्यागी]

विचार से यहां इस प्रकार के खण्ड को रखने से मूलाधिकारों का अध्याय एक दंड संहिता हो जायेगा और वह संहिता पहली सरकार के भारत प्रतिरक्षा नियमों से भी खराब होगी। मैं भारत प्रतिरक्षा नियमों के अधीन बहुत काल तक कारागार में रहा। मैंने इस प्रकार का कारावास झेला है। कितना अच्छा होता कि डॉ. अम्बेडकर भी मेरे साथ बन्दी किये जाते तथा रात भर हथकड़ी पहने रहने के पश्चात् कारागार में रहते। अच्छा होता कि मुझे जो अनुभव हुआ है वह उन्हें भी होता। यदि मेरे साथ उन्हें भी हथकड़ी लगती तो उन्हें ज्ञात होता कि उसमें कितना कष्ट होता है। श्रीमान्, मेरे विचार से, जो उपबन्ध वे इस समय रख रहे हैं वे उनके ही विरुद्ध प्रयोग किये जायेंगे। जैसे ही कोई अन्य राजनैतिक दल पदारूढ़ होगा वे तथा उनके सहकारी उन्हीं उपबन्धों के शिकार होंगे जिन्हें वे इस समय रख रहे हैं।

श्री ब्रजेश्वर प्रसादः चाहे कोई संविधान रहे या न रहे।

श्री महावीर त्यागीः उर्दू में एक शेर है:

"काट रहे हैं अपनी मिनकारों से हलका जाल का।"

हम यही कर रहे हैं। हम ऐसे उपबन्ध रख रहे हैं जिनसे भावी सरकारें हमें बहुत आसानी से तथा विधिसंगत ढंग से निरुद्ध कर सकेंगी। श्रीमान्, इसका यही अर्थ है। मैं इस विषय पर अधिक नहीं बोलना चाहता। मैं सभा को केवल यह चेतावनी देना चाहता था कि यदि हम इस अनुच्छेद को स्वीकार करेंगे तो हम एक ऐसा उपबन्ध रखेंगे जो हमारे विरुद्ध भी प्रयोग किया जा सकता है।

अध्यक्षः आप उसे दे चुके हैं। जहां तक विवरण का संबंध है, उसके संबंध में अन्य वक्ता विस्तृत रूप से बोल चुके हैं।

श्री महावीर त्यागीः यदि आपका यह विचार है तो मैं केवल इस उपबन्ध के दोषों की ही चर्चा करूंगा।

अध्यक्षः अन्य वक्ता दोषों को विस्तृत रूप से बता चुके हैं। आप अब उनकी ही बातें दुहरायेंगे।

श्री महावीर त्यागीः जी नहीं, श्रीमान्, मैं उनके तर्कों को नहीं दुहराऊंगा।

यहां यह उल्लिखित है कि इस अनुच्छेद की कोई बात-(क) जो व्यक्ति तत्समय शत्रु अन्यदेशीय है उसको लागू न होगी इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है–और (ख) जो व्यक्ति निवारक निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया है उसको लागू न होगी। श्रीमान्, जो लोग निवारक निरोध उपबंधित करने वाली विधि के अधीन निरुद्ध किये जायेंगे उन्हें, इस परन्तुक के अनुसार, अपने मामलों की जांच एक मंत्रणा-मंडली से करवाने का विशेषाधिकार प्राप्त होगा। जिन लोगों को सरकार तीन मास से अधिक काल के लिये निरुद्ध

करेगी उनके मामलों की जांच, अथवा उन पर पुनर्विचार, एक मंत्रणा-मंडली करेगी। किन्तु जिन लोगों का वर्णन खण्ड (4) के अधीन किया गया है उनके मामलों पर पुनर्विचार नहीं किया जायेगा। कहा यह गया है कि "जब तक कि ऐसा व्यक्ति इस अनुच्छेद के खण्ड (4) के अधीन संसद-निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के अनुसार निरुद्ध नहीं है," जिसका अर्थ श्रीमान्, यह है कि खण्ड (4) के अधीन संसद् द्वारा निर्मित विधियों के अधीन निरोध के जितने भी मामले आयेंगे उन पर मंत्रणा-मंडली पुनर्विचार नहीं करेगी और जिन लोगों के ये मामले होंगे उन्हें यह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि खण्ड (4) के अधीन संसद द्वारा निर्मित विधि के किन्हीं उपबन्धों के अधीन जो मामले आयेंगे उनके संबंध में मंत्रणा-मंडली अपना प्रतिवेदन क्यों नहीं प्रस्तुत करेगी? जब हम इस स्थल पर मंत्रणा-मंडली के संबंध में उपबन्ध रख रहे हैं तो हम ऐसे लोगों के मामलों को भी सम्मिलित कर सकते थे जो उन विधियों के अधीन निरुद्ध किये जायेंगे जिन्हें आगे चल कर खण्ड (4) के अधीन संसद बनायेगी। मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने अनुच्छेद 15 का दुरुपयोग न होने देने के लिये रक्षणों की मांग करके वास्तव में इस सभा का अहित किया है। डॉ. अम्बेडकर ने अधिक प्रत्याभूतियां तो नहीं दी हैं किन्तु अपराध प्रक्रिया संहिता से कुछ खण्ड ले कर रख दिये हैं। ये कोई नई प्रत्याभूतियां नहीं हैं। किन्तु इन खण्डों के साथ ही निरोध-विषयक एक खण्ड रख दिया गया है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि संविधान सभा को भावी सरकारों को ऐसी शक्तियां नहीं प्रदान करनी चाहियें जिनसे वे लोगों को निरुद्ध कर सकें। आने वाली पीढ़ियां, यदि इसकी आवश्यकता देखेंगी, और ऐसी विधियां बना कर लोगों में जो रोष फैलेगा उसकी यदि उन्हें चिन्ता नहीं होगी, तो वे ये शक्तियां प्रदान करें। संविधान सभा का यह काम नहीं है। मैंने कहीं भी यह नहीं पढ़ा कि संसार के किसी भी संविधान में संविधान के निर्माताओं ने अपराध-संबंधी किसी विधि को रखा। हमें लोगों को अधिकारों की प्रत्याभूति देनी है और उनके अधिकारों का अपहरण करने के लिये अपराध-विषयक विधियां नहीं बनानी हैं। हमने लोगों को जनमत संग्रह अथवा जनमत-खण्डन का अधिकार तो दिया नहीं है किन्तु फिर भी जो भी मूलाधिकार प्रदान किया है उसे किसी न किसी प्रकार परिसीमित कर दिया है। इस अनुच्छेद में इसका केवल परिसीमन ही नहीं किया गया है बल्कि खण्डन भी किया गया है। इन अधिकारों का पूर्ण रूप में खण्डन किया गया है। मैं इस प्रकार के अनुच्छेद को समाविष्ट करने के पक्ष में कभी भी नहीं हो सकता।

यदि डॉ. अम्बेडकर तथा मसौदा-समिति इसके लिये तैयार है तो उनसे मेरा अनुरोध है कि वे लोगों को किसी ऐसी सरकार का तख्ता उलटने के लिये शक्ति प्रदान करे जो उनके मूलाधिकारों का खण्डन करे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोगों को उस सरकार को उलटने, समाप्त करने अथवा बदलने का अधिकार है। उन्हें एक ऐसी सरकार को स्थापित करने का भी अधिकार है जो उनके विचार से उनके सुख तथा सुरक्षा को सुनिश्चित करेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह वहिसंविधानिक अधिकार है।

*__श्री महावीर त्यागी:__ लोगों की शक्ति का कुल उल्लेख संविधान में भी होना चाहिये। क्या आपने किसी स्थल पर लोगों को उस सरकार का तख्ता उलटने का अधिकार दिया है जो उनके अधिकारों को खण्डन करे? आपने लोगों के इस जन्मसिद्ध अधिकार की प्रत्याभूति नहीं दी है। हमें केवल सरकार के ही अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं देनी चाहिये। हमें इसकी भी चिंता होनी चाहिये कि सरकार के साथ लोगों के भी कुछ अधिकार हों, इस संविधान के पारित होने पर एक पूर्णसत्तात्मक सरकार स्थापित हो जायेगी। मैं सभा को चेतावनी देता हूं कि यदि हम लोगों के अधिकारों पर इतने अधिक निर्बन्धन लगायेंगे और सरकार को ऐसी शक्तियां प्रदान करेंगे जो वह लोगों के विरुद्ध प्रयोग करें, तो सम्भव है कि लोग सरकार में ही इस भयास्पद शक्ति-संकेन्द्रण को पसंद न करें। सरकार को केवल वे अधिकार प्राप्त हो सकते हैं जो लोग स्वेच्छा से उसे दें। जिन शक्तियों को लोग स्वेच्छा से किसी सरकार को नहीं देना चाहें उन्हें प्राप्त करने का अधिकार किसी भी सरकार को नहीं है। इन शब्दों के साथ मैं मसौदा समिति से प्रार्थना करता हूं कि यह अनुच्छेद बिल्कुल ही निकाल दिया जाये।

*__डॉ. पी.के. सेन__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री त्यागी की ओजस्वी अपील के पश्चात् सम्भव है मेरा एक भिन्न प्रकार का भाषण उतना चित्ताकर्षक प्रतीत न हो। यह प्रश्न ही नहीं उठता कि व्यक्ति को ऐसे अधिकार प्राप्त हैं या नहीं। उनकी रक्षा अवश्य ही की जानी चाहिये। किन्तु साथ ही जहां तक मैं इस वाद-विवाद की गतिविधि को समझ पाया हूं, सभा का यह मत है कि कई परिस्थितियां ऐसी भी हैं जिनसे केवल हमारा देश ही नहीं बल्कि संसार का प्रत्येक देश कुछ ऐसी कार्यवाहियां करने के लिये विवश है जिनसे राज्य अवैध कार्यों से बच सके। प्रश्न केवल यह है कि वैयक्तिक अधिकार का, अर्थात् व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सुरक्षा के मूलाधिकार का, राज्य की सुरक्षा के हेतु कितना परिसीमन होना चाहिये। यह व्यक्ति बनाम राज्य का पुराना प्रश्न है, अर्थात् यह इसका प्रश्न है कि दोनों के अधिकारों का किस प्रकार समायोजन हो और वैयक्तिक स्वातंत्र्य का अन्त न करके, और केवल परिसीमन करके, किस प्रकार सारे राज्य का कल्याण किया जाये।

श्रीमान्, सभा के सम्मुख मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव, डॉ. बख्शी टेकचन्द और अन्य कई वक्ताओं ने जो ब्यौरा रखा है उसकी मैं चर्चा नहीं करना चाहता। इस पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श हो चुका है कि "यथोचित विधि-प्रणाली" शब्द रखे जायें अथवा "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" और इन पदावलियों का इतिहास भी बताया जा चुका है। मैं आज सभा के सामने एक छोटे से प्रश्न पर बोलने जा रहा हूं। मेरे माननीय मित्र बख्शी टेकचंद ने बन्दी को अथवा निरुद्ध व्यक्ति को, उसके बन्दी किये जाने के कारणों के बारे में सूचित करने के संबंध में जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं समर्थन करना चाहता हूं। कम से कम इतना तो किया ही जा सकता है और यह करना ही चाहिये। इसका संकेत मिला है कि डॉ. अम्बेडकर इस संशोधनों को स्वीकार करना चाहते थे किन्तु उन पर बाह्य शक्तियों का दबाव पड़ा। यह भी कहा गया है कि डॉ. अम्बेडकर इस सभा में दो रूपों में उपस्थित हैं—एक तो उनका वह सरल रूप है जिसकी व्यक्ति से अत्यंत सहानुभूति है और इस रूप में वे उसके अधिकारों तथा स्वातंत्र्य को सुरक्षित

रखना चाहते हैं और एक रूप बहुत कुछ उनका भूत है जो हैमलेट नाटक के भूत के समान चिंतित है और घूमता रहता है और स्वातंत्र्य प्रेम होने पर भी अन्य शक्तियों के वश में है। श्रीमान्, मुझे विश्वास नहीं है कि इसके लिये वे जिम्मेदार हैं और मसौदा समिति जिम्मेदार है। मसौदा समिति को अथवा उन लोगों को जिन पर इन अनुच्छेदों के मसौदे बनाने का भार है, हम विरोधी दल के रूप में न देखें, अथवा अपने को उनका विरोधी दल न समझें। सीधा-सादा प्रश्न यह है— क्या नागरिक को कम से कम अधिकार दे दिया गया है या नहीं दिया गया है। मेरा विश्वास है कि जब कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाये तो उसे यह जानने का अधिकार अवश्य ही प्राप्त है कि उसे किन कारणों से बन्दी अथवा निरुद्ध किया गया है। कम से कम इतना तो किया ही जा सकता है। इस अनुच्छेद में ऐसी मंडली के संबंध में उपबन्ध रखे जा चुके हैं जिसमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, अथवा भूतपूर्व न्यायाधीश, अथवा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति रहेंगे। यह मंडली इस प्रश्न पर विचार करेगी कि निरुद्ध रखने के लिये पर्याप्त कारण हैं या नहीं और इस प्रश्न पर भी विचार करेगी कि तीन मास का निरोध-काल पर्याप्त है अथवा उसे बढ़ाने की आवश्यकता है। इस दशा में यह मंडली बहुत आसानी से इसका पता लगा सकती है कि निरुद्ध व्यक्ति किन कारणों से बन्दी किया गया है।

सुझाव यह नहीं है कि बन्दी किये हुए व्यक्ति के सामने पूरी गवाही रखी जाये क्योंकि यह सच है कि जिन लोगों पर अवैध कार्यवाहियों का आरोप लगाया जाती है उनके संबंध में गवाही प्राप्त करना बहुत कठिन होता है और बनावटी गवाही से सच्ची गवाही का निराकर भी किया जा सकता है। इसलिये निरुद्ध अथवा बन्दी करने के कारण बताते हुए यह आवश्यक नहीं है कि निरुद्ध व्यक्ति की गवाही का पूरा ब्यौरा दिया जाये। संशोधन में यह सुझाव नहीं रखा गया है। केवल यह सुझाव रखा गया है कि जैसे ही कोई व्यक्ति बन्दी किया जाये उसका मामला इस नियुक्त होने वाली मंडली के सामने रखा जाये और उस पर विचार करने के पश्चात् मंडली तुरंत ही उस व्यक्ति को सूचित करे कि वह किन कारणों से निरुद्ध किया गया है ताकि वह जान सके कि वह किस स्थिति में है। हो सकता है कि वह कुछ ऐसी बातें बताये जिनसे यह स्पष्ट हो जाये कि वह अकारण ही बन्दी कर लिया गया है। इसलिये मैं इस पर बहुत जोर देता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

जो अन्य तर्क उपस्थित किये गये हैं उन्हें मैं नहीं दुहराऊंगा। इस अनुच्छेद के उपबंधों में मूलाधिकारों का खण्डन करने वाली भी कुछ बातें दिखाई दे सकती हैं किन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस देश के तथा संसार के अन्य देशों के भी इस संकटपूर्ण काल को देखते हुए राज्य की सुरक्षा के लिये कुछ विशेष उपबन्धों की आवश्यकता है और मुझे आशा है कि अनुच्छेद 15-क पर विचार करते समय सभा इसे दृष्टि में रखेगी और भावनावश यह विचार नहीं करेगी कि वह सारे अनुच्छेद 15-क को ही निकाल सकती है। मैं इस उग्र विचारधारा का समर्थन कभी भी नहीं कर सकता। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि मसौदा समिति कृपा करके इस संशोधन पर गम्भीरता से विचार करे और इसे स्वीकार कर ले। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने हमारे सामने जो अनुच्छेद रखा है उसमें दो विषयों का उल्लेख है अर्थात् निरुद्ध व्यक्तियों को अपराध प्रक्रिया संहिता के अधीन जो सामान्य अधिकार प्राप्त हैं उन्हें संविधानिक प्रत्याभूतियों का रूप देना और निवारक-निरोध-विषयक विधियों के अधीन निरुद्ध व्यक्तियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना। जहां तक पहले प्रश्न का संबंध है उस पर इतने विस्तृत रूप से विचार किया जा चुका है कि मैं उसके संबंध में केवल इतना कहना चाहता हूं कि मैं पंडित ठाकुर दास भार्गव के इस प्रस्ताव से सहमत हूं कि यदि कोई दंडाधिकारी किसी व्यक्ति को 24 घंटे से अधिक समय तक निरुद्ध रखने की आज्ञा दे तो वह अपने हाथ से लिखे कि यह किन कारणों से किया जा रहा है और अभियुक्त को मुकदमा चलाने वालों के गवाहों की परीक्षा करने तथा अपनी प्रतिरक्षा के लिये तर्क उपस्थित करने का अधिकार होना चाहिये। और प्रत्येक दोष सिद्धि के विरुद्ध कम से कम एक बार अपील करने की आज्ञा मिलनी चाहिये। श्रीमान्, यह सच है कि वर्तमान अपराध-विधि के अधीन अभियुक्तों को इनमें से अधिकांश अधिकार प्राप्त हैं किन्तु यदि इनमें से कुछ अधिकारों को संविधानिक अधिकार बनाना है तो उचित यही है कि संविधान में इनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकारों का उल्लेख हो क्योंकि बिना उनके मुकदमों का न्यायोचित फैसला नहीं हो सकता।

अब मैं डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के दूसरे भाग को उठाता हू। इस संशोधन का खण्ड (3) इस प्रकार है:

> "इस अनुच्छेद में की कोई बात–जो व्यक्ति निवारक निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन बन्दी या निरुद्ध किया गया है उसको लागू न होगी।"

विभिन्न प्रान्तों के लोक सुरक्षा अधिनियमों के अधीन जो व्यक्ति बन्दी किया जाता है उसे तुरंत ही सूचित किया जाता है कि वह किन कारणों से बन्दी अथवा निरुद्ध किया जा रहा है किन्तु संविधान में हम बन्दी किये हुए व्यक्ति को वह अधिकार भी नहीं दे रहे हैं जो उसे इस समय प्रान्तीय लोक सुरक्षा अधिनियमों के अधीन प्राप्त है। इसलिये, मेरे विचार से चाहे बन्दी का मामला मंत्रणा-मंडली के सामने रखा जाये या न रखा जाये, उसे बन्दी किये जाने के बाद यथाशीघ्र कम से कम यह सूचित किया जाना चाहिये कि वह किन कारणों से बन्दी किया गया है और उसे सरकार को अपनी सफाई देने का अवसर देना चाहिये। मेरा यह भी निवेदन है कि जब कोई मामला मंत्रणा-मंडली के सामने रखा जाये तो निरुद्ध व्यक्ति को मंडली के सामने, यदि वह चाहे तो, एक और अभ्यावेदन रखने का अवसर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त मंडली को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि यदि वह चाहे तो सरकार से कहे कि वह बन्दी की सफाई को उसके सामने रखे यदि सरकार अभियुक्त की सफाई को मंडली के सामने न रखना चाहे तो उसे अभियुक्त को मुक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

खण्ड (3) के संबंध में मेरा दूसरा सुझाव यह है कि चाहे राज्य की सरकार बन्दियों के मामलों को समय-समय पर मंत्रणा-मंडली के सामने रखना चाहे या

न रखना चाहे किन्तु किसी व्यक्ति को निरुद्ध रखने की एक कालावधि होनी चाहिये। इस खण्ड में जिस न्यायिक पुनर्विलोकन को व्यवस्था की गई है वह लिखित आरोपों और उत्तरों के आधार पर ही किया जा सकेगा। कोई गवाह नहीं उपस्थित किये जायेंगे, अभियुक्त की ओर से वकील पैरवी नहीं करेगा और उसे मुकदमा चलाने वालों के गवाहों की परीक्षा करने का अवसर नहीं मिलेगा। इसलिये इसकी भी संभावना है कि मंत्रणा-मंडली गलत फैसला करे। किसी व्यक्ति के निरोध को युक्तियुक्त प्रमाणित करने के लिये सरकार उसके सामने जो सामग्री रखेगी वह, मेरे विचार से, पुलिस के प्रतिवेदन होंगे, और चाहे उसमें कितने ही बुद्धिमान व्यक्ति क्यों न हों किन्तु वे हमेशा ठीक फैसला नहीं कर सकेंगे। इसलिये मेरे विचार से निरुद्ध करने की कालावधि निश्चित कर देनी चाहिये।

अब मैं उस व्यक्ति के मामले को उठाता हूं जो संसद की विधि के अधीन निरुद्ध किया गया हो। हमें बताया गया है कि चूंकि संसद देश की उच्चतम विधान-सभा है, और सारे देश की प्रतिनिधि सभा भी है, इसलिये वह सभी वर्गों के प्रति न्याय करना चाहेगी और उसे इसकी चिंता भी होगी इसलिये कोई कारण नहीं है कि उसके उद्देश्यों पर संदेह किया जाये और संविधान में उसकी शक्ति सीमित कर दी जाये। श्रीमान्, अमरीका में कांग्रेस नाम की एक सभा है, जो उतनी ही उच्चतम सभा है जितनी इस देश में संसद होने जा रही है। किन्तु अमरीका के संविधान में व्यक्तियों को निरुद्ध करने, निवास-स्थानों की तलाशी लेने, आदि के संबंध में इस सभा की शक्तियां सीमित की गई हैं। इसलिये बिना संसद पर किसी प्रकार का आक्षेप किये हुए, अथवा बिना उसके प्राधिकार को किसी प्रकार कम किये हुए अपने संविधान में कुछ संरक्षणों को रख सकते हैं। अथवा अमरीका के संविधान में दिये हुए संरक्षणों से थोड़े बहुत मिलते हुए संरक्षणों को रख सकते हैं। मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने पर भी, अर्थात् इसे स्वीकार करने पर भी कि संसद किसी व्यक्ति को निरुद्ध रखने की कालावधि निश्चित करे, हम अपने संविधान में उन सब प्रत्याभूतियों को नहीं रखेंगे जो अमरीका के संविधान में हैं।

इस समय अमरीका की सरकार जापान के प्रशासन पर नियंत्रण रखे हुए है। वहां एक सैनिक कमांडर को उच्चतम प्राधिकार प्राप्त है। किन्तु जापान में चाहे जो भी असाधारण स्थिति हो, जापानियों को बहुत कुछ वहीं संविधानिक प्रत्याभूतियां दी गई हैं, जो अमरीका के लोगों को अपने संविधान द्वारा प्राप्त हैं। अपना आशय स्पष्ट करने के लिये मैं एक उदाहरण दूंगा, और जापान के संविधान में से एक उपबन्ध पढ़कर सुनाऊंगा। यह उपबन्ध अनुच्छेद 35 में है और उसमें कहा गया है कि:-

> "सभी लोगों को अपने घरों में सुरक्षित रहने तथा उनके कागजातों व सम्पत्ति की तलाशी न होने, उनमें प्रविष्टियां न होने तथा उनके लिये न जाने का अधिकार, है और जब तक किसी सम्भावित कारण के लिये कोई अधिपत्र न निकाला जायेगा, जिसमें उस स्थान का विवरण होगा जिसकी तलाशी ली जायेगी और उन चीजों का विवरण होगा जो ले ली जायेंगी, सिवाय उस दशा के जिसका अनुच्छेद 33 में उल्लेख है।"

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

अनुच्छेद 33 में जिस अपवाद का उल्लेख है वह उस व्यक्ति के संबंध में है जो अपराध करते समय बन्दी किया गया हो।

भारत की स्थिति को यदि शांतिपूर्ण न भी कहा जाये तो कम से कम वह जापान की स्थिति से कहीं अच्छी है। किन्तु जापान में असाधारण स्थिति होते हुए भी वहां के लोगों को स्वतंत्रता की जो प्रत्याभूतियां दी गई हैं उन्हें सभा यहां के लोगों को देने के लिये सहमत नहीं हुई है। यदि विचाराधीन अनुच्छेद पारित हो गया तो केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को विशेष विधियां के अधीन लोगों को निरुद्ध करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। इस विषय के संबंध में हम अमरीका के संविधान के अथवा जापान के संविधान के बहुत पीछे रहेंगे। इस स्थिति में, मेरे विचार से यह आवश्यक है कि हम लोगों को बिना मुकदमा चलाये हुए निरुद्ध करने की कार्यपालिका की शक्ति को सीमित करें ताकि बन्दी अनिश्चित अवधि तक निरुद्ध न रहें। जिन लोगों की स्वतंत्रता का अपहरण किया गया हो उनके लिये हम कम से कम इतना तो कर ही सकते हैं।

श्रीमान्, मैं कह नहीं सकता कि मेरे सुझावों को मसौदा-समिति तथा यह सभा पसंद करेगी या नहीं करेगी। किन्तु मेरे इस संबंध में कुछ भी संदेह नहीं है कि जिन रक्षणों का सुझाव मैंने प्रस्तुत किया है उन्हें, बिना कार्यपालिका की ऐसे आपातों के समय कार्य करने की शक्ति पर प्रभाव डाले हुए, जिनका संविधान में अनुमान भी नहीं किया गया है, रखा जा सकता है। उसे लोगों को बन्दी तथा निरुद्ध करने की शक्ति प्राप्त रहेगी। केवल वह उन्हें अनिश्चित काल के लिये निरुद्ध नहीं रख सकेगी।

यह कहा जा सकता है कि कार्यपालिका जिस व्यक्ति को बहुत ही खतरनाक समझती हो उसे छह मास अथवा एक वर्ष में भी मुक्त करना लोक-हित की दृष्टि से उपयुक्त न हो। इस प्रकार के मामले की कल्पना की जा सकती है। यदि सरकार देखेगी कि कोई मामला इस प्रकार का है तो वह संबंधित व्यक्ति को मुक्त कर देगी और कुछ समय तक उसके आचरण पर नज़र रखेगी और यदि उसका आचरण ठीक नहीं होगा तो उसे कुछ समय के बाद फिर बन्दी कर लेगी। यह कदापि न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता कि सरकार भले ही उसे मंत्रणा-मंडली की अनुमति प्राप्त हो, किसी व्यक्ति को महीनों तक ही नहीं बल्कि वर्षों तक निरुद्ध रखे।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बंबई : जनरल): मैं बहुत देर में इस बहस में भाग लेने के लिये उठा हूं और इसलिये मैं अपनी बातें संक्षेप में कहूंगा। जहां तक इस अनुच्छेद के विवरण का संबंध है उस पर विस्तृत रूप से विचार-विमर्श हो चुका है और मैं उन्हीं बातों को फिर नहीं दुहराऊंगा। मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इस उपबन्ध को यथासम्भव उदार बनाना चाहिये। जहां तक इस उपबन्ध के सामान्य स्वरूप का संबंध है मेरा यह निवेदन है कि इसके संबंध में बहुत नहीं कहा जा सकता। यह प्रयास किसी व्यक्ति को आग में से निकालने का प्रयास है और इस पर इसी दृष्टि से विचार भी करना चाहिये। इसी को ध्यान में रखकर

"यथोचित विधि-प्रणाली" शब्दों को नहीं रखा गया है। अनुच्छेद 15 में सबसे अधिक महत्वपूर्ण मूलाधिकारों का अर्थात् जीवन तथा दैहिक स्वातंत्र्य का वर्णन है। हममें से वे लोग जो उस पदावली को रखना चाहते थे उस अधिकार को मूलाधिकार बनाना चाहते थे। आखिर मूलाधिकार का सार क्या है? सभ्य मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं को देखते हुए विधान-मंडल की सर्वसत्ता को सीमित करना और उसी अंश में न्यायपालिका की सर्वसत्ता को भी सीमित करना ही मूलाधिकार का सार है। दुर्भाग्य से हमारी पराजय हुई। इस उपबन्ध में उस सर्वसत्ता को स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया है। डॉ. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा है कि अनुच्छेद 15 से किसी व्यक्ति को उन परिस्थितियों में बन्दी करने का पूर्ण अधिकार मिल जाता है जिन्हें संसद उचित समझे। यह अधिकार पहले से वर्तमान ही था और यह नहीं कहा गया है कि इस अनुच्छेद से अधिकार सीमित हो जाता है। डॉ. अम्बेडकर का यह विचार है कि इन उपबन्धों के फलस्वरूप अवैध तथा मनमाने ढंग से किसी को बन्दी नहीं किया जा सकेगा। किन्तु क्या इनके फलस्वरूप संसद भी निवारक निरोध के संबंध में कोई उपबन्ध नहीं बना सकेगी? वास्तव में कसौटी यही है। मेरा निवेदन है कि यह रक्षण तो बहुत साधारण रक्षण है। अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) द्वारा कोई नवीन अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं। ये अधिकार पहले से ही प्राप्त हैं। केवल अब इनका निराकरण करने में बहुत कठिनाई होगी। तीसरी बात मंत्रणा-मंडली के संबंध में है। ये बहुत ही साधारण रक्षण हैं और हम यह कह सकते हैं कि बहुत सी दया दिखाई गई है। वे जैसे भी हैं उन्हें मैं स्वीकार करता हूं किन्तु उन्हें स्वीकार करने में उनका वास्तविक स्वरूप समझ लेना चाहिये।

मैं डॉ. अम्बेडकर को अथवा मसौदा-समिति को दोष नहीं देता हूं। हम सभी के सामने इस संबंध में दो कठिनाइयां हैं। एक कठिनाई यह है कि बहुत से उपबन्ध यहां अनेक विचारधाराओं तथा मतों के लोगों के बीच विचार-विमर्श होने अथवा बातचीत होने के पश्चात् उपस्थित किये जाते हैं। प्राय: यही कहा जाता है कि यह एक सुगठित प्रस्ताव है और हमें या तो इसे पूरा स्वीकार करना है या पूरा अस्वीकार करना हैं समझौते के लिये हमें यह मूल्य चुकाना होता है। इसलिये मुझे इस पर आपत्ति नहीं है। किन्तु हमारे सामने जो दूसरी कठिनाई है वह इससे बड़ी है। इस प्रकार के अवसरों पर हममें से अधिकांश लोग पहले हम जिन सिद्धान्तों को बड़े जोरों से घोषित करते रहे हैं उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने लगते हैं। किन्तु देश में प्राधिकार तथा उत्तरदायित्व की जगह पर हमारे अन्य मित्र भी हैं जो हमें चेतावनी देते हैं कि युद्ध तथा देश विभाजन के फलस्वरूप ऐसी शक्तियां उत्पन्न हो गई हैं कि यदि उन्हें प्रबल होने दिया गया तो अराजकता फैल जायेगी और देश विनाश के गर्त में पड़ जायेगा। इस कारण वे यह कहते हैं कि संसद को ऐसी विधियां बनानी चाहियें जिनसे कार्यपालिका को इन हिंसात्मक तथा विध्वंसक शक्तियों को दबाने के लिये अधिकार पैदा हो जाये। कार्यपालिका में हमारे जो नेता हैं, वे बड़े देशभक्त हैं और उन पर हमारा विश्वास है। हम में से कई लोगों को यह विश्वास नहीं हो पाया है कि "यथोचित विधि प्रणाली" पदावली को रखने का परिणाम अवश्य ही बहुत बुरा होगा, किन्तु कठिनाई यह है कि यदि हमें अपनी भी दोषसिद्धि करनी हो तो ऐसे मामलों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। मराठी में एक कहावत है जिसका मतलब यह है कि यह

[श्री बी.एम. गुप्ते]

जानने के लिये कि कोई चीज विष है या विष नहीं है उसे निगलना न चाहिये क्योंकि यदि वह विष हुआ तो जो उसे निगलेगा वह मर ही जायेगा। इसलिये इस प्रकार के मामलों में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस संबंध में हमारे नेताओं ने हमें जो चेतावनी दी है उसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिये।

इसका यह अर्थ नहीं है कि ये उपबन्ध अधिक उदार नहीं बनाये जा सकते। डॉ. अम्बेडकर ने भी यह कहा है कि इन उपबन्धों को अधिक विस्तृत किया जा सकता है और इनमें कुछ और रक्षण रखे जा सकते हैं। किन्तु उसे बनाने में हमें अन्ततोगत्वा अपने नेताओं की चेतावनी की ओर ध्यान देना ही चाहिये। उस दशा में हमारा रुख क्या होना चाहिये। कम से कम मैं यह बता देना चाहता हूं कि मेरा रुख क्या है। मेरा रुख उपेक्षा का रुख है। ये साधारण रक्षण हैं। इनका जो मूल्य है उसी के अनुसार इन्हें आंकना चाहिये। पंडित भार्गव तथा श्री बख्शी टेकचन्द ने जिस जोश से इनका विरोध कियाा है उतना जोश मैं नहीं दिखाना चाहता क्योंकि इनके कारण कोई हानि नहीं हो सकती। साथ ही उनका जो विरोध किया जा रहा है उसे देखते हुए मसौदा-समिति यदि उन्हें वापस भी ले ले तो इसके लिये भी आंसू बहाने की आवश्यकता नहीं है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर ने जिस नवीन अनुच्छेद 15-क को उपस्थित किया है उसका समर्थन करते हुए मैं विचाराधीन विषय के संबंध में कुछ बातें कहना चाहती हूं। मैं यह जानती हूं कि इस विषय पर बोलने के लिये आगे बढ़कर मैं सभा का धैर्य तोड़ने जा रही हूं। किन्तु इस बहस के सिलसिले में जो कुछ कहा गया है उसके संबंध में, मेरे विचार से, मुझे अवश्य ही कुछ बातें कहनी चाहिये।

मैंने उन माननीय सदस्यों के भाषण सुने हैं जिन्होंने वैयक्तिक स्वातंत्र्य का बड़े जोश के साथ समर्थन किया है और उसे राज्य की आवश्यकताओं से भी अधिक महत्व दिया है तथा यह कहा है कि यह अनुच्छेद हमारी असफलताओं का सिरमौर है। श्रीमान्, हमारे सामने यह प्रश्न है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य अधिक महत्वपूर्ण है या राज्य का अस्तित्व। जब राज्य की जड़ों पर ही कुठाराघात होने जा रहा हो, और वह भी उस राज्य की जड़ों पर जो एक व्यक्ति के नहीं बल्कि सभी व्यक्तियों के स्वातंत्र्य के लिये कटिबद्ध है तो मैं तो राज्य के अस्तित्व को अधिक महत्व दूंगी। मैं यह इसलिये कह रही हूं कि मैं यह जानती हूं कि अपने वैयक्तिक स्वातंत्र्य के लिये मेरा जो जोश है वह केवल अपने स्वार्थ की सुरक्षा के लिये ही है। मेरे स्वार्थ से राज्य का महत्व कहीं अधिक है क्योंकि उसे मुझ जैसे कई व्यक्तियों के स्वातंत्र्य की चिंता होती है। मेरे विचार से इस शताब्दी में वैयक्तिक स्वातंत्र्य के सबसे बड़े समर्थक डि वेलरा हुए हैं और उनकी लोकतंत्रात्मक परम्परा सर्वोत्कृष्ट रही है। उन्होंने क्या किया है? प्रेजीडेंट होने के पश्चात् उन्होंने सबसे पहले कई लोक सुरक्षा अधिनियमों को पारित किया। इसके अलावा उनके लिये कोई चारा ही नहीं था। उन्हें यह करना पड़ा क्योंकि एक ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो गई जब उनकी ही हत्या होने जा रही थी। वे और करते ही क्या?

यहां मेरे मित्रों ने बन्दी तथा निरुद्ध करने के संबंध में जो शक्ति दी जा रही है उसकी आलोचना की है। किन्तु उन्होंने इस पर विचार नहीं किया कि यह शक्ति कब और किस स्थिति में प्रयोग की जायगी। यह शक्ति तभी प्रयोग की जायेगी जब कोई व्यक्ति समवर्ती सूची में उल्लिखित लोक-व्यवस्था में अथवा देश की प्रतिरक्षा-सेवाओं में हस्तक्षेप करेगा। मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप मेरे प्रदेश अर्थात् मद्रास, मालावार, विजयवाड़ा जायें। मैं आपको बताना चाहती हूं और इस ओर आपको ध्यान आकृष्ट करना चाहती हूं कि वहां कोई भी स्त्री और कोई भी माता सुरक्षा का अनुभव नहीं कर रही है। वे नहीं जानती कि उनके पति घर आवेंगे अथवा घर आवेंगे भी या नहीं। वहां ऐसी स्थिति है। पुरुष भी जब बाहर जाते हैं तो उन्हें विश्वास नहीं रहता कि घर में उनकी पत्नियां तथा लड़कियां सुरक्षित रहेंगी या नहीं। स्थिति यह है। इस स्थिति में राज्य क्या करे? अब उन लोगों को कुछ सुरक्षा का आश्वासन देने के लिये सरकार क्या करे? स्थिति इस प्रकार की होगी तभी सरकार लोगों को बन्दी करेगी तथा उन्हें निरुद्ध करेगी।

डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत इस नवीन अनुच्छेद 15-क में बहुत ही सुन्दर मध्य मार्ग का अनुसरण किया गया है। जरा 1919 के विनियम पर तो विचार कीजिये, जिसमें कोई भी कालावधि नहीं रखी गई थी। उसके पश्चात् विभिन्न प्रान्तों में लोक सुरक्षा अधिनियम व्यवहार में लाये गये। इस अनुच्छेद में एक मंडली की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार के मामलों पर वह मंडली विचार करेगी। इसके अतिरिक्त किसी भी दशा में किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक काल तक निरुद्ध नहीं रखा जा सकेगा और यदि इससे अधिक काल तक निरुद्ध रखने की आवश्यकता होगी तो उसके संबंध में मंडली अपना प्रतिवेदन देगी। कार्यपालिका जिन कागजात को अथवा जिस अभ्यावेदन को उपस्थित करेगी उस पर न्यायालय बहुत सावधानी से विचार करेगा। इस शक्ति पर जो परिसीमन तथा निर्बन्धन लगाये गये हैं उनकी डॉ. अम्बेडकर बड़ी योग्यता के साथ व्याख्या कर चुके हैं और उसे दुहरा कर मैं सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहती। एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि किसी भी दशा में किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक समय के लिये निरुद्ध नहीं रखा जा सकेगा। यदि तीन मास से अधिक काल के लिये निरुद्ध रखने की आवश्यकता हुई तो मंडली इस संबंध में अपना प्रतिवेदन देगी और उसके आधार पर ही अधिक काल के लिये निरुद्ध रखा जा सकेगा। इसके अतिरिक्त संसद इस संबंध में विधि बनायेगी और उसमें इसका विवरण देगी कि किन मामलों में यह कालावधि बढ़ाई जा सकती है। इस शक्ति को सीमित करने के लिये ये निर्बन्धन रखे गये हैं।

श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने जो विभिन्न संशोधन उपस्थित किये हैं उन्हें मैं नहीं उठाना चाहती। उन्होंने कहा है कि कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार होना चाहिये और समय-समय पर पुनर्विलोकन और प्रतिबन्धों के साथ मुक्त करने के संबंध में उपबन्ध होने चाहियें। इन प्रश्नों का उत्तर डॉ. अम्बेडकर देंगे। मैं केवल उन एक-दो प्रश्नों का उत्तर दूंगी जिन्हें श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी ने अपने संशोधनों में उठाया है। मैं यह कहूंगी कि मुझे उनके दो संशोधनों से बहुत सहानुभूति है। उनमें से एक में यह उपबन्धित है कि निरुद्ध व्यक्ति मंडली की कारण बताने तथा सफाई देने के लिये स्वयं उपस्थित हो। मेरे विचार से मसौदा-समिति को इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

होनी चाहिये। आखिर यदि कोई निरुद्ध व्यक्ति मंडली के सामने आकर अपनी सफाई देगा तो इसमें उसका क्या बिगड़ जायेगा। मैं कह नहीं सकती कि इस संबंध में कोई प्रशासन संबंधी कठिनाई तो उत्पन्न नहीं होगी। इस पर मसौदा-समिति विचार करेगी। मुझे तो सरकार पर विश्वास है। क्या वैयक्तिक स्वातंत्र्य की समर्थक हमारी सरकार, हमारे प्रधान मंत्री, हमारे उप-प्रधान मंत्री से भी बड़े और कोई हो सकते हैं जो हमेशा गरीबों तथा पीड़ितों की सहायता करते रहते हैं?

श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी के एक अन्य संशोधन का उद्देश्य यह है कि जो लोग निरुद्ध किये जायें उनके आश्रितों का भरण-पोषण सरकार करे। उनके इस संशोधन से भी मुझे सहानुभूति है क्योंकि यदि कोई रोटी कमाने वाला निरुद्ध किया जाता है तो उसके आश्रितों के भरण-पोषण के लिये प्रबन्ध किया ही जाना चाहिये। इस मामले को कार्यपालिका की स्वेच्छा पर न छोड़कर इस संबंध में किसी प्रकार की प्रत्याभूति देना उचित होगा। किन्तु यह व्यवहार में किस प्रकार सम्भव हो सकेगा? प्रश्न यह है। हमारे देश में बहुत लोग गरीब हैं। वे यह कहना चाहती हैं कि पचास प्रतिशत मामलों में लोग छुट जायेंगे। वे यह भी कहती हैं कि इन मामलों में लोग संदेह से अभियुक्त को ही लाभ होना चाहिये। क्या उसके आश्रित अनिश्चितकाल तक कष्ट सहन करते रहेंगे? वे यह प्रश्न पूछती हैं। किन्तु मेरा निवेदन है कि इस प्रकार के मामलों में प्रान्तीय सरकारें विचार करती आई हैं और जिनको सहायता की आवश्यकता समझी गई है उन्हें सहायता दी जाती रही है। यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि इससे अपराधियों को प्रोत्साहन मिलेगा। यदि उन्हें यह भरोसा हो जायेगा कि उनके परिवार का भरण-पोषण होगा तो वे अपराध करते रहेंगे और राज्य के आधार पर ही आघात करते रहेंगे। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न को प्रान्तीय सरकारों के निर्णय के लिये छोड़ दिया जाये। अथवा जो भी सरकारें इन मामलों के संबंध में निर्णय करें वे इस प्रश्न को हल करें।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, मेरे विचार से अनुच्छेद 15-क (1) में प्रयुक्त "विधि व्यवसायी" शब्दों की कुछ व्याख्या करने की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि कासिम रिजवी ने इंग्लिस्तान के एक वकील को रखा था किन्तु उसे पैरवी करने की आज्ञा नहीं दी गई थी। क्या अभियुक्त को इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह जहां कहीं से जिस वकील को चाहे रखे। यदि इस संबंध में नियम हैं तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। अन्यथा मेरा यह सुझाव है कि "विधि-व्यवसायी" शब्दों के पश्चात् "जो इन मामलों में पैरवी करने की अर्हता रखता हो और इसके लिये अधिकृत हो" शब्द रखे जायें।

श्रीमान्, मैं सभा से सिफारिश करती हूं कि यह अनुच्छेद स्वीकार कर लिया जाये।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद के संबंध में जो आलोचनायें की गई हैं उनके निराकरण के लिये डॉ. अम्बेडकर कुछ सुझाव रखना चाहते हैं।

इसलिये मैं उन्हें इस समय बोलने का अवसर देता हूं। यदि कोई और प्रश्न उठाया गया तो उस पर बाद में विचार किया जा सकता है।

*__बाबू रामनारायण सिंह__ (बिहार : जनरल): क्या वे अनुच्छेद को निकाल देने के लिये सहमत नहीं हैं?

*__अध्यक्षः__ जी नहीं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं वास्तव में नहीं समझता था कि इस अनुच्छेद 15-क पर विचार-विमर्श करने में सभा का इतना समय लगेगा। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मैं तथा मसौदा-समिति के अधिकांश सदस्य तथा जनसाधारण में से भी कई लोगों की यह धारणा है कि अनुच्छेद 15 की भाषा को देखते हुए अर्थात् इन शब्दों को देखते हुए कि विधि द्वारा निर्धारित प्रणाली के अधीन ही कोई व्यक्ति बन्दी किया जाना चाहिये, हमने वैयक्तिक स्वतंत्रता की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है। जबसे यह अनुच्छेद स्वीकार किया गया है, मैं और मेरे मित्र बिना "यथोचित विधि-प्रणाली" शब्दों को प्रयोग किये हुए उसकी आधारभूत सभी कार्यवाहियों को उपबंधित करने का प्रयास करते रहे हैं। मैंने यह समझा था कि जो सदस्य वैयक्तिक स्वातंत्र्य में दिलचस्पी रखते हैं वे अनुच्छेद 15-क के उपबन्धों को देखकर संतुष्ट हो जायेंगे और वे इस अनुच्छेद को प्रसन्नता से स्वीकार कर लेंगे। किन्तु मुझे खेद है कि जिन लोगों ने इस बहस में इस अनुच्छेद की आलोचना ही नहीं बल्कि विरोध भी किया है उन्होंने यह भावना नहीं प्रदर्शित की है। वास्तव में अपने स्वातंत्र्य प्रेम के कारण उन्होंने मुझसे यहां तक कहा कि इस अनुच्छेद को ही निकाल देना चाहिये।

श्रीमान्, मैं उन लोगों की सलाह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूं क्योंकि मुझे इस संबंध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह मार्ग बुद्धिमत्ता का मार्ग नहीं है। इसलिये मैं अनुच्छेद 15-क का परित्याग नहीं कर सकता। मैं यह मानता हूं कि कई आलोचकों ने कुछ ऐसे तर्क उपस्थित किये हैं जिन पर सहानुभूति से विचार करने की आवश्यकता है और मैं उन पर अवश्य ही विचार करूंगा। तथा कुछ संशोधनों को भी उपस्थित करूंगा, जिनसे मेरे विचार से, जो आपत्ति की गई है वह दूर हो जायेगी, विशेषतया इसलिये कि अनुच्छेद 15-क के मसौदे से कुछ आधारभूत बातें ही निकाल दी गई हैं। इन आलोचनाओं का उत्तर देते हुए मैं इस अनुच्छेद के सामान्य भाग को विशेष भाग से पृथक् करना चाहता हूं जिसमें निवारक निरोध का वर्णन है। मैं निवारक निरोध विषयक अंश को पृथक् रूप से उठाऊंगा।

अब अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) के संबंध में तीन सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। एक सुझाव "यथाशक्य शीघ्र" शब्दों के संबंध में है। सदस्यों ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनमें से कुछ का उद्देश्य यह है कि ये शब्द निकाल दिये जायें और इनके स्थान पर "पन्द्रह दिन" और कुछ स्थानों पर "सात दिन" शब्द रखे जायें। मेरे विचार से इन संशोधनों के प्रस्तावक नहीं समझ पाये हैं कि इस

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

प्रसंग में "यथाशक्य शीघ्र" शब्दों का अर्थ क्या है। ये शब्द खण्ड (2) से सुसम्बद्ध हैं और बिना खण्ड (2) के उपबन्धों को ध्यान में रखे हुए इनका आशय स्पष्ट नहीं हो सकता। उसमें यह निश्चित रूप से कहा गया है कि बन्दी किया हुआ कोई भी व्यक्ति हवालात में 24 घंटे से अधिक समय के लिये तब तक निरुद्ध न रखा जा सकेगा जब तक 24 घंटे की समाप्ति तक बन्दी अथवा निरुद्ध करने वाले पुलिस के अधिकारी को, दंडाधिकारी को इसके लिये प्राधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। इस धारा का यही निर्वचन करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि जब 24 घंटे से अधिक समय के लिये निरुद्ध रखने के लिये पुलिस के अधिकारी को एक दंडाधिकारी के न्यायिक प्राधिकार की आवश्यकता होगी तो उसे उस दंडाधिकारी को अवश्य ही उस आरोप की सूचना देनी होगी जिसके आधार पर वह व्यक्ति निरुद्ध किया गया है। इसका यह अर्थ है कि "यथाशक्य शीघ्र" पदावली का अर्थ 24 घंटे से अधिक समय नहीं लगाया जा सकता। इसलिये जिन संशोधनों में 15 दिन अथवा सात दिन का सुझाव रखा गया है उनसे वास्तव में वैयक्तिक स्वातंत्र्य सीमित होता है। इसलिये मेरे विचार से ये सभी संशोधन अप्रासंगिक हैं और इनकी आवश्यकता नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह उठाया गया है कि हमने अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में अभियुक्त को अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने का अधिकार तो दिया है किन्तु हमने इस संबंध में कोई उपबन्ध नहीं रखा है कि वह विधि-व्यवसायी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा करवा सकता है। दूसरे शब्दों में परामर्श करने के अधिकार और प्रतिरक्षा करवाने के अधिकार में भेद किया गया है। मेरा अपना यह विचार था कि "परामर्श करने" शब्दों में प्रतिरक्षा करवाने का अधिकार भी सन्निहित है क्योंकि यदि प्रतिरक्षा करवाने के लिये परामर्श नहीं किया गया तो वह परामर्श निरर्थक है। किन्तु किसी प्रकार का भ्रम न रहने देने के लिये और इस तर्क के लिये भी गुंजाइश न रहने देने के लिये कि "परामर्श करना" शब्द सीमित अर्थ में प्रयुक्त हैं, मैं "किसी विधि-व्यवसायी से परामर्श करने" शब्दों के पश्चात् तथा "प्रतिरक्षा कराने" शब्दों को जोड़ने के लिये तैयार हूं ताकि परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा कराने का भी अधिकार प्राप्त हो जाये। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय ने यह पूछा है कि "अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी" शब्दों का क्या अर्थ है। "अपनी रुचि के शब्दों का महत्व और उन्हें जान बूझ कर रखा गया है क्योंकि हम यह नहीं चाहते कि तत्कालीन सरकार किसी अभियुक्त पर एक ऐसे वकील को थोप दे जिसे वह उस मुकदमे में रखना चाहें क्योंकि हो सकता है कि अभियुक्त का उस पर विश्वास न हो। इसी कारण हमने "अपनी रुचि के" शब्दों को रखा है। किन्तु "अपनी रुचि के" शब्दों के साथ "विधि-व्यवसायी" शब्द भी हैं। "विधि-व्यवसायी" पदावली का वही अर्थ है जो हम साधारणतया समझते हैं। अर्थात् एक ऐसा विधि-व्यवसायी जिसे उच्च न्यायालय अथवा संबंधित न्यायालय के नियमों के अधीन व्यवसाय करने का अधिकार है।

अब, श्रीमान्, मैं खण्ड (2) को उठाऊंगा। इस संबंध में मेरे मित्र पातस्कर ने जो सुझाव रखा वही मुख्य सुझाव है। जहां तक मैं उनका आशय समझ पाया हूं, वे "दंडाधिकारी" शब्द के स्थान पर "पहली श्रेणी के दंडाधिकारी" शब्द रखना

चाहते हैं। इन शब्दों को स्वीकार करने में मुझे दो कारणों से कठिनाई हो रही है। खण्ड (2) में हमने बहुत महत्वपूर्ण शब्दों को अर्थात् "निकटतम दंडाधिकारी" शब्दों को प्रयोग किया है। मैंने यह विचार किया कि इन शब्दों को रखना बहुत आवश्यक है क्योंकि अन्यथा पुलिस का कोई अधिकारी यह कह कर किसी व्यक्ति को अधिक काल तक निरुद्ध रख सकेगा कि जिस दंडाधिकारी के पास वह अभियुक्त को ले जाना चाहता था अथवा वह दंडाधिकारी जो अन्त मे उसके मुकदमे का फैसला करेगा वह दूरी पर रहता है। हमने "निकटतम दंडाधिकारी" शब्द इसी कारण रखे हैं कि यह तर्क उपस्थित न किया जा सके। अब यदि हम "पहली श्रेणी के निकटतम दंडाधिकारी" शब्द रखें तो बड़ी कठिनाई पैदा हो जायेगी। हो सकता है कि "निकटतम दंडाधिकारी" तो हो जिसके सामने पुलिस अभियुक्त के मामले को रख सकती है ताकि उस पर न्याययुक्त ढंग से विचार किया जा सके किन्तु सम्भव है वह पहली श्रेणी का दंडाधिकारी न हो। इसलिये हमें इस संबंध में निर्णय करना है कि हम अभियुक्त को यथाशीघ्र इसका अवसर देना चाहते हैं कि वह पास के किसी दंडाधिकारी से अपने मामले के संबंध में फैसला करवा ले अथवा क्या हम पहली श्रेणी के दंडाधिकारी की खोज में रहेंगे। मेरे विचार से, अभियुक्त के स्वातंत्र्य की दृष्टि से "निकटतम दंडाधिकारी" शब्द बहुत उपयुक्त है। मैं अपने मित्र श्री पातस्कर को यह भी बताना चाहता हूं कि यदि मैं उनके संशोधन को स्वीकार भी कर लूं और "पहली श्रेणी के निकटतम दंडाधिकारी" शब्दों को रख दूं, तब भी कोई भी सरकार अपराध प्रक्रिया संहिता को संशोधित करके जिस दंडाधिकारी को चाहेगी प्रथम श्रेणी के दंडाधिकारी की शक्तियां प्रदान कर देगी और अभियुक्त को धोखा देगी। इसलिये मेरे विचार से इस संशोधन को स्वीकार करना न तो उचित ही है और न आवश्यक ही। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 15-क में यही सामान्य उपबन्ध है और मुझे विश्वास है....

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** कृपया इस पर विचार कीजिये कि......

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे मित्र पंडित ठाकुर दास भार्गव ने परीक्षा के अधिकार का प्रश्न उठाया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** उल्लिखित कारणों के आधार पर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरे विचार से वह उपबन्ध एक उपयुक्त उपबन्ध है। मेरे विचार से अपराध प्रक्रिया संहिता की कई धाराओं में यह उपबंधित है कि दंडाधिकारी अवश्य ही कारणों का उल्लेख करें क्योंकि इस स्थिति में उच्च न्यायालय भी इस पर विचार कर सकता है कि दंडाधिकारी ने स्वविवेक को न्यायपूर्ण ढंग से प्रयोग किया है या नहीं किया है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह एक बहुत ही उपयुक्त उपबन्ध है किन्तु मैं अपने मित्र से अनुरोध करूंगा कि वे इस पर विचार करें कि किसी ऐसे मामले में, जिसमें अधिक काल के लिये निरुद्ध रखने का प्रश्न उठे, क्या दंडाधिकारी को यह प्राधिकार प्राप्त नहीं होगा कि पुलिस ने अभियुक्त पर जो आरोप लगाया है वह प्रत्यक्षतः आधार-सहित है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__: इस समय भी धारा 167 (3) में उसी प्रकार के शब्द हैं। इस समय जिस दंडाधिकारी के पास अभियुक्त ले जाया जाता है, उसका यदि यह विचार हो कि उसे अधिक काल तक निरुद्ध रखने की आवश्यकता है तो वह अवश्य ही यह लिखता है कि वह अमुक कारणों से अधिक काल के लिये निरुद्ध किया जा रहा है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__: यह सच है। इस प्रकार के शब्द हैं। किन्तु क्या इनकी आवश्यकता है?

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__: इनकी बहुत आवश्यकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__: मैं तो समझता हूं कि उनकी आवश्यकता नहीं है। मैं एक सबसे खराब मामले का उदाहरण दूंगा। सम्भव है कोई दंडाधिकारी पुलिस को प्रसन्न करने के लिये किसी अभियुक्त को बार-बार हिरासत में निरुद्ध रखने की आज्ञा देता जाये। तो क्या इस दशा में अभियुक्त कोई उपचार नहीं कर सकेगा? मेरे विचार से अभियुक्त इस उपचार का आश्रय ले सकता है कि वह उच्च न्यायालय के सामने अपने मामले पर पुनर्विचार कराने के लिये जाये और वहां यह कहे कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव__: एक गरीब आदमी उच्च न्यायालय के सामने कैसे जायेगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर__: मैं यह नहीं कहना चाहता कि अब मैं इस प्रश्न पर विचार ही नहीं करूंगा। यदि आवश्यकता होगी तो बाद में मसौदा-समिति इस पर विचार कर सकती है कि इन शब्दों की आवश्यकता है या नहीं। हमें इस समय यही सलाह दी गई है और हमारा भी यही विचार है कि इन शब्दों की इस समय आवश्यकता नहीं है।

अब मैं अनुच्छेद 15(3) के दूसरे भाग को उठाता हूं जो निवारक निरोध के संबंध में है। मेरे मित्र श्री त्यागी को अनुच्छेद के इस अंश पर बहुत क्रोध आया है। मैं अपने मित्र श्री त्यागी को इस कारण क्षमा करता हूं कि वे वकील नहीं हैं और वे नहीं जानते कि क्या हो रहा है। जब कोई ऐसा प्रश्न उठता है, जो साधारण लोगों की समझ में आ सकता है, तो वे एकाएक जाग उठते हैं। यद्यपि वे नहीं जानते कि प्रश्न क्या है। वास्तव में जिस प्रश्न से वे जाग उठते हैं वह एक आनुषंगिक प्रश्न होता है। किन्तु इस सभा के वकील सदस्यों ने जो रुख अपनाया है उसके लिये मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता।

हम क्या कर रहे हैं? मैं सभा को बताऊंगा कि इस समय हम क्या कर रहे हैं। हमारे सामने सप्तम अनुसूची की तीन सूचियां थीं। इन सूचियों में

निवारक-निरोध के संबंध में दो प्रविष्टियां थीं, एक प्रविष्टि सूची एक में थी और दूसरी प्रविष्टि सूची 3 में थी। यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मानें कि निवारक-निरोध-संबंधी यह अंश निकाल दिया जाता है तो उसका क्या प्रभाव होगा? उसका प्रभाव यह होगा कि प्रान्तीय विधान-मंडलों को तथा केन्द्रीय विधान-मंडल को निवारक-निरोध के संबंध में अपनी इच्छानुसार विधि बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी। यदि इस संविधान के किसी अनुच्छेद में किसी ऐसी विधि बनाने के संबंध में परिसीमन नहीं रखा गया, जिसे बनाने का अधिकार हमने इस समय केन्द्र और प्रान्तों को दिया है, तो संसद तथा राज्यों के विधान-मंडलों को निवारक-निरोध के संबंध में विधि बनाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो जायेगी। क्या सभा के वकील सदस्य यह चाहते है कि राज्यों के विधान-मंडलों तथा संसद को इस प्रकार की स्वतंत्रता दी जाये। मेरा निवेदन है कि यदि उनका वही रुख है जो उन्होंने आज व्यक्त किया है तो उन्हें सूची 1 तथा सूची 3 की तत्संबंधी प्रविष्टियों का विरोध करना चाहिये था। हम इस अधिकार को परिसीमित करने का प्रयास कर रहे हैं। हमने राज्य के विधान-मंडलों तथा संसद को निवारक-निरोध के संबंध में विधि बनाने की शक्ति प्रदान की है। मैं परिसीमन रख कर उस शक्ति को केवल कम करना चाहता हूं। मैं उसे खराब नहीं कर रहा हूं। आपने उसे खराब किया है।

जहां तक दूसरे भाग के उपबन्धों का संबंध है मैं पहले.....

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ उन सूचियों को किसने बनाया है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैंने बनाया, किन्तु आपने उन्हें पारित किया! ये परिसीमन मेरे ध्यान में थे। अब मैं खण्ड 3 (ख) के परन्तुक को उठाता हूं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ क्या आप यह समझने में साधारण लोगों की सहायता करेंगे कि आपने खण्ड (4) के अधीन मंत्रणा-मंडली द्वारा मामलों पर पुनर्विचार करने के संबंध में उपबन्ध क्यों नहीं रखे हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं सभा में सदस्य महोदय के लाभार्थ विधि-विषेयक बातें स्पष्ट नहीं कर सकता। यह सभा कोई विधि की कक्षा नहीं है। मैं इस समय इस प्रकार की व्याख्या नहीं कर सकता। माननीय सदस्य महोदय मेरे मित्र हैं। यदि वे नहीं समझते हैं तो वे मेरे पास बाद में आ सकते हैं।

अब मैं परन्तुक को उठाता हूं जिसके संबंध में दो प्रकार की आलोचनायें की गई हैं। एक आलोचना यह है कि निवारक-निरोध-विषेयक विधि के अधीन नहीं बल्कि साधारण विधि के अधीन जो व्यक्ति बन्दी अथवा निरुद्ध किये जायेंगे उनके संबंध में हमने अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में यह उपबन्ध रखा है कि अभियुक्त को सूचित किया जायेगा कि वह किन कारणों से बन्दी किया जायेगा। मैं बता चुका हूं कि निवारक-निरोध के संबंध में हमने इस प्रकार का उपबन्ध नहीं रखा है। मेरे विचार से यह आलोचना ठीक ही है। मैं स्थिति में सुधार करने के लिये तैयार हूं क्योंकि मैं देखता हूं कि निवारक-निरोध के संबंध में प्रान्तीय सरकारों ने जो विधियां बनाई हैं उनके अधीन भी यह उपबन्ध रखा गया है कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

जो व्यक्ति निरुद्ध किया जायेगा उसे बताया जायेगा कि उसे किन कारणों से निरुद्ध किया गया है। मेरा अपना यह विचार है कि जब उन प्रान्तों ने, जो निवारक-निरोध-सम्बन्धी विधियां बनाने के लिये चिंतित हैं, इस उपबन्ध को रखा है तो संविधान में यह क्यों न रखा जाये। इसलिये मैं अनुच्छेद 15-क में खण्ड (3) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड समाविष्ट करने के लिये तैयार हूं:

"(3) निवारक-निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन दिये गये आदेश के अनुसरण में जब कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाता है तब आदेश देने वाला प्राधिकारी......

*__बाबू रामनारायण सिंह:__ श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि प्रान्त यह चाहते हैं कि यह खण्ड रखा जाये

*__अध्यक्ष:__ उन्होंने इस प्रकार की कोई बात नहीं कही है। उन्होंने यह कहा है कि प्रान्तों द्वारा पारित निवारण-निरोध-संबंधी अनेक अधिनियमों में इस प्रकार के कुछ उपबन्ध हैं। वे इस अनुच्छेद में भी इसी प्रकार का एक उपबन्ध रखना चाहते हैं।

*__बाबू रामनारायण सिंह:__ मैं जानना चाहता हूं कि क्या हम प्रान्तों के निर्देश से विधि बना रहे हैं।

*__अध्यक्ष:__ इस प्रकार की कोई बात नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मैं देखता हूं कि श्री रामनारायण सिंह को अपनी प्रान्तीय सरकार से कुछ चिढ़ है।

मैं कह रहा था कि इस उपबन्ध से हमारा उद्देश्य पूरा हो जायेगा:

"अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

'(3क) निवारक-निरोध उपबंधित करने वाली किसी विधि के अधीन दिये गये आदेश के अनुसरण में जब कोई व्यक्ति निरुद्ध किया जाता है तब आदेश देने वाला प्राधिकारी यथाशक्य शीघ्र उस व्यक्ति को जिन आधारों पर वह आदेश दिया गया है उनको बतायेगा तथा उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिये उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा। (ख) इस अनुच्छेद के खण्ड (3क) की किसी बात से आदेश देने वाले प्राधिकारी के लिये ऐसे तथ्य को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिनका कि प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी-लोकहित के विरुद्ध समझता है।'"

प्रान्तों के कुछ अधिनियमों में यही शब्द प्रयुक्त हैं और मैं नहीं समझता कि इन्हें यहां प्रविष्ट न करने के लिये कोई कारण है। इनसे यह आपत्ति भी दूर

हो जायेगी कि हम किसी व्यक्ति को केवल इस कारण निरुद्ध कर रहे हैं कि उसका मामला निवारक-निरोध के मामलों की श्रेणी में आता है और हम उसे वे कारण भी नहीं बता रहे हैं जिनके आधार पर वह निरुद्ध किया गया है। जिस संशोधन को मैंने प्रस्तावित किया है कि उससे इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

दूसरा प्रश्न यह है कि.....

*__माननीय श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): क्या यह उस उपबन्ध के अतिरिक्त है जो खण्ड (1) में है? एक इस आशय का उपबन्ध रखा जा चुका है कि कोई व्यक्ति बिना सूचना दिये हुए हवालात में निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ यह उस व्यक्ति के संबंध में नहीं है जो निवारक-निरोध के लिये बन्दी किया गया हो।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्:__ क्या यह उस व्यक्ति के संबंध में नहीं है जो निवारक-निरोध के लिये बन्दी किया गया हो? मैं समझता था कि खण्ड (1) प्रत्येक प्रकार के निरोध के संबंध में है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ जी नहीं, कम से कम हम यह नहीं समझते हैं। ये मामले दो श्रेणियों में विभाजित किये गये हैं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ वे वकील हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ किसी न्यायालय में हो सकते हैं यहां नहीं।

*__अध्यक्षः__ वे वकील नहीं हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि हम यह कहें कि खण्ड (1) और (2) की कोई बात खण्ड (3) पर लागू नहीं होगी। उद्देश्य यही है। इस प्रकार इस आपत्ति का निराकरण हो जाता है।

अब मैं बिना मुकदमा चलाये हुए और बिना जांच किये हुए तीन मास तक निरुद्ध रखने के प्रश्न को उठाता हूं। कुछ सदस्यों ने कहा है कि 15 दिन से अधिक काल तक निरुद्ध न रखना चाहिये और अन्य लोगों ने अन्य कालावधि का सुझाव रखा है। मैं सभा को बताना चाहता हूं कि हमने यह क्यों विचार किया कि तीन मास की अवधि ठीक ही अवधि है और 15 मास की अवधि बहुत लम्बी अवधि है। हमसे यह कहा गया कि बन्दियों के बहुत से मामले होंगे। हम कह नहीं सकते कि आगे चल कर देश की स्थिति क्या होगी और संविधान देश की किस स्थिति में प्रवर्तन में आयेगा और इस देश के लोग तथा लोगों के दल शक्ति प्राप्त करने के लिये संविधानिक उपायों का आश्रय लेंगे या नहीं अथवा क्या वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये असंविधानिक उपायों को काम में लायेंगे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यदि हममें से सभी लोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संविधानिक उपायों का ही आश्रय लेते तो मेरे विचार से स्थिति भिन्न होती और निवारक-निरोध के संबंध में उपबन्ध रखने की आवश्यकता ही न होती।

किन्तु, मेरे विचार से, विधि बनाते समय हमें खराब से खराब स्थिति की कल्पना कर लेनी चाहिये और अच्छी से अच्छी स्थिति के बारे में ही नहीं विचार करना चाहिये। इसलिये यदि हम इस स्थिति को ध्यान में रख कर व्यवस्था करें, अर्थात् इस स्थिति को ध्यान में रखें कि कई ऐसे लोग अथवा दल भी हो सकते है जिन्हें संविधानिक उपायों का आश्रम लेने का धैर्य न हो और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उतावले हों और असंविधानिक उपायों का आश्रय लेना चाहते हों, तो कार्यपालिका को बहुत से ऐसे लोगों को हवालात में निरुद्ध करना होगा। यदि हम यह मानें कि अवैध कार्यों के कारण हमें बहुत से लोगों को निरुद्ध करना होगा और हमें परन्तुक के उप-खण्ड (क) के उपबन्धों को प्रभाव में लाना होगा तो स्थिति क्या होगी? क्या कार्यपालिका के लिये यह सम्भव होगा कि वह निरुद्ध किये हुए इतने लोगों के, अथवा यों कहिये कि सौ लोगों के मामलों को तैयार करे, उनके संबंध में सभी सूचना इकट्ठी करे और मामलों को मंत्रणा-मंडली के सामने रखे। क्या यह सब सम्भव है? क्या मंत्रणा-मंडली के लिये यह सम्भव है कि वह तीन मास में इतने अधिक मामलों को निबटा दे क्योंकि मैं यह कहूंगा कि परन्तुक के उपखण्ड (क) के उपबन्ध निश्चित उपबन्ध हैं क्योंकि यदि किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक काल के लिये निरुद्ध रखना होगा तो इसके लिये मंत्रणा-मंडली की आज्ञा की आवश्यकता होगी।

इसलिये इस विषय के बारे में प्रशासन-संबंधी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए मसौदा-समिति ने विचार किया कि उस स्थिति में जिन बातों की आवश्यकता होगी वे तीन मास की कालावधि रख कर पूरी हो जायेंगी। इस कालावधि को रखने में मसौदा-समिति का और कोई उद्देश्य नहीं है और मुझे आशा है कि सभा को मैंने जो बातें बताई हैं उन पर विचार करके सभा यह स्वीकार करेगी कि इससे अच्छा तथा युक्तियुक्त उपबन्ध नहीं बनाया जा सकता था।

अब मैं मंत्रणा-मंडली के संबंध में कुछ कहूंगा। इस संबंध में दो प्रश्न उठाये गये हैं। एक प्रश्न यह है कि मंत्रणा-मंडली किस प्रक्रिया का अनुसरण करेगी। उपखण्ड (क) में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि मंत्रणा-मंडली किस प्रक्रिया का अनुसरण करेगी। इस संबंध में तीखे प्रश्न पूछे गये हैं कि क्या निवारक-निरोध के उद्देश्य से जिस व्यक्ति को हवालात में निरुद्ध किया गया है उसके मामले से सम्बद्ध सभी ऐसे कागजात मंत्रणा-मंडली के सामने रखे जायेंगे जिनके फलस्वरूप वह निरुद्ध किया गया है।

यह तीखा प्रश्न भी पूछा गया है कि क्या अभियुक्त को मंत्रणा-मंडली के सामने उपस्थित होने, गवाहों की जांच करने और अपना बयान देने का अधिकार होगा। यह सच है कि मंत्रणा-मंडली अपनी जांच में जिस प्रक्रिया का अनुसरण

करेगी उसका उपखण्ड (क) में कोई उल्लेख नहीं है। यदि थोड़ी देर के लिये हम यह मानें कि उपखण्ड (क) में कोई सुधार नहीं किया जाता है तो इसका क्या प्रभाव होगा? मैं देखता हूं कि इस उपबन्ध के अधीन आज्ञा के समर्थन के लिये प्रतिवेदन को अवश्य ही प्राप्त करना होगा। कार्यपालिका के लिये किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक काल के लिये निरुद्ध रखना अवैध होगा, जब तक कि वह इस काल की समाप्ति पर मंत्रणा-मंडली की कोई सिफारिश न प्राप्त कर ले। इसलिये यदि कार्यपालिका मंत्रणा-मंडली के सामने उन कागजात को न रखेगी जिन पर वह निर्भर करती है तो उसे बहुत हानि होगी क्योंकि वह उस व्यक्ति को तीन मास से अधिक काल तक निरुद्ध नहीं रख सकेगी।

इसलिये अपने पक्ष के ही समर्थन के लिये कार्यपालिका के लिये यह उचित ही नहीं बल्कि आवश्यक भी होगा कि वह मंत्रणा-मंडली के सामने उन कागजात को रखे जिन पर वह विश्वास रखती है। यदि वह यह न करेगी तो निवारक-विधि के प्रशासन के संबंध में वह बहुत बड़ा खतरा उठायेगी। मेरे विचार से इन्हें जब कार्यपालिका मंत्रणा-मंडली के सामने रखेगी तो पर्याप्त रक्षा हो जायेगी।

यदि मेरे मित्रों को इससे संतोष नहीं है तो मैं एक अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं। वह यह है कि अनुसरणीय प्रक्रिया के संबंध में उपखण्ड (क) में कोई स्पष्ट उपबन्ध न रखकर उपखण्ड (4) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें: "इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा-मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया को भी संसद निर्धारित कर सकेगी।" मंत्रणा-मंडली जिस प्रक्रिया का अनुसरण करेगी उसके संबंध में उपबन्ध निश्चित करने की शक्ति मैं संसद को देने के लिये तैयार हूं। मेरे विचार से इससे उस स्थिति में जो कुछ भी आवश्यक होगा वह पूरा हो जायेगा।

श्रीमान्, अनुच्छेद 15-क के विभिन्न भागों के विरुद्ध जो आलोचना की कई है उसे ध्यान में रखकर मैं इन सब संशोधनों को करने के लिये तैयार हूं।

अब मैं कुछ प्रकीर्ण सुझावों पर विचार करूंगा।

*__श्री जसपतराय कपूर:__ इस दशा में सम्भवतः खण्ड (2) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) को निकाल देना होगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ किसी उपबन्ध को नहीं निकालना होगा।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्द__ (पूर्वी पंजाब : जनरल): आप इसके लिये सहमत हो गये हैं कि संबंधित व्यक्ति को निरुद्ध करने के कारण बताये जायेंगे और उसकी सफाई ली जायेगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ और उसे एक लिखित बयान देने का भी अवसर दिया जायेगा।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ क्या आप उस अन्य सुझाव से भी सहमत हैं जिसकी ओर मैंने ध्यान आकृष्ट किया था अर्थात् जैसाकि मद्रास के अधिनियम में उपबंधित है, क्या सफाई मंत्रणा-मंडली के सामने रखी जायेगी?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं यह कहता हूं कि उसके सामने सभी कागजात रखे जायेंगे।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ हो सकता है कि उसके सामने सभी कागजात न रखे जायें। मुझे कुछ अनुभव है। वे यह कहेंगे कि यह एक बहुत छोटा मामला है। यदि आप अभियुक्त को निश्चित समय में सफाई देने का अवसर दे रहे हैं तो इस उपबन्ध को रखने में आपको संकोच क्यों होता है? मद्रास के अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के उपखण्ड (2) में यह उपबन्ध है कि सफाई मंत्रणा-मंडली के सामने रखी जायेगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मेरे विचार से मैंने जो कुछ कहा है उसमें यह सन्निहित है।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ इसे स्पष्ट ही क्यों न कर दिया जाये? यह उपबंध बंबई के अधिनियम में अथवा संयुक्तप्रान्त के अधिनियम में नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ जैसाकि मैं कह चुका हूं, मंत्रणा-मंडली के सामने कागज प्रस्तुत करने के संबंध में उपखण्ड (क) के अधीन जो उपबन्ध है उसमें अभियुक्त का बयान भी प्रस्तुत करना सन्निहित है। यदि यह बात नहीं है तो मैं एक उपबन्ध इस आशय का भी रख रहा हूं कि संसद विधि द्वारा प्रक्रिया निर्धारित कर सकती है, जिसके फलस्वरूप संसद यह निश्चित रूप से कह सकेगी कि अमुक-अमुक कागजात मंत्रणा-मंडली के सामने रखे जायें। इसके अतिरिक्त मैं अधिक रियायत करने के लिये तैयार नहीं हूं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ डॉ. अम्बेडकर कृपा करके मुझे एक मिनट दें।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ अभी नहीं।

*__श्री महावीर त्यागीः__ मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या खण्ड (4) के अधीन संसद अथवा प्रान्तों द्वारा बनाई हुई विधि के अनुसार बन्दी अपने मामलों का पुनर्विलोकन न्यायाधिकरण द्वारा करवा सकेंगे?

श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या उन बन्दियों को जो खण्ड (4) के अधीन संसद निर्मित विधि के अधीन विरुद्ध किये जायेंगे, अपने मामलों का पुनर्विलोकन न्यायाधिकरण द्वारा कराने का विशेषाधिकार प्राप्त होगा या नहीं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मेरे मित्र श्री त्यागी ऐसे बोल रहे हैं जैसे कि वे इस भय से अत्यंत पीड़ित हों कि वे स्वयं बन्दी होने जा रहे हों। मुझे इसकी सम्भावना नहीं दिखाई देती।

*__श्री महावीर त्यागी:__ मैं आपकी स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयास कर रहा हूं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अब मैं जो प्रकीर्ण सुझाव रखे गये हैं, उन्हें उठाऊंगा।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ उन सुझावों का क्या होगा जो गवाहों की परीक्षा तथा प्रतिरक्षा के संबंध में हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ गवाहों की परीक्षा का अधिकार अपराध प्रक्रिया संहिता तथा साक्ष्य अधिनियम में दिया ही हुआ है। जब तक कि कोई प्रान्तीय सरकार बिल्कुल ही पागल न हो जाये और इन उपबंधों को निकाल न दे तब तक इस प्रकार के किसी उपबन्ध को रखना अनावश्यक है। प्रतिरक्षा में गवाहों की परीक्षा सन्निहित है।

*__पं. ठाकुरदास भार्गव:__ उनके कारण इस सीमा तक शक्ति छीनने का भी प्रयास किया गया है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यदि आप भारत के किसी एक ऐसे मामले का भी उदाहरण दे सकें जिसमें गवाहों की परीक्षा करने का अधिकार छीना गया है, तो यह मेरी समझ में आ सकता है। मैंने ऐसा कोई मामला नहीं देखा है।

श्रीमान्, अधिकतम दंड का भी, प्रश्न उठाया गया है। जो लोग यह चाहते हैं कि अधिकतम दंड भी निश्चित कर दिया जाये, वे कृपा करके खण्ड (4) के उपबन्धों को देखें जिनमें यह निश्चित रूप से कह दिया गया है कि इस संबंध में विधि बनाते समय संसद अधिकतम अवधि भी निश्चित करेगी।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ "कर सकती है" शब्द हैं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ "कर सकती है" का अर्थ "करेगी" है।

*__पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ संसद कर भी सकती है और नहीं भी कर सकती है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ यह सच है किन्तु जब वह करेगी तो वह अधिकतम अवधि भी निश्चित करेगी।

एक अन्य प्रश्न भी है जो बन्दियों के तथा उनके परिवारों के पोषण के संबंध में है।

*__श्री जसपतराय कपूरः__ सामयिक पुनर्विलोकन का क्या होगा?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं उस प्रश्न को भी उठाऊंगा। वह ऐसा विषय नहीं है जिसे हम संविधान में प्रविष्ट कर सकते हैं। कुछ मामलों में उसकी आवश्यकता हो सकती है और कुछ मामलों में उसकी आवश्यकता नहीं भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त खण्ड (4) द्वारा संसद को पोषण के संबंध में उपबन्ध बनाने की शक्ति भी दी गई है।

मेरा अपना यह विचार है कि पोषण के पक्ष में जो भी तर्क उपस्थित किया जायेगा उसमें कुछ जान नहीं होगी। यदि कोई व्यक्ति राज्य की जड़ ही उखाड़ रहा हो और यदि वह उस कारण बन्दी किया जाये, तो कारागार में भोजन पाने का तो उसे अधिकार हो सकता है किन्तु उसे पोषण की मांग करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। किन्तु संसद और विधान-मंडल यह कृपा कर सकते हैं और इस प्रकार का उपबन्ध रख सकते हैं। मेरे विचार से खण्ड (4) के अधीन संसद जो भी अधिनियम बनायेगी उसमें इस प्रकार का उपबन्ध रख सकती है।

बन्दियों के मामलों के पुनर्विलोकन के संबंध में भी मेरा यह विचार है कि कोई कारण नहीं है कि प्रान्तीय सरकारें जो विधि बनायें, अथवा खण्ड (4) के अधीन संसद जो विधि बनाये, उसमें सामयिक पुनर्विलोकन के लिये उपबन्ध नहीं रखा जा सकता है। मेरे विचार से यह एक प्रशासन-संबंधी विषय ही है और इसका विनियमन विधि द्वारा हो सकता है।

मेरे मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने कहा है कि बंदियों के लिये मेरे हृदय में अधिक स्थान नहीं है और वह इसलिये कि मैं कभी जेल नहीं गया हूं, किन्तु उन्हें मैं यह बताना चाहता हूं कि पिछले मंत्रिमंडल में यदि किसी व्यक्ति ने पुनर्विलोकन के संबंध में नियम रखवाया तो मैंने ही रखवाया। मंत्रि मंडल के अधिकांश लोग उसके विरुद्ध थे। मैंने तथा मंत्रिमंडल के एक यूरोपियन सदस्य ने उसके लिये संघर्ष किया और हम उसे निर्धारित करवाने में सफल हुए। इसलिये स्वतंत्रता के लिये हृदय में स्थान होने के लिये जेल जाना आवश्यक नहीं है।

मेरे मित्र श्री कामत ने एक अन्य प्रश्न भी उठाया है। उन्होंने मुझ से पूछा है कि क्या निवारक-निरोध के मामलों में उच्चतम न्यायालय अभियुक्त के पक्ष में लेख निकाल सकते हैं। यह स्पष्ट है कि स्थिति इस प्रकार है। किसी भी मामले में बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के लेख के बारे में मांग की जा सकती है और वह निकाला भी जा सकता है किन्तु अन्य लेख प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति को देखकर ही निकाले जा सकते हैं। बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लेख का उद्देश्य एक सीमित उद्देश्य है। वह न्यायालय द्वारा केवल यह ज्ञात करने के लिये निकाला जाता है कि क्या संबंधित व्यक्ति विधि के अधीन बन्दी किया गया है अथवा

क्या कार्यपालिका की सनक से बन्दी किया गया है। जब उच्च न्यायालय को यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है कि वह व्यक्ति किसी विधि के अधीन बन्दी किया गया है तो बन्दी-प्रत्यक्षीकरण का लेख समाप्त हो जाता है। यदि वह किसी विधि के अधीन बन्दी नहीं बनाया गया हो तो उसके पक्ष के लोग ज्यादती को दूर कराने के लिये किसी अन्य प्रकार के लेख की मांग करेंगे। मैं श्री कामत को यही उत्तर देना चाहता हूं।

श्रीमान्, मुझे आशा है कि मैंने जिन संशोधनों का सुझाव रखा है उनके साथ सभा अनुच्छेद 15-क को स्वीकार कर लेगी।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल) मेरा प्रश्न यह है कि क्या हमने इस संबंध में इस अनुच्छेद में कोई उपबन्ध रखा है या नहीं।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ उसकी आवश्यकता नहीं है। यह सभी जानते हैं। यदि आप कष्ट में पड़ें तो आप किसी वकील को रख लें। वह आपको सब कुछ बता देगा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं आप ही को रखूंगा।

*__अध्यक्ष:__ क्या अब इस संबंध में अधिक बहस करना आवश्यक है?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ सभा इस प्रश्न पर छह घंटे तक विचार-विमर्श कर चुकी है।

*__सरकार हुकम सिंह__ (पूर्वी पंजाब : सिख): मैं इस कोने से आपकी दृष्टि में आने का प्रयास करता रहा हूं। किन्तु मुझे अभी तक सफलता नहीं मिली है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ मैं कल से खड़ा होता रहा हूं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): यह संविधान का एक महत्वपूर्ण अनुच्छेद है क्योंकि यह वैयक्तिक स्वातंत्र्य के विषय में है। इसके संबंध में विचार-विमर्श के समय को कम न किया जाये।

*__अध्यक्ष:__ सभा की जो भी इच्छा हो वही मेरी भी इच्छा है। बहस समाप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जा चुका है। प्रस्ताव यह है कि:

"अब प्रस्ताव पर मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्षः__ मैं डॉ. अम्बेडकर को दूसरी बार उत्तर देने का अवसर नहीं दे सकता।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ जी नहीं, श्रीमान्। इस संबंध में किसी ने कुछ नहीं कहा।

*__अध्यक्षः__ अब मैं संशोधन पर मत लूंगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ वे सब वापस ले लिये जायें।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): अभी नये खण्ड जोड़े गये हैं। क्या उन पर अब मत लिया जायेगा?

*__अध्यक्षः__ जी हां, अभी मत लिया जायेगा।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ बिना उनकी प्रतियों को देखे हुए उन्हें समझने में कठिनाई होगी।

*__डॉ. बख्शी टेकचन्दः__ वे किसी अर्थ में भी नये संशोधन नहीं कहे जा सकते और इसलिये उन पर विचार-विमर्श करने में अधिक समय लगाने की आवश्यकता नहीं है। केवल पं. भार्गव के संशोधनों के कुछ अंश स्वीकार किये गये हैं। उन पर पर्याप्त विचार-विमर्श हो चुका है।

*__अध्यक्षः__ मैं भी यही कहने जा रहा था।

प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 15 के पश्चात् निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद जोड़ दिये जायेः

'15A. No procedure within the meaning of the preceding section shall be deemed to be established by law if it is inconsistent with any of the following principles:—

(i) Every arrested person if he has not been released earlier shall be produced before a Magistrate within 24 hours of his arrest excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the Court of the Magistrate and informed of the nature of the accusation for his arrest and detained further only by the authority of the Magistrate for reasons recorded.

(ii) Every person shall have the right of access to Courts to being defended by counsel in all proceedings and trials before courts.

(iii) No person shall be subjected to unnecessary restraints or to unreasonable search of person or property.

(iv) Every accused person is entitled to a speedy and public trial unless special law or public interests demand a trial *in camera*.

(v) Every person shall have the right of cross examining the witness produced against him and producing his defence.

(vi) Every convicted person shall have the right of at least one appeal against his conviction.'

15B. No procedure within the meaning of Section 15 shall be deemed to be established by law in case of preventive detention if it is inconsistent with any of the following principles:—

(i) No person shall be detained without trial for a period longer than it is necessary.

(ii) Every case of detention in case it exceeds the period of fifteen days shall be placed within a month of the date of arrest before an independent tribunal presided over by a judge of the High Court or a person possessed of qualification for High Court Judgeship armed with powers of summary inquiries including examinations of the person detained and of passing orders of further detention, conditional or absolute release and other incidental and necessary orders.

(iii) No such detention shall continue unless it has been confirmed within a period of two months from the date of arrest by an order of further detention from such tribunal in which case quarterly reviews of such detentions by independent tribunal armed with powers of passing of order of release conditional

[अध्यक्ष]

or otherwise and other necessary and in accidental orders shall be made.

(iv) Such detention shall in the total not exceed the period of one year from the date of arrest.

(v) Such detained person shall not be subjected to hard labour or unnecessary restrictions otherwise than for wilful disobedience of lawful orders and violation of jail rules.'"

[15-क. पूर्ववर्ती धारा के प्रयोजन के लिये कोई भी प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी यदि वह इन सिद्धान्तों में से किसी से असंगत हो:-

(1) प्रत्येक बन्दी किया हुआ व्यक्ति, यदि वह पहले ही न छोड़ दिया गया हो, तो बन्दीकरण के स्थान से दंडाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिये अपेक्षित समय को छोड़कर, बन्दीकरण से 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के सामने उपस्थित किया जायेगा और उसे बताया जायेगा कि किस तरह के अभियोग में उसे बन्दी किया गया है और दंडाधिकारी के आदेश से ही अभिलिखित कारणों के आधार पर वह और आगे निरुद्ध रखा जा सकेगा।

(2) न्यायालय के समक्ष चलने वाले सभी मुकदमों और कार्यवाहियों में वकील द्वारा अपनी प्रतिरक्षा कराने के लिये हर व्यक्ति को न्यायालय में पहुंचने का अधिकार होगा।

(3) किसी व्यक्ति पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगाया जायेगा और न उसके शरीर की या उसकी सम्पत्ति की अनुचित तलाशी ली जायेगी।

(4) प्रत्येक अभियुक्त को इसका अधिकार है कि उसका मुकदमा खुली अदालत में शीघ्र चलाया जाये जब तक कि किसी विशेष विधि या जनहित के लिये बन्द अदालत में मुकदमा चलाना अपेक्षित न हो।

(5) प्रत्येक व्यक्ति को उसके खिलाफ पेश किये गये गवाह से जिरह करने का और अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का अधिकार होगा।

(6) प्रत्येक सिद्ध-दोष व्यक्ति को अपनी दोष-सिद्धि के विरुद्ध कम से कम एक अपील करने का अधिकार होगा।

15-ख. धारा 15 के प्रयोजन के लिये, निवारक-निरोध के मामले में, कोई भी प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी यदि वह इन सिद्धान्तों में से किसी से असंगत हो:

(1) बिना मुकदमा चलाये व्यक्ति को आवश्यक अवधि से अधिक काल तक निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।

(2) निरोध-संबंधी प्रत्येक मामला, यदि 15 दिन से अधिक काल तक अभियुक्त निरुद्ध रखा जाता है, बन्दीकरण से एक मास के भीतर एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण के सामने रखा जायेगा जिसकी अध्यक्षता उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का न्यायाधीश होने की अर्हता रखने वाला कोई व्यक्ति करेगा, जिसे सरसरी पूछताछ की, निरुद्ध व्यक्ति से सवाल करने की तथा उसे और आगे निरुद्ध रखने, उसे प्रतिबंध सहित अथवा पूर्ण विमुक्ति देने का आदेश निकालने की तथा अन्य आनुषंगिक आदेश निकालने की शक्ति प्राप्त रहेगी।

(3) ऐसा कोई निरोध और आगे के लिये जारी न रखा जायेगा जब तक कि बन्दीकरण की तारीख से दो मास की अवधि के अन्दर, ऐसे न्यायाधिकरण की ओर से और आगे निरुद्ध रखने के लिये दिये गये आदेश द्वारा उसकी पुष्टि न हो जाये और उस दशा में ऐसे निरोध-विषयक मामलों का एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण द्वारा, जिसे शर्तों के साथ या बिना शर्तों के विमुक्ति का आदेश देने का अधिकार रहेगा, त्रैमासिक पुनर्विलोकन किया जायेगा और अन्य आवश्यक तथा आनुषंगिक आदेश निकाले जायेंगे।

(4) ऐसा निरोध कुल मिलाकर, बन्दीकरण की तारीख से एक साल से अधिक अवधि तक जारी नहीं रहेगा।

(5) इस प्रकार निरुद्ध व्यक्ति से, वैध आदेशों की जानबूझ कर अवहेलना करने तथा जेल के नियमों को भंग करने के लिये जितना अपेक्षित होगा उससे अन्यथा कठोर श्रम न लिया जायेगा और न उस पर अनावश्यक प्रतिबन्ध लगाये जायेंगे।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 3 उठाता हूं। क्या इन संशोधनों को पढ़ना आवश्यक है?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** उन्हें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। जो संशोधन स्वीकार किये जा चुके हैं वे उठाये जा सकते हैं और अन्य संशोधनों को छोड़ा जा सकता है।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) और (2) के स्थान पर यह रखा जायेः

[अध्यक्ष]

'15A. No procedure shall be deemed to be established by law within the meaning of article 15 if the law prescribing the procedure for criminal proceedings and trials of accused persons contravenes any of the following established principles and rights—

(a) the right of production of the person under custody before Magistrate within 24 hours of his arrest (excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the court of Magistrate) and further detention only with the authority of the Magistrate for reasons recorded;

(b) the right of consultation after arrest and before trial and the right of being defended by the Counsel of his choice;

(c) the right of full opportunity for cross-examination of witnesses produced against the accused and production of his defence;

(d) the right of at least one appeal in case of conviction.'"

[15-क. अनुच्छेद 15 के प्रयोजनार्थ कोई प्रक्रिया विधि-स्थापित नहीं मानी जायेगी यदि अभियुक्त व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने और दण्ड-विषयक कार्यवाही की प्रक्रिया विहित करने वाली विधि इन चिरस्थापित सिद्धान्तों और अधिकारों में से किसी का उल्लंघन करती हो:-

(क) हवालात में निरुद्ध रखे गये व्यक्ति को इस बात का अधिकार होगा कि उसके बन्दीकरण से 24 घंटे के अन्दर (बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिये अपेक्षित समय को छोड़कर) उसे दण्डाधिकारी के समक्ष पेश किया जाये तथा दण्डाधिकारी के आदेश से अभिलिखित कारणों के आधार पर ही उसे आगे निरुद्ध रखा जाये।

(ख) बन्दीकरण के पश्चात् और मुकदमा चलने से पहले अपनी रुचि के वकील से परामर्श करने अथवा प्रतिरक्षा कराने का उसे अधिकार होगा।

(ग) अभियुक्त व्यक्ति को, अपने विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने और अपनी प्रतिरक्षा पेश करने का अवसर पाने का अधिकार होगा।

(घ) दोष सिद्ध ठहराये जाने पर कम से कम एक बार अपील करने का उसे अधिकार होगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 3 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) के आगे ये खण्ड जोड़े जायें:–

'(e) right to freedom from torture and unnecessary restraints and from unreasonable search of person and property;

(f) right to a speedy and public trial unless special law and public interest demand a trial in camera.'"

[(ङ) यातना से और अनावश्यक प्रतिबन्धों से तथा शरीर और सम्पत्ति की अनुचित तलाशी से मुक्ति पाने का उसे अधिकार होगा।

(च) उसे इसका अधिकार होगा कि उसका मुकदमा खुली अदालत में शीघ्र चलाया जायेगा जब तक कि किसी विशेष विधि या जनहित के लिये बन्द अदालत में मुकदमा चलना अपेक्षित न हो।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) 'a legal practitioner of his choice' (अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी) शब्दों के स्थान पर 'and be defended by a legal practitioner of his choice in all criminal proceeding and trials' (और सभी अपराध संबंधी कार्यवाहियों और मुकदमों में अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी से प्रतिरक्षा करा सकेगा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** अब संशोधन संख्या 7 आता है।

***श्री टी.टी. कृष्णामाचारी:** डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन के एक अंश को स्वीकार किया है। उस पर मत लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यदि वह अस्वीकार हो जायेगा तो डॉ. अम्बेडकर उस अंश को स्वीकार नहीं कर सकेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे संशोधन स्वतंत्र संशोधन हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क में खण्ड (1) के स्थान पर यह खण्ड रखा जाये:

'(2) Every arrested person if he has not been released earlier shall be produced before a Magistrate within 24 hours of his arrest excluding the reasonable period of journey from the place of arrest to the court of the Magistrate and detained further only by the authority of the Magistrate for reasons recorded.'"

[(2) प्रत्येक बन्दी किया गया व्यक्ति, यदि वह पहले नहीं छोड़ दिया गया हो तो, बन्दीकरण के स्थान से दण्डाधिकारी के न्यायालय तक यात्रा के लिये अपेक्षित युक्तियुक्त समय को छोड़कर अपने बन्दीकरण के 24 घंटे के भीतर दंडाधिकारी के सामने पेश किया जायेगा और अभिलिखित कारणों के आधार पर दंडाधिकारी के ही आदेश से और आगे निरुद्ध रखा जायेगा।]

अथवा विकल्पत:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के अन्त में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'and for reasons recorded. (और अभिलिखित कारणों के आधार पर)'"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के बाद ये खण्ड रखे जायें:

'(2a) Every person accused of any offence or against whom criminal proceedings are being taken shall have the full opportunity of cross-examining the witnesses produced against him and producing his defence.

(2b) Every person sentenced to imprisonment shall have the right of at least one appeal against his conviction.'"

[(2-क) प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग लगाया गया हो या जिसके विरुद्ध दण्ड-संबंधी कार्यवाही की जा रही हो, अपने विरुद्ध पेश किये गये गवाह से जिरह करने तथा अपनी प्रतिरक्षा उपस्थित करने का पूरा अवसर दिया जायेगा।

(2-ख) प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को, जिसे कारावास का दण्ड दिया गया हो, अपनी दोष-सिद्धि के विरुद्ध कम से कम एक बार अपील करने का अधिकार होगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) और (4) के स्थान पर यह रखा जायेः

'15B. No procedure shall be deemed to be established by law within the meaning of article 15 if the law prescribing the prevention or detention contravenes any of the following principles:—

(1) Such detention without trial shall only be allowable for alleged participation in dangerous or subversive activities affecting the public peace, security of the State and relation between different classes and communities inhabiting India or membership of any organisation declared unlawful by the State.

(2) Such detention shall not be longer than two months unless an independent tribunal consisting of two or more persons being High Court judges or possessing qualifications for High Court judgeships and armed with powers of enquiry including examination of the detainee recommend continuance of detention within the said period of two months.

[अध्यक्ष]

(3) Such detention shall not exceed the total period of one year.

(4) Such detention shall be free from unnecessary restrictions and hard labour otherwise than for wilful disobedience of lawful orders and violation of jail rules:

Provided that the Parliament shall never be precluded from prescribing other reason and circumstances which may necessitate such detention and the conditions of such detention.'"

[15-ख. अनुच्छेद 15 के प्रयोजनार्थ कोई प्रक्रिया विधि-स्थापित न समझी जायेगी यदि निवारण या निरोध को विहित करने वाली विधि इन सिद्धान्तों में से किसी का भी उल्लंघन करती हो:–

(1) बिना मुकदमा चलाये उसी सूरत में किसी को निरुद्ध रखा जा सकता है जबकि उसके विरुद्ध ऐसी खतरनाक या विप्लवकारी कार्यवाहियों में भाग लेने का आरोप लगाया गया हो जिसका लोक-शांति, राज्य की सुरक्षा और भारत में बसने वाले विभिन्न वर्गों तथा समुदायों के आपसी संबंध पर अथवा राज्य द्वारा अवैध घोषित किसी संगठन की सदस्यता पर प्रभाव पड़ता हो।

(2) कोई व्यक्ति इस प्रकार दो मास से अधिक अवधि तक निरुद्ध न रखा जायेगा जब तक कि दो या अधिक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की अर्हता रखने वाले व्यक्तियों से बना एक स्वतंत्र न्यायाधिकरण, जिसे उस मामले की जांच करने की शक्ति प्राप्त हो, जिसमें निरुद्ध व्यक्ति से जिरह करना भी शामिल हो, उक्त दो मास की अवधि के अन्दर उसे और आगे निरुद्ध रखने की सिफारिश न कर दे।

(3) ऐसा निरोध कुल मिलाकर एक वर्ष से अधिक अवधि के लिये नहीं होगा।

(4) ऐसे निरोध काल में वैध आदेशों की जानबूझ कर अवहेलना करने और जेल के नियमों को भंग करने के लिये जितना अपेक्षित होगा उससे अन्यथा न तो अनावश्यक प्रतिबंध लगाये जायेंगे और न कठोर श्रम लिया जायेगा:

परन्तु संसद को इस प्रकार के निरोध के लिये अन्य कारण तथा परिस्थितियां विहित करने तथा ऐसे निरोध की दशाओं को विहित करने मे कभी भी कोई रोक नहीं होगी।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक में 'three' (तीन) शब्द के स्थान पर 'two' (दो) शब्द रखा जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'Board' (मंडली) शब्द के पश्चात् 'with powers of inquiry including examination of persons detained' (जांच की शक्ति, जिसमें निरुद्ध व्यक्तियों की परीक्षा भी शामिल है) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (ख) में ये शब्द जोड़ दिये जायें:

'but in no case more than six months' (पर किसी हालत में छह मास से अधिक नहीं।)"

अथवा

'but in no case more than a year' (परन्तु किसी हालत में एक वर्ष से अधिक नहीं।)"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में 'circumstances' (परिस्थितियां) शब्द के पश्चात् 'and the conditions' (और अवस्थाओं) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) में 'three months' (तीन मास) शब्दों के स्थान पर 'one month' (एक मास) अथवा 'two months' (दो मास) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(1) Every person arresting another in due course of law shall, at the time of the arrest or as soon as practicable thereafter, inform that person the reasons or grounds for such arrest, nor shall he be denied the right to consult a legal practitioner of his own choice.'"

[(1) प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति को यथोचित विधि प्रणाली के अनुसार बन्दी करे वह बन्दीकरण के समय अथवा उसके पश्चात् जब कभी सम्भव हो उस व्यक्ति को बन्दीकरण के कारणों तथा आधार से सूचित करेगा और न वह अपनी रुचि के विधि-व्यवसायी से परामर्श करने के अधिकार से वंचित किया जायेगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'as soon as may be' (यथाशक्य शीघ्र) शब्दों के पश्चात 'being not later than fifteen days' (पन्द्रह दिन के अन्दर) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) से उपखण्ड (ख) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'a High Court has' (हिन्दी में–मंत्रणा-मंडली ने) शब्दों के पश्चात् 'after hearing the person detained' (निरुद्ध व्यक्ति की बातें सुनने के पश्चात्) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में 'such detention' (ऐसे निरोध) शब्दों के पश्चात् 'but so that the person shall in no event be detained for more than six months' (किन्तु जिसमें वह व्यक्ति किसी भी दशा में छह मास से अधिक अवधि के लिये निरुद्ध न रखा जाये) शब्द जोड़े जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) के साथ यह परन्तुक जोड़ दिया जायेः

'Provided that if the earning member of a family is so detained his direct dependents shall be paid maintenance allowance.'"

[किन्तु यदि किसी परिवार का आजीविका कमाने वाला व्यक्ति इस प्रकार निरुद्ध किया जाये तो उसके अपने आश्रितों को पोषण का भत्ता दिया जायेगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'as soon as may be' (यथाशक्य शीघ्र) शब्दों के स्थान पर 'before the expiration of seven days following his arrest' (उसके बन्दीकरण के पश्चात् सात दिन समाप्त होने के पूर्व) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) में 'as soon as may be' (यथाशक्य शीघ्र) शब्दों के स्थान पर 'within twenty four hours' (चौबीस घंटे के अन्दर) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) में 'magistrate' (दंडाधिकारी) शब्द जहां कहीं आया है उसके पश्चात् 'of the First class' (प्रथम श्रेणी) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (2) के स्थान पर यह रखा जाये:

'(2) Every person who is arrested shall be produced before the nearest magistrate within twenty four hours and no such person shall be detained in custody longer than twenty-four hours without the authority of a magistrate.'"

[(2) प्रत्येक बन्दी किया हुआ व्यक्ति निकटतम दंडाधिकारी के समक्ष 24 घंटे के अन्दर उपस्थित किया जायेगा और बिना दंडाधिकारी के प्राधिकार के ऐसा कोई व्यक्ति हवालात में 24 घंटे से अधिक समय के लिये निरुद्ध नहीं रखा जायेगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के खण्ड (2) में अन्त में आये हुए 'magistrate' (दंडाधिकारी के प्राधिकार के बिना) शब्दों के पश्चात् 'who shall afford such person an opportunity of being heard' (जो ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देगा) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद के खण्ड (2) के पश्चात् यह नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(2a) No detained person shall be subjected to physical or mental ill-treatment.'"

[(2-क) किसी निरुद्ध व्यक्ति का शारीरिक अथवा मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जायेगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क में से उसका खण्ड (3) निकाल दिया जाये।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के प्रवर्तन में आने वाले भाग के उपखण्ड (ख) में 'law' (विधि) शब्द के पश्चात् (हिन्दी में पहले) 'of the Union' (संघ की) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के परन्तुक के उपखण्ड (क) में से 'or are qualified to be appointed as' (अथवा नियुक्त होने की अर्हता रखते हैं) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के अन्त में निम्नलिखित नवीन परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that in the case of any such person so recommended for detention as stated in sub-clause (a) of clause (3), the total period of his detention shall not extend beyond nine months provided the Advisory Board has in its possession direct and ample evidence that such person is a source of continuous danger to the State and the Society.'"

[परन्तु ऐसे किसी व्यक्ति के मामले में जिसे खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अनुसार निरुद्ध रखने की सिफारिश की गई हो, उसका निरोध काल कुल मिला कर नौ मास से अधिक नहीं होगा जब तक कि मंत्रणा-मंडली के पास इसका स्पष्ट तथा पर्याप्त प्रमाण न हो कि वह व्यक्ति राज्य तथा समाज के लिये हमेशा एक खतरा बना रहेगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 1 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) के पश्चात् यह नवीन खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(5) Notwithstanding anything contained in this article the powers conferred on the Supreme Court and the High Courts under article 25 and

article 202 of this Constitution as respects the detention of persons under this article shall not be suspended or abrogated or extinguished.'"

[(5) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी इस अनुच्छेद के अधीन लोगों को निरुद्ध करने के संबंध में इस संविधान के अनुच्छेद 25 तथा अनुच्छेद 202 के अधीन उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को प्रदत्त शक्तियां न तो विलम्बित की जायेंगी और न निराकृत अथवा समाप्त की जायेंगी।]

संशोधन गिर गया।

मेरे विचार से कल हमने यही सब संशोधन उपस्थित किये थे। आज डॉ. अम्बेडकर ने कुछ संशोधन उपस्थित किये हैं और अब मैं उन पर मत लूंगा।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 15-क के खण्ड (1) में 'consult' (परामर्श करने) शब्दों के पश्चात् 'and be depended by' (तथा प्रतिरक्षा कराने) शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) में 'Nothing in this article' (इस अनुच्छेद में की कोई बात) शब्दों के स्थान पर 'Nothing in clauses (1) and (2) of the article' [इस अनुच्छेद के खण्ड (1) और (2) में की कोई बात] शब्द रखे जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 15-क के खण्ड (3) के पश्चात् यह खण्ड प्रविष्ट किये जायें:

'(3a) Where an order is made in respect of any person under sub-clause (b) of clause (3) of this article the authority making an order shall as soon as may be communicate to him the grounds on which the order has been made and afford him the earliest opportunity of making a representation against the order.

[अध्यक्ष]

(3b) Nothing in clause (3a) of this article shall require the authority making any order under sub-clause (b) of clause (3) of this article to disclose the facts which such authority considers to be against the public interest to disclose.'"

[(3-क) जब इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति के संबंध में आदेश दिया जाये तब आदेश देने वाला प्राधिकारी यथाशक्य शीघ्र उस व्यक्ति को जिन आधारों पर वह आदेश दिया गया है उनको बतायेगा तथा उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिये उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।

(3-ख) इस अनुच्छेद के खण्ड (3-क) की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) के अधीन आदेश देने वाले प्राधिकारी के लिये ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिनका कि प्रकट करना प्राधिकारी लोक-हित के विरुद्ध समझता है।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 15-क के खण्ड (4) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:

'and Parliament may also prescribe by law the procedure to be followed by an Advisory Board in an enquiry under clause (a) of the proviso to clause (3) of this article.'"

[और संसद विधि द्वारा यह भी विहित कर सकेगी कि इस अनुच्छेद के खण्ड (3) के परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में मंत्रणा-मंडली द्वारा अनुसरणीय प्रक्रिया क्या होगी।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 15-क संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 15-क संशोधित रूप में संविधान का अंग बना लिया गया।

*अध्यक्षः मुझे खेद है कि मैं डॉ. बख्शी टेकचन्द के संशोधन पर मत लेना भूल गया। वास्तव में उसकी आवश्यकता भी न थी। उसका आशय डॉ. अम्बेडकर के संशोधन से पूरा हो जाता है।

अनुच्छेद 209-क

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 209 के पश्चात् भाग 6 के अध्याय 7 और 9 के बीच में यह प्रविष्ट किया जायेः

'Chapter VIII

Subordinate Courts

209A (1) Appointments of persons to be, and the posting and promotion of, district judges in any State shall be made by the Governor of the State in consultation with the High Court exercising jurisdiction in relation to such State.

Appointments of District Judges.

(2) A person not already in service of the Union or of the State shall only be eligible to be appointed as district judge if he has been for not less than seven years an advocate or a pleader and is recommended by the High Court for appointment.

209B. Appointments of persons other than district judges to the judicial service of a State shall be made by the Governor in accordance with rules made by him in this behalf after consultation with the state Public Service Commission and with the High Court.

Recruitment of other than district judges to the Judicial service.

209C. The control over district courts and courts subordinate thereto including the posting and promotion of, and the grant of leave to, persons belonging to the judicial service of a State and holding any post inferior to the post of district judge shall be vested in the High Court but nothing in this article shall

Control over subordinate Courts.

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

be construed as taking away from any such person the right of appeal which he may have under the law regulating the conditions of his service or as authorising the High Court to deal with him otherwise than in accordance with the conditions of his service prescribed under such law.

209D. (1) In this Chapter—

Interpretation. (a) the expression "district judge" includes judge of a city civil court, additional district judge, joint district judge, assistant district judge, chief judge of a small cause court, Chief Presidency magistrate additional chief presidency magistrate, sessions judge, additional sessions judge and assistant sessions judge;

(b) the expression "judicial service" means a service consisting exclusively of persons intended to fill the post of district judge and other civil judicial posts inferior to the post of district judge.

209E. The Governor may by public notification direct that the foregoing provisions of this Chapter and any rules make thereunder shall with effect from such date as may be fixed by him in this behalf apply in relation to any class or classes of magistrate in the State as they apply in relation to persons appointed to the judicial service of the State subject to such exceptions and modifications as may be specified in the notification.'"

Application of the provisions of this Chapter to certain classes of Magistrates.

[7अध्याय 8–अधीन न्यायालय

[209-क. (1) किसी राज्य में जिला न्यायाधीश नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की नियुक्ति तथा उनकी पद स्थापना और पदोन्नति ऐसे राज्य के संबंध में क्षेत्राधिकार प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्य का राज्यपाल करेगा।

जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति

(2) कोई व्यक्ति जो संघ की या राज्य की सेवा में पहले से ही नहीं लगा हुआ है, जिला न्यायाधीश होने के लिये केवल तभी पात्र होगा जब कि वह सात से अन्यून वर्षों तक अधिवक्ता या वकील रह चुका है तथा उसकी नियुक्ति के लिये उच्च न्यायालय ने सिफारिश की है।

209-ख. जिला न्यायाधीशों से अन्य व्यक्तियों को राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्ति राज्यपाल द्वारा, राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् उसके द्वारा इसलिये बनाये गये नियमों के अनुसार की जायेगी।

न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों से अन्य व्यक्तियों की भर्ती।

209-ग. जिला न्यायाधीशों के पद से निचले किसी पद को धारण करने वाले राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों की पद-स्थापना, पद्योन्नति और उनको छुट्टी देने के सहित जिला न्यायालयों तथा उनके अधीन न्यायालयों का नियंत्रण उच्च न्यायालयों में निहित होगा, किन्तु इस अनुच्छेद की किसी बात का यह अर्थ नहीं किया जायेगा कि मानो वह ऐसे किसी व्यक्ति से उस अपील के अधिकार को छीनती है जो कि उसकी सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाली विधि के अधीन उसे प्राप्त है अथवा उच्च न्यायालय को अधिकार देती है कि वह उसकी सेवा की ऐसी विधि के अधीन विहित शर्तों के अनुसरण से अन्यथा उससे व्यवहार करे।

अधीन न्यायालयों पर नियंत्रण।

209-घ. (1) इस अध्याय में–

(क) "जिला न्यायाधीश" पदावली के अन्तर्गत नगर-व्यवहार-न्यायालय का न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेन्सी दंडाधिकारी, अपर मुख्य प्रेसीडेंसी दंडाधिकारी, सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश और सहायक सत्र न्यायाधीश भी हैं।

निर्वचन।

(ख) "न्यायिक सेवा" पदावली से ऐसी सेवा अभिप्रेत है, जो केवल ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनी है, जो जिला न्यायाधीश के पद तथा जिला-न्यायाधीश-पद से निचले अन्य व्यवहार न्यायिक पदों को भरने के लिये उद्दिष्ट है।

209-ङ. राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा निदेश दे सकेगा कि इस अध्याय के पूर्वगामी उपबन्ध तथा उनके अधीन बनाये गये कोई नियम ऐसी तारीख से जो कि वह उस बारे में नियम करे, राज्य के किसी प्रकार या प्रकारों के दंडाधिकारियों के संबंध में ऐसे अपवादों और रूपभेदों के अधीन रहकर, जैसे कि अधिसूचना में उल्लिखित हों, वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे राज्य की न्यायिक सेवा में नियुक्त व्यक्तियों के संबंध में लागू होते हैं।]

कुछ प्रकारों के दंडाधिकारियों पर इस अध्याय के उपबन्धों का लागू होना।

श्रीमान्, इन उपबन्धों के दो उद्देश्य हैं। पहला उद्देश्य जिला न्यायाधीशों तथा अधीन न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उनकी अर्हता के बारे में उपबन्ध रखना है। दूसरा उद्देश्य सारी व्यवहार-न्यायपालिका को उच्च न्यायालय के नियंत्रण में रखना है। अनुच्छेद 209-क, 209-ख, और 209ग के सामान्य उपबन्धों में केवल दंडाधीशों के संबंध में अपवाद किया गया है और इसका उल्लेख अनुच्छेद 209-ङ में है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यदि मसौदा-समिति सभा से यह सिफारिश कर सकती कि संविधान के प्रवर्त्तन में आते ही उच्च न्यायालय द्वारा व्यवहार-न्यायपालिका की नियुक्ति तथा उस पर नियंत्रण रखने के संबंध में जो उपबन्ध हैं वे दंडाधीशों के संबंध में भी लागू होंगे तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती। किन्तु यह अनुभव किया गया है, और यह अनुभव करना ही चाहिये, कि दंडाधीशों का सामान्य प्रशासन-प्रणाली से घनिष्ट संबंध है। हमें आशा है कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के संबंध में कुछ प्रान्त जिन प्रस्तावों पर विचार कर रहे हैं उन्हें अन्य प्रान्त भी स्वीकार कर लेंगे ताकि अनुच्छेद 209ङ के उपबन्ध दंडाधीशों पर उसी प्रकार लागू हो जायें जैसे हम उन्हें व्यवहार-न्यायपालिका पर लागू कर रहे हैं। किन्तु न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के प्रस्तावों के प्रवर्त्तन में आने के लिये कुछ समय देना आवश्यक है। यह अनुभव किया गया है कि सबसे अच्छा यह होगा कि इस मामले को राज्यपाल के लिये छोड़ दिया जाये और जैसे ही किसी प्रान्त में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के संबंध में कोई कार्यवाही की जाये वैसे ही लोक-अधिसूचना निकाल कर वह इस कार्य को सम्पन्न करे। मेरे विचार से अब इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं और अधिक कुछ कहूं। इसमें कोई क्रान्तिकारी बात नहीं है। 1935 के अधिनियम में भी व्यवहार-न्यायपालिका की नियुक्ति तथा उस पर नियंत्रण की शक्ति उच्च न्यायालय में निहित थी। इस मसौदे में हम केवल उसी प्रथा को जारी रख रहे हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मेरा एक संशोधन है जो इसका विकल्प है। वह संशोधनों की मिली जुली सूची का संशोधन संख्या 166 है।

***अध्यक्ष:** मैं उसे इन संशोधनों के बाद उठाऊंगा। संशोधन संख्या 21। श्री कुलाधर चालिहा।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (2) में 'seven years' (सात वर्ष) शब्दों के बाद 'enrolled as' (सूचीबद्ध) शब्द रखे जायें और 'pleader' (वकील) शब्द के बाद (हिन्दी में पहले) 'of the High Court of the State or States exercising jurisdiction' (क्षेत्राधिकार रखने वाले राज्य अथवा राज्यों के उच्च न्यायालय का) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, इस संशोधन को मैंने इस कारण उपस्थित किया है कि जब तक किसी वकील ने उस प्रान्त में वकालत न की हो जहां वह न्यायाधीश नियुक्त होने जा रहा हो तब तक उसे वहां के रीति-रिवाजों को समझने में बहुत कठिनाई होगी। अंग्रेजों के शासन के आरम्भ काल में जब हमारे यहां आईसीएम के अधिकारी नियुक्त किये गये तो परिणाम बहुत विचित्र हुआ। जब किसी प्रान्त में बाहर के लोगों को अधिकारी पदों पर नियुक्त किया गया तो तब भी यही परिणाम हुआ।

मैं इससे अन्य प्रान्तों के वकीलों को आने से नहीं रोक रहा हूं। वे आयें और वकालत करें। मैं केवल यह कह रहा हूं कि प्रान्त में उनका निवास काल कम से कम सात वर्ष का होना चाहिये। मैं बताऊंगा कि बाहर के लोगों को नियुक्त करने का परिणाम क्या होता है। देश के जिस भाग में मैं रहता हूं वहां का एक रिवाज इस प्रकार है:

नये वर्ष के दिन नवयुवक बाहर निकल कर नाचते गाते हैं और कुछ समय तक खेलते कूदते हैं और फिर किसी नदी या झरने के किनारे किसी लड़की को जबरदस्ती उठा कर ले जाते हैं। एक बार लड़कियों के माता-पिताओं ने यह शिकायत की कि उनकी लड़कियां भगाई गई हैं। दोषियों को न्यायाधीशों ने बड़े कठोर दंड दिये क्योंकि वे नहीं जानते थे कि वहां का जीवन किस प्रकार का है। कुछ समय पश्चात् सरकार को इस आशय की गश्ती चिट्ठियां निकालनी पड़ी कि इस प्रकार के मामलों में समझौता करने की आज्ञा मिलनी चाहिये। सम्भवत: अन्य प्रान्तों में यह बहुत बड़ा अपराध समझा जाये और अपराधी को चार वर्ष से सात वर्ष तक का कठोर कारावास का दंड दिया जाये। हमारे देश में इस प्रकार के मामलों में पहले आरम्भिक जांच होनी चाहिये और समझौते के लिये अवसर दिया जाना चाहिये। यह देखा गया है कि माता-पिता को थोड़ा बहुत संतुष्ट करने के पश्चात् ऐसे 99 प्रतिशत मामलों में समझौता हो गया। इसी प्रकार विवाह के संबंध में भी हमारे यहां बहुत ही सरल प्रथा है और वह यह है कि गठबन्धन किया जाता है और गांव में जो लोग उपस्थित होते हैं वे आशीर्वाद देते हैं। इतने से विवाह सम्पन्न हो जाता है। जो लोग बंगाल से अथवा अन्य प्रान्तों से आये हैं, अथवा जो यूरोपियन आते हैं वे हिन्दू-विधि तथा और बातें पढ़े होते हैं। वे अपने देशों की कठोर विधियों को प्रयोग में लाते हैं जिसका परिणाम यह हुआ कि विवाह की प्रथा का ही निराकरण हो गया है। यह उड़ीसा अथवा बिहार में भी हो सकता है। सम्भव है लोग रांची तथा अन्य स्थानों की प्रथाओं को न जानें और गलती करें। किसी अन्य प्रान्त के किसी आदमी को मैंने अपने प्रान्त के उच्च न्यायालय में वकालत करने से नहीं रोका है। मैं केवल इस पर जोर देता हूं कि उन्हें वहां सात वर्ष तक रहना चाहिये ताकि वे उस देश की प्रथाओं से परिचित हो सकें। और इस प्रकार जिला-न्यायाधीश होने की अर्हता प्राप्त कर सकें।

निर्वचन-संबंधी खण्ड से मामला पेचीदा हो गया है क्योंकि उसमें न केवल जिला न्यायाधीश सम्मिलित हैं बल्कि अपर-जिला-न्यायाधीश तथा सहायक-सत्र-न्यायाधीश भी सम्मिलित हैं। उन्हें ऐसे मामलों को निबटाना होगा जिनका केवल स्थानीय महत्व होगा। इसलिये यदि किसी अधिवक्ता अथवा वकील ने किसी ऐसे प्रान्त के उच्च न्यायालय में वकालत का पेशा न किया हो जहां वह न्यायाधीश नियुक्त होने जा रहा हो तो न्याय नहीं हो सकेगा। मेरा संशोधन एक सीधा-सादा संशोधन है और यदि मसौदा समिति उसे स्वीकार कर लेगी तो उसके कारण कोई हानि नहीं होगी।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ङ में जहां 'may' (दे सकेगा) शब्द पहली बार आया है वहां उसके बाद (हिन्दी में पहले) 'at any time' (किसी समय) शब्द रखे जायें।"

***अध्यक्षः** आप संशोधन संख्या 22 नहीं उपस्थित कर रहे हैं?

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं 22वां नहीं उपस्थित कर रहा हूं, 23वां और 24वां उपस्थित कर रहा हूं।

श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ङ के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जायेः

'Provided that the Governor or the Ruler as the case may be shall,—

(i) in the case of States mentioned in Part I of the first Schedule after the lapse of three years from the commencement of this Constitution if the Legislature of the State passes a resolution recommending the making of such direction, or if no such resolution is passed after the lapse of ten years from the commencement of this Consitution; and

(ii) in the case of States mentioned in Part III of the First Schedule after the lapse of seven years from the commencement of this Constitution, if the Legislature of the State passes a resolution recommending the making of such direction and if no such resolution is passed, after the lapse of ten years from the commencement of this Constitution, by public notification make such directions.'"

[परन्तु राज्यपाल अथवा राजप्रमुख–

(1) प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के संबंध में, इस संविधान के आरम्भ से तीन वर्ष पश्चात्, यदि राज्य का विधान-मंडल कोई ऐसा प्रस्ताव पारित करे जिसमें इस प्रकार के निदेश की सिफारिश की गई हो, अथवा यदि कोई ऐसा प्रस्ताव पारित नहीं किया गया हो, तो इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात्; और

(2) प्रथम अनुसूची के भाग (3) में उल्लिखित राज्यों के संबंध में इस संविधान के प्रारम्भ से सात वर्ष पश्चात् यदि राज्य का विधान-मंडल कोई ऐसा प्रस्ताव पारित करे जिसमें इस प्रकार के निदेश की सिफारिश की गई हो और यदि कोई ऐसा प्रस्ताव पारित न किया

गया हो तो इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात्, लोक-अधिसूचना द्वारा ऐसे निदेश देगा।]

श्रीमान्, संशोधन संख्या 24 के पैरा (1) को पढ़ते समय मुझे उसमें एक गलती मालूम हूई है। मुझे इसका खेद है। "दस" शब्द के स्थान पर "पांच" होना चाहिये। जहां तक मुझे स्मरण है, मैंने मूल संशोधन में "पांच" शब्द ही रखा था। गलती से सम्भव है मैंने "दस" शब्द लिख दिया हो। मैं "पांच" शब्द लिखना चाहता था। मैं कह नहीं सकता कि मूल संशोधन में "पांच" शब्द था या "दस"। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इसे संशोधित करके "पांच" शब्द रख दिया जाये।

***अध्यक्षः** अच्छी बात है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान्, इस संशोधन का प्रभाव यह होगा कि यह राज्यपाल की स्वेच्छा पर निर्भर रहेगा कि वह अनुच्छेद 209ङ में कल्पित निदेश को दे या न दे। मैं यह चाहता हूं कि यदि प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के विधान-मण्डल तीन वर्ष के अन्दर सिफारिश करें तो राज्यपाल उस सिफारिश को प्रयोग में लाने के लिये बाध्य हो और यदि वे कोई सिफारिश न करें तो पांच वर्ष पश्चात् अनुच्छेद 209-ङ में कल्पित निदेश को प्रयोग में लाने के लिये राज्यपाल बाध्य होगा। इसी प्रकार प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के संबंध में यदि सात वर्ष बीतने तक विधान-मंडल कोई सिफारिश न करे तो दस वर्ष के पश्चात् राजप्रमुख निदेश देने के लिये बाध्य होगा। पहले सात वर्षों में विधान-मंडल इस निदेश को प्रयोग में लाने के बारे में सिफारिश कर सकता है।

श्रीमान्, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने का प्रश्न बहुत पुराना है। जब यहां विदेशियों का प्रभुत्व था तो भारतीय कांग्रेस ने मुख्यतः इसी आधार पर कई प्रस्ताव स्वीकार किये थे। देश के लोग यह आशा लगाये बैठे थे कि स्वातंत्र्य-प्राप्ति के पश्चात् यह सुधार जो बहुत पहले हो जाना चाहिये था यथाशक्य शीघ्र कर दिया जायेगा। निदेशक सिद्धान्तों को स्वीकार करते समय हमने उनमें इस प्रकार की एक सिफारिश भी सम्मिलित की थी। अब अनुच्छेद 209-ङ को पढ़ते समय प्रत्येक व्यक्ति इस पर विचार करेगा कि किसी न किसी समय राज्यपाल इस आशय का निदेश निकालेगा। अनुच्छेद 209ङ में केवल एक पवित्र इच्छा प्रकट की गई है। जब डॉ. अम्बेडकर ने इसे उपस्थित किया तो उन्होंने कहा कि इस अध्याय में कोई क्रांतिकारी बात नहीं है। मेरे विचार से उन्होंने ठीक ही कहा किन्तु दुर्भाग्य से इसमें कोई बात विकासकारी भी नहीं है। स्वराज्य प्राप्त होने पर हम यह चाहते थे कि न्यायपालिका को कार्यपालिका के नियंत्रण से हटा दिया जाये और लोगों के प्रति न्याय हो। यदि यह यथाशक्य शीघ्र नहीं होने जा रहा है तो मेरा निवेदन है कि स्थिति को ठीक ठीक समझा जाये। वास्तव में मैंने जो अवधि विहित की है वह इस सुधार के लिये पहले अधिक से अधिक अवधि समझी गई थी।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

इस समय क्या होता है यह इस सभा के सभी सदस्यों को विदित है। इस समय दंडाधीश जिला दंडाधीशों के नियंत्रण में है जो जिलों में पुलिस के मुख्य अधिकारी भी होते हैं। इसलिये लोगों के प्रति समान न्याय के लिये भी जिस स्वाधीनता तथा निरपेक्षता की आवश्यकता होती है वह भी दंडाधीशों को प्राप्त नहीं है। जिला दंडाधीश, जिसमें सभी शक्तियों को संकेन्द्रण है, यदि दंडाधीशों को ठीक करना चाहे तो उन्हें अपने न्यायालय में ही बुला सकता है। दंडाधीशों की पदोन्नति पुलिस की सिफारिश के आधार पर होती है और यदि पुलिस उसके विरुद्ध कुछ कहती है तो उससे उसकी पदोन्नति में बाधा पहुंचती है।

***अध्यक्षः** क्या इस प्रकार के तर्कों की आवश्यकता है? यहां कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो यह कहता हो कि इस प्रकार का पृथक्करण नहीं होना चाहिये। प्रश्न केवल सुविधा और समय का है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** केवल यहीं तक अपने तर्क को सीमित रख कर मैं केवल यह निवेदन करूंगा कि मुझे यह ज्ञात है कि भारत में कुछ भाग ऐसे भी हैं जहां, जैसा कि इन शब्दों का आशय है, विधि का शासन अब स्थापित होने जा रहा है। इन भागों के संबंध में मैंने दस वर्ष की अवधि रखी है अन्यथा बंबई, मद्रास और संयुक्तप्रान्त में तथा अन्य प्रान्तों के कुछ भागों में यह सुधार अभी भी किया जा सकता है। इसलिये भाग (1) में जिन क्षेत्रों का उल्लेख है उनके लिये मैंने तीन वर्ष की अवधि रखी है और भाग (2) में जिन राज्यों का उल्लेख है उनके लिये अन्ततोगत्वा पांच वर्ष, सात वर्ष और दस वर्ष की अवधि रखी है। मैं नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूं कि यदि हम इस संशोधन को भी स्वीकार नहीं करेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि अनुच्छेद 209-ङ में एक पवित्र इच्छा ही व्यक्त रहेगी और वह केवल एक निदेशक सिद्धान्त ही रहेगा। इसे मृग-मरीचिका के रूप में रखने का कोई अर्थ नहीं है। जब हमने निदेशक सिद्धान्त पारित किये थे तो मुझे स्मरण है कि सभा में एक कलह उत्पन्न हो गया था। कुछ लोग यह चाहते थे कि वह तुरंत ही प्रभावी हों और कुछ यह कहते थे कि उन्हें प्रभाव में लाने का समय अभी नहीं आया है। इसलिये एक मध्य वर्ग निकालने की दृष्टि से मैंने इन सारों तथा इस अवधि का सुझाव रखा है। यदि डॉ. अम्बेडकर मेरे इस संशोधन को स्वीकार कर लें तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 117—सदस्य महोदय सभा में नहीं हैं। पंडित कुंजरू!

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (1) में से 'and the posting and promotion of' (तथा उनकी पद-स्थापना और पदोन्नति) शब्द निकाल दिये जायें।"

आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव भी उपस्थित करता हूं कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ग में 'grant of leave to' (छुट्टी देने) शब्दों के पश्चात् (हिन्दी में अनुच्छेद के आरम्भ में) 'district judges in any state and' (किसी राज्य के जिला-न्यायाधीश और) शब्द रखे जायें।"

मेरे संशोधनों का उद्देश्य यह है कि उच्च न्यायालय जिला-न्यायाधीशों की बदली तथा पदोन्नति के लिये उसी प्रकार उत्तरदायी हों जैसे वे अधीन न्यायाधीशों और अधीन न्यायिक पदाधिकारियों की बदली और पदोन्नति के लिये उत्तरदायी हैं। मेरे संशोधनों का नियुक्ति के प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। राज्यपाल उच्च न्यायालय से परामर्श करके जिला-न्यायाधीशों को नियुक्त करेगा। मैं केवल यह चाहता हूं कि जिला न्यायाधीश राज्यपाल द्वारा नियुक्त होने के पश्चात् उच्च न्यायालय के नियंत्रण में रहे। मुझे अपने संशोधन के लिये मसौदा समिति के सभापति जैसे व्यक्ति अर्थात् मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर का समर्थन प्राप्त है। अनुच्छेद 209-क तथा अनुच्छेद 209-ग की भाषा.....

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** वे सभी प्रयोगात्मक हैं। आप इस विषय पर अपने शब्द नष्ट न करें।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** पिछले सत्र में मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर ने जिन अनुच्छेदों की सूचना दी थी, और जो छपे हुए संशोधनों के अंक 1 के अन्त के पृष्ठ के पहले पृष्ठ पर छपे हुए हैं, उनसे उद्धरण देने तथा उनकी ओर संकेत करने का मुझे अधिकार है। यदि मैं कोई ऐसी बात कहूं जो गलत हो तो मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर अवश्य ही उसका खण्डन करेंगे। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि मैं उस संशोधन का हवाला क्यों न दूं, जिसकी उन्होंने सूचना दी थी और जिसे मैं एक उपयुक्त संशोधन समझता हूं। डॉ. अम्बेडकर ने हमें नहीं बताया है कि उन्होंने अपने पहले के संशोधनों की शब्दावली का परित्याग क्यों किया है। उनमें यह उपबंधित था यद्यपि जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति पर राज्यपाल का नियंत्रण होना चाहिये किन्तु उनकी पदोन्नति और बदली पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण होना चाहिये। मेरे विचार से उच्च न्यायालय का उन सभी पदाधिकारियों पर नियंत्रण होना चाहिये जिनका न्यायिक प्रशासन से संबंध हो। जिला न्यायाधीश न्यायिक पदाधिकारी हैं। इसलिये कोई कारण नहीं है कि उनकी बदली तथा पदोन्नति पर नियंत्रण रखने की शक्ति उच्च न्यायालय को न दी जाये। मेरे विचार से यदि उच्च न्यायालय इसके लिये उत्तरदायी ठहराये गये तो न्यायिक प्रशासन में सुधार होगा। हमने पहले कई बार यह देखा है कि जिला-न्यायाधीशों के पद-स्थापना तथा पदोन्नति पर उच्च न्यायालयों का नियंत्रण न होने के कारण उनका प्राधिकार अशक्त हो गया और न्यायिक प्रशासन भी अशक्त हो गया। जिला न्यायाधीश यह समझते थे कि उच्च न्यायालय का उन पर नियंत्रण नहीं है और कार्यपालिका का मुंह ताकते रहते थे। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि कोई भी जिला-न्यायाधीश विधि के उपबन्धों की परवाह नहीं करता था अथवा जिला-

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

न्यायाधीश हमेशा कार्यपालिका की सुविधा को देख कर ही मामलों का निर्णय करते थे। किन्तु, मेरे विचार से, यदि किसी वकील से पूछा जाये तो वह यही कहेगा कि विभिन्न लोगों की संस्थाओं ने बराबर यही मांग की कि जिला-न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय के नियंत्रण में रखना चाहिये। उन्होंने यह मांग तक की कि उनकी नियुक्ति भी उच्च न्यायालय ही करे। मैं यह नहीं कहता। मेरे संशोधन में पुराने विचारों का पोषण किया गया है। उनका उद्देश्य केवल यह है कि उच्च न्यायालय जिला-न्यायाधीशों की बदली तथा पदोन्नति उसी प्रकार करे जैसे वह अधीन न्यायाधीशों की करता है।

यह विचार किया जा सकता है कि पदोन्नति के प्रश्न के कारण कुछ कठिनाई हो सकती है। यह समझा जा सकता है कि इसका अर्थ केवल यह है कि जिला-न्यायाधीश की पदोन्नति करके उसे उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बना दिया जायेगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है। हम उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में उस धारा में उपबन्ध रख चुके हैं जिसमें हमने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति का उल्लेख किया है। "पदोन्नति" शब्द का अर्थ इस स्थल पर केवल जिला-न्यायाधीशों की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने से पहले की पदोन्नति है। अब न्यायाधीशों की पदोन्नति करके उन्हें एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में रखा जाता है। यदि वर्तमान श्रेणियां रहीं तो उच्च न्यायालय न्यायाधीशों की पदोन्नति इसी प्रकार कर सकेगा, जैसे इस समय कार्यपालिका करती है। इसलिये मेरे विचार से "पदोन्नति" शब्द से कोई कठिनाई नहीं होगी।

श्रीमान्, मैं यह कह चुका हूं कि मेरे संशोधनों का उद्देश्य यह नहीं है कि उच्च न्यायालय को जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिये उत्तरदायी बनाया जाये। मैं इस आशय का भी एक संशोधन रख सकता था कि उच्च न्यायालयों को यह शक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये। सीलोन के संविधान की धारा 55 इस प्रकार है:

> "सभी न्यायिक पदाधिकारियों की नियुक्ति, बदली, पदच्युति तथा उन पर अनुशासन संबंधी नियंत्रण न्यायिक सेवा आयोग में निहित होगा।"

न्यायिक सेवा आयोग में मुख्य न्यायाधिपति, उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश और एक अन्य व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो अथवा उसका न्यायाधीश रह चुका हो, होंगे। किन्तु, जैसाकि मैं कह चुका हूं, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह नहीं है कि संविधान में सीलोन के संविधान का उपबन्ध प्रविष्ट किया जाये। उसके अधीन जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति की शक्ति सरकार को ही दी गई है और उनकी पदच्युति के संबंध में यह सुझाव रखा गया है कि उसका विनियमन जो नियम हों उनके अनुसार हो। इस प्रकार मेरा संशोधन एक बहुत ही उदार संशोधन है और उसके कारण कोई भी कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। इसके

विपरीत, इसके फलस्वरूप उच्च न्यायालय को उन सभी पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्राप्त होने से, जो न्यायिक कर्तव्यों का पालन करेंगे, न्यायिक प्रशासन सुदृढ़ हो जायेगा।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, क्या आप कृपा करके मुझे बोलने का अवसर फिर दे सकेंगे। जब मेरा नाम पुकारा गया था मैं दफ्तर के काम से बाहर गया हुआ था। किन्तु मुझे एक महत्वपूर्ण संशोधन उपस्थित करना है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ अनुपस्थिति का बहाना नहीं टिक सकता।

*__अध्यक्षः__ मुझे खेद है कि अब बहुत देर हो गई है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि यह एक महत्वपूर्ण संशोधन है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का जब आपस में मतभेद होगा और....

*__अध्यक्षः__ यह स्पष्ट करने के लिये निःसन्देह आपको बोलना होगा। बिना बोले हुए आप यह कैसे स्पष्ट करेंगे?

*__श्री आर.के. सिधवाः__ श्रीमान्, मैं केवल दो मिनट लूंगा।

*__अध्यक्षः__ अच्छी बात है। किन्तु कृपा करके दो मिनट से अधिक समय न लें।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ अध्यक्ष महोदय, मुझे अपना संशोधन उपस्थित करने का अवसर देने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। मैं किसी निजी काम से नहीं बल्कि दफ्तर के काम से बाहर गया था। मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:

'where there is difference of opinion regarding an appointment between the Governor or Ruler of the State and the High Court, the opinion of the former shall prevail.'"

[जब कभी किसी नियुक्ति के संबंध में राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख और उच्च न्यायालय के बीच मतभेद हो तो राज्यपाल अथवा राजप्रमुख का मत प्रभावी होगा।]

मेरे संशोधन का आशय उसी से स्पष्ट हो जाता है। यह सुझाव रखा गया है कि तीन अभिकरणों का अर्थात् सरकार का जिसमें मंत्रिमंडल अथवा गृह मंत्री सम्मिलित होगा, राज्यपाल का और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का मत लिया जायेगा। यदि राज्यपाल और सरकार सहमत हों, और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सहमत न हों, तो इस दशा में मेरे संशोधन के अनुसार सरकार तथा राज्यपाल

[श्री आर.के. सिधवा]

की सम्मति प्रभावी होगी। श्रीमान्, यह उचित ही है क्योंकि सभी शक्ति उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ही प्राप्त नहीं होनी चाहिये। सरकार तथा राज्यपाल का मत प्रभावी होना चाहिये। इन शब्दों के साथ मैं सिफारिश करता हूं कि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

*__अध्यक्षः__ छपी हुई सूची के अंक 1 में डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 209-क, 209-ख और 209-ग छपे हुए हैं और इन्हीं मूल अनुच्छेदों के संबंध में प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना ने कई संशोधनों की सूचना दी थी। चूंकि ये अनुच्छेद उपस्थित नहीं किये गये हैं इसलिये इनके स्थान पर किन्हीं अन्य बातों को रखने का प्रश्न नहीं उठता।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ श्रीमान्, पहले आपने इस प्रकार के संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा दी है।

*__अध्यक्षः__ किन्तु आपने तथा अन्य सदस्यों ने अनुच्छेद के शब्दों के स्थान पर अन्य शब्द रखने के प्रस्ताव की सूचना दी थी। अब उन्होंने उस नवीन अनुच्छेद की सूचना दी है जो इस समय सभा के विचाराधीन है। आप अपने संशोधनों की सूचना भी दे सकते थे। जब कभी कोई सारवान प्रश्न उठाया गया और तत्संबंधी प्रस्तावित संशोधनों की यथा समय सूचना नहीं दी गई, मैंने संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा दे दी। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने जो संशोधन उपस्थित किया है, और जो इस समय विचाराधीन है, उसकी सूचना सदस्य महोदय को बहुत पहले दे दी गई थी।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ कई ऐसे संशोधनों पर संशोधन उपस्थित करने की आज्ञा दी गई है जो उपस्थित नहीं किये गये थे।

*__अध्यक्षः__ उन्हें प्रविष्ट किया जा सकता था। इसी कारण उन्हें उपस्थित करने की आज्ञा दी गई होगी। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने इस संशोधन की सूचना बहुत पहले दे दी थी और कई सदस्यों ने इस पर संशोधन भी उपस्थित किये हैं। इसलिये मैं उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दे सकता। किन्तु यदि आप उसके संबंध में बोलना चाहते हैं तो आप बोल सकते हैं।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः__ जी हां, श्रीमान्, मैं बोलना चाहता हूं। इस अनुच्छेद के स्थान पर मैं जो कुछ रखना चाहता था उसे मैं पुरानी सूची के अपने संशोधन संख्या 106 में व्यक्त कर चुका हूं। जहां तक वर्तमान मसौदे का संबंध है, डॉ. अम्बेडकर यह स्वयं कह चुके हैं कि दंडाधिकारी उच्च न्यायालय के अधीन नहीं होंगे। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि उन्होंने साफ-साफ यह स्वीकार किया है कि अनुच्छेद 15-क में वे "यथोचित-विधि प्रणाली" शब्द रखना चाहते थे किन्तु वे उन्हें नहीं रख सके। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि न्यायपालिका को पूर्णतया उच्च न्यायालय के अधीन रखना चाहते थे परन्तु वे यह भी नहीं कर सके। इच्छा

न होते हुए भी उन्होंने गृह-मंत्रालय को संतुष्ट करने के लिये हमारे सामने समझौते से तय किये गये प्रस्ताव रखे हैं। मैं जानता हूं कि क्या कठिनाइयां हैं, किन्तु चूंकि हम यह संविधान आने वाली पीढ़ियों के लिये बना रहे हैं इसका कम से कम उल्लेख रहना चाहिये कि हम गृह मंत्रालय के विचारों से सहमत नहीं हैं, चाहे वह केन्द्र का गृह मंत्रालय हो अथवा प्रान्तों का। अनुच्छेद 15 तथा 15-क द्वारा वैयक्तिक स्वातंत्र्य पूर्णतया निराकृत हो जाता है। संविधान का सबसे विकृत अंग यही हैं। डॉ. अम्बेडकर ने जिस अनुच्छेद 209-ङ का प्रस्ताव रखा है उससे हम उस सिद्धांत का निराकरण कर रहे हैं जिसे हमने निदेशक सिद्धांतों के प्रकरण में स्वीकार किया है। वह सिद्धांत न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने का है। यद्यपि हमने यह सिद्धांत निर्धारित किया है किन्तु मेरी यह धारणा है कि हम उसे प्रयोग में नहीं लाना चाहते। मूल अनुच्छेद में तीन वर्ष की कालावधि रखी गई थी और प्रधानमंत्री महोदय ने कहा था कि यह कार्य तीन वर्ष से पूर्व ही सम्पन्न हो जायेगा अब यद्यपि श्री भार्गव ने दस वर्ष की अवधि का प्रस्ताव रखा है किन्तु उसे भी स्वीकार नहीं किया जा रहा है।

इसलिये मेरी यह धारणा है कि मसौदा-समिति गृह मंत्रालय को न्यायपालिका और कार्यपालिका के पृथक्करण के संबंध में सहमत नहीं करा सकी है। वर्तमान उपबन्धों से व्यक्ति की नागरिक स्वतंत्रताओं का पूर्णतया अपहरण हो जाता है। मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव रखा था कि अन्ततोगत्वा उच्चतम न्यायालय और मूल्य न्यायाधिपति ही लोगों की स्वतंत्रताओं के संरक्षक होने चाहियें और उच्च न्यायालय तथा अधीन न्यायाधीश भी उन्हीं के नियंत्रण के अधीन होने चाहियें। किन्तु यह अनुच्छेद वास्तव में भारत शासन अधिनियम से उसी रूप में ले लिया गया है और इसमें न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने के संबंध में कोई उपबन्ध नहीं है। यदि इस प्रकार के उपबन्ध को प्रविष्ट किया गया तो मेरे विचार से बिना संविधान का संशोधन किये हुए यह पृथक्करण नहीं किया जा सकेगा। इन उपबन्धों को रखने के पश्चात् मेरे विचार से कोई भी प्रान्त न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने की चिन्ता नहीं करेगा। श्री भार्गव ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें कहा गया है कि कम से कम कुछ प्रान्तों में यह पृथक्करण शीघ्र हो जाना चाहिये और अन्य प्रान्तों में तीन, पांच या दस वर्ष में हो जाना चाहिये। वह संशोधन भी स्वीकार नहीं किया गया है। इसका अर्थ यह है कि सभी प्रान्तों के गृह-मंत्रालय इस प्रकार के पृथक्करण के पक्ष में नहीं हैं। यदि भारत की स्वतंत्र सरकार की भी यही धारणा है तो लोगों को किसी भी स्वतंत्रता की प्रत्याभूति नहीं रहेगी और हम उसी पुरानी शासन-प्रणाली के अधीन रहेंगे जो अभी तक प्रभावी रही है। अब भी सम्भवत: हम पुराने जमाने की ही बातें सोचते हैं। मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर यह समझेंगे कि समझदारी की बात यही है कि श्री भार्गव का संशोधन स्वीकार कर लिया जाये और कम से कम समुन्नत प्रान्तों को शीघ्र ही न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करने का अवसर दिया जाये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मेरे मित्र श्री सिधवा ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका विरोध करने के लिये मैं अपनी जगह से उठा हूं। मेरा यह निश्चित

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

मत है कि जब कभी उच्च न्यायालय और सरकार मे मतभेद हो, उच्च न्यायालय का मत प्रभावी होना चाहिये।

इसके अतिरिक्त में "उच्च न्यायालय से परामर्श करके" शब्दों के भी पक्ष में नहीं हूं। मेरा यह निश्चित मत है कि नियुक्तियां, पद-स्थापना तथा पदोन्नति की शक्ति प्रान्तीय सरकारों को नहीं प्राप्त होनी चाहिये। मुझे ऐसे मामले ज्ञात हैं, जिन में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश केवल इस कारण पदच्युत किये गये, अथवा उनकी बदली की गई, कि उनकी कांग्रेस के कुछ ऐसे सदस्यों से नहीं पटी जो सरकार पर काफी प्रभाव डाल सकते थे। उच्च न्यायालयों की इस संबंध में प्रान्तीय सरकारों से बातचीत चली किन्तु उन्हें हताश होना पड़ा। इसलिये निश्चित रूप से मेरा यह मत है कि वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस प्रकार शब्द के उपबन्ध की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इसकी है कि प्रान्तीय प्रशासन के दोषों का शोधन किया जाये और उसे भ्रष्टाचार तथा पक्षपात से मुक्त किया जाये। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 209-ख के अंग्रेजी के इस आशय के शब्द "राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्" स्पष्ट नहीं है। मुझे अंग्रेजी का बहुत कम ज्ञान है। मैं नहीं समझ पाया हूं कि "राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात्" अर्थ वाले अंग्रेजी के "नियमों" के संबंध में है अथवा "नियुक्तियों" के संबंध में। मैं नहीं समझ पाया कि राज्यपाल उच्च न्यायालय तथा लोक सेवा आयोग से परामर्श करके नियम बनायेगा अथवा नियुक्तियां करेगा। मेरा यह मत है कि लोक सेवा आयोग, तथा उच्च न्यायालयों से परामर्श करके नियम भी बनाये जायें और नियुक्तियां भी की जायें।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या मैं यह जान सकता हूं कि मेरे मित्र को अपनी ही सरकार तथा अपने ही राज्यपाल का विश्वास नहीं है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मेरा प्रान्तीय स्वायत्तता पर बिल्कुल विश्वास नहीं है। इस सिद्धांत को मैं इस सभा में कई बार प्रकट कर चुका हूं। इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं पहले बताये हुए कारणों को फिर बताऊं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आप यह अनुभव करते हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** कुछ समय पश्चात् आप भी यही अनुभव करेंगे। मैं यह चाहता हूं कि नियुक्ति, पद-स्थापना तथा पदोन्नति के संबंध में दंडाधीश मंत्रिपरिषद् के अधीन न रहें। यह स्पष्ट शब्दों में निर्धारित कर देना चाहिये कि इस संविधान के प्रारम्भ की तिथि से दो वर्ष के अन्दर यह सुधार कर दिया जाना चाहिये। इस अनुच्छेद में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि यह सुधार कब किये जायेंगे। मैं अनुच्छेद 209-ङ का हवाला दे रहा हूं।

इस अनुच्छेद के साथ एक और निर्बन्धन रखा गया है। जो शब्द प्रयुक्त हैं वे ये हैं: "ऐसे अपवादों और रूपभेदों के अधीन रह कर जैसे कि अधिसूचना में उल्लिखित हों।" श्रीमान्, राजनैतिक शक्ति तथा पक्षपात की आकांक्षा पर आवरण डालने के लिये ही प्रशासन संबंधी कठिनाइयों का बहाना बनाया जाता है। मैं नहीं चाहता कि इस निर्बन्धन को इस अनुच्छेद में स्थान दिया जाये। मैं इस प्रकार के विचार इसी कारण रखता हूं कि प्रान्तीय प्रशासन को दोषों से मुक्त करने की आवश्यकता है। इससे वैयक्तिक स्वातंत्र्य स्वत: प्राप्त हो जायेगा। जिन सुधारों का मैंने सुझाव रखा है यदि उन्हें स्थान दिया गया तो उनसे राज्य की नींव सुदृढ़ होगी और भारत में सभी सरकारों के प्रति वफादारी की भावना जागृत होगी।

*__श्री पी.एस. नटराज पिल्ले__ (त्रावणकोर राज्य): श्रीमान्, एक सन्देह को दूर कराने के लिये ही मैं अपनी जगह से उठा हूं। मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या इस अनुच्छेद का उद्देश्य यह है कि अनुसूची 3 में उल्लिखित राज्यों पर अनुच्छेद 209-क के उपबन्ध लागू न हों, अथवा क्या वे उन पर लागू होंगे?

*__श्री आर.के. सिधवा:__ मेरे संशोधन में यह कहा गया है।

*__श्री पी.एस. नटराज पिल्ले:__ अनुच्छेद क, ख और ङ में "राज्य का राज्यपाल" शब्द प्रयुक्त हैं और "राजप्रमुख" शब्द नहीं रखा गया है। किन्तु पंडित ठाकुर दास भार्गव ने जो संशोधन उपस्थित किये थे उनमें से, मेरे विचार से, एक में यह सुझाव रखा गया था कि ये अनुच्छेद अनुसूची 3 में उल्लिखित राज्यों पर भी लागू होने चाहिये। मैं यह स्पष्टतया जानना चाहता हूं कि क्या ये अनुसूची 3 के राज्यों पर भी लागू होंगे और यदि लागू होंगे तो मैं चाहता हूं कि आवश्यक परिवर्तन किये जायें।

जहां तक श्री चालिहा के संशोधन का संबंध अधीन-न्यायपालिका से है मैं उसका भी समर्थन करना चाहता हूं। जहां तक मेरे राज्य का संबंध है वहां जो भूमि-संबंधी विधियां तथा विशेष रीतिरिवाज प्रचलित हैं उनके कारण और धन के आदान-प्रदान की भी जो प्रथा है उसके कारण भी इसकी आवश्यकता है कि उन वकीलों में से ही लोग नियुक्त किये जायें, जो वहां क्षेत्राधिकार रखने वाले उच्च न्यायालयों में वकालत करते हैं। यदि प्रयुक्त शब्द ही स्वीकार कर लिये गये तो किसी भी उच्च न्यायालय में वकालत करने वाले वकील किसी भी उच्च न्यायालय में नियुक्त किये जा सकते हैं। जब तक आप उच्च न्यायालयों के वकीलों की नियुक्ति को उसके क्षेत्राधिकार के जिला न्यायालयों तक ही सीमित नहीं करेंगे तब तक बहुत कठिनाइयां उठा खड़ी होंगी। मैं यह चाहता हूं कि इस सुझाव पर विचार किया जाये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय ने जो कुछ कहा है उसके संबंध में मैं यह कहना चाहता हूं कि यह अध्याय प्रान्तीय संविधान का अंग होगा और बाद को भाग 3 में के राज्यों के संबंध में जो अंश है उसमें भी हम इसी प्रकार की भाषा रखने का प्रयास करेंगे।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दो संशोधनों की व्याख्या की आवश्यकता है जिनमें से एक श्री चालिहा के नाम से है और दूसरा पंडित कुंजरू के नाम से है।

मुझे खेद है कि श्री चालिहा ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसे मैं दो कारणों से स्वीकार नहीं कर सकता। एक कारण यह है कि, जैसाकि उनके संशोधन का उद्देश्य है, हम विधि द्वारा किसी प्रकार की प्रान्तीयता को जन्म नहीं देना चाहते। इसके अतिरिक्त उनके संशोधन को स्वीकार करने से प्रान्त ही कठिनाई में पड़ जायेंगे, क्योंकि सम्भव है उन्हें ऐसे लोग मिलें जिनमें शिक्षा-संबंधी अर्हता हो, परन्तु सम्भव है ऐसे लोग न मिलें जो उच्च न्यायालय में नियुक्त होने की योग्यता रखते हों। मेरे विचार से अच्छा यह होगा कि इस संबंधित प्राधिकारी को आवश्यक अर्हता होने पर लोगों को नियुक्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता दें। इसलिये मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें, मेरे विचार से, एक छोटा प्रश्न उठाया गया है, और वह यह है कि क्या जिला-न्यायाधीशों की पदस्थापना और पदोन्नति राज्यपाल के हाथ में, अर्थात् सामयिक सरकार के हाथ में होनी चाहिये, अथवा इसका अनुच्छेद 209-ग में उल्लेख करके इसे उच्च न्यायालय को सौंप देना चाहिये। 1935 के भारत शासन अधिनियम में जो उपबन्ध था उसके अधीन जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापना तथा पदोन्नति राज्यपाल ही करता था। जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापना तथा पदोन्नति करने की शक्ति उच्च न्यायालय को नहीं प्राप्त थी। मेरे मित्र श्री कुंजरू ने देखा होगा कि हमने भारत शासन अधिनियम के उस उपबन्ध में बहुत रूपभेद किया है क्योंकि हमने यह शर्त रखी है कि जिला-न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदस्थापना तथा पदोन्नति के संबंध में उच्च न्यायालयों से परामर्श किया जायेगा। इसलिये मतभेद केवल इस संबंध में है कि क्या जिला-न्यायाधीशों को छोड़कर अधीन-न्यायिक-सेवा के लोगों को ही पद स्थापना, पदोन्नति, छुट्टी आदि के संबंध में उच्च न्यायालयों को एकाधिकार प्राप्त हो अथवा क्या उन्हें इस विषय में जिला-न्यायाधीशों सहित सभी अधीन न्यायाधीशों के संबंध में क्षेत्राधिकार प्राप्त हो। मेरे विचार से हमने जिस बीच के मार्ग का अनुसरण किया है वह बहुत ही उपयुक्त है। अन्ततोगत्वा केवल इतना अन्तर रह जायेगा कि अधीन न्यायाधीशों के संबंध में पद स्थापना, पदोन्नति अथवा छुट्टी के बारे में उच्च न्यायालय अधिसूचना निकालेगा और जिला-न्यायाधीशों के संबंध में यह अधिसूचना सचिवालय निकालेगा। यदि आधारभूत अथवा सारवान बातों को देखा जाये तो कोई अन्तर नहीं है। जिला-न्यायाधीशों को उच्च न्यायालय का संरक्षण प्राप्त रहेगा क्योंकि उससे अवश्य ही परामर्श करना होगा। मेरे विचार से इससे सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (2) में 'seven years' (सात वर्ष) शब्दों के बाद 'enrolled as' (सूचीबद्ध)

शब्द रखे जायें और 'pleader' (वकील) शब्द के बाद (हिन्दी में पहले) 'of the High Court of the State or States exercising jurisdictions' (क्षेत्राधिकार रखने वाले राज्य अथवा राज्य के उच्च-न्यायालय का) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ङ में जहां 'may' (दे सकेगा) शब्द पहली बार आया है वहां उसके बाद (हिन्दी में पहले)'at any time' (किसी समय) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष**: प्रस्ताव यह है कि:

"ऊपर के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ङ के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that the Governor or the Ruler as the case may be shall,—

(i) in the case of States mentioned in Part I of the First Schedule after the lapse of three years from the commencement of this Constitution, if the Legislature of the State passes a resolution recommending the making of such direction, or if no such resolution is passed after the lapse of ten years from the commencement of this Constitution; and

(ii) in the case of States mentioned in Part III of the First Schedule after the lapse of seven years from the commencement of this Constitution, if the Legislature of the State passes a resolution recommending the making of such direction and if no such resolution is passed, after the lapse of ten years from the commencement of this Constitution, by public notification make such directions.'"

[परन्तु राज्यपाल अथवा राजप्रमुख–

(1) प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के संबंध में, इस संविधान के प्रारम्भ से तीन वर्ष पश्चात्, यदि राज्य का विधान-मंडल कोई ऐसा प्रस्ताव पारित करे जिसमें इस प्रकार के निदेश की

[अध्यक्ष]

सिफारिश की गई हो, अथवा यदि कोई ऐसा प्रस्ताव पारित नहीं किया गया हो, तो इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात् और–

(2) प्रथम अनुसूची के भाग (3) में उल्लिखित राज्यों के संबंध में, इस संविधान के प्रारम्भ से सात वर्ष पश्चात् यदि राज्य का विधान-मंडल कोई ऐसा प्रस्ताव पारित करे जिसमें इस प्रकार के निदेश की सिफारिश की गई हो और यदि कोई ऐसा प्रस्ताव पारित न किया गया हो तो इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष पश्चात्, लोक अधिसूचना द्वारा ऐसे निदेश देगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:–

'where there is difference of opinion regarding an appointment between the Governor or Ruler of the State and the High Court, the opinion of the former shall prevail.'"

[जब कभी किसी नियुक्ति के संबंध में राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख और उच्च न्यायालय के बीच मतभेद हो तो राज्यपाल अथवा राजप्रमुख का मत प्रभावी होगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्ष:** पंडित कुंजरू ने दो संशोधन उपस्थित किये हैं, संशोधन संख्या 132 तथा 133। प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-क के खण्ड (1) में से 'and the posting and promotion of' (तथा उनकी पद स्थापना और पदोन्नति) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन गिर गया।

*अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"सूची 1 (आठवां सप्ताह) के संशोधन संख्या 20 में प्रस्तावित नवीन अनुच्छेद 209-ग में 'grant of leave' (छुट्टी देने) शब्दों के पश्चात् (हिन्दी में अनुच्छेद के आरम्भ में) 'district judges in any State and' (किसी राज्य के जिला-न्यायाधीश और) शब्द रखे जायें।"

संशोधन गिर गया।

*अध्यक्ष: प्रस्ताव यह है कि:

"प्रस्तावित अनुच्छेद 209क, 209ख, 209ग, 209घ तथा 209ङ संविधान के अंग बना लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 209क, 209ख, 209ग, 209घ तथा 209ङ संविधान के अंग बना लिये गये।

अनुच्छेद 215

*अध्यक्ष: यह सुझाव रखा गया है कि हम आज अनुच्छेद 215 को उठायें।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2732 से लेकर संशोधन संख्या 2737 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'अनुच्छेद 215 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

215. (1) Any territory specified in Part IV of the First Schedule and any other territory comprised within the territory of India but not specified in that Schedule shall be administered by the President in his discretion either directly or acting through a Chief Commissioner or other authority to be appointed by him.

(2) The Chief Commissioner or other authority to be appointed by the President in his discretion shall be the delegate of the President who shall have the power in his discretion to resume or modify such powers as he himself had conferred.

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(3) The President shall have the power to take any part of the Union of India under his immediate authority and management by placing it in Part IV of the First Schedule.

(4) No Act of Parliament shall apply to any territory in Part IV of the First Schedule unless the President in his discretion by public notification so directs and the President in giving such a direction with respect to any Act may direct that the Act shall in its application to the territories in Part IV of the First Schedule or to any specified part thereof, have effect subject to such exceptions or modifications as he thinks fit.

(5) The President may in his discretion make regulations for the peace, order and good government of any such territory and any regulations so made may repeal or amend any Act of the Parliament or any existing law which is for the time being applicable to such territory and, when p romulgated by the President, shall have the same force and effect as an Act of Parliament.'"

[215. (1) प्रथम अनुसूची के भाग 4 में उल्लिखित किसी राज्य-क्षेत्र का तथा भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट, किन्तु उस अनुसूची में अनुल्लिखित, किसी अन्य राज्य-क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति स्वविवेक से या तो स्वयं करेगा या अपने द्वारा नियुक्त किये जाने वाले मुख्य आयुक्त या अन्य प्राधिकारी के द्वारा कार्य करेगा।

(2) राष्ट्रपति के द्वारा स्वविवेक से नियुक्त होने वाला मुख्य आयुक्त अथवा अन्य प्राधिकारी राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होगा, जिसे स्वविवेक से ऐसी शक्तियों को स्वीकार करने अथवा उनमें रूप-भेद करने की शक्ति होगी जिन्हें उसने स्वयं प्रदान की हो।

(3) राष्ट्रपति को भारतीय संघ के किसी भाग को प्रथम अनुसूची के भाग 4 में रखकर अपने ही प्राधिकार तथा प्रबन्ध में ले लेने की शक्ति होगी।

(4) संसद का कोई अधिनियम प्रथम अनुसूची के भाग 4 में के किसी राज्य-क्षेत्र पर लागू नहीं होगा, जब तक कि राष्ट्रपति स्वविवेक से लोक अधिसूचना द्वारा इस प्रकार का निदेश न दे और किसी अधिनियम के संबंध में इस प्रकार का निदेश देने में यह भी निदेश दे सकता है कि जब वह अधिनियम प्रथम अनुसूची के भाग 4

में के राज्य-क्षेत्रों पर अथवा उनके किसी उल्लिखित भाग पर लागू होगा तो वह ऐसे अपवादों तथा रूपभेदों के साथ प्रभावी होगा जिन्हें वह उचित समझे।

(5) राष्ट्रपति ऐसे किसी राज्य-क्षेत्र की शान्ति, सुव्यवस्था और सुशासन के लिये स्वविवेक से विनियम बना सकेगा तथा इस प्रकार बना हुआ कोई विनियम, संसद-निर्मित किसी विधि का अथवा किसी वर्तमान विधि का जो ऐसे राज्य-क्षेत्र में तत्समय लागू है, निरसन या संशोधन कर सकेगा तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित होने पर उसका उस राज्य-क्षेत्र पर लागू संसद-अधिनियम के जैसा ही बल और प्रभाव होगा।]

श्रीमान्, मैं उसे बिना कुछ व्याख्या किये हुए उपस्थित करता हूं।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ श्रीमान्, मुझे सभा के सामने केवल एक मामला रखना है और सभा के द्वारा मैं उसे संबंधित प्राधिकारियों तक पहुंचाना चाहता हूं। यह अनुच्छेद उन क्षेत्रों के संबंध में है जिनकी गणना अनुसूची 1 के भाग 4 में की जायेगी और जो सीधे-सीधे केन्द्रीय सरकार के प्रशासन के अधीन होंगे। मैं यह चाहता हूं कि एक विशेष क्षेत्र जो इस समय संविधान के मसौदे की अनुसूची 1 के भाग 4 में सम्मिलित नहीं है उसमें सम्मिलित किया जाये। जो क्षेत्र मेरे ध्यान में है वह अस्थायी रूप से अनुसूची 5 में मद्रास के अधीन रखा गया था। सभा ने अनुसूची 5 के संबंध में जो संशोधन स्वीकार किया है उसके अनुसार यह राष्ट्रपति के लिये छोड़ दिया गया है कि वह जिन क्षेत्रों को चाहे अनुसूची 5 में सम्मिलित करे। मैं उन द्वीपों की चर्चा कर रहा हूं जो लक्केडिव द्वीप कहे जाते हैं जिनमें मिनिकाई तथा अमीनदीवी द्वीप भी हैं। यह द्वीपसमूह भारत के पश्चिम में अरब सागर में हैं। ये द्वीप अनुसूचित क्षेत्र समझे जाते हैं और इनका प्रशासन मद्रास सरकार के हाथ में है।

मैंने यह सुझाव रखा है कि इन द्वीपों का प्रशासन केन्द्र को अपने हाथ में ले लेना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं मद्रास सरकार द्वारा इन द्वीपों के प्रशासन पर आक्षेप कर रहा हूं। वास्तव में तथ्य यह है कि ये द्वीप मद्रास के तट से बहुत दूर हैं और वहां की प्रान्तीय सरकार के पास इस प्रकार के क्षेत्र के प्रशासन की देख रेख के लिये पर्याप्त साधन नहीं हैं क्योंकि उनके पास न तो कोई सामुद्रिक पोत हैं और न वहां कोई निजी वाणिज्यिक पोत है। जहां तक मुझे ज्ञात है इस समय वहां साल में एक बार एक सब-कलेक्टर एक चिकित्सा-संबंधी अधिकारी के साथ जाता है। मद्रास सरकार का इन द्वीपों के साथ केवल इतना ही सम्पर्क है। मैं इस समय इन द्वीपों के सामरिक महत्व पर जोर नहीं देना चाहता। उनका सामरिक महत्व हो या न हो किन्तु यह स्पष्ट है कि इन द्वीपों के प्रशासन को प्रान्तीय सरकार को सौंपने का विचार एक पुरातन विचार

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

था। प्रान्तीय सरकार को इनके प्रशासन की जिम्मेदारी लेने में कठिनाई हो सकती है। इसलिये इस व्यवस्था को जारी नहीं रखना चाहिये। चाहे इन द्वीपों का संघ के लिये भविष्य में कोई भी महत्व क्यों न हो, इनके प्रशासन की जिम्मेदारी को केन्द्र को उसी प्रकार स्वीकार करना चाहिये जैसे वह उन क्षेत्रों की जिम्मेदारी स्वीकार किये हुए है जो अनुच्छेद 215 के अधीन होते हैं और जिनका अनुसूची 7 के भाग 4 में उल्लेख है।

मैं आशा करता हूं कि संविधान सभा का सचिवालय इन सुझावों को संबंधित अधिकारियों के पास भेजेगा और जब हम अनुसूची 1 के भाग 4 को उठायेंगे तो संबंधित मंत्रालय के परामर्श के अनुसार यथोचित संशोधन किये जायेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मुझे कुछ नहीं कहना है।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान्, मुझे कोई संशोधन उपस्थित नहीं करना है। मुझे इस अनुच्छेद के खण्ड (2) पर एक आपत्ति है और उसकी ओर मैं मसौदा-समिति के अध्यक्ष का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मुझे यह प्रतीत होता है कि इसकी शब्दावली से संसद की सर्व-सत्ता का अल्पीकरण होता है। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि यदि सम्भव हो तो इन शब्दों को बदल दिया जाये। प्रयुक्त शब्द इस प्रकार हैं:

"राष्ट्रपति ऐसे किसी राज्य-क्षेत्र की शान्ति और सुशासन के लिये विनियम बना सकेगा तथा इस प्रकार बना हुआ कोई विनियम, संसद्-निर्मित किसी विधि का निरसन या संशोधन कर सकेगा।"

मुझे इस उपबन्ध पर आपत्ति है कि राष्ट्रपति संसद-निर्मित किसी विधि का संशोधन कर सकेगा, यद्यपि हम यह कहते हैं कि संसद सर्वसत्ताधिकारी है। यदि हम यह कहें कि विनियम में यह उपबंधित होगा कि ऐसे राज्य-क्षेत्र में संसद-अधिनियम लागू नहीं होगा अथवा वह ऐसे राज्य-क्षेत्र में रूप-भेद के साथ लागू होगा।

मैं इसे केवल मसौदा-समिति के सभापति के ध्यान में लाना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** सरदार हुकम सिंह ने पैरा 2 के संबंध में कुछ सुझाव रखे हैं। वे यह कहते है कि यह कहने से कि राष्ट्रपति संसद-निर्मित विधि का निरसन अथवा संशोधन करेगा, संसद के प्राधिकार का अल्पीकरण होता है और यह सुझाव रखते हैं कि शब्दावली में इस प्रकार रूप-भेद करना चाहिये कि संसद की शक्ति किसी के अधीन न होने पाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** स्थिति यही है। यह एक प्रकार का अनुकूलन है। आसाम के स्वायत्तशासी जिलों के संबंध में आसाम के राज्यपाल

को जब कभी वह इसकी आवश्यकता देखे, संसद-निर्मित विधियों का इसी प्रकार अनुकूलन करने की शक्ति प्राप्त है। कुछ विशेष प्रकार के राज्य-क्षेत्रों में संसद-निर्मित विधि पूरी की पूरी लागू नहीं की जा सकती और उसे वहां के अनुकूल बनाना होगा।

***सरदार हुकम सिंह:** श्रीमान्, क्या यह उत्तर पर्याप्त है? मेरा यह सुझाव था कि इस कथन से कि राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित अधिनियम का निरसन करेगा, संसद की सर्व सत्ता का अल्पीकरण होता है।

***अध्यक्ष:** सुझाव एक शब्द के संबंध में है, शक्ति के संबंध में नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** राष्ट्रपति संसद का ही एक अंश है। इससे कोई कठिनाई नहीं होती।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के संशोधन पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2732 से लेकर संशोधन संख्या 2737 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

अनुच्छेद 215 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'215. (1) Any territory specified in Part IV of the First Schedule and any other territory comprised within the territory of India but not specified in that Schedule shall be administered by the President in his discretion either directly or acting through a Chief Commissioner or other authority to be appointed by him.

(2) The Chief Commissioner or other authority to be appointed by the President in his discretion shall be the deligate of the President who shall have the power in his discretion to resume or modify such powers as he himself had conferred.

(3) The President shall have the power to take any part of the Union of India under his immediate authority and management by placing it in Part IV of the First Schedule.

(4) No Act of Parliament shall apply to any territory in Part IV of the First Schedule unless the President in his discretion by public notification so

[अध्यक्ष]

directs and the President in giving such a direction with respect to any Act may direct that the Act shall in its application to the territories in Part IV of the First Schedule, or to any specified part thereof, have effect subject to such exceptions or modifications as he thinks fit.

(5) The President may in his discretion make regulations for the peace, order and good government of any such territory and any regulations so made may repeal or amend any Act of the Parliament or any existing law which is for the time being applicable to such territory and when promulgated by the President, shall have the same force and effect as an Act of Parliament.'"

[215. (1) प्रथम अनुसूची के भाग 4 में उल्लिखित किसी राज्य-क्षेत्र का तथा भारत राज्य-क्षेत्र में समाविष्ट किन्तु उस अनुसूची में अनुल्लिखित किसी अन्य राज्य-क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति स्वविवेक से या तो स्वयं करेगा या अपने द्वारा नियुक्त किये जाने वाले मुख्य आयुक्त या अन्य प्राधिकारी के द्वारा कार्य करेगा।

(2) राष्ट्रपति के द्वारा स्वविवेक से नियुक्त होने वाला मुख्य आयुक्त अथवा अन्य प्राधिकारी राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होगा, जिसे स्वविवेक से ऐसी शक्तियों को स्वीकार करने अथवा उनमें रूप भेद करने की शक्ति होगी जिन्हें उसने स्वयं प्रदान की हों।

(3) राष्ट्रपति को भारतीय संघ के किसी भाग को प्रथम अनुसूची के भाग 4 में रखकर अपने ही प्राधिकार तथा प्रबन्ध में ले लेने की शक्ति होगी।

(4) संसद् का कोई अधिनियम प्रथम अनुसूची के भाग 4 में के किसी राज्य-क्षेत्र पर लागू नहीं होगा जब तक कि राष्ट्रपति स्वविवेक से लोक-अधिसूचना द्वारा इस प्रकार का निदेश न दे और किसी अधिनियम के संबंध में इस प्रकार का निदेश देने में यह भी निदेश दे सकता है कि जब वह अधिनियम प्रथम अनुसूची के भाग 4 में के राज्य-क्षेत्रों पर अथवा उनके किसी उल्लिखित भाग पर लागू होगा तो वह ऐसे अपवादों तथा रूपभेदों के साथ प्रभावी होगा जिन्हें वह उचित समझे।

(5) राष्ट्रपति ऐसे किसी राज्य-क्षेत्र की शन्ति, सुव्यवस्था और सुशासन के लिये स्वविवेक से विनियम बना सकेगा तथा इस प्रकार बना हुआ कोई विनियम, संसद-निर्मित किसी विधि का अथवा किसी वर्तमान विधि या, जो ऐसे राज्य-क्षेत्र में तत्समय लागू है, निरसन या संशोधन कर सकेगा तथा राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित होने पर उसका उस राज्य-क्षेत्र पर लागू संसद-अधिनियम के जैसा ही बल और प्रभाव होगा।]

संशोधन गिर गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 215 संविधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 215 संविधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 303

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 303। अब हम परिभाषाओं वाला अनुच्छेद 303 उठा सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ग) निकाल दिया जाये।"

***अध्यक्षः** मैं अभी यह पूछने जा रहा था कि क्या हम इस अनुच्छेद पर भी उसी प्रकार विचार न करें जैसे हमने अनुसूची 7 की सूचियों पर विचार किया था और एक एक मद को उठाकर उसे पारित किया था।

मैं मदों को उसी क्रम से उठाऊंगा जिस क्रम से वे मसौदे में दी हुई हैं। संशोधनों की सूची के अंक 2 का संशोधन संख्या 3211 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री एच.वी. कामतः** वह एक शाब्दिक संशोधन है। मैं उसे मसौदा समिति के विचारार्थ छोड़ देता हूं।

(संशोधन संख्या 3212 और 3213 उपस्थित नहीं किये गये।)

*अध्यक्षः प्रस्ताव यह है किः

"खण्ड (1) का उपखण्ड (क) अनुच्छेद 203 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपखण्ड (ख) के संबंध में मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूं। आरम्भ में हमने संविधान में दो भाग रखने का प्रस्ताव रखा था जिनमें कुछ समुदाय अनुसूचित जातियों के रूप में परिगणित किये गये थे और कुछ समुदाय अनुसूचित आदिम-जातियों के रूप में परिगणित किये गये थे। अब हम इन दो भागों को निकालने का प्रस्ताव रख रहे हैं। हमने यह विचार किया कि इनके फलस्वरूप संविधान पर बहुत भार पड़ जायेगा और अच्छा यह होगा कि इस उद्देश्य की पूर्ति राष्ट्रपति के आदेश द्वारा की जाये। इस समय हमारा प्रस्ताव यही है। इस दशा में, मेरे विचार से, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम-जातियों की परिभाषा-संबंधी खण्ड संविधान के किसी अन्य भाग में रखने होंगे और उन्हें एक अनुच्छेद में ही स्थान देना होगा जिसमें यह कहा जायेगा कि राष्ट्रपति इसकी परिभाषा करेगा कि अनुसूचित जातियां कौन हैं और अनुसूचित आदिम-जातियां कौन हैं। अनुच्छेद 296 तथा 299 के संबंध में भी जो स्थगित रखे गये हैं, यह प्रश्न उठाया गया है। सम्भव है कि उन उपबन्धों के साथ उपखण्ड (ख) और (ग) में उल्लिखित "आंग्ल-भारतीय" और "भारतीय ईसाई" शब्दों की परिभाषाओं पर भी विचार करना पड़े। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि इन्हें इस समय स्थगित रखा जाये।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): अनुसूचित जातियों आदि के संबंध में सभी उपबन्ध स्थगित रखे जायें।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि सभा इसके लिये सहमत है कि मद (ख) और (ग) पर इस समय विचार नहीं किया जाये।

[उपखण्ड (ख) और (ग) स्थगित रखे गये।]

***अध्यक्षः** मद (घ) के संबंध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है किः

"उपखण्ड (घ) स्वीकार कर लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ङ) निकाल दिया जाये।"

***अध्यक्षः** अब कोई मुख्य न्यायाधीश नहीं है। पहले अधीन उच्च न्यायालय होते थे जो मुख्य न्यायालय कहे जाते थे और उनमें मुख्य न्यायाधीश होते थे। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) का उपखण्ड (ङ) निकाल दिया जाये।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

खण्ड 1 का उपखण्ड (ङ) अनुच्छेद 303 से निकाल दिया गया।

(संशोधन संख्या 3219 उपस्थित नहीं किया गया।)

***अध्यक्षः** अब हम मद (च) को उठाते हैं। इसके संबंध में कोई संशोधन नहीं है। प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1) का उपखण्ड (च) अनुच्छेद 303 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के स्थान पर यह उपखण्ड रखा जाये:

'(g) "corresponding Province", "corresponding Indian State" or "corresponding State" means in cases of doubt such Province, Indian State or State as may be determined by the President to be the corresponding Province, the corresponding Indian State or the corresponding State, as the case may be, for the particular purpose in question;'"

[(छ) "तत्स्थानी प्रान्त", "तत्स्थानी देशी राज्य" अथवा "तत्स्थानी राज्य" से संशयात्मक दशाओं में अभिप्रेत है ऐसा प्रान्त, देशी राज्य, या राज्य जिसे प्रश्नास्पद विशिष्ट प्रयोजन के लिये राष्ट्रपति यथास्थिति तत्स्थानी प्रान्त, तत्स्थानी देशी राज्य अथवा तत्स्थानी राज्य निर्धारित करे;]

इसमें हमने केवल देशी राज्यों को और सम्मिलित किया है।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या हम अब भी "देशी राज्य" और "राज्य" के विभेद को बनाये रखना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** विभेद इस प्रकार है: अब राज्य से अभिप्रेत है संघ का एक अंग। देशी राज्य से अभिप्रेत है जो संघ के बाहर है किन्तु जिस पर संघ का प्रभुत्व अथवा नियंत्रण है।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या कच्छ का राज्य, जहां अब केन्द्र का प्रशासन है "देशी राज्य" है? क्या भूपाल भी "देशी राज्य" है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** "देशी राज्य" की परिभाषा बाद को की गई है।

***अध्यक्ष:** "देशी राज्य" की परिभाषा आगे संशोधन संख्या 140 में की गई है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** यह दिखाई देता है कि सदस्यों को कुछ भ्रम हो गया है। "तत्स्थानी प्रान्त" और "तत्स्थानी देशी राज्य" पद संविधान के प्रारम्भ से पहले की अवस्था के लिये हैं। "तत्स्थानी राज्य" पद संविधान के प्रारम्भ के पश्चात् प्रयोग में आयेगा। दोनों में केवल इतना अन्तर है। मुझे आशा है कि अब इस संबंध में भ्रम नहीं होगा।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के स्थान पर यह उपखण्ड रखा जाये:–

'(g) "corresponding Province", "corresponding Indian State" or "corresponding State" means in cases of doubt such Province, Indian State or State as may be determined by the President to be the corresponding Province, the corresponding Indian State or the corresponding State, as the case may be, for the particular purpose in question;'"

"[(छ)] "तत्स्थानी प्रान्त", "तत्स्थानी देशी राज्य" अथवा "तत्स्थानी राज्य" से संशयात्मक दशाओं में अभिप्रेत है ऐसा प्रान्त, देशी राज्य, या राज्य जिसे प्रश्नास्पद विशिष्ट प्रयोजन के लिये राष्ट्रपति यथास्थिति तत्स्थानी प्रान्त, तत्स्थानी देशी राज्य अथवा तत्स्थानी राज्य निर्धारित करे;]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1) का उपखण्ड (छ) संशोधित रूप में अनुच्छेद 303 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

*__अध्यक्ष:__ अब हम मद (ज) को उठाते हैं। इसके संबंध में कोई संशोधन नहीं है।

प्रस्ताव यह है कि:

"खण्ड (1) का उपखण्ड (ज) अनुच्छेद 303 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) में से 'but does not include any Act of Parliament of the United Kingdom or any Order in Council made under any such Act' (परन्तु जिसमें यूनाइटेड किंगडम की संसद के किसी अधिनियम का अथवा उसके अधीन बनाये हुए परिषद् स्थित आदेश का समावेश नहीं हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

जब तक संसद अन्यथा उपबन्ध न बनाये ऐसे अधिनियमों को, जैसे वणिक नौपरिवहन अधिनियम, जारी रखना होगा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ इस उपखण्ड (1) में स्पष्टत: एक बात रह गई है। इसमें विधियों तथा उपविधियों की चर्चा है। किन्तु केवल 'नियम' शब्द का उल्लेख है। 'उपनियम' शब्द भी क्यों नहीं रखा जाता?

*__माननीय श्री के. सन्तानम्:__ मेरे नाम से इस आशय का एक संशोधन है। किन्तु यदि मसौदा-समिति ने उस पर विचार किया है और इसे अनावश्यक समझा है तो मैं उसे उपस्थित नहीं करना चाहता। मैं मसौदा समिति के ध्यान में केवल यह लाना चाहता हूं कि बड़ोदा के समान कई क्षेत्र ऐसे भी हैं जो अन्य प्रान्तों में समाविष्ट कर दिये गये हैं। बड़ोदा के संबंध में "वर्तमान विधि" पदावली का क्या निर्वचन किया जायेगा? क्या उससे केवल वे विधियां अभिप्रेत होंगी जो इस समय बंबई के प्रान्त में प्रवर्तन में हैं अथवा क्या उससे वे विधियां भी अभिप्रेत होंगी जो बड़ोदा की सरकार अथवा वहां के विधान-मंडल ने समाविष्ट के पूर्व पारित किये थे? क्योंकि वर्तमान पदावली के अनुसार बड़ोदा की पहले की सरकार तथा विधान-मंडल द्वारा पारित विधियां भी सम्मिलित की जा सकती हैं, भले ही बंबई की विधियों ने उनका स्थान के लिया हो। यदि यह स्पष्ट कर दिया गया तो मैं अपना संशोधन उपस्थित नहीं करूंगा। अन्यथा, मैं यह चाहता हूं कि मसौदा-समिति मेरे संशोधन पर विचार करे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह कई बातों पर निर्भर रहेगा कि कोई विधि प्रवर्तन में है या नहीं। पहले तो समाविष्ट पत्र में ही इस आशय का उपबन्ध होगा कि अमुक-अमुक विधियां प्रवर्तन में नहीं रहेंगी। हो सकता है कि बंबई की सरकार बड़ोदा के समाविष्ट हो जाने के पश्चात् उस क्षेत्र की विधियों को बनाये रखे, अथवा उसकी विधियों से उनका निराकरण हो जाये। इसलिये वर्तमान विधि से अभिप्रेत है वह विधि जो संविधान के प्रारम्भ पर प्रवर्तन में हो।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं अपना संशोधन उपस्थित नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) में से 'but does not include any Act of Parliament of the United Kingdom or any Order in Council made under any such Act' (परन्तु जिसमें यूनाइटेड किंगडम की संसद के किसी अधिनियम का अथवा उसके अधीन बनाये हुए परिषद् स्थित आदेश का समावेश नहीं हो) शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है किः

"खण्ड (1) का उपखण्ड (1) संशोधित रूप में अनुच्छेद 303 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** अब उपखण्ड (अ) है। इसके संबंध में कोई संशोधन नहीं है प्रस्ताव यह है कि

"खण्ड (1) का उपखण्ड (अ) अनुच्छेद 303 का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ञ) के बाद यह उपखण्ड प्रविष्टि किया जायेः

' 1 (jj) 'Foreign State' means any State other than India but does not include a State notified in this behalf by the President.'"

[(ञञ) 'विदेशी राज्य' से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य किन्तु इसके अन्तर्गत वह राज्य नहीं आता जिसे राष्ट्रपति ने इस प्रयोजन के लिये अधिसूचित किया हो।]

*__माननीय श्री के. सन्तानम्:__ क्या डॉ. अम्बेडकर कृपा करके बतायेंगे कि उपखण्ड (ञञ) के बाद के अंश का क्या अर्थ है? क्या वे उदाहरण दे कर इसे स्पष्ट करेंगे?

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ यदि यह अपेक्षित हुआ तो राष्ट्रपति कुछ राज्यों को विदेशी राज्यों की श्रेणी से अलग कर सकता है। यद्यपि अभी यह नहीं कहा जा सकता है किन्तु सम्भव है कि राष्ट्रमंडल के अधीन जो नई व्यवस्था की जाये वह इसी योजना के अधीन की जाये। विचार यह है कि यदि भारत की भावी सरकार किन्हीं राज्यों को विदेशी राज्यों की श्रेणी में नहीं रखना चाहे तो राष्ट्रपति को इसका प्राधिकार होगा। माननीय सदस्य महोदय को सम्भवतः ज्ञात होगा कि इंग्लिस्तान के साथ तथा भारत के साथ भी आयरलैंड का क्या संबंध है। यद्यपि इस संबंध में कोई विधि नहीं है और कोई संधि भी नहीं है किन्तु हम आयरलैंड को एक विदेशी राज्य नहीं मानते।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्:__ श्रीमान्, जो परिभाषायें हम कर रहे हैं उनका विधि की दृष्टि से महत्व है। या तो कोई राज्य विदेशी राज्य होता है या नहीं होता है। यदि वह विदेशी राज्य नहीं है तो उस पर इस संविधान के उपबन्ध तथा इस संविधान के उपबन्धों के अधीन बनाई हुई विधियां लागू होंगी। मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो उदाहरण दिया है उसका इससे कोई संबंध नहीं है। यह कह कर कि इंग्लिस्तान विदेशी राज्य नहीं है हम उस पर इस संविधान को, अथवा इसके अधीन बनाई हुई विधियों को लागू नहीं कर सकते। विधि की परिभाषाओं के अतिरिक्त यह प्रश्न प्रथाओं का भी है। इसलिये मेरे विचार से हमें इन शब्दों की आवश्यकता नहीं है—"जिसे राष्ट्रपति ने इस प्रयोजन के लिये अधिसूचित किया हो।" हम संसद को भारत राज्य-क्षेत्र में अन्य राज्य-क्षेत्रों को समाविष्ट करने की शक्ति दे चुके हैं। राष्ट्रपति को यह अधिसूचित करने की शक्ति नहीं देनी चाहिये कि कोई ऐसा राज्य जो संसद की विधि द्वारा भारत-राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं है भारत का भाग है। इस कथन का कि राष्ट्रपति यह अधिसूचित कर सकेगा कि कोई राज्य विदेशी राज्य नहीं है, विधि की दृष्टि से यह अर्थ है कि वह किसी देशी राज्य का भाग होगा। जब तक आप उस राज्य की परिभाषा न करें जो न तो विदेशी हो और न भारत के अन्तर्गत हो तब तक मेरे विचार से यदि कठिनाइयां नहीं तो अनेक प्रकार के भ्रम अवश्य उत्पन्न होंगे। मेरे विचार से उपखण्ड (ञञ) को रखने की आवश्यकता नहीं है। प्रथाओं के विषयों का परिभाषाओं में समावेश करना बिल्कुल ही अनावश्यक है। और हमें इसका प्रयास भी नहीं करना चाहिये। यदि हम इस उपखण्ड (ञञ) को नहीं रखेंगे तो मेरे विचार से हमारी कोई हानि नहीं होगी।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, स्थिति इस प्रकार है। यदि कोई इसके आशय को "भारत" शब्द तक ही सीमित रखे तो विदेशी राज्य का वही अर्थ होगा जो साधारणतया समझा जाता है। प्रत्येक राज्य अन्य राज्य के लिये एक विदेशी राज्य है। यह परिभाषा के पहले भाग से स्पष्ट हो जाता है। इसलिये परिभाषा के उस भाग पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। सम्भव है कि इस परिभाषा की आवश्यकता भी न हो किन्तु चूंकि संविधान के एक भाग में हमने "विदेशी राज्य" शब्द रखे हैं। और कुछ प्रयोजनों के लिये किसी तथाकथित विदेशी राज्य के संबंध में यह घोषित करने की आवश्यकता पड़ सकती है कि वह विदेशी राज्य नहीं है इसलिये इस परिभाषा को रखने की आवश्यकता है और इसकी भी आवश्यकता है कि राष्ट्रपति को यह घोषित करने की शक्ति दी जाये कि कुछ प्रयोजनों के लिये इस प्रकार का राज्य विदेशी राज्य नहीं समझा जायेगा। मेरे विचार से यह मलाया के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। इसलिये इसका वास्तव में यह अर्थ है कि कुछ प्रयोजनों के लिये राष्ट्रपति यह घोषित कर सकता है कि अमुक राज्य के भारत के बाहर होने के कारण विदेशी राज्य होने पर भी कुछ प्रयोजनों के लिये वह विदेशी राज्य नहीं समझा जायेगा। इसी कारण इस परिभाषा को रखा जा रहा है।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्:__ इस उपखण्ड के अधीन राष्ट्रपति को कुछ प्रयोजनों के लिये अधिसूचित करने की शक्ति प्राप्त नहीं होती। इसमें केवल परिभाषा की गई है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ जब राष्ट्रपति अधिसूचना निकालेगा तो वह नि:संदेह इसे स्मरण रखेगा।

*__अध्यक्ष:__ प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 303 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ञ) के बाद यह उपखण्ड प्रविष्ट किया जाये:

'(jj) 'Foreign State' means any State other than India but does not include a State notified in this behalf by the President.'"

[(ञञ) 'विदेशी राज्य' से अभिप्रेत है भारत से भिन्न कोई राज्य किन्तु इसके अंतर्गत वह राज्य नहीं आता जिसे राष्ट्रपति ने इस प्रयोजन के लिये अधिसूचित किया हो।]

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

*__कई माननीय सदस्य:__ कार्यक्रम के बारे में क्या तय किया गया है?

*__अध्यक्ष:__ मैं सभा को यह सूचित करना चाहता हूं कि संविधान के कुछ उपबन्धों को निबटाना हैं उन्हें समाप्त करने के पश्चात् हमें एक विधेयक पर विचार

करना है जो उपस्थित किया जा चुका है। जब यह सब कार्य समाप्त हो जायेगा तो हम सभा स्थगित करेंगे। यह सभा पर निर्भर है कि वह इस कार्य को समाप्त करने में कितना समय ले। यदि आप चाहें तो मैं इन अनुच्छेदों को बता सकता हूं। अनुच्छेद संख्या 99, 184, 303, 304, 305, अनुसूची 8, अनुसूची 9, अनुच्छेद 1, नवीन अनुसूची 3-क, अनुसूची 4, नवीन अनुच्छेद 264-क। इसके अतिरिक्त संविधान के मसौदे के हिन्दी संस्करण के संबंध में एक प्रस्ताव की सूचना श्री मुंशी ने भी दी है और एक विधेयक डॉ. अम्बेडकर के नाम से भी है। इस सत्र में हमें इतना कार्य समाप्त करना है।

*__पं. गोविन्द मालवीय:__ श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या इस संबंध में निर्णय हो गया है कि सभा का अगला सत्र अक्तूबर में होगा?

*__अध्यक्ष:__ अगला सत्र अक्तूबर में होगा।

*__पं. गोविन्द मालवीय:__ जब अगला सत्र शीघ्र ही होने जा रहा है तो क्या हम इस कार्य को तब तक के लिये स्थगित नहीं रख सकते?

*__अध्यक्ष:__ मैंने यह देखा है कि जब यह सत्र समाप्त होने को आया है तो सदस्यों की यह प्रवृत्ति हो गई है कि सब कुछ अगले सत्र के लिये स्थगित किया जाये। कल तक मैं यह समझता था कि हम सभी अन्तर्कालीन उपबन्धों को निबटा सकेंगे। किन्तु मुझे यह सूचित किया गया है कि हम उन्हें नहीं उठा सकेंगे ओर हमें उन्हें अगले सत्र के लिये स्थगित रखना होगा। आज मुझसे यह कहा गया कि हम प्रस्तावना को नहीं समाप्त कर सकते और हमें उसे स्थगित रखना होगा। अब आप यह प्रस्ताव करते हैं कि अवशिष्ट कार्य भी स्थगित रखना चाहिये। यह सम्भव नहीं हो सकेगा क्योंकि.....

*__पं. गोविन्द मालवीय:__ श्रीमान्, मैं यह इस कारण कह रहा हूं। आरम्भ में यह विचार किया गया था कि यह सत्र थोड़े समय तक, अर्थात् लगभग पन्द्रह दिन तक रहेगा। इस सभा को समवेत हुए लगभग सात सप्ताह हो गये हैं। यदि यह सभा फिर अक्तूबर में समवेत होने जा रही है तो इन मदों को तब तक के लिये स्थगित करने से अधिक अन्तर नहीं पड़ेगा। किन्तु यदि आपका यह विचार हो कि आपने जो कार्य बताया है उसमें से कुछ को हमें समाप्त कर देना चाहिये, तो श्रीमान्, मेरा यह सुझाव है कि हम आज और कल प्रात: और सायं दोनों समय अधिवेशन करें और जितना भी कार्य हो सके समाप्त करें और उसके बाद सभा स्थगित कर दें।

*__कई माननीय सदस्य:__ जी हां, जी हां।

*__अध्यक्ष:__ कठिनाई यह है कि हमें कुछ छुट्टियों पर भी विचार करना है इसके अतिरिक्त विधान-सभा नवम्बर में समवेत होने जा रही है और हमें उसकी सुविधा का भी विचार करना है। हमें दूसरे पठन में संविधान के अवशिष्ट अनुच्छेदों को भी पारित करना है और फिर तीसरे पठन में सारे संविधान को समाप्त करना हैं। दूसरे पठन और तीसरे पठन के बीच में मसौदा समिति को अवश्य ही कुछ

[अध्यक्ष]

समय की अर्थात् कम से कम लगभग तीन सप्ताह की आवश्यकता होगी। ताकि वह सारी सामग्री को सुव्यवस्थित रूप में रख सके और उसे तीसरे पठन के लिये तैयार कर सके। यह सब कठिनाइयां इसलिये उठ खड़ी होती हैं क्योंकि हमारे सामने एक काल सीमा है और हमें सारे कार्य का जहां तक हो सके उसे दृष्टि में रखकर निश्चित करना है। इसलिये मैं इस सत्र में ही जितना काम हो सके समाप्त करने का प्रयास कर रहा हूं ताकि अक्तूबर के सत्र में हमारे लिये केवल आवश्यक कार्य ही रह जाये। इस समय अक्तूबर के सत्र के लिये जो कार्य निश्चित किया गया है वह यह है। राज्यों के संबंध में, अर्थात् देशी राज्यों की समाविष्टि आदि के संबंध में, एक अध्याय है। जिसे हमने अभी नहीं निबटाया इसलिये एक नवीन अध्याय को अर्थात् संविधान के मसौदे में प्रस्तावित कुछ अनुच्छेदों के संबंध में संशोधनों पर विचार करना है। इसमें मेरे विचार से कुछ समय लगेगा। इसके पश्चात् हमें अन्तर्कालीन उपबन्धों को उठाना होगा जिन पर आज विचार नहीं किया जा सका है। क्योंकि मेरे विचार से इस संबंध में कुछ कठिनाई है। अल्पसंख्यकों के संबंध में दो अनुच्छेद हैं, अर्थात् अनुच्छेद 296 और 299, जिन्हें हमने स्थगित किया है। इसके अतिरिक्त राज्य-क्षेत्रों के संबंध में अनुसूची 1 है। सम्भव है उसके संबंध में कोई कठिनाई न हो। इसके अतिरिक्त वेतन और उपलब्धियों के संबंध में अनुसूची 2 है। मैं अभी कह नहीं सकता किन्तु सम्भव है कि उसके संबंध में कुछ संशोधन उपस्थित किये जायें। इसमें कुछ समय लगेगा। अनुसूची 3-ख भी है। जिसमें राज्य-परिषद् के निर्वाचन-क्षेत्रों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त दो सारवान अनुच्छेद हैं, अर्थात् अनुच्छेद 283-क, जो सेवाओं के रक्षण के संबंध में है और जिसे स्थगित रखा गया है, और अनुच्छेद 280-क, जो आर्थिक आपात के संबंध में है। इनके अतिरिक्त दो बहुत कुछ रस्मी अनुच्छेद हैं जो प्रारम्भ और निरसन के संबंध में हैं।

***श्री आर.के. सिधवा:** इन पर एक सप्ताह या दस दिन से अधिक समय नहीं लगेगा।

***अध्यक्ष:** मैं इनके लिये दस दिन से अधिक समय नहीं रख रहा हूं। यदि हम 10 तारीख को कार्य आरम्भ करेंगे तो हम 20 तारीख तक उसे समाप्त कर सकते हैं। 21 तारीख से दिवाली आरम्भ होती है। दिवाली का सत्र समाप्त होने के पूर्व ही हमें यह कार्य समाप्त कर देना चाहिये। यदि हमें दस दिन तक बैठना होगा तो हमें 6 तारीख या इसके लगभग किसी तारीख को कार्य आरम्भ करना होगा।

***श्री आर.के. सिधवा:** क्या हम आज अपराह्न में तथा कल बैठ कर जितना काम हो सके उसे समाप्त नहीं कर सकते हैं?

***अध्यक्ष:** मुझे बताया गया है कि कुछ अनुच्छेदों का मसौदा अभी अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हुआ है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** कल सभा की दो बैठक हो सकती हैं।

*__अध्यक्षः__ कल सभा की दो बैठकें होंगी।

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ और एक बैठक रविवार को भी हो सकती है।

*__अध्यक्षः__ मुझे कोई आपत्ति नहीं है: यदि माननीय सदस्य सहमत हों तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अथवा एक बैठक सोमवार को हो सकती है जैसी आपकी इच्छा है

*__श्री वी.टी. कृष्णमाचारीः__ मेरा यह सुझाव है कि हम रविवार को बैठें और रविवार को ही कार्य समाप्त कर दें।

*__अध्यक्षः__ मुझे कोई आपत्ति नहीं है। क्या सभा की यह इच्छा है कि सोमवार को एक बैठक हो?

*__कई माननीय सदस्यः__ जी हां।

अध्यक्षः हम रविवार को बैठेंगे।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ क्या यह शर्त है कि हम सब कार्य रविवार को ही समाप्त कर दें अथवा क्या अवशिष्ट कार्य आगे चल कर किया जायेगा?

*__अध्यक्षः__ यह शर्त मैं नहीं पूरी कर सकता। यह आप को पूरी करनी होगी। सभा कल नौ बजे तक के लिये स्थगित होती है।

इसके पश्चात् सभा शनिवार तारीख 17 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.37.49
320

अंक 9
संख्या 37

शनिवार
17 सितम्बर
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रिवी परिषद् क्षेत्राधिकार समाप्ति विधेयक 2505-2551
संविधान का मसौदा—*(जारी)* 2551-2638
संविधान के अनुवाद सम्बन्धी प्रस्ताव 2551-2572
अनुच्छेद 303 और 300क तथा ख पर विचार
[अष्टम अनुसूची और अनुच्छेद 303, 304, 99, 305 और 1 पर विचार] 2572-2638

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 17 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रात: 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रिवी परिषद् क्षेत्राधिकार समाप्ति विधेयक

***अध्यक्ष:** पहली मद विधेयक है। डॉ. अम्बेडकर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर :** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"That the Bill to abolish the jurisdiction of His Majesty in Council in respect of Indian appeals and petitions, introduced on the 14th September 1949, be taken into cosideration by the Assembly."

[कि भारतीय अपीलों तथा याचिकाओं के विषय में सपरिषद् बादशाह महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने के विधेयक पर, जो 14 सितम्बर 1949 को पेश किया गया था, सभा विचार करे।]

मैं एक दो शब्द कहना चाहता हूं और सदन को बताना चाहता हूं कि यह विधेयक क्यों आवश्यक हो गया है और इस विधेयक का क्या सार है। इस विधेयक की आवश्यकता दो परिस्थितियों से उत्पन्न हुई है। एक तो अनुच्छेद 308 के खंड (3) का उपबन्ध है। यह अनुच्छेद 308 अंतर्कालीन उपबन्धों में है। अनुच्छेद 308 के खंड (3) में लिखा है कि:

"On and from the date of commencement of this Constitution the jurisdiction of His Majesty in Council to entertain and dispose of appeals and petitions from or in respect of any decree or order of any court within the territory of India, including the jurisdiction in respect of criminal matters exercisable by His Majesty by virtue of His Majesty's prerogative, shall cease, and all appeals and other proceedings pending before His Majesty in Council on the said date shall be transferred to, and disposed of, by the Supreme Court."

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[इस संविधान की आरम्भ की तारीख से, भारत राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत किसी न्यायालय के किसी आदेश या आज्ञप्ति के विरुद्ध अथवा संबंध में अपीलों और याचनाओं को सुनने और निर्णय करने का सपरिषद् सम्राट् का क्षेत्राधिकार, जिसमें सम्राट् के परमाधिकार के बल पर सम्राट् द्वारा दण्ड विषयक सप्रयोक्तव्य क्षेत्राधिकार सम्मिलित है, समाप्त हो जायेगा और उस दिन, परिषद् सम्राट् के समक्ष लम्बित सब अपीलें और अन्य कार्यवाहियां सर्वोच्च न्यायालय में स्थानान्तरित हो जायेंगे और सर्वोच्च न्यायालय उनका निर्णय करेगा।]

जिसका अर्थ है कि जिस दिन यह संविधान लागू होगा, उस दिन प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार बिल्कुल समाप्त हो जायेगा।

दूसरी परिस्थिति जिसके कारण यह विधेयक आवश्यक हो गया है, यह है कि यह संविधान लगभग 26 जनवरी, 1950 के दिन लागू होना चाहिये। इन दोनों परिस्थितियों का प्रभाव यह होगा कि प्रिवी परिषद् को 26 जनवरी 1950 के पश्चात् किसी अपील या याचिका पर विचार करने का अधिकार नहीं रहेगा, यदि उस दिन संविधान लागू हो जाये। किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रिवी परिषद् को यह भी क्षेत्राधिकार नहीं रहेगा कि वह उन अपीलों और याचिकाओं का फैसला कर सके जो 26 जनवरी 1950 को उसके पास लम्बित होंगी। अब 26 जनवरी 1950 को जो स्थिति होगी उसे देखते हुए अब यह स्थिति है। इस समय 70 व्यवहार विषयक अपीलें और दस आपराधिक अपीलें प्रिवी परिषद् के पास लम्बित हैं। प्रिवी परिषद् ने अपनी अगली बैठक के लिये जो कार्यावली बनाई है उसमें 20 अपीलें हैं। यह भी सत्य है कि भारतीय अपीलों के लिये संविधान के लागू होने से पहले प्रिवी परिषद् यही एक बैठक करेगी।

हमें जो सूचना मिली है उसके अनुसार प्रिवी परिषद् के अगले सत्र में केवल बीस अपीलों पर विचार होगा जिसका अर्थ यह है कि 26 जनवरी 1950 को 60 अपीलें अनिर्णीत रह जायेंगी और हमें असल में इसी बात पर विचार करना है कि "इन 60 अपीलों का क्या किया जाये जो 26 जनवरी 1950 को प्रिवी परिषद् के समक्ष पड़ी रह जायेंगी?"

हां, इस प्रश्न को सुलझाने के दो उपाय हैं। एक तो यह है कि प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को रहने दिया जाये और उसके पास जितनी अपीलें लम्बित हैं उन्हें समाप्त करने दिया जाये। यही प्रक्रिया आयर के संविधान में अनुच्छेद 37 द्वारा अपनाई गई थी जिसमें यह लिखा था कि उस संविधान की किसी बात का प्रभाव प्रिवी परिषद् के इस क्षेत्राधिकार पर नहीं पड़ेगा कि संविधान की तारीख को उसके पास लम्बित सब मामलों को वह निबटा सकेगी। किन्तु जैसा कि मैंने कहा है, हम प्रस्थापित अनुच्छेद 308 खंड (3) के अनुसार, हम प्रिवी परिषद् के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं छोड़ना चाहते। हमारा विचार है कि प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को 26 जनवरी 1950 के दिन ही समाप्त कर दिया जाये। अतएव उसका यही उपाय है कि हम ऐसा उपबन्ध कर दें कि प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार समाप्त

हो जायेगा, उनका क्षेत्राधिकार संघीय न्यायालय को प्रदान कर दिया जायेगा और वे उन सब मामलों को जो 10 अक्तूबर के दिन उनके पास लम्बित हों संघीय न्यायालय को हस्तान्तरित कर देंगे, सिवाय उन बीस मामलों के जिनका मैंने पहले निर्देश किया है। विधेयक में यही किया गया है।

अब, श्रीमान, इस विधेयक के विशेष उपबन्धों में आप यह देखेंगे कि खंड (2) के द्वारा प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार भारत के राज्यक्षेत्र के सब न्यायालयों पर से समाप्त हो जाता है। खंड (3) द्वारा संघीय न्यायालय पर प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जायेगा, और खंड 5, खंड 2 और 3 से अगला कदम है क्योंकि उसके द्वारा प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार फैडरल न्यायालय को देने की प्रस्थापना है। खंड (4) में उन मामलों की चर्चा है जो प्रिवी परिषद् के समक्ष लम्बित हैं। यद्यपि खंड (5) के अनुसार प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार संघीय न्यायालय को प्रदान कर दिया गया है, किन्तु खंड (4) अपवादी खंड है और उसके द्वारा कुछ अपीलों और याचिकाओं के विषय में, जो उसके समक्ष लम्बित हैं, प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार बना रहेगा। वे चार प्रकार की हैं (1) के अपीलें और प्रार्थनाएं जिनमें निर्णय दे दिया गया है किन्तु 10 अक्तूबर तक परिषद्-आदेश नहीं निकला हो, (2) वे अपीलें जो 12 अक्तूबर को आरम्भ होने वाली बैठक की कार्य-सूची में समाविष्ट हैं, (3) वे याचिकाएं जो पहले ही पेश हो चुकी हैं या 10 अक्तूबर से पूर्व पेश हो जायें, (4) वे अपीलें और याचिकायें जिन पर प्रिवी परिषद् ने निर्णय नहीं दिया है यद्यपि सुनवाई पूरी हो चुकी है। खंड 6 के अनुसार, वे मामले जो खंड 4 में उल्लिखित नहीं हैं, स्वयंमेव संघीय न्यायालय में आ जायेंगे चाहे वे प्रिवी परिषद् में लम्बित क्यों न हों। खंड 7 और 8 में केवल रचना सम्बन्धी बातें हैं।

प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को कम करते समय यह अनुभव किया गया कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की कुछ धाराओं का निरसन तथा संशोधन करना वांछनीय है जो इसके फलस्वरूप आवश्यक हैं और जो संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार और शक्तियों के सम्बन्ध में भारत शासन अधिनियम की कुछ असंगतियों को दूर करने के लिये भी आवश्यक हैं। जैसा कि मैंने कहा है खंड 3 से भारत शासन अधिनियम की धाराओं 208 और 218 का निरसन होता है जो प्रिवी परिषद् के और संघीय न्यायालयों से अपीलों के, भारत के बाहर के किसी न्यायालय से अपीलों के विषय में है। ये दोनों परिवर्तन विधेयक के फलस्वरूप हैं।

जिन धाराओं को संशोधित करने की प्रस्थापना है वे ये हैं: धारा 25 जो संघीय न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार के विषय में है, धारा 209 जो निर्णयों और आज्ञप्तियों के रूप के विषय में है, धारा 210 जो अन्य न्यायालयों पर संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विषय में है, और धारा 214 जो भारत के बाहर के न्यायालयों पर संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के विषय में है।

अतएव यह प्रस्थापना है कि इन आवश्यक संशोधनों के द्वारा संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को पूर्ण और स्वतंत्र बना दिया जाये। निस्सन्देह यह अंतरिम उपाय ही है

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

क्योंकि यह 26 जनवरी 1950 तक रहेगा जब कि संविधान लागू हो जायेगा। 26 जनवरी 1950 को, संघीय न्यायालय की शक्तियां वे ही होंगी जो संविधान में उल्लिखित हैं।

श्रीमान, मैं यह प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:—

"That the Bill to abolish the jurisdiction of His Majesty in Council in respect of Indian appeals and petitions, introduced on September 14, 1949, be taken into consideration by the Assembly."

क्या कोई सदस्य उसके विषय में कुछ कहना चाहता है?

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान, मुझे डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है। यह ठीक ही है कि प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार, जो हमारी न्यायिक दासता का प्रतीक है, यथासंभव शीघ्र समाप्त हो जाना चाहिये। मैं नहीं समझता कि हमारे देश को गणराज्य घोषित करने में और प्रिवी परिषद् में कोई संबंध है या नहीं। जब स्वतन्त्रता अधिनियम पारित हुआ था, तब वह हमारे लिये काफी संकेत था कि हम प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दें। मैं समझता हूं कि कनाडा में भी, जहां संबंध पूर्ववत् है, उस सम्बन्ध को समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। मैंने आज 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में पढ़ा है:

"In the speech from the throne at the opening of Canada's 21st Parliament, yesterday the Governor-General Viscount Alexander announced that two Bills would be introduced aimed at cutting Dominion ties with Westminster.

One would be a Bill to amend the Supreme Court Act so that the Supreme Court of Canada would beceme the final court of appeal for Canada."

[कनाडा की 21वीं संसद के सत्रारंभ पर सिंहासन की वक्तृता में गवर्नर जनरल विस्काउंट एलक्जेण्डर ने यह घोषणा की है कि दो विधेयक पेश किये जायेंगे, जिनका उद्देश्य वेस्टमिनस्टर से अधिराज्य के संबंधों को तोड़ना है।

उनमें से एक विधेयक उच्चतम न्यायालय अधिनियम को संशोधित करने के लिये है जिससे कि कनाडा में अन्तिम अपील का न्यायालय वहां का उच्चतम न्यायालय ही बन जायेगा।]

अत: मैं समझ नहीं पाता हूं कि आज हम जो बात कर रहे हैं वह बहुत पहले क्यों नहीं की गई। 1947 में जब संविधान सभा के विधायक भाग में संघीय

न्यायालय की शक्तियों को बढ़ाने का एक विधेयक रखा गया था, तब अजमेर-मेरवाड़ा को उन उच्च न्यायालयों में समाविष्ट नहीं किया गया था जहां से प्रिवी परिषदों के स्थान पर संघीय न्यायालय को अपीलें जानी थीं, क्योंकि अजमेर-मेरवाड़ा में न्यायिक आयुक्त का ही न्यायालय है। किन्तु उस समय हमने, बहुत से लोगों ने, यह संकेत किया था कि एक दम ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे प्रिवी परिषद् का यह क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाये।

आपराधिक मामलों के सम्बन्ध में हम गत दो वर्षों से यह प्रयत्न कर रहे हैं कि प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाये। विधान-सभा में हमने एक विधेयक पारित किया था—डॉ. हरिसिंह गौड़ ने सूचना दी थी और मैंने विधेयक को पेश किया था—और बाद में मेरे कहने पर उसे प्रवर समिति में भेज दिया गया था। किन्तु प्रवर समिति में यह पता लगा कि संविधान-सभा के उस भाग को वैसी विधि बनाने का अधिकार नहीं था। अतएव संविधान सभा के अंतिम सत्र की समाप्ति से पूर्व, श्री नज़ीरुद्दीन अहमद और मैंने अगस्त के पूर्व ही, प्रिवी परिषद् की शक्तियों को समाप्त करने के लिये एक विधेयक भेजा था। हम चाहते थे कि क्षेत्राधिकार को एक दम समाप्त कर दिया जाये। किन्तु दुर्भाग्य से उस विधेयक की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। मुझे प्रसन्नता है कि आखिर इस सत्र के अन्तिम दिन, यह विधेयक पेश कर दिया गया है।

इस विधेयक का स्वागत करते हुए मैं कहना चाहता हूं कि हमारे अधीर होने का केवल यही कारण नहीं है कि हमारी न्यायिक दासता समाप्त हो जाती है किन्तु मैं मसौदा-समिति को उनके मसौदे पर बधाई देना चाहता हूं कि वह मेरे मसौदे से कहीं अधिक उत्तम है। यह भी कारण हो सकता है कि उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने में इतना समय लगाया। विद्यमान रूप में इस मसौदे के दो भाग हैं, एक प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने के सम्बन्ध में है और दूसरा संघीय न्यायालय को तत्स्थायी क्षेत्राधिकार प्रदान करने के विषय में है। मुझे प्रसन्नता है कि खण्ड 5 भी रख दिया गया है क्योंकि उसका मजमून वास्तव में अनुच्छेद 308 में नहीं आता था। अनुच्छेद 308 का प्रभाव यही है कि प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जायेगा। किन्तु उससे प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार संघीय न्यायालय को नहीं मिलता था। अब खंड 5 द्वारा प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार संघीय न्यायालय को मिल जायेगा। आपराधिक मामलों में प्रिवी परिषद् को जो क्षेत्राधिकार प्राप्त था वह विशेष प्रकार का था जो उसी राज्य की प्रिवी परिषद् को प्राप्त हो सकता था जहां राजतन्त्र हो। अब खंड 5 में ये शब्द हैं "भारतीय अपीलों और याचिकाओं को सुनने और निर्णय करने का वही अधिकार जो सपरिषद् राजा महोदय को प्राप्त है चाहे राजा के परमाधिकार के बल पर या अन्यथा।" अतएव खंड 5 के अंतर्गत ये शक्तियां संघीय न्यायालय को हस्तान्तरित कर दी गई हैं।

जब मैं अपने संशोधन पर आऊंगा तब मैं बताऊंगा कि यह अपीलों आदि विषयक साधारण क्षेत्राधिकार से कितना भिन्न है। इस समय मुझे उस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मैं इस सम्बन्ध में केवल आपको यह बात कहना चाहता हूं कि खंड 9 में संघीय न्यायालय की व्यवहार विषयक शक्तियों

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

का उल्लेख है पर खंड 5 में संघीय न्यायालय को आपराधिक शक्तियां प्रदान करने के पश्चात् उनके विषय को कोई उल्लेख नहीं है और मैंने उस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया है।

इसी प्रकार खंड 4 के विषय में, जिसमें वे अपवाद दिये गये हैं जिनके अनुसार कुछ मामलों के सम्बन्ध में प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार जारी रहेगा, मेरा नम्र निवेदन है कि हमें वास्तव में ऐसे मामलों में प्रिवी परिषद् का कोई क्षेत्राधिकार नहीं रहने देना चाहिये, जिनके विषय में अब तक परिषद् ने कुछ नहीं किया है। मेरे विचार में ऐसे मामले, जिनमें प्रिवी परिषद् ने कुछ नहीं किया है, एक दम संघीय न्यायालय में स्थानान्तरित हो जाने चाहियें। आखिर अपील की याचिका में दो भाग होते हैं। सर्वप्रथम याचिका स्वत: ही रजिस्ट्रार के पास जमा करा दी जाती है और रजिस्ट्रार अपील को औपचारिक रूप में जमा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। फिर पहली सुनवाई में प्रश्न पर विचार करके मंजूरी दे दी जाती है। उचित तो यह है कि जो अपीलें केवल जमा ही कराई गई हैं उनके विषय में समस्त कार्यवाही भारत में होनी चाहिये क्योंकि अब तक उनके विषय में प्रिवी परिषद् में कुछ हुआ ही नहीं है।

जिन मामलों में कुछ किया जा चुका है, जहां वे अन्तिम रूप में प्रिवी परिषद् में पेश किये जा चुके हैं, जहां लोगों ने वकीलों आदि पर लाखों रुपये व्यय कर दिये हैं, उन मामलों को प्रिवी परिषद् सुन ले, जो कि बीस ही हैं जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने संकेत किया है। किन्तु कोई कारण नहीं है कि जिन मामलों में याचिकाओं को प्रिवी परिषद् में केवल जमा ही किया गया है, जिन पर प्रिवी परिषद् को क्यों विचार करने दिया जाये और मंजूरी या नामंजूरी का प्रश्न निश्चय क्यों करने दिया जाये। मैं तो कम से कम यही समझता हूं कि जहां तक उस मामले का वैधानिक पहलू है, हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उन मामलों में समस्त कार्यवाही भारत में ही हों। खंड 5 (2) में लिखा है कि चाहे मंजूरी दे दी गई हो फिर भी आगे की कार्यवाही भारत में होगी। किन्तु मैं समझता हूं अधिक वैधानिक और अधिक न्यायपूर्ण बात यह है कि समस्त कार्यवाही भारत में ही हो।

लम्बित मामलों के विषय में यह बात कि जहां तक कोई ऐसे मामले हों जो प्रिवी परिषद् द्वारा निबटाये न गये हों और उन्हें 1949 के इस सत्र में न समाप्त किया गया हो, मुझे आशा है कि वे सब असमाप्त मामले यहां आ जायेंगे, क्योंकि आगे प्रिवी परिषद् से संबंध रखने से कोई प्रयोजन नहीं है, मैंने एक संशोधन भेजा है किन्तु इस समय मैं सदन का समय नहीं लेना चाहता। श्रीमान, मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, मैं इस विधेयक पर विचार करने के प्रस्ताव का स्वागत करता हूं। इस मामले में पहले ही अनावश्यक रूप में विलम्ब हो गया है, किन्तु मुझे हर्ष है कि यह अंतत: आ गया है।

इस समय मुझे दो बातें निवेदन करनी हैं। एक यह प्रश्न है कि उन अपीलों का क्या होगा हो संघीय न्यायालय के विनिश्चय की अपीलें हैं। इस विधेयक द्वारा प्रिवी परिषद् को बिल्कुल वर्जन कर दिया है कि वह उन पर विचार नहीं कर सकती और वे समाप्त हो जायेंगी। मेरा निवेदन है कि इससे बहुत कठिनाई होगी। मेरा निवेदन है कि जो अपीलें प्रिवी परिषद् में इस आधार पर दाखिल कर ली गई हैं कि संघीय न्यायालय ने उनके विषय में अनुमति दे दी थी या स्वयं प्रिवी परिषद् ने अनुमति दे दी थी, उन अपीलों को इस प्रकार समाप्त नहीं करना चाहिये क्योंकि जब अपीलें जमा करा दी गईं तो अपीलकर्ताओं को एक प्रकार से निहित अधिकार मिल गया क्योंकि उन्हें सुनवाई का तथा औपचारिक रूप में निर्णय करने का अधिकार हो गया। यह अधिकार अब उनसे छीना जा रहा है। कई ने उन पर बहुत रुपया व्यय किया होगा। इससे सचमुच कठिनाई हो जायेगी।

दूसरी चीज जिस पर मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं, खंड 10 है। खंड 10 के विषय में व्यवहार प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित प्रक्रिया को बनाये रखा गया है। वे उपबन्ध हैं—व्यवहार प्रक्रिया की संहिता धाराएं 109, 110, 111 और उसी संहिता का आदेश 45। जहां तक इन धाराओं का सम्बन्ध है वे इस विधेयक के कारण बिल्कुल व्यर्थ नहीं हो जायेंगी। उनमें कुछ प्रारंभिक बातें हैं जो उच्च न्यायालय के निर्णयों से प्रिवी परिषद् में अपीलें करने के विषय में हैं। वे उपबन्ध केन्द्रीय विधान-मंडल के एक पूर्ववर्ती कानून में जो 1941 में पारित हुआ था, 1941 के अधिनियम 21 में पूरी तरह आ जाते हैं और विद्यमान विधेयक के खंड 9, उपखंड (2) में भी आ जाते हैं। मेरा निवेदन है कि इस विधेयक के खंड 10 से व्यवहार प्रक्रिया संहिता तथा 1941 के अधिनियम 21 के उपबन्धों में विरोध उत्पन्न हो जायेगा। 1937 के अनुकूल आदेश द्वारा, व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 111-क और आदेश 45 का नियम 17 बढ़ाये गये थे। किन्तु 1941 के अधिनियम द्वारा, व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 111-क तथा आदेश 45 के नियम 17 का निरसन कर दिया गया था और उस अधिनियम द्वारा संघीय न्यायालय को अपने नियम बनाने का अधिकार दिया गया था। उस शक्ति के अनुसार, संघीय न्यायालय नियम बना चुका है और अपीलों संबंधी प्रक्रियात्मक मामले उनमें आ जायेंगे। उन नियमों को देखते हुए, जो पूर्ण हैं, यह प्रगट है कि उन नियमों और व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों में विरोध हो जायेगा। मैं माननीय सदस्य से अनुरोध करूंगा कि वे खंड 10 को बनाये रखने की वांछनीयता पर विचार करें। जब उस पर विचार होगा तब मैं विस्तृत बातें कहूंगा, किन्तु अभी मैं केवल इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट कर देता हूं। कि यह खंड व्यर्थ है। श्रीमान, सामान्यत: मैं इस विधेयक का समर्थन करता हूं।

***श्री बी.एन. मुनावल्ली** (बंबई के राज्य): अध्यक्ष महोदय, इस विधेयक की भाषा बहुत ध्यानपूर्वक निश्चित की गई है और उन सब कठिनाइयों को हटा दिया गया है जो अब तक अनुभव की जा रही थीं। माननीय पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कहा है कि वे सब अपीलें जो प्रिवी परिषद् में नहीं सुनी गई हैं। संघीय न्यायालय में स्थानान्तरित कर दी जायें। किन्तु हमें प्रिवी परिषद् की प्रक्रिया पर भी ध्यान

[श्री बी.एन. मुनावल्ली]

देना चाहिये। कुछ अपीलों के विषय में जो पहले ही रजिस्टर की जा चुकी हैं, यह तो स्वाभाविक है ही कि उनके विषय में कुछ कार्य होना ही चाहिये। अतएव यद्यपि उन अपीलों पर प्रिवी परिषद् में सुनवाई नहीं होगी तथापि यह युक्तियुक्त है कि जो अपीलें रजिस्टर हुई हैं उन्हें विनिश्चय के लिये प्रिवी परिषद् के पास छोड़ दिया जाये। किन्तु अब जब कि विधेयक 10 अक्टूबर 1949 को लागू होगा तब तक अपीलें संघीय न्यायालय में निहित हो जायेंगी। और यदि प्रिवी परिषद् के लिये कुछ अपीलें हैं जिन्हें उच्च न्यायालय ने प्रमाणित कर दिया है तो उनके लिये संघीय न्यायालय में अपील का भी उपबन्ध कर दिया गया है। इन परिस्थितियों में मैं नहीं समझता कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये विधेयक में कोई परिवर्तन किये जाने चाहियें।

मेरे माननीय मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने कहा था कि उन लोगों का अधिकार छिन गया है जो संघीय न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध प्रिवी परिषद् से अपील कर सकते थे। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। तथ्य यह है कि यदि उन्होंने प्रिवी परिषद् में अपील कर दी है और यदि वह अपील रजिस्टर हो चुकी है तो प्रिवी परिषद् उन्हें सुनेगी। ऐसी हालत में कोई शिकायत हो ही नहीं सकती। विधेयक में प्रत्येक आकस्मिकता के लिये उपबन्ध कर दिया गया है और प्रत्येक शिकायत को दूर कर दिया गया है जो अब तक दूर नहीं हुई थी। अत: मैं इस विधेयक से सहमत हूं और इसका पूरे हृदय से समर्थन करता हूं।

***डॉ. बख्शी टेकचन्द** (पूर्वी पंजाब : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रस्थापना का समर्थन करने के लिये और अपने माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** अभी तक कोई संशोधन पेश नहीं किया गया है।

***डॉ. बख्शी टेकचन्द:** ओह, अभी तक संशोधन पेश नहीं हुआ है।

आज का दिन मैं कह सकता हूं इस देश के इतिहास में एक चिरस्मरणीय दिवस है। पूरे 175 वर्ष पश्चात् इस देश का ब्रिटेन के साथ न्यायिक संबंध समाप्त हो रहा है। माननीय सदस्यों को शायद पता होगा कि 1774 में ही, संसद के एक अधिनियम द्वारा, जो उससे विगत वर्ष में पारित हुआ था, बंगाल प्रान्त के फोर्ट विलियम में एक उच्चतम न्यायालय स्थापित हुआ था। उस अधिनियम में एक उपबन्ध रखा गया था कि उच्चतम न्यायालय के निर्णयों, आज्ञप्तियों और आदेशों के विरुद्ध अपीलें इंग्लिस्तान की प्रिवी परिषद् में जा सकेंगी। 1800 में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना मद्रास में हुई और 1823 में बंबई में भी एक उच्चतम न्यायालय स्थापित हुआ, और इन तीनों न्यायालयों से अपीलें इंग्लिस्तान के न्यायालय को नियमित रूप से जाती थीं। 1833 में ब्रिटिश संसद ने न्यायिक समिति अधिनियम पारित किया था जिसके अधीन प्रिवी परिषद् ने एक समिति नियुक्त की जो भारत

और उपनिवेशों से अपील सुनेगी, जिसमें वे व्यक्ति होते थे जिन्हें न्यायिक या वैधानिक अनुभव होता था। 1833 से अब तक वह महान निकाय इस क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था।

इस कालावधि में, मैं कह सकता हूं, प्रिवी परिषद् देश के न्यायिक प्रशासन में बहुत एकताकारक शक्ति रही है, और मैं, आपकी अनुमति से, उस कार्य की अत्यन्त सराहना करना चाहता हूं जो उसने किया है। एक समय था जब कि उच्च न्यायालयों में भारतीय न्यायाधीश नहीं होते थे और जब वकीलों की संख्या भी बहुत सीमित थी, उस समय प्रिवी परिषद् ने हिन्दू विधि के रहस्यों का उद्घाटन किया, मुस्लिम विधि के दस सिद्धान्तों को निश्चित किया, और स्पष्टत: उन प्रथाओं का निरूपण किया जो देश में प्रचलित थीं। प्रिवी परिषद् के लार्डों ने समय-समय पर विविध भारतीय विधियों का स्पष्टीकरण बिल्कुल निष्पक्ष भाव से किया है। उन्होंने वे सिद्धान्त निश्चित किये हैं जिन पर देश का न्याय-प्रशासन आधारित था। निस्संदेह उनसे कभी-कभी भूल चूक हुई है, किन्तु फिर भी प्रिवी परिषद् का महान एकताकारक प्रभाव था और कई बार उसने देश के न्यायालयों को उन आधारभूत विधि सिद्धान्तों का स्मरण कराया था जिन पर आपराधिक मामलों में न्याय-प्रशासन अवलम्बित है। समय पूरा होने पर यह लम्बा संबंध समाप्त हो रहा है, जो अनिवार्य है, क्योंकि अब हम स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके हैं। यह पहली बात है जो मुझे कहनी है।

इस विधेयक के उपबन्धों के सम्बन्ध में, हमें बताया जा चुका है कि हमारी लगभग 80 अपीलें, या ठीक-ठीक कहिये तो 79 अपीलें, इस समय प्रिवी परिषद् में लम्बित हैं। इनमें से 31 व्यवहार-विषयों की अपीलें तो साधिकार पेश की गई हैं और इनके संबंध में अभिलेख प्रथम फरवरी 1948 से पूर्व ही इंग्लिस्तान पहुंच चुके थे, जिस दिन संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार का विस्तार हुआ। 38 व्यवहार अपीलें भी भारत के उच्च न्यायालयों से गई हैं जिनमें विशेष अनुमति दी गई है। और अपीलें प्रिवी परिषद् में सुनवाई के लिये मंजूर कर ली गई हैं। आपराधिक विषयों की केवल दस ही अपीलें हैं जिनमें विशेष अनुमति दी जा चुकी है। जैसा कि माननीय सदस्यों को पता ही होगा, आपराधिक मामलों में प्रिवी परिषद् को साधिकार अपील नहीं की जा सकती। केवल लार्डों की विशेष अनुमति से ही वहां आपराधिक विषयों की सुनवाई हो सकती है। दस मामलों में ऐसी अनुमति दे दी गई है और उन पर विचार होने ही वाला है। लम्बित मामलों की यह पूरी सूची है। यद्यपि इन 79 मामलों में से 72 मामलों के अभिलेख इंग्लिस्तान में प्राप्त ही हो चुके हैं और 41 मामलों में अपील की याचनायें जमा की जा चुकी हैं।

एक और प्रकार के मामले हैं जो विद्यमान विधि के अंतर्गत प्रिवी परिषद् में जाते हैं, वे हैं भारत के संघीय न्यायालय से उन मामलों की अपीलें जिनमें भारत शासन अधिनियम, 1935, का या उसके अंतर्गत बनाये गये परिषद्-आदेशों का या स्वतंत्रता अधिनियम का निर्वचन अंतर्ग्रस्त है। किन्तु इस समय संघीय न्यायालय से कोई अपील प्रिवी परिषद् के समक्ष लम्बित नहीं है। अतएव यह प्रश्न नहीं उठता।

[डॉ. बख्शी टेकचन्द]

इन 79 अपीलों में से, यह संभव है कि लगभग 20 ही अगले वर्ष 26 जनवरी से पूर्व सुन ली जायेंगी, जब यह आशा की जाती है कि नया संविधान लागू होगा। यदि इस समय इन मामलों को भारत में ले भी आया जाये तो उन मुकदमे वालों को भी बहुत कठिनाई होगी जिसने हजारों रुपये खर्च करके अभिलेख छपवायें हैं तथा इंग्लिस्तान भेजे हैं, वहां वकील आदि किये हैं। अतएव यह बहुत उचित उपबन्ध है कि जितनी अपीलें 26 जनवरी तक वहां सुनकर निश्चित की जा सकती हैं उनकी सुनवाई और निर्णय वहीं होने दिया जाये। जो मामले उस समय तक समाप्त नहीं हो सकते हैं उन्हें स्वत: ही भारत को स्थानान्तरित कर दिया जायेगा।

अन्य मामले आपराधिक अपीलों से सम्बद्ध हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं वे ऐसे मामले हैं जिनमें विशेष अनुमति दे दी गई है। वे मुख्यत: ऐसे मामले हैं जिनमें अपीलकर्त्ता प्राय: मृत्यु दंड प्राप्त हैं या आजन्म कारावास प्राप्त हैं अथवा लम्बा कारावास भोग रहे हैं। इन व्यक्तियों का मुकदमा बहुत पहले चला था, और बहुत लम्बी कार्यवाही के पश्चात् उनके मामले प्रिवी परिषद् पहुंचे हैं और शीघ्र ही उनका निर्णय होने वाला है। मैं कह सकता हूं कि इन मामलों को भारत वापस मंगवाना बहुत अवांछनीय होगा, वरन् अत्याचार पूर्ण होगा, क्योंकि उससे अन्तिम विनिश्चय में कई मासों का विलम्ब हो जायेगा तथा अपीलकर्त्ताओं को अधिक व्यय करना पड़ेगा।

तीसरी प्रकार के भी कुछ मामले हैं जिनके विषय में मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कुछ बातें कहीं हैं। वे ऐसे मामले हैं जिनमें आपराधिक विषयों की अपील के लिये प्रिवी परिषद् से अनुमति मांगी गई है, किन्तु उन पर अभी तक सुनवाई नहीं हुई है। अब उनके विषय में क्या स्थिति होगी? दो उपाय संभव हैं। एक तो यह कि इन याचिकाओं को एक दम संघीय न्यायालय में स्थानान्तरित करने का उपबन्ध कर दिया जाये। पंडित ठाकुरदास भार्गव इसी उपाय का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। दूसरा उपाय यह है, जिसका विधेयक में उपबन्ध है, कि उन्हें परिषद् के समक्ष प्रारंभिक सुनवाई के लिये रखा जाये। मेरा निवेदन है कि विधेयक का यह उपबन्ध काफी युक्तियुक्त है। इन मामलों में, याचकों ने, जिनमें अधिकांश मृत्युदंड प्राप्त हैं जिसको पुष्टि उच्च न्यायालयों ने कर दी है, प्रिवी परिषद् से अपील करने की अनुमति मांगी है। ये याचिकाएं वहां जमा की जा चुकी हैं और प्रारंभिक सुनवाई कुछ दिनों में ही होने वाली है। सुनवाई के समय परिषद् कुछ मामलों में अनुमति देने से इन्कार कर सकती है। ऐसा होने पर मामला समाप्त हो जायेगा। दूसरी संभावना यह है कि वे अनुमति दे दें और फिर अपीलों की अन्तिम सुनवाई के लिये मंजूर कर लिया जाये। विधेयक में उपबन्ध रख दिया गया है कि यदि अनुमति दे दी जाये तो वे मामले स्वत: भारत को स्थानान्तरित कर दिये जायेंगे और इन अपीलों का अंतिम निबटारा भारत में संघीय न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में होगा। मेरे विचार में श्रीमान, यह बहुत युक्तियुक्त और क्रियात्मक उपबन्ध है और मेरा निवेदन है कि इसे स्वीकार कर लेना चाहिये। यह वांछनीय नहीं है कि इन दंड-प्राप्त लोगों की वेदन को अधिक लम्बा किया जाये किन्तु यही अभिष्ट है कि उन्हें यथासंभव शीघ्र सुनकर समाप्त कर दिया जाये।

एक माननीय सदस्य का एक अन्य सुझाव यह है कि संघीय न्यायालय को क्षेत्राधिकार दे दिया जाये कि वह 10 अक्तूबर के स्थान पर 20 सितम्बर से ही अनुमति की याचिकाओं को सुन सकें। मैं निवेदन कर सकता हूं कि इससे वास्तव में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। प्रिवी परिषद् के नियमों के अनुसार, उसका अगला सत्र (Michaelmas term) 10 अक्तूबर से आरम्भ होगा। और उस तारीख से पहले किसी याचिका की सुनवाई होने की कोई संभावना नहीं है, आज कल प्रिवी परिषद् की छुट्टी है। प्रिवी परिषद् के नियमों के अनुसार उन मामलों की सूची, जो अगले (Michaelmas) सत्र में सुनवाई के लिये पेश होंगे, 23 सितम्बर से पूर्व प्रकाशित नहीं की जा सकती, जब तक कि न्यायलार्ड विशेष आदेश न दे। अतएव विधेयक का यह उपबंध बहुत संतोषजनक तथा समुचित है मेरा निवेदन है कि इस विधेयक में बहुत अच्छे अंतर्कालीन उपबन्ध हैं जिससे कि थोड़े से मामलों की सुनवाई की अन्तरिम काल में वहां व्यवस्था हो जायेगी। जिससे मुकदमे वालों का कम से कम खर्च हो, और अधिकत: मामलों को भारत के उच्चतम न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया जाये। अत: मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***अध्यक्ष:** क्या इस प्रस्ताव पर अधिक वाद-विवाद आवश्यक है?

***माननीय सदस्यगण:** नहीं, श्रीमान।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"That the Bill to abolish the jurisdiction of His Majesty in Council in respect of Indian appeals and petitions, introduced on September 14, 1949, be taken into consideration by the Assembly."

[कि भारतीय अपीलों तथा याचिकाओं के विषय में सपरिषद् बादशाह महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने सम्बन्धी विधेयक पर, जो सितम्बर 1949 को पेश किया गया था, सभा विचार करे।]

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 2

***अध्यक्ष:** खंड 2। पहला संशोधन (संख्या 8) श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 2 के उप-खंड (1) में, 'entertain, and save as hereinafter provided to dispose of, appeals' इन शब्दों के स्थान पर 'entertain and, save as hereinafter provided, to dispose of appeals' ये शब्द

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

अथवा, विकल्प से,

'entertain and (save as hereinafter provided) to dispose of appeals' ये शब्द

अथवा, विकल्प से,

'entertain and (save as hereinafter provided) to dispose of appeals' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान, ये संशोधन रचना सम्बन्धी हैं, किन्तु उन्हें मसौदा-समिति पर नहीं छोड़ जा सकता, क्योंकि उसका विधेयक से कोई संबंध नहीं है, और हमारे नियमों के अन्तर्गत उन्हें माननीय प्रस्तावक सदस्य पर भी नहीं छोड़ा जा सकता।

मेरा अगला प्रस्ताव है:

"कि खंड 2 के उप-खंड (1) में, 'court' शब्द के स्थान पर 'Court' (बड़े 'C' से) शब्द रख दिया जाये।"

मैं संशोधन संख्या 10 को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि उसे पंडित ठाकुरदास भार्गव पेश करेंगे जिनका उससे अधिक संबंध है।

श्रीमान, मैं अब अपने अगले संशोधन संख्या 12 को पेश करता हूं–

"कि खंड 2 के उप-खंड (2) में,

(क) 'The appeals and petitions' इन शब्दों के स्थान पर 'An appeal or a petition' ये शब्द तथा

(ख) 'Indian appeals' इन शब्दों के स्थान पर 'Indian appeal' ये शब्द, तथा 'Indian petitions' के स्थान पर 'Indian petition' ये शब्द रख दिये जायें।"

वे सब रचना संबंधी हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान, मेरा संशोधन संख्या 10 वास्तव में संशोधन संख्या 14 के फलस्वरूप ही है। यदि संशोधन संख्या 14 स्वीकृत नहीं होता तो संशोधन संख्या 10 का प्रश्न ही नहीं उठेगा। अतएव आपकी अनुमति से मैं संशोधन संख्या 10 को तब पेश करूंगा जब कि सदन खंड 3 को समाप्त कर चुकेगा, जिसका मेरे संशोधन संख्या 14 से संबंध है।

***अध्यक्ष:** मैं नहीं जानता कि यह कैसे हो सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, यदि मेरे मित्र महोदय खंड 3 को पढ़ेंगे तो उसमें यह बात आ जाती है। 'Federal court' के लिये खंड 3 के उपखंड (2) में उपबन्ध है। इसीलिये खंड 2 में ये शब्द हैं 'other than the Federal Court'।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** इस सूची में ये खंड (2) में है और मेरा संशोधन उसी के विषय में है।

***अध्यक्षः** आप इस समय इसे छोड़ सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं संशोधन को स्वीकार नहीं करता। यह सर्वथा अनावश्यक है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 2 के उप-खंड (1) में, 'or otherwise' ये शब्द हटा दिये जायें।"

श्रीमान, मेरे लिये यह बहुत अपमानजनक है कि आप 26 जनवरी 1950 को भारत को गणराज्य स्थापित कर दें, उसके पश्चात् भी राजा की कुछ शक्तियां बनी रहें। हमारे विधिविद्वान डॉ. अम्बेडकर तथा श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर का ख्याल है कि प्रिवी परिषद् को आपराधिक मामलों में कुछ शक्तियां हैं। श्रीमान, हमने राजा को विस्थापित कर दिया है। फिर राजा महोदय का परमाधिकार कहां है? मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसी कमी रहने दी जाये जिससे हमारे ऊपर ब्रिटिश राष्ट्र का प्राधिकार, किसी रूप में 'or otherwise' इन शब्दों को प्रविष्ट करके, स्थायी बना दिया जाये? मेरे मित्र जो प्रसिद्ध वकील हैं जैसे मुंशी आदि यह कह सकते हैं कि मुझे कानून नहीं आता। किन्तु मैं अपने राजनैतिक अधिकारों को जानता हूं। मैं नहीं चाहता कि मुझे किसी प्रकार भारत के पुराने स्वामियों, अंग्रेज़ राजा या अंग्रेज पारषदों की प्रभुता के अन्तर्गत रहना पड़े।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं नहीं समझता कि ये संशोधन बहुत अपेक्षित हैं, क्योंकि प्रिवी परिषद् का क्षेत्राधिकार भी कानून द्वारा प्रदत्त परमाधिकार पर निर्भर हो सकता है। अतएव, 'or otherwise' ये शब्द नितान्त अपेक्षित हैं। हम केवल उसी क्षेत्राधिकार को पूर्णतः समाप्त नहीं करना चाहते जो परमाधिकार पर निर्भर है वरन् उसे भी समाप्त करना चाहते हैं जो अन्य साधनों पर निर्भर है।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 2 के उप-खंड (1) में, 'entertain, and save as hereinafter provided to dispose of, appeals' इन शब्दों के स्थान पर 'entertain and, save as hereinafter provided, to dispose of appeals' ये शब्द

अथवा, विकल्प से

'entertain and (save as hereinafter provided) to dispose of appeals' ये शब्द

अथवा, विकल्प से,

'entertain and (save as hereinafter provided) to dispose of appeals' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 2 के उप-खंड (1) में, 'court' शब्द के स्थान पर 'Court' (बड़े 'C' से) शब्द रख दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड (2) के उप-खंड (1) में, 'or otherwise' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 2 के उप-खंड 2 में,

(क) 'The appeals and petitions' इन शब्दों के स्थान पर 'An appeal or a petition' ये शब्द, तथा

(ख) 'Indian appeals' इन शब्दों के स्थान पर 'Indian apeals' ये शब्द, तथा 'Indian petitions' के स्थान पर 'Indian petition' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं खंड 2 पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि खंड 2 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 2 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 3

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर राज्य): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने किसी संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 3 के उप-खंड (2) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:–

'(2) Any legal proceedings pending by virtue of section 208 immediately before the appointed day before His Majesty in Council shall be transferred to the Federal Court and the Governor-General shall, in consultation with the Chief Justice

of India, make proper and suitable arrangements for their disposal and all such proceedings pending before the Federal Court shall abate on the appointed day.' "

[(2) को विधि-संबंधी कार्यवाही, जो धारा 208 के आधार पर नियुक्त दिवस से सद्यपूर्व सपरिषद् राजा महोदय के समक्ष लम्बित होगी, संघीय न्यायालय को स्थानान्तरित हो जायेगी और गवर्नर जनरल, भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके उस कार्यवाही को निबटाने के लिये उचित व्यवस्था भी करेगा और संघीय न्यायालय के समक्ष लम्बित ये सब कार्यवाहियां नियुक्त दिवस को समाप्त हो जायेंगी।]

इस खंड के विषय में मेरा निवेदन है कि यह समझना आसान है कि यदि आप किसी को कोई अधिकार देते हैं तो साधारणत: उन्हें उनसे वंचित नहीं किया जाना चाहिये। अब संघीय न्यायालय के आदेशों के सम्बन्ध में कई व्यक्तियों को शिकायत है। इस समय उपाय यह है कि वे प्रिवी परिषद् से अपनी शिकायत दूर करवा सकते हैं। उनमें से कुछ लोगों ने इन कार्यवाहियों के विरुद्ध याचिकाएं और अपीलें की होंगी। खंड 2 का उद्देश्य उन कार्यवाहियों को केवल रोकना है। अब हम ऐसा अधिनियम पारित कर रहे हैं जिससे प्रिवी परिषद् की शक्तियां समाप्त हो जायेंगी। अत: कोई कारण नहीं है कि इन लोगों को उन अधिकारों से वंचित किया जाये। किन्तु मुझे एक कठिनाई दिखाई देती है। यदि न्यायाधीशों ने उन विनिश्चयों में भाग लिया है जिनके विरुद्ध प्रिवी परिषद् में अपील की गई है तो ऐसी कार्यवाहियों या अपीलों को निबटाने के लिये उन्हीं न्यायाधीशों को रखना कठिन होगा। किन्तु उस कठिनाई को दूर करने के लिये यह आदेश निकाला जा सकता है। कि जिन न्यायाधीशों ने पहले के आदेशों की कार्यवाही में भाग नहीं लिया था वे ही बेंच में हों या कोई और उपबन्ध किया जा सकता है। यह बात भारत के मुख्य न्यायाधिपति या गवर्नर जनरल की क्षमता के परे नहीं है कि वह ऐसे मामलों को निबटाने के लिये कुछ प्रबन्ध करें।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): मेरे मित्र की वक्तृता को बीच ही में समाप्त किया जा सकता है यदि में उन्हें स्पष्ट कर दूं कि वास्तव में प्रिवी परिषद् में संघीय न्यायालय से गई हुई कोई अपील लम्बित नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** कोई अपील लम्बित नहीं है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** मैंने डॉ. अम्बेडकर और डॉक्टर बख्शी टेकचन्द से सुना है कि कोई अपील लम्बित नहीं है किन्तु अन्य कार्यवाहियां हो सकती हैं। मेरा निवेदन है कि यदि ऐसी कार्यवाहियां हों जिनसे सम्बद्ध व्यक्तियों की शिकायत दूर हो सकती हो तो उन्हें उन अधिकारों से केवल इस आधार पर वंचित नहीं किया जाना चाहिये, कि हम प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर रहे हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 3 के उप-खंड (2) के पश्चात्, निम्न परन्तुक जोड़ दिया जायेः—

'Provided that if special leave is granted on an Indian petition by the Judicial Committee of the Privy Council in a criminal matter, the appeal may be disposed of by the Judicial Committee before the commencement of the Constitution of India to be passed by the Constituent Assembly of India.' "

[किन्तु यदि किसी आपराधिक मामले में किसी भारतीय याचिका पर प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति विशेष अनुमति दे देती है तो न्यायिक समिति उस अपील को भारतीय संविधान-सभा द्वारा पारित भारतीय संविधान के आरंभ से पहले निबटा सकती है।]

इस सम्बन्ध में मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि यदि कोई अभियुक्त प्रिवी परिषद् को गया और उसकी अपील को विशेष अनुमति से या निम्नतर न्यायालय की अनुमति से जमा कर लिया गया हो तो उस मामले में अभियुक्त व्यक्ति के लिये यह बहुत कठिनाई होगी कि उसने एक बार लंदन में वकील नियुक्त करने में बहुत धन व्यय किया और फिर उसे भारत में वकील नियुक्त करने में भी धन व्यय करना होगा यह और भी कठिनाई की बात होगी कि मामला विधि के प्रश्नों पर ही निर्भर होगा। एक न्यायालय किसी अपील को टेक्नीकल आधार पर स्वीकार करता है और दूसरा न्यायालय उसका विनिश्चय करता है। वकीलों को तथा न्यायालयों को बदलने से व्यावहारिक कठिनाइयां होंगी। जब तक हमारा संविधान लागू नहीं होता, मेरा यहीं निवेदन है कि आपराधिक मामलों में, अभियुक्त व्यक्तियों को कठिनाइयों से बचाने के लिये, यदि प्रिवी परिषद् के समक्ष अपील हो, तो उसे उस अपील को सुनने का अधिकार होना चाहिये, यदि वह सुनवाई संविधान के लागू होने से पूर्व समाप्त हो जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार करना आवश्यक है। जैसा कि मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी ने कहा है, वास्तव में प्रिवी परिषद् में संघीय न्यायालय से गई हुई अपीलें कोई नहीं हैं, और इसलिये यह अत्यन्त अनावश्यक है कि मेरे मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव द्वारा प्रस्थापित अपवाद को रखा जाये, क्योंकि किसी पर उसका कुप्रभाव पड़ता ही नहीं, क्योंकि कोई मामला लम्बित ही नहीं है।

मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन के विषय में मैं नहीं समझ पाता कि हम उस सिद्धान्त का, जो यहां रखा गया है, उल्लंघन क्यों करें, कि जो भी आपराधिक मामला प्रिवी परिषद् के समक्ष नियुक्त दिवस से पूर्व जमा किया जा चुका है उसकी मंजूरी के विषय में प्रिवी परिषद् ही निर्णय करें और उनका अन्तिम

विनिश्चय संघीय न्यायालय करे। वे चाहते हैं कि इस नियम का उल्लंघन हो किन्तु उन्होंने उसके लिये जो युक्तियां पेश की हैं उनसे, मेरे विचार में, यह ठीक नहीं जंचता। अतएव मैं उनके संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 3 के उप-खंड (2) के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:—

'(2) Any legal proceedings pending by virtue of section 208 immediately before the appointed day before His Majesty in Council shall be transferred to the Federal Court and the Governor-General shall, in consultation with the Chief Justice of India, make proper and suitable arrangements for their disposal and all such proceedings pending before the Federal Court shall abate on the appointed day.' "

[(2) कोई विधि संबंधी कार्यवाही जो धारा 208 के आधार पर, नियुक्त से सद्यपूर्व सपरिषद् राजा महोदय के समक्ष लम्बित होगी, संघीय न्यायालय को स्थानान्तरित हो जायेगी और गवर्नर जनरल, भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करके उस कार्यवाही को निबटाने के लिये उचित व्यवस्था भी करेगा और संघीय न्यायालय के समक्ष लम्बित ये सब कार्यवाहियां नियुक्त दिवस को समाप्त हो जायेंगी।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं अपने संशोधन संख्या 17 को वापस लेना चाहता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 3 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 3 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 4

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं अपने संशोधन सं. 18 और 19 को पेश नहीं करना चाहता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 4 के उपखंड (ख) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिये जाये:—

'(b) any Indian appeal or petition on which the Judicial

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

Committee has, after hearing the parties, reserved judgment or order; or

(c) any Indian appeal which has been entered before the appointed day in the list of business of the Judicial Committee for the Michaelmas sittings of the year 1949 and which after that day is not directed to be removed therefrom by or under the authority of the Judicial Committee; or;'

और उप-खंड (ग) की संख्या उपखंड (घ) कर दी जाये।"

शायद उप-खंड (ग) के विषय में कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यद्यपि हमने मुख्य खंड कहा है कि अगले सत्र में जो मामले पेश होने हैं। उन्हें प्रिवी परिषद् के पास ही निबटाने के लिये छोड़ दिया जाये किन्तु यह बिल्कुल निश्चित नहीं है कि उनमें कितने बिना निबटाये ही रह जायेंगे। अतएव हम शुरू में ही प्रिवी परिषद् को यह कहने की अनुमति देना चाहते हैं कि 'यद्यपि कोई मामला सूची में है फिर भी हम कुछ मामलों की सुनवाई नहीं कर सकेंगे, ताकि कोई लम्बित मामले शेष न रहें। ऐसी हालत में वे मामले, जिनके विषय में प्रिवी परिषद् निदेश दे दे कि वह उन्हें नहीं सुन सकेगी, स्वत: संघीय न्यायालयों को स्थानान्तरित हो जायेंगे। उस प्रकार की आकस्मिकता का ही उपबन्ध करने के लिये मैं इस संशोधन द्वारा इस उपखंड (ग) को जोड़ रहा हूं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान में प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 4 का उप-खंड (ग) हटा दिया जाये।"

यह उप-खंड उन भारतीय याचिकाओं के विषय में है जो नियुक्त दिवस से पूर्व प्रिवी परिषद् के रजिस्ट्रार के पास जमा करा दी गई हैं। अब इन याचिकाओं के विषय में मुझे बहुत खेद है कि मेरे मित्र डॉ. बख्शी टेकचंद की वक्तृता को सुनने के पश्चात् भी मेरे विचार नहीं बदल सके हैं। मैं चाहता हूं कि उनकी युक्तियों को समझूं किन्तु मुझे खेद है कि बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन पर मुझे चिन्ता है, और इसी प्रकार मुझे इस संशोधन को पेश करने के लिये बाध्य होना पड़ा है। मेरे विचार में, प्रिवी परिषद् में याचिकाओं को जमा कराने के पश्चात् बड़े और महंगे वकीलों को तब रखा जाता है जब कि मंजूरी के प्रश्न की सुनवाई होती है, अपील जमा कराने पर नहीं। यदि उपखंड (ग) को हटा दिया जायेगा तो अपीलकर्त्ता अथवा आवेदक इस खर्च से बच जायेंगे।

दूसरी बात यह है कि इन शक्तियों को स्थानान्तरित करने का यही कारण है कि हम चाहते हैं कि हमारे अपने ही न्यायाधीश हमारे मामला को विनिश्चय हमारे ही न्याय-स्तर के अनुरूप और हमारी मानसिक विचारधारा और दृष्टिकोण के अनुसार

ही करें और इसलिये मेरे विचार में प्रत्येक भारतीय जिसने अपील की है, उसे मानसिक संतोष होगा कि उसके मामले का भारत के न्यायालय ही विनिश्चय कर रहे हैं। 'अपीलें भेजी जा चुकी हैं' केवल इसी प्रकार ऐसा नहीं होना चाहिये कि इन अपीलों को विदेश में जारी रखा जाये। अपील जमा हो जाना ही उस अपील को किसी न्यायालय में जारी रखने का पर्याप्त कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि जिन न्यायाधीशों ने अनुमति देते समय मामले की सुनवाई की थी, उन्हें ही उसका अन्तिम विनिश्चय भी करना चाहिये। इसी सिद्धान्त का यह उदाहरण है कि डॉ. अम्बेडकर ने अभी अपना संशोधन सं. 20 पेश करके उप-खंड (ख) और (ग) को बदलना चाहा है और यह उचित ही है कि मामले उन्हीं लोगों के पास रहें। यदि विशेष अनुमति देते समय न्यायाधीश कोई ऐसी बात कह दे जिसमें कोई विधि-संबंधी सिद्धान्त निहित हो या उस मामले के तथ्य सम्बन्धी कोई चीज अंतर्ग्रस्त हो, तो बाद में दूसरे न्यायाधीशों के लिये उस कथन के प्रभाव को हटाना कठिन होगा और या तो उस अभियुक्त व्यक्ति को उस कथन के लाभ से वंचित होना पड़ेगा या उससे दूसरे न्यायाधीश पर, जिसे बाद में विनिश्चय करना होगा, अत्यधिक विपरीत प्रभावित पड़ जायेगा। अतएव यदि इन सब मामलों को, जो अभी प्रारंभिक अवस्था में हैं, जिनमें केवल अपील जमा ही कराई गई है, यहां के न्यायालयों को स्थानान्तरित कर दिया जाये तो कोई हानि नहीं होगी। मेरा स्पष्ट मत यही है कि खंड (4) का उपखंड (ग) हटा दिया जाये।

(संशोधन सं. 22 पेश नहीं किया गया।)

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार नहीं करता।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 4 के उप-खंड (ख) के स्थान पर, निम्न उप-खंड रख दिये जायें:—

'(b) any Indian appeal or petition on which the Judicial Committee has, after hearing the parties, reserved judgment or order; or

(c) any Indian appeal which has been entered before the appointed day in the list of business of the Judicial Committee for the Michaelmas sittings of the year 1949 and which after that day is not, directed to be removed therefrom by or under the authority of the Judicial Committee; or;'

और उप-खंड (ग) की संख्या उपखंड (घ) कर दी जाये।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 4 के उप-खंड (ग) को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में खंड 4 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में खंड 4 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 5

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ श्रीमान, मैं संशोधन सं. 23 और 29 को पेश करना चाहता हूं वे दोनों रचना संबंधी हैं। मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 5 के उपखंड (1) में, 'jurisdiction' शब्द के स्थान पर 'power and jurisdiction' ये शब्द रख दिये जायें।"

यही पदावली संविधान के मसौदे के कुछ नव-रचित अनुच्छेदों में प्रयुक्त हुई है। इससे वाक्य पूर्ण हो जायेगा।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 5 के उपखंड (3) में 'certificate of the Registrar' इन शब्दों के स्थान पर 'certificate in this behalf by the Registrar' ये शब्द रख दिये जायें।"

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 5 के उप-खंड (3) में '(ख) अथवा (ग)' इन कोष्टकों, अक्षरों और शब्दों के स्थान पर '(ख), (ग) अथवा (घ)' ये कोष्टक, अक्षर और शब्द रख दिये जायें।"

यह तो बिल्कुल परिणामस्वरूप है।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 5 के उपखंड (1) में, 'jurisdiction' शब्द के स्थान पर 'power and jurisdiction' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 5 के उप-खंड (3) में '(ख) अथवा (ग)' इन कोष्टकों, अक्षरों और शब्दों के स्थान में '(ख), (ग) अथवा (घ)' ये कोष्टक, अक्षर और शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 5 के उप-खंड (3) में, 'certificate of the Registrar' इन शब्दों के स्थान पर 'certificate in this behalf by the Registrar' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में खंड 5 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में खंड 5 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 6

*__पं. ठाकुरदास भार्गवः__ श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 6 में, 'appeals' शब्द के पश्चात् 'or petitions' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः__ यह तो पंडित ठाकुरदास भार्गव की उस योजना के अन्तर्गत है कि खंड 4 के उपखंड (ग) को हटा दिया जाये। क्योंकि उसे सदन ने स्वीकार नहीं किया है अतः मुझे भय है कि इस संशोधन पर मत लेने से कोई लाभ नहीं होगा।

*__अध्यक्षः__ कुछ हो मैं इस पर मत तो ले ही लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 6 में, 'appeals' शब्द के पश्चात् 'or petitions' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 6 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 6 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 7

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 7 में 'effect' शब्द के पश्चात् अर्धविराम (,) हटा दिया जाये।"

यह कामा आंखों को भी बुरा लगता है शब्द ये हैं "shall have effect accordingly"। "effect" शब्द के पश्चात् अर्धविराम की आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि इस पर मत लेना अपेक्षित है, इस 'अर्धविराम' के प्रश्न पर।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इसे देख लिया जायेगा। मत लेने की अपेक्षा नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 7 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 7 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 8

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

कि खंड 8 में, 'petition' शब्द के स्थान पर 'Indian petition' ये शब्द रख दिये जायें।"

हमने खंड 2 के उप-खंड (2) में 'Indian petitions' इन शब्दों की परिभाषा कर दी है। वहां हमने लिखा है "the appeals and petitions aforesaid are hereinafter referred to as 'Indian appeals' and 'Indian petitions' respectively" यहां 'Indian appeals and petitions' ये शब्द साथ प्रयुक्त हुए हैं। इस खंड के अनुसार, वे इस प्रकार होने चाहियें 'Indian appeals' and 'Indian petitions'.

फिर मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 8 में, पंक्ति 3 में 'effect' शब्द के बाद का अर्धविराम और पंक्ति 4 में 'Council' के बाद का अर्धविराम, हटा दिया जाये।" ये शब्द व्यर्थ हैं और उनसे पढ़ने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 8 की संख्या उस खंड का उप-खंड (1) बना दी जाये और निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जायेः—

'(2) Any such order or decree made after the appointed day must be simultaneously made by the Supreme Court in India after the date of promulgation of the Constitution Act.' "

श्रीमान, मेरा.........

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मेरे माननीय मित्र को एक भ्रम है। वे समझते हैं कि नियुक्त दिवस 26 जनवरी है, नियुक्त दिवस तो 10 अक्तूबर है।

***श्री बी. दासः** बिल्कुल ठीक, आप कृपया मेरी बात सुनिये और आपकी समझ में आ जायेगा कि मेरी आपत्ति क्या है।

श्रीमान, मुझे यह बहुत बुरा लगता है कि भारत को गणराज्य घोषित करने की तारीख स्थगित हो गई है और हम ब्रिटिश राज्य के, अंग्रेज सरकार के ही नियन्त्रण में, किसी न किसी रूप में अब भी हैं। आशा है कि 26 जनवरी 1950 के पश्चात् भारत के मामलों में ब्रिटिश सरकार का, या सपरिषद् राजा महोदय का या किसी का कोई आधिपत्य नहीं रहेगा, जब तक कि किसी प्रकार राष्ट्रमंडल के गुप्तद्वार से कोई बात हो जाये, जैसा कि दुर्भाग्य से हमने एक अनुच्छेद में उपबन्ध किया है।

मैं अपने माननीय मित्र, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी से सहमत हूं कि नियुक्त दिवस पहले आ जायेगा। किन्तु क्या हम प्रत्याभूति दे सकते हैं कि प्रिवी परिषद् सब आदेशों को नियुक्त दिवस के लगभग ही पारित कर देगी और कोई भी 26 जनवरी तक स्थगित नहीं रहेंगे? यदि कोई आदेश पड़े रह जायें, क्योंकि प्रिवी परिषद् सपरिषद् राजा महोदय को रिपोर्ट पेश करती है और सपरिषद् राजा महोदय उस पर चुप रहें तथा 27 जनवरी को अपने आदेश पारित करें और ऐसे आदेश 27 जनवरी को निकाले जायें, तो उन आदेशों की भारत में कैसे घोषणा की जायेगी? फिर कई याचिकाएं भी हैं और उन पर आदेश 26 जनवरी को पारित किये जा सकते हैं। मान लीजिये उसे 26 जनवरी के पश्चात् भारत भेजने में समय लग जाता है। जब हम गणराज्य होंगे, हम प्रिवी परिषद् या तथा कथित सपरिषद् राजा महोदय के क्षेत्राधिकार को नहीं मानते। अतएव, उचित तरीका यह है कि यदि किसी ऐसे आदेश को रोक लिया जाये तो प्रिवी परिषद् या सपरिषद् राजा महोदय को चाहिये कि वह उसे हमारे सर्वोच्च न्यायिक न्यायालय, उच्चतम न्यायालय, को भेज दे, और यदि वे उसे इंग्लिस्तान में 27 जनवरी को घोषित करें, तो साथ ही, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को उसकी भारत में घोषणा करनी चाहिये।

हमें आगे किसी भी रूप में प्रिवी परिषद् के अधीन नहीं रहना चाहिये। उसके कारण भारत के रुपये से ब्रिटिश वकील मोटे से मोटे हो गये। प्रसन्नता की बात

[श्री बी. दास]

है और मुझे अत्यन्त हर्ष है कि भविष्य में ब्रिटिश वकील दुबले हो जायेंगे क्योंकि भारत से ब्रिटेन को जो बहुत सा धन जाता था वह अब नहीं जायेगा। किन्तु, साथ ही, मुझे अपनी प्रभुता पर अधिक गर्व है, मुझे अपनी स्वतंत्रता पर अधिक गर्व है। डॉक्टर अम्बेडकर और श्री मुंशी कह दें कि 26 जनवरी के पश्चात् ऐसा कोई आदेश शेष नहीं रहेगा—मैं श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के शब्द पर विश्वास नहीं कर सकता वे शेष रह सकते हैं। अतएव मैंने अपना छोटा सा संशोधन पेश कर दिया है जो शुद्धतः राजनैतिक और संविधानिक है। मैं कोई कानूनी बात नहीं कह रहा हूं, कानूनी मामलों पर कुछ कहने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। किन्तु मैं कहता हूं कि मेरे लिये यह अपमान की बात होगी यदि 26 जनवरी 1950, अर्थात् भारत के गणराज्य बनने के दिन, के बाद सपरिषद् राजा महोदय, या प्रिवी परिषद् कोई आदेश निकाले और उच्चतम न्यायालय उसके साथ ही कोई आदेश न निकाले। यह मेरा बहुत छोटा सा संशोधन है। मुझे आशा है कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस युक्ति को समझेंगे और हमारे सम्मान को बनाये रखने के लिये, और अंग्रेजों के साथ संबंध न रख के हमें अधिक अपमानों और बेइज्जतियों से बचाये रखेंगे, और इसके लिये मेरा संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं संशोधन को स्वीकार नहीं करता।

*__अध्यक्षः__ संशोधन सं. 33 पर मत लेने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 8 की संख्या उस खंड का उपखंड (1) कर दी जाये, और निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:—

'(2) Any such order or decree made after the appointed day must be simultaneously made by the Supreme Court in India after the date of promulgation of the Constitution Act.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि खंड 8 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 8 विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 9

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान, आपकी अनुमति से, मैं जिन संशोधनों को पेश करना चाहता हूं वे कुछ निम्न रूप में रख दिये गये हैं क्योंकि

मैंने सोचा कि जो संशोधन भेजे गये थे उनसे कुछ भ्रम होता है। यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैंने इन्हें सुसंगठित रूप में रख दिया है। कोई सार संबंधी परिवर्तन नहीं है। यह तो रूप का ही प्रश्न है और मैंने सोचा कि सदन इसे आसानी से समझ जायेगा कि हम खंड 9 में क्या कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** हां।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 9 के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:—

9. (1) In section 205 of the Government of India Act, 1935 (hereinafter referred to as the said Act), for sub-section (2) the following sub-section shall be substituted namely:—

Amendments of the Government of India Act, 1935.

"(2) Where such certificate is given, any party in a case may appeal to the Federal Court on the ground that any question as aforesaid has been wrongly decided and, with the leave of the Federal Court, on any other ground."

(2) In section 209 of the said Act, for sub-sections (1) and (2) the following sub-section shall be substituted, namely:—

"(1) The Federal Court in the exercise of its appellate jurisdiction may pass such decree or make such order as is necessary for doing complete justice in any cause or matter pending before it, including an order for the payment of costs, and any decree so passed or order so made shall be enforceable throughout the territory of India.' "

Act V of 1908.

[9. (1) भारत शासन अधिनियम, 1935 (जिसे आगे कथित अधिनियम कहा जायेगा), की धारा 205 में, उपखंड (2) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिया जाये:—

भारत शासन अधिनियम, 1935 का संशोधन

(2) जहां ऐसा प्रमाण पत्र दे दिया जाये, वहां उस मामले से संबद्ध कोई पक्ष संघीय न्यायालय से इस आधार पर अपील कर सकता है कि उपरोक्त किसी प्रश्न का विनिश्चय गलत किया गया है और, संघीय न्यायालय की अनुमति से, किसी अन्य आधार पर भी अपील कर सकता है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) कथित विधि की धारा 209 में, उपखंड (1) और (2) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिया जाये:—

(1) संघीय न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके ऐसी आज्ञप्ति या आदेश दे सकता है जो उसके समक्ष लम्बित किसी मामले या मुकदमे में पूर्ण न्याय करने के लिये अपेक्षित हो, जिसमें खर्च की अदायगी का आदेश भी समाविष्ट है, और ऐसे आदेश या आज्ञप्ति का भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र पालन होगा।]

1908 का अधिनियम 5

मैं एक दो शब्दों को जोड़ना चाहता हूं जो रह गये हैं:

"In the manner provided in that behalf in the Code of Civil Procedure, 1908, or in such other manner as may be prescribed by or under a law of the Dominion Legislature, or subject to the provisions of any such law, in the manner prescribed by rules made by the Federal Court."

"(3) In clause (a) of sub-section (3) of section 210 of the said Act, for the word, brackets and figure "sub-section (2)" the word brackets and figure "sub-section (1)" shall be substituted."

"(4) In section 214 of the said Act, after sub-section (1) the following sub-section shall be inserted namely:—"

आरंभ में कुछ शब्द और जोड़ना चाहता हूं:

"(1A) Subject to the provisions of the Code of Civil Procedure, 1908, or any law made by the Dominion Legislature, the Federal Court may also from time to time, with the approval of the Governor-General, make rules of court for regulating the manner in which any decree passed or order made by it in the exercise of its appellate jurisdiction may be enforced."

Act V of 1908.

खंड 9 का उद्देश्य यह है कि संघीय न्यायालय को सम्पूर्ण और स्वतंत्र न्यायालय बना दिया जाये। भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन कुछ निर्बन्धन थे जिनसे संघीय न्यायालय अपनी आज्ञप्तियां नहीं निकाल सकता था। उसे वह मामला मुकदमे के न्यायालय को भेजना पड़ता था। इन सब निर्बन्धनों को हटाना आवश्यक है क्योंकि संघीय न्यायालय प्रिवी परिषद् का स्थान लेने वाला है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:—

"खंड 9 के उपखंड (1) में, भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 209 की प्रस्थापित उपधारा (1) में, 'is necessary' शब्दों के स्थान पर 'as it may consider necessary' ये शब्द रख दिये जायें।"

प्रसंग में ये शब्द हैं 'make such order as is necessary'। मैं इसकी जगह रखना चाहता हूं 'as it may consider necessary'। यही उचित रूप है। डॉ. अम्बेडकर ने जो बड़ा संशोधन पेश किया है उसके विषय में मुझे यह कठिनाई है कि नये मसौदे में जो कि घुमाया गया है थोड़े से परिवर्तन थे, और फिर खंड 9 के उपखंड (4) के पेश करते समय कुछ और परिवर्तन कर दिये गये हैं। मैं इस नये परिवर्तन का जो कि जबानी ही पेश कर दिया गया है प्रभाव नहीं समझ सकता। मेरे विचार से उन्होंने ये शब्द जोड़ दिये हैं:

"Subject to the provisions contained in the Civil Procedure Code, 1908 or to any law or provision of law hereafter made by the Dominion Legislature."

बाद वाली शर्त के विषय में मेरा ख्याल है कि वह बिल्कुल अनावश्यक है। इस खंड 9 में भारत शासन अधिनियम की धारा 205 को संशोधित करने का प्रयत्न है। हमें आशा है कि यह भारत शासन अधिनियम 26 जनवरी को या तत्पश्चात् भारत के स्वतंत्र संविधान के पारित होने पर समाप्त हो जायेगा। अत: विद्यमान विधेयक के खंड द्वारा प्रस्तावित इस संशोधन को तो जीवनकाल ही अत्यल्प होगा। यह भारत शासन अधिनियम की संशोधित धारा 205 को नया जीवन काल प्रदान करेगा जो स्वयं 26 जनवरी को समाप्त होने जा रहा है। इस अल्प अवधि में, मैं नहीं जानता कि क्या धारा 205 पर प्रभाव डालने वाली कोई और विधि पेश की जायेगी। यदि ऐसा करना है तो इसे अभी इस सदन में, इस 'संविधान' शाखा में ही करना है, सदन के दूसरे रूप में अर्थात् 'विधायिनी' शाखा में नहीं। मैं अनुभव करता हूं कि यदि इस अल्प कालावधि में ही कोई नया विधान पेश करने की इच्छा नहीं है तो मैं नहीं समझता कि इन शर्तों की कोई आवश्यकता है। मैं नहीं जानता कि इन शब्दों का क्या आशय है क्या उनका कोई व्यावहारिक आशय है या वे केवल ऐसी संभावना के परित्राण-स्वरूप हैं जो वर्तमान ही नहीं हैं। मैं अपने अन्य संशोधन 40 और 41 को पेश नहीं करता।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 9 के उपखंड (1) में, भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 209 की प्रस्थापित नवीन उपधारा (1) के पश्चात्, निम्न नवीन उपधारा प्रविष्ट कर दी जाये:—

'(1A) The Federal Court in the exercise of its criminal jurisdiction conferred on it by section 5 of this Act shall notwithstanding

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

> anything to the contrary in any law, be entitled to pass any order of release or set aside any sentence or pass any other appropriate order which it considers just under the circumstances if it regards the provisions of the relevant law depriving life or personal liberty to be not consistent with reason and justice or the procedure observed as unfair or the detention as unreasonable or unjust.' "

आपकी अनुमति से मैं विकल्प रूप में निम्न प्रस्ताव करना चाहता हूं:–

सं. 43

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा निवेदन है कि यह संशोधन विधेयक के क्षेत्र से बाहर है: विधेयक में केवल क्षेत्राधिकार के स्थानान्तरण का विषय है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** यह क्षेत्राधिकार के स्थानान्तरण का प्रश्न नहीं है। मैं केवल खंड 5 में जो बात है वही रख रहा हूं और यह परिभाषा कर रहा हूं कि क्या क्षेत्राधिकार प्रदान किया जायेगा, मैं यह बात खोज करने के लिये नहीं छोड़ना चाहता कि राजा महोदय का परमाधिकार क्या था। अब ये शक्तियां अनिश्चित हैं और मैं उन्हें ठोस रूप में रख रहा हूं.......

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस विधेयक का प्रयोजन संघीय न्यायालय को कोई निदेश देना नहीं है कि वे उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग कैसे करें जो उन्हें इस विधेयक से मिल जायेगा।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** जब किसी विधेयक में विशिष्ट रूप से कोई क्षेत्राधिकार प्रदान करने की चर्चा हो, तो विधि का यह भी कर्तव्य है कि यह स्पष्ट करे कि वह क्षेत्राधिकार क्या है। मैं उस क्षेत्राधिकार के अर्थ को ही संक्षेप में रख देता हूं और यह नितान्त स्पष्ट कर देता हूं कि उस क्षेत्राधिकार का क्या अर्थ है।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बंबई : जनरल): क्या मैं औचित्य प्रश्न उठा सकता हूं? यह तो वास्तव में 'विधि की उचित प्रक्रिया' के प्रश्न को ही परोक्ष रूप से उठाना है जिसे अनेक बार निबटाया जा चुका है और जिस पर इस सदन में बार-बार वाद-विवाद हो चुका है। इस प्रस्थापना पर कई मास पूर्व निश्चय हुआ था और परसों भी हुआ था। इसमें मुख्य भावना यही है कि वह शक्ति उच्चतम न्यायालय को दे दी जाये। अतएव यह बिल्कुल नियम-विरुद्ध भी है, और डॉ. अम्बेडकर की दूसरी आपत्ति भी है ही।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मेरा निवेदन है कि गुणावगुण पर विचार करने पर यह नियम-विरुद्ध कदापि नहीं है। संशोधन में लिखा है। कि संघीय न्यायालय उस

समस्त आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा जो उसे धारा 5 द्वारा प्रदत्त होगा। धारा 5 में लिखा है:

"As from the appointed day, the Federal Court shall, in addition to the jurisdiction conferred on it by the Government of India Act, 1935, and the Federal (Enlargement of Jurisdiction) Act, 1947, but subject to the provisions of this section, have the same jurisdiction to entertain and dispose of Indian appeals and petitions as His Majesty in Council has, whether by virtue of His Majesty's prerogative or otherwise, immediately before the appointed day."

[नियुक्त दिवस से, संघीय न्यायालय को, भारत शासन अधिनियम, 1935, तथा संघीय न्यायालय (क्षेत्राधिकार विस्तार) अधिनियम 1947 के द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त, किन्तु इस धारा के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, भारतीय अपीलों तथा याचिकाओं को सुनने तथा निबटाने का वही क्षेत्राधिकार होगा जो नियुक्त दिवस से सद्यपूर्व सपरिषद् राजा महोदय को है, चाहे राजा महोदय के परमाधिकार के कारण या अन्यथा।]

अब तक मुकुट या राजा महोदय के इस परमाधिकार में यह 'उचित प्रक्रिया' की शक्ति समाविष्ट थी। इस समय यह शक्ति प्रिवी परिषद् के पास है। खंड 9 (1) में व्यवहार संबंधी शक्तियों की परिभाषा है। विधेयक के खंड 9 (1) में यह लिखा है:

"वह अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में ऐसी आज्ञप्ति या आदेश निकालेगा, जो पूर्ण न्याय करने के लिये अपेक्षित हो।"

अत:, व्यवहार विधि के विषय में 9 (1) में शक्तियां दी गई हैं। अतएव यह बिल्कुल नियमानुकूल है।

***अध्यक्ष:** इस विधेयक का उद्देश्य यह है कि प्रिवी परिषद् को जो शक्ति और क्षेत्राधिकार हैं वे संघीय न्यायालय को दे दिये जायें। यदि प्रिवी परिषद् में वह शक्ति है, जिसका आप इस संशोधन में सुझाव दे रहे हैं तो वह संघीय न्यायालय को स्थानान्तरित हो ही जायेंगी। यदि ऐसा नहीं है तो प्रश्न यह है कि क्या इस विधेयक में आप संघीय न्यायालय की शक्तियों को बढ़ा सकते हैं या विस्तृत कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** खंड 9 (1) में उस शक्ति को बढ़ाना मेरी इच्छा नहीं है। शक्ति की परिभाषा में वह शक्ति है जो व्यवहार विषयों में पूर्ण न्याय करने के लिये अपेक्षित हो। इसी प्रकार मैं यह घोषणा करना चाहता हूं कि आपराधिक मामलों में परमाधिकार के प्रयोग में वह शक्ति क्या है। ऐसी शक्तियां इंग्लिस्तान के अलिखित अभिसमय में हैं और हम इन शक्तियों को पूरी तरह नहीं जानते,

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

किन्तु संघीय न्यायालय की शक्तियों को परिभाषित करने के लिये उन अभिसमयों का निर्वचन करना होगा। इन शक्तियों के निर्वचन का यही समय है, और मैं इसी खंड में निहित बात को स्पष्ट कर रहा हूं।

*अध्यक्ष: क्या वह निहित है जिसे आप स्पष्ट करना चाहते हैं? यदि यह उसमें है तो आपका संशोधन बिल्कुल अनावश्यक है। यदि यह नहीं है तो आप उसे जोड़ नहीं सकते।

*पं. ठाकुरदास भार्गव: डॉ. अम्बेडकर ने यह प्रस्ताव पेश किया है जिससे यह पता लगता है कि व्यवहार विषयों में न्याय करने के लिये क्या आदेश आवश्यक हैं। मेरा सुझाव यह है कि यही बात आपराधिक विषयों में भी की जाये। व्यवहार विषयों के लिये उपबन्ध कर दिया है। आपराधिक मामलों के लिये क्यों न दिया जाये?

*श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर (मद्रास : जनरल): हमने उल्लेख कर दिया है कि पूर्ण न्याय करने के लिये क्या शक्तियां अपेक्षित हैं। मेरे माननीय मित्र तो विद्यमान शक्तियों को बढ़ाना चाहते हैं और वह नहीं हो सकता।

*पं. ठाकुरदास भार्गव: उन्होंने व्यवहार विषयों का उपबन्ध कर दिया है पर वे आपराधिक विषयों पर चुप हैं। यदि सभा शक्तियों के विषय में मेरी परिभाषा को स्वीकार नहीं करती है तो मैं अन्तिम तीन पंक्तियों को हटाने के लिये तैयार हूं और यह कहा जाये कि अपनी शक्तियों के प्रयोग में संघीय न्यायालय किसी दंड को हटा सकता है अथवा किसी व्यक्ति को मुक्त कर सकता है।

*अध्यक्ष: इस मामले पर तो हम उस समय विचार कर सकते हैं जब हम संघीय न्यायालय की शक्तियों पर विचार कर रहे हों, और उस समय आप संशोधन पेश कर सकते हैं कि संघीय न्यायालय को यह शक्तियां दी जायें, जो आपने बताई हैं। किन्तु यहां हमारा इसी बात से संबंध है कि प्रिवी परिषद् में जो भी शक्ति है वह संघीय न्यायालय को दे दी जाये। अत: आपने जो प्रश्न उठाया है वह यहां नहीं उठता और मेरे विचार में वह नियम विरुद्ध है।

*पं. ठाकुरदास भार्गव: जहां तक संशोधन 43 का संबंध है, उसमें आपराधिक विषयों के विशेष क्षेत्राधिकार का विषय है, और आप उसे पेश करने की अनुमति नहीं देना चाहते। किन्तु जहां तक 39 का संबंध है, जिसे मैं पेश कर चुका हूं, मेरे विचार में कोई आपत्ति ठीक नहीं है। मैं यही घोषित कर रहा हूं कि खंड 5 के ठीक निर्वचन के अनुसार आपराधिक विषयों में क्या शक्तियां होनी चाहियें।

*अध्यक्ष: 39 के विषय में, मैं देखता हूं।

*पं. ठाकुरदास भार्गव: केवल 43 पर ही आपत्ति है, 39 पर नहीं।

*अध्यक्षः वह हमसे भिन्न कैसे है? उसमें भी यही लिखा है "The Federal Court..... shall........ be entitled to pass any order........ which it considers just under the circumstances........."

*पं. ठाकुरदास भार्गवः उससे यही पता लगता है कि आपराधिक विषयों में पूर्ण न्याय करने के लिये क्या शक्तियां हैं।

*अध्यक्षः मैं नहीं समझता कि इसे रखने का यह उचित स्थान है। यदि आप संघीय न्यायालय को कोई शक्ति प्रदान करना चाहते हैं, तो आप स्वतंत्र रूप से ऐसा कर सकते हैं या जब आप संघीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में विचार करें तब ऐसा कर सकते हैं, किन्तु इस समय नहीं कर सकते जबकि हम संघीय न्यायालय को वे सब शक्तियां दे रहे हैं जो प्रिवी परिषद् के पास हैं।

*पं. ठाकुरदास भार्गवः मेरा तो यही निवेदन है, श्रीमान, कि यदि 209 (1) के अंतर्गत व्यवहार विषयों का उल्लेख किया जा सकता है तो आपराधिक विषयों की शक्तियों का भी उल्लेख करना संभव है।

*अध्यक्षः आप किसका निर्देश कर रहे हैं?

*पं. ठाकुरदास भार्गवः मैं विधेयक के खंड 9 उप-खंड (1) का निर्देश कर रहा हूं।

*अध्यक्षः कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है "notwithstanding any law to the contrary, etc."

*पं. ठाकुरदास भार्गवः मैं तो केवल अनुच्छेद के सार को ही रखना चाहता हूं, अक्षरशः नहीं।

*अध्यक्षः आप गोलमाल तरीके से इस चीज को नहीं रख सकते। यदि इसे रखना है तो उचित रूप में रखना चाहिये।

*पं. ठाकुरदास भार्गवः मैं इन शब्दों को हटाने के लिये अनुमति मांग सकता हूं: "notwithstanding anything to the contrary in any law."

*अध्यक्षः प्रश्न यह है कि क्या यह संघीय न्यायालय की विद्यमान शक्तियों में वृद्धि है या नहीं। यदि यह वृद्धि है तो हम उस पर विचार नहीं कर सकते। मैं अपना निर्णय दे चुका हूं।

*श्री शंकरराव देव (बंबई : जनरल): श्रीमान्, आप अपना निर्णय दे चुके हैं और पता नहीं माननीय सदस्य हठ क्यों कर रहे हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, मैंने सुना नहीं कि श्री शंकर राव देव ने क्या कहा है।

***अध्यक्षः** मैं इसकी अनुमति नहीं दे सकता। यह नियम-विरुद्ध है।

अस्तु, बस ये ही संशोधन हैं। क्या कोई कुछ कहना चाहता है? खैर, मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। सर्वथम मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन पर मत लेता हूं। मेरे ख्याल में इसे पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। उसकी संख्या 37 है।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 9 के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'9 (1) In section 205 of the Government of India Act, 1935 (hereinafter referred to as the said Act), for sub-section (2) the following sub-section shall be substituted, namely:—

Amendments of the Government of India Act, 1935.

"(2) Where such certificate is given, any party in a case may appeal to the Federal Court on the ground that any question as aforesaid has been wrongly decided and, with the leave of the Federal Court on any other ground."

(2) In section 209 of the said Act, for sub-sections (1) and (2) the following sub-section shall be substituted, namely:—

"(1) The Federal Court in the exercise of its appellate jurisdiction may pass such decree or make such order as is necessary for doing complete justice in any cause or matter pending before it, including an order for the payment of costs, and any decree so passed or order so made shall be enforceable throughout the territory of India in the manner provided in that behalf in the Code of civil Procedure, 1908, or in such other manner as may be prescribed by or under a law of the Dominion Legislature, or subject to the provisions of any such law, in the manner prescribed by rules made by the Federal Court."

Act V of 1908.

(3) In clause (a) of sub-section (3) of section 210 of the said Act, for the word, brackets and figure "sub-section (2)",

the word, brackets and figure "sub-section (1)" shall be substituted.

(4) In section 214 of the said Act, after sub-section (1) the following sub-section shall be inserted, namely:—

"(1A) Subject to the provisions of the Code of Civil Procedure 1908, or any law made by the Dominion Legislature, the Federal Court may also from time to time, with the approval of the Governor General, make rules of court for regulating the manner in which any decree passed or order made by it in the exercise of its appellate jurisdiction may be enforced." Act V of 1908.

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर मैं श्री नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन सं. 38 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 9 के उप-खंड (1) में, भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 209 की उप-धारा (1) में, 'is necessary' इन शब्दों के स्थान पर 'as it may consider necessary' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा संशोधित रूप में खंड पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में खंड 9 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में खंड 9 को विधेयक में जोड़ दिया गया।

खंड 10

***अध्यक्षः** फिर हम खंड 10 को लेते हैं। श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का एक संशोधन है। क्या आप उसे पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** नहीं, श्रीमान, किन्तु मैं कुछ शब्द बोलना चाहता हूं।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

मैं खंड 10 का विरोध करना चाहता हूं, प्रथम कारण यह है कि यह अनावश्यक है, और दूसरी बात उससे कुछ अस्पष्टता आ जाती है। कारण ये हैं कि संघीय न्यायालय का निर्माण भारत शासन अधिनियम, 1935 के अधीन हुआ था। 1937 में उस अधिनियम के अनुसार अनुकूलन आदेश द्वारा व्यवहार प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर दिया गया था। एक संशोधन तो यह था कि संघीय न्यायालय को जाने वाली अपीलों के संबंध में व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 111-क जोड़ी गई थी, और दूसरा संशोधन यह था कि आदेश 45 में एक नया नियम 17 बढ़ाया गया था जो सामान्यत: प्रिवी परिषद् को जाने वाली अपीलों के विषय में था। अनुकूलन अधिनियम द्वारा किये गये संशोधनों से संघीय न्यायालय की अपीलें प्रिवी परिषद् की अपीलों से अलग हो गईं। इन अनुकूलनों से पूर्व प्रिवी परिषद् को भी अपीलें जाती थीं और संघीय न्यायालय को भी जाती थीं। किन्तु व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 109, 110 और 111 में वर्णित तथा उस संहिता के आदेश 45 में वर्णित प्रक्रिया कठिन थी। वे इसलिये आवश्यक हो गये थे क्योंकि प्रिवी परिषद् में अपील जाने से पूर्व भारत में कुछ प्रारंभिक पग उठाने अपेक्षित थे। प्रिवी परिषद् छह हजार मील के अंतर पर है, इसलिये प्रारंभिक कार्यवाही भारत में की जाती थी। किन्तु संघीय न्यायालय के निर्माण के पश्चात् प्रिवी परिषद् की अपीलों संबंधी कार्यवाही आवश्यक नहीं रही, क्योंकि वह न्यायालय भारत में था। इस परिस्थिति के कारण और इस कारण कि पक्षकों को असुविधा होती थी, जिन्हें एक बार उच्च न्यायालय में जाना होता था और फिर संघीय न्यायालय में जाना होता था, इसलिये 1941 का अधिनियम 21 पारित किया गया था। अधिनियम से विद्यमान विधि में आमूल परिवर्तन कर दिये गये, जहां तक उच्च न्यायालय से संघीय न्यायालय को अपील जाने का संबंध है, और उस न्यायालय को अधिकार दे दिया गया कि वे अपने नियमों द्वारा अपनी प्रक्रिया का विनियमन कर सकें।

सन् 1941 के अधिनियम 21 के संबंध में केवल तीन धाराएं हैं जिसका निर्देश देना मेरे लिये आवश्यक है। धारा 2 से धारा 111-क का निरसन कर दिया गया जो अनुकूलन आदेश द्वारा प्रविष्ट की गई थी। धारा 2 से आदेश 45 के नियम 17 का भी निरसन हो गया, जो 1937 के अनुकूलन आदेश द्वारा व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 45 में प्रविष्ट किया गया था। 1941 के अधिनियम 21 की धारा 3 से संघीय न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति मिलती है। इसके अनुसार संघीय न्यायालय ने 1942 में नियम बनाये थे, जो समय-समय पर संशोधित किये गये थे। इन नियमों में संघीय न्यायालय को जाने वाली अपीलों संबंधी सब मामलों का विस्तार से उल्लेख किया गया है, व्यवहार विषयों में भी और आपराधिक विषयों में भी। अतएव, व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धाराएं 109, 110 और 111 तथा आदेश 45 जो प्रिवी परिषद् को जाने वाली अपीलों के सम्बन्ध में हैं, संघीय न्यायालय पर लागू नहीं होते।

इन धाराओं और आदेश 45 का जो कुछ अवशिष्ट है वह प्रिवी परिषद् की अपीलों के ही सम्बन्ध में है, और प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार की समाप्ति से

वे व्यर्थ हो जायेंगे और उनका निरसन करना होगा। किन्तु जहां तक वर्तमान प्रयोजन का संबंध है, मेरा निवेदन है कि वे आजकल की परिस्थितियों पर लागू नहीं हो सकते। 1941 के अधिनियम 21 संबंधी विधेयक के उद्देश्यों और कारणों के उल्लेख में लिखा था:

"भारत शासन अधिनियम (विधियों का अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा व्यवहार प्रक्रिया संहिता में धारा 111-क और आदेश 45 नियम 17 जोड़ दिये गये थे और इस प्रकार प्रिवी परिषद् की अपील प्रक्रिया संघीय न्यायालय की अपीलों पर लागू कर दी गई। उक्त प्रक्रिया कठिन और विलम्बकारी है, जो छह हजार मील परे स्थित न्यायालय के लिये है और उसे भारत में स्थित न्यायालय पर लागू नहीं करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, व्यवहार प्रक्रिया संहिता में इन उपबन्धों को जोड़ने से संघीय न्यायालय की वह शक्ति कम हो गई है जिससे वह भारत शासन अधिनियम की धारा 214 के अधीन अपनी प्रक्रिया और आचरण का विनयमन कर सकता था, और इस पर संघीय न्यायालय ने 1939 के मामले सं. 15 (लक्ष्मेश्वर प्रसाद शुक्ल बनाम वासदेव लाल चौधरी) में अपने विनिश्चय में विरोध रूप टिप्पणी की है। अत: संघीय न्यायालय की अपीलों की प्रक्रिया को सादा बनाने की दृष्टि से और भी संघीय न्यायालय को अपने आचरण और प्रक्रिया का विनियमन करने की शक्ति वापस देने की दृष्टि से भी यह अभीष्ट है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में जोड़ी हुई नई बातों का प्रभाव अब समाप्त हो जाये।"

मेरा निवेदन है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता में ये जो बातें जोड़ी गई हैं वे दूरस्थ न्यायालय पर लागू होती थीं। अतएव यह लम्बी प्रक्रिया 1941 के संशोधन अधिनियम द्वारा समाप्त कर दी गई। अत: व्यवहार प्रक्रिया संहिता के किसी निर्देश की अपेक्षा नहीं होगी, क्योंकि अपीलों के सम्बन्ध में व्यवहार प्रक्रिया के नियम वे ही हैं जो संघीय न्यायालय ने 1941 के अधिनियम 21 के अनुसार 1942 के संघीय न्यायालय नियमों द्वारा निर्धारित की हैं। इन परिस्थितियों में मेरा निवेदन है कि केवल वे ही नियम लागू होने चाहियें जो संघीय न्यायालय द्वारा बनाये गये हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं उनमें व्यवहार विषयों तथा आपराधिक विषयों दोनों का उल्लेख है। इन नियमों के निर्देशमात्र से माननीय सदस्य संतुष्ट हो जायेंगे कि मैंने जो बातें कहीं हैं वे कहां तक ठीक हैं।

मेरा निवेदन है कि खंड 10 अनुचित होगा जिसमें लिखा है कि अपीलों संबंधी आचरण के विषय में व्यवहार प्रक्रिया संहिता का प्रभाव पड़ेगा हम पहले ही पिछले खंड—खंड 9 में भारत शासन अधिनियम की धारा 214 में उप-धारा (1क) जोड़ चुके हैं तो संघीय न्यायालय को जाने वाली अपीलों के सम्बन्ध में है। इसलिये मेरा निवेदन है कि संघीय न्यायालय द्वारा निर्मित नियमों में, जो स्वयं पूर्ण हैं, तथा व्यवहार प्रक्रिया संहिता में चक्कर उत्पन्न हो जायेगा। यदि हम इन दो के चक्कर में पड़ जायें तो मेरा यही ख्याल होगा कि संघीय न्यायालय द्वारा निर्धारित नियम ही, जो स्वयं पूर्ण हैं, लागू होने चाहियें और खंड में व्यवहार प्रक्रिया संहिता का निर्देश हटा देना चाहिये। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य इस सुझाव पर विचार करेंगे तथा खंड 10 को हटाने पर सहमत हो जायेंगे।

*__श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:__ अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद भ्रान्ति में हैं। जहां तक विधि के अधीन नियमों का संबंध है, संघीय न्यायालयों के विनिश्चयों को प्रत्यक्ष लागू नहीं किया जाता। संघीय न्यायालय को अपने निर्णय निम्नतर न्यायालय को भेजने पड़ते हैं जो आवश्यक आदेश निकालता है और संघीय न्यायालय के निर्णयों के विषय में उन्हें लागू करने का प्रत्यक्ष अधिकार नहीं था। इसलिये वह कमी पिछले खंड द्वारा पूरी कर दी गई है जिसमें यह उपबन्ध है कि वे लागू किये जा सकेंगे और उन्हें निम्नतर न्यायालयों में भेजना अपेक्षित न होगा। यह असंगति थी कि उच्च न्यायालय संघीय न्यायालय के निर्णय को प्रभावी बनाने का प्रयत्न करता, किन्तु संघीय न्यायालय स्वयं अपनी आज्ञप्तियों को प्रवर्तन में नहीं ला सकता था। वह असंगति हटा दी गई है क्योंकि अब वे आज्ञप्तियां लागू की जा सकती हैं। मुझे निश्चय ही है कि संघीय न्यायालय के नियमों में ऐसी व्यवस्था नहीं थी और न हो ही सकती थी कि उन्हें लागू किया जा सके जबकि स्वयं कानून में यह उपबन्ध नहीं था कि संघीय न्यायालयों के निर्णयों को प्रत्यक्ष लागू किया जा सकेगा। अत: हम आवश्यक रूप से यह उपबन्ध करना चाहते है कि संघीय न्यायालय के निर्णयों को लागू करने के लिये समुचित व्यवस्था हो।

पिछले खंड में जो अभी पारित किया गया है। हमने ऐसा उपबन्ध रखा है कि संघीय न्यायालय की आज्ञप्ति या आदेश भारत अधिराज्य में सर्वत्र लागू किया जा सकेगा। यह उपबन्ध रखने के पश्चात् उसे लागू कैसे किया जाये? उसे अधिराज्य संसद द्वारा पारित नवीन अधिनियम द्वारा लागू करना होगा। किन्तु जब तक अधिराज्य संसद कोई विधि पारित न करे, तब तक कोई विधि अवश्य होनी चाहिये जिससे संघीय न्यायालय के निर्णयों को क्रियान्वित किया जा सके और उन्हें लागू करने के सम्बन्ध में पर्याप्त उपबन्ध होना चाहिये। उदाहरण के लिये इस खंड 10 का उद्देश्य यह है कि जहां तक संभव हो, नियम 15 के आदेश 45 को लागू कराया जाये। उदाहरण के लिये, सपरिषद् राजा महोदय का आदेश, आदेश 45 नियम 15 के उपबन्धों के अन्तर्गत, प्रत्यक्ष रूप में लागू नहीं किया जा सकता था। उसे केवल भारत के उच्च न्यायालयों में भेजा जाता है और उच्च न्यायालय उन्हें उन न्यायालयों को भेज देंगे जिन्होंने पहले आज्ञप्ति पारित की थी और वे ही आज्ञप्ति को क्रियान्वित करेंगे। यह तो केवल अनुकूलन का प्रश्न है। व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध यथास्थिति लागू होंगे। हद से हद यह कहा जा सकता है ''जहां तक यह लागू हो सके।'' अतएव संघीय न्यायालय के निर्णयों के लिये यह नियम 15 जैसे उपबन्धों का विस्तार है। बाद में अधिराज्य संसद को अधिकार होगा कि वह नियम 15 के अतिरिक्त या विरुद्ध कोई विधि पारित कर दे। किन्तु अभी हमारे पास समय नहीं है और कोई विधि पारित नहीं की गई है। अतएव, जब सपरिषद् राजा महोदय समस्त क्षेत्राधिकार संघीय न्यायालय को दे दिया जाये, और ऐसा उपबन्ध बना दिया जाये कि संघीय न्यायालय के समस्त निर्णय और आज्ञप्तियां भारत अधिराज्य भर में लागू हो सकेंगी, तब उन आज्ञप्तियों को क्रियान्वित करने के लिये समुचित व्यवस्था होनी चाहिये। निस्संदेह आपने सारवान उपबन्ध बना दिया है कि संघीय न्यायालय के निर्णय और आज्ञप्तियां भारत अधिराज्य में सब स्थानों पर लागू हो सकेंगी। इसी कारण व्यवहार प्रक्रिया संहिता और अधिराज्य संसद का निर्देश किया

गया है। निस्संदेह नियमों में तो अवश्यमेव किसी विद्यमान विधि का ही निर्देश होगा। आगे कोई भूल न रह जाये इसलिये नियमों के लिये उपबन्ध रखा गया है।

अतः तीन बातें हैं। एक तो यह है कि व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध किस हद तक अनुकूलित होकर संघीय न्यायालयों के निर्णयों पर लागू किये जा सकते हैं, नई व्यवस्था में, व्यवहार प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे। दूसरी बात यह है कि विधान-मंडल को सर्वोपरि शक्ति है कि वह हस्तक्षेप कर सकता है तथा समुचित परिवर्तन कर सकता है। इनके अधीन रहते हुए, यदि इन उपबन्धों में से किसी को कोई कसर हो तो संघीय न्यायालय के कोई नियम बनाये जा सकते हैं। अतएव उद्देश्य यह है कि इस चीज को पूर्ण बना दिया जाये, कि आज्ञप्ति को क्रियान्वित करने के लिये त्रिमुखी व्यवस्था होगी। इन उपबन्धों का यही उद्देश्य है।

***अध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर, क्या आप कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** नहीं, श्रीमान।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 10 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 10 विधेयक में जोड़ दिया गया।

नया खंड 11

***अध्यक्षः** एक और संशोधन है, एक नया खंड जोड़ना है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 10 के पश्चात्, निम्न नया खंड जोड़ दिया जायेः

'11. The Interpretation Act, 1899, applies for the interpretation of this Act as it applies for the interpretation of an Act of Parliament.' "

[11. निर्वचन अधिनियम, 1899, इस अधिनियम के निर्वचन के लिये वैसे ही लागू होगा जैसे कि वह संसद के किसी अधिनियम के लिये लागू होता है।]

श्रीमान, हम इस विधेयक द्वारा भारत शासन अधिनियम का संशोधन कर रहे हैं जिस पर ब्रिटिश निर्वचन अधिनियम, 1899 लागू है। हम भारत शासन अधिनियम का संशोधन करने के लिये इस सदन में दो अन्य अधिनियम पारित कर चुके

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

हैं और हमने उन अधिनियमों के निर्वचन के लिये 1899 के निर्वचन अधिनियम को लागू किया है। यह विधेयक मुख्यत: भारत शासन अधिनियम में ही शामिल किया जायेगा, अत: यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि इसका निर्वचन 1899 के निर्वचन अधिनियम पर ही निर्भर हो। यह बात असंगत होगी यदि अधिनियम का मुख्य अंश 1899 के निर्वचन अधिनियम के अनुसार हो और उस बड़े अधिनियम के अन्य भागों पर, जो इस विधेयक द्वारा पूरे होंगे, जनरल क्लाजेज अधिनियम लागू हो। यदि हम इस अधिनियम के निर्वचन को किसी प्रकार सीमित नहीं करेंगे तो साधारणत: जनरल क्लाजेज अधिनियम ही लागू होगा। इन्हीं परिस्थितियों में निर्वचन का यह नियम सब अन्य मामलों में ऐसी ही स्थिति में लागू किया गया था। यद्यपि यह अत्यन्त असंभावित है कि इस प्रकार के निर्वचन का कोई प्रश्न उठे, किन्तु हो सकता है कि कोई बारीक प्रश्न उत्पन्न हो जाये, जिसका निश्चय इसी बात पर निर्भर रहे कि कौन-सा निर्वचन अधिनियम लागू होगा। अतएव मेरे विचार में एक ही निर्वचन अधिनियम होना चाहिये जो उस पर लागू हो, अर्थात् 1899 का अधिनियम ही लागू हो, और भारत का जनरल क्लाजेज अधिनियम नहीं। मेरे विचार में हमने विगत में कुछ स्वीकार किया है और जैसी परिस्थितियां हैं उनका यह निष्कर्ष है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं उस संशोधन को स्वीकार नहीं करता, यह बिल्कुल अनावश्यक है।

***श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर:** श्रीमान, इस विषय में एक दो शब्द कहना चाहता हूं। जहां तक निर्वचन अधिनियम का संबंध है, वह केवल ब्रिटिश संसद के ही अधिनियमों पर लागू हो सकता है। यह ब्रिटिश संसद का अधिनियम नहीं है, यह हमारी संसद का अधिनियम है इसलिये इस तरह के अधिराज्य अधिनियम के निर्वचन के लिये आप निर्वचन अधिनियम के उपबन्धों को लागू नहीं कर सकते। हां, यदि कोई प्रश्न अकस्मात् उठ खड़ा हो कि इस अधिनियम का अर्थ निकलने के प्रयोजन के लिये ब्रिटिश अधिनियम का क्या निर्वचन होगा तो आप सदा निर्वचन अधिनियम का सहारा के सकते हैं। मान लीजिये, उदाहरण के लिये, आपको न्यायिक समिति-अधिनियम का निर्देश करना है तो उसका निर्वचन अवश्यमेव निर्वचन अधिनियम से होगा, क्योंकि वह सदा उपलब्ध होगा। यह अधिनियम विशेष तो अधिराज्य विधान-मंडल का अधिनियम है इसलिये इस पर जनरल क्लाजेज अधिनियम लागू होगा। इन दोनों में कोई भूल नहीं है। जब संघीय न्यायालय के समक्ष कोई प्रश्न आयेगा तो वह या तो ब्रिटिश संसद का अधिनियम होगा जिस पर निर्वचन अधिनियम लागू होगा, या वह अधिराज्य विधान-मंडल का अधिनियम होगा जिस पर जनरल क्लाजेज अधिनियम लागू होगा। अत: मेरा निवेदन है कि इस संशोधन की कोई अपेक्षा नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि खंड 10 के पश्चात्, निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:—

'11. The Interpretation Act, 1899, applies for the interpretation of this Act as it applies for the interpretation of an Act of Parliament.' "

[11. निर्वचन अधिनियम, 1899 इस अधिनियम के निर्वचन के लिये वैसे ही लागू होगा जैसे कि वह संसद के किसी अधिनियम के लिये लागू होता है।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

खंड 1

***अध्यक्षः** फिर हम खंड 1 को लेते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, में प्रस्ताव करता हूं:

"कि खंड 1 के उप-खंड (1) में, 'Abolition of Privy Council Jurisdiction Act' इन शब्दों के स्थान पर 'Privy Council (Abolition of Jurisdiction) Act' ये शब्द तथा कोष्टक रख दिये जायें।"

श्रीमान, अब भी हमने संशोधनकारी अधिनियम पारित किये, हमने अधिनियम के नाम में सदा पहले अत्यन्त महत्वपूर्ण शर्त रखी है और फिर कोष्टकों में विस्तृत विवरण लिखा। मेरे पास 1947 के अधिनियमों की सूची है। अधिनियम 12 का शीर्षक है "Railways (Transport of Goods) Act", अधिनियम 15 है "Armed Forces (Emergency Duties) Act", अधिनियम 29 का नाम है "Rubber (Protection and Marketing) Act" और अन्य बहुत से कानूनों के शीर्षक भी ऐसे ही हैं। अतः मेरा निवेदन है कि इस नाम से स्वीकार कर लेना चाहिये।

श्रीमान, मैं अपने दूसरे संशोधन को भी पेश करता हूं:

"कि खंड 1 के उप-खंड (2) के पश्चात्, निम्न नया उप-खंड जोड़ दिया जाये:

'(3) It shall also apply to Indian appeals and Indian petitions arising out of cases originating in Courts in the acceded States.'"

[(3) यह उन भारतीय अपीलों और भारतीय याचिकाओं पर भी लागू होगा जो उन मामलों के विषय में हैं जो भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों में उत्पन्न हुए थे।]

मुझे पता नहीं है कि प्रवेश करने वाली रियासतों पर संघीय न्यायालय का शासन है या नहीं हैं। मुझे स्पष्ट पता नहीं है। मैं इस संशोधन द्वारा स्पष्टीकरण चाहता हूं। यदि इसे स्वीकार कर लिया जायेगा तो संशोधन सं. 4 को आवश्यक निष्कर्ष के रूप में स्वीकार करना ही होगा।

***अध्यक्षः** क्या आप इसके विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यहां प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त करने पर जोर है, और स्पष्ट है कि 'Abolition of Jurisdiction' इन शब्दों को कोष्टकों में रखने से वह जोर पूरी तरह प्रकट नहीं होता।

***अध्यक्षः** क्या आप 7वें संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, भारत में प्रवेश करने वाले राज्य कभी भी प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं थे। किन्तु सावधानी के तौर पर, उप-खंड (2) में ये शब्द हैं "भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर" अतएव प्रवेश करने वाले राज्यों का कोई उल्लेख करना अनावश्यक है।

***अध्यक्षः** मैं अब संशोधनों पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि खंड 1 के उप-खंड (1) में, 'Abolition of Privy Council Jurisdiction Act' इन शब्दों के स्थान पर 'Privy Council (Abolition of Jurisdiction) Act' ये शब्द तथा कोष्टक रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि खंड 1 के उप-खंड (2) के पश्चात् निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जायेः—

'(3) It shall also apply to Indian appeals and Indian petitions arising out of cases originating in Courts in the acceded States.'"

[(3) यह उन भारतीय अपीलों और भारतीय याचिकाओं पर भी लागू होगा जो उन मामलों के विषय में हैं जो भारत में प्रवेश करने वाले राज्यों में उत्पन्न हुए थे।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"खंड 1 विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

खंड 1 विधेयक में जोड़ दिया गया।

शीर्षक तथा प्रस्तावना

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं प्रस्तावना पर अपना संशोधन पेश नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्तावना विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

प्रस्तावना विधेयक में जोड़ दी गई।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं शीर्षक पर अपना संशोधन पेश नहीं करना चाहता।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं शीर्षक पर अपने संशोधन को पेश नहीं करना चाहता।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि शीर्षक विधेयक का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

शीर्षक विधेयक में जोड़ दिया गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधित रूप में विधेयक को पारित किया जाये।"

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** प्रस्ताव यह होना चाहिये था:

"कि विधेयक को, जिस रूप में वह सदन में निश्चित हुआ है, पारित किया जाये।"

***अध्यक्षः** कार्यावली में यही प्रस्ताव है:

"कि विधेयक को, जिस रूप में वह सदन द्वारा निश्चित किया गया है, पारित किया जाये।"

***श्री के.एम. मुन्शीः** अध्यक्ष महोदय, मैं इस अवसर पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं जबकि हम ऐसा विधेयक पारित कर रहे हैं जिससे हमारा संबंध प्रिवी परिषद् से टूट जायेगा जो लगभग डेढ़ सौ वर्षों से हमारा सर्वोच्च न्यायालय था। मुझे भी, सदन के साथ तथा कदाचित् इस देश के साथ, संतोष है कि भविष्य में हमारा उच्चतम न्यायालय, तथा बहुत हद तक वर्तमान में हमारा संघीय न्यायालय, प्रिवी परिषद् से सर्वथा स्वतन्त्र हो जायेगा। इस समय जब कि हम प्रिवी परिषद् से सम्बन्ध विच्छेद कर रहे हैं, इस विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

श्रीमान, यद्यपि हम बिल्कुल खुश हैं कि हम न्याय-व्यवस्था के विषय में सर्वथा स्वतन्त्र हो रहे हैं, पर प्रिवी परिषद् से सम्बन्ध विच्छेद पर दुःख तो होगा ही—मुझे विश्वास है कि यह मेरी ही भावना नहीं है वरन् भारत में सब वकीलों की ही

[श्री के.एम. मुन्शी]

भावना है। हममें से अधिकांश प्रिवी परिषद् की ओर एक शताब्दी, या अधिक समय, से बहुत सम्मान से देखा करते थे। मैं कह सकता हूं कि वैयक्तिक रूप से अपने वृत्तिक जीवन के आरंभ में, कई वर्ष, मैंने 'भारतीय अपीलों' के उन सुन्दर पतले ग्रन्थों में, उन विद्वतापूर्ण नियमों को पढ़ा है, जो भारत की विधि का स्रोत ही है।

श्रीमान, ब्रिटिश संसद और प्रिवी परिषद् ये दोनों संस्थाएं मानवता को आंग्ल सेक्शन जाति की देन हैं। ब्रिटिश संसद ने गत कुछ शताब्दियों में केवल विधि ही निश्चित नहीं की है, वरन् ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल में सब अधिराज्यों तथा उपनिवेशों में अधिकारों और कर्तव्य की धाराओं का समन्वय किया है। जहां तक भारत का संबंध है, प्रिवी परिषद् का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह बहुत बड़ी समन्वयकारी शक्ति थी और हम भारतीयों के लिये वह विधिशासन का साधन तथा प्रतीक बन गई थी—इस विधिशासन की ही धारणा पर हमने उन लोकतंत्रात्मक संस्थाओं को आधारित किया है जिन्हें हमने अपने संविधान में स्थापित किया है।

श्रीमान, 26 जनवरी को हमारा उच्चतम न्यायालय बन जायेगा, और लोक तत्रांत्मक जगत के उच्चतम न्यायालयों के परिवार में शामिल हो जायेगा जिसमें सबसे प्राचीन और शायद सबसे बड़ी प्रिवी परिषद् है। मैं केवल यही आशा और विश्वास कर सकता हूं कि यद्यपि हम प्रिवी परिषद् से संबंध-विच्छेद कर रहे हैं, फिर भी हमारा उच्चतम न्यायालय प्रिवी परिषद् की परम्पराओं को बनाये रखेगा, वे परंपराएं जिनमें न्याय संबंधी वियोग, अटूट सच्चाई विधि-शासन के समक्ष सब को नीचा समझना, और केवल प्रजा के आपसी मामलों में ही नहीं, वरन् राज्य और प्रजा के मध्य भी अधिकारों और न्याय की ध्यानपूर्वक प्रतिष्ठा करना, ये सब बातें अंतर्ग्रस्त हैं। प्रिवी परिषद् की हमसे अधिक क्या प्रशंसा हो सकती है कि मैं आशा करता हूं कि हमारे उच्चतम न्यायालय को वह शक्ति प्राप्त हो कि वह निशंक न्याय की उस परंपरा को बनाये रखे जो प्रिवी परिषद् की प्रभुता के कारण इस देश में प्रचलित थी।

इन शब्दों के साथ, श्रीमान, मैं उस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं जो मेरे माननीय मित्र, डॉक्टर अम्बेडकर ने पेश किया है।

*__श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर:__ अध्यक्ष महोदय, इस विधेयक का उद्देश्य यह है कि नियुक्त दिवस से सपरिषद् राजा महोदय के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दिया जाये तथा संघीय न्यायालय की वही स्थिति बना दी जाये जो प्रिवी परिषद् की है। इस विधेयक के पारित होने से नये संविधान की उस स्थिति को प्राप्त करना सुगम हो जायेगा, जिसके अधीन उच्चतम न्यायालय को सांविधानिक तथा अन्य मामलों में अनन्य क्षेत्राधिकार दिया गया है, और उसे अपील का अंतिम न्यायालय बनाया गया है, केवल उन क्षेत्रों के विषय में ही नहीं जो विद्यमान शासन के अधीन प्रांत है, वरन्, देशी राज्यों के विषय में भी।

नये संविधान के अधीन और विधेयक के अधीन शासन में यही अंतर है कि नये संविधान के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को प्रान्तों के उच्च न्यायालयों से ही नहीं, देशी राज्यों के उच्च न्यायालयों से भी अपीलें जा सकती हैं, इस समय संघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार उन्हीं मामलों तक सीमित है जो विभिन्न राज्यों के प्रवेश पत्रों के अन्तर्गत उठते हैं। क्षेत्राधिकार के विविध शीर्षकों का विवरण देने के स्थान पर खंड 5 में उन सब क्षेत्राधिकार शीर्षकों का निर्देश किया गया है जिनका प्रयोग सपरिषद् राजा महोदय नियुक्त दिवस से पूर्व करते रहे हैं।

एक बात बहुत महत्वपूर्ण है जिसका मैंने वाद-विवाद के समय निर्देश किया था, कि संघीय न्यायालय का निर्णय समस्त भारत में क्रियान्वित हो सकेगा उसको क्रियान्वित कराने के लिये समुचित उपबन्ध रख दिया गया है।

फिर मैं एक दो व्यापक बातें करना चाहता हूं। उच्चतम न्यायालय की शक्तियां और क्षेत्राधिकार के विषय में जो उपबन्ध हैं उनका ध्यान रखते हुए इस विधेयक में भारत न्यायालयों और प्रिवी परिषद् के संबंधों की अंतिम क्रिया है और न्यायिक स्वशासन के सिद्धान्त को क्रियान्वित किया गया है जो उन अधिराज्यों में भी अधिराज्य पद का आवश्यक अंग बन रहा है जो ब्रिटिश मुकुट के प्रति निष्ठावान हैं। चाहे उस शासन के अधीन, जो भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम द्वारा समाप्त हो गया है, कार्यपालिका के विषय में चाहे कुछ भी कहा जाये, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस मामले पर विस्तृत तथा निष्पक्ष रूप में विचार करें तो प्रिवी परिषद् की न्याय समिति का अभिलेख बहुत अच्छा रहा है। मूर की भारतीय अपीलों में और तत्पश्चात् 'भारतीय अपीलों' में जो विवरण छपे हैं वे प्रिवी परिषद् की योग्यता का पर्याप्त प्रमाण हैं। उन्होंने भारतीय विधि शास्त्र को बहुत कुछ दिया है जिसमें हमारी स्वीय विधि भी है। मैं यहां यह उल्लेख कर सकता हूं कि 'दत्तक-ग्रहण' की विधि में ही पहले हिन्दू विधि के अपूर्ण ज्ञान के कारण उदार विचार प्रकट नहीं किये गये थे, किन्तु जब से भारतीय न्यायालयों ने उस पर उदार विचार व्यक्त किया तब से प्रिवी परिषद् ने भी वैसा ही कर दिया है; उसने भारत की निर्मित विधियों के विषय में प्रसिद्ध निर्णय किये हैं। उसने भारत की वाणिज्य विधि के विकास में बहुत कुछ हाथ बंटाया है। कभी-कभी शिकायतें हो सकती हैं कि प्रजा की स्वतंत्रता पर प्रभाव डालने वाले मामलों में प्रिवी परिषद् ने ऐसे निर्णय नहीं किये हैं जो भारतीय लोगों को पसंद हों। किन्तु कुछ मिलाकर, इतिहास का निर्णय न्यायिक समिति के पक्ष में ही होगा और हमारे संघीय न्यायालय तथा उच्च्तम न्यायालय के अनुसरण करने के लिये प्रिवी परिषद् की न्यायिक समिति से अधिक अच्छा कोई उदाहरण नहीं हो सकता।

किन्तु एक बात है जिस पर बल देना चाहता हूं, वह यह है कि संघीय न्यायालय या उच्च्तम न्यायालय को न्यायिक समिति के निर्णयों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये। आशा है कि संघीय न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ऐसे विधि शास्त्र का विकास कर लेंगे जो जनता की आत्मीयता तथा इस देश की हालत के अनुरूप होगा। अभी संघीय न्यायालय तथा नये संविधान के अधीन उच्चतम न्यायालय की

[श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर]

स्थिति अद्वितीय महत्व की होगी, और इतिहास का निर्णय इस बात पर निर्भर होगा कि वे कितनी स्वाधीनता, योग्यता और पांडित्य से अपना कार्य करते हैं।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने इस प्रलोभन पर, जिसे मैं अत्यन्त महत्वपूर्ण समझती हूं कुछ शब्द कहूं। मैं सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहती अतएव मुझे जो कुछ कहना है वह मैं सीधे-सीधे कह दूंगी।

मैं इस विधेयक का स्वागत करती हूं जो कुछ सैकिंडों में ही पारित होने वाला है और जो भारत के न्यायिक इतिहास में महान घटना है। जब यह विधेयक स्वीकृत हो जायेगा तो न्यायिक क्षेत्र में ब्रिटिश पद्धति और भारतीय पद्धति के बीच का संबंध, जो बहुत समय से चला आ रहा है समाप्त हो जायेगा। मैं विधि की विद्यार्थिनी तथा अभ्यासिनी होने के नाते यह कह सकती हूं कि इससे हमारी भारतीय विधि तथा भारतीय विधि शास्त्र को बहुत लाभ हुआ है। मुझे प्रिवी परिषद् के निर्णयों और अन्य महत्वपूर्ण निर्णयों को पढ़ने का अवसर मिला है। जिनका उल्लेख श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने दिया है। मुझे उस संबंध पर गर्व था जिससे हमें बहुत लाभ हुआ था। अत: हमें उस संबंध की सराहना करनी चाहिये जिससे अब हमारा विछोह हो रहा है।

जब यह विधेयक अधिनियम बन जायेगा तब इससे भारत में न्यायिक स्वशासन का युग आरंभ हो जायेगा। उसमें जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं वे इस देश की राजनैतिक और सांविधानिक स्वतन्त्रता के फलस्वरूप ही हैं। जब संविधान पारित हो जायेगा तब हमारे संघीय न्यायालय को उच्चतम न्यायालय की संज्ञा दे दी जायेगी। वह सब उच्च न्यायालयों के लिये अपील का सर्वोच्च न्यायालय होगा और संविधान के निर्वचन के लिये न्यायिक प्राधिकारी भी होगा। हम चाहते हैं और आशा करते हैं कि उच्चतम न्यायालय, जो संविधान का तथा उसमें प्रत्याभूत मूल अधिकारों का संरक्षक होने वाला है, अपने कृत्य को सुचारु रूप से पूरा करेगा तथा भारत के प्रत्येक नागरिक को यह कहने का अवसर मिलेगा कि उसने उसके अधिकारों की संविधान के सच्चे संरक्षक के रूप में रक्षा की है।

श्रीमान, आज प्रात:काल यह आलोचना सुनाई दी थी कि हम कई मामलों में प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को जारी रख रहे हैं। क्या मैं उसके उत्तर में यह कह सकती हूं कि जैसा डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कर दिया है ऐसा केवल कुछ मामलों में होगा जहां निर्णय पहले ही सुनाया जा चुका है या जहां राजा महोदय को प्रतिवेदन भेजा जा चुका है या जहां उन मामलों को न्यायिक समिति की कार्यावली में समाविष्ट कर लिया गया है। शेष समस्त मामलों का यहीं निर्णय होगा। हमने खंड 5 में यह भी उपबन्ध कर दिया है कि यदि 10 अक्तूबर के पश्चात् केवल अनुमति ही दी जाये तो शेष कार्यवाही संघीय न्यायालय में ही होगी। केवल बीस पच्चीस मामले ही हैं, और यदि 26 जनवरी 1950 से पूर्व उनका निर्णय नहीं हो पाता तो उन्हे भी भारत में भेज दिया जायेगा। यह बात तो न्याय और शिष्टता के अनुरूप ही है कि हम उन अपीलों को नहीं मंगवायें जिनका मैंने उल्लेख

किया है। इन थोड़े से शब्दों के साथ में इस विधेयक का समर्थन करती हूं और कहती हूं कि उच्चतम न्यायालय की प्रगति और कृत्यों को देखना हमारे इतिहास का अतीव मनोरंजक अंग होगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं डॉ. अम्बेडकर को बधाई देता हूं कि कम से कम अब उन्होंने इस विधेयक को पेश करना आवश्यक समझा है। एक बार पहले जब संसद के समक्ष एक विधेयक पेश किया गया था कि संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ाया जाये, तब हमने यह सुझाव दिया था कि प्रिवी परिषद् के समक्ष लम्बित सब अपीलों को संघीय न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया जाये और प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त कर दिया जाये—यह बात 1947 की है–हमें पता नहीं है कि उस समय डॉ. अम्बेडकर ने उसके विरुद्ध इतने आवेश से तर्क क्यों किया था। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को संविधान पारित करके समाप्त करने से पूर्ण डॉ. अम्बेडकर ने यह विधेयक पेश कर दिया है। आज प्रात: काल मैंने पत्रों में पढ़ा था कि कनाड़ा तक भी प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त करके अपने उच्चतम न्यायालय को शक्ति देने की व्यवस्था कर रहा है। अतएव चाहे हम अपने देश को गणराज्य, घोषित करें या न करें, फिर भी यह कार्यवाही तो पहले ही की जानी चाहिये थी।

मैं उन न्यायाधीशों का बहुत सम्मान करता हूं जो प्रिवी परिषद् में हैं। मैंने तो यही देखा है कि भारतीय और भारतीय के मध्य उन्होंने न्याय किया था। ऐसे अवसर हो सकते हैं जब हम उनके निर्णयों से सहमत नहीं हो सके थे जिनमें यूरोपीयों और भारतीयों के हितों में टक्कर थी। अब संघीय न्यायालय पर उसकी क्षमता, उसकी सच्चाई और उसकी योग्यता के विषय में भारी उत्तरदायित्व आ रहा है। जब विरोधी राजनैतिक दल हों जो एक दूसरे को पराजित करना चाहते हों, एक-दूसरे के विरुद्ध सफलता प्राप्त करना चाहते हों, तब उस परिस्थिति में शान्त रहना बहुत कठिन है। अतएव और भी अधिक उत्तरदायित्व उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के कंधों पर आ पड़ता है और राष्ट्रपति पर भी आ पड़ता है जिसे भविष्य में पदों को भरने के लिये उपयुक्त लोगों का चुनाव करना है।

प्रिवी परिषद् ने चाहे बहुत से मामलों में मार्ग प्रदर्शन किया हो, किन्तु जहां तक सामाजिक विधान का संबंध है, हमें उसके विरुद्ध शिकायतें हैं। वह प्राचीन रिवाजों को बदलना चाहती थी। वह हिन्दुओं की स्वीय विधि में बहुत सी बातों को पुरानी समझ पर व्यर्थ बताती थी। भारतीय उच्चतम न्यायालय ऐसा निर्णय नहीं कर सकता था। कई बातें ऐसे ही ठीक हो सकती थीं कि भारतीय न्यायालय उनका अन्यथा निर्वचन कर देता हैं। कई बातें केवल किताबी विधि से ही नहीं हुआ करतीं। उन्हें प्रगति से बदलने दिया जाता है। यदि न्यायालय निर्वचन से सहायता करें तो कई अच्छी बातें हो सकती हैं, कई क्रांतियां हो सकती हैं जिनका लोगों को पता नहीं लगे, और विधान-मंडल द्वारा कोई विधान बनाये बिना ही प्रगति हो सकती है। मुझे विश्वास है कि उच्चतम न्यायालय के भावी न्यायाधीश निस्सन्देह

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

योग्य सिद्ध होंगे और यह उचित ही प्रमाणित होगा कि प्रिवी परिषद् से यह शक्ति स्थानान्तरित की गई है, हय क्षेत्राधिकार स्थानान्तरित किया गया है।

अब जहां तक प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को 10 अक्तूबर के पश्चात् भी जारी करने देने का संबंध है, मुझे विश्वास है कि हम जिस दिन भारत को गणराज्य घोषित करेंगे, उस दिन यदि कोई अपीलें उसके पास लम्बित होंगी तो वे सब स्वयमेव उच्चतम न्यायालय को स्थानान्तरित हो जायेंगी। हमारे संविधान के अंत:कालीन उपबन्धों में एक उपबन्ध है कि ऐसी सब अपीलें स्वत: ही उच्चतम न्यायालय को आ जायेंगी।

श्रीमान, मुझे माननीय सदस्य को बधाई देने में बहुत प्रसन्नता है कि आखिर उन्होंने इस विधान को पेश करना उपयुक्त समझा है। इससे, ब्रिटिश के साथ अंतिम संबंध भी टूट जायेगा। जब अंग्रेज आये तो उन्होंने हमें अपने मामले स्वयं सुलझाने देने के स्थान पर हमारे ऊपर क्षेत्राधिकार जमाना चाहा। अब वह संबंध टूट गया है। मैं हम सबको तथा इस विधेयक के माननीय प्रस्तावक को बधाई देता हूं कि उन्होंने यह विधेयक पेश किया है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान, मुझे इस प्रस्ताव का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है 'कि यह विधेयक अब पारित कर दिया जाये'। अब प्रिवी परिषद् से हमारा संबंध बहुत समय के पश्चात् समाप्त हो रहा है। हमें इस अवसर पर प्रिवी परिषद् की सराहना करनी चाहिये जिसने गत पौने दो सौ वर्ष में हमारी विधियों के विकास में हमारी इतनी सहायता की है। प्रिवी परिषद् की परम्पराओं को, इसकी निष्पक्षता, इसकी स्वतंत्रता और उसके अन्य गुणों को, उच्चतम न्यायालय द्वारा ग्रहण करना होगा, और हमें आशा है कि उच्चतम न्यायालय भी उतना ही ऊंचा उठेगा।

अब, श्रीमान, ग्रेट ब्रिटेन तथा अमेरीका की पद्धतियों से, जिनकी हमने नकल की है, यह सर्वथा स्पष्ट है कि न्यायालय ही जनता के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के अन्तिम निर्णायक हैं। यदि हमने उस पद्धति को अपनाया है तो यह उचित ही है कि हमारा उच्चतम न्यायालय अन्तिम क्षेत्राधिकार का न्यायालय बने। हमारे कई देशवासियों ने प्रिवी परिषद् के न्यायिक कार्य में न्यायाधीशों के रूप में कार्य किया है। मुझे प्रसन्नता है कि अब मसौदा-समिति ने प्रिवी परिषद् के क्षेत्राधिकार को समाप्त करके उसे संघीय न्यायालय को प्रदान करने की प्रस्थापना की है।

अब प्रत्येक देश में राजा के कुछ परमाधिकार होते हैं। मैं यह कहना नहीं चाहता कि वे परमाधिकार क्या हैं किन्तु यह कहना पर्याप्त है कि राजा न्याय का स्रोत समझा जाता है, वह विधि से परे होता है और उसे क्षमा आदि करने की शक्तियां होती हैं। वे ही शक्तियां अब राष्ट्रपति को प्रदान की जा रही हैं। यदि न्यायालय किसी व्यक्ति को दंड भी दे चुके हों तब भी राजा अपने परमाधिकार से उन्हें क्षमा आदि कर सकता है।

आपराधिक विषय के भी कई मुकदमे हैं, जिनमें प्रिवी परिषद् ने अपने क्षेत्राधिकार में स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तों की रक्षा की और इसी आधार पर मामलों का

विनिश्चय किया। यह सत्य है कि आपराधिक मामलों में उसने बहुत कम अवसरों पर निम्नतर न्यायालयों के कार्य में हस्तक्षेप किया—किन्तु जैसा कि मैं कह चुका हूं उसका क्षेत्राधिकार एक विशेष प्रकार का था—किन्तु उसका उद्देश्य सदा न्याय-प्रशासन का हित ही था। मुझे आशा है, श्रीमान, कि हमारे संघीय न्यायालय को अब वही क्षेत्राधिकार दिया जा रहा है तो वह न्यायालय भी योग्यता से वही कार्य करेगा जिसके करने की प्रत्येक न्यायालय से आशा की जाती है। यद्यपि हम अपने सामान्य न्यायालयों को कार्यपालिका पर अभिष्ट प्रभुता देने में सफल नहीं हुए हैं, फिर भी यह विधेयक बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे संघीय न्यायालय को वह क्षेत्राधिकार मिल जाता है जो अब तक प्रिवी परिषद् के पास था। मुझे आशा है कि इससे सब व्यक्तियों के साथ न्याय होगा। मुझे प्रसन्नता है, श्रीमान, कि अब भारत में सब मामलों का निर्णय हमारे अपने न्यायालय की करेंगे। श्रीमान, मैं चाहता हूं कि प्रिवी परिषद् के प्रति हमारी कृतज्ञता प्रकट करूं जिसने बहुत समय तक सबके प्रति न्याय किया है।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि विधेयक को, जिस रूप में वह सदन द्वारा निश्चित किया गया है, पारित किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

संविधान के अनुवाद संबंधी प्रस्ताव

***श्री के.एम. मुंशी:** अध्यक्ष महोदय, मैं इस प्रस्ताव को पेश करना चाहता हूं जो मेरे नाम से है:

"Resolved that the President be authorised and requested to take necessary steps to have a translation of the Constitution prepared in Hindi and to have it published under his authority before January 26, 1950 and also to arrange for the preparation and publication of the translation of the Constitution in such other major languages of India as be deems fit."

[संकल्प किया जाता है कि अध्यक्ष को अधिकृत किया जाये तथा उससे प्रार्थना की जाये कि वह 26 जनवरी 1950 से पहले संविधान का हिन्दी में अनुवाद कराने तथा अपने प्राधिकार से उसे प्रकाशित कराने का अपेक्षित प्रबन्ध करे और संविधान के अनुवाद को भारत की उन अन्य बड़ी भाषाओं में भी जिनमें वह उचित समझे, तैयार और प्रकाशित कराने का भी प्रबन्ध करे।]

[श्री के.एम. मुन्शी]

श्रीमान, सदन को पूरा ज्ञान है कि संविधान का हिन्दी अनुवाद कराने के लिये आपने क्या-क्या पग उठाये थे 1947 में एक समिति नियुक्त की गई थी, जिसके सभापति मेरे माननीय मित्र श्री घनश्याम सिंह गुप्त थे। समिति ने हिन्दी में एक मसौदा तैयार किया। बाद में, श्रीमान, स्टीयरिंग समिति की प्रार्थना पर आपने उस संविधान के पुनरीक्षण के लिये 15 मार्च 1949 को एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। जैसाकि सदन को ज्ञात है, उस समिति के सदस्य बहुत सुविख्यात विद्वान थे जो भारत के विभिन्न भागों में साहित्यिक कार्य से सम्बद्ध हैं। समिति के सदस्य ये थे: श्री धनश्याम सिंह जी (सभापति), श्री राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, श्री सुनीति कुमार चटर्जी जो भारत में इंडो-आर्य भाषाओं के सबसे बड़े विशेषज्ञों में से हैं, श्री सत्यनारायण, इन महोदय ने दक्षिण में हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये जितना प्रयत्न किया है उतना किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार और श्री दाते, जो मराठी में सुविख्यात विद्वान हैं। इस समिति ने दूसरे अनुवाद का पुनरीक्षण किया है, वह मुद्रणालय में हैं और सदन में बहुत लोगों को आशा थी कि अनुवाद समय पर पूर्ण होकर सदन में पेश किया जा सकेगा। किन्तु मार्ग में बहुत सी कठिनाइयां हैं। समय पर्याप्त नहीं है, उसका यह भी अर्थ होगा कि नवम्बर सत्र के पश्चात् भी सभा की बैठक करनी होगी तभी वह अनुवाद सदन में पेश हो सकता है, और व्यय भी अनावश्यक रूप में अधिक होगा। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यह अधिक अच्छा है कि अनुवाद को, आप द्वारा पुनरीक्षण के पश्चात्, अथवा विशेषज्ञ समिति द्वारा तैयार किये गये रूप में, या किसी ऐसे अभिकरण द्वारा पुनरीक्षण के पश्चात् जिसे आप उचित समझें, आपके प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित कर दिया जाये। यह नितान्त आवश्यक है कि 26 जनवरी को आपके प्राधिकार के अन्तर्गत यह अनुवाद अवश्य प्रकाशित हो जाना चाहिये, कारण यह है कि 26 जनवरी को इस संविधान के प्रकाशित होते ही समस्त भारतीय भाषाओं को विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के लिये एक आधारभूत शब्दावली और आधारभूत अनुवाद की आवश्यकता होगी। इस समय तो ऐसी स्थिति है कि प्रत्येक प्रान्त में समाचार-पत्र संविधान के शब्दों का मनमाने ढंग से अनुवाद कर रहे हैं। कुछ अनुवाद तो असाधारण रूप से हास्यास्पद हैं और कुछ ठीक ठीक हैं, किन्तु यह आवश्यक है कि हमारी समस्त संविधानिक शब्दावली को किसी न किसी प्रकार से प्राधिकृत रूप में प्रकाशित करना चाहिये जिससे कि हमारी भाषाओं में अनुवाद सरल हो जायें। एक बार इस संविधानिक शब्दावली के प्रचलित होते ही, एक बार हिन्दी में अनुवाद के प्रकाशित होते ही समूचे देश भर में एकसम शब्दावली प्रयोग करना आसान हो जायेगा। इतना ही नहीं, किन्तु यदि और भी प्राधिकृत अनुवाद बने तो उनके लिये आधार भी यही बन जायेगा। अत: यह नितान्त अपेक्षित है कि यह अनुवाद तैयार हो।

एक बात और, और मैं समाप्त कर दूंगा। इस समिति में जो विशेषज्ञ हैं वे अपने अपने क्षेत्रों में सर्वोत्तम हैं जैसे भारत में मिल सकते हैं, और निस्संदेह उनके किये हुए अनुवाद का देश भर में बहुत सम्मान होगा। कुछ पत्रों में यह मत अभिव्यक्त किया गया है कि यह अनुवाद शायद बहुत जटिल होगा। अब यह अपने

अपने विचार हैं, किन्तु मैं तो यह बात कदापि नहीं समझ सकता कि हमारे संविधान का अनुवाद किसी भारतीय भाषा में तब तक कैसे हो सकता है जब तक कि हम नये शब्दों को गढ़ करके वैधानिक और सांविधानिक विचारों को प्रकट न करें जो हमने अंग्रेजी के संविधान में अभिव्यक्त किये हैं। संस्कृत के अतिरिक्त हमारी सब भाषाओं में वैधानिक और सांविधानिक शब्दों का कोई पूर्ण कोष नहीं है। संस्कृत शब्दावली भी अपर्याप्त है, और हमें शायद सांविधानिक विधि के कुछ आधुनिक विचारों को प्रकट करने के लिये नये शब्द गढ़ने पड़े। अत: मेरा निवेदन है कि चाहे कोई भी अनुवाद हो उसे अधिकांश में संस्कृत से ही शब्द लेने होंगे। मैं देखता हूं कि इस देश के कुछ लोगों में बहुत पक्षपात भावना है और वे समझते हैं कि सांविधानिक और वैधानिक शब्दावली भी ऐसी ही बननी चाहिये कि वह तथाकथित 'जनसाधारण' के लिये भी बोधगम्य हो। विश्व में कहीं भी ऐसा उलझा हुआ संविधान, जिसकी प्रत्येक धारा में विभिन्न सांविधानिक शब्द हों, ऐसी सरल या लोकप्रिय भाषा में नहीं लिखा गया कि जनसाधारण उसे समझ सके। यहां तक कि हमारे बहुत से वकीलों के लिये भी, मुझे विश्वास है कि कई पदावलियां, जो इस संविधान में प्रयुक्त हुई हैं—जो पदावलियां अमेरीकी या इंग्लिश संविधान से ली गई हैं—ऐसी हैं जो साधारण वकील नहीं समझ सके और बहुत पुराने वकील भी कई बार नहीं समझ सकते। जब तक वे सांविधानिक विधि से परिचित न हों जायें तब तक उनके लिये वे विचित्र शब्द हैं, विशेषत: हमारे जैसी भाषाओं में और मेरे विचार में यह आवश्यक है कि हमारी नई शब्दावली अधिकांश में संस्कृत से बननी चाहिये और शब्द संस्कृत धातुओं से बनने चाहियें, ज्यों ही ऐसा किया त्यों ही मुझे विश्वास है कि इससे एक मध्य बिन्दु बन जायेगा जिससे हमारी समस्त भारतीय भाषाओं की शब्दावली बन सकेगी, और नई हिन्दी की भी आधारशिला बन जायेगी जिसके विकास के ढंग पर इस सदन में तीन दिनों पूर्व ही विनिश्चय किया है। इन शब्दों के साथ मैं इस प्रस्ताव को सदन की स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रदेश और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री के.एम. मुंशी ने जो प्रस्ताव पेश किया है उसका सामान्यत: समर्थन करते हुए, क्या मैं सदन के समक्ष इस प्रस्ताव पर कुछ संशोधन पेश कर सकता हूं? मुझे खेद है, श्रीमान, कि यह कार्यावली गत रात्रि को ही मुझे मिली थी अत: मैं समय पर इन संशोधनों की सूचना नहीं भेज सका, जिसका यह परिणाम है कि मेरे माननीय साथियों को संशोधनों की प्रतियां नहीं मिली हैं।

अतएव मैं उन्हें एक एक करके पढ़ देता हूं।

"(1) कि प्रस्ताव में, 'the President be requested and authorised to' इन शब्दों के स्थान पर 'the President do' ये शब्द रख दिये जायें।

(2) कि प्रस्ताव में, 'before January 26, 1950' इन शब्दों तथा अंकों के स्थान पर 'as speedily as possible' ये शब्द रख दिये जायें।

[श्री एच.वी. कामत]

(3) कि प्रस्ताव में, 'the preparation and publication' इन शब्दों के स्थान पर 'early preparation and publication' ये शब्द रख दिये जायें।

(4) कि प्रस्ताव में, 'other major languages' इन शब्दों के स्थान पर 'other languages' ये शब्द रख दिये जायें।

यदि इन संशोधनों को सदन स्वीकार कर ले तो प्रस्ताव निम्न प्रकार बन जायेगा:

"Resolved that the President do take necessary steps to have the translation of the Constitution prepared in Hindi and to have it published under his authority as speedily as possible and also to arrange for the early preparation and publication of the translation of the Constitution in such other languages of India as he deems fit."

[संकल्प किया जाता है कि अध्यक्ष संविधान का हिन्दी में अनुवाद कराने तथा अपने प्राधिकार के अन्तर्गत प्रकाशित कराने के लिए यथासंभव शीघ्र अपेक्षित प्रबंध करे और संविधान के अनुवाद को भारत की उन अन्य भाषाओं में भी, जिनमें वह उचित समझे, तैयार और प्रकाशित कराने का भी शीघ्र प्रबन्ध करे।]

संशोधन सं. 1 के विषय में, मैं अनुभव करता हूं, श्रीमान, कि श्री मुंशी के प्रस्ताव में जो अभिव्यक्ति प्रयुक्त हुई है, वह कुछ कुछ असुन्दर सी है। जब सदन कोई प्रस्ताव स्वीकार करेगा तो अध्यक्ष को उस प्रस्ताव के फलस्वरूप प्राधिकार तो मिल ही जायेगा। प्रस्ताव में यह लिखने की आवश्यकता नहीं है कि अध्यक्ष को अमुक-अमुक कार्य करने के लिये प्राधिकृत किया जाता है। हम संकल्प करते हैं कि अध्यक्ष ऐसा करे और वही प्राधिकार भी है और प्रार्थना भी है, अत: मैं अनुभव करता हूं कि 'authorisation and request' ये शब्द इस संकल्प के प्रयोजन के लिये अनावश्यक है, उनसे सदन द्वारा स्वीकृत होने वाले प्रस्ताव की प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

संशोधन सं. (3) के विषय में, जो 'early preparation and publication' इन शब्दों के प्रवेश के विषय में हैं मुझे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मेरा विश्वास है कि श्री मुंशी चाहते हैं, और सदन भी यही चाहता है, कि अन्य भाषाओं में भी अनुवाद शीघ्र ही समाप्त हो जाये। मैं केवल इसे स्पष्ट करना चाहता हूं कि इस मामले को या अन्य भाषाओं में इस अनुवाद कार्य को अनिश्चित काल के लिये स्थगित नहीं किया जायेगा।

***श्री बी. दासः** संस्कृत भी।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा संशोधन है कि 'early' शब्द जोड़ दिया और यह जरा सारवान संशोधन भी है, किन्तु मैं इसे मसौदा-समिति के सामूहिक विवेक पर छोड़ देता हूं कि वे इसे वैसा ठीक समझें रख दें।

अंतिम संशोधन में मैं चाहता हूं कि 'other major languages' के स्थान पर 'other languages' ये शब्द रख दिये जायें। आखिर, हम यह कहने वाले कौन हैं कि कौन सी भाषा बड़ी है और कौन-सी छोटी? हमने विभिन्न भाषाओं पर कोई प्रस्ताव या अनुच्छेद भी स्वीकार नहीं किया है, और न हमने किसी अनुसूची में ही उल्लेख किया है कि कौन सी भाषा बड़ी है और कौन सी छोटी है। यदि हम श्री मुंशी द्वारा प्रस्तावित रूप में प्रस्ताव को स्वीकार कर लें कि अनुवाद उन बड़ी भाषाओं में होगा जो अध्यक्ष, उचित समझे, मान लीजिये कि किसी भाषा विशेष में अनुवाद नहीं किया जाता तो स्वभावतः उस भाषा के लोगों को दुःख होगा कि उनकी भाषा को छोटा समझा जाता है इसलिये उसे छोड़ दिया गया है। इसका बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा। भाषा भाषा में ऐसा अन्तर हटाने के लिये मैं 'major' (बड़ी) शब्द को हटा देना चाहता हूं, यही रखना चाहता हूं कि अध्यक्ष ऐसी भाषाओं में अनुवाद का आदेश देगा जिन्हें वह उचित समझे, और मैं यह मामला उस पर छोड़ देना चाहता हूं। हमें यह करने का अधिकार नहीं है कि कौन सी भाषा बड़ी है और किस बड़ी भाषा या भाषाओं में अध्यक्ष इस संविधान के अनुवाद का आदेश दे सकता है। मेरे मित्र श्री बी. दास और श्री चालिहा की बाधाओं से भी यही पता लगता है कि हवा का रुख किधर है। उन्हें भी 'major' शब्द के रखने पर दुःख हुआ है। मान लीजिये उदाहरण के लिये, अध्यक्ष 'आसामी' को शामिल नहीं करते—मेरा यह सुझाव नहीं है कि उसे निकाल दिया जाये—या उड़िया को निकाल दिया जाता है, तो वे अनुभव करेंगे कि उनकी भाषा बड़ी भाषा नहीं है। अतः सर्वोत्तम उपाय ही है कि 'बड़ी' शब्द को हटा कर यही कह दिया जाये 'such other languages as the President may deem fit'।

अब संशोधन सं. 2 को लीजिये, जिसमें मैं 'before January 26, 1950' के स्थान पर 'as speedily as possible' ये शब्द रखना चाहता हूं, इस संशोधन के पक्ष में मैं दो तीन युक्तियां पेश करना चाहता हूं। सर्वप्रथम, सदन को स्मरण होगा कि गत सत्र के अंतिम दिन, हमने आगामी साधारण निर्वाचन, निर्वाचन सूचियों की तैयारी तथा अन्य सम्बद्ध मामलों के विषय में एक प्रस्ताव स्वीकार किया था। उस समय भी यही युक्ति पेश की गई थी कि सदन को एक तारीख विशेष के लिये वचनबद्ध करना उचित नहीं है, और डॉ. अम्बेडकर को उस वाद-विवाद के उत्तर में यह स्वीकार करना पड़ा था कि यदि किसी न किसी कारण से हम शीघ्र ही निर्वाचन सूचियों को तैयार न कर सके और निर्वाचनों को 1950 के पश्चात् स्थगित करना पड़ा, तो हमें कारण बताने पड़ेंगे, सदन के समक्ष एक और प्रस्ताव लाना पड़ेगा। और इस प्रकार पुराने प्रस्ताव को संशोधित कराना होगा। अतः मेरे विचार में कोई सुनिश्चित तारीख निर्धारित करना बुद्धिमत्ता नहीं है। मुझे आशा है, वरन् मुझे लगभग विश्वास ही है कि अध्यक्ष जो समिति नियुक्त करेंगे वह बहुत परिश्रम

[श्री एच.वी. कामत]

करेगी तथा 26 जनवरी से पूर्व ही, बहुत पूर्व ही अनुवाद को तैयार कर लेगी। किन्तु कई बार "अधरों पर आते आते ही, हाय, फिसल जाता प्याला", वाली बात हो जाती है, और कई ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं जिनसे मनुष्य की योजनाओं में गड़बड़ हो जाती है। अतएव, मेरे विचार में बुद्धिमानी इसमें है कि कोई विशेष तारीख का उल्लेख न किया जाये, और केवल 'यथासंभव शीघ्र' यही कह दिया जाये। जो सकता है कि वह एक मास में ही तैयार हो जाये। यदि आप दिन निश्चित कर देंगे तो हो सकता है कि वह एक ही दिन पहले, अर्थात् 25 जनवरी को ही प्रकाशित हो। वह इस प्रस्ताव की अवधि में ही होगा, जिस पर हम विचार कर रहे हैं।

मैं यह प्रार्थना करना तथा प्रबल अनुरोध करना चाहता हूं कि इस संविधान का हिन्दी अनुवाद 26 जनवरी 1950 से बहुत पहले तैयार हो जाना चाहिये, यथासंभव एक मास या छह सप्ताह में ही तैयार हो जाना चाहिये, जिससे यदि संभव हो सके तो संविधान के इस हिन्दी अनुवाद को संविधान के तृतीय पठन के समय सदन के समक्ष रखा जा सके। इस प्रयोजन के लिये, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि तीसरा पठन दिसम्बर के आरंभ में या बल्कि जनवरी के ही आरंभ में रख दिया जाये। एक बार जब हम संविधान के द्वितीय पठन को पारित कर चुकेंगे और देश में निर्वाचन नामावलियां बहुत द्रुतगति से तैयार हो रही होंगी तब हिन्दी अनुवाद के तैयार होने से पूर्व ही संविधान के तीसरे पठन को पारित करने की शीघ्रता करने का कोई कारण नहीं है।

हमने दो दिन पहले हिन्दी को राज्य-भाषा तथा संघ की राजभाषा स्वीकार किया है। अत: यह बात ठीक ही है और उचित ही है और वस्तुस्थिति के अनुरूप ही है कि हिन्दी अनुवाद को, राज्यभाषा के अनुवाद को संविधान के तीसरे पठन के समय ही सदन में पेश किया जाये। उस प्रयोजन के लिये, मेरा यह सुझाव है कि संविधान के तीसरे पठन को दिसम्बर के आरंभ तक या जनवरी के आरंभ तक के लिये स्थगित कर दिया जाये, और अंग्रेज़ी तथा हिन्दी में अंतिम मसौदा 26 जनवरी तक तैयार हो सकता है। यदि दुर्भाग्य से कुछ ऐसी बात हो जाये, कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जायें, जिससे हम 26 जनवरी 1950 को संविधान स्वीकार करके अपने गणराज्य को प्रख्यापित या आरंभ न कर सकें, तो मेरे विचार में, हमें उसके कारण क्षुब्ध होने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरे विचार में 26 जनवरी स्वतन्त्रता दिवस होने के कारण पवित्र अवश्य है, जिस दिन 26 वर्ष पूर्व हमने स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा की थी, फिर भी यह संभव है कि हमारे राष्ट्रीय पत्र में एक और तिथिवार बढ़ सकता है। 15 अगस्त 1947 के पश्चात्, गत वर्ष भी और इस वर्ष भी, 26 जनवरी को स्मृति दिवस के रूप में मनाया गया है, स्वतन्त्रता दिवस के रूप में नहीं। अब यदि यह, संविधान सामान्य गति से चलता है तो यह आवश्यक नहीं है कि हम इसे स्वतन्त्रता दिवस, 26 जनवरी को ही लागू करने के लिये जल्दबाजी करें। मुझे उस तारीख पर कोई आपत्ति नहीं है। मैं उस तारीख का स्वागत करूंगा किन्तु यदि यह उस दिन तक समाप्त न हो तो हम अपने राष्ट्रीय पत्र में नया तिथिवार रख सकते हैं। उसे गणराज्य दिवस कह दीजिये.........

*__अध्यक्षः__ आप ऐसे विषय पर विवाद कर रहे हैं जो प्रस्ताव के प्रसंगानुकूल नहीं है।

*__श्री एच.वी. कामतः__ 26 जनवरी की तारीख का उल्लेख प्रस्ताव में है। मैंने सोचा था कि उसका निर्देश स्वतन्त्रता दिवस से है। मैं इस पर अधिक समय नहीं ले रहा हूं, मैं केवल यही अनुभव करता हूं कि हम अपने राष्ट्रीय पत्रे में नई तारीख रख सकते हैं, जिसे गणराज्य दिवस कहा जा सकता है, और हम उसे प्रति वर्ष मना सकते हैं। मैं यह अनुभव करता हूं कि संविधान का हिन्दी अनुवाद भी संविधान के तीसरे पठन के समय सदन के समक्ष होना चाहिये, विशेषतः क्योंकि हिन्दी को अभी कुछ ही दिन पूर्व राज-भाषा, राजकीय भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है, यदि तीसरे पठन को, हिन्दी अनुवाद सदन के समक्ष पेश किये बिना ही पारित कर दिया जाये तो मेरे विचार में हम इसी सदन के साथ, जिसने उसे राज्य-भाषा और संघ की राजकीय भाषा के रूप में स्वीकार किया है, अन्याय कर रहे होंगे। मैं अपने विविध संशोधनों को सदन के विचारार्थ तथा स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्यप्रदेश तथा बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं श्री के.एम. मुंशी के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये खड़ा हुआ हूं किन्तु मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझे इस पर बहुत प्रसन्नता नहीं है। यदि मेरी ही चले तो मैं यही चाहता हूं कि संविधान के हिन्दी रूप को भी यह सभा स्वीकार करे। आपकी भी यह इच्छा थी कि संघ की राज-भाषा का रूप सदन द्वारा पारित हो किन्तु स्पष्ट कठिनाइयां भी थीं। राज-भाषा के प्रश्न का निर्णय पहले नहीं किया गया इसलिये अब बहुत कम समय बच गया है। यदि संघ की राजा-भाषा के विषय में पहले ही विनिश्चय हो जाता तो हमारे लिये अपनी ही राष्ट्र-भाषा में संविधान को पारित करना अधिक आसान हो जाता। किन्तु अब यही स्थिति है कि मुझे प्रतीत होता है कि इन परिस्थितियों में शायद यही सर्वोत्तम है।

किन्तु, श्रीमान, मैं एक बात के विषय में सदन से अपील करना चाहता हूं। निस्संदेह हमने विनिश्चय कर दिया है कि अंग्रेजी को हटा दिया जायेगा। वह पंद्रह वर्ष में या पहले हट जायेगी। और कई मामलों में अधिक समय भी लग सकता है, किन्तु जब अंग्रेजी हट जायेगी, और केन्द्र में उसके स्थान पर हमारी राज-भाषा हिन्दी आ जायेगी। उस समय हमारे पास संविधान का अंग्रेजी में ही प्राधिकृत रूप रह जायेगा और हिन्दी में अनुवाद मात्र रह जायेगा। मैं बहुत चाहता हूं कि स्टीयरिंग समिति और डॉ. अम्बेडकर अपनी गम्भीर बुद्धिमत्ता के द्वारा कोई ऐसा उपाय निकालें जिससे हम यह कह सकें कि ऐसा उपबन्ध भी है कि हिन्दी में भी हमारे संविधान का प्राधिकृत रूप है जो लगभग पंद्रह वर्ष पश्चात् प्रयुक्त हो सकता है। यह प्रस्ताव तो ऐसा है कि बीस या पच्चीस वर्ष पश्चात् भी हमारे पास अनुवाद ही रहेगा। उसमें वह पवित्रता नहीं होगी जो सदन द्वारा स्वीकृत संविधान में होगी। वह हमारी राष्ट्रीय राजा-भाषा हिन्दी के अनुवाद में नहीं होगी।

[माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त]

मैं डॉ. अम्बेडकर और मसौदा-समिति से निवेदन करता हूं कि ऐसे किसी सूत्र को खोजें जिससे कि हम किसी दिन यह कह सकें कि इस हिन्दी के संविधान की भी सदन द्वारा पारित संविधान के समान ही पवित्रता है, अनुवाद के समान नहीं। धारा 304 है किन्तु मैं देखता हूं कि उस प्रयोजन के लिये वह धारा काफी नहीं है। यदि मसौदा-समिति इसी संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध बना दे, कि अंग्रेजी जब संघ की राज-भाषा नहीं रहेगी तब हमारे हिन्दी संविधान को संघ संसद स्वीकार कर लेगी और फिर उसका वैसा ही सम्मान होगा जैसा कि इस सदन द्वारा पारित होने पर होता, तो मुझे बहुत हर्ष होगा। इस बात की ओर मैं नम्रतापूर्वक किन्तु अत्यन्त बलपूर्वक मसौदा-समति का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति की प्रतिभा से ऐसा कोई उपाय अवश्य निकल जायेगा, जिससे यह बात संभव हो सकेगी, और हमारे पुत्रों तथा पौत्रों के लिये ऐसा कहने की नौबत नहीं आयेगी कि हमारी राष्ट्र भाषा में प्राधिकृत संविधान जैसी कोई वस्तु नहीं है और प्राधिकृत संविधान केवल अंग्रेजी में है। यह हमारे लिये बहुत सम्मान की बात नहीं होगी। आयरलैंड जैसे छोटे से देश ने भी अपने संविधान को दोनों भाषाओं में पारित किया था अपनी भाषा में तथा अंग्रेजी भाषा में। किन्तु उन्होंने बहुत शीघ्र उसके लिये कार्यवाही की थी अत: यह संभव हो सका था। मैं कठिनाइयों को समझता हूं किन्तु मैं अपील करना चाहता हूं कि ऐसा कोई उपाय ढूंढ़ निकालना चाहिये जिससे कि मैंने जो बात कही है वह संभव हो सके।

मेरा सौभाग्य है कि मेरा आरंभ से ही हिन्दी अनुवाद से सम्पर्क रहा है और मैं अनुवाद की कठिनाइयों को जानता हूं। अत: मैं इस बात को समझता हूं कि हमारे शब्दों को अभी निश्चित करना है। उनके आशय को स्थिर करना है और उसमें समय लगेगा। मैं यह दिखाने में सदन का समय नहीं लूंगा कि हम किस प्रकार से अनुवाद कर रहे हैं। पारिभाषिक महत्व की शब्दावली को चुनते समय हम इस बात का बहुत ध्यान रखते हैं कि शब्दावली ऐसी हो जो केवल हिन्दी क्षेत्र में ही स्वीकार्य न हो वरन् देश की सब भाषाओं को भी स्वीकार्य हो जैसे मराठी, बंगाली, गुजराती और दक्षिण की भाषाएं हैं। जो शब्द श्री सत्यनारायण जी को या डॉ. चटर्जी को या श्री दाते को स्वीकार्य नहीं होता उसे हम अस्वीकार कर देते हैं। हम ऐसे ही शब्दों को लेते हैं जो एकमत से स्वीकार होते हैं जिससे कि यह शब्दावली भविष्य के लिये पारिभाषिक शब्दावली का (जहां तक संविधान का संबंध है) आधार बन सके, जो केवल हिन्दी के लिये नहीं हो वरन् भारत की सब बड़ी-बड़ी भाषाओं के लिये हो और निस्संदेह हमें बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मैं इसको बता सकता हूं, जो मैं आपको प्राय: बता चुका हूं कि मैंने इस कार्य के लिये जो आपने कृपा करके मुझे और मेरे साथियों को सौंपा था जितना समय, जितनी शक्ति और जितना ध्यान दिया है उतना मैंने किसी कार्य को, विद्यार्थी जीवन में अध्ययन को भी, नहीं दिया था। मैं प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे यह स्वीकार करना होगा, कि मैं इस प्रस्ताव के प्रयोजन और आवश्यकता

को समझने में असमर्थ हूं। हम प्रेसीडेंट से प्रार्थना करने और उसे अधिकृत करने जा रहे हैं कि वह संविधान का अनुवाद कराने के लिये आवश्यक व्यवस्था करे। मैं नहीं समझता कि इस सभा के प्रेसीडेंट होने के नाते भी आपके प्राधिकार पर कोई सीमा थी कि आप हिन्दी भाषा में ही नहीं, भारत की विविध भाषाओं में भी अनुवाद करवा देते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि प्रेसीडेंट जो अनुवाद करवायेगा वह प्राधिकृत अनुवाद होगा। यदि यह प्रस्ताव आवश्यक था तो यह उपबन्ध कर देना चाहिये था कि प्रेसीडेंट जो अनुवाद प्रख्यापित करेगा वह संविधान का प्राधिकृत तथा मान्य अनुवाद होगा।

मेरी दूसरी कठिनाई यह है कि पता नहीं प्रेसीडेंट कब बनेगा। यदि संविधान 26 जनवरी 1950 को प्रख्यापित होता है जो यह कहने से क्या आशय है कि अनुवाद उस दिन से पूर्व तैयार हो जाना चाहिये? मैं कल्पना नहीं कर सकता कि जब तक यह संविधान बन कर प्रख्यापित न हो जाये तब तक प्रेसीडेंट कैसे बन सकता है। यदि 26 जनवरी 1950 से पूर्व प्रेसीडेंट ही नहीं बन सकता तो उस तारीख से पूर्व किस प्रकार का अनुवाद प्रकाशित होगा यह मैं समझने में असमर्थ हूं।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्यप्रदेश तथा बरार : जनरल): संविधान सभा के प्रेसीडेंट महोदय तो हैं ही।

*__डॉ. पी.एस. देशमुखः__ यदि संविधान सभा के प्रेसीडेंट से मतलब है तो मैं क्षमा चाहता हूं। यदि इसका आशय संविधान सभा के अध्यक्ष से है तो मैं नहीं समझता कि प्रस्ताव आवश्यक है। अनुवाद-कार्य तो चल ही रहा है और हम यह उपबंध कर सकते हैं कि अध्यक्ष द्वारा तैयार किया हुआ अनुवाद या उसके द्वारा प्रकाशित अनुवाद सरकारी अनुवाद होगा और सबको अन्य होगा।

फिर, श्रीमान, मेरे विचार से उन परिवर्तनों की कोई आवश्यकता नहीं है जो मेरे मित्र श्री कामत ने सुझाये हैं। इस समय जो भाषा है शायद उससे ही प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। किन्तु चाहे कुछ हो, 'major' शब्द को तो बदल ही देना चाहिये या बिल्कुल उड़ा ही देना चाहिये। इस संबंध में यह परिभाषित करना विशेषतः कठिन है कि कौन सी भाषा बड़ी है और कौन सी छोटी है। हमने यह शब्दावली कहीं स्वीकार नहीं की है अतः इस शब्द को बिल्कुल ही हटा देना अधिक अच्छा है।

फिर मैं श्री गुप्त के इस सुझाव का समर्थन करता हूं कि इस अनुवाद को किसी न किसी समय, और यथेष्ट तो यही है कि शीघ्रतम ही, संविधान का अधिकृत रूप स्वीकार कर लिया जाये। यदि हमारी यह इच्छा है कि पंद्रह वर्ष के पश्चात् केवल हिन्दी को ही एकमात्र राज-भाषा स्वीकार किया जाना चाहिये, उसका अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिये, तो फिर उसके प्रयोग का सर्वोत्तम स्थान न्यायालय है। मुझे यह देखकर खेद है कि विभिन्न न्यायालयों में और उच्च न्यायालयों में, अंग्रेजी भाषा ही प्रयुक्त होगी। इस पर मेरा प्रबल मतभेद है। न्यायालयों की भाषा का बहुत महत्व है क्योंकि उसके बहुत से परिणाम होते हैं। यदि न्यायालय अंग्रेजी का ही प्रयोग करेंगे तो वकीलों को बाध्य होकर अंग्रेजी में पारंगत होना पड़ेगा,

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

और दूसरों को भी अंग्रेजी को ही प्राथमिकता देनी पड़ेगी। अत: संविधान को हिन्दी में तैयार करना और उसे एकमात्र शुद्ध रूप मानना केवल सुविधा के दृष्टिकोण से ही नहीं और भी कई प्रकार से अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यदि हमारा मंशा यह है कि हिन्दी को अधिकाधिक मान्यता दी जाये तो संघ के राष्ट्रपति के लिये यह घोषणा करना संभव होना चाहिये कि अमुक तारीख से, संविधान का अंग्रेजी रूप प्रभावी नहीं रहेगा और न्यायालय केवल हिन्दी संविधान का निर्देश और निर्वचन करेंगे। मेरे विचार में यह सुझाव बहुत अच्छा है और मुझे आशा है कि श्री मुंशी के लिये इसे स्वीकार करना संभव हो सकेगा।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रदेश तथा बरार : जनरल): सभापति जी, जो प्रस्ताव यहां पर श्री मुंशी साहब ने रखा है उससे मुझे घोर असंतोष हुआ है। आपको स्मरण होगा कि मैंने इस विषय में कि हमारा मूल विधान हमारी भाषा में होना चाहिये, वर्षों पहले प्रश्न उठाया था। जब जब मुझे अवसर मिला जब जब इस विधान परिषद् का अधिवेशन हुआ तब मैंने बार-बार आपके सामने यह रखा कि हमारा मूल विधान हमारी भाषा में ही होना चाहिये। आपको शायद याद होगा कि जब जब मैंने यह प्रश्न उठाया आपने इस बात का विश्वास दिलाया कि हमारा मूल विधान हमारी भाषा में ही होगा। अब जो प्रस्ताव हमारे सामने आया है। उसका अर्थ यह होता है कि हमारे विधान का जो हिन्दी में अनुवाद होगा वह केवल अनुवाद ही होगा, वह मूल विधान नहीं होगा जबकि अंग्रेजी 15 वर्षों के बाद इस देश से बिल्कुल ही जाने वाली है तब यदि हमारा मूल विधान अंग्रेजी में ही रहा तो हमारा काम कैसे चलेगा, यह मेरी समझ में नहीं आता।

इस प्रस्ताव का यह अर्थ होता है कि हम अंग्रेजी को उसी स्थान पर प्रतिष्ठित रखना चाहते हैं जिस स्थान पर वह हमारी गुलामी के समय प्रतिष्ठित थी। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि चाहे कितनी ही दिक्कतें हमारे सामने क्यों न हों आज भी हमको यह महसूस होता है कि हमारा मूल विधान हमारी भाषा में होना चाहिये।

हम करीब तीन वर्षों से इस विधान परिषद् में बैठते आ रहे हैं। सैकड़ों वर्षों के बाद इस प्रकार का अवसर हमारे सामने आया है और इस विधान परिषद् का संगठन हुआ है। क्या यह संभव नहीं है कि हम महीने भर और इस काम के लिये बैठें। अगर अभी हम नहीं बैठ सकते तो कुछ दिन बाद यह हो सकता है। हम अपना विधान 26 जनवरी को घोषित करना चाहते हैं और अभी हमारे लिये पर्याप्त समय है। हम इस समय में बराबर एक महीना निकाल कर अपने विधान को हिन्दी में पास कर सकते हैं।

स्टीयरिंग कमेटी ने पहले जो प्रस्ताव इस विषय पर किया था वह बिल्कुल दूसरा था, वह यह नहीं था जो कि श्री मुंशी जी ने हमारे सामने रखा है।

हम यह जानते हैं कि हमारे विधान परिषद् के बहुत से सदस्य ऐसे हैं जो हिन्दी नहीं समझते पर मैं यह भी कहना चाहता हूं कि हमारे विधान परिषद् में ऐसे भी कई सदस्य हैं जो अंग्रेजी भी नहीं समझते। जो अंग्रेजी में विधान पास

किया जा रहा है उसके भी बहुत से शब्द अनेक सदस्य नहीं समझ सकते। यह संभव हो सकता है कि जब हम हिन्दी में विधान लायेंगे उससे भी अनेक शब्दों को हमारे कई सदस्य नहीं समझ सकेंगे। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि हम अपने विधान को हिन्दी में पास न करें। जब अंग्रेजी के अनेक शब्दों को कई सदस्यों के न समझते हुए भी अंग्रेजी का विधान पास कर रहे हैं तब यही बात हिन्दी के विधान के लिये भी हो सकती है। जब हमने हिन्दी अपनी राष्ट्र भाषा मान ली है, राज्य भाषा मान ली है, तो यह नितान्त आवश्यक है कि हमारा मूल विधान भी इस विधान परिषद् में अंग्रेजी विधान के पास होने के बाद हिन्दी में भी पास हो। वह अनुवाद न हो, वह मूल विधान हो, अंग्रेजी का विधान भी उसके साथ चल सकता है। जैसा कि आयरलैंड में हुआ है मैं इस बात को जोरों के साथ कहना चाहता हूं कि हमारा मूल विधान हमारी ही भाषा में होना चाहिये और यदि हमारे मूल विधान में और अंग्रेजी के विधान में कहीं फर्क पड़ता है तो हमारे मूल विधान को ही आधार माना जाये न कि अंग्रेजी विधान को।

यह हमारी इज्जत का सवाल है, यह हमारे राष्ट्रीय सम्मान का प्रश्न है। इस देश का कितना बड़ा क्षेत्रफल है, कितनी आबादी, कितना पुराना इतिहास है और कितनी पुरानी संस्कृति है ऐसे देश की स्वतंत्रता के बाद उसका मूल विधान उस देश की भाषा में न हो तो इससे अधिक लज्जा की बात उस देश के लिये और क्या हो सकती है।

श्री मुंशी जी ने जो प्रस्ताव रखा है उससे मुझे अत्यन्त असंतोष है, और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जो वादा आपने आरंभ में किया था उसको आज पूरा करने का अवसर आया है। उस समय यह कहा गया था कि जब तक हमारी राष्ट्र-भाषा का प्रश्न हल नहीं हो जाता तब तक यह बात नहीं हो सकती। मगर अब तो हमारी राष्ट्र-भाषा का हल भी हो गया है। अब उस बात को पूर्ण करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यहां पर हिन्दी के विषय में आरम्भ से अन्त तक जो कार्यवाही हुई है वह ठीक नहीं हुई है। इसका असर यह हुआ है कि लोगों में असंतोष पैदा हो गया है और वह हमारे काम में दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। जबकि किसी स्वतंत्र देश के विधान बनाने में उसकी जनता को काफी दिलचस्पी लेनी चाहिये। अगर हम अपने मूल विधान को अपनी राष्ट्र भाषा में पास नहीं करेंगे तो जनता में जरूर असंतोष होगा और वह इस विधान से कोई दिलचस्पी नहीं रखेंगे।

मैं आपसे अपील करता हूं कि इस प्रकार की कठिनाइयां देश के जीवन में एक नहीं अनेक बार उत्पन्न होती हैं और इन कठिनाइयों को हल करना हमारे नेताओं का प्रधान कर्तव्य होना चाहिये। कितनी ही कठिनाइयां हमारे सामने क्यों न हों हमें अब भी इस बात पर बड़े रहना चाहिये। स्टीयरिंग कमेटी ने भी यह बात पहले मंजूर कर ली थी कि हमारा विधान हिन्दी में ही होना चाहिये। इस मूल विधान को बनाने के लिये इस हाउस की एक कमेटी नियुक्त की जाये और जितने मसविदे तैयार हो चुके हैं उनको देख कर अन्त में एक महीने बैठकर सारे मूल विधान को अपनी राष्ट्रीय भाषा में पास करें।

***श्री आर.के. सिधवा:** अध्यक्ष महोदय, मैं श्री मुंशी के प्रस्ताव का पूरे हृदय से समर्थन करता हूं। मैं इस बात का बहुत महत्व समझता हूं कि संविधान को विविध भाषाओं में विशेषत: हिन्दी में प्रकाशित किया जाये। मैं इससे भी अधिक

[श्री आर.के. सिधवा]

महत्वपूर्ण बात इसे समझता हूं कि विविध भाषाओं में इस संविधान को प्रकाशित कर दिया जाये, विशेषतः 26 जनवरी 1950 को हमने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया है इसलिये श्री कामत का यह सुझाव ठीक नहीं होगा। केवल अंग्रेजी रूप को ही 26 जनवरी को प्रकाशित कर दिया जाये और हिन्दी का रूप बाद में प्रकाशित कर दिया जाये। यह अत्यावश्यक है कि दोनों को साथ ही प्रकाशित कर दिया जाये। मैं तो यह भी चाहता हूं कि विविध अन्य भाषाओं में, मेरा आशय यह है कि हमने अनुसूची में जो चौदह भाषाएं स्वीकार की हैं, उनमें भी इसका प्रकाशन यथासंभव शीघ्र हो। किन्तु, मैं जानता हूं, श्रीमान, कि आपको किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अतः यही कहा गया है कि अंग्रेजी और हिन्दी रूप 26 जनवरी से पूर्व प्रकाशित हो जायेंगे, और दूसरों के विषय में, यह बात आप पर छोड़ दी गई है कि उन्हें यथासंभव शीघ्र प्रकाशित किया जाये। बहुत से लोगों को, जो इस संविधान को अपनी भाषा में पढ़कर लाभ उठा सकते हैं, ऐसा करने देना चाहिये। अतः इन भाषाओं में संविधान का अनुवाद यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होना चाहिये। मुझे आशा है कि 'such other major languages of India' इन शब्दों का यह प्रयोजन नहीं है कि संविधान कुछ थोड़ी-सी भाषाओं तक ही सीमित रहे। बड़ी भाषा का अर्थ है वह भाषा जिससे अधिक संख्या को लाभ हो।

एक बार बहुत पहले हमने इस संविधान सभा में कहा था कि संविधान के मसौदे का अधिकतम प्रसार किया जाये, और मेरे विचार में, आपने भी, श्रीमान, कहा था कि बहुत अधिक प्रतियां प्रकाशित की जायेंगी। किन्तु मैं कह सकता हूं कि इस वर्ष जनवरी में मैं संविधान के विषय में सार्वजनिक सभा में भाषण दे रहा था। कई लोगों ने कहा कि उन्होंने आपके कार्यालय को और पुस्तक विक्रेताओं को भी और बंबई सरकार को लिखा किन्तु उन्हें कोई प्रति नहीं मिल सकी। पूछने पर मुझे पता लगा कि सब प्रतियां समाप्त हो गईं थीं।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** आप अंग्रेजी प्रतियों के विषय में कह रहे हैं या अनुवाद के विषय में?

***श्री आर.के. सिधवा:** मैं अंग्रेजी प्रतियों के विषय में कह रहा हूं। हमने कहा था कि लोगों को इस मामले में रुचि पैदा करनी चाहिये, उससे अपने आपको परिचित बनाना चाहिये और वास्तव में अपने मतों को समाचारपत्रों द्वारा तथा संविधान सभा के कार्यालय में भेज कर भी व्यक्त करना चाहिये। मुझे पता नहीं है कि कितनी प्रतियां प्रकाशित की गई थीं। मैं यह सुझाव देता हूं कि 26 जनवरी को अंग्रेजी तथा हिन्दी संविधान की प्रतियां बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित होनी चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार प्रति मिल सके।

मेरा एक और भी सुझाव है कि श्रीमान, आप अपनी ओर से तथा इस सभा की ओर से एक संक्षिप्त विवरण दें कि हमने इन तीन वर्षों में क्या किया है

और इस संविधान की विशेषताएं क्या हैं। वह हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में उपलब्ध होनी चाहियें। वह रुचिकर होगा और जनता उसे पढ़ना चाहेगी।

मेरे मित्रों, सेठ गोविन्ददास और श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने जो सुझाव दिया है उसकी मैं सराहना करता हूं कि यह हिन्दी संविधान यहां आना चाहिये था। किन्तु यदि खंडश: चलना चाहें तो यह सचमुच बहुत कठिन बात है और वह खंडश: ही चलेगा—प्रत्येक सदस्य को हिन्दी संविधान पर ऐसे ही खंडश: विचार करने का अधिकार है जैसे अंग्रेजी संविधान को हमने पारित किया है। हां, वे अब कोई विशेष सुझाव नहीं दे सकते। किन्तु अनुवाद के विषय में यहां हिन्दी के कई विशेषज्ञ हैं। वे कहेंगे 'यह शब्द ठीक नहीं है, वहां यह होना चाहिये' और उन्हें ऐसा कहने का अधिकार है। मैं सेठ गोविन्द दास से सहमत नहीं हूं कि यह काम एक ही मास में हो सकता है। यदि आप सब स्थितियों में से इसे पारित करना चाहते हैं तो इस पर छह मास लग जायेंगे।

यद्यपि मैं उस युक्ति के बल को स्वीकार करता हूं, तथापि मैं एक सुझाव देना चाहता हूं। अंतत: हिन्दी संविधान ही प्रधान रहेगा क्योंकि पन्द्रह वर्ष में ही या पन्द्रह वर्ष पश्चात् अंग्रेजी हट जायेगी। अतएव हिन्दी में समुचित रूप से प्राधिकृत संविधान होना चाहिये। आप केवल रूपांतर ही प्रकाशित नहीं कर रहे होंगे। मेरे विचार में कुछ न कुछ करना ही होगा और यही उपाय है कि बाद में यह इस प्रयोजन के लिये संसद में जायें। संविधान का हिन्दी अनुवाद उच्चतम न्यायालय में निर्वचन के प्रयोजनार्थ अधिकृत अनुवाद होना चाहिये। जहां भी निर्वचन में मतभेद हो वहां यह अपेक्षित है। मैं इस दृष्टिकोण को समझता हूं। अब निर्वचन के लिये केवल अंग्रेजी संविधान ही होगा। किन्तु अंग्रेजी को हटना है। अतएव हिन्दी अनुवाद प्राधिकृत होना चाहिये। यह संविधान सभा विघटित हो जायेगी और इसलिये वह समवेत नहीं हो सकती। अत: मेरा सुझाव है कि इस प्रयोजन के लिये कुछ व्यवस्था होनी चाहिये। यदि इसे संविधान में खंड बनाना उपेक्षित हो तो मुझे उस पर आपत्ति नहीं है। यह मामला संसद में जाना चाहिये। और संसद को हिन्दी अनुवाद पारित करने की शक्ति होनी चाहिये।

मैं मानता हूं कि अब हिन्दी को स्वीकार कर लिया गया है अत: हिन्दी अनुवाद को इस संविधान सभा का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना चाहिये, अर्थात हिन्दी में संविधान का तीसरा पठन इस संविधान सभा द्वारा पारित किया जाना चाहिये। किन्तु व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं तथा इस संविधान को 26 जनवरी 1950 को लाना संभव नहीं हो सकता। मैं प्रस्ताव का प्रबल समर्थन करता हूं और मुझे आशा है कि आप मेरे छोटे से सुझाव का ध्यान रखेंगे तथा यह बात बहुत सराहनीय होगी यदि आप एक छोटा सा विवरण दे दें कि हम वे गत तीन वर्षों में क्या किया है, हमें कितना भारी कार्य करना पड़ा है, हमें किस प्रकार खंड पर खंड और अनुच्छेद पर अनुच्छेद को बदलना पड़ा, और संविधान सभा ने कितना प्रयत्न तथा कार्य किया है। जनता को यह न समझने दिया जाये कि हमने इतना समय बरबाद किया है। इसके विपरीत मेरा तो ख्याल यह है कि यदि हमने इस सभा की कालावधि

[श्री आर.के. सिधवा]

को बढ़ाया है तो यह देश के लाभार्थ ही किया है। हमने 1948 में जो कुछ किया था उसमें से आधा अब हमने रद्द कर दिया है। अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् तथा परिपक्व विचार के पश्चात् हमने कई महत्वपूर्ण अनुच्छेद जोड़ दिये हैं। मैं उसकी बहुत सराहना करता हूं। मुझे बिल्कुल खेद नहीं है—मुझे प्रसन्नता है कि यह कालावधि, किसी न किसी प्रकार, ईश्वर की कृपा से, बढ़ गई। इस सभा के सदस्यों की यह इच्छा नहीं थी कि यह कालावधि इस प्रकार बढ़ाई जाये। हम तो इसे 1948 के आरंभ में ही पारित करना चाहते थे। किन्तु भगवान की यही इच्छा थी कि इसे बढ़ाया जाये। यह बहुत अच्छी बात है कि इस अवधि-विस्तार के कारण, पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् और हमने इस देश में जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर, हम कई अनुच्छेदों को बदलने में सफल हुए हैं।

इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव का बलपूर्वक समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री बी. दास।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, इस प्रश्न पर अब मत लिये जायें।

***अध्यक्षः** मैं पहले ही श्री बी. दास का नाम पुकार चुका हूं।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, मैं अपने माननीय मित्र श्री मुंशी के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं। मुझे आशा है कि मेरे मित्र श्री कामत द्वारा पेश की कई बातों पर ध्यान देंगे तथा उनके तीसरे और चौथे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे। मैं अपने मित्र श्री कामत की इस बात को पसंद नहीं करता कि हम प्रस्ताव पास करें कि "President do take the necessary steps" (अध्यक्ष आवश्यक कदम उठायें)। अध्यक्ष हमारा प्रतिनिधि है, हमारी आत्मा का प्रतीक है, वह इस भावना का—इस प्रभु संविधान के प्रति इस सदन की भावना का प्रतीक है। जब भी बाह्य जगत से कोई सम्पर्क हुआ है तो अध्यक्ष ने ही हमारे प्रभुताधिकारों का, हमारी आत्मा का, हमारे हृदयों का, प्रतिनिधित्व किया है। अतः मैं यह नहीं कह सकता कि अध्यक्ष 'ऐसा करें।' यदि मैं इस मसौदे को तैयार करता तो मैं इन शब्दों को भी हटा देता कि 'The President be authorised'—(अध्यक्ष को प्राधिकृत किया जाये)। मैं तो केवल यही कहता "अध्यक्ष से आवश्यक कार्यवाही करने की प्रार्थना की जाये।" और मैं उससे संतुष्ट हूं क्योंकि हमें उन पर भरोसा है तथा वे हमारे निर्वाचित प्रधान तथा प्रतिनिधि प्रवक्ता होने के नाते इस सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सदन की इच्छा को पूरा करेंगे।

श्री सिधवा तथा डॉ. देशमुख ने जो सुझाव दिया है कि अनुवाद यथासंभव शीघ्र उन सब भाषाओं में उपलब्ध हो जाये तो अनुसूची में समाविष्ट की गई हैं, मैं उस विषय में एक मध्य मार्ग का सुझाव दूंगा। हम देखते हैं कि जब भी कोई विधेयक संसद में पेश होता है, त्यों ही प्रान्तीय सरकारें उसका प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद करवा लेती हैं और उसे प्रसारित करती हैं या अपने सूचना में प्रकाशित

कर देती हैं। अतएव यदि माननीय अध्यक्ष विविध प्रांतीय सरकारों की वर्तमान व्यवस्था से लाभ उठा सकें, तो अनुवाद एक मास में ही हो सकते हैं।—हां, हिन्दी अनुवाद तो राजकीय रूप होगा जो मेरे मित्र माननीय श्रीयुत घनश्याम सिंह गुप्त ही तैयार करेंगे—किन्तु अन्य भाषाओं में भी, अर्थात् उड़िया, असामिया, बंगाली, गुजराती, तेलुगू, तमिल, कन्नड़ और चौदह में से अन्य भाषाओं में भी अनुवाद 26 जनवरी 1950 को उपलब्ध हो सकेंगे। संस्कृत में अनुवाद होगा या नहीं, मैं नहीं कह सकता। हमें विभिन्न पंडितों से पूछना होगा, जिनमें प्रमुख मेरे मित्र पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र होंगे, कि क्या वे इसके लिये कार्य कर सकते हैं और उन पंडितों के लिये अनुवाद तैयार कर सकते हैं जो भारत के पवित्र स्थानों में निवास करते हैं। किन्तु मुझे आशा है कि मेरे मित्र श्री मुंशी श्री कामत के सुझाव को स्वीकार कर लेंगे, जो श्री सिधवा द्वारा संशोधित कर दिया गया है, कि अन्य भाषाओं में अनुवाद कराया जाये तो इस संविधान की अनुसूची में वर्णित हैं।

श्रीमान, मैं सदन की भावना को व्यक्त करते हुए कह सकता हूं कि सदन मेरे माननीय मित्र माननीय श्रीयुत घनश्याम सिंह गुप्त का अनुग्रहीत है कि उन्होंने हिन्दी अनुवाद पर इतना परिश्रम तथा प्रयत्न किया है। मैं नहीं कह सकता कि यह दस वर्ष बाद मान्य रूप होगा या नहीं, किन्तु आपके आदेश से प्रकाशित होते ही देश में यह मान्य रूप अवश्य समझा जायेगा। किन्तु मेरे मित्र सेठ गोविन्द दास ने जो सुझाव दिया है कि संविधान सभा को अनिश्चित काल तक बढ़ा कर हिन्दी रूप को पारित किया जाये, श्रीमान, मैं इस भावना से सहमत हूं किन्तु मैं इस प्रस्थापना से सहमत नहीं हूं। यद्यपि संविधान सभा तीन वर्ष से चल रही है और हम यह आशा कर रहे हैं कि आगामी 26 जनवरी को हम गणराज्य की घोषणा कर देंगे और यह संविधान प्रख्यापित हो जायेगा, फिर भी श्री कामत के शब्दों में 'अधरों पर आते आते ही, हाय, ढुलक जाता प्याला' वाली बात हो सकती है। हमने दो वर्ष पूर्व देखा कि फ्रांस के लोगों ने तीन संविधान सभाएं बनाईं, उन्होंने तीन संविधान बनाये और अब वे किसी न किसी प्रकार तीसरे मसौदे का आधार लेकर लड़खड़ाते चल रहे हैं।

क्या यह संविधान सदा अमर रहेगा, मैं नहीं कह सकता। मैं अभी से सुनता हूं कि मेरे मित्र समाजवादी तथा वे, जो भूमिगत हो गये हैं, अर्थात् साम्यवादी, इसकी आलोचना करते हैं कि वे इस संविधान को पसंद नहीं करते। हम सदा ही भारत सरकार नहीं रहेंगे, समाजवादी अवश्यमेव आयेंगे, यद्यपि उन्हें सरकारों के प्रशासन की क्षमता अर्जित करना सीखना होगा। वे अधिकांश में कांग्रेस और उसके तरीकों की आलोचना में व्यस्त रहते हैं—उनमें से अधिकांश कभी न कभी कांग्रेस सदस्य ही थे। अत: संविधान शायद स्थायी वस्तु न हो। यदि 26 जनवरी से 15 वर्ष पश्चात् हिन्दी में प्राधिकृत रूप की आवश्यकता हो तो मुझे विश्वास है कि उस समय तक संविधान में ही इतने संशोधन हो चुकेंगे कि हिन्दी में पुन: प्राधिकृत अनुवाद करवाना अभीष्ट होगा। शायद उस समय एक नई संविधान सभा चुननी पड़े, ऐसे मताधिकार पर नहीं जैसे कि यह संविधान सभा चुनी गई थी, अपितु शायद प्रत्येक राज्य दो तीन प्रतिनिधि भेजेगा जो समवेत होकर संविधान का प्राधिकृत हिन्दी रूप स्वीकार करेंगे। किन्तु अभी वह रूप केवल शिक्षात्मक ही होगा, इसका लोगों पर कोई कानूनी बन्धन नहीं होगा। हमारे देश के वकील हिन्दी रूप का शायद ही कभी उद्धरण दें, वे सदा प्राधिकृत अंग्रेजी रूप का ही उद्धरण देंगे जो इस सदन ने पारित किया है।

[श्री बी. दास]

अत: मुझे इससे बहुत भय नहीं है और मुझे आशा है कि समय और अनुभव से हिन्दी भाषा का समुचित रूप बन जायेगा जिससे कि आगामी दस वर्ष में प्राधिकृत हिन्दी रूप बन ही जायेगा, जब मुझे आशा है कि वह भाषा देश भर में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हो जायेगी और हिन्दी के उस अनुवाद को प्राधिकृत रूप स्वीकार कर लिया जायेगा। हां, मैं उनकी भावनाओं की सराहना करता हूं जो यह कहते हैं कि हिन्दी रूप प्राधिकृत रूप हो, किन्तु अभी यह सदन अधिक समय लगा कर उसे पारित नहीं करना चाहता।

*__सेठ गोविन्द दास:__ किन्तु यह होगा कब?

*__श्री बी. दास:__ दस वर्ष बाद होगा, और वहां मैं नहीं हूंगा, आप वहां होंगे।

श्रीमान, मैं आपसे अनुरोध करता हूं, और इस मामले में हम आप पर विश्वास और भरोसा करते हैं कि आप देखेंगे कि अंग्रेजी के अतिरिक्त समस्त तेरह भाषाओं में—पता नहीं संस्कृत शामिल होगी या नहीं—अलग-अलग अनुवाद छप कर 26 जनवरी तक प्रकाशित हो जायेगा ताकि देहातों में भी पता लग जाये कि हमने देर देर तक बैठकर क्या किया है, संविधान द्वारा उन्हें क्या अधिकार और विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं। और हमारी स्वतंत्र गणराज्य सरकार से वे क्या आशायें कर सकते हैं।

*__अध्यक्ष:__ समाप्ति प्रस्ताव पेश हो चुका है और मैं उस पर मत लेता हूं:

प्रश्न यह है:

"कि अब प्रश्न पर मत लिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

*__श्री के.एम. मुंशी:__ अध्यक्ष महोदय, पहले मैं अपने मित्र श्री कामत के संशोधनों पर कुछ कहूंगा। मुझे बहुत खेद है कि मैं उनके किसी संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता। पहले संशोधन के संबंध में, 'authorised and requested' शब्दों का ठीक प्रयोग हुआ है, पहली बात तो यह है कि 'do' शब्द आदेशमूलक है और मैं नहीं समझता कि ऐसे शब्द का प्रयोग करना समुचित होगा, और दूसरी बात यह है कि 'authorised' शब्द का प्रयोग काफी विचार करने के पश्चात् किया गया है। मुझे बहुत प्रसन्नता होती यदि इस सदन के समक्ष अनुवाद को रखा जाता तथा उसे संविधान का प्राधिकृत रूप माना जाता। किन्तु स्थिति ऐसी थी कि ऐसा करना संभव नहीं था।

*__सेठ गोविन्द दास:__ क्या मैं अपने मित्र श्री मुंशी से एक प्रश्न पूछ सकता हूं? क्या यह सत्य है कि स्टीयरिंग समिति ने पहले यह निश्चय किया था कि इस सदन की एक समिति नियुक्त होनी चाहिये जो उस अनुवाद पर विचार करे और फिर वह अनुवाद यहां पेश किया जाये तथा मौलिक रूप में उस पर विचार किया जाये?

*श्री के.एम. मुन्शीः इस भेद को तो सभी जानते हैं, मैंने उन प्रस्तावों को पेश किया था। मैं बहुत आतुर था कि हम सभा से अनुवाद को स्वीकार करवायें, किन्तु परिस्थितियां ऐसी हैं कि हमारे लिये ऐसा करना संभव नहीं है—कम से कम सभा के अधिकांश सदस्यों का यही विचार है। मेरा वैयक्तिक विचार चाहे कुछ हो और मेरे माननीय मित्र सेठ गोविन्द दास का विचार चाहे कुछ भी हो, किन्तु सभा का व्यापक मत यह है कि ऐसा करना संभव नहीं है। अतएव हमें सर्वोत्तम विकल्प अपनाना पड़ता है, कि, हम अनुवाद प्रकाशित करने का प्राधिकार स्वयं अध्यक्ष को दे रहे हैं। हमारी कठिनाई को देखते हुए यही सर्वथा उचित उपाय है। मेरे मित्र सेठ गोविन्द दास आवेश में यह भूल गये कि श्री सिधवा ने क्या कहा था। मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा का ख्याल है कि इस रूप को सभा के समक्ष पेश करना चाहिये तथा अनुच्छेदशः और खंडशः पारित करना चाहिये, जिस पर इस सभा के सदस्य बहुत से संशोधन भी पेश करना चाहेंगे.........

*सेठ गोविन्द दासः मैं कहता हूं कि ऐसा हो सकता है।

*श्री के.एम. मुन्शीः खैर, यह 12 मास के कम नहीं हो सकता क्योंकि मैं अपने मित्र सेठ गोविन्द दास को विश्वास दिलाता हूं कि चाहे वे अपनी अनुवाद करने की योग्यता के विषय में कुछ भी समझें या मैं अपनी योग्यता के विषय में कुछ भी समझूं, फिर भी यहां बहुत से सदस्य हैं जो मेरे मित्र श्री सिधवा के विचार से सहमत हैं कि वे बहुत टेक्नीकल विषय का भी अनुवाद करने में महान विशेषज्ञ हैं।

*सेठ गोविन्द दासः मैं प्रत्याभूति देता हूं कि यदि आप इसे रखेंगे वो वह एक मास में ही पारित हो जायेगा।

*श्री के.एम. मुन्शीः मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं और मेरे विद्वान मित्र को इस पर अपना जोश दिखाने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु मैं कह सकता हूं कि मुझे यहां अपने मित्र श्री सिधवा जैसे सदस्य की भी बात माननी पड़ती है। मैंने सर्वोत्तम विकल्प पेश कर दिया है और जहां तक मैं पता लगा सका हूं यही व्यापक रूप से सदस्यों का विचार है। हमें इस लोक प्रिय सभा में भाषा के लालित्य पर विचार करने की अपेक्षा नहीं है। यह अधिक अच्छा है कि यह बात अध्यक्ष पर छोड़ दी जाये कि वह जैसी चाहे विशेषज्ञों की सम्मति ले ले और ऐसा अनुवाद तैयार कराये, जिसे, सदन चाहे अनुमोदित न करे पर, उसकी पसंद के विशेषज्ञ तो अनुमोदित कर ही दें।

*सेठ गोविन्द दासः अंग्रेजी के लिये जो कुछ किया गया है। वही हिन्दी के लिये भी कर दिया जाये।

*श्री के.एम. मुन्शीः श्रीमान, मैं एक बार कह चुका हूं और मैं इसे दोहराने के लिये भी तैयार हूं कि मैं सदन के सदस्यों की इच्छाओं को ही पूरा कर रहा हूं।

*श्री महावीर त्यागी (युक्तप्रान्त : जनरल): क्या 'अनुवाद' शब्द के स्थान पर 'रूपान्तर' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते?

*__श्री के.एम. मुन्शीः__ मुझे इसमें बहुत प्रसन्ता होती यदि यह असत्य न होता। हम अनुवाद ही कर रहे हैं। 'रूपान्तर' का अर्थ वास्तव में यह है कि सारी चीज को स्वतन्त्र रूप में पुनः लिखा जाये। यह अनुवाद है। हमें अनुवाद की स्टेज से गुजरने दीजिये फिर हम संविधान का स्वतन्त्र रूपान्तर करवा सकते हैं, जिसे प्राधिकृत रूप स्वीकार करने का संसद को अधिकार होगा।

*__सेठ गोविन्द दासः__ क्या आप कोई प्रस्ताव पेश करने वाले हैं कि संसद मौलिक रूपान्तर को पारित करे?

*__श्री के.एम. मुन्शीः__ मुझे भय है कि यदि मैं अपने माननीय मित्र के प्रश्न का उत्तर देने लगूंगा तो सभा का बेकार बहुत समय बरबाद होगा।

अगला संशोधन श्री कामत का है जो 'before January 26, 1950' के स्थान पर 'as speedily as possible' ये शब्द रखना चाहते हैं। मुझे प्रसन्नता होगी यदि हम इसे 26 जनवरी से पहले पूरा कर लें, क्योंकि आखिर यह बहुत कठिन कार्य है और शीघ्रता से सम्पन्न नहीं हो सकता।

श्री कामत के तीसरे संशोधन के विषय में, मुझे ऐसा समझने का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह काम यथाशक्ति शीघ्रता से नहीं किया जायेगा।

श्री कामत अपने चतुर्थ संशोधन में यह चाहते हैं कि 'other major languages' के स्थान पर 'other languages' ये शब्द रख दिये जायें। स्थिति यह है। भारत में चौदह से कहीं अधिक भाषायें हैं यद्यपि राष्ट्र-भाषा संबंधी अध्याय की अनुसूची में चौदह ही भाषायें उल्लिखित हैं। इन चौदह भाषाओं में हमने कश्मीरी जैसा भाषा को भी समाविष्ट कर लिया है जिसके विषय में मुझे बताया गया है कि उसे 10 लाख से अधिक व्यक्ति नहीं बोलते। अब हो सकता है कि इनमें से कुछ भाषायें न्यायालयों में भी प्रयुक्त नहीं होती। जब ऐसी बात है तो उस भाषा में अनुवाद करवाने का कोई कारण नहीं है। हमारा उद्देश्य तो यही है कि यह संविधान इन सब लोगों को अपलब्ध हो जाये जो न्यायालयों में या पाठशालाओं अथवा महाविद्यालयों में उसका प्रयोग करना चाहते हैं, अथवा जो लोग संविधान में निहित सांविधानिक विचारों से परिचित होना चाहते हैं।

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): विविध भाषाओं में अनुवाद करने का कार्य प्रान्तीय सरकारों को सौंपा जा सकता है।

*__श्री के.एम. मुन्शीः__ अध्यक्ष को अधिकार दिया गया है कि वह जिन भाषाओं को बड़ी समझे उन्हें स्वेच्छा से चुन सकता है। उदाहरण के लिये 'कच्छी' जैसी भाषा में अनुवाद पर धन व्याय करना बरबादी होगी। 'कच्छी' भी एक प्रकार की भाषा है, यद्यपि सारे कच्छी गुजराती बोलते हैं। 'कच्छी' में अनुवाद अवश्य करने की क्या आवश्यकता है?

*__कुछ माननीय सदस्यगणः__ कच्छी भाषा नहीं है।

***श्री के.एम. मुन्शीः** अतः हमें इस मामले को निबटाने का पूरा स्वविवेक अध्यक्ष को दे देना चाहिये। अतः मैं सदन से प्रार्थना करता हूं कि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ले।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मेरे माननीय मित्र को ज्ञात है कि आयर का संविधान 1937 में आयरिश भाषा तथा अंग्रेजी दोनों में स्वीकार किया गया था?

***अध्यक्षः** इससे कुछ नहीं होता। यदि उन्हें यह बात विदित भी हो तो इससे समस्या हल नहीं होगी। मैं संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्ताव में 'the President be authorised and requested to' इन शब्दों के स्थान पर 'the President do' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्ताव में 'before January 26, 1950' इन शब्दों तथा अंकों के स्थान पर 'as speedily as possible' ये शब्द तथा अंक रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

प्रश्न यह है:

"कि प्रस्ताव में, 'the preparation and publication' इन शब्दों के स्थान पर 'the early preparation and publications' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि प्रस्ताव में, 'other major languages' इन शब्दों के स्थान पर 'other languages' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"Resolved that the President be authorised and requested to take necessary steps to have a translation of the Constitution prepared in

[अध्यक्ष]

Hindi and to have it published under his authority before January 26, 1950, and also to arrange for the preparation and publication of the translation of the Constitution in such other major languages of India as he deems fit.'"

[संकल्प किया जाता है कि अध्यक्ष को प्राधिकृत किया जाये तथा उससे प्रार्थना की जाये कि वह 26 जनवरी 1950 से पहले संविधान का हिन्दी में अनुवाद कराने तथा अपने प्राधिकार से उसे प्रकाशित कराने का अपेक्षित प्रबन्ध करे और संविधान के अनुवाद को भारत की उन अन्य बड़ी भाषाओं में भी, जिन में वह उचित समझे, तैयार और प्रकाशित कराने का भी प्रबन्ध करे।]

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब सभा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है तो मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। क्योंकि, अब इसे क्रियान्वित करना मुझ पर है, और मैं इस सदन के सदस्यों की सहायता और सहयोग चाहता हूं, और चाहता हूं कि दूसरे भी जिन्हें इस विषय में दिलचस्पी हो, इसे क्रियान्वित करने में मेरी सहायता करें। जहां तक हिन्दी अनुवाद का संबंध है, इसमें श्री घनश्याम सिंह गुप्त के सभापतित्व में बहुत प्रगति हो चुकी है। हम देखेंगे कि वह अनुवाद कितना स्वीकार्य है और उस सम्बन्ध में हम यह भी विचार करेंगे कि पारिभाषिक शब्दों के लिये प्रयुक्त शब्दावली देश की अधिकांश भाषाओं को कहां तक स्वीकार्य है, उदाहरण के लिये, 'Assembly' शब्द का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। समूचे देश के विकास के लिये यह अच्छा रहेगा यदि ऐसे शब्दों के लिये हमारे पास एक ही शब्दावली हो, कम से कम देश के उन भागों के लिये तो एक ही हो जहां संस्कृत मूल की भाषाएं बोली जाती हैं।

इस समय जो समिति हिन्दी अनुवाद का कार्य कर रही है उसे नियुक्त करते समय भी मैंने देश के विभिन्न भागों से प्रतिनिधि लिये थे और ऐसे लोगों को लिया था जो अपने विषय में पारंगत ही समझे जाते हैं। फिर भी मैं आगे यह भी ध्यान रखूंगा कि अंत में जो शब्द स्वीकार किये जायें वे ऐसे हों कि, यथासंभव, सब भाषाओं को स्वीकार्य हों।

अत: मैं यहां उपस्थित माननीय सदस्यों को, जो लगभग समस्त प्रान्तों तथा समस्त भाषाओं के प्रतिनिधि हैं, सुझाव देता हूं कि वे मुझे कुछ नाम दें। उन्हें सर्वप्रथम आपस में बातचीत कर लेनी चाहिये। जिससे मैं यह कह सकूं कि वे नाम देश में बोली जाने वाली विविध भाषाओं के प्रतिनिधियों ने, जो सभा के सदस्य हैं, सुझाये हैं। उदाहरण के लिये हमारे तामिल भाषी मित्रों को लीजिये। मैं उनसे एक दो नाम देने की आशा करूंगा, मैं तेलुगु भाषी मित्रों से भी एक दो नाम देने की आशा करूंगा, मैं बंगला भाषी मित्रों से भी एक दो नामों की आशा करूंगा।

इसी प्रकार यदि विविध प्रान्तों तथा भाषाओं के प्रतिनिधि मुझे नाम दे दें तो मैं चुनाव कर लूंगा और समिति नियुक्त कर दूंगा जो सांविधानिक तथा पारिभाषिक शब्दों को निश्चित कर देगी। यदि एक बार वह स्वीकृत हो जाये........

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): पंजाबी भाषी क्षेत्रों का क्या होगा?

***अध्यक्षः** मैंने केवल दो तीन का उल्लेख, उदाहरण के लिये किया है। आप निस्संदेह नाम दे सकते हैं।

यदि उस शब्दावली को एक बार स्वीकार कर लिया जायेगा तो हमारा कार्य बहुत सरल हो जायेगा। फिर अनुवाद आसान बात हो जायेगी।

मेरा यह भी विचार है कि विविध प्रांतीय सरकारों से कहूं कि वे मुझे अपने अनुवाद विभागों तथा अन्य विशेषज्ञों की भी, जो उनके पास नियोजित हों, सहायता दें। यदि मुझे वे नाम शीघ्र ही मिल जायेंगे तो मेरे विचार में अनुवाद-कार्य में शीघ्रता हो सकेगी।

मेरे विचार में विविध भाषाओं में कई अनुवाद पहले ही हो चुके हैं। उन अनुवादों से लाभ उठाया जा सकता है कि इन अनुवादों की जानकारी रखने वाले सदस्यों से मैं प्रार्थना करता हूं। कि वे मुझे उनकी सूचना दे दें।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): क्या मैं जान सकता हूं कि अनुवाद कब समाप्त हो जायेगा?

***अध्यक्षः** यथासंभव शीघ्र। किन्तु एक कठिनाई है जिसका सदस्यों को ध्यान रखना चाहिये। हमने अभी संविधान का अन्तिम रूप निश्चित नहीं किया है। अभी तक कई अनुच्छेद हैं जिनका दूसरा पठन अभी होना है। अभी जो भी अनुवाद होगा वह उन्हीं अनुच्छेदों का हो सकता है जो द्वितीय पठन में निश्चित हो चुके हैं। आगे भी कुछ और परिवर्तन हो सकते हैं। किन्तु वे केवल छोटे-छोटे होंगे।

हिन्दी अनुवाद का कार्य प्रतिदिन जो अनुच्छेद पारित होते हैं उनके आधार पर होता है। इस रूप में हमारे अधीन कोई और अनुवाद तैयार नहीं हो रहा है। किन्तु अब आपने कहा है कि अन्य भाषाओं में भी अनुवाद तैयार होने चाहियें, मैं इसी उपाय को अपना सकता हूं, यही सर्वोत्तम है। आशा है सदन मुझे इसके लिये प्राधिकार देगा और इस योजना का अनुमोदन करेगा।

***श्री के.एम. मुन्शीः** क्या मैं सादर सुझाव दे सकता हूं कि यदि सदस्य आज सायंकाल तक नाम दे सकेंगे तो आपके लिये सायंकाल तक नामों की घोषणा करना संभव होगा?

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि उनके लिये आज सायंकाल तक नाम देना सुविधाजनक होगा। मैं आज सायंकाल तक समय की सीमा नहीं रखना चाहता।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले:** क्या इस सदन के सदस्यों में से ही नाम चुनने हैं?

***अध्यक्ष:** आवश्यक नहीं है। बाहर के लोग भी हो सकते हैं। वे विशेषज्ञ होने चाहियें जिनके अनुवादों को उनकी भाषा में प्रमाणिक समझा जाये। मुझे उनके लोगों से उन अनुवादों को स्वीकार करवाने में इस बात पर निर्भर रहना होगा कि उन लोगों की कितनी मान्यता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** क्या अनुवादों में बहुत विलम्ब की संभावना है?

***अध्यक्ष:** उन्हें अनुवादों में यथासंभव शीघ्रता करनी होगी।

***बाबू रामनारायण सिंह** (बिहार : जनरल): आरम्भ में आपने घोषणा की थी कि संविधान हिन्दी में पारित किया जायेगा।

***अध्यक्ष:** मेरी तो यही इच्छा थी किन्तु मैं देखता हूं कि वह सफल नहीं हुई और वह संभव नहीं है। मैं बस यही कह सकता हूं। सदस्यों को पता है कि क्या घटनायें हुई हैं तथा किन परिस्थितियों में मुझे वह विचार परित्याग करना पड़ा है।

अनुच्छेद 303—*(जारी)*

***अध्यक्ष:** अब सदन कार्यावली की अगली मद को लेगा। अनुच्छेद 303 पर विचार जारी रहे। उपखंड (ट) तथा (ठ) पर कोई संशोधन नहीं है। अतः मैं उन पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि उपखंड (ट) तथा (ठ) अनुच्छेद 303 (1) के अंग बनें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उप-खंड (1) के पश्चात् निम्न उपखंड रख दिये जायें:—

'(II) "High Court" means any court which is deemed for the purposes of this Constitution to be a High Court for any State and includes—

(i) any court in the territory of India Constituted or reconstituted under this Constitution as a High Court, and

(ii) any other court in the territory of India which may be declared by Parliament by law to be a High Court for all or any of the purposes of this Constitution.

(III) "Indian State" means—

(i) as respects the period before the commencement of this Constitution, any territory which the Government of the Dominion of India recognised as such a State; and

(ii) as respects any period after the commencement of this Constitution, any territory not being part of the territory of India which the President recognises as being such a State.' "

[(ठठ) 'उच्च न्यायालय' से अभिप्रेत है कोई न्यायालय जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये किसी राज्य के लिये उच्च न्यायालय समझा जाता है, तथा इसके अन्तर्गत है–

(1) इस संविधान के अधीन उच्च न्यायालय में रूप में गठित या पुनर्गठित भारत राज्यक्षेत्र में का कोई न्यायालय; तथा

(2) भारत राज्यक्षेत्र में का कोई अन्य न्यायालय जो इस संविधान के सब या किन्ही प्रयोजनों के लिये संसद से विधि द्वारा उच्च न्यायालय घोषित किया जाये।

(ठठठ) 'देशी राज्यों' से अभिप्रेत है–

(1) इस संविधान के आरंभ से पूर्व की कालावधि में, कोई ऐसा राज्यक्षेत्र जिसे भारत डोमिनियन सरकार ऐसा राज्य अभिज्ञात करती थी; और

(2) इस संविधान के आरंभ के पश्चात् की कालावधि में, कोई ऐसा राज्यक्षेत्र, जो भारत के राज्यक्षेत्र का भाग न हो, और जिसे राष्ट्रपति ऐसा राज्य अभिज्ञात करे।]

***अध्यक्ष:** इस पर कोई संशोधन नहीं है। इस पर कोई बोलना भी नहीं चाहता। अत: मैं इस पर मत लेता हूं–

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (1) के पश्चात् निम्न उपखंड रख दिये जायें:—

'(II) "High Court" means any court which is deemed for the purposes of this Constitution to be a High Court for any State and includes—

(i) any court in the territory of India constituted or reconstituted under this Constitution as a High Court; and

[अध्यक्ष]

(ii) any other court in the territory of India which may be declared by Parliament by law to be a High Court for all or any of the purposes of this Constitution.

(III) "Indian State" means—

(i) as respects the period before the commencement of this Constitution, any territory which the Government of the Dominion of India recognised as such a State; and

(ii) as respects any period after the commencement of this Constitution, any territory not being part of the territory of India which the President recognises as being such a State.' "

[(ठठ) 'उच्च न्यायालय' से अभिप्रेत है कोई न्यायालय जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये किसी राज्य के लिये उच्च न्यायालय समझा जाता है, तथा इसके अंतर्गत है–

(1) इस संविधान के अधीन उच्च न्यायालय के रूप में गठित या पुनर्गठित भारत राज्यक्षेत्र में का कोई न्यायालय; तथा

(2) भारत राज्यक्षेत्र में का कोई अन्य न्यायालय जो इस संविधान के सब या किन्हीं प्रयोजनों के लिये संसद से विधि द्वारा उच्च न्यायालय घोषित किया जाये।

(ठठठ) 'देशी राज्यों' से अभिप्रेत है—

(1) इस संविधान के आरम्भ से पूर्व की कालावधि में, कोई ऐसा राज्यक्षेत्र जिसे भारत डोमिनियन की सरकार ऐसा राज्य अभिज्ञात करती थी; और

(2) इस संविधान के आरम्भ के पश्चात् की कालावधि में, कोई ऐसा राज्य क्षेत्र, जो भारत के राज्यक्षेत्र का भाग न हो, और जिसे राष्ट्रपति ऐसा राज्य अभिज्ञात करे।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि उपखंड (ड) तथा (ढ) अनुच्छेद 303 (1) के अंग बनें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

(संशोधन संख्या 141 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (ढ) के पश्चात्, निम्न उपखंड प्रविष्ट कर दिया जायेः–

'(nn) 'Ruler' in relation to a State for the time being specified in Part III of the First Schedule means the person who for the time being is recognised by the President as the Ruler of the State and includes any person for the time being recognised by the President as exercising the powers of the Ruler of the State, and in relation to an Indian State means the Prince, Chief or other person recognised by the Government of the Dominion of India or the President as the Ruler of the State;' "

[(ढढ) 'शासक' से, किसी राज्य के संबंध में, जो प्रथम अनुसूची के भाग 3 में निर्दिष्ट है, अभिप्रेत है ऐसा व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य का शासक तत्समय अभिज्ञात है और उसके अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति भी है जो राष्ट्रपति द्वारा अभिज्ञात है कि वह तत्समय राज्य के शासक की शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, और देशी राज्य के संबंध में अभिप्रेत है राजा, प्रमुख या अन्य कोई व्यक्ति जो भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा या राष्ट्रपति द्वारा राज्य का शासक अभिज्ञात है;]

***अध्यक्षः** इस पर कोई संशोधन नहीं है। मैं इस पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (ढ) के पश्चात्, निम्न उपखंड प्रविष्ट कर दिया जायेः–

'(nn) 'Ruler' in relation to a State for the time being specified in Part III of the First Schedule means the person who for the time being is recognised by the President as the Ruler of the State and includes any person for the time being recognised by the President as exercising the powers of the Ruler of the State, and in relation to an Indian State means the Prince, Chief or other person recognised by the Government of the Dominion of India or the President as the Ruler of the State;' "

[(ढढ) 'शासक' से, किसी राज्य के संबंध में, जो प्रथम अनुसूची के भाग 3 में निर्दिष्ट है, अभिप्रेत है ऐसा व्यक्ति जो राष्ट्रपति द्वारा उस राज्य का

[अध्यक्ष]

शासक तत्समय अभिज्ञात है और उसके अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति भी है जो राष्ट्रपति द्वारा अभिज्ञात है कि वह तत्समय राज्य के शासक की शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, और देशी राज्य के संबंध में अभिप्रेत है राजा, प्रमुख या अन्य कोई व्यक्ति जो भारत डोमीनियन की सरकार द्वारा या राष्ट्रपति द्वारा राज्य का शासक अभिज्ञात है;]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि 'Securities' में 'Stock' भी शामिल है, यह उल्लेख करने से क्या लाभ है? 'Shares' का भी उल्लेख क्यों न किया जाये?

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** मैं बता सकता हूं, श्रीमान, कि ब्रिटिश संसद प्रायः सरकारी 'सिक्योरिटियों' के विषय में 'स्टाक' शब्द का ही प्रयोग करती है।

***अध्यक्षः** उपखंड (ण) पर कोई संशोधन नहीं है।

प्रश्न यह हैः

"कि उपखंड (ण) अनुच्छेद 303 (1) का खंड बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

मेरे विचार में, हमें यहीं रुक जाना चाहिये।

स्थगित होने से पूर्व मैं एक बात का उल्लेख करना चाहता हूं। मुझे श्री जेड. एच. लारी का, जो इस सभा के सदस्य हैं एक पत्र प्राप्त हुआ है। उन्होंने इस सभा की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है। और उस त्यागपत्र में उन्होंने कुछ कारण दिये हैं जो भाषा संबंधी वाद-विवाद के विषय में हैं जो उस दिन हमारे यहां हुआ था। उन्होंने मुझे कहा है कि मैं इस पत्र को पढ़कर यहां सुना दूं। किन्तु मैं देखता हूं कि यह पत्र मेरे पास पहुंचा उससे पूर्व उसे समाचारपत्रों को भेज दिया गया था और उस पत्र का सार पहले ही समाचारपत्रों में छप चुका है। इस हालत में मैं नहीं समझता कि इस पत्र को सभा में सुनाना मेरे लिये आवश्यक है। हां, मैं इसके संबंध में अन्य आवश्यक कार्यवाही कर लूंगा।

***श्री जसपतराय कपूर** (युक्त प्रान्तः जनरल)ः एक औचित्य प्रश्न है। यदि सदन इस मामले पर कोई कार्यवाही करे तो मेरे विचार में, इसके मजमून पर विचार हो जाना चाहिये तथा सभा को उस पर अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिलना चाहिये।

***माननीय सदस्यगणः** नहीं, नहीं।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इस पर विचार होना चाहिये। मेरा निवेदन तो यही है कि ऐसा नहीं समझना चाहिये कि सभा ने उस पत्र के मजमून पर ध्यान दिया है।

*श्री एम. थिरुमल राव (मद्रास : जनरल): मैं एक बात जानना चाहता हूं, क्या यह आवश्यक है कि इस पत्र को सदन के समक्ष पेश किया जाये या सदन के सदस्य इस पत्र के मजमून को जानें। मैं नहीं समझता कि इसे सदन के समक्ष रखना अपेक्षित है।

*अध्यक्ष: यदि यह मामला प्रकाशित नहीं होता तो इसे सदन के समक्ष पढ़कर सुनाने का प्रश्न उठ सकता था। मैं नहीं कह सकता कि उस स्थिति में क्या विनिश्चय होता, किन्तु अब यह प्रकाशित हो गया है, अतः इसे सदन में पढ़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

*श्री आर.के. सिधवा: उनमें इतनी शिष्टता होनी चाहिये थी कि इसे प्रकाशित नहीं करते।

*श्री महावीर त्यागी: क्या सदन द्वारा या अध्यक्ष द्वारा स्वीकृति आवश्यक है? उनका त्यागपत्र पहुंच गया है इसी से.......

*अध्यक्ष: जैसा कि मैं कह चुका हूं, मैं नियमों के अधीन कार्यवाही करूंगा। नियमों के अधीन मुझे त्यागपत्रों को स्वीकार करने का अधिकार है। उसका सदन से संबंध नहीं है।

सभा आज सायं के 4 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

तत्पश्चात् सभा सायं के 4 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

सभा मध्याह्न भोजन के पश्चात् 4 बजे पुनः समवेत हुई।
अध्यक्ष (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) सभापति थे।

अनुच्छेद 303—(*जारी*)

*अध्यक्ष: अब हम अनुच्छेद 303 की मद (त) को लेंगे।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: इस पर कोई संशोधन नहीं है।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि उपखंड (त) अनुच्छेद 303 (1) का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

*अध्यक्ष: फिर हम उपखंड (थ) को लेते हैं। क्या इस उपखंड पर कोई संशोधन है?

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: संशोधन सं. 3224 है और उसके पश्चात् श्री संतानम् तथा अन्य के संशोधन हैं। मैं नहीं समझता कि वे पेश किये जा रहे हैं।

*अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

"कि उपखंड (थ) अनुच्छेद 303 (1) का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (द) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिया जाये:—

'(द) 'रेलवे' में ट्रामवे समाविष्ट नहीं है चाहे वह पूर्णत: नगरपालिका क्षेत्र में हो या न हो।' "

श्रीमान, क्या मैं उपखंड (ध), (न) तथा (प) पर अन्य संशोधन पेश कर दूं, क्योंकि वे भी इसी के परिणामस्वरूप हैं?

***अध्यक्ष:** हां।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के उपखंड (ध), (न) तथा (प) हटा दिये जायें।"

यह इसलिये किया गया है कि हमने अनुसूची 7 की सूची 1 में संशोधन कर दिया है। अब संघीय रेलों, राज्य-रेलों तथा छोटी रेलों की अलग परिभाषा करना अपेक्षित नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): मैं केवल यही जानना चाहता हूं कि क्या कहीं ट्रामवे की परिभाषा की गई है? रेलवे और ट्रामवे में कहीं कोई आधारभूत अन्तर नहीं है, केवल यही बात है कि एक को रेल कहते हैं, दूसरी को ट्राम।

***अध्यक्ष:** इसी कारण यह लिखा जा रहा है कि रेलवे में ट्रामवे समाविष्ट नहीं है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (द) के स्थान पर, निम्न उपखंड रख दिया जाये:—

'(द) 'रेलवे' में ट्रामवे समाविष्ट नहीं है, चाहे वह पूर्णत: नगरपालिका क्षेत्र में हो या न हो।' "

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के उपखंड (ध), (न) तथा (प) हटा दिये जायें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** (फ) पर कोई संशोधन नहीं है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि उपखंड (फ) अनुच्छेद 303 (1) का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, क्या आप संशोधन संख्या 203 तथा 204 को साथ ले लेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 147 के निर्देश से, अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उप-खंड (ब) के स्थान पर, निम्न उप-खंड रख दिया जायेः—

'(w) 'Scheduled Castes' means such castes, races or tribes or parts of or groups within such castes, races or tribes as are deemed under article 300A of this Constitution to be Scheduled Castes for the purposes of this Constitution.' "

[(ब) 'अनुसूचित जातियां' से अभिप्रेत हैं ऐसी जातियां, मूलवंश या आदिमजातियां अथवा ऐसी जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों के भाग या उनमें के यूथ जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 300-क के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिये अनुसूचित जातियां समझी जाती हैं।]

केवल यही परिवर्तन है कि 'specified' के स्थान पर 'deemed' कर दिया गया है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 148 के निर्देश से, अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उप-खंड (भ) के स्थान पर, निम्न उप-खंड रख दिया जायेः—

'(x) 'scheduled tribes' means such tribes or tribal communities or parts of or groups within such tribes or tribal communities as are deemed under article 300B of this Constitution to be scheduled tribes for the purposes of this Constitution;'"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

[(भ) 'अनुसूचित आदिमजातियां' से अभिप्रेत हैं ऐसी आदिमजातियां या आदिमजाति समुदाय अथवा ऐसी आदिमजातियों या आदिमजाति-समुदायों के भाग या उनमें के यूथ जो कि अनुच्छेद 300-ख के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिये अनुसूचित आदिमजातियां समझी जाती हैं।]

मैं दूसरा संशोधन भी समाविष्ट कर रहा हूं जिसकी सूचना दे दी गई है। क्या हम साथ ही दूसरे दो संशोधनों को भी ले लें?

***अध्यक्षः** हां।

नये अनुच्छेद 300-क तथा 300-ख

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 300 के पश्चात्, निम्न अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिये जायें:—

'300A. Scheduled Castes. (1) The President may, after consultation with the Governor or Ruler of a State, by public notification specify the castes, races or tribes or parts of or groups within castes, races or tribes, which shall for purposes of this Constitution be deemed to be Scheduled Castes in relation to that State.

(2) Parliament may by law include in or exclude from the list of Scheduled Castes specified in a notification issued by the President under clause (1) of this article any caste, race or tribe or part of or group within any caste, race or tribe, but save as aforesaid a notification issued under the said clause shall not be varied by any subsequent notification.

300B. Scheduled Tribes. (1) The President may after consultation with the Governor or Ruler of a State, by public notification specify the tribes or tribal communities or parts of or groups within tribes or tribal communities which shall for purposes of this Constitution be deemed to be scheduled tribes in relation to that State.

(2) Parliament may by law include in or exclude from the list of scheduled tribes specified in a notification issued by the

President under clause (1) of this article any Tribe or Tribal community or part of or group within any Tribe or Tribal community, but save as aforesaid a notification issued under the said clause shall not be varied by any subsequent notification.'"

[300क. (1) राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करने के पश्चात्, लोक अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूलवंशों या आदिम-जातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों के भागों या उनमें के यूथों का उल्लेख कर सकेगा, जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उस राज्य के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियां समझी जायेंगी। अनुसूचित जातियां।

(2) संसद विधि द्वारा किसी जाति, मूलवंश या आदिमजाति को अथवा किसी जाति, मूलवंश या आदिमजाति के भाग या उसमें के यूथ को खंड (1) के अधीन निकाली गई अधिसूचना में उल्लिखित अनुसूचित जातियों की सूची के अन्तर्गत या से अपवर्जित कर सकेगी, किन्तु उपर्युक्त रीति को छोड़कर अन्यथा उक्त खंड के अधीन निकाली गई अधिसूचना को किसी अनुवर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तित नहीं किया जायेगा।

300ख. (1) राष्ट्रपति, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन आदिमजातियों या आदिमजाति-समुदायों अथवा आदिमजातियों या आदिमजाति-समुदायों के भागों या उनमें के यूथों का उल्लेख कर सकेगा जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उस राज्य के सम्बन्ध में अनुसूचित आदिम जातियां समझी जायेंगी। अनुसूचित आदिम जातियां।

(2) संसद विधि द्वारा किसी आदिमजाति या आदिमजाति-समुदाय को, अथवा आदिमजाति या आदिमजाति-समुदाय के भाग या उसमें के यूथ को, खंड (1) के अधीन निकाली गई अधिसूचना में उल्लिखित अनुसूचित आदिमजातियों की सूची के अन्तर्गत, या से अपवर्जित कर सकेगी, किन्तु उपर्युक्त रीति को छोड़कर अन्यथा उक्त खंड के अधीन निकाली गई अधिसूचना को किसी अनुवर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तित नहीं किया जायेगा।]

जैसाकि मैं कह चुका हूं इन दो अनुच्छेदों का उद्देश्य यह है कि संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिमजातियों की लम्बी सूचियां न रखनी पड़े। अब यह प्रस्थापना है कि राष्ट्रपति को शक्ति हो कि वह राज्य के राज्यपाल या

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

राजप्रमुख से परामर्श करके सूचना-पत्र में सामान्य अधिसूचना निकाल सके जिसमें सब जातियों और आदिमजातियों का उल्लेख हो जो उन सब विशेषाधिकारों के प्रयोजनों के लिये, जो उनके लिये संविधान में परिभाषित हैं, अनुसूचित जातियां या अनुसूचित आदिमजातियां समझी जायेंगी। केवल एक ही सीमा रखी है: कि एक बार राष्ट्रपति कोई अधिसूचना निकाल देगा, जो निस्संदेह, वह प्रत्येक राज्य की सरकार की मंत्रणा तथा परामर्श के पश्चात् निकालेगा, तो फिर बाद में, यदि उक्त सूची में कुछ घटाना या बढ़ाना हो तो वह संशोधन संसद द्वारा ही किया जा सकता है, राष्ट्रपति द्वारा नहीं। इसका उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रकाशित अनुसूची में परिवर्तन करने के विषय में कोई राजनैतिक प्रभाव काम न कर सके।

***अध्यक्षः** 218क ।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** उन्होंने पढ़ते समय उसे इसमें समाविष्ट कर दिया है।

***अध्यक्षः** 224।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300क के खंड (2) में, निम्न शब्द अंत में जोड़ दिये जायें:-

'for a period of ten years from the commencement of this Constitution.' "

मैं यह भी प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300ख के खंड (2) में, निम्न शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें:-

'for a period of ten years from the commencement of this Constitution.' "

मैं इस सिद्धान्त से सहमत हूं कि भावी दस वर्ष तक, राष्ट्रपति द्वारा निकाली गई अधिसूचना में कोई परिवर्तन संभव नहीं होना चाहिये। अब रक्षण आदि की विशेष रियायतें अनुसूचित जातियों को दे दी गई हैं, अतः मैं इस बात को पसन्द नहीं करता कि कार्यपालिका, राष्ट्रपति या राज्यपाल या कोई अन्य व्यक्ति उस अधिकार में बाधा डाल सके; किन्तु इस वर्ष के पश्चात्, जब यह रियायत अनुसूचित जातियों को उपलब्ध नहीं होगी, तब अनुसूचित जातियों तथा संविधान के अनुच्छेद 301 के अन्तर्गत घोषित अन्य पिछड़े हुए वर्गों में कोई अन्तर नहीं होगा। उस समय इसका कोई अर्थ नहीं होगा कि राज्यपाल से परामर्श करके राष्ट्रपति द्वारा प्रयुक्त होने वाली इस शक्ति को छीन लिया जाये। अतएव मेरा नम्र निवेदन है कि प्रस्थापित संशोधन को स्वीकार कर लिया जाये जिससे कि यह बात सर्वथा स्पष्ट तथा संदेहहीन हो जाये। यदि 'for a period of ten years from the commencement of this Constitution' ये शब्द नहीं जोड़े जायेंगे तो इसका यह

अर्थ होगा कि 300क तथा ख के अधीन निकाली जाने वाली अधिसूचना के क्षेत्र में उपयुक्त वर्गों को सम्मिलित करने या उससे उपयुक्त वर्गों को निकालने की राष्ट्रपति को शक्ति छिन जायेगी। दस वर्ष के पश्चात् इन वर्गों को जो रियायतें मिल सकेंगी वे शायद अनुच्छेद 10 के अधीन या अनुच्छेद 296 और 299 के अधीन ही मिल सकेंगी। मुझे पता नहीं है कि इन अनुसूचित जातियों को कोई अन्य विशिष्ट रियायतें दी गई हैं या नहीं।

यद्यपि मैं बहुत चाहता हूं कि इन उपबन्धों में परिवर्तन नहीं होना चाहिये, फिर भी मैं यह चाहता हूं कि यह जातियां निश्चित नहीं हो जानी चाहियें और अवसर की मांग होने पर अनुसूची में से निकल जाने की उनकी क्षमता नहीं हटनी चाहिये। अतएव मेरा निवेदन है कि यदि आप यह शब्द रख देंगे तो यह सब उपबन्ध परिवर्तनशील हो जायेगा और राष्ट्रपति को शक्ति मिल जायेगी कि वह दस वर्ष बाद अधिसूचना में किसी आदिमजाति को समाविष्ट कर सके या उसमें से निकाल सके।

***अध्यक्ष**: श्री चालिहा। आपके दो संशोधन हैं। एक 205 है और दूसरा 225 है। मुझे पता नहीं कि अब 205 संगत है या नहीं।

***श्री कुलधर चालिहा** (आसाम : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> "कि पंचम सूची (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 303ख के खंड (2) में, 'Parliament may' इन शब्दों के पश्चात् 'and subject to its decision the State Legislature' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

मैं सदा यह प्रयत्न करता रहा हूं कि राज्यपाल को आदिमजातियों के अधिकारों की रक्षा करने की शक्ति होनी चाहिये। मुझे प्रसन्नता है कि कुछ मामलों में इसे स्वीकार कर लिया गया है। फिर भी कुछ संदेह दिखाई देता है क्योंकि राज्य विधान मंडल की उपेक्षा कर दी गई है। मसौदा-समिति ने राज्य के विधान मंडल को इस विषय में बोलने की शक्ति नहीं दी है। इस कमी को पूरा करने के लिये मैंने कहा है 'Parliament may and subject to its decision the State Legislaturte.'

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी**: फिर राज्य विधान-मण्डल के पास क्या बचा?

***श्री कुलधर चालिहा**: किसी न किसी प्रकार मेरा यह अनुभव है कि आपने उसकी अवहेलना कर दी है। इनमें आपने ऐसी बहुत सी बातें रख दी हैं जिनका आपने पहले विरोध किया था। मुझे प्रसन्नता है कि राज्यपाल को भी शक्ति दे दी गई है। केवल यही बात है कि प्रांतीय विधान-सभाओं को इसमें बोलने का अधिकार नहीं है। संसद जो कुछ कहे वे उससे बाध्य है; किन्तु यदि संसद के आदेशों से संगत रहते हुए वे कुछ कर सकते हैं तो उन्हें उसकी शक्ति मिल जानी चाहिये। इसी कारण मैंने यह प्रस्ताव किया है। किन्तु मैं इस बार अनुगृहीत

[श्री कुलधर चालिहा]

हूं कि मसौदा-समिति ने अच्छे विचार को ग्रहण कर लिया है और केवल प्रान्तीय सभाओं की ही अवहेलना की है। किन्तु राज्यपाल है—यह सुधार है—संसद है और राष्ट्रपति है। अतः इसके लिये मैं मसौदा-समिति को धन्यवाद देता हूं।

*__अध्यक्षः__ श्री सिधवा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ वह विषय तो हो चुका।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार : जनरल): कुछ अन्य संशोधन भी हैं जो नये खंड जोड़ने के विषय में हैं।

*__अध्यक्षः__ वह अलग बात है। बस ये ही संशोधन हैं।

*__श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्लेः__ अध्यक्ष महोदय, मैं उन संशोधनों का समर्थन करता हूं जिन्हें माननीय डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है। इन संशोधनों का संबंध अनुसूचित जातियों की परिभाषा से है। जहां तक मैं देखता हूं उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि, इसके दूसरे भाग के अनुसार, राष्ट्रपति 26 जनवरी 1950 को ऐसी जातियों की सूची प्रकाशित करेगा जो अनुसूचित-जातियों की श्रेणी में आती हैं। किन्तु मैं इस सदन को उस पृष्ठभूमि से अवगत करवाना चाहता हूं जिससे 'अनुसूचित जातियां' इस नाम की उत्पत्ति हुई है। हिन्दू जाति में युगों से अस्पृश्यता का सामाजिक दोष प्रचलित है उसी से सरकार और जनता को पता लगा कि कुछ ऐसे लोगों का वर्ग है जो हिन्दुओं की श्रेणी में आता है और फिर भी उन्हें हिन्दुओं के समाज के बाहर रखा जाता है। 1916 में सरकार ने देखा कि अछूत लोगों के लिये कुछ करना है (जब वे अछूत वर्ग कहते थे तो उनका सदा आशय हिन्दुओं से होता था) और उन्हें मान्यता देनी है। मद्रास में छह जातियां थीं जो इस वर्गीकरण में आती थीं। मौन्टेग-चेम्सफोर्ड सुधारों में उनकी संख्या 10 कर दी गई थी। 1930 में जब महात्मा गांधी का प्रसिद्ध अनशन आरम्भ हुआ, केवल तभी देश को पता लगा कि असली अछूत वर्ग कौन हैं। और 1935 के अधिनियम में, सरकार ने सब चीज पर पूरी तरह विचार किया और जहां तक मद्रास प्रान्त का संबंध है, उन्होंने इस सूची अथवा श्रेणी में 86 जातियां रख दीं, यद्यपि उनमें कुछ सवर्ण जातियां भी थीं। अब अधिक विचार के पश्चात् प्रांतीय सरकार ने एक सूची बनाई है और मेरे विचार में संशोधन के प्रस्तावक के सुझावों के अनुसार, वे सब जातियां जो अछूतों की श्रेणी में आती हैं और जो हिन्दू धर्म की अनुयायी हैं अनुसूचित जातियां होंगी, क्योंकि मैं धर्म पर बल देना चाहता हूं। मैं इस पर इसलिये बल देता हूं कि हाल ही में इधर-उधर कुछ आन्दोलन हुए हैं, कई लोग हिन्दू धर्म तथा अनुसूचित जाति को छोड़ चुके हैं और दूसरे धर्मों को स्वीकार कर चुके हैं और वे भी अनुसूचित जाति होने का दावा करते हैं। इन धर्म परिवर्तितों को सरकार कोई रियायत दे तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर मेरे बहुत प्रबल विचार हैं कि इन्हें अनुसूचित जातियों में नहीं रखना चाहिये।

मैं मसौदा-समिति का तथा उस समिति के सभापति का भी अनुगृहीत हूं कि उन्होंने इसके दूसरे भाग को बहुत स्पष्ट कर दिया है कि भविष्य में एक बार

राष्ट्रपति यह घोषणा कर देंगे कि कौन अनुसूचित जातियां होंगी, तत्पश्चात् यदि अनुसूचित जातियों की सूची में किसी जाति को समाविष्ट करने या उसमें से किसी जाति को निकालने की आवश्यकता होगी तो वह संसद की आज्ञा से ही हो सकेगा। इस खंड के लिये मैं उनका अनुगृहीत हूं क्योंकि मैं जानता हूं, कि वास्तव में, जब हरिजन स्वतन्त्र रूप से व्यवहार करते हैं या अपने अधिकारों की मांग करते हैं तो कुछ प्रांतों के मंत्री केवल उन सदस्यों के विरुद्ध ही कार्यवाही नहीं करते वरन् उस व्यक्ति की जाति के भी विरुद्ध हो जाते हैं; और इस प्रकार केवल वही व्यक्ति नहीं, वरन् उस अनुसूचित जाति के सब लोग भी तंग किये जाते हैं। मेरे विचार में इस उपबन्ध से यह जोखिम दूर हो जाता है।

मैं पंडित भार्गव के संशोधन का प्रबल विरोध करता हूं। कारण यह है कि वे इन संशोधनों के लिये दस वर्षों की अवधि रखना चाहते हैं। किन्तु वे बिल्कुल भूल गये हैं। कि अन्य एक अनुच्छेद के अन्तर्गत, जो हम पहले ही पारित कर चुके हैं, या पारित कर देंगे, संविधान में उपबन्ध है कि केन्द्र में एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जायेगा और सब प्रांतों में विविध अधिकारी नियुक्त होंगे, जो इन जातियों की विविध निर्योग्यताओं पर विचार करेंगे और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन पेश करेंगे जो उस समय यह जान सकेगा, कि क्या अनुसूचित जातियां ऐसी स्थिति पर पहुंच गई हैं जबकि उन्हें दी गई सुविधाओं को वापस ले लिया जा सकता है। मैं नहीं समझता कि पंडित भार्गव ने जो युक्तियां पेश की हैं वे हरिजनों के उत्थान के लिये अच्छी हैं या न्यायपूर्ण हैं।

इन थोड़े से शब्दों के साथ, मैं संशोधन का समर्थन करता हूं।

*__अध्यक्षः__ क्या कोई और बोलना चाहता है? क्या आप कुछ कहना चाहते हैं, डॉ. अम्बेडकर?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन को स्वीकार नहीं करता।

*__अध्यक्षः__ अब मैं संशोधनों पर मत लेता हूं। पहला संशोधन 147 के सम्बन्ध में है।

प्रश्न यह है:–

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 147 के निर्देश से, अनुच्छेद 303 के खंड (1) के उपखंड (ब) के स्थान पर, निम्न उपखंड रख दिया जाये:–

'(w) 'Scheduled Castes' means such castes, races or tribes or parts of or groups within such castes, races or tribes as are deemed under article 300A of this Constitution to be Scheduled Castes for the purposes of this Constitution.' "

[अध्यक्ष]

[(ब) 'अनुसूचित जातियां' से अभिप्रेत हैं ऐसी जातियां, मूलवंश या आदिम-जातियां अथवा ऐसी जातियों, मूलवंशों या आदिमजातियों के भाग या उनमें के यूथ जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 300क के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिये अनुसूचित जातियां समझी जाती हैं।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** फिर (भ) के संबंध में संशोधन है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 148 के निर्देश से, अनुच्छेद 303 के खंड 1 के उपखंड (भ) के स्थान पर निम्न उपखंड रख दिया जाये:–

'(x) 'Scheduled tribes' means such tribes or tribal communities or parts of or groups within such tribes or tribal communities as are deemed under article 300B of this Constitution to be scheduled tribes for the purposes of this Constitution.' "

[(भ) 'अनुसूचित आदिमजातियां' से अभिप्रेत हैं, ऐसी आदिमजातियां या आदिमजाति समुदाय अथवा ऐसी आदिमजातियों या आदिमजाति-समुदायों के भाग या उनमें के यूथ जो कि अनुच्छेद 300-ख के अधीन इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित आदिमजातियां समझी जाती हैं।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** फिर मैं दो नये अनुच्छेदों 300क तथा 300ख पर मत लेता हूं। किन्तु मैं पं. ठाकुरदास भार्गव के संशोधन सं. 224 पर पहले मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300क के खंड (2) में, अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:–

"for a period of ten years from the commencement of this Constitution.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** और कोई संशोधन नहीं है।

फिर मैं सं. 201 पर मत लेता हूं। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 300 के पश्चात्, प्रस्थापित नया अनुच्छेद 300क संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 300क संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** फिर 300ख है तथा श्री सिधवा अथवा श्री कृष्णमाचारी का संशोधन है कि 'tribal' शब्द जोड़ दिया जाये। किन्तु एक और संशोधन श्री चालिहा का है।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300ख के खंड (2) में, 'Parliament may' इन शब्दों के पश्चात् 'and subject to its decision the State Legislature' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** फिर मैं पंडित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन संख्या 227 पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300ख के खंड (2) में, निम्न शब्द अन्त में जोड़ दिये जायें:–

'for a period of ten years from the commencement of this Constitution.' "

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** फिर मैं श्री कृष्णमाचारी के संशोधन पर मत लेता हूं जिसे वास्तव में डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है–218क।

प्रश्न यह है:

"कि सूची 5 (अष्टम सूची) के संशोधन सं. 201 में, प्रस्थापित नये अनुच्छेद 300ख में–

(क) खण्ड (1) में, 'communities' शब्द के स्थान पर, दोनों स्थानों पर जहां वह हो, 'tribal communities' वे शब्द रख दिये जायें;

[अध्यक्ष]

(ख) खंड (2) में, 'community' शब्द के स्थान पर, दोनों स्थानों पर जहां वह हो, 'tribal community' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** फिर मैं अनुच्छेद 300ख पर मत लेता हूं। कि जैसे डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्थापित किया है। प्रश्न यह है:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 300ख स्वीकार किया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 300ख संविधान में जोड़ दिया गया।

अष्टम अनुसूची

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अष्टम अनुसूची को हटा दिया जाये।"

***अध्यक्ष:** अष्टम अनुसूची पर कुछ संशोधन है। अब उनका प्रश्न नहीं उठता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, श्रीमान, अब उनका प्रश्न नहीं उठता।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अष्टम अनुसूची को हटा दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अष्टम अनुसूची को संविधान से निकाल दिया गया।

(ग्रन्थ 2 का संशोधन सं. 3749, जिसमें नई अनुसूची 9 को जोड़ने का प्रस्ताव था, पेश नहीं किया गया।)

अनुच्छेद 303—*(जारी)*

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन-सूची के संशोधन सं. 3234 में, अनुच्छेद 303 के खंड (1) में, प्रस्थापित उपखंड (भ) के पश्चात्, निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:–

'(xx) 'to aid and advise the President' means that there is no

statutory obligation that President is to be guided by ministerial advice.' "

[(भभ) 'राष्ट्रपति को मंत्रणा और सहायता देने' का अर्थ यह है कि राष्ट्रपति के लिये कोई कानूनी बाध्यता नहीं है कि वह मंत्रियों की मंत्रणा पर ही चले।]

श्रीमान, मैं (म) को पेश नहीं करना चाहता और मैंने केवल (भभ) को पेश किया है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान, मुझे भय है कि यह संशोधन नियम-विरुद्ध है, क्योंकि मंत्रिपरिषद् संबंधी अनुच्छेद में हमने निश्चित उपबन्ध रख दिया है कि राष्ट्रपति को अमुक प्रकार से कार्य करना चाहिये जैसा कि अनुसूची 3क में विहित है। मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र कोई उपबन्ध द्वारा अनुसूची 3क के प्रभाव को उसके पेश होने से पहले ही समाप्त नहीं कर सकते। मेरा निदेश अनुच्छेद 62(5)(क) के लिये है। संशोधन उस अनुच्छेद के विरुद्ध है अत: स्वीकार्य नहीं है।

***अध्यक्ष:** इसे औचित्य प्रश्न के रूप में लेने के बजाय मैं संशोधन को ही निबटा देता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधन सूची के संशोधन सं. 3234 में, अनुच्छेद 303 के खंड (1) में, प्रस्थापित उपखंड (भ) के पश्चात्, निम्न नया उपखंड जोड़ दिया जाये:–

'(zz) 'to aid and advise the President' means that there is no statutory obligation that President is to be guided by ministerial advice.' "

[(भभ) 'राष्ट्रपति को मंत्रणा और सहायता देने' का अर्थ यह है कि राष्ट्रपति के लिये कोई कानूनी बाध्यता नहीं होगी कि वह मंत्रियों की मंत्रणा पर ही चले।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (2) में, निम्नलिखित शब्द अंत में जोड़ दिये जायें:–

'as it applies for the interpretation of an Act of the Legislature of the Dominion of India.' "

इसमें 'जनरल क्लाजेज एक्ट' का निर्देश है।

*श्री जसपतराय कपूर: मुझे आश्चर्य है कि ऐसा करने की आवश्यकता सचमुच है या नहीं। यदि है तो पता नहीं यह लिखना कहां तक ठीक रहेगा। कि 'as it applies for the interpretation of an Act of the Legislature of the Dominion of India', क्योंकि बाद में जब संविधान लागू हो जायेगा तो कोई ऐसी विधि नहीं होगी जो 'भारत डोमीनियन के विधान-मंडल' द्वारा बनाई गई हो। भारत डोमीनियन तो रहेगा ही नहीं और भारत डोमीनियन में जो भी अधिनियम लागू होंगे वे स्वत: ही संघ के अधिनियम बन जायेंगे।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: बात यह है कि 'जनरल क्लाजेज एक्ट' अधिनियमों, विनियमों ओर अध्यादेशों पर लागू है। अत: यह कहना आवश्यक है कि इन विधियों की किस कोटि पर यह लागू होगा। इसी कारण यह संशोधन प्रस्थापित किया गया है।

*श्री टी.टी. कृष्णमाचारी: 'जनरल क्लाजेज एक्ट' का निर्देश निर्वचन के प्रयोजनों के लिये है। जहां तक जनरल क्लाजेज एक्ट का संबंध है तीन कोटियां हैं—अधिनियम, अध्यादेश, और विनियम। हम यही चाहते हैं कि केवल वे अंग विशेष, जिनमें अधिनियमों का निर्देश है, इस खंड विशेष के विषय में लागू हों।

*श्री जसपतराय कपूर: मेरा तो यह निवेदन है कि संविधान के लागू होने के पश्चात् ऐसी कोई विधि नहीं होगी, जो 'भारत डोमीनियन' की विधि कहलाये। अत: मेरे विचार में हमारा प्रयोजन पूरी तरह सिद्ध करने के लिये हम कह सकते हैं "as it applies for the interpretation of any existing Act."

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मुझे भय है कि आपने 'जनरल क्लाजेज एक्ट' का मनन नहीं किया है।

*श्री जसपतराय कपूर: ध्यान से विचार किये बिना किसी उपबन्ध को रखने से कोई लाभ नहीं है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: इसे मसौदा-समिति पर छोड़ देना अधिक अच्छा है कि क्या आवश्यक है और क्या नहीं है?

*श्री जसपतराय कपूर: मैं मानता हूं कि आवश्यक शुद्धियां मसौदा-समिति पर छोड़ देनी चाहियें। किन्तु यदि कोई त्रुटि हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं हूं कि यह एक गलती है।

*श्री जसपतराय कपूर: मैं जानता हूं कि आपको विश्वास दिलाना आसान नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मेरा निवेदन है कि संशोधन सं. 206 सर्वथा अनावश्यक है। अनुच्छेद 303 का खंड (2) बिल्कुल स्पष्ट है। उसमें लिखा है:—

"Unless the context otherwise requires the General Clauses Act, 1897 (X of 1897), shall apply for the interpretation of this Constitution."

बस यह बिल्कुल पर्याप्त है। "as it applies for the interpretation of an Act of the Legislature of the Dominion of India" इन शब्दों को जोड़ना नितान्त अनावश्यक है। यह तो बिल्कुल सत्य है ही कि जनरल क्लाजेज एक्ट (General Clauses Act) वास्तव में भारत डोमीनियन के सब अधिनियमों पर लागू है। किसी साहित्य की पुस्तक में जनरल क्लाजेज एक्ट संबंधी यह विशेषणात्मक खंड सर्वथा उपयुक्त हो सकता है, किन्तु विधायी अधिनियमित में यह अनावश्यक है। खंड (2) पूर्णतः स्पष्ट है कि अधिनियम इस संविधान पर लागू है, यह स्पष्ट करना बिल्कुल अनावश्यक है कि 'as it applies for the interpretation of the Dominion Act.' हमें केवल इतना ही कह देना चाहिये कि जनरल क्लाजेज एक्ट संविधान के निर्वचन पर लागू होगा जब तक कि प्रसंग से अन्यथा आवश्यक न हो।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मुझे जो कुछ कहना था वह मैं कह चुका हूं, और जनरल क्लाजेज एक्ट को यहां देखने के पश्चात् मुझे विश्वास हो गया है कि मैंने जो संशोधन पारित किया है वह बहुत आवश्यक है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (2) में, अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:—

'as it applies for the interpretation of an Act of the Legislature of the Dominion of India."

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर खंड 3। संशोधन सं. 156।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (3) में—

(1) 'भाग 1' शब्द तथा अंक के पश्चात् 'अथवा भाग 3' ये शब्द तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें;

(2) 'as the case may be, to an Ordinance made by a Governor, इन शब्दों के स्थान पर 'to an Ordinance made by a Governor or Ruler, as the case may be' ये शब्द रख दिये जायें।"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यह अन्य संशोधनों के परिणामस्वरूप ही है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 303 के खंड (3) में—

(1) 'भाग 1' शब्द तथा अंक के पश्चात् 'अथवा भाग 3' ये शब्द तथा अंक प्रविष्ट कर दिये जायें;

(2) 'as the case may be, to an Ordinance made by a Governor' इन शब्दों के स्थान पर 'to an Ordinance made by a Governor or Ruler, as the case may be' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** अब मैं समूचे संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 303 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 303 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 304

***अध्यक्षः** अनुच्छेद 304। संशोधन सं. 118।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:—

Procedure for amendment of the Constitution.

'304. An amendment of the Constitution may be initiated by the introduction of a Bill for the purpose in either House of Paliament, and when the Bill is passed in each House by a majority of the total membership of that House and by a majority of not less than two-thirds of the members of that House present and voting, it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill the Constitution shall stand amended in accordance with the terms of the Bill:

Provided that if such amendment seeks to make any change in—

(a) any of the Lists in the Seventh Schedule, or

(b) the representation of States in Parliament, or

(c) Chapter IV of Part V, Chapter VII of Part VI, and article 213A of this Constitution,

the amendment shall also require to be ratified by the Legislatures of not less than one-half of the States for the time being specified in Parts I and III of the First Schedule.' "

[304. इस संविधान के संशोधन का सूत्रपात उस प्रयोजन के लिये विधेयक की संसद के किसी सदन में पुर:स्थापित करके ही किया जा सकेगा तथा जब प्रत्येक सदन द्वारा उस सदन की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत से तथा उस सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई से अन्यून बहुमत से वह विधेयक पारित हो जाता है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष उसकी अनुमति के लिये रखा जायेगा तथा विधेयक को ऐसी अनुमति दी जाने के पश्चात् विधेयक के निबंधनों के अनुसार संविधान संशोधित हो जायेगा: संविधान के संशोधन के लिये प्रक्रिया।

परन्तु यदि ऐसा कोई संशोधन–

(क) सातवीं अनुसूची की सूचियों में से किसी में;

(ख) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में; अथवा

(ग) भाग 5 के अध्याय 4, भाग 6 के अध्याय 7, और अनुच्छेद 213क में,

कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे संशोधन के लिये प्रथम अनुसूची के भाग 1 और 3 में उल्लिखित राज्यों में से कम से कम आधों के विधान-मंडलों का उस प्रयोजन के लिये उन विधान-मंडलों से अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा।]

मैं अपना दूसरा संशोधन सं. 207 भी पेश करूंगा। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 304 के परन्तुक के स्थान पर निम्न परन्तुक रख दिया जाये:–

'Provided that if such amendment seeks to make any change in—

(a) article 43, article 44, article 60, article 142 or article 213A of this Constitution, or

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(b) Chapter IV of Part V, Chapter VII of Part VI, or Chapter I of Part IX of this Constitution, or

(c) any of the Lists in the Seventh Schedule, or

(d) the representation of States in Parliament, or

(e) the provisions of this article.'

the amendment shall also require to be ratified by the Legislatures of not less than one half of the States for the time being specified in Parts I and III of the First Schedule by resolutions to that effect passed by those Legislatures before the Bill making provisions for such amendment is presented to the President for assent."

[किन्तु यदि ऐसा कोई संशोधन–

(क) इस संविधान के अनुच्छेद 43, अनुच्छेद 44, अनुच्छेद 60, अनुच्छेद 142 अथवा अनुच्छेद 213क में; या

(ख) इस संविधान के भाग 5 के अध्याय 4, भाग 6 के अध्याय 7, अथवा भाग 9 के अध्याय 1 में; या

(ग) सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में; या

(घ) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में; या

(ङ) इस अनुच्छेद के उपबन्धों में,

कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे उपबन्ध करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिये उपस्थित किये जाने से पहले उस संशोधन के लिये प्रथम अनुसूची के भाग (1) और (3) में उल्लिखित राज्यों में से कम से कम आधों के विधान-मंडलों का उस प्रयोजन के लिये उन विधान-मंडलों से पारित संकल्पों द्वारा अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा।]

श्रीमान, मैं इस समय कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद पर काफी वाद-विवाद होगा और मेरा विचार अंत में ही कुछ बोलने का है जिससे कि मैं उन बातों का उत्तर दे सकूं जो इस संशोधन के विरुद्ध कही जा सकती हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अनावश्यक वाद-विवाद को हटाने के लिये पहले ही युक्तियां दे देना अधिक अच्छा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** यदि मेरे मित्र महोदय मुझे प्रत्याभूति दे दें कि वे समय नहीं लेंगे, तो मैं ऐसा ही करूंगा, किन्तु मैं जानता हूं कि मेरे मित्र महोदय चित भी अपनी और पट भी अपनी ही रखना चाहते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, आरंभ में तो डॉ. अम्बेडकर कोई युक्ति न देकर यह कहते हैं कि वे विरोधी तर्कों को सुनकर उत्तर देंगे। किन्तु अन्त में तर्कों को सुनकर वे केवल इतना ही कह देंगे "मैं संशोधनों का विरोध करता हूं और तर्कों को अस्वीकार करता हूं।"

***अध्यक्षः** हम संशोधनों को लेंगे। सं. 119।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान, मैं संशोधन सं. 119 को पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि वह डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में समाविष्ट है। वह सं. 207 में आ जाता है।

***अध्यक्षः** सं. 157। श्री सन्तानम्।

***माननीय श्री के. सन्तानम्ः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** सं. 158, श्री टी.टी. कृष्णमाचारी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** वह भी डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 के सारवान भाग के स्थान पर, निम्न रख दिया जायेः—

'304. This Constitution may be added to; or amended by, the introduction of a Bill for this purpose in either House of Parliament and passed in both Houses of Parliament by a clear majority of the total membership of each House. The provisions of the Bill shall not, however come into force until assented to by the President.' "

[304. इस संविधान में परिवर्धन या संशोधन करने के लिये इस प्रयोजन के लिये एक विधेयक संसद के किसी सदन में पेश किया जायेगा तथा प्रत्येक सदन के कुछ सदस्यों के स्पष्ट बहुमत से संसद के दोनों सदनों में पारित होने पर संविधान में संशोधन हो जायेगा। किन्तु विधेयक के उपबन्ध तब तक लागू नहीं होंगे जब तक कि राष्ट्रपति उन पर अनुमति न दे दे।]

श्रीमान, मैं संशोधन सं. 210 को भी पेश करता हूं:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जायेः–

Provided that for a period of three years from the commencement of this Constitution, any amendment of the Constitution certified by

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

the President to be not one of substance may be made by a Bill for the purpose being passed by both Houses of Parliament by a simple majority. This will, among other things, include any formal amendment recommended by a Majority of the Judges of the Supreme Court on the ground of removing difficulties in the administration of the Constitution or for the purpose of carrying out the Constitution in public interest and certified by the President to be necessary and desirable.' "

[परन्तु इस संविधान के आरम्भ से तीन वर्ष की अवधि में, संविधान का कोई संशोधन, जिसे राष्ट्रपति प्रमाणित कर दे कि वह सारवान संशोधन नहीं है, ऐसे विधेयक द्वारा किया जा सकता है जो उस प्रयोजन के लिये संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से पारित किया जाये। इसमें, अन्य बातों के अतिरिक्त ऐसा औपचारिक संशोधन समाविष्ट होगा जिसकी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का बहुमत, संविधान के प्रशासन में कठिनाइयां दूर करने के आधार पर अथवा संविधान को सार्वजनिक हित में चलाने के लिये, सिफारिश करे तथा राष्ट्रपति आवश्यक एवं अभीष्ट प्रमाणित कर दे।]

फिर एक और संशोधन सं. 212 है। श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 2 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 के निर्देश से, अनुच्छेद 304 के पश्चात् निम्न नया अनुच्छेद प्रविष्ट कर दिया जाये:—

'304A. Notwithstanding anything contained in this Constitution to the contrary, no amendment which is calculated to infringe or restrict or diminish the scope of any individual rights, any rights of a person or persons with respect to property or otherwise, shall be permissible under this Constitution and any amendment which is or is likely to have such an effect shall be void and *ultra vires* of any legislature."

[304क. इस संविधान में कोई विपरीत बात होते हुए भी, कोई संशोधन, जिसका उद्देश्य किसी वैयक्तिक अधिकारों के किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के संपत्ति संबंधी या अन्य अधिकारों के क्षेत्र का अतिक्रमण करना, अथवा कम करना अथवा निर्बन्धित करना हो, इस संविधान के अधीन पेश नहीं हो सकेगा, और कोई संशोधन जिसका ऐसा प्रभाव हो या हो सकता हो, अवैध होगा तथा किसी विधान-मंडल की शक्ति से परे होगा।]

श्रीमान, इन संशोधनों के पढ़ने से ही स्पष्ट है कि वे एक दूसरे के विकल्प रूप में हैं। मेरा प्रथम संशोधन (सं. 208) अनुच्छेद 304 के, जो डॉ. अम्बेडकर ने आज तीसरे पहर पेश किया था, सारवान अंग का संशोधन है। उसका मुख्य उद्देश्य यह है कि संविधान का संशोधन इतना कठिन नहीं बना देना चाहिये जैसा डॉ. अम्बेडकर के अनुच्छेद से बन जाएगा। मैंने संविधान के संशोधन को सरल बनाने का जो सुझाव दिया है, उसका मुख्य कारण यह है कि चाहे हमने इस संविधान की रचना में ढाई वर्ष से अधिक समय खर्च कर दिया है, तथापि हम जानते हैं और मुझे विश्वास है कि मसौदा-समिति के कई सदस्य भी यह बात समझते हैं कि जब संविधान सचमुच अमल में आयेगा तब कई उपबन्धों से कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं।

हां, कुछ लोगों ने जिन्हें इसका ज्ञान नहीं है, प्रधानतया पत्रकारों ने, जिन्हें पता नहीं है, कि संविधान क्या होना चाहिये, यह शिकायत की है कि हम बहुत धन व्यय कर रहे हैं। मेरे विचार में वे ऐसे लोग हैं जो कुछ समय से ही पत्रकार बने हैं और वे इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि संविधान की रचना क्या होती है। मुझे विश्वास है, श्रीमान, कोई समझदार व्यक्ति ऐसे पत्रकारों की ओर ध्यान नहीं देगा, उनके पास लेखनी और मसि है और उन्हें कहीं किसी पूंजीपति ने नौकर रख लिया है कि वे दैनिकों या साप्ताहिकों में वह सब कुछ लिखें जो कि उनके दिगाम में आ जाये। मुझे पता है कि वे प्राय: ऐसी बातें लिखते हैं जो जनता के हित में नहीं होतीं। मुझे विश्वास है, श्रीमान, हम इस प्रकार की आलोचनाओं से नहीं डरते। मेरे विचार में, हमने यथेष्ट समय नहीं लगाया है, आर हमने कई सदस्यों को जो वाद-विवाद में कुछ अंशदान कर सकते थे, ऐसा नहीं करने दिया है। वास्तव में हम उन सिद्धान्तों तथा नियमों पर पूरी तरह नहीं चले हैं जिन पर संसदीय लोकतन्त्रों को चलना चाहिये। संसदीय लोकतन्त्र को बातचीत की बैठक कहा जाता है और सदा कहा जाता रहेगा, और यह ठीक है, तो इसकी यही मंशा है कि हममें से तुच्छ से तुच्छ कुछ लाभप्रद और अच्छी बात कह सकता है, अत: हमारे लिये यह अनिवार्य है कि हम उसे बोलने का अवसर दें। संसद का यही प्रयोजन है और यदि कभी-कभी कोई लम्बे भाषण हो जाते हैं तो मेरे विचार में उस पर कोई शिकायत नहीं होनी चाहिये। अत: मेरा कहना यही है कि हमने इतना यथेष्ट समय नहीं लगाया है कि सदस्यों को इस संविधान के निर्माण में अपना सर्वोत्तम अंशदान करने का अवसर प्रदान करते।

इन्हीं कारणों से यह संविधान कई प्रकार से त्रुटिपूर्ण सिद्ध होगा। ऐसी अवस्था में, जबकि हम जिन परिस्थितियों में काम कर रहे हैं उनमें यह बात अनिवार्य है, हमें संविधान के संशोधन के लिये प्रत्येक सुविधा देनी चाहिये। यदि आप हवा या आंधी के गुजरने के लिये कोई आवश्यक मार्ग नहीं छोड़ते हैं तो संभव है कि समूचा जहाज की फट जाये। इसी कारण से श्रीमान, मैंने दो संशोधन यहां पेश किये हैं। एक तो यह है कि संसद के लिये यह संभव होना चाहिये कि वह दो-तिहाई बहुमत के बिना ही इसमें संशोधन कर सके। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित खंड में दुहरा उपबन्ध है। केवल यही काफी नहीं है कि सभा के कुल

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

सदस्यों का बहुमत संशोधन के पक्ष में हो, वरन् जब वह विधेयक सदन में पेश हो तथा पारित हो तब उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत उसके पक्ष में होना चाहिये। इसका यह अर्थ हुआ कि संविधान के संशोधन संबंधी विधेयक को पारित करने के लिये दुहरी कठिनाई है। यदि आपको कामा भी बदलना हो, कोई पारिभाषिक परिवर्तन भी करना हो, तो उस परिवर्तन के लिये भी बहुत भारी परिश्रम करना पड़ेगा, मूलाधिकारों में परिवर्तन की तो बात ही अलग है।

अत: मैंने अपने द्वितीय संशोधन में यह सुझाव दिया है कि कम से कम पांच वर्ष की कालावधि में तो, संसद के लिये संभव होना चाहिये कि वह सदन के बहुमत से संशोधनों को पारित कर सके, वरन् मैंने दो और सुझाव भी दिये हैं कि जब भी राष्ट्रपति प्रमाणित कर दे कि कोई संशोधन विशेष सारवान नहीं है, उससे संविधान के सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं होगा, वह केवल औपचारिक है जिसके कारण भारत के शासन या समुचित प्रशासन में बाधा पड़ती है, यदि राष्ट्रपति यह प्रमाणित कर दे कि यह संशोधन, जो कि सारवान नहीं है, अपेक्षित है तो उसे सदन के बहुमत मात्र से पारित करना संभव होना चाहिये। मैंने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का उल्लेख किया है। क्योंकि उनकी बुद्धिमानी पर ही संविधान का भाग्य काफी हद तक निर्भर होगा।

श्रीमान, संविधान में जहां भी हमने अपने लोगों को कोई अधिकार प्रदान किये हैं, वहां मैं संविधान की रक्षा करना चाहता हूं चाहे वे नागरिक के अधिकार हों, मूलाधिकार हों अथवा उनके परिणामस्वरूप कोई अधिकार हों। उसी प्रयोजन से मैंने संशोधन संख्या 212 का सुझाव दिया है। उसमें यह उपबन्ध है कि संसद को यह अधिकार नहीं होगा कि वह ऐसा विधेयक ला सके जिससे कि संविधान का संशोधन करके उसमें प्रदत्त व्यक्तियों अथवा जनवर्गों के किन्हीं अधिकारों का अतिक्रमण हो। मुझे विश्वास है कि इससे ऐसे विधेयकों में बाधा नहीं पड़ेगी जिनका उद्देश्य इन अधिकारों को बढ़ाना हो, यह आवश्यक भी नहीं है। जनता के मन में आशंका है कि उनकी स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं है और ज्यों ज्यों हमें अधिकाधिक स्वतंत्रता मिलती जाती है, उन्हें उतनी भी स्वतंत्रता नहीं मिलती जितनी कि उन्हें विदेशियों ने दी हुई थी। अनुच्छेद 15-क व्यक्तियों की स्वतंत्रता के रक्षण के लिये काफी नहीं है, इसलिये यह संशोधन आवश्यक भी है और अभिष्ट भी है। मुझे आशा है कि सदन सहमत होगा कि यह संशोधन आवश्यक है और अनुच्छेद में समुचित संशोधन कर दिया जायेगा।

मैं यह अनुभव करता हूं कि भविष्य में कुछ समय तक संविधान में कई परिवर्तन करने आवश्यक होंगे। यद्यपि हमने संविधान बनाने में अनेक मास लगाये हैं फिर भी इसमें कई त्रुटियां हैं। कुछ स्थानों पर परस्पर-विरोधी उपबंध हैं, जिनका निर्वचन होने पर वे अधिकाधिक स्पष्ट हो जायेंगे। अत: यदि हम संशोधन करना आसान नहीं बनायेंगे तो समूचे प्रशासन को क्षति पहुंचेगी। जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा है, यदि आप कोई रास्ता नहीं रखेंगे तो इसका यह परिणाम हो सकता है कि भावी संसदें समस्त संविधान को ही ठुकरा दें या स्वीकार न करें और

वे किसी अधिक कठोर तथा क्रांतिकारी उपाय को अपनायें। यदि हम उन्हें उनके तरीके से इस देश के भविष्य को ढालने का अवसर नहीं देंगे, जो संशोधनों की प्रक्रिया को सरल बना कर ही हो सकता है, तो उनके पास कोई उपाय ही नहीं नहीं रहेगा सिवाय इसके कि वे समूचे संविधान को ही रद्द कर दें। ऐसी स्थिति मे राज्य को ही हानि होगी। अत: रास्ता रखना ही अधिक अच्छा है जिससे कि संविधान के किसी उपबन्ध से कोई असंतोष हो तो उसका आसानी से इलाज हो सके। हमें शिकायतों तथा असंतोष को इस हद तक नहीं बढ़ने देना चाहिये कि उसके फलस्वरूप राज्य का प्रशासन ही उलट जाये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 में, 'and by a majority of not less than two-thirds of the members of that House present and voting' ये शब्द हटा दिये जायें।

मेरा अगला संशोधन यह है:–

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 के परन्तुक का खंड (क) हटा दिया जाये।"

मेरा तीसरा संशोधन सं. 229 है। उसमें लिखा है:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 207 में, अनुच्छेद 304 के प्रस्थापित परन्तुक में 'Legislatures of not less than one-half of the States for the time being specified in Parts I and III of the First Schedule by resolutions to that effect passed by those Legislatures before the Bill making provision for such amendment is presented to the President for assent' इन शब्दों के स्थान पर 'electorate' शब्द रख दिया जाये।"

श्रीमान्, यह नया संशोधन संख्या 207 कल रात को 10 बजे ही हमें प्राप्त हुआ था। हम देखते हैं कि इन दो संशोधनों में आकाश-पाताल का अंतर है। संसद के हाथ से अधिक शक्तियां ले ली गई हैं तथा राज्य के विधान-मंडलों को दे दी गई हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों को संसद संशोधित नहीं कर सकती और संशोधन विधेयक को पारित करने के लिए 50 प्रतिशत विधान-मंडलों का सहमत होना आवश्यक है।

मेरा यह ख्याल है कि इन संशोधनों की क्रिया में राज्यों के विधान-मंडलों को शामिल नहीं करना चाहिये। आस्ट्रेलिया के संविधान में एक उपबन्ध है कि यदि संसद के दोनों सदनों में संघर्ष हो अथवा कोई सदन दूसरे सदन में के संशोधन विधेयक को पारित न करे तो समस्त मामला मतदाताओं के पास जायेगा।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

यदि हम आस्ट्रेलिया के संविधान की इस बात को अपने संविधान में रख लें तो यह बहुत लाभदायक होगा। मेरे विचार में आस्ट्रेलिया में जो बात संभव है वह भारत में भी संभव होगी। यदि आस्ट्रेलिया की जनता इस संशोधन की प्रणाली को स्वीकार करने के लिये सक्षम और योग्य है तो नि:संदेह हम भी आस्ट्रेलिया वालों के बराबर योग्य हैं, शायद अधिक ही हों, और हमें उसी प्रणाली को अपनाने का अधिकार है। मैं राज्यों के विधान-मण्डलों को संविधान के संशोधन की क्रिया में शामिल नहीं करना चाहता।

यह तो साधारण समझ की बात है कि यदि हम ज़मींदारी समाप्त करना चाहें तो हम ज़मींदार की सहमति नहीं पूछ सकते। यदि आप उसके लिये रुके रहेंगे तो आपका प्रयोजन कभी सिद्ध नहीं होगा और आप ज़मींदारी कभी समाप्त नहीं कर सकेंगे। इसी प्रकार यदि आप पूंजीवाद को मिटाना चाहते हैं तो आप पूंजीपति की सहमति के लिये कभी प्रतीक्षा नहीं कर सकते। संविधान में संशोधन करने का यही प्रभाव होगा कि राज्य की सरकारों से अधिक शक्ति लेकर केन्द्र को प्रदान कर दी जाये। ऐसी हालत में, मैं तो समझ ही नहीं पाता कि कोई भी विधान-मंडल ऐसी बात पर सहमत हो सकता है। प्रान्तीय सरकारें तो निहित स्वार्थ हैं। उनका समाज में ऐसा ही स्वार्थ निहित होता है जैसा कि हमारे पूंजीपति मित्रों का है। अत: संविधान में संशोधन करने के लिये वही सीधा सा उपाय अपनाइये जो आस्ट्रेलिया के संविधान में दिया हुआ है।

श्रीमान्, मैं जनमत-गणना के पक्ष में हूं क्योंकि उससे कई लाभ हैं। यह लोकतंत्रीय उपाय है, क्योंकि यह जनता से पूछना है, और जब संसद तथा प्रान्तीय सरकारों में संघर्ष हो तब किसी सरकार को गतिरोध समाप्त करने के लिये जनता की राय लेने में क्या आपत्ति हो सकती है। दूसरी बात यह है कि, मैं जनमतगणना के पक्ष में इसलिये हूं कि इससे दलीय सरकारों की कई त्रुटियां ठीक हो सकती हैं। लोग समझते हैं कि यह बहुत क्रांतिकारी शस्त्र है और हमारे समान रूढ़िवादी लोगों को ठीक-ठीक विचार किये बिना उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। यह तो वास्तव में रूढ़िवादी उपाय है क्योंकि इससे तो वे विधियां या संस्थायें बनी रहेंगी जिन्हें अधिकांश निर्वाचक बनाये रखना चाहते हैं। अत: यह क्रांतिकारी शस्त्र नहीं हो सकता। तीसरी बात यह है, श्रीमान्, कि जनमत-गणना का सिद्धान्त जनता की प्रभुता को स्पष्ट मान्यता देना है। चौथी बात यह है कि संसदीय बहुमत प्राप्त किसी दल की निरंकुशता को कुचलने का यह प्रबल शस्त्र होगा।

इस संबंध में मैं प्रोफेसर डायसी की प्रसिद्ध पुस्तक "संविधान की विधि" में से कुछ वाक्य पढ़ कर सुनाना चाहता हूं जिन पर मैं चाहता हूं, इस सभा के माननीय सदस्य ध्यान दें:—

> "प्रत्येक प्रकार के लोकप्रिय शासन में अब निर्वाचित विधायी निकायों पर से विश्वास हटता जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सार्वजनिक भावना वाले नागरिक अब दलीय व्यवस्था को संदेह की दृष्टि से देखते हैं, प्राय: घृणा की दृष्टि से भी देखते हैं, इंग्लिस्तान में मिश्रित सरकारों, संसदीय षड्यंत्रों आदि के कारण लोक सभा में नैतिक तथा राजनैतिक निष्ठा कम होती जा रही है।

कई अंग्रेजों का विश्वास है कि उन बुराइयों को कम करने का कोई उपाय निकालना चाहिये जो बड़े भारी निर्वाचन मंडल में हमारी दलीय व्यवस्था में स्वभावतः उत्पन्न हो ही जाती है, चाहे वे अनिवार्य नहीं हैं। इसका स्पष्ट उपचार यह है कि जनता के हाथ में विशेषाधिकार सौंप दिये जायें जो संसदीय बहुमत की असीमित शक्ति को निर्बन्धित कर सके।"

इसी बुराई को दूर करने के लिये प्रोफेसर डायसी जैसे व्यक्ति ने इस जनमतगणना के उपाय का समर्थन किया है यद्यपि वह कोई समाजवादी, साम्यवादी या उग्रवादी नहीं है। प्रोफेसर डायसी का यह मत है कि जनमतगणना से निर्वाचकों में एक प्रकार की विवेकयुक्त ईमानदारी बढ़ जायेगी जो शीघ्र नष्ट होती जा रही है। मैं संशोधन के केवल अंतिम भाग का निर्देश कर रहा हूं जिसमें 'State Legislature' के स्थान पर 'referendum' रखने का सुझाव है।

***एक माननीय सदस्यः** क्या वे समाप्त कर चुके हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं संशोधन के अन्य अंगों पर आ रहा हूं। मैं नहीं चाहता कि संसद की शक्तियों पर बंधन लगाया जाये। अनुच्छेद 304 द्वारा हम जो बात रखना चाहते हैं वह मुझे बिल्कुल नापसंद है, उससे मुझे बिल्कुल घृणा है। यह दो तिहाई बहुमत का उपबंध के रूप में होगा। यदि इस बात पर हट की जायेगी तो संविधान में संशोधन करना ही असंभव हो जायेगा।

मैं अनुभव करता हूं कि राज्यों के हित में भी यह आवश्यक नहीं है। संसद के उच्च सदन के सदस्य सब राज्यों के ही प्रतिनिधि होंगे और यह कल्पना ही नहीं की जा सकती कि ये लोग किसी परिस्थिति के केन्द्र को अधिक शक्ति देना चाहेंगे तथा राज्यों से शक्तियां लेना चाहेंगे। यह दो तिहाई बहुमत का उपबन्ध प्रगतिशील विधि-निर्माण में बाधा होगा और देश में क्रांतिकारी तथा अराजकता की शक्तियों के लिये रास्ता खोल देगा। मेरा यह विचार है कि इस संविधान के आरम्भ से दस वर्ष तक के लिये तो इन रक्षण-कवचों को हटा देना चाहिये। श्रीमान्, आज हम असाधारण स्थिति में रह रहे हैं। विभाजन के प्रभाव से हमारी दृष्टि धुंधली हो गई है। बहुत बड़ी जनसंख्या द्वारा देश के एक भाग से दूसरे भाग में जाने के कारण और उनके दुःखों को देखने के पश्चात् हम किसी वस्तु पर निष्पक्ष विचार करने में असमर्थ हैं। कई और कारणों से भी हमारी दृष्टि अस्पष्ट हो गई है तथा इसका फल यह है कि हम किसी बात पर तटस्थता से विचार नहीं कर सकते। इस संविधान के आरम्भ से कम से कम दस वर्ष तक संविधान को संशोधित करने का तरीका आसान होना चाहिये।

मेरे इस परिवर्तन को चाहने का एक और भी कारण है। मैं लचकदार संविधान के पक्ष में हूं। मैं ऐसा संविधान नहीं चाहता जिसमें परिवर्तन करना कठिन हो। निकट भविष्य में एशिया में क्रांतिकारी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। उस स्थिति

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

का यही इलाज है कि भारत सरकार के काम में किसी प्रकार कोई बंधन नहीं होना चाहिये। एक और भी कारण है जिससे कि मैं लचकदार संविधान चाहता हूं। मेरा यह मत है कि हमारा यह पतन काल है। एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् ही हम आगामी शताब्दी की आवश्यकताओं को समझ सकेंगे। भगवान के नाम पर संविधान को अपरिवर्तनशील मत बनाइये।

एक और भी कारण है जिससे कि मैं लचकदार संविधान के पक्ष में हूं। मुझे आशा है कि मेरे मित्र मेरी स्पष्टवादिता पर मुझे क्षमा करेंगे। उत्तरी तथा हिन्दी भाषी प्रदेशों का दक्षिणी तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों पर आधिपत्य के भय के कारण यह संविधान अपना अपंग बना दिया गया है। हमने एक मध्यवर्गीय संविधान बनाया है। हमने यथासंभव यह प्रयत्न किया है कि इस देश में समाजवाद और एकात्मक राज्य की स्थापना को रोका जाये। युग की प्रचलित प्रवृत्ति की तथा हमारी विकासशील आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्णतः उपेक्षा कर दी गई है। यदि हमने इस संविधान को लचकदार नहीं बनाया तो यह समय की शक्ति को सहन नहीं कर सकेगा। हमारे प्राचीन विधि-निर्माता ऐसी बातों पर विचार नहीं करते थे। हमने तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये तथा निहित स्वार्थों के लिये राजनैतिक तथा आर्थिक स्वार्थों के लिये बुद्धिमत्ता को बलिदान कर दिया है। आपकी अनुमति से, श्रीमान्, मैं डायसी से एक और उद्धरण देता हूं। *(बाधा)*। मुझे आशा है कि सदस्य मुझे अपनी युक्तियां ठीक प्रकार पेश करने देंगे। शायद सदस्यों को इसमें दिलचस्पी नहीं है और वे परिस्थिति को समझते नहीं।

> "फ्रांस के बारह अपरिवर्तनशील संविधान औसत से दस वर्ष से कम समय तक रहे हैं, और प्रायः हिंसक क्रांति द्वारा नष्ट हुए हैं। लूई फिलिप का राजतन्त्र उस समय से 7 वर्ष के भीतर ही मिट गया जबकि टूकेविल्ले ने यह कह दिया कि चार्टर को वैधानिक रूप से बदलने की कोई भी शक्ति है ही नहीं। कम से कम एक तो बदनाम घटना है ही—चाहे क्रांतिकारी फ्रांस के इतिहास में अन्य भी उदाहरण हों—जबकि संविधान को हिंसात्मक क्रांति से समाप्त करने का आधार या बहाना उसकी अपरिवर्तनशीलता थी।"

***श्री कला वेंकट राव** (मद्रास : जनरल): वे जरा धीरे-धीरे पढ़ें। हम उनके भाषण को पूरी तरह समझ नहीं रहे हैं।

***श्री एच.जे. खांड़ेकर** (मध्यप्रदेश तथा बरार : जनरल): वे इतनी जल्दी कर रहे हैं। मैं उनकी बात नहीं समझ पा रहा हूं।

***श्री एस. थिरुमल रावः** एक बात जानना चाहता हूं, श्रीमान्। जो सदस्य जबानी भाषण दे सकते हैं, क्या वे पांडुलेख से पढ़ सकते हैं?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं एक पुस्तक से पढ़ रहा हूं। मैं डायसी का उद्धरण दे रहा हूं:

> "1851 की सशस्त्र क्रांति का मुख्य कारण यह था कि फ्रांसीसी लोग अपने राष्ट्रपति का पुनर्निर्वाचन चाहते थे, पर संविधान के अनुसार यह असंभव था,

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न जनता की इच्छा पूरा होना संभव नहीं था, और संविधान के संबद्ध अनुच्छेद को बदलने के लिये विधान-सभा के सदस्यों का पौना बहुमत आवश्यक था। यदि गणराज्य सभा सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न संसद होती तो लूई नैपोलियन यह बात नहीं कह सकता था जिससे उसका 2 दिसम्बर का अपराध उचित प्रतीत होता था और ऐसे उद्देश्यों को नहीं अपना सकता था जिससे कि उसे ऐसा अपराध करना पड़ा।"

मैं समस्त अध्याय को नहीं पढ़ रहा हूं। मैं अध्यक्ष की अनुमति से केवल एक कंडिका को पढ़ रहा हूं। *(बाधा)*।

मेरे विचार में सभा के माननीय अध्यक्ष को यह बताना आवश्यक नहीं है कि वे सभा की कार्यवाही कैसे चलायें। वे यहां सबसे अधिक सक्षम हैं।

"यह भी नहीं समझना चाहिये कि 1848 के राजनीतिज्ञों द्वारा निर्मित संविधान की अखंडता के कारण फ्रांस को जो कठिनाइयां भोगनी पड़ी थीं वे अपवाद थीं; वे उन त्रुटियों के कारण उत्पन्न हुई थीं जो प्रत्येक अपरिवर्तनशील संविधान में निहित होती हैं। ऐसी विधियां बनाने का प्रयत्न करना, जो बदली नहीं जा सकतीं, प्रभु शक्ति के प्रयोग में बाधा डालना है; अतः इसका परिणाम यह होता है कि विधि का राज्य की वास्तविक सर्वोच्च सत्ता से संघर्ष हो जाता है। फ्रांस के निर्वाचकों का बहुमत संविधान के अधीन फ्रांस के सच्चा प्रभु था। किन्तु राष्ट्रपति की वैधानिक पुनर्निर्वाचन का नियम वास्तव में ऐसा था जिससे विधि का निर्वाचकों के बहुमत की इच्छा से संघर्ष हो गया, अतः विधि तथा प्रभु की इच्छा में विरोध हो गया जो प्रायः अपरिवर्तनशील संविधान में होता ही है। फ्रांसीसी संविधानों की कठोरता से क्रांति का जन्म हुआ है, तथा ब्रिटिश संविधानों के लचकदारपन के कारण ही उनका क्रांतिमय अंत नहीं हो सका है।"

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि माननीय सदस्य जरा धीरे-धीरे पढ़ें और फिर भी हम कम से कम समझ तो सकते हैं कि वे क्या कह रहे हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अच्छी तरह से जनता हूं कि चाहे सभा के दूसरे सदस्यों ने न पढ़ी हो, फिर श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ी है और उन्हें यह आपत्ति नहीं करनी चाहिये।

"जो विद्यार्थी प्रथम सुधार विधेयक के इतिहास का शांतिपूर्वक अध्ययन करें, उसे यह स्पष्ट पता चल जायेगा कि 1832 में संसद के सर्वोच्च विधायी प्राधिकार से राष्ट्र में वैधानिक सुधार के बहाने एक राजनैतिक क्रांति हो गई थी।"

"संक्षेप में, किसी संविधान की अपरिवर्तनशीलता के कारण उत्तरोत्तर नई चीजें नहीं आ सकतीं; किन्तु उससे परिवर्तन रुक जाता है, अतः विरोधी परिस्थितियों में, क्रांति हो सकती है।"

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, आपके बहुत से संशोधन हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं और कोई संशोधन पेश नहीं करना चाहता, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** मैं मानता हूं अब वे आवश्यक नहीं रहे हैं। मेरे विचार में बस ये ही संशोधन हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मुद्रित सूची में कई संशोधन हैं।

***अध्यक्षः** अब आप मुद्रित सूची को क्यों लेते हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** क्योंकि, श्रीमान्, आज डॉ. अम्बेडकर ने जो अनुच्छेद पेश किया है, उसमें से यदि परन्तुक को हटा दिया जाये तो उसमें और पुराने मसौदे में कोई अन्तर नहीं है और मेरे सब संशोधन अनुच्छेद के प्रथम भाग पर ही हैं। अब का अनुच्छेद परन्तुक के बिना पुराने मसौदे की ही नकल है और इसलिये मैंने सोचा था कि मेरा संशोधन नियमानुकूल होगा।

***अध्यक्षः** कौन-सा संशोधन है जिसे आप पेश करना चाहते हैं। मुझे पहले उन संशोधनों को बताइये।

***श्री एच.वी. कामतः** संशोधन संख्या 3239, 3241। मैं संशोधन संख्या 3246 को पेश नहीं करता। फिर मैं संशोधन सं. 3248 और 3249 और 3250 पर आता हूं। वे सब अनुच्छेद के प्रथम भाग से संबद्ध हैं जो आज भी पिछले मसौदे की नकल ही हैं। अनुच्छेद के परन्तुक में ही अन्तर किया गया है, और शेष अनुच्छेद में नहीं किया गया है, श्रीमान्।

***अध्यक्षः** आप उन्हें पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं संशोधनों की मुद्रित सूची, ग्रन्थ 2, के संशोधन संख्या 3241, 3248, 3249 और 3250 को पेश करता हूं। मैं संशोधन सं. 3246 को पेश नहीं करना चाहता जो उस सूची में मेरे नाम से है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) से पहले, निम्नलिखित नया खंड प्रविष्ट कर दिया जाये और विद्यमान खंडों की संख्या तद्नुसार बदल दी जाये:

'(1) Any provision of this Constitution may be amended, whether by way of variation, addition or repeal, in the manner provided in this article.'"

[(1) इस संविधान के किसी उपबंध का संशोधन इस अनुच्छेद में विहित उपाय से किया जा सकता है चाहे उस संशोधन में कोई परिवर्तन करना हो, चाहे कुछ जोड़ना हो या किसी का निरसन करना हो।]

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'An amendment' इन शब्दों के स्थान पर 'A proposal for an amendment' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill' इन शब्दों के स्थान पर 'it shall, upon presentation to the President, be signed by him' ये शब्द रख दिये जायें।"

अथवा विकल्प से

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill' इन शब्दों के स्थान पर 'it shall upon presentation to the President, receive his assent' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'to the Bill' ये शब्द, जो 11वीं पंक्ति में हैं, हटा दिये जायें।"

श्रीमान्, मुझे पता नहीं है कि आज के अनुच्छेद में 11वीं पंक्ति क्या है, किन्तु यह निर्देश अनुच्छेद की अंतिम पंक्ति से पहले वाली पंक्ति का है।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) के परन्तुक से पहले, निम्न नया परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:—

'Provided that a period of not less than six months intervenes between the initiation of the Bill and its final passage in Parliament.'"

[किन्तु विधेयक के संसद में आरम्भ होने के पश्चात् तथा उसके अंतिम बार पारित होने से पूर्व 6 मास से कम समय न बीते।]

यदि मेरे माननीय साथी इस अनुच्छेद के गत दो वर्ष के इतिहास पर दृष्टिपात करेंगे तो वे संविधान को लचकदार बनाने की आवश्यकता को एकदम समझ

[श्री एच.वी. कामत]

जायेंगे। इस अनुच्छेद में ही और विशेषत: इसके परन्तुक में जो परिवर्तन गत दो वर्ष में हुए हैं उनसे, मेरे ख्याल में, सिद्ध हो जाता है कि संविधान सभा का विचार भी समय-समय पर कितना बदलता रहा है। यदि एक वर्ष से भी कम समय में हमने इस प्रकार के अनेक परिवर्तन किये हैं तो आप इसे पहले से अधिक कठोर बना कर सम्भवत: भविष्य की संसद को कैसे बांधना चाहते हैं या बांध सकते हैं?

*__अध्यक्ष:__ श्री कामत, आपके कौन से संशोधन से वह लचकदार बन जायेगा, जहां तक उस अनुच्छेद के उस भाग का संबंध है?

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैंने संशोधन संख्या 3246 पेश नहीं किया है जिससे वह अधिक अपरिवर्तनशील बन जाता।

*__अध्यक्ष:__ आपने वह संशोधन पेश नहीं किया है। इसलिये मैं कहता हूं....

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं अनुच्छेद पर सामान्य रूप से बोल रहा हूं, और संशोधनों के निर्देश से भी। मैं समय पर उन्हें भी लूंगा।

*__अध्यक्ष:__ जहां तक संविधान की अपरिवर्तनशीलता का संबंध है, आपने अपना संशोधन पेश नहीं किया है, जिसका अर्थ यह है कि आप उस अंग को तो स्वीकार करते ही हैं।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं इसे स्वीकार करता हूं, किन्तु नि:संदेह मुझे आशा है कि मुझे इस समय अनुच्छेद पर कुछ कहने का अधिकार है, क्योंकि यह परन्तुक गत रात को अचानक हमारे पास भेज दिया गया था, अत: यह अधिक उलझ गया है और फूल गया है और समय के बीतने से इस पर अधिकाधिक काई चढ़ती गई है। पहले परन्तुक में तीन मदें थीं; अब परन्तुक में खंड (क) से (ङ) तक हैं और (क) और (ख) में इस संविधान के इतने विविध अनुच्छेद तथा अध्याय हैं। संविधान के मसौदे में जो अनुच्छेद पहले था उसमें केवल ये ही चीजें थीं—सप्तम अनुसूची की सूचियां, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व और उच्चतम न्यायालय की शक्तियां। आज यह अनुच्छेद इतना बढ़ चुका है कि हमें आश्चर्य होता है कि क्या हम अपने दिमाग को इतनी बार बदल सकते हैं, केवल इसलिये कि हमें इतना समय दिया गया है; तो फिर संविधान को लचकदार बना कर भावी संसद को भी समय तथा क्षेत्र क्यों नहीं दिया जाये। ताकि वह भी संविधान में परिवर्तन कर सकती है?

मुझे प्रसन्नता थी कि पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम से एक संशोधन संख्या 3267 था। मुझे खेद है कि उसे पेश नहीं किया गया। मुझे आशा थी कि उसे पेश किया जायेगा। यदि यह पेश होता तो संविधान की अपरिवर्तनशीलता पर अधिकांश आपत्तियां मिट जातीं। किन्तु यदि वह संशोधन, जो मेरे विचार में बहुत महत्वपूर्ण है, पंडित जवाहरलाल नेहरू या मसौदा-समिति द्वारा पेश किया जाता और सदन उसे स्वीकार कर लेता तो बहुत सी कठिनाइयां दूर हो जातीं, क्योंकि आज हम संक्रमण काल में से गुजर रहे हैं जिसका निर्देश मेरे माननीय मित्र डॉ. देशमुख और श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने किया है। मेरे ख्याल में वह संशोधन पेश नहीं किया जायेगा। उसे अनुच्छेद के उस मसौदे में भी शामिल नहीं किया गया है जो आज

डॉ. अम्बेडकर ने सभा में पेश किया है। मेरा पहला संशोधन संख्या 3239 तो परिचयात्मक है जिसमें संशोधन की परिभाषा की गई हैं। संशोधन क्या होता है? संशोधन का अर्थ हो सकता है संविधान में कुछ परिवर्तन उनमें कुछ जोड़ना या उसका निरसन। यदि संसार के विविध संविधानों को देखा जाये तो आयरिश संविधान में या दक्षिण अफ्रीका के संविधान में या आस्ट्रेलिया के संविधान में, मुझे तो विश्वास है कि कई अन्य संविधानों में भी, सबसे पहले अनुच्छेद में यह परिभाषा की जाती है कि संशोधन क्या है। मुझे आशा है कि सभा इस बात को समझती है कि इस अनुच्छेद से अधिक महत्वपूर्ण अनुच्छेद इस संविधान में बहुत कम हैं। संविधान के संशोधन संबंधी अनुच्छेद उन आधारभूत चीजों में से है जिन पर सदन को बहुत ध्यान से विचार करना चाहिये।

मैं कई माननीय सदस्यों की इस युक्ति की अच्छी तरह सराहना करता हूं कि संविधान में संशोधन आसानी से नहीं करने देना चाहिये। किन्तु यह सिद्धान्त इसी तर्क पर आधारित है कि किसी देश की संविधान-सभा की सांविधानिक स्थिति उस देश की किसी भावी संसद से उच्चतर होती है। इसी तर्क पर यह सिद्धान्त आधारित है कि एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न संविधान-सभा द्वारा निर्मित संविधान को भावी संसद आसानी से न बदले, क्योंकि संसद की स्थिति में संविधान सभा से निम्नतर होगी। किन्तु, दुर्भाग्य से, आज भारत में ऐसे हालात हैं, जिन परिस्थितियों में यह संविधान सभा बनी है वे ऐसी हैं कि इस सभा की सांविधानिक स्थिति को भावी संसद से ऊंचा नहीं समझा जा सकता। क्यों? पहला कारण यह है कि यह सभा निर्बन्धित मताधिकार के आधार पर चुनी गई थी और प्रान्तीय सभाओं द्वारा पृथक् निर्वाचनों द्वारा चुनी गई थी। इससे यह सभा आरम्भ से ही व्यर्थ हो गई है। हमारे संविधान के अनुसार भावी संसद वयस्क मताधिकार के अनुसार प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुनी जायेगी, और नि:संदेह किसी संविधान को समझने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिये कि वयस्क मताधिकार पर प्रत्यक्ष निर्वाचनों द्वारा निर्वाचित संसद ऐसी सभा से अवश्य उच्चतर होगी जो इसके समान निर्बन्धित मताधिकार पर, अप्रत्यक्ष रूप से, प्रांतीय विधान-मंडलों द्वारा निर्वाचित हुई है।

इसलिये इंग्लिस्तान में कोई भी संसद संविधान के संशोधन के विषय में भावी संसद का अधिकार नहीं छीनती। वहां संसद कभी भी विधि-निर्माण की साधारण प्रक्रिया द्वारा संविधान का संशोधन कर सकती है। जिन परिस्थितियों में हमारी सभा बनी थी उन पर विचार करते हुए, कोई कारण नहीं है कि कम से कम 5 वर्ष के लिये, जो अवधि पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपने संशोधन में लिखी थी किन्तु दुर्भाग्य से वह संशोधन पेश नहीं किया गया है, मेरे समझ में नहीं आता है कि केवल पांच वर्ष के ही लिये हम उसे लचकदार क्यों न रहने दें, इन वर्षों में संक्रमणकाल ही रहेगा और तब तक स्थिति स्थिर नहीं बन पायेगी, शायद कुछ अधिक दूरदर्शिता और विचार से संविधान के दोष भी दृष्टि में पड़ जायेंगे।

मेरे कुछ मित्रों ने बताया है कि यदि संविधान लचकदार नहीं हुआ, यदि यह सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल नहीं हुआ तो, ऐसे संविधान में जोखिम है, मैं

[श्री एच.वी. कामत]

अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि यह ख्याल बहुत ठीक है। यदि संविधान से देश की भावी प्रगति बन्द हो जाती है तो मैं कह सकता हूं कि यह प्रगति, जो इससे रुकेगी, हिंसक क्रान्ति द्वारा पूरी होगी, विकास का काम क्रांति करेगी। जब आंधी आती है तो लचकदार, छोटे पौधे, घास के तिनके ही उससे बच पाते हैं। वे टूटते नहीं क्योंकि वे मुड़ जाते हैं, वे लचकदार होते हैं। किन्तु जो बड़े-बड़े वृक्ष झुकते नहीं वे टूट जाते हैं, आंधी में उखड़ जाते हैं। अतः मुझे भय है कि जब सामाजिक आंधी चलती हो, यदि हम उसका सामना करना चाहें तो यह तरीका नहीं है। आपको चाहिये कि संविधान को लचकदार बनायें, जिससे कि वह सामाजिक परिवर्तनों का सामना कर सके। यदि वह मुड़ेगा नहीं तो लोग उसे तोड़ देंगे। इस सभा में कोई भी नहीं चाहता कि ऐसा हो। इसीलिये मैं कहता हूं कि पं. जवाहरलाल नेहरू का संशोधन इस अनुच्छेद में आ जाना चाहिये था किन्तु, दुर्भाग्य से उसे नहीं रखा गया है। मैं कह नहीं सकता कि यदि हमने संविधान को उससे कुछ अधिक लचकदार नहीं बनाया, जैसाकि हम आज उसे बना रहे हैं, तो भविष्य में हमें क्या कुछ भुगतना पड़ेगा।

मेरा अगला संशोधन 3241 मौखिक है और मैं उसे समौदा-समिति के विवेक पर छोड़ देता हूं। संशोधन संख्या 3242 को मैं पेश नहीं कर रहा हूं क्योंकि मैं उसे दोनों सदनों पर छोड़ देना चाहता हूं कि संसद के किसी भी सदन में संविधान के संशोधन की प्रस्थापना आरम्भ हो सकती है। संशोधन संख्या 3246 भी मैं पेश नहीं कर रहा हूं। संशोधन 3248 में राष्ट्रपति द्वारा अनुमति देने का प्रश्न है। यह लगभग मौखिक तथा औपचारिक संशोधन है, और इसलिये मैं उसे मसौदा-समिति पर ही छोड़ सकता हूं कि वह इस पर समुचित समय पर विचार कर ले। 3249 भी मौखिक है और उसे भी मैं मसौदा-समिति के विवेकी लोगों पर छोड़ देता हूं। 3250 उस समय के विषय में है जो, मेरे विचार में, संविधान के संशोधन के संसद में पेश होने तथा पारित होने के बीच में गुजरना चाहिये। इस संशोधन 3250 द्वारा मैं यह व्यवस्था करना चाहता हूं कि किसी प्रस्थापना के संसद में पेश होने तथा पारित होने के बीच 6 मास से कम का समय नहीं गुजरना चाहिये, क्योंकि हम संविधान के संशोधन पर जनमतगणना करने का उपबंध नहीं रख रहे हैं जैसाकि कुछ संविधानों में है। आयर के संविधान में उपबंध है कि संविधान में कोई संशोधन करने से पूर्व जनमतगणना होगी, किन्तु हमने ऐसी कोई बात नहीं रखी है। अतः मैं संविधान में जल्दबाजी के अन्दर संशोधन करने के विरुद्ध रक्षा कवच रखना चाहता हूं। यदि इस संविधान में यह रख दिया जाये कि विधेयक को पेश करने तथा पारित करने के बीच 6 मास का समय अवश्य गुजरना चाहिये तो उससे देश भर की जनता में उस पर काफी और उचित चर्चा हो चुकेगी। संसद में पेश संशोधन पर लोग अपना मत प्रकट कर सकते हैं। खैर, 6 मास काफी रहेंगे।

***अध्यक्षः** आपके संशोधन का तो परिणाम यही होगा कि संविधान अधिक कठोर बन जायेगा।

***श्री एच.वी. कामतः** किससे बन जायेगा, क्या मैं जान सकता हूं, श्रीमान्?

***अध्यक्षः** 3246।

*श्री एच.वी. कामतः मैं उसे पेश नहीं कर रहा हूं।

*अध्यक्षः आपके संशोधनों का फल तो यह होता था कि वह कठोर बन जाये। आप संशोधन को आसान बनाने की बात कर रहे हैं।

*श्री एच.वी. कामतः क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि मैंने उसे जानबूझ कर पेश नहीं किया? अन्यथा मैं उसे पेश कर सकता था।

*अध्यक्षः आपने जो पेश किये हैं और जिनके विषय में आप बोल रहे हैं उनका भी यही प्रभाव है कि वह अधिक कठोर बन जाये।

*श्री महावीर त्यागीः वे दोनों तरफ की बातें करते हैं।

*श्री एच.वी. कामतः यदि मेरे मित्र श्री त्यागी समझते हैं कि मैं दोनों तरफ की बातें करता हूं तो वे दो से भी अधिक प्रकार की बातें खुशी से कर सकते हैं। मैंने 3246 को जानबूझ कर पेश नहीं किया था।

*अध्यक्षः मैं तो यही बता रहा हूं कि आपकी वक्तृता तथा आपने जो संशोधन भेजे हैं उनमें असंगति है।

*श्री एच.वी. कामतः मेरे अज्ञान को आप क्षमा करें, श्रीमान्, और मेरे अपरिपूर्ण विवेक को भी।

*अध्यक्षः आपने 3246 को पेश नहीं किया है, पर 3250 को तो पेश किया है।

*श्री एच.वी. कामतः यदि मैं 3246 को पेश करता तो आप मुझे यह दोष दे सकते थे कि मैं इसे अधिक कठोर बना रहा हूं।

*अध्यक्षः 3250 का भी प्रभाव यही है कि संशोधन कुछ समय के लिए विलम्बित हो जायेगा।

*श्री एच.वी. कामतः यह तो केवल प्रक्रिया सम्बन्धी है।

अब मैं नये परन्तुक को लेता हूं। जो डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद में शामिल किया गया है। परन्तुक में संविधान के बहुत से अध्याय शामिल कर दिये गये हैं जो पहले के मसौदों में नहीं थे। यहां तक कि हमें 15 सितम्बर को जो मसौदा मिला था उसमें भी कई अनुच्छेद नहीं थे जो परन्तुक में जोड़ दिये गये हैं। इसका अर्थ यह है कि दो तीन दिन में ही समिति ने यह उचित समझा कि संविधान के कई अध्यायों के विषय में संशोधन करना कठिनतर बना दिया जाये, जितना वह परन्तुक के पुराने रूप में रहने पर नहीं बनता। इनमें से कुछ अध्याय उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय के विषय में हैं, उन पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है—किन्तु कुछ ऐसे अध्याय तथा अनुच्छेद भी हैं जो संघ तथा राज्यों और अंगभूत एककों के संबंधों के विषय में हैं। कल रात हमें जो परन्तुक

[श्री एच.वी. कामत]

मिला है उसके अंतर्गत इन संबंधों के विषय में संविधान में परिवर्तन करना बहुत कठिन बना दिया गया है। अब राष्ट्रपति के लिये यह अनिवार्य बना दिया गया है कि वह संसद् द्वारा पारित विधेयक पर तब तक अनुमति न दे जब तक कि आधे राज्य विधान-मंडल प्रस्तावों द्वारा उस विधेयक का अनुमोदन न कर दें।

अब मुझे जो कठिनाई दिखाई देती है वह यह है। हम सदा यह प्रत्याभूति नहीं दे सकते कि देश में एकताकारी शक्तियां—केन्द्रीय—शक्तियां सदा विध्वंसक अथवा खंडनकारी शक्तियों पर विजय ही प्राप्त करती रहेंगी। उदाहरण के लिये, समय बीतने पर यह आवश्यक हो सकता है कि अधिक एकात्मक संविधान द्वारा देश का एकीकरण किया जाना चाहिये, और उस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संसद यह अनुभव कर सकती है कि संविधान में कुछ संशोधनों की आवश्यकता है जिनसे संघ तथा राज्यों के संबंधों में परिवर्तन हो जायेगा, उस समय यह बहुत संभव है कि बहुत से राज्य उसे अपनी शक्तियों पर आघात समझें, अपने अधिकारों का अतिक्रमण समझें, या अन्यथा वे समझें कि वह संशोधन उनके राज्य के हित में नहीं है, चाहे वह समूचे देश के हित में हो, चाहे समूचे भारत को ऐसे संशोधन से लाभ हो, और संसद विधेयक को पारित कर दे, किन्तु आधे राज्य उसका अनुमोदन न करें। फिर क्या होगा? वह फिर संसद के पास आ जायेगा। मैं डॉक्टर अम्बेडकर को सुझाव देता हूं कि वे इस परन्तुक को बदल दें ताकि संशोधन का विधेयक, चाहे वह आधे राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा पारित न भी हो, यदि वह राज्यों के विधान-मंडलों में परास्त होकर भी संसद को फिर वापस जाये, और यदि वह संसद द्वारा पुनः पारित हो जाये, तो मैं डॉक्टर अम्बेडकर से प्रार्थना करना चाहता हूं कि वे उस परन्तुक को बदल दें कि यदि वह दुबारा पारित हो जायेगा तो वही लागू होगा, संसद द्वारा दुबारा पारित होने पर संविधान का संशोधन लागू हो जायेगा चाहे राज्यों के विधान-मंडल उसे पसंद् न करें। अन्यथा मैं अनुभव करता हूं कि संसद की सर्वोच्च सत्ता व्यर्थ हो जायेगी, देश के एकीकरण की शक्तियां निर्बल हो जायेंगी, विकेन्द्रीकरण शक्तियां अथवा विध्वंसक शक्तियां देश में अधिक शक्तिशाली बन जायेंगी। अतः मैं अनुभव करता हूं कि अब भी समय है कि इस अनुच्छेद में समुचित परिवर्तन कर दिये जायें ताकि भविष्य में हमारे लिये यह बात न कही जाये, इस सभा के लिये, बहुत वर्ष पश्चात् लोग हमारे लिये यह न कहें कि मुर्दे जीवितों पर शासन करना चाहते थे और जिस सभा ने इस संविधान को बनाया था वह देश की प्रगति में बाधक बनना चाहती थी। यदि भविष्य में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाये, तो मुझे भय है कि प्रगति होगी, पर सांविधानिक उपायों से नहीं, अन्य उपायों से होगी, और इससे क्रांति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा, जिसे यह सदन यथाशक्य टालना चाहता है, इसमें मुझे संदेह नहीं है।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ अध्यक्ष महोदय, दिन के अन्त में तथा सत्र के अन्त में मैं सदन में लम्बा भाषण देकर उससे थकाना नहीं चाहता। मेरा यही निवेदन है कि अनुच्छेद 304 द्वारा संविधान में जो कठोरता उत्पन्न की गई है वह बहुत उचित है। इंगलिश तथा अन्य संविधानों के उद्धरण देना उचित नहीं है, क्योंकि उन्हें लम्बा अनुभव है और वे कई शताब्दियों तक सीखते रहते हैं और वे ठीक-ठीक जानते हैं कि क्या परिवर्तन करने चाहियें और क्या नहीं करने चाहियें। संविधान के आरम्भ में हमें उसमें परिवर्तन करने में कठोर बनाना ही चाहिये।

देशमुख के संशोधन संख्या 210 के विषय में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस संशोधन द्वारा, वे इस आशय का उपबन्ध करना चाहते हैं कि यदि कोई प्रशासनीय कठिनाइयां पैदा हों तो उच्चतम न्यायालय के प्रतिवेदन पर, तीन वर्ष की कालावधि में, संशोधन अधिक आसान बना दिया जाना चाहिये। मुझे इस विचार से बहुत सहानुभूति है और मुझे यह विश्वास करने का कारण है कि भविष्य में बहुत सी कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। हमने बहुत से वाद-विवाद के पश्चात्, सर्वप्रथम, संविधान के सिद्धान्तों को स्वीकार किया था। फिर संविधान का मसौदा काफी खर्च और श्रम से तैयार हुआ था। फिर संविधान के संशोधनों की सूचनाएं भेजी गई थीं और वे दो बड़े ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। फिर मसौदा-समिति प्रतिदिन अपने विचारों को बदलती रही है और संविधान का मसौदा, संविधान के पवित्र सिद्धान्त और समस्त संशोधन त्याग दिये गये और वे पुराने पड़ गये और प्रतिदिन नये अनुच्छेद तथा नये संशोधन आते रहते हैं। अत: मैं आसानी से देख सकता हूं कि असंगतियां, कालदोष तथा कठिनाइयां, अवश्य ही दिन प्रतिदिन उत्पन्न होंगी। अत: तीन वर्ष के लिये इस प्रकार के संशोधन, कठिनाइयों को दूर करने के संशोधन आसान होने चाहियें और डॉ. देशमुख के संशोधन की सरल प्रक्रिया स्वीकृत हो जानी चाहिये। परन्तुक शायद वर्तमान रूप में स्वीकार्य न हो, किन्तु सिद्धान्त को स्वीकार कर लेना चाहिये तथा समुचित मसौदा स्वीकार कर लेना चाहिये।

हम मसौदा-समिति पर इतनी बातें छोड़ रहे हैं कि मुझे भय है कि तृतीय पठन भी सुन्दर द्वितीय पठन ही होगा। वास्तव में केवल मसौदे की भाषा संबंधी प्रश्न ही नहीं वरन् कई सारवान प्रश्न भी उन पर छोड़ दिये गये हैं और इनमें से कई असंगतियां मसौदा-समिति को भी अनुभव होंगी और वे तृतीय पठन में संशोधन लेकर आयेंगे जिनसे, मुझे विश्वास है कई बातों पर पुनर्विचार आरंभ हो जायेगा। इन परिस्थितियों में, मेरा निवेदन है, अब जो परिवर्तन समय-समय पर होते रहे हैं, हम एक सिद्धान्त से दूसरे सिद्धान्त पर जाते रहे हैं, उनके कारण कई असंगतियां हुई होंगी जो अभी तक स्पष्ट नहीं हुई हैं। अत: मेरा निवेदन है कि डॉ. देशमुख के सुझाव पर विचार किया जाये।

***आचार्य जुगल किशोर** (उत्तर प्रदेश : जनरल): श्रीमान्, मेरे नाम से भी एक संशोधन संख्या 3261, मुद्रित सूची ग्रन्थ 2 में है।

***अध्यक्ष:** मैंने द्वितीय ग्रन्थ के सब संशोधनों को नहीं लिया है। किन्तु आप अपना संशोधन पेश करना चाहें तो कर सकते हैं।

***आचार्य जुगल किशोर:** श्रीमान्, मेरा संशोधन सं. 3261, मुद्रित सूची में है। किन्तु यह शायद डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में ठीक नहीं बैठेगा। किन्तु एक और संशोधन सं. 128, तृतीय सूची, अष्टम सप्ताह, श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम से है जो मेरे संशोधन 3261 पर संशोधन है। पता नहीं उन्होंने उसे पेश किया है या नहीं। यदि उन्होंने पेश किया है तो मैं उसका समर्थन करना चाहता हूं। खैर, इस संबंध में मैं कुछ कहना चाहता हूं। मैं तो यह सुझाव देना चाहता था कि इस पर वाद-विवाद उठा रखा जाये। किन्तु मैं जानता हूं कि आप अधिकाधिक

[आचार्य जुगल किशोर]

अनुच्छेद समाप्त करने के लिये उत्सुक हैं अत: मैं कोई सुझाव देने का साहस नहीं करूंगा। सदस्य भी जाने के लिये आतुर हैं और संख्या भी कम है, और आप आसानी से समझ सकते हैं कि वे इस अनुच्छेद में जिसे मैं बहुत महत्वपूर्ण समझता हूं, दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं।

***अध्यक्ष:** मैं देखता हूं कि आपका संशोधन डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में आ जाता है।

***आचार्य जुगल किशोर:** मैं अपने संशोधन के समर्थन में जो युक्तियां पेश करना चाहता हूं वे ये हैं। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण संविधान है। हमने अधिकांश अनुच्छेद पारित कर दिये हैं। किन्तु आरंभ में हम इस ख्याल में थे कि पंडित जवाहरलाल का संशोधन पेश किया जायेगा, और कम से कम 5 वर्ष के लिये संविधान का संशोधन करने के अवसर उपलब्ध होंगे, और ऐसी कठोरता नहीं होगी जैसी डॉ. अम्बेडकर की प्रस्थापना में निहित है। हम समझते थे कि संविधान को संशोधित करने के मामले में पहले कुछ वर्षों में आसानी होगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उस संशोधन को पेश नहीं किया है, अत: मैं डॉक्टर अम्बेडकर को यह सुझाव देना चाहता हूं कि यदि वे मेरा सुझाव स्वीकार करना चाहते हैं तो इस प्रस्थापना को स्वीकार कर लें कि संविधान को अगले पांच वर्ष में संसद के साधारण बहुमत से संशोधित किया जा सकता है, और उनकी प्रस्थापना या संशोधन पहले पांच वर्ष के पश्चात् लागू होंगे।

इस सुझाव के लिये मेरे कारण ये हैं। हमने संविधान को बहुत कठिन राजनैतिक परिस्थितियों में पारित किया है। मसौदा-समिति को बहुत भारी काम करना पड़ा है, और वह सदा राजनैतिक दबाव से तथा देश की परिस्थितियों से भी बाध्य रही है। हम अन्य बातों में भी लगे रहे हैं। अत: हम अपना मस्तिष्क पूर्णत: संविधान के अनुच्छेदों पर और उनके आशय पर नहीं लगा सके हैं। अत: मैं यह सुझाव देना चाहता हूं कि कम से कम अगले पांच वर्ष बाद यह जानने के पश्चात् कि संविधान कैसे काम कर रहा है, उन कठिनाइयों को समझने के पश्चात् जिनका हमें सामना करना पड़ता है तथा संविधान की कमियों को समझने के पश्चात्, हम इन अनुच्छेदों को आसान तरीके से संशोधित कर सकेंगे, और उसके बाद हमारा संविधान ऐसा बन जायेगा कि वह स्थिर होगा और फिर उसे उसी प्रकार संशोधित किया जायेगा जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने संशोधन में सुझाव दिया है।

यह तो केवल एक सुझाव है और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार कर लेंगे—चाहे मेरे द्वारा प्रस्थापित संशोधन के रूप में या किसी अन्य संशोधन के रूप में जो मेरी प्रस्थापना से संगत हो। यदि बात मैं इस सभा के समक्ष पेश करना चाहता हूं और मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इसे स्वीकार कर सकेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर विचार करते समय हमें इस विश्वमान्य सिद्धान्त को नहीं भूलना चाहिये जिस पर आज लोकतंत्रीय समाज की

सारी धारणा ही आधारित है—सिद्धान्त यह है कि इस संसार पर सब जीवित व्यक्तियों को समानाधिकार है, और मृतकों को न उसके ऊपर शक्तियां हैं और न अधिकार हैं। इस सिद्धान्त का यह अर्थ निकाला जाता है कि कोई भी पीढ़ी नैतिक रूप में इस बात के आयोग्य है कि वह अपने आगे की पीढ़ियों पर ऐसा कर्ज या संविधान लाद दे जिसे बदला नहीं जा सकता। अत: मैं इस बात पर जोर दे रहा हूं कि ऐसा संविधान, जो परिवर्तनीय न हो, आगामी पीढ़ियों पर लगभग बलात्कार ही होगा। किन्तु मैं नहीं देखता कि हमारा मसौदा पूर्णत: अपरिवर्तनीय है। मैं मसौदा-समिति को तथा सदन को भी यह श्रेय देना चाहता हूं कि हमारा मसौदा बारीक से बारीक बातों में पूर्ण है। लोग उस पर यह आलोचना करते हैं कि यह बहुत भारी है तथा उसमें बहुत विस्तार की बातें हैं। हमने आगामी पीढ़ियों की बहुत सेवा की है कि उनके प्रशासन को कुशल बनाने के लिये तथा उनके शासनों का चलाना सरल बनाने के लिये हमने यथासंभव विस्तार की बातें दे दी हैं।

ब्रिटेन की संसदीय पद्धति को इस संविधान के आधार के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। और यह पहला अवसर है कि हम राज्य को ब्रिटिश सांविधानिक पद्धति के आधार पर स्थापित कर रहे हैं। किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि ब्रिटिश संसदीय पद्धति केवल इसीलिये सफल नहीं है कि वहां संसदीय व्यवस्था है, वरन् इसलिये है कि उनके संविधान में लचक है और वह अलिखित है। अत: वे अपने संविधान को आसानी से संशोधित कर सकते हैं जबकि काल तथा स्थान के परिवर्तन के अनुसार परिस्थितियां परिवर्तित हो जायें। हमने उसी पद्धति को अपनाया है, किन्तु हमने उस पद्धति के असली आधार को नहीं अपनाया है—वह आधार यह है कि उसे आसानी से बदला जा सकता है और राष्ट्र में समय-समय पर उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों के अनुसार ढाला जा सकता है। हमने अपने संविधान में वह लचक नहीं रखी है। यह न्याय नहीं है कि हम आने वाली पीढ़ियों को संविधान में परिवर्तन करने की सुविधायें न दें। यह प्रयोग नया है, जैसा मेरे कुछ मित्र पहले ही कह चुके हैं, संविधान समस्त देश द्वारा नहीं बनाया गया है।

हमने यह मान लिया है कि हम राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं हम सब अप्रत्यक्ष निर्वाचन से यहां आये हैं—प्रान्तों को उन विधान-सभाओं द्वारा आये हैं जो उस समय चुनी गई थीं जब हम स्वतन्त्र नहीं थे, जब अंग्रेज यहां थे। वे सभायें 1946 में चुनी गई थीं। और हम इस संविधान को इस आशा के साथ तथा इस दावे के साथ बना रहे हैं कि हम भारत के मान्य प्रतिनिधि हैं। मुझे भय है कि असल में हम भारत के प्रतिनिधि नहीं है—तथ्य में हम प्रतिनिधि होने का दावा कर सकते हैं पर विधि रूप हम नहीं हैं।

फिर, मुझे खेद है कि इस संविधान-सभा में भी हमने स्वतन्त्र प्रतिनिधियों के रूप में कार्य नहीं किया है—प्रत्येक की यही बात है। देश के बहुमत दल ने ही संविधान बनाया है। कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता। सच तो यह है कि यद्यपि हमने, कांग्रेस दल ने, जो कि सभा में बहुमत प्राप्त हैं, शक्ति-आरूढ़ दल के रूप में काम नहीं किया है तथा दूसरों को विरोधी दल के रूप में नहीं समझा है, फिर भी सच बात तो यही है कि कांग्रेस दल ने ही यह संविधान बनाया हैं दूसरों की बात को समुचित रूप में नहीं सुना गया है। वे अल्पसंख्या में थे। अत: संविधान में समस्त भारत का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ है। इस विषय में हमें

[श्री महावीर त्यागी]

न्याय करना चाहिये। हमें न्यायपूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये कि यह एक दल का बनाया हुआ संविधान है, चाहे वह बहुमत दल हो। इस समय जब हम न्यायाधीश के रूप में बैठे हैं तो हमें स्वीकार कर लेना चाहिये—चाहे संविधान अच्छा हो, बुरा हो या कैसा ही हो—इस पर भावी संतति निर्णय करेगी—इस संविधान को समस्त देश का समर्थन प्राप्त नहीं है और यह संविधान देश के बहुमत दल का बनाया हुआ है।

एक माननीय सदस्यः आपत्ति।

श्री महावीर त्यागीः आप इस पर आपत्ति कर सकते हैं पर यह तथ्य निरापत्तिजनक है। दूसरे दलों का इसमें कोई हाथ नहीं था, क्योंकि अन्य क्षेत्रों से या दल से असम्बद्ध सदस्यों से आने वाले संशोधनों का यहां कोई मूल्य नहीं था, और वे बहुत कम स्वीकृत होते थे। अतः कांग्रेस दल ने ही यह संविधान बनाया है।

भविष्य में, कांग्रेस दल के अतिरिक्त अन्य दलों को शक्ति प्राप्त हो सकती है और उन्हें इस संविधान के द्वारा अपने कार्यक्रम को पूरा करना कठिन प्रतीत हो सकता है क्योंकि इसका निर्माण ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया गया है जिनका कार्यक्रम अलग था। अतः मेरा निवेदन है कि हमें उन दलों के प्रति न्याय करना चाहिये जो भविष्य में शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जिससे कि वे संविधान में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकें, यद्यपि मैं स्वयं कांग्रेस दल का सदस्य होने के नाते इस सदन के द्वारा देश को आश्वासन देना चाहता हूं कि हमने सदा यह ध्यान रखा है कि हम दलबंदी की पक्षपातपूर्ण भावना से काम न करें। किन्तु फिर भी स्थिति यही है कि यह एक दलीय संविधान है।

मान लीजिये कि एक दो वर्ष के अनुभव के पश्चात् आगामी संतति यह अनुभव करे कि हमने जो पद्धति निश्चित की है वह वास्तव में उनके हित में नहीं है और इस पद्धति द्वारा निर्मित सरकार देश के हितों के विरुद्ध नाशकारी कार्यवाही करती है तो संविधान को बदल कर उनके बहम या पंसद के अनुरूप बनाने का सुगमतर उपाय होना चाहिये। मान लीजिये कि एक या अनेक पीढ़ियों तक संसदीय प्रणाली पर चलने के पश्चात् वे अनुभव करें कि उन्हें राष्ट्रपति की सर्वोच्चता वाली अमेरिकी व्यवस्था को अपनाना चाहिये या संघानीय राज्य स्थापित करना चाहिये, तो मुझे आश्चर्य है कि उनके लिये ऐसा करना संभव होगा या नहीं।

इस कठोरता को भी मैं पसंद करता हूं, विशेषतः उस परन्तुक में जिसे डॉ. अम्बेडकर ने रखकर बुद्धिमानी की है। उन्होंने इस परन्तुक में बहुत से महत्वपूर्ण मामले रखे हैं जिसमें उन्होंने यह कहा है कि सप्तम अनुसूची की सूची में कोई परिवर्तन करने के लिये आधे राज्यों से अधिक की मंजूरी आवश्यक होगी। वे मामले बहुत महत्वपूर्ण हैं जैसे कि न्याय और मूलाधिकार जैसे मामले। अब न्यायपालिका ही व्यक्तियों तथा राज्यों के अधिकारों की एक मात्र प्रत्याभूति है। अतः यह न्यायपूर्ण ही है कि इन महत्वपूर्ण मामलों में, जिनमें व्यक्तियों तथा राज्यों की सुरक्षा प्रत्याभूत है, परिवर्तन करने के लिए काफी कठोरता होनी चाहिये। मैं इस परन्तुक को पसंद करता हूं चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो।

किन्तु अनुच्छेद के मुख्य मजमून में डॉ. अम्बेडकर ने अत्यधिक कठोरता दिखाई है। वहां उन्हें कुछ लचकीलापन रखना चाहिये था। वे सदा कठोर रहे हैं, शायद यही उनका स्वभाव है और उनके स्वभाव का प्रतिबिंब प्रत्येक अनुच्छेद में झलकता है जो उन्होंने हमारे विचारार्थ पेश किया है। वे कहते हैं कि परिवर्तन तभी हो सकता है जब कि सभा का सम्पूर्ण बहुमत उसके पक्ष में मत दे और प्रत्येक सभा में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई उसके पक्ष में मत दें। इसका अर्थ यह है कि निम्न सभा में कम से कम 334 सदस्य परिवर्तन के लिये सहमत होने चाहियें।

*__श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:__ मुझे भय है कि मेरे माननीय मित्र का ख्याल गलत है। केवल 251 सदस्य काफी हैं यदि वे उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई भी हों।

*__श्री महावीर त्यागी:__ श्रीमान्, कल डॉ. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा था कि मैं अनाड़ी आदमी हूं, मैं सचमुच विधि के चक्रव्यूह को या कानूनी चक्करों को नहीं समझता। किन्तु फिर भी मैं तो यही समझता हूं कि आपको सदन का पूर्ण बहुमत चाहिये तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत भी चाहिये। यदि सारा सदन उपस्थित हो तो आपको 334 मतों की आवश्यकता है, क्योंकि उसके पक्ष में दो तिहाई मत होने चाहियें, और गणित-शास्त्र गलत नहीं हो सकता, चाहे मैं गलत हो सकता हूं। 500 का दो तिहाई 334 होता है। अल्पसंख्यक दल भी अपने पूरे दल बल से आयेंगे और बहुसंख्यक दल को कोई भी परिवर्तन नहीं करने देंगे चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो जब तक कि बहुसंख्यक दल अल्पसंख्यक दल से दुगना ही न हो। सदन में पूर्ण बहुमत रखना तो मेरे समझ में आता है, मैं इतना स्वीकार कर सकता हूं, किन्तु यह अनिवार्य बना देने का, कि उपस्थित सदस्यों में भी दो-तिहाई को मत देना होगा, यह अर्थ होगा कि कोई परिवर्तन करना अत्यन्त कठिन होगा। मेरा निवेदन है कि मेरे मित्र डॉ. देशमुख या आचार्य जुगल किशोर द्वारा प्रस्थापित किसी परिवर्तन से संशोधन आसान हो जायेगा और आगामी सरकारें चाहें तो परिवर्तन कर सकेंगी। मेरा यही कहना है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो संविधान अत्यधिक कठोर बन जायेगा। यदि वह लचकदार न होगा तो जरा सी चोट से भी वह टूट जायेगा। अपने संविधान को इतना कठोर मत बनने दीजिये कि वह टूट जाये। अतः मेरा निवेदन है श्रीमान्, कि हमें संविधान में सुविधा से परिवर्तन की व्यवस्था करनी चाहिये।

*__अध्यक्ष:__ मैं माननीय सदस्यों को स्मरण कराना चाहता हूं कि हम कार्यावली की मदों को आज रात तक समाप्त करना चाहते हैं। यदि सदस्य अपने भाषणों को छोटा कर देंगे तो हम ऐसा कर सकेंगे, अन्यथा, कल भी सत्र बुलाना होगा जो अधिकांश सदस्य नहीं चाहते।

*__श्री आर.के. सिधवा:__ श्रीमान्, प्रस्ताव के विरुद्ध 5 सदस्य बोल चुके हैं, आपको उन्हें भी अवसर देना चाहिये जो इसका समर्थन करते हैं।

*__अध्यक्षः__ इसे डॉ. अम्बेडकर संभाल लेंगे।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ किन्तु सदस्यों को भी अपना मत व्यक्त करना चाहिये, श्रीमान्।

*__अध्यक्षः__ यदि सदन वाद-विवाद जारी रखना चाहता है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ हम आज रात समाप्त कर लेंगे।

*__अध्यक्षः__ कैसे कर सकते हैं?

*__श्री रामनारायण सिंहः__ सभापति जी, मैं भवन का अधिक समय नहीं लूंगा और मैं चाहता हूं कि जो हमारे पास काम है वह आज ही समाप्त हो जाये। उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी और सब लोग यही चाहते हैं कि आज सारा काम समाप्त हो जाये।

अभी जो बहस हो रही है उसमें मुझे एक ऐसी बात खटक रही है जिसके बारे में मैं आपके सामने कुछ कहना चाहता हूं। यह जो विधान है उसके बदलने के संबंध में भावी सन्तान के लिये इतने प्रतिबन्ध और रोक लगाई जा रही है, इस डर से कि वे इस विधान को बहुत बदल देंगे और जल्दी बदल देंगे। हमको इसके बारे में परेशान नहीं होना चाहिये कि वे इस विधान को इतनी जल्दी बदल देंगे। यह कहा जाता है कि भावी में पूरी संख्या के absolute बहुमत से या दो-तिहाई के बहुमत से विधान का संशोधन किया जा सकता है। कभी यह कहा जाता है कि दो-तिहाई का बहुमत इस चीज को बदलने के लिये होना चाहिये। इसका क्या मतलब है?

आप समझते हैं कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं अगर मुझे अधिकार दिया जाये तो इस संविधान के आधे से अधिक हिस्से को निकाल कर फेंक दूं। पंचायती राज या डेमोक्रेसी का यह तकाजा है कि बहुमत के द्वारा सब ही काम होना चाहिये। यह बात ठीक है कि वह बहुमत सच्चा होना चाहिये जैसाकि डॉक्टर देशमुख ने कहा है कि प्रेसीडेंट की राय से और साधारण बहुमत से विधान का संशोधन हो। हमारे श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जी ने बहुत अच्छी बात कही है कि अगर आपको लोक मत लेना है तब किसी जगह संशोधन करने के लिये प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के पास जाने की क्या जरूरत है। इससे अच्छा होगा कि plebiscite ले लीजिये यह सब बात तो समझ में आती है। इसमें विचार करने से मालूम होता है कि आप जो इतना प्रतिबन्ध और रोक लगा रहे हैं वह आप भावी सन्तान के लिये भला नहीं कर रहे हैं बल्कि अन्याय कर रहे हैं। यह चीज नहीं होनी चाहिये। मैं सिर्फ इतना कहने के लिये आया हूं।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ अध्यक्ष महोदय, मुझे कुछ आश्चर्य सा हुआ है कि यहां एक सदस्य के पश्चात् दूसरा सदस्य आया तथा उसने इस संशोधन का विरोध इस आधार पर किया कि संविधान का संशोधन करने के लिये लचक होनी चाहिये।

मुझे इस दृष्टिकोण पर आश्चर्य सा है। मैंने कभी ऐसा कोई संविधान नहीं देखा, किसी देश का तो संविधान देखा ही नहीं, जिसके साथ केवल बहुमत द्वारा खेल किया जा सके और जिसे उसके द्वारा संशोधित किया जा सके।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ क्या मैं जान सकता हूं कि केवल बहुमत के लिये किसने कहा है?

*__श्री आर.के. सिधवाः__ श्री त्यागी ने कहा था कि पांच वर्ष तक के लिये वे ऐसा उपबन्ध चाहते हैं कि संविधान को केवल बहुमत से संशोधित किया जा सके। ऐसा ही श्री जुगल किशोर ने कहा था। क्या हम इस संविधान को, जिसे हमने इतने वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श के पश्चात् बनाया है, इतनी आसानी से बदल जाने देंगे? किसी सदस्य ने यह बात कही थी कि हमने इस पर पर्याप्त विचार नहीं किया है अतः कल कुछ हो सकता है, उनकी यह बात गलत है। मैं जानता हूं कि यह संविधान सम्पूर्णतः त्रुटिहीन नहीं है। इसमें भूलें हो सकती हैं, कमियां हो सकती हैं। किन्तु क्या संसार में कहीं भी कोई संविधान त्रुटिहीन हो सकता है? पांच वर्ष बाद भी तो कमियां निकल सकती हैं।

एक और माननीय सदस्य ने कहा था कि इस सभा के सदस्यों को अपने विचार प्रकट करने का समुचित अवसर नहीं दिया गया है। यह अत्यन्त गलत कथन है। यदि आज कोई सदस्यों को भाषण देने की अनुमति देने में अत्यन्त उदार है तो वे हमारे अध्यक्ष ही हैं। उन्होंने सदस्यों को अपना दृष्टिकोण प्रकट करने के लिए काफी ढील दी है। गलत या सही, संगत या असंगत भाषणों की भी उन्होंने अनुमति दी है, अतः यह कहना अत्यन्त अन्यायपूर्ण है कि सदस्यों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का काफी अवसर नहीं दिया गया है। श्रीमान्, मैं अब अपने माननीय मित्र श्री त्यागी की बात पर आता हूं कि इस सभा में एक ही दल है। उन्हें कहना चाहिये था कि उसमें एक बहुसंख्यक दल है। किन्तु यह स्वीकृत तथ्य है कि यह सभा देश के सब हितों की प्रतिनिधि है, और ऐसे बहुत से लोगों को, जो कांग्रेसी नहीं हैं, लेने का प्रयत्न किया गया है। मसौदा-समिति के सभापति, जो इस संविधान को पारित करवा रहे हैं, स्वयं कांग्रेसी नहीं हैं। मसौदा-समिति के सात सदस्यों में से छह कांग्रेसी नहीं हैं। अतः श्री त्यागी का कथन बिल्कुल गलत है।

*__श्री महावीर त्यागीः__ कांग्रेस दल विचार करता है तथा मसौदा-समिति वैसा ही मसौदा बना देती है।

*__श्री आर.के. सिधवाः__ किन्तु आपके कथन को ठीक करना चाहिये। अतएव मेरा कहना यह है कि आप संविधान-सभा पर वह आक्षेप नहीं कर सकते कि सदस्यों के विचारों की चिंता नहीं की गई।

वास्तव में मैं चाहता हूं कि संविधान, कम से कम उसका यह भाग, अधिक कठोर हो। वास्तव में मैं जानता हूं कि कुछ संविधानों में तीन चौथाई बहुमत पर जोर दिया जाता है। हमने जिस संविधान को इतने कष्ट उठा कर बनाया

[श्री आर.के. सिधवा]

है वह महान संविधान है और हमें उस पर गर्व होना चाहिये। वास्तव में मुझे भी शिकायतें हैं कि कई उपयुक्त संशोधनों को उन्होंने स्वीकार नहीं किया है। किन्तु लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में हमें बहुमत के विनिश्चयों को मानना पड़ता है। अतएव मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव का सबल समर्थन करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, जितने संशोधन यहां पेश किये गये हैं और जितने भाषण यहां दिये गये हैं, उन सब पर बोलना मेरे लिये संभव नहीं है। किन्तु मैं विभिन्न वक्ताओं द्वारा सुझाये गये इस सामान्य विकल्प को लूंगा कि हमें ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिये कि संविधान को भावी संसद सादे बहुमत से या अनुच्छेद 304 में प्रस्तावित उपाय से कहीं अधिक सरल उपाय से संशोधित कर सके।

श्रीमान्, अनुच्छेद 304 में समाविष्ट उपबन्धों की व्यवस्था करने से पहले, मैं सदन को यह याद दिलाना चाहता हूं कि संविधान को संशोधित करने के विषय में अन्य संविधानों में क्या-क्या उपबन्ध हैं। मै सबसे पहले सदन को यह बताऊंगा कि कनाडा के संविधान में कनाडी संविधान के संशोधन का कोई उपबन्ध नहीं है। यद्यपि आज कनाडा एक अधिराज्य है, वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य है जिसे प्रभुता के समस्त अधिकार प्राप्त हैं तथा संविधान में परिवर्तन करने की शक्ति प्राप्त है, फिर भी कनाडा वालों ने अब तक यह ठीक नहीं समझा है कि अब भी ऐसा कोई खंड रख दें जिससे कनाडा की संसद को अपने संविधान में संशोधन करने का हक्क हो जाये। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कनाडा का संविधान 1867 में बना था और किसी के मन में, जिसने कनाडीय संविधान पर विभिन्न पुस्तकों को पढ़ा हो, जरा भी संदेह नहीं हो सकता कि कनाडीय संविधान के विभिन्न खंडों पर तथा उसके उपबन्धों के विषय में दिये गये प्रिवी परिषद् के निर्वचन पर भी बहुत असंतोष है, किन्तु कनाडीय लोगों ने यह उचित नहीं समझा है कि उन्हें जो शक्तियां मिली हुई हैं उनका प्रयोग करके संविधान में संशोधन करने का कोई खंड प्रविष्ट कर दें।

अब मैं आयरिश संविधान को लेता हूं। उसमें एक उपबन्ध है कि दोनों सदन सामान्य बहुमत से आयरिश संविधान के किसी भाग को बदल सकते हैं या उसका निरसन कर सकते हैं, पर शर्त यह है कि सदनों का विनिश्चय जनता के समक्ष पेश हो तथा जनता का बहुमत उसका अनुमोदन कर दे।

फिर हम स्विस संविधान को लेते हैं। उस संविधान में भी, विधान-मंडल संशोधन-विधेयक पारित कर सकता है, किन्तु वह संशोधन तब तक अमल में नहीं आता जब तक दो शर्तें पूरी न हों: एक यह है कि केन्टनों में से बहुमत उस संशोधन को स्वीकार कर ले, और दूसरा यह है कि जनमतगणना भी हो और जनता का बहुमत उसे स्वीकार कर ले। स्विट्जरलैंड में संविधान के संशोधन का विधेयक विधान-मंडल द्वारा पारित हो जाने मात्र से लागू नहीं हो सकता।

अब मैं आस्ट्रेलियन संविधान को लेता हूं। उस संविधान में यह उपबंध है: कि संशोधन आस्ट्रेलियन संसद में पूर्ण बहुमत से पारित होना चाहिये। फिर उसे

उन लोगों के अनुमोदन के लिये पेश किया जाये जो आस्ट्रेलियन संसद की निम्न सभा के लिये प्रतिनिधि चुनने के अधिकारी हैं। फिर उसे जनता या निर्वाचकों का मत जानने के लिये पेश किया जाये। एक और शर्त यह है कि उसे राज्यों का बहुमत स्वीकार कर ले और निर्वाचकों का बहुमत भी।

संयुक्त संविधान में उपबन्ध यह है कि संशोधन दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकृत हों और उस विनिश्चय को राज्यों का दो तिहाई बहुमत स्वीकार कर ले। मैंने ये उद्धरण यह सिद्ध करने के लिये दिये हैं कि मैंने जिन देशों का निर्देश किया है उनमें कहीं यह उपबन्ध नहीं है कि संविधान का संशोधन केवल बहुमत से हो सकता है।

अब मैं अपने संविधान के उपबन्धों पर आता हूं। हम अपने संविधान के संशोधन के विषय में क्या करना चाहते हैं? इस संविधान के विविध अनुच्छेदों को तीन श्रेणियों में विभाजित करना चाहते हैं। एक श्रेणी में वे अनुच्छेद आते हैं जिनका संशोधन संसद सादे बहुमत से कर सकती है। दुर्भाग्य से इस बात पर इसलिये ध्यान नहीं दिया गया है कि इस तथ्य का उल्लेख अनुच्छेद 304 में नहीं किया गया है वरन् संविधान के विविध अन्य अनुच्छेदों में किया गया है। मैं उनमें से कुछ का निर्देश करता हूं। उदाहरण के लिये अनुच्छेद 2 तथा 3 को लीजिये जो राज्यों के विषय में हैं। जहां जक नये राज्यों के निर्माण का संबंध है या विद्यमान राज्यों के पुनर्निर्माण का संबंध है, इस काम को संसद सादे बहुमत से कर सकती है। इसी प्रकार उदाहरण के लिये अनुच्छेद 148-क को लीजिये जो प्रान्तों के उच्च सदनों के विषय में है। संसद को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई है कि वह केवल बहुमत से उच्च सदनों को बिल्कुल समाप्त कर सकती है या जिन प्रान्तों में द्वितीय सदन नहीं हैं वहां बना सकती है। अब अनुच्छेद 213 को लीजिये जो भाग 2 के राज्यों के विषय में है। राज्यों के संविधानों के विषय में, संविधान के मसौदे में यह रखा गया है कि भाग 2 के राज्यों के संविधान की रचना और उनमें रूपभेद करने का काम संसद केवल बहुमत से कर सकती है।

फिर अनुसूची 5 और 6 को लीजिये। उनमें भी संसद को केवल बहुमत से संशोधन करने का अधिकार दे दिया गया है। मैं संविधान के असंख्य अनुच्छेदों का उद्धरण दे सकता हूं, जैसे कि अनुच्छेद 255 है, जो अनुदानों और वित्तीय उपबन्धों के विषय में है, जिसमें मामले को संसद द्वारा बनाई गई विधि के अधीन रखा गया है। उपबन्ध ये हैं "जब तक संसद अन्यथा उपबन्ध न करे"। अत: कई मामलों में—मुझे समस्त संविधान के मसौदे को देखने का समय नहीं मिला है अत: मैं केवल कुछ उदाहरण ही दे रहा हूं—हमने अपने संविधान में इस प्रकार की बातें रखी हैं कि उनमें संशोधन सादे बहुमत से हो सकता है। यदि मेरे मित्र, जो यह आलोचना करते हैं कि संसद को संविधान में सादे बहुमत से परिवर्तन करने या संशोधन करने की शक्ति होनी चाहिये, कोई ठोस मामला पेश करते और किसी अनुच्छेद का निर्देश देते जो उस श्रेणी में रखना चाहिये तो मसौदा-समिति उस मामले पर विचार कर सकती थी इसकी बजाय, यह कहना कि समस्त संविधान में बहुमत से परिवर्तन करने की शक्ति संसद को होनी चाहिये, बहुत ऊंचा आदेश है जिसे संविधान का मसौदा बनाने के लिये उत्तरदायी व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकते।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अतएव मैं सर्वप्रथम इस बात पर बल देना चाहता था कि यह कथन बिल्कुल भ्रममूलक है कि संविधान में ऐसा कोई अनुच्छेद नहीं है जिसे संसद सादे बहुमत से संशोधित कर सके। जैसाकि मैंने कहा है हमारे संविधान में बहुत से अनुच्छेद हैं जिन्हें केवल बहुमत से संशोधित करना संसद के लिये संभव होगा।

अब, हमने क्या किया है? हमने संविधान के अनुच्छेदों को तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया है। पहली श्रेणी में वे अनुच्छेद हैं जिन्हें संसद केवल बहुमत से संशोधित कर सकती है। दूसरी श्रेणी में वे संशोधन हैं जिनके लिये दो तिहाई बहुमत आवश्यक है। यदि भावी संसद किसी ऐसे अनुच्छेद का संशोधन करना चाहे जो भाग 3 में या अनुच्छेद 304 में उल्लिखित नहीं है तो उनके लिये इतना ही आवश्यक है कि दो-तिहाई बहुमत प्राप्त कर ले। फिर से उसमें संशोधन कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** उपस्थित सदस्यों का।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां। अब, हमने नि:संदेह कुछ अनुच्छेदों को तीसरी श्रेणी में रख दिया है जिसमें संशोधन की प्रणाली कुछ भिन्न है अथवा दुहरी है। उसके लिये दो तिहाई बहुमत के अतिरिक्त राज्यों द्वारा अनुमोदन करवाना आवश्यक है। अब मैं यह समझाऊंगा कि हम ऐसा क्यों समझते हैं कि कुछ चीजों के विषय में इस प्रक्रिया को अपनाना अभीष्ट है। यदि इस विषय में दिलचस्पी रखने वाले सदस्य उन अनुच्छेदों पर ध्यान दें, जो इस परन्तुक के अंतर्गत रखे गये हैं, तो वे देखेंगे कि वे अनुच्छेद केवल केन्द्र के विषय में ही नहीं हैं वरन् केन्द्र तथा प्रान्तों के संबंधों के विषय में हैं। हम इस बात को नहीं भूल सकते कि चाहे हमने बहुत सी बातों में प्रान्तीय स्वायत्तता का अतिक्रमण किया है फिर भी हमारी यह इच्छा है तथा हमने इसकी व्यवस्था की है कि संविधान का संघानीय ढांचा मूलत: बना रहे। हमने अपनी विधियों द्वारा प्रान्तों को कुछ अधिकार दे दिये हैं तथा केन्द्र के लिये कुछ अधिकार रक्षित किये हैं। हमने विधायी प्राधिकार को विभाजित किया है; हमने कार्यपालिका प्राधिकार को भी विभाजित कर दिया है तथा हमने प्रशासन-प्राधिकार को भी विभाजित कर दिया है। स्पष्ट है कि यह कहना कि संविधान के इन अनुच्छेदों को भी, जो कि प्रान्तों की प्रशासनीय, विधायी तथा वित्तीय और कार्यपालिका संबंधी शक्तियों आदि से सम्बद्ध है, दो तिहाई बहुमत से बदलने की शक्ति केन्द्र की संसद को दे दी जाये और प्रांतों या राज्यों को उसमें बोलने का हक्क न हो, यह कहना तो, मेरे विचार में, संविधान के मूलाधिकारों को ही समाप्त करना है। यदि मेरे माननीय मित्र उन अनुच्छेदों को देखेंगे जो परन्तुक में समाविष्ट हैं तो वे देखेंगे कि हमने बहुत ही कम हो इसके लिये चुना है। अनुच्छेद 43 राष्ट्रपति के निर्वाचन के विषय में है, अनुच्छेद 44 में राष्ट्रपति के निर्वाचन का तरीका वर्णित है। मसौदा-समिति का यह ख्याल था कि चाहे राष्ट्रपति केन्द्र के कामों को ही संभालेगा फिर भी वह संघ भर का प्रधान होगा, अत: उसके निर्वाचन में तथा निर्वाचन के तरीके में केन्द्र को जितनी दिलचस्पी होगी उतनी ही प्रांतों को भी होगी।

अत: हमने सोचा कि इस मामले को भी उस श्रेणी में रखना चाहिये जिसके लिये प्रान्तों का अनुसमर्थन अपेक्षित है।

अनुच्छेद 60 तथा 142 को लीजिये। अनुच्छेद 60 संघ के कार्यपालिका प्राधिकार के विस्तार के विषय में है तथा 142 राज्य के कार्यपालिका प्राधिकार के विषय में है। हमने अपने संविधान में यह मूल सिद्धान्त रखा है कि कार्यपालिका प्राधिकार विधायी प्राधिकार के बराबर ही विस्तृत होगा। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि संसद् को शक्ति दे दी जाये कि वह अनुच्छेद 60 में परिवर्तन करके अपनी कार्यपालिका-सत्ता को बढ़ा सकती है तो नि:संदेह इससे राज्यों का कार्यपालिका प्राधिकार कम हो जायेगा जो कि अनुच्छेद 142 में परिभाषित है, अतएव हमने यह सोचा कि यह भी मूल बात है और इस पर राज्यों द्वारा अनुमोदन की आवश्यकता होनी चाहिये।

भाग 5 का अध्याय 4 उच्चतम न्यायालय के विषय में है। इसके विषय में कोई संदेह नहीं हो सकता कि उच्चतम न्यायालय ऐसा न्यायालय है जिसमें केन्द्र और प्रान्तों को भी अथवा इस देश के सब एककों तथा प्रत्येक नागरिक को दिलचस्पी है, अतएव यह भी ऐसा मामला है जिसे केवल दो तिहाई मत से संशोधित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यही बात उच्च न्यायालयों के विषय में है जो भाग 6 के अध्याय 7 में उल्लिखित है।

भाग 9 का अध्याय 1, जो तीसरी श्रेणी में समाविष्ट है, विधायी शक्तियों के वितरण के विषय में है, और (क) में सप्तम अनुसूची की सूचियां हैं। कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि प्रान्तों को इस मामले में मूलत: दिलचस्पी है और उनकी सहमति बिना उनमें परिवर्तन नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार राज्य परिषद् में राज्यों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न है जो अनुच्छेद 67 में है।

मेरे विचार में माननीय सदस्य समझ गये होंगे कि मसौदा-समिति ने जो सिद्धान्त स्वीकार किये हैं उन पर आपत्ति नहीं की जा सकती, केवल वे ही लोग आपत्ति कर सकते हैं जो चाहते हैं कि संविधान को, उसके प्रत्येक अनुच्छेद को केवल बहुमत से बदलना संभव होना चाहिये। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूं। संविधान एक आधारभूत लेख्य होता है। इसी लेख्य द्वारा राज्यों के तीनों अंगों—कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधान-मंडल की शक्तियों, तथा स्थिति की परिभाषा की जाती है इसमें नागरिक के बनाम कार्यपालिका तथा विधान-मंडल की शक्तियों को भी परिभाषित किया जाता है, जैसे कि हमारे मूलाधिकारों संबंधी अध्याय में किया गया है। वास्तव में संविधान का उद्देश्य केवल राज्य के अंगों का निर्माण ही नहीं है वरन् उनके प्राधिकार की सीमित करना भी है, क्योंकि यदि उन अंगों के प्राधिकार पर कोई सीमा नहीं लगाई जायेगी तो पूर्ण अत्याचार और पूर्ण दमन हो सकेगा। विधान-मंडल को कोई भी विधि बनाने की स्वतन्त्रता होगी; कार्यपालिका को कोई भी विनिश्चय करने की स्वतन्त्रता होगी, तथा उच्चतम न्यायालय को विधि का कोई भी निर्वचन करने की स्वतन्त्रता होगी। श्रीमान्, यह बात मेरे समझ में नहीं आती कि संविधान का संशोधन केवल बहुमत से करने का अधिकार दिया जाये। इस भावना पर विचार

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

करने पर मेरे समझ में तीन ही कारण आते हैं। एक तो कारण यह हो सकता है कि मसौदा-समिति ने ऐसा मसौदा बनाया है जो भाषा की दृष्टि से बहुत खराब है। मैं उस स्थिति को बिल्कुल समझ सकता हूं। यदि यह बात है.....

*__श्री महावीर त्यागी:__ ऐसा नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ हो सकता है ऐसा न हो। यदि ऐसा है, तो मैं मसौदा-समिति के सभापति की हैसियत से, और मेरे विचार में मसौदा-समिति के मेरे अन्य साथी भी आपत्ति नहीं करेंगे, यदि यह संविधान-सभा कोई अन्य मसौदा-समिति नियुक्त कर दे या बाहर से कोई संसदीय मसौदाकार को बुला ले और उसे यह मसौदा देकर कहे कि इसमें जो त्रुटियां हैं उन्हें ढूंढे तथा उनका सुझाव दे। यह ईमानदारी की प्रक्रिया होगी और मुझे इस पर जरा भी आपत्ति नहीं है।

यदि तर्कों का आधार यह नहीं है, तो दूसरा आधार यह हो सकता है कि यह संविधान गलत सिद्धान्तों पर आश्रित है। श्रीमान्, जहां तक इस बात का संबंध है, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संविधान के दो ही आधार हो सकते हैं। एक आधार तो यह है कि संसदीय शासन पद्धति हो। दूसरा आधार यह है कि निरंकुश या तानाशाही शासन पद्धति हो। यदि हम इस बात से सहमत हैं कि हमारा संविधान तानाशाही पर आधारित न हो तथा ऐसा संविधान हो जिसमें संसदीय लोकतंत्र हो, जहां सरकार की सदा परीक्षा होती रहे, अर्थात् वह जनता के प्रति उतरदायी रहे, न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी रहे तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि इस संविधान में निहित सिद्धान्त भी किसी अन्य संसदीय संविधान से चाहे अधिक उत्तम न हों, तो उसके समान उत्तम तो हैं ही।

दूसरी युक्ति जो शायद पेश की गई हो—मैं प्रत्येक वक्ता के भाषण को सुन नहीं सका था—यह है कि यह सभा प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह वयस्कमताधिकार के आधार पर नहीं चुनी गई है, कि इस सभा में बहुत से जनसाधारण को प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है। इसके परिणामस्वरूप इस सभा को संविधान बना कर यह कहने का अधिकार नहीं है कि इस संविधान का वही अंतिम मूल्य हो जो अनुच्छेद 304 द्वारा उसे देने की प्रस्थापना है। श्रीमान्, यह सच हो सकता है कि यह सभा इस अर्थ में प्रतिनिधि सभा नहीं है क्योंकि इसके सदस्य वयस्कमताधिकार के आधार पर नहीं चुने गये हैं। मैं इस युक्ति को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं, किन्तु मैं इस परिणाम को स्वीकार नहीं करता जो इससे निकाला जा रहा है कि यदि यह वयस्कमताधिकार के आधार पर चुनी जाती तो इसमें अवश्यमेव अधिक बुद्धिमत्ता तथा राजनैतिक ज्ञान होता।

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:__ वह तो और भी बुरा होता।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ मेरे मित्र श्री नज़ीरुद्दीन अहमद कहते हैं कि वह तो और भी बुरा होता और मैं उनसे सहमत हूं। शक्ति और ज्ञान साथ-साथ नहीं रहते। कभी-कभी उनका पार्थक्य होता है और मैं स्पष्ट कह देता हूं कि

इस सदन में भावी संसद से अधिक ज्ञान तथा सूचना की मात्रा है। अतएव मेरा निवेदन है कि मसौदा-समिति द्वारा प्रस्थापित अनुच्छेद सर्वोत्तम है जो इस परिस्थिति में बन सकता था।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। मैं पहले मुद्रित संशोधनों के दूसरे ग्रन्थ के उन संशोधनों को लूंगा जिन्हें श्री कामत ने पेश किया है। पहला संशोधन 3239 है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) से पूर्व, निम्न नया खंड प्रविष्ट कर दिया जाये तथा विद्यमान खंडों की संख्या तदनुसार बदल दी जाये:

'(1) Any provision of this Constitution may be amended whether by way of variation; addition or repeal, in the manner provided in this article.'"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में 'An amendment' इन शब्दों के स्थान पर 'A proposal for an amendment' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill' इन शब्दों के स्थान पर 'it shall, upon presentation to the President, be signed by him' ये शब्द रख दिये जायें।"

अथवा, विकल्प से

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'it shall be presented to the President for his assent and upon such assent being given to the Bill' इन शब्दों के स्थान पर 'it shall, upon presentation to the President, receive his assent' ये शब्द रख दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) में, 'to the Bill' ये शब्द, जो 11वीं पंक्ति में हैं, हटा दिये जायें।"

*__अध्यक्षः__ प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 304 के खंड (1) के परन्तुक से पहले, निम्न नया परन्तुक प्रविष्ट कर दिया जाये:–

'Provided that a period of not less than six months intervenes between the initiation of the Bill and its final passage in Parliament.'"

[परन्तुक विधेयक के संसद में आरंभ होने के पश्चात् तथा उसके अंतिम बार पारित होने से पूर्व 6 मास से कम समय न बीते।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्षः__ एक संशोधन सं. 3261 था जो आचार्य जुगल किशोर के नाम से था, किन्तु वह वास्तव में पेश नहीं किया गया था।

*__आचार्य जुगल किशोरः__ मैं इस पर मतदान नहीं करवाना चाहता।

*__अध्यक्षः__ मुद्रित सूची में तो ये ही संशोधन हैं। अब हम उन संशोधनों को लेते हैं जो साइक्लोस्टाइल्ड कार्यावली में हैं। पहले मैं संशोधनों को उसी क्रम से लूंगा जिससे वे पेश किये गये हैं। प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 के परन्तुक के स्थान पर, निम्न परन्तुक रख दिया जाये:—

'Provided that if such amendment seeks to make any change in—

(a) article 43, article 44, article 60, article 142, or article 213A of this Constitution, or

(b) Chapter IV of Part V, Chapter VIII of Part VI, or Chapter I of Part IX of this Constitution, or

(c) any of the Lists in the Seventh Schedule, or

(d) the representation of States in Parliament, or

(e) the provisions of this article,

the amendment shall also require to be ratified by the Legislatures of not less than one-half of the States for the time being specified in Parts I and III of the First Schedule by resolutions to that effect passed by those Legislatures before the Bill making provision for such amendment is presented to the President for assent.'"

[किन्तु यदि कोई ऐसा संशोधन—

(क) इस संविधान के अनुच्छेद 43, अनुच्छेद 44, अनुच्छेद 60, अनुच्छेद 142 अथवा अनुच्छेद 213क में; या

(ख) इस संविधान के भाग 5 के अध्याय 4, भाग 6 के अध्याय 7, अथवा भाग 9 के अध्याय 1 में; या

(ग) सप्तम अनुसूची की सूचियों में से किसी में; या

(घ) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में; या

(ङ) इस अनुच्छेद के उपबंधों में,

कोई परिवर्तन करना चाहता है तो ऐसे उपबंध करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिये उपस्थित किये जाने से पहले उस संशोधन के लिये प्रथम अनुसूची के भाग (1) और (3) में उल्लिखित राज्यों में से कम से कम आधों के विधान-मंडलों का उस प्रयोजन के लिये उन विधान-मंडलों से पारित संकल्पों द्वारा अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"के सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 के सारवान भाग के स्थान पर, निम्न रख दिया जाये:—

'304. This Constitution may be added to, or amended by, the introduction of a Bill for this purpose in either House of Parliament and passed in both Houses of Parliament by a clear majority of the total membership of each House. The provisions of the Bill shall not, however, come into force until assented to by the President.'"

[304. इस संविधान में परिवर्धन या संशोधन करने के लिये, इस प्रयोजन के लिये एक विधेयक संसद के किसी सदन में पेश किया जायेगा तथा प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों के स्पष्ट बहुमत से संसद के दोनों सदनों में पारित होने पर संविधान में संशोधन हो जायेगा। किन्तु विधेयक के उपबन्ध तब तक लागू नहीं होंगे जब तक कि राष्ट्रपति उन पर अनुमति न दे दे।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 में, 'and by a majority of not less than two-thirds of the members of the House present and voting' ये शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं.118 में प्रस्थापित अनुच्छेद 304 में निम्न परन्तुक जोड़ दिया जाये:–

'Provided that for a period of 3 years from the commencement of this Constitution any amendment of the Constitution certified by the President to be not one of substance may be made by a Bill for the purpose being passed by both Houses of Parliament by a simple majority. This will among other things, include any formal amendment recommended by a majority of the Judges of the Supreme Court on the ground of removing difficulties in the administration of the Constitution or for the purpose of carrying out the Constitution in public interest and certified by the President to be necessary and desirable.'"

[परन्तु इस संविधान के आरम्भ से तीन वर्ष की अवधि में, संविधान का कोई संशोधन, जिसे राष्ट्रपति प्रमाणित कर दे कि वह सारवान संशोधन नहीं है, ऐसे विधेयक द्वारा किया जा सकता है जो उस प्रयोजन के लिये संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से पारित किया जाये। इसमें, अन्य बातों के अतिरिक्त, ऐसा औपचारिक संशोधन समाविष्ट होगा जिसकी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों का बहुमत, संविधान के प्रशासन में कठिनाइयां दूर करने के आधार पर अथवा संविधान को सार्वजनिक हित में चलाने के लिये, सिफारिश करे तथा राष्ट्रपति आवश्यक एवं अभीष्ट प्रमाणित कर दे।]

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 3 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 118 में, प्रस्थापित अनुच्छेद 304 के परन्तुक का खंड (क) हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं अपना संशोधन सं. 212 वापस लेना चाहता हूं।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिया गया।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 5 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन सं. 207 में, अनुच्छेद 304 के प्रस्थापित परन्तुक में 'Legislatures of not less than one half of the States for the time being specified in Parts I and III of the First Schedule by resolutions to that effect passed by those Legislatures before the Bill making provision for such amendment is presented to the President for assent' इन शब्दों के स्थान पर 'electorate' शब्द रख दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** मेरे ख्याल में ये ही संशोधन हैं।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में प्रस्तावित अनुच्छेद 304 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 304 संविधान में जोड़ दिया गया।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, अब सात बजे हैं।

***सेठ गोविन्द दासः** अभी इतना काम शेष है कि मैं नहीं समझता कि हम उसे समाप्त कर सकेंगे। अतः मेरा सुझाव है कि या तो हम आज रात के नौ बजे आरंभ करके बारह बजे तक काम करते रहें या हम कल प्राप्तःकाल समवेत हों।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** केवल तीन ही अनुच्छेद हैं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** केवल तीन ही अनुच्छेद हैं जिनमें से दो तो औपचारिक हैं।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में अभी स्थगित हो कर पुनः सदन में वापस आना बहुत असुविधाजनक होगा। अतः जब तक हम समाप्त करें तब तक हमें बैठना होगा या हमें कल बैठना होगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** केवल दो तीन ही अनुच्छेद हैं और मुझे विश्वास है कि वे अविवादास्पद हैं तथा उन पर आधा घंटा भी नहीं लगेगा।

***सेठ गोविंद दासः** मैं नहीं समझता कि हम घंटे भर में समाप्त कर सकते हैं। अनुच्छेद 1 में देश के नाम का निर्णय होना शेष है। मैं नहीं समझता कि हम इन सबको समाप्त कर सकेंगे।

***अध्यक्षः** सभा का बहुमत यही समझाता प्रतीत होता है कि हमें बैठक जारी रखनी चाहिये। क्या मैं ठीक हूं?

***बहुत से माननीय सदस्यः** हां, श्रीमान्।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हम इसे समाप्त कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** यह नहीं हो सकता। अनुच्छेद 1 अभी शेष है और जब तक डॉ. अम्बेडकर मिठाई का प्रबन्ध नहीं करेंगे तब तक नामकरण संस्कार नहीं हो सकता।

अनुच्छेद 99

***अध्यक्षः** फिर हम अनुच्छेद 99 और 184 को लेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 99 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जायेः—

'99. (1) Notwithstanding anything contained in Part XIV-A of this Constitution but subject to the provisions of Article 301-F thereof, business in Parliament shall be transacted in Hindi or in English:

Language to be used in Parliament.

Provided that the Chairman of the Council of States or Speaker of the House of the People or person acting as such, as the case may be, may permit any member, who cannot adequately express himself in either of the languages aforesaid to address the House in his mother-tongue.

(2) Unless Parliament by law otherwise provides, this article shall, after the expiration of a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, have effect as if the words 'or in English' were omitted therefrom.'"

[99. (1) भाग 14क में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 301च के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जायेगाः

संसद में प्रयुक्त होने वाली भाषा।

परन्तु यथास्थिति राज्यपरिषद् का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य

को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के आरंभ से 15 वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानों कि "या अंग्रेजी में" ये शब्द उसमें से लुप्त कर दिये गये हैं।]

क्या मैं दूसरा भी पेश कर सकता हूं? दोनों में एक ही बात है।

***अध्यक्ष:** मेरे ख्याल में दोनों में युक्तियां एक सी ही होंगी।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** सारांश में वे एक सी हैं।

***अध्यक्ष:** मैं उन पर अलग-अलग मत लूंगा।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हम चर्चा साथ कर सकते हैं। जहां तक चर्चा का संबंध है, युक्तियां लगभग एक सी होंगी। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 184 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:—

'184. (1) Notwithstanding anything contained in Part XIV-A of this Constitution but subject to the provisions of Article 301-F thereof, business in the Legislature of a State shall be transacted in the official language or languages of the State or in Hindi or in English:

Languages to be used in the Legislatures of States.

Provided that the Speaker of the Legislative Assembly or Chairman of the Legislative Council or person acting as such, as the case may be, may permit any member who cannot adequately express himself in any of the languages aforesaid to address the House in his mother-tongue.

(2) Unless the Legislature of the State otherwise provides, this article shall, after the expiration of a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, have affect as if the words 'or in English' were omitted therefrom.'"

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

राज्यों के विधान-मंडल में प्रयोग होने वाली भाषा।

[184. (1) भाग 14क में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 301च के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्यराज्य की राजभाषा या भाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जायेगा:

किन्तु यथास्थिति विधान-सभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद् का सभापति अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे, तब तक इस संविधान के आरंभ से 15 वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो कि "या अंग्रेजी में" ये शब्द उसमें से लुप्त कर दिये गये हैं।]

श्रीमान्, मेरे विचार में इस पर कुछ कहना आवश्यक नहीं है। अनुच्छेद स्वयं स्पष्ट है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय निवेदन करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 1) के संशोधन संख्या 1777 के निर्देश से, अनुच्छेद 99 के खंड (1) में, 'हिन्दी' शब्द के पश्चात् 'अथवा बंगाली या कोई प्रादेशिक भाषा' ये शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

***अध्यक्ष:** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, आपने अभी जो संशोधन पढ़ा है वह आप कहां लगायेंगे?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** यह 'हिन्दी' शब्द के पश्चात् लगेगा।

***अध्यक्ष:** हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधन सूची (ग्रन्थ 1) के संशोधन संख्या 2507 के निर्देश से, अनुच्छेद 184 के खंड (1) में, 'language or languages generally used in that state' इन शब्दों के स्थान पर 'the regional language or languages of the State' ये शब्द रख दिये जायें।"

***एक माननीय सदस्य:** ये सब संशोधन तो समाप्त हो गये हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मेरा निवेदन है कि बात इससे उल्टी है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्थापित संशोधन मेरे संशोधनों में ठीक नहीं बैठता। यह असली बात है। यह संशोधन बहुत पहले भेजा गया था और मसौदा-समिति का संशोधन

तो हमारे पास अचानक आ गया। किन्तु मैं केवल कुछ ही बातें कहूंगा। मैं केवल यह चाहता हूं कि अनुच्छेद 99 में प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग हो। हम इस सिद्धान्त को पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि हिन्दी भारत की राज-भाषा हो। यह हमने अत्यधिक बहुमत से विनिश्चय किया है। हमने यह भी विनिश्चय किया है कि प्रादेशिक भाषाओं को विकास का काफी क्षेत्र मिले। अतः मेरा विचार है कि प्रादेशिक भाषाओं को भी संसद में प्रोत्साहन मिलना चाहिये। मेरे संशोधन का यही कारण है। यदि यह संशोधन अनुच्छेद के नये रूप के साथ मेल नहीं खाता तो मसौदा-समिति पर छोड़ देना चाहिये कि वह समुचित रूप से इसमें परिवर्तन कर ले।

अनुच्छेद 184 पर मेरे संशोधन के संबंध में, यही सिद्धान्त है। एक या अनेक प्रादेशिक भाषाएं हो सकती हैं और विधान-मंडलों में उनके प्रयोग की अनुमति होनी चाहिये। मैं यह बात कहना चाहता हूं कि अध्यक्ष या सभापति को काफी अधिकार है कि वह किसी सदस्य को, जो राज-भाषा न जानता हो, ऐसी भाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है जिससे वह परिचित हो। इससे सभापति या अध्यक्ष को कुछ स्वविवेक शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह किसी को प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग करने से रोक भी सकता है। यदि आप प्रादेशिक भाषाओं का विकास नहीं होने देंगे तो वे राज-भाषा की उन्नति में बहुत कम अंशदान दे सकेंगी।

*__अध्यक्षः__ क्या यह नये प्रस्थापित संशोधन में नहीं है?

*__श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः__ मैं मसौदा-समिति से उस पर विचार करने का अनुरोध करूंगा। यह केवल एक सुझाव है, यह किसी भी प्रकार ठीक बैठना ही चाहिये। मैं जानता हूं कि यह मेरी पवित्र भावना मात्र है क्योंकि इसे स्वीकार नहीं किया जायेगा?

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः__ क्या आप भाषा के प्रश्न पर चर्चा करने की अनुमति देने जा रहे है? समस्त भाषा-प्रश्न सदन के समक्ष आ रहा है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ नहीं, नहीं, समस्त प्रश्न पर चर्चा हो चुकी है तथा विनिश्चय हो चुका है।

सेठ गोविंद दासः सभापति जी, मुझे इस धारा का समर्थन करने में बहुत हर्ष हो रहा है। अब तक भाषा के विषय में जितनी धारायें आईं उनसे हमको किसी को भी सन्तोष नहीं था। परन्तु इस धारा में मैं समझता हूं कि विशेष मतभेद नहीं है। अब तक भाषा के विषय में जो धारायें उपस्थित की गई उनमें हर जगह हिन्दी के लिये कोई न कोई बाधा रखी गई है। यही एक धारा ऐसी है जो कि स्वच्छन्द धारा है। जिस धारा में न प्रेजिडेन्ट से कोई इजाजत लेने की जरूरत है, न कोई काम कमीशन के सुपुर्द किया गया है न पार्लियामेंटरी कमेटी के जिम्मे कोई बात रखी गई है।

[सेठ गोविन्द दास]

जब मैं इसका समर्थन करता हूं तब मुझे 22 वर्ष पहले की एक घटना याद आ जाती है। उस समय सन् 1927 में मैंने इस विषय का एक प्रस्ताव कौंसिल ऑफ स्टेट में रखा था। उस प्रस्ताव को पढ़कर मैं आपका समय नहीं लेना चाहता, उसमें केवल यह मांग की गई थी कि वहां पर अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी और उर्दू में भी बोलने की इजाजत दी जाये। पर वह मांग उस समय ठुकरा दी गई थी। उस समय मेरी उम्र 28, 29 वर्ष की होगी और आज जब मैं 22 वर्ष पुरानी बात याद करता हूं तो मुझे वे सारी घटनाएं याद आ जाती हैं जो हिन्दी के संबंध में 22 वर्ष में हुई हैं। मैं आशा करता हूं कि अब कम से कम जो लोग हिन्दी भाषा भाषी हैं और जो हिन्दी में बोल सकते हैं और जिन्हें आज भी न मालूम क्यों हमारी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अंग्रेजी में बोलने में गौरव मालूम होता है, इस पर विचार करेंगे और इस धारा के पास हो जाने के बाद स्वतन्त्र भारत में हमारी हिन्दी में जो हमारी राष्ट्र-भाषा स्वीकार की जा चुकी है बोलेंगे अंग्रेजी में नहीं। और अगर वह ऐसा न करेंगे तो इस देश के जितने अखबार हैं वह उनकी खबर लेंगे। जिस स्थान पर हिन्दी का स्वच्छंद रूप से प्रचार हो सकता है वह स्थान हमारी पार्लियामेंट ही है। मुझे आशा है पार्लियामेंट में अब हिन्दी अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकेगी।

अंत में मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि महात्मा गांधी के नेतृत्व के पश्चात् इस देश की जनता का हमारी राजनैतिक हलचलों से सम्पर्क रहा है, यदि हम चाहते हैं कि इस देश की जनता का हमारे पार्लियामेंट के कार्यों से भी संपर्क रहे तो यह आवश्यक है कि इस देश की अधिकांश जनता किस भाषा को समझती है उसी भाषा में हमारी पार्लियामेंट की कार्यवाही हो। मैं इन शब्दों के साथ डॉक्टर अम्बेडकर साहब की इन दोनों धाराओं का हृदय से समर्थन करता हूं।

***कई माननीय सदस्यः** अब प्रश्न पर मत ले लिये जायें।

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद, क्या आप अपने संशोधनों पर मतदान करवाना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं उन्हें वापस लेने की अनुमति चाहता हूं, श्रीमान्।

(संशोधन, सभा की अनुमति से, वापस ले लिये गये।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 99 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:—

'99. (1) Notwithstanding anything contained in Part XIV-A of this Constitution but subject to the provisions of Article 301-F thereof, business in Parliament shall be transacted in Hindi or in English:

Language to be used in Parliament.

Provided that the Chairman of the Council of States or Speaker of the House of the People or person acting as such, as the case may be, may permit any member, who cannot adequately express himself in either of the languages aforesaid to address the House in his mother-tongue.

(2) Unless Parliament by law otherwise, provides, this article shall, after the expiration of a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, have effect as if the words 'or in English' were omitted therefrom.'"

[99. (1) भाग 14क में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 301च के उपबन्धों के अधीन रहते हुए संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जायेगा: संसद में प्रयोग होने वाली भाषा।

परन्तु यथास्थिति राज्य-परिषद् का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिन्दी या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे, तब तक इस संविधान के आरंभ से 15 वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो कि "या अंग्रेजी में" ये शब्द उसमें से लुप्त कर दिये गये हैं।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 184 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:—

'184. (1) Notwithstanding anything contained in Part XIV-A of this Constitution but subject to the provisions of Article 301-F thereof, business in the Legislature of a State shall be transacted in the official language or languages of the State or in Hindi or in English: Language to be used in the Legislatures of States.

Provided that the Speaker of the Legislative Assembly or Chairman of the Legislative Council or person acting as such, as the case may be, may permit any member, who

[अध्यक्ष]

cannot adequately express himself in any of the languages aforesaid to address the House in his mother-tongue.

(2) Unless the Legislature of the State otherwise provides this article shall, after the expiration of a period of fifteen years from the commencement of this Constitution, have effect as if the words 'or in English' were omitted therefrom.'"

राज्यों के विधान-मंडलों में प्रयोग होने वाली भाषा।

[184. (1) भाग 14क में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 301च के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या भाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जायेगा:

परन्तु यथास्थिति विधान-सभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद् का सभापति अथवा ऐसे रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता, अपनी मातृभाषा में सदन को सम्बोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे, तब तक इस संविधान के आरंभ से 15 वर्ष की कालावधि की समाप्ति के पश्चात् यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो कि "या अंग्रेजी में" ये शब्द उसमें से लुप्त कर दिये गये हैं।]

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 99 तथा 184 संविधान के अंग बनें।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 99 तथा 184 संविधान में जोड़ दिये गये।

अनुच्छेद 305

***अध्यक्ष:** एक अनुच्छेद 305 भी था। मैं गलती से उसे छोड़ गया था। उसे हटा देने की प्रस्थापना है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 305 को हटा दिया जाये।"

*__अध्यक्षः__ अब यह अनुच्छेद आवश्यक हो गया है। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 305 को हटा दिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 305 संविधान से हटा दिया गया।

अनुच्छेद 1

*__अध्यक्षः__ एक और अनुच्छेद है, अनुच्छेद 1।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ श्रीमान्, मैं संशोधन सं. 130 को पेश करना चाहता हूं तथा उसे अपने संशोधन सं. 197 में शामिल करना चाहता हूं जिससे उप-खंड (2) में कुछ मौखिक परिवर्तन हो जाता है।

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 1 के खंड (1) तथा (2) के स्थान पर, निम्न खंड रख दिये जायें:—

'(1) India, that is, Bharat shall be a Union of States.

(2) The States and the territories thereof shall be the States and their territories for the time being specified in Parts I, II and III of the First Schedule.'"

[(1) भारत, अर्थात् इण्डिया, राज्यों का संघ होगा।

(2) उसके राज्य और राज्यक्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 तथा 3 में उल्लिखित राज्य और उनके राज्यक्षेत्र होंगे।]

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (युक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं निवेदन करना चाहता हूं कि यह बहुत महत्वपूर्ण अनुच्छेद है। इसमें केवल नाम का ही प्रश्न नहीं है, वरन यह भी है कि वह राज्यों का संघ होगा। यह बहुत आपत्तिजनक है। मैंने एक संशोधन भेजा है जिस पर मैं कम से कम आधा घंटा लूंगा। मैं इस राज्यों के संघ के विरुद्ध हूं। मैं इस प्रकार का संघ नहीं चाहता क्योंकि, पहले गणराज्य होते थे। हमने गणराज्यों का विचार छोड़ दिया है तथा राज्य रख दिये हैं। यह बहुत गंभीर मामला है। इसे साधारण तरीके से निबटाया नहीं जा सकता। मैंने डॉ. अम्बेडकर से बात की थी, वे कहते हैं वे उसे पांच मिनट में निबटा देंगे। वे ऐसा नहीं कर सकते। यह बहुत गम्भीर बात है और इस संबंध में मैंने आरम्भ से ही संशोधन पेश किये हैं। मैंने अब भी एक संशोधन भेजा है जो छप कर सदस्यों के पास भेजा जा चुका है।

*__अध्यक्षः__ आप चर्चा को स्थगित करने का प्रस्ताव कर दीजिये।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ श्रीमान्, मैं इस चर्चा को कल सवेरे तक के लिये स्थगित करवाना चाहता हूं।

*__माननीय सदस्यगण:__ नहीं।

*__अध्यक्ष:__ मैं सदन की इच्छा पूछ लेता हूं। एक बार मैं पूछ चुका हूं। अब मैं फिर पूछ लेता हूं। प्रस्ताव यह है:

"कि चर्चा को कल प्रात:काल तक के लिये स्थगित कर दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

*__अध्यक्ष:__ चर्चा जारी रहेगी। 131।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ मेरे संशोधन का क्या हुआ?

*__अध्यक्ष:__ वह समय पर आयेगा।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ एक औचित्य प्रश्न है। मैं समझता हूं कि गणपूर्ति नहीं है। अतएव इस सदन को कल प्रात:काल तक के लिये स्थगित कर दिया जाये।

*__अध्यक्ष:__ मुझे पता नहीं है। मेरे विचार में प्रक्रिया यह है कि घंटी बजानी होगी और फिर गिनती होगी। घंटी बजवा दो।

(घंटियां बजाई गईं।)

मेरे विचार में अब सदस्यों की गिनती होनी चाहिये। सदस्य अपने स्थानों पर बैठेंगे जिससे कि गिनती हो सके।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ यदि आप कम से कम एक घंटे के लिये स्थगित कर दें तो अपना भोजन कर सकूंगा। मैंने अभी भोजन नहीं किया है।

*__अध्यक्ष:__ हम यदि स्थगित करेंगे तो अगले सत्र तक के लिये ही करेंगे। अगले सत्र तक ही स्थगित करना सर्वोत्तम होगा।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, यह बहुत कम समय में समाप्त हो सकता है।

*__अध्यक्ष:__ हम क्या कर सकते हैं? किसी भी सदस्य को बाधा डालने का अधिकार है। छियासी सदस्य उपस्थित हैं, और हमारे नियमों के अंतर्गत कुल सदस्यों में से एक तिहाई से गणपूर्ति होती है, जिसका अर्थ है कि 97 के लगभग सदस्य होने चाहियें। अतएव, अब गणपूर्ति नहीं है। मुझे सदन को स्थगित करना पड़ेगा, कोई और उपाय नहीं है।

*__एक माननीय सदस्यः__ इस अनुच्छेद को अगले सत्र के लिये रहने दीजिये।

*__एक अन्य माननीय सदस्यः__ हम कल समवेत हो सकते हैं।

*__एक अन्य माननीय सदस्यः__ कल भी गणपूर्ति होने की कोई प्रत्याभूति नहीं है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ हम कुछ सदस्यों को ला सकते हैं जो बाहर होंगे। घंटी बजाई जाये।

*__अध्यक्षः__ स्थिति यह हैः या तो हमें कल तक के लिए स्थगित होना होगा....

*__पं. लक्ष्मीकान्त मैत्रः__ कल भी गणपूर्ति नहीं होगी।

*__एक माननीय सदस्यः__ हम आधे घंटे के लिये स्थगित हो सकते हैं।

*__अध्यक्षः__ यह सुझाव रखा गया है कि हम आधे घंटे के लिये स्थगित हो जायें जिससे कि सदस्य आ सकें।

क्या मैं पता लगा सकता हूं? अब स्थगित करना तो आवश्यक ही है और हम उसे टाल नहीं सकते। प्रश्न यही है कि हम अगली बार कब समवेत हों।

पहला प्रश्न यह है कि हमें आज रात को समवेत होना चाहिये, या कल या सभा के अगले सत्र के लिये स्थगित हो जाना चाहिये।

*__सरदार हुकम सिंहः__ श्रीमान्, आप सदन की अनुमति के बिना सदन को तीन दिन के अधिक समय के लिये स्थगित नहीं कर सकते और सदन अभी ऐसी अनुमति नहीं दे सकता क्योंकि गणपूर्ति नहीं है।

*__अध्यक्षः__ फिर हम आज रात को बाद में समवेत होंगे।

*__माननीय श्री विनोदानंद झा__ (बिहार : जनरल): सम्यक् रूप से संगठित सदन ही तीन दिन से अधिक स्थगित करने की अनुमति दे सकता है, किन्तु यह सभा सम्यक् रूप से संगठित नहीं है क्योंकि गणपूर्ति नहीं है। गणपूर्ति के बिना वह काम नहीं कर सकती। प्रक्रिया के नियमों के नियम 22 के खंड (2) में गणपूर्ति का और गणपूर्ति के अभाव में क्या हो यह विषय है। आप, श्रीमान्, सदन की सहमति के बिना सीधे स्थगित नहीं कर सकते।

*__अध्यक्षः__ नियम 22 में लिखा हैः "यदि बैठक में किसी समय किसी सदस्य की मांग पर सभापति को पता लगता है कि कुल सदस्यों के एक-तिहाई उपस्थित नहीं है, तो वह यथास्थिति सभा या समिति को 15 मिनट के लिये स्थगित कर देगा और यदि उस कालावधि के पश्चात् दुबारा गिनती होने पर पता लगे कि उस समय भी गणपूर्ति नहीं है, तो वह यथास्थिति सभा या समिति को अगले दिन तक के लिये जब यह सामान्यतः बैठती हो स्थगित कर देगा।"

[अध्यक्ष]

अतः हम प्रतीक्षा करेंगे। हम आठ बजे तक प्रतीक्षा करेंगे।

(आठ बजने में दस मिनट रहते थे।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मेरे विचार में पन्द्रह मिनट तो हो चुके हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** आप कोई भी औचित्य प्रश्न नहीं उठा सकते, क्योंकि सदन में गणपूर्ति नहीं हैं।

(आठ बजे गिनती करने पर पता लगा कि उस समय भी गणपूर्ति नहीं थी।)

***अध्यक्षः** गणपूर्ति नहीं है, क्योंकि केवल चौरानवें सदस्य उपस्थित हैं। सदन कल नौ बजे तक के लिए स्थगित होता है।

तत्पश्चात् सभा रविवार, 18 सितम्बर 1949 के 9 बजे तक के लिए स्थगित हो गई।

Con. 3. IX.38.49
320

अंक 9

संख्या 36

रविवार,
18 सितम्बर,
सन् 1949 ई.

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान सभा
के
वाद-विवाद
की
सरकारी रिपोर्ट
(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

अक्तूबर में सभा करने के सम्बन्ध का प्रस्ताव 2639
संविधान का मसौदा—*(जारी)*
[अनुच्छेद 1 पर विचार 2640–2664

भारतीय संविधान सभा

रविवार, 18 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल नई दिल्ली में प्रातः नौ बजे, अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

अक्तूबर में सभा करने के संबंध का प्रस्ताव

*__श्री के.एम. मुन्शी__ (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, क्या मैं यह पेश कर सकता हूं.....

*__श्री महावीर त्यागी__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, कहीं ऐसा न हो कि आज किसी समय गणपूर्ति न रहे, इस कारण मैं यह सुझाव रखता हूं कि आगामी बैठक की तिथि सर्वप्रथम विनिश्चित कर ली जाये।

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ श्री त्यागी, जरा धैर्य रखें। मैं प्रस्ताव पेश कर रहा हूं:

"That the President may be authorised to fix such a date in October as he considers suitable for the next meeting of the Constituent Assembly."

[कि अध्यक्ष को अक्तूबर में कोई ऐसी तिथि नियत करने के लिये प्राधिकृत किया जाये जिसे वे संविधान-सभा की आगामी बैठक के लिये ठीक समझें।]

*__श्री एम. थिरुमल राव__ (मद्रास : जनरल): अक्तूबर में हम सभा क्यों रखें?

*__श्री के.एम. मुन्शी:__ सभा अक्तूबर में की जायेगी। मैं सभा से निवेदन करता हूं कि जो संकल्प मैंने पेश किया है उसे वह स्वीकार करे।

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्य प्रदेश तथा बरार : जनरल): अक्तूबर में की जाने वाली बैठक की तिथियों का क्या हम अनुमान जान सकते हैं?

*__अध्यक्ष:__ यदि सभा की ऐसी इच्छा है तो वह मुझे किसी उस तिथि को, जिसे मैं आवश्यक समझूं, अगली बैठक बुलाने का प्राधिकार दे सकती है। अभी मैं यह घोषणा कर सकता हूं कि वर्तमान मंत्रणा के अनुसार अगामी बैठक मैं 6 अक्तूबर को बुलाना चाहता हूं। इसके बारे में सदस्यों को समुचित रूप से सूचनायें दे दी जायेंगी।

*__एक माननीय सदस्य:__ वह सत्र कितने समय तक रहेगा?

*__अध्यक्ष:__ यह 18 या 19 अक्तूबर तक रहेगा। उस सत्र को हम दीपावली, 21 अक्तूबर से पूर्व समाप्त कर देंगे।

क्या मैं यह समझ लूं कि श्री मुन्शी द्वारा पेश किया गया संकल्प सभा को स्वीकार है?

*__माननीय सदस्यगण:__ जी हां।

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 1—जारी

***अध्यक्षः** अब सभा अनुच्छेद 1 को लेगी। मैं समझता हूं कि श्री कामत ने संशोधन 220 पेश कर दिया है और अपना भाषण समाप्त कर चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने अपना भाषण समाप्त नहीं किया है।

***अध्यक्षः** तो फिर आगे भाषण दीजिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित खण्ड (1) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(1) Bharat, or, in the English language, India, shall be a Union of States.'"

[(1) भारत अथवा अंग्रेजी भाषा में इंडिया राज्यों का संघ होगा।]

अथवा विकल्पतः

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित खण्ड (1) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(1) Hind, or, in the English language, India, shall be a Union of States.'"

[हिंद अथवा अंग्रेजी में इण्डिया राज्यों का संघ होगा।]

श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित खण्ड (2) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(2) The States shall mean the territories for the time being specified in Parts I, II and III of the First Schedule.'"

[(2) राज्य का अर्थ प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उस समय उल्लिखित राज्य क्षेत्रों से है।]

अपने प्रथम संशोधन सं. 220 को पहले लेते हुए, संसार के अधिकांश व्यक्तियों में यह प्रथा है कि नवजात का नामकरण संस्कार अथवा नाम रखने का उत्सव मनाया जाये। गणराज्य के रूप में भारत का शीघ्र ही जन्म होने वाला है अतः समाज के कई वर्गों में—लगभग सभी वर्गों में यह आन्दोलन हो रहा है कि इस नये गणराज्य के जन्म पर नामकरण संस्कार भी होना चाहिये। इस प्रकार के कई सुझाव दिये गये है कि भारतीय गणराज्य के इस नवजात शिशु का समुचित नाम क्या हो। मुख्य चुनाव ये हैं—भारत, हिन्दुस्तान, हिन्द, भरतभूमि, भारतवर्ष तथा अन्य

इसी प्रकार के नाम। इस समय यह वांछनीय होगा, और शायद लाभदायक भी हो, कि इस विषय को ले लिया जाये कि भारतीय गणराज्य के रूप में नवजात शिशु के जन्म पर कौन सा नाम सबसे अधिक उपयुक्त होगा। कुछ लोग कहते हैं शिशु का नाम क्यों रखा जाये? इण्डिया पर्याप्त है। ठीक है। यदि नामकरण संस्कार की आवश्यकता न होती तो इण्डिया को ही बनाये रखते, पर जब हम यह मान चुके हैं कि इस शिशु का कोई नया नाम होना चाहिये तो यह प्रश्न उठता है कि इसका क्या नाम रखा जाये?

जो लोग भारत, भरतभूमि या भारतवर्ष के पक्ष में हैं, उन लोगों का तर्क इस तथ्य पर आश्रित है कि इस देश का यह बहुत ही प्राचीन नाम है। इतिहास लेखकों और भाषा वैज्ञानिकों ने इस देश के नाम के विषय में विशेषकर भारत नाम की व्युत्पत्ति पर गहन विचार किया है। परन्तु भारत नाम किस प्रकार पड़ा इस पर सब एकमत नहीं हैं। कुछ लोग इसका संबंध दुष्यंत और शकुन्तला के पुत्र से जोड़ते हैं जो 'सर्वदमन' अर्थात् सर्वविजयी के नाम से भी प्रसिद्ध था और जिसने इस प्राचीन देश में अपना अधिपत्य तथा राज्य स्थापित किया। उनके नाम पर यह देश भारत नाम से विख्यात हुआ। गवेषणा करने वाले विद्वानों की एक और विचारधारा के अनुसार भारत वैदिक काल से....

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): क्या इन सब बातों की खोज करना आवश्यक है? मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि इसका क्या प्रयोजन है। किसी अन्य प्रसंग में यह रुचिकर हो सकता है। मेरे मित्र "भारत" शब्द को स्वीकार करते है। बात केवल यह है कि उन्होंने एक विकल्प रखा है। मुझे बहुत खेद है, परन्तु सभा के पास सीमित समय होने के कारण समय का कुछ तो ध्यान रखना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं आशा करता हूं कि सभा की कार्रवाइयों को विनियमित करना डॉ. अम्बेडकर का कार्य नहीं है?

***अध्यक्षः** आप किस संशोधन को पेश कर रहे हैं?

***श्री एच.वी. कामतः** मैं दो वैकल्पिक संशोधनों को पेश कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** वैकल्पिक परन्तु विरोधात्मक नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** विचार यह है कि यदि एक स्वीकार न किया जाये तो दूसरा स्वीकार कर लिया जाये। ऐसा करने में मैंने बहुधा प्रचलित प्रणाली का अनुसरण किया है। मेरे पास पूर्व अवसरों पर दिये गये आपके आदेश हैं।

***अध्यक्षः** यहां एक दूसरे का अपमार्जन करता है। आप केवल एक नाम पसन्द कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** पहला डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये संशोधन की भाषा के संबंध का है क्योंकि डॉ. अम्बेडकर ने 'इण्डिया अर्थात् भारत' कहा है। मैंने उसे दूसरे रूप में रखा है। वह भाषा, पद तथा वाक्य रचना के संबंध का है।

***अध्यक्षः** अतः मैं समझता हूं कि यह एक ऐसा विषय नहीं है जिस पर लम्बे लम्बे भाषण दिये जायें। मैं समझता हूं कि लम्बे भाषणों से कोई लाभ नहीं होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं केवल पांच मिनट चाहता हूं।

***अध्यक्षः** पांच मिनट तो आप ले चुके हैं।

(श्री शंकर राव देव खड़े हुए।)

***श्री एच.वी. कामतः** श्री शंकर राव देव आपकी आज्ञा का पालन करने की मुझे आवश्यकता नहीं है। मुझे नियमों का ज्ञान है।

***अध्यक्षः** आप एक संशोधन पेश कर सकते हैं। मैंने आपको दोनों संशोधन पेश करने की अनुमति दे दी थी, पर मैं देखता हूं कि वे परस्पर विरोधी हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या वे परस्पर विरोधी हैं? यदि आप उन्हें विरोधी बताते हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है?

***अध्यक्षः** जी हां, यदि एक को स्वीकार कर लिया जाता है तो दूसरा नियम विरुद्ध हो जाता है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा उद्देश्य यह है कि यदि एक स्वीकार न किया जाये तो दूसरा स्वीकार किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस विषय पर इतना वाद-विवाद क्यों हो?

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल)**:** अध्यक्ष से तर्क नहीं होना चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्री शंकर राव देव, मैं नियमों से परिचित हूं।

***अध्यक्षः** आप एक पेश कर सकते हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं 'भारत' पेश करूंगा।

***अध्यक्षः** वह तो केवल भाषा का विषय है। वह केवल शाब्दिक परिवर्तन है।

***श्री एच.वी. कामतः** आपके आदेश को मैं शिरोधार्य करता हूं, पर मैं समझता हूं....

***माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर** (मद्रास : जनरल)**:** 'पर' 'वर' की जरूरत नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** यदि श्री आयंगर इतने उतावले हैं....

***श्री के.एम. मुन्शीः** शान्ति, शान्ति।

श्री एच.वी. कामतः श्री मुन्शी का यह कार्य नहीं है कि मुझसे शान्ति रखने के लिये कहें।

***अध्यक्षः** मैं आपसे कह चुका हूं कि यदि आप 'भारत' नाम पसन्द करते हैं तो वह केवल भाषा का प्रश्न है और उस पर भाषण की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामतः** आपके आदेश को मैं शिरोधार्य करता हूं। मैं केवल आयरलैण्ड के संविधान की ओर निर्देश करना चाहता हूं जिसको बारह वर्ष पूर्व स्वीकार किया गया था। इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में वाक्य की जो रचना प्रस्थापित की गई है उससे उसमें भिन्न रचना है। मैं समझता हूं कि "इंडिया अर्थात् भारत" इस पद का अर्थ "इंडिया जिसको भारत कहा जाता है" है। मैं समझता हूं कि संविधान में यह कुछ भद्दा सा है। यदि इस पद का एक अधिक सांविधानिक मान्य रूप में—और मैं तो यह कहूंगा कि एक अधिक कलात्मक तथा निश्चय ही अधिक सही रूप में रूपभेद कर दिया जाये तो अधिक अच्छा होगा।

इस सभा में उपस्थित मेरे माननीय मित्र यदि 1937 में पारित किये गये आयरलैण्ड के संविधान को देखने का कष्ट करें तो उनको यह विदित हो जायेगा कि आयरलैण्ड का स्वतन्त्र राज्य आधुनिक संसार के उन कुछ देशों में से है जिन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् अपने नाम बदले और उसके संविधान का चतुर्थ अनुच्छेद उनके देश के नाम परिवर्तन के संबंध में है। आयरलैण्ड स्वतन्त्र राज्य के संविधान का वह अनुच्छेद इस प्रकार है:

"राज्य का नाम एयर अथवा अंग्रेजी भाषा में आयरलैण्ड है।"

मैं समझता हूं कि "भारत अथवा अंग्रेजी भाषा में इंडिया इत्यादि, इत्यादि" अधिक सुन्दर पद है। अंग्रेजी भाषा मैंने विशेष कर कहा है। क्यों? इस कारण कि सदस्य शायद मुझसे पूछें कि आप "अंग्रेजी भाषा" क्यों कहते हैं? क्या सब यूरोप की भाषाओं में ऐसा नहीं है? जी नहीं, ऐसा नहीं है। जर्मन शब्द "इंडियन" है और यूरोप के कई भागों में इस देश का उल्लेख प्राचीन काल के अनुसार "हिन्दुस्तान" के रूप में किया जाता है, और इस देश के सभी निवासियों को, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो, हिन्दू कहा जाता है। यूरोप के कई भागों में यह बहुत प्रचलित है। यह शब्द सिन्धु नदी से लिया गया है और प्राचीन नाम हिन्दू के रूप में चला आया है।

संक्षेप में मैं समझता हूं कि "इंडिया अर्थात् भारत" एक भद्दी पदावली है और मैं नहीं समझ पाता हूं कि मसौदा समिति ने इस प्रकार की रचना क्यों की है और एक ऐसी भूल की है जो मुझे एक सांविधानिक भूल दिखाई देती है। डॉ. अम्बेडकर पहले अपनी कई भूलें स्वीकार कर चुके हैं और मैं आशा करता हूं कि इस भूल को भी वे स्वीकार करेंगे और इस खण्ड की रचना का पुनरीक्षण करेंगे।

जिस रूप में डॉ. अम्बेडकर ने खण्ड (2) को पेश किया है वह इस प्रकार है:

"उसके राज्य और राज्य क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग (1), (2) और (3) में उस समय उल्लिखित राज्य और उनके राज्यक्षेत्र होंगे।"

***अध्यक्षः** खण्ड (2) के स्थान में "that the territories thereof shall mean" यह केवल एक शाब्दिक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मुझे बड़ा खेद है कि आप मेरे संशोधन को समझ नहीं सके। उसमें "shall mean the territories" कहा गया है। मैंने 'territories thereof' शब्दों का अपमार्जन करने का प्रस्ताव पेश किया है क्योंकि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में "and the territories thereof shall be those" कहा गया है।

*__अध्यक्ष:__ उन शब्दों का अर्थ केवल राज्यक्षेत्र ही होगा और कुछ नहीं होगा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ मैं अपनी बात स्वयं अनुसूची के आधार पर कह रहा हूं। निराधार तर्क मैं नहीं करूंगा। जब तक अनुसूची में परिवर्तन नहीं किया जाता है मुझे उसका आधार ग्रहण करना है—और यह बाद की बात है जिस पर सभा विनिश्चय करेगी। जिस रूप में अनुसूची है वह इस प्रकार है:

"भाग 1

भारत के राज्य और राज्यक्षेत्र

इस संविधान के आरम्भ होने से सद्यपूर्व राज्यपाल के प्रान्तों के नाम से इस प्रकार ज्ञात राज्यक्षेत्र।"

श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में यदि यह खण्ड इस सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह किस प्रकार पढ़ा जायेगा? "राज्यों और उनके राज्य-क्षेत्रों।" क्या मैं डॉ. अम्बेडकर का ध्यान खण्ड के उस रूप की ओर आकर्षित कर सकता हूं जो मूल मसौदे में था "राज्य" का अर्थ उस समय उल्लिखित राज्यों से होगा। मैं नहीं जानता हूं कि इस खण्ड की पदावली तथा रचना अथवा शब्दावली में यह परिवर्तन क्योंकर किया गया है क्योंकि यदि आप अनुसूची 1, भाग 1 में उल्लिखित रूप में राज्य कहते हैं तो वहां इन राज्यों की परिभाषा कर दी गई है, और ये हैं भी क्या? वे राज्य जो इस संविधान के आरम्भ के पूर्व राज्यपाल के प्रान्त थे; इसी प्रकार भाग 2 के राज्य-क्षेत्र मुख्य आयुक्त के प्रान्तों के नाम से ज्ञात थे।

*__अध्यक्ष:__ मैं समझता हूं कि आपका संशोधन इस तथ्य के कारण रखा गया है कि आप यह नहीं जानते कि प्रथम अनुसूची का क्या रूप होगा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ जिस रूप में अनुसूची है उसी पर मैंने अपना संशोधन रखा है।

*__अध्यक्ष:__ हमने प्रथम अनुसूची को नहीं लिया है, अत: आप उस परिवर्तन से अथवा उस रूप से परिचित नहीं हैं जो प्रथम अनुसूची में होगा।

*__श्री एच.वी. कामत:__ यह कौन जान सकता है कि क्या पार होगा? यदि इस अनुसूची को पहले पार कर दिया जाये और बातों को बाद में लिया जाये तो बहुत अच्छा हो।

*__अध्यक्ष:__ क्या मैं प्रथम अनुसूची में उस रूप को पढ़ कर सुना दूं जो सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा?

"प्रथम अनुसूची के भाग 1 में यह परिवर्तन कर दिया जाये:

'भाग 1 में राज्यों के नाम दिये हुए हैं। अनुसूची में केवल नाम दिये हुए हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक राज्य के राज्य-क्षेत्र में अमुक-अमुक होगा।'"

*__श्री एच.वी. कामत:__ मुझे यह मसौदा प्राप्त न था, इस कारण संविधान में अनुसूची का जो रूप था उसी को मैंने आधार ग्रहण किया था और सिवाय, अपने

संशोधन पेश करने के मेरे पास और कोई चारा न था। अब आपने मेरा ध्यान इस अनुसूची के उस रूप की ओर आकर्षित किया है जो सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा—और मुझे यह भी आशा है कि वह स्वीकार कर लिया जायेगा—इस कारण इस संशोधन पर और अधिक बोलने की मुझे आवश्यकता नहीं है। श्रीमान्, मैं दोनों संशोधनों को पेश करता हूं और सभा से उन पर विचार करने और उन्हें स्वीकार करने की सिफारिश करता हूं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम के छह संशोधन हैं। मैं केवल एक, सूची 5 अष्टम सप्ताह के संशोधन संख्या 192, को पेश करना चाहूंगा। श्रीमान्, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित खण्ड (1) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(1) India, that is, Bharat is one integral unit.'"

[(1) इंडिया अर्थात् भारत एक सम्पूर्ण एकक है।]

'संघ' और 'राज्यों' शब्दों को अपने संविधान में रखने के मैं विरुद्ध हूं। संयुक्त राज्य अमरीका में अंगभूत एककों के सांविधानिक अस्तित्व के प्रश्न पर कटु तथा लम्बा वादविवाद हुआ था।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्__ (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। राज्यों के गठन को परिभाषित करते हुए हमने संविधान पार कर ही दिया है। अत: परिभाषा द्वारा हम संविधान में परिवर्तन नहीं कर सकते हैं।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि यह प्रश्न तो केवल यहीं उठाया जा सकता है। 'राज्यों' शब्द का प्रयोग प्रथम बार संविधान के अनुच्छेद 1 में हुआ है। इस मूल प्रश्न को केवल इसी खण्ड में उठाया जा सकता है।

*__अध्यक्ष__: यह तथ्य का विषय है कि यह समूचा संविधान इस धारणा पर आश्रित है कि पृथक्-पृथक् राज्य होंगे और वे राज्य संघ बनायेंगे। अब आप इससे पीछे हटना चाहते हैं और यह कहना चाहते हैं कि पृथक्-पृथक् राज्य नहीं हैं; मैं समझता हूं कि इसके लिये अब बहुत देर हो गई है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: मैं 'संघ' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति करता हूं। ये दोनों शब्द परस्पर संबंधित तथा मिले जुले हैं।

*__श्री एस. नागप्पा__ (मद्रास : जनरल): किस शब्द पर आपत्ति है?

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद__: धैर्य रखिये। अध्यक्ष को कृपया इस सभा की कार्रवाइयों को विनियमित रूप से चलाने दीजिये।

संयुक्त राज्य अमरीका में अंगभूत एककों के सांविधानिक अस्तित्व के प्रश्न पर कटु तथा लम्बा वाद-विवाद हुआ था। अन्त में इसी के कारण एक भीषण गृहयुद्ध हुआ।

*__अध्यक्षः__ जिन अनुच्छेदों को हम पार कर चुके हैं उनमें हमने एककों का अस्तित्व नियत कर दिया है। राज्यों का जो कुछ भी अस्तित्व है वह नियत हो चुका है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ 'संघ' शब्द के प्रयोग से पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। मैं अपने आपको 'संघ' शब्द के प्रयोग तक ही सीमित रखूंगा।

उसका अन्त भयंकर गृहयुद्ध के रूप में हुआ। अमरीका के सांविधानिक इतिहास की शिक्षाओं पर उचित ध्यान देते हुए मैं निवेदन करता हूं कि भारत के संविधान के मसौदे में से 'संघ' शब्द का अपमार्जन किया जाये। संविधान में कहीं भी हमने 'संघ' शब्द के प्रयोग को स्वीकार नहीं किया है।

*__अध्यक्षः__ मैं समझता हूं कि आपका अभिप्राय यह है कि 'राज्य' शब्द के प्रयोग को निकाल दिया जाये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ जी नहीं, श्रीमान्। 'संघ' शब्द का प्रयोग न हो।

*__माननीय श्री के. सन्तानम्ः__ हमने संघ सूची को रखा है और उसे हम पार कर चुके हैं।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): यह मिथ्या कथन है कि हमने 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया है।

*__अध्यक्षः__ संविधान में हमने कई स्थलों पर 'संघ' शब्द का प्रयोग किया है। मैं समझता हूं कि इस प्रश्न पर फिर विचार करने के लिये तो अब वास्तव में बहुत अबेर हो गई है।

*__श्री आर.के. सिधवा__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): हमने 'संघ सूची' रखी है।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसादः__ सूची 1 के शीर्षक पर हमने कभी वाद-विवाद नहीं किया। हमने पहली प्रविष्टि से आरम्भ किया था।

*__अध्यक्षः__ अनुच्छेदों में 'संघ' शब्द कई बार आया है। मैं समझता हूं कि इस बात के लिये अब बहुत देर हो गई है। आप इस संशोधन को पेश नहीं कर सकते हैं।

(संशोधन संख्या 190, 191, 193, 194, 195 और 196 पेश नहीं किये गये।)

*__अध्यक्षः__ संशोधन संख्या 197 पेश हो चुका है। संशोधन संख्या 219: मौलाना हसरत मोहानी!

*__मौलाना हसरत मोहानी__ (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, सर्वप्रथम मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि विलम्बकारी चालें चलने का या किसी व्यक्ति को कठिनाई में डालने का मेरा स्वभाव नहीं है। कल सायंकाल को मैंने यह निवेदन किया था....

*__अध्यक्षः__ इस बात में पड़ना आवश्यक नहीं है। उसको स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। आप अपने संशोधन को लीजिये।

***मौलाना हसरत मोहानी:** श्रीमान्, अपने दोनों संशोधनों की व्याख्या करने के पूर्व मैं सर्वप्रथम इस संविधान निर्माण कार्य के इतिहास का बहुत संक्षेप में उल्लेख करूंगा।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): इस संविधान निर्माण कार्य के समूचे प्रश्न पर अब किस प्रकार विचार किया जा सकता है?

***मौलाना हसरत मोहानी:** मेरा समूचा तर्क उसी बात पर निर्भर करता है। मैं दो मिनट से अधिक नहीं लूंगा।

***अध्यक्ष:** ठीक है, मौलाना।

***मौलाना हसरत मोहानी:** पहली बात उद्देश्यमूलक संकल्प के बारे में है। मेरे पास उद्देश्यमूलक संकल्प और उसको पारित करते समय पण्डित नेहरू द्वारा दिये गये दो भाषणों की प्रमाणित प्रति है। वह इस प्रकार है:

> "संविधान-सभा भारत को एक स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य के रूप में उद्घोषित करने के और उसके भावी शासन के लिये संविधान बनाने के अपने दृढ़ तथा गम्भीर संकल्प की घोषणा करती है।"

यह उद्देश्यमूलक संकल्प है अर्थात् एक स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य। ये तीन शब्द हैं और पण्डित नेहरू ने कई बार यह घोषणा की है और वह इतिहास की बात हो गई है कि इस उद्देश्यमूलक संकल्प में कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा। जब मुझे संविधान के मसौदे की यह प्रति मिली तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब मैंने यह देखा कि भूमिका के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने इस संबंध में बिल्कुल झूठ बात कही है। वे इस उद्देश्यमूलक संकल्प का पालन नहीं करेंगे। देखिये, वे स्वयं क्या कहते हैं। कण्डिका 2 में वे प्रस्तावना के बारे में कहते हैं: "जनवरी 1947 में संविधान-सभा द्वारा स्वीकृत उद्देश्यमूलक संकल्प में यह घोषणा की थी कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य होगा। मसौदा-समिति ने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य पद स्वीकार किया है क्योंकि 'सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न' शब्द में 'स्वतन्त्रता' आ ही जाती है, अत: 'स्वतन्त्र' शब्द रखने से कोई लाभ नहीं। लोकतन्त्रात्मक गणराज्य और ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र संघ में परस्पर संबंध का प्रश्न अभी बाद में निश्चित होने को है"। इस व्याख्या के इस अन्तिम भाग से सारी कलई खुल गई। क्योंकि उनके मन में यह बात थी कि वह समय आ रहा है जबकि बहुत कुछ सम्भव है कि हमारे प्रधान मंत्री वहां जायें और किसी न किसी तरह से ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र संघ में बने रहने का विनिश्चय करें।

इसके बाद वे कहते हैं "यह देखा होगा कि समिति ने फेडरेशन के स्थान में यूनियन शब्द का प्रयोग किया है। नाम से कोई अन्तर नहीं होता है, परन्तु समिति ने ब्रिटिश उत्तरी अमरीका के अधिनियम 1867 ई. की प्रस्तावना की भाषा का अनुसरण करना अधिक अच्छा समझा और यह सोचा कि भारत को यूनियन कहने से लाभ है यद्यपि उसके संविधान की गठन फेडरल है।" यहां भी वे यह कहते हैं कि नाम में क्या रखा है। मैं कहता हूं कि यदि नाम में कुछ नहीं रखा है तो वे फेडरेशन को बदल कर यूनियन क्यों रखते हैं। वे भारत में फेडरल गणराज्य की व्यवस्था पर दृढ़ क्यों नहीं रहते हैं? गणराज्य शब्द को क्यों छोड़ा

[मौलाना हसरत मोहानी]

जाये? इस आधार पर मैं यह घोषणा करता हूं कि जब पण्डित नेहरू ने जनवरी, 1947 में उद्देश्यमूलक संकल्प पुर:स्थापित किया था तो वे इस बात से सहमत थे। परन्तु बाद में किसी प्रकार से, मैं देखता हूं कि उन्होंने अपना विचार बदल दिया और इस विचार परिवर्तन के कारणों से वे ही भली प्रकार परिचित हैं।

*__अध्यक्ष:__ इस समय हम प्रस्तावना पर विचार नहीं कर रहे हैं। हम अनुच्छेद 1 पर विचार कर रहे हैं।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ एक ही बात है, दोनों एक से ही हैं।

*__अध्यक्ष:__ वे एक से नहीं हैं।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि यह संशोधन केवल नाम के बारे में है। मैं कहता हूं ऐसी कोई बात नहीं है क्योंकि यहां उन्होंने यह कहा है 'भारत केवल राज्यों का संघ होगा।' केवल राज्यों ही क्यों? गणराज्यों का संघ क्यों नहीं? यदि नाम का ही सवाल होता तो मैं इस वाद-विवाद में कभी भाग नहीं लेता।

*__श्री महावीर त्यागी:__ वे सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य हैं अत: वे गणराज्य हैं।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ इस विषय पर मैं बाद में आऊंगा और आप यह समझ जायेंगे कि वह गणराज्य है अथवा अधिराज्य है अथवा साम्राज्य। क्योंकि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने विचार बदल दिये और चूंकि उन्होंने कुछ वचन दिये थे इस कारण उन्होंने यह उचित समझा कि इस काम को डॉक्टर अम्बेडकर को सौंप दिया जाये जिससे कि वे अपनी प्रतिज्ञायें भंग करने के दोष से मुक्त हो जायें और इसीलिये यह काम डॉ. अम्बेडकर को सौंपा गया था। सम्भव है उनके कहने पर ही डॉ. अम्बेडकर ने इस संविधान के मसौदे में इस बात को रखा हो। अनुच्छेद 1 में कहा गया है "हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को इत्यादि, इत्यादि।" उद्देश्यमूलक संकल्प में मूल शब्द सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य थे।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्ता__ (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि इस समय हम किस बात पर वाद-विवाद कर रहे हैं?

*__अध्यक्ष:__ वक्ता महोदय को मैंने यह बता दिया है कि हम अनुच्छेद 1 पर विचार कर रहे हैं न कि प्रस्तावना पर।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ मैं चन्द शब्द और कहूंगा और उसके बाद अपना स्थान ग्रहण करूंगा। अब इसमें से 'स्वतन्त्र' शब्द को निकाल दिया गया है क्योंकि दोनों पण्डित नेहरू और डॉ. अम्बेडकर के यह विचार हुए कि अभी तक भारत और ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र का संबंध निश्चित नहीं हुआ है, और इस बात का विचार करते हुए कि सम्भव है भारत और ब्रिटिश संयुक्त राष्ट्र में समझौता हो

जाये, उन्होंने सोचा कि उस दशा में पण्डित नेहरू अपने 'गणराज्य' शब्द से पीछे नहीं हट सकेंगे और इस कारण उन्होंने डॉ. अम्बेडकर को यह परिवर्तन करने दिया और इस संकल्प की शब्दावली में परिवर्तन करने का भार उनको लेने दिया। इस बात पर मैं घोर आपत्ति करता हूं।

*__अध्यक्ष:__ मसौदा समिति अथवा प्रधान मंत्री के इरादों के बारे में अनुमान नहीं किया जायेगा।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ श्रीमान्, जब मैं उस कारण को स्पष्ट करता हूं जिसके आधार पर मैंने यह संशोधन प्रस्तुत किया है। दो विकल्प हैं, पहला खण्ड (2) के पद के बारे में है जिसमें वे यह कहते हैं 'इंडिया या भारत राज्यों का संघ होगा।' मैं कहता हूं कि मुझे यह प्रस्थापित करने का अधिकार है कि 'राज्यों के संघ' के स्थान में 'भारत के गणराज्यों का संघ या भारत के समाजवादी गणराज्यों का संघ' होना चाहिये। मेरा विचार यह था। मैंने प्रस्तावना पर यह संशोधन प्रस्थापित किया था पर मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर की हार्दिक इच्छा इस अवसर से मुझे वंचित करने की थी इसलिये उन्होंने इस बात को प्रथम खण्ड में ले लिया जिससे कि इसे वे यहां पारित करा लें और फिर जब प्रस्तावना पर वाद-विवाद हो तो वे आगे बढ़कर यह कहें कि यह तो अब एक निश्चित तथ्य हो गया है और अब हम इस पूर्व विनिश्चय के विरुद्ध प्रस्तावना नहीं बना सकते हैं, यद्यपि माननीय अध्यक्ष ने मुझे यह आश्वासन दे दिया है कि जब प्रस्तावना का प्रश्न सभा के समक्ष प्रस्तुत होगा और मैं इसी बात को प्रस्थापित करूंगा तो वे मुझे मना तथा नियम विरुद्ध घोषित नहीं करेंगे। मैंने इस कठिनाई पर विचार कर लिया है। कुछ लोग गणराज्य शब्द को निषिद्ध मानते हैं। यदि इस शब्द के प्रयोग करने का साहस उनमें नहीं है और इस शब्द के स्वीकार करने में उन्हें कठिनाई है तो उन्हें भारत के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य कहने की मेरे पास एक और प्रस्थापना है। अर्थात् राज्य स्वायत्तशासी होंगे। जब मैं कांग्रेस में था आखिर तक अहमदाबाद अधिवेशन में मैंने पूर्ण स्वतन्त्रता का संकल्प प्रस्थापित किया था। मेरा सदैव यह मत रहा कि भारत उस स्थिति में नहीं रह सकता है जैसा कि वह अंग्रेजी राज्य के अंतर्गत था। अंग्रेजी ने भारत को कई प्रान्तों में विभाजित किया था और यह केवल प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये किया था। मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल इत्यादि सब प्रशासनीय प्रयोजनों के लिये थे। जहां तक शक्ति का संबंध था किसी प्रान्त को कोई अधिकार नहीं था। राज्यपालों की नियुक्ति बादशाह द्वारा की जाती थी और उसके नियम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये जाते थे। उसे बदलने का मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्ता:__ राज्यों की स्थिति परिभाषित कर दी गई है।

*__अध्यक्ष:__ उन्हें भाषण समाप्त कर लेने दीजिये।

*__श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:__ श्रीमान्, मैं सोचता हूं कि यही व्यवहार मुझसे किया जाता।

*__अध्यक्ष:__ वे किसी ऐसी बात की चर्चा नहीं कर रहे हैं जिस पर पहले विनिश्चय किया जा चुका हो।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ वर्तमान संविधान में मेरी धारणा यह थी और मैंने यह सोचा था कि प्रान्त स्वायत्तशासी बनाये जायेंगे और देशी राज्य...

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, अभी हम लोग आर्टिकल 1 में विचार कर रहे हैं। जब हम सब आर्टिकल खत्म करते हैं जब उसके बाद आर्टिकल एक विचार आता है। अभी तक और चीजें खत्म नहीं हुई हैं तो आर्टिकल एक कैसे आया यह जरा शुबह की बात है, आर्टिकल एक के बारे में हम बातचीत करते हैं परन्तु देखना यह चाहिये जब आर्टिकल एक का परिवर्तन होगा तो उसी का बराबर दूसरा आर्टिकल सब परिवर्तन करना पड़ेगा। और दूसरे आर्टिकल जब सब तय हो गये हैं तो परिवर्तन नहीं हो सकता है। आर्टिकल एक तब परिवर्तन होगा जब दूसरा आर्टिकल का परिवर्तन करना जरूरी होगा। इसलिये मैं समझता हूं कि आर्टिकल एक की आलोचना न करें। जब सब आर्टिकल खत्म हो जायें तब आर्टिकल एक की आलोचना हो सकती है।

अध्यक्ष महोदय: कल अगर आप लाते तो मौके से होता, मगर इस वक्त विचार शुरू हो गया है और हम कल से इस पर विचार कर रहे हैं। कल शुरू ही में आप विरोध करते तो उस पर विचार किया जाता।

*__मौलाना हसरत मोहानी:__ बहुत अच्छा श्रीमान्, मैं यह कह रहा था कि मेरा और मेरे कई मित्रों का संविधान के प्रति यह विचार था कि यदि हमारा देश राज्यों का संघ होगा तो वह सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्यों का संघ होना चाहिये, कहने का अर्थ यह है कि पूर्ण रूपेण स्वायतशासी प्रान्तों तथा राज्य समूहों का संघ जिसमें वे छोटे-छोटे राज्य भी शामिल होंगे जिनको जिलों व प्रान्तों में विलीन कर लिया गया है। मैंने सोचा था कि इन राज्यों के समूहों को भी हम उसी स्थिति में रखेंगे जिसमें प्रान्त हैं और उसके बाद हम उनको पूर्ण प्रान्तीय स्वायतत्ता देंगे और इस प्रकार अपनी स्थिति को उस स्थिति से बिल्कुल भिन्न बना देंगे जो अंग्रेजी राज्य में थी। हम सब यह जानते हैं कि अंग्रेजी राज्य में व्यवस्था केवल प्रशासनीय सुविधा के लिये की गई थी न कि किसी राजनैतिक प्रयोजन के लिये अथवा किसी को कोई राजनैतिक शक्ति देने के लिये। अंग्रेजी राज्य में कोई प्रान्तीय स्वायत्तता तो थी ही नहीं। मैं चाहता हूं कि हमारे गत चालीस वर्ष के संघर्ष के पश्चात् कम से कम हम अपने प्रान्तों को तो स्वतन्त्र कर दें और उसके बाद हमारे यहां स्वतन्त्र एककों का संघ हो जायेगा और ये एकक फिर स्वत: ही कुछ विषयों को केन्द्रीय बना देंगे या केन्द्र को विदेश संबंधी, प्रतिरक्षा, संचार जैसे विषयों को दे देंगे। मूल विचार यह था और यह सिद्ध करने के लिये कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू और यहां तक कि डॉ. अम्बेडकर के यह विचार थे, मैं उनके भाषणों में से उद्धरण प्रस्तुत कर सकता हूं।

परन्तु अब किसी न किसी प्रकार से इन महानुभावों ने अपनी प्रवृत्ति बदल दी है और भारतीय राज्यों के समूहों को प्रान्तों जैसी स्थिति ग्रहण करने देने के स्थान में उन समूहों के छोटे छोटे राज्यों को विलीन कर दिया गया है और उनका अस्तित्व मिटा दिया है—कुछ थोड़े से शेष रहे हैं—और इस प्रकार उन्होंने इन पूर्ण स्वायत्तशासी एककों का संघ बनाने की मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया। इन राज्य समूहों को प्रान्तों जैसी स्थिति में रखने की उद्घोषणा करने के स्थान

में और उनको अपने चुने हुए राज्यपाल रखने देने के स्थान में अब उन्होंने प्रमुख और राजप्रमुख नियुक्त कर दिये हैं और बहुत सी ऐसी बातें की हैं जो मेरी समझ से बाहर है और जो सर्वथा हास्यास्पद है। प्रमुख और राजप्रमुख का क्या अभिप्राय है? वे प्रान्तों को और इन राज्य समूहों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते हैं। विचार-विमर्श के आरम्भ में ही मैंने यह प्रश्न उठाया था। जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने यहां प्रान्तीय गठन को उपबंधित करने के बारे में अपना प्रस्ताव पेश किया था मैंने यह आपत्ति की थी। मैंने प्रश्न किया था "संविधान में सभा के विनिश्चयों की आप क्यों प्रत्याशा करते हैं? आप इस समय यह कैसे जानते हैं कि प्रान्तों की क्या स्थिति होगी? इस बात का ज्ञान होने के पूर्व कि प्रान्तों की क्या स्थिति होगी, आप इस आदर्श प्रान्तीय गठन की योजना क्यों कर रहे हैं और प्रान्तों के लिये इस प्रकार के आदर्श गठन बनाने का आपको क्या अधिकार है?" उन्होंने मुझे चुप करना चाहा और मुझसे प्रश्न करते हुए उत्तर दिया "आप इसकी क्यों चिन्ता करते हैं? हमने यह निश्चय कर लिया है कि हम इस प्रकार का प्रान्तीय गठन रखेंगे" श्रीमान्, हम कह चुके थे कि हम स्वतन्त्र प्रान्त रखेंगे और राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल होंगे। पर अब हम यहां क्या देखते हैं? राज्यपाल के स्थान में हमने प्रमुख स्वीकार किया है। और उसके बाद कुछ अज्ञात कारणोंवश अथवा किसी रहस्य के कारण डॉ. अम्बेडकर उस दिन आगे बढ़े और उन्होंने एक नई बात प्रस्थापित की। उन्होंने कहा "नहीं, हम निर्वाचित राज्यपाल नहीं रखेंगे, वरन् राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल मनोनीत किये जायेंगे और यद्यपि वह राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जायेगा परन्तु फिर भी राष्ट्रपति आपातकाल में उसका विश्वास नहीं करेगा और वे कहते हैं कि आपातकाल की स्थिति का विनिश्चय केन्द्र या राष्ट्रपति द्वारा किया जायेगा।"

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे अपने समस्त वचनों तथा विनिश्चयों से पीछे हटना चाहते हैं; और जैसाकि मैंने उस दिन कहा था डॉ. अम्बेडकर कुछ नई नई बातें कर रहे हैं और संविधान के प्रकार को ही बदल रहे हैं। पहले हमारा विचार यह था कि भारत एक फेडरल गणराज्य—गणराज्यों का एक संघ होगा और यदि आप गणराज्यों के इस विचार को पसन्द नहीं करते हैं तो कम से कम स्वायत्तशासी एककों का संघ तो होगा ही। पर अब उन्होंने क्या कर दिया है? उन्होंने 'राज्यों का संघ' शब्द रख दिये हैं। 'गणराज्य' शब्द की महिमा घटाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया है। केवल यही उद्देश्य है। मैं समझता हूं कि संघ (यूनियन) का वही अर्थ नहीं है जो कि फेडरेशन का है। वे यह कहेंगे "नाम में क्या है?" यदि नाम में कुछ नहीं है तो 'फेडरेशन' के स्थान में वे 'यूनियन' को क्यों अधिमान देते हैं? आप मेरी यह बात मान लीजिये, वे इस संघ को एक ऐसे संघ के रूप में चाहते हैं जिसे जर्मनी में प्रिंस बिस्मार्क ने प्रस्थापित किया था और उनके बाद कैसर विलियम ने जिसे स्वीकार किया था और उनके पश्चात् अडोल्फ हिटलर ने। वे यह चाहते हैं कि सब राज्य एक शासन के अधीन हो जायें और इसी को हम संविधान का नात्सीकरण कहते हैं। मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर के भी ऐसे ही विचार हैं और वे इसी प्रकार का संघ चाहते हैं। वे सब एककों को प्रान्तों और राज्य समूहों को, प्रत्येक वस्तु को केन्द्र के अधीन लाना चाहते हैं।

[मौलाना हसरत मोहानी]

इसी खास बात पर मेरे मित्र प्रो. शाह और अन्य मित्रों ने एक पृथक् पक्ष बना लिया है। पर यहां तो भारत में एक प्रकार की एकात्मक सरकार बनाने का प्रयत्न है और केवल एकात्मक सरकार ही नहीं वरन् एक प्रकार का एकात्मक साम्राज्य। समस्त राज्यों का संघ में विलयन का यह स्पष्ट अभिप्राय है कि इससे अधिक वे और कुछ नहीं चाहते हैं कि समस्त भारत को एक समझा जाये और वे यहां एक प्रकार की भारतीय अधिराज्य या इसी प्रकार का कोई अन्य राज्य ही स्थापित करना नहीं चाहते हैं वरन् वे इसे एक प्रकार का भारतीय साम्राज्य बनाना चाहते हैं। श्रीमान्, मैं निवेदन करता हूं कि ब्रिटिश साम्राज्य का मैं लगातार विरोधी रहा।

***सेठ गोविन्द दास:** वे नियम विरुद्ध हैं। वे अपनी बातों को बार-बार दुहराते जा रहे हैं।

***मौलाना हसरत मोहानी:** उसी प्रकार से भारतीय साम्राज्यवाद की इस प्रस्थापना का मैं सीधा विरोध करूंगा।

***अध्यक्ष:** क्या आपको अपने संशोधन के संबंध में भी कुछ कहना है?

***मौलाना हसरत मोहानी:** जो कुछ मैं कहता हूं वह यह है: मैं यह जानता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने निश्चय कर लिया है और पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी निश्चय कर लिया है। उन्होंने अपनी प्रवृत्ति तथा चाल ढाल बिल्कुल बदल दी है। मैं यह जानता हूं कि उनको बहुत भारी बहुमत प्राप्त है। कल सायंकाल मैं यह सुझाव देने वाला था कि अध्यक्ष महोदय, आप मेरे संशोधन को उसी प्रकार से ले सकते थे जैसे आपने उस दिन लिये थे। पर आपने कहा "बहुत अच्छा, हम इन सब संशोधनों को पढ़ा हुआ मान लेंगे।" इसके बाद आप एक कदम और आगे बढ़े और कहा "भाषण की कोई आवश्यकता नहीं। इन बातों पर मत ले लो।" और उस प्रश्न पर मत ले लिया गया। यदि डॉ. अम्बेडकर यह कह देते हैं कि इस समय रात है, दिन नहीं तो रात ही मानी जाती है। मैंने कहा था कि आपको यह सोचना चाहिये कि इस प्रकार जनता को धोखा देने पर आपको भारतीय जनता तथा ईश्वर के समक्ष उत्तर देना होगा। आप अपनी एकपक्षी सरकार और एकपक्षी कार्यवाही से लाभ उठाते हैं। यदि आप इन चालाकियों से काम लेंगे तो मेरी यह बात मान लीजिये कि आप बहुत दिनों तक शासन नहीं कर सकेंगे।

***श्री आर.के सिधवा:** मैं अपने किसी भी संशोधन को पेश करना नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** सब संशोधन पेश हो चुके हैं। अब संशोधनों तथा डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये रूप में मूल अनुच्छेद पर वाद-विवाद हो सकता है। क्या कोई सदस्य भाषण देना चाहता है?

सेठ गोविन्द दास: सभापति जी, मैं पांच मिनट से अधिक समय नहीं लूंगा और वह भी इसलिये आज हमारे देश के नामकरण के समय जिस प्रकार के वायुमण्डल की हमारी विधान-परिषद् में आवश्यकता थी, मैं देखता हूं कि उस प्रकार का वायुमण्डल जो भाषण अभी तक हुए हैं उनके कारण नहीं रह गया

है। नामकरण हमारे देश में एक बड़े महत्व की चीज मानी जाती थी और आज भी मानी जाती है। हम सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि नामकरण शुभ मुहूर्त में हो और जो नाम हम रखें वह नाम सुन्दर से सुन्दर हो। मुझे यह देख कर बड़ा हर्ष होता है कि हमारे देश का जो प्राचीनतम नाम है, वह हम रख रहे हैं परन्तु वह जिस सुन्दर तरीके से रखा जाना चाहिये था, डाक्टर अम्बेडकर साहिब मुझे क्षमा करेंगे, उस तरह से नहीं रखा जा रहा है। "इंडिया देट इज भारत" यह बहुत सुन्दर तरीका नाम रखने का नहीं है। हमें नाम रखना चाहिये था "भारत जिसे बाहर विदेशों में इण्डिया भी कहा जाता है" वह नाम ठीक नाम होता। जो कुछ हो कम से कम एक बात से हमें संतोष कर लेना चाहिये कि भारत नाम आज हम अपने देश का रख रहे हैं।

मैंने सबसे पहले इस विधान-परिषद् में इन दो प्रश्नों को उठाया था कि हमारे देश की भाषा क्या हो और हमारे देश का क्या नाम हो। भाषा के विषय को हम हल कर चुके और आज हम अपने देश का नाम भी रख रहे हैं इसलिये यह दिन मुझे अत्यन्त महत्व का दिन मालूम होता है। इस संबंध में कुछ बातें हमारे रिकार्ड में भी रहनी चाहियें इसलिये मैं दो एक मिनिट में कुछ और बातें भी निवेदन कर देना चाहता हूं।

कुछ लोगों को यह भ्रम हो गया है कि इण्डिया इस देश का सबसे पुराना नाम है। हमारे सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं और अब तो यह माना जाने लगा है कि वेद संसार के सबसे पुराने ग्रन्थ हैं, वेदों में इण्डिया नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ऋग्वेद में "ईडयम इडू और ईडेन्य:" ये शब्द आये हैं। यजुर्वेद में इडा शब्द आया है। परन्तु इनका इण्डिया से कोई संबंध नहीं है।

अध्यक्ष: यह किसने कहा कि इण्डिया सबसे पुराना नाम है?

सेठ गोविन्द दास: कुछ व्यक्तियों से यह सुना जाता है और इस घोषणा में एक पम्फलेट भी निकला है जिसमें यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि इण्डिया भारत से भी पुराना नाम है। मैं चाहता हूं कि यह बात रिकार्ड में रहे कि यह गलत है। ईडयन और ईडे का अर्थ अग्नि है ईडेन्य: का प्रयोग अग्नि के विशेषण के रूप में हुआ है और ईडा वाणी का वाचक है।

*__श्री महावीर त्यागी:__ क्या यह समझा जाये कि इण्डिया शब्द जो है वह इन्टरनेशनल फार्म का है?

सेठ गोविन्द दास: इण्डिया शब्द हमारे किसी प्राचीन ग्रन्थ में न होकर उस समय से प्रयोग में आने लगा जब से यूनानी भारत में आये। यूनानियों ने हमारी सिन्ध नदी का नाम इंडस रखा और इंडस कहने के साथ इण्डिया शब्द आया। यह बात एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में भी लिखी है। उसके विपरीत यदि हम देखें तो हमको मालूम होता है कि वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रंथों के पश्चात् हमारा सबसे प्राचीन और महान् ग्रन्थ जो महाभारत है, उसमें हमको भारत का नाम मिलता है: "अथते कीर्ति पष्यामि, वर्ष भारत भारत"-भीष्म पर्व। विष्णु पुराण में भी हमें भारत नाम मिलता है। वह इस प्रकार है: "गायन्ति: देवा किल गीत कानि, धन्यास्तु ने भारत भूमि भागे"। ब्राह्मण्ड पुराण में भी हमें इस देश का नाम भारत

[सेठ गोविन्द दास]

ही मिलता है। भरणाच्च प्रजानावै मनुर्भरत उच्यते। निरुक्त वचनाचैव वर्ष तद्भारत स्मृतं। चीनी यात्री इत्सिंग जब भारत आया तो उसने भी अपनी यात्रा के वृतान्त में इस देश का नाम भारत ही लिखा था।

जब मैं इस प्रकार प्राचीन बातों का स्मरण दिलाता हूं तो यह न समझा जाये कि हमारे प्रधान मंत्री जी के शब्दों में या हमारे अन्य माननीय सदस्यों के कथनानुसार मैं पीछे की ओर ही देखना चाहता हूं। मैं आगे देखना चाहता हूं और मैं चाहता हूं कि नये से नये वैज्ञानिक आविष्कार इस देश में हों, पर इसका यह मतलब नहीं कि यदि हम अपने देश का नाम भारत रखेंगे तो हम कोई ऐसी बात करेंगे जो हमें आगे जाने से रोकेगी। जहां तक नाम का संबंध है वहां तक हमें अपने इतिहास और संस्कृति के अनुरूप ही अपने देश का नाम रखना चाहिये। यह बड़े हर्ष की बात है कि आज हम अपने देश का नाम भारत रख रहे हैं। मैंने पहले भी अनेक बार कहा था कि इस देश के निवासी स्वराज्य का अर्थ ही नहीं समझेंगे यदि हम इन बातों का ठीक तरह से निर्णय नहीं कर लेंगे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये हमने जो युद्ध महात्मा गांधी के नेतृत्व में लड़ा उसे भी हमने भारत माता की जय, इस जय घोष के साथ लड़ा था। हर्ष की बात है कि आज हम एक ऐसी बात करने जा रहे हैं जो ठीक बात है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि वह हम सुन्दर तरीके से नहीं कर रहे हैं। परन्तु जिस तरीके से भी कर रहे हैं वह हमको भारत नाम किसी न किसी रूप में देने वाली है। मुझे विश्वास है कि जब हमारा विधान हमारी राष्ट्रभाषा में बनेगा उस समय यही भारत नाम यथार्थ स्थान प्राप्त करेगा। मुझे इस बात का बड़ा हर्ष है कि आज भारत नाम किसी न किसी रूप में आ रहा है और उसके लिये मैं इस विधान परिषद् को हृदय से बधाई देना चाहता हूं।

***श्री कल्लूर सुब्बा राव** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं भरत नाम का हार्दिक समर्थन करता हूं जो प्राचीन नाम है। भरत नाम ऋग्वेद (ऋग 3, 4, 23.4) में है। उसमें यह कहा गया है 'इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा' ऐ इन्द्र, ये भरत के पुत्र हैं। वायुपुराण में भरत की सीमायें दी हुई हैं:

'इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभ फलोदयम्।

उतरं यत्समुद्रस्य हिम् वत् दक्षिणं च यत्।"

(वायुपुराण उ. 45-75)

इसका अर्थ यह है कि वह भूमि जो हिमालय के दक्षिण में है और समुद्र के उत्तर में है, भरत नाम से पुकारी जाती है। इस कारण भरत नाम बहुत प्राचीन है। इण्डिया नाम सिन्धु (इण्डस नदी) के नाम पर पड़ा है और हम अब पाकिस्तान को हिन्दुस्तान कह सकते हैं क्यों कि सिन्धु नदी वहां पर है। सिन्द हिन्द हो गया क्यों कि संस्कृत के (स) का उच्चरण प्राकृत में (ह) हो जाता है। यूनानी हिन्द को इन्द कहते हैं। एतत्पश्चात् यह ठीक तथा उचित होगा कि हम इण्डिया का भरत के नाम से उल्लेख करें। सेठ गोविन्द दास और अन्य हिन्दी भाषा भाषी मित्रों से मैं निवेदन करूंगा कि भाषा का नाम भी वे भारती रखें। मैं समझता हूं कि हिन्दी के स्थान में भारती रखा जाये क्योंकि भारती का अर्थ सरस्वती है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं भरत नाम का समर्थन करता हूं, परन्तु इस संशोधन के स्वीकार करने में पेचीदगियों को और उससे जो वैषम्य उत्पन्न होंगे उनको मैं बताना चाहता हूं।

इस संविधान के द्वितीय पठन के आरम्भ में अपने प्रारम्भिक भाषण में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि 'यूनियन' शब्द का प्रयोग यह सोच समझ कर किया गया है कि पृथक् होने के अधिकार का निराकरण हो जाये। मेरा निवेदन यह है कि जहां तक मैं समझ सकता हूं न तो इस शब्द 'यूनियन' के कोषार्थ में और न इसके राजनैतिक अर्थ में इस प्रकार की कोई प्रस्थापना है। अत: यदि यह आवश्यक है कि पृथक् होने के अधिकार का निराकरण किया जाये तो इस बात का स्पष्ट रूप में उपबन्ध होना चाहिये। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि यदि हम पृथक् होने के अधिकार का स्पष्ट निराकरण न करें तो वह अधिकार रहेगा क्योंकि प्रान्तों के संबंध में पृथक् होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। वे कभी स्वतन्त्र नहीं थे और करार द्वारा वे नहीं बने हैं। जहां तक भारतीय रियासतों का संबंध है जिन्होंने प्रथम प्रवेश-लिखत पर हस्ताक्षर कर दिये हैं उनके लिये उस लिखत में एक उपबन्ध है जो उनको संविधान का पूर्ण चित्र देखने के पश्चात् पृथक् होने का अधिकार देता है। परन्तु इस संविधान के आरम्भ पर यदि वे एक बार प्रवेश हो जाते हैं तो शायद उनको यह अधिकार न रहे। यह बात विचारणीय है कि प्रवेश-लिखित में इस उपबन्ध के होते हुए क्या यह आवश्यक नहीं है कि इस विषय पर स्पष्ट उपबन्ध किया जाये।

इस बात के कारण हमारे सामने यह विवादास्पद प्रश्न खड़ा हो जाता है कि संघ फेडरेशन है अथवा एकात्मक राज्य। एक और अनुच्छेद पर बोलते हुए कुछ समय पूर्व मैं यह कह चुका हूं कि यह एक समुचित रूप का फेडरेशन नहीं है वरन् यह एक विकेन्द्रित एकात्मक सरकार है। निस्संदेह, मैं यह मानता हूं कि इस संविधान में फेडरेशन की एक विशेष बात है और वह यह है कि प्रान्तों के क्षेत्राधिकार में बहुत से विषय हैं। परन्तु यह कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि वह विकेन्द्रित एकात्मक शासन पद्धति से भी संगत है। अत: यद्यपि एक बात ऐसी है जिसे फेडरल रूप की कहा जा सकता है परन्तु अधीनता की और बातें बहुत सी हैं। अभी उस दिन जब मैंने यह कहा कि राज्य केन्द्र के अधीन हैं तो हमारे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने इस कथन पर आपत्ति की थी, पर मैं ऐसे बहुत से अनुच्छेद और बहुत सी ऐसी बातें बता सकता हूं जिनसे यह सिद्ध होता है कि राज्य किस प्रकार केन्द्र के अधीन हैं।

यदि इस संविधान का फेडरल रूप होता तो एककों के गठन का इसमें उपबन्ध नहीं होता। किसी समुचित रूप के फेडरल संविधान में एककों का गठन बिल्कुल नहीं दिया जाता है। यहां हम राज्यों के गठन के लिये उपबन्ध रख रहे हैं। राज्यपाल केन्द्र द्वारा नियुक्त किया जाता है। अनुच्छेद 3 भाग 1 और भाग 3 के राज्यों में भेद विभेद करता है। भाग 1 के राज्यों के संबंध में केन्द्र को हर प्रकार के परिवर्तन करने की शक्ति दी गई है चाहे राज्य की सम्मति कुछ भी हो। राष्ट्रपति पर केवल यह आभार रखा गया है कि वह सम्बद्ध राज्य के विधान-मण्डल से परामर्श करेगा। परन्तु भाग 3 के राज्यों के संबंध में यह निर्धारित किया गया है

[श्री बी.एम. गुप्ते]

कि राष्ट्रपति सम्बद्ध राज्य की अनुमति प्राप्त करेगा। इससे यह प्रकट होता है कि भाग 1 के राज्य के संबंध में संसद सब कुछ कर सकती है चाहे सम्बद्ध राज्य की ओर से विरोध क्यों न हो। इससे राज्यों की अधीनता प्रकट होती है। इसके पश्चात् अनुच्छेद 226 के अधीन सम्बद्ध राज्यों के बिना किसी निर्देश के राज्य सूची में से किसी भी मद को केन्द्र द्वारा लिया जा सकता है। और मैं ऐसे कई अनुच्छेद बता सकता हूं। ये अधीनता के चिह्न हैं और इसी कारण में कहता हूं कि यह एक समुचित रूप का फेडरल संविधान नहीं है।

परन्तु मेरा विरोध इस दिशा में जो कुछ हो चुका है उस पर नहीं है। मेरा विरोध यह है कि एककों को हमने ठीक नाम नहीं दिया है। केन्द्र को दृढ़ बनाने के संबंध में मुझे चिन्ता नहीं है। मैं जानता हूं कि समुचित रूप के फेडरल संविधानों में भी आधुनिक परिस्थितियों के दबाव के कारण और संचार के वेगयुक्त साधनों के आश्चर्यजनक विस्तार के कारण केन्द्र में शक्ति संचित करने की प्रवृत्ति हो गई है.....

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ प्रान्तों और राज्यों के पुनर्संगठन संबंधी अनुच्छेद 3 के खण्ड को बदलने का विचार कर लिया है। दोनों भाग 1 और 3 के राज्यों को समस्तर पर लाया जायेगा। उस अनुच्छेद पर एक संशोधन है और उस अन्तर को मिटा दिया जायेगा और वह अन्तर न रहेगा।

*__श्री बी.एम. गुप्ते:__ ठीक है, पर मैं तो यह कह रहा था कि केन्द्र को दृढ़ बनाने के विरोध में मैं नहीं हूं। पर साथ साथ एककों के हमने महिमायुक्त नाम रखे हैं। हम राज्यों से शक्तियां छीन रहे हैं और केन्द्र को दे रहे हैं या समवर्ती सूची में रख रहे हैं और फिर भी हमने एकक के लिये राज्य शब्द स्वीकार किया है। यदि हम फेडरल या अर्ध-फेडरल संविधानों का अध्ययन करें तो हमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलेगा जिसमें एकक को राज्य की संज्ञा दी गई हो, जहां उस एकक को अवशिष्ट शक्तियां अथवा सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता के अनुरूप कुछ अधिकार न हों। यहां पर तो हम आयुक्त के प्रान्तों तक को राज्य की संज्ञा दे रहे हैं जहां कि उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार का नाम तक नहीं है और जहां विधानमण्डल तक नहीं है। जैसा कि मैं कह चुका हूं किसी भी फेडरल या अर्ध-फेडरल संविधान में आपको यह नहीं मिलेगा। उनमें अवशिष्ट पंक्तियां एककों में नहीं हैं और इसी कारण एककों को 'प्रान्त' कहा जाता है। परन्तु आस्ट्रेलिया में अवशिष्ट शक्तियां एककों में हैं। और इसी कारण उनको 'राज्य' कहा जाता हैं यही बात संयुक्त राष्ट्र अमरीका में भी है। वहां अवशिष्ट शक्तियां एककों में है। और इस कारण उनको 'गणराज्य' कहा जाता है। सम्भवत: दक्षिण अफ्रीका का उदाहरण और भी अधिक स्पष्ट है। वहां सर्वप्रथम एककों को 'राज्य' कहा जाता था परन्तु जब उन्होंने एक ऐसी पद्धति विचारी जो न्यूनाधिक रूप से एकात्मक प्रकार की पद्धति थी तो उन्होंने सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता को छोड़ दिया और जिन राज्यों को 'राज्य' कहा जाता था वे स्वयं 'प्रान्त' कहे जाने के लिये राजी हो गये। अत: मेरा प्रश्न यह है कि इन सब फेडरल और अर्ध-फेडरल संविधानों में 'राज्य' शब्द का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया गया है और हम उससे बिल्कुल दूर हो गये हैं।

मैं यह नहीं कहता हूं कि हमें दूर नहीं होना चाहिये पर उससे लाभ क्या? क्या आपके यहां एकरूपता है? नहीं है। बल्कि इसके विपरीत हमारे यहां उलझनें हैं क्योंकि बार बार हमें भाग 1 के राज्य और भाग 3 के राज्य तथा ऐसी ही बातें करनी पड़ती हैं। मैं जानता हूं कि प्रथम अनूसूची को हमने अभी तक नहीं लिया है परन्तु यह निश्चित है कि भाग 1, भाग 2 और भाग 3 के राज्यों में कुछ अन्तर कुछ समय तक रहेगा। परन्तु और भी अधिक घोर आपत्ति यह है कि हम स्वाधीनता तथा स्थिति का विश्वास करा राज्यों को अनावश्यक रूप से प्रोत्साहित कर रहे हैं और इससे ईर्ष्या तथा विरोध हो सकता है।

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:__ श्रीमान्, पिछली बार इस विषय पर बहुत देर तक वाद-विवाद हुआ था। जब यह अनुच्छेद सभा के समक्ष प्रस्तुत हुआ था तो एक बहुत लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् इसको स्थगित कर दिया गया था क्योंकि उस समय इस बात का विनिश्चय नहीं हो सका था कि 'भारत' शब्द का अथवा किसी अन्य शब्द का इण्डिया के बाद प्रयोग हो या नहीं, पर यदि मुझे ठीक ठीक याद है तो इस समस्त अनुच्छेद पर मय 'यूनियन' पद के बहुत वाद-विवाद हुआ था इस समय हम केवल यह वाद-विवाद कर रहे हैं कि भारत शब्द इण्डिया के बाद आये या नहीं। इस अनुच्छेद के शेष सारवत् भाग पर बहुत वाद-विवाद हो चुका है।

*__श्री बी.एम. गुप्ते:__ मैं यह नहीं कहता हूं कि जो कुछ हमने किया है उससे पीछे हटें। मैं तो केवल उलझनों को और इस सबका जो परिणाम होगा उसे बता रहा हूं। मैं यह कहता हूं कि 'राज्य' तथा 'राज्यों का संघ' शब्द का भाव कुछ ऐसा है जो वास्तव में संविधान में नहीं है और राज्य शायद यह समझें कि वे स्वाधीन हैं और वास्तव में जो उनकी स्थिति है उससे अपने स्थिति का ऊंचा अनुमान लगायें। अत: मैं निवेदन करता हूं कि कम से कम जहां तक पृथक् होने के अधिकार का संबंध है यदि आवश्यक समझा जाये तो उसका स्पष्ट रूप से निराकरण कर देने के लिए अभी बहुत देर नहीं हो गई है।

श्री रामसहाय (मध्य भारत संघ): अध्यक्ष महोदय, जब हिन्दी के प्रश्न पर हाउस के सामने चर्चा हो रही थी तब मैंने यह निवेदन किया था कि हमारे यहां ग्वालियर राज्य में, जो मध्य भारत यूनियन का एक हिस्सा है, पचास साल से हिन्दी को राज्य भाषा बना लिया गया है। हाउस के सामने आज मुझे यह कहते हुए भी गर्व अनुभव होता है कि हमारी ग्वालियर, इन्दौर और मालवे की रियासतों में यूनियन की आज से बहुत पहले अप्रैल, 1948 में अपनी यूनियन का नाम मध्यभारत रखा था। आज हम लोगों को इससे ज्यादा खुशी का मौका नहीं हो सकता कि देश के जिस हिस्से का नाम मध्यभारत हमने रखा था उसके पूरे हिस्से का नाम भी आज भारत रखा जा रहा है। उस नामकरण से जो आज हो रहा है जैसाकि हमारे सेठ गोविन्द दास जी ने भी अनुभव किया है हमें बहुत प्रसन्नता मालूम होती है। प्राचीन प्रथा के अनुसार तो नामकरण प्रारम्भिक जीवन में ही किया जाता है लेकिन आज आधुनिक सभ्यता के अनुसार जब हम किसी बिल या किसी कानून का विचार करते हैं तो पहली धारा को जो नाम की होती है उसे आखिर में लेते हैं। उसी प्रथा के अनुसार आज हम पहली धारा पर विधान की करीब

[श्री रामसहाय]

करीब सब धाराओं पर विचार करने के पश्चात् अन्त में विचार करते हुए इस भारतवर्ष का नाम भारत अपने विधान में रख रहे हैं। आज जितनी भी हमारी धार्मिक पुस्तकें हैं और जितना हिन्दी साहित्य है उन सबमें ही करीब करीब इस देश का नाम हमेशा भारत ही के नाम से प्रचलित रहा है। हमारे लीडर्स भी जब वह भाषण देते हैं तब वह इसे प्राय: भारत के ही नाम से पुकारते हैं। लेकिन कुछ अर्से से ऐसा भी महसूस होता था कि शायद उसके नाम पर कुछ दिक्कत पेश आये, उसका नाम भारत रखने में कुछ विरोध भी किया जाये, लेकिन यह खूबी की बात है कि आज हम उसका नाम निर्विरोध भारत रखने वाले हैं। सारी रियासतों की जनता जो कि हमेशा से दूसरी भारत की जनता से एक प्रकार से अलग, अछूत जाति की तरह समझी जा रही थी आज बड़ी खुशी की बात है कि वह एक ही भारत यूनियन का एक हिस्सा बनकर, उसमें हिस्सेदार बनकर, उसका Part and Parcel बनकर, बराबर की हिस्सेदार बनकर एक ही विधान के अंतर्गत शासित होगी। रियायतों की जनता के लिये इससे ज्यादा खुशी की चीज कोई नहीं हो सकती कि उन्होंने एक साझीदार की हैसियत से कांस्टीट्यूशन (विधान) के बनाने में भाग लिया। और जो आज देश का नाम निर्धारित हो रहा है उसके अन्तर्गत वह सब उसी प्रकार शामिल है जैसे बाकी दीगर प्रान्तों के हिस्से, अब उनमें कोई भेदभाव नहीं रहा। हमेशा प्रान्तों और रियासतों में भेद रखा गया था। जब ड्राफ्ट कान्स्टीट्यूशन तैयार किया गया तो उसमें भी हर प्रकार से रियासतों को अलग रखने की चेष्टा की गई थी और उसे रखा जाता रहा है, लेकिन बड़े प्रयत्नों के बाद यह बात अच्छी तरह से ड्राफ्टिंग कमेटी की समझ में आ गई कि अब उस रियासत की जनता को या रियासतों के विधान को इस विधान से अलग नहीं रखा जा सकता। सरदार पटेल की कृपा से रियासतों का एकीकरण हुआ, उनकी व्यवस्था दुरुस्त हुई और उनमें राजाओं का राज्य समाप्त हुआ, तो हमारी ड्राफ्टिंग कमेटी ने भी हर जगह जहां जहां रियासतों की व्यवस्था विधान में अलग रखी गई थी वहां वहां उनको प्रान्तों की बराबरी में ले आने के संशोधन विधान में हमारे संशोधन के अतिरिक्त स्वयं संशोधन किये; इसके लिये मैं ड्राफ्टिंग कमेटी का रियासती प्रतिनिधियों की ओर से बहुत-बहुत शुक्रगुजार हूं। उन्होंने हमारी रियासती जनता की इच्छा का अनुभव करते हुए जैसे प्रान्तों की जनता थी उसी तरह से हमारी रियासती जनता को एक ही आधार पर विधान में ले आये। आज रियासती व प्रान्तीय जनता इस विधान के मातहत एक ही तरह की मशीनरी से शामिल एवं अपने अधिकारों का उपयोग करेगी। एक समय वह था कि जब यह समझा जाता था कि रियासतें अंग्रेजी राज्य को मजबूत बनाने के लिये कायम की गई हैं; यह, एक प्रकार का कलंक रियासती जनता पर भी था। आज से बहुत पहले हम उस कलंक को मिटा चुके हैं और भारतवर्ष का एक अंग बनकर ही हमने कांस्टीट्यूशन बनाने में भाग लिया है और सारे विधान का उपभोग हम अब प्रान्तीय जनता के समान उसके साथ करेंगे।

मैं अधिक समय हाउस का न लेकर उस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।

श्री कमलापति त्रिपाठी (यू.पी. : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने मुझे एक ऐसे संशोधन पर अपने हृदय के उद्गारों को प्रकट करने

का अवसर दिया है जिसको मैं बहुत पवित्र मानता हूं। आज इस देश का नामकरण करने का संशोधन हमारे सामने उपस्थित है। मुझे प्रसन्नता होती यदि ड्राफ्टिंग कमेटी ने जो संशोधन उपस्थित किया है उसका स्वरूप कुछ दूसरा रखा होता। इण्डिया दैट इज भारत के स्थान पर यदि दूसरे प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया गया होता तो मैं समझता हूं कि, अध्यक्ष महोदय, कि वह इस देश की परम्परा और गौरव के अनुकूल ही होता और कदाचित् इस विधान-परिषद् के लिये भी सौभाग्य की बात हुई होती। यदि दैट इज लगाना ही था तो भारत दैट इज इण्डिया यदि स्वीकार किया गया होता और इस प्रकार का प्रस्ताव हमारे सामने आता तो वह अधिक उपयुक्त हुआ होता। मेरे मित्र कामत जी ने आपके सामने अपना संशोधन उपस्थित किया है कि भारत एज इट इज नोन इन इंग्लिस लैंग्वेज इण्डिया को ड्राफ्टिंग कमेटी ने स्वीकार किया होता अथवा इस समय भी स्वीकार कर लेती तो वह भी हमारे हृदय को और हमारे गौरव को अधिक सम्मानित करता और हमें प्रसन्ता प्रदान करता। फिर भी सभापति जी, जो प्रस्ताव हमारे सामने उपस्थित किया गया है उस पर हम प्रसन्न हैं और इसके लिये ड्राफ्टिंग कमेटी को बधाई देते हैं।

जब कोई देश पराधीन होता है तो वह अपना सब कुछ खो देता है। एक हजार वर्षो की अपनी पराधीनता में हमारे इस देश ने भी अपना सब कुछ खो दिया। हमने अपनी संस्कृति खो दी, हमने अपना इतिहास खो दिया, हमने अपना सम्मान खो दिया, हमने अपनी मनुष्यता खो दी हमने अपना गौरव खो दिया, हमने अपनी आत्मा खो दी और कदाचित् हमने अपना स्वरूप खो दिया तथा अपना नाम भी खो दिया। आज सहस्र वर्ष की पराधीनता के बाद स्वाधीन हुआ यह देश अपना नाम प्राप्त करेगा और हम आशा करते हैं कि अपनी संज्ञा लुप्त हुई संज्ञा प्राप्त करने के बाद वह अपना स्वरूप भी प्राप्त करेगा, अपना आकार भी प्राप्त करेगा और अपनी मूर्छित हुई आत्मा का उद्बोधन भी अनुभव करेगा; कदाचित् वह संसार में अपना गौरवपूर्ण स्थान भी प्राप्त कर सकेगा। हमारे राष्ट्रपिता बापू के चरणों से जो विप्लवात्मक धारा हमारे देश में प्रवाहित हुई है उसने हमें अपने स्वरूप का ज्ञान कराया, उसने देश की उसकी विस्मत हुई आत्मा प्रदान की। आज उनके चरणों का ही यह प्रताप है, उनकी तपस्या का ही यह फल है, उनकी साधना की ही यह सफलता है कि हम कदाचित् अपना नाम भी प्राप्त करने जा रहे हैं।

सभापति जी, मुझे भारत के इस शब्द के बड़ा प्रेम है। यह एक ऐसा शब्द है जिसका उच्चारण करने मात्र से हमें अपने देश की सहस्राब्दियों की संस्कृति क्षण मात्र में सामने दिखाई पड़ने लगती है। मैं समझता हूं कि इस धरती पर कोई दूसरा ऐसा राष्ट्र नहीं है जिसके जीवन का इतिहास, जिसका सांस्कृतिक प्रवाह और जिसका नाम सहस्रों वर्षो से इसी प्रकार अब तक चला आता है, जैसा हमारे देश का चला आता है। धरती के अंक में कोई ऐसा देश नहीं है जिसने इतने पद् दलन, इतने अपमान और इतनी लम्बी पराधीनता के बाद भी अपने नाम और अपनी आत्मा को किसी प्रकार रखने में सुरक्षित समर्थ हुआ हो।

आज सहस्रों वर्षो के बीत जाने पर भी हमारा देश भारत कहा जाता रहा है। अब तक हमारे साहित्य में यह नाम प्रयुक्त होता रहा है। वेदों के युग से लेकर पुराणों में तो इस नाम की कितनी महिमा है। हमारे पुराण भारत के नाम और

[श्री कमलापति त्रिपाठी]

इस देश की महिमा का गुणगान करते रहे हैं। देवता स्वर्ग में इस देश के नाम का स्मरण करते रहे हैं "गायन्ति देवा खिल गीत कानी" पुराण कहते हैं कि इस देश का गुणगान देवता भी स्वर्ग में बैठे हुए करते हैं। देवताओं में यह कामना होती है कि वह भारत की पवित्र भूमि में उत्पन्न हों और जीवन उपभोग करके अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

हमारे लिये तो इस नाम में हमारी पवित्र स्मृति भरी हुई है। जिस क्षण हम इस नाम का उच्चरण करते हैं उस क्षण हमें अपने पुराने इतिहास, अपने पुराने वैभव और अपनी पुरानी संस्कृति के सारे दृश्य दृष्टिगोचर हो जाते हैं। हमें स्मरण हो जाता है कि यह वह देश है जिसमें किसी युद्ध में बड़े-बड़े पुरुषों ने, बड़े-बड़े महर्षियों ने एक महान् संस्कृति को जन्म दिया था। जिस संस्कृति ने न केवल इस देश के कण कण को प्रभावित किया वरन यहां की सीमा का उल्लंघन करके सुदूर पूर्व के कोने-कोने में पहुंची। हमें स्मरण होता है कि एक ओर वह संस्कृति भूमध्य-सागर के तट तक पहुंची तो दूसरी ओर उसने प्रशान्त की लहरियों का भी स्पर्श किया। हमें स्मरण होता है कि इस देश के हमारे नायकों ने, हमारे विचारकों ने, सहस्राब्दियों पूर्व एक महान् राष्ट्र को जन्म दिया था जिसने अपनी संस्कृति को सारे संसार में फैलाया और एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें हमारे महर्षियों के मुंह से निकले हुए ऋग्वेद के उन मन्त्रों की याद आ जाती है जिसमें उन्होंने अपने सत्य और अन्तर्ज्ञान से उत्पन्न अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया। जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें उपनिषद् के वह वाक्य याद आ जाते हैं जिसकी वीर वाणी समस्त मानव जाति को आमन्त्रित करती हुई कहती है कि "उठो, जागो और लक्ष्य को प्राप्त करो।"

जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें भगवान कृष्ण के वह शब्द याद आ जाते हैं जिसके द्वारा उन्होंने इस देश के जन समाज को उस व्यावहारिक दर्शन का उपदेश किया था जिसके द्वारा आज के संसार का मानव भी सतगति को प्राप्त कर सकते हैं। इस शब्द का उच्चारण करने से हमें भगवान तथागत की याद आ जाती है जिन्होंने ललकार कर संसार से कहा था कि "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकंपाय" जीवन का संचालन करो और देवताओं और मनुष्यों के हित के लिये उठो, जागो और संसार को ज्ञान के मार्ग का प्रदर्शन कराओ। जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें शंकराचार्य का स्मरण हो आता है जिन्होंने संसार को एक नई दृष्टि प्रदान की। जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें भगवान राम की उन विशाल भुजाओं का स्मरण हो जाता है जिसमें धनुष की प्रत्यंचा के टंकार से इस देश के आसमुद्र हिमाचल अंतरिक्ष को गुंजारित कर दिया था। जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें भगवान कृष्ण के उस चक्र का स्मरण हो जाता है, जिसने भारत के भयावने क्षात्र साम्राज्यवाद को नष्ट करके इस देश की धरती का भार हल्का किया था।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, क्या यह सब आवश्यक है?

***श्री कमलापति त्रिपाठीः** श्रीमान्, मैं केवल संगत बातें सुनाने के लिये कह रहा हूं।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: अभी बहुत काम करना है।

श्री कमलापति त्रिपाठी: जब हम इस शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमें बापू का स्मरण हो आता है जिन्होंने मानव जाति को एक नया संदेश दिया।

हमें प्रसन्नता है और हम डाक्टर साहब को इस बात के लिये बधाई देते हैं कि उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया है। यह बात कितनी अच्छी होती अगर वह श्री कामत के संशोधन को भी स्वीकार कर लेते जिसमें कहा गया है—'Bharat as is known in English language' इससे देश के गौरव की रक्षा होगी।

भारत शब्द को रखने से, इसको ग्रहण करने से हम इस देश को एक स्वरूप प्रदान कर सकेंगे। इस देश को उसकी खोई हुई आत्मा को दे सकेंगे। इस देश की रक्षा कर सकेंगे। भारत एक महान् राष्ट्र हो जायेगा जो संसार के रंगमंच पर मानव जाति की सेवा कर सकेगा।

*श्री एस. नागप्पा: अब इस पर मत लिया जाये।

*अध्यक्ष: मैं एक वक्ता को बुला चुका हूं। उनके बाद मैं विवाद बन्द करने के प्रस्ताव पर मत लूंगा।

*डॉ. पी.एस. देशमुख: आज कोई जल्दी नहीं है।

*माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर: यह सुनने के लिये मेरे पास समय नहीं है।

*डॉ. पी.एस. देशमुख: यदि आप नहीं सुनना चाहते हैं तो आप जा सकते हैं।

श्री हरगोविन्द पन्त (यूपी : जनरल): सभापति जी, इस परिषद् के प्रारम्भिक अवस्था में ही मैंने एक संशोधन भेजा था जिसका अभिप्राय यह था कि इण्डिया शब्द के स्थान में भारत या भारतवर्ष का प्रयोग किया जाये। मुझे हर्ष है कि इस संबंध में थोड़ी कुछ बदलफेर तो स्वीकार कर ली गई है। परन्तु यह जो भारतवर्ष शब्द है उसका जो गौरवपूर्ण स्थान स्वीकार किया जा रहा है, सीधे क्यों नहीं इस देश के नाम के लिये ग्रहण कर लिया जाता है, यह बात तो मेरी समझ में नहीं आती। मैं उन बातों को दोहराना नहीं चाहता हूं जो कि अन्य सदस्यों ने इस महान् शब्द के प्रयोग के लिये यहां पर कही हैं। मैं सिर्फ दो एक बात इस संबंध में कहना चाहता हूं।

भारतवर्ष या भारत यह नाम तो हमारे दैनिक धार्मिक संकल्प में कहा जाता है जो नित्य स्नान में भी काम में आता है: "जम्बू द्वीपे भरत खण्डे आर्यावर्ते" यही नहीं, इस नाम को जगत् प्रसिद्ध महाकवि कालीदास ने अपने दो प्रसिद्ध पात्र राजा दुष्यन्त और शकुन्तला के आख्यान में भी प्रयुक्त किया है। राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के पुत्र का नाम भरत था उनका राज्य भारत कहलाया। इस भारत के विषय में हमारे ग्रंथों में उनकी वीरता का बड़ा रोचक वर्णन आता है। शैशव काल में ही वे सिंह के बच्चों से खेलते थे और उन्हें हरा देते थे। इस आख्यान को सभी लोग अच्छी तरह जानते हैं। तो फिर मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि क्यों न इस नाम को खुले दिल से ग्रहण किया जाता है।

[श्री हरगोविन्द पन्त]

रहा इण्डिया नाम, इस शब्द से न जाने क्यों हमारी ममता सी हो गई है, यह नाम इस देश को विदेशियों ने दिया है। यह नामकरण भी विदेशियों ने ही किया है और उनको इस देश के वैभव का हाल सुन लालच हुआ था और अपनी लालसा को पूरी करने के लिये उन्होंने हमारी स्वाधीनता पर आक्रमण किया था। अगर हम इण्डिया शब्द को अब भी अपने हृदय से लगाये रखें तो इसके माने यह होते हैं कि हमको इस नाम से, जो हमारे लिये अपमानजनक है, जिस नाम को विदेशियों ने हमारे ऊपर थोपा है और जिसका नामकरण उन्होंने किया है, उससे हमको कोई दु:ख नहीं है। मेरी समझ में यह बातें नहीं आतीं कि क्यों कर हम इस नाम को अपने पास रख रहे हैं।

भारतवर्ष और भारत हमारे नाम हैं और यह नाम हमारे प्राचीन इतिहास और प्राचीन परम्परा से चले आ रहे हैं और हम लोगों को बड़ा उत्साह और बड़ी वीरता देने वाले हैं। इसलिये मैं तो कहूंगा कि इस नाम को अपनाने में हमें बिल्कुल भी संकोच नहीं करना चाहिये। अगर हमने इस नाम को नहीं रखा और इसकी जगह में किसी दूसरे शब्द को स्थान दिया तो यह हमारे लिये एक लज्जा का विषय होगा।

मैं भारत के उस उत्तर प्रान्त के रहने वाले 18 लाख लोगों का प्रतिनिधित्व यहां पर करता हूं, जिस उत्तर प्रान्त में श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, श्री जागेश्वर, श्री बागेश्वर और मानसरोवर आदि स्थान हैं। वहीं की जनता की अभिलाषा मैं आपके सामने रखना चाहता हूं और मैं आपसे कहूंगा कि वहां की जनता यह चाहती है कि इस देश का नाम भारतवर्ष हो न कि और कुछ। जय हिन्द।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं विभिन्न संशोधनों पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित (1) और (2) खण्डों के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'India shall be a Union of Socialistic Republics to be U.I.S.R. on the lines of U.S.S.R.'"

[भारत समाजवादी गणराज्यों का संघ होगा और यू.एस.एस.आर. के समान यू.आई.एस.आर. कहा जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित (1) और (2) खण्डों के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'India or Bharat shall be a Union on Sovereign States of India or Bharat to be called U.S.S.I. or U.S.S.B. on the lines of U.S.S.R.'"

[इण्डिया या भारत इण्डिया या भारत के सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्यों का संघ होगा और यू.एस.एस.आर. के समान यू.एस.एस.आई. या यू.एस.एस.बी. कहा जायेगा।]

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि सूची 4 (अष्टम सप्ताह) के संशोधन संख्या 130 में अनुच्छेद 1 के प्रस्थापित खण्ड (1) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(1) Bharat, or in the English language, India shall be a Union of States.'"

[(1) भारत अथवा अंग्रेजी भाषा में इण्डिया राज्यों का संघ होगा।]

हाथ उठाकर सभा में मत विभाजन हुआ।

पक्ष में: 38

विपक्ष में: 51

संशोधन अस्वीकार किया गया।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 223।

***श्री एच.वी. कामतः** डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिये गये वक्तव्य को ध्यान में रखते हुए कि बाद में अनुसूची में संशोधन होगा, इस संशोधन पर जोर देने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

(सभा की अनुमति से संशोधन वापस किया गया।)

***अध्यक्षः** सिवाय एक संशोधन के, जिसे स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने पेश किया है और जो उनके ही संशोधन संख्या 197 द्वारा संशोधित रूप में है, अन्य कोई संशोधन नहीं है।

***श्री बजेश्वर प्रसादः** मेरे संशोधन का क्या हुआ?

***अध्यक्ष:** उसको नियम विरुद्ध घोषित कर दिया गया था। प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 1 के खण्ड (1) और (2) के स्थान में यह खण्ड रखा जाये:

'(1) India, that is, Bharat shall be a Union of States.

(2) The States and the territories thereof shall be the States and their territories for the time being specified in Parts I, II and III of the First Schedule.'"

[(1) इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का संघ होगा।

(2) उसके राज्य और राज्य-क्षेत्र प्रथम अनुसूची के भाग 1, 2 और 3 में उल्लिखित राज्य और उनके राज्य-क्षेत्र होंगे।]

संशोधन स्वीकार किया गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 1 संविधान का अंग बने।"

प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 1 संविधान में प्रविष्ट किया गया।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इसके बाद सत्र समाप्त होता है और अब हम स्थगित होंगे। जैसी प्रात: घोषणा की गई थी, आगामी सत्र के लिये मैं तिथि नियत करूंगा जो सम्भवत: 6 अक्तूबर होगी।

इसके पश्चात् सभा अक्तूबर, 1949 की उस तिथि तक के लिए स्थगित हो गई, जिसे माननीय अध्यक्ष नियत करेंगे।